





विश्वमित्र

सम्पादक—
शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

[illegible], १९४०
वर्ष ८, खण्ड १५
अङ्क ४, पूर्ण संख्या ८८
पौष, १९९६

सजल गान

आशा - घट जिसका चूर हुआ
मृग-तृष्णा पर जो जीता हो
जो अपने उरके घावोंको
सुधिके कांटोंसे सीता हो !

[illegible] न सके
[illegible] ह न सके
[illegible] जिसके लोचन
[illegible] में बह न सके
[illegible] नित मूक बना
आंखोंका [illegible] पीता हो !

जिसकी रस-सरिता सूख चली
तटपर केवल पद - छाप पली
फिर जिसे मिटानेको झञ्झा
बरजोरी करती [illegible]रार चली
जिसकी आहोंके झोंक[illegible] कि
झञ्झा झकोरको [illegible] कि उसका

उसकी आकुलता आतुरता
[illegible]की परवशता कातरता
समझेगा क्या यह निष्ठुर जग
जिसको आंसू पुलकित करता
समझे उसका सुख-दुःख वही
जिसपर वैसा ही बीता हो!

वह उस दुखको मुद मान लिये
वह अमित व्यथाका पान किये
जिसके कन-कनमें प्यार भरा
उस निर्जनमें ही क्यों न जिये?
जिसकी मादक तम-छायाको
दुनिया लख चकित-भीता हो!

जगसे अब जलन छिपानेको
सूनेमें अश्रु गिरानेको
यह नियति मानिनी ऐंठी-सी
बैठा हूं इसे मनानेको
है यही मुझे वरदान मिला
दृगका घट कभी न रीता हो!

—परमानन्द शुक्ल, बी० ए०

सङ्गीत द्वारा मानव-कल्याणके वैज्ञानिक प्रयोग

डा० ए० पी० अग्निहोत्री, पी-एच० डी०

सङ्गीतकी महिमा अद्भुत है। साहित्य और कलाके साथ सङ्गीतका संयोग कर उस विद्वान्ने ठीक ही कहा था, 'साहित्य सङ्गीत कला विहीन, साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीनः।' सङ्गीतकी महिमा अपार न होती, तो भगवान्ने स्वयं न कहा होता :—

नाहं वसामि वैकुण्ठे, योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति, तत्र तिष्ठामि नारद॥

आधुनिक विज्ञानने भी सङ्गीत द्वारा प्राणियोंपर पड़नेवाले प्रभावकी छानबीन की है और उसे अद्भुत पाया है। प्राणियोंकी कोमल भावनाओंपर इसके प्रभाव पड़नेकी बात तो बहुत प्राचीन कालसे ही लोग कहते रहे हैं; पर आधुनिक खोजोंने यह भी प्रमाणित किया है कि सङ्गीतका प्रयोग अब रोगोंकी चिकित्साके लिए भी होने लगेगा। इस विषयमें वैज्ञानिकोंके प्रयोग अब तक सफल हो सके हैं और इस बातकी पूरी सम्भावना पायी जाती है कि विशाल पैमानेपर [illegible] सफल प्रयोग होने लगेंगे। बीमारी तथा साधारण [illegible] ही अवस्थामें और दूसरी औषधियोंके साथ [illegible] सङ्गीत नियमानुकूल—ऐसी व्यवस्था सम्भवतः अब डाक्टर देने लगेंगे और केवल उन्माद[illegible] बीमारियोंसे प्राणियोंको मुक्त करनेके लिए [illegible]

प्रयोगशालाओं, अस्पतालों, बन्दी-गृह[illegible] रोगोंकी चिकित्सा करनेवाले औषधालयोंमें [illegible] विशेषज्ञोंने अनेक परीक्षाओंके बाद यह [illegible] कि हमारे शरीर एवं मनपर सङ्गीत[illegible] पड़ता है।

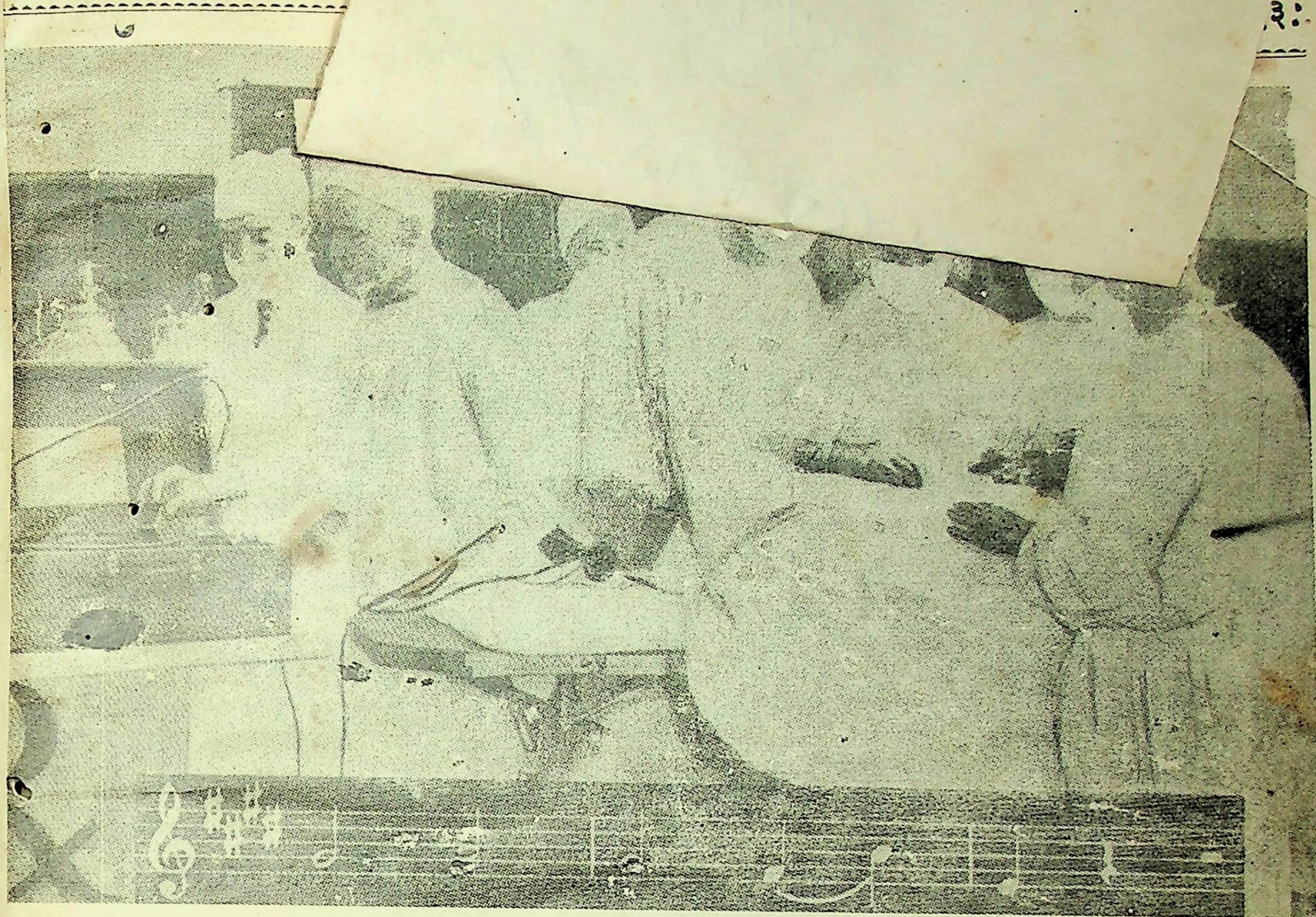
एक रूसी विज्ञानवेत्ता प्रो० ए[illegible] वी० क्रोदोव[illegible] बार अपने प्रयोगोंमें सफलता प्राप्त कर लेनेके बाद यह प[illegible]णाम निकाला है कि सङ्गीत द्वारा आंखोंका इलाज किया जा सकता है और जिन आंखोंकी रोशनी धीरे-धीरे कम होती चलती है, उनमें लगभग २५ प्रतिशत सुधार आसानीके साथ सङ्गीत द्वारा इलाज करके किया जा सकता है। उक्त वैज्ञानिकने प्रयोग करके देखा है कि जो घड़ियां घण्टा बजाती हैं, उनके सङ्गीतमय मधुर स्वरसे ही आंखोंपर काफी प्रभाव पड़ जाता है। ज्योतिष, अणुवीक्षण यन्त्र तथा इन्[illegible] ग्रेविङ्ग आदिसे सम्बद्ध कार्योंमें इन प्रयोगोंके परिणा[illegible] काफी काम लिया जा सकता है; क्योंकि नेत्रोंकी ज्यो[illegible]

अस्पतालमें

इनमें बहुत बड़ी आवश्यकता ... ज्योतिको न केवल बढ़ाने, बलि ... सहायता मिलती है ।

रूसकी अपेक्षा अमेरिकाके प्रयोग तो और भी आश्चर्य-जनक देखे गये हैं । शिकागोके पागलखानेमें विश्व-प्रसिद्ध पियानोवादक प्रो० बोगूस्लावस्कीने कई अनोखे प्रयोग किये । उस पागलखानेमें एक इटैलियन युवती भरती हुई थी । अभी उसको एक ही सन्तान हुई थी कि बेचारी बीमार पड़ी और अस्पतालसे पागल होकर निकली । इसके बाद उसे शिकागोके पागलखानेमें डाला गया; क्योंकि उसकी हरकतें ऐसी होने लगी थीं कि दूसरोंकी तो बात ही क्या, उसका अपना बच्चा तक उससे सुरक्षित न था । अजब विक्षिप्त मस्तिष्क उसका हो गया था । चुपचाप आकाशकी ओर देखती रहती और दवादारूके लिए कोई पास जाता, तो चीख मारकर ऊधम मचाती और चिल्ला-चिल्लाकर कहती—'मेरा इलाज ... वह भूखी ... उसकी ओर टूट पड़ता । उसे वह फूटी आंखों भी देखना नहीं चाहती थी ।

बोगूस्लावस्कीने सुना, तो वह हैरतमें आ गया; पर उसने प्रयोग करनेका इरादा किया । उसने पागलखानेमें जा पियानो बजाकर उस इटैलियन पगलीकी परीक्षा करनी चाही । आज्ञा मिल गयी और बोगूस्लावस्की पगलीके पास गया । वहां जाकर उसने इटैलियन गीत पियानोपर बजाना शुरू किया । उच्चकोटिके विशुद्ध सङ्गीतसे लेकर ग्राम्य गीतों तकको उसने विभिन्न स्वरोंमें बजाया । अन्तमें जब उसने एक ग्राम्य गीतकी लय मधुर करुण स्वरमें बजायी, तो नारी—जो अब तक चुपचाप ध्यानावस्थित सङ्गीतकी तरफ खिंची-सी बैठी थी—फूट पड़ी और सिसक-सिसककर रोने लगी; और पियानोका बजना अभी बन्द नहीं हुआ था कि वह हाथ जोड़कर नौकरोंसे प्रार्थना करने लगी कि उसका



अस्पतालमें रोगीके कानोंपर 'ईयर फोन' लगाकर उसका आपरेशन किया जा रहा है।

...नमें बहुत बड़ी आवश्यकता पड़ती है और सङ्गीत द्वारा ज्योतिको न केवल बढ़ाने, बल्कि उसे खूब स्पष्ट रखनेमें भी सहायता मिलती है।

रूसकी अपेक्षा अमेरिकाके प्रयोग तो और भी आश्चर्यजनक देखे गये हैं। शिकागोके पागलखानेमें विश्व-प्रसिद्ध पियानोवादक प्रो० बोगूस्लावस्कीने कई अनोखे प्रयोग किये। उस पागलखानेमें एक इटैलियन युवती भरती हुई थी। अभी उसको एक ही सन्तान हुई थी कि बेचारी बीमार पड़ी और अस्पतालसे पागल होकर निकली। इसके बाद उसे शिकागोके पागलखानेमें डाला गया; क्योंकि उसकी हरकतें ऐसी होने लगी थीं कि दूसरोंकी तो बात ही क्या, उसका अपना बच्चा तक उससे सुरक्षित न था। अजब विक्षिप्त मस्तिष्क उसका हो गया था। चुपचाप आकाशकी ओर देखती रहती और दवादारूके लिए कोई पास जाता, तो चीख मारकर ऊधम मचाती और चिल्ला-चिल्लाकर कहती—'मेरा इलाज पशुओंकी तरह करो।' अपने बच्चेको तो देखते ही वह भूखी शेरनीकी भांति उसकी ओर टूट पड़ती। उसे वह फूटी आंखों भी देखना नहीं चाहती थी।

बोगूस्लावस्कीने सुना, तो वह हैरतमें आ गया; पर उसने प्रयोग करनेका इरादा किया। उसने पागलखानेमें जा पियानो बजाकर उस इटैलियन पगलीकी परीक्षा करनी चाही। आज्ञा मिल गयी और बोगूस्लावस्की पगलीके पास गया। वहां जाकर उसने इटैलियन गीत पियानोपर बजाना शुरू किया। उच्चकोटिके विशुद्ध सङ्गीतसे लेकर ग्राम्य गीतों तकको उसने विभिन्न स्वरोंमें बजाया। अन्तमें जब उसने एक ग्राम्य गीतकी लय मधुर करुण स्वरमें बजायी, तो नारी—जो अब तक चुपचाप ध्यानावस्थित सङ्गीतकी तरफ खिंची-सी बैठी थी—फूट पड़ी और, सिसक-सिसककर रोने लगी; और पियानोका बजना अभी बन्द नहीं हुआ था कि वह हाथ जोड़कर नौकरोंसे प्रार्थना करने लगी कि उसका

बच्चा ए... ...र—सिर्फ एक बार—क्षण-भरके लिए ही ... दिखा दिया जाय।

पियानोका प्रयोग एक दूसरी महिलापर भी किया गया था। वह उन्माद रोगसे ग्रसित थी और समय-समयपर दौर आया करता था, जिससे वह अकस्मात् गिर पड़ती और कभी-कभी घण्टों बेहोश पड़ी रहती। एक बार उसे दौर आने ही वाला था कि तब तक पास ही बैठे हुए एक व्यक्तिने पियानो बजाना आरम्भ कर दिया। थोड़ी देरके बाद देखा गया कि दौर बढ़ा नहीं। पहलेकी अपेक्षा दौर मामूली रहा। और तबसे उस रोगिणीको लेकर पियानोके और भी कई बार प्रयोग किये गये। इन सारे प्रयोगोंके आधारपर उस रोगिणीके लिए अब यही व्यवस्था की गयी कि दौरका आभास मिलते ही वह पियानोपर सङ्गीतकी एक 'खुराक' ले ले और मूर्च्छना शान्त हो जायगी।



प्राचीन कालसे ही जङ्गली जातियोंके सरदार सङ्गीत-वाद्यसे युद्धकी ओर वीरोंका आह्वान करते रहे हैं।

मनोविज्ञानवेत्ता, सर्जन, दन्त-रोगोंके विशेषज्ञ सङ्गीत द्वारा ऐसे-ऐसे काम लेने लगे हैं, जो चिकित्सा-विज्ञान द्वारा पहले इतने सहजसाध्य न थे। न्यूयार्क शहरके बिलेव अस्पतालके डा० एल० एस० वेण्डरने स्वभावतः उत्पाती बच्चोंके उपद्रवोंको छुड़ानेका साधन सङ्गीतमें खोज निकाला है। ब्रुकलिनके नेत्र और कान अस्पतालके चिकित्सक डा०ए०एफ० अर्डमैनने चीर-फाड़के समय रोगियोंके कानमें 'ईयर फोन' लगाकर उनकी यन्त्रणाओंको बहुत कम कर दिया है। कुछ ऐसे रोगी होते हैं, जो पीड़ासे नहीं, पीड़ाकी आशङ्कासे घबराते और स्नायविक दुर्बलताके कारण मामूली चीर-फाड़का नाम सुनते ही कांपने लगते हैं। ऐसे लोगोंके लिए चिकित्सकोंने सङ्गीतकी व्यवस्था कर दी है। इसकी व्यवस्था यों की गयी है कि जब उनका आपरेशन होता रहेगा, तब पासमें रखे हुए ग्रामोफोनपर बढ़िया रेकर्ड बजते रहेंगे और एक ईयर फोन रोगीके कानपर लगा दिया जायगा, जिससे उसकी मधुर स्वर-लहरीमें डूबा वह साधारण यन्त्रणाओंकी ओर ध्यान भी न दे सकेगा। एक बार एक सङ्गीतज्ञने स्वयं अपने हाथसे हारमोनियम बजाना स्वीकार किया था, जब कि डाक्टर उसकी जांघमें लगी हुई गोली निकाल रहे थे।

सङ्गीतका प्रभाव केवल मनुष्योंपर ही पड़ता हो, ऐसी बात नहीं है। पशुओंपर भी उसका प्रभाव पड़ता है। स्वीडेनके कुछ डेयरी फार्मोंमें इस बातका प्रयोग किया गया था और उसमें यह सफलता मिली थी कि गायोंको दुहते समय अगर सङ्गीत होता रहे, तो गायें अधिक दूध देती हैं। मदारीके डमरूपर नाचते हुए बन्दरों और भालुओं तथा वीणा-ध्वनिपर प्राणोंका भी मोह छोड़नेवाले हिरनोंकी घटनायें कितनोंने आंखों देखी हैं। विषधर सर्प जब संपेरेकी तुमड़ीपर मुग्ध होकर—अपना विषैला स्वभाव त्याग उन्मत्त होकर—उसके सङ्केतपर नाचने-लोटने लगता है, तब मनुष्य सङ्गीतमें अपना



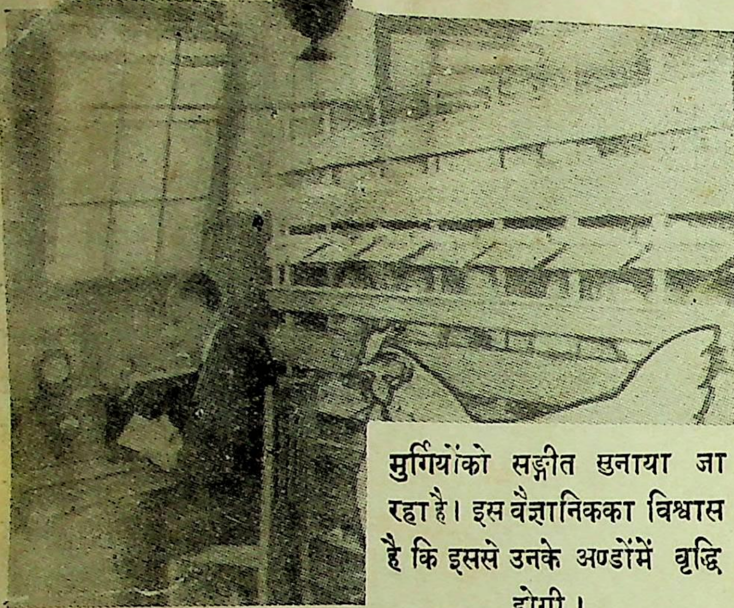
सँपेरेकी तुमड़ीपर विषधर मन्त्रमुग्ध हो रहे हैं।

पन भूल जाये, तो कोई आश्चर्य नहीं। बादलोंके गरजनेका स्वर सुनकर मोरोंका विहकना और नाचना सङ्गीतका ही चमत्कार है। विभिन्न पशुओं और मनुष्योंपर सङ्गीतका विभिन्न रूपोंमें प्रभाव पड़ता है, लेकिन पड़ता है। यह तो बनैले तथा पालतू पशु-पक्षियों एवं सभ्य-असभ्य सभी जातिके स्त्री-पुरुषोंपर पड़ता है। हम-आप अक्सर इसके प्रभाव देखते ही रहते हैं और सङ्गीतके इस सार्वजनीन प्रभावको देखकर ही वैज्ञानिकोंने प्राणिमात्रके कल्याणके लिए इसका लाभजनक उपयोग करनेकी ओर ध्यान दिया है।

हमारे शरीर और मनपर सङ्गीत द्वारा पड़नेवाले प्रभावको सब स्वीकार करते हैं; पर सङ्गीत-शास्त्रज्ञ भी अभी निर्विवाद रूपसे इस तथ्यपर नहीं पहुंच सके हैं कि यह प्रभाव पड़ता कैसे है। कुछ लोगोंका विश्वास है कि सङ्गीतकी ध्वनिकी जो कम्पन-तरङ्गें (Sound vibrations) उठती हैं, उनका हमारे शरीरपर प्रभाव पड़ता है; पर दूसरे विशेषज्ञोंका मत है कि स्नायुओं तथा भावनाओंके सम्पर्कसे ही हम सङ्गीतसे प्रभावित होते हैं। कितने ही रोग चिन्ता, भय, अतिभावप्रवणता आदिके कारण उत्पन्न होते हैं, अतः डा० जार्ज डब्ल्यू० क्राइलका कहना है कि स्नायुओं तथा भावनाओंको सङ्गीत प्रभावित करके उक्त रोगोंको भी प्रभावित करता है। सङ्गीत द्वारा स्नायुओंको आराम मिलता है, अतः उक्त रोगोंमें भी सुधार होने लगता है।

विभिन्न प्रकारके सङ्गीत-वाद्यका प्रभाव विभिन्न व्यक्तियोंपर विभिन्न रूपोंमें पड़ता है। उदाहरणार्थ—ढोलकी आवाज किसीके मस्तिष्कको शान्त कर सकती है, तो कितने ही उत्तेजित हो जाते हैं। विभिन्न रागोंका प्रभाव सुननेवालोंपर विभिन्न रूपोंमें देखा गया है। धीरे-धीरे सङ्गीतका गुनगुनाना हमारे हृदयको मुग्ध करता है। बैण्डके साथ बिगुलका स्वर प्राणोंमें कैसी चञ्चलता भर देता है! रातका विहाग हृदयको मथकर भावनाओंको आन्दोलित कर देता है, तो सवेरेकी शहनाई प्राणोंको भाव-विभोर कर देती है। सङ्गीत-वाद्य चल रहा हो, तो आप लोगोंकी नजरें बचाकर जरा सुननेवालोंके चेहरोंपर दृष्टि डालिये, देखिये, कितने लोगोंपर कितने तरहके भाव खिंच गये हैं—खिंच गये हैं, हमने जान-बूझकर कहा है; क्योंकि उस समय मनोभाव गुप्त नहीं रह सकते; आंखों, भवों और चेहरेपर स्पष्ट रेखाओंमें खिंच उठते हैं।

उत्पाती कैदियों और भीषण अपराधोंके अपराधियोंपर भी सङ्गीतका कैसा प्रभाव पड़ता है, इसे सङ्गीत-शास्त्रके विशारद विलियम वालने प्रत्यक्ष प्रमाणित कर दिखाया है।



मुर्गियोंको सङ्गीत सुनाया जा रहा है। इस वैज्ञानिकका विश्वास है कि इससे उनके अण्डोंमें वृद्धि होगी।

विलियम वाल हालैण्डमें पैदा हुआ था; पर अपनी सङ्गीत-सम्बन्धी प्रतिभाका विकास उसने अमेरिकामें किया है। एक दिनकी घटना है—एक पागलखानेमें वह अपना बाजा लिये घुस गया। यह बड़े जीवटका काम था; क्योंकि उस पागल-खानेमें कई पागल ऐसे थे, जो बहुत भयानक समझे जाते थे। विलियम वाल भीतर दिखाई पड़ा कि एक बलिष्ठ, सुगठित शरीरवाला पागल, जिसकी पागलखानेके अधिकारियोंने खास निगरानी रखनेका आदेश दे रखा था, उसकी ओर आगे बढ़ा। लेकिन वालको अपनी कलापर विश्वास था। उसने सङ्गीतका स्वर और मधुर किया और पागल मन्त्रमुग्धकी तरह आगे बढ़कर उसके स्वरमें स्वर मिलाकर गाने लगा। इसके बाद हफ्तेमें एक बार गानेकी सुविधा उसे इस प्रतिज्ञापर मिली कि वह अपनेको नियन्त्रित रखेगा। कुछ महीनोंके बाद उसे पागलखानेसे बाहर निकाल दिया गया। गानेकी सुविधा उसे मिल गयी, तो वह अक्सर गाता पाया जाता और सङ्गीतमें उसका ध्यान इतना जमा कि उसके मस्तिष्ककी विक्षिप्तता बहुत अंशोंमें जाती रही। अब उसका पागलपन भी दूर हो गया है।

सङ्गीतका प्रभाव उद्योग-धन्धोंपर भी पड़ रहा है। एक ही प्रकारका काम करते-करते शारीरिक थकानके पहले ही जो मानसिक थकान आ जाती है, उसे सङ्गीत द्वारा मिटाया जा सकता है, इसका पता लगते ही कितनी ही कम्पनियोंने अपने-अपने कारखानोंमें सङ्गीतकी व्यवस्था कर रखी है। कामके साथ-साथ हल्का, धीमा-सा सङ्गीत चलता रहता है और श्रमिक काम करते रहते हैं। देखा गया है कि इस व्यवस्थासे लोग प्रसन्नतापूर्वक अधिक मात्रामें अधिक अच्छाईके साथ काम कर जाते हैं। लन्दनमें पिछले दिनों दो प्रयोग किये गये थे, जिनसे देखा गया कि माल पैक करनेवाली एक कम्पनीमें कामके वक्त धीमे-धीमे मन्द स्वरमें सङ्गीत चल रहा था। इसका प्रभाव यह दिखाई पड़ा कि ३९९ पैक करनेवाले व्यक्तियोंने और दिनोंकी अपेक्षा ११ प्रतिशत पैक अधिक किये।

इस प्रकार सङ्गीत शारीरिक एवं मानसिक रोगोंके निराकरणके लिए एक अनोखा साधन



शेरका बच्चा सङ्गीत सुन रहा है।

हो रहा है और इसके प्रभाव उद्योग-धन्धोंके लिए भी उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं। एक विशेषज्ञको सङ्गीतमें इतनी बड़ी सम्भावनायें दिखाई पड़ती हैं कि उसने भविष्य-वाणी की है कि वह समय आनेमें बहुत देरी नहीं है, जब रोगियोंको देखनेके लिए स्टेथिस्कोप और दवाइयोंके बक्सके साथ-साथ डाक्टरोंको ग्रामोफोन मशीन तथा रेकर्ड भी लेकर चलना पड़ेगा।

समाजमें आप सर्वप्रिय कैसे हो सकते हैं ?

श्री सन्तराम, बी० ए०

अमेरिकामें लोक-व्यवहार-कलाके विशेषज्ञ, श्री० डेल कारनेगी लिखते हैं कि न्यूयार्ककी तेंतीसवीं स्ट्रीट और आठवें एवेन्यूके डाक-घरके सामने रजिस्टरी करानेवालोंकी एक पंक्ति लगी हुई थी। मैं भी उस पंक्तिमें खड़ा था। मैंने देखा कि रजिस्टरी-क्लार्क अपने काम—लिफाफे तोलने, टिकट देने, रेजगारी निकालने, रसीदें देने—से, प्रति वर्ष वही चक्की पीसते रहनेसे, तङ्ग आ रहा था। इसलिए मैंने अपने मनमें कहा, 'मैं यत्न करने लगा हूं कि यह युवक मुझे पसन्द करे। यह बात प्रत्यक्ष है कि उसको अपना चाहनेवाला बनानेके लिए, मुझे अपने विषयमें नहीं, वरन् उसके विषयमें कोई मनोहर बात कहनी चाहिए।' इसलिए मैंने अपने मनसे पूछा, 'उसकी कौन-सी चीज ऐसी है, जिसकी मैं निष्कपटतासे प्रशंसा कर सकता हूं।' यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर देना, विशेषतः अपरिचितोंके सम्बन्धमें, कभी-कभी बड़ा कठिन होता है। परन्तु इस दशामें संयोगसे यह काम सहज था। मैंने तत्काल कोई ऐसी चीज देखी, जिसकी मैं खूब प्रशंसा कर सकता था।

और जिस समय वह मेरा लिफाफा तोल रहा था, मैंने बड़े उत्साहके साथ कहा, "सच जानिये, मैं चाहता हूं, मेरे सिरके बाल भी आपके ऐसे ही होते।"

यह सुनकर वह कुछ चौंका, उसका मुखमण्डल मुसकराहटसे चमकने लगा, और उसने ऊपर दृष्टि उठायी। वह विनीत भावसे बोला, "यह अब उतने अच्छे नहीं रहे, जितने पहले थे।" मैंने उसे निश्चय कराया कि चाहे इनकी पुरानी शोभा कुछ घट गयी हो, तो भी ये बड़े शानदार हैं। वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। हम थोड़ी देर तक इसी प्रकार मनोहर वार्तालाप करते रहे, और उसने जो अन्तिम बात मुझे कही, वह थी—"कई लोगोंने मेरे बालोंकी प्रशंसा की है।"

मैं शर्त लगाकर कह सकता हूं कि उस दिन जब वह युवक डाक-घरसे बाहर निकला होगा, तो उसका पैर भूमिपर नहीं पड़ता होगा। मैं शर्त लगाकर कह सकता हूं कि उस दिन रातको घर जाकर उसने अपनी पत्नीसे इसकी चर्चा अवश्य की होगी। मैं शर्तिया कहता हूं कि उसने दर्पणमें देखकर अवश्य कहा होगा, "मेरे बाल बड़े सुन्दर हैं।"

एक बार यही कहानी डेल कारनेगीने लोगोंको सुनायी। बादको एक मनुष्यने उनसे पूछा—"आप उससे क्या लेना चाहते थे ?" इसपर कारनेगी कहते हैं कि "यदि हम इतने निन्द्य रूपसे स्वार्थी हैं कि दूसरे व्यक्तिसे बदलेमें कुछ निचोड़नेका यत्न किये बिना थोड़ी-सी प्रसन्नता विकीर्ण नहीं कर सकते अथवा उनकी थोड़ी-सी प्रशंसा नहीं कर सकते—यदि हमारी आत्मायें झाड़ियोंके छोटे बेरोंसे बड़ी नहीं, तो हमें विफल होना आवश्यक है और हम इसके पात्र हैं।

"अरे हां, मैं उस युवकसे कुछ लेना चाहता था। मैं एक अमूल्य पदार्थ चाहता था। और वह मुझे मिल गया। मुझमें यह भाव आया कि मैंने उसके लिए ऐसा कुछ किया है, जिसके बदलेमें वह मेरे लिए कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं। यह एक ऐसा भाव है, जो घटना हो चुकनेके उपरान्त देर तक अपनी स्मृतिसे चमकता और गूंजता रहता है।"

श्री० डेल कारनेगी लिखते हैं :—

मैंने रेडियो-नगरके 'जानकारी' क्लार्कसे हेनरी सूवैनके कार्यालयका नम्बर पूछा। वह साफ-सुथरी वर्दी पहने हुए था और जिस ढङ्गसे वह जानकारी वितरण करता था, उसपर उसे अभिमान था। उसने साफ और स्पष्ट रूपसे उत्तर दिया—"हेनरी सूवैन। (विराम) १८ वीं मञ्जिल। (विराम) कमरा १८१६।"

मैं १८ वीं मञ्जिलपर जानेके लिए एलीवेटर (ऊपर ले जानेवाली मशीन) की ओर दौड़ा; तब रुक गया और वापस जाकर क्लार्कसे बोला, "जिस सुन्दर ढङ्गसे आपने मेरे प्रश्नका उत्तर दिया, उसके लिए मैं आपको बधाई देना चाहता हूं। आपके शब्द बड़े स्पष्ट और निश्चित थे। आपने एक कलाकारकी भांति काम किया। और यह एक असामान्य बात है।"

उसका मुखमण्डल प्रसन्नतासे चमक उठा। उसने मुझे बताया कि वह प्रत्येक बातके बाद क्यों ठहर जाता था, और

प्रत्येक वाक्यांश क्यों ठीक-ठीक बोला गया था। मेरे थोड़े-से प्रशंसाके शब्दोंसे वह फूल गया, जिससे उसकी नकटाई कुछ ऊंची उठ गयी। जब मैं १८ वें तल्लेपर पहुंचा, तो मेरे मनमें यह भाव था कि आज मैंने मानवी सुखके सर्वयोगमें थोड़ी-सी वृद्धि की है।

गुणग्राहिताके इस तत्त्वज्ञानका उपयोग करनेके लिए आपको पहले फ्रान्समें राजदूत बनकर जाने या फल्क क्लब-को क्लम्बेक कमेटीका चेयरमैन बननेकी आवश्यकता नहीं। आप इसके साथ प्रायः नित ही जादू करके दिखला सकते हैं।

उदाहरणार्थ, यदि होटलकी नौकरानी आपके लिए आलू ले आती है, जब कि आपने गोभी मांगी थी, तो हम कहें—"आपको कष्ट देनेका मुझे खेद है। परन्तु मुझे गोभी चाहिए थी।" वह उत्तर देगी—"नहीं, कोई कष्ट नहीं।" और बड़ी प्रसन्नतासे गोभी ले आयेगी; क्योंकि आपने उसका सम्मान किया है।

"मुझे खेद है, आपको कष्ट हुआ," "क्या आप कृपा करके—," "क्षमा कीजिये, आपको कष्ट दे रहा हूं," 'धन्यवाद', इत्यादि छोटे-छोटे पद—इस प्रकारके छोटे-छोटे सौजन्य प्रतिदिनके जीवनके नीरस एवं कठिन कामको सरल और सरस बना देते हैं—और आनुषङ्गिक रूपसे, वे उत्तम शिक्षणकी निशानी हैं।

अच्छा, एक दूसरा दृष्टान्त लीजिये। क्या आपने कभी हालकेनका कोई उपन्यास—दि क्रिश्चियन, दि डीम्स्टर, दि मैंक्समैन—पढ़ा है? लाखों लोग, अगणित लोग, उसके उप-न्यास पढ़ते हैं। वह एक लोहारका बेटा था। अपने जीवनमें उसने आठ वर्षसे अधिक शिक्षा नहीं पायी थी। फिर भी जिस समय उसकी मृत्यु हुई, उस समय वह संसारमें एक सबसे अधिक धनाढ्य साहित्यिक था।

उसकी कहानी इस प्रकार बतायी जाती है:—हाल-केनको ग्राम्य गीत और चतुष्पदी कवितायें बहुत भाती थीं; इसलिए उसने डांटे, गेबरियल रोजट्टीकी सारी कविता रट ली। उसने रोजट्टीके कौशलपूर्ण कार्योंकी प्रशंसासे भरा हुआ व्याख्यान भी लिखा—और उसकी एक प्रति स्वयं रोजट्टीको भेज दी। रोजट्टी बहुत प्रसन्न हुआ। सम्भवतः रोजट्टीने अपने मनमें कहा, "जो युवक मेरी योग्यताके विषयमें इतनी उच्च सम्मति रखता है, वह अवश्य प्रखर बुद्धिका होगा।" इसलिए रोजट्टीने इस लोहारके लड़केको लन्दन आकर उसका सेक्रेटरी बननेको लिखा। हालकेनके जीवनमें वह एक परिवर्तन-विन्दु था; क्योंकि अपनी नवीन स्थितिमें, उसे तत्कालीन साहित्य-शिल्पियोंसे मिलनेका अवसर मिला। उनके उपदेशसे लाभ उठाकर और उनके प्रोत्साहनसे अनुप्राणित होकर, उसने एक ऐसा व्यवसाय ग्रहण किया, जिसने उसका नाम सारे संसारमें चमका दिया।

आइल आव मैनपर उसका घर, ग्रीवा कासल, संसारके सुदूर प्रदेशोंसे आनेवाले पर्यटकोंके लिए मक्का बन गया; और वह पचीस लाख डालरकी जागीर छोड़ गया। तो भी—कौन जानता है—यदि वह एक प्रसिद्ध मनुष्यकी प्रशंसामें निबन्ध न लिखता, तो वह निर्धन और अज्ञात ही मर जाता।

हार्दिक और निष्कपट गुणग्राहकताकी ऐसी ही विराट् शक्ति है।

रोजट्टीने अपनेको महत्त्वपूर्ण समझा। यह कोई अनोखी बात नहीं। प्रायः प्रत्येक मनुष्य अपनेको महत्त्वपूर्ण, बहुत महत्त्वपूर्ण समझता है।

ऐसे ही प्रत्येक राष्ट्र समझता है।

अमेरिकन अनुभव करते हैं कि वे जापानियोंसे श्रेष्ठ हैं। परन्तु सचाई यह है कि जापानी अपनेको अमेरिकनोंसे बहुत अधिक उच्च समझते हैं। उदाहरणार्थ, एक अनुदार जापानी किसी गोरे पुरुषको जापानी स्त्रीके साथ नाचते देखकर क्रोधसे तमतमा उठता है।

भारतके हिन्दू अपनेको पवित्रताकी मूर्ति और यूरोपियनोंसे श्रेष्ठ समझते हैं। यह उनका अधिकार है, चाहे जो समझें; परन्तु सचाई यह भी है कि यूरोप और अमेरिकाके लोग इनको गन्दे और असभ्य समझकर अपने भोजनालयों और सिनेमाओंमें पैर नहीं रखने देते।

गोरे लोग अपनेको एस्कीमो लोगोंसे श्रेष्ठ अनुभव करते हैं। यह उनकी इच्छा है; परन्तु क्या आप सचमुच जानना चाहते हैं कि एस्कीमो गोरोंको क्या समझते हैं? अच्छा, एस्कीमो लोगोंमें थोड़े-से निखट्टू ऐसे हैं, जो काम नहीं करते। एस्कीमो उनको "गोरे मनुष्य" कहते हैं—यह उनका अत्यन्त तिरस्कारका शब्द है।

प्रत्येक राष्ट्र अपनेको दूसरे राष्ट्रोंसे श्रेष्ठ अनुभव करता है। इससे देशभक्ति उत्पन्न होती है—और साथ ही युद्ध भी।

नग्न सचाई यह है कि प्रायः प्रत्येक मनुष्य, जिससे आप मिलते हैं, किसी न किसी रीतिसे अपनेको आपसे श्रेष्ठ अनुभव करता है; और उसके हृदयमें पहुंचनेका निश्चित मार्ग उसको किसी सूक्ष्म रीतिसे अनुभव कराना है कि आप उसके महत्त्वको उसके क्षुद्र जगत्‌में स्वीकार करते हैं, और सच्चे हृदयसे स्वीकार करते हैं।

इमर्सनके कथनको स्मरण रखिये—"जिस भी मनुष्यसे मैं मिलता हूं, वह किसी न किसी बातमें मुझसे श्रेष्ठ होता है; और वह बात मैं उससे सीख सकता हूं।"

दुःखकी बात यह है कि बहुधा जिन मनुष्योंके पास अपने कार्योंकी डींग हांकनेके लिए कुछ भी आधार नहीं होता, वे अपनी भीतरी अल्पताके भावको बाहरी चीत्कार, कोलाहल और अभिमानके सहारे खड़ा करते हैं और ये तीनों बातें बड़ी घृणाजनक और सचमुच जी मचलानेवाली हैं।

महाकवि शेक्सपियर इसी बातको इस प्रकार कहता है—"मनुष्य, अभिमानी मनुष्य ! थोड़ी-सी संक्षिप्त प्रभुताका बाना पहनकर ईश्वरके सामने ऐसी ऊटपटांग चालें चलता है कि उन्हें देख देवदूत भी रोने लगते हैं।"

जिन लोगोंने इस सिद्धान्तका उपयोग किया है और उन्हें अद्भुत परिणाम प्राप्त हुए हैं, उनका एक उदाहरण आगे दिया जाता है। यह उदाहरण अमेरिकाके अन्तर्गत कुनक्टिकट नगरके एक वकीलका है, जो अपने सम्बन्धियोंके कारण अपना नाम देना नहीं चाहता। इसलिए हम उसे श्री० र० के नामसे अभिहित करेंगे।

एक समय वह अपनी पत्नीको साथ लेकर पत्नीके सम्बन्धियोंसे मिलने लांग आइलैण्डको गया। पतिको अपनी बूढ़ी चाचीके साथ बातें करते छोड़ पत्नी अपने तरुण सम्बन्धियोंसे मिलने चली गयी। पति देखना चाहता था कि गुणग्राहिताका क्या प्रभाव पड़ता है, इसलिए उसने पहले उस वृद्धा देवीसे ही अपना प्रयोग आरम्भ करनेकी सोची। उसने वृद्धा चाचीके घरके चारों ओर दृष्टि फिराकर देखा कि कौन-सी वस्तु ऐसी है, जिसकी मैं निष्कपटतापूर्वक प्रशंसा कर सकता हूं।

उसने पूछा, "यह घर लगभग १८९० में बना था न ?"

वृद्धाने उत्तर दिया, "हां, ठीक उसी वर्ष बना था।"

उसने कहा, "यह मुझे उस घरकी याद दिला रहा है, जिसमें मेरा जन्म हुआ था। यह सुन्दर है, सुनिर्मित है, विशाल है। आप जानती हैं, आजकल लोग ऐसे घर नहीं बनाते।"

वृद्धा देवी सहमत होकर बोली, "आप ठीक कहते हैं। नवयुवक लोग आजकल सुन्दर घरोंकी परवा नहीं करते। वे केवल इतना चाहते हैं कि एक छोटा-सा कमरा हो, एक बिजलीका पङ्खा हो, फिर वे अपनी मोटरकारोंमें बे-मतलब घूमते फिरते हैं।

मधुर स्मृतियोंके साथ थर्राते हुए स्वरमें वह बोली, "यह स्वप्न-गृह है। यह घर प्रेमके साथ बनाया गया था। इसे बनानेके पूर्व मेरा पति और मैं वर्षों तक इसके विषयमें कपोल-कल्पना करते रहे थे। हमने इसमें किसी स्थपतिकी सहायता नहीं ली। इसका सारा नक्शा हमने स्वयं तैयार किया था।"

तब उस देवीने वकील महाशयको अपना सारा घर दिखलाया। वकीलने उन सब सुन्दर दुर्लभ वस्तुओंकी हार्दिक प्रशंसा की, जो वह अपने पर्यटनोंमें इकट्ठी करके लायी थी और जिन्हें वह आयु-पर्यन्त प्यारसे रखे रही। पैसलेके दुशाले, एक पुराना अंगरेजी टी-सेट, वेजवुडके चीनीके बर्तन, फ्रान्सीसी खाट और कुर्सियां, इटालियन चित्र, और रेशमी कपड़े, जो फ्रान्सके ग्राम-निवासोंमें लटकाये जाया करते थे।

सारा घर दिखलानेके पश्चात् वह श्री० र० को गराजमें ले गयी। वहां, मशीन द्वारा उठाकर लकड़के कुन्दोंपर पैकार्ड कार—प्रायः नयी—रखी हुई थी।

वह धीमेसे बोली, "मेरे पतिने मृत्युसे थोड़े दिन पहले इसे खरीदा था। उसकी मृत्युके बादसे आज तक मैंने कभी इसकी सवारी नहीं की।...आप मनोहर वस्तुओंकी कदर करते हैं, और मैं यह कार आपको देने जा रही हूं।"

वकीलने कहा, "चाचीजी, आप मुझे बोझके नीचे क्यों दबा रही हैं ? हां, मैं आपकी दानशीलताकी प्रशंसा करता हूं; परन्तु इसे स्वीकार करना मेरे लिए सम्भव नहीं। मैं आपका निकट-सम्बन्धी भी नहीं हूं। मेरे पास नयी कार है; और आपके कई सम्बन्धी हैं, जो यह पैकार्ड कार लेना पसन्द करेंगे।"

वह क्रोधके साथ चिल्लाकर बोली, "सम्बन्धी ! हां, मेरे सम्बन्धी हैं, जो यह कार लेनेके लिए मेरी मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। परन्तु उनको यह न मिलेगी।"

उसने वृद्धासे कहा, "यदि आप यह उनको देना नहीं चाहतीं, तो आप बहुत सहजमें इसे किसी सेकेण्ड हैण्ड चीजें रखनेवालेके हाथ बेच सकती हैं।"

इसपर वह चिल्लाकर बोली, "इसे बेच दो ! क्या आप समझते हैं, मैं यह कार बेच दूंगी ? क्या आप समझते हैं कि मैं अजनबियोंको उस कारमें—हां उस कारमें, जो मेरे पतिने मेरे लिए खरीदी थी—बैठकर बाजारमें इधरसे उधर घूमते देख सकती हूं ? इसे बेचनेका विचार मुझे स्वप्नमें भी नहीं आ सकता। मैं यह तुम्हें देने लगी हूं। तुम सुन्दर वस्तुओंकी कदर करते हो।"

वकीलने यत्न किया कि मैं कार लेना स्वीकार न करूं; परन्तु वह वृद्धाके हृदयको ठेस पहुंचाये बिना ऐसा न कर सका।

यह वृद्धा स्त्री, जो एक विशाल भवनमें अकेली रहती थी, जिसके पास पैसलेके दुशाले, फ्रान्सको पुरानी कारीगरीकी चीजें, और उसकी स्मृतियां थीं, थोड़ी-सी गुणग्राहिताकी भूखी थी। वह भी कभी सुन्दर और तरुणी थी। उसके घरमें भी कभी प्रेमका राज्य था। घरको सुन्दर बनानेके लिए उसने सारे यूरोपसे चीजें इकट्ठी की थीं। अब, वृद्धावस्थामें अकेली रह जानेसे, वह थोड़ी-सी मानुषी सहृदयता, थोड़ी-सी सच्ची गुणग्राहिताकी कामना करती थी—और किसीने उसे यह नहीं दी। जब, मरुस्थलीमें झरनेकी भांति, उसे यह मिल गयी, तो वह मोटरकारके दानसे कम किसी दूसरी बातसे अपनी कृतज्ञताको यथेष्ट रूपसे प्रकट न कर सकी।

कोडक कम्पनीके जार्ज ईस्टमैनने एक ऐसी पारदर्शक फिल्मका आविष्कार किया, जिससे चल-चित्रोंका बनना सम्भव हुआ। उसने दस करोड़ डालरकी सम्पत्ति बनायी और अपनेको संसारमें अतीव प्रसिद्ध व्यापारी बनाया। इन सब विराट् गुणोंके रहते भी उसने बहुत थोड़ी कदरकी आकांक्षा की।

कुछ वर्ष हुए, ईस्टमैनने रोचेस्टर नामक स्थानमें ईस्टमैन सङ्गीत-विद्यालय और किलबोर्न भवन नामकी एक नाट्यशाला अपनी माताकी स्मृतिमें बनवा रहा था। न्यूयार्ककी सुपीरियर सीटिङ्ग कम्पनीका प्रेसीडेण्ट जेम्स एडमसन इन मकानोंके लिए थियेटरकी कुर्सियां मुहैया करनेका आर्डर लेना चाहता था। स्थपतिको फोन करके श्री० एडमसनने श्री० ईस्टमैनको रोचेस्टरमें मिलनेके लिए समय नियत करा लिया।

जब एडमसन वहां पहुंचा, तो स्थपतिने कहा, "मैं जानता हूं, आप यह आर्डर लेना चाहते हैं; परन्तु मैं आपको अब स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जार्ज ईस्टमैनका पांच मिनटसे अधिक समय न लेना। वह बड़ी सख्त पाबन्दी रखनेवाला व्यक्ति है। उसके पास समय बिलकुल नहीं। इसलिए अपनी कहानी शीघ्रतासे सुनाकर बाहर आ जाइये।"

एडमसन ठीक यही करनेको तैयार था।

जब उसे कमरेमें ले जाया गया, तो वह क्या देखता है कि श्री० ईस्टमैन अपने डेस्कपर पड़े हुए कागजोंके ढेरपर झुका हुआ है। तत्काल श्री० ईस्टमैनने आंखें उठाकर देखा, अपना चश्मा उतारा और स्थपति एवं श्री० एडमसनकी ओर यह कहते हुए बढ़ा, "सज्जनो, नमस्कार; कहिये, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूं ?"

स्थपतिने दोनोंका परिचय कराया। तब एडमसन बोला—

श्री० ईस्टमैन, जितनी देर हमें बाहर आपकी प्रतीक्षामें रहना पड़ा, उतनी देर मैं आपके आफिसकी प्रशंसा ही करता रहा हूं। यदि मेरे पास ऐसा कमरा हो, तो मैं स्वयं इसमें बैठकर काम करना पसन्द करूं। आप जानते हैं कि मेरा व्यवसाय घरके भीतरका लकड़ीका सामान बनाना है। मैंने सारे जीवनमें इससे अधिक सुन्दर कार्यालय नहीं देखा।

जार्ज ईस्टमैनने उत्तर दिया—

आपने मुझे एक ऐसी बातका अनुभव कराया है, जिसे मैं प्रायः भूल गया था। यह सुन्दर है। जब यह पहले-पहल बना था, तो मुझे बड़ा आनन्द आया करता था। परन्तु अब मैं जब यहां आता हूं, तो सैकड़ों दूसरी चीजोंकी चिन्ता मेरे मनमें रहती है और कभी-कभी तो कई-कई सप्ताह तक मैं इस कमरेको देखता तक नहीं।

एडमसनने जाकर एक चौखटपर अपने हाथको रगड़ते हुए कहा, "यह अंगरेजी बलूतकी लकड़ी है न ? इटालियन बलूतसे इसकी बनावट थोड़ी भिन्न है।"

ईस्टमैनने उत्तर दिया, "हां, यह बाहरसे मंगायी हुई अंगरेजी बल्तकी लकड़ी है। मेरे एक मित्रको बढ़िया लकड़ीकी बहुत अच्छी पहचान है। उसीने यह मेरे लिए चुनी थी।"

तब ईस्टमैनने उसे सारा कमरा दिखलाया और बताया कि ये अनुपात, यह रङ्ग, काठमें यह हाथकी खुदाई और दूसरी चीजें, सब मेरी ही सुझायी हुई हैं।

जब वे लकड़ीके कामकी प्रशंसा करते हुए कमरेमें धीरे-धीरे घूम रहे थे, तो वे खिड़कीके सामने जाकर रुक गये, और जार्ज ईस्टमैनने, अपने विनीत एवं मधुर ढङ्गसे, कुछ संस्थाओंकी ओर सङ्केत किया, जिनके द्वारा वह मनुष्य-समाजको सहायता देनेकी यत्न कर रहा था—रोचेस्टरका विश्वविद्यालय, बड़ा अस्पताल, होम्योपैथिक हास्पीटल, फ्रेण्डली होम, शिशु-चिकित्सालय।

मनुष्य-समाजके कष्टोंको कम करनेके लिए जिस आदर्श-रीतिसे वह अपनी सम्पत्तिका उपयोग कर रहा था, उसके लिए श्री० एडमसनने उसे भूरि-भूरि बधाई दी। तत्काल जार्ज ईस्टमैनने एक कांचकी आलमारीका ताला खोला और अपना एकमात्र चित्र लेनेका केमरा निकाला।

व्यापार आरम्भ करते समय उसे जो उद्योग करना पड़ा था, उसके सम्बन्धमें एडमसनने उससे सविस्तर प्रश्न किये। श्री० ईस्टमैनने अपने बचपनकी दरिद्रताका वर्णन सच्चे भावसे किया और बताया कि किस प्रकार उसकी विधवा माता एक विश्रान्ति-गृह (बोर्डिङ्ग हाउस) चलाती थी और वह आप एक इन्श्योरेन्सके कार्यालयमें बीस-पच्चीस रुपयेका क्लार्क था। दरिद्रताका भय दिन-रात उसका पीछा न छोड़ता था। उसने पर्याप्त धन कमानेका निश्चय किया, ताकि उसकी माताको विश्रान्ति-गृहमें घोर श्रम न करना पड़े। श्री० एडमसनने उसपर और प्रश्न करके उससे और कई बातें निकलवा लीं। जिस समय ईस्टमैन सूखे फोटोग्राफिक प्लेटोंके सम्बन्धमें अपने प्रयोगोंका वर्णन कर रहा था, उस समय वह बड़े ध्यानके साथ उसकी बातें सुन रहा था। उसने बताया कि मैं किस प्रकार एक कार्यालयमें दिन-भर काम करता था, और कभी-कभी सारी-सारी रात प्रयोग करता रहता था; बीचमें थोड़ी-सी झपकी ले लेता था, जब कि मेरे रासायनिक पदार्थ काम कर रहे होते थे, कभी-कभी सोते-जागते बहत्तर-बहत्तर घण्टे एक ही कपड़े पहने रहता था।

जेम्स एडमसनने ईस्टमैनके कार्यालयमें १० बजकर १९ मिनटपर प्रवेश किया था, और उसे चेतावनी दी गयी थी कि पांच मिनटसे अधिक समय न लेना; परन्तु एक घण्टा बीत गया, दो घण्टे बीत गये। वे अभी तक भी बातें कर रहे थे।

अन्ततः जार्ज ईस्टमैनने एडमसनको सम्बोधन करके कहा, "पिछली बार जब मैं जापान गया, तो वहांसे कुछ कुर्सियां खरीद लाया और उन्हें लाकर अपनी बरसातीमें रखा। परन्तु धूपसे उनका रङ्ग-रोगन उखड़ गया। इसलिए मैं दूसरे दिन नगरमें जाकर कुछ रङ्ग-रोगन ले आया और कुर्सियोंपर आप रोगन किया। क्या आप देखेंगे कि मैं कुर्सियोंका कैसा रङ्ग-रोगन कर सकता हूं ? बहुत अच्छा। मेरे घर चलिये और मेरे साथ भोजन कीजिये। वहां मैं आपको दिखाऊंगा।"

भोजनके अनन्तर श्री० ईस्टमैनने एडमसनको जापानसे लायी हुई कुर्सियां दिखायीं। वे चार-पांच रुपये प्रति कुर्सीसे अधिक मूल्यकी न थीं; परन्तु जार्ज ईस्टमैन, जिसने व्यापारमें दस करोड़ डालर पैदा किये थे, उनपर गर्व करता; क्योंकि उसने स्वयं उनमें रङ्ग-रोगन किया था।

ईस्टमैनने ९०,००० डालरकी कुर्सियोंका आर्डर दिया। आप जानते हैं, यह आर्डर किसको मिला—जेम्स एडमसनको अथवा उसके किसी प्रतिद्वन्द्वीको ?

उस समयसे लेकर श्री० ईस्टमैनकी मृत्यु तक, वह और जेम्स एडमसन घनिष्ट मित्र बने रहे।

हमें गुणग्राहिताके इस जादू-भरे पारस-पत्थरका प्रयोग कहांसे आरम्भ करना चाहिए ? क्यों न अपने ही घरसे आरम्भ किया जाय ? कोई दूसरा स्थान ऐसा नहीं, जहां इसकी अधिक आवश्यकता हो—जहां इसकी अधिक अपेक्षा की जाती हो। आपकी पत्नीमें अवश्य कई अच्छे गुण होंगे—या कमसे कम किसी समय आप उसमें वह गुण समझते थे, अन्यथा आप उससे कभी विवाह ही न करते। परन्तु उसके आकर्षणकी प्रशंसा किये आपको कितनी देर हुई ? कितनी देर ?? कितनी देर ???

कुछ वर्ष हुए, डोरथी डिक्सका एक लेख एक पत्रमें छपा था। उसमें उसने लिखा था कि मैं दुलहिनोंको दिये जानेवाले उपदेश सुन-सुनकर थक गयी हूं। मैं चाहती हूं कि कोई दूल्हाको भी एक ओर ले जाकर यह छोटा-सा उपदेश दे :—

जब तक तुम ब्लोर्न स्टोनका चुम्बन न कर लो, तब तक विवाह न करो। विवाहके पूर्व स्त्रीकी प्रशंसा करना एक प्रवृत्तिकी बात है। परन्तु विवाह करनेके बाद उसकी प्रशंसा करना एक आवश्यकताकी—और व्यक्तिगत रक्षाकी—बात है। विवाह अकपटताका स्थान नहीं। यह कूटनीतिका क्षेत्र है।

यदि आप प्रत्येक दिन शान्तिसे बिताना चाहते हैं, तो अपनी पत्नीके घरेलू काममें कभी दोष न निकालो या उसके काममें और अपनी माताके काममें कभी द्वेषोत्पादक तुलना न करो। परन्तु इसके विपरीत सदा उसके गार्हस्थ्य जीवनकी प्रशंसा करते रहो और प्रकट रूपसे अपनेको धन्यवाद दो कि आपको एक ऐसा दुर्लभ स्त्री-रत्न मिला है, जिसमें सरस्वती, रति और सीताके सभी गुण विद्यमान हैं। रोटी जलकर चाहे कोयला हो गयी हो और दाल चाहे मारे नमकके मुंहमें रखी न जा सकती हो, शिकायत मत करो। केवल इतना ही कहिये कि आज भोजन पहले जितना स्वादिष्ट नहीं, फिर वह आपके लिए मन-भाता भोजन तैयार करनेमें अपनी बलि तक दे देगी।

यह काम बहुत अकस्मात् ही न आरम्भ कर दो—नहीं तो उसे सन्देह हो जायगा।

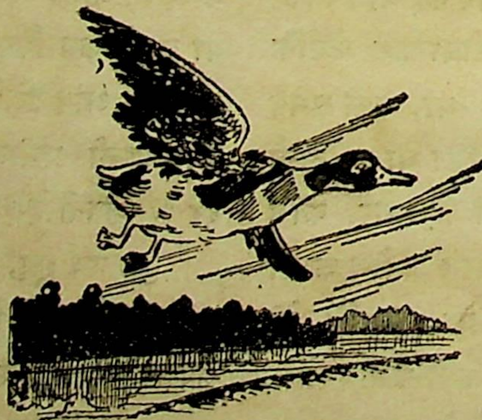
परन्तु आज रात, या कल रात, उसके लिए कुछ फूल या मिठाई लाइये। केवल इतना ही न कहिये, "हां, मुझे अवश्य यह करना चाहिए।" इसे कीजिये। इसके अतिरिक्त उसके साथ मुस्कराओ और प्रेमके कुछ शब्द भी कहो। यदि अधिक पति और अधिक पत्नियां ऐसा किया करें, तो घरोंमें कभी भी उतनी खटपट न हो।

क्या आप जानना चाहते हैं कि क्या उपाय करना चाहिए, जिससे स्त्री आपसे प्रेम करने लगे? सुनिये, उसका रहस्य यह है। यह बहुत अच्छा गुर है। यह मेरा विचार नहीं। मैंने श्रीमती डोरथी डिक्ससे लिया है। एक बार उसने एक बहुपत्नियां करनेवाले पुरुषसे भेंट की थी। वह पुरुष तेईस स्त्रियोंके हृदय और सम्पत्ति लूट चुका था। (और हां, साथ ही यह भी बता दूं कि डोरथीने उससे जेलमें भेंट की थी।) जब डोरथीने उससे पूछा कि तुम्हारे पास वह कौन योग है, जिसके कारण स्त्रियां तुमसे प्रेम करने लगती हैं, तो उसने कहा कि इसमें कोई चालाकी नहीं; आपको केवल इतना करना चाहिए कि स्त्रीके साथ उसके अपने विषयमें बातें कीजिये।

और यही गुर पुरुषोंके साथ भी काम देता है। ब्रिटेश साम्राज्यका विचक्षण प्रधान मन्त्री डिजरेली कहा करता था, "किसी पुरुषके साथ उसके अपने विषयमें बातें कीजिये, वह घण्टों आपकी बातें सुनता रहेगा।"

इसलिए यदि आप लोगोंके प्यारे बनना चाहते हैं और तुरन्त बनना चाहते हैं, तो नियम यह है—

दूसरे व्यक्तिको महत्त्वपूर्ण अनुभव कराइये - और सच्चे हृदयसे कराइये।



कहानी-लेखक

श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र

रामदुलारे कहानी लिखता था। लेखकोंमें उसकी गिनती थी और लिखनेके रुपये भी मिलते थे। बड़े बाजारके पास एक छोटा-सा मकान किरायेपर लेकर वह रहता था। खाना होटलमें खाता, फिर वहींसे साइकिलपर कालेज चला जाता। होस्टलमें वह कभी नहीं रहा, होस्टलसे उसे चिढ़ थी।

कालेजमें रामदुलारेकी बहुतोंसे दोस्ती थी—दुश्मन कोई नहीं था। पढ़नेमें भी बुरा नहीं था, थर्ड डिवीजनमें कभी नहीं आया। क्लासके सब उसे चाहते थे। रामाधारसे भी जान-पहचान थी।

यह रामाधार कोई वैसा साहित्यिक जीव नहीं था, न कोई ऐसा बहुत हंसोड़ा ही था, लेकिन एक दिन हुआ यह कि वह रामदुलारेको पड़ोसके सटे मकानके दरवाजेपर अचानक खड़ा मिल गया। क्लासफेलो था, हाथ जोड़कर बोला—'नमस्कार!' तब फिर उससे बात करनी ही पड़ी; बोला कि, इस घरमें उसके फूफाजी रहते हैं और वह कभी-कभी अपनी बुआसे मिलने चला आता है। तभीसे अच्छी तरह जान-पहचान हो गयी।

जबसे जान-पहचान हो गयी है, रामदुलारे आते-जाते पड़ोसके उस मकानपर भी एकाध बार नजर डाल लेता है।

(२)

एक दिन शामको सोचा कि चलो चौक तक घूम ही आवें—उधरसे कुछ फल-वल लेते आवेंगे, और घरसे निकला। सिल्कका कुरता पहने था, हाथमें पतली-सी एक छड़ी थी, और पैरोंमें चप्पल। निकला कि नजर पड़ोसकी खिड़कीपर गयी कि वहीं ठगा-सा रह गया। अरे, यह तो उसे मालूम ही न था—कैसे अचरजकी बात है कि यह इसी घरमें रहती है—इसी सटे मकानमें!

वहीं, अपने दरवाजेपर, खड़े-खड़े सोचा कि यह शायद रामाधारकी फुफेरी बहन होगी कि—वह धीरेसे पुकार उठी—"ओ आमवाले!"

आमवाला सड़ककी उस पटरीपर था, गरदन घुमाकर देखने लगा।

पुकारनेवालीने अपनी सुन्दर-सी बांह उठाकर बुलाया—"यहां आओ।"

रामदुलारे उसी तरह खड़ा था। पाससे होकर एक खाली इक्का निकला, इक्केवाला पूछ बैठा—"क्या हुजूर चौक?"

रामदुलारे चौंक पड़ा, कहा—"हां, चलो।"

इक्केवालेने भीतरका मैला कपड़ा हाथसे जरा-सा झाड़कर कहा—"बैठिये मालिक।" और रामदुलारे इक्केमें बैठ गया। वह पूछ रही थी—"आम कैसे दे रहे हो?"

इक्का खड़खड़ाया कि उसने अपनी पलकें उठायीं—फिर पल-भरमें ही नीचेको देखकर बोली—"दो आनेकी जोड़ी दो।"

इक्का आगे बढ़ा। रामदुलारे बैठा था। इक्का चलता गया, चलते-चलते चौक भी आ गया। रामदुलारे बैठा रहा। इक्केवाला बोला—"कहां ले चलूं सरकार?" तब मानो रामदुलारेको याद आयी कि अरे, चौकमें ही इक्का खड़ा है। उतरकर चल दिया,......ओ आमवाले!...यहां आओ।... आम कैसे दे रहे हो?... दो आनेकी जोड़ी दो।...

इक्केवालेने पुकारकर कहा—"हुजूर पैसे!"

रामदुलारे रुका, फिर उसे पैसे देकर 'सिनेमा'में जा बैठा।

(३)

कोई एक छोटी-सी घटना कभी जीवनमें बहुत मूल्यवान् हो जाती है। रामदुलारे भावुक था, भावुक होनेके नाते ही कहानी-लेखक बना था। उसपर वह घटना ऐसी बुरी तरह असर कर गयी कि सोते-जागते, उठते-बैठते उसे याद रहने लगी—"ओ आमवाले!... यहां आओ...।" इक्का खड़खड़ाया, उसने आंखें उठायीं, आंखोंमें वे आंखें आ गिरीं... 'दो आनेकी जोड़ी दो।'

जब पूरा दृश्य समाप्त हो जाता, तो रामदुलारे फिर उसे शुरूसे दुहराता—'ओ आमवाले!...'

इसी तरह कई दिन हो गये। रामदुलारे निकलते-बैठते उधर देखता रहा, लेकिन वह मुख फिर नहीं दीखा। मा

रातमें अकेले कमरेमें लेटे-लेटे वह देखता रहता—एक गोरी बांह, दो लाल चूड़ियां, पतली-पतली अंगुलियां—'यहां आओ !'... जैसे उसने आमवालेको नहीं—रामदुलारेको पुकारा था, मानो उसने आमवालेसे नहीं—रामदुलारेसे कहा था, 'यहां आओ !'... उसी बीच सड़कपरसे कोई सवारी निकल जाती, तब जैसे वह सब उड़ जाता।

(४)

वह कहानी लिखने बैठा था। सामने कागज रखकर कलम उठायी, लिखा—'उसका नाम था...' क्या नाम था? —रामदुलारे सोचने लगा—चन्द्रमुखी? नहीं, यह नहीं, उसका नाम था—उसका नाम था, मोहिनी? हां, यह ठीक है। लिखा—'उसका नाम था मोहिनी। शहरके दक्षिणी भागमें, बाजारके पास उसका घर था। वह स्कूलमें पढ़ती थी और जगदीश पढ़ता था कालेजमें। जगदीश उसका पड़ोसी था। उन दोनोंका कभी परिचय नहीं हुआ था।

'एक दिन जगदीश घरसे निकला, तो वह अपने दरवाजेपर खड़ी-खड़ी आम ख़रीद रही थी...' —लिखते-लिखते वह रुक गया, इन लाइनोंको बार-बार पढ़ने लगा। बोला, अरे भला, यह भी कोई कहानी है! इसे कोई क्या पढ़ेगा! और हारकर कलम रख दी, फिर वहीं लम्बा लेट रहा।

हवा धीरे-धीरे बह रही थी। रामदुलारेको झपकी आ गयी। सो गया। थोड़ी देर पीछे ही आसमानमें जाने कहांसे बादल घिर आये। रामदुलारे सोता रहा। तब फिर हवाने जोर पकड़ा, खूंटियोंपरके कपड़े हिलने लगे। खूब जोरोंके झोंके आ रहे थे, पास रखे कागज खड़खड़ाये और उड़कर तितर-बितर हो गये। कहानीवाला कागज दीवालके पास जा लगा।

अचानक उसकी आंख खुली, तो देखा कि अन्धड़ चल रहा है। तब चुपचाप उठकर नीचे चला आया। कागज सारी छतपर इधर-उधर उड़ते फिर रहे थे। रामदुलारेको याद ही नहीं रही। और वह कहानीवाला कागज उड़ा, तो सीधा दूसरे घरमें जाकर गिरा। रामदुलारेकी आंखोंमें नींद भरी थी, नीचे आकर फिर सो रहा। रात-भर आंधी-सो चलती रही।

(५)

सुबह हुई। घरमें कुसुमा सबसे पहले उठती थी, वही सबके पहले नीचे आयी। रात-भरकी आंधीका कूड़ा सारे आंगनमें बिखरा पड़ा था। वह जीनेकी सीढ़ीपर खड़ी-खड़ी देखती रही कि घर कैसा हो रहा है! फिर आकर आंगनमें इधर-उधर घूमती रही। अचानक देखा कि एक कागजपर पेन्सिलसे कुछ लिखा पड़ा है। पहले खड़े-खड़े ही पढ़ा, फिर हाथमें लेकर पढ़ा, तो सन्नाटेमें आ गयी! बड़ी देर तक उस कागजको हाथमें लिये खड़ी रही, फिर जाने क्या सोचकर उसे जेबमें रख लिया।

× × ×

वह बोली—"मुझे भूख ही नहीं है।"

इसपर मांने झल्लाकर कहा—"भूख ही नहीं है—भूख ही नहीं है! क्यों भूख नहीं है? क्या खा लिया था?"

कुसुमा बोली—"मेरे पेटमें हलका-हलका दर्द हो रहा है अम्मां, सुबह बिना कुछ खाये पानी पी लिया था।"

"पानी क्यों पी लिया था? हांड़ी-भर लड्डू धरे हैं और तुम्हें घरमें कुछ खानेको मिला ही नहीं!"

"मुझे उस वक्त बड़े जोरसे प्यास लगी थी, लड्डुओंकी याद ही नहीं रही।......अच्छा अम्मां, तुम्हें मौसीका पता याद है? मेरे पास लिखा रखा था, सो जाने कहां खो गया।"

"क्या करेगी?"

"चिट्ठी लिखूंगी। डाकखाना कहांका है?"

"डाकखाना तो सलेमपुरका है, जिला झांसी। चिट्ठी कब लिखेगी?"

कुसुमा छतपर जाती-जाती बोली—"दोपहरीमें लिखूंगी, तुम खा-पी लो।"

वह कागज अभी तक उसके हृदयमें ऊधम मचाये था। सुबहसे वह उसे जाने कितनी बार पढ़ चुकी थी! स्कूल गयी, वहां भी उसे नहीं भूली, पढ़नेमें मन न लगा, तो वहां भी एक बार चुपकेसे उसे कापीमें रखकर पढ़ लिया। फिर स्कूलसे आते समय महादेवीसे बोली—"तुम्हें एक नयी बात सुनाऊं?"

महादेवीने कहा—"सुनाओ!"

तब तक गाड़ीके सामने एक छकड़ा आ गया, गाड़ी रुक गयी। कुसुमा सिर घुमाकर उसे देखने लगी। महादेवीने उसे हिलाकर कहा—"क्या नयी बात है, सुनाओ न?"

कुसुमा थोड़ी देर तक चुप रही, फिर बोली—"तुम हेमलताको जानती हो न? वह इस साल हाई स्कूलमें फिर फेल हो गयी।"

"बस ! यही नयी बात थी !"

कुसुमाने धीरेसे कहा—"हां।"

फिर उसका घर आ गया। आज मन जाने कैसा हो रहा था, रोटी भी नहीं खायी गयी। मांको चुप करके ऊपर आ पलंगपर पड़ रही। छतमें एक जगहपर काला निशान बना था। कुसुमाकी आंखें वहीं जा लगीं। देखते-देखते वह निशान एक शकल बन गया—एक इक्केकी शकल, इक्केमें एक आदमी बैठा है। उस आदमीको कुसुमा देखने लगी—कुरता पहने है, छड़ी सामने रखी है। तब वह बोली—यह कागज अपने-आप उड़कर नहीं आया है। जरूर किसीने जान-बूझकर इधर फेंका है। और भला किसने फेंका होगा, कल उन्होंने मुझे आम लेते देखा था, उन्हींने यह लिखा है, उन्हींने इसे इधर डाला है ! कैसी अजीब-सी बात है ! अगर और किसीके हाथ पड़ता, तो जाने क्या सोचता। वह तो यह अच्छा है कि नाम बदले हुए हैं, नहीं तो गजब हो जाता ! समझमें नहीं आता कि इस बातको इस तरह लिखनेकी क्या जरूरत थी, फिर भला यह कागज इधर फेंका क्यों ? आज तक कभी तो मेरी उनसे बातचीत नहीं हुई, अरे, बातचीत तो क्या, मैंने उन्हें इससे पहले कभी देखा तक नहीं ! फिर यह बात किसलिए हुई ? आफत तो यह है कि किसीसे पूछ भी नहीं सकती।...इक्केकी शकल मिट गयी—वहां एक धब्बा रह गया।

× × ×

रामदुलारेको तो कुछ भी याद न रहा—न कहानी, न कागज। सोकर उठा, तो खूब दिन चढ़ आया था। जल्दीसे नहा-धो साइकिल उठा कालेजको सरपट भागा।

दोपहरको उधरसे जब लौटा, तब एक सम्पादककी चिट्ठी मिली कि कहानी भेजिये। उस समय सब जाग्रत हुआ। बहुत-से कागज छतपर भीगकर चिपट गये थे। वह लिखा हुआ कागज कहीं नहीं दीखा, तो सोचा कि कहीं गिर-गिरा गया होगा।

और वह सबसे निबटकर लिखने बैठा। कहानी फिर वहीं-से शुरू हुई और बहुत आगे तक चली गयी कि—मोहिनीको मालूम हो गया कि जगदीश उसे प्रेम करता है, तो वह जगदीशसे बची-बची रहने लगी। शायद वह मन ही मन उससे घृणा करती थी।...

यहींपर वह रुक गया। कहानीका अन्त उसके मनमें बैठ नहीं रहा था, इसीसे उसकी कलम ठहर गयी। कहानीका अन्त, अगर वह चाहता तो इस प्रकार कर सकता था कि—जगदीशको जब सब ओरसे निराशा हो गयी, तो उसने हार-कर मोहिनीका ध्यान छोड़ दिया—उसे भुलाने लगा, फिर दूसरे साल जगदीशकी किसी और लड़कीसे शादी ठहर गयी।... या फिर और ही किसी तरहसे लिखता, लिखता कि—अचानक एक दिन जगदीशने सुना कि मोहिनीकी शादी होने जा रही है।...लेकिन उसने यह कुछ भी न तो सोचा और न लिखा। वह जाने क्या सोचता रहा ? शायद वह कहानीका अन्त इस तरह करना चाहता था कि......... लेकिन वह लिख कुछ भी न सका। अन्तमें, उदास होकर उसने लिखनेका सब सामान उठाकर रख दिया।

(६)

सावनका महीना था। सोमवारको, शहरके बाहर 'एकलिङ्गजी'का मेला होता है। सड़कपर लारी खड़ी थी। एक आदमी पुकार-पुकारकर कह रहा था—'मेला ! मेला !'

उस समय रामदुलारे घरमें, हाथपर हाथ रखे, खाली बैठा था। किसी भी कामको मन नहीं हो रहा था। उसने सुना, लारीवाला चिल्ला रहा था—"मेला--मेला ! लौटा-फेरीके दो आने !"

आखिर रामदुलारे उठा, बरसाती ली और ताला लगा लारीके पास आ खड़ा हुआ। नौकर पास आ बोला—"चलिये बाबूजी, भीतर बैठिये !" और रामदुलारे दरवाजा खोलकर भीतर घुसने लगा। घुसते ही देखा कि जो कल्पनामें नहीं था, वही हो रहा है; देखा कि सामनेकी सीटपर वह बैठी है ! पासमें मां हैं, उधर चश्मा लगाये जो बैठे हैं, वे शायद पिता हैं।

रामदुलारे खड़ा रह गया। घड़ी-भर कुछ सोचा, फिर चुपचाप सीटपर बैठ गया। बैठकर, रामदुलारेने देखा, देखा कि उसने इधरसे मुंह फेर लिया है—सड़ककी तरफ आंखें कर ली हैं !

मेलेमें रामदुलारेका मन नहीं लगा। वे लोग तो उतर-कर सीधे मन्दिरकी ओर चले गये, और वह थोड़ी देर तक खड़ा-खड़ा तमाशेवाले बन्दरकी उछल-कूद देखता रहा; फिर मेलेमें तनिक देर घूमघामकर एक दूसरी लारीपर बैठकर घर चला आया।

उधर कुसुमाने मन्दिर तक जाकर, लज्जा छोड़, चारों ओर किसीको देखा, फिर भीतर पहुंच पूजाके फूल चढ़ा दिये, और प्रार्थना करनेको हाथ भी जोड़ लिये। लेकिन कहा कुछ नहीं, न मुंहसे और न मनमें। मांके साथ उसी तरह हाथ जोड़े खड़ी रही।...

जब वहांसे लौटकर लारीमें आ बैठी, तो सोचा कि इस बार वैसी बात नहीं करूंगी; लज्जा तो ठीक है, लेकिन यहां तक क्यों? इसका मतलब ही क्या हुआ? क्या वे मेरे...? और मनने सारी दृढ़तासे कह दिया—'नहीं!'

बैठी-बैठी सोचती रही कि अभी मेलेकी सैर हो रही होगी। फिर वह रास्तेकी ओर देखती रही कि अब आ रहे हैं। लारी तब तक ठसाठस हो गयी।

कुसुमा बोली—"बिलकुल जगह नहीं रही, वे कहां बैठेंगे?"

लेकिन सुना किसीने नहीं, उसने मनमें कहा था। केवल उसके और मांके बीचमें थोड़ी-सी जगह बची थी। कुसुमाने एक बात सोची; मनने कहा—'छिः!' और लारी चल दी। चलकर दरवाजेके पास आ रुक गयी।

उतरते समय एक नजर पड़ोसके किवाड़ोंपर डाली, फिर मांके पीछे-पीछे घरमें घुसी।

(७)

दसवें दिनकी बात है। कुसुमा स्कूलकी लाइब्रेरीमें खड़ी एक मासिक पत्रिकाकी तसवीरें देख रही थी कि एक लाइनपर नजर जा रुकी कि—'लारीमें उसने जान-बूझकर दूसरी ओरको मुंह फेर लिया।'

लारीमें!—कुसुमाने पीछेका पेज उलटा। वह एक कहानी थी, और उसका लेखक था—रामदुलारे बी० ए०!

तब कुसुमाने धड़कते दिलसे पढ़ना शुरू किया—'उसका नाम था मोहिनी...'

ठीक वही कागजवाली कहानी थी। कुसुमाको पसीना आ गया। धम्मसे कुरसीमें बैठकर पढ़ने लगी—'ओ आमवाले!......'

वह पढ़ती गयी—पढ़ती गयी; सब कुछ वही था! और फिर लिखा था कि—'जगदीशको इतने प्रेमका प्रतिदान मिला—मोहिनीकी उपेक्षा! यहीं तक नहीं था, वह उससे मन ही मन घृणा भी करती थी। उसे जगदीशकी शकलसे नफरत थी! नहीं तो उस दिन लारीमें, जगदीशका इतना तिरस्कार—इतनी अवहेलना क्यों होती?...'

कुसुमाके दिलमें 'धक्-धक्' होने लगी। कहानी खतम नहीं हुई थी, नीचे कोनेमें लिखा था--'अगले अङ्कमें।' एक लम्बी सांस लेकर उसने पत्रिका बन्द करके रख दी, फिर धीरे-धीरे उठकर बाहर चली आयी कि घण्टा बज गया, तब क्लासमें जा बैठी। मास्टरनीने जब कहा—'राइट डाउन!' तो जैसे वह सोतेसे चौंकी, कापी खोलकर लिखने लगी।

उसी शामको वह महादेवीके घर पहुंची। किसी काममें जी नहीं लग रहा था। आते ही उससे बोली---रेकार्ड बजाओ।"

महादेवीने एक मजाकिया गाना चढ़ा दिया। रेकार्ड बजने लगा और महादेवी हंसती-हंसती लोटने लगी, लेकिन कुसुमाको बहुत थोड़ी हंसी आयी। जब वह खतम हो गया, तो बोली--"रहने दो, इसे बन्द कर दो। कोई किताब पढ़ो।"

"किताब? किताब इस वक्त क्या पढ़ूं?"—महादेवी चौंकी।

"अरे, कोई कहानी-वहानी पढ़ो।"— कहकर वह पलंगपर पड़ रही।

महादेवीने बाजा उसी तरह छोड़ा, आलमारी खोलकर कोई पत्रिका निकाल लायी, फिर पास पड़ी आराम-कुरसीपर लेटकर बोली—"पढ़ूं?

"हां, पढ़ो।"

महादेवी पढ़ने लगी—'उसका नाम था मोहिनी......'

कुसुमा उठकर बैठ गयी, बीचमें ही बोल दी—"अखबार है कि किताब? कौन-सा अखबार है?"

"तुम्हें इससे क्या, कहानी सुनो।"

पागलोंकी तरह गिरकर वह बोली—"अच्छा, सुनाओ।" और महादेवी सुनाती गयी कि वह जगह आयी—'जगदीशको इतने प्रेमका प्रतिदान मिला—मोहिनीकी उपेक्षा! यहीं तक नहीं था...'

कुसुमा फिर उठ बैठी, हाथ हिलाकर जल्दीसे बोली—"रुको-रुको!"

"क्यों?" महादेवी चुप हो रही।

"यह गलत है।"

"क्या गलत है?"

"यह कहानी गलत है...यह यहांपर बिलकुल गलत है। मोहिनीने घृणा नहीं की थी।"

"घृणा नहीं की थी! क्या पागलोंकी-सी बातें कर रही हो! तुम्हें कैसे मालूम कि उसने घृणा नहीं की थी। लिखनेवालेके मनकी बात तुम जान ही कैसे सकती हो कि क्या समझकर उसने ऐसा लिखा है?"

"सो नहीं, यहांपर कहानी साफ गलत हो गयी है, लिखनेवालेको क्या पता?"

"बहुत ठीक! लिखनेवालेको पता नहीं, तुम्हें पता है! अच्छा, तो फिर कैसा होता?"

"होता कैसा? मोहिनीने उससे घृणा की ही नहीं!"

महादेवी हंसने लगी। हंसकर पूछा—"अच्छा, यह बतलाओ कि तुमने आज खाया क्या-क्या है? किसीने तुम्हें धोखेसे भांग तो नहीं खिला दी?"

"हिश्!"

महादेवी 'खिलखिल' करके हंस पड़ी, बोली—"तो फिर आज तुम ऐसी बातें क्यों बक रही हो? हजार बार तुमने इस अखबारमें कहानियां पढ़ी हैं, लेकिन उनमें तुम्हें कभी कोई गलती नहीं मिली। सड़ीसे सड़ी कहानियोंमें तुम्हें गलती नहीं दीखी और इस कहानीको कहती हो कि गलत है! पता है—इसी कहानीपर इनाम दिया गया है!"

"इनाम दिया गया है!"

"इनाम उसे हमेशा मिलता है। तुम देख लेना, अगले महीनेमें कहानी पूरी होते ही उसका नाम इनाम पानेवालोंमें निकलेगा, न मानो, अभीसे शर्त लगा लो!"

कुसुमा चुप रह गयी। गोदमें तकिया रखे बैठी थी, उसीपर अंगुलीसे कुछ लिखने लगी।

महादेवीने कहा—"तुम बड़ी वह हो, बीचमें ही सब चौपट कर दिया!"

"सुनाओ, आगे सुनाओ!"

"अब क्या सुनाऊं—यहींपर खतम है, अगले अङ्कमें पूरी होगी। देखें, आगे क्या होता है! अच्छा, तुम बड़ी अक्लमन्द बन रही हो, बतलाओ, क्या होना चाहिए?"

"पहले तुम बतलाओ।"

"मेरी समझमें तो दोनोंमें सुलह हो जानी चाहिए, और फिर..."

"और फिर क्या हो?"

"हो क्या, फिर उन दोनोंकी शादी हो जाय!"

"हिश्!"

"अच्छा, रहने दो, तुम बतलाओ।"

"मैं कुछ नहीं जानती, मुझे क्या मालूम कि लिखनेवाला क्या लिखेगा? वह जाने क्या लिखेगा?...तुम्हारी कवितावाली कापी कहां है? उसमेंसे कुछ सुनाओ न!"

"वह मिलती ही नहीं, जाने कहां रखकर भूल गयी! कल मैं घण्टे-भर उसे ढूंढ़ती रही, फिर भी नहीं मिली।"

"तो जाने दो; क्या बजा होगा?"

"छः-साढ़े छः होगा।"

"बहुत देर हो गयी, मैं जाती हूं। अच्छा, कल तुम हमारे घर आना।"

"क्यों, क्या बात है?"

"बात कुछ नहीं है, तुम आना।"—कहती-कहती कुसुमा उठ आयी।

(८)

रविवारकी छुट्टी थी। दिनके आठ-नौ बजे थे। रामदुलारे साइकिल लेकर बाजारको चला, दर्जीके यहांसे कपड़े लाने थे। अभी दस कदम ही बढ़ा होगा कि उधरसे रामाधारको तांगेमें आते देखा, नमस्कार करके अपने-आप बोला—"ज़रा बाजार हो आऊं, अभी आता हूं।" तांगेसे थोड़ा सिर निकालकर रामाधारने कहा—"जल्दी आना!" "अच्छा।"—कहकर वह साइकिल भगा ले गया।

दर्जीकी दूकानपर आकर पूछा— "कपड़े तैयार हैं न?" मालिक बोला—"जी हां, सब तैयार हैं, जरा कमीजोंमें बटन लगानेको रह गये हैं। बस सब तैयार ही हैं। आइये, तशरीफ रखिये। क्या बतलाऊं, कल एक रिश्तेदारीमें फंस गया, दूकान खुल ही न सकी। अब बस जरा देर है! आइये, आइये, ऊपर निकल आइये।"

रामदुलारेने कुछ नहीं कहा, चुपचाप साइकिल खड़ी करके कुरसीपर जा बैठा। जब बटन टांके जा रहे थे, उसने सोचा—आज रामाधारसे उसकी चर्चा छेड़ूंगा, कुछ न कुछ तो मालूम होगा ही। फिर अपने-आप सवाल उठा कि, क्या मालूम होगा?

जवाब आया कि, यही सब कि उसका क्या नाम है, कौन-से क्लासमें पढ़ती है, शादी कब होगी।

सवाल हुआ कि, अगर शादी हो चुकी हो, तो ?

जवाब आया कि, नहीं, शादी अभी नहीं हुई होगी।

तब सवाल उठा कि, किस तरहका वर उसके माता-पिता चाहते हैं ? जवाब था कि, यह कौन जाने ? लेकिन हां, यह तो याद ही नहीं रहा कि वे कान्यकुब्ज हैं, और हम भी तो कान्यकुब्ज हैं ! तब फिर ?...अच्छा मान लो, अगर रामाधार ही यह प्रस्ताव लाये कि...

दूकानके मालिकने कहा—"क्यों साहब, चीन-जापानकी लड़ाईकी क्या खबर है ?"

रामदुलारे झुंझलाकर बोला— "मुझे भाई, कुछ नहीं मालूम, तुम अखबार नहीं देखते हो ?"

"अरे साहब, हमें फुरसत ही कब मिल पाती है कि अखबार पढ़ें ! आप देख ही रहे हैं, काम इतना बढ़ गया है कि दम नहीं मिलता।"

रामदुलारे चुप रहा।

वह बोला—"अब इधर हमने जनाने कपड़ोंका खास इन्तजाम किया है, सब फैशनोंकी चीजें तैयार करते हैं। अब आपको बच्चोंके कपड़े कहीं दूसरी जगह ले जानेकी जरूरत नहीं है।"

रामदुलारे हंसी रोककर बोला—"मैं तो अकेला ही हूं !"

"ओहो, माफ कीजिये !"

तब तक नौकर कपड़े ले आया। उसने चश्मेको संभालकर कहा—"लीजिये साहब, तैयार हैं !"

रामदुलारेने जल्दीसे दाम दिये और कपड़े लेकर तेज चालसे लौटा। और आकर साइकिल पड़ोसके दरवाजेपर ही रोकी। कपड़ोंका बण्डल हाथमें लिये चौखटपर चढ़ आया, तब सोचा कि, किसे आवाज दें ? घरमें घुसते ही बायीं ओरसे एक जीना ऊपरको गया था। बैठक ऊपर ही थी, भीतर जनाना था। उसने सोचा कि ऊपर चले चलें, रामाधार तो होगा ही, आवाज देनेकी कौन जरूरत है, कि कोई ऊपरसे आता जान पड़ा। जीना बीचमें एक जगह घूम गया था, रामदुलारे वहीं खड़ा रहकर आनेवालेका इन्तजार करने लगा। थोड़ी देरमें ऊपरकी सीढ़ीपर चप्पलें दीखीं, देखते ही रामदुलारे एक तरफको हट गया। धीरे-धीरे चप्पलोंकी आवाज होती रही कि सहसा रामदुलारेने अपने सामने उसे खड़ा पाया ! और अपने-आप ही आंखें चार हो गयीं !

दो सेकिण्ड निकल गये, पलकें गिर गयीं और चप्पलें धीरे-से हटीं कि रामदुलारेने पूछ दिया—"रामाधार ऊपर हैं ?"

चप्पलें रुक गयीं, लेकिन पलकें नहीं उठीं। दो सेकिण्ड और निकल गये। रामदुलारे खड़ा था। कोई उत्तर नहीं ! और चप्पलें धीरे-धीरे हटने लगीं, फिर अन्तर्धान हो गयीं !

रामदुलारे घड़ी-भर उसी तरह खड़ा रहा, फिर क्षुब्ध होकर बाहर आया, साइकिल पकड़कर अपने दरवाजेकी ओर बढ़ा। आकर ताला खोला, साइकिल भीतर रखी, फिर आंगनमें खड़ा होकर बोला—"यहां तक !" और घरका ताला उसी तरह बन्द करके एक साथीके यहां चला गया कि कहीं रामाधारसे भेंट न करनी पड़े।

× × ×

उधर कुसुमा भीतर जाकर पलंगपर पड़ रही। उसे अपने ऊपर बार-बार क्रोध आ रहा था कि क्यों उसने उनकी बातका जवाब नहीं दिया ! उस दिनकी लारीकी बात उन्होंने जिस तरह कहानीमें लिखी थी, उसी तरह इसे भी लिखेंगे कि मोहिनीको...

लेकिन उसके मनकी बात कौन जानेगा ?

वह रामाधारके लिए नाश्ता लेकर ऊपर गयी, उस समय रामाधार अपने फूफासे इस रामदुलारेके बारेमें कह रहा था कि कैसा तेज और चरित्रवान् युवक है ! कहानी-लेखक है, और खुशीकी बात यह है कि अपनी ही बिरादरीका है। कुसुमा सुनती रही और तश्तरी संभालती रही। बिरादरीकी बात सुनकर वह डरी कि कहीं पिता यह न कह दें कि... ! लेकिन परमात्माने बचा लिया। वे बोले—"लो, नाश्ता कर लो, कुसुमा तबसे खड़ी है।"

और नाश्ता देकर वह उतरी कि सामने खड़ा पाया रामदुलारेको ! तब फिर उससे इतना नहीं कहा गया कि—'हां' और वह सोचने लगी कि भला अब इसका क्या प्रतिकार हो सकता है ? उन्होंने क्या सोचा होगा ? अगर रामाधार भैयासे उन्होंने यह बात कही, तब वे भला क्या सोचेंगे ? सोचेंगे कि क्यों जवाब नहीं दिया ! सोचेंगे कि......

मुझे जवाब देना था, कहना था कि— 'हां, रामाधार

भैया ऊपर बैठे हैं, चले जाइये।" किस तरहसे कहती ? इस तरहसे—कुसुमाने तब अपनी परीक्षा ली, अपने-आप धीरे-धीरे बोली—"हां, रामाधार भैया ऊपर बैठे हैं; चले जाइये।" लेकिन कहते-कहते उसकी आवाज कांप गयी !

(९)

महादेवी हंसकर बोली—"अब कहो, हार गयीं न ! मानती ही नहीं थीं, अब कैसी चुप हुईं ?"

कुसुमाने अचरजसे कहा—"क्या बात है ? मेरी तो कुछ समझमें ही नहीं आया, कौन हार गया ?"

"कौन हार गया ! अब अनजान मत बनो...तुमने पढ़ी तो जरूर होगी !"

"क्या पढ़ी होगी ?"

"वही कहानी, और क्या ? सच कहना, तुमने नहीं पढ़ी ?"

"नहीं तो, मुझे तो याद भी नहीं रही !"

"यह देखो !"—महादेवीने पत्रिका उठाकर उसके हाथमें दे दी—"अब अपनी आंखोंसे पढ़ लो।"

कुसुमा पढ़ने लगी......

महादेवी चुपचाप बैठी रही। पढ़ते-पढ़ते जब कहानीका अन्त होने लगा, कुसुमाका मुंह लाल हो उठा, माथेपर पसीना आ गया—उसने धीरेसे पत्रिका बन्द करके रख दी।

महादेवी बोली—"क्यों, मैंने कहा था वही हुआ न ? तुम तो मानती ही नहीं थीं, अब हार गयीं न !"

कुसुमाने बलपूर्वक मुसकराकर कहा—"फिर ?"

"फिर क्या, मैंने तुम्हें हरा दिया !"

"बड़ा भारी काम कर डाला !"

"और तुम क्या समझती हो ! यह कोई छोटी बात नहीं है !"

तब तक घण्टा बजा।

महादेवी हंसती-हंसती चली गयी।

कुसुमाका वह 'पीरियड' खाली था। वहीं लाइब्रेरीमें बैठी सोचती रही कि आखिर कहानीका अन्त इस तरह हुआ ! मोहिनीकी उसी जगदीशके साथ शादी हो गयी ! क्या......

इस 'क्या'पर आकर कुसुमा रुक गयी। मन कर रहा था कि 'क्या'से आगेकी भी बात कह दी जाय, लेकिन वह बलपूर्वक उसे रोककर कह रही थी कि—यह सब लेखककी अपनी कल्पना है, वास्तवमें क्या ऐसा हो सकता है ? जिस तरह बीचमें वहांपर, लारीवाली घटनामें, गलती हो गयी है, उसी तरह......

'उसी तरह'पर कुसुमा फिर रुक गयी। मन कर रहा था कि आगेकी बात अब नहीं कही जाय, लेकिन कुसुमा बलपूर्वक कहना चाहती थी कि, उसी तरह यहांपर भी गलत हो गया है—मोहिनीकी जगदीशके साथ शादी नहीं हुई। तब सहसा किसीने चुपकेसे उसके कानमें कहा—"क्या उनके साथ तुम्हारी शादी नहीं हो सकती ?'......और मानो सहस्र कण्ठ पुकार उठे—'हां, हो तो सकती है !'

सुनकर कुसुमाका मन भीग गया।

सहसा दृश्य बदल गया......

घरके छोटे-से आंगनमें मण्डप बना है। उस मण्डपके नीचे, यज्ञ-कुण्डके आगे, कुसुमा मुंह ढांके बैठी है; उसके पास, बिलकुल पास एक व्यक्ति और बैठा है। तभी पिताने उसका हाथ पकड़कर उस व्यक्तिके हाथमें दे दिया ! हलके गुलाबी अवगुण्ठनमेंसे कुसुमाने तनिक आंख उठाकर देखा—वह व्यक्ति और कोई नहीं, रामदुलारे है ! कुसुमा देख रही थी—साफ-साफ देख रही थी, आजसे रामदुलारे उसके जीवनका स्वामी हुआ, उसके सर्वस्वका अधिकारी हुआ ! पिता बोले—"कहो बेटी, त्वयि मे हृदयं दधासि।" कुसुमाने कांपते-कांपते कहा—"त्वयि मे हृदयं दधासि।"...

तभी टन् करके घण्टा बज उठा। कुसुमाको होश आया। देही अब तक कांप रही थी, मानो वह अभी-अभी मण्डपसे उठकर आयी हो !...

और सब लड़कियोंके साथ वह भी क्लासमें जा बैठी, लेकिन उस दिनका पाठ उसने जरा भी नहीं सुना। कानमें गूंज आती रही—'त्वयि मे हृदयं दधासि !'

(१०)

रामदुलारेका मन उदासीसे भर गया। उस घरमें रहना बुरा लगने लगा, न जाने कब उस अभिमानिनीसे भेंट हो जाय ! उसके दिलमें एक बात आयी, घरको उसी तरह छोड़कर कालेजके पास, अपने सहपाठीके यहां, एक लाजमें जा रहा। वहां पहुंचकर उसका मन बहुत शान्त हुआ।...

वह अपने लिए जाने क्या समझती हैं ? यह पता नहीं कि

मेरे सामने उनका बड़प्पन एक तिनकेके भी बराबर नहीं है। कुछ ऐसी बहुत सुन्दर भी तो नहीं हैं, जाने किस चीजपर उन्हें इतना नाज है !

फिर आरामसे पलंगपर लेटकर बोला—"उंह, होगा जी! हमें इससे क्या ? अभी यहां रह ही रहे हैं, ठीक समझेंगे तो किसी दिन अपना सामान भी वहांसे उठवा लेंगे। अपने अकेलेमें वे अभिमान किये बैठी रहें, यहां किसे देखनेकी फुरसत है !..."

× × ×

इसके चौथे दिन रामाधार कुसुमाके घर पहुंचा। पहले थोड़ी देर बैठा बुआसे गपशप करता रहा, फिर रामदुलारेसे मिलनेके लिए कहकर बाहर उठ आया। लेकिन दो मिनट बाद ही लौट आकर बोला—"वह तो यहांसे चला गया ! नीचेका दूकानदार कह रहा है कि वे कहीं दूसरी जगह रहने चले गये।"

कुसुमा भीतर लेटी-लेटी एक किताब पढ़ रही थी, रामाधारकी बात सुनकर सन्न रह गयी ! मनमें बोली—'कहीं मेरी ही वजहसे तो नहीं चले गये ?'

× × ×

तबसे वह स्कूल आते-जाते रोज उस तालेको देख रही है कि किसी दिन शायद खुल जाय, और तालेको उसी तरह बन्द देखकर कहती है कि—कहीं वे मेरी ही वजहसे तो नहीं चले गये ?···और ताला उसी तरह पड़ा रहता है।

× × ×

इसके बाद बहुत दिनों तक कोई खास घटना नहीं हुई। यहां तक कि रामदुलारे एम० ए० प्रीवियसकी परीक्षा देकर अपने घर चल दिया और उन दोनोंकी फिर एक बार भी और भेंट न हो पायी।

(११)

रामदुलारेके पिता साधारण जमींदार थे। कुटुम्ब खूब बड़ा था और आस-पासकी बस्तीमें उनकी धाक थी। घरके सब आदमी प्रायः पढ़े-लिखे थे; पर ग्रेजुएट सबसे पहला—और शायद सबसे आखिरी भी—रामदुलारे ही था। वह अपने बापका अकेला ही था। चाचा-ताऊके कई-कई लड़के थे, उन सबकी शादियां भी हो चुकी थीं। अकेला रामदुलारे अभी क्वांरा था। उसकी शादीके लिए बड़ी-बड़ी दूरसे आदमी आते और आकर निराश होकर लौट जाते। यह नियम प्रति वर्षका था। सो, उस बार भी लोग आ ही रहे थे और अपने मनकी बात न पाकर पिता उन्हें टके-सा जवाब देते जाते थे कि एक जगह उनकी नजर रुक गयी।

लड़की इस साल हाई स्कूलमें बैठी है। देखने-भालनेमें सुन्दर है—इच्छा हो, तो चाहे जब देख लें। घरका सब काम कर लेती है, दस्तकारीमें खूब होशियार है और शील बहुत ज्यादा है। पिताकी अकेली सन्तान है। लड़कीके नामसे दस हजार बैङ्कमें जमा हैं और गांवमें थोड़ी जमींदारी भी है, मकान पक्का बना है। पिता पटनामें, किसी आफिसमें, डेढ़ सौके नौकर हैं। शादी लड़केवालेकी मर्जीके मुताबिक होगी।···

अन्तमें नतीजा यह हुआ कि जो आदमी पैगाम लेकर आया था, वह बहुत कुछ आशा लेकर लौटा।

और यह सब समाचार चचेरे भाईके मुंहसे रामदुलारेने सुन लिया, उसे सुनाया गया। कहा गया कि अगर तबीयत हो, तो वह लड़की देख आ सकता है, और शादी भी अगर उसकी मर्जी हो, तभी होगी; लेकिन पिताकी रजामन्दी पूरी-पूरी है।

सुनकर रामदुलारेने कहा कि नहीं, वह लड़की देखने न जायगा। अगर पिता ठीक समझते हैं, तो उसे कोई एतराज नहीं है।······

× × ×

और इसके कुछ दिन बाद लड़कीके चाचा टीका लेकर आ गये। जमींदारके घरमें ढोलक बजी, बाहर बाजे बजे। बड़ी तड़क-भड़कसे रामदुलारेका टीका चढ़ा, फिर आये हुए लोगोंको चार-चार लड्डू बांटे गये। सब खुश थे··· गांवके गरीब लोग कह रहे थे कि टीकामें लड्डू बंटे हैं, शादीमें तो जाने क्या-क्या ठाठ होगा, कोई ठिकाना है !···

अकेला रामदुलारे ही उस रातको बहुत देर तक ऊपर छतपर लेटा जागता रहा कि अब जीवनके नाटकका दूसरा अङ्क आरम्भ हुआ ! इसमें एक तो वह स्वयं है और दूसरा खिलाड़ी जाने कौन होगा, जाने कैसी उसकी शकल होगी, जाने कैसा उसका स्वभाव होगा ? लेकिन कुछ भी हो, रामदुलारेको उसके साथ ही 'पार्ट' करना है; इतना ही नहीं, नाटकके अन्तिम दृश्य तक—यवनिका पतन तक—उसे उसीके साथ-साथ रहना है !

और वह जानता कुछ भी नहीं कि कौन वह है और कैसा उसका रङ्ग-रूप है; उसके गुण-दुर्गुण, उसका नाम-धाम रामदुलारेको कुछ भी तो नहीं मालूम! सच तो यह है कि वह जानना भी नहीं चाहता। जानकर वह करेगा ही क्या? अब तो जो कुछ भाग्यमें होगा, सामने आ ही जायगा।

रामदुलारेको कोई कमी नहीं, ईश्वरने उसे सभी कुछ दिया है—रूप, गुण, धन, कीर्त्ति, बल और कला! वह अगर चाहता, तो इससे कहीं बढ़कर—कहीं अच्छी सङ्गिनी पा सकता था, लेकिन वह चुप रहा। वह डरता है। इस 'अच्छी' की परिभाषा वह नहीं कर पाता। रूप-गुण-धन, यह सब वह नहीं चाहता। वह चाहता है—हृदय! किस तरहका? तब जाने कौन कह उठा—'उस अभिमानिनीका-सा!' सच! वैसा ही हृदय रामदुलारेके मन भाया है। लेकिन उस 'नाजकी पुतली' के साथ वह जीवन-पथ कटे, ऐसा सौभाग्य कोई अपने-आप कैसे बना ले सकता है?···

उसी पटनामें वह रहती है, जिसके प्रति रामदुलारेका कोई आकर्षण नहीं है।

और उसी पटनामें वह भी रहती है, जिसके आकर्षणसे डरकर वह भागकर लाजमें जाकर रहा था!

उसके पिता किसी आफिसमें नौकर हैं।

और उसके भी।

वह हाई स्कूलमें बैठी है।

और शायद वह भी!

कैसी विडम्बना है!

आसमानसे एक तारा टूटा, रामदुलारे देखता रहा—दूर तक एक लकीर-सी बनती चली गयी, फिर क्षण-भरमें वह बिलकुल मिट गयी!

वह एक गहरी सांस लेकर, करवट बदलकर पड़ रहा।

उसी समय मनमें एक बात उदित हुई—अगर दोनों एक ही हों? अगर उसीके यहांसे टीका आया हो?···हां जी, कौन जानता है?······रामदुलारेने नाराज होकर कहा—'हां-हां, तुम इतने भाग्यवान् हो न! सो रहो चुपचाप!'

और उसने बलपूर्वक अपनी आंखें बन्द कर लीं।

(१२)

हाई स्कूलकी परीक्षाके बाद कुसुमाके दिन बुरी तरह कटने लगे। जब तक महादेवी रही, उसके घर चली जाती थी या उसे बुला लेती थी, लेकिन जब वह अपने ननिहाल चली गयी, कुसुमा भली कि घर भला! वह कहीं नहीं जाती थी और स्कूलकी किसी लड़कीसे उसका ज्यादा मेल-जोल था भी नहीं। कभी ऊपर और कभी नीचे लेटी-लेटी पुराने अखबार या ऐसी ही चीजें पढ़ती रहती; जब पढ़नेसे तबीयत ऊब जाती, किताब रखकर कुछ सोचती रहती, सोचती रहती कि···

कि अचानक एक दिन सुना कि उसकी शादी तय हो रही है! फिर मांने धीरे-धीरे उसे सब सुना दिया कि घर-वर कैसा है। सुनकर कुसुमा कुछ नहीं बोली।

वह मुंहसे कुछ नहीं बोली, यह ठीक है—न वैसी शर्मीली लड़की कभी इस विषयमें मुंहसे कुछ बोल ही सकती थी—लेकिन उसके हृदयमें कोलाहल मच गया।

शादी सभीकी होती है, यह सत्य है, लेकिन नारीके लिए वह एक नया जीवन है, बहुत बड़ा—शायद सबसे बड़ा—परिवर्तन है, सो हृदयमें कोलाहल होना सहज ही था।

वरका जैसा वर्णन सुननेको मिला, उसमें बहुत-सी बातोंका उत्तर साफ था, फिर भी अनेक प्रश्न थे, वे सब एक-एक करके कुसुमाके सामने आ खड़े हुए, और वह चुप ही रह गयी, उन सबका कोई समाधान उसके पास नहीं था, न कोई उसे कुछ बतलानेवाला ही था कि एक दिन सुना कि चाचा टीका चढ़ाने जा रहे हैं! तब कुसुमाको जाने कैसा लगने लगा!···

दोपहरीमें, जब सब सो गये, वह भी ऊपर जाकर आंखें बन्द करके पड़ रही। नींद तो आयी नहीं···देखा कि गांवके एक बहुत बड़े घरमें बहुत-से लोग बैठे हैं; और घरके बीचोबीच चौक पूरा गया है, चौकके सामने उसके चाचा बैठे हैं। उसने कभी अपने चचेरे भाईका टीका देखा था; ठीक उसी तरह देखती रही कि भीतरसे एक लड़का शरमाता हुआ आया, आकर चौकपर बैठ गया। उस लड़केकी शकल कैसी है? ठीक तरहसे देखो! अरे राम! यह तो हू-ब-हू रामदुलारे हैं! वही भैयाके साथी—कहानी लिखनेवाले! हमारे पड़ोसी!··· ··

घबड़ाकर कुसुमाने आंखें खोल दीं। फिर धीरे-धीरे पङ्खा घुमाती-घुमाती बोली—वह सब नहीं हो सकता। उन्होंने अपनी कहानीमें लिख दिया है, इससे क्या होता है? कहानी क्या कभी सच्ची लिखी जाती है? और फिर···

सहसा उसकी आंखें छतपरके उस काले निशानपर जा लगीं, पलक मारते उसका इक्का बन गया, इक्केमें एक आदमी बैठा है, उसके पास छड़ी रखी है! तब कुसमा उठकर नीचे चली आयी।

(१३)

शादीकी तैयारियां होने लगीं। रामदुलारेको वह सब बिलकुल साधारण-सा लग रहा था। उन सब बातोंका उसके निकट कोई महत्त्व नहीं—कोई मूल्य नहीं। न उसे कुछ बुरा ही लग रहा था। सोचता, जैसे और सबकी शादी होती है, उसी तरह उसकी भी हो जायगी। फिर औरोंकी तरह वह भी गृहस्थ बनकर अपना लौकिक कर्तव्य पूरा करेगा। उसके बाद और जो बचे हैं, उनकी भी वही दशा होगी—फिर उसमें कौतूहल क्यों?...

लेकिन मां-बापके दिलमें यह वेदान्तकी-सी बात कैसे आती? अकेला लड़का—इतने दिनोंसे अरमान लिये बैठे हैं, जाने कितनी साधको यह शादी होगी!

× × ×

कुसमा आखिर लड़की थी। उसका भावुक हृदय बहुत-से दृश्य बनाता, लेकिन वे सब उसके किसी एक इशारेपर ही मिट जाते, उनकी धूमिल छाया-भर रह जाती। जाने क्यों वह उन सब बातोंको सोचते डरती थी कि, किस तरहके उसके पति हैं, कैसा उनका मुखड़ा है? जाने कौन-सी चीज बीचमें अन्तराय बनकर आ खड़ी होती कि अब होगा क्या? और झूठमूठ वह कहती—सोचकर क्या करना है? जो कुछ होगा, सो सामने आ ही जायगा।...

कि अचानक एक दिन दुनिया और तरहकी हो गयी। चाचा-चाची सब आ गये, चाचाकी छोटी लड़की शान्ता भी आ गयी। कुसमाको मानो सहारा मिल गया।

शामसे ही दोनों अलग जाकर एक ही पलंगपर लेट रहीं। शान्ता लेटते ही बोली—"अच्छा जीजी, तुम्हें जीजा-जीका नाम मालूम है?"

कुसमाने उसे हाथसे थोड़ा ढकेलकर कहा—"चुप! नहीं तो अभी पड्डा मारूंगी!"

शान्ता बोली—"बतलाऊं?"

कुसमाका मन उत्सुकतासे भर गया, फिर भी उसे हाथसे मारती-मारती कहती रही—"चुप, चुप!"

और शान्ताने मार खाते-खाते सुना ही दिया—"सुनो जीजी, जीजाका नाम सुनो—उनका नाम है—रामदुलारे!"

कुसमाको मानो किसीने आसमानसे नीचे फेंक दिया। मन, बुद्धि, हृदय और शरीर घड़ी-भरके लिए सब स्तब्ध रह गये। जैसे उसकी सांस भी रुक गयी!

शान्ताको ताईने आवाज दी। वह नीचे उतर गयी। कुसमाको चेत हुआ। डूबती-उतराती-सी मनसे पूछने लगी—'क्या यह सच है? क्या यह सच है?'

वह सुख इतना अधिक था कि उसका भार कुसमाके मनसे संभाले नहीं संभला, तब वह झूठ ही कहने लगी—शायद न हो, शायद इस नामका कोई दूसरा आदमी हो; एक नामके क्या कई आदमी नहीं होते?

मनने थककर मानो एक सांस ली।

कुसमा बोली—'और अगर वे ही हों?'

मनने घबड़ाकर कहा—'चुप-चुप!'

कुसमापर इसका असर नहीं हुआ। घरमें मिठाई आयी हो, मां अपने बच्चेके सिवाय और किसीको भी खिलाना न चाहती हो, बालक आकर कहे—'अम्मां, मिठाई आयी है?' और मां कहे—'चुप, चुप!'—सो कुसमापर कोई प्रभाव न पड़ा, बोली—तब क्या कहानीकी बात पूरी हो जायगी? क्या सचमुच उन्हींके साथ जीवन कटेगा? उनके साथ—वे जो भैयाके साथी हैं, पड़ोसके मकानमें रहते थे, कहानी लिखनेवाले, उस दिन वह कागज इधर फेंक दिया था, उन्हींके साथ अब रहना होगा! तब फिर सोचनेको क्या रहा?... हे भगवान्! यह तुमने क्या कर दिया? सपनेकी-सी बातें हो रही हैं, सपना आंख खुलते ही टूट जाता है, और वह? यह तो जीवन-भरका खेल है! यह हो क्या गया?...

अगर कहें कि वह रात कुसमाकी आंखोंमें निकल गयी, तो झूठ नहीं होगा। कभी जमीन, तो कभी आसमान! ऐसेमें भला नींद किसे आवेगी? वह जागती रही—और जागती ही उठ बैठी, दिन निकल आया।...

और दोपहरकी गाड़ीसे ननिहालके लोग आ गये। रामाधारने आते ही बुआके पैर छुए, फिर पीढ़ा खींचकर पास बैठ गया, बैठते ही बोला—"बुआजी, मुझे इस शादीकी खबर सुनकर इतनी खुशी हुई है कि कह नहीं सकता! मैं आपसे कभी खुलकर कह नहीं सका था, लेकिन यह बात मेरे मनमें

बहुत दिनोंसे थी कि किसी तरह कुसुमाकी शादी रामदुलारेके साथ हो जाय, वही हो गया ! अब तक मेरा वह साथी था, अब बहनोई हो जायगा ! बुआजी, यह सम्बन्ध बहुत ही सुन्दर रहा—बहुत ही सुन्दर रहा ! सच कहता हूं, जिस दिन यह खबर मिली, खुशीके मारे मुझे नींद ही नहीं आयी । रामदुलारे-जैसा योग्य लड़का मिल गया, कुसुमा बहुत ही भाग्यवती है ।···"

कुसुमा उसके सामने नहीं थी, खम्भेकी ओटमें खड़ी थी । अब उसे वहां ठहरना भी कठिन हो गया । धीरे-धीरे पैर रखती ऊपर चली आयी । नीचेसे मांकी आवाज सुनाई दे रही थी—"बेटा, सब भगवान्‌की दया है । अब बस यही है कि तुम लोगोंके पुण्य-प्रतापसे ब्याह और कुशलसे हो जाय ।"···

शान्ता शीशेके सामने खड़ी बाल संवार रही थी । कुसुमाने कांपते आकर पुकारा—"शान्ता !"

शान्ता मुंह फिराकर बोली—"क्या है जीजी ?"

"कुछ नहीं !" कहकर कुसुमा पलंगपर गिर पड़ी ।

(१४)

शादीके सिर्फ तीन दिन रह गये । सब लोग काममें लगे हुए थे । बारातके ठहरनेके लिए एक कोठीमें सफाई की जा रही थी, रोशनीका इन्तजाम हो रहा था, घरमें भट्टी सुलग रही थी, पकवान बन रहे थे, किसीको भी फुरसत नहीं थी ।

अकेली कुसुमा हाथ-पैरोंमें हल्दी लगाये ऊपर लेटी-लेटी सोच रही थी—सोच रही थी कि···कि···

उस समय पिता कहीं बाहर गये थे । रामाधार खड़ा-खड़ा दरवाजेके आगेकी जमीन चौरस करवा रहा था कि सहसा कुसुमाके चाचा भीतर आये । मुंहपर हवाइयां उड़ रही थीं । घबड़ाये स्वरमें बोले—"भाभी कहां है ?"

मांने फौरन् कोठरीसे बाहर निकल आकर पूछा—"क्यों, क्या है ?"

चाचा बोले—"गज़ब हो गया !"

मांकी देही कांपने लगी, डरकर पूछा—"क्यों, क्या हो गया—क्या हो गया ?"

चाचा वहीं जमीनपर बैठ गये, फिर लड़खड़ाते स्वरमें कहा—"लड़का हैजेसे चल बसा, तार आया है !"

मां पछाड़ खाकर गिर पड़ीं । पल-भरमें, घरमें कुहराम मच गया ।

कुसुमाने ऊपरसे मांके रोनेकी आवाज सुनी । घबड़ाकर नीचे भागती आयी, देखा, सब 'हाय-हाय !' कर रहे हैं । उसकी समझमें कुछ भी नहीं आया । पड़ोसकी औरतें छज्जे-पर आ खड़ी हुईं, पूछने लगीं—"क्या हुआ ?"

घरकी कहारिन बोली—"लड़का हैजेमें चल बसा—तार आया है !"

पड़ोसिनें बोलीं—"राम-राम, बड़ा गजब हो गया !"

कुसुमाने सब सुना । और सभी लोग विह्वल हो रहे थे, लेकिन वह खड़ी-खड़ी सिर्फ उन सबका मुंह देखती रही—न हिली, न डुली, न कुछ बोली !



फिनलैण्ड और रूस

प्रो० चन्द्रशेखर, एम० ए० डी० लिट्०

यूरोपके नक्शेपर उसके उत्तरी छोरपर तानपूरेकी भांति एक नन्हा-सा देश है फिनलैण्ड—जो अभी तक बर्फकी चादर लपेटे पड़ा था और उसपर विचार करनेकी आवश्यकता न पड़ी थी; पर महायुद्धके बाद रूसी महत्त्वाकांक्षाओंने जिस प्रकार लिथुआनिया, लेटविया और इस्थोनियाकी समस्याओंको संसारके सामने नये रूपोंमें उपस्थित किया है, उसी प्रकार फिनलैण्डकी समस्याओंकी ओर भी संसारकी दृष्टि उठी है।

पिछला इतिहास

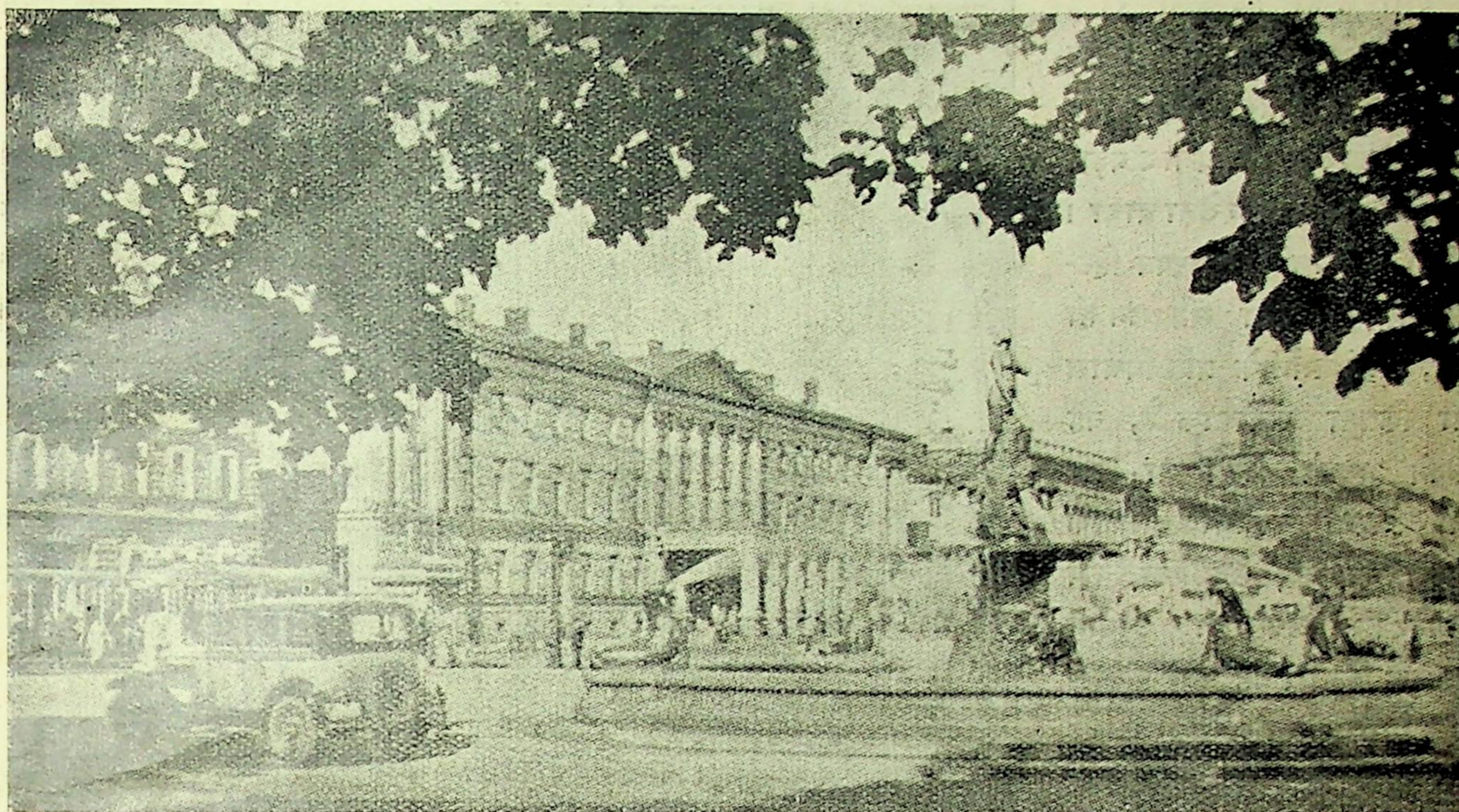
फिनलैण्डको लोग एक नया देश कहकर पुकारते हैं; क्योंकि वर्तमान फिनलैण्डने अभी १९१७ में रूससे स्वाधीनता प्राप्त की है। लेकिन फिन तो प्रायः १८०० वर्षसे फिनलैण्डमें रह रहे हैं। इतिहासके खोजियोंका कहना है कि फिनलैण्ड आज जहां है, वहां पहले उजाड़ जङ्गल थे, जिन्हें मध्य एशियावालोंने जाकर साफ किया और बस्ती बनायी। उन्होंने स्वीडेनवालोंसे वाणिज्य-व्यवसाय-सम्बन्ध स्थापित किया। उन नये बाशिन्दोंकी तुलनामें स्वीडेनवाले बहुत मजबूत पड़ते थे। बीचमें बाथनियाकी खाड़ी थी और उसके उत्तरमें दोनों देशोंकी सीमायें मिलती थीं, इसलिए स्वीडेनको फिनलैण्डपर अधिकार करनेमें बहुत कठिनाई नहीं पड़ी। और तबसे १८०९ तक फिनलैण्ड स्वीडेनके अधिकारमें रहा। लेकिन स्वीडेनका उसपर कितना प्रभाव बना रहा है, इसका अनुमान इन तथ्योंसे लगाया जा सकता है कि फिनलैण्डकी जनतामें मुश्किलसे १० प्रतिशत स्वीडिश भाषा-भाषी हैं। फिन इस बातको सुनना भी नहीं चाहते कि उनका देश अभी २२ साल पुराना है। एक कटुता है, जो उनमें आ जाती है, जब वे उन दिनोंकी याद करते हैं, जब फिनलैण्ड स्वीडेनके अधिकारमें था। इस सम्बन्धमें एक मनोरञ्जक घटनाका उल्लेख किया जाता है, जिसमें बताया जाता है कि एक बार कुछ युवक फिनलैण्डके तत्कालीन राष्ट्रपति पर स्विन हद (Pehr Svin Haud) के पास गये और कहने लगे कि वे अपना नाम बदलकर कुछ ऐसा कर दें, जो स्वीडिशकी अपेक्षा फिनिश अधिक हो।

एक लम्बी अवधि तक फिनलैण्ड स्वीडेनके अधिकारमें बना रहा, लेकिन रूसकी दृष्टि उसपर पड़ गयी थी और उसने धीरे-धीरे उसे स्वीडेनके अधिकारसे मुक्त किया। जिन लोगोंने रूसकी इन हरकतोंका विरोध किया, उन्हें अन्तमें साइबेरियाकी हवा खानी पड़ी।

जारके पदच्युत होनेके बाद फिनलैण्डमें फिनों और रूसियोंमें भीषण सङ्घर्ष होने लगे। और उस समय भी बोलशेविक-विरोधी शक्तियोंको सङ्गठित कर बढ़नेवाला व्यक्ति था बैरन मैनरहीम। यह रूसी सेनामें भी जेनरलकी हैसियतसे लड़ चुका था और फिनलैण्डकी राष्ट्रीय सेनाका गठन करनेके लिए इसे जर्मनीसे पदक आदि मिल चुके हैं। जर्मनोंने फिनलैण्डको रूससे मुक्त करनेके लिए काफी कोशिशें की थीं। हेलसिङ्कीके पार्कमें अब भी एक समाधि-स्तम्भ खड़ा है, जो उन जर्मन वीरोंकी यादगारमें बनाया गया था, जिन्होंने फान गोल्जके नेतृत्वमें फिनलैण्डकी स्वाधीनताके लिए अपना बलिदान चढ़ाया था। मैनरहीम द्वारा फिनलैण्डको सहायता मिली, इसलिए उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए उसीके नामपर 'मैनरहीम किलेबन्दी' की गयी है। फिनलैण्डने १९१७ में अपनेको स्वाधीन राष्ट्र घोषित किया और रूसकी नयी बोलशेविक सरकारने उसकी स्वाधीनता स्वीकार भी कर ली।

अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व

फिनलैण्डका अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें क्या स्थान है और उसपर विजय प्राप्त कर उसके किन उद्देश्योंकी पूर्ति होगी, इसपर अन्तिम रूपसे कुछ भी प्रकाश डालना अभी असम्भव है। पर फिनलैण्डकी जैसी स्थिति है और पिछले इतिहासके पृष्ठ जो कुछ बताते हैं, उससे स्पष्ट होता है कि फिनलैण्डपर जर्मनी और रूस दोनोंकी लोलुप दृष्टि काफी दिनोंसे पड़ी रही है और इसके कारण दोनोंमें सङ्घर्षकी सम्भावनायें भी बराबर रही हैं। यूरोपमें रूसके प्रवेशके लिए फिनलैण्ड एक मुख्य द्वार है। आलेण्ड द्वीप-समूहकी भौगोलिक स्थिति ऐसी है कि स्वीडेन, रूस और जर्मनी उनमें किलेबन्दी करके,



फिनलैण्डकी राजधानी हेलसिङ्की। सामने एक पाषाण-प्रतिमा खड़ी की गयी है, जिसमें फिनलैण्डकी उत्पत्ति चार सिंहों द्वारा रक्षित समुद्रसे उठती हुई फिनलैण्डकी मूर्तिके रूपमें दिखायी गयी है।

है कि रूसी वायुयानोंके अड्डोंके लिए उपयोग करना चाहेंगे।

नारवे और स्वीडेन सदासे रूसके प्रति सशङ्कित रहे हैं। किरूनाके पर्वतोंमें लोहेकी उपजाऊ खदानें हैं, जिनकी ओर रूसकी लोलुप दृष्टि सदासे रही है और पिछले महायुद्धमें फिनलैण्डकी लोहेकी खदानोंने जर्मनीको कुछ कम सहायता नहीं पहुंचायी थी। रूसने यह सब देखा है और उसकी आवश्यकता उसने महसूस की है। स्कैण्डीनेवियन देशोंपर रूसने इधर प्रभाव-विस्तारकी जो नीति बनायी है तथा अनेक भौगोलिक महत्त्वके बन्दरोंपर उसने जो प्रभाव जमाया है, उसी नीतिके अनुसार वह फिनलैण्डके बन्दरगाहोंको भी लेकर अपने उद्देश्य-साधनमें लगा था। फिनलैण्डसे उसकी जो मांग थी, उसे फिनलैण्डने अस्वीकार कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप रूस और फिनलैण्डमें युद्ध छिड़ गया है।

"फिनलैण्डमें", जैसा कि लन्दनके 'सण्डे डिस्पैच'ने उस दिन लिखा था, "रूस चाहता है कि उसके सब सैनिक महत्त्वके स्थानोंको ले ले, जिससे बाल्टिक सागरपर रूसका पूरा कब्जा हो जाय। फिनलैण्डके करेलियन प्रान्तको रूसी करेलियाके साथ मिलाकर फिनिश-सोवियट रिपब्लिक स्थापित करना भी उसका उद्देश्य है। रूसी योजना पूरी होनेपर फिनलैण्ड नाममात्रको एक छोटा सा स्वाधीन प्रदेश रह जायेगा, जिसकी वैदेशिक एवं सैनिक नीतिका सञ्चालन रूसकी देखरेखमें होगा।

"फिनलैण्डके साथ युद्ध समाप्त होनेपर सोवियट रूस अपना हाथ और दिशाओंमें भी फैलायेगा। बाल्कन देशोंमें बसारेबिया और रूमानिया उसके हाथमें आ जायेंगे और बाल्टिक सागरपर पूरा अधिकार तथा उत्तरी सागरका एक बन्दरगाह प्राप्त करनेके लिए नारवे और स्वीडेनके विरुद्ध कारस्वाई की जायगी और तब बाल्कन राष्ट्रोंमें प्रभाव-विस्तारकी योजना रूसके लिए काफी सहज-साध्य हो सकेगी।"

अभी जो युद्ध चल रहा है, उसके छिड़नेके पहले, जब तक जर्मनी रूस तथा बोल्शेविक विचार-धाराके विरुद्ध विचार प्रकट करता रहा है तथा कमिण्टर्न-विरोधी जो समझौते उसने कर रखे थे, उनकी रोशनीमें रूसने देखा था कि

कहीं ऐसा न हो कि दूसरे राष्ट्र उत्तर और पश्चिमसे उसपर आक्रमण कर दें। इसी खतरेके निवारणके लिए उसने उधर अपना प्रभाव बढ़ाकर अपनेको सुरक्षित कर लेना चाहा। जर्मनीकी वर्तमान सरकारका हिटलरके नेतृत्वमें जैसा सञ्चालन हो रहा है, उसमें जर्मनीके प्रति विश्वास करना कितना खतरनाक है, यह स्टैलिनने अनुभव किया था; पर जर्मनी अपनी महत्त्वाकांक्षाओंके उन्मादमें जब युद्ध छेड़ बैठा, तब स्टैलिनने इस अवसरका उपयोग करना शुरू किया। वह उत्तर पश्चिममें एक ऐसी दीवाल खड़ी करना चाहता है, जिससे दूसरे राष्ट्र उसका कुछ भी बिगाड़ न सकें।



फिनिश प्रजातन्त्रके प्रेसिडेण्ट—मि० कियोस्ती केलीओ।

कुछ मनोरञ्जक बातें

फिनलैण्डको कभी-कभी 'सुओमी'—'झीलोंका देश' कहते हैं। और १,३५,५५७ वर्गमीलके क्षेत्रफलवाले देशमें कई हजार झीलोंका होना इस नामको सार्थक करता है। १९३० की जन-गणनाके अनुसार फिनलैण्डकी आबादी ३६,६७,०६७ है। राजधानी हेलसिङ्की है, जिसे स्वीडिश भाषामें हेलिङ्गफोर्स कहा जाता था, लेकिन स्वाधीन फिन इस नामसे उसे पुकारनेपर आपत्ति करता है। शहर यह पुराना है; पर फिनिश स्वाधीनताके बाद इसमें आश्चर्यजनक सुधार हुए हैं। आज अपने भव्य भवनों, सुरम्य पार्कों, सुन्दर व्यवस्थाओं तथा कला और संस्कृतिका सुन्दर केन्द्र होनेके कारण यह एक आकर्षक स्थान हो रहा है। १९२० में जहां इसकी आबादी १९८,००० थी, वहां १९३९ में २८०,००० हो गयी। दूसरी दृष्टियोंसे और कितने ही परिवर्तन और भी आकर्षक हैं।

हेलसिङ्की अपनी कितनी ही मनोरञ्जक विशेषताओंके कारण और कितने ही शहरोंमें बेजोड़ है। कलकत्ते और बम्बईकी सड़कोंपर सदैव चलती रहनेवाली भीड़ तथा होनेवाले शोर-गुलको देखने-सुननेवाले इस बातका अनुमान भी नहीं लगा सकते कि हेलसिङ्कीकी सड़कोंपर कितनी शान्ति रहती है। वहांकी कानूनी व्यवस्थाओंके अनुसार कोई सड़कपर शोर-गुल नहीं कर सकता, हेलसिङ्कीमें मोटरें भोंपू नहीं बजा सकतीं, स्टीमर सीटी नहीं बजा सकते, फैक्टरीसे आवाज नहीं हो सकती और न साइकिलवाले घण्टी घनघना सकते। विकट दुर्घटनाओंकी आशङ्कापर ही खतरेकी घण्टियोंको बजानेका आदेश है, अन्यथा सर्वत्र शान्तिके साथ यातायात होता है। पैदल चलनेवालोंके लिए अलग

फुटपाथ बने हुए हैं। और उधर शोर-गुल कम होने तथा आवाज न करनेके कारण सावधानीसे गाड़ियोंके चलानेपर देखा गया है कि दुर्घटनाओंकी संख्यामें भी कमी आयी है। इन व्यवस्थाओंकी सफलता देखकर लन्दनमें भी आंशिक रूपमें उन्हें कार्यान्वित करनेकी कोशिश की गयी है।

हेलसिङ्कीकी एक दूसरी विशेषता भी मनोरञ्जक है। जिस किसी होटलमें आप चले जाइये, टेबुलपर बैठते ही आपका एक नन्हा-सा राष्ट्रीय झण्डा आपके टेबुलपर रख दिया जायगा। इसे देखते ही आप समझ जायेंगे कि आपके राष्ट्रके और लोग भी यहां हैं या नहीं। रातमें ये झण्डे नहीं लगाये जाते। सिर्फ ग्रीष्मकालीन ऋतुके मध्यमें यह बात लागू नहीं होती, जब ४८ घण्टे सूर्य अस्त नहीं होता।

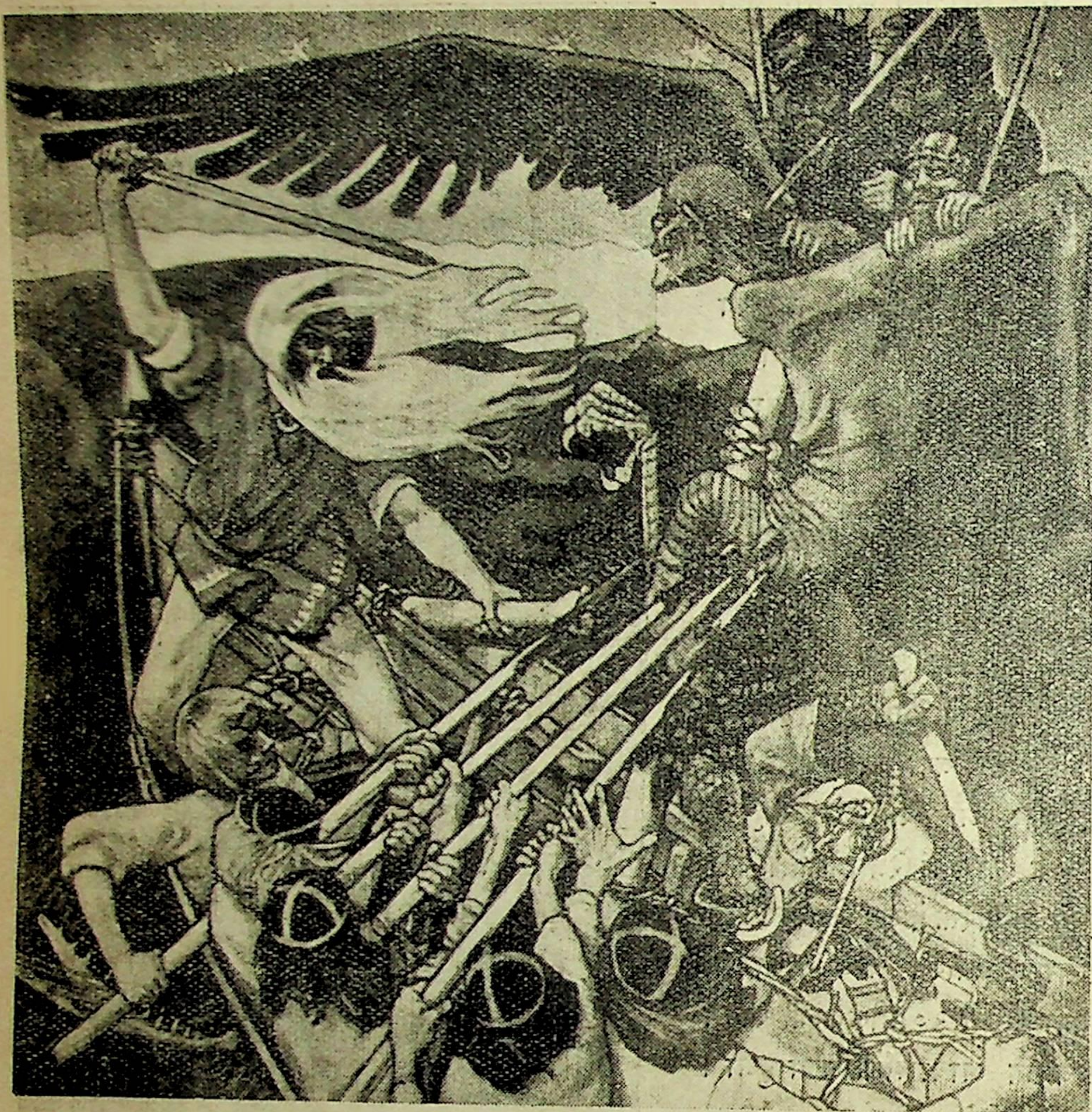
दूकानोंमें भी कुछ विशेषतायें हैं। सभी चीजें शीशेके भीतर रखी हुई हैं और एक कागजपर उनके नाम, दाम तथा जिन देशोंसे वे आयी हैं, उनके नाम लिखे होते हैं। यहां पुर्तगाल और फिलस्तीनके सन्तरे, वहां आस्ट्रेलिया तथा अमेरिकाके सेब और उधर स्पेन और जर्मनीके अंगूरोंके गुच्छे रखे हुए हैं और उनके नाम अंगरेजी, फिनिश और स्वीडिशमें लिखे हुए हैं। इनके अतिरिक्त केवल फिनलैण्ड और यूरोपमें ही नहीं, समस्त संसारमें अनोखा ग्रन्थ 'एकाडेमी बुक शाप' हेलसिङ्कीमें रखा गया है, जो २० मील लम्बी रेकोंमें है और संसारकी समस्त प्रचलित भाषाओंमें लिखा हुआ।

अशिक्षा—एक फीसदीसे भी कम!

शिक्षाके क्षेत्रमें फिनलैण्ड—इस नये तरुण राष्ट्र—ने चौथाई शताब्दीमें ही एक ऐसा आदर्श रखा है, जो सभ्यता और संस्कृतिके विकासमें प्रायः बेजोड़ है। यह पहला राष्ट्र है, जिसने स्त्रियोंको मताधिकार दिया और नारी-स्वाधीनताका दृश्य वहां सचमुच देखने लायक होता है। फिनलैण्डकी नारी स्वस्थ एवं सबल होती है और यूरोप-भरमें यह कहावत प्रचलित है कि "एक फिनिश नारी दो फ्रेञ्च पुरुषोंके समान बलिष्ठ होती है।" फिनलैण्ड नारीके लिए अबला शब्दका व्यवहार नहीं करता। और आप किसी पार्क, किसी सार्वजनिक स्थानपर चले जाइये, सर्वत्र एक प्रचण्ड पौरुषके मूर्तिमन्त रूपमें कलाकारोंकी कल्पना दिखाई पड़ेगी। फिनलैण्ड शक्तिमें विश्वास करता है। कलाकी निराशावादिता फिनलैण्डको पसन्द नहीं, जिन्दगी जीनेके लिए है और भली भांति जीनेके लिए है। जो नारियां पुरुषोंके समानाधिकारका समर्थन करती हैं, अगर वे एक बार फिनलैण्ड जाकर हेलसिङ्की और उसके आसपासके वायुमण्डलको देख आतीं! दूकानमें बैठकर पैसे लेकर रसीदें काटने, टेलीफोनके तारोंको जोड़ देने और मालिकके समझा देनेपर दस-बीस पंक्तियोंके पत्रोंको टाइप करके मालिकके सामने हस्ताक्षरके लिए रख देनेका ही काम करनेवाली नारी अगर एक बार फिनलैण्ड घूम आये! अगर एक बार वहां वह जाये, तो देखेगी कि किस प्रकार वहांकी नारी पुल बनाने, रेलकी पटरियां बिछाने तथा कङ्करीट तोड़नेका काम करती है। किसी भी



फिनलैण्डके जङ्गी लाट फील्डमार्शल मैनरहीम।



"युद्ध"—फिनिश चित्रकलाका एक नमूना।

'हां'या 'नहीं' ही कहना पड़ता है। हर कुर्सीमें दो बटन लगे हुए हैं, जिनपर समर्थन और विरोध प्रकट करनेवाले शब्द (Aye और No) लिखे हुए हैं। आप अपने मतके मुताबिक हां, या नहीं, किसी बटनको दबा दीजिये। बटन दबाते ही उससे लगा हुआ तार बोर्डपर हां (Aye) या नहीं (No) लिख देगा। इसके साथ-साथ संख्या भी लिखती चलेगी, जिससे अन्तमें मत गिनने अथवा अध्यक्ष द्वारा परिणाम सुनानेकी भी आवश्यकता नहीं पड़ती। समयकी एक खास अवधि निश्चित है, जिसके भीतर अगर किसी सदस्यने बटन न

अंशमें नहीं कहा जा सकता कि पुरुषोंके समानाधिकारके प्रश्नोंको उसने केवल वाद-विवादका विषय समझा है। वह तो सचमुच कर्मक्षेत्रमें उसका मुकाबिला करती है। शिक्षाके क्षेत्रमें नारियां पीछे नहीं हैं। फिनलैण्डमें शिक्षाका प्रचार इतना अधिक है कि अपढ़ व्यक्तियोंकी संख्या वहां एक फीसदीसे भी कम है। यही कारण है कि सार्वजनिक जीवनमें वे सर्वत्र पुरुषोंके साथ हैं।

बिजली द्वारा 'वोट'

फिनलैण्डकी व्यवस्थापिका परिषद्में २०० सदस्य होते हैं, जिनमें महिलाओंके लिए १४ सीटें होती हैं। इस व्यवस्थापिका परिषद्में वोट देनेकी प्रणाली बड़ी निराली है। वोट देनेके लिए सदस्योंको कहीं जाना नहीं पड़ता और न

दबाया, तो मशीन स्वतः उसे 'अनुपस्थित' अथवा 'तटस्थ'की श्रेणीमें डाल देगी। यह बोर्ड ऊंचाईपर अध्यक्षके पास लगाया गया है, जिससे प्रत्येक सदस्य स्वयं इसे देख सकता है।

वर्तमान युद्धके कारण

फिनलैण्डकी भौगोलिक स्थिति तथा रूसकी महत्त्वाकांक्षाओंके विकासके लिए फिनलैण्डमें पाये जानेवाले उपादानोंकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। फिनलैण्ड और रूसमें आज जो युद्ध छिड़ गया है, उसके कारणोंको समझनेके लिए इतना काफी है। इस विषयमें रूसकी मांगों तथा उसपर फिनलैण्डके निश्चयोंको लेकर फिनिश सरकारने जो श्वेतपत्र विगत १२ दिसम्बरको प्रकाशित किया था, उसमें पहली बार सोवियटसरकारकी सारी मांगोंपर प्रकाश डाला गया है। श्वेतपत्रमें



नारियोंकी सेना, जो फिनलैण्डकी स्वाधीनता-रक्षाके लिए बलिदान देनेको तैयार है।

सोवियट-प्रस्तावके विरुद्ध पेश किये गये फिनिश-प्रस्तावका भी ज़िक्र है।

फिनिश श्वेतपत्रमें कुल १३ कागजात दर्ज हैं। सोवियट मांगोंमें एक मांग यह भी थी कि जङ्गी जहाजोंका अड्डा बनानेके लिए हैङ्गो रूसको तीस वर्षकी लीजपर दे दिया जाय, ताकि लीजपर पाये हुए बाल्डिस्की नामक इस्थोनियन बन्दरगाहके साथ हैङ्गोके जहाजी अड्डेकी तोपें फिनलैण्डकी खाड़ीका मार्ग बन्द कर सकें।

सोवियट सरकारने फिनलैण्डसे यह भी मांग की थी कि वहांपर कुछ फौज रखनेका भी हक मिले और करेलियन थल-डमरूमध्यके इलाकेके हागलैण्ड तथा अन्य द्वीपोंको रूसके सिपुर्द कर दिया जाय। इसके बदलेमें सोवियट सरकारने फिनलैण्डसे दो गुना बड़ा इलाका देनेको कहा था। इसके सिवा अन्य शर्तें यह थीं कि दोनों देशोंके बीच की गयी अनाक्रमण-सन्धिको और भी मजबूत बनाया जाय, यानी दोनों देश ऐसे किसी भी देशसे मित्रता नहीं कायम करें, जो दोनोंमेंसे किसी एकका भी शत्रु समझा जायगा। करेलियन थलडमरूमध्यकी किलेबन्दियोंको दोनों देश भङ्ग कर देंगे और आलैण्ड द्वीपोंमें फिनिश सरकारके किलेबन्दी करनेपर रूसको कोई एतराज न होगा, बशर्ते कि कोई दूसरी ताकत उस किलेबन्दीसे किसी कदर भी सम्बन्धित न हो।

उपर्युक्त रूसी मांगों और शर्तोंके उत्तरमें फिनलैण्डने कहा था कि यद्यपि रूसकी अधिकांश मांगोंसे फिनलैण्ड सहमत है, तो भी हैङ्गोमें रूसी जहाजी अड्डा बनानेकी मांगको फिनलैण्ड स्वीकार नहीं कर सकता। रूसने इस बातपर जोर दिया था कि लेनिनग्राडकी रक्षाके लिए हैङ्गोको अपने युद्ध-पोतोंका अड्डा बनानेके लिए रूस अति आवश्यक समझता है। रूस इस बातके लिए राजी था कि वहांपर अपनी जो सेना वह रखना चाहता है, उसे कुछ घटा देगा।

सोवियट-सरकारके इस दबावपर फिनलैण्डने स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषणा की थी कि वह अपनी अखण्डता बनाये रखनेके लिए दृढ़ है। फिनिश सरकारने इसके साथ ही साथ यह भी कहा था कि रूस जो इलाका बदलेमें देना चाहता है, उसका मूल्य उस इलाकेकी तुलनामें कुछ भी नहीं है, जो वह फिनलैण्डसे मांग रहा है। फिनिश सरकारने इस बात र पूरा जोर दिया था कि वह एक विदेशी सरकारको फिनलैण्डके इलाकेमें सैनिक अड्डा बनानेकी इजाजत नहीं दे सकती।

फिनिश सरकारकी उपर्युक्त दृढ़ता-के उत्तरमें सोवियट सरकारके पर-राष्ट्र-सचिव मोशिये मोलोटोवने कहा था कि फिनिश सरकारकी दलील असमर्थनीय है। और अब रूसकी लाल सेना फिनलैण्डपर आक्रमण करके अपनी मांगोंको स्वीकार करानेके लिए आगे ही नहीं बढ़ी है, आशङ्का इस बातकी है कि फिनलैण्ड-के भाग्यका निपटारा भी शीघ्र ही हो जायगा और पोलैण्डको आत्म-सात् कर लेनेके बाद अब फिनलैण्ड भी सोवियट-अन्तर्राष्ट्रीयताकी वेदी-पर निछावर किया जायगा।

राष्ट्र-सङ्घने रूसको सङ्घसे निकाल-कर फिनलैण्डकी सहायताका प्रस्ताव पास किया है; पर सच तो यह है कि फिनलैण्डकी जैसी स्थिति है, उसमें किसी राष्ट्रके लिए सहायता प्रदान करना और वह भी शीघ्रताके साथ, प्रायः असम्भव है। इसलिए इस बातकी आशङ्का है कि फिन-लैण्डको भी उसी दुर्भाग्यका शिकार होना पड़ेगा, जिसका कि पिछले दिनों यूरोपके दूसरे राष्ट्रोंको होना पड़ा है।



'मातृत्व'—हेलसिङ्कीके एक अस्पतालके सामने 'मातृत्व' की यह मूर्ति रखी गयी है। फिनलैण्डके कितने ही अस्पतालोंके सामने ऐसी प्रतिमाओंके रखनेका उद्देश्य स्वतः स्पष्ट है।

फिनलैण्डने वर्तमान युद्ध छिड़ने-के पहले स्पष्ट शब्दोंमें तटस्थ रहनेकी घोषणा की थी, इस सम्बन्धमें फिनलैण्डने काफी प्रयत्न किये थे। पर मो० लिटविनाफके वैदेशिक मन्त्रीके पदसे हटते ही रूसी नीतिका जैसा सञ्चालन होने लगा है, उसमें इस बातकी आशङ्का के लिए काफी स्थान है कि रूस भी अपनी पुरानी नीतिका परि-त्याग करके स्टैलिनके नेतृत्वमें ही विजयाभियानके लिए निकला है।



दुःखान्त नाटक

श्री गिरिजादत्त त्रिपाठी, एम० ए० व्याकरण-न्यायाचार्य

विश्व-साहित्यमें संस्कृत साहित्यका एक प्रमुख स्थान है। इस साहित्यकी सेवा करनेवाले सहृदयोंके सामने यह एक जटिल प्रश्न उपस्थित है कि इस साहित्यमें दुःखान्त नाटकोंका नितान्त अभाव क्यों है? मनुष्यकी महत्त्वा-कांक्षायें तथा मनोवृत्तियां बाह्यजगत्के सुखद परिणामोंमें परि-णत होनेपर उतारू रहती हैं। आनन्दकी चोटी पकड़ झूलकर आनन्द मनानेके लिए मनुष्य कभी-कभी इस प्रकार उछलता है कि असफलताके साथ-साथ उसे यन्त्रणाओंका भी मुख देखना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि उसे सफलता भी हाथ लगती है। नाटकमें ऐसी कोई बात नहीं दिखाई जाती, जिसकी उत्पत्ति केवल कल्पना-वृक्षसे होती है।

प्राणियोंको जीवनमें सुख और दुःख दोनोंका अनुभव करना पड़ता है। ऐसी परिस्थितिमें एकको गले लगाकर दूसरेको लातों ठुकरा देना कहां तक उचित है? ऐसी हालतमें दुःखान्त नाटककी इस प्रकार अवहेलना क्यों हुई? क्या संस्कृतके नाटककार दुःखान्त नाटक लिखना जानते ही नहीं थे या इस विषयको उन्होंने जान-बूझकर छोड़ दिया है? इस समृद्ध साहित्यके विपुल रङ्गमञ्चपर दुःखान्त नाटक अपने अभिनय क्यों नहीं दिखाते? इसका उत्तर देनेके पहले नाटकके सामान्य लक्ष्यकी ओर दृष्टि डालना आवश्यक है।

नाटककार नाटकोंके द्वारा उन्हीं परिस्थितियों तथा घटनाओंको जनताके सामने रखनेका प्रयत्न करता है, जिनसे

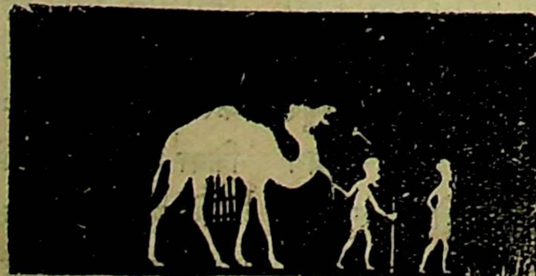
मनुष्यका प्रतिदिनका सम्बन्ध है तथा जिनके बीच गुजरना मानवका सार्वदिक कर्तव्य है। मनुष्य कभी सुखके शान्तिमय सरोवरमें अवगाहन करता है और सोचता है कि यह धारा-क्रम अनवरत गतिसे अनन्त काल तक चलता रहेगा। लेकिन दूसरे ही क्षणमें उसे दूसरी परिस्थितिके पञ्जेमें पड़कर कष्टोंका सामना करना पड़ता है। दुःख और सुखका पारस्परिक मिलन इस जगत्का नियम है। इन्हीं प्राकृतिक नियमोंको दिखाना नाटककार तथा उपन्यासकारका कर्तव्य होता है। यह तो हुआ नाटकोंका सामान्य उद्देश्य। अब विचारना यह है कि अंगरेजी नाटककारोंने दुःखान्त नाटकोंकी रचना क्यों की और संस्कृत नाटककारोंने क्यों नहीं की। इसमें किसीका मतभेद नहीं है कि मनुष्य सदा आनन्द ही चाहता है और दुःखके छींटे सहना भी उसे पसन्द नहीं है। जनता दुःखजगत्की थकावटको दूर करनेकी गरजसे ही नाटक-सिनेमा आदि देखने जाती है। यदि वहां जाकर भी दुःखपूर्ण घटनायें देखनेको मिलीं, जो मस्तिष्कमें वेदना ही उत्पन्न करती हैं, तो मनुष्य कदापि उसे देखना पसन्द नहीं कर सकता। इससे यह सिद्ध होता है कि दुःखान्त नाटकोंको देखनेसे दुःख नहीं होता है। इसका प्रमाण यही है कि दुःखान्त नाटक देखनेके लिए मानव-समाजकी प्रवृत्ति उतनी ही होती है, जितनी सुखान्तकी ओर। पाश्चात्य देशके इतिहास देखनेसे यह पता चलता है कि जिस समय महाकवि शेक्सपियर नाटक लिख रहे थे, उन दिनों सुखान्त नाटकोंको देखनेके लिए मनुष्योंकी प्रवृत्ति उतनी नहीं होती थी, जितनी दुःखान्तकी ओर। इसीलिए शेक्सपियरने अनेक दुःखान्त नाटक लिख डाले। यदि कोई यह आग्रह करे कि दुःखावसान नाटकोंको देखनेसे केवल दुःख ही होता है—सुख नहीं, तो उसके लिए दूसरा ही उत्तर होगा।

इस संसारके कृतघ्नतापूर्ण व्यवहार करनेवालोंको दुःख सहना पड़ता है, और कभी-कभी यह भी देखनेमें आता है कि इस जीवनमें अच्छे कर्म करनेवालोंकी भी बुरी हालत होती है। नाटककार दुःखान्त नाटक इसलिए लिखता है कि देखनेवालोंको यह मालूम हो जाय कि बुरे कर्म करनेसे बुरे फल होते हैं। दृष्टान्तके लिए महाकवि शेक्सपियरके मैकबेथ तथा किङ्गलियर नाटकोंको लीजिये। मैकबेथने स्वर्गीय अप्सराओंसे अपने राजा होनेकी भविष्यवाणी सुन ली थी और साथ ही साथ यह भी सुना था कि उसके बाद बैङ्कोके पुत्रोंके हाथमें राजगद्दी जायगी। लेकिन अपनी स्त्रीकी उत्तेजना-भरी बातें सुनकर उसकी अभिलाषा जाग उठी और उसने डन्कनकी हत्या कर राजगद्दी पानेका दृढ़ सङ्कल्प कर लिया। उसके साथ ही साथ स्वर्गीय वाणीपर पानी फेरकर बैङ्कोके लड़कोंको भी मारना चाहा। यद्यपि उसे अपने राजाकी हत्याके कार्यमें सफलता हाथ लगी और बैङ्कोकी भी मौत हो गयी, लेकिन उसका उत्तराधिकारी लड़का भाग निकला। इन सब बातोंका नतीजा यह हुआ कि उसे अपने परिवारके साथ-साथ अपने जीवनसे भी हाथ धोना पड़ा। यदि मैकबेथके कर्तव्योंके औचित्य तथा अनौचित्यपर विचार किया जाय, तो स्पष्ट यही कहना होगा कि उसका अन्तःकरण दूषित भावनाओंसे भर गया था, उसे पग-पगपर स्वार्थ-लिप्सा घेरे हुए थी। जिस डन्कनने उसका इतना सम्मान किया था, उसीकी हत्या करनेमें वह तनिक भी न हिचकिचाया। राजगद्दी पानेकी मनोकामना उसकी इतनी जबर्दस्त हो गयी थी कि उसे पानेके लिए वह बुरेसे बुरा कर्म कर सकता था, घृणितसे घृणित आचरण कर सकता था, और इसीलिए उसने भविष्यवाणी तकको मिटा देना चाहा। इस कथानकको पढ़कर मनुष्य यही परिणाम निकालेगा कि जैसी उसकी नीच अभिलाषा थी, वैसा ही उसे फल मिला।

किङ्गलियरने जिन दो बड़ी लड़कियोंको पितृभक्त समझकर सारे राज्यको दो हिस्सोंमें विभक्त कर दिया, वे ही उसके प्राणकी गाहक बन बैठीं, और जिस भोली-भाली स्पष्ट बोलनेवाली कारडेलियाको उसकी स्पष्टवादिताको गुनाह समझकर कुछ भी देनेसे इनकार कर दिया, वही उसके प्राणकी रक्षा करती है। जब वह चारों तरफ चक्कर काटकर आंधी-पानीका शिकार बनकर अशरण हो जाता है, कारडेलियासे रक्षित होनेपर भी अन्तमें जब वह दो विरुद्ध सेनाओंके बीचमें पड़ता है, तो उसे अपने जीवनकी पूर्णाहुति करनी पड़ती है। अन्तमें कारडेलियाकी भी मौत कवि कराता है। यह क्यों हुआ? क्या उसने कोई बुरा कर्म किया था? इन प्रश्नोंके उत्तरमें सिर्फ यही कहा जा सकता है कि संसारमें अच्छे कर्म करनेवाले भी मौतके घर जाते हैं। इसी प्रकार और दुःखान्त नाटकोंकी भी हालत है। अब

यहां विचारणीय विषय यह उपस्थित होता है कि इन भावोंका प्रदर्शन संस्कृत नाटकोंसे हो सकता है या नहीं ? यदि नहीं हो सकता है, तो नाटककारोंने जीव-जगत्के इस अन्यतर विषयको क्यों छोड़ दिया ? और यदि हो सकता है, तो कैसे ? इसका संक्षेपमें उत्तर यही हो सकता है कि उस भावका भी प्रदर्शन संस्कृत नाटकोंसे हो सकता है और हुआ भी है। यदि संसारकी दुःखमय प्रगतिको दिखाना ही दुःखान्त नाटकोंका उद्देश्य है, तब तो हम कह सकते हैं कि संस्कृत साहित्यमें अवश्य दुःखान्त नाटक हैं। जैसे, वेणीसंहार नाटकमें दुर्योधनके अनेक भाइयोंकी मौत हो जाती है और इसलिए उसे घोर कष्ट होता है। जब सुन्दरकके मुखसे अर्जुनकी तारीफ तथा कर्ण वृषसेनकी पराजय सुनता है, तो उसे अपार दुःख होता है। क्या इससे दुःखान्त नाटकसे होनेवाला फल नहीं होता है ? यदि होता है, तो क्या आवश्यकता है कि अन्तमें दुःख अवश्य ही दिखाया जाय ? हां, एक बात है, यदि दुःखान्तका अर्थ यह लगाया जाय कि नायक अथवा नायिकाकी मौत अवश्य हो और वह मौत किसी बहुत दिनकी बीमारीसे न होकर अकस्मात् हो, जैसा कि शेक्सपियरने इसे समझा था, तब तो कहा जा सकता है कि संस्कृतमें दुःखान्त नाटक नहीं हैं। लेकिन यह भी परिभाषा सर्वसम्मत नहीं है। किसी आलोचकके मतसे दुःखान्त नाटक वही हुआ, जिसमें सुखकी अपेक्षा दुःख अधिक दिखाया जाय। इसके अनुसार तो 'वेणी-संहार' बिल्कुल दुःखान्त हो गया। 'चण्डकौशिक' नाटकमें रोहिताश्वके मरनेपर स्मशान घाटपर शैव्याका करुण विलाप सभी सहृदयोंको व्याकुल कर देता है। कोई भी सहृदय मनुष्य नहीं है, जो शैव्याकी करुणावस्थाको देखकर रो न पड़े। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि हरिश्चन्द्र नाटकको देखकर सब लोग रो पड़ते हैं। हरिश्चन्द्रके दुःखको देखकर किसका गला नहीं रुंध जाता है ?

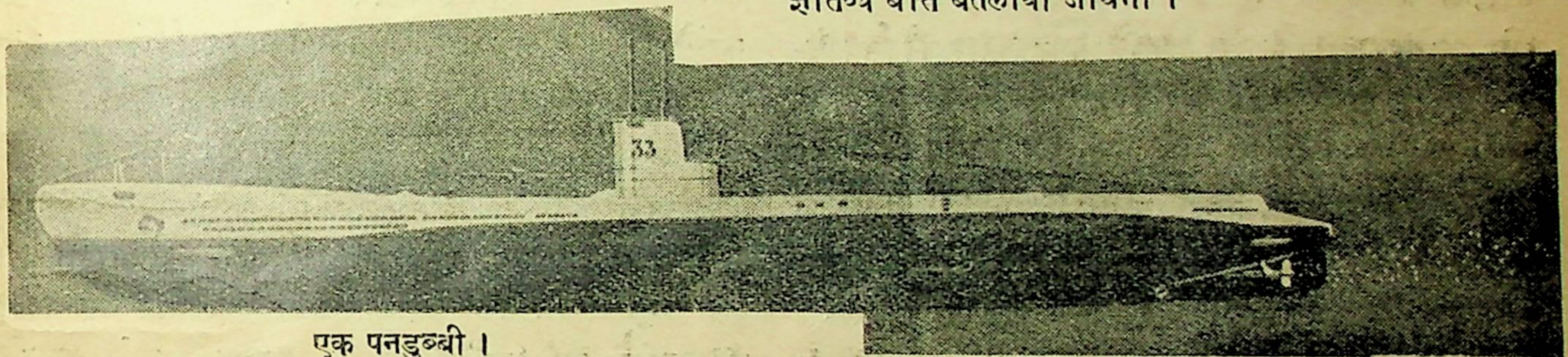
अरिस्टोटलका कहना है कि दुःखान्त नाटक कार्योंका अनुकरण है। अभिनेता रामचन्द्र या सीताका अनुकरण नहीं करते, अपितु उनके कार्योंका करते हैं। उनकी जीवनयात्रा किस प्रकार चलती रही, उन्होंने किस प्रकार दुःखोंका अनुभव किया, इन सब बातोंका प्रदर्शन नाटकों द्वारा होता है। दुःखावसान नाटक आनन्दप्रद होते हुए गम्भीर होता है। इसका कारण यह है कि आनन्दकी स्थिति कर्तव्यमें है और जीवनका अन्त आलस्यपूर्ण बैठे रहनेमें नहीं है, किन्तु कार्यमें है। महाकवि भवभूतिने उत्तर राम-चरित नाटकमें रामसे सीताका वियोग कराकर जिस करुण रसका प्रदर्शन किया है, वह संस्कृत साहित्यमें ही नहीं, किसी भी साहित्यमें बेजोड़ है। भवभूतिका ही करुण रस है, जिसके लिए कहा जाता है—'अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्'। सीताके वियोगमें भटकते हुए तथा 'हाहा देवि स्फुटति हृदयं स्रंसते देहबन्धः' विलाप करते हुए रामकी अवस्था देखकर जो दुःखका सागर हृदयस्थलीमें हिलोरें लेता है, वह वर्णनातीत है। 'भर्तृहरि निर्वेद' नाटकमें स्त्रीके मर जानेपर भर्तृहरिका रोना किसके हृदयको नहीं द्रवित कर देता है, तथा थोड़ी देरके बाद साधुके उपदेशसे संसारसे विमुख होकर उसकी अवहेलनापर किसके अन्तःकरणमें निर्वेदका भाव नहीं भर जाता है ? जब हम सभी जगह दुःखपूर्ण घटनायें देख रहे हैं, ऐसी हालतमें यह कहना कि दुःखान्तका मतलब इन नाटकोंसे नहीं सधता है, कहां तक ठीक है ? इन्हीं बातोंको देखकर संस्कृत नाटककारोंने अन्तमें दुःख नहीं दिखाया। समालोचक विलसन साहब भी इस मतसे सहमत हैं।



पनडुब्बी-युद्ध और उसकी भीषणतायें

श्री श्यामनारायण कपूर, बी० एस-सी०

वर्तमान युद्ध आरम्भ होनेके बादसे, पोलैण्डके बाहर युद्धकी भीषणताका सबसे अधिक परिचय पनडुब्बियोंकी कार्यवाहियोंसे मिला है। ब्रिटेनको अपनी नौ-सेनाकी शक्तिपर जो गर्व है, उसे हिटलरने इन पनडुब्बियों द्वारा ही चुनौती दी है। कुछ हद तक यह कहना भी असङ्गत न होगा कि पोलैण्डके बाहर युद्धकी अधिकांश कार्यवाहियां अभी तक पनडुब्बियों द्वारा और पनडुब्बियोंपर होनेवाले आक्रमणों तक ही सीमित हैं। जर्मन पनडुब्बियां इंगलैण्डके 'करेजस' और 'रायल ओक' नामक दो जङ्गी जहाजोंको डुबाकर ब्रिटिश नौ-सेनाके हजारसे अधिक नौ-सैनिकोंकी हत्या

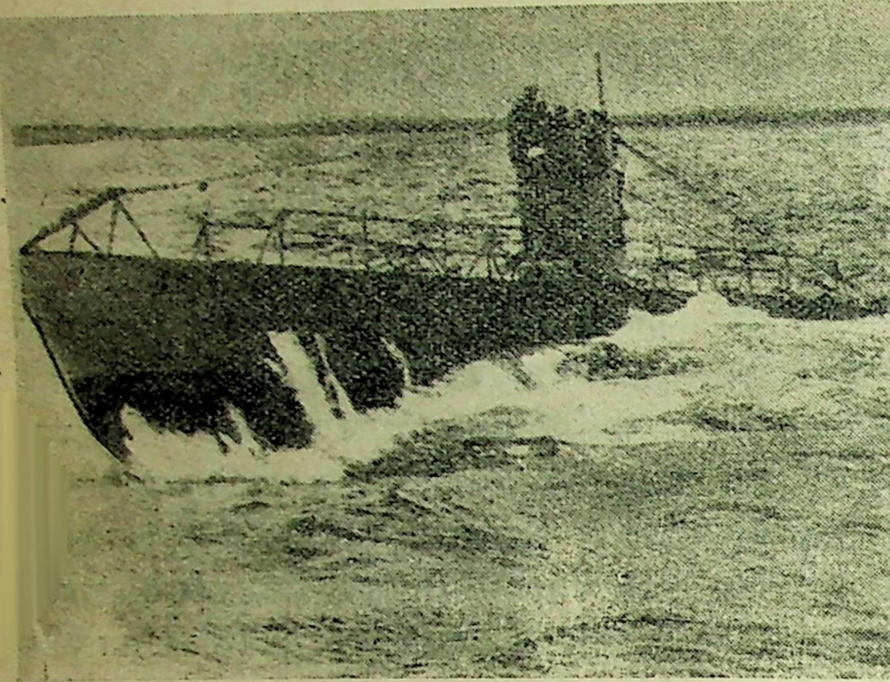


एक पनडुब्बी।

कर चुकी हैं। अक्टूबरकी समाप्ति तक जर्मन पनडुब्बियों द्वारा लगभग ९० ब्रिटिश जहाज डुबाये जा चुके थे। इन जहाजोंपर यात्रा करनेवाले सैकड़ों साधारण नागरिक और दूसरे सरकारी अफसर अपने प्राण गंवा चुके हैं। और यह क्रम अभी तक बदस्तूर जारी है। नवम्बर मासके शुरूमें भी जर्मन पनडुब्बियों द्वारा इंगलैण्डके कई छोटे-बड़े जहाज डुबाये गये। अकेले तीसरे सप्ताहमें १०-१२ जहाज डूबे हैं। इंगलैण्ड और फ्रान्सके जहाजोंके अतिरिक्त नारवे, स्वीडन, डेनमार्क, हालैण्ड, फिनलैण्ड और यूनान प्रभृति तटस्थ देशोंके जहाज भी जर्मन पनडुब्बियोंके आक्रमणसे नहीं बच सके हैं। नवम्बरके दूसरे सप्ताह तक इन देशोंके सब मिलाकर ३० से अधिक जहाज काम आ चुके हैं। नारवेका सबसे अधिक नुकसान हुआ है। उसके २०००० टन वजनके ९ जहाज खतम किये जा चुके हैं। दूसरे देशोंमें यूनानके ४, डेनमार्कके ३, स्वीडनके ७, फिनलैण्डके ९, बेलजियमके २ और हालैण्डके २ जहाज नष्ट किये गये हैं। जर्मन पनडुब्बियां, दूसरे देशोंको इतना जबरदस्त नुकसान पहुंचानेके बाद, स्वयं भी बिलकुल अछूती नहीं बच सकी हैं। इन पनडुब्बियोंपर ब्रिटेन और फ्रान्सके द्वारा जो आक्रमण किये गये हैं, उनके फलस्वरूप जर्मनीके सैकड़ों नौ-सैनिक अपने प्राणोंसे हाथ धो चुके और गिरफ्तार किये जा चुके हैं। परन्तु इन पनडुब्बियोंने अपने शत्रुओंको जो क्षति पहुंचायी है, उसकी तुलनामें उनका स्वयं जो कुछ नुकसान हुआ है, वह नगण्य-सा है। प्रस्तुत लेखमें इन्हीं पनडुब्बियोंके बारेमें कुछ ज्ञातव्य बातें बतलायी जायंगी।

पनडुब्बी, सबमेरीन या 'यू बोट' समुद्रके ऊपर चलनेके साथ ही जरूरत पड़नेपर पानीके भीतर भी आसानीसे यात्रा कर सकती है। बहुत-सी पनडुब्बियां लगातार ६०-७० घण्टे तक पानीके अन्दर रह सकती हैं। ये पनडुब्बियां कई प्रकारकी होती हैं। कुछ तो बराबर पानीके भीतर ही यात्रा करती हैं। इन्हें समुद्रके अन्दर चलनेवाले तेज छोटे जङ्गी जहाज कहा जा सकता है। कुछ पनडुब्बियां पानीके भीतर विध्वंसक जहाजोंका काम करती हैं और बड़ेसे बड़े जङ्गी जहाजको नष्ट-भ्रष्ट करके डुबा देनेकी क्षमता रखती हैं। विगत महायुद्धमें भी जर्मन पनडुब्बियोंने इंगलैण्डके ९ बड़े जङ्गी जहाज और ९ क्रूजर डुबा दिये थे और दूसरे ब्रिटिश जहाजोंको अपरिमित क्षति पहुंचायी थी।

पनडुब्बियोंकी मशीनें बहुत ही जटिल होती हैं। पनडुब्बीमें उसे पानीमें डुबाने, पानीके भीतर-भीतर चलने, ऊपर आने



पनडुब्बीकी ध्वंसकारी लीलाके निवारणार्थ जहाजपर सैनिक काम कर रहे हैं।

और समुद्रके ऊपर चलने तथा पानीके भीतर ही से समुद्रपर चलनेवाले जहाजोंपर आक्रमण करनेके लिए अलग अलग कलोंका प्रबन्ध होता है। प्रत्येक पनडुब्बीमें, पानीके भीतर चलते-चलते पानीके बाहरका हाल जाननेके लिए पेरिसकोप नामक एक विशेष यन्त्र रहता है। पेरिसकोपमें एक लम्बी-सी नली द्वारा दर्पण और लैन्सकी मददसे क्षितिजके दृश्य देखे जा सकते हैं। पनडुब्बियां ६०-७० घण्टे तक लगातार पानीके भीतर रहकर यात्रा कर सकती हैं। इसके लिए उन्हें दबी हुई हवाकी जरूरत पड़ती है। पानीके बाहर ये आम तौरपर १७ से २० नाट प्रति घण्टेकी रफ्तारसे और पानीके अन्दर १०-१२ नाटकी रफ्तारसे चलती हैं। (एक नाट ६०८० फीटके बराबर होता है)।

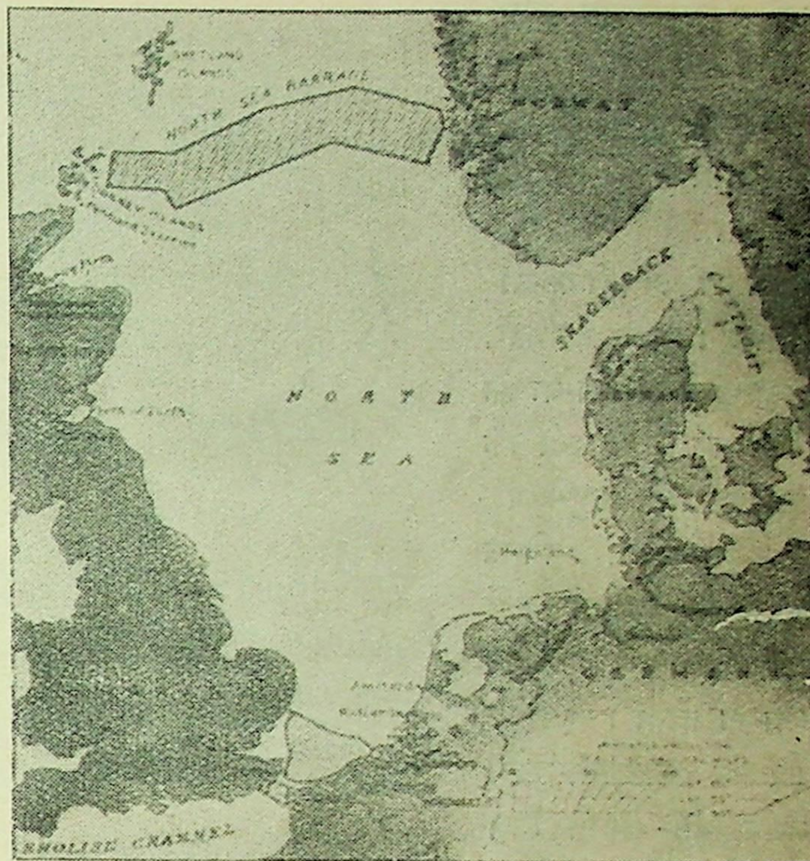
पनडुब्बियोंका आविष्कार १९ वीं शताब्दीके अन्तमें जान पी० होलैण्ड नामक एक आयरिश युवकने किया था। यह न तो अधिक पढ़ा-लिखा ही था और न धनवान ही। दूसरे आविष्कारकोंकी तरह, उसकी पनडुब्बी बनानेकी योजनाका हाल सुनकर उसका भी खूब मजाक उड़ाया गया था। उसके पिता तकने उसे पागल समझा था। अपने देशमें जब उसके आविष्कारको समझने और उसे काममें लानेमें मदद देनेवाला कोई व्यक्ति न मिल सका, तो वह आयरलैण्ड छोड़कर अमेरिका चला गया। वहांपर भी शुरूमें वह विशेष सहायता प्राप्त करनेमें समर्थ न हो सका। उसने जो दो-एक पनडुब्बियां तैयार भी कीं, वे पूर्णतया सफल न हो सकीं। परन्तु वह अपनी असफलताओंसे निराश न हुआ। कुछ दिनोंके बाद उसे एक सुयोग मिल गया। आयरलैण्डके बहुत-से लोग उन दिनों अमेरिकामें रहते थे। वे लोग ब्रिटिश सरकारके विद्रोही थे और उसे नेस्त नाबूद करनेपर तुले हुए थे। उन दिनों भी अंगरेजोंका जहाजी बेड़ा बड़ा ताकतवर समझा जाता था। अस्तु, उनकी सरकारको क्षति पहुंचानेका सबसे अच्छा साधन उनके जहाजी बेड़ेको नष्ट करना था। होलैण्डकी इस दलके सदस्योंसे भेंट हो गयी और वे लोग होलैण्डके आविष्कारमें उसकी मदद करनेके लिए तैयार हो गये। दलके पास जो दो-तीन लाख रुपये जमा थे, वे सब होलैण्डको सौंप दिये गये। होलैण्डने इस सहायताका समुचित लाभ उठाया और कुछ पनडुब्बियां बनाने और उन्हें पानीके भीतर चलानेमें सफलता भी प्राप्त की। बादमें अमेरिकन सरकारसे भी उसे समुचित आर्थिक सहायता प्राप्त हुई और वह अपनी योजनाको पूर्ण रूपसे काममें लानेमें समर्थ हुआ। १८९८ ई० में उसका पहला पनडुब्बी जहाज बनकर तैयार हो गया। वह ५४ फीट लम्बा और ११॥ फीट चौड़ा था। उसका वजन ७० टन था और वह ५० घोड़ेकी ताकतके मोटरसे चलाया जाता था। उसमें दुश्मनोंके जहाजोंको बरबाद करनेके लिए 'टारपीडो' चलानेकी कल भी लगी थी। थोड़े दिन बाद यूरोपके वैज्ञानिकोंने भी पनडुब्बियां तैयार करनेमें सफलता प्राप्त की और विभिन्न राष्ट्रोंने अपनी नौ-सेनाओंको शक्तिशाली बनानेके लिए पनडुब्बियां तैयार कराना शुरू कर दिया। जर्मनी इस कार्यमें सबसे आगे रहा। जर्मन पनडुब्बियां बहुत ही मजबूत और उपयोगी साबित हुईं। संसारका कोई भी राष्ट्र इस मामलेमें जर्मनीका मुकाबिला न कर सका।

पिछले महायुद्धमें जर्मन पनडुब्बियोंने ब्रिटेनके नाकमें दम कर दिया था। तिजारती जहाजोंको इन पनडुब्बियोंने इतनी

बुरी तरहसे नष्ट-भ्रष्ट किया था और उनपर इतनी बेतहाशा बमबाज़ी की थी कि इंगलैण्ड तक भोजनकी सामग्री पहुंचना भी कठिन हो गया था पर अन्तिम दिनोंमें ब्रिटेन और अमेरिकाने सुरङ्गें बिछाकर जर्मनके पनडुब्बियोंको बेकार कर दिया था। पनडुब्बीके आविष्कारक होलैण्डकी, महायुद्ध आरम्भ होनेके कुछ ही समय पहले मृत्यु हो चुकी थी। उसे अपने आविष्कारके इस भीषण एवं भयावह परिणामको देखनेका मौका न मिल सका। पनडुब्बी, जिसका सूत्रपात इंगलैण्डको क्षति पहुंचाने ही के उद्देश्यसे किया गया था, इंगलैण्डको इतना अधिक नुकसान पहुंचा सकेगी—इसका शायद स्वयं होलैण्डको भी खयाल न था।

महायुद्धके पनडुब्बी-युद्धसे इंगलैण्डके विशेषज्ञोंने बहुत-सी नयी बातें सीखीं और यह आशा प्रकट की जाने लगी कि यदि फिर कभी युद्ध होनेका मौका आया, तो इंगलैण्डको पनडुब्बियोंसे इतनी अधिक हानि न पहुंचायी जा सकेगी। इस बीचमें इंगलैण्डके विशेषज्ञोंने अपनी पनडुब्बियोंमें आवश्यक सुधार करनेके भी भगीरथ प्रयत्न किये, पर वे कामयाब न हो सके। ब्रिटेनने कई पनडुब्बियां तैयार कीं, पर वे जर्मन पनडुब्बियों-जैसी सफलता न पा सकीं। ब्रिटेनकी बहुत-सी पनडुब्बियां दुर्घटनाओंमें फंसकर नष्ट-भ्रष्ट हो गयीं। १९३१ में इंगलैण्डकी सुप्रसिद्ध पनडुब्बी 'एम० २', जिसपर उसे तैयार करनेवाले इञ्जीनियर लोगोंको बड़ा भरोसा था, नष्ट हो गयी। इससे अंगरेजोंको बड़ी निराशा हुई और उन लोगोंने पनडुब्बियोंको युद्धमें काममें न लानेका आन्दोलन शुरू किया। पर इस आन्दोलनमें उन्हें कोई सफलता न मिल सकी। जर्मनीने इस आन्दोलनकी तरफ तनिक भी ध्यान न दिया। यूरोपमें विभिन्न कान्फरेन्सोंमें पनडुब्बी-युद्ध समाप्त करनेके बारेमें अनेक प्रस्ताव पास हुए, पर उनसे कोई नतीजा न निकल सका। युद्ध आरम्भ होनेसे कुछ ही पहले इंगलैण्डकी एक बहुत-बड़ी पनडुब्बी 'थेटिस' बनकर तैयार हुई थी। परन्तु वह भी ७०-८० आदमियोंको लेकर समुद्रमें समा गयी।

जर्मन शासनकी बागडोर नाजियोंके हाथमें आते ही, करोड़ों-अरबों रुपया जर्मन सेनाको सुसज्जित और सुसङ्गठित करने तथा युद्धके नवीनतम अस्त्र-शस्त्रोंकी तैयारीमें खर्च किया जाने लगा। स्थल और हवाई सेनाको सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनानेके साथ ही हिटलरने नौ-सेनाको मजबूत बनानेकी भी

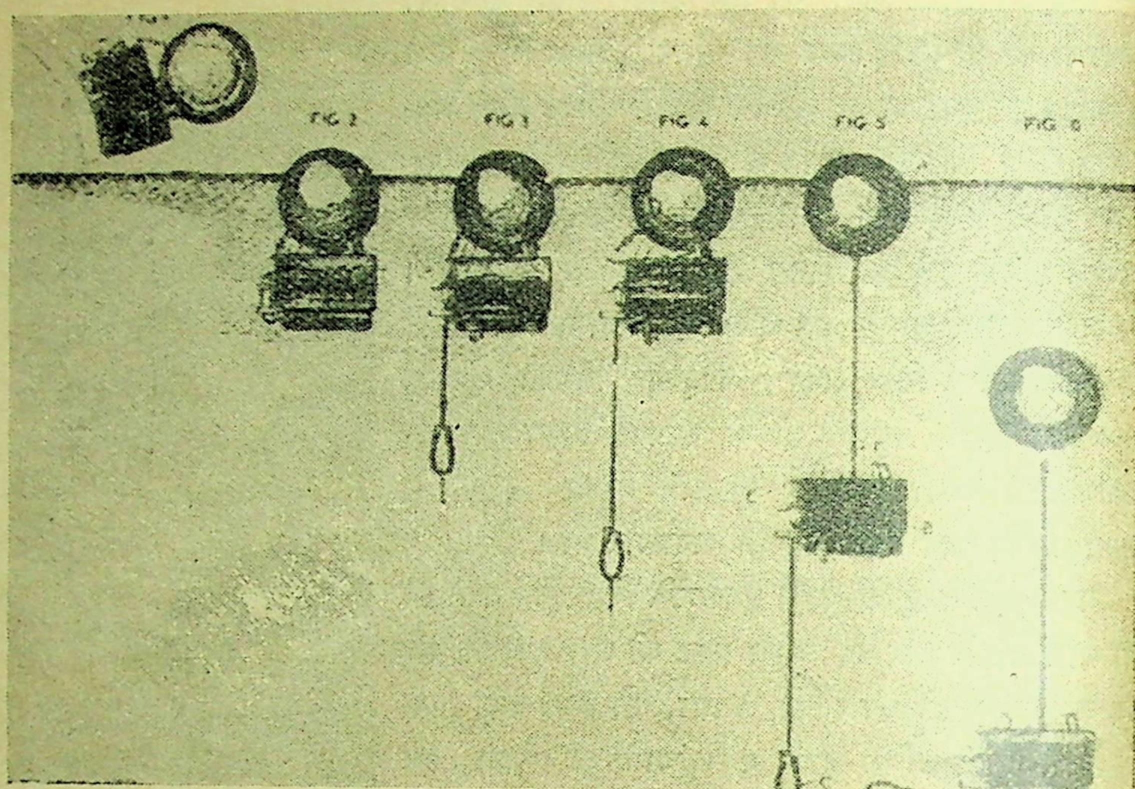


पिछले महायुद्धमें ग्रेट ब्रिटेन और अमेरिकाने इस प्रकार सुरङ्गें बिछाकर जर्मनीकी पनडुब्बियोंको बेकार कर दिया था।

पूरी कोशिश की। इंगलैण्डके सुप्रसिद्ध जङ्गी जहाज 'नेलसन' या 'रोडनी' जैसे जङ्गी जहाज तैयार करना आर्थिक दृष्टिसे जर्मनीके काबूके बाहर था। ऐसे प्रत्येक जङ्गी जहाजकी तैयारीमें ७०-८० लाख पौण्डकी लागत लगती है। और इतनी ही लागतमें २५-३० बढ़िया पनडुब्बियां बनकर तैयार हो जाती हैं। अस्तु, जर्मनीने पनडुब्बियोंकी तैयारीका विशेष प्रबन्ध किया। युद्ध आरम्भ होनेके पहले उसके पास ३५ से कुछ अधिक बड़ी-बड़ी और लगभग २२५ छोटी ५०० टनवाली पनडुब्बियां थीं। बड़ी पनडुब्बियां ३ और ६ इञ्चवाली तोपों, मशीनगन और टारपीडोसे सुसज्जित बतलायी जाती हैं। छोटी पनडुब्बियोंपर केवल मशीनगन और टारपीडोका प्रबन्ध होता है। बड़ी पनडुब्बियां ८००० मील तक धावा मार सकती हैं। छोटी पनडुब्बियोंका कार्य-क्षेत्र केवल उत्तरी सागर और बाल्टिक सागर ही तक सीमित है।

युद्ध आरम्भ होनेके थोड़े ही दिन बादसे अंगरेजोंको इस बातके चिह्न मिलने लगे कि जर्मन पनडुब्बियोंका जाल केवल उत्तरी सागर और बाल्टिक सागर ही तक सीमित नहीं है, वे

दक्षिण अटलाण्टिक महासागर, कैस्पियन सागर तक पहुंच चुकी हैं और भूमध्यसागर और हिन्द महासागरमें भी उनके पहुंच जानेकी पूरी सम्भावना है। इतना ही नहीं, उन्हें शीघ्र ही इस बातके भी लक्षण मिलने लगे कि इस बार जर्मन पनडुब्बियोंका कार्य-क्षेत्र विगत महायुद्धकी अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत और व्यापक होगा। १९१४-१९ के पनडुब्बी-युद्धमें जर्मन नौ-सेनाने जिस कार्यप्रणालीका अनुसरण किया था, उससे वर्तमान कार्यपद्धति बिलकुल भिन्न पायी जा रही है। विगत महायुद्धमें जर्मन पनडुब्बी-सञ्चालकों द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय नियमोल्लङ्घनके बहुत कम उदाहरण मिलते हैं; परन्तु इस बार नाजी सञ्चालक अन्तर्राष्ट्रीय ही नहीं, मानव-समाजके साधारण नैतिक नियमोंकी अवज्ञा करनेमें भी आगा-पीछा नहीं कर रहे हैं।



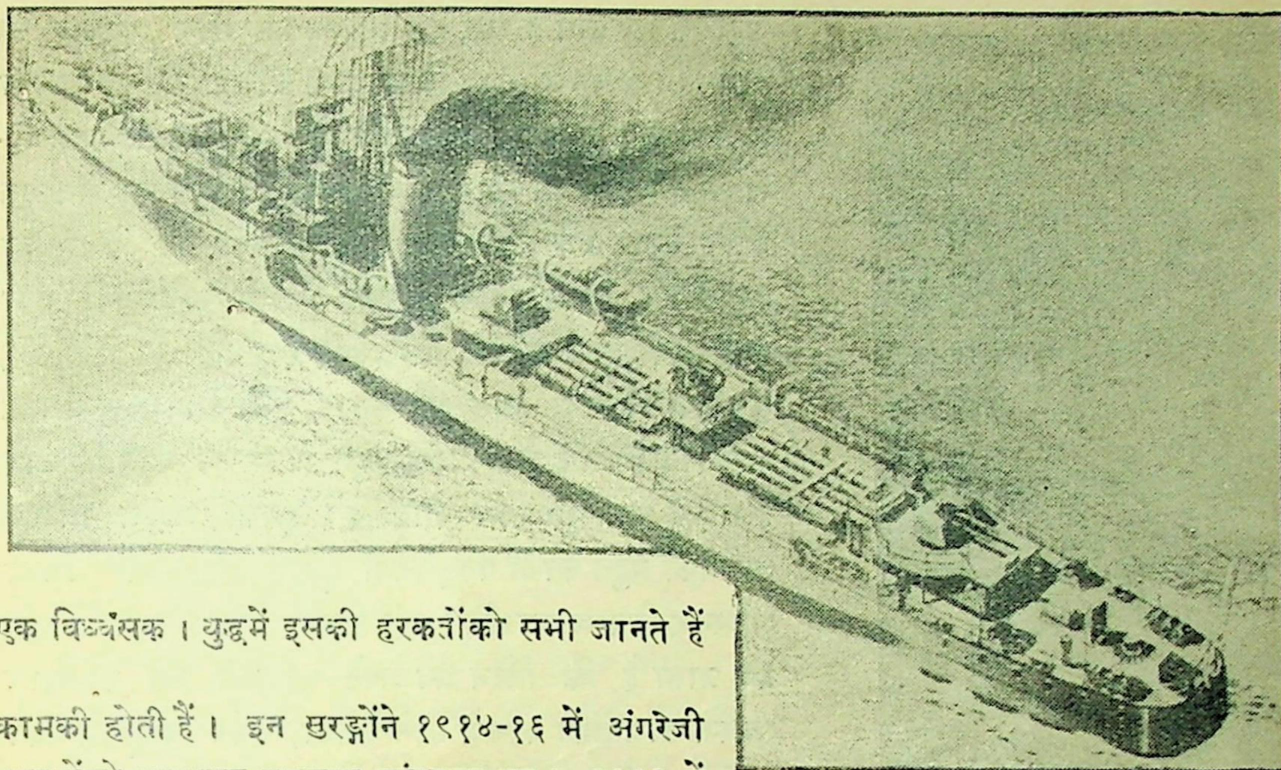
सुरङ्गें किस तरह बिछायी जाती हैं। पहलीसे लेकर ६ शक्लोंमें दिखाया गया है कि चाहे जितने नीचे तक सुरङ्गें बिछायी जा सकती हैं।

इन सब बातोंके साथ ही जर्मन पनडुब्बियोंकी रचना और कार्यप्रणालीमें भी बहुत-से सुधार हो गये हैं। टारपीडो (पानीके भीतर काम करनेवाले बम-गोले) चलानेका पहलेसे कहीं अच्छा प्रबन्ध हो गया है। पेरिसकोपकी रचनामें भी बहुत-से सुधार हुए हैं। पनडुब्बीको अधिक तेजीसे यात्रा करने, ज्यादा गहराई तक पैठ जाने और अधिक समय तक पानीमें डूबे रहनेकी क्षमता प्रदान करके पहलेसे कहीं अधिक भीषण और घातक बना दिया गया है। जर्मन व्यापारी जहाजोंको जङ्गी जहाजों-जैसे रूप देकर इन पनडुब्बियोंका कार्य और भी अधिक सुगम कर दिया गया है। इन व्यापारी जङ्गी जहाजोंपर छोटे-छोटे हवाई जहाज लादनेका भी प्रबन्ध है। ये हवाई जहाज खतरेके मौकेपर पनडुब्बियोंको आवश्यक सहायता पहुंचाते हैं।

पनडुब्बियां युद्धमें आम तौरपर कई प्रकारसे काममें लायी जाती हैं। शत्रुके जहाजोंको नष्ट करनेके लिए पनडुब्बी तोपके गोले, टारपीडो और समुद्री सुरङ्ग (mines) काममें लाती है। तोपके गोले ५०-६० पौण्ड भारी होते हैं और टारपीडोका वजन करीब १ टन होता है। पनडुब्बी शत्रुके जहाजोंपर आक्रमण करनेके लिए तोपके गोले सुगमतापूर्वक छोड़ सकती है, परन्तु ऐसा करनेके लिए उसे समुद्रके ऊपर आना पड़ता है। अस्तु, जब पनडुब्बियोंको समुद्रके भीतर-भीतर चलकर किसी जहाजपर आक्रमण करना होता है, टारपीडो काममें लाये जाते हैं और समुद्रके ऊपर आकर तोपके गोले।

कोई-कोई टारपीडो बहुत बड़े होते हैं और उन्हें एक छोटी-मोटी पनडुब्बी कहा जा सकता है। इनमें स्वतः चलनेवाले यन्त्र लगे रहते हैं और १०००-५०० पौण्ड तक बारूद भरी होती है। बड़े टारपीडोमें ६ से लेकर १२ तक छोटे टारपीडो होते हैं। इनमें अपने अलग इञ्जन होते हैं। पनडुब्बियोंसे इन्हें निर्दिष्ट दिशाकी ओर चालित करके समुद्रके भीतर छोड़ दिया जाता है।

कुछ पनडुब्बियां खास तौरपर समुद्रमें सुरङ्गें लगानेके



एक विध्वंसक। युद्धमें इसकी हरकतोंको सभी जानते हैं

जहाजोंके आने-जानेका पता लग जाता है। कहा जाता है कि पिछले युद्धमें जर्मनी अपना रङ्ग इन्हीं पनडुब्बियोंकी मददसे अमेरिका तक पहुंचाया करता था।

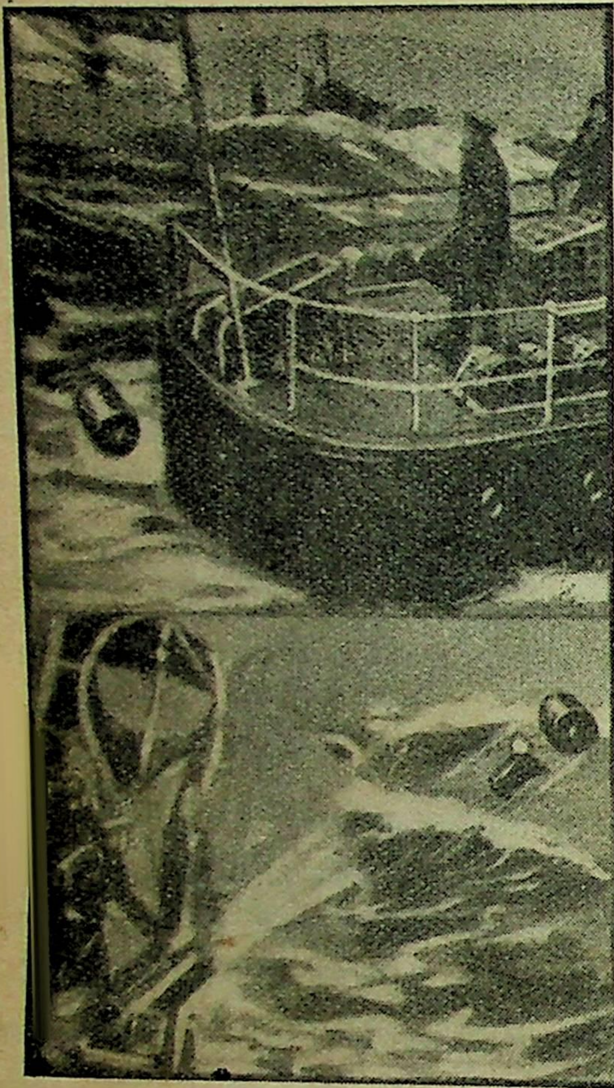
वास्तवमें इधर हालमें जर्मन पनडुब्बियों और उनके द्वारा समुद्रमें डाली गयी विस्फोटक सुरङ्गोंने ब्रिटिश

कामकी होती हैं। इन सुरङ्गोंने १९१४-१६ में अंगरेजी जहाजोंको जबरदस्त नुकसान पहुंचाया था। १९१६ में अंगरेजी क्रूजर जहाज हैम्पशायर और लार्ड किचनर इन्हीं सुरङ्गोंके कारण खतम हो गये थे। इस लड़ाईमें भी सात-आठ दिनके अन्दर सुरङ्गोंसे टकराकर इंगलैण्ड, फ्रान्स और कुछ तटस्थ राष्ट्रोंके १९-२० जहाज नष्ट हो चुके हैं। इनमेंसे एक अंगरेजी जहाज सुरङ्गोंको हटानेके लिए खास तौरपर तैयार किया गया था और एक भारी-भरकम विध्वंसक जहाज था। ये सुरङ्गें एक प्रकारके बमके गोले हैं, जो विस्फोटक पदार्थोंसे भरे होते हैं और पानीके अन्दर भी अपना काम करनेकी क्षमता रखते हैं। अभी हालमें जर्मनीकी एक और नयी विस्फोटक सुरङ्गका हाल पढ़नेमें आया है। इस सुरङ्गमें विस्फोटक पदार्थोंके साथ ही साथ चुम्बकीय गुणोंका भी समावेश किया गया है और अपने इस अन्तिम गुण ही के कारण ये 'चुम्बकीय सुरङ्ग' कहलाती भी हैं। इधर १९ नवम्बर-के बादसे इंगलैण्डके निकटवर्ती समुद्रमें कितने ही जहाजोंको डुबाने और नष्ट-भ्रष्ट करनेकी अधिकांश कार्यवाही इन्हीं सुरङ्गों द्वारा की गयी समझी जाती है।

उपर्युक्त भीषण और अमानुषिक कार्यवाहियोंके अतिरिक्त इन पनडुब्बियोंसे जर्मन लोग जासूसीका भी काम लेते हैं। ये पनडुब्बियां रातमें समुद्रके ऊपर आकर जांच-परताल और गश्तका काम करती हैं। पानीके भीतर पड़े-पड़े भी, समुद्रमें बहुत ज्यादा गहराईपर होनेपर भी, उन्हें शत्रुके

जहाजों और ब्रिटेन तक पहुंचनेवाले तटस्थ राष्ट्रोंके जहाजोंकी जो दुर्गति बनायी है और उनके साथ जो क्रूरतापूर्ण और अमानुषिक व्यवहार किया है, उससे ब्रिटिश अधिकारीवर्ग तिलमिला उठे हैं और उन्होंने जर्मनीके इस भीषण एवं अनैतिक आक्रमणका मुंहतोड़ उत्तर देनेका सङ्कल्प किया है। सर जान साइमनने २३ नवम्बरको अपनी एक ब्राडकास्ट स्पीचमें बतलाया था कि इंगलैण्डके वैज्ञानिकोंका समस्त ज्ञान, बुद्धि-चातुर्य और कौशल इस नवीन खतरेको नष्ट करनेमें लगा दिया गया है और इस बातकी आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि उन्हें अपने प्रयत्नोंमें पूर्ण सफलता मिलेगी।

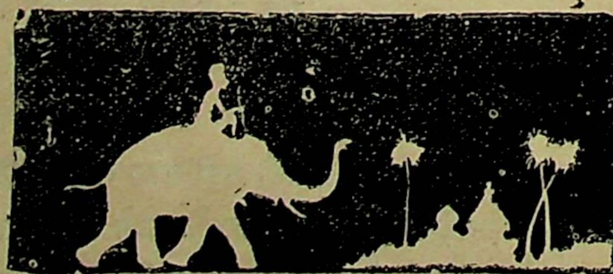
वास्तवमें ब्रिटेन और फ्रान्सने युद्ध आरम्भ होते ही इन जर्मन पनडुब्बियों और पनडुब्बियों द्वारा लगायी गयी समुद्री सुरङ्गोंको नष्ट करनेके प्रयत्न शुरू कर दिये थे। पनडुब्बी नष्ट करनेके लिए इस बार हवाई जहाजोंसे भी समुचित सहायता ली गयी है। पनडुब्बियोंका ठीक-ठीक पता लगानेके लिए ब्रिटिश विध्वंसक और दूसरे जङ्गी जहाजोंपर हाइड्रोफोन नामका एक विशेष यन्त्र लगाया गया है, इसकी मददसे पनडुब्बीकी स्थितिका सही-सही हाल मालूम हो जाता है। एक बार पता लग जानेपर फिर उसे नष्ट करना आसान हो जाता है। पनडुब्बी नष्ट करनेके लिए कुछ मोटरबोट खास तौरपर तैयार किये गये



पानीके भीतर चलनेवाले बम-गोले ।

हैं। ये मोटरबोट बहुत तेजीसे सफर करते हैं और पनडुब्बियों-को डुबानेकी विशेष क्षमता रखते हैं। पनडुब्बी नष्ट करनेके लिए ब्रिटेन और फ्रान्सने पानीके भीतर काम करनेवाले बम खास तौरपर तैयार किये हैं। हाइड्रोफोनकी सहायतासे पनडुब्बीकी स्थितिका पता लगते ही विध्वंसक जहाज तत्काल ही वहां पहुंच जाता है और कुछ भारी-भरकम बमके गोले समुद्रमें छोड़ देता है। ये बम-गोले अत्यन्त भीषण विस्फोटक पदार्थसे भरे होते हैं और एक निश्चित गहराईपर पहुंचकर फट जाते हैं। ये बमके गोले, जिन्हें 'डेप्थ चार्जेज' भी कहा जाता है, विध्वंसक जहाजों, मोटरबोटों और समुद्री हवाई जहाजों-से समुद्रमें छोड़े जा सकते हैं और इनकी मददसे एक विस्तृत क्षेत्रके अन्दर काम करनेवाली पनडुब्बियोंको नष्ट किया जा सकता है। इन उपायोंके अतिरिक्त ब्रिटेनने पनडुब्बियों तथा पनडुब्बियों द्वारा लगायी जानेवाली सुरङ्गोंको पकड़नेके लिए कुछ नयी किस्मके जाल भी तैयार किये हैं। पनडुब्बी नष्ट करनेवाले ब्रिटेनके कुछ साधन बहुत ही भीषण बतलाये जाते हैं। इन्हें बहुत गुप्त रखा जाता है। इनकी मददसे ब्रिटेनने जर्मनीकी बहुत काफी पनडुब्बियां डुबायी भी हैं और उनका सविस्तर विवरण प्रकाशित नहीं किया जाता। कहा तो यहां तक जाता है कि ब्रिटेन जब अपने पनडुब्बी नष्ट करनेवाले समस्त साधनोंको काममें लाने लगेगा, जर्मन पनडुब्बियोंका कहीं पता भी न लग सकेगा।

आगे क्या होगा, यह तो भविष्यके गर्भमें है। इस समय तो जर्मनीने अपनी पनडुब्बियों और समुद्री सुरङ्गोंसे संसारकी सर्वश्रेष्ठ एवं सबसे अधिक शक्तिशाली नौ-सेनाको चुनौती दे रखी है और इधर १९ नवम्बरके बादसे तो दो-चार जहाजोंको इंगलैण्डके पूर्वी समुद्र-तटके आसपास डुबा देना साधारण-सी बात हो गयी है। इधर इंगलैण्ड, फ्रान्स और कुछ तटस्थ देशोंके व्यापारी तथा सवारी जहाजोंको उसने जो जबरदस्त क्षति पहुंचायी है, उससे इंगलैण्डके बड़े-बड़े धैर्यवान राजनीतिज्ञ भी तिलमिला उठे हैं। कुछ घटनायें तो ऐसी घटित हुई हैं, जिनसे अन्तर्राष्ट्रीय जगत्‌में कुछ महत्त्वपूर्ण बातें होनेकी पूरी सम्भावना है। जापान, इटली, हालैण्ड, नारवे, स्वीडन, बेलजियम, यूनान प्रभृति देश भी इस आक्रमणसे बच नहीं सके हैं और बहुत सम्भव है कि उनमेंसे कुछ देश इस युद्धमें कोई पक्ष ग्रहण कर लें।



शरद

श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा

"ले, जा, ये चार बीड़े पान उन दोनोंको भी दे आ, कबसे उस किनारे बैठे हैं बेचारे।"—हंसती हुई लवङ्गने मुक्ताको सङ्केतसे जिधर दोनों युवक बैठे थे, बताते हुए, उसके हाथमें बीड़े थमाकर कहा।

"तुम भी चलो लवङ्ग!" शर्म-भरी मुस्कराहटसे मुक्ताने उसका अञ्चल खींचते हुए कहा।

"तो तू ही क्यों नहीं दे आती!"—लवङ्गके स्वरमें मधुर आदेशकी हास-सी ध्वनि थी।

"मैं अकेले नहीं लवङ्ग।" —ठुनुकते हुए मुक्ता बोली।

"मैं कहती हूं, दे आ, तू कोई पका आम तो है नहीं कि वह तुझे मुंहमें रख लेंगे? जा!"—उसे मीठी फटकार बता आगे ढकेलते हुए लवङ्गने बात पूरी की।

गोल-मटोल गेहुंए रङ्गकी बड़ी-बड़ी आंखोंवाली सप्तदश वर्षीया मुक्ता धीरे-धीरे ठिठकती, बलखाती जा पहुंची उन दोनों युवकोंके पास। एक अदासे उनके हाथमें गिलोरियां देती हुई उसने सिर झुकाकर नमस्ते किया। यह सभ्यतावश अनिवार्य था।

उनमेंसे एक, जो कदमें लम्बा, आयुमें दूसरेसे कुछ बड़ा मालूम पड़ता था, मुस्कराकर बोला—"शुक्रिया!" और दूसरा—जो कुछ भावोंमें डूबा-सा जान पड़ा—चुप जाने कैसा-सा बैठा रह गया।

मुक्ता मन्दगतिसे लौट आयी। लवङ्ग बरामदेमें खम्भेकी आड़ खड़ी मुस्करा रही थी। थोड़ी देर बाद ही दोनों युवक उठकर चल दिये। बाहर आते ही सुधीरने, जो शरदसे बड़ा था, उसके कन्धोंपर हाथ रखते हुए मुस्कराकर पूछा—"कुछ देखा?"

"कुछ न पूछ यार।"—शरदने अपनी अधखुली पलकोंके बीचसे देखकर जैसे उत्तर दिया—हृदयके रससे भीना-सा।

"क्या जादू चल गया?" —रहस्यपूर्ण हंसी हंसा सुधीर।

"लात खायेगा क्या?"—एक रस-भरी मुस्कराहटसे होंठोंको चाबकर शरदने कहा।

इतनेमें सामनेसे एक तांगा आता दिखाई पड़ा, सुधीरने उसे पुकार लिया और दोनों उसपर सवार हो लिये।

बातोंका क्रम चल रहा था। सुधीर कह रहा था—"यह व्यर्थके सपने पालकर क्या पाओगे शरद, जीवनमें कितनी तसवीरें आती हैं, मिट जाती हैं। मिलता क्या है? एक वेदनामयी अनुभूति! जो है, उसीमें अपनेको रमा लो। और फिर जिन चञ्चल तितलियोंको उड़ते-फिरते देख तुम मुग्ध होते हो, उन्हींके पङ्खोंसे बंधकर रहना तो सुखकर भी नहीं हो सकता?"

"सुधीर—गम्भीर स्वरमें शरदने कहा—सब समझता हूं, तुम्हारा तर्क ठीक है। पर न जाने क्यों हृदय उसे चाहने लगा है। कोई आकर्षण उस ओर खींचता ही है, मैं क्या करूं?" उसके उत्तरमें एक विवशता, आर्द्रता भरी हुई थी।

"लेकिन अपने कर्तव्यको तो सोचो शरद।" सुधीरने जोर देते हुए कहा।

"खूब सोचा है सुधीर, मेरा हृदय उस सोचनेको ग्रहण ही नहीं करता। सोचता हूं, शायद इस रूपमें मेरे जीवनके अभावकी पूर्ति हो जाय।" एक लम्बी सांस खींचकर शरदने कहा।

× × ×

कुछ दिनों बाद एक दिन सवेरे स्कूल जाते समय मुक्ता लवङ्गसे मिली—वह अपनी फुलवाड़ीमें खड़ी थी। मुस्कराती हुई मुक्ता आयी, उसके कन्धोंपर हाथ रख कानके पास मुंह ले जाकर धीरेसे बोली—"उस दिनसे भइयाके साथ वह कई बार आये लवङ्ग, क्या बात है?"—मुक्ताने एक अर्थपूर्ण दृष्टिसे देखा।

लवङ्ग हंस पड़ी—"तुझे चाहने लगा है वह मुक्ता, इसीलिए तो तुझे मैंने उस दिन पान देनेके लिए भेजा था कि तुम्हारी उसकी दो-चार बातें हो जायें। बड़ा भावुक है। तू उसे अपना ले, तो उसकी जिन्दगी हरी हो जाये!"

"चल, तुझे ऐसा ही मजाक सूझा करता है!"

"तो तुझे जरा भी आकर्षण नहीं? कितना सुन्दर कला-

कार है। उसकी रचनायें कितनी सजीव, भावपूर्ण, कितनी सुन्दर होती हैं। तूने तो देखी हैं ?"

"मु···झे···क्या···करना···?"—इठलाकर, इतराकर मुक्ताने कहा।

"हां,···वहांपर तो दूसरेका कब्जा है···क्यों ?" लवङ्ग एक अर्थपूर्ण हंसी हंसी।

"क्यों बना रही हो लवङ्ग ?"—मुक्ता लाजसे लाल होती हुई बोली, उसकी पलकें झुक गयीं। जैसे उसके हृदयके सारे भेदको, सारे प्रेमको ढंकती हुई-सी।

"तो क्या मैं झूठ थोड़े ही कहती हूं। उस ललितको वीणापर कौन सौ जानसे न्योछावर है ? मुझसे भी छिपाती है ?"

"तो क्या यह बुरा है लवङ्ग ?"—मुक्ताने अपनी सङ्कोच-भरी बड़ी-बड़ी पलकें ऊपर उठाकर पूछा। उस चितवनमें थी एक प्रेमकी स्निग्धता, प्रणयका उछाह।

"मैं कब कहती हूं मुक्ता ! उस मधुमें कितनी मिठास है, यह तो मुक्तभोगी ही जान सकते हैं। प्रेम ही तो जीवन है; जिसने कभी प्रेम नहीं किया, वह मनुष्य नहीं।"

"लेकिन 'वह' हैं कुछ मजेके आदमी। भावोंमें डूबे-से, किसी अज्ञात व्यथासे लिपटे-से; बोलते हैं, तो उनकी बातें दिलमें घर कर जाती हैं।"

"हूं···कुछ ऐसा ही है !"

"अच्छा, अब चलती हूं, स्कूलकी देर हो रही है।" कहकर झटपट मुक्ता चल दी।

लवङ्ग देर तक खड़ी सोचती रही—कैसी विचित्र बात है। मुरलासे बहुत अधिक सुन्दर तो यह मुक्ता है नहीं। किन्तु क्यों शरद इसकी ओर आकर्षित है ? क्यों वह नयी-नयी शादी होते ही टूट गया है ? क्या है, जो उसे मुरलामें नहीं मिल सका और वह अन्य सौन्दर्यकी पुतलियोंमें तृप्तिके प्रसाधन खोजता-सा फिरता है, पागल-सा युवक। किन्तु क्या मुरलाके रहते वह इसे पा सकेगा ? समाज इसे आसानीसे तो सहन कर न सकेगा। किन्तु वह मुक्ताको चाहने लगा है, उसके हृदय-पटपर मुक्ताकी मूर्ति ही सजीव हो पड़ी है। अच्छा है, उसका प्रेम सफल हो। किन्तु मुक्ता तो······कुछ यों ही सोचती-सोचती लवङ्ग घरके अन्दर चली गयी।

× × ×

कल दोपहर मुक्ताकी मां लवङ्गके यहां आयी। मुक्ताके बचपनमें ही उसके पिता उसे और एक लड़केको छोड़कर चल बसे थे। इन्हीं दोनों पुत्र-पुत्रीको लेकर मुक्ताकी मांने वैधव्यका भारी दुःख सहन किया। मुक्ताके पिता कोई विशेष सम्पत्ति तो छोड़ नहीं गये थे। दो मकान थे, जिनके किरायेसे किसी प्रकार गृहस्थीका पालन होता रहा। बादमें मुक्ताके भाईके एक आफिसमें क्लर्क होनेपर जीवन-निर्वाह किसी प्रकार होने लगा। लेकिन जबसे मुक्ता विवाह योग्य हुई, मुक्ताकी मांका खाया-पिया नहीं पचता—दिन-रात एक चिन्ता सवार रहती। सयानी लड़की हिन्दूके घरमें एक दुर्वह बोझ है। उसे ब्याहनेको काफी रुपयोंकी आवश्यकता थी। वह चाहती थी, कहीं कम खर्चसे ही उसके हाथ पीले कर देती। उसके सामने कठिनाइयोंका पहाड़-सा खड़ा था।

हां, तो कल दोपहर मुक्ताकी मां जब आयी, तो मुक्ताके विवाहकी बातें चलीं—मुक्ताकी मांने लवङ्गकी मांसे उसके लिए अच्छा घर-वर ढूंढ़ देनेके लिए विशेष आग्रह किया। लवङ्गकी मांने अपने दूरके रिश्तेके भतीजे शरदको बताया—कहा, अच्छा लड़का है। अभी उम्र ही क्या—तेईस-चौबीस वर्षकी—काफी शिक्षित, स्वस्थ, सुघर है। मुक्ताके सब भांति योग्य है। एक विवाह हो चुका है—सिर्फ यही एक बात ऐसी है, जो तुम्हें शायद पसन्द न हो; लेकिन पत्नीसे बनती नहीं, वह उसे एक प्रकारसे छोड़ ही चुका है। मैं तो इस सम्बन्धमें कोई बुराई नहीं देखती।

मुक्ताकी मांने कुछ सोचा—जीमें कुछ आगा-पीछा किया, फिर जी कड़ा करके बोली—"अच्छा तो है, मुझे कोई आपत्ति नहीं। लेकिन उससे भी तो स्वीकृति ले लो। वह राजी हो, तो मैं कर दूंगी।"

लवङ्गकी मांने शरदको बुलवाकर पुछवाया—कहा, लड़की तुम देख ही चुके हो। यदि पसन्द हो, तो कह दो। तुम्हारी भी जिन्दगी सुधर जाये, लड़की सर्वगुण-सम्पन्न है।

शरदने भी आगा-पीछा सोचा—मनमें कहा—मिल जाय, तो इससे बढ़कर क्या। मुरला तो जीवनके किसी पहलूके भी योग्य नहीं है। मुक्ता तो उससे कहीं अच्छी है। क्यों न उसे अपना लूं ? आखिर जीवनकी यात्रा एकाकी ही कैसे पूरी होगी ?

और शरदने स्वीकृति दे दी। मुक्ताकी मांके सिरसे

चिन्ताओंका बोझ उतरा। उसने शुभ मुहूर्तमें विवाह-तिथि निश्चय कर दी।

इधर मुक्ताने सोचा—उसके हृदयमें एक आंधी-सी उठी—यह क्या हो रहा है? ललितकी सुखद मूर्ति हृदय-मन्दिरसे हटानी पड़ेगी, उफ! जीवनमें वह सहयोगी न बन सकेगा? किन्तु दूसरे ही क्षण—उसकी विचार-धारा रुकी, नयी भावना उठी—यदि ललित सङ्गीतज्ञ है, मेरे हृदयको अपने सङ्गीत द्वारा उसने विमुग्ध कर लिया है, तो शरद एक कवि, कलाकार है, वह क्या अपनी कलाके सौन्दर्य द्वारा मुझे खींच न सकेगा? अपने हृदयसे मेरे हृदयको जीत न सकेगा? अवश्य, अवश्य। उसके हृदयमें बार-बार यह बात उठी और फिर अपने पक्षका समर्थन ही करा ले गयी। और उसने फिर सब कुछ भूलकर, अपने हृदयके स्वप्न-चित्रोंको मिटाकर उनमें नवीन रङ्ग भरने शुरू किये। एक नवीन कल्पनासे हृदय अभिभूत हो गया। आखिर अपने सुखके लिए अभागिन माताको कैसे दुखी बनाती, और एक दिन मुक्ताका विवाह शरदके साथ निर्विघ्न सम्पन्न हो गया और वह उसके घर चली गयी।

× × ×

प्रथम रात्रिको प्रबलतम इच्छा रखते हुए भी शरद मुक्तासे वह बात न पूछ सका। पश्चात् एक दिन उसके कोमल करको अपने हाथोंमें लेते हुए बोला—"तुमने मुझसे मिलनेसे पहले कभी किसीको प्यार किया है?"

मुक्ता सिरसे पैर तक कांप गयी। पता नहीं, उसे अपनी अतीत-घटनाकी स्मृति हो आयी अथवा उसपर प्रश्नका ऐसा प्रभाव पड़ा। स्वयं शरद भी इसे नहीं जान पाया।

उसने कहा—"मुक्ता, मैं यह केवल सत्यकी रक्षाके लिए पूछ रहा हूं। मेरा विश्वास है कि सत्य प्रेमको क्या, सम्पूर्ण सम्बन्धोंको ही दृढ़ बना देता है।"

मुक्ता कुछ न बोली।

शरदने फिर कहा—"प्रेम करना कोई बुरी बात थोड़े ही है मुक्ता, और इस अवस्थामें तो यह स्वाभाविक है। जो कहते हैं—प्रेम नहीं करते, वे पाखण्डी होते हैं या निर्जीव।"

मुक्ताके मनने दुहराया—"जो प्रेम नहीं करते, वे पाखण्डी होते हैं या निर्जीव। तो क्या वह कह दे कि उसने प्रेम किया या करती है?"

शरदने सोचपूर्ण मुद्रामें मुक्ताको देखा, तो कहने लगा—मैंने भी कई लड़कियोंको प्यार किया है—वह मुस्कराया—एक मूर्ति, जिसके नामके आकर्षणको हृदय नहीं मिटा सका और कभी-कभी उसकी स्मृति टीस उठती है—अबकी वह गम्भीर हो गया।

मुक्ताका मुंह उतर गया, पता नहीं, शरदने उसे देखा या नहीं?

उसने फिर कहना आरम्भ किया—"परन्तु मुक्ता, कुछ नहीं। वे घटनायें अतीतके गर्भमें विलीन हो गयीं। मैं अब उन्हें भूल गया। हां, कह देनेसे मेरा जी अवश्य हल्का हो जायेगा।"

फिर कुछ ठहरकर—"मैं रूढ़िको नहीं मानता कि प्रेम एक अपरिवर्तनशील वस्तु है।"

शरदने मुक्ताको चुप देखकर उसे छेड़ा—कहा, "अब तो तुम्हें देखकर किसी औरको देखनेकी इच्छा ही नहीं रही मुक्ता!"

मुक्ताने अपने मुंहपरका आंचल खींच लिया। शरदने उसे हटाते हुए कहा—"अब मेरी धारणा है कि किसी औरको प्यार नहीं करूंगा। तुम क्या कहती हो?"

"..........."

"बोलो।"

"क्या?"

"कि तुम मुझे अपना प्रेमपात्र बनाये रहोगी?"

मुक्ताने सजल नेत्रोंसे शरदकी ओर देखा और कहा—"कहनेसे क्या होता है?"

"ठीक है।"—कहते हुए शरदने उसका हाथ चूम लिया।

× × ×

धीरे-धीरे एक वर्ष बीत गया और मुक्ताके जीवनमें शरदके मधुर प्रणयका बसन्त अपनी समस्त मनोहरता, यौवनकी मस्ती और वैभवसे इठला उठा था। उसके शिथिल हृदयमें प्यारकी कोकिला बोल उठी थी मस्तीसे, कू...ऊ...ऊ...और उस मस्तीमें सब कुछ भूलकर, शरदको अपने प्रेम-बन्धनमें कसकर अपनी छोटी-सी सुखपूर्ण गृहस्थीकी नाव वह तिराने लगी थी। शरद सोचता—"यह नारी भी कैसी पहेली है। नारी ही व्यक्तिको बनाती है, नारी ही बिगाड़ती है। एक नारी थी मुरला, जिसने उमंगते हुए जीवनको गिरा दिया

था। एक आयी है मुक्ता, जो ढहते हुए जीवनको स्थिर बना रही है। अपने इस अधिकारपर गर्वसे भर रही है। किन्तु मैं हूं, जो अपनेको निश्चेष्ट पाता हूं। सारे जीवनके सञ्चयमें जैसे कोई सौन्दर्य, कोई आनन्द नहीं, विश्व-सङ्गीतकी कोई प्रतिध्वनि, कोई हृदयका गम्भीर प्रकाश नहीं दीखता। जैसे मैं रोगी हो गया हूं और मुझे कोई भोजन रुचता नहीं है। जैसे जीवनके खेलमें हारको ही आगे बढ़ाकर चलता आया हूं। जैसे अपने जीवनके स्वप्नोंके महल चकनाचूर करके उसके ढेरपर खड़े होकर हंसता जा रहा हूं। चुरा-छिपाकर चाहे जितना रोऊं, अन्दरसे चाहे जितना भारी होऊं, ऊपरसे हलका-हलका बना चल रहा हूं। संसारके इस समुद्रमें ऊपर ही ऊपर लहराता चला जा रहा हूं; किन्तु जैसे हृदयका लङ्गर बड़ी गहराईमें कहीं गड़ा हुआ है। जीवनके इस अभिनयमें, खेलके इस आडम्बरमें जैसे हृदयकी कोई गहरी कसक छिपी हुई है। मन जैसे गिरता ही है, उसे बहलानेके लिए इस मुक्ताको पाया है— लेकिन जैसे यही सब कुछ-सा नहीं जान पड़ती। यह पूर्णता जैसे मुंह चिढ़ाती है। यह तृप्ति जैसे उमड़-घुमड़कर कहती है—अब और क्या चाहिए? अभी गत दिवसों तक जो सत्य था, वही इन भावनाओंका साथ देकर कहता है, अब और क्या चाहिए? हृदयमें अस्थिर भावनायें अपने आपसे रार क्यों मचाती हैं?" —इन्हीं विचारोंके गम्भीर स्रोत उसके हृदयकी चट्टानसे टकराकर विभिन्न भंवरोंकी रचना करते हुए उद्दाम वेगसे दौड़ा करते। और तब वह और अधिक व्याकुल होकर मुक्ताको अपने प्रेमकी बांहोंमें जकड़ लेता।

दिन बीत रहे थे।

एक दिन सन्ध्या समय छतपर बैठे हुए शरदसे मुक्ताने आग्रह किया—"तुम्हें कभी मुरलाकी याद भी आती है?"

"नहीं मुक्ता, उसने तो मेरे सारे जीवनका रस चूस लिया।"—गम्भीर स्वरसे उत्तर दिया शरदने।

"और तुमने जो उसका जीवन नष्ट किया, बेचारी मायकेमें पड़ी तुम्हारे नामको रोती होगी?"

"भरसक प्रयत्न तो मेरा ऐसा नहीं था मुक्ता, मैं तो चाहता था कि वह भी विवाह कर ले। आखिर सभी बातोंकी एक सीमा होती है!"

"तुमने कभी अपने जीवनका रहस्य नहीं खोला, हमेशा टालते रहे, आज तो कुछ बताओ, तुम्हें बताना ही पड़ेगा।" —उसकी आंखोंमें आंखें डालकर प्रेमसे उसके हाथोंको पकड़कर मुक्ता बोली।

"जो बीत गया सो बीत गया, मुक्ता! उसे जानकर क्या करोगी मेरी रानी? मैं तुम्हें अपनी तरह पागल नहीं बनाना चाहता।"—एक धीमा-सा निश्वास छोड़कर उसने उसे अपनी ओर खींच लिया।

"लेकिन दिनोदिन तुम इतने गम्भीर क्यों होते जाते हो?"— प्रबल स्नेहसे मुक्ताने आग्रह किया।

"नहीं मुक्ता, ऐसा तो नहीं?"—जैसे शरदके इस झूठमें शिशुकी-सी नग्नता हो, सत्यकी-सी सरलता हो।

"जैसे कोई वेदना तुम्हारे हृदयमें कसक रही हो।" उसका मुंह कातर होकर निहार रही थी मुक्ता।

शरदके मनमें किसीने कहा—"वेदनाको कोई भूल सकता है? जीवनकी प्रथम हार तो सारी जीतपर पानी फेरती जाती है।"

"न बोलोगे?"

"........."

"तुम्हें मेरी शपथ, बताओ......" मुक्ताकी आंखोंके कोनोंसे दो गोल-गोल मोती झांकने लगे।

"क्या बताउं मुक्ता, अपने-आपको अनुभव करता हूं, देखता हूं, प्रश्न करता हूं; किन्तु कुछ स्पष्ट नहीं समझ पाता। मेरी दशा शायद उस बालक-सरीखी है, जो मिठाईके लिए रो-रोकर आंखें फुला लेनेपर पहले कड़वी चीज पावे और फिर झल्लाकर उसे फेंककर द्विगुणित वेगसे रो-रोकर थक जावे। और तब उसे मिठाई मिले, जब वह परिश्रान्त होकर सो जाना चाहता हो— अपनी मिठाईको कसकर मुट्ठोमें दबाये हुए।"

उसकी यह शब्द-व्यञ्जना, मार्मिक अभिव्यक्ति, यह हृदय-आन्दोलनका कम्पन, सब एक साथ समुद्रकी तरङ्गोंकी तरह मुक्ताके निस्तब्ध हृदय-उपकूलके पास आ-आकर टूट पड़े। उसके हृदयमें उसके शब्द, ध्वनि, भाव-भङ्गी एक दीर्घ निश्वासकी भांति समा जाकर मंडराने लगे। दोनों मूक होकर उस शून्य मूक महाकाशके नीचे बैठे रहे; किन्तु उनके हृदयोंमें जैसे सांय-सांयकर वायु बह रही हो, टिमटिमाकर तारे कुछ कह रहे हों। एक आर्द्र उदासी वातावरणमें थी।

टप-टपकर दो बूंदें शरदके हाथपर गिर पड़ीं—मुक्ता

जल्दीसे उन्हें पोंछते हुए उसकी गोदमें लुढ़क-सी गयी—शरदने उसे अपने वक्षसे आबद्ध करते हुए उसके कपोलोंको चूम लिया। गले तक आया हुआ आवेग फूट पड़ा—"मुक्ता, मेरी रानी, तुम्हारी-सी देवी पाकर भी तुम्हें प्रसन्न न रख सका! उफ! मुझ अभिशापितको अपनाकर तुमने भी अपना जीवन ज्वालासे भर लिया! गम्भीर निराशाके समुद्रमें आशाकी क्षीण धारा-सी सम्बद्ध होकर तुमने किस प्रतिकूल दिशामें अपना जीवन बहा दिया? पतझरमें झरे हुए ठूंठके साथ यह कोमल लतिका लिपटकर कब तक हंस पायेगी—आह! इसका मैंने कुछ भी विचार न किया?"—अधीर विह्वल होकर सिसक उठा शरद।

थोड़ी देरमें मनकी उमड़न जब शान्त हो गयी, शरद शान्त-संयत होकर स्थिरतासे सोचने लगा—ऐसी बात मुंहसे क्यों निकल जाती है। बेचारी निरपराध बालिकाको व्यर्थ दुखी कर क्या पाऊंगा! अब वह अलक्षित भावसे अपने लिए युक्तियां और प्रबोध सञ्चय करने लगा। अपनी व्यथाके चारों तरफ एक आवरण खोजनेकी चेष्टामें निरत हो गया।

हृदयके अन्धड़में मृदु भावनायें सिसकियां लेती रहतीं। अतीतकी मार्मिक स्मृतियोंको अन्धकारमें ढकेलकर वह तृप्तिकी ओर दौड़ जानेकी चेष्टा करता; पर संसारके अनन्त सुखोंको पाकर भी वह विचलित रहा, उसका जीवन एक अबूझ पहेलीकी जटिलता ही बना रह गया।

मुक्ता अपने जीवनकी करुण विडम्बनापर डबडबायी आंखों-से निहारती, अपनी कभी न सुलझनेवाली उलझनमें और गुत्थी डालकर हताश, व्यथित निश्वास छोड़कर एकान्तमें अचेत-सी गिर पड़ती।

× × ×

डूबते हुए सूर्यके पीछे सन्ध्याके हृदयकी सुरमई छायामें अपनी भावनाओंको जागृत कर मरघटकी लपलपाती ज्वाला-को अक्षर-अक्षरमें बांधनेके लिए लेखनी लिये हुए शरद भागा जा रहा था—कवि था न वह, दुनियासे अलगका, उसकी कविताका जन्म उसकी अतृप्त इप्साओंने ही तो किया था। सत्यको सुन्दर बनानेकी अदमनीय आकांक्षाने ही तो किया था। व्यथित यौवनमें पगली भावनाओंसे उद्वेलित शरद नद के किनारे पहुंचकर बैठ गया—शान्तिकी खोजमें विक्षिप्त-सा। घुंघराले केश हवामें शिथिल बिखर रहे थे, आंखें रक्ताभ, सद्य-स्नात-सी, शून्यमें टकटकी बांधे हुए थीं—लेखनी एक ओर निर्जीव पड़ी थी और वह पागलोंकी तरह रो रहा था—तुम चली गयीं…? तुम मुझे प्यार करती थीं…दुनिया भले ही तुम्हें देखने न दे, लेकिन कभी यह सम्भव भी है मेरे लिए? हृदयको जिसके प्यारने रंग दिया, वह किसी प्रकार भी प्रकाश पानेपर कोरा नहीं दिखाई पड़ सकता। उसमें पट-परिवर्तन भले ही हो जावे; पर वह परदा तो चित्रित ही रहेगा...उफ ...कैसा है मेरा जीवन...छाया, छाया, तुमने एक दिन मेरे प्रेमका पथ निर्देश किया था...आज मुझसे दूर होकर भी छाया-सी मेरे समीप हो मेरी छाया!! तुम चली गयीं? देवी! मुरला राक्षसीने मेरा जीवन धूलमें मिला दिया और आज आहत हृदयको सहलानेवाली मुक्ता कैसे मेरे जीवनके रेगिस्तानमें साथ चलकर पथ अतिक्रमण करे? कैसे उसके कण्ठसे कण्ठ मिलाकर सुहागका राग गाऊं?

दुर्भेद्य निविड़ अन्धकारके कठिन आवरणको चीरकर दो-एक टिमटिमाती तारिकायें उसीके समान सजल नेत्रोंसे ताकती हुई निकल आयीं, तो जैसे सोतेसे जागा शरद—बेहोशीकी सीमासे दूर हटता हुआ तेजीसे घरकी ओर भागा। नित्यका उसका यह क्रम था। यहीं आकर तो उसकी अन्तर्मुखी ज्वालाको पलभरको शान्ति मिलती, मरघटकी ज्वालामें ही तो उसकी मनकी वृत्तियां विराम पाती थीं।

घर आकर देखा, तो मुक्ता उस आभाहीन रात्रिमें, हृदयमें जाने कितनी बीते हुए दिनोंकी हंसती-रोती घड़ियोंकी स्मृति और वर्तमानकी दर्दभरी हूक लिये उच्छ्वासोंके साथ अपने जीवनकी पहेली सुलझा रही थी अथवा कौन जाने?

शरदके आनेकी आहट पाकर उसने मुंह फेरा—करुण स्वर-लहरी झनझना उठी—"कहां चले जाते हो तुम?"

उसके माथेपरकी बिखरी अलकराशिको अपरिमित स्नेह और वेदनासे ऊपरकी ओर हटाते हुए मुक्ताने सजल नयनोंसे निहारते कहा—"क्या हो गया है तुम्हें हाय! मुझसे भी तुम्हें बजाय सुखके दुख ही मिला!"

उसे अङ्कपाशमें आबद्ध करते हुए भरे कण्ठस्वरको साफ कर मधुर स्वरसे शरद बोला—"छिः, पगली, इतनी जल्दी व्याकुल हो जाती है। जीवनमें जिसे कहीं शान्ति न मिली, उस अभागेको तुम्हारे सिवा कौन अवलम्ब है मुक्ता?"

मुक्ताकी अधखुली पलकें झुक गयीं, मुस्कराहटसे गीले

होंठ कुछ प्रस्फुटित हुए और शरदने उसे अपने बाहुपाशमें कस लिया।

इसी तरह कितने ही दिन और बीते। दोनों चिन्तनमें लीन रहते, हृदय जोरोंसे श्वास छोड़ता, अन्तर धधकता हुआ जलता, दोनोंकी आत्मायें बिना बोले हुए प्रश्नोत्तर करतीं। शरदके व्यवहारमें लेशमात्र भी रोष, घृणा तथा विरक्ति न झलकती; लेकिन फिर भी वह अक्सर मूक रहता, कोई अशान्ति उसकी प्रत्येक स्थिति-गतिके प्रति मूर्त रहती, कोई असन्तोष, अभावकी काली छाया उसे अपनेमें समा लेना चाहती। यह बात नहीं कि वह मुक्ताको चाहता नहीं था। कभी-कभी तो प्रेमाश्रुसे कण्ठस्वर तक भिगोकर वह कहता—मुक्ता, मुझे जीवनमें बहुत······लेकिन नहीं, तुम तो मुझसे घृणा नहीं करती हो? जीवनके अन्तिम श्वास तक अपने प्रेमका पात्र बनाये रहोगी? बोलो मुक्ता!

मुक्ता उसकी इस अत्यधिक भावुकतासे व्याकुल होकर कहती—तुम कैसे हो? मैं तुम्हारी हूं, तुम्हारे जीवनके प्रत्येक श्वासके साथ मेरा सम्बन्ध है। दीन-दुनिया सबको भूल मैं तो अब केवल तुमको ही जानती हूं।

लेकिन फिर···देखती···एकान्त कमरेमें पड़ा वह रो रहा है। तकिया तर हो गया है, आंसुओंका समुद्र उमड़ा पड़ रहा है। वह कांप उठती, उफ! यह कौन-सा रोदन इसके अन्तरालमें छिपा पड़ा है? कौन जाने? उसे चैतन्य कर पूछती—"तुम्हें क्या हो गया है, नहीं बताओगे?" तो वह झट उठकर कहता—"कुछ भी नहीं मुक्ता, यह जी ऐसे ही भारी हो गया था जरा।" और फिर मनमें सोचता—"उफ! एक एकान्त कमरेमें चुपचाप पड़ा भी नहीं रह सकता? कैसी विडम्बना है!"

× × ×

शामके चार बजे लवङ्ग मुक्ताकी मां आदिको लेकर मुक्ताके घर पहुंची। तमाम खोज हुई, सारा शहर छान डाला गया, कहीं शरदका पता न था। दिन-भरके उपवास और असीम मानस-मन्थनसे अत्यन्त श्रान्त-क्लान्त होकर बेजान-सी मुक्ता जमीनमें लुढ़की पड़ी थी। निस्तब्ध गम्भीर रातमें वह असहाय मुक्ताको अकेला छोड़कर न जाने किधर निकल गया था। विस्मित, व्यथित, स्तब्ध मुक्ता अपना समस्त वैभव लुटाकर ठगी-सी बैठी थी। घरमें एक नग्न शून्यता सांय-सांय करती-सी फैल रही थी, सब जहांका तहां विशृङ्खल। इतनी सारी दुनियामें वह कहां जायेगी, क्या करेगी, यह सब बिना सोचे-विचारे ही शरद घरसे सब बन्धन तोड़ निकल भागा—निरुपाय, निराश्रय नारीको संसारके दुर्गम पथपर अकेली यात्रा करनेके लिए। बिना कुछ कहे, बिना किसी लक्ष्यके वह चला गया। कहां गया? सो भी कौन जाने?

———



मध्य एशियाकी प्राचीन चित्र-कला

श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, एम० ए० एल-एल० बी०

कुछ दिनों पहले मुझे नयी दिल्लीके सेण्ट्रल एशियन एण्टिक्विटीज म्यूजियमको देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इस संग्रहालयके कोई तीन विशाल कमरोंमें मध्य एशियाकी प्राचीन चित्र-कलाके नमूने दीवारोंपर लगे हुए हैं। ये चित्र महायान बौद्ध-धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। तृतीय शताब्दी ईस्वीसे दसवीं शताब्दी तककी चित्र-कलाके ये अति सुन्दर उदाहरण हैं। अजन्ताकी गुफाओंमें चित्र-कलाकी जो शैली है, उसी शैलीका प्रसार बौद्ध भिक्षु चित्रकारोंके द्वारा मध्य एशियामें हुआ। वस्तुतः यह भी भारतीय कला ही है, जिसमें स्थानान्तरके कारण बहुत स्वल्प-सा परिवर्तन हो गया है। अतएव भारतवर्षकी चित्र-कलाका सम्पूर्ण इतिहास रचते समय नयी दिल्लीमें स्थापित इस महार्घ सामग्रीकी ओर भी कला-प्रेमियोंको अवश्य ध्यान देना चाहिए।

जगत्प्रसिद्ध डा० आरल स्टाइन तीन बार मध्य एशियाके सुदूर प्रदेशोंमें जा चुके हैं। ये चित्र उन्हींके द्वारा लाये गये थे। काशगढ़, यारकन्द, खोतानसे उत्तर-पूर्वमें इस समय जो बड़ा रेगिस्तान है, उसमें एक स्थान तुर्फान है। वहींके भग्न स्तूपों और मठोंके भीतर दीवारोंपर ये चित्र पाये गये थे। किसी समय इस प्रदेशमें अनेकानेक बौद्ध विहार थे। काश्मीर प्रदेशकी सिन्धु-तरेटीसे अथवा काबुल नदीकी तरेटीसे आगे बढ़कर पामीर होता हुआ जो मार्ग चीनको गया है, उसीके रास्तेमें तुर्फान है। प्रसिद्ध चीनी यात्रियोंके आवागमनका यही रास्ता था। बौद्ध-भिक्षुओंने अदम्य उत्साह और अपूर्व त्यागसे इन गहन स्थानों तक अपने धर्मका प्रचार करके वहांपर बौद्ध उपनिवेशोंकी स्थापना की थी। कल्पना कीजिये—कहां वे जङ्गली स्थान, कहां बुद्ध, बोधिसत्व, लोकपाल, महायोगी शिव और स्वामी कार्त्तिकेयकी उपासनावाला धर्म। पर भारतीय संस्कृतिकी धर्म-विजयने जहां एक ओर पूरबमें अलंघ्य सागरोंको पार करके जावा और सुमात्रा तक अपनी पताका फहरायी, वहां दूसरी ओर उत्तरके अति दुर्गम गिरिशृङ्गोंको लांघकर उसने मध्य एशियाके तुर्किस्तान प्रदेशको भी अपने मधुर घोषसे गुंजा दिया। तुर्फान चीनी तुर्किस्तानके पूर्वी भागमें है। इस समय यद्यपि वहां मरुस्थल है, पर सम्भवतः विहारोंकी स्थापनाके युगमें वहां कुछ हरियाली अवश्य रही होगी।

जिस समय डा० स्टाइनने इन दिव्य चित्रोंके दर्शन किये, वे इनकी कारीगरी, चटक, वर्णच्छटा और वर्णनाको देखकर मुग्ध रह गये। ये चित्र विहारोंकी दीवारोंपर चूनेका कोट करके बनाये गये थे। यूरोपीय विद्वानोंने इन्हें अजन्ताके समान ही 'फ्रेस्को'का नाम दिया है। पहले दीवारपर गोबर, चूने और गेहूंकी भूसीका लेप चढ़ाते थे। उसको चिकना करनेके लिए सन या सनीको कूटकर घोटे हुए चूनेका लेप किया जाता था। उसीके ऊपर चित्रकार बड़ी सावधानी और परिश्रमसे अपने कल्पित चित्रकी पहली रूप रेखा गेरूसे खींचता था। उसके बाद यथानिवेश रङ्गोंको भरा जाता था। इस प्रकार बहुत ही सीधे ढङ्गसे टिकाऊ चित्र तैयार हो जाते थे।

डाक्टर स्टाइनके सामने सबसे कठिन समस्या दीवारपर बने हुए इन चित्रोंको वहांसे हटाकर यहां लानेकी थी। यदि इनको वहीं रहने दिया जाता, तो अवश्य ही कुछ समय बाद वे बिलकुल नष्ट हो जाते। बहुत-से तो उस समय भी आधे अथवा और अधिक नष्ट हो चुके थे। इसलिए स्टाइन साहबको उन्हें वहांसे हटाकर सुरक्षित कर देनेकी सबसे बड़ी फिक्र हुई। इस काममें जरा-सी भी असावधानी होनेसे बचे-खुचे चित्र भी हमेशाके लिए नष्ट हो जा सकते थे। किसी समय एक मि० बर्डने हमारी अजन्ता गुफाके चित्रोंके बारेमें भी यही सोचा था कि उन्हें वहांसे हटाकर बम्बईके संग्रहालयमें ले जायें। इस उद्देश्यसे उन्होंने जो चित्रोंको खुरचना शुरू किया, तो चूनेके लेवड़े धरतीपर ढेर हो गये और उन महाशयके हाथ कुछ न लगा। परिणाम यह हुआ कि उस समय तक बहुत अधिक संख्यामें जो चित्र सुरक्षित थे, वे भी सदाके लिए नष्ट हो गये। अजन्ताके चित्रोंको मेह, पहाड़ी टपकन, या आगसे भी हानि उठानी पड़ी है, पर सबसे अधिक हानि इन्हीं जर्मनकी असावधानीसे हुई।

इसीलिए डा० स्टाइनके कार्यकी कठिनताका अन्दाज लगाना मुश्किल है। उन्होंने २०×२० इञ्चके चौखटोंमें डेढ़ इञ्च मोटाईके पलस्तरके चौके-से काटकर भरना शुरू किया। इससे काम कुछ आसान मालूम हुआ। इस समय जो चित्र नयी दिल्लीके अजायब घरकी दीवारोंपर लगे हैं, उनमेंसे कुछ तो बारह-बारह फुट ऊंचे और चौड़े हैं। पर धन्य है उनकी संरक्षण-योग्यता, देखनेपर यह नहीं जाना जा सकता कि ये कहांपर काटकर कहां जोड़े गये हैं। चित्र बिलकुल अखण्ड और नये-जैसे हैं और यह मालूम होता है कि वे मानो पहले-पहल इन्हीं दीवारोंपर बनाये गये हों। नीचे लकड़ीके विशालकाय चौखटे हैं, उनके ऊपर पलस्तर जमा दिया गया है, जिसमें चित्रांका दर्शन बाहरकी ओर है। उनके ऊपर अल्मुनियमकी पतली चादरके माउण्ट काटकर लगाये गये हैं। ऊपरसे शीशे लगे हैं। यह सजावट दर्शनीय ही है।

पाठकोंको यह बता देना भी आवश्यक है कि इन चित्रोंमें सामान्यतः क्या दिखाया गया है। प्रथम शताब्दी ई० के करीब महायान बौद्धधर्मका उदय हुआ। अश्वघोष और वसुमित्र इस धर्मके बहुत बड़े पण्डित थे। पीछेसे नागार्जुनने माध्यमिक कारिका रचकर इस धर्मको दार्शनिक महत्ता भी दे दी। प्रथम शताब्दीके बादका भारतवर्षीय बौद्धधर्म महायान धर्म ही है। इस धर्मका विकास मथुरामें बहुत प्रबल था। वहां ही सर्वप्रथम भगवान् बुद्ध और उनके ही स्वरूप बोधिसत्वकी मूर्तिका निर्माण हुआ। थोड़े ही समयमें यह सम्प्रदाय उत्तरसे पूर्व तक सारे देशमें फैल गया। इसी समय भारतवर्षकी उत्तर-पश्चिम सीमापर यूनानी कलाके विकृत रूपका भी प्रचार था। इसीके सम्पर्कसे भारतीय गन्धार-कलाका जन्म हुआ। इस कलाने महायान बौद्ध-धर्मको जी खोलकर अपनाया। कुषाण सम्राटोंने महायान धर्म और इस कलाका खूब प्रचार किया। महाराज राजातिराज देवपुत्र कनिष्कने बौद्धोंकी चौथी महासभाको काश्मीरके कुण्डलवन नामक विहारमें आमन्त्रित किया। वसुमित्र इसके अध्यक्ष थे। उनके राज्यमें मध्य एशियाके भी कुछ प्रदेश शामिल थे। तिब्बतके उत्तरमें और पामीर पठारके पूर्वमें स्थित काशगढ़, यारकन्द और खोतान प्रदेशोंको भी कनिष्कने जीतकर अपने राज्यमें मिला लिया था। ये स्थान पूर्वी चीनी तुर्किस्तानके अन्तर्गत चीन महासाम्राज्यके अधिकारमें थे। यहांपर कपिशा, सीता और चक्षु नदियां बहती थीं। इन स्थानोंके कनिष्क-साम्राज्यमें आ जानेसे यहां महायान बौद्धधर्मका फैलना अवश्यम्भावी था। कहा जाता है कि काशगढ़ या कपिशाके विहारमें चीनी यात्री हुअनसांग भी ६३० ई० में रहा था। वहां उसने दीवारोंपर अनेक बौद्ध-धर्म सम्बन्धी चित्रोंके दर्शन किये थे।

भारतवर्षसे तुर्किस्तान तक पहुंचनेमें महायान धर्मको अनेक जातियोंके सम्पर्कमें आना पड़ा। शक, यूनानी, पारसी, तुर्की, तातारी और चीनी लोगोंने इस धर्मको अपनाते समय उसमें कुछ-कुछ परिवर्तन किये और उसकी कलामें भी तदनुरूप ही रूपान्तर होता गया। उसी कला और धर्मके मध्यकालीन प्रतिनिधि ये चित्र हैं। सब चित्र धर्म-सम्बन्धी ही हैं। सर्वत्र बुद्धकी मूर्तिकी ही छटा है। परन्तु उनके परिवारमें अनेक बोधिसत्व, लोकपाल, देवी और देवता भी सम्मिलित हो गये हैं। अधिकतर चित्रोंमें तान्त्रिक धर्मकी छाप है। कुषाण-कालके बाद बौद्धधर्ममें तान्त्रिक प्रवृत्तिका प्रारम्भ हुआ। और गुप्त-समयके बाद तो महायान धर्म बिलकुल तान्त्रिकवादमें ही मिल गया, जिसके नये स्वरूपका नाम वज्रयान प्रसिद्ध है। इस धर्ममें डाकिनी आदि बीभत्स देवियोंकी पूजा प्रचलित है। इन चित्रोंमें भी डाकिनी आदि सप्तमातृकाओंकी चतुर्भुजी मूर्तियां हैं। ये मातृकायें मत्स्य-वाहनपर सवार दिखायी गयी हैं। उनके आयुधोंमें पाश, कपाल, खड्ग और वज्र हैं। पाशमें कुण्डलीके समान ही साढ़े तीन लपेट दिखाये गये हैं। दूसरे कमरेके पांचवें चित्रमें अञ्जलि-मुद्रामें वज्रपाणिकी तीन अनुचरोंके साथ मूर्ति है। मथुरा-कलामें भी वज्रपाणि इन्द्र बुद्धके अनुचर दिखाये गये हैं। वज्रयानमें तो वज्रपाणिकी महिमा बहुत ही अधिक है। वज्रपाणि एक बोधिसत्वका भी नाम है। इसी कमरेके चित्र नम्बर एकमें प्रायः चौबीससे भी अधिक बुद्धोंकी मूर्तियां कई पंक्तियोंमें दिखायी गयी हैं। ये बुद्ध रत्नाकृतिके मध्यमें अङ्कित किये गये हैं। खोतानसे मिले हुए एक चित्रमें (७-८ वीं शताब्दी) बुद्धका विराट् रूप दिखाया गया है, जिसमें नाना भांतिके चिह्न बने हुए हैं। उनके उदरमें एक सर्पाकार चिह्नपर चतुरस्त्र वेदि और शिवलिङ्गकी भांति ज्वाला बनी हुई है।

नं० १ कमरेके चित्रोंमें बुद्धके कई बहुत ही विशाल चित्र हैं। उनमें छायामण्डल और प्रभावली भी बनी हुई हैं।

ये चित्र बहुत ही सुन्दर और भव्य हैं। उनके रङ्गोंकी चटक आज तक बहुत गहरी मालूम होती है। बुद्धके मुखारविन्दसे बहुत ही शान्ति और समाधि-जनित प्रज्ञा लक्षित होती है। यह भाव चित्रकारोंकी श्लाघनीय सफलता प्रकट करता है। यहींपर एक चित्रमें जलपर विचरते हुए दो नागराजोंका चित्रण है। इनके हाथमें एक पात्रके ऊपर पांच रत्न पंक्तिबद्ध रखे हुए हैं। आपोमण्डलपर विराजमान नागराजोंका पञ्चरत्नोंको वहन करना एक मनोहर योग-सम्बन्धी कल्पना है। शिवके स्वरूपमें कुण्डलिनी और पञ्चचक्रोंसे भी यही तात्पर्य व्यक्त किया जाता है। मथुराके संग्रहालयमें पञ्चशीर्षा नागराज्ञी भी पञ्चरत्न या स्फुलिङ्गोंका वहन करती हुई दिखायी गयी है। इसी कमरेमें लगा हुआ तुर्फानसे प्राप्त सातवीं शताब्दीका पद्मस्थित तीन देवताओंका चित्र अत्यन्त ही मोहक और सुन्दर है। इसी प्रकार डी० नम्बरके दो केसमें गगनविहारी सपक्ष देवताका चित्र तो अजन्ताके उत्कृष्ट चित्रोंके साथ टक्कर लेता है। इसी स्थानपर दीपङ्कर बुद्धका भी चित्र है।

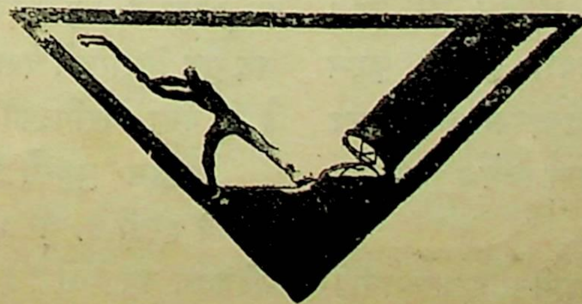
हिन्दू-धर्मकी दृष्टिसे अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण एक चित्र दूसरे कमरेमें है। इसमें मयूर वाहनपर कार्त्तिकेयकी मूर्ति है। तथा तिब्बतमें होनेवाले चौंरी जातिके वृषभपर महाकाल शिवकी मूर्ति है, जिसमें वे ऊपरी हाथोंसे गजचर्मको उठाये हुए हैं। इस चित्रको देखकर सहसा ही कालिदासके उज्जयिनीके महाकालेश्वर-वर्णनका निम्न श्लोक याद आ जाता है :—

> पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
> सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।
> नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
> शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या॥
>
> पू० मेघ ३६॥

इसी भव्य चित्रके एक भागमें गदा लिये हुए एक हाथ दिखाई पड़ता है। यह चित्र सुरक्षित नहीं रहा, अन्यथा इसमें चतुर्भुजी विष्णुकी मूर्ति मिलनेकी सम्भावना थी। इसीके एक अंशमें गरुड़जी दिखाये गये हैं, जो दैत्योंके साथ युद्ध कर रहे हैं। नागोंके साथ गरुड़का युद्ध तो मथुरा और गन्धार-कलामें प्रसिद्ध ही है। चित्रके मध्यस्थ दक्षिण भागमें ही पद्मासनस्थ बुद्धकी मूर्ति है। इस प्रकार बौद्ध-धर्म-सम्बन्धी एक ही चित्रमें कार्त्तिकेय, विष्णु और महाकाल शिवका चित्रण कुछ कम आश्चर्यकारक नहीं है। यह अवस्था महायान सम्प्रदायके उस युगकी है, जब हिन्दुओंके देवी और देवता भी बौद्ध धर्मके अभिन्न अङ्ग बन गये थे। इसी कारण महायान बौद्ध धर्म और पौराणिक हिन्दू धर्ममें नाम-मात्रका ही भेद रह गया था और एक ही व्यक्ति या परिवार दोनों धर्मोंके प्रति अपनी भक्ति या आस्था रख सकता था।

चित्रोंमें सबसे अधिक संख्या तो तुर्फानके मन्दिरों और विहारोंसे प्राप्त चित्रोंकी है। पहले और दूसरे कमरेमें ये ही चित्र प्रदर्शित हैं। तीसरे कमरेमें जो चित्र हैं, वे चीनी तुर्किस्तानके ही विभिन्न और परस्पर दूरस्थित प्रदेशोंसे प्राप्त हुए हैं। इनमें मीरनसे मिले हुए चित्र तीसरी-चौथी शताब्दीके अनुमान किये गये हैं। इनमेंसे कुछ स्थानोंके नाम ये हैं— खदालिक, मीरन, फरहाद बेग, तोयुक, खर-खोजा, बल मरुभूमि, मिङ्गोई और चीन-फो-तुङ्ग। इसी तीसरे कमरेके बी० दो केसमें पूर्वी ईरानसे ससानी राजाओंके समय (३ रीसे ५ वीं शताब्दी) के भी चार चित्र दिखाये गये हैं। सारांश यह कि सुदूर मध्य एशियासे प्राप्त भारतीय कला और भावोंके व्यञ्जक ये चित्र बहुत ही महत्त्वके हैं। इतिहास, धर्म और कलाकी अति प्रशंसनीय सामग्री इनमें पायी जाती है। ये भारतीय अतीत गौरवके प्रदर्शक हैं और मौर्य-सम्राट्के स्वप्नमें समायी हुई, कालान्तरमें पल्लवित धर्म विजयके भव्य स्मृति-चिह्न हैं।

———



जीव-जन्तुओंके रङ्ग और उनके चमत्कार

श्री ब्रजकिशोर वर्मा, 'श्याम'

यों तो जगत् ही रङ्गमय है, किन्तु यह नहीं है कि अमुक जीवधारीको सहसा कोई रङ्ग प्राप्त हो गया हो। प्रकृतिके काम सविधि होते हैं। उसकी विक्षिप्ततामें भी विधि होती है। जानवरोंको रङ्ग देनेमें भी विधि-विहीनता नहीं है, उद्देश्य कुछ और ही है। लार्ड कामसिङ्गमका यह अनुभव है कि जानवरोंके रङ्गोंका महत्त्व प्राणिशास्त्रानुसार बहुत बड़ा है। बात यह है कि जीवनके सङ्घर्षमें परिस्थितिसे अपनी रक्षाकी सबसे अधिक आवश्यकता प्राणियोंको होती है। जिस तरह एक प्राणी दूसरेको खा जाता है, उसी तरह किसी दूसरे द्वारा खाये जानेका भी उसे भय रहता है। इसलिए कभी तो छलसे अपने शिकारको पकड़नेके लिए और कभी अपने शत्रुसे बचनेके लिए प्राणियोंको अपना रङ्ग-रूप ऐसा बनाना पड़ता है कि निगाहोंके सामने होते हुए भी शत्रु पकड़ न सके और न शिकार देख सके।

जानवरोंके रङ्ग दो तरहके कहलाते हैं—रक्षक और आघातक। रक्षक रङ्ग वह कहलाता है, जो छिपकर आक्रमण-से बचनेमें सहायक होता है। और आघातक वह कहलाता है, जो आक्रमण करनेमें सहायक होता है। ये सब रङ्ग हल्के होते हैं। एक तीसरा रङ्ग भी होता है, जिसे लुभानेवाला रङ्ग कह सकते हैं। लुभानेवाले रङ्ग वे कहलाते हैं, जिनसे किसी जानवरके किसी अङ्गसे सादृश्य होता है और उसीको देखकर शत्रुकी निगाह उसपर पड़ती है। ऐसे भी रङ्ग होते हैं, जो भयका बोध करा देते हैं।

डार्विनका कहना है कि जानवरोंमें भी सौन्दर्यग्राहकता होती है और इसका पता उस समय लगता है, जब वह मादा-को प्रसन्न किया चाहता है, और तभी वह अपने रङ्गको इस तरह प्रदर्शित करता है कि मादाका मन मोहित हो उठे। यही वह समय है, जब बेचारे जानवर क्या, कुरूपसे कुरूप मनुष्य भी अपनेको कामदेवसे भी अधिक सुन्दर समझने लगता है और यही वह समय है, जब उसकी मूर्खता सर्वोच्च शिखरपर पहुंच जाती है।

रङ्गोंके और दो भेद किये गये हैं—स्थायी और अस्थायी। प्रथममें कोई परिवर्तन नहीं होता और द्वितीयमें जानवर परिवर्तन भी कर सकता है। इंगलैण्डमें झांझा नामका एक कीड़ा होता है। ये दो-तीन सौ तरहके होते हैं। परन्तु इनमें बहुत कम तरहके दिखलाई पड़ते हैं, क्योंकि अधिकांशका रङ्ग दरख्तकी पत्तियोंसे ऐसा मिलता-जुलता है कि उनका पता लगाना असम्भव हो जाता है। यही दशा अपने यहां भी बहुत-से कीड़ोंकी है। बहुत-से कीड़ोंकी झिल्लियां अपने विकासके कालमें सांप आदिके भयानक रूपसे बिलकुल मिल जाती हैं अथवा टहनी-पत्ती आदिके रूपमें बन जाती हैं। हरी-हरी पत्तियोंके ऊपर अक्सर हरे-हरे कीड़े इस तरह लिपटे पड़े रहते हैं कि मानों उस पत्तीकी एक स्वाभाविक रेखा है। हरे-हरे तोते पेड़ोंकी हरी पत्तियोंके भीतर झुण्डके झुण्ड बैठे होते हैं और पता नहीं चलता। बरसातके मौसममें एक कीड़ा होता है। इसे देहातमें 'गन्धी' कहते हैं। इसकी दुर्गन्धसे तो इसका पता चलता है, पर इसके और धानके पौधेके रङ्गमें इतनी समानता है कि खेतमें इसका पता लगाये नहीं लगेगा। प्राणिशास्त्रवेत्ताओंका कहना है कि बरसातमें हरएक चीजके साथ कीड़ेका भी रङ्ग हरा हो जाता है। यह भी खोज करके जाना गया है कि इन कीड़ोंका रङ्ग ही पौधे और पेड़ोंसे नहीं मिलता, वरन् आकृति भी टहनियों और शाखोंसे मिलती-जुलती है। यह भी लिखा है कि बाज कीड़ोंका नीचेका हिस्सा चिपटा होता है और जब वे किसी पत्ते या पौधेपर बैठते हैं, तो उसपर चिपक-से जाते हैं। कहा जाता है कि बाज झांझे कीड़ोंको अपना रङ्ग बदलनेकी शक्ति होती है। जब वह नयी और हरी डालोंपर बैठता है, तब अपना रङ्ग हरा कर लेता है और जब पुरानी बादामी डालों-पर बैठता है, तब उसका रङ्ग वही हो जाता है। अपने यहां यह गुण गिरगिटमें देखा जाता है। इसीसे यह मसल हो गयी है कि क्या गिरगिटकी तरह रङ्ग बदला करते हो।

विल्हम गुलरने लिखा है कि दक्षिणी अमेरिकामें एक तितली होती है, जो अपनेको छिपानेके अभिप्रायसे अपनेमें परिवर्तन कर देती है। वह पत्तियोंको इस तरह खाती है कि

वह उन्हींके आकारकी बन जाती है। वह उन्हींमें छिपकर बैठती है। खोज करनेसे यह सन्देह उत्पन्न हुआ कि क्या जो कीड़े इन्हें खाकर जीवित रहते हैं, उनकी दृष्टि इतनी तीव्र नहीं होती है कि इन्हें देख सकें। कहा जाता है कि इन कीड़ोंके चुप बैठनेसे पता नहीं लगता है कि किस पत्तेपर हैं।

जिस तरह परिस्थितिके अनुकूल रङ्ग देकर प्रकृति रक्षाका उपाय करती है, उसी तरह अनुकूल आकार भी दे देती है। अक्सर हरी-हरी केलोंकी नसोंके सदृश बेलोंपर भी लगे हुए कीड़े होते हैं, जिन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि ये हरी नसें या हरी टहनियां नहीं हैं। कई कीड़े इस तरहके देखे गये हैं कि अधिकतर वे जिस बेलपर रहते हैं और उसकी पत्तियां खाते हैं, उसीकी पत्तियोंके आकारके ही उनके पङ्ख होते हैं। वे बैठते हैं, तो साफ मालूम होता है कि उसी बेलकी हरी पत्तियां हैं। गिरगिट किसी टहनीपर लिपटा हुआ ऐसा जान पड़ता है कि उस जगह टहनी कुछ मोटी हो गयी है। कई तितलियां जब पङ्ख सटाये रहती हैं, तो जान पड़ता है कि पौधेकी सूखी पत्तियां हैं।

कुछ ऐसे भी पतिङ्गे होते हैं, जिनका रङ्ग बादामी या हरा होता है और वे अपने इच्छानुकूल इन दोनों रङ्गोंमेंसे किसी एकको ग्रहण कर सकते हैं। यहां यह प्रश्न उठ सकता है कि उनकी इच्छा क्यों इन्हीं दो रङ्गोंमें परिमित कर दी गयी है। एक प्राणिशास्त्रके विद्वान्‌ने लिखा है कि उन पतिङ्गोंको अपनी रक्षाके लिए केवल दो रङ्गोंकी ही आवश्यकता होती है। क्योंकि पत्तों और टहनियोंका रङ्ग हरा होता है और पृथ्वीका बादामी। एक किस्मके कीड़ेके लिए लिखा है कि वह इतनी शीघ्रतासे अपना रङ्ग बदलता है कि अगर वह पत्तोंसे नीचे गिरा दिया जाय, तो जमीनपर पहुंचते ही उसका रङ्ग बादामी हो जाता है।

एक और तरहकी तितलीका पता लगा है, जिसके परोंका रङ्ग बदला करता है। उनका रङ्ग वही हो जाता है, जो उस समय पत्तियोंका होता है। बरसातमें पत्तियोंका रङ्ग हरा होता है और पतझड़में बादामी। इसी तरह उस तितलीका भी रङ्ग बरसातमें हरा और पतझड़में बादामी हो जाता है। एक खोजीने, जिसे भारतीय तिलियोंका ज्ञान है, यह सन्देह किया कि यहांकी तितलियोंके परोंका ऊपरी भाग बहुत ही चमकीला होता है और वे रङ्ग बदलकर छिपनेमें असमर्थ रहती हैं। एक दूसरेका कहना है कि जब तितलियां उड़ती हैं या सचेत होती हैं, तब वे अपने परोंका चमकीला रङ्ग प्रदर्शित करती हैं, क्योंकि उस समय उन्हें अपने शत्रुओंकी आशङ्का नहीं रहती। परन्तु विश्रामके समय उनके परोंका वही रङ्ग होगा, जो उनके आसपासकी चीजोंके रङ्गसे मिलता-जुलता होगा। यह देखा गया है कि ये तितलियां जैसे ही किसी पत्तेपर बैठती हैं, वैसे ही वे स्वयं एक पत्तीकी तरह मालूम होने लगती हैं। ये इतनी शीघ्रतासे रङ्ग बदल लेती हैं कि बड़ा आश्चर्य होता है। इंगलैण्डमें एक तितली अपना वह रङ्ग कर लेती है, जो सूखे पत्तोंका होता है। इसकी आंखें चमकीली होती हैं, परन्तु उसके सोनेके समय उसकी आंखोंपर इस तरहका बल आ जाता है कि आंखें बिलकुल छिप जाती हैं।

इन पतिङ्गों और कीड़ोंकी रक्षाका प्रकृतिने एक और प्रबन्ध किया है। वे जो बीट करते हैं, वह पत्तोंपर गिरकर इनके रङ्गों और आकारसे बहुत कुछ मिलने-जुलने लगता है। एक तरहकी मकड़ी जब डालपर बैठती है, तब मालूम होता है कि वह लकड़ीकी एक छोटी-सी गांठ है। यहां अपने देशमें हरियल और पत्तोंके रङ्गमें इतनी समानता होती है कि पता लगाना बहुत कठिन है, जब तक वह अपना सर न उठावे।

फ्रैन्सिस गाल्टन नामक एक प्राणितत्त्ववेत्ताने यह पता लगाया कि सांप और छिपकली, जिनमें चमकीले रङ्ग होते हैं, यदि दूरसे देखे जायं और सिर्फ उन्हींपर निगाह न रखी जाय, तो उनका चमकीला-सा रङ्ग लुप्त हो जाता है और उनका रङ्ग उन रङ्गोंमें मिल जायगा, जो उनके चारों ओर हैं। उदाहरणके लिए उन्होंने बतलाया है कि जेबराका—जिसे अपनी चलतू भाषामें 'बनैला गधा' कहते हैं—रङ्ग उजियाली रातमें उस स्थानकी चीजोंसे इतना मिलता-जुलता है कि चाहे उसके सांस लेनेसे पता चल जाय कि वह निकट है, पर दिखाई नहीं देगा। यदि काली धारियां अधिक होतीं, तो वह कोई काला पदार्थ दिखाई देता और यदि कम होतीं, तो कोई सफेद पदार्थ मालूम होता है। लेकिन उसके रङ्गके अंशोंमें इतना सादृश्य है कि उसे छिपनेमें पूर्ण सहायता मिलती है।

नाइट जार पक्षीके सम्बन्धमें कहा जाता है कि यह वृक्षोंके ठूंठपर शरीरको तानकर, सिर और गर्दनको ऊंची

करके और अपनी पूंछ तथा डैनोंको वृक्षकी डालमें सटाकर इस प्रकार अचल अवस्थामें बैठा रहता है कि उसे देखकर कटे हुए वृक्षका ठूंठ होनेका भ्रम हो जाता है। कारण, इसके परोंका रङ्ग भूरा सफेद, काला और सफेद, इन सब रङ्गोंका मिश्रण होता है और वह वृक्षकी छालसे हूबहू मिलता-जुलता मालूम होता है। कोई भी आदमी यह नहीं जान सकता कि यह वृक्षकी डालका ठूंठ न होकर, पक्षी है।

हिंसक जीवोंका रङ्ग वहुत कुछ उन रङ्गोंसे मिलता-जुलता है, जो उनके आस-पासकी चीजोंका होता है। यह उनको छिपकर आक्रमण करनेमें सहायक होता है। सूखी झाड़ियोंके भीतर चीते और शेर बैठे रहते हैं और झाड़ियोंके रङ्गमें ऐसे छिप जाते हैं कि दिखाई नहीं पड़ते। सांप, छिपकली और मेढकोंके सम्बन्धमें भी यही बात कही जा सकती है। एक तरहकी मछली होती है, जो आक्रमणका भय होनेपर कीचड़ ऊपर फेंकने लगती है। बाज मछलियां अपना आकार फूलकी तरह बना लेती हैं और उनके निकट जो मक्खियां आती हैं, वे उन्हें चट कर जाती हैं। यह भी देखा गया है कि एक ही तरहकी मछली यदि उस नदी या नालेमें पकड़ी जाय, जो पथरीला है, तो उसका और रङ्ग होगा, पर उसका रङ्ग बदला होगा, यदि उस नदी या नालेकी जमीनमें बालू अधिक है। एकसे दूसरी नदी या नालेके जानेमें मछलियां अपना रङ्ग बदल लेती हैं। रङ्ग बदलनेकी शक्ति मेढकोंमें भी होती है। सर जोजेफ लिस्टरका कहना है कि मेढक पत्थरके खोहोंसे निकालकर देखे गये हैं, तो उनका रङ्ग काला मिला है और जब वे निकालकर धूपमें पत्थरपर रखे गये, तो उनका रङ्ग बहुत कुछ पत्थरकी भांति ही हो गया। पत्थरोंकी तरह चित्तियां उनपर पड़ गयीं। लेकिन पत्थरोंके नीचे फिर जब उन्हें कर दिया गया, तो वही उनका काला रङ्ग बन गया। यह भी देखा गया है कि अन्धे मेढक अपना रङ्ग नहीं बदलते। कारण स्पष्ट है। उन्हें आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि किस रङ्गसे रक्षा होगी। यह भी खोजकर जाना गया है कि छिपकलियों और मेढकोंके रङ्ग बदलनेकी ताकत मरनेके पहले जाती रहती है। यह भी जाना गया है कि उन जानवरोंमें, जिनमें रङ्ग बदलनेकी शक्ति होती है, उनके अन्धे होनेपर उनका प्राकृतिक रङ्ग बजाय गहरेके हल्का हो जाता है। जो जानवर अन्धकारमें रहता है, उसका असली रङ्ग बहुत कुछ जाता रहता है। रोशनीका बहुत बड़ा प्रभाव त्वचापर पड़ता है।

खोज करनेवालोंने यह भी पता लगाया है कि जोड़ेके समय नरके परोंका रङ्ग अधिक चमकीला हो जाता है। इसका मादापर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। तरुण मादाएं चिड़ियां और पतिङ्गे मीलोंसे पता लगा लेते हैं। कहा जाता है कि जो रङ्ग पतिङ्गे अपनी मादाको प्रसन्न करनेके लिए प्रदर्शित करते हैं, वह और समयोंमें छिपाये रहते हैं। इन रङ्गोंके कुछ विशेष चिह्न होते हैं, जिनसे मादा पहचान लेती है कि यह नर उसी जातिका है या नहीं, जिसकी वह है। यदि नर और मादामें थोड़ा भी अन्तर हुआ, तो जोड़ा नहीं बांधेंगे। उन्हींको मनोहारी रङ्ग दिये जाते हैं, जो अपनी मादाको दिनमें या सन्ध्याके प्रकाशमें प्रसन्न करते हैं।

अण्डोंका भी रक्षक रङ्ग होता है। इस बातके खोज करनेवालोंने सैकड़ों उदाहरण दिये हैं। इरस्मस डार्विनने लिखा है कि इस रङ्गका काम केवल छिपनेमें सहायता देना है। अण्डोंको दूरसे देखनेपर पता चलेगा कि उनका रङ्ग घोंसले और उन चीजोंके रङ्गसे कितना मेल खाता है, जो उसके चारों तरफ हैं। नजदीकसे देखनेमें प्रभावमें बड़ी कमी हो जाती है। कुछ लोगोंका कहना यह भी है कि प्रायः अण्डोंका बहुत कुछ वह रङ्ग हो जाता है, जो जोड़ेके समय मादा अनुमान करती है और यह रङ्ग तब तक कायम रहता है, जब तक प्राकृतिक रङ्ग धारण करनेका समय नहीं आ जाता। लेकिन यह सम्मति अभी विवादयुक्त ही है। कोयलके लिए कहा जाता है कि वह जिस घोंसलेमें अपने अण्डे रखने ले जाती है, तो उनका वही रङ्ग कर लेती है, जो उस घोंसलेकी चिड़ियोंके अण्डोंका रङ्ग होता है। अपने यहां कहा जाता है कि कोयल अपने अण्डे हमेशा कौएके घोंसलेमें रखती है और कौआ उन्हें न पहचानकर पाल देता है।

हमारे यहां यह भी खोज की गयी थी कि किस रङ्गकी गायका कैसा दूध होता है। वैद्यक शास्त्रानुसार काली गायका दूध वातनाशक और अधिक गुणवाला है। पीली गायका दूध पित्तनाशक तथा वातनाशक है, सफेद गायका वातविनाशक है। जिन गायोंका रङ्ग बछड़ेके रङ्गसे मिलता है, उन गायोंका दूध प्रशंसा-योग्य है। आधुनिक खोज करनेवाले अभी यहां तक नहीं पहुंचे हैं।

लाल क्रान्तिके बाद रूसका नया चेहरा

श्री 'कुमार', बी० एस-सी०

"शहरोंकी अट्टालिकायें बिजलीके प्रकाशसे चकाचौंध कर, शासकोंका मखौल ही उड़ाती हैं, जब तक कि ग्रामीणोंके घर अन्धकारमें पड़े हुए हैं।"

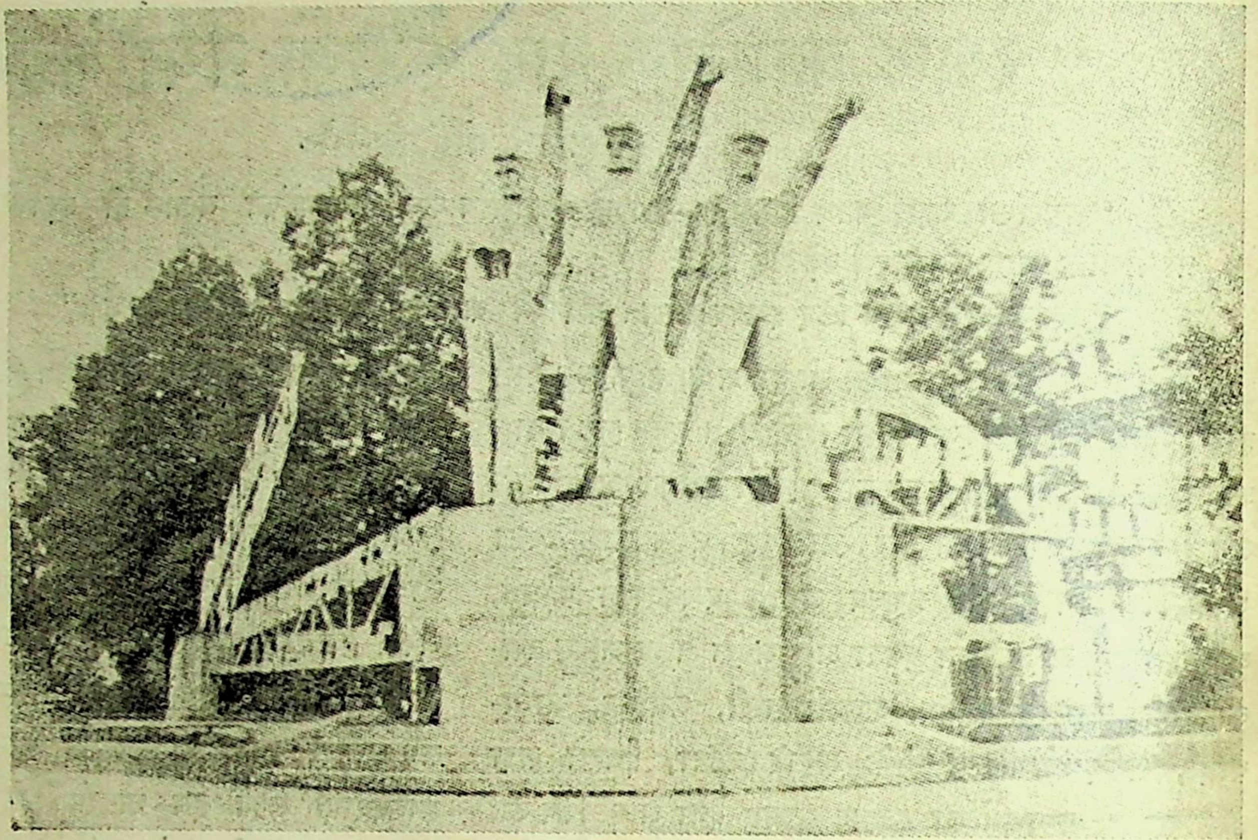
"प्रत्येक ग्राम-वधूके लिए देशपर शासन करनेकी कलाका ज्ञान होना आवश्यक है।" —लेनिन।

आजके भारतके किसानोंकी जो हालत है, बहुत कुछ वैसी ही लालक्रान्तिसे पहले रूसी किसानोंकी थी। बहुत कुछ समान जीवन था। अपने यहां-जैसा ही रहनेका तरीका, अपने यहां-जैसे ही सामाजिक नियम और रिवाज, वही घरकी मालकिनका घरके और प्राणियोंपर प्रभुत्व जमाये रखनेवाला जीवन, औरतके लिए मर्द उसका देवता और मर्दके लिए औरत उसकी बांदी, लकीरके फकीर, अन्धविश्वासी, धर्मान्ध, भाग्यवादी, 'तकदीरमें लिखा है' के सहारे बैठना, ईश्वरसे सदा डरते रहना, महाजनोंका सूदपर रुपया देना और फिर उसे वसूल करनेके लिए लोगोंको सताना, अपने यहां-जैसी ही विवशता, अज्ञानता और मूढ़ता! बहुत कुछ एक-सा चित्र था। जिस प्रकार अपने यहां किसानों और उनके बाल-बच्चोंको जाड़ेकी रात तापते, सिकुड़ते या ठिठुरते गुजार देनी होती है, उसी तरह रूसी किसानोंने भी रातें काटी हैं। रूसी औरतोंने तारे गिन-गिन रातोंको काटा है। ठण्डके मारे उनके बच्चोंको नींद नहीं आती; लेकिन फिर भी वे गुलामीकी लोरी गा-गाकर अपने बच्चोंको सुलानेकी चेष्टा करती थीं। लेकिन ये सब बातें आज विलीन हो गयी हैं और रूस हमारे सामने एक नया चेहरा लेकर खड़ा है—रूसका एकदम काया-पलट हो गया है। इस युगमें रूस ही दुनियाका स्वर्ग कहलाता है।

एक समय था, रूसी किसान जारको पूजते थे। धर्म कहता था, राजा ईश्वरका अवतार होता है। प्रजाको उसे ईश्वर समझना चाहिए। पर इसके बावजूद भी लोगोंमें अराजकता फैल रही थी, और जब-तब जमीन्दारों और महाजनोंके अत्याचारोंसे परेशान हो सिर उचका लेते थे। क्रान्तिके अवसरपर भी बहुत दिनों तक ये लोग इन 'सफेद पोश' लोगोंके साथ हो रहे और लाल सेनामें नहीं आये; वर्षों तक ये लोग साम्यवादके सिद्धान्तोंसे दूर भागते रहे। कारण, अगर सच कहा जाय, तो मामूलीसे मामूली किसान भी अपने मनमें अपनेको खेतका मालिक समझता था। तब भला वह साम्यवादके झगड़ेमें पड़कर यह खेतोंकी मालिकी कैसे छोड़ सकता था? उसे तो यह लगी थी कि कैसे उसका अपनी जायदादपर कब्जा रहे। मानव-प्रकृति ही ऐसी है। उसे अपनी चीजोंसे, दूसरोंकी अपेक्षा अधिक ममता होती है। पर हरएक आन्दोलनमें मजदूरोंका पूरा हाथ होता है। अवसर आनेपर शक्ति भी उन्हींके हाथोंमें आती है। रूसी साम्यवादी दलने इस बातको समझा और अच्छी तरह समझा। तभी तो उसने रूसी क्रान्तिको श्रमिक-विद्रोहपर आधारित किया। किसान तो तब लाल सेनामें आये, जब उन्हें विश्वास हो गया कि क्रान्तिके बाद उनका जमीन्दारों और महाजनोंसे पिण्ड छूट जायगा। क्रान्तिके बाद भी, कई वर्षों तक इन लोगोंके जीवनमें कोई उलट-फेर नहीं हुआ। जिस तरह तब रहते थे, उसी तरह अब भी रह रहे थे। उनके काम करनेका वही पुराना तरीका था और उसी पुराने तरीकेसे खेती आदि भी करते थे। बेशक उन्हें सभी तरहके नागरिक अधिकार मिल गये थे। औरतोंको भी समानाधिकार मिले थे। उन्हें खेतीके लिए खूब जमीनें मिलीं। सरकारने शिक्षा-प्रचारके उपाय किये, हरएक गांवमें स्कूल खोले, जिनमें बच्चोंके लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा जारी की गयी।

१९२८ से १९३२ तक रूसी सरकारने किसानोंकी ओर काफी ध्यान दिया। कामरेड स्टालिनने तो यहां तक घोषित कर दिया था कि यही समय है, जब हमें देहातोंमें घुसकर ग्रामीणोंको ऊंचे उठानेके लिए प्रयत्न करने चाहिए। ग्रामीणोंमें साम्यवादी विचार फैलानेके लिए यही सर्वोत्तम समय है। एक साम्यवादी राष्ट्रको कमजोर और व्यक्तिगत सम्पत्ति रखनेवाले किसानकी जरूरत नहीं है। १९२८ के

सालमें जितनी फसल बोयी गयी थी, उसमेंसे ९७.३ प्रतिशत ऐसे लोगों-की थी, जो व्यक्ति-गत सम्पत्ति रखते थे। काठके हलोंसे खेत जोते गये थे, अनाज हाथसे बोया गया था और प्रायः अन्य कामोंमें भी हाथों-की मदद ली गयी थी। रूसी सर-कारका ध्यान इस ओर गया। देशमें कृषिको फिरसे सुधारनेके लिए, उपजको ज्यादा



लेनिनग्राडके एक बगीचेकी पाषाण प्रतिमायें, जो श्रमिकोंको प्रोत्साहन देनेके लिये खड़ी की गयी हैं। रूसके कितने ही सार्वजनिक स्थानोंपर ऐसी प्रतिमायें खड़ी की गयी हैं।

बढ़ानेके लिए और देशमें उद्योग-धन्धोंको उठानेके लिए उसने एक पञ्चवर्षीय योजना बनायी। देश-भरमें सम्मिलित ढङ्गपर खेती करनेकी योजना जारी की गयी। सरकारी खेत बनाये गये। कई गांवोंके खेतोंको एक कर दिया गया। अलबत्ता, जो लोग इस तरह खेती नहीं करना चाहते थे, उन्हें इसमें शामिल नहीं किया गया। इस योजनासे जहां गांववालोंको फायदा पहुंचा, वहां शुरू-शुरूमें कस्बों और शहरोंके लोगोंने इसे पसन्द नहीं किया। कुछ धनिकोंने ग्रामीणोंको उभाड़ा भी। कई जगह सशस्त्र विद्रोह भी हुआ, और सरकारने भी इस विरोधी आन्दोलनको दबानेके लिए सब कुछ किया। कई जगह उसे गोलियां तक चलानी पड़ीं। और भी बहुत-से निर्दयतापूर्ण कार्य करने पड़े। पर उस समय उसके लिए वैसा करना जरूरी था। छांट-छांटकर गांवोंसे महाजनों और धनिकोंको निकाला गया और हमेशाके लिए उन्हें साइबेरियाके बर्फीले मैदानोंमें छुड़वा दिया। बहुतोंको गोलीसे उड़वा डाला और बादको जो बचे, उनकी योजनाके खिलाफ आवाज उठानेकी हिम्मत न पड़ी। लेकिन जैसी परिस्थितियां थीं, उनमें रूसी सरकारके लिए और उपाय ही क्या था?

जो हो, पांच वर्षके भीतर ही बड़े आकारपर सम्मिलित ढङ्गसे खेती करनेका तरीका कामयाब रहा। दुनियामें आज बड़े आकारपर सबसे ज्यादा खेती रूसमें ही होती है। सम्मिलित ढङ्गपर खेतीके तीन रूप हैं:— (१) सहयोगी सङ्गठन, (२) आर्तल, (३) प्रजा-सभा (कम्यून)। सहयोगी सङ्गठनमें उत्पत्तिके सभी साधनोंका प्रजातन्त्रीकरण नहीं किया गया है। केवल खेतोंको दलके सदस्य सम्मिलित होकर जोतते हैं। आर्तलमें उत्पत्ति, श्रम, जमीन, मशीन, औजार, मवेशी और खेती-सम्बन्धी इमारतोंके मूल साधनोंका प्रजातन्त्रीकरण किया गया है। घरके पासकी जमीन, छोटा बाग, सब्जीका बाग, घर और भेड़, मुर्गी या इसी तरहके अन्य छोटे-छोटे पशुओंके रखनेके स्थानोंका प्रजातन्त्रीकरण नहीं किया गया है। प्रजा-सभामें उत्पत्ति और वितरणके साधनोंका प्रजातन्त्रीकरण किया गया है। धीरे-धीरे लोग सम्मिलित ढङ्गपर खेती करनेका फायदा समझते जा रहे हैं।

इसका एक कारण यह भी है कि सम्मिलित ढङ्गपर जुते और बोये हुए खेतमें ज्यादा और अच्छी फसल होती है। फलतः खेतीका यह रूप दिनपर दिन अधिक लोकप्रिय होता जा रहा है।



मास्कोके कल्चर और रेस्ट पार्कमें एक व्यक्तिका यह वीभत्स पुतला खड़ा किया गया था। क्योंकि उसपर घोर अनैतिक कार्य करनेका अभियोग प्रमाणित किया गया था। अनैतिकता रोकनेके लिए इस प्रकारके पुतले वहां निकालकर घुमाये और जलाये जाते हैं।

घर बने हुए हैं। काम हो जानेपर सारी गाड़ियां इन्हींमें खड़ी कर दी जाती हैं। खेती-के औजारोंकी मरम्मत करनेके लिए कारखाना अलग बना हुआ है। यह सब करनेमें सरकारको शुरू-शुरूमें १८९३ करोड़ रूबल्स खर्च करने पड़े थे।

सरकारी खेतों-का भी कुछ कम महत्त्व नहीं है। इन खेतोंमें काम करनेवाले सरकारी नौकर हैं और उन्हें वेतन मिलता है। ये लोग सरकारी भवनोंमें रहते हैं।

१९३२ में सरकारी खेतों और सम्मिलित खेतोंसे बाजार-को ८४.२ प्रतिशत अनाज और ८३ प्रतिशत रुई दी गयी। सम्मिलित ढङ्गपर खेती करनेके लिए रूसी सरकार जनताको खूब प्रोत्साहित करती है और इस विषयकी शिक्षाके लिए सारे देशमें खूब प्रबन्ध है। लाखोंकी तादादमें मजदूर कालेजों, बिश्वविद्यालयों और स्कूलोंमें किसानीकी शिक्षा ले रहे हैं। और जो अपना अध्ययन पूरा कर चुके हैं, वे फावड़ा और हल-लेकर खेतोंमें उतर रहे हैं। जिन गांवोंको मिलाकर एक कर दिया गया है और जहां सम्मिलित खेती होती है, वहांका वर्णन भी बड़ा मनोरञ्जक होगा जहां पहले बहुत-से गांव थे, वहां अब एक है। मकान एक-से बने हुए हैं। पशुओंके लिए अलग मकान बना हुआ है। सारे गांवके पशु एक जगह बंधते हैं। खेतीके औजारोंके लिए अलग मकान हैं। ये मकान खेतके पास होते हैं और खेतमें काम हो चुकने-के बाद सब लोग सब सामान इसीमें रख देते हैं। खेतीमें इस युगके नयेसे नये ढङ्गके औजारों और मशीनोंका व्यव-हार किया जाता है। गाड़ियोंके रखनेके लिए एक कतारमें

सम्मिलित ढङ्गपर खेती करनेके तरीकेने एक तरहसे गांवोंमें की जानेवाली व्यक्तिगत खेतीका बिलकुल ही खातमा कर दिया है। आप यह न सोचें कि रूसमें चूंकि निःसम्पत्ती-करण हो गया है और वहां सब लोग मिलकर एक साथ खेती करते हैं, अतः वहांके लोगोंका व्यक्तिगत जीवन सीमित हो गया है और लोगोंको स्वतन्त्रता नहीं है। अगर आप ऐसा सोचते हैं, तो गलत है। हां, यह जरूर है कि वहांपर धन, सुख और आनन्द केवल एक आदमीकी सम्पत्ति नहीं है। हरएक आदमी जीवनके सुख भोगता है। सम्मिलित खेतीका यह भी मतलब नहीं है कि रूसमें किसान घरोंमें नहीं रहते और वे दार्शनिक-से सड़कोंपर घूमते हैं। लोग रूसको ईश्वरको न माननेवाला देश सोचते हैं। और इसमें काफी सत्यका भी अंश है। रूसी किसानोंका पिछला जीवन काफी दुःखपूर्ण रहा है, उन्होंने काफी दिक्कतें और मुसीबतें सही हैं। थोड़े ही दिन हुए कि उनका गुलामीसे पिण्ड छूटा है।

रूसके इतिहासके ऐसे बहुत-से पृष्ठ हैं, जो किसानोंके रक्तसे रंगे हुए हैं। जैसा कि कई बार कहा जा चुका है, रूसी किसानोंका यह विद्रोह जार नहीं जारके सिद्धान्तोंके खिलाफ था। उनका यह विद्रोह जमींदारों, सौदागरों, महाजनों और सेठ-साहूकारोंके अत्याचारोंके विरुद्ध था। बहुत-से किसानोंका तो अब भी ख्याल है कि उनकी परेशानियोंका कारण जार न थे। उनका ख्याल है जारको बिलकुल ही न मालूम था कि लोग प्रजापर अत्याचार कर रहे हैं। अगर मालूम होता, तो वे कभी अत्याचार न होने देते। इसी मृगतृष्णामें ये लोग जारके पास अर्जियां भेजते थे कि लोग उनपर अत्याचार करते हैं। आप कुछ करिये। पर उन अर्जियोंको कौन पढ़ता था। और किसे परवाह थी। यह होते भी प्रजा यही सोचती थी कि शायद जार तक उनकी अर्जियां नहीं पहुंचतीं, बीचमें ही उनके जानी दुश्मन अन्य अधिकारियोंने रख ली हैं।

रूसी गांवमें घुसिये। ज्यादातर काठके घर मिलेंगे। हरएक किसानके पास इस तरहका एक घर, बगीचा, सब्जी पैदा करनेके लिए खेत, एक गाय, भेड़, सुअर और कुछ अन्य पालतू चिड़ियां होंगी। घरमें घुसते ही आपकी खुशीका ठिकाना न रहेगा। हरएक चीज साफ-सुथरी और व्यवस्थित होगी। द्वारों और खिड़कियोंपर पर्दे लगे होंगे। जगह-जगह गुलदस्ते रखे हुए होंगे। मेजपर साफ कपड़ा पड़ा हुआ होगा। घरमें बिजलीकी रोशनी। अगर गांव शहर या कस्बेके पास है, तो आपको एक छोटी टेबुलपर रेडियो भी रखा हुआ मिलेगा। एक दूसरी मेजपर चाय गर्म करनेकी मशीन समोवर रखी है। पास ही चायका पूरा सेट सजा हुआ है। हंसती हुई ग्रामीण महिला आकर आपका स्वागत करेगी। एक स्वतन्त्र राष्ट्रकी स्वतन्त्र नारी आकर आपसे मिलेगी और आत्मविश्वासके साथ आपसे घुल-मिलकर बातें करेगी। पहले वह अपने गांवके हालचाल कहेगी। फिर अपने घरका हाल कहेगी। कहेगी, मेरे इतने लड़के हैं, इतनी लड़कियां हैं। एक लड़का कृषिके मशीनरी विभागका डायरेक्टर है। दूसरा खेतहार मजदूरोंका कमाण्डर है। मेरी बड़ी बेटी पिलिपट डाक्टर है। छोटी लड़की राजनीतिककार्योंमें व्यस्त है। थोड़ी देर चुप रहकर वह तात्कालिक राजनीतिक विषयोंपर चर्चा छेड़ देगी। इस वक्त रूसके आगे क्या कठिनाइयां हैं। भविष्यमें रूस क्या करेगा। तब तक उसका पति कामपरसे आ जायेगा और वह चट बुलाकर उसे आपसे मिलायेगी। उस समय जो कुछ बात होगी, उसीसे आपकी समझमें आ जायेगा कि रूसमें पति-पत्नी आपसमें कामरेड-शिपका सम्बन्ध रखते हैं। दो दोस्तकी तरह रहते हैं।

छुट्टीके रोज शामको सिनेमा देखनेके लिए आपको निमन्त्रित किया जायगा। एक लम्बे-चौड़े बागके अन्दर, जो कभी गांवके जमीन्दार साहबके परिवारका बाग था, सिनेमा होता है। अब यह बाग गांववालोंका है और सब उसका फायदा उठाते हैं। दो पेड़ोंके बीचमें पर्दा बांध दिया जाता है और सारा गांव खुली हवामें बैठा सिनेमा देखता है। यहांकी फिल्मोंमें केवल प्रेम, प्रणय आदि नहीं होते। अधिकांश फिल्में राजनीतिक अथवा अन्य विषयक सुधारका उद्देश्य लिये हुए होती हैं। फिल्मों द्वारा राजनीतिक बातोंका खूब प्रचार होता है। प्रायः हर रोज शामको इस तरहकी फिल्मोंका प्रदर्शन आर्तल या प्रजा-सभाकी देखरेखमें होता है।

प्रातःकाल होनेको है। सूर्य अभी नहीं निकला है। आप अपने बिस्तरपर लेटे हुए मजेसे सो रहे हैं कि तब तक अचानक आपके कानोंमें मधुर सङ्गीतकी ध्वनि आयी। कोई बांसुरी बजाता हुआ जा रहा है। उठकर आंखें खोल खिड़कीसे देखा—दूर—दूर एक गड़रिया बांसुरी बजाता सड़कपर जा रहा है। इस सङ्गीतके साथ ही आप देखेंगे, घरकी मालकिन गायका दूध दुहनेके लिए जा रही है। अब गांवकी सब गायें एक खेतमें जुड़ेंगी और वहीं यह गड़रिया उन्हें बढ़िया-बढ़िया भोजन देगा। शाम होते ही ये गायें फिर घर लौट आवेंगी और घरकी मालकिन फिर दूध दुहनेको जाती हुई नजर आयेगी।

सब गांववालोंने मिलकर इस गड़रियेको गर्मीके मौसमके लिए २०० रूबलसपर रखा है। बारी-बारीसे गांवका हरएक घर उसे खाना देता है। घरके मालिक-मालकिन और बच्चे सुबहका खाना खायेंगे। इस वक्त ये लोग दूध, अण्डे, पनीर और मक्खन खाते हैं। बादको जो बड़े हैं, वे खेतोंपर काम करने निकल पड़ेंगे, बच्चे स्कूल चले जायेंगे और मातायें, अगर उनकी गोदमें कोई बहुत छोटा बच्चा है, तब तो घरपर रहेंगी, नहीं तो छोटे-छोटे बच्चोंको लेकर नर्सरीमें जायेंगी और वहां उन्हें शाम तकके लिए सरकारी दाइयोंकी

देखरेखमें छोड़कर खेतोंमें काम करनेके लिए दौड़ी जायेंगी।

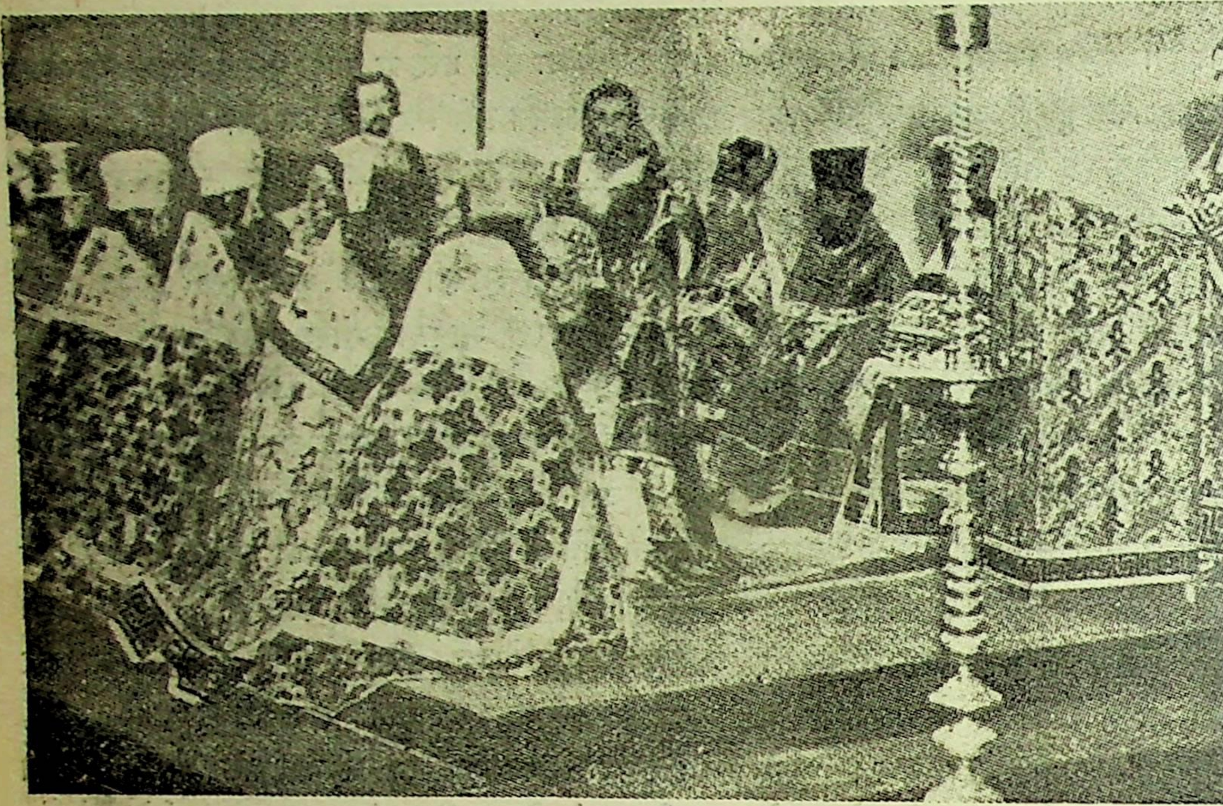
दिन कितना सुहावना है। सूरज कितना अच्छा चमक रहा है। खेत काफी दूरी तक फैले हुए हैं और सब तरतीबसे बने हुए हैं। खेतोंमें कहीं-कहीं फूलके पौधे लगे हुए हैं, जिनसे खेतोंकी शोभा और भी बढ़ जाती है। यह खेत सब गांववालोंका है। इसीमें गांवके सब स्त्री-पुरुष काम करेंगे। हलोंमें घोड़ों और बैलोंको अब नहीं जोता जाता। उनकी जगह मशीनोंसे चलनेवाले बड़े-बड़े हल हैं, जो दो-चार चक्करमें ही सारे खेतको खोदकर फेंक देते हैं। इन मशीनोंके कारण रूसने फसलोंकी पैदावारको चौगुना-पचगुना बढ़ा लिया है। १९२८ में जहां कपासकी खेती केवल ९,७१,००० हेक्टर थी, वहां १९३२ में वह २१,७२,००० हेक्टर हो गयी।

क्रान्तिके बाद बहुत-से देशोंने रूसका बायकाट किया। कुछ लोगोंने तो उसे समानताका अधिकार देनेसे भी इनकार कर दिया। और रूसके हकमें यह अच्छा ही रहा। 'दूसरे राष्ट्र उसकी मदद नहीं करेंगे', इस विचारने ही उसे आगे बढ़नेको प्रोत्साहित किया। उसने अपने उद्योग-धन्धोंको बढ़ाया और सभी तरहकी मशीनें बनाना शुरू कर दिया। यही नहीं, कुछ हद तक सब तरहका कच्चा माल भी पैदा करने लगा। यद्यपि अब संसारके और शक्तिशाली राष्ट्र रूसका सिक्का मानने लगे हैं, लेकिन फिर भी रूसने अपनी सीमाओंको अन्य राष्ट्रोंके लिए बन्द कर रखा है और वह दूसरे राष्ट्रोंको अपने यहां बसकर व्यापार नहीं करने देता। और यह अच्छा है। इससे देशका धन देशमें ही रहता है।

वसन्त ऋतु आ गयी है। इस वक्त रूसमें किसानोंको सांस लेने तककी फुर्सत नहीं है। सब लोग अपने-अपने कामोंमें लगे हैं। यहां इस मौसममें ही राई, गेहूं, कपास, फ्लेक्स और शाक-सब्जियां बोयी जाती हैं। खोलकोजके सब किसानोंको एक खेतमें काम करते देखकर आपकी खुशीका ठिकाना न रहेगा। मर्द, औरत, बड़ी उम्रके लड़के-लड़कियां, सब खेतोंमें काम कर रहे हैं। रूसमें छोटे-छोटे बच्चोंसे काम नहीं लिया जाता। १६ वर्षसे कम उम्रके बच्चोंसे काम करानेपर कड़ीसे कड़ी सजा दी जाती है। १६ वर्षकी उम्र तक हरएक बच्चेको अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा मिलती है।

खेतोंमें काम हो रहा है। चीफ ओवरसियर ईवन सपनीक साहब मजदूरोंकी हाजिरी ले रहे हैं। जो मजदूर नहीं आया है, उसकी गैरहाजिरी करते जाते हैं। सरकारी काम, बीमार पड़ने या इसी तरहका कोई दूसरा आवश्यक काम होनेपर ही कामसे छुट्टी मिलती है, अन्यथा सबको हर रोज कामपर आना पड़ता है। चीफ ओवरसियर साहबके सिरके बाल देहाती फैशनसे कढ़े हुए हैं, उनमें तेल पड़ा है। उनके शरीरपर एक साफ-सुथरी कमीज और पैरोंमें काले रङ्गके, चलनेपर चर्र-मर्रकी आवाज करनेवाले जूते हैं। वे खड़े हुए हरएक मजदूरका काम देख रहे हैं। ऐसा तो नहीं है कि किसीने थोड़ा ही काम किया हो। फसल कटनेपर किसानोंमें फसल बांट दी जाती है। बंटवारा समय और परिश्रमके मुताबिक होता है। जिसने जितना समय लगाया है और जिसने जितना श्रम किया है, उसके अनुसार ही हरएकको फसल दे दी जायगी। काम करते हुए ये लोग एक-दूसरेकी प्रतियोगिता भी कर सकते हैं। खेतोंकी पैदावारी बढ़ानेके लिए अपने विचार, आविष्कार और अनुभवोंको भी बता सकते हैं। प्रत्येक नये आविष्कारके लिए उन्हें भारी-भारी इनाम दिये जाते हैं। अगर कोई मजदूर कोई असाधारण आविष्कार करता है, तो उसे मास्को बुलाया जाता है और नेताओं द्वारा रेड स्टार या आर्डर आफ लेनिन या इसी तरहका कोई दूसरा ऊंचा पुरस्कार दिया जाता है। गत वर्ष मरिया डेमचिङ्को और पसा अङ्गलिना नामक दो ग्रामीण युवतियोंको हल चलानेकी प्रवीणतापर स्टालिनने मास्को बुलाकर अपने हाथोंसे रेड स्टार दिया था और बादको उन्हें सरकारी खर्चेसे उच्च शिक्षा लेनेके लिए भिजवा दिया था। इस तरह रूसी सरकार किसानों और मजदूरोंको हर तरहकी सहायता देकर उनको सुखी बना रही है। कृषि-शिक्षाके लिए उसने हजारों कालेज खोल रखे हैं, जिनमें हजारों छात्र मनसे जा-जाकर पढ़ते हैं। १९२८ में कृषि-कालेजोंमें पढ़नेवाले छात्रोंकी संख्या २७,३०० थी, जब कि १९३२ में वह बढ़कर ९७,७०० हो गयी थी। और अब तो और भी बहुत ज्यादा पहुंच गयी है।

खेतोंमें अभी काम जारी है। दिनके १२ बज चुके हैं। धूप काफी तेज है। इतनेमें दो घण्टेके लिए छुट्टी हो गयी। हरएक नहानेके लिए भागा जा रहा है। कोई नदीमें नहाता है, तो कोई झीलमें। किसान औरतें खेतोंकी तरफ गायें दुहनेके लिए भागी जा रही हैं। रूसमें गायें बड़ी दुधारू होती हैं। उन्हें दिनमें तीन बार दुहा जाता है। १२



लेनिनग्राड़के इस सेण्ट आइज़क गिरजाघरमें प्राचीन धर्मान्धताओंकी हंसी उड़ानेवाली तस्वीरें टंगी हैं। इसमें धर्म-विरोधी अजायबघर है और समय-समयपर धर्मविरोधी भाषणोंकी व्यवस्था होती रहती है।

या दूकानदारी किसी भी शक्लमें करनेकी इजाजत नहीं है। इस खोलकोजके अन्दर और भी बहुत-से दूकानदार हैं, जो सरकारी नौकर हैं और सरकारकी ओरसे तमाम चीजें बेचते हैं। यहां एक मछली बेचनेवाला भी आपका काम-रेड है, भले ही आप कोई बड़े भारी नेता ही क्यों न हों।

खोलकोजमें

बजेसे लेकर २ बजे तक सब कोई सरकारी रेस्टोरांमें जाकर भोजन करते हैं। बादको वे फिर खेतोंमें काम करनेके लिए निकल पड़ते हैं। सन्ध्याको हर आदमीको छुट्टी रहती है और सब इच्छानुसार आमोद-प्रमोदोंमें भाग लेते हैं। कोई सिनेमा जा रहा है, कोई समुद्रकी सैर करने जा रहा है, कोई कहीं और कोई कहीं। बिजलीकी ट्रामें, गाड़ियां, बसें और कारें खड़ी रहती हैं। जो जिसमें बैठना चाहे, बैठे और जहां जी चाहे, जाये। सभ्य और जाग्रत जीवनने रूसके गांवोंका ढांचा ही बदल दिया है। ग्रामीण लड़के-लड़कियां शहरोंमें खूब आते हैं और तरह-तरहके आमोद-प्रमोदोंमें भाग लेते हैं।

और, कस्बों और शहरोंका जीवन भी कुछ कम आकर्षक नहीं है। कस्बेमें घुसते ही आपको खाने-पीनेकी चीजोंका बाजार मिलेगा, जहां किसान लोग अपने-अपने गांवोंकी ताजी सब्जियां, दूध, मांस और अन्य चीजें बेचनेके लिए आये हुए हैं। इस तरहके बाजारको रूसमें खोलकोज कहते हैं। केवल इन्हीं बाजारोंमें किसान लोग निजी वस्तुओंकी खरीद-फरोख्त कर सकते हैं, नहीं तो रूसमें निजी व्यवसाय

आपको सभी दूकानें साफ-सुथरी और सजी हुई मिलेंगी। दूकानें लकड़ीकी बनी हुई हैं और उनकी लम्बी-सीधी कतारें-सी चली गयी हैं। मेजें लगी हुई हैं और उनके पास सफेद सरकारी यूनीफार्म पहने बेचनेवाले खड़े हैं। आपको भावके पीछे परेशान नहीं होना पड़ेगा। हर दूकानमें एक ही भाव होगा। यह भाव हर रोज सरकार तय करती है। हर चीज शुद्ध, अच्छी और ताजी होगी। सरकारी डाक्टरों द्वारा सब चीजोंकी पहले ही जांच हो जाती है।

रूस एक स्वतन्त्र राष्ट्र है। वहांके नागरिक स्वतन्त्र हैं। किसीके ऊपर ऐसा कोई मालिक नहीं है, जो उनका अपमान करे और उनपर अत्याचार करे। मकानों और खेतोंका किराया सीधे सरकारको दिया जाता है, और जरूरतके अनुसार देनेकी मियाद बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त यहां सरकारको रुपया न देकर फसल देनी पड़ती है। रूसके गांवोंमें खून चूसनेवाले महाजन नहीं हैं। कोई किसीको रुपया उधार नहीं दे सकता। अगर कोई आदमी चोरीसे ऐसा करता है, तो उसे गोलीसे उड़ा देने तकका हुक्म है। देशभरमें सरकारी बैङ्कोंका जाल बिछ रहा है। अगर किसी

किसानको रुपयोंकी जरूरत है, तो उसे केवलसरकारके पास अर्जी भेजनी पड़ती है और जरूरतके मुताबिक उसे रुपया मिल जाता है। इस रुपयेपर सूद नहीं लिया जाता और किसानको सुविधानुसार ९, १० या १९ वर्षके अन्दर लौटाल देना पड़ता है। साथ ही हर किसान अपनी बचतको इन बैङ्कोंमें जमा भी कर सकता है, जिसपर सरकार द्वारा अच्छा सूद दिया जाता है।



पहलेका यह गिरजाघर अब अस्पतालका काम दे रहा है।

नारी-स्वतन्त्रताका रूस सदासे पुजारी रहा है। जारके समयमें भी रूसके गांवों और कस्बोंमें रहनेवाली औरतोंको और देशोंकी अपेक्षा काफी स्वतन्त्रता मिली हुई थी। लेकिन रूसी क्रान्तिके बाद तो उन्हें सामाजिक, राजनीतिक एवं साधारण जीवनमें भाग लेनेके लिए बराबरीका दर्जा दिया गया। आज रूसमें औरत मर्दके साथ-साथ जीवनमें आगे बढ़ती है। ऐसा कोई काम नहीं है, जिसे केवल मर्द ही करनेका दावा करें। १९१९ में ज्योंही रूसमें पञ्चायती राज्य कायम हुआ, त्योंही सरकारने महिलाओंको बराबरके हक दे दिये। लेनिनने घोषित किया था—"प्रत्येक ग्रामीण वधूको देशपर शासन करनेकी कलाका ज्ञान होना आवश्यक है। स्त्रियोंको स्वतन्त्र सुविधायें दी जाती हैं। नारी-शक्तियोंका पूर्ण लाभ तो अभी उठाया ही नहीं गया है। उनके सहयोगसे हम देशको ऊंचा उठा सकते हैं। हम किसानों और मजदूरोंमें साम्यवादी भावनायें तभी भर सकते हैं, जब हमारी मां, बहनें और बेटियां पढ़ी-लिखी हों।"

गांव और कस्बेकी मामूली पढ़ी-लिखी औरतको भी सरकारने बुलाकर विभिन्न सरकारी दफ्तरोंमें काम करनेके लिए कहा था। अगर कोई औरत किसी दफ्तरमें काम करना चाहती थी, तो उसे खास सुविधायें दी जाती थीं।

रूसको ठीक ही किसीने 'नारियोंका देश' कहा है। देशभरके कालेजों और स्कूलोंका इस तरह सङ्गठन किया गया है, जिससे कि स्त्री-पुरुष साथ-साथ पढ़ सकें और दोनोंको समान ढङ्गकी शिक्षा मिले। क्रान्तिसे पूर्व लड़के-लड़कियोंकी शिक्षामें जमीन-आसमानका फर्क था। लड़कियोंकी शिक्षाका स्टैण्डर्ड बहुत नीचा था। पञ्चायती सरकारने कानून बनाकर सातवें दर्जे तककी पढ़ाई स्त्री-पुरुष और लड़के-लड़कियोंके लिए अनिवार्य कर दी। फल यह हुआ कि गांवोंमें बहुत-सी पाठशालायें खुल गयीं और किसान स्त्री-पुरुष उनमें पढ़ने लगे।

जारके जमानेमें किसान औरतोंकी अवस्था गुलामों-जैसी थी। मर्द उन्हें बांदियां समझते थे। उनकी न कोई

इच्छा थी और न कोई हक। घरमें रहती थीं और रोटी-पानीमें ही जीवन बिता देती थीं। लेकिन पञ्चायती सरकारने उनकी काया ही पलट दी। कानून बना-बना कर उन्हें अधिकार दिये। मजदूरनी औरतोंको तो और भी अनेकों तरहकी सुविधायें मिली हुई हैं। जो किसान औरत सरकारी नौकर है, उसे प्रसवसे पूर्व और अनन्तर दो-दो मासकी छुट्टी मिलती है। गांव-गांव प्रसव-घर बने हुए हैं, जहां मातायें जा मुफ्त प्रसव करा सकती हैं। इन प्रसव-घरोंमें प्रसवकाल-सम्बन्धी सब तरहकी व्यवस्था मुफ्त होती है। वहींपर माताको जब तक जरूरत समझी जाती है, तब तक रखा जाता है। खाने-पीने, दवा-दारू आदिका प्रबन्ध सरकारी होता है। इस सुन्दर व्यवस्थाके कारण ही आज रूसकी मातायें और बच्चे स्वस्थ हैं। चार बच्चे पैदा हो जानेके बाद प्रत्येक नवजात शिशुके लिए हरएक माताको सरकारी सहायता दी जाती है। मजदूरिनोंको, जिनकी गोदमें बच्चे हैं, काम करनेके वक्त बच्चोंको दूध पिलानेके लिए छुट्टी मिलती है।

प्रणय-विवाह

तलाक और लव मैरिज द्वारा भी रूसी नारीको पूर्ण स्वतन्त्रता दे रखी गयी है। जारके समयमें विवाह एक धार्मिक कृत्य समझा जाता था और उस पवित्र बन्धनको यों ही नहीं तोड़ा जा सकता था; पर अब उसे एक सामाजिक स्वतन्त्र बन्धन माना जाता है और सरकारी आफिसमें केवल रजिस्ट्री करा देनेसे काम चल जाता है। शादी लड़के-लड़कीकी इच्छापर निर्भर करती है। जरूरत पड़नेपर दम्पति एक-दूसरेको तलाक भी दे सकता है। कुछ बन्धन नहीं है। रूसमें और तो और, मुसलमान औरतों तकको यह अधिकार दे रखा गया है कि बड़ी उम्र होनेपर वे चाहें तो स्वयं अपना वर तलाश कर लें। रूसके पूर्वी एशियाके भागोंमें मुसलिम औरतें मुंह खोलकर बाहर निकलती हैं और स्कूलोंमें पढ़ती हैं। वे भोजों और उत्सवोंमें भाग लेती हैं। हरएक औरतको पूरा अधिकार है कि वह अपने पतिको तलाक दे दे। यही बात पतिके लिए भी है। हर आदमी और औरत अपने जीवन-कालमें तीन बार तलाक दे सकती है। अगर किसी तलाक-शुदा औरतके बच्चे हैं, तो जब तक बच्चे १८ वर्षकी उम्रके न हो जावेंगे, तब तक पूर्व-पतिको उनके पालन-पोषणके लिए अपने वेतनका एक तिहाई भाग देना पड़ता है। सरकार पहले ही वेतनमेंसे रुपया काटकर औरतको देगी। दूसरे, तलाकके बाद बच्चे औरतको ही मिलते हैं। अगर बच्चे पतिके पास रहते हैं, तो पत्नीको अपने या अपने नये पतिके वेतनका एक तिहाई भाग पूर्व-पतिको देना पड़ता है। क्रान्तिसे पूर्व रूसमें तलाक खूब होते थे, पर अब बहुत कम होते हैं। जारके जमानेमें पतिके मरनेपर पत्नीको अपने बेटे या सास-ससुरके अधीन रहना पड़ता था। उसका जायदादपर कोई हक न होता था। पर आज रूसमें पतिके मरनेपर उसकी पत्नी ही जायदाद और अन्य सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी होती है। माता-पिता दोनोंके मरनेपर बेटा-बेटीको बराबरका हक मिलता है।

क्या औरतोंको इतनी आजादी देकर रूसने गलती की? प्रत्येक देशमें आधेसे ज्यादा आबादी औरतोंकी है। अगर यह आधा भाग असङ्गठित और योंही रह जाता है, तो इसका मतलब देशको आधी शक्तिसे वञ्चित करना है। रूसमें नारियोंको अधिकार दिये नहीं गये, स्वयं उन्होंने उन्हें प्राप्त किया है। रूसी क्रान्तिमें औरतोंका पूरा हाथ था और अब वे रूसको ऊंचा उठानेमें कारगर साबित हो रही हैं। जो देश आज ऊंचे उठनेके लिए सङ्घर्ष कर रहे हैं, जिन देशोंमें आज आजादीकी लड़ाई छिड़ी हुई है, उन देशोंके लिए यह जरूरी है कि वे नारीका महत्त्व समझें और नारी-समस्याको हल करें, ताकि वे सुन्दर मातायें बन देशकी लड़ाईमें भाग ले सकें—मर्दके साथ कन्धेसे कन्धा लगाकर युद्ध कर सकें।

———



क्या जीवनकी दिक्कतें विवाहसे शुरू होती हैं ?

श्री प्रेमनारायण अग्रवाल, एम० ए०

एक जमाना था, जब भारतमें बाल-विवाहोंकी धूम थी। अब यह धूमधाम कुछ कम हो रही है। इसके बदलेमें अब शीघ्र ही भारतमें एक नयी चीजका बोलबाला होनेवाला है और यह है देरकी शादी। पढ़े-लिखे स्वतन्त्र विचारके मध्यम श्रेणीके युवक अधिकांशमें देरकी शादी पसन्द करते हैं या बिलकुल विवाह नहीं करते। उच्च वर्गके युवक भी प्रायः इस बातमें मध्यम वर्गके युवकोंका साथ देते हुए देखे गये हैं। नीची श्रेणियोंमें अभी बाल-विवाह ही प्रचलित है। हमारा मतलब यह है कि जिस समाजसे बाल-विवाह उठ रहा है, वही देरकी शादीका शिकार हो रहा है। अगर देरकी शादीको हम बुरा समझते हैं, तो हमें यही कहना होगा कि एकके बदले दूसरी आफतमें हमारा समाज जकड़ता जा रहा है। समाजमें यह प्रवृत्ति प्रविष्ट हो चुकी है और धीरे-धीरे जोरदार बनती जा रही है। इस समाजमें जिनका विवाह जल्दी हो जाता है, वे तो कुछ कर ही नहीं सकते हैं; पर बचे हुए युवक इस बातको खूब मानते हैं और खूब उछल-कूद करते हैं। समाजमें अब आजाद विचारोंके आदमी अधिक पैदा हो रहे हैं और इसके ये पूरे प्रभावमें हैं। केवल युवक ही नहीं, युवतियां भी इस ओर अग्रसर हो रही हैं; पर इनकी संख्या अभी कम है, क्योंकि इनमें शिक्षाका उतना प्रचार नहीं हो सका है।

ऐसे विचारोंकी जड़—देरमें शादी करने या शादी बिलकुल न करने आदिके विचार आखिर हमारे समाजके युवक-युवतियोंमें क्यों फैल रहे हैं, इस प्रश्नका उत्तर देना अधिक कठिन नहीं है। हमारे सामाजिक जीवनकी वर्तमान दूषित बनावट, उसका बिगड़ा हुआ गठन, सहानुभूतिकी कमी आदि कारणोंसे एक ओर तो युवक-युवतियोंका जीवन-सङ्घर्ष कठिनतर होता जाता है और दूसरी ओर उनका यह विश्वास दिनपर दिन दृढ़ होता जा रहा है कि जीवनकी दिक्कतें विवाहसे शुरू होती हैं। वे यह मानते हैं कि जीवनमें सङ्घर्ष है, यह सदैवसे होता आया है और बराबर होता रहेगा, यह जरूरी है और इससे डरना कायरता ही है। वे इससे घबराते भी नहीं हैं, इसका सामना करनेको वे सदैव तत्पर रहते हैं, यही नहीं, उन्हें जीवन-सङ्घर्षकी लड़ाई छेड़नेमें आनन्द भी आता है; पर वे इस झञ्झटमें अकेले ही पड़ना चाहते हैं। उनका ख्याल हो गया है कि वे अकेले, बिना किसीकी जिम्मेदारीहीके इस सङ्घर्षमें सफलता पा सकते हैं। अधिक जिम्मेदारियोंके कारण उनकी दिक्कतें बढ़ जाती हैं और समाज उनके साथ बजाय सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करनेके अधिक क्रूर बनकर परेशानियोंको बढ़ाता ही है। ऐसे प्रतिक्रियावादी समाजसे वे अकेले ही भिड़कर सफलता पाना ठीक समझते हैं। जो सफलता पानेके इच्छुक हैं और जो वर्तमान स्वार्थी और अदूरदर्शी समाजकी गतिविधिसे परिचित हैं, वे अविवाहित रहकर ही उसमें सफलता प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील होते हैं। ये लोग प्रायः इस समाजको खूब छकाते हैं और अन्तमें सफलता भी पाते हैं। इसके विपरीत वे युवक, जिनपर विवाहके फलस्वरूप जिम्मेदारियां आ चुकी हैं, समाज द्वारा खूब छकाये जाते हैं। उनके सामने समाज अपने असली भयानक रूपमें प्रकट होता है और अपने क्रूर पञ्जोंसे उनके उदार, सहज, भले विचारों और सद्गुणोंको मार-मारकर परेशान करता है। समाजके सारे नियम-कायदे इन्हींके लिए बन जाते हैं और इनमें जकड़कर ये कराहने लगते हैं। इन्हींकी कराहसे दूसरे युवक सचेत होकर इन्हीं जिम्मेदारियोंसे दूर रहकर समाजमें उत्पात मचाते हैं और यही क्रूर समाज उनका कुछ नहीं कर पाता। उल्टा उनके कार्यकी सिद्धिमें सहायक होता है।

विवाहितों और अविवाहितोंकी स्थितिमें अन्तर—जब तक कोई युवक अविवाहित है, उसके लिए कोई नियम नहीं है, उसके मनमें आवे वह करे, कोई कुछ कहने-सुननेवाला नहीं है। ज्योंही उसकी शादी हुई, बस सारी बातें उसके ऊपर आकर सवार हो गयीं, यहां तक कि उसका चैनसे रहना मुश्किल हो जाता है। उसकी सारी स्वतन्त्रता, सारी चपलता, सारे काम मारे जाते हैं, उसको उसका भविष्य अन्धकारमय दीखने लगता है। जीवनकी सारी उमङ्गों और आशाओंपर

पानी-सा पड़ जाता है, उसे एक कोल्हूका बैल समझनेके लिए मजबूर किया जाता है। आखिर इतना सब परिवर्तन केवल विवाहके होते ही एकदम क्यों किया जाता है? क्या समाजके समझदार तथा व्यवहार-कुशल व्यक्ति कुछ समय ठहरना ठीक नहीं समझते कि वे स्वयं धीरे-धीरे अपनेको नयी जिम्मेदारियोंके उठाने योग्य बना लें? यदि वे एकदम उसे न दबायें, तो क्या कोई भारी अनिष्ट हो जाय? यदि इन बातोंसे परिचित आजकलका युवक-समाज उनसे घबरा-कर दूर रहना ही पसन्द करे, तो उसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है। यह ऐसी बातोंका प्रतिफल है कि आजकल हमारे युवक-युवती जल्दी शादी करनेको तैयार नहीं होते और इस प्रश्नको टालते चले जाते हैं। उनका विश्वास दृढ़ होता जाता है कि जीवनकी दिक्कतें वास्तवमें विवाहसे शुरू होती हैं। अगर वे इस झञ्झटसे अपनेको दूर रख सकें, तो उनका जीवन बड़ी आसानीसे सुखपूर्वक व्यतीत हो सकता है, इस तरफ उनका विश्वास बढ़ता जाता है।

शादी कौन करे—हमारा यह मतलब नहीं है कि सभी युवक-युवतियां शादी कर ही लें। शादी वही करें, जो करना चाहें और जो न करना चाहें, वे न करें। पर इस पवित्र बन्धनमें बंधनेके लिए उनके मार्गमें कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। जो शादीकी जरूरत महसूस नहीं कर सकते, जिनका जीवन बिना एक साथिनके आरामसे व्यतीत हो सकता है और जो उससे अप्रसन्न हों, उन्हें अविवाहित रहनेकी आज्ञा समाजको देनी ही चाहिए। परन्तु जो शादी करनेके लिए तैयार हैं, जिनको एक सहचरीकी आवश्यकता है और जिनका जीवन उसके अभावमें नीरस और भार-स्वरूप बन जायगा, उनका विवाहित रहना ही जरूरी है। अगर ये लोग विवाहके बन्धनमें आबद्ध नहीं होंगे, तो समाजमें बिना उत्पात मचाये नहीं रहेंगे। क्या हमें यह बता देनेकी आवश्यकता है कि समाजने अपने वर्तमान क्रूर ढङ्गको न बदलकर ऐसे युवक-युवतियोंके कारण कितनी गन्दगी प्राप्त कर ली है। अभी तो शुरू है, जरा आगे चलकर बात स्पष्ट समझमें आवेगी। अगर समाजने अपनी रीतियोंको नहीं बदला, तो वह दिन दूर नहीं है, जबकि हमारा समाज एक आमूल परिवर्तन अनुभव करेगा, जिसमें किसीकी चीखपर भी विश्वास नहीं किया जा सकेगा। समाजकी उस दशाकी कल्पना सहृदय और समझदार पाठक कर सकते हैं।

समाजका कर्तव्य—समाजमें इस समय जो हो रहा है, वह बहुत कुछ गलत है। आवश्यकता इस बातकी है कि समाज जिम्मेदारियोंसे जकड़े हुए युवक-युवतियोंकी तरफ सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिसे देखकर उनकी दिक्कतोंको कम करनेमें सहायक हो, ताकि इससे कोई भी डरे नहीं, इसे दिक्कतोंकी जड़ न समझे और उन लोगोंको, जो समाजमें उच्छृङ्खलता फैला रहे हैं—क्योंकि उनपर कोई जिम्मेदारी नहीं है, उनपर कोई भार नहीं है और वे परम स्वतन्त्र हैं, समाज मजबूतीके साथ अपने कब्जेमें रखे। उनको अपने फौलादी पञ्जेसे जकड़े रहनेमें ही कल्याण है। समाजके समझदार व्यक्तियोंको वर्तमान सामाजिक परिस्थितिकी इस गम्भीर समस्याको खूब समझ लेना चाहिए और अगर उनकी समझमें बात आवे, तो वर्तमान रवैयाको बदलनेके लिए उन्हें अपनी पूरी ताकतसे काम करना चाहिए। अभी आसानीसे इसको सुलझाया जा सकता है।

योग्य वरोंका अभाव—समाजकी इस प्रकारकी बातोंका अभी तक युवकोंपर ही अधिक प्रभाव पड़ा है; युवतियोंपर भी पड़ रहा है, पर उतना नहीं। पर जो उच्च शिक्षा प्राप्त करती हैं, अधिकांशमें उनके प्रभावमें आ जाती हैं। युवकोंपर इसकी प्रतिक्रिया यह हुई है कि वे जल्दी शादी नहीं करते, अर्थात् विवाहकी उचित अवस्थाको पार कर जानेकी उन्हें परवाह नहीं होती। इसका फल यह हुआ कि लड़कियोंके लिए योग्य वरोंका मिलना दिनपर दिन कठिन होता जा रहा है और कन्याओंके पिता-माताओंकी कठि-नाइयां बढ़ रही हैं। उनकी इन कठिनाइयोंके फलस्वरूप नयी-नयी समस्यायें भी पैदा होती जा रही हैं।

कितने ही कारण हैं—समाजकी वे बातें कितनी ही हैं और कई रूपोंमें बतायी जा सकती हैं, जिनके कारण युवकोंने जीवनकी दिक्कतोंका प्रारम्भ विवाहसे माना है। इस सम्बन्धमें बहुत-सी बातें कहनेको हैं। वे बातें बहुत व्यापक रूप धारण किये हुए हैं और जीवनके प्रत्येक पहलूमें उन्होंने प्रवेश पा लिया है। करीब-करीब सभी बातोंमें समाज-की यह अदूरदर्शी नीति किसी न किसी अंशमें पायी ही जाती है। इन सबको एकदम जाननेकी अपेक्षा यह अधिक उत्तम है कि हमारे प्रत्येक पाठक अपनी-अपनी दिक्कतोंपर ही गौर करें और परिस्थितिको समझें। अपने आशयको अधिक

स्पष्ट करनेके लिए कुछ बातोंको उदाहरणार्थ हम पाठकोंके सामने अवश्य पेश करेंगे।

दिक्कतोंको कम करनेकी जरूरत — सौभाग्यसे या दुर्भाग्यसे जिनकी शादी उनके बचपनमें नहीं हो जाती और जो शादी होनेसे पहले पढ़-लिख जाते हैं या अपनी समझदारीके कारण सामाजिक गठन, उसके ढङ्गसे परिचित हो जाते हैं, वे अपने भविष्यकी चिन्ता भी करने लगते हैं। अपने भविष्यको बनानेके लिए वे प्रयत्नशील होते हैं। इस समय शादीके रीति-रिवाजोंसे तथा समाजके रुखसे घृणा-सी होने लगती है और वे अपनेको इससे बचाना ही उचित समझते हैं; क्योंकि उनके ख्यालसे विवाहका बन्धन उनकी दिक्कतोंको अधिक बढ़ानेवाला ही साबित होगा। इस समय वे अपनी सफलताके लिए दिक्कतोंको कम करनेकी फिक्रमें होते हैं, उन्हें बढ़ानेको वे तैयार नहीं होते। फलस्वरूप शादीका प्रश्न टल जाता है और जब वे अपनेको खूब मजबूत बना लेते हैं, तब इसपर विचार करते हैं। मजबूतसे हमारा तात्पर्य यह है कि जब वे उस स्थितिमें पहुंच जाते हैं, जिसमें शादी उनकी दिक्कतें बढ़ा ही नहीं सकती और अगर बढ़ा भी दे, तो उसके प्रोग्रामोंमें रुकावट नहीं बन सकती। इस समय वे इस झञ्झटमें पड़नेको पूरे तौरपर तैयार हो जाते हैं और शादीके तेजसे तेज झोंके उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते हैं।

परिस्थितिका प्रभाव उनके मनमें ऐसी बातें क्यों पैदा होती हैं ? जब वे आंख पसारकर अपने चारों तरफ देखते हैं, उनकी आंखें खुल जाती हैं। वे देखते हैं कि वे युवक, जिनसे बड़ी-बड़ी आशायें थीं, जो बड़े होनहार थे, जो जीवनमें कुछ करना चाहते थे, विवाहके बन्धनमें आबद्ध होते ही समाजकी दुष्टताके शिकार होकर सारा अपनापन भूल गये। उनकी सारी आशाओं, तरङ्गों, महत्त्वाकांक्षाओं आदिपर तुषार पड़ गया। यही नहीं, वे अपना सब कुछ खोकर भी प्रसन्न नहीं हैं। सामाजिक परिस्थितिके शिकार-स्वरूप अपनी जिन्दगीकी घड़ियां गिनते ही वे दिन व्यतीत करते हैं। जिस समाजको उनकी सहायता करनी चाहिए थी, वह अब उनका दुश्मन है। वे यह स्पष्ट अनुभव करते हैं कि इस चक्करमें एक बार आकर जल्दी संभल नहीं सकते। अन्य लोगोंने, किसी कारणसे अपनी जिन्दगीकी जो सबसे अक्लमन्द की बात की है, वह उनकी रायमें शादी न करना ही है। उनके विपरीत ये लोग मजे उड़ाते हैं। समाजके झञ्झट, बन्धन आदि इनके लिए नहीं हैं। समाज इन्हींका सहायक है; क्योंकि इनसे उसे डर है और ये लोग उसे डरा-धमकाकर अपना उल्लू खूब सीधा करते हैं। अपनी सारी बातोंको सफल बनानेमें बहुत अंशोंमें सफल होते हैं। समाजको ये खूब छकाते हैं, उसकी ठीक और न्यायोचित बातोंको तोड़मरोड़ डालते हैं, फिर वह इनका कुछ नहीं कर पाता। तब इनकी भी यही इच्छा होती है कि वे भी इसी प्रकार बनकर सांसारिक सङ्घर्षमें सफलता क्यों न प्राप्त करें।

युवकोंका दृष्टिकोण — अपने समाजकी उन कुछ बातोंको हम यहां अवश्य लिखना चाहेंगे, जिन्हें युवक-युवतियां अपने प्रतिकूल समझ लेती हैं। वास्तवमें बात कुछ भी हो, समाजकी ये बातें चाहे बिलकुल ठीक ही हों; पर युवकों आदिकी उनकी तरफसे जो राय है, उसे ही यहां हम लिखना चाहेंगे। एक ही बातको कितने ही व्यक्ति देखते हैं और सब लोग अपनी-अपनी अलग-अलग राय उसके बारेमें कायम करते हैं। इसी प्रकार समाजकी इन बातोंको तरफसे युवक-समाजकी यह राय है और इसीके आधारपर वह अपने आगेके कार्योंको सञ्चालित करता है। हो सकता है कि वे अपनी अज्ञानता, अनुभव-हीनता आदिके कारण सामाजिक रुखका ठीक-ठीक अन्दाजा न लगा सके हों, उनका दृष्टिकोण ही गलत हो। यह बात असम्भव नहीं है। पर जो बात है, उसे तो प्रकट करना ही चाहिए, ताकि समाजके लोग उसे जानें-समझें। अगर गलत समझे हुए हैं, तो उनकी भ्रान्तियां दूर करनेके लिए प्रयत्न होना जरूरी है और अगर समाजमें ही वे सब बातें मौजूद हैं, तो समाजको उन्हें निकाल बाहर फेंकनेके लिए शीघ्र उद्यत होना चाहिए।

विवाह होते ही जिम्मेदारियां बढ़ती हैं— यह बात तो सभी मानते हैं कि विवाहसूत्रमें बंधनेपर युवक-युवतियोंकी जिम्मेदारियां बढ़ जाती हैं और धीरे-धीरे युवकको संभलकर परिवारके हितचिन्तनकी कामना करनी पड़ती है; पर अधिकांश अभिभावक अपने पुत्रों आदिकी शादी होते ही उनपर सारी जिम्मेदारियां लाद देते हैं। केवल उनकी जिम्मेदारियां ही उनके अनुभवहीन कन्धोंपर डालते हों, सो भी नहीं, वे तो परिवार-भरकी उनपर ही रख देते हैं। विवाह न होनेके समय तक उन्हें उनके बारेमें कुछ भी बताया नहीं जाता, उनकी

हवा तक उनको नहीं लगने पाती; पर शादीके होते ही एकाएक वे उनपर टूट पड़ती हैं। उनके माता-पिता इसे ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझते हैं। इस भारको सौंपते वक्त उन्हें यह भी ख्याल नहीं होता कि जिन बातोंको उसने अभी तक समझा नहीं, किया नहीं, उन्हें एकाएक कैसे ठीक-ठीक तरीकेसे निभा सकेगा। न उन्हें यही ख्याल होता है कि वह उनके करने योग्य भी है या नहीं। भारतमें अधिकांश विवाह विवाहको उचित आयुके बहुत पहले ही कर डाले जाते हैं और ये जिम्मेदारियां भी अधिकतर इन लड़कोंके सिरपर ही थोपी जाती हैं। अपने माता-पिताकी इस अदूरदर्शी नीतिसे युवक घबरा जाता है और दूसरे युवक इससे एक सबक लेते हैं और इस झन्झटसे दूर रहनेमें ही अपना कल्याण समझते हैं; क्योंकि विवाह उनके सुख-स्वप्नोंका अन्त करता है।

परिवारका भार—विवाहके समय इस बातपर भी ख्याल नहीं किया जाता कि लड़का अपने खर्चके लिए काफी या कुछ कमाता भी है या नहीं। वास्तवमें माता-पिता इस प्रश्नको कोई महत्त्व ही नहीं देते। उनकी निगाहमें विवाह ही सबसे आवश्यक प्रश्न होता है। बिना विवाह कर दिये उनका कर्तव्य पूरा नहीं होता। विवाह करते ही वे अपने कर्तव्यको पूरा समझने लगते हैं! पर ज्योंही युवकका विवाह हुआ कि माता-पिताको यह फिक्र हुई कि वह अपने खर्चेके लिए स्वयं कमावे और अपनी पत्नीका भार स्वयं उठावे। वे उसकी अब तनिक भी सहायता नहीं कर सकते। अगर युवकके कमानेमें कुछ देर है, तो वह देरका समय बड़ी मुश्किलसे कटेगा। इस बीचमें उस युवकपर तथा उसकी बेगुनाह स्त्रीपर न जाने क्या-क्या बीत जाय, उसे कितनी खरी-खोटी सुननी पड़ें, किस तरह वह समय काटना पड़े। इसकी उनके माता-पिताको कुछ भी चिन्ता नहीं होती। बहुतेरे युवक तो इस समय तक ठहर ही नहीं पाते और उसे अधूरा ही छोड़कर कमानेके लिए मजबूर होते हैं। विवाहके होते ही माता-पिता अपने पुत्रका भार संभालनेके लिए एकदम नाकाबिल हो जाते हैं। विवाहकी शान और ठाटमें हजारोंका फूंकना उन्हें बुरा नहीं मालूम पड़ता और न वह भार-स्वरूप ही होता है; पर युवक दम्पतिका साल-दो-सालका निर्वाह उनके लिए असहनीय भार होता है। अगर वे युवकके खर्चको कुछ समय तक नहीं सह सकते, तो उसका विवाह न करें या जब वह कमाने लग जाय, तब शादी करें। मगर यह बात उनके दिमागमें नहीं समाती और वे उसका सर्वनाश करनेपर ही कमर कसे तैयार होते हैं। कुछ समय न ठहर सकनेके कारण उन माता-पिताओंने कितने ही युवकोंकी सारी आशाओंपर और जीवनकी सफलतापर पानी फेरकर उन्हें किसी मतलबका नहीं रखा है।

पत्नीसे झगड़ा—कहीं दुर्भाग्यसे पति-पत्नीमें अगर न पटी, तब तो उनकी दिक्कतोंका कहना ही क्या। एक तरफ बाहरकी आफतें और दूसरी तरफ घरका क्लेश। घर और बाहर इस बेचारेको कहीं भी चैन नहीं। बाहरकी आफतोंसे घबराकर जब वह सुख और शान्तिकी खोजमें घरकी तरफ जाता है और उन्हें यहां भी न पाकर अगर वह मन मारकर कुएंमें आत्म-हत्याके लिए कूदता है, तो क्या अपराध करता है? आफतोंपर आफत पड़नेपर अगर उसका दिल टूट जाय, तो क्या आश्चर्य। घरकी कांय-कांयसे उसकी दिक्कतें बढ़ ही जाती हैं। उस समय एकमात्र सहारा उसे अपने श्वसुरकी तरफसे मिल सकता है; पर वे भी इस तरफसे उदास रहते हैं। विवाहके समय युवकके पिताकी करतूतोंसे, उनके लालचसे कन्याका पिता भी ऊब जाता है और उनकी तरफसे उदासीन हो जाता है। बादमें कन्याकी लड़ाई-झगड़ोंकी शिकायतोंसे युवककी तरफसे भी उसे कोई दिलचस्पी नहीं रहती। चारों तरफसे सब लोग इस दम्पतिको असहाय छोड़ देते हैं और ये संसार-सागरमें भरपेट भोजन पानेके लिए छटपटाया करते हैं, इस दम्पतिके सामने संसार-वैभवको प्राप्त करना, संसारमें आनन्दसे रहना आदि बातें नहीं होतीं, वरन् उसे तो उस समय किसी प्रकार जिन्दा रहनेकी सूझती है, उसके सारे प्रयत्न उसी उद्देश्यसे प्रेरित होकर होते हैं। युवक अपने विवाहके पहलेके सुख-स्वप्नोंको भूलकर संसारमें एक व्यथित प्राणी बन जाता है। उसमें न तो पहले-सी उमङ्गें, जोश-खरोश, उत्साह रहता है और न जीवनमें कुछ करनेकी बात ही याद रहती है। जीवन-नौकाको किसी तरह पार तक खे लेना ही उस समय उसकी सबसे बड़ी आकांक्षा होती है। जीवनकी अन्य बातोंसे, दुनियाके रद्दोबदलसे, संसारके उतार-चढ़ावसे, सामाजिक सुधार-बिगाड़से उसे कोई सरोकार नहीं; उसके लिए तो दुनियामें कुछ आकर्षण नहीं रहता, उसकी अपनी दुनिया ही उसके लिए सब कुछ होती है

और इससे उसे समय ही नहीं मिलता, जो वह दूसरी तरफ आंख उठाकर देखे। उसकी बातपर विचार करनेका उसके पास समय कहां ?

सन्तानका भार—जो लोग इसी चक्कीमें पिसे होते हैं, उसी समय उनके सन्तान भी पैदा होने लगती है। माता-पिताकी दिक्कतोंको वे अधिक बढ़ा देते हैं। नयी आवश्यकतायें उत्पन्न होती हैं और इनके लिए अधिक धनकी आवश्यकता होती है। ऐसे समय, जबकि उनका भरण-पोषण मुश्किलसे होता है, ईश्वरकी यह देन उनको अभिशाप-रूप लगती है। माता-पिताकी विपरीत दशाका प्रभाव बाल-बच्चोंपर भी पड़ता है, जो समयपर अपना कुप्रभाव दिखलाये बिना न रहेगा। न यह दम्पति अपनी इस नयी जिम्मेदारीको ठीक तरहसे निभा सकता है। अपनी सन्तानका वह वर्तमान वैज्ञानिक साधनोंके सहयोगसे लालन-पालन नहीं कर पाता। इससे भी उसके मानसिक क्लेशकी मात्रा बढ़ती है। प्रायः इस सन्तानके माता-पिता अभी तक स्वयं ही लड़के होते हैं, वे इन बातोंको ठीक तरहसे करना ही नहीं जानते। इसका नतीजा यही होता है कि वे स्वयं जो कुछ भोगते हैं, वह तो भोगते ही हैं, पर अपनी सन्तानको भी योग्य बनानेसे वञ्चित रह जाते हैं—जो भारी राष्ट्रीय हानि है। इसी नाजुक परिस्थितिके समय प्रायः माता-पिता मय बच्चोंके बीमारीके भी शिकार हो जाते हैं। अगर बीमारीसे बच भी गये, तो उनका शरीर सूखकर कांटा हो जाता है। बलहीन, कमजोर शरीर व्याधियोंका मन्दिर होता है। कमाने-खानेकी दिक्कत, कमजोर शरीरसे अधिक परिश्रम आदि बातोंके कारण उनका स्वास्थ्य सदाके लिए बिगड़ जाता है।

कमानेकी दिक्कतें—ऐसे परिवारको रुपयेकी शुरूसे ही आवश्यकता महसूस होने लगती है, बिना कमाये उनका एक दिन भी काम चलना मुश्किल होता है। उनकी नावको बीचमें इस प्रकार छोड़ा जाता है—खूब सोच-विचारकर—कि उन्हें संभलने तकका मौका नहीं मिलता। उनकी आवश्यकतायें होती ही हैं प्रत्येक मनुष्यकी तरह और उनकी पूर्तिका होना भी जरूरी है। इसका परिणाम यही है कि युवक महाशयको जल्दीसे जल्दी कमानेकी फिक्र हो, जिससे उनका पेट पल सके। इस भीषण परिस्थितिमें समाजके क्रूर प्राणी उनकी स्थितिका लाभ उठानेसे नहीं चूकते। गरजपर सब चीज तेज मिलती है। जब उन्होंने देखा कि अमुक युवकको नौकरीकी सख्त जरूरत है और बिना इसके उसका काम नहीं चलेगा, तो उसकी योग्यतासे भी कम रुपया उसको मासिक वेतनके रूपमें दिया जावेगा। उस बेचारेको इतना अवसर नहीं कि इनसे अपनी बेगरजी दिखाकर अच्छी तनख्वाह प्राप्त कर सके। न उसे यही मौका मिलता है कि वह अपने लिए एक ठीक-सा व्यवसाय बना सके। उसे तो रुपयेकी खोजमें एक कामसे दूसरे कामपर मारा-मारा फिरना पड़ता है। इससे वह किसी एक कामको खूब समझ नहीं पाता और न उसे अच्छी तरह कर सकने योग्य ही हो पाता है। समाजकी इस प्रवृत्तिके फलस्वरूप वह बिलकुल स्वार्थी बन जाता है, उसे अपने सिवा किसीकी चिन्ता नहीं होती। उसका काम बनना चाहिए, चाहे सब मिट्टीमें मिल जाय; समाजका सत्यानाश हो जाय। उसमें समाजके प्रति जरा भी अच्छी भावनायें विद्यमान नहीं रहने पातीं। उसमें अपने मतलबकी ही परवाह रहती है, क्योंकि उसे सब ऐसे ही आदमी मिलते हैं, जो उसकी दयनीय परिस्थितिसे लाभ उठाना चाहते हैं। ऐसे व्यक्ति उसे मिलते ही नहीं, जो उसके साथ सहानुभूति दिखा सकें और उसके भारको बातोंसे भी हल्का करनेमें मदद दें। अगर ऐसा परेशान व्यक्ति समाजको भूल जाय और उसकी परवाह करना छोड़ दे, तो कौन-से आश्चर्यकी बात है!

अविवाहित कौन है—इस प्रकारकी कितनी ही बातें हैं, जिन्हें देख-सुनकर समझदार एवं पढ़े-लिखे युवक-युवती इस झञ्झटसे दूर रहकर संसारमें सफलता प्राप्त करना चाहते हैं। कुछ लोग देरकी शादी करना पसन्द करते हैं और कुछ बिलकुल ही नहीं करते। ऐसा करनेवाले युवक वे होते हैं, जिनमें आत्म-सम्मानकी भावना होती है, जो जीवनमें कुछ कर सकनेवाले होते हैं, जिनका अपना निजी व्यक्तित्व होता है और जो अपने आपको संसारके थपेड़ोंसे झुकाकर जानवर बनकर नहीं रहना चाहते। पहले तो बहुत-से युवकोंका विवाह उनके माता-पिता द्वारा कर दिया जाता है ऐसी अवस्थामें, जबकि वे इसकी दिक्कतों, महत्त्व आदिको नहीं जानते या उनकी मुखालिफत करनेकी उनकी हिम्मत नहीं होती। जो कुछ बचते हैं, वे रुपयोंके लोभमें, नौकरियोंके लालच आदिमें फंसकर शादी करके अपने निजी व्यक्तित्वको खो बैठते हैं। ऐसे लोग थोड़े ही होते हैं, जो माता-पिताकी

मुखालिफत करके, उन लोभ-लालचोंसे बचकर अपना स्वतन्त्र अस्तित्व कायम करनेके लिए अविवाहित रहते हैं। वास्तवमें यह बड़े होनहार और तेज युवक होते हैं और किसी भी देश-का ये भारी उपकार करनेके लिए सर्वथा योग्य होते हैं, ये लोग कुछ न कुछ करते ही हैं। पर उन लोगोंका, जो विवाह करके सांसारिक जीवनमें प्रवेश कर जाते हैं, रुपया ही सब कुछ हो जाता है और वे मनुष्यत्वके पदसे नीचे गिर जाते हैं।

सामाजिक ढङ्ग बदले – अगर समाजके जिम्मेदार व्यक्ति इस बातको समझें और समाजकी गतिविधिको बदलकर समयके अनुकूल बनावें, तो कोई बात नहीं कि युवकोंमें इस प्रकारकी भावनायें उत्पन्न हों और सामाजिक जीवनको खतरेमें डालें। समाजका कायम रहना मानव-समाजके हितके लिए बहुत आवश्यक है। बिना समाजके मनुष्य रह नहीं सकता; क्योंकि वह सामाजिक प्राणी है। समाजका अच्छा होना उज्ज्वल भविष्यका परिचायक है। पर समाज-की व्यवस्था ही खराब हो और वह खतरेमें हो, तो मानव-समाजका क्या होगा, यह भी कल्पनामें आ सकता है। जहां तक हमारा ख्याल है, वे आजकलके जमानेकी बातें ही हैं, जिनके कारण युवकोंको सामाजिक जीवनमें रहना भार-स्वरूप मालूम पड़ता है। सामाजिक जीवनमें रहनेके लिए विवाह सूत्रमें बंधना आवश्यक है और विवाहको उसकी प्रथम सीढ़ी ही समझना चाहिए। भारतमें एक जमाना था, जब युवक इसमें आना अपना कर्तव्य समझते थे और उनके आने-पर समाजका बर्ताव उनके साथ सहानुभूतिपूर्वक होता था। आज बदले हुए सामाजिक रवैयाके फलस्वरूप युवक सचेत होकर विवाहमें जीवनकी दिक्कतोंका प्रारम्भ देखने लगे हैं।

हेमन्तका आरम्भ

शीतल तुषारकी ज्वालासे
मुख इन्दीवरका कुम्हलाया;
लो, हिमके ज्योत्स्ना-मण्डपमें
सुषमाका चन्द्रातप छाया !

लगते ही भू की वायु तरल
हो जातीं गल, किरणें कोमल;
पृथिवी शस्योंसे श्यामल-सी,
उत्तेजित मृगमदसे वन-वन !

तन्द्रा, प्रमाद, जड़ता, तृष्णा;
सुख-सौरभसे विह्वल कण-कण !
नभकी नीलमकी सीपीमें
दिन, सोनेका मोती निर्मल !

गेहूँ - सरसोंके खेतोंमें
अंकुरित हुई जगकी आशा;
ये प्रेमी पक्षी सीख रहे
वृक्षोंपर मानवकी भाषा !

आः ! अकस्मात् किसकी उंगली-
सा यह समीर द्रुत बढ़ आया ?
रोमाञ्चित तन मेरा समस्त;
छूते ही थर-थर-सी काया !

नव-ग्राम-वधू-सी उषा डाल
आयी सलज्ज-श्री, अवगुण्ठन;
विरही कदलीका हृदय-पत्र
हो गया छिन्न, आहत, तत्क्षण !

चिर-तममें छिप अन्तर्तमके
सोये इच्छाके शत भुजङ्ग;
सहसा वसन्तके पुष्पोंमें
फिर फूट पड़ेंगे ये अनङ्ग !

—आरसीप्रसाद सिंह।

रोटीका मूल्य

श्री रामसरन शर्मा

रधियाने चौंककर मुंह ऊपर उठाया।

सामने जमादार खड़ा हंस रहा था। एक हाथ काली, डरावनी मूंछोंकी नोकपर था, दूसरे हाथमें पतला बेंत।

आंखोंमें शैतानियत, बदमाशी मानो उबली पड़ती थी। मुखपर विजयकी चमक। ठीक वैसी ही, जैसी बिल्लीके मुखपर होती है, जब वह पञ्जेमें दबे चूहेको उलट-पलटकर देखती है।

रधियाको 'मील' में काम करते दो ही तो दिन गये थे। काम हल्का ही था---रङ्ग-रङ्गके सूतको कायदेसे मशीनके लिए लगाना---पर रधिया अभी नयी ही तो थी।

शायद वैसे वह काम न भी करती। अभी साल ही भर तो हुआ था ब्याहको। पर, रधियाका आदमी कुछ ऐसा बुखारमें पड़ा था कि अच्छा होने ही न आता था।

लाचार, भूखकी मार···रधिया मजदूरी करने आयी थी।

सोलह वर्षकी उम्र, गेहुंआ रङ्ग, बड़ी-बड़ी आंखें—गम्भीर-सी, लज्जित-सी, कुछ सोचती-सी।

हां, तो रधियाने चौंककर देखा। दाहिना गाल अब भी जल रहा था। वहीं, जहां जमादारने छू दिया था।

माथेपर बल···मुख तमतमाया हुआ······

जमादारने हंसकर कहा—"क्यों, काम नहीं होता क्या ?"

रधिया गुमसुम।

सहसा उसकी आंखोंमें आंसू डबडबा आये। गला फंसा-फंसा-सा हो गया।

चारों ओर, अन्य मजदूरिनें चुपचाप सिर झुकाये काम-में मशगूल थीं।

जमादारने रधियाका मुंह देखा। माथेपर बल पड़ गये।

कहा, "यहां, ठीकसे काम करना होगा। मेरी पसन्द-का। समझी।"

रधिया सिर झुकाये कांपती उंगलियां चला रही थी।

दिल भी थर-थर कांप रहा था।

जमादार चला गया।

रधियाकी सांस लौट आयी।

पर मन तेजीसे दौड़ रहा था। क्या करे अब वह ? नौकरी छोड़ दे ? नौकरी छोड़नेसे भी तो काम न चलेगा। घरपर तो वह बीमार हैं। उनकी दवा, खर्च······न, नौकरी छोड़कर और मिलनी भी तो मुश्किल है······

ठीक है ! क्यों न, वह जमादारकी शिकायत······! पर, किससे ? कहां ? भण्डा फोड़ दे, तो शायद कुछ काम चले।

वह सबसे कहेगी जमादारकी बदमाशी, सबसे। तब मालूम पड़ेगी बदमाशको !

लेकिन···ओह ! वे सब जमादारका कर ही क्या सकते हैं ? वह तो फिर भी निकाल ही दी जायेगी। जमादार कभी न छोड़ेगा।

और, किसी और औरतने भी तो कभी जमादारकी शिकायत न की थी। तो क्या··· ! रधिया सिहर उठी। काम करते-करते निगाह उठाकर चारों ओर देखा······

ओह ! वह क्या जमादार···और बसन्तिया···हाय राम !

सच ही, तब तो किसीसे कहनेसे भी कुछ न बनेगा। अपनी ही बदनामी होगी।

और बसन्तिया···बेहया कहींकी ! दिन-दहाड़े······पर, उसके दो बच्चे जो हैं, आदमी मर ही गया···।

रधियाका सिर चकरा रहा था। वह क्या करे ?

घरपर देखा पतिको बुखारसे बेचैन। माथा दाबते-दाबते रधियाने कहा :—

"अब तुम अच्छे हो जाओ, मुझसे काम न होगा।"

धीरेसे हंसकर पतिने कहा :—

"अरे बस, दो दिनमें ही घबरा गयी। देख तो औरों-को···," फिर उसकी ठोड़ीपर उंगली रखकर बोला, "देख, तू ढेर-सा रुपया कमाकर मेरी दवा करेगी, तभी अच्छा हूंगा; इतनेसे नहीं।"

ढेर-सा रुपया ! रुपया !

रधिया चुप, सिर दाबती रही।

पतिने उसे चुप देखकर कहा, "अब क्या करूं, तू ही बता।

बिना तेरे कमाये काम भी तो न चलेगा। मुझे तो बुखारने ऐसा पकड़ा है कि बस···।"

बात काटकर रधिया बोली, "अरे, तो काम क्यों न करूंगी···पर···।"

झुककर उसने पतिके ओठोंपर ओठ रख दिये। गर्म-गर्म आंसू आंखसे बह निकले।

दूसरे दिन—

रधियाने दिन-भर जमादारकी तरफ ताका भी नहीं। न जाने कैसी घबराहट-सी थी उसके दिलमें कि निगाह उठती ही न थी।

तीन बजे जमादारने आकर कहा :—

"रधिया, तुझे चार बजे 'मनीजर' साहबने बुलाया है। तेरा हिसाब कर देंगे।"

रधिया धकसे रह गयी। कानोंमें सन्-सन्।

"क्यों ?" उसने फंसे गलेसे कहा।

"अब मैं क्या जानूं", जमादारने मूंछ मरोड़कर मतलब-भरी हंसीसे कहा, "तू ठीकसे काम करना ही नहीं चाहती।"

रधियाकी आंखें झुक गयीं। गाल, कान तक, लज्जासे लाल हो उठे।

ओफ! जमादार!

चार बजे और मजदूरिनें घरको चलीं, रधिया जमादारके पीछे-पीछे मैनेजरके दफ्तरकी तरफ।

एक बार उसने बाहरके दरवाजेकी तरफ देखा, फिर देखा, उनमेंसे कुछ औरतें उसकी तरफ देखकर मुस्करा दीं।

शर्मसे मन-मन भरके पांव लेकर रधिया चल दी।

दिल कांप रहा था। हाय! वे बीमार......नौकरी भी गयी!

सहसा वह ठिठक गयी। जमादार कह रहा था :—

"तू क्यों नौकरी छोड़ना चाहती है ?"

रधिया दङ्ग रह गयी।

"मैं...मैं...कहां...?"

जमादारने उसके कन्धेपर हाथ रखकर कहा, "तो फिर क्यों नहीं......?"

रधियाके पसीना छूटने लगा। आंखोंके आगे अंधेरा...।

उसने देखा जमादारका भयावना मुख, हंसता हुआ, खुश, और भी पास......

और... और...

रधिया घर लौटी। मानो बेहोश-सी।

हाथ-पांवमें दर्द, बदन टूटा-सा।

और पति...पतिके गले लगकर वह रो पड़ी।

उसने पूछा, "क्या है ? क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं, कुछ भी तो नहीं।" रधियाने जवाब दिया।

पर उसके आंसू न थमे।

कितने ही दिन बीत गये। रधिया अभी मिलमें काम करने जाती थी। जमादार तो अक्सर ही उसके पतिका हाल पूछने, हुक्का पीने, और रधियाकी तारीफ करने आ जाता था।

रधिया थी भी तो अच्छी, सुन्दर...सबसे सीधी।

रधियाका पति अच्छा हो रहा था।

वह सोचती थी कि अब जल्दी ही उसे कामसे...जमादारसे...छुट्टी मिल जायेगी।

जमादार! वह उसकी शकलसे घृणा करती थी। पर, करे क्या ?

जमादारने बाहरसे आवाज दी।

रधिया निकलकर गयी।

पतिने सोचा जमादार......क्यों न वही आज चलकर बाहर दोनोंको चकरा दे। हां, रधियाको भी और जमादारको भी।

वह अब अच्छा था।

जमादार कितना खुश होगा उसे चलता देखकर और रधिया—वह तो...

धीरेसे वह उठा।

धीरे ही धीरे वह बाहरकी ओर चला। उसके पीले मुंहपर मुस्कराहट।

उसकी सांस फूल आयी थी। इस जरा-सी मेहनतसे।

अंधेरी दुवारीके बाहर वह ठिठका!

अन्दरसे फुसफुसाहट।

एकाएक उसकी हंसी धूलमें मिल गयी।

कान खड़े हुए और वह रेंगकर आगे बढ़ा।

देखा—

रधिया—और जमादार।

रधियाने पतिको देखा। मुंहसे एक चीख निकल गयी।

झपटकर गिरते हुए बीमारको संभाला।

उसका पति एकदम बेहोश—मुर्दा-सा।

और फिर जलती आंखें उठायीं जमादारकी ओर, "जाओ!" उसने कड़ककर कहा।

फीकी हंसी हंसकर जमादार, अकचकाकर एक मिनट-के लिए, फिर कन्धे उचकाकर, चल दिया।

रधियाकी आंखोंसे आंसू बह निकले। बेतहाशा, टप, टप.........

हाय! वह अब क्या करे? उन्हें कैसे समझायेगी कि इन्हींकी बीमारीकी खातिर उसे......

पर, उसे समझानेका मौका ही न आया। उसके पतिकी वह बेहोशी न टूटी। बीमारीसे टूटी देह यह धक्का न सह सकी।

रधिया अकेली रह गयी।

अकेलेको भी तो रोने-धोनेके बाद दो रोटी तो चाहिए ही।

रधियाने सोचा, वह मर सके तो! पर यदि मरने जाकर भी न मर सकी तो—बदनामी, पुलिस...न जाने क्या-क्या होगा।

वह न मर सकी।

जिन्दा रहनेपर रोटी तो चाहिए ही

झख मारकर वह फिर मिलमें गयी।

सोचा था...सोचा क्या मौका पाकर जमादारसे उसने कहा भी, टूटे गलेसे, "तुम मुझसे ब्याह कर लो। मेरा लोक-परलोक और न बिगाड़ो।"

"शादी!" जमादारने ठठाकर कहा, "अरी पगली, शादी करें बेवकूफ। यहां तो जैसे रहती थी, वैसे ही रहे तो......।"

रधियाका मुंह तमतमा उठा।

कमीना! कुत्ता!

उसका हाथ एकाएक उठा...और...

जमादारके काले गालपर उंगलियोंके निशान जल रहे थे।

रधिया धक्के देकर निकाल दी गयी। बदनपर चोटोंके निशान उभड़ आये थे।

अब? कहां जाये?

एक दिन, दो दिन, भूखे बीत गये। फिर—रोटी तो चाहिए ही।

आखिर उसे हाथ पसारना पड़ा एक अजनबीके आगे।

अजनबीने देखा, मालको जांचा और कहा:—

"घर चलो, पैसे दे दूंगा।"

लड़खड़ाती, भूखी, बेजान रधिया गयी। गयी और पैसे ले आयी।

फिर? फिर क्या? एकके बाद, दूसरा, तीसरा......

रधियाने......

ओह! ठीक तो है। रोटीका मूल्य तो देना ही पड़ता है सबको।



ग्रामोंका स्वास्थ्य और सफाई

प्रो० शङ्करसहाय सक्सेना, एम० ए० एम० काम०

अधिकांश लोगोंका विचार है कि गांवोंमें रहनेवालोंका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है, वहां रोग और महामारी बहुत कम होते हैं; क्योंकि वहां मनुष्योंको खुली हवा और सूर्यका प्रकाश खूब मिलता है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि थोड़े-से प्रयत्न तथा व्ययसे गांवोंमें सफाई और स्वास्थ्यका उचित प्रबन्ध किया जा सकता है; क्योंकि वहां हवा और सूर्यकी देन बहुतायतसे है। किन्तु वस्तुस्थिति इससे नितान्त भिन्न है। भारतीय ग्राम जितने गन्दे और रोगोंके शिकार हैं, उतने यहांके शहर नहीं हैं। वर्षाके उपरान्त तनिक गांवोंकी ओर जानेका कष्ट उठाइये, तो जो दृश्य देखनेको मिलता है, वह आकर्षक कदापि नहीं होता। उन दिनों ग्रामोंमें सर्वत्र जूड़ी और बुखारका प्रकोप होता है। किसी भी गांववालेसे पूछिये, इस मौसममें वह कुछ दिनोंके लिए अवश्य ही ज्वरसे पीड़ित रहता है। बङ्गाल और आसाममें तो ये दिन मानो प्रलयके होते हैं, धानकी फसल खड़ी रहती है; किन्तु काटनेवाले नहीं जुड़ते। मलेरियाका ऐसा भयङ्कर प्रकोप होता है कि गांवके गांव शय्या पकड़ लेते हैं। संयुक्त प्रान्त, पञ्जाब, मध्यप्रान्त, बम्बई और मद्रासमें भी मलेरियाका कुछ कम प्रकोप नहीं होता। यद्यपि मलेरिया बहुत घातक सिद्ध नहीं होता; परन्तु वह मनुष्योंकी कार्य-क्षमता, उनकी शक्ति और उनके कामके समयकी जो हानि करता है, उसका हम लोग अनुमान ही नहीं कर सकते। मलेरियाके अतिरिक्त प्लेग, हैजा, हुकवार्म, काला आजार, चेचक, मोतीझरा तथा क्षय इत्यादि रोगोंने भी भारतीय ग्रामोंमें अब स्थायी रूपसे अड्डा जमा लिया है। इन रोगोंके कारण ग्रामवासियोंका जीवन अत्यन्त अनिश्चित बन गया है। प्रति वर्ष लाखोंकी संख्यामें ग्रामोंके रहनेवाले इन रोगोंके शिकार होते हैं। भारतवर्षका शिक्षित वर्ग गांवोंसे इतना दूर रहता है कि वह गांवोंके बारेमें स्वयं कुछ जानता ही नहीं और न हमारे शिक्षित देशवासी गांवोंके बारेमें कुछ जाननेका ही प्रयत्न करते हैं। यही कारण है कि वे केवल कल्पनाके आधारपर ही उनके गांवोंके बारेमें अपनी धारणा बनाते हैं।

गांवोंके स्वास्थ्यके विषयमें अखिल भारतवर्षीय मेडिकल कान्फरेन्सका वह प्रस्ताव, जो उसने अपने कई पिछले अधिवेशनोंमें स्वीकार किया है, उल्लेखनीय है। उक्त प्रस्ताव इस प्रकार है :—

"इस सम्मेलनका विश्वास है कि उन रोगोंसे—जो दूर किये जा सकते हैं—प्रति वर्ष देशमें पचास या साठ लाख मृत्युयें होती हैं। ऐसे रोके जा सकनेवाले रोगोंसे भारतवर्षमें प्रत्येक मनुष्य वर्षमें दो या तीन सप्ताहके लिए काम करनेके अयोग्य हो जाता है। यही नहीं, उसकी कार्य-क्षमता भी बीस प्रतिशत घट जाती है। भारतवर्षमें उत्पन्न हुए बच्चोंमेंसे केवल पचास प्रतिशत ही कमाने योग्य हो पाते हैं, जबकि थोड़ा-सा प्रयत्न करनेसे उनकी संख्या ८० या ९० प्रतिशत तक बढ़ायी जा सकती है। इस सम्मेलनका विश्वास है कि ये अङ्क किसी प्रकार भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं हैं। फिर भी भूल हो जानेकी सम्भावनाका ध्यान रखते हुए यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इन रोके जा सकनेवाले रोगोंके द्वारा होनेवाली जीवन तथा कार्य-क्षमताकी हानिके कारण भारतको प्रति वर्ष कई अरब रुपयेकी हानि उठानी पड़ती है।

"इस सम्मेलनका विश्वास है कि यह भयङ्कर जनशक्तिका ह्रास अपेक्षाकृत थोड़े-से व्ययसे रोका जा सकता है। सम्मेलनकी रायमें यह स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है, जिसका सुधार होना नितान्त आवश्यक है। इस सम्मेलनका यह भी विश्वास है कि भारतकी निर्धनताका मुख्य कारण रोके जा सकनेवाले रोगों द्वारा होनेवाली कार्य-क्षमताकी हानि है, अतएव धनकी कमी इस आवश्यक सुधारमें बाधक न होनी चाहिए।"

ऊपर दिया हुआ प्रस्ताव देशके प्रमुख डाक्टरोंके सम्मेलनमें स्वीकृत हुआ था। इससे हमारे गांवोंके स्वास्थ्यकी समस्यापर यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। किसी-किसी प्रान्तमें तो कुछ भयङ्कर रोगोंने स्थायी रूपसे अड्डा जमा लिया है, जो लाखों ग्रामवासियोंको मृत्युके कराल गालमें पहुंचा देते हैं। गांवोंमें चिकित्सा तथा रोगोंको रोकनेका कोई प्रबन्ध नहीं

है। असहाय ग्रामवासी इसे दैवी कोप समझकर चुपचाप सहन करते हैं। वे समझते हैं कि इनका कोई उपचार नहीं है, क्रमशः वे पूर्ण भाग्यवादी बन गये हैं।

अब तनिक ग्रामोंकी सफाईके विषयमें सुनिये। गांवोंमें सर्वत्र गन्दगी दृष्टिगोचर होती है। यदि आप किसी रास्तेपर जा रहे हों, हवामें दुर्गन्ध आने लगे और मक्खियां अधिक संख्यामें उड़ती दिखलाई दें, तो समझ लेना चाहिए कि कोई गांव समीप आ रहा है। और आगे बढ़िये, यदि कूड़ा और गन्दगीके ढेर दिखलाई दें, अथवा ताल या पोखरे मिलें, जिनका जल दूषित और दुर्गन्धयुक्त हो, जिनके चारों ओर मल पड़ा हो, तो समझ लेना चाहिए कि हम गांवकी सीमापर हैं। तनिक गांवके अन्दर घुसिये, रास्तेपर धूल, कूड़ा और मक्खियोंके झुण्ड आपका स्वागत करेंगे। वर्षाके दिनोंमें तो बस्तीके रास्ते दलदल बन जाते हैं और जाड़े तथा गर्मीमें इतनी अधिक धूल होती है कि गाड़ियोंके निकलते तथा पशुओंके एक साथ चलते समय सारा गांव धूलसे ढक जाता है। घरोंके पानीका निकास न होनेके कारण वह गन्दा पानी वायुको दूषित करता रहता है।

गांवोंके अधिकांश घरोंमें शौच-गृह नहीं होते, गांवोंके रहनेवाले खेतों, खुले मैदानों और तालाबके किनारे शौचको जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि तालाबका पानी, जो गुप्तअङ्गको साफ करनेके काममें लाया जाता है, अत्यन्त दूषित हो जाता है। इसी जलको गांवके पशु पीते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि पशुओंमें बीमारियां फैलती हैं। खेतों और मैदानोंमें शौच जानेकी प्रथासे भी स्वास्थ्यको बहुत हानि पहुंचती है। अधिकांश ग्रामवासी जूते नहीं पहिनते। नङ्गे पैर चलनेसे मल पैरोंके सम्पर्कमें आता है। मलमें एक प्रकारका कीटाणु, जिसे हुकवार्म कहते हैं, उत्पन्न हो जाता है। हुकवार्म पैरोंके द्वारा शरीरमें प्रवेश कर जाता है, जिससे मनुष्य हुकवार्म-रोगसे पीड़ित होता है। भारतमें हुकवार्म रोगकी प्रचण्डताका मुख्य कारण यही है। मलके सूख जानेपर वह मिट्टीके कणोंके साथ मिलकर हवामें उड़ता है, कुओं और तालाबोंके जलको दूषित करता तथा स्त्री-पुरुष और बच्चोंकी आंखोंमें पड़कर उन्हें खराब करता है। इसके अतिरिक्त भोजनमें पड़कर उसे भी दूषित करता है।

गांवोंमें जगह-जगह और विशेषकर आबादीके बाहर गोबर और कूड़ेके ढेर लगाकर किसान खाद तैयार करते हैं। बरसात तथा दूसरे मौसमोंमें उनके कारण बड़ी गन्दगी फैलती है। मक्खियोंके तो ये उद्गम-स्थान होते हैं। मक्खियां इस गन्दगीको अपने परों और पैरोंके द्वारा ले जाकर पशुओं और बच्चोंकी आंखों तथा भोजन-सामग्रीपर बैठकर उसे वहीं छोड़ देती हैं। इन्हीं कारणोंसे गांववालोंकी आंखें मैली और अधिकतर खराब होती हैं।

गांवके लोग मकान बनाने और वर्षाके उपरान्त उनकी मरम्मत करनेके लिए आबादीके पास ही की जमीनमेंसे मिट्टी खोद लेते हैं। कालान्तरमें गांवके आसपास ताल, तलया अथवा पोखरे बन जाते हैं। वर्षाका जल इनमें भर जाता है, जो कि सड़ता रहता है। गांववाले इन्हीं तालोंके आसपास शौच जाते हैं, और इन्हींमें कूड़ा भी फेंक देते हैं। जब तालका पानी सूखने लगता है, तो बहुत तेज दुर्गन्धसे सारा गांव भर जाता है। जहां सन अथवा जूटकी खेती होती है, वहां इन तालाबोंमें उसको सड़ाया जाता है। इन ताल-तलैयों और पोखरोंमें मलेरियाका कीटाणु उत्पन्न होता और फलता-फूलता है।

अब प्रश्न यह है कि गांवोंकी स्वास्थ्य तथा सफाईकी समस्या कैसे हल हो। अभी तक सरकार गांवोंकी ओरसे बहुत उदासीन रही; किन्तु अब प्रान्तीय सरकारोंने इस ओर कुछ ध्यान दिया है। परन्तु नवीन शासन-विधानका भयङ्कर आर्थिक बोझ प्रान्तोंकी रीढ़ तोड़ देगा। अतएव पैसेकी कमीके कारण यह सम्भव नहीं है कि प्रान्तीय सरकारें गांववालोंको अकाल मृत्युसे बचा सकें। अस्तु, हमें ऐसी योजना बनानी चाहिए, जिससे कि सरकारपर बिना अधिक निर्भर रहे ही ग्रामवासी अपनी दशा सुधार सकें।

बङ्गालमें इस दिशामें एक सफल प्रयोग हुआ है। वहां प्रति वर्ष बहुत बड़ी संख्यामें लोग मलेरियासे पीड़ित होते और मरते हैं। कहीं-कहीं तो मलेरियाके कारण गांवके गांव उजड़ जाते हैं। अभी तक विशेषज्ञोंका मत था कि मलेरियाके कीटाणु उत्पन्न होनेके स्थानसे आठ मील तक जा सकते हैं। सरकारका विश्वास था कि ऐसी दशामें मलेरियाको रोकनेका केवल एक ही उपाय हो सकता है कि आठ मीलके घेरेमें जितने भी गढ़े हों, भर दिये जायें। इस कार्यमें इतना अधिक व्यय होनेकी सम्भावना थी कि बङ्गाल-सरकारने इसको

अपनी शक्तिके बाहर समझा। जनताका भी यही विश्वास था कि मलेरिया तभी रोका जा सकता है, जब कि कोई बड़ी योजना तैयार की जाय। बङ्गालके ग्राम-निवासी इस ओरसे हताश हो चुके थे।

किन्तु डाक्टर गोपालचन्द्र चटर्जीने अनुसन्धान करके यह पता लगाया कि मलेरियाके कीटाणु अपने जन्म-स्थानसे आध मीलसे दूर नहीं जा सकते—सरकारी विशेषज्ञोंका मत भ्रमपूर्ण है। यह खोज कर चुकनेके उपरान्त उन्होंने इस रोगसे ऐण्टी-मलेरिया सहकारी समितियोंकी स्थापना की। आज बङ्गालमें ७०० से अधिक ऐण्टी मलेरिया-समितियां सफलतापूर्वक काम कर रही हैं।

ग्राम-समितियां अपने-अपने गांवोंमें मलेरिया अथवा अन्य रोगोंके रोकनेका उपाय करती हैं। समितियोंके सदस्योंको चार आनेसे लेकर एक रुपया तक मासिक चन्दा देना पड़ता है। प्रत्येक समिति एक वैद्य अथवा डाक्टरको कुछ मासिक वेतन देकर नौकर रखती है, जो समितिके सदस्योंके घर बिना फीस लिये जाता है और रोगियोंकी चिकित्सा करता है। प्रान्तीय सरकार इन समितियोंको कुछ सहायता भी देती है। इन समितियोंने बहुत-से औषधालय भी खोल रखे हैं। कुछ औषधालय तो ऐसे हैं, जो सर्वसाधारणको दवा देते हैं और कुछ ऐसे भी हैं, जो केवल समितिके सदस्योंको ही दवा देते हैं।

जब किसी क्षेत्रमें कतिपय समितियां स्थापित हो जाती हैं, तो उनकी देखभालके लिए ग्रूप समितियां स्थापित कर दी जाती हैं। कहीं-कहीं ग्रूप समितियां ही चिकित्सक रखती हैं, जो उस क्षेत्रकी जनताकी चिकित्सा करता है।

ग्राम समितियां वर्षाके पूर्व गांवके समीपवर्ती सब गड्ढों, खाइयों तथा पोखरोंको भरवा देती हैं। नाले तथा नालियां ठीक कर दी जाती हैं, जिससे कि कहीं पानी न रुक जाय। खेतोंके बहाव भी ठीक कर दिये जाते हैं; फिर भी यदि वर्षामें कहीं पानी भर जाता है, तो समिति वहां मिट्टीका तेल छुड़वाती है, जिससे मलेरियाके कीटाणु उत्पन्न ही न हो सकें। समिति प्रत्येक सदस्यको एक छपी हुई नोटबुक देती है, जिसमें वह प्रति सप्ताह यह लिखता है कि उसके घरके लोग कितने दिनोंके लिए बीमार पड़े। इन नोटबुकोंके द्वारा यह मालूम हो जाता है कि गांवमें मलेरिया घट रहा है या बढ़ रहा है।

लेखककी योजना

भारतवर्षमें रोगोंसे ग्रामवासियोंकी रक्षा करनेके लिए तथा गांवोंकी सफाईकी समस्याको हल करनेके लिए हमें ऐसी योजना तैयार करनी चाहिए कि जिसमें ग्राम-निवासी स्वयं स्वावलम्बी बनकर अपनी समस्यायें हल कर सकें और यदि राज्य इस कार्यमें सहायता देना चाहे, तो उसकी सहायताका उपयोग बिना किसी कठिनाई तथा परिवर्तनके किया जा सके। यह कार्य स्वास्थ्य-सहकारी समितियां स्थापित करके सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

प्रत्येक गांवमें एक स्वास्थ्य-रक्षक समितिकी स्थापना की जानी चाहिए। जहां तक हो सके, प्रत्येक गांव-निवासीको उसके लाभ समझाकर उसका सदस्य बना लिया जाय। घर-पीछे चार आना मासिक चन्दा लिया जाय। जो लोग बहुत निर्धन हों, उनसे चन्दा न लिया जाय। चन्देके बदले वे लोग घर-पीछे एक आदमी महीनेमें एक दिन समितिका कार्य कर दिया करें। यदि कोई सदस्य चाहे, तो अपना चन्दा अनाजके रूपमें भी दे सकता है। किन्तु चन्दा देनेवाले तथा काम करनेवाले सदस्योंमें कोई अन्तर न होना चाहिए। दोनों प्रकारके सदस्योंके अधिकार तथा कर्तव्य एक ही हों।

सब सदस्योंकी एक साधारण सभा होगी। प्रयत्न यह किया जाय कि प्रत्येक सदस्य समितिके कार्योंमें भाग ले। साधारण सभा बजट पास करेगी, वर्षका कार्यक्रम निश्चित करेगी और वार्षिक अधिवेशनमें एक पञ्चायतका निर्वाचन करेगी। पञ्चायतके सदस्योंके अतिरिक्त साधारण सभा एक सरपञ्च, दो मन्त्री तथा एक कोषाध्यक्षका भी निर्वाचन करेगी। दोनों मन्त्री समितिके कार्यको आपसमें बांट लें। आवश्यकता पड़नेपर पञ्चायतके अन्य सदस्योंसे भी समितिके दैनिक कार्यमें सहायता ली जा सकती है। जो सदस्य चन्दा न देकर समितिके लिए परिश्रम करनेका निश्चय करें, उनसे मन्त्री समितिका निम्नलिखित काम करवावें—(१) गांवके समीपवर्ती सब गड्ढोंको पाटनेमें सहायता देना, नालोंके बहावको ठीक करना, वर्षा समाप्त होनेपर जहां-जहां पानी रुक जाय, वहां-वहां मिट्टीका तेल छुड़वाना, समितिके औषधालयमें काम करवाना, इत्यादि। स्वास्थ्य-समितिकी साधारण सभा पहले वर्ष गांवके समीपवर्ती ताल-तलैयों तथा पोखरोंको भरनेका कार्यक्रम बनावे और गांवका प्रत्येक निवासी निश्चित

दिनोंपर मिलकर इस कार्यको करे। दूसरे वर्ष गांवके रास्तों- ीक करनेका कार्यक्रम हाथमें लिया जाय। इसी प्रकार वर्ष साधारण कार्योंके अतिरिक्त एक बड़ा कार्य भी क्रममें सम्मिलित किया जाय और सारे गांवका उस ार्यके लिए सहयोग प्राप्त किया जाय।

समिति आवश्यकतानुसार गांवसे कुछ दूरीपर थोड़े-से गड्ढे खुदवावे। ये गड्ढे ७ फीट गहरे हों, उनके चारों ओर मजबूत सरहरकी बाढ़ खड़ी कर दी जावे और गड्ढोंके मुंह-पर लकड़ीके तख्ते रख दिये जायं। यही गांवोंके शौच-गृह हों। इनसे दो लाभ होंगे—एक तो गांवोंमें सफाई रह सकेगी, दूसरे अभद्रता भी न हो सकेगी। गांववालोंको मैदानमें शौच जानेकी हानियां समझायी जावें और उन्हें इन पिट-लैट्रिन्समें शौच जानेके लिए प्रोत्साहित किया जाय। जहां सम्भव हो, वहां बोर-लैट्रिन्स बनाये जायं। कुछ शौच-गृह स्त्रियोंके लिए पृथक् कर देना आवश्यक है। पिट-लैट्रिन्समें एक खराबी है, यदि उनको ठीक न बनाया गया; और कहीं-कहीं भूमिमें नमी होनेके कारण उनमें हरी मक्खी पैदा हो जाती है और दुर्गन्ध आने लगती है। यदि पिट-लैट्रिन्स बनानेमें कोई कठिनाई हो या लोग उन्हें किसी कारणवश पसन्द न करें, तो इस बातका खूब प्रचार किया जाय कि मैदानमें शौच जाते समय प्रत्येक व्यक्ति एक खुरपी ले जाय और जहां बैठना हो, वहां एक फीट गहरा छोटा-सा गड्ढा खोदकर बैठ जाय और उसीमें मलको मिट्टीसे दबा दिया जाय। इस प्रकार गांव गन्दगीसे बच सकेगा।

समिति एक मेहतरको नौकर रखे, जो गांवका कूड़ा गड्ढोंमें डाल दे, साथ ही उन शौच-गृहोंकी देखभाल रखे। जो खाद इन गड्ढों और शौच-गृहोंमें तैयार हो, उसको बेचकर समिति उसकी कीमत मेहतरको दे दे। गांवके रहने-वाले अपने घरोंको बहुत साफ रखते हैं, केवल उन्हें यह सम-झाना है कि घरकी सुन्दरता तथा उनके स्वास्थ्यके लिए बाहर भी सफाई रहना आवश्यक है। सदस्योंको भी गड्ढोंमें खाद बनानेके लाभ समझाये जायं और उन्हें खादके ढेर न लगाकर गड्ढोंमें खाद तैयार करनेके लिए उत्साहित किया जाय। प्रत्येक किसान दो गड्ढे तैयार करे—एकमें जब खाद तैयार हो रही हो, तब दूसरेमें गोबर, घास-फूस तथा अन्य कूड़ा भरा जाय। किसान प्रतिदिन गोबर, भूसा तथा चारा इत्यादि, जो पशुओंके पास बच रहता है, इन गड्ढोंमें डाल दिया करे और जब गड्ढा भर जाय, तो उसपर थोड़ा-सा पानी छिड़ककर उसके मुंहपर मिट्टी बिछा दे। दो-तीन महीनेमें बहुत अच्छी खाद तैयार हो जायगी। इससे दो लाभ होंगे—गांव साफ रहेगा और किसानोंको उत्तम खाद प्राप्त हो सकेगी।

समीपवर्ती चार-पांच गांवोंकी समितियां मिलकर एक सामूहिक समिति बना लें। प्रत्येक ग्राम-समितिकी पञ्चा-यतके सदस्य सामूहिक समितिके सदस्य हों। प्रत्येक सामू-हिक समिति एक चिकित्सक तथा एक योग्य दाईकी नियुक्ति करे। इन कर्मचारियोंको निजी प्रैक्टिस करनेकी आज्ञा नहीं होनी चाहिए। दाई सामूहिक समितिसे सम्बन्धित गांवोंमें बच्चा जनानेका काम करे। समिति उस सदस्यसे, जिसके यहां बच्चा जनाने जावे, आठ आना फीस ले और जो सदस्य न हों, उनसे दुगुनी फीस ली जाय। हां, जो बहुत ही निर्धन हों, उनसे फीस नाम-मात्रको ही ली जावे (एक या दो आना)।

चिकित्सक केन्द्रीय गांवमें रहे और प्रतिदिन सम्बन्धित गांवोंमेंसे दो गांवोंमें जाकर वहां जो भी बीमार हों, उन्हें दवा दे। इस प्रकार प्रत्येक सम्बन्धित गांवमें चिकित्सक एक दिन छोड़कर दूसरे दिन पहुंच सकेगा। यदि किसी रोगीको देखनेके लिए चिकित्सकको उसके घर जाना पड़े, तो उस सदस्यसे समिति एक आना फीस ले और गैर-सदस्यसे फीस दुगुनी ली जाय। किन्तु यह फीस चिकित्सकको न मिलकर समितिको मिले। प्रत्येक गांवकी समिति चिकित्सकके कहे अनुसार कुछ औषधियोंका संग्रह करे, जो साधारण रोगोंमें काम आ सकें। बहुत-सी औषधियां गांवोंमें ही मिल जावेंगी। चिकित्सक उनकी जानकारी गांवकी समितिके मन्त्रीको करा दे। वे सब औषधियां इकट्ठी कर ली जायं। जहां तक हो, गांवमें उत्पन्न होनेवाली औषधियोंका ही उपयोग किया जाय। अन्य औषधियां ग्राम-समिति मोल लेकर रखे। मन्त्री औषधियोंको बांटनेका काम करे। सदस्योंको औषधियां बिना मूल्य दी जायं; किन्तु जो लोग सदस्य न हों, उनसे लागत-मात्र अवश्य ली जाय। इसका केवल यही उद्देश्य है कि गांवका प्रत्येक निवासी समितिका सदस्य बन जावे।

गांवकी सफाईके लिए ऊपर लिखे हुए उपायोंके अतिरिक्त गांवके रहनेवालोंके मुख्य धार्मिक त्योहारोंका सम्पूर्ण गांव-की सफाई करानेके लिए उपयोग किया जावे। ग्रामवासी पर्वोंपर अपने घरोंकी सफाई तो करते ही हैं। यदि उनमें सफाईकी भावना जागृत की जा सके, तो अनायास ही वर्षमें तीन-चार बार गांवकी पूरी सफाई हो सकती है। हमें अपने त्योहारोंको गांवकी सफाईके आन्दोलनके लिए काममें लाना चाहिए। क्रमशः लोग अपने गांवको साफ रखना अपना मुख्य कर्तव्य समझने लगेंगे। घरोंके पानीकी समस्या-को हल करनेके लिए अभी तक ग्राम-सुधार विभागने पानी सोखनेवाले गड्ढेका ही प्रचार किया है। सोकेज पिटके बनानेमें चार-पांच रुपये व्यय होते हैं। यह प्रत्येक गांववालेके बसकी बात नहीं है। लेखक तो इस समस्याको हल करनेके लिए "पुष्प और सब्जीकी क्यारी" आन्दोलनको अधिक उपयुक्त समझता है। घरके काममें आनेवाले पानीकी समस्याको यदि सोकेज पिट्सके द्वारा हल किया जावे, तो भी गृह-वाटिकाकी क्यारी तो हरएक घरमें होनी ही चाहिए। प्रकृतिने फूल-जैसी सुन्दर वस्तु उत्पन्न की है, गांवोंमें वह आसानीसे उत्पन्न हो सकती है, लेकिन हम उसके आनन्दसे वञ्चित रहते हैं। गृह-वाटिकासे फूल और सब्जी मिलेगी और साथ ही घरके काममें लाया हुआ पानी, जो सड़कर गन्दगी उत्पन्न करता है, काममें आ जायगा। फूलोंके कारण गांवोंके घर अधिक सुन्दर और आकर्षक बन सकेंगे।

इस सम्बन्धमें हमें कुओंके पासके दलदल और वहांके व्यर्थ पानीकी समस्याको भी न भूल जाना चाहिए। बहुत-से लोग कुओंपर नहाते और कपड़े साफ करते हैं, गांवकी स्त्रियां पानी भरती हैं और घरोंपर नहाती हैं। यदि कुओंपर नहाने और कपड़ा साफ करनेके लिए पक्का चबूतरा बना दिया जावे और औरतोंके नहाने तथा कपड़ा साफ करनेके लिए एक बन्द जगह बना दी जावे, तो उनकी मेहनत बच सकती है। कुएं-की मन ऊंची उठवाकर उसके चारों ओर ढलवां नाली बना-कर उसे सार्वजनिक स्नान-गृहोंकी नालीसे मिला दिया जावे। इस पानीका या तो एक नाली द्वारा दूर ले जाकर बस्तीके बाहर खेतों या मैदानपर छोड़ दिया जाय और यदि यह सम्भव न हो, तो कुएंके पास ही केले तथा अन्य ऐसे पौधे लगा दिये जायं, जो उस पानीको सोख लें। यदि गांवके लोग या स्वास्थ्य-समिति चाहे, तो वहां एक छोटी-सी वाटिका भी लगायी जा सकती है।

ग्राम-समितियां मिलकर सामूहिक समितियोंका नि करेंगी और सामूहिक समितियां मिलकर तहसील-समिति का सङ्गठन करें। तहसील-समितियोंका कार्य केवल ग्राम-समितियोंकी देखभाल करना, स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी प्रचार-कार्य करना तथा जिलेके कर्मचारियोंसे लिखा-पढ़ा करके जब कभी उस तहसीलके किसी भागमें बीमारी फैल रही हो, उसे रुकवानेका प्रयत्न करना होगा। सामूहिक समितियां तथा ग्राम-समितियोंके प्रतिनिधि तहसील-समितिके सदस्य होंगे। इस प्रकारका सङ्गठन हो जानेसे जिलेके मेडिकल अफ-सर तथा जिला बोर्डके अधिकारियोंको गांवोंमें बीमारी फैलनेके समय सफलतापूर्वक चेतावनी दी जा सकती है और उनसे सहायता प्राप्त की जा सकती है।

प्रत्येक प्रान्तमें एक प्रान्तीय स्वास्थ्य-रक्षक समितिका सङ्गठन होना चाहिए। प्रान्तीय समिति गांवोंमें काम करके लिए चिकित्सकों तथा दाइयोंको शिक्षा दे। प्रान्तीय समिति आन्दोलनका नेतृत्व करे तथा स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी साहित्य प्रकाशित करे। प्रान्तीय समितिको उन दाइयोंमेंसे, जो इस समय दाई-कर्म करती हैं, साफ, चतुर तथा कम आयुवाली दाइयोंको छांट लेना चाहिए और उन्हें दाईके कार्यकी वैज्ञानिक शिक्षा दिलवाकर उनके गांवोंमें भेज देना चाहिए। सामूहिक समितियां प्रान्तीय समितिके द्वारा तैयार किये हुए चिकित्सकों और दाइयोंको नियुक्त करें; किन्तु चिकित्सक ऐसे ही लोग होने चाहिए, जो कि गांवोंमें रहना पसन्द करें। आरम्भमें भिन्न-भिन्न आयुर्वेदिक विद्यालय से निकले हुए युवकोंको आवश्यक शिक्षा देकर उन्हें गांवोंमें भेज दिया जाय।

प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय समितिको सहायता दे और प्रान्तीय सरकार तथा जिला बोर्ड ग्राम-समितियोंके चिकि-त्सकोंके वेतनका कुछ भाग दें। प्रान्तीय संस्था स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी साहित्य प्रकाशित करे, फिल्म तैयार करावे, मैजिक लंनटर्नके लिए स्लाइट तैयार कराके गांवोंमें भेजे। इस प्रकार यदि सङ्गठित रूपमें स्वास्थ्य-रक्षा-आन्दोलन चलाया जावे, तो गांवोंमें स्वास्थ्य और सफाईकी समस्या हल हो सकती है।

सफलताके रहस्य

श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०

निस्सन्देह जीवन एक संग्राम है। किन्तु इस संग्राममें निश्चय ही विजय हासिल की जा सकती है। इस संग्राममें निरन्तरके सङ्घर्ष, अटूट हिम्मतके तकाजे और एक सुलझे हुए दिमागकी जरूरत पड़ा करती है। जीवन-संग्राममें कितने तो असफलताकी चट्टानसे टकराकर सदैवके लिए खत्म हो जाते हैं और कितने कायरतावश युद्धके मैदानसे ही भाग जाते हैं और कठिनाइयोंके सामने बेशरमीके साथ अपना सिर झुका लेते हैं। प्रायः इसी श्रेणीके लोग प्रतिकूल परिस्थितियोंके दास हुआ करते हैं। किन्तु संसारमें अनेक व्यक्ति ऐसे भी हैं, जो असफलताकी सत्ता स्वीकार करनेमें अपनी हेठी समझते हैं—जटिलसे जटिल परिस्थितियोंमें भी ये लोग सिर ऊंचा किये हुए आगेको कदम बढ़ाते ही जाते हैं—दृढ़ सङ्कल्प और एक अटूट लगन उनके अन्दर निरन्तर जीवन-शक्ति भरती रहती है।

मानव-इतिहासके प्रत्येक पृष्ठपर निरन्तरके सङ्घर्षकी अमिट कहानी अङ्कित है। अपने प्रारम्भिक दिनोंमें मनुष्यने अपनेको चारों ओर विरोधी शक्तियोंसे घिरा पाया—जङ्गली जानवरोंका भय, भोजन-सामग्री प्राप्त करनेकी समस्या, आंधी, वर्षा, तूफान—बीसियों कठिनाइयां मनुष्यके रास्तेमें थीं, रोज ही वह उनसे टक्कर लेता। समयकी प्रगतिके साथ उसने प्रकृतिके रहस्योंको एक-एक करके पहचाना और इस प्रकार प्रकृतिके ऊपर बहुत कुछ अंशोंमें उसने विजय भी हासिल की और उसे वशमें करके अपनी दासी बना लिया। शत्रुको बन्दी बनाकर उसने उससे अपना काम भी निकाला।

किन्तु प्रकृतिकी अनेक शक्तियां अब भी मनुष्यकी समझसे परे हैं। समाज और स्वयं अपने अहंभाव भी हमारे जीवन-संग्राममें हमारी मुखालिफत करते हैं। यही कारण है कि हमें जीवन-संग्राममें पग-पगपर ठोकरें खानी पड़ती हैं। तनिक भी हम चूके, ये विरोधी शक्तियां हमें धर दबाती हैं और हमारी मिहनतपर पानी फेर देती हैं। अतएव इस संग्राममें विजय हासिल करनेके लिए सदैव जागरूक बने रहनेकी जरूरत है। जहां हम ढीले पड़े कि हमने पीठ दिखायी।

जीवन-संग्राममें बाह्य शक्तियां हमारी मुखालिफत करती ही हैं; किन्तु स्वयं हमारी मनोवृत्ति और हमारे दृष्टिकोण यदि दुरुस्त और सुलझे हुए न हुए, तो ये भी हमारे रास्तेमें जबर्दस्त अड़चन पैदा कर देते हैं।

निराशा और निरुत्साह इसी विकृत मनोवृत्तिके परिणाम हैं। नवयुवक एक नयी आशा और उल्लाहको सङ्ग लेकर जिन्दगीमें प्रवेश करता है। उसके दिमागमें उच्च महत्त्वाकांक्षायें रहती हैं और रहता है एक दृढ़ आत्मविश्वास। थोड़े ही दिनोंमें जब उसे असफलताओंके थपेड़े एकके बाद दूसरे लगते हैं, जब वह देखता है कि उसके सारे स्वप्न झूठे पड़ रहे हैं, मित्र धोखा दे रहे हैं, जिनपर वह भरोसा करता था, उन्होंने ही दगा दी, तो उसका दिल बैठ जाता है। और इस मौकेपर निराशा और निरुत्साहकी थपेड़ सहनेकी शक्ति यदि उसके अन्दर मौजूद न हुई, तो वह वहींपर खत्म हो जाता है।

जिन्दगीके बीहड़ रास्तेमें अपने ध्येय तक पहुंच सकनेके लिए तुम्हें उपर्युक्त तैयारी भी करनी पड़ेगी। तुम्हें विरोधी शक्तियोंकी एक लम्बी सूची बनानी होगी और फिर एक कुशल सेनापतिकी भांति योजना बनानी होगी कि प्रत्येक विरोधी शक्तिपर हावी कैसे हों। सुव्यवस्थित कार्यप्रणाली और योजनाके बिना कोरे जोश और उत्साहसे काम न चलेगा, वरन् व्यर्थमें शक्तिका ह्रास होगा और असफलताके अतिरिक्त और कुछ हाथ न आयेगा।

युद्धके मैदानमें भेजे जानेवाले सैनिकको लगकर बहुत दिनों तक सैनिक शिक्षा हासिल करनी होती है। केवल जोशको देखकर किसी नवयुवकको फौजी हवाई जहाजके सञ्चालनका काम नहीं दिया जा सकता। ठीक इसी तरह जीवन-संग्राममें भी सफलता हासिल करनेके लिए पर्याप्त तैयारीकी जरूरत हुआ करती है।

अपनी विरोधी शक्तियोंकी सूची तैयार करनेके बाद तुम्हें अपनी शक्तियोंका भी सही तखमीना लगाना पड़ेगा। अपनी कमजोरियोंको चुनकर उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करना

होगा। जीवन-संग्राममें विजय हासिल करनेके लिए यह एक अनिवार्य शर्त है।

विरोधी शक्तियोंका दमन करनेके लिए आत्मविश्वासकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है। क्योंकि आत्मविश्वासके आधारपर तुम्हारा समूचा व्यक्तित्व टिका हुआ है। चाहे जिस किसी भी क्षेत्रमें तुम काम करते हो, यदि आत्मविश्वास तुम्हारे अन्दर नहीं है, तो तुम अपने काममें हरगिज सफलता नहीं प्राप्त कर सकते।

विज्ञानके इस युगमें लोगोंके अन्दर आत्मविश्वासकी भारी कमी पायी जाती है। शरीर-विज्ञानने हमारी अनेक खामियोंको पैतृक ठहराकर हमारे अन्दर एक गलत ख्यालको जन्म दे दिया है - कि हमारे अन्दर जो कुछ भी खामी है, उसका उत्तरदायित्व हमारे पूर्वजोंके ऊपर है। और यदि इससे काम न चला, तो फौरन् परिस्थितियोंकी दुहाई देने लगे। प्रारब्धके आसरे हाथपर हाथ धरे बैठ रहनेवालोंमें ही आत्मविश्वासकी कमी होती है। मनोविज्ञानने 'इन्फीरियारिटी कम्प्लेक्स' (Inferiority Complex) शब्दकी ईजाद करके भी साधारण जनताके अन्दर अनेक भ्रान्तिमूलक विचार फैलाये हैं। अपने पेशेमें निपुणता हासिल नहीं कर सके, तो इसी इन्फीरियारिटी कम्प्लेक्सके कारण और अगर अच्छी वक्तृता नहीं दे पाये, तो यह भी इन्फीरियारिटी कम्प्लेक्स—अपनेको क्षुद्र समझनेकी भावनाके कारण।

लेकिन इस बातको लोग भूल जाते हैं कि मनोविज्ञानने जहां उक्त कारणको ढूंढ़ा, उसने यह भी बताया कि प्रत्येक मनुष्य अपनी इन्फीरियारिटी कम्प्लेक्सपर विजय प्राप्त कर सकता है। और प्रयत्न करनेपर प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यक्तित्वका विकास भी कर सकता है—किस कद्र हम अपनी आदतों और अपने गुणोंसे अन्य लोगोंको प्रभावित कर सकते हैं? इसी प्रश्नके उत्तरमें हमारे व्यक्तित्वकी माप निहित है। इसी वजहसे जीवनमें सफलताके लिए व्यक्तित्वका बड़ा मूल्य समझा जाता है। अतः हमारी सफलता पैतृक बन्धनों और परिस्थितियोंकी तङ्ग सीमाके अन्दर ही महदूद हो, सो बात नहीं है।

अपनेको क्षुद्र समझनेकी भावनाको दूर करना मुश्किल नहीं है, बशर्ते कि आदमी हिम्मत करे। अपनी इस खामीको पहचानकर उसे दूर करनेके प्रति जागरुक रहनेकी जरूरत-भर है। मनोविकारसे उत्पन्न हुए अनेक रोगोंका उपचार मनोवैज्ञानिक इसी प्रणाली द्वारा करता है। रोगीके मस्तिष्कके अन्दरकी अव्यवस्थित उलझी हुई गुत्थियोंको सुलझानेमें मनोवैज्ञानिक केवल मदद-भर देता है।

आत्मविश्वासकी शक्तिका अन्दाज लगाना आसान नहीं है। इतिहासके पन्ने उलटिये, सैकड़ों ऐसे महान् व्यक्ति मिलेंगे, जिन्होंने जीवनकी बाधाओं और अड़चनोंकी परवा न करके अपने आत्मविश्वासके बलपर अपनी मञ्जिल सफलतापूर्वक तय की है। असफलताओंके ऊपर असफलताओंकी चोट सहनेवाले अब्राहम लिङ्कनका नाम कौन नहीं जानता? लिङ्कन, २२ वर्षका नवयुवक साझेमें दूकान करता है और पहली बार वह सीखता है कि दुनियामें सफलताके बजाय असफलता हासिल करना ज्यादा आसान है। उसका कारबार बैठ गया। उसकी सात वर्षकी कमाईकी एक-एक पाई उस दूकानमें लग चुकी थी। अपनी रही-सही हिम्मतको बटोरकर वह अब फिर दूकानदारी करता है—इस बार बड़ी सावधानीके साथ वह अपने कारबारकी देख-रेख करता है। इस बार वह पहली गलतीको न दुहरायेगा।

किन्तु इस बार भी दूकान फेल हो गयी—उसकी सारी पूंजी डूब गयी और साथ ही साथ उसके सिरपर जबर्दस्त कर्जेका बोझ भी आ गिरा। इस धैर्यवान् शख्सने दिवालिया करार देना स्वीकार न किया। पूरे पन्द्रह वर्ष तक कर्जकी रकम अदा करता रहा। अपनी ३९ वीं वर्षगांठके दिन वह इस ऋणकी आखिरी किस्त चुका पाया!

दूसरी मरतबा जब लिङ्कनकी दूकान फेल हो गयी थी, तो उसके एक मित्रने उसकी मदद करनेकी गरजसे उसे पैमाइश करनेका काम दिलाया। लिङ्कनके लिए उसी मित्रने पैमाइशके औजार और एक घोड़ा खरीद दिया। इतनेमें लिङ्कनके महाजनको इस बातकी खबर लग गयी और उसने फौरन् ही घोड़ा और औजार-बक्स, दोनों ही कुर्क करा लिये। मानो दुर्भाग्य हाथ धोकर उसके पीछे पड़ गया था।

इसके बाद ही उसकी प्रेमिकाका देहान्त हो गया—बेचारा लिङ्कन इस प्रहारसे तिलमिलाकर रह गया, वह जैसे पागल-सा हो उठा। कई साल उपरान्त उसने इस घटनाके बारेमें लिखा था—"इन दिनों अपने ऊपरसे मेरा विश्वास इतना ज्यादा हट गया था कि मैं अपने पास मामूली चाकू भी नहीं रखता था।"

दस वर्ष उपरान्त सफलताकी क्षीण आभाने उसके जीवनमें थोड़ी देरके लिए पदार्पण किया—स्टेट कांग्रेसमें वह सदस्य चुना गया; किन्तु तीसरे साल उसके चुनाव-क्षेत्रवालोंने उसको कांग्रेसमें भेजनेसे इन्कार कर दिया

९ वर्ष बाद मित्रोंके अनुरोधसे उसने राजनीतिमें फिर पैर आगे बढ़ाया; किन्तु इस बार भी चिर-परिचित असफलता ही हाथ लगी। अब उसकी अवस्था ५० वर्ष तक पहुंच चुकी थी और पिछले ३० सालके निरन्तर कशमकशमें बेचारेको कहीं एक भी कामयाबी हासिल न हो सकी थी—किन्तु असफलताओंके निरन्तर आघातसे भी इस शख्सकी कमर टूटी नहीं। मानो उसकी सहनशीलता और अद्भुत लगनसे प्रसन्न होकर दो वर्ष बाद नियतिने उसकी तमाम असफलताओंका घाटा एक ही बारमें पूरा कर दिया। उस साल वह यूनाइटेड स्टेट्सका प्रेसिडेण्ट चुना गया।

मन मारकर यदि लिङ्कन बैठ रहता या अपनेपर तरस खानेका ढोंग भरता, तो क्या वह इस ऊंचे और सम्मानयुक्त पदपर पहुंच पाता? अपने ऊपर तरस खानेसे बढ़कर मनुष्यके लिए दुर्भाग्यकी अन्य कोई बात नहीं हो सकती। विनम्रताके नामपर अपनेको कूपमण्डूक बनानेमें कायर व्यक्तियोंकी कायरताको तृप्ति मिलती है और आलसी मनको आराम।

स्वयं अपनी ही नजरोंमें यदि तुम अपनेको गिरा दोगे, तो दूसरे तुम्हें सम्मानकी दृष्टिसे क्यों देखेंगे? इस भरोसे कमरेके अन्दर दरवाजा बन्द करके मत बैठे रहो कि तुम्हारी योग्यताकी माप बाहरके ही लोग करेंगे। यदि तुम्हारे अन्दर विश्लेषणकी शक्ति मौजूद है, तो तुम्हारे गुणोंकी सही परख तुम्हारे सिवा अन्य कोई नहीं कर सकता। और जब तक तुम स्वयं अपने गुणों और अपनी योग्यताको पहचानोगे नहीं, तुम उन्हें बाहर लाकर उनसे फायदा कैसे उठा सकोगे? जीवनके किसी भी क्षेत्रमें जो व्यक्ति आगेकी कतारमें पहुंचते हैं, वे सभी अपने गुणोंकी कद्र करना जानते हैं। इनके अन्दर असीम साहस भरा होता है और इस साहसके पीछे होता है आत्मविश्वासका जबर्दस्त पुट। वे जानते हैं कि अमुक काम यदि वे पूरा करना चाहें, तो उसे वे बखूबी अञ्जाम दे सकते हैं—वे जैसा चाहें, अपनेको वैसा ही बना सकते हैं। जो काम उनके हाथमें होता है, उसे पूरा करनेमें उन्हें कोई हिचक नहीं होती। अपनी ड्यूटी पूरी करनेके लिए वे किसीकी मददके मुहताज नहीं रहते; ऐसे मौकेपर वे दूसरोंका मुंह नहीं ताकते।

और सच तो यह है कि अपनी शक्ति और योग्यताके बारेमें मुगालता होना उतना बुरा नहीं है, जितना अपनेको नाचीज और निकम्मा समझना।

अपने-आपको पहचानो—व्यर्थकी आशङ्काके फेरमें मत पड़ो। अपनी शक्तियोंको इस्तेमालमें लाओ और अपने व्यक्तित्वको संसारके ऊपर अभिवर्द्धित कर दो। अपने-आपसे सम्पर्कमें आनेवालोंपर अपने व्यक्तित्वकी छाप लगा दो।

सफलता हासिल करनेके लिए तुम्हें अपने विचारोंका भी केन्द्रीकरण करना होगा। तुम्हें निश्चय-रूपसे अपना लक्ष्य निर्धारित करना होगा और उस लक्ष्यको निरन्तर अपनी आंखोंके सामने रखना होगा। क्योंकि अपने लक्ष्यको यदि तुम देखोगे ही नहीं, तो उसपर निशाना भला कैसे लगा सकते हो?

यह निश्चय कर लेनेके बाद कि तुम चाहते क्या हो, तुम्हें अपनी लक्ष्य-सिद्धिके लिए पक्का इरादा करना होगा। पक्के इरादेके निश्चयमें अनेक बातें निहित हैं—केवल ख्वाहिश करनेमें और पक्के इरादेमें भारी अन्तर है। भला कौन नहीं ख्वाहिश करता कि उसका स्वास्थ्य अच्छा हो? किन्तु स्वास्थ्य बढ़िया बनानेका जिसने पक्का इरादा कर लिया है, केवल वही शख्स स्वास्थ्यकी खातिर अपनेको मामूली आमोद-प्रमोदसे वञ्चित रखेगा। अनुचित आनन्दोंका प्रलोभन आया, मिठाई-पकवान खानेकी बात आयी, तो पक्के इरादेवाला शख्स ही स्वास्थ्यके नामपर इन प्रलोभनोंको ठुकरानेका साहस दिखा सकेगा।

लक्ष्य निर्धारित करके उसकी प्राप्तिके लिए अग्रसर होनेका पक्का इरादा करना सहल काम नहीं है; किन्तु सफलता प्राप्त करनेकी यही पहली सीढ़ी भी है। अपना लक्ष्य निर्धारित करनेके लिए आत्मविश्वासकी जरूरत तो पड़ती ही है, साथ ही शक्ति और योग्यताकी भी जरूरत होती है, ताकि निश्चय किये हुए मार्गपर तुम अग्रसर हो सको। तीसरी बात है साहस। साहस ही एक्सलरेटर है, जो ऊंची-नीची जमीनपर आपको आगे बढ़नेके लिए अतिरिक्त शक्ति प्रदान कर सकता है। लक्ष्य-निर्धारणमें सहज बुद्धिकी भी जरूरत होती है— झोंपड़ीमें रहकर महलके ख्वाब देखनेवाला कभी

कामयाबी हासिल नहीं कर सकता। निरी भाव-प्रवणतामें बह न जाओ। पहले अपना अध्ययन कर लो, तब अपनी शक्तियोंका ख्याल करते हुए अपने लक्ष्यका खाका तैयार कर लो। तदुपरान्त तुम उसमें अपने मन माफिक रङ्ग भर सकते हो।

बगैर इन चीजोंकी मददके न तो तुम प्रलोभनोंपर विजय हासिल कर सकते हो और न किसी भली बातको अपना ही सकते हो—इनके बिना अपने इरादेको तुम हरगिज कार्यान्वित नहीं कर सकते।

अनेक व्यक्तियोंकी दयनीय हालत इसलिए होती है कि वे कभी अपना मार्ग निर्धारित ही नहीं कर पाते। उन्हें स्वयं नहीं मालूम रहता, किधरको नौका ले जाना है। जिधरकी बयार मिली, उधर ही उनकी नौका निरुद्देश्य बहने लगती है। उनकी समूची जिन्दगी यों ही बेकार बीत जाती है। उनकी दशा उस आदमी-जैसी होती है, जो सात मञ्जिले मकानमें तमाम सीढ़ियां पारकर जब अपने कमरेके पास पहुंचता है और जेबमें हाथ डालता है, तो देखता है कि कमरेके ऊपर लगे हुए तालेकी कुञ्जी वह नीचे ही छोड़ आया। सीढ़ियोंपर चढ़नेका उसका सारा परिश्रम बेकार गया।

लक्ष्य निर्धारित कर लेनेके बाद ठण्डे दिलसे इस बातका पता लगाओ कि तुम्हारी लक्ष्य-प्राप्तिमें कौन-कौन-सी चीजें बाधक हो रही हैं। जो चीजें बाधक हों, उन्हें दूर करनेकी फिक्र करो। अपने रहन-सहनके तरीके, अपनी आदतों एवं अपने मनकी क्रियाओंका विस्तृत रूपसे विश्लेषण करो और उनमें जरूरी फेर-बदल करो, ताकि वे तुम्हारे उद्देश्यकी पूर्तिमें तुम्हारी सहायता करें। अपनी विभिन्न शक्तियोंका अपव्यय इधर-उधर न होने दो। उनका एकीकरण करके उन्हें अपनी लक्ष्य-प्राप्तिमें लगा दो। याद है, द्रोणाचार्यने पाण्डवों और दुर्योधन आदिकी शस्त्र-परीक्षा कैसे ली थी? वृक्षकी चोटीपर मोमकी चिड़िया बैठायी गयी और राजकुमारोंसे कहा गया कि उन्हें चिड़ियाकी गरदनको वाणसे वेधना है। एक-एकको बुलाकर द्रोणाचार्यने चिड़िया दिखाकर पूछा—बोलो, क्या अपना निशाना देखते हो? राजकुमारोंने उत्तर दिया, हां। तब दूसरा प्रश्न हुआ, चिड़ियाकी गरदनके अतिरिक्त तुम और क्या देखते हो? उत्तर मिला—"वृक्ष, अन्य राजकुमार तथा आपको गुरुवर।" द्रोणाचार्यने इन सबको अनुत्तीर्ण ठहरा दिया, उन्हें वाण चलानेका मौका ही नहीं दिया गया। किन्तु जब अर्जुनसे प्रश्न किया गया, तो उसने उत्तर दिया—"गुरुवर, मुझे इस समय उस चिड़ियाकी गरदनके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नजर नहीं आ रही है।" द्रोणाचार्यने अर्जुनकी पीठ ठोंकते हुए कहा—'अवश्य तू अपने लक्ष्यको पहचानता है; तू अवश्य परीक्षामें सफल होगा।' अर्जुनका वाण ठीक अपने निशानेपर बैठा। ठीक अर्जुनकी ही तरह तुम्हें भी अपने लक्ष्यको छोड़ जब अन्य कोई चीज सामने नजर न आये, तो समझो कि तुमने अपनेको अपने उद्देश्यके सङ्ग एकाकार कर लिया है।

एक चतुर खिलाड़ीकी तरह तुम सोच-समझकर अपनी तमाम शक्तियोंको अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें ही लगा दो। इसके लिए तुम्हें एक व्यवस्थित कार्यप्रणाली बनानी होगी। क्योंकि किसी कामको पूरा करनेके लिए यही एक ऐसा तरीका है, जो तेजी, सस्तेपन और आसानीमें सबसे बढ़ा हुआ है। तुम्हें आश्चर्य होगा कि व्यवस्थित रूपसे कार्यक्रम निश्चय कर लेनेपर तुम थोड़े-से समयमें कितना अधिक काम कर सकते हो। दिनमें २४ घण्टे होते हैं और प्रत्येक घण्टेमें ६० मिनट। बस, इस बातका ध्यान रखो कि तुम्हारा एक मिनट भी बेकार न जाय तथा जो समय तुम खर्च करते हो, वह ऐसे कामोंमें खर्च हो, जो तुम्हें अपने लक्ष्यको ओर ही ले जायं, दूसरी ओर नहीं। अपने समयके प्रत्येक क्षणका लेखा रखो। जिन्दगी एक-एक क्षणसे मिलकर बनी है। अतः इन छोटे-छोटे लमहोंमें जो कुछ काम तुम करते हो, उनकी छाप तुम्हारे जीवनपर पड़ती है। अतः जरूरी है कि नन्हेंसे नन्हा काम जो तुम हाथमें लेते हो, उसे खूबीके साथ निबाहो। जीवन, मृत्यु, समृद्धि तथा गरीबी, सन्तोष तथा परिताप सभी तो हमारे नन्हें-नन्हें कामोंपर टिके हुए हैं। पैसिफिकके द्वीप-समूहको देखो, प्रवालके नन्हें-नन्हें जन्तुओंकी जांफिशानीका ही तो वह नतीजा है! प्रत्येक कीड़ा मरकर द्वीपमें एक नन्हा-सा कण जोड़ गया।

अगर तुम्हारे मस्तिष्कमें समय-समयपर आनेवाले ख्यालात ठीक हैं, तो तुम्हारा समूचा दृष्टिकोण सही है। अगर छोटी-छोटी बातोंको नगण्य जानकर तुम उनकी उपेक्षा करोगे और उनके प्रति अपने उत्तरदायित्वको भली भांति नहीं निबाहोगे, तो निस्सन्देह तुम अपने व्यक्तित्वको नीचेकी ओर

ले जा रहे हो। एक बार, एक ही काम हाथमें लो और चाहे वह कितना ही छोटा काम क्यों न हो, उसे अच्छी तरह निबाहो।

सफलता-प्राप्तिके लिए रूढ़िवादितासे भी बचना जरूरी है। मनुष्यके विचारोंमें जब निश्चलता आ जाती है, जब उसमें लोच नहीं रहता, तब उसकी क्रियात्मक शक्ति मन्द पड़ जाती है। उस व्यक्तिके अन्दर नवीन मार्ग ढूंढ़ निकालनेका साहस बाकी नहीं रहता। ऐसे व्यक्ति अगली लाइनमें टिक नहीं सकते; उनके लिए सहज सबसे पीछेकी लाइनमें जगह मिल सकती है। सोचने और निर्णय करनेकी विभूति परमेश्वरने मनुष्यको प्रदान की है। हमें इस विभूतिका भरपूर प्रयोग करना है। पुरानी लीकपर चलनेवाला अपने दिमागसे कम काम लेता है; किन्तु अपने लिए नये मार्ग ढूंढ़ निकालनेवालेको सर्वदा जागरूक रहना होता है।

परिवर्तन ओर मौलिकतामें ही जीवन है—बड़े-बूढ़ोंने अमुक काम जिस तरह किया है, उसी तरह हमें भी करना लाजिमी है, यह मनोवृत्ति नयी जिन्दगीकी परिचायक नहीं है। जीवनमें जिस घड़ी नूतनताका अभाव हो जाता है, जीवन फिर जीवन नहीं रह जाता। नयी बात सोचनेमें, कुछ नया कर दिखानेमें ही जिन्दगी निहित है। विकास-क्रियाके रुक जानेका अर्थ है वृत्ताकार परिधिमें घूमना। ऐसे जीवनमें उन्नतिकी गुञ्जायश बाकी नहीं रहती। तेलीका बैल मत बनो।

इसलिए अपने विचारोंको कीचड़में मत धंसने दो। मौलिक रास्तेपर चलनेकी आदत डालो। डरो नहीं कि तुम्हारा प्रयत्न सफल न होगा। वैसे तो संसारमें भविष्यके बारेमें निश्चय-रूपसे कुछ भी नहीं कहा जा सकता। किन्तु इस डरसे कि हमारा अनुमान कहीं गलत न हो, तुम कोई योजना ही न बनाओ, इसमें कहांकी बुद्धिमानी है? गलत या सही अपने लिए स्वयं रास्ता ढूंढ़ निकालो। अनिश्चित दशामें चौराहेपर खड़े रहनेके बजाय अपने लिए एक रास्ता चुनकर आगे बढ़ना ही श्रेयस्कर है। एकाध बार गलत निर्णय कर लेना उतना बुरा नहीं है, जितना चुपचाप हाथपर हाथ धरे बैठे रहना।

एक और बात है। सैकड़ों व्यक्ति ऐसे आपको मिलेंगे, जो काफी महत्त्वाकांक्षायें रखते हैं; किन्तु वे कभी उन महत्त्वाकांक्षाओंको असलियतका बाना पहना नहीं पाते। वे सर्वत्र शिकायत करते रहते हैं, "भई, मुझे तो समय ही नहीं मिलता। अपने पेशेके काममें दिन-रात ऐसा पिसता रहता हूं कि फुर्सत नहीं मिलती कि अपनी इस योजनाका पूरा करूं। और मैं कुछ जीनियस तो हूं नहीं कि इतना भार सिरपर रहते हुए भी उस योजनाको पूरा कर लूं।" शायद स्वयं तुम भी इस तरहकी बातें करते होगे!

लेकिन अप्रिय, किन्तु सच बात सुननेकी इच्छा हो, तो मैं यह कहूंगा कि तुम्हें काम करनेका तरीका नहीं मालूम। समयकी कमीकी दुहाई देकर तुम अपनी इस खामीको छिपाना चाहते हो। क्योंकि इतिहास बताता है कि अनेक प्रमुख व्यक्तियोंने महत्त्वपूर्ण काम लम्बी फुर्सतके समयमें नहीं किये हैं, बल्कि उन चन्द लमहोंके दौरानमें किये हैं, जो उन्हें पेशेके बीचमें प्रायः मिल जाया करते थे। प्रसिद्ध कवि लांगफेलोने इटलियन कवि दांतेकी समूची कृतियोंका अनुवाद किसी लम्बी छुट्टीमें नहीं किया था, बल्कि रोज सुबहका चाय पीनेके लिए टेबुलपर जब वह जाता था, तो उसे घरके अन्य लोगोंके लिए कुछ मिनट इन्तजार करना पड़ता था। उसने इस मौकेको उक्त अनुवादमें लगाया और शीघ्र ही उसने यह अनूठा काम पूरा कर लिया।

इसी प्रकार डाक्टर मैसनगुडने लूक्रिटसकी सभी पुस्तकोंका अनुवाद करनेके लिए उस वक्तका चुना, जो उसे मरीजोंके घर आते-जाते समय गाड़ीमें बैठे हुए मिला करता था। उसने भी शीघ्र ही अपना काम पूरा कर दिखाया।

इन्हीं लोगोंकी तरह यदि तुम भी चाहो, तो अपने बिखरे हुए अमूल्य क्षणोंको बहुमूल्य रत्नमें परिणत कर सकते हो। समय न मिलनेकी बात एक लीचड़ बहाना है, कमी है इच्छा-शक्ति और महत्त्वाकांक्षाकी। जीना हो, तो जीनेकी साध रखो। जिन्दगीके प्रत्येक क्षणमें रसका अनुभव करो। उमङ्गों और उल्लाससे भरी हुई जिन्दगीका एक दिन बेजानकी, नीरस जिन्दगीके सौ वर्षका अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्व रखता है।



अपरिचित मित्र

श्री आनन्दप्रिय

अक्टूबर ७—१९......

आपकी नयी पुस्तक पढ़कर मैं अत्यन्त मुग्ध हो गयी। इसलिए इस पिक्चर पोस्टकार्ड द्वारा आपके प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट कर रही हूं। चित्रमें अटलाण्टिक महासागरके किनारे चन्द्रमाके धुंधले प्रकाशमें जो विस्तृत दृश्य अस्पष्ट दिखलाई दे रहा है, वहीं मेरा वर्तमान निवास-स्थान है। यूरोपमें ब्रिटिश राज्यकी यही अन्तिम सीमा है—इसीसे आप समझ जायंगे कि आपका अनेक भक्तोंमेंसे एक भक्त कितनी दूरसे आपका अभिनन्दन कर रहा है। आप सुखी रहें। ईश्वर आपको दीर्घ जीवन प्रदान करे।

अक्टूबर ८—१९...

इस निर्जन देशका एक और चित्र आपके यहां भेज रही हूं। विधाताने मुझे यहां चिरदिनके लिए निर्वासित कर दिया है।

कल जब जोरोंसे वर्षा हो रही थी— यहां सालके प्रायः हर महीनेमें वर्षा होती है—तब मैं कामसे शहर गयी हुई थी। वहीं इत्तफाकसे आपकी किताब खरीदी और घर लौटते समय रास्तेमें बड़े चावसे सारी किताब पढ़ डाली। स्वास्थ्य सुधारने-की गरजसे इस समुद्रके किनारे एक विलामें हम लोग रहते हैं। कल उस समय आकाश मेघाच्छन्न होनेके कारण चारों ओर घोर अन्धकार छाया हुआ था। सड़कोंके दोनों किनारेके पेड़ों और फूलोंके पौधोंकी पत्तियोंका सौन्दर्य वर्षाके जलसे धुलकर निखर रहा था। ट्रामगाड़ी बहुत तेज चल रही थी। उसमें एक भी आदमी नहीं था। मैं ही उसमें अकेली बैठी किताब पढ़ रही थी। पढ़ते-पढ़ते आनन्दसे मैं अपनेको भूल-सी गयी। इसकी कुछ खबर ही नहीं रही कि कहां जा रही हूं।

आपको अनेक धन्यवाद—आपको शत-शत नमस्कार। मेरा और कुछ कहनेको जी चाहता है, पर क्या कहूं, कुछ समझमें नहीं आता। मैं अपने मनके भावको प्रकट नहीं कर सकती।

अक्टूबर १०—१९...

मित्रवर, आपको पत्र लिखनेकी बड़ी इच्छा होती है। मैं जानती हूं कि आपके पास ऐसे बहुत-से पत्र आते होंगे; किन्तु आप जिनके लिए लिखते हैं, क्या उनकी चिट्ठियोंसे उनकी आत्माका कुछ परिचय नहीं मिलता? तो फिर मैं ही क्यों चुप बैठी रहूं? आपकी जो पुस्तक प्रकाशित हुई है, उसे तो आपने सबको सम्बोधित करके लिखा है और उसके साथ ही आपने मुझे भी सम्बोधित किया है। इस तरह पहले आपने ही मेरे साथ बातचीत या पत्र-व्यवहार करनेका सूत्रपात किया है।

दिन-भर वर्षाके जलमें भींग-भींगकर हमारे बगीचेके पेड़ों और पौधोंकी हरी-हरी पत्तियां और भी हरी हो गयी हैं। सवेरेसे ही कमरेमें आग जलायी गयी है। आपसे बात करनेके लिए मेरा मन बड़ा अधीर हो रहा है। बहुत-सी बातें आपसे कहनेको हैं; पर आप ही इसे औरोंकी अपेक्षा अच्छी तरह समझ सकते हैं कि यह मेरे लिए कितना कठिन है। मनकी बात दूसरेको बतलाना कितना असम्भव है। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है, जैसे आपके यहांसे मुझे कोई अमूल्य निधि मिली हो। कितनी सुन्दर; किन्तु अवर्णनीय है! वह मेरी कल्पनामें नहीं आ सकती। फिर भी, इसके लिए मैं आपकी ऋणी हूं, यह मेरा मन ही जानता है। इस प्रकारके मनोभावका क्या अर्थ होता है, मुझे अच्छी तरह समझा दीजिये। क्या कोई सुन्दर कलात्मक वस्तु देखनेसे मनुष्यके मनमें उसकी ऐसी ही प्रतिक्रिया होती है? मनुष्यका शिल्प-कौशल, रचना-वैचित्र्य क्या इसी प्रकार मनुष्योंको मोहित करता है? हमारे मनकी जो अतृप्त कामनायें, सुखकी आकांक्षायें मनमें ही अप्रकट जमी रहती हैं, क्या वे किसी गान, किसी काव्य, किसी प्राचीन शिल्प या कहानीसे अचानक जाग उठती हैं? अथवा आप-जैसे दो-एक क्षणजन्मा व्यक्ति जब मनुष्यके मनके भीतरी सौन्दर्यको अङ्कित कर देते हैं, तब उसे देखकर मनमें आनन्दका उद्रेक होता है? और क्या ऐसा मालूम होता है कि संसारमें इतनी कदर्यता होते हुए यहां एक स्वर्गीय सौन्दर्य भी है?

मैं यहां जो किताबें पढ़ती हूं, उनमें कभी-कभी बड़ी भयावनी बातें पढ़नेको मिलती हैं, फिर भी, अचानक ऐसी

चीज भी मिल जाती है, जिसे पढ़कर आप ही आप मन यह कह उठता है—ओ हो ! कितना सुन्दर है !

अच्छा, अब आपसे विदा लेती हूं। फिर चिट्ठी लिखूंगी। मुझे तो ऐसा नहीं मालूम होता कि इसमें कोई गलती होगी। पाठक लेखकको जो चिट्ठी लिखे, उसमें अगर कोई गलती भी हो, तो लेखकको ध्यान नहीं देना चाहिए। फिर भी, हो सकता है, आप मेरी चिट्ठी खोलते भी न हों। यह ख्याल कर मेरे मनमें बड़ा कष्ट होता है।

अक्टूबर १०, रात्रि।

मुझे क्षमा कीजिये। आपसे जो बात कहने जा रही हूं, शायद वह फिजूल हो; पर उसे आपसे कहे बिना भी नहीं रह सकती। मेरी अवस्था कुछ कम नहीं है। मेरे पन्द्रह सालकी एक लड़की है। वही इस समय बहुत बड़ी मालूम होती है। मैं अपनी जवानीमें देखनेमें बदसूरत नहीं थी, और आज भी मैं बहुत नहीं बदल गयी हूं। खैर, जो हो, मैं वास्तवमें जैसी हूं, उससे भिन्न मुझे न समझ लीजियेगा।

अक्टूबर ११, १९......

अत्यन्त आवश्यक समझकर आपको बतला रही हूं कि जिस प्रकार किसी करुण सङ्गीतका अपूर्व स्वर मनको उद्वेलित कर देता है, उसी प्रकार आपकी प्रतिभाने मेरे मनमें तरङ्गें लहरा दी हैं। पर इस बातको जानकर आप क्या करेंगे ? यह मैं भी नहीं जानती, आप भी नहीं जानते; पर यह तो हम दोनों ही स्वीकार करेंगे कि मनुष्यके हृदयमें जो आकांक्षा उठती है, उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। यदि ऐसा न हो, तो मनुष्य जी ही नहीं सकता। इसमें अवश्य कोई गूढ़ रहस्य है। आप स्वयं यह स्वीकार करेंगे कि आप जो कुछ लिखते हैं, वह तभी लिखते हैं, जब उसे लिखनेकी आपके हृदयमें आकांक्षा होती है। और तभी आप अपना हृदय और प्राण कागजपर लिखकर रख देते हैं।

अपने जीवनमें मैंने बहुत-सी पुस्तकें पढ़ी हैं, बहुत-सी डायरियां भी लिखी हैं। जीवनमें जिन्हें कभी सुख नहीं मिलता, वे ही यह सब करते हैं। आज भी मैं तरह-तरहकी किताबें पढ़ा करती हूं। इसके पहले आपकी, बहुत तो नहीं, पर कुछ किताबें पढ़ी हैं। इसलिए मैं आपका नाम बहुत पहलेसे ही जानती हूं। उसके बाद अचानक आपकी यह नयी पुस्तक पढ़नेको मिली। कितने आश्चर्यकी बात है। एक आदमीने दूर देशमें बैठकर कुछ लिखा है और अपने मनकी किसी गुप्त बातका एक साधारण कण-मात्र उसमें इशारेसे व्यक्त किया है; पर उसमें कितनी मोहिनी शक्ति है ! दूरी और समयका अन्तर मिट गया। मैं अपनेको आपके ही अत्यन्त निकट पाती हूं। आपकी और मेरी, दोनोंकी विचार-धारायें एक हो गयीं। सच बात कहनेमें क्या सङ्कोच। आत्मा तो एक ही है—संसारके सभी मनुष्योंमें एक ही आत्मा विराजमान है। अब आप समझ सकते हैं कि मैं आपके यहां पत्र लिखनेके लिए क्यों व्याकुल हो रही हूं, क्यों मैं आपके सामने अपना हृदय खोलकर रख देना चाहती हूं, क्यों मैं आपकी सहानुभूति चाहती हूं, अपने दुःखकी बात आपसे क्यों बतलाना चाहती हूं। आपको सम्बोधित कर जो ये चिट्ठियां लिख रही हूं, क्या आपकी रचनायें ठीक ऐसी ही नहीं हैं ? आप भी तो यही करते हैं—किसी उद्देश्य-को सामने रख, किसी चरित्रकी कल्पना कर अपने मनकी बातें लिखते हैं। उसके बाद आप अपनी रचनाको चारों ओर अपरिचित व्यक्तियोंके यहां भेज देते हैं। उसमें आप भिन्न-भिन्न पात्रों द्वारा जो बातें करवाते हैं, उनमें अधिकांश आपके दुखी मनकी—आपकी मर्मवेदनाकी बातें होती हैं। यदि इसे स्पष्ट भाषामें कहा जाय, तो यों कहा जायगा कि यह कातरता केवल दूसरोंसे सहानुभूति प्राप्त करनेके लिए दिखलायी जाती है। नहीं तो मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। गान द्वारा, काव्य द्वारा, प्रार्थना द्वारा और प्रेम-निवेदन द्वारा भी मनुष्य दूसरोंकी सहानुभूति प्राप्त करना चाहता है।

इस बार हो सके, तो मेरी दो बातोंका जवाब दीजियेगा। जरूर दीजिये—मुझे एक चिट्ठी जरूर लिखिये।

अक्टूबर १३...

इस समय फिर रात हो गयी है। अपने सोनेके कमरेमें बैठकर आपको चिट्ठी लिख रही हूं। आपसे कुछ कहनेकी प्रबल इच्छासे अधीर हो गयी हूं। आप शायद इसे अतिशयोक्ति समझेंगे; पर विश्वास कीजिये, मेरे मनमें जो बातें उठ रही हैं, उन्हें मैं शब्दोंमें व्यक्त नहीं कर सकती। मुझे कुछ ज्यादा कहना भी नहीं है, केवल यही कहना चाहती हूं कि मेरे मनमें बड़ी व्यथा है, और उसके लिए मैं अत्यन्त दुखित हूं। फिर भी अपनी इस व्यथा और आत्म-करुणासे एक प्रकारसे प्रसन्न ही हूं। दुःखका कारण यही है कि मैं किस

अनजाने देशमें आ गयी हूं। यूरोपके सुदूर पश्चिमी सीमान्त-के एक गांवके निर्जन कोनेमें पड़ी हूं। चारों ओर वर्षाका अन्धकार छाया रहता है। दिगन्त तक कुहरा फैला रहता है, जैसे यहांसे अमेरिका तक फैला हुआ हो। कहीं जरा-सी फांक नहीं। यह बात नहीं है कि मैं इस सजे-सजाये घरमें ही अकेली हूं, मैं तो समस्त संसारमें अकेली हूं। और सबसे दुःखकी बात तो यह है कि सौभाग्यसे जिन्हें मैंने आज अचानक पाया, जिनसे मुझे बड़ी आशा है, वही आप मुझसे बहुत दूर हैं—नितान्त अपरिचित-से। फिर भी आप मेरे इतने निकट आत्मीय जान पड़ते हैं, दोनोंके मन ऐसे घुलेमिले हैं कि......

देखिये, संसारकी सब चीजें सुन्दर हैं। यह जो शेड दी हुई बत्ती जल रही है, उसका सुनहला प्रकाश, यह दूधकी तरह सफेद बिछौना, मेरे बदनके सफेद कपड़े, पैरकी चट्टियां, सभी सुन्दर हैं। पर यह सोचते ही मनमें करुणा आ जाती है कि इन सबकी क्या आवश्यकता थी। ये सभी किसी न किसी दिन मिट जायंगे, कुछ न रहेगा, सब व्यर्थ है—सब अनर्थक है, जैसी व्यर्थ मेरी अनन्त आशा है, जैसी अपूर्ण मेरी आकांक्षा है, जिसके कभी सार्थक होनेसे मेरी जीवन-धारा कुछ और ही हुई होती।

आपसे मेरी विनम्र प्रार्थना है, मुझे एक चिट्ठी जरूर लिखिये। बस, दो-तीन बातोंमें मुझे सिर्फ यही बतला दीजिये कि आपने मेरी बातें सुन ली हैं। बार-बार मैं आपको विरक्त कर रही हूं, इसके लिए कृपया मुझे क्षमा कीजिये।

अक्टूबर, १९

यही हमारा शहर है, यही हमारा गिर्जा है, समुद्र-तीर-वर्ती वह निर्जन गांव, जहांसे मैंने आपको पहला पोस्टकार्ड लिखा था, यहांसे कुछ दूर उत्तर ओर है। यह एक अच्छा शहर है, यहां एक बड़ा गिर्जा है। पर यहां चारों ओर गम्भी-रता और नीरवता छायी हुई है। बस, सब जगह पत्थर, ईंट, मकान, पीच, वर्षा......केवल वर्षा है।

हां, आप मेरे यहां एक छोटी चिट्ठी लिखिये। मैं समझती हूं, आपको मुझसे कुछ कहना नहीं है। बहुत करेंगे, दो-एक शब्द लिखेंगे। पर मेरे लिए वही यथेष्ट होगा। आप दो ही शब्द लिखें, मगर लिखें जरूर।

अक्टूबर, २१

आपकी एक भी चिट्ठी मुझे नहीं मिली। आज पन्द्रह दिन होते हैं, जब कि आपको मैंने पहली चिट्ठी लिखी थी।

शायद आपकी पुस्तकके प्रकाशकोंने अभी तक मेरी चिट्ठियोंको आपके यहां भेजवाया नहीं है, या आप अपने काममें इतने अधिक व्यस्त रहते हैं कि आपको चिट्ठियोंका उत्तर देनेका समय ही नहीं मिलता। यह सोचते ही मुझे बड़ा कष्ट होता है। पर आप मेरे अनुरोधकी जो इस प्रकार उपेक्षा कर रहे हैं, उसे सोचकर तो और भी कष्ट होता है। ऐसी किसी बातकी सम्भावना होनेसे ही मेरा मन दुःखित हो जाता है। शायद आप कहेंगे, मेरा इस प्रकार व्यर्थ ही क्षोभ करना अन्याय है। क्योंकि आपपर मेरा वैसा कोई अधिकार नहीं है। पर क्या यह सच है? मुझे ऐसा मालूम होता है कि जबसे मेरा मन आपकी ओर आकर्षित होने लगा है, तभीसे आपपर मेरा अधिकार भी हो गया है। क्या आपने किसी ऐसे रोमियोको देखा है, जो केवल अधिकार रहनेपर ही प्रेमका प्रतिदान चाहता है, और न रहे, तो नहीं चाहे? क्या आप किसी ऐसे ओथेलोको जानते हैं, जो अपने अधिकार-ज्ञानसे ही अपने दावेको कायम रखना चाहता है? सभी यही कहेंगे, जिस हेतु मैं प्रेम करता हूं, उसी हेतु मुझे उसका प्रतिदान भी मिलेगा। प्रेम करना कभी व्यर्थ नहीं जाता। पर मैं आपसे केवल प्रेम ही नहीं चाहती—ऐसा कभी न सोचियेगा—मेरी चाहना तो उससे भी जटिल है। मैं प्रेमसे भी बढ़कर कोई चीज चाहती हूं। जिसे मैं प्रेम करती हूं, वह तो मेरा है ही, उसे तो अपने मनमें रख ही लिया है। पर मैं जो कहना चाहती हूं, उसे ठीक तौरसे समझा नहीं सकती। केवल इतना ही समझ रही हूं कि दूसरोंके मनमें भी ठीक ऐसा ही होता है। मेरी-जैसी जिसकी अवस्था होगी, उसके मनमें भी ठीक मेरी ही जैसी व्याकु-लता होगी। न जाने इसके भीतर क्या चिरन्तन सत्य है। संसारमें सब कुछ अबोध्य, सब कुछ पहेली है।

खैर, जाने दीजिये, आपके यहांसे मेरी चिट्ठियोंका कोई जवाब नहीं आया, फिर वही बात लिख रही हूं। मैं कह नहीं सकती कि क्यों, पर मैं स्पष्ट अनुभव करती हूं कि आप मेरे ही अपने आदमी हैं। इस धारणाको मैं सच मानकर विश्वास करती हूं, इसीलिए मैं आपके यहां बार-बार चिट्ठी

लिखती हूं। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं आपके यहां जितनी चिट्ठियां लिखती रहूंगी, मेरी चिट्ठी लिखनेकी लालसा उतनी ही बढ़ती जायगी। आपका और मेरा सम्पर्क और भी घनिष्ट हो जायगा। मेरे मनमें आपका कोई चित्र अङ्कित नहीं है, न आपकी किसी प्रकारकी मूर्तिकी कल्पना कर सकती हूं। तो फिर मैं यह सब किसको लिखती हूं। अपनेको? हां, तो इससे क्या होता है? जो मैं हूं, सो आप हैं।

खैर, जो हो, इस बार मेरी चिट्ठीका जवाब जरूर आना चाहिए।

अक्टूबर, २२

आज बड़ा सुहावना दिन है। मेरा मन कुछ हल्का हो गया है। कमरेकी सब खिड़कियां खुली हुई हैं। हल्की-हल्की धूप और थोड़ी गर्म हवा बह रही है। ऐसा मालूम हो रहा है कि वसन्त आ गया। यह बड़ा विचित्र देश है। यहां गर्मीके दिनोंमें भी इतनी वर्षा होती है कि ठण्डके मारे बदन कांपने लगता है, और जाड़ेके दिनोंमें वर्षा भी होती है और गर्मी भी मालूम होती है। किन्तु बीच-बीचमें कभी ऐसा भी साफ दिन आ जाता है कि आश्चर्य होता है। समझमें ही नहीं आता कि यह शीतकाल है या इटलीका वसन्त।

उसी दिन रातको—

अच्छा, यह भी तो हो सकता है कि मेरी बातें आपको बिल्कुल फिजूल-सी मालूम होती हों। मेरा परिचय तो आप जान नहीं सके हैं, शायद इसीलिए आप मेरी चिट्ठियोंका जवाब नहीं देते। इसलिए मैं आपको अपना कुछ परिचय दे रही हूं। सोलह वर्ष पहले मेरा विवाह हुआ था। मेरे पति फ्रेञ्च हैं। उनसे फ्रेञ्च सिवियारामें मेरा प्रथम परिचय हुआ था। रोममें हमारा विवाह हुआ। उसके बाद इटलीमें 'हनीमून' होनेके बादसे हम लोग बराबर यहीं रहते हैं। मेरे एक लड़का और दो लड़कियां हैं। मैं उन्हें काफी प्यार करती हूं; पर और सब माताओंकी तरह, जो घर-गृहस्थीको ही सब कुछ समझती हैं और अपने बाल-बच्चोंको जी-जानसे प्यार करती हैं, मैं अपनी सन्तानोंको प्यार नहीं करती। जब तक मेरे बच्चे छोटे थे, तब तक मैं उन्हें बड़ा बनानेके लिए दिन-रात लाड़-प्यारसे उनका लालन-पालन करती रही, उनके साथ खेलती रही, उनके साथ अपने दिन बिताती रही; पर अब वे इतने बड़े हो गये हैं कि उन्हें मेरी जरूरत नहीं रही। इसलिए मुझे बहुत समय मिलता है, जिसे मैं तरह-तरहकी किताबें पढ़कर गुजारती हूं। मेरे आत्मीय दूर-दूर रहते हैं। सभी अपने-अपनेको लेकर व्यस्त हैं। कभी-कभी अपनी खबर दे दिया करते हैं। मेरे स्वामीसे जिन लोगोंका परिचय है, कभी-कभी मैं उनके घर भोजका निमन्त्रण पाती हूं। पर मेरा कोई अन्तरङ्ग मित्र नहीं है। आज-कलकी युवतियोंकी भांति मेरा कोई पुरुष मित्र भी नहीं है। स्त्री-पुरुषमें कोई भेद-भाव नहीं रखना चाहती।

यह मेरा यथेष्ट परिचय है। अगर आप मेरी चिट्ठीका जवाब दें, तो क्या आप उसमें अपना भी कुछ परिचय देंगे? आप कैसे आदमी हैं, कहां रहते हैं? आप शेक्सपियरको पसन्द करते हैं या शेलीको? गेटेको या दान्तेको? बालजकको या फ्लाबरको? आप गाना पसन्द करते हैं या नहीं? आपको कौन गाना बहुत प्रिय है? आपका विवाह हुआ है या नहीं? विवाह-बन्धन पुराना हो जानेसे भार-सा मालूम हो रहा है, या किसी नयी-नवेली बधूके साथ जीवनका आनन्द ले रहे हैं? क्या इस समय प्रेमकी बातें हर घड़ी सुननेको जी चाहता है, या उन्हें सुनकर पुरानी कष्टकर स्मृतियां जाग उठती हैं और जवानीका आनन्द आजकल मरीचिका-सा मालूम हो रहा है?

हो सके, तो इस बार मेरी चिट्ठीका जवाब दीजियेगा।

नवम्बर, १

आज तक भी आपकी कोई चिट्ठी नहीं मिली। इससे मुझे कितनी वेदना हो रही है। कभी-कभी तो मनमें ऐसी पीड़ा होती है कि जिस दिन पहली चिट्ठी आपको लिखी थी, उस दिनको जी-भर कोसती हूं।

सबसे दुःखकी बात तो यह है कि इस दुःखसे छुटकारा पानेका कोई उपाय नहीं। जितना ही अपने मनको समझाती हूं कि चिट्ठीका जवाब नहीं आयेगा, उसके लिए आशा करना व्यर्थ है, वह उतना ही व्यग्र हो उठता है। कोई कह भी तो नहीं सकता कि चिट्ठी आयेगी ही नहीं। अगर मैं ठीक-ठीक जानती कि आप मेरी चिट्ठीका जवाब नहीं देंगे, तो मैं निश्चिन्त रहती। पर नहीं, यह भी नहीं हो सकता, उसकी अपेक्षा तो आपकी चिट्ठी पानेकी आशा लगाये बैठे रहना अच्छा है। मैं आशा ही करूंगी, प्रतीक्षा ही करूंगी।

नवम्बर, ३

मेरी चिट्ठीका जवाब भी नहीं आता और मेरी वेदना

भी कम नहीं होती । सवेरेका समय सबसे ज्यादा दुःखदायी होता है । उसी समयसे उद्विग्नता शुरू हो जाती है, हाथ-पांव बर्फ-जैसे ठण्डे हो जाते हैं । हृदयकी उद्विग्नताको किसी तरह दबाकर कपड़े पहनती हूं, काफी पीती हूं, उसके बाद लड़कीसे गाने-बजानेकी चर्चा करती हूं । पन्द्रह वर्षकी लड़की ऊंची गर्दन कर पियानो लेकर बैठती है और बड़ी लगनसे बजाना सीखती है, बड़े धैर्यसे आप ही आप गतका अभ्यास करती है । इस उम्रकी लड़कियां इतना ही कर सकती हैं । फिर दोपहरको डाक आती है । मैं दौड़कर देखने जाती हूं । मेरे नामका कुछ भी नहीं रहता । उसके बाद दूसरे दिनके सवेरे तक बिल्कुल चुप रहती हूं ।

आजका दिन बड़ा अच्छा है । खूब चमकीली धूप निकली है । बहुत-से पेड़ोंके पत्ते झड़ गये हैं, जिससे वे काले मालूम हो रहे हैं । कितने ही पेड़ शरदकालीन फूलोंके भारसे लदे हैं । पेड़ोंके बीचसे उपत्यका-श्रेणी बहुत दूर तक दिखाई दे रही है । उसके चारों ओर ईथरके समान भाप जमी हुई है । किसीके प्रति किसी कृतज्ञतासे हृदय भरा-सा है । किसके प्रति यह कृतज्ञता है ? कुछ तो हुआ नहीं है और न कुछ होनेकी सम्भावना है ।······पर क्या यह सच है ? यदि कुछ नहीं हुआ है, तो इतनी कृतज्ञतासे मेरा मन भरा हुआ क्यों है ?

आपको पानेका सुयोग आपसे ही मिला है, इसलिए आपको अनेक धन्यवाद । आप मुझे कभी नहीं पहचानेंगे और न मैं आपको कभी देख सकूंगी । करुण होनेपर भी इसमें बहुत माधुर्य है । आपने मुझे एक अक्षर भी लिखकर नहीं भेजा और मैं आपके रक्त-मांससे गढ़े शरीरको देख नहीं सकी । यह भी अच्छा ही हुआ । यदि मैं आपको पहचानती या आपकी एक चिट्ठी भी पाती, तो क्या मैं आपसे इतनी बातें कर सकती, या यों ही आपके बारेमें मैं कुछ अनुभव कर सकती ? आपको जो मैं इस समय समझ रही हूं, निश्चय ही उस हालतमें आप वही नहीं होते । आप मेरी कल्पनासे छोटे उतरते । तब इस तरहकी चिट्ठियां लिखनेमें सङ्कोच होता ।

अब ठण्ड पड़ने लग गयी है; पर मैंने खिड़कियोंको खोल रखा है । बगीचेके उस पार पर्वत-श्रेणी जो नीलाभ भापकी चादर ओढ़े हुए है, उसे ही टकटकी लगाये देख रही हूं । इस नीलिमाके सौन्दर्यको देख-देखकर मेरे मनमें व्यथा उठ रही है । बार-बार यही सोचती हूं, चाहे जो हो, इसका कोई फैसला हो जाना चाहिए । पर क्या करूं, कुछ सोच नहीं सकती ।

नवम्बर, ९

डायरीकी तरह चिट्ठी लिखती हूं; किन्तु यह डायरी है नहीं, यह चिट्ठी ही है । क्योंकि एक पाठक है, हालां कि वह काल्पनिक पाठक है ।

अच्छा, आप किस प्रेरणासे लिखते हैं ? क्या लोगोंको कहानियां सुनानेके लिए या किसी कल्पित रूपक द्वारा अपने हृदयकी भावनाओंको व्यक्त करनेके लिए ? हां, जरूर यही बात है । दस लेखकोंमें नौ केवल कहानियां लिखते हैं, यहां तक कि ख्यातनामा लेखक भी । वे वास्तविक कलाकी सृष्टि नहीं करते । तो यह कलाकी सृष्टि क्या है ? वह है मानवके अन्तरकी उपासना, हृदयका गान और अन्तस्तलसे उठा हुआ सङ्गीत । अहा, क्या ही अच्छा होता, यदि मैं भी दुनियासे जानेके पहले यह लिखकर रख जाती कि मैंने भी अपने जीवन-में आनन्द किया था, एक दिन मैंने भी प्रेम किया था, मेरे भी जवानी थी, वसन्तको देखा था, इटलीको देखा था, इस समय अटलाण्टिकके उपकूल-स्थित एक अविख्यात देशमें हूं । मैं प्रेम करना जानती हूं, आज तक भी कुछ नयेको पानेकी आशा लगाये बैठी हूं ।···और इस समुद्र-तटपर न जाने कितने अज्ञात देश हैं, उनमें न जाने कितने अज्ञात व्यक्ति अपना तुच्छ जीवन यापन कर रहे हैं । संसारके दूसरे मनुष्योंसे उनका कोई सम्पर्क नहीं । उनकी भाषा अद्भुत है, जीवन अर्थहीन है, उनके जीवन धारण करनेका क्या उद्देश्य है, यह कोई नहीं जानता और न भविष्यमें कोई जान सकेगा ।

फिर मैं आपकी चिट्ठी पानेकी आशा कर रही हूं । यह मेरा अभ्यास-सा हो गया है—जैसे कोई मानसिक व्याधि हो गयी है ।

नवम्बर, ७

आपकी चिट्ठी तो आयेगी ही नहीं, यह तो जानी हुई बात है । पर इस बातको एक बार सोचिये तो सही । जिसे कभी आंखोंसे देखा नहीं और न भविष्यमें कभी देख सकूंगी, उसे सम्बोधित कर सपनेकी नाईं मैंने अपनी सारी बात शून्यमें कह डाली और उसके यहांसे कोई जवाब नहीं आया ।

इससे सोचने लगी कि दुनियामें मेरा कोई नहीं है। मेरे लिए संसार सूना है।

और केवल यह वर्षा, यह कुहरा, यह अन्धकार—यही सब मेरे लिए उपयुक्त हैं। इनसे मुझे कुछ सान्त्वना मिलती है।

अब आपसे विदा लेती हूं। आपकी इस निष्ठुरताके लिए भगवान् आपको क्षमा करें। हां, इसे निष्ठुरता ही कह सकते हैं।

नवम्बर, ८

अभी-अभी दिनके तीन बजे हैं। पर इस घोर वृष्टि और कुहरेसे ऐसा मालूम होता है कि शाम हो गयी।

पांच बजे कुछ लोग मेरे यहां चाय पीने आयेंगे।

वर्षामें वे उस अन्धेरे शहरसे मोटरमें आयेंगे। वर्षासे वह शहर और भी मलिन हो गया है। वहांके बड़े-बड़े मकानों-की छतें, गिर्जे, पीचकी सड़कें—सब जलमें भीगकर काले हो गये हैं। वृष्टिके अन्धकारमें मकानों और गिर्जोंके ऊंचे-ऊंचे गुम्बद इस समय दिखाई नहीं देते।

अभीसे ही मैं कपड़े पहन और सिङ्गार साजकर तैयार हो गयी हूं। मानो मुझे स्टेजपर उतरना है। ज्यों ही मेरा पार्ट आरम्भ होगा, त्यों ही मैं अपनी बंधी उक्तियां सुनाने लगूंगी। बड़ा उत्साह दिखाऊंगी। प्रसन्न होनेका अभिनय करूंगी, सबके साथ सौजन्य दिखाऊंगी, बीच-बीचमें अनमनी भी हो जाऊंगी, इससे कुछ होगा नहीं, मगर लोग समझेंगे कि दिन खराब होनेसे ऐसा हो गया है। परन्तु इस तरह सिङ्गार-बनाव करनेसे ऐसा मालूम हो रहा है, जैसे मेरी उम्र पीछे चली गयी हो। जैसे मैं अपनी लड़कीकी बड़ी बहन होऊं। बचपनकी तरह किलकारी मारनेको जी चाहता है। इसके सिवा, अभी ही मेरे जीवनमें एक अद्‌भुत युग आया था, जब मेरे मनमें प्रेमकी ही भांति एक अपूर्व अनुभूति जाग्रत हुई थी। किसके लिए यह प्रेम था? कहांसे वह आया था?

अच्छा, विदा लेती हूं। अब मैं आपसे कुछ आशा नहीं करती। मैं यह बात जोर देकर कहती हूं।

नवम्बर, १०

मेरे मित्र, आपसे विदा लेती हूं। कृतज्ञ होकर जिस तरह पहली चिट्ठी लिखना शुरू किया, आज पुनः कृतज्ञ होकर ही उसे समाप्त कर रही हूं। आपने जो मेरी एक भी चिट्ठीका जवाब नहीं दिया, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देती हूं; क्योंकि अगर जवाब दिया होता, तो उसका परि-णाम शायद अच्छा नहीं हुआ होता। और जवाब लिखते ही क्या? एक बार चिट्ठियोंका आदान-प्रदान शुरू हो जाने-पर, अगर किसी कारण बन्द कर देनेकी आवश्यकता होती, तो बतलाइये, कैसी कठिनाई होती। और मुझे जो कुछ कहना था, वह सब तो कह ही दिया है। इससे अधिक और था ही क्या, जो तब कहती। अब मुझे कुछ कहनेको नहीं रह गया है। सब कुछ कह चुकी। एक मनुष्यकी जीवन-कहानी दो-तीन लाइनोंमें समाप्त हो जाती है। इससे ज्यादाकी जरूरत नहीं पड़ती। दो-तीन लाइनें काफी हैं।

पहलेकी ही तरह आज भी मैं इस कमरेमें अकेली बैठी हूं। बाहर कुहरा छाया हुआ है। आज जाड़ेके इस दुर्दिनके अन्धकारमें मैं अनुभव कर रही हूं कि मैंने किसीको खो दिया। अब मैं एकान्तमें बैठकर अपनी डायरी लिखूंगी; परन्तु मेरे इस लिखनेका क्या उद्देश्य है और तुम्हारे लिखनेका क्या उद्देश्य है, यह केवल विधाता ही बतला सकते हैं।

कुछ दिन पहले मैंने आपको सपनेमें देखा था—आप जैसे एक अद्‌भुत पुरुष हैं, एक अन्धेरे घरके एक कोनेमें, मुंह फेर-कर आप बैठे हैं। आपका चेहरा देख नहीं पड़ता। पर मैंने आपको देख लिया। साथ ही सपनेमें भी यह ख्याल आया कि आंखोंसे आज तक जिसे देखा नहीं, उसे सपनेमें किस तरह देख लिया। केवल भगवान ही शून्यमेंसे सृष्टिकी रचना कर सकते हैं। मुझे न जाने कैसा कष्ट होने लगा, भयसे मेरी नींद टूट गयी। मन बड़ा खराब हो गया।

और पन्द्रह या बीस वर्षके बाद आप भी दुनियामें नहीं रहेंगे, मैं भी न रहूंगी। उसके बाद दूसरे संसारमें हमारी मुलाकात होगी। कौन कह सकता है कि पुनर्जन्म नहीं होता। हम अपनी कल्पनासे जो-जो स्वप्न देखा करते हैं, हम स्वयं उनका कोई अर्थ नहीं समझ सकते। ये जो कल्पनायें हमारे मनमें उठती हैं, जिन्हें हम कहते हैं मेरी कल्पना, मेरी रचना, मेरी सृष्टि, मेरा स्वप्न, तो क्या ये सब सचमुच मेरे होते हैं? हम जो दूसरेको पानेकी कामना करते हैं, जैसे मैंने आपको पानेकी कामना की थी, तो क्या हम अपनी इच्छासे वैसा करते हैं?

अच्छा मित्र, अब आपसे विदा लेती हूं। *

---

* रूसी लेखक बुनिनकी एक कहानी।



अद्भुत चरित्र अनन्ज़ियो

गेब्रील अनन्ज़ियो इटैलियन साहित्यमें अमर हो गया है। रुपये-पैसेका अपव्यय, प्रेमका अपव्यय और पत्र-व्यवहारमें अपव्यय—सर्वत्र उसने अद्भुत रूपसे अपव्यय करना सीखा था। पचास सालके अपने क्रियाशील जीवनमें लगभग ९० ग्रन्थोंकी रचना उसने कर डाली। उसने युद्धमें भाग लिया, असंख्य रमणियोंसे प्रेम-लीलायें कीं, संसारमें सबसे अधिक पैसे लेनेवाले पत्रकारके रूपमें काम किया और वैभव एकत्र करने तथा उसे बेलौसीके साथ लुटा देनेमें उसके जोड़का और कोई भी न रहा। इस प्रकार जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें वह घोर अपव्ययी था। तर्क करना उसने जैसे सीखा ही न था, भावावेशमें कुछ भी कर गुजरनेका उसे शौक था।

यों कोई भी आदमी किसी दूकानमें जाकर चार-छः टाइयां खरीदेगा, लेकिन अनन्ज़ियो दूकानमें जायगा, तो चार दर्जन टाइयां खरीद लेगा। दूसरे लोग जायंगे तो दूकानदार-से कहेंगे, "कोई जरा सस्ती चीज नहीं है?" वहां अनन्ज़ियो जायगा तो कहेगा, "अरे जरा कोई और अच्छी—जरा और कीमती चीज दिखाओ न!" और दूकानमें जाकर बिना कुछ भी खरीदे लौटना उसके लिए असम्भव था। दूकानमें जाकर बिना कोई चीज खरीदे लौटना कितना शर्मनाक है!

अनन्ज़ियो आनन्दी जीव था। कुछ भी काम न होता तो स्नान कर रहा है, कपड़े बदल रहा है और इत्रादि लगा रहा है। कमीजें इतनी रख छोड़ी थीं और उन्हें इतनी बार बदलता कि उसके नौकरोंको लौहा देने-भरकी आवश्यकता पड़ती। कोई अतिशयोक्ति नहीं है, सौ सूट उसके पास यों ही फालतू पड़े रहते थे। आभूषणादि वह कभी नहीं पहनता था। पर लगभग ५० हजार लीरेके आभूषण उसने लड़कियोंको भेंट कर दिये होंगे।

अनन्ज़ियोको प्रतिदिन औसतन् ५० पत्र, २५ तार और १५ पुस्तकें तथा पुस्तकोंकी पाण्डुलिपियां मिलती थीं। अपने साहित्यिक जीवनमें उसे डेढ़ लाखसे अधिक पत्र मिले होंगे। इन सबका अगर वह उत्तर देने बैठता, तो पत्र-व्यवहारके अतिरिक्त और कुछ कर ही न सकता। लेकिन सभी पत्रोंको तो वह पढ़ता भी न था। जिन पत्रोंको लिफाफेसे वह पहचानता था, उन्हें पहले खोलता और बाकीको बिना खोले ही एक सन्दूकमें—जो इसी कामके लिए रखी थी—रखवा देता। कई पत्र तो महीनों बिना पढ़े पड़े रह जाते थे।

तारों और रजिस्टर्ड पत्रोंको ही वास्तवमें वह महत्त्व देता था और कभी-कभी तो वह स्वयं अपने आदमी द्वारा पत्र भेजता था। तारोंको लेकर वह बड़ी दिलचस्पी लेता और कभी-कभी तो एक साथ लम्बे-लम्बे सौ तार वह दे डालता। इन सब तारोंकी विशेषता यह होती थी कि उनमें जो बातें होतीं, वे काफी परस्पर खण्डन करनेवाली होतीं। एक तारमें अगर लिखा गया है कि मैं अभी भी बीमारीसे उठ नहीं सका हूं, तो दूसरेमें शीघ्र स्वास्थ्य सुधर जानेके लिए परमात्माको धन्यवाद है, तीसरेमें कहा गया है कि मैं अभी बाहरसे आया हूं, चौथेमें कुछ और पांचवेंमें कुछ। उसकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा, जब उसने जाना कि साधारण तारोंकी अपेक्षा चार गुना अधिक खर्च देनेसे एक्सप्रेस तार दिये जा सकते थे। इसके बाद वह जरूरी तार एक्सप्रेस ही देता।

अनञ्ज़ियोमें एक बहुत बड़ी कमजोरी यह थी कि वह प्रतिज्ञायें बड़ी जल्दी कर लेता था और ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती चलती थी, त्यों-त्यों उसकी यह आदत भी बढ़ती चलती थी। उत्सवोंमें भाग लेने, किसी पुस्तककी भूमिका लिख देने, किसीको रुपये देनेका वचन दे देने, इस प्रकारकी प्रतिज्ञायें करते उसे देर न लगती; पर वह उन्हें पूरा कभी न कर सकता। कागजातपर हस्ताक्षर हो गये हैं, दुबारा हस्ताक्षरसे उनकी पुष्टि हो गयी है, सरकारी टिकट और सील-मुहर लग चुकी है, पर इनका कोई प्रभाव उसपर नहीं पड़ता था। भाव-प्रवाहमें जितनी प्रतिज्ञायें वह कर देता—जितने वचन वह दे देता, उन सबका पूरा करना ही असम्भव होता। बिना वचन दिये जब कोई नहीं टलता, तो वचन दे देता। कभी-कभी पूरा करनेकी पूरी इच्छा रहती; पर बीचमें कोई और अनिवार्य स्थिति उत्पन्न हो गयी, तो उसे सुलझाने लगा, कौन पहलेकी परवाह करता है। कभी-कभी तो वह अपने शोफरको शहरके बाहर भेजकर वहांसे अपनी असमर्थताकी सूचना तार द्वारा भिजवा देता और खुद शहरमें पड़ा रहता। घरमें मस्तीमें पड़ा हुआ है, क्यों दुनियाको बुलाकर सिर दुखाये।

उसकी एक खास विशेषता थी, रमणियोंके प्रति उसका भीषण आकर्षण—'भीषण' इसलिए कि वह कभी-कभी ऐसे काण्ड कर गुजरता था, जिनसे बेचारी रमणीका जीवन बेकार हो जाता और वह खुद निश्चिन्त मौज मारता। किसी दूसरेको वचन देनेमें अगर वह हिचकता न था, तो रमणियोंके साथ तो किसी भी प्रतिज्ञाके करते समय वह कभी भी सोचता नहीं था कि आखिर यह पूरी होगी या नहीं। बड़े-बड़े उपहार देनेके अतिरिक्त वह विवाह तक कर लेनेका वचन किसी भी विवाहिता रमणीको दे देता, अगर अपने पतिको वह तलाक दे दे। और इस तरहका वचन उसने असंख्य रमणियोंको दे रखा था और इस तरह कि प्रत्येक रमणी उसपर वास्तवमें विश्वास करती।

इस प्रकारकी भण्डामीकी रक्षा करना कभी-कभी बड़ा कठिन हो जाता, क्योंकि कई लड़कियोंसे एक ही बातकी रक्षा और एक ही समय असम्भव-सी हो जाती। एक बार अपने सेक्रेटरीको उसने ये तार विभिन्न स्त्रियोंके नाम भेज देनेके लिए दिये :—

सिन्योरा एक्स, पेरिस : आज ही इस नये मकानमें आया और तुम्हारे कमरेको सजानेमें लगा हूं। प्यार—गेब्री।

काउण्टेस एम० पेरिस : लहरोंका सङ्गीत दर्दकी खुमारीको सुला रहा है। प्रत्येक बात पास और प्रत्येक बात दूर है। खुश रहो—निर्वासित।

मादम बी० पेरिस : प्रत्येक क्षण तुम्हारी ही स्मृतिसे झंकृत रहता है—ब्रियल

मादम एच० आर० पेरिस : अपनी सर्वोत्तम भावी प्रतिमाके समान ही तुम्हारी ओर ध्यान लगा है। उदास न हो। प्यार—हजार बार प्यार।

एक साथ ही ये तार भेजे गये और मजा यह था कि पांचवीं रमणी दूसरे कमरेमें थी।

कितने लोग ऐसे हैं, जिन्होंने अनञ्ज़ियोके समान घर बनवानेमें उत्साह दिखाया; पर जिनका एक भी घर बन न सका हो। अनञ्ज़ियो जब जहां जाता, वहीं एक दुनिया बसा लेता। सैकड़ों रुपयेके फर्निचर, पुस्तकें, श्रृङ्गार-सामग्रियां, कीमती फूलदानियां और उनमें प्रतिदिन ताजे फूलोंके गुच्छे। कला, सजावट, आविष्कारोंपर निकले हुए सूचीपत्र टेबुलपर पड़े हुए हैं और उनमें छपी हुई विभिन्न चीजोंपर लगे लाल निशानोंको देख-देखकर सेक्रेटरी उन्हें मंगवानेके लिए तार दे रहा है।

लेकिन इन सबका अन्त कैसे होता? अनञ्ज़ियो अपना निजी भवन न बनवा सका। भाड़ेके मकानोंको लेता, उनपर सैकड़ों खर्च करके सजाता, हजारोंकी सम्पत्ति उनमें लगती और अन्तमें महीनोंका भाड़ा न चुका सकनेके कारण सारी चीजें उन्हींमें छोड़कर उसे दूसरी जगहोंपर जाना पड़ता। चिन्ता उसे छू नहीं गयी थी। एकदम लापरवाहीके साथ जीवन यापन करता। यह आनन्दी जीव सदा कहा करता कि मैं चिरतरुणके रूपमें सौन्दर्यका उपभोग मृत्युशय्यापर जानेके पहले तक करता रहूंगा और मरनेके बाद अमर कलाकारके रूपमें जीवित रहूंगा।

मार्च १९२८ में उसकी मृत्यु हो गयी। आज उसकी जो समाधि बनी है, उसपर उसीके आदेशोंके अनुसार ये शब्द खुदे हुए हैं :—

"मैं, गेब्रील, देवताओंके हाथमें अपनेको समर्पित करता हूं।"

इतिहासका विष

संसारके प्रसिद्ध विचारक श्री एच० जी० वेल्सने कुछ दिन पहले राष्ट्र-सङ्घ द्वारा आयोजित एक सभामें संसार-की वर्तमान परिस्थितिपर एक वक्तृता देते हुए कहा था कि आजकी ऐसी स्थितिके लिए इतिहासपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। संसारमें इतिहासने जो विषबेलि लगायी है, वह वर्तमान अशान्तिके रूपमें फल-फूल रही है।

इतिहास हमें एक ओर प्राचीन कालकी सारी बातोंकी ओर खींचता है, तो वर्तमान अपने अनेक अन्वेषणोंसे आक-र्षक होता है। इसलिए आवश्यकता इस बातकी है कि प्राचीन और नवीनमें सामञ्जस्य स्थापित किया जाय।

लेकिन ऐसा हो नहीं रहा है। इतिहासके आधारपर आज तक जो पुरानी विचार-धारा बहती रही है, उसे अब नये शस्त्रास्त्र प्राप्त हो गये हैं। राष्ट्रीय गौरव और विजय, प्रतिहिंसा और प्रतिशोधके नामपर जो संहारकारी शक्तियां एकत्र होती जा रही हैं, वे संसारको सर्वनाशकी ओर बड़ी तेजीसे खींचती जा रही हैं।

लेकिन इसमें वास्तविकता कितनी है? किसी एक देशमें जन्म लेते ही बच्चेको अगर आप किसी दूसरे देशमें भेज दें, तो वहीं वह विकसित होगा और आगे चलकर जिस देशमें वह उत्पन्न हुआ था, उसीके विरुद्ध लड़नेके लिए तैयार हो जायगा। इतिहास उसे जो कुछ सिखाता है—मां, बाप, स्कूल, देश, झण्डे उसे जो कुछ सिखाते हैं, उन्हींका यह सब प्रभाव है। लेकिन इसमें सत्यता कितनी है? इस प्रकारके उदाहरण प्रमाणित करते हैं कि आज जो भीषण अन्तर्राष्ट्रीय अशान्ति आ गयी है, उसकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी राष्ट्रीय इतिहासोंपर है।

इतिहास दो प्रकारके हैं, जिनमें एक परम्परासे चला आया है और इसका परिणाम बड़ा ही विषैला दिखाई पड़ रहा है। एक दूसरा इतिहास है, जो भूतत्त्व-विशारदोंके प्रयत्नसे पिछले सौ सालसे लिखा जा रहा है।

इतिहासकी जो शिक्षा बच्चोंको दी जाती है, उसकी उपयोगिता बहुत कुछ इसलिए नष्ट हो जाती है कि इतिहास-की कुछ खास दृष्टिकोणोंसे रचना की जाती है। इतिहास पक्षपातसे रहित नहीं है, उसका उद्देश्य बच्चोंके भावी जीवनके लिए कुछ खास प्रकारका वातावरण तैयार करना होता है, अतः बच्चोंके मस्तिष्कमें कुछ आदर्श भर जाते हैं। लेकिन सर्वत्र आदर्श एक ही नहीं होते, सर्वत्र एक ही प्रकारके चरित्र-नायक नहीं होते। एक आक्रमणकारी अगर कहीं पूजा जाता है, तो दूसरी जगहपर उसीके प्रति घृणा की जाती है। अतः इसका परिणाम यह होता है कि विभिन्न इतिहासोंके पढ़नेवाले विभिन्न आदर्शोंके अनुयायी होते हैं और उन आदर्शोंके कारण ही—अगर उनमें भिन्नता हुई तो—एक-दूसरेसे घृणा करने लगते हैं। राष्ट्रीय दृष्टि-कोणसे लिखे गये इतिहासोंका ही यह दुष्परिणाम है कि अनुचित राष्ट्रोन्मादमें जातियां एक-दूसरेसे लड़ने लगती हैं। धार्मिक इतिहासोंमें जातियोंमें होनेवाले गैर-धर्मोके अत्या-चारों, कहानियोंको पढ़कर मनुष्य हमसे घृणा नहीं, तो क्या प्रेम करना सीखेगा? ईसाई धर्मके प्रारम्भिक दिनोंमें जो सङ्घर्ष हुए हैं, उनकी घटनाओंको एकत्र कर इतिहासने संसारमें कौन-सी शान्ति बिखेर दी?

मैं चाहता हूं कि ग्रीक, लैटिन, यहूदी और बाइबिल, इंगलिश, फ्रेञ्च, मध्यकालीन और जर्मन इतिहासोंका पढ़ाया जाना एकदम बन्द कर दिया जाय।

तो पढ़ाया क्या जाय? इतिहासकी उपेक्षा नहीं की जा सकती; पर वास्तविक इतिहासका लिखा जाना अभी थोड़े दिन पहले शुरू हुआ है। यह वास्तविक इतिहास किसी राष्ट्र और धर्मका इतिहास नहीं, विश्वका, सारी मानव-जातिका इतिहास है—सभ्यताके जन्म, विकास और उसके लक्ष्यका इतिहास है। समाजके गठन, भाषाओं-की उत्पत्ति और विकास, मानव-सभ्यताके अन्यान्य अङ्गोंकी उत्पत्ति एवं विकास, यन्त्रों, विविध वस्तुओंके आविष्कार एवं उनके प्रयोग और उपयोगका इतिहास ही वास्तविक इतिहास है, जिसमें कि हम अपने विकासकी रूप-रेखायें देखते हैं।

यह इतिहास मनुष्यको जीवन देता है, जबकि तुम्हारे जातियों, राष्ट्रों एवं धार्मिक सङ्घर्षोंके इतिहास बच्चोंके मस्तिष्कमें विषके बीज बोते हैं। यहूदियोंकी समस्याकी विकटता आज जो इस रूपमें दिखाई पड़ रही है, उसका आधार पुराने धार्मिक उन्मादके सङ्घर्षोंके इतिहासके अति-रिक्त और है ही क्या? अगर इतिहास यही सब सिखाता है,

तब तो इस विषका अन्त जितनी जल्दी हो सके, कर डालना चाहिए। सारी भावी सन्ततिको अपने और केवल अपने धर्म, राष्ट्र, संस्कृतिके बड़प्पनका विष पिलाकर उन्मत्त करनेवाले उससे किसी सुन्दर परिणामकी आशा नहीं कर सकते।

ऐसी दशामें इतिहास विश्वका—मानव-जातिका हो, मानव-कल्याण और विश्व-शान्तिके उद्देश्यसे हो।

हाथोंसे बातचीत

अनेक भाषाओंके इस विकसित युगमें भी आज भाषाको छोड़कर सङ्केतोंमें बात करनेकी प्रणालियोंका अन्त नहीं हो सका है, बल्कि रेल, तार, जहाज, रेडियो, सिनेमा, खेल, यातायात आदि अनेक क्षेत्रोंमें इसकी व्यापकता बहुत बढ़ गयी है। भावोंके आदान-प्रदानके लिए हाथों द्वारा इस साङ्केतिक भाषाका प्रचार आज हम सर्वत्र देखते हैं। हां, यह बात जरूर है कि आम तौरपर लोग इस बातका अनुभव नहीं करते हैं कि वे हाथोंसे कितनी अधिक बातचीत करते हैं।

किसी मित्रसे जब अभिवादनके लिए हम हाथ मिलाते हैं, तो अपने मनोभाव भी हम हाथोंसे ही प्रकट कर देते हैं। घबराकर हाथ मसलने लगना, क्रोधमें घूंसे तानना और पछतानेके लिए हाथ मलना—यह सब वास्तवमें मनोभाव प्रकट करना है, जिसे हम वाणी द्वारा न प्रकाशित करके, हाथों द्वारा करते हैं।

यातायातके लिए ट्राफिकपर नियन्त्रण करनेके लिए सिगनल प्रारम्भ कालसे चले आये हैं। चौराहेपर खड़ा पुलिसमैन मुंहसे न बोलकर हाथ उठाकर गाड़ियोंको आने-जानेका आदेश देता है।

१००० घोड़ेकी ताकतवाले वायुयान जब घरघरा रहे हों, तब वाणी विकल हो जाती है और वायुयान-चालक सिर्फ हाथके इशारेसे पारस्परिक भावोंका आदान-प्रदान करते हैं। दोनों हाथ ऊपर उठानेका अर्थ होता है "मुसाफिरोंको नीचे उतार दिया जाय" और जब दोनों हाथ सामने एक-दूसरेको काटते हुए फैले हुए हों, तो इसका अर्थ यह समझा जाता है कि "एकदम रोक दिया जाय।" वायुयान-चालक इस प्रकार हाथों द्वारा आपसमें 'बातें' करते हैं।

जब तक मूकचित्र बनते थे, तब तक डाइरेक्टर चिल्ला-चिल्लाकर कलाकारोंको आदेश देते थे, लेकिन बोलते फिल्मोंका आविष्कार होते ही उन्हें मूक भाषा सीखनी पड़ी। रेडियो-पर डाइरेक्टरों, कलाकारों और वाद्यवादकोंको जिस प्रकार हाथोंसे बातचीत करनी पड़ती है, उसी प्रकार बोलनेवाले फिल्मोंका परिचालन मूक भाषामें करना पड़ता है। अन्यथा उनकी बातोंसे सारा फिल्म चौपट हो जाय।

पशु-पक्षी मनुष्योंकी भाषा नहीं समझते, इसलिए उनसे जब मनुष्य बात करते हैं, तो हाथों द्वारा ही। हॉलीउडमें बननेवाले फिल्मोंमें कुत्तों, बिल्लियों, घोड़ों तथा दूसरे पशु-पक्षियोंके जो काम होते हैं, वे हाथों द्वारा ही समझाये जाते हैं। सङ्केत द्वारा पशुओंकी जिन बातोंको समझनेका अभ्यास कराया जाता है, उन्हींके द्वारा उनका शिक्षक केमरेसे दूर हटकर पशुओंको हाथके इशारेसे बताता चलता है कि वे क्या करें।

इस प्रकार भाषाओंके रहते हुए भी हाथों द्वारा 'बात' करनेकी व्यापकता बढ़ती ही जा रही है।

अनन्त अन्तरिक्षके रहस्य

अनेक वैज्ञानिकोंने अनन्त अन्तरिक्षके रहस्योंकी जानकारीके लिए अनेक प्रयत्न किये हैं और अनेक बहुमूल्य यन्त्रोंकी सहायतासे बहुत कुछ जान भी सके हैं, फिर भी उसमें अनेक रहस्य भरे हुए हैं। श्री काका कालेलकरने इसी विषय-पर यह मनोरञ्जक लेख लिखा है, जो काफी दिलचस्प है। दूसरे लोगोंके भी ऐसे अनुभवोंके चयनकी आवश्यकता है।

राजा चाहे किसी भी स्थानपर हो और किसी भी पोशाकमें हो, वह राजा ही है। उसके राजत्वमें कोई फर्क नहीं आता। किन्तु राजा जब अपने दरबारमें अपने पूरे ऐश्वर्यमें बैठता है, तो उसकी शोभा कुछ और ही होती है।

यही न्याय रात्रिके आकाशपर घटित होता है। आकाशकी सुन्दरता अखण्ड है, अद्भुत है। रात्रिके आकाशके कैफसे ऐसा कोई आदमी मुक्त नहीं रह सकता, जो उसे ध्यानसे देखता हो। किन्तु आकाशका वैभव इन दिनों—अथवा इन रातों—जो प्रकट होता है, वह आकाशको भी चकित करनेवाला होता है। वर्षाकाल समाप्त हो गया है। आकाशने अपनी सारी आर्द्रता छोड़ दी है। बादल भी अब धूलि-

धूसर नहीं दीख पड़ते। पूर्ण प्रायश्चित्त करनेके बाद मनुष्यका हृदय जैसा निर्मल और पारदर्शक हो जाता है, वैसा आज-कलका आकाश है। सन्ध्याका दरबार समाप्त होते ही यह निर्मल प्रसन्नता सबपर छा जाती है और उसपर उज्ज्वल तारे आ बैठते हैं।

ऐसे आसमानमें भी एक आकाश-खण्ड ऐसा है कि जहांपर अधिकसे अधिक तेजस्वी तारे इकट्ठे हो गये हैं। हीरों-की इस खानको आजकलके खगोलशास्त्री 'स्वर्गीय गोलकोंडा' कहते हैं। बीचमें सनातन मृग और उसके इर्दगिर्द रोहिणीका शकट, ब्रह्ममण्डलकी स्थाली, पुनर्वसुकी नौका, मृगव्याधका कुत्ता—सब विराजमान हैं। जब रातको करीब आठ-नौ बजे मृग नक्षत्र निकलता है, तो मृगके चार पांव और पेटमें घुसा हुआ इषुत्रिकाण्डका तीर एकदम ध्यान खींचते हैं। यह तीर मानो आकाशकी विषुवरेखा खींचनेके लिए आकाशमें चढ़ता जाता है।

जब मृग निकलता है, तब सिरपर खस्वस्तिकके तौरपर भाद्रपदाका चौरस फैला हुआ दीख पड़ता है। पूर्वा भाद्र-पदाके दो तारे पश्चिमकी ओर होते हैं। उत्तराके बाकीके दो तारे उसके बाद आनेसे पूरबकी ओर होते हैं। उनके पास शर्मिष्ठा, ययाति और देवयानी अपना पौराणिक नाटक खेलते रहते हैं।

जब मृग ठीक ऊपर चढ़ता है, तब व्याधवाला कुत्ता अपना सिर ऊंचा उठाता है। लेकिन बेचारेकी हालत स्पृहणीय नहीं होती। वह मानो फांसीपर लटका हुआ दिखाई देता है।

व्याधके काफी ऊपर आते ही दक्षिणकी ओर भगवान् अगस्ति दर्शन देते हैं। व्याध और अगस्ति दोनों अत्युज्ज्वल तारे हैं।

आजकल शामको सूर्यास्तके बाद तुरन्त पश्चिमकी ओर जो उज्ज्वल ज्योति दीख पड़ती है, वह कोई तारा नहीं है। किन्तु वह हमारा चिरपरिचित असुरगुरु शुक्र ही है। यह शुक्र अब बहुत दिनों तक शामको पश्चिममें ही दीख पड़ेगा और जब शुक्ल पक्षमें चन्द्र पश्चिमकी ओर आवेगा, तब दोनों-के साथ-साथ आनेसे एक महनीय काव्य दीख पड़ेगा। १२ दिसम्बरसे इस शोभाकी तलाशमें रहना चाहिए। आकाशमें आजकल और भी तीन ग्रह दीख पड़ते हैं। मङ्गल तो लाल होनेसे आसानीसे पहचाना जाता है। गुरुको भी पहचानना कठिन नहीं है। उसके बाद पूरबकी ओर शनीचर आहिस्ता-आहिस्ता यात्रा करता हुआ दीख पड़ेगा और दिसम्बर ९ के बाद सूर्योदयके पहले पूरबकी ओर बुध भी दर्शन देगा। इस तरह इस महीनेमें मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि सबके सब ग्रह दर्शन देते रहेंगे। [लेख दिसम्बरके पहले लिखा गया था—सं० वि०]

अब मृग-व्याधके बिलकुल दक्षिणमें भगवान् अगस्ति काफी ऊंचे आ गये हैं। रातको दस-साढ़े-दस बजे दक्षिणकी तरफ मुंह करके अगर हम देखें, तो दक्षिण-पूर्वकी तरफ अगस्ति, हमारे सामने यमुना और दाहिनी ओर दक्षिण-पश्चिमके कोनेमें याममत्स्य, ये तीन तारे क्षितिजके समान्तर एक बड़ी डण्डी बनाकर फैले हुए दीख पड़ेंगे। इनमें अगस्ति अत्युज्ज्वल है, उससे कुछ कम उज्ज्वल है यमुना; और उससे कुछ दूर और कुछ मन्द है याममत्स्य। इतनी बड़ी तराजूकी डण्डी इस विश्वमें दूसरी नहीं है। मध्यस्थ यमुनाने अगस्ति कुछ उज्ज्वल होनेके कारण उसे कुछ नजदीक रखा है और याममत्स्य प्रकाशमें कम होनेके कारण उसको कुछ दूर रखकर समतुला बना दी है।

पाठकको ध्यानमें रखना चाहिए कि यह विराट् डण्डी क्षितिजके साथ थोड़े ही समयके लिए समान्तर रहती है। बादमें वह पश्चिमकी ओर झुकती है। याममत्स्य ऊपरसे उतरकर पश्चिम क्षितिजमें डूब जाता है। और अगस्ति ऊपर उठकर अपनी सुन्दर झोंपड़ी अपने पीछे-पीछे खींच लाता है। लेकिन इस झोंपड़ीका दर्शन अच्छी तरह करनेके लिए रातको दो बजेके करीब उठनेकी जरूरत होगी। अगर देर की, तो यह झोंपड़ी आकाशमें उड़कर मानो अगस्तिके सिरपर गिरनेको तैयार है, ऐसा दृश्य देखकर आप घबड़ा जायेंगे। इस झोंपड़ीके बाद करेना अथवा मायावी क्रूस ऊपर आता है।

किन्तु प्रभातका समय दक्षिणको ओर देखनेके लिए नहीं है।

चार बजेके बाद उठनेवाले पाठक प्रथम उत्तरकी ओर देखकर देवयानीका 'M' कैसा पश्चिमकी ओर उत्तर-पश्चिममें डूब रहा है और सप्तर्षि उत्तर-पूर्वमें कैसे चढ़ रहे हैं, यह देखकर बाद ही मघाके नीचे लटकता हुआ फाल्गुनीका तगमा देखें और चित्रा, स्वातीके उदयकी राह देखें।

हस्तके बारेमें इस महीनेमें कुछ लिखना नहीं है। हालां कि वह चित्राके पहले ही अपना हाथ दिखाता है।

पाठक कृपया अपना मौन छोड़कर उन्होंने क्या-क्या देखा, और वे क्या-क्या नहीं देख पाये; तथा जो इस लेखमें नहीं आया है ऐसा क्या-क्या देख सके; आदि सब मुझे बताते रहें।

तलाकके कुछ विचित्र कारण

हिन्दू कानूनको छोड़कर प्रायः सभी धर्मोंने विवाहित दम्पतियोंको कई अवस्थाओंमें सम्बन्ध-विच्छेद करनेका अधिकार दे रखा है। लेकिन इस अधिकारका कभी-कभी स्वेच्छासे पति-पत्नी कैसा उपयोग करते हैं, यह न्यूजरसी (अमेरिका) में पेश होनेवाले कुछ मामलोंसे स्पष्ट हो जाता है। ये सब तथ्य यह भी प्रमाणित करते हैं कि तलाक एक ऐसा अस्त्र है, जिसका उपयोग ठीकसे न करनेपर वह अस्त्रधारीके लिए ही कितना खतरनाक हो सकता है।

माण्टक्लेयरमें एक स्त्रीने अपने पतिको तलाक देनेकी प्रार्थना इस आधारपर की कि उसके पतिने गुलगुले गद्देपर न सोकर काठके तख्तेपर सोना शुरू कर दिया था और पत्नीके मना करनेपर भी उसने माना नहीं।

ओहियोमें एक व्यक्तिने शादी की, तो उसकी पत्नी शीशेकी आंख लगाये हुए थी; पर जब घर गयी, तब उसके पतिको इसका पता चला। उसने दूसरे ही दिन तलाकके लिए दरख्वास्त दी। लेकिन जजने इस आधारपर उसकी प्रार्थना नामञ्जूर कर दी कि पत्नीने पतिसे कुछ भी छिपाया न था। अतः पतिको भली भांति अपनी भावी पत्नीको देख-भाल लेना चाहिए था।

सेण्ट लुईमें एक स्त्रीने इस आधारपर तलाक देनेकी प्रार्थना की कि दिनके पहले भोजनके समय अमुक-अमुक वस्तुयें एक साथ खानेका पति विरोध करता है। जजने प्रार्थना नामञ्जूर करते हुए व्यवस्था दी कि पत्नी पतिको पाकशास्त्रपर एक पुस्तक भेंट करे।

कान्सस शहरमें एक पतिने अपनी पत्नीसे प्रस्ताव किया कि वह कुश्तीके दङ्गलोंमें जाकर पुरस्कारपर उससे कुश्ती लड़ा करे। पत्नीने इनकार किया, तो पतिने तलाकके लिए प्रार्थना की। जजने तलाककी प्रार्थनाको निराधार बताकर मञ्जूरी न दी। अब वे सम्भवतः घरमें ही कुश्ती लड़ा करेंगे।

इण्डियानामें एक स्त्रीने इसलिए सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहा कि पति उसे सिनेमामें ले जानेकी अपेक्षा स्वयं अकेला क्लबोंमें जाया करता था।

न्यूयार्कमें एक नवयुवकने विवाहके एक महीने बाद ही पत्नीको तलाक देनेके लिए दरख्वास्त दी। उसका अभियोग यह था कि उसके ससुरने विवाह करते समय इस बातकी प्रतिज्ञा की थी कि २५०) प्रतिमासकी नौकरीकी भी व्यवस्था वह कर देगा। उसने व्यवस्था तो की, पर सिर्फ एक महीनेके लिए। अतः नौकरी छूटते ही वह बीबीको भी छोड़ना चाहता था।

शा जानवर नहीं, आदमीसे डरता है

मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जिससे मैं डरता—बहुत बुरी तरह डरता हूं। शेरोंको पालतू बनानेवालोंके साहसकी मैंने कभी प्रशंसा नहीं की, क्योंकि इससे वह दूसरे मनुष्योंसे दूर रहकर कमसे कम सुरक्षित तो रहता है। शेरसे उसे कोई बहुत खतरा नहीं है। जानवरोंके पास कोई आदर्श नहीं, कोई धर्म नहीं, कोई राजनीति नहीं, अथवा ऐसी कोई भी वजह नहीं कि वह किसी वस्तुको नष्ट करनेकी बात सोचे। पेट भर जानेपर पशु निश्चिन्त हो जाता है, पर मनुष्यकी खूंखार प्रवृत्तिका अन्त कहां है। "इसीलिए"—जार्ज बर्नार्ड शाने कहा है कि, "मैं जानवर नहीं, आदमीसे डरता हूं।"

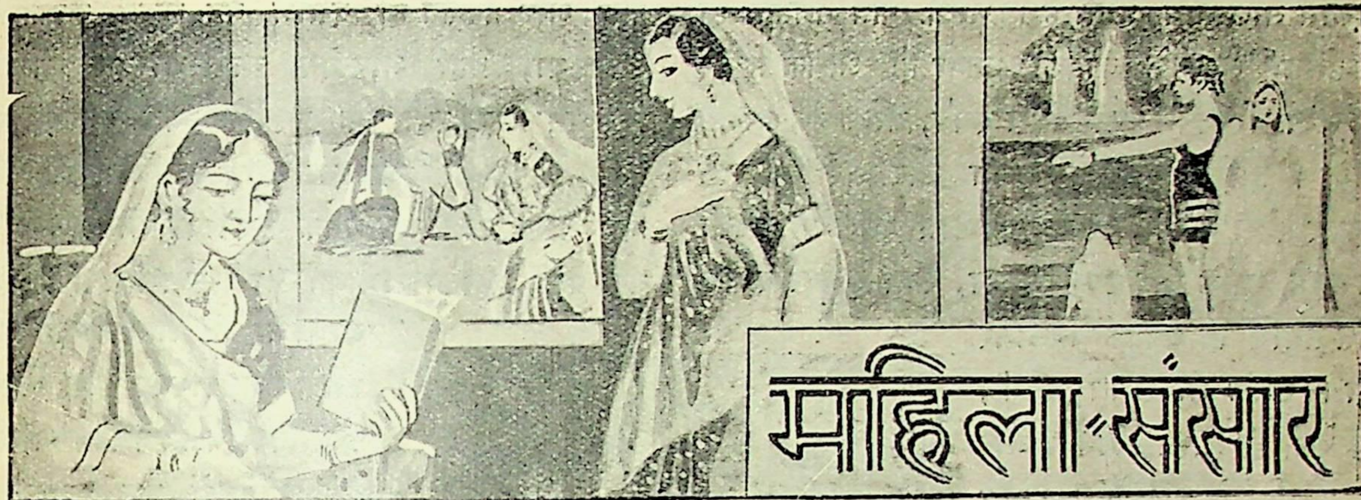
भूतोंकी बिक्री

चीनमें और उद्योग-धन्धोंके साथ-साथ एक अनोखा व्यापार चलता है भूतोंकी तैयारी और बिक्रीका। इसका खास केन्द्र चिक्याङ्ग प्रान्त है। समस्त चीनमें प्रथायें प्रचलित हैं, जिनके अनुसार मृतात्माओंकी सन्तुष्टिके लिए कागजके बने हुए भूत निछावर किये जाते हैं। उदाहरणार्थ अगर किसी धनी चीनाकी मृत्यु हो गयी, तो उसकी विधवा उसकी आत्माको सन्तुष्ट और सुखी रखनेके लिए कागजके बने हुए भूत पुजारीके मन्त्रोंके साथ पतिके पास 'मन्त्रोंकी लहर' पर भेजेगी, जिससे उसकी आत्माको सेवकोंके अभावमें किसी प्रकारका कष्ट न हो। कभी-कभी तो जीवनकी सारी दैनिक सामग्रियोंकी प्रतिमायें भेजी जाती हैं, जिससे मृतात्माको कोई भी अभाव न खटके। चीनमें इस प्रथाका इतना जोर है कि सारी आबादीके लिए भूत तैयार करने और बिक्रीके इस उद्योग-धन्धेमें लगभग २००,००० व्यक्ति लगे हुए हैं।



ना ही अपना

चाहा कि पति
छवोंमें जाया करते.



समाजमें नारीका स्थान

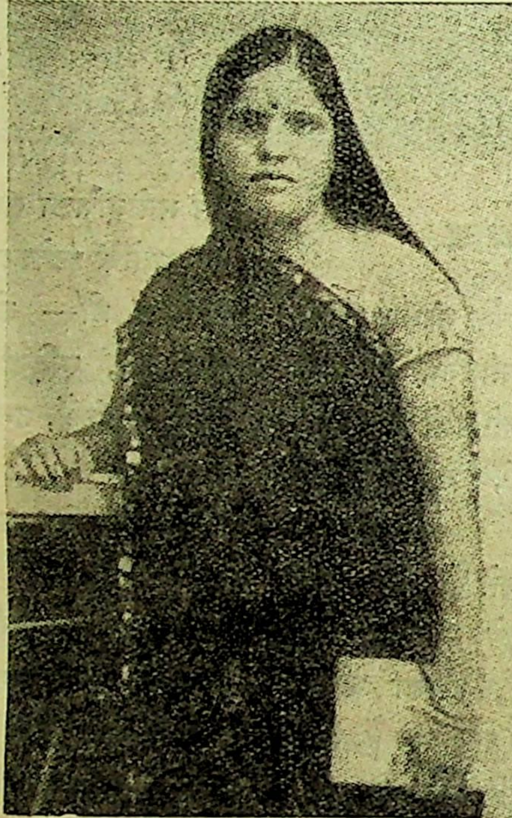
संस्कृतमें एक कहावत है, "नारी स्वर्गके मार्गमें भी एक बाधा है।" और वास्तवमें भारतीय जीवनमें नारी एक बाधाके रूपमें ही दीर्घ कालसे समझी जाती रही है। नारी-को लेकर समाजमें जो व्यवस्थायें की गयीं, उनमें इस मनो-वृत्तिका परिचय सर्वत्र पाया जाता है।

लड़कीके पैदा होते ही मां-बाप सोचते हैं, जैसे किसी पापके कारण ही उन्हें पुत्री देकर भगवान्ने उन्हें दण्ड दिया है। वे पुत्री-जन्मको जो दण्ड मानते हैं, उसका भी एक कारण है। हिन्दुओंके कितने ही धार्मिक अनुष्ठान हैं, जिन्हें पुत्रियां नहीं कर सकतीं। उदाहरणार्थ पिण्डदानको ही ले लीजिये। मृतात्माकी सन्तुष्टिके लिए पिण्डदान तथा दूसरे कितने ही धार्मिक अनुष्ठानोंके लिए पुत्रकी आवश्यकता पड़ती है, अन्यथा उसके अभावमें घरके—नाते-रिश्तेके दूसरे पुरुषों-को बुलाकर ये अनुष्ठान कराने पड़ते हैं। दूर-दूरके नाते-रिश्तेवाले ऐसा कर सकते हैं, लेकिन पुत्री नहीं कर सकती। धार्मिक दृष्टिसे उसकी अयोग्यतायें इतनी बड़ी हैं कि अपने मां-बापको मुक्ति दिलानेवाले कार्य तक वह नहीं कर सकती। ऐसी दशामें विवाहका उद्देश्य बताते हुए कहा गया है: "पुत्रार्थे क्रियते भार्या", इसलिए विवाहका सारा उद्देश्य ही जब पुत्रके स्थानपर पुत्रीके पैदा होनेपर नष्ट हो जाता है, तब पुत्रीके उत्पन्न होनेपर रोना-गाना निरर्थक नहीं मालूम होता। जब तक समाजकी ऐसी व्यवस्थायें हैं, जिनके पीछे कोई तर्क नहीं, जो अन्धाधुन्ध चली आ रही हैं, और जब तक इस मनोवृत्तिका सुधार नहीं हो जाता, तब तक इस प्रकार-की बातोंके हटनेका—भले ही यह कितना ही मूर्खतापूर्ण क्यों न हो— कोई उपाय नहीं दिखाई पड़ता। धर्म, परम्परायें, रूढ़ियां तरह-तरहसे पुत्रीके मार्गमें जो बाधायें डालती गयी हैं, उन्होंने उसके अस्तित्वको ही निरर्थक-सा बना दिया है।

जन्मके बाद उसके पालन-पोषणकी कुछ भी चिन्ता न करके धर्मग्रन्थोंको उसके विवाहकी ही चिन्ता होती है और "अष्टवर्षा भवेद्गौरी......" आदि कहकर अधिक उम्रमें विवाहको जैसा नरकमें ढकेलनेवाला बताया जाता है, उसमें कोई पिता जल्दीसे जल्दी पुत्रीकी शादी करके अपना पिण्ड छुड़ा लेना चाहता है। बाल्यावस्थामें विवाह कर देनेसे लड़कीसे मां-बापका पिण्ड भी छूट जाता है और उधर नरकमें भी पड़नेके खतरेसे उनकी रक्षा हो जाती है। अतः उन्हें यह सोचनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती कि इससे उसकी शिक्षा-दीक्षाका दरवाजा बन्द हो जाता है। पिताके घरपर तो लड़कियोंको थोड़ी स्वाधीनता भी मिलती है, चार अक्षर वे लिख-पढ़ भी सकती हैं; पर दुलहन बनकर जब वे ससुरके घरमें प्रवेश करती हैं, तबके लिए उनके लिए 'असूर्यम्पश्या' बने रहनेके आदर्शकी व्यवस्था की गयी है। सूरजकी रोशनी-भी जिन बालिकाओंको नहीं मिल सकती और बाहर निकलनेपर जो आदमीकी अपेक्षा गट्ठरके रूपमें ही दिखाई पड़ती हैं, वे उन्नति क्या करेंगी? मां-बाप तो "भर्ता रक्षति यौवने" के अनुसार उनका विवाह कर डालना ही अपना फर्ज समझते हैं।

विवाहकी व्यवस्था अन्तिम रूपसे निश्चित हो कि पहले दोनों दलोंमें मोल-भाव होता है। भावी पति जितना ही सम्पन्न होगा, लड़कीके बापको उतना ही अधिक मूल्य 'दहेज' अथवा 'रिश्वत'—चाहे जिस रूपमें, चाहे जिस नामसे देना होगा। इसके बाद विवाह होगा और नारी जो घरमें पत्नी बनकर प्रवेश करेगी, उसका एकमात्र काम है पतिकी लालसा-पूर्ति, उसके लिए बच्चे पालना, सेवा-शुश्रूषा करना और पति-सेवामें ही अपनेको निछावर कर देना। उसके जो सन्तान होगी, उसे भी ऐसी ही शिक्षा मिलेगी और इस प्रकार नारियोंके आदर्शकी व्यवस्था और उसके पालनकी प्रणाली आदिसे अन्त तक एक-सी चली आयेगी। युगों तक भारतीय नारी इसी प्रकार चली आयी है। प्रारम्भमें ही स्वाधीन मनोवृत्ति जो कुचल दी गयी, वह भला कैसे जागृत होती ?

स्त्री-शिक्षापर विचार करनेकी भी आवश्यकता नहीं समझी जाती, क्योंकि इससे उनके परम्पराओंसे दूर हटनेकी आशङ्का की जाती है। कितनी शोचनीय सङ्कीर्णता है कि हम नारियोंको शिक्षा इसलिए न दें कि वे ज्ञानके प्रकाशमें हमारे अत्याचारों और हमारे बन्धनोंसे ऊबकर हमारे चंगुलसे निकल जानेका प्रयत्न करने लगेंगी।



श्रीमती कपिला गौरी चन्दुलाल दलाल, जो नदियाद महिला सेवा-सङ्घकी सभानेत्री हैं।

समाजके आधे अङ्गको इस प्रकार बांधकर रखनेकी प्रतिक्रिया बिना हुए न रही और पुरुषोंने भी इस बातका अनुभव किया कि आधे अङ्गके बेकार हो जानेसे आधा अकेले नहीं चल सकता। पुरुषके विकासमें कभी कोई बाधा नहीं पहुंची, इसलिए शिक्षा प्राप्त कर जब उसने संसारकी दूसरी ज़ातियोंके साथ बैठनेकी इच्छा की, तो उसने देखा कि जिसे उसने दासी समझ रखा था, उसी नारीने उसकी प्रगतिको असम्भव बना दिया है। पुरुषने अब अपनी गलतीका अनुभव किया और उसने उसे सुधारनेकी इच्छा की और प्रयत्न किये। यही कारण है कि दूसरे देशोंमें नारियोंको अपने अधिकारोंके लिए जहां पुरुषोंके साथ सङ्घर्ष करना पड़ा और कितने ही देशोंमें यह सङ्घर्ष काफी विकट हो गया था, वहां भारतीय नारी-आन्दोलनकी प्रगतिकी विशेषता यह रही कि पुरुषोंने स्वयं आन्दोलनको आगे बढ़ाया। पुरुषोंने स्वयं नारियोंके अधिकारोंके लिए सङ्घर्ष किया। यह बात नहीं है कि पुरुषोंकी ओरसे कुछ बाधा ही नहीं पड़ी, कर्मकाण्डियोंको नारी-स्वाधीनताके कारण जिन बाधाओं एवं भ्रष्टताओंकी आशङ्का है, उनके आधारपर उन्होंने सुधारके प्रयत्नोंको विफल करनेके भी प्रयत्न किये, लेकिन जिन्हें इस प्रकारके ढोंगोंमें कोई विश्वास नहीं, जिन्होंने इस कथनकी सत्यताको समझा है कि किसी समाजकी उन्नतिका पता समाजमें महिलाओंकी स्थितिसे ही लगाया जा सकता है, उन्होंने नारी-स्वाधीनताके आन्दोलनमें पड़नेवाली बाधाओंको हटानेके लिए कुछ भी उठा नहीं रखा।

फिर भी स्थिति आज जैसी है, उसे पूर्ण सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। इस देशमें शिक्षाका औसत इतना कम है कि नारी क्या, पुरुष भी अपना कर्तव्य कठिनाईसे पहचान सकते हैं। ऐसी दशामें स्त्री-शिक्षाके मार्गमें आनेवाली कठिनाइयोंको देशकी आबादीका एक बहुत बड़ा अंश कुछ भी समझ नहीं पाता। वह नारी-आन्दोलनके लक्ष्यको भी समझनेमें असमर्थ है और जब स्थितिको भली भांति समझता ही नहीं, तब उसपर दोषारोपण करनेकी अपेक्षा उसे अज्ञानमें डाले रखनेवाली स्थितियोंको ही सुधारनेकी कोशिश करनेकी आवश्यकता है। नारी-आन्दोलनने समाजके इस व्यापक प्रश्नको सामने लाकर रखा है और सुधारकोंका ध्यान इस ओर जानेकी बहुत बड़ी आवश्यकता है।

—मनोरमा गुप्त, एम० ए०

स्वाधीनताके लिए नारी सहयोग कैसे करे ?

महात्मा गांधीने 'हरिजन' अंगरेजी साप्ताहिकमें 'स्त्रियों द्वारा स्वराज्य' शीर्षकसे इस आशयका लेख लिखा है—

कांग्रेस कार्य-समितिने अब सूत कातनेको सत्याग्रहके लिए अनिवार्य बना दिया है, अतएव भारतीय स्त्रियोंको देशसेवाका अपूर्व अवसर प्राप्त हुआ है।

नमक-सत्याग्रहके समय हजारों स्त्रियां घरसे बाहर होकर कार्यक्षेत्रमें पहुंचीं और उन्होंने दिखा दिया कि हम भी पुरुषोंके साथ समान भावसे देश-सेवा कर सकती हैं। उस कार्यसे गांवों-की स्त्रियोंको अपूर्व गौरव प्राप्त हुआ है।

भारतकी स्वाधीनताके लिए जो शान्तिमय आन्दोलन हो रहा है, उसमें सूत कातनेको मुख्य स्थान मिल जानेसे भारतीय स्त्रियोंको विशिष्ट पदमर्यादा प्राप्त हो गयी। सूत कातना स्त्रियोंके लिए पुरुषोंसे अधिक स्वाभाविक है ही।

आदि कालसे ही स्त्री और पुरुषके श्रममें भेद रहा है। आदम कपड़े बुना करता और हौवा सूत काता करती थीं। वह विशेषता आज भी बनी है। सूत कातना पुरुषोंके लिए असाधारण विषय है।

सन् १९२०-२१ में मैंने पञ्जाब-वालोंसे सूत कातनेको कहा, तो कहने लगे कि हम तो इसमें अपनी हेठी समझते हैं; सूत कातना तो सिर्फ औरतोंका काम है।

अब सूत कातनेमें पुरुष अपनी हेठी नहीं समझते। त्याग-भावनासे आज हजारों पुरुष सूत काता करते हैं। जब देशसेवाकी भावनासे पुरुषोंने सूत कातना शुरू किया, तभी सूत कातना भी खास तरहका विज्ञान माना जाने लगा और उस क्षेत्रमें भी उसी प्रकार विविध आविष्कार हुए, जिस प्रकार और-और वैज्ञानिक क्षेत्रोंमें। तथापि अनुभव यही सिद्ध करता है कि सूत कातना स्त्रियोंकी ही विशेषता बना रहेगा।

मेरी धारणा है कि इस विशेषताका विशेष कारण भी है। सूत कातनेका काम धीरे-धीरे और चुपचाप करना पड़ता है। स्त्री त्यागकी मूर्ति होती है, इसलिए अहिंसाकी भी मूर्ति होती है। स्त्रीका कार्य भी उसके अनुरूप ही शान्तिमय होना चाहिए। अब स्त्री भी युद्ध-जैसे हिंसामय व्यापारमें घसीटी जाने लगी है, यह आधुनिक सभ्यताके लिए प्रशंसाकी बात नहीं।

मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि हिंसावृत्ति स्त्रीके स्वभावके इतनी प्रतिकूल है कि उसकी मूल प्रकृतिमें विपर्ययकी चेष्टा होते ही वह उसका विरोध करेगी। पुरुषोंको भी अपने पापका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। स्त्री-पुरुषकी समताका अर्थ यह नहीं कि उनका कार्य भी समान ही हो। किसी स्त्रीके आखेट करने या भाला चलानेमें कोई कानूनी रुकावट भले ही न हो; पर पुरुषकी प्रकृतिसे स्त्रीकी प्रकृति स्वभावतः भिन्न होती है। प्रकृतिने स्त्री और पुरुषको एक-दूसरेका पूरक बनाया है। जैसे दोनोंके शारीरिक अवयवोंमें भेद है, वैसे ही उनके कार्यमें भी अन्तर है।



कुमारी थरटी रुस्तमजी—आपने लन्दन यूनिवर्सिटीसे प्रथम श्रेणीमें बी० ए० पास किया है।

परन्तु स्त्री-पुरुषके प्रकृतिभेदका प्रमाण देना मेरे लिए अनावश्यक है। यह प्रत्यक्ष ही है कि करोड़ों भारतीय स्त्रियां सूत कातनेको अपना सहज कर्म समझती हैं। कांग्रेस कार्य-समितिके निश्चयके कारण आपसे आप अब पुरुषोंका भार स्त्रियोंपर चला गया है और स्त्रियोंको अपना सच्चा रूप दिखानेका मौका मिल गया है।

मुझे यह देखकर प्रसन्नता होगी कि मेरी महती सेनामें पुरुषोंसे स्त्रियोंकी अधिकता है। यदि सत्याग्रह-युद्ध चला, तो स्त्रियोंकी अधिकता होनेसे ही मैं अधिक आश्वस्त होकर युद्धका सञ्चालन कर सकूंगा। पुरुषोंकी हिंसावृत्तिका मुझे आतङ्क होता है। स्त्रियोंकी अधिकतासे हिंसा होने ही नहीं पायेगी।

महिला-सुधारकी बाधा और उसका निराकरण

भारतमें नारी जातिके सम्बन्धमें होनेवाले प्रयत्न कितने ही वर्षोंसे हो रहे हैं, और अगर अखिल भारतीय महिला-सम्मेलनकी स्थापनाके समयसे भी हम उसकी बुनियाद समझें, तो भी चौथाई शताब्दीसे कम नहीं होते। इस बीचमें नारियां प्रगतिके पथपर बढ़ी हैं। शिक्षाके क्षेत्रमें उन्होंने अपनी योग्यता प्रमाणित की है और दूसरे सामाजिक क्षेत्रोंमें जहां भी उन्हें कार्य-भार सौंपा गया है, उन्होंने अपने उत्तरदायित्वका निर्वाह सफलतापूर्वक किया है और कोई नहीं कह सकता कि उन्हें जिम्मेदारियां सौंपकर भूल की गयी है। पिछली बार जब गांधीजीके नेतृत्वमें कांग्रेसने स्वाधीनता-आन्दोलन छेड़ा, तो सभीने आश्चर्यके साथ देखा कि सदासे पर्देमें रहनेवाली भारतीय नारियां कितने उत्साह और कितनी लगनके साथ आन्दोलनमें सहयोग देनेके लिए आगे बढ़ीं और जिस ओर उन्होंने अपना कदम उठाया था, उस पथकी कठिनाइयोंपर उन्होंने काफी ध्यान नहीं दिया—कठिनाइयोंकी वे उपेक्षा ही करती रहीं और अन्तमें पुरुषोंकी भांति ही उन्होंने भी यह प्रमाणित कर दिया कि भारतका आधा नहीं, पूरा अङ्ग आजादीका भूखा है और नारीको अबला कहनेवाले उसे सबला भी कहें, ऐसे कार्य हैं भारतीय नारीके।

नारीने दिखाया है कि सामाजिक उत्थान और राजनीतिक विकासके प्रति अगर उसकी कुछ भी उदासीनता दिखाई पड़ती है, तो इसका कारण यह नहीं है कि वह वास्तवमें उदासीन है। बल्कि वास्तविकता तो यह है कि या तो सदियोंसे अशिक्षाके अन्धकारमें पड़ी हुई नारी अपना कर्तव्य-ज्ञान भूल गयी है, अथवा कर्तव्य-ज्ञान होते हुए भी उसे पूरा करनेमें उसके मार्गमें कठिनाइयां रही हैं—और ऐसी कठिनाइयां, जिनपर उसका अपना कोई नियन्त्रण नहीं, जिससे विवश होकर उससे उसके कर्तव्यकी उपेक्षा होती रही है। इसकी जिम्मेदारी उसपर नहीं, समाज तथा उन सामाजिक प्रतिबन्धोंपर है, जिनके कारण वह घरके पर्देसे निकलकर कर्मक्षेत्रमें उतरनेमें ही असमर्थ है।

इन अवस्थाओंमें इस बातकी आवश्यकता अनिवार्य हो जाती है कि नारी-समाजको वे सुविधायें दी जायें, जिनसे वह सामाजिक कल्याणमें योगदान दे सके। हम अपना लक्ष्य तो बहुत ऊंचा बनाते हैं; पर उसके अनुकूल परिस्थितियां उत्पन्न करनेकी ओर ध्यान नहीं देते। इसका परिणाम यह होता है कि हमारी प्रगति हमारी इच्छाके अनुकूल नहीं हो पाती। यह समझनेमें तो किसीको कठिनाई न होनी चाहिए कि केवल आशायें बनानेसे काम नहीं चल सकता। आशाओंको कार्यान्वित करनेके लिए प्रयत्न करना भी आवश्यक है। परम्परा और रूढ़ियोंमें जिनका जन्म और विकास हुआ है, उन बूढ़ोंको अगर हम बाद भी दे दें, तो उन युवकोंकी जिम्मेदारीकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, जो अपढ़ नारियोंके कारण घरकी अशान्तिको कोसते और उन्हें जीवन-सहचरीके रूपमें पाकर अपने भाग्यको भी कोसते हैं; पर इन परिस्थितियोंको अनिवार्य बनानेवाले कारणोंको दूर करनेके लिए जो कोई भी प्रयत्न करते नजर नहीं आते। हमारे घरोंमें अगर मूर्खा नारियोंका जमघट है, जो कुछ भी समझनेमें असमर्थ हैं और जिनके कारण घरमें शान्ति एवं सुखका वातावरण नहीं रह पाता, तो इसकी जिम्मेदारी किसपर है? जैसे सामाजिक विधान हैं, उनमें नारी कर ही क्या सकती है, यदि पुरुषों द्वारा उसे अन्धकारसे निकालनेके प्रयत्न न किये जायें। जिस प्रकार नारियोंको अज्ञानान्धकारमें रखा जाता है, उसमें यदि भारतका प्राचीन आदर्श न होता, तो घरकी शान्ति और हमारा व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन और भी दूषित हो जाता; पर कुछ ऐसी बातें हैं, जिनका पालन भारतीय नारियां करती आ रही हैं, जिससे हमारा जीवन उतना दुःखपूर्ण नहीं हो सका है, जितना वास्तवमें वर्तमान परिस्थितियोंमें होना चाहिए।

तो इसका उपाय क्या है? उपाय साधारण है। उन सारी कठिनाइयोंका अन्त कर—उन सारी बाधाओंको दूर कर हमें समाजके पथको साफ-सुथरा बना देना होगा, जिसपर सुधार और उन्नतिकी प्रगति आजकी शिथिलता छोड़कर वेगसे बढ़ सके और हमारी स्वाभाविक विकासकी धाराको बीचमें ही पहाड़से टकराकर रुक न जाना पड़े। दूसरे देशोंकी नारियोंको आज हम साहित्य, राजनीति और सामाजिक क्षेत्रमें भी काम करते देखते हैं। हम देखते हैं कि पुरुषोंके साथ-साथ कन्धेसे कन्धा मिलाकर वे अपने देशकी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए युद्ध-क्षेत्रमें उतरती हैं,

हम देखते हैं कि दूसरे क्षेत्रोंमें भी वे किसी प्रकार पुरुषोंकी अपेक्षा अपने कर्तव्य-पालनमें कभी विमुख नहीं होतीं; यह सब हम दूसरे देशोंमें देखते और अपनी वर्तमान अवस्थापर खीजते और व्यग्र होते हैं; पर इस बातको सोचनेकी तकलीफ नहीं करते कि आखिर बात क्या है कि हम उन्नतिकी दौड़में इतने पीछे पड़े हुए हैं। भारतीय नारी किसी भी दूसरे देशकी नारीसे किसी भी बातमें कम नहीं है, बल्कि दूसरे देशकी नारियोंके सामने जहां कोई पुराना आदर्श नहीं है, उत्साहित करनेवाली कोई दूसरी गौरव-गाथा नहीं है, वहां भारतीय नारीके सामने यह सब हैं और सबके होते हुए हम अधोगतिमें पड़े रहें, यह जितना ही परितापका विषय है, उतना ही आश्चर्यका भी।

पर आश्चर्यका विषय होना न चाहिए। परिस्थिति स्पष्ट है। हमने नारी-समाजकी स्वाधीनताका राग तो अलापना शुरू कर दिया है; पर वास्तवमें कितनी स्वाधीनता हमने अभी तक दी है उसे। जीवनके प्रति और सदाचारके प्रति हमारी कुछ ऐसी भ्रान्त धारणायें बन गयी हैं कि हम स्वाधीनता देनेकी घोषणा गला फाड़-फाड़कर करते हुए भी उन्हें वास्तविक स्वाधीनता देनेमें घबराते हैं और समाजके भ्रष्ट हो जानेके भयसे ऐसा कुछ भी करनेमें हिचकते हैं, जिससे नारी अपने विकासके लिए अनुकूल वातावरण पा सके। यहां तक कि आजकलका शिक्षित युवक समुदाय तक और अधिकारोंके देनेकी तो बात ही क्या, घरके बाहर उन्हें पर्देमेंसे निकालनेमें भी घबराता है। भला जिस जातिके युवक अपनी बहू-बेटियोंके सूरजकी रोशनीमें भी मुंह खोलनेके विरुद्ध हों, उस जातिका कल्याण कितना होगा और संसारके दूसरे समाजोंके बीचमें उसकी क्या स्थिति होगी, यह बात सहज ही अनुमान की जा सकती है। और युवकोंकी ही ऐसी स्थिति हो, तो दूसरोंकी तो बात ही क्या कही जा सकती है। युवक घरकी अशान्तिकी निन्दा तो करते हैं और इसके लिए नारीकी ही निन्दा करते हैं; पर वास्तवमें इसकी जिम्मेदारी तो अधिकांशतः उन्हींपर है। अगर कहा जाय कि यह समाजका दोष है और वे शिकायत करें कि समाजके भयके कारण वे बहुत कुछ नहीं कर सकते, तो यह गलत बात है; क्योंकि समाजको भी सुधारने और प्रगतिशील बनानेकी जिम्मेदारी उन्हींपर है।

ब्रिटेनमें स्त्रियोंकी स्थलसेना

इंगलैण्डमें दफ्तरों और कारखानोंमें काम करनेवाली अंगरेज युवतियां खेतीका काम करनेके लिए अपनी-अपनी नौकरियां छोड़ रही हैं। ब्रिटेनमें खाद्य पदार्थोंकी उपज बढ़ानेके लिए उनकी सहायताकी बड़ी आवश्यकता है और यह सहायता वे बड़ी प्रसन्नतासे दे रही हैं।

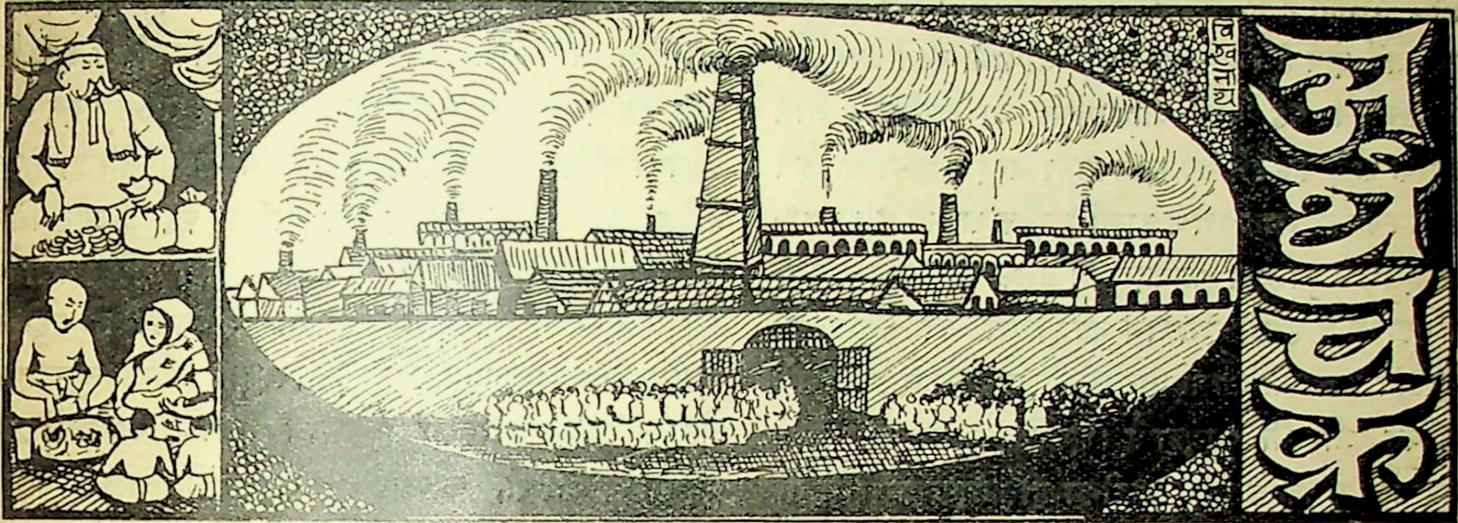
इस समय ये परिश्रमी युवतियां खेतीका काम सिखानेवाले स्कूलोंमें खेतीबारीका काम सीख रही हैं। ये सब 'स्त्रियोंकी स्थलसेना' की सदस्यायें बनेंगी, जिसमें कुछ ही महीनोंमें पचास हजार स्त्रियां प्रविष्ट हो जायंगी।

'स्त्रियोंकी स्थलसेना' की अवैतनिक सञ्चालिका आस्ट्रेलियाके भूतपूर्व गवर्नर जेनरलकी पत्नी लेडी डेनमैन हैं, जिन्हें ब्रिटेनकी ३,३८००० देहाती स्त्रियां जानती हैं; क्योंकि वे इंगलैण्ड और वेल्सकी महिला संस्थाओंके राष्ट्रीय सङ्घकी अध्यक्षा हैं। लेडी डेनमैनमें सङ्गठनकी अद्भुत शक्ति है। वे खुद भी खेतीका काम बहुत अच्छा जानती हैं।

युद्धके समय ब्रिटेनके लिए एक बहुत बड़ी समस्या यह भी है कि खाद्य वस्तुओंका उत्पादन देशमें ही हो, क्योंकि उसके लिए अधिकांश खाद्य वस्तुयें बाहरसे ही आती हैं। युद्धके समय देशका उत्पादन अवश्य बढ़ना चाहिए। अपनी नयी जिम्मेदारियोंको अच्छी तरहसे निभानेके लिए किसानोंने ब्रिटेनके कृषि-विभागसे सहायताकी अपील की थी। किन्तु अभी उनकी अपील कृषि-विभाग तक पहुंचने भी न पायी थी कि इंगलैण्डकी स्त्रियोंने "स्त्रियोंकी स्थलसेना" के लिए सदस्याओंकी भरती शुरू कर दी।

उस सेनाकी स्त्रियोंको पहले-पहल दो सप्ताहकी ट्रेनिंग दी जायगी। कुछ युवतियोंने ट्रेक्टरसे खेत जोतनेकी शिक्षा पानेकी इच्छा प्रकट की है, कुछ डेयरीका काम सीख रही हैं और कुछ खेतीबारीका। इनके अलावा खेतीके और भी कितने ही काम हैं, जिन्हें ये युवतियां बड़ी खुशीसे करनेको तैयार हैं।

अभी जो युवतियां किसानोंकी मदद कर रही हैं, उनके कामसे किसान बहुत ही सन्तुष्ट हैं। इस सेनाकी स्त्रियोंको सरकारकी तरफसे वर्दी दी जायगी और हरएकको उन्हीं दरोंके अनुसार वेतन मिलेगा, जो उन जिलोंमें प्रचलित होंगी, जहां वे काम करेंगी।



खादीका अर्थ-चक्र

गांधीजीने स्वाधीनताके लिए जब कभी अपने कार्य-क्रमकी व्याख्या की है, तभी उन्होंने खादीपर जोर डाला है, और इस बार कांग्रेस कार्य-समितिने भी उनके आदेशपर बनाये हुए अपने कई प्रस्तावोंमें खादीके प्रचारपर जोर डाला है। लेकिन आर्थिक दृष्टिसे खादीपर विचार करनेवाले कितने ही व्यक्तियोंके मनमें कुछ संशय है। श्री मनु सूबेदारने इस सम्बन्धमें कुछ बातें रखी हैं, जिनपर ध्यान देनेकी आवश्यकता है। उन्होंने लिखा हैः —

यह सवाल अगर कोई कपड़ेका ग्राहक पूछे—जिसके खीसेमें पैसा है, जो उस पैसेसे कपड़ा खरीदना चाहता है, और जो सिवा कपड़ेकी कीमतके दूसरी किसी बातकी ओर ध्यान ही नहीं देना चाहता—तब तो यह स्पष्ट ही है कि मिलके या विदेशसे आये हुए कपड़ेकी अपेक्षा उसके लिए खादी महंगी होगी।

मामूली व्यवहारकी भाषामें वह कह सकता है कि उसके लिए खादी किफायती नहीं है। इसी तरह, जो लोग सारे देशका एक इकाईके नाते विचार करते हैं, परन्तु जिनका देशप्रेम सङ्कीर्ण है, याने, उसमें मानववादके लिए गुञ्जाइश नहीं है, और जो केवल रुपये-आने-पाईका ही हिसाब करना जानते हैं, वे कह सकते हैं कि देशको जितने कपड़ेकी जरूरत है उतना कपड़ा—रुपये-आने-पाईमें अगर उसका मूल्य कूता जाय—तो मिलोंमें यन्त्रों द्वारा अधिक सस्तेमें बन सकता है। इस सम्प्रदायके उद्योगवादी और उनके आश्रित—जैसे कि दलाल, साहूकार, बीमा-कम्पनियां आदि—यह भी दावा करेंगे कि खादी ना-किफायती है।

परन्तु एक दूसरा और अधिक उपयुक्त दृष्टिकोण भी है। वह यह कि हम अपनी दृष्टिके सामने उस विशाल जनसमूह-को रखें, जो देहातोंमें रहता है और जिसका कुछ हिस्सा शहरकी घनी बस्तियोंमें भी पाया जाता है। उनके पास खाली वक्त इतना है कि वे नहीं जानते कि उसका क्या करें? परन्तु उनके पास न तो काम करनेके साधन हैं और न सामग्री। वे बेकार हैं। अर्थात् जिनका पूंजी और सामग्री-पर काबू है, वे न तो उनकी मिहनत चाहते हैं और न उन्हें कोई काम ही देते हैं। इन करोड़ों लोगोंकी श्रम-शक्ति सदाके लिए नष्ट होती है। न तो उससे उनका अपना कोई उपकार होता है और न देशका ही।

अगर इन करोड़ों लोगोंमेंसे एक करोड़ भी एक आनेकी रोजीपर लगा लिये जायं, तो मोटे हिसाबसे, उन्हें फी आदमी बीस रुपया सालाना, याने, कुल बीस करोड़ रुपये मिलेंगे। जिस साधन-सामग्रीका वे उपयोग करते हैं, उसमें बीस करोड़ रुपयेका मूल्य और जमा हो जायेगा। मतलब यह कि आज जो लोग काम करनेके लिए तैयार हैं, उनके केवल एक हिस्सेको, याने, करीब एक करोड़को ही हम काम दे दें, तो रुपये-आने-पाईमें इस देशकी सम्पत्ति प्रायः चालीस करोड़से बढ़ेगी। इन लोगोंको और इनके बहुत छोटे या बहुत बूढ़े आश्रितोंको मानवीय सुखके रूपमें जो लाभ होगा, वह तो अपरिमेय होगा।

जिन लोगोंके दिमाग पाश्चात्य जगत्के सम्पर्कसे सख्त

हो गये हैं, और जो लोग केवल रुपये-पैसोंका ही विचार कर सकते हैं, वे कहते हैं कि पद्धति खर्चीली होगी। लेकिन उनके विचारमें तर्क-दोष है। यदि उन्हींकी भाषामें कहा जाये, तो उनकी समझमें यह बात आसानीसे आ जायेगी। मान लीजिये कि कोई कम्पनी या कारखाना बन्द होनेवाला है। अब उसका सारा माल आधे दामोंमें बिक सकता है। खरीदारका इसमें बहुत बड़ा फायदा है। इससे भी आगे बढ़कर, दूसरा दृष्टान्त उन्हींकी भाषामें यह लिया जा सकता है, कि चोरीका माल तो चौथाई दामोंमें भी बिक सकता है। इसमें खरीदारका और भी फायदा है। इसलिए अगर सब खरीदार यह ठान लें कि वे सिर्फ चोरीका ही माल खरीदेंगे, तो कारखाने भी महंगे मालूम होंगे। लेकिन क्या यह पुख्ता तजवीज होगी? क्या वह चल सकेगी? क्या एक हद तक चलनेके बाद वह टूट नहीं जायेगी? क्या उसकी बदौलत पूंजीका बहुत बड़ा नाश नहीं होगा?—हमारी अर्थ-व्यवस्था गड़बड़ नहीं होगी; और बेकारी नहीं बढ़ेगी?

गत सौ वर्षोंसे संसार एक विशेष अर्थनीतिका उत्कटतासे अनुसरण करता आया है। उसका मुख्य उद्देश्य है धनोपार्जन। इस नीतिके अनुसार देहातमें होनेवाला सभी माल विदेशोंमें कारखानों द्वारा बनने लगा। अपवाद केवल खेतीकी उपजके विषयमें रहा। बादमें हिन्दुस्तानमें भी कारखानोंमें माल पैदा होने लगा और वह किसानोंके दरवाजों तक पहुंचाया जाने लगा। उसे पहुंचानेके लिए यातायातके साधन बहुत ही सस्ते कर दिये गये। उन साधनोंका खर्च चलानेमें देशके साधारण करोंकी आमदनीसे मदद ली गयी। अंगरेज तो हमेशा हिन्दुस्तानमें विलायतके मालकी खपत बढ़ानेके ही फिराकमें रहे। उन्होंने सारी अर्थ-व्यवस्थाको ही इस तरह बदल दिया कि पहले तो विलायतके कारखानोंकी बरकत हो और बादमें देशी कारखानोंकी। मगर हर सूरतमें फायदा हो कारखानोंका ही।

जब हिन्दुस्तानी कारखाने देहातोंको तबाह करके पनपने लगे, तो वे भी कितनी ही पूंजी यहांसे बाहर भेजते थे। हिन्दुस्तानमें कई कारखाने ऐसे भी हैं, जो विदेशी पूंजी या विदेशी नियन्त्रण, या दोनों, पर निर्भर हैं। इसलिए, और नहीं तो सिर्फ कीमतकी बाबतमें भी, ग्राम-उद्योगोंके मालकी कारखानोंके मालसे तुलना करना भ्रान्तिजनक है। हरएक मानो देहाती जनताको हरानेके लिए शकुनीकी कुटिल नीतिसे पांसे फेंक रहा है। अब तक इस नीतिकी बदौलत कारखानोंका जो लाभ हुआ वह यदि निकाल दिया जाये, तब कहीं हम दो समान वस्तुओंमें तुलना कर सकेंगे। इन सबके अलावा सरकारकी चलन-विषयक वह नीति भी रही है, जिसकी बदौलत चीजोंकी कीमतें हमेशा घटती रही हैं और जिसने किसानको अपने श्रमके पूरे पूरे मूल्यसे सदा वञ्चित रखा है।

हिन्दुस्तानसे सम्पत्ति कई प्रकारोंसे गायब हो रही है। जहां यूरोपमें कोई नया आविष्कार हुआ कि हिन्दुस्तानका और करोड़-दो-करोड़का नुकसान हुआ। पाश्चात्यों द्वारा यह शोषण घड़ियां, फौण्टनपेन, साइकिलें, मोटरें, कांचका सामान, टाइप राइटर, रेडियो, सिनेमा, रेफ्रेजरेटर, लिफ्ट आदि जिन चीजोंका उपयोग मालदार आदमी करते हैं, उन सब चीजोंके द्वारा निरन्तर होता रहता है। हमारे धनिक लोग अपनी सम्पत्तिपर अपना निजी स्वामित्व मानते हैं। जो लोग महंगी और सस्ती, या किफायती ना-किफायतीकी चर्चा करते हैं, उन्हें पहले सारे देशकी सम्पत्तिको राष्ट्रीय सम्पत्तिके, और भारतकी जनताको एक भारतीय परिवारके रूपमें देखना सीखना चाहिए। क्या किसी परिवारके विषयमें यह कल्पना की जा सकती है कि जब उस परिवारके कतिपय व्यक्ति भूखों मरते हों, तब दूसरे व्यक्ति कुछ विलासकी चीजें खरीदनेके लिए विदेशको पैसा भेजेंगे? मगर हिन्दुस्तानमें आज यही हो रहा है। विज्ञानकी मददसे यन्त्रों द्वारा बड़ी चतुराईसे बनायी हुई चमकदार और भड़कीली अगड़-बगड़ चीजें हमारे देशमें भेज दी जाती हैं। हम भी उन्हें यहां बना सकते थे। लेकिन जब तक हमारे यहां एक ऐसा जनसमूह मौजूद है, जो बेकार है, जिसकी बढ़ती हुई कङ्गालियत, गिरता हुआ स्वास्थ्य और दिलका दर्द हमारी प्रगतिके रास्तेमें नित्य रोड़े अटकाता है, तब तक हम क्या कर सकते हैं? हम अगर कोई उचित आर्थिक योजना बनाने बैठें, तो हमें उलटे सिरेसे शुरू करना पड़ता है। अर्थात् पहले हमें इस सवालका विचार करना पड़ता है कि "क्या इस देशमें ऐसा कोई व्यक्ति है कि जिसे काम करनेकी इच्छा और योग्यता होते हुए भी अपने परिश्रमका किसी उत्पादक उद्योगमें उपयोग करनेका तथा थोड़ी बहुत कमाई करनेका मौका नहीं मिलता?"

ज्यों ही हम इस प्रश्नका इस दृष्टिविन्दुसे विचार करने लगते हैं, त्योंही यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारी अर्थ-व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि जिसमें आज जो लोग बेकार हैं, उन्हें बराबर काम मिलता रहे और उन्हें यह सन्तोष हो कि संसारके व्यवहारमें उनका भी कुछ उपयोग है। और इसके साथ-ही-साथ उनके श्रमसे देशकी सम्पत्तिमें भी कुछ वृद्धि हो। अगर इस प्रयासमें विज्ञानसे मदद मिले, अगर इसके पथप्रदर्शक सुयोग्य एवं सङ्गठन-चतुर व्यक्ति हों और यदि साबित दिमागवाले अर्थशास्त्री उसका योग्य दिशामें सञ्चालन करें और सरकार, अर्थात् समाज, अपनी सारी शक्तिसे उसका समर्थन करे, तो यह एक तुच्छ खैराती योजना प्रतीत नहीं होगी; जैसी कि आज कल्पना की जा रही है।

सब लोगोंको काम देनेका दायित्व हरएक सभ्य राष्ट्रका है। जो लोग यह कहते हैं कि खादी ना-किफायती है, उनके दिलोंपर इस दायित्वकी छाप नहीं पड़ी है; और इसलिए उस अंशमें उनमें उस उदार संस्कृतिका अभाव है, जो उन्हें यह प्रश्न उपस्थित करनेके लिए प्रेरित कर सकती है। जब इसका उचित ढङ्गसे सङ्गठन होगा, तो खादी और मिलके कपड़ोंकी कीमतमें जो अन्तर है, वह न रहेगा। परन्तु शुरू-शुरूमें यह बात सिद्ध नहीं होगी। पहले-पहले तो, इन डेढ़ सौ वर्षोंमें ब्रिटिश सरकार जिस हानिकारक अर्थनीतिपर चलती आयी है, उसको थोड़ा बहुत पलट देनेके लिए हरएक जिलेके जीवनका इस प्रकार पुनःसङ्गठन करना होगा कि वह अपनी चन्द जरूरतें आप ही पूरी करे।

उस जिलेमें पैदा होनेवाले कच्चे मालपर पहला हक उनका होगा, जो उस कच्चे मालको उपयोगमें लाना चाहते हैं। जिलेके खरीदारोंपर जिलेके कारीगर और उत्पादकका हक होगा। बाहरसे आनेवाली कोई भी सस्ती चीज उस जिलेके बाजारोंमें नहीं बिकने पायेगी। क्योंकि उसके ऊपरी सस्तेपनके पीछे महान् नाशकारिता छिपी हुई है। आज तक कारखानोंकी धनोत्पादक शक्तिका उपयोग व्यक्तियोंने ही किया है। आइन्दा यदि उसका उपयोग ही होना है, तो वह उपयोग राष्ट्र करेगा, न कि व्यक्ति।

परन्तु आज ही इस तरह व्यक्तियोंका स्वत्व अनिवार्य-रूपसे छीन लेनेसे बेहतर यह होगा कि यन्त्रोद्योगोंसे उत्पन्न सम्पत्तिपर बढ़ता हुआ कर लगाया जाय और इस करका उपयोग सरकार देहाती जनताके प्रति अपना प्राथमिक कर्तव्य पूरा करनेके लिए करे। वह कर्तव्य यह है कि जहां लोग काम करना चाहते हैं और काम कर सकते हैं, वहां उन्हें काम देना ही चाहिए।

हिन्दुस्तानकी गरीबीका बयान करना अब कोई नयी बात नहीं है। जो लोग यह सवाल उठाते हैं कि क्या खादी किफायती है, उन्हें अपने तईं यह सवाल पूछना चाहिए कि क्या इस देशकी गरीबी बढ़ नहीं रही है? अगर जवाब यह हो कि बढ़ रही है; और यह कि जहां एक तरफ कारखानोंमें सम्पत्तिका उत्पादन बड़े पैमानेपर हो रहा है—एक तरफ वैभव है, फिजूलखर्ची है, विलासिता है और दुर्गुण है; और दूसरी तरफ प्रचण्ड भूख है, भयङ्कर अभाव है, शारीरिक पतन है और अस्वास्थ्य है—तो यह सब असङ्गत-सा प्रतीत होना चाहिए।

समाजके शिखरस्थ लोगोंके जीवनका मान घटाकर और उससे जो बचत होगी, उसकी मददसे निचली सतहके लोगोंके जीवनकी इयत्ता बढ़ाकर हमें यह विषमता नष्ट करनी चाहिए। प्रत्यक्ष दान द्वारा निम्न श्रेणीके लोगोंके जीवनका मान बढ़ानेकी योजनाका हमें निषेध करना चाहिए। दूसरा एकमात्र उपाय यही है कि हम उन्हें काम दें, उसके लिए सामान और औजार दें, उनकी बनायी हुई चीजें खरीदें और उन चीजोंका वितरण हरएक जिलेमें उपयोगिताकी दृष्टिसे करें। और इस सारी योजनाका मार्ग-दर्शन सरकारके पूरे-पूरे समर्थनसे कुछ निःस्वार्थी व्यक्ति करें।

इस प्रणालीमें जो-जो आयोजन करने पड़ेंगे, उनमें उग्र स्थान खादीको देना चाहिए। खादीके दावेका बुनियाद यही है। समस्त मानवीय जीवन और भावनाओंका नियमन अकेला अर्थशास्त्र ही नहीं करता। बल्कि सच तो यह है कि इस बातपर बार-बार जोर दिया गया है कि आर्थिक प्रेरणाके दमनसे, या कमसे कम उसके कठोर संयमसे ही, समाजका सच्चा हित सिद्ध होता है। इसलिए "खादी मितव्ययी या किफायती है या नहीं?" यह सवाल पूछना व्यर्थ है। असली प्रश्न तो यह है कि "खादी आवश्यक है या नहीं? और जिस तरह खर्चकी कोई परवाह न करते हुए जनताके बचावके लिए सैनिक रक्षाका आयोजन किया जाता है, उसी तरह

हिन्दुस्तानमें बड़ेसे बड़े पैमानेपर खादीका सङ्गठन होना चाहिए या नहीं ?"

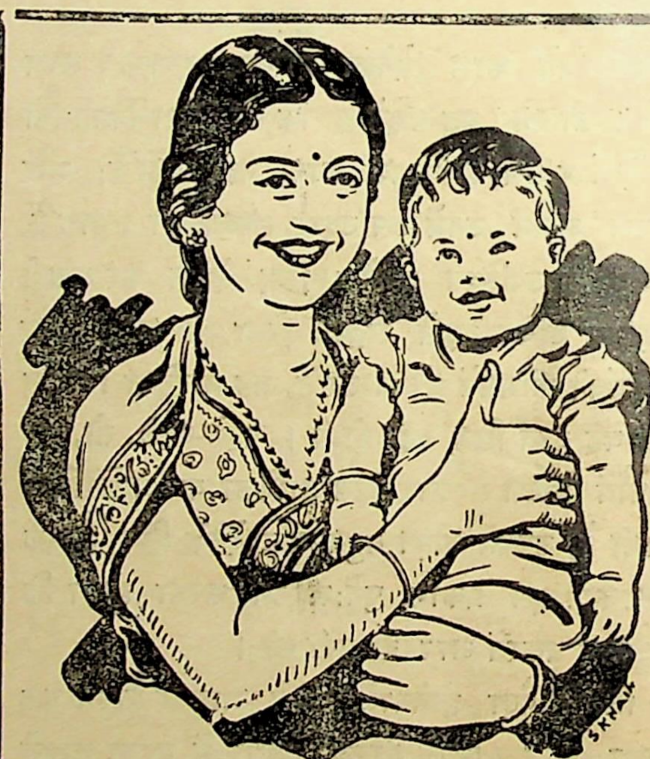
एक पीढ़ी तक यह प्रयत्न जारी रहनेके बाद हरएक जिलेमें बहुत-सा अतिरिक्त माल पैदा होगा, विनिमय सुचारु-रूपसे होने लगेगा, यान्त्रिक उद्योग और ग्राम-उद्योगोंमें यथासमय उचित सामञ्जस्य स्थापित होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु इस क्षण तो तराजूका कांटा ग्राम-उद्योगोंके पक्षमें, और खासकर खादीके पक्षमें, बहुत ज्यादा झुकता है।

संसारमें तेलका उत्पादन

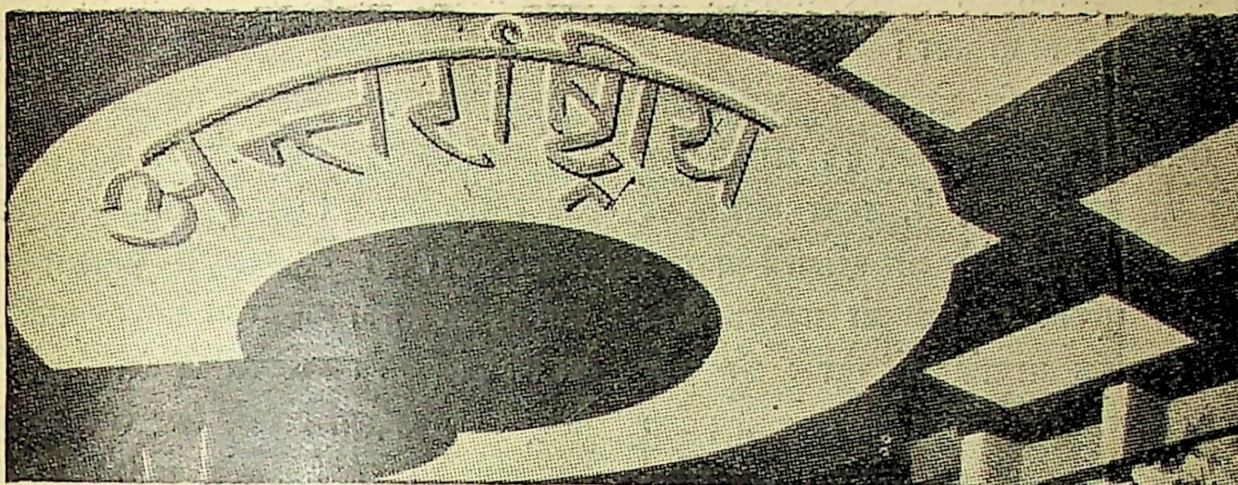
तेलको लेकर कितनी ही अन्तर्राष्ट्रीय उलझनें अब तक बढ़ी हैं और कितनी ही भविष्यमें भी बढ़ेंगी, इसमें सन्देह नहीं। कई तैल-क्षेत्रोंको लेकर अनेक राष्ट्रोंमें अब भी तना-तनी बनी हुई है।

तेलकी उपयोगिता शान्तिकालमें जितनी है, युद्धकालमें उससे कहीं अधिक है, बल्कि युद्ध-विशारदोंका कहना है कि किसी भी विश्व-व्यापी युद्धका अन्तिम निर्णय तेलके हाथमें ही है। इस सम्बन्धमें तेल-सम्बन्धी आंकड़ोंकी जानकारी आवश्यक है। १९३८ के प्राप्त आंकड़ोंके अनुसार तेल सम्बन्धी संसारकी स्थिति यों है:—

देश	मेट्रिक टन
अमेरिका	१७०,४३२,०००
रूस (सखालिन सहित)	३०,११२,०००
वेनेजुला	२८,१०७;०००
ईरान	१०,३९८,०००
डच ईस्ट इण्डीज	७,३९४,०००
रूमानिया	६,८७१,०००
मेक्सिको	५,५२३,०००
ईराक	४,३६८,०००
कालम्बिया	३,११८,०००
ट्रिनीडाड	२,५८३,०.००
अर्जेण्टाइन	२,४२५,०००
पेरू	२,२२२,०००
भारत और बर्मा	१,४५८,०००
बहरीन	१,१३५,०००
ब्रिटिश बोर्नियो	९१४,०००
कनाडा	८९८,०००
जर्मनी	६०७,०००
पोलैण्ड	५५०,०००
अन्यान्य देश	१,१९९,०००
कुल	२८०,२७६,०००







यूरोपकी कुञ्जी एशियाके हाथमें

पिछले दिनों अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें जैसे परिवर्तन हुए हैं, उनमें रूस-जर्मन सन्धि अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिके समीक्षकोंका ख्याल है कि इस सन्धिसे यूरोपकी कुञ्जी एशियाके हाथमें आ गयी है और यूरोपमें आज जो कुछ हो रहा है, उसकी बहुत अधिक जिम्मेदारी रूस-जर्मन सन्धिके ऊपर है। अगर रूस-जर्मन सन्धि न हो गयी होती, तो यूरोपकी आज क्या स्थिति होती, यह कहना कठिन है; पर जैसी स्थिति आज है, वैसी वह निश्चय ही न होती।

इसलिए उक्त सन्धि होनेके कुछ कालके भीतर ही जो स्थितियां स्पष्ट हुई हैं, उनपर विचार कर लेना आवश्यक है।

रूस-जर्मन सन्धिने रूसको अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंपर अधिकारके साथ बोलने योग्य बना दिया है। यूरोपीय प्रश्नोंपर उसे स्वाधीनता मिल गयी और एशियामें भी अपने इच्छानुसार काम करनेके लिए वह बहुत कुछ स्वतन्त्र हो गया है।

जापान एकदम अलग हो गया है। जापान या तो ब्रिटेनके लिए उत्तरी चीनमें रूसके विरुद्ध लड़े अथवा रूसके लिए दक्षिणी चीनमें ब्रिटेनके विरुद्ध लड़े, लेकिन उक्त दोनों क्षेत्रोंमेंसे किसीमें उसे कितनी भी सफलता मिले, उससे उसे लाभ कुछ भी न होगा।

चीन विश्व-सङ्घर्षके लिए केन्द्रस्थान बनना चाहता है। इस विषयमें चीनने इस सत्यको समझ लिया है कि मित्रों अथवा शत्रुओं, दोनोंसे उसे खतरा है। इसीलिए यूरोपमें जो युद्ध चल रहा है, उसका अन्तिम निर्णय यूरोपमें नहीं, चीनमें होगा और उससे सम्बद्ध सबसे प्रमुख प्रश्न यह है कि ब्रिटेन और फ्रान्स चीनमें रूसकी अथवा जापानकी—किसकी सफलता चाहते हैं।

अब इस दृष्टिसे रूस-जर्मन सन्धिपर विचार कीजिये। रूस एशियामें कुछ भी करनेमें असमर्थ था, जब तक यूरोपमें अपने सीमान्तोंको लेकर वह निश्चिन्त न हो जाय। बाल्टिक और दर्रेदानियालपर प्रभाव-क्षेत्र विस्तार करनेकी उसकी लालसा, छोटे-छोटे स्लावोनिक राज्योंकी नीतियोंपर उसका नियन्त्रण, अथवा डेन्यूबके अञ्चलोंमें काम करनेकी स्वाधीनताको लेकर उसकी जो महत्त्वाकांक्षायें हैं, उनकी पूर्ति भी उक्त सन्धिसे बहुत कुछ सम्भव हो गयी और यूरोपमें जर्मनीसे निश्चिन्त होकर एशियामें भी अपने विस्तारके लिए उसे अवसर मिल गये हैं।

१९२२ में होनेवाली रेपालो-सन्धि यद्यपि एक कमजोर जर्मनीके साथ रूसने की थी; पर इसका परिणाम यह हुआ कि चीनमें वह लगनके साथ अपनी नीतियोंको कार्यान्वित करनेके प्रयत्न करने लगा। लेकिन स्ट्रेसमैनने जब जर्मनीका ध्यान यूरोपीय प्रश्नोंकी ओर आकर्षित किया और दूसरे यूरोपीय राष्ट्रोंके साथ जर्मनीके सहयोगकी सम्भावनायें उत्पन्न हुईं, तो रूसको भी यूरोपकी ओर ही आकर्षित होना पड़ा; क्योंकि तब रूस अपने यूरोपीय सीमान्तोंकी उपेक्षा नहीं कर सकता था। लोकार्नोका समझौता और बातोंको लेकर चाहे जितना भी विफल हो गया हो, लेकिन इसमें तो सन्देह ही नहीं हो सकता कि इस समझौतेके कारण यूरोपीय

उपनिवेशोंमें, चीन, इण्डोचीन, भारत और मलायामें पांव फैलाना रूसके लिए असम्भव हो गया।

लेकिन रूस-जर्मन सन्धिके हो जानेसे अब जापान ही एशियामें रूसका विरोधी रह गया है। जापान और जर्मनीमें पहले जो समझौते हुए थे, उनका आधार यह था कि यूरोपमें जर्मनी रूसको रोके और एशियामें जापान। क्योंकि दक्षिण-पूर्व यूरोपमें जर्मनीकी जो महत्त्वाकांक्षायें रही हैं, उनमें रूस एक बाधाके रूपमें रहा है और उधर चीनमें भी रूसके कारण जापानके लिए एक बाधा थी। अतः जर्मनी और जापान मैत्री-सूत्रमें बंध गये थे। रूस-जर्मन-सन्धिने इसी सम्बन्धपर आघात किया है और आज रूस यूरोपसे निश्चिन्त हुआ है, तो जापान भी एशियामें अलग हो गया। चीनमें अब रूस और जापानमें सङ्घर्ष होनेकी अवस्था-में, जापानके लिए आज परिस्थितियां उलझ उठी हैं।

लेकिन सुदूर पूर्वमें रूस जीते या जापान, यूरोपके लिए तो उसमें खतरा ही है। ३९ साल पहले सुदूर पूर्वकी जो अवस्था थी, आज वही परिस्थितियां फिर उत्पन्न हो गयी हैं। लेकिन तब घटनाओंका जैसा उत्तरोत्तर विकास होता गया था, उसमें जापानका उदय इस तरह होता गया कि सुदूर पूर्वमें यूरोपीय हितों और महत्त्वाकांक्षाओंके लिए जापानने युद्ध किया और रूसको बाधायें पहुंचायीं। और आज यह धारा ही बदल गयी है। आज तो परिस्थितियां वैसी ही हैं; पर जापान नहीं, रूसके पक्षमें और इस प्रकार यूरोपके विरुद्ध हैं।

इसलिए चाहे राजनीतिक विचार-धाराओंको लीजिये अथवा युद्ध-जनित परिणामोंको लीजिये, सुदूर पूर्वमें यूरोपके लिए भविष्यमें अब जगह नहीं मालूम होती। ३९ साल पहले संसारकी समस्याओंकी कुञ्जी जहां यूरोपके हाथमें थी और सुदूर पूर्वका भाग्य उसीके साथ संयुक्त था, वहां आज यूरोपकी समस्याओंकी कुञ्जी सुदूर पूर्वके हाथमें आ गयी है।

हालैण्ड और बेलजियमकी तटस्थता

युद्ध छिड़नेके बादसे ही हालैण्ड और बेलजियमको लेकर अटकलें लगायी जा रही हैं कि वे अपनी तटस्थताकी रक्षा कब तक कर सकेंगे। पिछले दिनों जैसी घटनायें हुई हैं, उनमें इस प्रश्नपर विचार करना और भी आवश्यक हो गया है।

हालैण्डने तटस्थ रहनेकी नीति अपनायी है। जब वह राष्ट्रसङ्घका सदस्य हुआ था, तब उसने ऐसी नीति छोड़ दी थी, हालां कि वह जानता था कि ऐसा करना कितना बड़ा खतरा मोल लेना है। मन्चूरियाके प्रश्नपर उसने इस बातका निश्चय किया था कि जो भी व्यवस्थायें सङ्घ द्वारा की जायेंगी, उन सबका वह पालन करेगा, यद्यपि वह जानता था कि पूर्वमें उसके उपनिवेशोंकी जैसी स्थिति है, उसमें सङ्घ-के दूसरे छोटे सदस्योंमें उसके लिए सबसे अधिक खतरोंकी सम्भावना है। अबसीनियाके युद्धने इस स्थितिको और भी स्पष्ट कर दिया और उसने फिर अपनी तटस्थताकी नीति अपनायी।

हालैण्डकी तटस्थता स्वीजरलैण्डकी तत्सम्बन्धी नीतिसे भिन्न है। स्वीजरलैण्डकी तटस्थतापर अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति मिल चुकी है। लेकिन हालैण्डने इस प्रकारकी गारण्टीको सदा अस्वीकृत किया है। स्वीजरलैण्डकी तटस्थताका अर्थ यह है कि अगर कोई राष्ट्र उसपर आक्रमण करे, तो आक्रमण-कारीके विरुद्ध जो राष्ट्र हों, उनके साथ वह भी मिलकर आक्रमणकारीके खिलाफ लड़ाई करे। पर हालैण्ड ऐसा नहीं चाहता। वह तो आक्रमणकी व्याख्या स्वयं करेगा और इसका निर्णायक स्वयं होगा कि वह आक्रमणकारीके सम्बन्धमें कैसी नीति अपनाये।

लेकिन इतना तो निश्चय ही कहा जा सकता है कि आक्रमणके विरुद्ध वह तैयारी कर रहा है और अगर किसी राष्ट्रने उसपर आक्रमण किया, तो उसके विरुद्ध वह युद्ध अवश्य करेगा। बात सिर्फ इतनी है कि किसी भी आक्रमण-की अवस्थामें वह किसी भी राष्ट्रको अपनी सहायताके लिए अधिकार नहीं देना चाहता।

हालैण्डकी तटस्थता बेलजियमकी तटस्थासे भी भिन्न है। बेलजियमका सम्बन्ध दूसरे राष्ट्रोंको लेकर, और वह भी १९३६ के बादसे, कुछ ऐसा हो गया है, जो खतरोंसे खाली नहीं है। उसने फ्रान्ससे सैनिक समझौता किया था, जिसे सन्धि नहीं कह सकते। फिर भी जर्मनीको इससे आशङ्का हुई थी। लोकार्नो पैक्टपर भी उसने हस्ताक्षर किये थे, लेकिन जर्मनी द्वारा उसके ठुकराये जानेकी स्थितिमें जर्मनीके लिए उसका कोई मूल्य नहीं रह गया। ब्रिटेन और फ्रान्सने

उसे कर्तव्योंसे मुक्त कर दिया, लेकिन उसकी स्वाधीनताकी गारण्टी उन्होंने ज्योंकी त्यों रखी।

बेलजियमको अपनी तटस्थता बनाये रखनेके लिए यह आवश्यक था कि उसपर जर्मनीकी भी स्वीकृति मिले, जिससे जर्मनीने १९१४ में जैसा किया था, उसकी आशङ्का न रह जाय। जर्मनीने उसकी तटस्थतापर स्वीकृति देते हुए कहा कि किसी भी परिस्थितिमें वह बेलजियमपर आक्रमण न करेगा, बशर्ते कि उसके द्वारा कोई और राष्ट्र जर्मनीके विरुद्ध युद्धकी तैयारी न करे।

इस शर्तके पीछे भावनायें चाहे जो भी काम कर रही हों, पर इतना निश्चित है कि जर्मनी जब चाहे, दूसरे राष्ट्रके आक्रमणका बहाना लेकर स्वयं आक्रमण कर सकता है। फिर भी बेलजियमने इसे स्वीकार किया।

हालैण्डकी तटस्थतापर जर्मनीकी स्वीकृतिकी कोई आवश्यकता उसने महसूस नहीं की, क्योंकि डच तटस्थतापर उसे कभी अविश्वास नहीं हुआ।

एक बार हिटलरने जब अपनी राइखस्तागकी वक्तृतामें कहा कि हालैण्डकी स्वाधीनताके विरुद्ध वह कुछ भी नहीं करना चाहता और इसके लिए उसने गारण्टी दी, तो हालैण्डने इस गारण्टीको भी स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वह अपनी स्वाधीनताको वाद-विवादका विषय नहीं बनाना चाहता था। और वास्तवमें यदि ऐसा न हो, तो इससे अनेक उलझनें बढ़नेकी आशङ्का है। यहां हालैण्डने स्वीडेन और नारवेके सामने एक उदाहरण उपस्थित किया है।

हालैण्डने किसी भी राष्ट्रसे इस विषयमें वाद-विवाद न करनेकी जो नीति अपनायी है, उसे ग्रेट ब्रिटेनने समझा है। इसीलिए किसी भी तीसरे राष्ट्रको लेकर उसने हालैण्डके साथ किसी प्रकारके समझौतेके लिए कोशिश नहीं की। किसी भावी आक्रमणके लिए भी उसने अपनी सहायता देनेका वचन हालैण्डको देनेकी बात नहीं की।

इस प्रकार हालैण्डने अपनी तटस्थताकी नीतिका पालन इतनी कड़ाईके साथ किया है कि इस बातकी आशा होती है कि भविष्यमें भी बुरी तरह उत्तेजित हुए बिना वह अपनी इस नीतिको छोड़ेगा नहीं। अपनी नीतिको वह चरम सीमा तक ले जाना चाहेगा। बेलजियमके विषयमें ऐसी आशा नहीं की जा सकती।

गणतन्त्र स्थायी कैसे हो?

ब्रिटेन और फ्रान्स गणतन्त्रके लिए लड़ रहे हैं, पर गणतन्त्रके स्थायित्वकी समस्या कैसे सुलझे? पिछले महायुद्धके बाद जिन छोटे-छोटे राष्ट्रोंका जन्म हुआ था, उनका जीवन-काल कितना लम्बा रह सका? आज फिर ब्रिटेन और फ्रान्स गणतन्त्रके लिए लड़ रहे हैं। तो इस प्रकार ब्रिटेन और फ्रान्स कब तक दस-दस बीस-बीस सालके बाद गणतन्त्रके लिए लड़ते रहेंगे। आवश्यकता इस बातकी है कि हम ऐसी व्यवस्था बनायें, जिससे गणतन्त्रको विनष्ट करनेवाले कारणोंको ही उत्पन्न न होने दिया जाय। सर नार्मन ऐञ्जिलने इस विषयपर विचार करते हुए लन्दनके 'टाइम एण्ड टाइड' में लिखा है:—

ब्रिटेन और फ्रान्स जिन उद्देश्योंको लेकर लड़ रहे हैं और जिन उद्देश्योंके नामपर जनता इतना बड़ा त्याग करने जा रही है, उनके सम्बन्धमें उसे वास्तविकताओंकी जानकारी होना आवश्यक है। आखिर किन उद्देश्योंको लेकर जनता इतना त्याग करे?

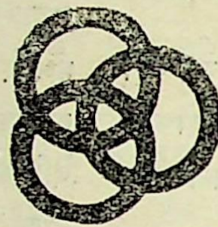
युद्धमें अगर हमारी विजय हुई, तो पोलैण्ड, जेकोस्लोवेकिया और आस्ट्रियाका पुनर्गठन हम किस प्रकार करने जा रहे हैं? १९१९ में जिन राष्ट्रोंका जन्म हुआ था, उनका ऐसा अन्त हुआ, तो किस प्रकार पुनः इन राष्ट्रोंका हम ऐसा सङ्गठन करें कि पहलेकी अपेक्षा उनका जीवन अधिक व्यवस्थित एवं स्थायी हो सके? पुनर्गठित जेकोस्लोवेकिया और पोलैण्डका जीवन-काल कितने दिनोंका होगा? और कितने दिन पुनः पराजित जर्मनी इनपर आक्रमण करनेसे रोका जा सकेगा? कितनी बार ब्रिटेन और फ्रान्सको इनके पुनर्गठनके लिए युद्धमें उतरना पड़ेगा? उनके उद्देश्योंकी प्राप्ति एवं स्थायित्वको सम्भव कैसे बनाया जा सकेगा? जब तक यह मालूम न हो जाय कि हमारे उद्देश्योंकी जो प्राप्ति होगी, उसके स्थायित्वको सम्भव कैसे बनाया जा सकेगा और वास्तवमें उद्देश्य हैं क्या और प्राप्त कैसे होंगे, तब तक इस बातकी आशा कैसे की जा सकती है कि जनताके पास जो कुछ है, सबका बलिदान करनेको वह स्वेच्छापूर्वक तैयार हो जायगी।

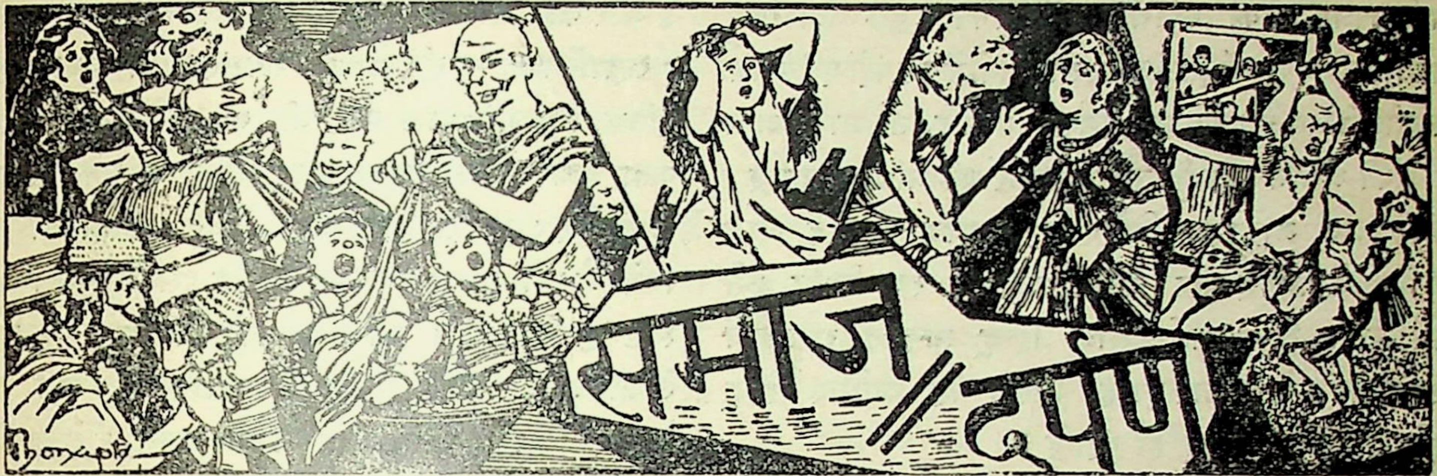
यद्यपि ये प्रश्न दुःखपूर्ण हैं, पर इनकी उपेक्षा करने-

की अपेक्षा इनका उत्तर खोज निकालना अधिक आवश्यक है। इनका उत्तर पाये बिना हमारी स्थिति अनिश्चित रहेगी और किसी महत्त्वपूर्ण परिस्थितिमें हमारे उद्देश्य खतरेमें पड़ सकते हैं।

ये सब स्थितियां कैसे सुलझें? आवश्यकता इस बात-की है कि पश्चिमके यूरोपीय गणतन्त्रात्मक राष्ट्रोंके एक सङ्घ राज्यकी व्यवस्था की जाय। काफी दिनोंसे इसपर वाद-विवाद होता रहा है; अब आवश्यकता इस बातकी है कि इसे कार्यान्वित किया जाय। गणतन्त्रात्मक देशोंकी शक्तियां कम नहीं हैं, लेकिन उनका एक आदर्शको लेकर संयुक्त रूपमें उपयोग करनेकी समस्या सदासे टेढ़ी रही है।

अगर ब्रिटेन, फ्रान्स, 'स्कैण्डीनेवियन राष्ट्र', ब्रिटिश उपनिवेश और अमेरिका सब एक आदर्शको लेकर संयुक्त रूपसे कार्य करें, तो तानाशाहोंके पनपनेके लिए कोई मौका ही न मिले। भौतिक शक्तियोंकी कमी हमारे पास नहीं है, लेकिन हम उनका नैतिक उपयोग करना नहीं जानते।





सुधार और सुधारक

"सामाजिक सुधार राजनीतिक जीवनकी रीढ़की हड्डी है", एक समाज-सुधारकने एक बार कहा था और यह स्पष्ट करते हुए उसने कहा था कि जब तक सामाजिक सुधारों द्वारा जनतामें नागरिक जीवनका उत्थान भली भांति नहीं हो जाता और जब तक वे नागरिककी हैसियतसे अपने अधिकारों एवं अपने कर्तव्योंको पहचानते नहीं, तब तक उनसे इस बातकी आशा नहीं की जा सकती कि वे अपने देशकी सारी आवश्यकताओंको समझ एवं उसके अनुसार कार्य कर सकेंगे। इसीलिए सामाजिक सुधारोंका इतना महत्त्व दिया जाता है।

हमारे समाजकी आज क्या अवस्था है? दुनियाकी दूसरी सभ्य जातियोंकी पंक्तिमें आज हमारा क्या स्थान है? भारत अपने अतीत गौरवको लेकर विश्वके इतिहासमें गर्वोन्नत सिर उठाये खड़ा है, पर इसका वर्तमान भी क्या ऐसा उज्ज्वल है? संसारकी अनेक जातियोंके बीचमें सामाजिक सभ्यताकी दौड़में आज हम कहां हैं?

आज हमारा समाज परिवर्तनकालसे गुजर रहा है, अनेक पुरानी रूढ़ियों एवं अनेक नयी भावधाराओंका सङ्घर्ष स्पष्ट होता जा रहा है। ऐसी दशामें समाजके लिए इस बातकी आवश्यकता आ गयी है कि हम क्षणभर रुककर सोचें कि आखिर हमारे हृदय किस तरफ उठ रहे हैं, हमारी प्रगति तो है, पर इस प्रगतिका लक्ष्य क्या है? जब तक हम इस प्रगतिका लक्ष्य न समझ लें, तब तक हमारा हरकए कदम संशयपूर्ण है और हम समाजके उस अङ्गको, जो "महाजनो येन गतः स पन्था" का आदर्श लेकर ही चलता है, कुछ भी समझा नहीं सकते। इसलिए आवश्यकता इस बातकी है कि हम नवीन और प्राचीनके सङ्घर्षको समझें और इसमें आवश्यकतानुसार सामञ्जस्य स्थापित करनेकी कोशिश करें।

एक बात स्पष्ट है। प्राचीनताके नामपर ही किसी बातकी श्रेष्ठता प्रमाणित नहीं की जा सकती। प्राचीनताके नामपर ही नवीन सुधारोंका विरोध युक्तिसङ्गत नहीं कहा जा सकता। आज न जाने कितने सुधारोंका विरोध केवल प्राचीनताके नामपर किया जा रहा है। बालविवाहसे समाजकी सारी कान्ति, समाजका सारा शौर्य-वीर्य नष्ट हो रहा है, बालिकायें मांका दूध पीना नहीं छोड़तीं और विवाह शब्दका अर्थ न जाननेपर भी सदाके लिए विवाह-सूत्रमें बांध दी जाती हैं। उनकी स्थिति ऐसी है कि वे आवाज भी नहीं उठा सकतीं; लेकिन सच तो यह है कि आवाज उठाना भी तो वे नहीं जानतीं। उनका विवाह तो तब होता है, जब वे विवाहका अर्थ भी नहीं जानतीं, उसके मर्मोंको समझनेकी तो बात ही क्या? लेकिन यह विवाह करना इसलिए आवश्यक है कि ऐसा न करना परम्पराके—धर्मके—रूढ़ियोंके विरुद्ध होगा।

समाजके वक्षस्थलपर आज अनेक विषैली कुरीतियां ताण्डव नृत्य कर रही हैं। देशकी आबादीका एक बहुत बड़ा अंश 'अस्पृश्य' कहकर ठुकराया जा रहा है। अभी तक जातियोंका विभेद ही था, अब उप-जातियां भी अधिकारोंके नामपर

सङ्घर्ष करनेकी तैयारी कर रही हैं। और मजा यह है कि इन सारी उपजातियोंकी स्वाधीनताकी कल्पना कुछ नौकरियों, सामाजिक एवं राजनीतिक सभा-समितियोंमें कुछ पदों एवं स्वार्थों तक ही सीमित है। यह उस देशका चित्र है, जो आज अन्य राष्ट्रोंकी श्रेणीमें स्वाधीनता प्राप्त करनेकी मांग करता है। देशकी आधी आबादी, जिसे नारी-समाज कहते हैं, आज भी पिंजड़ेमें बन्द है और किसी प्रकारकी स्वाधीनता उसे देनेमें सारा हिन्दू धर्म—सारी हिन्दू संस्कृति रसातलमें चली जायेगी, ऐसी आशङ्का है, जिससे यह धर्मभीरु हिन्दू जाति शोकसे मरणासन्न हो रही है।

यह तो एक पहलू है। दूसरा पहलू है आजकलके सुशिक्षित, सुसंस्कृत एवं सुधारके लिए गला फाड़-फाड़कर चिल्लानेवालोंकी मनोवृत्तिका। पहला दल अगर प्राचीनताके कारण ही सारी बातोंको गलेसे लगाये घूमेगा, तो यह नया दल केवल नवीनताके लिए अन्धानुकरण करनेके लिए पागल है। ये सब गला फाड़-फाड़कर सुधारोंके लिए चिल्लायेंगे और समाजकी सारी बुराइयोंका अन्त करनेके लिए जीवन बलिदान करने तकके लिए सभाओंमें उपस्थित जनतासे प्रतिज्ञायें करेंगे। नारी-स्वाधीनताके बिना देश आजाद नहीं होगा, नारी पर्देमेंसे निकलकर पुरुषके साथ कर्म-क्षेत्रमें उतरे और अपना कर्तव्य पालन करे। यह सब उनकी बातें हैं, जो उनके सभी व्याख्यानोंमें मिलेंगी और उन्हें सुनकर आपको ऐसा लगेगा, मानो इन सब सुधारोंके तात्कालिक कार्यान्वित किये बिना उन्हें दानापानी हराम हो जायगा।

पर अब जरा इनके व्यवहारको भी देखिये। यही सब लोग अपने दैनिक जीवनमें कहां तक इन बातोंका पालन करते हैं, यह प्रश्न स्वभावतः उठता है। कर्मक्षेत्रमें नारीको आवाहन करनेवाले लोग जब नारियोंको वास्तवमें कर्मक्षेत्रमें देख लेते हैं, तब उनकी शङ्काशील आंखें उनकी हरकतोंमें कुछ ऐसा देखने लगती हैं, जिससे उनके आचारभ्रष्ट होनेकी कल्पना हुए बिना उन्हें नहीं होती। एक ओर आप नारीको पुरुषके साथ ही कर्मक्षेत्रमें—समानाधिकारके साथ काम करते देखना चाहते हैं और दूसरी ओर किसी नारीको पुरुषके साथ देखते ही आपकी आंखें चौंधिया जाती हैं और समाजकी ऐसी स्थिति हो गयी है कि नारी-पुरुषके सम्पर्कको वह कभी भी भ्रष्टतारहित सोचना ही नहीं चाहता है। हमारे इस देशमें सदा ही इन्द्रिय-निग्रहकी शिक्षा दी गयी है और कहा जाता है कि हिन्दू समाजको उसकी अत्यधिक आध्यात्मिकताने ही भौतिक सफलताओंमें डुबाया है। पर दैनिक जीवनमें समाज कहीं भी स्त्री-पुरुष सम्पर्कको ऐन्द्रिकता अथवा यौन-सम्बन्धसे रहित सोचनेमें स्वभावतः असमर्थ है। हमारी बातों और हमारे व्यवहारोंमें जो यह विभेद है, वह इतना बढ़ चला है कि इसकी भण्डामी स्वतः स्पष्ट हो गयी है। मानवचरित्रको ये बातें पतनकी ओर ले जानेवाली होती हैं। यदि हिन्दू समाजकी ऐसी अवस्था है और हमारी नैतिकताके बन्धन इतने ढीले हैं कि स्त्री-पुरुषके सम्पर्कसे हमारा समाज रसातलको चला जायगा, तो हममें इतना साहस होना चाहिए कि हम इस बातको स्वीकार करें और इसके अनुसार नारी-स्वाधीनता, नारीके लिए समानाधिकार आदि शब्दोंका प्रयोग करना ही बन्द कर दें। पर यदि हम इसमें बुराई नहीं समझते, तो भी हममें इतना साहस होना चाहिए कि समाजमें आदर्श उपस्थित करें, अन्यथा व्यक्तिकी भण्डामी व्यक्तियोंके समूह—समाजकी भण्डामी होती है। यह धोखा है, छल है। दूसरोंको ही नहीं, अपनेको भी ठगनेका यह प्रयत्न है।

इसके साथ ही एक मजेदार बात और भी है। हमारे देशमें इधर तलाककी भी चर्चा चलने लगी है। हम यह नहीं कहते कि तलाक अच्छा है अथवा बुरा। यहां हमारे कहनेका उद्देश्य सिर्फ इतना ही है कि तलाकका समर्थन जो लोग करते हैं, वे उससे सम्बद्ध सारी बातोंको समझ लें। जब आप तलाकका समर्थन करते हैं, तब नारीके अधिकार—पुरुषके साथ उसके सम्पर्क ही नहीं, दूसरोंके साथ उसके प्रेमकी सम्भावना और विवाहको सम्भव करनेवाली परिस्थितियोंका भी आप समर्थन करते हैं। इसलिए अगर आप इन पिछली बातोंका समर्थन नहीं करते, तो पहली बात तलाकका भी समर्थन युक्तिसङ्गत नहीं हो सकता। सामाजिक जीवनमें पाश्चात्य सभ्यताकी कुछ ही बातोंको अपनाकर, बिना उसका पूरा मर्म समझे और उसकी दूसरी पेचीदगियोंकी उपेक्षा करके आप नये समाजका निर्माण नहीं कर सकते। जब आप नारी-समाजकी स्वाधीनताका समर्थन करते हैं, तब आप उस स्वाधीनतासे उत्पन्न होनेवाली परिस्थितियोंका भी समर्थन करते हैं। सामाजिक रूढ़ियोंको दूर करो, घातक कुरीतियों-

का अन्त हो—ये सब नारे ही उनका अन्त नहीं कर डालते। कहनेके बाद उनके अन्तको सम्भव बनानेवाले क्रियात्मक कार्य भी तो होने चाहिए। बड़े-बड़े सुधारकोंके प्रयत्न केवल इसीलिए नष्ट हो गये, क्योंकि उनके सामने व्यवहारतः इन उपदेशोंके आदर्श बहुत नहीं आये।

एक उदाहरण लीजिये। समुद्र-यात्रा करना बहुत दिनों तक शास्त्र-सम्मत नहीं समझा जाता था और जो शास्त्र-सम्मत नहीं है, उसका करना जीवनमें अनिष्टकारी माना जाता रहा है। अतः समुद्र-यात्राका समर्थन करनेके लिए केवल यही आवश्यक नहीं था कि उसे शास्त्र-सम्मत बताया जाय, बल्कि इससे भी आवश्यक यह था कि समुद्र-यात्रा करके यह दिखा दिया जाय कि अनिष्ट नहीं हुआ। थोड़ा-सा व्यवहार बहुत अधिक वक्तृताओंसे बढ़कर है। इसलिए इस तथ्यका हृदयङ्गम कर लेना हमारे यहांके सुधारकोंके लिए अत्यधिक आवश्यक है। दुर्भाग्यकी बात है कि सुधारोंकी बात करते हुए भी हम कुछ ऐसी रूढ़ियोंमें फंस गये हैं, जो अपनी मनोवृत्तियोंके कारण हमने स्वयं बना रखी हैं। इस मनोवृत्तिमें परिवर्तन होनेकी आवश्यकता है। याद रहे, हमारा कोई भी सुधार तब तक न सफल होगा, जब तक कि उसके प्रति हम संशयालु हृदयके बने रहेंगे और व्यवहारतः आदर्श उपस्थित नहीं करेंगे।

सनातनधर्म और हरिजन-सुधार

अस्पृश्यता हिन्दू जातिका कलङ्क है और यदि अस्पृश्यता न मिटी, तो हिन्दू धर्म ही मिट जायगा, यह गांधीजीने बार-बार कहा है। इस सम्बन्धमें अभी तक जिस बातको लेकर लोगोंमें भ्रम फैला हुआ है, वह है अनेक लोगोंका यह विश्वास कि अस्पृश्यता-निवारण सनातनधर्मोचित नहीं है। गांधीजीने इस सम्बन्धमें अपना मत प्रकट करते हुए कहा है :—

सनातनी वह है, जो सनातनधर्मका पालन करे। महाभारत—शान्तिपर्व—में सनातनधर्मकी व्याख्या इस प्रकार की गयी है :—

सत्यं दानस्तपः शौचं सन्तोषो ह्रीः क्षमार्जवं;
ज्ञानं शमोदया ध्यानमेष धर्मः सनातनः।
अद्रोहः सर्वभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा;
अनुग्रहश्च दानं च सतांधर्मः सनातनः।

चूंकि मैं इन नियमोंपर यथाशक्ति चलनेका प्रयत्न करता रहा हूं, इसलिए मुझे अपने-आपको सनातनी कहनेमें सङ्कोच नहीं होता। पर अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलनके दिनोंमें मेरे विरोधियोंको मेरा यह नाम बुरा लगा और वे अपनेको सनातनी बताते थे। मैंने नामपर उनसे झगड़ा नहीं किया। इसलिए मैंने विरोधियोंको उसी नामसे पुकारा है, जो उन्होंने अपने लिए पसन्द कर लिया। अब मुझे सनातनधर्म प्रतिनिधि-सभा, पञ्जाबकी तरफसे एक पत्र मिला है। इसमें इस बातपर नाराजगी जाहिर की गयी है कि मैं अपने विरोधियोंको सनातनी बताकर यह अर्थ क्यों निकलने देता हूं कि सभी सनातनी अछूतपनको मानते हैं और उन्हें बुरीसे बुरी गालियां देनेमें आनन्द आता है। आगे चलकर इस खतमें लिखा है :—

"सच पूछिये तो इससे हमें बड़ा दुःख हुआ और हमें अन्देशा है कि पञ्जाबमें हमारे धार्मिक और सामाजिक कार्यको हानि पहुंचेगी।

"महात्माजी, आप दक्षिणके पास होनेके कारण हम उत्तरवालोंसे दक्षिणके सनातनियोंको ज्यादा जानते हैं। यहां पञ्जाबमें तो हम लोग हरिजनोंको मन्दिर-प्रवेश और दूसरी सहूलियतें देनेकी हिमायत करते रहे हैं। हमने इस तरह व्यवस्थायें भी अखिल भारतीय सनातनधर्म महासभाकी परिषद्से ले ली हैं। हमारे सङ्गठन, सनातनधर्म प्रतिनिधि सभा पञ्जाब, जिसकी ६०० शाखायें और ३०० महावीर दल हैं, खुद इसी दिशामें काम कर रही है। इस प्रान्तमें बहुत कम मन्दिर ऐसे हैं, जिनके महन्त या पुजारी लोग हरिजनोंको देव-दर्शनका अधिकार देनेसे इनकार करते हों।

"आप बखूबी सोच सकते हैं कि आपके लेखका हमारे कामपर क्या असर हो सकता है। अपढ़ जनता एक तरहके सनातनी और दूसरी तरहके सनातनीमें फर्क नहीं कर सकती, इसलिए उसने हमें आपका विरोधी समझ लिया है। हमारे वक्तव्यों और खण्डनोंसे कोई लाभ नहीं। हमारे सैकड़ों व्याख्यानोंसे आपकी बातका असर ज्यादा होता है। हमने पण्डित मदनमोहनजी मालवीय और गोस्वामी गणेशदत्तजीके नेतृत्वमें हरिजन-उद्धारका काम किया है और अब भी कर रहे हैं।

"मेरी प्रार्थना है कि जो लोग हरिजन-आन्दोलनके विरोधी हैं, उनके लिए कोई और शब्द निकालिये। 'सनातनी' शब्द तो जंचता नहीं।"

लेखकका यह समझना गलत है कि मैं उत्तरके सनातनियोंको नहीं जानता। अगर काशीको उत्तरमें गिना जा सकता हो, तो वहांसे तो बड़े हठी सुधार-विरोधी निकले हैं। लेखक भाई पञ्जाबके सनातनियोंका ही बात करते, तो ज्यादा मुजायका न होता। मगर मुझे यह खयाल नहीं आ सकता था कि जिस सीमित अर्थमें वह शब्द इस्तेमाल कर रहा था, उसे कोई नहीं समझ सकेगा। मुझे लगता है कि मेरे सुधार-विरोधियोंको सनातनी बतानेसे जितना बिगाड़ हुआ है, उससे लेखकने ज्यादा समझ लिया है। अवश्य ही, पञ्जाबके सनातनियोंको अपनी खुदकी स्थिति साफ करनेमें तो कठिनाई न होनी चाहिए। कुछ भी हो, वे इस लेखका अपने समर्थनमें काम ले सकते हैं। असलमें दक्षिणके भी सारे सनातनी सुधारके या मेरे विरोधी नहीं हैं। हरिजन-यात्रामें ही मुझे पता लग गया था कि मैं कहीं भी गया, तो वहांपर मेरे विरोधी आटेमें नमकके बराबर ही थे। बादके इन बरसोंमें तो उनकी संख्या और भी घटी है। हिन्दुओंका भारी बहुमत पक्षमें न होता, तो राजाजीका हरिजन-मन्दिर-प्रवेश कानून पास नहीं हो सकता था। न यह सम्भव था कि सनातनियोंका विरोध कुछ भी व्यापक होता, तो दक्षिणके बड़े-बड़े मन्दिर हरिजनोंके लिए खोल दिये जाते। इसलिए जब मैं सनातनियोंके विरोधकी बात करता हूं, तो उसका मतलब उन मुट्ठीभर लोगोंसे ही हो सकता है, जो सनातनी कहलानेमें खुश होते हैं और जिनका धन्धा ही अस्पृश्यताके सुधारका विरोध करना और मुझे कोसना हो गया है। मैं यही प्रार्थना कर सकता हूं कि किसी दिन उनकी आंखें खुलें और वे भी उस सुधारके पक्षमें हो जायें, जो हिन्दू धर्मको कमसे कम अस्पृश्यताके कलङ्कसे तो पाक करके ही छोड़ेगा।

———



हिन्दी-प्रचारका सराहनीय कार्यक्रम

कवीन्द्र रवीन्द्रके शान्ति-निकेतनमें जिस हिन्दी-भवनकी प्रतिष्ठा हुई है, उसपर लिखते हुए काका कालेलकरने उत्तर और मध्य भारत, पञ्जाब, राजस्थान, युक्तप्रान्त, महाकोशल, बिहार आदि प्रदेशोंमें हिन्दी-भवनोंकी स्थापनाकी आवश्यकता बताते हुए यह भी बताया है कि ऐसे भवन कार्य क्या करें। उन्होंने यह कार्यक्रम रखा है, जो निश्चय ही अत्यन्त महत्त्वका है। हिन्दीकी अभिवृद्धिकी लालसा रखनेवालोंको इसे प्रोत्साहन देना चाहिए :—

१—हिन्दी-भवनोंका उद्देश्य हिन्दीका केवल अध्ययन ही नहीं है; अपितु हिन्दीकी योग्यता और क्षमता बढ़ानेकी कोशिश करना भी है।

२—हिन्दीकी भिन्न-भिन्न शैलियोंका अध्ययन करके जो शैली संस्कारी, सक्षम और लोक-सुलभ होगी, उसको प्रोत्साहन देनेका काम भी हिन्दी-भवनोंका है।

३—सबसे महत्त्वका काम हिन्दीकी मुख्य और इतर बोलियोंके सङ्गठनका है। पञ्जाबी, राजस्थानी और बिहारी हिन्दीकी प्रधान बोलियां हैं। बुन्देलखण्डी, अवधी, छत्तीसगढ़ी, पहाड़ी इत्यादि हिन्दीकी घटकबोलियां अनेक हैं।

आज तक इनके स्वरूपभेद, प्रत्ययभेद आदिका अध्ययन हुआ है। किन्तु इन भाषाओंको नजदीक लानेका और इनको हिन्दीके साथ मिला लेनेका प्रयत्न नहीं हुआ है। इन सब बोलियोंकी सहायतासे हिन्दीका शब्द-भण्डार समृद्ध करना हमारा प्रथम काम है।

४—पाश्चात्य लोगोंने इन सब बोलियोंके स्वतन्त्र अध्ययनकी तरफ हमारा ध्यान खींचा तो सही; किन्तु इन बोलियोंको पास-पास लानेके बजाय उन्होंने उनका फासला कुछ बढ़ा ही दिया है। अब यह हमारा काम होगा कि हम उनका एक विशाल परिवार बनावें और उनमें कौटुम्बिक धर्मकी स्थापना करें।

५—भाषाकी बहुत-सी शक्ति उसकी कहावतों और मुहावरोंमें होती है। इन दोनों बातोंमें हिन्दुस्तानकी सब बोलियां बहुत ही समृद्ध हैं। जिन बोलियोंमें ग्रन्थस्थ साहित्य नहीं है, उन्हें तो अपनी भाषा-समृद्धि कहावतें, गीत और मुहावरोंके रूपमें ही कण्ठस्थ करके संभालनी पड़ती है। इसलिए इन बोलियोंकी नित्यकी बोल-चालकी भाषा बहुत मंजी हुई होती है।

६—इस संस्कारिता और समृद्धिका संग्रह करना हमारा कर्तव्य है। हमारे ग्राम-जीवनका सन्तोष और आत्मविश्वास नष्ट हो रहा है और साथ-साथ बोलियोंकी समृद्धि भी क्षीण होने लगी है। क्योंकि जीवनसमृद्धि और भाषासमृद्धिको अलग-अलग नहीं किया जा सकता।

७—भाषा-समृद्धिका संग्रह करनेसे लोकजीवनका भी संग्रह होगा और यह जनताकी असाधारण महत्त्वकी सेवा गिनी जायेगी।

इसके बाद तीसरा महत्त्वका काम इन सब बोलियोंके प्रत्ययों और उपसर्गोंके संग्रहका है। भाषाके प्रत्यय और उपसर्ग उसकी टकसालके मुख्य औजार हैं। आजकल भाषामें नये-नये शब्द गढ़नेका काम ज्यादातर अध्यापक (प्रोफेसर)

और वृत्तविवेचक (सम्पादक) ही करते हैं। उनका अध्ययन कालेजमें पढ़ी हुई संस्कृत और अंगरेजी तक ही सीमित होता है। इसलिए वे जो नये शब्द गढ़ते हैं, उनमें लोगोंकी भाषामें घुलमिल जानेका माद्दा ही नहीं होता। हिन्दुस्तानकी हरएक भाषामें संस्कृतके शब्द, प्रत्यय और उपसर्गोंके अतिरिक्त अपने निजी उपसर्ग और प्रत्यय भी होते हैं। जहां शास्त्रीय परिभाषा बनानी है, वहांपर अखिल भारतीय एकताके लिए संस्कृत धातु और प्रत्ययोंसे बनाये हुए शब्द ही लेने चाहिए। किन्तु लोक-सुलभ भाषाके लिए हरएक भाषाके जो निजी देशी शब्द होते हैं और अपने निजी छोटे-छोटे सुन्दर सुघड़ प्रत्यय होते हैं, उन्हींकी मदद लेनी चाहिए। आजसे आगामी दस वर्षोंके लिए हरएक भाषाको अपनी-अपनी टकसाल खोलनी चाहिए और जो ग्रामीण जनता तक आसानीसे पहुंच सकें, ऐसे नये शब्द गढ़कर उन्हें प्रचलनकी गङ्गाके बहावमें दीपोंके समान बहाना चाहिए।

८—इसके साथ-साथ ग्रामोंके पुराने और नये गीतोंका भी संग्रह हो, यह आवश्यक है। अन्धभक्तिसे किये हुए संग्रहके दिन अब जाते रहे हैं। अब तो भाषाकी दृष्टिसे, कल्पना-वैभवकी दृष्टिसे, और समाजशास्त्रके अध्ययनकी दृष्टिसे जो गीत महत्त्वके हों, उन्हींका संग्रह करना चाहिए इतना ही नहीं; किन्तु उनके संग्रहके साथ-साथ उनका वर्गीकरण, तोलन और विवेचन भी होना चाहिए।

९—हिन्दी-भवन जैसी संस्थाको साहित्य, भाषा और गवेषणाकी दृष्टिसे एक बड़ी मण्डी (एम्पोरियम) का कार्य करना चाहिए। सारे देशमें भिन्न-भिन्न स्थानोंपर जो अभ्यासक, लेखक और अन्वेषक काम करते हैं, उनका सङ्गठन करना, उनकी जानकारी बढ़ाना, उनके कार्यमें सहायता पहुंचाना आदि सब कार्य उसको करना चाहिए।

१०—दुनियाकी सभी भाषाओंके जिन ग्रन्थोंने मनुष्यके विचार, दृष्टि और आकलनशक्तिमें क्रान्ति की हो, जिन ग्रन्थोंने कल्पना, वाद या जीवन-रहस्यकी दृष्टिसे मनुष्यके जीवनपर असाधारण प्रभाव डाला हो, उनके प्रामाणिक अनुवाद हिन्दीमें अवश्य होने चाहिए।

११—किन्तु इन अनुवादोंको पढ़ेगा कौन? जिनमें कुछ भी विद्वत्ता या अध्ययन है अथवा संस्कार ग्रहण करनेकी शक्ति है, वे तो अंगरेजी जानते ही हैं। वे अंगरेजीके द्वारा ही सब कुछ लेना अधिक पसन्द करते हैं। और जिन्हें अंगरेजी नहीं आती, वैसे सामान्य लोगोंके लिए इन अनुवाद-ग्रन्थोंकी शैली और इनका प्रस्थान अंगरेजीके जैसा ही दुरूह होता है।

इसलिए हरएक विषयपर एवं जीवनव्यापी कल्पनाओंपर प्राथमिक स्वरूपके छोटे-छोटे लोक-सुलभ ग्रन्थ लिखवाने चाहिए और परीक्षाओंके द्वारा उनका अध्ययन जारी करना चाहिए।

१२—भारतके सामने आज जो भिन्न-भिन्न धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और अन्तर्राष्ट्रीय समस्यायें हैं, अथवा उपस्थित होनेकी सम्भावना है, उनपर साधक-बाधक दृष्टिसे अध्ययन करनेके लिए प्रमाणभूत ग्रन्थ भी तैयार करवाने चाहिए।

१३—हमारी संस्कृत विद्या भी हमारे पण्डितोंने लोक-सुलभ बनानेके बदले लोगोंके लिए अधिकाधिक दुर्बोध बना दी है। उसे आसान बनानेके लिए भी प्राणपणसे कोशिश होनी चाहिए। मतलब यह कि, 'इन संस्कृत शास्त्रोंमें आखिर क्या कहा गया है?' ऐसा प्रश्न अगर ग्रामवासी जनताका कोई प्रतिनिधि करे, तो जिसे वह समझ सके, ऐसी सीधी और सरल भाषामें छोटी-छोटी पुस्तिकायें उसको मिलनी चाहिए।

अपराजिता। रचयिता—श्री 'अञ्चल'; प्रकाशक—छात्र हितकारी पुस्तकमाला, दारागञ्ज, प्रयाग; सजिल्द, छपाई-सफा सुन्दर; पृष्ठसंख्या १७४; मूल्य २)

'मधूलिका'के बाद श्री 'अञ्चल'जीको नवीन कविताओं-का संग्रह 'अपराजिता'के रूपमें आया है। अञ्चलजीकी कितनी ही रचनायें "विश्वमित्र" में निकल चुकी हैं। दूसरे पत्रोंमें भी प्रकाशित उनकी रचनाओंको हमने देखा है, और अब 'अपराजिता' के रूपमें उनमें अधिकांशको एक साथ संगृहीत रूपमें हम देख रहे हैं। मधूलिकाके बाद अपराजिताके कविने एक कदम और आगे बढ़ाया है, अपराजिताकी रचनायें इसकी साक्षी हैं।

'अपराजिता'की कविताओंमें एक तृष्णा, एक जलन और कहीं-कहीं विद्रोह भी है। 'अपराजिता'में अञ्चलजीकी अनुभूतियां अपेक्षासे अधिक व्यापक और बहुमुखी हो गयी हैं। यद्यपि 'अपराजिता' आद्यन्त एक वियोगकाव्य है—किन्तु

वियोगके अन्तर्गत कविकी अनेकानेक अन्तर्वृत्तियों और मनोदशाओंका समारोह देखने योग्य हुआ है। कितनी ही रचनाओंमें वेदनाकी ऐसी धारा बह रही है, जो पाठकको एक निराशा और खिन्नतासे भर देती, यदि कवि न लिखता :—

उरमें आग नयनमें पानी, होठोंमें मुसकान सजा।
हम हंसते इठलाते चलते, इतरा-इतरा बल खा-खा॥
अपनी तरणी फेंक प्रलयकी लहरोंमें खुल खेलें हम।
आज भाग्यके उल्कापातोंको हंस-हंसकर झेलें हम॥

आशायें जो मिट चुकी हैं, स्वप्नोंके महल जो ढह चुके हैं, प्यास जो कभी पूरी न हुई और वेदनायें जो असीम होती चली गयी हैं, उनका करुण सङ्गीत अञ्चलजीकी कवितामें है और इसीलिए चाहे वह व्यक्तिगत अनुभूतियोंके आधारपर ही हो, मानवके निकट वह प्रिय हो उठता है और इस चोट खाये, विवशताओंमें बंधे, निरुपाय गायकके स्वरोंमें अपने स्वरोंका सामञ्जस्य देखता और सोचता है कि यह उसीके स्वर हैं, जिन्हें कविने प्राण, वाणी और सङ्गीत देकर सजीव कर दिया है। इसलिए 'अपराजिता' सहृदय पाठकोंके लिए एक प्रिय वस्तु होगी, इसमें सन्देह नहीं। हमें कविसे और भी सुन्दर कृतियोंकी आशा है और यह आशा अकारण ही नहीं है।

जीवनकी मुस्कान। लेखिका—श्रीमती उषादेवी मित्रा; प्रकाशक—सरस्वती प्रेस, बनारस।

श्रीमती उषादेवी मित्रा अपनी सुन्दर कलापूर्ण रचनाओंसे एक स्थान बना चुकी हैं। उनकी इस कृतिमें सुन्दरता है, नवीनता है और है अपना निजका व्यक्तित्व।

रचनाकी सबसे बड़ी विशेषता, जो बड़ी प्रमुखतासे दिखाई देती है, "वर्ड मैजिक" शब्द-चमत्कार है। आद्योपान्त उपन्यास इससे शराबोर है। इससे उसमें अपूर्व सौन्दर्य चू पड़ा है। देखिये न प्रभातको—"उषाके प्रथम प्रकाशमें कमलेशके उद्यानकी लताएं जाग गई थीं। वृक्षोंमें जागरणका चिह्न था। वृक्षोंकी पुष्प-रानियां जमुहाई लेती प्रभातसे कुशल-वार्ता पूछने लगीं। भौंरोंकी टोली प्रभात-गानमें मस्त थी।" कितना सजीव चित्रण है प्रभातका।

और फिर, लेखिकाके कलात्मक स्पर्शोंने रचनामें अपूर्व निरालापन, अपनापन भर दिया है। "पूरवी मिष्ठ हंसी। उसके गालके दोनों ओर गड्ढे पड़ गये और उन छोटे गड्ढोंमें हंसनेका पूरा माधुर्य बूंद-बूंदकर चू पड़ा।" यह है हंसीका चित्रण।

इतना ही नहीं, उनमें रङ्गसाजी की गयी है। उन्हें रङ्गीन बनाया गया है। "वर्षा ऋतुकी गहरी रात्रिमें इस पृथ्वीके आंचलमें पड़ी चांदनी सिसक रही थी।" ये हैं देवीजीके रङ्गीन भाषाचित्र। प्रकृतिका अत्यन्त मनोरम रूप उपस्थित करनेकी चेष्टा की गयी है।

दूसरे प्रकृतिका हमारे साथ राग अलापना, हमारे स्वरमें स्वर देना, हमारे दुःखोंको अपना समझना—यथार्थमें पुस्तककी विशेषता है। प्रकृति और मानव-समाजका अपूर्व समञ्जस्य दर्शाया गया है। एक निराला वातावरण उपस्थित किया गया है। "अपने चहुंओर 'फुस फुस', 'सिर सिर', 'झिर झिर' सुनने लगी।" और सविता 'जाते-जाते लौटी'। आखिर स्त्री ही तो है।

पुस्तकके शीर्षकसे रचनाकी और भी सार्थकता बढ़ गयी है। कृतिके प्रत्येक पात्र, दृश्य, प्रसङ्ग अपने-आपसे परिहास करते ज्ञात होते हैं। प्रकृति भी इसमें क्रीड़ा करती दिखाई देती है। डाक्टर कमलेशका अन्त, पृथ्वीसका आदर्शवाद, सविताका प्रेम, रूपरेखाका बीरत्व, पूरबीका जीवन-गान, उनका व्यङ्ग नहीं तो क्या था?

यों तो रचनाके प्रत्येक पात्र अपना अलग-अलग सन्देश लेकर आये हैं; परन्तु देवीजीके स्त्री पात्र यथार्थमें अत्यन्त प्रभावशाली हैं। प्रेम और बीरताको सविता और रूपरेखाके रूपमें दर्शानेका बड़ा ही सफल प्रयत्न हुआ है।

प्रेमका रूप है—ज्योत्स्ना शुभ्र; प्रकृति—सम, स्नेहसे ओतप्रोत; रस—मधुर मादक; माधुर्य—शिशु-जैसा, सरलता और वय—चिरकौमार्य। यह है सविताकी रूप-रेखा।

इसी तरह बीरताका रूप है सप्त सूर्यका एकत्र समावेश; प्रकृति—आत्ममर्यादा-प्रधान, गम्भीर, स्वावलम्बी; रस—बीर, ज्वालामुखी; माधुर्य—असीम स्पर्द्धा, पराक्रम और वय—सदा यौवन। यह है रूपरेखाका रेखा-चित्र। और फिर पूरबी—एक वेश्या। परन्तु उनमें भी नारीत्वकी पुकार जीवित है। मातृत्वकी चिनगारी विद्यमान है। इसे लेकर दर्शाया है बाईजी पूरबीको। एक नये दृष्टिकोणसे।

भाषाके विषयमें तो कहना ही क्या है। गजबका प्रवाह

है इसमें और बहुत ही मार्जित तथा सारगर्भित है इसकी भाषा। पढ़नेसे मालूम होता है कि उपन्यास पढ़ रहे हैं या कोई छन्द। अविकल रूपसे बहता जाता है इसका प्रवाह, जो बहुत कम देखनेमें आता है। भाषाका सौन्दर्य और माधुर्य तो जगह-जगह टपका पड़ता है। इसमें सामग्री है पाठकोंके मननके लिए, सन्देशा है समाजके लिए और है एक नवीन शैली साहित्यिकोंके लिए। —गोविन्दप्रसाद अग्रवाल, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०।

अर्थशास्त्रके मूल सिद्धान्त। लेखक—श्री कृष्णकुमार शर्मा, एम० ए० बी० काम०; प्रकाशक—किशोर पब्लिशिङ्ग हाउस, कानपुर; कागज, छपाई-सफाई सुन्दर; पृष्ठ-संख्या लगभग २५०; मूल्य २।)

प्रस्तुत पुस्तक, जैसा कि इसके नामसे ही स्पष्ट है, अर्थ-शास्त्रके मूल सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें लिखी गयी है, साथ ही भारतमें उनके प्रयोगके सम्बन्धमें भी प्रकाश डाला गया है। प्रामाणिक खोजोंके आधारपर माना गया है कि भारतमें हिन्दी-भाषा-भाषियोंकी संख्या लगभग १३ करोड़ है और भारतके जिन क्षेत्रोंमें इस भाषाके बोलनेवालोंकी संख्या इतनी है, उनमें कितने ही विद्यालय और विश्वविद्यालय हैं। पर कितने दुर्भाग्यकी बात है कि ऐसे गम्भीर विषयोंपर सुन्दर प्रामाणिक ग्रन्थोंका इतना अभाव है। जासूसी उपन्यासोंके प्रकाशकोंकी संख्या बढ़ती जा रही है और ऐसे उच्चकोटिके विषयोंकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। इन परि-स्थितियोंमें वर्तमान प्रकाशककी सराहना करनी पड़ती है। पुस्तक अच्छे ढङ्गसे लिखी गयी है और जिन विषयोंको उठाया गया है, उन्हें भली भांति समझानेकी चेष्टा की गयी है। अन्तमें हिन्दी और अंगरेजीके पारिभाषिक शब्द दे दिये गये हैं, जिनसे पुस्तककी उपयोगिता बढ़ गयी है। हिन्दीमें अर्थ-शास्त्रका प्रारम्भिक अध्ययन करनेवालोंके लिए पुस्तककी उपयोगितामें सन्देह नहीं किया जा सकता, हालां कि अगर पुस्तक थोड़े और विशद रूपमें लिखी गयी होती, तो अच्छा होता।

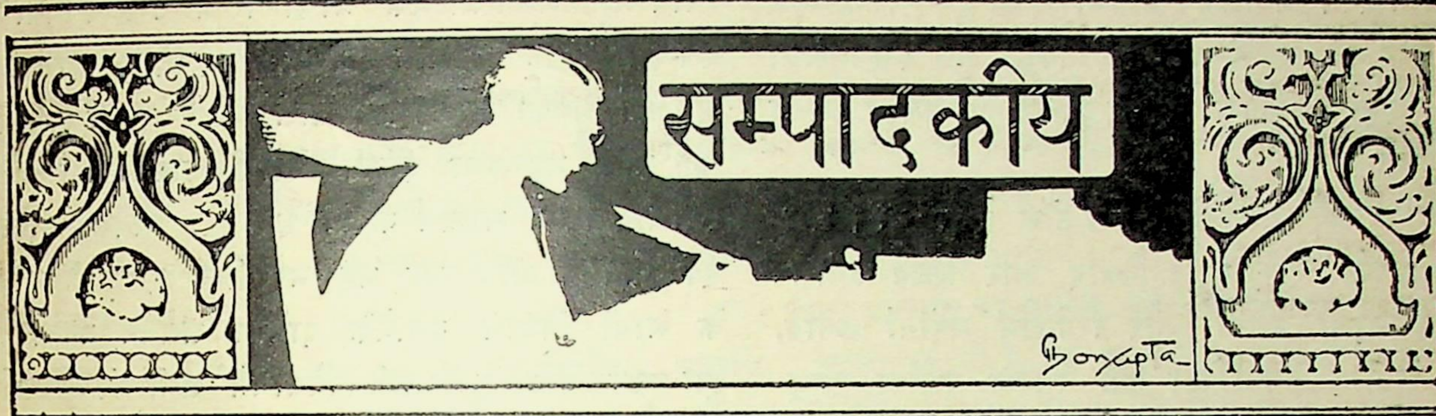
सञ्चारिणी। लेखक—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी; प्रकाशक—इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद; जिल्द, कागज, छपाई सुन्दर; पृष्ठ-संख्या २५७; मूल्य लिखा नहीं।

भक्तिकालकी अन्तर्चेतना, शरत्साहित्यका औपन्यासिक स्तर, कला-जगत् और वस्तु-जगत्, नवीन मानव-साहित्य, प्रकृतिका काव्यमय अस्तित्व आदि कई विषयोंपर श्री शान्तिप्रियजीने दृष्टि डाली है। उन्होंने अपना सारा समय साहित्यके अध्ययनमें लगा दिया है और गहराई तक पहुंचनेमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई है। जिन विषयोंको प्रस्तुत पुस्तकमें उन्होंने उठाया है, उनपर उन्होंने मार्मिक दृष्टि डाली है। साहित्यके विद्यार्थियोंको सञ्चारिणी अवश्य पढ़ना चाहिए।

प्रीतिलड़ी। सम्पादक—गुरुबख्श सिंह, प्रीतिलड़ी, प्रीतिनगर, जिला अमृतसरसे प्राप्त।

"विश्वमित्र"के आकार-प्रकारकी यह पत्रिका पिछले कुछ महीनोंसे निकल रही है। जीवन, प्रेम और मानवताके आदर्शोंकी स्थापनाके लिए होनेवाले प्रयत्नोंमें सहयोग देनेके लिए इस पत्रिकाका प्रकाश होता दिखाई पड़ता है। इसके कितने ही अङ्कोंमें प्रकाशित होनेवाले लेख उच्च उद्देश्योंको लेकर लिखे गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि जिन आदर्शोंको लेकर पत्रिका निकाली गयी है, उनकी पूर्तिके लिए इसके प्रयत्न सराहनीय हैं। जीवन और मानवताकी बहुत बड़ी समस्याओंकी बात जाने भी दें, तो भी आम तौरपर सामा-जिक जीवनमें उठनेवाली छोटी-छोटी बातें—जो परिणाममें बहुत बड़ी होती हैं—हमारे मनन और विचारकी भूखी हैं और उनकी उपेक्षा अशान्तिका खतरा उठाये बिना नहीं की जा सकती। प्रीतिलड़ी जिन उद्देश्योंको लेकर चली है, वे तथा तत्सम्बन्धी उसके प्रयत्न सराहनीय हैं। हम इसकी सफलता चाहते हैं।





राष्ट्र-सङ्घ और रूस

आजसे पांच वर्ष पहले अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें राष्ट्रों-की उन्मत्त महत्त्वाकांक्षाओंके फलस्वरूप हठधर्मी एवं आक्र-मणात्मक प्रवृत्तियोंका प्रारम्भ ही हुआ था और कई प्रश्नोंको लेकर उलझन-भरी सम्भावनाओंके लिए आश-ङ्कायें बनने ही लगी थीं कि सोवियट रूस राष्ट्र-सङ्घमें सम्मिलित हुआ। उस समय उसे ३९ वोट मिले थे; हालैण्ड, स्वीजरलैण्ड और पुर्तगाल, यही तीन राष्ट्र थे, जो सङ्घमें सोवियट रूसको सम्मिलित करनेके विरुद्ध थे। जिस सोवियट रूसकी वैदेशिक नीतिकी आशङ्कासे यूरोपके गणतन्त्रात्मक देशोंने यूरोपको बोलशेविक विचार-धाराके सम्पर्कमें आनेसे रोकनेमें कोई बात उठा न रखी, बल्कि स्पेन और जर्मनीमें तथा उसके परिणामस्वरूप समस्त यूरोपमें बोलशेविज्मके फैल जानेकी आशङ्कासे ही जिन्हें ब्रिटेन और फ्रान्सने बढ़नेका अवसर दिया, उसी रूसके सङ्घमें सम्मिलित हो जानेपर सङ्घके सामूहिक सिद्धान्तोंकी बहुत बड़ी विजय समझी गयी। उन दिनों मोशिये लिटविनाफ रूसके वैदेशिक सचिव थे। उन्होंने आक्रमणों एवं आक्रमणा-त्मक नीतिका अन्त कर विश्व-शान्तिकी स्थापना अपना लक्ष्य घोषित किया था।

लेकिन आज मो० लिटविनाफ न रहे, रूसी वैदेशिक नीति भी आज वह न रही। रूसका वह आदर्श, सामूहिक सुरक्षाका वह सिद्धान्त और आक्रमणका अन्त करनेका निश्चय भी वह न रहा। मो० लिटविनाफके अकस्मात् रूसी राजनीति-के मञ्चसे हटते ही उसकी वैदेशिक नीतिमें होनेवाले परि-वर्तनोंकी सम्भावना लोगोंने स्पष्ट देखी थी, लेकिन रूसने बार-बार संसारको आश्वासन दिया था कि ऐसे किसी परिवर्तनकी सम्भावना नहीं है। पर व्यावहारिक राजनीतिमें इसके लक्षण स्पष्ट होने लगे थे और अब पोलैण्डके बंटवारे और इस्थोनियाके महत्त्वपूर्ण स्थानोंपर प्रभाव स्थापित करनेके बाद फिनलैण्डपर उसके आक्रमण करनेके तथ्य ऐसे हैं, जो उसकी अब तककी वैदेशिक नीतिके सर्वथा विरुद्ध जाते हैं।

और तब, राष्ट्र-सङ्घमें रूस जिन आदर्शोंके लिए सम्मिलित किया गया था, उस दिन सङ्घकी एसेम्बलीने उन्हींसे च्युत होनेपर उसे निकाल बाहर किया। फिनलैण्ड राष्ट्र-सङ्घका सदस्य है। रूस और फिनलैण्डने १९३२ में एक अनाक्रमण-सन्धि कर रखी थी, जो अगर रूसने भङ्ग न कर दी होती, तो १९४५ तक बनी रहती। राष्ट्र-सङ्घने इन्हीं दोनों आधारोंपर रूसको सङ्घसे अलग किया है। अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वोंका पालन करनेमें रूस अपने कर्तव्यसे च्युत हुआ है। १७ मार्च १९३६ को भाषण करते हुए मो० लिटविनाफने कहा थाः—

"शान्तिके लिए किये जानेवाले प्रयत्नोंमें सफल होना तब तक असम्भव है, जब तक अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वोंका पालन न किया जाय। जब तक अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वोंके भङ्ग किये जानेके विरुद्ध सामूहिक रूपसे काररवाई नहीं की जाती, तब तक सामूहिक सुरक्षाकी व्यवस्था सुदृढ़ नहीं हो सकती। ....हम राष्ट्र-सङ्घकी रक्षा न कर सकेंगे, यदि सङ्घ अपने ही किये हुए निश्चयोंको कार्यान्वित करनेसे हिचकता और आक्रमणकारी देशोंको अपनी चेतावनियों एवं निन्दाके प्रस्तावोंकी उपेक्षा करनेके लिए अभ्यस्त बनाता है।"

कितने उपयुक्त ये शब्द हैं, वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियोंमें रूसी वैदेशिक नीतिको देखते हुए! फिनलैण्डके आक्रमणपर जैसे लिटविनाफ नहीं, किसी और रूस-विरोधी राष्ट्रका प्रतिनिधि रूसके निकाले जानेके प्रस्तावका समर्थन कर रहा हो!

लिटविनाफने वास्तवमें कितना ठीक कहा था। मञ्चूरियाके प्रश्नपर राष्ट्र-सङ्घने विवाद और लिटन कमीशन द्वारा होनेवाली खोजों और रिपोर्टोंमें महीनों लगाये, और इसके बाद अबसीनिया तथा स्पेनके प्रश्नोंपर राष्ट्र-सङ्घने जो नीति अपनायी तथा जर्मन आक्रमणको लेकर वह सामूहिक सुरक्षाके सिद्धान्तोंकी रक्षा कहां तक कर सका, यह राजनीतिका साधारण विद्यार्थी भी जानता है। सामूहिक सुरक्षाके सिद्धान्तको मि० चेम्बरलेन और लार्ड हेलीफाक्सने तो मखौलका विषय बना लिया था। इन सारी घटनाओं एवं इनके परिणामोंने राष्ट्र-सङ्घको जैसा पंगु बना डाला और जापान तथा यूरोपके कई राष्ट्रोंके उससे अलग हो जानेसे सङ्घकी आज जो अवस्था है, उसमें रूसके निकाल बाहर करनेसे फिनलैण्डके साथ नैतिक सहानुभूतिके अतिरिक्त और उसका कोई अर्थ नहीं होता। सङ्घमें रूसके प्रति घृणाके कठोर शब्दोंसे फिनलैण्डकी सहायता नहीं हो जाती। पर सङ्घ इसके अतिरिक्त आज और कुछ करने योग्य रह भी नहीं गया है।

हिन्दू-महासभा

अखिल भारतीय हिन्दू-महासभाके कलकत्ता अधिवेशनके अध्यक्ष-पदसे दिये गये श्री विनायक दामोदर सावरकरके भाषणको देखते ही पता चलता है कि वह किसी 'हिन्दुस्थान-राष्ट्र' की कल्पनाके आधारपर है और ऐसी कल्पनाके आधारपर जो बातें कही जायेंगी, उनका अनुमान इस आधारके अनुसार ही लगा लेनेमें बहुत कठिनाई न होनी चाहिए। अपने अत्यन्त लम्बे भाषणमें उन्होंने हिन्दुत्व, हिन्दुस्थान राष्ट्र, अल्पसंख्यकोंकी समस्या आदिपर ही प्रकाश डाला होता, तो वह अध्ययनका विषय होता; क्योंकि कितनी ही खोजपूर्ण बातें उन्होंने उसमें कही हैं। राष्ट्रके भावी विधानके आधारको अधिकसे अधिक गणतन्त्रात्मक रूप देनेकी जो रेखायें उन्होंने खींची हैं, उनसे कोई सहमत हो या न हो और वर्तमान परिस्थितियोंमें उनकी वाञ्छनीयता कोई स्वीकार करे या न करे; पर न्याय और गणतन्त्रात्मक आधारपर जो उन्होंने विधानकी रूप-रेखा देनेकी कोशिश की है, वह हिन्दू-महासभाको मुसलिम लीगकी साम्प्रदायिकतासे अलग करता है, लीगकी भांति महासभा देशकी पराधीनताका नहीं— पूर्ण स्वाधीनताका समर्थन करती है और 'प्रत्येक मनुष्यको एक वोट' के आधारपर वह भारतीयों द्वारा ही भारतके भावी विधान बनानेके दावेका समर्थन करती है। इस प्रकार बनाये हुए भावी विधानमें सभी अल्पसंख्यकोंके मौलिक अधिकारोंकी रक्षाका आश्वासन रहेगा, बशर्ते कि "हिन्दुस्थान राष्ट्रके प्रति वे भक्ति रखें।" दूसरे राष्ट्रोंमें भी नागरिकताके अधिकारोंके साथ-साथ कर्तव्यकी इस प्रकारकी शर्त रहती है। गणतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली द्वारा बहुमतसे बने हुए इस विधानसे सभी नागरिकोंको सन्तोष होना चाहिए, ऐसा निष्कर्ष निकाला गया है, हालां कि एक दूसरे प्रस्तावमें साम्प्रदायिक निर्णयका जो विरोध किया गया है, उससे ऐसे प्रश्नोंपर भी वह संयुक्त निर्वाचन-प्रणालीका समर्थन करती है, जिसपर अल्पसंख्यकोंको आपत्ति हो सकती है। आपत्ति होनी चाहिए या नहीं और ऐसी आपत्तियां गणतन्त्रात्मक सिद्धान्तोंके विरुद्ध हैं या नहीं, हम फिलहाल इस स्थलपर इसपर कुछ भी कहना अनावश्यक समझते हैं; पर अल्पसंख्यकोंको यह स्थिति पसन्द न आयेगी, जैसा कि अब भी है, सिर्फ यही कहना यहां आवश्यक है। अतः महासभाकी सारी योजनाको अल्पसंख्यक इसी एक बातके आधारपर अस्वीकार कर देंगे—यद्यपि और किसी आधारपर भी वे इसे अथवा आज उनकी जैसी मनोवृत्ति हो रही है, उसमें वे कुछ—कुछ तर्क और युक्तिसङ्गत भी—स्वीकार करके चलेंगे—यह तो कहना ही अनावश्यक है।

हिन्दू महासभाके अध्यक्षने अगले दो वर्षोंके लिए जो कार्यक्रम रखा है, उसमें उन्होंने तीन बातोंका खास तौरपर उल्लेख किया है:—

(१) अस्पृश्यता-निवारण।

(२) समस्त यूनिवर्सिटियों, कालेजों और स्कूलोंमें सैनिक शिक्षा अनिवार्य करनेके लिए जोर डालने और अपने युवकोंको नौ-सेना, वायुयान-सेना तथा स्थल-सेनामें प्रविष्ट करानेका प्रयत्न।

(३) जहां तक हो सके, वहां तक प्रत्येक हिन्दू मतदाताको इसके लिए तैयार कर लिया जाय कि जब चुनाव हो, तो वे हिन्दू सङ्गठनवादी उम्मेदवारको ही अपना मत दें, जो हिन्दू हितोंकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञा करके जाते हैं। उन कांग्रेसवादियोंको अपना मत कभी न दें, जो हिन्दू हितोंकी रक्षा पूर्ण स्वाधीनता और साहससे तब तक कभी नहीं कर सकते, जब तक कांग्रेसके अनुशासन तथा कांग्रेसके टिकटसे बंधे हुए हैं।

ऊपरके कार्यक्रमकी पहली दो बातोंपर किसीको आपत्ति नहीं हो सकती। बल्कि हमारा ख्याल तो यह है कि हिन्दू महासभा अगर अस्पृश्यता-निवारणके साथ-साथ दूसरे सामाजिक सुधारोंका काम भी हाथमें लेती और प्रगतिके साथ इस दिशामें बढ़ती, तो देशके लिए इन प्रयत्नोंका बहुत अधिक मूल्य होता और हिन्दू जातिको भीतरसे जर्जरित करनेवाली कुरीतियों और रूढ़ियोंका निराकरण कर वह जातिमें निश्चय ही नवजीवन डालनेमें समर्थ होती। खेद है कि अध्यक्षने इस विषयमें अपने कार्यक्रमको प्रभावशाली बनानेके लिए कोई योजना नहीं रखी और अब तक महासभासे जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए हैं, उनमें भी इस कार्यक्रमको वेगसे बढ़ानेवाली प्रभावशाली बातोंका अभाव है। अध्यक्षने अपने भाषणमें अनावश्यक रूपसे कांग्रेस और कांग्रेस-नेताओंको कोसनेके स्थानपर, जो निश्चय ही घोर अवाञ्छनीय है, अगर हिन्दू सङ्गठन, सामाजिक सुधार तथा ऐसे अन्यान्य प्रश्नोंको लेकर योजना बनायी होती, तो इससे हिन्दुस्तानके कल्याण-साधनके लिए कहीं अधिक सम्भावनायें बनतीं।

अध्यक्षने तीसरे कार्यक्रममें कांग्रेसके विरुद्ध हिन्दू महासभाके निर्वाचन लड़नेके सम्बन्धमें जो नीति बनायी है, वह तो निश्चितरूपसे अवाञ्छनीय ही नहीं, हानिकर भी है। हिन्दू महासभापर सरकार-परस्तों, सरों, राजाओं, रायबहादुरों तथा दूसरे पूंजीवादियोंका जो प्रभाव है, उससे वह व्यवस्थापिका परिषदोंमें देशकी प्रगतिशीलताका प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती और न उसके द्वारा मजदूरों, किसानों तथा समाजके दूसरे शोषित वर्गोंका ही कुछ कल्याण-साधन हो सकता है। यह हमारी आशङ्का नहीं, वास्तवमें तथ्य है। कांग्रेसने एक लम्बी अवधि तक चुनावोंसे अपना हाथ खींच लिया था। उस कालमें व्यवस्थापिका सभाओंमें जाकर सरों और राय बहादुरोंने कौन-सा काम कर दिखाया? अगर उन्होंने कुछ किया ही होता, तो पिछले चुनावोंमें सर्वत्र उन्हें मुंहकी न खानी पड़ती। महासभाका दो वर्षोंका कार्यक्रम अगर कांग्रेसके विरुद्ध लोकमत तैयार करके सिर्फ चुनाव लड़ना है, तो निश्चय ही यह घातक कार्यक्रम होगा और यह घातकता कांग्रेसके लिए उतनी नहीं, खुद महासभाके लिए ही होगी।

हमारा यह निश्चित मत है कि जब तक कांग्रेस चुनाव लड़ना चाहती है, तब तक हिन्दू महासभाको टांग नहीं अड़ानी चाहिए। कांग्रेस समस्त देश नहीं है, यह कहा जा सकता है, कांग्रेससे हिन्दुओंको—हिन्दूकी हैसियतसे—शिकायतें भी हो सकती हैं; पर देशका प्रतिनिधित्व करनेका दावा कांग्रेसको है और उसे 'राष्ट्र-विरोधी' बताना, जैसा कि अध्यक्षने अपने भाषणमें एक जगह कहा है, इतना निरर्थक है कि इसपर विचार करना भी व्यर्थ है।

देशकी समस्यायें और ब्रिटेन

ब्रिटेन जब भारतपर पौने दो सौ वर्ष तक शासन करके भी भारतीयोंको—भारतके विभिन्न सम्प्रदायोंको इस योग्य नहीं पा सका कि वे अपना घर स्वयं संभाल सकें, तब वह कांग्रेसकी इस मांगको स्वीकार नहीं करता कि भारतको पूर्ण स्वाधीनता दे दी जाय! ऐसी अव्यवस्था, ऐसी अशान्ति इस देशमें मच जायगी कि देशवासियोंका जीवन कण्टकाकीर्ण हो जायगा। ऐसी दशामें इस अभागे देशके विभिन्न सम्प्रदाय स्वयं लड़कर मिट जायेंगे, तब ब्रिटेन—जो हमारे हितोंके लिए ही श्वेताङ्गोंका उत्तरदायित्व—Whiteman's burden—ढो रहा है, भला हमें अकेला छोड़कर कैसे चला जाय?

वर्तमान युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्योंके स्पष्टीकरण एवं भारतमें उनके कार्यान्वित करने और देशको पूर्ण स्वाधीनता देनेकी मांगके उत्तरमें वायसराय लार्ड लिनलिथगो और भारत-सचिव लार्ड जेटलैण्ड सभीने यही कहा है और अब भी वे कहते जा रहे हैं कि इस देशके सम्प्रदायोंमें समझौता हुए बिना कुछ भी किया ही नहीं जा सकता और वायसराय महोदय तो इस समझौतेके लिए असीम आशावादिता लेकर प्राणपणसे जुटे हुए हैं! वह समझौता हुआ और भारतको ब्रिटेनने स्वाधीनता दी!

पर दुर्भाग्य तो यह है कि—इस प्रकारकी शब्दावलियों-की मार्मिकता अब तक इतनी स्पष्ट हो चुकी है कि वह अपना बहुत कुछ आकर्षण खो चुकी हैं। इसीलिए कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीने वर्तमान परिस्थितियोंपर अपनी पिछली बैठकमें वर्धासे २२ दिसम्बरको जो प्रस्ताव प्रकाशित कराया है, उसमें उसने कहा हैः—

"वर्किङ्ग कमेटीकी रायमें जबतक विभिन्न दल एक तीसरी पार्टीके भरोसे रहते हैं जिससे वे राष्ट्रके विरुद्ध भी विशेष अधिकार पानेके इच्छुक हैं, तब तक साम्प्रदायिक प्रश्नको सन्तोषजनक रूपमें हल नहीं किया जा सकता। देशवासियों-पर एक विदेशी शासन होनेसे ही उनके विभिन्न दलोंमें मतभेद पैदा होता है। विभिन्न सम्प्रदायोंकी एकताकी आवश्यकताको कांग्रेसने कभी छिपाकर नहीं रखा है। यही एक ऐसी संस्था है, जिसने राष्ट्रीयता बनाये रखनेके लिए सदैव एकता स्थापित करनेकी कोशिशें की हैं और उसमें सफलता भी मिली है। वर्किङ्ग कमेटीका दृढ़ विश्वास है कि स्थायी एकताकी स्थापना तभी हो सकती है, जब विदेशी शासनको पूर्णतया हटा लिया जाये। कमेटीकी पिछली बैठकके बाद जो घटनायें हुई हैं, उनसे इस विश्वासकी पुष्टि होती है। वर्किङ्ग कमेटी यह जानती है कि जब तक देशमें परस्पर सङ्घर्ष करनेवाले दल मौजूद हैं, स्वाधीनता कायम नहीं रखी जा सकती। अतः ब्रिटिश सरकारके साम्प्रदायिक प्रश्न उठानेकी नीतिमें कमेटीको शासन छोड़नेकी अनिच्छा दृष्टिगोचर होती है।"

इस समय जबकि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां उलझती जा रही हैं और प्रगतिशील गणतन्त्रात्मक विचारधाराके विरुद्ध फैसिस्ट शक्तियोंने एक होड़ लगा रखी है, तब मानव-कल्याण-की नयी व्यवस्थाओंके लिए ब्रिटेन और भारतके सहयोगकी वाञ्छनीयता सभी महसूस करेंगे; पर उन परिस्थितियोंको निश्चय ही दुर्भाग्यपूर्ण कहा जायगा, जिनमें कांग्रेसके लिए सहयोग देनेवाली सम्भावनाओंका अन्त-सा हो चला है। लेकिन इसकी जिम्मेदारी किसपर है?

जिन्नाका 'मुक्ति-दिवस'

कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंके स्वतः एक उच्चादर्शको लेकर त्यागपत्र दे देनेकी प्रसन्नता किसी कांग्रेस-विरोधीके मस्तिष्क-को इतना विक्षिप्त बना देगी कि वह सारे संसारमें निर्लज्ज होकर इसके लिए ढिंढोरा पीटता फिरेगा, इसकी कल्पना भी किसीने न की होगी। लेकिन जहां कल्पनाके लिए भी समुचित कारण न हों, वहीं तो कलाबाजियोंका कोई महत्त्व होगा, यह मि० जिन्नाका, सम्भवतः ख्याल है, इसीलिए उन्होंने विगत २२ दिसम्बरको समस्त भारतमें कांग्रेस-शासनसे मुसल-मानोंको ही नहीं, दूसरे अल्पसंख्यकोंको भी मुक्त हो जानेपर 'मुक्ति-दिवस' मनानेका फतवा निकाला था। प्रसन्नताकी बात है कि एक लम्बी अवधि तक विषैले साम्प्रदायिक प्रचारके बाद भी इस देशकी जनता इतनी पथभ्रष्ट नहीं हो सकी है, जो ऐसे मूर्खतापूर्ण प्रयत्नोंकी वास्तविकताओंको न समझ सके। इसलिए 'मुक्ति-दिवस'के सिलसिलेमें देशमें जो घटनायें हुई हैं, उन्होंने मि० जिन्ना तथा मुक्ति-दिवसके दूसरे समर्थकोंकी आंखें खोल दी होंगी—यदि वास्तवमें इससे वे कुछ सबक लेना चाहें।

मुक्ति-दिवसकी असफलता स्वतः जहां एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है, वहां उससे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ दूसरी बातें भी स्पष्ट हुई हैं। मि० जिन्नाने मुक्ति-दिवसके सम्बन्धमें इसका उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा था कि यह हिन्दू सम्प्रदायके विरुद्ध नहीं; केवल कांग्रेस-शासनके विरुद्ध प्रदर्शन है। इसका यह अर्थ होता है कि प्रकारान्तरसे मि० जिन्नाने माना कि कांग्रेस हिन्दुओंकी साम्प्रदायिक संस्था नहीं है, वे उसे केवल राजनीतिक संस्था समझते हैं—यह तथ्य महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि अभी तक वे ठीक इसके विरुद्ध कहते रहे हैं।

दूसरी बात है मुसलिम लीगके समस्त भारतीय मुसल-मानोंके प्रतिनिधित्व करनेके दावेकी। मुक्ति-दिवसके सम्बन्ध-में अहरारों, शियों तथा मोमिनोंने एक स्वरसे उसका विरोध किया, सिर्फ इसीलिए नहीं कि मुक्ति-दिवसका प्रदर्शन अवाञ्छनीय है, बल्कि इसलिए भी कि लीगको समस्त मुसलमानोंकी ओरसे बोलनेका अधिकार नहीं।

तीसरी बात जो स्पष्ट होती है, वह है जनतापर कांग्रेसके प्रभावकी। कांग्रेसके विरुद्ध ऐसा प्रदर्शन करनेसे लीगके सदस्योंने भी इनकार किया है और स्वाधीनचेता तरुण मुसलिमोंने मि० जिन्नाके इस शरारत-भरे हेय दृष्टिकोणके प्रति असन्तोष प्रकट किया है।

मुक्ति-दिवसने मुसलिम लीग तथा उसके वर्तमान नेता

मि० जिन्नाकी कलई खोल दी है। ऐसे महत्त्वपूर्ण मौकेपर जबकि सारे संसारकी आंखें कांग्रेस द्वारा ब्रिटेनके समक्ष उपस्थित पूर्ण स्वाधीनताकी मांगपर लगी हैं, मि० जिन्नाका ऐसा फतवा दे देना किस प्रकार बाधक हो सकता है, इसका अनुमान करना कठिन नहीं है। वे भारतीय राजनीतिमें दुर्भाग्यवश कौन-सा पार्ट खेलनेके लिए महत्त्वके स्थानपर बैठाये गये हैं, यह भी स्पष्ट हो जाता है।

हिन्दू-मुसलिम एकताके नामपर मि० जिन्नासे जो चर्चा चलती है, उसमें वे कहां तक इसके लिए इच्छुक हैं, यह भी स्पष्ट हो जाता है और कांग्रेसने इस सम्बन्धमें इस वातावरणमें जो बातचीत स्थगित कर दी है, वह उचित ही है। मि० जिन्नाके नेतृत्वमें मुसलिम लीग देशके महत्त्वपूर्ण प्रश्नोंको सुलझानेकी वाञ्छनीयता स्वीकार करती है, ऐसा उनके कार्योंसे प्रकट नहीं होता।

याद रहे, 'मुक्ति-दिवस' कांग्रेस-शासनमें होनेवाले मुसलमानोंके विरुद्ध तथाकथित 'अत्याचारों'के विरुद्ध मनाया गया। इस सम्बन्धमें तीन बातोंपर ध्यान दीजिये—(१) ये अपराध अब तक प्रमाणित नहीं हुए हैं, अन्यथा मि० जिन्ना जांचके लिए रायल कमीशनकी मांग क्यों करते? (२) 'अत्याचार' हुए भी हों, तो कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलों द्वारा ही वे हुए, यह कैसे कहा जा सकता है? और (३) गवर्नरोंके विशेषाधिकारोंके अन्तर्गत ये विषय आते हैं, इसलिए जिन्ना [illegible] फर्दजुर्ममें गवर्नरोंको ही, अथवा कांग्रेस-मन्त्रि[illegible]ंको भी उनके साथ क्यों नहीं रखते? गवर्नर [illegible] व [illegible]य [illegible] [illegible]िये जाते हैं?

हैं, जिसके लिए हमसे वर्ष-भर—और प्रतिवर्ष—अपने कर्तव्य-पालनके लिए देश आशा रखता है। स्वाधीनता-दिवस हमें हमारी पराधीनताकी स्मृति ही नहीं दिलाता—उसे दूर करनेके लिए हमें हमारे कर्तव्यकी ओर आह्वान भी करता है। अगली २६ जनवरीको जो स्वाधीनता-दिवस मनाया जायगा, उसमें उस दिन वर्षोंसे दुहरायी जानेवाली प्रतिज्ञा न ली जायगी, उसे बदलकर दूसरी प्रतिज्ञा ली जायगी। कांग्रेस कार्य-समितिने वर्धासे २२ दिसम्बरको वह प्रतिज्ञा प्रकाशित कर दी है, जो यों है:—

"हमारा विश्वास है कि आजादी हासिल करना, अपने परिश्रमके फलोंका उपभोग करना और अपनी पूर्ण उन्नतिके लिए जीवनकी आवश्यकताओंको प्राप्त करना भारतीय जनताका अविच्छिन्न अधिकार है। हम यह भी विश्वास करते हैं कि यदि कोई सरकार इन अधिकारोंसे वञ्चित रखे और उनपर अत्याचार करे, तो जनताको अधिकार है कि वह उसे बदल दे। ब्रिटिश सरकारने भारतीय जनताको सिर्फ इन अधिकारोंसे ही वञ्चित नहीं किया है, बल्कि भारतके आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक शोषणके आधारपर ही उसने अपना अस्तित्व कायम रखा है। इसलिए हमारा विश्वास है कि भारतको अवश्य ही ब्रिटिश सरकारसे अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर पूर्ण स्वराज्य [illegible] करना चाहिए। हम स्वीकार करते हैं [illegible] करनेका सबसे प्रभाव[illegible]

मार्च
१९४०

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।|≈)

विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

दूर होगी। अतएव हम नियमपूर्वक चर्खा चलायेंगे और सिर्फ खादीका ही व्यवहार करेंगे और जहां तक सम्भव होगा, ग्राम्य वस्तुयें ही लेंगे और दूसरोंको भी कहेंगे कि वे भी ऐसा ही करें। हम कांग्रेसकी नीति और उसके सिद्धान्तोंको माननेकी प्रतिज्ञा करते हैं और कांग्रेसकी पुकारपर देशकी आजादीकी लड़ाई लड़नेके लिए हम सदैव तैयार रहेंगे।"

प्रस्तुत प्रस्तावमें कांग्रेस-जनोंके लिए रचनात्मक कार्यों-के अंशपर आपत्ति करते हुए श्री एम० एन० रायने अपने २७ दिसम्बरके वक्तव्यमें कहा है कि जब तक देशका लोकमत इस सम्बन्धमें न जान लिया जाय, तब तक सभी कांग्रेस-जनोंपर इसे लादना तानाशाही होगी। कार्य-समितिने प्रस्तावको प्रकाशनार्थ देते हुए जो वक्तव्य दिया था, उसमें इस बातका स्पष्ट उल्लेख था कि जो कांग्रेसजन इससे सहमत न हों, वे इसे स्वीकार करनेके लिए बाध्य नहीं हैं और इसके साथ अनुशासनकी काररवाईकी भी आशङ्का नहीं है, यह बात भी उसने स्पष्ट कर दी थी, फिर श्री राय इसके लिए लोकमत जानने अथवा इसे देशपर लादनेकी ताना-शाही कैसे कहते हैं, यह वही जानें। आश्चर्यकी बात है कि इस समय जब राष्ट्रीय प्रश्नोंको लेकर संयुक्त मोर्चेकी आव-श्यकता है, तब इसे कमजोर बनानेवाले व्यक्ति और ऐसे [illegible] जो सदासे इसके हामी रहे हैं, निकलते आ रहे हैं। परस्पर सद्भ[illegible] लेकर कांग्रेस राजनीतिक संस्था नहीं नहीं रखी जा सकती। अ[illegible]। हां, रचनात्मक कार्यों-प्रश्न उठानेकी नीतिमें कमेटीको शास[illegible] दृष्टिगोचर होती है।"

इस समय जबकि अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां उलझती जा रही हैं और प्रगतिशील गणतन्त्रात्मक विचारधाराके विरुद्ध फैसिस्ट शक्तियोंने एक होड़ लगा रखी है, तब मानव-कल्याण-की नयी व्यवस्थाओंके लिए ब्रिटेन और भारतके सहयोगकी वाञ्छनीयता सभी महसूस करेंगे; पर उन परिस्थितियोंको निश्चय ही दुर्भाग्यपूर्ण कहा जायगा, जिनमें कांग्रेसके लिए सहयोग देनेवाली सम्भावनाओंका अन्त-सा हो चला है। लेकिन इसकी जिम्मेदारी किसपर है?

जिन्नाका 'मुक्ति-दिवस'

[illegible]कांग्रेस [illegible]मण्डलोंके स्वतः एक उच्चादर्शको लेकर [illegible]गपत्र दे देनेकी प्रसन्नता किसी कांग्रेस-विरोधीके मस्तिष्क-

है। पर उसमें रहकर कोई उसकी सङ्गठन-शक्तिके लिए बाधक हो, यह घोर अवाञ्छनीय है। कांग्रेस आज गांधीजीके नेतृत्व-में चल रही है, तब वह नेतृत्व उसे उसकी शर्तोंपर नहीं उन्हींकी शर्तोंपर मिल सकता है, यह समझना सहज बुद्धिकी ही बात है।

लिबरल स्वाधीनता क्यों नहीं चाहते?

"स्वतन्त्र भारतको", लिबरल फेडरेशनके २१ वें अधिवेशनके अध्यक्ष-पदसे डा० पराञ्जपेने २८ दिसम्बरको इलाहाबादमें भाषण करते हुए कहा है,—"स्वतन्त्र भारतको यदि पूर्ण रूपसे अपनी ही शक्तियों एवं साधनोंपर खड़ा होना पड़े, तो उसका किसी अन्य शक्तिका शिकार बन जाना अनिवार्य है, चाहे वह शक्ति जापान हो, या रूस या इटली, या जर्मनी।"

इसलिए भारतको स्वाधीनताकी मांग नहीं करनी चाहिए, लेकिन "कठोर शब्दोंमें तीव्र प्रतिवादों"का जो एक ही ब्रह्मास्त्र सभी अवस्थाओंके लिए लिबरलोंके पास है, वह क्या इतना निर्बल हो गया कि उससे अन्य शक्तियोंके आक्रमणोंको रोका नहीं जा सकता?

लिबरल फेडरेशनके अध्यक्षने ब्रिटेनको भी गम्भीर चेता-वनी देते हुए कहा है कि एक शताब्दीसे उसने भारतके प्रति मुख्यकर सन्देहकी नीति बरती है, अन्यथा "यदि भारत आत्मरक्षाके लिए उचित ढङ्गसे सङ्गठित किया जाता, तो उसका अन्तर्राष्ट्रीय अवस्थापर बड़ा भारी प्रभाव होता।" अभी [illegible] प्राप्त उक्त फेड[illegible]हते रहे हैं। [illegible]भी प्रस्ता[illegible]

दूसरी बात है मुसलिम लीगके समस्त भारतीय मुसल-मानोंके प्रतिनिधित्व करनेके दावेकी। मुक्ति-दिवसके सम्बन्ध-में अहरारों, शियों तथा मोमिनोंने एक स्वरसे उसका विरोध किया, सिर्फ इसलिए नहीं कि मुक्ति-दिवसका प्रदर्शन अवाञ्छनीय है, बल्कि इसलिए भी कि लीगको समस्त मुसलमानोंकी ओरसे बोलनेका अधिकार नहीं।

तीसरी बात जो स्पष्ट होती है, वह है जनतापर कांग्रेसके प्रभावकी। कांग्रेसके विरुद्ध ऐसा प्रदर्शन करनेसे लीगके सदस्योंने भी इनकार किया है और स्वाधीनचेता तरुण मुसलिमोंने मि० जिन्नाके इस शरारत-भरे हेय दृष्टिकोणके प्रति असन्तोष प्रकट किया है।

मुक्ति-दिवसने मुसलिम लीग तथा उसके वर्तमान नेता-

सचित्र मासिक

विश्वमित्र



मार्च
९४०

विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

विषय-सूची



सम्पादक—
शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

मार्च, १९४०

वर्ष ८, खण्ड १८
अङ्क ६, पूर्ण संख्या ९०

फाल्गुन, १९९६

अन्तर्गीत

एक मनकी हूक खोकर हो गयी क्यों मूक वाणी

बन गया पाषाण मैं पथ-भ्रान्त जगसे दूर निर्मम
टूट जीवनका गया पद जब लुटा वह भाव दुर्दम
छोड़कर उस एक सुखको मैं गृही दुःख भी न पाता
कौन जाने प्यास मेरी तृप्ति जब गाने न पाता
एक आंसू खो रखे ये बांध मैंने कोटि बादल
एक जलकी धार बिन ये सूखते शत सिन्धु चञ्चल
मौन है मेरा समर्पण, शून्य जीवनकी कहानी
एक मनकी हूक खोकर हो गयी क्यों मूक वाणी

एक उरकी प्यास भरकर जिस घड़ी लघु गीत गाया
दग्ध उरकी मरु निशाका शेष दीपक भी बुझाया
रह गया तम और छलनाओं-भरी यह रात पूरी
किन्तु प्राणोंकी जलन तो रह गयी मेरी अधूरी
आज लौटा दो मुझे वह दुख शिखा दे दो न दाता !
खो भिखारी बन गया जो पा जिसे मानव कहाता
विश्व जाने, किन्तु तुमने तो न मेरी पीर जानी
एक मनकी हूक खोकर हो गयी क्यों मूक वाणी

—"अञ्चल"

संस्कृति एवं राजनीति

श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र, एम० ए० बी० एल०

संस्कृति एवं राजनीति दोनोंका समान रूपमें मानव-जीवनसे सम्बन्ध है। इन दोनोंके बीच कोई ऐसी भेद-रेखा नहीं खींची जा सकती, जो दुर्लंघ्य हो। मानव-जीवन अखण्ड है। उसे विभिन्न भागोंमें खण्ड-खण्ड करके परस्पर इस प्रकार विच्छिन्न नहीं किया जा सकता कि जिससे एकके साथ दूसरेका कोई सम्पर्क ही नहीं रह जाय। जीवनको इस प्रकार खण्डोंमें विच्छिन्न करके जब हम एक खण्डके साथ राजनीतिका, दूसरेके साथ धर्मका और तीसरेके साथ संस्कृतिका सम्बन्ध स्थापित करते हैं और समस्त जीवनको एक अखण्ड एवं अविच्छेद्य रूपमें न समझकर उसे विभिन्न खण्डोंके समष्टि-रूपमें समझते हैं, तो इसका परिणाम समाजके लिए अमङ्गलजनक हुए बिना नहीं रहता। वर्तमान सभ्यता एवं संस्कृतिकी प्रगतिशीलताके बीच भी आज मानव-समाजके सम्मुख सर्वनाशकी जो विभीषिका उपस्थित हो रही है, इसका एक मुख्य कारण यह है कि राजनीतिके साथ संस्कृतिका, कर्मके साथ ज्ञानका, तर्क एवं युक्तिके साथ श्रद्धाका, विज्ञानके साथ दर्शनका सम्बन्ध-विच्छिन्न हो गया है। आज विज्ञानकी अभूतपूर्व उन्नति हमारी दृष्टिमें चकाचौंध उत्पन्न कर रही है। वैज्ञानिक चमत्कारोंको देखकर हम विस्मय-विमुग्ध हो जाते हैं। विज्ञानने प्रकृतिके अनेक रहस्योंका उद्घाटन करके उसकी असीम शक्तियोंको मनुष्यके करायत्त कर दिया है। विज्ञान लक्ष्मीकी आराधना करके मनुष्य आज अचिन्त्यपूर्व सुख-सुविधाओंका उपभोग कर रहा है। किन्तु यही विज्ञान जहां एक ओर मानव-जीवनके लिए आशीर्वाद सिद्ध हो रहा है, वहां वह दूसरी ओर उसके लिए निदारुण अभिशापका भी कारण हो रहा है। क्यों? इसलिए कि विज्ञानके साथ दर्शनका सम्बन्ध नहीं रह गया है। वैज्ञानिक दृष्टि लेकर जहां हम मानव-जीवनके बाह्य स्वरूपपर विचार करते हैं, वहां हम दार्शनिक दृष्टि द्वारा मनुष्यके साथ मनुष्यका जो रागात्म सम्बन्ध होता है, उस सम्बन्धकी उपलब्धि नहीं करते। मनुष्यके अन्तःस्थलकी मर्मकथा, उसकी सुख-दुःखकी वेदना, उसके जीवनका मूल सुर—प्रेमका सुर, मनुष्यके प्रति मनुष्यका अपार, असीम प्रेम—वह प्रेम, जो सङ्कीर्ण परिधिमें सीमाबद्ध न रहकर सम्पूर्ण विश्वमें परिव्याप्त हो रहा है—इन सबकी उपलब्धिके लिए जिस उदार दृष्टिकी आवश्यकता है, उस दृष्टिको आजका सभ्य मनुष्य अनेकांशमें खो चुका है। और यही कारण है कि आज विज्ञान सङ्कीर्णहृदय एवं अनुदार राजनीतिज्ञोंके हाथकी कठपुतली बनकर मानव-सभ्यताके महानाशका साधन बन रहा है।

विज्ञान एवं दर्शनके बीच एक दुर्लंघ्य प्राचीरकी सृष्टि करके जिस प्रकार हम मानव-समाजका अमङ्गल कर रहे हैं, उसी प्रकार राजनीति और संस्कृतिके बीच भी भेद-रेखा खींचकर हम संस्कृतिको प्रकृत जीवनसे विच्छिन्न कर रहे हैं और इस प्रकार समाजका अकल्याण कर रहे हैं। संस्कृतिके उपादान स्वरूप—साहित्य, सङ्गीत, कला आदिके सम्बन्धमें एक प्रकारकी भ्रान्त धारणा हम अपने मनमें पोषण करते आ रहे हैं कि वास्तव एवं व्यावहारिक जीवनके साथ इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। कवि एवं साहित्यिक, कलाकार एवं शिल्पियोंका एक जगत ही दूसरा है, जो इस कर्म-कोलाहलमय जगतसे सर्वथा भिन्न है। वह जगत, जिसमें नक्षत्र-खचित आकाश, उर्मिमुखर सागर, वनविहङ्गोंका कलकूजन, वृक्षोंकी मर्मरध्वनि, मेघमेदुर अम्बर, शस्यश्यामल वनश्री और प्रेमिक-प्रेमिकाका कलहास्य एवं गोपन मृदुलालाप, प्रेयस-प्रेयसीका प्रेम-पत्रालाप और अभिसारके सिवा और कुछ है ही नहीं। कवि एवं कलाकार कल्पनाके सुनहले पङ्ख लगाकर जिस कल्पना-लोकमें विचरण करते हैं, वह लोक इस मर्त्यलोकसे दूर—बहुत दूर है। कवि एवं साहित्यिकोंके सम्बन्धमें हमारी जो यह बद्धमूल धारणा है, उस धारणामें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता क्या आज हम महसूस नहीं कर रहे हैं? संसारके विभिन्न देशोंके साहित्यिक क्या आज मर्मन्तुद वेदनाके साथ इस बातका अनुभव नहीं कर रहे हैं कि अपनी जीवन-व्यापी संस्कृतिकी आराधनामें राजनीतिका वर्जन करके और इस प्रकार राजनीति एवं संस्कृतिके बीच

व्यवधानकी सृष्टि करके उन्होंने जो विषम भूल की है, उस भूलका बड़ा कटु परिणाम आज संसार भोग रहा है। जिस समय देशके कोटि-कोटि मनुष्य देशव्यापी राजनीतिक आन्दोलन, उत्तेजना एवं चाञ्चल्यके बीच जीवनकी गति-विधियोंको यथार्थ रूपमें निश्चित करनेमें असमर्थ हो रहे थे, जिस समय सारा देश एक नूतन प्राणोन्मादनाका अनुभव कर रहा था, उस समय जिनकी आन्दोलनके पुरोभागमें आदर्शका जयनिशान लेकर पथ-प्रदर्शक बननेकी आवश्यकता थी, वे कवि एवं कलाकार हाथमें लेखनी और तूलिका लेकर किसी निभृत निकुञ्जमें छन्दों और रेखाओं द्वारा सुकुमार सौन्दर्य एवं मधुर भावनाओंकी सृष्टि कर रहे थे। रोम जिस समय जल रहा था, उस समय वे वीणाके तारोंमें अनन्तकी रागिनी झंकृत कर रहे थे और रेखाओंमें सौन्दर्यकी सुकुमार कल्पनाको रूप दे रहे थे। साहित्यिकों एवं कलाकारोंकी इस उदासीनताका जो विषमय परिणाम आज संसार भोग रहा है, उसका अनुभव करके ही आज विश्वविख्यात जर्मन साहित्यिक टाम्स मैनने अपनी भूल स्वीकार करते हुए लिखा है :—

"परिणत वयसमें मैंने यह अनुभव किया है और अब इस बातको स्वीकार करता हूँ कि राजनीति एवं संस्कृतिके बीच अर्थात् जो लोग बुद्धिजीवी हैं और जिनका सम्पर्क राजनीतिके साथ है, उनके बीच कोई स्पष्ट भेद-रेखा नहीं खींची जा सकती। अब मैं यह समझ रहा हूँ कि जर्मन नागरिकोंके लिए यह विश्वास करना भ्रान्तिपूर्ण था कि कोई व्यक्ति संस्कृति-सम्पन्न होनेके साथ-साथ राजनीतिसे अपनेको सम्पूर्ण पृथक् रख सकता है। मैं यह महसूस कर रहा हूँ कि संस्कृति उस समय खतरेमें पड़ जाती है, जब कि राजनीतिको समझनेकी सहज बुद्धि और इच्छा उसमें नहीं रह जाती।"

जिस जर्मनीके साहित्यिक, कवि, कलाकार एवं दार्शनिकोंने विश्व-सभ्यता एवं संस्कृतिके भाण्डारको अपने अमूल्य दानोंसे समृद्धिशाली बनाया है, वही जर्मनी आज संस्कृतिका सबसे बड़ा शत्रु हो रहा है। गेटे और शिलरका जर्मनी, विठोफेन और वेगनरका जर्मनी, काण्ट और शोपेनहारका जर्मनी आज संस्कृतिके उपासकके बदले उलङ्ग बर्बरताका पुजारी बन रहा है। उच्च आकांक्षाओं एवं महत् आदर्शोंकी धारणा करनेवाला जर्मनी, बौद्धिक स्वतन्त्रताका उपासक जर्मनी तथा वह जर्मनी, जिसके बौद्धिक एवं आध्यात्मिक नेतृत्वके लिए यूरोपका प्रत्येक राष्ट्र ऋणी रहा है तथा कुछ समय पहले तक जो अपने विश्वविख्यात मनीषियोंकी ज्ञान-साधनाकी बदौलत संसारकी दृष्टिमें वरेण्य था, वहीं आज शिक्षा एवं संस्कृतिके विरुद्ध बर्बर अभियान चल रहा है। विज्ञानतपस्वी आयनस्टाइन, महामनीषी स्वर्गीय अध्यापक सिगमण्ड फ्रायड, विख्यात रासायनिक हेवर, पदार्थविज्ञानके सुपण्डित जेम्स फ्रैङ्क, सुप्रसिद्ध साहित्यिक टाम्स मैन और कानूनके पण्डित कासेल—जो वर्तमान जर्मनीको शिक्षा एवं संस्कृतिके गौरवमण्डित शिखरपर ले जा रहे थे और जिन्हें पाकर कोई भी देश धन्य हो सकता है—अपनेको गौरवान्वित समझ सकता है—स्वदेशसे लाञ्छित एवं निर्यातित होकर निर्वासित कर दिये गये! शिक्षा एवं संस्कृतिके विरुद्ध जर्मनीके नात्सी-दलका यह जो अभियान, निर्यातन एवं दमन सम्भव हुआ है, इसका कारण क्या है? इसका कारण है देशकी राजनीति तथा जनताके प्राणस्पन्दनके प्रति साहित्यिक एवं कलाकारोंकी उदासीनता। जिस समय देशके सर्वसाधारण जन एक नूतन प्राणस्पन्दनका अनुभव कर रहे थे, उस समय जर्मन साहित्यिक और कवि अपने लिए एक नूतन स्वप्न-जगतकी सृष्टि करके उसकी मधुर कल्पनामें आत्मविभोर हो रहे थे। उन्होंने यह समझ रखा था कि साहित्य, सङ्गीत और कलाके उपासकोंके लिए कोलाहलमय जगतकी राजनीति काम्य नहीं है। राजनीति तो हिटलर और मुसोलिनी-जैसे रूढ़ प्रकृतिके मनुष्योंके लिए है। जर्मनीके कलाकारों एवं चिन्तानायकोंने संस्कृतिके जिस स्निग्धोज्ज्वल प्रकाशकी सृष्टि की थी, उसका आलोक जनसाधारणके जीवनको स्पर्श करने तथा उसके प्राणोंको आलोड़ित करनेमें समर्थ नहीं हुआ। देशकी राजनीतिपर संस्कृतिकी छाप नहीं पड़ सकती। समस्त महत् चिन्ता एवं सांस्कृतिक साधना व्यष्टिगत जीवन तक ही सीमाबद्ध होनेके कारण अर्धविकसित कलिकाके रूपमें ही रह गयी, जिससे उसे पूर्ण विकसित होनेका सुयोग नहीं मिल सका और वह विराट् एवं समष्टिके बीच अपना सिंहासन प्रतिष्ठित करनेमें समर्थ नहीं हुई। राजनीतिके साथ साहित्यका जो आन्तरिक सम्बन्ध है, उस सम्बन्धकी जर्मन साहित्यिकोंने अवहेलना की, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे संस्कृतिकी दीपशिखाको निर्वापित होनेसे नहीं बचा सके।

इसलिए आज संस्कृतिके उपादान—साहित्य, सङ्गीत और कला—का सम्बन्ध जनसाधारणके जीवनके साथ स्थापित करना होगा। संस्कृतिके प्रोज्जवल प्रकाशमें जनसाधारणके जीवनको उन्नत एवं उद्दीपित करना होगा। जातिकी शिक्षा-दीक्षा एवं संस्कृतिका मापदण्ड देशके कतिपय व्यक्तियोंकी सांस्कृतिक साधना न होकर समग्र जातिकी सांस्कृतिक साधना होगी। व्यष्टिकी विद्या-बुद्धि एवं प्रतिभाका विकास इस रूपमें होगा, जिससे सर्वसाधारणजन भी उसका अंश ग्रहण कर सकें, वर्तमान युग ही ऐसा है कि इसमें केवल व्यक्तिगत जीवनको लेकर हम नहीं चल सकते। व्यक्ति-विशेष चाहे कितना ही सुपण्डित एवं प्रतिभाशाली क्यों न हो, बड़ेसे बड़ा कवि, साहित्यिक एवं कलाकार क्यों न हो, उसे साधारण मनुष्योंके सुख-दुःखके प्रति, उनके अन्तरकी वेदनाओंके प्रति दृष्टि-निक्षेप करना ही होगा। व्यष्टिका कल्याण समष्टिके कल्याण-के साथ ओत-प्रोत भावसे जड़ित है; समष्टिके मङ्गलकी उपेक्षा करके व्यष्टिका मङ्गलसाधन असम्भव है, यही इस युगकी वाणी है। व्यक्तिवादके दिन अब नहीं रहे। समष्टि जीवन-के साथ व्यक्तिगत जीवनको संयुक्त करनेका ज्योतिर्मय सुप्रभात हमारे सामने उपस्थित हो रहा है। इस युगके कवि एवं साहित्यिक जातिके चारण बनकर मनुष्यत्वकी गरिमाके सामने अपनी कविताओंका अर्घ्य प्रदान करेंगे; जनसाधारणके व्यक्तित्वका जयगान करेंगे। उनके लिए सबसे बड़ा सौन्दर्य होगा मनुष्यका मनुष्यत्व। ऐसे कवि और साहित्यिक ही एक नूतन एवं विराट् आदर्शके पुजारी बनकर जातिको अपनी रचनाओं द्वारा एक नूतन सुर सुनायेंगे—वह सुर, जिसे सुनकर निद्रित एवं अलसतन्द्रा-विजड़ित जाति एक नूतन उत्साह एवं नूतन प्रेरणाका अनुभव करके जाग उठेगी। अपने विराट् आदर्श द्वारा गठित एक नूतन समाजकी परिकल्पनाको वे सम्भव कर दिखायेंगे। उनके कण्ठसे उच्चारित होगा मनुष्यके प्रति मनुष्यके सहज प्रेमका सम्मोहन सुर। वह सुर, जो सृष्टिके अनादिकालसे मनुष्यके अन्तरसे उत्सारित हो रहा है और जो इस जगतका सार सत्य है। इस प्रेमके सुरके सामने ऊंच-नीच और छोटे-बड़ेका कोई विचार नहीं। वे होंगे एक नूतन आनन्दके अग्रदूत। पथ-भ्रान्त जातिकी क्लान्त दृष्टिके सामने वे आशाका प्रदीप रखेंगे, उनके मनमें भविष्यके लिए ज्योतिर्मय स्वप्न जाग्रत करेंगे।

कलाके नामपर, सौन्दर्य-सृष्टिके नामपर, कलाको शाश्वत आनन्दका उत्स बनानेके नामपर जो लोग कलाकारोंको राजनीतिकी पङ्किलतासे दूर रखना चाहते हैं, उन्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि साम्राज्यवादियोंके निष्ठुर लोभकी विध्वंस-लीला जब आरम्भ होती है, तो उसमें पड़कर कलाके श्रेष्ठतम निदर्शनोंको भी निश्चिह्न होते देर नहीं लगती। कलाकार देशकी राजनीतिसे अपनेको पृथक् रखकर भले ही उपन्यासोंकी रचना करें, कविता लिखें या चित्राङ्कण करें; किन्तु जब आकाशमें गीध पक्षीकी तरह मंडरानेवाले वायुयान विस्फोटक बमोंकी वर्षा करने लगते हैं और उन कलाकारोंकी दृष्टिके सामने ही विशाल नगरोंकी बड़ी-बड़ी अट्टालिकायें, विद्यालय, चित्रशाला एवं कलाभवन भस्मस्तूप-में परिणत होने लगते हैं, उस समय उनकी चिरन्तन आनन्द-विधायनी कला एवं सौन्दर्यका कोई मूल्य एवं महत्त्व नहीं रह जाता। ध्वंसके चितानलमें पड़कर सब कुछ स्वाहा हो जाता है। स्पेन और चीनके दृष्टान्त हमारे सामने हैं। फासिस्ट साम्राज्यवादियोंके निष्ठुर लोभ एवं बर्बर अभियानसे वर्तमान सभ्यता एवं संस्कृतिकी रक्षा करनेके लिए यह आवश्यक है कि जीवनका जो वास्तव सत्य है, उसके आधारपर साहित्यकी सृष्टि की जाय और वह साहित्य समग्र राष्ट्रकी आशा-आकांक्षाओंका प्रतीक बने। इस प्रकारके साहित्य द्वारा ही कवि एवं कलाकार अपनी आइडियाको—अपने स्वप्नको जनसाधारणके अन्तरमें सञ्चारित कर सकते हैं और जो अचेतन हो रहे हैं, उनके मनमें मुक्तिकी आदर्श-ज्योति जाग्रत कर सकते हैं। हमारे जातीय जीवनका उद्‌बोधन इसी प्रकार सम्पूर्ण हो सकता है।



औपनिवेशिक स्वराज्य और पूर्ण स्वाधीनता

श्री रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए० एल-एल० बी०

भारतमें अंगरेजी राज्यके लक्ष्यके सम्बन्धमें समय-समयपर ब्रिटिश मन्त्रियों और वायसरायों द्वारा घोषणा होती रही है। सबसे प्रथम बार भारत-मन्त्री श्री एडविन माण्टेग्यूने कामन-सभा (पार्लमेण्ट) में २० अगस्त सन् १९१७ को ऐतिहासिक घोषणा की, जिसका महत्त्वपूर्ण अंश इस प्रकार है :—

"अंगरेजी सरकारकी नीति, जिससे भारत-सरकार भी पूर्णतया सहमत है, शासन-प्रबन्धके प्रत्येक विभागमें भारतीयोंके बढ़ते हुए सहयोग और अंगरेजी साम्राज्यके एक प्रमुख भागकी हैसियतसे भारतमें उत्तरदायी शासनकी प्रगतिशील प्राप्तिके उद्देश्यसे स्वराज्य-संस्थाओंका क्रमिक विकास है।"

सन् १९१९ के भारतीय शासन-विधानमें यह घोषणा प्रस्तावनाके रूपमें उल्लिखित है। इसके बाद ९ फरवरी सन् १९२१ को नवीन भारतीय धारा-सभाका उद्घाटन करते हुए युवराजने ब्रिटिश सम्राट्की ओरसे सन्देश सुनाया, जिसमें यह लिखा था :—

"वर्षोंसे और सम्भवतः युगोंसे देशभक्त और राजभक्त भारतीयोंने अपनी मातृभूमिके लिए स्वराज्यका स्वप्न देखा है। आज आप मेरे साम्राज्यमें स्वराज्यका आरम्भ देख रहे हैं और आपको स्वाधीनताके लिए प्रगतिके निमित्त सबसे अधिक विस्तृत क्षेत्र और यथेष्ट सुयोग उसी प्रकार मिलेंगे, जैसे कि मेरे दूसरे उपनिवेशोंको प्राप्त हैं।"

ब्रिटिश सम्राट्ने १९ मार्च सन् १९२१ को भारतके वायसरायके आदेश-पत्रमें यह स्पष्ट शब्दोंमें लिखा कि —

"यह हमारी आकांक्षा है कि जो योजना हमारी पार्लमेण्ट द्वारा बनायी गयी है, वह इस प्रकार सफल हो कि हमारे उपनिवेशोंमें भारत वास्तविक स्थान प्राप्त कर सके।"

अंगरेजी उपनिवेशों और भारतके प्रतिनिधियोंकी एक सभामें अपने भाषणमें तत्कालीन औपनिवेशिक मन्त्री श्री विन्स्टन चर्चिलने कहा :—

"हम भारतके चिरऋणी हैं और हम विश्वासके साथ उसके उज्ज्वल भविष्यको देखते हैं, जब भारतीय शासन और भारतवासी पूर्णतया औपनिवेशिक पद प्राप्त कर लेंगे।"

ब्रिटिश सरकारकी आज्ञा एवं पूर्ण अधिकारसे भारतके वायसराय लार्ड इरविन (अब लार्ड हेलीफाक्स) ने ३१ अक्टूबर सन् १९२९ को अपने एक वक्तव्यमें कहा :—

"....सन् १९१७ की घोषणामें यह निहित था कि भारतीय वैधानिक प्रगतिका स्वाभाविक फल औपनिवेशिक स्वराज्यकी प्राप्ति है।"

प्रथम गोलमेज परिषद्के अन्तिम अधिवेशनमें जनवरी सन् १९३१ में ब्रिटिश प्रधान मन्त्री स्वर्गीय श्री रामजे मैकडानल्डने यह घोषणा की :—

"अन्तमें, मैं यह आशा करता हूं, विश्वास करता हूं और प्रार्थना करता हूं कि हमारे संयुक्त प्रयत्नसे भारत उस वस्तुको प्राप्त कर सकेगा, जिसका उसके लिए अभाव है, अर्थात् ब्रिटिश राष्ट्र-सङ्घके अन्तर्गत औपनिवेशिक स्वराज्य।"

औपनिवेशिक स्वराज्यसे अभिप्राय उस शासन-प्रणालीसे है, जो ब्रिटिश कामनवेल्थके उपनिवेशों—कनाडा, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका आदि—में प्रचलित है। परन्तु ब्रिटिश राजनीतिज्ञों द्वारा कई बार इन प्रतिज्ञाओंका उल्लङ्घन ही नहीं किया गया है, प्रत्युत् यह सिद्ध करनेकी चेष्टा भी की गयी है कि ब्रिटिश पार्लमेण्टने भारतको औपनिवेशिक स्वराज्य देनेकी कभी प्रतिज्ञा ही नहीं की और ब्रिटिश राजनीतिज्ञों तथा सम्राट्ने जो घोषणायें की हैं, वे पार्लमेण्टके कानूनमें शामिल नहीं हैं, इसलिए पार्लमेण्ट उन्हें स्वीकार करने तथा उनको कार्यान्वित करनेके लिए बाध्य नहीं।

औपनिवेशिक स्वराज्य और उत्तरदायी शासन—भारत-सरकारके भूतपूर्व गृह-सदस्य तथा संयुक्तप्रान्तके गवर्नर सर (अब लार्ड) मेलकम हेलीने सन् १९२४ में केन्द्रीय धारा-सभामें अपने भाषणमें यह कहा था :—

"....वास्तवमें कुछ अन्तर तो है ही ; क्योंकि उत्तरदायी शासनके साथ मर्यादित धारा-सभा सम्भव है। यह सम्भव हो सकता है कि औपनिवेशिक स्वराज्य उत्तरदायी शासन-

का युक्तिसङ्गत फल है। नहीं-नहीं, वह उत्तरदायी शासनका अनिवार्य और ऐतिहासिक विकास है। परन्तु यह एक अन्तिम लक्ष्य है।"

इस प्रकार सन् १९१७ की घोषणामें उल्लिखित 'उत्तरदायी शासन' और ब्रिटिश उपनिवेशोंमें प्रचलित शासन-प्रणालीमें भेद बतलानेकी सबसे पहली बार चेष्टा की गयी। जब भारतके वर्तमान शासन-विधान (१९३५) पर पार्लमेण्ट और उसकी विशेष-समितिमें विचार हो रहा था, तब भी कतिपय ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंकी ओरसे यह सिद्ध करनेका भरसक प्रयत्न किया गया कि औपनिवेशिक स्वराज्य और उत्तरदायी शासन दोनों एक-दूसरेसे भिन्न शासन-प्रणाली हैं। औपनिवेशिक पद उत्तरदायी शासनसे कहीं अधिक बड़ा है।

ब्रिटिश भारतीय प्रतिनिधि-मण्डलने अपने संयुक्त आवेदन-पत्रमें, जो पार्लमेण्टरी कमेटीके सामने सन् १९३४ में पेश किया था, इस बातपर जोर दिया कि नये शासन-विधानकी प्रस्तावनामें यह स्पष्ट रूपसे उल्लेख कर दिया जाय कि—

"भारतकी वैधानिक प्रगतिका स्वाभाविक परिणाम औपनिवेशिक स्वराज्य है।" परन्तु अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि भारतीय प्रतिनिधि-मण्डलकी इस युक्ति-सङ्गत और समुचित मांगको ब्रिटिश पार्लमेण्टने स्वीकार नहीं किया। ब्रिटिश पार्लमेण्टने भारतीय शासन-विधान (१९३५) में 'औपनिवेशिक स्वराज्य' के लक्ष्यका कहीं भी उल्लेख नहीं किया है।

यहां हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि 'उत्तरदायी शासन' और 'औपनिवेशिक स्वराज्य' में जो भेद स्थापित करनेका प्रयत्न किया गया है, वह सर्वथा असङ्गत, तर्कहीन और अनुपयुक्त है। इस सम्बन्धमें हम इंगलैण्डके महान् सुप्रसिद्ध विधान-वेत्ता प्रो० कीथका मत दे देना ही उचित समझते हैं। प्रोफेसर कीथने लिखा है :—

"यह विस्मरण कर दिया जाता है कि सन् १९१७ तक किसी भी समय औपनिवेशिक स्वराज्य और उत्तरदायी शासनमें भेद करनेका प्रयत्न नहीं किया गया। 'औपनिवेशिक स्वराज्य'—यह पद उस समय प्रचलित नहीं था और उस समय जिस शासन-प्रणालीके लिए प्रतिज्ञा की गयी थी, वह एक ऐसी निश्चित प्रणाली थी, जो उस समय साम्राज्यके अन्तर्गत जारी थी।"

औपनिवेशिक स्वराज्य क्या है ? प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ श्री बोनरलाने औपनिवेशिक स्वराज्यकी व्याख्या इस प्रकार की है :—

"औपनिवेशिक स्वराज्यका मूल-तत्त्व क्या है ? उसका मूलतत्त्व यह है कि उपनिवेश स्वयं स्वभाग्य-निर्णयके अधिकारी हैं। निज सेनापर उनका नियन्त्रण है। साम्राज्यकी रक्षाके लिए वे कितनी सहायता करें, इसका निर्णय करना उनके हाथमें है। यह सब मुख्य बातें हैं। पार्लमेण्टमें ऐसा कोई सदस्य न होगा, जो यह स्वीकार न करे कि साम्राज्य-का उपनिवेशोंसे सम्बन्ध उनके ऊपर ही निर्भर है। यदि कनाडा और आस्ट्रेलिया कल यह कहना चाहें कि हम ब्रिटिश साम्राज्यके अधीन रहना नहीं चाहते, तो हम उनको बलपूर्वक साम्राज्यमें रखनेकी चेष्टा नहीं करेंगे। संक्षेपमें, औपनिवेशिक स्वराज्यका अर्थ स्वभाग्य-निर्णयका पूर्ण अधिकार है।"

साम्राज्य-परिषद्की सन् १९२६ की अन्तर्साम्राज्य-सम्बन्ध-समितिने उपनिवेशोंकी स्थितिके सम्बन्धमें निम्न प्रकार निर्णय किया—"उपनिवेश साम्राज्यके अन्तर्गत स्वाधीन राज्य हैं। उनका पद समान है। आन्तरिक तथा बाह्य राज्य-प्रबन्धमें वे एक-दूसरेपर निर्भर नहीं हैं। यद्यपि ब्रिटिश सम्राट्के प्रति सामान्य राजभक्तिके कारण वे एकताके सूत्रमें बंधे हुए हैं, तथापि वे स्वतन्त्र रूपसे ब्रिटिश राष्ट्रसङ्घके सदस्य हैं। औपनिवेशिक शासनके वैदेशिक और आन्तरिक प्रबन्धपर उनका नियन्त्रण है। उनकी निजी सेना है और वे जब चाहें तब साम्राज्यसे सम्बन्ध तोड़ सकते हैं। ऐसा करनेकी उन्हें स्वतन्त्रता है।"

सर सैमुएल होरकी घोषणा— विगत सितम्बर १९३९ में यूरोपीय महायुद्ध शुरू हो जानेके बाद जब कांग्रेसने भारतकी स्वाधीनताकी मांग पेश की और ब्रिटिश सरकारको यह निमन्त्रण दिया कि वह अपने युद्धके उद्देश्योंकी घोषणा करे और वह स्पष्ट रूपसे यह घोषणा भी करे कि यदि वह वास्तवमें स्वाधीनता और प्रजातन्त्रकी रक्षाके लिए इस युद्धमें शामिल हुई है, तो क्या वह भारतके सम्बन्धमें भी इन सिद्धान्तोंको लागू करना चाहती है, तब भारत-मन्त्री लार्ड जेटलैण्ड तथा पूर्व-भारत-मन्त्री सर सैमुएल होरने पुनः यह घोषणा की कि ब्रिटिश सरकारकी नीति वही है,

जो सन् १९१७ की घोषणामें निहित है तथा जिसकी व्याख्या भारतके तत्कालीन वायसराय लार्ड इरविनने अक्टूबर सन् १९२९ में की थी। आज ब्रिटिश सरकार तथा भारतके वायसराय लार्ड लिनलिथगो ब्रिटिश नीतिका अन्तिम लक्ष्य भारतमें औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्थापना घोषित कर रहे हैं। कामन-सभा (पार्लमेण्ट) में भारतके सम्बन्धमें बहसमें भाषण करते हुए सर सैमुएल होरने ब्रिटिश सरकारकी ओरसे अपने वक्तव्यमें ता० २६ अक्टूबर सन् १९३९ को कहा :—

"जब गवर्नमेण्ट आव इण्डिया बिल (१९३५) के द्वितीय वाचनपर मैंने भाषण दिया, तब मैंने यह स्पष्ट रूपसे कहा था —मैंने उस समय जो कहा था, उसे मैं आज स्पष्ट रूपसे कहता हूं कि हम लार्ड इरविनकी प्रतिज्ञाको आज भी मानते हैं और जब हमने औपनिवेशिक स्वराज्यके सम्बन्धमें कहा था, तब हमारा मन्तव्य वही था, जो हमने कहा था और उसका अर्थ यह नहीं था कि वह (औपनिवेशिक स्वराज्य) कोई ऐसी प्रणाली है, जो भारतको ब्रिटिश राष्ट्रसङ्घके दूसरे उपनिवेशोंके साथ समानताके पूर्ण पदसे वञ्चित करती हो। औपनिवेशिक स्वराज्य दो प्रकारका नहीं है, जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं। जिस औपनिवेशिक स्वराज्यकी हमने कल्पना की थी, वह वही है, जिसका उल्लेख श्री वेजवुड बेनने किया है—अर्थात् सन् १९२६ का औपनिवेशिक स्वराज्य। मैंने यह भी बतलाया कि औपनिवेशिक स्वराज्य कोई पुरस्कार नहीं है, जो किसी योग्य समाजको दे दिया जाय, वरन् वह तो उन तथ्योंकी स्वीकृति है, जो वास्तवमें विद्यमान होते हैं। जैसे ही भारतमें ये तथ्य पैदा हो जायंगे और मेरे विचारमें ये जितनी जल्दी पैदा हों, उतना ही ठीक है, तो हमारी नीतिका लक्ष्य पूरा हो जायगा। यदि मार्गमें कोई बाधायें हैं, तो वे हमारी पैदा की हुई नहीं हैं। वे तो उस विशाल देशके सम्प्रदायों एवं वर्गोंके विविध मतभेदोंके कारण हैं।"

इस वक्तव्यसे भारतमें असन्तोष पैदा हो गया। ब्रिटिश सरकार अवसर पड़नेपर इसी प्रकार इस नीतिको दोहराती रहती है और जब चाहती है, तब उसे भङ्ग कर देती है। ऐसी घोषणाका मूल्य ही क्या हो सकता है ?

भारतके लिबरल दलको भी इससे सन्तोष नहीं हुआ। लिबरल दलने इस सम्बन्धमें यह सन्देह प्रकट किया कि सर सैमुएल होरने सन् १९२६ के औपनिवेशिक स्वराज्यकी घोषणा की है। यह सन् १९३१ के वेस्टमिनिस्टर स्टेट्यूटके स्वराज्यके समान नहीं है। भारत इससे सन्तुष्ट नहीं हो सकता। इस घोषणामें स्वराज्य देनेके लिए कोई नियत अवधि भी नहीं दी गयी है। लार्ड जेटलैण्डने इसका स्पष्टीकरण किया।

लार्ड जेटलैण्डका स्पष्टीकरण— लार्ड-सभा (पार्लमेण्ट) में ७ नवम्बर १९३९ को भारतमन्त्री लार्ड जेटलैण्डने भारतके सम्बन्धमें ब्रिटिश नीतिका स्पष्टीकरण करते हुए कहाः—

"इस अवसरका उपयोग मुझे उन शक और सन्देहोंके निवारणके लिए करना चाहिए, जो हालमें कामन-सभामें भारत-सम्बन्धी बहसमें लार्ड प्रिवी सील सर सैमुएल होरके इस कथनसे भारतमें पैदा हो गये प्रतीत होते हैं कि हमने जिस औपनिवेशिक स्वराज्यकी प्रतिज्ञा की थी, वह सन् १९२६ का औपनिवेशिक स्वराज्य है। यह सुझाव पेश किया गया है कि सन् १९३१ में वेस्टमिनिस्टर स्टेट्यूटने उन उपनिवेशोंको, जिनके सम्बन्धमें वह लागू होता है, ऐसा पद प्रदान किया है, जो उससे भिन्न तथा श्रेष्ठ है, जिसका उल्लेख बालफोर-घोषणामें मिलता है, जो साम्राज्य-परिषद् १९२६ की रिपोर्टमें शामिल है।

"इस सभाको किसी भी दशामें यह स्वीकार करनेमें कोई कठिनाई न होगी कि इस प्रकारका सुझाव सर्वथा निराधार है। मेरे राइट आनरेबुल मित्र (सर सैमुएल होर) ने सन् १९२६ के औपनिवेशिक स्वराज्यका उल्लेख इसलिए किया था कि उस वर्ष साम्राज्य-परिषद्ने उपनिवेशोंकी स्थितिका निर्धारण किया था और उस स्थितिमें बादमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। उस समय (उपनिवेशोंकी) जो वैधानिक स्थिति स्वीकार की गयी थी, उसके कुछ प्रतिफलोंपर वेस्टमिनिस्टर स्टेट्यूट द्वारा कानूनी स्वीकृति दे दी गयी।"

इस प्रकार लार्ड जेटलैण्डके इस स्पष्टीकरणके बाद इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि ब्रिटिश सरकारका ध्येय भारतमें उसी प्रकारके औपनिवेशिक स्वराज्यकी स्थापना है, जिसका उल्लेख सन् १९३१ के वेस्टमिनिस्टर कानूनमें किया गया है।

वेस्टमिनिस्टर-कानून— सन् १९२३ से सन् १९३१ तक ब्रिटिश राष्ट्रसङ्घके अन्तर्गत उपनिवेशोंकी स्थिति निर्धा-

रित की गयी । आज ब्रिटिश उपनिवेशोंकी जो स्थिति है, वह उनके क्रमिक विकास और इंगलैण्डके साथ स्वभाग्य-निर्णयके अधिकारके लिए निरन्तर सङ्घर्षका परिणाम है । सन् १९२६ में साम्राज्य-परिषद्ने उपनिवेशकी परिभाषा निम्न प्रकार की थी :—

"उपनिवेश ब्रिटिश साम्राज्यमें स्वायत्त शासित राज्य हैं, जो परस्पर समान हैं और जो अपने आन्तरिक तथा बाह्य शासन-प्रबन्धके मामलोंमें किसी प्रकार भी एक-दूसरेके अधीन नहीं हैं और वे ब्रिटिश राष्ट्रसङ्घके सदस्योंकी हैसियत-से परस्पर स्वतन्त्र रूपसे सम्बन्धित हैं ।"

सन् १९२६ की साम्राज्य-परिषद्के बाद उपनिवेशोंमें कतिपय क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, जिनके कारण उनकी स्थिति-में भारी परिवर्तन हो गया । सन् १९२९ के औपनिवेशिक कानून-वैधानिकता ऐक्ट (Colonial Laws Validation Act) के अनुसार ब्रिटिश उपनिवेशोंकी पार्लमेण्टें अपने कानून लन्दनमें सम्राट्की स्वीकृतिके लिए भेजती थीं । सम्राट्-को उन्हें अस्वीकार करनेका अधिकार था । उपनिवेशोंकी सरकारोंने इस प्रतिबन्धसे मुक्ति पानेके लिए प्रयत्न किया और इस दिशामें आयर्लैण्डने सबसे बढ़कर हिस्सा लिया । इसके फलस्वरूप यह स्वीकार किया गया कि—

"प्रत्येक उपनिवेशकी सरकारका यह अधिकार है कि वह अपने समस्त मामलोंमें सम्राट्को सलाह दे ।"

इसके अनुसार औपनिवेशिक मामलोंमें सम्राट्को ब्रिटिश सरकार द्वारा सलाह देना वैधानिक परम्पराके प्रतिकूल ठहरा दिया गया । वेस्टमिनिस्टरमें (पार्लमेण्टमें) उपनिवेशोंके सम्बन्धमें जो कानून बनाये जायंगे, वे सब उपनिवेशोंकी सम्मतिसे ही बनाये जायंगे । सन् १९२६ में 'औप-निवेशिक कानून वैधानिकता ऐक्ट' रद्द कर दिया गया । इस आशयकी सिफारिश की गयी कि ब्रिटिश पार्लमेण्ट द्वारा निर्मित कोई भी एक्ट किसी भी उपनिवेशमें उस समय तक लागू नहीं होगा, जब तक कि उस उपनिवेशने लागू करनेकी प्रार्थना न की हो और सम्मति न दी हो ।

सन् १९३० की ब्रिटिश साम्राज्य-परिषद्ने यह सिफारिश की :—

"इस एक्टके लागू हो जानेके बाद ब्रिटिश पार्लमेण्ट द्वारा स्वीकृत कोई भी कानून किसी भी उपनिवेशमें, बतौर उस उपनिवेशके कानूनके लागू नहीं होगा, जब तक कि उस कानूनमें यह स्पष्टतः घोषणा न की गयी हो कि उस उपनिवेशने कानून बनानेके लिए प्रार्थना की और सम्मति दी थी ।"

इस प्रकार वेस्टमिनिस्टर कानूनमें सन् १९२६ व सन् १९३० की साम्राज्य-परिषदोंके प्रस्तावोंको धारा-रूपमें स्थान दिया गया है । इस कानूनकी प्रस्तावनामें यह स्पष्ट रूपसे उल्लेख किया गया है कि भविष्यमें रायल टाइटिल (राजकीय पद) और सम्राट्के उत्तराधिकारमें परिवर्तनके लिए समस्त उपनिवेशोंकी पार्लमेण्टों तथा ब्रिटिश पार्लमेण्टकी सम्मतिकी आवश्यकता होगी । इस प्रस्तावनामें यह भी उल्लेख किया गया है कि इस कानूनके बाद ब्रिटिश पार्लमेण्ट द्वारा स्वीकृत कोई भी एक्ट किसी भी उपनिवेशमें उस समय तक लागू नहीं होगा, जब तक कि उस उपनिवेशने उस कानूनके बनानेकी प्रार्थना न की हो और न सम्मति दी हो ।

उपनिवेशोंकी स्थितिके सम्बन्धमें सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय गांधीवादी नेता तथा लेखक डा० पट्टाभि सीतारमैयाने (हिन्दुस्तान टाइम्स, १३ दिसम्बर १९३९) लिखा है :—

"किसी भी देशकी स्वाधीनताकी परीक्षा उसके कर लगाने, विदेशी मालपर चुङ्गी लगाने तथा वैदेशिक सम्बन्धों-के विषयमें अधिकारोंसे हो सकती है । इस प्रकार आज उपनिवेश पूर्ण स्वराज्यका भोग करते हैं ।...यह भी स्पष्ट है कि राष्ट्रोंके कामनवेल्थके अन्तर्गत इंगलैण्डके साथ उप-निवेशोंके संयोगने किसी प्रकार भी उनकी स्वाधीनताको कम नहीं किया है । यह सन् १९३१ और उसके बादका विकास है । राजनीतिक विचारोंका विकास अत्यधिक स्पष्ट है और हमारे सन् १९२९ में स्वीकृत पूर्ण स्वराज्यके प्रस्तावके बाद 'उपनिवेश' शब्दमें जो परिवर्तन हुए हैं, उन्हें हमें भली भांति जान लेना चाहिए । इस प्रकार आज उस देशमें, जो वेस्टमिनिस्टर कानूनके अनुसार स्वराज्यका भोग कर रहा है और उस देशमें, जिसमें पूर्ण स्वराज्य है, कोई अन्तर नहीं है ।"

औपनिवेशिक स्वराज्य और पूर्ण स्वराज्यमें अन्तर-डा० पट्टाभि सीतारमैयाके उपर्युक्त कथनसे यह स्पष्टतः प्रकट होता है कि उनके मतमें आज औपनिवेशिक स्वराज्य और पूर्ण स्वराज्यमें कोई अन्तर नहीं है—दोनों शासन-प्रणालियों-

में कोई भेद नहीं है। यद्यपि वेस्टमिनिस्टर एक्टके अध्ययनसे यह प्रकट होता है कि उपनिवेशोंको इंगलैण्डसे सम्बन्ध-विच्छेदका अधिकार प्राप्त है और उन्हें अपने आन्तरिक शासन और वैदेशिक नीतिपर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त है, तथापि यह तो सूर्यकी किरणोंके समान प्रकाशवान् है कि उपनिवेशोंपर साम्राज्यवादी नीतिका गहरा प्रभाव है।

वेस्टमिनिस्टर एक्टमें उपनिवेशकी जो परिभाषा दी गयी है, उससे यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश साम्राज्यवादका ब्रिटिश राष्ट्रसङ्घमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। ब्रिटिश साम्राज्यका नवीन और कुछ मात्रामें अधिक सुन्दर नाम 'ब्रिटिश कामनवेल्थ' है। परिभाषामें उल्लिखित "उपनिवेश ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत स्वाधीन राज्य हैं" शब्दोंसे यह प्रकट होता है कि उपनिवेश परस्पर समान हैं, उनकी स्थिति समान है; परन्तु वे सब ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत हैं। ब्रिटिश साम्राज्यका अर्थ यह है कि ब्रिटिश राष्ट्रसङ्घमें इंगलैण्डका पद इन सबसे श्रेष्ठ और महान् है। इसलिए जब हम 'ब्रिटिश साम्राज्य' शब्दका प्रयोग करते हैं, तो उसके साथ ही ब्रिटेनकी प्रभुताका विचार उदय हो जाता है। यदि ब्रिटिश राष्ट्रसङ्घमें समस्त उपनिवेशोंका भी इंगलैण्डके साथ बराबरीका सम्बन्ध हो, जैसा कि उनमें परस्पर है, तो ब्रिटिश साम्राज्य ही कहां रहा। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि ब्रिटिश उपनिवेशोंका पद इंगलैण्डके पदसे छोटा है; दूसरे शब्दोंमें हम इसे यों कह सकते हैं कि इंगलैण्ड प्रभु है और उपनिवेश उसके अधीन राष्ट्र हैं। यह सत्य है कि ये उपनिवेश परस्पर समान हैं और अपने-अपने राज्यमें स्वाधीनताका भोग कर रहे हैं।

कामनवेल्थके अन्तर्गत स्वशासन पूर्ण स्वाधीनताके बराबर नहीं हो सकता। क्योंकि यह स्पष्ट है कि सङ्घके अधीन राज्य पूर्ण स्वाधीनताका भोग नहीं कर सकते।

इसी प्रकार ब्रिटिश राष्ट्रसङ्घके राज्य या उपनिवेश भी पूर्ण स्वाधीनताका भोग नहीं कर सकते। फिर ब्रिटिश राष्ट्रसङ्घ वास्तविक वैधानिक अर्थमें संयुक्त राज्य अमेरिका-की तरह सङ्घ-राज्य भी तो नहीं कहला सकता। ब्रिटिश राष्ट्रसङ्घकी तुलना तो मिश्रके 'पिरेमिड'से की जा सकती है, जिसमें सबसे उच्च शिखरपर ब्रिटिश सम्राट् विराजमान है और उसके नीचे उपनिवेश हैं।

यद्यपि कानूनी दृष्टिसे यह कहा जा सकता है कि उप-निवेश स्वराज्य भोग रहे हैं, तथापि आर्थिक दृष्टिकोणसे विचार करनेपर यह सर्वथा स्पष्ट है कि इन उपनिवेशोंपर आर्थिक साम्राज्यवादका प्रभाव है। श्री मानवेन्द्रनाथ रायने लिखा है :—

"साम्राज्यवाद कानूनकी प्रणाली नहीं है। इसलिए कानून द्वारा उसका विनाश नहीं हो सकता। साम्राज्य-वाद एक आर्थिक प्रणाली है। वह उस समय तक ऐसा ही रहेगा, जब तक कि उसका आधार आर्थिक बना रहेगा। वस्तुतः आधुनिक साम्राज्यवादी आधिपत्यके निमित्त राज-नीतिक नियन्त्रण जरूरी नहीं है। एक देशको राजनीतिक स्वाधीनतासे वञ्चित किये बिना भी उसे साम्राज्यवादी आधिपत्यमें रखा जा सकता है। चीन इसका सबसे प्रमुख उदाहरण है। अपने उपनिवेशोंमें राजनीतिक सत्ता स्थापित किये बिना अमेरिकन साम्राज्यवाद अत्यन्त सफलतापूर्वक अपना काम कर रहा है। अधिकांश लैटिन-अमेरिकन रिपब्लिक राज्य अमेरिका (संयुक्तराज्य) के उपनिवेश हैं।"

इस बातको और भी स्पष्ट करते हुए श्री एम० एन० रायने भारतकी आर्थिक स्वाधीनताके सम्बन्धमें अपने जो विचार प्रकट किये हैं, वे विचारणीय हैं :—

"भारतकी जनताके लिए राजनीतिक स्वाधीनता न तो गौरवकी बात है और न सम्मानकी। उसके लिए स्वाधीनता-का एक आर्थिक महत्त्व है। भारत और इंगलैण्डके स्थापित सम्बन्धोंका असल परिणाम है पहले द्वारा दूसरेको २ अरब ५० करोड़ रुपये सालानाकी भेंट। इस धन-राशिमें केवल व्यापारसे लाभ ही शामिल नहीं है, प्रत्युत् ऋणोंपर व्याज और भारतमें उद्योग-व्यवसायमें लगी पूंजीपर लाभ भी शामिल है। ये आर्थिक सम्बन्ध निजी कारोबारमें शामिल माने जाते हैं और दोनों देशोंके राजनीतिक और कानूनी सम्बन्धपर विचार करते समय इसपर विचार नहीं किया जाता। फलतः इन सम्बन्धोंके पुनर्निर्धारणसे किसी प्रकार भी प्रमुख आर्थिक सम्बन्धपर असर न पड़ेगा, जिसका अर्थ होगा भारतकी जनताका औपनिवेशिक शोषण। इसलिए औपनिवेशिक स्वराज्य एक कानूनी कल्पना ही नहीं होगी, बल्कि यह एक महान् राजनीतिक धोखा होगा, जिससे भारतको, जहां तक उसका जनतासे सम्बन्ध है, स्वाधीनता न मिलेगी।"

यद्यपि लाहौरमें 'पूर्ण स्वराज्य'का ध्येय कांग्रेसने स्वीकार किया, तथापि तबसे महात्मा गांधी सदैव 'पूर्ण स्वराज्यके सार'की मांगपर ही जोर देते रहे। परन्तु महात्मा गांधीने आज तक 'पूर्ण स्वराज्यके सार'का स्पष्ट अर्थ जनता-को नहीं बतलाया। जनताका ऐसा विचार बन गया कि यदि भारतको औपनिवेशिक ढङ्गका स्वराज्य मिल जायगा, तो गांधीजी उसे स्वीकार कर लेंगे। गांधीजी भी यही सोचते थे कि वेस्टमिनिस्टर कानूनका औपनिवेशिक स्वराज्य पूर्ण स्वराज्यके बराबर ही है। परन्तु हाल ही में महात्मा गांधीने यह साफ तौरसे घोषित कर दिया है कि वह औप-निवेशिक स्वराज्यको पूर्ण स्वराज्यसे कम मानते हैं। अपने एक लेखमें गांधीजीने लिखा है :—

"मैंने यह सोचा था कि वेस्टमिनिस्टर कानूनके अनुसार औपनिवेशिक स्वराज्य स्वाधीनताके बराबर था। औप-निवेशिक स्वराज्यका एक विशेष अर्थ है। वह श्वेताङ्गोंके राष्ट्रसङ्घकी ओर सङ्केत करता है, जो स्वयं साम्राज्यवादके स्तम्भ हैं और जो उन गैर-यूरोपियन जातियोंके शोषणमें लगे हुए हैं, जिन्हें वे असभ्य समझते हैं। स्वाधीन भारत इस प्रकारके शोषणमें हिस्सा न लेगा। परन्तु स्वतन्त्र भारतको ब्रिटेनके साथ समस्त राष्ट्रोंकी स्वाधीनता (जिनमें काले, भूरे व श्वेत शामिल हैं) की रक्षाके लिए सम्बन्ध रखनेमें कोई बाधा नहीं है। यदि औपनिवेशिक स्वराज्य, स्वाधीनतासे कम है, तो भारत इससे कमसे सन्तुष्ट न होगा। यदि वह स्वाधीनताका पर्याय है, तो यह भारतको निश्चय करना है कि वह अपने पदका निर्धारण कैसे करेगा।" (हरिजन, २ दिसम्बर १९३९)

उपर्युक्त विवेचनसे यह सर्वथा स्पष्ट है कि औपनिवेशिक स्वराज्य और पूर्ण स्वराज्यमें विशाल अन्तर है—मौलिक अन्तर है।

आज बांसुरी बोल उठी है!

आज बांसुरी बोल उठी है!
युग-युगसे जो मौन पड़ी थी,
धैर्य-सहारा दिये खड़ी थी,
आज किसीके पग रखते ही परस-फूंकसे डोल उठी है!

रन्ध्र-रन्ध्रको बन्द किया था,
रुद्ध प्राणका छन्द किया था,
किन्तु आज स्वर-घटके बन्धन कौन विकलता खोल उठी है!

सजल मोहके उमड़े घन-गन,
थिरकी रे अभावकी कसकन,
हाय! मदिर किसकी पगध्वनि यह विद्युत्-तड़पन घोल उठीहै!

उर-व्रणने आंखें खोली हैं,
तृष्णायें आंसू-घोली हैं,
किसके श्वासोंकी कोकिल सूनेमें आज किलोल उठी है!

तम-आवृत मनकी गहराई,
नाप उसे कब मैं थी पायी,
किन्तु दृग-किरण कौन उतरकर अन्तस आज टटोल उठीहै!

पलकोंकी सावन-रातोंमें,
हरी पीरके तरु-पातोंमें,
डुबकी विह्वलताका मानस कौन झकोर हिंडोल उठी है!

मेरे भूले-से जगमगमें,
छालोंसे पूरित पग-पगमें,
अश्रु गिरा, सहला देनेका कङ्करियां कर मोल उठी हैं!

आज बांसुरी बोल उठी है!

—सुमित्राकुमारी सिनहा।

पशु-पक्षियोंकी भाषा

श्री आत्मानन्द मिश्र एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

कपिवर हनूमान, रिक्षपति जामवन्त, गृद्धराज जटायु आदि सभी रामायणमें मनुष्योंसे भाव-विनिमय करते हुए दिखाये गये हैं। पता नहीं कि उस समयके समग्र जीव एक ही भाषाका व्यवहार करते थे अथवा मनुष्योंमें पशु-पक्षियों-की बोली समझनेकी क्षमता थी। बहुत सम्भव है कि मनुष्य पहले अन्य जीवोंकी भाषा जानता हो; किन्तु कालान्तर पाकर सब भूल गया हो। भारतमें प्रचलित कादम्बरी, पञ्चतन्त्र एवं हितोपदेश आदिकी अन्यान्य कहानियां कुछ अंश तक इसी सम्भावनाकी ओर सङ्केत करती हैं। एसफ्सकी कहानियां भारतीय कहानियोंका विलायती संस्करण-मात्र ही कही जाती हैं और उनमें भी पशु-पक्षी आपसमें तथा मनुष्योंसे बोलते दिखाये गये हैं। बहुत समय नहीं हुआ, जब लोग देवताओंके विमानोंकी चर्चा सुनकर हंस दिया करते थे। उनका वायुमें चूहे, गरुड़ तथा नन्दीके आकारके विमानोंपर आकर पुष्पवर्षा करना नितान्त असम्भव समझा जाता था। किन्तु आज अंगरेजोंको हवाई जहाजपर चीलके आकारमें उड़ता देख सभी लोग विमानोंका होना सम्भव समझने लगे हैं। इसी प्रकार हम आजके वैज्ञानिकोंको पशु-पक्षियोंकी बोली समझनेकी चेष्टा करते देख यह कह सकते हैं कि हमारे पूर्वज वाणी-विद्यामें भी निपुण थे।

कुछ दिन हुए, डाक्टर जूलियन हक्सलेने एक पुस्तक 'जानवरोंकी भाषा'के सम्बन्धमें लिखी थी, जिसमें श्रीमती यलाने चित्रोंके एकत्र करने तथा श्री लड्विग कोचने रिकार्ड बनानेमें पर्याप्त सहायता की थी। उसको पढ़नेसे पाठकको ज्ञात होगा कि डाक्टर हक्सले वैक्टीरियाके ऊंटकी बोलीके विषयमें क्या कहते हैं, यलाके बनाये चित्रोंको देखकर वह नाना प्रकारकी बोली बोलते हुए ऊंटोंका अध्ययन कर सकेगा तथा कोचके रिकार्ड्सको ग्रामोफोनपर लगाकर वह ऊंटको बोलते हुए स्पष्ट सुन लेगा। ये रिकार्ड तथा चित्र पुस्तकके साथ ही मिलते हैं, जिसका मूल्य २१ शिलिङ्ग है। एक महाशयने इसे मोल लेकर अर्द्ध रात्रिमें अफ्रीकाके कुछ जङ्गली जानवरोंकी बोलीका रिकार्ड लगाया और उसे शब्द-बर्द्धक यन्त्रसे जोड़ दिया। फल यह हुआ कि आसपासके लोग बहुत शङ्कित हो उठे और सबने मिलकर इन जन्तुओंका सामना करनेका प्रयत्न किया। सैकड़ों नर-नारी अपने मकानोंकी छतोंपर बन्दूक और भाला आदि लेकर चढ़ गये, बहुतोंने अपनेको कमरोंमें खूब मजबूतीसे बन्द कर लिया तथा कुछ डरसे चिल्लाने लगे। किन्तु जब यह ज्ञात हुआ कि यह आवाज ग्रामोफोनसे आ रही है, तो बड़ी हंसी रही और सब शान्तिपूर्वक सोने चले गये।

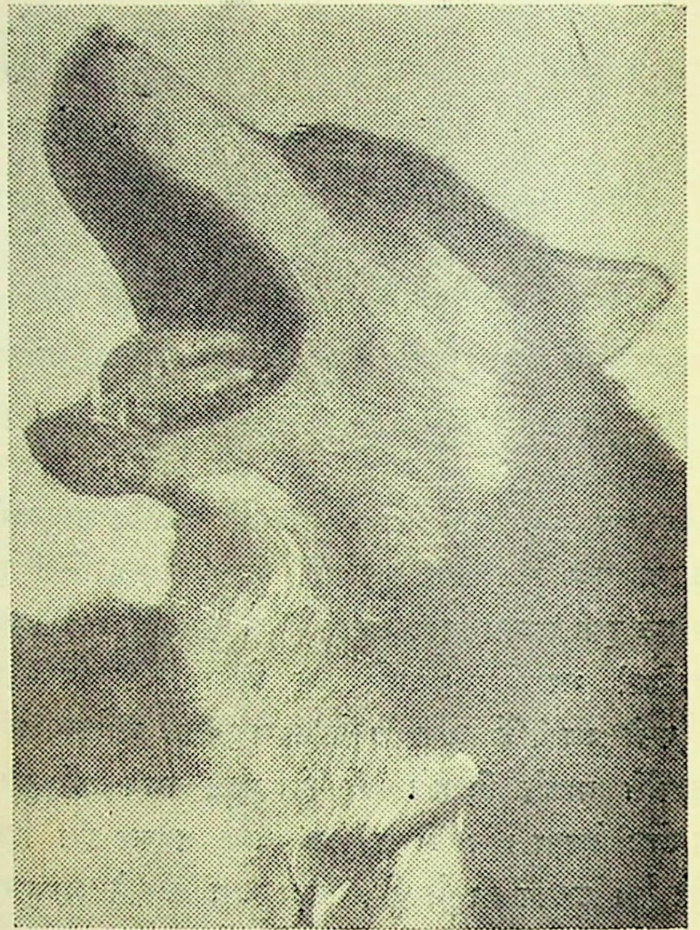
बहुत-से लोग समझते हैं कि लगभग सभी जीव छोटेसे लेकर बड़े तक वाणी रखते हैं। यह उनकी भूल है। जीवधारियोंका एक बहुत छोटा अंश बोलनेकी शक्ति रखता है। सहस्रों तथा करोड़ोंकी संख्यामें दृश्य तथा अदृश्य कीड़े और कीटाणु बिना बोले ही संसारमें अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं। उनका सारा जीवन निस्तब्धतापूर्ण होता है। न वे स्वयं किसी प्रकारकी ध्वनि कर सकते हैं और न दूसरों द्वारा किये हुए रवको सुन ही सकते हैं। इन अगणित कीटाणुओंको छोड़कर जब तक हम मकड़ी, मच्छर और केकड़ा आदि तक नहीं पहुंचते, तब तक हमें ध्वनि-उत्पादनकी चेष्टा करनेवाले जीव नहीं मिलते हैं। बहुधा देखा गया है कि बांसुरीकी ध्वनिपर अथवा ट्यूनिङ्गफोर्ककी भनभनाहटपर मकड़ी मक्खी-के भ्रममें पड़कर दौड़ पड़ती है। किन्तु मकड़ीके भी कान होते हैं, यह एक सन्दिग्ध बात है। घास-निवासी टिड्डा तथा उसके समान अन्य जन्तुओंमें हमें कानके आकारका यन्त्र मिलता है तथा हम उन्हें ध्वनि उत्पन्न करनेका प्रयत्न करते पाते हैं। बहुत-से टिड्डोंके पेटमें कान अथवा जांघोंमें तवा—सुननेके लिए एक भद्दा यन्त्र—होता है। जब कभी वे अपने शरीरके विभिन्न अवयवोंको रगड़कर ध्वनि उत्पन्न करते हैं, तब यह कान या तवा कांपने लगता है।

जीव-जन्तु अपने मनोवेग तीन प्रकारसे व्यक्त करते हैं—ध्वनि द्वारा, सङ्केत द्वारा तथा हाव-भाव द्वारा। ये युक्तियां सभीमें समान रूपसे नहीं पायी जातीं। जिन जीवोंको समूह या गिरोहमें रहनेका अवसर मिलता है, उनकी भाषा अधिक

उन्नत एवं व्यापक होती है। वे भाषाका प्रयोग विशेषकर मादाकी स्वाभाविक खोजमें करते हैं। अधिकांश नर जीव ही अपनी मादाकी खोज करते तथा उन्हें फंसाकर अपने साथ रखनेका प्रयत्न करते हैं, अतएव नरमें ही जीव-भाषा अपनी श्रेष्ठावस्थामें पायी जाती है। बहुधा यह भी देखा गया है कि कीड़ोंके नरवर्गमें ही बोलनेकी शक्ति है, मादा आजीवन मौनव्रती रहती है। नर अथवा मादाको फंसानेमें सङ्केतात्मक भाषा एवं ध्वनि दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। कभी-कभी शरीरकी विभिन्न आकृतियां सावधानीके चिह्नका कार्य करती हैं। जीवोंमें दूसरे प्रकारकी भाषा बच्चेवाली मादामें पायी जाती है। वह अपने बच्चोंको खिलाने तथा उन्हें आपत्तिसे आगाह करनेमें एक विशेष भाषाका प्रयोग करती है, जो उस भाषासे भिन्न है, जिसका जीव अपने समवर्गमें तथा समूहमें प्रयोग करते हैं। तीसरे प्रकारकी जीव-भाषा युद्ध-भाषा कही जा सकती है, जो आक्रान्त तथा विरोधक द्वारा उस समय प्रयुक्त होती है, जब वे सरोष एक-दूसरेपर आक्रमण करते अथवा अपने बचाव एवं सहायताके लिए चिल्लाते हैं।

यह बात तो स्पष्ट ही है कि जीव-भाषाका विकास उसी दशामें हो सकता है, जब कि बोलनेवाले जीवमें सङ्केत एवं ध्वनियां उत्पन्न कर सकनेकी सामर्थ्य हो तथा सुननेवाला जीव उन्हें देखकर अथवा श्रुति-पुटमें पड़नेपर उनका तात्पर्य समझ सके। ध्वनि-भाषा तभी समझी जा सकती है, जब सुननेवाले जीवके कान हों। सभी जीवोंके कान तथा ध्वनि करनेकी शक्ति नहीं होती। अतएव जीवों द्वारा किये जानेवाले प्रत्येक रव, दृश्य सङ्केत तथा हाव-भावको बिना समझे हम सार्थक जीव-भाषा नहीं कह सकते।

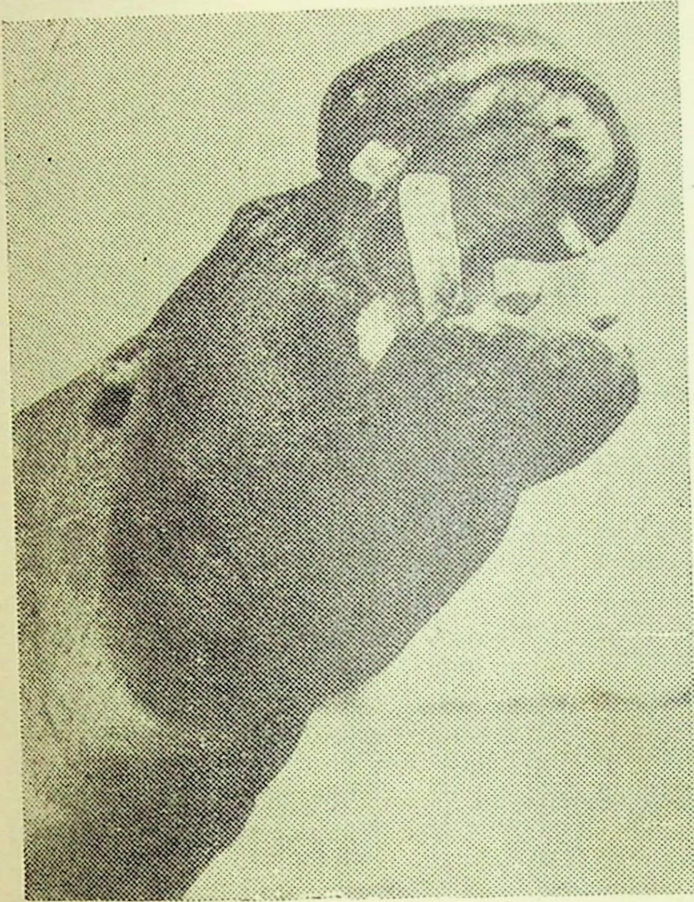
जीवोंकी बोली मनुष्योंकी बोलीसे कई बातोंमें भिन्न है। जब कभी हम बोलते अथवा सङ्केत करते हैं, तो हमारा अभिप्राय अपने मनोगत भावों तथा इच्छाओंको व्यक्त करना रहता है; किन्तु जीवोंकी बोलीमें पहलेसे कोई निर्दिष्ट अभिप्राय नहीं रहता। उनका बोलना एक मनोवैज्ञानिक परिस्थित-विशेषके उत्पन्न हो जाने तथा किसी उद्वेगके होनेके कारण होता है। दूसरा जीव जो इस ध्वनिको सुनता है, इसके कोई निश्चित अर्थ लगानेमें सर्वथा असमर्थ होता है और यह भी नहीं समझ सकता कि वह ध्वनि किसी निर्दिष्ट उद्देश्यसे की गयी है।



कुत्ता भली भांति जानता है कि उच्च स्वर करनेके लिए अधिक से अधिक मुंह खोलना आवश्यक है।

जीवोंकी भाषामें ध्वनि केवल एक उत्तेजना है, जिसे हम सङ्केत एवं सावधान करनेका चिह्न-मात्र ही कह सकते हैं। उसको सुनकर दूसरे जीवोंमें प्रतिक्रिया हो सकती है। इस अर्थमें ही जीवोंकी भाषा विचार-विनिमयका साधन कही जाती है। उसका इससे अधिक महत्त्व नहीं। बहुधा देखा गया है कि इस सङ्केतात्मक भाषाका उत्तर-प्रत्युत्तर ठीक ही होता है। उच्च श्रेणीके जीवोंमें तो विशेष ध्वनि भाव-विशेष व्यक्त करनेमें ही प्रयुक्त होती है; यदि जीवको किसी वस्तुका बोध कराना है, तो वह सदा एक विशेष प्रकारकी ही ध्वनि करके उस वस्तुका बोध करायेगा।

बच्चोंको दूध पिलानेवाले जीव अपनी कण्ठनलीसे ध्वनि करते हैं। उनकी भाषामें विनती करने, सावधान करने तथा मादाको बुलानेकी ही ध्वनियां होती हैं। अश्वको ही लीजिये, वह कई प्रकारकी ध्वनि करता है। वह साधारणतः हिनहिनाता है, प्रसन्न होनेपर एक विशेष प्रकारसे हिनहिनाने-



घुरघुरानेसे आरम्भ करके दरियाई घोड़ा सहसा दहाड़ उठता है।

का शब्द करता है और कभी-कभी घर्घर शब्दका भी उच्चारण करता है। घोड़ी इसके अतिरिक्त किकियाती भी है। कुत्ते भूंकते हैं, गुर्राते हैं, टर्राते हैं, पीड़ा होनेपर कराहते हैं और विरही होनेपर रोते भी हैं। वे इन ध्वनियोंमें इच्छानुसार कम या अधिक भारीपन, चढ़ाव-उतार और चिल्लानेके समय परिवर्तन कर लेते हैं। बन्दरोंकी भाषापर कई बार खोज हुई है। सन् १९०० ई० में गार्नर महोदयने बन्दरोंकी बोली समझनेके लिए प्रथम बार फोनोग्राफका प्रयोग किया था। उन्होंने तीन विभिन्न प्रकारकी ध्वनियां बन्दरोंमें ढूंढ़ निकाली थीं, जिनके करनेके अर्थ तथा उद्देश्य एक-दूसरेसे भिन्न थे। ध्वनिके अतिरिक्त दूध पिलानेवाले जीवोंकी सङ्केतात्मक भाषा भी बहुत कुछ विकसित है, जिसका पूरा प्रमाण बन्दरोंमें ही मिलता है। प्रत्येक जातिके बन्दरमें एक विशेष प्रकारकी स्वाभाविक भाषा, अधर-सङ्केत तथा शरीर-को तोड़-मरोड़कर भाव व्यक्त करनेकी सामर्थ्य होती है। टेनरिफका शिम्पाञ्जी जब प्रसन्न होता है, तब 'ओख-ओख' कहकर चिल्लाता है; जब दुखित होता है, तो गम्भीर 'ऊ-ऊ' शब्द करके रोता है और जब दूसरोंके प्रति सहानुभूति प्रकट करता है, तो ई-ई की ध्वनि करता है।

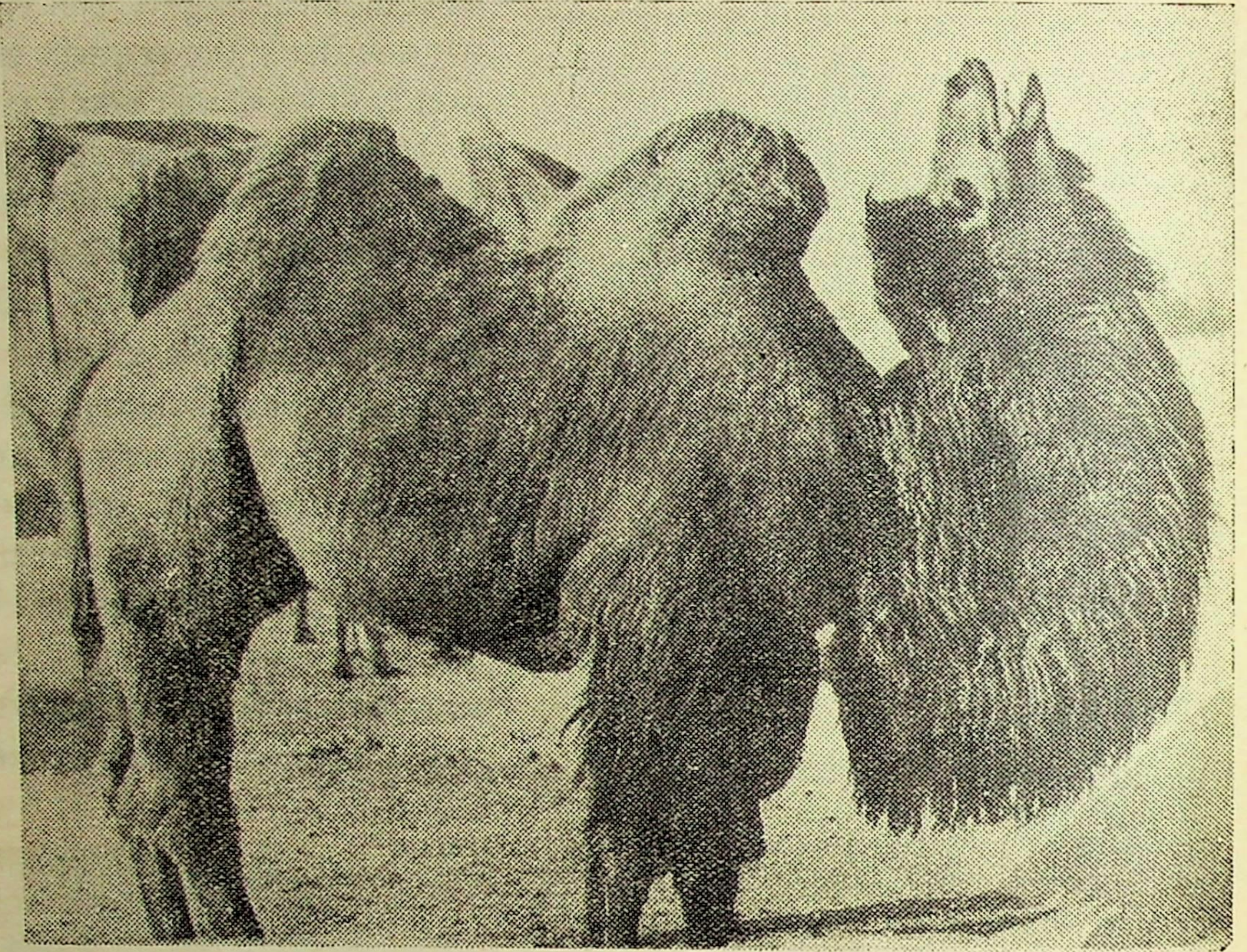
पशु-पक्षियोंमें सबसे अधिक श्रेष्ठ और स्पष्ट भाषा बन्दरों-की है; किन्तु उसका भी विकास और उन्नति नहीं हो सकी। इसका कारण सम्भवतः यह है कि जीव-भाषा किसी समय-विशेषपर उत्पन्न होनेवाली उत्तेजना, आवेग तथा मनोवृत्ति-की तात्कालिक अभिव्यक्ति ही होती है। उसमें यथार्थता एवं वस्तुका ज्ञान करानेकी क्षमता नहीं। अतएव जीवोंकी भाषामें कोई शब्दावली अथवा सङ्केतावली नहीं होती। उनका उद्देश्य केवल किसी क्षणपर उत्पन्न होनेवाले प्रबल उद्वेगोंको तत्काल व्यक्त कर देना ही रहता है, जिसमें मान-सिक तर्क एवं विवेकका कोई स्थान नहीं। वे जीव भी, जिनमें अनेक प्रकारके शब्द तथा सङ्केत करनेकी शक्ति होती है, आपसमें बातचीत करते हुए कभी नहीं देखे गये हैं।

जैसे-जैसे हम छोटे जीवोंसे बड़े जन्तुओंकी ओर बढ़ते हैं,



अरबका उंट बलबलानेमें मस्त है।

इसमें उनकी भाषामें उन्नति होती दिखाई देती है। दादुर-ध्वनिसे तो सब परिचित ही हैं। यह वर्षा आते ही जोड़ा ढूंढ़नेके लिए की जाती है, तत्पश्चात् 'वेद पढ़नेवाले बटु समुदाई' मौन व्रत धारण कर लेते हैं। ग्रीष्मदेशोंमें कहीं कहीं एक ऐसा मेढक भी पाया जाता है, जो कि 'ऋतु-काल' समाप्त होनेपर अपनी कण्ठ-नलीमें मादा द्वारा उत्पन्न अण्डोंको तब तक सेता रहता है, जब तक कि वे फूटकर बच्चे नहीं हो जाते।



बैक्टीरियन ऊंट मुंह उठाकर रेगिस्तानी गाना गा रहा है।

यद्यपि रेंगनेवाले जीव मेढकसे कहीं उच्च श्रेणीके हैं; किन्तु वे उससे धीमे स्वरसे ही बोलते सुने गये हैं। मगर, घड़ियाल तथा छिपकलियां स्पष्ट बोलती हैं; किन्तु सांप तो बिलकुल बहरे ही पाये गये हैं। सपेरेका महुअर बजाकर उसे उत्तेजित करना जनताको केवल धोखा देना है। सांपके कान नहीं होते, अतएव वह सुन नहीं सकता।

पक्षियोंमें यद्यपि अनेक सुमधुर एवं मनोरम शब्द करनेवाले जीव हैं; किन्तु सुग्गा और मैना ही मनुष्योंकी बोलीकी नकल कर लेते हैं। विशेषकर भारतीय शुक और भारतीय सारिका ही इस नकलमें संसारके समस्त पक्षियोंसे श्रेष्ठ गिने जाते हैं। भारतीय मैनाके देखनेके लिए लन्दनके चिड़िया-घरमें बड़ी भीड़ लगी रहती है। वह बड़ी स्पष्टता एवं सुगमतासे दूसरोंकी ध्वनिकी नकल कर लेती है। एक बार इस मैनाने एक फुटबालका खेल होना दुर्लभ कर दिया। उसको पञ्चकी सीटी बजानेकी कुछ ऐसी धुन सवार हुई कि उसने दो-दो, चार-चार मिनटके अन्तरपर बिलकुल पञ्चकी सीटीकी भांति सीटी बजाना आरम्भ किया। खिलाड़ी बार-बार यही समझते रहे कि पञ्च सीटी बजाता है, अतएव गेंद रोक देते थे। पञ्च भी बड़े चक्करमें आये। बड़ी देरमें यह रहस्य खुला कि दोनोंमेंसे कोई भी पञ्च सीटी नहीं बजाता है, वरन् एक सरपञ्च सारिका चिड़िया-घरसे आवाज करती है।

चौपायोंमें शायद ही कोई जानवर ऐसा हो, जो बोलनेकी शक्ति न रखता हो। कुछ जातिके हिरन और अफ्रीकाकी साही केवल मादाको खोजनेके समय ही ध्वनि करते हैं, जो बाजेकी-सी होती है। कुछ हिरन रंभानेके स्थानपर अपने पीछेके दांत रगड़कर किकियानेका शब्द करते हैं। साही अपने कांटोंको बड़े वेगसे हिलाकर खड़खड़ाहट उत्पन्न करती है। चाहा पक्षी ऊपरसे उतरते समय नगाड़ेका शब्द करता है, जिसके

समझनेमें वैज्ञानिकोंको बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। अब यह ज्ञात हुआ है कि पक्षी अपनी पूंछके परोंको एक विशेष प्रकारसे फैलानेमें यह शब्द करता है। यदि उसके पर काट-कर लकड़ीपर लगाये जायं और वह शीघ्रतासे घुमायी जाय, तो ठीक वैसा ही शब्द होता है।

सिंहका निरीक्षण करनेसे ज्ञात हुआ है कि वह छः प्रकारके शब्द कर सकता है, उसका दहाड़ना जो हम बहुधा सुनते हैं, केवल उत्तेजित अवस्थाका द्योतक है अथवा अपने शिकारको मारकर छोड़ देनेकी सूचना है। चीता सिंहकी अपेक्षा कम दहाड़ता है। बड़ी बिल्लियां, विशेषकर कुछ अफ्रीकामें पायी जानेवाली, मुंह बन्द करके नाकसे एक विचित्र प्रकारका शब्द करती हैं।

लोग लकड़बघ्घाके भयानक हंसनेको भली भांति जानते हैं; किन्तु यह उसका स्वाभाविक शब्द नहीं है। वह बहुधा शिकार मारनेपर प्रसन्नता प्रकट करते समय अथवा किसी शत्रुको अपने राज्यमें घुसते देखकर विरोधमें अपना प्रसिद्ध रव करता है। यह रव करना चितकबरे लकड़बघ्घाको अधिक प्रिय है। भेड़ियोंका अर्द्ध रात्रिका गाना बड़ा ही मनोरञ्जक होता है। वे बन्दरोंकी भांति चिड़चिड़ानेसे आरम्भ करते हैं, जिसे क्रमशः बढ़ाकर एक ऐसे भयानक रवमें परि-णत कर देते हैं, जो समग्र वनमें गूंज उठता है। तत्पश्चात् फिर वही चिड़चिड़ाना और अन्तमें शान्तिका राज्य होता है।

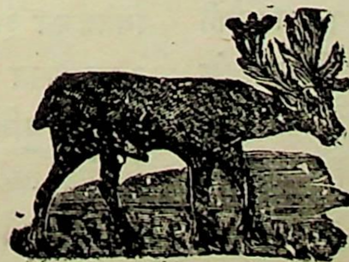
इन सबके विपरीत बहुत-से जीव अपने पैरोंसे विभिन्न प्रकारकी ध्वनि उत्पन्न करते हैं। खरगोश, कंगारू, लामा तथा भेड़ पालतू और जङ्गली दोनों ही बहुधा अपने पैरोंसे एक विचित्र रव करके दूसरोंको सावधान तथा भयभीत कर देते हैं। भेड़का जब कभी किसी शत्रु कुत्तेसे सामना पड़ जाता है, तो वह इस शब्दको इतने जोरसे करती है कि वह युद्ध-नगाड़ेकी भांति सुनाई देता है।

बहुत-से बड़े जीव भी बड़ा सुन्दर रव करते हैं। नीलका दरियाई घोड़ा अपने आवेगको व्यक्त करनेमें एक पड़ाकेके समान दहाड़नेका शब्द करता है तथा लीबियाका छोटा दरियाई घोड़ा दहाड़ना आरम्भ करनेके पूर्व फड़फड़ाता-सा है। हाथी केवल चिग्घारता ही नहीं, वरन् अपने चित्तक्षोभ-को प्रदर्शित करते समय एक विशेष प्रकारका घड़घड़ाता हुआ शब्द करता है, जिससे ऐसा जान पड़ता है कि मानो हाथीके गलेमें नगाड़ा अटक गया हो।

अरबका ऊंट चिल्लाता है, गुर्राता है तथा बलबलाता भी है। कभी-कभी वह घोड़ेकी भांति शब्द भी करते सुना गया है। बैक्ट्रीरियाका ऊंट एक विचित्र प्रकारका बलबलाता हुआ गानेका शब्द उत्पन्न करता है। उस समय उसकी बालदार गरदन और ऊपर उठा हुआ मुंह देखने ही योग्य होता है। जेबरा अपनी स्वाभाविक बोलीमें मस्त रहता है। एक बार उसके सम्मुख जेबराकी बोलीका एक रिकार्ड लगाया गया, तो वह चौकन्ना होकर तथा कान खड़े करके उसे बड़े ध्यान-से सुनता रहा।

श्री हक्सलेका कहना है कि जीवोंका बड़ा और छोटा होना उनकी बोलीसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रखता। बहुत-से छोटे जानवर ऐसा शब्द करते हैं, जो बड़े जानवर नहीं कर पाते, तथा बहुत-से बड़े जानवरोंका ध्वनि करनेमें बुरा हाल है। ह्वेल मछली तथा लकड़हरना (जिराफ्) लगभग चुप ही रहते हैं। उल्लू तथा फल खानेवाले चमगा-दड़ बड़ा भयानक शब्द करते हैं।

मनुष्योंकी बोलीके सबसे अधिक निकट आनेवाली भाषा बन्दरोंकी है, शुक और सारिका केवल नकल ही कर सकते हैं, अपनी ओरसे कोई सङ्केत या ध्वनि मनुष्योंके समान नहीं करते। वैज्ञानिक बन्दरोंकी भाषाका अध्ययन करके उसे क्रमबद्ध करने तथा समझनेका प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु इस-में उन्हें अभी पूर्ण सफलता नहीं मिली। सत्य ही कहा गया है कि "खग जाने खग ही की भाषा।"



आर्थिक व्यवस्थाका नैतिक आधार

प्रो० प्रेमचन्द मलहोत्रा, एम० ए०

साधारण रूपसे अर्थशास्त्र सम्पत्तिका शास्त्र है। परिमित अर्थमें धन केवल उन पदार्थोंकी ओर सङ्केत करता है, जिनका विनिमय मूल्य हो। परन्तु यदि आर्थिक प्रयत्नके दृष्टिकोणसे देखें, तो धन वह पदार्थ है, जो जन-साधारणकी कुशलताका कारण बनता है। अर्थशास्त्रके व्यावहारिक अङ्गमें यदि धनके इस लक्ष्यको ओझल कर दें, तो इसका परिणाम दण्ड होगा—और यह दण्ड सामाजिक अन्याय, सामाजिक अव्यवस्था तथा जीवनका दैन्य आदि रूप धारण करता है। और यदि आर्थिक प्रयत्नके निर्दिष्ट मुख्य उद्देश्यकी निरपेक्षता की जावे, तो ऐसा करनेके फल अदृश्य, पर सञ्चित होंगे, जो कि समय आनेपर दुर्घटनाके रूपमें एकदम प्रकट होंगे।

यह विचार कि द्रव्य अथवा मुद्रा धनका पर्यायवाची है, एक भ्रम है, जिसने अर्थशास्त्रके वास्तविक ध्येयको समझनेमें बाधा डाली है। अरस्तूने इकोनोमिक्स और क्रिमेटिस-टिक्स (Chrematistics) में विशेष भिन्नता बतायी। इकोनिमिक्स तो जीविका कमानेकी कला है और क्रिमे-टिसटिक्स धन सञ्चय करने तथा धनाढ्य बननेकी। रसकिनने भी राजनीतिक अर्थशास्त्र (पोलिटिकल इकोनोमिक्स) और व्यावसायिक अर्थ-शास्त्र (मरकेण्टाइल इकोनोमिक्स) में भेद बतलाया है। अर्थशास्त्रमें लाभदायक तथा आनन्द देनेवाली वस्तुओंका उत्पादन, सञ्चय तथा विभाजन शामिल है और मरकेण्टाइल इकोनोमिक्स व्यक्तियोंका जनसाधारणके श्रम-पर अधिकार तथा ऐसे अधिकारका थोड़े-से व्यक्तियोंके आधिपत्यमें इकट्ठा होनेसे अभिप्राय रखता है। ऐसी अवस्थामें एकका अमीर होना दूसरेकी निर्धनताका हेतु बनता है।

अर्थ-शास्त्र मनुष्यके उन प्रयत्नोंसे सम्बन्ध रखता है, जो कि धनोत्पादन तथा मनुष्योंकी आवश्यकताओंकी तृप्तिके लिए किये जावें। धनके विनिमय तथा विभाजनके गौण स्थान हैं। परन्तु यह अप्रधान विषय आज आर्थिक मञ्चपर प्रतिष्ठित है और फलस्वरूप भिन्न-भिन्न आर्थिक व्यवस्थाओंमें विरोध उत्पन्न हो गया है। अतः इस बातका अनुरोध किया जा रहा है कि आर्थिक व्यवस्थाका पुनर्नि-र्माण होना चाहिए। इस मांगका कारण यह है कि अर्थ-शास्त्रको धनाढ्य बननेका शास्त्र तथा कला समझा गया, न कि जनताके हितकी वृद्धिका साधन। आरम्भकालीन अर्थ-शास्त्रज्ञोंकी यह भूल थी कि उन्होंने उत्पादनको ही आर्थिक प्रयत्नका आदि तथा अन्त माना। उपभोगका महत्त्व वे नहीं पहचान सके। उपभोग-शक्तिकी प्रधानताका अनुभव अभी हालमें ही हुआ है। इस कारण अर्थ-शास्त्रमें उत्पादन अभी तक अपना प्रभुत्व जमाये हुए है। उत्पादनके अनुचित गौरवका दुष्परिणाम आर्थिक मन्दी तथा आर्थिक सङ्कट हुए हैं। इस प्रसङ्गमें रसकिनके विचार विशेष अभिप्राय रखते हैं :—

उपभोग उत्पादनका सरताज है और किसी देशका धन वह है, जो उपभोग किया जावे। इस सारका स्पष्ट रूपसे न देखना एक बड़ी भूल है, जिसका दुष्परिणाम ब्याजके साथ अर्थ-शास्त्रियोंको भुगतना पड़ता है।

अमूर्त अर्थशास्त्र और मूर्त समस्यायें—सभी विज्ञान कल्पनाओंके आधारपर अध्ययन किये जाते हैं। अर्थ-शास्त्रने आर्थिक व्यक्ति (Economic man) की कल्पना की और काल्पनिक व्यक्तिको असली मनुष्य समझा। ऐसा करनेका अभिप्राय तो यह था कि आर्थिक नियमोंकी गवे-षणामें सुगमता हो। परन्तु जिस काल्पनिक व्यक्तिकी आर्थिक प्रयोगके लिए धारणा की गयी थी, कई अर्थ-शास्त्रियोंने अध्याहारसे यह समझा कि मनुष्य आदि और अन्तमें आर्थिक व्यक्ति ही है। अतः इस भ्रमजनक तर्कके आधारपर अनेक असत्य आर्थिक धारणाओंकी प्रतिष्ठा हुई। हस्तक्षेप न करनेकी नीति (Laissez-faire) को आर्थिक विवेकका अविच्छेद्य अङ्ग समझा गया है और व्यावहारिक आचरणका नियम माना गया।

आधुनिक आर्थिक जीवनकी समस्याओंका समाधान निरपेक्ष तर्कके द्वारा नहीं हो सकता। मजदूरोंकी समस्यायें, मालिक और नौकरका सम्बन्ध, वेतनका प्रश्न, बेरोजगारी

और वृद्धावस्थाकी पेन्शन, इन सब प्रश्नोंका हल पूर्ति और मांगके नियमोंसे नहीं किया जा सकता। इस प्रकरणमें रसकिनका पूर्वज्ञान वर्णनीय है :—

मछलियों और चूहोंका अधिकार है कि वे पूर्ति और मांगके नियमपर जीवन व्यतीत करें; किन्तु मनुष्य-समाजकी विशेषता यही है कि वह न्यायके आधारपर पारस्परिक जीवन बिताये।

वर्तमान समाज वर्ग-विभेदके आधारपर विच्छेदित है। मालिकों और मजदूरोंमें, साम्पत्तिक श्रेणी तथा श्रमजीवी श्रेणीमें सङ्घर्ष चल रहा है। गरीब वर्गकी शिकायतोंने शोषित वर्गमें जागृति उत्पन्न कर दी है। सामाजिक क्रान्तिका भय उपस्थित है। इस कारण निरपेक्ष अर्थशास्त्रियों (Classical Economist) के निश्चित किये हुए सिद्धान्तोंके प्रति संशय उत्पन्न हो गये हैं।

शमौलर (Schmoller) ने अपने विचार इन शब्दोंमें प्रकट किये थे—"केवल निगूढ़ सिद्धान्तोंके सम्मानके लिए असह्य कुरीतियोंका दिन-प्रतिदिन विकृत होनेसे रोकना स्थगित नहीं किया जा सकता और न आर्थिक स्वतन्त्रता (Economic Freedom) के वशीभूत होकर श्रमजीवियोंका शोषण ही सहा जा सकता है।" अर्थात् We do not wish, out of respect for abstract principles, to allow the most crying abuses to become daily worse or to permit the so-called freedom of contract to end in the actual exploitation of labour."

धनोत्पत्तिके क्षेत्रमें आर्थिक स्वतन्त्रताने पूंजीपतियोंका गुट, व्यवसाय-सङ्घ (Syndicate), ट्रस्ट, वृहदुद्योग-सङ्घ (kartell) बनवाये हैं। ये आर्थिक सङ्घ राजनीतिक बल भी प्राप्त कर लेते हैं। उपभोक्ता उत्पादकोंके सङ्घके सामने अतीव दुर्बल हैं। सम्पत्तिकी असमानता उन्नतिपर है और इसके दुष्परिणाम दिन-प्रतिदिन स्पष्ट रूप धारण कर रहे हैं।

इस लेखका ध्येय है कि अर्थशास्त्र केवल आर्थिक परिस्थितियोंका ही फलस्वरूप नहीं है ; किन्तु सामाजिक तथा नैतिक शक्तियोंका भी इसके उचित रूप बनानेमें प्रभाव पड़ता है। अभी तक अर्थशास्त्रके नियम अटल समझे गये थे। यह गलत धारणा है। आर्थिक सिद्धान्तोंका उस समयकी परिस्थितियों, उस देश तथा उस जातिकी विशेषताओंसे सम्बन्ध है, जिस वातावरणमें उनकी निर्धारणा हुई थी। औद्योगिक लयभङ्ग किसी विशेष औद्योगिक व्यवस्थाका लक्षण चाहे हो, पर यह अनादि कालके लिए लागू नहीं हो सकता। और यही उत्कर्षकी आशा है। श्रमजीवी अब रहटके कुत्तेवाले पद (Cog in the wheel status) से सन्तुष्ट नहीं रह सकता। अब तो यह आर्थिक व्यवस्थामें न्यायकी आशा करता है और उद्योगोंके चलानेमें अपना मत प्रकट करने तथा उनके प्रबन्धमें अपना अधिकार मांगता है। यह नयी मांग निर्दिष्ट स्वार्थोंको स्तब्ध चाहे करे; किन्तु सामाजिक शान्ति और आर्थिक उन्नतिके हितोंमें ऐसी पुनर्व्यवस्था आवश्यक है। हम एक नवीन सामाजिक व्यवस्थाकी दहलीजपर खड़े हैं। परिवर्तन हमें दिखाई दे रहे हैं। निरपेक्ष आर्थिक सिद्धान्तोंको परिवर्तनोंके मार्गमें रुकावटें नहीं डालने देनी चाहिए।

अर्थ-शास्त्र और नीति—अर्थ-शास्त्रका क्षेत्र जाननेके लिए हमारे लिए आवश्यक है कि हम अर्थ-शास्त्र और अन्य पारस्परिक सम्बन्धित विज्ञानोंके सम्बन्धका ज्ञान प्राप्त करें। अर्थ-शास्त्र सामाजिक विज्ञानोंके समूहका एक अङ्ग है। यहां हमारी अर्थ-शास्त्र और नीतिके घनिष्ट सम्बन्धकी उपेक्षा ही से अर्थ-शास्त्र व्यावहारिक रूपमें क्रिमेटिसटिक्स तथा व्यावसायिक शास्त्र बन जाता है।

प्रभुत्वकी इच्छा मनुष्यमें आभ्यन्तरिक है। प्रभुत्व अनेक प्रकारका है, जिसका स्वामित्व मनुष्यको विशेष बल प्रदान करता है। यदि किसी व्यक्ति तथा समूहके पास आर्थिक बल हो, तो भी उसका प्रभुत्व जम जाता है। ब्रट्रैण्ड रसेलके कथनानुसार केवल अर्थ-शास्त्र ही व्यवहारके लिए ठीक मार्ग नहीं दिखाता। शक्तिके विज्ञानके अध्ययनमें अर्थ-शास्त्र एक अङ्ग, प्रत्युत् प्रधान अङ्ग है।

बलसे भय उसके दुरुपयोगमें है। आर्थिक शक्तिका दुर्व्यवहार किया गया है। शोषित वर्ग अपने-आपको बचानेके लिए असमर्थ समझे; किन्तु शोषक वर्गके प्रति एक घृणा तथा प्रतिरोधका भाव अवश्य रखता है। इसी तरह सामाजिक अशान्तिके बीज बोये जाते हैं। बलको नीतिके अधीन रखना चाहिए। और ऐसे बलको अनर्थ करनेसे रोका जा सकता है।

अर्थ-शास्त्र और नीतिके सम्बन्धके बारेमें दो परस्पर विरोधी मत हैं। एक मतानुसार नीति-शास्त्र आर्थिक समस्याओंमें विशेष प्रभाव रखता है और दूसरे मतके अनुसार आर्थिक विषयोंमें नीति-शास्त्रका कोई प्रयोजन ही नहीं है। अर्थ-शास्त्रको अधिकार है कि वह अन्य शास्त्रोंके समान बाहरी कारणोंसे अप्रभावित रहकर तथा स्वतन्त्र रूपसे अपने विज्ञानका प्रसार करे। परन्तु उस ज्ञानके कार्यान्वित करनेमें नैतिक कर्तव्यकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। सर मैरियटके शब्दोंमें मनुष्यको निर्दय तथा निठुर चित्तवाला होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, जब वह वैज्ञानिक विश्लेषणके परिणामोंकी विधिपूर्वक रचना करे, विश्लेषणका विषय चाहे मनुष्यका रक्त हो या व्यवसाय हो।

("A man need not be callous or cold hearted because he formulates the results obtained by scientific analysis, whether tbe subject of analysis be human blood or the pnenonena of trade"— Sir Marriot.)

अर्थ-शास्त्र और वेतन-निर्णायक नीति—पूर्ति और मांगके नियमके आधारपर मालिक श्रमजीवियोंका शोषण करता है और न्यूनतम वेतन देता है। अभी तक तो अनिपुण श्रम (Unskilled labour) को ही मालिकोंके हाथोंसे संरक्षणकी आवश्यकता थी, क्योंकि ऐसे श्रमजीवियोंकी पूर्ति उनकी मांगसे अधिक थी। और क्योंकि वे लोग सङ्गठित नहीं थे, इस कारण सौदा दीन-पक्ष और शक्तिशाली पक्षमें ही था और स्वाभाविक तौरसे दीन पक्षको सौदेमें बट्टा लगता था। भारतवर्षमें शिक्षित बेरोजगारियोंकी स्थिति तो अब अनिपुण श्रम वर्गसे भी बुरी है। मालिक निर्दयतासे पूर्ति और मांगके नियमके आधारपर शिक्षित वर्गके वेतनोंमें कटौती करते जा रहे हैं। यदि इस प्रवाहको बहने दिया गया और हस्तक्षेप न करनेकी नीति अपनायी गयी, तो रहन-सहनके दर्जेमें क्रमागत अधोगति अनिवार्य है और अन्तमें स्थिति असह्य हो जावेगी। तब सफेदपोशी (White collar) पेशोंमें भी ट्रेड यूनियन बनेंगी।

वेतन-निश्चयके क्षेत्रमें यह आवश्यक है कि यह प्रश्न न्यायके दृष्टिकोणसे देखा जावे। श्रमी तो भूखों मरनेपर कोई भी वेतन स्वीकार कर लेगा, विशेषकर जब कि पूंजीपति श्रमियोंकी पारस्परिक प्रतियोगिताका पूरा-पूरा लाभ उठानेपर तुला हुआ है। किन्तु कार्यक्षमता, सन्तुष्ट कारीगरी, सामाजिक शान्ति तथा औद्योगिक न्यायके हितमें इस शोषणको रोकना चाहिए। वेतन निश्चय करनेमें पूर्ति और मांगके नियमोंको नीति और न्यायके सिद्धान्तोंमें ढालना चाहिए।

साधन और उद्देश्य—प्रोफेसर राबिन्सके मतमें अर्थ-शास्त्र मनुष्यके व्यवहारके उस अङ्गका अध्ययन करता है, जो कि साधनोंकी न्यूनतासे निर्दिष्ट लक्ष्य प्राप्त करे। इससे यह अनुमान किया जाता है कि अर्थ-शास्त्र लक्ष्योंके प्रति उदासीन है। परन्तु मानव-समाज परिणामोंसे उदासीन नहीं हो सकता। वह तो साधनों और परिणामों दोनोंको प्रभावित करनेका पक्षपाती है। व्यवहारमें हम परस्पर विरोधी लक्ष्योंकी इच्छा करते हैं। ऐसी स्थितिमें हमें नीतिको अपना निर्णायक बनाना चाहिए, नहीं तो परिणाम हानिकारक होंगे। हम सब उपभोक्ता और उत्पादक दोनों ही हैं; किन्तु हमारे हित समान नहीं हैं। उपभोक्ता होनेके कारण हम कम मूल्यपर खरीदना चाहते हैं और उत्पादक होनेके कारण हम न्यूनतम पैदा करना चाहते हैं। हम सस्ती दरपर द्रव्य और सस्ती कीमत, कमती आयात और अधिक व्यापारका आयतन, अधिक कार्यक्षमता और थोड़ी मजदूरी चाहते हैं। ये परस्पर विरोधी लक्ष्य एक तारमें तभी बांधे जा सकते हैं, जब कि नीतिके आधारपर आर्थिक क्रियाका निश्चय हो।

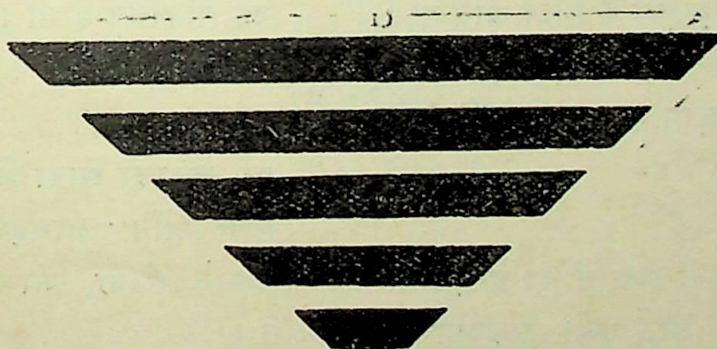
यन्त्र और मनुष्य—विज्ञानने मनुष्यको इतनी शक्ति दे दी है कि वह अपनेको दैत्य बना बैठा है। मानव-समाजके लिए कोई आशा नहीं है, जब तक कि शक्तिको सेवामें न लगाया जावे, और सेवा किसी विशेष वर्गकी नहीं; किन्तु सम्पूर्ण मानव जातिकी। विज्ञानने हमारे सामने चुनौती रख दी है कि या तो हम सब जीवित रहेंगे या सब नष्ट हो जावेंगे। यह चुनौती मशीनको नहीं, प्रत्युत् मनुष्यको स्वीकार करनी पड़ेगी। मनुष्यकी सेवामें मशीनका प्रयोग करनेकी कोई आपत्ति नहीं है। मशीन एक शक्ति है और यह शक्ति सर्व-हितकारी सिद्ध होनी चाहिए। आर्थिक शक्ति अन्य शक्तियोंके समान नीतिकी लगामसे ही काबूमें रखी जा सकती है।

दान : अर्थशास्त्र और नीतिके दृष्टिकोणसे— दानकी आवश्यकता या तो दोषयुक्त औद्योगिक व्यवस्था या औद्योगिक अन्यायके कारण होती है। दीन, अपाहिज, बूढ़े और बेरोजगार दानके पात्र समझे गये हैं। निर्धनोंको दानकी आवश्यकता इसलिए है कि उनके वेतन पेट पालनेके लिए भी पर्याप्त नहीं हैं। अपाहिजोंको दानकी यों आवश्यकता है कि उनको निकम्मी वस्तुओंके ढेरपर फेंक दिया गया है, बूढ़ोंको पेन्शन चाहिए, क्योंकि बुढ़ापेमें उन्हें आराम और जीविका दोनों चाहिए, बेकारोंको खैरात (Doles) चाहिए, क्योंकि उनकी समझमें यह नहीं आता कि जब वे काम करनेको तैयार हैं, तो उन्हें काम क्यों नहीं मिलता। दान दाताके अहङ्कारको बढ़ाता है और लेनेवालेको नीचा दिखाता है। अनुपम दान औद्योगिक न्याय है। यह न केवल दानको अनावश्यक बना देता है, बल्कि व्यावसायिक विश्वके उन अन्यायोंको निषेध करता है, जो कि निर्धनता और उसकी सहगामी समस्याओंकी जड़ होते हैं। आजकल बहुत कुछ दान धनाढ्योंको अपनी कलङ्कित आत्माओंकी प्रेरणा तथा उनको शान्त करनेकी इच्छासे ही किया जाता है। यदि कोई व्यक्ति व्यवसायोंके उचित सिद्धान्तोंपर चले और अपने नौकरोंसे न्याययुक्त व्यवहार करे, अपने वैभवमें मजदूरोंको भागी बनावे, चाहे वह प्रचलित अर्थमें दानी नहीं माना जावे; परन्तु सर्वोत्तम दान तथा परोपकार औद्योगिक न्याय है, जो चिरस्थायी उन्नति और शान्तिका निर्माता है।

जो अर्थशास्त्री अब भी नीतिको अर्थशास्त्रमें उचित स्थान देनेसे इनकार करते हैं, उनको यह बतलाना आवश्यक है कि व्यावहारिक अर्थशास्त्रके किलेमें नीति पहले ही घुस चुकी है। नहीं तो पेन्शन, बेकारोंको धनसे सहायता, न्यूनतम वेतनका कानून, वेतनके साथ छुट्टियां किस आधारपर उचित समझी जा सकती हैं? यदि कोई व्यक्ति बूढ़ा है तथा वृद्ध आयुके कारण काम नहीं कर सकता, तो उसको निकम्मा समझकर ठुकरा क्यों न दिया जावे? यदि कोई व्यक्ति बेकार है, तो उसे उसीपर क्यों न छोड़ दिया जावे? न्यूनतम वेतन कानून द्वारा निश्चित क्यों किया जावे? इन सब प्रश्नोंका उत्तर यही है कि इन प्रश्नोंमें नीतिको आर्थिक न्यायका मापक मान लिया गया है। इस मापकका व्यापक व्यवहार समयकी गतिसे बढ़ता जावेगा। जब समाजका अन्तःकरण चेतन हो जावेगा और जनसाधारण अपने अधिकारोंकी आप रक्षा कर सकेंगे, तब अर्थशास्त्र नैतिक तथा न्यायके नियमोंको कुचल नहीं सकेगा। किन्तु तब तक प्रतीक्षा करना मानव-समाजके लिए अपकारी होगा।

कामटेने कहा है, "हृदयका कार्य है समस्याओंका अनुभव कराना और मस्तिष्कका कर्तव्य है उनका समाधान करना......बुद्धिको समाजकी सेवाके लिए कटिबद्ध रहना चाहिए।"

———



जाड़ेकी धूप

श्री रामसरन शर्मा

कला सामने दीवारपर पड़ती धूपको देख रही थी।

पीली-सी, मुर्झायी-सी, जाड़ेकी धूप।

बराबरकी दीवालके कारण धूपका वह धब्बा साफ-सुथरा, कटा-सा था। कलाने देखा, धीरे-धीरे पीछेका सिरा खिसककर अगले सिरेको पकड़नेकी चेष्टा-सी कर रहा है।

किन्तु आगेका सिरा भी उतना ही आगेको बढ़ जाता था।

कलाकी तीस-पैंतीस वर्षकी आयु थी। पर, मानो बुढ़िया ही हो। बाल भी सफेद-से, उलझे, रूखे-से, मुखपर भी झुर्रियां—जान पड़ता था, जीवनकी विषाद-घटायें अपनी छाया सदाके लिए ही छोड़ गयी थीं।

घर भी मैला, पुराना-सा ही था। छोटा-सा कमरा, बानकी खाट, पलस्तर उखड़ा हुआ...

बिलकुल चुप्पी थी। कला भी चुप भी, घर भी, धूप भी।

कलाने अपने लम्बे—कितने लम्बे वर्ष बीत चुके थे—जीवनपर निगाह डाली। बहुधा ही तो वह ऐसा किया करती थी।

बहुत दिन हुए, जब वह बालिका थी।

सच ही। कोई तेरह सालकी। चञ्चल, खिलाड़ी... संसारमें केवल खेल, हंसी और शोर देखनेवाली।

कला सुखी थी। हां, यदि मांकी कभी-कभीकी डाट-फटकार...या, फिर सहेलियोंकी लड़ाईको न गिना जाये तो।

कलाके पड़ोसमें एक बालक—यही कोई पन्द्रह-सोलह वर्षका—आया। दूरके स्कूलमें पढ़ता था, अब छुट्टियां हो गयी थीं, इसीलिए घर आया था।

नाम था चन्द्रभान।

न जाने, एक दिन, आंख-मिचौनी खेलतेमें जब चन्द्रभानने झपटकर कलाको पकड़ लिया था, कला सकपका-सी गयी थी। कांप गयी थी।

डर गयी हो, सो बात नहीं थी।

न जाने, कुछ अच्छा-सा लगा था।

तबसे रह-रहकर चन्द्रभान ही उसके ध्यानमें रहने लगा। खेलनेमें मन अधिक लगता था, और उससे पकड़े जानेमें तो...

एक दिन चन्द्रभान चला गया। छुट्टियां समाप्त हो गयी थीं।

कला अनमनी-सी हो गयी। कुछ सूना-सूना-सा लगने लगा।

न जाने वह फिर कब आयेगा?

इसी अनमनेपनमें एक दिन सुना, उसका ब्याह ठहर गया था।

ब्याह! बाजे-गाजेसे, सजकर, दुलहिन बनकर वह ससुराल जायेगी! जो कहीं चन्द्रभान भी होता, तो कैसा अच्छा होता!

कला उससे कह देती कि अब वह खेल-वेल न खेल सकेगी। अब वह बड़ी—एकदम दुलहिन—हो गयी है। बच्चोंमें खेलना कैसे हो सकता है।

और जो, कहीं चन्द्रभान ही दुल्हा होता...धुत!

ब्याह हो गया।

कलाका जीवन ब्याहके बादसे ही केवल आगे बढ़कर सुख पकड़ लेनेकी चेष्टामें बीता।

पतिदेव कमाते न थे। पढ़ते थे। धीरे-धीरे कलाने, सास-ननदकी हुकूमत सहते-सहते समझा कि उनके कमानेके बाद ही चैन नसीब होगा।

वह मालकिन होगी।

वह कमाने भी लगे। सास भी मर गयी। ननदका ब्याह हो गया।

पर, कलाका सारा दिन घर संभालनेमें ही जाने लगा।

कतर-ब्योंत···आमदनी थी कम।

कलाने सोचा, आमदनी अधिक होनेपर तो फिर चैनसे कटेगी।

रात-दिनकी इस हाय-हायसे छुट्टी पाकर वह भी जरा आराम पायेगी।

आमदनी बढ़ी।

किन्तु···कला सोचती, इस सूने घरमें क्या रहनेको मन

करे। पड़ोसियोंके यहां रात-दिन कैसा कोलाहल मचा रहता है, यहां तो बैठे बस मक्खियां मारा करो।

बच्चों ही से तो रौनक होती है।

बच्चे भी हुए। एक, दो, तीन।

ओह! कला तो परेशान हो उठी। रात-दिन मशीनकी तरह काम करती, फिर भी तो किसीको बुखार, किसीको खांसी··· कला चिड़चिड़ी-सी, झल्लायी-सी रहती।

पतिदेव भी दुखी थे।

बच्चे होते ही जाते थे।

पतिदेव चाहते थे घरमें शान्ति, जरा कलासे प्रेमकी दो बातें करना···

उसे फुरसत ही न होती थी। साथ ही वह इसे उनकी लम्पटता और स्वार्थपरता समझती थी।

शान्ति कहां मिले?

एक दिन···थकी-सी बैठी वह सोच रही थी बचपनकी बात। धीरे-धीरे चन्द्रभान भी याद आया ··· ओह! कैसा अच्छा था वह···उसके साथ तो···

एक दिन सहसा ही कलाके पति बीमार पड़ गये।

डाक्टर आया।

चन्द्रभान।

कठोर, कुशल, डाक्टर।

कलाका जी उचट गया। यही था वह हंसमुख चन्द्रभान। अब तो मानो देखते ही काट खानेको आता था।

कैसी पगली थी, वह भी। उसके साथ ही ब्याह होनेसे क्या वह सुखी हो सकती थी?

फिर···

पतिदेव भी चले गये।

एक-एक करके बच्चे भी।

कला अकेली रह गयी।

घरमें फिर गरीबी, सन्नाटा हो गया।

कला चन्द्रभानकी स्त्रीसे भी मिली थी। बातचीतके सिलसिलेमें वह समझ गयी थी कि वह भी सुखी न थी।

हो भी कैसे सकती थी?

सुखी हो ही कौन सकता है? कब? कैसे? कला यही सोच रही थी।

सामने देखा, धूपके दोनों छोर मिलना ही चाहते थे··· धीरे-धीरे सरककर दोनों मिल गये थे।

पर, अब धूप न रही थी। दोनों सिरे मिलते ही धूप छायामें मिल गयी थी।

शामकी ठण्ढी हवा चल रही थी।

कला सिहर उठी। कसकर दुलाईको और भी लपेट लिया।



गांधीवाद और समाजवाद

(तत्त्व-दर्शन और क्रियात्मक स्वरूप)

प्रो० प्रेमनारायन माथुर, एम० ए०, बी० काम०

आज हमारे देशमें दो प्रकारकी प्रमुख विचार-धारायें कार्य कर रही हैं। एक विचार-धारा वह है, जिसको हम 'गांधीवाद' के नामसे जानते हैं। इसके प्रवर्तक महात्मा गांधी हैं। महात्मा गांधीके विचारों और कार्य-पद्धतिका हमारे देशके जीवनपर जितना अमिट प्रभाव पड़ा है, उसके सम्बन्धमें कोई दो मत नहीं हो सकते। राष्ट्रीय जीवनके प्रत्येक अङ्ग और प्रत्यङ्गपर आज गांधीजीके विचारों और उनके व्यक्तित्वकी छाप स्पष्ट रूपसे दिखाई पड़ती है। क्या राजनीति और क्या सामाजिक और आर्थिक जीवन, कोई भी क्षेत्र आज उनके विचारोंसे अछूता नहीं है। 'गांधीवाद' एक सर्वाङ्गी विचार-धारा है, जिसने समूचे राष्ट्रीय जीवनको प्रभावित किया है। दूसरी विधार-धाराका सम्बन्ध राष्ट्रीय जीवनके राजनीतिक और आर्थिक पहलूसे ही है। यह है समाजवादी विचार-धारा, जिसको राष्ट्रीय जीवनमें महत्त्वपूर्ण स्थान देनेका श्रेय सबसे पहले पण्डित जवाहरलाल नेहरूको ही है। वैसे तो समाजवादी विचार रखनेवाले लोगोंके एकसे अधिक दल हमारे देशमें इस समय मौजूद हैं—कांग्रेस समाजवादी दल, साम्यवादी दल और रायवादी दल। पर साम्यवादी और रायवादी दलोंको इस समय हम छोड़ देंगे; क्योंकि इन दलोंका राष्ट्रकी वर्तमान राजनीतिसे तात्त्विक मतभेद है। महात्मा गांधीके नेतृत्वमें भारतवर्षने अपने उत्थानके लिए अहिंसाका मार्ग चुना है, और उस मार्गपर चलकर ही राष्ट्रीय जीवन अपनी वर्तमान सङ्गठित और शक्तिशाली अवस्थाको पहुंचा है। गत बीस वर्षोंके अनुभवसे यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि अहिंसा-का ही एकमात्र ऐसा मार्ग है, जिसपर चलकर न केवल हम अपने राष्ट्रका ही उत्थान कर सकते हैं, बल्कि संसार-व्यापी मौजूदा हिंसा और पशुबलसे मानव-सभ्यताको मुक्त करके उसके भावी विकासमें भी हम सहायक हो सकते हैं। यह तो मान लेना पड़ेगा कि विश्वके इतिहासमें इस प्रकारका यह प्रथम प्रयोग है, जो आज हम भारतवासियोंने करनेका साहस किया है। हमारा ऐसा दृढ़ विश्वास है कि जो लोग अहिंसाके महत्त्वको समझनेमें अपने आपको अयोग्य पाते हैं, वे भारतवर्षकी आजादीकी लड़ाईको तो कमसे कम किसी प्रकार आगे नहीं बढ़ा सकते और न उसको आगे बढ़ानेमें सहायक ही हो सकते हैं। अस्तु, व्यावहारिक दृष्टिसे देशको स्वतन्त्रताकी ओर ले जानेवाली शक्तियोंका विचार और विश्लेषण करते समय हम उन शक्तियोंको आसानीसे छोड़ सकते हैं, जिनकी अहिंसामें श्रद्धा नहीं है। इस प्रकार देशमें केवल दो बड़ी अहिंसक विचार-धारायें ही ऐसी रह जाती हैं, जिनके सम्बन्धमें हमको विचार करना होगा। एक है गांधीजीकी विचार-धारा और दूसरी है कांग्रेस समाजवादी दलकी विचार-धारा, जिसको हम आगे इन पंक्तियोंमें समाजवादी विचार-धाराके नामसे ही लिखेंगे।

गांधीवादका दार्शनिक आधार—गांधीवादको समझनेके लिए उसके दार्शनिक आधारको समझ लेना आवश्यक है। गांधीजी एक आस्तिक पुरुष हैं। उनकी ईश्वरकी सत्तामें जीवित श्रद्धा है। संसारके प्रत्येक व्यापार और वर्तनमें उनको उस ईश्वरकी सत्ताका ही आभास मिलता है। उनकी दृष्टिमें यही चिर-सत्य है। और इसी सत्यका अपने जीवनमें दर्शन करना उनका एकमात्र लक्ष्य है। उनकी अपनी ईश्वरकी व्याख्या भी यही है। उन्होंने लिखा है, 'सत्य ही ईश्वर है।' सत्यसे भिन्न किसी अन्य ईश्वरका उनके लिए कोई अस्तित्व नहीं। यही कारण है कि वह अपने आपको एक विनम्र सत्यका शोधक मानते हैं। जीवनमें सत्यकी खोज करनेके सिलसिलेमें ही उनके जीवनके समस्त अन्य व्यापारोंका समावेश हो जाता है। अगर वह एक राजनीतिज्ञ हैं, तो भी इसी सिलसिलेमें, और समाज-सुधारक हैं, तो भी इसी सम्बन्धमें। सत्यकी खोज उनका जीवनका वह अटूट सूत्र है, जो उनके समस्त कार्योंमें देख पड़ता है। वह केन्द्र है, जिसके चारों ओर उनका जीवन-चक्र घूमता है। यदि संसारके समस्त प्राणीमात्रमें उस ईश्वरकी सत्ता मौजूद

है, तो जो व्यक्ति इस महान् सत्यको पहचानता है और उसकी प्राप्ति ही अपने जीवनका एकमात्र लक्ष्य मानता है, उसके लिए प्राणीमात्रमें समानता और बन्धुत्वका अनुभव करना आवश्यक है ही। एक दूसरेका अन्ततोगत्वा और आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य परिणाम है। इसीमेंसे महात्मा गांधीकी राजनीति और समाज-सेवाका उदय होता है। यदि मनुष्य और मनुष्यकी समानता और बन्धुत्व एक चिर-सत्य है, तो एकके द्वारा दूसरेका शोषण, चाहे फिर उस शोषणका रूप राजनीतिक हो अथवा आर्थिक और सामाजिक, उतना ही बड़ा असत्य है। और जो सत्यका शोधक है, उसके लिए इस प्रकारका शोषण त्याज्य है। किन्तु सत्य अगर एक क्रियात्मक वस्तु है, और वह है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता, तो सत्यके शोधकके लिए इतना ही यथेष्ट नहीं है कि वह स्वयं किसीका शोषण न करे; किन्तु जहां कहीं भी उसे उस शोषणका, जो सबसे बड़ी असत् शक्ति है, अस्तित्व दिखाई पड़े, वह उसका प्रतिकार भी करे। हां, प्रतिकार करते समय प्रतिकार करनेवालेको अपनी शक्तिका अवश्य ही ध्यान रखना होगा। प्रतिकारके लिए अगर कोई बाधा है, जिसको पार करना आवश्यक है, तो वह है अपनी शक्तिकी, अथवा दूसरे शब्दोंमें यों कहें कि अपनी स्वयंकी पात्रताकी। यह शक्ति अथवा पात्रता उसी अनुपातमें प्राप्त होगी, जिस हद तक प्रतिकारकर्ताने अपने जीवनसे शोषणको निकाल दिया है। और अपने आपको शोषण-मुक्त करना एकमात्र बाह्य क्रिया नहीं है। उसका सम्बन्ध आत्म-संयमसे है। मनुष्य अपने आपको जितना ऊंचा उठा सकेगा, उतना ही अधिक वह अपने जीवनसे शोषणको निकाल सकेगा। अतः जो सत्यका शोधक है, उसके लिए शोषणका विरोधी होना और उसका प्रतिकार करना आवश्यक है, और इस प्रतिकारके लिए अपने आपकी आत्म-शुद्धि शक्ति-सञ्चयका एकमात्र मार्ग है। जितनी अधिक शक्ति प्रतिकार करनेवालेके पास होगी, उतनी ही अधिक उसको सफलता भी प्राप्त होगी। और अगर उसका प्रतिकार अपनी शक्तिके बाहर होगा, तो वह अपनी ही हानि उस प्रतिकारके द्वारा कर लेगा। यही कारण है कि गांधीजी एक सत्य-शोधकके नाते एक महान् क्रान्तिकारी भी हुए और शोषणका प्रतिकार करना सत्यकी खोज करनेका एक उपाय-मात्र हो गया। अपनी अर्थात् प्रतिकार करनेवालेकी आत्म-शुद्धिपर उनका इतना अधिक जोर देना भी स्वयं सिद्ध है। अपनी इन्द्रियों-पर नियन्त्रण करनेमें जिस हद तक मनुष्य सफल होगा, उसी हद तक उसके जीवनमें उपर्युक्त संयम और नियमितता भी आ सकेगी। महात्मा गांधीके जीवनको समझनेकी यही एक कुञ्जी है।

सत्याग्रह: गांधी-दर्शनका क्रियात्मक रूप—अब यहां प्रश्न यह उठता है कि यदि सत्यके शोधकका यह कर्तव्य है कि वह न केवल अपने आपको शोषण-मुक्त करे; किन्तु जहां भी उसे शोषण दृष्टिगोचर हो, उसका भी प्रतिकार करे, तो उसका यह प्रतिकार कैसा होना चाहिए। प्रतिकारका रूप क्या हो, दूसरे शब्दोंमें यही हमारे सामने प्रश्न है। प्रतिकारका रूप उसके उद्गम और उद्देश्यके अनुरूप ही हो सकता है। उससे भिन्न नहीं। सत्यशोधक प्राणी-मात्रमें ईश्वररूपी सत्यके अस्तित्वको स्वीकार करता है। इसी कारणसे वह प्राणी-मात्रमें समानता और बन्धुत्वके भावको देखता है और उसे जागृत करना चाहता है। समानता और बन्धुत्वके आधार-पर किया जानेवाला प्रतिकार प्रेमपूर्णके अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है? दूसरा सवाल है प्रतिकारके उद्देश्यका। अगर सत्यका शोधक इस बातमें जीवित श्रद्धा रखता है कि प्रत्येक प्राणीमें ईश्वररूपी सत्य विद्यमान है, तो उसके द्वारा किये जानेवाले प्रतिकारका उद्देश्य भी केवल यही हो सकता है कि वह अपने विरोधी (जिसका वह प्रेम-पूर्ण प्रतिकार करने जा रहा है) में उस सत्यको उदय करे और उसको सत्य-दर्शन कराये। क्योंकि अगर सत्यका अस्तित्व होते हुए भी कोई प्राणी उसे नहीं पहचानता है और अपने जीवनमें असत्य व्यवहार करता है, जो सब प्रकारके शोषणके मूलमें है, तो उसका कारण उसका अज्ञान और मोह ही हो सकता है। उसके इस अज्ञान और मोहका नाश करना और उसमें उस सत् शक्तिको जागृत करना ही सत्यशोधीके प्रतिकारका एकमात्र लक्ष्य हो सकता है। यह तभी सम्भव है, जब उस व्यक्तिके प्रति, जिसके विरोधमें हम प्रतिकार करने जा रहे हैं, हमारे हृदयमें प्रेम हो और साथ ही साथ हम स्वयं उस प्रतिकारके करनेके योग्य हों। दूसरेके अज्ञानका नाश करनेके लिए यह आवश्यक है कि हम स्वयं ज्ञानवान हों। अगर हम दूसरोंमें सत्य जागृत करना अपना उद्देश्य मानते हैं, तो पहले

स्वयं अपनेमें सत्य जागृत करना आवश्यक है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगाना चाहिए कि जब तक कोई व्यक्ति स्वयं अपने जीवनमें पूर्ण सत्यका दर्शन नहीं कर लेता, उसको दूसरोंमें सत्य जागृत करनेके लिए प्रतिकार करनेका अधिकार नहीं है। वास्तवमें तो सत्य-शोधकको अपने जीवनमें ही सत्यके दर्शन करनेके लिए दूसरोंका प्रतिकार भी करना पड़ता है और इस प्रकार अपने सत्य-दर्शनके सिलसिलेमें ही वह अनायास और सहज ही से दूसरेको सत्य-दर्शन करवानेका कारण भी बन सकता है और बनता है। दोनों क्रियायें साथ-साथ ही चलती हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सत्य-शोधकके प्रतिकारका उद्गम और उद्देश्य दोनों ही प्रेममें हैं। अस्तु, उसका प्रतिकार अहिंसात्मकके अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। प्रेम ही का दूसरा नाम अहिंसा है। प्रेमके बिना अहिंसा-वृत्तिका उदय हो ही नहीं सकता। इसी अहिंसात्मक प्रतिकारका नाम सत्याग्रह (सत्यका आग्रह) है; क्योंकि सत्यके आग्रहका ही वह परिणाम है।

सत्याग्रहका परिणाम हृदय-परिवर्तन—अहिंसात्मक प्रतिकार अर्थात् सत्याग्रहका लक्ष्य यदि विरोधीके हृदयकी अज्ञानताको मिटाकर उसमें सुप्त सत् शक्तिको जागृत करना है, तो इसके लिए आवश्यक है कि प्रतिकार करनेवाला अपने प्रतिकारसे विरोधीके हृदयमें अपने प्रति श्रद्धा और प्रेमका भाव उत्पन्न करे और उसे भयमुक्त करे। इसके लिए आवश्यक है कि सत्याग्रही विरोधीके प्रति अपने व्यवहारमें निन्दा, स्वार्थ-परायणता और छल-कपट तथा धौंस-धमकीका त्याग करे और इनके स्थानमें सचाई, आत्म-बलिदान, विरोधी-हितेच्छा और न्यायनिष्ठा आदि गुणोंका अनुसरण करे। ऐसी दशामें विरोधीकी परेशानी और बेबसीसे लाभ उठानेका प्रश्न पैदा ही नहीं होता और न उसे अपने सङ्गठन और शक्तिसे भयभीत करनेका। इस वास्ते सत्याग्रहीकी सङ्गठित शक्तिका प्रदर्शन भी इस प्रकारका नहीं हो सकता, जिसका असर विरोधीको भयभीत करना हो। उस सङ्गठित शक्तिका तो एकमात्र उपयोग अपनी आत्म-बलिदानकी भावनाको अधिक दृढ़ बनाना और उसके द्वारा आसपासके वातावरणको अधिकाधिक अहिंसक बनाना ही हो सकता है। इस दृष्टिसे वे तमाम सामूहिक प्रदर्शन, जिनका असर विरोधीकी परेशानी और भयको बढ़ाना हो, सत्याग्रहके लिए त्याज्य है। इस प्रकार सत्याग्रही अपने अहिंसात्मक प्रतिकार द्वारा अपने विरोधीकी श्रद्धा और प्रेमका पात्र बनेगा और उसके उस अज्ञानका नाश करनेमें सफल होगा, जिसके वशीभूत होनेके कारण वह असत् कर्म करता रहा है। इसका अवश्यम्भावी परिणाम होगा उसके हृदयमें सुप्त सत् शक्तिका जागृत होना। इस सत् शक्तिके जागृत होनेपर वह अपनी भूलको स्वयं स्वीकार करेगा और सत्याग्रहीकी बातको इच्छापूर्वक मन्जूर करेगा। इस प्रकार सत्याग्रहका अन्त होगा, विरोधीका हृदय-परिवर्तन होगा और दोनों ही पक्षके लिए वह सत्याग्रह हितकर सिद्ध होगा। सत्याग्रहके इस प्रकार विरोधीके पूर्ण हृदय-परिवर्तनमें अन्त होनेके बाद दोनों पक्षोंमें प्रेम और सद्भाव बढ़ेगा और सत्याग्रहके परिणाम-स्वरूप जो स्थिति उत्पन्न हुई है, उसकी रक्षा करना और उसको स्थायी बनाना दोनों ही पक्ष अपना कर्तव्य समझेंगे। यहांपर बादमें षड्यन्त्र रचकर अथवा अवसर पाकर उस स्थितिको बदलनेका कोई प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होगा। किन्तु अगर सत्याग्रहीकी बात उसके विरोधीने भय अथवा अपनी लाचारी और बेबसीके कारण भयभीत होकर तात्कालिक आपत्तिसे बचनेके लिए ही मान ली है, तो वह अवश्य ही उचित अवसर देखकर फिरसे अपनी खोयी हुई स्थितिको प्राप्त करनेका प्रयत्न करेगा। यह तभी होगा, जब कि सत्याग्रहीका सत्याग्रह वास्तवमें सत्याग्रहके सिद्धान्तोंके अनुसार नहीं, बल्कि उसके सर्वथा विपरीत ही चलाया गया हो। ऐसी हालतमें उसको सत्याग्रहका नाम भी नहीं दिया जा सकता। उपर्युक्त दोनों अवस्थायें सीमा (Extreme) की हैं; किन्तु इसके बीचकी भी एक अवस्था हो सकती है, जब कि विरोधी सत्याग्रहीकी बातको स्वीकार करते समय दो बातोंसे प्रभावित होता है—एक तो उसपर इस बातका प्रभाव पड़ता है कि सत्याग्रहीकी बात ही सत्य और न्यायोचित है और इस हद तक उसके हृदयमें पहलेकी अपेक्षा अधिक सत्य जागृत होता है और उसका वास्तविक रूपसे हृदय-परिवर्तन होता है। दूसरे वह सत्याग्रहीकी एकनिष्ठा और सत्यपर अड़े रहनेसे इतना प्रभावित होता है कि वह यह समझने लगता है कि उसकी बातको स्वीकार कर लेना ही हितकर है। इस स्थितिमें उसपर दूसरी बातका जितना अधिक प्रभाव होगा, वह उसी हद तक भविष्यमें खोयी हुई

स्थितिको फिरसे प्राप्त करनेके अवसरकी तलाशमें रहेगा और उसका लाभ उठाना चाहेगा। इस स्थितिका कारण यही हो सकता है कि विरोधीके हृदय-परिवर्तनके लिए जितनी अहिंसक वृत्तिकी आवश्यकता थी, वह सत्याग्रहीमें मौजूद नहीं थी। अस्तु, सत्याग्रही अपनी पराजयका कारण अपने ही में देखेगा, अपने विरोधीमें नहीं।

महात्मा गांधीके विचारोंका जो विवेचन हमने अब तक किया है, उसके आधारपर हम निम्नलिखित परिणामोंपर पहुंचते हैं :—

(१) ईश्वरका समस्त प्राणी-मात्रमें अस्तित्व पाया जाता है और यही एकमात्र निरपेक्ष सत्य है, जिसका शोध करना प्रत्येक प्राणीका कर्तव्य है।

(२) जो मनुष्य इस एकमात्र सत्यको पहचानता है, वह प्राणीमात्रके प्रति समानता और बन्धुत्वके भावका अनुभव करेगा और अपने जीवनसे ही शोषणका अन्त न करेगा; किन्तु अपनी शक्तिको ध्यानमें रखते हुए जहां कहीं उसे शोषण दिखाई पड़ेगा, उसका प्रतिकार करेगा और यह प्रतिकार अहिंसात्मक होगा। वास्तवमें अपने जीवनमें सत्यकी खोज करनेके प्रयत्नमें ही उसे इस प्रकारका अहिंसात्मक प्रतिकार (सत्याग्रह) करना होगा।

(३) इस अहिंसात्मक प्रतिकारका उद्देश्य सत्यकी प्राप्ति होगा और उसका परिणाम होगा विरोधीके हृदयसे अज्ञानका नाश करके सत्यको उसमें जागृत करना, ताकि वह सत्याग्रहीकी बातको अपनी इच्छासे स्वीकार कर ले। इसीका नाम है विरोधीका हृदय-परिवर्तन करना।

अस्तु, गांधीजीकी सारी विचार-धाराका आधार है ईश्वररूपी एकमात्र सत्यमें अगाध श्रद्धा और इसीको हम आदर्शवादके नामसे जानते हैं। किन्तु गांधीजीके आदर्शवादकी एक विशेषता है और वह है उसकी सक्रियता। अब तक दुनियामें जितने सच्चे आदर्शवादी हुए हैं, उनमें इस सक्रियताका अभाव रहा है। उनकी अहिंसाकी भावनाने उनको कर्मक्षेत्रके प्रति उदासीन बना दिया। और जिन्होंने बुराईको ललकार करके कर्मक्षेत्रमें उसका प्रतिकार किया, उनको हिंसा अपनानी पड़ी है। यही कारण है कि अब तक इतिहासमें 'सन्त' और 'वीर' पुरुष अलग-अलग हुए हैं। किन्तु गांधीजीकी विशेषता इसीमें है कि उन्होंने अहिंसाको कायम रखते हुए असत् और बुराईके प्रतिकारका मार्ग ढूंढ़ निकाला है। वह 'सन्त' और 'वीर', एक ही साथ दोनों हैं।

समाजवादका दार्शनिक आधार—अब हम समाजवादके दर्शनके सम्बन्धमें विचार करेंगे। समाजवाद (मार्क्सवाद) ईश्वर-जैसी किसी चीजके अस्तित्वको स्वीकार नहीं करता। उसकी दृष्टिमें पदार्थ (matter) ही एकमात्र वास्तविक चीज है। चेतना (spirit) इसी पदार्थ (matter) का एक गुण-मात्र है, जो उसके विकासकी एक विशेष अवस्थामें उसमें प्रकट होता है। मनुष्यके जो विचार बनते हैं, वह उसके आस-पासकी भौतिक परिस्थितियोंकी प्रतिछाया-मात्र है। पदार्थसे स्वतन्त्र चेतनाका, विचार जिसकी एक क्रियामात्र है, कोई अस्तित्व नहीं। इस बातका सबसे बड़ा उदाहरण मनुष्य स्वयं ही है। मनुष्यमें जो चेतना विद्यमान है, उसके लिए मस्तिष्कका होना अनिवार्य है। बिना मस्तिष्कके चैतन्यकी कल्पना नहीं की जा सकती। और जिसे हम मस्तिष्क कहते हैं, वह पदार्थका ही एक विशेष रूप है, जो पदार्थ अपने विकासकी एक विशेष अवस्थामें ही ग्रहण करता है। अस्तु, समाजवादका दर्शन आदर्शवाद नहीं है, वह पदार्थवाद है। एक बात और है—यह पदार्थवाद वैज्ञानिक है, अवैज्ञानिक नहीं। वैज्ञानिक पदार्थवादका अर्थ यह है कि पदार्थका जो उत्तरोत्तर विकास होता है, वह ऊटपटांग ढङ्गसे न होकर एक निश्चित प्रणालीके अनुसार होता है। इसीको हम द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical matrialism) के नामसे जानते हैं। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद एक दार्शनिक प्रणाली है, जिसके अनुसार भौतिक जगत्के रहनेवाले प्राणियोंका विकास होता है। यह दृश्य जगत्, जो भौतिक पदार्थका ही एक रूपान्तर-मात्र है, किन नियमोंके अधीन विकास करता है, इसकी व्याख्या द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद हमको बतलाता है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद सबसे पहले तो इस बातको स्वीकार करता है कि जगत्का सारा व्यापार शाश्वत परिवर्तनके क्रममें है। दूसरे शब्दोंमें द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद यह मानता है कि यह जगत् परिवर्तनशील है। अब सवाल यह पैदा होता है कि आखिर यह परिवर्तन कैसे होता है? जो आदर्शवादी दर्शनमें विश्वास करते हैं, वे इसका उत्तर इस प्रकार देंगे कि जगत्का सारा व्यापार और उसमें पाया जानेवाला निरन्तर परिवर्तन एक स्वतन्त्र और अलौकिक शक्ति (ईश्वर) की

लीला अथवा मायाका परिणाम-मात्र है। किन्तु द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद इस उत्तरको स्वीकार नहीं करता। वह किसी ऐसी अलौकिक सत्ताके अस्तित्वमें विश्वास नहीं करता। द्वन्द्वात्मक भौतिकवादकी मान्यता तो यह है कि विकासकी प्रगतिमें हर क्षण आन्तरिक असङ्गतियां (Inner Contradictions) उत्पन्न होती रहती हैं और जब ये असगङ्गियां चरम सीमापर पहुंच जाती हैं, तो वे एक गुणात्मक परिवर्तन (Qualitative Change) द्वारा नये रूपको जन्म देती हैं। गुणात्मक परिवर्तनसे क्या अर्थ है, इसको तनिक अधिक स्पष्ट करनेकी आवश्यकता है। यह एक उदाहरण लेकर भले प्रकार किया जा सकेगा। जब हम पानीको गर्म करते हैं, तो हम देखते हैं कि पानीके भीतर गर्मीकी मात्रा यद्यपि बराबर बढ़ती जाती है, फिर भी एक अवस्था विशेष तक उसमें उबाल नहीं आता। इस अवस्था तक गर्मीकी मात्रामें जो परिवर्तन या वृद्धि होती रहती है, इसको हम संख्यात्मक परिवर्तन (quantitative change) कहेंगे; क्योंकि पानीमें गर्मीकी मात्रा बढ़नेपर भी वह पानीकी शकलमें ही रहता है। उसका रूप पानीसे बदलकर और कुछ नहीं हो जाता, अर्थात् पानीके गुणमें कोई परिवर्तन नहीं होता। पर एक विशेष अवस्थाको पहुंचकर पानीमें उबाल आने लगता है और वह पानीकी शकलमें न रहकर अब भाफका रूप धारण कर लेता है। इस रूप-परिवर्तनको हम गुणात्मक परिवर्तन कहते हैं। इस प्रकार विकासके क्रममें उत्पन्न आन्तरिक असङ्गतियां बराबर बढ़ती जाती हैं और एक समय उनकी वृद्धिकी मात्रा इस सीमाको पहुंच जाती है कि वे एक गुणात्मक परिवर्तनके द्वारा पूर्व रूपको बिलकुल बदल देती हैं। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद हमें विकासके इसी नियमको सिखाता है। और द्वन्द्वात्मक भौतिकवादके सामाजिक रूपका नाम ही ऐतिहासिक भौतिकवाद है। ऐतिहासिक भौतिकवाद हमको यह बतलाता है कि समाजका रूपान्तर भी विशेष सामाजिक व्यवस्थाकी प्रगतिके दौरानमें उसमें उत्पन्न आन्तरिक असङ्गतियोंका ही परिणाम है। जब आन्तरिक असङ्गतियां अपनी चरम सीमापर पहुंच जाती हैं, तो एक गुणात्मक परिवर्तन होता है और इस अवस्थामें पुराने समाजका रूपान्तर क्रमिक सुधारके जरिये न होकर आकस्मिक वेगसे अर्थात् क्रान्तिके द्वारा होता है। अतः मानव-समाजके विकासमें क्रान्तिका होना अनिवार्य है।

क्रान्ति : समाजवादी दर्शनका क्रियात्मक रूप—अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि इस क्रान्तिका रूप और साधन क्या होना चाहिए। क्रान्तिका आधार समाजमें अन्तर्निहित वर्ग-सङ्घर्ष (Class struggle) पर कायम है। अतः इस प्रश्नको ठीक-ठीक समझनेके लिए वर्ग-सङ्घर्ष और उसकी उत्पत्तिके कारणोंके सम्बन्धमें कुछ विचार कर लेना आवश्यक होगा। इस विषयमें सबसे पहली बात हमारे जान लेनेकी यह है कि किसी विशेष प्रकारकी सामाजिक व्यवस्थाका आधार क्या होता है। समाजवादी विचार-धाराके अनुसार 'समाजका आर्थिक ढांचा ही वह आधार या बुनियाद है' जिसपर सारी समाज-व्यवस्था, जिसमें 'मनुष्यके अन्य कार्यक्षेत्रोंकी प्रणालियों—राजनीति, आचार-नीति, साहित्य, कानून, आदि'—का भी समावेश हो जाता है, खड़ी होती है। और इस आर्थिक ढांचेके आधार होते हैं वे उत्पादन-सम्बन्ध, जो उत्पादनकी भौतिक शक्तियोंके विकासकी निश्चित अवस्थाके अनुरूप उस समय समाजमें व्याप्त उत्पादन-व्यवस्थामें लगे हुए मनुष्य स्थापित करते हैं। ये उत्पादन-सम्बन्ध मनुष्योंकी स्वतन्त्र इच्छापर निर्भर नहीं होते, ये तो उत्पादनकी भौतिक शक्तियोंके विकासकी अवस्था-विशेषके अनुरूप ही निश्चित होते हैं। इन उत्पादन-सम्बन्धोंके योगसे समाजका आर्थिक ढांचा बनता है, जो स्वयंमें वास्तविक आधार होता है सारी समाज-व्यवस्थाका, जिसके अन्तर्गत राजनीतिक और वैधानिक ढांचोंका समावेश भी हो जाता है। इसीको मानव-समाजके विकासके इतिहासकी भौतिक व्याख्या कहते हैं और मानव-समाजका यह विकास उसी द्वन्द्वात्मक ढङ्गसे होता है, जिसका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं। यहींपर सामाजिक वर्गोंका सवाल पैदा होता है।

समाजवादका यह कहना है कि मानव-समाजकी आदिम अवस्थाको छोड़कर, प्रत्येक आर्थिक व्यवस्थामें दो आधारभूत वर्ग यानी बुनियादी आर्थिक श्रेणियां मौजूद रही हैं। इस प्रकार दासता-प्रथामें स्वामी और दास, सामन्तवादी प्रथामें सामन्त और कृषक दास और वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्थामें पूंजीपति और मजदूरोंके वर्ग पाये जाते हैं। इन दोनों वर्गों अथवा श्रेणियोंके हित परस्पर विरोधी होते हैं और प्रभुत्वशाली वर्ग दूसरे वर्गको दास बनाकर उसकी

श्रम-शक्तिका शोषण करके अपने लिए जीवनकी सुविधायें प्राप्त करता है। इस प्रकार स्वामी दासका, सामन्त कृषक दासका और पूंजीपति मजदूरका शोषण करता है; क्योंकि उनके वर्ग-हित परस्पर विरोधी हैं और एकका शोषण ही दूसरेका जीवन-आधार है। जब वह वर्ग-शोषण अपनी चरम सीमाको पहुंच जाता है, तो क्रान्तिके लिए आवश्यक भूमिका तैयार होती है। वर्ग-शोषण अपनी चरम सीमाको उसी दशामें पहुंचता है, जब उत्पादन-शक्तियोंका विकास उस अवस्था-विशेषको पहुंच जाता है, जहां प्रचलित उत्पादन-सम्बन्धोंके रहते हुए उन उत्पादन-शक्तियोंका मानव-समाजके हितके लिए पूरा-पूरा उपयोग न हो सकता हो। उत्पादन-सम्बन्धों और उत्पादन-शक्तियोंमें उत्पन्न असङ्गतियां ही इस प्रकार अपनी चरम सीमापर पहुंचकर क्रान्तिका कारण बनती हैं। इस क्रान्तिका उद्देश्य होता है, प्रचलित उत्पादन-सम्बन्धोंका नाश कर उनके स्थानमें उत्पादन-शक्तियोंके अनुरूप नवीन उत्पादन-सम्बन्धोंको स्थापित करना। चूंकि ये नवीन उत्पादन-सम्बन्ध उस वर्गके हितमें होंगे, जो अब तक शोषित होता रहा है, इस वास्ते यह वर्ग क्रान्तिका नेतृत्व करेगा और चूंकि मौजूदा उत्पादन-सम्बन्ध शोषक वर्गके हितमें है, इस वास्ते उनकी रक्षामें वह वर्ग क्रान्तिका विरोधी होगा। किन्तु अन्तमें उसके विरोधके बावजूद क्रान्ति सफल होगी और उत्पादन-शक्तियों और नवीन उत्पादन-सम्बन्धोंमें एक नया साम्य स्थापित होगा। जो वर्ग अब तक शोषित था, वह अब शोषकका स्थान ग्रहण कर लेगा और इस प्रकार फिर आन्तरिक असङ्गतियोंका जन्म होगा, जो अपनी चरम सीमापर पहुंचकर एक नयी क्रान्तिका कारण बनेंगी और इस प्रकार वर्ग-सङ्घर्ष द्वारा मानव-समाजका उत्तरोत्तर विकास होता रहेगा। समाजवादी क्रान्तिके बाद ही जिस समाजकी स्थापना होगी, वह वर्गहीन समाज होगा, जिसमें पहली बार शोषक और शोषित वर्गोंका अन्त होगा। समाजवादी क्रान्तिके बाद ही मनुष्य सामाजिक प्रगतिके उपर्युक्त नियमोंकी दासतासे मुक्त होकर स्वाधीनताके राज्यमें प्रवेश करेगा, जहां वह स्वयं सामाजिक विकासका नियन्त्रण कर सकेगा। समाजवाद इस बातको स्वीकार करता है कि प्रत्येक मनुष्यका दृष्टिकोण अपने वर्ग-हितसे प्रभावित रहता है और इस वास्ते निरपेक्ष सत्य-जैसी कोई वस्तु है, इसे समाजवाद स्वीकार नहीं करता। उसकी दृष्टिमें तो सत्य वर्ग-सत्य है और इस वास्ते वह सापेक्षिक है। इससे यह भी स्पष्ट है कि हृदय-परिवर्तन-जैसी चीजके लिए समाजवादमें कोई स्थान नहीं है।

शान्त क्रान्ति—कांग्रेस समाजवादी दलने देश और कालकी परिस्थितियों-विशेषको ध्यानमें रखकर देशकी आजादीके लिये शान्त और उचित उपायोंके मार्गको अपनाया है। वे विरोधीको बलपूर्वक तो परास्त करना आवश्यक समझते हैं; किन्तु उनका विश्वास है कि बिना हिंसक बलका प्रयोग किये ही वे ऐसा करनेमें सफल हो सकेंगे। अतः उनकी अहिंसा और गांधीजीकी अहिंसामें जमीन-आसमानका भेद है। गांधीजी विरोधीका हृदय-परिवर्तन करके उसे स्वयं अपनी भूल स्वीकार करवानेकी आशासे सत्याग्रह करते हैं, जब कि समाजवादी इस बातमें विश्वास नहीं करते कि वे अपने विरोधीका हृदय-परिवर्तन कर सकेंगे। वे तो उसकी इच्छाके विरुद्ध भी अपनी सफलता प्राप्त करना आवश्यक समझते हैं। इस वास्ते उनकी और गांधीजीकी युद्ध-नीतिमें भी बहुत भेद होगा। जहां गांधीजी हर समय इस बातका प्रयत्न करेंगे कि वह अपने विरोधीकी श्रद्धाके पात्र बनें और उसे भय-मुक्त करें, वहां समाजवादीका एकमात्र लक्ष्य किसी प्रकार अपने विरोधीपर हावी हो जानेका प्रयत्न करना होगा। और इस भेदका कारण दोनोंके दर्शनकी भिन्नता है। गांधीजीके सत्याग्रहका उद्देश्य विरोधीके हृदयमें सत् शक्तिको जागृत करना होता है, ताकि वह अपने अज्ञानको हटा सके और सत्यको पहचान सके; क्योंकि वह सत्यको निरपेक्ष मानते हैं, जिसका अंश सब प्राणीमात्रमें विद्यमान है। इसके विपरीत समाजवादीकी दृष्टिमें निरपेक्ष सत्य-जैसी कोई वस्तु नहीं, वह तो वर्ग-सत्यको ही स्वीकार करता है और इस वास्ते एक वर्गके लिए दूसरेके सत्यको अपनानेका प्रश्न ही नहीं आ सकता। अस्तु, एक वर्ग-सत्य दूसरे वर्ग-सत्यकी इच्छाके विपरीत ही स्थापित किया जा सकता है, यह समाजवादी विचार-धाराका मूल तत्त्व है।

पारिवारिक सुखकी कुञ्जी

श्री चन्द्रशेखर

"विवाहकी तुलनामें", डोरोथी डिक्सने एक जगह लिखा है, "विवाहकी तुलनामें जन्म और मृत्यु तो जीवनकी साधारण घटनायें मात्र हैं।"

और वैवाहिक सम्बन्ध, दाम्पत्य जीवन एवं पारिवारिक सुखोंके साधनोंपर जिन लोगोंने व्यावहारिक प्रकाश डाला है, उनमेंसे अधिकांश इस मतके हैं कि जीवनसे मृत्यु-पर्यन्त मनुष्य वास्तविक सुखके दर्शन नहीं कर सकता, यदि उसने वैवाहिक सम्बन्धको किसी कारण भी कलुषित होनेसे बचा नहीं लिया।

वे कौन-सी बातें हैं, जिनसे हमें जीवन एवं पारिवारिक सुखके लिए बचनेकी आवश्यकता है। जीवनको बनाने और बिगाड़नेवाली केवल बड़ी-बड़ी बातें ही नहीं हैं, बल्कि छोटी-छोटी भी बातें जीवनमें क्रान्तिकारी परिवर्तन ला देती हैं। अतः हमें अपने दैनिक जीवनमें थोड़ी सतर्कता और सावधानीसे चलनेकी आवश्यकता है।

नेपोलियन बोनापार्टके भतीजे फ्रान्सके नेपोलियन तृतीयने प्रायः ८० वर्ष पहले मेरी अगस्टाइन, काउण्टेस आव तेबाके प्रेममें पड़कर विवाह करनेका निश्चय किया। उसके सलाहकारोंने विवाहके विरुद्ध अपनी सम्मति देते हुए कहा कि मेरी एक साधारण स्पेनिश काउण्टकी पुत्री है; पर नेपोलियनने कहा, "इससे क्या ?" और उसने उससे वास्तवमें विवाह कर लिया। मेरीके सौन्दर्य, आकर्षण और यौवनका वह ऐसा उन्मत्त प्रेमी हो गया था कि उसकी सामाजिक स्थितिका ध्यान तक करना उसने आवश्यक नहीं समझा।

नेपोलियन और उसकी वधूके पास स्वास्थ्य, सौन्दर्य, शक्ति, ख्याति, सम्मान, सब कुछ—सब कुछ था, जिससे उनका वैवाहिक जीवन सुखी होता! किसकी प्रेम-ज्योति इससे अधिक सुन्दर परिस्थितियोंमें जली थी? जीवनको सुखी बनानेवाले इनसे अधिक साधन और किसके पास थे?

पर अफसोस! कितनी क्षणिक इस प्रेम-ज्योतिकी लौ रही! कुछ ही दिनोंमें यह प्रेम-ज्योति बुझ गयी और उसके स्थानपर रह गया केवल राखोंका ढेर! नेपोलियन मेरीको एक साम्राज्यकी सम्राज्ञी बना सकता था, लेकिन फ्रान्सकी शक्ति अथवा राज-सिंहासनका आकर्षण कुछ भी तो मेरीकी आदतोंमें—मेरीकी निरन्तर दोष ढूंढ़ते रहनेकी वृत्तिमें सुधार न कर सके।

ईर्ष्या और सन्देहके बवण्डरमें पड़कर मेरी नेपोलियनके आदेशोंका उल्लङ्घन करती रही और कभी उसपर विश्वास न किया। राज्यके कार्योंमें नेपोलियन व्यस्त है और मेरी आफिसमें आ धमकती और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विवादोंमें भी हस्तक्षेप करने लगती। कभी उसने नेपोलियनको अलग नहीं छोड़ना चाहा, सदा उसे यही भय बना रहता कि कहीं वह किसी और रमणीके केशपाशोंमें तो नहीं उलझ उठेगा।

अक्सर वह अपनी बहनके पास दौड़ी जाती और रोती, बड़बड़ाती, धमकाती, शिकायत करती और गालियां तक बकने लगती। हर वक्त और हर जगह नेपोलियनपर दोषारोपण करते रहना ही जैसे मेरीने अपना धर्म समझ लिया था। एक भी दिन ऐसा नहीं जाता था, जिस दिन नेपोलियन मेरीकी खरी-खोटी सुने बिना खाना खाता हो।

और मेरीको इससे लाभ क्या हुआ!

ई० ए० रीनटार्डने नेपोलियनके जीवनचरितमें लिखा है :— इसका परिणाम यह हुआ कि नेपोलियन कभी-कभी रातमें किसी पिछले दरवाजेसे चुपचाप निकल जाता और किसी जगह वास्तवमें किसी रमणीसे भेंट करता और कभी-कभी शहरकी ऐसी-ऐसी सड़कोंपर अकेला सूनेपनमें चक्कर काटता, जहांकी कल्पना भी वह नहीं कर सकता था। ऐसे ही स्थलोंपर उसे मानसिक शान्ति मिलती थी।

यही—केवल यही मेरीके हाथ लगा। राजसिंहासनपर वह बैठती थी, इसमें सन्देह नहीं। संसारकी अपने समयकी वह सबसे बढ़कर सुन्दरी समझी जाती थी, इसमें भी सन्देह नहीं, लेकिन केवल राजकीय गर्व एवं गौरव अथवा अद्भुत सौन्दर्यसे ही प्रेमकी रक्षा नहीं हो सकती, अगर बीचमें ईर्ष्या और दोषारोपणकी प्रवृत्तिका विष उसमें पड़ जाता है। जाबने व्यग्रतापूर्वक कहा था, "जिस बातकी मुझे भीषण

आशङ्का थी, वह मुझपर आ पड़ी।" आ पड़ी? मेरीने तो स्वयं इसका आह्वान किया। स्वयं अपने कर्मोंसे उसने प्रेमके ऐसे मोहक प्रारम्भका ऐसा शोचनीय अन्त कर डाला।

दाम्पत्य जीवनको नष्ट करनेके लिए शैतानने जितने विष निकाले हैं, उनमें यह निरन्तर बड़बड़ाते और दोष निकालते रहनेकी प्रवृत्ति सबसे बड़ा विष है। सर्प-दंशनके समान प्रेमको यह काट खानेवाला है।

काउण्ट लियो टाल्स्टायकी पत्नी इसका रहस्य समझ सकी थी, लेकिन बहुत देरसे। मरनेके पहले अपनी पुत्रियोंसे उसने सिसकते हुए कहा था, "मैं ही तुम्हारे बापकी मृत्यु-का कारण बनी।" लड़कियोंने कोई उत्तर नहीं दिया, वे रो रही थीं, लेकिन वे समझ रही थीं कि मां ठीक कह रही है। वे जानती थीं कि अपनी खरी-खोटी, अपनी आलोचनाओं और अपनी झगड़ालू प्रवृत्तिसे ही मां बापकी मृत्यु, उसकी हत्याका कारण बनी।

टाल्स्टाय अपने समयके प्रायः सबसे बड़े ख्यातिप्राप्त उपन्यासकार थे। उनकी ख्याति इतनी बढ़ गयी थी और लोगोंकी श्रद्धा उनमें इतनी बढ़ गयी थी कि दिन-रात उनके पास ऐसे लोगोंकी भीड़ लगी रहती थी, जो उनके मुंहसे निकले हुए एक-एक शब्दको लिख लिया करते थे। टाल्स्टायके मुंहसे अगर यह भी निकल पड़ा कि "अब मैं सोने जा रहा हूं," तो यह भी लिख लिया जाता था।

ख्यातिके अतिरिक्त टाल्स्टायके पास धन-सम्पत्ति, समाज-में सम्मान और बच्चे भी थे। अतः उन्हें पारिवारिक सुख-शान्ति मिलनी चाहिए थी और वास्तवमें प्रारम्भमें वह प्रसन्न भी थे। जीवन-स्रोत चला, तो ऐसा मालूम होता था, जैसे उसमें सदैव शीतल स्वच्छ जल प्रवाहित होता रहेगा। दोनों एक साथ ही घुटने टेककर प्रार्थना करते—प्रार्थना करते कि उनका यह जीवन-स्रोत सदैव इसी प्रकार अबाध बहता चले।

लेकिन इसमें बाधा आयी। टाल्स्टायमें परिवर्तन आने लगे थे। उनकी दृष्टि भौतिकसे अधिक अब आध्यात्मिक होने लगी थी। अपने बड़े-बड़े ग्रन्थोंसे अब उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अब वे युद्ध-विरोधी, शान्ति-प्रचार तथा दरिद्रता-निवारणार्थ साहित्य-रचनामें लग गये थे। इसके लिए उन्होंने कितनी ही पुस्तिकायें लिखकर वितरित करायीं।

इस मनुष्यने—जिसने स्वयं स्वीकार किया था कि जवानी-के दिनोंमें उसने सभी प्रकारके पाप—हत्या तक की थी—अब ईसाके उपदेशोंकी ओर अपना जीवन लगाया। टाल्स्टायने अपनी सारी सम्पत्ति बांट दी और गरीबीमें रहने लगे। खेतोंमें स्वयं काम करते, अपने लिए जूते तक स्वयं तैयार करते, लकड़ीके बर्तनोंमें खाते और शत्रुसे भी प्रेम करते।

लेकिन भाग्यका विद्रूप तो देखिये, शत्रुसे प्रेम करनेवाले टाल्स्टायके घरमें ही प्रेमकी ज्योति बुझने लगी। संसारमें सुख और शान्तिकी स्थापना करनेवाले इस स्वप्नदर्शीके घरमें ही अशान्तिकी सृष्टि होने लगी।

टाल्स्टायका जीवन अब भार हो गया और जीवनके इस दुःखान्त अभिनयकी जिम्मेदारी उनकी पत्नीपर थी। पत्नी चाहती थी सुख, वैभव और विलास और टाल्स्टायको हो गयी थी इन वस्तुओंसे घृणा। पत्नी समाजमें सम्मानकी भूखी थी और टाल्स्टायको ये बातें मिथ्या प्रतीत होती थीं। पत्नी सम्पत्ति बटोरकर रखना चाहती थी और पतिकी दृष्टिमें यह पाप था।

और जब टाल्स्टाय इसका विरोध करते, वह अफीम खाकर पागलपनमें जमीनपर लुढ़क पड़ती। शोर-गुल मचाने लगती, फांसी लगाने और कुएंमें गिरकर मर जानेकी धमकी देने लगती।

उनके विवाहके प्रारम्भिक जीवन और अन्तिम दिनोंमें कितना अन्तर था। विवाहके ५० सालके बाद टाल्स्टाय अपनी पत्नीकी सूरत तक देखना नहीं चाहते थे। कभी-कभी बड़ा करुण दृश्य उपस्थित हो जाता। पत्नी पतिसे प्रार्थना करती कि प्रारम्भिक दिनोंके डायरीमें लिखे हुए प्रेमपूर्ण शब्द वह पढ़कर सुनाये। टाल्स्टाय उन पंक्तियोंको पढ़ते, तो पत्नीकी आंखोंमें आंसू भर आते। अतीत कालके वे स्वप्न आंखोंमें उतर आते। वर्तमान जीवनके कठोर सत्योंके सामने अतीत कालके वे स्वप्न! दोनोंकी आंखें डबडबा आतीं।

बयासी वर्षकी उम्रमें घरकी इस अशान्तिको सहते-सहते अब टाल्स्टाय ऊब गये थे और घर छोड़कर अक्टूबर १९१० में भाग गये। रातमें बर्फ गिर रही थी; लेकिन टाल्स्टायका हृदय तापसे दहक रहा था।

ग्यारह दिनके बाद न्यूमोनियासे एक रेलवे स्टेशनमें

उनका देहान्त हो गया। मरनेके पहले उन्होंने इच्छा प्रकट की थी कि मरनेके बाद भी उनकी पत्नी लाशके पास न आने पाये।

यह मूल्य था, जो टाल्स्टायकी धर्मपत्नीको अपनी मूर्खतापूर्ण हरकतोंके लिए चुकाना पड़ा।

पाठक सोच सकते हैं कि पत्नीको पतिसे शिकायत करनेके लिए कारण थे, हो सकता है। पर प्रश्न यह नहीं है, प्रश्न यह है कि ऐसी शिकायतोंसे पत्नीको मिला क्या? उसके उद्देश्यों-की पूर्ति कहां तक हुई?

काउण्टेस टाल्स्टायने अपने अन्तिम दिनोंमें स्वयं कहा था, "मैं सोचती हूं, वास्तवमें यह सब मेरा पागलपन था।"

अब्राहम लिङ्कनके जीवनकी भी सबसे दुःखान्त घटना उसका विवाह ही था—उसकी हत्या नहीं, उसका विवाह। बूथने जब उसे गोली मारी, तब लिङ्कनने नहीं सोचा कि उसकी हत्या की गयी, क्योंकि २३ वर्ष तक प्रायः प्रति-दिन वह घरमें गोलियोंका शिकार बनाया जाता—वे वाग्वाण, जिन्हें उसकी पत्नी उसे चुन-चुनकर मारनेसे कभी न चूकती।

हमेशा—लिङ्कनकी पत्नी हमेशा उसकी आलोचना किया करती—हमेशा लानत-मलामत करती रहती। उसकी कमर झुकी हुई है, वह डगमगाते हुए चलता है और पांव हब्शियोंकी भांति उठाता है। इस प्रकारकी कितनी ही बातें उसे सदा ही सुननेको मिलतीं। वह उसकी चालढाल और उसकी पोशाककी नकल बनाया करती। उसके कान जिस प्रकार खड़े रहते हैं, उन्हें वह कभी पसन्द नहीं करती और उसकी नाक भी सीधी नहीं है। उसे देखनेसे यक्ष्माके रोगीका भ्रम होता है, हाथ-पांव बहुत बड़े-बड़े हैं, सिर बहुत छोटा है, इस प्रकार उसकी पत्नी सदैव उसकी शिकायत किया करती।

अब्राहम लिङ्कन और मेरी टाड लिङ्कन हर तरहसे एक-दूसरेसे भिन्न थे। शिक्षा-दीक्षा, स्वभाव, पसन्दगी और दृष्टिकोण सभीमें उनमें विरोध था।

सिनेटर अलबर्ट विवरिज लिङ्कनपर प्रामाणिकताके साथ बोलने और लिखनेवाले व्यक्ति समझे जाते थे। उन्होंने एक जगह लिखा है :—"श्रीमती लिङ्कनकी कठोर और तीखी आवाज सड़कके उस पारसे सुनाई पड़ती और घरके आसपास जो लोग रहते, वे उनकी निरन्तरकी चिल्ल-पोंसे परेशान रहते। लेकिन उनका क्रोध केवल वाणी द्वारा ही नहीं प्रकट होता था। ऐसी कितनी ही घटनायें हैं, जो उनके चिड़चिड़े स्वभावको प्रकट करती हैं।" एक बारकी बात है, मि० लिङ्कन अपनी पत्नी सहित स्प्रिङ्गफील्डमें एक होटलमें श्रीमती जेकब अर्लीके साथ नाश्ता कर रहे थे। न जाने क्या बात लिङ्कनने की, आज किसीको भी वह बात याद नहीं रह गयी है, कि उनकी पत्नी भड़क गयी और अकस्मात् काफीका प्याला लिङ्कनपर दे मारा। कितने ही लोग आपके सामने खा रहे थे; पर उसने इस बातकी कोई परवाह न की।

लिङ्कनने कुछ भी नहीं कहा। अपमानित हुए बैठे रहे। श्रीमती अर्ली एक भीगा तौलिया लेकर आयीं और लिङ्कन-का मुंह पोंछकर उनके कपड़े साफ कर दिये।

श्रीमती लिङ्कनकी मूर्खतायें, उनकी बेहूदगियां ऐसी थीं कि आज ७५ सालके बाद भी उनका वर्णन पढ़नेपर चकित होना पड़ता है। किसी समय भी निश्चित न था कि वह कब और कहां भड़क उठेगी और क्या कह डालेगी। अन्तमें वह पागल हो गयी और उसपर तरस खानेके सिवा उसे और कोई कुछ कह ही क्या सकता है।

इस प्रकारकी पत्नियां क्या अपने पतिके जीवनकी सच्ची सहचरी हो सकती हैं? ऐसी पत्नियोंको भी क्या इस बात-की शिकायत हो सकती है कि उन्हें दाम्पत्य सुख न मिला, पारिवारिक शान्ति न मिली? श्रीमती लिङ्कन अपने इस प्रकारके व्यवहारोंसे क्या लिङ्कनमें कोई सुधार कर सकीं? बल्कि उल्टे लिङ्कनमें एक बात हुई और वह यह कि पत्नीकी इन हरकतोंसे तङ्ग आकर उसकी ओरसे वे उपेक्षा दिखाने लगे।

स्प्रिङ्गफील्डमें ग्यारह एटर्नी थे और सभीके लिए वहां जीविकोपार्जन करना कठिन था, अतः जज डेविसके साथ वे भी दौरेपर जाते, जिससे दूसरे जिलोंके मुकदमे भी उन्हें मिल जाया करते थे।

दूसरे एटर्नी शनिवार तक काम देखते और समय मिलते ही परिवारके साथ छुट्टी बितानेके लिए चले आते। लेकिन उस मनुष्यकी यन्त्रणाको भला सोचिये, जो छुट्टी मिलते ही डरके मारे—पत्नीके चिड़चिड़े स्वाभावके डरके मारे घर

आनेकी हिम्मत न कर सके। लिङ्कन बाहर ही पड़े रह जाते। घर आकर कौन अपनी जान आफतमें डाले ?

और इस प्रकार उन्होंने कई वर्ष बिता दिये। देहाती होटलोंकी अवस्था अच्छी नहीं रहती थी, और भी कितनी ही तरहकी अवस्थाओंसे कष्ट मिलते थे; पर पत्नीकी सूरतसे उन्हें चिढ़ थी और उसके साथ उन्हें जो मानसिक यन्त्रणा थी, उसके मुकाबले इन कष्टोंको उन्होंने कुछ भी नहीं समझा।

ये परिणाम थे सम्राज्ञी मेरी, श्रीमती लिङ्कन और काउण्टेस टाल्स्टायके स्वभावोंके। अपने स्वभावोंसे इन तीनोंने ही परिवारमें अशान्ति मचा रखी थी और कौन कह सकता है कि उनके पतियोंके जीवन उनके कारण भार नहीं हो गये थे। उनकी पत्नियोंने जो कुछ मनसे चाहा, उनके कर्मोंने उन्हीं सबको नष्ट किया।

न्यूयार्क शहरके पारिवारिक सम्बन्ध-सम्बन्धी अदालतमें ११ वर्ष तक काम करनेमें ख्याति-प्राप्त बेसी हेम्बर्गरने लिखा है कि पुरुषों द्वारा घर छूटनेके कारणोंमें सबसे प्रधान कारण रहा है उनकी पत्नियों द्वारा निरन्तर आलोचना करने, दोष निकालते रहने एवं भुनभुनाते रहनेकी आदत। जैसा कि 'बोस्टन पोस्ट'ने लिखा था—कितनी ही पत्नियां स्वयं अपने हाथोंसे थोड़ा-थोड़ा रोज खोदकर अपने विवाहकी कब्र तैयार कर देती हैं।

× × × ×

"जीवनमें चाहे जितनी भी गलतियां करूं, लेकिन प्रेमके लिए मैं कभी भी विवाह नहीं करना चाहता।"

डिसरेलीने ऐसा कहा था और वास्तवमें उसने ऐसा ही किया भी। ३५ साल तक वह कुआंरा रहा और तब उसने एक धनी विधवासे विवाहका प्रस्ताव किया — एक ऐसी धनी विधवासे, जिसके केश सफेद हो चले थे, ५० पतझड़ोंके जिसने झोंके खाये थे। प्रेम ? ना ; वह जानती थी कि डिसरेली उससे प्रेम नहीं करता। वह जानती थी कि डिसरेली उससे नहीं, उसकी सम्पत्तिसे विवाह कर रहा है। इसलिए उसने डिसरेलीसे कहा कि मुझे एक साल तक अपने (डिसरेलीके) चरित्रका अध्ययन करने दो और तब विवाहका निश्चय किया जा सकेगा।

कुछ सौदा-सा मालूम हो रहा है न ? प्रेमके लिए नहीं, धनके लिए विवाह, यह सौदा नहीं तो और क्या है ? लेकिन क्या आपको मालूम नहीं, डिसरेलीका वैवाहिक सम्बन्ध अत्यन्त सफल सम्बन्धोंमेंसे था।

डिसरेलीने विवाहके लिए जो विधवा खोज निकाली थी, वह न तो सुन्दरी थी और न तरुणी। बल्कि उल्टे उसमें अवगुण थे। उसकी बातचीतमें इतनी गलतियां होतीं कि मुंह खुला नहीं कि अट्टहास गूंजने लगता। इतिहासका ज्ञान उसे इतना भी न था कि वह जानती कि रोमन पहले आये या ग्रीक। पोशाक तथा घरकी सजावटके सम्बन्धमें भी उसके विचार बड़े ही भोंड़े थे। लेकिन उसमें एक खास प्रतिभा थी—मनुष्योंके साथ व्यवहार कैसा करना चाहिए।

उसने इस बातकी कभी कोशिश नहीं की कि डिसरेलीके साथ अपनी बुद्धिका साम्य मिलाये। लेकिन डिसरेलीको यह बात कभी अखरी नहीं। दिन-भरके परिश्रमके बाद थका-मांदा जब वह घरपर आता, मेरी एन अपनी छोटी-छोटी मनोरञ्जक बातोंसे उसका दिल बहलाती। मेरी एनके पास बौद्धिक बातें नहीं थीं, तो उनकी आवश्यकता भी डिसरेलीके लिए न थी। घरमें आनेपर मेरी एनकी गपशपमें ही उसे आनन्द आता और एक अनुभवी सहचरीके रूपमें वह उसके लिए बड़ी मूल्यवान सिद्ध हुई।

तीस साल तक मेरी एन डिसरेली और केवल डिसरेलीके लिए ही जीवित रही। अपनी सम्पत्तिका भी मूल्य उसकी नजरमें अब केवल इसीलिए रह गया था कि इससे डिसरेलीको सुख मिले। इसके बदलेमें वह इसी बातसे सन्तुष्ट थी कि वह डिसरेलीकी पत्नी थी। उसके मरनेके बाद वह अर्ल बनाया गया, लेकिन डिसरेलीने इसके पहले ही सम्राज्ञी विक्टोरियाको एनको सम्मानित करनेके लिए राजी कर लिया था। १८६८ में एन वाइकाउण्टेस बेकन्सफील्ड बनायी गयी।

सर्वसाधारणमें वह चाहे जितनी बेहूदी दिखाई पड़े, चाहे उसकी हरकतें जितनी भी मूर्खतापूर्ण हुई हों, डिसरेली कभी उसकी निन्दा नहीं करता था। और अगर कभी कोई उसका मखौल करनेकी कोशिश करता, तो उसे डिसरेलीकी भीषण कटूक्तियोंका शिकार होना पड़ता।

मेरी एनमें कितनी ही अपूर्णतायें थीं; पर ३० वर्ष तक वह अपने पतिकी प्रशंसा करते न थकी। और परिणाम ?

डिसरेलीने स्वयं कहा है कि "तीस सालसे हम लोग विवाहित हैं; पर मैं एक दिन भी इस जीवनसे ऊबा नहीं।"

डिसरेलीने कभी इस बातको छिपाया नहीं कि मेरी एनका उसके जीवनमें सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान था। और परिणाम? मेरी एन स्वयं अपने परिचितोंसे कहती, "उनकी कृपाका धन्यवाद है कि मेरा समस्त जीवन प्रसन्नताका एक दीर्घ दृश्य है।"

उनमें आपसमें कभी-कभी मजाक भी हो जाते। डिसरेली कहता, "तुम्हें मालूम है, मैंने सिर्फ तुम्हारी सम्पत्तिके लिए ही तुमसे विवाह किया?" और मेरी मुस्कराती हुई उत्तर देती, "ठीक है, लेकिन अब फिर तुम्हें मुझसे विवाह करना हो, तो तुम रुपयेके लिए नहीं, मेरे प्रेमके लिए करोगे।"

और डिसरेली स्वीकार करता। मेरी एनमें अपूर्णतायें थीं, इसमें सन्देह नहीं; पर डिसरेली जानता था कि एनको किन बातोंसे प्रसन्नता होती है। हेनरी जेम्सने ठीक ही कहा है—"दूसरे व्यक्तियोंके सम्पर्कमें आते ही सबसे पहले जिस बातका जानना जरूरी है, वह यह कि हरएक व्यक्तिके पास प्रसन्नताके लिए कुछ अनोखे तरीके हैं और उन तरीकोंमें कभी भी हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।"

सार्वजनिक जीवनमें डिसरेलीका सबसे बड़ा विरोधी था ग्लैडस्टन। साम्राज्यके अन्तर्गत किसी भी विवादग्रस्त प्रश्नपर ये दोनों लड़ पड़ते, लेकिन फिर भी उनमें एक बात समान रूपसे थी। व्यक्तिगत जीवन दोनोंका सुखी था। सार्वजनिक जीवनमें ग्लैडस्टन एक कठोर आलोचकके रूपमें आता, लेकिन घर पहुंचते ही उसकी सारी आलोचनाकी शक्ति जैसे नष्ट हो जाती, कभी उसने घरेलू प्रश्नोंपर आलोचना की ही नहीं। कभी वह उठता और नाश्तेके टेबुलके पास जाता, तो पता चलता कि घरके सभी लोग सो रहे हैं, उसे चिढ़ होती, लेकिन कभी उसने अपने स्वभावको काबूसे बाहर नहीं जाने दिया। ऐसे अवसरोंपर प्रतिवाद करनेका उसका एक खास ढङ्ग था। अपनी आवाज जरा तेज करता और कमरोंमें किसी तरह आवाज पहुंच जाती, जिसका मतलब था कि इंगलैण्डका सबसे व्यस्त व्यक्ति नाश्तेके टेबुलपर अकेला बैठा दूसरोंकी प्रतीक्षा कर रहा है। सदा उसने घरमें ऐसी ही नीतिसे काम लिया और परिणाम यह हुआ कि पारिवारिक शान्ति कभी भङ्ग न हुई।

कैथरीन ग्रेटकी भी बात यही थी। संसारके सबसे बड़े साम्राज्यपर वह शासन करती थी। लाखों व्यक्तियोंके जीवन और मृत्युका अधिकार उसके हाथोंमें था और राजनीतिमें प्रायः वह स्वेच्छाचारिता दिखाती भी थी, व्यर्थकी लड़ाइयां मोल लेना और दर्जनों व्यक्तियोंको तलवारके घाट उतार देना उसका काम था। पर घरेलू मामलोंमें उसने कभी चिड़चिड़ेपनका परिचय नहीं दिया। खाना जल गया है, तो भी चुपचाप जैसा पाया, खा लिया और कुछ बोली नहीं। उसकी उस समयकी-सी सहनशीलता अगर हममें आ जाय, तो हमारे घर स्वर्ग बन जायं।

इन सारी घटनाओंसे स्पष्ट होता है कि किस प्रकार हमारे जीवनमें छोटी-छोटी बातें भी भीषण नाशकारी परिणाम उपस्थित कर देती हैं और किस प्रकार सद्भावनाकी छोटी-छोटी बातें जीवनमें सुख और शान्तिकी वर्षा करनेवाली होती हैं। अतएव जीवनमें सुख-शान्ति चाहनेवालोंको इनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। आश्चर्यकी बात है कि बाहर हम संस्कृतिके नामपर, शील और सौजन्यके नामपर कष्ट उठाकर भी भद्रोचित व्यवहार करते हैं; पर घरमें, जहां वास्तवमें जीवनके सच्चे सुखकी सृष्टि होती है, इसकी आवश्यकता महसूस नहीं करते। जार-कालीन रूसमें बड़े-बड़े भोजोंमें खा-पी लेनेके बाद रसोइयेको भोज-गृहमें बुलाकर बधाई देनेकी प्रथा थी। तो आज क्या पत्नीके लिए भी इस प्रकारकी भद्रता दिखानेकी आवश्यकता नहीं है? आप याद रखिये कि जब पत्नी आपके लिए एक नन्हा-सा काम कर देती है, तब आप प्रसन्नहृदयसे एक बार उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर दीजिये और देखिये कि उसपर कैसा मोहन मन्त्रका-सा असर होता है। दूसरी बार वह आपके लिए और भी सावधानी दिखायेगी। शिकागोके जज जासेफ सब्बथने, जिन्होंने प्रायः ४०,००० वैवाहिक झगड़ोंका फैसला किया था और प्रायः २००० दम्पतियोंमें सुलह करायी थी, गलत नहीं कहा था कि—वैवाहिक सम्बन्धको सुखी या दुखी बनानेवाली केवल छोटी-छोटी बातें हैं। पति-पत्नी अगर छोटी-छोटी बातोंका ख्याल रखें, तो तलाककी नौबत ही न आये। ×

× डेल कारनेगीकी How to win Friends & Influence People के आधारपर।

इलाही खलीफा

प्रो० सद्‌गुरुशरण अवस्थी, एम० ए०

सहवास-स्नेह भी एक विचित्र वृत्ति है। घरमें चूहे काट-कर गन्दा कर देनेवाली बिल्ली हमें देखे नहीं सुहाती। हम उसके मारनेकी घातमें रहते हैं। उसका प्रतिदिनका कार्य क्षोभको और बढ़ाता रहता है। पर यदि एक दिन मार्गके उस पार सामनेके घरमें प्रवेश करनेके प्रयासमें सहसा मोटर-से कुचलकर रक्त-वमन करती हुई मर जाती है, तो न जाने कहांका स्नेह उमड़ पड़ता है। दीर्घकालीन सम्पर्ककी परि-स्थिति अकेली ऐसी है, जो अनुराग स्वतः उत्पन्न कर देती है। जब वह अनुराग किसी कारणवश हमारे मनसे मेल नहीं खा सकता, तब वह अर्ध सजग अथवा असजग तलोंमें छिप जाता है। विरोधका आधार निधनके बाद तो रह ही नहीं जाता, अतएव यह तिरोहित अनुराग सजग मस्तिष्कमें उमड़कर आ जाता है। बेचारा मनुष्य सहानुभूतिसे प्रवाहित हो उठता है। यदि यह कहा जाय कि अशेषके साथ शेषकी एकरूपा-त्मकता अद्वैतकी नैसर्गिक वृत्ति ही इस सहानुभूतिके मूलमें रहती है, तो भी अनुचित न होगा। कुरूप और वीभत्स विषय, प्राणियोंकी विकृत आकृति, किसी प्रकारका भी निरालापन अथवा अलौकिकता, हम क्रमशः भूल जाते हैं, यदि उसके साथ हमारा सम्पर्क अधिक रहता है। वैचित्र्यकी प्रखरता भी सहवाससे नष्ट हो जाती है।

आज न जाने मुझे कहांका शोक था। इलाही खलीफा-को मैं बिलकुल नहीं चाहता था। उसे घर आते देखकर मैं क्षुब्ध हो जाया करता था। फिर भी आज यह सहसा सुन-कर कि वह पासकी गलीमें मरा पड़ा है, मेरा मन रो उठा। वह अभी-अभी मेरे यहांसे गया था। मैंने उसे बहुत सम-झाया था कि ऐसे भीषण समयमें जब हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरेके रक्तके प्यासे होकर विवेक और राष्ट्रीयताका मखौल उड़ाकर प्राणोंकी होली खेल रहे हैं, तो कुछ दिनोंके लिए आना बन्द कर दे। पर वह कबका माननेवाला था। सुन पाया कि छोटे बाबूके छोटे बच्चेका मुण्डन है, हथेलीपर जान रखकर आ गया।

तीन दिनोंसे एक छोटी कोठरीमें भीतर बैठा-बैठा बच्चोंके कपड़े सिला करता। रातको लुक-छिपकर रोज निकल जाता। मेरे छोटे भाईने एक दिन काफी समझाया—

'खलीफाजी, जब तक तुम्हें यहां काम करना है, यहीं बने रहो। नहीं तो बूढ़ी सूखी खोपड़ीको कोई नारियलकी भांति तोड़ देगा। बड़ी खूंरेजी हो रही है।'

वह हंसता—'कजासे कौन बचा सकता है बच्चा बाबू? मैं तो चुपकेसे दाहिनी ओरकी गलीसे निकल जाता हूं। आगे मुसलमानी बस्ती मिल जाती है।'

हम लोग भी इसकी रक्षाके लिए कोई विशेष उद्विग्न न थे। हम लोगोंकी इसके प्रति पुरानी घृणा जागरित हो उठी। मैंने बच्चा बाबूसे कहा—'मरने दो जो नहीं मानता है। हम लोग और क्या कर सकते हैं?"

इस इलाही खलीफासे, एक समय था, हम दोनों भाइयोंका रोम-रोम उत्तेजित हो उठा था। हम लोग इससे घृणा ही नहीं करते थे, इसके मर जानेकी ईश्वरसे प्रार्थना भी करते थे। मुझे वह क्षण स्मरण है, जब मैंने इसे पहले-पहल देखा था। मेरी आयु छः-सात वर्षसे अधिक न होगी। मेरा भाई तो बिलकुल ही छोटा था। इलाही खलीफा बिलकुल युवा था। इसकी दाढ़ी बिलकुल काली थी। मूछोंकी कतरनमें इस्लामियत न थी। हिन्दुओंकी भांति धोती बांधता था। पिता और दादाजीसे पायलागन करता था, उनके आशीर्वादके लिए घण्टों खड़ा रहता था। मुन्शीजीसे जय रामजीकी करता था। चटाईके एक कोनेमें कमर झुकाये सायङ्काल तक—और कभी दिया जलनेके बहुत बाद तक बैठा-बैठा कपड़े सिला करता। पांच-सात दिनों तक दिखाई देता, फिर सहसा किसी दिनसे गायब हो जाता। इसकी उंगलीके बीचमें सुई चमकती और उससे बचनेके लिए तर्जनी-कवच चमकता।

मैं भी बड़ा हुआ और भाई भी बढ़ा। इलाही खलीफा बूढ़े हो चले। किसीका विवाह, किसीका जनेऊ, किसीका मुण्डन, किसीका छेदन बराबर होते ही रहे और इलाही खलीफा अपनी 'बकसीस' लेने बराबर आ जाया करते थे।

वह ऐसे अवसरोंपर कपड़ोंकी सिलाई न लिया करते थे। 'बकसीस'में उसकी कसर निकल आती थी।

एक समयकी घटना मुझे अच्छी तरह स्मरण है। इलाही खलीफा बूढ़े थे। मैं कालेजमें पढ़ता था। गर्मियों-की छुट्टियां थीं। घरपर ही था। सहसा इलाही खलीफा पिताजीके पास आकर सलाम करके बोले—'बड़े बाबू! बड़ी मुसीबतमें हूं। पेट पालनेके लाले पड़े हैं। कुछ काम दीजिये। हुजूरकी इमदादका ही भरोसा है।" मैं सशङ्क हो गया। यह आपत्ति मेरे ही ऊपर आयेगी, ऐसा मुझे भासित होने लगा। अभी कल ही मेरे लिए अचकन और पायजामेका कपड़ा आया था। पिताजी बन्द गलेका कोट पहनते थे। वे अपने लिए कोटका कपड़ा लाये थे। भाईके लिए भी एक कोट बनना था। पिताजीने कपड़ेका सारा पुलिन्दा लाकर इलाही खलीफाके सामने डाल दिया। उसकी आंखें चमक उठीं। हम दोनों भाइयोंकी आंखोंमें आंसू भर आये। उसकी चटाई तुरन्त बिछ गयी। दखिन टेलरिङ्ग शापमें कपड़े सिलनेके हम लोगोंके मनसूबे भङ्ग हो गये। पिताजीने हम लोगोंके आंसुओंको देख लिया और उसीके सामने डांटने लगे। हम लोगोंने सिर झुका लिया।

भीतर आकर पिताजी हम लोगोंको समझाने लगे।

'बेटा, बूढ़ा आदमी है। दया नहीं आती? हमारे घरका बहुत दिनोंसे आसरा लगाये रहता है। इसका बाप भी हमारे घरकी रोटियोंसे पला था। अब हमें छोड़कर यह कहां जाय?'

'तो आप इसके खानेका प्रबन्ध कर दीजिये। कपड़े बरबाद करनेसे क्या लाभ?' मेरे छोटे भाईने कहा। पिताजी खेद प्रदर्शित करते हुए कहने लगे—'तुम लोग इतने शौकीन हो गये हो। कपड़ा थोड़ा छोटा-बड़ा हो जायगा और क्या? तनके ढकनेके लिए कपड़े होते हैं। श्रृङ्गार करना लड़कियोंका काम है। मैंने अपना कपड़ा भी तो इसीको दिया है।'

मुझसे न रहा गया। मैंने धीरेसे कहा—'आपकी बात और है, हम लोगोंको लड़के हंसते हैं।' अब तो पिताजीने व्याख्यान-सा देना आरम्भ कर दिया— 'ठीक है। परन्तु तुम लोग फैशनपर रुपये बरबाद करनेवाले विद्यार्थियों-पर क्यों नहीं हंसते? क्यों नहीं गरीब विद्यार्थियोंकी एक टुकड़ी बनाकर उनका मजाक उड़ाते? बेटा! तुम्हारी आत्मा स्वयं दुर्बल है। बहावमें बहना सरल है। प्रतिकूल जानेके लिए बल चाहिए।'

हम लोगोंको अब आगे कहनेका कुछ साहस न हुआ। पर मुंह अभी सीधा न हुआ था। बाहर आकर इलाहीको देखा, तो उसी धुनसे कपड़े हाथमें लिये बैठा था। हम लोगों-को देखकर बड़ी दयनीय भाषामें कहने लगा, 'छोटे बाबू, बचा बाबूके साथ इधर आ जाइये, तो अचकन और कोटकी नाप ले लूं।'

हम लोग सादे भावसे खड़े हो गये। उसने नाप ले ली।

धीरेसे आंसू भरकर कहने लगा—'छोटे बाबू, थोड़े दिनोंकी जिन्दगी है। अपने पैसेसे पले हुए इस गरीबको मत ठुकराइये। आपको शिकायतका बहुत मौका न मिलेगा।'

हम लोगोंका रूखापन न जाने कहां उड़ गया। अभी दो वर्ष पहलेका दृश्य है—यह भी घटना मुझे स्पष्ट स्मरण है। न जाने कहांसे ढूंढ़ता हुआ इलाही मेरे बंगले सिविल लाइन-में आ गया। मालूम हुआ कि घर गया था और वहांसे माताजीसे मेरा पता जानकर यहां आ पहुंचा। सेवकोंने उसे फाटकपर ही रोक रखा था। इलाही खलीफा मेरा नाम न जानता था। छोटे बाबूके नामसे बड़े बाबू कैसे पहचाने जा सकते थे? उसने बहुत कुछ पहचान बतलायी; पर सेवकोंने एक न सुनी। सहसा मेरा बड़ा बच्चा प्रकाश, जिसके विद्या-रम्भ-संस्कारके उपलक्षमें प्रीतिभोज होने जा रहा था, मेरे पास दौड़कर आया और कहने लगा—

"बाबूजी! एक बूढ़ा मुसलमान न जाने किसको पूछ रहा है। मुरली उसे आने नहीं देता।"

मैं सूट पहने बाहर निकल आया। इलाही खलीफाने मुझे इस वेशमें कभी नहीं देखा था। पर न जाने किस अज्ञात शक्तिकी प्रेरणासे उसके मुंहसे सहसा निकल गया—'छोटे बाबू, सलाम।'

बोलीसे मैं भी तुरन्त पहचान गया। वह हम लोगोंकी नितान्त परिचित थी।

मैंने इलाही खलीफाको भीतर बुला लिया। ज्योंही मैंने उससे यह कहा—'कहो इलाही खलीफा, मजेमें तो हो?' वह फूट-फूटकर रोने लगा। उसकी केवल इतनी बोली समझ पड़ी—'हुजूरने तो इस गरीबको बिलकुल भुला दिया।'

जब तक पिताजी जीवित थे, मैं इस इलाही खलीफासे बात तक करनेमें चिढ़ता था। इसको घर आते देखकर यही ध्यान आ जाता था कि कपड़ोंको बिगाड़नेवाला भूत आ गया। पर आज इसकी सहसा इस कातर वाणीको सुनकर मन कुछ पिघलने लगा। मानो पिताजीका मैं प्रतिनिधित्व कर रहा था।

इलाहीका शरीर बिलकुल जरा-ग्रस्त था। खाल लटक आयी थी। कमर भी झुकनेवाली थी। मैं इलाहीको भीतर ले आया। एक किनारेसे सजे हुए हम लोगोंके सब चित्रोंको एक-एक करके उसने देखा। पिताजी, प्रपिता, भाई, बहन, सभीको वह बड़ी उमङ्गसे पहचानता गया। प्रत्येककी प्रशंसा-में कोई-न-कोई अच्छा वाक्य कह देता, नेत्रोंमें जल भर लेता। मेरे कई चित्र थे। उन्हें भी इसने पहचान लिया। एक चित्र देखा, तो चिल्ला उठा और कहने लगा, 'यह अचकन जो आप पहने हुए हैं, मेरा ही सिला हुआ है।' मेरे प्रकाश-को तो वह गोदसे ही न उतारता था। अनिच्छापूर्वक वह भी बैठा रहा। अपने बचपनमें मैं उतना सीधा और शान्त न था, जितना प्रकाश है। मैंने कहा—'कहो इलाही खलीफा, कैसे काम चलता है?'

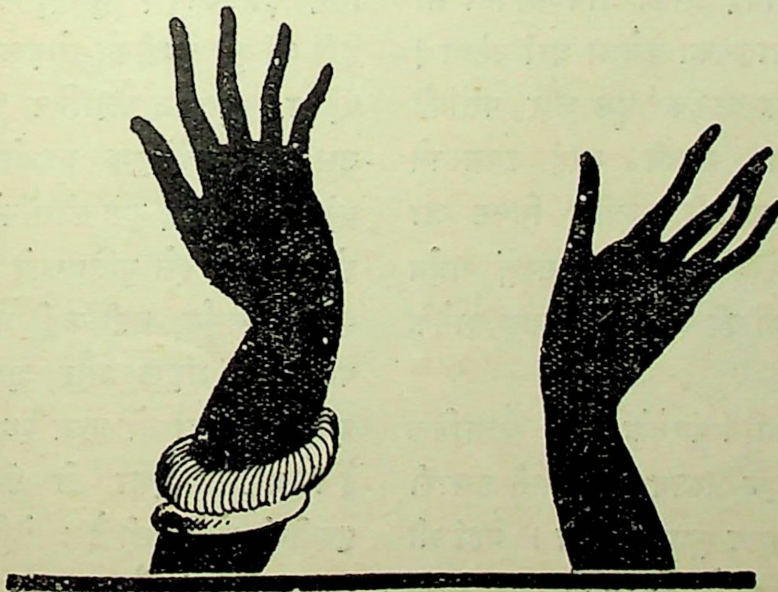
उसने उत्तर दिया—'छोटे बाबू, आपका इकबाल काम करता है। मेरे तो हाथ-पैर बिलकुल थक गये हैं। तङ्गी बड़ी रहती है।'

मैंने पांच रुपयेका एक नोट निकालकर उसको देना चाहा। उसने झट मुंह फेर लिया और कहने लगा—'छोटे बाबू, आदत न बिगाड़िये। अब तो थोड़े ही दिनों जीना है। भीख मांगनेकी अगर आदत पड़ गयी, तो ढीले-ढाले अङ्ग काम करनेसे और भी मुंह चुरावेंगे। परकास बाबूकी कोई खिदमत अगर कर सकूं, तो बतलाइये।'

मैंने कहा—'अच्छा, खाना तो खाओ।' इसपर भी वह बड़ी कठिनतासे ही सहमत हुआ। बार-बार यही कहता कि हुजूरका ही तो खाता हूं।

इधर इलाही खलीफा खाना खा रहा था, उधर मैंने नौकरको दौड़ाकर एक थान धुला लङ्कझाथका मंगवाया। वह खाकर उठा नहीं कि मैंने इस कपड़ेको उसके सामने रख दिया। फिर उससे बतलाया—'मेरे चार पायजामे, प्रकाश और सन्तके एक-एक दर्जन कुरते और एक-एक दर्जन कमीजें, कुछ गिलाफ और कुछ इन बच्चोंके पायजामे बना लाना।' उसने सबकी नाप ली और प्रकाशको प्यार करके सलाम करता हुआ चल दिया।

———



पृथ्वी-निवासियोंका भावी संसार—शुक्र

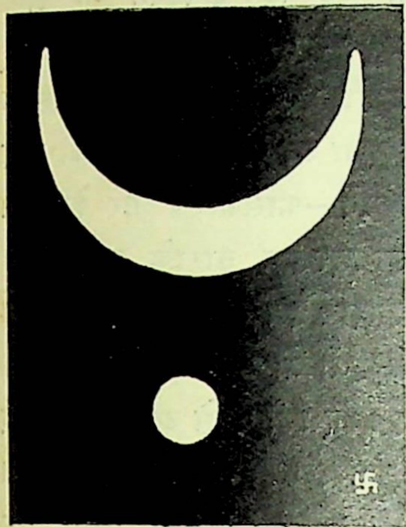
श्री ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

पुराणोंका कथन है कि एक युगके बाद दूसरा युग आता है। संसारमें प्रलयका ताण्डव होता है। बड़ी विकराल आंधियां उठती हैं, बादलोंके समूहके समूह गगनमण्डलमें घुमड़ने लगते हैं, मूसलाधार वर्षा होती है तथा सब पृथ्वी जलमयी होकर जीवनशून्य हो जाती है। यह कथन कहां तक सत्य है, कहा नहीं जा सकता। परन्तु कुछ वैज्ञानिकोंकी दृष्टिमें प्रलय अवश्य होगा और सारी पृथ्वी प्रलयके अन्धकारमें विलीन हो जायगी। हमारा नन्हा-सा संसार देखते-देखते मटियामेट हो जायगा। एक दिन भगवान् सूर्यकी धधकती किरणें त्राहि-त्राहि मचा देंगी। पृथ्वीपर समुद्रका नामोनिशान नहीं होगा, चारों ओर होंगे तपते रेगिस्तान! जलकी भांति अग्निकी मूसलाधार वर्षा होगी। पशु-पक्षी-मानव सभी व्याकुल होकर अपने प्राण खोने लगेंगे। ध्रुव-प्रदेशमें सहरा-जैसी लू बहने लगेगी। वृक्ष तथा पौदे भी अपना लहराता हुआ हरियालीका मोहक अम्बर खो बैठेंगे। ऋतुओंकी कलाओंका चमत्कार जाता रहेगा। वह वसन्तकी बहार और पानीकी झमाझम वर्षा न रहेगी और न फिर कभी चमकती हुई चांदनी ही नजर आवेगी, मन्द-मन्द वायुके झोंके हमसे अन्तिम बिदा ले लेंगे! और फिर रेगिस्तानोंकी जो दशा होगी, शायद उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते। पर्वतराज हिमालयका कलेजा थर्रा उठेगा! उसकी विशालकाय चट्टानें चटक-चटककर फूल और पत्तोंकी तरह बिखरने लगेंगी। पृथ्वी गेंदकी तरह डगमगाने लगेगी! चन्द्रमा खिसककर हमारी पृथ्वीके निकट आ जायगा और अन्तमें महासागरोंकी विकराल तरङ्गें गर्जन करती मुंह बाये दौड़ पड़ेंगी पृथ्वीकी ओर उसे निगल जानेके लिए।

मङ्गलके धरातलका अनुसन्धान करनेके बाद वैज्ञानिक इसी निष्कर्षपर पहुंचे हैं कि एक समय मङ्गल भी हमारी पृथ्वीकी भांति हरा-भरा और फला-फूला ग्रह था। वहां भी एक दिन राग-रङ्ग होते थे, मौज और बहार थी। एक समय वहां भी गगनचुम्बी अट्टालिकायें थीं और उनमें विलास करनेवाले मौजी जीव भी। लेकिन समयने पलटा खाया। मङ्गल ग्रहका वह वैभव और ऐश्वर्य आज धूलमें लोट रहा है। आकाशको छूते उन विशाल प्रासादोंकी हस्ती मिट गयी, किलकारियां मारते हुए मतवाले समुद्रोंका पता तक नहीं है। लहलहाते गांवों और झकझकाते शहरोंकी छातीपर आज दहकता हुआ दानव रेगिस्तान, सर्वनाशकी लोरियां गा रहा है। वहांके विलासी जीव आज बूंद-बूंद पानीके लिए तरस रहे हैं।

और ठीक यही दशा एक दिन लहलहाती और अपनी सुन्दरतापर इठलाती हमारी पृथ्वीकी भी होनी है। मङ्गल ग्रह इसकी भविष्यवाणी कर रहा है। आज जिस तरह मङ्गल ग्रहकी नहरों और रेगिस्तानोंने आधुनिक वैज्ञानिकों तथा खगोल-शास्त्रियोंके बीच एक उथल-पुथल-सी मचा दी है, रह-रहकर मनुष्यकी आंखें टेलिस्कोप द्वारा मङ्गलके धरातल तक पहुंचती हैं, ठीक वैसे ही एक दिन, वह दिन निकट आ रहा है, अन्य ग्रहके निवासी हमारी-सी ही उत्सुकतासे, टेलिस्कोप द्वारा हमारी पृथ्वीका निरीक्षण करेंगे।

प्रलयकी उन रोमाञ्चकारी घड़ियोंमें तब पृथ्वी-निवासियोंके सामने दो ही प्रश्न होंगे—मौतकी गोद या पृथ्वीको सदाके लिए नमस्कार! युग-युगसे सजी-संवारी तथा उनके खूनसे हरी की हुई पृथ्वीको छोड़कर जानते हैं मनुष्यको कहां जाना पड़ेगा? महान् वैज्ञानिक 'हालडे' का ऐसा विश्वास है कि उस समय उन्हें शुक्र ग्रहको अपना निवास-स्थान बनाना पड़ेगा। शायद कुछ लोगोंको यह बात आश्चर्यजनक मालूम हो और वे इसे गुलिवरकी कहानी समझें। लेकिन यह बात एकदम निर्मूल नहीं कही जा सकती। चन्द्रमाके अतिरिक्त परिवारमें मङ्गल और शुक्र पृथ्वीके निकटतम पड़ोसी हैं। इनमें मङ्गलका तो जन्म पृथ्वीसे करोड़ों वर्ष पहले हो चुका है। वहांकी दशा तो ठीक वही हो गयी है, जो हमारी पृथ्वीकी होनेवाली है। लेकिन शुक्रका जन्म हमारी पृथ्वीसे बहुत बाद हुआ है। इस समय उसकी वैसी ही अवस्था होगी, जैसी हमारी पृथ्वीकी हमारे आदि पुरुषोंकी सृष्टिसे



शुक्रका सूर्य-परिक्रमा-पथ अधिक गोल और पृथिवीकी कक्षाके अन्दर होनेके कारण वह चन्द्रमा की ही भांति भिन्न-भिन्न कलाओंमें दृष्टिगोचर होता है।

कुछ ही पूर्व थी। ऐसी दशामें यदि वह मानवोंका भावी अधिवास कहा जाय, तो आश्चर्यकी क्या बात है?

सूर्यकी दूरीके लिहाजसे बुधके बाद शुक्रका ही स्थान आता है। सूर्यसे इसकी दूरी प्रायः ६ करोड़ ७२ लाख मील है। बुधसे यह ३ करोड़ १७ लाख मील दूर है। इसकी गोलाईका व्यास ७८०० मील है। यह व्यास पृथ्वीके व्याससे २५८ मील कम है। चन्द्रमा और सूर्यके अतिरिक्त आकाशमें टिमटिमाते सभी ग्रह-उपग्रहोंसे शुक्र अधिक मनोहारी दीख पड़ता है। इसकी सुन्दरतापर ही मुग्ध होकर मानो प्राचीन ग्रीक ज्योतिषियोंने इसे सौन्दर्यकी देवी 'वीनस'की उपमा दी थी।

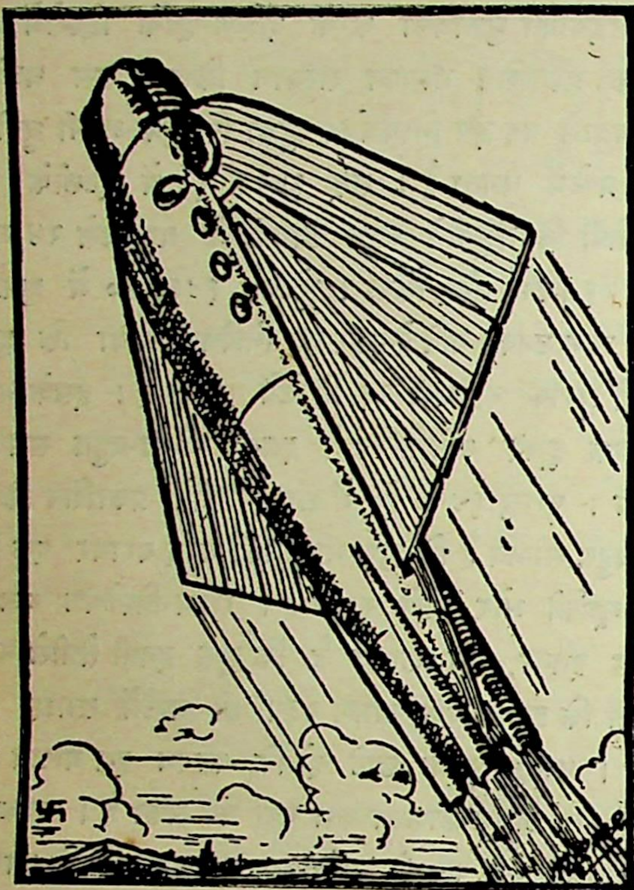
शुक्र और पृथ्वी एक-दूसरेसे बहुत निकट हैं। शुक्र पृथ्वीसे कुछ छोटा है। इसका परिमाण, ऋतु-परिवर्तन, भ्रमण, आर्द्रता और उष्णताका भाग सभी कुछ पृथ्वीसे मिलता-जुलता है। जैसा सादृश्य पृथ्वी और शुक्रमें है, वैसा किसी और ग्रहमें नहीं है। इसकी आकर्षण-शक्ति भी पृथ्वीकी आकर्षण-शक्तिके बराबर ही है। पृथ्वीपर जिस वस्तुका भार २०० मन है, उसका भार शुक्रपर ८५ मन है। शुक्रको पृथ्वीका यमज कहा जा सकता है। पृथ्वीके साथ उसकी समानता देखते हुए यह बात गलत भी नहीं कही जा सकती। पृथ्वीसे शुक्रकी दूरी कमसे कम २५७०००० मील है।

शुक्रकी गतिका और उसे अपनी धुरीपर घूमनेमें कितना समय लगता है—इसका पता लगानेमें ज्योतिषियोंको बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ा था। गुरु, शनि अथवा मङ्गलकी भांति शुक्रके पृष्ठ-भागपर कोई धब्बा नहीं मालूम होता। डोमिनिक कैसिनीने सन् १६६७ ई० में बड़ी-बड़ी कठिनाइयोंका मुकाबला करके दक्षिण-पूर्वके हिस्सेमें एक अधिक प्रकाशित भागका सन्धान किया। इस धब्बेकी सहायतासे वह इस निष्कर्षपर पहुंचा कि शुक्र अपनी धुरीपर २३ घण्टेमें घूमता है। सन् १७२६ ई० में इटलीके एक ज्योतिषी बियाङ्किनीने बहुत छानबीनके बाद उसे २४ घण्टे और २१ मिनट सिद्ध किया। थ्रूटरने १८१३ ई० में शुक्रपर धब्बे और उनकी गति देखकर यह निश्चित किया कि शुक्र अपनी धुरीपर २३ घण्टे २१ मिनटमें घूमता है। इसके बाद कई-एक दूसरे ज्योतिषियोंने इसका थोड़ा-बहुत समर्थन किया। परन्तु १८९० ई० में शायापरेलीने प्रकाशित किया कि बहुत सम्भव है कि शुक्र भी बुधकी तरह बराबर एक ही मुख सूर्यकी ओर किये रहता है। रश्मि-विश्लेषण यन्त्रसे केवल इतना पता लगता है कि शुक्र इतनी तेजीसे नहीं घूमता कि इसका एक भ्रमण २३॥ ही घण्टेमें समाप्त हो जाय। परन्तु शुक्रके छोटे होनेके कारण इस यन्त्रसे भी इसके ठीक भ्रमण-कालका पता नहीं चल सका है। तापक्रम नापनेसे भी पूरा पता तो नहीं चलता है; परन्तु अन्धेरे भागोंका तापक्रम बहुत कम नहीं जान पड़ता, जिससे शुक्रके सदा सूर्यकी ओर एक ही मुख फेरनेकी बातमें शङ्का पड़ जाती है।

चन्द्रमा, एक-दो अन्य ग्रहों और एकाध पुच्छल तारोंको छोड़कर सब आकाशीय पिण्डोंमेंसे शुक्र सबसे अधिक हमारे निकट आ जाता है; परन्तु तो भी यह अच्छी तरह देखा नहीं जा सकता। जब शुक्र पास आता है, तो इसका आकार चन्द्राकार दिखाई पड़ता है। इसके अतिरिक्त शुक्रपर कुछ ऐसी वस्तुयें हैं भी नहीं, जो देखी जायं। जहां तक जान पड़ता है, यह सफेद घन बादलोंसे आच्छादित है, इसीसे इसकी सतह वैज्ञानिकों के लिए सदा ही



शुक्र-लोककी यात्राका स्वप्न।



इसी तरहके यानोंपर बैठकर लोग शुक्र-लोककी यात्रा करेंगे।

रहस्यपूर्ण बनी रही। बिना दूरदर्शकके यह इतना सुन्दर जान पड़ता है कि दूरदर्शकसे अत्यन्त सुन्दर दिखलाई पड़नेकी आशा होती है; परन्तु दूरदर्शक द्वारा देखनेसे निराशा ही होती है। हां, जो पहले-पहले इसे दूरदर्शकसे देखते हैं, उन्हें इसकी कलाओंपर आश्चर्य होता है।

दूरदर्शक द्वारा देखनेसे साधारणतः इस ग्रहपर कोई रेखा या धब्बा नहीं दिखाई पड़ता और यह चन्द्रमाके समान ही भिन्न-भिन्न कलाओंमें देख पड़ता है। कभी तो यह त्रिशूलकी भांति दृष्टिगोचर होता है और कभी पूनोके चांद-सा। जब यह चन्द्राकार दिखाई पड़ता है, तब भीतरकी सीमा तीक्ष्ण नहीं रहती, क्रमशः इसकी चमक मिटते-मिटते मिट जाती है। इससे घने वायुमण्डलका बोध होता है। परन्तु कभी-कभी हलके रङ्गके और भद्दे धब्बे दिखाई पड़ जाते हैं, जो थोड़ी ही देरमें विलीन भी हो जाते हैं। शायद बादलोंके हट जाने या कम हो जानेसे कहीं-कहीं धब्बे दिखाई पड़ने लगते हैं।

आकाशमें चन्द्रमाके उदित न रहनेपर शुक्र इतना चमकीला रहता है कि रात्रिमें उसकी एक छाया-सी मालूम होती है और कभी-कभी तो वह दिन-दोपहरमें भी खुली आंखोंसे दिखाई पड़ने लगता है। बुधकी तरह यह भी प्रातःकाल और सायङ्कालको ही; परन्तु सूर्योदय या सूर्यास्तके ४ घण्टे पहले या बाद तक देखा जा सकता है। बुधकी तरह इसके भी दो नाम पड़ गये—फासफोरस और हेसपेर। यह प्रातःकालीन और सायङ्कालीन ताराके नामसे भी प्रसिद्ध था। यह इतना चमकदार है कि रात्रिके समय इससे परछाईं पड़ती है और कभी-कभी तो वह दिन-दोपहरमें ही खुली आंखों दिखाई देता है। इसकी दीप्ति उस समय मन्द पड़ जाती है, जब इसका पूर्ण मण्डल हमारे सामने आता है। उस समय यह हमसे बहुत दूर रहता है। इसी प्रकार यह हमको उस समय भी अधिक दीप्तिमान् नहीं दिखलाई पड़ता, जब यह हमसे निकट दूरीपर रहता है। क्योंकि उस समय इसकी कला एकदम क्षीण, प्रायः नहींके समान रहती है। सबसे दीप्तिमान् यह इस समयके ३६ दिन पहले या पीछे जान पड़ता है। उस समय इसका आकार पञ्चमीके चन्द्रमा-की तरह रहता है।

शुक्रको दिनमें देखनेके लिए ऐसा दिन चुनना चाहिए, जब शुक्र सवेरे दिखलाई पड़ता हो और यह खूब दीप्तिमान् हो। किसी मकानकी ओटसे इसको इस प्रकार देखना चाहिए कि यह स्वयं तो दिखलाई पड़े; परन्तु सूर्य न दिखलाई पड़े। थोड़ी-थोड़ी देरपर इसको देखते रहनेसे यह कहां है, इसका अन्दाज रहेगा और यह बहुत देर तक दृष्टिसे ओझल नहीं होगा। एक बार खो जानेपर तो फिर इसका देख लेना कठिन हो जायगा, इसलिए इसका ध्यान रखना चाहिए कि किस स्थितिसे यह मकानके किसी विशेष भागके जरा-सा ऊपर दिखाई पड़ता है। अवश्य ही शुक्र जैसे-जैसे आकाशमें उठता जायगा, तैसे-तैसे मकानके अधिक पाससे इसे देखना होगा। इस रीतिसे शुक्र दस-ग्यारह बजे दिन तक देखा जा सकता है।

शुक्र हमेशा या तो पश्चिमी क्षितिजसे कुछ ऊंचे या पूर्वी क्षितिजसे कुछ ऊंचेपर दिखाई पड़ता है। कभी भी यह मध्य आकाशमें नहीं दिखाई पड़ता। इसका कारण यह है कि पृथ्वीसे देखनेपर शुक्र सूर्यसे बहुत दूर नहीं जा सकता। जब शुक्र सूर्यसे पूर्वकी दिशामें रहता है, तब सूर्यके अस्त होनेपर पश्चिमीय आकाशमें यह हमको दिखाई पड़ता है

और जब यह सूर्यसे पश्चिम रहता है, तब सूर्यके पहले अस्त होता है, इसलिए उन दिनों यह सूर्यके प्रकाशके कारण न तो दिनको दिखलाई पड़ता है और न शामको। परन्तु सवेरे यह सूर्यके पूर्व उगता है और इसलिए यह उन दिनों सवेरे पूर्वीय आकाशमें दिखलाई पड़ता है।

शुक्रकी आकृतिसे ही पता चलता है कि इसपर वायु-मण्डल है, क्योंकि इसकी प्रकाशित कला और अप्रकाशित काले भागकी सन्धि तीक्ष्ण नहीं होती। शुक्रकी परिक्षेपण-शक्ति ¾ है, जिससे सम्भावना होती है कि शुक्र सफेद बादलोंसे आच्छादित है। १९१० में मिथुन राशिके एक तारेको शुक्रने ढक लिया था। इस अवसरपर छिपनेके ढाई सेकेण्ड पहले ही से तारेका प्रकाश घटने लगा, जिससे पता चलता है कि शुक्रपर ७० मील तक वायुमण्डल है। फिर, जब शुक्र सूर्यके सामने आ जाता है, अर्थात् शुक्र-रवि-गमन-के अवसरपर, तब इसके चारों ओर प्रकाशका घेरा दिखाई पड़ता है, यह भी इस सिद्धान्तपर कि शुक्रपर वायुमण्डल है, अच्छी तरह समझा जा सकता है। फिर गणनाके अनुसार जितना शृङ्ग दिखलाई देना चाहिए, उससे कुछ अधिक ही दृष्टिगोचर होता है, यह भी वायुमण्डलके रहनेका फल है।

समय-समयपर शुक्र सूर्यके सामने आ जाता है और उस समय सूर्य-गमन लगता है। पहले यह घटना बड़े महत्त्वकी मानी जाती थी, क्योंकि इससे सूर्यकी दूरी नापी जा सकती थी। अब सूर्यकी दूरी नापनेकी इससे भी अच्छी रीतियां निकली हैं; परन्तु ये रीतियां न भी निकली होतीं, तो भी शुक्र-गमनसे वर्तमान समयके ज्योतिषी कोई लाभ न उठा सकते। क्योंकि आगामी सूर्य-गमन सन् २००४ ई० में ८ जूनको लगेगा। पिछला गमन १८८२ में लगा था। गमनके समय नापनेपर शुक्रका व्यास लगभग ७६०० मील निकला है। अन्य समय यह व्यास ७८०० मील निकला है। इस अन्तरका कारण प्रकाश-प्रसरण है। प्रकाश-प्रसरणके कारण शुक्र अपने वास्तविक आकारसे छोटा लगता है। इसी प्रकार काले आकाशके सामने अधिक चमकके कारण शुक्र अपने वास्तविक आकारसे बड़ा जान पड़ता है।

कुछ खगोल-शास्त्रियोंका कहना है कि शुक्रका वातावरण हमारे वातावरणसे कुछ पतला है। स्पेक्ट्रोसकोपपर अङ्कित शुक्रके प्रकाशके रङ्ग-पटपर पानीका कोई चिह्न नहीं जान



शुक्र-लोकका पशु।

पड़ता। रङ्ग-पटसे यह प्रतीत होता है कि हमें उसका जो प्रकाश प्राप्त होता है, वह सूर्यका परावर्तित प्रकाश है और उसके वातावरणको गहराई तक भेदनेके बाद ही वह हम तक पहुंच पाता है। ऐसी स्थितिमें यदि पानीका आवरण उसके पृष्ठपर होता, तो रङ्ग-पटपर उसकी लकीरें भी अवश्य अङ्कित होतीं। परन्तु यह बात अभी सप्रमाण नहीं कही जा सकती कि शुक्रमें प्राणवायुका सर्वथा अभाव है। बहुत सम्भव है कि प्रकाशसे भेदे गये वातावरणके नीचे ये दोनों तत्त्व विद्यमान हों अथवा सूर्यका प्रकाश उसके तिमिरा-च्छन्न बादलोंकी ओर तक ही पहुंचकर परिवर्तित हो जाता है।

शुक्रके आस-पास जो बादलोंका घनत्व छाया रहता है, उसकी मोटाई दो मीलकी है। उसके नीचेका वातावरण तो इससे भी अधिक मोटा होना चाहिए। इस वातावरणकी एक बात पूर्ण रूपसे निश्चित हो गयी है, वह यह कि उसमें आश्चर्यजनक परिमाणमें कार्बन डाएक्साइड विद्यमान है।

शुक्रके पृष्ठके आसपास जो बादलोंका समूह है, वह उस गर्मीके प्रसरणपर नियन्त्रण रखता है। सूर्यकी गर्मी उससे छनकर शुक्रके धरातल तक पहुंच पाती है, इसलिए शुक्रकी

जलवायु समशीतोष्ण होनी चाहिए। वहां वर्षा भी काफी होती है। अतः वहां शाक और विभिन्न प्रकारकी वनस्पतियोंका भी अस्तित्व होना चाहिए। कुछ वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि शुक्र ग्रहका अधिकतर भाग समुद्रोंसे भरा पड़ा है।

कभी हमारी पृथ्वी भी आजके शुक्रकी अवस्थामें थी। तब उसके वातावरणमें भी कार्बन-डाएक्साइड प्रचुर परिमाणमें था, लेकिन धीरे-धीरे पृथ्वीपर वनिस्पति सृष्टिका विकास होता गया और वह वनस्पति उसके कार्बन डाएक्साइडको सोखकर उसके स्थानपर उसमें प्राणवायु भरती गयो। इसका फल यह हुआ ह कि आज पृथ्वीपर प्राणवायुका सञ्चार हो रहा है और हम मानव उसका जी भर उपयोग कर रहे हैं।

अतः इससे तो कोई इनकार नहीं कर सकता कि आज नहीं तो कल और कल नहीं तो परसों शुक्रपर जीव-सृष्टिके अनुकूल वातावरण अवश्य तैयार हो जायगा। और जब हमारी पृथ्वी मृत्युकी अन्तिम घड़ियां गिनती रहेगी, तब शुक्र-लोक अपने पूर्ण यौवनको प्राप्त रहेगा।

महान् वैज्ञानिक हालडेका तो स्वप्न यह है कि जब पृथ्वीपर प्रलय होगा, तो यहांके अधिवासी शुक्रको ही अपना नवीन स्थान बनावेंगे! और शुक्रकी वर्तमान परिस्थितियोंको देखते हुए यह कोई आश्चर्य भी नहीं है।

चीनके देशभक्त मुसलमान

श्री गोवर्द्धनलाल गुप्त

एशियाके प्रायः सब देश अभी तक राष्ट्रीय भावोंसे पूर्ण नहीं हैं। पराधीन देशोंका तो कहना ही क्या, टर्की, ईरान आदि देशोंमें भी राष्ट्रवाद, धर्मवाद और प्रान्तीयवाद आपसमें उलझ रहे हैं। टर्कीके अजरबैजन प्रमुख प्रदेश, ईरानके छोटे-छोटे सूबे और अरबके भिन्न-भिन्न भाग आपसमें एक होकर अपने देशोंको राष्ट्रीय भाव-सम्पन्न बनानेमें अभी तक असमर्थ बने हैं। भारतमें छूत-अछूत, हिन्दू-मुसलमान, कट्टर सनातनी, उदार हिन्दू राष्ट्रीय भावोंको ताकपर रखकर एक-दूसरेको उजाड़नेकी इच्छासे भारत-राष्ट्रका गला घोंट रहे हैं। चीनकी भी हालत यही रही है। पर इधर इसमें परिवर्तन हुआ है। चीनके मुसलमान कुम्भकर्णी निद्रासे जाग रहे हैं। नवीन विचारोंसे प्राचीनताके निविड़ अन्धकारोंको भगा चुके हैं। वे इस समय चीनी बौद्धोंके साथ कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर लड़ रहे हैं और अपने शत्रु जापानियोंसे संग्राममें विजय पानेके लिए जनगणके साथ घनिष्ट सम्बन्ध बनाये हुए हैं।

चीनके मुसलमान सम्प्रदायवादको अपने राष्ट्रकी अवनतिका कारण बताने लगे हैं। चीनकी कुल आबादी चालीस करोड़मेंसे प्रायः तीन करोड़ मुसलमान हैं। ये चीनके पश्चिमोत्तर, विशेषतः शेंसी, कांसू, निङ्गसिया, जेकवान और सिनकियाङ्ग देशोंमें बसे हैं। इन देशोंमें निङ्गसिया, उत्तरी कांसू और चिङ्गाईपर मुसलमानोंके महान् वंश माके वंशधरोंका अभी राज्य है। इन्हीं शहरोंमें 'मेनोबोइ होर'की वह हाट है, जहां देश-देशान्तरोंके व्यापारी एकत्र होते और सौदेका विनिमय करते थे। यह थी यूरोप और एशियाकी असली सरहद। एशियाके सौदागरोंके काफिले यहां उतरते थे। वे रेशम और कालीन, चावल और ऊन, बकरे और भेड़ लाते थे। इनके बदले उन्हें रूसी व्यापारी यूरोपका माल—शराब और सोना देते थे। सौदा हुआ और एशियाके बनजारे बड़े दरवाजेसे अपने-अपने देशकी राह लेते थे। इन्हीं दरवाजोंकी दूसरी राहसे यूरोपके व्यापारी अपने-अपने मुल्कका रास्ता पकड़ते।

चीनपर जापान द्वारा आक्रमण किये जानेके बाद महाचीन जैसे एकाएक अपनी मोहनिद्रासे जाग पड़ा। समस्त बिपद्, समस्त कलह, विद्वेषको तुच्छ समझकर चीनी जनता जापानके आक्रमणोंका मुकाबला करनेके लिए बद्धपरिकर हो

गयी। और इधर चीन-जापान-युद्धके पूर्व चीनके राष्ट्र-अधिनायक चियांग-काई-शेक अपने सैन्य-दलके विद्रोहियों द्वारा सियानफूमें जो बन्दी बना लिये गये थे और उनके मुक्ति पानेके लिए जापानके साथ संग्राम, चीनी कम्यूनिस्टोंके साथ मिलन और सोवियट रूसके साथ मैत्रीकी जो शर्तें उनके सामने रखी गयी थीं, वे उन्होंने मान लीं। और चियांग-काई-शेकने खास तौरपर चीनी मुसलमानोंको लेकर चीनी जातिका एक सम्मिलित मोर्चा सङ्गठित किया।

मि० एडगर स्नो स्वयं बहुत और असुविधायें झेलकर चीनी भागोंमें प्रवेश करके चीनी कम्यूनिस्ट मुसलमानोंके सम्बन्धमें विशेष रूपसे अभिज्ञता प्राप्त करनेमें समर्थ हुए हैं। अपने इन अनुभवोंका वर्णन उन्होंने "रेड स्टार ओवर चाइना" नामक पुस्तकमें किया है। इस पुस्तकमें उन्होंने चीनके मुसलमानोंके सम्बन्धमें विस्तृत आलोचना की है। उन्होंने लिखा है कि "चीनके मुसलमान अत्यन्त दक्ष, शीलवान, वीर व्यक्ति होते हैं। जापानी आक्रमणके परिणाम-स्वरूप आज समग्र चीनी मुसलमान सङ्घबद्ध हो गये हैं। वे चीनी जातिके साथ जापानके विरुद्ध प्राणपणसे लड़ रहे हैं। चीनी मुसलमान फौजें चीनी जातिकी फौजोंकी अपेक्षा अधिक लम्बी, अधिक बलिष्ठ, अधिक सुन्दर, बादामी आंखोंवाली, चुस्त, फुर्तीली और काकेशियन तर्ज़की होती हैं।"

उनकी फौजी बैरकें कार्टूनों, पोस्टरों, मानचित्रों और रणनारोंसे भरी रहती हैं, जिनमें उनके जापानके विरुद्ध हथियार उठानेके मतलब लिखे रहते हैं, जैसे जापानी आधिपत्यका विरोध करो", "जापानी हवाई अड्डोंको न बनने दो", "जापानके विरुद्ध लाल फौजोंका सङ्गठन करो", "मुसलमान जनताके स्वराज्यकी कल्पना करो," इत्यादि प्रवचनोंसे एडगर स्नोकी पुस्तक परिपूर्ण है।

चीनके देशभक्त मुसलमान कट्टर साम्राज्यवाद-विरोधी हैं। दीर्घकाल तककी अग्नि-परीक्षामें तपकर उनकी स्वातन्त्र्य-प्रियता, स्वदेश-प्रेम और सबसे बढ़कर उनकी राष्ट्रीय भावनायें परीक्षित हो चुकी हैं।

इसलिए लड़ाई तो चलेगी ही। जापानी सेना ज्यों-ज्यों चीनके भीतरी भागोंमें प्रवेश करती जायगी, त्यों-त्यों युद्धका रूप भीषण होता जायगा और जापानियोंकी विजय मन्द पड़ती जायगी।

यद्यपि चीनने अपने बहुत बड़े-बड़े शहरोंको खो दिया है और उसके बहुसंख्यक सैन्य-दल नष्ट हो चुके हैं, तथापि अब तकके युद्धसे चीनी मुसलमानोंने बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किये हैं। इस अवधिमें मुसलमानोंने बहुत कुछ सङ्गठन किया है और उनका सङ्गठन प्रतिदिन दृढ़से दृढ़तर होता जा रहा है। चीनी मुसलमानोंने कांसूमें जापानियोंकी निष्ठुर बर्बरताको सहन किया है और इससे सबक सीखा है। उनकी जातीय चेतनता कई गुनी बढ़ गयी है। वे अब इस बातको जान गये हैं कि जापानियोंका दास बनना कितनी भयङ्कर बात है। उनका ख्याल है कि केवल चीनी सरकारी सेनायें जापानियोंके हमारे देशपर अधिकार-स्थापनको रोक नहीं सकतीं। इस युद्धमें विजयी होनेके लिए हमें जनताको सङ्गठित करना होगा और उसे शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित करना होगा। इस समय मुसलमान जनता संग्राम करनेके लिए दृढ़ कटिबद्ध है।

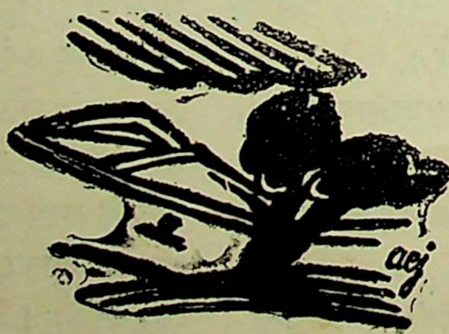
देशके साथ विश्वासघात करनेवाले मुसलमानोंके सम्बन्धमें मुसलमानोंने फतवा निकाला है, जिसमें उन्होंने कहा है कि इसमें सन्देह नहीं कि हमें बरगलानेके लिए बहुत-से साम्राज्यवादी जापानी हमारे साथियोंको भड़कायेंगे, जो जापानियोंके कुत्ते बननेके लिए तैयार हैं। वे अब प्रचार करते फिरते हैं कि चीनी मुसलमान चीनी जातीय युद्धके साथ नहीं हैं। चीनी हार गये हैं, उनकी सेनायें नष्ट हो चुकी हैं। हमारे शस्त्रास्त्र शत्रुको पराजित करने योग्य नहीं हैं। इस प्रकारकी बातें जापानी कुत्तों द्वारा प्रचारित की जाती हैं। कोई भी देशभक्त चीनी मुसलमान जापानियोंका दास बनना नहीं चाहता। इन बातोंकी असत्यताको प्रमाणित करनेके लिए हमें वास्तविक घटनाओंका प्रचार करना होगा। हमारा यह विश्वास है कि यदि हम व्यापक रूपमें जमहूरियत (प्रजातन्त्र) का प्रवर्तन करें, जनताकी जीविकाके साधनोंमें उन्नति करें और युद्धके कौशलमें परिवर्तन करें, तो हम जापानी दस्युओंको पराजित कर सकते हैं। इसलिए सैंतीस करोड़ चीनी बौद्धोंके साथ हम तीन करोड़ चीनी मुसलमानोंको कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर साम्राज्यवादी जापानी आधिपत्यको मिटा देना चाहिए।

सुप्रसिद्ध अंगरेज लेखक एडगर स्नोने एक चीनी मुसलमान सेनापतिके साथ वार्तालाप करते हुए अपनी पुस्तक (रेड स्टार ओवर एशिया) में लिखा है कि "चीनी बौद्ध और हम

चीनी मुसलमान दोनों भाई-भाई हैं। हम मुसलमानोंकी नसोंमें भी चीनियोंका खून दौड़ रहा है। हम सभी चीनके बाशिन्दे हैं। तब क्यों हम अपने देशमें अपने चीनी भाइयोंसे लड़ें? हम दोनोंके एक ही दुश्मन हैं—जापान, पूंजीपति, साहूकार, जमींदार। हमारा एकमात्र उद्देश्य है क्रान्ति।" चीनके मुसलमानोंकी यह नयी चेतना अद्‌भुत है। इसे देखकर राजनीतिज्ञ सोचते हैं कि मुसलमान-संसारमें टर्कीसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव चीनी मुसलमानोंका पड़ेगा। इनका अज्ञानान्धकार दूर हो गया है। अब इन्हें गुरुघण्टाल भी पट्टी नहीं पढ़ा सकता। आये दिन इनकी स्वदेश-भक्तिकी तपस्या सुनी जाती है। चीन देशके लिए इनके हृदयमें आन्तरिक कृतज्ञताका स्रोत है। इनकी लाल सेनाओंका सङ्गठन बहुत मजबूत और अजेय है। चीनी मुसलमानोंमें लाल सेनाका खूब प्रचार है। ये प्रजातन्त्रका प्रचार कर रहे हैं। नवयुवकोंने कृषकोंके बीच अपना प्रचार-कार्यालय खोल रखा है। दीवारोंपर युद्धके नारे और उनके उद्देश्य लिखे रहते हैं। इस प्रकारके प्रचारसे चीनी मुसलमान धड़ाधड़ लाल सेनामें भर्ती हो जाते हैं। इनमें लाल सेना-सम्बन्धी साहित्यका खूब प्रचार है। इस साहित्यमें इसलामी मजहब और मजहबी जजबातकी हिफाजतकी पूरी गारण्टी है। चीनके मुल्लों और काजियों, आलिमों और अपढ़ किसानोंके सन्मुख इस प्रकारका प्रचार कभी भी नहीं होता, जिससे यह प्रकट होता हो कि उनके मजहबी जजबातपर कुठाराघात होता है। उनकी मसजिदोंको पवित्र और श्रद्धा-भक्तिकी दृष्टिसे देखा जाता है। उन्हें बौद्ध धर्मकी महानता और इसलामकी हीनता नहीं बतायी जाती। कैण्टनमें मसजिदें हैं, जहां मुसलमान स्वच्छन्द रूपसे अपने ईश्वरकी वन्दना करते हैं। उनके धार्मिक कृत्योंपर किसी तरहकी रुकावट नहीं डाली जाती। इसी परधर्म-सहिष्णुताकी नीतिके आधारपर आज चीनी मुसलमान जापानके विरुद्ध लड़ रहे हैं। इससे चीनकी सेना और मुसलमानोंके मनोभावमें भी परिवर्तन हुआ है। यदि सरकार अविचलित बनी रहे, तो चीनी मुसलमान दृढ़ताके साथ उसका समर्थन करेंगे और अन्तिम विजयके लिए सरकारको एक दृढ़ आधार मिल जायगा। अपने देशकी मुक्तिके लिए वे जो संग्राम कर रहे हैं, उसके बदले वे कुछ नहीं चाहते। चीनको वे अपना देश समझते हैं और उसीकी आजादी और गुलामीपर अपनी आजादी और गुलामी समझते हैं। इसलिए उनका भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है। अस्तु, चीनके मुसलमानोंका हुब्बे-वतन याने देशभक्तिकी ओर झुकाव एशियाकी जागृतिकी एक प्रबल तरङ्ग है, जिसके प्रभावसे इसलामी दुनिया बच नहीं सकती। टर्की, चीन और मुसलमानी रूस अपने धर्म-भाइयोंमें खलबली मचाने लगे हैं। भविष्य बतलायेगा कि उनपर इनका क्या प्रभाव पड़ेगा।

आज संसारके उपवनमें जागृतिकी हवा डोल रही है। शताब्दियोंसे खुर्राटे भरनेवाले भी करवट बदल रहे हैं। इस हवाकी लहरसे भला भारत कब तक बचा रहेगा?

———



मिश्रका मनोरञ्जक सामाजिक जीवन

श्री श्याम उपाध्याय, पत्रकार

मिश्र इतिहास, सभ्यता एवं सामाजिक रीति-रिवाजमें संसारकी अन्य जातियोंसे प्रायः भिन्न स्थान रखता है। मिश्रकी प्राचीनताका प्रश्न विवादग्रस्त नहीं है। इस देशका विवरण हम उस अतीत कालमें भी पाते हैं, जबकि संसारके आज उन्नत और सभ्य कहलानेवाले राष्ट्र असभ्य रूपमें कन्दराओंमें रहते थे, भेड़-बकरी चराते थे और नग्न अवस्थामें इधर-उधर घूमते, आपसमें लड़ते और शीतसे बचनेके लिए पशुओंकी खाल ओढ़ा करते थे। मिश्र उन प्राचीन देशोंमें है, जिनका स्मरण सदैव होता रहा है। आज भी वहांके पिरामिड अपनी विशेषताओंके कारण काफी प्रसिद्ध हैं। सभ्य संसारका प्रत्येक यात्री, जो कैरोके बन्दरगाहसे होकर गुजरता है, एक बार मिश्रके प्रसिद्ध स्तूपों और खंडहरोंको अवश्य देख लेना चाहता है।

शिशु-जन्म और छठीकी रस्म— मिश्र देशमें एक विचित्र प्रथा है कि शिशु-जन्मके समय बच्चेके नेत्रोंपर काजल या तवेकी कालोसका लेप कर देते हैं, ताकि वह पैदा होते ही विचित्र संसारको देख न सके। उसका जन्म इस समय नहीं मानते हैं, न किसी प्रकारका उत्सव ही मनाते हैं। हां, सात दिन पश्चात् बालकके नेत्र खोल दिये जाते हैं और उसी दिन खुशी मनायी जाती है। संसार-प्रथाके अनुसार लड़कोंके जन्मपर आनन्दका वारापार नहीं रहता, कन्याके जन्मपर कम खुशी मनायी जाती है; पर अन्य रस्मोंमें कम अन्तर रहता है। सातवें दिन ही बच्चेको स्नान कराते हैं। हां, इतना अन्तर अवश्य देखा जाता है कि लड़केको हाथ धोनेके तांबेके पात्रमें साबुनसे स्नान कराते हैं और लड़कियोंको मामूली मिट्टीके पात्रमें स्नान कराते हैं। जिस लोटेसे बच्चेके शरीरपर पानी डालते हैं, उसे आभूषणों और सुन्दर रेशमी वस्त्रसे सजाकर रखते हैं, जिसमें लड़केके जन्मपर घड़ी, चेन, टोपी आदि और लड़कीके लिए कानोंकी बालियां, रूमाल, बुन्दे आदि रखे जाते हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि जितनी ही उत्तमतासे लोटे एवं पात्रको सजाया जायगा, बच्चा उतना ही आयुष्मान् एवं भाग्यवान् होगा। इस समयपर बच्चेका नामकरण-संस्कार किया जाता है, जिसकी विधि यह है कि तीन पृथक्-पृथक् नामोंको सूचित करनेवाली रङ्ग-बिरङ्गी मोमबत्तियां पात्रके मुखपर जलाकर रख दी जाती हैं; जो दीपक या मोमबत्ती अधिक देर तक जलती है, वही नाम बच्चेका रखा जाता है। पूर्वकालमें सात-सात दीपक और मोमबत्तियां जलाकर रखते थे। जिस पानीसे स्नान कराते हैं, उसके बचे हुए भागको भरकर रख देते हैं। क्योंकि बच्चेकी आंखें खोल दी जाती हैं, अतः नामकरणवाली रातसे बच्चेको कई प्रकारके धानोंसे भरे तकियेपर तब तक सुलाते हैं, जब तक कि वह अपने नामको पहचानने न लग जाये। इन्हीं धानोंके एक भागको माताके सिरहाने पोटली (या कपड़ेके पल्ले) में बांधकर रख देते हैं, ताकि कोई डर न रहे। वह तथा बच्चा सुरक्षित रहे।

आठवें दिन धाय या दाई धान छाननेकी छलनीमें बच्चेको सुला देती है और कानके समीप लोढ़ेसे बजाती है, जिसका सम्भवतः यह अर्थ हो सकता है कि बच्चेकी चमक भाग जाय; पर साथ ही साथ दाई कानमें कुछ उपदेश डालनेका प्रयास करती है कि मां-बापका कहना मानना इत्यादि। परन्तु इन सब प्रथाओंके पीछे अन्धविश्वासकी एक क्षीण रेखा भी है कि बच्चेको दुष्ट आत्माओं यानी भूत-प्रेतोंका प्रकोप न सताये, वे उनके चंगुलमें न फसें। इसके बाद कलके बचे हुए जलसे प्रसूति-गृहकी देहली आदिको छिड़का जाता है। उसमें पड़ी हुई सुपारियोंको एकत्रित मेहमान लेनेकी चेष्टा करते हैं और दाईको बदलेमें कुछ सिक्के दानस्वरूप देते हैं। इसके पश्चात् एक विचित्र जुलूस निकालते हैं। बच्चा माताकी गोदमें होता है। बालकों तथा स्त्रियोंके हाथोंमें जलती हुई रङ्ग-बिरङ्गी मोमबत्तियां रहती हैं। एक गोल बर्तनमें पिसी हुई मेहंदी भी रहती है। एक जलती हुई अंगीठी सिरपर रखे दाई जुलूसके आगे-आगे चलती है और हाथमें धान तथा नमककी पोटली रहती है, जिसे वह आंगनपर बखेरती भी जाती है। जुलूस जच्चागृहसे होता हुआ घरके अन्य कमरोंमें अरबी गीत गाते हुए घूमता है। इसके

बाद जच्चा बच्चा दोनों अपने कमरेमें आ जाते हैं; जहां ४० दिन तक रहना पड़ता है। उसे अपवित्र समझते हैं और स्नान भी नहीं करने देते।

भारतकी भांति मिश्रमें भी अपवित्र अवस्थामें भूत-प्रेतों-का बड़ा भय रहता है, अतः प्रसूति-गृहमें उनके प्रकोपसे सुरक्षित रखनेके अभिप्रायसे माताके सिरहाने सदैव तकियेके समीप थोड़ा-सा नमक और रोटीका टुकड़ा रखा रहता है। मिश्रमें जादू-यन्त्र-मन्त्रका बाहुल्य है और लोगोंका भूतोंपर भी अत्यधिक विश्वास है।

मुसलमानी--बच्चेके जन्मके बाद पांच या छः वर्षकी आयु होनेपर लड़कोंकी मुसलमानी करनेकी प्रथा मिश्रमें भी है। इस अवसरपर बच्चेको वीरोचित वेशमें सजाया जाता है, सिरपर सुन्दर काश्मीरी साफा बांधते हैं और घोड़ेपर (किन्तु आजकल मोटरमें) बिठाकर जुलूस निकालते हैं। वह मुखके समीप रूमाल हाथमें लिये बैठा रहता है, जिसका सम्भवतः यह तात्पर्य है कि वह कुदृष्टिसे अपनेको बचा सके। जैसा कि ऊपर भी सङ्केत कर चुके हैं, मिश्रमें नमकको कवच या ढाल सदृश समझते हैं, उसका उपयोग प्रत्येक भयके अवसरपर देखा जाता है। अतः मुसलमानी-के जुलूसमें भी नमक रास्ते-भर भूतोंके भयसे बखेरा जाता है। इस जुलूसका नेतृत्व एक विदूषक नट करता है, जो बांसपर चढ़कर अपनी विस्मित करनेवाली कला-का प्रदर्शन भी करता जाता है। विदूषकके पीछे सुन्नत करनेवाला नाई और उसके सहायक रहते हैं, इनके पीछे गानेवालोंकी एक टोली और बालकों तथा स्त्रियोंका एक गिरोह रहता है। ऐसे जुलूस मिश्रमें मध्याह्न कालकी नमाजके बाद किसी भी समीपकी मसजिदसे निकलते हुए देखे जाते हैं, जो अपने भाई-बिरादरी और मिलनेवालोंके यहां होते-हुए, जहां उनका मिठाई आदिसे स्वागत किया जाता है, उसी मसजिदमें लौट आते हैं, जहांसे कि जुलूस प्रारम्भ होता है। यहां आकर सुन्नतकी रस्म की जाती है।

विवाह और विवाह-विच्छेद—एक अंगरेज लेखकका कहना है कि किसी भी देशमें बिवाहपर इतना धूमधड़ाका नहीं होता, जितना कि मिश्रमें होता है। उक्त डाक्टर जिराल्ड गैरी शायद भारत-भ्रमणके लिए नहीं आये होंगे, नहीं तो वे यह नहीं कहते; फिर भी उनके कथनमें कितनी सत्यता है, यह दिखानेके लिए हम वहांकी विवाह-पद्धतिका संक्षिप्त रोचक विवरण देते हैं। वहां भी विवाह छोटी आयुमें होते हैं। मिश्रमें विवाहकी समस्त बातें एक स्त्री द्वारा होती हैं, जो 'खित्बाह' कहलाती है और यह उसका एक प्रकारसे व्याव-सायिक पेशा होता है। वह अपनी परिचित कन्याओंकी प्रशंसाके पुल वयस्क लड़कोंके समक्ष बांधती है। उसकी स्वीकृति मिलनेपर वह स्त्री (खित्बाह) अथवा लड़केके घरकी कोई भी महिला कन्याको देखने जाती है। तत्पश्चात् दहेजकी विस्तृत बातें होती हैं, जिनको तय करनेमें कई दिन लग जाते हैं। मिश्रमें भी दहेजका प्रकोप है। विवाहका अधिकार अधिकतर माता-पिताको ही है, वे चाहे जिसके साथ अपनी कन्याका विवाह उस समय तक कर सकते हैं, जब तक कि वह जवान न हो जाय; पर यह बहुत कम देखा गया है कि वह युवती होकर भी अपनी इच्छा प्रकट कर सके। वर भी अपनी भावी पत्नीको उस समय तक नहीं देख सकता है, जब तक कि निकाहकी पवित्र फौलादी कड़ियां उसको जकड़ नहीं लेतीं। दूसरे शब्दोंमें कह सकते हैं कि पत्नी-स्वरूपमें ही वह अपनी स्त्रीका मुख देख सकता है।

इन दिनों कई एक संस्थायें इस विनाशकारी बाल-विवाहके विरोधमें विद्रोह कर रही हैं। वे इस बातकी इच्छुक हैं कि विवाहकी आयु कमसे कम १६ कर दी जाय। इस शुभ कार्यमें उन्हें सफलता भी मिल रही है।

तलाक—समस्त मुसलिम संसारमें स्त्री-समाजको तलाक देनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता है, फिर भी मिश्रमें तलाक-प्रथा बहुत कम देखी जाती है। इसका कारण यह ज्ञात होता है कि तलाक देना इज्जतका काम नहीं समझा जाता। जो भी थोड़ी-बहुत तलाकें पुरुषकी ओरसे दी जाती हैं, वे बाध्य होकर यदाकदा बांझ स्त्रियोंको दी जाती हैं। सभी सभ्य-असभ्य देशोंमें बांझ होना एक प्रकारसे दोष समझा जाता है और प्रत्येक धर्ममें बांझ स्त्रीका आदर-सम्मान कम होता है। मिश्र भी इसका अपवाद नहीं है। अतः अपनी इज्जत-प्रतिष्ठा बनाये रखनेके लिए, अपने पतिका प्रेम एक-सा बना रहे, इस ध्येयसे बांझ स्त्रियां अति विचित्र उपचार तक करते देखी गयी हैं। वैसे मिश्रमें, जैसा कि कह चुके हैं, जादू-यन्त्रमें अत्यधिक विश्वास है, इसलिए अपने पाठकोंके विनोदार्थ दो-चार विचित्र प्रयोगोंका विवरण देंगे, जो बांझ स्त्रियां किया करती हैं।

बांझके उपचार—यह सभी जानते हैं कि मिश्र पिरामिडोंका देश है। वहां गली-गली और स्थान-स्थानपर मकबरे, मीनार, कबरें आदि पायी जाती हैं। अस्तु, बांझ स्त्रियोंको भी अपने अन्धविश्वासके कारण सबसे सुगम साधन ये मकबरे कबरें ही मिल जाती हैं। वे इनपर जाकर सात बार परिक्रमा करती हैं। इससे भी अधिक आश्चर्यजनक उपचार रेलवे लाइनके मध्यमें लेटकर दौड़ती हुई ट्रेनको अपने शरीरके ऊपरसे निकल जाने देना देखा गया है। आजकल इस उपचारमें कमी होने लगी है। शायद रेल-अधिकारी इस जोखिमी और खतरनाक प्रयोगको प्रोत्साहन देना नहीं चाहते हैं और उनकी आपत्तिके कारण ही यह उपचार कम होता जाता है। बड़, पीपल एवं तुलसीके पेड़की भांति वहां भी कुछ ऐसे पेड़ हैं, जिनको पवित्र समझा जाता है। इन पेड़ोंकी पत्तियोंका चूरन बनाकर वे पानीके साथ पीती हैं। उनका ऐसा विश्वास है कि ऐसा करनेसे उनके बहुत सन्तानें उत्पन्न होंगी।

न केवल मृतककी कब्रकी सात बार परिक्रमा करना बांझपनका उपचार समझा जाता है, अपितु मृतक शरीरको जिस पानीसे स्नान कराया जाता है, उसकी सात बार परिक्रमा करने या उसे लांघनेसे भी बांझपन दूर हो जाता है, ऐसा भी मिश्र देशकी स्त्रियोंका विश्वास है।

इन आधुनिक और वर्तमान उपचारोंके अलावा दो-तीन सौ वर्ष पूर्व एक और विचित्र प्रयोग सुननेमें आता था। उन दिनों प्रत्येक बड़े शहरमें बध-स्थलके लिए एक खुला स्थान—प्लेटफार्म या चबूतरा—होता था। ऐसे स्थानोंके दक्षिण कोनेमें एक मकान होता था, जिसे 'मगह-सिल-एस-सुलतान' कहा करते थे, जिसका अर्थ होता है कि बादशाह या सुलतानका मृतक-प्रक्षालन, यानी मुर्देको स्नान करानेका स्थल। यहांपर पत्थरकी समाधिनुमा एक मेज होती थी, जिसपर लिटाकर बध किये गये मृतकोंको दफनानेके पूर्व स्नान कराते थे, ऐसे पानीके एकत्र होनेके लिए समीपमें एक हौज होता था, जिसमें लहू-मिश्रित गन्दा पानी भरा रहता था। बांझ स्त्रियां उक्त चबूतरेकी परिक्रमा सात बार करके हौजके गन्दे पानीमें स्नान करती थीं। आजकल न तो बध करनेकी प्रथा ही सभ्य देशोंमें रह गयी है, न उन बधस्थलोंके खंडहरोंको ही कोई पूछता है। समयके साथ यह प्रथा लोप हो गयी है और उसके साथ उपचार भी। पर भारतवर्षके कई प्रान्तोंकी अन्धविश्वासिनी बांझें अब भी अबोध बालकोंके गर्म खूनसे स्नान करके पुत्र-लाभको लालायित रहती हैं। ऐसे खूनोंकी कई रोमाञ्चकारी घटनायें समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित होती रहती हैं।

जादू-तन्त्र-मन्त्र—कैरोके अजायबघरमें एक मूर्ति है, जिसकी ओटमें विचित्र इतिहास छिपा है। कोई दो हजार वर्ष पूर्व 'जडहर' नामक एक यति मिश्रमें रहता था, जो सांप-बिच्छू एवं अन्य जहरीले जानवरोंके काटनेके इलाजके लिए प्रसिद्ध था। जिस मूर्तिको कैरो जानेवाले सभी यात्री देखते हैं, उसपर एक तन्त्र खुदा हुआ था, जो अब घिस गया है। इस तन्त्रपर पानीका एक लोटा डालकर नीचे गड्ढेमेंके पानीके दो-चार बूंद या चुल्लू जहर उतारनेको पर्याप्त होते थे। साधुकी अनभिज्ञताका लाभ उठाकर बांझ महिलाओंने अपने भाग्यकी परीक्षा मूर्तिसे की। उन्होंने अपने अङ्गको मूर्तिसे रगड़ना आरम्भ किया, एक-दोको पुत्र प्राप्त होनेपर स्त्रियोंका एक मेला-सा लगने लगा और मूर्तिका खुर्दरा सिर घिसते-घिसते चिकना हो गया, अतः मूर्तिकी रक्षाके निमित्त एक चबूतरा बनाया गया, ताकि वह घिसकर विलीन न हो जाय। इसी इतिहासके कारण यह जड़ मूर्ति अब अजायबघरमें यात्रियोंको दिखायी जाती है।

उक्त नष्टप्राय उपचारसे अधिक भयानक एक और प्रयोग है, जिसको यद्यपि सभ्य सरकारने बन्द करनेका प्रयास किया है; पर जब तक अन्धविश्वास जड़-मूलसे नष्ट न हो जाय, किसी भी सरकारको सफलता नहीं मिल सकती। अधिक आश्चर्यजनक बात तो यह है कि इस उपचारका प्रभाव शिक्षित और सभ्य समाजपर ही अधिक है। यहां तक कि पाशाओंकी पत्नियां, अंगरेज मेमें इसको मानती हैं और लन्दनसे इलाजके लिए चली आती हैं। इतना अवश्य है कि यह महंगा पड़ता है। ५० पौण्डसे २५० तक व्यय हो जाते हैं। मिश्री भाषामें इसे 'जाअर' कहते हैं, जिसे करनेके लिए दो मुल्ला एवं चार शेख पर्याप्त समझे जाते हैं। जिन लोगोंको यह आशङ्का रहती है कि उनकी अस्वस्थताका कारण शरीरमें घुसी हुई कोई प्रेतात्मा है, वे ही यह उपचार कराते हैं। पहले दिन एक बड़े कमरेमें एक विशाल मेजपर मिठाई, मेवे, फल, शाक, सुपारी, पान, शराब, अण्डे, मांस, मुर्गी आदि सजाकर रख देते हैं। तत्पश्चात् ओझा या मुल्ला मरीजके

माथेपर हाथ रखकर कई मन्त्र पढ़ता है। इस झाड़ा-फूंकीके बाद कुछ उपदेश भी करता है। उसके बाद बाजे बजाये जाते हैं। रोगी कभी एक पैरपर, कभी दूसरे पैरपर नाचने लगता है। यह देख चङ्ग, खंजरी, डफ बजानेवाले और भी उत्साहसे अपने वाद्य-यन्त्रोंको रोगीके सिरके समीप ले जाकर बजाते हैं, जिससे रोगी और भी उत्तेजित होकर अधिक प्रबलतासे नाचने लगता है। यहां तक कि थकानसे लड़खड़ाकर गिर पड़ता है, ऐसा प्रतीत होने लगता है, मानो उसपर जादू या सम्मोहनका प्रयोग कर दिया गया है।

भिन्न प्रकारकी प्रेतात्माओंके लिए पृथक्-पृथक् उपचार करनेकी प्रथा है। यहां तक कि कभी-कभी एकसे अधिक भूत या भूतनियोंके शरीरमें लग जानेपर इलाजमें समय और धन भी अधिक व्यय होता है, इसके लिए मुल्ला लोग आदेश देते हैं। और अधिकतर देखा भी यह गया है कि एकसे अधिक प्रेत ही मनुष्यों, बच्चों और नारियोंको लगते हैं; क्योंकि इससे धन अधिक मिलता है। उपर्युक्त उपचारमें वातावरण इतना वीभत्स और दम घोंटनेवाला किया जाता है कि देखते ही बनता है। विचित्र-विचित्र वाद्योंके अविराम बजाये जानेसे कान फटने लगते हैं और ऐसा समझा जाता है कि भूत-प्रेत इस कोलाहलमय दम घोंटनेवाले वातावरणसे घबरा जाते हैं और शरीरसे भाग जाते हैं।

जितनी वस्तुयें मेजपर सजाकर रखी जाती हैं, वे प्रत्यक्ष रूपमें तो प्रेतात्माके लिए बतलायी जाती हैं; पर परोक्ष रूपमें शेखजी ही इन्हें हड़प जाते हैं। जैसा कि हम कह चुके हैं, शेख और मुल्ला प्रायः एकसे अधिक प्रेत ही रोगीको लगे बतलाते हैं। इससे उनको प्राप्ति भी अधिक होती है एवं उनके उपचारमें समय अधिक लगनेके साथ माल भी अधिक हाथ लगता है। पहले दिनकी भांति दूसरे दिन नाच-कूद-गानसे और भी वीभत्स वातावरण पैदा किया जाता है। छोटे-छोटे मुर्गीके बच्चे जिबह किये जाते हैं और उनके रक्तसे रोगी एवं शेखको तर किया जाता है। यहीं तक नहीं, बकरे और ऊंट तक मारे जाते हैं और उनका गरम-गरम खून उपचारक तथा रोगीपर डाला जाता है एवं मांस उन चालाक बूढ़ी औरतोंके यहां पहुंच जाता है ,जो कि इनकी विज्ञापिकायें होती हैं। तीसरे दिन इस वीभत्स लीलाकी पराकाष्ठा हो जाती है। कानोंके परदे फाड़ देनेवाला विचित्र वाद्य, अङ्ग-अङ्ग तोड़नेवाला नृत्य, हृदयग्राही सदुपदेश, सुगन्ध-भरी धूनियां, खान और मदिराका पान अपनी सीमाका उल्लङ्घन कर जाता है। इसी लीलाकी पराकाष्ठाके साथ उपचारका अन्त कर दिया जाता है।

विश्वसनीय एवं अधिकारी क्षेत्रोंसे कहा जाता है कि बहुत कम यह देखा जाता है कि इस विचित्र उपचारसे रोगीको लाभ न हो। नब्बे सैकड़ासे अधिक रोगी रोगमुक्त होकर जाते हैं। इस उपचारसे सबको सन्तोष होता है। यहां तक कि रोगी और उसके हितैषी मित्र, जो सहानुभूति प्रदर्शित करने तथा इस एकाकी उपचारको देखनेके लिए प्रयोगके समय भी उपस्थित रहते हैं, बहुत ही हर्षोन्मत्त हो जाते हैं। वे सब प्रेतके लिए सुन्दर-सुन्दर भेंटें लाते हैं। जब सब देशों और जातियोंके रोगी उपचारके लिए आते हैं, तो अंगरेज भूत और सूडानी भूतनियोंकी संख्या भी कम नहीं रहती है। ऐसे सभ्य और सुसंस्कृत भूत-प्रेतोंकी तृप्तिके लिए साधारण वस्तुओंसे काम थोड़े ही चल सकता है। इन अंगरेजी भूत-भूतनियोंके लिए कीमती शराब, ह्विस्की, टोस्ट, केक आदि तथा सूडानी प्रेत-प्रेतनियोंके लिए बूजा, कई प्रकारकी शराब और अन्य कई वस्तुयें भेंट की जाती हैं।

सभी देशोंकी भांति भूत-प्रेतोंका निवासस्थान श्मशानों, मकबरों, पुरानी कबरों और करबलाओं एवं पूजा-स्थानके अन्धकारपूर्ण स्थलोंमें होता है, ऐसा मिश्रवाले भी समझते हैं। गोलाकारमें आंधीके छोटे-से समूहको उड़ता देखकर वे बहुत भयभीत होते हैं। वे यह समझते हैं कि यह भूत है, जो कि आकाश-यात्राके लिए निकला है। यही नहीं, आयरलैण्डवाले ऐसी गोल-गोल चलती-फिरती आंधीको परियोंका झुण्ड समझते हैं और आयरिश किसान जब कभी इसे देखता है, सम्मानके लिए अपना टोप उतार लेता है। मिश्रवाले भी अपने देशकी प्रचलित प्रथाके अनुसार कहते हैं कि 'खुदा हमारे इस दुश्मनको नष्ट कर दे।' उनकी ऐसी धारणा है कि आकाश-यात्रा करती हुई प्रेतात्मापर खुदा धूल बरसा रहा है।

बिल्लीका सम्मान—मिश्रके ग्रामीणोंका विश्वास है कि प्रत्येक व्यक्तिके पीछे एक छाया जन्मसे मृत्यु तक साथ रहती है, जो कभी बिल्ली और कभी कुछ बन जाती है। इस धारणाके कारण मिश्रवाले बिल्लीके प्रति बहुत सचेत रहते हैं;

रात्रिमें या कभी भी उनका कितना भी शोर-गुल, चिल्लाहट, म्याऊं-म्याऊंका शब्द हो, वे अपने धीरजका त्याग कर पत्थर, लकड़ी या बूट आदि जानवरकी तरफ नहीं फेंकते हैं। उनका यह भी विश्वास है कि यह छाया सहोदर भाईके समान है, जो साथ ही जन्म लेती है और साथ ही मरती है। यहां तक कि प्राचीन समयमें घरकी बिल्लीके अवसानपर वे शोक मनाते, उसके सम्मानमें भौंहें भी मुड़वा लेते। जब कभी आग लगनेकी घटना हो, इस अग्निकाण्डमेंसे बिल्लीको बचाना सर्वप्रथम कर्तव्य समझा जाता है। जब इतनी भ्रान्तियां और सम्मानसूचक प्रथायें प्राचीन कालसे प्रचलित हैं, तो वर्तमान मिश्री युवक यदि बिल्लीके प्रति इतना और इससे भी अधिक अन्धविश्वास रखें, तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

मृतक-संस्कार—किसी भी देश एवं जातिकी अलग-अलग प्रथाओंमें मृतक-संस्कार भी अपनी विचित्रता रखता है। मिश्र देशमें मृतककी अर्थीको ले जानेका अपना अनोखा ढङ्ग है। ज्यों ही कोई मनुष्य मृत्युके निकट पहुंच जाता है, अर्थात् उसका दम निकलनेवाला ही होता है, त्यों ही उसका सिर मक्काकी ओर घुमा दिया जाता है और जैसे ही सांस बन्द होती है, स्त्रियां रोना-पीटना प्रारम्भ कर देती हैं। गांवोंमें तो इसका और भी वीभत्स रूप देखनेको मिलता है। ग्रामीण स्त्रियां बाल बखेरे हुए कारुणिक शब्दोंमें विलाप करती हैं; सिरके बालोंमें धूल डालती जाती हैं; और एक शोकसूचक नीला वस्त्र हिलाती रहती हैं।

समस्त मिश्रमें मृतककी अर्थीको ले जानेकी एक-सी ही प्रथा है। हां, अर्थीका आकार-प्रकार और विलाप आदिकी विभिन्नता धनिकों और निर्धनोंमें अवश्य देखी जाती है। मृतक जुलूसके अगुवे छः या आठ सूरदास (अन्धे) मनुष्य होते हैं, जिन्हें 'यामिनीयाह' कहते हैं, जो एक प्रकारसे मृत्यु-सूचक व्यक्ति समझे जाते हैं। इसके बाद गर्दभ-आरोही पुरुष सम्बन्धी चलते हैं, जो मुखसे कुछ शब्द भी बोलते जाते हैं। इसके बाद मृतककी अर्थी होती है, जो अवस्था-स्थिति-सूचक स्त्री-पुरुषके भेदको दर्शानेवाले कपड़ेसे ढकी रहती है। अन्तमें सम्बन्धित स्त्रियोंका समूह होता है, जो गधे द्वारा खींची जानेवाली गाड़ियोंमें बैठा रहता है। पिछली कतारमें मुख ढकी हुई स्त्रियां रहती हैं। संसारकी कई जातियोंमें मृतककी अर्थीको सीधा ले जाते हैं; पर मिश्रमें उसे सीधी रेखाके सामानान्तर न ले जाकर आड़ा (टेढ़ेमेढ़े) ले जाते हैं, जिसका यह अर्थ बतलाते हैं कि मृतक अन्तिम आश्रय-स्थल पहुंचनेमें अनिच्छित है, इसलिए सीधा नहीं चलता है। मृतककी लाश-को सफेद या हरे वस्त्रसे ढकते हैं। अन्य मुसलमानोंसे भिन्न बात यह देखी जाती है कि प्रत्येक गृहस्थका श्मशानमें एक पृथक् स्थल होता है, जहां सङ्गमर्मरके सफेद पत्थरके नीचे वे सभी मृतकोंको गाड़ते हैं। मिश्रमें शवको मसाले आदिके लेपसे सुरक्षित रखनेकी प्रथा है और वहां एक जातिवाले प्राचीन कालसे यह काम करते आये हैं। मिश्रमें ऐसी ममी कई जगह देखनेको मिलती है।



भारतमें कपासकी खेती और व्यवसाय

श्री विनयकुमार

भारत संसारके प्रधान कपास-उत्पादक देशोंमेंसे एक है। अमेरिकाके संयुक्त राष्ट्रको छोड़कर संसारका और कोई देश भारतसे अधिक कपास पैदा नहीं करता। भारतमें कपासकी खेती प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। उत्तम सूत निकालनेवाली कपासकी पैदावारकी बाढ़ भी सन्तोषजनक है। भारतीय मिलें पहलेकी अपेक्षा अब कपड़ेके प्रमाण और उत्तमतामें भी उन्नति करती जा रही हैं। इतना सब होनेपर भी आज भारत औसतन् ६० से ६५ करोड़ तकका कपड़ा प्रतिवर्ष विदेशसे मंगाता है। पूरा वर्ष—गर्मी, सर्दी और वर्षामें रात-दिन परिश्रम करके भी भारतका किसान और मजदूर नङ्गा और भूखा देखा जाता है। इसका क्या कारण है?

भारतमें खेतीकी प्रधान पैदावार कपास और गेहूँ है। भारतीय किसानके आर्थिक वर्षकी अच्छाई और बुराईका ज्ञान इन दो वस्तुओं और विशेषकर कपासकी पैदावारके आधारपर होता है। कपासका भाव बढ़ते ही भारतीय किसानकी आर्थिक अवस्था सुधरने लगती है और भाव गिरते ही बिगड़ने लगती है। भारतमें साधारणतः कपासके भावपर ही सारा बाजार-भाव निर्भर रहता है।

कपास भारतके हर प्रान्तमें कुछ-न-कुछ तादादमें पैदा की जाती है; पर कपास पैदा करनेवाले प्रान्त मुख्यतः पञ्जाब, गुजरात, मध्यभारत, मालवा, संयुक्तप्रान्त, बङ्गाल, बम्बई, मध्यप्रान्त और बरार हैं। कपास भारतमें कबसे पैदा की जाती है, यह कहना तो कठिन है; पर यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भमें भारतीय कपासमें मिश्रण कम पाये जाते थे; पर आज जो कपासें भारतमें पैदा की जा रही हैं, उनमें अनेक विदेशी जातिकी कपासें हैं। उनका यदि हम विश्लेषण करें, तो हमें मुख्यतः निम्न जातियां मिलेंगी—

(१) बेङ्गाल्स।
(२) उमराज।
(३) अमेरिकन्स।
(४) भरोंच।
(५) सदर्न्स।

उपर्युक्त जातियां कपासके जिनिङ्ग प्रतिशत (अर्थात् जिनिङ्गके बाद कितना प्रतिशत रहता है), स्पर्श, रङ्ग, सफाई, कताई, रेशेकी लम्बाई आदि गुणोंके आधारपर मानी जाती हैं। हरएक जातिमें अनेक उपजातियां भी पायी जाती हैं।

(१) बेङ्गाल्स—राजपूतानेसे लगाकर बङ्गाल और पञ्जाब तक जो कपास पैदा की जाती है, उसे यह नाम दिया गया है। यह साधारणतः अच्छी सफेद होती है। भारतमें पैदा होनेवाली सब कपासोंसे इसका रेशा छोटा, अर्थात् ६/८ इञ्च तक लम्बा होता है। इससे जो सूत निकाला जाता है, वह ८ से १० नम्बर तकका होता है। बिनौला निकाल देनेपर इसकी भिन्न जातियां औसतन् ३५ प्रतिशत रुई देती हैं।

(२) उमराज—इस जातिकी कपास मध्यप्रान्त, बरार, खानदेश, काठियावाड़, बम्बईके नासिक और शोला-पुर जिलों तथा निजाम राज्यमें होता है। यह कहा जाता है कि कपासकी इस जातिका नाम बरारके केन्द्रस्थान "उमरावती" (अमरावती) शहरपरसे पड़ा है। "उमराज" की सुधरी हुई जातिको "व्हेरम २६२" कहते हैं। उमराजका रेशा १/२ इञ्चसे लगाकर ६/८ इञ्च तक होता है। पर "व्हेरम २६२" का रेशा ७/८ इञ्च तक होता है। यह अकेले मध्यप्रान्त और बरारमें करीब ९० हजार एकड़में बोयी जाती है। बिनौला निकाल लेनेपर ३२ प्रतिशतसे लगाकर ३८ प्रतिशत तक रुई देती है। उमराज १२ से १४ नम्बर तक और "व्हेरम २६२" २० से २४ नम्बर तकका सूत देती है।

(३) अमेरिकन्स—इस जातिकी कपास "अपलैण्ड अमेरिकन काटन"की जातिकी है। यह विशेषतः पञ्जाब और सिन्धमें पैदा की जाती है। इसका रेशा १५/१६ इञ्चसे लगाकर १ इञ्च तक होता है। कभी-कभी उससे भी अधिक

होता है। बिनौला निकालकर यह २९ प्रतिशत शेष रहता है। इससे २४×३२ नम्बर तकका सूत निकाला जा सकता है।

(४) भरोंच—दक्षिण गुजरातसे लगाकर बड़ोदा तक जो कपास पैदा होती है, उसे उक्त नाम दिया गया है। इसका रेशा ५/८ इञ्चसे ६/८ इञ्च तक लम्बा होता है। बिनौला निकाल लेनेपर इसका वजन ३९ प्रतिशत रह जाता है।

(५) सदर्न्स—इस जातिकी कपास मद्रास प्रान्तके अनन्तपुर, बल्लारी, कडप्पा, पूर्व-पश्चिम गोदावरी, गन्तूर, नेलोर आदि जिलोंमें तथा बम्बईके दक्षिणी जिलों और मैसूरमें होती है। इसका रेशा ५/८ इञ्चसे १३/१६ इञ्च तक लम्बा होता है। बिनौला निकाल लेनेपर यह २६ से २७ प्रतिशत रह जाती है। इससे १६ से २० नम्बर तकका सूत निकलता है। इसकी कुछ उपजातियोंसे २४ से ३० नम्बर तकका सूत निकलता है।

उपर्युक्त जातियोंकी कपासोंमें हमने देखा कि भारतमें पैदा होनेवाली कपाससे अधिकसे अधिक ४० नम्बर तकका सूत निकाला जा सकता है। यही भारतकी सर्वोत्तम जाति-की कपास है। इसमें विशेषतः "अमेरिकन्स" जातिकी कपास आती है। इसका रेशा १ इञ्च और उससे भी अधिक लम्बा होता है। इसे विदेशी व्यापारी भाषामें "लांग स्टेपल काटन" कहते हैं। भारतमें गत ९ वर्षोंमें लांग स्टेपल काटनकी पैदावार दो हजार गांठसे बढ़कर ५४ हजार हो गयी है। अर्थात् २७ गुनी पैदावार बढ़ गयी है।

उत्तम सूती वस्त्र तैयार करनेके लिए जलवायुके अतिरिक्त लांग स्टेपल कपासकी अत्यधिक आवश्यकता होती है। इसी-लिए भारत संसारकी कपासकी कुल पैदावारका १३.३५ प्रतिशत पैदा करनेपर भी प्रतिवर्ष लाखों गांठ कपास विदेशोंसे मंगवाता है। उदाहरणार्थ सन् १३३७-३८ की संसारकी कपासकी कुल पैदावार ३,६९,१४,४०४ गांठ है और उस वर्षकी भारतकी कुल पैदावार ४९,४२,००० गांठ है; परन्तु इसके अतिरिक्त भी सन् १९३७-३८ में उसने विदेशों-से ७,६१,७२९ गांठ, अर्थात् उस सालकी अपनी पैदावारका ७ वां हिस्सा विदेशोंसे मंगाया। इसका कारण केवल यह है कि भारतमें विदेशी कपड़ेकी प्रतियोगितामें भारतीय मिलें भी उत्तमोत्तम वस्त्र निकालनेका प्रयत्न करती हैं और उसके लिए उन्हें लम्बे रेशेवाली कपासकी आवश्यकता होती है। भारतमें लम्बे रेशेकी जो कपास पैदा होती है, उतनी तो भारतीय मिलोंकी आवश्यकताकी पूर्ति कर ही नहीं सकती; तिसपर भी जो होती है, उसमेंसे भी करीब ५० प्रतिशत या उससे भी अधिक विदेशोंको भेज दी जाती है। अच्छा हो, यदि भारतीय मिल-मालिक हमारे यहांकी लम्बे रेशेकी कपासको हमारे यहां ही थोड़ा कम-अधिक भाव देकर खपानेका प्रयत्न करें। भारतीय मिल-मालिकोंमें दूसरी एक मनोवृत्ति और काम कर रही है और वह यह कि भारत-में पैदा होनेवाली लम्बे रेशेकी कपास उत्तम कपड़ेके लिए उपयुक्त नहीं है। उसका "मिश्रण" तैयार करनेमें अधिक खर्च होता है। विदेशसे जो लम्बे रेशेवाली कपास आती है, उसमें भारतीय मिलोंमें भारतकी छोटे रेशेवाली कपास मिला दी जाती है और इस तरह अधिक नम्बरवाला सूत अधिक तादादमें पैदा करनेका प्रयत्न किया जाता है। विदेशोंमें भी भारतकी छोटे रेशेवाली कपास केवल मिश्रण बनानेके हेतु ही लेते हैं। पर मिल-मालिकोंका यह कहना कि भारतकी लम्बे रेशेकी कपास मिश्रणके उपयुक्त ही नहीं, गलत है। हां, यह ठीक है कि विदेशों—अमेरिका और ईजिप्ट आदिमें लम्बे रेशेकी कपास अधिक तादादमें होती है, अतः वह भारतमें सस्ते दामोंमें प्राप्त की जा सकती है। भार-तीय लम्बे रेशेकी कपासमें यह बुराई भी दिखायी जाती है कि उसमें छोटे रेशोंका मिश्रण अधिक रहता है; पर वैज्ञानिक परीक्षणोंसे, जो इण्डियन सेण्ट्रल काटन कमेटीकी टेक्ना-लाजिकल लेबोरेटरीमें किये गये हैं, विदित होता है कि भारत-की लम्बे रेशेकी कपासमें ईजिप्ट अथवा अमेरिकाकी अपेक्षा अधिक अनियमित लम्बाईके रेशे नहीं पाये जाते, अतः इस कारणके आधारपर भारतीय कपासको काममें न लाना सर्वथा अनुचित है।

भारतकी लम्बे रेशेकी कपासको प्रोत्साहन देना राष्ट्रीय दृष्टिसे बहुत लाभदायक है। आगे चलकर उससे न केवल किसानोंका ही लाभ है, वरन् मिल-मालिकों एवं मज-दूरोंका भी काफी लाभ है। मिल-मालिकोंकी उपेक्षावृत्तिके बावजूद भी भारत लम्बे रेशेकी पैदावारमें उन्नति कर रहा है और उसे यदि सरकारी और मिल-मालिकोंका प्रोत्साहन

मिल जाय, तो वह काफी उन्नति कर सकता है। गत १० वर्षोंकी लम्बे रेशेकी खेतीका यदि हम हिसाब देखें, तो हमें पता लगता है कि भारत इस ओर तेजीसे प्रगति कर रहा है। उदाहरणार्थ सन् १९३१-३२ में भारतमें कुल २,३८,१२,००० एकड़ जमीनमें कपास पैदा की गयी थी, उसमेंसे ८२२००० एकड़में लम्बे रेशेकी कपास पैदा की गयी थी; और सन् १९३७-३८ में कुल २५५८३००० एकड़ जमीनमें कपासकी खेती की गयी थी, उसमेंसे २४२५००० एकड़में लम्बे रेशेकी कपास पैदा की गयी थी। उसी तरह लम्बे रेशेकी कपास-की प्रति एकड़की पैदायशमें भी काफी उन्नति हुई है। सन् १९३१-३२ में लम्बे रेशेकी कपास प्रति एकड़ औसतन् १११ पौण्ड हुई है और सन् १९३७-३८ में वह बढ़कर १९४ पौण्ड हो गयी है। यदि भारतमें राष्ट्रीय सरकार होती, तो हमारे यहां पैदा होनेवाली कपासका दर्जा और परिमाण दोनों तीव्रतासे बढ़ सकते और भारत कच्ची कपासके स्थानमें सुन्दर कपड़ा बाहर अच्छी तादादमें भेज सकता और विदेशी कपड़ेके आयातको जबर्दस्त धक्का बैठता।

भारतवर्षके प्रतिवर्षके आयात-निर्यातके आंकड़ोंको देखनेसे पता चलता है कि भारत प्रतिवर्ष औसतन् ६२ करोड़ रुपयेका विदेशी कपड़ा मंगाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत अपनी आवश्यकताके अनुसार कपड़ा तैयार नहीं कर सकता। फिर वह क्यों मंगाता है? (१) विदेशी सरकारका प्रभाव, (२) बनावटी रेशमकी प्रतियोगिता, (३) भारतीय रहन-सहनमें पश्चिमका प्रभाव एवं (४) देशके एक बहुत बड़े समुदायमें राष्ट्रीय मनोवृत्तिका अभाव आदि। ये मुख्य कारण हैं, जिससे भारतका प्रतिवर्ष करोड़ों रुपया विदेशोंको जाता है और भारतीय किसान और मजदूर वर्ष-भरके कड़े परिश्रमके बाद भी नङ्गे और भूखे देखे जाते हैं।

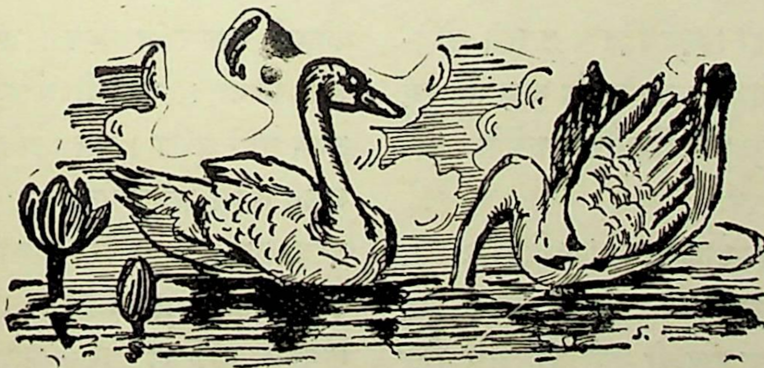
पर विदेशी सरकारको दोषी ठहराकर हम स्वयं निर्दोष सिद्ध नहीं हो सकते। भारतमें, विशेषकर शिक्षित समुदायमें आज भी राष्ट्रीय मनोवृत्तिका सर्वथा अभाव है। यदि हमने भारतीय राष्ट्रीय नेताओंके सङ्केतके अनुसार अपने राष्ट्रीय उद्योग-व्यवसायोंको सन् १९३० से भी पूर्ण प्रोत्साहन दिया होता, तो आज तक हम इस दिशामें स्वावलम्बी हो गये होते। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण सन् १९२४-२५ से लगाकर सन् १९३१-३२ तकके आयातके अङ्क हैं। सन् १९२४-२५ में भारतमें कुल ८२३२५१००० रु० का कपड़ा आया है। सन् १९२९-३० में, जो भारतमें सत्याग्रहका प्रारम्भिक वर्ष था और जिन दिनोंमें विदेशी वस्त्र-बहिष्कारका आन्दोलन प्रारम्भ ही हुआ था, कुल ५९ करोड़ ४८ लाख ७२ हजार रुपयेका कपड़ा भारतमें आया है। उसके पश्चात् जिस तीव्रतासे आन्दोलन बढ़ा है, उससे सभी भारतीय पूर्णरूपेण परिचित हैं। सन् १९३०-३१ और ३१-३२ के आयातके आंकड़े महान् आश्चर्य पैदा करनेवाले हैं। सन् १९२९-३० के आयातकी संख्या ५९ करोड़से घटकर सन् १९३०-३१ में २५२५६०००० रुपये रह गयी और ३१-३२ में १९१५४२००० रुपये रह गयी। इससे बढ़कर राष्ट्रीय मनोवृत्तिका चमत्कार और क्या हो सकता है?

यह ठीक है कि सुन्दर, अत्यधिक महीन और मुलायम वस्त्र आज भारतके दुर्भाग्यसे भारतमें अच्छी तादादमें तैयार नहीं होता। इसके प्रधान कारणोंमेंसे एक भारतमें लम्बे रेशेकी कपासकी पैदावारकी कमी है, इसीलिए भारतमें कपासके आयातके आंकड़े ७ से ८ लाख गांठ तक पहुंच जाते हैं। भारतीय मिलें अपने सारे प्राप्त साधनोंका लाभ लेकर उत्तम वस्त्र तैयार करनेका जो प्रयत्न कर रही हैं, वह यदि बहुत आश्चर्यकारक नहीं, तब भी कुछ सन्तोष देनेवाला अवश्य है। सन् १९२६-२७ में भारतीय मिलोंने २० नम्बरके अन्दरका सूत ५१,५०,००००० पौण्ड और ३,९०,००००० पौण्ड ३० नम्बरसे ऊपरका सूत निकाला था। पर सन् १९३६-३७ अर्थात् १० वर्षोंके बाद २० नम्बरका सूत ५९,२०,००००० पौण्ड और ३० नम्बरके ऊपरका सूत १८,५०,००००० पौण्ड तैयार किया। इसका अर्थ यह है कि जहां २० नम्बरवाले सूतकी १५ प्रतिशत उन्नति हुई है, वहां ३० नम्बरसे ऊपरवाले सूतमें ३७० प्रतिशत उन्नति हुई है। इसका मुख्य कारण लम्बे रेशेकी कपासके आयात और पैदावारमें बढ़ती है। इसके साथ ही यदि भारतके किसानों और मिल-मालिकों दोनोंको वैज्ञानिक अन्वेषणोंकी सहायता और सुविधा मिल सकती, तो भारत शक्करके व्यवसायकी भांति वस्त्र-व्यवसायमें भी एक आश्चर्य कर दिखाता।

फिर भी, जैसा कि ऊपर कहा गया है, भारत कपास-व्यवसायमें दिन-प्रतिदिन उन्नति करता जा रहा है। गत १०

वर्षोंमें मिलोंमें खपनेवाले अङ्कोंको देखनेसे पता चलता है कि ब्रिटिश भारतमें जहां सन् १९२८-२९ में १९,९१,९७८ रुईकी गांठें खर्च हुई थीं, वहां सन् ३३-३४ में अर्थात् ५ वर्षोंके बाद २३,३६,३२६ गांठें खर्च हुईं और सन् १९३८-३९ में वह खर्च बढ़कर ३१,२०,००० गांठें हो गया। उसी प्रकार कपड़ा तैयार करनेमें भी भारतीय मिलोंने आशाजनक उन्नति की है। सन् १९१३ में भारतमें केवल १,२२,०००००० गज कपड़ा तैयार हुआ था। सन् १९१८ में १,६१,४०,००००० गज; पर अभी सन् १९३८-३९ में ४,२६,९०,००००० गज कपड़ा तैयार हुआ है। अर्थात् गत २५ वर्षोंमें भारतमें कपड़ेके व्यवसायमें ४०० प्रतिशत उन्नति हुई है। इसके प्रधान कारणोंमेंसे एक सन् १९१४ का महायुद्ध है। उन दिनों लङ्काशायरकी प्रतियोगिताके अभावमें भारतके कपास-व्यवसायकी नींव जम गयी। उसके पश्चात्से भारतीय मिलोंकी आवश्यकता बढ़ती ही गयी। उसके साथ ही राष्ट्रीय आन्दोलनोंके कारण भारतीय वस्त्र-व्यवसायियोंको भारतमें ही महीन और सुन्दर कपड़ा तैयार करनेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। और इसके परिणामस्वरूप भारतमें लम्बे रेशेकी कपासकी पैदावार भी बढ़ानेकी आवश्यकता हुई। धीरे-धीरे भारतमें विदेशी कपड़ेका आयात युद्धके कारण आवागमनके मार्गोंमें कठिनाइयां आ जाने एवं अन्य कारणोंसे घटेगा और भारतीय मिलोंको भारतकी आवश्यकताकी भी पूर्ति करनेके लिए बाध्य होना पड़ेगा, अतः यह स्पष्ट है कि भारत वर्तमान युद्धका लाभ उठाकर अपने कपड़ेके व्यवसायको इस प्रकार विस्तृत और मजबूत कर सकता है कि वह भविष्यमें किसी अन्य देशपर निर्भर तो रहे ही न, वरन् अपनी कपासके स्थानमें अपने कपड़ेका निर्यात बढ़ा सके। इससे न केवल भारतके वस्त्र-व्यवसायको ही लाभ होगा, वरन् इससे भारतका सारा-का सारा आर्थिक ढांचा भी सुधर सकेगा। आज भारतका जितना निर्यात है, उसमें ८० प्रतिशत खेतीकी पैदावार है। भारतकी आर्थिक उन्नतिमें खेतीकी पैदावारका इतनी अधिक तादादमें बाहर जाना एक जबर्दस्त बाधा है। भारतमें विदेशी कपड़ेके आयातके घट जानेपर भारतकी कपास नहीं, वरन् सुन्दर वस्त्र तैयार होनेपर कपड़ा विदेशको भेजा जायगा।

इन सारी बातोंको देखते हुए भारतको कपड़ेकी आवश्यकताके लिए स्वावलम्बी बनाने और भारतीय किसानों और मजदूरोंकी आर्थिक स्थितिके सुधारार्थ भारतीय वस्त्रकी विदेशी मांग बढ़ानेके लिए इस प्रश्नपर गम्भीरतापूर्वक विचार करनेकी आवश्यकता है।



गोखरू

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क', बी० ए०, एल-एल० बी०

फिटकरी, शोरे और नमकके पानीमें धुले, कमरेके अंधेरेमें जगमगाते, पीले, सुनहरे गोखरू देखते-देखते मलावीकी आंखोंमें आंसू भर आये। निमिष-मात्रके लिए उसके सामने एक चित्र घूम गया—उसका अपना ही चित्र—उन दिनोंका, जब जीवनमें सब कुछ अच्छा लगता था। भाईसे लड़ाई-झगड़ा, पिताका क्रोधसे झुंझलाकर गालियां देना और खिजकर मांका पीट बैठना—सब ही भला मालूम देता था। वसन्तकी अपेक्षाकृत लम्बी दुपहरी, जब अपनी स्निग्ध, सुनहरी धूपसे सपनोंका संसार बसा देती थी और अपने बड़े खुले आंगनमें त्रिञ्जन[1]के गीत गाते-गाते वह किसी ऐसी ही सपनोंकी दुनियामें खो जाती थी।

एक लम्बी सांस छोड़कर मलावीने अपनी आंखोंको मल डाला। यौवनके स्वर्ण-प्रभातकी अपनी आकृति देखते-देखते वर्तमानके कङ्कालका ध्यान आ जानेसे उसकी आंखें भर आयी थीं। गोखरू उसने फिर डिब्बेमें रख दिये; पर डिब्बेको वह बन्द न कर सकी। क्षणिक आवेशके वश एक गोखरू उठाकर उसने अपनी कलाईमें डालना चाहा; पर वह सख्त था—१६ तोले सोनेके भारी गोखरू—उसके हाथोंकी हड्डियां जैसे अब उसके लिए दीवारें बन गयी थीं। चुपचाप उसने फिर उसे डिब्बेमें रख दिया और कुछ क्षण मन्त्रमुग्ध-सी वह उन दो सुन्दर गोखरुओंको देखती रही। एक दिन वे उसकी सोने-ऐसी कलाइयोंपर खूब सुन्दर लगे थे। तब उसके अङ्ग भरे हुए थे, हड्डियोंके स्थानपर मांसल भुजायें थीं और गालोंके गढ़ोंमें गुलाब हंसा करते थे।

बाहर छोटी-छोटी लड़कियां ढोलकपर 'माहिया'[2] गा रही थीं। उसकी आंखोंके सामने फिर गया, किस तरह उसके कमरेमें भी एक दिन ढोलक रख दी गयी थी, और फिर किस तरह चांदनी रातोंमें उनके चौड़े विशाल आंगनमें जामुनके वृक्षकी छिदरी छायाके नीचे गांव-भरकी नवयुवतियां और नववधुयें इकट्ठी हुई थीं, और किस तरह उन्होंने 'माही', 'रांझा', 'पुन्नू'[3]के गीत गाये थे और किस तरह गांवकी बड़ी-बूढ़ियां भी उनके द्वारा अतीतमें पहुंचकर उनके स्वरमें स्वर मिला देती थीं।

फिर एक दिन तेल, हलदी और केसरसे मिले हुए बेसनके उबटनसे मल-मलकर उसे नहलाया गया था और जब उसकी देह कुन्दन-सी दमक उठी थी, तब विवाहका लाल जोड़ा उसे पहनाया गया था। उसकी कलाइयोंमें मौलीके तारमें पिरोये हुए कलीरे बांधे गये थे और तब मांने उसे गहने पहनाये थे। उन्हींमेंसे ये भारी गोखरू भी थे।

मलावीने आंखें गोखरुओंसे हटा लीं। कमरेकी दायीं दीवारके साथ जरा और अंधेरेमें ट्रङ्कोंपर एक पुराना लकड़ीका लाल डिब्बा उपेक्षित-सा पड़ा था। रङ्ग उसका कई जगहसे उतर गया था और उसपर गर्दकी गहरी तह चढ़ गयी थी। मलावीकी दृष्टि उसी पुराने डिब्बेपर जा पड़ी, फिर उसने अपने शरीरपर निगाह डाली और उसके हृदयसे एक दीर्घ निश्वास निकल गया। तभी एक असह्य ईर्षाके बस होकर उसने एक गोखरू उठाया, दोनों हाथोंमें लेकर और तनिक खुला करके उसे डाल लिया। उसकी हड्डी-ऐसी कलाईपर वह कोहनी तक चला गया। तब दूसरा उसने दूसरी कलाईमें डाल लिया। वह भी कोहनी तक चला गया; किन्तु उसे दुःख नहीं हुआ। इस अपने चिरपरिचित गहनेको सदैवके लिए अलग करते समय एक बार पहनकर वह कृतकृत्य हुई। तभी दरवाजा खुला और विवाहके लाल जोड़ेमें आवृत यौवन, उल्लास तथा प्रसन्नताकी तसवीर बनी उसकी लड़की मंसा कमरेमें दाखिल हुई—मलावीने अपने दोनों हाथ दुपट्टेके आंचलसे छिपा लिये। उसका चेहरा पीला पड़ गया; पर कमरेके अंधेरेमें उसकी लड़कीने इस परिवर्तनको नहीं देखा और अपनी मीठी सुरीली आवाजमें इतना ही कहा—"बाबूजी बुला रहे हैं!"

---

१ स्त्रियां जब इकट्ठी बैठकर चरखा कातती हैं, तो पञ्जाबमें उसे त्रिञ्जन कहते हैं।

२ पञ्जाबका प्रसिद्ध गीत।

३ पञ्जाबके अमर प्रेमी।

"चल मैं आयी।"—हकलाते हुए मलावीने कहा।

लड़की चली गयी। मलावीने उसे जाते हुए देखा—उसके ही यौवन-प्रभातका दमकता हुआ चित्र। एक दीर्घ निश्वासको निकल पड़नेसे बरबस रोककर उसने गोखरू उतारे और उन्हें उनके उस नये डिब्बेमें रख दिया, जिसकी मखमलका रङ्ग गहरा लाल था और जिसकी पीतलकी कुण्डी भी सुनहरी दिखाई देती थी और अंधेरेमें ट्रङ्कोंपर उपेक्षित-से पड़े उस पुराने डिब्बेकी ओर जान-बूझकर देखे बिना मलावी नये डिब्बेको लिये हुए कमरेसे निकल आयी।

* * *

दरवाजेपर शहनाई अपनी तीखी, हृदयको भेद देनेवाली आवाजमें कोई जुदाईका गीत गा रही थी। घरके बाहर भङ्गियों तथा भङ्गिनोंका हजूम, रास्ता रोके उत्सुक नजरोंसे दुल्हा तथा दुल्हनके बाहर आनेकी बाट जोह रहा था—मर्दोंके हाथोंमें बांसोंके साथ बंधी लिपटी चादरें थीं, जो पलक झपकते ही खुल जानेको व्यग्र थीं और स्त्रियोंके दामन फैल जानेको उत्सुक थे। गलीके दोनों ओर छतोंपर पड़ोसिनोंकी भीड़ जमा थी, जिनके ओंठ गाना गानेके लिए जैसे फड़क रहे थे।

घरके अन्दर आंगनमें तिल धरनेको जगह न थी। एक ओर वरपक्षके लोग खड़े थे, "इंजड़ी चिनने*"की रस्म हो चुकी थी और पण्डितके मन्त्र अभी-अभी हवामें फैलकर कहीं गुम हो गये और उनका स्थान विदाईकी सिसकियोंने ले लिया था। पुरोहितने चावलोंका दाना लड़कीके हाथपर रखा—मंसाने उसे छिड़कते हुए पण्डितके कहनेके अनुसार ओंठोंमें ही कहा—"आपका भाग्य आपके साथ, मेरा भाग्य मेरे साथ," और उसकी आंखें भर आयीं, तभी सहेलियोंने गाना शुरू किया—

सठ्ठ सहेली दर खड़ी
मैंनू नहीं मिलन दा चाव
वे सुन बाप मेरा ×

मंसा सबसे गले मिलकर जुदा हो रही थी, यह सुनते ही बापसे चिमट गयी, और लड़कियोंने गाया—

गलियां ने होइयां बाबल भीड़ियां
मैंनूं आंगन होइया परदेस
वे सुन बाप मेरा +

और बापने आंखोंमें अनायास ही छलछला आनेवाले आंसुओंको बरबस रोकते हुए उसके कन्धेको थपथपाकर कहा—बस, बस!

उस समय अपने पिता तथा पुरोहितका इशारा पाकर दरवाजेपर खड़ी हुई महरीके कुम्भमें कुछ चांदीके सिक्के डालकर दुल्हा बाहर निकले, उनके पीछे-पीछे अपने पिताकी गोदसे लगी हुई मंसा थी और दोनोंके मध्य एक श्वेत साफेका छोर लाल सालूसे बंधा-बंधा जा रहा था।

उस वक्त एकदम बाजे जोर-जोरसे बजने लगे, और शहनाईवालेने झूम-झूमकर, मुंह फुला-फुलाकर शहनाईमें फूंक देना आरम्भ किया, तब समधीने थैलीका मुंह खोल नये, मोहरोंकी तरह चमकते हुए पैसोंकी एक-दो मुट्ठियां दुल्हा-दुल्हनके ऊपरसे वारकर फेंकीं। बांसोंसे लिपटी हुई चादरें खुलीं, दामन खुले और पैसोंकी लूट आरम्भ हो गयी।

तब पीछे चली आनेवाली तथा गलीके दोनों ओर छतोंपर जमा स्त्रियोंने आर्द्र कण्ठोंसे गाया —

गलियां ने होइयां बाबल भीड़ियां
मैंनू आंगन होइया परदेस
वे सुन बाप मेरा

मलावी चुपचाप मन्त्रमुग्ध-सी लाल सालू पहने, तनिक-सा घूंघट निकाले दूसरी स्त्रियोंके साथ चली जा रही थी। उसकी आंखोंसे आंसू जारी थे, लेकिन धीमे स्वरसे वह भी अन्य स्त्रियोंके स्वरमें स्वर मिलाकर गा रही थी। उसकी आंखोंके सामने एक ऐसा ही दृश्य फिर रहा था, जब वह भी अपने पिताकी गोदमें चढ़कर घरसे विदा हुई थी।

बाजार आ गया। लड़कीको तांगेमें बिठा दिया गया। महरी साथ बैठ गयी, तो लड़कीकी सिसकियां और भी ऊंची होती गयीं और वह अपनी मांके गलेसे लिपट गयी। मलावी-

---

* दुल्हा और दुल्हनके कपड़ोंको बांधनेकी रस्म।

× साठ सहेलियां दरवाजेपर खड़ी मेरी बाट जोह रही हैं, पर मेरे मनमें किसीसे मिलनेका चाव नहीं, ऐ मेरे पिता सुन!

+ ऐ पिता, गलियां संकरी हो गयी हैं और अपना आंगन अब मेरे लिए परदेश हो गया है।

ने अपनी विदा होती हुई लड़कीको जोरसे अपने बाजुओंमें भींच लिया और उस समय उसे एक और स्निग्ध आलिङ्गनका स्मरण हो आया, जब बहुत वर्ष पहले अपने ही विवाहपर वह अपनी मांसे इसी प्रकार लिपट गयी थी। तब सिसकती हुई लड़कीको धीरे-धीरे उसने अलग किया, तो उसके बाजुओंपरसे होते हुए उसके हाथ निमिष-मात्रके लिए उसके गोखरुओंपर आ रुके............।

पर तब तांगा चलने लगा था और समधी तांगेके ऊपरसे पैसोंकी वर्षा कर रहे थे, भङ्गी लूट रहे थे और बाजे और भी जोर-जोरसे बज रहे थे।

जब लड़कीको विदा करके मलावी अपने घरमें आयी, तो उसे सब कुछ सूना-सूना-सा प्रतीत हुआ। सालू बदलनेके लिए जब वह अन्दर गयी, तो ट्रङ्कपर पड़े हुए उपेक्षित-से गोखरुओंके डिब्बेपर उसकी नजर गयी और उसने महसूस किया कि वह अपनी इकलौती लड़कीको रुखसत करके ही नहीं आयी, वरन् अपने सबसे प्रिय आभूषणको भी विदा दे आयी है।

* * *

दूसरे दिन जब मंसा अपनी ससुरालसे वापस आयी और सहेलियोंसे मिल-मिलाकर जब अपनी मांके पास बैठी, तो मलावीने उसे समझाया कि बेटी, तेरा स्वभाव कुछ बेपरवाही-का है। रातको सोते समय गोखरू उतार लिया करना। तेरे हाथोंमें जरा खुले हैं, कहीं किसी दिन खिसक ही न जायें!

दो वर्ष बीत गये, तीयों*का त्योहार आ गया। इस बार मलावीने अपने पतिसे अनुरोध करके, मंसाको बुलवा भेजा। उसकी ससुरालवाले तो उसे बिलकुल न भेजना चाहते थे; पर वह मैके आनेके लिए छटपटा रही थी और उसके कई पत्र, मलावीको आ भी चुके थे।

मलावी स्वयं भी उसे देखना चाहती थी। इस बीचमें, यद्यपि वह अपनी गोखरुओंकी जोड़ीको बहुत हद तक भूल गयी थी; किन्तु फिर भी जब किसीकी कलाइयां आभूषणोंसे भरी हुई देखती, उसे अपनी सूनी कलाइयोंका खयाल आ जाता और अतीतके कई चित्र उसकी आंखोंके सामने घूम जाते—जब उसके बाजू गहनोंसे भरे हुए थे, उसकी कलाइयोंमें एक साथ बन्द, गोखरू, लच्छे और चूड़ियां पड़ी रहती थीं, फिर उसके पतिको कारोबारमें घाटा पड़ा, और वे सब गहने एक-एक करके सराफकी दूकानपर पहुंच गये और हाथके गहनोंमें उसके पास केवल गोखरू ही रह गये। और फिर वह दिन भी उसकी आंखोंके सामने घूम जाता, जब वे गोखरू भी उसने हंस-हंसकर अपनी लड़कीको पहना दिये थे और उस वक्त वह घर जाकर ताकमें रखे हुए गोखरुओंके पुराने डिब्बेको एक नजर देख लेती, दीर्घ निश्वास भरकर और उसे झाड़-पोंछकर फिर वहीं रख देती। भाग्यके बिना, कौन किसी चीजका उपभोग कर सकता है? गहने तो उसे बहुत मिले; पर उन्हें पहनना किसी और ही के भाग्यमें था। उन सब गहनोंके नामपर एक पुराना डिब्बा उसके पास रह गया था, जो उसे अपने अभावकी याद ही अधिक दिलाता था; किन्तु फिर भी उस पुराने डिब्बेको वह फेंकती न थी, झाड़-पोंछकर वहीं ताकमें रख दिया करती थी।

और अब जब वह विह्वल-सी होकर अपनी लड़कीकी प्रतीक्षा कर रही थी, तो कौन जानता है, अपने उस चिर-परिचित गहनेको देखनेकी लालसा-सी उसके हृदयके किसी अज्ञात कोनेमें न दबी पड़ी थी।

और जब एक दिन मंसा अपनी ससुरालसे आ गयी, तो मलावीने देखा कि इस दो वर्षके अर्से ही में उसके गोखरू घिसकर पीतल-ऐसे निकल आये हैं। और तब आलिङ्गनमें लेकर कुशलक्षेम पूछनेके बाद, इच्छा न होते हुए भी मलावीने अपनी लड़कीको कोसना आरम्भ कर दिया—'यह गहनोंकी क्या हालत बनायी है तूने? इस तरह तो परायेका गहना भी नहीं पहना जाता। दो ही वर्षमें तूने इतने कीमती गोखरू घिसा दिये। पांच रुपये तो मात्र इनकी गढ़ाईके मैंने दिये थे। मैल इनमें इतना जमा हुआ है! बर्तन मांजते, झाड़ू-बहारी देते समय तू उतारती न थी इन्हें?......'और गोखरुओंसे नजर हटाकर उसने अपनी लड़कीके चेहरेकी ओर देखा और उसका हृदय धकसे रह गया। वह क्या बक गयी? अपनी लड़कीसे उसके दुखदर्दका हाल पूछनेके बदले गोखरुओंका रोना ले बैठी। मलावीने देखा, उसकी लड़की कमजोर हो

* इस त्योहारपर सावनमें लड़कियोंके मेले लगते हैं। झूले पड़ते हैं और आनन्द मनाया जाता है।

गयी है। उसकी आंखोंके गिर्द गढ़े पड़ गये हैं और उसका रङ्ग पहलेसे सियाह हो गया है—सहसा आवेशके बस हो, उसने फिर अपनी लड़कीको अपनी भुजाओंमें भींचकर उसके रूखे शुष्क बालोंको चूम लिया।

मंसाकी आंखें भर आयी थीं। वह न जाने अपनी मांसे कौन-कौन-से दुःखका बोझ बटाने आयी थी और मांने आते ही कोसना आरम्भ कर दिया। अब उस आलिङ्गनमें उसके नीरव आंसू मुखरित होकर सिसकियां बन गये।

तब मलावीने उसे सान्त्वना देते हुए, अपने इस व्यवहारपर खेद प्रकट किया और तभी मंसाने बताया कि किस तरह मात्र यही गोखरू उसके पास बच रहे हैं और किस प्रकार उसने उन्हें अपनी कलाइयोंसे पल-भरके लिए भी अलग नहीं किया। सासने तो—मंसाने बताया—शुरू ही में अपने छोटे लड़केकी शादीके बहानेसे उसके सब गहने ले लिये थे, और फिर लाख मांगनेपर भी उसे न दिये थे। ये गोखरू भी एक उत्सवपर उसे पहननेको दिये गये थे, बस फिर उसने उन्हें अपनी कलाइयोंसे अलग नहीं किया। सासने बहुतेरा कहा; पर वह किसी तरह भी अपनी कलाइयोंको बिलकुल सूनी कर लेनेको तैयार नहीं हुई। इसपर उसकी जो दुर्दशा हुई, उसका हाल भी रो-रोकर मंसाने अपनी मांको बताया—सासने उसे ताने मारे, कोसा, यहां तक कि गालियां दीं; श्वसुर भी बेहद नाराज हुए और उसके पतिने तो उसे मारा भी; पर उसने फिर गोखरू नहीं दिये।

* * *

मलावीने अपनी लड़कीको अपनी छातीसे लगा लिया, और उसकी आंखोंमें आंसू निकल आये। इन आंसुओंमें कितना दुःख था और कितना सुख, इसे अन्तर्यामीके सिवा कौन जान सकता है।

* * *

कहते हैं, यदि किसी दूसरे व्यक्तिकी नीयत किसी चीजमें रह जाय, तो वह चीज गुण नहीं करती। इसीलिए शायद गोखरुओंने मंसाको लाभ नहीं किया, बल्कि वे उसकी जान ही लेनेका कारण बने।

मैके होकर जब मंसा ससुराल पहुंची, तो घरवालोंके प्रति उसका व्यवहार और भी रूखा हो गया था और उसने निश्चय कर लिया था कि गोखरू देना तो अलग, वह अपने बाकी गहने भी लेकर रहेगी। मलावीने भी उसे यही कुछ सुझाया था।

"समय-कुसमयपर गहना ही हिन्दू स्त्रीके काम आता है, इसलिए नासमझीमें अपना गहना गंवा न देना," उसने अपनी मिसाल देकर कहा था और फिर मासी पूरणदईकी मिसाल दी थी—"अपनी मासी पूरणदईको ही देख लो, पतिने दिवालेकी दरखास्त दे दी; पर उसने अपनी एक तीली* तकको भी हाथ नहीं लगाने दिया और अब मुहल्लेकी चौधराइन बनी बैठी है।"

इसी मशविरेका यह फल था कि जब एक दिन मंसाकी देवरानीको मैके जाना पड़ा और सासने मंसासे प्रार्थना की कि कुछ दिनोंके लिए गोखरू उसे दे दे, तो मंसाने साफ इनकार कर दिया। सासने अपने बेटेसे कहा, बेटेने अपनी बहूसे; पर बहू कुछ ऐसी अपने हठपर अड़ी कि टससे मस न हुई, तब उसने बलसे गोखरू छीनकर अपने छोटे भाईको दे दिये।

मंसा रोयी-चिल्लायी, गालियां खायीं, पिटी और फिर बीमार पड़ गयी।

* * *

जब मलावीको मालूम हुआ, उसकी लड़की मरणशय्यापर पड़ी है और उड़ती-उड़ती यह भी खबर उसके कानमें पहुंची कि सास-ससुरने उसके सब गहने छीन लिये हैं, और उसे मारा-पीटा भी है, तो क्रोधसे उसकी आंखोंसे चिनगारियां निकलने लगीं, अपने पतिको उसने साथ लिया और राहों—अपनी लड़कीकी ससुरालके लिए चल दी।

इसके बाद जो हुआ, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि उसी शामको सब गहनों समेत वह अपनी मृतप्राय लड़कीको सालम लारीपर लादकर घरको वापस आ रही थी।

मंसाके जीनेकी कोई आशा हो, यह बात तो नहीं; पर लारीके धक्कोंमें अपनी लड़कीको किसी प्रकार संभालते हुए वह सर्वशक्तिमान्से यही प्रार्थना कर रही थी कि उसका दम, कमसे कम घर जाने तक रुका रहे।

लारीके फर्शपर बिस्तर बिछवाकर, किसी-न-किसी तरह उसने अपनी लड़कीको वहां लिटा दिया था। मंसाकी

* नाकका जेवर।

आंखें बन्द थीं, कुन्दन-सा शरीर राख हो गया था, लकड़ियों-के-से बाजू, कङ्काल-से शरीरके दोनों ओर निर्जीव-से पड़े थे। अन्तिम घड़ियां थीं और आत्माके साथ शरीरका सारा मल भी जा। बाहर निकल जाना चाहता था। उस मैले, गन्दे, गीले कपड़ेको ही किसी-न-किसी तरह उसके गिर्द लपेटती हुई, लुढ़क पड़नेसे बचानेके हेतु, उसे दोनों हाथोंसे थामे मलावी उसके सिरहाने बैठी अपनी इस लड़कीको निर्निमेष देख रही थी। अपना सब उबाल, सब क्रोध, समस्त क्रन्दन वह समध्यानेमें खर्च कर आयी थी। इस समय उसकी आंखोंमें मात्र एक हिंस्र ज्वाला लपलपा रही थी, जैसे वह इस सब ब्रह्माण्डको जला डालेगी। रह-रहकर उसकी दृष्टि गोखरुओंपर भी जा पड़ती थी। वह उसे हटा-हटा रखती थी; पर फिर वह वहीं जा टिकती। उसके इतनी साधके गोखरू, वह न पहने, उसकी लड़की न पहने, उसे और कोई पहने—यह वह कैसे सह सकती ?

इधर-उधरसे गुजरती हुई मोटर लारियोंकी मिट्टी उड़कर लारीके अन्दर आ जाती और वह अपना मुंह दुपट्टेसे ढंक लेती, और उसी मैले गन्दे कपड़ेका एक सिरा अपनी म्रियमाण लड़कीके चेहरेपर भी रख देती।

सन्ध्याका सूर्य मकानोंके पीछे कहीं पश्चिममें मुंह छिपा चुका था, जब मलावी, प्रायः मरी हुई लड़कीको लेकर अपने आंगनमें दाखिल हुई। मिनटोंमें पड़ोसिनोंने उसे घेर लिया; पर उसने किसीको आंगनमें न घुसने दिया—"इसकी हालत ठीक नहीं, निर्दयियोंने बस मारकर ही मेरे साथ कर दिया है—" उसने भरी हुई आंखोंके साथ कहा और उनसे प्रार्थना की कि वे हवा न रोकें, उसे अपनी लड़कीका इलाज करने दें, परमात्माके घरमें...........और सबको सुनाई देनेवाली आवाजमें उसने अपने पतिसे कहा कि दौड़कर डाक्टरको बुला लाये, पैसेका मुंह ऐसे समय न देखे और उसके जानेपर, पड़ोसिनोंको मिन्नतके साथ, विनयके साथ बाहर भेजकर उसने आंगनका किवाड़ बन्द कर लिया। और लड़कीके सिरहाने जा बैठी।

पर लड़कीका दम तो शायद अपने इस आंगन तक पहुंचनेकी ही बाट जोह रहा था। मलावीने नाड़ी देखी, तो वह बन्द हो चुकी थी।

वह चीख मारने लगी थी कि निमिष-मात्रके लिए उसके मनमें कोई विचार आया और उसका दिल धक-धक करने लगा, चीख उसके ओठों तक आकर रुक गयी। इस विचार-को उसने अपने मनसे निकालनेकी कोशिश की, जल्दी-जल्दी व्यस्त होकर दिये-बत्तीका भी प्रबन्ध किया; किन्तु अन्तरमें सङ्घर्ष उसके निरन्तर छिड़ा रहा और दिल और भी जोर-जोरसे धक-धक करता रहा। उसने चाहा रोना शुरू कर दे; पर अब कि क्रन्दन उसके ओठों तक भी न आया। एक-दो क्षण वह आंगनमें इधर-उधर घूमी, अपनी निगाह उसने मृत लड़कीके शरीरसे दूर रखनेकी कोशिश की—आखिर वह शवके पास आयी और अकड़ी हुई कलाइयोंसे उसने चुपकेसे गोखरू उतार लिये।

अन्तमें किसीने कहा—लड़कीका धन है।

किन्तु फिर अन्तर ही से कोई बोला—मृत लड़कीका कैसा धन ? कोई बच्चा भी तो नहीं !

और वह गोखरू लिये अन्दर कमरेमें चली गयी। ताकमें वही पुराना उपेक्षित-सा डिब्बा पड़ा था। मलावीने दुपट्टेसे उसे झाड़कर गोखरुओंको उसमें रखा और फिर उसे ट्रङ्कमें बन्द कर दिया। तब वह ट्रङ्कसे एक श्वेत खेस और चादर निकाल लायी। शवके गन्दे कपड़े उतारकर उसने एक कोने-में रख दिये और उसके नीचे खेस बिछाकर चादरको उसके शरीरपर लपेट दिया। सिरहाने दानोंके ढेरपर रखे हुए आटे-के दियेको दियासलाई दिखायी और फिर आंगनका दरवाजा खोलकर उसने एक चीख मारी।

* * *

इसके बाद ११ दिन किस प्रकार गुजरे। मलावी कितना रोयी-पीटी, उसने कितने बाल नोचे, इसका पता उसकी सूजी आंखें, लाल छाती और रूखे खड़े-खड़े बाल भली भांति देते थे। ग्यारह दिन तक वह अपनी लड़कीकी ससुरालवालोंको गालियां देती रही, कि गहनोंके लिए उन्होंने उसकी लड़की-की जान ले ली और ११ दिन तक ही वे गन्दे, मैले, बदबूदार कपड़े उसने अपने घरमें रख छोड़े, जो उसने अपनी लड़कीके शरीरसे उतारे थे और गली-मुहल्लेको दिखा-दिखाकर उसने अपनी लड़कीके ससुरालवालोंकी नीचता सिद्ध कर दी और सारी बिरादरीके सामने वे चन्द गहने, जो गोखरुओंके अति-रिक्त उसकी लड़कीके शरीरसे उतरे थे, उसने 'किरिया'के दिन दान करा दिये।

एक पड़ोसिनने पूछा—गोखरू नहीं दिये ।

उत्तर देते समय मलावीका दिल धड़क उठा था; पर उसने उन कपड़ोंकी ओर, जो आंगनके एक कोनेमें नालीपर पड़े थे, इशारा करते हुए कहा था कि जिन्होंने उसकी फूल-सी लड़कीको ऐसे गले-सड़े कपड़ोंमें आवृत रखा, उनसे ऐसी आशा कहां, ये सब भी न जाने कितना लड़-झगड़कर वह लायी है । उस निर्दय धरतीमें पैदा होनेवालोंने तो उसे गहनोंके लिए तरसा-तरसाकर मार दिया और फिर जैसे अपने आपसे उसने कहा था—"अब दिये भी तो क्या ?"

और अब जब 'किरिया-कर्म'के बाद बारहवें दिन वह रातको छतपर लेटी थी, तो उसे नींद न आयी थी। वह सर्वथा अशिक्षित गंवार स्त्री थी । सूक्ष्म भावोंका विश्लेषण करना वह न जानती थी; पर उसका वह समस्त कृत्य उसके मन-पर बोझ बना बैठा था । अपनी मृत लड़कीके शवसे उसने गोखरू उतार लिये । उसने क्यों ऐसा किया ? उसके कोई दूसरी लड़की नहीं, उसके क्या, उसके रिश्तेदारों तकमें कोई लड़की नहीं कि उसे उनमेंसे किसीके विवाहपर 'खटे' आदिमें कोई गहना देना हो। तो क्या वह अन्धोंकी तरह गोखरुओं-के पीछे नहीं भागती फिरी ? क्या वही अपनी लड़कीकी घातक नहीं ? और वह सिहर उठी । उसने सिरको झटका देकर इस विचारको मस्तिष्कसे निकालनेकी कोशिश की ।

उनकी छतके चारों ओर बड़े-बड़े मकान थे । परे अंधेरेमें उसका पति गहरी नींद सोया हुआ था । मलावीने लम्बी सांस ली, उसके पतिके मनपर कोई बोझ नहीं है ना, और उसके अपने मनपर·········उसने करवट बदल ली ।

आकाशपर यद्यपि चांद चमक रहा था; किन्तु उसकी एक किरण तक भी उनकी छतपर न दिखाई देती थी और रात जैसे ऊपरके खुले मकानोंकी दीवारोंसे टकराकर सायं-सायं कर रही थी ।

मलावीके सामने उसका कृत्य फिर भयावह रूप धारण करके आने लगा । क्या अव्वलसे आखिर तक अपनी इस लड़कीके प्रति एक असह्य ईर्षा उसके मनमें नहीं थी ? क्या आंधीकी तरह वह समधियानेकी ओर नहीं उड़ी गयी । क्या शुरूसे ही उसके मनमें यह खयाल न था कि वह गोखरुओंको वहां न रहने देगी । क्या दिलके किसी स्तरके नीचे यह इच्छा न छिपी बैठी थी, कि चाहे लड़कीकी धरोहरके तौरपर ही सही, पर गोखरू रहें उसके ही पास ! और इस मतलबके लिए लड़कीका मरना भी क्या उसने मुश्किल नहीं कर दिया ?

मलावीने फिर करवट ली । दूर, शायद कहीं किसी लड़कीका विवाह होने जा रहा था । दुल्हा शायद 'लगनों' के लिए आ रहे थे । बाजे बज रहे थे और शायद आगे-आगे आतिशबाजी छूट रही थी—एक हवाई आकाशकी बुलकियों-को तय करती हुई ऐन उसकी छतके ऊपर आकर फटी । जोरका धमाका हुआ । मलावी डर गयी और फिर निर्निमेष उस तेजीसे नीचेकी ओर आनेवाली चिनगारीको ताकती रही । उसकी आंखोंके सामने उसकी लड़कीके विवाहका सारा दृश्य फिर गया और फिर उसकी अर्थीका दृश्य—क्या इन दोनोंको इतना समीप लानेमें उसका हाथ न था ।

वह अपनी चारपाईसे उठी और वहीं छतपर इधर-उधर घूमने लगी । ऊपरसे कोई पञ्छी फड़-फड़ करता हुआ उड़ गया । उसके मनमें हलचल मची हुई थी और उन बदकिस्मत गोखरुओंका भार जैसे प्रतिक्षण उसके मनपर और भी अधिक बोझीला बन रहा था ।

* * *

अपनी उनींदी आंखोंको लिये हुए जब भगवती ब्राह्मणीने डेवढ़ीके किवाड़ खोले, तो मंसाकी मांको इस समय अपने सामने पाकर वह हैरान-सी खड़ी रह गयी ।

अन्दर जाकर दियेके मद्धम प्रकाशमें भगवतीने देखा—मंसाकी मांका चेहरा श्वेत हो रहा है, उसके बाल बिखरे हुए हैं और ओंठ सूखे हुए हैं ।

—तुम्हारी बहू घरपर ही है ।

इस प्रश्नपर और भी हैरान भगवती मलावीके मुंहकी ओर देखने लगी, फिर उसने धीमे शङ्कित स्वरमें कहा—"बेचारी अभी सोयी है । धनीराम सेठकी लड़कीका लगन था। फेरे शायद अब हो रहे हों; पर मैं तो ले आयी इसे ।"

भगवतीके लड़केका हाल ही में विवाह हुआ था । अपने पुत्रकी इच्छाके विरुद्ध वह अपने इस बड़े यजमानकी लड़कीके विवाहपर बहूको ले गयी थी । यदि अभीसे यज-मानोंसे परिचय पैदा न किया, तो काम कैसे चलेगा ? फिर भी 'लगनों'की समाप्तिसे पहले ही वह उसे ले आयी थी । अभी-अभी वह अपने कमरेमें गयी है—इसलिए उसे बुलानेमें

भगवतीको सङ्कोच हो रहा था। पर मलावीकी आकृतिमें, उसके स्वरमें कुछ ऐसी बात थी, कि वह कुछ न कहकर चुपचाप ऊपर चली गयी।

कुछ क्षण बाद भगवतीके पीछे-पीछे तनिक-सा घूंघट निकाले हुए सकुचाती और लजाती बहू सीढ़ियां उतरी।

मलावी अभी तक वैसे ही खड़ी छतकी ओर देख रही थी। अचानक दीवारके साथ लगी हुई पीढ़ीको बिछाकर उसने बहूसे कहा—बैठो!

तब भगवतीको अपने व्यवहारके अनौचित्यका ध्यान आया। पीढ़ी मंसाकी मांकी ओर खिसकाकर उसने कहा—नहीं-नहीं, तुम बैठो; मैं मूढ़ लायी। और यह कहकर वह जल्दीसे अन्दर कोठरीसे पिसे हुए महीन ईखके घिसे, मैले मूढ़े उठा लायी।

तब बहूका हाथ थामकर मंसाकी मांने उसे मूढ़ेपर बिठाया और अपने दुपट्टेसे गोखरू खोलकर लाल चूड़ेके आगे उसकी कलाइयोंमें पहना दिये।

भगवतीकी आंखें चमक उठीं और बहू आश्चर्यान्वित-सी, उन चमकते हुए गोखरुओंको देखती रह गयी।

तब भरे हुए गलेसे मलावीने कहा—'भाभी, ये मेरी मंसाके गोखरू हैं। मैं अपनी खुशीसे इन्हें बहूको देती हूं। तुम मेरी लड़कीके हकमें प्रार्थना करना कि ईश्वर उसकी आत्माको शान्ति दे।' और फिर कुछ रुककर उसने कहा—'और मेरी एक विनय और है—बहू जब भी हमारे घर आये, इन गोखरुओंको अवश्य पहनकर आये।'

इसके बाद भगवतीने जिन आशीषोंका सिलसिला शुरू किया, उन्हें मंसाकी मांने नहीं सुना। दीर्घ निश्वासको निकल पड़नेसे बरबस रोककर और बिना गोखरुओंकी ओर देखे वह दरवाजा खोलकर बाहर निकल आयी।

रात अब भी सायं-सायं कर रही थी और दूर कहीं आकाशकी ऊंचाइयोंमें देरका उड़ा हुआ फानूस धीरे-धीरे नीचेकी ओर आ रहा था।

गीत

मधुर अपने मोतियोंसे
कर मृदुलतम चित्रकारी,
वेदिका जब दृग बनाते
प्राण! पूजाको तुम्हारी,

जगमगा उठतीं व्यथायें
तब कनकके दीप-सी जल!

स्वप्न-कुसुमोंकी सुरभि ले
कल्पनाकी क्यारियोंमें,
हृदय जल मधुमास बनता
स्मरणकी चिनगारियोंमें,

गीत बन जाते मिलनके
विरहके तब करुणतम पल!

शून्य तारोंका बिसुध जग
तुहिनके नवरागसे भर,
चांदनीका हृदय स्पन्दित
साधनाकी आगसे कर,

विहंस देता मूक जीवन
मरणका बन फुल्ल-शतदल!

—'प्रभात' एम० ए०, साहित्याचार्य

भारतकी वैधानिक समस्या

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालङ्कार

भारत इस समय चौराहेपर खड़ा है। आज भारतमें विभिन्न शक्तियां परस्पर टकरा रही हैं और अपना-अपना मार्ग निकालनेका यत्न कर रही हैं। राष्ट्रवाद और सम्प्रदाय-वाद या राष्ट्रवाद और साम्राज्यवादके बीच आज भीषण सङ्घर्ष हो रहा है। रईस, जमीन्दार और नरेन्द्रगण तथा अन्य निहित स्वार्थवाले वर्ग सब साम्राज्यवादके झण्डेके नीचे अपने-अपने स्वार्थके अलग झण्डे लेकर खड़े हैं। यह स्थिति भारतीय राजनीतिमें आज वैधानिक गति-अवरोधके नामसे प्रसिद्ध है। इसीको दूर करनेमें आज भारत और ब्रिटेनका मस्तिष्क लगा हुआ है।

वास्तविक प्रश्न—१९१४-१८ का युद्ध स्वभाग्य-निर्णय-के सिद्धान्तपर लड़ा गया था। इसी सिद्धान्तके आधारपर हैप्सबर्ग वंशके पुराने आस्ट्रियन साम्राज्य और जारशाही-का अन्त हो गया और यूरोपमें अनेक स्वतन्त्र छोटे, मगर स्वाधीन राज्योंका—जिनमेंसे अकेला आज फिनलैण्ड बचा है और वह भी अपनी स्वाधीनताके लिए लड़ रहा है—जन्म हुआ। मगर भारतके साथ यह सिद्धान्त लागू नहीं किया गया। यद्यपि १९१८ की दिल्ली कांग्रेसने—जो कि स्व० डा० एनी बेसेण्टके लिए वाटरलूका मैदान सिद्ध हुई और जबकि कांग्रेसमें मि० जिन्ना और स्व० पालकी अन्तिम बार तूती बोली—राष्ट्रसङ्घके पास तीन आदमियोंका एक डेपुटेशन भी भेजा और लो० तिलकने प्रेसिडेण्ट विलसनके पास भारतकी ओरसे मेमोरेण्डम भेजा और राष्ट्रसङ्घका दरवाजा भी खट-खटाया, मगर यह ब्रिटेनकी घरेलू समस्या कहकर राष्ट्रसङ्घने इस प्रश्नको अपने हाथमें नहीं लिया; यद्यपि भारत पराधीन होते हुए भी राष्ट्रसङ्घका मूल सदस्य था। राष्ट्रसङ्घने तो इस प्रश्नको टरकाया, ब्रिटेन भी इसको माननेमें आनाकानी करता रहा है और अब भी कर रहा है। लार्ड लिनलिथगोके द्वारा ओरियण्ट क्लब, बम्बईमें दिये गये भाषणपर टिप्पणी करते हुए लन्दनके 'टाइम्स'ने इस बातको पुनः जोरसे कहा है कि ब्रिटिश सरकार व पार्लमेण्ट भारतका भावी विधान बनानेमें भाग न लें और उससे अलग तथा तटस्थ रहें, यह सम्भव नहीं है। झगड़ेकी जड़ वस्तुतः यही है। यदि १९३४ में बम्बई कांग्रेसने प्रस्तावित इण्डिया एक्टको अस्वीकार किया था, तो इसी आधारपर कि वह भारतीयों द्वारा नहीं बनाया गया था। भारतके स्वभाग्य-निर्णयके अधिकारको स्वीकार नहीं किया गया था। इसलिए यह प्रश्न तो गौण है कि भारतका भावी विधान किस प्रकार बनाया जाय, असली और मुख्य प्रश्न तो यह है कि कौन बनावे। भारत स्वतः बनावे या जनवरी १९४० तक जिस प्रकार ब्रिटिश पार्लमेण्ट बनाती रही है, बनाया जावे। भारतकी आज यही मांग है कि उसका स्वभाग्य-निर्णयका अधिकार स्वीकार किया जाय। १९०७ में ब्रिटेनके प्रधान मन्त्री सर हेनरी कैम्पबेल बैनरमैनने दक्षिण अफ्रीकाका विधान पार्लमेण्टमें पेश करते हुए कहा था—

—यह दक्षिण अफ्रीकासे आया है। इसमें एक कामाका भी परिवर्तन नहीं हो सकता। भारत भी यही चाहता है कि जिस प्रकार ब्रिटेनने संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाकी स्वाधीनता स्वीकार की थी, उसी प्रकार वह भारतकी स्वाधीनता स्वीकार कर ले और घोषणा कर दे कि भारत जो कोई भी विधान बनायेगा, वह उसको बिना किसी हेर-फेरके स्वीकार होगा। अठारहवीं और बीसवीं सदीकी सभ्यता और संस्कृति-का अन्तर इसकी अपेक्षा करता है। यदि ब्रिटेन आज यह घोषणा कर दे, तो सारी भारतीय समस्या आसानीसे हल हो जायगी। जब तक ब्रिटेन भारतके स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तको स्वीकार नहीं करता, तब तक भारतीय समस्या-का हल होना कठिन है।

राष्ट्रकी धुरी जबसे महात्मा गांधीने अपने हाथमें ली है, तबसे वे राष्ट्रीय पञ्चायत और स्वभाग्य-निर्णयके अधिकारकी मांग कर रहे हैं। यह ठीक है कि राष्ट्रीय पञ्चायत (कान्स्टी-च्युएण्ट एसेम्बली) शब्दका व्यवहार भारतीय राजनीतिमें श्री जवाहरलाल नेहरूने १९३४ में किया। मगर राष्ट्रीय पञ्चायतसे हमारा जो अभिप्रेत है, और इसमें जो अर्थ निहित है, वह नया नहीं है। १९२१ में गांधीजीने लिखा था :—

"मैं ऐसे सम्मानपूर्ण समझौतेकी आशा लगाये बैठा हूं...जिसमें उसे (भारतको) फौरन् और पूर्ण स्वराज्य मिलनेकी पक्की बात हो और वह स्वराज्य उसके चुने हुए प्रतिनिधियोंकी इच्छाके माफिक हो।"

१९२२ में गांधीजीने लिखा था :—"अंगरेजोंके साथ सम्बन्ध रखते हुए स्वराज्य कैसा हो, इसका अर्थ हमें साफ-साफ समझ लेना चाहिए। इसका मतलब बेशक यह है कि हिन्दुस्तान अगर चाहेगा, तो स्वाधीनताकी घोषणा कर सकेगा, यानी अंगरेजी साम्राज्यसे अलग हो सकेगा। इस कारण स्वराज्य ब्रिटिश पार्लमेण्टका दिया हुआ दान न होगा। वह तो पूरी तरह भारतके अपने दिलकी बातका ऐलान होगा। यह सही है कि वह पार्लमेण्टके कानूनकी सूरतमें प्रकट होगा। मगर जैसा कि दक्षिण अफ्रीकामें हुआ, उसी तरह हिन्दुस्तानकी जनता अपनी इच्छा प्रकट करेगी और इंगलेण्ड सिर्फ शिष्टाचारके तौरपर उसका समर्थन कर देगा। दक्षिण अफ्रीकाकी योजनाका एक गैर-जरूरी शब्द भी कामन्स सभा नहीं बदल सकती थी। हमारे मामलेमें समर्थन इस तरह होगा कि भारत और ब्रिटेनके बीच एक सन्धि होगी और ब्रिटिश पार्लमेण्ट उसे मञ्जूर करेगी।"

इसी लेखमें आगे चलकर गांधीजीने लिखा थाः— "जो स्वराज्य कांग्रेस मांगती है, वह इंगलैण्ड जो देना चाहे वह चीज नहीं है। वह वही चीज होनी चाहिए, जो राष्ट्र मांगता है और जिस अर्थमें उसे दक्षिण अफ्रीकाने लिया, उसी अर्थमें हिन्दुस्तान भी ले सकता है।"

साथ ही गांधीजीने लिखा था—"योजना जनताके चुने हुए प्रतिनिधियोंकी बनायी हुई होगी।"

विधान कैसे बनाया जायगा, इसको स्पष्ट करते हुए गांधीजीने लिखा था:—"ऐसे स्वराज्यकी योजना कांग्रेसके विधानके मुताबिक नियमपूर्वक चुने हुए प्रतिनिधियोंके द्वारा बननी चाहिए। इसका अर्थ हुआ चार आना मेम्बरी। यानी हर भारतीय बालिग स्त्री-पुरुष जो चार आना दे दे और कांग्रेसके उद्देश्यपर हस्ताक्षर कर दे, उसका निर्वाचकोंकी सूचीमें नाम लिखानेका हक होगा। ये निर्वाचक प्रतिनिधि चुनेंगे और वे प्रतिनिधि स्वराज्यका विधान तैयार करेंगे। इस विधानको कुछ भी फेर-बदल किये बिना ब्रिटिश पार्लमेण्ट जारी कर देगी।"

यही नहीं, १९३७ के अन्तमें भारतके सात प्रान्तोंकी प्रान्तीय एसेम्बलियोंने इस आशयका प्रस्ताव स्वीकार किया था—इस असेम्बलीकी राय है कि गवर्नमेण्ट आव इण्डिया एक्ट १९३५ राष्ट्रकी इच्छाका किसी तरह भी प्रतिनिधित्व नहीं करता और यह सर्वथा असन्तोषजनक है, क्योंकि यह भारतीय जनताकी दासताको स्थायी बनानेके उद्देश्यसे बनाया गया है। एसेम्बलीकी मांग है कि इसको रद्द कर दिया जाय और इसकी जगह बालिग मताधिकारपर निर्वाचित राष्ट्रीय पञ्चायत द्वारा स्वतन्त्र भारतके लिए विधान बनाया जाय, जोकि भारतीय जनताको उसकी जरूरत और इच्छाके अनुसार अपना पूर्ण विकास करनेका पूर्ण अवसर दे।

राष्ट्रीय पञ्चायत द्वारा विधान बनानेका अर्थ है कि प्रभुत्वशक्ति (सावरेण्टी) ब्रिटिश पार्लमेण्टके हाथसे निकलकर भारतीय जनताके हाथमें आ गयी। जब तक प्रभुत्वशक्ति भारतीय जनताके हाथमें नहीं आती, तब तक राष्ट्रीय पञ्चायत नहीं बैठ सकती, और यदि वह ब्रिटिश सरकारकी छत्रछायामें बैठेगी, तो वह गोलमेज कान्फरेन्सका दूसरा विस्तृत संस्करण होनेके सिवाय और कुछ न होगी। क्योंकि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट जो कोई कान्फरेन्स बुलायेगी, वह वर्तमान व्यवस्थाको यथासम्भव सुरक्षित रखनेका ध्यान रखते हुए बुलायेगी। वह जनता और विशिष्ट वर्ग—रईस, जमीन्दार, साहूकार, पूंजीपति और नरेशगण—दोनोंके प्रतिनिधियोंको बुलायेगी। इतना ही नहीं, वह स्वयं भी उसमें शरीक होगी। जिस कान्फरेन्समें ब्रिटिश सरकारके प्रतिनिधि होंगे, वह राष्ट्रीय पञ्चायत नहीं होगी।

राष्ट्रोंके इतिहासमें—विश्वके इतिहासमें ऐसे उदाहरणोंका अभाव नहीं है, जब कि राष्ट्रोंने क्रान्तिके बाद राष्ट्रीय पञ्चायत द्वारा अपना विधान बनाया। यह क्रान्ति रक्तरञ्जित और शान्त दोनों प्रकारकी हो सकती है। भारतने शान्त क्रान्तिका मार्ग स्वीकार किया है, इसलिए यहां शान्त क्रान्तिके बाद राष्ट्रीय पञ्चायत द्वारा विधान बनाया जाना सम्भव है। आज उस अवस्थाकी पूरी कल्पना हम नहीं कर सकते, जब ब्रिटेन द्वारा भारतीय स्वाधीनताकी घोषणा करनेपर भारतमें सहसा शान्त मानसिक क्रान्ति होगी। इस घोषणाके बाद जनताके परिवर्तित दृष्टिकोणकी आज अधूरी

कल्पना भी सम्भव नहीं है। उस समय हरएक चीजका मूल्य बदल जायगा और हमारे मूल्य आंकनेके तरीके और प्रणाली भी बदल जायगी। इसलिए १८ वीं सदीमें फ्रेञ्च क्रान्तिके बाद और उसके ६० साल बाद फ्राङ्कफर्टमें बैठी जर्मन नेशनल एसेम्बली, १९१९ की वीमर एसेम्बली और १९१७ की रशियन कान्स्टीच्युएण्ट एसेम्बलीके समान भारतमें भी ब्रिटेनकी घोषणाके बाद राष्ट्रीय पञ्चायत बैठ सकती है। यदि संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाका राष्ट्रीय पञ्चायत द्वारा बनाया विधान सफलतापूर्वक अब तक काम कर सकता है, यदि कर देनेकी योग्यताके आधारपर बने मतदाताओं द्वारा १८३० में चुनी गयी नेशनल कांग्रेस द्वारा १८३१ में बनाया गया बेल्जियन विधान सफलतापूर्वक अब तक चालू रह सकता है और यदि १८४९ के मताधिकार कानूनके आधारपर निर्वाचित फ्रेञ्च नेशनल एसेम्बली द्वारा १८७१ में बनाया गया विधान फ्रेञ्चोंकी महत्त्वाकांक्षाको सफलताके साथ पूरा कर सकता है, तो बालिग मताधिकार या व्यापकतम मताधिकारपर निर्वाचित राष्ट्रीय पञ्चायत द्वारा बनाया गया विधान भी ४० करोड़ भारतीयोंकी महत्त्वाकांक्षाको सन्तुष्ट कर सकता है।

कामनवेल्थके इतिहासमें—आज भारतके सामने जो कठिनाई है, वही कठिनाई कनाडाके सामने थी। फ्रेञ्चों और अंगरेजोंका वैर अहि-नकुलवत् था। कनाडा एक्ट, १७९१ से लेकर १८३८ तक यह समस्या हल करनेकी कोशिश की गयी, जब कि लार्ड डरहमने उत्तरदायी शासन देनेकी सिफारिश की और इसके फलस्वरूप यूनियन एक्ट, १८४० बना। मगर कठिनाइयोंका अन्त १८६४ में हुआ, जब सामुद्रिक यूनियन बनानेके लिए एक प्रारम्भिक कान्फरेन्स हुई और बादमें क्वेबेकमें एक बृहत्तर कान्फरेन्स हुई, जो कि वस्तुतः राष्ट्रीय पञ्चायत थी। कान्फरेन्सने ७२ प्रस्ताव पास किये और उनको कनाडियन पार्लमेण्ट, न्यू ब्रुनस्विक और स्कोटिया एसेम्बलियोंने स्वीकार कर लिया। एक प्रतिनिधि-मण्डल इंगलैण्ड गया और क्वेबेक-कान्फरेन्सके प्रस्तावोंके अनुसार ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट, १८६७ ब्रिटिश पार्लमेण्ट द्वारा पास किया गया।

आस्ट्रेलियामें भी इसीके समान हुआ। १९०० का एक्ट इसी प्रक्रियाका फल है। मार्च १८९१ में आस्ट्रेलियाकी विभिन्न बस्तियोंकी धारा-सभाओं द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी सिडनीमें फेडरल विधान बनानेके लिए एक कान्फरेन्स बुलायी गयी, जो कि इतिहासमें नेशनल आस्ट्रेलियन कन्वेन्शनके नामसे प्रसिद्ध है। विधान बनानेका वास्तविक कार्य इसने अपनी विविध उपसमितियों द्वारा किया। १८९५ में प्रधानमन्त्रियोंकी एक कान्फरेन्स हुई और उसमें स्वीकार किया गया कि छहों बस्तियों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि कान्स्टीच्युएण्ट कन्वेन्शनमें बैठें। इसके अनुसार १८९७ में अडेलेडीमें कन्वेन्शन हुई और 'कान्स्टीच्युशन बिल'का मसविदा बनाया गया। इसपर जनमत लिया गया और अन्तर्वस्ती कान्फरेन्स द्वारा उसको स्वीकार कराया गया। संशोधित विधानको लेकर एक डेपुटेशन इंगलैण्ड भेजा गया और १९०० में ब्रिटिश पार्लमेण्टने उसको कानूनका रूप दिया।

भारत और कनाडाके समान दक्षिण अफ्रीकामें भी डचों और अंगरेजोंमें बैर था और आज भी वह समाप्त नहीं हो गया है। डा० मालन और हर्टजोगकी पार्टीका दक्षिण अफ्रीकाको जर्मनीसे सन्धि करनेके लिए आग्रह करना इसका एक अच्छा प्रमाण है। मगर यह होते हुए भी वहां पार्लमेण्टरी पद्धति चल रही है और विरोध पार्लमेण्टरी ढङ्गसे होता है। विरोध कम इसी विधिसे हुआ है। १९०८ में दक्षिण अफ्रीकाके चारों प्रान्तोंकी पार्लमेण्टोंके प्रतिनिधियोंकी एक कान्फरेन्स प्रीटोरियामें हुई और उसने नेशनल साउथ अफ्रीकन कन्वेन्शन द्वारा विधानका मसविदा तैयार करानेकी सलाह दी। कन्वेन्शनमें ३३ प्रतिनिधि थे, जिन्होंने फरवरी १९०९ में चारों बस्तियोंकी पार्लमेण्टोंकी स्वीकृतिके लिए एक बिलका मसविदा प्रस्तुत किया। संशोधनोंपर विचार करनेके लिए ब्लोमफोनटीनमें एक और नेशनल कन्वेन्शन बुलायी गयी। संशोधित विधान एक प्रतिनिधि-मण्डलके हाथ उसी साल इंगलैण्ड भेजा गया और ब्रिटिश पार्लमेण्टने सितम्बर १९०९ में उसको स्वीकार कर लिया।

यह बात आयरिश फ्री स्टेटके जन्मसे और भी अधिक स्पष्ट हो गयी है। इसका विधान सन्धिका फल था, जो कि ग्रेट ब्रिटेन और दक्षिण आयर्लैण्डमें हुई थी और पुनः दोनों देशोंकी पार्लमेण्टों द्वारा वह विधान स्वीकार किया गया था। इस प्रसङ्गमें आयरिश फ्री स्टेटके जन्मकी मूल सन्धिकी कुछ मुख्य धाराओंको यहां देना अनुचित न होगा।

इससे मालूम होगा कि दोनों देशोंके राजनीतिज्ञोंने किस मानसिक अवस्थामें आयरिश सन्धि (६-१२-१९२१) पर दस्तखत किये थे और आयरिश फ्री स्टेट एक्ट (५-१२-१९२२) को स्वीकार किया था :—

१—ब्रिटिश साम्राज्यमें आयर्लैण्डकी वही वैधानिक स्थिति होगी, जो कि कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रीका तथा न्यूज़ीलैण्डकी है और इसका नाम आयरिश फ्री स्टेट होगा।

२—कनाडाके ढङ्गपर अधिकांशमें विधान बनाया जायगा।

३—कनाडाके समान गवर्नर-जनरल नियुक्त किया जायगा।

४—शपथ-विधि पूरी दी गयी थी, जिसमें पहले आयरिश फ्री स्टेटके विधानके प्रति निष्ठा रखनेकी बात कही गयी है और बादमें ब्रिटिश बादशाहके प्रति निष्ठा प्रकट की गयी है।

५—आयरिश सार्वजनिक ऋण और युद्ध-पेन्शनोंके बारेमें कोई समझौता न होनेपर इनका फैसला ब्रिटिश-साम्राज्यके एक या अधिक स्वतन्त्र निष्पक्ष व्यक्तियों द्वारा कराया जायगा।

मगर ३—१२—१९२५ की सन्धिके अनुसार आयर्लैण्ड इस जिम्मेदारीसे मुक्त कर दिया गया।

६—ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैण्डके समुद्रकी रक्षाका भार कुछ समयके वास्ते 'ब्रिटिश इम्पीरियल फोर्स'के अधीन रहेगा और इसपर पांच सालके बाद पुनः विचार होगा।

७—शान्ति और लड़ाईके समय आयर्लैण्ड ग्रेट ब्रिटेनको कुछ बन्दरगाह और सुविधायें देगा, जो कि ब्रिटिश सरकारके वास्ते ज़रूरी होंगी।

८—फ्री स्टेटका शस्त्रास्त्रका सरञ्जाम परिमाणमें ब्रिटेनके मुकाबले दोनों देशोंकी आबादीके अनुपातसे अधिक न होगा।

९—फ्री स्टेट और ब्रिटेनके बन्दरगाह दोनों देशोंके जहाजोंके वास्ते खुले रहेंगे।

१०—सरकारके बदलनेसे बेकार हुए राजकर्मचारियोंको उचित पेन्शन दी जायगी।

११—किसी प्रकारकी धार्मिक अयोग्यता नहीं लादी जायगी।

११ से १५, और १७ और १८ धाराओंमें बताया गया है कि संक्रमणकालमें किस प्रकार कार्य होगा।

इन ऐतिहासिक उदाहरणोंसे स्पष्ट है कि ब्रिटेनके स्वेच्छापूर्ण या अस्वेच्छापूर्ण सहयोगसे सब जगह राष्ट्रीय पञ्चायत बुलायी गयी और उसके द्वारा बनाये गये विधानको स्वीकार कर लिया गया। भारतमें गांधी-इरविन पैक्ट हो चुका है। यदि १९२१ में हुए लायड जार्ज-डी वेलेरा पैक्टके समान १९४० में गांधी-लिनलिथगो पैक्ट हो जाय, तो आज ही भारतकी वैधानिक समस्या सुलझ सकती है।

यदि स्वीकार कर ले तब—मगर राष्ट्रीय पञ्चायतके अस्तित्वमें आनेमें एक यही बाधा नहीं है। यदि ब्रिटिश सरकार इच्छा या अनिच्छासे इसको बुलानेके वास्ते सहमत भी हो जावे, तब भी इसके अस्तित्वमें आनेमें अनेक बाधायें हैं। पहली बाधा यह है कि कांग्रेसको छोड़कर देशकी अन्य राजनीतिक व साम्प्रदायिक पार्टियां इस प्रक्रियासे भावी विधान बनानेके पक्षमें नहीं हैं।

कुछ लोगोंका ख्याल है कि कुछ चुने नेताओंकी एक कान्फरेन्स बुलानी चाहिए, जो भारतका भावी विधान बनानेका काम करे। क्योंकि उनका कहना है कि इतनी बड़ी पञ्चायत विधान बनानेका कार्य करनेके योग्य नहीं है। क्योंकि यदि दस लाख व्यक्तियोंके पीछे एक भी प्रतिनिधि चुना गया, तो राष्ट्रीय पञ्चायतमें—यदि पृथक् निर्वाचन प्रणालीसे चुनाव हुआ—लगभग २५० हिन्दू, ९० मुसलमान, ६ भारतीय ईसाई और शेष विभिन्न अनुपातमें होंगे। कमसे कम ४००।५०० की यह जमात होगी। कामन्स सभाके सदस्योंकी संख्या ६०० से ऊपर है, यदि वह भारतका विधान बनानेके लायक है, तो राष्ट्रीय पञ्चायत विधान बनानेके लिए क्यों नहीं उपयुक्त है? जो लोग राष्ट्रीय पञ्चायतका विरोध करते हैं, उन लोगोंकी कल्पना भारतीय स्वाधीनता तक नहीं जाती। इसीलिए वे वायसराय व ब्रिटिश सरकारके हस्तक्षेपके भी प्रार्थी हैं।

उनकी दृष्टि छोटे-मोटे सुधारों तक ही सीमित है। दूसरी बात यह है कि स्वयम्भू नेताओंको अपने नेतृत्वके जन-प्रवाहमें बह जानेका खतरा है। आजके अधिकांश तथाकथित नेता विदेशी शासनके सहारे व आश्रयसे बने हैं। राष्ट्रीय पञ्चायतमें इन लोगोंको स्थान मिलनेकी सम्भावना नहीं है। प्रान्तीय धारा-सभाओंके चुनावने उनकी आंखें खोल दी हैं, अतः वे अपने महत्त्वको बनाये रखनेके लिए चाहते हैं कि गोलमेज

कान्फरेन्स या नोट-कान्फरेन्स वायसराय बुलावें। कान्फरेन्सों द्वारा, जिनके पीछे जनताकी शक्ति न होगी, किया गया निर्णय व बनाया गया विधान कभी सफलतापूर्वक नहीं चल सकता। क्योंकि जो लोग उसमें बुलाये न जावेंगे, वे उसका किसी न किसी बहाने विरोध करेंगे और इस प्रकार कान्फरेन्सके परिश्रमको व्यर्थ कर देंगे। नेहरू-रिपोर्टकी जो हालत हुई थी, वही इन कान्फरेन्सों द्वारा बनाये गये विधानोंकी होगी। मगर जब जनता व उसके निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी सहमति और जनता व उसके निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा विधान बनाया जायगा, तो कोई भी उसका विरोध न करेगा और चूंकि वह किसी हित, दल व वर्गके लाभमें न बनाया जाकर सारी जनताके लाभके लिए बनाया जायगा, अतः उसको सबका समर्थन प्राप्त होगा और उसको सब सफल बनानेकी कोशिश करेंगे। चूंकि राष्ट्रीय पञ्चायत द्वारा बनाया गया विधान समस्त राष्ट्र द्वारा बनाया जायगा और वह राष्ट्रीय विधान होगा, अतः उसकी रक्षाके लिए समस्त राष्ट्रकी समस्त शक्ति और सम्पूर्ण बल सदा प्रस्तुत रहेगा। यह बल प्रतिनिधित्वशून्य कान्फरेन्सों द्वारा बनाये गये विधानोंको प्राप्त न होगा। इसके अलावा अब वह जमाना लद गया, जब कि राष्ट्र व जनताकी किस्मतका फैसला कुछ चुने हुए प्रभावशाली व्यक्ति व एक खास वर्गके लोग, या राजाके कुछ सलाहकार किया करते थे। अब जनता अपने भाग्यका फैसला अपने हाथों स्वतः करना चाहती है। यह राष्ट्रीय पञ्चायतके सिवाय और किसी मार्गसे सम्भव नहीं है।

नजर विदेशोंकी ओर— राष्ट्रीय पञ्चायत द्वारा विधान बनाना उचित है और सिद्धान्ततः ठीक भी है, यह मान लेनेपर भी स्वभावतः प्रश्न उठता है कि क्या यह व्यावहारिक है। क्या मुसलमानों व अन्य अल्पसंख्यकोंको यह प्रणाली स्वीकार होगी? क्या मुसलमान लोग, जो सदा ईरान और अरबकी ओर देखते हैं, जिनकी भारतकी अपेक्षा उन देशोंके सहधर्मियोंके प्रति अधिक स्नेह-ममता और सहानुभूति है, वे इसको स्वीकार करेंगे?

यह खतरा है और इसके अस्तित्वसे हम इनकार नहीं कर सकते। मगर हमें यह न भूलना चाहिए कि एक भारतीयकी हैसियतसे उनकी समस्यायें यहीं सुलझेंगी। उनकी आर्थिक समस्यायें भी एक-सी हैं। भारतके भाग्यसे वे अपनेको अलग नहीं कर सकते। व्यवस्थासे अलग रहकर जिन्दा नहीं रह सकते। उनको यहीं रहना है और यहीं मरना है। इसके अतिरिक्त एशियाई मुसलिम राष्ट्रोंमें राष्ट्रीयता उत्तरोत्तर बढ़ रही है। उनकी दृष्टि उत्तरोत्तर भौतिक और लौकिक होती जाती है। ज्यों-ज्यों उन देशोंमें राष्ट्रीयता बढ़ेगी, त्यों-त्यों वे एक देशी हो जावेंगे और मुसलमान होनेके ही नाते दूसरे देशके मुसलमानोंको अपना भाई न मानेंगे। इसकी प्रतिक्रिया भारतमें न हो, यह सम्भव नहीं। इसलिए हमें आशा करनी चाहिए कि भारतके मुसलमान भी शीघ्र राष्ट्रीय दृष्टिकोण अपनावेंगे और वे भारतको ही अपनी मातृभूमि केवल मानेंगे ही नहीं, अपितु इसके लिए ही जीयेंगे और मरेंगे। यदि ऐसा न हुआ, तो हमें राष्ट्रीय पञ्चायतकी विफलताके वास्ते तैयार रहना चाहिए। मगर इस विफलतासे हमें हतोत्साह न हो जाना चाहिए। इसका केवल यही अर्थ होगा कि जनतामें स्वाधीनताके प्रति उत्कट इच्छा नहीं है और उसने राष्ट्रीय पञ्चायतके अर्थ और महत्त्वको अभी समझा नहीं है।

मिथ्या भय—राष्ट्रीय पञ्चायतके मार्गमें दूसरी बाधा अल्पसंख्यकोंकी समस्या है। मुसलमान यद्यपि ९ करोड़ हैं, मगर केन्द्रीय सरकारमें वे अपनेको कमजोर स्थितिमें पाते हैं। इसका कारण यही है कि वे राजनीतिक और आर्थिक परिभाषामें न सोचकर धर्म व सङ्कीर्ण मजहबी दृष्टिसे सोचते हैं और इसी कारण वे एक कल्पित भयसे सदा भयभीत रहते हैं। उनका भय कल्पित हो या सत्य हो, उसको दूर करनेका सर्वोत्तम उपाय राष्ट्रीय पञ्चायत ही है। नेताओं द्वारा किये गये समझौते व पैबन्द पेवन्दके समान हैं। अतः जन-प्रतिनिधियोंको ही इस समस्याको भी स्वतः हल करना चाहिए। इससे अधिक उपयुक्त और सक्षम और कोई संस्था नहीं हो सकती। राष्ट्रीय पञ्चायत ही सच्चे अर्थोंमें सुरक्षाको गारण्टी दे सकती है। यही वह आधार बना सकती है, जिसके बलपर भारतकी विभिन्न भाषायें और विविधतायें जीवित और बनी रहकर, फूलती-फलती हुई राष्ट्रको समृद्ध बनायेंगी।

निर्वाचन-प्रणाली—राष्ट्रीय पञ्चायत बालिग मताधिकारके आधारपर चुनी जायगी। यह जरूरी नहीं है कि चुनाव

प्रत्यक्ष ही हो, अप्रत्यक्ष भी हो सकता है। इण्डिया एक्ट १९३५ में फेडरल एसेम्बलीके वास्ते दिल्लीके लिए प्रतिनिधि चुननेका जो तरीका बनाया गया है—अर्थात् मतदाताओंके मण्डल (इलेक्टोरल कालेजेज) बनाये जायं और इनके द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि राष्ट्रीय पञ्चायतका निर्माण करें। वैसे बालिग मताधिकार ऐसी चीज नहीं है, जो व्यावहारिक न हो। प्रान्तीय एसेम्बलीके सभ्य आज भी २५ प्रतिशत बालिगोंका प्रतिनिधित्व करते हैं। मगर यह ऐसा प्रश्न नहीं है, जिसका निर्णय करना कुछ कठिन हो। यदि सब राजनीतिक दल इस बातको सिद्धान्ततः मान लें कि भारतका भावी विधान राष्ट्रीय पञ्चायत द्वारा बनाया जाय, तो इससे अन्य प्रश्नोंका निर्णय, जैसे चुनावका तरीका आदिका निर्णय आसानीसे हो सकता है। विस्तारकी बातें महत्त्वकी होते हुए भी सिद्धान्ततः गौण हैं। इसी प्रकार दूसरा प्रश्न है कि राष्ट्रीय पञ्चायतको कौन बुलावे। यह समझ लेना चाहिए कि विदेशी सत्ता राष्ट्रीय पञ्चायतको बुलानेकी अधिकारिणी नहीं है। उसको सब दलोंकी सहमतिसे कांग्रेस या सब विभिन्न पार्टियां मिलकर, उनके द्वारा नियुक्त कोई राष्ट्रीय संस्था ही बुला सकती है। वर्तमान परिस्थितिमें कांग्रेस इसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। १९२८ में कन्वेन्शन बुलाकर वह अपनी क्षमताका परिचय दे चुकी है।

कार्य—राष्ट्रीय पञ्चायतका मुख्य कार्य स्वाधीन भारतका इस प्रकारका विधान बनाना होगा, जिससे जनताकी इच्छा पूर्णरूपमें प्रकट हो सके, और वह अपना शासन-प्रबन्ध स्वतः कर सके। उदाहरणार्थ, फेडरल क्षेत्रमें दो धारा-सभायें बनायेगी, जिसमें एक सीनेटमें, फेडरेशन बनानेवाली विभिन्न यूनिटोंके प्रतिनिधि और एसेम्बलीमें सारे देशके बालिग जनोंके प्रतिनिधि होंगे। वह यह निर्णय कर सकता है कि भारतीय जनतन्त्रका एक राष्ट्रपति हो और मन्त्रिमण्डल धारा-सभाओंके प्रति उत्तरदायी हो। इसी प्रकार वह इस बातका भी निर्णय कर सकती है कि नियामक और शासनात्मक कार्य प्रान्तोंमें किस प्रकार हों। धारा-सभाओंके कार्यक्षेत्रकी सीमा निर्धारित करेगी और बतायेगी कि महत्त्वके अनुसार किस सीमा तक राजनीतिक सत्ताका उपयोग करें।

राष्ट्रीय पञ्चायत देशके आर्थिक मामलोंके सम्बन्धमें ऐन्द्रिक (आरगेनिक) कानून बनायेगी, यथा—सर्वोपरि आर्थिक परिषद् (सुप्रीम इकानमिक कौन्सिल) की स्थापना कर सकती है, जो कि देशकी सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्थाका नियन्त्रण और निरीक्षण करे। वह कराची कांग्रेस द्वारा स्वीकृत नागरिकताके मूल अधिकारोंको विधानमें सम्मिलित कर सकती है और कुञ्जी व्यवसायोंपर सरकारका स्थायित्व और नियन्त्रण स्थापित कर सकती है, इस प्रकार वह विद्युत् बाहुल्की (ट्रान्सपोर्ट), लोहा और कोयला जैसे महत्त्वपूर्ण उद्योग-धन्धों और खानोंमें व्यक्तिगत लाभका अन्त कर सकती है। वह जमीन्दारी प्रथाका अन्त करके किसानोंको जमीनका मालिक घोषित कर सकती है। यदि राष्ट्रीय पञ्चायत भावी भारतके लिए सामूहिक खेती व पञ्चायती खेतीका निश्चय करे, तो वह उसके उपयुक्त नियम बनायेगी। राष्ट्रीय पञ्चायत उत्पादनके साधनोंमें व्यक्तिगत लाभका अन्त कर सकती है, यह पूंजीपतियोंको ट्रस्टीके रूपमें, देशके जीवन-निर्वाहके पैमानेपर आमदनीकी मात्रा निश्चित करके, परिवर्तित कर सकती है। यह व्यक्तिगत पूंजी संस्थाको अत्यधिक कठोर नियमन और नियन्त्रणमें काम करनेकी इजाजत दे सकती है। राष्ट्रीय पञ्चायत भावी भारतके लिए किस प्रकारकी आर्थिक व्यवस्था तैयार करेगी और किस प्रकारका आर्थिक ढांचा बनायेगी, आज यह कहना कठिन है। इस रूप-रेखाको देनेसे केवल इतना ही अभिप्रेत है कि उसका कार्यक्षेत्र और अधिकार-सीमा कितनी व्यापक है।

राष्ट्रीय पञ्चायत व्यक्ति और राज्य और व्यक्ति और व्यक्तिके बीचका सम्बन्ध स्थापित करेगी। वह नागरिकताके मौलिक अधिकारों—भाषण, लेखन, सङ्गठन करनेके स्वातन्त्र्य—के अतिरिक्त गवर्नमेण्टके लिए सबको शिक्षा देना और रोजी देना अनिवार्य कर सकती है। नागरिक इसके बदले भारतीय जनतन्त्रके प्रति अपनी निष्ठा और श्रद्धा अधिक करेंगे और उसके आदेशोंको सदा आदरसे सिर-माथेपर रखेंगे।

राष्ट्रीय पञ्चायत आज राष्ट्रकी आकांक्षाओंका केन्द्र है। उसीके द्वारा भारतकी समस्याओंका ऐसा समाधान सम्भव है, जिससे भारत सुख, समृद्धि और संस्कृतिपूर्ण जीवन व्यतीत करे।

आगसे खेलनेवाले ये दुस्साहसिक !

श्री विश्वनाथ सेठी, एम० एस-सी०

सदियोंसे भारत, पोलीनेसिया, जापान तथा कितने ही देशोंमें दहकते हुए पत्थर अथवा अङ्गारोंपर चलकर कितने ही लोगोंने दर्शकोंको अचरजमें डाल रखा है। कितनी ही बार वैज्ञानिकोंने इसे जादू समझकर इसके प्रति उपेक्षा दिखायी है और कितनी ही बार वैज्ञानिक आधारपर इसकी विवेचना की है। भारत तथा दूसरे देशवालोंने अमेरिका एवं दूसरे यूरोपीय देशोंमें अपने प्रदर्शनोंसे जहां लोगोंको आश्चर्यचकित कर दिया है, वहां उनमें न केवल इसके रहस्य जानने, बल्कि इसके अपनानेकी इच्छा भी उत्पन्न की है। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ है कि इस प्रकार अङ्गारोंपर शान्तिके साथ खुले पैर टहलनेपर उनके पांव जल क्यों नहीं जाते। कई बार ऐसा भी देखा गया है कि उस अंशकी गर्मीमें आगपर चलनेवालोंको किसी पीड़ाका अनुभव नहीं हुआ है, जिससे बहुत कममें ही शीशा गल जाया करता है।

आगपर चलनेकी दो प्रणालियां हैं। कुछ लोग ऐसे हैं, जो खूब तपाये हुए उत्तप्त पत्थरोंपर चलते हैं और कुछ अङ्गारोंपर।

उत्तप्त पत्थरोंपर चलनेकी प्रणाली अधिकांशतः फिजी, कुक द्वीप, सोसायटी द्वीप और हवाई द्वीपोंमें बहुत काफी प्रचलित है। लकड़ीके कुन्दे जलाकर पत्थरके टुकड़ोंको खूब गरम कर दिया जाता है, यहां तक कि वे स्वयं आगके धधकते हुए गोलेके समान दिखाई पड़ने लगते हैं। इसके बाद पुजारी कुछ मन्त्र गुनगुनाता और अनेक दर्शकोंके बीच नङ्गे पांव आगपर चलने लगता है। लोग अचरजके साथ देखते हैं कि इस प्रकार एक सिरेसे दूसरे सिरे तक चलनेके बाद और कभी-कभी तो उन उत्तप्त अङ्गारोंपर नृत्य करनेके बाद भी नर्तकके पांव जलनेकी तो बात ही क्या, एक छाला तक नहीं पड़ता।

उत्तप्त अङ्गारोंपर चलनेवालोंकी संख्या भारतमें बहुत नहीं है; पर ट्रिनीडाड, नेटाल और मारिशस तथा जापान—कई देशोंको मिलाकर इनकी ऐसी संख्या हो जाती है, जो नगण्य नहीं कही जा सकती। इनके इन प्रदर्शनोंको देखने-वालोंकी संख्या हजारों और सब मिलाकर लाखों तक पहुंच चुकी है; पर आज तक ऐसी घटना कभी नहीं देखी गयी, जिसमें आगपर चलनेवाले किसीने बुरी तरह जलने अथवा किसी प्रकारके असाधारण कष्टकी बात कही हो।

और लोगोंके लिए ये प्रदर्शन चाहे जितने भी आश्चर्य-जनक हों; पर प्राचीनताके खोजियोंके लिए इनमें कोई खास बात नहीं दिखाई पड़ती। उनका कहना है कि अत्यन्त प्राचीन कालसे इनके प्रदर्शन होते रहे हैं। फ्रेजरने अपनी पुस्तक 'गोल्डेन बाऊ' तथा लैंगने 'मैजिक एण्ड रेलिजन'में इसका उल्लेख किया है। भारतमें यह बात बहुत दिनोंसे प्रचलित रही है कि आग द्वारा भले-बुरेकी पहचान हो जाती है। अत्यन्त प्राचीन कालमें सीताकी पवित्रताकी अग्नि-परीक्षा हो चुकी है और असंख्य दन्तकथाओंमें इसका उल्लेख मिलता है। आज भी हिन्दू जब अग्निको साक्षी देकर शपथ ग्रहण करता है, तब इसका तात्पर्य यही होता है कि अग्निमें अगर झूठे व्यक्तिकी परीक्षा होगी, तो वह कभी भी जीवित नहीं बच सकता। हम इन दन्तकथाओं तथा प्राचीन विश्वासोंको मानें या न मानें; पर आज जब उत्तप्त अङ्गारों एवं जलते हुए पत्थरके टीलोंपर लोगोंने यह नृत्य दिखा दिया है, तब इतना तो मानना ही पड़ेगा कि ये बातें झूठी नहीं हैं—भले ही पवित्रता एवं अपवित्रताकी परीक्षा इससे न हो। कितने ही धर्मोंमें इस बातकी व्यवस्था है कि कितने ही अवसरोंपर आग जलाकर रखनेसे भूत-प्रेतादिकी बाधा नहीं रहती। हिन्दू धर्ममें भी इसकी बहुत बड़ी महिमा है।

सोसायटी द्वीपमें ताहितीके पास रायटीके स्मिथ्सोनियन इन्स्टीट्यूटके प्रोफेसर लैंगलीने इस प्रकारके एक प्रदर्शनका उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि २१ फीट लम्बे और १९ फीट चौड़े चबूतरेके रूपमें आग जलायी गयी, जो घुटनों तक गहरी थी। आग जब खूब धधकने लगी, तो २०० के करीब पत्थरके बड़े-बड़े टुकड़े, जिनका वजन ४० से ८० पौण्ड तक था, आगमें डाले गये। चार घण्टे तक धधकती अग्निमें तपनेके बाद पत्थर लाल अङ्गारोंकी भांति दमकने लगे। प्रो० लैंगलीने एक टुकड़ा उससे बाहर निकलवाया और उसपर एक बाल्टी पानी डलवाया। लगभग १२ मिनटमें

पानी जल गया। इसी प्रकारके पत्थरोंपर वहां एक व्यक्तिने चलकर लोगोंको चकित कर दिया था। उस समय जलनेवाले पत्थरोंकी गर्मी १२०० अंश फारेनहीट थी। यह तापमान कितना ऊंचा है, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि ६०० अंश फारेनहीटसे शीशा पिघलकर बहने लगता है।

ताहितीके उदाहरणको छोड़कर अपने देशके ही उदाहरणोंको लीजिये। कई हिन्दुस्तानियोंने विदेशोंमें इसका प्रदर्शन किया है, जिनमें खुदाबख्शने काफी ख्याति कमायी है। अहमद हुसेन अपने प्रदर्शनके समय औरोंको भी अपने साथ आगपर चलानेमें समर्थ हो सका है।

चिङ्गलपट जिलान्तर्गत पल्लवरम्से एक व्यक्तिने एक प्रदर्शनका वर्णन करते हुए न्यूयार्कके 'साइण्टिफिक अमेरिकन' पत्रमें एक बार लिखा था :—

आगपर चलनेके दो प्रदर्शनोंको मैंने स्वयं अपनी आंखों देखा है और इस बातसे मैं आश्चर्यचकित रह गया हूं कि आगपर चलनेवालोंको तनिक भी पीड़ा, जलन कुछ भी नहीं हुई। इस बातसे मेरा आश्चर्य और भी बढ़ जाता है कि आगपर चलनेवालोंकी संख्या एक-दो नहीं, १८ थी और उनमें १८ वर्षसे लेकर ६९ वर्ष तकके युवक और बूढ़े थे। नङ्गे पांव उन्होंने आगमें प्रवेश किया। यह सभी उपस्थित व्यक्तियोंने देखा था।

आगमें प्रवेश करनेके पहले इन व्यक्तियोंने स्नान किया और एक भींगा कपड़ा लेकर मन्त्र पढ़ते हुए चले। इस प्रदर्शनमें उनके सुरक्षित बाहर निकल आनेके बाद तरह-तरहके विचार प्रकट किये जाने लगे। कुछ लोगोंका विश्वास है कि धार्मिक वृत्तियों तथा मन्त्रोंमें इतनी शक्ति है कि उनके कारण आगमें भी जलानेकी शक्ति नहीं रह जाती। कुछ ऐसे भी लोग हैं, जिनका विश्वास है कि आगपर चलनेवाले पैरोंमें कुछ लगा लेते हैं, जिससे चमड़ेपर आगकी आंच लगती ही नहीं।

इसी व्यक्तिने एक दूसरे प्रदर्शनका उल्लेख करते हुए कहा है कि इस प्रदर्शनमें ९९ व्यक्तियोंने भाग लिया था, जिनमें एकके पांव जल गये। अगर यह सब ढकोसला ही होता, तो आखिर एक ही व्यक्तिके पैर क्यों जलते।

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि ये सारे प्रदर्शन झूठे नहीं हैं। साथ ही मेरा यह भी विश्वास है कि मन्त्रोंके बलपर आगकी स्वाभाविक दाह-क्रियाको मिटाया नहीं जा सकता।

नेटालमें भी इस प्रकारके प्रदर्शनोंकी प्रथा है; पर वहां यह एक धार्मिक कृत्य माना जाता है। वहांवालोंका विश्वास है कि कुछ ऐसे पातक हैं, जिनका प्रायश्चित्त आगपर चलनेसे ही हो सकता है। भूत-प्रेतादिकी बाधायें होनेसे भी यह क्रिया की जाती है। जिस व्यक्तिको आगपर चलना होता है, उसे दस दिन तक इसकी तैयारी करनी पड़ती है। इस अवधिमें वह मांस नहीं खा सकता, शराब नहीं पी सकता और उसे नारी-सम्पर्कसे दूर रहना पड़ता है। दिनमें दो बार स्नान करना आवश्यक है और इसके बाद मन्दिरमें जाकर साष्टाङ्ग दण्डवत् कर देवताओंकी प्रार्थना करनी पड़ती है कि वे इस अग्नि-परीक्षामें उत्तीर्ण करें।

अन्तिम दिन उस व्यक्तिको पुजारीकी देखरेखमें स्नान करना पड़ता है। स्नानके बाद वह अग्नि-कुण्डके पास पहुंचता है। स्नानके बाद अग्नि-कुण्ड तक स्त्रियां नाचती, गाती, बजाती अग्निपर चलनेवालेके साथ-साथ चलती हैं। उस समय नियमानुकूल वे केवल केसरिया साड़ी पहन सकती हैं। उनका जोश अग्नि-कुण्डके पास पहुंचनेपर कम नहीं होता, बल्कि बढ़ता ही है। अग्नि-कुण्डके पास पहुंचकर सब मदोन्मत्त-से होकर उछलने-कूदने और शोर-गुल करने लगते हैं। कभी-कभी पुजारीके साथ व्यक्तियोंकी एक टोली ही चलती है। कई बार देखा गया है कि कुछ लोग अग्नि-कुण्डपर धीरजके साथ असाधारण गम्भीरतामें आगे बढ़ते हैं और कुछ, जिनकी हिम्मत बीच ही में छूटने लगती है, थोड़ी दूर चलकर वापस आ जाते हैं।

नेटालमें होनेवाले इस प्रकारके प्रदर्शनोंको देखकर एक बार दो यूरोपियनोंने इसकी परीक्षा लेनेका विचार किया। दस दिन तक उन्होंने सारी क्रियाएं कीं और अन्तिम दिन एकको पुजारीके साथ अग्नि-पुञ्जपर चलनेमें सफलता मिल गयी। दूसरा दूर तक चल न सका। उसका अंगूठा जल गया। वहांके कुछ दूसरे यूरोपियनोंने भी इसकी परीक्षा ली है। वे स्वयं भी इस बातको ठीक-ठीक समझ नहीं सके हैं कि आखिर आदमी जलता क्यों नहीं। पुजारियोंने तो सदा यही उत्तर दिया है कि ईश्वरकी भक्ति एवं उनमें विश्वास—केवल यही दोनों बातें रक्षा करती हैं।



तीन अनुयायियोंको लेकर आगपर चलनेवाला अहमदहुसेन

आगपर चलनेवालोंके इन करिश्मोंने वैज्ञानिकोंका ध्यान आकर्षित किया है और वे इस बातकी खोज करने लगे हैं कि आखिर उत्तप्त अङ्गारोंपर चलनेपर भी चलनेवालोंके पांव क्यों नहीं जलते। लन्दन यूनिवर्सिटीमें इस सम्बन्धमें काफी खोज की गयी है और यूनिवर्सिटीने दो पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इन पुस्तकोंमें यूनिवर्सिटीके अन्तर्गत तत्सम्बन्धी खोज करनेवाले दस सदस्योंकी कौन्सिल द्वारा किये गये प्रयोगोंने तथा उनसे निकाले गये वैज्ञानिक निष्कर्षोंके विषयमें लिखा गया है।

उक्त कौन्सिलके मन्त्री हेरी प्राइसको कौन्सिलने इस बातके लिए अधिकार दिया कि आगपर चलनेवालोंके लिए वे विज्ञापन निकालकर प्रदर्शन करनेकी व्यवस्थायें करें। कौन्सिलके पास ऐसे पत्र तो कितने ही पहुंचे, जिनमें पत्र-प्रेषकोंने ऐसे प्रदर्शनोंका आंखों देखा हाल लिखा था; पर स्वयं उन्होंने ऐसा प्रदर्शन करनेका साहस नहीं किया था। कौन्सिलवालोंको निराशा हो रही थी कि एक भारतीय मुसलमान खुदाबख्शका ध्यान इस तरफ गया और उसने आगपर चलनेका बीड़ा उठाया।

हेरी प्राइसने इस प्रदर्शनके विषयमें अपनी रिपोर्ट (A Report on Two Experimental Fire-walks) में लिखा है :—इस प्रकारके प्रयोग करनेका उद्देश्य यह था कि इस बातका पता लगाया जाय कि खुदाबख्श आगपर चल सकता है या नहीं और चलता है, तो उसके पैर जलते हैं या नहीं ? क्यों नहीं जलते ? क्या कोई भी खुदाबख्शकी तरह आगपर चल सकता है ? इसमें कोई जादू है ? क्या चलनेवाला नङ्गे पांवोंमें कुछ रासायनिक पदार्थ लगाता है, जिससे वह आगका अनुभव नहीं करता —जैसा कि कुछ लोग कहते हैं ? क्या यह ईश्वरीय अथवा धार्मिक विश्वासोंके कारण ही सम्भव है ? क्या आगपर धीरे-धीरे चलना भी सम्भव है ? मानसिक अथवा शारीरिक—किसी प्रकारकी कोई तैयारी पहलेसे करनी पड़ती है ? आगपर चलनेवालेके सहारे क्या कोई और भी



खुदाबख्श आगपर चल रहा है

आसान है। आगकी सतह जितनी ही मोटी होगी, चलनेमें उतनी ही सहूलियत होगी।

आगपर पैर रखने के पहले आक्सफोर्डके विज्ञानवेत्ता डा० विलियम कालियरने उसके पैरोंकी परीक्षा की और उन्हें साधारण पाया। इसके बाद पैरोंको धोकर साफ किया गया कि उनमें कोई पदार्थ तो नहीं लगाया गया है।

सारी परीक्षाओंके समाप्त होनेके बाद खाईके एक किनारे खुदाबख्श खड़ा हुआ। उसने पहले कुरानकी कुछ आयतें गुनगुनायीं। अब उसने आगपर पांव रखा और दौड़कर नहीं, धीरे-धीरे उसपर चलने लगा।

इसके बाद खुदाबख्शने फिर तीन बार उसी अग्नि-पुञ्जपर धीरे-धीरे चहलकदमी की। अब उसके पैरोंकी फिर जांच की गयी और उनमें किसी प्रकारका विकार नहीं पाया गया।

वैज्ञानिकोंने तुलनात्मक अध्ययनके लिए रुईके एक आदमीको आगपर चलाया। रुईके कुछ ऐसे तागे होते हैं, जिनपर तापमानका असर उतना और उतनी जल्दी नहीं होता, जितना मनुष्यपर। लेकिन जब उसी आगपर रुईके गुड्डेको चलाया गया, जिसपर खुदाबख्श चला था, तो देखा गया कि ढाई सेकेण्डमें ही गुड्डा कई स्थानोंपर जल गया।

'सेण्ट बारथोलोमो हास्पिटल जर्नल' के सम्पादक डिगबी मेनाफ भी वहां उपस्थित थे। उन्होंने स्वयं इसका प्रयोग करना चाहा, लेकिन पैरका जूता खोलकर ज्योंही उसे उन्होंने आगपर रखा, चिल्लाकर तत्काल ही हटा लिया। हेरी प्राइसने लिखा है कि उनके पैरमें काफी देर तक पीड़ा

ऐसा सफल प्रयोग कर सकता है? खुदाबख्शने दावा किया था कि वह दूसरोंको भी लेकर आगपर चल सकता है।

२५ फीट लम्बी, ३ फीट चौड़ी और एक फीट गहरी एक खाई खोदी गयी और तीन टन लकड़ी उसमें डाल दी गयी। जिस दिन प्रयोग होनेवाला था, उसमें आग लगा दी गयी। डेढ़ घण्टे तक जलनेके बाद उसमें कोलतार डाल दिया गया। यह सुझाव हेरी प्राइसका था। ऐसा उसने इसलिए किया, जिससे सतह और भी गरम, और भी साफ-सुथरी हो जाय। साढ़े तीन घण्टे तक जलते रहनेके बाद लगभग तीन इञ्च तक खाईमें दमकते हुए अग्नि-पुञ्जकी सतह तैयार हो गयी। उस समय कितने ही वैज्ञानिक उपस्थित थे; पर इस विषयका उन्हें कोई व्यावहारिक अनुभव न था। अतः इतनी आग तैयार हो जानेके बाद उन्होंने खुदाबख्शको उसपर चलनेको कहा। खुदाबख्श तैयार हो गया; पर उसने बताया कि लगभग १९ इञ्च गहरी आगमें चलना उसके लिए और भी

बनी रही। इसके बाद फिर साहस करके वे दो कदम चले भी। लेकिन गिनकर, सिर्फ दो ही कदम। इसका परिणाम यह हुआ कि काफी दिनों तक फफोलोंसे वे पीड़ित रहे।

आठ दिनोंके बाद खुदाबख्शके दूसरे प्रयोगकी तैयारी की गयी। हेरी प्राइसने इस प्रयोगके सम्बन्धमें लिखा है:— "सवेरेसे ही हम लोग खाईमें लकड़ी झोंकते रहे। इस बारका प्रयोग पहलेकी अपेक्षा अधिक कड़ा था। एक बजते-बजते दमकते हुए अग्नि-पुञ्जका ऐसा ढेर एकत्र हो गया कि ६९ फीट दूरीपरसे ही आंच लगती और नजदीक जानेका साहस न होता। नौकर चश्मा लगाकर, खूब मोटा कपड़ा पहनकर भी सामने जानेका साहस न करते। हवाके झोंके रह-रहकर आते और लपटोंको और भी उत्तेजित कर जाते। हवामें चिनगारियां उठतीं। २५ फीटकी खाईमें ऐसा मालूम होता था, मानो द्रवित आग बह रही हो। देखकर भी भय मालूम होता और इसीपर खुदाबख्श चहलकदमी करनेवाला था।"



रेजिनाल्ड एडकाक लन्दनमें आगपर चलनेका प्रयोग कर रहा है।

खुदाबख्श गम्भीरतापूर्वक आगे बढ़ा। तीन डाक्टर तैयार थे। उन्होंने उसकी जांच की। प्रो० सी० ए० पेनेट, डा० टी० ई० बैंक्स, लन्दनके ट्रापिकल अस्पतालके डा० जी० स्मिथने उसके पांवोंकी परीक्षा की। यूनिवर्सिटी कौन्सिलके और भी कई वैज्ञानिक उपस्थित थे। पहले प्रयोगकी जिन लोगोंने चर्चा सुनी थी, उनकी दिलचस्पी इस प्रयोगको देखनेके लिए बहुत बढ़ गयी थी। इसलिए और भी कितने ही व्यक्ति एकत्र हो गये। खुदाबख्शके पैरोंका तापमान लिया गया, तो ९३·२ अंश फारेनहीट पाया गया। चमड़ा सूखा और ठण्डा पाया गया। पैरोंको धोकर खूब अच्छी तरह सुखा डाला गया और तब एक पैरमें एक चौकोर जिस्तेका टुकड़ा बांध दिया गया, जिससे गर्मीके तापमानकी जो प्रतिक्रिया हो, उसकी परीक्षा की जा सके।

आठ टन लकड़ी और ऊपरसे एक गाड़ी तारकोलके सात घण्टे जलनेके बाद खुदाबख्शने उस अग्नि-पुञ्जपर चलनेके लिए पांव उठाये। दर्शकोंकी आंखें मिलीं। एक अनोखा दृश्य आज वे देख रहे थे।

खुदाबख्श तो आगपर चलनेको तैयार था ही, अतः भागकर नहीं, उसने शान्तिके साथ धीरे-धीरे एक-एक करके कई कदम चलकर यह अग्नि-परीक्षा समाप्त की।

वैज्ञानिक ही तो ठहरे! खुदाबख्शके पैरोंकी परीक्षा फिर ली गयी और तापमान? पहलेसे भी कुछ कम ९३ अंश! आगपर चलनेके पहले जो तापमान था, उससे भी कम चलनेके बाद पाया गया। एक बार फिर उससे चलनेकी प्रार्थना की गयी और वह फिर चला। इस बार भी पैरोंकी परीक्षा ली गयी और किसी प्रकारकी जलनका पता नहीं चला। पैरमें जिस्तेका जो टुकड़ा लगाया गया था, वह

ज्योंका त्यों था। किसी प्रकारका कोई खास प्रभाव उसपर नहीं पड़ा था, केवल एक कोना जरा जल गया था।

और उस आगकी गर्मी कितनी थी, जिसपर खुदाबख्श चला था? आगका तापमान यों था:—सतह ८०६ अंश फारेनहीट और अग्नि-पुञ्ज २५५८ अंश फारेनहीट। यह भीषण तापमान! इससे थोड़े कममें ही इस्पात गल जाता है। प्रयोगके दिन हवा इतनी तेज चल रही थी कि तापमान इतना अधिक हो गया।

खुदाबख्शसे आज तीन प्रयोग करनेको कहा गया था। दो उसने कर दिखाये और तीसरेके लिए तैयार हो रहा था कि अकस्मात् उसने कहा—"भीतरसे मैं हिम्मत हारता जा रहा हूं और मेरा विश्वास ढीला पड़ता जा रहा है, इसलिए अब मैं आगपर चल न सकूंगा।" फिर किसीने इसपर जोर न दिया। उस वक्त ई० एफ० हण्ट भी मौजूद थे, जिन्होंने भारतमें आगपर चलनेके प्रयोग देखे थे। डा० हण्टने बताया कि आज जैसे प्रयोग हुए हैं, वे अत्यन्त भीषण हैं। इस प्रकारके भीषण अग्नि-पुञ्जपर चलना मामूली जीवटका काम नहीं है।

डिगबी मेनाफने पहले दिनके प्रयोगमें खुद भी दो कदम चलनेका साहस दिखाया था और आज भी एक कदम उठाया; पर साहस टूट गया और एक कदम जो आगपरसे वापस आया और डा० पेनेटने परीक्षा की, तो देखा कि कई जगहोंपर वह जल गया है, जिनपर छाले निकलनेकी आशङ्का की जा रही थी। एड़ीमें एक तारकोलकी चिनगारी चिपट गयी थी, जिसे छुड़ाकर फेंका गया, तो देखा गया कि नीचे छाला पड़ गया है।

मारिस चामीन नामक एक व्यक्तिने भी आगपर चलनेकी हिम्मत की थी; पर एक-दो कदम चलनेके बाद ही हिम्मत टूट गयी और उनके लहूलुहान पैर बाहर निकले। लहू इसलिए निकला कि रखते हुए जो पैर जला, तो दूसरे पैरपर घबराकर रगड़ने लगे और परिणाम यह हुआ कि उनसे रक्त निकल पड़ा।

खुदाबख्शके बाद एक दूसरे भारतीय मुसलमान अहमद हुसेनने भी आगपर चलनेके अपने कई प्रयोग दिखाये हैं। लन्दन यूनिवर्सिटीकी उक्त कौन्सिलने इस बार भी इसकी व्यवस्था की थी। उसकी ओरसे यह विज्ञापन भी निकाला गया था कि जो अंगरेज इस दिशामें कुछ कर सकें, वे भी प्रयोगमें भाग ले सकते हैं। इस विज्ञापनको पढ़कर ४० व्यक्तियोंने आगपर चलनेकी इच्छा प्रकट की और कौन्सिलने उनमेंसे कुछ लोगोंको चुना।

अहमद हुसेन स्वयं तो आगपर चल सकता था, उसका दावा यह भी था कि दूसरोंको भी अपने जोरसे वह आगपर चला सकता था। क्रेगी, मार्शल और बोल्ड तीन व्यक्तियोंने हुसेनके पीछे-पीछे आगपर चलनेका साहस दिखाया और वास्तवमें हुसेन उनको अपने साथ ले जानेमें सफल भी हो गया।

हुसेनको छोड़कर तीनोंके पांव कुछ-कुछ जल गये थे; पर एक व्यक्तिको छोड़कर किसीने पीड़ा होनेकी शिकायत नहीं की।

अहमद हुसेनने तीन बार इस प्रयोगका प्रदर्शन किया था। यूनिवर्सिटीकी रिपोर्टमें उसके इन प्रयोगोंको सफल बताया गया है।

तो इन प्रयोगोंकी सफलताका रहस्य क्या है? आखिर जो कुछ मनुष्योंको आगपर चलनेमें इस प्रकार सफलता मिल जाती है और उनके अङ्गोंको कोई क्षति नहीं पहुंचती, वह क्यों?

डा० जी० बर्निस्टन ब्राउनने उक्त प्रयोगोंकी रिपोर्ट तैयार की थी और इस प्रश्नपर उन्होंने कई दृष्टिकोणोंसे विचार किया था। वे जिन निष्कर्षोंपर पहुंचे हैं, उनके सम्बन्धमें उन्होंने लिखा है:—

"आगपर चलनेमें किसी प्रकारके जादू अथवा तन्त्र-मन्त्रकी बात नहीं है और न इसमें किसी प्रकारका छल-फरेब ही है।"

इस सम्बन्धमें दूसरे वैज्ञानिकोंने भी छानबीन करनेकी कोशिश की है; पर वास्तवमें इस बातका ठीक-ठीक पता लगानेमें वैज्ञानिक असमर्थ रहे हैं। साधारण मनुष्योंके लिए यह समस्या बहुत आसान रही है; क्योंकि वे इसे धर्म एवं मन्त्रके कारण सम्भव समझते हैं।

तुम्हारे बिना....

श्री आरसीप्रसाद सिंह

"तुम्हारे बिना मैं जी नहीं सकूँगा, रमिया !"

आजसे ठीक चार महीने पहले, इसी शामको, किसीने रामीसे ऐसे ही शब्द कहे थे और आज भी शकूर इन्हीं बातोंको दुहरा रहा है—"तुम्हारे बिना......।"

तुम्हारे बिना,...रामीने वहींसे देखा, शकूर दरवाजेपर खड़ा है और कह रहा है—"यों कब तक बैठी रहोगी, रामी ?"

रामी बैठी ही रही। न कुछ बोली और न उठी।

"तुम जवान हो, तुम हसीन हो और तुम......रामी, तुम अकेली भी हो !"

सिर्फ तीन दिन पहले, अगर कोई इस तरह रामीको कुछ कहता, तो रामी क्या यों चुप रहती ? मगर, शायद शकूरका कहना ही ठीक है। रामी जो अकेली है ! और, वह उसकी बातोंका मतलब समझती है।

रामी पहचानती है शकूरको। चार महीने उस मकानमें रहकर भी अगर रामी उस शख्सको नहीं जान पाती, जो तमाम दिन अपनी दूकानमें बैठकर सिलाईकी मशीन चलाता रहता, तो आखिर वह जानती ही क्या ?

ऊपरके तल्लेपर रामी रहती, अपने मालिकके साथ और नीचेका कमरा शकूरने किरायेपर उठा रखा था, जिसमें उसकी दर्जीकी दूकान थी।

जिस दिन इस मकानमें, पहले-पहल रामी आयी, उसी दिन शकूरने उसे इस दृष्टिसे देखा था कि रामी सिर्फ मुस्करा-भर उठी थी। और, शकूरको रामीकी वह भोली मुस्कान अभी तक याद है।

इन्हीं चार महीनोंमें शकूरने रामीके लिए, न जाने, कितने कपड़े तैयार किये होंगे; मगर सिलाईके पैसे चुकानेके वक्त वह सदा गम्भीर होकर कहता—"अरे, भैया !...रहने भी दो। भाभीपर क्या मेरा हक नहीं है ?"

रामीको यह बात जरूर बुरी लगती। लेकिन वह करती ही क्या ? जगत हंसकर जवाब देता—"अच्छा !"

आते या जाते, कभी शकूर आंखें नचाकर रामीको एक बार हसरत-भरी निगाहसे देख लेता और फिर इठलाता हुआ चला जाता। रामी छतपर होती, तो रेलिङ्ग पकड़कर झुक जाती और नीचे देखती, बाजारकी सड़कपर, खिलौनोंकी तरह मोटरें और कठपुतलीकी तरह आदमी। इससे अधिक जाननेकी उसने न तो कभी कोशिश की और न जान ही सकी।

लेकिन, आज जब शकूरने जान लिया कि रामी बिलकुल अकेली है, तब उससे नहीं रहा गया। वह सहमता हुआ रामीके पास आया और बोला—"तुम्हारे बिना,...रामी !"

रामीको क्रोध आ गया। उसने भयानक घृणाकी दृष्टिसे शकूरको गुरेरकर कहा—"भागो यहांसे, ...कुत्ते !"

और शकूर जैसे आया, वैसे ही चला गया।

(२)

तीन दिन हो गये, रामीने कुछ खाया-पीया नहीं। जब भूख खूब जोर करती, तब वह पेटके बल चटाईपर लेट जाती और सिसक-सिसककर रोती। रोते-रोते उसकी आंखें सूज गयी थीं। और चेहरा गुलाबके मुरझाये हुए फूलकी तरह फीका पड़ गया था। फिर भी वह रोती। उसे चुप करनेवाला भी तो कोई नहीं था।

लेकिन, कभी था। और ऐसा था कि रामीकी एक मुस्कानके लिए अपनी जान तक दे देनेको तैयार हो जाता। मगर, अब रामीके लिए उन दिनोंकी याद भर बाकी है। और जो कुछ था, वह सुबहके तारेकी तरह किसी शून्यमें विलीन हो गया है।

और, वह था जगत। गांवका एक हट्टा-कट्टा, मजबूत और सुन्दर युवक। अभी मसें भीगी ही थीं कि वसन्तकी किसी मादक सन्ध्यामें जगत रामीकी आंखोंमें सपना बनकर समा गया।

उस गांवमें रामीका ननिहाल था। घर वहांसे दूर, बहुत दूर। रामीके मामा उसे बहुत चाहते थे। और, रामीपर उनका स्नेह इतना अधिक था कि बचपनसे ही उन्होंने

उसे पाला, पोसा और बड़ा किया और रामी अब बढ़कर चौदह सालकी हो गयी थी ।

मां-बापके बन्धनसे मामाका बन्धन कुछ ढीला होता ही है । रामी अपने घरपर रहती, तो इतनी आजाद शायद ही होती । लेकिन यह जो उसके मामाका घर है और मामाका इतना लाड़-दुलार । रामी बिलकुल अल्हड़, निर्भीक और उद्दण्ड हो गयी थी ।

दिन-भर सखी-सहेलियोंके सङ्ग खेलना, ऊधम मचाना और गप्पें लड़ाना, यही उसका काम था । रखवालेकी आंख बचाकर जमीन्दारके बगीचेकी मूंगफलियां तोड़कर खा लेना और सिल्लू भैयाके कबूतरके बच्चेको, इतने ऊंचे बांसके मचानपर चढ़कर, चुरा लेना किसीके लिए भले ही साहसका काम रहा हो; लेकिन रामीके लिए तो यह बायें हाथका खेल था ।

और किसीसे बात-बातमें झगड़ जाना भी, उसके वास्ते उतना ही आसान था, जितना किसी फूल-से सुकुमार बच्चेको उठाकर चूम लेना —"बाबू मेरे !...भैया मेरे !"

सहसा दरवाजेपर किसीके खांसनेकी आवाज आयी । रामीने जलकर कहा—"मुए मरते भी तो नहीं !"

"मैं हूं, ठकुरानी !" एक अधेड़ आदमी कमरेके अन्दर आता हुआ बोला—"घबराओ मत !"

और रामी, जो सोयी थी, उठकर बैठ गयी । चेहरेपर आंसूसे गीला घूंघट सरका लिया ।

"अरे, इसमें शरम करनेकी कौन-सी बात है ?" उस आदमीने कहा—"देखता हूं, तुम जी-भर रोयी हो ।"

रामी पत्थरकी मूर्ति बनी बैठी रही ।

"तुमने कुछ खाया-पीया है कि नहीं ? तीन ही दिनोंमें कितनी सूख गयी हो । जरा खयाल तो करो । जो होना था, सो हो गया । अब रोनेसे क्या फायदा ?"

रामीने अब देखा, यह जो अधेड़ आदमी उसके सामने खड़ा है और जिसके हृदयमें उसके लिए इतनी करुणा, ममता और सहानुभूति है, वह और कोई नहीं, उसके मकानका मालिक है !

"आपको क्या मालूम है कि वे कहां गये हैं ?"

"ठकुरानी !" उसने कहा—"अगर मैं यह जानता, तो तुम क्या समझती हो कि मैं उसे यों ही जाने देता ?"

रामीने सोचा, कितना भला आदमी है !

और वह कहता गया—"उसके जिम्मे मेरा पिछले दो महीनोंका किराया बाकी है । यह नहीं कि मैंने तकाजा नहीं किया । मगर, वह बराबर टालता गया और अब तो तीसरा महीना भी चढ़ रहा है । लेकिन, ठकुरानी ! मुझे यह नहीं मालूम था कि जगत सिंह ऐसा निकम्मा आदमी होगा ।"

निकम्मा......हां, रामीने सोचा, कितना निष्ठुर था वह । यह भी नहीं विचार किया कि आखिर उसके पीछे रामीकी क्या दशा होगी ?

"जगत सिंह गया, तो जाने दो, ठकुरानी !...वह फिर कभी लौटेगा नहीं । इन लोगोंका यही काम रहता है । मैं उन्हें अच्छी तरह जानता हूं । तुम दुनियासे अनजान थीं । इसलिए धोखा खा गयीं । देखो, इधर...ये बाल मैंने धूपमें नहीं सुखाये हैं !"

रामीसे जब नहीं रहा गया, तब वह सिसकने लगी ।

"मैं हूं, ठकुरानी ! तुम रोती क्यों हो ? चलो मेरे घर । मैं तुम्हें रखूंगा । वहां तुम संसारका सब सुख पा सकोगी । यहां, इस अंधेरेमें...कोनेमें... अकेली,... तुम कैसे रह सकोगी ?"

"आप जाइये !" रामीने रोते-रोते कहा—"आप तुरन्त चले जाइये । मैं अकेली ही रहूंगी । मुझे उसने अकेली ही छोड़ दिया है । मैं एक बार जी-भर रोना चाहती हूं । मुझे रोने दीजिये ।"

"यह ठीक है, रामी !" उसने कहा—"लेकिन, तुम्हारे बिना......... ।"

"मेरे बिना क्या ?" रामीके मुंहसे निकल गया । और वह सूने घरके अंधेरेमें भागती हुई बोली—"आप नहीं जाते, तो मैं ही चली जाती हूं ।"

तब काफी अंधेरा फैल चुका था और तमाम शहरमें जुगनूकी तरह बिजलीकी बत्तियां जगमगा रही थीं । और ऐसा प्रतीत होता था, जैसे दुनियाका सारा अन्धकार प्रकाशके भयसे रामीके ही घरमें छिप गया हो ।

(२)

आसमानमें तारे निकल आये हैं और रामी एकटक उन टिमटिमाते हुए तारोंको देख रही है । दूर,...दूर आकाशमें

वे तारे कांपते-से दिखाई पड़े। और उसका मन भी दूर, बहुत दूर, न जाने कहां, भागा जा रहा है। कहीं कोई ओर-छोर नहीं। निस्सीम,......अनन्त...अपार,...आसमान जैसे धुंधला, उसका हृदय भी वैसे ही शून्य, विह्वल, उदास,...

जगत उसके लिए गांवका ठाकुर था और रामी उसके लिए क्या थी, वह खुद भी नहीं जानती। यों, दोनोंमें बचपनसे जान-पहचान है। कभी आंखोंसे और कभी इशारेसे, कभी तिरछे और कभी सीधे और कभी दायें और कभी बायें दोनोंमें कितनी बार देखा-देखी हो चुकी है। लेकिन इस तरहकी देखादेखीका नतीजा क्षण-भरके विनोदको छोड़कर और भी कुछ रहा हो, ऐसा कहनेको जी नहीं चाहता।

लेकिन, जो उत्कण्ठा और कौतूहल रामी तथा जगतके प्राणोंमें पिपासा बनकर समा गये थे, एक दिन संयोग पाकर वे प्रकट ही हो गये।

खेलते-ही-खेलते रामी युवती हो गयी। ...ऐसी युवती, जिसे भय नहीं था, सङ्कोच नहीं था, ज्ञान नहीं था। और, जगतने भी तब उसे जिस दृष्टिसे देखा, उसमें प्रेमका मद था।

मामाके घरसे रामी अपने पिताके घर जो कभी सालमें एकाध दफे जाती, तो वे उसे वहां दस-पन्द्रह दिनोंसे ज्यादा ठहरने भी नहीं देते। उनकी एकमात्र इच्छा थी कि रामीकी शादी वे कर दें। और, उनकी इसी पवित्र इच्छाकी पूर्तिके लिए, रामी अपने मामाके घरको चञ्चल कर रही थी।

और, ब्याह-शादीकी बात करते-धरते ही रामीके जीवनका चौदहवां फागुन आ गया। हां, वह फागुनका ही महीना था। क्योंकि जमीन्दारके बगीचेमें, आमोंके टकोरे आ गये थे। और उनकी डालियोंपर कोयल भी कूकने लगी थी।

रामीके जीवन-तरुपर यद्यपि यौवनके वसन्तने अपना वासन्ती अञ्चल फैला दिया था, फिर भी न रामी बचपनको भूल सकी और न बचपन ही रामीको।

और, एक दिन सूरजके डूबते ही रामी चली जमीन्दार-के बगीचेकी ओर। रोजकी आदतने उसे लाचार कर दिया और पैर आप ही उस तरफ बढ़ने लगे। रामी रोकती, तो कैसे?

लेकिन, उस दफे रामीकी चोरी पकड़ी गयी। बचपनको धोखा दिया जा सकता है। मगर, यौवनको धोखा देना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

रखवालेने उसे देख लिया। रामी छोटी-सी चहार-दीवारीका एक टूटा हिस्सा फांद तो गयी, लेकिन इस पार कूदते ही उसकी साड़ीका एक छोर कांटोंसे बेतरह फंस गया। और, वह भाग नहीं सकी। रखवालेने उसे पकड़ लिया। पहले तो टकोरोंकी जांच-पड़ताल हुई। फिर रामीको पकड़कर वह जमीन्दारकी हवेलीकी तरफ ले चला।

रामीको जमीन्दारसे डर नहीं। मगर, मामा सुनेंगे, तो क्या कहेंगे? कैसी लड़की है!...कल जिसकी शादी होगी, आज उसकी यह शरारत!......और पड़ोसकी वे सहेलियां! छिः! कौन-सा मुंह लेकर वह उनके सामने जायगी?

रामी जा रही थी और सोच रही थी। रास्तेमें मिल गया जगत। जगत वहींसे आ रहा था, जहां रामी जा रही थी। और उसने पहचान लिया, रामी।

"इसे कहां लिये जा रहे हो, भिक्खू?" जगतने कौतुकसे रखवालेसे पूछा।

"सरकार, यह बड़ी बदमाश हो गयी है।" भिक्खू बोला—"इसे मालिकके पास लिये जाता हूं!"

"क्यों, बात क्या है?"

और भिक्खूने जब सारा हाल जगतको सुनाया, तब वह मुस्कराकर, रामीकी तरफ देखकर, बोला— "क्यों, तू सचमुच बड़ी नटखट हो गयी है?"

"हां, सरकार!" रामीके बदले भिक्खूने ही जवाब दिया। मगर, रामी फिर भी चुप थी। उसे कुछ-कुछ आशा हो चली थी कि अब शायद छुटकारा मिल जाय। मगर, जगतने कहा—"हां, रे भिक्खू! इसे जरूर ले जा! बड़ी शैतान है?"

मानो उसने रामीके दिलपर अपना हाथ रखा और उसने रामीकी आंखोंमें देखा, जैसे वह कह रही थी, पुरुष वास्तवमें निर्दय होते हैं!

और, ज्यों ही भिक्खू सलाम कर आगे बढ़ा, त्यों ही उसने पुकारकर कहा—"भिक्खू!"

"हां!......"

"इसे छोड़ दे!"

"मगर," रखवाला कुछ कहना चाहता था।

"इस बार छोड़ दे, भिक्खू! आइन्दा ऐसा करेगी, तो

जो जीमें आये, करना। मगर इस बार मैं कहता हूं, रामी-को छोड़ दे!"

"अच्छा, आप कहते हैं, तो........" भिक्खूने छोड़ दिया।

जगतने रामीकी खुशीका अन्दाज मन-ही-मन कर लिया; लेकिन वास्तवमें रामी न प्रसन्न थी और न अप्रसन्न। वह सीधे घरकी ओर लौट चली। जगतसे जो कभी बोली न थी, आज उससे एकाएक धन्यवादका शब्द कैसे निकलता? उसकी जीभ न गलकर गिर पड़ती।

"डर भी लगेगा, रामी?"

रामी चुप।

"मैं पहुंचा दूं, कहो तो!"

रामी फिर भी चुप।

"अरे, बोलती क्यों नहीं?"

"आप,......" बस, इससे अधिक रामी कह नहीं सकी और यह भी बड़ी कोशिशके बाद।

जगतने इसका जो मतलब लगाया, उससे रामीके दिलमें, न जाने क्या, आग-सा जलने लगा। वह चुपचाप चल पड़ी और जगत भी उसके पीछे-पीछे कुछ दूर आकर अपने घरकी तरफ मुड़ गया।

अचानक किसीने दरवाजेपर धक्का दिया। किवाड़ थप-थपाये और हाथोंसे ताली भी दी। फिर एक धीमी-सी आवाज आयी—"किवाड़ खोलो!"

लेकिन इस बार रामीने निश्चय कर लिया कि चाहे जो हो, वह किवाड़ नहीं खोलती। ये बदमाश,......उसे रोने भी नहीं देते। क्या समझ लिया है? बापका घर? इनका मैंने क्या बिगाड़ा है? कुछ चुराया भी तो नहीं?

"तो, तुम किवाड़ नहीं खोलतीं?" काफी इन्तजारीके बाद बाहरसे किसीकी आवाज आयी।

रामीने भी उसी दृढ़तासे कहा—"नहीं।"

"मैं इसे तोड़ दूंगा।"

"तोड़ दो!"

रामीको याद आया, ये गुण्डे...कल रात भी तो, बारह बजेके वक्त, किवाड़ खटखटाया था और रामीने जिसे कुत्ता समझा था।...आज भी पहुंच गये?......आयें, रामी इनसे बिलकुल नहीं डरती। जरूरत पड़नेपर वह दिखला देगी कि कोई औरत भी मर्दसे मुकाबिला कर सकती है। नाखूनसे नोचकर,...

सहसा फट-फटकर दरवाजा खुल गया और जुगल झूमता हुआ अन्दर दाखिल हुआ। नशेसे उसकी अजीब हालत थी। मुंहसे ताड़ीकी बदबू आ रही थी। और पैर लड़खड़ा रहे थे।

"जानती हो, रामी!" जुगल आते ही बोला—"मैं यहां क्यों आया हूं?"

"जानती हूं!" रामी उठकर खड़ी हो गयी।

"क्या जानती हो, बोलो तो!"

"कुत्तेकी मौत मरनेके लिए!"

"नहीं, नहीं, नहीं।" जुगलने झूमकर कहा—"तुम नहीं समझीं। बिलकुल नहीं समझीं। और, अभी समझोगी भी क्या? कमसिन हो। इसीलिए, तो......" वह धीरे-धीरे आगे बढ़नेकी कोशिश कर रहा था।

"ठहरो!" रामीने तीखे स्वरमें कहा—"वहीं खड़े रहो!"

"मैं खड़ा हूं, रामी!" जुगलने अपने डगमगाते पैरको संभालकर कहा—"तुम्हारा हुक्म मानता हूं।"

"मेरा हुक्म अगर मानते हो, तो फौरन् यहांसे चले जाओ।" रामी बोली।

"लो, जाता हूं......।" जुगल वापस हुआ। किन्तु, दरवाजेपर फिर खड़ा हो गया। और लालच-भरी दृष्टिसे रामीको देखकर बोला—"मगर, यों कब तक...?"

इसका जवाब रामीके पास नहीं था। और था भी, तो इतना कटु कि उसके असरसे जुगल क्या, तमाम दुनिया मर जाती।

"मैं तुम्हें प्यार करनेके लिए आया था, रामी!" जुगल बोला—"तुम्हारे बिना..."

फिर, वही शब्द! रामी कितनी ही बार इसे सुन चुकी है। लेकिन हर दफे धोखा खा गयी है। अब नहीं, अब रामी इसपर विश्वास नहीं करती। यह छल है!...मरीचिका है!......

जुगल डगमग कर रहा था। उसके पैर काबूमें नहीं थे। लड़खड़ाकर वह रामीके पैरोंपर गिर पड़ा—"रामी,..."

रामीको जैसे सांपने डंस लिया। वह चिल्लाकर भागी।

"मैं जगत...जगत नहीं...मैं तुम्हें सचमुच प्यार करता हूं।"

पुरुषोंकी माया......

रामी जुगलको भी पहचानती है। जगतका दोस्त,... चन्द ही दिनोंमें, दोनोंमें काफी घनिष्टता बढ़ गयी थी। घण्टों बैठकर कमरेमें ताश खेलते, बीड़ी पीते, पान खाते और हा-हा-ही-ही करते। तो, क्या यह वही जगतका दोस्त, जुगल है?

इतना अच्छा तो उस वक्त नहीं था। आज अचानक इतना बदल क्यों गया?

"मैं अकेला हूं, रामी! घरमें कोई नहीं! सूना,... बिलकुल अंधेरा। तुम उसको उजेला कर सकती हो। चाहो, तो आबाद कर सकती हो।"

हां, रामीने सुना और समझा भी।

"अच्छा, तो सुबह आओ। मैं जवाब दूंगी।"

"क्या अभी नहीं?"

"नहीं।"

"तो, सुबह आऊं?"

"खुशी हो, तो आओ। नहीं, तो मत आओ।"

जुगल खुश होकर चला गया। रामीने निष्कृतिकी सांस ली। देखा, आसमानके तारे जैसे सिमटकर आगका ढेर हो गये हों और धू-धूकर उनसे लपटें निकल रही हों।

वह जमीनपर ही लेट रही।

(४)

दुखके दिनोंमें भूख-प्यास नहीं लगती, फिर नींद ही क्यों आनेकी तकलीफ करे? रामीके लिए वह रात पहाड़ हो गयी। करवटें बदलकर सुबह कर दी।

और, वह एक सपना था, जिसे रामीने देखा।

रामी रोज पानी लानेके लिए घड़ा लेकर नदीके तटपर जाती। कभी साथमें सखियां होतीं। कभी अकेली ही। लेकिन उस रोज वह अकेली थी। और घड़े एकके बदले दो।

आषाढ़का महीना था। नदीमें वर्षाका नया जल आ गया था और वह उमड़ी पड़ती थी। प्रखर धारा - तरङ्गें तटसे टकराकर कल-कल छल-छल कर रही थीं।

और रामीका यौवन भी तो एकदम नवीन था। नदीकी धाराके समान ही वेगवान्, उच्छृङ्खल और उद्दाम। आकाशमें काले-काले गम्भीर बादल छाये थे। और, वह सन्ध्या उन मेघोंके कारण और भी घनीभूत हो गयी थी।

रामीने दोनों घड़े पानीसे भर लिये। एकको कमरपर रखा और दूसरेको चाहा कि सिरपर रख ले। लेकिन, सफल नहीं हो सकी। फिर पहले सिरपर ही एक घड़ा रखकर दूसरेको कमरपर रखना चाहा; मगर यह भी नहीं हो सका। हारकर, अन्तमें खीझकर, वह निराश होकर घाटकी पक्की सीढ़ियोंपर बैठ रही और न जाने लहरोंको एक-एककर गिनने लगी या क्या......

नदीके उस पारसे वंशीकी मीठी आवाज आयी। बांसुरीके इस स्वरसे रामी परिचित है। कई बार वह इसे दूरसे और पाससे सुन चुकी है। तो, क्या वह जगत है?

वर्षाकी उस धूम-नयन सन्ध्यामें बांसुरीकी वह सुमधुर तान आसावरीके मोहक स्वरोंमें, रामीके मनमें सचमुच आशा भर गयी।

वह उत्सुक होकर उसी ओर देखने लगी। जगत होगा तो,...एक अज्ञात पुलकसे उसका सर्वाङ्ग कण्टकित हो गया।

जगतकी नाव धीरे-धीरे घाटपर लगी और वह लग्गी फेंक-कर जमीनपर कूद पड़ा। देखा, तो रामी चुपचाप उस पारकी ओर अलपक देख रही है। उसे एक अनिर्वचनीय विस्मय हुआ।

"यहां क्या कर रही हो, रामी?" जगतने नजदीक आकर पूछा—"घर नहीं चलोगी क्या?"

"गङ्गा आयेगी!" रामीने झूठ कहा— "उसीके लिए बैठी हूं।"

"अगर, मैं तुम्हारे घड़े उठा दूं... रामी, गङ्गाके लिए कब तक बैठी रहोगी? शाम हो गयी, चलो।"

अरे, जगतने क्या कहा? क्या वह गांवके ठाकुरसे घड़े उठवायेगी? लेकिन, उपाय क्या? गङ्गा तो आखिर उसके लिए नहीं आयेगी!

"एक बात कहूं, रामी!" जगतने कहा।

रामी चौंकी, कौन-सी बात? क्या वह उसे सुन सकेगी? इतना साहस है उसमें? उसने मौन रहकर जगतको विश्वास दिला दिया कि उसे कोई एतराज नहीं।

उस वक्त यदि जगत कविता कर सकता, तो वह वर्षाकी सन्ध्यापर, नदीके शून्य तटपर, कोई सुन्दर रचना कर

डालता। लेकिन, न तो रामीके हृदयमें काव्यकी कोई कसक थी और न जगत ही कवि!

फिर भी गांवके लोगोंमें एक अफवाह उड़ ही गयी। जाने, किसीने देखा या नहीं? लेकिन, बात फूसके घरमें आगकी तरह फैल गयी। और, पहले जगतने उसे सुना। फिर रामीने भी।

रामीके जीवनमें विशेष कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। सिर्फ, घाटपर जाना छूट गया। लेकिन जगत तब भी अकड़-कर चलता रहा।

और उसके कई दिनोंके बाद, एक रोज जगत स्वयं मौका ढूंढ़कर रामीसे मिला और बोला—"तुम्हारे बिना..."

"तो, क्या कहते हो, बोलो।"

"चलो, भाग चलें।" जगतने चञ्चल होकर कहा—"यहां इस गांवमें..."

"कहां..." रामी व्याकुल होकर बोली।

"किसी दूर शहरमें...जहां मैं और तुम,...दो ही आदमी हों, रामी! न कोई बाधा हो, न कोई बन्धन!"

"सोचकर कहूंगी।"

"सोचकर क्या कहोगी? जाने, फिर कब मुलाकात होती है? और, तब तक क्या मैं...?"

और न मालूम रामीके जीमें क्या आया कि उसने कह दिया—"अच्छा!"

"तो, कब?"

"जब कहो तुम।"

"आज रातको?"

"अच्छा।"

"तो, ठीक रहा। मैं बारह बजेके लगभग घाटपर तुम्हारा इन्तजार करूंगा। वहां मेरी नाव बंधी रहेगी।"

शायद मामासे जगत अधिक प्रिय लगा, इसलिए रामी मामाको भूलकर जगतके साथ चली गयी। सब सोये थे। वह चुपकेसे उठी। और, घाटपर जगतसे मिल गयी।

जगतके आनन्दकी सीमा नहीं थी।

अंधेरी रातमें नाव जलपर तैरने लगी। आसमानमें घन-घोर काली घटा छायी थी। डांड़के चलनेसे पानी छप्-छप् कर रहा था। और दो प्रेमी, धड़कते कलेजेसे, किसी अज्ञात दिशाकी ओर जा रहे थे।

गांवमें एक बार फिर आंधी आयी।

"कलियुग है, बाबा!" किसी वृद्धने अपने पके हुए, सनकी तरह सफेद बालोंके बलपर कहा—"इतनी बड़ी छोकरी और कुंआरी रहे?......उसीका यह नतीजा है।"

"ना-ना!" एक बुढ़िया, जो अपनी जवानीके दिनोंमें काफी बदनाम रह चुकी थी, बोली—"ननिहालमें भी कोई अपनी लड़कियोंको रखे?...देखा न रामीको, निकल गयी घरसे। सातो पुश्त लेकर नरकमें चली गयी। बापरे, ऐसी भी बेटी?"

रामीके पिताको जब यह खबर मालूम हुई, तब वे विचलित हो गये। मां जी-भर रोयी। मामाने पुलिसमें रपट लिखवायी।

और युवतियां हंस-भर दीं और युवकोंको रश्क-भर हुआ, काश...।

और, कुछ नहीं...और कुछ नहीं।

(९)

मौतकी भी सुबह होती है।

रामी उठी और दरवाजेको खोल दिया। सूर्यकी बाल-किरणें उसे गुदगुदाकर हंसानेका विफल प्रयास-सा करने लगीं। लेकिन रामी तो वह कली थी, जो खिलकर सदाके लिए मुरझा गयी थी।

रामी जब इस घरमें पहले-पहल आयी थी, तब कितनी प्रसन्न थी। जगत उसे कितना चाहता था। शकूर दरजीसे रोज नये कपड़े बनकर आते। रामकिशुन हलवाईसे रोज ताजा मिठाइयां पहुंचतीं। पानका एक बीड़ा खत्म होता नहीं कि दूसरा मिल जाता। कभी-कभी जगतके साथ सिनेमा भी देख आती और रास्तेमें बाजार भी देख लेती।

मामाके घरपर, गांवमें क्या यह सुख मिलता?

वह सोचती, जगत कितना भला आदमी है! वह जगतको पाकर इतनी खुश थी कि कलकी बात उसके विचारमें आती ही नहीं। वह समझती, यहीं आकर अब उसका जीवन पूर्ण हो गया है और इसके बाद, जैसे कुछ है ही नहीं।

लेकिन जगत जिस उत्कण्ठा और उत्साहसे रामीको यहां ले आया था, वह अधिक दिनों तक स्थिर नहीं रह सका। धीरे-धीरे उसमें परिवर्तन होने लगा। आरम्भके एक-दो सप्ताह तो यौवन और रूपकी मादकतामें सानन्द

बीत गये। लेकिन इसके बाद स्पष्ट कुछ शिथिलता आने लगी।

जगतने पाया, गांवमें रामी जो कुछ थी, यहां वह बिलकुल नहीं है। न वैसी अल्हड़ता, न वह चुलबुलाहट और न वह शोखी। इतना ही नहीं, अब तो जगत रामीमें यौवन और रूपके अभावका भी अनुभव करने लगा। जिस आकर्षण-ने चुम्बक बनकर जगतको रामीकी तरफ खींचा था, वह कहां गया?

एक महीना भी बीत नहीं पाया कि जगतको उचाट-सी होने लगी। अब उसका अधिकांश समय घरसे बाहर बीतने लगा। वक्त काटनेके लिए नये-नये आदमियोंसे दोस्ती गांठनी पड़ी। दिन-भर ताश होता, गप्पें उड़तीं और हंसी-दिल्लगीका बाजार गर्म रहता। कभी-कभी शराब भी उड़ जाती और उसके नशेमें जगत अण्ट-शण्ट बकने लगता।

यह नहीं कि रामी इन बातोंसे अनजान थी। लेकिन रामीका कुसूर इतना ही था कि अब उसमें वह आकर्षण क्यों नहीं रह गया है? वह जगतको बांध क्यों नहीं पाती है? जब सोचती, तब रामीकी आंखोंमें आंसू आ जाते। फिर खयाल करती, शायद कुछ दिनोंके बाद आप ही ठीक हो जाय।

मगर वह मर्ज ठीक होनेका नहीं। भोली रामी, बेवकूफ मत बन! दिलका जिसने बाजार किया, उससे यह उम्मीद रखना कि वह रहम करेगा, गलत है।

और एक दिन उसका पता भी रामीको लग गया।

यही जुगल था। रातके वक्त, जब वह सोने जा रही थी, रामीके नजदीक आया। जगत दूसरे कमरेमें नशेका आनन्द ले रहा था। इधर जुगलने अपने पैसेसे उसे शराब पिलाना शुरू कर दिया था और इसका अहसान वह रामीसे चाहता था।

रामीने पूछा—"क्या है?"

"आज......"जुगलने विचित्र मुद्रामें कहा—"जगत भैयाने कहा है...आज मैं ही...मैं तुम्हारे पास..."

रामी सब समझ गयी। तो, क्या सचमुच जगतका इतना पतन हो गया है? अब वह क्या करे?

उसने कहा—"अच्छा, तुम यहीं बैठो। मैं उससे पूछकर आती हूं।"

"पूछोगी क्या?" जुगल बोला—"मैं झूठ नहीं कहता।"

लेकिन रामी चली गयी। जगतसे पूछनेके बहाने, दूसरे कमरेमें जाकर भीतरसे सांकल चढ़ा ली। और सो रही।

उसी दिन, रामीने समझा, अब उसके बुरे दिन आ गये। इतने रोजके बाद, पहली बार याद आया, पिता,... माता,...मामा,...और, यह जगत उसका कौन होता है?

लेकिन, यह भी तो है। पिंजड़ेकी चिड़िया जानती है कि इन लोहेकी कड़ियोंके बाहर खुला आसमान है, खुली हवा है और है खुली रोशनी। लेकिन इसके बाद......?......वह समाज भी तो है, जिसे छोड़कर वह आयी है। वह निर्दयी, ...पाखण्डी,......और चाण्डाल समाज।

जगत जो रुपये लाया था, वे जब खर्च हो गये, तब उसने रामीके गहनोंपर धावा बोला। मगर वे चांदीके पुराने गहने कब तक ठहरते। एक-एककर वे भी बिक गये। रामीने चूं तक नहीं की। करती भी किसके लिए? और, एक दिन वह भी आया, जब लोटा-थाली गिरवीं रखनेके लिए रामीको मजबूर होना पड़ा।

और, उधर जगतकी प्यास मिट चुकी थी। वह प्यास, जो आंखवालोंको अन्धा बना देती है और जिसको सभ्य संसारमें प्रेमके नामसे पुकारा जाता है।

एक नशा था, जो कभी आया और उतर गया।

तीन दिनों तक रोने-धोनेके बाद आज रामीका जी कुछ हलका था। जो कुछ कसक थी, वह आंखोंकी राहसे बह गयी थी। रातमें सोयी भी और सुबह अपनेको प्रसन्न भी पाया।

"रामी, ओ रामी!" कहते हुए जुगलने प्रवेश किया।

"कौन, जुगल?" रामी बोली—"आओ; बैठ जाओ।"

आओ, बैठ जाओ, जुगलने सोचा, यही तो नारीका हृदय है, जिसे पानेके लिए वह व्याकुल है।

जुगल आकर बैठ गया।

"तुम ठीक वक्तपर आ गये।" रामीने कहा।

"हां।" जुगलने आह्लादसे सिर हिलाया—"हां, रामी! मैं आ गया। अब कहो, मेरे सवालका क्या जवाब देती हो?"

"और यह क्या है, जुगल ?" रामीने कहा—"यह ?"

"यह तुम्हारे लिए खाना लेता आया हूं !" जुगलने पत्तोंका दोना आगे बढ़ा दिया, जिसे अब तक वह छिपाये हुए था—"आखिर तुमने देख ही लिया।"

"मेरे लिए था, तो मैं क्यों न देखती ?" रामी मुस्करा उठी।—"मगर, यह तो बताओ, यह है क्या चीज ?"

"कुछ नहीं, दो-चार पूरियां हैं, और उतने ही रसगुल्ले !"

"ओह !···इतना सामान···?"

"हां, सोचा, रसोई नहीं कर सकोगी, तो यही खा लोगी तुम !"

"लेकिन, मेरा विचार है कि तुम नाश्ता कर लो, मैं खाना पका लूंगी।"

"और, क्या मेरे घर नहीं चलोगी ?"

"चलूंगी, जरूर चलूंगी। लेकिन, दिनमें नहीं···रातमें।"

"रातमें ?"

"हां, रातमें तुम आ न सकोगे ?"

"आ क्यों नहीं सकूंगा, रामी !"

"तो, तुम दस बजे आओ। मैं चलूंगी।"

"छल तो नहीं करतीं ?"

"नहीं जुगल !···तुमसे भला छल ?" रामीने हंसकर कहा—"अच्छा, अभी चले जाओ। मैं स्नान करूंगी।"

"मैं पानी भर दूंगा।···तुम कैसे स्वयं···?"

"नहीं, नहीं। मैं कहती हूं, तुम अभी जाओ। रातमें ठीक दस बजे आना। मैं इन्तजार करूंगी।"

जुगल चला गया।

रामीने सुबहकी मीठी-मीठी धूपमें, भरे यौवनकी एक बेसुध अंगड़ाई ली ही थी कि शकूर आ पहुंचा।

"ओहो ! शकूर !" रामीने तिरछी चितवनसे उसकी तरफ देखकर कहा और गरीब शकूर मानो कट गया।

"रामी,···" शकूर बोला—"ये अंगूर, नासपाती और सन्तरे······"

"मैं बन्दर नहीं हूं, शकूर !······ओहो, इतने फल ?"

"मैं मुसलमान···मेरे हाथका छुआ खाना तुम कैसे खातीं ? इसीसे सोचा, फल ही लेता चलूं !"

"बेवकूफ हो, शकूर !" रामीने कहा—"जिसके शरीर-के स्पर्शसे किसी नारीकी पवित्रता अक्षुण्ण रह सकती है, उसे क्या ये फल भ्रष्ट कर सकेंगे ?"

शकूर सकपकाया।

"अच्छा, एक बात पूछना चाहती हूं शकूर ! क्या जवाब दे सकोगे ?"

"पूछो।"

"मेरे बिना दुनियामें कितने आदमी व्याकुल हैं ?······ सच-सच बताना।"

"सिर्फ मैं, और कोई नहीं।"

"और कोई नहीं ?"

"नहीं।"

"लेकिन, उसने भी तो यही कहा था।"

"उसने झूठ कहा था।"

"और, तुम्हारा विश्वास है कि तुम सच बोलते हो।"

"हां, मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूं, रामी कि···"

रामी खिलखिलाकर हंस पड़ी—"सुबूत दे सकोगे ?"

"सुबूत ?...शकूर इस बातका सुबूत क्या दे कि वह रामीको कितना चाहता है ?" लेकिन, रामी ठहरी नहीं। वह कहती गयी—"अच्छा, अभी जाओ। रातके दस बजे आना। समझे ?"

शकूर चुप खड़ा रहा।

"जाओ, अब खड़े क्या हो ?" और शकूर चला गया।

उसको गये दस मिनट भी नहीं हुए होंगे कि वह किराये-दार भी कहींसे आ धमका।

"रामी...!"

"मैं समझ गयी।...किराया चाहिए न ?"

"नहीं, नहीं..."

"तब ?"

"हां, किराया ही,...मगर, मगर... "

"मैं समझती हूं। बाबू साहब, आप अभी तशरीफ ले जाइये और मेहरबानी कर दस बजे रातमें यहां आइये। मैं आपका किराया चुका दूंगी।"

(७)

उस दिन रातके दस बजे थे। जगतने धीरेसे घरका दरवाजा खोला। रामी सोयी नहीं थी। चौंककर पूछ बैठी—"कहां चले ?"

"कहीं नहीं । जरा जुगलके यहांसे हो आऊं ।"

"क्या सुबह नहीं जा सकते ? इतनी जल्दी क्या है ?"

"नहीं, रामी ! आज दो दिनोंसे शराब नहीं पी है। तबियत नहीं मानती । तुमसे क्या छिपाऊं ? बिना पिये मुझे चैन नहीं । एक घूंट भी..."

रामीका कलेजा जोरसे धड़कने लगा । शराबके बिना... ओह !

"क्या तुम कुछ दे सकती हो ?"

लेकिन रामीके पास अब है क्या, जो दे । यौवन और धन दोनों जगतको लुटा चुकी है । वह भिखारिन है ।

रामी चुप रही ।

"तुम ठहरो, रामी ! मैं जुगलसे मिलकर बहुत जल्द लौट आता हूं ।" और वह धड़-धड़ सीढ़ियोंके नीचे उतर गया ।

लेकिन शराब पीकर जगत नहीं लौटा । कहां गया, कुछ पता नहीं । रामी छातीपर पत्थर रखकर सो गयी ।

और, आज रातमें जब दस बजे थे, तब उसके आंगनमें तीन आदमी कानाफूसी कर रहे थे ।

"तुम कुछ बता सकते हो, शकूर ! कि वह कहां गयी ?"

"भई, औरतें बड़ी दगाबाज होती हैं। इनकी जातका क्या कहना ? एक घरमें आग लगाकर गयी होगी कहीं दूसरे घरमें आग लगाने । क्यों जुगल ?"

"जो हो,...लेकिन, थी वह बड़ी चालबाज औरत। मेरा किराया हजम कर गयी ।" किरायेदारने कहा ।

"अजी, तुम्हारे वास्ते तो बहुत कुछ सामान भी छोड़ गयी है । मगर, मेरी कपड़ेकी सिलाई......या अल्लाह !"

"इन सामानोंसे तो मेरे पन्द्रह रुपयेके बदले पन्द्रह पैसे भी नहीं वसूल हो सकेंगे । अपना उल्लू सीधा कर वह साफ निकल गयी ।"

"हम दोनों घाटेमें रहे ।" शकूरने कहा—"शायद जुगल मुनाफेमें रहा हो ।"

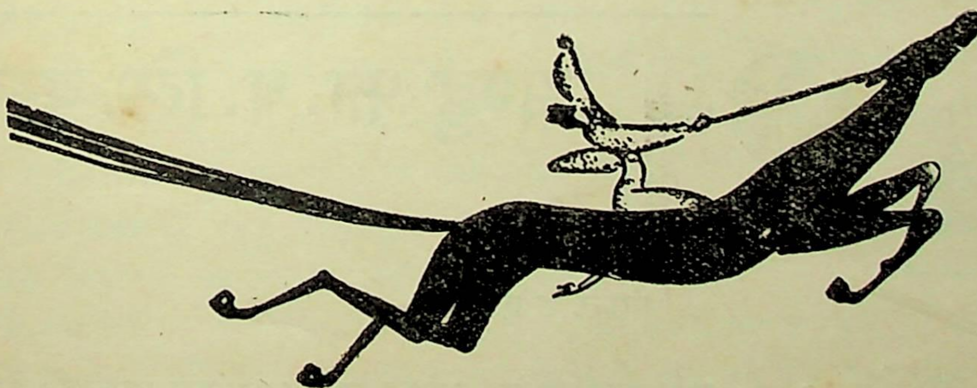
जुगल, जो अब तक चुप था, बोला—"नहीं, भाई ! बात ऐसी नहीं है, जैसा तुम सोचते हो ।"

"क्या ?" शकूर और किरायेदार दोनों एक साथ चिल्ला उठे—"क्या ?"

"मेरी भी एक सबसे कीमती चीज लेती गयी है वह, जिसके सामने तुम्हारी चीजोंका मूल्य कुछ भी नहीं है ।"

"और वह ?" शकूर बोला ।

जुगलने एक लम्बी सांस ली और अपने कलेजेको जोरसे दबाकर कहा—"मेरा दिल......"



हमारे भावी राष्ट्रपति मौलाना आजाद

श्री चन्द्रमाधव शर्मा

इस वर्ष राष्ट्रपतिके पदके लिए निर्वाचन-क्षेत्रमें दो महानुभाव थे—(१) मौलाना अबुल कलाम आजाद और (२) श्रीयुत मानवेन्द्रनाथ राय। पर देशने बहुमतसे मौलाना अबुल कलाम आजादको ही अपना राष्ट्रपति मनोनीत कर लिया है। त्रिपुरीके बाद गांधीवादकी यह तीसरी शानदार विजय है। आज भारतवर्षमें ऐसा कोई अन्य मुसलिम नेता नहीं है, जिसे मौलाना साहबके समान सभी दलों, वर्गों और जातियोंका विश्वास प्राप्त हो। यही कारण है कि गांधीजी भी उनपर पूरा भरोसा रखते हैं। उनपर महात्माजीके प्रगाढ़ विश्वासका पता तो इसीसे चलता है कि ऐसे कठिन अवसरपर—जब भारतवर्षकी राजनीतिक समस्या बड़ी जटिल हो रही है, संसार तूफान और बवण्डरसे परिपूर्ण हो रहा है, पग-पगपर खतरेका भय है—गत वर्ष महात्माजीने कांग्रेस-जैसी महती संस्थाकी बागडोर मौलाना साहबके हाथमें ही सौंपना निरापद समझा था। यह दूसरी बात है कि झगड़ेसे दूर रहनेके विचारसे स्वभावतः मौलाना साहबने ही उस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया।

मौलाना साहबका जन्म सन् १८८८ ई० में इसलामकी पुण्य-नगरी, मक्कामें हुआ था। होश-हवास संभालनेपर शिक्षा-प्राप्तिके लिए वह कैरोके अल-अजहर विश्व-विद्यालयमें भेज दिये गये, जो मुसलिम-जगत्का एक प्रसिद्ध विश्व-विद्यालय है। विश्वास नहीं होगा, केवल १९ वर्षकी अवस्थामें यह अरबी, फारसी और इसलामी धर्म-ग्रन्थोंके धुरन्धर विद्वान् हो गये। आज वह बावन वर्षके हैं और हैं दर्शन और वेदान्तके प्रकाण्ड पण्डित। इसलामके तत्त्वोंको उनसे बढ़कर समझनेवाला दूसरा मुसलमान सम्भवतः भारतवर्षमें नहीं है। कुरानकी उनकी टीका अनुपम है।

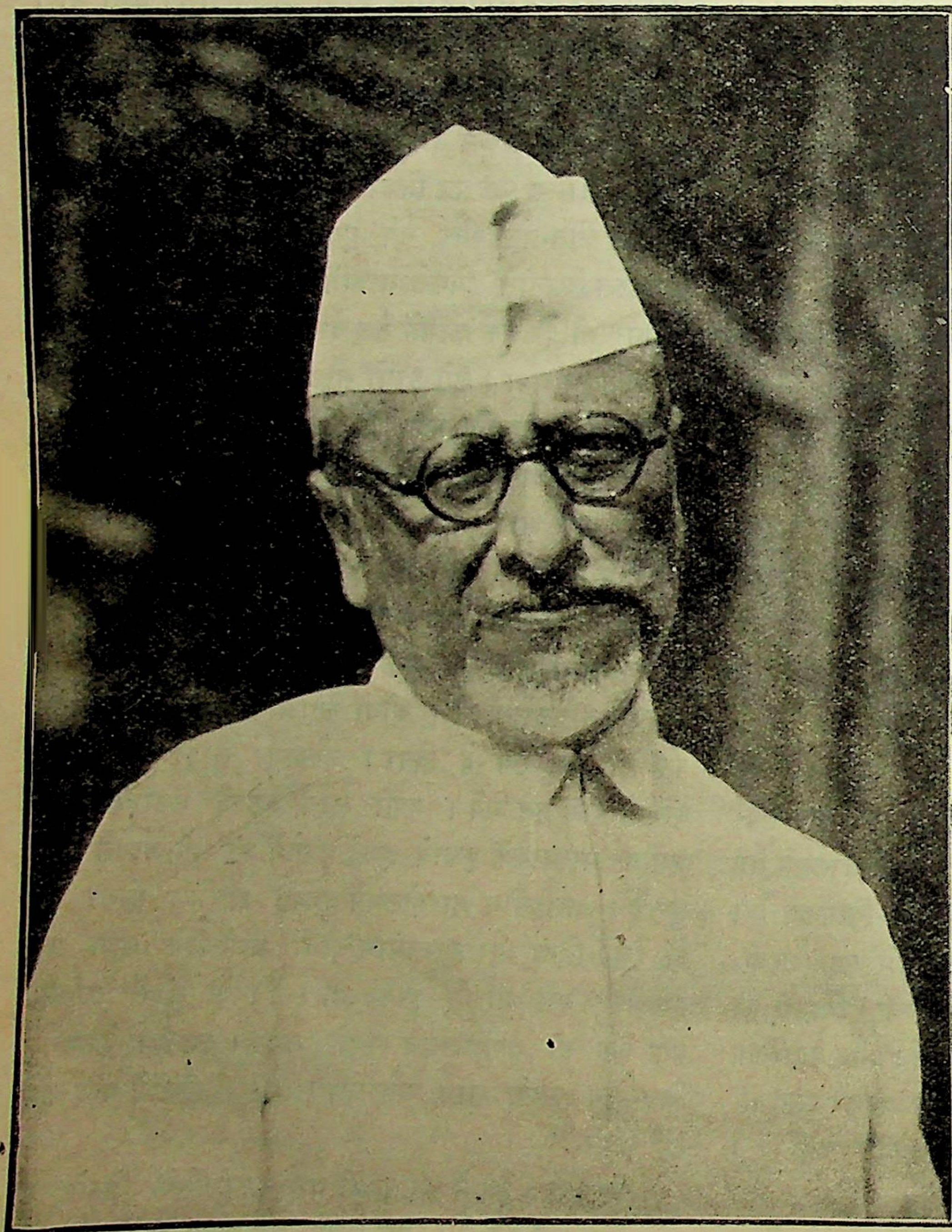
विश्व-विद्यालयकी पढ़ाई खतम करनेपर वह अपनी पितृ-भूमि, भारतवर्षको लौटनेका विचार करने लगे। सन् १९१२ ई० में वह भारतवर्ष लौटे और कलकत्तेमें रहने लगे। जानते हैं, यहां आकर इस महापुरुषने क्या किया? इन्हें इसलाम खतरेमें नहीं मालूम हुआ। हिन्दू और मुसलमान, दोनों इन्हें एक वृक्षकी दो शाखें जान पड़े। इन्होंने उन्हें एक राष्ट्रके रूपमें देखा। स्वतन्त्र वातावरणमें उनका लालन-पालन हुआ था। सैयद जगलुल पाशाके साथ मिश्रमें वह स्वतन्त्रताकी लड़ाई लड़ चुके थे। विदेशियोंके हाथसे भारतकी दुर्दशा भला उन्हें कब भली मालूम हो सकती थी? उन्होंने तुरन्त 'अल-हिलाल' नामक एक पत्र निकाला। यह पत्र क्रान्तिकी भावनाओंसे ओत-प्रोत और नये युगका अग्रदूत था। उनकी सिद्धहस्त लेखनीसे निकले भावोंने देशमें आग लगा दी। सरकार भी देर तक कानमें तेल डाले बैठी न रह सकी। वह पत्र जब्त हो गया। लगे हाथों मौलाना साहबने 'अल बलाग' नामक दूसरा पत्र निकाला। इतनेमें यूरोपीय महायुद्ध छिड़ गया और खिलाफतको लेकर भारतीय मुसलमानोंमें बगावतके आसार नजर आने लगे। सन् १९१६ ई० में मौलाना साहब नजरबन्द कर लिये गये। भारतवर्षमें गांधीजीके रङ्गमञ्चपर प्रकट होनेसे पहलेकी यह बात है।

नजरबन्दीसे इनके मुक्त होनेपर गांधीजीने असहयोग आन्दोलन चलाया था। दोनों नेताओंने खिलाफतके झगड़ेको राष्ट्रीय रूप दे दिया। मौलाना साहब गांधीजीके दाहिने हाथ बन गये। तबसे सदैव देशकी भलाईके लिए जमीन-आसमानके कुलावे इकट्ठे करनेमें वह जी-जानसे जुटे हुए हैं। असहयोग आन्दोलनमें इनका शामिल होना था कि देशमें हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियोंके लोग सर हथेलीपर रखे मालूम होने लगे। जिनके मुंहसे सुनिये, बस एक ही तराना सुन पड़ने लगा। स्वर्गीय देशबन्धु चित्तरञ्जन दासके साथ मौलाना साहब सीखचोंमें बन्द कर दिये गये।

सन् १९२३ ई० में वह पहली बार राष्ट्रपतिके जिम्मेदार पदके लिए चुने गये थे। उस समय वह युवक ही थे। इतनी कम उम्रमें अभी तक कोई नेता इस उच्च पदको सुशोभित नहीं कर सका है। भद्र अवज्ञा आन्दोलनके समय सन् १९३० ई० में भी वह स्थानापन्न राष्ट्रपति रह चुके हैं।

कांग्रेसके प्रति उनकी भक्ति अगाध है। महात्मा गांधीके

सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तको समझनेवाले इने-गिने महा-पुरुषोंमें वह भी हैं। उनका स्वभाव सदा नम्र रहा है और पारस्परिक दांताकिलकिलसे उन्हें काफी सदमा पहुंचता है। जब-जब देशमें ऐसा अवसर आया है, तब-तब उन्होंने उसे शान्त करनेकी चेष्टा की है। सन् १९२३ ई० में जब स्वर्गीय देशबन्धुने स्वराज्य पार्टी स्थापित करके कांग्रेसकी शक्तिका ह्रास करना चाहा था, तब उन्होंने ही उस झगड़ेको दफ-नाया था। अभी भी जहां कहीं ऐसा मौका आता है, उनकी पूछ होती है। अभी कुछ ही दिनोंका तो जिक्र है, उन्होंने ही सीमाप्रान्तमें कांग्रेस मन्त्रिमण्डलको भङ्ग होते-होते बचाया था।



भावी राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आजाद

हकीम अजमल खां और डा० अन्सारीके बाद हिन्दू-मुसलिम एकताके लिए एड़ी-चोटीका पसीना इकट्ठा करने वाले कांग्रेसी मुसलिम नेताओंमें मौलाना साहब और सरहदी गांधीका स्थान बहुत ऊंचा है, क्योंकि वे इसलामके हितैषी हैं। जहां एक ओर वह इसलामके नियमों और तत्वोंमें पारङ्गत हैं, वहां दूसरी ओर वह समयके रुखको देखकर चलना भी खूब जानते हैं। वह इसलामको हजरत मुहम्मदके सच्चे इसलामके रूपमें देखना चाहते हैं। हिन्दू-मुस-लिम झगड़ेको देशके आर्थिक और नैतिक हितकी दृष्टिसे वह घातक मानते हैं। इसीलिए बुढ़ापा और रोगके चंगुलमें फंसे रहनेपर भी जहां कहीं झगड़ा खड़ा होता है, वह वहां शान्तिके दूतके रूपमें पहुंच जाते हैं। दूसरे शब्दोंमें उन्हें कांग्रेसका शान्ति-स्तम्भ कहना अनुचित न होगा। शिया-सुन्नीके झगड़ेको शान्त करनेमें अपने व्यक्तित्वका प्रयोग करना उन्हींका काम था। हिन्दू-मुसलिम झगड़ा आज एक अदनी-सी बात हो गयी है। आज तक किसीने मौलाना साहबको हिन्दुओंके विरुद्ध होंठ अलगाते नहीं देखा है। धन्य है उनकी महानता!

ये ही कुछ कारण हैं, जिससे मुसलिम लीगको वह फूटी आंखों भी नहीं सुहाते। लीगके प्रेसिडेण्टने कलमा-कुरानके इतने बड़े विज्ञ और नमाजीको काफिर होनेका फतवा दे दिया है। राजनीतिक दांव-पेंचमें ही क्या, धार्मिक कृत्योंमें

भी मुसलिम लीग मौलाना साहबको देखना नहीं चाहती। कलकी बात है, मुसलिम लीगी मनचले भाइयोंने उन्हें कलकत्तेके मैदानमें ईदकी इबादत नहीं करने दी। यदि वह चाहते, तो एक बड़ा भारी बवाल खड़ा हो सकता था। पर शान्तिप्रिय मौलानाने धार्मिक कार्यमें विघ्न पड़ना पसन्द नहीं किया। तनिक भी पेशानीपर शिकन नहीं—मनमें दुख नहीं। टल गये वहांसे वह। कैसी है उनकी हृदय-विशालता और क्षमाशीलता? उन्होंने उन्हें भाई समझकर क्षमा कर दिया।

बचपनसे ही अल-अजहर विश्व-विद्यालयमें अरबी और फारसीमें शिक्षा पानेपर भी राष्ट्र-हितके लिए एक लिपिका होना वह आवश्यक समझते हैं। उनके विचारसे एक ही ऐसी लिपि होनी चाहिए जो भारतकी विभिन्न लिपियोंके बदले सरलतापूर्वक काममें लायी जा सके।

उनके किन-किन गुणोंका वर्णन किया जाय? वह क्या नहीं हैं? वह लेखक हैं, वक्ता हैं, निस्पृह हैं, सरल हैं, सहृदय हैं, मानसिक सङ्कीर्णतासे परे हैं और हैं सत्य-अहिंसाके पक्के पुजारी। उस मनस्वीको देखकर कौन कह सकता है कि वह हिन्दू नहीं, मुसलमान हैं। उनके नेत्रोंकी सरलता और चेहरेकी भावुकता ही यह बतानेको बस हैं कि उनके पोर-पोरसे सदाशयता टपकती है। उनके इन गुणोंपर भारतवासी फूले नहीं समाते और सगर्व कहते हैं—ऐसे नायकको पाकर हम धन्य हैं। हमें पूर्ण विश्वास है कि राष्ट्रपति आजादके नेतृत्वमें भारत अपने लक्ष्यकी ओर अग्रसर होकर रहेगा।

युद्ध : एक वैज्ञानिक विश्लेषण

श्री गणेशदत्त "इन्द्र"

"मन, वाणी और कर्मसे किसीको कष्ट पहुंचाना हिंसा है", यह हिंसाकी एक मोटी परिभाषा है। परन्तु इसके सूक्ष्म विवेचनकी नितान्त आवश्यकता है, अन्यथा गड़बड़ी हो जावेगी। क्योंकि अपराधियोंको दण्ड देनेवाला शासक और बदमाश विद्यार्थियोंको दण्ड देनेवाला गुरु हिंसक नहीं माना जाता और न इनके दण्डको हिंसा ही कहा जा सकता है। पिता अपने पुत्रको आवश्यकता पड़नेपर दण्ड देता है—परन्तु उसे कोई हिंसा नहीं कहता। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किसीको कष्ट देना मात्र ही हिंसा नहीं मानी जा सकती। अकारण ही किसीको स्वार्थवश कष्ट पहुंचाना हिंसा है। जिसे कष्ट नहीं पहुंचाना चाहिए, उसे कष्ट देना हिंसा है। समाज और राष्ट्रको लाभ पहुंचानेवाले मनुष्य, प्राणी अथवा वस्तुको कष्ट पहुंचाना ही हिंसा है। उपयोगी वस्तुको हानि पहुंचाना हिंसा है और हानिकर वस्तुको नष्ट कर देना हिंसा नहीं है। भारतवर्षमें यही सिद्धान्त हमेशासे चला आता है, और इसीपर हिंसा-अहिंसाकी नींव पड़ी है। गौ चूंकि उपयोगी प्राणी है, अतएव उसे "अघ्न्या" कहते हुए "गोर्ममाता-ऋषभः पितामे" कहा है; किन्तु सर्प और बिच्छू आदि हानिकर प्राणियोंके लिए स्पष्ट उल्लेख है कि "घनेनहन्मिवृश्चिकम् अहिदण्डेनमागतम्।" यह हिंसा-अहिंसाकी वैदिक स्पष्ट परिभाषा है।

युद्ध क्या हिंसा है? वह किसी व्यक्ति-विशेषके स्वार्थकी पूर्तिके लिए नहीं होता; बल्कि समाज और राष्ट्रके हितके लिए होता है। युद्धका अर्थ है—शत्रुओंको भगा देना या नष्ट कर देना। यदि शत्रु भाग जावे या अपनी पराजय स्वीकार कर ले, तो युद्ध बन्द हो जाता है। क्योंकि जिस लिए युद्ध किया जाता है, वह उद्देश्य पूरा हो जाता है। युद्धका एकमात्र उद्देश्य शत्रुपक्षकी इच्छाओं और कार्योंको बर्बाद करना होता है। वह युद्ध मुंहसे भी हो सकता है, हाथोंसे हो सकता है, हथियारोंसे हो सकता है या हवाई जहाजोंसे भी हो सकता है। किसी भी तरह हो, युद्ध युद्ध ही होगा। भेद इतना ही है कि यदि युद्धनेता सभ्य और धार्मिक वृत्तिवाला, मनुष्यत्वसे परिपूर्ण है, तो वह कमसे कम प्राणियोंकी भेंट चढ़ाकर सफलता पानेका प्रयत्न करेगा। और यदि

युद्धके सञ्चालकमें बर्बरता, निर्दयता और पशुताके भावोंका प्राबल्य है, तो वह छोटेसे छोटे कार्यकी सिद्धिमें अधिकसे अधिक मनुष्योंकी भेंट चढ़ा देनेमें नहीं हिचकिचावेगा—जैसे इटलीका मुसोलिनी और जर्मनीका हिटलर। युद्धमें शत्रुको परास्त करनेके लिए सबसे सुगम उपाय यही है कि युद्ध-सामग्री उसकी नष्ट कर दी जावे। चूंकि सामग्रियोंमें मनुष्य-का सर्वप्रथम स्थान है, अतएव मनुष्योंके मारनेका कार्य सर्वप्रथम किया जाता है, उसके बाद दूसरे साधनोंको नष्ट किया जाता है। युद्धमें हिंसा आवश्यक है; किन्तु युद्धका उद्देश्य हिंसा नहीं है। युद्धका उद्देश्य तो शत्रुपक्षको निर्बल करके उसपर विजय प्राप्त करना है, फिर वह चाहे हिंसासे प्राप्त हो या बिना हिंसाके हो। इसलिए युद्धको हिंसा कहना ठीक नहीं है।

युद्धकी हरएक जाति और हरएक राष्ट्रको आवश्यकता रही है और रहेगी। यह अनिवार्य है। जहां दो विरोधी शक्तियां उत्पन्न हुईं कि युद्ध ठना। प्रबल शक्ति निर्बलको परास्त करके अपने अधीन कर लेती है या नष्ट कर देती है। भलाई और बुराई दोनों एक स्थानपर अधिक समय तक नहीं रह सकतीं। धर्म और अधर्मका साथ रहना असम्भव है। इसलिए युद्ध एक स्वाभाविक बात है। जब बुराई भलाईको दबानेके लिए खड़ी हो जावे या भलाई बुराईको दबानेका प्रयत्न करे, तो युद्ध ठनेगा ही। बुराईकी जय होनेमें हानि और भलाईकी विजय होनेमें लाभ है। यदि बुराईने विजय प्राप्त की, तो कुछ दिन बाद फिर भलाई उसपर आक्रमण करेगी। इसी तरह यदि भलाई जीत गयी, तो समय पाकर फिर बुराई उसे कुचलनेको खड़ी होगी। यही युद्ध है, जो अनिवार्य है। इसकी हरएक जाति और हरएक राष्ट्रके लिये सदैव आवश्यकता समझी जाती है। वान बनहार्डीका मत है कि :—

"War has its ideal side and peace has its blessing".

अर्थात्—जिस प्रकार शान्तिमें आनन्द है, उसी तरह युद्धमें भी एक आदर्श है।

"The more deeply we penetrate into history, the more clearly we recognise that peace is the normal and the dasirable state, but that wars are required from time to time in order to cleanse the moral atmosphere."

ज्यों-ज्यों हम इतिहासका गहरा अध्ययन करते हैं, त्यों-त्यों हम जानने लगते हैं कि शान्ति आवश्यक वस्तु है; परन्तु नैतिक वातावरण शुद्ध करनेके निमित्त समयपर युद्धोंकी भी आवश्यकता है। केण्ट शोपेनहार लिखता है :—

"Whenever we look in nature, we find that war is fundamental law of development."

अर्थात्—'जहां कहीं आप देखेंगे, वहां पावेंगे कि विकास-के लिए युद्ध स्वाभाविक व्यापार है।' हम देखते हैं कि पशु-पक्षी भी आपसमें लड़ते हैं। जहां विरोधी भावनायें पैदा हुईं कि युद्ध अनिवार्य हो जाता है, यह प्राकृतिक नियम है।

किसी भी देशके इतिहासको उठाकर देख लीजिये, उसमें युद्धोंके वर्णन अवश्य मिलेंगे। हम यह कह आये हैं कि दुष्ट लोग युद्धके बहाने अपना मतलब बनाते रहते हैं। साधु और धर्मात्मा पुरुष जो युद्ध करते हैं, वह स्वार्थपूर्ण नहीं होता; बल्कि उसमें जनहितकी प्रधानता रहती है। दुष्टोंका काम हमेशा प्रथम प्रहार रहता है, और सज्जनोंका काम उनका निवारण हुआ करता है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रने रावणपर चढ़ाई नहीं की; बल्कि जब रावणने उनसे अत्यधिक छेड़छाड़ की और उनकी पत्नीको चुरा ले गया, तब इस बहाने उस भारत-द्रोही शक्तिका विनाश करना उन्हें आवश्यक हो गया। इसी प्रकार श्रीकृष्ण-चन्द्रने सैकड़ों निरपराध धर्मात्माओंको जेलोंसे छुड़ानेके लिए और साम्राज्य-लिप्साका जनाजा निकालनेके लिए कंस, जरासन्ध, शिशुपाल, दुर्योधन आदिका वध किया और दूसरोंके हाथों कराया। फ्रान्सने भी शासकके अत्याचारोंसे पीड़ित हो क्रान्तिकी पताका फहरायी थी। रूसने जारशाहीका खात्मा किया। जो धार्मिक और परोपकारी थे, उन्होंने युद्धको अपने उद्धारका मार्ग समझ-कर अच्छी तरह प्रयोग किया और जो दुष्ट थे, उन्होंने युद्धका दुरुपयोग किया। जो लोग युद्धमें हिंसाका भाव लिये बैठे थे, उनका सत्य पक्ष होते हुए भी हार हुई और असत्यकी विजय हुई। अशोक एक अतुल बलशाली,

बुद्धिमान एवं दूरदर्शी शासक था; परन्तु राजा होकर हिंसा-अहिंसाके चक्करमें पड़कर भिक्षु बना और फलतः मौर्य साम्राज्यका अन्त हो गया। चन्द्रगुप्तने मौर्य साम्राज्य-की स्थापना की, उसने हिंसा-अहिंसाकी परवाह न करके अपने कर्तव्यका पालन किया, परिणाम सभीको ज्ञात है कि सिल्यूकसको मुंहकी खानी पड़ी। चन्द्रगुप्त जानता था कि देश और जातिकी रक्षाके लिए युद्ध हिंसा नहीं है।

यह सिद्धान्त ठीक है कि "सत्यकी जीत होती है;" परन्तु केवल सत्य ही नहीं जीतता। निर्बलोंके पास सत्य भी निर्बल हो जाता है और सबलोंका असत्य भी बलवान होता है। शिवाजी बलवान थे, वे सत्यके लिए युद्ध किया करते थे, अतएव उनके थोड़े-से सैनिक भी कमाल कर जाते थे। धार्मिकतासे जय-पराजयका विशेष कोई सम्बन्ध नहीं है। जहां सङ्गठन-शक्ति, उत्साह और सुन्दर नेतृत्व होता है, वहीं विजय-श्री दिखाई पड़ती है। सत्य और अहिंसा ही क्या, कोई भी वस्तु निर्बलोंके हाथोंमें निर्बल और सबलोंके हाथोंमें सबल बन जाया करती है। निर्बल हमेशा सत्य, धर्म, अहिंसा आदिके नामपर अत्याचारोंके विरुद्ध न लड़कर कह दिया करते हैं कि "ईश्वर स्वयं अवतार लेकर पापियोंका संहार किया करता है।" लेकिन सच तो यह है कि ईश्वर अगर सत्यका प्रतीक है, तो शक्तिका भी वह प्रतीक है।

युद्ध क्यों होता है? यदि दोनों पक्ष सच्चे हुए और दोनोंने एक-दूसरेके अधिकारोंका ध्यान रखा, तो युद्ध नहीं हो सकता। जहां कहीं भी आप युद्ध देखेंगे, उसमें एक ओर आपको नग्न स्वार्थ मिलेगा। कौरव-पाण्डवोंका युद्ध हमारे सामने उदाहरण है। पाण्डव वनवास और अज्ञातवास समाप्त करके अपना अधिकार चाहते हैं; परन्तु दुर्योधन बिना युद्धके सूईके अग्रभागके बराबर भी जमीन नहीं देना चाहता। है न नग्न स्वार्थ? बेचारा युधिष्ठिर तो कहता है :—

"सर्वथावृजनं युद्धं कोघ्नन्नप्रतिहन्यते।"

युद्ध हमेशा दुःखका कारण है। युद्धको तो विद्वानोंने कुत्तेसे उपमा दी है :—

"तेच्छुनामिव सम्पाते पण्डितैरुपलक्षितम्।"

इसलिए यदि दुर्योधन शान्ति चाहता है, तो :—

"पञ्चनस्तातदीयन्तां ग्रामावानगराणिवा।"

हमें केवल पांच गांव या पांच नगर ही दे दे, ताकि हम पांचों भाई उनमें रह लें। धर्मराजका सत्य पक्ष था, उचित मांग थी; किन्तु स्वार्थी दुर्योधनने युद्धको ही ठीक समझा। इसी प्रकार श्रीरामने सीतादेवीके लौटानेको रावणके पास सन्देशा भेजा। ऐसी दशामें आप देखेंगे कि युद्धके लिए समुद्यत एक पक्षमें उसका स्वार्थ निहित होगा।

यदि एक पक्ष निर्दोष है और कोई उसपर झपटता है, तो वह निर्दोषी जो युद्धमें उतरकर उसका सामना करता है, उसका वह कार्य हिंसा नहीं है। जैसे, चीन जापानका सामना कर रहा है, इसमें चीनका युद्ध हिंसा नहीं कहा जा सकता। जापानका आक्रमण स्वार्थपूर्ण होनेसे हिंसा है। अबसीनियाने इटलीसे युद्ध किया, वह हिंसा नहीं थी। पोलैण्डने जर्मनीसे लोहा लिया, वह हिंसा नहीं थी। आत्म-रक्षाके लिए किसी जाति या राष्ट्रका युद्धाङ्गणमें अवतीर्ण होना कदापि हिंसा नहीं है। जहां दोनों पक्ष अपने-अपने स्वार्थोंके कारण युद्ध करें, वह युद्ध हिंसामय माना जावेगा।

युद्धोंको तीन भागोंमें बांटा जा सकता है—(१) हिंसा-मय, (२) अहिंसामय और (३) हिंसा-अहिंसामय। आजकलके युद्ध लूटखसोटके लिए या बदला लेनेके लिए अधिकांश होते हैं। जैसे जर्मनीने दुर्बल राष्ट्रोंको हड़पनेके उद्देश्यसे उनपर आक्रमण किया। परन्तु हम देखते हैं कि इसमें भी धूर्त राष्ट्र धर्मकी दुहाइयां देने लगते हैं। वे कहते हैं, हम न्यायके लिए लड़ रहे हैं, संसारमें शान्ति स्थापित करनेके लिए यह युद्ध किया जा रहा है (जैसा युद्ध जापान चीनमें कर रहा है, सुदूर पूर्वमें शान्तिमय नयी व्यवस्थाकी स्थापनाके लिए), निर्बल जातियोंकी रक्षाके लिए हमारा यह संग्राम है, साम्राज्यवादके विरुद्ध हमारी यह युद्ध-घोषणा है (जैसा रूस फिनलैण्डमें कर रहा है), असभ्योंको सभ्य बनानेके लिए हम जूझ रहे हैं (इटलीने अबसीनिया-को सभ्य बनानेके लिए युद्ध किया था) इत्यादि श्रुतिमधुर और आकर्षक वाक्यों द्वारा अपनी बेईमानी, बर्बरता और स्वार्थपरायणतापर पर्दा डालकर लोगोंकी आंखोंमें दिनदहाड़े धूल झोंकनेका काम करते हैं। हरएक विदेशी सत्ताने जिस देशमें अपना पञ्जा जमाया, उसके लिए ऐसे ही बहाने उसने बनाये हैं। ऐसे सभी युद्ध हिंसामय कहे जावेंगे।

अपनी रक्षाके लिए किये गये युद्ध, अपने अधिकारों और स्वत्वोंकी रक्षाके लिए किये गये युद्ध, निर्बलोंकी सहायताके लिए किये गये युद्ध अहिंसामय युद्ध कहे जावेंगे।

हिंसा-अहिंसामय युद्ध वह है, जिसमें एक पक्ष अन्यायी हो और दूसरा पक्ष आत्मरक्षाके लिए युद्धमें विवश होकर उतरा हो। अबसीनिया, जेकोस्लोवेकिया, पोलैण्ड, फिनलैण्ड आदि देशोंके युद्ध इसी प्रकारके कहे जा सकते हैं।

युद्धमें सेनाओंका एक-दूसरेके मुकाबलेपर आना आवश्यक है। युद्ध-क्षेत्रमें होनेवाले कार्योंपर भी हिंसा-अहिंसाका विवेचन निर्भर है। आज जो छल-कपटपूर्ण युद्ध-नीति व्यवहृत है, वह हिंसापूर्ण है। वायुयानोंसे बम बरसाना, तारपीडो द्वारा जहाजोंको नष्ट कर देना, समुद्रमें सुरङ्गें बिछा देना, जहरीली गैसें छोड़ना, बीमारीके कीटाणुओंको छोड़ना, गुप्तस्थानोंमें घातक पदार्थोंको रख छोड़ना इत्यादि। हमारे प्राचीन युद्ध-नियमोंको देखनेसे पता चलता है कि उस समयके युद्धोंमें अहिंसावृत्तिकी कैसी प्रबल भावनायें थीं। गौतम कहते हैं :—

"नदोषोहिंसायामाहवेऽन्यत्र व्यश्वसारथ्य—
नायुधकृताञ्जलिप्रकीर्णकेशपराङ्मुखोप
विष्टस्थलवृक्षारूढोन्मत्तदूते गोब्राह्मणादिभ्यः।"

जिसका घोड़ा, सारथि मारा गया हो, जिसके हथियार नष्ट हो गये हों, जो हाथ जोड़े हो, जिसके बाल खुले हों, जो मुंह फेरे हो, जो बैठा हो, जो वृक्षपर चढ़ा हो, जो पागल हो, जो दूत बनकर आया हो, गौ और ब्राह्मण इन्हें छोड़कर औरोंको युद्धमें मारनेसे हिंसा नहीं होती।

चतुर्वर्ग चिन्तामणि पुस्तकमें लिखा है कि—

"रथीच रथिनासार्द्धं पदातिश्चपदातिना।
कुञ्जरस्थो गजस्थेन योद्धव्योभृगुनन्दनः॥"

अर्थात् रथी रथीके साथ, पैदल पैदलके साथ, हाथीवाला हाथीवालेके साथ युद्ध करे। कहिये, ऐसे युद्धको कैसे हिंसामय माना जा सकता है? उत्तर रामचरित्रके पाठकोंको मालूम होगा कि लव और चन्द्रकेतुमें युद्ध हुआ। चन्द्रकेतु रथपर था, अतएव उसने लवको रथपर बैठकर युद्ध करनेका बार-बार आग्रह किया, परन्तु जब लवने उसकी एक न सुनी, तब वह भी रथसे नीचे उतरकर युद्ध करने लगा —

"एषसंग्रामिकोन्याय एषधर्मः सनातनः।
इयं हि रघुसिंहानां बीर चारित्र पद्धतिः॥"

जरासन्ध और भीमसेन तो युद्धके समय आपसमें गदा बदल लेते। एकके थक जानेपर दूसरा प्रहार बन्द कर देता था। रात्रिको एक ही भवनमें सोते और साथ-साथ भोजन करते थे। ऐसे युद्ध कभी भी हिंसा नहीं कहे जा सकते। संसारमें शान्ति-स्थापनके लिए, निर्बलोंकी रक्षाके लिए, जो युद्ध किया जाय, वह हिंसा कदापि नहीं मानी जा सकती। किन्तु स्मरण रखना चाहिए, आज इन्हीं सिद्धान्तोंकी ओटमें चालाक और धूर्त राष्ट्र संसारमें अशान्ति उत्पन्न करनेवाले सिद्ध हो रहे हैं। रक्षा-नियम, शान्ति और शासनके बहाने अपना नग्न स्वार्थ सिद्ध करनेमें लगे हुए हैं। अतः युद्ध तो केवल साधन है, और इसके साध्यकी ओर देखना आवश्यक है।

सारांश यह कि युद्ध स्वयं न तो हिंसा है और न वह अहिंसा है। हिंसा-अहिंसा केवल युद्धके उद्देश्य और अभिप्रायपर अवलम्बित हैं।





विभिन्न देशोंमें गार्हस्थ्य शास्त्रकी शिक्षा

अमेरिकामें कितने ही विश्वविद्यालयों एवं कालेजोंमें युवक-युवतियोंको विवाह एवं दाम्पत्य-जीवन सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। इनके अतिरिक्त ऐसे विद्यालयोंकी भी वहां कमी नहीं है, जिनमें एकमात्र इन्हीं विषयोंकी शिक्षा दी जाती है।

अमेरिकामें जो कुछ इस दिशामें हो रहा है, उसकी सफलतासे दूसरे देशवाले भी प्रभावित हुए हैं और अपने देशकी वैवाहिक समस्याओंको हल करनेके लिए उन्होंने भी इसकी व्यवस्थायें की हैं। आज इंगलैण्ड, जर्मनी, जापान और चीन जैसे देशोंमें भी इसकी व्यवस्थायें हो चुकी हैं।

अमेरिकामें इस दिशामें जो कुछ हो रहा है, उसके सम्बन्धमें इन पृष्ठोंमें कभी प्रकाश डाला जा चुका है। अब यहां कुछ दूसरे देशोंमें होनेवाले तत्सम्बन्धी प्रयत्नोंपर कुछ प्रकाश डाला जायगा। उक्त देशोंके सफल प्रयत्नोंने यह प्रमाणित कर दिया है कि यौन - (सेक्स) शिक्षाको जो आज तक इतना आपत्तिजनक समझा जाता रहा है, उसकी वाञ्छनीयता वर्तमान स्थितियोंमें कहां तक उचित है।

जर्मनीमें—अपने देशके लिए हर हिटलरका नया प्रयत्न सब श्रेणीकी पात्रियोंके लिए विवाह-विद्यालय स्थापित करना है।

आप जानते ही होंगे कि जर्मनीमें बनाव-सिङ्गारके जितने भी कृत्रिम उपादान हैं, उन सबका व्यवहार बड़ी कठोरताके साथ बन्द कर दिया गया है। लिपस्टिकको विषकी भांति वर्जित करार दिया गया है, मुखमण्डलपर नकली रङ्ग लगाकर अप्सरा बननेकी गुञ्जायश भी वहां नहीं है। अतएव इस विद्यालयमें रूप और विलास-वर्धक शिक्षा न दी जायगी, प्रत्युत् बच्चोंकी स्वास्थ्यरक्षा, उनका लालन-पालन, उनका आदर-मान आदि बातोंकी सूक्ष्म एवं व्यावहारिक शिक्षा दी जायगी। सीना-पिरोना और घरके और कामोंकी भी शिक्षा मिलेगी।

अविवाहित हिटलर जर्मनीकी प्रत्येक युवतीको चतुर गृहिणी बना देना चाहता है। वह नहीं चाहता कि युवतियां जर्मन सतरङ्गे कपड़े पहनकर तितलियोंकी तरह उड़ती फिरें। केवल रूपकी चमक, केवल फैशनकी फीकी प्रतिद्वन्द्विता, केवल विलासका सर्वनाशी स्रोत कर्मवीर जर्मन जातिमें किसी तरह प्रवाहित न हो सके—स्थान न बना सके, इसीलिए हिटलरने यह नया प्रयास किया है। वह कहता है, जर्मनीको वे बच्चे चाहिए, जिनमें स्वास्थ्य स्वयं बोलता हो—दूसरोंको बुलाता हो। वे ही जर्मनीके भावी वंशधर हो सकते हैं। सन्तति-विरोधकी मांग और प्रसूताके स्वास्थ्यको ठीक रखनेकी निरर्थक सतर्कताने हिटलरको विरक्त कर दिया है। वह इन सब व्यर्थकी बातोंको सदाके लिए जर्मनीसे निर्वासित कर देना चाहता है।

हिटलरकी युक्ति चाहे जो हो, लेकिन जिस दिन यह विद्यालय खुला था, उस दिन २९ सुरूपा और स्वस्थ नारियां शिक्षा ग्रहण करने आ गयी थीं। उनमेंसे एकने जब बच्चोंके कमरेमें प्रवेश किया, तो उत्तेजनाके साथ चिल्ला उठी—"सचमुच यह एक सजीव बालक है!" लेकिन उसने गलत समझा

था। जिसको उसने जीवित शिशु बताया था, वह खिलौना था—बच्चा नहीं। नहीं देखनेमें वह अवश्य बालक जैसा ही था। योग्य माता होनेका लायसेन्स प्राप्त करनेके लिए यह खिलौना ही पर्याप्त है।

जब यह योजना पूर्ण हो जायगी, समस्त जर्मनीमें तमाम विवाह-विद्यालय खुल जायं, तब कोई भी व्यक्ति किसी ऐसी युवतीसे विवाह न कर सकेगा, किसी ऐसी स्त्रीके विवाहका अधिकार भी स्वीकार न किया जायगा, जिसे विवाह-विद्यालयमें प्रमाणपत्र और माता बननेका लायसेन्स न मिल गया हो। फिलहाल केवल उन स्त्रियोंको ही प्रमाणपत्र और लायसेन्स विवाहका अधिकार प्राप्त करनेके लिए उपस्थित करना पड़ेगा, जो किसी सैनिकसे विवाह करना चाहती हैं।

विद्यालयका पाठक्रम ६ सप्ताहका है और दस पौण्ड खर्च लगता है। गरीब लड़कियोंसे खर्च नहीं भी लिया जाता, लेकिन उन्हें यह प्रमाणित करना पड़ता है कि उनकी सगाई हो गयी है। विद्यालयमें शिक्षा देनेवाली सब स्त्रियां अविवाहित हैं। कभी-कभी मातृत्वका प्रत्यक्ष अनुभव रखनेवाली महिलायें भी उपदेश देनेके लिए निमन्त्रित की जाती हैं। शिक्षार्थियोंको गृह-कार्योंमें मितव्ययिताका पाठ भी पढ़ाया जाता है।

जापानका अनुकरण—यूरोप जिस तरफ मुंह देखकर चलता है, जापान भी उसी तरफ दौड़ता है। यूरोपमें विवाह-विद्यालय खुले और जापानमें हलचल मच गयी। तीन बड़े शहरोंमें विवाह-विद्यालय स्थापित हो गये। इन विद्यालयोंमें और सब बातें वही हैं, जो दूसरे विद्यालयोंमें। अन्तर इतना ही है कि जापानी विवाहेच्छुक युवतियोंके दाम्पत्य जीवनके प्रारम्भिक नियमोंकी शिक्षा भी देते हैं।

ब्रिटेनकी योजना—"कौन्सिल आव मैरेज गाइडेंस" अर्थात् विवाह-पथ-प्रदर्शक परिषदका गठन करना ही ब्रिटेनकी योजना है। पिछले दिनों लन्दनकी एक सभामें निश्चय किया गया कि सारे देशमें विवाह-विद्यालयोंमें विवाहेच्छुक युवतियों और युवकों, दोनोंको वैवाहिक जीवनमें शान्ति और सौख्य रखनेका कौशल बताया जाय। वे बाधायें भी समझायी जायें, जो दाम्पत्य जीवनके मधुमें कीड़े डाल देती हैं। विशेषज्ञ इस बातकी चेष्टा करें कि जो विवाह-सम्बन्ध आसन्न विच्छेदके भयसे आतङ्कित हैं, उनमें भी प्रेमकी नव-प्रेरणा सञ्चारित हो। फिलहाल इन विद्यालयोंके लिए शिक्षक तैयार किये जायंगे, उनको उपयोगी शिक्षा दी जायगी, उनमें अधिक चिकित्सक होंगे, कुछ धर्मोपदेशक और कुछ सामाजिक कार्यकर्ता भी रखे जायंगे—शिक्षकोंमें भी स्त्री पुरुष दोनों होंगे।

शिक्षकोंकी शिक्षा समाप्त होनेपर विद्यालय खुलेंगे—दाम्पत्य जीवनकी शान्तिके लिए संग्राम आरम्भ होगा। समस्याके प्रत्येक अङ्गपर प्रकाश डालनेके लिए स्वतन्त्र विभाग बनाये जायंगे। शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक सभी विभाग होंगे।

उक्त सभामें बोलते हुए प्रसिद्ध चिकित्सक डाक्टर इथेल ड्यूक्स मेडिकल डाइरेक्टर आव दि इन्स्टीट्यूट आव चाइल्ड साइकालोजीने कहा था—

जो लोग विवाहित स्त्रियों और पुरुषोंके संसर्गमें आये हैं, वे तलाककी बढ़ती तादादसे परेशान हो रहे हैं। दिन-दिन संख्या बढ़ती ही जा रही है। तलाकके परिणामस्वरूप दम्पतिकी अपेक्षा सन्ततिको अधिक कष्ट होता है। माता-पिताके विवाहसे अशान्तिकी जो अग्नि परिवारमें प्रवेश करती है, उसके फलस्वरूप सन्तति भ्रष्ट हो जाती है या और किसी प्रकारसे समाजसे द्रोह करती है। लन्दनमें विवाह-विद्यालय खुलेगा। उसमें विवाहित दम्पति और विवाहकी इच्छा रखनेवाले नर-नारी सदुपदेश प्राप्त करनेके लिए भर्ती हो सकेंगे। विवाहके लिए प्रत्येक नर-नारीको शिक्षा ग्रहण करनी पड़ेगी। इसके सिवा इस देशका यह घोर दुर्भाग्य दूर नहीं हो सकता।

चीनमें विवाह-विद्यालय—शङ्घाईके 'निम्पे' पत्रमें एक समाचार छपा है कि एक जापानी अध्यापक नानकिङ्गमें चीनी लड़कियोंके लिए एक विवाह-विद्यालय खोलनेवाले हैं। इस विद्यालयका उद्देश्य होगा कि चीनी युवतियोंको सन्तान-पालनकी शिक्षा देनेके साथ ही साथ कौशलके साथ ऐसी शिक्षा भी दी जाय, जिससे उनके बच्चे जापानियोंके विरोधी न बनें। पारपलगिरकी किसी उपत्यकामें यह विद्यालय खुलेगा। मैडम चाङ्ग-काई-शेक द्वारा जो स्कूल चल रहा है, यह विद्यालय उसका स्थान लेना चाहेगा। जापानी अध्यापक मि० सुगिमटोने प्रचारित किया है कि इस विद्यालयमें चीनी

विवाहेच्छु युवतियोंको जापानी भाषा, जापानी रहन-सहन, जापानी भोजन, जापानी सङ्गीत आदिकी शिक्षा बड़ी स्वतन्त्रताके साथ दी जायगी। प्रवीण अध्यापकने यह नहीं बताया कि उनके पति किस जातिके, किस देशके होंगे।

मि० जिन्नाके दो परस्पर विरोधी रूप

मि० मुहम्मद अली जिन्ना भारतीय राजनीतिमें प्रारम्भसे ही एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं; पर भिन्न-भिन्न समयोंमें वे कैसे भिन्न रूपोंमें प्रकट होते रहे हैं, यह एक मनोरञ्जक अध्ययनका विषय है। श्री महादेव देसाईका यह अध्ययन काफी मनोरञ्जक एवं ज्ञातव्य है :—

गांधीजीने जिन्ना साहबको जो पत्र लिखा था, उसका और नहीं तो इतना असर तो जरूर हुआ है कि उसके फलस्वरूप जिन्ना साहबने अपनी मान्यताओंको साफ-साफ स्वीकार कर लिया है। परिगणित वर्गों, हिन्दू महासभावादियों, पारसियों और दूसरे लोगोंके साथ मेल करनेके सम्बन्धमें बोलते हुए उन्होंने कहा था कि "किसी हद तक यह बात सच है कि चित्रविचित्र प्राणी भी आफतमें मिलकर साथ-साथ चलें, और किसी हद तक यह भी सच है कि सामान्य हितकी दृष्टिसे मुसलमान और दूसरे अल्पसंख्यक एक हो जायें, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं समझना चाहिए। पर मुझे इस बारेमें कोई भ्रम नहीं है और मैं फिर एक बार कहता हूं कि भारत एक राष्ट्र नहीं है, एक देश भी नहीं है। यह तो भिन्न-भिन्न जातियोंका बना हुआ एक छोटा-सा भूखण्ड है, और इसमें हिन्दू और मुसलमान ये दो मुख्य राष्ट्र हैं।"

जिन्ना साहबके हालके इस काया-कल्पसे पहलेके उनके भाषणों और उद्गारोंको जब हम पढ़ते हैं, तब हमें आश्चर्य होता है कि उन्होंने अपने उन उद्गारोंसे इनकार कर दिया है या इस नये इकरारके रूपमें उन्हें यह इलहाम हुआ है! चाहे जो हो, पर पहलेके राष्ट्रवादी जिन्ना साहबको हम भूल नहीं सकते। मगर लोगोंको शायद याद न हो, इसलिए हिन्दू और मुसलमान दोनोंके ही लिए यह अच्छा होगा कि वे यह जान लें कि जिन्ना साहबके पुराने उद्गार और वचन किस प्रकारके थे। नटेशनकी 'इमीनेण्ट मुसलमान' (प्रमुख मुसलमान) नामक पुस्तिकामें जिन्ना साहबका वर्णन स्व० दादाभाई नौरोजी, गोखले और सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके अनुयायी और 'हिन्दू-मुसलिम-एकताके दूत'के रूपमें उनके कार्योंका वर्णन कई पृष्ठोंमें किया गया है। उनके भाषणोंके कुछ अवतरण हम यहां ले लेते हैं। गोखलेके बारेमें दिये गये एक भाषणमें उन्होंने कहा था :—

"जाती तौरपर गोखलेके एक साथीके रूपमें कुछ साल काम करनेका मुझे सम्मान मिला है। उनकी बातें सुनने और अक्सर उनके पीछे चलनेमें मुझे हमेशा फख़ और खुशी होती थी। गोखलेकी मौतपर लाखों लोग आज शोक मना रहे हैं। पर करोड़ोंके लिए—और खासकर नौजवानोंके लिए—उनका जीवन और उनके कार्य, शिक्षा और प्रेरणा देनेवाले साबित होंगे। एक अवसरपर विलायतमें भारतीय विद्यार्थियोंके सामने भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि 'तुम लोग चाहे जहां रहो और चाहे जो करो, पर अपना मुंह हमेशा हिन्दुस्तानकी ही तरफ रखो, जिस तरह कि जापानी सारी दुनियामें फैले हुए हैं, पर मुंह अपना हमेशा 'निपोन' की तरफ रखते हैं।"

लेजिस्लेटिव एसेम्बलीके एक भाषणमें उन्होंने कहा था :

"मैं यह कहूंगा कि राजनीतिका पहला सबक मैंने सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जीके चरणोंमें बैठकर सीखा था। उनके एक अनुयायीके रूपमें उनसे अपना सम्बन्ध जोड़ा था और उन्हें मैं अपना एक नेता मानता था। देशकी भारी तादादके लोगोंका और मेरा नम्र आदर उनके प्रति था। और दास बाबू तो मेरे जाती मित्र थे।.........इन दो महापुरुषोंके जीवनसे एक ही सबक हम ले सकते हैं, वह यह कि एकतामें ही हमारी मुक्ति है।"

पर जिन्ना साहबके इससे भी पुराने उद्गारोंको मैं यहां उद्धृत करता हूं। १९१६ में अहमदाबादमें जो बम्बई प्रान्तीय राजनीतिक कान्फरेन्स हुई थी, उसके अध्यक्ष-पदसे भाषण देते हुए उन्होंने कहा था :—

"पार्लमेण्टके मेम्बरोंके लिए क्या यह सम्भव या स्वाभाविक है कि हिन्दुस्तानके भीतरी इन्तजाम और प्रगतिके सवालोंको वे समझ सकें या पकड़ सकें? आस्ट्रेलिया, कनाडा और दक्षिण अफ्रीकाके बारेमें तो, जिनकी कि आबादी बहुत कम है, यह सम्भव नहीं है, और फिर भी लन्दनमें बैठी हुई पार्लमेण्ट भारतके प्रश्नोंको सुलझानेका

काम सफलतापूर्वक जारी रखे, तो क्या इसे एक चमत्कार ही नहीं कहा जायगा ?"

इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौन्सिलके १९ मेम्बरोंने, (जिनमें एक जिन्ना साहब थे) नये सुधारों और विधानके सम्बन्धमें जो प्रख्यात मेमोरेण्डम भेजा था उसमें, और इंगलैण्ड जानेवाले कांग्रेस-लीग-प्रतिनिधि-मण्डलके सम्बन्धमें तथा बम्बई होमरूल लीगके अध्यक्षकी हैसियतसे उन्होंने जो-जो काम किये, उन सबका यहां लगे हाथों उल्लेख कर दूं।"१९ मेम्बरों द्वारा भेजा गया मेमोरेण्डम थोड़े-से पढ़े-लिखे आन्दोलनकारियों और कानूनके पण्डितोंकी मांग है, इस गलतफहमीको दूर करनेके लिए हमने निश्चय किया कि हमें राजनीतिक शिक्षाका प्रचार-कार्य करना चाहिए, जनताके अन्दर प्रवेश करना चाहिए और उस जनताका निर्णय न सिर्फ अधिकारियोंके ही सामने, बल्कि ब्रिटिश प्रजाके सामने भी पेश करना चाहिए।"

१९ मेम्बरोंके मेमोरेण्डमके सम्बन्धमें उन्होंने कहा थाः—

"इस मेमोरेण्डमपर दस्तखत करनेवालोंमें मैं भी एक हूं। आपसे मेरी आग्रहपूर्वक प्रार्थना है कि इसमें जो तजवीजें पेश की गयी हैं, उनके मूल सिद्धान्तोंको आप ठीक-ठीक समझें। ये मांगें ऐसे जवाबदेह आदमियों द्वारा रखी गयी हैं, जो जनताके चुने हुए प्रतिनिधियोंके रूपमें सरकार तथा प्रजा दोनोंके प्रति कर्तव्यसे बंधे हुए हैं। सौदा करनेकी भावनासे इन मांगोंको नहीं गढ़ा गया है। ये मांगें कमसे कम हैं··· हमारी मातृ-भूमिके कार्यमें परस्पर सहयोग ही हमारा मार्गदर्शक सिद्धान्त होना चाहिए।"

इन्हीं दिनोंके दो अवतरण और यहां दे दूं :—

"आखिरकार तो बहुत कुछ हमारे अपने ऊपर ही निर्भर करता है। हिन्दू-मुसलमान एक होकर पक्का निश्चय कर लें, तो तीस करोड़ जनताकी आवाज सारे देशमें गूंज उठे, और उससे जो ताकत पैदा हो, उसका मुकाबला दुनियामें किसकी मजाल जो कर सके ? मेरा यह विश्वास है कि हिन्दुस्तानने पासा बदला है। उसने सदियों तक सब्रके साथ लम्बा कष्ट बर्दाश्त किया। अब सुख और शान्तिका उसका उजला भविष्य आ रहा है। हम सीधे रास्तेपर हैं। ध्येयसिद्धि नजदीक है।"

१९१६ में उन्होंने लखनऊ-लीगमें जो भाषण दिया था, उसका एक अंश यह था :—

"सारी जिन्दगी मैं एक चुस्त कांग्रेसवादी रहा हूं। मुझे यह साम्प्रदायिक चिल्लाहट पसन्द नहीं। पर मुझे ऐसा लगता है कि बाज वक्त मुसलमानोंको अलग-अलग रहनेके बारेमें जो सख्त-सुस्त कहा जाता है, वह ठीक नहीं। यह कौमी जमात संयुक्त भारतके लिए कितनी ताकतवर बनती जा रही है, यह एक ही चीज मेरे इस कथनके समर्थनमें काफी है।"

अन्तमें, १९२५ में लेजिस्लेटिव एसेम्बलीमें उन्होंने जो भाषण दिये थे, उनसे दो अवतरण ले लेता हूं। इण्डियन फाइनेन्स बिलपर उन्होंने जो भाषण दिया था, पहले उसका प्रसिद्ध अंश उद्धृत करूंगा :—

"मैं एक बात साफ कर देता हूं, वह यह कि मैं राष्ट्रवादी पहले हूं, राष्ट्रवादी दूसरा हूं, और राष्ट्रवादी अन्तिम हूं—मैं एकमात्र राष्ट्रीय हूं।·········फिर एक बार मैं इस एसेम्बलीमें हरएक मेम्बरसे दरख्वास्त करता हूं कि आप लोग हिन्दू हों या मुसलमान, खुदाके लिए इस बहसमें साम्प्रदायिक रङ्ग दाखिल करके इस एसेम्बलीको जलील न करें। क्योंकि इसको हमें सच्ची राष्ट्रीय पार्लमेण्ट बनाना है। बाहरकी दुनिया और अपने लोगोंके सामने आप तो एक अच्छी मिसाल रखें।"

दूसरा अवतरण :

"महोदय, आप अगर यह चाहते हैं कि हिन्दुस्तान आपकी सरकारकी पर्वा करे, आपके साथ सहयोग करे, तो हम भी यह इच्छा रखते हैं कि सरकारकी भावनामें भारतीयता आनी चाहिए। और जब भारतके हितको कोई धक्का पहुंचता हो, उसके साथ कुछ अन्याय होता हो, तब हमारी सरकारको और जो सरकारके अगुवा हैं उन सबको, एक भारतीयकी तरह, खड़े होकर हमारी तरफसे बोलना चाहिए।"

ऐसे-ऐसे कथनों और भावनाओंको अनेक अवसरोंपर बार-बार व्यक्त करनेवाले जिन्ना साहब क्या आज अपनी उस भूमिकासे पीछे हट गये हैं ? उनके आजके काया-पलटकी दृष्टिसे 'भारत', 'सङ्गठित और संयुक्त भारत', 'मातृभूमि' आदि शब्दोंका क्या अर्थ होता होगा ? जिन्ना साहब अपने

पिछले उद्गारों और भावनाओंसे पीछे हटे हों या नहीं, पर इतना तो निश्चित है कि इन उद्गारोंको निकालनेवाले जिन्ना साहब हिन्दू-मुसलमान दोनोंके लिए एक आदर्शरूप थे। लेकिन आज जिस नयी योजनाकी वे कल्पना कर रहे हैं, उसके मातहत 'देशके एक कोनेसे दूसरे कोने तक तीस करोड़ जनताकी गूंज उठनेवाली आवाज' का क्या होगा? अगर तीस करोड़ जनताकी यह आवाज एक राष्ट्रकी हो, तो उसमेंसे एक अलौकिक सङ्गीत और अदम्य शक्ति प्रकट होगी। पर अगर विभिन्न धर्मों और धार्मिक सम्प्रदायोंके अगणित प्रतिनिधि अपना-अपना सुर निकालने लगें, तो उससे बेसुरा कोलाहल और बेहिसाब तबाही पैदा होगी। वह सारा चित्र इतना भयङ्कर होगा कि उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

जिन्ना साहब उन दिनोंके अपने भाषणों और कथनोंमें अक्सर कहा करते थे: "मेरे जाती विचार चाहे जो हों, पर यहां तो मैं मुसलमानोंकी एक बड़ी तादादके अभिप्रायों और भावनाओंको ही पेश कर रहा हूं।" तो आज क्या मुसलमानोंकी उस बड़ी तादादकी मति पलट गयी है या जिन्ना साहबकी?

साहित्यमें सत्यं, शिवं, सुन्दरम्

हजारों वर्षसे मानव-समाजके कल्याण, साधना तथा मनोरञ्जनके साथ साहित्यका सम्बन्ध रहा है। मानवने, अपनी अनुभूति, विचार तथा कल्पनाके क्षेत्रमें जो कुछ सर्वोत्तम पाया, उसे साहित्यमें स्वरूप प्रदान करके चिरजीवी बनानेका प्रयत्न किया। सांस्कृतिक विकासके आदि युगसे मानव और साहित्यका बिम्ब-प्रतिबिम्बका सम्बन्ध रहा है। जिस प्रकार परमात्माके प्रति अपनी उच्चतम कल्पनाओं, भावनाओं तथा अनुभूतियोंको मानवने सत्, चित्, आनन्द द्वारा व्यक्त किया, उसी प्रकार साहित्यमें जो कुछ उसने सर्वोत्तम तथा सर्वोपरि पाया और समझा, उसका सम्बन्ध सत्यं, शिवं सुन्दरम्से स्थापित किया। इन तीनोंका साहित्यसे सम्बन्ध समझ सकनेसे पूर्व हमें सत्यं शिवं सुन्दरंको समझनेका प्रयत्न करना होगा।

साहित्यके सम्बन्धमें प्रयोगमें लाया जानेवाला सत्यं और सच्चिदानन्दका सत् तत्त्व प्रायः एक ही है। सत्यंका अर्थ है चिरन्तन, अविकारी। वह, जो देश-कालके साथ परिवर्तित नहीं हो जाता। अपनी अपूर्णताके कारण जिस प्रकार मानवने विभिन्न देशों तथा विभिन्न कालोंमें ईश्वरके सत् तत्त्वकी व्याख्या विभिन्न प्रकारसे की है, उसी प्रकार साहित्यके सत्यं तत्त्वकी विभिन्न व्याख्याओंका मिलना भी विशेष आश्चर्यकी बात नहीं है।

शिवंका अर्थ है कल्याणकारी। मानव तथा मानव-समाजका वास्तविक कल्याण किसमें है, इस विषयमें मत-भेद रहता आया है। फिर भी अगर भारतीय दृष्टिकोणसे विचार किया जावे, तो उसका सम्बन्ध परमार्थ तथा आध्यात्मिक तत्त्वों आदिसे माना जा सकता है और पाश्चात्य दृष्टिकोणसे वह 'सुखी-जीवन' और 'सबसे अधिक व्यक्तियोंकी सबसे अधिक भलाई' का रूप धारण कर लेगा।

सुन्दरम्का अर्थ है वह, जो मानवके हृदयको अच्छा लगे, आकर्षक हो और मानव-हृदयको अपनेमें लीन कर सके। 'सुन्दरम्' और 'सच्चिदानन्द' के आनन्द-तत्त्वमें कारण-कार्यका चिरन्तन सम्बन्ध है। 'सुन्दरम्' के सम्पर्कमें आनन्दानुभूति प्राप्त होती है। 'सुन्दरम्' को भी कुछ व्यक्ति सदा एक रूप, अपरिवर्तनशील मानते हैं और कुछ देश-कालके साथ परिवर्तित होता रहनेवाला।

इन तीनों तत्त्वोंको समझकर अब इनका सम्बन्ध साहित्यसे समझनेमें अधिक आसानी होगी।

आज भी आलोचक, जो साहित्य जितने अधिक काल तक जीवित रह सका है, उसे उतना ही अधिक उच्च कोटिका मानते हैं। यों जीवित तो गणित तथा विज्ञानके सिद्धान्त भी बहुत काल तक रहते हैं; किन्तु वे शिवं, सुन्दरम् युक्त नहीं होते। इसीलिए उनकी गणना साहित्यके अन्तर्गत नहीं होती। इसके अतिरिक्त साहित्यिक सत्यका सम्बन्ध निर्जीव अङ्कों तथा पदार्थके साथ उतना नहीं होता, जितना स्पन्दनशील मानव-हृदयके साथ। मानव-हृदयकी कुछ चिरन्तन प्रवृत्ति, आकांक्षा तथा अनुभूति होती है। साहित्य उनका चित्रण, विवेचन तथा विश्लेषण करता है। जिस साहित्यका आधार ऐसी समस्यायें या भावनायें हैं, जिसका सम्बन्ध केवल किसी देश या काल-विशेषसे ही होता है, वह सार्वभौमिक तथा चिरन्तन नहीं हो सकता, इसी तथ्यकी ओर सङ्केत करता हुआ 'निशा-निमन्त्रण' का कवि 'बच्चन' कहता है:—

'कल-कल' करे सरित-निर्झरमें
या मुखरित हो सिन्धु-लहरमें,
युग-वाणी बोले या बोले वह, जो है युग-युगकी वाणी ?
साथी, कवि-नयनोंका पानी।

कुछ लोगोंका विचार है कि सत्यं तत्त्वका सम्बन्ध यथार्थवादसे है और आदर्शवाद उससे दूरकी वस्तु है। हमें यह भुला नहीं देना चाहिए कि आदर्श, जिसकीओर युग-युग तक हमें बढ़ते चले चलना है, वह यथार्थकी अपेक्षा 'सत्यं' के अधिक निकट है। संसारकी प्रत्येक अमर रचनामें मानव-हृदयकी ऐसी प्रवृत्ति तथा मानव-समाजकी ऐसी समस्याओं-का विवेचन मिलेगा, जो किसी देश अथवा काल-विशेषकी सम्पत्ति नहीं हैं, बल्कि जिनका सम्बन्ध प्रत्येक देश-कालके मानवसे अटूट है।

दूसरा गुण, जिसपर साहित्यका जीवन तथा प्रचार निर्भर करता है, उसकी मानव-समाजकी कल्याण करनेकी शक्ति है। इसका सम्बन्ध 'शिवं' तत्त्वसे है। मानव-हृदयकी बहुत-सी ऐसी प्रवृत्तियां हैं, जो चिरन्तन होते हुए भी मानव-समाजके लिए कल्याणकारी नहीं, बल्कि उसके लिए हानि-प्रद हैं। हिंसा, घृणा, द्वेष आदिको जागृत करनेवाला तथा सभी भावनाओंका प्रचार करनेवाला साहित्य बहुत काल तक जीवित नहीं रह सकता।

मनुष्य सदासे अपने जीवनमें सङ्घर्षका अनुभव करता आया है। उसके जीवनमें वेदना, निराशा और कटुताके क्षण कम नहीं आते। उच्च कोटिका कलाकार अपनी रचनाओं द्वारा मानवको विश्वासकी डोर प्रदान करता है, जिसके सहारे वह वेदना, निराशा और कटुताके क्षणोंको सुगमतासे झेल सके। वह मानवको प्रेम, त्याग, भक्ति, साधना, परोपकार आदिका पथ प्रदर्शित करता है, जिसके द्वारा मानव-समाजमें सुख और शान्तिकी स्थापना हो सके, मानवका विषाद साधना और प्रफुल्लतामें परिवर्तित हो सके।

हिन्दी-साहित्यके रीति-कालीन कवियोंने अपनी रचनाओंमें इस तत्त्वकी उपेक्षा की, इसी कारण वे जनतासे इतने शीघ्र ही कोसों दूरकी वस्तु हो गये, जब कि उनसे पहलेके भक्त कवि करोड़ों व्यक्तियोंका प्राण बने हुए हैं। रीति-कालीन साहित्य थोड़े ही कालमें मृतप्राय हो गया, क्योंकि वह मानव-समाजको कोई कल्याणकारी पथ प्रदर्शित न कर सका, कोई कल्याणकारी सन्देश भी न दे सका।

पिछले दोतत्त्वोंका सम्बन्ध साहित्यके भाव-पक्षसे अधिक है और 'सुन्दरं'का कला-पक्षसे। इस तत्त्वके अभावमें 'सत्यं', 'शिवं' युक्त होते हुए भी रचना साहित्य न होकर सूक्ति अथवा नीति-कथन-मात्र रह जाती है। अगर हम कहें— "क्रोध तथा द्वेष अशान्तिके मूल हैं" तो उस कथनमें 'सत्यं' तथा 'शिवं' तत्त्व तो हैं; क्योंकि इस कथन द्वारा एक चिरन्तन सत्यकी अभिव्यक्ति की गयी और यह सङ्केत करता है कि क्रोध और द्वेषका परित्याग कर देना चाहिए। किन्तु 'सुन्दरं' तत्त्वका इसमें अभाव है, इसीलिए यह साहित्यांश नहीं हुआ। इसी तथ्यकी अभिव्यक्ति एक सुन्दर कहानी द्वारा भी हो सकती है और वह साहित्य नामकी अधिकारिणी हो जायगी।

क्योंकि धर्म और दर्शन-शास्त्रका आधार, 'सत्यं' 'शिवं' रहा है, इसीलिए प्रत्येक देश और प्रत्येक कालमें साहित्यका धर्म और दर्शन-शास्त्रके साथ बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। अगर धर्म और दर्शनका व्यापक अर्थ लिया जाय, तो मैं कहूंगा, जहां भी इनके साथ 'सुन्दरं' का संयोग कर दिया गया है, इनकी अभिव्यक्तिको ऐसा स्वरूप प्रदान कर दिया गया है कि वह आकर्षक हो मानव-हृदयको अपने सौन्दर्यके कारण अपनेमें लीन कर सके, वहीं उच्च कोटिके साहित्यका सृजन हो गया है।

आजकल हिन्दी-साहित्य-जगत्में कुछ इस प्रकारकी धारणायें फैली हुई हैं कि वेदना और निराशाके गीत गाना ही सबसे बड़े सत्यं तत्त्वकी अभिव्यक्ति है। साहित्यमें रोटी! रोटी! चिल्लाना ही समाजका सबसे बड़ा कल्याण करना है और 'सुन्दरं' तत्त्व या तो विशेष रूपसे आवश्यक ही नहीं है और अगर आवश्यक है भी, तो उसकी सीमा किसी विशेष प्रकारकी आसान या कठिन शब्दावलीके प्रयोग तक ही है। ऊपरके विवेचनसे स्पष्ट ही है कि इस प्रकारकी धारणायें कितनी भ्रान्त और उच्च साहित्य-सृष्टिके लिए कितनी हानिप्रद हैं।

तुलसी और सूरकी रचनाओंका विवेचन करनेपर ज्ञात होता है कि वे मानव-हृदयकी चिरन्तन प्रवृत्तियों, भावनाओं

तथा अनुभूतियोंका चित्रण करती हैं, विश्वासके अंकुरको दृढ़ करती हैं और सुख-शान्तिमय पथपर चलनेके लिए प्रकाश प्रदान करती हैं। वे इतनी सुन्दर भी हैं कि मानव-हृदयको अपनेमें लीन कर सकें—उसे आनन्दानुभूतिसे सिक्त कर सकें, इसीलिए वे केवल उपदेश-ग्रन्थ नहीं हैं, बल्कि उच्च कोटिके साहित्यकी अमर कृतियां हैं।

इसी प्रकार जब हम कालिदास, भवभूति, शरद, रवीन्द्र, शेक्सपियर, विक्टर ह्यूगो, टाल्सटाय आदि किसी भी महान् कलाकारकी अमर रचनाओंका रसास्वादन करते हैं, तो उसमें हमें ये तीनों ही तत्त्व मिलते हैं। —ब्रजमोहन गुप्त बी०ए०

गत महायुद्धमें भारतसे सहायता

गत महायुद्धमें आसामसे ९०००व्यक्ति लड़ाईपर गये और १४२०० व्यक्ति और भी फौजमें भरती हुए थे, जो नहीं भेजे जा सके। बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा, बम्बई, मध्यप्रान्त, मद्रास, सीमाप्रान्त, पञ्जाब, युक्तप्रान्त, बर्मा, अजमेर-मेरवाड़ा, बलूचिस्तान तथा नेपालमें ये संख्यायें क्रमशः ७१०० और ५१९००, ८६०० और ३३०००, ४१३०० और ३०२००, ५४०० और ८९६००, ५१२०० और ४११००, ३२२०० और १३०००, ३४९७०० और ९७३००, १६३६०० और ११७६०००, १४१०० और ४६००, ७३०० और १६००, १८०० और ३०० तथा ५४७०० और ४१०० थीं। विभिन्न देशी राज्योंसे ८८९०० लड़ाईपर भेजे गये थे तथा २१९०० और भी भरती हुए थे। इसके अलावा भारतसे ब्रिटिश सरकारको २ अरब ८ करोड़ रुपये भी दिये गये थे। घोड़े तथा दूसरे जानवर भी सहायता स्वरूप बहुत ज्यादा भेजे गये थे।

चावल-सम्बन्धी कुछ मनोरञ्जक बातें

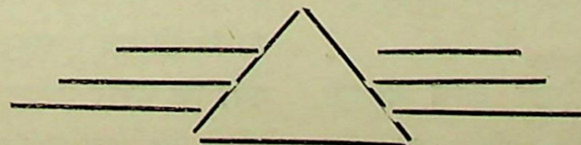
खाद्य-पदार्थोंके सम्बन्धमें समय-समयपर जो खोजें होती रही हैं, उनसे पता चला है कि सिकन्दर महान्के पहले यूरोपमें चावलका कोई नाम भी नहीं जानता था, पर अब दुनियाकी आधी आबादी चावलपर गुजर करती है।

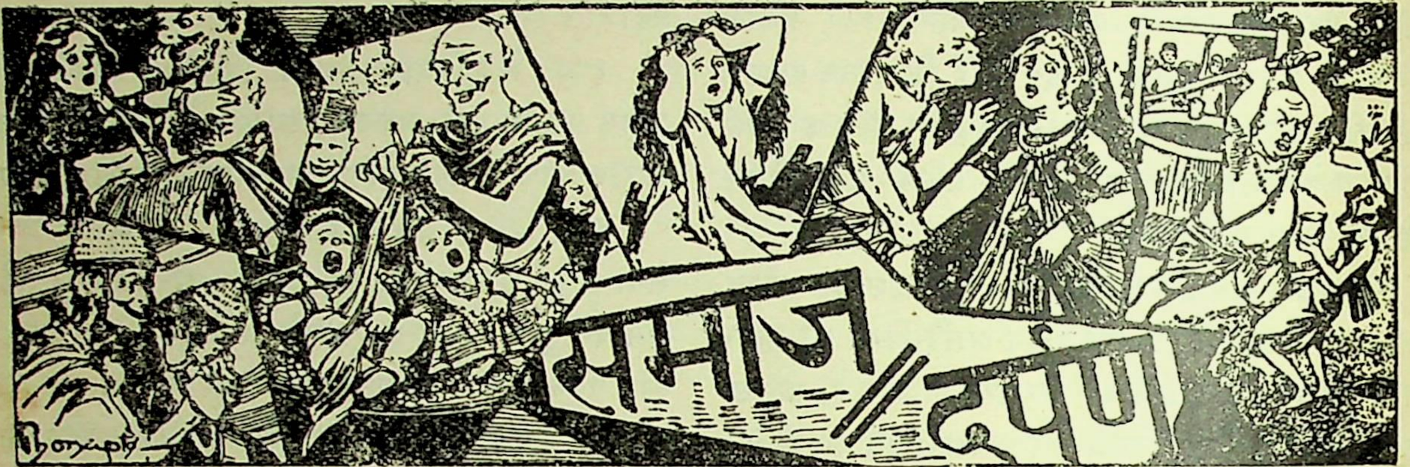
केलीफोर्नियाकी सेक्रामेण्टो घाटीमें धानके पौधे हवाई जहाजोंसे रोपे जाते हैं।

१९०० में लुसियाना अलबर्ट क्रिस्टीके रक्षार्थ उस समय पुलिस बुलानी पड़ी, जब उसने स्वास्थ्यके नियमोंके अनुसार बारीक चावल खानेके विरुद्ध व्याख्यान देना आरम्भ किया।

पर १९०४ में रूस-जापान युद्धमें प्रायः आधी जापानी सेना बेरी-बेरी रोगसे पीड़ित हुई थी, जो विटामिन बी के अभावमें हुआ करता है। कितने ही सैनिक रोगसे जब मरने लगे, तो डाक्टरोंने घटनास्थलपर जाकर रोगियोंकी परीक्षा की और वे इस निष्कर्षपर पहुंचे कि बारीक चावल खानेके कारण यह रोग इस व्यापक रूपमें फैला है।

——





नया दृष्टिकोण चाहिए

उन्नीसवीं शताब्दीका उत्तरार्द्ध संसारके इतिहासमें अपनी प्रगतिशीलताके लिए एक स्थान बना गया है। एक सामाजिक जागरण था, जिसका अनुभव संसारने उस समय किया और तबसे संसार निरन्तर प्रगतिशीलताके पथपर अग्रसर होता जा रहा है। इस कालने बड़ी-बड़ी क्रान्तियां—बड़ी-बड़ी सामाजिक क्रान्तियां देखी हैं, समाजमें बड़े-बड़े उलट-फेर हुए हैं और हमारी एकदम नवीन विचार-धाराओंने हमारे सभी जीवन-क्षेत्रोंको परिप्लावित किया है। संसारकी इस विचार-धारासे भारत भी प्रभावित होनेसे बचा नहीं है। भारतने भी इसका अनुभव किया है और भारतीय समाजके सम्मुख परिवर्तित स्थितियोंने जो समस्यायें रखी हैं, भारतीयोंका ध्यान उनकी ओर गया है और उन्होंने उनके समाधानके लिए कोशिशें भी की हैं।

पर जहां ये प्रयत्न स्पष्ट रूपसे हुए हैं और इन प्रयत्नोंके परिणाम भी अस्पष्ट नहीं हैं, वहां यह बात भी साफ जाहिर है कि उन्नतिकी प्रगति इस देशमें अत्यन्त शिथिल रही है और जितनी देरमें दूसरे देशोंने अपना काया-पलट कर लिया है, उतनी देरमें इस देशने जो उन्नति की है, उसे देखते हुए कहना पड़ता है, जैसे हमने केवल अंगड़ाइयां ही ली हैं और गम्भीर प्रयत्नोंकी ओर हमारा ध्यान गया भी है, तो सफलता अपेक्षाकृत बहुत कम ही मिली है।

उन्नीसवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धसे लेकर आज बीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्ध तक—भारतके सौ सालोंका इतिहास भारतीयों द्वारा पुनर्जागरणके प्रयत्नोंसे भरा है, इसमें सन्देह नहीं; पर सफलताके पैमानेपर हमारी प्रगति शिथिल ही रही है, यह मान लेनेमें हमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

तो आखिर इस शिथिल प्रगतिका कारण क्या है? क्यों जितनी अवधिमें दूसरे देशोंने अपना काया-पलट कर लिया, उतनी ही अवधिमें इस देशने केवल कुछ ही कदम उठाये? इस देशने, जिसके सामने उसका गौरवपूर्ण अतीत है, जिसके सामने सदासे जीवनका एक उच्चादर्श रहा है और जिसके सामने बल देनेवाली उसकी प्राचीन सभ्यता रही है। हमारा पुनरुद्धार आज भी हमारे लिए क्यों एक विकट समस्याके रूपमें उपस्थित रहा है और हम क्यों इस समस्याके समाधानमें सफल नहीं हो सके हैं?

जिन देशोंने सदियों तक अपनी बर्बर प्रथाओंका अन्त नहीं किया था, सभ्यता और संस्कृतिकी रोशनी सदियों तक जहां नहीं पहुंची थी, वहां तो हम आज लोगोंको इतना बढ़ते, फलते-फूलते देखते हैं और इस देशपर आज भी अनेक कुरीतियोंका वैसा ही भीषण ताण्डव नृत्य हो रहा है। हमारी विवशताओंकी एक लम्बी कहानी है, जो इतनी करुण और दैन्यपूर्ण है।

दुर्भाग्यकी बात है कि समाज एवं जातिको बल देनेवाले उपादान ही हमारे शत्रु हो बैठे और जागरण और कार्यक्षमता प्रदान करनेवाले उपादान ही हमारी अधोगतिके कारण हो गये। सदासे इस जातिको सुनाया और समझाया गया कि शरीर नश्वर है और आत्मा अमर है; पर दुर्भाग्य देखिये कि हम शरीरको ही सब कुछ मानकर आत्माके

अमरत्वके प्रति ऐसे अविश्वासी हो गये कि खतरा उठानेकी हममें हिम्मत ही नहीं रह गयी। दूसरे देशवाले जहां शरीरको ही सब कुछ मानते हैं, पुनर्जन्ममें भी जिनका विश्वास नहीं है, उन्होंने तो अपना जीवन जीवटपूर्ण कार्योंमें लगा दिया और एक हम हैं, जो राग अलापते हैं आत्माके अमरत्वका और काम करते हैं कायरताके—शरीरको सदा खतरोंसे दूर रखनेके। हमारे समाजमें इसीलिए वीरताका अभाव आया और अभाव आया वीर-पूजाकी भावनाका। जिस जातिके युवकोंमें उन्नतिकी दौड़में दौड़ने एवं खतरा उठाकर भी प्रगति प्राप्त करनेकी हौंस न हो, जिस जातिके युवकोंमें अतीतके गुणानुवादोंके नामपर प्रमादमें फंसे रहने एवं केवल अपना पेट पालनेकी ही प्रवृत्ति हो, जिस जातिके युवकोंमें जीवटके कामोंकी सूची देखते ही साहस न जाग उठे, उस जातिको अधोगतिमें पड़े-पड़े सड़ना नहीं होगा, तो और क्या होगा।

जर्मनी और अमेरिकावाले आते और एक-एक करके हिमालयमें गलते जाते हैं; पर उनके इस दुर्भाग्यपर दूसरे युवकोंकी हिम्मत टूटती नहीं, वे और भी उत्साह और साहसके साथ आते और हिमालयकी चोटी नापनेके लिए आगे बढ़ते हैं। जिन्होंने अगाध समुद्रोंको नाप डाला है, जिन्होंने अतल जल-राशिके रहस्योंको छान डाला है, वे भारतके हिमालयकी चोटी नापना चाहते हैं। धरातलपर कितना अभागा यह देश है, जिसपर विदेशी आते और अनेक वीरताके काम कर जाते हैं और हम अपने प्राचीन दार्शनिक जीवनतत्त्वमें ही पड़े-पड़े ऊंघ रहे हैं। प्रसिद्ध विचारक मारिस हिण्डुसने भारतके सम्बन्धमें लिखते हुए एक बार कहा था कि भारतके हिन्दू सूर्य-ग्रहणपर लाखोंकी संख्यामें सूर्यके उद्धारके लिए गङ्गा-स्नान करते, दान देते और तरह-तरहके प्रायश्चित्त करते हैं; पर उनकी कितनी ही सामाजिक और राजनीतिक परवशतायें हैं, जिनके लिए उनमें कभी इस प्रकारकी भावना नहीं देखी जाती। सत्यता यह है कि हमारे समाजमें प्राचीनताके नामपर कुछ ऐसे संस्कार जम गये हैं, कुछ ऐसी कुरीतियोंके पञ्जेमें हमारा समाज फंस गया है कि उससे निकलना हमारे लिए नितान्त कठिन है। हमारी ये धारणायें हमारे जीवनमें कुछ ऐसा स्थान बना चुकी हैं कि सुधार और प्रगतिशीलताका एक भी कदम उठा नहीं कि प्राचीनताकी शृङ्खला हमारे पांवोंमें बेड़ी बनकर रोक देती है। इस देशमें बड़े-बड़े सुधारक आये, अनेक सामाजिक क्रान्तियोंके लिए आधार खड़े हुए; पर रूढ़ियोंने हमारे सारे प्रयत्नोंपर पानी फेर दिया।

इसलिए अगर हमें संसारके दूसरे समाजोंके साथ प्रतिद्वन्द्विताकी दौड़में चलना और उनके साथ ही बने रहना है, तो अतीतकी उन सारी बातोंको हमें निकाल बाहर करना होगा, जो वर्तमान परिस्थितियोंमें हमारी जीवन-यात्रामें बाधास्वरूप आकर अड़ गयी हैं। प्राचीनताका वह मोह हमें अपनेसे निकाल बाहर करना होगा, जिसमें हमारे लिए एक कदम उठाना असम्भव हो रहा है।

इस सम्बन्धमें हमारे लिए एक और बात समझ लेनेकी है। हम इसे दुर्भाग्य मानते हैं कि हम इस धरातलपर रहकर, धरातलकी सारी समस्याओंके चक्करमें फंसे रहनेपर भी बातें आकाशकी—स्वर्गकी करते हैं। आध्यात्मिकताके नशेमें हमने उन सारी भौतिक बातोंकी ओरसे अपनेको निरपेक्ष रखनेकी प्रवृत्ति बनायी है, जिनके बिना हमारा एक क्षण भी जीवित रहना असम्भव है। लौकिक बातोंकी एकदम उपेक्षा करके पारलौकिकतामें फंसाये रखनेकी प्रवृत्ति उत्पन्न करनेके कारण उस विचारकने कहा था कि धर्म अफीमका काम करता है, जिसकी पिनकमें मनुष्य अपने सारे कर्तव्याकर्तव्य भूल जाता है, यद्यपि हिन्दू धर्म हमारे ख्यालमें कर्मयोगका उपदेश देता है। गीताका दर्शन-तत्त्व हमें कभी हाथपर हाथ रखे बैठे रहनेकी शिक्षा नहीं देता। हमारा धर्म हमें कभी इस संसार तथा इसकी समस्याओंकी उपेक्षा करना नहीं सिखाता; पर बीचमें हमारे जीवनमें जो कुसंस्कारोंका विष व्याप्त हो गया है, उसमें हमने अपने धर्मको गलत समझा, कर्मको गलत समझा और जीवनके लक्ष्य एवं उसके चरम-लक्ष्यको भी गलत समझा। हमारे समाजकी प्राणशक्ति आज जो इस प्रकार मृतप्राय अवस्थामें पड़ी हुई है, उसकी जिम्मेदारी जीवनके प्रति हमारी गलत धारणाओंके अतिरिक्त और किसपर है?

इसीलिए समाज-सुधारके प्रयत्न ढीले हो रहे हैं, इसीलिए प्रयत्नोंके होनेपर भी प्रगति ढीली चल रही है। दो-चार, दस-बीस और सौ-पचास एवं हजार सुधारकोंसे भी कुछ होनेका नहीं, जब तक हम जीवनके प्रति उन मौलिक धारणाओंका अन्त नहीं कर डालते, जिन्होंने हमारे जीवनमें जड़ता भर दी

है, हमारे प्राणोंमें अवसाद भर दिया है और हमारी सारी कर्मप्रचेष्टायें शिथिल हो गयी हैं। आवश्यकता है एक नये दृष्टिकोणकी, एक नयी जीवनी-शक्तिकी और कठिनाइयोंका सामना करनेके लिए एक नये जीवटकी। लेकिन इन सबके लिए आवश्यकता है एक नये दृष्टिकोणकी, जो हमारे आध्यात्मिक एवं भौतिक जीवनकी समस्त आवश्यकताओंमें समन्वय स्थापित कर सके। हिन्दू समाज जब तक इस दृष्टिसे अपनी प्रगतिमें आवश्यक परिवर्तन नहीं कर लेता, तब तक बड़े-बड़े आदर्श हमारे लिए आकर्षक चाहे जितने हों, उन्हें हम अपने जीवनमें कार्यान्वित नहीं कर सकते।

दहेज या रिश्वत

अमुक स्थानपर एक युवतीने अपने शरीरके कपड़ेपर स्पिरिट छिड़ककर बदनमें आग लगाकर आत्महत्या कर ली। अमुक स्थानपर एक भले घरकी युवती कई दिनों तक लापता रही, अन्तमें उसकी लाश एक दिन सवेरे गांवके पासके तालाबमें पायी गयी। अमुक रिटायर्ड अफसरकी दो पुत्रियां एक साथ रातमें सोयीं और सवेरे, एक ही पलंगपर, मरी पायी गयीं; अब परीक्षाके बाद पता चला कि विष खाकर उन्होंने अपनी हत्या कर डाली।

इस प्रकारकी घटनायें आये दिन अखबारोंमें छपती ही रहती हैं। इस प्रकार प्रकाशित होनेवाली घटनाओंकी संख्या बहुत बड़ी है; पर कौन नहीं जानता कि इस प्रकारकी जितनी घटनायें प्रकाशित होती हैं, उनकी वास्तविक संख्या उनसे कहीं अधिक होती है। कितनी ही घटनायें परिवारोंकी इज्जत बचानेके लिए छिपायी जाती हैं, कितनी ही ऐसे स्थानोंपर होती हैं, जहां अखबारोंकी पहुंच नहीं और कितनी ही छपती हैं, तो भी उनकी वास्तविक भीषणताके विषयमें लोगोंकी सच्ची जानकारी नहीं होती।

लेकिन इस प्रकारकी जो भी घटनायें सामने आती हैं, उनकी भी संख्या इतनी विशाल है कि रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारे हिन्दू समाजका आज ऐसा अधःपतन हो गया है कि युवतियोंका जीवन इतना भार हो जाय कि मर जानेके अतिरिक्त उनके लिए और कोई चारा ही न रह जाये? और यह अधःपतन उस समाजका हो, जिसमें कहा गया हो कि नारीकी जहां पूजा होती है, वहां देवता निवास करते हैं और जहां नारीकी पूजा नहीं होती, वहां नरक हो जाता है।

आखिर इस प्रकारकी जो दुर्घटनायें होती चल रही हैं, उनका कारण क्या है? इस अभागे समाजमें नारीको बचपनमें शिक्षा-दीक्षा देनेकी व्यवस्था नहीं की जाती है, अतः भीषण अन्धकारोंके बीच उसे जीवन व्यतीत करना पड़ता है और आगे चलकर युवती होते ही जो विवाहकी समस्या उठ खड़ी होती है, उसमें पहले तो अपना कोई हाथ नहीं होता, माता-पिता जिसके साथ चाहते हैं, उसीके गले उसे जीवन-भरके लिए मढ़ देते हैं, लेकिन विवाहके नामपर यह जो किसीके गले मढ़ देनेकी क्रिया है, वह भी उनमें आसान नहीं है। दहेजके नामपर बिना रिश्वत लिये कोई किसी लड़कीका पाणिग्रहण करनेको तैयार नहीं है। यह रिश्वत देनेकी प्रणाली चाहे जबसे चली हो और इसका तत्कालीन आधार चाहे जो रहा हो; पर आज इसका जो भीषण रूप हो गया है और इसके परिणाम जितने भीषण दिखाई पड़ रहे हैं, उनकी कोई सीमा नहीं दिखाई पड़ती। कितने ही अभिभावकोंकी सारे जीवनकी कमाई एक पुत्रीके विवाहमें लग जाती है। कितने ही एक ही विवाहके बाद इतने भीषण कर्जसे लद जाते हैं कि उससे छुटकारा पानेका कोई साधन ही उनके हाथमें नहीं रह जाता। और अगर किसी अभागेको कई लड़कियां हुईं, तब तो उसकी कठिनाइयोंका अन्त नहीं। यही कारण है, जो पुत्री-जन्मके अवसरपर घरमें मातम छा जाता है। यही कारण है कि नारीके प्रति पुरुषकी धारणायें पहलेसे ही जो खराब बनने लगती हैं, उनके आधारपर वह सदाके लिए नारीका विरोधी हो जाता है। पुरुषके मानसिक धरातलको देखते हुए इन बातोंका विश्लेषण किया जाय, तो पता लगेगा कि हमारे समाजकी वर्तमान व्यवस्थाओंकी खराबियोंपर हमारे समाज एवं परिवारकी शान्ति भङ्ग करनेकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी है।

लेकिन ये सब कठिनाइयां हैं लड़कीके अभिभावककी। लड़कीकी कठिनाइयां भी कुछ कम नहीं हैं। पहले तो सारे जीवनका सौदा—बल्कि जुआ खेलना पड़ता है और आश्चर्यकी बात है कि इस देशकी अधिकांश कन्याओंका विवाह ऐसे बालकोंसे होता है, जो एक-दूसरेको एक बार देखे हुए भी नहीं होते। ऐसे विवाह कितने सफल होंगे, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। विवाह करके जिन दो

प्राणियोंको सदाके लिए संयुक्त कर दिया जाता है—सदाके लिए, क्योंकि हमारे यहां तलाक तो है ही नहीं, जिससे एक बारकी गलतीका निवारण किया जा सके—उसीके साथ अपनी मानसिक स्थिति मिलानी होगी, उसीके विचारोंका बनना होगा, उसीकी इच्छाको अपनी इच्छा बनाना होगा। यही देश है, जिसमें युवक-युवतियोंको बिना एक-दूसरेके जाने—चाहे उनमें कितना ही विचार-वैषम्य हो—प्रेम करनेके लिए तैयार; बल्कि विवश करना पड़ता है। इसका परिणाम भी स्पष्ट है, जो गृह-कलहके रूपमें दिखाई पड़ता है।

ऐसी भाग्यशालिनी भी सभी लड़कियां नहीं होतीं, जिन्हें इस प्रकारके जुएका भी आसानीसे अवसर मिल जाय। आये दिन जो ऐसी घटनायें—जिनका हमने ऊपर उल्लेख किया है—होती रहती हैं, उसका प्रधान कारण यही है कि दहेजके रूपमें लड़कीके अभिभावकको जो रिश्वत देनी पड़ती है, उसका बोझ उठानेकी उसकी असमर्थताके कारण कन्यायें अपनी जीवन-लीला ही समाप्त कर अभिभावकोंको इस झमेलेसे छुटकारा देती हैं। कितना भीषण अपमान है मातृ-जातिका और सामाजिक अव्यवस्थाका कितना भीषण दुष्परिणाम है यह ?

ये परिस्थितियां हैं, जिनमें भारती नारियोंको जन्मसे मृत्यु पर्यन्त जीवन-यापन करना पड़ता है। ये जञ्जीरें हैं, जिनमें उन्हें जकड़कर बांध दिया जाता है, जिससे वे अपने विकासका मार्ग नहीं ढूंढ़ पातीं। बल्कि :—

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचलमें है दूध और आंखोंमें पानी॥

पंक्तियोंको पढ़कर हम कविकी दाद देते हैं। पर क्या हमने कभी यह भी सोचनेकी कोशिश की कि अबला जीवन-की जो यह कहानी आंचलके दूध और आंखोंके पानीमें ही समाप्त हो जाती है, वह क्या वाञ्छनीय है। संसार-भरमें नारीने विभिन्न क्षेत्रोंमें अपनी प्रतिभाका परिचय दिया है और उसने यह प्रमाणित कर दिखाया है कि अवसर मिलनेपर वह किसी भी महत्त्वपूर्ण कार्यका सम्पादन सफलतापूर्वक कर सकती है, तब भारतीय नारीके जीवनका अथ और इति केवल आंचलके दूध एवं आंखोंके पानीमें ही क्यों हो जाय ? पुरुषने एक लम्बी अवधि तक नारीको घोर आदिम अनुन्नत अवस्थामें रखकर अपना या समस्त समाजका कल्याण-साधन नहीं किया है, बल्कि उल्टे उसने नारीको विवशताओंमें बांधकर सभ्यताकी प्रगतिशीलतामें बाधा डाली है।

इसलिए भारतीय समाजमें अगर यह प्राचीनता निभाते रहनेकी बात छोड़ी न गयी, तो इसके घातक परिणामोंसे समाजको बचाया नहीं जा सकता। और इस बातसे कौन इनकार करता है कि इन परिणामोंकी घातकता नारीके लिए जितनी है, उतनी शायद ही और किसीके लिए हो, यद्यपि समाजपर भी इसकी प्रतिक्रिया बहुत बुरे रूपमें हो रही है।

नारियोंको चाहिए कि वे दहेज तथा ऐसी दूसरी कुरीतियोंके विरुद्ध युद्ध छेड़नेकी तैयारी करें। उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि दहेजके विरुद्ध आत्महत्या कर लेनेसे उनकी अपनी समस्याओंका समाधान भले ही हो जाय, इससे समाजमें फैली हुई बुराईका निराकरण नहीं हो सकता। ये सब रोग समाजमें इस प्रकार घर कर गये हैं कि इस प्रकारके असंख्य बलिदानोंसे भी इनसे छुटकारा नहीं हो सकता। हमारा ख्याल है कि अगर वे इस बातका निश्चय कर लें कि दहेज-लोलुपोंसे विवाह करनेके लिए उन्हें कोई भी तैयार नहीं कर सके, तो सारे भारतमें यह आन्दोलन इतना व्यापक बनाया जा सकता है कि इसमें सफलता मिलनेमें उतनी कठिनाई नहीं हो सकती, जितनी आज सोची जा रही है। इस सम्बन्धमें सबसे खेदजनक स्थिति यह है कि नारी-शिक्षाकी अव्यवस्थाके कारण नारियोंमें अज्ञानका घोर अन्धकार है, अतः वे अपना भला-बुरा समझनेमें स्वयं असमर्थ हो रही हैं। नारियोंको इन सारी स्थितियोंका सामना करनेके लिए बल-सञ्चय कर लेना चाहिए।

———





स्त्री-धर्म क्या है ?

गांधीजी द्वारा सञ्चालित आन्दोलनने भारतमें जो विचार-धारा प्रवाहित की और इससे चहुंमुखी प्रगतिशीलताके लिए जो आधार तैयार हुए, उनमें महिलाओंकी उन्नति भी प्रमुख है। प्रस्तुत लेखमें गांधीजीने स्त्री-धर्मके विषयमें ये मार्मिक विचार प्रकट किये हैं :—

"एक बहुत पढ़ी-लिखी बहनका पत्र, कुछ हिस्से निकाल देनेके बाद, यहां देता हूं :—

"आपने अहिंसा और सत्याग्रहके जरिये दुनियाको आत्माका गौरव दिखा दिया है। मनुष्यके पशु-स्वभावको जीतनेकी समस्या इन्हीं दो शब्दोंसे हल हो सकती है।

उद्योगके जरिये शिक्षा एक महान् कल्पना ही नहीं है, बल्कि हम अपने बच्चोंको स्वावलम्बी बनाना चाहते हैं, तो शिक्षाका एकमात्र सही तरीका भी यही है। आप ही ने यह बात कही है और एक ही वाक्यमें शिक्षाकी सारी विशाल समस्या हल कर दी है। उसकी तफसील तो हालात और तजुर्बेसे ही तय हो सकती है।

मेरी अर्ज है कि स्त्रियोंका सवाल भी जरूर हल कर दें। राजाजी कहते हैं कि हम स्त्रियोंका कोई सवाल ही नहीं है। शायद राजनीतिक मानेमें न हो। कदाचित् धन्धेके बारेमें भी कानून द्वारा हमें निश्चिन्त बनाया जा सकता है, अर्थात् सभी पेशे औरत, मर्द सबके लिए समान रूपमें खोल दिये जा सकते हैं।

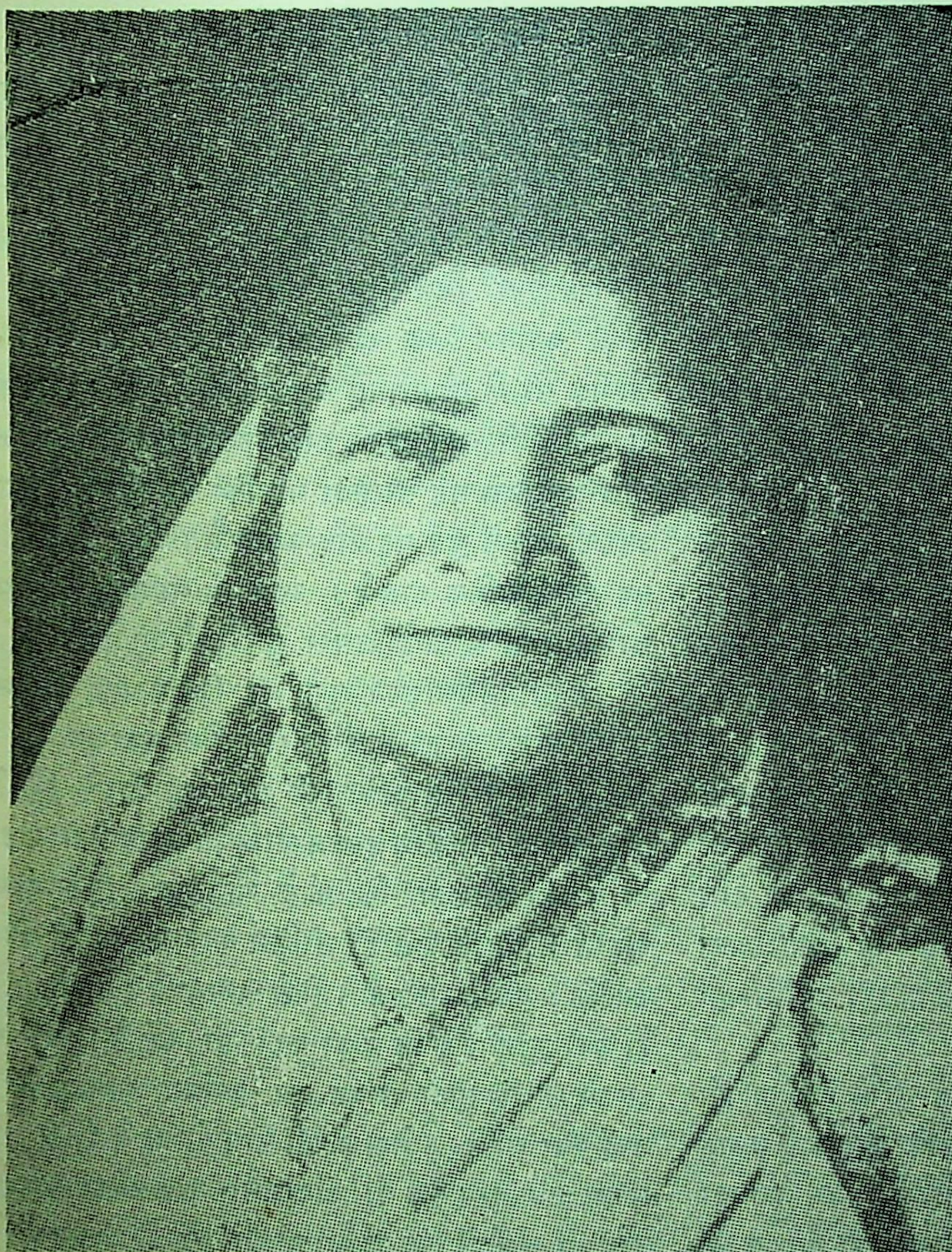
मगर फिर भी हम स्त्री हैं और स्त्रीके गुण-दोष पुरुषसे भिन्न हैं, इस बातमें अन्तर नहीं पड़ता। हमें अपने स्वभावके दोषोंको दूर करनेके लिए अहिंसा और सत्याग्रहके अलावा कुछ और सिद्धान्त भी चाहिए।

पुरुषकी तरह स्त्रीकी आत्मा भी ऊंचा उठनेकी कोशिश करती है, मगर जैसे नरको अपनी आक्रमणकारी भावना, काम-वासना और दुःख पहुंचानेकी पशु-वृत्ति आदिसे छुटकारा पानेके लिए अहिंसा और ब्रह्मचर्यकी जरूरत है, ठीक उसी तरह नारीको भी कुछ ऐसे उसूलोंकी आवश्यकता है जिनसे वह अपने स्वभावके दोष दूर कर सके, क्योंकि वे दोष पुरुषके दोषोंसे अलग तरहके हैं और आम तौरपर कहा जाता है कि वे प्रकृतिसे ही स्त्रीके साथ लगे हुए हैं। स्त्री होनेके कारण ही उसके जो स्वाभाविक गुण-दोष हैं, उसका जिस तरह लालन-पालन और शिक्षण होता है और उसके लिए जैसा वातावरण पैदा हो जाता है, वह सब उसके विरुद्ध पड़ता है। और ये चीजें—यानी उसका स्वभाव, उसकी तालीम और उसका वायुमण्डल—उसके काममें हमेशा खलल डालती, उसका रास्ता रोकती और आम तौरपर यह कहनेका मौका देती हैं कि "आखिर तो औरत ही है।" जब मैं कहती हूं कि स्त्री होना ही उसके गलेका हार हो गया है, तो मेरा मतलब यही है।

मेरे ख्यालसे हमारी समस्या ठीक तौरपर हल हो जाये और अपने सुधारका सही तरीका हमारे हाथ लग जाये, तो सहानुभूति और कोमलता आदि जो हमारे स्वाभाविक गुण हैं, उन्हें बाधक होनेके बजाय हम साधक बना सकती हैं। जैसा आपने पुरुषों और बच्चोंके बारेमें हल बताया है, उसी

तरह हमारा सुधार भी हमारे ही भीतरसे होना चाहिए।

मैंने स्वभाव, शिक्षा और वातावरणकी बात कही है। अपनी बात साफ़ समझानेके लिए मैं एक मिसाल देती हूँ।



बेगम हामिद अली, जिनके सभानेत्रीत्वमें इलाहाबादमें अ० भा० महिला-सम्मेलन हुआ है।

कुदरतने औरतको कोमल, नरम-दिल, हमदर्द और बच्चोंकी मां बनाया है। इन चीजोंका असर उसपर अनजान-में भी बहुत होता है। इसलिए जब उसे कुछ करना पड़ता है, तो वह बेहद भावुक हो जाती है। मर्दोंके सम्पर्कमें आनेपर वह बड़ी-बड़ी गलतियां कर बैठती है। जिस वक्त उसे सख्त रहना चाहिए, उस वक्त उसका दिल पिघल जाता है। वह जल्दी ही खुश और नाराज हो जाती है, उसे आसानीसे अपने-पर गर्व हो जाता है और आम तौरपर भोलेपनके काम करती है।

जब मैं आपसे मिलने आयी, तब हालांकि उस मुलाकातकी मुझे बड़ी उत्सुकता थी और पहली रात उसका विचार करते-करते मुझे नींद भी नहीं आयी थी, फिर भी जब मैं आपके सामने गयी और आपने मुझे बैठ जानेको कहा, तो मैं श्री देसाईकी लम्बी-चौड़ी पीठकी आड़में जा बैठी। वहांसे न मैं आपकी बात सुन सकती थी और न आपका मुंह देख सकती थी। यह मेरा कितना भोलापन था! इतना ही नहीं, मैंने देख लिया कि मैं अपनी बात भी नहीं समझा सकती, मेरी जबान ही नहीं चलती थी। इसकी वजह मैं यह समझती हूं कि मेरे स्वभावपर भावुकता सवार रहती है और आसानोसे काबूके बाहर हो जाती है। अवश्य ही, यह खास दोष तो उचित तालीमसे निकल जाता, मगर मैं कह सकती हूं कि सम्भव है, मैं और कोई ऐसा ही भोलेपनका काम कर बैठूं।

मेरी एक सखीने मुझे वे उत्तर दिखाये थे, जो उसने राष्ट्रीय योजना-उपसमितिकी स्त्रियोंके कामके बारेकी प्रश्नावलीपर लिख भेजे थे। आप जरूर जानते होंगे कि ये सवाल नम्बर-वार होते हैं और कुछ इस तरहके हैं:

देशके जिस भागमें आप रहती हैं, वहां किस हद तक स्त्रियों-को अपने हकसे सम्पत्ति रखने, हासिल करने, उत्तराधिकारमें मिलने, बेचने या दे डालनेका अधिकार है? जिन अनेक काम-धन्धोंमें अलग-अलग योग्यताकी स्त्रियोंको लगनेकी जरूरत

हो सकती है, उनके लिए स्त्रियोंको उचित शिक्षा और तालीम देनेका क्या बन्दोबस्त और सुविधायें हैं ? वगैरः वगैरः ।

मेरी सखीने प्रश्नोंका उत्तर न देकर यह लिखा है : "यह कहना जरा भी सच नहीं है कि प्राचीन कालमें स्त्रियोंको शिक्षा जैसी कोई चीज मिलती ही न थी।" उसने यह भी लिखा है कि "वैदिक युगमें विवाह होनेपर पत्नीको कुटुम्बमें तुरन्त प्रतिष्ठाका स्थान दिया जाता था और वह अपने पतिके घरकी मालिकन बन जाती थी।" आदि, आदि । उसने मनुस्मृतिसे प्रमाण भी दिये हैं ।

मैंने उससे पूछा कि जब सवाल आजके जमानेके बारेमें पूछे गये हैं, तो पुराने रीति-रिवाजका हाल लिखनेकी क्या जरूरत थी ? वह यह सोचकर कि निबन्धके रूपमें उत्तर बढ़िया रहता है, कुछ मुंह-ही-मुंह कहती रही और फिर तेज होकर बोली, "श्रीमती.........अमुकका जवाब तो मुझसे भी बुरा है।"

मेरी समझसे मेरी सखीकी यह भूल ठीक तालीम न मिलनेके कारण हुई है और तालीम उसे स्त्री होनेके कारण ही नहीं दी गयी। यह तो एक मुहर्रिर भी जानता है कि जब कोई सवाल पूछा जाता है, तो उसके जवाबमें दूसरे ही विषय-पर निबन्ध नहीं लिखना चाहिए ।

मेरे खयालमें मुझे उदाहरण देते जाने और अपनी बात समझाते रहनेकी जरूरत नहीं है। आपको सब प्रकारकी स्त्रियोंका इतना विशाल अनुभव है कि आप जान गये होंगे कि मेरा यह कहना सही है या नहीं कि जिस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तसे स्त्रियां सुधर सकती हैं, वही उन्हें मालूम नहीं है ।

आपने मुझे 'हरिजन' पढ़नेकी सलाह दी थी। मैं शौकसे पढ़ती हूं। मगर अब तक अन्तरात्माके लिए कोई सलाह मेरे देखनेमें नहीं आयी। राष्ट्रीय आजादीके लिए कातना और लड़ना तो उस तालीमके कुछ पहलू ही हैं। उनमें समस्याका सारा हल समाया हुआ नहीं दीखता, क्योंकि मैंने ऐसी स्त्रियां देखी हैं, जो कातती और कांग्रेसके आदर्शोंपर अमल करनेकी कोशिश तो जरूर करती हैं, लेकिन फिर भी वही बड़ी-बड़ी भूलें कर बैठती हैं, जिनका कारण उनका स्त्री होना ही है।

मैं पुरुषोंके जैसी नहीं बनना चाहती। लेकिन जैसे आपने पुरुषोंको पशु-प्रकृतिके सुधारके लिए अहिंसा सिखायी है, वैसे हमें भी वह पाठ पढ़ा दीजिये, जिससे हमारा भोले-पनका दोष दूर हो जाये। कृपा करके बताइये, हम कैसे अपने स्वभावका सदुपयोग करें और अपनी बाधाओंको सुविधा बना लें।

यह स्त्री होनेका भार हमेशा मेरे मनपर रहता है। जब कभी मैं किसीको नाक-भौं सिकोड़कर यह कहते सुनती हूं कि 'आखिर स्त्री है', तो मेरी आत्मामें वेदना होती है (अगर आत्मामें भी वेदना हो सकती हो तो)। एक पुरुषसे मैंने इन बातोंकी चर्चा की, तो वह मेरी हंसी उड़ाकर कहने लगा, "आपने हमारे मित्रके घर उस बच्चेको देखा था ? वह गाड़ी बनाकर खेल रहा था और चगचग करता जब खम्भेके सामने पहुंचा, तो उसके चौतरफ घूमनेके बजाय उसने अपने कन्धोंसे धक्का देकर उसे गिरानेकी कोशिश की। वह अपने बाल-स्वभावसे यह समझता था कि मैं इसे गिरा दूंगा। आपकी बातसे मुझे वह याद आता है। आप जो कहती हैं, वह मनोवैज्ञानिक बात है। आप उसे समझने और सुलझाने-का जो प्रयत्न करती हैं, उसपर मुझे हंसी आती है।"

मैं तो यह समझकर खुश था कि सत्याग्रहकी खोजके साथ स्त्रियोंके उद्धार-कार्यमें मेरी निश्चित सहायता शुरू हो गयी है। मगर पत्र-लेखिकाकी यह राय है कि स्त्रियोंको पुरुषोंसे अलग तरहका इलाज चाहिए। अगर ऐसी बात है, तो मैं नहीं समझता कि कोई भी पुरुष सही हल निकाल सकेगा। वह कितनी ही कोशिश करे, असफल ही रहेगा, क्योंकि प्रकृतिने उसे स्त्रीसे भिन्न बनाया है। जिसके लगती है, वही जानता है कि पीड़ा कहां हो रही है। इस कारण अन्तमें तो स्त्रियोंको ही यह तय करनेका अधिकार है कि उन्हें क्या चाहिए। मेरी अपनी राय तो यह है कि जैसे मूल-में स्त्री और पुरुष एक हैं, ठीक उसी तरह उनकी समस्याका तत्त्व भी असलमें एक ही है। दोनोंमें एक ही आत्मा विराज-मान है। दोनों एक ही प्रकारका जीवन बिताते हैं। दोनोंकी एक ही भांतिकी भावनायें हैं। एक दूसरेका पूरक है। एककी असली सहायताके बिना दूसरा जी नहीं सकता।

मगर किसी न किसी तरह अनन्त कालसे स्त्रीपर पुरुषने आधिपत्य रखा है। इस कारण स्त्रीमें अपनेको नीचा सम-झनेकी मनोवृत्ति आ गयी है। पुरुषने स्वार्थवश स्त्रीको यह

सिखाया है कि वह उससे नीचे दर्जेकी है और स्त्रीने इस शिक्षाको सच्चा मान लिया है। मगर ज्ञानी पुरुषोंने उसका दर्जा बराबरका ही माना है।

फिर भी इसमें कोई शक नहीं कि एक जगह पहुंचकर दोनोंके काम अलग-अलग हो जाते हैं। जहां यह बात सही है कि मूलमें दोनों एक हैं, वहां यह भी उतना ही सच है कि दोनोंकी शरीर-रचना एक-दूसरेसे बहुत भिन्न है। इसलिए दोनोंका काम भी अलग-अलग ही होना चाहिए। मातृत्व-का धर्म ऐसा है, जिसे अधिकांश स्त्रियां सदा ही धारण करती रहेंगी। मगर उसके लिए जिन गुणोंकी आवश्यकता है, उनका पुरुषोंमें होना जरूरी नहीं है। वह सहनेवाली है, वह करनेवाला है। वह स्वभावसे घरकी मालिकन है; वह कमानेवाला है। वह कमाईकी रक्षा करती और बांटती है। वह हर मानेमें पालक है। मानव-जातिके दुधमुंहे बच्चोंको पाल-पोसकर बड़ा करनेकी कला उसीका विशेष धर्म और एकमात्र अधिकार है। वह संभाल न रखे, तो मानव-जाति नष्ट हो जाये।

मेरी रायमें इसमें स्त्री और पुरुष दोनोंका पतन है कि स्त्रीको घर छोड़कर घरकी रक्षाके लिए बन्दूक उठानेको कहा या समझाया जाये। यह तो फिरसे जङ्गली बनना और नाशकी शुरुआत करना हुआ। जिस घोड़ेपर पुरुष सवार होता है, उसीपर स्त्री भी चढ़नेकी कोशिश करती है, तो वह दोनोंको गिराती है। पुरुष अपनी जीवन-सङ्गिनीसे भय या प्रलोभन दिखाकर उसका खास काम छुड़ायेगा, तो इसका पाप पुरुषके ही सिर होगा। वीरता जितनी बाहरी हमलेसे अपने घरको बचानेमें है, उतनी ही उसे भीतरसे स्वच्छ और व्यवस्थित रखनेमें है।

मैंने करोड़ों किसानोंको उनकी स्वाभाविक हालतमें देखा है और छोटे-से सेगांवमें रोज देखता हूं, तो स्त्री और पुरुषके काम, कुदरती बटवारेकी तरफ मेरा ध्यान जोरके साथ गया है। स्त्रियां लुहार और बढ़ई नहीं हैं, मगर खेतोंमें स्त्री-पुरुष दोनों काम करते हैं। अलबत्ता, भारी काम पुरुष ही करते हैं। स्त्रियां घरोंकी देख-रेख और व्यवस्था रखती हैं। वे कुटुम्बके थोड़े-से साधनोंमें कुछ वृद्धि जरूर करती हैं, मगर मुख्य कमाई पुरुष ही करता है।

कामके बटवारेकी बात मान लेनेके बाद, साधारण



श्रीमती चमेली बोस बी० एस-सी० (लन्दन), आपकी खोज इतनी प्रशंसनीय समझी गयी है कि बङ्गाल सरकारने लन्दनमें शिक्षा जारी रखनेके लिए आपको खास छात्रवृत्ति दी है।

गुणों और संस्कृतिकी जरूरत करीब-करीब दोनोंके लिए एक-सी ही है।

व्यक्तिका सम्बन्ध हो या राष्ट्रका, स्त्री-पुरुषकी महान् समस्याको सुलझानेमें मैंने यह सहायता दी है कि जीवनके हर पहलूमें सत्य और अहिंसाको स्वीकृतिके लिए पेश कर दिया। मैंने यह आशा बांध रखी है कि इस काममें निर्वि-वाद रूपसे स्त्री ही अगुआ बनेगी और मानवीय विकासमें इस तरह अपना योग्य स्थान पाकर वह अपनेको नीचा सम-झनेकी वृत्ति छोड़ देगी। ऐसा करनेमें वह सफल हो सकी, तो वह दृढ़तापूर्वक इस नयी शिक्षाको माननेसे इनकार कर देगी कि सब बातोंका फैसला और व्यवहार कामवासनासे ही होता है। मुझे डर है कि मैंने कहीं यह बात जरा भद्दे ढङ्गसे तो नहीं कह दी। लेकिन मैं आशा करता हूं कि मेरा अर्थ स्पष्ट है। मुझे मालूम नहीं कि जो लाखों पुरुष युद्धमें क्रियात्मक भाग ले रहे हैं, उनके मनपर कामदेवका ही भूत सवार है। न अपने खेतोंमें साथ-साथ काम करनेवाले किसानोंको उसकी चिन्ता या मार ही सता रही है। मेरे कहनेका यह मतलब नहीं है कि जो कामवासना प्रकृतिने ही

पुरुष और स्त्री दोनोंमें भर दी है, उससे ये लोग मुक्त हैं। मगर इतना तो बिलकुल निश्चित है कि उनके जीवनमें इस चीजकी उतनी प्रधानता नहीं है जितनी कि उन लोगोंके जीवनमें दिखाई देती है, जो आजकलके स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी साहित्यमें डूबे हुए हैं। जब स्त्रीको या पुरुषको जीवनकी कठोर और भयङ्कर सचाईका मुकाबिला करना पड़ता है, तो किसीको इन बातोंके लिए फुरसत ही नहीं मिलती।

मैंने इस अखबारमें राय दी है कि स्त्री अहिंसाकी मूर्ति है। अहिंसाका अर्थ है अनन्त प्रेम और उसका अर्थ है कष्ट सहनेकी अनन्त शक्ति। पुरुषकी माता, स्त्रीसे बढ़कर इस शक्तिका परिचय अधिकसे अधिक मात्रामें और किससे मिलता है? नौ महीने तक बच्चेको पेटमें रखकर, उसे अपना रक्त पिलाकर और इसमें जो कष्ट होता है उसीमें आनन्द मानकर वही तो यह परिचय देती है। प्रसूतिकी वेदनासे बढ़कर और कौन-सी पीड़ा हो सकती है? मगर वह सन्तानकी खुशीमें इसे भूल जाती है। और फिर रोज-बरोज बच्चेको बड़ा करनेमें जो तकलीफें होती हैं, वह कौन बर्दाश्त करता है? वह अपना यह प्रेम सारे मानव-समाजको दे डाले और भूल जाये कि वह कभी पुरुषके भोग-विलासकी चीज थी या हो सकती है, फिर देखे कि उसे पुरुषके बराबर, उसकी माता, जननी और मूक पथप्रदर्शक बनकर खड़े होनेका गौरवपूर्ण दर्जा मिलता है या नहीं। युद्धमें फंसी हुई दुनिया आज शान्तिका अमृत-पान करनेके लिए तड़प रही है। यह शान्ति-कला सिखानेका काम भगवान्ने स्त्रीको ही दिया है। वह सत्याग्रहमें अगुआ बन सकती है, क्योंकि उसके लिए पुस्तकोंसे मिलनेवाले ज्ञानकी जरूरत नहीं होती। उसके लिए तो तगड़ा दिल चाहिए, जो कष्ट-सहन और श्रद्धासे बनता है।

सासून अस्पतालमें मेरी मेहरबान दाईने बरसों पहले जब मैं वहां बीमार पड़ा था तब एक स्त्रीका किस्सा सुनाया था। उस स्त्रीको एक दुखदायी चीरा लगवाना था। मगर उसने बेहोशीकी दवा सूंघनेसे इसलिए इनकार कर दिया कि उसके पेटमें जो बच्चा था, उसकी जानकी जोखिम न हो। उसके लिए बेहोशीकी दवा अपने बच्चेका प्रेम ही था। उस-को बचानेकी खातिर वह बड़ेसे बड़ा कष्ट सहनेको तैयार थी। स्त्रियोंमें ऐसी वीराङ्गनायें बहुत हो सकती हैं, इसलिए उन्हें कभी अपने स्त्रीत्वको नीचा नहीं समझना चाहिए और न पुरुष न होनेपर दुःख मानना चाहिए। अक्सर जब उस वीराङ्गनाका खयाल आता है, तो मुझे स्त्रीके दर्जेपर ईर्ष्या होती है। क्या अच्छा हो कि वह भी इसे पहचाने। स्त्रीको पुरुष-जन्म पानेकी जितनी लालसा हो सकती है, उतनी पुरुषको स्त्री-जन्म पानेकी हो सकती है। मगर यह इच्छा व्यर्थ है। हमें तो भगवान्ने जिस योनिमें जन्म दिया है और प्रकृतिने हमारा जो धर्म निश्चित कर दिया है, उसीमें सुखी रहना चाहिए।''

महिला समाजकी आवश्यकतायें

हमारा शिक्षित स्त्री-समाज आज पाश्चात्य देशोंकी चकाचौंध करनेवाली सभ्यतासे प्रभावित हो रहा है, पर शिक्षित स्त्रियां उनकी वास्तविक स्थितिसे या तो परिचित नहीं हैं और यदि हैं, तो उसको छिपाकर रखते हुए वैसा ही विनाशकारी वातावरण यहां भी पैदा करना चाहती हैं। प्रत्येक देश और राष्ट्र एवं धर्म तथा जातिकी पृथक् संस्कृति, सभ्यता और परिस्थिति होती है। जो वस्तु एकको रुचिकर एवं हितकर होती है, उसीका सेवन दूसरेको अरुचिकर एवं अहितकर हो जाता है। फिर हमारा स्त्री-समाज क्या देखकर इंगलैण्डकी नकल भारतमें करना चाहता है। उनके यहां कितने ही अधिकार असफल हुए हैं। उससे न स्त्री-समाजका कल्याण हुआ है, न जातिका उत्थान हुआ है, इसके विपरीत विलासिता और उच्छृङ्खलता बढ़ गयी है। स्त्री-समाज और उनके कतिपय समर्थकोंको काफी सोच-समझकर अपनी सभ्यता और संस्कृति-का विचार करके आगे कदम उठाना चाहिए।

पर हमें यहां यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय सभ्यताके नामपर हम नारियोंके उन अधिकारोंकी उपेक्षा भी नहीं कर सकते, जो उनके अपने हैं। पश्चिमका कोरा अनुकरण मूर्खतापूर्ण है, पर नारियोंके सच्चे अधिकारोंको न स्वीकार करना और भी घातक है।

वैदिक सभ्यताके अनुसार स्त्रियोंको अर्द्धाङ्गिनी कहा गया है और प्रत्येक बातमें उनका आधा अधिकार है। उन्हें चाहिए कि वे अपने खोये हुए अधिकारोंको पुनः प्राप्त करें। उनमें काफी बल और शक्ति है। कुछ वर्षोंसे पुरुष-समाजकी

पक्षपातपूर्ण नीतिसे उनका अपहरण कर लिया गया है। स्त्रियोंको यहां तक अधिकार था कि उनकी उपस्थितिके बिना कोई भी कृत्य नहीं हो सकता था। आज हमने उन्हें या तो चारदीवारीके अन्दर धकेलकर एकदम अनपढ़ अज्ञानी बना रखा है या आगे बढ़ाया है, तो इतना कि वे पाश्चात्य शिक्षाको पाकर पुरुषोंके सिरपर खेलना चाहती हैं और लज्जा एवं शर्मको ताकमें रखे हुए भारतीय सभ्यता-संस्कृतिपर ही कुठाराघात करनेको तैयार हैं। ज्ञानी और विवेकशील स्त्री-पुरुषोंको उन्हें गलत मार्गपर जानेसे रोकनेका प्रयत्न करना चाहिए। भारतवर्षका हित हमारी सभ्यता एवं संस्कृतिसे है, यदि हमने इसे त्याग दिया, तो सब कुछ पाकर भी हम कहींके न रहेंगे। हमारी दशा धोबीके कुत्तेकी हो जायगी, जो घरका रहेगा न घाटका।

आज जब भारतका नारी-समाज अपने अधिकारोंकी मांग कर रहा है, तब उसके कानूनी अधिकारोंकी अपेक्षा और क्या व्यवस्थायें हैं, जो उसके लिए वाञ्छनीय हैं। प्रश्न यह है कि कौन-से अधिकार हैं, जिनके द्वारा स्त्री-समाजका हित, देशका कल्याण और भारतीय संस्कृतिकी रक्षा हो सकती है? जिस पक्षपातपूर्ण प्रणालीसे पुत्र और पुत्रीके लालन-पालन, भोजन-वस्त्र और पढ़ने-लिखनेमें महान् अन्तर रखा जाता है, उसका मिटाना किसी सामाजिक नियम, जातीय कानून अथवा अधिकार द्वारा नहीं हो सकता। ज्यों-ज्यों हिन्दुओंमें जागृतिकी लहर प्रवाहित होती जा रही है, शिक्षाकी प्रगति और नवीन विचारोंका प्रकाश बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों पुत्र-पुत्रीको भिन्न-भिन्न दृष्टिसे देखनेके सङ्कीर्ण विचारोंका विलोप होता जा रहा है। फिर भी विवाहके लिए छोटी-छोटी बच्चियोंकी अबोध आयुका विचार न करके सामाजिक रूढ़िवाद या पञ्चोंके पञ्जेमें फंसे हुए हम १० से लेकर १५ वर्ष तक लड़कियोंका विवाह कर ही देते हैं। उनकी शिक्षा, सांसारिक ज्ञान, गृहस्थ-विज्ञान और शारीरिक एवं मानसिक शक्तियोंका विकास होने ही नहीं पाता। हम मानते हैं कि जिस व्यक्तिके साथ एक लड़कीको अपनी समस्त आयु व्यतीत करनी पड़ेगी, उसका यदि परिचय नहीं, तो उसके लिए उसकी सम्मति-असम्मति ज्ञात कर लेना अथवा वाग्दानके पूर्व इच्छा जान लेना अहितकर नहीं है। यदि कन्या सच्चरित्र है और अपने अध्ययनको मध्यमें ही समाप्त न कर आगे पढ़नेकी इच्छा, रुचि और प्रतिभा रखती है और कुछ वर्षों विवाहको स्थगित रखना चाहती है, तो उसके कहनेको न मानना एक प्रकारका अन्याय और अत्याचार है, जो आजकल बहुत हो रहा है। इसे हम रोकना चाहते हैं और चाहते हैं कि कन्याकी इच्छा जानकर उक्त पुरुषसे विवाह हो। लेकिन अगर ऐसा न हो, तो क्या उसे तलाकका अधिकार मिलना चाहिए?



डा० श्रीमती प्रीतम चुन्नीलाल। इंगलण्ड और आयलैंण्डसे हाल ही में आप चिकित्सा-विज्ञानकी उच्च शिक्षा प्राप्त कर स्वदेश लौटी हैं।

हम पूर्णरूपसे तलाकके पक्षपाती नहीं हैं, न इससे संसारके समस्त स्त्री-समाजका कल्याण ही हो सकता है। परन्तु पुरुष-समाजकी एकाङ्गी अहम्मन्यताको देखते हुए, अबलाओंपर अमानुषिक अत्याचारोंका अन्त करनेके लिए आंशिक रूपसे तलाकका अधिकार स्त्री-समाजको देना या दिलाना पड़ेगा। यदि एक पुरुष अपनी पत्नीके बांझ अथवा रोगी होनेपर दूसरे विवाहका अधिकार रखता है, उसकी बिना सम्मति और इच्छाके एक सौत उसकी छातीपर लाकर बिठला देता है, तो स्त्रीको स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि पुरुषके नपुंसक, रोगी वा चिररोगी, वासनाके लिए बहुविवाह करनेपर ऐसे पतिको वह त्याग सके। आज हमारे रोगी समाजमें अबलाओंका करुण क्रन्दन उपर्युक्त अत्याचारोंके कारण प्रबल हो रहा है, तब उनको यातनाओंसे विमुक्त करनेके लिए और पुरुष समाजकी बुद्धिको ठिकाने लगानेके लिए स्त्री-समाजको तलाकरूपी अस्त्र देना पड़ेगा। जब महिलायें पातिव्रतका पालन करती हुई अपने योग्य-अयोग्य पतिको देवता तुल्य पूजती हैं, उसके विपरीत पत्नीका कोई आदर न करते हुए, उसकी भावनाओंका अनुचित उपयोग करते हुए पति एक पत्नीव्रतका पालन नहीं करता है, व्यभिचारी और वेश्यागामी, दुराचारी और कामी

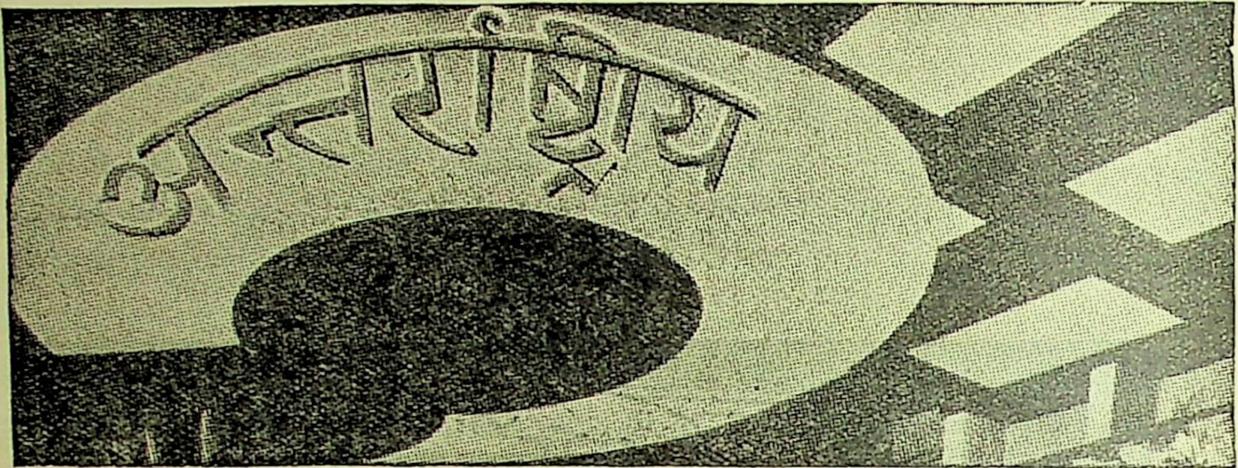
है, तो ऐसे पतिको त्यागकर उसकी अक्लको दुरुस्त करनेके लिए तलाकका अधिकार स्त्री-समाजको दिलाना समाज और संस्कृतिके लिए किसी भी प्रकार अहितकर नहीं है।

पुनर्विवाहका अधिकार—जब पुरुषोंके लिए ४८ वर्षकी आयुमें भी एक पत्नीके देहावसान होनेपर, उसकी चिताकी राख ठण्ढी न होनेके पूर्व ही दूसरे विवाहकी चर्चा चलाकर, पुनर्विवाह करना समाज द्वारा स्वीकृत है, तो क्या क्षत और अक्षत योनिकी बाल-विधवाको पुनर्विवाहका अधिकार न दिया जाय? जिसने पतिके दर्शन केवल विवाहके शुभ अवसरपर ही किये हैं, जिसने सांसारिक सुखोंकी झलक भी नहीं देखी है, ऐसी स्त्रीको आजन्म वैधव्यकी काली चादर ओढ़कर अपने मृत पतिके नामपर उसकी स्मृतिमें सारी आयुको व्यतीत करनेको बाध्य करना क्या पक्षपाती पुरुष-समाजकी उच्छृङ्खलताकी पराकाष्ठा नहीं है? अक्षत विधवाओंका विवाह होना नितान्त आवश्यक है। जब पुरुष भी विधुर होनेपर ५९ वर्ष तक विवाहके लिए तैयार होते हैं, तब विधवाओंको भी इच्छा रहने अथवा परिस्थितिकी मांग होनेपर विधवा-विवाह अथवा पुनर्विवाह करनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता अथवा अधिकार समाज द्वारा प्रदान किया जाना चाहिए। समयकी प्रगतिके अनुसार प्रत्येक प्रान्त और जातिमें विधवा-विवाह होने लगे हैं; पर हिन्दू समाज उसे हेय दृष्टिसे देखता है। कई जातियोंमें विधवा-विवाहके प्रस्ताव प्रति वर्ष पास होते हैं; पर जब तक उन्हें कार्यरूपमें परिणत न किया जाय, कोई लाभ या कल्याण नहीं है। विधवा-विवाहकी कानूनी अड़चन नहीं है, केवल सामाजिक रूढ़िवादी रोड़ा अटकाते हैं। इच्छा रहते पुनर्विवाह करना प्रत्येक बाल और वयस्क विधवाका जन्मजात अधिकार है।

—मनोरमा गुप्त एम० ए०

———


आजी दौड़ो
सिरोँलिन रुचि सेवन करो!
SIROLIN
सिरोलिन 'रुचि'
संसारमे खांसी और फेफड़े की सर्वोत्तम टानिक



रूस बाल्टिक चाहता है

रूसकी वैदेशिक नीतिको लेकर आम तौरपर लोगोंमें तरह-तरहकी धारणायें फैल गयी हैं, पर जैसा कि 'कन्टेम्पोरेरी रिव्यू' में उल्फ्राम गाटलीवने लिखा है—बाल्टिकको लेकर रूसकी वर्तमान नीतिमें कोई नवीनता नहीं है। १९ शताब्दियोंसे इस दिशामें उसके प्रयत्न होते रहे हैं। जार मोरोस्लावके शासनकाल १०३० में तथा एसवाके शासनकाल ११०६ में लटवियाकी राहसे इसपर प्रभुत्व जमानेके लिए उसने प्रयत्न किये, लेकिन भीषण विरोधके सम्मुख वह टिक न सका। समुद्री प्रभुत्वके लिए ही उसके यह प्रयत्न थे। उन दिनों काले सागरपर तुर्कोंका प्रभुत्व था और श्वेतसागरका पता-ठिकाना न था, अतः बाल्टिक सागर ही पर रूसकी आंखें लगी थीं। लेकिन उन दिनों जर्मनोंका ऐसा प्रभाव जम चुका था कि यातायातके मार्ग, व्यापार सभीपर जर्मनीका नियन्त्रण था। उधर एस्थोनिया और लटवियाकी ओर दूसरी शक्तियां राह रोके खड़ी थीं, अतः रूसके लिए किसी ओर बढ़नेकी गुञ्जायश न थी।

पर रूस चुपचाप बैठ नहीं सकता था। और इवानने इस दिशामें पन्द्रहवीं शताब्दीमें कुछ सफलता भी प्राप्त की। उसने बाल्टिक देशोंपर आक्रमण कर दिया। नारवाके बन्दरगाहपर अधिकार जमानेके बाद लटविया एवं एस्थोनियापर भी उसने अधिकार जमा लिया।

इसके बाद कितने ही सङ्घर्षोंकी कहानी है। १७१० में रूसने दूसरे बाल्टिक राज्योंपर भी आधिपत्य कर लिया। इस दिशामें रूसकी भूख जो बढ़ी, तो रुकी नहीं और कैथेरीनके समयमें उसने जर्मनीके साथ मिलकर पोलैण्डका भी बंटवारा कर लिया। इसके साथ ही उसने लिथुआनिया तथा कोरलैण्डकी डचीपर भी आधिपत्य जमाया और धीरे-धीरे रूसकी सीमा अब प्रशाके सीमान्त तक पहुंच चुकी थी। अब स्थिति यह थी कि लटविया तथा एस्थोनियाके सभी बन्दरगाहोंपर रूसी देख-रेख होने लगी और उसका प्रभाव इतना बढ़ गया था कि १७८० में उसने स्वेडेन, डेनमार्क और प्रशाको इस घोषणापत्रपर हस्ताक्षर करनेको राजी कर लिया कि विदेशी जहाज उक्त बन्दरगाहोंपर आने ही न पायें। १८५७ में इस घोषणाको रद्द कर दिया गया, पर रूस सदा प्रयत्नशील था। १९०७ में निकोलस द्वितीयने कैसरको इस बातपर राजी करनेके लिए काफी कोशिशें की थीं कि सभी जङ्गी जहाजोंको उक्त जल-क्षेत्रमें जानेसे रोक रखा जाय।

१९१७ में रूसमें जिस सरकारकी स्थापना हुई, उसने एस्थोनिया, लटविया और लिथुआनियाकी स्वाधीनता स्वीकार कर ली, पर साम्राज्यके प्रभाव-क्षेत्रसे उन्हें अलग रखनेका उनका भी उद्देश्य नहीं था।

और रूस ऐसा कैसे कर सकता था, अगर उसे यूरोपीय राजनीतिसे सम्बन्ध-बिच्छेद नहीं कर लेना था? नाजी जर्मनीने रूसके विरुद्ध जब इस प्रकारकी तैयारियां शुरू कर दीं, तब रूसने अपनेको चारों ओरसे घिरा पाया और उसीकी प्रतिक्रिया रूसकी वर्तमान वैदेशिक नीतिमें दिखाई पड़ रही है।

जापान चीनपर शासन नहीं कर सकता

जापान कितने ही दिनोंसे सुदूर पूर्वमें नयी व्यवस्था स्थापित करनेका स्वप्न देख रहा है। लेकिन अभी तक इस स्वप्नको कहां तक चरितार्थ कर सका है ? अमेरिकन मर्करीने लिखा है :—

चीनमें जापानके दो वर्षोंके त्याग और बलिदान व्यर्थ हो रहे हैं। जापानियोंने इस दिशामें काफी कोशिशें की हैं, पर सभी बेकार हो रही हैं। फारमोसा, कोरिया, मञ्चूको सभी इस बातको स्वीकार करते हैं कि जापानका आधिपत्य जिस रूपमें स्थापित हुआ है, उसमें ऐसी स्थिति स्थायी रूपसे बनी हुई है, मानो निरन्तर एक युद्ध चल रहा है। उक्त प्रदेशोंका उपनिवेशोंके समान उपयोग करनेमें वह अब तक असमर्थ रहा है। जापानकी सैन्य-शासन-प्रणालीसे विजित देशोंके निवासियोंको सन्तोष नहीं हो सकता। यही कारण है कि जापान समस्त चीनपर विजय प्राप्त करनेकी अभिलाषा एवं साहस छोड़ रहा है। सैनिक दृष्टिसे तो जापानको विजय मिल चुकी है, लेकिन जापानी मशीनगनोंकी छाया तक ही जापानी सरकारका प्रभाव भी सीमित है। लेकिन जापानियोंके पास कोई और साधन भी नहीं है। जापानी सेनाके हटते ही चीनी उपद्रव मचाने लगते हैं और जापानियोंके लिए वहां रहना असम्भव हो जाता है। जापानका जहां भी शासन स्थापित हुआ है, सर्वत्र यही स्थिति है। यह अवस्था बतलाती है कि चीनकी आत्मा अभी भी स्वाधीन है और जापान चीनको कभी भी पराजित नहीं कर सकेगा।

मैं जर्मन हूं

मुझे बोलशेविज्मसे घृणा करना सिखाया गया था, लेकिन स्टैलिन आज मेरा मित्र और रक्षक है।

मुझे सिखाया गया है कि बाल्टिक जर्मन झील है, पर आज उसमें जर्मनीकी अपेक्षा रूसके ही नौसेनाके अड्डे अधिक हैं।

मुझे सिखाया गया है कि रोम-बर्लिन धुरी अटूट है और हम इटलीके साथ कन्धेसे कन्धा भिड़ाकर चलनेवाले हैं, पर हम चलते नहीं हैं।

मुझे सिखाया गया है कि ब्रिटिश जाति क्षीणशील है और उन्होंने साम्राज्यके निवासियोंके साथ ऐसा अत्याचार किया है कि वे फिर कभी मातृभूमिके लिए नहीं लड़ेंगे। लेकिन वे लड़ रहे हैं।

मुझे सिखाया गया है कि हिटलर जर्मनीको युद्धमें कभी भी नहीं डालेगा, लेकिन उसने युद्धमें डाला है और हमें आज अकेले ही पश्चिमका सामना करना पड़ रहा है।

मुझे सिखाया गया है कि त्याग करने, रासायनिकोंके साधनों एवं हरमान गोरिङ्गके निरन्तर प्रयत्नोंसे हम लोग खाद्य पदार्थोंको लेकर स्वावलम्बी हो जायेंगे, लेकिन हम लोग भूखे हैं।

मुझे सिखाया गया है कि जर्मनोंके लिए रहनेके स्थान-की खोज करनी है, लेकिन हिटलरने सभी जर्मनोंको देशमें बुला लिया है।

मुझे सिखाया गया है कि आस्ट्रियावालोंने मत-संग्रहकी मांग की थी, पर आज वे इसकी मांग करते नहीं दिखाई पड़ते। मुझे यह भी सिखाया गया था कि जेकोस्लोवेकिया-वालोंने हिटलरसे इस बातकी प्रार्थना की थी कि वे बेनसके चंगुलसे उन्हें मुक्त करें, पर आज वे विद्रोह करनेके लिए छटपटा रहे हैं।

मुझे सिखाया गया है कि हमारी आकाश सेना बेजोड़ है, पर रायल एयर फोर्सके विमान हमारे शहरोंपर आते और निर्विरोध मड़राकर चले जाते हैं। जब वे बम बरसाना आरम्भ करेंगे, तब क्या होगा ?

मुझे जर्मनीकी अजेय सेनापर विश्वास करनेके लिए कहा गया है, पर जर्मनीकी भूमिपर फ्रान्सीसी सेना हफ्तों अधिकार जमाये बैठी रही।

—न्यूज रिव्यू।

अमेरिका क्या करे ?

यूरोपीय युद्धको लेकर अमेरिका किस दृष्टिकोणसे काम ले, इस सम्बन्धमें वहां तरह-तरहके मत प्रकट किये जा रहे हैं। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने आशा प्रकट की थी कि बसन्त-काल तक लड़ाईका अन्त हो जायगा, पर यह आशा गलत निकली। अतः अब अमेरिकनोंके सामने यह प्रश्न आ उप-स्थित हुआ है। इस सम्बन्धमें 'फार्चुन'ने लिखा है :—

यूरोपमें आज जो युद्ध छिड़ गया है, उससे शान्तिकी

आशा धूर हट गयी है। मगर किसीको पूरा-पूरा अधिकार दे भी दिया जाय, तो भी ऐसा भला कौन है, जो किसी ऐसी शक्तिकी योजना बनाये, जिसे सभी—अथवा आधे राष्ट्र भी स्वीकार कर सकें ? युद्धका अन्त चाहे मित्र-राष्ट्रोंकी विजय अथवा जर्मनीकी विजयमें हो, उसके बादकी स्थिति किसके लिए सन्तोषजनक होगी ? यह तो तब तक सन्तोषजनक नहीं हो सकता, जब तक कि किसी ऐसी आदर्श व्यवस्थाकी स्थापना नहीं हो जाती है, जिससे शान्ति चिरस्थायी अथवा दीर्घस्थायी हो सके।

किसी भी खेलकी सफलताके लिए यह आवश्यक है कि जितने भी खिलाड़ी हों, सभी खेलके नियमोंके अनुसार खेलें। लेकिन जब रूस, जर्मनी, इटली तथा दूसरे देश इन नियमों-की उपेक्षा करते हैं, तब खेल ठीकसे चल नहीं सकता। विश्व-शान्तिकी स्थिति भी ऐसी ही है। जब गणतन्त्रात्मक विचार-धाराके विरुद्ध सभी शक्ति लगाकर जुट पड़ेंगे, तब भला सुव्यवस्था कहां बनी रह सकती है।

इसलिए अमेरिकाके लिए आवश्यक यह है कि यह युद्धमें पड़े ही नहीं। अमेरिका आखिर अपने सैनिकोंको किसलिए युद्ध-क्षेत्रमें मरनेके लिए भेजे ? अगर विश्व-शान्तिकी स्थापना की सम्भावना होती, तो १९१७ की भांति हम लोग युद्धमें पड़ते, लेकिन इस उद्देश्यकी सम्भावना न होनेपर ऐसा करना आत्मघात होगा।

इसलिए हमारे सामने ऐसी समस्या आ गयी है, जो हमारे इतिहासमें सबसे कठिन समस्या हो सकती है। अभी जो व्यवस्थायें चल रही हैं, उनके अनुसार काम करनेसे-—वर्तमान वाणिज्य-व्यवसायकी प्रगति रखनेसे हम झमेलेमें फंसते चलेंगे। लेकिन अगर इससे बचना चाहें, तो क्या हम अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य-व्यवसाय बन्द कर दें, पनामा नहर बेच डालें और केवल अपने देशकी रक्षा करें ? ऐसा करना तो उन्हीं बातोंकी स्थापना करना होगा, जिनसे हम बचना चाहते हैं। ऐसी दशामें समस्या कठिन है, पर संसार शान्ति-का भूखा है और इस दिशामें अमेरिका चुप नहीं रह सकता।

तो इस प्रकारकी शान्तिकी योजना क्या हो सकती है ? यह बात तो हमें दिमागसे निकाल ही देनी चाहिए कि पुराने ढङ्गके शक्ति-सामञ्जस्यकी स्थापना पुनः हो सकती है। साथ ही शान्तिवादियोंका यह स्वप्न भी चरितार्थ नहीं हो सकता कि संसारमें निरस्त्रीकरण किया जा सके।

समय अब ऐसा नहीं रहा कि अमेरिका अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंकी उपेक्षा कर सके। लेकिन इन समस्याओंपर विचार करते समय स्थितिकी वास्तविकताओंको भी भुलाया नहीं जा सकता। ऐसी दशामें अमेरिकाके सामने जो समस्यायें हैं, उनमें इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि मानव-जातिका भाग्य अमेरिकाके हाथमें है।

रूस और जर्मनी

इस समय जब कि रूस और जर्मनीके सम्बन्धमें इस प्रकारकी अटकलोंकी संख्या कम नहीं है कि दोनों ही देश एक साथ ही यूरोपीय युद्धमें संयुक्त शक्तिसे लड़ेंगे, तब ए० जी० गार्डिनरकी निम्नाङ्कित पंक्तियां सम्भवतः स्थितिका स्पष्टीकरण करनेमें सहायक हो सकेंगी। गार्डिनरने लिखा है:-

अगर मुझसे पूछा जाय कि अब तक युद्धमें सबसे महत्त्व-पूर्ण घटना क्या हुई है, तो मैं कहूंगा कि पोलैण्डकी पराजयको यह महत्त्व नहीं मिल सकता। पोलैण्डकी पराजय ऐसी घटना नहीं है, जिसका सम्बन्ध महत्त्वपूर्ण भावी घटनाओंसे हो। यों तो घटनाका प्रदर्शनपूर्ण महत्त्व है, पर यह अप्रत्या-शित नहीं हुई है। आज पोलैण्ड नक्शेसे मिट चुका है, पर उसका समय पुनः लौटेगा। पनडुब्बी-युद्धमें जर्मनीको जो सफलता मिली है, उसे भी महत्त्व नहीं दिया जा सकता। सबसे महत्त्वपूर्ण घटना तो यह हुई है कि हिटलर अपने महत्त्वके पदसे नीचे आ गया है। अब मञ्चका प्रधान अभि-नेता हिटलर नहीं रहा, स्टैलिन हुआ है। परिस्थितियोंसे विवश होकर हिटलरने स्टैलिनके विरुद्ध जितना भी विष वमन किया था, सब उसे उठाकर पुनः पीना पड़ा। और उसीसे मैत्री जोड़नी पड़ी। इसका परिणाम यह हुआ है कि पूर्वी यूरोपमें स्टैलिन सारी स्थितियोंका मालिक हो बैठा है।

स्टैलिनने अस्पष्ट आश्वासनोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं दिया और मिला उसे सब कुछ, जो कुछ भी उसने चाहा। काला सागरसे बाल्टिक तक उसका प्रभावक्षेत्र बन गया है। पोलैण्डका हिस्सा उसे मिला और एस्थोनियामें जो बन्दर-गाह उसे मिले, उससे बाल्टिकमें उसकी समुद्री शक्ति बढ़ गयी है। बाल्टिक राज्योंका, जिन्हें हिटलर स्वयं चाहता था,

जैसे वह अभिभावक बन बैठा है। और रूमानियाके तैल-क्षेत्रोंकी ओर भी हिटलरकी दृष्टि थी, पर आज स्टैलिनकी भी पहुंचके बाहर वे नहीं हैं। और इस व्यापारमें हिटलरने क्या लाभ उठाया ?

हिटलरने वास्तवमें रूससे कुछ भी लाभ नहीं उठाया है। रूसके कच्चे मालकी ओर उसकी पहुंच हो सकती है। पर जर्मनीके पास पैसा ही कहां है कि वह खरीद सके और फिर रूसकी अपनी आवश्यकतायें भी इतनी अधिक हैं कि दूसरों-के लिए उसके पास बचता ही क्या है ? उल्टे इसके हिटलर-ने खोया ही बहुत है। पूर्वमें उसका साम्राज्य-विस्तारका स्वप्न भङ्ग हो चुका है। पोलैण्डमें हिटलरको हिस्सा अवश्य मिला है, पर उसे बहुत बड़ी सेना वहां हमेशा रखनी है, केवल पोलोंको विद्रोह करनेसे दबानेके लिए ही नहीं, अपने नये पड़ोसीपर भी नजर रखनेके लिए। क्योंकि हिटलर स्टैलिन-का उतना ही विश्वास करता है, जितना स्टैलिन हिटलरका।

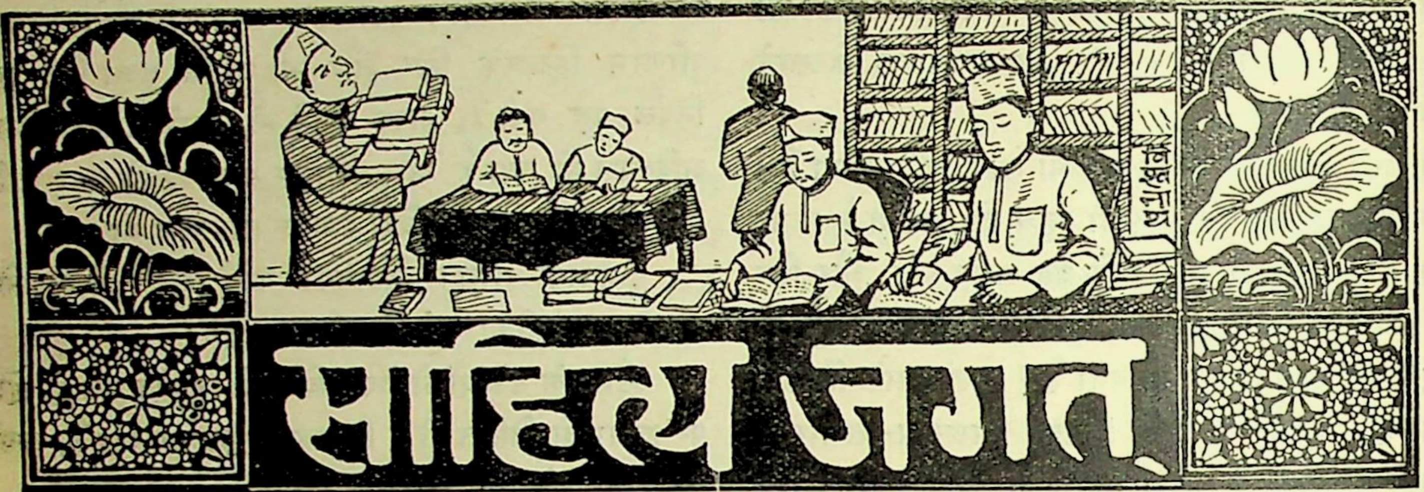
इतना ही नहीं। स्टैलिनके साथ समझौता करनेका परिणाम हिटलरके लिए और भी घातक हुआ है। धुरी निर्बल पड़ गयी है, अपने देशमें भी उसके प्रति लोगोंका अविश्वास हो गया है और लोगोंपर यह स्पष्ट हो गया है कि बोलशेविज्मका उसका विरोध महज ढकोसला था।

दुनियाके सामने हिटलरकी कलई खुल गयी है और उसकी बदमाशीका पर्दाफाश हो गया है।

स्टैलिनके उद्देश्योंको लेकर किसीको सन्देह भले ही हो, पर इतना तो निश्चित ही है कि वह जो कुछ कर रहा है, अपने लिए, हिटलरके लिए नहीं।

मास्कोसे सम्बन्ध जोड़कर हिटलरने पाया कुछ भी नहीं, खोया ही बहुत कुछ है।

और यह हिटलरके कफनमें दूसरी कील है।



हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी

कांग्रेसने जबसे विदेशी भाषा अंगरेजीको छोड़कर भारतीय भाषामें ही अपने सारे काम-काज करनेकी मनमें ठानी, तबसे उसके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि प्रचलित भारतीय भाषाओंमेंसे कौन-सी भाषा वह स्वीकार करे। उद्देश्य यह था कि जो भाषा इस कार्यके लिए चुनी जाय, वह ऐसी हो, जिसे अधिकसे अधिक संख्यामें भारतीय लोग बोलते हों और जिसे अधिकसे अधिक भारतीय समाज सुगमतासे समझ सके। बोलने और समझनेकी ही कसौटी भाषाके निर्वाचनमें सबसे उपयुक्त समझी गयी और वास्तवमें यही सबसे उत्तम कसौटी हो भी सकती थी। अतः इस दृष्टिसे जब प्रचलित भारतीय भाषाओंकी परीक्षा की गयी, तब निर्विवादरूपसे हिन्दी सबसे प्रथम सामने आयी। हिन्दी भाषाका भारतवर्षके एक कोनेसे दूसरे कोने तक जितना प्रचार है, उतना किसी भी दूसरी आर्य अथवा अनार्य भाषाका नहीं है। मध्य देश-की यह भाषा अपने पड़ोसी तथा अन्य प्रान्तोंमें भी समादृत है और वहां भी बोली तथा भली भांति समझी जाती है। संयुक्त प्रान्त, बिहार, मध्यभारत तथा मध्यप्रान्त तो इसके प्रधान अथवा मूल देश हैं ही, साथ ही पूर्वी पञ्जाब, राजपूताना, बरार तथा पार्वत्य प्रदेशोंकी बोलचालकी भाषा भी हिन्दीसे बहुत निकट है और इनकी साहित्यिक भाषा तो सर्वत्र शुद्ध साहित्यिक हिन्दी है। इस प्रकार लगभग आधे भारतखण्डकी भाषा हिन्दी है। वही वहां बोली तथा समझी जाती है। इन प्रान्तोंके अतिरिक्त भारतके अन्य प्रान्तोंमें भी हिन्दी समझी तो प्रायः सर्वत्र जाती है, पर बोली कम जाती है। हम यह नित्य देखते हैं कि द्राविड़ भाषा-भाषी जब महाराष्ट्रियों, गुजरातियों तथा बङ्गालियोंसे मिलते हैं, तो वे हिन्दीमें ही बातचीत करते हैं। नेपाली यदि गुजरातीसे बोलेगा, तो हिन्दीमें ही। काश्मीरी और बङ्गालीकी बातचीत हिन्दी ही में। महाराष्ट्री अपने बङ्गाली मित्रसे हिन्दी-में ही बोलेगा। अंगरेजी तो राजनीतिक कारणोंसे देशमें कुछ ही लोगों द्वारा बोली तथा समझी जाती है, पर हिन्दी सारे देशकी राष्ट्रीय भाषा न जाने कबसे चली आ रही है। अतः यह सब देख-समझकर महात्मा गांधीने हिन्दीको राष्ट्र-भाषा बनानेकी कांग्रेससे सिफारिश की और कांग्रेसने तदनुसार हिन्दीको राष्ट्र-भाषा माना।

इस प्रकार कांग्रेसने भी हिन्दीको जब राष्ट्र-भाषा स्वीकार किया, तब हिन्दीके प्रति कोई पक्षपात नहीं किया था, वरन् उसने देखा कि हिन्दी ही वस्तुतः सारे देशकी एक भाषा होनेमें सम्पूर्ण रूपसे योग्य है और व्यावहारिक रूपमें तो वह राष्ट्रकी भाषा है भी। अतः कांग्रेसने केवल इस सत्य बात-की ही पुष्टि की।

हिन्दीको राष्ट्र-भाषा माननेमें आसाम, बङ्गाल, उत्कल, द्रविड़ प्रदेश, महाराष्ट्र तथा गुजरात व काश्मीरको भी विशेष अड़चन नहीं हो सकती, कारण इन प्रदेशोंकी भाषा तथा इनके साहित्यका जन्म तथा विकास जिस मूल भाषा व साहित्यसे हुआ है, उसीसे हिन्दीका भी हुआ है। अतः इन सब प्रान्तोंके निवासियोंको थोड़े ही प्रयाससे हिन्दी भाषा तथा साहित्यका ज्ञान हो जाता है। अब तककी

भाषा सम्बन्धिनी खोजसे यह सिद्ध है कि आधुनिक हिन्दी, मराठी, गुजराती तथा बंगला भाषायें आपद्‌कालीन वैदिक संस्कृतसे ही प्रादुर्भूत तथा क्रमशः विकसित हुई हैं। वैदिक संस्कृतसे लौकिक संस्कृत अथवा साहित्यिक संस्कृतका क्रमशः विकास हुआ। बुद्धदेवके समय यद्यपि लौकिक संस्कृत साहित्यिक भाषा बनी थी, पर बोलचालकी भाषामें पर्याप्त अन्तर हो गया था और जिस भाषाको उस समय उनके जन्म और उपदेशके कर्मक्षेत्रकी अधिकांश जनता नित्यके बोलचालमें व्यवहार करती थी, वह पाली थी। बुद्धदेवको अपने वचन अपढ़ तथा साधारण जनताको ही मुख्यतः सुनाने थे, बड़े-बड़े पण्डितोंसे शास्त्रार्थ नहीं करना था। अतः उन्होंने उसी बोलचालकी भाषाको अपने प्रचारका माध्यम बनाया था और बुद्धदेवके पवित्र वचनोंके सम्पर्कसे पाली अमर हो गयी। कालचक्रकी गतिसे पालीकी अनवरत वृद्धि होती गयी और वह साहित्यासीन होकर ही परिपुष्ट न हुई; किन्तु अमर सम्राट् अशोकके राजसिंहासनसे उसने सारे भारतका शासन किया और सदाके लिए अपनी छाप गगनचुम्बी लाटों तथा शिलाखण्डोंपर छोड़ गयी।

सैकड़ों वर्ष साहित्य-सेवा तथा राजसेवा करते-करते पाली वृद्ध हो चली और उसने अन्ततः वह गौरवपूर्ण स्थान अपनी अनुगामिनी प्राकृतको प्रदान किया। प्राकृतके देश-भेदसे अनेक रूप हुए। मध्यदेश अथवा शूरसेन देशकी प्राकृत 'शौरसेनी प्राकृत' कहलायी। महाराष्ट्री, मागधी, अर्ध-मागधी, पैशाची इत्यादि प्राकृतके अन्य प्रान्तोंमें प्रचलित रूप हुए। इस प्रकार यद्यपि वे सब पृथक्-पृथक् हो गयीं, पर उनमें समता पूर्णरूपेण थीं। थीं तो एक ही मांकी बेटियां। आजकलकी बंगला, मराठी, गुजराती तथा हिन्दीका विकास धीरे-धीरे इन्हीं प्राकृतोंसे हुआ है। प्राकृत कालमें शौरसेनी प्राकृतको ही सबसे अधिक मान मिला, वह मध्य देशकी भाषा थी।

यह युग भी धीरे-धीरे बीता और प्राकृतोंके उपरान्त अपभ्रंशोंका समय आया। जितनी प्राकृतें थीं, उतनी ही अपभ्रंश भी हुईं, पर प्रधानता पुनः शौरसेनी प्राकृतके स्थानापन्न नागर अपभ्रंशको ही मिली। नागरापभ्रंश देशकी तत्कालीन राष्ट्रभाषा अथवा साहित्यिक भाषा हुई और बड़े-बड़े कवियोंकी आराध्य देवी बनी। इसी नागरापभ्रंशका उस समय सारे देशमें बोलबाला रहा।

आधुनिक कालकी हिन्दी दूसरी नागरापभ्रंशका ही विकसित रूप है। हिन्दीको जो सारे देशने बिना मुकुटकी महारानी माना, वह महत्त्व उसे परम्परासे प्राप्त है। हिन्दीके लिए यह कोई नयी बात नहीं है। इतिहास इस बातका साक्षी है कि मध्यदेशकी ही भाषा सदासे भारतकी साहित्यिक भाषा तथा राष्ट्रभाषा रही है। आधुनिक खड़ी बोलीके पूर्व ही क्या दशा थी? ब्रजभाषा, जो मध्यदेशकी ही भाषा है और नागरापभ्रंशसे सीधा सम्बन्ध रखती है, साहित्यिकोंकी भाषा थी। भूषणकी शिवाबावनी राष्ट्र-भाषामें ही रची गयी और लाल कविने छत्र-प्रकाशकी रचना किसी अन्य भाषामें नहीं की।

उक्त आर्यभाषा-परिवारमें पृथक्करणकी मात्रा देशकालके अनुसार बढ़ती गयी, फिर भी आज दिन गुजरात, महाराष्ट्र, बङ्गाल तथा हिन्दी भाषाभाषी प्रान्तोंमें अनेकताके मध्य एकताके दर्शन होते हैं। यह एकता सांस्कृतिक है तथा पैतृक है। अनेकताके मध्य यह एकता वर्तमान है और रहेगी। इन सभी भाषाओंकी मूल भाषा अथवा आकार भाषा तो एक ही है और उसीसे तो सब अपना जीवन-रस पा रही हैं। अपने साहित्यकी श्रीवृद्धि तो ये एक ही आकर भाषासे करती आयी हैं और निरन्तर करती जा रही हैं। फिर क्यों न इनमें मूलगत एकताके दर्शन हों? सांस्कृतिक एकता तो इनकी अटूट है। इस प्रकार हिन्दी जो राष्ट्र-भाषाके उच्च-स्थानकी परम्परासे अधिकारिणी होती चली आयी है, आज दिन भी निसर्गतः उस पदके लिए सर्वथैव उपयुक्त है और एक प्रकारसे तो कांग्रेसकी स्वीकृतिसे पूर्व ही वह राष्ट्रभाषा व्यवहार रूपसे थी ही। इस योजनासे थोड़े ही प्रयासमें वह बङ्गाल, गुजरात तथा महाराष्ट्रमें भी सर्वसुलभ हो जायगी। और अब तो मद्रास तथा आसाम प्रान्त तकमें उसका प्रचार तेजीके साथ हो रहा है।

ऐसी परिस्थितिमें कुछ साम्प्रदायिक मुसलमानोंने हल्ला मचाना शुरू किया कि कांग्रेस हिन्दीका प्रचार करके भारतसे मुसलमान सभ्यता तथा संस्कृतिका नाश करना चाहती है और हिन्दीके प्रचार द्वारा हिन्दू राज्यकी स्थापना कर रही है। सम्भवतः मुसलमानोंके इस अभियोगसे डरकर अथवा हिन्दू-मुसलमान-मेलको ही राजनीतिक उद्देश्यकी सिद्धिके लिए आवश्यक समझकर वह एक नयी भाषाके गढ़नेमें लगी

है, जिसको 'हिन्दुस्तानी' नाम दिया गया है और जिसके विषयमें यह प्रचार किया जाता है कि यही सारे देशकी भाषा है।

—श्री चन्द्रबली पाण्डे, एम० ए०

* * * *

फूकी जावा। लेखक तथा प्रकाशक—प्रो० महेशचरण सिंह, एम० एल-सी० एजी० आर०, मुहम्मद अली कटरा, लखनऊ।

प्रस्तुत पुस्तक जैसा कि इसके नामसे स्पष्ट है, फूकी जावाका जीवनचरित है। जापानको दूसरे देशोंके समकक्ष लानेवाले उपकरणोंको उत्पन्न करनेवाले जितने महापुरुषोंने काम किया, उनमें फूकी जावाका विशेष स्थान है और इसीलिए वह आधुनिक जापानका विधाता समझा जाता है। लेखकने ओजस्वी शब्दोंमें जीवनचरित लिखनेके अतिरिक्त उनके लेखों एवं विचारोंपर भी प्रकाश डाला है।

वनसपतिशास्त्र। लेखक एवं प्रकाशक वही। पृष्ठसंख्या २९९, मूल्य ३॥) रु०

वनस्पतिशास्त्रपर हिन्दी-पुस्तकोंका प्रायः अभाव-सा है। अतः लेखकका यह प्रयत्न एक अभावकी पूर्ति करता है। लेखकने हिन्दीमें लिखते समय हिन्दी पारिभाषिक शब्द देनेका भी प्रयत्न किया है और १९९ चित्रोंकी सहायतासे विषयको और भी सुबोधगम्य बना दिया है।

अन्तर्ज्वाला। लेखक—पं० देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त'; प्रकाशक—साहित्य प्रेस, जबलपुर, कागज-छपाई-सफाई साधारण; पृष्ठ-संख्या १७९; मूल्य १)।

मस्तजी इधर काफी दिनोंसे हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंमें लिख रहे हैं। इस पुस्तकमें उनकी नौ कहानियोंका संग्रह किया गया है। संग्रहकी कई कहानियां हमें पसन्द आयीं। उनमें भाषा, भाव एवं चरित्र-चित्रणमें सफलता मिली है। आशा है, मस्तजी आगे चलकर और भी सुन्दर साहित्यकी सृष्टि करनेमें सफल होंगे।

राजस्थानी साहित्यकी रूपरेखा। लेखक—पण्डित मोतीलाल मेनारिया एम० ए०, प्रकाशक—छात्र हितकारी पुस्तकमाला, दारागञ्ज, प्रयाग; कागज, जिल्द, छपाई-सफाई सुन्दर; पृष्ठसंख्या २९८; मूल्य २॥) रु०।

हिन्दी-साहित्यमें राजस्थानी साहित्यका एक महत्त्वपूर्ण स्थान है; पर खेद है, उसका बहुत-सा अंश अभी अन्धकारमें पड़ा हुआ है। ऐसी दशामें प्रस्तुत पुस्तक-लेखकके इस प्रयत्नकी सराहना करनी पड़ती है, जिन्होंने इस विषयको उठाया और इस प्रकार क्रमबद्ध इतिहास लिखनेमें अपना समय लगाया। साहित्यके विद्यार्थियोंके लिए पुस्तक उपयोगी है, इसमें सन्देह नहीं।

रोमाञ्चक रूस। लेखक—डाक्टर सत्यनारायण; प्रकाशक—श्री नाथूराम प्रेमी, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरिगांव, बम्बई। पृष्ठ-संख्या २८९, मूल्य २)

डाक्टर सत्यनारायणने पिछले दिनों कई देशोंका भ्रमण किया था। भ्रमण तो कितने ही करते हैं और अपने भ्रमण-वृत्तान्त भी कितने ही लिखते हैं; पर प्रस्तुत पुस्तकके लेखकने अपने भ्रमणका अच्छा उपयोग किया है। उन्होंने इस पुस्तकमें रूसके सम्बन्धमें अपनी आंखों देखी बातों एवं अपने अनुभवोंका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। लेखकने जिन विषयोंपर लिखा है, वे तो सुन्दर हैं ही, उनकी वर्णनशैली इतनी सजीव एवं दिलचस्प है कि सारी पुस्तक एक मनोरञ्जक उपन्यासका-सा मजा देती है। पर मनोरञ्जनके साथ-साथ पुस्तकमें कितनी ही ज्ञातव्य बातें हैं। रूसके जीवनकी झलक पुस्तकमें मिलती है। वर्तमान रूस एवं रूसियोंको समझनेके लिए प्रस्तुत पुस्तक निश्चय ही अत्यन्त उपयोगी है और लेखकने इसका नामकरण रोमाञ्चक रूस वस्तुतः ठीक ही किया है। यात्रा-वृत्तान्तोंका कोई भी पाठक रोमाञ्चक रूसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

यान्त्रिक आविष्कार। लेखक—श्री महेन्द्रचन्द्र राय बी० ए० एल० टी०; प्रकाशक—विद्या भास्कर बुक डिपो, चौक, बनारस। कागज, छपाई-सफाई साधारण; पृष्ठ-संख्या १७२; मूल्य १) रु०।

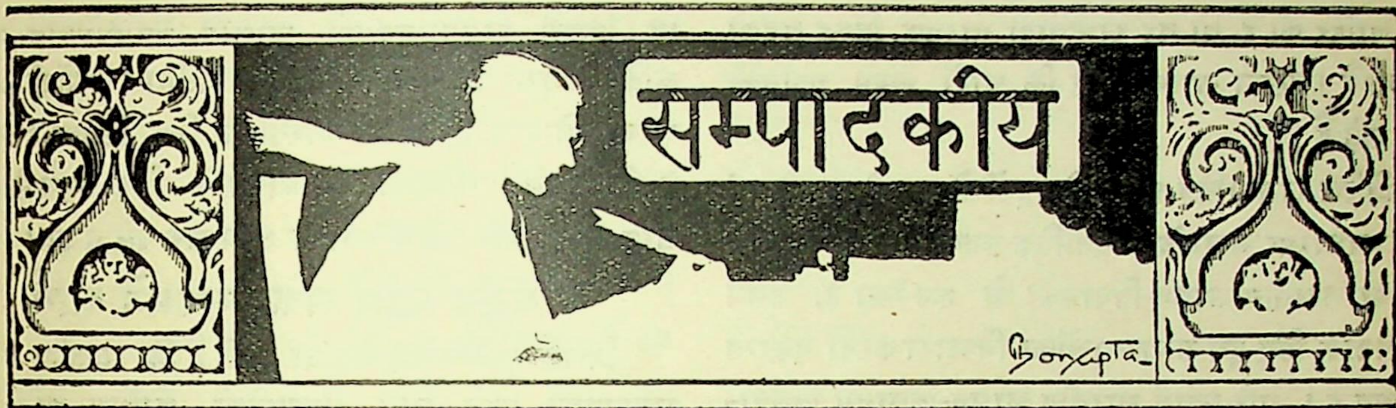
प्रस्तुत पुस्तकमें, जैसा कि इसके नामसे ही स्पष्ट है, कितने ही वैज्ञानिक आविष्कारोंके सम्बन्धमें प्रकाश डालनेकी कोशिश की गयी है, लेकिन लेखनशैली थोड़ी उलझी हुई है और यद्यपि स्थल-स्थलपर आविष्कारोंको चित्रोंके सहारे समझानेकी बात कही गयी है, पर चित्र पुस्तकमें दिये ही नहीं गये हैं। ऐसे प्रयत्न चित्रों तथा समझानेके सुबोध ढङ्गके अभावमें असफल हो गये हैं। इस विषयके लेखकोंको ऐसी बातोंसे बचनेकी कोशिश करनी चाहिए।

मनस्वी। सम्पादक—श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' साहित्य-रत्न, विद्याभूषण ; सञ्चालक—श्रीमान् कुमार रणञ्जय सिंह ; प्रकाशक—पण्डित रामसुन्दर मिश्र, अमेठी राज्य, जिला सुलतानपुर, अवध ; वार्षिक मूल्य १) और एक अङ्कका सिर्फ ६ पैसे।

यह एक प्रगतिशील साहित्यिक मासिक पत्र है। आलोच्य अङ्क फरवरी १९४० का अङ्क है। इस पत्रको प्रकाशित होते दो वर्ष हो गये हैं। अमेठी राज्यके कुमार रणञ्जय सिंहकी प्रेरणा एवं सहायतासे यह पत्र निकल रहा है। पत्रोंके लिए अवध ऊसर भूमिके समान है। अशिक्षाके कारण वहांके लोगोंमें पत्रोंके प्रति बहुत कम दिलचस्पी है। ऐसी हालतमें, अवधसे कोई साप्ताहिक या मासिक पत्र निकालना और सफलता प्राप्त करना आसान नहीं है। हम कुमार साहबके साहसकी प्रशंसा करते हैं उनके इस सदुद्योगके लिए। इससे वहांके लोगोंमें पत्र-प्रियता बढ़ेगी। मेरा ख्याल है कि प्रचारकी दृष्टिसे ही पत्रका मूल्य इतना कम रखा गया है। यह और अच्छी बात है। मैं तो आशा करता हूँ कि कुमार साहब मासिकके बदले साप्ताहिक पत्र निकालेंगे और स्थानीय जनताकी सेवा करेंगे। अमेठी राज्यके यशोधन द्वितीय राजकुमार स्वर्गीय श्री रणवीर सिंह हिन्दीके प्रतिभाशाली कवि एवं मनस्वी लेखक थे। 'मनस्वी' उन्हींकी स्मृतिमें निकाला गया है।

पत्रमें लेखों और कविताओंका सङ्कलन अच्छा होता है और सम्पादन भी सन्तोषजनक है। राजनीतिक और आर्थिक लेखोंका अभाव बहुत खटकता है। आशा है, इस ओर सम्पादक तथा सञ्चालक महोदय विशेष ध्यान देंगे। हम पत्रकी उन्नति चाहते हैं और उम्मीद करते हैं कि अवधके लोग पत्रको अपनायेंगे तथा वहांका धनी-वर्ग पत्रकी सहायता करेगा। —राममनोहर सिंह।


सिर दर्द?
सारिडन का सेवन कीजिये
इस से दर्द शीघ्र ही दूर हो जायगा
Saridon
ANALGESIC
Saridon
Saridon



भावी राष्ट्रपतिका निर्वाचन

कांग्रेसके तिरपनवें अधिवेशनके अध्यक्ष-पदके लिए देशके सामने दो व्यक्ति—मौलाना अबुल कलाम आजाद तथा श्री मानवेन्द्रनाथ राय थे, जिनमें प्रथम सज्जनके नेतृत्वमें देशने विश्वास प्रकट कर उन्हें अगले वर्षके लिए अपना राष्ट्रपति निर्वाचित किया है। श्री रायने अपने निर्वाचन-घोषणा-पत्रमें स्पष्ट उल्लेख किया था कि निर्वाचनमें व्यक्तियोंका कोई प्रश्न नहीं है, क्योंकि व्यक्तिका ही प्रश्न होता, तो वे स्वयं मौलाना साहबके पक्षमें वोट देते। प्रश्न देशके सामने साध्यका भी नहीं था, क्योंकि दोनों ही पूर्ण स्वाधीनताके लिए हैं। प्रश्न केवल साधनोंको लेकर था—भारतके अन्तिम लक्ष्यको कार्यान्वित करनेके लिए अपनाये जानेवाले साधनोंको लेकर। अतः मौलाना आजादका निर्वाचन उन साधनोंमें देशके विश्वासको प्रमाणित करता है, जिन्हें गांधीजीके वास्तविक नेतृत्वमें कांग्रेसने अब तक अपनाया है।

राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंकी इस उलझन-भरी परिस्थितिमें हमारी जो समस्यायें तात्कालिक समाधान चाहती हैं, उनमें हिन्दू-मुसलिम समस्या भी है और वर्तमान निर्वाचनने प्रमाणित किया है कि इस समस्याको लेकर मि० जिन्नाके नेतृत्वमें करनेवाली लीगके प्रचार कितने असत्य आधारोंपर हैं कि कांग्रेस हिन्दुओंकी संस्था है और वह भारतमें हिन्दू राज्यकी स्थापना करना चाहती है। मौलाना साहबका मुसलिम-जगत्‌में जो सम्मान है, उनकी देशके प्रति जो सेवायें हैं, उलझी हुई परिस्थितियोंको सुलझानेकी उनकी जो प्रतिभा एवं प्रणाली है, उनसे देशका उनके नेतृत्वमें विश्वास प्रकट करना स्वाभाविक ही है। अतः ऐसे उचित निर्वाचनके लिए मौलाना साहबके साथ ही देश भी बधाईका पात्र है।

देशकी समस्यायें

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्यायें जब उलझी हुई हैं, युद्धका अन्त करनेके लिए एक बार जब पुनः युद्ध किया जा रहा है और शान्तिके उपादान जब इस अन्तर्राष्ट्रीय अराजकतामें विनष्ट होते जा रहे हैं, तब वायसरायके साथ गांधीजीकी मुलाकातोंका अन्तिम परिणाम इस रूपमें प्रकट होना, जो लार्ड जेटलैण्डके 'सण्डे टाइम्स'को दिये गये वक्तव्यमें स्पष्ट होता है, निश्चय ही खेदजनक कहा जायगा। लार्ड जेटलैण्ड भारत और ब्रिटेनके मानसिक सम्बन्धको कोई चोट नहीं पहुंचाना चाहते और भारतमें अल्पसंख्यकों, देशी नरेशों तथा यूरोपीय हित-सम्बन्धी जो समस्यायें हैं, उनके रहते हुए देशको वैधानिक प्रगतिके प्रतिकूल ही नहीं पाते, वे यह भी कहते हैं कि ये समस्यायें भारतीयोंको स्वयं हल करनी चाहिए।

गांधीजीने इस सम्बन्धमें 'हरिजन'में लिखा था :—"जिन लोगोंने हिन्दुस्तानमें अंगरेजी साम्राज्य निर्माण किया है, उन्होंने बड़े धीरजके साथ उसके ये चार स्तम्भ खड़े किये हैं, गोरे स्वार्थ, सेना, राजा लोग और कौमी फूट। पिछले तीनों पहले खम्भेके लिए ही हैं। असलियत जाननेवालोंको साफ दीखता है कि जब तक ये चारों खम्भे हटा न लिये जायें, तब तक साम्राज्यके कर्ताधर्ता यह दावा नहीं कर सकते कि उन्होंने साम्राज्य अथवा साम्राज्यकी भावनाको छोड़ दिया है।" इसके बाद गांधीजीने पुनः कहा है :—"राष्ट्रवादी और साम्राज्यवादी, इन दोनोंमें मेलकी कोई गुञ्जायश नहीं

है। इसलिए लार्ड जेटलैण्डने ब्रिटिश सरकारकी विचारपूर्ण राय जाहिर की है, तो वह राष्ट्रवादी भारतके विरुद्ध युद्धकी घोषणा है। इसका कारण यह है कि चारों खम्भे चट्टानकी तरह खड़े हैं।"

ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इन कठिनाइयोंको सामने रखते एवं इनके आधारपर भारतके राजनीतिक लक्ष्यको असाध्य बताते हैं। पर भारतीय शासन-विधानकी जो रूप-रेखा है, उसमें भारतीयोंके लिए इन समस्याओंका निपटारा करना एकान्त असम्भव है। गोरे स्वार्थ भारतीय शासन-विधानमें विशेषाधिकारोंके अन्तर्गत आते हैं। सेनापर भारतीयोंका नियन्त्रण सदासे और अब तक अवाञ्छनीय समझा जाता है। और तो और, सेना-सम्बन्धी जांच-पड़ताल तक भारतीयोंको बतानेकी आवश्यकता नहीं समझी जाती है और सेनाका भारतीयकरण जिस प्रगतिसे हो रहा है, उसमें सदियोंमें भी भारत अपनी रक्षा करने योग्य नहीं हो सकता। इधर राजाओंका प्रश्न है, जो पैरामाउण्ट पावर—प्रभु शक्ति—से सम्बद्ध है। बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय समझौते और उनकी शर्तें रद्दीकी टोकरीमें क्षण-भरमें फेंकी जा चुकी हैं, लेकिन भारतके देशी नरेशोंके साथ होनेवाले समझौते ऐसे हैं, जो भङ्ग नहीं किये जा सकते। अतः भारतीयोंके लिए यह स्थिति भी नियन्त्रण-योग्य नहीं। फिर साम्प्रदायिक समस्यायें हैं।

"१९३९ के नवीन शासन-विधानके कार्यान्वित होनेसे जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उससे स्पष्ट है कि अल्पसंख्यकोंके प्रश्नको भारतीयोंको स्वयं हल करना चाहिए।" यह लार्ड जेटलैण्डके शब्द हैं। पर जिस १९३९ का शासन-विधान साम्प्रदायिक बंटवारेके आधारपर ही बनाया गया हो और जिसकी योजनाके अनुसार बनायी गयी व्यवस्थापिका परिषदें राजनीतिक परिषद्की अपेक्षा धर्म-सम्मेलनके रूपमें हों—क्योंकि धर्मके आधारपर ही चुनाव लड़नेकी व्यवस्था है—उसके रहते, जेटलैण्डकी यह आशा कि "भारतीय हिन्दू और मुसलमानकी हैसियतसे न सोचकर भारतीयके नाते ही सोचें—जैसा कि उन्होंने अपने एक पिछले वक्तव्यमें कहा था, महज मखौल है।

ये तथ्य स्पष्ट करते हैं कि ब्रिटेन भारतीय समस्याओंको जिस दृष्टिकोणसे देख रहा है, उसमें राष्ट्रवादी भारतके लक्ष्यके कार्यान्वित होनेके उपादान प्रायः नहींके बराबर हैं। यह स्थिति कितनी ही अवाञ्छनीय एवं भयावह समझी जाय; पर ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंकी वर्तमान मनोवृत्तियोंमें इसके अतिरिक्त दूसरे निष्कर्षोंपर पहुंचना वर्तमान तथ्योंकी उपेक्षा करना होगा। किसी भी भारतीयके लिए कितना तर्कसङ्गत है कि उससे पोलैण्डकी स्वाधीनताके लिए लड़नेको कहा जाय और स्वयं स्वाधीनताका अधिकार उसे न हो!

रामगढ़ कांग्रेसके सामने कार्य

ब्रिटिश राजनीतिज्ञ यह तो कहते हैं कि भारतीय अपनी समस्याको पहले स्वयं सुलझानेकी कोशिश करें—पहले अपनी आन्तरिक व्यवस्था ठीक करें; पर इस व्यवस्थाके लिए जो साधन भारत काममें लाना चाहता है, उसपर वे अपनी स्वीकृति नहीं देते। भारतकी समस्त समस्याओंके समाधान करने एवं साधन एकत्र करनेका अधिकार भारतीय जनताको है, यही वे स्वीकार नहीं करते, और इसीलिए वे विधान-परिषदकी मांगको भी अस्वीकार करते हैं। वास्तवमें भारतीय समस्याओंको लेकर प्रश्न केवल इतना नहीं है कि उनका रूप क्या है, बल्कि उनका निपटारा कैसे हो और कौन करे। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अगर अनन्त काल तक भारतका ट्रस्टी और भाग्यविधाता बने रहनेकी कल्पना करते हैं, तो उनका यह स्वप्न निश्चय ही निराधार होगा और इसीलिए परिस्थितिकी वास्तविकताओंको वे जितनी ही जल्दी समझ लें, उतना ही अच्छा है। भारत स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तको स्वीकार कर चुका है। और इसीलिए भारतका भाग्य निर्णय करनेका अधिकार भारतीय जनताको है। और जब तक उसका यह अधिकार स्वीकार नहीं कर लिया जाता है, तब तक भारतकी वैधानिक समस्याका कोई स्थायी एवं सन्तोषजनक समाधान भारतको स्वीकार्य न होगा, यह ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंके सामने स्पष्ट हो जाना चाहिए। लार्ड जेटलैण्डने इस सिद्धान्तको अस्वीकार ही नहीं किया है, बल्कि भारतीय परिस्थितिकी अवाञ्छनीयताओंको भी वे भारतीयोंकी ही कृति मानते और ब्रिटेनके हितके लिए उनका उपयोग करना चाहते हैं। इसलिए उन्होंने परिस्थितिको जटिल बनानेवाली सम्भावनाओंको ही खड़ा किया है।

ये परिस्थितियां और सम्भावनायें हैं, जिनके वातावरणमें रामगढ़ कांग्रेसका ५३ वां अधिवेशन होने जा रहा है। कांग्रेसके सामने कठोर निश्चयोंका कर्तव्य आ उपस्थित

हुआ है। कांग्रेस भारतीय महत्त्वाकांक्षाओंका प्रतीक बन चुकी है और इसीलिए कांग्रेसके मञ्चको देशवासियोंने अपने अनुपम त्यागों और बलिदानोंसे मजबूत एवं प्रभावशाली बनानेकी कोशिश की है। आज भी समस्त देश अपने लक्ष्योंको कार्यान्वित करनेके लिए कांग्रेसकी ओर नेतृत्वके लिए देख रहा है। अतः कांग्रेसके सामने समस्त भारतके भाग्य-सञ्चालनका उत्तरदायित्व है। हमें आशा है, कांग्रेस साहसपूर्ण निश्चय करनेमें सफल होगी। कांग्रेसने प्रतिकूल परिस्थितियोंके समक्ष आत्म-समर्पण कभी नहीं किया है—उसने विवशताओंके सम्मुख घुटने नहीं टेके हैं। और हमें विश्वास है, कांग्रेसका अगला कदम भी उसके गौरवके अनुकूल ही होगा। समस्त देश कांग्रेसके नेतृत्वकी केवल प्रतीक्षा ही नहीं कर रहा है, अपनी सारी शक्तियां भी उसके हाथमें रखनेको तैयार है।

निर्वाचन-परिणामके कुछ सङ्केत

कांग्रेसके अध्यक्ष-पदके लिए जो निर्वाचन-सङ्घर्ष हुआ है, उसका परिणाम यद्यपि श्री रायके विरुद्ध गया है; पर इस सम्बन्धमें जो निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं, वे किन बातोंकी ओर सङ्केत करते हैं, इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कांग्रेस-अध्यक्ष-पदके लिए चुनाव लड़नेकी वाञ्छनीयतामें हमारा अविश्वास नहीं है। और श्री रायने निर्वाचन लड़कर कई प्रश्नोंको स्पष्ट कर दिया है। हमें सन्तोष है कि श्री रायने कभी अपने साधनोंको छिपाया नहीं और यद्यपि उनका कार्यक्रम निर्वाचकोंके सामने स्पष्ट न था—जो कुछ उन्होंने स्पष्ट किया था, वह कांग्रेसके वर्तमान नेतृत्वका विरोधात्मकमात्र था; पर त्रिपुरी कांग्रेसके लिए पुनर्निर्वाचनके लिए खड़े होनेवाले श्री बोसकी भांति उन्होंने केवल वोट बटोरनेके ख्यालसे अवाञ्छनीय साधनोंका अवलम्बन नहीं किया। हमें इससे भी सन्तोष है कि देशमें इस समय जो दक्षिण और बामपक्षी विचार-धाराओंके सङ्घर्षकी बात कही जाती है—जिसका आधार ही वस्तुतः गलत है, क्योंकि सङ्घर्ष हमारा अपना नहीं, दूसरे साम्राज्यवादसे है—वह भी स्पष्ट हो गया है। निर्वाचन-परिणामके अनुसार मौलाना अबुल कलाम आजादको कुल १८९४ तथा श्री एम० एन० रायको १८३ वोट मिले हैं।

वोटोंकी प्रान्तवार तालिका यों है :—

प्रान्त	मौ० आजाद	श्री राय
बिहार	२३९	१९
महाकोशल	९७	९
सीमाप्रान्त	४८	२
बम्बई	१९	१
उड़ीसा	११९	४
तामिल नाड	१७८	९
युक्तप्रान्त	२७२	४९
केराला	८६	१
नागपुर	२१	४
गुजरात	११२	१
बरार	२६	५
आसाम	४५	३
आन्ध्र	१७३	१५
करनाटक	८२	१९
पञ्जाब	१८८	२३
महाराष्ट्र	१२७	१७
अजमेर	३	०
सिन्ध	२०	२
	१८९४	१८३

समस्त भारतमें डेलीगेटोंकी संख्या ३४२५ है, जिनमें बङ्गालके ५४४ और दिल्लीके १४ डेलीगेट भी शामिल हैं।

इनमें बङ्गाल तथा दिल्लीके प्रतिनिधि निर्वाचनमें भाग नहीं ले सके। जिन्होंने भाग लिया, उनमें सिर्फ दस प्रतिशत रायके समर्थक निकले। अतः देशके विशाल बहुमतने उनके साधनोंके विरुद्ध असहमति प्रकट की। अतः यह कहना गलत है, जैसा कि कुछ लोग अब भी कहते सुने जाते हैं कि देशका कांग्रेसके वर्तमान कार्यक्रम एवं नेतृत्वमें विश्वास नहीं है।

पर इससे भी अधिक स्पष्ट एक दूसरा तथ्य है बामपक्षियोंका पारस्परिक अनैक्य। कांग्रेस समाजवादी दलने श्री रायका समर्थन नहीं किया, और इसका कारण उसके मन्त्री श्री जयप्रकाशनारायणने यह बताया कि ऐसा करना गांधीजीके नेतृत्वका विरोध करना होगा। फारवर्ड ब्लाकके

नामसे देशमें कुछ लोग जो काम करते हैं, उन्होंने भी श्री रायका समर्थन नहीं किया, यद्यपि उनकी संख्या नगण्य ही है। यह स्थिति प्रमाणित करती है कि देशमें वामपक्षके मञ्चपर जो लोग काम करनेका दावा करते हैं, वे विभिन्न मतभेदोंके— राजनीतिक अथवा दूसरे प्रकारके— आधारपर कितने असङ्गठित हैं, अतः अगर उनके हाथमें नेतृत्व चला जाय, तो इसका परिणाम देशके भविष्यके लिए कैसा होगा। यह हमारी आशङ्का नहीं है, निर्वाचन-परिणामका ही इन स्थितियोंकी ओर सङ्केत है।

अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिको दुराशा

प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टकी यह आशा कि वसन्त काल तक अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिकी स्थापना हो सकेगी, दुराशा-मात्र सिद्ध हुई है। बल्कि पिछले दिनों जैसी घटनायें होती गयी हैं, उनमें शान्तिकी सम्भावनायें और भी दूर जा पड़ी हैं। युद्धका दानव अपनी धीमी, किन्तु सचेष्ट प्रगतिसे चिनगारियां बिखेरता जा रहा है और युद्धके रङ्गमञ्चके विस्तृत होनेकी सम्भावनायें बढ़ती जा रही हैं। उत्तरी यूरोपमें समस्यायें जटिल होती जा रही हैं और कितने ही राष्ट्रोंने यद्यपि तटस्थ रहनेकी नीतिमें ही अपनी आस्था प्रकट की है; पर स्थितिकी वास्तविकतायें अन्ततोगत्वा उन्हें किधर खींच ले चलेंगी, यह कहना कठिन है। दक्षिण पूर्वी यूरोपमें भी समस्यायें जटिल हुई हैं और कई अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वके प्रश्न उलझ उठे हैं। रूसकी गतिविधिसे अङ्गोरा, तेहरान और काबुल भी कुछ चौकन्ने हो जायें, तो कोई आश्चर्य नहीं। कैस्पियन सागर किसी समय भी अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओंके लिए प्रसिद्ध हो सकता है। १९२९ से ही बोल्शेविक प्रचार काला सागर एवं कैस्पियनके छोरोंपर प्रगतिशील रहा है, अतः उन्हें खतरेसे खाली नहीं कहा जा सकता।

इन स्थितियोंमें किसी समय भी युद्धकी प्रगतिके बढ़ते ही अनेक अन्तर्राष्ट्रीय उलझनोंके बढ़नेकी सम्भावनायें निराधार नहीं समझी जातीं। अतः अन्तर्राष्ट्रीय अराजकताके परिणाम वर्तमान रणोन्मादको शीघ्र ही हम शान्त होते देखेंगे; यह आशा भ्रमपूर्ण ही सिद्ध होगी।

मि० जिन्नाका अनोखा स्वप्न

मि० मुहम्मद अली जिन्ना भारतीय राजनीतिमें जिस अनोखे व्यक्तित्वका परिचय दे रहे हैं, वह यहांके वैधानिक इतिहासमें एक अनोखा परिच्छेद होगा। वायसरायसे लीगके अध्यक्षकी हैसियतसे वे जो पत्र-व्यवहार कर रहे थे, वह अब प्रकाशित हो चुका है। उसके अनुसार ब्रिटिश सरकारके पास उन्होंने जितनी मांगें रखीं, उनमें प्रमुख है किसी भी विधानको तब तक सरकार द्वारा बनाये जानेपर स्पष्ट आश्वासन, जब तक कि मुसलमानोंका उसपर पूर्ण समर्थन न मिल जाय। इसका अर्थ होगा इस देशमें एक ऐसी शासन-व्यवस्थाकी प्रतिष्ठा—जिसके अनुसार अल्पमत, बहुमतपर शासन करे। साथ ही एक ऐसी व्यवस्था, जिसपर अन्तिम शब्द कहनेका अधिकार भारतके मुसलमानोंको नहीं—लीगके मुसलमानोंको हो—क्योंकि लीगसे अलगके मुसलमानोंका लीगवाले राजनीतिक अस्तित्व नहीं मानते। किसी भी देशके वैधानिक इतिहासमें यह एक मनोरञ्जक स्थिति है और इसका श्रेय है मि० मुहम्मद अली जिन्नाको।

मि० जिन्नाने एक दूसरी शर्त यह रखी थी कि "भारतीय सेना किसी भी मुसलिम शक्ति या देशके विरुद्ध काममें नहीं लायी जायगी।" मि० जिन्नाकी यह शर्त कुछ वाहियात-सी है, पहली बात तो यह है कि मुसलिम देशोंके विरुद्ध भारतीय सेनाके काममें लाये जानेका फिलहाल कोई प्रश्न नहीं है और अगर कभी इस प्रकारकी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है, तो इसी आधारपर इस प्रकारका आश्वासन व्यर्थ है। किसी भी देशका भारतके साथ क्या सम्बन्ध रहेगा, इस आधारपर ही भारतीय सेनाका उपयोग सोचा जा सकेगा। इसके लिए पहलेसे ही कुछ भी शर्तबन्दी किस प्रकार आवश्यक थी, इसे मि० जिन्ना ही समझें!

बङ्गालका परम्परागत आतिथ्य-सत्कार

बङ्गाल प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीने पिछले कुछ दिनोंसे अपनी जैसी गतिविधि रखी है, वह नितान्त शोचनीय रही है और उसकी प्रतिक्रिया उन लोगोंके लिए वाञ्छनीय ही होगी, जिनपर ऐसी हरकतोंकी जिम्मेदारी है, यह नहीं कहा जा सकता। इस सम्बन्धमें श्री शरच्चन्द्र बोसने बार-बार

राष्ट्रपति, आचार्य कृपलानी आदिका आह्वान किया था कि वे बङ्गालमें आकर स्वयं देखें कि बङ्गालकी जनता किसके साथ है। आचार्य कृपलानीने इस आमन्त्रणका उत्तर देते हुए इस बातकी आशङ्का प्रकट की थी कि बङ्गालमें जैसी असहिष्णुताका भाव है, उसमें नेताओंको अपमानसे बचाये रखनेकी गारण्टी कौन दे सकता है ?

कलकत्तेमें होनेवाले पिछले अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके अधिवेशनमें जैसी अशान्तिके प्रमाण मिल चुके थे, उनके आधारपर आचार्य कृपलानीकी ऐसी आशङ्का निर्मूल नहीं थी। यह पिछले सप्ताहकी घटनाओंने भी प्रमाणित कर दिया है। हवड़ा और स्यालदहपर, मालिकान्दामें सरदार पटेल और गांधीजीको लेकर तथा गांधी सेवासङ्घके अधिवेशनमें जैसे उपद्रव हुए हैं, उन सबकी परिणति २८ फरवरीको लिलुआ स्टेशनपर हो गयी, जब गांधीजीपर किसी विक्षिप्त मस्तिष्कने जूतेका प्रहार करनेका पागलपन-भरा प्रयत्न किया। हम जानते हैं कि इस प्रकारके प्रदर्शनोंकी मूर्खता विरोधीकी केवल दुर्बलता ही प्रकट करती है; पर यही बङ्गालका परम्परागत आतिथ्य-सत्कार है, जिससे बङ्गालको भारतके देशप्रिय नेताओंका स्वागत करनेके लिए कहा जाता था ?

वर्तमान और भावी राष्ट्रपतियों द्वारा स्पष्टीकरण

एक ओर जब देश किसी महत्त्वपूर्ण निश्चयके लिए तैयार हो रहा है और तब जिन लोगोंके हाथमें उसका नेतृत्व करनेका उत्तरदायित्व है, उनके सम्बन्धमें ही अविश्वास पैदा करनेकी जो लोग कोशिश कर रहे हैं, उनके इस प्रकारके प्रयत्न निश्चय ही घातक समझे जायेंगे। लाहौरमें हमारे भावी राष्ट्रपति मौलाना आजादने १८ फरवरीको सन्देश देते हुए कहा था कि दिनोंदिन हम भावी सङ्घर्षके निकट पहुंच रहे हैं। और उधर वर्तमान राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादने २६ फरवरीको एक वक्तव्य देते हुए कहा था कि "कांग्रेसके उच्चाधिकारियों तथा ब्रिटिश सरकारमें समझौता करनेकी बात बिलकुल तथ्यहीन है। कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीने जो कुछ किया है, वह सार्वजनिक सम्पत्ति है। उसने देशके कांग्रेस-जनोंसे कोई बात छिपा नहीं रखी है। यह कहना बिलकुल निराधार है कि ब्रिटिश सरकारसे किसी भी मूल्यपर या इस ढङ्गसे समझौता कर लेनेके लिए षड्यन्त्र किया जा रहा है, जिससे कांग्रेस तथा देशकी बेइज्जती होगी। कोई भी समझौता उस समय तक ठीक नहीं माना जा सकता, जब तक आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी या स्वयं कांग्रेस द्वारा वह स्वीकृत न हो। इसलिए यह एक ऐसा शोर मचाया जा रहा है, जिससे लोग भौचक्केमें पड़ जायें। यह कहना आसान है कि यदि समझौता-विरोधी सम्मेलन नहीं किया जायगा, तो कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी ब्रिटिश सरकारसे समझौता कर लेगी। इस प्रकारके सम्मेलनके करने या उसमें भाग लेनेवालोंको अपना मत प्रकट करनेमें किसीको कोई आपत्ति नहीं हो सकती, लेकिन इस सम्मेलनकी सफलताके लिए, जिसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि समर्थकोंकी कमी नहीं है, दूसरोंपर यह दोषारोपण करना कि देशके ध्येयको नष्ट करनेके लिए षड्यन्त्र हो रहा है, उचित नहीं है, और न वर्किङ्ग कमेटीको सीधे रास्तेपर लानेके लिए इस प्रकारके प्रदर्शनकी आवश्यकता ही है। कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीको अपने कर्तव्यका ज्ञान है और कांग्रेसका जो अधिवेशन होने जा रहा है, उसे मालूम है कि अगर कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी राष्ट्रके ध्येयको नष्ट करने जा रही है, तो उसके साथ कैसा वर्ताव किया जाये। उसके कर्तव्योंकी सुधि दिलानेके लिए किसी प्रकारके प्रदर्शनकी आवश्यकता नहीं है।"

श्री सुभाषचन्द्र बोस तथा कुछ दूसरे लोग इस प्रकारकी भ्रमपूर्ण बातोंका प्रचार कर कांग्रेसकी शक्ति क्षीण करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। लेकिन श्री बोस तो इससे भी घातक बात तब कहते हैं, जब वे ब्रिटिश सरकारको सावधान करते हुए कहते हैं कि कांग्रेस देशकी समस्याओंको हल नहीं कर सकती, इसके साथ ही वे दूसरी कांग्रेस बनानेका भी स्वप्न देखते हैं। एक ओर जब कांग्रेस एक सङ्घर्षकी तैयारी कर रही है, जो सरदार पटेलके शब्दोंमें अहिंसात्मक होते हुए अत्यन्त भीषण एवं निश्चयात्मक होगी, तब श्री बोस तथा उनके समर्थकोंके ये कार्य—यद्यपि इनकी संख्या नगण्य ही है—कितने घातक एवं आपत्तिजनक हैं, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रसन्नताकी बात है कि ऐसे लोगोंकी वास्तविकता देशको मालूम है, अतः उनके ये प्रयत्न उन्हें भी गिराये बिना नहीं रह सकते।

रेलवे बोर्डकी रिपोर्ट

भारतीय रेलवे बोर्डके गत वर्षके आमद-खर्चका जो विवरण प्राप्त हुआ है, उसमें बतलाया गया है कि सन् १९३८-३९ में सरकारी रेलोंसे, मूल्य-ह्रास कोषकी रकम निकालकर, पूंजीका ब्याज अदा करनेपर और बाकी सारे खर्च काटकर, १ करोड़ ३७ लाख रुपयेकी आमदनी हुई। यह बचत केन्द्रीय सरकारके राजस्वमें, प्रति वर्ष अदा की जानेवाली रकमकी एक किस्तके रूपमें, जमा कर दी गयी है।

आलोच्य वर्षमें सरकारी रेलोंसे कुल ९४ करोड़ ४८ लाख रुपयेकी आमदनी हुई है, जब कि इसके पहले साल ९५ करोड़ १ लाख रुपयेकी हुई थी, अर्थात् १९३८-३९ में ५३ लाख रुपयेकी कमी हुई है। इस साल साधारण सञ्चालन-व्ययमें एक करोड़की वृद्धि हुई है।

प्रथम श्रेणीकी रेलोंमें इस दशाब्दीमें सबसे अधिक आमदनी चावल, लोहे और इस्पातसे हुई है।

देशी उद्योग-धन्धोंको लाभ पहुंचानेके लिए इस साल भी भारतीय सामान विभागकी मार्फत बहुत-सा भारतीय माल खरीदा गया। टातासे ८९ हजार ९९७ टन रेलकी पटरियां और फिश प्लैट खरीदे गये। डब्बोंके लिए ४७ लाख रुपयेकी लकड़ी और १ करोड़ २ लाख रुपयेके लकड़ीके स्लीपर खरीदे गये।

रेलवे यात्रियोंसे ३० करोड़ ३७ लाख रुपयेकी आमदनी हुई है, जब कि १९३७-३८ में ३१ करोड़ ८ लाखकी हुई थी।

माल ढुलाईसे भी कम आमदनी हुई। १९३७-३८ में इस मदसे ६८ करोड़ ६६ लाख रुपयेकी आमदनी हुई थी, किन्तु इस साल ६८ करोड़ ५७ लाख रुपयेकी ही हुई।

मार्च १९३९ के अन्त तक सभी रेलोंपर, जिनमें वे रेलें भी शामिल हैं जो उस समय बन रही थीं, कुल ८ अरब ४७ करोड़ ८२ लाख रुपयेकी पूंजी लगी हुई थी, जिसके लिए ब्याज भी देना पड़ा था। इसमेंसे ७ अरब ५९ करोड़ २६ लाख रुपयेकी पूंजी सरकारी रेलोंपर लगी हुई थी। बाकी ९२ करोड़ ५६ लाख रुपयेकी पूंजी भारतीय रजवाड़ों, कम्पनियों और जिला बोर्डों द्वारा जमा की गयी थी। इसमेंसे लगभग ७ अरब २९ करोड़ ८८ लाख रुपया सरकारी रेलोंका और २९ करोड़ ८८ लाख रुपया कम्पनीकी रेलोंका है।

इस सम्बन्धमें यह तो सन्तोषजनक है कि देशमें प्राप्य मालको उपयोगमें लानेकी कोशिश की जा रही है; पर भारतमें एञ्जिन तथा दूसरी कितनी ही वस्तुओंकी तैयारीके सम्बन्धमें जो भारतीय लोकमत बराबर जोर डालता रहा है, उसकी ओर अधिकारियोंका उचित ध्यान न देना शोचनीय ही नहीं, ऐसे समयके लिए घातक भी कहा जायगा जिस समय किसी विकट परिस्थितिके कारण रेल-सम्बन्धी सामग्रियोंके आयातमें कठिनाई उपस्थित हो जाय। रेलवे बजटमें इस युद्ध-कालमें जब आम तौरपर लोगोंका रहन-सहन महंगा पड़ गया है, आमदनीमें बचत रहनेपर भी भाड़ेमें वृद्धि करना देशको अखरेगा। रेलवेके तीसरे दर्जेके यात्रियोंसे ही रेलकी आमदनी इतनी होती है; पर उनके आरामका ख्याल रखनेकी आवश्यकता अधिकारियोंने कभी भी नहीं समझी। इस प्रकारकी आलोचनाओंका उनकी नजरमें कोई मूल्य ही नहीं रह गया है।

आसाम-मन्त्रिमण्डलकी स्वार्थ-सेवा

गैर-कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों द्वारा और जितने कार्य होते हैं, उनमें उनका एक प्रधान काम देखा जाता है वेतन-सम्बन्धी उनकी अपने प्रति उदारता। इसलिए अगर सर सादुल्लाके नेतृत्वमें आसामके तीसरे मन्त्रिमण्डलने पहला काम वेतन-बिल पेशकर कांग्रेसी मन्त्रियोंसे दुगुनी और चौगुनी तनख्वाहकी व्यवस्था की है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? सर सादुल्लाका मन्त्रिमण्डल प्रान्तकी सेवा कितनी कर सकेगा, यह तो उसके पहले मन्त्रिमण्डलके कार्योंसे ही स्पष्ट हो चुका है। लेकिन मन्त्रिमण्डल अपनी स्वार्थ-सेवाकी उपेक्षा नहीं कर सकता, यह उसके लिए सम्भवतः आत्म-सन्तोषकी बात होगी। ये लोग प्रान्तीय स्वाधीनताके समर्थक हैं एवं नवीन भारतीय शासन-विधानकी तत्सम्बन्धी योजनाको कार्यान्वित करनेके लिए पहलेसे लालायित रहे हैं।

———

'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तासे पं० मातासेवक पाठक द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

सचित्र मासिक

विश्वमित्र



मई
१९४०

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।।=)

विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

बहिरापन

विज्ञान को नई आश्चर्यजनक खोज !



कानका बहना, जलन, भयानक दर्द, खुजली, फोड़ा-फुन्सी, मवाद आना, नासूर, सूजन, पर्दा खराब होना, कानमें भनभन, सांय-सांय, सी-सी, सीटी की तरह आवाजें आना, कम सुनना या एकदम न सुनना अथवा ज्वरके बाद सर्दीसे या कुनैनके दुर्व्यवहारसे पैदा हुआ कैसा ही नया, पुरानेसे पुराना बहिरापन क्यों न हो चमत्कारी 'बधिरता-हरन' के इस्तेमालसे शर्तिया आराम होता है। लाखों बहिरे उससे ठीक-ठीक और साफ-साफ सुनने लगे। आराम न हो तो दाम वापस। कीमत २) रु०।

बवासीर

महात्मा से प्राप्त आश्चर्यजनक दवा



खूनी या बादी, नयी या पुरानी तथा अन्दरूनी, बाहरी चाहे जैसी बवासीर क्यों न हो, महात्मासे प्राप्त जादू-असर 'अर्श-मारा' के एक बार के इस्तेमाल से दर्द, खुजली, टीस, सूजन, जलन, मवाद आना, खूनका गिरना फौरन आराम होता है। ३ दिन में खराब से खराब बवासीर, नासूर, भगन्दर, बिना आपरेशनसे जड़ से शर्तिया आराम होता है। लाखों निराश रोगी अच्छे होकर अन्य रोगियोंसे इसके इस्तेमालकी सिफारिश करते हैं। आराम न हो तो दाम वापस। कीमत २) रु०।

दमा-श्वासकी रामबाण दवा

चाहे जैसा नया या पुराना से पुराना दमा यानी श्वास क्यों न हो 'दमा-हारी' के व्यवहारसे चाहे जितने जोरका दम उभड़ा हो सिर्फ एक खुराक लेनेसे छातीकी खींचन, श्वांस की तकलीफ, खाँसी, पीठका भारीपन दूर करके सुखमय नींद लाती है। पुराना से पुराना दमा चाहे तन सूखकर काँटा हो गया हो और कोई चीज खाने से हजम नहीं होती हो, तकिये के सहारे रात भर जागा करते हों वे रोगी पूरी शीशी पीनेसे भले चंगे हो गये हैं और जीवन सुखमय बिताते हैं तथा गद्गद् हृदय से आशीर्वाद देते हैं, हजारों प्रशंसा पत्र मोजूद हैं। कीमत २), तीन शीशी ५) रु०

पता :—**आरोग्य सदन,**
दुर्गादेवी स्ट्रीट (कुंमारवाड़ा), बम्बई ४

नोट कर लीजिये—

	१ वर्ष	६ मास	३ मास
दैनिक (डांकसे)	१८)	१०)	६)
स्थानीय—	१५)	८)	५)
साप्ताहिक—	४)	२।।)	०
मासिक—	६)	३।।)	०
दैनिक बर्माके लिये	२५)	१४)	८)
साप्ताहिक—,,	७)	४)	०
मासिक— ,,	८)	५)	०

मैनेजर—विश्वमित्र

सिपाही विद्रोह

सन् सत्तावन के गदर का रोमांचकारी इतिहास

सर्वसाधारणके सुभीते के लिये मूल्यमें कमी ४) से घटाकर ३) किया गया और पुस्तक सजिल्द कर दी गयी।

झांसीकी रानीने क्या किया, दिल्लीमें बादशाहका क्या हुआ, कुंवर जगदीश सिंह कैसे वीरगतिको प्राप्त हुए, देहातोंमें क्या हुआ आदि बातें पढ़कर आप कहेंगे कि वास्तवमें पुस्तक संग्रहनीय है।

सुन्दर कागज, बढ़िया छपाई, पक्की जिल्द शीघ्र आर्डर देकर मंगा देखिये।

मैनेजर—दी पोपुलर ट्रेडिंग कं०
१४।१।ए, शम्भूचटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता।

विषय-सूची



सम्पादक—
शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

मई, १९४० — वर्ष ८, खण्ड १६ — बैसाख, १९९७
अङ्क २, पूर्ण संख्या ९२

तुम्हारे मन्दिरमें

मैं आज तुम्हारे मन्दिरमें,
पूजाका कुछ सामान लिये—
आया हूं, एक वीतरागी-सा—
केवल अपने प्राण लिये ॥

दो प्रहर बीत भी सके न,
तन जर्जर हो गया—बहुत जर्जर,
जैसे तरु एक, और उसमें,
सांसोंका गूंज रहा मर्मर ;
है शून्य दृष्टि, प्रतिविम्बित है
यह शून्य-शून्य-सा अमराम्बर,
तारोंके दो आंसू अटके हैं,
एक इधर है—एक उधर ;
यह फूल खिला है—बेचारा !!
केवल गिरनेका ज्ञान लिये ॥ मैं आज—

यह कौन कह रहा है...."देखो—
सन्ध्या प्रातःमें है अन्तर,"
इन सांसोंके लघु - लघु प्रवाहमें,
बीत चुके हैं मन्वन्तर,
यह सब संसार सिमिट जैसे,
बन गया आज मेरा अन्तर,
चिर अन्धकारमें दीपक-सी
मेरी चितवन हो रही अमर;
मैं जागृत हूं ! मैं सोऊंगा क्यों ?
बिना एक पहिचान लिये ॥ मैं आज—

—रामकुमार वर्मा, एम० ए०

हिटलर गोलीका शिकार होगा ?

श्री विजनकुमार शर्मा

हमें जलाके रहेंगे न आप भी ठण्डे
कि आहे सोख्ता-जांकी बेअसर नहीं होती।

"बर्चैस गाडेनवाले मकानके १२ मीलके फासलेपर हिटलरकी लाश एक पनालेमें क्षत-विक्षत अवस्थामें पायी गयी……। दो सप्ताहसे बर्लिन चान्सलरीसे फ्यूरर गायब थे और काले रक्षकोंके सारे यूरोपमें खोजनेपर भी कहीं पता नहीं चला था।…फ्यूररके दो हत्याकारियोंने उनके शीश-हीन बदनके कोटके पाकेटमें एक पत्र रख छोड़ा है, जिसमें उन्होंने हत्याकी बात स्वीकार की है। सम्भवतः वे स्विजर-लैण्ड भाग गये हैं। यह बात निस्सन्देह प्रकट हो जाती है कि १९३३ में शक्ति प्राप्त करनेके बादसे फ्यूररने जो असंख्य हत्यायें कीं और यहूदियों एवं कैथलिकोंको जैसी-जैसी नारकीय यन्त्रणायें दीं, उनका प्रतिशोध लेना ही इस हत्याका उद्देश्य है।

"तृतीय जर्मन रीखके चान्सलरकी लाश आज दो बोरों-में बंधी अन्त्येष्टि-क्रियाके लिए म्यूनिखमें रखी हुई है।

"इस बीच जेनरल हरमान गोयरिङ्ग और डा० जासेफ गोबेल्स, जो हिटलरके प्रायः २० साल तक साथी रहे हैं, गिरफ्तारकर मोबिट जेलमें डाल दिये गये हैं, जिसमें पिछले छः सालके भीतर उन्होंने हजारों जर्मनोंको भेजा था। उनपर हिटलरको खत्म कर स्वयं अधिकार ग्रहण करनेका अभियोग लगाया गया है।

"अस्थायी तौरपर रीख-अफसरोंका एक जत्था रीखका शासन कर रहा है।

"हत्याकारी जो पत्र छोड़ गये हैं, उसपर उनके हस्ता-क्षरोंको देखनेसे पता चलता है कि उनमें एक यहूदी है, दूसरा कैथलिक। उनके नाम हैं स्टम्पा और टिल्वर्ज। पर गेस्टापोने छानबीन कर अनुमान लगाया है कि ये नाम काल्पनिक हैं।

"रीख-अफसरोंके जिस जत्थेके हाथमें शासनकी बाग-डोर आ गयी है, उसने घोषणा की है कि यहूदियों और कैथलिकोंको अब किसी प्रकारका डर नहीं रहा। सरकारी रेडियो-स्टेशनोंसे आधे-आधे घण्टेपर घोषणा होती रहती है कि वे अब निर्भय हैं; क्योंकि हिटलर मर चुका है और गोयरिङ्ग और गोबेल्स जेलमें बन्द कर दिये गये हैं।

"यद्यपि रेडियो द्वारा घोषणायें हो चुकी हैं कि यहूदियों और कैथलिकोंको मार्शल लाके समय—जो इस समय जारी है—यन्त्रणा देना मृत्युदण्डसे दण्डनीय होगा, फिर भी उनके विरुद्ध यत्र-तत्र विरोधी प्रदर्शन हुए हैं।

"यद्यपि इस बातकी घोषणा की जा चुकी है कि नात्सियों-से किसीको किसी प्रकारकी यन्त्रणा अथवा हत्याकी आशङ्का नहीं करनी चाहिए, फिर भी हजारों भयत्रस्त यहूदी स्विजरलैण्ड, पोलैण्ड और जेकोस्लोवेकियाके सीमान्तोंपर भाग गये हैं।"

ये पंक्तियां हैं अमेरिका द्वारा प्रकाशित उस पुस्तककी, जिसमें कहा गया है :—

"ये पंक्तियां काल्पनिक हैं; किन्तु यह उस घटनाकी एक आनुमानिक रिपोर्ट है, जिसके सम्बन्धमें संसार किसी दिन सवेरे ही सुनेगा, और सुनेगा—दस वर्षोंमें नहीं, पांच वर्षोंमें अथवा दो वर्षोंमें भी नहीं—सम्भवतः सप्ताहों—सिर्फ दस सप्ताहोंके भीतर ही।"

जर्मनीसे गुप्त रूपसे प्राप्त समाचारोंके आधारपर इस लेखकका दावा है कि जर्मनीकी जनता हिटलरके पागलपन-भरे, क्रूर, काले कारनामोंसे इतनी तङ्ग आ गयी है कि वह हिटलरसे जर्मनीका पिण्ड छुड़ानेपर तुल गयी है। जर्मनीमें भीतर ही भीतर जिस असन्तोषकी आग धधक रही है, उसका विस्फोट अवश्यम्भावी है और सम्भवतः अतिनिकट भविष्यमें ही।

इतिहासमें ऐसे व्यक्तियोंका अभाव नहीं है, जिन्होंने अत्याचार ही को अपनी महत्ताका साधन बना रखा था। उन सब अत्याचारियोंमें चाहे जैसी भिन्नता रही हो; पर एक बात सबके सम्बन्धमें सच रही है कि जब उनके अत्या-चारोंका प्याला लबालब हो गया है, तभी जानपर खेलकर कुछ लोगोंने उन्हें तलवारके घाट उतार दिया है। फ्लोरेन्सका शासक अलसेंण्डो डी मेडिसी पन्द्रहवें लुईकी भांति अक्सर

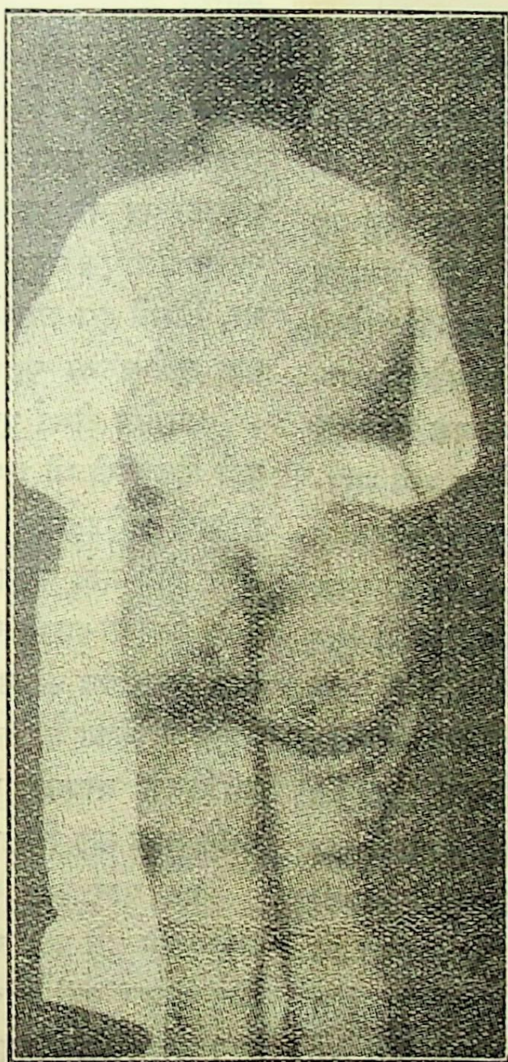
कहा करता था कि "राष्ट्र मैं ही हूं।" और शासन-प्रबन्धको लेकर जिसकी ऐसी मनोवृत्ति हो, प्रजा उससे कितनी सन्तुष्ट रहेगी, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि अलसेण्डो तलवारके घाट उतार दिया गया। इसीलिए जब हिटलर कहता है :—"मैं जर्मनीका भाग्य हूं। मैं जैसा उचित समझता हूं, वैसा करता हूं।" और जब इस आधारपर वह रक्तकी विशुद्धता तथा जर्मनीके पुनर्गठनके नामपर पागलपन-भरे काम करता है, तब उसका भाग्य भी खोटा मालूम होता है और उसके जीवनकी आशङ्कायें प्रकट होने लगती हैं।

हिटलर—एक समस्या

हिटलरने यूरोपीय राजनीतिमें जैसी हलचल मचा रखी है, उसे लेकर राजनीतिमें ही वह एक प्रधान व्यक्ति होता, तब तो उतनी बात न थी। लेकिन वह तो आज मनोवैज्ञानिकोंके लिए भी विश्लेषणका विषय बन गया है। एमिल लुडविग तथा एच०जी० वेल्स जैसे विचारकोंने उसकी मनोवृत्तियोंको अति-असाधारण कहा है और कुछ दूसरे मनोवैज्ञानिकोंने उसे पागल बताया है। अमेरिकाके तीन मनोवैज्ञानिकोंने —जिन्होंने चिकित्सा-शास्त्रमें भी विशेषता प्राप्त की है—न्यूयार्ककी विज्ञान-समितिकी प्रार्थनापर अपनी-अपनी सम्मतियां दी थीं।

मनिङ्गर क्लिनिक, टोमेका, कान्ससके प्रधान डा० कार्ल ए० मनिङ्गरने लिखा है :—"मनोवैज्ञानिकोंने वर्षोंकी खोजके बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि भीषण महत्त्वाकांक्षायें, उत्पत्ति-सम्बन्धी विचित्र सिद्धान्त तथा उन्हें कार्यान्वित करनेके लिए भीषण अत्याचार और उन्माद, इन बातोंका पाया जाना पागलपनकी अवस्था है। असाधारण अवस्थाओंमें ये लोग या तो पागलखानेमें बन्द कर दिये जाते हैं, अथवा झक्की समझकर समाज इनकी उपेक्षा करता है। ऐसे व्यक्तियोंकी अहम्मन्यता, क्रूरता, सिद्धान्त-हीनता तथा उन्मत्तता उन्हें स्वयं बड़ी प्यारी लगती है, और यद्यपि अन्तमें चलकर यह उन्हें स्वयं खा जाती है, पर तब तक समाजको उनके उन्मत्त कार्योंसे बड़ी क्षति उठानी पड़ती है।"

बोस्टन यूनिवर्सिटीके प्रोफेसर डा० आस्कर जे० टीडरने लिखा है:—"हिटलरके व्यक्तित्वमें बचपन भरा हुआ है। उसका खिसियाना स्वभाव, घबराके रो पड़ना तथा दूसरे भावेद्वेगोंसे इसका पता चलता है। सम्भवतः वह दुःखवादी है। बच्चोंकी तरह खिसियाकर वह घोर अशान्ति मचा सकता है।"



यहूदी नारीपर नात्सी कोड़ोंके निशान।

न्यूयार्कके डा० ए० ए० ब्रिटनने कहा है :—"हिटलरके जीवनका विश्लेषण करनेपर पता चलता है कि घृणा ही उसका धर्म है। यहूदियोंके प्रति उसकी घृणा तथा जर्मनोंके प्रति प्रेम, ये दोनों ही घृणाके कारण—दुःखको भुलानेके लिए सुखकी खोज—हैं। ऐसी हिंसक घृणाका अन्त स्वयं घृणा करनेवालेमें होता है।"

हिटलर—यहूदी है ?

तो इस प्रकार संसार-भरमें अशान्ति मचा रखनेवाला यह व्यक्ति है कौन ? वर्तमान युद्ध छिड़नेके बादसे हिटलरमें लोगोंकी दिलचस्पी और भी बढ़ गयी है और इसीलिए उसके प्रारम्भिक जीवनकालकी कितनी ही बातें प्रकाशमें आयी हैं।

बचपनसे ही हिटलरमें कुछ असाधारण बातें दिखाई पड़ती थीं। और बच्चोंकी अपेक्षा वह अधिक देर तक रोता, चिल्लाता और बुरी तरह शोर-गुल करता। चलने-फिरने लायक जब वह हुआ, तो उसकी दो आदतें दिखाई पड़ीं। तितलियोंको पकड़कर वह उनके पङ्ख नोचकर फेंक देता और

मेंढक जहां कहीं मिलते, पकड़कर उनकी टांगें चीरकर फेंक देता। डांट-फटकार, यहां तक कि मार खानेपर भी उसकी यह आदत नहीं छूटी।

उसकी मामी फ्रा० मोसियाने हिटलरके सम्बन्धमें लिखा है कि "एक बार जब वह चार वर्षका था, हम लोगोंने देखा, वह एक चूहेको पकड़कर यों ही जीता खा रहा है। उसके बापने यह देखकर उसे मारा-पीटा, पर वह इसपर भी हंसता रहा।"

इस बातके भी प्रमाण हैं कि हिटलरमें यहूदी रक्त ही नहीं है, बल्कि अवैध रूपसे उसका जन्म हुआ है। उसका बाप भी एक निर्धन किसान कन्याका अवैध पुत्र था।

हिटलरने अपनी आत्म-कथामें लिखा है कि बचपनमें वह बराबर लड़कोंका सरदार बन जाता और उन्हें कवायद कराया करता था। हिटलरने ऐसा लिखकर यह दिखानेकी कोशिश की है कि बचपनसे ही उसमें नेतृत्व करनेके स्वाभाविक गुण रहे हैं। इस सम्बन्धमें जार्ज ट्रालर नामक हिटलरके एक समकालीन व्यक्तिने लिखा है कि "हिटलरने यह बात सरासर झूठी लिखी है। बल्कि बचपनमें तो हम लोग उसे उजबक समझते थे। लेकिन उसमें एक बात थी। वह हम लोगोंको एकत्र करके कभी-कभी अपनी बात सुननेके लिए विवश करता और न सुननेपर बुरी तरह चिढ़ जाता और किसी भी पेड़के सामने खड़ा होकर, उसे श्रोता मानकर भाषण करने लगता। हम लोग उसे यहूदी समझते थे और क्यों न समझें, जब कि उसका बाप यहूदी था। हम लोग उससे डरते थे, क्योंकि वह बड़ा ही डरावना व्यक्ति था। यहूदी उन दिनों भी अच्छी नजरसे नहीं देखे जाते थे, इसलिए वह नहीं चाहता था कि उसका लड़का यहूदीके रूपमें तरह-तरहका अपमान सहन करे। अब तो हम लोगोंको यह सोचकर लज्जा आती है, पर बचपनमें हम लोग उसे यहूदी कहकर चिढ़ाया करते थे। उस समय हिटलर गुस्सेसे पागल हो जाता और यहूदियोंको गाली देने लगता था। कभी-कभी उसका बाप हम लोगोंको मारने दौड़ता और एक बार तो खिसियाकर बहुत दूर तक लाठी लिये हम लोगोंके पीछे दौड़ता रहा, जब तक कि जमीनपर वह गिर नहीं गया।

"इसलिए हिटलरका यह कहना कि बचपनमें ही वह हम लोगोंका सरदार था, सफेद झूठ है।"

नारियोंसे घृणा या प्रतिहिंसा ?

मनोवैज्ञानिकोंने इस बातका भी विवेचन किया है कि हिटलरको नारियोंसे इतनी घृणा क्यों है। यह घृणा क्या वास्तवमें घृणा ही है, अथवा उसकी कुचली हुई आशाओंके कारण उसका असन्तोष है, जो प्रतिहिंसाके रूपमें प्रकट हो रहा है। इस सम्बन्धमें उसके पिछले जीवनकी कहानियोंको बताया जाता है, जब हिटलरने प्रेम करनेकी कोशिश की थी, पर उसे सदा ही इसमें निराशा हुई। मनोवैज्ञानिकोंका कहना है कि इन निराशाओंके कारण ही आज उसे समस्त नारी-मात्रसे घृणा हो गयी है। यहूदियोंके प्रति उसकी घृणाका यह भी एक कारण बताया जाता है, क्योंकि उसका पहला प्रेम एक यहूदी युवतीसे ही २० सालकी उम्रमें हुआ था, जिसमें इस अभागेको निराशा ही नहीं हुई, बल्कि इसे बड़ा मूर्ख बनना पड़ा।

फ्रालिन टीनर्ट एक यहूदी युवती थी, जिसे राजनीतिमें बड़ी दिलचस्पी थी। एक होटलमें उसकी हिटलरसे मुलाकात हो गयी। हिटलरकी दशा उन दिनों अच्छी न थी। वह इधर-उधर छोटे-मोटे काम करके जो कुछ कमाता था, वह उसके पेटके लिए भी काफी न होता था; पर वह फ्रालिनकी ओर बुरी तरह आकर्षित हो गया। यद्यपि हिटलर जानता था कि यह यहूदी बालिका है, पर प्रेम जाति-धर्म कब देखता है। लेकिन फ्रालिनके बापको एडल्फकी हरकतें नापसन्द थीं। और उसने साफ कह दिया कि वह उसके घर न जाया करे।

पर एडल्फको गये बिना चैन कब पड़ता। एक दिन सन्ध्याको उसे पता चला कि उसका बाप घरपर नहीं है, इसलिए हिटलर वहां पहुंचा; पर पहुंचते ही फ्रालिनने बताया कि बाप घरपर ही मौजूद है। अतः वह बाहर चलने लगा। चलते-चलते उसने कहा कि अगर फ्रालिन उसके नामपर हवामें एक चुम्बन निछावर कर दे, तो वह उसे बहुत बढ़िया गीत गाकर सुनायेगा। और तब एडल्फ नीचे उतर आया। और कल्पना कीजिये कि सड़कपर एडल्फ खड़ा गा रहा है इस आशामें कि फ्रालिन तीसरी मञ्जिलसे उसके नाम एक चुम्बन निछावर कर देगी। एडल्फ वास्तवमें गा ही रहा था कि अकस्मात् खिड़की खुली। उसने सोचा, फ्रालिन खिड़कीपर आ रही है; पर खिड़कीकी ओर देखा, तो देखा कि उसका बाप

झांक रहा है। उसने ऊपरसे ही कोई चीज हिटलरपर फेंकी। बेचारा किसी प्रकार जान लेकर भागा।

एडल्फने इसके बाद और भी कई प्रयत्न किये थे, पर उसे कभी भी सफलता नहीं मिली। काफे फर्सरगमें लुडेनडार्फ और रोमकी बातचीतका एक अंश नीचे दिया जाता है, जिससे हिटलरके तत्कालीन जीवनपर कुछ प्रकाश पड़ता है।

Namn: Hermann Wilhelm, kapten — N:r S.S. 291/1925
Bostad: ... 23 — Hemortsrätt: ... Bet. 18

Intagen den	Utskrevs den	Utskrevs till	Död den	Födelsedatum	Revision hos prefekten	Revision hos överläkaren	Revision hos ...	Legitim den	Hosp. anstalten till	Hosp. anstalten den	Pensionsanstalten den	Remiss av Polis-kammaren	Remiss av Förste stadsläk.	Remiss av Överläkaren	Remiss av Läkare	Betyg av Präst	Betyg av Ombudsman	Betyg av Roseman	Bil. K.	Kyrkoherdens underrättad
[illegible]	[illegible]	[illegible]		[illegible]	7/9 21	–														

गोयरिङ्ग पागलपनके रोगसे पीड़ित है ? उस कार्डकी नकल, जिससे वह पागलखानेमें डाला गया था। कार्डपर बायें सिरेपर गोयरिङ्गका नाम अङ्कित है।

लुडेन डार्फ—इस पागल व्यक्ति हिटलरके बारेमें अक्सर लोग मुझसे बात करते हैं। क्या यह शराब पीता, धूम्रपान करता, स्त्रियों अथवा बालकोंसे प्रेम करता है ?

रोम—इस तरहकी एक भी बुराई उसमें नहीं है, फील्ड मार्शल।

लुडे०—तुम्हारी रायमें कुछ भी मानवीय भावना उसमें है ?

रोम—उसे कई बार नारियोंसे प्रेम करनेमें विफलता प्राप्त हुई है। उसके सम्बन्धमें मुझे तो सिर्फ इतना ही मालूम हुआ है कि वह अपनी भाञ्जीके साथ सोता है।

लुडे०—ओह, यह तो कोई अपराध नहीं है, लेकिन उसकी उम्र क्या है ?

रोम— पन्द्रह वर्ष, मार्शल लुडेनडार्फ, यह एक विचित्र-सी बात है। युद्धके दिनोंमें उसने परिवारमें कोई भी दिलचस्पी नहीं दिखायी। लेकिन उसकी बहनकी लड़की बड़ी आकर्षक है। यही एक मानवीय भावना उसने दिखायी है।

लुडे०—तुम्हें ठीक तरहसे मालूम है, यह बात सच है ?

रोम—निश्चय ही। तीन महीने खुद मेरी भतीजीने अपनी आंखों यह सब देखा है। मुझे क्षमा करना, अगर मैं इसका विस्तृत वर्णन न करूं।

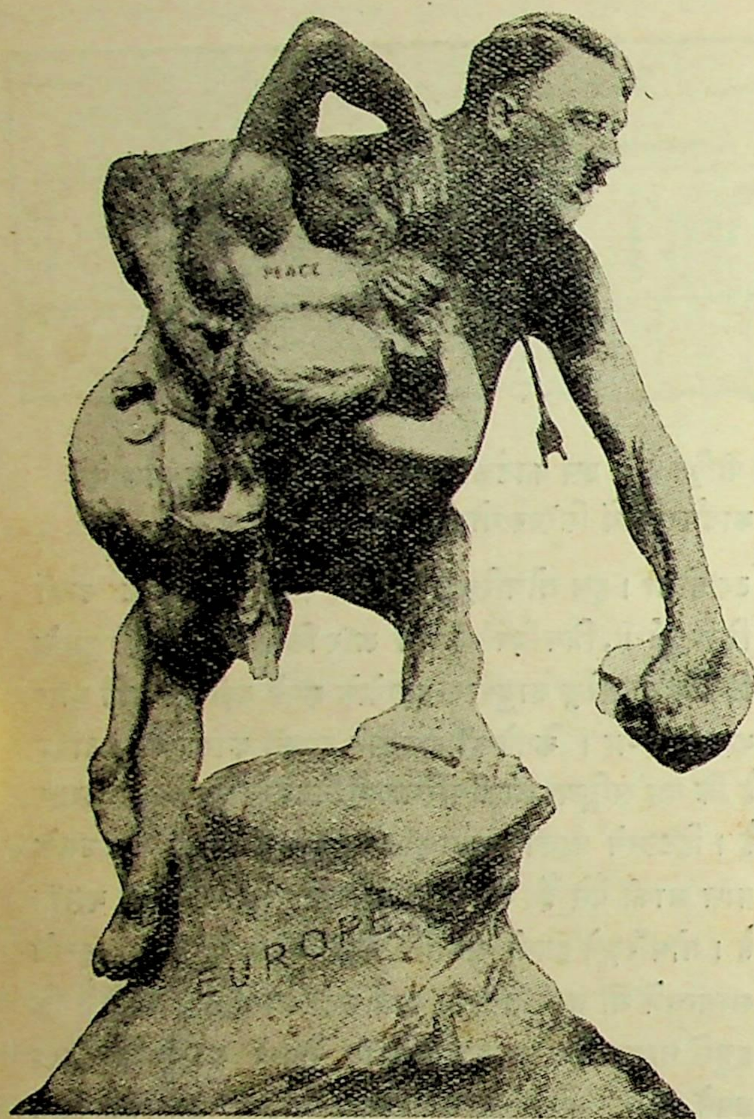
इसके बाद हिटलरकी इस भाञ्जीने बीअर हालकी घटनाके बाद आत्मघात कर लिया था।

नात्सी नेताओंका भ्रष्टाचरण

हिटलरने वर्तमान युद्धके प्रारम्भ होते ही इस बातकी घोषणा कर दी थी कि उसके बाद गोयरिङ्ग जर्मनीका डिक्टेटर होगा। इस गोयरिङ्गसे उसकी पहली मुलाकात उन्हीं दिनों हुई थी, जिन दिनोंकी बात ऊपर लिखी जा चुकी है। युद्धके दिनोंमें गोयरिङ्ग वायुयान-उड़ाकेके रूपमें बड़ी ख्याति प्राप्त कर चुका था। कितने ही लेखकोंने इसका कारण यह बताया है कि वह सङ्खिया काफी परिमाणमें नियमानुकूल खाया करता है। हिटलरने पहली मुलाकातमें ही जान लिया कि उसके पास काफी पैसे हैं और वह सेनाका अवसर-प्राप्त कप्तान है। गोयरिङ्गने इतनी सम्पत्ति कैसे एकत्र कर ली, इसके सम्बन्धमें भी तरह-तरहकी बातें कही जाती हैं। कहते हैं कि हन्नुसें नामक एक जादूगरके साथ रहकर ठग-विद्या द्वारा उसने बहुत पैसे एकत्र किये। बादको हन्नुसेंको किस प्रकार गोलीसे उड़ा दिया गया, यह कहानी यहां अनावश्यक है। रोमके जरिये ही हिटलर और गोयरिङ्गकी भेंट हुई थी। और रोमके जरिये ही एक दूसरे धनी व्यक्ति अर्न्स्ट हेन्सटेलसे भी मुलाकात हुई। हिटलर, गोयरिङ्ग, हन्नुसें और हेन्सटेलने अपने दलको बढ़ाना शुरू किया। पहले दो व्यक्ति सङ्गठन करनेमें लगे और पिछले दो व्यक्तियोंने पार्टीके लिए पैसा पानीकी तरह बहाना शुरू किया।

लेकिन इस पैसेका सब सदुपयोग ही नहीं करते थे। शराब और स्त्रियोंपर भी उनका खर्च बहुत अधिक पड़ता था। इसके लिए एक बार हिटलरको चेतावनी भी दी गयी थी, जिसमें कहा गया थाः—

"हम लोग जानते हैं कि फ्यूरर कलाकार (पोस्टकार्डपर रङ्गीन तसवीरें बनानेवाले) हैं, और सुन्दरियोंके साथ उनकी विलासिताको बहुत महत्त्व नहीं देना चाहिए, पर उन्हें



शान्ति और हिटलर।

इस बातको भी महसूस करना चाहिए कि उनपर तथा उनके किये हुए कार्योंपर सबकी नजर लगी रहती है और उनके कार्योंसे ही हमारे दलके सम्बन्धमें लोग राय कायम करेंगे, इसलिए उन्हें सावधान होकर चलना चाहिए।"

इस सम्बन्धमें एक मजेदार बात और भी जान लेनी चाहिए। सुन्दरियोंके साथ विलासलीलाकी जो बातें कही गयी हैं, उनके सम्बन्धमें बात यह है कि वास्तवमें वे सुन्दरियां नहीं होती थीं। नारी-वेषमें वे होते थे सुन्दर बालक, जिन्हें गोयरिङ्गकी देख-रेखमें सुन्दरियोंकी भांति तैयार किया जाता था। उन दिनों इस प्रकारकी कुत्सित मनोवृत्ति किस रूपमें सैनिकोंमें फैल गयी थी, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि रोम खुलेआम कहा करता था कि सम-यौन-सम्बन्ध प्रत्येक जर्मनका जन्मगत अधिकार है। स्वयं रोम कैसी कुत्सित वृत्तिका आदमी था, इसके सम्बन्धमें उसकी हत्याके प्रसङ्गपर कुछ लिखा जायगा।

एक लेखकने लिखा है:—नात्सी पार्टीकी एक बड़ी विचित्रता सम-यौन-सम्बन्धी झुकावमें दिखाई पड़ती है। हजारों युवकोंमें यह बीमारी दिखाई पड़ी। हिटलर सम-यौन-सम्बन्धमें स्वयं चाहे दिलचस्पी न लेता रहा हो, पर इसको वह इतना बुरा न मानता था, यह इसीसे जाहिर है कि उसके आस-पास इस रोगमें मुबतिला कितने ही लोग थे और उसने उन सबको बरदाश्त किया। ......शीलर नामक एक युवकमें हिटलरकी दिलचस्पी मालूम होती थी और कहते हैं कि १९३० में उसने शीलरको कितने ही प्रेम-पत्र लिखे थे। उसने ये प्रेम-पत्र सुरक्षित रखे थे, लेकिन हिटलरके झक्की स्वभावसे घबराकर शीलर अन्तमें स्विजरलैण्ड भाग गया। उसे अपनी जानका भी खतरा था, क्योंकि हिटलर स्वयं डर गया था कि शीलर उसके प्रेमपत्रोंको कहीं प्रकट न कर दे। यद्यपि नात्सियोंमें यह रोग बुरी तरह फैला था, पर इससे हिटलरका राजनीतिक जीवन ही जनताके लिए खत्म हो जाता, इसमें सन्देह नहीं।

"राइखस्टाग जल रहा है"

जर्मनीकी हालत जैसी होती जा रही थी, उसमें हिटलर जैसे धूर्तके बढ़नेके काफी अवसर थे। जैसा कि कहा गया है, हिटलरका आतङ्कवादमें सदासे विश्वास रहा है। पर इसके लिए आधार क्या निकाले जायें, इसकी तलाशमें वह सदासे था। यहूदियोंके प्रति गोबेल्स जैसा प्रचार करता रहा है, उसका परिणाम यह हुआ कि यहूदियोंके सम्बन्धमें सभीकी धारणायें बदल गयीं। इस मनोवृत्तिका एक मनोवैज्ञानिक पहलू भी है। कितनी ही बार कहा गया है कि हिटलर बिना तनिक भी रक्तपात किये आगे बढ़ता गया है; पर वास्तवमें सचाई यह है कि उसने जर्मन जनतापर जैसा आतङ्क जमा रखा, उसके परिणाम-स्वरूप उसका विरोधी कुछ भी करनेमें असमर्थ हो गया। हिटलरकी यह अपनी 'टेकनीक' रही है कि आतङ्कित करके वह आत्म-समर्पण करनेपर विवश कर दे। राइखस्टागके अग्निकाण्डको लेकर भी इसीलिए लोग विश्वास करते हैं कि ये सब काम उसीने कराये थे।

राइखस्टागके अग्निकाण्डसे सारे जर्मनीमें एक साथ ही तहलका मच गया। और इस बातके अनुमान लगाये जाने लगे कि आखिर ऐसा अग्निकाण्ड हो कैसे गया। इस अपराधमें लुबे नामक एक २५ वर्षीय युवक गिरफ्तार किया गया। कहा जाता है कि वह रोमका बाल-मित्र था। गोबेल्स और गोय-रिङ्गने इस अग्निकाण्डके लिए रोमसे मिलकर पहलेसे षड्यन्त्र कर रखा था और जब यह घटना हो गयी, तो नात्सी सरकारने घोषणा की—"जर्मनीके बोल्शेविकों द्वारा की जानेवाली जर्मनीकी यह सबसे भीषण घटना है।" और इस घोषणाके साथ ही राइखस्टागके सभी कम्यूनिस्ट सदस्यों तथा अन्यान्य कम्यूनिस्टोंको तत्काल गिरफ्तार कर लिया गया। एक ओर दमकलों द्वारा राइखस्टागकी आग बुझायी जा रही थी और दूसरी ओर साम्यवादियों, समाजवादियों, शान्तिवादी लेखकों, डाक्टरों, वकीलोंको सोतेसे जगा-जगाकर गिरफ्तार किया जा रहा था।



न्याय और प्रतिहिंसा हिटलरका पीछा कर रहे हैं।

अदालतमें पेश किये जानेपर लुबेने जो बयान दिया था, उसके सिलसिलेमें उत्तेजित होते हुए उसने कहा था:—"कहां हैं वे विश्वासघाती हिटलर, गोयरिङ्ग और गोबेल्स ? और रोम कहां है ? मुझे नहीं, उन्हें आज इस अदालतमें खड़ा किया जाना चाहिए था। उन्होंने ही मुझे आग लगानेके लिए उभाड़ा और वचन दिया था कि वे मुझे बचा लेंगे। उन्होंने कहा था—"

लुबेको और कुछ कहने नहीं दिया गया। अधिकारियोंको आशङ्का थी कि उसे पूरा बयान देनेका अवसर दिया गया, तो वह न जाने कैसा भण्डाफोड़ करने लगे।

रोमकी सनसनीखेज हत्या

कैप्टेन रोम उन व्यक्तियोंमें था, जिनके कारण हिटलरके राजनीतिक अभ्युदयमें बहुत बड़ी सहायता मिली। वह उन दिनों नात्सी सेनाका कमाण्डर भी था। अतः उसका प्रभाव इतना बढ़ गया था कि हिटलरको इससे आशङ्का होने लगी और वह उससे छुटकारा पानेका अवसर ढूंढ़ने लगा। एक दिन उसने एक पत्र लिखा:—"मेरे परम मित्र एवं साथी लड़ाके, नेशनल सोशलिस्ट आन्दोलन और जर्मन जातिकी अथक सेवा करनेके कारण तुम्हें धन्यवाद देनेके लिए मेरी आन्तरिक प्रेरणा होती है। क्या तुम एक बार मुझसे आकर मिलोगे मेरे सबसे प्यारे मित्र ?"

रोमने पत्र पढ़ा और बिना किसी सन्देहके ९ जून १९३४ को उससे मिलने चल पड़ा। लगभग ९ घण्टे तक उनमें बातें होती रहीं। अन्तमें हिटलरने रोमसे कुछ दिनों तक विश्राम करनेके लिए कहा। इसके बाद रोमसे सदाके लिए पिण्ड छुड़ा लेनेका जो षड्यन्त्र था, उसका अन्तिम दृश्य अत्यन्त

भीषण है। रातके सन्नाटेमें जब रोम तथा उसके साथी सो रहे थे, हिटलर और गोबेल्स छःनली भरी पिस्तौल लिये भीतर पहुंचे। उनके आगे-आगे अङ्ग-रक्षक दोनों हाथोंमें भरी पिस्तौलें लेकर चल रहे थे। रोमका दरवाजा खोला गया। वह सोनेका पायजामा पहने पड़ा था। कहते हैं कि एक नवयुवक उसके साथ नङ्गे-धड़ङ्गे पड़ा था। हिटलरने पहुंचते ही रोमको फटकारना शुरू किया कि उसने हिटलरको अधिकारच्युत करनेके लिए षड्यन्त्र किया था। रोम ज्यों-का-त्यों अचम्भेमें पड़ा रह गया; क्योंकि उसके ही प्रभावसे जो व्यक्ति राजनीतिक प्रभुता प्राप्त कर चुका था, वही उसे गिरानेकी कोशिश करेगा, यह बात समझमें न आयी। जब कि उसने वास्तवमें ऐसा कुछ कभी किया ही नहीं था, तब वह आश्चर्यसे हिटलरका मुंह ताकता रह गया कि हिटलरने उसे कोड़ोंसे पीटना शुरू कर दिया।

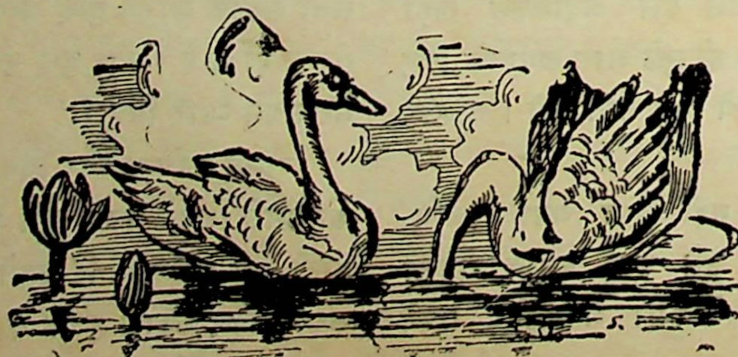
दूसरे कमरेमें हाइने सोया था। इस सम्बन्धमें सरकारी रिपोर्टके अनुसार "हाइने अपने शोफरके साथ नङ्गी-धड़ङ्गी अवस्थामें सो रहा था। वे दोनों सम-यौन-सम्बन्ध रखनेवाले पापी थे। दोनोंको उसी अवस्थामें गोली मार दी गयी।" रोमसे बार-बार कहा गया कि वह आत्मघात कर ले, लेकिन जब उसने इस बातपर जोर डाला कि हिटलर खुद उसे अपना निशाना बनाये, तो उसे गोली मार दी गयी और वह वहीं ढेर हो गया।

इसके पश्चात् तीन दिन तक जर्मनीमें भीषण आतङ्क बना रहा। लगभग १२०० आदमियोंको गोलीसे उड़ा दिया गया। यह सब काण्ड गोयरिङ्गने किया, जिसके लिए राइखस्टागमें हिटलरने अपने ऊपर जिम्मेदारी ली। ३० जूनके इस हत्या-काण्डके बाद गिरफ्तारियोंका तांता लगा और बिना मामला चलाये सन्दिग्ध व्यक्तियोंको नजरबन्दीमें डाला जाने लगा। कहते हैं कि कुल ७३ जेलोंमें प्रायः ४५०,००० व्यक्तियोंको बन्द किया गया और हिटलर द्वारा होनेवाली सारी हत्याओं-की संख्या प्रायः १२५,००० बतायी जाती है। इन सबका कारण नात्सी अधिकारियों द्वारा यह बताया जाता है कि "अगर इनके साथ ऐसा बर्ताव न किया गया होता, तो देशभक्त जर्मन जनता इनका रस चूस लेती, क्योंकि इन्हीं दुष्टोंने नवम्बर १९१८ में जर्मनोंको विद्रोहके लिए उभाड़ा था।"

× × ×

यह है उस व्यक्तिकी कहानी, जिसके कारण आज दूसरा महायुद्ध छिड़ा हुआ है। संसार आज भीषण आतङ्कसे कांप रहा है और निरीह प्राणी अपनी दयनीयतामें सोचता है कि कैसा भीषण अन्धकारपूर्ण भविष्य उसके सामने है।

लेकिन क्या जर्मनी और उसका वर्तमान भाग्य-विधाता सुरक्षित है? उक्त अमेरिकनने, जिसके शब्द ऊपर दिये गये हैं, लिखा है:—जर्मन चान्सलरीके भयसे कांपते और रोते, घबराते हुए एक व्यक्तिकी गोलियां इन्तजार कर रही हैं। वह अपनी खिड़कीसे व्याकुल नेत्रोंसे ताकता और व्यग्र हो उठता है। असंख्य पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंके खूनकी डरावनी तस्वीरें उसके दिमागमें नाच उठती हैं और वह घबराकर आंखें बन्द कर लेता है, जैसे वे लहूमें लथपथ उसके सामने ही रक्तरञ्जित भूमिमें गिरकर ढेर हो रही हों!



आधुनिक युद्धमें विज्ञानकी ध्वंस-लीला

श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०

युद्धमें आग्नेय पदार्थका इस्तेमाल ११ वीं शताब्दीमें चीनवालोंने किया था। जलते हुए आगके गोले दुश्मनकी फौजोंपर हाथसे या तीर-कमानके जरिये फेंके जाते थे। कुछ काल उपरान्त बारूदका प्रयोग भी युद्ध-स्थलपर किया जाने लगा। वैसे तो चीनवालोंने बारूदकी ईजाद ६ ठीं शताब्दीमें ही कर ली थी; किन्तु इसका प्रयोग आतिशबाजी तक ही कई सदियों तक सीमित रहा। तेरहवीं शताब्दीमें मङ्गोलियामें सबसे पहले हाथसे फेंके जानेवाले बमगोले बने। फिर इंगलण्ड, फ्रान्स, इटली आदि देशोंमें भी लोग बारूदका इस्तेमाल करना जान गये। यूरोपमें सबसे पहले १२४७ में बारूदका प्रयोग युद्ध-स्थलमें किया गया था।

चौदहवीं शताब्दीमें सर्वप्रथम तोपें तैयार हुईं। टर्कीके सुलतान द्वितीय मुहम्मदने एक विशालकाय तोप ढलवायी थी, जिससे ४ मन वजनके गोले दागे जाते थे। इस तोपकी आवाज १३ मीलके फासले तक सुनाई देती थी! गत यूरोपीय महायुद्धमें जर्मनीकी 'बिग बर्था' नामक तोपने ८० मीलके फासलेपर ४॥ मनके वजनवाले बमके गोले फेंके थे। इस युद्धमें तोपके गोले तैयार करनेमें मित्रराष्ट्रों तथा जर्मनी दोनोंने बेतहाशा रुपये फूंके थे। १९१७ की पहली जनवरीसे सन्धि-दिवस तक फ्रेञ्च फैक्टरियोंमें प्रतिदिन १ लाख ७९ हजार छोटे साइजके बमगोले और ४०००० बड़े साइजके तैयार किये गये थे।

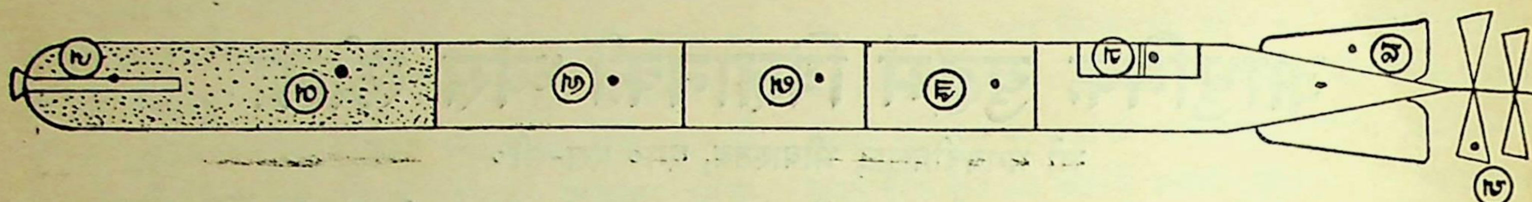
विषाक्त गैसोंका इस्तेमाल भी गत महायुद्धमें ही बड़े पैमानेपर हुआ था। किन्तु १३ वीं शताब्दीमें मङ्गोल लोगोंने यूरोपके अन्दर घुसनेके प्रयत्नमें जो लड़ाइयां लड़ीं, उनमें शत्रुकी लाइन्समें उन्होंने विष्ठा-सरीखी बदबूदार चीजें फेंकी थीं, ताकि शत्रुदलके सैनिक घबराकर पीछे हट जायें। पिछले महायुद्धमें लगभग १२ किस्मकी जहरीली गैसें कामयाबीके साथ इस्तेमाल हुई थीं, यद्यपि ३००० से भी ज्यादा किस्मकी भिन्न जहरीली गैसें केमिस्ट्री जाननेवालोंको मालूम हैं।

आजकलके एक बड़े आकारके बम बरसानेवाले वायुयानमें केवल पांच व्यक्ति सवार होते हैं। एक वायुयान-सञ्चालक—पाइलट, दूसरा निशाना लेकर बम गिरानेवाला, तीसरा रेडियोके सङ्केतसे वायुयानको ठीक रास्तेपर ले जानेवाला और इनके अतिरिक्त दो मशीनगन चलानेवाले सैनिक होते हैं। पाइलटकी सीटके नीचे पेंदेपर लेटा हुआ निशानेबाज एक विशेष यन्त्रके जरिये निशाना साधता है। इस निशानेबाजके दाहने हाथके पास स्विच लगे रहते हैं, जिन्हें दबाते ही, पीछे रखे हुए बम एक-एक करके नीचे गिरते हैं। जिस यन्त्रसे निशाना साधा जाता है, उसमें वायुयानकी ऊंचाई, उसकी दिशा तथा रफ्तार सबका लिहाज किया गया होता है। और यदि ठीक तौरसे इस यन्त्रका इस्तेमाल किया जाय, तो करीब शत-प्रतिशत निशाना ठीक जगहपर बैठता है।

बम बरसानेके भी कई तरीके प्रचलित हैं। तेज उड़ते हुए वायुयानसे जब बमगोला गिरता है, तो वह ठीक लम्बवत् नीचेको नहीं गिरता, बल्कि खम खाकर आगेको झुकाव लिये हुए मीलों आगे गिरता है। कभी-कभी वायुयानको सीधे निशानेकी ओर उड़ाते हैं और तब सीधमें बम गिराकर फौरन् वायुयानको झटकेके साथ ऊपर उठा लेते हैं। बम गिरानेके लिए नन्हें-नन्हें पैराशूटका भी इस्तेमाल अब किया जाने लगा है। जिस क्षण पैराशूट खुलता है, उस क्षणसे जमीनपर पहुंचने तक पैराशूटवाला बम एकदम लम्बवत् नीचे जाता है।

बम गिरानेवाले इंगलैण्डके वायुयानोंकी रफ्तार २५० मील तक पहुंच चुकी है। टङ्कीमें एक बार पेट्रोल भरकर ३३०० मीलकी यात्रा इन जहाजोंपर एक उड़ानमें पूरी की जा सकती है। इसके माने यह हुए कि सुबह ६ बजे लन्दनसे रवाना होकर दोपहरको मास्कोमें गोले बरसाकर शाम तक ये वायुयान पुनः लन्दनके एयरोड्रोममें वापस आ सकते हैं।

स्वयं काम करनेवाले वायुयान—तोप दागनेवाले सैनिकोंको निशानेबाजीकी शिक्षा देनेके लिए नयी तरकीबें ईजाद की गयी हैं। पहले वायुयानके पीछे एक लम्बी रस्सीमें रबरका गुब्बारा बांध देते थे। जब वायुयान आसमानमें



टार्पेडो :—(ट) फ्यूजपिन, (ठ) डायनामाइट, (ड) संकुचित वायु, (ढ) गहराईपर नियन्त्रण रखनेका यन्त्र, (ण) इञ्जिन, (त) जाइरास्कोप, (थ) साधनेका ब्लेड, (द) प्रापेलर।

उड़ता, तो उसके साथ पीछे-पीछे यह गुब्बारा भी उड़ता था। इसीपर अन्य हवाई जहाजोंके सैनिक निशाना मारनेका अभ्यास करते। किन्तु ऐसे गुब्बारेको तेजीके साथ घुमा-फिराकर गोलीके निशानेसे बचा सकना सम्भव न था। फिर इसकी शक्ल भी हवाई जहाज-सरीखी न थी। अब निशानेकी प्रैक्टिसके लिए माडल हवाई जहाज इस्तेमाल होते हैं। ये हवाई जहाज एक नन्हें-से इञ्जिनकी शक्तिसे आकाशमें पूरे एक मीलकी उंचाई तक उड़ सकते हैं।

एक मोटरकी छतपर रखकर इस माडल वायुयानको चांदमारीके मैदानमें ले आते हैं। वहांपर गुलेलके सिद्धान्तपर बने हुए एक स्टैण्डपर इसे ठीक कर देते हैं। स्टैण्डमें लगे हुए लचीले तारको खींचकर जब उसे छोड़ते हैं, तो इस झटकेको खाकर माडल वायुयान आकाशमें तीरकी भांति छूट पड़ता है। इस माडल वायुयानपर कोई चालक नहीं बैठता। किन्तु इसपर रेडियो-तरङ्गोंकी मददसे नीचे मैदानमें बैठा हुआ बेतारके तारका आपरेटर पूर्ण नियन्त्रण रखता है।

स्टैण्डपर ज्योंही वायुयान आगे बढ़ा, मैदानमें बैठे हुए आपरेटरने बेतारके तारके यन्त्रपर बटन दबाया और माडलका इञ्जन चालू हो गया। जमीनपरसे ही आपरेटर डायल घुमा-घुमाकर इस माडल वायुयानको चाहे जिस दिशामें उसकी इच्छा हो, ले जा सकता है। मानो सचमुच शत्रुका जहाज आक्रमणसे बचनेके लिए तरह-तरहके पैंतरे बदल रहा है।

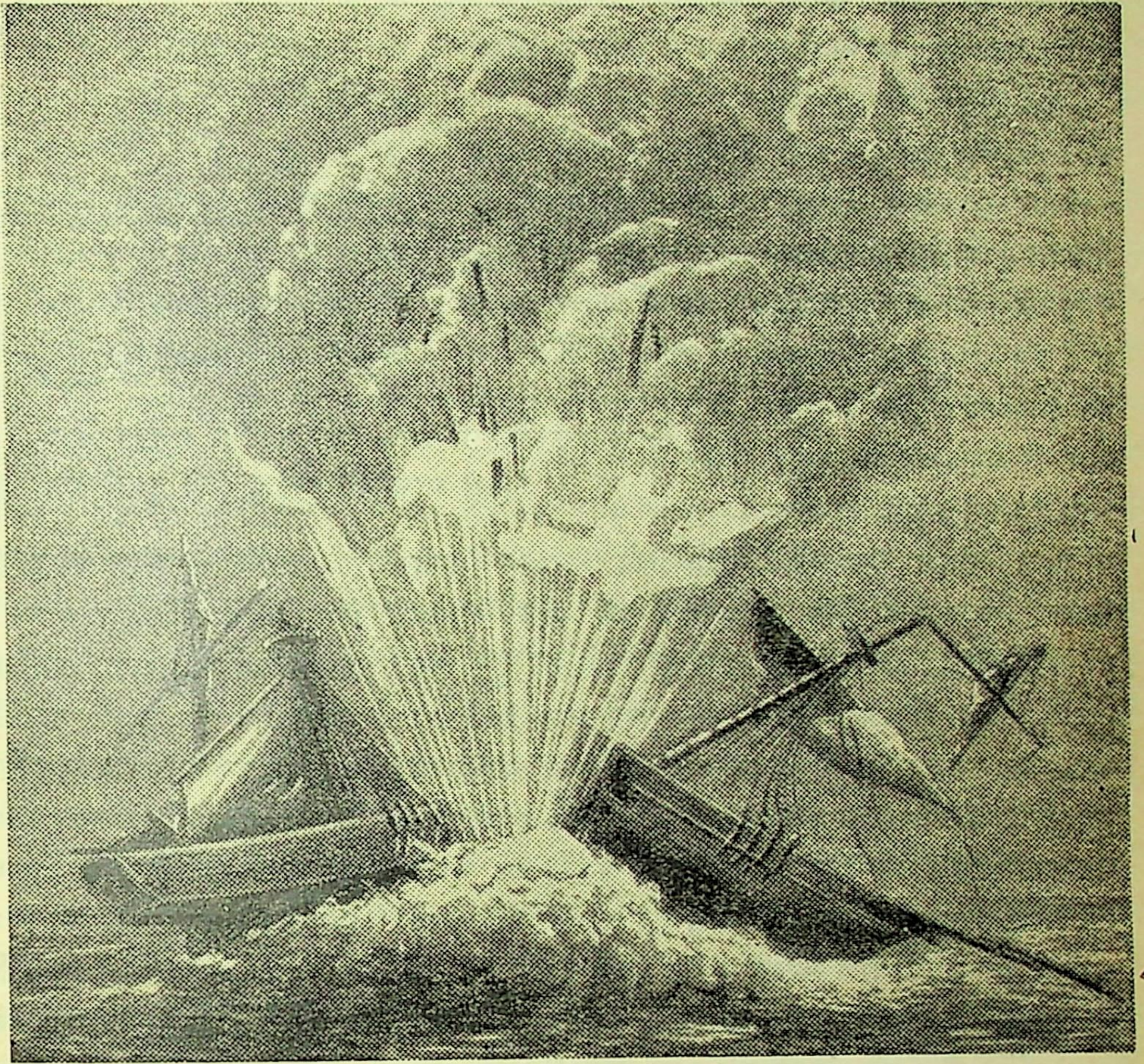
गोली लगनेपर यह माडल वायुयान बेतहाशा जमीनपर नहीं गिरता। इसकी पीठपर एक पैराशूट बंधा हुआ होता है। आपरेटरने ज्योंही देखा कि माडलको गोली लग गयी है, उसने फौरन् दूसरा स्विच दबाया और माडलका पैराशूट खुल गया; अब धीरे-धीरे माडल वायुयान जमीनपर उतर आया। इसके अस्थिपञ्जरको जमीनकी टक्करसे कोई हानि नहीं पहुंची।

बम भी कई प्रकारके होते हैं, यद्यपि वे सब एक ही सिद्धान्तपर बने होते हैं। मजबूत लोहेकी चद्दरकी गावदुमनुमा शक्ल बनी होती है। गावदुम (स्ट्रीम लाइन) होनेसे हवाकी रुकावटका प्रभाव बमपर नहीं पड़ता, अतः तीव्र वेगसे यह अपने निशानेकी ओर बढ़ता है। प्रत्येक बमके अन्दर तीन मुख्य भाग होते हैं। एकदम सामने ही सिरेपर फ्यूज लगा होता है, फिर उसके पीछे विस्फोटक पदार्थ भरे होते हैं। और सबसे पीछे, पूंछपर पतवार-जैसे फाल लगे होते हैं, जिनका काम यह होता है कि बमको सीधे रास्तेपर रखें। चित्रमें बमके तीनों भाग स्पष्ट दिखाये गये हैं।

सामने लगा हुआ फ्यूज टक्कर खाते ही भीतरकी ओर तुरन्त घुसकर विस्फोटक पदार्थसे जा टकराता है। फलस्वरूप बमके अन्दरके तमाम रासायनिक पदार्थ विस्फोट करके बाहरको फूटकर निकलते हैं। तीव्र वेगके साथ बमके बाहरी हिस्सेके लोहेका खोल नन्हें-नन्हें टुकड़ोंमें चारों तरफ फैल जाता है। तुरन्त विस्फोट होनेवाले बमका कार्यक्षेत्र बहुत ही विस्तृत होता है; किन्तु किसी जहाज या इमारतको भेदकर बहुत दूर अन्दर तक ये नहीं जा सकते। अतः तुरन्त विस्फोटक बम ऐसे मौकोंपर इस्तेमाल किये जाते हैं, जहां किसी भीड़ इत्यादिको क्षति पहुंचानी होती है।

तहखानेके अन्दर तक बम घुस जाय, इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिए दूसरे प्रकारका फ्यूज इस्तेमाल करते हैं। यदि ऐसा बम किसी चीजसे टकराता है, तो यह फौरन् ही विस्फोट नहीं करता, बल्कि उस चीजको भेदकर काफी दूर तक अन्दरको घुस जाता है और तब यह विस्फोट करता है। ऐसा फ्यूज बमकी दुमके पास लगा रहता है। फ्यूजकी पिन एक स्क्रूमें लगी होती है और उस स्क्रूके बाहरी हिस्सेपर ब्लेण्डवाली पङ्खेनुमा एक नन्हीं-सी चर्खी फिट की हुई रहती है। जब बम नीचेकी ओर तेजीके साथ गिरता है, तो हवाके वेगसे यह चर्खी उलटी ओर घूमने लगती है और इस तरह बमके

सौ-दो सौ फीट नीचे तक पहुंचते-पहुंचते तक चर्खी स्क्रूसे बाहर निकल पड़ती है। किन्तु फ्यूजकी पिनको एक कमानी विस्फोटक पदार्थसे अलग किये रहती है, इस कारण चर्खीके बाहर निकलते ही यह पिन विस्फोटक पदार्थ तक नहीं पहुंच जाती। जिस वक्त किसी मकानकी छतसे यह बम टकराता है, अपनी तीव्रगतिके कारण यह छतको भेदकर अन्दर पहुंच जाता है। १०००० फीट-की ऊंचाईसे गिरनेपर जमीनपर पहुंचते-पहुंचते बमकी रफ्तार ५०० मील प्रति घण्टे पहुंच जाती है। जिस वक्त यह छतसे टकराता है, एकाएक उसकी रफ्तारमें भारी कमी हो जाती है; किन्तु फ्यूज पिन



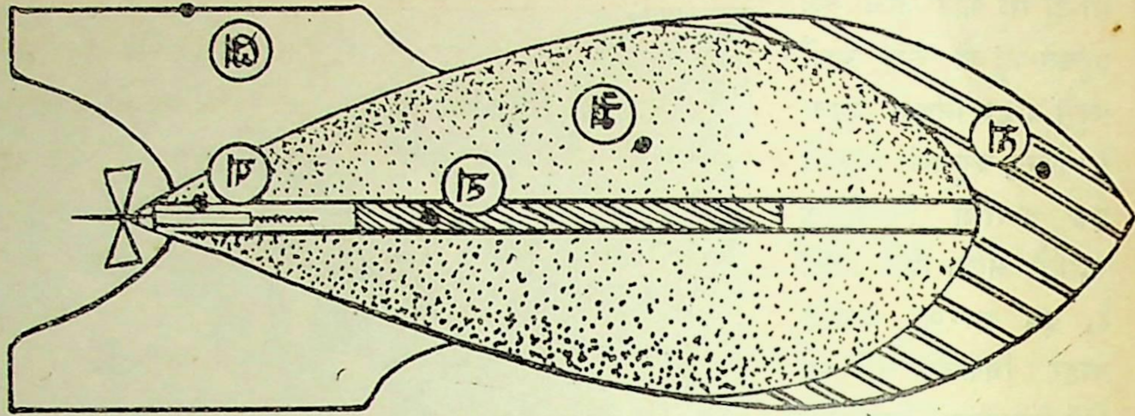
टार्पेडोके फटनेके बीस सेकेण्डके बाद जहाजकी दशा।

अपनी पहली रफ्तारसे ही आगेको बढ़ती है। नतीजा यह होता है कि स्प्रिंगको दबाकर यह पिन आगेको सरक आती है और विस्फोटक पदार्थसे जा टकराती है और समूचा बम फूट उठता है। स्प्रिंग दबाकर पिनको आगे बढ़नेमें थोड़ा समय लगता है, करीब एक सेकेण्डका बीसवां भाग। किन्तु इतनी देरमें बम मकानके अन्दर ३०,४० फीट तक प्रवेश कर चुका होता है। अन्दर घिरी हुई जगहमें विस्फोट होनेसे इसका वेग भी बहुत बढ़ जाता है और इस प्रकार ऐसे बम मजबूत इमारतोंको एक लमहेमें धराशायी कर सकते हैं। बम-वर्षासे रक्षा करनेके लिए बनाये हुए तहखाने और खाइयां भी इस बमके प्रभावसे बच नहीं सकतीं।

आग्नेय बम--कुछ बम निरे आग लगानेवाले ही होते हैं। इनका आकार बहुत ही छोटा होता है—प्रायः ६ इञ्च या हदसे हद १२ इञ्च लम्बे ये होते हैं। इनकी मोटाई आध इञ्चके बराबर होती है। आग्नेय बमके अन्दर थर्माइट भरते हैं। थर्माइट वास्तवमें अल्यूमिनियमके चूर्ण और लौहके मैग्नेटिक आक्साइडका मिश्रण होता है—एक फ्यूजसे पहले मैग्नीसियमके एक पतले तारमें आग लगती है, फिर इसकी तेज गर्मीसे थर्माइट भी जल उठता है। थर्माइटके जलनेसे असह्य ताप उत्पन्न होता है—२५०० डिग्री! कड़ेसे कड़ा इस्पात उस तापक्रमपर पिघलकर पानी हो जाता है। थर्माइट-को जलनेके लिए आक्सिजन या हवाकी जरूरत भी नहीं होती। अतः पानीके अन्दर भी थर्माइटका मिश्रण बखूबी जलता है। आग्नेय बमकी आग बुझानेके लिए पानीका प्रयोग करना निरी मूर्खता होगी, क्योंकि उस ऊंचे तापमानपर पानी तुरन्त ही भाप बन जाता है। केवल बालू

और रेत ही ऐसे बमोंसे हमारी रक्षा कर सकती है।

एक चौड़ी सन्दूकचीमें कई सौ आग्नेय बम रखे रहते हैं। और पूरा केस नीचेको गिराया जाता है। तेज रफ्तार पकड़ लेनेके कारण ये नन्हें-नन्हें बम सन्दूकचीको तोड़कर तितर-बितर हो जाते हैं और कई गजके घेरे तक पहुंच जाते हैं। इस ढङ्गसे दो-तीन वायुयान समूचे शहरमें देखते-देखते आग लगा सकते हैं। अकसर तो ऐसा भी करते हैं कि पहले आग्नेय बमोंकी वर्षा की, फिर तुरन्त ही विषाक्त गैससे भरे हुए बम गिराये। ऐसे मौकेपर मस्टर्ड गैस इस्तेमाल करते हैं। बमके अन्दर द्रव मस्टर्ड भरा रहता है—जरा-सी बारूदकी मददसे विस्फोट कराकर इस द्रव पदार्थको गैस-रूपमें परिणत कर लेते हैं। जमीनपर जब बम फूटता है, तो यह भारी गैस धरातलपर सब जगह पहुंच जाती है। भारी होनेके नाते खाइयों और तहखानोंके अन्दर भी यह पहुंच जाती है।

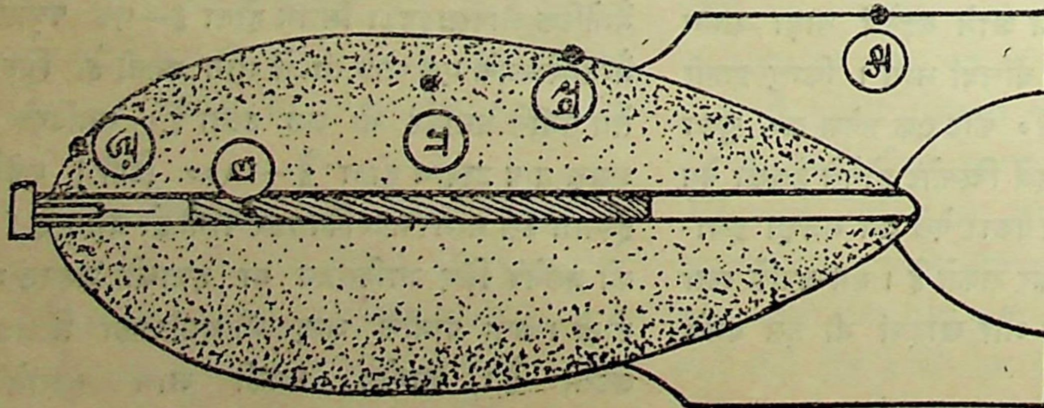


देरसे विस्फोट करनेवाला बम—(च) नुकीला मजबूत सिरा, (छ) डायनामाइट, (ज) बारूद, (झ) साधनेवाले ब्लेड, (ञ) दुममें लगा हुआ फ्यूज़।

इस गैसमें सबसे भयानक गुण यह है कि इसके अन्दर गन्ध नहीं होती। इसे सूंघनेके कुछ समय पश्चात् आंखें सूज आती हैं और शरीरकी त्वचापर जगह-जगह छाले उभर आते हैं। इस गैसका घातक प्रभाव तो नहीं पड़ता; किन्तु सैनिकों तथा नागरिकोंकी कार्यक्षमता कुछ कालके लिए एकदम नष्ट-सी अवश्य हो जाती है।

टार्पेडो—आधुनिक युगकी सबसे अधिक खतरनाक युद्ध-सामग्रियोंमें टार्पेडोका स्थान सर्वोपरि है। टार्पेडोसे मिलता-जुलता सर्वप्रथम अस्त्र अमेरिकन गृह-युद्धमें इस्तेमाल किया गया था। एक हलके कनस्टरमें विस्फोटक पदार्थ भर देते थे, और उसके सिरपर एक टोपी लगी रहती थी। एक लम्बे लग्गेके सिरेमें यह कनस्टर बंधा रहता था। रातके अंधेरेमें एक छोटी-सी किश्तीपर बैठकर शत्रुके जहाजी बेड़ेके नजदीक लग्गेमें बंधे हुए कनस्टरको ले जाते थे और उसे विस्फोट कराकर शत्रुके जहाजको बेहद क्षति पहुंचा देते थे। किन्तु अकसर ऐसा भी होता था कि खुद अपनी किश्ती भी उसी विस्फोटके चपेटमें आ जाती थी। सैनिक दृष्टिसे इस अस्त्रमें यह एक भारी दोष था। अतः सेना-विभागने इस अस्त्रको नहीं अपनाया। हां, कितने ही उत्साही आविष्कारक इस फिक्रमें अवश्य लग गये कि ऐसी किश्ती बनायी जाय कि उसमें विस्फोट पदार्थ भरकर उसे किसी खास दिशामें रवाना कर दिया जाय, तो वह अपने आप बिना किसी नाविककी मदद-के अपने निर्दिष्ट स्थानपर पहुंचकर विस्फोट कर जाय।

इस क्षेत्रमें लगभग १८६० में एक अंगरेज ह्वाइटहेडने सर्वप्रथम सफलता प्राप्त की। उसने कई सालके अनुसन्धान-के उपरान्त एक वास्तविक टार्पेडोका निर्माण किया, जो

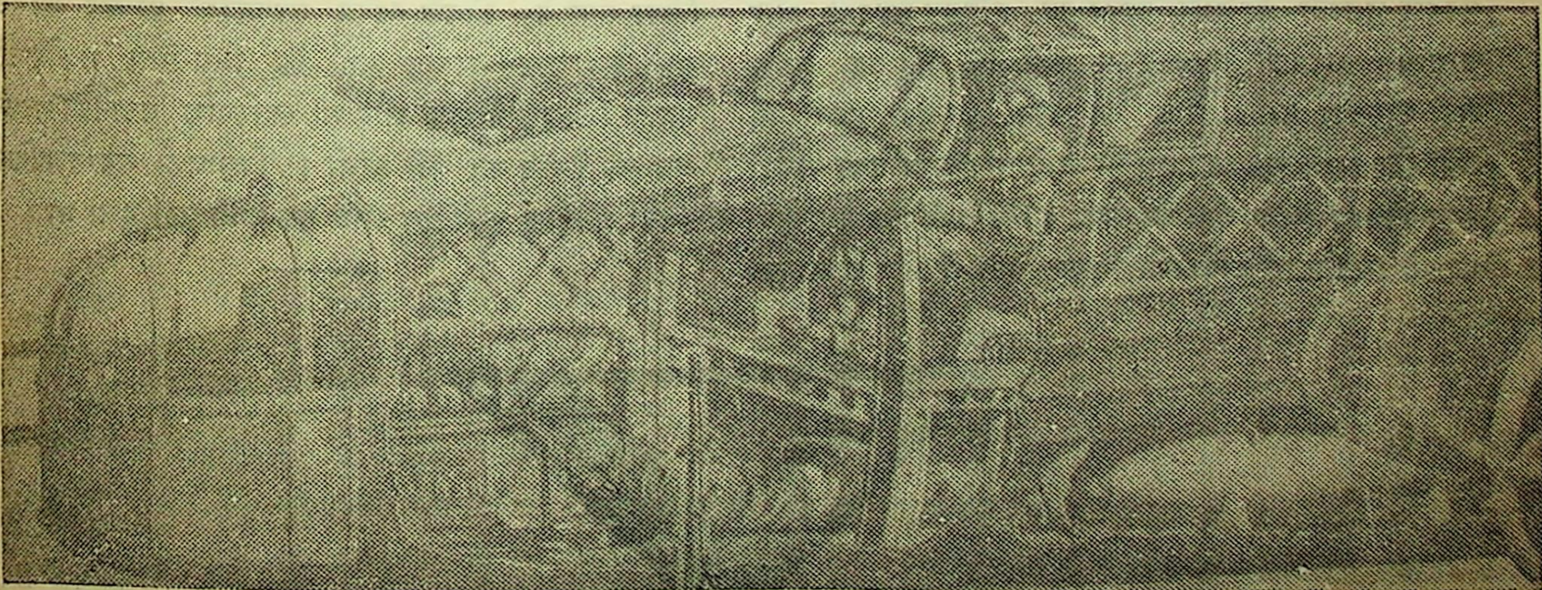


तुरन्त विस्फोट करनेवाला बम—(क) बमको साधनेवाले ब्लेड, (ख) मजबूत लोहेकी चद्दर, (ग) डायनामाइट, (घ) बारूद, (ङ) सामनेका फ्यूज।

संकुचित हवा (High pressure)के बलपर तीव्र गतिसे करीब आध मील तक जा सकता था। आधुनिक टार्पेडोका जन्म मानो उसी समय हुआ। ह्वाइटहेडके इस आविष्कारके कुछ ही दिन पहले आस्ट्रियाके एक सैनिक अफसरने एक ऐसे टार्पेडोके बनानेकी सोची थी, जिसमें चालक शक्ति एक भापके इञ्जिनसे टार्पेडोको मिलती रहे। टार्पेडोके अन्दर ही इस इञ्जिनको रखनेकी स्कीम थी; किन्तु महीनों मगज खपानेपर भी उसे कामयाबी हासिल न हुई और तब हारकर ह्वाइटहेडसे सलाह लेने गया और उक्त टार्पेडोको, जो संकुचित हवाके बलपर चलता था, इन दोनोंने मिलकर तैयार किया।

ह्वाइटहेडके टार्पेडोमें केवल ९ सेर डायनामाइट भरा था। इस टार्पेडोकी रफ्तार दौड़ते हुए आदमीकी रफ्तारसे ज्यादा न थी; किन्तु इस टार्पेडोका सबसे भारी दोष यह था कि पानीके अन्दर यह सीधा नहीं जाता था। या तो शीघ्र ही ऊपर पानीकी सतहपर यह उठ आता था या फिर नीचे जाकर तहमें गड़ जाता था। समुद्रकी उत्ताल तरङ्गें उसे सीधे रास्तेसे विचलित कर देती थीं। आखिर ह्वाइटहेडने टार्पेडोके इस दोषको भी दूर कर दिया। उसने एक तरकीब ऐसी निकाली, जिसकी वजहसे टार्पेडो तमाम रास्ते-भर एक खास गहराईपर चलता। इस नयी तरकीबकी ईजादके महत्त्वका अन्दाज केवल अकेली इस बातसे लगाया जा सकता है कि ब्रिटिश गवर्नमेण्टने इस भेदको १९००० पौण्डमें खरीद लिया। कुछ ही दिनों उपरान्त फ्रान्स, जर्मनी और इटलीने भी टार्पेडो बनानेके भेद ह्वाइटहेडसे भारी रकमें देकर खरीद लिये और देखते-देखते ह्वाइटहेड करोड़पति बन गया। फिर भी उसने टार्पेडो सम्बन्धी अपने अनुसन्धान जारी रखे और उसमें बराबर सुधार करता गया।

ह्वाइटहेडके टार्पेडोकी सफलतासे उत्साहित होकर अमेरिकन आविष्कारक एडिसन तथा सिम्सने मिलकर एक नये ढङ्गका टार्पेडो बनाया, जो विद्युत्-शक्तिकी मददसे चलता था। टार्पेडोके अन्दर ही बिजलीका मोटर इञ्जन लगा रहता, जो उसे आगेको बढ़ाता। मोटरके लिए विद्युत्-शक्ति जहाजपरसे एक लम्बे तारके जरिये आती थी। यह तार करीब पौने तीन मील लम्बा था। विद्युत्-धाराकी सहायतासे इस टार्पेडोको इच्छित दिशामें घुमा-फिरा भी सकते थे। किन्तु उसपर पूर्ण नियन्त्रण रखना सहज काम न था। पेरूके खिलाफ युद्धमें एक ऐसा ही टार्पेडो जब शत्रुके जहाजकी ओर फेंका गया, तो उसको ठीक रास्तेपर रखनेके लिए विद्युत्धाराका प्रयोग करनेपर इतनी गड़बड़ी हुई कि टार्पेडो घूमकर फिर अपने ही जहाजकी ओर लौटा। इस भयावह परिस्थितिमें एक साहसी नाविकने गोता लगाया, और उस टार्पेडोके रास्तेको घुमा दिया। जहाजकी बगलसे निकलकर यह विद्युत् टार्पेडो एक चट्टानसे जा टकराया। और इस तरह अपने सिर आयी हुई आफतसे छुटकारा मिला। टार्पेडोका सिद्धान्त समझना कुछ मुश्किल नहीं है; किन्तु इसके भिन्न-भिन्न पुर्जोंके बारेमें पूरी जानकारी हासिल



जहाजसे बम-वर्षा।

करनेमें अक्ल हैरान हो जाती है। प्रत्येक टार्पेडोके अन्दर लगभग ६००० भिन्न-भिन्न पुर्जे होते हैं और महीनोंमें एक टार्पेडा तैयार हो पाता है। पानीके बाहर या उसके अन्दर सीधी लाइनमें टार्पेडो अपने लक्ष्य तक तीव्र गतिसे जाता और शत्रुके जहाजसे टकराकर विस्फोट करता है—शत्रुके जहाजके साथ-साथ स्वयं भी नष्ट हो जाता है।

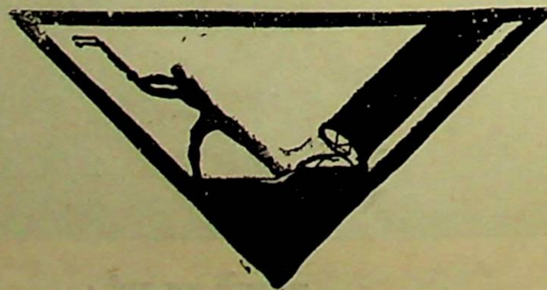
टार्पेडोके सामनेवाले भाग—उसकी नाकपर फ्यूज लगा रहता है। फ्यूजके पीछे ही विस्फोटक पदार्थ रहता है। निशानेसे टकराते ही फ्यूज पिन विस्फोटक पदार्थको भेदकर उसे विस्फोट करा देती है। विस्फोटक पदार्थके पीछे ही इस्पातके मजबूत सिलेण्डरके अन्दर संकुचित (हाई प्रेशर) हवा भरी रहती है। इस सिलेण्डरके पीछे इञ्जिन कम्पार्टमेण्ट बना रहता है। सिलेण्डरसे हवा निकलकर वेगके साथ इञ्जिनमें आती है और इसे चालू रखती है। पेट्रोल, भाप और संकुचित वायुके बलपर यह इञ्जिन चलता है। इञ्जिनको ठण्डा रखनेके लिए समुद्रका ही पानी इस्तेमाल होता है। इञ्जिनके पीछे टार्पेडोकी दुमके पास दो ब्लेडदार पङ्खे लगे रहते हैं। इनका सम्बन्ध इसी इञ्जनसे रहता है, और इञ्जनके चलनेपर ये पङ्खे विपरीत दिशामें तेजीसे घूमते हैं। और इस तरह टार्पेडोका समतुलन कायम रखते हैं।

टार्पेडोको अपने रास्तेपर सही रखनेके लिए भी समय-समयपर लोगोंने भिन्न-भिन्न तरकीबें सोची हैं। जापानियोंने एक टार्पेडो ऐसा बनाया था कि उसमें एक व्यक्ति बैठकर पतवार घुमाता रहे और टार्पेडोको इच्छित लक्ष्यकी ओर ले जाये। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यदि वह व्यक्ति सही रास्तेपर टार्पेडोको ले जा सका, तो वह स्वयं भी उसी विस्फोटमें भुनकर खत्म हो जायेगा। अतः ऐसा टार्पेडो सेना-विभाग स्वीकार न कर सका। रेडियोकी विद्युत्-तरङ्गोंकी भी सहायतासे टार्पेडोको निश्चित लक्ष्यकी ओर ले जानेकी बात सोची गयी; किन्तु इसमें भी सफलता न मिल सकी। चुम्बकीय टार्पेडोका भी प्रयोग किया गया कि शत्रुके जहाजमें लगे लोहेकी ओर खिचकर टार्पेडो स्वयं उसके पास चला जाय और उससे टकराकर उसका और अपना दोनोंका काम तमाम कर दे। किन्तु इस प्रकारके टार्पेडो अभी कारगर नहीं हो पाये हैं। आधुनिक टार्पेडोकी पूंछके पास लगभग १॥ सेर वजनका एक जाइरास्कोप लगा रहता है। एक बार सही निशानेकी ओर जब टार्पेडो दाग दिया जाता है, तो इस जाइरास्कोपके कारण बिलकुल एक सीधी रेखामें टार्पेडो आगे बढ़ता है। दाहिने-बायें जरा भी नहीं बल खाता। जाइरास्कोपके अन्दर एक पहिया प्रति सेकेण्डमें सैकड़ों बार चक्कर लगाता रहता है। इसी घूमते हुए पहियेके जोरसे टार्पेडो अपने सही रास्तेसे बिचलता नहीं।

हवाई आक्रमणके लिए एक खास किस्मका टार्पेडो तैयार किया गया, जो किसी शहरपर गिराये जानेपर स्वयं भट्टियोंवाले विशालकाय कारखानोंपर जाकर फटेगा। इस टार्पेडोके सिरेपर दो यन्त्र लगे होते हैं, जो उष्णताकी किरणोंसे विशेष प्रभावित होते हैं। जब ये किसी कारोबारी शहरपर फेंके जायेंगे, तो ये यन्त्र भट्टियोंकी आंचसे प्रभावित होकर टार्पेडोको उन्हीं कारखानोंमें ले जायेंगे और इस तरह गलत निशाना लगानेवाला उड़ाका भी शत्रुके मुल्कको भारी हानि पहुंचा सकता है।

इस स्थानपर केवल उन्हीं बम और टार्पेडोका जिक्र किया गया है, जिनके बारेमें जानकारी हासिल की जा सकी है। इसमें सन्देह नहीं कि भिन्न-भिन्न गवर्नमेण्टोंके यहांके विशेषज्ञोंने इन्हें और भी खतरनाक बनानेकी तरकीबें अब तक ईजाद कर ली होंगी। विज्ञानकी महान् शक्तिका इतना जबर्दस्त दुरुपयोग आज तक कभी नहीं हुआ था।

———



भूल

श्रीमती सत्यवती शर्मा

"बीबीजी !"

"क्यों ?"

"एक स्त्री मिलना चाहती है ।"

"किसलिए ?"

"नौकरीकी तलाशमें आयी है । क्या उसे अन्दर भेज दूं ?" यह कहकर बूढ़ा नौकर जगतू मालकिनकी ओर देखने लगा ।

दोपहरका समय था । मिस्टर कान्तिमोहन बैरिस्टरकी पत्नी उषा इस समय गृह-कार्योंसे छुट्टी पाकर बैठी एक ऊनी जरसी बना रही थी । वह पिछले कई दिनोंसे एक अच्छी नौकरानीकी तलाशमें थी । उसने सलाइयोंसे बिना दृष्टि उठाये ही जवाब दिया—"हां, उसे अन्दर भेज दो ।"

एक ही मिनटके अनन्तर फटे-पुराने वस्त्र पहने एक दुबली-पतली स्त्री उषाके सम्मुख आ खड़ी हुई । उसके साथ एक पांच-छः वर्षका बालक भी था । मां तथा पुत्र दोनोंके चेहरे करुणाकी छायासे मलिन थे । दीनता तो मानो टपकी पड़ती थी । गृह-स्वामिनीकी आज्ञा पानेपर दोनों उसके निकट फर्शपर बैठ गये ।

"क्या तुम नौकरी करोगी ?" उषाने प्रश्न किया ।

"जी हां । इसीलिए तो आपकी शरणमें आयी हूं ।" वह स्त्री याचना-भरे नेत्रोंसे उषाकी ओर देखते हुए कहने लगी—"मुझे सामनी कोठीवालोंने भेजा है । यदि आपकी दया होगी, तो हम दोनों मां-बेटेकी रोटियोंका सहारा हो जायगा ।"

उस स्त्रीकी दर्द-भरी सूरत देखकर उषाका हृदय पिघल उठा । उसके जीमें तो आया कि वह उसको अपने यहां नौकर रख ले । परन्तु उसके बच्चेकी तरफ देखकर वह सोचमें पड़ गयी । उसके पतिको तो बच्चोंके जिक्रसे ही घृणा थी । वह तो पड़ोसमें भी बच्चोंको चीखते-चिल्लाते देखकर घबरा उठते थे । केवल इसी कारण उसने कितनी ही अच्छी-अच्छी नौकरानियोंको रखनेसे इनकार कर दिया था । परन्तु आज तो उस स्त्रीकी आंखोंमें उमड़ी वेदनाने उषाके अन्तरको छू लिया था । उसे एकाएक कुछ जवाब न सूझ पड़ा ।

मालकिनको चुप देखकर वह स्त्री फिर कहने लगी—"तो मुझे क्या आज्ञा है ?"

उषा इस विषयपर थोड़ी देर और सोच लेनेके अभिप्रायसे बोली—"तो तुम क्या-क्या काम कर सकोगी ?"

"जी, मैं घरके सभी काम, खाना बनाना, सफाई तथा बच्चोंकी देख-रेख इत्यादि कर लूंगी ।" स्त्रीकी आंखोंमें आशाकी एक रेखा चमकी ।

"देखो भई ! एक बात है । यदि तुम अपने बच्चेको अपने घरपर छोड़कर यहां कामपर आ सको, तो मुझे तुम्हें रखनेमें कोई एतराज न होगा, लेकिन यह याद रखना कि साहबको बिलकुल खबर न हो कि तुम्हारे कोई बच्चा भी है । उनको बच्चोंसे बहुत नफरत है ।"

"बच्चोंसे नफरत है ? अच्छा ?"

"हां, है । लेकिन तुम इस बातको छोड़ो । बोलो, तुम्हें मेरी शर्त स्वीकार है ?"

"लेकिन बीबीजी ! मैं तो बे-घर हूं ।" उसने आंखोंमें छलकते हुए आंसुओंको छिपाते हुए कहा ।

"अच्छा, तुम बे-घर हो ?" उसने तीखी दृष्टिसे औरतके चेहरेकी तरफ देखा । स्त्रीकी आंखोंमें खेलते हुए आंसू उसकी नजरोंसे छिप न सके । वह फिर सोचमें पड़ गयी । आखिर उसे एक बात सूझ गयी । उनकी कोठीसे कोई मील-भरकी दूरीपर उनकी कुछ कोठरियां किरायेपर उठी रहती थीं । आजकल एक खाली पड़ी हुई थी । उसने सोचा, क्यों न वही कोठरी इसे रहनेके लिए दे दूं ।

"अच्छा ! यदि तुम्हें रहनेके लिए मैं एक कोठरी, जो यहांसे कुछ अन्तरपर है, दे दूं, तो क्या तुम इसको वहां छोड़कर कामपर आ सकोगी ?"

बच्चेको इतनी दूर अकेला छोड़नेकी बात सुनकर श्यामाका दिल कांप-सा गया । क्योंकि अब उसके अन्धकारमय जीवनमें केवल वही एक ज्योतिकी रेखा थी । उसको

सारा दिन अपनेसे दूर एक कोठरीमें अकेला छोड़कर वह किस तरह रह सकेगी, वह बेचैन हो गयी। लेकिन इसके सिवाय और चारा ही क्या था। आखिर उसने स्वीकृति दे दी।

वेतनके विषयमें उसको कहना ही क्या था। गृह-स्वामिनीने जितना कहा, उसीको सौभाग्य समझकर श्यामा दूसरे दिनसे बैरिस्टरके घर कामपर जाने लगी।

(२)

उस घरमें श्यामाने कुछ ही दिनोंमें अपने लिए एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया। धीरे-धीरे प्रायः घरके सभी काम एक-एक करके उसके हाथोंमें आने लगे। बाजारसे सामान इत्यादि लाना, धोबीको कपड़े देना और लेना तथा घरकी सफाई आदि सब उसीको करनी पड़ती। उषाने तो घरकी देख-रेख करनी भी छोड़ दी थी। बैरिस्टर साहबको और किसीका बनाया भोजन ही पसन्द न आता था। यदि उनके कमरेकी सफाई एक दिन भी कोई अन्य नौकर करता, तो उस बेचारेकी तो शामत ही आ जाती। क्योंकि जितने सुरुचिपूर्ण ढङ्गसे श्यामा वस्तुओंको सजाती, वैसी निपुणता दूसरे नौकरोंमें कहां थी। सारांश यह कि इन थोड़े-से दिनोंमें ही श्यामा उस घरका एक आवश्यकीय अङ्ग बन गयी।

श्यामा प्रतिदिन प्रातः पांच बजे उठकर अपनी कोठरीको झाड़-बुहारकर स्नान आदि करती, फिर कोठीसे लाया हुआ थोड़ा-सा खाना रामूके लिए रखकर, अपनी पड़ोसिन यमुनासे, जो एक साईसकी पत्नी थी, बच्चेका ख्याल रखनेकी प्रार्थना कर स्वयं सात बजते बजते बैरिस्टर साहबके बंगलेपर पहुंच जाती। रातको आठ-नौ बजेसे पहले उसका घर लौटना नहीं होता था। बेचारा रामू सारा दिन मातृ-विहीन बच्चेकी तरह इधर-उधर डोलता रहता।

रामूको इस तरह अकेला रहनेकी आदत न थी। और चाहे कुछ भी क्यों न रहा हो, परन्तु मांके प्यारसे तो वह कभी भी वञ्चित नहीं रहा था। दोपहर तो वह किसी तरह गलीके बालकोंके साथ खेलकर काट लेता, लेकिन ज्यों-ज्यों दिन ढलता जाता, उसकी उदासी बढ़ती जाती। सन्ध्या होते ही वह द्वारके एक कोनेमें दुबककर बैठ जाता और मांके आनेकी बाट जोहता। वहीं पड़े-पड़े अक्सर वह सो भी जाता।

(३)

नवम्बर लग गया था। जाड़ेने अपने पर फैलाने आरम्भ कर दिये थे। धूपमें कुछ कोमलता तथा वायुमें थोड़ी कंपकंपी आ चली थी। रातके ग्यारह बजनेको थे। बैरिस्टर साहबके घरमें आज मेहमानोंकी दावत होनेके कारण अभी तक श्यामा लौट न पायी थी। बड़ी कठिनतासे ग्यारह बजे काम खतम करके श्यामा जल्दी-जल्दी पग बढ़ाती हुई घरकी ओर चल दी। उसका रामू उसकी प्रतीक्षामें बैठा होगा। सड़कों और गलियोंमें लगभग सन्नाटा छाया हुआ था। हां, कहीं-कहीं कुत्तोंके भूंकनेका शब्द अवश्य सुनाई दे जाता था। श्यामा सड़ककी बत्तियोंके सहारे अपनी ही छायामें उलझती चली जा रही थी। मन न जाने क्यों किसी अज्ञात आशङ्काके भयसे सिहर-सिहर उठता था।

घरके दरवाजेपर पहुंचकर उसने देखा कि उसका रामू नित्यकी तरह उसी कोनेमें सिकुड़ा पड़ा है। पहले तो वह मांके पांवोंकी आहट पा झट उठ खड़ा होता था, लेकिन आज तो वह आवाज देनेपर भी नहीं उठा। श्यामाने पास जाकर माथेपर हाथ रखा। माथा अङ्गारेकी भांति जल रहा था। रामू बुखारमें बेसुध था। श्यामाका हृदय बैठ गया। कांपते हुए हाथोंसे बालकको उठाया और भीतर ले जाकर चारपाईपर सुला दिया। बेचारीको कुछ सूझ ही न पड़ता था कि क्या करे। घण्टा दो घण्टे बीतनेपर बच्चा छातीकी पीड़ासे कराहने लगा। श्यामाने तेल गरम करके बच्चेकी छातीपर मालिश की। आग जलाकर सेंक भी किया। परन्तु कुछ लाभ न हुआ। सारी रात बेचारी बालकके सिरहाने बैठी आंसू बहाती रही। लेकिन उसके पास ऐसा कौन था, जो उस अबलाके हृदयकी बेचैनी माप सकता।

दूसरे दिन श्यामा कामपर न जा सकी। उसने पड़ोसिन यमुनाके हाथ स्वामिनीसे दो-तीन दिनकी छुट्टीके लिए कहला भेजा।

(४)

"अभी तक मेरा कमरा क्यों नहीं साफ हुआ, उषा?" मिस्टर कान्तिमोहन पत्नीकी ओर देखते हुए कहने लगे—"पुस्तकें धूलसे सनी पड़ी हैं। और देखो तो, ऐनकका एक

शीशा भी टूटा पड़ा है। ये नौकर बिल्कुल नालायक हैं। क्या श्यामा आज भी नहीं आयी ?"

"नहीं।"

"क्यों ? जगतूको भेजकर पता तो लो कि क्या बात है ?"

"उसका लड़का बीमार है। वह कुछ दिन नहीं आ सकेगी।" उषाने डरते-डरते जवाब दिया।

"लड़का ! क्या उसके लड़का भी है ?" बैरिस्टर साहब गरजते हुए कहने लगे—"सब कुछ जानते-बूझते हुए भी तुमने बच्चेवाली नौकरानीको क्यों रखा ?"

"इसलिए कि उन दोनों मां-बेटेकी निर्धनता और कष्टने मुझे परास्त कर दिया था। कोशिश करनेपर भी मैं उसको टाल न सकी।" उषाने सहमी हुई आवाजमें कहा—"लेकिन आप नाराज क्यों होते हैं, श्यामा रामूको हमारे घर तो कभी नहीं लातीं।"

"अच्छा, तो फिर वह कहां रहती है ?" उसके पतिने फिर पूछा।

"उस बेचारीके पास तो रहनेको कोई जगह न थी। बच्चेके कारण मैंने ही अपनी कोठरियोंमेंसे एक कोठरी, जो बहुत दिनोंसे खाली थी, उसे दे रखी है।" उषाने शङ्कित नेत्रोंसे पतिकी ओर देखा।

कान्तिमोहन केवल हूं कहकर अपने कमरेमें चले गये।

उषा किसी दुःखद परिणामकी आशङ्कासे कांप उठी।

(९)

श्यामा उस दिन दो सप्ताहके अनन्तर कामपर आयी। उसके मुंहपर प्रसन्नता और कृतज्ञता झलक रही थी। श्यामाको आयी देख, उषाने पूछा—"आ गयी हो ? अब तो रामू अच्छा है न ?"

"हां बीबीजी, आपकी दयासे अब तो वह बिलकुल ठीक है। यदि आप कृपा करके डाक्टर और रुपये न भेजतीं, तो उसके जीवनकी कुछ आशा न थी।"

"डाक्टर और रुपये ? मैंने भेजे ?" उषाके आश्चर्यका ठिकाना न था।

"आपने नहीं, तो और किसने ? जगतूने ही तो सब कुछ किया है।"

"जगतूने ?" उषाकी हैरानी और भी बढ़ रही थी—"बुलाओ उसे।"

श्यामा गयी और दो ही क्षणोंमें जगतूको साथ लेकर लौट आयी।

"क्यों रे जगतू ! श्यामा यह क्या कहानी कह रही है ?"

"बीबीजी……"

जगतूने अभी कहना शुरू ही किया था कि कान्तिमोहनने तेजीसे कमरेमें प्रवेश किया।

"क्या झगड़ा चल रहा है ?" उसने मुस्कराकर पूछा।

"कुछ नहीं," उनकी पत्नीने जवाब दिया—"श्यामा मुझे किसी एक बातके लिए यों ही यश दे रही है, जो मैंने स्वप्नमें भी नहीं की।"

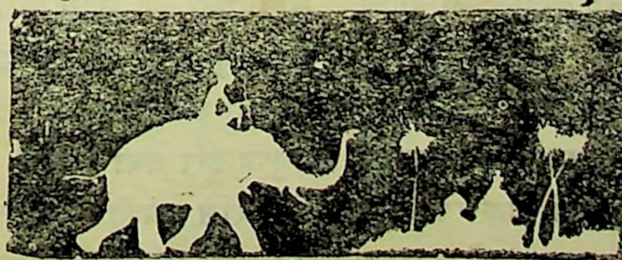
"यों ही कौन किसीको यश देने आता है उषा ! क्या जाने तुम सचमुच उस यशकी अधिकारिणी होओ ही।" कान्तिमोहन खिलखिलाकर हंसे और बाहर चले गये।

उषाने जाते हुए पतिकी ओर प्रशंसा-भरे भावसे देखा।

"मैं भी आज तक कितनी भारी भूलमें रहती चली आ रही थी।" उसने सोचा और सोचते-सोचते उसका चेहरा खिल उठा। *

---

* लाहौर रेडियो स्टेशनपर पठित एवं उसके सौजन्यसे प्रकाशित।



समाजमें पुरुष और नारीका सम्बन्ध

श्री रामस्वरूप व्यास

प्राणियोंके दूसरे वर्गोंमें नर व मादाका जो अर्थ होता है, मनुष्य-समाजमें स्त्री व पुरुषका उससे कहीं भिन्न अर्थ होता है। दूसरे प्राणियोंमें, खासकर उच्च वर्गके प्राणियोंमें नर व मादाका जो सम्बन्ध होता है, वह अधिकतर उनकी प्रजननकी विशेषताओंपर निर्भर रहता है। परन्तु मनुष्य-समाजमें वह इसके अतिरिक्त दूसरे रूप भी धारण कर लेता है, जिन्हें हम सामाजिक सम्बन्धोंके नामसे पुकारते हैं। यों तो कुछ दूसरे प्रकारके प्राणियोंमें भी कुछ सामाजिक व्यवस्था मिलती है। अनेक प्रकारके कीड़े-मकोड़ों तथा पशु-पक्षियोंमें सामाजिक व्यवस्थाका कुछ आभास मिलता है। मधुमक्खियों तथा चींटियोंका सामाजिक जीवन प्रसिद्ध है; परन्तु यह प्रारम्भिक अवस्थासे आगे नहीं बढ़ सका है।

मनुष्य-समाजकी व्यवस्थाका मुख्य लक्षण यह है कि यह विचार-प्रधान है। इसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्यकी सामाजिक व्यवस्था प्रकृतिके नियमों तथा जीवनकी आवश्यकताओंका उल्लङ्घन कर सकती है, बल्कि यह कि मुख्य बातोंको छोड़कर मनुष्यकी सामाजिक व्यवस्था एक विचारकी व्यवस्था है, एक मानसिक सृजन है। मनुष्यमें यदि विचारनेकी शक्ति न होती, तब आज न तो उसकी सामाजिक व्यवस्था ही इतनी उन्नतिशील होती, और न वह अक्सर जीवनकी मुख्य बातोंकी उपेक्षा कर जीवनको विकृत बना डालती। प्राणियोंके जीवनके मुख्य लक्षणोंको छोड़कर, मनुष्य-समाजकी जो विशेषता है, वह यह कि यह विचारपर निर्भर है, जब कि दूसरे प्राणियोंने जिस व्यवस्थाको जन्म दिया है, उसमें यह तत्त्व नहींके बराबर है।

इस कारण जहां मनुष्यको सामाजिक व्यवस्थाकी प्रगति करनेके लिए अवसर मिला, वहां साथ ही उसे अपने निर्माण किये हुए विचारोंके बन्धनमें बंधकर अनेक बार भटकना भी पड़ा और कहीं तो वह अब भी भटक रहा है। मनुष्य-समाजमें स्त्री व पुरुषका सम्बन्ध भी इसी प्रकारका है। मनुष्यने इस सम्बन्धमें जिस प्रकारकी व्यवस्थाकी रचना की, उसने उसे सीधे मार्गपर न ले जाकर भूल-भुलैयामें डाल दिया, जिसमें वह आज तक भटक रहा है।

मनुष्य-समाजमें स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध केवल प्रजननसे ही सम्बन्ध नहीं रखता। यह उसके जीवनका एक आवश्यक अङ्ग अवश्य है; परन्तु इसे उसने दूसरे प्रकारके विचारोंसे इस प्रकार आच्छादित कर दिया है कि इस मायाजालको खोलना बड़ा कठिन काम हो गया है। स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध धार्मिक, नैतिक, आर्थिक अनेक प्रकारके विचारों द्वारा बंधा है। ये विचार उसके जीवनकी आवश्यकताओं तथा सारे समाजकी प्रगति और सुखसे कितना सम्बन्ध रखते हैं, यह कह सकना कठिन होगा। परन्तु आजकलके जीवनकी कठिनाइयोंको देखते हुए यह अवश्य कहा जा सकता है कि इन विचारोंके ऊपर स्त्री-पुरुषके सम्बन्धकी व्यवस्था करके वास्तविक सुख-शान्ति देनेवाली व्यवस्थाको जन्म नहीं दिया जा सका है। अभी तक स्त्री-पुरुषके आपसके सम्बन्धोंकी व्यवस्थाकी नींवमें मुख्यतः तीन तत्त्व काम कर रहे हैं— एक धर्म, दूसरे नैतिकता, तीसरे अर्थ। हम इन तीनों शब्दोंको इनके व्यापक अर्थमें नहीं ले सकेंगे। यहां तो हमें इनका प्रतिदिनके उपयोगका अर्थ ही लेना पड़ेगा।

समाजकी आदि व्यवस्थाके जन्मसे लेकर अब तक धर्मने उसकी रचनापर मुख्य प्रभाव डाला है, यहां तक कि लगभग सारी मुख्य सामाजिक व्यवस्थायें धर्मोंके नामसे प्रसिद्ध हैं, जैसे मुसलिम धर्म, ईसाई धर्म इत्यादि। धर्मके मूलमें प्रकृतिके व्यापारोंके प्रति आश्चर्यकी भावना है। प्रारम्भ-कालमें मनुष्यके पास न साधन थे, न दूसरे माप-दण्ड और न बुद्धिकी परिपक्वता। इसलिए उस समय विचारोंकी अपेक्षा भावनाको ही मुख्य स्थान मिला था। भय तथा प्रार्थना इसके मुख्य अङ्ग थे। पहले प्रकृतिकी शक्तियों, फिर भयावह जन्तुओं और फिर अपने समान रूप रखनेवाले देवताओंसे मनुष्य डरा तथा उनकी पूजा-प्रार्थना की। इसी प्रकारके विचारोंसे उसकी नैतिकता भी जन्मी तथा स्वर्ग व नरकका भय तथा लालच दिखाकर लोगोंको समाजके बताये हुए

मार्गपर चलनेको बाध्य करना इसका मुख्य काम हुआ। आर्थिक व्यवस्थाके भिन्न-भिन्न रूपोंने भी स्त्री-पुरुषके सम्बन्धोंपर अपनी छाप डाली।

अब तकके मुख्य-मुख्य धर्म इस संसारकी अपेक्षा आनेवाले जीवनको ही अधिक महत्त्व देते आये हैं। वे इस शरीर तथा शरीरके सुखको आनेवाले जीवनके ऊपर वार देना चाहते हैं। इसलिए इन धर्मोंके अन्तर्गत जिस सामाजिक व्यवस्थाका जन्म हुआ, उसमें उन वस्तुओंकी अवगणना की गयी, जो इस संसारमें लिप्त रखें। पुरुषके लिए स्त्री एक ऐसी ही वस्तु थी। और कुछ कारणोंसे पुरुष मानसिक परिपक्वताको पहले पहुंचा, इसलिए उसके विचारोंका समाजपर मुख्य प्रभाव पड़ा। पुरुषने स्त्रीकी अवगणना की, उसे नरकका द्वार बताया तथा जीवनकी एक आवश्यक बुराईके समान उसे स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त वह जातीयताके रहस्यको, जिसके पीछे सन्तानका सृजन छिपा हुआ था, नहीं समझ सका; यह उसके लिए एक आश्चर्यका विषय ही रहा। इस प्रकार अवगणना तथा आश्चर्यसे मिश्रित दृष्टिकोणने नर व नारीके सम्बन्धका निर्माण किया, और अब तक यही दृष्टिकोण चला आता है। इस दृष्टिकोणके साथ-साथ आर्थिक अवस्थाओंका भी इस सम्बन्धपर कुछ कम प्रभाव न पड़ा। प्रारम्भिक अवस्थामें शिकारी जीवन बितानेके समय स्त्री-पुरुष समान थे, उनके शरीरकी शक्तिमें भी कोई विशेष अन्तर न था। इसके बाद जब जानवरोंको पालकर तथा खेतीबारी करके मनुष्यने जीवन-यापन करना सीखा, तबसे स्त्रीका पतन होना शुरू हो गया। स्त्री गुलाम व मजदूरी करनेका साधन बन गयी। और जब समाजमें सामन्तशाही उपजी, जिसमें बाहुबल द्वारा लोगोंको गुलाम बनाकर उनसे काम लेनेकी व्यवस्था थी, तब स्त्री एक भोग-विलासका साधन तथा मनोरञ्जनकी सामग्री भी बन गयी। और आज जो हमें स्त्री-पुरुषके सम्बन्धकी रूपरेखा मिलती है, वह इन्हींके द्वारा पूरी गयी है तथा हमारी विवाहकी संस्था इसीका एक स्वरूप है। दूसरा स्वरूप हमें वेश्याओंके रूपमें मिलता है। पहले रूपमें गुलामी मुख्य है, दूसरेमें मनोरञ्जन।

इस प्रारम्भिक विचार-धारापर ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते तथा इसके असली रूपको पहचानते गये, त्यों-त्यों हमने कुछ सुनहरा रङ्ग डालकर इसे आकर्षक बनानेकी कोशिश की तथा इसके द्वारा हम स्त्रियोंको काफी समय तक भुलावा देनेमें समर्थ हुए। क्योंकि इस प्रकार जो व्यवस्था जन्मी थी, वह इतनी ज्यादा पुरुषके पक्ष तथा स्त्रीके विपक्षमें थी कि इसका अब तक टिक सकना एक आश्चर्यकी बात है। यह सुनहरा रङ्ग जो पुरुषने विवाह-संस्थाको आदर्श संस्था कहकर तथा सतीत्वको जीवनका अनमोल रत्न बताकर फेंका, स्त्रीको ललचानेमें समर्थ हो गया, और वह इस शब्दजालके भुलावेमें आकर दूसरे सब कष्टों, अन्यायोंको हंसी-खुशी सहने लगी, तथा कभी-कभी स्वेच्छासे मृत पतिकी चितापर भी जलनेको तैयार हो गयी। आज भी असंख्य स्त्रियां अपनेको इस मायाजालमें फंसा रखनेमें ही अपना सौभाग्य मानती हैं। और इस बुद्धिवादके युगमें अनेक पुरुष भी तर्कोंके सहारे इस व्यवस्थाको फिरसे टिकाऊ बनाना चाहते हैं। परन्तु अब इस व्यवस्थाकी नींव इतनी खोखली हो गयी है कि फिरसे भवन निर्माण करनेके लिए दूसरी बार दो नींवें रखनेकी आवश्यकता होगी।

हमें आजकलके स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्धोंके कुछ विशेष अङ्गोंपर दृष्टिपात करना होगा। साधारणतया समाजमें कुछ ऐसी मान्यता प्रसरित है कि स्त्री-पुरुषका जातीय सम्बन्ध एक दोष या पाप है, और इसीलिए उसपर अनेक प्रकारके बन्धन लगाने चाहिए तथा लगाये जाते हैं। यह सम्बन्ध विवाहके रूपमें कुछ कम दोषपूर्ण हो जाता है और जब यह सन्तानोत्पत्तिके लिए होता है, तब इसमें दोषकी मात्रा सबसे कम समझी जाती है। परन्तु कुछ लोग इतनेसे भी सन्तुष्ट नहीं होते और आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करनेका उपदेश देते हैं। विवाहके बाहर किसी प्रकारका जातीय सम्बन्ध घृणित दृष्टिसे देखा जाता है, हालांकि वेश्यावृत्तिके रूपमें यह सभी समाजोंमें विद्यमान है। समाजके साधारण जीवनमें भी कभी-कभी हमें इसके कुछ उदाहरण मिल जाते हैं। परन्तु इस प्रकार समाजकी मर्यादा उल्लङ्घन करनेवालोंकी दशा वही होती है, जो इस प्रकारके लोगोंकी होती है। समाज उनका तिरस्कार करता है। परन्तु यदि कहीं हमें साधारण तौरपर उपर्युक्त व्यवस्था मिलती भी है, तो विभिन्न प्रकारके समाजोंमें इसके भिन्न-भिन्न रूप हो गये हैं विवाह भी एक प्रकारका नहीं होता, और इसके साथ विवाह-विच्छेद भी

हो सकता है। विवाह-बन्धनमें बंधनेके पहले तथा बादमें कितनी ही प्रकारकी जातीय स्वतन्त्रता हमें विभिन्न समाजों-में देखनेको मिलती है। कहीं विवाहके पहले कौमार्य आवश्यक होता है, तो कहीं विवाहके पहले इस बातके प्रमाण-की आवश्यकता होती है कि लड़की बन्ध्या तो नहीं है।

आजकलके कुछ विचारक तथा समाजशास्त्री इन सब बन्धनों तथा सम्बन्धोंको आवश्यक मानते हैं तथा यह कहते हैं कि इनके पालन करनेमें ही समाजका श्रेय है। वे कहते हैं कि ये नियम यों ही अनायास नहीं आ गये, वरन् सोच-विचारकर तथा सब बातोंका ध्यान रखकर समाजके हितके लिए निर्माण किये गये हैं। हमें इन्हें यों ही नहीं फेंक देना चाहिए। इतना ही नहीं, कुछ तो यहां तक कहते हैं कि इनमें प्रजनन, जीवन-विज्ञान तथा मानस-शास्त्रकी दृष्टिसे भी कोई दोष नहीं है। परन्तु ये सब खाली तर्क हैं, इनके द्वारा हम स्त्री-पुरुषके जीवनकी वास्तविक कठिनाइयोंको दूर नहीं कर सकते। इस सम्बन्धमें हमें दो बातोंका जिक्र करना है। कहा गया है कि निकट-सम्बन्ध-निषेध व जातिके अन्दर तथा जाति-बाहरके नियम जो समाजमें प्रचलित हैं, इनके द्वारा सन्तानका ह्रास नहीं होता, इसलिए ये नियम मान्य होने चाहिए। परन्तु अभी इस विषयमें जो खोज हुई है, उससे निश्चित रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि इनसे यह लाभ होता ही है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि जितना अधिक जातीय सम्बन्धोंपर प्रति-बन्ध रहता है, उतना ही मनुष्यका सांस्कृतिक जीवन उन्नत होता है। परन्तु इस विषयके कुछ विवेचकोंके मतके अनुसार इस प्रकारसे जातीय सम्बन्धोंपर प्रतिबन्ध लगानेमें कोई भी समाज अभी तक सफल नहीं हुआ। अधिकसे अधिक यह व्यवस्था दो या तीन पीढ़ी चलती है और फिर क्षीण पड़ जाती है। इसके अतिरिक्त हमें यह भी देखना है कि इस प्रकार जातीय शक्तिको सञ्चित करके जो जातीय लाभ हम उठाते हैं, वह वास्तविक लाभ होता है या नहीं। उदाहरणके तौरपर यदि किसी जातिने जातीय सम्बन्धोंपर प्रतिबन्ध लगाये, और इस प्रकार जो शक्तिका रूपान्तर हुआ, उसे सांस्कृतिक प्रगतिके लिए उपयोग न करके, दूसरी जातियोंपर आधिपत्य जमानेके लिए किया—जैसा अक्सर होता है—तब क्या इसे वास्तविक लाभ कहा जा सकता है?

इन सब बातोंसे हम इस निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि पुराने विचारोंको लेकर हम नयी व्यवस्थाका निर्माण नहीं कर सकते; या उन्हें युक्तिसङ्गत भी नहीं ठहरा सकते। जैसे प्राचीन कालमें स्त्री-पुरुषके सम्बन्धका निर्माण धर्म व नीति-ने—सङ्कीर्ण अर्थमें – किया था तथा आर्थिक व्यवस्थाने समय-समयपर इसे पलट दिया था, उसी प्रकार आज हमें स्त्री-पुरुषके सम्बन्धोंकी रचना मनोविज्ञान तथा प्राणिविज्ञानके नियमोंपर करनी होगी। ये दोनों विषय अपने विकासकी प्रारम्भिक अवस्थामें हैं, तो भी हमें यह ज्ञात हो गया कि इनके सहारे समाजका निर्माण करनेमें हमें काफी सहायता मिलेगी। अभी तक इन दोनों विषयोंकी खोजोंके कारण स्त्री-पुरुषके जातीय तथा सामाजिक सम्बन्धोंपर जितना प्रकाश पड़ चुका है, उतना सम्भवतः पहले कभी नहीं पड़ा था। और कमसे कम इस बातका तो निश्चय हो ही गया कि बिना इनका सहारा लिये हुए हम किसी सुन्दर समाज-की रचना न कर सकेंगे।

श्री जूलियन हक्सलेने भी इस विषयका गम्भीर विवेचन किया है। उन्होंने प्राणिविज्ञान तथा मनोविज्ञानकी मुख्य-मुख्य बातोंको लेकर दिखाया है कि हमें जातीयता सम्बन्धी अपनी धारणामें भारी परिवर्तन करना होगा। उन्होंने जातीयताका प्रजननके साथ क्या सम्बन्ध है, यह विस्तारसे बताया है। मनोविज्ञानकी दृष्टिसे उन्होंने यह बताया है कि दो प्रकारकी व्यवस्थायें होती चली आयी हैं। एक तो वह, जिसमें जातीयताका दमन कर उसे कमसे कम मार्ग दिया जाता है तथा दूसरी वह, जिसमें अधिकसे अधिक स्वत-न्त्रता हो। परन्तु उन्होंने कहा है कि ये दोनों व्यवस्थायें सन्तोषजनक नहीं हैं। हमें इस प्रकारका प्रबन्ध करना चाहिए, जिसमें न एकदम दमन हो और न एकदम स्वतन्त्रता। इसके साथ ही उनका कहना है कि जिस प्रकार जातीयताको अब तक जीवनका एक घृणित तथा तिरस्कृत अङ्ग समझा जाता था, इस प्रकारकी भावनाको हटाकर, हमें जातीयताका सम्बन्ध जीवनकी उच्च तथा रचनात्मक वृत्तियोंके साथ जोड़ना चाहिए। इस तरहसे फिर जातीयता तिरस्कार तथा घृणाकी वस्तु नहीं रहेगी और इसके साथ जीवनकी उच्चतम वृत्तियां जागेंगी। इसके अतिरिक्त वह कहते हैं कि हम जातीयताका दमन करनेमें सफल न हो सकेंगे। यह जीवनकी एक प्रबल

वृत्ति है—जितना हम समझते हैं, उससे कहीं अधिक प्रबल है—और इसके दमनसे केवल विकृति ही पैदा होगी।

यदि हम आजकलकी समाज-व्यवस्थाको खुली आंखोंसे देखेंगे, तो हमें इस विकृतिके चिह्न चारों ओर दिखाई पड़ेंगे, क्योंकि हमारी समाज-रचना विकृतिमें विश्वास रखती है। इस दमनसे एक तो स्त्री-पुरुषका सामाजिक सम्बन्ध कृत्रिम हो जाता है। दूसरे, व्यक्तिका मन तथा शरीर अनेक प्रकारके रोगों, उन्मादोंका घर बन जाता है। आज बहुत कम स्त्री-पुरुष ऐसे मिल सकेंगे, जिनका जातीय जीवन स्वस्थ हो। डा० फ्रायडने जातीय जीवन तथा तत्सम्बन्धी रोगोंके विषय-में जो खोज की है, उसने हमारी इस अस्वास्थ्यकर दशापर अच्छा प्रकाश डाला है तथा भली भांति यह दिखा दिया है कि हमारे अन्दर कितनी जातीय विकृति पैदा हो गयी है। यह विकृति केवल रोगके रूपमें ही बाहर नहीं निकलती, यह हमारे सामाजिक-सम्बन्धोंमें भी प्रकट होती है।

आजकल स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध कितना खराब हो गया है, कहते नहीं बनता। उनका सम्बन्ध कुछ शिकार तथा शिकारी-जैसा हो गया है। आज स्त्री पुरुषका तथा पुरुष स्त्रीका अधिकसे अधिक शोषण करना चाहते हैं। दोनोंमें एक-दूसरेके प्रति अविश्वास तथा अश्रद्धा घर कर गयी है। भारतीय समाजमें तो यह सम्बन्ध असंख्य शताब्दियों पहले गढ़े हुए नियमोंपर चलकर यन्त्रवत् हो गया है। इस सम्बन्धमें स्त्रीकी अवस्था पुरुषकी अपेक्षा कहीं गिरी हुई है। बुद्धि, शारीरिक बल तथा अर्थ-सञ्चालन उसके हाथमें होनेके कारण उसका प्रभुत्व है। स्त्रीको उसने अनेक प्रकारके ऐसे शिकञ्जोंमें कस दिया है कि जिनसे उसके लिए निकलना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव-सा हो गया है। इस व्यवस्थाका निर्माण शायद किसी समय पुरुषने स्वार्थवश किया हो। इसके द्वारा स्त्रीका तो पतन हुआ ही, परन्तु पुरुषका भी पतन हुए बिना न रहा। स्त्रीकी उसने अपनी सम्पत्ति या मनोरञ्जनकी सामग्रीके रूपमें जो व्यवस्था की, उसका प्रभाव पुरुषपर भी पड़ा। इसके कारण जहां स्त्रीका जीवन दुखी है, वहां पुरुषका जीवन भी कुछ कम दुखी नहीं है। जातीय सन्तोष जीवनकी एक मुख्य आवश्यकता है। यह उतनी ही आवश्यक है, जितना कि भोजन इत्यादि। परन्तु हम इसे इस दृष्टिसे स्वीकार करने-में हिचकते हैं और इसे पापपूर्ण मानकर तिरस्कार करते हैं या आवश्यक बुराईके समान स्वीकार कर दमन करनेका प्रयत्न करते हैं। जब हम इसमें सफल नहीं होते, तब ढोंगपूर्ण व्यवहार करते हैं या असाधारण दमन करके मानस-को विकृत बना डालते हैं। साधारणतः सभी स्त्रियां यह अपेक्षा रखती हैं कि उनसे प्रेम किया जाय, उनकी प्रशंसा की जाय; परन्तु जब कोई पुरुष उन्हें इस दृष्टिसे देखता है, तब सर्वप्रथम उनका व्यवहार कुछ ऐसा-सा होता है कि जैसे उन्हें यह सब पसन्द नहीं है। उन प्रान्तोंमें जहां परदा नहीं है तथा स्त्रियां स्वतन्त्रतापूर्वक घरसे बाहर निकल सकती हैं, वहां अक्सर सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित होकर बाहर निकलती हैं। इससे उनकी मंशा दूसरोंको आकर्षित करनेकी ही होती है; परन्तु जब कोई पुरुष स्वाभाविक तौरपर आकर्षित होकर उनकी ओर देखता है, तब उनके मनमें यही विचार उठता है कि वह असभ्य है या बदमाश। इस प्रकारकी विरोधी बातोंसे हमारा जीवन भरा पड़ा है।

कुछ स्त्रियां और पुरुष इस प्रकारके अस्वास्थ्यकर वायु-मण्डलको दूर करना चाहते हैं। स्त्रियोंने अपनी सामाजिक अवस्था सुधारनेका भी प्रयत्न शुरू कर दिया है तथा कुछ पुरुषोंका भी इसमें सहयोग होता ही है। लेकिन अब तककी व्यवस्था पुरुषके पक्षमें रही है, इसलिए इसमें स्वभावतः पुरुषका विरोध आ ही जाता है। स्त्रीके इस विरोधका कुछ पुरुष विरोध कर इसे और उकसा रहे हैं। कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह पारस्परिक विरोध कहीं अन्तर-विग्रहका रूप न धारण कर ले। और यदि ऐसा हुआ, तो इसमें स्त्री तथा पुरुष दोनोंका ही भारी अहित होगा। आज कुछ स्त्रियां पुरुषोंके प्रति विद्रोहकी भावना जागृत करके यह समझती हैं कि वे स्त्री जातिका हित कर रही हैं; परन्तु वे स्त्रियोंकी सेवा नहीं, उनके लिए आत्महत्याका मार्ग तैयार कर रही हैं। इसी प्रकार जो पुरुष स्त्रीकी स्वतन्त्रताका विरोध करके, उनके विरोधकी अग्निमें घीका काम कर रहे हैं, वे भी न पुरुषोंके हितोंकी कोई रक्षा कर रहे हैं, न समाजका कुछ लाभ। वास्तवमें तो स्त्री–पुरुषके बीचमें वर्ग-विग्रहके लिए कोई स्थान है ही नहीं। उनका काम एक-दूसरेके बिना चल ही नहीं सकता। आवश्यकता इस बातकी है कि विद्यमान एक-पक्षीय सामाजिक व्यवस्थाको ऐसी व्यवस्थामें परिणत कर दिया जाय, जो दोनोंके लाभमें हो। इस प्रकारकी पुन-

रचनामें हमें जीवनकी आवश्यकताओंका पूरा ख्याल रखना चाहिए। धार्मिक दृष्टिको तो, जिसमें जातीय जीवनको निषिद्ध कहा गया है, त्याग ही देना पड़ेगा। नैसर्गिक आवश्यकताओंको उनका उचित स्थान देना तथा जातीयताको स्वाभाविक वृत्ति मानकर उसे उचित मार्ग देना होगा। आर्थिक परतन्त्रताके कारण स्त्रीको जो कठिनाइयां झेलनी पड़ रही हैं, उन्हें भी दूर करना होगा। अर्थकी व्यवस्था पुरुष वर्गके हाथमें होनेके कारण स्त्रीका शोषण होता है। इसलिए उसे अपने जातीय आकर्षणसे लाभ उठाकर अपने जीवन-यापनके साधन प्राप्त करने पड़ते हैं। क्या विवाहमें, क्या वेश्यावृत्तिमें, दोनों जगह यही होता है। इस प्रकारसे जीवनकी एक उच्च वृत्तिका आर्थिक कारणोंसे शोषण रोकना पड़ेगा, और इस प्रकारकी व्यवस्था करनी पड़ेगी, जिससे आर्थिक जीवन जातीय जीवनको कुचल न डाले। हमारी विवाह-संस्था जहां एक जातीय सम्बन्ध है, वहां एक आर्थिक सम्बन्ध भी है। आज तो विवाह अधिकतर आर्थिक कारणोंसे ही निश्चित किये जाते हैं। इससे समाजमें दुर्व्यवस्था फैलती है; क्योंकि अर्थका जातीय वृत्तिके साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि धनवानको ही जातीय तृप्तिकी आवश्यकता पड़ती हो, गरीबको नहीं। जातीय जीवन तो गरीब-अमीर सबके लिए एक-सा ही है। इसके लिए हमें ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि जातीय जीवन अर्थकी व्यवस्थासे छुटकारा पाकर मनुष्य-जीवनमें साधारण रूप धारण कर ले। यदि ऐसा हो सका, तो वेश्यावृत्तिकी संस्था स्वयं ही नष्ट हो जायगी तथा विवाह-संस्थाकी भी बहुत-सी बुराइयां दूर हो सकेंगी।

हमने जैसा कहा, धर्म तथा नीतिको—प्रचलित अर्थोंमें—इस सम्बन्धसे निकाल देना होगा। इसका यह अर्थ नहीं कि हम इसे बिलकुल निकाल देंगे। परन्तु हमें धर्म व नीतिकी प्रचलित व्याख्याको छोड़कर, इन्हें नया अर्थ ही देना होगा तथा इनका स्थान गौण होगा। धर्म व नीति उस समय किसी वर्ग-विशेषके असमान अधिकारोंके दृढ़ करनेके काममें न लाये जा सकेंगे, वरन् सारे समाजके हितोंके लिए। स्त्री-पुरुषके नवीन सम्बन्धोंकी रचना करते समय इसका ख्याल हमें अवश्य रखना पड़ेगा। इस प्रकारकी नवीन रचनाके विषयमें हम अब उदासीन भी नहीं रह सकते, हमें इसके लिए प्रयत्न भी करना ही पड़ेगा। परन्तु हमें उस समय अपना दृष्टिकोण नहीं भूलना चाहिए। प्रो० हक्सलेने इस बातको निम्न शब्दोंमें सुन्दरतापूर्वक कहा है :—

"जो लोग मनुष्य-जीवनमें जातीयताकी समस्याओंपर विचार करते हैं, उनका बहुत करके तो सबसे भारी काम यही होगा कि वे तत्सम्बन्धी कठिनाइयों तथा बुराइयोंको दूर करें; परन्तु साथ ही विस्तृत दृष्टिकोणको भी नहीं भूलना चाहिए, तथा रचनात्मक दृष्टिसे विचार करनेके लिए हरएक प्रयत्न करना चाहिए, जिससे इस प्रकारके परिवर्तनसे कितनी भारी सम्भावनायें पैदा हो सकती हैं, यह जाना जा सके।"

———



स्त्री क्या चाहती है

श्री मनोहरलाल

कविकी कल्पनासे निकलकर—सुन्दरताकी देवी इठलाती हुई उस वृक्षके पास पहुंच गयी, जिसके नीचे मादकतामें खोया हुआ कृष्ण अपने कम्पित होठोंसे बांसुरी बजा रहा था —और जिसके ठीक ऊपर एक डालीपर बैठा हुआ पपीहा अपनी वेदनादायक आवाजमें "पी कहां", "पी कहां"का राग अलाप रहा था !

यौवनकी पीड़ासे—यमुनाकी प्रेम - उत्तेजक लहरोंसे अप्रभावित होकर, तरुणीने कटाक्षमयी मुस्कराहटसे कृष्णकी ओर देखा और फिर अपने हाथमें पकड़ी हुई कलियोंको देखनेमें मग्न हो गयी !

बिखरे हुए—घुंघराले बाल, अपने सांवले मुखसे हटाकर कृष्णने उस तितलीको अधखुली आंखोंसे देखा और चौंककर पूछा—"तो फिर तुमने कुछ सोचा ?"

तरुणीने अपनी आंखें कृष्णके मुखपर गाड़ दीं और देर तक उसकी चमकीली आंखोंमें अपना अनुपम रूप देखती रही—चांद-सदृश मुख, कमल समान नेत्र और सिरपर काली नागिनें, जो पवनके मन्द झोंकोंसे हिल-हिलकर किसीको डसनेके लिए व्याकुल हो रही थीं !

उषाकी सुनहरी आभा तरुणीपर पड़ रही थी ! एक हलकी-सी अंगड़ाई लेकर उसने निखरते हुए यौवन और उमड़ते हुए सौन्दर्यको गर्वसे देखा, फिर अभिमानपूर्ण स्वरमें कहा—"मुझे क्या आवश्यकता है कि मैं वरकी खोज करूं, किसीकी पत्नी बनकर व्यर्थमें दासी कहलाऊं ।"

कृष्णने मुस्कराकर उस "विद्रोहिन"को देखा और थोड़ी देर कुछ सोचकर कहा—"तुम्हें ज्ञात नहीं कि तुममें इतनी शक्ति है कि तुम अपने वरको आसानीसे अपना दास बना सकती हो ।"

प्रसन्नताकी अस्पष्ट झलक तरुणीके मुखपर नृत्य करने लगी । कृष्णने उसकी लज्जामयी मुसकानसे पता लगा लिया कि वह "जीवन-सङ्गी" पानेके लिए कितनी उत्सुक है, फिर धीरेसे कहा—"मैं तुम्हारे सम्मुख बहुत-से वर उपस्थित करता हूं, तुम अपनी इच्छासे किसी एकको पसन्द कर लेना ।"

तरुणी चुपचाप खड़ी, विशाल नीले आकाशकी ओर टकटकी बांधकर देख रही थी ! थोड़ी देरके बाद उसके आस-पास आभूषणोंका ढेर लग गया और इसके साथ ही एक देवताने धरतीपर पग रखा !

"मेरा नाम कुबेर है," उसने अपना परिचय स्वयं देते हुए कहा—"मेरे पास अनन्त धन है ! यदि आप मुझे अपना दास बनानेकी कृपा करें, तो मैं अपना सारा धन—विशाल भवन, रत्नोंसे सुसज्जित वस्त्र—सब आपकी सेवामें अर्पण कर दूंगा ।"

तरुणीने कुबेरकी सारी सम्पत्तिको अपनी काल्पनिक आंखोंसे देखा और मनमें सोचा कि सुन्दर आभूषण पहनकर वह बहुत सुन्दर दिखाई देगी और प्रतिदिन चांदके सौन्दर्यकी हंसी उड़ायेगी !

अभी वह अपने ध्यानमें ही मग्न थी कि सहसा वृक्षपर बैठा हुआ पपीहा दुःखभरी आवाजमें बोल उठा—"पी कहां!"

तरुणीके हृदयपर वज्र गिर पड़ा ! उसने आभूषणोंको जोरसे लात मारकर कहा—"ले जाओ इनको, मैं धनकी भूखी नहीं ।"

आकाशपर बादल घिर आये, बिजली कड़कने लगी ! वायुकी तीव्र लहरोंके मध्यमें एक सुडौल देवता पृथ्वीपर उतरा ! उसने आते ही बतलाया कि वह बलका स्वामी पवन है, और उसके अधिकारमें आकाशकी सभी शक्तियां हैं !

तरुणीने उस जङ्गलीको देखा, जिसके पाषाण-सदृश शरीरमें हृदय नहीं था—ऐसा हृदय, जिसमें प्रेमके कोमल भाव छिपे रहते हैं !

"मुझे इनमेंसे किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, तुमने स्त्रीको समझनेमें भीषण भूल की है ।"—यह कहकर उसने मुंह दूसरी ओर फेर लिया !

अब जो देवता आया, उसका नाम था—ब्रह्मा ! वह विद्याका देवता था । उसके बाल चांदनीके समान सफेद थे । वह लालसामयी दृष्टिसे देखता रहा—तरुणीके कम्पित होठों-

को, जो यौवनके बोझसे कांपकर चुम्बनका निमन्त्रण दे रहे थे।

ब्रह्माके मरे हुए उद्गार एक बार फिर भड़कने लगे! उसे अनुभव होने लगा कि वह फिर जवान हो गया है—उसने आगे बढ़कर कहा—"मैं तुम्हें सारे ब्रह्माण्डकी विद्या दूंगा, तुम मुझे अपना दास बना लो!"

तरुणी खिलखिलाकर हंसने लगी—"बाबाजी! क्षमा कीजिये, मुझे ऐसे दासोंकी आवश्यकता नहीं, जिनकी रक्षाके लिए मुझे और दास नियत करने पड़ें।" इतना कहकर तरुणीने जोरसे कहकहा लगाया। ब्रह्मा लज्जित होकर चला गया।

एक हाथमें मधुका प्याला और दूसरेमें "शृङ्गार-काव्य" लिये एक और देवता आया। उसका नाम था—कामदेव। उसकी कविताकी कल्पना थी—"मधु और सौन्दर्य!" तरुणीने उस मतवाली मूर्तिको स्नेहमयी दृष्टिसे देखा और करीब ही था कि वह उसे अपने प्यारका केन्द्र बनाती कि सहसा कामदेवकी आंखोंसे वासनाके अङ्गारे निकलने लगे! पवित्रताकी मूर्ति—स्त्रीने कामदेवको अपनी तेजमयी आंखोंसे घूरा, वह उसी समय अन्धा हो गया!

स्त्रीने रोकर कृष्णसे कहा—"क्षमा कीजिये! मैं ऐसे दासोंसे बाज आयी, न जाने किन-किन बदमाशोंसे पाला पड़ता है।"

अभी वह आगे कुछ न कहने पायी थी कि इतनेमें उसने पाससे गुजरते हुए एक सुन्दर देहधारीको देखा, जो अपनी धुनमें मस्त गाता हुआ जा रहा था!—पूछनेपर मालूम हुआ कि वह "पुरुष" है। अकस्मात् वृक्षपर बैठा हुआ पपीहा चिल्ला उठा—"पी कहां!"

तरुणीने उस जवान पुरुषको देखा, जिसमें नाटकके "हीरो" के-से तमाम गुण थे! उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे कोई उसके हृदयकी वीणाके तारोंको छेड़ रहा है। उसे अपने उद्गारमें हलकी-सी टीस अनुभव हुई!—आज उस "अभिमानिनी"को अपना यौवन—अपना सौन्दर्य एक असह्य भार जान पड़ा! वर्षोंसे सोये हुए प्रेमने जागते ही सौन्दर्यको परास्त कर दिया!

"क्या तुम इस सुन्दर उपहारको स्वीकार करोगे?" स्त्रीकी ओर सङ्केत करते हुए कृष्णने युवकसे पूछा।

पुरुषने ठण्डी सांस लेकर कहा—"पर मेरे पास धन नहीं।"

तरुणीने चिल्लाकर कहा—"मुझे धन नहीं चाहिए।"

"और न मेरे पास बल और विद्या ही है।"

"छोड़ो इन नीरस वस्तुओंको।"

"परन्तु हां, मेरे पास एक वस्तु है, जो देवताओंके पास नहीं।"

तरुणीका दिल जोर-जोरसे धड़कने लगा, उसने कम्पित स्वरमें पूछा—"वह···वह कौन-सी वस्तु है?"

"वह है—'प्रेम', असीम प्रेम।" पुरुषने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

पुरुषका मुस्कराना था कि तरुणीके हाथकी कलियां खिलकर फूल बन गयीं!

तरुणीने पुरुषके उपहारको स्वीकार किया और शर्माते हुए कहा—"आजसे मैं आपकी दासी हूं।"

पुरुषने उसे अपने गले लगाकर कहा—"यदि तू चाहती है कि मैं तुझसे अमिट प्रेम करूं, तो दासीके बजाय मेरे हृदयकी रानी बन।" *

---

* गुजरातीसे।



सुधारकी तहमें

श्री रामसरन शर्मा

सभी ओर तो आज सामाजिक सुधारकी धूम है। जिधर भी देखें, जीवनके हर पहलूमें हम सुधार करनेको व्यग्र हैं।

शादीमें, मौतमें, पितामें, दाम्पत्य-जीवनमें, रोजकी रहन-सहनमें—हमें सब जगह ही तो सुधारकी आवश्यकता जान पड़ती है।

इसको हम कहते हैं राष्ट्रीय जागरण। हमें गर्व होता है यह समझकर कि हम ऐसे युगमें पैदा हुए हैं, जहां दाहिने-बायें सभी ओर सुधार हो रहा है। हम समझते हैं, इसमें हमारी या हमारे युगकी कोई विशेषता है। शायद हम किसी अज्ञात कारणसे भगवानकी विशेष सृष्टि बनकर धरा-धामपर अवतीर्ण हुए हैं। शायद हमारे हृदयोंमें ज्ञान, समझ-बूझ और मानवकी पीड़ा और उसके प्रति अन्यायकी विशेष अनुभूति है।

बड़ी भारी विडम्बना है यह हमारी। वास्तवमें ध्यानसे देखनेसे सुधार इस युगकी ही कोई विशेषता नहीं है। यह कोई हमारा ही नया अन्वेषण नहीं है। यह तो सदासे ही रहा है। चिरन्तन है, सनातन है। इसका आदि, सृष्टिका आदि और इसका अन्त भी उसीके साथ होगा।

अतीत कालके मानवसे अपनी तुलना करके देख लीजिये। आज हम, हमारा घर, हमारा नगर, हमारा सारा जीवन, मानव-जातिके युगान्तरकारी सुधारोंका समूह और परिणाम है। यह दोनों ही है। न जाने किस-किस युगमें कितने-कितने सुधारकोंने प्राणपणसे चेष्टा करके हमें इस दशापर पहुंचाया है।

आज हम तलाक, विधवा-विवाह, जाति-पांति तोड़ना आदि सुधारोंको ही अपने जीवनका, मानव-जातिके जीवनका सबसे मुख्य अङ्ग मान बैठे हैं। कमसे कम इस देशमें तो। हमें आश्चर्य होता है अपने पूर्वजोंकी दृष्टि-हीनता और रूढ़िवादपर कि वे इतने बड़े अन्यायोंके होते हुए भी जीवित क्यों रहे। क्यों नहीं उन्हें मिटानेमें स्वयंको मिटानेकी कोशिश की।

इस प्रकार मन ही मन अपनेपर तालियां पीटते समय, हम भूल जाते हैं कि आजसे पहले भी सुधारक रहे हैं और आजके बाद भी रहेंगे। बादमें आनेवाले सुधारक हमें मूर्ख, घमण्डी, अदूरदर्शी···न जाने क्या-क्या कहेंगे। आजसे पहलेके सुधारकोंके सामने भी समस्यायें थीं और उन्होंने उन्हें हल करनेमें हमसे कम हिम्मतसे काम नहीं लिया था।

आदि कालके नङ्गे मानवने थोड़े दिन बाद पत्तियोंसे शरीर ढांकना प्रारम्भ किया, ऐसा हम पढ़ते हैं। किन्तु इसे पढ़कर हम उस महान् क्रान्तिकारीकी सूझ, अध्यवसाय और लगनकी दाद नहीं देते हैं। कितना बड़ा सुधार था वह। न जाने कितने-कितने नङ्गे मनुष्योंको समझा-बुझाकर अपना बनाना पड़ा होगा। न जाने कितनी झख मारनेके बाद किसी सुधारककी समझमें यह आया होगा कि शरीरको नङ्गा रखना बुरा है और उसे पत्तियोंसे ढका जा सकता है। इतना कर लेनेके बाद भी उसका कार्य हो चुका हो, सो कठिन ही था। पहले सुधारकको पत्तियां लपेटनेपर न जाने कितना मखौल, कितना विद्रूप······शायद बायकाट भी ···सहना पड़ा होगा।

उसीकी बदौलत तो हम आज सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनते हैं।

इसी प्रकार शादी, समाज, नियम, राजा, प्रजा······ सभीको बनानेमें न जाने कितने विराट् आन्दोलन करने और आन्दोलनकारियोंको प्राण गंवाने पड़े होंगे।

इसी प्रकार पत्थर-कालसे लौह-काल और खेती-बारीसे आज तक सदा ही तो सुधार होता रहा है। सुधारक रहे हैं।

हमारी प्रकृति ही जान पड़ता है सुधार-प्रिय है।

क्या सच ही ऐसा है?

सुधार क्या होता है? उसमें क्या आवश्यक होता है?

सुधार नयी चीज होता है और वह हमारी किसी खास तकलीफको दूर करता है।

और इन दोनोंके प्राकृतिक विरोधमें ही सुधारककी कशमकशका जन्म होता है।

हम तो सदासे ही किसी भी नयी वस्तुके विरुद्ध होते हैं। कोई भी रद्दोबदल हमें स्वतः ही अपना शत्रु बना लेती है। हम सदासे ही, स्वभावसे ही रूढ़ि-प्रिय होते हैं। जो है, उसे वैसा ही रखना चाहते हैं।

इस हमारे प्राकृतिक गुण या दोषके विषयमें अधिक दलील करनेकी आवश्यकता तो जान नहीं पड़ती है। स्वयं-सिद्ध-सी बात है।

यह हो सकता है कि हमारा यह डर आदिकालसे हो, जब कि हमें इस अनजाने संसारमें, हर नयी चीज, हर नया करिश्मा डरा देता था। हम थे भी तो कितने अपाहिज और निर्बल। और आज सारे संसारपर अधिकार पा लेनेपर भी शायद हमारा यह डर नहीं निकल सका है।

किसी नयी बातसे हम घबराते तो हैं ही, किन्तु हम अपनी तात्कालिक स्थितिके विरुद्ध भी सदा हृदयमें शिकायत-सी रखते हैं। कोई भी परिस्थिति—राजासे रङ्क तककी—हमें सन्तोष प्रदान नहीं करती है। हमें उसमें भी कष्ट-सा महसूस होता है।

जब कष्ट होता है, तो बदलना भी चाहिए·········पर, बदलनेसे तो हम डरते हैं।

बड़ी अजीब-सी, पेंचीदा-सी बात है। हम एक बात चाहते भी हैं और उससे डरते भी हैं।

इन्हीं दोनों भावनाओंको मिलाकर—सुधारका जन्म होता है। सुधारके अर्थ ही हैं किसी बातको तोड़ना-फोड़ना या मिटाना नहीं, वरन् उसे ही काट-छांटकर कुछ ठीक-ठाक कर देना। यह ऐसा ही है, जैसे पेड़को माली सुधारता है। मतलब है कि काट-छांटकर सुन्दर कर देता है, न कि बिलकुल बदल ही देता है।

सुधारमें डरपोकपन भी है और हिम्मत भी। डरती-सी, कांपती-सी हिम्मत।

जब भी कभी मानव-समाजके अधिकांशमें बदल डालने-की भावना तीव्र रूपसे बलवती हो जाती है, तभी क्रान्ति हो जाती है।

क्रान्ति है परिवर्तन, पुनर्निर्माण।

इस डरपोकपनके कारण ही हम सुधारक बनते हैं, क्रान्तिकारी नहीं। इसी कारण जनताका एक भाग सदा ही क्रान्ति और सुधारोंके विरुद्ध रहता है।

यह बात सुधारकोंको बुरी-सी तो लग सकती है, पर है सत्य ही।

सुधारकी तहमें एक भावना और भी निहित रहती है। उस भावनाको हम मानव-चरित्रकी बड़ी ही निकृष्ट भावना मानते हैं। धर्म और शास्त्र सभी हमें नित्य सिखाते हैं कि हम उस कमजोरीको अपने अन्दरसे निकाल डालें। पर, उसे निकाल डालनेपर सुधार हो सकना तो असम्भव ही होगा।

वह भावना है—स्वार्थपरता, खुदगर्जी।

फिर वही अजीब-सी बात। भला सुधार-जैसे पुण्य-कार्यमें स्वार्थपरता कहां? सुधारक तो होता ही है परोपकारी।

ठीक है।

हमें इसपर जरा ध्यानसे सोचना पड़ेगा। किसी भी तथ्यको यों ही मान लेने या न मान लेनेसे काम नहीं चलता है। हम बहुधा ऐसा ही करते हैं, यहीं हमारी ट्रैजेडी है। हर बातपर निष्पक्ष विचार करना पड़ेगा। करना ही पड़ेगा।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि कई सुधारक तो खुले प्रकारसे स्वार्थसिद्धि करते हैं। लड़कीके ब्याहमें लड़कीवाला सुधारक बननेकी कोशिश करता है, तो लड़केवाला कट्टरवादी होनेका दावा करता है। विधवा-विवाह करनेवाले वे भी होते हैं, जिनका विवाह कारणवश मुश्किलसे हो सकता हो।

ऐसी ही मिसालें और भी मिल जायेंगी।

पर हमने जो ऊपर कहा है, इन मिसालोंसे ही हम 'सुधारकी तहमें स्वार्थपरता है,' ऐसा नहीं कह सकते हैं। और कह भी तो नहीं रहे हैं।

देखिये, हम पहले कह चुके हैं कि हम सदा ही अपनी तात्कालिक परिस्थितिसे परेशान और झुंझलाये रहते हैं। हमें आज सदा ही परेशान करता है। और हम सदा ही यह सोचते हैं कि किसी प्रकार ये परिस्थितियां ऐसी बदलें कि हमें कुछ चैन मिले।

सदा ही कुछ न कुछ बदलकर हम सुखकी तलाश करते हैं।

यह तलाश ही हमारे जीवनका ध्येय-सा जान पड़ती है। हमारे सारे काम, सारी जीवन-चर्या केवल इसी एक ध्येयके निमित्त होती है। मकान, पलंग, सड़क, शादी, बच्चे···इन

सबमें ही तो हमारी सुख पानेकी भावना निहित होती है।

सो हम अपनी परिस्थितिसे सदा दुखी रहते हैं और सदा सुखकी खोजमें रहते हैं—वेश्यागामीसे महात्मा तक।

इस खोजमें ही तो हम सुधारक बन जाते हैं। प्रत्येक सुधार इसीलिए तो होता है कि हमारी—समाजकी ही सही—स्थितिमें कुछ ऐसा अन्तर पड़े कि हम और भी सुखी हों।

हम—मैं—हम सब!

यह स्वार्थपरता नहीं तो और है ही क्या? इसे ऊंचे दर्जेकी कह लीजिये—पर है अवश्य।

हमारी रायमें तो इसका होना बुरा भी नहीं है। यह एक हद तक आवश्यक है—है भी, अनिवार्य। हमारे जीवनका एक तत्त्व ही तो है।

एक बात और—इसी प्रकार सुखकी खोजमें सुधार करते-करते हम एक दिन चरम-सीमा तक पहुंच जायंगे। निरन्तर आगे बढ़नेवालेका ध्येय तक पहुंचना अवश्यम्भावी है।

यानी, नियन्ताने हमारे अन्दर स्वार्थ, सुख-प्राप्तिकी आकांक्षा, इसलिए रखी है कि हम अपनी उन्नतिकी चरम-सीमा तक पहुंच सकें।

———

गीत

मैंने तुम्हें पुकारा,
आयी लौट चतुर्दिक मेरी टकराकर ध्वनि-धारा!
मैंने तुम्हें पुकारा!!

तुमने दिया न ध्यान, दौड़ द्रुत-
आयी सृष्टि विचारी;
किन्तु मुझे सब शक्ति लगा वह
उठा न पायी, हारी!
गुपचुप रोकर सजल दृष्टिसे,
मैंने शून्य निहारा!!
मैंने तुम्हें पुकारा!!

उल्का-पात विलोक लजाकर,
आंखें कर लीं नीची;
लेकर ठण्डी सांस, उठा तृण,
रेखा भूपर खींची;
कंपा बदन, रोमावलि सिहरी,
गिरा अश्रु-जल खारा!!
मैंने तुम्हें पुकारा!!

क्या, सचमुच तुम साथ न दोगे,
इस सङ्कटमें मेरा;
दूर करोगे नहीं हृदयका,
छाया हुआ अंधेरा?
आओ, प्राणाधार; हरो दुख,
मैं दुर्दिनका मारा!!
मैंने तुम्हें पुकारा!!

सहसा हुआ प्रकाश कि मैंने,
भींजे नेत्र उठाये;
देख द्वारपर किलक उठा मैं,
सुधि लेने तुम आये!
रोग, शोक, चिन्ता, पीड़ासे,
मुझे मिला छुटकारा!!
मैंने तुम्हें पुकारा!!

—विनयकुमार।

जय और पराजयका तत्त्वज्ञान

श्री सन्तराम, बी० ए०

हिन्दू जातिने चिरकालसे पराजयके तत्त्वज्ञानको अपना रखा है। सर्वसाधारणका यह विश्वास है कि व्यक्ति ऐसी शक्तियोंका दास है, जिनपर उसका कोई वश नहीं; मनुष्यकी बनावट और योग्यतायें सब वंशपरम्परा अथवा अदृष्ट द्वारा निश्चित होती हैं; उसका सुख उन अवस्थाओंपर निर्भर करता है, जो उसके बाहर हैं; सारांश यह कि वह और चाहे कुछ ही क्यों न हो, परन्तु अपने भाग्यका विधाता और अपने स्वका नायक नहीं।

इस पराजयके तत्त्वज्ञानको पुष्ट करनेमें विज्ञानने सहायता दी है। जीवविद्या (बायोलोजी) मानवको एक ऐसा जन्तु बताती है, जिसके चरितका निश्चय वंशपरम्परा (heredity) और मांस-ग्रन्थियोंके कार्य द्वारा होता है। विकासवाद उसे मर्कटसे कुछ ही अधिक वर्णित करता है। मनोविश्लेषकोंका मत है कि मनुष्य अपने मनके अचेतन प्रदेश (unconscious mind) द्वारा नियन्त्रित होता है।

मनुष्यको स्थितिके हाथकी कठपुतली समझनेका यह भाव समकालीन सामाजिक शास्त्रमें अपनी पराकाष्ठाको पहुंच चुका है, क्योंकि यह शास्त्र नर-नारियोंको अपनी परिस्थितियोंके शिकार, एक आत्माशून्य आर्थिक व्यवस्थाके पञ्जोंमें जकड़े हुए निरुपाय प्राणी प्रकट करता है। यह दृढ़तापूर्वक कहा जाता है कि उन्मुक्त व्यवस्थाके स्थानमें किसी सुचिन्तित व्यवस्थाको, या लोकतन्त्रके स्थानमें साम्यवादको, या पूंजीवादके स्थानमें कम्यूनिज्मको रखने-जैसे किसी अभेदकारी उपायसे ही बहुसंख्यक लोग सुखी हो सकते हैं।

इस प्रकार हमने भावनाओंकी एक जटिल पद्धति उत्पन्न कर ली है। यह पद्धति मानव-समाजको सहायता देनेके बजाय उसी सभ्यताकी हत्या कर डालनेकी धमकी देती है, जिसने इसे उत्पन्न किया है। कृत्रिम वैज्ञानिक सिद्धान्तोंने हमारे शब्द-भाण्डारको पराजयके योगोंसे भर दिया है। हम अविरल रूपसे ऐसे कथन सुन रहे हैं, जैसे कि "व्यक्तित्व एक ऐसी वस्तु है, जो परमेश्वरकी ओरसे विशेष मनुष्योंको मिली रहती है, वह आप प्राप्त नहीं की जा सकती" या "मुझमें अपनेको हीन समझनेका भाव है, जिससे मैं कष्ट पा रहा हूं।"

ये और ऐसे ही दूसरे कथन लोगोंमें फैले हुए इस मतके द्योतक हैं कि व्यक्ति एक निस्सहाय प्राणी है, जिसका कर्तृत्व बाह्य शक्तियोंके हाथमें है। परन्तु मनोविज्ञानी यह देख रहे हैं कि यह सिद्धान्त मूलसे ही असत्य है। मनुष्य अपनेको खो बैठा था। मनोविज्ञानके नूतन अध्ययनने उसे पुनः अपने आपका और उन शक्तियोंका बोध कराया है, जो उसे प्राप्त हो सकती हैं, यदि वह अपने सम्बन्धमें हेत्वाभासोंको मनसे निकाल दे।

हमें सामाजिक निश्चिन्तता और व्यक्तिगत निश्चिन्ततामें भेद रखनेकी आवश्यकता है। सामाजिक निश्चिन्तता किसी ऐसी चीजको दिखलाती है, जो समाज व्यक्तिके लिए करता है। व्यक्तिगत निश्चिन्तता कोई ऐसी चीज है, जो व्यक्ति अपने लिए करता है। सामाजिक निश्चिन्तताके अन्तर्गत अधिकतर व्यक्तिको दी हुई वस्तुयें और धन है। व्यक्तिगत निश्चिन्तताके अन्तर्गत वे स्वभाव और कौशल हैं, जो व्यक्ति अपने लिए विकसित करता और जो उसे प्रायः सभी अवस्थाओंमें स्वतन्त्र और स्वनिष्ठ होनेमें समर्थ बनाते हैं।

मनुष्य अब तक भी सृष्ट स्रष्टा है, अपने सृष्ट पदार्थोंका शिकार नहीं। वह स्वतन्त्र इच्छा और अगणित सम्भावनाओंका स्वामी है, परिस्थितिका दास नहीं। उसकी क्षमतायें उतनी वंशपरम्परा या दरिद्रताके कारण सीमित नहीं, जितनी कि अपने विषयमें उसकी अपनी दृष्टिके कारण।

उदाहरणार्थ, व्यक्तित्व, जो मित्र बनाने, काम पाने एवं उस कामको संभाले रहने और सफल जीवनके दूसरे रूपोंके लिए इतनी आवश्यक चीज है, ईश्वरसे दान-रूपमें अकस्मात् नहीं मिलता, वरन् यत्नपूर्वक आप प्राप्त किया जाता है। चाहें तो हम व्यक्तित्वका लक्षण इस प्रकार कर सकते हैं कि यह वह परिणाम है, जिसमें किसी व्यक्तिने अपनेमें दूसरोंके लिए रुचिकर एवं हितकर स्वभावों और कौशलोंको

विकसित किया है। उदाहरणार्थ, यह देखा गया है कि जिन बच्चोंको उनके माता-पिता खर्च करनेके लिए यों ही पैसे दे देते हैं, उनका व्यक्तित्व उन बच्चोंके व्यक्तित्वसे निर्बल होता है, जो बूट पालिश करना, घरको बुहारना, बिछौने बिछाना, तरकारी काटना आदि पारिवारिक काम करके उसके पारिश्रमिकके रूपमें माता-पितासे जेब-खर्च पाते हैं। जो नवयुवक विद्यार्थी समाचार-पत्र बेचकर या ट्यूशन करके या किसी दूकानकी चिट्ठियां लिखकर अपना निर्वाह करते हैं, उनका व्यक्तित्व बिना काम किये घरसे पैसे पानेवाले दूसरे बालकोंसे प्रायः प्रबल होता है। इन कामोंका महत्त्व इनके बदलेमें मिलनेवाले पैसों या पुरस्कारमें नहीं, वरन् उन स्वभावों और मनोभावोंमें है, जिनका इनसे विकास होता है। ये स्वभाव ऐसे हैं, जो व्यक्तिके चरित्रको बदलकर मुफ्त खानेवालेसे उसे दाता, केवल खर्च करनेवालेसे उसे पैसा पैदा करनेवाला भी बना देते हैं। सारांश यह कि उनके द्वारा व्यक्तित्वका विकास होता है।

एक समयकी बात है, न्यूयार्कके एक डिबेटिङ्ग क्लबमें विवादके लिए यह विषय रखा गया—"अपने युवकोंके लिए अमेरिका क्या करेगा?" भाषणकर्ताओंमेंसे किसीने कहा, युवकोंके लिए निःशुल्क शिक्षाका प्रबन्ध होना चाहिए, किसीने कहा, उन्हें ऐसा काम दिलानेका प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे वे अपने भरण-पोषणके लिए प्राप्त धन पैदा कर सकें, किसीने कहा, उन्हें धनकी सहायता मिलनी चाहिए, जिससे वे जल्दी विवाह कर सकें, इत्यादि-इत्यादि। परन्तु एक तरुण स्त्रीने कहा—"मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा विषय 'अपने युवकोंके लिए अमेरिका क्या करेगा' के बजाय वास्तवमें यों होना चाहिए—'हमारा तरुण समाज अमेरिकाके लिए और अपने लिए क्या करेगा?' अमेरिका पहले ही अपने तरुण समाजके लिए बहुत कुछ कर रहा है, इतना कुछ कर रहा है कि शायद संसारका दूसरा कोई भी राष्ट्र उतना नहीं कर रहा। क्या यह अमेरिकाके तरुणोंके लिए इस भावके विरुद्ध विद्रोह करने और इसके बजाय देनेकी रीतियां सोचनेका समय नहीं?" व्यक्तित्वोंके विकासके दृष्टिकोणसे, वह आलोचना नितान्त निर्दोष थी।

हीनताके भावके सम्बन्धमें इतना कहना पर्याप्त होगा कि अच्छा होता कि यह परिभाषा गढ़ी ही न जाती, क्योंकि तब जनताको डरानेके लिए गढ़े गये विचारोंमें एककी कमी होती। हीनताका भाव कोई ऐसा रोग नहीं, जो किसी व्यक्तिको रहस्यमयी रीतिसे आक्रान्त करके उसे निरुपाय कर देता हो। इसके विपरीत, जो व्यक्ति अपनी हीनताको स्वीकार करता है, और फिर इसे दूर करनेके लिए कुछ करता है, उसके लिए यह भाव सच्चे रूपसे उपयोगी हो सकता है, क्योंकि इससे वह श्रेष्ठ बननेका यत्न करता है।

किसी क्षेत्रमें श्रेष्ठता प्राप्त करनेका भाव कैसे काम करता है, उसका उदाहरण डुबकी लगाना सीखनेकी क्रियासे दिया जा सकता है। सीखनेवाला अपनेको सुन्दर रूपसे सन्तुलित करता है, आगेकी ओर झुकता है, और अन्तिम क्षणपर हिचकिचाकर डरसे पीछे हट जाता है। वह पुनः उद्योग करता है और फिर पीछे हट जाता है। अन्ततः, क्रोधसे भरा हुआ वह अतिसाहस करता है और भीषण धप शब्दके साथ पानीमें कूद पड़ता है। वह घबराया हुआ और चिढ़ा हुआ पानीके ऊपर आता है। दर्शकोंकी टिप्पणियां उसे और भी दुखी करने लगती हैं। यदि, इस समय, वह डरसे आगेके लिए उद्योग करना छोड़ देता है, तो उसे आयु-भरमें भी कभी डुबकी लगाना नहीं आता और उसका वह डर कभी दूर नहीं होता। परन्तु यदि वह हतोत्साह नहीं होता, और दुःखदायी तथा भद्दी डुबकियां लगाना जारी रखता है, तो अन्ततः उसे डुबकी मारनेमें कोई भी कष्ट नहीं होगा और डुबकी लगानेके बाद जब वह आयेगा, तो बड़ा प्रसन्न होगा। उसके मित्र उसकी प्रशंसा करेंगे, और उसे अपनेपर और अपनी परिस्थितिपर एक और विजय प्राप्त हो चुकी होगी।

डुबकी लगाना हो या जीवनका कोई दूसरा रूप हो, व्यक्तित्व और श्रेष्ठताके विकासमें यह आधारभूत मनोविज्ञान है। अपनेमें कार्यकारी दक्षताका विकास करनेके लिए, यह आवश्यक है कि व्यक्ति, इस अवस्थामें और उस अवस्थामें, पुनः-पुनः जीवनके प्रवाहमें डुबकी लगाये। जो व्यक्ति केवल वही काम करता है जिनका करना उसे भाता है, जो घबरा देनेवाली और दुःखद स्थितियोंसे बचता है, वह श्रेष्ठताके बजाय हीनताके स्वभावोंको ही बढ़ाता है।

यहां हमें मनुष्यकी मनोवैज्ञानिक और यान्त्रिक कल्पनाके बीचका अन्तर देख पड़ता है। एक ओर तो वे हैं, जो हीन हैं और या तो अपने दोषोंको स्वीकार करनेसे

इनकार करते हैं या विश्वास रखते हैं कि वे उनको दूर करनेके बारेमें कुछ नहीं कर सकते। ये लोग अपने उत्कर्षके लिए कोई यत्न नहीं करते, इसलिए वे बहुधा समूची सामाजिक व्यवस्थाका ही सुधार करना चाहते हैं। वे यह नहीं देख सकते कि जीवनकी चाहे कोई भी कल्पना क्यों न हो, जब तक वे अपनेको बदलते नहीं, तब तक वे उसमें कभी भी ठीक न बैठेंगे। इसके विपरीत, वे लोग हैं, जिनका विश्वास है कि वे अपने व्यक्तित्वको विकसित कर सकते और दक्षता एवं श्रेष्ठता प्राप्त कर सकते हैं। यही लोग हैं, जो गोलियां चलना और चीखना-चिल्लाना बन्द हो जानेके बाद, किसी प्रकारके समाजको, चाहे वह लोकतन्त्र हो और चाहे कम्यूनिज्म, संभालते हैं।

दुःखकी बात यह है कि वर्षोंसे हमारी सभ्यताने हमें यह विश्वास करनेसे नहीं रोका कि हम असहाय हैं, और इससे भी बुरी बात यह कि इसने हमें सार्वजनिक कामोंमें व्यक्तिगत उत्तरदायित्वसे बचनेके लिए उत्साहित किया है। व्यक्ति कहते हैं, "नगर और राज्य सामाजिक बुराइयोंकी चिन्ता करें।" या "सरकार सबको नौकरी और काम दे।"

लोगोंमें यह अन्धविश्वास फैल रहा है कि वोटोंसे सामाजिक निश्चिन्तता प्राप्त हो सकती है। नौकरियां अधिकार या सिद्धान्तसे नहीं हैं, वरन् कार्यकारी व्यक्तियोंने उन्हें उत्पन्न किया है। वे स्वतन्त्र वाणिज्य द्वारा कृत्रिम रूपसे नहीं बनायी जा सकतीं और न लेबर यूनियन ही उनकी गारण्टी कर सकते हैं। सिवाय विशेष अवस्थाओंके सरकार भी चिरकाल तक काम नहीं पैदा कर सकती। डिक्टेटरशिप या फैसिज्ममें प्रत्येक काम करनेवालेको काम दिया जा सकता है; परन्तु तब काम करनेवाले राज्यके गुलाम बन जाते हैं। उनके लिए यह अनिवार्य होता है कि जो काम उन्हें दिया जाय, साथ ही जितने घण्टे उनसे काम लिया जाय, जिन अवस्थाओंमें उन्हें रखा जाय, और जो वेतन दिया जाय, उसे वे स्वीकार करें।

स्वतन्त्र व्यक्तियोंके लोकतन्त्रमें, इस स्वतन्त्रतामें काम पैदा करनेका उत्तरदायित्व भी आ जाता है। प्रत्येक व्यक्तिके लिए इस क्रियामें सहायता देना आवश्यक है। जो राष्ट्र अपने नागरिकोंको उन असामियोंकी प्रतीक्षा करनेके लिए प्रोत्साहित करता है जिनपर उनका अधिकार है, वह अपनी जनताको असामी पाने या पाकर उसे संभाले रखनेमें दिनपर दिन अधिक अयोग्य पायेगा।

अपने ऊपर और अपनी परिस्थितिपर विजय पानेमें समर्थ व्यक्तिके रूपमें मनुष्यकी सच्ची कल्पना धर्ममें, मनोविज्ञानके आविष्कारोंमें, और परिकथामें अब तक बनी हुई है। लाखों और करोड़ों लोग रामायण पढ़ते हैं। क्यों? क्योंकि राम अपनी परिस्थितियोंके दास नहीं, स्वामी बनकर जिये थे। राज्यका छिन जाना, बनमें मारे-मारे फिरना, स्त्रीका अपहरण, लोक-निन्दा, कोई भी बात उन्हें कर्तव्यसे न डिगा सकी। वे जीवन-संग्राममें विजयी होकर निकले। उन्होंने बानरों जैसी असभ्य और शत्रु जातिको मित्र और सभ्य बनाकर उनकी सहायतासे रावणपर विजय पायी।

जितनी भी जल्दी हो सके, हमें यह अनुभव करना चाहिए कि जय और पराजयमें, सफलता और विफलतामें जो अन्तर है, वह तत्त्वतः तत्त्वज्ञानोंकी बात है। पराजयका तत्त्वज्ञान बड़ेसे बड़े सम्पन्न व्यक्तिके लिए भी विफलताको अवश्यम्भावी बना देता है; सफलताका तत्त्वज्ञान, अपनी शक्तियोंसे पूरा-पूरा काम लेनेका दृढ़ निश्चय करनेवाले कम योग्य और कम सम्पन्न मनुष्यमें भी आश्चर्यजनक काम कर दिखाता है।

एक खगोल-शास्त्रीने एक बार एक मित्रसे कहा, "खगोल-शास्त्रीकी दृष्टिमें, मनुष्य अनन्त ब्रह्माण्डमें एक बहुत ही छोटा-सा बिन्दु है।" इसपर उसके मित्रने कहा, "हां! फिर भी मनुष्य खगोल-शास्त्री है।" यह उत्तर एक महान् सत्यका निदर्शन करता है; व्यक्ति ही एक ऐसा आधार है, जिसपर कोई सामाजिक व्यवस्था आरामसे बनायी जा सकती है।

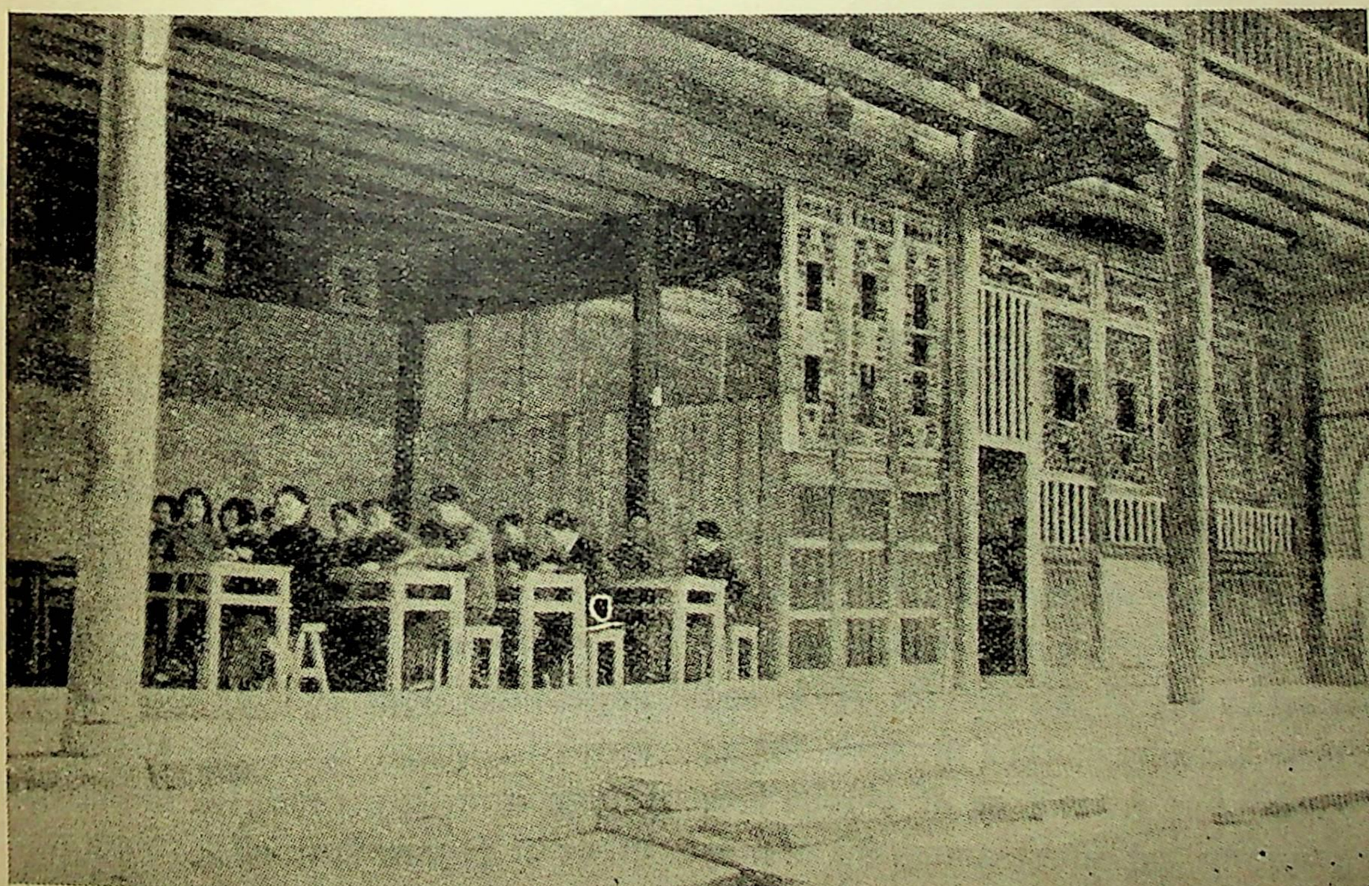


चीनका चलता-फिरता विश्वविद्यालय

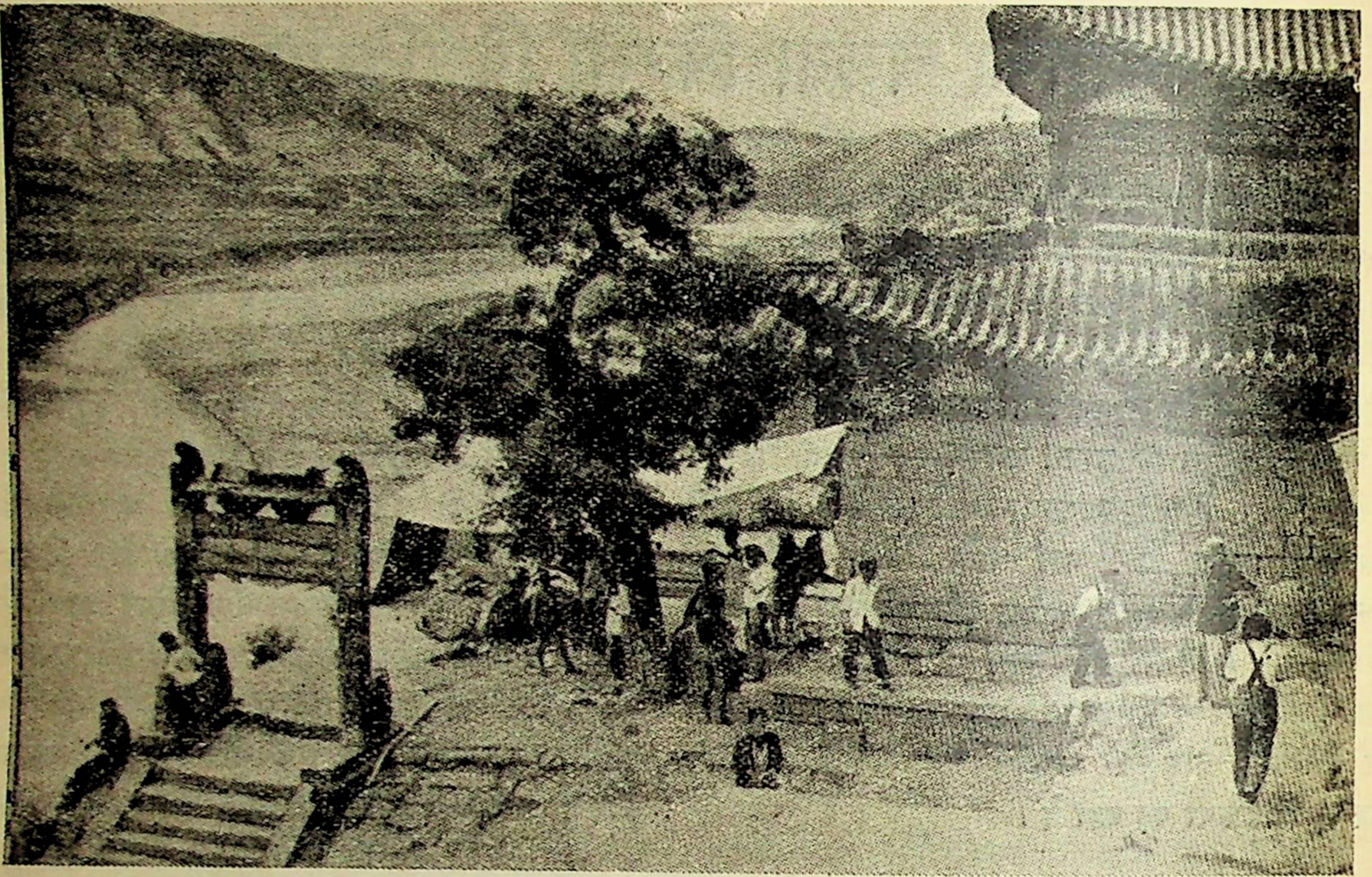
श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा

चीन-जापान-युद्धने चीनियोंके लिए जैसी समस्यायें उत्पन्न कर दी हैं, उनमें शिक्षा-संस्थाओंकी व्यवस्था भी अत्यन्त कठिन हो गयी है। जापानी सैनिक चीनके अञ्चलोंपर आधिपत्य जमाते आगे बढ़ते चलते हैं और जहां कहीं भी वे जाते, वहांकी उन शिक्षा-संस्थाओंको विनष्ट करते जाते हैं, जो जापानियोंके सामने आत्म-समर्पण कर जापानी हितोंके अनुकूल शिक्षा देनेकी व्यवस्था नहीं करतीं। और ऐसी संस्थाओंकी संख्या कम नहीं होती, अतः चीनके उन समस्त अञ्चलोंकी व्यवस्था अत्यन्त कठिन हो चली है, जिनपर जापानियोंका अधिकार हो चला है। इन कठिनाइयोंमें अनेक चीनी संस्थायें एक जगह रहकर काम नहीं कर सकतीं और इसीलिए चेकिङ्गके राष्ट्रीय विश्वविद्यालयको आज जगह-जगह भटकना पड़ रहा है।

चीन-जापान-युद्धमें चीनने जिस नीतिका अवलम्बन किया है, उसका मुख्य आधार यही है कि चीनमें जापानके लड़नेके लिए इतना अधिक समय दे दिया जाय कि लड़ते-लड़ते उसकी शक्तियां क्षीण हो जायें। इसके अतिरिक्त चीन और कोई नीति अपना भी नहीं सकता था; क्योंकि सैनिक तैयारीमें चीन जापानकी तुलनामें इतना तुच्छ रहा है कि जापानने सदा ही उसे नगण्य समझा। और जापानियोंने इसके साथ ही जिस बातपर सबसे अधिक जोर दिया, वह यह है कि चीनका नैतिक साहस तोड़ दिया जाय, जिससे वर्तमान अधिकारियोंके प्रति चीनी जनताका विश्वास नष्ट हो जाय। किसी भी राष्ट्रकी राष्ट्रीय शक्तिको नष्ट करनेका इससे आसान तरीका शायद ही और कोई हो। इस कामके लिए ही जापानने चीनके कितने ही विद्यालयोंको जलाया,



मन्दिरमें छात्र अध्ययन कर रहे हैं।



चलते-फिरते विश्वविद्यालयके छात्र देहातियोंके बीचमें ।

कितने ही महान् पुस्तकालयोंमें संगृहीत ज्ञान आज राखमें मिल चुके हैं और चीनके कितने ही पुराने समाचार-पत्र—जिनमें संसारका सबसे प्राचीन समाचार-पत्र भी सम्मिलित है—नष्ट किये जा चुके हैं।

चेकिङ्ग विश्वविद्यालयके पास जब जापानियोंके आक्रमणका समाचार पहुंचा, तो शीघ्र ही समस्या उठ खड़ी हुई कि प्रायः छः सौ विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा उनके परिवारोंको लेकर कैसे और कहां जाया जाय। चीनकी दूसरी संस्थाओंको भी इस प्रकारकी कैसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, इसका भी पता चेकिङ्ग विश्वविद्यालयकी कठिनाइयोंसे लग जायगा। पर यह चलता-फिरता विश्वविद्यालय जहां इस प्रकारकी कठिनाइयां झेल रहा है, वहां इसका चीनपर क्या प्रभाव पड़ रहा है और चीनके लिए यह कितना उपयोगी सिद्ध हो रहा है, यह भी उपेक्षणीय विषय नहीं है। एक ओर जहां चीनको जापानसे पीछे जाना पड़ रहा है, वहां वह आगे भी बढ़ता नहीं जा रहा है, यह कैसे कहा जा सकता है।

चेकिङ्गके विश्वविद्यालयको पहले चूकिङ्ग जाना पड़ा। विश्वविद्यालयके अधिकारी तब तक दूर नहीं जाना चाहते थे, जब तक कि परिस्थितियां उन्हें विवश न कर दें। इसलिए चूकिङ्गमें ही अधिकारियोंने विद्यार्थियोंको एकत्र कर काम शुरू कर दिया। चूकिङ्गपर जापानियोंके आक्रमण होने लगे थे और अत्यधिक वर्षा न होनेपर प्रतिदिन जापानी बम बरसानेकी कोशिश करते, इसलिए विद्यालय रेलवे-स्टेशन तथा एयरोड्रोमके बीचोबीच रखा गया, जिससे आवश्यकता पड़नेपर तत्काल रक्षात्मक उपायोंसे काम लिया जा सके।

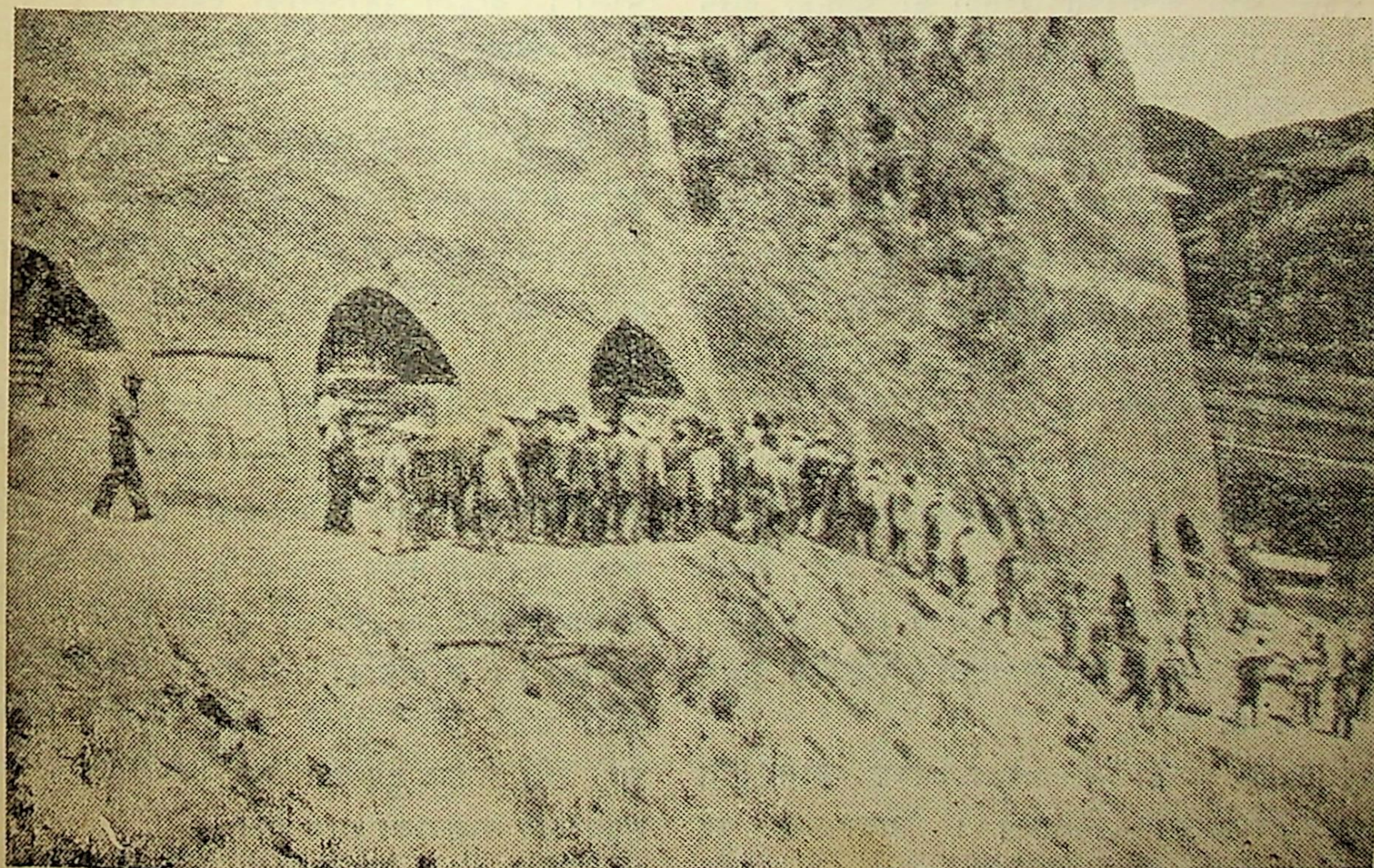
इस सम्बन्धमें उक्त विश्व-विद्यालयके एक अध्यापक फ्रैङ्क माइकेलने अपने अनुभवोंका अच्छा वर्णन किया है। उसने लिखा है कि चूकिङ्गसे चलनेके बाद हमने केण्टेहमें जाकर विद्यालय बसाना चाहा। हमारे लिए जो सबसे बड़ी कठिनाई थी, वह थी विज्ञानके विद्यार्थियोंकी प्रयोगशालाको लेकर। जगह-जगह विज्ञानके यन्त्रोंको लेकर जाना और प्रयोगशाला खोलकर पढ़ाईका प्रबन्ध करना आसान न था। और फिर

विद्यार्थियोंकी संख्या इतनी विशाल कि सर्वत्र सब तरहकी व्यवस्थायें करना कठिन हो जाता।

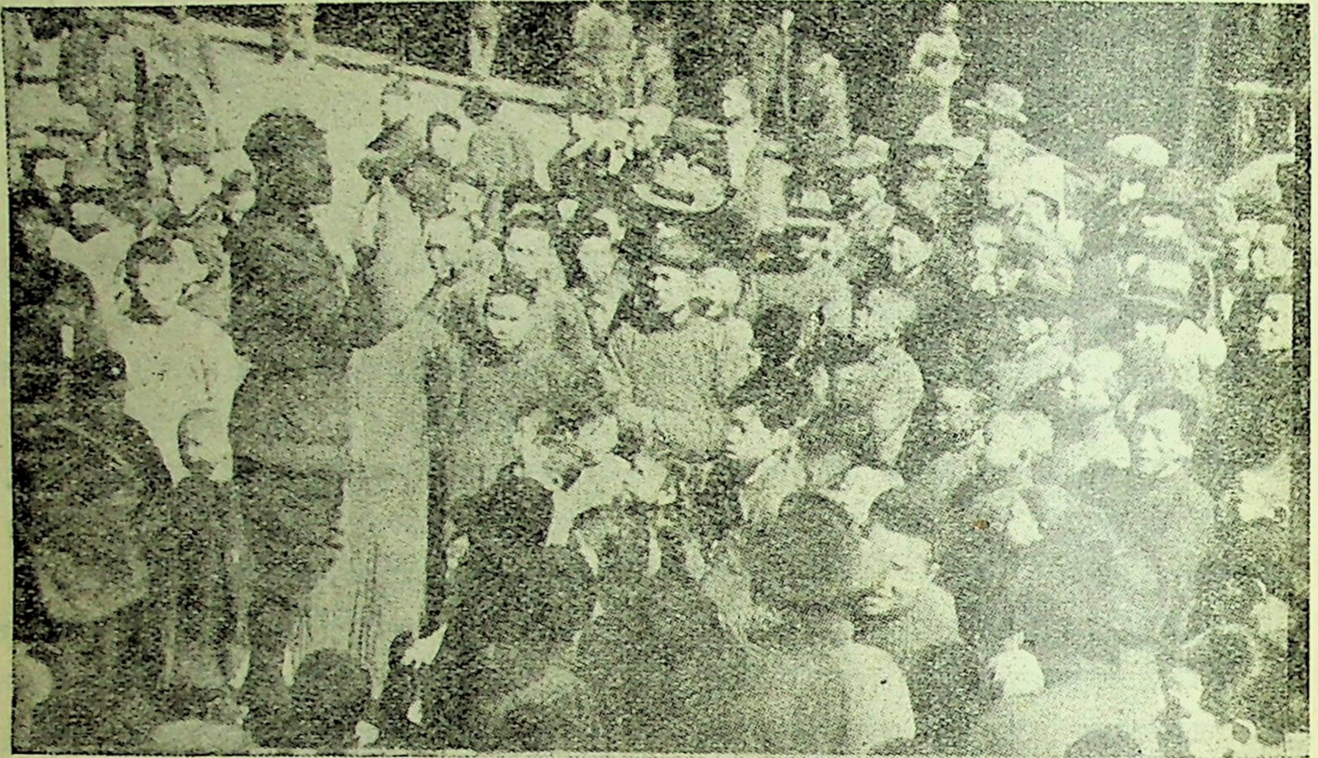
केण्टेमें हमने विद्यालय खोला, तो वहांके मन्दिरोंमें हमारी पढ़ाई शुरू हुई। मन्दिरका हाल बहुत बड़ा था और उसमें बेञ्चों और कुर्सियोंकी संख्या भी कम न थी, इसलिए विद्यार्थियोंको इससे बड़ी आसानी हुई। परन्तु जहां कहीं भी जाते, वहां खाने-पीनेकी व्यवस्था, प्रोफेसरोंके परिवारोंका प्रश्न तो रहता ही, पर इससे अधिक विकट समस्या यह बनी रहती कि जापानी न जाने कब फिर वहां हाजिर हो जायें। इसलिए स्थायी व्यवस्था कहीं भी करना असम्भव था और हम लोगोंकी कठिनाइयोंका अन्त ही न होने पाता।

और वास्तवमें हुआ भी ऐसा ही। अभी सितम्बरमें हम लोग चेकिङ्गसे चले थे। इस बीचमें चूकिङ्गमें हम लोगोंने डेरा डाला और अभी दिसम्बर ही लगा था कि केण्टेसे भी हम लोगोंको चलनेकी तैयारी कर देनी पड़ी और कियांगमें पहुंचते-पहुंचते हमें पता चला कि यह स्थान उतना सुरक्षित नहीं है, अतः हमें किसी और स्थानकी तलाशमें जाना चाहिए।

इसलिए अब हम लोग शांगती पहुंचे। शांगती हमारे लिए एक अच्छा स्थान साबित हुआ, जहां हम छः महीने रह सके। शांगती प्रकृतिकी गोदमें पलनेवाला एक विशाल गांव है, जो प्राचीन कालमें शिक्षा-केन्द्रके रूपमें ख्याति प्राप्त कर चुका है। हम लोगोंने वहां डेरा डाला, तो मकानोंकी कमी थी। अतः रहनेके लिए तो हम लोगोंने उनमें किसी प्रकार व्यवस्था कर ली, पर पढ़नेके लिए काफी जगहोंकी व्यवस्था होना असम्भव था। अतः गांवके बगीचोंमें ही हमारे छात्र पढ़ते। हमारे छात्रोंको इस प्रकार घूमते-फिरते रहनेसे लाभ भी खूब हुए। उन्हें जगह-जगह ग्रामीणोंमें घूमने और उनका अध्ययन करनेका अवसर मिला। देहातोंमें लोगोंको अपने स्वास्थ्यका ध्यान नहीं रहता, वे स्वास्थ्यके नियमोंकी भी जानकारी नहीं रखते, खेती घोर अवैज्ञानिक तरीकेसे होती और सिंचाई तथा निवास-स्थान-सम्बन्धी जानकारी भी उनकी प्रायः नहींके बराबर रही है। हमारे विद्यार्थियोंने देहातियोंको इन सारी बातोंके सम्बन्धमें बताना शुरू किया।



जापानी विध्वंस-लीलाके बाद चीनियोंने पहाड़ी कन्दराओंमें सैनिक-शिक्षाका प्रबन्ध कर रखा है।



छात्र जहां-जहां जाते, चीनियोंमें राजनीतिक प्रचार भी करते जाते हैं।

युद्धकी जैसी अनिश्चित अवस्था हो गयी है, उसमें विद्यार्थियोंके लिए शिक्षापर रुपये खर्च करना भी कठिन हो गया था, इसलिए सरकार द्वारा इस बातकी कोशिश की गयी कि विद्यार्थियोंको कर्ज दिया जाय, जिसकी शर्त रहे कि युद्ध समाप्त होनेके दो वर्षके भीतर वे उसे चुका दें। इस व्यवस्थाके सम्बन्धमें विद्यालयके अध्यक्षने यह सुझाव पेश किया कि कर्ज देनेकी अपेक्षा विद्यार्थियोंको कुछ काम दिये जायें, जिन्हें करके वे इतना उपार्जन कर लें कि उनकी पढ़ाईका खर्च निकल आये।

इस विद्यालयके शांगतीमें आनेके पहले यहां कोई स्कूल न था। विद्यालयने आते ही एक स्कूल खोल दिया। विद्यालयके छात्रोंने एक पत्र भी निकालना शुरू कर दिया, जिससे देहातियोंको युद्ध-सम्बन्धी खबरोंसे अवगत रखा जा सके। विद्यालयमें एक रेडियो लगनेके कारण सारे महत्त्वके समाचार मालूम हो जाते।

देहातियोंको इसकी भी अपेक्षा अधिक लाभ हुआ विद्यालयके चिकित्सा - विभागसे। विद्यालयका यह विभाग भी विद्यालयके साथ-साथ भ्रमण करता और देहातमें सर्वत्र गरीबोंकी दवादारूका प्रबन्ध करता चलता। उन्होंने देहातियोंको स्वास्थ्यके नियम बताने, स्वस्थ सन्तान उत्पन्न करने और सेवा-शुश्रूषा करनेकी विधि बतानी शुरू की।

यह तो हालत थी चेकिङ्ग यूनिवर्सिटीकी। इसके साथ ही दूसरे विद्यालयों तथा दूसरी चलती-फिरती संस्थाओंने भी इसी प्रकारके कार्य करने शुरू किये, जिनकी कठिनाइयोंके मुकाबिलेमें उनके द्वारा होनेवाले राष्ट्र-निर्माणके कार्योंका मूल्य कहीं अधिक है।

चीनके हजारों छात्रोंकी यह पलटन जहां भी पहुंचती है, देहातियोंमें जोश आ जाता है। जापानियों द्वारा चीनी सरकारके विरुद्ध जैसा विषैला प्रचार होता है, उसका पता चीनके बाहर भी दूसरे लोगोंको है। पर इन चलती-फिरती संस्थाओं द्वारा इस प्रचारका बड़ा ही सुन्दर खण्डन होता जा रहा है। चीनियोंको अपने देशकी वास्तविकताका पता इससे चलता और युद्धकी प्रगति, जापानी सैनिकवादके खतरे उन्हें मालूम हुए और इस विपत्ति कालमें उनमें पूर्ण सहयोगकी भावनाका उदय हुआ।

श्रीमती पर्ल बकने, जिनकी जानकारी चीनके सम्बन्धमें सबसे प्रामाणिक मानी जाती है, एक बार कहा था कि

चीनमें जापानका वर्तमान युद्ध एक आशीर्वादके रूपमें आया है। चीनमें आज जैसी एकताकी भावना देखी जाती है, वह पहले कभी नहीं दिखाई पड़ी थी। चेकिङ्गका यह चलता-फिरता विश्वविद्यालय गांव-गांवमें आज नवजागृत चीनका सन्देश लेकर घूम रहा है। कितने ही लोगोंको आश्चर्य होता है कि आज जब चीन जीवन-मरणकी समस्यामें उलझा हुआ है, तब चीनमें स्कूल-कालेज क्यों चल रहे हैं और विद्यार्थियोंने युद्धमें अपना भाग क्यों नहीं लिया है। ऐसे लोगोंको जान लेना चाहिए कि चीनी छात्रोंने दूसरे किसी भी देशके छात्रोंसे बढ़कर देश-भक्ति दिखायी है। दूसरे देशके युवक जहां वेतनपर युद्ध क्षेत्रमें उतरते हैं, वहां ये छात्र अपने उपार्जनसे अपना भरण-पोषण करते हुए गांव-गांवमें चीनके पक्षमें प्रचार करते फिर रहे हैं। चीनमें जहां अखबार नहीं पहुंच पाते, जहां रेडियोकी खबरें नहीं सुनाई पड़ सकतीं, जहांकी जनताको आज भी इतनी राजनीतिक चेतना नहीं है कि वह स्वतः अपनी हानि उठाकर समाज एवं देशके कल्याणके लिए त्याग कर सके, ऐसे लोगोंमें ये छात्र जीवनका मन्त्र फूंक रहे हैं।

चेकिङ्ग विश्वविद्यालय अब भी चल रहा है और पता नहीं कि यह अन्तमें चलकर कहां विश्राम ग्रहण करेगा; पर जहां कहीं भी यह जाता है, ग्रामीणोंमें एक नया जीवन दिखाई पड़ता है। इस तरह इस प्रकारकी कठिनाइयोंको भी चीन अपने लाभके लिए उपयोग करनेमें नहीं चूक रहा है।

उपहार

बैरनेस इन्सवान आर्नवाल्डने मकानकी उस मञ्जिलमें प्रवेश किया, जिसपर कई-एक कुवांरे रहते थे। उसने अपने बैगसे कुञ्जी निकाली। उसने देखा, उसका प्रेमी ह्यूगो वाल्डर्व आज बहुत ही प्रसन्न दिखाई पड़ता था। कमरेकी खिड़की आधी खुली थी और उससे वह सामनेके झुरमुटोंकी ओर देख-देखकर सिसकारियां मारता।

"हलो, ह्यूगो, आज तो तुम बड़े प्रसन्न दिखाई पड़ रहे हो। मुझसे भेंट होनेकी ऐसी प्रसन्नता है, ऐं ?"

"क्यों न हो, आज सात दिनोंके बाद तुम मिल रही हो ? और सुनो, एक अच्छी-सी खबर तुम्हें सुनाऊं !"

"अच्छी-सी खबर ? बोलो, बोलो, मैं चञ्चल हो रही हूं।"

"अरे घबराती क्यों हो ? हैट उतार लो, दस्ताने निकाल डालो, बैठो और सुनो।"

"तुम तो मेरी व्यग्रता बढ़ाते ही चल रहे हो ! किसी सुन्दर तरुणीसे भेंट हुई है और तुम उससे विवाह करना चाहते हो ?"

"अरे नहीं। मैंने तुमसे कहा नहीं था कि पीट्सबर्गमें मुझे बढ़िया-सी जगह मिल गयी है और—"

"और ? और ??"

"और सोचो तो जरा, बीस हजार शेयर जो मैंने १३२ मार्कमें खरीदे थे, उनका भाव तीन सप्ताहमें बढ़कर १७२ मार्क हो गया है। और ८००,००० मार्कमें मैंने सही बेच डाला है।"

"ओह ! कितना आश्चर्यजनक है ?"

"लेकिन मैं इस सुखका उपभोग अकेले ही नहीं करना चाहता अर्ना, मैंने तुम्हारे लिए एक अच्छा-सा उपहार खरीद लिया है। देखो, उधर मिठाइयोंके पास बक्समें रखा हुआ है।"

"कितने प्यारे हो तुम ह्यूगो। देखूं, कहां है वह उपहार ?"

और बैरनेस वान आर्नवाल्डने उच्छ्वसित हृदयसे अपना कांपता हाथ बढ़ाकर सफेद कागजमें लिपटा हुआ एक पैकेट उठाया। खोलकर देखा, चमड़ेका छोटा-सा जड़ाऊ बक्स। उत्कण्ठा और भी बढ़ी। उसने कहा, "क्या है यह ह्यूगो ?"

"खोलकर देखो न !" ह्यूगोने जवाब दिया।

बैरनेसने बक्स खोलकर देखा। देखा : मखमली गत्तेपर प्लेटिनमकी अंगूठी—जिसपर एक अत्यन्त सुन्दर एवं बहुमूल्य

मोती जड़ा हुआ था—चमक रही थी। वह चकित-सी होकर उसे मन्त्रमुग्ध-सी देखने लगी। उसने अंगूठी उठायी, उंगलीमें डाला, तनिक दूरसे उसे देखा और तब अकस्मात् दौड़कर अपने प्रेमीकी बांहोंमें लिपट गयी।

"कितनी सुन्दर—सचमुच कितनी सुन्दर है!" वह कांपते स्वरमें बोल उठी, "तुम कितने प्यारे हो ह्यूगो। ऐसा सुन्दर उपहार! तुम देवता हो--देवता!"

"जड़ा हुआ मोती तुम्हें पसन्द है?"

"पसन्द है? इतना मूल्यवान मोती, मेरी उंगलीमें भी कभी आयेगा, इसका तो मैंने कभी स्वप्न भी नहीं देखा था ह्यूगो! आश्चर्यजनक! मैं तो भौचकी-सी हो रही हूं। मैं...मैं...।"

बैरनेस अकस्मात् चुप हो गयी। जैसे किसी भावने व्यग्र कर दिया हो।

"बात क्या है अनों?"

"मोती—अंगूठी सब बहुत मूल्यवान हैं ह्यूगो, लेकिन मैं इसे पहन भला कैसे सकती हूं। भला बताओ तो, आम तौरपर इस प्रकारके मोतीकी क्या कीमत आंकी जा सकती है?"

"कमसे कम ३०,००० मार्क!"

"मैं जानती थी। तो भला मैं अपने पतिको कैसे विश्वास दिला सकती हूं कि मैंने अपने पैसेसे इसे खरीदा है, जब कि वह सिर्फ ५०० मार्क प्रति मास मुझे जेब-खर्च देते हैं। मेरा तो हृदय टुकड़े-टुकड़े होता जा रहा है। मैं तुम्हें धन्यवाद देती हूं ह्यूगो, जो तुमने ऐसी कृपा की। पर उस खूसट बैरनके मारे, मेरा यह सुख-स्वप्न क्षण-भरमें ही छिन्न-भिन्न हो गया।"

"सचमुच, मुझे तो तुम्हारे उस मूर्खाधिराज पतिका ख्याल ही न रहा।"

"सोचो भी, आखिर मैं इसे पहन कैसे सकती हूं?"

ह्यूगो कुछ देर तक विचारोंमें डूबा-सा रहा। फिर बोला—

"सुनो, एक तरकीब है। मैं चलकर यह अंगूठी अपने उस जौहरी मित्रके पास रख देता हूं, जिससे मैंने इसे खरीदा है। मैं उसे सारी बातें चुपचाप समझा दूंगा। मैं उससे कह दूंगा: मेरे प्रिय मित्र, विर्जहीम, कृपया एक टिकटपर लिख लो 'स्वर्ण सुअवसर—जापानी मोती, ३०० मार्क।' इस मोतीको उस दिन विक्रयार्थ रखो, जिस दिन बैरनेस वान आर्नवाल्ड अपने पतिके साथ दूकानपर इसे खरीदने आवें। मेरी वह रमणी मित्र आयेगी और अपने पतिको ३०० मार्कमें मोती खरीदनेके लिए राजी कर लेगी। वही मोती, जो तुमने मुझे ३०,००० मार्कमें बेचा था।"

"अच्छी बात है।"

"क्यों, कैसी रही? कितना सीधा उपाय है। तुम अपने खूसट मूर्खाधिराजसे आज ही शामको कहना कि विर्जहीमकी दूकानपर तुमने एक ऐसा मोती देखा है, जिसे तत्काल खरीद लेनेमें चूकना नहीं चाहिए। मेरा ख्याल है कि कल तक वह मोती खरीद लेनेपर राजी हो जायेगा।"

"ठीक कह रहे हो तुम! और उपाय ही क्या है?"

तरुणी फिर अपने प्रेमीकी भुजाओंसे लिपट गयी। और झुरमुटसे पत्तोंका मर्मर स्वर हो उठा, मानो वे उनकी प्रेम-ज्वाला भड़का रहे हों। प्रसन्नतासे उनका चेहरा खिल उठा। बैरनेसने आनन्द-विभोर होकर रेडियो खोल दिया और धीमी-धीमी सङ्गीतकी ध्वनि फैलने लगी। और दोनों जैसे सङ्गीतके पङ्खोंपर उड़े जा रहे हों।

× × ×

बैरन रूडल्फ वान आर्नवाल्ड शीघ्र ही तैयार हो गये। ड्राइवरको जौहरीका पता देकर वह मोटरमें चल पड़े। पत्नी दूकानपर पहुंचते ही धड़ल्लेसे उतरी और उसकी आंखें अंगूठी खोजने लगीं। अंगूठीपर वही टिकट लगा हुआ था।

"यह—यह देखो अंगूठी रूडल्फ, यह जड़ा हुआ मोती देखो। जरा सोचो तो, जापानी अंगूठी और इसे वे ३०० मार्कमें ही बेच रहे हैं। क्या इसे वे मुफ्तमें ही नहीं लुटा रहे हैं?"

"मैं तो कह ही चुका हूं—खराब नहीं है।"

"भीतर चलें?"

दूकानदारने बैरनेसको पहचाना और कनखियोंसे ताकते हुए उसने जैसे कुछ मर्म-भरी बातें कीं। उसने डिब्बा निकालकर बैरनको अंगूठी दिखायी। उसने कहा—"ऐसे अवसर संयोगसे ही हाथमें आते हैं बैरन साहब, एक भद्र महिला जुएमें इतना पैसा हार गयीं कि उन्हें विवश

होकर यह अंगूठी बेचनी पड़ी। अगर इसमें तनिक-सा दोष न होता—लेकिन वह भी ऐसा कि सभी लोग जान भी नहीं सकते—तो इसका दाम दस गुना अधिक होता। फिर भी, ३०० मार्कमें तो यह बिलकुल मुफ्त-सी ही है। और अगर आपने खरीद नहीं लिया, तो शाम तक यह निश्चय ही निकल जायगी। ठीक ६ बजे एक देवीजी आनेवाली हैं।"

"लेकिन यह जड़ाव? क्या यह प्लेटिनम है?"

"अजी महाशय, ३०० मार्कमें आप असली प्लेटिनमकी उम्मेद कैसे करते हैं। लेकिन कितनी सच्ची नकल है! देखिये भी।"

"जी, जी, देखता हूं। लेना तो मुझे है ही, लेकिन दाम, २५० मार्क। क्यों? क्या राय है आपकी?"

"ओह! असम्भव! ३०० मार्कमें भी यह मुफ्त-सी ही है महाशय।"

"सुनो, रूडल्फ, खरीद लो इसे, मुझे बहुत पसन्द है।"

"अच्छा तो ठीक है। बांध दो। यह है चेक।"

अंगूठी लेकर जब वे चले, तो रमणीने पतिकी बांहोंको पकड़कर कहा, "तुम जानते नहीं रूडल्फ, मुझे इससे कितनी खुशी हुई है!"

"आह! इल्ला, तुम इस प्रकारकी मूर्खतापूर्ण चीजोंको खरीदनेके लिए हमेशा उकसा दिया करती हो, लेकिन कोई बात नहीं, अगर तुम्हें इससे सुख मिलता है, तो कोई हर्ज नहीं।"

"लाओ, मैं लेती चलूं।"

"नहीं, मैं ले जा रहा हूं। जब इसे खरीद ही लिया है, तो ठीकसे इसका उपयोग किया जाय। मैं नाम खोदनेवालेके घरपर जा रहा हूं। इसमें हम दोनोंके नाम और आजकी तारीख खुदी रहेगी। क्यों, पसन्द है न तुम्हें?"

"क्यों नहीं? हम दोनोंके नाम एक साथ! सचमुच कितना सुन्दर होगा रूडी।"

"ठीक है, तुम घर जाओ, मुझे थोड़ा अभी और जरूरी काम है। मैं लगभग सात बजे लौटूंगा। तब तक—इतनी देर तक......।"

और सात बजे बैरन घर लौटे। दूसरे कमरेसे बैरनेसने उन्हें जोर-जोरसे चिल्लाकर गाते सुना। इस प्रकारकी असाधारण प्रसन्नता उसे पतिमें प्रायः कम दिखाई पड़ती थी, इसलिए उसे आश्चर्य हुआ। वह तत्काल उनके पास गयी।

"आज तो तुम बड़े प्रसन्न दिखाई पड़ रहे हो रूडल्फ, कारण क्या है?"

बैरन आगे बढ़े, झपटकर पत्नीकी कमर पकड़कर उठाया और खुशीमें विह्वल हो उसे नचाने लगे। पत्नी चकित-सी हो गयी। उसने कहा, "लेकिन इसका मतलब?"

"मतलब? इसका मतलब? मैंने अपने जीवनका आज सबसे बड़ा सौदा किया है अनों, क्या सोच रही हो? नाम खोदनेवालेके घरपर एक जौहरी था। उसने मेरी अंगूठी देखते ही कहा—'यह तो बड़ी सुन्दर अंगूठी है हर वान बैरन।' मैंने स्वभावतः कहा, जी, बुरी नहीं है। मैं नहीं सोचता कि ३०० मार्कमें इससे अच्छी खरीदी जा सकती थी। इसके बाद जौहरी हंसने लगा। उसने कहा, क्या आप मजाक कर रहे हैं महाशय, मैं तो आपकी इस ३०० मार्ककी अंगूठीके लिए ५००० मार्क तक दे सकता था।"

उसने पतिकी बात सुनी, तो वह कांप उठी। उसकी नसोंका खून जैसे जमने लगा। उसने लड़खड़ाते हुए व्यग्र स्वरमें पूछा, "लेकिन तुमने अंगूठी बेच तो नहीं दी?"

"क्यों नहीं? तुम भी कैसी नादान बच्ची हो इल्ले, जब एक वज्रलण्ठ जौहरी मुझे जापानी मोती बताकर ३०० में ऐसी चीज बेच देता है और उसी मोतीके लिए दूसरा जौहरी ५००० मार्क देनेको तैयार है, तब क्यों नहीं बेच दूं? पता नहीं, सही कौन है, मुझे तो सिर्फ इतनेसे मतलब कि मैंने ५००० मार्क अपनी जेबके हवाले किये। मैं अपने पास ४७०० मार्क रखकर तुम्हें ३०० मार्कका उपहार दे दूंगा। बस, तुम्हें और क्या चाहिए? कहो, कैसा सौदा रहा?*

———

* मारिस डीकोबराकी एक कहानी।



अपराधोंकी खोजमें फोटोग्राफीके करिश्मे

श्री विश्वनाथ सेठी, एम० एस-सी०

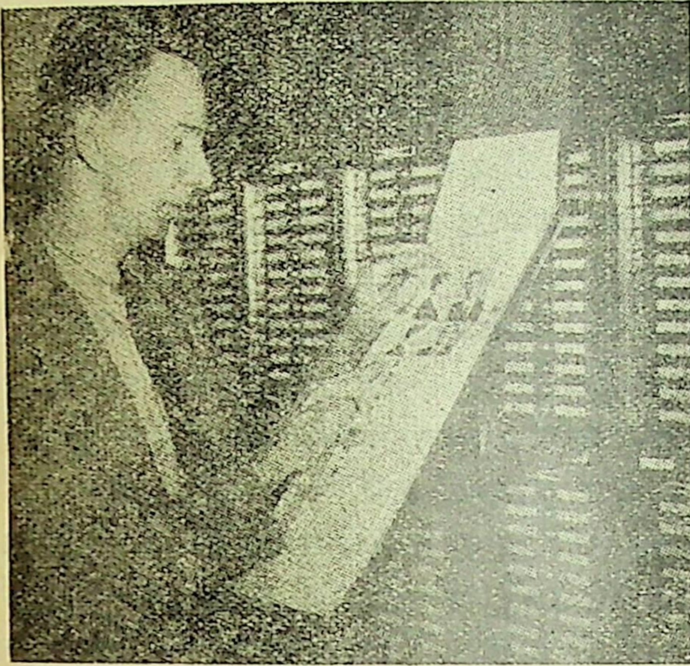
अमेरिकामें पिछले कुछ ही वर्षोंमें विज्ञानने जैसी उन्नति की है, वह एकदम आश्चर्यजनक है; पर इससे भी अधिक आश्चर्यजनक यह है कि तरह-तरहके लोगोंने विज्ञानका कैसा उपयोग करना शुरू किया है। अमेरिकासे इधर चोरी, डकैती तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके जैसे सनसनीखेज हथकण्डोंके समाचार आते रहे हैं, उनमें उठाईगीरों और बदमाशोंने विज्ञानकी जैसी सहायता ली है, उसे देखकर दांतों-तले अंगुली दबानी पड़ती है। हालीउडके अभिनेताओंके अपहरणसे लेकर चार्ल्स लिण्डबर्गके लड़केके अपहरण तथा अनेक भीषण हत्याकाण्डोंमें अदालतोंमें जैसी-जैसी बातें सामने आयीं, वे अत्यन्त आश्चर्यजनक रही हैं। इन काण्डोंकी भीषणता देखकर न केवल आम जनता, बल्कि अमेरिकन पुलिसके लिए भी एक कठिन समस्या उत्पन्न हो गयी कि इन खतरोंका सामना कैसे किया जाय।

अब उन्होंने भी विज्ञानकी शरण ली। एक ओर चोरों, उठाईगीरोंने विज्ञान द्वारा अशान्ति मचा रखी थी और दूसरी ओर उन्हें पकड़ने एवं सजा दिलानेमें भी सहायता विज्ञानसे ही मिली।

तो इस प्रकार अपराधोंकी खोजमें फोटोग्राफीसे सहायता लेनेकी बात सोची गयी और वस्तुतः फोटोग्राफीने इस दिशामें बड़े अनोखे करिश्मे कर दिखाये। अपराधोंकी खोजमें फोटोग्राफीके इन करिश्मोंकी सम्भावना पहलेसे ही सोची गयी थी, जब सबसे पहले अंगूठोंकी छापके चित्रों द्वारा अपराधियोंका पता लगानेमें सहायता मिली। अब फोटोग्राफीने आश्चर्यजनक उन्नति कर दिखायी है। अपराधोंको रोकनेके लिए अमेरिकाने जैसे बड़े-बड़े कानून इधर बनाये हैं, उनकी सफलता फोटोग्राफीकी सहायता बिना हो ही नहीं सकती थी।

अपराधोंकी खोजमें फोटोग्राफीकी सहायता शुरूसे ही ली जाती रही है, जब काफी दिनों तक केवल चेहरे तथा अंगूठे आदिके फोटोसे ही काम लिया जाता था। लेकिन अब यह प्रणाली इतनी विकसित हो गयी है कि घटनाओंके चित्र भी लिये जाते हैं और उन चित्रोंका अदालतमें इस प्रकार प्रदर्शन किया जाता है, मानो न्यायाधीशोंके सामने घटनास्थल ही सारी घटनाओं सहित उपस्थित हो जाता है। किसी मामलेमें जहां वकीलों द्वारा बहस-मुबाहसे होते हैं, वहां साथ-साथ घटनाओंके वास्तविक फोटो भी होते हैं, जिनसे सारी दृश्यावली आंखोंके सामने आ जाती है और घटनाओंकी वास्तविकता समझनेमें सहायता मिलती है। इसलिए कितनी ही प्रयोगशालायें बन गयी हैं, जिनमें ऐसे चित्रों द्वारा घटनाओंकी छानबीन करके प्रमाण एकत्र करनेकी कोशिश की जाती है। अदालतोंने इस नयी प्रणालीको बड़ा कारगर पाया है।

अमेरिकाके खोज-विभागके दफ्तरमें ऐसी दर्जनों आलमारियां हैं, जिनमें तरह-तरहके व्यक्तियोंके लाखों फोटो सुरक्षित रखे गये हैं। पुलिसके ये बड़े मूल्यवान रेकर्ड हैं। इनसे न केवल अपराधियोंको सजा दिलानेमें सफलता मिलती है, बल्कि उनके कारण ऐसे लोगोंको भी शिनाख्त करनेमें सहायता मिलती है, जिनके फोटो पहलेसे नहीं रहते। इस सम्बन्धमें यह बड़ी मजेदार बात है कि पुलिसके पास तरह-तरहकी खोपड़ियों, दन्त-पंक्तियों और शरीरके दूसरे-दूसरे विभिन्न अङ्गोंके फोटो बहुत बड़ी संख्यामें रखे गये हैं। शरीरपर किस प्रकारकी चोट लगनेपर कैसे घाव होते हैं, हत्या करनेपर पिस्तौल, तमञ्चे, बन्दूक, बम, छुरी आदि विभिन्न हथियारोंसे कैसे-कैसे घाव होते हैं, और उनका हृदयकी गतिपर कैसा और किस प्रकार प्रभाव पड़ता है, इन सबके फोटो भी वहां सुरक्षित रखे गये हैं। जब कभी किसी मामलेमें सन्देह उत्पन्न होता है और उस व्यक्ति सम्बन्धी फोटो अप्राप्य होते हैं, तब उसे लगी हुई चोट तथा दूसरे चिह्नोंसे सुरक्षित फोटोग्राफोंसे तुलना करके घटनाको समझनेकी कोशिश की जाती है। आम तौरपर एक प्रकारका प्रहार होनेपर उसी प्रकारके चिह्न भी बनते हैं, इसलिए इससे घटनाओंके समझनेमें जो कुछ सन्देह रह जाते हैं, उनका भी निराकरण दूसरे प्रमाणोंकी सहायतासे हो जाता है।

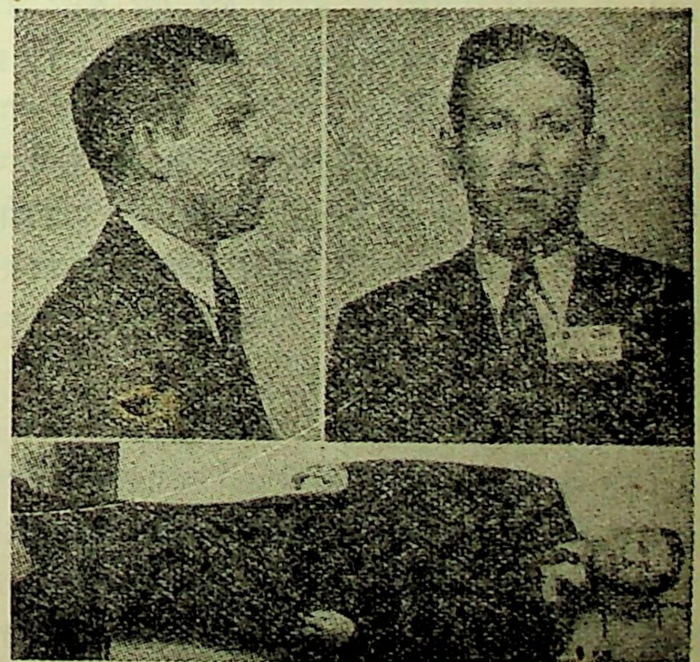


खोज-विभागका एक कर्मचारी चित्र मिला रहा है।

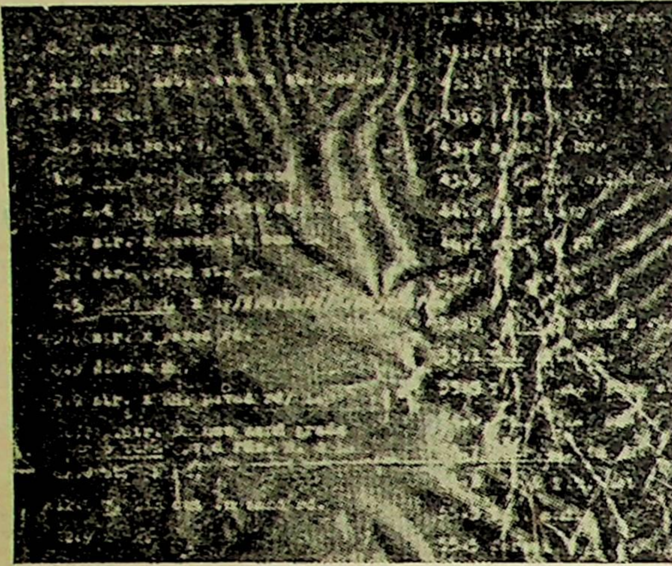
वहांके वैज्ञानिकोंने इस प्रणालीको इतना सफल पाया है कि इसे पूर्ण करनेके प्रयत्नमें वे लगे हुए हैं। न जाने कितने अपराधियोंके रङ्गीन और बोलते चित्र उन्होंने बनाये हैं और अब भी इस सम्बन्धमें नये-नये प्रयोग चल ही रहे हैं। खुफिया विभागवालोंको सिखाया जाता है कि विभिन्न फोटोका विश्लेषण करके उन्हें किस प्रकार तरह-तरहके मनुष्योंकी आकृतियों एवं अङ्ग-प्रत्यङ्गकी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए, जिससे उन्हें वास्तविक अपराधियोंको पहचान-कर खोज निकालनेमें सफलता मिल सके। फेडरल ब्यूरो द्वारा पुलिसका जो खोज-विभाग है, उसकी ओरसे चलने-वाली नेशनल पुलिस एकाडेमीकी परीक्षामें पुलिसको इस विषयमें भी नियमानुकूल परीक्षा देनी पड़ती है। एकाडेमीने इसके लिए फोटोग्राफीके समस्त नवाविष्कृत यन्त्रोंसे युक्त एक स्टूडियो खोल रखा है, जिसमें ढेरके ढेर चित्र, बोलते चित्र, स्लाइड्स तथा दूसरी सारी सामग्रियां रखी गयी हैं।

शिनाख्तके लिए जिन दूसरी सामग्रियोंको पुलिसने एकत्र करना शुरू किया है, वे हैं तरह-तरहके कपड़ों, हीरे-जवाहरात तथा दूसरी घरेलू वस्तुओंके फोटो। इसमें दो लाभ हैं। खोज करनेमें इन चित्रोंसे बड़ी सहायता मिलती है, क्योंकि अपराधियोंको पकड़ने और उनकी स्वीकारोक्तियोंके बाद उनके बताये स्थानोंसे उक्त वस्तुओंको पहचानकर बरामद करनेका काम बड़ी कठिनाईका रहा है। चीजोंकी आकृति, रूप-रङ्ग, गुण आदिका ठीक-ठीक ज्ञान न होनेपर उनकी पहचान कठिन रही है, अतः ऐसी वस्तुओंकी फोटो-ग्राफीने यह कठिनाई हल कर दी। साथ ही इससे एक लाभ और भी हुआ है। ऐसी वस्तुओंका पता लगनेपर इनके वास्तविक मालिकके लिए भी बेईमानी करनेका मौका नहीं मिलता। जिन वस्तुओंके फोटो हैं, उन्हींको वे मांग सकते हैं। अन्यथा इस बातके भी खतरे कम नहीं हैं कि कोई बदमाश झूठमूठकी चोरी लिखाकर किसी शत्रुको हैरान करनेकी कोशिश करे। अमेरिकामें ऐसी ठगविद्या भी काफी प्रचलित हो गयी है। इसलिए यदि विज्ञान ऐसे लोगोंसे सच्चे लोगोंकी रक्षा न कर सका, तो उसकी उपयोगिता ही क्या? पुलिस बराबर इस बातपर जोर डालती रहती है कि बहुमूल्य वस्तुओंके फोटो लेकर उनपर उनके सम्बन्धमें दूसरी आवश्यक बातोंका विवरण भी अवश्य रख लिया जाय। अमेरिकाकी कितनी ही इन्स्योरेन्स कम्पनियां इस नियमका पालन करती हैं।

घटनास्थलपर होनेवाली घटनाओंके फोटोके विषयमें पहले लिख चुके हैं। हत्या, मारपीट, डकैती और मोटर आदि-की दुर्घटनाओंके चित्र साफ तौरपर बताते हैं कि घटनायें वास्तवमें कैसे और किस क्रमसे हुईं। अदालतमें खड़ा गवाह झूठ बोल सकता है, और अपराधी इस ख्यालसे निधड़क



एक व्यक्तिके विभिन्न फोटो, इस प्रकार लिये जाते हैं।



कार्बन पेपरकी लिखावट भी रोशनी विशेषमें स्पष्ट हो रही है।

झूठ बोल सकता है कि घटनास्थलपर देखनेवाला कोई भी न था; पर 'कैमरा झूठ नहीं बोलता' यह कहावत है और अमेरिकन अदालतोंमें यह कहावत कितनी ही बार चरितार्थ हो चुकी है।

अमेरिकाकी कई कम्पनियोंने ऐसे कैमरे निकाले हैं, जो स्वतः काम करते हैं। और कितने ही सार्वजनिक स्थानोंपर ऐसे कैमरे लगाये गये हैं, जिनसे अपने-आप फोटो उतरते चलते हैं। कितने ही बैङ्कों तथा दूसरे बड़े फर्मोंने भी ऐसे कैमरे लगा रखे हैं, जहां चोरी-डकैतीका खतरा रहता है। इन केमरोंमें ऐसे केमरे भी हैं, जो घनी अंधेरी रातमें भी फोटो खींच सकते हैं। इस प्रकारके फोटोको देखनेके लिए भी वैज्ञानिकोंने कई साधन ढूंढ़ निकाले हैं, जिनसे अस्पष्ट फोटो भी देखे जा सकते हैं। ऐसे अस्पष्ट फोटोपर इन्फ्रा-रेड-रोशनी डालते ही देखा जाता है कि धुंधली चीजें भी स्पष्ट हो जाती हैं।

पहले फोटोग्राफर कहा करते थे कि आपकी आंखें जो नहीं देख सकतीं, उनका फोटो आप नहीं खींच सकते। फेडरल ब्यूरोकी ओरसे अपराधोंकी खोजके लिए जो प्रयोगशाला है, उसमें होनेवाले सफल प्रयोगोंने इस कहावतको भी गलत साबित कर दिया है। हाथके लिखे हुए कागजात तथा जालसाजियोंके मामलोंमें भी देखा गया है कि अल्ट्रा-वायलेट रोशनीसे उनका फोटो लेनेपर हूबहू वास्तविक चीजका फोटो निकल आता है और किसी प्रकारकी जालसाजीके लिए मौका ही नहीं रह जाता। कार्बन पेपरपर भी पाये जानेवाले चिह्नों, लिखावट आदिके फोटो उतारनेकी क्रिया विकसित हो गयी है। कभी-कभी लिखावट इतनी घिस जाती है कि कुछ भी पढ़ना असम्भव होता है, पर इन्फ्रा-रेड-फोटोग्राफीसे वे घिसी चीजें भी उभर आती हैं।

यह सब तो उन वस्तुओंकी फोटोग्राफीके लिए हुआ, जो स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं और जिनका सम्बन्ध घटित होनेवाली किसी घटनासे होता है। लेकिन ऐसी बातोंके लिए क्या किया जाय, जो स्पष्ट नहीं होतीं, अथवा जिन्हें हमारी आंखें देख नहीं पातीं। परन्तु केमराने साबित किया है कि वह हमारी आंखोंसे तेज है, और वह भीतर बांधकर रखी हुई वस्तुओंका भी फोटो ले सकता है। मान लीजिये कि डाकघरमें कोई ऐसा पारसल आया, जिसके सम्बन्धमें अधिकारियोंको सन्देह हुआ। वे तुरन्त उसका एक्स-रे फोटो लेते हैं और भीतरकी सारी वस्तुओंके फोटो साफ बताते हैं कि पारसलके भीतर क्या है। मनुष्यको लगी हुई गोलियोंके भीतरी घावोंके भी फोटो हैं, जो इन सारी बातोंको स्पष्ट करते हैं।

फोटोग्राफीके इन साधनोंकी उपयोगिता रेडियोके विकासके कारण और भी बढ़ गयी है। अंगूठेके निशानके फोटो उसी प्रकार भेजे जाते हैं, जिस प्रकार मामूली फोटो भेजे जाते हैं। ये सभी फोटो रेडियोपर भेजे जाते हैं। रेडियो द्वारा जिस प्रकार फोटो भेजे जाते हैं, वह कला काफी विकसित हो गयी है। पुलिसके प्रधान कार्यालयमें जहां व्यक्तियोंकी शिनाख्तके लिए अंगूठेके निशान, फोटो आदि वस्तुयें रखी गयी हैं, वहांसे उसके अधीनस्थ दूसरी सभी पुलिसकी शाखाओंसे रेडियोका सम्बन्ध है। अतः किसी भी अदालतमें मामला चलने और अपराधीके सम्बन्धमें सन्देह होनेपर फौरन् प्रधान कार्यालयसे ये सारी चीजें रेडियो द्वारा बड़ी आसानीके साथ भेजी जाने लगी हैं। इनके भेजनेकी प्रणाली वही है, जिसके सम्बन्धमें 'विश्वमित्र'में कई दफे लिखा जा चुका है। रेडियोसे छपनेवाले अखबारोंके सम्बन्धमें एक लेखमें बताया जा चुका है कि किस प्रकार यह कार्य सम्पादित होता है और रेडियोपर फोटो किस प्रकार निकलते हैं, यह भी लिखा जा चुका है। पुलिसने अपराधोंके दमनके लिए इन सब साधनोंका उपयोग किया है।

पुलिस-विभागने एक नये यन्त्र टेली टाइप-प्रिण्टरका भी उपयोग इस काममें करना शुरू किया है। इस विभाग द्वारा १२५००० मीलके अन्तर्गत रहनेवाले लगभग ३९,०००,००० व्यक्तियोंके जान-मालकी रक्षा करनेका प्रयत्न किया जाता है। न्यूयार्क, केलीफोर्निया आदि दर्जनों स्थानोंपर यह यन्त्र दिन-रात सावधानीके साथ काम करता रहता है। मान लीजिये, न्यूयार्कमें किसी चोरीका पता चला, तो तत्काल टेली टाइप प्रिण्टर दर्जनों स्थानोंपर खबर दे देगा कि चोरी किस प्रकार हुई। किसी भी दूसरे साधन द्वारा इतनी आसानीसे इतनी जल्दी समाचार नहीं पहुंचाये जा सकते थे।

मोटरोंमें लगे हुए कैमरे किस प्रकार दुर्घटनाओंके फोटो स्वतः लेते हैं, यह हम लिख चुके हैं। ये इतने शक्तिशाली होते हैं कि खूब तेज चालमें चलनेवाली गाड़ियोंकी गतिसे फोटो लेनेमें इन्हें तनिक भी बाधा नहीं पहुंचती। एक बात और है। जहांपर कैमरे लगे रहते हैं, वहीं एक ऐसा यन्त्र भी लगा रहता है, जो इस बातको रेकर्ड करता जाता है कि किस जगह कितनी तेजीसे गाड़ी चलती रही है। दुर्घटनायें जब होती हैं, तब इस बातका भी जानना आवश्यक हो जाता है कि उस समय गाड़ीकी चाल क्या थी और ड्राइवरकी जिम्मेदारी अपराधमें कितनी है। कभी-कभी ऐसा भी होता है, खासकर पुलिसकी अपराध रोकनेवाली गाड़ियोंमें, कि ड्राइवरको एक नन्हा-सा माइक्रोफोन भी पहने रहना पड़ता है। यह माइक्रोफोन प्रायः कोटके बड़े बटन-सा ही होता है और घटना-स्थलपर जैसे शब्द होते हैं, उन सभीका रेकर्ड इसके भीतर होता चलता है। ये सब ऐसे साधन हैं, जिनकी सहायतासे अपराधोंका पता लगानेमें बड़ी सहूलियत होती है।

इसलिए अमेरिकन अदालतोंमें ऐसे मामलोंकी अब कमी नहीं रहती, जिनमें कितने ही फोटो एक-एक करके पेश किये जाते हैं। सबसे पहले अपराधीके अंगूठेका चित्र आता, फिर घटना सम्बन्धी कई चित्र एक-एक करके आते हैं। ये वे मूक गवाहियां हैं, जो मानो चिल्ला-चिल्लाकर सारी कहानी बताती हैं। आदमी झूठ भी बोल सकता है, लेकिन कैमरा कैसे बोले? फोटोग्राफीके इन करिश्मोंने अमेरिकामें अपराधियोंके नाकमें दम कर रखा है।

गीत

फूल दो तुम फूल!

दूर कर दो चयन कर सब वेदनाके शूल!!

चतुर्दिक् नव स्वर्णिमा हो;
चिर-अमा मेरे गगनकी
मुग्ध शारद पूर्णिमा हो

विजन वन हो फुल्ल नन्दन;
और, धुंधली अश्रु-रेखा
हो मधुर-मृदु स्मित चिरन्तन!

क्लान्त जीवनकी उदासी
प्रिय, करो उन्मूल!
फूल दो तुम फूल!!

ढांक जीवन-ज्वालपर दो
स्नेह-सजल दुकूल!
फूल दो तुम फूल!!

दूर कर दो चयन कर सब वेदनाके शूल!

—जितेन्द्रकुमार।

जीवनका तर्क

श्री रमेशचन्द्र सिन्हा

उसे भेज आकर वह वापस आया, तो कोठरीका ताला खोला और कोटको कुर्सीपर डाल हफ्तोंके पड़े, मुड़े-सिकुड़े बिछौनेपर पड़ गया। अभी सिर्फ आठ बजे थे, और दसके पहले उसे ऐसा कोई काम न था, जिसमें दूसरे भी शामिल हों।

इन दो घण्टोंमें वह कोई काम करना भी नहीं चाहता था। उसका दिल भारी था। उस अंधेरी कोठरीमें भी वह अपने अन्दर एक गहरे अन्धकारका अनुभव करता। एक अदृश्य वेदनासे वह विचलित हो रहा था—मालूम होता कि यदि स्पञ्जकी तरह उसके दिलको कोई जोरसे दबा दे, तो उसके अन्दरका दर्द निकल जाये। वह कुछ हलका हो, उसे कुछ शान्ति मिले।

उसके चले जानेपर वह एकदम अकेला रह गया था। काम—काम—काम! दिनभर दौड़ना, रातको बैठकर काम करना। कामके दौरानमें दिनमें एकाध बार कहीं-न-कहीं उसे देख पानेकी आशासे वह हवामें उड़ा करता। अक्सर कहीं-न-कहीं वह मिल ही जाती : उसके भाव जैसे टकरा जाते। कोई विशेष बात न होती, फिर भी सफलताका उल्लास उसे घेर लेता, उसका दिन सार्थक हो जाता। प्यास और बढ़ती, तीव्रसे तीव्रतर। और जिस दिन वह न दिखती, या कार्याधिक्यके कारण वह उसकी तरफ न जा पाता, एक जबर्दस्त आकर्षण उसे खींचता रहता। एक बार उसे देख लेनेके लिए वह बेकल रहता। और बिना सोचे-विचारे वह अपनी तीव्र इच्छाके साथ वह जाता; साइकिल उठाता, इस काम—उस कामके बहाने उसके कमरेकी तरफ चक्कर लगा आता। कहीं वह दिख जाये! सड़कपर या दरवाजेपर खड़ी या घूमती हो!

कभी-कभी वह दूर सड़कपर कहीं आड़में खड़ा होकर खिड़कीके जंगलोंमेंसे देखता, सफेद प्रकाशसे भरे अपने कमरेमें वह इधर-उधर आती-जाती अथवा मेजपर बैठी दिख जाती। पर सन्तोष न होता। इच्छा तो यह रहती कि वह भी देखे। कितनी बार नहीं उसने ऐसी ही किसी फुर्सतकी सन्ध्याको आकर साइकिलकी हवा निकाल दी थी, और सोचा था कि इसी बहाने उससे मिल आऊं। फिर भी दरवाजेसे आगे बढ़नेकी हिम्मत न हुई थी। और, तब वह मुंह लटकाये तारोंसे भरी रातमें, साइकिल हाथमें थामे मीलों चलकर घर लौट आया था। फिर उसकी निराशाको कामने समेटकर अपनेमें छिपा लिया था।

पर क्यों, क्या गलती उसकी थी? चारपाईपर करवटें बदलता वह सोचने लगा। चुननेका प्रश्न था!

पुराने सब दृश्य उसके सामने थे। अतीत कोई बहुत आकर्षक और रङ्गीन नहीं था; घटनाओं या विशेष परिस्थितियोंके नाम बहुत ही कम था—कोई ऐसा भी विशेष मौका नहीं था जिसमें शीलने कुछ कहा हो, उसके छरहरे मौन शरीरके अन्दर क्या चलता रहता है, उसे उसके सामने उड़ेलकर रखा हो। उसके हृदयका थाला कलीके नीचे फैला पड़ा था, किन्तु कलीने कभी अपनी पंखुड़ियां भी अधिक न खोली थीं कि वह उसके अन्दर कहने-सुनने लायक कुछ देख सकता··· ···यद्यपि यह कहना भी मुश्किल है कि उसने कभी इसी रूपमें इस प्रश्नपर, सामनेसे, गौर किया हो कि वह खुले, उसके अन्तरतमको पढ़ा जाये। उसके नाम तो वह उससे डरता ही रहा था। किन्तु पिछले साल-डेढ़ सालकी यह रोज उसे एक नजर देख लेनेकी शृङ्खला तो थी ही—सार्थक और अतृप्त सन्ध्याओंकी लम्बी दुरङ्गी शृङ्खला!

बड़ी सीधी-सी कहानी थी, यदि उसे कहानी कहा भी जा सके।

(२)

तब उसने पढ़ना नहीं छोड़ा था। 'पेशेवर क्रान्तिकारी' तो था, क्योंकि खाली सन्ध्यायें ही नहीं, दिन-रात सारा समय उसका काम ही में जाता था; किन्तु यूनीवर्सिटीमें एम० ए० के आखिरी महीनोंमें उलझा हुआ था।

विद्यार्थी सङ्घकी तरफसे बड़ी मीटिङ्ग थी। कई वजहोंसे शहरमें सनसनी थी। दो हजारसे ऊपर विद्यार्थी अपनी संस्थाओंसे बाहर थे। बदले हुए जमानेका रुख न सम-

इनेकी वजहसे दकियानूसी मास्टरोंकी तानाशाहीसे समस्त विद्यार्थी-समाज विक्षुब्ध हो उठा था।

वह बोल रहा था। उस तनातनीके वातावरणमें काफी अर्से तक बोलने और कुछ लोगोंके अनुचित आक्षेपोंके उत्तर देनेमें वह उद्वेलित हो उठा था। इसलिए खतम करके जब वह बैठनेके लिए जल्दीमें मुड़ा, तो अचानक उसका पैर समीप ही बैठी उसके पैरपर पड़ गया। मुलायम पैरके स्पर्शसे उसने चौंककर नीचे देखा, तो सिकुड़ती हुई शीलकी दो आंखें ऊपर उठी मिलीं। सीधा उसका हाथ उसके पैरपर पहुंच गया—फिर क्षमा मांगता हुआ वह एक तरफको निकल गया।

शायद घटना बड़ी साधारण थी—किन्तु बादमें अक्सर उसे उसको याद आती रही; क्योंकि उसकी भी तो याद आती ही थी, दो-एक बार पहले भी उसका ध्यान इस लड़कीकी तरफ गया था। पैर छूनेपर उसने क्या सोचा होगा! यह सोचकर वह परेशानीका अनुभव करने लगता, यह लड़की हर लड़की तो नहीं थी!

इसके थोड़े दिन बाद ही शर्माने उसका ट्यूशन तय कर दिया। ट्यूशनके बगैर उसका काम नहीं चल सकता था। घरवालोंकी सारी इच्छाओंके खिलाफ चलकर भी, वह उनसे सहायता नहीं ले सकता था। वे भी तो जानते ही थे कि एम० ए० के बाद ही यह सारा वक्त काममें लगाने लगेगा। दिन-ब-दिन वह उनसे दूर होता जा रहा था।

फिर भी एक लड़कीका—बी० ए० में पढ़ती लड़कीका ट्यूशन करनेमें वह झिझका। सोचा-विचारा। मित्रोंने भी कहा, तो उसने स्वीकार कर लिया।

पहले दिन जब उसने उसके कमरेमें प्रवेश किया और वह उठकर सामने खड़ी हो गयी, तब तो वह एकदम विवर्ण हो उठा। समझमें ही न आया कि क्या करे। वह कुछ बोला नहीं। सोच रहा था, वह भी तो पहचान गयी होगी···उस मीटिङ्गकी घटना उसके सामने घूम गयी।

फिर पढ़ाई होने लगी। राजनीति और अर्थशास्त्र—यही बी० ए० में उसके भी विषय रहे थे, और अर्थशास्त्रमें तो वह एम० ए० ही कर रहा था।

मार्क्सवादी अर्थशास्त्रका उसने बखूबी अध्ययन किया था। अक्सर पढ़ाते वक्त पूंजीवादी अर्थशास्त्रज्ञोंकी त्रुटियोंका विवेचन करते-करते वह जोशमें आ जाता, उसकी वाणी तीक्ष्ण और तेजमय हो उठती, और फिर आवेगमें तमाम सम्बन्धित दर्शन, प्राणिशास्त्र और राजनीतिके सिद्धान्त आ उपस्थित होते। पुस्तकका विषय वहीं रह जाता। वह सुनती रहती; कभी एकाध प्रश्न भी कर लेती।···इन्हें जब होश आता, तो फिर सामने रखी किताब और नोटबुकपर आ जाते।

क्लासके बाद कितनी ही बार उसने यह सोचनेकी चेष्टा की थी कि मेरे इस तरह इधर-उधर बहक जानेसे वह क्या सोचती होगी। कहीं मैं उसका समय तो नहीं बर्बाद करता, आवश्यकतासे अधिक तो नहीं दिलचस्पी लेता। पर इनका उत्तर उसे कहां मिलता!

धीरे-धीरे उनकी कमीदगीकी दीवाल कम हुई। वह काफी जहीन थी, पढ़ने-लिखनेमें उसे काफी रुचि थी, अपने कालेजके विषयोंके अलावा वह इधर-उधरकी बहुत-सी किताबें पढ़ने लगी। वह उसे किताबें ला-लाकर देता, और फिर उनपर बहस होती। उसे भी उसे पढ़ानेमें बहुत दिलचस्पी हो गयी थी; हमेशा नयी-नयी चीजें बतलाता। यदि कभी कोई अच्छी किताब आ जाती, तो उसके लिए वह खरीद लाता, चाहे फिर बादमें उसे अपने कई खर्चे कम करने पड़ते। गहरे अपनत्वसे भरे भी आम अ-वैयक्तिक जीवनमें यहां उसे अपने व्यक्तित्वकी एक छाया-सी नजर आती।

उन दोनोंके दैनिक जीवनमें वह घण्टा-डेढ़ घण्टा बड़े महत्त्वका हो गया—दोनों ही सारे दिन उसकी प्रतीक्षा किया करते थे। कभी-कभी मीटिङ्गों या किन्हीं अन्य कारणोंसे वह न आ पाता, तो घण्टों वह बंगलेके फाटकपर ही घूमती रह जाती। उस वक्त वह चाहे कहीं भी होता, उसकी भी तबियत न लगती।

पढ़ाते वक्त कभी-कभी उसके कमरेमें उसके उन रिश्तेदारकी लड़कियां, जिनके यहां एक कमरेमें वह रहती थी, आ जातीं—या उसकी क्लासकी या अन्य मित्र लड़कियां। वे उसे जानती थीं, प्रायः कोई बहस-तलब जिक्र छिड़ जाता, और तब तर्क-शर चलने लगते। वह बहुधा चुप ही रहती, सिवा कभी-कभी उसके पक्षमें एकाध अधूरे वाक्यके, जो उसके मुंहसे प्रायः अनायास निकल जाता। इस तरहकी बहसोंमें बहुधा देर हो जाती, और बादमें उसे पछताना

होता; किन्तु ऐसे अवसरोंपर शीलकी दिलचस्पीकी ज्योति उसे खींच ले जाती, समय और दिशाका ध्यान न रहता।

उसके सख्त जीवनमें रातका यह समय कोमल स्थल था। हृदयकी समस्त कोमल भावनायें उसीके चारों ओर केन्द्रित रहतीं, और दिन और रातमें बारम्बार उसका ध्यान उस घण्टेकी ओर खिंच जाता। ठीक समयपर और बिला नागा पहुंचनेके लिए वह उतावला रहता। कभी-कभी वह खुद चौंक पड़ता—इतना उद्वेग क्यों! तर्कोंसे उत्तर मिल जाता; किन्तु मन सन्तुष्ट न होता।

कहीं वह मोहमें तो नहीं बढ़ रहा है! और वह परेशान हो उठता! भयभीत-सा! सोचता, क्या मैं बहुत बहा जा रहा हूं...स्नेहकी तरफ इस अन्तकी कल्पनासे ही वह शङ्कित हो उठता...बन्द कर दूं? यहीं फिर दिमाग सामने आ जाता, सख्त, निर्मम; नहीं जी, वह तो मेरी स्टूडेण्ट है, उसने तो नहीं कभी किसी किस्मकी उत्सुकता जाहिर की। एक अप्रकट हल्की-सी निराशाकी छांह ही पड़ जाती। प्रतिक्रिया-स्वरूप उसका मन फिर सिर उठाता, क्या उसका रुख मेरी तरफ सीधे एक बाहरी ट्यूटरका-सा रहा है! उसकी इतनी निष्ठा, इतनी उत्कण्ठा, मेरे पढ़ानेमें इतनी रुचि, काममें बढ़ती हुई दिलचस्पी, क्या उन सबमें सामीप्यके रङ्गकी एक भी गुत्थी ऐसी नहीं...एक गांठ और पड़ जाती।

उसके बाद सालके आखिरकी तरफ वह घटना घटी।

किसान-सभाकी मीटिङ्गसे लौट रहा था, रास्तेमें जमीन्दारके गुर्गोंने घेरकर चार-छः डण्डे लगाये, पासमें जो कुछ था, कब्जेमें किया और उसे बेहोश छोड़कर चलते बने। उसके पैरमें बेतरह चोट आ गयी थी। ९-१० दिनके लिए उसे घरपर ही पड़ा रहना पड़ा।

और कामोंके अलावा पढ़ाने जाना भी स्थगित कर देना पड़ा। उसने एक साधारण पर्चा लिखकर आ सकनेकी अक्षमता प्रकट करते हुए भेजवा दिया।

दूसरे ही दिन शामको उसका तांगा आ पहुंचा। दो-एक किताबें और कापियां लेकर वह उसके कमरेमें आ पहुंची। वह अकेला एक आराम-कुर्सीपर पड़ा कुछ सोच रहा था। अभी-अभी लोग उसे छोड़कर गये थे, वर्ना दो-चार लोग उसे घेरे ही रहते थे। अचानक उसे देखकर चौंक पड़ा—

"ओह, आप कहां? मकान कैसे मिल गया? साइकिल-पर आयी हैं?"

चारपाईपर एक किनारे धीरेसे बैठती हुई वह बोली—

"अब आपका पैर कैसा है?"

"अच्छा है, लेकिन चार-छः दिन चल-फिर नहीं सकूंगा।"

"मैंने सोचा था, आपको बहुत चोट आ गयी होगी, इसीलिए चली आयी। तांगेवाला आपके पतेसे ले आया।"

फिर वह चुप हो रहा। समझमें नहीं आ रहा था, अब क्या बात करे। वह भी चुप थी। इसीने खामोशीको तोड़ते हुए कहा—

"क्या किताबें लायी हैं—क्या पढ़ रही हैं?"

"कुछ नहीं, यह तो जीड है। क्या आप दिनभर अकेले ही पड़े रहते हैं?"

"नहीं, यहां तो जान छुड़ाना दुश्वार हो जाता है, दिन-भर कोई-न-कोई बैठा ही रहता है, लोग समझते हैं, आजकल मुझे कोई काम करनेकी जरूरत नहीं।"

उसके बाद भी इधर-उधरकी ही बातें होती रहीं। थोड़ी देर बाद उसने इजाजत लेकर किताबोंकी आल्मारी देखनी शुरू कर दी, देखभालकर दो-चार किताबें निकाल लायी और फिर उन्हींके बारेमें बातें होने लगीं।

लगभग डेढ़-पौने दो घण्टे बाद उसने अपनी कापी-किताबें उठायीं, और चली गयी।

दूसरे दिन उसी वक्त फिर वह मौजूद थी। वही किताबें और कापियां, किन्तु पढ़ने-लिखनेका नाम नहीं। वह जब पढ़ने-लिखनेकी बात कहता, तो वह कह देती, "वह तो मैं खतम कर चुकी हूं—कोर्स तो सब कभीका पूरा हो गया...", "पढ़ तो इतना लिया है कि अगले वर्ष तक जरूरत नहीं पड़ेगी।" आदि।

पर उसका आना जारी रहा। रोज वह शामको पूरी विद्यार्थिनी बनी आ पहुंचती।

खाली दिमाग नरेनको सोचनेका बहुत मौका मिलता। अप्रकट रूपसे उसके आनेकी राह देखता हुआ भी वह इन सब बातोंपर सोचता। निश्चय ही वह पढ़नेके लिए तो नहीं आती थी! ...और तब वह सावधान हो उठता, कहीं गलत आकांक्षायें न वह पालने लगे! स्नेह! जीवनमैत्री! ...असम्भव।

इसे आगे नहीं बढ़ना चाहिए...और तब वह निश्चय करता कि किसी तरह यह उसे बतला दे। वह खूब अच्छी तरह समझ ले कि इससे आगे कुछ नहीं हो सकता —कतई नामुमकिन है।

वह इन्हीं विचारोंके बोझसे दबा रहता—किन्तु समझमें न आता था कि किस तरह वह उन्हें उसपर प्रकट करे—कि अनायास उसे अपने भावोंको उसके सामने जाहिर करनेका मौका मिल गया।

एक दिन वे दोनों बैठे ही थे कि शर्मा भी आ पहुंचा। वह आज जैसे फुर्सतमें था—सिनेमा और टैनिससे छुट्टीपर। आते ही उसने अपना कोट उतारकर टांग दिया, और जमकर एक कुर्सीपर बैठ गया। मालूम होता, वह आज बहस करनेपर तुला हुआ था। छूटते ही उसने कहा—

"कहो जी, क्या हाल है! भुगत रहे हो न अपनी जिदका फल। कितनी बार कहा कि जरा सावधानीसे चला करो। दिनभर इधरसे उधर मुंह उठाये दौड़ते हो।"

"आज तुम छुट्टीपर मालूम होते हो, क्या कोई अच्छी तसवीर नहीं आयी है।" हंसते हुए उसने जवाब दिया। बहस मोल लेनेकी इस वक्त उसकी तबियत नहीं थी।

"हां, तुम्हें देखने आनेके लिए सब मुल्तवी करना पड़ा। दो दिनोंसे नहीं आ सका था। न तुम यह तोता पालते और न मुझे यह सब दिक्कत उठानी पड़ती। तुम्हारी तरह पागल तो हूं नहीं कि न खेल, न कूद, न सिनेमा—स्पीचें झाड़ते फिरते हो।"

"तुम बेवकूफ हो, क्या मुझे साधू-वैरागी समझ रखा है? लेकिन तुम्हारी तरह फालतू वक्त कहांसे पाऊं, तुम्हें तो दिन-रात घूमना ही है।"

"हां, हां, जीवनका उद्देश्य यह नहीं है कि दिन-रात लिखने-पढ़नेमें, लेक्चरबाजीमें लगा रहे। उसमें खेल-कूदका भी स्थान है, हमारी उम्रका भी तकाजा है, सिनेमा और टैनिसकी भी आवश्यकता है।" वह जबर्दस्ती बहस बढ़ाता जा रहा था, "तुम्हारा जीवन अप्राकृतिक है—खेलें-कूदेंगे नहीं, दिल-बहलावकी चीजोंसे दूर भागेंगे, वरसे नाता नहीं रखेंगे, शादी नहीं करेंगे, लड़की खा लेगी इन्हें! अप्राकृतिक है, सामाजिक नियमोंके बिलकुल खिलाफ है तुम्हारा जीवन! ईश्वर-खुदा और धर्म या किस्मत नहीं मानते, सामाजिक आवश्यकता तो मानते हो?"

शील उसकी तरफ देख रही थी। क्या उत्तर देता है वह।

वह भी बिलकुल निर्लिप्त भावसे सुन रहा था। धीरेसे उसने उत्तर दिया; वह खुलनेके लिए मजबूर हो रहा था—

"अप्राकृतिक, असामाजिक जीवन! लेकिन कितनी चीजें नहीं हमारे सामाजिक जीवनमें ही अप्राकृतिक हैं! करोड़ों भुक्खड़ोंकी मौजूदगीमें लाखों मन गल्लेका जलाया या बर्बाद किया जाना अप्राकृतिक नहीं? सदियोंके परिश्रम और वैज्ञानिक अनुसन्धानोंका उपयोग विषैली गैसें और बम बनाकर मानवताकी समस्त संस्कृति, सभ्यता और नस्लको जङ्गी लूटमारकी लड़ाइयोंमें खत्म किया जाना अतार्किक नहीं? बेकार युवकोंका मजबूर होकर आत्म-हत्या करना अप्राकृतिक नहीं? जघन्य! ... ... सभी कुछ तो अप्राकृतिक है हमारे जीवनमें, इस जीवन-व्यवस्थामें; यदि अप्राकृतिकके माने यह हैं कि वह न्याय-सङ्गत नहीं, अन्यायपूर्ण है, अकारण है, प्राप्त ज्ञानके विपरीत है!

"इस सारी अप्राकृतिक सामाजिक व्यवस्थाको बदलनेके लिए ही यदि हम अपनी उम्रके कुछ तकाजोंकी उपेक्षा कर लें, तो उसमें क्या अप्राकृतिक बात है! वास्तवमें तो वही प्राकृतिक है, क्योंकि उसकी बुनियाद कारणपर है। कारण और सामाजिक ज्ञानकी रोशनीमें समाजकी त्रुटियों और असङ्गतियोंको मिटाकर एक साफ-सुथरी व्यवस्था कायम करनेके लिए, जिसमें मनुष्यकी जगह चीजोंपर, प्रकृतिपर, हुकूमत की जाये, लगना, उसमें योग देना ही प्राकृतिक और स्वाभाविक है। युग-धर्मकी—यदि धर्मका नाम देना ही चाहो—आवश्यकता है।"

"अच्छा, अच्छा, बन्द कीजिये अपने इस व्याख्यानको। लेकिन यह तो बतलाइये कि शादी क्यों नहीं करेंगे जनाब। क्या यही तुम्हारा भौतिकवादी फिलसफा कहता है—वह मनुष्यकी प्राणिशास्त्रके अनुसार शारीरिक आवश्यकता नहीं? शायद इसलिए", कहकहा लगाते हुए उसने जोड़ा, "कि कहीं गल्तीसे दो-एक गुलाम और न पैदा हो जायें! है न?" वह कहता जा रहा था।

हंसते-हंसते अचानक उसे खयाल आया कि शील भी वहीं बैठी है, तो वह किञ्चित् अप्रतिभ हो गया।

"फिर वही बात ! तुम यह क्यों समझते हो कि मनुष्यता इमसे दूर हो गयी है; हम दानव या काठकी मशीन हो गये हैं ! न हम इन्सानसे ऊपर उठकर तुम्हारे देवताओंकी तरह निस्पृह, वृत्ति-विहीन, इच्छा-विहीन हो गये हैं ! हम तो बिलकुल साधारण, आम लोगों ही की तरह हाड़-मांसके पुतले हैं, जिनपर प्राकृतिक प्रवृत्तियों और वस्तुओंकी वही प्रतिक्रिया होती है, जो एक किसी भी मामूली स्वस्थ स्त्री या पुरुषपर। न हम खेल-कूद ना-पसन्द करते हैं, न सिनेमा से हमें नफरत है—मौका लगनेपर देखता भी हूं; और, न हम किसी उसूलसे शादीके खिलाफ हैं ! मार्क्स और लेनिन दोनोंके बीबियां थीं—लन्दनमें कम्यूनिस्ट पार्टीका नाच-घर है ! हम जीवनसे, जीवनोल्लाससे नहीं भागते, उसका पूरा आनन्द लेनेके लिए ही उसे स्वस्थ, खूबसूरत और पूर्ण बनाना चाहते हैं।

"बात तो सारी परिस्थितिकी है—वैयक्तिक और सामाजिक परिस्थितियां ही व्यक्ति-विशेषका जीवन-क्रम निर्धारित करती हैं।

"लेकिन तुम्हें तो समाजके सार्वजनिक जीवन और उत्पादनसे अलग पड़ी समाजकी जोकों द्वारा यह सिखलाया ही गया है, कि मनुष्य रोटी और औरतसे ऊपर उठा, आम लीकके जीवनसे इधर-उधर हुआ, कि फिर वह मनुष्योंमेंसे एक नहीं रह सकता, या तो वह देवताकी श्रेणीमें उठ जायेगा या गिरेगा दानवकी श्रेणीमें ! तुम तो जीवनको इन्हीं श्रेणियोंके दृष्टिकोणसे देखनेके आदी हो, और न हो, तो बड़े मेलोंका आगके ऊपर उल्टा टंगा, या एक पैरपर हफ्तों खड़ा या जमीनके अन्दर बन्द साधू-नुमा नट तो कमसे कम होना ही चाहिए। है न ? नहीं तो फर्क कैसा ?

"इसलिए या तो तुम हमें पतित, भावना-विहीन मनुष्य बनाओगे या महामना, महात्मा, तपस्वी...है न ?

"सीधी बात क्यों नहीं देखते कि यदि मैं तुम्हारा-सा दैनिक जीवन बिताने लगूं, तो मैंने जो काम पसन्द किया है, उसे कौन देखे। कारण, तर्क, न्यायकी बात करते हो, क्या हक है आपको कि चीजोंको समझते हुए भी, अपने चारों ओर लोगोंको अप्राकृतिक जीवन बिताते देखकर भी, समाजके अधिकांशको अस्वाभाविक जीवनके गर्तमें सङ्घर्ष करते देखते हुए भी, अपने अकेले जीवनको—महज इसलिए कि आपके पास कुछ अधिक साधन हो सकते हैं—समाजसे अलग, कहीं प्राकृतिक और पूर्ण बनानेकी चेष्टा करें, समाजकी तरफसे आंखें मोड़कर घोंघेकी तरह अपनी ठठरीमें घुस जायें ?

"खुदाके वास्ते तर्क और न्यायका प्रश्न न उठाओ।

"सामाजिक जीवन बिताना, समाजके दुःख-दर्दमें शामिल होना ही मनुष्यका सर्व-स्वाभाविक जीवन है। यह तो हमारी शिक्षाका, सामाजिक सङ्गठनका कसूर है, जो हम ऐसे निकम्मे हो गये हैं।"

"अच्छा छोड़ो इस सब बहसको, मैं तो पूछ रहा हूं, आप शादी करेंगे ? मैं करने जा रहा हूं; कहो तो तुम्हारी भी तय कर दूं। तुम्हारी बात पूछ रहा हूं। सीधा जवाब दो।" शर्मा बहसकी दुनियासे नीचे उतरते हुए बोला।

"सीधे हां-नहींके जवाबसे कोई फायदा नहीं। मेरी परिस्थिति देखो : जब सालभर बाद, सालभर क्यों, कुछ ही महीनों बाद, मैं यूनीवर्सिटी छोड़कर पूरा समय पार्टीके काममें लगाने लगूंगा, तो मुझे घरसे भी किसी कदर अलग हो जाना पड़ेगा। मेरे खुद खानेका ठिकाना नहीं रहेगा, बीबीको खिला-पिला सकनेका सवाल तो अलग रहा, एक खाना-बदोशकी-सी जिन्दगी हो जायेगी। फिर बोलो, ऐसी जिन्दगीसे मैं किसी औरके जीवनको कैसे बांध दूं ? अपने कारण एक और प्राणीको तकलीफ देनेका खयाल अच्छा नहीं लगता।

"वैसे, उचित साधन हों, समझदार मानसिक और बौद्धिक साथी मिले, तो कौन है जो उसके लिए हाथ नहीं बढ़ायेगा? जीवन-सङ्घर्षमें कौन मानव ऐसा नहीं है, जो सबके साथ चलकर भी, एक हाथकी, जिसे वह नितान्त अपना कह सके, जिसपर वह सब कुछ उत्सर्ग कर सके, अपेक्षा नहीं करता ?

"किन्तु आवश्यकताओंकी बात जाने दो...मेहरबानी करके; भूख-प्यास, स्नेह...और भी तो कितनी ही शारीरिक और मानसिक आवश्यकतायें हैं ! और कितनोंकी यह इच्छा पूरी हो सकती है, शादीकी, आज दिन ? ...गोर्कीकी वह कहानी याद है, जिसमें एक अभागी औरत, कर्मठ और नीली रगोंसे तने बदनकी वह औरत, किसी वास्तविक प्रेमीके अभावमें अपने एक पढ़े-लिखे दोस्तके यहां आकर कभी अपनी

तरफसे और कभी अपने एक कल्पनात्मक प्रेमीकी तरफसे अपनेको, पत्र लिखवाकर उन्हें पढ़वाती और साथ-साथ लिये घूमा करती थी? मनुष्यताकी मुर्दा रूहकी भांति वे तस्वीरें मेरे चारों ओर घूमती हैं···।"

कहते-कहते वह गम्भीर हो उठा, तो बात टालते हुए उसने शीलकी विद्यार्थी-सङ्घकी ओरसे लड़कियोंमें काम करनेवाली कमेटीकी बात छेड़ दी।

और वह बात समाप्त हो गयी। किन्तु अन्तमें वह खुश था कि उसके आन्तरिक भाव शीलपर भी प्रकट हो गये; अब उनमें, आपसमें, किसी भ्रमकी गुञ्जाइश न रह जायेगी।······यह ढालू पहाड़ीपरसे तेजीके साथ गिरते विद्रोही मनके खिलाफ उसकी कारण और तर्ककी टेक थी।

उसके बाद वह अच्छा हो गया, और फिर उनकी पढ़ाई शुरू हो गयी। किन्तु घनिष्टता और आकर्षण कम होनेकी जगह बढ़ते ही जा रहे थे—रातके लिए उसकी बे-सब्री बढ़ती ही जाती। सारे दिन जैसे वह एक लम्बी सांसमें काम करता रहता, ताकि रात जल्दी आये, और तब वह उसके सामीप्यमें कुछ समय बिता सके—सांस ले सके। समय भी उसका अधिक लगने लगा, घण्टेकी जगह दो-दो घण्टे लग जाते, इधर-उधरकी बातें होती रहतीं। दो-एक बार उसके इच्छा जाहिर करनेपर वह उसके साथ सिनेमा भी चला गया था।

सालका अन्त हो रहा था; थोड़े दिन बाद गर्मियोंकी छुट्टियां शुरू होंगी, और वह अपने घर चली जायेगी। किन्तु दिन-ब-दिन उसकी चिन्ता बढ़ती जाती। वह अपनेको अपनी तरफसे तो नियन्त्रित रख सकता था; किन्तु उसके अस्पष्ट, अप्रत्यक्ष प्रवेशको—वह महसूस करता—रोकनेमें वह दिन-ब-दिन, अधिकाधिक असमर्थ होता जा रहा था; वह जैसे बगैर कुछ कहे-सुने उसके जीवनमें सेंध लगाती चली आ रही थी। कमसे कम वह ऐसा ही अनुभव करता, और अपनी लाचारी और कमजोरीपर वह खीज-खीज उठता।

(३)

छुट्टियोंके बाद जब वह सेकेण्ड इयरमें आयी, तो यह भी एम० ए० हो चुका था, और यूनीवर्सिटी छोड़ दी थी।

शुरू ही में एक दिन वह उसके घर आ पहुंची—सुबह ही—यूनीवर्सिटीके रास्तेमें। कई दिनके लिए वह बाहर चला गया था—इसलिए मुलाकात नहीं हो सकी थी। इधर-उधरकी बात होती रही। फिर चलते वक्त उसने पूछा—"तो अब शामको आप आयेंगे न?"

वह फौरन् मतलब समझ गया। उसने इस वर्ष इसका खयाल भी नहीं किया था। पिछले वर्ष तो उसने साइन्समें इण्टर करके एकदम अर्थशास्त्र और राजनीति ले ली थी, इससे ट्यूटरकी आवश्यकता भी हो सकती थी; किन्तु इस वर्ष तो निश्चय ही उसे किसीकी सहायताकी दरकार नहीं थी। इसलिए उसने इसपर सोचा भी नहीं था। किन्तु प्रश्नके इस तरह सामने खड़े होते ही वह किसी आशङ्कासे भर उठा—वह झूठ-मूठ किसीके जीवन और स्नेहके साथ खिलवाड़ नहीं करना चाहता था; अपनी परिस्थितिसे वह पूर्णतया परिचित था, और अपने ऊपर उसे सम्पूर्ण भरोसा नहीं था।

फिर भी वह जल्दीमें कुछ तय न कर सका, तो उसने यही कहा—"हां, कोशिश करूंगा।"

और फिर सारे दिनके सोच-विचारके बाद शामको वह गया, और उससे कह आया कि कितने ही कामोंकी वजहसे वह उसे अब नियमित रूपसे न पढ़ा सकेगा। हां, कभी कोई जरूरत पड़नेपर तो वह है ही।···बादमें उसने एक दूसरे ट्यूटरका भी जिक्र किया। शीलने पितासे लिखकर पूछ लेनेके बाद उत्तर देनेको कहा।

किन्तु वह भी समझ गयी। और दूसरे ट्यूटरके बारेमें और फिर कभी पूछने और उत्तर देनेकी तो कोई जरूरत ही नहीं थी। इसे नरेनने भी समझा। वह तो उसके प्रश्नका आवश्यक उत्तर था।

उसके बाद वह श्रृङ्खला टूट गयी। उससे बचनेके लिए; कहीं शील भी न उससे स्नेह करने लगे, इसलिए उसे अलग रखनेके लिए; उसने पढ़ाने जाना—ट्यूशनके रुपयेकी अनुपस्थितिकी बहुतेरी तकलीफोंके बावजूद भी, बन्द कर दिया। किन्तु आकर्षण कम न हुआ। दिनमें एकाध बार देखे बगैर उसे चैन न पड़ता। हमेशा उसकी दबी इच्छायें, उससे मिलनेके रास्ते निकाला करतीं। कभी-कभी वह छुट्टी वगैरहके दिन उसके घर पहुंच जाता, और दो-एक घण्टे बातें कर आता। अक्सर यूनीवर्सिटीके लड़कोंसे कामके सिलसिलेमें या उसके मकानकी तरफके किसी कामके सम्बन्धमें, उधर जाते वक्त वह उसे देख आता; किन्तु अब ये मिलन बहुत छोटे होते। कोई बात होनेका अवसर ही न आता।

और इधर-उधरकी छोटी-मोटी बातोंके अलावा होता ही क्या ?···किसीको एक-दूसरेके जीवनके ऊपरी भारी लबादेको उठाकर अन्दर देखनेकी शक्ति नहीं थी। किसी विषयका विश्लेषण या प्रतिपादन करनेके लिए तो एक तीसरे व्यक्तिकी आड़की आवश्यकता होती थी।

शीलको उसे समझनेमें देर न लगी। वह समझ गयी कि इन बन्धनोंको ढीला करनेके लिए ही वह उससे बचता है; किन्तु उसका वह बचना ही उसके जबर्दस्त खिंचावका प्रमाण था—वह बन्धन नहीं ढीले कर पा रहा था। और उसका खुदका तो जीवन ही नीरस बन गया : चौबीस घण्टेके लम्बे दिनमें उन घण्टे-डेढ़ घण्टोंके अलावा और था ही क्या—उस रेगिस्तानमें उस छोटे-से नखलिस्तानके अलावा ? और फिर जब वह भी उसने ठेलकर अलग कर दिया, तो फिर रह ही क्या गया ?

लेकिन उसने भी उसके यहां आना-जाना बन्द कर दिया। यह उचित नहीं था कि वह उससे बचता फिरे और वह उसपर भार बनती चले। इसकी भी तो प्रतिक्रिया हो सकती थी। नरेनकी असली इच्छायें भी इस परिवर्तनको समझनेमें पीछे न रहीं।

गिरहसे बचनेके लिए भागता हुआ वह डोरोंमें और भी उलझता जाता था; पर अब तो यह भी सम्भव नहीं था कि वह फिर उसे पढ़ाने लगे। वह अपने मनको समझ न पाता, और सुलझाकर सोचनेका उसका साहस न होता। अतार्किक सामाजिक सङ्गठनकी अनावश्यक असङ्गतियोंमें उलझा हुआ उसका जीवन मानसिक और बौद्धिक द्वन्द्वोंका रणक्षेत्र बन गया था।

पर उनका मिलना जारी रहा। मौका निकालकर वह उसे देख आता। कई बार खुद ही कहकर उसे सिनेमा भी ले गया था। सार्वजनिक सभाओंमें भी अक्सर वह उसे खींच ले जाता; किन्तु शीलकी उदासीका आवरण न उतरता।

ऐसे ही जीवन चलता रहा।

अपने बी० ए० के इम्तहानके बाद, घरको रवाना होनेके पहले, शीलने एक दिन अन्य बातोंके साथ उससे कहा कि अब वह वहां लौटकर न आयेगी। पढ़ाई तो पञ्जाबमें भी होती ही है, घरके भी नजदीक रहेगी; वहीं पढ़ेगी—शायद अर्थशास्त्रमें ही एम० ए० ले।

नरेन चुप रहा। यह बात तो थी नहीं कि वे एक-दूसरेको समझते नहीं थे। किन्तु उतने चुनकर शब्दोंमें किसीने कुछ नहीं कहा। कहनेके लिए कोई बात नहीं कही गयी; ऐसी कोई बात नहीं कही गयी, जिससे चिपटकर शील या नरेन कोई सम्पूर्ण विश्वासके साथ यह कह सकता कि दूसरा उसे प्यार करता है। खामोशीसे दफना देनेकी इच्छा जो थी !

उसके बाद शीलने अपना सामान वगैरह बांधा, सार्टीफिकेट वगैरह इकट्ठे किये, और चल दी। नरेन उसे स्टेशनपर छोड़ आया। विदा होनेके पहले, प्लेटफार्मपर चुपचाप वे एक-दूसरेके सामने खड़े रहे; दोनोंकी तबियत भारी थी। नरेनने कई बार कोशिश की कि अपना पता लिखकर दे दे—उसे मालूम नहीं था कि उसके पास उसका पता अब भी है या नहीं; किन्तु उसके हाथ-मुंह नहीं खुले। फिर गाड़ी चल दी। एक बार नरेनने शीलकी आंखोंमें आंख डालकर पढ़नेकी कोशिश की, उसकी आंख वहां न ठहरी। वह आंखें अलग किये खड़ा रहा—गाड़ी खिसक गयी। तब उसने जो आंखें मिलानेकी कोशिश की, तो दूरसे शीलका पत्थरकी तरह जड़वत् खिड़कीके बाहर, दूर देखता हुआ चेहरा दिखा।

× × ×

यही तो था जो कुछ था, चाहे कहानी कहिये, चाहे हमारे मौजूदा जीवनका तर्क !

× × ×

नरेन अपने धकधकाते हृदयको अपनी कोठरीके अन्धकारमें जोरसे दाबे पड़ा था। उसकी आंखोंमें आंसू आकर गालोंपरसे अविरल बह रहे थे। उसी समय कहार आ गया, उसने पूछा—"बाबूजी, रोटी खाय चुके ?"

उसने उठकर देखा, तो दस बजनेमें दस-पन्द्रह मिनट बाकी थे। उसने कन्धेपर कोट डाला, और कहारको चाभी देते हुए कहा—"नहीं, मैं नहीं खाऊंगा; स्टेशन गया था, वहीं कुछ खा लिया था। अब मैं कामसे जाऊंगा। खाना-वाना उठाकर चाभी खिड़कीपर रख देना।"

बाहर उदास चांदनीमें पेड़ोंकी लम्बी-लम्बी छांह फैल रही थी। बागके फूल सफेद चादर ओढ़े सो रहे थे। उसने साइकिल उठायी और दसकी मीटिङ्गके लिए चलने लगा।

———

विवाह और सन्तानोत्पत्तिका अधिकार किन्हें ?

श्री गणेशदत्त "इन्द्र"

"मातृदेवोभव, पितृदेवोभव" वाक्यों द्वारा श्रुतिने माता-पिताके जिस उच्चपदकी ओर सङ्केत किया है—वह पद आज अज्ञ माता-पिता द्वारा कितना अपमानित हो रहा है, यह देखकर प्रत्येक समझदार व्यक्तिके हृदयमें एक गहरी ठेस लगती है। आज ठीक इसके विपरीत युग है। माता-पिता अपने कर्तव्यसे इतने च्युत हो गये हैं कि उन्हें माता-पिता जैसे गौरवान्वित शब्दोंसे सम्बोधन करनेमें लज्जा आती है। आजके कितने ही माता-पिता—मुझे क्षमा करें, मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि—देव नहीं, दानव हैं; मानव नहीं, पशु हैं। वास्तवमें देखा जावे, तो इन्हें सन्तानोत्पत्तिका कोई अधिकार नहीं। मैं फिर दावेके साथ कहता हूं कि पशु-पक्षियोंको अपत्योत्पादनका अधिकार है; किन्तु इस बुद्धिमान कहलानेवाले—किन्तु पशुसे गये-बीते मानवप्राणीको बच्चे पैदा करनेका बिलकुल अधिकार नहीं है। पशु-पक्षी, कीट-पतङ्गादि अपने नैसर्गिक नियमोंका पालन तो करते हैं; किन्तु यह मनुष्य-शरीरधारी प्राणी इतना स्वतन्त्र और इतना उद्दण्ड हो गया है कि प्राकृतिक नियमोंका पालन करना वह अपनी परतन्त्रता समझ बैठा है !

आप रात-दिन देखते होंगे—यदि आपने ध्यान न दिया हो तो कृपया अब अपने मस्तिष्कको थोड़ा कष्ट दीजिये कि—वे पशु-पक्षी, कीट-पतङ्गादि, जिन्हें आप अज्ञानी मानते हैं, अपनी वंशवृद्धिमें कितने नियन्त्रित हैं। वे कितने इन्द्रिय-संयमी हैं ! ब्रह्मचर्य-पालन किस प्रकार करते हैं ! वे ऋतुकालाभिगामी हैं। नर-जाति नारीके प्रति कोई अत्याचार नहीं करती। और न नारी ही नर-जातिको प्राकृतिक नियमोंके तोड़नेको विवश करती है। आप उन्हें चाहे जब मैथुन-प्रवृत्त नहीं देखेंगे। नारी-जाति जब ऋतुमती हो, गर्भाधानके योग्य होती है, तभी नर-जातिका पशु-पक्षी आदि उसके साथ मैथुनासक्त हो अपनी जाति-वृद्धि करता है। नर-जाति कामातुर हो नारीके साथ बलात्कार नहीं करती, और यदि नर-जाति बलात्कारके लिए प्रवृत्त भी हो, तो मादा उसकी वह इच्छा कदापि पूर्ण नहीं होने देती। इस प्रकार पशु-पक्षियों तकमें नर-मादाको नैसर्गिक नियमोंका पालन करते देखा जाता है। परन्तु मानव कहलानेवाले—संसारमें सर्वश्रेष्ठ प्राणी बननेका दम भरनेवाले—इस बुद्धिमान पुतलेको देखिये !! कोई नियम नहीं, कोई नियन्त्रण नहीं, कोई भय नहीं !!!

इस मनुष्य नामक प्राणीने बालकी खाल निकालनेमें कोई कसर नहीं रखी। आकाश और जमीन तकका माप कर डाला, इतना ही नहीं—अदृश्य वस्तुओंकी कल्पना करके उन्हें सत्यका जामा पहनानेमें जमीन-आसमानके कुलाबे भी मिला डाले। ईश्वरका भय इसके सामने रात-दिन रहता है। धर्म नामकी वस्तु रात-दिन गर्दन पकड़े खोपड़ीपर सवार है। स्वर्ग-बहिश्तका नाम सुनते ही बाछें खिल जाती हैं। नरक-दोजखका नाम सुनते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं, शरीर कांप उठता है, तोबातिल्ला मच जाती है, मानो यमदूत इन्हें पकड़कर घसीट ही रहे हों ! किताबोंमें धर्मका, मजहबका सुनहला पालिश करके स्वर्ग और नरकका वर्णन अद्भुत शब्दोंमें किया है। सारांश यह कि ईश्वर, धर्म, स्वर्ग और नरकका भय दिखाकर भी इस मानव-प्राणीको उतना भी नियन्त्रित नहीं किया जा सका, जितना कि पशु-पक्षी, कीट-कृमि आदि इन भयोंके अभावमें हैं। उक्त भयोत्पादक कल्पनायें ही डङ्केकी चोट यह सिद्ध कर रही हैं कि मनुष्य प्राणी निपट स्वच्छन्द, अविचारी, उच्छृङ्खल, उद्दण्ड और इतना अज्ञानी है कि उसके लिए न जाने क्या-क्या नियम बनाने पड़े और किन-किन अदृश्य वस्तुओंकी भयोत्पादनहेतु कल्पना करनी पड़ी। फिर भी यह तो उतना ही आज़ाद है, जितना कि नियमोंकी रचनाके पूर्व था। बात-बातमें ईश्वरका नाम और धर्मकी दोहाई सुन लीजिये और कर्म देखिये, कितने गन्दे हैं। बल्कि यह कह दूं तो अत्युक्ति न होगी कि धर्म-ईश्वर और स्वर्ग-नरकादिकी कल्पनाने इन्हें अधिक अविचारी और उच्छृङ्खल बना दिया। इनकी ओटमें न जाने क्या हो रहा है !

विवाहको लीजिये, इसे धर्म मान लिया है। धर्मके असली अर्थमें तो 'विवाह' आ जाता है; किन्तु आज जिसे

लोगोंने धर्म बना रखा है—उससे और विवाहसे कोई सम्बन्ध नहीं मालूम होता। तरुण स्त्री-पुरुष अपनी वंशवृद्धिके लिए आपसमें प्रेम-स्थापन कर और यौन-सम्बन्ध हो, इसमें धर्मकी जरूरत ही क्या है? पशुओंको देखिये—जङ्गली पशुओंको देखिये, न तो उनकी जन्मपत्री मिलायी जाती है, न ब्राह्मण महाराज गणेश, नवग्रह, षोडशमात्रिका आदिकी पूजा कराते हैं, न बात-बातमें मुहूर्त्त ही देखा जाता है, न शुभ और लाभके चौघड़ियेके चक्करमें पड़ते हैं, न बारात आती-जाती है, न ब्राह्मण देवता होम कराते हैं। उनके द्वारा सन्तानें उत्पन्न होती हैं और इतनी अच्छी हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ और दीर्घजीवी होती हैं, जितनी इन बेचारे बात-बातमें धर्मका कचूमर निकालनेवालों और फूंक-फूंककर कदम रखनेवालों द्वारा नहीं होतीं। मेरे लिखनेका कोई यह अर्थ नहीं निकाले कि मैं धर्मका मखौल उड़ा रहा हूं। नहीं, मैं तो धर्मके इस आडम्बरका दिखाना चाहता हूं, जिसकी ओटमें संसारका और विशेषतः भारतवर्षका अमङ्गल हो रहा है।

यह प्रकृतिका एक अटल नियम है कि स्वस्थ, नीरोग नर-नारीके मेलसे सन्तान अवश्य उत्पन्न होगी। मैं आपसे ही पूछता हूं कि आपके मजहबोंसे—धर्मोंसे इसका क्या सम्बन्ध है? आप व्यर्थ ही धर्मका आडम्बर बनाकर इसकी ओटमें मानव-जातिका संहार करनेका समर्थन क्यों करते हैं? आपने कभी ध्यानसे नहीं विचार किया होगा कि विवाहको धर्मके साथ जोड़ देनेसे हमारे समाजको क्या हानि पहुंच रही है? मैं आपको बताना चाहता हूं कि धर्मकी दुमके साथ विवाहको बांध देनेसे भारतवर्षमें अयोग्य माता-पिताओंका दल तैयार हो गया है। आप भी ऐसे दलके सदस्य हों तो मुझे क्षमा करें, नाराज न हों, बल्कि ध्यानपूर्वक ठण्डे दिलसे जरा एकान्तमें सोचिये कि यदि आप धर्मके इस शिकञ्जेमें न कसे होते, तो आप सुखी रहते, या अब सुखी हैं? इस धर्मके कारण हमारे वैवाहिक सम्बन्धमें अनेक दोष उत्पन्न हो गये हैं, जिनके कारण हमारा समाज और राष्ट्र कमर टूटे प्राणीकी भांति निकम्मा होकर पड़ा है। सर्वप्रथम दोष यह है कि धर्मके नामपर यौवनके आगमनके पूर्व ही छोटे-छोटे अबोध बच्चे विवाह-रूपी कसाईके खूंटेसे बांध दिये जाते हैं (२) बच्चे-बच्चियोंके साथ दूसरा अन्याय यह है कि उनके प्रत्यक्ष गुण-दोषोंको न देखकर धर्माचार्य कहलाने-वाले ब्राह्मण उनके ग्रह और गण मिलाते हैं (३) तीसरे जाति-बन्धन उन्हें लाये जाता है। लड़की-लड़का चूंकि अपनी ही जातिमें दिया जा सकता है, इसलिए अपनी जातिके छोटे-से दायरेमें और उसमें भी प्रान्तीयताके अति संकुचित क्षेत्रमें उनका सम्बन्ध करना पड़ता है (४) माता-पिताका धर्म है कि अपने बाल-बच्चोंका विवाह कर दें, विशेषतः कन्या तो १२।१३ वर्षके बाद क्वांरी रखें ही नहीं। इसलिए माता-पिता अपने बच्चे-बच्चीका जो मिल जाय, उसीके साथ विवाह कर देते हैं। और विवाहके बाद इतने सुखी हो जाते हैं, मानो बड़ा भारी हजारों मनका बोझ उनके सिरसे उतर गया हो! यह क्यों? केवल धर्मके भयसे। अजी! अगर लड़की कहीं १४-१५ वर्षकी या इससे अधिक हो गयी, तो उसके पालकोंकी दशा देखिये—बेचारे धर्मलोपके भयसे खाना-पीना भूल जाते हैं, जैसे बने तैसे किसी भी अयोग्य, मूर्ख, कुरूप, रोगी पुरुषके पल्ले बांधकर बेचारे धर्मरक्षा करते हैं। इसी प्रकार अनेक अकर्म, धर्मके नामपर हो रहे हैं। कहिये, ऐसी दशामें, धर्मकी इस खींचातानीमें राष्ट्रका कल्याण कैसे हो सकता है? योग्य माता-पिता, जो अपनी सन्तानोंके प्रति अपना कर्तव्य समझते हों, कहांसे उत्पन्न हो सकते हैं? राष्ट्र-हितके लिए, समाज-कल्याणके लिए, मानव जातिकी रक्षाके लिए हमें योग्य माता-पिताओंकी सबसे पहले आवश्यकता है।

भारतके अतीतकालीन माता-पिताओंके नामों और चरित्रोंका उल्लेख करनेका यह स्थान नहीं है। भारतवासी अपने सुवर्ण युगके निर्माता माता-पिताओंके नाम जानते होंगे। इतिहास-पुराण उनके नाम हमें बता रहे हैं। तत्कालीन माता-पिता वास्तवमें कर्तव्यपरायण होते थे। इसी कारण उस युगमें "मातृदेवोभव" और "पितृदेवोभव" जैसे सम्मान-वर्द्धक वाक्योंकी रचना हुई थी। और आज? आज कितने बच्चे अपने माता-पिताका देववत् आदर करते हैं? सन्तानें माता-पिताका आदर नहीं करतीं, इसमें उनका दोष नहीं। आदर-योग्य व्यक्तिका तो शत्रु भी आदर करता है, फिर भला अपने माता-पिताका बालक आदर न करें, यह तो विचित्र ही बात है। मैं तो यही सिद्ध करना चाहता हूं कि माता-पिता योग्यता प्राप्त किये बिना ही मा-बाप बन जाते हैं। बेचारोंको इतनी भी तमीज नहीं होती कि बालक कैसे

पाला-पोसा जाता है और हमारा उसके प्रति क्या कर्तव्य है—और बच्चे पैदा करने लगते हैं।

छोटी-छोटी उम्रके दम्पति, जो अभी स्वयं बच्चे हैं, वासनाकी भयङ्कर चपेटोंमें आकर, अनभिज्ञताके कारण मूर्खताके प्रभावसे यौन-सम्बन्ध करने लगते हैं, और परिणाममें, अपनी बेवकूफ का—अपनी भूलका फल समाज और राष्ट्रके माथे, एक दुर्बल, हीन, क्षीणकाय, रोगी, अल्पायु बालकके रूपमें थोप देते हैं। वे बेचारे माता-पिता बननेकी इच्छासे मैथुनासक्त नहीं हुए थे, बल्कि अपनी वासनाकी एक हल्की-सी शान्तिके लिए। परिणाममें बालक उत्पन्न हो गया। बेचारे स्वयं बालक हैं और उनके भी बालक हो गया। प्रकृतिके साथ जबर्दस्ती की गयी। असमयमें ही मूर्खता की और प्रकृतिने दण्ड-स्वरूप एक सन्तान दे दी, जिसे या तो वे गड्ढेमें रख दें अथवा जब तक वह जीवित रहे उसकी दवा-दारू करते रहें और अपने भाग्यको रोते रहें। सैकड़ों ऐसे बच्चे देखनेमें आते हैं, जो अभी कोरे अबोध हैं, बिलकुल अज्ञान हैं और वे माता-पिता बन बैठे हैं। स्वयं मूर्ख, बेकार, रोगी, निर्बल, नपुंसक, दुराचारी, व्यसनी हैं और बच्चे पैदा करके भारतको निर्बल बना रहे हैं। इस प्रकारकी भूलोंसे देशकी जो बर्बादी हो रही है, वह किसी भी समझदार व्यक्तिसे छिपी नहीं है। आप आश्चर्य करेंगे, कल तक जो नपुंसक थे और जिनकी गणना सभ्य शब्दों द्वारा "कुम्भिक नपुंसकों" में की जाती थी, एक हृष्ट-पुष्ट स्त्रीके साथ विवाह हो जानेके कारण बच्चोंके पिता कहलाने लगे। आप ही कहिये, ऐसे माता-पिता और उनके द्वारा उत्पन्न सन्तानसे देशका हित क्या हो सकता है। ऐसे स्त्री-पुरुषोंके द्वारा बच्चोंकी उत्पत्तिका तांता बंधा हुआ है, वे अपना, खुदका पेट नहीं भर सकते। इस बेकारीके जमानेमें तो पूछिये ही नहीं। बच्चे पैदा होते जाते हैं, और उनके पालन-पोषणका कोई उपाय नहीं। परिणाम यह हो रहा है कि पौष्टिक खाद्यके अभावमें माता-पिता और बच्चे अकाल मौत पाते हैं, और यदि जीवित भी रहे, तो मर जानेसे भी बुरी दशामें। माता-पिता अपनी इन्द्रियोंके गुलाम होकर अपनी हरकतोंसे बाज नहीं आते और देशमें निर्बल, असहाय, रोगी, मूर्ख और अल्पायु प्रजाकी सृष्टि करते रहते हैं।

प्रत्येक राष्ट्र उत्तम सन्तान चाहता है। राष्ट्रकी उन्नति और अवनति उसकी सन्तानोंपर निर्भर है। आज वे ही राष्ट्र सुखी, आनन्दित, स्वतन्त्र, बुद्धिमान, बलवान, स्वस्थ और दीर्घायु हैं, जिनमें उत्तम सन्तानें उत्पन्न हो रही हैं। इसके विपरीत जहांकी भावी पीढ़ियां निर्बल और रोगिणी हों, वह राष्ट्र कैसे उन्नतावस्थाकी ओर बढ़ सकता है? देश-सेवकोंका, देशके शुभचिन्तकोंका यह प्रथम कर्तव्य है कि वे अपने सुख-वैभव और स्वाधीनताको चिरस्थायी बनानेके लिए बच्चोंकी दशापर विशेष ध्यान दें। अभाग्यसे यह बात अभी हमारे भारतवर्षमें नहीं है। कुछ देश-शुभचिन्तक यदि इस दिशामें कुछ करने जाते भी हैं, तो एक बहुसंख्यक दल उनका विरोध करनेके लिए भी पहलेसे तैयार रहता है। यह विरोध धर्मके नामपर, धर्मको दोहाइयां दे-देकर, धर्मकी रक्षाका आडम्बर रचकर किया जाता है। उदाहरणके लिए वे अनेक समाज-सुधार-सम्बन्धी बिल हैं, जो कानून बननेके लिए एसेम्बलीके अधिवेशनोंमें उपस्थित किये गये और पास न हो सके। 'शारदा बिल' को ही लीजिये न? बालविवाह रोकना था, इसमें समाजका हित था; परन्तु लाखों व्यक्ति इस देशमें ऐसे भी निकले, जिन्होंने "धर्मनाश, धर्मनाश" का तुमुल कोलाहल मचाकर उसका भरपेट विरोध किया। बड़े-बड़े विद्वान् कहलानेवालों, समझदारोंकी सूचीमें अपना नाम लिखानेवालोंने इस बालविवाह-निषेधक बिलकी, सारी शक्ति लगाकर मुखालिफत की। जिस देशमें इतने ज्ञानी, इतने समझदार और इतने बुद्धिमानोंकी पल्टन रहती हो, भला उस देशमें क्या सुधार किया जा सकता है? इस ४० करोड़ मनुष्योंसे समाकुल देशमें किसी भी भले-बुरे कार्यके समर्थन और विरोधमें लाखों-करोड़ों व्यक्ति मिल सकते हैं। इसीका तो यह परिणाम है कि आज हम लोग सतत उद्योग और कष्ट सहन करके भी अपने ध्येयको प्राप्त नहीं कर सकते। अपने भले-बुरेको और अपने कर्तव्योंको न समझनेवालोंकी भीड़ने ही तो इस देशकी मिट्टी पलीद कर रखी है।

इधर हमारे देशकी यह दशा है, तो उधर स्वतन्त्र राष्ट्रोंपर नजर डालिये—वे एक-दूसरेसे आगे बढ़नेकी होड़में सब कुछ कर डालनेको तैयार हैं। समस्त भूमण्डलपर एकछत्र, चक्रवर्ती राज्य स्थापित करनेकी महत्त्वाकांक्षावाले जर्मनीको देखिये, वह अपने राष्ट्रमें एक भी निकम्मे आदमीकी उत्पत्ति अब देखना नहीं चाहता। वह राष्ट्रकी सुदृढ़ नींव बनानेके

लिए देशकी भावी आशाओंको परिपुष्ट, तेजस्वी एवं शूरवीर बनाना चाहता है। इसके लिए वह योग्य माता-पिताओं द्वारा इच्छित सन्तानोत्पत्ति चाहता है। रोगी, निर्बल, पागल, नशेबाज माता-पिता द्वारा उत्पन्न बच्चोंको वह राष्ट्रपर भार समझता है—देशपर अभिशाप मानता है। इसलिए उसने १ जनवरी १९३४ ई० से जर्मनीमें एक नया कानून बना दिया, जिसके द्वारा ३०।४० लाख जर्मन खस्सी (नपुंसक) बना दिये जावेंगे। अभी आरम्भमें चार लाख व्यक्ति ही नपुंसक बनाये जावेंगे। जिनमें दो लाख मनुष्य ऐसे होंगे, जो जन्मतः पागल हों, ६० हजार मिर्गी रोगग्रस्त, १६ हजार जन्मसे बहरे, २० हजार अङ्ग-भङ्ग, १० हजार शराबी, ४ हजार जन्मान्ध। खस्सी बनानेकी आज्ञा देनेवाले ८४ युजनिक कोर्ट (Eugenic Courts) और १३ अपील कोर्ट्स नियुक्त कर दिये हैं। प्रत्येक पुरुषको खस्सी बनानेमें १९) रु० और स्त्रीके लिए ३७) रु० के लगभग खर्च होंगे। कार्य शुरू हो गया है। यह कानून सन्तान-सुधारके निमित्त उत्तम मां-बाप प्राप्त करनेकी सदिच्छासे बना है। उनका खयाल है कि अधिकसे अधिक तीन पीढ़ियोंमें, अर्थात् लगभग ७०।७५ वर्षोंमें जर्मनी अपनी इच्छानुसार मनुष्योंको प्राप्त कर सकेगा। लेकिन भारतमें तो बाल-विवाह तक रोकनेवाले पापी, अधर्मी और पतित समझे जाते हैं! बाल-विवाह रोकना धर्मके विरुद्ध कार्य समझा जाता है!! सैकड़ों छुतहे रोगोंसे ग्रस्त, सैकड़ों वंशक्रमागत बीमारियोंके शिकार, जीर्ण-शीर्ण, दुर्बल, अन्धे, लंगड़े, काने, खोड़े, नशेबाज, दीन, हीन, जनाने, हिजड़े, चाकलेट और घिरचे व्यक्ति धड़ाधड़ बालक पैदा कर रहे हैं। क्या ऐसे माता-पिताओंकी औलादोंके भरोसे ही देशको उन्नत देखनेकी इच्छा है? देशमें निकम्मी प्रजा उत्पन्न हो जानेसे उन्नति तो दूरकी बात है, साधारण दशामें स्थित रहना तक असम्भव है।

योग्य माता-पिताओंके अभावमें देश जिस अधोगतिको पहुंच चुका है, वह आज हमारी आंखोंके सामने है। जिन्हें सामाजिक गतिविधिका ज्ञान नहीं, जिन्हें राष्ट्र और राष्ट्रीयताका अभिमान नहीं—जो यह नहीं समझते कि राष्ट्रीयता किस परिन्दका नाम है! जिनके दिमागोंमें मकड़ीके जाले भरे हुए हैं, ऐसे लोग देशकी दशाको अपनी आंखोंसे देखते हुए भी बेचारे समझ नहीं सकते। आंखोंके रहते भी जो अन्धे हैं, वे लोग सम्भवतः इस कथनकी ओर दुर्लक्ष्य करेंगे। ऐसे भोंड़े और कूढ़ दिमाग मनुष्योंके लिए हम एक मोटीसे मोटी बात समझा देना चाहते हैं। योग्य माता-पिता द्वारा उत्पन्न बच्चे कभी नहीं मरते। आप कहें कि "परमात्माके हाथमें जिलाना और मारना है, हम क्या कर सकते हैं? जो जितनी उम्र लेकर आता है, वह उतनी ही भोगता है, एक सांस भी घटायी अथवा बढ़ायी नहीं जा सकती।" इत्यादि। इसके सम्बन्धमें आपसे प्रश्न करता हूं कि राम-राज्यमें एक भी बालक नहीं मरता था। महर्षि बाल्मीकिजीने लिखा है—"न चल्पवृद्धाबालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते।" अर्थात् कोई भी वृद्ध पुरुष अपने जीवित किसी छोटेकी मौत नहीं देखता था। महाभारतमें भी लिखा है—

"न बाल एव म्रियते तदा कश्चिज्जनाधिप।"

अर्थात्—बालकोंकी मृत्यु नहीं होती। आप कह उठेंगे कि यह तो त्रेता और द्वापर युगकी बात है, अब तो कलियुग है। धर्म उन दिनों अपने पूर्ण चरणोंपर स्थित था, आज तो धर्म अपने एक चरणपर अवलम्बित है। ऐसी कायरतापूर्ण बातें कहनेवालोंसे क्या मैं एक बात पूछ सकता हूं कि "क्या कलियुग तुम्हारे ही पल्ले बंध गया है?—अन्य देश, जो आपकी दृष्टिमें विधर्मी हैं, पापी हैं, हिंसक हैं, क्या वहां कलियुग नहीं पहुंचा? दूसरे देशोंमें बाल-मृत्युकी संख्या बहुत ही कम है। जो कुछ भी है, उसे भी हटाने या कम करनेकी ओर सतत लक्ष्य है। यह धर्म-अधर्म और सतयुग-कलियुगका हौआ तुम्हें ही खा जायगा। मोटी-मोटी बातें अपना उल्लू सीधा करनेके लिए तुम्हारे स्वार्थी धर्माचार्योंने तुम्हें बता दी हैं। उन्होंने तुम्हें सतयुग-कलियुगका रहस्य नहीं समझाया। शास्त्रोंमें ही यह लिखा है कि—

"कलिः शयानोभवति—
संजिहानस्तु द्वापरः
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति
कृतंसंपद्यतेचरन्। चरैवेति चरैवेति।"
(ऐतरेय ब्रा० ७।१९)

अर्थात्—आलस्य ही कलियुग है और उद्योगशीलता ही सतयुग है। किसी भी समय किसी भी दशामें जब आलस्य न करके हम उद्योगमें प्रवृत्ति हों, वही कृतयुग है। युगोंका निर्माण हमारे हाथमें है—हमीं युग-निर्माता हैं। सतयुग भी

हमने ही बनाया था और कलि भी हमने ही। जो देश जागरित हैं—उद्योगी हैं, वहां सतयुग है। जहांके निवासी आलसी हैं, अज्ञान-निशामें सो रहे हैं, वहीं कलियुग है।

दूसरे देशोंमें बालमृत्यु बहुत ही कम है। हम एक कोष्ठक दे रहे हैं, जिससे आपको समझनेमें विशेष श्रम नहीं होगा। अयोग्य माता-पिताओंके कारण भारतमें बालकोंकी मृत्यु-संख्याके भयङ्कर आंकड़े देखिये :—

मद्रास	१९९ प्रति सहस्र
बङ्गाल	२७० ,, ,,
बिहार-उड़ीसा	३०४ ,, ,,
पञ्जाब	३०६ ,, ,,
बम्बई	३२० ,, ,,
ब्रह्मा	३३२ ,, ,,
युक्तप्रदेश	३५२ ,, ,,

कैसा भयङ्कर बाल-संहार है। भारतमें चार बालकोंमेंसे एक अपने जीवनके प्रथम वर्षमें ही समाप्त हो जाता है। फी सैकड़ा २० बालक तो १२ महीनेके अन्दर ही अन्दर कालके भोजन बन जाते हैं। हिसाब लगाकर देखिये, भारतमें २० लाख बच्चे बेमौत प्रतिवर्ष हमारी भूलसे मरते हैं; क्योंकि प्रतिवर्ष अनुमानतः एक करोड़ बालक यहां उत्पन्न होते हैं। शेष अस्सी लाख यद्यपि मरते नहीं, तथापि जिन्दगी-भर मृत्यु-का अनुभव तो करते ही रहते हैं। अब जरा विदेशोंमें होने-वाली बालमृत्युकी निम्न तालिकापर नजर कीजिये :—

न्यूज़ीलैण्ड	५१ प्रति सहस्र
नारवे	६८ ,, ,,
स्वीडन	७२ ,, ,,
आस्ट्रेलिया	७२ ,, ,,
फ्रान्स	७८ ,, ,,
नीदरलैण्ड्स	९१ ,, ,,
स्विजरलैण्ड	९४ ,, ,,
डेन्मार्क	९४ ,, ,,
आयर्लैण्ड	९७ ,, ,,
इंगलैण्ड और वेल्स	९८ ,, ,,
स्काटलैण्ड	१०५ ,, ,,

भारतसे अधिक बच्चे इस पृथ्वीपर किसी भी देशमें नहीं मरते। हमारे घरोंमें बालक क्या पैदा होते हैं, एक घबराहट, चिन्ता और सिर-दर्द पैदा हो जाता है। उसकी उत्पत्तिके साथ ही रोग भी पैदा होते हैं। बच्चा कुछ दिन भी सुखसे व्यतीत नहीं करने पाता कि दवा-दारू आरम्भ हो जाती है। बेचारा अपने जीवनकी घड़ियां कष्टसे व्यतीत करता है। लोग कहते हैं कि पूर्व-सञ्चित कर्मोंका फल भोगना पड़ता है, इसमें किसका वश है? परन्तु मेरे विचारसे बच्चेके माता-पिताकी भूलोंका और उनकी मूर्खताका यह दुःख उस अबोध बालकको भोगना पड़ता है। क्या दुःख भोगनेके लिए सभी बच्चे भारत ही में पैदा होते हैं? यह नरक तो नहीं है न? आपके ही शब्दोंमें यह स्वर्गोपम भारत देश है। जैसे माता-पिता होंगे, वैसे ही उनकी सन्तान होनी चाहिए—यह एक अटल नियम है। इसमें भाग्य, कर्म, प्रारब्ध, तकदीर वगैरहका बहाना ढूंढ़नेकी जरूरत ही क्या है। एक सीधी-सी बातको अपनी मूर्खता, अपनी अयोग्यता छिपानेके लिए ऐसी कल्पित बातोंका जामा पहनाना भी तो अयोग्यता ही सिद्ध करता है।

माता-पिताकी भूलका दण्ड बालकको ही सहना पड़ता हो, सो नहीं। इन भूलोंका परिणाम बचपन तक ही नहीं रहता, बल्कि आमरण भुगतना पड़ता है। जिसका आरम्भ ही दुःख-पूर्ण हो, उसका अन्त सुखमय कैसे हो सकता है? भारतीय प्रजा अपने उत्पादकोंकी भूलोंका, उनकी अयो-ग्यताका फल अच्छी तरह भोग रही है। आज भूतलपर एक-मात्र भारत ही ऐसा है, जिसकी सन्तान अत्यन्त अल्पायु है। जो नित्य ही 'पश्येम शरदः शतम्', 'प्रब्रवाम शरदः शतम्', 'शृणुयाम शरदः शतम्', 'जीवेम शरदः शतम्', 'अदीना स्याम शरदः शतम्' और 'शतंभूयश्च शरदः शतात्'की रटन लगाते हैं, उनकी उम्र आज औसतन् २२॥ वर्ष रह गयी है। जिस देशकी आयुका औसत कभी १०० वर्ष था, आज उसका चतुर्थांश भी नहीं रहा! कैसा भीषण ह्रास है? क्या कभी इसके कारणपर भी दृष्टि डाली है? भाग्य, प्रारब्ध, भगवान और समयके सिर दोष मढ़नेके अतिरिक्त कुछ और भी सीखा है? ये भाग्य और ईश्वरके भरोसे रह-कर काम करनेवाले क्या कभी आगे भी बढ़ेंगे। कथा-पुराणोंने हम भारतवासियोंको और भी आलसी तथा निकम्मा बना दिया। वे लाल बुझक्कड़ कथा-पुराणोंमें भविष्य लिखकर हमारे समाजमें जहर छोड़ गये। वे मर गये और

साथ ही भारतको भी मार गये! आज हम उन्हींके नामपर रोते हैं। वे कह गये हैं कि सतयुगमें लाखों वर्षकी आयु होती थी, त्रेतामें हजारों वर्ष लोग जिये, द्वापरमें वह सैकड़ोंपर आ पहुंची और इस कलियुगमें तो लोग बहुत ही कम जियेंगे। बस, आज जिस किसीसे पूछिये, वह कह देगा, कलियुग है। अभी तो इससे भी कम उम्र होगी और बहुत छोटे-छोटे आदमी पैदा होंगे! यह अन्धविश्वास हमारी उन्नतिमें एक घुनकी तरह लगा हुआ है। दूसरे देशोंपर नजर डालिये, वहांकी आयुका औसत क्या है:—

देश	पुरुष	स्त्री
आस्ट्रेलिया	५६.२०	५८.८४
अमेरिका	४९.३२	५२.५४
इंगलैण्ड	४८.५३	५२.३८
हालैण्ड	५१.०	५३.४
जापान	४३.७९	४४.८५
भारत	२२.५९	२३.३१

यहां एक बात और भी ध्यानमें रखनेकी है कि भारतकी आयु दिन-प्रतिदिन कम हो रही है, तथा दूसरे देशोंकी दिनोंदिन बढ़ रही है। क्या कलियुग भारतके सिरपर ही बैठ गया? अपनी भूलोंका, अपनी अज्ञानताको किस्मत, खुदा और कलियुगके सिरपर पटकना भी भूल और अज्ञान ही है।

मैं आपसे पूछता हूं—आप बुद्धिपूर्वक इसका उत्तर दें कि बालविवाह, वृद्धविवाह, अनमेल-विवाह, व्यभिचार, ब्रह्मचर्य-नाश प्रभृति अप्राकृतिक कार्य तो आप करें और दोष लगावें दूसरोंको, यह कहांका न्याय है? जिस वृक्ष-शाखापर आप बैठे हों, उसके मूलमें आप कुठाराघात करें और तकदीरका दोष बतावें, यह कहांकी बुद्धिमत्ता है? यह तो ठीक वही बात है कि चलनीमें दूध दुहा जाय और ईश्वरकी मर्जी मान ली जाय। वास्तवमें यह तो अपनी ही मूर्खता है। इसी प्रकार बहुत कुछ अवनति हम अपने आप कर रहे हैं। आज हमारे स्वास्थ्यका, हमारे जीवनका, हमारे पुरुषार्थका, हमारी बुद्धिका जो भयानक ह्रास हुआ है, उसका अधिकांश दोष हमारे जननी-जनक कहलानेवालोंपर ही है। वे इसके उत्तरदायित्वसे कदापि मुक्त नहीं हो सकते। माता-पिता बनना सहज है, परन्तु अपने कर्तव्य पालन करना बड़ा कठिन है। साधारण, बुद्धिहीन प्राणी, कृमि-कीट-पतङ्गादि, पशु-पक्षी सभी प्रजा उत्पन्न करते हैं। सन्तान उत्पन्न करना कोई बड़ी बात या तारीफकी बात नहीं है। वह तो प्रकृतिका नियम ही है कि स्वस्थ नर-मादाके यौन-सम्बन्धसे सन्तान पैदा होती ही है। तारीफ और विशेषता तो इसमें है कि उत्तम, नीरोग, स्वस्थ, सबल, दीर्घजीवी, बुद्धिमान, मेधावी और कर्तव्यपरायण बच्चे देशमें उत्पन्न हों। यह तभी हो सकता है, जब कि माता-पिता भी उक्त गुणोंसे युक्त हों। अर्थात् योग्य सन्तानके लिए योग्य माता-पिता होने चाहिए।

माता-पिता बननेवाले व्यक्तियों, अर्थात् विवाहेच्छुक स्त्री-पुरुषोंको चाहिए कि पहले स्वयं योग्यता प्राप्त करके योग्य बनें। इसके लिए ब्रह्मचर्य, व्यायाम और विद्याध्ययनकी सबसे प्रथम आवश्यकता है। तत्पश्चात् सन्तानोत्पत्ति विषयक ज्ञानकी आवश्यकता है। ज्ञान-प्राप्ति और ब्रह्मचर्य-पूर्वक जीवनको सम्पादन करनेवाले स्त्री-पुरुष यौवन-काल आनेपर ही विवाह करें और संयम सहित जीवन व्यतीत करते हुए प्रजा उत्पन्न करें। स्त्री-पुरुषोंको समझ लेना चाहिए कि वे विवाह-बन्धनमें अपनेको बांधकर अपने सिरपर एक गुरुतर एवं महान् उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य ले रहे हैं। देश और समाजके प्रति जो जिम्मेवारी है, उससे वे मुक्त नहीं हो सकते। सन्तानका अच्छा या बुरा, स्वस्थ या रोगी, सबल या निर्बल, मूर्ख या बुद्धिमान होना माता-पितापर अवलम्बित है। इसलिए माता-पिताका यह प्रथम कर्तव्य है कि अपनी अयोग्यता और अज्ञानताका फल अपनी सन्तानके रूपमें समाजको न प्रदान करें।

शिशु-पालनकी योग्यताके अभावमें प्रतिवर्ष नन्हें-नन्हें अबोध, मूक और निरपराध लाखों बच्चे जमीनमें रख दिये जाते हैं। संसार-भरके युद्धोंमें इतनी मृत्यु नहीं हुई है, जितनी भारतमें बच्चोंकी होती है। आरम्भसे ही यदि भूलें न की जावें, और शिशु-पालनमें सावधानी और सतर्कता रखी जावे, तो बच्चोंकी मृत्यु-संख्या बहुत घट जावेगी। समाज और देशका बहुत दुःख मिट जावेगा।

लोग कहते हैं कि बच्चेकी बीमारीपर इलाज करते हुए भी वह मर जावे, तो क्या किया जाय? पहली बात तो यह है कि बच्चा बीमार ही क्यों हो? उचित खान-पान,

रहन-सहनसे बच्चा कदापि बीमार नहीं होता । हमारी भूल ही बच्चेको रोगी बनाती है—इतनेपर भी शायद वह अच्छा हो जाता; किन्तु अज्ञानता तो सभी जगह टांग अड़ाती है न? वह इलाज भी ठीक-ठीक नहीं होने देती । इलाज होता भी है, तो कुछ दूसरा ही । बच्चा बुखारमें कराह रहा है और मां-बाप जादू-टोना, मन्तर-जन्तर करा रहे हैं—भूतप्रेत, डाकिनी-शाकिनी, पिशाचिनीके लिए स्याने, ओझा, भोपासे झाड़-फूंक करानेमें मस्त हैं, तो फिर कहिये, बालक मरेगा नहीं, तो क्या जिन्दा बचेगा ? मूर्ख माता-पिता न जाने बालकोंको क्या-क्या खिला-पिलाकर बीमार कर देते हैं । अपने हाथों विष देते रहते हैं, और अपनी भूलको समझते तक नहीं ! नवजात बालक तो एक मांसपिण्ड है । वह तो कुछ भी नहीं समझता । उसे आप बीमार बना लें या स्वस्थ बना लें, आपकी बुद्धिपर निर्भर है । उसे जिला लें या मार डालें, यह उत्तरदायित्व माता-पिता कहलानेवालोंपर है । मैं यह कहनेमें कदापि सङ्कोच नहीं करूंगा कि बालकोंकी मृत्युका पाप माता-पिताओंके सिरसे लाख उपाय करनेपर भी नहीं हटाया जा सकता । वे अपनी सन्तानकी मृत्युके स्वयं जिम्मेवार हैं । वे अपनी भूलोंको मानें या न मानें, यह बात अलग है; किन्तु वे उनकी अकाल मृत्युके जवाबदेह जरूर हैं—इसमें जरा भी सन्देह नहीं है । बच्चोंके भोजन, वस्त्र, सफाईका ध्यान रखा जावे, तो कोई बालक बिना मारे नहीं मर सकता । माता-पिताकी भूलोंसे ही भारतमें बालकोंकी मृत्यु-संख्या इस अधिकताको पहुंच गयी है । और यह दोष आज समाजको भीतर ही भीतर जर्जरित करता जा रहा है—राष्ट्रके शरीर-को यह घुनकी तरह चाटता जा रहा है ।

गीत

आज किस आनन्दके मिस
नाथ मेरे द्वार आये ?
दे गये वरदान सुन्दर
प्राण मेरे जगमगाये ।

प्राण वे, जो थे युगोंसे
मूक - से, पाषाण - से ।
बह रहे झर-झर नयन
गूंजी सकल दिशि गानसे ।

गान मेरे सर्वदा ही
छा रहे जल, थल, पवनमें
फैल जाती ज्यों सुरभि
इस ओरसे उस ओर बनमें !

बन-बन फिरी थी मैं बहुत
बहु विधि करी आराधना ।
आज अन्तिम सान्ध्य-वेला,
पूर्ण है सब साधना ।

साधना चिर जन्मकी यह
रच रही नव-गीत सुन्दर
एक ही परितोष अब
होगी विजय लघु-लघु हृदयपर?

—तारा पाण्डे ।

नारी, प्रेम और काव्य

श्री प्रभागचन्द्र शर्मा

दो ढाई हजार वर्ष पूर्वके अधकचरे, अवैज्ञानिक इतिहासके मार्गसे होकर यदि कोई विश्वके इन आदि सभ्य देशों—ग्रीस, रोम, ईजिप्ट, सीरिया, बेबिलोनके तीर्थोंमें मनोयोगपूर्वक विहार करे, तो उसे महाविस्मयकारी मनोरञ्जक अनुभव होंगे। वह देख सकेगा कि ग्रीसकी राजधानीमें सरे बाजार एक स्तूप बना हुआ है, जिसपर अङ्कित है:—

"स्फूर्तिको, स्वर्गको, सूर्यको, चन्द्रको, वसुन्धराको, निशाको और वर्तमान तथा भविष्यमें होनेवाले सबके जनक—'काम' को, जो प्रेमका देवता है !"

—'वूमन एण्ड लव' पृष्ठ ३३२

वसुधाके वे आदिम पुरुष असभ्य थे, जङ्गली थे। पाषाणपर सोते थे, वल्कल पहनते थे, जङ्गलके फल-फूल खाते थे, स्त्री-पुरुष गर्मीमें खुले मैदानमें और जाड़े या आतपमें अंधेरी खोहमें परस्पर सटकर रक्त-मांसकी उष्णतासे उत्तप्त रात-दिन बसर किया करते थे ! ज्ञान या विज्ञान उस समय नहीं था। मात्र सहज ज्ञानका थोड़ा आभास वे कर सकते थे। इसीसे वे जान सके कि हममें और हमारी साथिनमें समान रूपसे साथ-साथ रहनेकी जो प्रबलतम चाह है, वह हमारी सावधान धरोहर नहीं है; वह किसीके द्वारा बाहरसे हमपर बरसायी जा रही है ! हमें उसके प्रति नमन करना चाहिए। इसी भावके चलते मानव-विकासने दो-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ते ही आभास पाया कि उपर्युक्त स्तूपकी सृष्टि साकार हुई। दुनियाका प्रत्येक धर्म प्रेमका प्रचारक है, इसका कारण यही कि प्रेमसे जुदा धर्म नामकी कोई अन्य वस्तु मूलमें अस्तित्ववान् है ही नहीं। अर्थात् प्रेम ही धर्म है। विश्व-सृष्टिके आदि बीज आदम और इवाकी साकारता धार्मिक है या प्रेममय, जब इस विभाजनकी ओर ध्यान खींचा जाता है, तो सहसा चुप्पी छा जाती है। किन्तु अधिक विलम्ब नहीं होता कि नग्नता स्पष्ट होकर बोल पड़ती है—"तुम उसीकी सन्तान हो, यह कैसा प्रश्न ?" तब, लगता है कि धर्म या प्रेमके लिए, यह बात पीछे; इस प्रथम दम्पतिका विश्वमें आविर्भाव हुआ, हमारी 'उत्पत्ति' के लिए। हम देखते हैं कि अब लोग उस स्तूपको न पूजकर सीधे प्रेमके देवता; 'काम' की पूजा करते हैं। सीमित सृष्टिका अधिकाधिक विस्तार और फलतः दैहिक-मानसिक प्रवृत्तियोंसे उत्पन्न हुई मोह, ममता, स्नेह, विश्वास, सौहार्द आदिकी बढ़ती हुई चुम्बक शक्तिसे उन्मत्त, मस्त ही वे प्रेमके उत्पत्तिकर्ता स्वरूपको अपना सबसे बड़ा कल्याणकर्ता मानते हैं और उसीकी पूजाका बाजार गर्म दीख पड़ता है ! प्रेमका देवता 'काम' अब उत्पादकताका देवता बन गया, उर्वरताका देवता बन गया। जो कि सर्वथा यौन-सम्बन्धपर स्थित थी ! उस समय तक निरे बनमानुस बहुत कुछ मनुष्य हो चुके थे। खेती-बारी, ढोर-पशु उनकी सम्पत्ति बन गये थे। अब वे व्यवस्थासे थे। उन्होंने देखा कि बैल, सांड़, मेंढ़े ये सब उर्बरता तथा उत्पादनकी अद्भुत शक्तिसे वरद हैं। इनसे बढ़कर अपने वाञ्छित देवताकी पूजाका प्रतीक अन्यत्र दुर्लभ होगा। प्रेमके देवता कामको वासना, नग्नता, अनाचारतामें बदलनेवाले ये पशु, देवताकी भांति सम्मान सहित पूजे जाने लगे। वासनात्मक प्रेमके द्वारा उत्पन्न हुआ यह उर्बरताका भाव प्राचीन ईजिप्टके धर्म-सिद्धान्तका प्रमुख तत्त्व बन गया। प्राचीन ग्रीस और रोमके धर्म-ग्रन्थ भी इसी विचारसे भरे हुए हैं।

लेकिन यह ढर्रा अधिक नहीं चल सका। क्योंकि पैदा होनेके दिनसे अभी भी पशु मानव अज्ञात देवताके प्रभाव और आतङ्कसे भयभीत था। वह देवताकी सत्ताको ठुकरानेकी हिम्मत नहीं कर सका। उसने देखा कि पशु चाहे कितना शक्तिशाली क्यों न हो, 'मानव' की आराध्य मूर्ति नहीं हो सकता। अब लोगोंने आकाशमें ही अपने काम देवताका प्रतिरूप खोज लिया। ऐसा करनेके उनके कारण थे:—(१) मानवके विकारने पशु-आदर्शकी प्रेरणा पायी, तो वह उद्दण्ड, उच्छृङ्खल, अमर्यादित हो गया। चरित्रहीनता और दुराचार ही दुराचार छा गया मानवतापर ! (२) मनुष्यका अपूर्णत्व और उसकी दिव्य शक्तिके प्रति ललक, (३) पशुको देव माननेपर कहीं वास्तव देवताका कोप उनपर

न आ पड़े आदि-आदि विचार। फिरसे ये सारेके सारे देश उद्विग्न हो उठे कि मनुष्यकी उर्वरता या उत्पादक शक्तिकी चाहनाके लिए बैल, भैंसे या अन्य पशु क्यों चाहिए ? और भी देखिये कि वर-वर लोग चांद, तारे, सूरजको अपनी वाञ्छाका पूरक मानने लगे; स्फूर्ति, प्रकाश और उर्वरताका खजाना लोगोंको इन नभो देवताओंके समीप मिल गया ! सीरियामें सूर्य-देवके लिए 'अपोलो' की पूजा शुरू हुई। फ्रीगियामें 'अडोनिस' पूजा जाने लगा, ग्रीसमें 'डिओनिसस' सूर्य-देव बना। ग्रीक लोग अफ्रोडाइटको प्रेमकी देवी मानकर पूजने लगे और केरेसको उर्वरताकी जननी समझकर। देखा गया कि तत्कालीन पशु-मानवने 'प्रेम, धर्म और उत्पत्ति' को अपनी बुद्धिके बूते इस तरह व्यवस्थित कर लिया।

गति, सृष्टिका अविराम चिह्न है। वही स्रष्टाकी भी अनिवार्य आवश्यकता है। विश्व-विकास याकि व्यक्ति-विकासकी, गति ही पहली शर्त है। जिस तरह जगत्‌की धर्मगत धारणायें बदलती गयीं, उसी तरह जीवनके तौर-तरीके भी परिवर्तित होते गये। किन्तु उर्वरताको धर्ममें प्रमुख स्थान देनेवाले नैतिकताके आचार्य अब अधःपातकी ओर और भी आगे बढ़े। यह सत्य है कि पशु प्रवृत्तिसे चलता है और मनुष्य बुद्धिसे। दुर्भाग्य था कि यहां मानव भी वृत्ति ही को प्रमुखता देनेमें व्यस्त था। वह भी धर्मके नामपर। अब इतिहासके सहारे यहां तक आकर हम क्या देखते हैं कि पाशविक उपचार होनेसे मानव-पशु और उद्दण्ड हुआ कि उसने अपने-आपमें सवाल किया—"जब उर्वरता, उत्पादकता हमारा देव है, तो उसे नभके देवमें, चांद-सूरजमें याकि ढोर-पशुमें ढूंढ़नेकी क्या जरूरत ?" तब 'फेलस कल्ट' का आविर्भाव हुआ। एकदम लिङ्ग-पूजा शुरू हुई ! ईजिप्ट, ग्रीस, रोमन-साम्राज्य, सीरिया और धीरे-धीरे सारी दुनियामें यह प्रथा फैल गयी। हर घरके सामने लैङ्गिक चिह्न लकड़ीपर खोदकर गाड़ा गया। हर खेतके अन्तिम छोरपर ऐसे ही चिह्नके स्वरूप सीमा-विभाजनके लिए काममें लाये जाने लगे। जब धार्मिक मत-विश्वास बदलते हैं, तो सामाजिक रीति-रिवाजमें भी हेर-फेर हो जाता है। देखा गया कि नैतिक दृष्टिकोणके इस पाशविक समाधानमेंसे धर्मकी कराह सुनाई पड़ने लगी, और तब ईसा मसीहका जन्म हुआ। इन धार्मिक अनाचारों और ढोंग-पाखण्डोंकी फजीहत होने लगी। "ईश्वर और पड़ोसीके प्रति सच्चा और पवित्र प्रेम" का सन्देश छन पड़ा। किन्तु कुसंस्कारोंके ऐसे घटाटोपमें ईसाका आदेश सर्वमान्य होना कदापि सम्भव न था। अतः अमूर्त प्रेम, विशुद्ध प्रेमके प्रचारकोंने निर्बुद्धि मानव-समाजसे कहा कि विश्वास, श्रद्धा इस नये तत्त्वको समझनेके लिए जरूरी हैं। 'प्रेम' के साथ 'विश्वास' का संयोग हुआ। भगवान् ईसा समस्त विश्वको सुख, शान्ति और स्नेहमें लबालब देखना चाहते थे। परन्तु जिस मानवताकी मामूली बात प्रेमसे समझाना आज अच्छे महान् नेताके लिए सम्भव नहीं, वैसी ही, बल्कि उससे बदतर मानवताको उसकी पशु-प्रवृत्तियोंके खिलाफ समझा ले जाना आसान बात नहीं थी। हां, ईसाको अपने प्राण देने पड़ते हैं। और ईसा मरे कि उनके अनुयायियोंने सत्य-सूत्र, सिद्धान्त-विचारको साम्प्रदायिक धर्मके घेरेमें डाला। पिछले दिनों लिङ्ग-पूजा तथा पशु-पूजाको नारी-जातिके लिए चरित्र-हीनता मानकर मिटाया गया था कि अब कैथलिक मतके प्रचारक पादरियों और ननको शारीरिक निवृत्ति और पवित्रता रखनेके लिए इतना दूर तक बढ़ाया गया कि हर नन एक पुरुषके लिए अप्राप्य—किन्तु रातमें स्वप्न-स्थितिमें स्वयं ईसा मसीहके साथ केलि-विहार करे, यह धर्म माना जाने लगा। अभी तक मनुष्य पशु अधिक थे; खुले दुराचार करते थे। अब मनुष्य विचारवान्, विवेकी हो रहे थे कि दबावके कारण इनकी देह, उनके मन प्रवृत्तियोंके अस्वाभाविक निरोधमें झुलस गये। अनाचार और दुश्चरित्रताकी धरतीपर चरित्र और नैतिकताको इतना ताना गया कि यौन-सम्बन्धके गम्भीर मानी ही को जीवनसे उड़ानेके असफल प्रयत्नको धर्मका आदेश मान लिया गया। परन्तु अन्ततः स्त्री-पुरुष-सामीप्यकी अनिवार्यता मान्य हुई। लेकिन धर्म और कथित सदाचारिताने गुप्त पापकी ओर लोगोंको प्रेरित किया कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म चला, प्यूरिटन मजहब चला, मानवोचित विकार-स्पन्दन और मानव-वृत्तियोंकी इन सुधारकोंने अवहेलना नहीं की। प्रोटेस्टेण्ट नन ब्याह कर सकती थी, किन्तु वह ईसाकी ऐसी दासी नहीं हो सकती। इन सड़ी-सड़ी बातों हो को लेकर खूनकी नदियां बह गयीं ! शताब्दियोंपर शताब्दियां बीतती जा रही हैं; लोग कहते हैं—इतिहास स्वयं-

को दुहराता है, आगामी कलका मानव ज्ञानके अन्तरिक्षमेंसे कह रहा है:—

"अब वह नहीं होगा,
वैसा नहीं होगा
जो होता रहा है!"

(२)

अब इस नवीन युगमें लोग विचारने लगे हैं और उनका विश्वास कुछ इस प्रकारका हो चला है कि स्त्री या पुरुष केवल इतने ही में सीमित नहीं है, जितना वह बाहरसे दीख-भर पड़ता है। आंखोंसे ओझल भी व्यक्तिका अस्तित्व है। जिसे आध्यात्मिक व्यक्तित्व, दिव्य रूप कह लीजिये। स्त्री-पुरुष सम्बन्धी उपदेशात्मक, निर्णयकारी चिन्तन इसी स्थूल-रूप-दर्शनकी आधार-भूमिपर शताब्दियोंसे होता रहा है। इसीलिए आज रूपके भौतिक और आध्यात्मिक आवरणमें हमारा दृष्टिकोण उलझकर रह गया है। मनोवैज्ञानिक, मनोविकलन-की हर बारीक कार्य-पद्धति और गति-व्यवस्थाको अपने निश्चय और अपने निर्णयोंकी आधार-भूमि मानता है। इसीलिए विवेकहीन कट्टरताके बजाय आज समझदार लोग आस्था-हीनताका अपराध ओढ़ लेना युगके प्रति ईमानदारी मानते हैं। एक दिन गोर्की और चेखव समुद्रतटपर घूम रहे थे। वे टाल्स्टायके पास पहुंचे, जोकि वहीं नजदीक समुद्रके किनारे प्रार्थनामें सिर झुकाये, दाढ़ीसे रेत बुहारते तन्मय-से बैठे थे। वे दोनों उनके नजदीक सटकर बैठ गये और नारियोंके विषयमें बातचीत करने लगे। बहुत देर तक टाल्स्टाय चुप, खामोश सब कुछ सुनते रहे। तब अचानक वह बोले:—और मैं नारीके सम्बन्धमें तथ्यपूर्ण सत्य केवल उसी समय कहने योग्य हो सकूंगा, जब मेरा एक पैर कब्रमें पहुंच चुकेगा। [लेखक—गोर्की : रेमीनिसेन्सेज आव टाल्स्टाय, पेज ६९]

इसका मतलब यह कि अब नारी पाशविक प्रवृत्तियोंकी तृप्तिदाता-मात्र न रहकर कुछ सम्मान, पूजाका भाव अपनी ओर खींच सकी। रोमान्सवादके परम आचार्य महाकवि दान्तेने बारहवीं शताब्दीमें नारीके श्रेयस् रूपके अन्तरालमें युग-युगान्तरसे छिपे प्रेमको और साथ ही शक्तिरूपा मांके रूपका देख लिया था। उसने अपनी दिव्यरूप प्रेयसि बीट्रिसको जीवनमें केवल दो बार देखकर जिस महाकाव्यकी रचना की, उसने अपने भावी युगकी रूपरेखा उन्हीं दिनों बहुत सुन्दर ढङ्गसे तैयार कर दी थी। प्रेमसे कविताका सम्बन्ध आदिकालसे क्यों चला आ रहा है, इसकी एक लम्बी, गहरी, किन्तु विचारपूर्ण कहानी है। ऊपर बताया जा चुका कि प्रेम-तत्वमें परिवर्तन होता गया; आदिम युगसे क्रिश्चियन धर्मके प्रचलन तककी कहानी लिखी जा चुकी। अब लोगोंने जान लिया है कि कलका प्रेम मानवताका पोषक, प्रेरक और पूजक प्रेम होगा। उसमें धर्म, रूढ़ि, सामाजिक बन्धन किसीका भी नवयुगका मानव नहीं मानेगा। यह सत्य है कि काव्य और प्रेमकी समानताका लेखा पेश करनेके पूर्व काव्यकला, जीवनकी आदतें और भिन्न-भिन्न पुरुषोंके पारस्परिक सम्बन्धोंका सावधान अध्ययन आवश्यक हो जाता है। ईसाका धर्म-प्रचार प्रेम ही था और उसके लिए उन्होंने अपने प्राणकी आहुति दी थी, अतः वह इतना फैला कि लोगोंको यह स्वीकार करना पड़ा कि—"प्रेम करो, घृणा नहीं; सबके लिए भलाई करो; किसीको हानि न पहुंचाओ।" ये ही विचार वास्तविक धार्मिकताके सूत्र बने। शायद प्रेमके किसी ऐसे ही भावका समस्त विश्वके काव्य द्वारा प्रसार हुआ होगा! कलाकारोंने निर्विवाद मान लिया कि प्रेम, धर्म तो है ही। किन्तु यदि वह इच्छा भी है, वासना भी है, तो अवरोधोंमें बढ़ेगी, रुकावटोंसे लहरायेगी। इस इच्छाको कभी तृप्त नहीं होने देना चाहिए। इसको किसी भी कीमतपर सञ्चित रखना चाहिए। ऐसा न हो कि आनन्द-उपभोगकी आंधीमें यह रचनात्मक प्रवृत्ति बुझ जाय! इस विचारने दो रूप लिये; एक तो सङ्घर्षप्रियता जागी कि स्वेच्छाकी अबाध अभिव्यक्तिके सहारे साहित्य रचा जाने लगा; दूसरे, लोगोंने धर्मकी परम्परा, पाखण्ड, रूढ़ि, साम्प्रदायिक कटुताके प्रति घृणासे तेवरी चढ़ा ली। इस दिन प्रेम, श्रद्धाके बीच विश्वास, आशा, मुक्तिकी क्षीण झलकका समावेश हुआ। अब प्राचीन रोमका साहित्य देखें।

वीर पुरुषोंकी गाथा और उनका प्रेमालाप रोमके साहित्यकी प्रथम प्रेम-काव्य-सृष्टि थी। दूसरी तरफ उस समयके एक बड़े कवि उर्गविडकी रचनाओंने नैतिक आदर्शोंके अधःपातका वह चित्रण किया है कि उसका यहां वर्णन करना भी अभद्रतासे कम कुछ न होगा। यद्यपि उसने प्रेमका वर्णन सुन्दर शब्दोंमें किया है और निस्सन्देह वासनात्मक प्रेमके आनन्द-उपभोगका केलि-विहार और भी

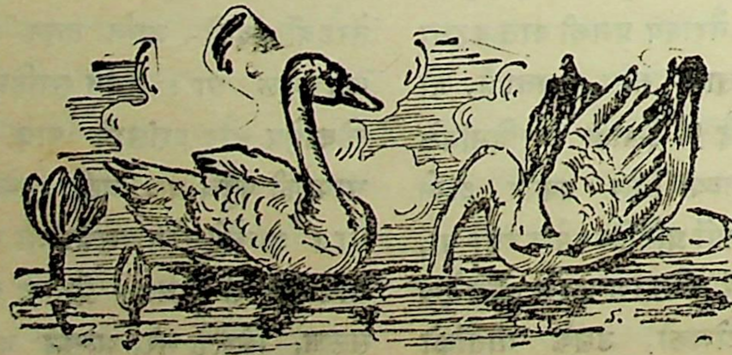
मोहकताके साथ चित्रित किया है, तो भी इतनेसे ही कविको सन्तोष नहीं हुआ। उसने प्रेमकी हर गतिविधिको रोचक रूप दिया। इस प्रेम-काव्यकी गीत्यात्मक अभिव्यञ्जनाने पढ़नेवालोंको प्रेमकी कलाकी ओर रुझान दी, रुचि दी। अच्छे-बुरेका प्रश्न अभी महत्त्व नहीं पा सका था। अल्पकालमें देखा गया कि इस तरह वासनाके गीत-गायक कवि, लेखकोंकी बाढ़ आ गयी! यों, प्रेम-गीत-काव्यकी श्रेष्ठ सतह समूचे विश्वमें सबसे पहले भारतवर्षमें थी। इसे पाश्चात्य विचारक भी मान गये हैं। परन्तु ग्रीस, रोम आदि देशोंसे चर्चा शुरु करनेका एक ही उद्देश्य होता है कि वैज्ञानिक इतिहासकी व्यवस्था वहां हमें सिलसिलेवार प्राप्य है। विश्व-विख्यात शरीर-शास्त्रीय जर्मन आचार्य बर्नहर्ड ए० बोएर एम० डी० की राय है कि "अगर हम तुलनात्मक दृष्टिसे बढ़ें, तो निश्चितरूपसे काव्य-कलाके लिए सर्वप्रथम स्थान हमें प्राचीन हिन्दुस्तान ही को देना पड़ेगा।" रिचर्ड शिमितने प्रेमकी भारतीय भावधाराकी प्रशंसामें इतना भावुकतापूर्ण लिखा है कि पढ़ते ही बनता है—"भारतीय सूर्यकी धधकती गर्मी, भारतीय फल-फूलोंकी मुग्धकारिता, चांदनी रातमें कमलिनीके खिले फूलोंकी महक !! भारतवर्षमें, सिद्धान्त और व्यवहार दोनोंमें प्रेमने एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रखा है, जिसे हम पाश्चात्य देशवासी बमुश्किल महसूस तक नहीं कर पाते।"

समस्त विश्वका काव्य गीत्यात्मकताके अरूप साम्राज्यमेंसे लहराता हुआ कठोरतम वासनाकी चट्टानोंसे टकराया है। वासनात्मक प्रेमकी एक भी बारीकी इससे बच नहीं पाती। आसक्तिकी प्रथम दृष्टिसे लगाकर अधरके प्रथम चुम्बन तक दो देहोंका एकप्राण हो जाना काव्यकी महान् सत्यता है। इसीलिए कवि अपने गीतोंमें कभी मनुष्यके प्रति मनुष्य-प्रेमका भाव गुंजाता है, कभी प्रभुके प्रति मनुष्य-प्रेमकी ललक व्यक्त करता है, कभी नैराश्य-प्रेमकी बात कहता है और कभी प्रेमकी उस उत्तेजकताके गीत गाता है, जो मानव-हृदयमें ज्वाला फूंक देती है! ईसाके आविर्भावके प्रारम्भमें रोमन साम्राज्यका काव्य जिस प्रकार अपने यहांके नैतिक अधःपातका ज्योंका त्यों प्रतिबिम्ब फेंक रहा था, उस समय प्राचीन ग्रीकके साहित्यमें विचरण करके लोग देख रहे थे कि वहांका कवि-समाज प्रेमको, उसके गीतोंको मर्त्यके लिए अमरताका सन्देश देने तथा मानवके वीरोचित रूपको व्यक्त करनेमें जुटा हुआ था। ग्रीक काव्यका जनक 'होमर' हमारे इस कथनका पुष्टिकर्ता है। प्राचीन ग्रीसके दार्शनिकोंने प्रेमकी स्वाभाविकताको प्रमुख वैचारिक एकाग्रता दे रखी थी। इसका कारण प्लेटोकी वह प्रेरणा थी, जो इतिहासमें 'प्लेटोनिक लव' (अपार्थिवका प्रेम) के ही नामसे चिरन्तन हो गयी है। किन्तु उच्चवर्गीय ग्रीसके कुछ उद्दण्ड बौद्धिक कवियोंने रोमकी तरह पतनके गीत भी खूब जमकर गाये हैं। यह विचार निर्विवाद है कि साहित्य, सभ्यता और संस्कृतिका प्रसार समूची पाश्चात्य भूमिपर सर्वप्रथम इन्हीं देशोंसे हुआ है, अतः यहां मूल विचारधाराके उतार-चढ़ावमें सब बातें आ जाती हैं। ईसाइयत जितनी सबल होती गयी है, उसने अपने प्रभावके अन्तरङ्ग व्यक्ति-जीवन, विचार-जीवनको बहुत बदला है। विषय-भेद हो जानेके भयसे सावधान रहते हुए मैं इस ओर केवल सङ्केत भर कर देता हूं कि इन शताब्दियोंमें शासक, सुधारक, कलाकार, कवि, साहित्यिक कोई ऐसा नहीं था, जो क्रिश्चियन धर्मकी प्रभुताके सम्मुख नत न हो। धर्मके विरोधी वाल्टेयर, गोर्की, बर्नार्ड शा, रोम्यांरोलां तो बहुत बादकी चीज हैं। ईसाके जन्मकी प्रथम शताब्दीका काव्य, साहित्य और कला धर्मप्रधान विचारधारासे लबालब दिखने लगी। मानव प्रेम प्रभु ही की ओर ठेला गया। मानवके स्वयं अस्तित्वका एकान्त ध्येय ही 'सेवा' घोषित हुआ। मानो मनुष्यका अपना, उसके अपने लिए कुछ शेष बचा ही नहीं। इस दृष्टि-भेदका काव्यपर बड़ा असर पड़ा। वासनाके गीत दबने लगे, दबाये जाने लगे। ईश्वरपर, ईसाइयतपर काव्य-रचनायें चलीं। प्रेम-गीत भी, बीच-बीचमें, अति दुर्बल आर्त्त-स्वरमें कराह उठते थे। इस प्रकारके गीत-गायकोंका एक दल था, जिन्हें 'मिने-सिङ्गर' कहते थे। बारहवीं और तेरहवीं सदीमें जर्मन तरुण प्रेम-गीत-रचयिताओंका यह एक स्कूल था। जर्मन साहित्यमें तो ये गीत-लेखक इतने लोकप्रिय और प्रशंसाके पात्र हुए कि जहां-जहां भी जर्मन भाषाकी पहुंच थी, वहीं इनका काव्य रस-वर्षण कर रहा था। दान्तेने रोमान्सका जो रूप व्यक्त किया था, वही इन गायकोंने भी गाया। प्रेमीके सम्मुख प्रेयसीकी उपस्थितिके सलज्ज, झिझक-भरे, अस्फुट चाहपूर्ण भाव इनकी कवितामें

व्यक्त हुए, जिनका मतलब प्रेयसी या प्रियपात्रको सुदूर रखकर पूजा करना था। इन मिनेसिङ्गर्स लोगोंमें जो सर्व-श्रेष्ठ था, वाल्थर यान डर लोगलविदे, उसने अ ना सम्पूर्ण जीवन गान, प्रेम और अपनी प्रेयसीमें तदाकार कर दिया था। उसके बाद युद्धकी शताब्दी आयी। शरीरकी अत्यधिक थकानसे उत्पन्न होनेवाले अनैतिक विकारोंकी बाढ़ शरीर-शास्त्रीय मान्य तथ्य है। अतः नग्न पतनकी हवा फिर बही। संक्षेपमें इतना कि उन दिनों रोगके बाहरी उपचार-स्वरूप इन प्रेम-गीतोंकी रुकावट हुई। फलतः जहां एक तरफ लोग वीर-काव्य रचने लगे, वहां दूसरी तरफ छुपे-छुपे गुप्त अनाचारमें भी साहित्यिक रुचि रुंधती गयी। जर्मी कालिअर अपनी मशहूर पुस्तक 'शार्ट व्हयू आफ दि एम्योरेसिटी एण्ड प्रोफेननेस आफ दि इंगलिश स्टेज' (१६९८ में प्रकाशित) में लिखता है—"ऐसा लगता था कि मानो लोग वासनो-द्दीपक कार्यमें क्रियात्मक हिस्सा लेकर सन्तुष्ट नहीं थे; उन्होंने अन्य लोगोंसे यह चाहा था कि वे निष्क्रिय दर्शककी हैसियतसे ही सही, इस नैतिक अधोमुखतामें साझीदार बनें। यह जरूरत नाटकोंके सुखान्त और हास्यान्तोंसे पूरी की गयी।" लेकिन यह प्रवाह अधिक नहीं चला। अठारहवीं सदीके प्रारम्भ होते ही हम देखते हैं इतिहासमें कि लोग वीर-काव्यके प्रति बेहद घृणा दिखाने लगे। हमारे यहांका राष्ट्रीय काव्य-प्रवाह भी जर्मनीके इस इतिहाससे अपना भाग्य-दर्शन कर सकता है। ग्रीक कवि एना क्रिओनके नामपर एक रचनाशैली चली, जिसके द्वारा कवियोंने घरेलू स्नेह, सुख और आनन्दका वास्तविक गुण-गान किया। चूंकि उन्हीं दिनों फ्रान्स भी नग्न अनाचारितासे बमुश्किल तमाम मुक्ति ले रहा था, अतः यह नया दृष्टिकोण गहरे विस्तारके साथ फैला। इन एने क्रिओण्टिक कविताओंमें प्रेमका वर्णन हुआ; परन्तु दो प्राणोंके सात्विक भावोंके हास्य रुदन उसमें अङ्कित थे। यों, फिर दिव्यप्रेम अपनी प्रखरता लेकर भावना-लोकपर शासक हुआ। इन भले आदमियोंने प्रेमकी निष्क्रिय अस्वस्थता मिटानेकी कसम खाकर जो किया, वह यह कि प्रेमके आनन्द, सुख, उल्लासका नहीं; उसके द्वारा उत्पन्न दुःख, सङ्कट और थोथेपनका काव्यमें राग छेड़ा। इससे विकार-नाश तो नहीं ही हुआ, वरन् सौन्दर्य-भावनाकी पवित्रता, रहस्यात्मकताको गहरी ठेस लगी। कुछ लोग सुदृढ़ नैतिक होनेके बजाय आस्थाहीन पशु बन गये। उन्होंने नारीको आदर्श रूपमें समाजके सामने नहीं रखा; बल्कि पृथ्वीपर अभिशापकी प्रेरक अथवा प्रतीक उसे घोषित किया। शक्ति-रूपा नारी राक्षसी चित्रित की गयी। स्ट्रिण्डबर्गने नारी-रूपका जो चित्रण किया, उसमें प्रेमके हीनतम आचार पेश किये। दो आत्माओंके एक हो जानेकी आदर्श व्यवस्था प्रेमको उसके अपने स्वरूपमें प्रकट नहीं करना चाहा।

परिणाम स्वाभाविक था। इसी मूल विचारका प्रति-बिम्बात्मक प्रभाव यूरोप या अन्य पाश्चात्य देशोंपर जो पड़ा है, वह यह कि जर्मनीमें स्त्री बच्चे पैदा करनेकी मशीन है, इटलीमें बच्चोंकी संख्यामें होड़ाहोड़ीसे वृद्धि करनेवाली नारी पुरस्कृत, प्रशंसित है। पेरिसकी रंगरेलियां कुछ छिपी नहीं। अमेरिकाका विलास जग-जाहिर है। अस्तु; बीसवीं शताब्दीका यह प्रारम्भिक भाग? आज विश्व-साहित्य-रचनाकी क्या क्रम-व्यवस्था है। इतिहाससे अगर जवाब तलब करें, तो समूचा लेख पढ़कर मौजूदा साहित्यकी हालत मिल जाती है। मनोलोककी सतहकी आश्चर्यजनक ऊंचाई जो केवल इन्हीं पचास वर्षोंकी अपनी अद्वितीय देन है, उसको सोचें, तो हर देशके अपने-अपने महान् चिन्तक संलग्न हैं भावी स्वप्नलोकके आह्वानकी भूमिका रचनेमें।

———



सौर-जगत्के परिव्राजक—पुच्छल तारे

श्री ब्रजकिशोर वर्मा "श्याम"

सचमुच पुच्छल तारे सौर-जगत्के सच्चे परिव्राजक हैं। आकाशमें इनका कोई नियत स्थान नहीं है। ये सदैव चलते रहते हैं। आज अकस्मात् हमारे सूर्यके निकट आ गये, कल न जाने कहां होंगे। आकाशका अनन्त असीम विस्तार इनकी परिधि है। कभी-कभी इनके जीवनमें निरपेक्षित घटनायें होती होंगी। यदि भ्रमण करते-करते किसी बड़े तारेके पास ये आ जाते होंगे, इतने निकट कि उसकी आकर्षण-शक्ति इनपर अपना पूरा प्रभाव डाल सके, तो इनके मार्गमें व्यतिक्रम पड़ जाता होगा, गमनकी दिशामें उलट-फेर हो जाता होगा। इतना ही नहीं, कभी-कभी ये अपनी चिरसम्पादित स्वतन्त्रता भी खो बैठते होंगे। ये उस तारेके चक्रमें पड़ जाते होंगे और इनको उसके चारों ओर घूमना पड़ता होगा। बहुत सम्भव है कि हमारे सौर-चक्रमें इसी प्रकार कई केतु फंस गये हों; पर जो केतु स्वाधीन हैं, यदि उनपर किसी प्रकारके सूक्ष्म प्राणी हों, तो उनको असीम आनन्द मिलता होगा। वे नित्य एक नया जगत् देखते होंगे और साथ ही एक नये जगत्के प्राणियोंकी आंखोंको सुख देते होंगे।

प्राचीन समयके लोग ज्योतिष-घटनाओंमें पूर्णसूर्य-ग्रहण और चमकीले पुच्छल ताराओंको नहीं भूल सकते थे और उनकी चर्चा प्राचीनसे प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलती है। महाकवि शेक्सपियरने भी लिखा है—"जब भिखमङ्गे मरते हैं, तब पुच्छल तारे नहीं दिखलाई पड़ते, राजाओंकी मृत्युपर आकाश स्वयं जल उठता है!" इस तरह पिछले कई हजार वर्षोंसे पुच्छल ताराओंका आना अशुभ ही माना जाता था और भारी दुर्घटनाओंसे इसका सम्बन्ध समझा जाता था। अब भी संसारके सभी देशोंमें लाखों मनुष्य ऐसे हैं, जिनका विश्वास है कि जब केतु उदय होता है, तो संसारमें कोई-न-कोई दुर्घटना अवश्य होती है। मैं नहीं कह सकता कि फलित ज्योतिषकी इस सम्बन्धमें क्या सम्मति है। परन्तु इस बातकी सचाईकी परीक्षा करनेसे ऐसे लोगोंका विश्वास ठीक नहीं जान पड़ता। सच्ची बात यह है कि प्रतिवर्ष कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई दुर्घटना हुआ ही करती है और यदि कोई दुर्घटनाओं और पुच्छल ताराओंमें नाता जोड़ना चाहे, तो ऐसा वह आसानीसे कर सकता है। पुच्छल ताराओंके एकाएक दिखलाई पड़ने—उनकी चमक, उनके आकार और उनके घटने-बढ़नेसे अवश्य ही प्राचीन लोगोंके हृदयमें आनन्दके बदले भयका सञ्चार होता था और इसीलिए वे ऐसे ताराओंका सम्बन्ध दुर्घटनाओंसे भी जोड़ा करते थे। पर अब वह समय गया, जब दस-बीस वर्षमें कहीं एक केतु देख पड़ जाया करता था। अब तो यन्त्रोंकी सहायतासे प्रतिवर्ष बहुत-से केतु देख पड़ते हैं। इनके प्रभावसे क्या-क्या घटनायें होती हैं, यह कहना कठिन है।

पुच्छल तारे, जैसा कि उनके नामसे ही स्पष्ट है, पूंछ समेत दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु छोटे पुच्छल तारे, विशेष करके जो इतने छोटे हैं कि केवल दूरदर्शक यन्त्रसे ही देखे जा सकते हैं, कई एक बिना पूंछके भी होते हैं। साधारणतः पुच्छल ताराओंके तीन भाग होते हैं—(१) नाभि, (२) शिखा, (३) पुच्छ। नाभि छोटी और अत्यन्त चमकीली होती है और वह सिरके बीचमें रहती है। नाभि तारेके समान दिखलाई पड़ती है; परन्तु सब पुच्छल ताराओंमें यह उपस्थित नहीं रहती और किसी-किसीमें दो या अधिक नाभियां भी होती हैं। सभी पुच्छल ताराओंमें सिर होता है। यह छोटी-सी निहारिकाके समान होता है और साधारणतः गोल होता है। बहुत-से पुच्छल ताराओंमें पहले नाभि नहीं रहती, सूर्यके निकट आ जानेपर ही यह बनती है। परन्तु बहुत ऐसे भी होते हैं, जिनमें सूर्यसे दूर रहनेपर भी नाभि दिखलाई पड़ती है। पूंछ झाड़ूके समान सूर्यके विपरीत दिशामें निकली हुई दिखलाई पड़ती है और प्रायः सभी चमकीले पुच्छल ताराओंमें यह रहती है।

बाज पुच्छल तारे तो इतने चमकीले होते हैं कि वे दिनमें भी दिखलाई पड़ते हैं। १८८२ का पुच्छल तारा एक समय इतना चमकीला हो गया था कि हाथ फैलाकर सूर्यको ओटमें कर देनेपर, यह दिनमें ही सूर्यसे थोड़ी दूरपर, दिख-

लाई पड़ता था। और बाज पुच्छल तारे तो इतने चमकीले होते हैं कि सूर्य और चन्द्रमाके बाद उन्हींका नम्बर आता है और इतने बड़े होते हैं कि इनकी पूंछ क्षितिजसे लेकर खस्वस्तिक (सिरके ऊपरके बिन्दु) तक पहुंच जाती है। परन्तु जितने पुच्छल ताराओंका अब तक पता चला है, उनमें अधिकांश केवल दूरदर्शकसे ही देखे जा सकते हैं और वे बहुत छोटे और मन्द होते हैं। १९२९ तक लगभग ९०० पुच्छल तारे देखे गये थे। इनमेंसे ४०० तो दूरदर्शकके आविष्कारके पहले देखे गये थे। शेष सोलहवीं शताब्दीके बाद देखे गये हैं। अब बहुत-से लोग पुच्छल ताराओंकी खोज नियमानुसार किया करते हैं और १८८० के बादसे प्रतिवर्ष ५ पुच्छल ताराओंके देखे जानेका पता पड़ता है।

पुच्छल ताराओंकी पहचान करना सहज नहीं है। इस प्रश्नका उत्तर कि अमुक पुच्छल तारा वही है या नहीं, जो पहले अमुक समयपर देखा गया था, उस पुच्छल तारेकी आकृतिसे नहीं दिया जा सकता। क्योंकि यह आकृति बदलती रहती है। पहचान कक्षाओंसे की जाती है। यदि दो पुच्छल तारे एक ही कक्षामें दिखाई पड़ें और उनके दिखलाई पड़नेके समयमें अन्तर लगभग उतना ही हो जितना गणनासे निकलता है, तो समझ लिया जाता है कि ये दोनों पुच्छल तारे एक ही हैं। यही कारण है, जिससे कि कक्षाओंकी गणना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कक्षाओंकी गणना करनेसे पुच्छल ताराओंकी दूरीका भी पता चल जाता है। और तब उनके प्रत्यक्ष आकारको नापकर यह भी बतलाया जा सकता है कि पुच्छल तारा कितने मील लम्बा-चौड़ा है। कोई-कोई पुच्छल तारे इतने बड़े होते हैं कि हमारे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता। उनका सिर ही पृथ्वीकी अपेक्षा व्यासमें साधारणतः चौगुनेसे लेकर बीस गुने तक होता है। इस तरह जिस सिरका व्यास पृथ्वीके व्यासका २० गुना होगा, उसका आयतन ८००० गुना होगा। १८११ में दिखाई पड़नेवाले पुच्छल तारेका सिर सूर्यसे भी बहुत बड़ा था। यही दशा उनकी पूंछकी भी है। चमकीले केतुओंकी पूंछ चार-पांच करोड़ मील तक लम्बी होती है। सूर्यके पाससे यदि ऐसा केतु पूंछ फैलावे, तो पृथ्वी तक पहुंच जाय!

पुच्छल ताराओंमें एक विचित्र बात यह है कि उनका विस्तार घटा-बढ़ा करता है। सूर्यके पास आनेपर पूंछ निकल आनेकी बात तो मालूम ही है; परन्तु उनमें केवल इतना ही अन्तर नहीं पड़ता। उनके सिरकी नाप भी घटा-बढ़ा करती है। पहले सिर छोटा रहता है। सूर्यके निकट आनेपर यह बढ़ने लगता है; परन्तु अत्यन्त निकट पहुंचनेपर फिर घट जाता है। कुछ ज्योतिषियोंका ख्याल था कि सिर वस्तुतः घटता-बढ़ता नहीं, भिन्न-भिन्न दिशाओंसे प्रकाश पड़नेपर ऐसा जान पड़ता है; परन्तु यह बात सर्वमान्य नहीं हुई।

सिरके घटने-बढ़नेका दृष्टान्त हैली केतुसे भी मिल जाता है। १९०९ के सितम्बरमें इसके सिरका व्यास पृथ्वीके व्यासके दूनेसे कम था; परन्तु तीन महीनेमें यह फूलकर तीन गुना हो गया। सूर्यके निकटतम दूरीपर पहुंचते-पहुंचते यह सिकुड़कर आधा हो गया; परन्तु फिर जून १९१० में यह पहलेसे भी बड़ा पृथ्वीके हिसाबसे पूरा ४० गुना बड़ा हो गया। १९११ के अप्रैल तक यह फिर पृथ्वीका चौगुना ही रह गया।

कोई-कोई पुच्छल तारे बिलकुल अनियमित रूपसे घटते-बढ़ते दिखाई पड़ते हैं। होल्म केतुका सिर १८९२ ई० के नवम्बरमें पृथ्वीका २९ गुना बड़ा था। एक महीनेमें यह इसका दूना हो गया, तब यह इतना धुंधला हो गया कि बड़े-बड़े दूरदर्शकोंमें भी अदृश्य हो गया। जनवरीमें यह फिर चमक उठा। चमकीला तो खूब हो गया; परन्तु यह पृथ्वीका चौगुना ही रह गया। धीरे-धीरे यह पृथ्वीका ४० गुना हो गया और तब फिर लुप्त हो गया। इन विचित्र घटनाओंका भेद अभी तक भी नहीं खुल सका है।

यद्यपि पुच्छल तारे इतने बड़े होते हैं, तो भी उनका वजन बहुत कम होता है। कई एक पुच्छल तारे पृथ्वी और अन्य ग्रहोंके बहुत पाससे निकल गये हैं—दो-तीन बार तो निश्चय ही पृथ्वी उनकी पूंछमें पड़ गयी है—परन्तु तो भी वे पृथ्वी या उन ग्रहोंको अपने निश्चित मार्गसे जरा भी विचलित नहीं कर सके। अनुमान किया गया है कि बड़े पुच्छल ताराओंका भी वजन पृथ्वीके वजनके $\frac{१}{१०,००,०००}$ वें भागसे भी कम होगा। परन्तु ठीक-ठीक उनका वजन कितना है, इसका पता लगानेका कोई उपाय अभी तक नहीं निकाला जा सका है।

वजन कम होनेकी बातसे यह न समझ लेना चाहिए कि पुच्छल तारे ४-६ मनके होते हैं। यदि पृथ्वीके दस लाख भाग

करनेके बदले इसके दस खरब भाग भी कर दिये जायं, और पुच्छल तारा ऐसे एक भागके बराबर हो, तो भी वह डेढ़ लाख मनका होगा !

कम वजन और अधिक विस्तारके कारण पुच्छल तारा-ओंका घनत्व प्रायः शून्यके बराबर होता है। श्वाड्स शिल्डका अनुमान है कि हैली केतुके २ हजार घनमीलमें उतना द्रव्य भी न होगा, जितना साधारण वायुके एक घन-इञ्चमें होता है ! घनत्वके अत्यन्त न्यून होनेका समर्थन सूर्यबिम्बके सामने उनके आ जानेपर भी होता है। १८८२ में एक पुच्छल तारा सूर्यके पास दिखलाई पड़ा। वह सोनेके समान चमकते हुए सूर्य-बिम्बके छोरके निकटकी चांदीके समान श्वेत प्रकाशसे चमक रहा था और धीरे-धीरे उस खौलते हुए बिम्बके समीप खिंचा जा रहा था। परन्तु ज्योंही वह सूर्यबिम्बसे छू गया, त्योंही एकाएक अदृश्य हो गया। इतना शीघ्र वह मिट गया कि दर्शकोंको विश्वास हो गया कि अवश्य वह सूर्यके पीछे चला गया; परन्तु पीछे इसकी कक्षाकी गणना करनेपर जरा भी शक नहीं रह गया कि इस पुच्छल तारेके शून्य घनत्वके कारण ही ऐसा हुआ।



नवीन केतुके दिखाई पड़नेपर ज्योतिषियोंकी चिन्ता।

पुच्छल ताराओंके विषयमें हमारा ज्ञान फोटोग्राफीके कारण बहुत बढ़ गया है। इसके द्वारा ऐसे ब्योरे दिखाई पड़ते हैं, जो और किसी तरह दिखलाई न पड़ते। फोटोग्राफी-के आविष्कारके बादसे कई बार चेष्टा की गयी; परन्तु पहला फोटोग्राफ १८९८ में बन सका। बात यह थी कि पहले प्लेट बहुत मन्द होते थे और तीन-चार घण्टेके प्रकाश-दर्शनमें भी उनपर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता था। परन्तु अब उनका फोटो लेना सरल हो गया है।

इस बातसे कि केतुओंकी पूंछ सूर्यसे विपरीत दिशामें रहती है, पता चलता है कि सूर्य और इन पूंछोंमें घना सम्बन्ध है। सूर्य और पूंछके द्रव्यमें आकर्षणके बदले प्रतिसारण (Repulsion) होता होगा, जिससे पूंछ खिंचनेके बदले पीछे हट जाती है। परन्तु कुल मिलकर पुच्छल तारेपर प्रायः उतना ही आकर्षण पड़ता होगा, जितना कि इस प्रतिसारणके न रहनेपर पड़ता; क्योंकि केतु आखिर आकर्षण-सिद्धान्तानुसार ही चलता पाया जाता है। ओल्बर्सका कहना था कि यह प्रति-सारण विद्युतीय है। इस सिद्धान्तकी ब्योरेवार स्थापना रूसके एक वैज्ञानिकने की थी, जिससे यह बात भी समझमें आ जाती थी कि क्यों बहुत-से केतुओंके तीन पृथक्-पृथक् पूंछें होती हैं।

परन्तु अब वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि प्रकाशके दबावसे ही यह प्रतिसारण उत्पन्न होता है। किसी कारणसे, जो अभी तक अच्छी तरह समझा नहीं गया है, केतुसे बहुत करीब, गर्दकी तरह पदार्थ निकला करता होगा। सूर्यके प्रकाशके दबावमें पड़कर इसके कण सूर्यकी विपरीत दिशामें लौट पड़ते होंगे, ठीक उसी तरह, जैसे फव्वारेमें पानीके कण पृथ्वीके आकर्षणके कारण नीचे गिर पड़ते हैं।

प्रकाशका दबाव साधारण नापके कणोंपर बहुत कम पड़ता है; परन्तु यदि किसी कणका व्यास आधा कर दिया



एक फ्रेञ्च चित्रकारने इसमें एक देवीका चित्र दिखाया है, जो हेलीको कब्रसे अपनी भविष्यवाणीकी पूर्ति देखनेको पुकार रही है। हेलीने एक केतुके सम्बन्धमें, जो अब हेली केतुके नामसे प्रसिद्ध है—कहा था कि कुछ वर्षमें वह फिर लौटेगा और ऐसा ही हुआ।

जाय, तो इसका वजन पहलेका आठवां भाग हो जायगा; परन्तु सतह और इसलिए प्रकाश-भार भी घटकर चौथाई हो जायंगे। इसलिए यद्यपि वजन और प्रकाश-भार दोनों घट गये; परन्तु वजनके हिसाबसे प्रकाश-भार आधा ही घटा। इससे स्पष्ट है कि अत्यन्त सूक्ष्म कणोंपर आकर्षणकी अपेक्षा प्रकाश-भार भी अधिक होता होगा और इसलिए केतुसे निकले कण, यदि वे काफी सूक्ष्म होंगे तो, सूर्यकी ओर न खिंचकर विपरीत दिशामें ही जायंगे। इसका समर्थन फोटोग्राफीसे भी भले प्रकार होता है। पूंछोंमें कहीं-कहीं गांठ-सी पड़ी रहती है या उनमें कभी-कभी अन्य ब्योरे दिखलाई पड़ते हैं। थोड़े-थोड़े समय बाद लिये गये फोटोग्राफोंमें इन ब्योरोंकी स्थितियोंका मिलान करनेसे पता चलता है कि ये सूर्यकी विपरीत दिशामें चलते रहते हैं।

पुच्छल ताराओंसे पूंछके रूपमें जो पदार्थ निकल जाते हैं, वे फिर लौटकर नहीं आते। इसलिए पूंछ धीरे-धीरे छोटी होती जाती होगी। बड़े पुच्छल ताराओंमें ज्वार-भाटाके समान तरङ्गें उठती होंगी। कमसे कम उनपर वैसी ही शक्ति अवश्य काम करती होगी, जिससे पृथ्वीपर ज्वार-भाटा होता है। सूर्यके अत्यन्त निकट जानेके कारण बड़े पुच्छल ताराओंपर यह शक्ति अत्यन्त भीषण हो जाती होगी और इसीलिए शायद वे टुकड़े-टुकड़े हो जाते होंगे। इस सम्बन्धमें बिएला-केतुकी कथा अत्यन्त मनोरञ्जक है।

पहले-पहल बिएला नामके एक जर्मनने १८२६ में इसे देखा। गणना करनेसे पता लगा कि यह लगभग ६॥ वर्षमें सूर्यकी एक परिक्रमा करता है। जब यह १८३२ में फिर पृथ्वीके निकट आया, तो एक बड़ा तमाशा हुआ। कुछ लोगोंने गणित करके यह निकाला कि यह पृथ्वीके इतना निकट आ जायगा कि उससे पृथ्वीको टक्कर लग जानेकी सम्भावना होगी। बस, इतना ही जनतामें खलबली पैदा कर देनेके लिए काफी था। लोगोंने समझा कि कयामतका दिन आ गया। कौन कह सकता है कि ज्योतिषियोंकी गणनामें जरा-सी त्रुटि नहीं रह गयी होगी और इसलिए पुच्छल तारे और पृथ्वीमें मुठभेड़ नहीं हो जायगी। लेकिन जब पेरिसकी वेधशालाके अधिष्ठाताने यह सूचना प्रकाशित की कि उससे और पृथ्वीसे कमसे कम २॥ करोड़ कोसका अन्तर होगा, तब जाकर लोगोंको शान्ति हुई। जब यह केतु १८४६ में देखा गया, तो एक विचित्र बात हुई। यह दो टुकड़ोंमें विभक्त हो गया। दोनों टुकड़े एक-दूसरेसे दूर हट गये। १८५२ में ये दोनों टुकड़े देखे गये, तो इनका पहलेसे आठगुना अन्तर हो गया था। १८५९ और १८६६ में यह बहुत ढूंढ़नेपर भी न मिला। ऐसा प्रतीत होने लगा कि यह किसी कारणसे सौर-चक्रके बाहर हो गया। परन्तु सन् १८७२ में एक और विचित्र बात हुई। इस साल इसको फिर देख पड़ना चाहिए था और पृथ्वीको इसका मार्ग काटकर जाना चाहिए था। केतु तो न देख पड़ा, पर २७ नवम्बरको पृथ्वीने इसका मार्ग काटा—तो आकाशमें आश्चर्यजनक फुलझड़ी छूटी। असंख्य तारे टूटे और कई आगके गोले, जो चन्द्रमाके बराबर प्रतीत होते थे, देख पड़े। ऐसी आतिशबाजी कभी कदापि नहीं देखी गयी होगी। बात यह है कि बिएला-केतु टूटते टूटते असंख्य छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बंट गया—यहां तक कि वे टुकड़े यन्त्रोंसे भी देखे

जाने योग्य न रहे। पर जब पृथ्वी इनके बीचसे होकर जाती है, तो ये टूटते हुए तारोंके रूपमें देख पड़ते हैं।

इसी आधारपर यह समझा जाता है कि पुच्छल तारे और कुछ नहीं, महज बहुत-से छोटे-बड़े टुकड़ोंके समूह हैं। उनके साथ बहुत-सी गर्द और गैस भी रहती है। जब वे सूर्यसे दूर रहते हैं, तब हमको सूर्यके प्रकाशके उस भागके कारण दिखाई पड़ते हैं, जो उनपरसे लौटकर हमारे पास आता है। जैसे-जैसे वे सूर्यके निकट आते हैं, वैसे-वैसे उनमेंसे गैस और गर्द निकलने लगती हैं और उनमेंसे सूर्यकी रश्मियोंसे निजकी चमक भी उत्पन्न होने लगती है। सूर्यके अधिक पास आनेपर यदि गैस और गर्दकी मात्रा काफी हुई, तो प्रकाश-भारके कारण पूंछ बन जाती है।

वे टुकड़े, जिनसे पुच्छल तारा बना रहता है, कितने बड़े होते होंगे, इसका केवल अनुमान ही भर है, प्रमाण नहीं है। उनमेंसे बड़ेसे बड़े अवश्य कई मनके होंगे और इस पृथ्वीपर जो बड़ी-बड़ी उल्कायें गिरी हैं, उनसे वे कई गुने बड़े होंगे। केतुओंके छोटे कण बारीकसे बारीक गर्दसे भी सूक्ष्म होंगे। औसत व्यास शायद आध इञ्चसे कम न होगा; क्योंकि यदि कम व्यास होता, तो प्रकाश-भारके कारण केतुओंपर सूर्यकी आकर्षण-शक्ति प्रत्यक्ष रूपसे कुछ कम हो जाती।

पुच्छल तारे भी सौर-जगत्के सदस्य हैं, पहले इस बातको लोग नहीं मानते थे। जब तक हैली-केतुके दीर्घ वृत्तमें चलनेका आविष्कार नहीं हुआ था, लोग यही समझते थे कि पुच्छल तारे अनन्त दूरीसे आते हैं और उसी अनन्त आकाशमें सदाके लिए लौट जाते हैं। परन्तु अब थोड़े समय-में परिक्रमा करनेवाले बहुत-से पुच्छल ताराओंका पता लगनेपर लोगोंका यह विश्वास जाता रहा।

पुच्छल ताराओंकी संख्या कई लाख होगी। तीन-चार पुच्छल तारे हर साल देखे जाते हैं, इससे अनुमान किया जाता है कि प्रति वर्ष कमसे कम बीस-पचीस अवश्य ही सूर्यकी परिक्रमा करते-करते अपनी कक्षाके उस विन्दुको पार करते होंगे, जो सूर्यकी निकटतम दूरीपर है। बृहस्पति या अन्य ग्रहके आकर्षणसे कुछका वेग तो इतना बढ़ जाता होगा कि वे सूर्यके आकर्षणसे मुक्त हो जाते होंगे। परन्तु दूसरे नक्षत्रोंसे छूटे हुए पुच्छल ताराओंके सौर-जगत्में आ जानेकी सम्भावना बहुत कम जान पड़ती है।

बहुत-से पुच्छल ताराओंका परिक्रमा-काल कई हजार वर्ष होगा। उनके दुबारा लौट आनेकी प्रतीक्षा कौन कर सकता है?

पुच्छल ताराओंकी बनावट ठीक-ठीक ज्ञात न रहनेसे इस प्रश्नके विषयमें कुछ निश्चित रूपसे कहा नहीं जा सकता, परन्तु यदि पहले बतलाया गया सिद्धान्त ठीक है—जैसा बहुत सम्भव जान पड़ता है—और पुच्छल तारा वस्तुतः दूर-दूरपर बिखरे हुए कई छोटे-छोटे टुकड़ोंसे बना है, तब कोई विशेष भय नहीं है। यदि ये सभी टुकड़े दो-चार सेरके भी होंगे, तो हमारा वायुमण्डल हमको बचा देगा। ऐसे टुकड़े पृथ्वीतलपर पहुंचते-पहुंचते वायुमण्डलमें ही भस्म हो जाते हैं और हमें उल्काके रूपमें दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु यदि ये टुकड़े दस-बीस मनके या इससे भी बड़े होंगे, तब तो अवश्य ही खतरा है। पृथ्वीके जिस भागपर वे गिरने लगेंगे, उसका सर्वनाश ही हो जायगा; हां, पृथ्वी चकनाचूर नहीं हो जायेगी।

रह गयी विषैली गैसोंकी बात, उनसे कोई डर नहीं मालूम होता। क्योंकि केतुओंमें इनकी मात्रा काफी नहीं है। शायद वायुमण्डलकी ऊपरी तहोंमें ओषजनकी अधि-कताके कारण विषैली गैसें परिवर्तित होकर विष-रहित भी हो जायंगी। जो हो, इतना निश्चय है कि पृथ्वी आधुनिक समयोंमें भी पुच्छल ताराओंकी पूंछमेंसे निकल गयी है और हम लोगोंको गणनाके सिवा और किसी बातसे इसका पता नहीं लगा है। १८६१ के बड़े पुच्छल तारेकी पूंछमेंसे और १९१० के हैली केतुकी पूंछमेंसे भी, पृथ्वी निकल गयी और हम लोगोंको इसका ज्ञान भी नहीं हुआ।

———



एक पहलू

श्री "रमण"

गुलबियाकी जवानी मेरे मुहल्लेकी चर्चा थी। जहां कहीं देखिये या सुनिये, कुओंपर—सड़कोंपर—दालानोंमें—सभी जगह बातोंके प्रसङ्गमें उसका उल्लेख अनिवार्य था। जब कभी मुहल्लेकी दो-चार औरतें कमरपर घड़े और हाथोंमें रस्सियां लेकर, कुएंपर जुट जातीं—जैसे गुलबिया-का जिक्र बिना किये अड्डा हो जाना असम्भव हो जाता। एक कहती—"कितना चमककर चलती है," और दूसरी उसकी ताईद करती—"आंखोंका शील ही धुल गया है।" और इसी बीचमें यदि गुलबिया भी अपनी पुरानी झोंपड़ी-से—जिसपरके खर और फूस प्रायः उड़ चले थे—जिसकी टट्टियां बरसातकी हवाओंसे बिखर गयी थीं—पतली काली साड़ी, नीचे लाल छींटका साया, बदनमें चुस्त जाकेट, आंखोंमें ताजा काजल, दांतोंमें हल्की मिस्सी, एक हाथमें एक-आध लहठी और दूसरेमें आसमानी रङ्गकी दो-तीन चूड़ियां, बालोंको कभी बाकायदा संवारे और कभी कपड़े साफ करनेवाले साबुनसे धोकर खोले—छितराये—पतली कमरपर छोटा-सा घड़ा लिये—बल खाती, आंखोंसे इधर-उधर निहारती—बिना वजह मुस्क-राती और बेजगह ठोकरें खाती—उस कुएंपर आ जाती, तो वे औरतें जल जातीं! सभी झट अपने-अपने घड़े लेकर अपनी राह लग जातीं। गुलबिया भी जैसे उन्हें छेड़ना नहीं चाहती। और कभी-कभी यदि गुलबिया यों ही यह पूछ भी देती कि "गंगिया फूआ, इन दिनों तुम्हें देखती नहीं हूं", तो इसका जवाब उसकी गंगिया फूआ नाक सिकोड़ कर देती, "अरे, गुलाबो! तुम आजकल हम लोगोंको क्यों देखोगी? तुम तो देखोगी..." और यह कहती-कहती गर्दन घुमा लेती। गुलबिया इसका कुछ अर्थ विशेष नहीं समझती। दुसाध जातिकी वह अल्हड़ बालिका, जैसे केवल इतना जान गयी थी कि जवानीका मोह—इस उमरकी ईर्षा, इन्हें बहुत है। और यही कारण था कि वह चुप रह जाना ही अच्छा समझती। मुहल्लेमें उसका साथ देनेवाला और कोई नहीं था, बस थी तो उसकी भाभी, जो अपनी भरी जवानीमें ही—अपनी सासके शब्दोंमें—अपने पतिको खा गयी थी। बेचारीने जैसे अपनी ख्वाहिशोंपर पत्थर डाल लिया हो। सबेरे ही हाथमें खुरपी और टोकरा लेकर घासके लिए निकल जाती। शहरोंमें घास भी आसानीसे मिलनेवाली नहीं। फिर भी उसने रेलवे लाइनकी बगलकी घास गढ़-गढ़कर उसे रेतकी तरह सफेद कर दिया था। जाड़ा हो या गर्मी, बारह बजेके पहले उसका घर लौटना उसी दिन होता, जिस दिन घरमें कोई पर्व रहता या बारीके जङ्गल साफ करने होते। ऐसी जातियोंमें विधवायें फिर विवाह कर लेती हैं; किन्तु उसी उमरमें तीन बच्चे भी उसकी गोद भर गये थे। गुलबिया उस भाभीकी चिन्ता बहुत अधिक करती। परवरिशका एकमात्र साधन थी एक छोटी-सी दुकान। एकदम छोटी-सी। दस-पांच मिट्टीके बर्तन होंगे—टट्टियोंपर चिलमें लटकतीं, किरासनका तेल और छोटे-छोटे तीन-चार टोकरोंमें चावल-दाल। गुलबियाका बूढ़ा पिता बहुत झुक गया था और इसलिए चलने-फिरनेमें उसे तकलीफ होती थी। रातमें जरा दिखाई भी कम पड़ता, इसलिए मुहल्ले-भरके लड़के खराब अठन्नी-चवन्नी लेकर उसी समय सौदा करने जाते। और जब कुछ ही दिनोंमें उसके पास छः रुपयोंकी रेजगियां रही निकल आयीं, तो उसने रातको सौदा बेचना ही बन्द कर दिया। उसकी बगलमें ही मेहतरोंका टोला है। वे ही उसके खरीदार थे। और कभी-कभी तो लाख बार चेष्टा करनेपर भी गुलबियाका पिता जब रातको अन्न नहीं बेचता, तो उन मेहतरोंको या तो दूर जाना पड़ता या उपवास ही कर सो जाना पड़ता। किन्तु दूसरे दिन सबेरे ही उन लोगोंके घरोंपर आंचलमें सामान बांधकर गुलबिया दे आती और हंस-हंसकर यह भी कह देती कि सबेरे ही क्यों नहीं मंगवा लेते तुम लोग?

और उस दिन दोपहरमें जब झोंपड़ोंमें सन्नाटा था, तो गंगिया फूआ गुलबियाके पास आयी। बैठी और चिलमें पी। गुलबिया इसे कुछ समझ नहीं रही थी कि आज बात क्या है? फिर कुछ इधर-उधरकी बातोंके बाद उसने कहना

शुरू किया—"गुलाबो, तुम्हारी शिकायत बहुत हो रही है। कल शामको तुम्हें मास्टर साहबसे बातें करते मांजन बाबूने देख लिया : भात काटनेकी बात हो रही हैं।" और जैसे गुलबियाके बदनमें आग लग गयी। अभी उसी दिन मांजनका एक आदमी गुलबियासे भद्दी बातें कर गया और यह भी कह गया कि मांजन तुमसे मिलना चाहते हैं; किन्तु गुलबियाने उसका जवाब जरा कड़े शब्दोंमें दिया था। और आज उसीके प्रतिकारमें वह एक झूठा अभियोग लगाकर अपने दिलकी आग बुझाना चाहता है। जातिसे बाहर कर देनेकी धमकी भी देता है। गुलबियाने जैसे इसे सुना ही नहीं हो। उसने इतना ही भर कहा—"अच्छा, देखा जायेगा।" और तब उसको गंगिया फूआ चली गयी थी।

मास्टर भी मुहल्लेमें एक जीव है। 'इण्ट्रेन्स" पास नहीं कर सका। कुछ तो कुन्दजिहन था और कुछ उसे समयकी कमी रही। तभीसे वह पढ़ाईका काम ही प्रमुख कर बैठ गया है। सुबह, दोपहर, शाम जब देखिये तभी, वह किसी-न-किसीके यहां कुछ बच्चोंको लिये—कहीं "रैम माने भेड़ा" तो कहीं "एक पैसेमें दो आम" कर रहा है। मासमें २०) पैदा कर लेता है। एक होटल नहीं, भोजनालयमें खाता है और एक सज्जनके बरामदेमें एक चौकीपर सो जाता है। उसमें एक खास बात है। वह कपड़े बहुत साफ पहनता और अपनेको सुन्दर भी समझता है। उसकी एक पुरानी लालटेन है—कोई पांच-सात वर्षोंकी; किन्तु है एकदम चकचक। सप्ताहमें एक बार जब अपने जूतोंपर कोबरा लगाता, तो उसी दिन नीबू या सुरखीसे लालटेन भी जरूर मांजता। शामको उसे जलाकर, वह अपने विद्यार्थियोंके यहां जाता और अपनी ही लालटेनकी रोशनीमें, कुछ पढ़ा-लिखा आता। मुहल्लेमें उसका अपना कोई न था। इसलिए दिल बहलानेके लिए वह गुलबियाको सबसे अधिक पसन्द करता। गुलबिया भी उससे नाराज नहीं होती, यह तय था और कभी-कभी तो मुस्करा भी जाती। मास्टर खिल जाता उस समय! वह अपनी इस कमजोरीको एकदम नहीं समझ सकता था।

जाड़ोंमें सुबह—तीन बजेसे वह गाने लगता था और ज्योंही पूरबमें लाली नजर आती, टहलनेके लिए निकल जाता। और इसका कारण यह था कि गुलबिया सुबह ही गोबर बीछने निकल जाती। मास्टरका कहना है कि उसे गुलबियासे कोई जान-पहचान भी नहीं; किन्तु जो मुहल्लेके छंटे-छंटाये लोग थे, इसे अच्छी तरह समझने लग गये थे। किन्तु करें क्या? कभी कोई ऐसा मौका ही नहीं आता, जो मास्टरपर कोई उंगली उठा सकता और उस दिन गंगिया फूआने भी मांजनका जो समाचार सुनाया, वह बदला लेनेकी एक प्रतिक्रिया मात्र थी। दिलकी कसक, ज्वालाको बुझानेके लिए मांजनने गुलबियाके साथ अन्याय ही करना तय कर लिया था।

और लगा उस दिन दशहरेका मेला। शहर-भरमें कोलाहल मच गया। दस दिनों तक शहरमें देहातके नर-नारी उमड़कर चले आते और फिर लौट जाते। कई जगह दुर्गाकी प्रतिमायें बनाकर पूजी जा रही थीं। और मास्टरने समझा—वह इन्हीं दस दिनोंमें गुलबियासे अपने हृदयकी सारी बातें कह लेगा। एक दिन जब मास्टर अपनी लालटेन लिये चला जा रहा था, तो गुलबिया अपनी भाभीसे कह रही थी—"इधर साड़ियोंकी बड़ी दिक्कत रहती है......" और इसके अलावा मास्टर कुछ सुन नहीं सका। उसने यही समझा कि उसे साड़ियां चाहिए और वह भाभीके परदेमें मुझसे कह रही थी। गरचे बात एकदम ऐसी नहीं थी।

और दूसरे दिन रातको मास्टर इस ताकमें रहा कि गुलबियासे कब निर्जनतामें मुलाकात होती है। वह सोचता—यदि वह इसे स्वीकार न करेगी तब? और करेगी क्यों नहीं? गरीब आदमी है और इसलिए उसकी ख्वाहिशें पूरी हों—यह सम्भव नहीं। वह कभी-कभी यह भी सोचता कि वह किस दिक्कतसे साढ़े चार रुपये लगाकर उन्हें खरीद लाया है। किन्तु जैसे वह इन बातोंको उस दिन भूल जायगा, जब गुलबिया इसे पहनकर एक बार, बस एक बार उसकी ओर देखकर हंस देगी। और यह सोचते-सोचते वह न जाने किस दिशामें उस नावकी तरह बह जाता, जो बिना पालके बह रही हो।

और तभी अंधेरेमें एक धुंधली-सी छाया दिखाई पड़ी। वह और भी समीप होती गयी और मास्टरने देखा—गुलबिया अपनी भाभीके साथ मेलेसे लौट रही थी। मास्टरके हृदयमें तूफान था। उसका सारा शरीर थरथर कांप रहा था और ललाटपर पसीनेकी बूंदें चमक रही थीं। और

ज्योंही गुलबिया उसके समीप पहुंची—मास्टरने बण्डल बढ़ा दिया। वह रुकी और सकुचायी, शायद चाहा—लौटा दूं; किन्तु मास्टरने कहा—"घबराओ नहीं, इसे अभी ले जाओ"—और गुलबिया बिना कुछ कहे चली गयी लेकर! मास्टरने इससे अधिक सफलता अभी तक अपने जीवनके किसी क्षेत्रमें प्राप्त नहीं की थी। और विजयादशमीके दिन जब गुलबिया और उसकी भाभीको उसी जोड़ेकी एक-एक साड़ी पहने देखा, तो उसके आनन्दकी सीमा न रही। और उसके हृदयमें एक भाव आकर डङ्क मार गया उसी समय—काश, मेरी अपनी भी कोई होती और मैं उसे प्रत्येक पर्वको नयी-नयी साड़ियां पहनाता। उसकी आंखें छलछला गयीं।

मास्टर इसके बादसे ही कुछ अन्यमनस्क-सा दीखता। न तो कहीं पढ़ाने ही जाता और न टहलने ही। कोई कुछ कहता और कोई कुछ। किन्तु कोई भी यह समझ न सका कि हृदयमें एक नयी वेदनाने घर कर लिया है। एक नया नासूर पैदा हो गया है। गुलबियामें भी कुछ परिवर्तन दिखाई पड़े। उसके अल्हड़पनको एक विचित्र गम्भीरताने ढंक लिया। कुएंपर न तो वह नजरबाजी रह गयी और न गंगिया फूआसे ताने मार-मारकर बातें ही।

और इस तरह महीना भी न गुजरा था कि एक दिन सुबह यह बात आगकी तरह फैल गयी कि मास्टर गुलबिया-के साथ कहीं भाग गया है। साथ जाते तो किसीने नहीं देखा; किन्तु रघुनन्दनकी बेटीने इतना जरूर कहा कि कल शामको मास्टर साहब गुलबिया फूआसे बहुत बातें कर रहे थे। और यही काफी था इसकी पुष्टिके लिए कि वह मास्टरके सिवा दूसरा कोई नहीं था, जो गुलबियाको भगा-कर ले गया। लोग समझते कि उसकी भाभीको सारी बातें जरूर मालूम होंगी; किन्तु भाभी चुप थी चोरकी औरतोंकी तरह। मास्टरका सारा सामान उसी तरह पड़ा था, केवल कुछ कपड़े गायब थे। और गुलबियाके घरकी बात बाहर नहीं फैल सकी; क्योंकि उसका बाप इसे पोशीदा ही रखना चाहता था। उसे उम्मीद थी कि जवानीके अल्हड़-पनमें यह गलती हुई होगी और दो-चार दिनोंमें गुलबिया लौट आवेगी।

धीरे-धीरे एक मास निकल गया, पर न तो मास्टर ही लौटा और न गुलबिया ही। मुहल्लेमें गुलबियाकी गैर-हाजिरीसे बहुतोंने तकलीफ उठायी—यह पीछे पता चला। कुछ दिनों तक उसकी चर्चा गर्म रही; किन्तु समयके साथ ही बातें पुरानी पड़ती गयीं और उसके साल-भरके बाद तो जैसे यह घटना कभी हुई ही नहीं थी। किसीके क्रममें अन्तर न पड़ा। दुकान उसकी उसी हालतमें चलती रही और उसकी भाभी भी घासके टोकरे ढोती रही।

किन्तु दो वर्षके बाद जब मैं इस बार कलकत्ते गया, तो एक दिन "कालिज स्क्वायर" में मास्टरसे मुलाकात हो गयी। देखकर उसने झट पहचान लिया। एक अजीब जीवन बिता रहा है। देखा, कुछ कबाब, कुछ भूना मांस फेरी लगाकर बेचता है। मैं नहीं चाहता था कि गुलबियाकी बातें चलाऊं, किन्तु मान भी नहीं सका। और मेरे पूछते ही, वह रुककर कहने लगा—"क्या पूछते हैं? दो साल तो साथ ही, यहीं रही है। किन्तु आज प्रायः साल-भर हुआ, एक रातको गुम हो गयी। और तबसे उसका कुछ पता नहीं चला है सरकार।" मैं इसे सुन रहा था कि उसने झट पूछा—"वहां तो नहीं चली गयी है?" और मेरे 'ना' कहनेके पहले वह समझ गया कि वह वहां नहीं है। मैं कुछ पूछना नहीं चाहता था और वह अपना मांसका टोकरा लेकर एक ओर चला गया।

प्रायः सप्ताह-भरके बाद जब पटने पहुंचा, तो एक दिन कुछ दोस्तोंके अनुरोधसे गाना सुनने चौक चला गया। दोस्तोंकी पसन्द हुई और एक घरमें गाना शुरू भी हुआ। किन्तु बातोंके सिलसिलेमें बाईजीने अपनी दाई, गुलाबनको पुकारा—तो मेरे कान खड़े हो गये। और मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब मैंने अपनी पूर्व परिचित गुलबियाको—वहां दाई बनकर गुलाबनके रूपमें देखा। वह मुसलमान हो चुकी थी। उसने मुझे पहचान लिया और फिर अपनी उसी मुस्कानको लेकर इठलाती हुई चली गयी। किन्तु मैंने अनु-भव किया, जैसे उसमें पहलेवाली मुस्कानकी वह सरलता और सचाई अब बाकी नहीं रह गयी।

मैं वहांसे लौटता हुआ यही सोच रहा था कि जिसकी खोजके लिए मास्टर और गुलबियाने पक्षियोंकी तरह जमीन-को छोड़कर आकाशमें पर मारे, क्या वह उन्हें हासिल हो सका? और यदि नहीं, तो वे उस पथपर कितनी दूर पहुंचकर चूर हो गये—और भी दूर हो गये!

आत्महत्याका यह भीषण रोग !

श्री श्याम उपाध्याय, पत्रकार

आत्म-हत्या एक ऐसा रोग है, जिसकी चिन्तासे समस्त राष्ट्र उद्विग्न हो रहे हैं। क्या कारण है कि यह घातक रोग इतनी प्रचुर मात्रामें प्रत्येक देश, जातिमें प्रविष्ट होकर उसका संहार कर रहा है ? पाठक आश्चर्य करेंगे कि अमेरिका-जैसे उन्नत राष्ट्रमें हर २६ मिनटमें एक आत्मघातकी घटना घटित हो जाती है। इसी प्रकार ब्रिटेन-जैसे देशमें प्रतिदिन लगभग २० प्राणी इसके शिकार होते हैं। यदि प्रत्येक देशके आंकड़े दिये जायं, तो यह बड़ी विशाल संख्या दिखाई पड़ेगी। जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, पोलैण्ड, जेकोस्लोवेकिया तथा जापान आदि देशों और राष्ट्रोंमें एक लाख मनुष्योंमेंसे २५ से ३० तक आत्महत्या कर लेते हैं। अब तक भारत-सरकारके पास कोई प्रमाणित अङ्क नहीं हैं। इसके लिए सरकार जितनी दोषी है, उससे अधिक यहांकी प्रथा है, जिसके अनुसार यहां पता बहुत कम लगता है कि मृत्यु स्वाभाविक रूपसे हुई अथवा आत्महत्या तथा अन्य साधनोंसे। फिर भी हमारा अनुमान है—जिसका विस्तृत विवेचन हम आगे करनेका प्रयास करेंगे—कि यहां प्रतिवर्ष १० हजारके अङ्क हमें प्राप्त होते हैं, जिनको आत्मघातके अन्तर्गत ले सकते हैं। सभी देशोंके आत्महत्याके अङ्कोंकी एक तालिका बनाकर देखा जाय, तो हृदय कांप उठनेवाली समस्या उत्पन्न हो जाती है। किन्तु इन अङ्कोंसे यह भी स्पष्ट भान होने लगता है कि सभ्य देशोंके मुकाबलेमें असभ्य कही जानेवाली जातियों तथा देशोंमें यह दारुण रोग कम मात्रामें पाया जाता है। उदाहरण-स्वरूप हम अमेरिका-स्थित निग्रो जातिको ही ले सकते हैं, उस जातिमें एक करोड़ पीछे प्रतिवर्ष ५०० अपघात ही होते हैं; पर ज्यों-ज्यों ये सभ्यताकी श्रेणीमें प्रवेश करते जाते हैं, इनमें यह रोग वृद्धि करता जाता है। यह भी देखा जाता है कि भारतको छोड़कर अन्य देशोंमें पुरुष आत्महत्या अधिक करते हैं। भारतमें स्त्रियोंकी ही संख्या अधिक पायी जाती है।

यह एक और भी विचित्र बात है कि सभी देशों, राष्ट्रों और धर्मोंमें आत्महत्याको अनुचित बतलाकर अपने धर्म एवं उच्च ग्रन्थोंमें इसको अधर्म कहा है। कानूनसे भी सभी जगह इसे दण्डित ठहराया गया है। परन्तु क्या कारण है कि इन सब बातोंके होते हुए भी यह रोग बढ़ता जाता है—इसका वृत्त विस्तृत होता जाता है ? एक शब्दमें हम कह चुके हैं कि प्रथम कारण है वर्तमान सभ्यता और दूसरा मुख्य कारण इसीकी एक शाखा है—ईश्वर, धर्मके प्रति अविश्वास, इस ओर सभ्यताकी उदासीनता। यदि ध्यानपूर्वक इसके अङ्कोंका मनन किया जाय, तो हम इस तथ्यपर पहुंचते हैं कि धर्म और ईश्वरपर विश्वास रखनेवाले लोग और जातियां बहुत कम आत्महत्यापर उतारू होती हैं। पाठकोंने बहुत कम पढ़ा होगा कि किसी पण्डित, पुरोहित, पादरी, मुल्ला या पुजारी, मौलवीने अपघात करके प्राणोंका अन्त किया ! भारतवर्षमें भी जबसे नवीन सभ्यताका साम्राज्य हुआ है, आत्महत्याका आतङ्क बढ़ता जाता है। अस्तु, यह निर्विवाद सत्य है कि नास्तिक ही इसके शिकार अधिक होते हैं, आस्तिक बहुत कम।

आत्महत्याके दण्डपर विचार करें, तो और भी हंसी आती है। यह दण्ड आत्महत्यामें सफल होनेवाले व्यक्तिको न दिया जाकर असफल व्यक्तिको दिया जाता है। भारतीय न्यायशास्त्रमें लिखा है, जिसका आशय है कि आत्महत्या स्वयं नहीं, आत्महत्याका प्रयत्न दण्डनीय है।

स्वभावतः मनुष्य मृत्युसे भयभीत होता है। मनुष्यकी तो बात ही क्या, छोटे-से शिशुको भी इससे डर लगता है। उसे आग, पानीमें ढकेलनेका प्रयास करनेपर वह भयसे आतुर होकर पीछेकी ओर हटनेका प्रबल प्रयत्न करता है। फिर कौन-सी दानवी दुष्ट सत्ता है, जिसके वशीभूत होकर वह ऐसा दुस्साहस कर बैठता है। यदि इसपर इसी दृष्टिकोणसे विचार किया जाय, तो कहना पड़ेगा कि आत्महत्याके प्रयत्नमें वीरताकी झलक है; पर इसे वीरोचित कार्य कह नहीं सकते हैं; क्योंकि असफल प्राणी ही अपघातपर आरूढ़ होते हैं। अस्तु, यह कायरतापूर्ण कार्य है, जिसे कमजोर, कायर, कापुरुष ही करते देखे गये हैं। तभी धर्म-ग्रन्थोंमें इसे निन्दित कहा है

और न्यायमें इसको दण्ड देनेवाला कार्य माना गया है। यह दूसरी बात है कि वह हत्याकारीको दण्ड दे नहीं सकता, क्योंकि वह उसकी परिधिसे बाहर है।

यहां इसका विवेचन करना है कि आदमी आत्महत्या क्यों करता है? इस प्रश्नका उत्तर एक शब्दमें देना कठिन है; क्योंकि अपघातके विभिन्न कारण हैं—कोई जीवनमें असफल होनेसे करता है, कोई प्रेमिका-विरहमें इसका शिकार हो जाता है, कई कर्ज, निन्दा, अपयश, समाजके भय, जीविका न मिलनेके कारण, कुछ शर्मके भयसे, स्त्रियां पति एवं कुटुम्बियों द्वारा सताये जानेपर, अमानुषिक अत्याचारोंसे तङ्ग आकर और प्रायः वृद्ध रोग या शारीरिक कष्टोंसे ऊबकर आत्महत्या करनेका साहस कर बैठते हैं। इन कारणोंके अलावा भी अनेकों कारण हो जाते हैं, उन सबका हमें विवेचन नहीं करना है। पर यह कहना पड़ेगा कि वर्तमान डाक्टर इस तथ्यपर पहुंचे हैं कि यह भी एक प्रकारका रोग है, जिसका उपचार भी यथासमय पता लगनेपर हो सकता है और यह एक प्रकारका मानसिक विकार है, जिसके वशीभूत होकर प्राणी ऐसा दुस्साहसी कार्य कर बैठता है, जो साधारण अवस्थामें कठिन एवं असम्भव-सा प्रतीत होता है।

आत्महत्याकी अधिकांश घटनायें इस बातकी द्योतक हैं कि इनके पीछे कोई-न-कोई कारण अथवा रहस्य अवश्य है। और यह भी स्पष्ट है कि यह किसी सदुद्देश्य या सद्कार्यके लिए नहीं की जाती है।

जिस प्रकार आत्महत्या करनेका कोई एक कारण नहीं है, उसी प्रकार इसके करनेके ढङ्गोंमें भी विभिन्नता है; पर यह मानी हुई बात है कि देश, काल एवं परिस्थितिका प्रभाव इसपर अवश्य पड़ता है। किसी जमानेमें केवल विष खाकर, पानीमें डूबकर या हथियारसे हत्यायें की जाती थीं। आजकल रेल, मोटर, ट्राम एवं मशीनसे कटकर, बिजलीको छूकर, जलकर, ऊंचे स्थानसे कूदकर, फांसी लगाकर, रासायनिक औषधोंका सेवन करके, पिस्तौल खाकर, जहरीली गैसके सेवनसे की जाती हैं। सम्भव है, कई प्रकार (या करनेके ढङ्ग) हमसे छूट गये हों। विभिन्न देशों, जातियोंमें पृथक्-पृथक् प्रणालियां हैं। जिसको जो साधन सुगम पड़ते हैं, जो समयपर सूझ जाते हैं या जुट जाते हैं, उन्हींको लेकर मानसिक विकारसे विकृत व्यक्ति अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर देते हैं। सारांश यह है कि जितनी हत्यायें होती हैं, उतने ही विविध ढङ्ग और पृथक् प्रकारसे उन्हें करते देखा जाता है।

कुछ मनुष्योंको इसकी सनक भी सवार हो जाती है। किसीको यदि एक बार सफलता नहीं मिलती है, तो वह पुनः चेष्टा करेगा, उद्योग करेगा। ऐसा व्यक्ति रोका नहीं जा सकता है। हां, उसका उपचार हो सकता है। पर कुछ प्राणी ऐसे होते हैं, जो भूलसे, कायरतासे इस कुण्डमें कूद पड़ते हैं। इनको प्रथम प्रयासमें सफलता न मिलनेपर ये परब्रह्म प्रभूको धन्यवाद देते हैं, उसकी सहायताकी सराहना करते हैं, उसकी महती अनुकम्पाके लिए स्तुति करते हैं। अपनी कायरताके लिए उन्हें ग्लानि भी होती है। वे अपने मनको धिक्कारते भी हैं कि वे किस ओर बह गये।

अवस्थाकी दृष्टिसे आत्महत्याके तीन विभाग किये जा सकते हैं—बालक, युवक और वृद्ध। नर और नारीके विभेदसे इसकी तीन श्रेणियां और हो जाती हैं। यह पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि अन्य देशोंमें पुरुष आत्महत्या अधिक करते हैं; पर भारतमें स्त्रियोंकी संख्याका आधिक्य है। पुरुषोंमें बालकों और वृद्धोंको यदाकदा अपघात करते सुनते हैं; पर अधिकांशमें तरुण ही इस जलती आगपर चढ़कर प्राणोंका उत्सर्ग करते हैं। यह स्पष्ट करना अत्यावश्यक नहीं है कि पुरुष अधिक अग्रसर क्यों होते हैं? बात यह है कि इस अवस्थामें उसके खूनमें जोश होता है, मस्तिष्क अपरिपक्व होता है। जीवन-यापनकी समस्या समक्ष खड़ी होती है। उसका आत्मिक विकास नहींके बराबर होता है; भावुकताका प्रभुत्व रहता है, गृहस्थीके झञ्झट भी उलझ जाते हैं, प्रायः प्रेमके थपेड़े खाकर अचेत होना पड़ता है, जीवन-पथपर अग्रसर होते समय अन्य कठिनाइयोंका भी सामना हो जाता है; अस्तु, उनसे विमुक्त होनेके कारण युवक अपघात करनेपर उतारू हो जाते हैं। जो बात युवकोंके लिए लागू है, वही युवतियोंपर लागू है। बालकोंको आत्महत्याका प्रयास करते बहुत कम सुना है। इस अवस्थामें न उनमें बल होता है, न साहस, शक्ति और जोश एवं उल्हड़पन कम रहता है। वे सांसारिक झञ्झटों एवं जीविका-उपार्जनके प्रश्नसे विमुक्त होते हैं। प्रेम तथा विरहाग्निका ज्ञान उनको नहीं होता है। चिन्ताके चिह्नोंकी कमी इस अवस्थाका प्रमुख गुण है, अतः कोई कारण

ऐसा उपस्थित होता ही नहीं कि उनको अपघात करना पड़े। सङ्कटकी अवस्था तो केवल युवावस्था या तरुणायु है, इसमें ही अच्छे-अच्छे डगमगा जाते हैं, उनके पैर उखड़ जाते हैं।

वृद्ध मनुष्य कुछ खास कारणोंके आ जानेपर ही आत्म-हत्या करते हैं। उनको मृत्युसे भय भी होने लगता है। समयके थपेड़े खाकर वे सहनशील हो जाते हैं। शारीरिक शक्ति न होते हुए भी मानसिक शक्ति प्रचुर परिमाणमें पायी जाती है, भावुकताका अभाव हो जाता है, उनकी आत्मा प्रबल हो जाती है एवं उन परिस्थितियोंका सर्वथा अभाव होता है, जिनके वशीभूत होकर युवक हत्या कर लेते हैं। यदि किसी वृद्ध पुरुषने अपघात किया, तो उसका कारण हो सकता है चिररोग, समाज-निन्दा, अपयश, अत्यधिक कर्ज और आर्थिक हानि।

स्त्री-जाति स्वभावसे कमजोर, भावुक एवं सन्देहशील होती है। ये बातें एक अमेरिकन आदमीमें अधिक होती हैं, तभी एक घण्टा व्यतीत होते-न-होते वहां दो आदमी आत्म-घात कर लेते हैं। दूसरे स्त्री-जातिको गृहस्थीकी चिन्ताके अतिरिक्त अन्य कोई चिन्ता नहीं रहती है। वह पुरुषकी आश्रिता है, उसका क्षेत्र भी सीमित है। पर जिस देश और जातिमें उनका कदम बढ़ता जाता है, वे पुरुषोंके पद-चिह्नोंपर अग्रसर होने लगती हैं, वहां आंकड़े बढ़ जाते हैं।

प्रत्येक देशकी सरकार इस चिन्तामें ग्रस्त है कि इस रोगसे मनुष्य-समाजको कैसे मुक्त किया जाय? वे इस रोग-की दिन-प्रतिदिन वृद्धिको देखकर घबरा रही हैं और भांति-भांतिके प्रयत्नों एवं उपचारोंसे इसकी संख्याको घटानेमें प्रयत्नशील हैं। हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि जब तक जीवन-को सरल, आमोद-प्रमोदसे पृथक्, आडम्बर-रहित न किया जायगा, इसके विनाशकारी विकासका मार्ग बदला न जायगा, मनुष्योंका धर्म और ईश्वरपर भीतरी विश्वास जमाया न जायगा, उन्हें धैर्यवान् एवं सहनशील बनना न सिखाया जायगा, ऐसी कहानियों, गल्पों, नाटकों और उपन्यासोंका प्रकाशन बन्द न होगा, जिनको पढ़कर नास्तिकताकी बू फैलती है, जिनमें जीवनका दुखी चित्रण करके उसको आत्म-हत्याके मार्गसे विमुक्त करनेके दृष्टान्त जनताके समक्ष उपस्थित किये जाते हैं, तब तक सफलता मिलनेकी बहुत कम सम्भावना है। वे सतत प्रयत्न करें, उनको कामयाबी नहीं हो सकती। दुःख इस बातका और भी अधिक है कि भारत-सरकारके कानोंपर जूं भी नहीं रेंगती है, उसको अव-काश ही नहीं प्रतीत होता है कि वह इस घातक रोगकी ओर ध्यान दे।

कुछ वर्षों पूर्व पञ्जाबकी प्रान्तीय सभाने इस विषयपर भारत-सरकारका ध्यान आकर्षित किया था कि अकेले पञ्जाबमें ही पांच सौसे अधिक आत्म-हत्यायें होती हैं। सन् १९३४ में तो यह संख्या ६९६ से अधिक थी, जिनमेंसे २२ व्यक्तियोंने अपने प्राणोंको बेकारीकी बलिवेदीपर न्योछा-वर कर दिया। यदि इसी औसतपर भारतके अन्य १० प्रान्तोंकी संख्याका अनुमान लगाया जाये, तो भी ९ हजारसे अधिक ही बैठता है। यदि देशी राज्योंमें होनेवाली आत्म-हत्याके अङ्क इसी संख्यामें जोड़ दिये जायं, तो भारतमें नित्यप्रति औसतन् १० हजार हत्यायें हो सकती हैं। अधिक सन्ताप इस बातका है कि इन १० हजारमें स्त्रियोंकी संख्या अधिक है। समस्त भारतके अङ्कोंको देखा जाय, तो भी स्त्रियोंकी आत्म-हत्याकी संख्या, पुरुषोंकी संख्यासे तीस प्रतिशतसे भी अधिक है, जहां अन्य देशोंसे इसके विपरीत बात देखी जाती है। वहां यदि १०० पुरुष हत्या करते हैं, तो स्त्रियोंकी संख्या केवल २० या २१ ही रहती है; किसी भी पाश्चात्य देशमें स्त्रियोंकी संख्या २५ प्रतिशतसे अधिक नहीं पड़ती है। परन्तु भारतकी परतन्त्र परिस्थिति और है। यहां पुरुषोंकी दशा इतनी शोच-नीय नहीं है, उनपर वे सब बातें घटित नहीं होती हैं, जो अन्य देशोंके पुरुषोंपर घटती हैं। भारतीय स्त्रियोंको जितने दुःख हैं, उनपर जिस प्रकार असहनीय अमानुषिक अत्याचार किये जाते हैं, उनके कारण ही यहां संख्या इतनी बढ़ी हुई है और ज्यों-ज्यों परिस्थिति बदलती है, त्यों त्यों वे बातें लागू हो जाती हैं, जो पाश्चात्य देशोंमें घटती हैं।

उपर्युक्त विवरणका यदि विचारपूर्वक मनन किया जाय, तो यह सिद्ध होगा कि जिन प्रान्तोंमें पर्देका बाहुल्य है, वहां आत्म-हत्याकी संख्याका भी आधिक्य है, यह भी स्पष्ट है कि इन दुर्घटनाओंमें विधवाओंकी हत्याओंकी संख्या अधिक है। बङ्गाल इसमें सबसे अग्रसर है। भारतीय स्त्रियां धार्मिक वृत्तिवाली होती हैं, यदि इसपर भी यह संख्या इतनी बढ़ी हुई

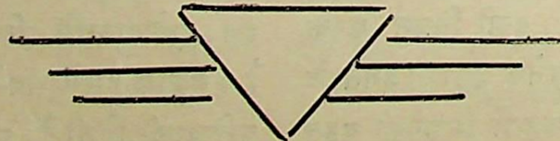
है, तो सहज ही समझ सकते हैं कि उनके दुःखोंका वारापार नहीं है, उनके कष्टोंकी सीमा नहीं है, तभी वे बाध्य होकर इस असार संसारसे मुक्त होनेको छटपटाती हैं। इनकी हत्याके मुख्य साधन विष, जल, अग्नि और फांसी भी हैं।

भारतीय स्त्रियोंकी आत्म-हत्याका मुख्य कारण है यहांकी सामाजिक कुरीतियां, जिनके निवारणकी ओर हम बहुत कम ध्यान देते हैं। यदि हमारे सामाजिक जीवनमें सुधार हो जाये, तो स्त्रियोंकी आत्म-हत्याकी संख्याको कम किया जा सकता है। बङ्गाल और सिन्धमें दहेज-प्रथाके कारण अनेक अबलायें आत्म-हत्या करती हैं। वैसे बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह और उनसे उत्पन्न होनेवाली विधवाओंके कारण यह संख्या इतनी बढ़ गयी है।

हिन्दू-समाजको कई घातक रोग लग रहे हैं, उनमेंसे यह भी एक है, जो इसकी जड़को धीरे-धीरे काट रहा है। भारतमें मृतकोंकी जांच-प्रथा न होनेसे यह बहुत कम पता लगता है कि मृत्यु किस प्रकार हुई। देशमें फैली हुई बेकारीसे भी यह रोग बहुत बढ़ रहा है। किसानोंको उनका कर्ज विवश कर देता है। स्त्रियोंको प्रारम्भसे हो ऐसा पाठ पढ़ाना चाहिए कि वे अपनी आश्रिता नव-वधुओंके दिलोंको ठेस न पहुंचायें। इन बातोंपर ध्यान रखनेसे आत्म-हत्याकी संख्या कुछ कम हो सकती है।

[इस सम्बन्धमें जिस बातकी ओर लेखककी नजर जानी चाहिए थी, वह है हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था। हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था विषमताओंसे भरी हुई है। धनका ऐसा असम विभाजन हो रहा है कि उसमें विश्रृङ्खलताका न फैलना ही आश्चर्यजनक होता। गणतन्त्रात्मक देशोंमें भी—जहां सिद्धान्ततः मनुष्यके लिए समानाधिकारोंकी बात स्वीकार की जाती है, वहां भी सम्पत्तिका प्रायः तीन चौथाई भाग थोड़े-से लोगोंके पास रहता और शेष एक चौथाई सारे देशमें बंटा हुआ है। अतः एक वर्गके ऐश्वर्य एवं वैभव तथा सुख एवं विकासके समस्त साधनोंकी तुलनामें दूसरे वर्गकी विपन्नता एक ऐसा तथ्य है, जो जीवनमें असन्तोषका कारण होता है। सभ्यताके साथ-साथ जो आत्म-हत्याका रोग बढ़ता चलता है, उसका कारण यह है कि सभ्यताने जहां हमारी आवश्यकताओंको बढ़ाया है, वहीं उसने समाजकी इस विषमताका भी पर्दाफाश कर दिया है। परिस्थितिका यह ज्ञान असन्तोष एवं परिणामतः बहुत अंशोंमें आत्म-हत्याका कारण बना हुआ है। आस्तिक एवं धार्मिक भावनावाले व्यक्तियोंके आत्मघातसे बचनेका उपाय अगर उनकी धार्मिकता है, तो इसी धार्मिकता, प्रारब्ध आदिके आधारपर वे अपनी विपन्नताको भी अपना कर्मफल मानकर सहन करते हैं। लेकिन आजका सुसंस्कृत मनुष्य जब इन स्थितियोंका वैज्ञानिक विवेचन कर इस निष्कर्षपर पहुंचता है कि सभ्यताकी इस शोचनीय परिस्थितिकी जिम्मेदारी ईश्वर और धर्मपर बिलकुल नहीं है, जिनके नामपर पादरी, पुरोहितादि हाथपर हाथ रखे बैठनेके आदी हो गये हैं। न जाने कितने लक्षाधीश घोर पापपङ्कमें फंसे रहते और ईश्वर और धर्म-विरोधी आचरणमें निरन्तर रत रहते हुए भी आत्म-हत्या करनेके लिए विवश नहीं होते। और इसका कारण यह होता है कि ऐसा सब करते हुए भी समाजकी दृष्टिमें वे अपनेको इतना ऊंचा और सम्पन्न समझते हैं कि जीवनकी निराशा उनमें आत्मघातक असन्तोष नहीं भरती। अतः सामाजिक विषमतापर आजकी बढ़ती हुई आत्म-हत्याकी संख्याकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। हम जिन्हें व्यक्तिगत मानसिक चिन्तायें और व्यक्तिगत असफलताओंका नाम देकर उन्हें आत्म-हत्याका कारण बताते हैं, उनकी भी जिम्मेदारी आजके विषम अर्थमूलक समाज एवं इसकी पूंजीवादी सभ्यतापर बहुत कुछ है। यह ऐसा विषय है, जिसपर अभी बहुत कुछ कहनेको है।

—सं० मा० वि०]



भारतमें प्रारम्भिक तथा प्रौढ़ शिक्षाकी समस्या

प्रो० शङ्करसहाय सक्सेना, एम० ए० एम० काम०

संसारकी बीस प्रतिशत जनसंख्याको आश्रय देनेवाला देश—भारतवर्ष आज अत्यन्त अपमानित तथा पतित जीवन व्यतीत कर रहा है। राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टिसे हमारा देश जितना पिछड़ा हुआ है, उतना पिछड़ा हुआ देश संसारके सभ्य देशोंमें कदाचित् कोई भी नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारी पतित अवस्थाका मुख्य कारण हमारी राजनीतिक परतन्त्रता है। परन्तु केवल ब्रिटिश साम्राज्यशाहीको कोसने ही से हमारी दयनीय स्थितिमें सुधार नहीं हो सकता, इसके लिए हमें देशमें सर्वाङ्गीण चेतना उत्पन्न करनी होगी। पिछले पचास वर्षोंमें इस ओर जितने भी प्रयत्न हुए हैं, उन्हें आशाजनक सफलता नहीं मिली; क्योंकि देश निरक्षरता और अशिक्षाके भयङ्कर रोगसे आक्रान्त है। देशको अशिक्षाका अभिशाप लगा हुआ है। यह हमारे पतनका मुख्य कारण है; फिर भी इस समस्याकी ओर जितना ध्यान देनेकी आवश्यकता थी, उतना ध्यान नहीं दिया गया। हम लोग भारतवासियोंकी निरक्षरता सम्बन्धी अङ्कोंको सुननेके इतने अधिक अभ्यस्त हो गये हैं कि हमें यह जानकर तनिक भी कष्ट नहीं होता कि हमारे देशवासी ९१ प्रतिशत निरक्षर भट्टाचार्य हैं।

सन् १९३१ ई० की मनुष्य-गणनाके अनुसार, पांच वर्षसे अधिक आयुवाली कुल जनसंख्याका केवल ९.९ प्रतिशत लिख-पढ़ सकते थे। इनमेंसे अधिकांशकी शिक्षा केवल अक्षर-ज्ञान तक सीमित थी। नीचे लिखे हुए अङ्कोंसे विभिन्न प्रान्तोंमें साक्षरताके विषयमें कुछ अनुमान लगाया जा सकता है:—

प्रति हजार (पांच वर्षसे अधिक) में साक्षर स्त्री-पुरुषोंकी संख्या।

प्रान्त	पुरुष	स्त्रियां
आसाम	१५६	२२
बङ्गाल	१८२	३३
बिहार-उड़ीसा	९८	८
बम्बई (सिन्ध सहित)	१७६	३१
मध्यप्रान्त-बरार	१२१	१२
मद्रास	१८८	३०
सीमाप्रान्त	८०	१२
पञ्जाब	१००	१७
संयुक्तप्रान्त	९४	११

कतिपय देशी राज्योंको छोड़कर अधिकांश देशी राज्योंमें साक्षर स्त्री-पुरुषोंकी संख्या बहुत कम है। राजपूतानेके देशी राज्योंमें पांच वर्षसे अधिक आयुवाले पुरुषोंमें केवल ७ प्रतिशत लिख-पढ़ सकते थे और स्त्रियां तो एक हजारमें केवल ६ ही लिख-पढ़ सकती थीं। जहां अधिकांश देशी राज्योंमें साक्षर स्त्री-पुरुषोंकी संख्या ब्रिटिश भारतकी अपेक्षा कम है, वहां कतिपय देशी राज्य ऐसे भी हैं, जहां साक्षर स्त्री-पुरुषोंकी संख्या ब्रिटिश भारतसे कहीं अधिक है। कोचीन राज्यमें ४६ प्रतिशत पुरुष और २२ प्रतिशत स्त्रियां साक्षर हैं। ट्रावनकोरमें भी साक्षर स्त्री-पुरुषोंकी संख्या बहुत अधिक है। अंगरेजी लिखे-पढ़े स्त्री-पुरुषोंकी संख्या तो देशमें और भी कम है। पुरुषोंमें २.१२ प्रतिशत और स्त्रियोंमें .२८ प्रतिशत अंगरेजी पढ़ी हैं।

सन् १९३५ में जेनेवासे बेकारी सम्बन्धी एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, जिसमें भिन्न-भिन्न देशोंकी प्रारम्भिक शिक्षा सम्बन्धी ज्ञातव्य बातें दी गयी थीं। उसे देखनेसे पता चलता है कि अधिकांश देशोंमें प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी है। फ्रान्स और जर्मनीमें प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर लेनेके उपरान्त प्रत्येक छात्रको किसी औद्योगिक पाठशालामें जाकर अपनी रुचिके धन्धेकी शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। ब्रिटेनमें यद्यपि अनिवार्य शिक्षा १४ वर्ष तक ही दी जाती है; परन्तु स्थानीय अधिकारी यदि चाहें, तो १६ वर्ष तक छात्रोंको शिक्षा प्राप्त करनेपर विवश कर सकते हैं। अधिकतर प्रारम्भिक शिक्षाका पाठ्यक्रम ऐसा है कि छात्रको किसी-न-किसी धन्धेका ज्ञान करा दिया जाता है और जहां प्रारम्भिक शिक्षाके पाठ्यक्रममें यह सुविधा नहीं है, वहां प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके कुछ समयके लिए छात्रोंको अपनी रुचिके

धन्धोंमें अपरैण्टिस होकर रहना पड़ता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि अधिकांश देशोंने अपने बालकोंको योग्य नागरिक तथा जीविका उपार्जन करनेके योग्य बनानेके लिए अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षाकी सुन्दर व्यवस्था की है। किन्तु भारतवर्षमें इस अत्यन्त आवश्यक कर्तव्यकी ओर राज्यने कभी ध्यान ही नहीं दिया और न समाजने ही इसके महत्त्वको समझा। देशके धनी व्यक्तियोंने जहां यथेष्ट सम्पत्ति धर्मशाला, मन्दिर, मसजिद तथा अन्य धार्मिक संस्थाओंके निर्माण करनेमें लगायी है, वहां शिक्षाके लिए अपेक्षाकृत बहुत कम दान दिया है। और जिस किसी भी धनी जमीन्दार, व्यापारी अथवा व्यवसायीने शिक्षाके लिए दान दिया भी, तो वह अधिकांशमें अंगरेजी स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयोंको ही दिया गया। किसीने यह नहीं सोचा कि जितना धन एक अंगरेजी स्कूलके चलानेमें व्यय किया जायगा, उसके द्वारा पचास ग्रामीण पाठशालायें चलायी जा सकती हैं। इस अवहेलना और उपेक्षाका परिणाम यह हुआ कि भारतीय ग्रामोंमें विद्याका प्रकाश नहीं पहुंच सका और ग्रामीण जनता भाग्यवादी, रूढ़िवादी और निकम्मी बन गयी। जो कुछ नाममात्रकी प्रारम्भिक शिक्षाका प्रबन्ध किया गया, वह ग्रामीण जनताके लिए तनिक भी उपयोगी सिद्ध नहीं हुई।

भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित अङ्कोंसे ज्ञात होता है कि पांच वर्ष तथा दस वर्षके बीचमें जितने बालक देशमें हैं, उनमेंसे लगभग २५ प्रतिशत प्रारम्भिक कक्षाओंमें पढ़ते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पढ़ने योग्य बालकोंकी तीन चौथाई संख्या आज भी नहीं पढ़ रही है। जब लड़कोंकी दशा इतनी शोचनीय है, तब लड़कियोंके सम्बन्धमें कुछ कहना अनावश्यक है। इस समय देशमें लड़कोंकी प्रारम्भिक शिक्षापर ६ करोड़ ८० लाख तथा लड़कियोंकी प्रारम्भिक शिक्षापर एक करोड़ बत्तीस लाख रुपये व्यय होते हैं। प्रति लड़केकी शिक्षाका व्यय १०) से कुछ कम और प्रति लड़कीकी शिक्षाका व्यय ६) के लगभग होता है। बङ्गालमें प्रति लड़केकी प्रारम्भिक शिक्षाका व्यय केवल ४) ही होता है। अतएव यदि प्रयत्न किया जावे और प्रारम्भिक शिक्षाकी व्यवस्था ठीकसे हो, तो प्रति लड़का और लड़की शिक्षाका व्यय घटाया जा सकता है। यदि वर्तमान शिक्षा-व्ययको ही आधार मानकर चलें, तो देशके समस्त बालकोंको प्रारम्भिक शिक्षा देनेके लिए २४ करोड़ रुपये तथा कुल लड़कियोंको शिक्षा देनेके लिए १३ करोड़ रुपयेकी आवश्यकता होगी। दूसरे शब्दोंमें हम यह कह सकते हैं कि देशके समस्त बालक-बालिकाओंको प्रारम्भिक शिक्षा देनेके लिए जितना रुपया अभी व्यय किया जा रहा है, उससे ३० करोड़ रुपया अधिक व्यय करना होगा। ऊपर दिये हुए अङ्क केवल ब्रिटिश भारतके हैं; किन्तु भारत अखण्ड है। वह ब्रिटिश अथवा देशी राज्योंमें विभाजित भले ही कर दिया गया हो; किन्तु स्वतन्त्र भारत इस प्रकारके राजनीतिक विभाजनको स्वीकार नहीं करेगा, उस समय हमें सारे भारतवर्षको ध्यानमें रखकर ही कोई योजना बनानी होगी। अतएव यदि इन अङ्कोंमें देशी राज्योंके अङ्क भी जोड़ दिये जावें, तो सारे देशके बालक-बालिकाओंको प्रारम्भिक शिक्षा देनेके लिए लगभग ४० करोड़ रुपयेकी आवश्यकता होगी। यदि प्रारम्भिक शिक्षाका ठीक सङ्गठन हो, तो प्रति छात्र शिक्षाका व्यय घटाया जा सकता है; परन्तु फिर भी कमसे कम ३० या ३५ करोड़ रुपयेकी और आवश्यकता होगी, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है।

देशके सामने प्रारम्भिक शिक्षाको अनिवार्य बनानेमें सबसे बड़ी कठिनाई आर्थिक है। ३५ करोड़ रुपयेका प्रबन्ध कहांसे हो? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसको हल किये बिना देशमें प्रारम्भिक शिक्षाको अनिवार्य नहीं बनाया जा सकता। दूसरी समस्या यह है कि पाठ्यक्रम क्या हो? महात्मा गांधीने इस सम्बन्धमें देशके सामने एक मौलिक योजना रखी है। यद्यपि वह योजना अभी पूर्ण रूपसे कार्यमें परिणत नहीं की गयी है; किन्तु प्रसिद्ध वर्धा-योजना उनकी योजनाके आधारपर ही तैयार की गयी है।

यदि देखा जावे, तो गांधीजीकी योजनामें चार मुख्य बातें हैं—(१) उच्च शिक्षा (विश्वविद्यालयों तथा कालेजों) के लिए सरकार व्यय न करे। विश्वविद्यालयोंको चलानेके लिए शिक्षामें रुचि रखनेवाले व्यक्तियोंका सङ्गठन स्थापित किया जावे। राज्य उच्च शिक्षाकी व्यवस्था करना अपना कर्तव्य न समझे। (२) औद्योगिक तथा कला-सम्बन्धी शिक्षाके प्रबन्धका उत्तरदायित्व उद्योग-धन्धोंपर रहे। जिस प्रकार यूरोपमें मध्यकालमें औद्योगिक सङ्घ औद्योगिक शिक्षाकी व्यवस्था करते थे, उसी प्रकार देशके व्यवसायियोंपर

इसका उत्तरदायित्व रखा जावे। (३) १४ वर्षकी अवस्था तक प्रत्येक लड़के और लड़कीको प्रारम्भिक शिक्षा दी जावे, जो कि स्वावलम्बी हो। (४) शिक्षित स्त्री-पुरुषोंको (राष्ट्रको शिक्षित बनानेके लिए) अध्यापन-कार्य करनेके लिए विवश किया जावे।

वर्धा-योजनामें एक दोष यह है कि उसमें ७ वर्षकी आयुके पूर्व बच्चेकी शिक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं है। आज संसारके प्रत्येक उन्नतिशील राष्ट्रमें स्कूलमें जानेके पूर्वकी शिक्षाका विशेष महत्त्व है। ३ वर्षसे ७ वर्ष तक शिशु-शिक्षाका आयोजन किसी देशके राष्ट्रीय शिक्षाक्रमके लिए आवश्यक है। परन्तु भारतवर्षमें जहां प्रारम्भिक शिक्षाका ही प्रबन्ध करना कठिन दिखलाई पड़ रहा है, वहां शिशु-शिक्षाका समुचित प्रबन्ध कर सकना और भी कठिन है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इस ओर ध्यान ही न दिया जावे। शिक्षा-विशेषज्ञोंने वर्धा-योजनाके स्वावलम्बी होनेका घोर विरोध किया है। उनका कहना है कि यदि प्रारम्भिक शिक्षाका स्वावलम्बी होना अनिवार्य कर दिया गया, तो धन्धोंको सफल बनानेकी ओर विशेष ध्यान दिया जावेगा और शिक्षाको गौण स्थान दे दिया जावेगा। इसके अतिरिक्त यदि देशभरमें स्वावलम्बी प्रारम्भिक शिक्षाका आयोजन हुआ, तो राज्यको स्कूलोंमें बनी हुई चीजोंकी बिक्रीके लिए विशेष सङ्गठन करना होगा, जिसके फलस्वरूप देशके व्यावसायिक तथा आर्थिक सङ्गठनमें राज्यको यथेष्ट हस्तक्षेप करना होगा। जहां-जहां वर्धा-योजनाका प्रयोग हुआ है, वहां उसको स्वावलम्बी बनानेका प्रयत्न नहीं किया गया।

कुछ विद्वानोंने महात्माजीके इस विचारका भी विरोध किया है कि शिक्षित स्त्री और पुरुषोंको राज्य अध्यापन-कार्यके लिए विवश करे। किन्तु किसी भी व्यक्तिने यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं समझी कि इतने बड़े राष्ट्रको शिक्षित बनानेके लिए इसके अतिरिक्त और क्या किया जा सकता है। जब प्रत्येक राज्यको देशकी रक्षा करनेके लिए प्रत्येक युवाको सेनामें भर्ती करनेका अधिकार है, तब राष्ट्रको शिक्षित बनानेके लिए यदि राज्य शिक्षित स्त्री-पुरुषोंको अध्यापकोंकी सेनामें भर्ती करे, तो उसका विरोध कोई भी समझदार व्यक्ति न करेगा। शिक्षाको स्वावलम्बी बनानेके सम्बन्धमें भी यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि यदि राष्ट्रके आय-व्ययका ठीकसे विभाजन हो, शासनको कम खर्चीला बनाया जावे तथा उच्च शिक्षाको राज्य द्वारा दी जानेवाली सहायता कम की जावे, तो प्रारम्भिक शिक्षाके लिए यथेष्ट धन प्राप्त हो सकता है। परन्तु यदि राज्य किसी भी प्रकार प्रारम्भिक शिक्षाके लिए यथेष्ट धन न दे सके, तो शिक्षाको स्वावलम्बी बनानेके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं है।

किन्तु देशको शीघ्रसे शीघ्र शिक्षित बनानेके लिए प्रौढ़ शिक्षाकी समस्याको भी हल करना होगा। केवल प्रारम्भिक शिक्षाका प्रबन्ध कर देनेसे ही काम नहीं चलेगा। राज्यको प्रौढ़ शिक्षाकी व्यवस्था करनेके लिए अधिक धन व्यय करनेकी आवश्यकता नहीं है। विश्वविद्यालय तथा कालेजोंमें उच्च शिक्षा-प्राप्त युवकोंसे यह कार्य लिया जाना चाहिए। ग्रीष्मकालकी छुट्टियोंमें तथा विश्वविद्यालयकी परीक्षा पास करनेके उपरान्त एक वर्ष तक प्रत्येक स्नातकको प्रौढ़ शिक्षा विभागकी देख-रेखमें प्रौढ़ शिक्षाका कार्य करना होगा। जब तक कि कोई व्यक्ति एक निश्चित समय तक प्रौढ़ शिक्षाका कार्य नहीं कर लेता, उसे विश्वविद्यालय उपाधि न दे। कुछ लोग कह सकते हैं कि इस प्रकार शिक्षित युवकोंको गांवोंमें अवैतनिक शिक्षा-कार्य करनेके लिए विवश करना अनुचित होगा। लेकिन यदि राष्ट्रीय दृष्टिसे देखा जावे, तो प्रत्येक व्यक्तिका, जिसे उच्च शिक्षा प्राप्त हुई है, यह प्रथम नागरिक कर्तव्य है कि वह अशिक्षित देशवासियोंको शिक्षित बनानेका प्रयत्न करे। यदि यह सम्भावना हो कि भारतका शिक्षित समुदाय अपने इस राष्ट्रीय कर्तव्यको समझेगा, तो राज्यको नियम बनाकर उन्हें विवश करनेकी आवश्यकता नहीं होगी; किन्तु हमारे शिक्षित वर्गकी जैसी भी कुछ मनोवृत्ति है, उससे यह आशा करना व्यर्थ है। अतएव राष्ट्रीय हितके लिए राज्यको उन्हें विवश करना होगा।

ऊपर लिखी हुई योजना पूर्ण रूपसे तभी काममें लायी जा सकती है, जब कि देश स्वतन्त्र हो और राष्ट्रीय सरकार देशको शिक्षित बनानेकी राष्ट्रीय योजनाके अनुसार कार्य करे। परन्तु देशकी स्वतन्त्रताके आन्दोलनका सफल होना भी बहुत कुछ ग्रामीणोंकी शिक्षापर निर्भर है। आज जो प्रतिगामी वर्ग देशकी स्वतन्त्रताके मार्गमें रुकावट डालनेमें सफल हो रहा है, उसका मुख्य कारण यह है कि देशकी अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित होनेके कारण अपने हित-अनहितको नहीं

समझ पाती । सर्वसाधारणमें शिक्षाका अभाव होनेके कारण राजनीतिक चेतना प्रायः नहींके बराबर है, इस कारण प्रतिगामी वर्ग भिन्न-भिन्न साम्प्रदायिक तथा राजनीतिक सङ्गठन खड़े करके जनताको भ्रममें डालकर राष्ट्रीय आन्दोलनकी शक्तिको क्षीण करनेमें सफल हो जाता है । अतएव देशमें राष्ट्रीय सरकार स्थापित होने तक प्रारम्भिक शिक्षाकी समस्याकी ओरसे उदासीन रहना घातक होगा । आवश्यकता इस बातकी है कि एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय शिक्षा सङ्घकी स्थापना की जावे । उस सङ्घकी प्रत्येक प्रान्तमें शाखायें हों । राष्ट्रीय शिक्षा-सङ्घ प्रारम्भिक तथा प्रौढ़ शिक्षाकी एक योजना बनाकर उसके अनुसार प्रत्येक प्रान्तमें कार्य करे । धनी व्यक्तियोंसे दान लेकर, शिक्षित व्यक्तियोंको शिक्षा-कार्यके लिए अपना कुछ समय देनेके लिए तैयार करके, कालेज तथा स्कूलोंके राष्ट्रीय विचारवाले विद्यार्थियोंकी सहायता लेकर राष्ट्रीय शिक्षा-सङ्घ देशमें निरक्षरताके विरुद्ध युद्ध छेड़ दे । किन्तु एक बात ध्यानमें रखनेकी है कि जनतामें राजनीतिक चैतन्य उदय करनेके लिए पाठ्यक्रममें तनिक परिवर्तन करनेकी आवश्यकता होगी ।

भारतवर्षमें ग्रामीण जनताकी शिक्षाके साथ-साथ ग्रामीण जनताके योग्य साहित्य उत्पन्न करनेकी भी आवश्यकता है । अभी तक हमारी देश-भाषाओंके साहित्यिकोंका इस ओर ध्यान ही नहीं गया है । इसके लिए भिन्न-भिन्न भाषाओंके साहित्यिकोंकी सहायता तथा सहयोग प्राप्त करनेकी आवश्यकता होगी । अभी तक हमारे लेखकों और प्रकाशकोंने इस सूने क्षेत्रकी ओर ध्यान ही नहीं दिया है । आज भी, जब कि गांवोंमें इने-गिने लोग ही साक्षर हैं, तब भी प्रति वर्ष लाखों रुपयोंकी कुरुचिपूर्ण पुस्तकें, अल्हखण्ड तथा अन्य पुस्तकें गांवोंमें बिकती हैं । जब देशव्यापी साक्षरता-आन्दोलन सङ्गठित रूपमें चलाया जावेगा, तब गांवोंमें पुस्तकोंकी मांग बहुत बढ़ जावेगी ।

जब कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलोंने प्रान्तोंका शासनसूत्र अपने हाथमें लिया, उस समय यह आशा हुई थी कि इस ओर कुछ कार्य होगा । किन्तु कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलोंके हटते ही वह आशा नष्ट हो गयी । यदि राज्यकी शक्तिका सहारा मिल सकता, तब तो कहना ही क्या था; किन्तु वह तो स्वतन्त्र भारतकी राष्ट्रीय सरकारके शासन-कालमें ही स्थायी रूपसे मिल सकता है । आवश्यकता इस बातकी है कि राष्ट्रीय विचारवाले शिक्षित व्यक्ति, जो कि देशको शिक्षित और स्वतन्त्र देखना चाहते हैं, अपना एक सङ्गठन बना लें । महात्माजीके नेतृत्वमें जो तालीमी सङ्घ स्थापित हुआ है, यदि वह स्वतन्त्र रूपसे इस कार्यको अपने हाथमें ले ले और देशव्यापी साक्षरता आन्दोलनका सञ्चालन करे, तो थोड़े समयमें देशमें प्रारम्भिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षाका आन्दोलन तीव्र गतिसे चल सकता है ।

गीत

जीवन-तरुमें नीड़ बनाया ।
सुख-दुखके तृन-तृन चुन-चुनकर,
मनमें सदा नाम गुन-गुनकर,
सोचा वास करेगी आकर—परिचित एक सुनहली छाया ।

जीवन-तरुमें नीड़ बनाया ।
मधु आशाके वन्दनवारे,
पात - पात पर सजा, संवारे—
रोम-रोमने भू-नभ खोजा—पर न मिला फिर भी मनभाया

जीवन - तरुमें नीड़ बनाया ।
सांस - सांसकी डाल - डालपर,
सपनोंका सोना बिखरा कर—
आकुल नयन प्रतीक्षा की है—पर बिछुड़ा पञ्छी कब आया?
जीवन-तरुमें नीड़ बनाया ।

—नर्मदाप्रसाद खरे ।

डेनमार्कका सामरिक और आर्थिक महत्त्व

श्री रामाधीन अग्निहोत्री, बी० ए०

डेनमार्क नात्सीवादका भावी शिकार होगा, इसके लक्षण पहले ही से प्रकट होने लगे थे। काफी दिनोंसे निर्बल डेनमार्क अपने निरंकुश एवं साम्राज्यलोलुप सबल पड़ोसी जर्मनीके बिछाये हुए नात्सी वादके विकराल जालमें तीव्र गतिसे फंसता जा रहा था, नात्सी गुण्डे अपने तूफानी कारनामों द्वारा विशाल नगरोंकी शान्तिप्रिय प्रजाके मध्य आतङ्क छा रहे थे, हिटलरके गुमाश्ते श्लेसविग-हालस्टीनकी अल्पसंख्यक जर्मन जनताके सम्मुख विदेशी सत्ताके काल्पनिक अत्याचारों व दुर्व्यवहारोंको हिमालयका विकराल रूप देकर उनके हृदयोंमें असन्तोषकी लहर पैदा करते जा रहे थे, और वे अपने राष्ट्रीय नेता हिटलरके लिए मार्ग प्रशस्त बनानेमें तन, मन, धनसे संलग्न रहे हैं; जर्मनीके वायुयान अन्तर्राष्ट्रीय नियमोंका अतिक्रमण कर पूर्ण स्वतन्त्रता व निर्भीकताके साथ डेनमार्कके गगन-मण्डलपर वहांकी सैनिक गतिविधिकी जानकारी प्राप्त करने तथा विदेशी जलपोतोंके गमनागमनपर कड़ा निरीक्षण रखनेके लिए आये दिन मंडराया करते रहे; और वहांकी सरकार अपने स्वतन्त्र जीवनकी अन्तिम घड़ियां अपने वयोवृद्ध राजाके साथ गिनती रही है। और इन सबका परिणाम आज यह दिखाई पड़ा है कि जर्मनीने डेनमार्कको भी अनेक लघुराष्ट्रोंकी भांति ही उदरसात् कर लिया है।

आस्ट्रिया, जेकोस्लोवेकिया तथा मेमेलके पश्चात् बेचारे डेनमार्ककी ही बारी थी; उसी बलि-बकरेकी भेट हिटलरकी वेदीपर चढ़नेको थी। अभाग्य अथवा सौभाग्यवश वह दुर्दिन कुछ दिनोंके लिए, अथवा यों कहें कि कुछ महीनोंके लिए टला रहा। हिटलरकी राहुदृष्टि इससे पूर्व समृद्धिशाली एवं बहुजनसंख्यक पोलैण्डपर पड़ी, और बावजूद पोलैण्ड तथा उसके सहायक राष्ट्रों—इंगलैण्ड व फ्रान्सके तीव्र विरोधके उसने केवल तीन सप्ताहोंमें उसे नष्ट-भ्रष्ट कर आत्मसात् कर लिया। अभी पोलैण्डको उदरस्थ किये पूरे छः मास भी न होने पाये थे, और न पश्चिमी मोर्चेपर चलनेवाले जीवन-मरण-युद्धका अन्त ही, कि हिटलरकी गृद्ध-दृष्टि अपने उत्तरी पड़ोसी नार्वेपर पड़ी। इस भीषण युद्धकालमें जब जर्मनीके दो विध्वंसक अंगरेजों द्वारा बिछायी हुई सुरङ्गोंसे टकराकर नार्वेके पश्चिमी समुद्रतटके निकट जलमग्न हो गये, तब उस ओर हिटलरकी दृष्टिका आकृष्ट होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। अतएव नार्वेको अधिकारमें लानेके लिए यह एक प्रकारसे उसके लिए केवल आवश्यक ही नहीं, वरन् अनिवार्य हो गया कि वह अपने निकटवर्ती पड़ोसी डेनमार्कको भी बिना किसी सङ्कल्प-विकल्पके जीतकर अपने संरक्षणमें रखे और इस प्रकार अपने देशको शत्रुओंके उत्तरी-पश्चिमी आक्रमणसे पूर्णतया सुरक्षित रखे।

जर्मनीके लिए नार्वेपर आक्रमण करना यदि असम्भव न था, तो कष्टसाध्य अवश्य था; क्योंकि डेनमार्क बाल्टिक सागरके पूर्वी जलमार्गोंका ही द्वारपाल, संरक्षक एवं एकाकी स्वामी नहीं है, वरन् प्राचीन कालसे ही वह नार्वे तथा स्वीडनमें सुगमतासे प्रवेश करनेका मुखद्वार भी है। स्वयं डेनमार्क सदियों तक सम्पूर्ण स्कैण्डीनेविया प्रायद्वीपका स्वामी रहा। यह इसकी लाभदायक प्राकृतिक स्थिति ही थी, जिसने प्राचीन डैनिश योद्धाओंको इस विशाल प्रायद्वीपपर फैलने तथा इसे विजित कर राज्य करनेका सुअवसर दिया था।

जटलैण्ड प्रायद्वीपका उत्तरी भाग अन्तरीपके सदृश समुद्रमें इस प्रकार प्रवेश करता चला गया है कि वह सरलतापूर्वक स्केजर राक (Skagar Rak) और काटेगाट (Kattegat) का पूर्ण स्वामी बन गया है। इस प्रायद्वीपके उत्तरी छोटे-छोटे बन्दरगाहोंसे बातकी बातमें नार्वेकी राजधानी आस्लो और वहांसे देशान्तरमुखी ग्लोमेन घाटीके सुगम मार्ग द्वारा सेनायें उत्तरमें फ्राण्डेन (Frondhjan) बन्दरगाहको पहुंचायी जा सकती हैं। इस प्रकार नार्वेकी सेनाओंको दो भागोंमें विभाजित कर वहांकी सैनिक शक्तिका नाश किया तथा समस्त देशपर अधिकार जमाया जा सकता है। पूर्व दिशामें काटेगाटको पारकर स्वीडनके पश्चिमी बन्दर गाटेबर्ग शीघ्रतासे पहुंचा जा सकता है। वहांसे 'गोटा नहर' द्वारा वेनर व वेटर झीलोंको पारकर नारकोपिङ्ग होते हुए

पूर्वी तटपर पहुंचा जा सकता है, और फिर समुद्रयात्रा द्वारा देशकी सुरम्य राजधानी स्टाकहोम जाया जा सकता है। इस प्रकार नार्वेके सदृश स्वीडनकी निचली घाटीके दोनों पश्चिमी और पूर्वी द्वारोंको अल्प समयमें अधिकृत किया जा सकता है। डेनमार्कके पश्चिम तटीय बन्दर एस्बजर्गसे प्रारम्भ होनेवाले रेल-नौकाओंके मार्गका भी, जो डेनमार्ककी राजधानी कोपेनहेगेन द्वारा स्व डनके प्रसिद्ध बन्दरगाह माल्मो तथा वहांकी राजधानी स्टाकहोम तक जाता है, यह पूर्ण स्वामी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि डेनमार्कको आत्मसात् कर जर्मनी नार्वेपर तो सुगमतापूर्वक अपना स्वस्तिक झण्डा फहरा ही सकता है, और अब जब चाहेगा तब स्वीडनको भी बातकी बातमें पद-दलित कर वहांकी विशाल लोहेकी खदानों, कागजकी मिलों तथा दियासलाईके कारखानोंका स्वामी बन बैठेगा।

इतना ही नहीं, डेनमार्कके अधिकारके साथ ही आज जर्मनी बाल्टिक सागरके समस्त पूर्वी तङ्ग, परन्तु महत्त्वपूर्ण जलमार्गोंका एकाकी स्वामी बन बैठा है। 'लिटिल बेल्ट', 'ग्रेट बेल्ट' तथा 'दी साउण्ड' तीनों जलमार्ग उसके संरक्षण तथा निरीक्षणमें आ गये हैं। अधिक गहरा न होनेपर भी इन तीनोंमें 'साउण्ड' नामक जलमार्ग सबसे अधिक प्रसिद्ध है, जिसकी रक्षा कोपेनहेगनका सुरक्षित बन्दरगाह करता है। यह सुरम्य एवं सुदृढ़ नगर जीलैण्ड तथा अमेजर टापुओंके मध्यवर्ती तङ्ग जलडमरूमध्यपर बसा हुआ है। थोड़ी-सी सतर्कता तथा सावधानीसे समस्त बाल्टिक सागरको अब जर्मनी अपने शत्रुओंके घातक आक्रमणोंसे भली भांति रक्षित रख सकता है। आवश्यकता पड़नेपर रूसी जहाजी बेड़ेको बाल्टिक सागरसे बाहर आने तथा उसे उत्तरी सागरसे बाल्टिक सागरमें जानेसे अनायास ही रोक सकता है, और इस प्रकार युद्धके समय रूसको भारी क्षति पहुंचा सकता है। डेनमार्कपर अधिकार कर हिटलरने बाल्टिक सागरको एक सुरक्षित जर्मन झीलमें परिणत कर दिया है। निश्चय ही डेनमार्कको पराजित कर हिटलरने अपनी कुशाग्र बुद्धि, राजनीति-कुशलता तथा दूरदर्शिताका सम्यक् परिचय दिया है। समयकी अचूक कसौटी ही उसके इस सुवर्ण-कार्यकी सार्थकताका परिचय देगी।

जर्मनीको आर्थिक लाभ—साधारण जनताको डेनमार्ककी विजयमें सामरिक लाभसे कहीं अधिक आर्थिक लाभ दिखलाई देता होगा। परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। बाह्यरूपसे तो जमनीके क्षेत्रफल और जनसंख्यामें क्रमशः १६५७५ वर्गमील और ३७,०४,३४९ व्यक्तियोंकी वृद्धि हो गयी है, किन्तु इसी सानुपातमें उसे आर्थिक लाभ नहीं हुआ है। डेनमार्क देशपर प्रकृतिकी विशेष कृपा नहीं है। देशमें खनिज पदार्थोंका नितान्त अभाव है, और यहां कोई विशाल नदी भी नहीं है। अधिकांश भूभाग निचला होनेके कारण कारखानोंको सञ्चालित करनेके लिए जल-विद्युत् भी नहीं उत्पन्न की जा सकती। यहांकी मिट्टी भी उपजाऊ नहीं है। इसके अतिरिक्त देशका एक बड़ा भाग निपट ऊसर है। इतना सब होते हुए भी यहांके निवासियोंने अपने प्रखर बुद्धि और अध्यवसायसे अनेक उन्नतिशील उद्योग-धन्धे स्थापित कर लिये हैं, जो निश्चय ही अनेक बड़े-बड़े देशोंके लिए आदर्श हैं और साथ ही ईर्षाके कारण भी।

खेती द्वारा देशवासियोंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए भी पर्याप्त अनाज नहीं पैदा होता। गेहूंकी वार्षिक उपज न होनेके तुल्य ही कही जा सकती है। अतएव गेहूं प्रचुर मात्रामें विदेशोंसे मंगाया जाता है। डेनमार्क प्रमुखतया अपने 'पशु-पालन' तथा दुग्धशालाओंके लिए यूरोपीय मुल्कोंमें प्रसिद्ध है। गत पच्चास वर्षोंमें इसने इस क्षेत्रमें आशातीत उन्नति कर ली है। पशुओं तथा शूकरोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी है, और इसके साथ ही मक्खन, पनीर और शूकरामिषकी पैदावार भी। इस समय देशमें ५५१००० घोड़े, ३०,७९,००० पशु, ३०८३,००० सुअर और २६,०००,००० मुर्गियां हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जर्मनीके कोयले आदि खनिज पदार्थोंकी खपत डेनमार्कमें हो जाया करेगी, और उसके एवजमें वह मक्खन, पनीर, गोश्त, अण्डे आदि खाद्य पदार्थ तथा दूध और शराब आदि पेय पदार्थ जर्मनीको भेजा करेगा।

सम्पूर्ण डेनमार्कमें १०१९९२ कारखानें व दूकानें हैं। सारे देशमें शराब उतारनेके चार बड़े कारखाने हैं, जिनमें अंगूरी तथा जौकी शराब बनायी जाती है। इन कारखानोंमें प्रतिवर्ष ९,४४१,००० लिटर अंगूरी शराब तैयार होती है। देशमें शकर बनानेके भी ९ कारखाने हैं, जिनमें प्रतिवर्ष २१६१५० टन शकर चुकन्दरसे तैयार की जाती है। वर्षों

तैयार करनेके लिए देशमें छोटे-बड़े ११७ कारखाने हैं, जिनमें प्रतिवर्ष ७८२०० टन चर्बी तैयार की जाती है। जटलैण्ड प्रायद्वीपके आसपास छिछले जलमें मछलियां भी अधिक मात्रामें पायी जाती हैं। समुद्रके किनारे बन्दरगाहोंमें जहाज बनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त जर्मनी ४८७२ मील लम्बी वृहत् सड़कों, २७००० मील लम्बी लघु सड़कों तथा ३२०० मील लम्बी रेलोंका स्वामी हो गया है। लगभग एक लाख स्थल और नौसेना तथा ६९ वायुयान भी उसके अधिकारमें आ गये हैं। देशकी सम्पूर्ण फौजी छावनियां, बन्दरगाह तथा हवाई जहाजोंके बड़े-बड़े अड्डे उसकी देखरेखमें हो गये हैं।

रैदास

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जन्म लिया मोची-घर जिसने ऐसा था रैदास!
उसकी छायासे बचती थी—
यह दुनिया उसपर हंसती थी
पथकी भीड़ बिखर जाती यदि आ जाता वह पास
जन्म लिया चमार-घर जिसने ऐसा था रैदास!

स्वामी रामानन्द स्नानके बाद एक दिन भोर
चले जा रहे थे प्रसन्न प्रभुके मन्दिरकी ओर
किया प्रणाम दूरसे ही नत-मस्तक भक्ति-विभोर
उस रैदास भक्तने उनके चरणोंमें कर जोड़
"सखा! कौन हो तुम?"—पूछा द्विजवरने सहित सनेह

मिला जवाब,—"कौन हूं मैं, मैं हूं बस मिट्टी-खेह—
तुच्छ धूल निशि-दिन रौंदी जो घृणा-उपेक्षा द्वारा
तू स्वामी! घनश्याम दूर नभका जीवनमय प्यारा
बरस जाय इस रेत तुम्हारी यदि करुणाकी धार
तो यह धूल पुकार उठे बन फूल हजार-हजार"

छातीसे तब उसे लगाकर
उसपर निज सनेह बरसाकर
जगा दिया उस मोचीके मन—
स्वामीने उकसा-उकसा—कर
सौ-सौ सुन्दर गीतोंका झञ्झामय एक बतास
जन्म लिया मोची-घर जिसने ऐसा था रैदास!

अनुवादक—केसरी।

लापरवाह

श्री पी० आर० नौटियाल

आंसू देखने ही न देते थे। सब कुछ अन्धकारमय हो रहा था। पर जब जरीसे जड़ी एक लाल रङ्गकी साड़ी पहने कोई आकर खड़ा हुआ, तो वह धुंधलापन भी पहचान गया : अरे सामने सुहागभरी गौरी ही तो खड़ी थी, गौरी—गौरी—मेरी गौरी···मेरी—और एक दिन···।

"गौरी ठीक ही कहती थी!"—हंसते हुए एक लड़की बोली थी।

"क्या कहती थी?" मेरे हृदयमें जिज्ञासा थी।

"कि आप बड़े ही लापरवाह हैं!" कहकर उसने जैसे ताना दिया!

"क्यों?"—मेरी समझमें नहीं आया। माथेपर बल पड़ गये थे!

"वही कहती थी—क्यों? क्या—कैसे?—मैं क्या जानूं, उसीसे जाकर पूछिये न!"

"समझा नहीं!"

"क्यों समझने लगे! तभी तो लापरवाहकी उपाधि मिली है!"—और हंस दी, फिर चुटकी ली—"समझ ही होती, तो समझनेके लिए उसीकी बातें क्या कम थीं?"

"बातें—गौरीकी बातें—कैसी बातें—उसने तो मुझसे आज तक कोई बात नहीं की। समझने या न समझनेका सवाल ही नहीं उठता। खाली चुपसे तो कुछ भी समझा जा सकता है—और कुछ नहीं भी।"—मैंने सच्ची सफाई पेश की।

"कलाकार होकर—इतने विद्वान् होकर भी मौन भाषा नहीं समझते—यह नहीं जानते कि बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं, जो न कहनेसे ही ठीक कही जाती हैं।"

"हूं।"—कहा मैंने, लेकिन नजर उठाकर देखा, तो गौरीके फ्लैटके सामने अपनेको खड़ा पाया था। और इतनेमें ही साथवाली लड़की अपने फ्लैटपर खटपट करती चढ़ गयी थी।

बात कुछ अधूरी-सी रह गयी थी, और मैं सब कुछ सह सकता हूं, लेकिन दुविधामें पड़े रहना मुझे पसन्द नहीं—यही सोच रहा था कि गौरी सामनेसे आती दिखाई पड़ी—"मैं आपको ही देखने जा रही थी?"

"क्यों, खैर तो है?"

"पिताजीकी तबियत ज्यादा खराब है। आपको बुला लानेके लिए कहा तो सवेरे ही था, पर···।

"तो सुबह ही क्यों नहीं आयीं?"

गौरी कुछ न बोली, लेकिन उसकी आंखें आंसुओंसे कुछ कहलाना चाहती थीं।

"अच्छा, तो अन्दर खबर कर दो!"

"नहीं।"—और मेरा हाथ पकड़कर वह मुझे अन्दर खींच ले गयी।

भीतर गया। देखा, वृद्ध घोषाल बाबू आंखें बन्द किये एक तख्तपर लेटे हैं। सिरहाने पड़ी बेञ्चपर मेरे बैठते-बैठते गौरी बङ्गालीमें अपने पिताजीसे बोली—"बाबा, वे आये हैं!"

"सोने दो न!" मैंने हल्का-सा अनुरोध किया। लेकिन इतनेमें ही घोषाल बाबूने आंखें खोल भी दी थीं।

गौरीने फिर कहा—"सुरेश बाबू आये हैं बाबा!"

दोनों ही मुझे देख रहे थे, लेकिन मेरे मुंहसे सहानुभूतिका एक भी शब्द नहीं निकल रहा था। किसी तरह कोशिश करके मैंने कहा—"आप जिस चिन्तासे व्यथित होकर बीमार पड़ गये हैं, वह आज दूर हो गयी है—लीजिये"—और एक हजारका एक चैक घोषाल बाबूके हाथमें दे दिया।

घोषाल बाबूने कांपते हुए हाथोंसे उसे पकड़ा। मुखपर आश्चर्ययुक्त आनन्द आलोकित हो उठा—नेत्रोंमें कृतज्ञता भी। वे उसे हाथमें पकड़े देखतेके देखते ही रह गये—और गौरी?—वह भी गद्‌गद हो रही थी। एक अजीब प्रसन्नता, कृतज्ञता और श्रद्धाका भाव उसके आननसे टपक रहा था—कुछ लजायी-सी, शरमायी-सी भी थी। और मुझे देखते-देखते न जाने कहां खोयी-सी।

इस विचित्र वातावरणकी नीरवता वृद्धने भङ्ग की—"तो सुरेश बाबू, आपको किन शब्दोंमें धन्यवाद······।"

"धन्यवाद—धन्यवाद—कैसा धन्यवाद—किसके लिए,

धन्यवाद—ध—न्य—वा......" और मैं उस एक हजारके चैकका इतिहास पढ़ने लगा थाः—

...उस दिन घर लौटा, तो जरा देर हो गयी थी। चुपचाप घर पहुंचकर पड़ रहनेका विचार था, पर आया, तो देखा कि एक वृद्ध बङ्गाली महाशय मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरे आते ही नमस्कार करके बोले—"आप ही हैं सुरेश बाबू, सिनेमामें काम करते हैं?"

"जी हां, आइये—बैठिये।"—मैंने दरवाजा खोलकर उन्हें अन्दर बुलाया। कहनेको तो कह दिया इतनी सभ्यतासे, इतने शिष्टाचारसे, लेकिन गुस्सेका पारा बहुत चढ़ गया था। मन कहता था कि कह दो—"अभी निकल जाइये, यहांसे!"

वे बैठ गये। मैंने बनावटी हंसी हंसते हुए कहा—"कहिये?"

वे बोले—"आप नहीं जानते, हम इसी बिल्डिङ्गमें नीचेके फ्लाटमें रहते हैं। हमने सुना कि आप सिनेमामें काम करते हैं, हमें बहुत खुशी हुई। आप तो वहां डिरेक्शन करते हैं न?"

मैंने कहा—"इतनी जङ्गी बिल्डिङ्ग। इसमें इतने घर और न जाने कितनी तरहके आदमी रहते हैं, आखिर किसे-किसे जानूं!"

इसके बाद मैंने उन्हें अपनी सारी योग्यता और पोजीशनका व्यौरा बता दिया। भूखके मारे आंतें कुलबुला रही थीं, फिर भी मैं उनकी उपेक्षा न कर सका, क्योंकि वृद्ध महाशय बड़े सङ्कोच और शिष्टतासे बातचीत कर रहे थे। मैंने पूछा—"और आप......?"

"मैं—मेरा नाम मणिकान्त घोषाल है।"

फिर उन्होंने बतलाया कि मैं एक 'खबर कागज' का सम्पादक था। फिर सरकारी नौकरी की थी, जिसे असहयोग-आन्दोलनमें छोड़ दिया। तबसे बेकार हूं। दो हजारका बीमा कराया था, उसीसे किसी तरह खर्च चल रहा है। लेकिन एक लड़की सयानी हो गयी है। शादी उसकी करनी है। रुपयेकी सख्त जरूरत है। एक कहानी लिखी है, वह अगर बिक जाये, तो कन्या-दान आसानीसे हो जाये।

लेकिन इस 'अगर' से 'मगर' बहुत बड़ी थी। मैं चुप रहा। मुझे चुप्पी साधे देख वह बोले—"देखो भाई, मुझे नामकी जरूरत नहीं। नाम आप अपना दे सकते हैं। मुझे तो बस ५००) रुपये मिल जाने चाहिए। और आप इस कामको आसानीसे करा सकते हैं!"

उनका मतलब था कि कहानी लेकर मैं उन्हें अपने पाससे ५००) दे दूं—और इस तरह उनकी मदद करूं। लेकिन मेरे पास रुपया होता, तब तो दया, धर्म, सहायताकी बात उठती। फिर भी मैंने कहा—"आप कहानी सुनाइये। कामकी होगी, तो कोई-न-कोई प्रबन्ध किया जा सकता है।"

"अच्छा, तो हम आते हैं।" कहकर वे चले गये।

लेकिन मेरी नींद हराम हो गयी। बुड्ढेकी चिन्ता मेरे सिरपर सवार हो गयी—लड़कीकी शादी—और दहेज!—दहेज! बिना इसके कैसे काम चल सकता है? तो जैसे भी हो, इनकी सहायता करनी ही होगी!

घोषाल बाबू हाथमें कुछ कागज लेकर आये और बैठते हुए बोले—"आपको कुछ कष्ट दे रहा हूं—क्षमा कीजियेगा।"

"नहीं, कोई बात नहीं—आप सुनाइये।"

वे कहानी सुनाने लगे। कहानी बहुत अच्छी थी और मुझे विश्वास हो गया कि अगर एक हजार नहीं, तो सात-आठ सौ तो कहीं गये नहीं। डाइरेक्टर तो इसे सुनकर लेखकका हाथ चूम लेगा। मैं इन्हीं आशाओंमें डूब रहा था कि एक महीन आवाज आयी—"बाबा!"

घोषाल बाबू बङ्गालीमें बोले—"चाय लायी हो बिटिया?"

और उसने अपनी भाषामें ही उत्तर दिया—"ले आयी हूं बाबा!"

"भीतर ले आओ!"

एक चौदह-पन्द्रह वर्षकी लड़की दो प्याले चायके लेकर अन्दर आयी।

घोषाल बाबू मेरी तरफ होकर बोले—"यही मेरी लड़की है—गौरी!" और गौरीकी तरफ मुड़कर बङ्गालीमें बोले—"यही हमारे सुरेश बाबू हैं, फिल्म-संसारके एक बड़े आदमी हैं। बड़े सज्जन हैं। मुझे बहुत अच्छे लगे।"

गौरीने हाथ जोड़कर चुपकेसे नमस्कार किया। मैंने उत्तर दिया, पर वह ठहरी नहीं। चली गयी।

चाय अपने सामने देखकर मुझे बड़ी शर्म मालूम हुई—"क्षमा कीजियेगा घोषाल बाबू। कुछ बातोंमें मुझे चायका

ध्यान ही नहीं रहा। यहीं बननी चाहिए थी। व्यर्थ ही आपको कष्ट उठाना पड़ा।"

"नहीं-नहीं—सब आपका ही तो है। आपकी फैमिली कहां है?"

"फैमिली कैसी घोषाल बाबू?"

"आपकी पत्नी—घरके लोग?"

"मैं अकेला हूं। मेरा और कोई नहीं है।"

"और कोई नहीं?—क्या कहते हैं?"

"हां, सचमुच नहीं!"

"अभी तक आपका विवाह नहीं हुआ! बड़ा ताज्जुब है। तब तो आपको बड़ा कष्ट होता होगा।"

"खैर, छोड़िये इस घरेलू जञ्जालकी बात। तो फिर कहानीका क्या मामला हो?"

"जैसा आप उचित समझें!"

"कहानी तो ठीक है, पर उसे अभी बनाना होगा!"

"हां, जो भी आप ठीक समझें, करें। हमें कोई आपत्ति नहीं।"

"तो कलसे रोज सुबहको आप यहां आ जाया करें। हम लोग साथ मिलकर विचारकर उचित संशोधन कर लेंगे।"

यह कार्यक्रम निश्चित हो गया और दूसरे दिनसे चलने लगा। हम लोग खुले दिलसे कहानीकी आलोचना-प्रत्यालोचना करते थे, और समुचित परिवर्तन तथा परिवर्द्धन करते जाते थे। और रोज ही गौरी चाय और नाश्ता ले आती और अक्सर कहानीकी बहस दिलचस्पीसे सुनने बैठ जाती। कुछ समझती थी या नहीं, सो नहीं कह सकता; लेकिन उसकी मुद्रासे यह जरूर स्पष्ट था कि वह तन्मय होती। और अगर मुझे अपनी इस तन्मयताको तोड़ते देख लेती, तो लजाकर लाल हो जाती!

दिन यों ही बीतने लगे। कहानी प्राय: आधी बन गयी थी। पहले जब दिनभरका थका-मांदा क्लान्तमन कमरेमें वापस लौटता था, तो बस सोते ही रहनेको जी चाहता था। सवेरा जल्दी होता मालूम होता और मुझे क्रोध आ जाता था। अब रातको सोता हूं, तो कल सवेरेकी सरस आशाओंको स्वप्नोंकी जगह आंखोंमें लेकर—और सवेरा अब निष्ठुर हो चला था—निष्ठुर प्रेयसीकी तरह ही—अब वह देरसे होता लगता था। मैं जगकर ही अक्सर क्षितिज-पर लालिमाकी एक रेख देखनेके लिए आकुल प्रतीक्षा करता रहता!

एक दिन सवेरा हुआ तो, लेकिन नहीं हुआ।

आठ बजे। साढ़े आठ बजे—नौ बजे और बजते ही चले गये। घोषाल बाबू नहीं आये, नहीं आये। जी करता था कि नीचे जाकर गौरीसे ही क्यों न पूछ लूं कि क्या बात है, क्यों नहीं आये? अरे नहीं आये, तो मुझे इतनी फिक्र क्यों—काम जिसका है, उसे फिक्र हो—लेकिन नहीं-नहीं—काम उनका ही तो नहीं है—

इतनेमें ही गौरी चाय-नाश्ता लिये सामने खड़ी थी—"बाबा आज नहीं आ सके—शरीर खराब है।"

गौरीकी हिन्दी मुझे प्यारी लग रही थी। मैंने पूछनेके लिए होंठ भी न खोल पाये थे कि वह जा भी चुकी थी! मैं हताश बैठा रह गया।

और एक दिन बीतनेके बाद, एक पखवारा भी ऐसे ही बीत गया। घोषाल बाबू नहीं आये। और गौरी भी नहीं आयी। मेरी चिन्ता बढ़ गयी—मेरा नौकर चाय लाया, तो मैंने उससे पूछा—"क्यों रे, गौरी तो किसी वक्त मुझे देखने नहीं आयी थी?"

"नहीं तो। उसके पिता आजकल बीमार हैं। टायफायड है!"

"टायफायड! तुम्हें किसने कहा?"

"कल उन्होंने मुझसे दवा मंगायी थी। डाक्टर कहता था कि हालत अच्छी नहीं है, संभालकर रखना चाहिए!"

"उनके पास कोई नौकर-चाकर नहीं है क्या?"

"नहीं। गौरी है और उसकी मां। बस और कोई नहीं।"

मैं परेशान हो गया। कारण समझते देर नहीं लगी। पैसेकी तङ्गी हारी-बीमारीमें तो और भी खल जाती है। देनेको तो मैं ही दस-पांच रुपया दे सकता हूं, पर उससे क्या होगा? कहानी अभी तक बिकी नहीं। हो तो कैसे क्या हो? कहानी तो पूरी हो आयी है, दो-एक सीन शेष हैं, सो आज पूरे कर लूंगा। लेकिन कोई ऐसा भलामानस तो नहीं है कि रुपया मांगनेके साथ ही फौरन् दे दे। तब? खैर, किसी तरह जल्दीसे जाकर कहानी समाप्त कर दी। फिर

तबियतमें आया कि घोषाल बाबूको यह खुशखबरी सुना आऊं—और गौरीको भी—लेकिन खाली हाथ—बिना पैसेके खुशी कैसी ? आजकी दुनियामें तो पैसा और खुशी पर्यायवाची हैं। फिर भी चल दिया। घोषाल बाबूका दरवाजा बन्द था। जैसे जानमें जान आयी। भूल आपही ठीक हो गयी। फिर लौट आया और सीधा आफिस चला गया। वहां डाइरेक्टरसे मिला। कहानी उन्हें बहुत पसन्द आयी और मञ्जूर भी कर ली, लेकिन रुपयेके लिए 'तीन महीने बाद' कहा। मेरी जैसे जान निकल गयी। साहस बटोरकर मैंने लेखककी परिस्थिति तिल-तिल समझायी—और मुझे सफलता मिल गयी। एक हजारका चेक मेरे हाथमें था।

हवाके घोड़ेपर सवार होकर मैं घरकी तरफ भागा। गौरी—घोषाल बाबू—ओह! एक अप्रत्याशित आनन्द—यही सोचता आता था।

मुहल्लेमें घुसा ही था कि कालेजसे लौटती हुई लड़कियोंका एक दल मिल गया। संकरा रास्ता, और इतनी सारी लड़कियां कि रास्ता घिरा हुआ था। मैं किसी तरह पीछे-पीछे चलने लगा। पर आगे बढ़नेकी चेष्टा मेरी उत्सुकता बराबर कर रही थी। वे धीरे-धीरे जा रही थीं। मैंने दीवालका हाथसे सहारा लिया और एक छलांग मारी। गिरते-गिरते बचा। लड़कियां हंसने लगीं—ठहाका मारकर। मैं झेंप गया। लम्बे-लम्बे डग बढ़ाये, पर पीछेसे किसीने पुकारा—"सुरेश बाबू!" मैं रुक गया। —"बड़ी आर्टिस्टिक चाल चलते हैं आप। हमने तो समझा था कि आप अब गिरे, अब गिरे। हम लोगोंको मदद करनी पड़ेगी। लेकिन आप क्यों गिरने लगे—ऊंचे चढ़ते ही हैं—आर्टिस्ट जो ठहरे!"

"इसके मानी हैं कि मेरे गिरनेसे आपको खुशी होती! क्यों ?"

"खुशी तो शायद न होती, पर एक आर्टिस्टको सहायता करनेका सौभाग्य तो अवश्य ही प्राप्त होता!"

"तो क्या वह सौभाग्य गिराकर ही मिल सकता था ? और फिर आर्टिस्टमें ही कौन-से सुर्खाबके पर लगे होते हैं ? क्या वह आदमी नहीं होता ? फिर कोई विशेष मोह क्यों ?"

"आर्टिस्टके लिए हमारा ही नहीं, सारे संसारका मोह है। लोग पैसा खर्च करके आर्टिस्टोंको सिनेमामें देखने जाते हैं—उनका सुख-दुख वे केवल पर्देपर देख ही सकते हैं, चाहनेपर भी कोई मदद नहीं कर सकते! पर यहां वह अवसर हमें आसानीसे मिल जाता!"

"वह अवसर तो बिना किसी दुर्घटनाके भी आप लोगोंके चाहनेपर मिल सकता है। आप लोगोंकी सहायता भला कौन स्वीकार नहीं करेगा! खैर, छोड़िये इन भावुकताकी बातोंको। आप लोग अपना परिचय तो दीजिये!"

उसी लड़कीने कहना शुरू किया—"हम सब इसी मुहल्लेमें रहती हैं, और मैं तो आपकी ही बिल्डिङ्गमें रहती हूं। हम सब लोग यहीं कालेजमें पढ़ती हैं। गौरी मेरी सहेली है, उसीसे आपकी तारीफ सुनी थी। एक दिन आपको दिखाकर उसीने कहा था—'सुरेश बाबू यही हैं—हमारी बहुत मदद करते हैं—बड़े उदार हैं—इनके दिलमें बड़ी दया—' सचमुच सुरेश बाबू, गौरीके कुटुम्बकी सहायता आपको करनी चाहिए। बेचारे बड़ी मुसीबतमें हैं—और आजकल तो उसके पिताजी बीमार भी हैं!"

"गौरी—गौरी—" मैं जैसे सोनेसे जागा, और अपनेको संभालकर बोला—"ओह, अच्छा जाता हूं!"

"चलिये, मैं भी वहीं चल रही हूं।"

और लड़कियोंने अपने-अपने घरका रास्ता लिया। मैं और गौरीकी सहेली साथ चलने लगे। उतावली मेरे पैरोंकी चालको जरूरतसे ज्यादा तेज किये दे रही थी। मैं भागा-सा जा रहा था। सोचा—क्या औरतोंके साथ इसी तरह चला जाता है—कैसा पागल हूं मैं—इतनेमें ही वह काफी पिछड़ गयी थी; वहींसे चिल्लाकर बोली—"सुरेश बाबू, भागते क्यों हैं, साथ ही चलिये!"

मैं रुक गया। अपनी बात रखनेके लिए कहा—"मैं तो नहीं भाग रहा हूं। आप ही धीरे-धीरे चल रही हैं!"

"लेकिन आर्टिस्ट होते हुए भी सुरेश बाबू आपको स्त्रियोंके साथ चलना नहीं आता!"

"तो क्या यह जरूरी क्वालीफिकेशन है आर्टिस्टकी—कि वह स्त्रियोंके साथ रेंगता हुआ चले ?"

"गौरी ठीक ही कहती थी।"—हंसते हुए वह बोली थी।

वही गौरी सामने खोयी-सी बैठी है।—फिर धन्यवाद—ध-न्य-वा—इसकी क्या अब भी कोई जरूरत है!

"तो धन्यवाद देनेकी क्या जरूरत है घोषाल बाबू। जैसे आपका काम, वैसे मेरा काम! और आप दवा किसकी

करा रहे हैं?"—कहकर मैंने गौरीकी तरफ मुंह किया।

"डाक्टरके पास भेजनेको कोई आदमी ही नहीं मिलता। एक होम्योपैथिक दवा खा रहे हैं, लेकिन कुछ ठीक नहीं होता!"

"कोई आदमी नहीं—तो मुझसे क्यों नहीं कहा? मेरे नौकरसे ही कह दिया होता! आखिर सङ्कोच किस बातका?" मैंने साश्चर्य पूछा।

"सुरेश बाबू!...सब आपकी ही तो दया है"—और दीनता ही जैसे उनकी आंखोंसे बोल रही थी।

रुपया सबसे बड़ा इलाज है, सो वह अब मौजूद था। घोषाल बाबू अच्छे हो गये थे। अब केवल एक बीमारी और दूर करनी थी—उसके लिए एक सुयोग्य वरकी तलाश थी। एक दिन घोषाल बाबू मेरे पास आकर कहने लगे—"भाई, आपकी दया हम कभी नहीं भूल सकते। एक महीनेके लिए मैं घरसे जा रहा हूं। घरको कभी-कभी देखते-भालते रहियेगा।"—स्वरमें विनम्रता बहुत थी। मैंने कहा—"आप फिक्र न करिये। सब ठीक ही रहेगा। आप गौरीसे कह दीजिये कि जिस चीजकी जिस वक्त भी जरूरत हो, तुरन्त मुझसे कहे।"

"हां हां—हमने पहले ही कह दिया है।"—कहकर वे चले गये।

सात दिन बीत गये, लेकिन गौरी एक बार भी नहीं आयी। मैंने सोचा—वह तो मुझे लापरवाह समझती है—फिर क्यों मेरे पास आने लगी? मैं भी नहीं जाऊंगा फिर—ऐसे ही सही—और मेरी नजर दरवाजेपर किसीके खड़े होनेका आभास पाकर उधर ही चली गयी! गौरी ही तो थी! मैंने कहा—"आओ गौरी!"

"मांने चाय पीनेके लिए बुलाया है।"—गौरीने भीतर पैर रखते हुए कहा। मैंने जरा स्वाभिमानपूर्ण स्वरमें उत्तर दिया—"आज तुम लोगोंको मेरी याद कैसे आयी? इधर क्यों भूल पड़ीं?"

"हमारी बात छोड़िये। लेकिन आपको भी तो हमारी याद नहीं आयी। याद आनेपर भी हम तो कुछ नहीं कर सकते थे—पर क्या आपको भी नहीं आना था?"

"क्या तुम्हारे यहां आनेमें कोई अड़चन थी? क्या कोई नाराज होता है? 'हम तो कुछ नहीं कर सकते थे' का क्या मतलब है?"

"नहीं—पर—"

"पर मैं परवाह नहीं करूंगा—इसी डरसे, क्यों?"

"वह भी हो सकता है, पर यह सब आपसे कहा किसने?"

"हमारे मनने! सच कहो गौरी, क्या मैं तुम्हारी परवाह नहीं करता?"

"सुरेश बाबू, मांने आपको बुलाया है—चलिये न!"—गौरीने जैसे मेरी बात सुनी ही नहीं।

"जवाब क्यों नहीं देतीं...?"

"आप चलिये—मांने बुलाया है। देरी हो रही है—आइये।"—कहते-कहते वह कमरेसे चली गयी।

मैंने पैरोंमें चप्पल डाली और गौरीके यहां फौरन् ही पहुंच गया।

चाय रखते हुए गौरीकी मां बोलीं—"बेटा, तुम क्या नाराज हो गये?"

"नहीं तो मांजी! नाराज क्यों हूंगा?"

दूसरे दिन जब मैं बिस्तरसे उठनेकी चेष्टा कर रहा था, तो मेरे हृदयमें एकाएक एक कोमल कल्पना दौड़ गयी, आंखोंके सामने एक प्यारी-प्यारी-सी तसवीर घूम रही थी। क्या जाने मैंने क्या लापरवाही की है?.........कहीं मैं गलत रास्तेपर तो नहीं......नहीं, आज मैं गौरीसे स्पष्ट कह दूंगा, मैं कह दूंगा—नहीं-नहीं गौरी, मैं तुम्हारी उपेक्षा नहीं करता—तुम्हारी मैं सबसे ज्यादा परवाह करता हूं—क्या सचमुच तुम अपनी मौन भाषामें मुझसे कुछ कहा करती थीं? नहीं-नहीं, तुमने मुझसे कभी भी कुछ नहीं कहा, अगर तुम कहतीं, तो मैं अवश्य ही उसकी परवाह करता, मैं लापरवाह नहीं हूं। नहीं, मैं कुछ भी नहीं कहूंगा, यदि मैंने उससे कुछ भी कहा, तो वह समझेगी कि थोड़ी-सी मदद की है, तो उसका बदला किस भयङ्करतासे लिया जा रहा है, किसीके मनपर जबर्दस्ती कब्जा करनेका प्रयत्न किया जा रहा है! नहीं, मुझे कोई अधिकार ही नहीं है कि मैं किसीसे इस तरहकी बातें करूं! मगर फिर उसने उस लड़कीसे यह क्यों कहा—मैं लापरवाह हूं—वह लड़की ही फिर ऐसा क्यों कहती थी कि उसकी मौन भाषाको तुम नहीं समझ सके—क्या वह झूठ बोलती थी? मगर उसे इस तरहका झूठ बोलनेकी क्या जरूरत थी; उसने झूठ नहीं कहा...गौरी मुझे चाहती है, वह अवश्य मुझसे प्रेम करती है,...........न जाने कब तक मैं इसी विचारमें तन्मय रहता, यदि 'सुरेश बाबू!' इस

सम्बोधनसे मेरी विचार-धारा न टूटती—मैं चौंककर उठ बैठा, वृद्ध महाशय दरवाजेपर खड़े थे !—प्रणाम किया—बोला—"आइये, आप आये कब ?"

"यही ८ बजेकी गाड़ीसे तो आया हूं । हमको आपका सहयोग सौभाग्यसे ही मिला है—गौरीके लिए एक बहुत अच्छा लड़का मिल गया है ! बी० ए० पास है, स्कूलमें मास्टरी करता है, दहेजमें कुछ भी नहीं लेगा, राष्ट्रीय विचारका लड़का है—ठीक आप जैसा स्वभाव और चेहरा !"

क्षण-भरमें मेरा दिमाग झनझनाने लगा, पैरों-तलेसे जैसे जमीन खिसक गयी, अस्फुट स्वरमें मुंहसे निकला—"अच्छा !"

आग्रहपूर्वक घोषाल बाबूने कहा—"तुम्हारे जैसे भाग्य-वान बेटेका संसर्ग मिला, इसीलिए यह काम हुआ, नहीं तो हमारे भाग्यमें कहां था ?"

बड़े कष्टसे हास्यकी एक रेखा मुखपर लाते हुए मैंने कहा—"बड़ी खुशीकी खबर है । कब तक विवाह होगा ?"

"जल्दी ही !" कहकर वृद्ध महाशय उठ खड़े हुए। बोले—"अभी तक स्नान भी नहीं किया, अब मैं जाऊं, फिर मिलूंगा !"

उदास भावसे मैं खिड़कीसे बाहर ताकने लगा; लगा, जैसे मेरा सर्वस्व लुट गया हो ! इसी वक्त दबे पांव गौरी आकर चारपाईके पास खड़ी हो गयी—चाय और नाश्ता लिये थी । इच्छा हुई, गौरीको बधाई दूं—मनकी बात मन ही में रखूं, पर गौरी स्वयं ही बोल बैठी—"तुम क्या अभी भी चुप रहोगे ?" उसके 'तुम' शब्दको सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । हाथकी चीजोंको मेजपर रखकर वह कोनेके पास बैठ गयी और हूक-हूककर रोने लगी ।

एक अप्रत्याशित घटना होते हुए भी मैं विचलित न हुआ । धीरेसे जाकर मैंने दोनों हाथोंके सहारे उसे उठाया ! मेरे कन्धेमें मुख छिपाकर वह फूट-फूटकर रोने लगी । आंसुओंसे मेरी कमीज भींग गयी । मेरा सारा शरीर कांप रहा था, मुखसे एक भी शब्द नहीं निकलता था ! गौरीकी पीठपर हाथ रखकर मैं चुप ही रहा । क्षणभर बाद मैंने कहा—"तुम तो मेरे मनकी बातोंको समझती थीं गौरी, फिर भी तुमने अपने मनकी बात मुझे इशारेसे भी नहीं समझायी—मुझे तो तुमसे कुछ भी कहनेका साहस ही नहीं होता था, और इसीलिए मैं दो मिनट पहले भी अपने ही मनकी आन्तरिक भावनाको समझनेमें भी असमर्थ था । तुमने उस भावनाको समझनेका मौका ही नहीं दिया । इसके अलावा मेरे पास क्या है, धन-सम्पत्ति कुछ भी तो नहीं, घर-बार मैं जानता तक नहीं, किस भरोसे तुम्हें कुछ कहता, और अब भी कुछ तुम्हारे पिताजीसे कहूं ! चुपके सिवा और क्या उपाय है ?"

"मैं धन-दौलतके लिए तुम्हारे पास नहीं आना चाहती और तुम अपने आपको अगर धोखेमें रखना चाहते हो, तो तुम्हारी मर्जी !"

गौरी कह रही थी कि नीचेसे उसकी मांकी आवाज सुनाई दी—"गौरी !" "गौरी जाओ, मां बुला रही है ।" और गौरी एकदम उठकर चली गयी ।

उस दिनसे मैंने अपना दूसरा ही प्रोग्राम बना लिया । रातको १२ बजे आता, सुबह ७ बजेसे पहले चला जाता । वह मकान, वह मुहल्ला, मुझे सब कुछ खानेको दौड़ता । गौरीका समाचार मुझे नौकरसे प्रायः रोज ही मिल जाता था । गौरी प्रायः रोज ही आकर नौकरसे मेरे विषयमें पूछ लेती थी । गौरीके विवाहके दिन मैं किसी तरह न रह सका, उनके घरपर चला ही गया ! गौरीके माता-पिता दोनोंने मुझे घेरकर पूछना आरम्भ किया—"क्यों नहीं आते ? क्या हुआ ?" खैर, बहाना बनाया । अन्दर गौरीके पास गया, देखा, उन्हीं पूर्व-परिचित कालेज-कन्याओंसे गौरी घिरी हुई है । गया नहीं, लौट आया । ठहर नहीं सका । सिर-दर्दका बहाना बनाकर अपने कमरेमें गया । चारपाईपर लेट गया । किसी तरह मनको न समझा सका, आंसू बन्द ही न होते थे ।

आज गौरी मेरी नहीं रही । वह जा रही है । ओह ! कितनी सुन्दर लग रही है इस विवाहकी सुहाग-साड़ीमें—यौवनकी सुन्दरता साकार बनकर उतर आयी है— पर गौरी—गौरी—

"तुम रोते हो ?"

अरे मैं रो रहा हूं, मुझे ध्यान आया । और इस ध्यान-के साथ ही एक सरस मृदुल भार मेरे सीनेपर था—

भार सजल हो उठा—

मेरे सीनेसे चिपटी गौरी रो रही थी ।

"मुझे भूलोगे तो नहीं......मैं चाहती हूं, तुम हमेशा मुझे याद रखो—बोलो—बोलो—भूलोगे तो नहीं !"

और फिर वह सिसकने लगी—

मैं चुप रहा । क्या कहता । धुंधलापन गहरा होकर अन्धकार बनता जा रहा था ।



"मुसलिम गोखले" ?

"मेरी इच्छा मुसलिम गोखले बननेकी है"—आत्म-प्रकाशनकी एकान्त घड़ियोंमें कुछ ऐसे ही उद्गार स्वर्गीय गोखलेके एक प्रिय मुसलिम शिष्यके मुंहसे निकले थे। अपनी उग्र राष्ट्रीयता एवं प्रबल देशभक्तिके कारण इस युवकने थोड़े ही दिनोंमें राजनीतिक क्षेत्रमें यथेष्ट लोकप्रियता प्राप्त कर ली तथा देशके नेताओंकी प्रथम पंक्तिमें हिन्दू-मुसलिम एकताके अग्रदूतके रूपमें आ गया। देशके नेतागण इस युवकके सम्बन्धमें बड़े उच्च विचार रखते थे, देशको भी उससे बड़ी-बड़ी आशायें थीं; परन्तु महत्त्वाकांक्षाओंने उसकी राजनीतिक विचार-धाराका प्रवाह बदल दिया, और किसी दिनका उग्र राष्ट्रीय युवक, आज लगभग ६९ वर्षकी आयुमें फिरका-परस्तोंका सरदार बना बैठा है। जिस व्यक्तिका हम उल्लेख कर रहे हैं, वह है मुसलिम लीगका स्थायी सभापति कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्ना। वर्तमान सङ्कटकी परिस्थितिमें अपनी साम्प्रदायिक नीतिके कारण जनाब जिन्ना अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर रहे हैं और साम्प्रदायिकताके इतिहासमें वे अपनी उपर्युक्त विशेषताके कारण अमर रहेंगे।

दिसम्बर १८७६ के अन्तिम सप्ताहमें, करांचीके एक धनवान खोजा परिवारमें जनाब जिन्ना साहिबका जन्म हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा करांचीमें ही हुई और वे सन् १८९२ में ही, सोलह वर्षकी अल्पायुमें उच्च शिक्षाके लिए इंगलैण्ड भेज दिये गये। इंगलैण्डमें वे स्वर्गीय दादाभाई नौरोजीके सम्पर्कमें आये, जिन्होंने उन्हें राष्ट्रीयताका पहला पाठ पढ़ाया। विदेशमें चार वर्ष रहनेके उपरान्त, जिन्ना बैरिस्टर बनकर भारत लौटे। १८९७ से ही उन्होंने भारतमें वकालत करनी शुरू की। अभी तक उनकी राजनीतिक धारणायें निश्चित न थीं और न उन्हें जीवनका ही कुछ अनुभव था। अभी वे भविष्यके सुनहले स्वप्न ही देख रहे थे कि उन्हें एक दिन विषम दारिद्र्यका सामना करना पड़ा। उनका कारोबार बैठ गया और उन्हें पैसेके लिए दूसरोंका मोहताज होना पड़ा। सम्पत्तिकी खोजमें वे बम्बई गये और वहां वकालत शुरू की; परन्तु वहां भी तीन साल बड़ी कठिनाईसे गुजरे। तीन सालके बाद उनके सितारे फिर चमके—उन्हें थोड़ी बहुत सफलता मिलने लगी। वे लगन और परिश्रमके साथ अपने व्यवसायमें लगे रहे और थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने इतनी उन्नति और लोकप्रियता प्राप्त कर ली कि वे भारतके अच्छे-अच्छे वकीलोंमें गिने जाने लगे।

इस समय वे युवक थे—उनकी धमनियोंमें यौवनका गर्म रक्त बह रहा था और उनके हृदयमें देशभक्तिके बीज तो कई वर्ष पूर्व इंगलैण्डमें स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी द्वारा बोये ही जा चुके थे। बम्बईमें वे स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखलेके सम्पर्कमें आये। श्री गोखलेकी राजनीतिने उन्हें इतना अधिक प्रभावित किया कि जिन्नाने उन्हें अपना गुरु और आदर्श बना लिया। स्वर्गीय बदरुद्दीन तैयबजी और स्वर्गीय सर फिरोजशाह मेहताके उदाहरणसे उन्हें प्रेरणा मिली और वे कांग्रेसके कार्यमें क्रियात्मक भाग लेने लगे। १९१० में, उन्हें बम्बईके मुसलमानोंने एसेम्बलीके लिए अपना प्रतिनिधि चुना।

१९१३ में वे पुनः भ्रमणके विचारसे इंगलैण्ड गये। वहां

उन्होंने विद्यार्थी सङ्घकी ओरसे कार्य किया तथा आन्दोलन चलाया। वहांसे ख्याति एवं लोकप्रियता प्राप्त कर, १९१४ में जब वे भारत लौटे, तब वे भारतमें अधिक न ठहर सके। उसी वर्ष उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेसके डेपुटेशनमें, भारतके एक प्रतिनिधिकी हैसियतसे पुनः इंगलैण्ड जाना पड़ा। यह उनका बड़ा सम्मान था कि वे उस आयुमें उतने गौरव-पूर्ण पदके लिए निर्वाचित किये गये। परन्तु थे वे इस मानके सर्वथा योग्य। उन्हें भारतकी परिस्थितिका अच्छा अध्ययन था तथा वे एक सुयोग्य वक्ता भी थे। इंगलैण्डसे वे और भी अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर लौटे। दूसरी बार वे पुनः बम्बईके मुसलमानों द्वारा बड़ी धारा-सभाके सदस्य चुने गये और प्रायः तबसे ही वे उसके सम्पर्कमें रहे आते हैं।

१९१२ में कतिपय मुसलमान नेताओंके उद्योगसे, जातीय हितोंकी रक्षाके लिए एक 'मुसलिम लीग' की स्थापना हुई थी। सर्वप्रथम तो यह संस्था पूर्ण रूपसे साम्प्रदायिक थी; परन्तु कुछ वर्ष पश्चात् इसके विधानमें किञ्चित् परिवर्तन कर, इसके ध्येयमें कुछ राष्ट्रीयताकी भावना लादी गयी। उग्र राष्ट्रवादी जिन्नाने ऐसी साम्प्रदायिक संस्थासे कोई सम्बन्ध न रखनेका विचार किया। कार्यकर्ताओं द्वारा विशेष रूपसे आमन्त्रित किये जानेपर वे लीगके अधिवेशनमें कलकत्ता गये। वहां उन्होंने लीगके साम्प्रदायिक कार्य-क्रममें कोई हिस्सा न लिया। हां, संस्थाके विधानमें किये गये राष्ट्रीय संशोधनोंकी प्रशंसा उन्होंने अवश्य की। परन्तु अभी भी वे इस संस्थाके सदस्य नहीं हुए थे। १९१३ में जब वे इंगलैण्डमें थे, तब स्वर्गीय मुहम्मद अली तथा वजीर हसन महोदयने उनसे भेंट कर लीगका सदस्य बननेका आग्रह किया। जिन्ना सदस्य बन तो गये; परन्तु उन्होंने यह स्पष्ट घोषित कर दिया कि वे साम्प्रदायिक कार्योंसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य समझते हैं, अतः वे कांग्रेसका अहित कर मुसलिम लीगका कोई हित न कर सकेंगे।

जिन्ना एक नेताकी हैसियतसे अब काफी लोकप्रिय हो गये थे। उन्होंने सच्चे हृदयसे हिन्दू-मुसलिम एकताके लिए प्रयत्न प्रारम्भ किये। १९१५ में श्री गोखलेकी असामयिक मृत्युसे दोनों जातियां एक-दूसरेके पास आयीं और उनमें मैत्री बढ़ी। उस वर्ष कांग्रेसका अधिवेशन बम्बईमें हुआ, और वहीं मुसलिम लीगका अधिवेशन राष्ट्रीय सप्ताहमें हुआ। जिन्नाके प्रयत्नोंसे दोनों दलोंके नेता एक-दूसरेके समीप आये और उनमें कुछ अस्थिर समझौते भी हुए। जिन्ना अपने प्रयत्नोंमें आंशिक रूपसे सफल हुए।

होमरूल आन्दोलनके दिनोंमें पहले तो जिन्ना महोदयने उसमें कोई क्रियात्मक भाग नहीं लिया; परन्तु जब श्रीमती एनी बीसेण्ट जेल भेज दी गयीं, तब वे अपने आपको न रोक सके। उन्होंने आन्दोलनमें भाग लेना शुरू किया और कुछ ही दिन बाद बम्बईकी होमरूल लीगके सभापतिकी हैसियतसे आन्दोलनका सञ्चालन करने लगे।

गत विश्वव्यापी महायुद्धकी समाप्तिपर, जब भारत स्वराज्यके स्वप्न देख रहा था, रौलट एक्ट और जलियानवाला बागकी घटनाओंने उसे सोतेसे जगा दिया। हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियोंने सम्मिलित रूपसे राष्ट्रीय अपमानका बदला लेनेका निश्चय किया और महात्मा गांधीके नेतृत्वमें असहयोग आन्दोलन चला। परन्तु श्री जिन्ना इस आन्दोलनके विरोधी थे। १९२१ में अहमदाबादमें मुसलिम लीगका चौदहवां ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ, जिसमें महात्मा गांधी तथा कांग्रेसके अन्य प्रमुख नेता उपस्थित थे। लीगको कांग्रेसके सत्याग्रहके प्रति सहानुभूति थी और कांग्रेसको लीगकी खिलाफतके प्रति। दोनोंने एक-दूसरेको खूब सहयोग दिया। अभाग्यवश चौरी-चौरा तथा अन्य दुर्घटनाओंके इस प्रसङ्गमें हो जानेके कारण गांधीजीको सत्याग्रह बन्द करना पड़ा। शासनकी कूटनीतिके कारण देशमें स्थान-स्थानपर साम्प्रदायिक दङ्गे हुए, जिनके परिणाम-स्वरूप हिन्दू और मुसलमानोंके बीचका खाई पुनः जैसीकी तैसी चौड़ी और गहरी हो गयी।

जिन्ना साहिबके विचारोंमें अब साम्प्रदायिकता आ गयी थी, और उनका दृष्टिकोण अब उतना व्यापक न रह कुछ संकुचित हो चला था। उनके नेतृत्वमें उनकी इस नयी मनोवृत्तिका आभास मिलने लगा था; परन्तु १९२७ में उन्होंने पुनः हिन्दू-मुसलिम ऐक्यके लिए प्रयास किया। दुर्भाग्यवश उन्हें सफलता न मिल सकी।

इसी समय श्री जिन्ना भारतीय राजनीतिके रङ्गमञ्चपर एक नये रूपमें आये। उनका यह नया स्वरूप एक अवसरवादी एवं प्रतिगामीका था। कांग्रेस तथा हिन्दू महासभा द्वारा बनाये भारतीय शासन-विधानका विरोध उन्होंने खुले रूपसे

साम्प्रदायिक नेताके रूपमें किया। इसी समय उन्होंने अपने चौदह सवाल पेश किये।

सर्वदल सम्मेलनके कार्यक्रममें मुसलिम लीगने १९२८ की बैठकोंमें हिस्सा लिया था। सम्मेलन असफल रहा, क्योंकि वह मुसलिम लीगकी मांगोंको स्वीकार न कर सका। द्वितीय राउण्ड टेबिल कान्फरेन्समें जहां एक दलने एक ओर नेहरू कमेटीकी मांगोंको स्वीकार करानेका यत्न किया, जिन्ना साहबने अपने चौदह सवाल रखे। हिन्दू-मुसलिम समस्या हल न की जा सकी।

द्वितीय राउण्ड टेबिल कान्फरेन्सके बादसे आज तक जिन्ना महोदयने क्या किया है—उनकी क्या नीति रही है—यह सर्वविदित है। १९३५ के सुधारोंके आनेपर भारतीय राष्ट्रीय महासभाका विरोध करनेके लिए उन्होंने मृतप्राय मुसलिम लीगका पुनः सङ्गठन किया, और भारतमें साम्प्रदायिकताका जहर फैलानेके लिए जी-जानसे प्रयत्न किया। पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रोंकी मांगसे ही उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयतापर पहला घातक वार किया। पण्डित जवाहरलाल द्वारा किये जानेवाले हिन्दू-मुसलिम एकताके प्रयत्नको उन्होंने अपनी 'मुक्ति-दिवस' की अपीलसे बीचमें ही रोक दिया। अब लाहौरके प्रस्ताव द्वारा वे भारतके विभाजनके स्वप्न देख रहे हैं। देखें, भविष्यमें वे और कौन-सी योजना बनाते हैं!

श्री जिन्नाके अतीत एवं वर्तमान राजनीतिक जीवनपर दृष्टिपात करनेसे आश्चर्य होता है। क्या ऐसा परिवर्तन सम्भव है? क्या श्री जिन्ना अपनी आन्तरिक इच्छाकी पूर्ति कर 'मुसलिम गोखले' बन गये हैं? क्या उनकी अब भी यही इच्छा है?

—श्यामाचरण दुबे

"जनानिस्तान"

मि० मुहम्मद अली जिन्नाकी पाकिस्तान योजनापर एक व्यंग्यात्मक लेख आचार्य कृपलानीने लिखा है, जो कई दृष्टियोंसे व्यंग्य-साहित्यकी एक मूल्यवान् चीज है। रचनाका कुछ अंश यों है :—

इस समय भारतको विभिन्न प्रदेशोंमें बांटनेकी योजनाओंपर विचार हो रहा है। चारों ओरसे भारतके टुकड़े-टुकड़े करनेकी आवाजें उठ रही हैं। कहा यह जा रहा है कि जिस देशमें विभिन्न संस्कृतियां एवं सभ्यतायें हैं, उसमें उनके अनुकूल विभिन्न राष्ट्रोंका निर्माण करना ही उचित होगा। ऐसा करनेसे ही वे सुख और शान्तिपूर्वक जीवन-निर्वाह कर सकेंगे। इसी आधारपर लाहौरमें मुसलिम लीगने अपने अधिवेशनमें नियमानुकूल पाकिस्तानकी योजना स्वीकृत की है। सिख सम्प्रदाय पञ्जाबपर अपना एकाधिपत्य चाहता है। उसका दावा है कि पञ्जाब न तो हिन्दुओंका है और न मुसलमानोंका। यह तो सिखोंके अधिकारमें था और अंगरेजोंने सिखोंसे ही उसे लिया है। इसी प्रदेशने उनके गुरुओंके जन्म और मरण देखे हैं और यहीं उनके धर्मका चरम-विकास हुआ है। अतः पञ्जाबमें बहुमत और अल्पमतका प्रश्न ही नहीं उठता। सभ्यता एवं संस्कृतिका तकाजा है कि पञ्जाब सिख प्रान्त बनाया जाय।

भारतको हिन्दू-मुसलिम प्रान्तमें ही विभक्त करनेकी बात चलती, तो एक बात थी। परन्तु स्थिति तो यह है कि मुसलमानोंका शिया सम्प्रदाय अपने लिए अलग प्रदेश चाहता है। इस वर्गका कहना है कि सुन्नियोंके साथ रहकर शिया सुख-शान्तिका उपभोग नहीं कर सकते। सुन्नी तबर्रा पढ़नेका विरोध करेंगे और शिया तबर्रा पढ़े बिना रह नहीं सकते। इसलिए आवश्यक है कि शिया सम्प्रदायके लिए एक अलग प्रान्त बनाया जाय। दक्षिण भारतके लोगोंका कहना है कि वहां एक द्रविड़ प्रदेशका गठन होना चाहिए, जिससे हिन्दू सभ्यता और हिन्दी भाषाका बहिष्कार किया जा सके। इस प्रकार सबकी मांगोंपर अगर विचार किया जाय, तो इसमें आंशिक औचित्य भी दीख पड़ता है। अलग राष्ट्रोंके निर्माणका आन्दोलन जब इतना जोर पकड़ता जा रहा है, जब भिन्न-भिन्न योजनायें भी पेश हो रही हैं, तब एक और नयी योजनाका पेश करना बुरा न माना जायेगा।

मेरी योजना एक अलग जनानिस्तानके निर्माणकी है। मेरा ख्याल है कि भारतीय नारियोंको अगर अपनी हीनताका बोध होता, अगर उन्हें भी पुरुष जातिके अत्याचारोंके विरुद्ध सिर उठाने और वक्तृतायें देनेका काफी ढङ्ग आ गया होता, तो बहुत पहले ही उनके दिमागमें एक अलग जनानिस्तान बनानेकी योजना आ गयी होती। किन्तु आज वे अशिक्षित हैं और संसारकी प्रगतिको समझनेमें असमर्थ हैं, इसलिए उनपर अत्याचार होते चलते हैं और वे सहन करती चलती हैं। इसलिए क्रान्तिके इस युगमें, बंटवारेकी इस

राष्ट्रमें मैंने उचित समझा कि मैं उन लोगोंकी ओरसे आवाज उठाऊं, जिनके मुंहमें जबान नहीं है। मैं उनके लिए एक योजना पेश करना चाहता हूं। मेरा ख्याल है कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी प्रकारके इतने कारण वर्तमान हैं कि उनके आधारपर जनानिस्तानकी योजना पेश की जा सकती है। इस नये राष्ट्रमें स्त्रियां स्वाधीनतापूर्वक रहकर समानाधिकारका उपभोग कर सकती हैं।

मैं जिन कारणोंसे जनानिस्तानके निर्माणकी हिमायत कर रहा हूं, उनका पता लगाना मुश्किल नहीं है। सृष्टिके प्रारम्भसे ही नारी और पुरुषमें एकाधिक भेद पाये जाते हैं, जिनके दूर होनेका कोई उपाय नहीं है। हिन्दू और मुसलमान, सिख तथा अनार्य एवं द्राविड़ तथा आर्योंके भेदसे भी नारी और पुरुषके भेद अधिक हैं। सच पूछिये तो इन दो वर्गोंमें जितनी विषमता है, उतनी दूसरे किसी वर्गमें नहीं। वास्तविक बात तो यह है कि नारी और पुरुष भेदके साथ ही जन्म लेते हैं। दुनियाकी बात मैं नहीं करता, किन्तु हिन्दुस्तानमें तो शुरूसे ही भेद दृष्टिगत होने लगता है। परिवारमें जब पुत्र पैदा होता है, तो खुशीसे मिठाइयां इत्यादि बांटी जाती हैं और लड़की पैदा होती है, तो चारों तरफ मातम छा जाता है। यह भेदकी खाई पटनेके बजाय दिन-ब-दिन चौड़ी होती जाती है। जन्मसे ही लड़के और लड़कियोंके लालन-पालनमें अन्तर दीख पड़ने लगता है। जहां लड़केकी शिक्षा जीवनको उच्च तथा हर पहलूसे आदर्श बनानेके लिए होती है, वहां लड़कीकी शिक्षाका उद्देश्य सिर्फ उसे घरेलू काम-काजके लिए योग्य बनाना ही होता है। नैतिक दृष्टिकोणसे भी दोनोंके दो महत्त्व हैं। जहां लड़का अपने आचरणकी गलतीके लिए मामूली झिड़कन पाता है, वहां लड़की ऐसी गलतीके लिए अपने मां-बापके घर अभिशाप बन जाती है। उसके सिर कुलकी प्रतिष्ठा डुबो देनेका इल्जाम ठोका जाता है और उसे भी अपनी बेचारगीके कारण इस स्थितिको बरदाश्त करना पड़ता है। बहुत-सी लड़कियां तो ऐसी हालतसे आत्म-हत्या कर लेती हैं और कितनी तो मां-बापके घरको छोड़ अज्ञात प्रदेशके लिए निकल पड़ती हैं।

रक्तरञ्जित क्रेमलिन

प्रायः ६ महीनेसे पत्रोंमें क्रेमलिनकी चर्चा बराबर होती रही है। यूरोप-भरके राजनीतिज्ञोंके कूटनीतिक द्वन्द्वोंका पिछले दिनों क्रेमलिन एक अखाड़ा रहा है। क्रेमलिनके सम्बन्धमें आम तौरपर लोगोंकी यह धारणा होती है कि यह एक विशाल महल है, जिसमें रूसका राजकीय कार्य-सम्पादन होता है, जैसा कि इसके 'क्रेमलिन प्रासाद' नामसे प्रकट होता है। लेकिन वास्तवमें यह केवल एक प्रासाद नहीं है। क्रेमलिनमें कितने ही प्रासाद, गिरजाघर, अस्पताल, निवास-स्थान, शस्त्रागार, बैरक आदि विभाग हैं। मास्का नदीके तटपर ऊंचे-ऊंचे स्तम्भोंपर बना हुआ क्रेमलिन पन्द्रहवीं सदीसे ही रूसका हृदय-सा रहा है।

कई शताब्दियोंसे रूसके शासकोंका यह प्रधान केन्द्र रहा है। समयने कितनी ही बार आक्रमणोंसे इसे धूलमें मिलते और पुनः उठते देखा है। जितनी ही बार क्रेमलिनका पतन हुआ है, उतनी ही बार यह और भी शान-शौकतके साथ उठा है। क्रेमलिनमें यद्यपि अब बोल्शेविक नेताओंका अड्डा है, पर उसकी दीवारोंपर जारोंकी कहानियां अब भी चित्रित दिखाई पड़ती हैं। रूसके राजनीतिक उत्थान-पतनका एक इतिहास क्रेमलिनके इतिहासके साथ संयुक्त हो गया है। जहां जार बैठते थे, वहीं लेनिन रह चुका है और स्टैलिन, मोलोटोव और कालिनिन आदि वहां रह रहे हैं। वहीं कभी बुखारिन, रेखोव और जिनोविफ भी रह चुके हैं। कभी वे दिन भी थे, जब ट्राटस्की भी वहीं रहता था।

क्रेमलिनके भीतर एक बहुत विशाल हाल है, जिसमें जारोंके समयमें उनके साथ बड़े-बड़े सामन्त और कोष्याधीश बैठते, दरबार करते और रंगरेलियोंसे दिल बहलाया करते थे। उसी हालमें अब सोवियट कांग्रेस हुआ करती है। एक जमाना था, जब उस हालमें जारके कृपापात्रोंको छोड़कर कोई प्रवेश नहीं कर सकता था और अब इसका इतिहास ही बदल गया है। नवम्बर १९१७ के तूफानी दिनोंमें जिन वीरोंने अपनी जान गंवायी, उनकी यादगार भी इस हालके एक किनारे बनी हुई है।

क्रेमलिनका इतिहास अनेक अनोखी रक्तरञ्जित कहानियोंसे भरा पड़ा है। राजाओं एवं षड्यन्त्रकारियोंने यहां रहकर कैसे-कैसे षड्यन्त्र रचे और अन्तमें भाग्यने उनके साथ कैसा विद्रूप किया, इसकी कहानियां अगर दीवारें बोल सकतीं, तो हजार बार सुनातीं। कितने कैदियोंकी आहें और कितनी हत्याओंका चीत्कार यहांके वातावरणमें

है। जहां बैठकर जार लाल क्रान्तिके सरदारोंके विरुद्ध षड्-यन्त्रके जाल बुना करता था, वहीं बैठकर ट्राटस्कीपर षड्यन्त्र रचनेका अभियोग लगाया जाता है। क्रेमलिनके भीतर एक रहस्य है, जिसे जार-कालसे ही कोई भेद न सका। और आज भी जब हम कहते हैं कि रूसका अगला कदम किस दिशामें उठेगा, तब हम अपनी इस असमर्थताका परिचय देते हैं कि हमें मालूम नहीं कि क्रेमलिन क्या कर रहा है।

महान् पुरुषोंके जीवनके कुछ क्षण

संसारमें विभिन्न क्षेत्रोंमें महत्ता प्राप्त करनेवाले व्यक्तियोंके जीवनमें कभी-कभी ऐसे क्षण भी आ जाते हैं, जो बड़े मनोरञ्जक और अनोखे होते हैं।

कहते हैं कि कुछ दिन पहले लार्ड हेलीफाक्स (भारतके भूतपूर्व वायसराय) ट्रेनमें सफर कर रहे थे। उनके डिब्बेमें ही दो स्त्रियां भी बैठी हुई थीं। गन्तव्य स्थानपर पहुंचनेके पहले रेलको एक पहाड़ी सुरङ्गके नीचेसे जाना पड़ता था। सुरङ्गके नीचे ट्रेन चलने लगी, तो इतना अन्धकार हो गया कि कोई एक दूसरेको देख नहीं सकता था। इस अन्धकारमें लार्ड हेलीफाक्सको जरा मखौल सूझा। उन्होंने अपना बायां हाथ तीन बार बड़े स्नेहसे चूमा। चूमते समय ऐसा शब्द हुआ, जिसे दोनों स्त्रियोंने भी सुना। बादको जब ट्रेन स्टेशन-के नजदीक पहुंची, तो लार्ड साहबने अपनी हैट उठायी और बड़े तपाकसे खड़े होकर कहने लगे, "आप दोनों देवियोंमेंसे मैं किस देवीको सुरङ्गके अन्धकारमें होनेवाली सुखद घटनाके प्रति कृतज्ञता प्रकट करूं?" तब तक स्टेशनपर वे उतर भी पड़े और दोनों स्त्रियां एक दूसरेका मुंह ताकती रह गयीं।

बर्नार्ड शा अपनी व्यङ्गोक्तियोंके लिए संसार-प्रसिद्ध हैं; पर यह प्रसिद्धि उन्होंने कैसे प्राप्त की, इसके सम्बन्धमें एक बड़ी विचित्र घटना बतायी जाती है। शा अभी अन्धकारमें पड़े थे कि लन्दनके कुछ अखबारोंने उनके सम्बन्धमें लेख छापने शुरू कर दिये। वे लेख भेंट और बातचीत—इण्टरव्यू-के रूपमें होते थे। इण्टरव्यूसे पता चलता था कि कोई व्यक्ति अक-स्मात् एक दिन शाके मकानमें घुस गया और बड़े अपमान-जनक ढङ्गसे उनसे बातें कीं, जैसे उन्हें जनतामें मूर्ख बनानेके लिए ही उसने ऐसा किया था। पत्रोंमें जो इण्टरव्यूके विवरण निकलते, वे भी शाके सम्बन्धमें बड़ी बदतमीजीसे भरे होते थे।

बहुतोंने सोचा कि शा वास्तवमें क्या कोई मनुष्य है, जो ऐसी अपमानजनक बातोंको भी बर्दाश्त कर जाता है। उसने ऐसे बदतमीज इण्टरव्यू लेनेवालेको ठोकर मारकर सीढ़ीसे नीचे क्यों नहीं ढकेल दिया? उसने पुलिसकी भी मदद क्यों नहीं ली? इस प्रकार शिक्षित व्यक्तियोंमें शाकी चर्चा होने लगी।

लेकिन लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब उन्होंने जाना कि वे सब इण्टरव्यू शाके ही लिखे होते थे। दूसरा कोई इण्टरव्यू लेनेवाला व्यक्ति न था।

मार्कट्वेन साहित्यके इतिहासमें नाम कर गया है, तो मित्र-मण्डलीमें रद्दीसे रद्दी सिगार पीनेके लिए उसकी बड़ी कुख्याति थी। लेकिन जरा सोचिये कि अन्धविश्वासके कारण किसी व्यक्तिकी अच्छाइयोंको भी हम किस प्रकार बुराई समझ बैठते हैं। उसने लिखा है—एक दिन मैं १२ मित्रोंके साथ दावत खानेवाला था। इन मित्रोंमें एक ऐसे भी थे, जो कीमतीसे कीमती सिगार पीनेके शौकीन थे और दावतों तथा दूसरे सार्वजनिक स्थानोंपर वे और भी कीमती सिगार पीते। मैं उनके घर गया और जब कोई नहीं था, चुपचाप मैंने उनसे सिगार लिये, जो बड़े कीमती थे और उनका लेबुल हटाकर अपने सिगारोंके डिब्बेमें डाल लिया। वे सभी जानते थे कि मेरे डिब्बेमें कैसे सिगार रहते थे।

दावत खानेके बाद उन्हें मैंने सिगार दिये। उन्होंने सुलगाया और कुछ मिनटों तक उनसे सङ्घर्ष करते रहे, अन्तमें एक-एक करके वे चले गये। सवेरे मैंने देखा कि वे सारे सिगार फेंके हुए हैं, सिर्फ उसी एक आदमीने सिगार नहीं फेंका था, जिससे मैंने लिया था। उस मित्रने यह भी बताया कि कुछ लोग कहते थे कि मैंने भविष्यमें ऐसे रद्दी सिगार अगर फिर दिये, तो मुझे गोलीका शिकार होना पड़ेगा।

पत्रोंका मूल्य

पत्र तो हम आप सभी लिखते हैं, लेकिन इतिहासमें ऐसे व्यक्ति भी हो गये हैं, जिनके पत्र हजारों लाखों रुपयेमें बिक चुके हैं। नेपोलियनने अपने सैन्य-विभागके अधिकारियोंके नाम जो पत्र लिखे थे, वे २४६९ पौण्डमें बिके हैं। अभी कुछ साल पहले नेपोलियनके प्रायः ३०० पत्र, जो उसने अपनी प्रेयसी मेरी लुईको लिखे थे, फ्रान्सीसी सरकारने १९,०००

पौण्डमें खरीदे हैं। अपनी पहली पत्नी जोसेफाइनके नाम लिखे गये उसके आठ पत्र और भी ऊंचे मूल्य ४,४०० पौण्डमें बिके थे।

नेल्सनके कुछ पत्रोंका एक संग्रह २९०० पौण्डमें बिका था। राबर्ट और एलिजाबेथ बैरेट ब्राउनिङ्गके प्रेमपत्र १९१३ में ६५५० पौण्डमें बिके थे और एलिजाबेथके २२ पत्रोंको एक अमेरिकनने ८००० पौण्डमें खरीदा था। ब्राउनिङ्गके दूसरे कुछ पत्र ३६९६ पौण्डमें नीलाम हुए थे।

१९२२ में शेलीका एक पत्र १४२ पौण्डमें बिका था और उसीका एक दूसरा पत्र, जिसमें उसकी वसीयतका मसविदा था, ३९० पौण्डमें बिका था। शेलीने कीट्सके नाम एक पत्र लिखा था, जो २६२ पौण्डमें बिका। जिन लोगोंके पत्र काफी मूल्यमें बिके हैं, उनमें बर्न्स भी है। उसके एक-एक पत्र दो-दो सौ पौण्डमें बिके हैं। चार्ल्स डिकेन्सके कुछ पत्र ९०० पौ० में बिके थे, लेकिन १९२२ में उसके कुछ पत्रोंपर २१९० पौण्ड तक मिले।

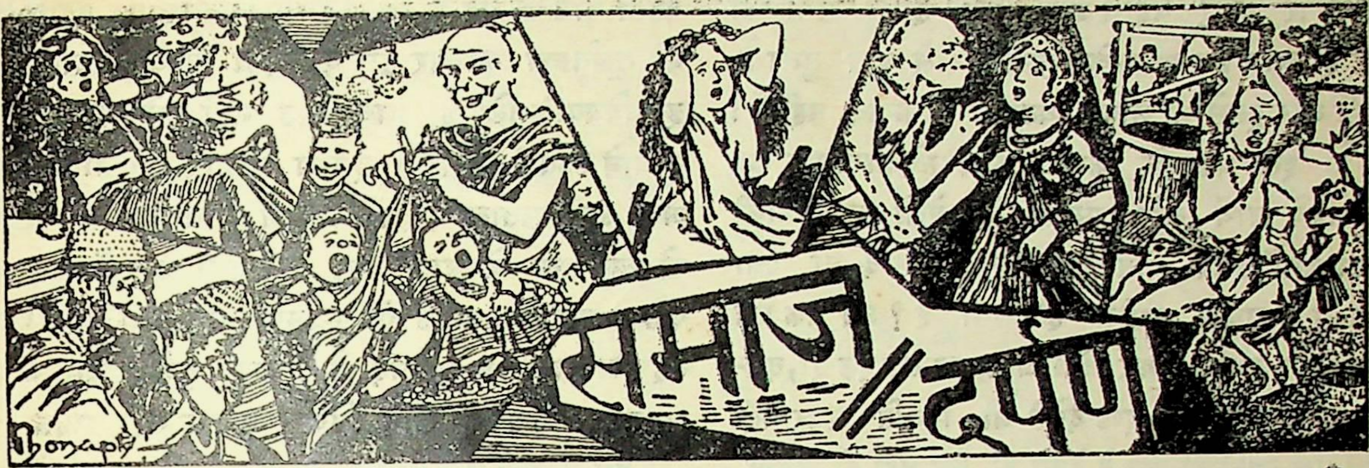
समय बीतनेके साथ-साथ ऐतिहासिक महत्त्वके पत्रोंका मूल्य बढ़ता ही जाता है। जार्ज वाशिङ्गटनने अपने भाई आगस्टसके नाम एक पत्र लिखा था, जो न्यूयार्कमें ६०० पौण्डमें बिका। क्रामवेलने एक पत्र मार्स्टन-मूर-युद्धका वर्णन करते हुए लिखा था, जो ३०० और उसीका अपने पुत्र 'डिक' के नाम लिखा हुआ एक पत्र २०० पौण्डमें बिका।

सम्राज्ञी मेरीके पत्र भी बड़े ऊंचे दामोंमें बिके हैं। ड्यूक आव गाइजके नाम लिखा हुआ पत्र ३४९, फ्रान्सके राजाके नाम लिखित पत्र ३६० और स्पेनके राजाके नाम लिखित ३४० पौण्डमें बिका। फ्रान्सके राजाके नाम लिखा हुआ सम्राज्ञी एलिजाबेथका पत्र केवल १९० पौण्डमें ही बिका था।

शेक्सपियरके कुछ नाटकोंमें एक हंसोड़ अभिनेता फाल्स्टफका नाम आता है, जिसे अब तक आम तौरपर लोगोंने काल्पनिक पात्र समझ रखा था; पर अब उसके नामके पत्र मिले हैं, जिनसे पता चलता है कि वह काल्पनिक नहीं, वास्तविक मनुष्य था। सर जान फाल्स्टफके नामसे १४४९ में लिखे हुए कुछ पत्र १९१९ में ६९० पौण्डमें बिके थे। अमेरिगो वास्कुचीका १४७६ में लिखा हुआ एक पत्र—पत्र क्या मुश्किलसे दो वाक्य ३९० पौण्डमें बिके थे। इसी इटैलियन परिव्राजकके नाम अमेरिकाका नाम रखा गया मालूम होता है।

प्रेसिडेण्ट अब्राहम लिङ्कनने अमेरिकन सेनाके सेनापतिके नाम एक पत्र लिखा था, जो थोड़े दिन पहले १९०० डालरमें बिका है। लिङ्कनका यह पत्र कई पुस्तकोंमें प्रकाशित भी हो चुका है। लेकिन किसी एक पत्रका जो सबसे अधिक मूल्य लगा है, पत्र है मेरी आन्तेनेतका, जिसे उसने शिरच्छेद-के पहले लिखा था। वह पत्र कुछ वर्ष पहले प्रेगमें एक अमेरिकनने ५००० पौण्डमें खरीदा था।





धार्मिक कुसंस्कारोंकी भीषणता

हिन्दू-समाज आज जिस अवस्थामें पड़ा हुआ है, उसमें इसकी उन्नतिके सारे मार्ग ही अवरुद्ध नहीं होते जा रहे हैं; बल्कि अगर समय रहते, समाजकी दुर्बलताओंका निराकरण नहीं कर लिया गया, तो समाज जिस प्रकार भीतर ही भीतर जर्जरित होता जा रहा है, वह अत्यन्त भयावह होगा। हिन्दू-समाज आज कुरीतियोंका दास हो रहा है और इन कुरीतियोंकी भीषणता और भी इसलिए बढ़ जाती है कि इनका आधार धर्म माना जाता है। मनुष्यकी जैसी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, उसमें वह धर्म और ईश्वरसे डरता है और यद्यपि इन दोनों ही के विरुद्ध काफी अवसरोंपर काफी लोगोंने तरह-तरहकी बातें की हैं; पर अधिकांश जनताकी मानसिक स्थितिमें इनके आधारपर जो बातें कह दी जाती हैं, उनसे वे अपनेको अलग करते हुए हिचकते, एक प्रकारकी भयत्रस्त भावनाओंसे सोचते हैं, इसलिए इन कुरीतियोंके आधारमें जब धर्म आ जाता है, तब इसका निराकरण करना अपेक्षाकृत कठिन हो जाता है।

हमने देखा है कि जब-जब समाज-सुधारकी बातें उठायी गयीं, जब-जब सामाजिक पुनरुद्धारकी योजनायें रखी गयीं, तभी उनका विरोध किया गया और इस विरोधका आधार बताया गया धर्म। वर्तमान बाल-विवाह-निषेधक कानून जब व्यवस्थापिका परिषदमें पेश था, तब देखा गया कि हिन्दू-मुसलमान दोनोंने इस धर्म-विरोधी (?) व्यवस्थाके विरुद्ध सम्मिलित आवाज उठायी। कहा गया कि सम्राज्ञी विक्टोरियाने धर्ममें हस्तक्षेप न करनेकी जो घोषणा की थी, उसके विरुद्ध यह व्यवस्था है। उक्त घोषणाका उक्त व्यवस्थासे क्या सम्बन्ध है, इसका विवेचन करनेकी आवश्यकता नहीं है; पर इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि भारतीय जनता ऐसे किसी भी कार्यको प्रोत्साहन नहीं दे सकती, जिसे वह धर्म-विरुद्ध मानती है।

अतः यह धर्म हमारे जीवनमें—व्यक्तिगत और सामाजिक दोनोंमें कुछ ऐसा स्थान बना गया है कि इसके आधारपर अच्छी-बुरी किसी भी बातका हम समर्थन करने लगते हैं। हमारे समाजकी कितनी ही कुरीतियां इस धार्मिक भावनाके आधारपर रुकी हुई हैं, लेकिन हमारा दुर्भाग्य तो यह है कि हमने यह सोचनेकी आवश्यकता बहुत कम समझी कि वास्तवमें धर्मके नामपर हम उन बाह्याडम्बरोंको ही गलेसे बांधे नहीं घूम रहे हैं, जिनसे वास्तविक धर्मसे कोई सम्बन्ध भी नहीं है और उल्टे उनके नामपर स्थायित्व प्राप्त कर वे फूलती-फलती जा रही हैं।

हमारी अन्धश्रद्धा हमसे कैसे-कैसे काण्ड करा सकती है, इसके उदाहरण समय-समयपर मिलते रहते हैं। अभी २३ अप्रैलका जबलपुरका समाचार है कि एक पुरोहितने वन-देवीको प्रसन्न करनेके लिए एक गोंड़ दम्पतिकी बलि चढ़ायी है। कहते हैं कि इस दम्पतिको फुसलाकर वह पुरोहित देवस्थान तक गया और वहां जाकर जब पुरोहितके आदेशसे उन्होंने घुटने टेके, तो पुरोहितने उनके सिर काट डाले।

यह जबलपुर जिलेकी घटना है; पर ऐसी घटनाओंवाले भारत-भरमें न जाने कितने जबलपुर हैं। देवताओंके नामपर नर-बलिका यह अकेला उदाहरण नहीं है। इस अभागे

देशमें इतने धर्म और इतने पन्थ चलते हैं कि ऐसी कितनी नर-बलियोंपर आंसू बहाये जायं! जब हमारे समाजका आधार ही आज इस प्रकारके कुसंस्कारोंसे बना हुआ है, तब ऐसी और इससे भी भीषण घटनायें असम्भव नहीं हैं। सम्भव है, इस प्रकारके काण्ड करनेवाले गिरफ्तार कर दण्डित किये जायें और सम्भव है, ऐसी घटनाओंकी भीषणता हममें इसके प्रति क्षोभ उत्पन्न कर दे; पर क्या समस्याका समाधान इसीसे हो जाता है? जब तक ऐसे कुसंस्कारोंको उन्मूल न कर दिया जाय, तब तक एक-दो, दस-बीस, पचास व्यक्तियोंको दण्ड देनेसे भी स्थिति सुधर नहीं सकती। एक व्यक्तिको दण्ड दे देनेसे ही कुछ नहीं हो सकता, जब तक कि समाजकी इस प्रकारकी मनोवृत्तियोंका निराकरण नहीं हो जाता।

इसी घटनाके साथ जरा एक दूसरी घटना भी देखिये। झांसीका २३ अप्रैलका समाचार है कि स्वप्नके विश्वासने एक औरतके प्राण ले लिये। कहते हैं कि एक विधवाने, जिसका पति कुछ काल पूर्व ही मरा था, स्वप्न देखा कि यदि वह चलती रेलगाड़ीसे बेतवा नदीमें कूद पड़े, तो स्वर्गमें अपने पतिसे मिल सकती है। इसीपर एक दिन वह स्त्री अपने पांच वर्षके बच्चेको लेकर गांवसे चल पड़ी। उसने ओरछाका टिकट कटाया। जब गाड़ी बेतवाके पुलके निकट पहुंची, तो उसने अपने बच्चेको छातीसे चिपटाया और उसका चुम्बन किया तथा गाड़ीका दरवाजा खोलकर खड़ी हो गयी। जब गाड़ी पुलके ऊपर पहुंची, तो औरत नदीमें कूद पड़ी।

ओरछा पहुंचनेपर रेलवेके अधिकारियोंको इसका पता चला, और इञ्जन ब्रेकके साथ घटनास्थलको भेजा गया। स्त्री गले तक पानीमें थी, उसे लाकर अस्पतालमें भर्ती किया गया, और आत्महत्या करनेके अपराधमें गिरफ्तार कर लिया गया।

संयोगकी ही बात है कि इस अभागिनी विधवाकी जान बचा ली गयी, अन्यथा पतिको खोकर वह न केवल अपने ही प्राण खोती, बल्कि उसके पांच वर्षके बच्चेके पालन-पोषणकी भी समस्या अत्यन्त जटिल हो जाती। सम्भव है, कुछ धर्मभीरु भाई इस प्रकारकी घटनाओंकी सराहना उसके पति-प्रेमके नामपर करें और कितने ही लालबुझक्कड़ तो ऐसी ही घटनाओंको लेकर सतीत्वकी प्रथाका भी समर्थन करते दिखाई पड़ते हैं; पर हम ऐसी घटनाओंकी सराहना नहीं कर सकते। पहली बात तो यह है कि स्वप्नमें विश्वास कर नदीमें कूदनेकी मूर्खताका आधार ही एक ऐसा अन्ध-विश्वास है, जो इस विधवाके लिए ही प्राणघातक नहीं हो रहा था, ऐसी न जाने कितनी नारियां इसका शिकार हो जाती हैं, और अगर उसके सतीत्व एवं पति-प्रेमकी बात मान भी ली जाय, तो क्या इस विधवाका यह कर्तव्य न था कि वह अपने पतिकी धरोहर—उसके प्रेम-स्वरूप—बालककी रक्षा करती। यह तो मानसिक उन्माद है, जिसपर, दुर्भाग्यवश, धार्मिक आधारपर कितने ही लोग विचार करना नहीं चाहते।

इस तरहकी घटनायें इस अभागे देशमें प्रायः होती ही रहती हैं। एक ओर हम अपनी सभ्यताकी डींग हांकते हैं और भारतीय तत्त्वज्ञानपर फूले नहीं समाते, और दूसरी ओर समाजका अङ्ग-अङ्ग भीषण कुसंस्कारोंमें फंसा न केवल प्रगतिका विरोध कर रहा है, बल्कि स्वयं कुठाराघात कर रहा है। हम कुछ व्यक्तियोंकी विद्वत्ता और उनकी महत्ताकी प्रशंसा चाहे जितनी करें, हमें यह बात भी भूलनी नहीं चाहिए कि समाज केवल कुछ चोटीके व्यक्तियोंको ही लेकर नहीं बना है। समाजका एक बड़ा भाग जब तक ऐसे कुसंस्कारोंमें फंसा रहेगा, तब तक व्यापक रूपसे हमारी कोई सुधार-योजना सफल नहीं हो सकती। हम यह नहीं कहते कि दूसरे धर्मोंमें ऐसे कुसंस्कार हैं ही नहीं; पर हमारे समाजने तो धर्मकी वास्तविकताओंको छोड़कर उसके कुसंस्कारोंको ही जैसे अपना लिया है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इनसे मुक्ति पाये बिना हमारी स्थिति दिनोंदिन बदतर ही होती जायगी।

सामाजिक आदर्शोंका सङ्घर्ष

सभ्यता और सामाजिक आदर्शको लेकर नये और पुरानेमें सदासे सङ्घर्ष चला आया है। पुराना जब अपनी प्राचीनताके कारण आकर्षण खोने लगता और नवीन अपने नये आकर्षणोंके साथ आता है, तब प्रायः देखा जाता है कि बूढ़े प्राचीनताके साथ—जिसके साथ वे बंधे आये हैं—बंधे रहना चाहते हैं और युवक नवीन आकर्षणोंसे प्रभावित होते हैं। यही कारण है कि सभी समाजों और सभी युगोंमें देखा गया है कि युवकों और बूढ़ोंके विचारोंमें सामञ्जस्य मिलाना

कठिन रहा है। दोनों ही अपने-अपने दृष्टिकोणसे परम्पराओं एवं परिवर्तनोंको देखते और अपने मार्गसे चलनेपर जोर देते हैं। और इन सबका परिणाम होता है सङ्घर्ष।

और यह बात जो व्यक्तियोंके सम्बन्धमें है, वही समाजों तथा देशोंके बारेमें भी सत्य है। समाज एक ओर प्राचीन परम्पराओंसे अपनेको अलग करनेमें हिचकता, पर नयेको अपनानेकी ओर ही आकर्षित होता है। इस प्रकार दोनों ही को लेकर सङ्घर्ष उत्पन्न होता है, क्योंकि यह अन्तिम रूपसे स्पष्ट नहीं हो पाता कि वास्तवमें सही रास्ता कौन है।

हिन्दू-समाज आज ऐसे स्थलपर खड़ा है, जहां विभिन्न विचार-धारायें परस्पर टकरा रही हैं। एक ओर प्राचीन आदर्श हैं, और दूसरी ओर नयी विचार-धारायें। हिन्दू-समाजकी पुरानी परम्परायें नारीकी स्वाधीनताका समर्थन नहीं करतीं। एक ऐसा भी समय था, जब नारीके लिए 'असूर्यम्पश्या' का आदर्श था। रहा चाहे जिन कारणोंसे हो, पर था अवश्य। पुरुष और नारीके स्वच्छन्द मिलनको भी परम्परायें रोकती हैं, और पुरुषकी अनियन्त्रित वासनाओंके विरुद्ध भी यद्यपि मत हैं, पर नारीके सतीत्वका जितना ऊंचा मूल्य रखा गया, वैसी बात पुरुषके लिए कभी सोची न गयी। आज भी पुरुष किसी विधर्मी नारीसे सम्पर्क रखता हुआ समाजमें चल जाता है, पर नारी ऐसा नहीं कर सकती। नारी एक बार भी—कुछ घण्टोंके लिए भी अगर किसी विधर्मी अथवा किसी पराये पुरुषके साथ गायब हो जाय, तो उसकी पवित्रतापर किसी प्रकारकी आंच आये बिना भी वह पुनः समाजमें दाखिल नहीं हो सकती। ऐसा न होता, तो दूसरे धर्मवालोंकी इतनी बड़ी संख्या न होती चलती और न वेश्याओंकी इतनी बड़ी पल्टन ही तैयार खड़ी मिलती।

परम्परासे चली आयी ये बातें हैं, जिनकी छानबीन करनेकी आवश्यकता हमने नहीं समझी। अतः वे बातें अब तक यों ही चली आयीं। लेकिन समयके प्रवाहमें जब हमारा समाज अनेक विचार-धाराओंके सम्पर्कमें आया है—तब स्वभावतः हम उनसे प्रभावित होनेसे इसे बचा नहीं सके हैं। एक समय था, जब नारीके सतीत्वका इतना बड़ा मूल्य था कि मन, वचन, कर्म—किसी प्रकारसे भी उसके मनमें विचार आया नहीं कि वह अपने धर्मसे च्युत हुई समझी जाने लगी। एक समय था, जब उसके लिए पतिकी चितापर स्वयं भी जलकर प्राण देना ही उसके धर्मकी पराकाष्ठा नहीं, उसका साधारण धर्म माना जाता था; और एक समय था, जब पतिके अन्धे और बहरे रहनेपर उसे भी अपने कानोंमें रुई डाले अथवा आंखोंपर पट्टी बांधे रहना पड़ता था, तब ऐसा भी समय आया, जब नारीके लिए आगमें जलकर अपने पतिव्रत धर्मकी परीक्षा देनेकी आवश्यकता नहीं रह गयी। उसके लिए आंखोंपर पट्टी बांधनेकी जगह केवल 'अन्धे, बधिर, कोढ़ी पति' की सेवा करने ही से उसके धर्मकी पूर्ति समझी जाने लगी और समयके प्रवाहमें बात यहां तक आयी कि विधवा चाहे, तो दूसरे पुरुषसे विवाह तक कर सकती है। बहुत दिनों तक क्षत और अक्षत योनि विधवाको लेकर विवाद चलता रहा और अन्तमें यह बात भी समाजमें आयी कि क्षत-अक्षतका तो प्रश्न ही क्या, गोदमें बच्चे लेकर—बालिग बच्चोंकी मां भी चाहे, तो विवाह कर सकती है। हिन्दू-समाजने अपनी उदारता यहां तक दिखायी। हम हिन्दू-समाजकी बात कहते हैं, हिन्दू धर्मकी नहीं; क्योंकि हिन्दू-धर्म एक ऐसी चीज है, जिसको लेकर कहना कठिन है कि इसका प्रामाणिक व्याख्याता कौन है। और यह चाहे जितना विवादग्रस्त विषय हो, इतना तो स्पष्ट ही है कि समाजमें जो बातें तथ्य-रूपमें आयी हैं, उन्हें कितने ही धर्म-ग्रन्थ अथवा तर्क इनकार नहीं कर सकते। पतन अथवा उत्थान चाहे जो नाम इसे दे लीजिये, इसकी प्रगतिसे आप इनकार नहीं कर सकते।

तो इस प्रकार सामाजिक आदर्श सदा परिवर्तित होते रहते हैं। अतः हमारे समाजके सामने आज जो समस्यायें उपस्थित हो गयी हैं, उनपर हम केवल परम्पराओंके आधारपर ही विचार नहीं कर सकते। आज जब हम नारीको कर्म-क्षेत्रमें उतरनेकी बात कहते हैं, आज जब हमने उसके लिए एक नये प्रकारकी शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध किया है, आज जब जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली सारी व्यवस्थाओंका रूप बदल गया है, तब उससे आशा करना कि उसमें वही पुरानी परम्पराके अनुसार काम करनेकी प्रवृत्ति बनी रहेगी, अस्वाभाविक है। जब समाजकी सारी व्यवस्थायें बदल जायेंगी, तब उसमें रहनेवाले प्राणियोंमें परिवर्तन न होगा, यह कैसी बात? आज जब हमारी शिक्षा-दीक्षाकी प्रणाली पश्चिमकी है, हमारा पाठ्यक्रम पश्चिमका है, पश्चिम-

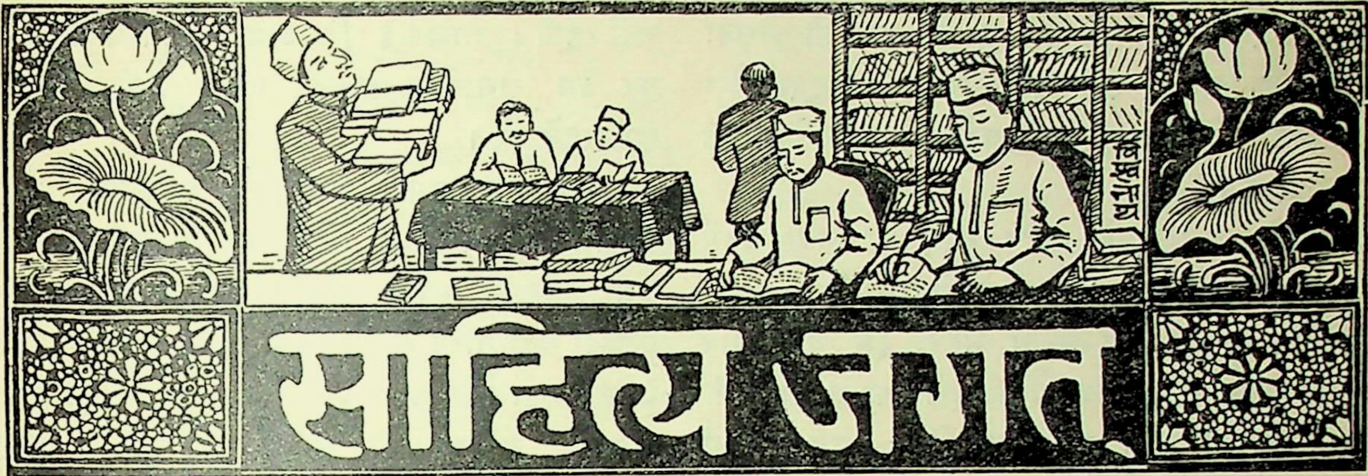
की—एक नयी विचार-धारामें आज जब हम सोचते हैं, हमारे सामने जब नये आदर्शोंकी बातें रखी जाती हैं, तब हमसे आशा की जाय कि हम उनसे प्रभावित नहीं होंगे, यह कैसे सम्भव है ?

इसलिए इन परिवर्तनोंके साथ-साथ नैतिकताको लेकर जो अपनी धारणाओंमें हम परिवर्तन नहीं करना चाहते, इसीलिए एक मानसिक द्वन्द्वमें हम पड़े हुए हैं, जिसका परिणाम सामाजिक सङ्घर्षके रूपमें दिखाई पड़ रहा है। घरके बूढ़े कहते हैं—पढ़-लिखकर बच्चे खराब हो रहे हैं, घरकी दादियां बच्चियोंकी हरकतोंसे परेशान हो रही हैं। लड़कीको शिक्षा देकर तैयार किया गया और उसके विवाहका प्रसङ्ग छेड़ा गया, तब लड़कीके मुंहसे उसके विवाहकी बात सुनकर घोर कलियुग आ जानेका शोर-गुल करनेवाली नारियोंसे लेकर बायरन और शेली पढ़नेवाली युवतियां तक—दोनों ही आज भारतीय घरोंमें एक साथ पायी जाती हैं और इसीलिए घरमें विचारोंका सामञ्जस्य नहीं हो पाता—नहीं हो सकता। हमारे समाजके सामने इस प्रकारकी समस्यायें आज उठ खड़ी हुई हैं। एक विचार-धाराको प्रगतिशीलताके नामपर समर्थन मिलता है, तो उसीकी उच्छृङ्खलताके नामपर निन्दा करनेवालोंकी भी संख्या कम नहीं है। आजके समाजमें जिसे "नैतिकताकी ढील" के नामसे पुकारते हैं, वह वास्तवमें नैतिकताको दूसरे पैमानेसे नापनेके कारण ही ऐसा कहते हैं। आजकी नैतिकता, जो आजकी शिक्षा-दीक्षा, सम्पर्क, समाजोंके आदान-प्रदान, परिस्थितियों एवं परिवर्तित वातावरणोंके आधारपर बनी है, उसे आजसे हजार वर्ष पहलेके निर्धारित किये हुए नैतिकताके पैमानेसे नापनेपर ही हम ऐसा कहते हैं। इसीलिए जीवनके मूल्य आंकनेके पैमानेके इस विभेदसे हमारे समाजमें एक विशृङ्खला दिखाई पड़ रही है। वास्तवमें यह बात उतनी सत्य नहीं है, जितनी सत्य दो दृष्टिकोणोंकी विभिन्नता है।

अतएव आवश्यकता इस बातकी है कि हम वास्तविकताओंको देखते हुए परिस्थितियोंके अनुकूल सामाजिक नियमोंमें सुधार करें, अन्यथा हमारी प्राचीन परम्परायें केवल प्राचीनताके नामपर ही नहीं टिकी रह सकतीं। जब किसी समाजके बनाये हुए नियम समाजकी आवश्यकताओं एवं नवीन परिस्थितियोंके तथ्योंसे सम्बन्ध नहीं रखते, तब उनकी व्यर्थता स्पष्ट होने लगती है और धर्मवाक्यों अथवा नरकका भय दिखाकर उनकी रक्षा नहीं की जा सकती। समाजका कल्याण चाहनेवालोंको यह बात भूलनी नहीं चाहिए कि समाजका निर्माण मनुष्यके लिए हुआ है, अतः मनुष्यकी आवश्यकताओंके प्रतिकूल चलनेवाली सामाजिक व्यवस्थायें स्थायी नहीं हो सकतीं। अतः आज जो परिवर्तन आवश्यक हैं, उनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। बिना इसके हम नये समाजका निर्माण नहीं कर सकते।

———





हमारे साहित्यकी प्रगति

साहित्यकी महिमा अपार है और अगर इस शब्दका प्रयोग इसके व्यापक अर्थोंमें किया जाय, तो मानव जातिके इतिहासमें साहित्यने जबर्दस्त काम कर दिखाया है। बड़ी-बड़ी क्रान्तियां हुई हैं, जिनका आधार पहले साहित्यने तैयार किया, और बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं, जिनके लिए पहले साहित्यने आवाज उठायी। इसलिए किसी भी समाजमें जब साहित्यकी रचना होने लगती है, तब प्रश्न उठता है कि जिस साहित्यकी सृष्टि हो रही है, उसका रूप क्या है, समाजके लिए उसकी प्रतिक्रिया कैसी होनेकी सम्भावना है। एक समय था, जब कलाकार 'स्वान्तः सुखाय' लिखते थे। और आज भी कभी-कभी इसके आधारपर कलाकारोंको साहित्य-की सृष्टि करनेकी पूरी स्वाधीनता देनेका समर्थन किया जाता है। इस स्वाधीनताके कारण कैसे साहित्यकी रचना हो सकती है, इसके प्रमाण समय-समयपर मिलते रहते हैं। हमें यह बात भूलनी न चाहिए कि जिस प्रकार किसी भी क्षेत्रमें स्वाधीनता आवश्यक है, पर स्वेच्छाचारिताका परिणाम कभी अच्छा नहीं हो सकता, जिस प्रकार किसी भी क्षेत्रमें अधिकारके साथ-साथ कर्तव्य भी होते हैं और अधिकारका उपयोग किसी प्रकार भी नहीं किया जा सकता, जिससे दूसरेके अधिकारमें बाधा पहुंचे, उसी प्रकार साहित्यमें है। साहित्यकार आज अपनेको समाजसे अलग नहीं कर सकता। आज वह समाजका उसी प्रकार एक अङ्ग है, जिस प्रकार कोई भी प्राणी। अतः समाजका कल्याण-चिन्तन उसका भी एक कर्तव्य है। जिन कलाकारोंने मानवताके कल्याणका राग गाया है, वे सदा अमर हो गये हैं; लेकिन जिन लोगोंने अपनी प्रतिभाका दुरुपयोग किया, उनके लिए संसारमें कहीं भी स्थान नहीं है।

और इसीलिए आज ऐसे साहित्यकी हमारे लिए आवश्यकता आ पड़ी है, जो हमारे जीवनको स्पर्श करे। मानवके व्यक्तिगत सुख-दुःखके अतिरिक्त, मानव-समाजकी भी कुछ आवश्यकतायें हैं, जिनपर प्रकाश डालनेकी आवश्यकता है।

पर हमारे साहित्यकी आज क्या प्रगति है? समाजमें एक ओर हजारों भुखमरोंकी पल्टन तैयार है, और उनके पास ही पड़े कविजी इन्द्र-धनुषके रङ्गों और पानीकी परियोंका गीत सुन रहे हैं। हिन्दी-साहित्यिकोंकी गरीबीका प्रश्न आज हमारे विवादका खास विषय बन गया है—उनके सङ्गठन और उनकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए रोज आन्दोलन चलाया जा रहा है, उनके मरनेके पश्चात् उनके परिवारके भरण-पोषणके लिए सभायें होतीं और अपीलें निकलती रहती हैं; पर उनकी साहित्यिक सृष्टि देखिये, तो जैसे उन्होंने कभी दुःख-दारिद्र्यकी अनुभूति ही नहीं की। आजके हिन्दी-साहित्यकी रोमाण्टिक कविताओंको सौ साल बाद जब पढ़ा जायगा, तो इतिहासकारके लिए इस निष्कर्षपर—उन्हींके आधारपर यह कहना कठिन होगा कि जिस युगकी ये रचनायें हैं, उसमें भारतमें कहीं भी दुःख-दारिद्र्य रहा है। हमारा आजका साहित्य इस प्रकार हमारी समस्याओंसे अछूता चला आ रहा है।

इस सम्बन्धमें एक बात और कहनी है। हमारे एक कवि मित्रने गोर्कीकी मृत्युके बाद, जब यह पढ़ा कि स्वयं

स्टैलिनने भी गोर्कीकी अर्थीको कन्धा टेका, तो इस बातसे वे बड़े भावोद्वेलित हो उठे थे और उन्होंने आते ही कोसना शुरू किया कि आज हिन्दीमें साहित्यिकोंकी क्या दुर्दशा है। इसे भी उन्होंने हिन्दी-साहित्यकी वर्तमान अधोगतिका एक कारण बताया।

बातें तो सब हैं, इसमें सन्देह नहीं; पर इनकी तहमें वास्तवमें क्या है, इसपर विचार कर लेना चाहिए। मनुष्य जो कुछ देता है, वही उसे मिलता भी है, इसे चाहे आप प्रकृतिका नियम, अपने ही कार्योंकी प्रतिक्रिया अथवा किसी भी नामसे कह लीजिये। हमारे साहित्यिक आज समाजमें सम्मान नहीं प्राप्त करते हैं, तो प्रश्न है कि जिस समाजसे वे ऐसी शिकायत करते हैं, उसके लिए उन्होंने क्या किया ? समाजके लिए अगर उन्होंने बहुत कुछ किया और समाजने फिर भी उनके प्रति उपेक्षा दिखायी, तो निश्चय ही यह उसकी कृतघ्नता है। पर अगर उन्होंने समाजके लिए कुछ भी नहीं किया, तो उन्हें इस बातकी आशा नहीं होनी चाहिए कि समाजमें इतनी उदारता होगी। गोर्की जिस समाजमें उत्पन्न हुए थे, उसकी उन्होंने कितनी सेवा की! उसके कल्याणके लिए ही उनकी सारी साहित्यिक क्षमता लग गयी। रूसकी क्रान्तिमें उनकी लेखनीने कितना जबर्दस्त हिस्सा बंटाया, यह तथ्य स्टैलिन द्वारा उनकी अर्थी उठानेकी बातको पढ़ते समय भूल नहीं जाना चाहिए। यह घटना बताती है कि जिनके लिए आप कुछ करेंगे, वे उसे अधिकांशतः याद रखेंगे। और इसके साथ ही इसका उल्टा भी सच है। भिखमङ्गोंकी गलीमें पड़ा हुआ कवि जब नन्दन-निकुञ्ज और आलोक-मालाओंके गीत गायेगा, तब उसकी मृत्युके बाद भिखमङ्गे आंसू बहायेंगे, इसकी आशा भला कैसे की जा सकती है ?

सम्भव है कि ये शब्द कलाकारोंकी स्वाभाविक भावुकताको ठेस पहुंचायें; पर अगर उन्हें वास्तविकतासे एकदम शत्रुता नहीं ठान लेनी है, तो उन्हें सोचना चाहिए कि वे कहां हैं ? इस प्रकारकी अ-वास्तविकताका अन्त कितने ही साहित्योंसे हो चुका है। दूसरे देशोंसे प्रकाशित होकर जो साहित्य हमारे पास आता है, उसमें हम देखते हैं कि शृङ्गारी कविताका अंश बहुत कम होता है और उपन्यासोंमें भी जीवनकी वर्तमान समस्याओंको सुलझानेके प्रयत्न रहते हैं। समाज और राष्ट्रकी आवश्यकताओंकी उनमें उपेक्षा नहीं रहती। आश्चर्य है कि आजकी समस्याओंकी उपेक्षा कर हम रोमाण्टिक कालकी कविताओंकी नकल अपने साहित्यमें करें।

एक ओर हमारे साहित्यमें अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान आदि कितने ही विषयोंका एकदम अभाव है और दूसरी ओर जो रचना होती है, वह हृदयके हाहाकारों, पतझड़ों तथा नीरव रुदनसे आगे नहीं बढ़ पाती। जीवनकी वास्तविकताओंसे आज हम कितनी दूर जा पड़े हैं ? ब्रज-भाषाकी कविताओंको पद्यबद्ध नायिका-भेद बतानेवाले भी 'हमुखि' और 'सजनि' के अभिसारोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पा रहे हैं। यह तस्वीर है हमारे वर्तमान साहित्यकी।

राष्ट्रभाषाका सङ्गठन

श्री काका कालेलकरके सारे सुझावोंसे कोई सहमत भले ही न हो; पर लिपि एवं भाषा-सम्बन्धी उनके प्रयत्नोंके लिए उनकी सराहना अवश्य करनी पड़ेगी। इन विषयोंको लेकर वे काफी शक्ति लगा रहे हैं। अतः विवादग्रस्त विषयोंपर मतभेदकी स्वाभाविकता स्वीकार करते हुए राष्ट्र-भाषाके सङ्गठनके सम्बन्धमें उन्होंने हालमें जो विचार प्रकट किये हैं, उनका कुछ अंश हम दे रहे हैं, जो यों है:—

हम अपनी भाषामें संस्कृतके शब्द कहां तक आने दें, यह सवाल सिर्फ हिन्दीके ही सामने नहीं है; बल्कि भारतकी सभी भाषाओंके सामने है। यों तो यहांकी किसी भी भाषामें जो शब्द चल रहे हैं—बोले या लिखे जाते हैं—उनमेंसे अधिकांश शब्द किसी-न-किसी रूपमें संस्कृतसे ही आये हुए हैं। संस्कारी हिन्दुस्तानकी प्राचीन राष्ट्रभाषा संस्कृत थी। संस्कृत ही के पोषणसे सभी प्राचीन भाषायें पली-पुसी हुई हैं। उर्दू और तमिऴमें भी संस्कृतके शब्द काफी मात्रामें मिलते हैं। अगर हम वायुमण्डलके बिना पृथ्वीपर जी सकें, तभी संस्कृतके स्पर्श बिना हम हिन्दुस्तानमें बोल सकते हैं। हमारी समस्त भाषाओंकी बुनियाद ही संस्कृत है। इंगलैण्डके सभी शिक्षित लोग लैटिन या ग्रीक या दोनों भाषायें कुछ हद तक सीखते हैं। इसी तरह अगर हम भारतीय भी कुछ हद तक अनिवार्य-रूपसे संस्कृतका अध्ययन

चालू रखते, तो हमारी सब भाषायें एक-दूसरेके बहुत ही समीप आ जातीं और उनकी शक्ति भी बहुत कुछ बढ़ती।

हमारी प्रान्तीय भाषायें अगर मनमें धार लें, तो वे बहुत कुछ एक-दूसरेके पास आ सकती हैं। और उलटा ही सङ्कल्प करें, तो आज जहां एक भाषा चलती है, वहां उसी भाषाके अनेक टुकड़े हो जायंगे, और वे दोनों आपसमें कहने लगेंगी कि मैं तुम्हें पहचान नहीं सकती। प्रान्तीय भाषाओं-को एक-दूसरेके समीप लानेका काम संस्कृत ही कर सकती है। कुछ हद तक फारसी और अरबी भी इसमें सहायक हो सकती हैं। और आगे जाकर हम यह महसूस करेंगे कि भारतीय राष्ट्र-जीवनका द्रोह करनेवाली अंगरेजी भी प्रायश्चित्त करनेके बाद राष्ट्रीय एकतामें अपनी ओरसे कुछ-न-कुछ सहायता ही करेगी।

राष्ट्रभाषाने संस्कृत-संस्कृति और इस्लामी संस्कृतिके भिन्न-भिन्न अनुपातके अनेक मिश्रण करके इस ऐक्यमें मदद ही की है और इससे भी कहीं ज्यादा भविष्यमें करनेवाली है।

ऐसे मिश्रणोंमें हमने आसान, सर्वसुलभ और प्रचलित संस्कृत शब्दोंकी अधिक मात्रा न रखी, तो हमारी एकता खतरेमें पड़ जायगी। हमें इस बातको भी समझ लेना और स्वीकार करना होगा कि अरबी-फारसीके भी कुछ ऐसे शब्द हैं, जो आज भारतकी सभी भाषाओंमें चलते हुए पाये जाते हैं। इन शब्दोंका स्वागत भी हमें उसी उत्साहसे करना चाहिए, जैसा हम आम-फहम (प्रचलित) संस्कृत शब्दोंका करते हैं।

जहां देशी शब्द नहीं मिलते और नये देशी शब्दोंको गढ़नेकी तकलीफ है, वहां उन अंगरेजी शब्दोंको भी, जो लोकमें रूढ़ होनेकी तैयारीमें हैं, ले लेना बेहतर होगा।

जन-समुदायकी भाषा, देहातियोंकी भाषा और पिछड़े हुए लोगोंकी भाषा अलग ही होती है। इनमें न तो शिक्षित समाजके संस्कृत शब्दोंकी भरमार होती है, न अरबी-फारसीके। और जहां जन-समुदायके लोग शिष्ट शब्द लेते भी हैं, वहां वे तुरन्त उनकी सूरत भी बदल देते हैं।

अब सवाल यह उठता है कि जनताके साथ अपना सम्पर्क बढ़ानेके लिए हम संस्कृत शब्दोंका और अन्तरप्रान्तीय एकताका आग्रह छोड़कर देहाती और लोक-सुलभ शब्दोंका ही व्यवहार करें या लोगोंको उनके चिर-परिचित अन्तस्तलमें ही रखकर ऊपर-ऊपरके लोग अन्तरप्रान्तीयताकी ओर बढ़ें।

जनता-युगके इन दिनोंमें हमारी प्रान्तीय भाषायें कालेजोंके युगको छोड़कर लोक-रूढ़ शब्दोंकी ओर जा रही हैं। जनताको सम्राट्का पद देनेकी इच्छा रखनेवाले लोग अब संस्कृत-संस्कृतिसे विमुख होने लगे हैं। और अपनी भाषाका प्रादेशिक रूप बढ़ानेपर तुले हुए हैं। तमाम प्रान्तीय भाषाओंमें अब यह वृत्ति स्पष्ट रूपसे दीख पड़ती है कि आयन्दा बोलचालकी भाषा और साहित्यकी भाषा अलग-अलग न हो। साहित्यिक भाषाको अलग रखनेकी जिद करनेवाले लोगोंको अब हम लोग प्रतिगामी और बूर्ज्वा कहकर उनका अनादर करने लगे हैं। हिन्दीमें आज भी ऐसे लोग हैं, जो बोलचालकी भाषाका तिरस्कार करके अपनी साहित्यिक भाषापर गर्व करते सकुचाते नहीं हैं! चन्द 'साहित्यिक' भाषावाले अपना पण्डिताऊ ढङ्गका प्राण-हीन साहित्य बढ़ाते जाते हैं; किन्तु उनका वह साहित्य लोगों तक पहुंचता ही नहीं, और लोक-समाजके लिए लिखने-वाले लोग संस्कारिताकी और लोक-सेवाकी परवाह न करते हुए लोक-रञ्जन और धनोपार्जनका ही उद्देश्य रखने लगे हैं। इसमें भी अब कुछ-कुछ सुधार हो रहा है, लेकिन भेदकी रेखा अब भी स्पष्ट दीख रही है।

अब सवाल यह है कि इस दशामें राष्ट्र-भाषाका रुख किस ओर रहे? राष्ट्रीय एकताके मानी यदि शिष्ट लोगोंकी एकतासे हो, तब तो हमें कुछ नहीं कहना है। हमें तो जनताकी बोलचालकी भाषा लेकर ही एकताकी प्रतिष्ठा करनी है। किन्तु बोलचालकी भाषामें ही प्रान्तीय भेद सबसे अधिक और सबसे ज्यादा मुश्किल होते हैं। अगर संस्कृत-प्रधान शिष्ट साहित्यको देखें, तो हिन्दुस्तानके किसी भी प्रान्तका साहित्य किसी भी दूसरे प्रान्तके शिक्षित लोग आसानीसे पढ़ सकते हैं। इसमें अगर कुछ भी अड़चन है, तो सिर्फ लिपिकी ही है।

इस सन्दिग्ध अवस्थामें अगर किसीने हमारी सहायता की है, तो भारतवर्षके सन्तोंने। उन्होंने संस्कृत-संस्कृतिको अच्छी तरहसे हजम करके, उसको दुहकर, उसका मक्खन संस्कृत ही के शब्दोंको बिलकुल आसान और लोक-सुलभ बनाकर जनता तक पहुंचा दिया।

और अगर हम सूक्ष्म दृष्टिसे आज देखें, तो वही काम आजके राष्ट्रीय शिक्षक, रचनात्मक कार्य करनेवाले जन-सेवक और कुछ हद तक स्वदेशी वृत्त-विवेचक (पत्रकार) कर रहे हैं।

राष्ट्र-भाषाके सङ्कलनमें हमें अब प्रयत्नपूर्वक इस बातकी तलाश करनी होगी कि भारत-भरकी प्रान्तीय भाषाओंमें बोलचालकी शैलीके कितने शब्द सर्वसाधारणके कामके हैं और ऐसे शब्दोंका ही हमें प्रचार बढ़ाना चाहिए। ये शब्द किस भाषासे आये हैं, इसकी छान-बीन और नाप-तौलका धन्धा हम न करें, हिन्दू-मुस्लिमका झगड़ा भी हम भूल जायें और केवल जन-हित तथा राष्ट्रीय ऐक्यका ही ध्यान रखें।

× × ×

व्यावहारिक जन्म-निरोध। लेखक—श्री ए० ए० खां; एम० एस-सी०; प्रकाशक—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस; जिल्द, छपाई-सफाई सुन्दर; पृष्ठ-संख्या ९७१; मूल्य ४)।

प्रस्तुत पुस्तक, जैसा कि इसके नामसे स्पष्ट है, सन्तति-निग्रहके सम्बन्धमें लिखी गयी है। छब्बीस अध्यायोंमें लेखकने जन्म-निरोध, उसका इतिहास, आवश्यकता तथा उसके व्यावहारिक साधन आदिपर प्रकाश डाला है। लेखक इस विषयके अच्छे जानकार मालूम होते हैं। हमारे देशमें, जहां नैतिकताका अर्थ यह समझा जाता है कि ऐसे कितने ही विषयोंको छूना भी पाप है, प्रस्तुत पुस्तकका प्रकाशन एक साहस समझा जायेगा, इसमें सन्देह नहीं। इसीलिए यद्यपि दूसरी भाषाओंमें ऐसी कितनी ही पुस्तकें मौजूद हैं, हिन्दीमें ऐसे विषय अब तक अछूत समझे जाते रहे हैं और उस दशामें, जब कि हरिजनोंके सबसे बड़े हिमायती व्यावहारिक साधनोंसे सन्तति-निग्रह घातक मानते हैं।

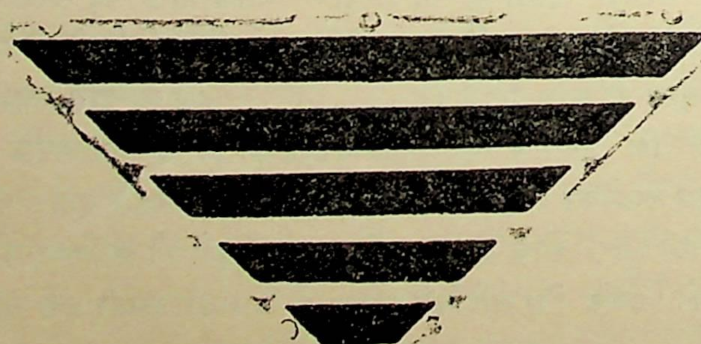
पुस्तक सावधानीसे लिखी गयी है और कई चित्रोंको देकर विषयको स्पष्ट करनेकी कोशिश की गयी है; पर कहीं-कहीं पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं, जो केवल हिन्दी जाननेवालोंके लिए स्पष्ट नहीं होंगे। यदि इस विषयके विवेचनको ही अश्लील न मान लिया जाय, तो कहना होगा कि लेखककी वर्णनशैलीमें कहीं भी अश्लीलता नहीं आने पायी है और इसका कारण यह है कि लेखकने एकदम वैज्ञानिक विवेचनकी ही ओर ध्यान दिया है और पुस्तकको सनसनीखेज और आकर्षक बनानेके बजाय उपयोगी बनानेका ही ध्यान अधिक रखा है।

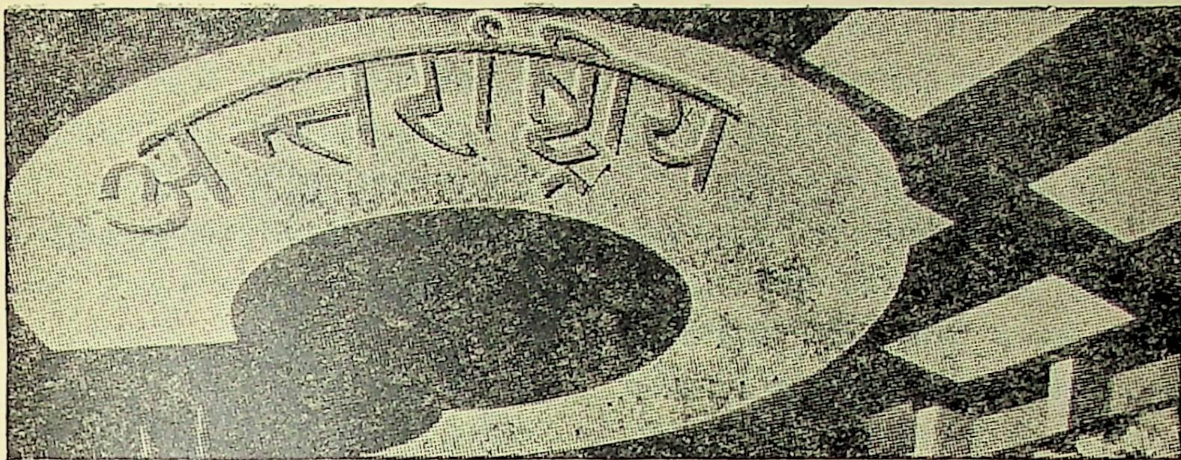
पुष्करिणी। लेखक—श्री भगवतीप्रसादजी वाजपेयी; प्रकाशक—इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या २०० से ऊपर, मूल्य १॥)।

हिन्दी-संसारमें जिन कलाकारोंने सुन्दर कलात्मक कहानियां दी हैं, उनमें वाजपेयीजीका भी स्थान है और इस तथ्यसे कौन इनकार करेगा कि उनकी कितनी ही कहानियां काफी ऊंचे धरातलकी हैं।

प्रस्तुत पुस्तक वाजपेयीजीकी १४ कहानियोंका संग्रह है, जिसमें निंदिया लागी, तारा, प्रेमचन्द्र, प्रतिदान, चोर और सूखी लकड़ी आदि हैं। सूखी लकड़ी हमने पहले भी इस पत्रमें ही पढ़ी है और हम मुग्ध रह गये हैं यह देखकर कि वाजपेयीजीने इस 'सूखी लकड़ी' में कितनी सरलता, कितनी प्राण-शक्ति भर दी है। पुष्करिणीकी और भी कितनी ही कहानियां काफी उच्चकोटिकी हैं। हमारा ख्याल है, उनकी और रचनाओंकी भांति ही पुष्करिणी भी समादृत होगी।

———





सुदूर पूर्वकी समस्यायें

हिटलर ब्रिटेनके विरुद्ध अपनी कूटनीतिक चालमें व्यस्त है। सोवियट रूस, जापान और इटलीको ब्रिटेनके विरुद्ध खड़ा करनेके लिए तैयार करनेमें लगा है। परन्तु बोलशेविक रूस और इटलीका विरोध अब भी बना हुआ है, अतः वे दोनों मिल नहीं सकते और उधर रूस और जापान चीनमें एकमत कभी भी हो सकेंगे, इसमें सन्देह ही है। इस सम्बन्धमें इस बातकी भी आशङ्का की जाती है कि सुदूर पूर्वकी समस्याओंको वह रूप देनेकी कोशिश की जा रही है, जो ब्रिटेनके हितोंके विरुद्ध जाय। इस सम्बन्धमें 'फार ईस्टर्न सर्विस' लन्दनके एक पत्रकारने कुछ प्रकाश डाला है। यह सज्जन सुदूर पूर्वकी समस्याओंपर प्रामाणिकताके साथ बोलनेवाले कहे जाते हैं। उन्होंने लिखा हैः—

यद्यपि चीनमें जापान बुरी तरह उलझा हुआ है, फिर भी राष्ट्रोंके समक्ष वह ऐसी-ऐसी बातें रखता चलता है, जो आकर्षक होती हैं और इसीलिए दूसरे राष्ट्रोंकी चिन्ता बढ़ जाती है। टोकियोके पत्र 'होची शिम्बुन' ने लिखा था कि रूस और जापानमें इस बातका समझौता हो जायगा कि रूस चीनमें जापानकी गुड़िया सरकारको स्वीकार कर लेगा और इसके बदले जापान उत्तरी चीनमें बोलशेविज्मके प्रचारके लिए रूसको अवसर देगा। यद्यपि जापानने बार-बार कहा है कि वह बोलशेविक विचार-धाराको रोकनेके लिए ही चीनमें लड़ रहा है, फिर भी जापान अगर ऐसी सुविधा देनेके लिए तैयार हो जाय, तो इसमें आश्चर्य नहीं हो सकता। पर क्या चीनी कम्यूनिस्ट जापानका विरोध केवल इसीलिए बन्द कर देंगे ?

उक्त जापानी लेखकका अनुमान है कि रूस इस शर्तको स्वीकार कर लेगा; परन्तु वह यह बात भूल जाता है कि उक्त अञ्चलोंमें रूसका प्रभाव पहले ही से इतना अधिक है कि जापानके साथ इसके लिए समझौता करनेकी आवश्यकता नहीं है। पिछले दो वर्षोंमें जापानी हरकतोंसे स्पष्ट हो जाता है कि जापान रूससे लड़ाईकी सम्भावनासे डरता है। मन्चूरियापर जबसे जापानका आधिपत्य हुआ है, तभीसे उसके सीमान्तपर रूसको एक विशाल सेना रखनी पड़ती है और रूसने जापानकी गुड़िया सरकारपर स्वीकृति दी नहीं कि एक विशाल सीमापर उसे अपनी सेना बड़ी सतर्कताके साथ रखनी पड़ेगी। रूस इस बातको जानता है कि जब तक चीनमें जापानके पैर जम नहीं सके हैं, तब तक तो सीमान्तपर होनेवाली घटनायें उतना महत्त्व नहीं रखतीं, क्योंकि चीनी स्वयं भी उन घटनाओंको विकट नहीं होने देंगे; पर एक बार जापानके पैर जमे नहीं कि रूसके लिए एक कठिन समस्या उपस्थित हो जायगी।

अमेरिका दोनोंका विरोधी

पिछले महायुद्धकी तरह इस युद्धके छिड़नेके साथ-साथ अमेरिकामें तरह-तरहके विचार प्रकट किये जा रहे हैं। अमेरिका युद्धमें भाग लेगा या नहीं, यह आज भी अनुमानका विषय बना हुआ है। इस सम्बन्धमें 'वाल स्ट्रीट जर्नल' न्यूयार्कके सम्पादक टामस उडलाकने अपने विचार प्रकट किये हैं। वाल स्ट्रीट अमेरिकाके उन लोगोंका प्रधान केन्द्र है, जो अमेरिकाको हर हालतमें युद्धसे अलग रखना चाहते हैं। और उक्त पत्रने तो फिनलैण्डको उधार माल तक देनेके

विरुद्ध मत प्रकट किया था। उक्त पत्रके सम्पादकने अमेरिकामें ब्रिटेन-विरोधी मनोवृत्तिका जो वर्णन किया है, उसकी पुष्टि मि० डफ कूपरकी इस बातसे भी हो जाती है कि नात्सियोंने अमेरिकामें ऐसा प्रभावशाली प्रचार कर रखा है कि अमेरिकाने जर्मनी और ब्रिटेन दोनोंको एक ही कोटिमें रखा है।

विचार, भावावेश, अन्धविश्वास और अज्ञान—इनके मेलसे उत्पन्न होनेवाली स्थितिका—जिसे 'लोकमत' कहा जाता है—विश्लेषण करनेपर यूरोपीय युद्धके सम्बन्धमें जो प्रतिक्रियायें हुई हैं, उनको लेकर दो-एक मजेदार निष्कर्षोंपर पहुंचना पड़ता है।

पहली बात तो यह है कि आम तौरपर अमेरिकन लोकमत मित्र-शक्तियोंके पक्षमें है और इसका कारण यह है कि पिछले वर्ष जैसी घटनायें होती गयी हैं, उनसे अमेरिकन जनता दङ्ग रह गयी है। हिटलर और स्टैलिनके प्रशंसक उनके गुट्टके बाहर और कहीं नहीं मिल सकते। अमेरिकाकी अधिकांश जनता उनका पतन चाहती है और इस कार्यमें वह औरोंकी सहायता करना चाहती है, बशर्ते कि इसके लिए उसे युद्धमें पड़कर भाग न लेना पड़े।

फिर भी लोकमतको परीक्षा और विश्लेषणके बाद यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिकाकी काफी जनता—शायद अमेरिकाके बहुसंख्यक ब्रिटिश-विरोधी भी हैं। यह इन बातोंसे प्रमाणित हो जाता है कि समय-समयपर जनताको "प्रचारोंसे सावधान" रहनेके लिए चेतावनी दी जाती है और ब्रिटेनके पिछले साम्राज्यवादी कारनामोंकी भी आलोचना कम नहीं होती। अक्सर यह आलोचना इस रूपमें होती है, मानो हिटलर जो कुछ कर रहा है, उसका समर्थन किया जा रहा हो और हमें ब्रिटेन और फ्रान्सकी सहायता नहीं करनी चाहिए।

कुछ लोगोंका ख्याल है कि अमेरिकाकी इस मनोवृत्तिके मूलमें यह तथ्य है कि ब्रिटेन हमारा मौलिक शत्रु है। और कुछ लोग जो परम्पराओंमें दृढ़ विश्वास रखते हैं, वे इस बातको भूलते नहीं, बल्कि यह सोचते ही उनकी ब्रिटिश-विरोधी भावनायें और भी उग्र हो जाती हैं।

भावना और बुद्धिमें अन्तर है और बुद्धि जब गणतन्त्र और तानाशाहीके आधारपर इस प्रश्नका निपटारा करना चाहती है, तब हमें यह बात भूलनी नहीं चाहिए कि सरकारोंके रूपसे अधिक आवश्यक बात यह है कि हम उनके भीतरकी चीजें पहचानें। सरकारोंके रूपसे हमें भ्रम नहीं होना चाहिए, यह तो सारतत्वको छोड़कर छायाको ग्रहण करना होगा। हमारे जीवनके लिए जितनी बातोंकी आवश्यकता होती है, सभी इस युद्धके खतरेमें आ गयी हैं। पाश्चात्य संस्कृति एवं पाश्चात्य सुव्यवस्थाकी सारी बातें खतरेमें आ गयी हैं।

विश्व-सङ्घ

यूरोपीय महायुद्धके बाद वार्साईकी सन्धिके फलस्वरूप अनेक गणतन्त्रात्मक राज्योंका निर्माण हुआ था, जिनमें कितने ही आज स्वतन्त्र देशके रूपमें नक्शेसे गिर चुके हैं। एक बार फिर पशुबलने जोर मारा और न्यायपर बलकी विजय हुई है। वार्साईकी सन्धि चाहे गणतन्त्र आधारोंपर ही हुई हो; पर संसारमें एक बार युद्धके ध्वंसकारी महादानवको लाकर खड़ा करनेकी जिम्मेदारी जर्मनीपर ही है।

और आज जब जर्मनी गणतन्त्रात्मक राष्ट्रोंसे लड़ रहा है, और इस बातकी जब फिर आशा की जाने लगी है कि युद्धके बाद एक नयी व्यवस्था होगी, तब स्वभावतः संसारके विचारकोंके सामने एक प्रश्न आ गया है कि युद्धकी समाप्तिके बाद हमारे शान्तिके उद्देश्य क्या होंगे। युद्धके उद्देश्य तो वास्तवमें इस शान्तिके उद्देश्यको ही कार्यान्वित करनेके लिए होंगे। अतः वे उद्देश्य अगर ऐसे न हुए जिनसे एक ऐसी व्यवस्थाकी स्थापना हो सके, तो उनके प्रति किसीकी भी सहानुभूति नहीं हो सकती।

इसीलिए युद्धके बाद सदा युद्धकी सम्भावनाओंको समाप्त कर देनेके लिए संसारके विचारक यह सोचने लगे हैं कि एक विश्व-सङ्घकी स्थापना की जाय, जिसके सभी राष्ट्र समानताके पदपर सदस्य हो सकें। पिछले महायुद्धकी समाप्तिके बाद भी ऐसा ही कुछ श्मशान-वैराग्य राजनीतिज्ञोंमें आया था, जिसके फलस्वरूप वर्तमान राष्ट्रसङ्घका जन्म हुआ था। पर राष्ट्रसङ्घ कितना सफल हो सका? राष्ट्रसङ्घसे जितनी आशायें लगायी गयी थीं और जितने राष्ट्रोंका उसे सहयोग मिला और जितना उसकी व्यवस्थाओंपर खर्च किया गया, उसका परिणाम आज किस रूपमें दिखाई पड़ रहा है। राष्ट्रसङ्घ अपने उद्देश्यमें सर्वथा असफल हुआ हो,

ऐसा तो नहीं कह सकते। फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंको सुलझानेमें वह सदा विफल रहा है। उसके सामाजिक क्षेत्रके कार्य निश्चय ही प्रशंसनीय हैं; पर राष्ट्रसङ्घोंकी स्थापना इससे बड़े उद्देश्योंको लेकर की गयी थी।

अतः आवश्यकता इस बातकी है कि अगर किसी भी विश्व-सङ्घके बनाये जानेकी योजनापर विचार किया जाय, तो उन कारणोंको समझ लेनेकी आवश्यकता है, जिनसे राष्ट्र-सङ्घ विफल हो गया। और इन कारणोंमें सबसे प्रबल कारण यह रहा है कि राष्ट्रसङ्घके सदस्य राष्ट्रोंको कभी भी समानताका पद नहीं दिया गया। किसी भी विश्व-सङ्घकी कल्पना सार्थक नहीं हो सकती, जब तक संसारके कितने ही देश दूसरे देशोंके पराधीनता-पाशमें बंधे हुए हैं और जब तक सभीको नयी व्यवस्थाओंके अनुसार समानाधिकारके साथ काम करनेकी सुविधा नहीं है, जब तक संसारकी एक बहुत बड़ी संख्याके शोषणके लिए खुला क्षेत्र पड़ा रहेगा और कच्चे माल, प्राकृतिक साधन आदिके लूटनेकी औपनिवेशिक मनोवृत्ति बनी रहेगी, तब तक विश्व-सङ्घका स्वप्न चरितार्थ होगा, इसमें सन्देह ही है।

भारत—ब्रिटेनका परीक्षास्थल

युद्धके उद्देश्योंको लेकर भारतके सम्बन्धमें लिखते हुए न्यूयार्कके 'न्यू रिपब्लिक' ने लिखा है:—

विगत महायुद्धके समय ग्रेट ब्रिटेनने भारतको स्वायत्त शासन-प्रणालीकी स्थापनाका वचन दिया था। २० अगस्त १९१७ को तत्कालीन भारत-मन्त्री मि० माण्टेगूने इस सम्बन्धमें एक घोषणा भी की थी और इसके बाद तत्कालीन वायसराय लार्ड चेम्सफोर्डके साथ वे इस योजनाको कार्यान्वित करनेके इरादेसे भारत गये। पिछले २२ वर्षोंके भीतर इस दिशामें जो भी कार्य हुआ है, वह नहींके बराबर ही है। प्रान्तोंमें भारतीयोंको कुछ अधिकार मिले हुए हैं; किन्तु

उनका जिन विषयोंपर नियन्त्रण है, उनकी अपेक्षा वे विषय कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं,जो ब्रिटिश राज्यके लिए सुरक्षित हैं। जिन बहुसंख्यक भारतीयोंको राजनीतिक चेतना प्राप्त है, उनका विश्वास है कि जिस शासन-प्रणालीकी स्थापना की जा रही है, उससे स्वायत्त शासन-प्रणालीकी स्थापना नहीं होती, अतः ब्रिटेनने जो वचन दिया है, उससे उसने विश्वास-घात किया है

कांग्रेसके सभी समर्थकोंके मुंहपर तमाचा-सा लगा, जब हाल ही में वायसरायने घोषणा की कि युद्ध जब तक समाप्त नहीं होता, तब तक औपनिवेशिक स्वराज्यका प्रश्न टला रहेगा। पिछले युद्धमें भारतको वचन दिया गया था, जो पूरा नहीं किया गया और इस बार भारतको वचन भी नहीं मिला।

भारत आज गम्भीर और यथार्थ भावनाओंको समझ रहा है। जापानकी साम्राज्यवादी महात्त्वाकांक्षाओं तथा जबर्दस्ती सोवियट रूसमें मिलाये जानेकी सम्भावनाओंसे पिछले वर्षोंमें पूर्ण स्वाधीनताका आन्दोलन प्रभावित हुआ है। लेकिन ब्रिटिश शासन बुरा होते हुए भी भारतीय जापान अथवा रूसी शासनसे इसे बदलना नहीं चाहते। दूसरे शब्दोंमें भारत ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत स्वाधीन पद प्राप्त करना चाहता है। १९१४ में कैसर विल्हेल्मके प्रति शिक्षित भारतीयोंकी जैसी घृणा थी, उससे कहीं अधिक वे हिटलरसे घृणा करते हैं। भारत वास्तवमें युद्धमें भाग लेना चाहता है। ऐसी अवस्थामें वायसरायका यह कह देना कि युद्धके समाप्त होनेके पहले औपनिवेशिक स्वराज्यपर वाद-विवाद नहीं हो हो सकता, भीषण भूल—प्रायः अपराध-सा है। यह बात तब और भी भीषण हो जाती है जब उन्होंने यह बात भी अपनी घोषणामें नहीं कही कि जब तक ऐसा निर्णय नहीं हो जाता, तब तक भारतसे युद्धमें सहायता नहीं ली जायगी। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि भारतीयोंको साम्राज्यके लिए पैसा देने और मरनेके लिए कहा जायगा, पर साम्राज्यके भीतर उन्हें अपने ही मामलोंमें दखल देनेका कोई अधिकार नहीं है।

भारतमें जैसी स्थिति हो रही है, उसका परिणाम तटस्थ देशोंके लोकमतपर पड़ रहा है, यह और भी अशान्ति-मूलक बात है। जर्मन प्रचार संसारको यह विश्वास दिला रहा है कि यह युद्ध वास्तवमें आदर्शोंका नहीं, साम्राज्योंका है। इंगलैण्ड वास्तवमें गणतन्त्रके लिए नहीं, अपनी सदियोंकी लूटकी रक्षाके लिए लड़ रहा है।

ब्रिटेन इस बातको स्वीकार नहीं करता, वह कहता है कि वह आदर्शके लिए लड़ रहा है। ऐसी दशामें भारत ब्रिटेनका स्पष्ट परीक्षा-स्थल है। उसके उद्देश्य भारतके प्रति उसके व्यवहारसे स्पष्ट हो जायेंगे। अगर वायसरायके वे शब्द ही अन्तिम शब्द हैं, तब तो संसारको और खासकर अमेरिकाको विश्वास हो जायगा कि जिन उद्देश्योंको लेकर ब्रिटेन लड़नेकी बात कहता है, वे खोखले हैं।



आजाद मुसलिम कान्फरेन्स

दिल्लीमें अप्रैलके अन्तिम सप्ताहमें सिन्धके भूतपूर्व प्रीमियर खां बहादुर अल्लाबख्शकी अध्यक्षतामें होनेवाली आजाद मुसलिम कान्फरेन्स कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण कही जायगी। कान्फरेन्समें मुसलमानोंके विभिन्न फिरकों--शिया, सुन्नी, अहरार और मोमिनोंके प्रतिनिधि सारे भारतसे एकत्र हुए थे। और इन प्रतिनिधियोंने पूर्ण स्वाधीनता अपना लक्ष्य घोषित करते हुए भारतकी भौगोलिक अखण्डताका प्रस्ताव—सर्वसम्मतिसे पास किया है। सम्मेलनमें जो प्रस्ताव स्वीकृत किये गये हैं, वे किसी भी समय उपयोगी होते, लेकिन इस समय उनकी उपयोगिता ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। पहला सर्वसम्मतिसे स्वीकृत प्रस्ताव यों हैः—

"स्वदेशके लिए पूर्ण स्वाधीनताकी चाहना करनेवाले समस्त प्रान्तोंसे आगत भारतीय मुसलमानोंका यह प्रतिनिधि-सम्मेलन मुसलिम सम्प्रदाय तथा समस्त देशके हितोंका ध्यान रखकर पूर्ण सतर्कतापूर्वक सारे प्रश्नोंका विचार कर इस बातकी घोषणा करता है कि भारत भौगोलिक एवं राजनीतिक सीमाओंसे अखण्ड है। और इस प्रकार यह बिना जाति-धर्मका ध्यान रखे हुए समस्त भारतीयोंकी सम्मिलित निवास-भूमि है।......कान्फरेन्स स्पष्ट जोरदार शब्दोंमें इस बातकी घोषणा कर देना चाहती है कि भारतीय मुसलमानोंका ध्येय पूर्ण स्वाधीनता है और वे इस ध्येयकी पूर्ति जितनी जल्दी हो सके, करना चाहते हैं। इसी उद्देश्यसे उत्साहित होकर उन्होंने त्याग किये हैं।

"कान्फरेन्स स्पष्ट रूपसे जोरदार शब्दोंमें ब्रिटिश साम्राज्यवादके एजेण्टों तथा दूसरे लोगोंके इस निराधार अभियोगका प्रतिवाद कर रही है कि वे भारतीय स्वाधीनताके मार्गमें बाधा हैं और जोरदार घोषणा करती है कि मुसलमान अपने उत्तरदायित्वको समझते हैं और वे यह भी समझते हैं कि देशकी आजादीकी लड़ाईमें पीछे रहना उनकी परम्पराके प्रतिकूल तथा उनके सम्मानके लिए घातक है।"

भावी विधान

भारतके भावी विधानके सम्बन्धमें सम्मेलनने यह प्रस्ताव पास किया:—"कान्फरेन्सकी रायमें भारतका वही भावी शासन-विधान भारतीयोंको स्वीकृत होगा, जो बालिग मताधिकार द्वारा निर्वाचित भारतीयोंकी विधान-परिषद् द्वारा तैयार किया जायगा। इस विधान-परिषद्के मुसलिम सदस्यों द्वारा निश्चित मुसलमानोंके उचित हितोंको संरक्षण प्राप्त होगा और उन हितोंके निश्चित करनेमें दूसरे सम्प्रदायके प्रतिनिधियों अथवा बाहरी व्यक्तियोंको हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं होगा।"

इस प्रकार भारतकी भौगोलिक और राजनीतिक अखण्डनीयता स्वीकार करनेके बाद आजाद मुसलिम सम्मेलनने इस बातपर भी स्वीकृति दी है कि भावी विधान विधान-परिषद् द्वारा बनाया जाय। वे यह भी अधिकार नहीं चाहते कि भावी विधान तब तक स्वीकार्य न हो, जब तक मुसलमानोंकी स्वीकृति उसपर न हो, जैसा कि मुसलिम लीग कहती है। भारतकी अखण्डनीयतामें उक्त सम्मेलनका कितना विश्वास है, यह एक दूसरे प्रस्तावसे स्पष्ट हो जायगा, जो यों है:—

"इस कान्फरेन्सके विचारानुसार ऐसी कोई भी योजना, जो भारतवर्षको हिन्दू भारत और मुसलिम भारतमें विभाजित करती है, अव्यावहारिक है और आम तौरसे सारे देश तथा खास तौरसे मुसलमानोंके हितके लिए घातक है।

कान्फरेन्स इस बातकी कायल है कि ऐसी योजनाका निश्चित परिणाम यह होगा कि इससे भारतीय स्वाधीनताके मार्गमें अड़चनें पैदा होंगी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद इसका शोषण अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए करेगा।"

इस प्रस्तावने लाहौरमें स्वीकृत लीगकी पाकिस्तानकी योजनाको देश और खासकर मुसलमानोंके लिए घातक बताया है। सम्मेलनके अध्यक्षने भी उक्त योजनाकी आलोचना करते हुए उसकी अव्यावहारिकता और घातकताको मूर्खता-पूर्ण बताते हुए उसे ठुकराया है और अध्यक्ष भारतकी अखण्डनीयतामें ऐसा क्यों विश्वास करते हैं, उसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है :—

"नौ करोड़ भारतीय मुसलमानोंमेंसे बहुत अधिक भारतके पहले निवासियोंके वंशज हैं और वे उसी प्रकार इस देशकी सन्तान हैं, जैसे द्रविड़ और आर्य। उन्हींकी तरह उन्हें अपनी गणना सबोंकी इस भूमिके आदि निवासियोंमें करानेका अधिकार है। विभिन्न देशोंके निवासी केवल धर्म परिवर्तन करनेसे ही अपनी राष्ट्रीयतासे वञ्चित नहीं हो जाते......हमारे धर्म कुछ भी क्यों न हों, हमें अपने देशके भीतर पूरे मेल-जोलके वातावरणमें रहना चाहिए और हमारे आपसके सम्बन्ध वैसे ही होने चाहिए, जैसे कि संयुक्त परिवारके कई भाइयोंके होते हैं।"

आजाद मुसलिम कान्फरेन्सने एक अत्यन्त राजनीतिक महत्त्वके समय यह बात प्रमाणित की है कि मुसलिम लीगका भारतके समस्त मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व करनेका दावा कितना गलत है। और जैसा कि सम्मेलनके अध्यक्षने कहा है, स्थानीय सभाओंमें भाषण करनेके अतिरिक्त लीग किसीका प्रतिनिधित्व नहीं करती। फिर भी कौन नहीं जानता कि मुसलिम लीग इस समय किन राजनीतिक आवश्यकताओंके कारण प्रतिनिधि संस्था मान ली गयी है। और इन्हीं कारणोंसे आजाद मुसलिम कान्फरेन्सके निर्णयोंके महत्त्वको कम करनेकी कोशिश भी की जायगी। पर उक्त सम्मेलनने मुसलिम सम्प्रदायको ऐसे समय सही नेतृत्व देनेका प्रयत्न किया है, जिस समय इसकी सख्त जरूरत थी।

पार्लमेण्टमें भारत

ब्रिटिश पार्लमेण्टमें, जिसे भारतके भाग्य-निर्णयका अधिकार प्राप्त है और जिसमें भारतका प्रतिनिधित्व करनेके लिए किसी भारतीयकी आवश्यकता नहीं समझी जाती, भारतके सम्बन्धमें पिछले दिनों फिर स्थितिका स्पष्टीकरण किया गया है। हाउस आव कामन्सके विवादमें सरकारी वक्तव्यसे दो बातें स्पष्ट होती हैं—(१) भारतको जो कुछ राजनीतिक अधिकार मिलनेवाले हैं, वे अभी नहीं मिल सकते; कब मिलेंगे, इसके लिए भी अवधि निश्चित नहीं की जा सकती और विधान-निर्माणके लिए कांग्रेस द्वारा प्रस्तावित विधान-परिषदको पूर्णाधिकार नहीं दिया जा सकता और (२) यदि कांग्रेसने सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ा, तो उसे दबाया जायगा।

हाउस आव लार्ड्समें भारत-मन्त्री लार्ड जेटलैण्डने जो वक्तव्य दिया है, उसमें उन्होंने एक खास बात कही है। सदाकी भांति उन्होंने केवल अल्पसंख्यकोंका ही सहारा नहीं लिया, बल्कि उन्होंने यह भी कहा कि भारतके विधान-निर्माणका सारा भार केवल भारतीयोंको ही नहीं दिया जा सकता। २०० वर्षोंसे ब्रिटेनका भारतके साथ जो सम्बन्ध रहा है, उस इतिहासको मिटाया नहीं जा सकता।

इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि कांग्रेसकी विधान-परिषदकी मांग—भारतीयोंको भारतके भाग्य-निर्णयका अधिकार नहीं दिया जा सकता, और साथ ही जो भी नया विधान बनाया जायगा, उसके निर्माणमें ब्रिटेनका हिस्सा रहेगा और यह केवल इसलिए नहीं कि अल्पसंख्यकोंके प्रति ब्रिटेनकी खास जिम्मेदारियां हैं, जैसा कि अब तक कहा जाता रहा है, बल्कि इसलिए भी कि ब्रिटेनका भारतपर शासन रहा है। अतः ब्रिटेन भारतको भाग्य-निर्णय नहीं करने देगा, ऐसी कोई भी योजना ब्रिटेनकी सहायतासे बनेगी और ऐसा करनेका उसे अधिकार है। लार्ड जेटलैण्डके इन शब्दोंमें प्रच्छन्न ब्रिटिश कूटनीति इतनी स्पष्ट हो चली है कि इसके लिए उनकी सराहना करनी पड़ती है। वास्तवमें ब्रिटेनकी यह मनोवृत्ति और उसके साम्राज्यवादी हित विधान-परिषदकी मांगकी अस्वीकृतिके मूलमें हैं। और इसीलिए अल्पसंख्यकों द्वारा इस मांगका विरोध न होनेपर भी ब्रिटेन इसे स्वीकार न करता। राष्ट्रवादी भारत इस तथ्यको जितनी जल्दी और जितनी स्पष्टतासे समझ ले, उतना ही अच्छा है।

स्वाधीन भारत और देशी राज्य

श्री जयप्रकाशनारायणने गांधीजीके पास रामगढ़ कांग्रेसके पहले एक प्रस्तावका मसविदा भेजा था, जिसमें

उन्होंने स्वाधीन भारतके रूपकी कल्पना की थी और इसपर गांधीजीका मत चाहा था। गांधीजीने अब अपने मत सहित प्रस्ताव प्रकाशित कर दिया है। उसके अनुसार साधारण तौरपर कहा जा सकता है कि देशमें समाजवादी सरकारकी स्थापना होगी। इसके साथ ही देशी राज्योंके सम्बन्धमें उन्होंने लिखा था :—

"देशी राज्योंमें सम्पूर्ण प्रजातन्त्रात्मक सरकारें स्थापित होंगी और नागरिकोंकी समताके तथा सामाजिक भेद-भावोंको मिटानेके सिद्धान्तके अनुसार राजाओं और नवाबोंके रूपमें देशी रियासतोंमें कोई नामधारी शासक नहीं रहेंगे।......कांग्रेसके सामने देशकी शासन-व्यवस्थाका यही चित्र है और इसीको स्थापित करनेका वह यत्न करेगी।"

गांधीजीने इस मसविदेपर अपनी राय देते हुए कहा है—"यद्यपि अहिंसाकी दृष्टिसे श्री जयप्रकाशकी सूचनाओंका सामान्य समर्थन करनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं मालूम होती, तो भी मैं राजाओंके सम्बन्धमें उनकी सूचनाका समर्थन नहीं कर सकता। कानूनकी दृष्टिसे वे स्वतन्त्र हैं। यह सच है कि उनकी स्वतन्त्रताका कोई विशेष मूल्य नहीं है, क्योंकि एक प्रबल शक्ति उनका संरक्षण करती है। लेकिन हमारे मुकाबलेमें वे अपनी स्वतन्त्रताका दावा कर सकते हैं। श्री जयप्रकाशकी प्रस्तावित सूचनाओंमें जो बातें कही गयी हैं, उनके अनुसार अहिंसात्मक साधनों द्वारा हम स्वतन्त्र हो जायें, तो उस हालतमें मैं ऐसे किसी समझौतेकी कल्पना नहीं करता, जिसमें राजा लोग अपनेको खुद ही मिटानेको तैयार होंगे। समझौता किसी भी तरहका क्यों न हो, राष्ट्रको उसका पूरा-पूरा पालन करना ही होगा। इसलिए मैं तो सिर्फ ऐसे समझौतेकी ही कल्पना कर सकता हूं, जिसमें बड़ी-बड़ी रियासतें अपने दर्जेको कायम रखेंगी।"

स्वाधीन भारतमें "बड़ी-बड़ी रियासतें अपने दर्जेको कायम रखेंगी", यह स्पष्टतः विवादग्रस्त विषय है। पर इसपर हम कुछ न कहकर उन आधारोंपर ही कुछ कहना चाहते हैं। "कानूनकी दृष्टिसे वे स्वतन्त्र हैं" यह गांधीजी कहते हैं; पर जिस कानूनकी दृष्टिसे वे स्वतन्त्र हैं, उसमें क्या गांधीजी संशोधनकी आवश्यकता नहीं समझते और क्या यह सच नहीं है कि कितने ही राज्योंका निर्माण एक दूसरी शक्तिने किया है और इसी शक्तिके विरुद्ध भारतका अहिंसात्मक आन्दोलन है। गांधीजीने पिछले दिनों इस शक्तिके चार स्तम्भोंमें देशी राज्योंको भी एक स्तम्भ माना था। अतः प्रश्न यह है कि जिन सन्धि-पत्रोंके आधारपर वे स्वतन्त्र हैं, उनका वैधानिक मूल्य ही कितना रह जाता है, जब उनके साथ सन्धि करनेवाली दूसरी पार्टीके ही स्थायित्वकी कल्पना आप नहीं करते। जिस सन्धिपर स्वाधीन भारतकी स्वीकृति न हो, उसे स्वाधीन भारतपर माननेकी नियमानुकूल कोई जिम्मेदारी नहीं होनी चाहिए। भारतपर लिये गये ऋणके विरुद्ध भी यही तर्क था और इसीलिए उसके विरुद्ध लोकमत था, जिसका निर्णय किसी निष्पक्ष अदालत द्वारा हो, यह बात स्वीकृत की गयी थी। देशी राज्योंको लेकर जो सन्धियां हुई हैं, उनमें (१) सन्धि जिस शक्तिने की, उसपर ही उसकी रक्षाकी जिम्मेदारी है और यह जिम्मेदारी वह निभाती जा रही है और (२) सन्धि क्यों की गयी, उसका उद्देश्य और शर्तें क्या रहीं, यह भी विचारनेका प्रश्न है। इन उद्देश्योंको अगर भारतके हितोंके अनुकूल न माना जाय और शर्तें नवीन परिस्थितियोंमें हानिकर हों, तो भी उनका पालन केवल इसलिए करना वैधानिक दृष्टिकोणसे भी कहां तक वाञ्छनीय होगा, इस प्रश्नकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। "समझौता किसी भी तरहका क्यों न हो, राष्ट्रको उसका पूरा-पूरा पालन करना ही होगा!" लेकिन यह "किसी तरहका भी समझौता" किसके द्वारा हो? दूसरे व्यक्तियों द्वारा किये गये समझौते भी? इसे तो विधानकी दृष्टिसे भी माननेके लिए आप बाध्य नहीं हैं। "हमारे मुकाबले वे स्वाधीनताका दावा कर सकते हैं" पर अपनी प्रजाके मुकाबले वे किस बातका दावा करेंगे? वह पूर्ण प्रजातन्त्रात्मक राज्यकी स्थापना करना चाहे, जैसा कि कितने ही यूरोपीय राष्ट्रोंमें हुआ है, और यह सब अहिंसात्मक उपायोंसे ही हो, तो भी गांधीजी-को क्या इसमें आपत्ति हो सकती है? और उस हालतमें, जब गांधीजी जनताके अन्तिम राजनीतिक सत्ताके निर्णयका अधिकार स्वीकार करते हैं? जिस विधान-परिषद्के निर्णयसे वे ब्रिटिश साम्राज्यवादपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, वही अधिकार क्या वे देशी राज्योंकी प्रजाको नहीं देना चाहते?

युद्धका रङ्गमञ्च

युद्धके रङ्गमञ्चके और भी विस्तृत होनेकी सम्भावनायें प्रबल हैं और स्कैण्डीनेवियन तथा बाल्कन प्रदेशोंमें युद्धकी जो चिनगारियां दिखाई पड़ी हैं, उनसे युद्धकी आग भड़केगी, इसके सम्बन्धमें हमने पिछली बार लिखा था और तबसे घटनाओंने इस तथ्यको और भी स्पष्ट किया है। वसन्त-कालमें पश्चिमी मोर्चेपर युद्धके सङ्गीन होनेकी प्रतीक्षा मित्र-शक्तियां कर रही थीं; परन्तु जर्मनीने फिर चक्रमेमें डालकर डेनमार्क और नारवेपर आक्रमण कर दिया। आक्रमणके कुछ दिनों पूर्व ब्रिटेन उत्तरी सागरमें सुरङ्गें बिछा रहा था, फिर भी जर्मनी जिस गतिसे वहां पहुंचा है, उससे मित्र-शक्तियोंको कितना आश्चर्य हुआ है, यह समय-समयपर दिये गये उनके राजनीतिज्ञोंके वक्तव्योंसे स्पष्ट हो जाता है।

उत्तरी यूरोपमें जर्मनीके इस आक्रमणके साथ अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिकी उलझनें और भी बढ़ी हैं और इटली और टर्कीने जैसी प्रगति दिखायी है, उससे पिछले दिनों भूमध्यसागरको लेकर भी आशङ्कायें बढ़ने लगी थीं। उस अञ्चलको अब भी खतरेकी सम्भावनाओंसे रहित नहीं समझा जा सकता। भूमध्यसागरको लेकर ब्रिटेन और इटलीका मनोमालिन्य पहलेसे रहा है और इधर इटैलियन प्रेसमें जैसी बातें आयी हैं, उनसे इटलीका विक्षोभ स्पष्ट होता है।

और इधर रूसकी गति-विधि फिर एक बार अस्पष्ट हो चली है। जर्मनी जब उधर व्यस्त है, तब रूस रूमानिया तथा दूसरे देशोंसे समझौतेकी चर्चामें लगा है। यह समझौतेकी चर्चा युद्धके पहलेकी एक 'टेकनिक' के रूपमें पिछले दिनोंसे स्पष्ट होती आयी है। इटली उधर बाल्कन प्रान्तोंके प्रतिनिधियों-का एक सम्मेलन बुला रहा है और रूस तथा इटली उक्त अञ्चलोंको लेकर सदा परस्पर-विरोधी आकांक्षायें पालते आ रहे हैं। अतः उक्त अञ्चलोंकी सम्भावनाओंकी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

अमेरिका चीनमें अपने हितोंकी हानि उठाकर भी चीन-जापान-युद्धसे अलग रहा है और वर्तमान युद्धमें भी वह तटस्थ रहनेकी नीतिकी घोषणा कर चुका है। पर डच इण्डीजको लेकर जापानने जैसा मनोभाव प्रकट किया है, और उसका उत्तर कार्डेल हलने अमेरिकासे जैसा दिया है, उन सबको देखते हुए अमेरिका और जापानके मनोभावोंमें विरोध बढ़नेके कारण उत्पन्न हो गये हैं और ये घटनायें यूरोपीय युद्धके साथ-साथ अधिक सम्भावनाओंसे भरी दिखाई पड़ें, तो आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

इन सारी अवस्थाओंमें अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिकी उल-झनें पिछले दिनों बढ़ी हैं और उनकी सम्भावनायें काफी खतरनाक प्रतीत हो रही हैं।

लन्दनमें हिन्दुस्तानी भवन

भारत और ब्रिटेनमें सद्भाव स्थापित करनेवालोंके प्रयत्नसे लन्दनमें एक हिन्दुस्तानी हाउसकी स्थापना हुई है। हिन्दुस्तानियोंको अब भी रङ्गभेदके कारण लन्दनके कितने ही होटलोंमें प्रवेश नहीं करने दिया जाता और उनके साथ अछूतोंका-सा व्यवहार किया जाता है। अभी पिछले दिनों कई भारतीयोंने अपने भ्रमण-वृत्तान्तोंमें इस प्रकारके अपमान-जनक व्यवहारका उल्लेख किया था। रङ्गभेदके कारण शासक जातिके लोगोंकी इस मनोवृत्तिसे आज जैसी अशान्ति मची हुई है, वह तथा उसके परिणाम किसीपर अस्पष्ट नहीं हैं। शासक और शासितकी मनोवृत्ति भी है, जो दोनों जातियोंमें सम्पर्क बढ़नेके मार्गमें बाधा है। भारत और ब्रिटेनकी सामाजिक ही नहीं, राजनीतिक समस्याओंकी जटिलता भी बहुत कुछ ऐसे प्रयत्नोंसे सुलझ सकती है; क्योंकि दुर्भाग्यवश राष्ट्रके लिए महान् प्रश्नोंपर भी दोनोंके दृष्टिकोणोंमें—परिस्थितिको ठीक रूपसे न समझनेके कारण महान् अन्तर हो जाया करता है। अतः लन्दनका हिन्दुस्तानी हाउस इन मनोवृत्तियोंके निवारणमें प्रयत्नशील और सफल हो सके, तो निश्चय ही यह उसकी महान् सफलता होगी। इसलिए हम इस हिन्दुस्तानी भवन सम्बन्धी प्रयत्नकी सराहना करते और इसकी सफलता चाहते हैं।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अगला अधिवेशन इसी मईके चौथे सप्ताहमें होनेके लिए श्री काका कालेलकरने पूनेमें निमन्त्रित किया था; पर अब उन्होंने सम्मे-लनके प्रधानमन्त्रीके पास तार भेजकर अपना निमन्त्रण वापस

ले लिया है। इसका कारण पूनाका सम्मेलन-विरोधी वातावरण बताया जाता है। इस तारके बाद सम्मेलनके प्रधान-मन्त्रीने वक्तव्य देते हुए कहा है कि "सम्मेलनके अधिकारी परिस्थितिपर विचार कर रहे हैं।" उधर पूना अधिवेशनके लिए जिस स्वागत-समितिका निर्वाचन हुआ है, उसके अध्यक्ष श्री वैशम्पायनने श्री कालेलकरके निमन्त्रण वापस लेनेकी बातको दुःखद बताते हुए कहा है कि अधिवेशनकी तैयारियां हो रही हैं। कालेलकरजीने सम्मेलनके भूतपूर्व अध्यक्ष श्री बाबूराव विष्णु पराड़करके पास एक पत्र भेजा था, जो प्रकाशित किया जा चुका है। उसमें उनका कहना है कि सम्मेलनको अगर पूनामें किया गया, तो इससे उसे क्षति पहुंचेगी।

इन सारी बातोंके आधारपर यह निष्कर्ष निकालना जरा कठिन है कि वास्तवमें स्थिति क्या है; पर पूनाका वातावरण सम्मेलनके अनुकूल नहीं है, यह बात हमें बहुत देरसे और स्वागत-समितिके निर्वाचन-परिणाम जान लेनेके बाद कालेलकरजीने सुनायी है और अभी अप्रैलके प्रारम्भ तक सम्मेलनके अध्यक्ष-पदके लिए वे श्री सम्पूर्णानन्दके लिए प्रयत्न करते रहे हैं। अपने पत्रोंमें ही नहीं, दूसरे पत्रोंमें भी इसके लिए उनकी अपीलें निकलती रही हैं। स्वागताध्यक्ष-पदके लिए चुपचाप सम्भवतः स्वागत-समितिसे परामर्श लिये बिना ही उन्होंने श्री बालासाहब खरेके स्वागताध्यक्ष बनानेकी बात कह दी थी, श्री सम्पूर्णानन्दने पत्रोंमें अपनी उम्मेदवारीके विरुद्ध मतामत देखनेके बाद भी चुनावसे अलग रहनेकी इच्छा नहीं जाहिर की थी, तो अकस्मात् अधिवेशनके एक महीने पहले स्वागत-समितिके पदाधिकारियोंके निर्वाचन-परिणामके बाद कालेलकरजीका निमन्त्रण वापस ले लेना और तत्काल श्री सम्पूर्णानन्दजीका निर्वाचन लड़नेसे इनकार कर देना, और फिर 'मरहट्टा'-सम्पादक श्री केतकर तथा कुछ दूसरे व्यक्तियोंका यह कहना कि राजनीतिक कारणोंसे 'हिन्दी' के स्थानपर, जिसके लिए सम्मेलन अब तक काम करता रहा है, एक दलका 'हिन्दी' याने हिन्दुस्तानीके लिए प्रयत्न करनेका विरोध और इसी दलके हाथसे स्वागत-समितिका अधिकार निकल जाना—ये सब बातें स्पष्ट करती हैं कि पूनाका वातावरण वास्तवमें सम्मेलन-विरोधी नहीं, बल्कि एक खास दल तथा उसकी भाषा-सम्बन्धी विचार-धाराका विरोधी है। अतः इस सम्बन्धमें कालेलकरजीका वक्तव्य सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता।

कालेलकरजीने सम्मेलनको निमन्त्रण दिया था, वह व्यक्तिगत न था—था पूनाकी ओरसे और पूना अधिवेशनकी स्वागत-समितिमें उनका बहुमत न हो सकना ही—यदि वास्तवमें भीतर और बातें न हों,जो प्रकाशमें नहीं आयी हैं—सम्मेलन-विरोधी वातावरण नहीं कहा जा सकेगा। दूसरा प्रश्न है हिन्दी, हिन्दुस्तानीका, सो यह अखिल भारतीय प्रश्न है और सम्मेलनका जो भी निर्णय होगा, वह अखिल भारतीय होगा, सम्मेलनकी स्वागत-समितिका चाहे इसपर जो भी मत हो, इसका निर्णय तो सम्मेलनमें उपस्थित प्रतिनिधि करेंगे। अतः इस आधारपर भी निमन्त्रण वापस लेना युक्तिसङ्गत नहीं। यद्यपि साहित्य-सम्मेलनमें इस प्रकारकी दलबन्दी नितान्त अवाञ्छनीय है; पर जब स्पष्ट रूपसे एक दल—वह कोई भी हो—कुछ खास व्यक्तियोंके पक्षमें प्रचार कर, लोकमत उसके पक्षमें लाना चाहेगा, तब इन्हीं उपायों द्वारा दूसरोंके इन प्रयत्नों और इन प्रयत्नोंकी सफलताओंकी निन्दा वह नहीं कर सकता। पिछले कई वर्षोंसे दलबन्दीका यह रूप सम्मेलन-अधिवेशनोंको लेकर नहीं दिखाई पड़ा है, यह कौन कह सकता है? कौन कह सकता है कि सम्मेलनोंके उच्चासनोंपर ऐसे-ऐसे व्यक्ति भी यदा-कदा—साहित्यिक कारणोंके अतिरिक्त दूसरे कारणोंसे ही—नहीं बैठाये गये और काफी प्रचार करनेके बाद—जिससे कितने ही लोगोंको सन्तोष नहीं हुआ है, फिर भी इन घटनाओंकी उपेक्षा की गयी है। अतः यह दलबन्दी अवाञ्छनीय होते हुए भी रही है, और पूना अधिवेशनको लेकर जो परिस्थितियां उत्पन्न हो गयी हैं, वे अप्रत्याशित भले ही दीख रही हों; पर वास्तवमें वे ऐसी हैं नहीं। अतः सम्मेलनके अधिकारियोंको कुछ भी अन्तिम निश्चय करनेके पहले परिस्थितिकी वास्तविकताओंको उनके वास्तविक रूपमें ही देखना चाहिए। सम्मेलनका इस समय और इन कारणोंसे स्थगित करना अथवा दूसरे स्थान-पर करना—जहांके लिए भी कोई विश्वास नहीं दिला सकता कि दल-विशेषके हाथमें ही शक्ति रहेगी और दल-विशेषके ही चुने हुए व्यक्ति पदारूढ़ हो सकेंगे, किसीके लिए भी असम्भव है—कहां तक तर्कयुक्त एवं नियमानुकूल होगा, ये प्रश्न हैं, जिनको सम्मेलनके अधिकारी अन्तिम निश्चय करते हुए

ध्यानमें रखेंगे, ऐसी आशा है। सम्मेलनके अधिकारियोंने सूचित किया है कि उनका निश्चय समयानुसार जनताके लिए प्रकाशित कर दिया जायगा। अच्छा हो कि इस सम्बन्धमें सारी वास्तविक परिस्थितियों एवं तथ्योंको—अगर वे हों—बताने लिए भी जनताका विश्वास लिया जाय।

कोई कार्यक्रम नहीं ?

जिन लोगोंने यह समझा था कि मन्त्रित्व पदसे त्याग-पत्र देनेके बाद कांग्रेसका दूसरा कदम भद्र अवज्ञा आन्दोलन होगा, उन्हें महायुद्धके आठ महीने चलते रहनेके बाद भी गांधीजीके समय-समयपर विभिन्न कारणोंसे आन्दोलन टालते रहनेसे इस बातकी आशङ्का होने लगी है कि फिलहाल आन्दोलनकी कोई सम्भावना नहीं है। पहले देश तैयार न था और मुसलिम लीग द्वारा विरोध होनेकी आशङ्का थी, कांग्रेसकी आन्तरिक दुर्बलतायें और अनुशासनकी प्रवृत्तियां भी थीं, जिनके कारण आन्दोलन छेड़नेमें कठिनाई थी। और अब खाकसार आन्दोलनसे वे घबराये हुए दिखाई पड़ते हैं। चर्खे और खादीकी शर्त पूरी करनेमें तो कांग्रेसजन गांधीजीकी आज्ञा पालन कर सकते थे; परन्तु खाकसार आन्दोलन तथा दूसरे अ-कांग्रेसी आन्दोलनोंपर कांग्रेसजनोंका अधिकार क्या हो सकता है ? देशकी स्वाधीनताका आन्दोलन छेड़ने और न छेड़नेका जब सारा उत्तरदायित्व कांग्रेसने गांधीजीपर छोड़ रखा है, और वे कुछ शर्तोंपर ही नेतृत्व करनेपर तैयार हैं, तब उनकी शर्तें मान्य होनी चाहिए; पर ये शर्तें केवल कांग्रेसजनोंके लिए ही हो सकती हैं। अतः दूसरी संस्थाओंके शान्त हुए बिना अगर आन्दोलन नहीं छिड़ता, तो निकट भविष्यमें इसकी कोई सम्भावना नहीं होनी चाहिए। क्योंकि भारतकी वर्तमान अवस्थामें हमें इस बातकी आशा नहीं है कि देशके सभी दल आन्दोलनका समर्थन तो क्या, उसका विरोध भी नहीं करेंगे। इस बातकी पुष्टि इस बातसे भी हो जाती है, जब गांधीजी कहते हैं कि कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीने जो प्रस्ताव पास किया है, उसके अतिरिक्त और कुछ वह कर नहीं सकती थी; क्योंकि उसके सामने कोई कार्यक्रम न था।

दीनबन्धु एण्डरूजका स्वर्गवास

दीनबन्धु सी० एफ० एण्डरूजकी मृत्यु विगत ५ अप्रैलको हो गयी। उनकी मृत्युसे वास्तवमें दीनोंका एक बन्धु उठ गया। एण्डरूजने भारतको ही अपना देश मान लिया था और सदा इसके हितोंके अनुकूल ही कार्य करते रहे। यह उन्हींके हृदयकी महत्ता थी कि उन्होंने अपना सारा जीवन ही दरिद्र नारायणकी सेवामें अर्पित कर दिया था। सेवाकी सच्ची भावनायें उनमें कितनी थीं और ख्यातिसे वे कितनी दूर रहते थे, इसका पता इसीसे लगता है कि उन्होंने सदा अपना समय और शक्ति ऐसे कार्योंमें लगायी, जिनकी ओर बहुतोंका ध्यान तक नहीं जाता था। प्रवासी भारतीयोंकी उनकी सेवा सदा स्मरणीय रहेगी। उनकी मृत्युसे भारतने अपना एक महान् हितैषी खो दिया। यह ऐसी क्षति है, जिसकी पूर्ति निकट भविष्यमें हो सकेगी, यह कहना कठिन है। वे सच्चे अर्थोंमें ईसाई और मानवताके उपासक थे। और इतने लोकप्रिय कि उनकी मृत्युसे सभी सम्प्रदायोंको आन्तरिक पीड़ा हुई है। ऐसी पवित्रात्माको प्रभुकी गोदमें शान्ति मिलेगी, इसमें सन्देह नहीं।



'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तासे पं० मावासेवक पाठक द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

विषय-सूची

नोट कर लीजिये—

	१ वर्ष	६ मास	३ मास
दैनिक (डांकसे)	१८)	१०)	६)
स्थानीय—	१५)	८)	५)
साप्ताहिक—	४)	२।।)	०
मासिक—	६)	३।।)	०
दैनिक बर्माके लिये	२५)	१४)	८)
साप्ताहिक—,,	७)	४)	०
मासिक— ,,	८)	५)	०

मैनेजर—विश्वमित्र

युद्ध-काल और वाणिज्य-व्यवसाय

श्री हरिश्चन्द्र अग्रवाल, बी० काम०

आज प्रायः नौ महीनेसे यूरोपमें युद्ध चल रहा है, और इसका अन्त कब होगा, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। युद्धको यदि राजनीतिक झञ्झावात या बवण्डर कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं। इससे सामाजिक और ार्थिक अवस्थामें बहुत उलट-फेर हो जाता है। युद्धसे जो ीषण क्षति होती है, उसकी पूर्ति सहज ही नहीं हो सकती। के समान धन-जन-नाशकारक और कोई वस्तु नहीं। मान युगमें कई कारणोंसे युद्धका खर्च बहुत अधिक बढ़ के है। गत यूरोपीय महायुद्धमें कितना धन खर्च हुआ उसका अन्दाज लगाना आसान नहीं। एक अमेरिकन ह, उसका हिसाब लगाकर बतलाया था ३९ हजार करोड़ र। यदि डालरका मूल्य तीन रुपया लगाया जाय, ह रकम १ लाख ९ हजार करोड़ रुपया होती है। ा रुपया उपार्जन करनेमें कितने दरिद्र एवं अभागे कोंको अपने शरीरका पसीना बहाना पड़ा होगा, ा अनुमान करना कठिन है। उस युद्धमें केवल धनकी हानि नहीं हुई थी, लाखों ही आदमियोंका भी हुआ था। उसके फलस्वरूप संसारकी सामाजिक, क, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थामें कितना परिवर्तन हुआ, उसका कोई हिसाब नहीं।

माज-गठनके आरम्भ-कालसे युद्ध चला आ रहा है। प्राचीन कालके युद्धमें इस प्रकार विपुल धनका ा नहीं होता था। आज लाखों पौण्ड खर्च करके एक जहाज तैयार किया जाता है और वही समुद्रमें गयी सुरङ्गसे स्पर्श होते ही तत्काल समुद्रके गर्भमें ा है। धनके साथ बहुत-से आदमियोंकी जान भी । वायुयान और तोप-निर्माणमें भी बहुत ज्यादा र्च होता है। युद्ध बढ़ते ही सभी चीजोंके मूल्यमें जाती है, इसलिए जीवन-निर्वाहका व्यय भी बहुत ढ़ जाता है। पुराने जमानेमें चङ्गेज खां या कुबलाह जयी वीर जब दिग्विजय करनेके उद्देश्यसे किसी ई करते, तब वे उस देशकी धन-सम्पत्ति लूटते, गांवों-शहरोंमें आग लगा देते, आदमियोंके खूनसे पृथ्वीको रंग देते। इससे आक्रान्त देशकी जो धन-सम्पत्ति और खाद्य-सामग्री विनष्ट होती, उससे उस देशके लोगोंको कितना अर्थ-कष्ट होता होगा, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इसपर भी ऐतिहासिकोंने इन अत्याचारी डाकुओंकी वीरत्व-कहानीसे इतिहासके पन्ने रंग डाले हैं। पर इन वीरोंके कार्योंसे क्या उपकार हुआ, यह आज तक कोई बतला नहीं सका।

देशमें युद्ध उपस्थित होनेपर जन-साधारणमें आतङ्क छा जाता है। पुराने जमानेमें अगर किसी देशपर आक्रमण होता, तो उस देशके लोग अपने धन या सञ्चित मूल्यवान वस्तुओं-को जमीनके नीचे गाड़कर मृत्युकी प्रतीक्षामें अपने घरके दरवाजेपर बैठे रहते अथवा अपनी जान लेकर किसी दूसरे देशमें भाग जाते थे। बहुत-से आदमी दिग्विजयी आक्रमण-कारियों द्वारा आहत या निहत होते। जो किसी प्रकार इस भीषण विपत्तिसे अपनी रक्षा कर लेते, वे खाद्य तथा अन्य सामग्रियोंके मूल्यमें वृद्धि होनेके कारण अत्यन्त कष्टसे अपना जीवन व्यतीत करनेको बाध्य होते। प्रतिदिन व्यवहारमें आनेवाली चीजोंको बहुत ऊंचे दामोंमें खरीदना पड़ता और फसलकी हानि होनेके कारण कई स्थानोंमें घोर दुर्भिक्ष उपस्थित हो जाता। आज उस अवस्थामें कुछ परिवर्तन अवश्य दिखाई देता है, पर लोगोंके आतङ्कका ह्रास नहीं हुआ है। विलियम शाने लिखा है कि किसी बड़े युद्धके उपस्थित होनेपर उसका तत्काल प्रभाव देशके चालू सिक्केपर पड़ता है। सभी अर्थ-सञ्चय करते हैं और उसे पानेके लिए सभी व्यग्र हो उठते हैं। सभी तरहके सिक्कोंके सम्बन्धमें यह बात लागू होती है, चाहे वह सिक्का धातुका हो या कागजका। जिस देशमें बैङ्कोंकी व्यवस्था जितनी अच्छी होती है, उस देशमें युद्धका फल उतना ही शीघ्र अनुभूत होता है। केवल पैसेका लोभ ही इसका कारण नहीं है, इसका मुख्य कारण है स्नायविक आतङ्क। जिसके पास नगद रुपया रहता है, उसे वह गुप्त रूपसे सञ्चित करके रखता है। इसका कारण

युद्ध-काल और वाणिज्य-व्यवसाय

श्री हरिश्चन्द्र अग्रवाल, बी० काम०

आज प्रायः नौ महीनेसे यूरोपमें युद्ध चल रहा है, और इसका अन्त कब होगा, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता। युद्धको यदि राजनीतिक झञ्झावात या बवण्डर कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं। इससे सामाजिक और आर्थिक अवस्थामें बहुत उलट-फेर हो जाता है। युद्धसे जो भीषण क्षति होती है, उसकी पूर्ति सहज ही नहीं हो सकती। युद्धके समान धन-जन-नाशकारक और कोई वस्तु नहीं। वर्तमान युगमें कई कारणोंसे युद्धका खर्च बहुत अधिक बढ़ गया है। गत यूरोपीय महायुद्धमें कितना धन खर्च हुआ था, उसका अन्दाज लगाना आसान नहीं। एक अमेरिकन पत्रने उसका हिसाब लगाकर बतलाया था ३९ हजार करोड़ डालर। यदि डालरका मूल्य तीन रुपया लगाया जाय, तो यह रकम १ लाख ९ हजार करोड़ रुपया होती है। इतना रुपया उपार्जन करनेमें कितने दरिद्र एवं अभागे श्रमिकोंको अपने शरीरका पसीना बहाना पड़ा होगा, उसका अनुमान करना कठिन है। उस युद्धमें केवल धनकी ही हानि नहीं हुई थी, लाखों ही आदमियोंका भी संहार हुआ था। उसके फलस्वरूप संसारकी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्थामें कितना विराट् परिवर्तन हुआ, उसका कोई हिसाब नहीं।

समाज-गठनके आरम्भ-कालसे युद्ध चला आ रहा है। परन्तु प्राचीन कालके युद्धमें इस प्रकार विपुल धनका विनाश नहीं होता था। आज लाखों पौण्ड खर्च करके एक जङ्गी जहाज तैयार किया जाता है और वही समुद्रमें बैठायी गयी सुरङ्गसे स्पर्श होते ही तत्काल समुद्रके गर्भमें बैठ जाता है। धनके साथ बहुत-से आदमियोंकी जान भी जाती है। वायुयान और तोप-निर्माणमें भी बहुत ज्यादा रुपया खर्च होता है। युद्ध बढ़ते ही सभी चीजोंके मूल्यमें वृद्धि हो जाती है, इसलिए जीवन-निर्वाहका व्यय भी बहुत अधिक बढ़ जाता है। पुराने जमानेमें चङ्गेज खां या कुबलाह खां जैसे विजयी वीर जब दिग्विजय करनेके उद्देश्यसे किसी देशपर चढ़ाई करते, तब वे उस देशकी धन-सम्पत्ति लूटते, गांवों-शहरोंमें आग लगा देते, आदमियोंके खूनसे पृथ्वीको रंग देते। इससे आक्रान्त देशकी जो धन-सम्पत्ति और खाद्य-सामग्री विनष्ट होती, उससे उस देशके लोगोंको कितना अर्थ-कष्ट होता होगा, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। इसपर भी ऐतिहासिकोंने इन अत्याचारी डाकुओंकी वीरत्व-कहानीसे इतिहासके पन्ने रंग डाले हैं। पर इन वीरोंके कार्योंसे क्या उपकार हुआ, यह आज तक कोई बतला नहीं सका।

देशमें युद्ध उपस्थित होनेपर जन-साधारणमें आतङ्क छा जाता है। पुराने जमानेमें अगर किसी देशपर आक्रमण होता, तो उस देशके लोग अपने धन या सञ्चित मूल्यवान वस्तुओं-को जमीनके नीचे गाड़कर मृत्युकी प्रतीक्षामें अपने घरके दरवाजेपर बैठे रहते अथवा अपनी जान लेकर किसी दूसरे देशमें भाग जाते थे। बहुत-से आदमी दिग्विजयी आक्रमण-कारियों द्वारा आहत या निहत होते। जो किसी प्रकार इस भीषण विपत्तिसे अपनी रक्षा कर लेते, वे खाद्य तथा अन्य सामग्रियोंके मूल्यमें वृद्धि होनेके कारण अत्यन्त कष्टसे अपना जीवन व्यतीत करनेको बाध्य होते। प्रतिदिन व्यवहारमें आनेवाली चीजोंको बहुत ऊंचे दामोंमें खरीदना पड़ता और फसलकी हानि होनेके कारण कई स्थानोंमें घोर दुर्भिक्ष उपस्थित हो जाता। आज उस अवस्थामें कुछ परिवर्तन अवश्य दिखाई देता है, पर लोगोंके आतङ्कका ह्रास नहीं हुआ है। विलियम शाने लिखा है कि किसी बड़े युद्धके उपस्थित होनेपर उसका तत्काल प्रभाव देशके चालू सिक्केपर पड़ता है। सभी अर्थ-सञ्चय करते हैं और उसे पानेके लिए सभी व्यग्र हो उठते हैं। सभी तरहके सिक्कोंके सम्बन्धमें यह बात लागू होती है, चाहे वह सिक्का धातुका हो या कागजका। जिस देशमें बैङ्कोंकी व्यवस्था जितनी अच्छी होती है, उस देशमें युद्धका फल उतना ही शीघ्र अनुभूत होता है। केवल पैसेका लोभ ही इसका कारण नहीं है, इसका मुख्य कारण है स्नायविक आतङ्क। जिसके पास नगद रुपया रहता है, उसे वह गुप्त रूपसे सञ्चित करके रखता है। इसका कारण

है, भय। जिसके पास कम्पनी कागज रहता है, उसे वह भुनाकर नगद रुपया लेना चाहता है। जिसका रुपया बैङ्कमें जमा रहता है, उसे निकालनेके लिए वह सबसे पहले चेष्टा करता है। इसका मूल कारण भय है। यदि यही दशा अबाध रूपसे रहे, तो सभी देशोंकी आर्थिक अवस्था सिर्फ एक सप्ताहमें डांवाडोल हो जाय।

युद्ध उपस्थित होते ही रुपये अथवा चालू सिक्केकी कमी पड़ जाती है। इसका कारण यह है कि वर्तमान समयमें प्रायः सभी प्रदेशोंमें बैङ्कमें रुपया जमा करनेकी प्रथा है। बैङ्कोंमें जितना रुपया जमा रहता है, उतने सिक्के देशमें चालू नहीं रहते। उसका कुछ हिस्सा चालू रहता और खरीद-बिक्रीके काममें लगा रहता है। इसलिए चेष्टा करनेपर भी बैङ्क जितनी जल्दी चाहे, उतनी जल्दी जमा किये हुए रुपयेको लौटा नहीं सकता। इसी कारण उस समय देशमें आर्थिक उलट-फेर होता है। ऐसा होना वस्तुतः अनिवार्य है। १८४४ में ग्रेट ब्रिटेनमें जो बैङ्क-सम्बन्धी कानून बना, उसमें यह व्यवस्था की गयी थी कि बैङ्क जितने रुपयेके नोट बाजारमें बाहर रखेगा, उतने मूल्यका सोना अपने यहां हर समय सञ्चित रखना होगा। सञ्चित सोनेके अतिरिक्त एक फार्दिङ्गका भी नोट बैङ्कोंको बाजारमें रखना नहीं होगा। पर सङ्कटके समय इस व्यवस्थाके कारण बैङ्कोंको बहुत कठिनाईका सामना करना पड़ता था। इसीलिए बैङ्क-सञ्चालन सम्बन्धी इस व्यवस्थाको रद कर बैङ्क आफ इंगलैण्ड-को अतिरिक्त नोट बाहर करनेका अधिकार दिया गया।

गत यूरोपीय महायुद्धमें जब यह मालूम हुआ कि ग्रेट ब्रिटेनको भी सम्मिलित होना पड़ेगा, उसी समयसे इंगलैण्ड-के बाजारमें सावरिन गिनी जैसे अदृश्य होने लगी। १ अगस्त १९१४ के पहले पांच दिनके अन्दर बैङ्क आफ इंगलैण्डको अमानतदारोंको २ करोड़ ७० लाख पौण्ड चुकाना पड़ा। १ अगस्तको बैङ्कके अधिकारियोंने हिसाब लगाकर देखा कि बैङ्कमें जितना सोना जमा है, उससे और अधिक दिन तक अमानतदारोंकी मांग पूरी नहीं की जा सकती। उन्होंने अपनी कठिनाई उस समयके अर्थ-मन्त्रीको बतलायी। अर्थ-मन्त्रीने उसी समय उन्हें प्रचलित नियमका उल्लङ्घन कर बाजारमें अधिक नोट चलानेकी अनुमति दी और पार्लमेण्टकी मार्फत कुछ ही दिनोंमें इस सम्बन्धमें एक कानून बनवा दिया। पांच दिनके अन्दर ही वह कानून पास होकर जारी हो गया। उसके अनुसार उस समयसे ही इंगलैण्डके बाजार-में १ पौण्ड और १० शिलिङ्गके अपरिशोधनीय नोट जारी किये गये। उस सङ्कटके समय धातुके सिक्कोंके अभावको दूर करनेके हेतु केवल अस्थायी भावसे खरीद-बिक्रीके कार्यको चलानेके लिए ही ये नोट जारी किये गये थे।

किन्तु इन अतिरिक्त नोटोंके जारी करनेका फल शीघ्र ही फलित होने लगा। इससे खाने-पीनेकी वस्तुओंकी दर बढ़ गयी और जनसाधारणके जीवन-निर्वाहका खर्च भी बढ़ गया। युद्धके समाप्त होनेके बाद भी कुछ दिनों तक यह व्यवस्था जारी रही। पर ग्रेट ब्रिटेनने चतुराईसे ऐसी व्यवस्था कर रखी थी कि देशके क्रय-विक्रयकी आवश्यकता-नुसार बाजारमें अतिरिक्त नोटोंका व्यवहार कम होने लगा। इसलिए ग्रेट ब्रिटेनमें वस्तुओंके मूल्यमें फ्रान्सकी अपेक्षा बहुत कम वृद्धि हुई।

इस सम्बन्धमें एक और भी विचारणीय बात है। वर्तमान समयमें संसारमें जो अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्य फैला हुआ है, युद्धके समय उसमें बाधा उपस्थित होती है। इसलिए दूर देशोंमें मालकी रफ्तनी करना असम्भव हो जाता है। इस-लिए जो देश अपने यहांका कच्चा माल बाहर भेजता है, विदेशोंमें उसकी बिक्री नहीं होती। स्वदेशमें भी अनेक कारणोंसे उसकी मांग कम हो जाती है। इसके कारण उसका मूल्य भी कम हो जाता है। पराधीन देशोंमें मुद्राके मूल्यको बढ़ाकर चीजोंके मूल्यको कुछ ऊपर उठाया जाता है। फलस्वरूप इस घटती-बढ़तीके बीच पड़कर वस्तुओंका मूल्य ऐसे स्थानपर आकर रुक जाता है कि यह अनुमान करना कठिन हो जाता है कि आगे इसकी क्या स्थिति होगी। जो चीजें विदेशोंको भेजी जाती हैं, किसान और शिल्पी उन्हें इतने अधिक परिणाममें तैयार करते हैं कि वे देशकी आवश्यकतासे बहुत अधिक होती हैं। इसलिए अतिरिक्त या बढ़े हुए मालकी खपत देशमें नहीं होती। उस दशामें मूल्यमें कमी न होनेपर भी उसके खरीदार नहीं जुटते। फलस्वरूप देशके माल-उत्पादक किसानों और शिल्पियोंको क्षतिग्रस्त होना पड़ता है। पर जो शिल्पी विदेशी मालके साथ प्रतियोगिता करनेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं, वे अगर ऐसे समयमें चेष्टा करें, तो उन्हें बहुत सुविधा

मिल सकती है। विदेशी मालका आना कम हो जाता है और विदेशी वस्तुओंके मूल्यमें वृद्धि होनेसे वे आसानीसे विदेशी मालके साथ प्रतियोगिता कर सकते हैं। ऐसे ही मौकेसे लाभ उठाकर शिल्पहीन देशोंमें नाना प्रकारके शिल्पोंका जन्म होता है। गत यूरोपीय महायुद्धके समय ऐसे कई देशोंमें कल-कारखाने खुले। युद्धसे उन्हें अपने पैरोंपर खड़े होनेका अवसर मिला। पराधीन देश इस सुविधाका उपयोग बहुत दिनों तक नहीं कर सकते, पर स्वाधीन देश तो इससे लाभ उठाकर अपनेको समृद्धिशाली बना सकते हैं।

वर्तमान समयमें हमारे देशमें नाना प्रकारके रोगों और व्याधियोंका जैसा प्रकोप है, उससे इस देशमें औषधियां जितने सुलभ मूल्यमें मिलेंगी, उतना ही देशके लिए हितकर होगा। आजकल युद्धके कारण बाहरसे औषधियोंका आना प्रायः बन्द ही हो गया है, इसलिए यहां उनके दाम बढ़ गये हैं। इससे इस देशके गरीब लोगोंको बहुत कष्ट हो रहा है। औषधि न मिलनेकी वजहसे बहुत-से रोगियोंकी समुचित चिकित्सा नहीं हो पाती। ऐसी अवस्थामें सबसे पहले हमें इस बातकी चेष्टा करनी चाहिए, जिससे हमारे देशमें ही आश्यकतानुसार औषधियां तैयार हो सकें। ऐसे सुअवसर बहुत कम मिलते हैं। इस समय देशके हरएक व्यक्तिका कर्तव्य है कि वह राष्ट्र-कल्याणको अपने जीवनका लक्ष्य बनाये। राष्ट्र-हितके अतिरिक्त जो व्यक्तिगत या साम्प्रदायिक स्वार्थ-साधनकी चेष्टा करते हैं, उनका पतन अवश्यम्भावी है, इसलिए जब तक हम राष्ट्रीय हितके लिए अपने क्षुद्र स्वार्थोंका बलिदान नहीं कर देते, तब तक हमारी दुरवस्था दूर नहीं हो सकती।

यह प्रायः देखनेमें आया है कि युद्धके फलस्वरूप देशके शिल्प और वाणिज्यकी गति परिवर्तित हो जाती है। गत यूरोपीय महायुद्धके अवसरपर तो यह परिवर्तन विशेष रूपसे देखा गया था। जिन देशोंमें शिल्प और उद्योग-धन्धे अवनत अवस्थामें पड़े थे, वहां युद्धके समय व्यवसाय-वाणिज्यकी बड़ी उन्नति हुई। जिन देशोंके शिल्प और वाणिज्य-व्यवसाय उन्नतावस्था में थे, उनकी अवनति हो गयी। यूरोपीय महायुद्धके पहले ब्रिटेन और जर्मनी उद्योग और वाणिज्य-व्यवसायमें सब देशोंसे आगे थे। किन्तु युद्धके बाद अमेरिका तथा रूस बहुत आगे बढ़ गये। रूस पहले कृषि-प्रधान देश था और वहां पुराने तरीकेपर खेती होती थी। पर अब वह शिल्प-प्रधान देश होनेकी चेष्टा कर रहा है। रूसकी प्राकृतिक सम्पत्ति इतनी अधिक है कि यदि वह शिल्प-प्रधान देश हो जाय, तो अन्य शिल्प-प्रधान देशोंको उसके साथ प्रबल प्रतिद्वन्द्विता करनी होगी। वर्तमान यूरोपीय युद्धसे लाभ उठाकर रूस जिस प्रकार बालकन देशों तथा पश्चिमी एशियामें अपना प्रभाव बढ़ा रहा है, उससे ऐसा जान पड़ता है कि निकट भविष्यमें ही पूर्वी यूरोप और एशियाके बहुत बड़े भागमें वह अपने मालका प्रचार कर लेगा। केवल कल-कारखानोंकी स्थापनासे ही किसी देशका कल्याण नहीं होता। पर उन कारखानोंमें बने हुए मालकी खपत बढ़ानेकी व्यवस्था करनेसे देशको वास्तविक लाभ होता है। इसलिए ऐसा सुयोग पाकर रूस अपने मुंहपरसे पर्दा हटाकर अपने उद्योग-धन्धोंको बढ़ानेकी चेष्टामें लग गया है। रूस इस मौकेकी तलाशमें था कि बाल्टिक सागरमें उसे अपने जङ्गी और व्यापारी जहाज रखनेका सुयोग मिल जाय और इसके लिए कितने ही अड्डे बनाये जायं, तो उसके वाणिज्य-व्यवसायको विशेष सुविधा मिलेगी। इसीलिए उसने फिनलैण्डपर आक्रमण किया और उसपर विजय भी पायी। गत यूरोपीय महायुद्धके समयसे ही यूरोपके अनेक देश आत्म-निर्भरशील होनेकी चेष्टा करते आ रहे हैं। इस बारके महायुद्धसे उन्हें अपने प्रयत्नमें और भी अग्रसर होनेका अवसर मिलेगा। फलतः उद्योग-धन्धे तथा वाणिज्य-व्यवसायकी गतिमें और भी परिवर्तन होंगे। यदि यह युद्ध अधिक दिन तक जारी रहता, तो शिल्प और वाणिज्यके क्षेत्रमें नयी गति और नयी पद्धतियां दिखाई पड़तीं। एक प्रसिद्ध अंगरेज लेखकने लिखा है कि शान्तिके समय राष्ट्रोंका क्षय और युद्धके समय उनका प्रादुर्भाव होता है। प्राचीन समयमें राष्ट्र क्षात्रशक्ति-प्रधान होते थे। संग्राम और सङ्घर्षमें ही उनकी सामरिक शक्तियोंका विकास होता था। इस युगके राष्ट्र व्यवसाय-प्रधान हैं। इसलिए इस समय युद्ध-कालमें वाणिज्य-शक्तिका विकास होगा। नेपोलियनके समयमें युद्धके फलस्वरूप ग्रेट ब्रिटेनमें जो प्रगति हुई, उससे वहांका व्यवसाय-वाणिज्य विशेष रूपसे उन्नत हुआ। अमेरिकामें उद्योग-धन्धोंकी उन्नति वहांके गृहयुद्धके बाद

हुई और फ्राङ्को-प्रशियन युद्धके बाद जर्मनीके शिल्प-वाणिज्यका सितारा चमका ।

क्यों ऐसा होता है ? रणचण्डीके अट्टहास और ताण्डवमें जब विनाशके स्फुलिङ्ग दशों दिशाओंमें फैलने लगते हैं, तब उससे मानव-समाजकी गतिविधि परिवर्तित हो जाती है, उसका क्या अर्थ है ? संहारके भीतर सृष्टि-रचना प्रकृतिका एक अगम्य रहस्य है। विनाशके भीतर सृष्टिका बीज निहित रहता है । गत यूरोपीय महायुद्धके बाद शिल्प-वाणिज्य-क्षेत्रमें जो क्रान्ति हुई है, उससे जापानने विशेष रूपसे लाभ उठाया । वर्तमान युद्ध अभी एक प्रकारसे आरम्भ ही हुआ है और अभी कब तक चलेगा, ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता । इसमें भी दोनों ओरसे बहुत आदमी हताहत होंगे और बहुत रुपया खर्च होगा । इस बारके युद्धसे भी संसारके शिल्प-वाणिज्य-क्षेत्रमें विप्लव होगा । इस समय सर्वत्र वैश्य-शक्ति प्रबल होती जा रही है । इस सुयोगसे भारतवर्षको भी लाभ उठाना चाहिए । आत्मरक्षाके लिए उसे अपने शिल्प-वाणिज्यकी उन्नति और विकासकी ओर ध्यान देना चाहिए । इसलिए देशके प्रतिभाशाली व्यक्तियोंका परम कर्तव्य है कि देशमें वैश्यशक्तिको जागृत करनेके लिए वे चेष्टा करें । यद्यपि पराधीन देशके लिए ऐसा करना कठिन है, तथापि हमें अपना प्रयत्न अवश्य करना चाहिए । जहां तक सम्भव हो, आर्थिक विषयोंमें हमें आत्म-निर्भर होना चाहिए । हमारे खेतोंमें ज्यादा फसल पैदा हो, हमारे कल-कारखानोंमें देशकी मांग पूरी करनेके लिए माल तैयार हो, गुण और मूल्यमें हमारे देशकी बनी चीजें बाहरकी चीजोंके मुकाबलेमें ठहर सकें, यदि हम ऐसा कर सकें, तो हम वर्तमान युद्धसे मिले हुए अवसरसे उचित लाभ उठा सकेंगे ।

———

जापानकी साम्राज्य-लालसा

प्रो० शङ्करसहाय सक्सेना, एम० ए०, एम० काम०

एशियाके पूर्वीय क्षितिजपर एक भयानक धूमकेतुके समान जापानका उदय हो रहा है। पिछली दो दशाब्दियोंमें जापान पूर्वीय एशियाके लिए भीषण खतरा बन गया है। चीन तो आज शिन्तोके भयानक साम्राज्यवादका शिकार बन ही रहा है, साथ ही चीनकी स्वतन्त्रता भी खतरेमें पड़ गयी है । किन्तु यह पीली विपत्ति केवल चीनको तहस-नहस करके ही सन्तुष्ट होनेवाली नहीं है । यदि महाराष्ट्र चीनकी भाग्यश्रीने पलटा खाया और चीनको जापान उद्-रस्थ करनेमें सफल हो गया, तो पूर्वीय एशियाके राष्ट्र, पूर्वीय द्वीप-समूह तथा आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्डको भी बारी-बारीसे शिन्तोके प्रबल प्रवाहका सामना करना होगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है । जापानी साम्राज्यवादी नीतिके पीछे कौन-सी शक्ति काम कर रही है, यह जाननेके लिए हमें अस्सी वर्ष पीछेकी अवस्थाका अध्ययन करना होगा ।

यह द्वीप-समूह लगभग २०० वर्षोंसे शेष संसारसे अपनेको पृथक् किये हुए था । राज्य किसी भी जापानीको विदेश-भ्रमण अथवा विदेशियोंसे व्यापार करनेकी आज्ञा नहीं देता था । इस नियमके विपरीत आचरण करनेवालोंको प्राण-दण्ड दिया जाता था । लगभग अस्सी वर्ष हुए कि कप्तान पैरीकी अधीनतामें अमेरिकाके ब्लैक शिप्स नामक जहाजी बेड़ेने जापानी राष्ट्रका प्रवेश-द्वार बलपूर्वक खोल दिया । एक बार पश्चिमीय सभ्यता तथा विचारोंके सम्पर्कमें आने-पर जापानियोंने जिस शीघ्रतासे पश्चिमीय आदर्शको अप-नाया, वह आश्चर्यजनक है । बीस वर्षोंमें ही जापानने अपनी नौ-सेनाको द्रुतगतिसे बढ़ाया और शीघ्र ही वह एक प्रबल सामुद्रिक शक्ति बन गया । इन्हीं दिनों जापानने पश्चिमी राष्ट्रोंसे अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेके लिए सैनिक-शक्तिको भी खूब बढ़ाया । इस समय तक पश्चिमी राष्ट्रोंने चीनमें अपना प्रभाव जमा लिया था । वे उत्तर-चीनपर रूसके बढ़ते हुए प्रभावसे सशङ्क हो उठे, अतएव उन्होंने जापानको अपनी सामरिक शक्ति बढ़ानेसे नहीं रोका, इसके विपरीत उन्होंने जापानको प्रोत्साहन दिया । वे चाहते थे कि एशियाके सुदूर-पूर्वमें रूसका एक प्रबल प्रति-

द्वन्द्वी खड़ा हो जाये। जापानको आगे बढ़ानेमें रूसका चिर-शत्रु ब्रिटेन सबसे आगे था। १९०२ में जापान तथा ब्रिटेनमें एक सैनिक सन्धि हुई, जिससे जापानको अपनी शक्ति बढ़ानेमें बड़ी सहायता मिली। जापानको आरम्भसे ही अन्तर्राष्ट्रीय अशान्तिके कारण अनुकूल परिस्थिति मिलती गयी, नहीं तो शक्तिशाली यूरोपीय राष्ट्र सुदूर पूर्वमें एक प्रबल सामरिक शक्तिको उत्पन्न ही नहीं होने देते। दो वर्षोंके उपरान्त रूस और जापान भिड़ गये, पश्चिमीय राष्ट्रों और विशेषकर ब्रिटेनकी सहानुभूति जापानके साथ थी। संसारने चकित होकर देखा कि एशियाके एक छोटे-से देशने जारके शक्तिमान् साम्राज्यको बुरी तरह परास्त कर दिया।

रूस-जापान-युद्धमें विजय प्राप्त करनेके उपरान्त जापानने अपना साम्राज्य स्थापित करनेकी ओर ध्यान दिया। इसके पूर्व भी जापानने कुछ छोटे-छोटे समीपवर्ती द्वीपोंपर अपना अधिकार कर लिया था, १८९५ में उसने फारमोसाको विजय कर लिया। १९०५ में रूस-जापान-युद्धके परिणाम-स्वरूप जापानने सखालियनका दक्षिण भाग रूससे पट्टेपर ले लिया, और मन्चूरियामें महत्त्वपूर्ण राजनीतिक तथा आर्थिक सुविधायें प्राप्त कर लीं। १९१० में जापानने चीनके एक भाग कोरियाको चीनसे छीन लिया।

एक बात ध्यानमें रखनेकी है, जापानमें सर्वप्रथम १७२१ में जन-संख्याकी गणना हुई थी, उस समय जापानकी जन-संख्या दो करोड़ साठ लाख थी। १८४० तक जापानकी जन-संख्या लगभग स्थिर रही; परन्तु १८४० के उपरान्त जन-संख्या शीघ्रतासे बढ़ने लगी। १८७२ में जन-संख्या तीन करोड़से अधिक, १८८९ में चार करोड़ तथा १९०९ में पांच करोड़ हो गयी। तब बढ़ती हुई जन-संख्याकी समस्या जापानके सामने उपस्थित हुई। जन-संख्या केवल पांच करोड़ तक नहीं रही, पिछले तीस वर्षोंमें जापानकी जन-संख्या दुगुनी हो गयी। १९३९ की मनुष्य-गणनाके अनुसार जापानकी जन-संख्या दस करोड़के लगभग है। जापानकी भूमि अधिकतर खेती-बारीके लिए अनुपयुक्त है। समस्त भूमिके केवल १६ प्रतिशत भागपर खेती-बारी हो सकती है। खेती योग्य भूमिके अनुपातसे जापानकी जन-संख्या संसारमें सब देशोंसे अधिक घनी है। जापानकी आधीसे कुछ कम जन-संख्या खेती-बारीमें लगी हुई है, और अधिकका भूमिसे गुजारा नहीं होता। यदि कृषिकी उन्नति करनेका प्रयत्न किया जाये और बांसकी घासको नष्ट करके अधिक भूमि खेती-बारीके योग्य बनायी जाये, तो खेती-बारीसे अधिक जन-संख्याका पालन हो सकता है। परन्तु इसके लिए धन चाहिए। राज्य यदि भूमिका सुधार करना चाहे, तो केवल दो ही रास्ते हैं—सेनाके व्ययमें कमी करके अथवा उद्योग-धन्धोंपर कर लगाकर। परन्तु आज जापान-राष्ट्रकी वास्तविक शक्ति सेना तथा व्यवसायियोंके हाथमें है। अतएव यह तो होना नहीं है। इसका फल यह हो रहा है कि जापानके नगरोंकी जन-संख्या भयानक वेगसे बढ़ रही है। पिछले थोड़े-से वर्षोंमें जापानके नगरोंकी जन-संख्या पचासी प्रतिशत बढ़ गयी है। जापानी अपने देशको छोड़ना नहीं चाहते, जापानी जाति प्रवास-भीरु है। १९२६ से १९३० के बीचमें जापानकी जन-संख्यामें सैंतालीस लाख व्यक्तियोंकी वृद्धि हुई; परन्तु इसी समयमें केवल अट्ठाइस हजार जापानियोंने प्रवास किया। जापानियोंको बहुत वर्षोंसे कोरिया तथा मन्चूरियामें जाकर बसनेकी सुविधायें प्राप्त हैं; परन्तु इन दोनों प्रदेशोंमें अभी तक बहुत कम जापानी जाकर बसे हैं। अनुमानतः प्रति वर्ष जापानकी जन-संख्यामें दस लाखकी वृद्धि होती है, अतः जापानके सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि इस बढ़ती हुई जन-संख्याको देशमें ही रखकर कैसे भोजन दे सकता है। जापानके राजनीतिक विधाताओंने स्वभावतः ऐसी दशामें देशकी औद्योगिक उन्नतिको ही इस समस्याको हल करनेका साधन बनाया। सारेका सारा राष्ट्र आज जापानकी औद्योगिक उन्नतिमें राष्ट्रका भविष्य अन्तर्हित देखता है। यही कारण है, राज्य सब प्रकारसे व्यवसायियोंको प्रोत्साहन देना अपना धर्म समझता है। किन्तु जब जापानी राष्ट्र स्थायी रूपसे अपने विदेशी व्यापारके द्वारा अपनी बढ़ती हुई जन-संख्याके भरण-पोषणकी समस्याको हल करनेपर तुला हुआ है, तब वह एक बड़ी जोखिम भी उठा रहा है। यदि भविष्यमें वह कच्चा माल तथा खनिज पदार्थ यथेष्ट मात्रामें प्राप्त न कर सका अथवा अपने मालकी खपतके लिए विदेशी बाजारोंको सुरक्षित न रख सका, तो जापानका आर्थिक सङ्गठन छिन्न-भिन्न हो जायेगा और उस समय जापानके सामने जो भयङ्कर

राष्ट्रीय विपत्ति आयेगी, उसका ध्यान करनेसे ही भय प्रतीत होता है। जापानी राजनीतिज्ञोंके मस्तिष्कमें यह बात घूम रही है। वे जानते हैं कि राष्ट्रने जो मार्ग पकड़ा है, वह जोखिमका है; अतएव उन्हें यह आवश्यक प्रतीत होने लगा है कि साम्राज्य-विस्तारके द्वारा कच्चे माल तथा खनिज पदार्थोंकी पूर्ति और पक्के मालकी खपतकी समस्याको स्थायी रूपसे हल कर दिया जाये। यदि यह मान भी लिया जाये कि शान्तिके समय जापानको चीनसे कच्चा माल मिल सकेगा और वह जापानके तैयार मालकी खपतका बाजार बना रहेगा (जो कि सम्भव नहीं है), तो भी किसी भावी युद्धमें जापानका इस प्रकार आर्थिक दृष्टिसे परावलम्बी होना उसके राजनीतिक पतनका कारण बन सकता है। यही कारण है कि जापान चीनपर राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करके अपनी सैनिक शक्तिके द्वारा अपने आर्थिक सङ्गठनको अक्षुण्ण बनाये रखनेकी युक्ति सोच रहा है।

किन्तु जो लोग जापानी साम्राज्यवादके पीछे केवल आर्थिक प्रश्नको ही देखते हैं, वे चित्रकी एक ओर ही देख रहे हैं। जापानी साम्राज्यवादको पूर्णतः समझनेके लिए यह आवश्यक है कि हम जापानी राष्ट्रकी आत्माको समझें। जापानका छोटेसे छोटा बच्चा भी इस भावको विश्वासके साथ अपने हृदयमें पोषित करता है कि जापानी जाति संसारकी अन्य जातियोंसे श्रेष्ठ है और उसका आविर्भाव संसारकी शान्तिको अक्षुण्ण रखने तथा अन्य जातियोंपर शासन करनेके लिए हुआ है। जापानी, वह चाहे किसी धर्मको माननेवाला क्यों न हो, शिन्तो धर्ममें विश्वास अवश्य रखता है। गृह-सचिवने अभी हालमें शिन्तो धर्मकी व्याख्या करते हुए कहा था—"वह राष्ट्रीय कर्तव्य है, जो धर्मके ऊपर है।" वास्तवमें शिन्तो धर्म एक राजकीय धर्म है, जिसमें सम्राट्को भगवान् सूर्यका सीधा वंशज तथा जापानियोंको भगवान् सूर्यकी सन्तान माना जाता है। इसी आधारपर जापानी अपनेको सर्वश्रेष्ठ जाति तथा संसारके नेतृत्वका अधिकारी मानते हैं। शिन्तो धर्ममें राज्य तथा सम्राट्की पूजाका विशेष महत्त्व है। सम्राट् और राज्यके विरुद्ध कोई बात जापानमें सहन नहीं की जा सकती। सम्राट्की दैवी उत्पत्तिमें जापानका साधारण कुली और विश्वविद्यालयका प्रोफेसर, सभी एक समान विश्वास करते हैं। विश्वविद्यालयोंमें विद्वान् अध्यापक शिन्तोके आदर्शोंपर व्याख्यान देते समय सम्राट्के दैवी अवतारका उसी भक्ति और विश्वासके साथ वर्णन करते हैं, जिस विश्वास तथा भक्तिके साथ एक भक्त अपने आराध्य देवके मन्दिरमें जाता है। इस राष्ट्रीय धर्मकी छत्र-छायामें अनेक राष्ट्रीय सङ्गठन शिन्तोके आदर्शवादको व्यवहारिक रूप देनेके लिए स्थापित हो चुके हैं। इनमेंसे दो मुख्य हैं—प्रथम ब्लैक-ड्रैगन-सोसायटी और दूसरा शोवा रेस्टोरेशन मूवमैण्ट। सम्राट् तथा राज्यकी पूजाका भाव जापानियोंमें ऐसा दृढ़ हो गया है कि प्रति वर्ष बहुत-सी ऐसी घटनायें होती रहती हैं कि यदि किसी राज्य-कर्मचारीसे कोई राजकीय कार्य बिगड़ जाता है अथवा उसका प्रयत्न विफल हो जाता है, तो वह हरकीरी करके अपनी आत्म-हत्या कर लेता है।

ब्लैक-ड्रैगन-सोसायटी एक गुप्त संस्था है, इस संस्थाके सदस्य लाखोंकी संख्यामें हैं। ब्लैक-ड्रैगन-सोसायटीके सदस्य गुप्त रूपसे कार्य करते हैं, उनकी सभायें गुप्त होती हैं और जब कभी किसी राजनीतिज्ञके कार्यको जापानके साम्राज्य-विस्तारकी दृष्टिसे हानिकारक समझती है, यह संस्था अपने किसी सदस्यके द्वारा उसका वध करवा देती है। अधिकतर सैनिक इस संस्थाके सदस्य हैं और इस संस्थाके नेताके सङ्केतपर सेना मन्त्रिमण्डलकी परवाह न करके स्वयं अपने उत्तरदायित्वपर साम्राज्य-विस्तारके कार्यको अपने हाथमें ले लेती है। वास्तवमें जापानकी वैदेशिक नीतिका निर्णय करनेवाली सरकार नहीं है, वरन् इन दोनों संस्थाओंके नेता हैं। दूसरी संस्थाके सदस्य अधिकतर तरुण सैनिक हैं। कर्नल ऐजावाने अगस्त १९३९ को जनरल नागाटाका वध किया था, कोर्ट मार्शलके सामने उपस्थित होकर उसने जो अपना बयान दिया था, उससे "शोवा रैस्टोरेशन आन्दोलन" का अभिप्राय समझमें आ जाता है। कर्नलने कहा था—"सम्राट् भगवान्का अवतार है, अतएव समस्त राजनीतिक तथा आर्थिक अधिकार सम्राट्के हाथमें ही होना चाहिए, प्रजातन्त्र एक भयङ्कर भूल है। इसी उद्देश्यसे प्रेरित होकर मैंने जनरलका वध किया था।" दोनों ही संस्थायें प्रजातन्त्रके विरुद्ध हैं, आये दिन जापानमें राजनीतिक वध

होते रहते हैं। जिस किसी मन्त्रीने अन्य राष्ट्रोंसे ऐसी सन्धि की कि जिससे जापानके साम्राज्य-विस्तारमें रुकावट पहुंचनेकी सम्भावना हो, अथवा यदि किसीने प्रजातन्त्रके पक्षको अधिक दृढ़ बनानेका प्रयत्न किया, तो उसका वध अवश्यम्भावी हो जाता है। राजनीतिज्ञोंका वध करनेके उपरान्त बहुत-से युवक-घातक, हरकीरी कर लेते हैं, और यदि पकड़ जाते हैं, तो जापानी न्यायालय भी इनसे इतना भयभीत रहता है कि वह उनको दो या तीन वर्षोंसे अधिककी सजा नहीं करता। ये घातक देशभक्त कहलाते हैं और उनका सम्मान होता है। एक ऐसे ही अवसरपर हजारों जापानी स्त्री-पुरुषोंने अपने रुधिरसे हस्ताक्षर करके एक प्रार्थना-पत्र न्यायालयको इस आशयका दिया था कि हत्यारे छोड़ दिये जायें, और हत्यारे वस्तुतः मुक्त कर दिये गये। फरवरी १९३६ में होनेवाले टोकियो-विद्रोहकी तहमें यही भावना काम कर रही थी। इस आन्दोलनके सूत्रधार दो मुख्य व्यक्ति हैं—माजाकी* तथा अराकी×। इन दोनों व्यक्तियोंने, जो कि सेनासे सम्बन्धित रहे हैं, तरुण सैनिकोंको यह उपदेश देना आरम्भ किया कि जापानका यह दैवी कर्तव्य है कि वह संसारको सभ्यता सिखाये और शान्ति स्थापित करे। जापानके शासन-विधानमें यह स्पष्ट रूपसे लिखा हुआ है कि जापानी जातिकी उत्पत्ति भगवान्से है और उसपर एक ऐसा वंश शासन करता है, जो कि सृष्टिके प्रारम्भसे है और अन्त तक रहेगा। यद्यपि प्रजातन्त्रवादी भी इन सिद्धान्तोंमें पूर्ण विश्वास करते हैं; परन्तु उन्होंने इनका स्पष्टीकरण करते हुए प्रजातन्त्र शासन-यन्त्रको जापानमें खड़ा किया। परन्तु सैनिक नेता प्रजातन्त्रको जापानी सिद्धान्तोंके विरुद्ध मानते हैं। सारे जापानमें शिन्तो धर्मकी भावना परिवेष्टित है। राष्ट्रीय नीति आज पूर्णतः सेनाके हाथमें है, प्रजातन्त्रका भवन खण्ड-खण्ड होकर गिरना चाहता है और भविष्यमें फासिज्म अथवा राजकीय समाजवादके स्थापित होनेकी सम्भावना बढ़ती जा रही है। जापानी साम्राज्यवादकी ये शक्तियां भयानक वेगसे कार्य कर रही हैं, यही कारण है कि जापान आज पूर्वका भयङ्कर खतरा बन गया है।

गत यूरोपीय महायुद्धने जापानके लिए साम्राज्य-विस्तारकी बहुत-सी सुविधायें उत्पन्न कर दीं। यूरोपीय महायुद्धमें जब यूरोपीय राष्ट्र नर-संहारका भयानक खेल खेल रहे थे, जापानको अपनी औद्योगिक उन्नति करनेका सुन्दर अवसर मिला। मित्र-राष्ट्र जापानके द्वारा उत्पन्न की हुई प्रत्येक वस्तुको अधिक मूल्य देकर खरीद रहे थे, यही नहीं, चीनका अत्यन्त विस्तृत बाजार जापानके लिए खुला पड़ा था—कोई भी औद्योगिक राष्ट्र जापानकी स्पर्धाके लिए वहां मौजूद नहीं था। इसका फल यह हुआ कि उन चार वर्षोंमें आश्चर्यजनक तीव्रगतिसे जापान एक महत्त्वपूर्ण औद्योगिक देश बन गया। महायुद्धसे जापानको केवल यही लाभ हुआ हो, यह बात नहीं है। महायुद्धके उपरान्त लीगने उन जर्मन द्वीपोंपर, जो संयुक्त राज्य अमेरिका तथा चीन और फिलीपाइन्सके समुद्रीय मार्गको रोकते हैं, जापानका संरक्षण स्वीकार कर लिया। जापानको एक तीसरा लाभ यह भी हुआ कि मञ्चूरियापर वस्तुतः उसका आर्थिक प्रभुत्व स्थापित हो गया।

वाशिङ्गटन-सम्मेलनके उपरान्त जापानने उग्र रूप धारण करना आरम्भ किया। उसने देखा कि महायुद्धमें जर्जर पश्चिमीय राष्ट्र अब थोड़े दिनों तक युद्धका विचार भी नहीं करेंगे, अतएव उसने साम्राज्य-विस्तारकी नीतिको दृढ़तापूर्वक अपनाया, यह स्पष्ट दिखलाई देने लगा कि जापान चीनको हड़प जाना चाहता है। जनरल अराकीके नेतृत्वमें सेना अधिक प्रभावशाली हो उठी थी, बहुत बार सेनाके अधिकारियोंने सरकारकी नितान्त अवहेलना करके चीनमें सैन्य-सञ्चालन किया और चीनी प्रदेशपर अधिकार कर लिया। विवश होकर सरकारको भी सेनाके कार्योंका समर्थन करना पड़ता था। १९३० में लन्दनमें (नैवल कान्फरेन्स) नौ-शक्ति-सम्मेलनमें जापानने ब्रिटेन तथा संयुक्त राज्य अमेरिकाके बराबर ही समुद्रीय शक्तिको बढ़ानेका दावा पेश किया। बहुत कठिनाईसे जापानके प्रतिनिधियोंने इंगलैण्ड तथा संयुक्तराज्यसे अपनी समुद्रीय शक्ति कुछ कम रखना स्वीकार कर लिया। इसका फल यह हुआ कि एकके बाद दो प्रधान मन्त्री श्रीयुत हामागूची तथा इनुकाई गुप्त

---

* माजाकी १९२५ से ३९ तक सैनिक शिक्षाका डायरेक्टर रह चुका है।

× अराकी युद्ध-सचिव रह चुका है।

संस्थाके युवक देशभक्तों द्वारा मार डाले गये। १९३१ के उपरान्त तो जापान पश्चिमीय राष्ट्रोंको धता बताकर अपने साम्राज्य-विस्तारके लिए तीव्रवेगसे चल पड़ा है और पश्चिमीय राष्ट्र तथा संयुक्तराज्य अमेरिका टुकुर-टुकुर बैठे देख रहे हैं, उनका यह साहस ही नहीं होता कि वे उसको रोक सकें।

१९३१ का मुकडन काण्ड, जिसके द्वारा जापानने मञ्चूरियापर वस्तुतः अपना आधिपत्य जमा लिया, जापानकी साम्राज्यवादी योजनाका एक अंश-मात्र था। वास्तवमें यदि देखा जाये, तो उससे ही जापानकी चीन साम्राज्यको हड़प जाने और प्रशान्त महासागरमें पश्चिमीय राष्ट्रोंकी शक्तिको नष्ट कर देनेकी योजनाका सूत्रपात होता है। जापानके सैनिक राजनीतिज्ञोंने अन्तर्राष्ट्रीय कठिनाइयोंका अपने साम्राज्यको बढ़ानेके लिए सदैव उपयोग किया है। १९३१ में जापानने जो मञ्चूरियामें सैन्य-सञ्चालन किया, वह केवल इस कारणसे कि वह जानता था कि उसका विरोध कोई भी राष्ट्र नहीं करेगा। चीन गृह-युद्धके कारण जर्जर हो रहा था, सोवियट रूस देशके आर्थिक निर्माण-कार्यमें फंसा हुआ था। रूसमें उस समय पञ्चवर्षीय योजना चल रही थी। इंगलैण्ड और अमेरिका अपने आर्थिक ढांचेको हिला देनेवाली आर्थिक मन्दीका सामना कर रहे थे, और लीग-आव-नेशन्स यूरोपके क्षुब्ध वातावरणके कारण नपुंसक-सी बनी बैठी थी। जापानके साम्राज्य-विस्तारके लिए कोई भी बाधा नहीं थी।

मञ्चूरियाको अपने अधिकारमें कर लेनेके उपरान्त जापानके सैनिक नेताओंने भीतरी मङ्गोलिया तथा जिहोल और चहार प्रान्तोंपर भी आक्रमण कर दिया। नानकिङ्ग-सरकारने लीग-आव-नेशन्ससे बहुत अनुनय-विनय की; परन्तु सब व्यर्थ। निराश होकर सेनापति चाङ्ग-काई-शेकने जापानसे सन्धि कर ली और चीनका उत्तरीय भाग वस्तुतः जापानके अधिकारमें पहुंच गया। १९३४ में जापानने एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक घोषणा की, जिसका आशय यह था कि पूर्व एशियाकी शान्तिके लिए केवल वही उत्तरदायी है, अतएव चीनमें वह अन्य राष्ट्रोंके हस्तक्षेपको कदापि सहन न करेगा।

मञ्चूरिया-विजयके उपरान्त राजनीतिज्ञोंकी धारणा यह बन गयी थी कि जापान उत्तर-पश्चिमकी ओर बढ़ेगा। जिस प्रकार मञ्चूरिया-काण्डमें सोवियट रूसने दुर्बलता दिखाया और जापानका अधिकार हो जाने दिया, उसी प्रकार कहीं बहिर्मङ्गोलियाके साथ भी न हो। जापानके सैनिक नेता भी यही सोचे बैठे थे; परन्तु मञ्चूरियाकी सीमापर इसी समय रूसने पूरी सैनिक तैयारी कर ली और उस प्रदेशको इस प्रकारसे युद्धके साधनोंसे सुसज्जित कर दिया कि फिर जापानका यह साहस नहीं हुआ कि उधर कदम बढ़ाये। इस समय मञ्चूरियाकी सीमापर रूसकी इतनी विशाल सेना स्थायी रूपसे मौजूद है, जितनी कि जापानकी कुछ स्थायी सेना है। समस्त सीमाको कङ्करीटके ब्लाक-हाउसोंकी कई लाइनें बनाकर अभेद्य बना दिया गया है। इस विशाल सेनाके लिए खाद्य पदार्थ उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे बेकाल झील तथा पूर्वीय साइबेरियाके उपजाऊ प्रान्तोंकी शीघ्रतासे उन्नति की गयी है, अतएव खाद्य पदार्थोंको पश्चिमी रूससे ढोकर लानेकी आवश्यकता नहीं होती। सेनाके पास आवश्यकतासे अधिक टैङ्क तथा हवाई जहाज हैं, ब्लडीवोस्टकमें बम-वर्षा करनेवाले हवाई जहाजोंका एक सुदृढ़ बेड़ा सर्वदा मौजूद रहता है, जो टोकियो जाकर लौट सकता है। पश्चिमी रूससे आवश्यकताके समय अधिक सामग्री तथा सेना शीघ्रतापूर्वक लायी जा सके, इसलिए ट्रान्स-साइबेरियन रेलवेकी दोहरी लाइन डाल दी गयी है। सोवियट रूसकी इतनी सैनिक तैयारी हो जानेपर भी जापान उस ओरसे निराश नहीं हुआ। उसने यह जान लेना चाहा कि सोवियट कहां तक जानेके लिए कटिबद्ध है, इसी उद्देश्यसे जापानके हवाई जहाज उन प्रदेशोंपर उड़ाये गये, जहां उन्हें उड़नेका अधिकार नहीं था। तुरन्त ही रूसके अधिनायकने जापानको कड़ी चेतावनी दी। जापान समझ गया कि यदि उसने बहिर्मङ्गोलियाकी ओर कदम बढ़ाया, तो उसे रूसकी उस सुसङ्गठित तथा विशाल सेनासे भिड़ना होगा। चतुर जापानी सैनिक नेताओंने अपने रास्तेको बदल दिया।

जापानके सैनिक नेताओंकी आरम्भसे यह योजना रही है कि किसी प्रकार चीनको चारों ओरसे घेरकर सोवियट रूससे पृथक् कर दिया जाये, तभी वे पूर्णतः चीनको हड़प करनेमें सफल हो सकेंगे। अतएव वे चाहते हैं कि मञ्चूरियापर अधिकार कर चुकनेके उपरान्त मङ्गोलियापर जापानका अधिकार हो, और अन्तमें सिनकियाङ्ग तथा तिब्बतपर

अधिकार करके चीनको हड़प कर लिया जाये। जनरल अराकी तथा जनरल तानाका, दोनोंने ही अपनी पुस्तकोंमें लिखा है कि चीनको विजय करनेके लिए मञ्चूरिया और मङ्गोलियाका विजय करना आवश्यक है। बहिर्मङ्गोलिया-पर सोवियट रूसका प्रभाव है। जापान समझता था कि मञ्चूरियाकी भांति रूस मङ्गोलियामें उसे बढ़ने देगा; परन्तु अब जब रूस जापानको बढ़ने नहीं देना चाहता, तो जापान बहिर्मङ्गोलियाके मार्गको छोड़कर भीतरी मङ्गोलियाके मार्गको पकड़नेके लिए विवश हुआ है। किन्तु इस मार्गसे आगे बढ़नेमें जोखिम अधिक है।

मङ्गोलिया यद्यपि चीनका ही एक भाग समझा जाता रहा है; परन्तु मङ्गोलियाके राजाओंने चीनकी प्रभुताको पूर्णतः कभी स्वीकार नहीं किया। १८८१ में चीनसे रूसकी एक सन्धि हुई, जिससे चीनने मङ्गोलियामें रूसके स्वार्थोंको स्वीकार कर लिया। इससे बहिर्मङ्गोलिया रूसके प्रभावमें आ गया और भीतरी मङ्गोलियापर चीनका शासन-अधिकार दृढ़ हो गया। रूस-जापान-युद्धके उपरान्त जापानने भी मङ्गोलियामें प्रवेश किया, एक सन्धिके द्वारा रूस और जापानने मङ्गोलियामें एक-दूसरेके स्वार्थोंको स्वीकार कर लिया। १९१७ के उपरान्त जापानने मङ्गोलियापर अपना अधिकार जमानेका प्रयत्न आरम्भ कर दिया। जापानकी प्रसिद्ध २१ मांगोंमें मङ्गोलियाके सम्बन्धमें भी जापानकी मांग थी, आगे चलकर जापानने यह चाल चली कि वह मङ्गोलियाके राजाओंको मङ्गोलिया-स्वातन्त्र्य-आन्दोलनका सङ्गठन करनेके लिए प्रोत्साहन तथा सहायता देता रहा। बहिर्मङ्गोलियामें सोवियट रूसने इन राजाओंकी शक्तिको बढ़ने नहीं दिया और कई बार विद्रोह होनेके उपरान्त वहां प्रजातन्त्र स्थापित हो गया। क्रमशः बहिर्मङ्गोलियाका प्रजातन्त्र राज्य पूर्णतः रूसके प्रभावमें आ गया। इस नवीन प्रजातन्त्र राज्य तथा रूसमें एक सैनिक सन्धि भी हो चुकी है। उसीके आधारपर स्टैलिनने १ मार्च १९३६ को चेतावनी देते हुए कहा था कि यदि जापान बहिर्मङ्गोलियापर आक्रमण करनेका साहस करेगा, तो हमें प्रजातन्त्रकी सहायता करनी पड़ेगी, हम प्रजातन्त्रकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करेंगे। स्टैलिनको युद्धके लिए तैयार देखकर जापान चुप हो गया और उसने भीतरी मङ्गोलियाका रास्ता पकड़ा। जिहोल, चहार और स्वीआन प्रान्तोंके भागोंपर जो जापानने अपना अधिकार कर लिया है, वे भीतरी मङ्गोलियाके ही भाग हैं। जापानने आरम्भमें उनमें धीरे-धीरे प्रवेश करना आरम्भ किया। जिहोल प्रान्तको विजय करके उसने नवनिर्मित मञ्चूको राज्यको दे दिया। अन्य प्रान्तोंमें उसने सैनिक शिविर स्थापित कर तथा मङ्गोलिया-स्वातन्त्र्य-आन्दोलनके नेता प्रिन्स ती-वाङ्के द्वारा अपना बल और प्रभाव बढ़ाना आरम्भ किया। यद्यपि मङ्गोलियाके राजा जापानके प्रभावमें हैं; परन्तु वहांके घूमने-फिरनेवाले निवासी जापानसे सशङ्क हैं, अतएव जापान शीघ्रतासे मङ्गोलियामें न बढ़ सका। यही कारण है कि अधिक समय नष्ट करना घातक समझकर जापानने चीनपर आक्रमण कर दिया।

जापान बहुत दिनोंसे सिनकियाङ्ग अर्थात् चीनी तुर्किस्तानमें अपने पैर जमानेके लिए प्रयत्नशील है; परन्तु सोवियट रूसके प्रभावके कारण उसको यहां भी सफलता नहीं मिल रही है। कुछ समयसे सिनकियाङ्गकी सरकार सोवियट सरकारके अधिक सम्पर्कमें आयी है। सुना तो यहां तक जाता है कि इन दोनोंमें एक गुप्त सैनिक सन्धि भी हो गयी है। जो कुछ भी हो, जापानका हस्तक्षेप वहां रूस कभी पसन्द न करेगा।

जापानके सामने अपने साम्राज्य-विस्तारके मार्गमें बहुत-सी कठिनाइयां हैं; किन्तु जापानियोंमें अवसर आने तक ठहरनेकी आश्चर्यजनक क्षमता है। जापानके सैनिक नेता जानते हैं कि समय हमारे अनुकूल है। अभी तक उन्होंने ऐसे अवसरोंपर, जब अन्य राष्ट्र किसी युद्धमें अथवा अपने आन्तरिक झगड़ोंमें फंसे थे, अपनी साम्राज्य-विस्तारकी योजनाको आगे बढ़ाया है। जब उन्होंने देखा कि मैडीटरेनियन (भूमध्यसागर) तथा यूरोपकी बिगड़ी हुई राजनीतिक परिस्थितिके कारण पश्चिमीय राष्ट्र बुरी तरह फंसे हैं, जापानने उत्तर-चीनको हड़प जानेके उद्देश्यसे चीन-पर आक्रमण कर दिया। सारे राष्ट्र चुप रहे और चीनकी स्वतन्त्रताका दीपक बुझने जा रहा था। सोवियट रूसको जर्मनीका भय था, इधर जापानने जर्मनीसे सन्धि करके सोवियट रूसकी स्थितिको कमजोर कर दिया था। यही कारण था कि रूस भी युद्धमें नहीं पड़ा। इधर यूरोपीय युद्धके आरम्भ होनेपर रूस और जर्मनीकी सन्धि हो गयी

और रूस अपने यूरोपीय स्वार्थोंके लिए तैयारियां करने लगा। ब्रिटेन और फ्रान्स तो यूरोपकी उलझी हुई स्थितिके कारण जापानको रोकनेमें असमर्थ थे ही, अमेरिका भी तटस्थताको छोड़ना नहीं चाहता, फिर वह प्रशान्त महासागरसे हट जानेका निश्चय कर चुका है। अतएव चीनको अकेले ही लड़ना पड़ रहा है।

ऊपर लिखी हुई साम्राज्य-विस्तारकी योजना स्थल-सेनाके नेताओंके मस्तिष्ककी उपज है; परन्तु जापानकी जल-सेनाकी भी एक योजना है। जल-सेनाके नेता दक्षिण प्रशान्त महासागरकी ओर बढ़ना चाहते हैं और प्रशान्त महासागरके द्वीपोंपर अधिकार करके वे चीनको समुद्रकी ओरसे घेर लेना चाहते हैं। दक्षिण प्रशान्त महासागरमें जापानने अपनी योजनाके अनुसार कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है। फारमोसा तथा जापानके संरक्षित द्वीप जल-सेना-सञ्चालनके आधार बनाये गये हैं। इन द्वीपोंमें जापानियोंको बहुत बड़ी संख्यामें बसाया जा रहा है। बन्दरगाह, सड़कें तथा स्थानीय धन्धोंकी उन्नति की जा रही है, बेतारके तार तथा हवाई मार्गके द्वारा जापानका इन द्वीपोंसे सम्बन्ध जोड़ा गया है। फिलिपाइन्स द्वीप-समूहमें जापान क्रमशः अपना प्रभाव बढ़ाता जा रहा है। संयुक्त राज्य अमेरिकाने निश्चित रूपसे पूर्वीय एशियासे हट जानेका विचार कर लिया है। फिलीपाइन्सको कुछ ही वर्षोंमें पूर्ण स्वतन्त्रता मिल जायेगी और संयुक्त राज्यके जहाजी बेड़े प्रशान्त महासागरके इस भागसे हटकर हवाई द्वीप-समूहको अपना आधार-केन्द्र बनायेंगे। संयुक्त राज्य अमेरिकाकी जल-सेनाके विशेषज्ञोंका यह मत है कि यदि कभी जापानसे अमेरिकाका युद्ध हुआ, तो पश्चिमीय प्रशान्त महासागरमें अमेरिकाकी पराजय अवश्यम्भावी है; क्योंकि फिलीपाइन्स अमेरिकाके समुद्री तटसे सात हजार मीलकी दूरीपर है। इस पराजयका संयुक्त राज्यकी प्रतिष्ठा तथा सामरिक शक्तिपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। अस्तु, अमेरिकाने लगभग निश्चय कर लिया है कि वह पश्चिमीय प्रशान्त महासागरको छोड़ दे और उसपर जापानकी नौ-शक्तिका प्रभाव हो जाने दे। जबसे संयुक्त राज्यका यह विचार प्रकट हुआ है, जापानकी गृध्र-दृष्टि फिलीपाइन्सपर पड़ने लगी है। जापानी व्यापारी तथा व्यवसायी वहां बहुत बड़ी संख्यामें पहुंचने लगे हैं और जापानके पक्षमें वहां जोरोंसे आन्दोलन किया जा रहा है। जबसे स्याममें (१९३२ में) क्रान्ति हुई है, तबसे जापानकी स्याससे बहुत घनिष्ठता हो गयी है। जापानी प्रोफेसर, सैनिक-विशेषज्ञ तथा अन्य सलाहकार स्याममें बुलाये गये हैं। स्यामके युवक तथा कर्मचारी जापानमें शिक्षा प्राप्त करनेके लिए भेजे जा रहे हैं। जापानका स्यामपर प्रभाव बढ़ जानेसे सिङ्गापुरका सामरिक महत्त्व बहुत कम हो जायेगा। यद्यपि जापानका स्यामपर अभी प्रभाव बहुत नहीं है; परन्तु भविष्यमें क्या होगा, कौन कह सकता है। जापानकी महत्त्वाकांक्षाका दिग्दर्शन हमें वहांके राजनीतिज्ञोंके लेखों तथा व्याख्यानोंसे होता रहता है। जापानी-स्याम-समितिके सभापति श्रीयुत यादाने एक बार कहा था, "संसारकी अवस्था तेजीसे बदल रही है; कौन जानता है कि हालैण्ड अपने पूर्वीय शासित प्रदेशोंको, जिनका क्षेत्रफल हालैण्डके साठगुनेसे भी अधिक है, कब तक अपने अधिकारमें रख सकेगा। यह भी निश्चित नहीं है कि भारतवर्ष कब तक ब्रिटेनकी अधीनतामें रहेगा। ऐसी अवस्थामें जापानको समय नष्ट न करके शीघ्रातिशीघ्र दक्षिणकी ओर बढ़ना चाहिए।" यद्यपि ऐसे लेखों और व्याख्यानोंको कोई राजनीतिक महत्त्व प्रदान नहीं किया जाता; परन्तु इनसे जापानियोंकी महत्त्वाकांक्षाका परिचय अवश्य मिलता है। जापानकी साम्राज्य-विस्तार-योजनामें आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड तथा ब्रिटिश द्वीप भी हैं। परन्तु यह सुदूर भविष्यकी बातें हैं, अभी उनके विषयमें कुछ कह सकना कठिन है।

जापानके सैनिक नेताओंके सामने बहुत-सी समस्यायें हैं। जापानकी प्रजा सैनिक व्ययके भारसे दबी जा रही है। कुछ वर्ष हुए, जापानका सैनिक व्यय जापान-सरकारकी आधी वार्षिक आयके बराबर होता था; परन्तु अब लगभग सारी राष्ट्रीय आय सेनाके ऊपर व्यय कर दी जाती है। अन्य राष्ट्रीय कार्योंके लिए प्रति वर्ष ऋण लिया जाता है। राष्ट्रीय ऋण पिछले पांच वर्षोंमें बयालीस करोड़ पौण्डसे बढ़कर साठ करोड़ पौण्ड हो गया है। १९३१ से अभी तक मञ्चूकोपर लगभग दस करोड़ पौण्ड व्यय किया जा चुका है। जापानी किसानों तथा कारखानोंके मजदूरों-

की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो रही है। निर्धनताके कारण जापानी किसान अपनी लड़कियोंको वेश्यागृहोंके स्वामियोंको बहुत बड़ी संख्यामें बेचने लगे हैं, समाजमें अशान्तिके चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

जापानी सैनिक नेता यह भली भांति समझते हैं कि यदि वे बढ़ती जनसंख्याको भोजन न दे सके, तो उनका पतन अवश्यम्भावी है। उन्होंने अपने देशवासियोंको बतलाया है कि मञ्चूरिया, चीन तथा अन्य प्रदेशोंके जो उपजाऊ प्रदेश हमारे आसपास हैं, उनपर जापानका अधिकार हो जानेसे जापानियोंके सारे दुःख दूर हो जायेंगे। जापानके राजनीतिज्ञोंने देखा कि यदि अब अधिक देर की गयी, तो कठिनाई बढ़ जायेगी; क्योंकि चीनमें एकता स्थापित हो गयी है और अब शीघ्र ही चीन-राष्ट्र अपने पुनर्सङ्गठनमें लगेगा। अस्तु, दस वर्षों में वह अत्यन्त सबल राष्ट्र बन जायेगा। उधर सोवियट रूस जो १९३१ तक अपनी समस्याओंमें बुरी तरह फंसा था, साथ ही एशियामें उसकी सैनिक शक्ति भी उस समय कम थी, अब पांच वर्षों के उपरान्त बहुत सबल हो गया था। इंगलैण्ड तथा संयुक्त राज्य अमेरिका यद्यपि युद्ध करनेके लिए तो तैयार नहीं थे; परन्तु वे भी अपने स्वार्थोंकी रक्षा करनेके लिए चिन्तित दिखलाई देते थे। समय ऐसा आ गया था कि यदि "अभी नहीं तो कभी नहीं" अतएव जापानने लीग आफ नेशन्सकी सदस्यतासे त्याग-पत्र देकर अपने साम्राज्य-विस्तारके मार्गपर शीघ्रतासे बढ़ना आरम्भ कर दिया।

कुछ लोगोंका यह विचार है कि साम्राज्य-विस्तारके कारण जापान राष्ट्रको जो असहनीय आर्थिक सङ्कट उठाना पड़ेगा, उसके कारण जापानका पतन हो जायेगा—यह उनकी भूल है। जापानी जाति आज साम्राज्यवादके नशेमें मस्त होकर झूम रही है। जब तक जापानकी सेनायें दूसरे देशोंको पददलित करके साम्राज्य-विस्तारमें सफल होती जायेंगी, तब तक जापानी भूखे रहकर भी सेनाको व्यय करनेके लिए धन देंगे। हां, यदि जापानको चीनमें परास्त होना पड़ा, तो स्थिति बदल जायेगी और जापानका उसी दिनसे पतन आरम्भ हो जायेगा।

जापानने उत्तर चीनपर अपना अधिकार कर लिया है। वहां उसने एक कठपुतली चीनी सरकार भी स्थापित कर दी है। यही नहीं, वह दक्षिणकी ओर भी अग्रसर होनेका भगीरथ प्रयत्न कर रहा है। जापान आधुनिक विध्वंसक साधनोंसे सुसज्जित एक सबल राष्ट्र है और चीन स्वर्गीय डाक्टर सनयातसेनके नेतृत्वमें क्रान्ति करनेके उपरान्त लम्बे गृह-युद्धमें फंस गया था, इसलिए युद्धके आरम्भ होने तक चीनमें सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय एकता भी स्थापित नहीं हुई थी। जापानके आक्रमण तथा जापानी मदान्ध सैनिकों द्वारा किये जानेवाले रोमाञ्चकारी अत्याचारोंने सोये हुए महाराष्ट्र चीनकी आत्माको जगा दिया है। पिछली कई शताब्दियोंमें ऐसी जागृति तथा एकता राष्ट्रमें दृष्टिगोचर नहीं हुई थी। यही चीनकी शक्ति है, जिसका जापानने अनुमान ही नहीं किया था। वैसे अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिके कारण चीनको यह युद्ध अकेले ही लड़ना होगा।

चीन-जापानका युद्ध इस दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यदि देखा जाये, तो चीन पूर्वीय एशियाके राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रताका युद्ध लड़ रहा है। यदि जापान इस युद्धमें विजयी हो गया, तो जापान अत्यन्त प्रबल और अजेय राष्ट्र बन जायेगा। संसारमें प्राकृतिक देनका अटूट भण्डार चीन यदि जापानके हाथमें आ गया और वह इस महाराष्ट्रकी प्राकृतिक देन और जन-शक्तिका उपयोग करनेमें सफल हो गया, तो जापान अपनी महत्त्वाकांक्षाको पूरा करनेके लिए भीम वेगसे आगे बढ़ेगा। चीन-जापान-युद्ध केवल चीनकी स्वतन्त्रताका ही युद्ध नहीं है, यह बहुत-से एशियाई तथा सुदूर-पूर्वके देशोंकी स्वतन्त्रताका युद्ध है। इस समय संयुक्त राज्य अमेरिका तथा सोवियट रूस चुप हैं। जापानकी साम्राज्य-विस्तार-योजना सफल होने जा रही है और साथ ही पूर्वीय राष्ट्रोंके लिए एक भयानक खतरा उपस्थित होनेवाला है।



४

ब्रिटेनके नये प्रधानमन्त्री

श्री आत्मानन्द मिश्र, एम०ए०, बी०एस-सी०, एल-एल०बी०

"अंगरेज, आयु लगभग पचीस वर्ष, कद पांच फीट आठ इञ्च लम्बा, कुछ विचित्र बनावट, आगे झुककर चलनेवाला, पीली शक्ल, छोटी अदृश्य मूछें, नाकसे बोलनेवाला तथा 'एस' अक्षरका शुद्ध उच्चारण न कर सकनेवाला एक व्यक्ति अर्द्ध-रात्रिको युद्ध-कारागारसे बड़ी ऊंची दीवारपर चढ़कर भाग गया है। जिसे उसका पता चले, वह तुरन्त ही युद्ध-अधिकारियोंको सूचना दे।"

यह व्यक्ति पत्र-प्रतिनिधि होकर दक्षिणी अफ्रीकाके बोअर युद्धमें गया था। किन्तु जिस रेलगाड़ीसे वह जा रहा था, वह शत्रुओं द्वारा नष्ट-भ्रष्ट कर दी गयी थी और यह महाशय आहतों और दबे हुए मनुष्योंको सहायता पहुंचानेमें संलग्न थे। इतनेमें बोअर सेनानायकने इन्हें पकड़ लिया। इनके जेबमें एक तमञ्चा तथा कुछ गोलियां थीं। ज्योंही इन्होंने जेबमें हाथ डाला कि सेनानायककी रायफल सीधी हुई। किन्तु अंगरेज नवयुवकने यह देखकर कि तमञ्चा कहीं गिर गया है, गोलियोंको चुपकेसे निकालकर फेंकना चाहा। इसमें वह पकड़ गया। अपनेको पत्र-प्रतिनिधि बतलानेपर भी सेनानायकने उसे युद्ध-कैदी बनाकर प्रिटोरिया भेज दिया। वहींके कारागारसे अर्द्ध-रात्रिको भागकर वह अपने साथियोंसे आ मिला था।

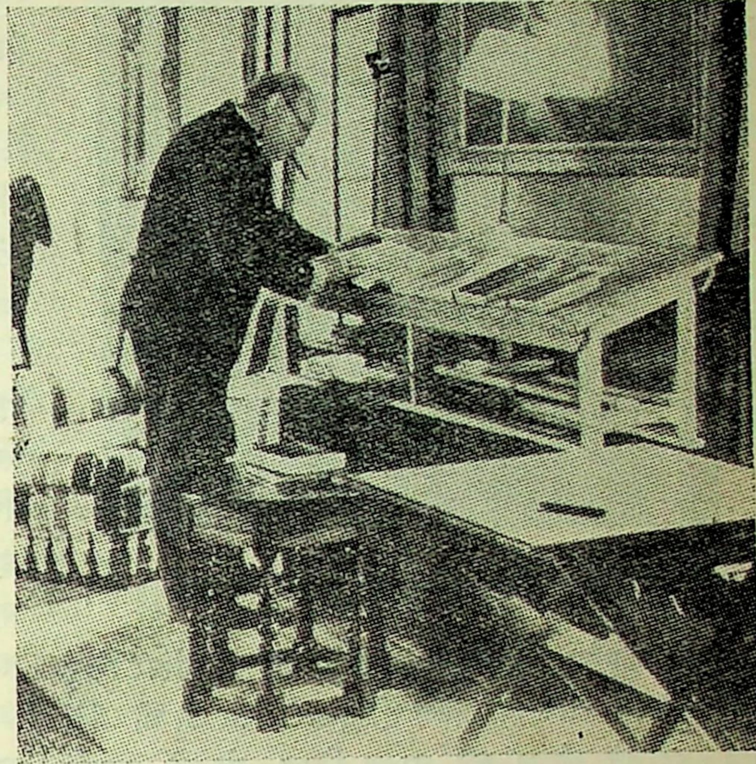
सेनानायकका नाम लुइस बोथा था, जो बादको दक्षिणी अफ्रीकाका पहला प्रधानमन्त्री हुआ और सन् १९१८ में ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलका सदस्य भी रहा। यह दुस्साहसी अंगरेज नवयुवक विन्स्टन ल्योनार्ड स्पेन्सर चर्चिल थे, जो अपनी प्रतिभा, साहस तथा अध्यवसायसे उन्नति करते-करते आज युद्धकालीन ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलके प्रधान मन्त्री हुए हैं।

शान्ति हो अथवा अशान्ति, चर्चिलको सदा युद्धसे ही प्रेम रहा है। शान्तिके समय ये अपनी विद्वत्तापूर्ण वक्तृता द्वारा पार्लमेण्टमें पर्याप्त अशान्ति उत्पन्न कर देते थे। उनमें प्रतिभा है और उसके साथ ही अनवरत परिश्रम करनेकी अद्भुत सामर्थ्य। एक बार पूर्वीय अफ्रीकाकी यात्राके समय जहाजपर एक बड़ा बण्डल चढ़ते देख चर्चिलके एक मित्रने पूछा, "समाजवादपर इतनी पुस्तकोंका क्या कीजियेगा?" चर्चिलने उत्तर दिया, "मैं इन्हें अध्ययन करके देखना चाहता हूं कि वास्तवमें समाजवाद क्या है।" प्रत्येक बातपर अपनी स्वतन्त्र राय स्थिर करनेके लिए उन्हें चाहे जितना परिश्रम करना पड़े, उससे वे घबराते नहीं। अपने भाषण तैयार करनेमें उन्होंने बड़ा परिश्रम किया है। बहुधा भाषणोंको छः छः बार अपने हाथसे लिखा है तथा किस शब्दको किस हावभाव, जोर और गम्भीरतासे कहना चाहिए, यह जाननेके लिए घण्टों दर्पणके सम्मुख अभिनय किया अथवा बन्द कमरेमें भाषण दिया है। एक दूसरे अवसरपर डण्डीमें भाषण देनेके पश्चात् जब एक व्यक्ति किसी आवश्यक प्रश्नपर इनकी मन्त्रणा लेने गये, तो उन्होंने देखा कि एक बजे रात्रिको भी चर्चिल सरकारी पुस्तकोंके अध्ययनमें लगे हुए हैं।

मि० चर्चिलमें गम्भीरसे गम्भीर परिस्थितिपर शान्तिपूर्वक विचार करनेकी कुशाग्र बुद्धि है। वे प्रश्नके सभी पहलुओंपर दृष्टि डालते हैं; किन्तु उनका दृष्टिकोण सैनिक-दृष्टिकोण होता है। ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंमें यदि हिटलर किसीसे डरता है, तो वे हैं चर्चिल। सर एन्थोनी इडेनके त्यागपत्रके पश्चात् जब यूरोपीय समस्याओंका सामना करनेके लिए एक नये मन्त्रिमण्डलकी मांग रखी गयी थी, उस समय हर हिटलरने कहा था कि यदि चर्चिल तथा इडेन आदि मन्त्री बनाये गये, तो युद्ध बिना हुए न रहेगा। जर्मन सेनाको सशस्त्र तथा सुसङ्गठित होते देख चर्चिलने ही सर्वप्रथम ब्रिटेनको चेतावनी दी थी कि वह भी तैयारी करे; किन्तु बाल्डविनने उस ओर ध्यान न दिया, जिसके फलस्वरूप ब्रिटेनको तैयार होनेका समय देनेके लिए चेम्बरलेनको हिटलरसे सन्धियां करनी पड़ीं और अन्तमें अब हिटलरका सामना करनेके लिए चर्चिलको सम्मुख आना ही पड़ा।

विन्स्टन चर्चिलका जन्म नवम्बर १८७४ में हुआ था। उनके पिता लार्ड रैण्डफ चर्चिल पार्लमेण्टके प्रसिद्ध सदस्य थे। चर्चिलके बाबा मालबरोके सातवें ड्यूक थे। चर्चिलकी

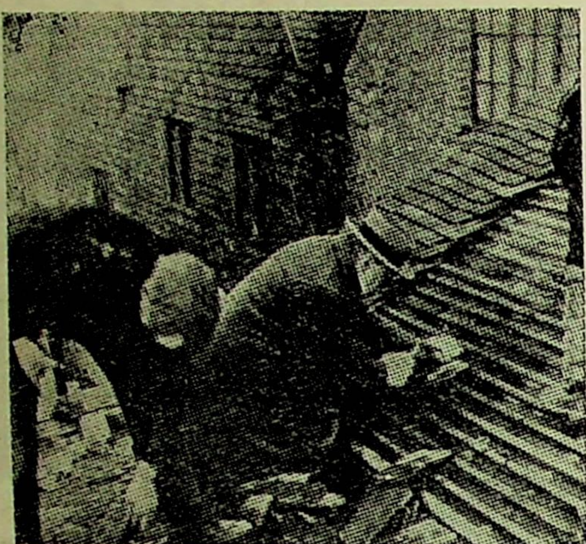
माता जेनी जरोम एक अमेरिकन युवती थीं, जिनके पिता न्यूयार्कके एक पत्रके सम्पादक थे। अपनी मातासे चर्चिलने उत्साह, परिश्रम करनेकी शक्ति तथा साहित्यिक अभिरुचि पायी थी। बचपनमें चर्चिलको युद्ध तथा सैनिकोंसे बड़ा प्रेम था। वह बहुधा सैनिक खिलौनोंसे खेला करते थे। उन्होंने डेढ़ हजार खिलौने एकत्र किये थे, जिनमें एकसे बढ़कर एक सैनिक थे। चर्चिल इन "सैनिकों" को विभिन्न पंक्तियों तथा मोर्चोंपर खड़े करके सङ्गीन-युद्ध कराते थे। एक बार उनके पिताने आक्रमणकारी 'सेनाओं' को एकत्र देखकर चर्चिलसे पूछा, "क्या तुम सैनिक होना पसन्द करोगे?" चर्चिलने उछलकर कहा, "हां, मैं सेनामें भरती हूंगा; किन्तु जब युद्ध न होगा, तब मैं राजनीतिमें लड़ूंगा।" बालककी रुचि देखकर ही लार्ड रैण्डकने विन्स्टनको हैरोसे सैण्डर्स भिजवा दिया। वहां सैनिक शिक्षा प्राप्त कर चुकनेपर वे इक्कीस वर्षकी आयुमें सेनामें भर्ती हो गये।



मि० चर्चिल अपनी लाइब्रेरीमें खड़े-खड़े अध्ययन कर रहे हैं।

हैरोमें चर्चिलने अंगरेजीके अतिरिक्त और कुछ न पढ़ा था और सैण्डर्स तथा सेनामें वे घुड़सवारी तथा युद्धविद्या ही सीखते रहे। सन् १८९६ ई० में जब वह भारतवर्ष आये, तब उन्होंने पोलो खेलना सीखनेके अतिरिक्त दर्शनशास्त्र तथा इतिहासका अध्ययन किया। किन्तु चर्चिलका मन लड़ाईमें ही रहता था। भारत आनेके पूर्व उन्होंने बड़े प्रयत्नसे 'टाइम्स' के संवाददाता बनकर क्यूबाके युद्धमें भाग लिया था। भारतवर्षमें भी यह दो वर्षमें दो बार युद्धभूमिपर पहुंचे। उत्तरी-पश्चिमी सीमाप्रान्तपर तिराहमें उपद्रव होनेपर चर्चिल 'डेली टेलीग्राफ' तथा 'पायनियर'के संवाददाता होकर जबरदस्ती गये। जब सूडानमें युद्ध आरम्भ हुआ, वहां जानेके लिए भी उन्होंने लार्ड किचनरसे प्रार्थना की; परन्तु यह अस्वीकार हुई। इसपर चर्चिलने सीधे ब्रिटेनके युद्ध-विभाग-को लिखकर स्वीकृति मंगा ली। लगभग डेढ़ सौ सैनिकोंके नायक बनकर चर्चिलने ओमडरमैनके भीषण युद्धमें भाग लिया और घुड़सवारोंके आक्रमणको बचाते हुए विजयी हुए।

मि० चर्चिलकी आर्थिक अवस्था ठीक न थी। अतएव उन्होंने सेना छोड़कर पत्रकारिता, साहित्य तथा राज-नीतिका आश्रय लिया। पहली बार सन् १८९९ ई० में ये ओल्डमसे पार्लमेण्टका चुनाव लड़े; किन्तु हार गये। इसके बाद वे 'मार्निङ्ग पोस्ट'के युद्ध-संवाददाता होकर दक्षिणी अफ्रीका चले गये, जहां इस लेखके आरम्भमें लिखी हुई घटना घटित हुई, प्रिटोरियाके कारागारसे भागकर आप घुड़सवारोंकी सेनामें सम्मिलित हो गये और विजयी होकर घर लौटे। संवाददाताके रूपमें चर्चिलने जो कुछ भी लिखा, वह इतना सुन्दर तथा उत्कृष्ट था कि शीघ्र ही वे इंगलैण्डमें प्रसिद्ध हो गये और तबसे आज दिन तक सेना तथा युद्ध-सम्बन्धी विषयोंके वे सर्वश्रेष्ठ लेखक माने जाते हैं। १९०० ई० में ओल्डमसे ये पार्लमेण्टके लिए फिर खड़े हुए और विजयी हुए। पांच वर्ष तक अनुदार दलके सदस्य रहनेके पश्चात् दूसरे निर्वाचनमें उदार दलमें चले गये। कैम्पबेल-बैनरमैनके मन्त्रिमण्डलमें जब ये उपनिवेशोंके उपमन्त्री थे, दक्षिण अफ्रीकाको औपनिवेशिक स्वराज्य मिला, जिसका पहला प्रधानमन्त्री चर्चिलको प्रिटोरियामें कैद करनेवाला लुइस बोथा नियुक्त हुआ। एस्क्विथकी सरकारमें यही बोर्ड आफ ट्रेडके अध्यक्ष नियुक्त हुए। १९१० ई० में जब ये घरेलू विभागमें आये, तो इन्हें आम हड़तालका सामना करना पड़ा। एक दिन जान बर्नस्ने कमरेमें घुसते ही चर्चिलको



मि० चर्चिल अपने बंगलेकी खपड़ैल स्वयं ठीक कर रहे हैं।

इंगलैण्डके नक्शेपर सेनायें स्थित करनेके स्थानोंपर चिह्न लगाते देखा। चर्चिलने पहलेसे ही तैयारी कर ली थी कि यदि हड़तालने भीषण रूप धारण किया, तो उसे काबूमें करनेके लिए वे किन-किन स्थानोंपर सेनाको नियुक्त करेंगे। उसी समय पूर्वीय लन्दनके उपद्रवको इन्होंने बड़ी कठोरतासे दबाया, जिसके फलस्वरूप उन्हें युद्ध-विभागमें भेज दिया गया। यहांका कार्य उनकी रुचिके अनुकूल ही था। उन्होंने अन्य अफसरोंकी सहायतासे जल-सेनाको खूब तैयार किया और उसे जर्मन जङ्गी जहाजोंका सामना करने योग्य बनाया। यूरोपीय वातावरणके अध्ययनके आधारपर उन्होंने जुलाई १९१४ में अपने मित्र बोथाको एक जर्मन जहाजसे अफ्रीका-की यात्रा करनेसे रोका। चर्चिलका अनुमान ठीक ही निकला। जर्मन दूत दक्षिण अफ्रीकामें उपद्रव करानेमें प्रयत्नशील थे और बोथा तथा स्मट्सको मारना चाहते थे। इस माहके अन्तमें आपने ब्रिटिश सेनाको युद्धके लिए सावधान कर दिया था।

८ अगस्त १९१४ ई० की रात्रिकी बात है। जर्मनीको बेल्जियमके सम्बन्धमें दिये हुए ब्रिटिश अल्टीमेटमके उत्तरकी प्रतीक्षामें प्रधानमन्त्री एस्क्विथ तथा उनके तीन सहायक १० डाउनिङ्ग स्ट्रीटमें बैठे शान्ति और युद्धके बीच झूल रहे थे। यदि अर्द्धरात्रि तक सन्तोषजनक उत्तर न मिला, तो युद्ध आरम्भ हो जायेगा। जैसे ही घड़ीमें बारह बजे कि लोगोंने चर्चिलको प्रसन्न-वदन मन्त्रियोंके कमरेमें घुसते देखा। युद्ध होगा, इस बातसे चर्चिलको प्रसन्नता थी। वास्तवमें उन्हें सदा ही युद्धसे आनन्द मिलता है। चर्चिलमें एक विशेषता है। वे अपने दलकी शक्तिकी परवाह नहीं करते, वरन् अपनी शक्तिपर ही सब वस्तुओंको आजमाते हैं। दुनिया किसी बातको ठीक अथवा गलत समझे; किन्तु चर्चिल जिसे ठीक समझते हैं, उसे करके ही मानते हैं। उनकी वाणीमें वह शक्ति है, जिससे वे विरोधीको अपने पक्षमें कर लेते हैं।

गत यूरोपीय महायुद्धमें चर्चिल द्वारा किये गये महत्त्व-पूर्ण कार्योंके विषयमें पूरी एक पोथी लिखी जा सकती है। सन् १९१४ ई० के अक्टूबरमें इन्होंने एण्टवर्पकी सहायताके लिए एक ब्रिटिश जल-सेना भेजी, जिसके सञ्चालनका कार्य इन्होंने स्वयं अपने ऊपर ही ले लिया और समर-भूमिमें पहुंचे। इन्होंने इतनी सावधानीसे कार्य किया कि जर्मनी-का पेरिसपर आक्रमण कई दिनोंके लिए स्थगित हो गया। उससे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य इन्होंने थल-सेनाकी सहायतासे जल-सेना द्वारा दरेंदानियालपर आक्रमण कर किया था। उनकी इस योजनाकी शत्रुने भी प्रशंसा की थी। यदि इसमें सफलता मिल जाती, तो सम्भवतः गत महायुद्ध दो वर्ष पहले ही समाप्त हो जाता। चर्चिलने चान्सलरी छोड़कर फ्रान्समें एक अंगरेजी सेनाका नायकत्व ग्रहण किया; किन्तु सन् १९१७ में लायड जार्जने इन्हें अस्त्र-शस्त्र-विभागका मन्त्री बनानेके लिए वापस बुला लिया। सन् १९१८-१९२१ तक यह युद्ध-मन्त्री रहे, फिर दो वर्ष तक औपनिवेशिक मन्त्री। लायड जार्जकी सरकारका अन्त होनेका एक कारण यह भी थे। इन्होंने टर्कीके विरुद्ध युद्ध छेड़नेका समर्थन किया, जिसका घोर विरोध हुआ और लायड जार्जको त्याग-पत्र देना पड़ा।

बाल्डविनके मन्त्रिमण्डलमें यह चान्सलर आफ एक्स-चेकर बनाये गये; किन्तु इसमें यह अधिक सफल न हो सके— यद्यपि उससे इनके लिए प्रधान मन्त्रीका पद पानेका मार्ग खुल गया। आयु बढ़नेके साथ चर्चिल अधिक प्रगति-विरोधी होते गये। १९२९ में बाल्डविनकी सरकारका अन्त होनेपर मि० चर्चिलकी पूछ न रही। अवकाश पाते ही यह साहित्यिक कार्यमें लग गये। इनकी दि वर्ल्ड क्राइसिस, मालबरो, दि रिवर वार, सबरोला (उपन्यास), मेरा प्रारम्भिक जीवन आदि रचनायें बड़ी सुन्दर एवं उत्कृष्ट हैं। इन्हें

देखकर बाल्डविनने एक बार कहा था कि "यदि चर्चिल केवल लिखनेकी ओर ही ध्यान देते, तो वे एक श्रेष्ठ इतिहासकार होते।"

चर्चिल सदासे ही भारतको स्वतन्त्रता देनेके विरोधी रहे हैं। उनको ब्रिटिश साम्राज्यका इतना अधिक ध्यान रहता है कि वे उसका एक कोना भी नहीं खो देना चाहते। १९३६ ई० में अष्टम एडवर्डके पद-त्यागपर आपने राजाका ही साथ दिया, जिससे आप ब्रिटिश प्रजाकी अप्रसन्नताके भाजन हुए। तबसे वह लन्दनसे २६ मील दूर अपने गांव चार्टवेलमें एक बंगला बनवानेमें व्यस्त रहे। यह एक कुशल राजनीतिज्ञ और लेखक ही नहीं, वरन् सुन्दर चित्रकार तथा राजगीर भी हैं। इन्होंने अपने बंगलेका काफी भाग अपने हाथोंसे ही बनाया है। यह बहुधा अपना पुराना ओवरकोट पहने नींव डालने अथवा खपरैल चुननेमें व्यस्त रहते थे; किन्तु वहांसे आपको जर्मनीकी बढ़ती हुई शक्ति तथा ब्रिटिश साम्राज्यकी रक्षाका सदा ध्यान रहा है। जब ब्रिटेनको यह पूर्ण रूपसे भासित हो गया कि साम्राज्य-रक्षाके लिए चेम्बरलेनकी नहीं, किसी अन्य प्रधान मन्त्रीकी आवश्यकता है, तब चर्चिल ही इसके उपयुक्त पाये गये। इनकी आयु इस समय ६६ वर्षकी है; किन्तु आशा की जाती है कि उनका अनुभव, उनकी कुशाग्र बुद्धि तथा उनकी एकाग्रता उन्हें सफल प्रधान मन्त्री ही बनाकर रहेगी।

पुराने विचारकी स्त्री

श्री सन्तराम, बी० ए०

हम और तुम अलग-अलग हैं, क्योंकि तुम तुम हो और हम हम। हम प्राचीनता-प्रेमी हैं और तुम नवीनता-प्रिय। हम पूर्व हैं, तुम पश्चिम। हम आदि हैं, तुम अन्त। हम स्थावर हैं, तुम जङ्गम। हम बकवासी गिने जाते हैं, और तुम गम्भीर। हमारी बुद्धि स्थूल है, इतनी कि उसकी स्थूलताका पता नहीं लगता। तुम्हारी बुद्धि सूक्ष्म है, इतनी कि है या नहीं, यह जानना कठिन है। इसे कसर नफ्सी न समझिये, यह सत्य है। यह न होता, तो नयी और पुरानी सभ्यताका भेद ही न होता। खैर, ये तो हुईं जमाना साजीकी बातें, अब वर्तमान युगसे जो शिकायतें हमारी ओरसे हैं, वे भी सुन लीजिये—

कहा एक बेगमसे मिसने यह इक दिन,
पुरानी हैं जितनी हैं बातें तुम्हारी।
समझती हो ज़ेबरको ज़ीनत१का सामां,
लगाती हो कपड़ोंको गोटा किनारी।
रहा करती हो क़ैद घरमें हमेशा,
न सैरो सियाहत२ न शौके३ सवारी।
ये सब काम बाहर हैं तहज़ीब४से अब,
निशाने जहालत५ हैं बातें ये सारी।
तुम्हें इससे क्या तुम असीरे क़फ़स६ हो,
चले बागमें लाख बादे७ बहारी।

यह कोई आजकी पहेली नहीं। सिपाही-विद्रोहके बादसे नये और पुराने रीति-रिवाजोंमें तू तू मैं मैं चली आ रही है। पुराने विचारवाली कहती हैं कि तकल्लुफमें तकलीफ है, हमारी एक सादगीपर तुम्हारी सौ बनावटें न्योछावर हैं। दुनिया चार दिनकी चांदनी है, फिर वही अंधेरा। घरमें थोड़ा आवश्यक सामान पर्याप्त है। भगवान् रुपया-पैसा दे, तो ब्याह-शादीमें जी खोलकर खर्च करो, आभूषण बना लो, चलो छुट्टी हुई। किसीसे खोट हो, तो उससे जबानी लड़-झगड़कर दिल साफ कर लो।

---

१. श्रृङ्गारकी सामग्री, २. पर्यटन ३. सवारीका शौक, ४. सभ्यता, ५ अविद्या, ६. पिंजरेका कैदी, ७. बासन्ती समीर।

पूरे कुटुम्बके लिए दो एक दालान और एकाध सायबान बहुत है। छोटे-बड़े सब एक जगह रहें, खायें-पियें, सोयें-जागें, कुछ हर्ज नहीं। लड़के-लड़कियोंके लिए अलग कमरोंकी कोई आवश्यकता नहीं। माताओंके लिए उनके बच्चे ही हरे-भरे बाग हैं। लड़कियोंके लिए अपने छोटे बहन-भाइयोंको खिलाना ही बड़ी सैर है। मेज-कुरसी निरर्थक है। चांदनीसे बढ़कर कोई सजावट नहीं। स्त्रीके लिए बैडमिण्टनकी भांतिके व्यायामकी क्या आवश्यकता? घरका झाड़ना-बुहारना, पकाना-रींधना, सीना-पिरोना, पीसना-कूटना ऐसे काम हैं, जिनसे व्यायाम अपने-आप होता रहता है। और इसीका काम स्वास्थ्य है। गृहस्थीके कामोंको भली भांति न कर सकना ही रोग कहलाता है। यह अवश्य है कि पश्चिमके अनुकरणमें हम बिना सोचे-समझे रहन-सहनका नवीन ढङ्ग ग्रहण करते जा रहे हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि हमारी सभ्यता एक ऐसा अवलेह बन गयी है, जिसमें प्राचीन और नवीन सभ्यताके सद्गुण बहुत कम और दुर्गुण बहुत अधिक हैं। इसके उत्तरमें नवीनता-प्रिय रमणीकी जो आपत्तियां हैं, उनकी आलोचनाका मुझे प्रयोजन नहीं। परन्तु यह अवश्य कहना पड़ता है कि यदि प्राचीनता-प्रेमी वर्गकी सफाईमें उसकी रहन-सहनकी खूबियोंका उल्लेख न किया जाय, तो निश्चय ही यह अन्याय होगा।

वह देखिये, साफ-सुथरा भारतीय ढङ्गका मकान है। दालान और कमरोंमें बर्फ-सा बिछौना हो रहा है। सहनमें एक ओर कोरे-कोरे मटके, सुराहियां, चमकते हुए गिलास, कटोरे धरे हुए हैं। सामने बरामदेके भीतर तख्तोंका फर्श है, जिसपर कालीन और गाव-तकिया लगा है। लेम्प, दीवारगीरी जगह-जगह करीनेसे लटक रही है। पिटारी साफ, उगालदान धोये रखे हैं। निकट ही तिपाईपर इतरदानमें, ऋतुके अनुसार, अतर और खासदानमें इलायची तथा चिकनी डली पड़ी है। घरवाली चम्पई दोपट्टा ओढ़े, पलंगपर बैठी, शेरवानीपर बटन टांक रही हैं। साथ ही बच्चीको पाठ भी बताती जा रही हैं।

आज समझा जाता है कि पुराने ढङ्गकी स्त्रीके पास किसी प्रकारका मनोरञ्जन ही नहीं। गरीबकी सारी आयु बन्द कोठरीमें समाप्त हो जाती है। परन्तु यह धारणा किसी अंशमें असत्य है। सचाई यह थी कि किसी दिन किसीको कुतुब मीनारकी सैरकी सूझी। आजकलका तो परिवार था नहीं कि दो-तीन व्यक्ति मोटरमें बैठ पिकनिकके लिए चल दिये। पूरे मुहल्लेकी स्त्रियां साथ होतीं। चन्दा करके दरिद्र पड़ोसिनोंको भी साथ लेतीं। क्या अच्छा समय था। पानी धांय-धांय गिर रहा है, और स्त्रियां हैं कि कोई आम बांध रही है, कोई बेसनी रोटी पका रही है। एक गाड़ी और दस-पन्द्रह सवारियां; उतने ही बच्चे। कुछ बरसातके गीत गाती भीगती हुई पैदल चलीं। गाड़ीवालियां उनका साथ दे रही हैं। झूला बागमें पहले ही मामाने डलवा दिया था। पांच-चार इससे लिपटीं। शेषने कड़ाई चढ़ायी। पालक, कलमी बड़े, गुलगुले, फुलकियां गरम-गरम उतर रही हैं। झूलोंमें लाल, हरी सीढ़ियां पड़ी हैं और झूलनेवालियां रङ्ग-रङ्गके वस्त्र पहने लहक-लहककर मल्हार गा रही हैं—

सखि, आये बदरवा झूमके।

सच मानिये, भारतीय सभ्यता इसी भाग्यवान्के प्रतापसे थी। अब तो दूसरोंकी नक़ालीसे वह नक़्शा ही बदल गया है—

मिसिज़ और मिस बन गयीं औरतें सब,
न ज़ेबुन्निसा है न चञ्चल कुमारी।

गृह-प्रबन्ध और शिष्टाचार उनमें बहुत बड़े अंशमें पाया जाता था। आजकल अभिनव विचारोंके प्रवाहमें गृहस्थीकी बातें एक स्वप्न होती जा रही हैं। बहुधा लड़कियां नर्सिङ्ग, खाना-पकाना और सिलाईकी शिक्षाके उपरान्त भी बच्चोंके पालन-पोषणमें आयाकी, रसोई-घरमें खानसामां एवं सिलाईमें दरजीकी सदा मुहताज दिखाई देती हैं। हम मानते हैं कि अभिनव सामाजिक जीवनकी एक शिक्षा यह भी है कि मनुष्य अपना अधिकांश समय उन कामोंमें न लगाये, जिनको उससे कम योग्यतावाले सुगमतासे कर सकते हैं। वह उस बहुमूल्य समयको अधिक उपयोगी बातोंके अर्पण करे। परन्तु पर्यवेक्षण बतलाता है कि प्रायः इस सुनहले सिद्धान्तके केवल पहले ही अंशपर आचरण किया जाता है।

मितव्ययिता और कारीगरीमें पुराने ढङ्गकी स्त्री अपनी उपमा आप ही थी। इसके अतिरिक्त उसकी रहन-

सहनकी रीतिमें भी कतिपय ऐसी विशेषतायें थीं, जिनमें कुछ न कुछ भलाई अवश्य थी। प्रत्येक प्रकारका भोजन तैयार करना उसके लिए एक साधारण बात थी। अकेली स्त्री चालीस-पचासका निमन्त्रण निपटा लिया करती। शिल्प-कारीसे उन्हें स्वाभाविक प्रेम था। बाजारकी झूठी लैसोंके सामने गोटा-किनारी और भड़कीले रङ्गीन वस्त्र उन्हें अधिक पसन्द थे। तनजेबकी कीमती गुलबदनकी शिलवार और डोरियेका दुपट्टा उनका प्रिय परिधान था। यों तो गाढ़ा और नयनसुख भी बहुधा पहन लेतीं। विवाहिताका श्वेत वस्त्र धारण करना बुरा समझतीं।

गहनोंका बहुत शौक था। निर्धनसे निर्धनके शरीर-पर भी कतिपय आभूषण अवश्य देख पड़ते। यही उसके आड़े समयमें काम आते। सामान्यतः आठवें दिन कांचकी चूड़ियां और महंदीका रिवाज था। उनके शृङ्गारकी सामग्री चिरस्थायी और सस्ती हुआ करती थी—सुरमा, मिस्सी, काजल, टिकली, बिन्दी, शहाब और ऐसे इतर, जिनकी महक सन्दूकसे बरसों न जाती।

दिन-पर्व और रीति-रिवाजको वे बहुत मानती थीं। इन उपलक्ष्योंके बहाने परिवारकी स्त्रियां मिल बैठतीं। और फिर इस अवसरपर देने-लेनेसे बुलानेवालीका बहुत-सा भार हलका हो जाता। पुराने विचारकी स्त्रीकी शिक्षा, अलबत्ता, कतिपय धर्म-पुस्तकों तक ही परिमित रहती। बहुत किया किसीने, तो तुलसी रामायण, गीता, विष्णु सहस्रनाम, भक्ति-लीलामृत पढ़ डाला। परन्तु वे इनकी बातोंपर आचरण अवश्य करतीं। पत्र लिखना प्रथम तो जानती ही न थीं, जो लिखा भी, तो लम्बी-चौड़ी प्रशस्ति और घर-वालोंके लिए पालागन, नमस्कार और बच्चोंके प्यारसे उसे समाप्त कर दिया। सामान्यतः यह तो नहीं कहा जा सकता कि उनको कवित्वका दावा था। उनकी शिक्षा ही कहां थी। परन्तु इस सत्यसे इनकार नहीं कि उनमें कविताकी प्रवृत्ति और योग्यता अवश्य थी। उनकी पहेलियों और लोरियोंमें यह चीज आती है—

आ जा री निंदिया तू आ क्यों न जा,
मोरे बालेकी आंखोंमें घुलमिल जा।

वे बच्चोंको सुनाया करतीं—

एक था राजा, हमारा तुम्हारा प्रभु। राजासे आरम्भ करके महाराजों, राक्षसों, अप्सराओंकी मनोरञ्जक कहानियां सुनातीं। सागर-पारकी राजकुमारी और उड़न-खटोलेका जिक्र जरूर आता। बटोहियोंके मारे दिनको कहानी न कहनेमें भी कामके समयको नष्ट न करनेका तत्त्वज्ञान था।

निर्धन-वर्गमें चक्कीके गीत थकान मिटानेके लिए घण्टों मिलकर गाये जाते या फिर देहातमें सावन और झूलेके गीत—

बरखा गयी जाड़े गये बीत गये खरसाय,
आवन-आवन कह गये आये न बारह मास।

जिन प्रथाओंपर आज हम हंसते हैं, जो रीतियां आज निरर्थक जान पड़ती हैं, उनके आवरणमें आपदाके मारोंका कितना ढाढ़स बंधता। प्रथाके बहानेसे स्वाभिमानी निर्धनों-के भावोंको ठेस पहुंचाये बिना उनकी सहायता हो सकती थी। पुराने विचारकी माता परिवार-पड़ोसकी दरिद्र कन्याओंको, दूलहाके नेगके मिस, कुछ दे सकती है। इसी प्रकार सावनमें बेटेको भेजकर परदेससे बेटीको घर बुलाना है। देखिये, किस उत्तमतासे इस प्रथाने इस आवश्यकताको पूरा किया है—

नीमकी निबोली पकी सावन कभी आयगा,
जिये मेरा मांका जाया डोली भेज बुलायगा।

बहुधा रोग-शान्तिके उपयोगी और सुलभ उपाय और टोटके इन्हें कण्ठस्थ होते। बात-बातपर डाक्टरके लिए आदमी न दौड़ता। स्त्रीके लिए खेल-कूद अलबत्ता उन्हें न भाते। लड़कियोंमें गुड़ियोंका खेल बहुत प्रिय था। उनकी सब प्रथायें पूरी की जातीं। यद्यपि नामको ये खेल थे, परन्तु मां बेटीको हंडिया-कुलियासे खाना पकानेकी और गुड़ियाके खेलसे गृहस्थी और सीने-पिरोनेकी शिक्षा दिया करती। आज यूरोप और अमेरिकामें अधिक बल इस बातपर दिया जाता है कि बच्चोंको जो कुछ पढ़ाया जाय, उसको क्रिया द्वारा उनके सम्मुख उपस्थित किया जाय। परन्तु भारतमें बहुत पहले इस प्रकारकी क्रियात्मक शिक्षाका पूर्ण प्रबन्ध था। यह बात दूसरी है कि अब हम उसकी उपेक्षा कर चुके हैं।

उनका प्रतिदिनका दस्तूर यह था कि वे सवेरे उठकर प्रभुका स्मरण करतीं, कलेवा तैयार कर, बच्चोंके मुंह-हाथ धुला, उनको और घरके पुरुषोंको कलेवा करातीं। कोई बड़ी-बूढ़ी हुई, तो उसकी दवाई कूट दी। फिर भोजन बनानेमें

लग गयीं। घरकी सारी सिलाई वे आप ही करतीं। बूढ़ी स्त्रियां मुहल्लेके बच्चोंको पढ़ाया करतीं।

विद्याकी कमीके कारण वे शीघ्र-विश्वासी अवश्य थीं, परन्तु उनके बहुत-से मूढ़विश्वास अनुभवसे रहित न थे। उदाहरणके लिए, यह आदेश कि घरसे कोई बाहर सिधारे, तो झाड़ू मत दो। इसमें भाव यह था कि उसकी गिरी-पड़ी वस्तु जल्दीसे इधर-उधर न हो जाय। अथवा यह नियम कि सन्ध्या-कालमें कोई काम न किया जाय। स्पष्ट है कि इससे नेत्र-दृष्टिपर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

उस बेचारीको अज्ञानी, प्राचीनता-प्रिय और न जाने क्या-क्या कहा जाता है। परन्तु उसकी सुघरतासे इनकार नहीं हो सकता। वह घरकी वस्तुओंको व्यर्थ नष्ट न होने देती। छोटे-छोटे टुकड़ोंको जोड़कर मेजपोश, पुराने कपड़ोंके गिलाफ, बड़े आदमियोंके कपड़ोंसे बच्चोंके रूमाल बना लेना, पैवन्द लगाना, रफू करना, चक्की चलाना, चरखा कातना, घरके रद्दी कागज गलाकर टोकरियां, डिब्बे बना डालना इनका प्रतिदिनका मनोरञ्जन था। निर्धन और विशेषतः विधवा गोटा-निवाड़ बुनकर, सिलाई और पिसाईसे अपनी जीविका चला लेती। जब हम सुनते हैं कि एक सिपाहीकी स्त्रीने, जिसकी आय आठ रुपये मासिक थी, बेटीको हजार रुपयेका दहेज दिया, तो आश्चर्य होता है। परन्तु पुराने ढङ्गकी स्त्रीके लिए यह असम्भव न था। एक तो वह चतुराईसे प्रतिदिनकी आवश्यकताओंमें किफायत करती, दूसरे उसके खर्च अधिक न थे। आभूषण बहुधा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते। वस्त्र और भोजन सादा। सारा कुटुम्ब एक जगह रहता। कोठी और खानसामांका किस्सा न था।

केवल दिखलावेका शिष्टाचार ही नहीं, उसकी प्रकृतिमें प्रेम, मिलनसारी, शुद्धता, अतिथि-सेवा और सौजन्य कूट-कूटकर पाया जाता था। स्वर्गीय हालीने इसी स्त्रीके सम्बन्धमें कहा है:—

नेकीकी तुम तसवीर हो इफ्फतकी[१] तुम तदबीर हो,
हो दीन[२] की तुम पासबां[३] ईमां[४] सलामत[५] तुमसे है।

इन अनमोल भावनाओंके अतिरिक्त उसका संसार केवल उसका घर था। वह पति और बच्चोंकी निःस्वार्थ सेवा ही अपना धर्म समझती और इसी विश्वाससे घरके वातावरण-को स्वर्ग बनाये रखती। आजकलकी नये विचारकी स्त्रीने इस बातका निश्चय कर लिया है कि जीवनके प्रत्येक विभागमें पुरुषके बराबर सिद्ध होकर रहूंगी। वह पुरुषको अपना प्रतिद्वन्द्वी समझती है और उसे पछाड़नेके लिए उसने अपना सब कुछ तज दिया है। स्त्री अब वही विद्या प्राप्त करती है, जो पुरुष करता है और उन्हीं कामोंकी तलाशमें रहती है। घर-गृहस्थी और मातृत्वको घृणाकी दृष्टिसे देखती है। पश्चिममें लड़कियां क्लब और होटलके जीवनको घरसे अच्छा समझ रही हैं। और यही बात भारतमें भी प्रचलित हो रही है।

पाश्चात्य देश इस क्रान्तिसे बहुत दुःखी हैं। छोटेसे छोटे परिवारकी देख-रेख भी सेविकाको सौंपकर मां नौकरीपर चली जाती है। प्रसिद्ध दार्शनिक मिलका मत है कि माताके समान कोई दूसरा उसके बच्चेकी देख-रेख नहीं कर सकता। वस्तुतः जो बच्चे बाल्यावस्थामें माताके आध्यात्मिक लाभ-से वञ्चित रहते हैं, उनसे भावी जीवनमें उच्च चरित्रकी आशा व्यर्थ है। यही राष्ट्रका विध्वंस है। गृह-स्वामिनीके लिए घरकी देख-भाल आय बढ़ानेकी अपेक्षा अधिक आवश्यक है; क्योंकि इससे यही होगा न कि एककी आय दूसरेकी ओर चली जायगी। अर्थात् पुरुष बेकार हो जायंगे और स्त्रियां रोजगार करने लगेंगी। यह सच है कि इस आन्दोलनने अभी पूर्वमें पूरी तरहसे जोर नहीं पकड़ा; परन्तु अभीसे इसकी रोक-थामके लिए चाहिए कि प्राचीनता-प्रिय महिलाके मत और अनुभवको आधुनिक लड़कीकी शिक्षा-पद्धतिमें सम्मानपूर्ण स्थान दे दिया जाय।

जिसे हम प्राचीन कहते हैं, क्या वह इसीलिए घृणाके योग्य है कि वह प्राचीन है? आज हम देख रहे हैं कि प्राचीन ही नवयुगका लक्ष्य है। वही पारस्परिक प्रेम, वही पुरानी सादगी और निष्कपटता आज इस नवीन नौकाका किनारा है। पुराने ढङ्गका मोटा गाढ़ा पहननेवाली अपनी सादगी और निष्कपटतामें नवीन रहन-सहनके दिखलावे और तकल्लुफसे कहीं अच्छी है। समाजकी आंधी कितने ही वेगसे उठे ये छायावाले वृक्ष अपने स्थानसे सरकनेवाले नहीं।

हवाये कूचये मशरिककी मौजें याद हैं मुझको।
वही थी मञ्जिले राहत वही रफ्तार अच्छी थी॥*

———

१.पवित्रता, २.धर्म, ३.रक्षक, ४.श्रद्धा, ५.सुरक्षित।

* "शाहकार" से अनुवादित।

नारी और उसकी वेशभूषा

श्री नारायण श्यामराव चितामबरे

आधुनिक नारीकी वेशभूषाकी ओर सशङ्कित नजरसे देखकर अधिकांश पुरुष-समाज बौखला उठा है। उसकी दृष्टिमें नारीका सम्मान गिर भी गया है। नारी जातिके सम्मानके प्रति यह उपेक्षा-भाव, यह अपमान न केवल बुरा है, वरन् भारतके उत्थानमें भी अवरोधक है। यह भूलना श्रेयस्कर न होगा कि नारी राष्ट्रकी जननी है। उसकी आत्मा है। पुरुष देशका शरीर है, तो स्त्री देशकी आत्मा। अपनी आत्माकी उपेक्षा करनेपर क्या कभी मनुष्य उन्नतिकी ओर अग्रसर हो सकता है? जब तक हम स्वयम् अपनी आत्माकी प्रतिष्ठा न करेंगे, उसमें तेजस्की कल्पना न करेंगे, उसकी पूजा न करेंगे, हमारा उत्थान होना सर्वथा असम्भव है। अपनी आत्माकी उन्नतिके लिए ही आध्यात्मिक ज्ञानका प्रयोग किया जाता है। भौतिक विज्ञान शारीरिक शक्ति-सम्पन्नताके लिए है; किन्तु शारीरिक सम्पन्नता, आध्यात्मिक उत्कर्षके बिना एकाकी है, लूली है, लंगड़ी है। जीवन हमेशा शक्तिहीन, चैतन्यहीन ही बना रहेगा। आध्यात्मिक उन्नतिके बिना शारीरिक उन्नतिका कोई महत्त्व नहीं है। जब तक आध्यात्मिक तपस्यासे आत्मा तेजवती, बलवती न होगी, मनुष्यका जीवन प्राणहीन रहेगा, इसीलिए स्वदेशके शरीर-रूपी पुरुष अपनी एकाकी उन्नति कर देशको स्वतन्त्र करनेका विचार करेंगे, तो वह हास्यास्पद होगा। नारी और पुरुषका संयोग ही जीवनमें रसकी सृष्टि करता है। उसकी आध्यात्मिक और शारीरिक उन्नतिका परिणाम ही ओजपूर्ण सन्तानकी प्राप्ति है। जब तक ये दोनों प्रवृत्तियां—आध्यात्मिक और शारीरिक—सबल रहती हैं, देशकी सन्तान परतन्त्रतामें रहना हरगिज बरदाश्त नहीं कर सकती।

इसीलिए एकाकी पुरुषके लिए, सामूहिक समाजके लिए, विशाल देशके लिए नारीकी सर्वमुखी आवश्यकता है। यही कारण है कि हमने उसे देशकी आत्मा कहा है। जब तक इस आत्माकी ज्योति प्रदीप्त रही, भारत प्रकाशमय रहा; किन्तु एक समय आया, जब कि इस ज्योतिपर आवरण डाल दिया गया, फलस्वरूप धीरे-धीरे हमारी अवनति होती गयी और सम्पूर्ण देशमें भीषण अन्धकार छा गया।

किन्तु स्थिति अधिक दिनों तक एक ही अवस्थामें नहीं रहती। वह परिवर्तनशील है, अतः आज भारतकी नारी भी जाग उठी है। उसकी चिरकालीन निद्रा टूट चुकी है। वह यह भी जान गयी है कि विश्वकी दौड़में भारतकी नारी बहुत पीछे रह गयी है। उसने यह भी सोचा कि वह हरगिज विश्वके किसी भी देशकी नारियोंसे पीछे नहीं रहेगी। वह प्रमाणित कर देगी कि अतीतमें जिस प्रकार उसकी माताओंने भारतका मस्तक ऊंचा किया था, वह भी उसी शानसे अपना जीवन सञ्चालित कर भारतका मस्तक ऊंचा बनाये रखेगी।

इसी पुनीत अभिलाषाको लिये वह अपने तमाम बन्धनोंको—जो पिछली अनेक शताब्दियोंसे उसको जकड़े हुए थे—तोड़कर उन्मुक्त पक्षीकी तरह दौड़ पड़ी है। और पुरुष-समाज, जिसने उसके संरक्षणका बोझ अनायास ही उठा रखा था, खीझ उठा है। उसकी प्रत्येक उन्नतिमें उसके स्वच्छन्द हो जानेकी वह कल्पना करता है। हृदयमें कलुषित भावनाओंको स्थान देकर उसकी ओर शङ्काकी दृष्टिसे देखता है। हम उनकी बात नहीं कहते, जो आधुनिक स्त्री-स्वतन्त्रताके पक्षपाती हैं, जिनकी दृष्टिमें स्त्रीकी उन्नति वाञ्छनीय है। हम तो उस सर्वसाधारण पुरुष-समाजके सम्बन्धमें लिख रहे हैं, जो इसका तीव्र विरोध करता है और जिसकी दृष्टि स्त्री-स्वतन्त्रताके सम्बन्धमें न्याय्य नहीं है।

स्त्रियोंकी उन्नतिके सभी अङ्गोंपर विचार करना आज हम नहीं चाहेंगे। उनपर जो आजकल फैशनका अभियोग लगाया जा रहा है, उसीके सम्बन्धमें हम अपने विचार प्रकट करेंगे।

प्रत्येक युगमें अपनी एक विशेष वेशभूषा रही है' जो सर्वप्रथम फैशनके रूपमें ही प्रचलित होती रही, तत्कालीन समाजने उसका सानन्द स्वागत नहीं किया। वह तो समाजके सम्पूर्ण विरोधमें ही पनपती रही और फिर सर्वसाधारणकी चीज बन गयी। आदिम युगसे लेकर आज तककी उन्नतिका यही क्रम रहा है। धर्मकी उन्नतिको ही लीजिये,

धर्मके नये तत्त्वोंको उस समयके समाजने तत्काल ही नहीं अपनाया। घोर विरोध हुआ है, तब कहीं जाकर समाजमें वे तत्त्व समरस हो सके।

इसी तरह वेशभूषाका भी एक क्रम रहा है। बल्कल पहननेका युग समाप्त हुआ, वस्त्र आये और उन वस्त्रोंके अनेक रूप प्रचलित हुए और उनको पहननेके अनेक तरीके भी निर्माण हुए।

इससे पूर्व कि हम आजकी वेशभूषापर विचार करें, उस वेशभूषाकी कुछ चर्चा करना चाहते हैं, जो अतीतमें किसी युगकी विरासतके रूपमें आधुनिक नारीको मिली थी। उसका प्रचलन कब हुआ, इसका विवेचन करना समयका दुरुपयोग होगा। किन्तु यह अवश्य है कि उसका जो रूप हमने पाया और जिसे पुरातन समझकर आजकी नारियां छोड़ बैठी हैं, वह भी किसी समय, जब कि वह प्रचारमें आयी थी, फैशनके रूपमें ही समझी गयी होगी और उसका विरोध भी हुआ होगा।

हमारा विश्वास है कि नारीकी यह वेशभूषा जिस युगमें पनपती रही, उस समय वह स्वतन्त्र नहीं थी, न उसे अपनी बुद्धिका उपयोग करनेकी स्वतन्त्रता ही थी। फैशनमें परिवर्तन होता गया, नये-नये फैशनका चलन भी होता रहा; परन्तु आज-जैसा बवण्डर उस समय न उठा होगा। फैशनमें जो परिवर्तन होता रहा, वह चहारदिवारीके भीतर और वह भी पुरुष-समाजको रिझानेके लिए ही। बन्दी नारीके अपने इच्छानुसार उस समय अपनी वेशभूषामें कुछ थोड़ा परिवर्तन करनेपर पुरुषोंकी दृष्टि अवश्य ही वक्र हुई होगी; किन्तु दूसरी ओर उन्हें यह भी सन्तोष था कि वह बन्दी है, और जो कुछ करती है, वह हमारे लिए ही है, अतएव उनके आन्तरिक भाव वक्र-दृष्टि तक ही सीमित रहते थे, विस्फोट नहीं हो पाता था।

वर्तमान युगसे सटा हुआ युग, विलासिताका युग रहा है। मुसलमानोंके शासन-कालमें भारतीय संस्कृतिकी उन्नति तो क्या, उसकी रक्षा ही बड़ी मुश्किलसे हो सकी है। मुगल-कालीन मुसलमानोंकी विलासिताके प्रभावसे तत्कालीन हिन्दू-समाज भी अछूता न रह सका। विदेशी राजाके विदेशी साहित्यका प्रभाव भी उस समयके साहित्यपर पड़ा और साहित्यके प्रभावसे समाजमें भी विलासिताकी अमिट छाप लग गयी। नारी विलासिताकी सामग्रीमें प्रथम समझी जाने लगी और पुरुषकी एकमात्र इच्छापर —सङ्केतपर—नाचते रहना 'नारी-धर्म' की परिभाषा बन गयी। उस समयकी चित्रकला देखिये, नारीका जो रूप हमने पाया, उसमें विलासिताकी गन्ध है, उन चित्रोंको देखनेपर आज भी हमारी आंखोंमें एक उन्मत्त-सी रेखा दौड़ जाती है। हम सोचते हैं कि नारीका इतना विकृत रूप अतीतके किसी भी युगमें न रहा होगा। तत्कालीन ब्रजभाषाके कवियोंने भी अलङ्कार-विभूषिता जिस नारीका रूप पेश किया है, उससे भी हमारे कथनकी पुष्टि होती है। अलङ्कारोंकी जगमगाहट, पैंजनोंकी रुनझुनाहट, मेहंदीकी लाली, कमरका पतलापन, शङ्खाकृति गर्दन, उरोजकी दृढ़ता, नयनोंकी चितवन आदि मद-भरे शब्दोंके बाह्याडम्बरमें नारीका सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् रूप छिप गया। कन्याके सत्य रूपसे परिवर्तित नारी और नारीके शिव रूपसे बना माताका सुन्दर रूप विस्मृत कर दिया गया। कन्या और माताके रूपको भूलकर पुरुष नारी-उपासनामें ही तल्लीन रहे। वह उपासना भी कैसी, वासनासे सनी और विलासितासे भरी।

इस भीषण युगसे आजकी नारीका जन्म हुआ है। जब वह जागी, जब उसे अपनी अवस्थाका भान हुआ, तो उसने देखा, वह बहुत ही नीचे धरातलपर है। विरासतके रूपमें उसने अपनी जिस अवस्थाको, जिस रूपको पाया, वह उसे सन्तोष और तुष्टि न दे सका, उसके हृदयमें अपार दुःख और असीम करुणाका समुद्र बह उठा। उसने सहारा चाहा, तिनकेका ही सहारा, कुछ भी आधार मिले और वह अपनी इस गिरी अवस्थासे कुछ तो ऊपर उठ सके। भारतकी पुरातन संस्कृतिसे वह अपरिचित थी, न उसका स्पष्ट रूप समाजमें प्रचलित था। जो रूप था, उससे उसे घृणा-सी हो गयी थी, तब उसका ध्यान पश्चिमी सभ्यताकी ओर गया। उसमें उसने अपनी उन्नतिके बीज पाये और वह बुभुक्षितकी तरह उधर ही दौड़ पड़ी। आजकी नारीके अन्तरतम विचारोंमें क्रान्तिकी जो झलक हम पा रहे हैं, वह पश्चिमके संसर्गसे ही है, यह एक ऐसा सत्य है, जिससे इनकार नहीं किया जा सकता।

प्रश्न किया जा सकता है कि जब मुगलकालीन सभ्यताके बन्धनोंसे छूटकर नारी पश्चिमी सभ्यतामें फंस गयी है, तब भारतीय संस्कृतिकी रक्षा कैसे सम्भव है ?

बात सही है, इसे मानना ही होगा, साथ ही हमें भारतकी मुगलकालीन परिस्थिति और आजके भारतकी अवस्थापर भी विचार करना होगा। मुगलोंके साम्राज्यमें, जब कि वह उत्कर्षके शिखरपर पहुंच गया था, भारतके हिन्दू गुलामीमें सम्पूर्णतया फंस गये थे। मुगलोंके एकछत्री साम्राज्यके नीचे उन्होंने अपनेको सुरक्षित समझ लिया था, राजा ईश्वरका रूप है, इस अपनी भोली भावनाके भरोसे सर्वसाधारण जनता मुगल सम्राटोंको ईश्वरका अंश मानने लगी थी। इतिहास पढ़नेवाले जानते हैं कि महाराणा प्रतापको सफलता न मिलनेके जो कारण हैं, उनमें यह भी एक है। पुरुषोंमें ही जब ये भावनायें थीं, तब स्त्रियोंकी भावनाओंपर विचार करना ही व्यर्थ है। वे तो बेचारी चहारदिवारीमें बन्दीकी तरह जीवन बिता रही थीं। पुरुषोंको रिझाना ही अपना कर्तव्य समझती थीं। पतिके विरुद्ध पत्नी विरोध कर सकती है, यह भावना ही पापमूलक थी। तब क्रान्तिकी बात करना ही व्यर्थ है।

हां, राजकीय व्यवहारमें अवश्य ही तीन-चार नारियोंने अभूतपूर्व काम किया है; किन्तु वे अपवाद हैं और अपवाद सिद्धान्त नहीं होते, अतएव उनकी उन्नतिको नारीकी सर्वाङ्गीन उन्नति कहना भारी भूल होगी।

ठीक इसके विरुद्ध आजके भारतकी परिस्थिति है। आज प्रत्येक दिशामें क्रान्तिकी वेगवती धारायें प्रवाहित हो रही हैं, तब नारी जातिकी उन्नतिकी भावनाओंमें भी क्रान्ति होना अनिवार्य है। आज जिस विराट् और विस्तृत रूपमें नारी-जागरणकी सफलता हम देख रहे हैं, पिछली अनेक शताब्दियोंसे हम नहीं देख सके। आजकी नारी बन्दी नहीं है। पिंजरेसे मुक्त हो गयी है, पर फैलानेका अवकाश उसे मिल गया है, शिक्षाके प्रभावसे उसकी बुद्धि तीव्र होकर उसमें ज्ञानका समावेश हो रहा है। अन्धपरम्परा अब उसमें नहीं रह गयी है। आंधीमें दौड़ पड़ी थी, ठोकरें भी खा चुकी है। रास्ता भी भूली, संभलती भी जा रही है। आघातोंको सहकर वह दिन-ब-दिन अधिक विचक्षण हो रही है। बिना छेनीके घाव खाये क्या पत्थर मूर्ति बन सकता है? और इसका स्वाभाविक परिणाम, भावी नारीकी जो अभिनव मूर्ति निर्माण होगी, उसमें मिलेगा। भावी नारीका रूप होगा, आजकी नारीका त्यागमय तपस्याका उज्ज्वलतम रूप।

आजकी नारीने पश्चिमी सभ्यताका अन्धानुकरण नहीं किया है। उसने भारतीय संस्कृतिको नहीं भुलाया है। भारतकी परतन्त्रता उसके हृदयमें शूल-सी चुभ रही है। उसे यह भी ज्ञात है कि वह माता है और उसकी कोखसे जने, गोदीमें पले और आंगनमें खेलनेवाले लाल ही भारतकी शृङ्खला तोड़ेंगे। वह पश्चिमके प्रभावसे प्रभावित जरूर हुई है; किन्तु उस प्रभावमें वह बह नहीं गयी। हम तो उसका पतन तब कहते, जब वह पूर्णतया पश्चिमकी वेशभूषाको अपनाकर पूरी 'मेम' बन जाती। आप जरा आधुनिक नारीकी वेशभूषाकी ओर देखिये, उसने भारतीय ढङ्गसे ही अपनी वेशभूषामें परिवर्तन करके उसे कलात्मक रूप दिया है। उस रूपमें हमें उनकी आन्तरिक भावनाओंका भी पता चलता है। आजकी नारीका रूप प्रशान्त है। न उत्तप्त है, न मद-भरा, न विलासमय। स्वच्छ, सफेद, सादी साड़ी, रेशमी होगी, तो वह भी सादी, एक-दो बारीक-बारीक सोनेके गहने, हाथमें एक-दो चूड़ियां, पांवमें चप्पल और बालोंकी आकर्षक बनावट। यही आजकी नारीकी सर्वसाधारण वेशभूषा है।

इतना सादा और प्रशान्त रूप होनेपर भी आज उनपर फैशनका अभियोग क्यों लगाया जा रहा है? इसपर भी विचार करना अनुचित न होगा।

इसके अनेक कारण हो सकते हैं। किन्तु हमारे विचारसे प्रमुख कारण दो ही हैं। एक तो यह कि उसने सारे पुरातन आभूषणोंको एकदम छोड़ दिया है। एक भी पुराना अलङ्कार उसे पसन्द नहीं। न पुराने तरीकेके वस्त्र उसे पसन्द हैं, न उन्हें पहननेके तरीकोंसे उसे प्रेम है। उसने अपनी वेशभूषामें आमूल परिवर्तन कर एक नया ही वेश—एक अभिनव पहनावा, अपने योग्य, अपनी इच्छाके अनुरूप बना लिया है। उसमें कला है, आकर्षण है और भारतीय संस्कृतिकी रक्षा भी। किन्तु सामान्य जनताको नारीका यह परिवर्तन नहीं सुहाता। पुराने खयालकी बूढ़ी स्त्रियां तो इसे 'धर्मका विनाश' कहती देखी गयी हैं। और चूंकि सदियोंसे पुरुषोंकी इच्छापर नाचनेवाली नारी सर्वथा उन्मुक्त होकर अपने इच्छानुसार वेशभूषामें परिवर्तन करती है, तो वे उसे 'उच्छृङ्खल' नाम दे देते हैं।

दूसरा कारण है इस वेश-भूषाका आकर्षण। इस वेशभूषाको अपनानेका तरीका इतना सुन्दर है कि मनुष्यका

ध्यान बरबस उधर दौड़ जाता है। आकर्षण बुरा नहीं है। कलाकी वह सार्थकता है। प्रकृतिकी देनमें भी आकर्षण है। जो भी वस्तु हमने इस प्रकृतिसे पायी है, उसमें भी एक अभिराम आकर्षण है। प्रकृतिने हमें फूल दिये हैं, कैसा आकर्षण है उनमें, हमारी आंखें एकदम प्रसन्न हो उठती हैं, हम आनन्दमें विभोर हो उठते हैं, प्रसन्नतासे खिल पड़ते हैं, इसलिए कि प्रकृतिने अपने हृदयकी पवित्र भावनाओंसे प्रेरित होकर हमारे लिए एक कलात्मक आकर्षण निर्माण किया, हमारे दुःखोंको भुला दिया और हम क्षण-भरके लिए दीन-दुनिया भूल गये, प्रकृतिकी कला सार्थक और सफल हो गयी। अतएव आकर्षण बुरा नहीं है। पुरुषके जीवनमें नारी अपने इस आकर्षणके बलपर ही तो इसकी सृष्टि करती है। आधुनिक नारीने भी इस आकर्षणको सजीव रखनेके लिए अपनी अस्वाभाविक पुरातन वेश-भूषा छोड़कर, उसमें अनेक उचित परिवर्तन कर, उसे स्वाभाविक बनानेकी ओर भरसक ध्यान दिया है। वेश-भूषा परिधान करनेकी उनकी अपनी एक विशेष कला है, और कलात्मक ढङ्गसे उसे सर्व-प्रथम सजाया है। वह वेश-भूषा सादी है, स्वच्छ है, फिर भी नयनाभिराम है। आकर्षणमयी है, फिर भी भारतीय है। किसी देशकी जूंठन वह नहीं है, पुरानी होकर भी नयी कलाका उसमें सृजन है। हमें उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिए। उसमें सादगी है, स्वच्छता है, प्रतिभा है, आकर्षण है, जीवनके लिए ये बातें आवश्यक हैं और वे उसमें हैं।

आश्चर्य तो यह है कि नारीपर फैशनका अभियोग लगानेवाले पुरुषोंने ही वास्तवमें अपनी वेश-भूषा छोड़ विदेशी वेश-भूषाको पूर्णतया अपना लिया है। परन्तु भारतकी नारी भारतीय ही रही है, इस कलात्मक ढङ्गसे कि अनेक पश्चिमीय रमणियां उनकी इस वेश-भूषापर मोहित होती देखी गयी हैं। कभी-कभी उसे अपनाकर खुश होती देखी गयी हैं।

पश्चिमी वेश-भूषाने अखिल जगत्‌को मोह लिया है। सभी देशोंके स्त्री-पुरुषोंने उसे निःसङ्कोच अपना लिया है। अपवाद है सिर्फ भारतीय नारी, उसपर उसका जादू न चल सका। क्या यह हमारे लिए गौरवकी बात नहीं है?

निस्सन्देह क्रीम, लिपस्टिक आदि आधुनिक सौन्दर्य-वृद्धि या फैशनकी वस्तुओंका उपयोग करना भारतकी इस निर्धनताके समयमें हानिकर है, जब कि हजारों मा-बहिनें भूखों मर रही हैं। हो सकता है, आरोग्य और स्वच्छताकी दृष्टिसे ये लाभदायक और आवश्यक हों, फिर भी भारतकी दरिद्रताकी ओर दृष्टिपात करके इन चीजोंका व्यवहार न होना ही अच्छा है।

अभी तो भारतीय नारी संक्रमण-कालसे गुजर रही है। ज्यों-ज्यों शिक्षाका प्रचार होगा, अपनी स्थितिसे वह परिचित होगी, भारतकी वास्तविक अवस्थाके निकट पहुंचेगी, ये सारी बातें बन्द होती जायंगी। यह निर्विवाद है कि ज्ञानका उदय होनेपर अज्ञानका अन्धकार अपने-आप नष्ट हो जायगा।

क्या अब कहनेकी आवश्यकता रह गयी है कि आधुनिक नारीकी वेशभूषा भारतीय कलाका एक नूतन, उत्कृष्ट और प्रशान्त रूप है।

———



मैं रेलपर चढ़ी थी....

बेगम अशरफ 'सुबूही'

मैं तो औरत जात, परदेमें बैठनेवाली ठहरी। मेरा तो जिक्र ही क्या है। तकदीर जिसके पल्ले बंधी, वह भी ऐसे घर-घुसने हैं कि बाहर जानेके नामसे दुश्मनोंका बुरा हाल हो जाता है। दस बरससे खासे तीस रुपयेके नौकर थे। साहबने कहीं बाहरकी बदली कर दी। बस फिर क्या था। दफ्तरसे जो आये, तो बुखार चढ़ आया। दस्त आने लगे। अम्माजीने जो सुना, तो सारा घर सरपर उठा लिया—"आग लगे ऐसी नौकरीको! निछावर किये थे ये तीस रुपल्ली। बड़ा आया परदेश भेजनेवाला! बन्दीका एक तो फूंसड़ा है। ना बाबा, मुझे अपने बच्चेकी जान प्यारी है, रोजगार प्यारा नहीं।" आखिर साहबको भी जिद हो गयी। या वह बाहर जायं या नौकरीसे हाथ धोयें। मैं क्या समझाती, मेरी रूह सफरसे खुद कांपती थी। वह जाते, तो मुझको भी जाना पड़ता। गरज यह कि नौकरी छूट गयी। वह तो कहिये कि ईश्वरकी दयासे पिताजी पांच-सात मकान छोड़ मरे थे, जो गुजारा चल रहा है और अब हम दो मियां-बीबी और एक छः बरसका बच्चा कुल तीन दम हैं। भगवान् दाल-रोटी दिये जाते हैं, आरामसे खा लेते हैं।

तीस सालकी उनकी उम्र है और मैं बच्चेवाली हो गयी हूं। मगर बहन, चार कदम डोलीपर भी जानेका हियाव नहीं पड़ता। एक-दो दफा हिम्मत करके उनसे कहा भी कि जरा विश्वनाथ बाबाके दर्शनके लिए जानेको जी चाहता है। बद्रीनाथ, केदारनाथ हमारे भाग्यमें कहां। जीते जी उनके दर्शन तो कर लें। लेकिन बहन, वहां जानेके लिए रेलमें बैठना पड़ता है। इतनी हिम्मत न उनमें है और न मुझमें! जब लोगोंसे रेलके तमाशे और दूसरे शहरोंकी बहार सुनते हैं, तो उनके मुंहमें भी पानी भर आता है और मैं भी चाहती हूं कि एक बार तो जरूर रेलपर बैठें। अव्वल मरना आखिर मरना, फिर मरनेसे क्या डरना। सारी दुनिया रेलमें बैठती है। बूढ़े, बच्चे, जवान सभी। रोज रेल जाती है, आती है। क्या हमींको रेल खा जायगी।

बहन, इत्तफाक तो देखो। गये इतवारको वह बाहरसे आये, तो उनके हाथमें एक गुलाबी रङ्गका कागज था। मुझे दिखाकर कहने लगे—"लो, तुम्हारी प्रार्थना भगवान्ने सुन ली। मामाजीका दिल्लीसे तार आया है, कैलाशको घोड़ी चढ़ायेंगे। हम दोनोंको बुलाया है।" मेरे पांव-तलेसे जमीन निकल गयी। भौंचक होकर पूछने लगी—"यह प्रार्थना सुनी है या मेरी मौत भेजी है। मुझे तो माफ करो, तुम बरसोंसे रेलके लिए तड़प रहे थे। ईश्वरने यह दिन दिखाया है, तो हंसी-खुशी जाओ।"

वह—"और तुम नहीं चलोगी?"

मैं—जान सुखानेसे क्या फायदा? जी भर गया हो, तो एक बार ही गला घोंट क्यों नहीं देते।

वह—हमेशा कहा करती थीं कि हे भगवान्, रेल कैसी होती है जो दुनिया-भरको दिन-रात लिये फिरती है। अब जो भगवान्ने यह दिन दिखाया, तो इनकार करती हो। अजब किस्मकी औरत है। डर काहेका। एक जरा हिच-किचाहट है। मैं कहता हूं कि तुम्हारी वजहसे मैं भी रेलपर बैठ लूंगा।

मैं—तुम मर्दकी जात हो। जबसे नौकरी छोड़ी है, मर्दों-में उठना-बैठना होता है। तुम्हारा दीदा मोटा हो गया है। जाओ, शौकसे जाओ! मैं मना करती हूं? चाहो तो लल्लूको भी साथ ले जाओ। मगर मुझे न सताओ। और मुझसे जी भर गया हो, तो वैसा कहो। मुझमें तो यह बूता नहीं है कि इस निगोड़ी काली देवनीके चंगुलमें फंसूं। सुना है, मुई आंधीके झोंके लिये चलती है। पेड़ नहीं सूझते, जमीन चक-राती नजर आती है। मेरी जान ही निकल जायगी। आग लगाऊं ऐसी सैरको, झुलसा दूं ऐसे सफरको।

वह—और मेरी जानको तुमने जान ही नहीं समझा है। अरी नेकबख्त, मरेंगे तो दोनों साथ ही मरेंगे।

मैं—लेकिन किस बिरतेपर हां करूं? आखिर तुमको ऐसी क्या पच आ पड़ी है। तुम न जाओगे, तो क्या मामाजीके लड़केका ब्याह ही न होगा?

वह—हमारे जाने-न-जानेसे होता ही क्या है? लेकिन

समझो तो सही। हमें भी इसी दुनियामें रहना-सहना है। हमारे आगे भी ईश्वरकी दयासे एक लड़का है। उसका ब्याह तुमको करना है या नहीं। अगर हम किसीके मरने-जीने, शादी-गमीमें शरीक न होंगे, तो हमारे यहां आकर कौन थूकेगा। भाई-बन्दोंके दमसे ऐसे मौकोंकी रौनक होती है। यह तो मिलनेसे मिलना होता है। तुम उनके यहां जाओ, वह तुम्हारे यहां आयें। अच्छा, नहीं जातीं, न जाओ, मैं भी नहीं जाता। फिर अगर लल्लूके ब्याहमें कोई न आया, तो मुझे न दोष देना, टेसुये बहाने न बैठ जाना कि हाय-हाय हमारा कोई नहीं है।

मैंने दिलमें कहा, बात तो ठिकानेकी कहते हैं। राह-रस्म निभाये बगैर दुनियामें रहना मुश्किल है। मगर बदनमें सनसनी फैलने लगी। पड़ोसमें किसीको बाहर जाते सुन लेती हूं, तो कलेजा मुंहको आने लगता है। शहरके शहरमें जब कभी डोलीमें बैठती हूं, तो बहमका तांता लग जाता है। मुए कहार कहीं और न ले जायं। कहीं किसी गाड़ी-बग्घीसे डोली टकरा न जाय। जरा-सा झटका लगा और मेरे दमपर बनी। वह मुई मोटर-वोटर क्या बला है, उसकी पों-पोंसे तो मेरी रूह कांप उठती है। बहुतेरी हिम्मत करती थी, लेकिन हौलपर हौल चले आते थे। जब बहुत देर हो गयी, तो वह बोले—"जवाब दो—फिर मुझे इन्तजाम करना है।"

मैं—क्या खाक जवाब दूं, मैं तो कहती हूं कि किसी बहानेसे टाल दो।

वह—टालनेकी बात होती, तो मैं कभीका टाल देता। मां मरे, मौसी जिये। एक मामाका दम। वह इस चावसे बुलायें और मैं न जाऊं! मुझसे तो इनकार नहीं हो सकता।

मैं—मैं जानती हूं कि मेरी शामत आयी है। खैर, तुम अपनी जिद पूरी कर लो। यह समझ लो कि मेरा तो कुछ जायगा नहीं, ढेर होकर दिल्ली पहुंचूंगी, फिर तुम्हीं हाथ मलोगे।

घबराये हुए तो वह भी थे। उनका इतना हौसला कब था कि हंसी-खुशी तैयार हो जाते सफरको। मैं देख रही थी कि उनके चेहरेपर एक रङ्ग आ रहा था, एक जा रहा था। उन्होंने जबर्दस्ती अपनेको मर्द बनाकर झूठी मुस्कराहटके साथ मेरी तरफ देखा और बोले—"बस, तो तय हो गया न? अब सामान बांधना शुरू कर दो। रातकी गाड़ीसे ईश्वरने चाहा तो रेलपर सवार हो जायंगे।"

मैं हक्की-बक्की उनकी शक्ल देख रही थी कि हे राम, अब क्या होगा। इनके हाथों मेरा लिखा पूरा होना है। अच्छा, अगर यों ही आयी है, तो कौन टाल सकता है!

वह—सुनती हो, रातको रवानगी है।

मैं—अच्छा, तुम तो मेरे लिए काल ही हो गये।

वह—मैं तुमको जता रहा हूं, कहीं भूल न जाओ।

मुझपर तो गोया बिजली गिरी हुई थी। होश किसे था कि कुछ कहती। जब यह सुनाने आये थे, तो मैं तरकारी बना रही थी। हंडिया चूल्हेपर और मैं रेलके चक्करमें। अब जो तरकारी जलनेकी नाकमें बू आयी, तो घबराकर देखा! बहन, तरकारी तो जलकर खाक हो गयी थी और मसालेकी धांस नाक फाड़े डाल रही थी। आग ही तो लग गयी। वह होते तो दिखाती कि लो, यह तुम्हारे सफरकी शुरूआत है। खाओ या न खाओ, मुझसे तो अब चूल्हा फूंका नहीं जाता। मगर मैं भी भूखी थी और झुंझलाई भी। पतीलीको आंगनमें दे मारा, लकड़ियां मोरीमें डाल दीं। कछींसे जो राख खींची, तो चूल्हेका एक पाखा नीचे आ रहा। गरम-गरम राख उड़कर आंखोंमें गयी, चिनगारियां पावोंपर पड़ीं। बहन, क्या पूछती हो कि मेरा क्या हाल हुआ।

पड़ोसमें मेरी एक हमउम्र लड़की रहती है। बड़ी सीधी, बेहद काली! वह गरीब अक्सर मेरा हाथ बंटाने आ जाया करती थी। उस दिन भगवान् जाने, उसे भी क्या हो गया था कि वह भी न आयी। मैंने सारा धन्धा अपने हाथों किया। अब जो मुझ कम्बख्तपर यह बिपता पड़ी, तो फिर मैंने उसको पुकारना शुरू किया—"अरी छम्मो, ओ छम्मो! बहन छम्मो, इधर तो आ!" इतनेमें छम्मोने खिड़की खोलकर झांका। भाग फूटे कि वह भी मुझको जलाने लगी। मुस्कराकर बोली—"दीदी, तुम तो जानको आ गयीं। मैं कोई तुम्हारी खरीदी हुई लौंडी हूं? नहीं आते, कर लो जो तुम्हारे जीमें आये।" और खिड़कीमेंसे निकलकर ऐसा कहकहा लगाया कि मैंने खिसियानी होकर जवाब दिया—"चूल्हेमें जाय तेरी जान! भला बतला तो सही, सबेरेसे यह वक्त आ गया, चीखते-चीखते निगोड़ा गला बैठ गया, मगर क्या मजाल कि छम्मो रानीके कानोंपर जूं भी रेंगी

हो। आखिर ये नखरे बघारनेकी क्या सूझी। मैं भी तो सुनूं। कहांकी रानी बन गयी? किस लखपतीसे ब्याह रचाया है? हम तो बुलायें 'बहन छम्मो, छम्मो रानी'—उहूं— और एक ये हैं कि अकड़ी ही चली जाती हैं, मिजाज ही नहीं मिलता! अब भी क्यों आयीं? मैं खटियापर पड़ जाती, तो आतीं, मुझे पीटने आतीं—मेरे नासको रोने आतीं।"

छम्मो—दीदी, आज क्या खरहरी चारपाईपर सो गयी थीं या कहीं बिल्ली लांघनेमें आ गयी थी·········ओह, अब समझी, जीजाजीसे कुछ हुई है!

मैं—मर मुई! तुझे अठखेलियां सूझी हैं और यहां जान-पर आ बनी है। एक तो सफरकी आफतने अभीसे मेरी गत बनानी शुरू कर दी है। ऊपरसे यह टांग बराबरकी लौंडिया भी मेरे मुंहको आने लगी है।

छम्मो—उई दीदी, तुम तो सचमुच मेरी जानको आ गयीं। मैंने ऐसा क्या कह दिया! वाह भई वाह! हमारा तो दीदी-दीदी कहते मुंह सूखा जाता है और यह टांग बराबरकी लौंडिया बनाने लगीं। अच्छा भाई, मैं बुरी ही सही! मगर यह तो बताओ कि सफर कैसा? क्या कहीं जा रही हो?

खैर, किस्सा तो बहुत लम्बा है, कहां तक कहूं! वह मेरा मजाक उड़ाती रही और मैं खिसियानी होकर बुरा-भला कहती रही। लेकिन शाबाश छम्मोको, कि दम-भरमें सब सामान कर दिया। नये सिरेसे चूल्हा ठीक किया, आग सुलगायी, अपने भाईसे सौदा मंगाया, दिनके लिए आलू-मेथीका साग पकाया और सफरके लिए तरतराते हुए पराठे और मसाले-भरे करेले तले। बिस्तर-बन्दमें बिछौने लपेटे, उनकी जरूरतकी चीजें समेटीं, घरका असबाब कोठ-रियोंमें बन्द किया। गरज कि उनके हुक्मके मुताबिक चार बजेसे तैयार होकर बैठ गयी। ऐसा मालूम होता था कि कयामतका इन्तजार है। छम्मो मेरे पास बैठी मेरा मुंह तक रही थी और मैं तुलसीकी माला हाथमें लिये न जाने कुछ पढ़ भी रही थी या यों ही खटाखट दाने खिसक रहे थे।

पांच बजनेकी देर थी कि उन्होंने ड्योढ़ीमें घुसते ही पुकारकर कहा—"लो उठो, इक्का आ गया है, जरा घूंघट-चद्दर अच्छी तरह ओढ़-लपेट लेना।" बस बहन, मुझको सन्नाटा-सा आ गया। उन्होंने ट्रङ्क, गठरियां-पोटलियां, बिस्तरोंका बण्डल इक्केपर रखा, फिर सहारा देकर मुझे बिठाया। मेरी गोदमें लल्लूको ठूंसा। आगे आप बैठे, परदा डाला और इक्का चला। बहन, इक्का मैंने देखा तो था, पर बैठी कभी नहीं थी। अब तो भगवान्‌ने उन्हें उड़ा दिया है और खूब हुआ कि यह गारत हो गये। बहन, इक्केपर सवार होना कोई ऐसा-वैसा काम नहीं। हिचकोले जो लगने शुरू हुए, तो ऐसा मालूम होता था कि अमन-चैन आ गया। जामुनोंकी तरह घुल रही थी। पहियोंकी चूं-चूं, छतरीकी टक्करें, मेरा तो दिमाग उड़ गया। गठरी-मुठरी संभालती थी, तो अपनी गत बनी जाती थी। अपने तईं संभालनेको डण्डे पकड़ती थी, तो कभी पिटारी उलट जाती और कभी कोई पोटली गिरने लगती। बेचारा लल्लू अलग झटकोलोंसे परेशान होकर रोये देता था। फिर इक्केवालेकी हरकतें! राम राम, मुएकी जबान थी कि गन्दा नाला। कम्बख्तका न हाथ थकता था, न मुंह! बीबी, वह गालियां सुनीं कि मेरे बाप-दादोंने भी न सुनी होंगी।

राम-राम करके रास्ता कटा और इक्का राजाकी मण्डी स्टेशनपर पहुंचा। अब उतरूं तो क्योंकर! गठरियोंमें एक गठरी मैं भी थी। बीर-बहोटीकी तरह पञ्जे सिकोड़े। आखिर उन्होंने बड़ी मुश्किलोंसे उतारा। अब जो घूंघटकी ओटसे देखती हूं, तो चारों तरफ आदमियोंके ठठके ठठ लगे हैं। उधर लाल-लाल कुरते पहने हुए मजदूरोंने आ घेरा। कोई गठरी खींचता है, कोई पिटारी उठाये लेता है। कोई मुझसे आकर पूछता है—"कौन-सी रेलमें बैठोगी?" कोई उनके सर है कि पहले मैंने असबाब उतारा है, और मेरा हाल यह है कि मरी जा रही हूं। पसीनेपर पसीने चले आते हैं। उधरसे एक मर्दुआ धक्का देकर निकल गया, इधर मुई कोई गंवारिन अपने बोरियेमें मेरी चद्दर उलझाकर खींचे लिये जाती है। लल्लूके छुट जानेका अलग खयाल! वह भी हक्का-बक्का कि क्या करें? दिल ही दिलमें कटे जा रहे थे, मगर ऊपरसे अपनी मर्दुमी भी दिखाते जाते थे। गरज, इसी तरह चद्दर नुचवाती, कुहनियां खाती उनके पीछे-पीछे मुसाफिर-खानेमें पहुंची। यहांकी भीड़का क्या कहना! जैसे पाल पड़ी हो। तिल धरनेकी जगह न थी। औरत, मर्द, बच्चे ऊपर-तले भरे पड़े थे। वह गुल था कि मेरे कानोंके परदे फटने लगे। अब जो फिरकर देखा, तो वह गायब। बच्चा

अलग खड़ा बिसूर रहा है। हे राम, यह क्या हुआ, वह कहां चले गये। अरे लल्लू, देख तो सही। तेरे बाबूजीको जमीन खा गयी या आसमान ले गया। है है...मैं तो रेलमें बैठनेसे पहले ही लावारिस हो गयी। जी चाहा कि घूंघट खोल, बाल नोच डालूं और अगर वह न आ जाते, तो दीवानी ही हो जाती। उन्होंने आते ही कहा—"हाय, तुम्हें क्या हो गया। मैं तो टिकट लेने गया था। घबरानेकी क्या बात है। लो चलो, गाड़ी आनेवाली है।" कुलीने असबाब उठाया और हम तीनों फिर चले। बहन, यह रास्ता बड़ा कठिन था। लोहेके जंगलोंके बीच एक जरा-सी फांक थी, उसीमेंसे आदमी आ-जा रहे थे। एक मदुआ काला कोट पहने फाटकपर खड़ा था। सिपाही भी चीख-चिल्ला रहे थे कि मरे क्यों जाते हो—धक्कमधक्का क्यों करते हो? लेकिन क्या मजाल कि लोग बाज आयें। एकपर एक गिरा पड़ता था। वह तो कहो कि एक भलेमानुसने लल्लूको रोता देखकर गोदमें उठा लिया, नहीं तो उसका कचूमर ही निकल जाता। मुझे पता नहीं कि वह भला आदमी कौन था, रेलवाला या कोई मुसाफिर।

अब हम गिरते-पड़ते वहां आये, जहां रेल आकर खड़ी होती है। यहां भी मुसाफिरोंका जमघट था। बहार तो खूब थी। तरह-तरहके आदमी दिखाई देते थे। सौदा बिक रहा था। वह फिर कहीं चले गये। मुझे रेल-सेल कुछ नहीं दिखाई दी। लल्लूके चुटकी लेकर कहा—"जरा उस कुलीसे तो पूछ कि रेल कहां है और वह किधर गये?" कुली भी मेरी दीवानी बातोंपर हंस दिया और बोला—"माई, इतनी बेसुध क्यों हुई जाती हो? बाबू किसी कामसे गये होंगे, अभी आ जायंगे। रेल भी दस मिनटमें आती है, वह देखो सिगनल हो गया है।" मैंने फिर लल्लूसे कहा—'पूछ, सिगनल क्या बला है?' कुलीने इशारेसे बतलाया। मैंने घूंघटको जरा दो उंगलियोंसे ऊंचा करके देखा—"यह मुआ सिगनल कहलाता है। सर टिड्डी-जैसा और बाकी रंगा हुआ तख्ता।" लल्लू बोला—"अम्मां, देखो तो, इसकी एक आंख लाल और एक आंख हरी है।"

इतनेमें वह भागते हुए आये कि गाड़ी आ गयी। कुलियोंने जल्दी-जल्दी सामान उठाया और गाड़ियोंकी लैनडोरी शांय-शांय करती हुई सामने आ खड़ी हुई। वह शोर मचा, वह भगदड़ पड़ी कि बस, मैं क्या कहूं। मुसाफिरोंका यह हाल कि एक उतरता, तो चार चढ़ते। बच्चे रो रहे हैं, औरतें पिस रही हैं। मर्दोंमें किसीका हाथ चल रहा है, तो किसीकी जबान! वह दौड़े-दौड़े कभी इस गाड़ीको झांकते हैं, तो कभी उस गाड़ीको। बाबुओंकी खुशामद करते हैं, तो वह नहीं सुनते। मुसाफिरोंसे कहते हैं, तो वह जगह नहीं देते। लड़नेपर आमादा, मार-पीट करनेपर तैयार! आखिर बेचारे कुलीने हिम्मत की और बोला—"बाबू, तुम्हें मर्द किसने बनाया है, घुस जाओ किसी गाड़ीमें। आखिर तुमने भी तो टिकट लिया है।" इतना कह उसने एक गाड़ीका दरवाजा खोल उनसे कहा—'लो बैठो।' मुसाफिरोंने बहुतेरा गुल मचाया कि यहां पहले ही से पन्द्रह आदमी हैं। क्या हमारे सरपर बैठोगे? कई दफा असबाब भी फेंक दिया। लेकिन बहन, वह बड़ा ढीठ था, हमें बिठाकर ही छोड़ा। बैठना तो मैंने यों ही कह दिया। सामान डाल खड़े हो गये। इधर कुलीका तकाजा कि इनाम दिलाओ। वह हैं जरा कञ्जूस। बैठते वक्त तो बिल्ली बने हुए थे। एक-एकके आगे हाथ जोड़ रहे थे। उस गरीब मजदूरने अपनी जानपर खेलकर सवार करा दिया, तो इनामके नामपर अकड़ गये। लगे चार पैसे दिखाने। मजदूरोंके पेटपर लात मारना किसने सिखाया है? मैंने झट बटुआ खोल चवन्नी निकाल लल्लूको दी कि दे दे। गरीब खुश होकर दुआयें देता चला गया।

गाड़ी रवाना हुई। झटका जो लगा, तो उनका सर अलग ऊपर लगे हुए मचानसे टकराया और मैं अलग मुंहके बल एक बड़े मियांपर आ रही। यह देखकर दो-एक मुसाफिरोंको तरस आ गया। उन्होंने जगह करके मुझे और लल्लूको एक तरफ बिठा दिया और उनसे कहने लगे—"भले आदमी, क्या औरतोंका दर्जा न था, जो तुम इस परदेवालीको मर्दोंमें ले घुसे। वाह साहब, वाह! घूंघट भी कड़वा रखा है और मर्दोंमें भी लिये बैठे हैं।" मैं देख रही थी, वह बेहद शर्मिन्दा हो रहे हैं। एक रङ्ग आता है, एक रङ्ग जाता है। आंखें नीची करके बोले—"जनाब, क्या बताऊं, जिन्दगीमें मेरा यह पहला सफ़र है। मुझे क्या खबर कि रेलमें औरतोंके लिए भी अलहदा गाड़ी होती है।"

एक मुसाफिर—भाई, ब्याह नहीं किया, तो क्या बरातें

भी नहीं देखीं, मालूम कर लिया होता !

दूसरा—अजी रहने भी दो, कोई आदमी ऐसा भी है जो रेलसे अनजान हो।

तीसरा—और हजरत सूरतसे पढ़े-लिखे भी मालूम होते हैं।

एक गंवार—इन जण्टलमैनोंको यही शौक है कि अपनी बीबियोंको साथ रखते हैं।

यह लोग आगे बढ़कर न जाने और क्या-क्या खुराफात बकते और शर्मके मारे नहीं मालूम मुझे खिड़कीमेंसे कूदना पड़ता ; वह तो खैरियत यह हुई कि बड़े मियांने, जिनकी कृपासे मुझे बैठनेकी जरा-सी जगह मिली थी, लोगोंसे कहा—"भई, ऐसी बेहूदा बातें नहीं करनी चाहिए। जो आदमी सफ़रका आदी नहीं होता, उससे घबराहटमें ऐसी गलतियां अक्सर हो जाया करती हैं।" और उनसे बोले--"आप अपना सामान दुरुस्त कर लें। ऐसा न हो कि घबराहटमें कोई चीज इधर-उधर हो जाय। फिर, आपके लिए भी जगह निकल आयेगी।" इस मौकेपर रह-रहकर जीजाके शब्द याद आ रहे थे कि ईश्वर न करे जो किसी भले आदमीको तीसरे दर्जेमें सफ़र करना पड़े। भले आदमी इस दर्जेमें बिलकुल बेबस हो जाते हैं। हां, तो उन्होंने तितर-बितर चीजोंको समेटकर एक कर लिया। सुराही इस हड़बड़ीमें टूट गयी थी और उसके पानीसे सारा बिछौना भीगकर लथपथ हो गया था। उसको वहांसे हटाकर मचानपर रखा, ठीकरे बाहर फेंके और अब लालाजीने पांव समेटकर मेरे पास उन्हें भी बैठनेकी जगह दे दी। चलते-चलते गाड़ी रुकी, तो मालूम हुआ कि मथुराका स्टेशन है। यहां भी मुसाफिरोंकी वही मारामार, वही रेल-पेल। बीसियों मुसाफिर आये। कोई झांककर, तो कोई दुतकार खाकर चला गया। मगर एक लम्बा-तड़ङ्गा खाकी वर्दी पहने मर्दुआ दर्राता घुस आया। आते ही कुलीको आवाज दी—"जग्गा तो खम है, खैर ले आओ।" असबाब आया और उसके साथ जञ्जीरसे बंधा हुआ एक कुत्ता भी आया। दाढ़ीवाले मियां साहबसे बोला —"थोड़ी जग्गा दीजियेगा।" खाकी वर्दी देखकर सब सिमटने लगे। जगह पाकर वह बैठ गया। अब कुत्तेने जो दुम हिलायी, तो इत्तफ़ाकसे मियां साहबकी दाढ़ीसे, जो नीचे झुके हुए थे, गले मिल गयी। बस फिर क्या था। बड़े मियां बरस पड़े। झुंझलाकर बोले—जनाब, इस पलीद जानवरको अलग रखिये। यह भी कोई इन्सानियत है कि आप आदमियोंमें कुत्तेको ले आयें। उन खाकी साहबने कहा—"आप इतना खफ़ा क्यों होते हैं। यह भी कोई आदमी है कि दाढ़ी और दुममें तमीज कर सके।" पहले तो लोगोंको खूब हंसी आयी मगर जब यह देखा कि वाकई बड़े मियांके साथ बुरी हुई, वह गुस्सेमें कहीं हाथ-पैर न चला बैठें, तो दोनोंको समझा-बुझाकर ठण्डा किया और कुत्तेको पाखानेमें बन्द करा दिया।

शामतकी मार, मेरी खिड़कीके बराबर एक काला देव-सा आ खड़ा हुआ। मैंने पूछा—"यह पहाड़-सा क्या है?" उन्होंने बताया कि यही तो इञ्जन है, जो रेलको उड़ाये-उड़ाये फिरता है। एकाएक वह चलने लगा और इस जोरकी सीटी दी कि कलेजेमें घुस गयी। लल्लू जो मेरी गोदमें सोया हुआ था, कांप उठा। अब जो मेरे कपड़े कुछ गीले-गीले मालूम हुए, तो अय है······लल्लूने मूत दिया था, मैंने कहा—खैर, तुमने मूत तो दिया, लेकिन उस कलमुंहेको चीखकर भागते नहीं देखा, नहीं तो शायद जान ही निकल जाती।

मथुरासे गाड़ी चली, तो मुझे नींद आ गयी थी। भगवान् जाने, कितनी देर तक सोयी। आंख जो खुली, वह पुकार रहे थे कि उठो, दिल्ली आ पहुंचे। मामाजी लेनेको आये थे। हाथोंहाथ हमें उतरवाया। मैं चद्दर संभालती हुई नीचे उतरी। दिल्लीके स्टेशनकी बात ही कुछ और थी। रोशनी इस कदर कि रात भी दिन मालूम पड़ती थी। सैकड़ों गोरी भभूका-सी औरतें, नङ्गे सर, भूरे-भूरे बाल, किसीके कन्धोंपर बिखरे, किसीका जूड़ा बंधा हुआ, किसीके सिर्फ पट्टे, साया फड़काती खटपट-खटपट करती चली जा रही थीं। कोई अकेली है, कोई किसी मर्दके साथ! दस-बीस रङ्ग-बिरङ्ग-की साड़ियां पहने भी चलती-फिरती दिखाई दीं। उनकी आजादी और लापरवाही देखकर मैं तो दङ्ग हो गयी। भगवान् जाने, मैंने स्टेशनसे बाहर तांगे तकका रास्ता क्योंकर तय किया। मामाजीके घर पहुंचकर मुझपर क्या गुजरी, वह फिर कभी सुनाऊंगी।

अनुवादक—"आजाद" कलकत्ता।

कन्याकी बिदाके समयके कुछ लोकगीत

श्री ब्रजकिशोर वर्मा "श्याम"

कन्या-बिदाके दृश्य मैंने बीसों देखे हैं। अभी उस दिन मेरे पड़ोसमें एक लड़कीका विवाह होने जा रहा था। शहनाईकी निनाद-भरी स्वर-लहरी मेरे कानोंमें पहुंच रही थी और मुझे एक लोक-गीतकी बात याद आ गयी, जिसमें कि कन्याके ससुराल जाते समयका करुण चित्र पेश किया गया था—"उधर मांके अश्रु गिर रहे थे, इधर मेरी डोली कांप रही थी।" डोलीके समयका यह चित्र शहनाईके विषादमें विलीन हो गया। परन्तु सचमुच कन्याकी बिदाका समय बड़ा ही हृदय-द्रावक होता है। घर-बार, महल-मकान, पशु-पक्षी और ईंट-पत्थर तक रोते हुए जान पड़ते हैं। उस समय लड़कीके जीवनपर जितना ही विचार किया जाय, हृदयपर उतनी ही चोट लगती है—करुणाका उद्रेक होने लगता है। जिस घरको वह बचपनसे आज तक अपना घर समझती रही थी, वहीं अपनेको पाहुना-सी अनुभव करने लगती है। इससे बढ़कर आत्म-बलिदानका उदाहरण और कहां मिलेगा?

और तब उसे लड़कपनके, उमङ्गोंसे भरे दिन याद आते हैं। वह माता-पिताका दुलार, वह भाइयोंका मृदुल स्नेह, वह सहेलियोंकी चुहल! कैसे देखते-देखते दिन बीत जाते हैं! इन सभी बातोंपर भी याद करके लड़कीका कलेजा फटने लगता है! जिस समय वह विक्षिप्त होकर अपने सगे-सम्बन्धियोंसे लिपट-लिपटकर बिलपती है, उस समय किसकी आंखोंमें आंसू नहीं आ जाते! इसपर स्त्रियोंके करुण-रस-पूर्ण गीत हृदयको और भी द्रवित कर देते हैं। इन गीतोंमें शब्दाडम्बर नहीं, उपमा नहीं, अलङ्कार नहीं, कल्पनाकी ऊंची उड़ान भी नहीं; किन्तु सीधी-सादी लाइनोंमें हृदयको कुछ इस तरह खोलकर रख दिया गया है कि क्या कहें! लड़कीकी बिदाका साकार दृश्य सामने आ जाता है। यहांपर कुछ इसी तरहके करुण गीत दिये जाते हैं।

× × ×

कन्याकी बिदाका समय आ गया है। आज नहीं, कल सुबह बिदाई है। माता बड़े दुलारसे बेटीसे दही, भात खानेका आग्रह करती है! इसपर बेटी किस तरह प्रेमपूर्ण उलहना देती है, इसी भावका चित्रण कितने मार्मिक ढङ्गसे किया गया है—

खाइ लेहू खाइ रे लेहू दहियासे भात।
तोहरी ऊ बिदवा ऐ बेटी बड़े भिनुरे सार।
बिरना कलेउवा ऐ अम्मा हंसी-खुशी रे द।
हमरा कलेउवा ऐ अम्मा दिहेउ ऐसी माइ।
हम अउ बिरना ऐ अम्मा जन्मे एकरे सङ्ग।
संग-संग खेलेउंरे अम्मा, खायउं एकरे सङ्ग।
भइआके लिखला ऐ अम्मा बाबा कइ रे राज।
हमरा लिखला ऐ अम्मा अति बड़ी दूरि।

—मां कहती है—हे बेटी, दही-भात खा लो। कल बड़े सवेरे तुम्हारी बिदाई है।

बेटी कहती है—मां, भाईको तो तुम बड़ी खुशीसे कलेवा देती थीं, पर मेरा कलेवा नाराजीसे दिया करती थीं।

—भाई और मैं दोनों एक साथ जन्मे थे। साथ-साथ खेले, और साथ-साथ खाये थे।

—भाईको तो पिताका राज लिखा है और मुझे, हे मां, बड़ी दूर जाना है!

"तुम भाईको और मुझे कलेवा देनेमें पक्षपात करती थीं" लड़कीकी यह बात कैसी हृदयवेधक है! कौन ऐसी माता है, जो अपनेको इस अवगुणसे वञ्चित कह सकती है?

× × ×

लड़की अपनी ससुराल जा रही है, किन्तु उस समय उसे स्मरण आता है उन सब कार्योंका, जिन्हें वह नित्य ही किया करती है। यह स्मरण आते ही वह विकल हो उठती है, उसका धैर्य छूट जाता है:—

तेरा तजित सूना होय बाबुल तेरी धीय बिना।
मेरी बहू कातेगी हे लाड़ो बेटी जाय घरां।
तेरा पैंडा रीता होय बाबल तेरी धीय बिना।
मेरी पोती खेलेगी हेके लाड़ो बेटी जाय घरां।
तेरे गोबर बिछ रहा हो बाबल तेरी धीय बिना

मेरी बहुयें गेरेंगी होके लाड़ो बेटी जाय घरां।
मेरा गड्डा अटक्यौ होके बाबल तेरी गलियोंमें
दोय ईंट कढ़वा दे हे के लाड़ो बेटी जाय घरां।
तुझे बाबल कौन कहे बाबल तेरी धीय बिना।
आंसू तो भर आये नैनके लाड़ो बेटी जाय घरां।

बेटी कहती है—हे पिता, मेरे बिना अब चर्खा कौन काता करेगा, वह सूना पड़ा रह जायगा।

उसका पिता जब सुनता है, तो वह किसी तरह अपने आंसुओंको संभालकर अपनी प्यारी बिटियाको ढाढ़स बंधाता हुआ कहता है—प्यारी बिट्टी, अपने घर जाओ, तुम्हारे स्थानपर अब मेरी पुत्रबधू काता करेगी।

—पिता, मेरे बिना तुम्हारा मार्ग सूना हो जायगा।

—प्यारी बेटी, इसकी पूर्ति मेरी पोतियों द्वारा होगी।

—हे पिता, मैं तो तुम्हारे आलेपर रखी हुई अपनी गुड़िया भूल गयी, हाय, अब उनसे कौन खेलेगा?

—मेरी बिट्टी जाओ, मेरी पोतियां अब इस अभावकी पूर्ति करेंगी।

—पिता, तुम्हारे आंगनमें अब गोबर तो बिखरा ही रह जायगा, तुम्हारी प्यारी बेटीके सिवा उसे अब कौन साफ करेगा।

—बिट्टी, तू कुछ चिन्ता न कर, यह कार्य तेरी भाभी करेगी।

—मेरी गाड़ी पिता, तुम्हारी गलियोंमें अटक रही है।

—जा बिट्टी, अपने घर जा, मैं मार्ग ठीक करा दूंगा।

—पिता, तेरी प्यारी बिटियाके बिना तुझे पिता कहकर कौन पुकारेगा।

किसका हृदय द्रवित न हो उठेगा, यह पढ़कर! एक पितृ-हृदयके लिए अपनी पुत्रीके द्वारा पिता सम्बोधन कितना हृदयहारी है! उसके बिना सब कुछ हो सकता है; किन्तु उसके बिना उसके इस अभावकी पूर्ति कोई तो नहीं कर सकता!

× × ×

एक कन्या है। उसका विवाह होने जा रहा है। बारात दरवाजेपर आ गयी है। कन्याको यह मालूम हो गया है कि कल उसकी बिदाई हो जायगी। वह विकल होकर कहती है:—

बाबा बाबा गोहरावौं बाबा नहीं जागैं।
देत सुनर एक सेंदुर भइउं पराई।
भइया भइया गोहरावौं भइया नाहीं बोलैं।
देत सुघर एक सेंदुर भइउं पराई।

—बाबा बाबा कहकर पुकार रही हूं। बाबा जागते ही नहीं। कोई एक सुन्दर पुरुष सेन्दुर दे रहा है। मैं परायी हुई जा रही हूं।

—भैया भैया कहकर पुकार रही हूं। भैया बोलते ही नहीं। कोई एक चतुर पुरुष सेन्दुर दे रहा है। मैं परायी हुई जा रही हूं।

कितनी बेबसी है! भोली कन्या, तुझे परायी होनेसे अब कोई रोक नहीं सकता!

× × ×

जब कन्याकी मदद करने कोई नहीं पहुंचता, तो वह स्वयं ही छुटकारेकी चेष्टा करती है:—

जनि छुओ ये माली जनि छुओ अबही कुंआरि।
आधी राति फुलवै बेइलिया तौ होब तुम्हारि।
जनि छुओ ये दुलहा जनि छुओ अबही कुंआरि।
जब मोर बाबा संकलपैं तौ होब तुम्हारि।

—हे माली, अभी मत छुओ, अभी मत छुओ। मैं अभी बालिका हूं, कुमारी हूं। आधी रातको जब लता फूलेगी, तब वह तुम्हारी होगी।

—हे दूल्हा, मत छुओ, मत छुओ। अभी मैं बालिका हूं, कुमारी हूं। जब मेरे बाबा समर्पण करेंगे, तब मैं तुम्हारी होऊंगी।

कैसा भावपूर्ण गीत है! स्त्री लताकी तरह फूले-फले और पुरुष मालीकी तरह उसे सींचे, संभाले, संवारे और उसका सुख भोगे। कैसी अर्थयुक्त तुलना है!

अन्तमें कन्या कहती है कि जब तक पिता नहीं समर्पण करता, तब तक वह दूसरेकी नहीं हो सकती। बचनेकी तरकीब तो अच्छी निकाली, लेकिन कब तकके लिए! आखिर तुझे पराया तो होना ही है।

गीतमें आदिसे लेकर अन्त तक करुण रस लहरा रहा है!

× × ×

बेटी ससुराल जानेको तैयार है। माता स्नेहसे भरी वाणीमें कहती है—बेटी, पिताका ऐसा घर छोड़कर तुम कहां जा रही हो? भाई मार्ग रोककर कहता है—मेरी प्यारी बहन, तुम कहां जा रही हो? बेटी अपनी मजबूरी जाहिर करती हुई कहती है—मैं क्या करूं और कैसे न जाऊं? मेरी दशा तो उस कोयलकी तरह है, जो कभी उड़कर बागमें गयी और कभी फुलवारीमें।

अरे अरे बेटी पियारी रानी! तोरी बोल भली।
तोरी बचन भली।
ऐसन बपैया घर छोड़िके बेटी! कहवां चली।
बेटी कहवां चली।
जैसे बनाकी कोइलिया, उड़ि बागा गयी,
फुलवरियां गयी।
तैसे बाबा घरा छाड़िके, अब मैं ससुरे चली,
ससुररियां चली।
घोड़वा चढ़ा भैया आगे खड़े, हाथे तीर कमां,
हाथे तीर कमां।
रोकहिं बहिनी घेरि डगरिया, बहिन मोरी कहवां चली।
बहिन कहवां चली।
जाने दे भैया, जाने दे बाबा, लगन धरी अम्मा साज करी
ऐहौं मैं काज परोजन, वीरन तोरे बेटा भये,
तोरे बेटा भये।

—हे मेरी प्यारी बेटी, तेरी बात बड़ी मीठी है। तू ऐसे पिताका घर छोड़कर कहां चली?

—जैसे बनकी कोयल कभी उड़कर बागमें गयी, कभी फुलवारीमें। वैसे ही मैं अपने पिताका घर छोड़कर ससुराल चली।

घोड़ेपर चढ़ा, हाथमें तीर धनुष लिये भाई आगे खड़ा है। उसने रास्ता रोककर कहा—हे मेरी बहन, तू कहां चली जा रही है!

भैया, जाने दो, पिताने विवाह ठीक किया और मांने तैयारी कर दी। अब मैं जा रही हूं। कभी कोई काम-काज पड़ेगा या तुम्हारे बेटा होगा, तब आऊंगी।

जाओ न, अब तुम्हें रोक ही कौन सकता है! परायी चीजपर किसका बस!

× × ×

कन्या बड़े प्यारके साथ अपनी मांकी गोदमें सो रही है। अचानक उसके कानमें बाजोंकी आवाज पहुंचती है। वह चौंककर जाग उठती है और भोलेपनके साथ मांसे पूछती है कि यह बाजा कहां बज रहा है। किसका विवाह होगा?

सोवत रहिउं मैयाके कोरवा निंदिया उचटि गयी मोर।
केकरे दुआरे मैया बाजन बाजै, केकर रचा है विवाह!

लड़कीके इस प्रश्नका उत्तर माता देती है:—

तुहीं बेटी आउरि तुही बेटी बाउरि तू ही बेटी चतुर सयानि
तुमरे दुआरे बेटी बाजन बाजै, तुमरइ रचा है बियाह!
सिखि लेउ बेटी गुन अवगुनवां सिखि लेउ रामरसोई।
सासु ससुर तो मैया गरियावैं लै लिहौ अंचरा पसार।

—बेटी, तुम्हीं बावली हो, तुम्हीं सयानी हो। हे बेटी, तुम्हारे ही दरवाजेपर बाजा बज रहा है। तुम्हारा ही ब्याह होगा।

बेटी, गुण-अवगुण सब सीख लो। रसोई बनाना भी सीख लो। हे बेटी, यदि सास और ननद गाली दें, तो अंचल पसारकर ले लेना।

क्षमाशीलताकी कैसी मनोहर शिक्षा माताने पुत्रीको दी है! सचमुच क्षमा ही गृहस्थीकी शान्तिका मूल है।

× × ×

इधर लड़कीकी बिदाके लिए सारे सामान एकत्र किये जा रहे हैं और उधर माता-पिता, भाई-बहन सभी उसके वियोगमें विक्षिप्त होकर रो रहे हैं! आनन्द और विषादका यह दृश्य कितना करुण होता है, इसका चित्रण नीचेके गीतमें देखिये:—

कहमा ते सोना आये, कहमा ते रूपा आये हो।
एहो कहमा ते लाली पलंगिया, पलंगिया जगमोहन हो।
कासी ते सोना आये, गयाजी ते रूपा आये हो।
एहो सैयां संग लाली पलंगिया, पलंगिया जगमोहन हो।
भितरे ते माया जो रोवइं, अचले मां आंसू पोंछइं हो।
एहो मोरी बिटिया चली परदेस, कोखिय मोरी सूनी भई ना।
बैठकसे बाबूजी रोवइं, पटुके मां आंसू पोंछैं हो।
मोरी धेरिया चली परदेस, भवन मोरा सून भई ना।
ओवरी ते भौजी जो रोवइं, चुनरिया मां आंसू पोंछइं हो।
ऐहो मोर ननदी चली परदेस, रसोइयां मोरी सूनि भई ना।

—सोना कहांसे आया ? रूपा कहांसे आया ? यह लाल पलंगिया कहांसे आयी ? यह तो ऐसी सुन्दर है कि संसारका मन मोह लेती है ।

—काशीसे सोना आया है । गयाजीसे रूपा आया है । स्वामीके साथ लाल पलंग आया है, जो संसारका मन मोह लेता है ।

—भीतर मां रो रही हैं और आंचलसे आंसू पोंछ रही हैं । हाय, मेरी बेटी परदेश चली । मेरी कोख सूनी हो गयी ।

—बैठकमें बाबूजी रो रहे हैं । दुपट्टेमें आंसू पोंछ रहे हैं । हाय, मेरी बेटी परदेश चली जा रही है । मेरा घर सूना हो गया !

—भीतर कोठरीमें भौजी रो रही हैं । चूंदरीमें आंसू पोंछ रही हैं । हा, मेरी ननद परदेश चली । मेरी रसोई सूनी हो गयी !

'कोख सूनी हो गयी', 'घर सूना हो गया', 'मेरी रसोई सूनी हो गयी', इन वाक्योंके भीतर पिता, माता और भौजाईकी विकल आत्मायें तड़प रही हैं ! इसका अनुभव भुक्तभोगियोंको ही अच्छी तरह हो सकता है !

× × ×

लड़कियोंको गुड़िया बड़ी प्यारी होती है । जितनी पीड़ा उन्हें घर-बार, माता-पिताको छोड़नेमें होती है, उससे कम गुड़िया छोड़नेमें नहीं होती । लड़की बिदा हो गयी है । रास्तेमें उसे गुड़ियाकी सुधि आती है ! वह अपनी माताको सन्देश भेजती है कि हमारी गुड़िया पिटारीमें संभालकर रख देना ।

अरे-अरे अहिरके बेटवारे भैया, मातासे कहेउ संदेश ।
रामरसोईंमें गुड़िया रे भूली, धरें पेटरियाके बीच ।

कितनी भोली कन्या है । वह बेचारी नहीं जानती कि गुड़िया खेलते-खेलते अब वह खुद गुड़िया बन गयी है और वह अब फिर गुड़िया खेलनेके लिए इस घरमें नहीं आयेगी !

बिदाके समय लड़कीको रोनेके सिवा और कुछ अच्छा नहीं लगता । वह जी भरकर रोना चाहती है । उसे रोने दीजिये और बस ! बिदाईका समय है । कन्या उदास दरवाजेपर खड़ी है । यह देखकर पिता कहता है :—

कह तु त मोरी बेटी छत्र छवउतेउं नाहीं तनवतेउं ओहार रे ।
कह तु त मोरी बेटी सुरुज अलोपतेउं हो, गोरी बदन रहि जाइ रे ।

—बेटी, कहो तो छत्र छवा दूं या परदा डलवा दूं, या कहो तो किसी तरह सूर्यकी धूपको रोक दूं, जिससे तुम्हारा कोमल मुंह न कुम्हलाय ।

इसका उत्तर बेटी क्या देती है, सुनिये :—

काहेके मोरे बाबा छत्र छवइबा हो, काहेके तनइबा ओहार रे ।
काहेके मोरे बाबा सुरुज अलोपबा, दो एक दिनाकी है बात ।
आजके दिन हो बाबा तोहरे मड़उआ हो, बिहने सुनर वर साथ रे ।
काहे क मोरे बाबा दुधवा पिअवला हो, दहिआ खिअवला साढ़ीदार रे ।
जानत रहला बेटी पर घर जइहें हो, नाहक कइला मोर दुलार रे ।

—हे बाबा, क्यों तुम छत्र छवाओगे और क्यों परदा डालोगे ? क्यों धूपको रोकोगे ? एक दिनकी बात और है । आज तुम्हारे माड़ौमें हूं, कल अपने सुन्दर वरके साथ चली जाऊंगी ।

—हे बाबा, क्यों तुमने दूध पिलाया ? क्यों साढ़ीवाला दही खिलाया ? तुम जानते ही थे कि बेटी पराये घर जायगी । फिर मेरा दुलार क्यों किया ?

कौन जाने, क्यों किया ?

जिस समय स्त्रियां करुण-स्वरसे इस गीतको गाने लगती हैं, उस समय आंखोंसे आंसू रोकना कठिन हो जाता है ।

कन्याका डोला बाहर निकल चुका है । उफ, कितना करुणाजनक दृश्य ! उसका डोला चलते हुए देखकर एक बार पिता, बाबा, ताऊ, चाचा, भाई, मामा सभी सम्बन्धी बिटियासे मिलनेके लिए विकल हो उठते हैं । उन्हें यह भी सुधि नहीं रहती कि पैरोंमें जूते भी हैं कि नहीं । उनका हृदय आकुल हो जाता है और वे भागकर कहते हैं :—

साजन डोला थामियो ।
हे म्हारे तो घरकी बेटी, थारे घरकी जी बांदी हम थारे चिरवैदार हो ।

—एक बार डोला रुका दो ।

—हमारी दुलारी बेटी तुम्हारे घरकी अनुचरी है और हम भी तुम्हारे सेवक हैं । एक बार डोला रुका दो ।

विवाहके पश्चात् ऐसा करुणाजनक वियोग और कहां मिलेगा ? उपर्युक्त गीत जब ग्रामीण स्त्रियां रोती हुई ट्यूनमें गाती हैं, तो एक बार पत्थर भी पिघल उठते हैं !

भारतीय नारी-जीवनका आदर्श

श्री कमलाकान्त शर्मा

एक बड़े जर्मन वैज्ञानिकका कहना है कि नारीका जीवन कभी भी सम्पूर्ण नहीं हो सकता, जब तक कि वह पत्नी या जननी नहीं हो जाती। किन्तु हमारे देशकी स्त्रियों-की अवस्था और ही कुछ है। विवाह और मातृत्व भारतीय नारीके जीवनकी एक अवश्यम्भावी घटना है। फिर भी उसका नारी-जीवन पूर्ण होता है या नहीं, यह विचारणीय बात है। और किञ्चित् ध्यानसे देखनेसे हमें मालूम होगा कि हमारी मां-बहनें, हमारी स्त्रियां और हमारी कन्यायें किस शोचनीय अवस्थामें अपने अस्तित्वको कायम रखे चल रही हैं। यह सही है कि इस समय स्त्रियोंकी अवस्थामें सुधार करनेके लिए चेष्टा की जा रही है, पर अब तक भी उनकी अवस्थामें कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता।

हां, एक बात है, जिससे कुछ आशा की जा सकती है। वह यह कि हमारे देशकी स्त्रियां, एकमात्र पुरुषोंपर ही भरोसा न रख, स्वयं अपनी दशा सुधारनेके लिए सचेत हो रही हैं। जिस दिन वे अपनी दुरवस्थाको भली भांति समझ लेंगी, उसी दिन उनकी मुक्तिका उपाय भी अज्ञात नहीं रहेगा।

बचपनमें बालिकाओंका विवाह कर देनेसे भारतवर्ष केवल सभ्य संसारमें निन्दाका भाजन ही नहीं बना है, वरन् बाल-विवाह-जैसी कुप्रथाके लिए हमारे समग्र समाजको आज दीर्घकालसे भीषण दण्ड भी भोगना पड़ रहा है। समाजमें एक ओर जिस प्रकार बाल-विधवाओंकी संख्या क्रमशः बढ़ रही है, उसी प्रकार दूसरी ओर पंगु, विकलाङ्ग, दुर्बल और क्षीणकाय शिशुओंकी भी बढ़ती हो रही है। अल्प-वयस्का प्रसूतिकाओंकी मृत्यु भी हमारे घरोंमें संक्रामक रोगकी तरह बढ़ रही है। शारदा कानूनसे अब इस कुप्रथामें कुछ-कुछ सुधार हो रहा है, और समाजमें वयस्क बालक-बालिकाओंके विवाहकी आवश्यकतापर काफी जोर दिया जा रहा है। शिक्षित नवयुवक और नवयुवतियां भी विवाह-की जिम्मेवारीको समझने लगी हैं, और इस महत्त्वपूर्ण विषयको अपने माता-पिता अथवा अभिभावककी ही मर्जीपर छोड़नेको तैयार नहीं हैं। पर साथ ही पाश्चात्य भावापन्न युवक-युवतियोंपर पाश्चात्य सभ्यताके आदर्शपर प्रेम-विवाह करनेकी धुन सवार है। अंगरेजी शिक्षा और संस्कृतिने उनकी आंखोंमें ऐसी चकाचौंध पैदा कर दी है कि उन्हें भारतीय सभ्यता और भारतीय संस्कृतिमें सर्वत्र दोष ही दोष दिखाई देते हैं। पर यदि वे अपनी आंखोंपरका पर्दा हटाकर देखें, तो उन्हें मालूम होगा कि पाश्चात्य देशोंमें दम्पतियोंका वैवाहिक जीवन कितना दुःखमय हो रहा है, और वहांके मनीषियों और विचारशील व्यक्तियोंके सामने यह विकट समस्या उप-स्थित है कि विवाह-प्रथामें कौन-सा सुधार किया जाय, जिससे पति-पत्नीका जीवन सुखमय हो। हमारे देशकी विवाह-प्रथामें आज चाहे जो भी बुराइयां आ गयी हों, पर हमारे प्राचीन ऋषियोंने विवाहको ऐसा मङ्गल कृत्य बना दिया है, जिससे पति-पत्नीका वैवाहिक जीवन बड़े आनन्द और सुखसे बीतता है, और उनमें कभी भी विच्छेद होनेकी नौबत नहीं आती।

विवाहके बाद हमारे देशकी बालिकाओंको अपने ससुरके घर रहना पड़ता है। वह घर केवल उसका पतिगृह नहीं होता। उस घरमें उसके पतिके सिवा उसके सास, ससुर, देवर, ननद, जेठ-जिठानी आदि कुटुम्बके कितने ही लोग सम्मि-लित रूपमें रहते हैं। उस वृहत् परिवारमें वह छोटी उम्रमें बधूके रूपमें आती है। जिस अवस्थामें वह अपने नये घरमें आती है, उस समय उसका मन बिलकुल कच्चा रहता है। उसपर कोई बाहरी रङ्ग नहीं चढ़ा रहता। ससुर-घरकी चाल-ढाल, वहांका रस्म-रिवाज और रहनेके तौर-तरीकोंसे क्रमशः परिचित हो, आगे चलकर वह उस परिवारकी एक सदस्या बन जाती है। वह अपने स्वामीसे केवल प्रेम करना ही नहीं सीखती, बल्कि उसकी भक्ति और श्रद्धा करना भी सीखती है। स्वामीके परिवारवालों और आत्मीयोंको अपना आत्मीय स्वजन जानना सीखती है। पतिके भाई-बहनोंके साथ अपने सहोदरोंका-सा उसका मधुर सम्बन्ध स्थापित होता है। सास-ससुर और गुरुजनोंकी सेवा-परिचर्या करनेमें उसे

आनन्द मिलता है। उनके आशीर्वाद, स्नेह और प्रेमको वह अपने जीवनका सम्बल और सौभाग्य समझती है।

इसी तरह छोटी बालिका ससुरके घर आकर बड़ी होती है, और परिवारके और लोगोंके सुरमें सुर मिलाकर चलती है। वह कभी भी ख्याल नहीं करती कि वह उस घरकी कोई नहीं, वह कहीं बाहरसे उड़कर आयी है। या यह बात भी वह कभी नहीं सोचती कि उसके स्वामी केवल उसकी ही सम्पत्ति हैं—स्वामीकी कमाईका उपभोग करनेका एकमात्र उसीको अधिकार है, या स्वामीके सिवा घरके और लोग पराये हैं।

हिन्दू विवाहके आदर्शमें अनेक त्रुटियां हो सकती हैं, पर यह निस्सङ्कोच कहा जा सकता है कि संसारका और कोई भी धर्म-विवाह हिन्दू विवाहकी अपेक्षा त्रुटिहीन नहीं है। पाश्चात्य प्रगतिने आज संसारको कई विषयोंमें बहुत आगे बढ़ा दिया है; परन्तु उससे पारिवारिक सुख-शान्ति, माधुर्य और आनन्द अक्षुण्ण नहीं रह सका। पाश्चात्य देशोंमें पत्नीकी फरमाइशोंके मारे पतिकी शोचनीय मानसिक अवस्था हो जाती है। अपनी फरमाइशें पूरी न होनेपर स्त्रीके मनमें भी उत्तेजनाका भाव आ जाता है। फलतः पति-पत्नीमें बात-बातपर सदा लड़ाई हुआ करती है, और एक दिन दोनों ही ऊबकर विवाह-विच्छेद कर लेते हैं। दोनोंकी पारिवारिक शान्ति और आनन्द नष्ट हो जाता है। वैयक्तिक स्वाधीनता और समानाधिकारकी दृष्टिसे पाश्चात्य देशकी विवाह-प्रथा चाहे जितनी अच्छी समझी जाय, पर उससे पारिवारिक शान्ति और आनन्द लेशमात्र भी नहीं मिलता।

भारतवर्षकी हिन्दू-नारी किसी एक पुरुष-विशेषसे विवाह नहीं करती, वह अपने आदर्श और धर्म-विश्वासके प्रतीक—अपने स्वामीको वरमाल्य प्रदान करती है, जिसकी कल्पना-मूर्तिको वह अपने शैशवसे ही अपने हृदय-मन्दिरमें बिठाये रहती है। वह अपनी कल्पनामें अपने स्वामीको सभी सद्गुणोंका अधिकारी समझती है। विवाह हो जानेपर वह यह विचार करने नहीं बैठती कि जिसके साथ उसका गठबन्धन हुआ, जिसकी चिरसङ्गिनी बनकर वह आयी है, वह यथार्थमें प्रेम और श्रद्धा-भक्ति करने योग्य है या नहीं। बाल्यकालसे ही बालिकाके मनमें, अपने कल्पना-स्वामीके प्रति जो अगाध प्रेम और अनुराग सञ्चित रहता है, वह पतिको अनायास ही उससे प्राप्त होता है। पत्नीका प्रेम पानेके लिए पतिको कोई कष्टसाध्य उपाय नहीं करना पड़ता।

पति-पत्नीके रहस्यमय मधुर सम्बन्धको वास्तविक प्रेमके रूपमें परिणत करता है शिशु। शिशु ही घरकी शोभा और आनन्दकी वृद्धि करता है। पिता घरसे दूर दिनभर काम करता है, पर उसका मन अपनी झोंपड़ीकी ओर लगा रहता है, जहां उसका लाड़ला शिशु उसके इन्तजारमें तोतली जबानमें बाबूदी, बाबूदी कहकर उसकी गोदमें चढ़नेके लिए मचल रहा होगा, और बच्चेकी मां दरवाजेपर खड़ी पतिके आनेकी बाट जोह रही होगी। उसके दोनों नेत्रोंमें व्यग्र, कोमल और मधुर प्रतीक्षाके भाव झलक रहे होंगे। मां दिनभर बच्चेको खेलाने और घरके काम-धन्धे करनेमें लगी रहती है। घरको वह देवमन्दिरकी तरह झाड़-बुहारकर साफ और स्वच्छ रखती है। अपने प्रियतमके लिए तरह-तरहकी खानेकी चीजें तैयार करती है। घरके सब काम समाप्त कर स्वामीकी अभ्यर्थनाके लिए बड़ी उत्सुकतासे उसके घर लौटने-की प्रतीक्षा करती है। पैरोंकी जरा-सी आहट सुनते ही चौंक जाती है, शायद वह आ रहे हैं। कैसी मधुर और प्रेम-भरी यह प्रियतमकी प्रतीक्षा होती है!

नारी प्रेमकी जीवित प्रतिमा होती है। पति और पुत्र उसके प्राणोंसे भी प्यारे होते हैं। उनके लिए कोई ऐसा काम नहीं, जिसे करनेके लिए वह सदा तैयार नहीं रहती। संसारमें उनसे बढ़कर उसके लिए और कोई नहीं। हमारे देशकी नारी केवल स्त्री ही नहीं होती, वरन् वह गृहिणी, सखी, मन्त्री, मित्र और प्रिय शिष्या भी होती है। दुःख और सङ्कट पड़नेपर जब सभी अपने-पराये मनुष्यका साथ छोड़ देते हैं, तब एकमात्र स्त्री ही उसका दुःख बंटानेके लिए उसकी बगलमें रहती है। वह सारे दुःखों और कष्टोंको अपने ऊपर ले पति और पुत्रको सुखी रखनेके लिए दिलोजानसे चेष्टा करती है।

संसारमें माताका स्थान सबसे ऊंचा माना जाता है। स्त्रियां पत्नी और माताके रूपमें समाज और परिवारका बहुत कुछ कल्याण करती हैं। जीविका-उपार्जनके लिए उन्हें क्लर्क, टाइपिस्ट, टेलीफोन गर्ल्स आदिके काममें लगाना समाजकी व्यवस्थामें उलटफेर करना है। इस व्यवस्थासे पति,

पुत्र अथवा परिवारका कल्याण नहीं हो सकता। स्त्री भी अपने जीवनके वास्तविक आनन्द पानेसे वञ्चित रहती है। परिवारमें पत्नीका दायित्व पतिसे बड़ा है। वही सारे परिवारकी धुरी होती है। उसीके तत्वावधानमें परिवारकी श्रृङ्खला कायम रह सकती है। सन्तानकी शिक्षा और चरित्र-गठनका भार माताके ही ऊपर रहता है। राष्ट्रका भविष्य जिस माताके ऊपर निर्भर करता है, देशके आदर्श वीर पुरुषोंको जो उत्पन्न करती है, हम अपने परिवारमें नारीको उसी मातृ-रूपमें देखना चाहते हैं। जीविकोपार्जन करनेके लिए वकील, डाक्टर या क्लर्क बनाना उनके लिए वाञ्छनीय नहीं है।

परन्तु नियम सदा एक-से नहीं रहते। पुराने नियम बदलते रहते हैं और उनकी जगह नये नियम लेते हैं। आज-कल संसारमें सभी क्षेत्रोंमें बड़ी द्रुतगतिसे परिवर्तन हो रहा है। पुराने नियमों और रीतियोंमें बराबर हेरफेर हो रहा है। कौन जानता है, यह परिवर्तन नवजीवनका लक्षण है अथवा विनाशकी सूचना। कुछ भी हो, नये युगके इस परिवर्तनके सम्बन्धमें सभी सचेत हैं। नारी आज अपनी केवल जननी और पत्नीकी मर्यादासे ही सन्तुष्ट नहीं है। वह आज सभी विषयोंमें पुरुषकी बराबरी करना चाहती है। समष्टिगत सुख-शान्तिके स्थानमें वैयक्तिक स्वतन्त्रता और पूर्ण स्वाधीनता उसके जीवनका प्रधान लक्ष्य हो रहा है। नारी आज पुरुषकी सहधर्मिणी नहीं, परिवारकी एकमात्र मालकिन नहीं, बल्कि पुरुषके जीवनमें एक समान हिस्सेदार होकर रहना चाहती है। वह राजनीतिकी बड़ी-बड़ी बातें करती है, परराष्ट्र-नीतिकी आलोचना करनेमें व्यस्त रहती है। ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, साहित्य, इतिहास और समाज-विज्ञान तथा प्रजनन-विज्ञानकी भी आलोचना करती है।

नारीके जीवनमें आज अति आधुनिक विप्लववादकी प्रबल तरङ्गें उठकर उसकी विशेषताओंको जो चूर-चूर कर रही हैं, किसी देशमें भी कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो उन्हें रोक सके। अच्छा हो अथवा बुरा, यह प्रवाह आज रुक नहीं सकता। इसको रोकनेकी चेष्टा करनेसे न केवल व्यक्तिगत जीवनमें, बल्कि सामाजिक जीवनमें भी विरोधों और मत-भेदोंकी सृष्टि होगी।

पाश्चात्य देशोंमें स्त्रियोंने पुरुषोंके साथ हर काममें प्रतिद्वन्द्विता शुरू कर दी है। कई स्थलोंमें तो उन्होंने पुरुषोंको पीछे धकेल दिया है। विशेषकर वाणिज्य-व्यवसायमें तो वे पुरुषोंसे बहुत आगे बढ़ती जा रही हैं। सभी कल-कारखानोंमें अधिकांश विभागोंपर स्त्रियोंका ही अधिकार है। इसके अतिरिक्त ये टाइपिस्ट, टेलीफोन आपरेटर, स्कूलोंकी अध्यापिका, बुकिङ्ग क्लर्क और दूकानके कर्मचारीका भी काम करती हैं। इन जगहोंमें अब पुरुषोंका स्थान नहीं रहा। कलाविद्, पत्रकार, विमानचालक, मोटरचालक, यहां तक कि पुलिस सर्जेण्ट और सैनिककी हैसियतसे भी वे पुरुषोंके साथ प्रतियोगिता कर रही हैं।

संसारके बहुत-से देशोंमें जहां अति आधुनिकताका बोलबाला है, मातृत्व और जननीका गौरव प्राप्त करनेके लिए स्त्रियोंको अब विवाह-बन्धनके अधीन नहीं रहना पड़ता। वहांकी स्त्रियां पूर्ण स्वाधीन और आत्मनिर्भरशील हैं। जिससे चाहें, वे प्रेम कर सकती हैं, किसी भी पुरुषके साथ घूमने-फिरने या मिलने-जुलनेमें उन्हें कोई रुकावट नहीं। वे सन्तान भी प्रसव करती हैं, पर माताका दायित्व अपने ऊपर नहीं लेतीं। अपनी सन्तानोंको वे राष्ट्रीय शिशु-सदनमें भेज देती हैं। सरकारी खर्चेसे और सरकारके तत्वावधानमें उनका लालन-पालन होता है। सरकारकी ओरसे ही उनकी शिक्षा-दीक्षा भी होती है। घर-गृहस्थीके झमेलेसे मुक्त, परिवारके भार और दायित्वसे मुक्त उन देशोंकी स्त्रियां स्वेच्छासे आनन्दपूर्वक अपना जीवन-यापन करती हैं।

भारतीय महिलायें यदि पाश्चात्य आदर्शपर अपना जीवन-यापन करेंगी, तो वह उनके लिए कल्याणकर नहीं होगा। उन्हें तो भारतीय आदर्शपर वर्तमान युगकी गति-विधिके अनुसार अपने जीवनमें सुधार करना चाहिए, यही उनके लिए श्रेयस्कर है और इसीमें उनका और देशका हित है।

———



तुर्कीका नव जागरण

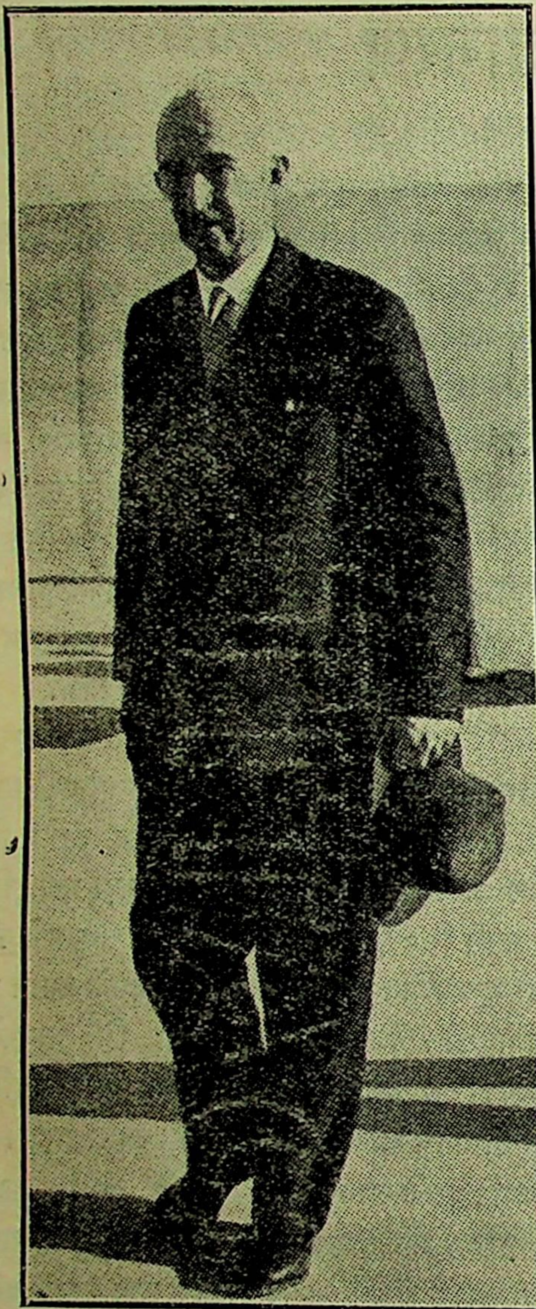
श्री श्यामनन्दनप्रसाद श्रीवास्तव, बी० ए०

बहुत अर्सा नहीं हुआ, एक ब्रिटिश पत्र-प्रतिनिधिके मिलनेपर फारिसके शाहने कहा था कि "एशियाके पश्चिमी भागमें तुर्की ब्रिटेनकी मेजिनो लाइन है। आप तुर्कीको फिर कभी दूसरी ओर नहीं जाने दे सकते।" शाहके इस कथनमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है।

एशिया और यूरोपके बीच मानचित्रमें आज जिस रूपमें हम तुर्कीको देखते हैं, वह उसके पूर्व-रूपसे बिलकुल ही भिन्न है। एक जमाना था, जब तुर्की-साम्राज्य यूरोपमें हंगरी तक फैला हुआ था। आज अरबको हम कितने ही हिस्सोंमें बंटा हुआ पाते हैं, परन्तु गत महासमरसे पहले सम्पूर्ण पश्चिमी एशिया तुर्कीके अधिकारमें था और वहांके सर्वप्रधान शासक और धर्मगुरु खलीफाके नामका खुतबा सारे संसारके मुसलमान पढ़ा करते थे। उन दिनों सीमाओंकी रेखायें इतनी ज्यादा नहीं थीं और न चुङ्गी-घरोंकी ही भरमार थी। उन दिनों तुर्की-सरकारके एक आज्ञा-पत्रसे यूरोप और चीनमें, सर्वत्र कोई भी अरब-निवासी जा सकता था। तुर्कीको १९१२ ईस्वीसे लगाकर १९२२ ईस्वी तक लगातार युद्धमें फंसा रहना पड़ा। पहले तो वह बालकन युद्धमें लगा रहा, बादमें १९१४ में जब गत महासमर आरम्भ हुआ, वजीर अनवर पाशाने जर्मनीका साथ दिया। उस युद्धमें जर्मनीकी हार हुई और सन्धिके बाद संसारके सामने खिलाफतकी समस्या उपस्थित हुई। खिलाफतकी समस्या असलमें खलीफाकी स्वतन्त्रताकी समस्या नहीं थी—जैसा कि बादकी घटनाओंसे वास्तवमें साबित हुआ। खिलाफतकी समस्या असलमें तुर्कीकी स्वतन्त्रताकी—विदेशियोंके प्रभाव-रहित स्वतन्त्रताकी समस्या थी। तुर्कीने इस समस्याको हल करनेमें पूरी सफलता प्राप्त की। यह सफलता नवीन तुर्कीको थी, जिसे कमाल अतातुर्कने जन्म दिया था। स्वतन्त्र कर लेनेके बाद कमाल अतातुर्कने तुर्कीमें उन सुधारों और उद्योगोंकी नींव रखी, जिनके कारण आज सारे संसारका ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो रहा है।

तुर्कीकी मैत्रीका मूल्य कितना अधिक है और विशेष परिस्थितिमें वह कितनी अधिक कामकी चीज साबित हो सकती है, उससे रूस और जर्मनी भी अनभिज्ञ नहीं हैं। परन्तु वर्तमान महासमर आरम्भ होनेके समय तुर्कीके साथ नयी और अधिक उपयोगी सन्धि करनेमें रूसको सफलता नहीं मिली। मुख्य कारण यही था कि बाल्टिक समुद्रके कई देशोंकी तरह तुर्की अपने स्वार्थोंका बलिदान करनेके लिए तैयार नहीं था, वह अपनी स्वतन्त्रतापर किसीकी छाया नहीं पड़ने देना चाहता था। रूसका यह प्रयत्न विफल हो जानेपर तुर्कीने ब्रिटेन और फ्रान्सकी ओर मित्रताका हाथ बढ़ाया और उन्होंने इसे खुशी-खुशी ग्रहण किया। राजनीतिक दृष्टिसे तुर्कीके साथ ब्रिटेन और फ्रान्सकी इस नयी सन्धिका महत्त्व किसी तरह भी रूस और जर्मनीकी सन्धिसे कम नहीं है। जिस तरह रूसके साथ सन्धि करनेमें ढिलाई कर और अन्तमें सफल न होकर एक बड़ी भूल ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० चेम्बरलेन और उनकी सरकारने की थी, वैसी ही भूल पश्चिम एशियामें रूस और उसके प्रधान अधिकारियोंने की। ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० चेम्बरलेनकी उस भूलका फल यह हुआ कि पोलैण्ड और डेनजिगको तत्काल ही जर्मन आक्रमणका शिकार बनना पड़ा। और आज यद्यपि रूसके साथ तुर्कीकी मैत्री है, तथापि जहां तक पश्चिम एशिया और दक्षिण-पूर्व यूरोपका सम्बन्ध है, शान्तिकी कुञ्जी तुर्कीके हाथमें है और ब्रिटेनके साथ तुर्कीके वर्तमान मैत्री-सम्बन्धकी दृष्टिसे फारिसके शाहका तुर्कीको ब्रिटेनकी पश्चिम एशिया-स्थित मेजिनो लाइन बतलाना ठीक ही है।

जर्मनी अच्छी तरह जानता है कि फ्रान्स और ब्रिटेनकी तुर्कीके साथ की हुई इस नयी सन्धिका मूल्य क्या है? यूरोपके गणतन्त्रवादी राष्ट्रोंके लिए इसका जो महत्त्व है, उसे अनुभव करनेमें जर्मनीको देर नहीं लगी। एक नाजी पत्रने सन्धि होनेके बाद ही लिखा था—"गत महासमरमें इतनी कोशिश करनेपर भी इंगलैण्ड जिस वस्तुको नहीं पा सका था, उसे शान्ति-कालमें प्राप्त कर लिया।" सन्धि-सम्बन्धी



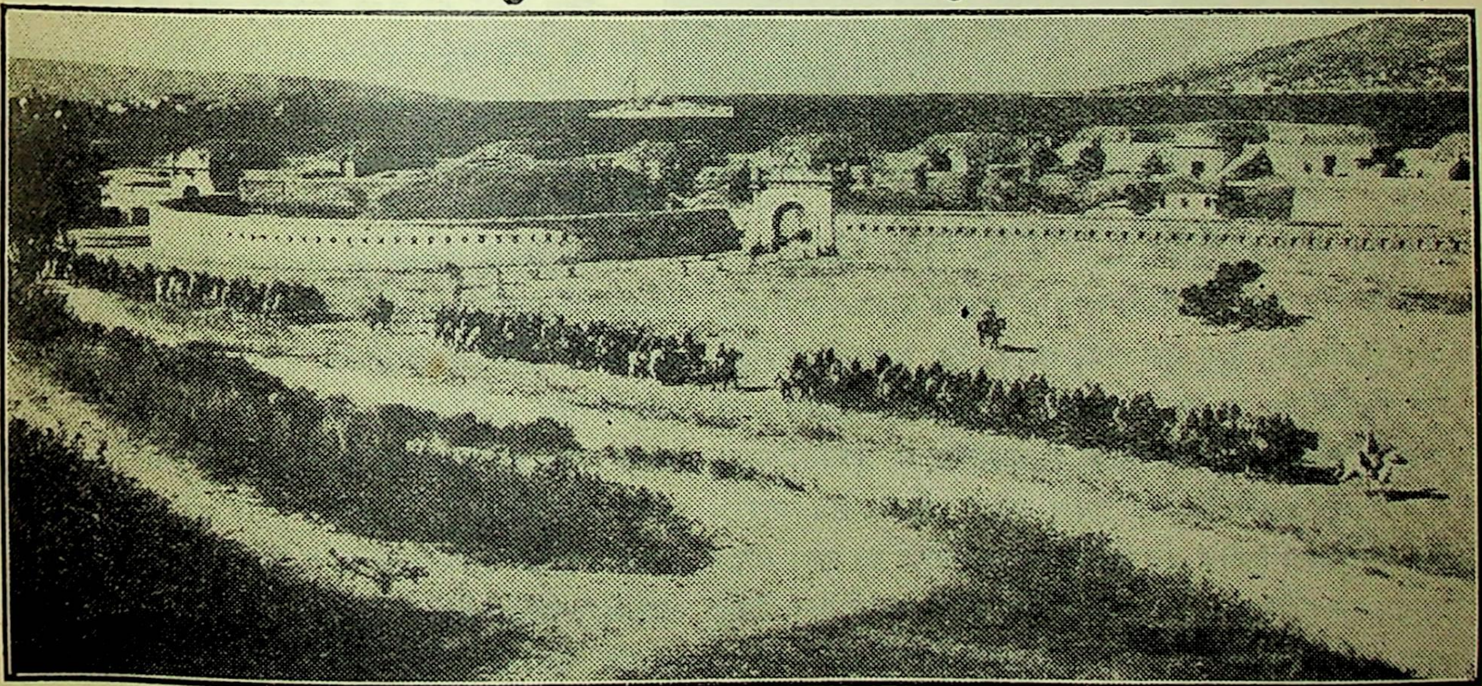
तुर्कीके वर्तमान राष्ट्रपति इस्मत इनूनू।

इस सफलतासे दोनों ही पक्ष सन्तुष्ट हैं। अंगरेजोंके स्वभावकी कितनी ही बातें तुर्कों में भी मिलती हैं। दोनोंकी विचार-प्रगति कुछ धीमी है। वे किसी भी समस्यापर शीघ्रतासे विचार और निर्णय नहीं करते। दृढ़ता उनमें स्वभावसे ही होती है। स्वाधीनताके भी वे अनन्य भक्त हैं! उनमें एक और बात भी है—लड़ाई आरम्भ करनेके लिए वे कभी उतावली नहीं दिखलाते; परन्तु लड़ाई छिड़ जानेपर उसे बन्द करनेके लिए भी वे उतने उतावले नहीं होते। तुर्कोंके स्वभावकी इस दृढ़ताके कारण ही इस सन्धिका महत्त्व कहीं ज्यादा समझा जाता है। बालकन प्रदेशके अपने पड़ोसियोंकी भांति तुर्की जानता है कि किसी सफलताको कैसे कायम रखना चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि यूरोपके तानाशाहोंकी सफलताका पश्चिमी एशियाके इस भागपर कोई असर नहीं पड़ा है। असर पड़ना तो स्वाभाविक ही है, परन्तु तुर्की जिस बातको सबसे अधिक चाहता है और जिसे प्रत्येक अवस्थामें बनाये रखनेके लिए वह कृत-सङ्कल्प है, वह है स्वतन्त्रता। तुर्कीके अधिकारमें किसी समय लिबियाका जो इलाका था, उसपर १९११ में इटलीने आक्रमण किया था और उसे अपने अधिकारमें कर लिया था। भूमध्य सागरमें तुर्की अपने इस पड़ोसीपर विश्वास नहीं करना चाहता। उधर २९ वर्ष पहलेकी घटनाओंने जिस तरह तुर्कीको ब्रिटेनके साथ सन्धि करनेके लिए प्रवृत्त किया था, इधर अलबानियाकी अवस्थाने फिर वैसी ही परिस्थिति उत्पन्न कर दी; परन्तु नवीन तुर्की अब वह गलती नहीं करना चाहता, जो गत महासमरके तुर्कीने जर्मनीका साथी होकर की थी।

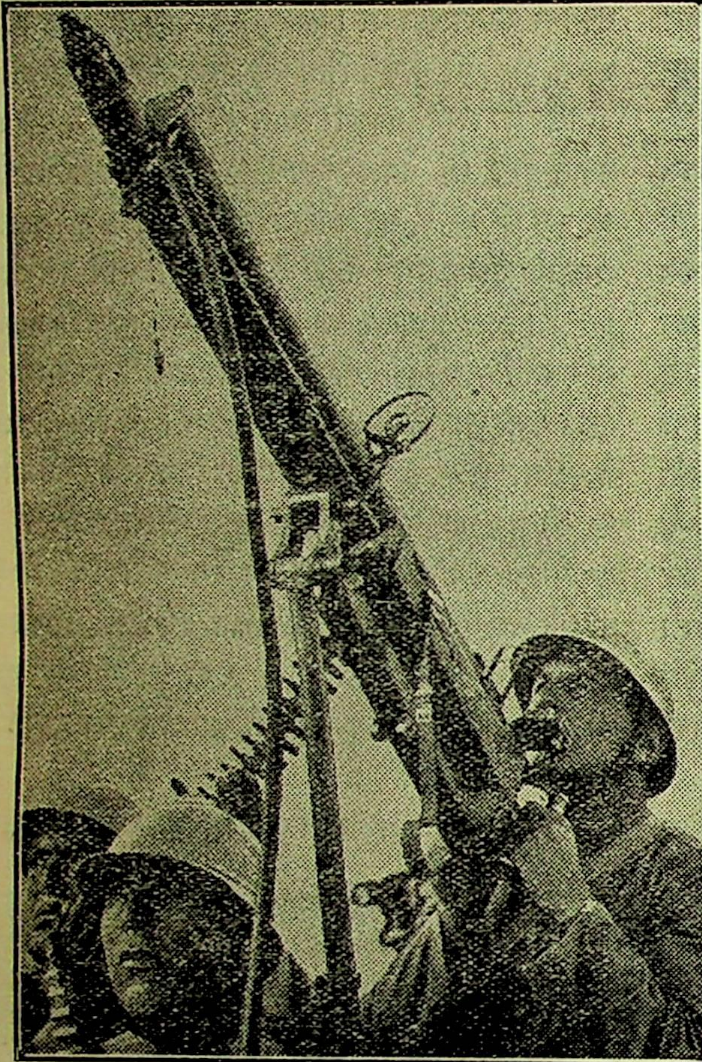
नवीन तुर्कीके जन्मदाता स्वर्गवासी गाजी मुस्तफा कमाल पाशाको तुर्की प्रजाजन श्रद्धासे कमाल अता तुर्क कहा करते थे। वे जानते थे कि तुर्कीकी जरूरत यह है कि भूमध्य सागरमें शान्ति रहे और यदि सम्भव हो, तो इस शान्तिकी रक्षा की जाय। तुर्की इसी उद्देश्यसे कमाल अता तुर्कके समयसे ही यह चाहता रहा है कि ब्रिटेनके साथ मैत्री रहे। युद्धसे पहले जब यूरोपके तानाशाह यह सोचते थे कि अगले साल वे इतने हवाई जहाज और इतनी तोपें बनायेंगे, अगले कुछ महीनोंमें वे अमुक-अमुक स्थानोंकी किलेबन्दी पूरी कर लेंगे, दूरदर्शी तुर्क उद्योग-धन्धोंके निर्माणमें लगे हुए थे। उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्त करने, विदेशियोंके प्रभावसे मुक्त हो जानेके बाद गत १५-१६ वर्षोंमें जो सफलता प्राप्त की थी, उसके आधारपर वे भविष्यकी बड़ी सुन्दर कल्पना करते थे। महासमर छिड़ जानेके बाद यद्यपि तुर्कीको सतर्कताके लिए सामरिक तैयारियोंकी ओर काफी ध्यान देना पड़ रहा है, तथापि उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिका सिलसिला ज्योंका त्यों: जारी है। तुर्की किसी भी अवस्थामें अपने उद्योग-धन्धोंकी उपेक्षा नहीं करना चाहता।

कमाल अता तुर्कमें राजनीतिज्ञ, सिपाही और सेनापति सबके गुणोंका समावेश था। उन्होंने विदेशियोंके प्रभुत्वसे तुर्कीको मुक्त किया और तुर्कीको नयी रोशनीसे चमत्कृत कर दिया। सदियोंकी रूढ़ियोंसे तुर्कीका पिण्ड छुड़ानेमें उन्होंने आश्चर्य कर दिखलाया और पाश्चात्य संस्कृतिका वह प्रकाश फैलाया, जिसके लिए ही उनका जन्म हुआ था। २५ वर्ष पहले जो तुर्की गया हो, वह यदि आज वहां जाये, तो उसे चकित रह जाना पड़े। आज तुर्क महिलायें आजादीसे मुंह खोलकर घरके बाहर निकलती हैं। लड़के-लड़कियां एक साथ स्कूलों और कालेजोंमें पढ़ते हैं। शिक्षा-प्रचारमें सबसे बड़ी बाधा अरबी लिपिकी जटिलता थी। कमाल अता तुर्कने इसके बजाय रोमन लिपिको जारी किया और इस तरह संसारके बहुत बड़े हिस्सेके साथ लिपि-सम्बन्धी एकता स्थापित कर दी। खिलाफतको तो उन्होंने अपने यहांसे उठा ही दिया। विवाह-शादी सम्बन्धी और अन्य रिवाजों तथा पहनावेमें भी आज तुर्कीकी अवस्था बिलकुल बदल गयी है। यह नहीं समझना चाहिए कि तुर्कीमें ये सब परिवर्तन यों ही आसानीसे हो गये। कमाल अता तुर्कको इन सुधारोंके लिए अपने समयमें कठमुल्लों और उनके समर्थकोंके घोर विरोधका सामना करना पड़ा था। कमाल अता तुर्कके निश्चयमें जो दृढ़ता होती थी और वे जिस कड़े अनुशासनके पक्षपाती थे, उसीसे वे अपने प्रयत्नमें सफल हुए। यद्यपि वे बड़े कठोर प्रतीत होते थे, तथापि प्रत्येक तुर्क यह जानता था कि वे जो कुछ कर रहे हैं, वह उनके हितके लिए। कमाल अता तुर्क जनतासे कुछ छिपाते नहीं थे, वे सारी बातें सामने रख देते थे। इसके विपरीत अन्य तानाशाह हमेशा ही अपने सारे कार्य रहस्यपूर्ण तरीकोंसे किया करते हैं। कमाल अता तुर्कने कभी तुर्कोंको झांसा नहीं दिया। वे जितना चाहते थे, उतना ही व्यक्त करते थे। उनका विश्वास था कि सीमा-पर बसे हुए एक गांवका मूल्य देशके भीतरी भागोंमें बसे हुए सैकड़ों गांवोंसे भी ज्यादा है। लासेनकी विजयके बाद यदि वे चाहते, तो अपनी सीमाका विस्तार आसानीसे कर सकते थे; परन्तु उन्होंने साफ कहा कि जहां-जहां तुर्कों-की आबादी है, वहीं तक वे अपनी सीमा रखना चाहते हैं। तुर्कीकी यही नीति है।

स्वर्गवासी कमाल अता तुर्क जब तुर्कीका उद्धार करनेमें



चार वर्ष पूर्व माण्ट्रेगूके समझौतेसे यूरोपके विभिन्न राष्ट्रोंने यह स्वीकार कर लिया था कि तुर्कीको भी दर्रे दानियालकी किलेबन्दी करनेका अधिकार है। तुर्कीमें सर्वत्र इसपर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की गयी थी। चित्रमें तुर्की रिसाला उस क्षेत्रमें पहली बार पहुंच रहा है।



तुर्की-सैनिक निशाना साध रहे हैं।

लगे हुए थे, उनके दाहिने हाथ थे इस्मत पाशा। तुर्कोंका जब यूनानियोंसे युद्ध चल रहा था, इनूनू स्थानमें उन्होंने यूनानियोंको बुरी तरह हराया था। इस विजयसे उस युद्धका निपटारा ही हो गया। इसीलिए वे इस्मत इनूनू कहलाते हैं। कमाल अता तुर्कसे उनका परिचय गत महा-समरमें हुआ। तुर्कीके उद्धारके लिए जब सङ्घर्ष हो रहा था, इस्मत इनूनू सेना-नायक थे और जब वह कार्य पूरा हो गया, उन्होंने १३ वर्ष तक प्रधान मन्त्री रहकर उस सफ-लताको सुदृढ़ बनाया और आज तो वे तुर्कीके राष्ट्रपति हैं। राष्ट्रपति इस्मत इनूनू बड़े ही स्वतन्त्र विचारोंके हैं। वे कानोंसे कुछ कम सुनते हैं और बहुत ही सावधानीसे बोलते हैं। समस्याओंपर विचार होनेके समय वे कमाल अता तुर्क तकके कार्योंकी आलोचना बड़ी निर्भीकतासे करते थे, यही नहीं, यदि उनके किसी प्रस्तावसे वे सहमत न होते, तो विरोध भी डटकर करते थे। योग्यता, सफलता और कौशलके वे बड़े प्रशंसक हैं। शत्रुकी कमजोरियोंसे लाभ उठानेमें उन्हें विशेष अनुराग है।

तुर्की चाहता है कि अपनी स्वाधीनताको बनाये रखकर वर्तमान युद्धसे अलग रहे और अपने पूर्व निश्चित कार्यक्रमके अनुसार कार्य करता रहे। उसे कच्चा माल आसानीसे मिल सकता है। उसकी सीमामें धातुयें पायी जाती हैं। उसकी उपजाऊ जमीनसे यथेष्ट कपास और अन्न पैदा होता है। यद्यपि उद्योग-धन्धों और कला-कौशलके विशेषज्ञोंको विदेशोंसे बुलाकर तुर्कीने रख छोड़ा है, तथापि तुर्की सभी दृष्टियोंसे विदेशियोंके चंगुलसे बाहर निकलनेका सङ्कल्प कर चुका है और बड़ी शीघ्रतासे वह मञ्जिलपर मञ्जिल तय करता हुआ आगे बढ़ता जा रहा है। राष्ट्रपति इस्मत इनूनूका विश्वास है कि तुर्कीने जो निर्माण-कार्य आरम्भ किया है, उसके पूर्ण होनेके लिए अभी कई साल चाहिए और इस बीचमें शान्ति भी अनिवार्य रूपसे रहनी ही चाहिए। इस शान्ति-की आवश्यकताको दृष्टिमें रखकर १९३३ से ही तुर्कीने बालकन देशोंके बीच एक समझौता होनेका प्रयत्न किया और इसमें सफलता प्राप्त की। इस समझौतेमें यूनान भी शामिल है। बालकन देशोंकी समस्या वर्तमान महासमरका एक खास पहलू है। वर्तमान महासमर आरम्भ हो जानेके बाद भी हालमें ही बालकन देशोंकी एक कान्फरेन्स तुर्कीके प्रयत्नसे हुई थी, जिसमें तटस्थ रहनेका निश्चय किया गया था और यद्यपि बलगेरिया इस कान्फरेन्समें शामिल नहीं हुआ था, तथापि उसने भी तटस्थ रहनेका ही आश्वासन दिया है। बालकन देशोंमें शान्ति बनाये रखने, वर्तमान महासमरको दक्षिण-पूर्व यूरोपमें नहीं फैलने देनेके लिए तुर्कीने जो प्रयत्न किया है, उसकी प्रशंसा सभी शान्ति-प्रेमी करेंगे।

तुर्कीने केवल बालकन देशोंमें ही शान्ति रखनेका प्रयत्न नहीं किया है, फारिस, अफगानिस्तान और ईराक, तीन अन्य राष्ट्रोंको अपने साथ लेकर पश्चिम एशियाके राष्ट्रोंका

एक प्रभावशाली गुट बनानेका भी उद्योग किया है। इस तरह तुर्कीकी राजनीतिका प्रभाव केवल उसकी सीमाओं तक ही सीमित नहीं है, सीमाओंसे बाहर उत्तर अफ्रीका, पश्चिम एशिया और हिन्दुस्तानके मुसलमानोंपर भी उसका काफी प्रभाव है। मिश्र और सऊदी अरबपर यह प्रभाव चाहे उतना न हो; परन्तु इससे तुर्कीकी स्थितिमें कोई अन्तर नहीं आता। तुर्कीको यह अधिकार है कि वह जब चाहे, जब उसे युद्धका भय मालूम हो, दरेदानियाल और बासफोरसको किसी राष्ट्रके जङ्गी जहाजोंके लिए बन्द कर दे। इन दोनों मुहानोंपर तुर्कीने खासी किलेबन्दी भी की है। काले समुद्रसे जो देश लगे हुए हैं, उनके लिए तुर्कीकी मित्रता आवश्यक है। युद्धके समयमें रूमानियाके तेल और रूसके दक्षिणी हिस्सेके गेहूँसे यदि लाभ उठाना हो, तो इसे इन दोनों सङ्कीर्ण जल-प्रणालियोंके मार्गसे ही निकलना चाहिए। इस जल-प्रणालीके दोनों ओर तुर्कीकी तोपें चढ़ी हुई हैं और इन तोपोंके पीछे आधुनिक शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित सेना डटी हुई है।

तुर्क स्वभावसे ही वीर होते हैं। वे खेती करते हैं; परन्तु उनका बाना सिपाहीका है। उन्हें कट जाना पसन्द है; परन्तु पीछे पैर हटाना नहीं। उनका विश्वास है कि युद्ध-क्षेत्रमें जो लोग मारे जाते हैं, उन्हें बहिश्तमें मूल्यवान् उपहार मिलते हैं। इसी विश्वासके साथ तुर्क जब लड़ता है, निर्भय होकर लड़ता है और अपने अफ़सरोंका कहना पूर्ण निष्ठाके साथ मानता है। १९२७ में कमाल अता तुर्कने २० वर्षकी आयु होनेपर प्रत्येक तुर्कके लिए सैनिक-शिक्षाको अनिवार्य कर दिया था। इस व्यवस्थाके अनुसार तुर्क युवकोंको पैदल सेनामें १॥ साल, रिसालेमें २ साल और जल-सेनामें ३ साल तक शिक्षा दी जाती है। इस तरह आज छोटा देश होनेपर भी तुर्कीके पास लाखों सैनिक हैं—२० वर्षकी आयुसे लगाकर लगभग ३५ वर्षकी आयु तकका प्रत्येक तुर्क सुशिक्षित सैनिक है। शान्ति-कालमें तुर्कीकी सेनामें लगभग २०००० अफ़सर और १७४००० साधारण सैनिक होते हैं। युद्ध-कालमें इनकी संख्या बढ़ाकर आसानीसे कई गुनी की जा सकती है। तुर्क सैनिकोंको शिक्षा-कालमें कितनी ही बातोंका कठोर अभ्यास कराया जाता है। शस्त्रास्त्रोंसे लैस, सारे सामानके साथ मीलों लगातार दौड़नेका अभ्यास तो एक साधारण-सी बात है। रस्सीसे ऊपर चढ़नेका अभ्यास भी उन्हें कराया जाता है।

तुर्कीकी स्थिति केवल इसीलिए महत्त्वपूर्ण नहीं है कि काले सागरपर उसका नियन्त्रण है या डेन्यूब नदीके मुहानेपर उसका प्रभाव है, बल्कि उसका महत्त्व इसलिए भी है कि भूमध्य सागरमें भी कितने ही बन्दरगाह हैं। तुर्कीकी जल-सेना यद्यपि बहुत ज्यादा नहीं है, तथापि वह जितनी है, वह है पूर्ण सुसज्जित और आत्म-रक्षा करनेमें सर्वथा समर्थ। उसका किनारा कटा हुआ है और समुद्र काफी गहरा है। इसलिए आवश्यकता पड़ जानेपर कहीं भी जल-सेनाका महत्त्वपूर्ण केन्द्र बनाया जा सकता है।

यूरोपके जिस राष्ट्रको एशियामें अपना प्रभाव बढ़ाना हो या अपने प्रभाव और स्वार्थोंकी रक्षा करनी हो, उसके लिए तुर्कीसे मित्रता करना अनिवार्य है। ब्रिटेनको यह सुविधा यद्यपि पहलेसे ही प्राप्त थी, तथापि उसके साथ कई महीने पहले जो सन्धि हुई थी, उसने इस सुविधाको और भी अधिक प्रशस्त बना दिया है। फ्रान्सने तुर्क आबादीवाले एक प्रान्त सञ्जकको सीरियासे अलग कर तुर्कीको दे देनेमें जिस दूरदर्शिताका परिचय दिया है, वह भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस तरह तुर्की ब्रिटेन और फ्रान्सके एक विश्वस्त मित्रके रूपमें पश्चिम एशियाके द्वारपर दृढ़ताके साथ डटा हुआ है। यूरोपके गणतन्त्रवादी राष्ट्रोंके लिए मिश्र, अरब और तुर्कीकी मैत्रीका मूल्य इतना अधिक है कि उसका मूल्य नहीं आंका जा सकता है। तुर्की वर्तमान महासमरमें तटस्थ रहनेका निश्चय कर चुका है; परन्तु यदि परिस्थितिसे विवश होकर वह इस युद्धमें शामिल हुआ, तो यही आशा की जा सकती है कि वह मित्र-राष्ट्रोंकी ओरसे होगा, और यह मित्र-राष्ट्रोंकी राजनीतिकी बहुत बड़ी सफलता होगी।

———



हथौड़ेवाला और लेखनीवाला

श्री प्रभागचन्द्र शर्मा

अंधेरी, कठोर चट्टानोंको फोड़कर अंधेरा दूर करनेवाली विद्युत्को जन्म दिया था किसी हथौड़ेवालेने; रूढ़ि और भ्रान्त धारणाओंके घटाटोपमेंसे कल्याणका प्रकाश उद्‌भासित किया है किसी लेखनीवालेने! ज्ञानकी वैज्ञानिक सतहपर विश्वमें आज ये दो विचार पनप रहे हैं कि लेखनी और हथौड़ेकी साधना-भूमि समाज—जीवनकी वेदीपर साथ-साथ प्रतिष्ठित हो और लेखक पुरोहितके सिंहासनका स्वामी बने। ये दोनों विचार भारतीय भाव-विनिमयताके नियन्त्रणमें पेश किये जानेपर भी मूलतः विश्व-युगके दो महान् विचारोंकी अदम्य चिन्तन-प्रेरणाके परिणाम हैं—(१) फ्रायड (२) कार्ल मार्क्स। आजका युग घूम-फिरकर इन दो विचारकोंकी विचार-धारापर स्थित है। मानव आज जीवनमें अर्द्ध-जीवित है। वह केवल देहका जीना जी रहा है। आत्माका जीना शायद देहकी मृत्युके बाद शुरू होता होगा। तब क्या जब तक हम शरीरसे मृत रहेंगे, कुछ भी दिव्य प्रतिष्ठान हमारे हाथों सम्भव है? नयी विश्व-रचनाके स्वप्नशीलोंको शरीर और आत्मासे एक साथ जीना होगा, यानी आजके मानवको दुर्गुणोंसे मुक्त और गुणोंसे सम्पन्न होना पड़ेगा। बुद्धि उसकी सौ फीसदी प्रखर जरूर हो; परन्तु उसका प्रमुख कार्य सद्‌गुणका विस्तार, 'सु'का प्रचार हो, दुर्गुण अथवा 'कु' का प्रसार करना न हो। खलील जिब्रानके शब्दोंमें—

"...लेकिन आज जीवित रहनेका मतलब बुद्धिपूर्वक जीवित रहना है, यद्यपि बुद्धिहीनोंके लिए अपरिचित होकर नहीं।

हमें बलवान होना है; किन्तु दुर्बलोंके नाशके लिए नहीं। यह जानना है कि सन्त और पापी जुड़वां भाई हैं।

हम एक ऐसा उद्यान हों जिसकी दीवारें न हों, घेरा जिसके आस-पास न हो; हम वह अंगूरकी बाड़ी हों, जिसका कोई रखवाला न हो; एक ऐसा खजाना हों हम, जो सदा पाससे गुजरनेवालोंके लिए खुला रहे!

मछलीमार हम हों, शिकारी हों; किन्तु मछलीपर रहम, पशुपर हमारी महर हो; लेकिन उससे भी अधिक हमारी दया भूखेपर हो, जरूरतमन्द आदमीके लिए हो!"

मार्क्सने श्रमका शोषण और फ्रायडने स्नेहका शोषण परिष्कृत किया है। मुट्ठीभर धनिकों द्वारा उत्पादनके समस्त साधन समेटे जाकर कोटि-कोटि श्रमिकोंकी लाचारियों और बेबसियोंका नीलाम तथा इसी सधन वर्गकी शारीरिक विकार-वासनासे प्लावित ऐयाशी तथा अनाचार, इन दो नाशक प्रवृत्तियोंसे विश्व बेहद घिरा हुआ था। आज भी यद्यपि उससे मुक्ति नहीं हुई; फिर भी विचारवान् समाज इन बुराइयोंको समझने और उन्हें मिटानेके योग्य तेजीसे बन रहा है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि श्रम, स्नेह और सङ्घर्षकी त्रिधारासे समूचे विश्वका साहित्य परिप्लावित है। साहित्यकी स्वस्थतासे समाज-जीवन सबल रहता है। अतः साहित्यकारोंके दायरेमें यह त्रिधारा कैसे बही है और किस प्रकार इसे आगे बढ़ना होगा, इसी विस्तारके लिए मार्क्स और फ्रायडकी वैचारिक देनका महत्त्व है। यद्यपि मार्क्स समूहका सबसे बड़ा कल्याणकर्ता माना जाता है; किन्तु उसने यह दृष्टि व्यक्ति-जीवनसे ही ली। फ्रायडका भी यही हाल रहा। व्यक्ति-व्यक्तिके जीवन-श्रमका सर्वतोमुखी शोषण कैसे रोका जाय, यह मार्क्सकी जीवन-साधना थी और व्यक्ति-व्यक्तिके मनकी अस्वस्थता कैसे मिटायी जाय, यह फ्रायड चाहता रहा, ताकि अचेतन मनकी प्रतिरुद्ध प्रवृत्तियोंको चेतन मनके सम्मुख लाकर लोग विवेकशील हों, एवं ज्ञानके पथपर आरूढ़ हो चलें। दोनोंकी विचार-धारापर प्रकाश डालनेके पहले दोनोंके मनोलोककी वैचारिक प्रेरणा-मूर्तिका ध्यान रखना आवश्यक है। हीगेल मार्क्सकी बौद्धिक प्रेरणा और विचारमय आदर्श था। नीत्शेका 'पुरुषोत्तम' फ्रायडके मनोविकरुन-विकासकी प्रखर प्रेरणा और आलम्ब था। जैसा कि ऊपर लिखा है, इन दोनों महाप्राण साधकोंकी जीवन-साधना हमारे मौजूदा समाजके उस अर्द्ध-जीवित मनुष्यके उत्कर्षकी भावनासे

अभिप्रेत है, जो देहका जीना जी रहा है, जो दुर्गुणोंसे अधिक बोझिल है ! तत्त्व अथवा विकारको आरपार देखनेकी बुद्धिके अभावका यह अभिशाप है। इन दोनों विचारकोंने मन और शरीरपर शासक—इसी कुहासे, घटाटोपको चीर फेंकनेका मार्ग बतलाया है। जो लोग दृष्टि रखकर विचार-धाराओंका अनुशीलन या मनन करते हैं, वे इस मतसे चौंकेंगे नहीं। मोटे रूपमें तो फ्रायडके मनोवैज्ञानिक अनुसन्धान और मनोविकलन-शास्त्रकी सूक्ष्मता यह प्रकट करती है कि मानव मनकी कमजोरियोंका अद्भुत निर्भीक निर्णय देनेका साहस उसी साधकमें हो सकता है, जिसकी प्रेरणाका आधार, सम्बल, धरातल लोकोत्तर हो।

"मांके गर्भसे जन्म लेनेवाले बालककी सर्वप्रथम प्रेमिका उसकी 'मां' है और बालिकाका सर्वप्रथम प्रेमी उसका अपना बाप है," अथवा "जिस आदमीमें जो विकार है, उसीका वह जबर्दस्त विरोधक होगा", आदि स्तब्ध कर देनेवाले निर्णय धर्म-ग्रन्थों या शास्त्रकारोंके बूते समाज-जीवनकी छातीपर नहीं लादे जा सकते। हमने देखा है कि महात्मा गांधी अपने गुण-दोषोंको पहाड़पर चढ़कर विश्वके सम्मुख रख सकते हैं, रख देते हैं। यह उनकी लोकोत्तरता ही है। फ्रायडके मनो-विश्लेषणका यही आधार दिव्य मानवके हीन धरातलका पता पा सका है। निस्सन्देह हमने एक मां देखी है, जो अपनी निजकी बेटीके प्रति इतनी कटु, ऐसी निर्मम है कि दुनियामें उसका जोड़ नहीं है। पुरुषत्व नारीत्वका पूरक है, अतः नारीके पुरुष-प्रेमकी स्वाभाविकतावाला फ्रायडका निर्णय दूसरी ओर दिव्य मानवीके इसी हीनतम रूपकी सत्यता सिद्ध करता दीखता है। यह सच है कि फ्रायडका मनोविश्लेषण आज श्रेष्ठतम है। किन्तु उसमें भी कुछ मामलोंमें एकाङ्गी निर्णय दिये हैं। इसके कारण हैं : इस सचाईके सर्वमान्य होनेपर भी कि विश्व-मानव और विश्व-मन देश-काल और सीमाके घेरेमें बंधा हुआ होकर भी एक है। उसके दुःख-सुख, स्पन्दन-समवेदना समान हैं ! हमें इतना स्वीकार करना होगा कि फ्रायडका विचार-लोक जिस विशेष व्यवहारवाद और रीति-रिवाजकी भित्तिपर बढ़ा अथवा पनपा था, वह अपने बाहरी रूपमें हमारे देशके लिए कई मानीमें एकदम भिन्न है। दूसरे जिस 'सुपरमेन'को लेकर फ्रायड मानवकी महत्ता, दृढ़ता और आत्म-स्वीकृति-भावनाके दिग्दर्शन करा गया, वह कोटि-कोटि कीट-पतङ्ग, मनुष्योंके साथ संलग्न नहीं हो पाता। बौद्धिक उद्दण्डता और विकारावेश सहनेमें असमर्थ तरुण जो आज गुमराह होकर अनैतिकताकी हिमायत या उससे प्यार करते देखे जाते हैं, वह इसी अनुभव-वैषम्यके कारण। असलमें फ्रायडकी प्रेरणा-मूर्ति, नीत्शेका लोकोत्तर पुरुष, व्यक्ति-पूजाको जहर मानकर उसका बहिष्कर्ता पुरुष जब वास्तव जीवनमें 'हिटलर' को वसुधापर लाता है, तो विचार-जगत्में ऐसे ही किसी श्रेष्ठ समर्थ पुरुषको रूप दे सकता है, जो अपने अभाव, कमजोरी, अपूर्णताको ज्योंका त्यों स्वीकार करना ही धर्म और साहस समझता हो। ऐसे ही श्रेष्ठ पुरुषको अपने विचार-प्रदेशमें रमाकर फ्रायडने मानव-जातिके मनोदेशके दर्शन करना चाहा है। कलाकार अपने मनोलोकमें विचरण करनेवाले मूर्त-अमूर्त विचारोंको स्वयंमें विद्यमानकी प्रतिच्छाया, निजकी भावी आकांक्षाकी तलमली, बेकरारी और पूर्व सञ्चित संस्कारिताके वरदानसे रङ्गत ढालता रहता है। फ्रायड अथवा मार्क्स भी इससे बचा नहीं।

जैसे धर्ममें समर्पण, वैसे ही साहित्यमें आत्म-स्वीकृति। अभी तक ऐसा रहा कि समाज और धर्ममें खाई रही; साहित्य और जीवनमें विषमता। अतः सृष्टि और सृष्टितत्त्व एक होकर भी दूर-दूर बढ़े, जुदा-जुदा जिये। एकरूपता, तदाकारताका अभाव इसीलिए इतना उत्कट होकर खलने लगा कि लोग आज बौखला उठे हैं। मनोभावों और मनोविकारोंकी शास्त्रीय काट-छांट या धार्मिक तिरस्कार उनकी रस-विद्युतका पता न देकर समूची देह, सारे जीवन, अखिल विश्वको निस्सार घोषित करनेमें सहायक हुए। समस्त सृजनका स्वामी इच्छाके रूपमें 'काम' से अनुप्राणित है, सृजनशील कलाकार होनेके लिए वासनासे मुंह नहीं मोड़ा जा सकता, यह धारणा ही मनपर अङ्कित नहीं होने दी गयी। प्राचीन लेखन-शास्त्रके आचार्य यह समझना ही नहीं चाहते रहे कि साहित्यमें प्रवृत्ति, मन और स्फूर्तिको गुंथ जाना होगा। मगर यह होता कैसे ? मनमेंसे उद्भूत होकर मनके आज्ञानुसार प्रवृत्तिका प्रसार धर्मने रोक दिया था। मानवपूर्णता अथवा मानवताके कल्याणके लिए धर्म है, कहनेवाले ठेकेदार यह समझ ही कहां पाते थे कि विज्ञान या

तर्क-प्रधान युगमें धर्मका स्वरूप बदलेगा; किन्तु मानवताका स्वभाव अपरिवर्तित ही रहेगा। जिस प्रकार मनके अवचेतन-स्तरपर बहुत-सी विचित्र धारणायें बंधी पड़ी रहती हैं, उसी तरह कुसंस्कारोंके घटाटोपसे आच्छादित व्यक्ति अनावश्यक आशङ्का और आतङ्कोंसे भी चौंकते रहते हैं। अज्ञानी धर्मावलम्बी सम्प्रदायवादियोंके जीवन भी ऐसे ही थे। मनोविज्ञान-शास्त्रके अनुसार यह एक फोबिया है। इसी फोबियाके चलते धार्मिक पोप-पण्डोंने स्वाधीनचेता कलाकारकी वास्तविक आत्म-स्वीकृतिकी पुनीत धारामें आतङ्क ही का प्रतिबिम्ब देखा! एक फ्रायड आया और उसने मनके रेशे-रेशेको हिला-डुलाकर अथक श्रमशीलतासे जाना कि मनमें जिज्ञासा, सक्रियता और प्रमाद ये तीनों प्रवृत्तियां बह रही हैं। सत, रज और तम गुण यही हैं। पार्थिवका प्रेम, स्थूल रक्त-मांसका मोह, रूप-गुणकी चाह, यह सृष्टिकी आदि व्याप्त प्रवृत्ति है। विकार इनके मूलका नहीं, इनकी शाखा-प्रशाखाका है। एकमें अनेककी उत्पत्ति और अनेकमें एकके विस्तारका कुतूहल है यह विश्व-जीवन! देहपर कब्जा कलाकारकी सर्वप्रथम साधना है। इसे तीन तरहपर किया जा सकता था। ज्ञानका शासन, प्रथम श्रेणीका; परम्पराका, रूढ़िका शासन द्वितीय और व्यवधान यह तीसरा तरीका रहा। पहला जितना कठिन, दुरूह; तीसरा उतना ही सरल, सुगम। हां Traditian से,प्रवृत्ति-प्रतिरोध कुछ कठिन नहीं; किन्तु महान् घातक जरूर सिद्ध हुआ। समस्यात्मक, परम्परागतात्मक पहुंच धर्मान्धताकी देन है। धर्मने न जाने क्यों यह समझाना उचित नहीं समझा कि व्यक्ति-जीवनके, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, जिस कोनेसे देवत्व-दान हो रहा हो; ग्रहण करनेवालेको भी उसे देवत्व ही के हाथों ग्रहण करना चाहिए। चाहे वह धर्म, रूढ़ि या परम्पराके विपरीत ही क्यों न हो! प्रायः ऐसा होता है कि प्रेमका आमन्त्रण और धर्मकी पुकारका भाव आपसमें टकरा जाया करते हैं। ऐसे अवसरपर क्या निर्णय किया जाय? कलाकार कहता है: तुम अपनी कृतिका विस्तार करो, इससे अपने अभीष्ट-भावको प्राप्त कर लोगे। धर्ममें एक कहता है—कर्मण्येऽवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। दूसरा कहता है—मा मेकं शरणम् व्रज। तीसरा कहता है—त्वदीयं वस्तु गोविन्दम् तुभ्यमेव समर्पयेत् आदि। ऊपरसे देखनेमें एक गहरा भेद जान पड़ता है; परन्तु बात ऐसी नहीं है। असलमें लक्ष्य-दर्शनके साधन, पथके अन्धकारके कारण, बीचके बीच, परस्पर ही में टकरा गये हैं। यह जो दृष्टिकोणकी विषमताका सङ्घर्ष-चीत्कार मचा हुआ है न, यह उन्हीं भटके हुए, अन्ध-साधनोंकी विफल खीझ और निर्लज्जता है! यदि धर्म, समाज, विज्ञान, नैतिकता, न्याय इन सबमें दृष्टि-साम्य हो गया होता, तो उलझन-भरा यह विश्व सुलझनकी ओर बढ़ा होता। टेढ़ाई, रहस्य, पेचीदगी, उलझन सब दृष्टिहीनता (आध्यात्मिक या जागतिक कोई भी) का भ्रम है। सत्य, अन्ततः अति सरल है। बिलकुल स्पष्ट है। यहां कोई झमेला नहीं। धर्मके पथसे जन-कल्याणकी ओर जो महामानव बढ़े थे, वे स्वयंमें बिल्कुल स्पष्ट थे। उनके अनुयायियों और साथियोंने उनकी विचार-धाराका कचूमर निकाला। विचारकताकी दिशासे जो लोग समाजको ऊंचा उठानेका कार्य करनेको उद्यत होते हैं, वे भी स्वयं इतने ही सत्य, सरल और सुस्पष्ट हैं। मार्क्सकी विचार-धाराको खतरा या फ्रायडकी मनोलोक-यात्राको विकारग्रस्त मानने या उसके अनुसार काम करनेसे इच्छित ध्येयकी प्राप्ति नहीं होगी। परन्तु शताब्दियोंके बाद आज मानव उत्कर्षकी चरमतापर आसीन दीख पड़ रहा है। फिर भी जिस उच्चतर चेतनाकी हम वाञ्छा रखते हैं, उसका पूर्ण विकास अभी भी होना बाकी है। इसका कारण अतीव बुद्धिवादी मनोविश्लेषज्ञ भी यही मानते हैं कि हम जो आज सभ्य हो गये हैं—वर्षोंसे पशु थे, अतः आज दिन भी हमारे मनके अंधेरे, गहरे स्तरोंपर उसी पशु-जीवनकी क्रूर प्रवृत्तियां दबी पड़ी हैं, जिन्हें धर्मने आसुरी प्रवृत्तियां नाम दे रखा है। हम आजके वातावरण और अतीतके संस्कारोंका हवाला देकर जिस महत्ताकी प्रतिष्ठा सब मनुष्योंमें देखना चाहते हैं, उन्हें यह न भूलना होगा कि हमारे इस विचार-की उम्र वर्षानुवर्षसे सञ्चित हमारी कुप्रवृत्तियोंकी उम्रके सम्मुख बहुत कम है। फ्रायडने आधुनिक मनोविश्लेषणको जिस दूरी तक ला दिया है, वहांसे आगे ले जानेकी जवाबदेही भी उसके समर्थकोंपर है। विस्तारके भयसे बारीकीसे उसपर लिखा नहीं जा सकता; किन्तु चित्तका धर्म और चित्त-रचनाकी एकरसतामें अभाव चला ही जा रहा है। इसलिए फ्रायडने 'ध्यान' की तीव्रतापर अन्ततः सारा जोर

दिया है। यह निर्विवाद है कि विश्वके विचारक मात्र मनोलोकके दिव्य प्रकाशके सहारे फैलेंगे और वैज्ञानिक मार्क्सकी कठोर साधना-भूमिके सहारे। और ऐसा ही हो भी रहा है। विश्वके वैज्ञानिक इस नतीजेपर आ लगे हैं कि यह अखिल सृष्टि 'शक्ति' का ही प्रतीक है। तब, सहसा प्रश्न साफ हो जाता है कि इस जगत्‌में रहनेवाला हर प्राणी 'शक्ति' और 'ध्यान' की महत्तापर एकाग्र हो। शक्तिसे अर्थ 'सत्ता' (अपने सम्पूर्ण विकारों सहित) न लिया जाय, न ध्यानका अर्थ माला या मन्दिर-प्रवेश। अंगरेजीके शब्द Energy (शक्ति) और Concentration (एकाग्रता) इसके लिए उपयुक्त होंगे।

आजके महाविकासमान् जगत्‌के बीच सारी चीजें धीरे-धीरे सिमट आयी हैं, जैसे इन दोनों मूलतत्त्वोंको छा देनेकी, ढक देनेकी कटुता रखकर। मार्क्स और फ्रायडकी विचार-धारामें रूहकी तरह व्याप्त रहे ये दो तत्त्व अति गम्भीर रूपसे विचारणीय हैं। यह स्पष्ट है कि वैज्ञानिकता दोनोंका चिन्तन-धरातल रही है। अतः विज्ञानके अपने वरदान फ्रायड और मार्क्स दोनोंको प्राप्य रहे हैं।

उनके चरणोंका अरुण राग

उनके चरणोंका अरुण राग

करता रहता मनको चञ्चल
प्रतिपल बेकल, प्रतिपल विह्वल
नयनोंमें भर लाता है जल
बनता आंसूके अमिट दाग;
उनके चरणोंका अरुण राग

सुधि बन गमकाता है सितार
बजते प्राणोंके तार तार
आंखोंमें छाता बन खुमार
यह किस नव मुरलीका विहाग?
उनके चरणोंका अरुण राग

ऊषा सजती है उजियाली
माणिक मरकत पाते लाली,
मरता गुलाब खाली प्याली,
उनके चरणोंका पा पराग
उनके चरणोंका अरुण राग

चुम्बन लेता, झुक झुक प्याला,
शरमाती, मुरझाती हाला,
बलि हो जाती मुग्धा बाला,
उकसाता कैसा अमर त्याग?
उनके चरणोंका अरुण राग

वह बिखर गया सौरभ बनकर
मधु गन्ध अन्ध हो रहे भ्रमर,
मधु ऋतु ले आया कौन सुघर?
फूले पलाश ले नयी आग,
उनके चरणोंका अरुण राग

सिन्दूर विन्दुमें मधु लाता,
मेहंदीमें नव श्री धर जाता,
गालोंमें लाली बन छाता
लज्जा पा जाती है सुहाग
उनके चरणोंका अरुण राग

इस लालीसे जगकी लाली
इस लालीसे सब हरियाली
इस लालीसे श्री श्रीवाली
है अङ्ग - अङ्गमें अङ्गराग
उनके चरणोंका अरुण राग

—सोहनलाल द्विवेदी, एम० ए० एल-एल० बी०

यूरोपीय महासमर और सोवियट रूस

श्री जी० पी० शर्मा, एम० ए० एल-एल० बी०

एशियाके भविष्यकी दृष्टिसे सोवियट रूसकी राजनीति क्या है और वर्तमान महासमरका उसपर क्या प्रभाव पड़ सकता है—ये प्रश्न हैं, जो बार-बार उठते हैं। कुछ समय हुआ, हर हिटलरके अपने पत्र "बोलकिशे बोबाचर" ने सोवियट रूसको हिन्दुस्तानपर हमला करनेकी सलाह दी थी; क्योंकि हिन्दुस्तान ब्रिटिश साम्राज्यका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है। पत्रने बतलाया था कि राजनीतिक और सैनिक, दोनों ही दृष्टियोंसे वैसा होनेके लिए यही उपयुक्त समय है। राजनीतिक स्थितिके सम्बन्धमें उसका कहना यह था कि महात्मा गांधीकी राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी असन्तुष्ट है; क्योंकि ब्रिटिश सरकार हिन्दुस्तानको युद्ध समाप्त हो जानेपर ही औपनिवेशिक पद देनेकी बात कहती है। सैनिक दृष्टिकोण बतलाते हुए इस पत्रने लिखा था कि हिन्दुस्तानमें बहुत थोड़े ब्रिटिश सैनिक हैं और निश्चित रूपसे वे उत्तरसे रूसकी गतिको रोक न सकेंगे। इसी तरहके लेख इटलीके दो पत्रों 'लावोरो फेसिस्टा' और 'मेसाजिरो'में भी प्रकाशित हुए थे। इन पत्रोंका नाजियोंसे घनिष्ट सम्बन्ध है और हो सकता है कि "बोलकिशे बोबाचर" में जिसकी आवाज है, उसीके इशारेपर इन पत्रोंमें भी लिखा गया हो। जो हो, सोवियट रूसको हिन्दुस्तानपर हमला करनेकी सलाह देने और इस तरह उसे आक्रमणकारी बनानेकी बात लिखकर कमसे कम नाजियोंके इस पत्रने यह तो बतला ही दिया है कि युद्धसे पहले २३ अगस्त १९३९ को रूसके साथ जर्मनीकी जो सन्धि हुई, उसमें हिटलरका भीतरी उद्देश्य रूससे क्या काम लेनेका था।

अक्टूबर १९१७ की क्रान्तिके समय और उसके बादके कुछ वर्षोंमें लेनिनका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था कम्यूनिस्ट घोषणाके अन्तमें दिये हुए वाक्यमें परिवर्तन करना। मार्क्स और एञ्जिलसने इस घोषणाके अन्तमें केवल यह लिखना काफी समझा था कि "संसारके मजदूरो, एक हो जाओ।" लेनिनने क्रान्ति और साम्राज्यवादके वर्तमान युगकी दृष्टिसे इस बातपर जोर दिया कि यह वाक्य इस तरह होना चाहिए—"संसारके मजदूरो और पीड़ितो, एक हो जाओ।"

पीड़ितोंसे लेनिनका अभिप्राय था साम्राज्यवादी राष्ट्रोंके अधीन देशोंके करोड़ों निवासी! फलतः नवीन सोवियट शासनका एक तात्कालिक ध्येय पीड़ित लोगोंका परित्राण हो गया। रूस आज जब लेनिनकी क्रान्तिमूलक मुख्य शिक्षाओंसे हट रहा है और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली राजनीतिका अनुसरण कर रहा है, उसे नैतिक दायित्वकी याद दिलानेका अवसर नाजियोंको मिल गया है। यह कुछ व्यङ्ग-सा मालूम होता है; परन्तु यह तो साफ ही है कि हिटलरको वैसा होनेमें कोई दिलचस्पी नहीं है। 'बोलकिशे बोबाचर' में जो सङ्केत किया गया है, वह अपना वर्तमान उद्देश्य पूरा करनेके लिए है। उसका विश्वास है कि यदि रूसको हिन्दुस्तानपर हमला करनेके लिए लुभाया जा सके, तो इससे ब्रिटेनको, जो जर्मनीका सबसे बड़ा शत्रु है, दो मोर्चोंपर लड़नेके लिए विवश किया जा सकेगा और साथ ही रूससे लड़नेके लिए भी उसे सामने आना पड़ेगा, जब कि अभी तक ब्रिटेनने रूसके विरुद्ध लड़नेकी स्थितिको टाला है, बड़ी सावधानीसे बचाया है।

जर्मनीके इन सङ्केतोंके उत्तरमें रूसने अपनी यूरोप सम्बन्धी नीतिको और भी अधिक चुस्त कर लिया। जर्मनीने अपना स्वार्थ साधनेके लिए वैसी सलाह दी थी। यदि स्टालिन उस ओर ध्यान देता, तो यह उसकी बड़ी जबर्दस्त भूल होती। कोई भी देश हो, उसकी परराष्ट्र-नीति बहुत कुछ उसकी भौगोलिक स्थिति और राजनीतिक परिस्थितिपर निर्भर होती है। रूस भी इसका अपवाद नहीं है। एक बार नक्शेपर निगाह डालकर देखिये, पूर्वमें एशियामें प्रशान्त महासागरसे लगाकर पश्चिममें यूरोपके मध्य भाग तक रूस फैला हुआ है और समस्त पृथिवीका लगभग छठा भाग रूसके अधीन है। फलतः रूसकी परराष्ट्र-नीति हमेशा ही इस तरहकी होगी कि वह

पूर्वमें जहां व्लाडीवोस्टककी स्थितिके उपयुक्त हो सके, वहां पश्चिममें वह मास्कोके लिए भी ठीक हो। रूसको इसीलिए कभी एशिया सम्बन्धी समस्याओंकी ओर विशेष ध्यान देनेके लिए विवश होना पड़ता है और कभी यूरोपकी घटनाओंकी ओर ध्यान देना पड़ता है।

एशियामें इधर कुछ दिनोंसे रूसकी नीतिमें कुछ शिथिलता या ढीलापन आ गया है। कौन नहीं जानता कि मन्चूकोकी सीमापर रूस और जापानके सैनिकोंमें बराबर ही भिड़न्त होती रहती है, दोनों किसी क्षेत्रको अपना-अपना बतलाते हैं, सीमा-सम्बन्धी इस झगड़ेका निपटारा करनेके लिए कमीशन बैठते हैं, कमीशन अपने प्रयत्नमें विफल हो जाते हैं और उसके बाद भी एक नया कमीशन बैठा दिया जाता है। इसका अर्थ स्पष्ट है। यूरोपमें इसके विपरीत रूसने दृढ़ निश्चयका परिचय दिया है—भले ही वर्तमान महासमरमें उसने क्रियात्मक रूपसे भाग न लिया हो। वर्तमान यूरोपीय युद्ध अभी तक अनिश्चित अवस्थामें है। इसका कारण मुख्यतः यह है कि यद्यपि उसकी सम्भावना बहुत दिनोंसे थी, तथापि वह आरम्भ अचानक ही हो गया। १९१४ वाले महासमरके सम्बन्धमें यह नहीं कहा जा सकता। उस समय यह पहलेसे ही निश्चित था कि कौन किसका साथी होगा। जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी, बलगेरिया और तुर्की एक गुटमें थे और दूसरे गुटमें थे ब्रिटेन, फ्रान्स और रूस। उस समय कुछ जर्मन तो यह विश्वास भी नहीं करते थे कि युद्धमें फ्रान्स और ब्रिटेन एक-दूसरेके साथी होंगे। युद्ध आरम्भ हो जानेके बाद कई अन्य राष्ट्र उसमें शामिल हुए। इटली, रूमानिया और अमेरिकाका रुख लड़ाई होनेके दिनोंमें स्पष्ट हुआ। फिर भी, एक बात साफ है, उस समय युद्ध-लग्न दोनों पक्षोंके साथियों और मित्रोंकी जो रूप-रेखा पहलेसे ही निश्चित थी, वह न्यूनाधिक अन्त तक रही थी। आज अवस्था बिलकुल भिन्न है। यह सच है कि इस युद्धमें भी, पहलेवाली लड़ाईके समान, अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंकी गुत्थियां हैं। ब्रिटेन और फ्रान्स अपने साम्राज्यकी रक्षा करना चाहते हैं और जर्मनी अपने साम्राज्यकी सृष्टि करना चाहता है। इसके अलावा एक अन्य बात भी है। जर्मनीमें राष्ट्रीय समाजवादमूलक राजनीतिक प्रणाली है और यह युद्ध इस प्रणालीके भी विरुद्ध है। सबसे बड़ी बात वर्तमान महासमरके सम्बन्धमें यह है कि वह ऐसे समयमें हो रहा है, जो आर्थिक और सामाजिक विकास और क्रान्तिकी सम्भावनाओंसे परिपूर्ण है। गत महासमरका परिणाम केवल यही हुआ था कि नक्शेमें कुछ देशोंकी सीमायें बदल गयी थीं और कुछ देशोंके रङ्ग भी बदल गये थे। परन्तु यह हो सकता है कि वर्तमान युद्ध यूरोपके सामाजिक भविष्यका निपटारा कर दे।

आज जो दो गुट हैं, क्या यह सम्भव नहीं है कि लड़ाई चलते रहनेके दिनोंमें ही उनमें परिवर्तन हो जाय। यह बिलकुल निश्चित-सा मालूम होता है। पहले भी ऐसा अनेक बार हुआ है। देखा गया है कि एक युद्धमें जो दो देश एक-दूसरेके मित्र थे, वही किसी अन्य युद्धमें एक-दूसरेके शत्रु हो गये। वर्तमान युद्धमें भी यह हो सकता है और युद्ध चलते-चलते हो सकता है। इस समय नारवे, हालैण्ड और बेल्जियमको साथी बनाकर ब्रिटेन और फ्रान्स जर्मनीसे लड़ रहे हैं, जिसकी रूसके साथ अनाक्रमण सन्धि है। रूसके अलावा जर्मनीका साथी है इटली, जो मुस्तैदीसे तटस्थ बना हुआ है। यह निश्चित मालूम होता है कि वर्तमान युद्ध चलते-चलते शक्तिके इस सन्तुलनमें उलट-पलट हुए बिना नहीं रहेगी।

रूसके सम्बन्धमें जो प्रश्न मुख्य रूपसे सामने आता है, वह यह है कि क्या वह इस युद्धसे दूर रहेगा, दूसरे शब्दोंमें वह कब तक अपनी तटस्थताको कायम रखेगा? यह प्रश्न आसान नहीं है। स्वयं रूसके लिए यह सम्भव नहीं है कि वह इस प्रश्नका उत्तर दे सके। इस समय रूसका स्वार्थ युद्धसे अलग रहनेसे सधता है; क्योंकि यह युद्ध यूरोपके उन देशोंमें हो रहा है, जिनकी आर्थिक और औद्योगिक प्रणाली अत्यन्त उन्नत अवस्थामें है। जर्मनी और रूस, दोनों देशोंके तानाशाहोंमें अन्तर है। हिटलर वही नहीं है, जो स्टालिन है। हिटलरकी परराष्ट्र-नीति स्टालिनसे भिन्न है। दस वर्षसे अधिक समय बीत रहा है, रूसकी परराष्ट्र-नीतिमें स्थिरता आ गयी है। उसे अपनी घरेलू नीतिका विस्तार करनेकी जरूरत नहीं है। वर्तमान युद्धमें यदि रूस तटस्थ रहे, तो उसे लाभ ही रहेगा, उसकी भीतरी शासन-नीति और भी अधिक सुदृढ़ होगी। फिर, आर्थिक क्षेत्रमें भी

दोनों देशोंमें बड़ा अन्तर है। कई साल पहलेसे योजना बनाकर जर्मनीने भरसक यह प्रयत्न किया है कि वह सभी आवश्यकताओंके लिए कृत्रिम साधनोंसे आत्म-निर्भर हो जाय और जर्मनीकी सीमाओंसे बाहर आर्थिक संसारपर निर्भर रहे बिना अपना कार्य चला सके। जर्मनी अपने इस प्रयत्नमें विफल हुआ है। इसका पता इस बातसे चल जाता है कि ब्रिटेन और फ्रान्सने जो घेरा जर्मनीपर डाल रखा है, उसके कारण गत ७-८ महीनेमें वहां तबाही आ गयी है। वहांकी शोचनीय आर्थिक अवस्थाके जो समाचार आते हैं और तटस्थ देशोंके पत्रोंमें जो विवरण छपता है, उससे पता चलता है कि जर्मनीका आर्थिक सङ्गठन आत्म-निर्भर नहीं है। रूस इसके विपरीत आर्थिक दृष्टिसे अपनेको आत्म-निर्भर बनानेमें न्यूनाधिक समर्थ हो सका है और इसके लिए उसने जिन साधनोंसे काम लिया है, वे कृत्रिम नहीं हैं। रूसके कारखानोंमें अपनी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए माल तैयार होता है। उसके लिए रूसको बाजार खोजनेकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। उसकी जो विस्तारात्मक नवीन परराष्ट्र-नीति है, उसके मूलमें न तो आर्थिक आवश्यकतायें हैं और न आर्थिक साम्राज्यवाद। राजनीतिक आवश्यकताओंके सम्बन्धमें बात यह है कि स्टालिनने जो कदम उठाया है, वह केवल उससे होनेवाले प्रत्यक्ष लाभको दृष्टिमें रखकर। फिर, युद्ध ऐसी बात नहीं है, जिसकी सारी सम्भावनाओंको पहले ही देखा जा सके। वह स्वयं स्टालिनके शासनके लिए भी भयावह हो सकता है।

हिटलर और उसके साथियोंकी अवस्था भिन्न है। हिटलरने ब्रिटेन और फ्रान्ससे युद्ध छेड़ रखा है। यह तो पहले भी नहीं सोचा जाता था और बादमें घटनाओंसे भी साबित हो चुका है कि जर्मनी चुपचाप नहीं बैठा रह सकता। उसकी सत्ता तभी रह सकती है, जब वह दूसरे देशोंमें लगातार हस्तक्षेप करता रहे—फिर, यह हस्तक्षेप चाहे पश्चिममें हो या पूर्वमें, या दक्षिण-पूर्वमें।

पोलैण्डमें जर्मनीको जो कुछ करना था, वह रूसके साथ अनाक्रमण-सन्धि होनेके कारण ही हो सका, इसमें सन्देह नहीं है; परन्तु उसे कर लेनेके बाद हिटलरने एक बार फिर बोलशेविज्मका हौआ सामने लानेकी कोशिश की—यद्यपि रूसकी वर्तमान सुदृढ़ स्थितिके लिए हिटलर सबसे अधिक जिम्मेदार है। गत अक्टूबरमें 'फिगारो' और 'इपक' पत्रोंमें प्रकाशित कितने ही लेखोंमें बोलशेविज्मके सम्बन्धमें यह भय प्रकट किया गया था। परन्तु पश्चिमी यूरोपकी शक्तियां तो हृदयसे हिटलर और हिटलरवादका अन्त करनेका निश्चय कर चुकी हैं, उन्होंने जर्मनीके शान्ति-सम्बन्धी अप्रत्यक्ष प्रस्तावोंका कोई उत्तर नहीं दिया, फिर भी रूसका अभी तक यह विश्वास है कि मित्र-राष्ट्रों और जर्मनीमें वैसी कम्यूनिस्ट-विरोधी शान्ति होना सम्भव है। लड़ाई जिस ढङ्गसे चल रही है, उससे रूसकी उस आशङ्काकी पुष्टि-सी होती है। जो हो, यह प्रारम्भिक युद्ध यदि सचमुच युद्धका रूप ग्रहण करे और लाखों मनुष्योंका संहार होने, युद्धलग्न और तटस्थ देशोंके नैतिक और भौतिक साधनोंके समाप्त हो जानेके बाद यदि यूरोपमें सचमुच बोलशेविज्मका भय उपस्थित हो और जर्मनी एवं पश्चिमी यूरोपके अन्य देशोंको यह भय अपने लिए दिखलाई पड़ने लगे, तो सारी अवस्था तुरन्त ही बदल जायगी। इसीलिए यह कोई असम्भव कल्पना नहीं है कि हो सकता है, ऐसा दिन आये, जब जर्मनीको सफेद झण्डीके साथ मित्र-राष्ट्रोंके पास एक दूतके हाथ यह सन्देश भेजना पड़े कि 'जर्मनीका सामाजिक ढांचा खतरेमें है।' रूसको यह कभी अभीष्ट नहीं हो सकता।

ब्रिटेन और फ्रान्स यदि सचमुच ही उद्देश्य पूरा होने, हिटलर और उनकी प्रणालीके मिट जाने तक युद्ध चलानेका इरादा कर चुके हों, तो रूस इस लड़ाईमें कभी नहीं पड़ेगा। जिस लड़ाईमें बहुत ज्यादा शक्तिका स्वाहा हो रहा हो और जिसके अन्तमें हिटलरको न रह जाना हो, उससे यूरोप और एशियापर सोवियट रूसका राजनीतिक प्रभाव बहुत अधिक बढ़ जायगा; क्योंकि युद्धलग्न सभी शक्तियां बुरी तरह थक जायंगी। हिटलर और स्टालिन, दोनों ही इस बातको हमेशा सामने रखते हैं और मोशिये रेनाड और मि० चर्चिल भी इसे जानते हैं। यह हो सकता है कि उस स्थितिके आधारपर रूसके विरुद्ध ब्रिटेन, फ्रान्स और जर्मनीकी सन्धि हो।

यूरोपमें जिस समय ये सब दांव-पेंच चल रहे होंगे या उनकी सम्भावना होगी, क्या यह आशा की जा सकती है कि स्टालिन चुपचाप देखता रहेगा, वह कुछ न करेगा? जब तक उसके लिए हस्तक्षेप करना सम्भव होगा, तब तक

वह हस्तक्षेप करना चाहेगा; परन्तु यदि कोई अन्य मार्ग न हो, तो यह हो सकता है कि वह जर्मनीकी राष्ट्रीय बोलशेविक विचार-धाराका समर्थन करे और मित्र-राष्ट्रोंके विरुद्ध जर्मनीको सहायता पहुंचाये। इस तरह सोवियट रूस उसी समय तक तटस्थ रह सकता है, जब तक रूसके विरुद्ध जर्मनी, ब्रिटेन और फ्रान्सका सम्मिलित मोर्चा बननेकी सम्भावना नहीं है। स्टालिनकी सारी नीति हिटलरकी गतिविधिपर निर्भर है। संक्षेपमें, यदि जर्मनी यह युद्ध जारी रखे और युद्ध भयङ्कर भी होता जाये, तो रूससे तटस्थ रहनेकी आशा की जा सकती है; परन्तु ज्यों ही सोवियट रूसके विरुद्ध मोर्चा बनानेके लिए समझौता होनेकी मनोवृत्ति पैदा होने लगेगी, स्टालिनको इस बातमें कोई सङ्कोच नहीं होगा कि वह जर्मनीको सहायता पहुंचाये और जर्मनीकी वर्तमान सामाजिक प्रणालीके बजाय राष्ट्रीय बोलशेविक विचार-धाराका समर्थन करे। यह मित्र-राष्ट्रोंकी योजनाके प्रतिकूल होगा।

स्टालिनकी नीतिका प्रभाव केवल यूरोपपर ही नहीं पड़ता, एशिया सम्बन्धी सोवियट उद्देश्योंसे भी उसका सम्बन्ध है। इस समय यह नीति प्रतीक्षापूर्वक घटनाओंको देखनेकी है। यूरोपीय युद्धके सम्बन्धमें अपनी नीतिका अन्तिम निर्णय करने और उसमें क्रियात्मक योग देनेसे पहले स्टालिन यह देखेगा कि किस करवट ऊंट बैठ रहा है। किसी अन्य देशमें रूसी सेनाओंको भेजनेसे पहले वे अच्छी तरह विचार करेंगे। इसमें सन्देह नहीं है कि प्रतीक्षामूलक वर्तमान नीतिसे रूसकी एशियाई प्रगतिमें बाधा पड़ गयी है। जिन घटनाओंके परिणाममें मञ्चूकोकी सीमापर सङ्घर्ष आरम्भ हुआ था और बाहरी मङ्गोलियामें एक युद्धके रूपमें जारी रहा था, उनके सिलसिलेमें अग्रसर होने और अन्तिम रूपसे निपटारा करनेके बजाय अब स्टालिनका प्रयत्न यह है कि अस्थायी सन्धि हो जाय।

पूर्व कालमें सोवियट रूस और जापानने अपने झगड़ेके प्रश्नोंको जान-बूझकर बनाये रखा है, उन्होंने कभी अग्रसर होकर अपना विवाद मिटानेका प्रयत्न नहीं किया है। रूसने अपनेको इन झगड़ोंमें संसारके समक्ष इस तरह रखा है, मानो वह शान्तिका पूर्ण पक्षपाती हो और जापान दोषी हो। जनवरी १९३६ में मोशिये मोलोटोवने कहा था—"मञ्चूरियामें चाइनीज ईस्टर्न रेलवेको बेच देनेका समझौता कर रूसने इस बातका परिचय दिया है कि वह सहिष्णु और शान्तिप्रिय है।...परन्तु रूस और जापानके पारस्परिक सम्बन्धके विषयमें मुख्य प्रश्न अभी तक हल नहीं हुआ है।" इसके आगे मोशिये मोलोटोवने बतलाया था कि १९३३ से इधर कई बार जापानके सामने यह प्रस्ताव रखा गया कि दोनों देशोंमें अनाक्रमण सन्धि हो; परन्तु जापानने जान-बूझकर इस विषयको टाला है। उन्होंने इस बातपर भी जोर दिया कि जापान और मञ्चूरियाके सैनिक रूसकी सीमामें घुसते रहते हैं। इस सम्बन्धमें जापानका रुख बहुत ही सन्देहजनक है।

किन्तु रूसका रुख भी वैसा ही सन्देहजनक है। चाइनीज ईस्टर्न रेलवे खरीदनेके कारण जापानपर रूसका जो पावना हो गया है, उसकी किस्त चुकानेसे जब जापान इनकार कर रहा था, रूस इस बातपर अड़ा हुआ था कि मछलियां मारनेके सम्बन्धमें रूस और जापानमें जो समझौता है, उसकी अवधि एक समयमें केवल एक सालके लिए ही बढ़ायी जाय। इसी तरह सखालियन टापुओंमें मिट्टीके तेलके जो सोते रूसके अधिकारमें हैं, उनके सम्बन्धमें जापानको उसने काफी तङ्ग किया। जापान और रूसके बीच सीमा-सम्बन्धी झगड़ोंने एक बार तो युद्ध-जैसा रूप ग्रहण कर लिया; परन्तु इधर जो घटनायें हुई हैं, उन्होंने दोनों ही पक्षोंको थोड़ा ठण्डा होनेके लिए विवश कर दिया। यूरोपकी घटनाओंका रूसकी एशिया सम्बन्धी नीतिपर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा है। जापानने रेलवे सम्बन्धी पावनेकी किस्त दे दी और रूसने भी सीमा सम्बन्धी झगड़ा निपटानेके लिए कमीशन बैठाना स्वीकार कर लिया। यह सब उस समय हुआ, जब यूरोपमें रूस और जर्मनीमें अनाक्रमण सन्धि हुई। उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो रूस और जापान भी आपसमें अनाक्रमण सन्धि करना चाहते हैं और शायद चीनके सम्बन्धमें दोनोंमें कोई समझौता हो गया है। किन्तु वास्तवमें यह बात नहीं है। दोनों देशोंके बीच झमेलेकी मुख्य बातें ज्योंकी त्यों बनी हुई हैं और दोनों ही अस्थायी रूपमें शान्ति बनाये रखनेके लिए उत्सुक हैं। जापानका हमला यदि कभी हो, उसका सामना करनेके लिए रूस अपनी पूर्व सीमाको सुदृढ़ तो कर लेना चाहता है;

परन्तु यूरोपकी घटनायें उसे उधर ध्यान देनेके लिए विवश कर रही हैं, क्योंकि उनका प्रभाव स्टालिनके शासनके लिए भयावह साबित हो सकता है। जापान भी कठिनाईमें है। उसका चीनके साथ अभी तक युद्ध चल रहा है और जरूरत यह है कि पड़ोसके देशोंके साथ उसका सम्बन्ध अच्छा हो। फिर, रूसके साथ यदि जापानकी तनातनी इस समय रहे, तो अमेरिकापर दबाव डालकर वह अपना काम नहीं बना सकता। इसके विपरीत यदि जापान और रूस एक-दूसरेके नजदीक आने लगें, तो जापान स्थितिसे लाभ उठानेके लिए अमेरिकापर प्रभाव डाल सकता है; क्योंकि अमेरिकाको यह अभीष्ट नहीं है कि प्रशान्त महासागरमें उसके स्वार्थोंके विरुद्ध रूस और जापानका एक गुट बन जाय। इसीलिए रूस और जापानमें पिछले दिनों जो समझौता हुआ है, उसका ज्यादा महत्त्व नहीं है। सब कुछ यूरोपकी घटनाओं और वहां रूसके फंसावपर निर्भर है—चाहे यह प्रश्न रूसके प्रति जापानकी नीतिका हो या एशियामें रूसकी नीतिका। जहां तक रूसकी जापान सम्बन्धी नीतिका प्रश्न है, स्टालिन उसी चालसे काम ले रहे हैं, जिससे उन्होंने जर्मनीके साथ लिया है। जर्मनीके साथ अनाक्रमण सन्धि कर उन्होंने हिटलरके कम्यूनिस्ट-विरोधी विचारोंका डङ्क काट दिया है और जापानके साथ समझौता हो जानेका परिणाम भी यही हो सकता है। फिर, यदि कभी हिटलरका विचार बदल जाय, तो उसकी दृष्टिसे उन्होंने अपने देशकी रक्षा करनेके लिए सीमाओंका यथेष्ट विस्तार कर दिया है। इसके बाद एक बात और भी है—यूरोपके युद्धमें यदि रूस तटस्थ रहे, तो उसकी सञ्चित शक्ति सुरक्षित रहेगी और इधर चीनसे लगातार लड़ते रहनेसे जापानमें कमजोरी आना अनिवार्य है। एशियामें रूसको यही स्थिति अभीष्ट हो सकती है।

———

गीत

सपने कैसे सत्य बनाऊं ?
अन्तरका परिचित आकर्षन,
मानो खोल रूप निज लोचन—
मौन संदेशा दे, खो जाता—कैसे उसमें प्राण बसाऊं ?

सपने कैसे सत्य बनाऊं ?
देव नहीं,—मिल जाते दर्शन,
और शून्यसे उठ आवाहन,—
छाया दूर दिखा जाते हैं—कैसे उसपर प्यार चढ़ाऊं ?

सपने कैसे सत्य बनाऊं ?
नयनोंमें हंस डाल हिंडोले,
जीमें उतर, मधुर रस घोले,
पर न सामने दिखता कोई—कैसे मैं पहिचान बढ़ाऊं ?
सपने कैसे सत्य बनाऊं ?

—नर्मदाप्रसाद खरे।



महिलायें और मताधिकार

श्रीमती श्यामकुमारी शर्मा

भारतवर्षमें, जहां स्त्रियोंको धर्मशास्त्रके अनुसार मन, वचन, कर्मसे पतिकी सेवा करनेके सिवा और कोई अधिकार नहीं मिला था, अब उन्हें देशके शासन-कार्यमें अपनी राय देनेका भी अधिकार प्राप्त हुआ है। अब वे जिला बोर्डों, म्यूनिसिपल बोर्डों, लोकल बोर्डों और व्यवस्थापिका सभाओंकी सदस्यायें ही नहीं, बल्कि स्पीकर, डिप्टी स्पीकर या मिनिस्टर तक बन सकती हैं। पर भारतीय महिलाओं-को जो राजनीतिक मताधिकार मिला है, उसके लिए वास्तवमें उन्हें कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा है। इंगलैण्डमें उनकी बहनें वर्षोंसे अपने अधिकारोंको पानेके लिए प्रयत्न करती आ रही थीं, भारतीय महिलायें भी आज उसीके फलका उपभोग कर रही हैं।

इंगलैण्डमें यह सङ्घर्ष प्रायः एक शताब्दी तक चला और गत यूरोपीय महायुद्धके समाप्त होनेपर महिलाओंको अपने अधिकारोंके पानेमें सफलता मिली। यह कहा जाता है कि इंगलैण्डमें, महिला-आन्दोलन मि० जान स्टुअर्ट मिलकी सुप्रसिद्ध पुस्तक Subjection of Women (महिलाओंकी पराधीनता) प्रकाशित होनेके बाद आरम्भ हुआ। परन्तु उसके बहुत पहले ही उत्साही कार्यकर्ताओं द्वारा इसके लिए क्षेत्र तैयार किया जा रहा था, और लोगोंके विचारोंमें परिवर्तन लानेकी भी कोशिश की जा रही थी।

इस आन्दोलनका वर्तमान रूपमें आरम्भ फ्रान्सकी राज्य-क्रान्तिके बाद हुआ; क्योंकि उस समय लोगोंमें स्वाधीनता और स्वतन्त्रताके भाव जोरोंसे फैल रहे थे। जब कि पुरुष गणतन्त्रात्मक सरकार कायम करनेकी बातें सोच रहे थे, महिलाओंके मनमें ये विचार आ रहे थे कि स्त्रियां पुरुषोंकी अधीनतामें कब तक पड़ी रहेंगी। परिणाम यह हुआ कि उन्होंने अपने अधिकारोंको प्राप्त करनेके लिए आवाज उठायी और सङ्घबद्ध हो उसके लिए आन्दोलन करने लगीं। वातावरण सर्वथा अनुकूल था, चारों ओर स्वाधीन विचारोंकी लहर फैल रही थी, इसलिए आन्दोलन क्रमशः जोर पकड़ता गया।

पर किसी आन्दोलनके जोर पकड़नेसे ही उसमें सफलता प्राप्त नहीं होती। सफलता प्राप्त करनेके पहले आन्दोलनको दो बातों—उपहास और विरोध—का सामना करना पड़ता है। जब महिलाओंने अपने राजनीतिक अधिकार पानेकी बात उठायी, तब पुरुषोंने उसपर गम्भीरतापूर्वक विचार करनेके बदले उसका मजाक उड़ाया, और बादमें आन्दो-लनको तीव्र गतिसे बढ़ते देख उसका विरोध किया।

मिलकी पुस्तक १८६१ में प्रकाशित हुई थी। साहि-त्यिक और दार्शनिक जगत्में मिलको जो गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था, उससे महिलाओंको उनकी पुस्तकसे अपने अधि-कारोंकी लड़ाईके लिए काफी स्फूर्ति मिली। परन्तु मिलके प्रायः ७० वर्ष पहले मेरी वुलस्टोन क्राफ्ट नामक एक महिलाने इसी विषयपर एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें महिलाओंके अधिकारोंका बड़े सुन्दर ढङ्गसे समर्थन किया गया था। उस पुस्तकने महिला-आन्दोलनकी बाइबिलका काम किया।

अमेरिकन महिलायें भी अपने अधिकारोंके सम्बन्धमें चुप नहीं बैठी थीं। १८४८ में उन्होंने अपनी सभा कर एक घोषणा प्रकाशित की, जिसमें कहा गया कि हम इसे स्वयं-सिद्ध सत्य मानते हैं कि सभी पुरुष और स्त्रियां जन्मसे बराबर हैं। सृष्टिकर्ताने दोनोंको कुछ समानाधिकार दिये हैं। जीवनका उत्कर्ष करने, सभी क्षेत्रोंमें स्वतन्त्रताका उपभोग करने और सुखकी खोजमें पुरुषोंके समान ही स्त्रियोंको भी अधिकार मिले हैं। आगे चलकर घोषणामें कहा गया कि मानव जातिका इतिहास स्त्रियोंपर पुरुषोंके क्रमागत अत्या-चार और उत्पीड़नका इतिहास है। इसके बादमें अभि-योगोंके रूपमें उन अत्याचारों और कष्टोंकी सूची दी गयी है, जिन्हें स्त्रियोंको सहना पड़ता है, और यह जोरदार दावा पेश किया गया है कि जहां और जब कभी स्त्रियोंके मौलिक अधिकार किसी सरकार द्वारा स्वीकार नहीं किये जायं, वहां महिलाओंका अधिकार है कि वे उस सरकारसे सहयोग न करें और उसको बदल देनेके लिए आन्दोलन करें।

इस घोषणा-पत्रमें उस सङ्घर्षशील रूपका आभास हमें मिलता है, जिसे आन्दोलनने आगे चलकर धारण कर लिया। फिर भी महिलाओंके राजनीतिक अधिकारोंका आन्दोलन बहुत दिनों तक वैध रूपसे ही चलता रहा। मि० मिल इस आन्दोलनके सूत्रधार थे और पार्लमेण्टके सदस्यकी हैसियतसे उन्होंने १८६७ के रिफार्म बिलमें स्त्रियोंके मताधिकार सम्बन्धी एक उपधारा जुड़वानेकी कोशिश की, पर उनका संशोधन बहुमतसे गिर गया। फिर भी आरम्भमें इस प्रकारकी कितनी ही विफलताओंसे आन्दोलनमें किसी तरहकी शिथिलता नहीं आने पायी, वरन् दूने उत्साहसे वह आगे बढ़ता गया।

महिलाओंमें उनके अधिकारोंकी जानकारी करानेके लिए जोरोंसे प्रचार-कार्य आरम्भ किया गया और मिसेस फासेटके सभानेत्रीत्वमें एक सुसङ्गठित संस्था कायम की गयी। उसकी ओरसे महिलाओंके मताधिकार सम्बन्धी आन्दोलन करनेके लिए पत्र निकाला गया। पर आन्दोलनके मार्गमें बाधा पहुंचानेके लिए दूसरा अड़ङ्गा तैयार था। जब १८८४ में लिबरल गवर्नमेण्टने मि० ग्लेडस्टोनके प्रधान-मन्त्रीत्वमें रिफार्म बिल पेश किया, तो यह उम्मेद की गयी थी कि उसमें महिलाओंके मताधिकार सम्बन्धी व्यवस्थाका भी समावेश किया जायेगा, पर वैसा न हो सका। सबसे आश्चर्यकी बात तो यह थी कि इस बार कितनी ही विख्यात और सम्भ्रान्त महिलाओंने अपनी प्रतिक्रियात्मक नीति दिखलायी और महिलाओंके मताधिकारका विरोध किया।

इस विरोधसे आन्दोलनने और भी जोर पकड़ा। वैधानिक आन्दोलनसे पद-पदपर जो विफलताओंका सामना करना पड़ रहा था, उससे काफी असन्तोष फैल रहा था और महिलाओंमें यह विश्वास दृढ़ हो गया कि सङ्घर्षके सिवा वैधानिक ढङ्गसे आन्दोलन चलानेमें उन्हें कभी भी सफलता नहीं मिल सकती। ब्रिटिश शासक वर्गकी यह खास आदत है कि जब तक कोई आन्दोलन सङ्घर्षका रूप धारण नहीं कर लेता, तब तक वह उसके महत्त्वको नहीं समझता। अतः एक ओर मिसेस फासेटके नेत्रीत्वमें १८९७ में सङ्गठित नेशनल यूनियनने अपना कार्य जारी रखा, दूसरी ओर पैंकहर्स्टके नेत्रीत्वमें, १९०३ में वीमेन्स सोशल एण्ड पोलिटिकल यूनियन स्थापित हुआ। यद्यपि इस संस्थामें सङ्घर्षकी भावना जोरोंसे काम कर रही थी, पर सरकारके उभाड़नेपर इसे हिंसाका मार्ग अवलम्बन करनेको बाध्य होना पड़ा। सन् १९०६ में मैन्चेस्टरके फ्रीट्रेड हालमें एक सभा हो रही थी, उसमें उक्त संस्थाकी दो सदस्यायें भी शामिल थीं। उन्होंने सर एडवर्ड ग्रेसे पूछा, जो उस सभामें उपस्थित थे, कि स्त्रियोंके मताधिकारके सम्बन्धमें लिबरल सरकारकी क्या भावी नीति होगी। यह सर्वथा उचित प्रश्न था। पर इसका कोई उत्तर नहीं दिया गया। उल्टे दोनों युवतियोंको बाहर निकलवा दिया गया। इसके प्रतिवादमें क्षोभ प्रकट करनेके लिए जब उन्होंने एक सभा की, तो रास्ताबन्दीके जुर्ममें उनको गिरफ्तार करा लिया गया। जुर्माना देनेके बजाय दोनोंने जेल जाना ही ठीक समझा। इस मामलेसे बड़ी सनसनी फैली और कितने ही लोगोंका ध्यान महिला-आन्दोलनकी ओर आकर्षित हुआ। आन्दोलनसे सहानुभूति रखनेवाले कितने ही लोग, यह ख्याल कर कि न्यायका गला घोंटा गया है, सक्रिय कार्यकर्ता बन गये।

इसके बादसे नियमित रूपसे सार्वजनिक प्रदर्शन होने लगे और आन्दोलन और भी आक्रमणात्मक हो गया। महिलाओंने अपने अधिकारोंकी मांग पूरी करानेके लिए कमर कस ली और सरकारको चुनौती दी। मि० वाई० एम० रेजने अपनी पुस्तक 'ह्विदर विमेन' में आन्दोलनके उग्र रूपका वर्णन इस प्रकार किया है :—

उन्होंने सरकारी उपनिर्वाचनोंमें उपद्रव मचाया, मन्त्रिमण्डलके मन्त्रियोंको भाषण नहीं करने दिया। हर तरहकी पोशाकोंमें वे सब जगहोंमें जा उपस्थित होतीं। सभा-भवनमें खिड़कियोंसे कूदकर उन्होंने तरह-तरहके ऊधम और उपद्रव मचाये। बादको तो उन्होंने पार्लमेण्टपर धावा बोल दिया। वे गिरफ्तार की गयीं और उन्हें सजायें दी गयीं। उन्होंने खुशीसे जेल जाना पसन्द किया। इसके बाद ईंट और पत्थरोंकी वर्षा शुरू हुई। उन्होंने दूकानों और सार्वजनिक भवनोंपर आक्रमण किया। उनकी ओरसे यह दलील पेश की गयी कि जब हम अपने मताधिकार पानेके लिए जेल जा रही हैं, तो हमारे शरीरके बदले सरकारी इमारतोंकी खिड़कियां टूटें।

फिर १९१२ में रिफार्म बिलमें महिलाओंके मताधिकारकी कोई व्यवस्था नहीं की गयी। इससे महिला-आन्दोलनकारियोंको हिंसात्मक प्रदर्शन करनेका प्रोत्साहन मिला।

मि० रेजने अपनी पुस्तकमें लिखा है:—उन्होंने लेटर बक्सोंमें तेजाब डालकर चिट्ठियां जलायीं, तार काटे और पिक्चर गैलरियोंमें टंगी तसवीरोंको तोड़ डाला। उन्होंने खाली मकानोंमें आग लगा दी, गोल्फ खेलनेके मैदानको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला और गिर्जा-घरोंपर बम फेंके। लायड जार्जके मकानको भी जलानेकी चेष्टा की गयी।

यूरोपीय महायुद्धके आरम्भ होनेसे इस आक्रमणात्मक आन्दोलनका अकस्मात् अन्त हो गया। तत्काल ही यह अनुभव किया गया कि कुछ ऐसे कामोंके लिए, जिन्हें अब तक पुरुष करते आ रहे थे, महिलाओंकी आवश्यकता है। उन्होंने अपने कामको इस खूबी और योग्यतासे किया कि उनके समानाधिकार पानेकी मांगके विरोधमें जो भावना प्रदर्शित की जाती थी, वह बिलकुल दूर हो गयी। १९१८ में एक रिफार्म बिल, जिसके द्वारा ३० वर्षसे ज्यादा उम्रवाली महिलाओंको वोट देनेका अधिकार मिला था, पेश किया गया और लार्ड कर्जनके विरोध करनेपर भी वह पार्लमेण्ट द्वारा स्वीकृत कर लिया गया। १९२८ में एक और एक्ट पास किया गया, जिसमें उम्रकी कैद ३० वर्षसे कम करके २१ वर्ष कर दी गयी।

यह है इंगलैण्डकी महिलाओंके मताधिकार आन्दोलनका इतिहास। वर्षोंके आन्दोलन और सङ्घर्षके बाद महिलाओंको अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें सफलता मिली। अब भी कुछ ऐसी महिलायें हैं, जिनका कहना है कि स्त्रियां अब भी कई बातोंमें पुरुषोंसे पीछे हैं। कुछ स्त्रियोंका यह कहना है कि केवल थोड़ी-सी महिलायें अपने अधिकारोंसे लाभ उठाती हैं। पार्लमेण्टके गुरुतर और गम्भीर कार्यको संभालनेके लिए उपयुक्त महिलाओंका मिलना बहुत कठिन है। वे अब भी ताश खेलने और सैर-सपाटेमें लगी हुई हैं।

भारतीय महिलाओंको भी अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अधिकारोंको पानेके लिए इंगलैण्डकी अपनी बहनोंकी भांति आन्दोलन करनेकी आवश्यकता है। इसमें सन्देह नहीं कि देशकी महिलाओंमें काफी जागृति है, और उनकी विभिन्न संस्थायें महिला-आन्दोलनको सफलतासे चला रही हैं; पर अब भी वह तीव्रगतिसे आगेकी ओर बढ़ नहीं रहा है। यह आन्दोलन अभी तक शहरों और कस्बों तक ही सीमित है। गांवोंमें रहनेवाली, अपढ़ एवं नाना प्रकारकी सामाजिक कुरीतियोंमें फंसी स्त्रियोंको, इस नव जागृति और नवजीवनके युगमें भी पता नहीं कि उनके क्या-क्या अधिकार हैं। देशके राजनीतिक कार्योंमें वे किस तरह भाग ले सकती हैं। इसलिए हमारी उन बहनोंका, जिन्हें शहरोंमें रहकर उच्च शिक्षा प्राप्त करनेका सुयोग प्राप्त है, यह परम कर्तव्य है कि वे महिला-आन्दोलनको गांवोंमें भी चलायें और वहांकी अपढ़ स्त्रियोंमें शिक्षा-प्रचार कर उनकी जहालत दूर करें। तभी उन्हें इंगलैण्ड तथा अन्य पाश्चात्य देशोंकी महिलाओंकी तरह पुरुषोंके समान अधिकार प्राप्त होगा, और उनमें कितनी ही श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डितकी तरह मन्त्रिणियां होंगी।

———



मां

श्री 'रहबर', बी० ए०

रूपा बूढ़ी हो गयी थी। सिरके बाल रुईके गालोंकी तरह सफेद हो चुके थे। मगर जैसे-जैसे जिन्दगी घट रही थी, जीनेकी लालसा बढ़ रही थी; और बढ़ती भी क्यों न? उसे अपने लल्लूका ब्याह देखना था। ब्याह देखनेकी तो बात ही क्या थी, वह तो चाहती थी कि उसे फूलता-फलता देखे, उसके बच्चोंको गोदमें लेकर खिलाये, लोरी दे, कहानियां सुनाये और वे 'दादी-दादी' करते आगे-पीछे फिरें, चूर-चूरकर रोटी खिलायें। तब कहीं उसे सुखकी मौत प्राप्त हो।

लालचन्दकी उम्र सोलह-सतरह सालकी थी, लेकिन रूपा उसे अब भी नन्हा लल्लू ही समझती थी, जिसे उसका पिता दो बरसका छोड़कर मरा था और जिसे उसने बड़े लाड़-प्यार और परिश्रमसे पाला था। उसका धन, धर्म और संसार सब कुछ वही था। पहले वह बेटी, बहन और पत्नी सब कुछ रही होगी। परन्तु अब वह मां—केवल मां थी। उसकी अभिलाषाओं, उमङ्गों और आकांक्षाओंका मात्र केन्द्र —लल्लू था।

मां-बेटेकी दुनिया प्रेम और प्यारकी दुनिया थी। इस दुनियामें कितने ही दिन, कितने ही महीने और वर्ष गुजर गये, उन्हें किसी बातकी कमी अनुभव न हुई। मांने यद्यपि पतिको खोया था; परन्तु पुत्रको पाकर सब कुछ पा लिया था। वह इसीमें सन्तुष्ट थी। किन्तु लल्लूने तो कुछ नहीं खोया था, उसे तो मां मिली थी और मां उसके पास थी।

मां-बेटा एक-दूसरेमें निहित होकर जीवन व्यतीत कर रहे थे और वे अपने व्यक्तिगत अस्तित्वको भूल-से गये थे।

मगर अब मांके मनमें एक और अभिलाषा सिर उठा रही थी। वह चाहती थी कि लल्लूका ब्याह हो जाय और बहू घर आये, जिसे वह दिखा सके कि उसका लल्लू इतना बड़ा होकर भी मांसे बच्चोंकी तरह प्यार करता है। उसका प्यार दुनियासे निराला और अजेय है।

इस विचारके आते ही उसकी शुष्क धमनियोंमें अपूर्व आनन्दकी लहर दौड़ गयी। उसने गोदमें पड़े लल्लूकी ठोड़ी एक हाथसे पकड़कर उसका मुंह ऊपर उठाया और दूसरा हाथ उसके नरम-नरम बालोंमें फेरते हुए कहा—

"क्यों बेटा लल्लू! अब तो तुम्हारा ब्याह हो जाये?"

"ब्याह!" लल्लूने मांकी छातीपर सिर रखकर कहा।

"हां, ब्याह! फिर तुम्हारी गुड़िया-सी बहू घर आ जायेगी। वह ठुमक-ठुमक अन्दर-बाहर फिरा करेगी, सब काम-धन्धे किया करेगी और मैं बैठी देखा करूंगी।"

"लेकिन अभी नहीं।" लल्लूने अन्यमनस्कतासे कहा।

"अच्छा, फिर तुम्हीं बताओ, कब लाओगे?"

"जब तुम मर जाओगी, मां!"

इस वाक्यमें लल्लूके दिलकी सादगी और सरलता भरी थी। क्योंकि वह मांके रहते ब्याह आदि किसी बातकी जरूरत महसूस न करता था। लेकिन मरनेका नाम सुनकर बूढ़ी मांके दिलको ठेस लगी और उसने दीन स्वरमें कहा—"न बेटा, अशुभ नहीं बोला करते।" यह कहकर उसने निःश्वास छोड़ा और फिर बोली—"मेरे मर जानेपर उस परायी बेटीको क्या सूने घरमें लाओगे? मेरे रहते आयेगी, तो और कुछ नहीं तो सासको देख लेगी।"

"सासको देख लेगी, तो क्या वह मोटी हो जायेगी?" लल्लूने हंसकर कहा।

"मोटी तो क्या होना है बेटा? कह तो दिया करेगी कि मेरी सास बड़ी अच्छी थी।"

अब लल्लूको शरारत सूझी और उसने भौंहें सिकोड़कर कहा—"और यह न कहेगी कि मेरी सास बहुत बुरी थी।"

"हट, पागल कहींका! आदमी बुरा हो, तभी दूसरा बुरा कहता है। कोई वैसे ही थोड़े कह देता है।" इसपर मांने अपने समस्त स्नेह और ममताको आंखोंमें इकट्ठा किया और फिर पूछा, "अच्छा तुम्हीं बताओ, क्या मैं बुरी हूं?"

लल्लूने मांकी आंखोंमें देखा। वह मन ही मनमें प्रसन्नतासे झूम उठा। अकथनीय प्रेम और निःस्वार्थ त्यागके दो स्रोत थे, जिनमेंसे निकलती अमृतकी धारायें उसके मन

और मस्तिष्कको सिक्त कर रही थीं। उसे मांपर गर्व हुआ; परन्तु उत्तरमें कहा—"हां, मैं तो कहता हूं बुरी—लाख बुरी!"

"एं! झूठा कहींका।" मांने उसे अपनी निर्बल बांहोंमें जकड़ते हुए कहा।

(२)

आखिर वह दिन भी आ गया, जब लल्लू दुलहा बना और दुलहन ब्याह कर घर लाया।

बूढ़ी मांका कदम जमीनपर न पड़ता था। जिस प्रकार चांद निकलते ही समुद्रके पानीमें ज्वार-भाटा उठने लगता है, नयी-नवेली, चमेली-सी बहूका मुखड़ा देखकर उसका मन बल्लियों उछलने लगा। उसके भविष्य—सपनों और आशाओंपर निर्भर भविष्यने अकस्मात् यथार्थ रूप धारण कर लिया और प्रकाशसे जगमगा उठा। फिर यह प्रकाश आंखोंको चौंधिया देनेवाला बिजलीका तीव्र प्रकाश न था, बल्कि पूर्णिमाके चांदकी मधुर, मीठी और ठण्डी चांदनी थी, जो कवि-सुलभ हृदयमें कोमल और सुन्दर विचार उत्पन्न करती है।

रूपाने समझा कि उसने मञ्जिलको पा लिया। जिस पेड़को इतने परिश्रम और कठिनतासे पाला था, वह आज फल लाया। दुःखोंका युग बीत गया, अबसे सुखोंका आरम्भ होगा। उसे हर रोजके धन्धोंसे छुट्टी मिलेगी। चौका-चूल्हा, झाड़ू-बहारू सब बहू किया करेगी और वह—वह तो राज-रानी बनकर पड़ोसिनोंमें बैठेगी, अपने लल्लूके प्रेम और बहूकी सेवा-शुश्रूषाका बखान किया करेगी, और पड़ोसिनोंके मुखसे उनके बेटों और बहुओंकी शिकायतें और चुगलियां सुन-सुनकर गर्वसे फूल जायेगी।

ये सब बातें पहले ही से उसके दिमागमें बैठीं—एक उपन्यासकारके प्लाटकी भांति—मीठी चुटकियां ले रही थीं।

वह बार-बार लल्लूके मुंहकी ओर देखती और देखती ही जाती थी। आज वह कितना सुन्दर, कितना भला और कितना प्यारा मालूम देता था। गुलाबका पुष्प वर्षामें धुलकर पहलेसे कहीं अधिक मनोहर, अधिक विकसित और अधिक आकर्षक हो गया था। उसे देखते ही रहो—तबीयत ही नहीं भरती—उसका देखना आंखोंको आनन्दित करता है………।

मांकी प्रसन्नतामें लल्लू भी प्रसन्न था। लेकिन ब्याहसे जवानीमें जिन उमङ्गोंका आभास होता है, वे उमङ्गें लल्लूके मनमें अभी उत्पन्न ही न हुई थीं। उसने विवाह किया था, तो अपनी इच्छासे नहीं, मांके बार-बार कहनेपर। जो प्रसन्नता और भावनायें ब्याहको ब्याह बनाती हैं, वे उसमें कहां थीं? उसने जबसे होश संभाला, मांका प्यार देखा था और वह प्यार इतना था कि किसी औरको भागी बनाये बिना ही उसके समस्त मनका स्वामी बना बैठा था। उसने किसी दूसरे प्यारको अन्दर आने ही न दिया था। इसलिए लल्लूके मनमें मात्र एक प्यारके लिए स्थान था। और इसपर मांका प्यार चौकड़ी मारे, गर्दन उठाये सगर्व बैठा था।

(३)

एक साल बीत गया।

लालचन्द खाना खाकर अन्दरसे निकला था और दुकान जा रहा था। मांने उसे पाससे गुजरते देखा, तो बोली—"बेटा, जरा बैठ जाओ, दस मिनट सुसता लो। अभी तो रोटी खायी है। इतनी क्या जल्दी है? चले जाना………।"

"जल्दी क्यों नहीं? दुकानपर गाहक खड़े होंगे, मैं न जाऊं, तो उन्हें कौन निपटायेगा? अगर इस तरह देर करने लगूं, तो सब कुछ चौपट हो जाये।"

"बेटा लल्लू! तुम तो इतने रूखे कभी न थे। क्या तुम्हें मांसे प्यार नहीं रहा?"

"भला मां! इसमें प्यार बे-प्यारकी कौन-सी बात है? दुकानपर न जाऊं, तो काम कैसे चले?"

"अच्छा बेटा!" रूपाने एक लम्बी सांस ली और कहा—"तुम्हारी खुशी, मेरा क्या जोर चलता है?"

"फिर वह जोर चलता है। सच है, बूढ़े और बच्चे बराबर होते हैं। जरा भी अक्ल नहीं रहती।"

वृद्ध और सब कुछ सुन लें; परन्तु अपनी अक्लकी निन्दा वे नहीं सुन सकते। और किसीको भले ही सन्देह हो, उन्हें अपनी बुद्धिमत्तापर पूर्ण विश्वास होता है। 'अक्ल नहीं रहती' लल्लूकी यह बात रूपाको भी चुभ गयी और वह तुनककर बोली :—

"अच्छा लल्लू! ज्यादा जबान न चलाओ। अक्ल नहीं रही! अक्ल करती ही क्या है? उम्र खाये बैठी हूं, जो थोड़ा-बहुत और जीना है, वह बिना अक्लके ही जी लूंगी। तू अक्लवाला बना रह। मैंने तो बिना अक्लके ही तुझे पाल-पोसकर इतना बड़ा कर दिया।" यह कहते-कहते उसकी सांस फूल गयी और झुर्रियों-भरा चेहरा क्रोधसे तमतमा उठा।

"अच्छा रहने दे, लगी ताने देने। न करती इतना बड़ा, कोई तुझे कहने गया था।"

इतना कहकर लल्लू बाहर निकल गया। मांने हसरत-भरी निगाहोंसे उसे जाते देखा और आंचलसे आंसू पोंछ लिये।

बहू भी रसोई छोड़कर बाहर निकल आयी थी और खड़ी-खड़ी सब कुछ सुन रही थी।

वृद्धाके आंसू देखकर उसका मन सहानुभूतिसे भर आया। लल्लूका मांसे यह शुष्क व्यवहार उसे अच्छा नहीं लगा और वह उसके पास आकर बड़े ही विनीत भावसे बोली :—

"मांजी, तुम उन्हें क्यों छेड़ा करती हो? वह तो किसीकी सुनते ही नहीं।"

"मैं उसे लाख छेड़ूंगी, तुम्हें इससे मतलब? वह मेरा बेटा है और मैं उसकी मां। वह मेरे साथ लड़े-झगड़े, मैं उसे लाख झिड़कूं, लाख कोसूं। तुम कौन होती हो बीचमें बोलनेवाली?" रूपाने गरजकर कहा।

"मांजी, तुम तो हरएकसे लड़ी पड़ती हो। मैंने तो साधारण बात की, तुम उलटे लड़ने लगीं। हमसे तो लड़ा नहीं जाता।"

"तुमसे क्यों लड़ा जाने लगा! पहले पतिको सिखाकर भेजा, वह गया तो खुद आ धमकी। फिर कहती है—हमसे तो लड़ा नहीं जाता। हां, बहूरानी! तुम क्यों लड़ो? तुम्हारे लिए वह जो लड़ लेता है।"

"मेरे लिए क्यों लड़ने लगे? तुम खुद लड़ती हो, तो वे भी बोल पड़ते हैं······।"

"तो बस, मैं ही लड़ाकी हुई। कोई सुने, तो सच ही जाने। यह तो सारा मुहल्ला जानता है कि इतनी उम्र गयी, कभी किसीसे बोली तक नहीं; मां-बेटेमें कभी मन-मुटाव न हुआ। तूने आते ही उसपर न जाने क्या जादू कर दिया?"

"मैं कोई जादूगरनी हूं?······"

"जादूगरनी न होती, तो मेरा लल्लू ऐसा न था कि मांको इतनी जल्दी भूल जाता। उसका तो मां-मां करते गला सूखता था। कहनेपर भी पाससे उठकर न जाता था।"

"मैं उन्हें कहीं उठाकर थोड़े ही ले गयी हूं? अब भी पास बिठाये रखो, डिब्बेमें बन्द कर लो, कहीं मत जाने दो।"

यह कहकर अगर बहू अन्दर न चली जाती, तो इस महाभारतका अन्त न होता। रूपाके पास जवाब तैयार रखा था।

प्रकृतिका नियम है कि ब्याहके बाद लड़के मां-बापसे नहीं, पत्नी और बच्चोंसे प्रेम करने लगते हैं। मगर मोह-माया-के बसमें पड़े हुए मां-बाप यही चाहते हैं कि उनके जवान और विवाहित लड़के उन्हें पहलेकी भांति प्यार करते रहें। इसलिए रूपा भी लल्लूकी शुष्कताका कारण बहूको समझती थी और बात-बातपर उससे उलझ पड़ती थी।

× × ×

एक दिन इन दोनोंमें अच्छी खासी झपट हो गयी। बहू बचकर निकल जाना चाहती थी। मगर रूपाको यह बात पसन्द न थी। उसके तीर हमेशा खाली जाते थे; आज वह निशाना लगाना चाहती थी। झल्लायी हुई बिल्लीकी तरह वह उसपर झपट पड़ी। बहूके पास बेलन था। आत्म-रक्षाके विचारसे उसने हाथ झटक दिया। बेलन रूपाकी कनपटीमें लगा और लोहू निकल आया। वृद्धाका सारा जोश ठण्डा पड़ गया और वह हाय-हाय करती जमीनपर बैठ गयी।

(४)

रूपाने उस दिन कुछ नहीं खाया, मुंह बनाये बैठी रही।

लल्लू रातको देरसे घर आया। रूपाको आशा थी कि वह मनायेगा, अनुनय-विनय करेगा। तभी वह खाना खायेगी। नहीं तो भूखी बैठी रहेगी।

लल्लू उसके पास आया जरूर; परन्तु उस रङ्गमें नहीं, जिस रङ्गमें रूपाने सोचा था। उसने आते ही कहा—चल मां, रोटी खा ले।

मां सोच न सकी कि वह रोटी खानेको पूछता है अथवा रोटी खानेका आदेश करता है। उसे पहले मांसे सहानुभूति

प्रकट करनी चाहिए थी। यदि वह इतना पूछ लेता—मां, तुम्हें कहां चोट लगी है? दर्द तो नहीं होता? क्या बात थी?—मांकी ममता सन्तुष्ट हो जाती और वह उठकर रोटी खा लेती। लेकिन यह क्या आते ही कह दिया—मां, रोटी खा ले। इससे तो न पूछना ही अच्छा था।

रूपाका हृदय सन्न-सा हो गया और वह रुंधे कण्ठसे बोली :—

"मुझे तो भूख नहीं है, बेटा!"

"भूख कहां गयी?"

"लगी ही नहीं।"

"सुबहसे कुछ नहीं खाया, रात हो गयी; फिर भी भूख क्यों नहीं लगी?"

"उसीसे पूछ लो—क्यों नहीं लगी।"

"उससे क्या पूछूं? भूख तुम्हें लगती है न कि उसे?"

"अच्छा बेटा, मुझे जब लगेगी, मैं आप खा लूंगी।"

"फिर खा क्यों नहीं लेती? बे-फायदा पाखण्ड रचानेसे क्या हासिल?"

"मैं पाखण्ड रचाती हूं! मार-मारकर अधमुई कर दिया, फिर भी तुम पाखण्ड बताते हो।"

बूढ़ी मांने हिचकियां भरते हुए कहा। उसने सोचा था कि मांका रोना सुनकर बेटेका मन पसीजेगा। मगर लल्लू था कि अपनी बातपर दृढ़ रहा :—

"पाखण्ड नहीं, तो और क्या है? पहले लड़ती हो, फिर डराती हो। यहां यह मुफ्तकी अकड़ नहीं सहते।"

"अच्छा बेटा, न सहना। मेरा ही दुखड़ा है न? वह अब खतम हो जायेगा। तुम्हारा मुंह देखकर जीती थी। जब तुम्हें ही अच्छी नहीं लगती, तो अब जीकर क्या करूंगी? ऐसे ही पड़ी-पड़ी मर जाऊंगी; तुम दोनों जीव अपने सुखी रहना। जीकर मुझे और क्या करना है?" उसके स्वरमें वेदना थी।

"अच्छा, अब तो उठकर रोटी खाओ।"

"बस बेटा, अब मैं न खाऊंगी।"

"क्यों न खाओगी? मुझसे यह रोज-रोजका झगड़ा नहीं देखा जाता। आज उठकर रोटी खाओ, कलसे बेरीवाले घरमें रहा करना। न बांस रहेगा, न बंसरी बजेगी।"

रूपाने पहले रोकर, फिर मरनेका नाम लेकर बेटेके दिलमें दर्द पैदा करनेकी कोशिश की। उसके सुप्त प्रेमको फूंकोंसे जगाना चाहा! परन्तु उसका प्रेम सोया न था, बुझा न था। उसपर फूंकें मारना और फूस डालना व्यर्थ था। उसके हृदयमें प्रेम पहलेकी तरह उपस्थित था। उसपर केवल किसी औरका अधिकार हो चुका था। मां उसमेंसे हिस्सा नहीं बंटा सकती थी। क्योंकि यह केवल एक ही दिशामें बहना जानता था। भिन्न-भिन्न धाराओंमें बंट जाना उसने नहीं सीखा था।

रूपा गमके बहावमें बही जाती थी। वह चाहती थी कि बेटा पकड़कर निकाले, किसी प्रकार सहारा दे; किन्तु उसे एक ही स्थानपर निश्चल खड़े देखकर स्वयं बांह आगे बढ़ायी—"क्या कहा? बेरीवाले घरमें जाकर रहूं! लोग क्या कहेंगे कि बेटेने मांको घरसे निकालकर अलग कर दिया!"

"लोग कहेंगे तो कहते रहें। किसीके कहने-सुननेकी मुझे कुछ परवा नहीं। जब घरमें झगड़ा रहे, तो सब कुछ सुनना पड़ता है।"

"बसते घरोंमें ऐसा हो ही जाता है। मेरा क्या है, मैं तो वहां पड़ी रहूंगी। पर तुम्हारी नाक कट जायेगी, कहीं मुंह दिखानेके योग्य न रहोगे।"

"मेरी नाकको कुछ चिन्ता न करो। यह ऐसी मोमकी बनी हुई नहीं कि उलटे उस्तरेसे भी कट जाये। अलग रहनेकी बात है, तो अलग ही रहूंगा।"

प्रेमकी अन्तिम अपील भी खाली गयी।

(९)

बेरीवाला घर दूसरे मुहल्लेमें था। पुराने ढङ्गका मकान था। दो बड़े-बड़े कमरे और बीचमें एक बड़ा आंगन था। आंगनके मध्यमें बेरीका एक वृक्ष था। इसी कारणसे इसका नाम बेरीवाला घर पड़ गया था। पहले इसमें जानवर बंधते थे। लेकिन जबसे रूपाका पति मरा था, यह बिलकुल खाली पड़ा था।

अब दो महीनेसे रूपा स्वयं इस मकानमें रहती थी। उसके यहां आनेपर लोगोंमें कानाफूसी होती रही। किसीने लालचन्दको बुरा कहा, तो किसीने रूपाको विषकी गांठ बताया। लेकिन अलग होना और अलग रहना जमानेका दस्तूर है। कुछ दिनोंमें बात दब गयी।

एक कमरेमें रूपाकी चारपाई पड़ी थी, उसके पास दो-तीन बर्तन पड़े थे, जिनपर उसके मनकी भांति मैल चढ़ गया था। दुकानका नौकर दो वक्तका भोजन उनमें डाल जाता था। कभी-कभी बहू स्वयं भी आ जाती थी। कई दफा त्योहार और पूजाके समय घर चलनेको भी कह चुकी थी, मगर रूपा नहीं गयी थी। लल्लूकी निठुरता उसे सदैव दुखी बनाये रखती थी। वह बहूको बेटेका प्यार न दिखा सकी, पड़ोसिनोंमें बैठकर अपने सौभाग्यको न सराह सकी। मनकी हसरत मनमें रह गयी—उपन्यासकारका प्लाट, प्लाट ही रहा—उपन्यास न बन सका!

चैत्रका महीना, बेरीपर बेर लगे थे।

प्रातःकालकी सफेदी फूट रही थी। रूपा कमरेमें बैठी बेटेके व्यवहारपर कुढ़ रही थी। वह प्रतिदिन उसके आनेकी आशा बांधती थी और उसके न आनेपर झुंझलाती थी। एक उसे ही देखकर वह जीती थी। जवानीमें वह विधवा हुई। उसके लिए संसार अन्धकारमय हो गया। परन्तु पुत्र-स्नेह उसकी आत्माको प्रकाश देता था। लेकिन अब जब कि वह प्रकाश भी न रहा, वह अन्धकारमें भटकने लगी। वैधव्यका सारा जीवन भयावह रूप धारण करके सामने आ गया। उसने लल्लूके लिए जो दुःख, तकलीफ, कठिनाइयां सहन की थीं, वे सब अखरने लगीं। यह सोचती थी, वह पैदा ही क्यों हुआ, उसके स्तनोंका दूध क्यों न सूख गया, ताकि उसके न होनेसे यह होनीका दुःख तो न होता……।

उसी समय हवा चली। आंगनमें दो-चार बार टप-टप हुई। रूपाने यह आवाज सुनी और सोचा, बेर गिरते हैं—पके हुए बेर!

वह उठकर बाहर आयी। दिन साफ निकल आया था। मुहल्लेके कुछ बालक बेरीके नीचे बेर चुन रहे थे। जब नीचेके बेर खत्म हो गये, तो उन्होंने ऊपर झांका और टहनियां पकड़-पकड़कर हिलाने लगे।

"बेटा, पक्के-पक्के तोड़ना, कच्चे मत गिराना।"

रूपाने यह शब्द समाप्त ही किये थे कि उम्री दाई अन्दर आयी। उसके मुखपर असाधारण प्रसन्नता और आंखोंमें सुख-सन्देश था। उसने रूपाको देखते ही कहा—"रूपा माई! बधाई, बधाई!"

"क्योंरी उम्री, क्या खबर लायी?" रूपाने बड़ी उत्सुकतासे पूछा।

"अरी, पोता हुआ है पोता! ला, मिठाई खिला।"

"पोता!"

"हां, चल दिखाऊं।"

बहूके लाख कहनेपर भी रूपाने कभी जाना स्वीकार न किया था। जिस घरसे उसे इस प्रकार निकाला गया हो, वह वहां क्यों जाये? मगर आज न जाने किसलिए तत्काल तैयार हो गयी और उम्रीके कन्धेपर हाथ रखकर चली। उम्रीने चलते-चलते कहा :—

"बच्चा क्या है, मक्खनका खिलौना है। गोरा चट्टा, गोल-गोल चेहरा, चपटी नाक। बिलकुल तुझको पड़ा है।"

"मुझको?"

"हां।"

इस 'हां' में न जाने कौन-सा जादू भरा था। रूपाका मन हर्षसे नाचने लगा। गमका बादल फट गया। इन्द्र-धनुषका सुन्दर दृश्य आंखोंके सामने फिर गया। वह चाहती थी कि उसे दौड़कर छू ले। उसकी निर्बल और कांपती हुई टांगोंमें क्या जाने कहांकी शक्ति आ गयी कि वह उम्रीको तनिक ठेलकर बोली :—जल्दी चल!



होमटास्क

श्रीमती राजेश्वरी सिंनहा, बी० ए०

मेरा बच्चा जबसे स्कूल पढ़ने जाने लगा है, तबसे, मैं देखती हूं, उसके स्वभावमें अजीब तरहका परिवर्तन आ गया है। पहले वह बड़ा खुशदिल रहता था। कभी छुस्त न बैठता, सारा दिन खेलता-कूदता रहता। कभी मुझे तङ्ग करता, कभी अपने पिताको चिढ़ाता; और उसके इस तरहके ऊधम मचानेसे भी हम दोनोंको आनन्द मिलता। सारा घर हरा-भरा रहता। पर स्कूल जानेके बादसे उसमें वह प्रसन्नता और खुशदिली न रही। उसका वह बाल-सुलभ नटखटपन न रहा। उसका मिजाज चिड़चिड़ा हो गया है। बात-बातपर वह बिगड़ जाता है। खेलने-कूदनेमें भी उसकी रुचि कम हो गयी है। उसकी यह हालत देखकर मुझे बड़ी फिक्र हो गयी है। उसके स्कूल जानेपर मैं बड़ी उत्सुकतासे उसके आनेकी प्रतीक्षा करती हूं कि अब वह आयेगा और मुसकराते हुए मेरी गोदमें चढ़नेके लिए मचलेगा; पर वह आते ही झल्लाने लगता है। जो नौकर उसे स्कूलसे लिवा लानेके लिए जाता है, उससे रास्ते-भर लड़ता-झगड़ता आता है। आते ही जल्दी-जल्दी मुंह-हाथ धोकर कुछ जलपान करता है और फिर किताबें और कापियां ले होमटास्क करने बैठ जाता है। मैं देखती हूं, होमटास्क करनेकी उसकी इच्छा नहीं रहती; पर मजबूरन् स्कूलके मास्टर साहबके डरसे वह जैसे-तैसे पूरा करता है। अगर बीचमें मैं कभी कुछ खानेके लिए या और किसी कामके लिए प्यारसे पुकारती हूं, तो वह बड़े जोरसे झल्ला उठता है और भौंहें चढ़ाकर कहता है—जा, मैं नहीं आऊंगा, हिसाब लगा रहा हूं। उस वक्त मैं अपने मनमें कहती हूं, अच्छा होता, मेरा लड़का स्कूल न जाता और अगर जाय भी, तो उसके ऊपर होमटास्कका बोझ न लादा जाय। क्योंकि होमटास्कसे ही वह इतना चिड़चिड़ा हो गया है और बात-बातपर झल्ला उठता है।

मैं समझती हूं, मेरे मनमें जो भाव उठ रहे हैं, मुमकिन है, वे ही भाव मेरी उन बहनोंके मनमें भी उठते होंगे, जिनके बच्चे स्कूल पढ़ने जाते होंगे। और मेरी ही तरह वे सब भी यह सोचती होंगी कि स्कूलके अध्यापक बच्चोंको होमटास्क देना क्यों नहीं बन्द कर देते। मैं सच कहती हूं, अगर मेरा बस चले, तो एक घण्टेके अन्दर स्कूलोंमें होमटास्क देनेकी प्रथा बन्द करवा दूं। अगर ऐसा नहीं होता, तो हम सब माताओंको इसका जोरदार प्रतिवाद करना चाहिए। पर मैं जानती हूं कि किसी भी माता-पिता या अभिभावक-को इस प्रथाके खिलाफ आवाज उठानेका साहस न होगा; क्योंकि वे डरते हैं कि अगर लड़केको घरपर करनेके लिए कुछ काम न दिया जायगा, तो वह परीक्षामें पास न हो सकेगा या पास भी होगा, तो अच्छे नम्बर नहीं लायेगा। कुछ लोगोंको इस बातका भी डर रहता है कि होमटास्कके बिना उनके बच्चोंकी वास्तविक शिक्षा हो ही नहीं सकती और वे उन विषयोंको सीख नहीं सकेंगे, जिनकी आवश्य-कता उन्हें अपने जीवन और स्कूलमें पड़ती है। इसी श्रेणीके कुछ अभिभावकोंका कहना है कि होमटास्कसे ही बच्चेको उद्यमशीलता और स्वतन्त्र अध्ययनकी आदत पड़ती है। खेलकूद, सिनेमा, नाटक, रेडियो आदि मन-लुभावने विषयों-की ओरसे मुंह मोड़कर, घरपर करनेके लिए दिये गये काममें मन लगा, जिसकी जिम्मेवारी उसपर रहती है, वह अनु-शासन पालन करना सीखता है। कुछ माता-पिताओंका कहना है कि होमटास्कसे उनका सम्पर्क स्कूलसे बना रहता है। अपने बच्चोंको होमटास्क करनेमें मदद दे, वे अपनेको स्कूलके अध्यापकोंका सहायक और सहयोगी समझते हैं।

होमटास्कके समर्थनमें ऊपर जो बातें कही गयी हैं, उनमें कुछ तो ऐसी हैं, जिनसे होमटास्ककी उपयोगिता सिद्ध हो सकती है। पर शेष ऐसी हैं, जिन्हें होमटास्कके विरोधमें मजेमें पेश किया जा सकता है।

सबसे पहला सवाल होमटास्ककी आवश्यकताका है। अगर लड़के घरपर दिये गये कामको पूरा नहीं करते हैं, तो क्या वे परीक्षामें पास हो सकते हैं या वे स्कूली शिक्षाके सभी महत्त्वपूर्ण अङ्गोंको प्राप्त कर सकेंगे? इस प्रश्नका उत्तर स्कूलकी शिक्षा-प्रणाली और उसके स्टाफकी योग्यता-पर निर्भर करता है। यदि स्कूलमें बच्चोंको वे ही काम

करनेको दिये जाते हैं, जिन्हें वे कर सकते हैं, यदि उन्हें व्यर्थ, अनुपयोगी और ऊल-जलूल बातोंको सीखनेके लिए दिमाग लड़ाना नहीं पड़ता, यदि पढ़ाईके समय उनकी देख-रेखके लिए पूरी व्यवस्था हो, ताकि वे ध्यानसे अपना सबक पढ़ें, इधर-उधर अपने मनको न दौड़ायें, तो स्कूलके साधारण पाठ्य विषयोंकी पढ़ाईके लिए होमटास्क देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। पर जब बच्चोंको ऐसा काम दिया जाय, जिसे करनेमें वे असमर्थ हों, या इतना अधिक काम दिया जाय कि वे पूरा भी न कर पायें, उन्हें इतने विषयोंको हृदयङ्गम करनेको कहा जाय, जो उनके लिए बिना किसी महत्त्व और मतलबके हों, जब एक बच्चेका समय दूसरोंकी पाठ-आवृत्ति सुननेमें नष्ट हो, जिसे वह अच्छी तरह पढ़े और समझे हुए हो, तो स्कूलकी पढ़ाईकी गति इतनी मन्द और दुःखदायी होती है कि उसे पूरा करनेके लिए होमटास्क देना आवश्यक हो जाता है।

दूसरा सवाल होमटास्ककी उपयोगिताके सम्बन्धमें उठ सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि थोड़े-से ऐसे सम्पन्न और सुखी परिवार हैं, जहां उनके बच्चोंकी पढ़ाईके लिए अलग शान्तिमय कमरेकी व्यवस्था रहती है, जहां रेडियोकी चिल्लाहट उन्हें बाधा नहीं पहुंचाती, रोशनीका ऐसा प्रबन्ध रहता है कि उनकी आंखें खराब नहीं होने पातीं, जहां अलमारियोंमें उनकी ज्ञानवृद्धिके लिए विभिन्न विषयोंकी पुस्तकें रखी रहती हैं, जहां समझदार और धैर्यशील माता-पिता सुबह-शाम एक-डेढ़ घण्टा बच्चोंकी पढ़ाईकी देख-रेखमें लगाते हैं और उन्हें ऐसी सहायता देते हैं, जो उनके लिए वास्तवमें आवश्यक और लाभप्रद होती है। ऐसी दशामें होमटास्ककी कुछ उपयोगिता हो सकती है। पर कितने घरोंमें बच्चोंकी पढ़ाईके लिए ऐसी व्यवस्था है ?

हम इस बातपर जोर दे सकते हैं कि स्कूलके अध्यापक कुशल एवं धैर्यवान् हों। यह उनके पेशेका एक आवश्यक अङ्ग है। हम इस बातपर भी जोर दे सकते हैं कि उन्हें बाल-मनोविज्ञानका पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और अध्ययन-कलामें उन्हें पूर्ण दक्ष होना चाहिए। पर हमें यह आशा नहीं करनी चाहिए कि बालकोंके माता-पिता सुशिक्षित एवं सुयोग्य अध्यापक हो सकते हैं। हम इस बातपर जोर दे सकते हैं कि स्कूल हवादार हो और उसमें काफी प्रकाश आना चाहिए। बेञ्चें और डेस्कें इस साइज और आकारकी हों कि बच्चोंको बैठनेमें असुविधा न हो। पढ़ाईके समय स्कूलका वातावरण इतना शान्त हो, जिससे बच्चोंके काम करनेमें बाधा न पहुंचे। पर क्या हम अपने अधिकांश घरोंमें उपर्युक्त बातोंकी व्यवस्था कर सकते हैं ? यदि आवश्यक हो, तो सम्भवतः हम अपने घरोंको इस स्थितिमें लानेके लिए आन्दोलन कर सकते हैं; पर अगर होमटास्क आवश्यक न हो, तो फिर घरको एक छोटा-मोटा स्कूल बनानेकी क्या जरूरत है ?

वर्तमान परिस्थितिमें बहुत कम ऐसे परिवार हैं, जहां बच्चोंके पढ़नेके लिए अलग कमरे नियत हैं। अधिकांश घरोंकी हालत ऐसी रहती है कि वहां पढ़ाई हो ही नहीं सकती। लड़के पढ़नेमें लीन हैं, अकस्मात् छोटा बच्चा मांका दूध पीनेके लिए रो उठता है, या थका-मांदा पिता बाहरसे आता है और जोर-जोरसे चिल्लाकर पानी मांगता है। उसका चिल्लाना सुनकर अपढ़ एवं शिक्षाके नियमोंसे सर्वथा अनभिज्ञ गृहिणी गिलास या लोटेमें पानी ले बड़बड़ाती हुई आती है और जल्दबाजीमें रास्तेमें किसी चीजसे ठेस लगती है और लोटा हाथसे छूट जाता है। लड़केका ध्यान बंट जाता है और वह पढ़ाई छोड़कर देखने लगता है कि बात क्या है। ऐसी हालतमें वह घरपर क्या पढ़ सकता है, और होमटास्कसे उसे क्या लाभ पहुंच सकता है ?

कभी-कभी माता-पिता शिक्षा-विषयक जानकारी न रहनेके कारण भी बच्चोंकी पढ़ाईमें बहुत मदद पहुंचाते हैं। एक दिन एक लेखक महोदय मुझसे मिले। बच्चेकी पढ़ाईके सम्बन्धमें बातचीत चलनेपर आपने कहा कि श्यामू पढ़नेमें कुछ कच्चा है। मैंने उसके अध्यापकसे उसे हर रोज कुछ होमटास्क देनेके लिए कहा है। और मैं घरपर बराबर इस बातकी ताकीद रखता हूं कि श्यामू अपना काम रोज पूरा कर ले। पर अब उसका अध्यापक कहता है कि वह जो निबन्ध घरपरसे लिखकर ले आता है, वह ठीक नहीं होता। उसे फिर क्लासमें लिखना पड़ता है। इसका साफ मतलब यह है कि मैं लेखक होकर भी निबन्ध लिखना नहीं जानता। हर सप्ताह मेरे लेख भिन्न-भिन्न पत्रोंमें प्रकाशित होते हैं। और मैं जो निबन्ध श्यामूको लिखाता हूं, वह अध्यापककी दृष्टिमें ठीक नहीं होता। मैं निबन्धका एक-एक शब्द बोलकर

लिखाता हूं। श्यामूके अध्यापकका कहना है कि श्यामू ऐसा सही और विचारपूर्ण निबन्ध लिखकर ले आता है कि उसमें कहीं एक भी गलती नहीं रहती। पर स्कूलमें उसकी गलतियोंकी भरमार रहती है; एक लाइन भी मुश्किलसे सही लिख पाता है। इसलिए मैं समझ जाता हूं कि वह घरपर दूसरेसे लिखवाकर निबन्ध ले आता है। ऐसा करनेसे तो उसकी कमजोरी दूर नहीं हो सकती और मालूम नहीं हो सकता कि उसकी त्रुटि कहां है। इसलिए स्कूलमें फिर उससे दुबारा लेख लिखवाया जाता है और जहां उसकी गलती होती है, उसे बतलाया जाता है। इस तरह होमटास्कसे घर और स्कूलके बीच घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित होनेके बजाय, दोनोंमें गहरा अन्तर पड़ सकता है। बहुत-से ऐसे अति उत्साही पिता होते हैं, जो अपने बच्चोंको घरपर घण्टों पढ़ाते हैं और स्कूलसे दिये हुए होमटास्क उनसे कराते नहीं, बल्कि खुद कर देते हैं। उनकी पढ़ाईका तरीका स्कूलके तरीकेसे भिन्न होता है और लड़के उसकी आलोचना करते हैं। मगर वे उनकी कुछ नहीं सुनते और अपनी ही धुनमें चले जाते हैं; क्योंकि उन्हें किसी-न-किसी तरह अपने बच्चोंको 'पास' कराना होता है। वे उल्टे स्कूलकी पढ़ाईमें ही दोष निकालते हैं और बच्चोंको बात-बातपर डांटते हैं। अगर लड़का पढ़नेमें कमजोर है या वह इम्तहानमें पास नहीं होता है, तो पिता समझता है कि इसके लिए वही जिम्मेवार है। इसका गुस्सा वह घरपर उस अभागे बच्चेको डांट-डपटकर और स्कूलमें अध्यापकों या स्कूलकी शिक्षा-पद्धतिको कोसकर उतारता है।

लड़के जब मन्दबुद्धिके कारण विषयको समझ नहीं पाते अथवा जब उनकी ग्रहण-शक्ति इतनी विकसित नहीं हुई रहती कि वे पढ़ाये जानेवाले विषयको अच्छी तरह हृदयङ्गम कर सकें, अथवा जब अध्यापक ही इतना अयोग्य होता है कि वह लड़कोंको पाठ्य-विषय अच्छी तरह समझा नहीं सकता, तब स्कूलके निर्धारित समयमें क्लासका काम पूरा नहीं होता और बाकी कामको घरपर पूरा करनेके लिए दिया जाता है।

कभी-कभी स्कूलसे इतना ज्यादा काम दे दिया जाता है कि उसे पूरा करना लड़केके लिए कठिन हो जाता है। किसी ऐसे स्कूलमें, जहां इस बातकी पूरी देख-रेख रखी जाती है कि पढ़ाईके समय लड़कोंको बहुत ज्यादा काम न दिया जाय, अगर कभी ऐसा हो जाता है, तो मालूम हो जानेपर अध्यापक उसमें आवश्यक सुधार कर देता है। पर जब घरपर काम करनेको दिया जाता है तथा होशियार लड़का अपने पिता या भाईकी सहायतासे, अधिक काम होनेपर भी बड़े अच्छे ढङ्गसे पूरा करके ले आता है, तब अध्यापक इस बातपर कुछ न ख्यालकर कि काम ज्यादा था, दूसरे लड़कोंको सुस्त और निकम्मा कहकर डांटता है। मिडिल और हाई स्कूलोंमें, जहां लड़कोंको भिन्न-भिन्न विषय भिन्न-भिन्न अध्यापकोंसे पढ़ने पड़ते हैं, और भी शोचनीय अवस्था होती है। वहां हरएक अध्यापकके लिए यह जानना कठिन होता है कि दूसरे अध्यापकने लड़कोंको अपने विषयका कितना काम दिया है। अक्सर ऐसा होता है कि अध्यापकोंमें, ज्यादासे ज्यादा होमटास्क देनेके लिए होड़-सी रहती है। इस तरहकी प्रथा प्रायः सभी स्कूलोंमें प्रचलित है; पर शायद ही कोई स्कूल इसकी उपयोगिताके समर्थनमें समुचित दलील पेश कर सके। अच्छे स्कूलमें इस प्रणालीको प्रोत्साहन नहीं दिया जाता।

होमटास्क न केवल अनावश्यक और अनुपयोगी है, बल्कि घरपर करनेके लिए अत्यधिक कामका बोझ लाद देनेसे बालकोंकी प्रतिभा नष्ट होनेका भी खतरा रहता है। इसके अतिरिक्त होमटास्कसे और भी कितनी ही हानियां होती हैं।

लड़कोंको स्कूलमें अपनी आंखोंसे बहुत ज्यादा काम लेना पड़ता है। फिर क्या यह ठीक है कि वे घरपर भी कृत्रिम रोशनीमें अपनी आंखें खराब करें? यद्यपि हमारे सामने इसके लिए कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है, फिर भी इस विषयमें हमें जितनी जानकारी है, उससे कहा जा सकता है कि इसीलिए स्कूलके छात्रोंकी आंखें छोटी उम्रमें ही खराब हो जाती हैं। इस बातको सभी स्वीकार करते हैं कि बालकोंके लिए शारीरिक व्यायाम और खुली हवामें खेलना-कूदना अत्यन्त आवश्यक है। हम लोग अपने बच्चोंको, उनके शारीरिक विकासके अधिकांश समयमें, स्कूलकी चहारदीवारीके अन्दर बन्द रखते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनके शरीरकी समुचित वृद्धि रुक जाती है और वे दुबले-पतले और कमजोर हो जाते हैं। इसलिए स्कूलसे आनेके बाद उन्हें इस कमीकी पूर्तिके लिए किसी पार्क या मैदानमें खेलने-

कूदने देना चाहिए। अक्सर शामको ही उन्हें स्कूलका होमटास्क करना पड़ता है, जिसका मतलब होता है बिजली, लालटेन या और किसी कृत्रिम प्रकाशमें आंखें खराब करना। क्या किसी और निर्दोष आमोद-प्रमोदमें बच्चोंके सन्ध्या समयका उपयोग नहीं किया जा सकता?

हमारे घरोंमें पारिवारिक जीवनका एक खास स्थान है। होमटास्क बालकोंको पारिवारिक जीवनके आनन्दसे वञ्चित रखता है। शामको घरभरके लोग भोजन करनेके बाद इकट्ठे होते हैं, आपसमें किस्से कहानियां कहते और सुनते हैं। तरह-तरहके इनडोर खेलों द्वारा अपना दिलबहलाव करते हैं। पर घरके जिस लड़केको होमटास्क मिला रहता है, वह एक कोनेमें उसे लिये बैठा रहता है और घरके दूसरे बच्चोंको आमोद-प्रमोद करते देख अपनी बदकिस्मतीपर खीजता और होमटास्क देनेवाले अध्यापकपर मन ही मन कुढ़ता है। यदि उसे होमटास्क न दिया जाय, तो वह भी इस पारिवारिक जीवनका सुख ले सकता है।

इस तरह होमटास्कसे बच्चेका मिजाज चिड़चिड़ा हो जाता है। उसे झूठ बोलनेकी लत पड़ जाती है। जब वह खेल-कूदमें फंसे रहनेके कारण या किसी और वजहसे, होमटास्क नहीं कर पाता, तो वह तरह-तरहके झूठ बोलकर या कितने ही बहानेकर अध्यापककी डांट-फटकारसे अपनी रक्षा करता है। कभी-कभी वह जल्दीमें किसी दूसरे लड़केके होमटास्कके हलकी नकल कर लेता है, और उसे अपना किया हुआ बताकर बड़े कौशलसे बेञ्चपर खड़े होने तथा कान पकड़कर उठने-बैठनेके दण्डसे अपनेको बचा लेता है। इस तरह उसे चोरी करनेकी भी आदत पड़ जाती है।

इस तरह होमटास्कसे अनेक बुराइयां हैं, जिनसे बालकोंके शारीरिक और मानसिक विकासमें बड़ी बाधा पहुंचती है। स्कूलकी शिक्षा समाप्त करनेपर वे जीवनमें कुछ भी सफलतापूर्वक नहीं कर पाते। पर मेरे कहनेका आशय यह नहीं कि होमटास्कमें जब इतनी बुराइयां हैं, तो उसे देनेसे क्या लाभ? मेरा मतलब यह है कि बालकोंके अभिभावक और अध्यापक मिलकर होमटास्क देनेकी वर्तमान दूषित प्रणालीमें ऐसा सुधार करें कि बच्चे घरपर दिये गये कामको आसानीसे कर सकें और साथ ही उनके शारीरिक और मानसिक विकासमें कोई रुकावट न पड़े और न वे पारिवारिक जीवनके आनन्दसे ही वञ्चित रहें।

गीत

पलभर न हुआ जीवन प्यारा!

पूजाके मन्दिरमें झांका,
अर्चनकी चाहोंको आंका,
जगने अपराधिनि ठहराया,
आजीवन खुल न सकी कारा!
पलभर न हुआ जीवन प्यारा!

मधुके घट रक्खे दूर-दूर,
जब छूना चाहा हुए चूर,
जग अन्तरालसे पिला सका,
मुझको केवल विषकी धारा!
पलभर न हुआ जीवन प्यारा!

—सुमित्राकुमारी सिनहा।



हालैण्डकी रानी विलहेलमिना

श्री बाबूरामजी मिश्र

पचास वर्ष पहलेकी घटना है, हालैण्डके नगर एम्सटरडममें राजप्रासादके छज्जेपर दस वर्षकी एक बालिका खड़ी हुई थी। बालिकाके पास ही उसकी माता भी थी। बालिकाने अपनी मातासे सटते हुए हाथ पकड़कर नीचेकी ओर देखा और लोगोंकी एक बड़ी भीड़को हर्षध्वनि करते देखकर कौतूहलसे पूछा—"ये सब आदमी क्या मेरे हैं?"

बालिकाके पिता राजा विलियम (तृतीय) की मृत्यु उस समय हो चुकी थी। बालिकाकी माताने कुछ उदास होकर उत्तर दिया—"नहीं, बेटी, अब तुम इन सबकी हो।"

वही बालिका आज सारे संसारमें हालैण्डकी रानी विलहेलमिनाके नामसे अपनी राजनीतिज्ञता, सुशासन और साहसपूर्ण कार्योंके लिए विख्यात है। हालैण्डके निवासी ६० वर्षकी अपनी इस रानीको 'देश-माता' कहकर आदर देते हैं।

हालैण्डका क्षेत्रफल १५७७१ वर्गमील और जन-संख्या ७९३५५६९ है। लगभग दो तिहाई भाग समुद्रसे लगा हुआ है। अधिक धरातल समुद्रकी सतहसे नीचा है। जगह-जगह बांध बने हुए हैं और नहरे हैं, जिनके द्वारा आवश्यकता होनेपर देशको जलप्लावित किया जा सकता है और शत्रुके लिए सारा देश दुर्गम बनाया जा सकता है। हालैण्डके साम्राज्यका क्षेत्रफल ७९०००० वर्गमील और जनसंख्या ६०९९४८९० है। किसी समय हालैण्डकी शक्ति बहुत बढ़ी-चढ़ी थी और यूरोपके प्रमुख राष्ट्रोंमें इसकी गणना की जाती थी। आज भी हालैण्डके व्यापारिक जहाज संसारके सब हिस्सोंमें आते-जाते हैं।



हालैण्डकी रानी विलहेलमिना

हालैण्डमें वंश-परम्परागत वैधानिक राजतन्त्र-प्रणाली है। पार्लमेण्ट है और मन्त्रिमण्डल भी है; परन्तु ये रानीके समक्ष उत्तरदायी हैं। अन्तिम जिम्मेदारी रानीकी ही है। एक बार एक फ्रान्सीसी राजनीतिज्ञने कहा था कि "यूरोपमें एकमात्र राजसत्ता हालैण्डमें है।" हालैण्डकी रानीको यूरोपके कितने ही नरेशोंकी अपेक्षा अधिक अधिकार हैं। वे किसी भी प्रस्तावको बिलकुल अस्वीकृत कर सकती हैं, पार्लमेण्टको भङ्ग कर सकती हैं, चौदह मेम्बरोंकी स्टेट कौन्सिल बना सकती हैं, जिससे प्रत्येक कानूनके मसविदेपर सलाह ली ही जानी चाहिए। इतना व्यापक अधिकार रखनेपर भी हालैण्डकी रानीने अपने विशेष अधिकारसे काम लेकर कभी कोई प्रस्ताव अस्वीकृत नहीं किया और ४० वर्षसे अधिकके शासनमें केवल दो ही बार ऐसा अवसर आया कि पार्लमेण्टको भङ्ग कर देना पड़ा। रानी जो कुछ चाहती हैं, उसे पार्लमेण्टके नेताओंको बतला देती हैं और वे उसे पूरी तरह पालन करते हैं। रानीके मन्त्रिमण्डलमें सुयोग्य व्यक्ति हैं। सुयोग्य व्यक्तियोंको चुननेकी प्रतिभा रानी विलहेलमिनामें खास तौरसे पायी जाती है।

रानी विलहेलमिनाको बचपनमें इस बातका बड़ा चाव था कि वे समग्र हालैण्डकी रानी हैं। पुलिस कर्मचारियों और स्टेशन-मास्टरोंको हुक्म देना उन्हें बड़ा अच्छा लगता था। उनसे जब कोई राजसी तरीका छोड़कर निजी तौरसे सफर करनेको कहता, तब वे इनकार कर देतीं और जब कोई अवसर मिलता, यह कहे बिना नहीं रहती थीं कि वे हालैण्ड-

की रानी हैं ! रानी विलहेलमिनाको इस प्रवृत्तिको दूर करनेका उपाय उनकी माताने खोज निकाला। उन्हें इस बातकी छुट्टी दे दी गयी कि वे मखमली वस्त्रों और रत्नजटित भूषणोंसे अपनेको, जितना चाहें, सजायें और जब तक चाहें, राजमहलके चारों ओर परेड किया करें। इसका परिणाम बड़ा अच्छा हुआ। कहानियों-जैसी राजकुमारी बनकर फिरनेसे वे थोड़े ही दिनोंमें ऊब गयीं और उसके बाद फिर उन्होंने कपड़ों और रत्नोंकी कभी परवा नहीं की। आज तो उनका पहनावा बहुत ही सादा है। वे साधारण प्रजाजनोंकी भांति बड़ी सादगीसे रहती हैं। किसी समय वे घोड़ेपर बाहर घूमने जाया करती थीं; पर आज तो हेगकी सड़कोंपर उन्हें साइकिलपर देखा जा सकता है। कभी-कभी वे राजमहलकी खिड़कीके सामने मशीनसे कपड़ोंकी सिलाई करती हुई भी दिखलाई पड़ती हैं। सादगीके साथ ही उनमें एक और भी गुण है। वे साधारणतः जिन कामोंको स्वयं कर सकती हैं, उनके लिए किसी दूसरेको कष्ट नहीं देना चाहतीं। एक बारकी बात है, वे बाइसिकिलपर बाहरसे लौटकर आयी थीं। राजमहलका सन्तरी उन्हें उतरता देखकर सहायता पहुंचानेके लिए आगे बढ़ा; परन्तु रानीने हाथके इशारेसे उसे रोक दिया। इसके बाद उन्होंने स्वयं अपनी साइकिल उठायी और उसे रेकमें लगाकर भीतर चली गयीं।

रानी विलहेलमिनाको बचपनमें अपनी माताके कड़े अनुशासनमें रहना पड़ा था। उन्हें किसीके साथ खेलने नहीं दिया जाता था और बहुत-सा समय पढ़ने-लिखनेमें लगाना पड़ता था। एक बड़े हालमें एक लम्बी कतारमें कुर्सियां रख दी जातीं और प्रत्येक कुर्सीका नाम हालैण्डके किसी बड़े आदमीके नामपर रख दिया जाता। रानी विलहेलमिनाको, जब वे बालिका ही थीं, जबानी यादकर यह बतलाना पड़ता था कि किस कुर्सीपर कौन-सा नाम है। सोलह वर्षकी आयुमें उन्होंने जर्मन, फ्रेञ्च और अंगरेजीसे अभिज्ञता प्राप्त कर ली। इसके बाद उन्होंने नौ-सेना और नौ-युद्ध-सम्बन्धी ज्ञान अपने जनरलों और एडमिरलोंसे प्राप्त किया। उनकी अर्थशास्त्र सम्बन्धी शिक्षा इतनी व्यवहारिक हुई कि लगभग ६० लाख डालर आयकी अपनी ज़मीनका प्रबन्ध वे स्वयं ही करती हैं और देशका शासन-प्रबन्ध करनेमें वे इतनी चुस्त हैं कि किसी महत्त्वपूर्ण कागजपर उस समय तक अपनी राजकुमारी जुलियानाको हस्ताक्षर नहीं करने देतीं, जब तक राजकुमारी यह न साबित कर दें कि कागजके प्रत्येक शब्दका अभिप्राय वे अच्छी तरह समझती हैं।

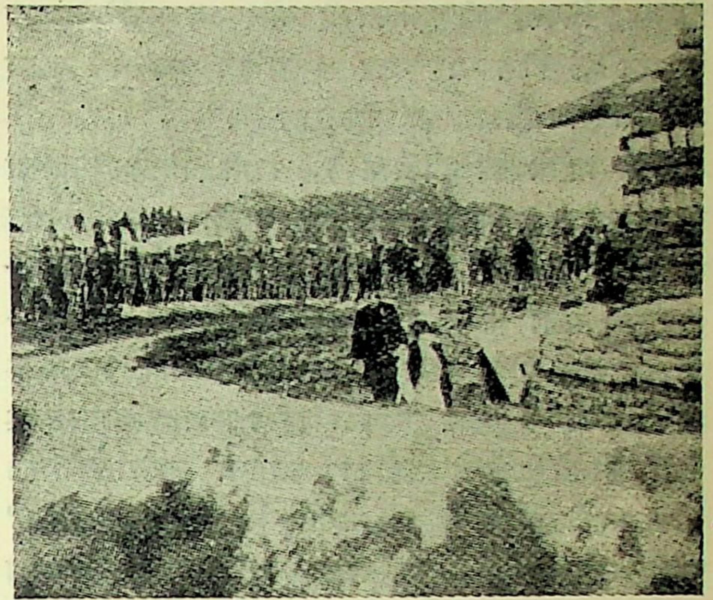
तेरह वर्षकी उम्रमें रानी विलहेलमिना महारानी विक्टोरियासे मिलने इंगलैण्ड गयी थीं। वहां महारानीने उनका खूब स्वागत किया। बीन आदि कई तरहके बाजे सुनकर रानी विलहेलमिना बहुत प्रसन्न हुईं। उन्होंने वहां राजप्रासादके रस्म-रिवाजों और समारोहोंको भी देखा। इन सब बातोंका रानी विलहेलमिनापर बड़ा प्रभाव पड़ा। जब लौटकर हालैण्ड गयीं, उन्होंने बालकोंके सहज भावसे अपनी मातासे प्रश्न किया—"मां, अपना काम अच्छी तरह करनेसे मैं भी महारानी विक्टोरियाकी तरह महान् हो जाऊंगी।"

रानी विलहेलमिना बड़े सवेरे उठती हैं और ८॥ बजे तक प्रातःकालके सभी आवश्यक कामोंसे छुट्टी पाकर जलपान करने बैठती हैं। जलपान बहुत ही साधारण होता है। उसमें रोटी और पनीरके अलावा काफी भी रहती है। जलपानके बाद डाक सामने आती है। सारी चिट्ठियोंको वे स्वयं छांटती और खोलती हैं। कुछ चिट्ठियोंका उत्तर देनेके लिए वे अपने सेक्रेटरीको हिदायत कर देती हैं और कुछके उत्तर वे स्वयं लिखती हैं। इसके बाद मुलाकातोंका सिलसिला आरम्भ होता है और मन्त्री एवं अन्य प्रमुख नागरिक मिलते हैं। रानी विलहेलमिना एक मेजके सामने कुर्सीपर बैठी होती हैं। उनकी ठोड़ी एक हाथकी हथेलीपर सधी रहती है और उनके दूसरे हाथमें पेन्सिल होती है। बड़े-बड़े मेधावी और वीर पुरुष भी रानी विलहेलमिनासे बातचीत करते समय उसी तरह घबराये हुए-से हो जाते हैं, जैसे परीक्षाके समय स्कूलके छात्र। इसका कारण है और वह है रानी विलहेलमिनाका अगाध ज्ञान और अध्ययन। साधारण विषयोंको भी विवरणके साथ अध्ययन करनेका उन्हें पूरा शौक है। हालैण्डका साम्राज्य प्रशान्त महासागरके दक्षिणी भागके टापुओं तक फैला हुआ है; परन्तु इन सब भागोंका रानी विलहेलमिनाको आश्चर्यजनक ज्ञान है। उनकी स्मृति बड़ी अच्छी है। कितनी ही बार किसी मन्त्रीका कोई प्रस्ताव सुनकर उन्हें यह कहते हुए सुना गया है—"पिछले साल आपने जो रिपोर्ट पेश की थी, उससे

आपके इस कथनका मेल नहीं है। क्यों ?" कई बार प्रधान मन्त्री तकको उनके पाससे यह सुनकर लौट आना पड़ता है—"क्या आप यह नहीं सोचते कि आपका इस विषयमें कुछ ज्यादा अध्ययन कर मेरे सामने आना ज्यादा अच्छा होता!" रानी विलहेलमिना अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं-को बड़ी अच्छी तरह समझती हैं। कई साल हुए, एक अमेरिकन सिनेटर उनसे मिलने गया था। बातचीत होनेपर नीग्रो लोगोंकी समस्याकी चर्चा चल पड़ी। रानी विलहेलमिनाने इस बातचीतके समय नीग्रो लोगोंकी समस्याके सम्बन्धमें आश्चर्यजनक जानकारीका परिचय दिया और अमेरिकन सिनेटरको अपनी जानकारीपर लज्जित होना पड़ा। रानी विलहेलमिनाने यह सब ज्ञान अपने व्यापक अध्ययनसे प्राप्त किया है। इसके सिवाय उन्हें जिन विशेषज्ञोंसे मिलनेका अवसर मिलता है, उनसे भी प्रश्नोत्तर कर वे हमेशा ही अपनी जानकारी बढ़ाती रहती हैं।

रानी विलहेलमिनामें असाधारण साहस है। राज्या-धिकार ग्रहण करते ही उन्होंने अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताकी खातिर मन्त्रियों द्वारा भाषण तैयार किये जानेकी प्रथाको बिलकुल ही उठा दिया और पहली बार ही जब बोलनेका अव-सर आया, उन्होंने अपना भाषण स्वयं तैयार किया। १९०० ईस्वीकी घटना है। उस समय उनकी वय केवल २० वर्षकी थी। अंगरेजोंने दक्षिण अफ्रीकामें बोअरोंके नेता पाल क्रूगर-को विवश कर दिया था। उस समय ब्रिटेनका बड़ा दबदबा था और यूरोपके बड़े-बड़े राष्ट्र उससे कांपते और झुकते थे। परन्तु रानी विलहेलमिनाको रत्ती-भर भी भय नहीं था। पाल क्रूगर डच थे, इसलिए रानी विलहेलमिनाकी आज्ञासे हालैण्डका एक जङ्गी जहाज दक्षिण अफ्रीकाके लिए रवाना हुआ और पाल क्रूगरको वहांसे लेकर हालैण्ड लौट आया। ब्रिटिश सरकारने इसपर आपत्ति की; परन्तु रानी विलहेल-मिनाने जो उत्तर दिया, उससे महारानी विक्टोरियाने इस विषयको आगे न बढ़ाना ही ठीक समझा।

इसी तरहकी एक अन्य घटना १९१८ में हुई और रानी विलहेलमिनाने बतलाया कि वे क्या हैं। जर्मनीके कैसर विलियमने राज्य त्याग कर हालैण्डमें शरण ली थी। ब्रिटेन-के तत्कालीन प्रधान मन्त्री मि० लायड जार्ज यह चाहते थे कि हालैण्डकी रानी जर्मनीके कैसरको दे दें, जिससे उनपर



रानी विलहेलमिना सैनिकोंके एक मोर्चेपर खाइयोंका निरीक्षण कर रही हैं।

मामला चलाया जा सके। रानी विलहेलमिनाको जब यह मालूम हुआ, उन्होंने इस विचारकी मूर्खता दिखलाते हुए जबानी ही कहला दिया कि वैसा करना कैसी गलती होगी। रानीके इस साहससे उस समय ब्रिटिश सरकार स्तम्भित रह गयी थी और बादमें युद्धका बुखार उतरनेपर तो मि० लायड जार्जने भी उस दृढ़ताके लिए रानी विलहेलमिनाको धन्यवाद ही दिया होगा। इसी तरह वर्सेलीजकी सन्धिके समय जब रानी विलहेलमिनाको मालूम हुआ कि मित्र-राष्ट्र हालैण्डके कुछ भाग बेल्जियमको दे डालना चाहते हैं, तब उन्होंने उसका घोर विरोध किया और प्रस्तावित अञ्चलोंका दौरा कर प्रजाजनोंको मित्र-राष्ट्रोंके निश्चयके विरुद्ध अपना कर्तव्य पालन करनेके लिए तैयार किया। मित्र-राष्ट्र रानी विलहेलमिनाके सङ्कल्प और उनकी दृढ़तासे पहलेसे ही परिचित थे, अतः अन्तमें उन्होंने विवेकपूर्वक अपना वह विचार छोड़ देनेका ही निश्चय किया।

ऐसा ही एक अन्य अवसर उस समय उपस्थित हुआ, जब कई साल पहले राजकुमारी जुलियानाका विवाह प्रिन्स बर्न हार्डके साथ हुआ। प्रिन्स बर्न हार्ड जर्मन हैं और हर हिटलर यह चाहते थे कि शादीके अवसरपर जर्मनीका स्वस्तिक झण्डा फहराया जाय। रानी विलहेलमिनाने इस सम्बन्धमें हर हिटलरको टका-सा जवाब देते हुए लिखा था

कि "यह विवाह मेरी पुत्रीका है और उस व्यक्तिके साथ हो रहा है, जिसे वह प्यार करती है। यह हालैण्डका जर्मनीके साथ विवाह नहीं हो रहा है।"

कई महीने पहलेकी बात है, रानी विलहेलमिनाको मालूम हुआ कि जर्मनी हालैण्डपर हमला करनेकी तैयारी कर रहा है। उन्होंने तुरन्त ही हर हिटलरको लिखा—"नहरोंसे पानी खोलकर लगभग तिहाई भू-भागको जल-प्लावित कर दिया जायगा और इस बातकी परवाह न की जायगी कि इसका कितना मूल्य चुकाना होगा और वैसा होनेसे कितने कष्टोंका सामना करना होगा। बेल्जियमकी सेनायें भी मेरी मददके लिए पहुंच जायेंगी।" रानी विलहेलमिनाका पत्र पाकर उस समय हर हिटलरने हालैण्डपर हमला करनेका विचार स्थगित तो कर दिया; परन्तु उसे सर्वथा छोड़ नहीं दिया। इसीलिए गत १० मईको जब जर्मनीने पूर्व सूचना दिये बिना ही हालैण्डपर आक्रमण कर दिया, रानी विलहेलमिनाने भी जर्मनीके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी और अपने प्रजाजनोंसे कहा कि "हालैण्ड युद्ध-कालमें पूर्ण सावधानीके साथ लगातार ही तटस्थ रहा है; परन्तु जर्मनीने कोई चेतावनी दिये बिना अचानक ही आक्रमण कर दिया। मेरी सरकार अपना कर्तव्य पालन करेगी।" जर्मनीके विरुद्ध हालैण्डकी इस युद्ध-घोषणाका अर्थ क्या है, इसका अनुमान आसानीसे किया जा सकता है। रानी विलहेलमिनाने जर्मनीके विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर अपने साहससे निश्चय ही सारे संसारको चकित कर दिया है।

बीस वर्षकी उम्रमें १९०१ ईस्वीमें रानी विलहेलमिनाका विवाह मेकलेनबर्गके प्रिन्स हेनरीसे हुआ। प्रिन्स हेनरी जर्मन थे, इसलिए गत महासमरमें जर्मनीके साथ उनकी सहानुभूति होना स्वाभाविक ही था। रानी विलहेलमिना-को यह अभीष्ट नहीं था और वे हालैण्डको तटस्थ ही रखना चाहती थीं। एक ओर पतिकी इच्छाका प्रश्न था और दूसरी ओर था देशके लाभका प्रश्न। रानी विलहेलमिनाने देशके प्रति अपना कर्तव्य पूरा किया और अपने पति प्रिन्स-को पुलिसकी निगरानीमें रख दिया। कर्तव्य मनुष्यको कभी-कभी बड़ा कठोर कर्म करनेके लिए विवश कर देता है।

रानी विलहेलमिना कभी शराब नहीं पीतीं। उन्हें अपने साधारण प्रजाजनोंकी तरह रहना पसन्द है। राज-कुमारी जुलियानाको उन्होंने सार्वजनिक स्कूलोंमें पढ़ाया है। स्कूलमें राजकुमारी जुलियानाको प्रायः सभी विषयोंमें अच्छे नम्बर मिला करते थे। रानी विलहेलमिना इन नम्बरोंको हमेशा ही सन्देहकी दृष्टिसे देखा करती थीं। उनका खयाल था कि योग्यता नहीं होनेपर भी राजकुमारी होनेके कारण ये नम्बर दे दिये जाते हैं। इसीलिए जब राजकुमारी जुलियाना कालेजमें पढ़ने गयीं, तो उन्होंने विश्वविद्यालयके अधिकारियोंको लिखकर यह सूचित कर दिया कि राजकुमारीके साथ साधारण छात्रों और छात्राओं-जैसा ही व्यवहार किया जाय, राजकुमारी होनेके कारण उसके साथ किसी तरहका विशेष व्यवहार न किया जाय। रानी विलहेलमिनाको अपनी मर्यादाका भी बड़ा खयाल है और रहन-सहन, वेश-भूषा और खान-पान, जो कुछ हालैण्डका है, वही उन्हें प्रिय है। जर्मन प्रिन्स बर्न हार्डके साथ विवाह हो जानेके बाद जब राजकुमारी जुलियाना रीवियरामें उल्लास कर रही थीं, रानी विलहेलमिनाको यह मालूम हुआ कि वे रात्रि-क्लबोंमें नाचती, रविवारको सार्वजनिक रूपमें मद्य पीती, फ्रान्सीसी तर्जका गाउन पह-नती और नहानेकी पोशाक पहननेका दुःसाहस करती हैं। इसपर उन्होंने नव-दम्पतिको तुरन्त ही लौट आनेकी आज्ञा दी और सबसे अलग एक महलमें उनके रहनेकी व्यवस्था कर दी। एक बारकी बात है, राजप्रासादमें आने-जानेवाली एक महिला पेरिस फैशनकी बढ़िया पोशाक पहनकर गयी। रानी विलहेलमिनाकी दृष्टि ज्यों ही उसपर पड़ी, उन्होंने रौबके साथ पूछा—"यह हैट कहांसे मंगाया?" महिलाने सकपकाकर उत्तर दिया—"पेरिससे।" रानी विलहेलमिनाने कहा—"यहां डच पहनावा पहना जाता है।"

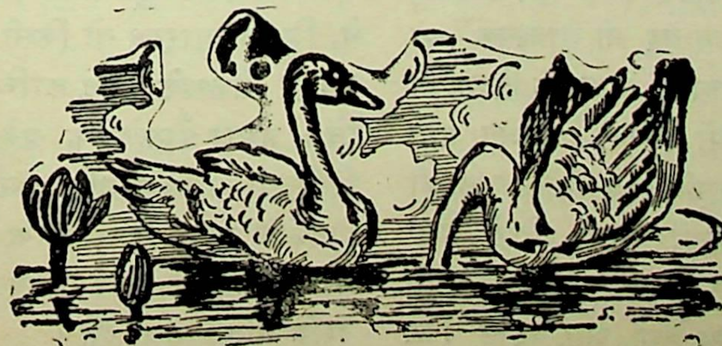
गत महासमरके बाद एक ऐसी घटना हुई, जिससे रानी विलहेलमिनाकी राजनीतिक दूरदर्शिताका पता चलता है और मालूम होता है कि वे समयकी प्रगतिको पहचाननेमें कितनी कुशल हैं। गत महासमरमें ब्रिटेनने जर्मनीके चारों ओर जो घेरा डाला था, उसका शिकार हालैण्डको भी होना पड़ा था। इससे वहां जनताको बड़े कष्टोंका सामना करना पड़ा था। देशमें गरीबी फैल गयी थी और पेटकी ज्वालासे हालैण्डवासी दुःखी हो रहे थे। इस गरीबी और पेटकी ज्वालाने समाजवादको जन्म दिया और राजतन्त्र-

विरोधी प्रबल हो गये। समाजवादी नेताने सरकारको इस्तीफा देनेके लिए चुनौती दी और क्रान्तिके लिए एक दिन निश्चित कर दिया गया। रानी विलहेलमिना इस दिन भी गिरजेमें गयीं। मन्त्रियोंके साथ मिलकर उन्होंने ईश्वरसे प्रार्थना की कि वह मार्ग-प्रदर्शन करे, सुमार्गपर चलाये। इसी समय किसीने हालैण्डका राष्ट्रीय गीत आरम्भ कर दिया। यह गीत आरम्भ हुआ ही था कि सारा जन-समूह उसे गाने लगा। रानी विलहेलमिना भी उसे खूब जोरसे चिल्लाकर गा रही थीं। इस राष्ट्रीय गीतके साथ जो प्रदर्शन आरम्भ हुआ, उससे सारा वातावरण ही बदल गया और जो क्रान्ति उसी दिन होनेवाली थी, वह नहीं हुई।

क्रान्ति नहीं हुई; परन्तु रानी विलहेलमिनाने यह अनुभव किया कि समयका क्या तकाजा है। उसी दिन सन्ध्याको उन्होंने एक घोषणा प्रकाशित की कि "जनतामें जैसी जागृति है, उसके अनुरूप शीघ्रताके साथ सामाजिक सुधारोंको कार्यान्वित किया जायगा।" यह घोषणा केवल घोषणा नहीं थी, रानी विलहेलमिनाने जो वचन दिया था, उसे पूरा किया है। हालैण्डमें समाजका नये रूपमें सङ्गठन कमसे कम हल्ले-गुल्लेसे ज्यादासे ज्यादा हुआ है। कामके घण्टे, मजदूरी, बुढ़ापेका बीमा, बेकारी आदि आधुनिक प्रश्नोंको वहां बड़ी खूबीसे हल कर लिया गया है।

इधर यूरोपमें जबसे युद्ध आरम्भ हुआ, रानी विलहेल-मिनाकी चर्या थोड़ी बदल गयी है। वे वैसे भी कार्य-व्यस्त रहा करती थीं, युद्धारम्भसे इधर तो उनका कार्य और भी ज्यादा बढ़ गया है। अपने महलसे बाहर निकलनेका अवसर उन्हें बहुत कम मिलने लगा। यह अवसर जब उन्हें मिल जाता, तो वे सीमान्तके सैनिक पड़ावोंमें जातीं और यह देखतीं कि किसीको कोई कष्ट तो नहीं है। सेनामें रानी विलहेलमिना इतनी लोकप्रिय हैं कि सैनिक उन्हें देखते ही 'देशमाता' 'देशमाता' कहकर आनन्दसे उछल पड़ते हैं।

गत १० मईको जर्मनोंने हालैण्डपर जो आक्रमण किया, उसकी निन्दा सारे संसारने की है। वर्तमान महासमरमें हालैण्डने यत्नपूर्वक तटस्थ रहनेका प्रयत्न किया था; परन्तु हिटलरने उसपर भी आक्रमण कर दिया। रानी विल-हेलमिनाका इरादा हालैण्ड छोड़नेका नहीं था; परन्तु जर्मनीकी कोशिश यह थी कि उन्हें किसी तरह पकड़ लिया जाय। मन्त्रियोंको समय रहते इसका भेद मालूम हो गया और उन्होंने रानीसे हालैण्ड छोड़ देनेका अनुरोध किया। रानी विलहेलमिनाने यह अनुभव किया कि हालैण्डमें रहकर स्वतन्त्रतापूर्वक युद्ध-सञ्चालन करना सम्भव नहीं है, इसीलिए अपनी सरकारके साथ वे लन्दन चली गयीं। जिस समय ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं, हालैण्डकी सरकार लन्दनमें है। रानी विलहेलमिनाने अपने प्रजाजनोंको आश्वा-सन दिलाया है कि "ईश्वरकी सहायतासे हम अवश्य जीतेंगे।" हालैण्डके इस सङ्कटमें संसारके सभी स्वतन्त्रता-प्रेमियोंकी सहानुभूति हालैण्डके साथ है और हमें विश्वास रखना चाहिए कि अन्तमें सत्य और न्यायकी विजय होगी और हालैण्ड घने बादलोंको चीरकर निकले हुए चन्द्रमाकी भांति फिर चमकेगा।



नाजीवादके जर्मन शत्रु

श्री फ्रिट्ज मैक्स काहेन

[फ्रिट्ज मैक्स काहेन एक सुप्रसिद्ध जर्मन राजनीतिज्ञ हैं। आजकल आप अमेरिकामें हैं। जेकोस्लोवाकियाको भी हिटलरने जब हड़प लिया, तो आपको अमेरिका भागना पड़ा। कई वर्षों तक नाजीवादके मूलोच्छेदनके लिए आपने जर्मनीके अन्दर गुप्त समितियोंमें एक जिम्मेदार पदाधिकारीकी हैसियतसे काम किया है। आपने अभी हालमें अंगरेजीमें एक पुस्तक लिखी है, जिसमें नाजी-विरोधी गुप्त समितियोंकी कार्यवाहियोंपर पूर्ण रूपसे प्रकाश डाला गया है। उसी पुस्तकसे प्रस्तुत लेख उद्धृत किया गया है।—अनु०]

उन दिनों मैं जेकोस्लोवाकियामें भागकर चला आया था। किन्तु मेरे मित्र इस बातको बखूबी समझते थे कि मैं अपना सारा समय केवल सिनेमाके मनोरञ्जक प्लाट लिखनेमें नहीं व्यतीत कर सकता। मैंने भी नाजी-विरोधी प्रचारके लिए नये साधन शीघ्र ही ढूंढ़ लिये। कुछ ही सप्ताहोंके अन्दर कई विश्वासपात्र 'लेटर बाक्स' हमने ठीक कर लिये और उनके जरिये जर्मनीके अन्दरसे हर तरहके महत्त्वपूर्ण समाचारोंका नियमित रूपसे आदान-प्रदान होने लगा।

'लेटर बाक्स' गुप्त अन्तरङ्ग समितियोंका विशेष शब्द है। इसका प्रयोग ऐसे व्यक्तियोंके लिए किया जाता है, जिनके द्वारा हम गैरकानूनी कागजात तथा सन्देश अपने भिन्न-भिन्न अड्डोंके लिए भेजा करते हैं।

जर्मनीके भीतर इन लेटर बाक्सोंके जरिये पहला सन्देश भेजा गया कि 'युद्ध छिड़नेके पहले ही हमें हिटलरकी जड़ उखाड़ देनी चाहिए।' जर्मनीके भिन्न-भिन्न शहरोंमें मकानोंकी दीवालोंपर खड़ियामिट्टीसे ये वाक्य लिखे हुए हर कहीं नजर आये। इस उद्बोधनके साथ यह भी आवश्यक था कि जर्मनीकी आम जनताको बतलाया जाय कि हिटलरकी सत्ताका मूलोच्छेदन करना क्यों जरूरी है। अतः प्रति सप्ताह मैं संक्षेपमें अन्तर्राष्ट्रीय जगत्की राजनीतिक हालतकी रिपोर्ट लिखता और उसमें कहीं-कहीं अपनी ओरसे मौजूं टिप्पणी भी रख देता। अपने 'लेटर बाक्सों' की मददसे मैं नियमित रूपसे इन्हें केन्द्रपर भेज देता और वहांसे फिर प्रत्येक जिलेमें इनका वितरण हो जाता। मेरा सन्देश काफी अधिक संख्यामें लोगोंके पास पहुंच जाया करता था, फिर भी मैंने महसूस किया कि इस प्रकारकी खबर जिस तरीकेसे लोगोंके पास पहुंच रही है, वह कुछ विशेष प्रभावोत्पादक नहीं—अतः मैंने निश्चय किया कि जर्मनीके अन्दर हिटलरका विरोध करनेवाले जितने भिन्न-भिन्न दल हैं, उन सबका एक संयुक्त मोर्चा हिटलरके खिलाफ कायम किया जाना चाहिए और इस संयुक्त मोर्चेको एक सुसङ्गठित रूप भी देना आवश्यक होगा।

इस स्कीमके अनुसार हम लोगोंने इसी आशयकी एक अपील सन् १९३६ में भिन्न-भिन्न दलोंसे की। अप्रैल १९३७ में इस संयुक्त मोर्चेकी पहली बैठक जेकोस्लोवाकियामें हुई और संयुक्त मोर्चेके नामसे काम करनेके लिए मुझे पूरे अधिकार प्रदान किये गये।

जर्मन गेस्टैप्पोकी सतर्क आंखोंसे बचाकर गैरकानूनी पर्चेका बांटना निस्सन्देह खतरेसे खाली न था; किन्तु हमारा काम बराबर जारी रहा। नित्य ही पर्चे बांटनेके लिए हम नयी-नयी तरकीबें निकालते। प्रायः व्यावसायिक विज्ञापनोंकी आड़में हम अपना मतलब हासिल कर लेते। उदाहरणके लिए हम किसी रेडियो पैम्फलेटके पहले पृष्ठको तो ज्योंका त्यों रहने देते; किन्तु दूसरे पृष्ठपर हम शुरू करते :—

"किन्तु दुनियाके सबसे उम्दा लाउडस्पीकर डाक्टर गोबेल्स हैं। हां, इनमें थोड़ी-सी खराबी यह है कि यह लाउडस्पीकर झूठ बहुत बोलता है।........"

फिर हमने बहुत-से ग्रामोफोन रेकार्ड भी तैयार कराये थे, जिनका प्रारम्भ तो किसी प्रचलित गानेसे होता; किन्तु कुछ ही सेकण्डके बाद क्रान्तिकारी आह्वान उनसे सुनाई देते। हमारे पैम्फलेटोंके बड़े-बड़े पार्सल रेलगाड़ी, नहर, किश्तियों आदिके जरिये जर्मनीके अन्दर पहुंचते रहते। या बोतलोंके अन्दर बन्द करके उन्हें एल्ब और राइन-सरीखी नदियोंके सहारे, जिनका उद्गम जर्मनीसे बाहर है, बहाकर देशके भीतर पहुंचा देते।

मुझे भली भांति याद है कि जर्मन सीमाके निकट होनेवाले कई एक मेलोंमें हम लोगोंने छोटे-छोटे रबरके हजारों बैलून बेचे थे। इन बैलूनोंमें क्रान्तिकारी पैम्फलेट और पर्चे रखे हुए थे। ये सबके सब बैलूनके साथ हवामें उड़कर जर्मन सीमाके अन्दर पहुंच गये थे।

किन्तु हमारा बहुत-सा क्रान्तिकारी साहित्य विश्वास-पात्र व्यक्तियोंके हाथ जर्मनीके अन्दर पहुंचा करता था। किन्तु जैसे-जैसे हमारे प्रमुख मेम्बर गिरफ्तार होते गये, उपयुक्त आदमी ढूंढ़नेमें हमारी मुश्किल भी उसी हिसाबसे बढ़ती गयी। कई बार तो ऐसा हुआ कि हमारे आदमियोंने पैम्फलेटकी गड्डी जङ्गलमें फेंक दी, या गेस्टैप्पोसे जा मिले। इस तरह जिस साहित्यके उत्पन्न करनेमें हमने इतना परिश्रम किया था, उसका एक बहुत बड़ा अंश बजाय जनताके हाथोंमें पहुंचनेके, हिटलरकी पुलिसके हाथों लगा। आखिर मैंने निश्चय किया कि पैम्फलेटके जरिये प्रोपेगण्डा करना बन्द कर दिया जाय, क्योंकि इसमें धन और शक्तिका भारी अपव्यय होता है।

गैरकानूनी रेडियो-स्टेशनके ब्राडकास्टकी कहानी भी कम रोचक नहीं है। नाजीवादके विरुद्ध ब्राडकास्ट करनेवाला पहला रेडियो-स्टेशन डाक्टर स्ट्रासेरके ब्लैक फ्रण्ट दलका था। प्रेगके नजदीक जहोरी नामक एक होटलसे उनका इञ्जीनियर फोर्मिस प्रतिदिन सन्ध्याको पार्टीके आदेशानुसार प्रोग्राम ब्राडकास्ट करता। फोर्मिस 'शार्ट वेव' ब्राडकास्टमें बहुत ही निपुण था। जर्मनीसे १९३४ में जब वह भागकर आस्ट्रिया आया, तो उसने स्ट्रासेरकी ब्लैक फ्रण्ट पार्टीमें अपनेको भर्ती करा लिया। मामूली पुर्जोंकी मददसे बिल्कुल अकेले ही उसने अपना ब्राडकास्टिङ्ग रेडियो सेट तैयार किया और बिला नागा उसने पूरे सालभर उस सेटसे प्रतिदिन पार्टीका प्रोग्राम जर्मन जनताके लिए ब्राडकास्ट किया। ब्राडकास्टमें जरा-सी भी गड़बड़ी कभी नहीं हुई।

आसायशमें हमेशा रहनेवाले फोर्मिसको यह एकान्त-वास बहुत खलता था। सेटमें कोई खराबी हुई, तो अकेले ही उसको दुरुस्त करना होता था। कभी-कभी छिपकर वह पैम्फलेट, पर्चे तथा आदेश प्राप्त करनेके लिए प्रेग चला जाया करता। वरना अकेले ही सन्ध्याके लिए वह प्रतिदिन समाचार-पत्रों तथा डाक्टर स्ट्रासेरकी चिट्ठियोंके आधारपर न्यूज बुलेटिन तैयार करता।

कुछ तो अपनी गफलतसे और कुछ गेस्टैप्पोकी सतर्कताके कारण थोड़े ही दिनों उपरान्त वह गेस्टैप्पोका शिकार बन गया। बहुत दिनों तक गेस्टैप्पो-कर्मचारी इस रेडियो-स्टेशनकी तलाशमें थे और प्रेग आने-जानेवालोंपर वे तेज निगाह रखते थे। फोर्मिस जब प्रेग जाता, तो वह बराबर एक ही होटलमें ठहरता—गेस्टैप्पोके गुप्तचरोंने इस बातको मार्क किया। दूसरी बार जब फोर्मिस इस होटलमें उतरा, तो उसने अपनी डाइनिङ्ग टेबुलपर दो छरहरे प्रसन्नचित्त नवयुवकों और एक षोडशीको बैठे पाया। बातों-बातोंमें उनकी घनिष्ठता बढ़ गयी। फोर्मिसने, जो एकान्त-वाससे एक तरह घबरा उठा था, अपने इन नये मित्रोंको अपने होटल जहोरीमें चाय पीनेके लिए आमन्त्रित किया। सारांश यह कि गेस्टैप्पोके जालमें वह पूर्णतया फंस गया। अगले रविवारको फोर्मिसको गेस्टैप्पोकी गोलियोंका शिकार बनना पड़ा। हाथमें पिस्तौल और बदनमें गोलियोंके घाव उसकी लाशमें मौजूद थे। धर-पकड़से बचनेके लिए फोर्मिसने पहले गोली चलायी थी और इस काण्डमें कदाचित् गेस्टैप्पो दलके एकाध व्यक्ति भी घायल हुए थे।

इस घटनाके बाद भी ब्लैक फ्रण्टका रेडियो ब्राडकास्ट जारी रहा। दक्षिण अमेरिकामें इन लोगोंने अपना रेडियो-स्टेशन कायम किया और जर्मन भाषामें रातको ये अपना प्रोग्राम ब्राडकास्ट करते थे। किन्तु पैसोंकी कमीसे यह स्टेशन भी इन्हें बन्द करना पड़ा।

गुप्त रेडियो ब्राडकास्टके सम्बन्धमें मुझे भी काफी अनुभव प्राप्त हैं। जर्मन लिबर्टी वेवके नामसे हमारा रेडियो-स्टेशन प्रोग्राम ब्राडकास्ट करता है। इस स्टेशनके बारेमें विस्तृत रूपसे यहां अधिक कुछ इसलिए नहीं लिखा जा रहा है कि ऐसा करनेसे अनेक व्यक्तियोंको गेस्टैप्पोका कोपभाजन बनना पड़ेगा। दिसम्बर १९३६ में हम लोगोंने निश्चय किया कि प्रोपेगण्डाके लिए हम लोग रेडियो ब्राडकास्टिङ्ग सेटका इस्तेमाल करेंगे। संयुक्त प्रदेश अमेरिकासे इस सेटके विभिन्न पुर्जे मंगाये गये और एक-एक, दो-दो करके उन्हें डाक्टरी आलोंके साथ हैम्बर्ग शहरमें पहुंचाया गया। कुछ ही दिनों उपरान्त हर रातको ९॥ बजे गेस्टैप्पोकी

आँखें बचाकर लोग अपने रेडियो सेटपर सुनने लगे—"जर्मन लिबर्टी वेव स्टेशन—सोशलिस्ट जन-आन्दोलन। हम राजधानी बर्लिनसे बोल रहे हैं………।"

कुछ सप्ताह बाद मुझे विश्वस्त सूत्रसे पता लगा कि जेकोस्लोवाकिया-स्थित जर्मन राजदूतने वहांकी गवर्नमेण्टसे शिकायत की है कि कुछ लोग जर्मन सरकारके खिलाफ विद्रोहात्मक प्रचार रेडियो द्वारा जर्मन भाषामें कर रहे हैं और उनके आन्दोलनका केन्द्र प्रेगमें है।

प्रेगके निवासी इस बातको नहीं जानते थे कि जर्मनीके अन्दर इस तरहका कोई ब्राडकास्टिङ्ग स्टेशन हिटलर-विरोधी प्रचार कर रहा है। मुझे वह दिन भली भांति याद है, जब मैंने अन्य विरोधी दलके सदस्योंको अपने यहां रातको भोजनके लिए आमन्त्रित किया था। भोजनके उपरान्त ठीक ९॥ बजे मैंने अपने रेडियो सेटका डायल घुमाया और ठेठ जर्मन उच्चारणके साथ उन लोगोंने सुना—"हम जर्मन लिबर्टी वेवसे बोल रहे हैं……।" हमारे सभी साथी आश्चर्यचकित रह गये थे।

दूसरे दिन दोपहरको बाजारसे कुछ खरीद-फरोख्त करके जब मैं घर लौटा, तो मेरी पत्नी घबरायी हुई मेरे पास आयी और बोली—"सादे लिबासमें दो गेस्टैप्पो गुप्तचर आज यहां आये थे, और आल्फ्रर (मेरे पुत्र) को वे अपने साथ गिरफ्तार करके ले गये। मैं ठीक बता नहीं सकती, माजरा क्या है; किन्तु मामला सङ्गीन नजर आता है।"

अभी वह ठीकतौरपर बात खत्मभी न कर पायी थी कि दरवाजेकी घण्टी बजी, और जेकोस्लोवाकियन पुलिसके दो गुप्तचर सादी वर्दी पहने भीतर आ धमके। मैंने उनसे पूछा, 'आप क्या चाहते हैं?' उत्तर मिला, "हम तुम्हारे मकानकी तलाशी लेने आये हैं। हमें आर्डर मिला है कि तुम्हें मय कागजातके गिरफ्तार करके हेडक्वार्टरपर ले आयें।"

"लेकिन यह सब बावेला किसलिये?"

"अजी बात यह है कि तुम्हारे पुत्रकी मोटर कारमें एक शार्ट वेव रेडियो ब्राडकास्टिङ्ग सेट लगा हुआ पाया गया है और यह एक सङ्गीन जुर्म है।"

पुलिस हेड क्वार्टरपर मैं और मेरी पत्नी दोनों अलग-अलग कमरोंमें १२ घण्टे तक बन्द रहे। जब उन लोगोंने मेरे पुत्रसे इस सम्बन्धमें प्रश्न किया, तो उसने उत्तर दिया—"हमें खबर मिली थी कि हमारे पिताके आन्दोलनमें भाग लेनेवाले जर्मन सदस्योंके इस ब्राडकास्टिङ्ग सेटमें खराबी आ गयी थी। उन लोगोंने कहा था कि जर्मन सीमापर आकर सेट ले जाना और इसे दुरुस्त करके वापस कर देना। सो मैं यह बिगड़ा हुआ सेट उनसे ले आया। तुम स्वयं देख सकते हो कि यह सेट पूर्ण नहीं है। इसमेंके कई पुर्जे गायब हैं।"

"तो क्या तुम यह बहाना बनाना चाहते हो कि तुमने जेकोस्लोवाकियाकी सीमाके अन्दर इस ब्राडकास्टिङ्ग सेटका इस्तेमाल नहीं किया?"

"बेशक! भला एक बिगड़े हुए सेटसे हम किस तरह ब्राडकास्ट कर सकते थे?"

इस प्रकार घण्टों प्रश्नोंका तांता लगा रहा; किन्तु इसके आगे न तो मेरे पुत्रसे और न उसके दोनों मित्रोंसे—जो कारमें बैठे हुए गिरफ्तार कर लिये गये थे—उन्हें कुछ अधिक बातें मालूम हो सकीं। चूंकि ब्राडकास्टिङ्ग सेटका रखना जुर्ममें दाखिल न था, बल्कि उसका ब्राडकास्टिङ्गके लिए इस्तेमाल करना कानूनकी दृष्टिमें अपराध हो सकता था, इसलिए इस सिलसिलेमें हम लोगोंको कुछ ज्यादा दिक्कत नहीं उठानी पड़ी। बादमें मुझे मालूम हुआ कि लगभग हमारे सभी जान-पहचानके लोग इस मौकेपर गिरफ्तार किये गये थे और उन सबसे अलग-अलग जिरह हुई थी। किन्तु कामकी कोई बात पुलिस उनसे निकाल न सकी थी।

इस गुप्त रेडियो ब्राडकास्टिङ्गका एक जबर्दस्त नैतिक प्रभाव जर्मन जनताके ऊपर पड़ता है। यह भी नितान्त आवश्यक नहीं कि सब कोई इन खबरोंको सुने ही; किन्तु यह ख्याल कि हिटलरके खिलाफ एक दल जी-जानसे प्रयत्नशील है, आम जनताकी नसोंमें जादू फूंक देनेके लिए काफी है। गैर-कानूनी क्रान्तिकारी पर्चोंमें हिटलरके खिलाफ कुछ लिख देना उतनी बड़ी बात नहीं है, जितनी कि स्वयं जबानसे बोलनेकी हिम्मत करना। अपनी जानको हथेलीमें लेकर खुले शब्दोंमें हिटलरके खिलाफ नारे लगानेके लिए निस्सन्देह अपूर्व साहसकी जरूरत होती है। लोगोंकी इस दिलेरीका गहरा और स्थायी प्रभाव आम जनताके ऊपर पड़ता है।

ये लोग आज इस मुहल्लेमें, तो कल शहरके दूसरे छोरपर अपना ब्राडकास्टिङ्ग सेट फिट कर रहे हैं; लेकिन नियत

समयपर ठीक उसी नियत विद्युत्-तरङ्गकी लम्बाईपर ब्राडकास्टिङ्ग जारी हो जाता है। कभी-कभी शहर छोड़कर जङ्गलके अन्दर ये लोग चले जाते हैं और वहींसे अपना दैनिक प्रोग्राम ब्राडकास्ट करते हैं।

मेरे पास प्रमाण मौजूद हैं, जिनके आधारपर मैं निश्चितरूपसे कह सकता हूं कि आम जनतामें पूरे ५० प्रतिशत ऐसे व्यक्ति हैं, जो हिटलरकी सभी बातोंका निष्क्रिय विरोध करते हैं; किन्तु हिटलरके आतङ्कके कारण उसके खिलाफ आवाज नहीं उठाते। फिर २० प्रतिशत लोग इस श्रेणीके हैं कि वे इस बातको स्वीकार करते हैं कि हिटलरने जर्मन राष्ट्रको समृद्धिशाली बनाया है; किन्तु जिन तरीकोंका इस्तेमाल उसने किया है, उन्हें वे पसन्द नहीं करते।

अवश्य जिस दिन हमारा संयुक्त मोर्चा इतनी शक्ति प्राप्त कर लेगा कि हिटलरवादसे वह डटकर लोहा ले सके, उस दिन जर्मन जनताके ये ८० प्रतिशत व्यक्ति भी हमारी भरपूर मदद करेंगे। इसका हमें पूरा विश्वास है।

—भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव—अनुवादक

प्रेम—स्वार्थपरताकी पराकाष्ठा

श्री रामसरन शर्मा

आज प्रेमपर कुछ भी लिखना, पुरानी लकीरको पीटना जान पड़ता है। न जाने कबसे कौन-कौन अनुपम विद्वान् इसपर लिख गये हैं।

पर, तो भी यह विषय सदा ही नूतन रहा है। कारण स्पष्ट है। प्रेम करना तो मानवका स्वभाव है, उसकी प्रकृति है—यों भी कह सकते हैं कि यह उसकी एक बीमारी है—असाध्य और अटल।

हम सदा ही प्रेममें रहते हैं। जीवनके पहले पलसे अन्तिम सांस तक। वह चाहे मांका दूध हो, मां हो, कोई युवती हो, धन हो, पुत्र हो, या फिर जीवन ही हो। पर, हम सदा ही जीवनके प्रत्येक क्षण किसी-न-किसीके प्रेममें रत रहते हैं।

इसीलिए प्रेमके विषयमें कुछ लिखने और पढ़नेसे हम कभी भी नहीं ऊबते हैं। यह तो हमारे सदाके चिन्तन और मननका विषय है।

एक और भी कारण है जिससे हमें आज इस प्राचीनतम विषयपर एक बारफिरसे, नये सिरेसे विचार करनेकी आवश्यकता जान पड़ती है।

आज दुनिया करवट-सी ले रही है। संसारके कुछ ही युगोंमें इतने परिवर्तन हुए होंगे या हो सकनेकी सम्भावना रही होगी, जितनी आज है। और यह केवल राजनीतिक क्षेत्र तक ही सीमित हो, सो भी बात नहीं है। यह अभूतपूर्व चेतना हमारे सामाजिक, धार्मिक, नैतिक—सभी पहलुओंसे, हमारे जीवनको हिला डालना चाह रही है। न जाने कैसे इस अपूर्व घर्षणने एक अति तेजोमयी किरणके समान हमें चौंकाकर अपने जीवनको एक बार फिरसे देखनेको मजबूर कर दिया है।

प्रेम तो हमारे जीवनके सभी पहलुओंमें व्याप्त है। हमारे मानसिक, आध्यात्मिक या शारीरिक आकर्षणकी भित्तिपर ही तो हमारे भिन्न-भिन्न सम्पर्क या सम्बन्ध बने हैं। और इन्हीं सम्बन्धोंपर तो हमारा जीवन है। इन्हींसे तो जीवन बनता है। यदि किसी भी प्रकार हम जीवनके किसी क्षेत्रसे समस्त आकर्षणको निकाल सकें, रोक सकें, तो हमारा जीवन उस क्षेत्रमें समाप्त हो जायेगा।

इसीलिए प्रेमके विषयमें कुछ कहना या सुनना हमें कभी भी अरुचिकर नहीं लग सकता है।

प्रेम वास्तवमें दो अर्थोंमें समझा जाता है। व्यापक और संकुचित। अपने व्यापक अर्थमें किसी भी प्रकारके आकर्षणका नाम प्रेम हो सकता है और संकुचित अर्थमें प्रेम केवल उस अन्ध, अवैज्ञानिक, तीव्रतर आकर्षणको कहते हैं, जो हम किसीके प्रति प्रतीत करते हैं।

किन्तु इन दोनों ही अवस्थाओंमें प्रेममें एक बात सदा ही होती है। वह होती है अपने प्रेम-पात्रको पूर्णरूपसे अपना लेनेकी तीव्रतर इच्छा। इस इच्छाके बिना प्रेम होता ही

नहीं है । प्रेमके साथ-साथ अपना कर लेनेकी—पूर्णतया—कामना आवश्यक है । प्रेमी किसी भी औरको अपने प्रेम-पात्रमें हिस्सेदार नहीं बना सकता है ।

इसी कारण जलनका जन्म होता है, इसी कारण प्रेमको पूंजीवादी भावना भी कह देते हैं हमारे साम्यवादी मित्र ।

आपने खूब ही देखा होगा कि धनके प्रेमी वास्तवमें 'चमड़ी जाये, पर दमड़ी न जाये' पर अमल करते हैं । साथ ही धन-प्रेमीको एक प्रकारकी चोट-सी लगती है यह जानकर कि कोई और भी उसके बराबर या अधिक धनवान है । और अपनी धनराशिमें तो हिस्सेदार बना सकना उसके लिए मृत्युसे भी अधिक भयावह होता है ।

छोटेसे छोटा बच्चा भी माताके स्तनपानमें भागी अपने भाई या बहनसे चिढ़ जाता है । गोदमें बैठनेके लिए तो नित्य ही आपके घरमें कोहराम मचता होगा ।

युवक और युवती तो किसी प्रकार भी अपने प्रेम-पात्रके तनिकसे प्रेमके दावेदारको फूटी आंख नहीं देख सकते हैं ।

कहावत है कि झगड़ेकी जड़ तीन हैं—जर, जमीन और जन ।

वास्तवमें इन तीनोंमेंसे किसी एकको ही तो मनुष्य प्रेम करता है ।

सच पूछा जाये तो प्रेम एक प्रकारकी बीमारी, मानसिक विकार-सा जान पड़ता है । इसमें जितनी पीड़ा, जितनी वेदना होती है, उसे भुक्तभोगी ही जानते होंगे । किन्तु हमें उस वेदनामें भी मजा आता है । हम उस पीड़ासे निकल न सकें, इसके लिए अविरत चेष्टा करते रहते हैं ।

बड़ेसे बड़े आदर्श-प्रेमीके जीवनका चरम लक्ष्य रहा है अपने प्रेम-पात्रको पूर्णतया अपना लेना । यह भावना उन महान् तपस्वियोंकी भी रही है, जो भगवान्‌के प्रेमी थे । उन्होंने संसारके सारे कष्ट केवल इसीलिए तो उठाये थे कि उन्हें उनके भगवान् मिल जायें । उनके अपने हो जायें ।

बड़े-बड़े भक्तराज—सूर, तुलसी आदि—कहनेको तो सदा यही कहते थे कि वे भगवान्‌के चाकर-मात्र थे । किन्तु क्या वे यह नहीं चाहते थे कि उनके भगवान् उनके इशारों-पर नाचें, उनके होकर रहें ?

यही हाल पार्थिव प्रेममें भी रहा है । लैला-मजनूं, शीरीं-फरहाद—सबमें ही तो प्रेमीने सदा ही अपनेको अपने प्रेम-पात्रके चरणोंकी धूलि बताया है । किन्तु उत्कट भावना थी यही कि उनका प्रेमपात्र उनका सेवक, आज्ञाकारी मात्र बनकर रहे ।

यदि ये महानुभाव सचमुच ही इतने दुःख न उठाते, इतने सच्चे न होते—या यों कहें कि एक दयनीय रोगसे ग्रस्त न होते—तो हम इन्हें निस्सङ्कोच बिलकुल बने, मक्कार कह सकते थे । इससे बढ़कर राजनीतिक चाल हो ही क्या सकती है कि मुंहसे कहें दास बननेको और मालिकको नौकर बनाना चाहें ।

हमने कहा है कि प्रेम मनुष्यकी स्वार्थपरता है । ठीक है । मनुष्य प्रेम उसे करता है, जो उसे सबसे अच्छा लगता है । जिसके बिना वह अपना जीवन अपूर्ण मानता है । चाहे यह वस्तु भगवान् हों या कोई रमणी । ललित कला हो या केवल रुपया । कुछ भी हो । मनुष्य प्रेम तभी करता है, जब वह यह मान बैठता है कि उस वस्तुके बिना जीना व्यर्थ ही है ।

कोई लोग इसे मनुष्य-प्रकृतिकी सदा ही पूर्णतर होनेकी भावना मानते हैं । कहते हैं कि हममें जो कमी होती है, हमारी प्रकृति स्वभावतः उसीको अपनाना चाहती है ।

दूसरे इसे समान वस्तुओंका आकर्षण कहते हैं । यह समानका आकर्षण हो या विरोधियोंका, यह तो तय है कि आकर्षण होता है अवश्य । चाहे हम उस आकर्षणके कारणको आज तक न समझ सके हों ।

साथ ही इसमें भी सन्देह नहीं कि यह होता है बिना किसी समझ-बूझके । नहीं तो गणितके हलके समान सभी मानव एक ही को प्रेम करते ।

ऐसा तो होता नहीं है ।

जो भी हो । हम चाहे किसी भी कारणसे यह महसूस करने लगें कि किसी एक वस्तुके बिना हमारा जीवन व्यर्थ है, पर हम करते हैं ऐसा अवश्य ।

और ऐसा करते ही हम उस वस्तुको प्राणपणसे अपनानेकी चेष्टा करने लग जाते हैं ।

इसे हम प्रेम कहते हैं ।

दूसरेको हम हिस्सा दे नहीं सकते हैं—मर अवश्य सकते हैं—यही हमारी स्वार्थपरता है ।

सामाजिक समस्यायें और कानून

श्री हरिप्रसाद शास्त्री, बी० ए०, एल-एल० बी०

धर्म और समाजके साथ कानूनका क्या सम्बन्ध है, इस विषयका महत्त्व आज अत्यन्त अधिक हो गया है। यह केवल सिद्धान्तका ही प्रश्न नहीं है, वर्तमान युगमें उसका व्यवहारिक मूल्य है। धर्म और समाज-सम्बन्धी प्रचलित व्यवस्थाओंमें जब-जब सुधार होनेकी आवश्यकता अनुभव की गयी है, व्यवहारवादी नेता हमेशा ही कानून बनानेके पक्षमें होते आये हैं; परन्तु इस विषयमें मतभेदके लिए काफी गुञ्जायश है। हो सकता है कि सुधार चाहनेवाले नेता जैसे कानूनके पक्षपाती हों, अन्य पक्षके लोग वैसे ही उसके विरोधी हों और सुधारकी आवश्यकता अनुभव करते हुए भी इस आधारपर विरोधी हों कि धर्म और समाज-सम्बन्धी बातोंमें कानूनका हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, लोगोंको समझा-बुझाकर ही सुधारके मार्गपर चलनेके लिए तैयार करना चाहिए। यह दृष्टिकोण केवल भावुकता नहीं है और इसका भी मूल्य है; परन्तु प्रश्न परिस्थितिका है और उस जनसमुदायकी अवस्थाका है, जिसमें कोई सुधार करना होता है, जिसे वर्तमान अवस्थासे ऊंचा उठाना होता है। सामाजिक और धार्मिक विषयोंमें कानून बनानेके पक्षपाती यह अनुभव करते हैं कि जब तक किसी रूढ़ि या कुप्रथापर कानून बनाकर प्रहार नहीं किया जायगा, तब तक सुधारकी प्रगतिमें शीघ्रता नहीं होगी। इस विचारके विरोधी हमेशा ही यह दलील दिया करते हैं कि जनताको तैयार किये बिना जो सुधार कानूनके जोरसे किया जायगा, उसका परिणाम भयावह होगा और उसका व्यवहारिक अर्थ कुछ भी नहीं होगा।

इन दोनों दृष्टिकोणोंपर विचार करनेसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि 'धार्मिक' और 'सामाजिक' शब्दोंका प्रयोग विभिन्न अर्थोंमें किया जाता है। एक व्यक्तिकी दृष्टिमें कोई बात धार्मिक होती है और दूसरा उसे धार्मिक नहीं मानता। यही बात सामाजिक विषयोंके सम्बन्धमें भी है; परन्तु जो बात निश्चित है, वह यह है कि साधारणतः जिसे लोग धर्म कहते हैं, उसमें किसी न किसी रूपमें किसी ऐसी अदृश्य शक्तिमें लोगोंका विश्वास पाया जाता है, जो संसारका नियन्त्रण करती है और जिसका भेद नहीं मालूम हो सकता। इस अर्थमें धर्म केवल कुछ रीति-रिवाजों तक ही सीमित नहीं है, कुछ सिद्धान्तोंके आधारपर वह जीवनकी एक विशेष प्रणाली निर्माण करता है और इस जीवनका उन सिद्धान्तोंके साथ पूर्ण सामञ्जस्य होता है। जीवन सम्बन्धी इस विशेष प्रणालीका सम्बन्ध जहां तक इन सिद्धान्तोंसे है कि मनुष्यका कर्तव्य क्या तो अपने प्रति है और क्या अपने साथियों और पड़ोसियोंके प्रति, उनका प्रभाव कानून-सम्बन्धी कल्पनापर पड़ता है और पूरी तरह पड़ता है; क्योंकि आखिर तो कानून ही है, जो मनुष्योंके व्यवहारपर नियन्त्रण रखनेके लिए जिम्मेदार है। जीवन-सम्बन्धी सिद्धान्तोंसे शून्य, अस्पष्ट धर्मभावना या कोरी भावुकताका प्रभाव मनुष्यके सामाजिक व्यवहारपर नहीं पड़ता।

कानूनकी सीमा कहां तक है, कानूनको किन विषयोंमें कहां तक आगे बढ़ना चाहिए और कहांसे आगे नहीं—इस विषयमें मानव-समाजके विचारोंमें समय-समयपर हमेशा ही परिवर्तन होता रहा है; परन्तु लोग बहुधा उसकी सीमाओंको भूल जाते हैं। संसारके विभिन्न भागोंकी राजनीतिक परिस्थितियोंका परिणाम कुछ स्थानोंमें यह होता है कि कानून और धर्मका जो सम्बन्ध है, उसमें भी बड़ी शीघ्रतासे परिवर्तन होनेकी आवश्यकता अनुभव की जाने लगती है। पाश्चात्य देशोंमें इसी आवश्यकताके फलस्वरूप क्या हुआ है—कानून, धर्म और सदाचार, चर्च और सरकार और साधारण अदालतों एवं सांस्कृतिक विषयोंपर विचार करनेवाली अदालतोंमें अलगावकी भावना काफी अग्रसर हो गयी है; परन्तु पूर्वके देशोंका इतिहास पश्चिमसे कुछ भिन्न है। धर्म और कानूनके एक सीमा तक एक-दूसरेसे अलग रहनेकी जो आवश्यकता है और उसमें जो लाभ है, उसे कोई अस्वीकार नहीं कर सकता और न उसमें कोई सन्देह ही करता है। आजकल जिस तरह कानून बनते हैं और

जिस तरह कानूनको कार्यान्वित किया जाता है, उसकी दृष्टिसे भी इन दोनोंके अलग-अलग रहनेपर जोर दिया जाता है; किन्तु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि धर्मके साथ कानूनका कोई सम्बन्ध ही नहीं है और दोनोंका एक-दूसरेसे कोई सम्पर्क नहीं होना चाहिए।

धर्मके साथ कानूनका निकट सम्बन्ध पहलेसे ही चला आया है। शुक्र-नीतिमें कहा गया है कि मन्त्रीको राजाके समक्ष ऐसे कानूनोंका प्रस्ताव करना चाहिए, जिनसे लोग इस लोकमें तो सुखी हों ही, परलोकमें भी सुखसे रहें। शुक्र-नीतिकी इस बातका समर्थन यूरोपके किसी राजनीतिज्ञके इस कथनसे भी होता है कि जो विज्ञानवादी राजनीतिज्ञ मनुष्योंकी धार्मिक प्रवृत्तिकी परवा न कर उनके पारस्परिक व्यवहारके लिए कानून बनाता है, उसके धार्मिक सुधार करनेमें विफल होनेकी सम्भावना है; क्योंकि वह मानव-स्वभावका खयाल छोड़कर कानून बनाता है। कानूनकी जितनी प्रणालियां संसारमें रही हैं, उनमें प्राचीन समयमें धर्मके साथ कानूनका गहरा सम्बन्ध रहा है। हीब्रो लोगोंमें भी धर्म और कानूनका यह सम्बन्ध बिलकुल ही स्पष्ट रूपमें देखा जा सकता था। संसारके लिए आज जिस रोमन और इंगलिश कानूनको आदर्श माना जाता है, उसका भी प्रारम्भिक अवस्थामें धर्मके साथ सम्बन्ध था और अंगरेजी कानूनकी विवाह, उत्तराधिकार आदि सम्बन्धी कुछ बातों-पर अभी तक धर्मका प्रभाव है। मुसलमानोंमें कुरानको कानूनका स्रोत माना जाता है। हिन्दुओंमें यही स्थान वेदों और स्मृतियोंका है। यह माना जाता है कि हिन्दू कानूनका आधार वेद और स्मृतियां हैं। यह आशा की जाती है कि वेदों और स्मृतियोंमें साधारणतः वह सब है, जिसे व्यवहार कहा जाता है। यह कहना ठीक नहीं है कि वेदों और स्मृतियोंमें जितने वचन हैं, उन सबका समान महत्त्व है। इस विषयमें जो भ्रम है, उसके कारण लोगोंमें यह मिथ्या धारणा पायी जाती है कि हिन्दू कानूनके 'व्यवहार' भागमें भी कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता। मीमांसकोंने विधि, निषेध, अर्थवाद और अनुवाद आदिके रूपमें वेद-वचनोंके वर्गीकरणका प्रयत्न किया है। विधि और निषेध सम्बन्धी वचनोंके विषयमें यह माना जाता है कि उनमें परिवर्तन नहीं किया जा सकता; परन्तु अन्य कोटिके वचनोंके सम्बन्धमें कट्टरपन्थी भी यह कहनेका साहस नहीं कर सकते, उनका महत्त्व भी विधि और निषेध वचनोंके समान ही है। शङ्करको उपनिषदों तकके कितने ही भागोंको अर्थवाद बतलाकर अलग कर देनेमें कुछ भी कठिनाई नहीं हुई। स्मृति-चन्द्रिकाकारने एक स्थानपर लिखा है कि स्मृतियोंमें व्यवहारके सम्बन्धमें जो कुछ कहा गया है, वह अर्थवादके रूपमें है।

राजाके ईश्वर-अंश-सम्भूत होनेका जो सिद्धान्त हिन्दुओंमें पाया जाता है, वह पाश्चात्य देशोंमें प्रचलित राजाके पवित्र अधिकारों सम्बन्धी मध्यकालीन सिद्धान्तसे भिन्न है। हिन्दुओंकी दृष्टिमें राजा उस अर्थमें कानूनसे परे नहीं है, जिसमें पवित्र अधिकारों सम्बन्धी सिद्धान्त उसे मानता है। हिन्दू-शास्त्र यह नहीं मानते कि राजा जैसे चाहे वैसे कानूनको बदल सकता है। राजासे केवल यही आशा की जाती है कि वह कानूनको कार्यान्वित करेगा, लोगोंको कानूनके अनुसार चलनेके लिए बाध्य करेगा। यही कारण है, जिससे परिवर्तित परिस्थितिके अनुसार आव-श्यकता अनुभव होनेपर भी पिछले समयमें हिन्दू-कानूनमें परिवर्तन करनेमें कठिनाई प्रतीत हुई है।

कानूनके वर्तमान उद्देश्य और सीमाके सम्बन्धमें भी आजके विचारोंमें पहलेसे अन्तर है। कानून, धर्म और सदा-चारको एक-दूसरेसे अलग रखनेका जो खयाल प्रचलित है, उसपर आधुनिकताकी छाप है, प्राचीन विचारों और जीवनकी नहीं। परन्तु एक अन्तर है, जिसे हमेशा ध्यानमें रखना चाहिए। अन्तर यह है कि अलगावका भाव स्वयं विचारमें नहीं है—कानून, धर्म और सदाचारके कार्या-न्वित होनेमें है। हिन्दू जिसे धर्म मानते हैं, उसमें उन सब कर्तव्योंका समावेश हो जाता है, जिनके लिए शास्त्रोंने आदेश किया है। मनुष्यका ईश्वर सम्बन्धी कर्तव्य क्या है, माता-पिता आदि गुरुजनों, पत्नी, पुत्र, भाई-बहन आदि स्वजनों, मित्रों और साथियों एवं राजाके प्रति क्या कर्तव्य है, ये सब बातें भी उसमें शामिल हैं। प्राचीन स्मृतियोंमें इन सब बातोंपर एक ही साथ विचार किया गया था; परन्तु बादके स्मृतिकारोंने आचार, व्यवहार और प्राय-श्चित्त व्यवस्थामें अन्तर किया।

प्राचीन कालमें किस तरहकी न्यायप्रणाली प्रचलित

थी, इस विषयमें बहुत कम उल्लेख मिलता है। इसमें तो सन्देह ही नहीं है कि मनु और कौटिल्यने न्यायालयों या कानूनका विस्तृत वर्णन किया है; परन्तु कई तरहके जुर्मोंमें गिरफ्तारियों और अदालती डिग्रियोंके लिए जमानतोंके सिवाय अन्य बातोंके विषयमें ऐसा विवरण नहीं मिलता, जिससे यह मालूम होता कि उन दिनोंमें अदालतोंके फैसलोंको कार्यान्वित किस तरह किया जाता था। न्याय-प्रणालीके सम्बन्धमें यह मालूम होता है कि गवाहोंके साथ जिरह करनेकी प्रणाली उस कालमें भी प्रचलित थी; परन्तु यह निश्चित करना सहज नहीं है कि उस कालमें आजकलकी तरह गवाहीको महत्त्व दिया जाता था, या गवाहीका महत्त्व दोनों पक्षोंके गवाहोंकी तादादसे समझा जाता था या किसी मामलेके विषयमें स्वयं अदालतको जो जानकारी होती थी, उसपर अदालत निर्भर रहती थी। परन्तु एक बात निश्चित है—न्यायाधीश, वादी-प्रतिवादी और गवाह, सभी झूठ बोलनेसे भय खाते थे और इस बातको मानते थे कि शपथका कुछ मूल्य है। वे यह भी मानते थे कि मनुष्यके प्रत्येक कर्मके साथ दृष्ट और अदृष्ट फलोंका सम्बन्ध है और इस विश्वासका प्रभाव उनके साधारण व्यवहारपर भी अच्छा पड़ता था। सांसारिक दण्ड-व्यवस्था वैसी प्रभावकर हो सकती है, इसमें तो सन्देह ही है।

अदालतोंके स्थानपर प्राचीन कालमें पञ्चायतोंका उल्लेख पाया जाता है। ये पञ्चायतें किसी न किसी रूपमें आज भी विद्यमान् हैं और काम करती हैं। पूर्वकालमें यही पञ्चायतें कानूनके अनुसार न्याय करती थीं। यह नहीं कहा जा सकता कि पञ्चायत-प्रणालीका आरम्भ किस तरह हुआ और कहां हुआ; परन्तु धर्म-शास्त्रोंमें परिषद्का उल्लेख मिलता है। इस परिषद्में योग्य और सत्यनिष्ठ व्यक्ति होते थे और समाजपर उसका बड़ा प्रभाव होता था—फिर झगड़ा चाहे लेन-देनका हो या जमीन-जायदादका या कोई प्रायश्चित्त-व्यवस्था हो या कोई अन्य कार्य।

ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन हिन्दू-कालमें जज और जूरीका अन्तर आजकल जैसा स्पष्ट नहीं था। कुछ ग्रन्थोंमें राजाके समक्ष अपील होने और राजा द्वारा कानूनके अनुसार न्याय किये जानेका उल्लेख पाया जाता है; परन्तु यह पता नहीं चलता कि यह सब एक न्यायप्रणालीके रूपमें था। आधुनिक अर्थमें वैज्ञानिक आधारपर न्याय-प्रणालीका विकास उस समय हुआ, जब किसी न किसी तरहका कोई साम्राज्य अस्तित्वमें आया।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि हिन्दू विचारके अनुसार राजा या किसी अन्य अधिकारीको अपनी इच्छासे कानून बदल देनेका सामर्थ्य नहीं था। विधि, निषेध, अर्थ-वाद और अनुवादके आधारपर ही वे व्याख्याताओंकी सहायतासे वैसा कर सकते थे। ऐसे अवसरोंपर व्याख्याताओंका काम यह होता था कि विभिन्न स्मृति-वचनोंमें सामञ्जस्य स्थापित करें; यह स्थिर करें कि किस वचनपर ज्यादा महत्त्व देना चाहिए और किसपर नहीं। अनुवादपर जोर देकर वे यह कहें कि धर्म-ग्रन्थोंमें जो कुछ लिखा गया है, उसे भी बदला जा सकता है, अथवा इस बातपर जोर दें कि कानूनका सम्बन्ध आखिर तो सांसारिक स्थितिसे है और जब देशकी स्थितिमें परिवर्तन होता रहता है, तब कानूनमें भी परिवर्तन होता ही रहना चाहिए। मिताक्षराकारने एक स्थानपर स्पष्ट कहा है कि किसी खास कार्यके सम्बन्धमें वेदोंने भले ही आदेश किया हो या जोर दिया हो; परन्तु लोकमतके प्रतिकूल कुछ भी नहीं किया जाना चाहिए। इस तरहकी व्याख्याओंके आधारपर ही वर्तमान हिन्दू कानूनमें वाञ्छनीय परिवर्तन करनेका प्रयत्न किया जा सकता है।

व्याख्याताओंके सम्बन्धमें बात यह है कि वे आधुनिक इतिहास-कालमें हुए हैं। मनुके समयमें समाजकी व्यवस्था कैसी थी, इस विषयमें बिलकुल सही-सही कुछ कहना कठिन है। बहुत कुछ तो अनुमानसे ही कहा जा सकता है; किन्तु कितने ही यूरोपियन लेखकोंका यह मत ठीक नहीं है कि मनुने जिस सामाजिक स्थितिका उल्लेख किया है, वह आदर्श है। कोई भी तटस्थ व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि मनुने १२ प्रकारके जिन पुत्रों, ८ प्रकारके जिन विवाहों, अनुलोम एवं प्रतिलोम विवाह-विधियों, इन विवाहोंसे उत्पन्न सन्तानके भेदों और अन्य कितनी ही बातोंका जो वर्णन किया है, वह काल्पनिक है, समाजकी उस कालकी स्थितिको बतलानेवाला नहीं है। अध्ययनसे यह पता चलता है कि मनुने जो कुछ लिखा है, उसमें समाजकी तत्कालीन अवस्थाको ही बतलाया गया है, जो बातें समाजमें

उस समय प्रचलित थीं, उन्हींका मनुने उल्लेख किया है; परन्तु कुछ बातोंको जो अधिक महत्त्व दिया हुआ प्रतीत होता है, उसका कारण तो यही हो सकता है कि स्मृति-कारकी दृष्टिमें उन बातोंमें बतलाये हुए मार्गपर चलना श्रेष्ठ हो। जहां तक हिन्दू-कानूनका सम्बन्ध है, परिवर्तनोंके विषयमें सबसे अधिक महत्त्वकी बात ध्यानमें रखने योग्य यह है कि उसमें जब-जब कोई परिवर्तन हुआ है, धर्मकी आवश्यकताको सामने रखकर ही हुआ है। उदाहरणके लिए विवाहका प्रश्न ही लीजिये। विवाहकी अमान्य प्रणालियोंके स्थानपर मान्य प्रणालियोंका प्रचलन करनेके लिए यह निश्चय कर दिया गया कि धर्म-कृत्योंमें वही पत्नी भाग ले सकेगी, जिसके साथ मान्य विवाह-प्रणाली द्वारा विवाह किया गया हो। इसी तरह बहु-विवाहकी प्रथाको रोकनेके लिए, इस ओरसे लोगोंकी मनोवृत्ति मोड़नेके लिए स्मृतिकारोंने यह व्यवस्था दी कि धर्म-कार्योंमें केवल प्रथम पत्नीको ही सम्मिलित होनेका अधिकार है, अन्य पत्नियोंको नहीं। ये सब व्यवस्थायें किसी समय बड़ी प्रभावकर साबित हुई हैं। इन सब बातोंकी दृष्टिसे अनभिज्ञता ही होगी, यदि कोई यह कहे कि पूर्वके धर्माधिकारियोंने अपना प्रभाव बढ़ानेके लिए संसारके समक्ष कानूनको उस रूपमें नहीं रखा, जिसमें उसे माना जाता था, बल्कि उन्होंने उसे ऐसे रूपमें रखा, जिसके अनुसार वे लोगोंको चलाना चाहते थे। आपस्तम्ब सूत्रोंके आरम्भमें ही समयाचारिकका उल्लेख हुआ है, जिसका अभिप्राय उन बातोंसे है, जिन्हें लोकाचारके आधारपर स्थिर किया गया है। इससे प्रकट होता है कि सूत्रोंपर किन बातोंका प्रभाव पड़ा है। देशके विभिन्न भागोंके व्याख्याताओंकी व्याख्यामें जो अन्तर पाया जाता है, उसका कारण यही है कि उन्होंने अपने प्रदेशकी अवस्थाको दृष्टिमें रखकर व्याख्या की है और इस दृष्टिसे उन्होंने अपने समयमें समाजकी बड़ी सेवा की है। इस सेवाका महत्त्व हमें तब मालूम होता है, जब हम यह सोचते हैं कि दसवीं शताब्दीसे लगाकर १७ वीं शताब्दी तक देशकी अवस्था कैसी थी। विजयनगरका हिन्दू साम्राज्य बहुत ही उन्नत अवस्थामें था, फिर भी वहां न्यायप्रणाली आजकलकी तरह विकसित नहीं थी। उत्तर-भारतमें मुसलमानोंका शासन था, जो हिन्दू-कानूनको कोई आदर नहीं देना चाहते थे। इस अवस्थामें हिन्दू कानूनको जीवित रखनेका भार केवल पञ्चायतोंपर था। व्याख्याताओंने इस स्थितिमें हिन्दू-कानूनको समयकी गतिके साथ रखनेकी कोशिश की, जैसे-जैसे समय बदलता गया, वैसे ही वैसे उन्होंने भी व्याख्याओं द्वारा हिन्दू-कानूनमें आवश्यक सुधार किये और साथ ही प्रचलित कानूनसे हिन्दू कानूनको अलग रखनेका प्रयत्न भी किया। उस विपरीत परिस्थितिमें यही होना सम्भव था। अस्तु।

इस सम्पूर्ण विवेचनका निष्कर्ष यह है कि कानूनके लिए धर्म और समाजका क्षेत्र ऐसा नहीं है, जिसमें उसका प्रवेश निषिद्ध हो। हम देखते हैं कि हमेशा ही देशकी परिवर्तित अवस्थाके अनुसार धर्म और समाजकी व्यवस्थाओंमें जब-जब परिवर्तन करनेकी आवश्यकता हुई है, इन व्यवस्थाओंके आधारभूत स्मृति-वचनोंकी व्याख्या समयकी प्रगतिको दृष्टिमें रखकर की गयी है और आज भी यही किया जा सकता है। समयकी प्रगतिने आज हमारे सामने कितने ही सामाजिक प्रश्न पैदा कर दिये हैं। एक प्रश्न साम्पत्तिक अधिकारोंके सम्बन्धमें है। इस सम्बन्धमें हिन्दू-कानून आज जिस रूपमें है, उससे समयका तकाजा पूरा नहीं होता। पतिकी सम्पत्तिपर स्त्रीको अधिकार और पिताकी सम्पत्तिमें लड़कीके हिस्सेका प्रश्न इसीके अन्तर्गत है। विवाह, दत्तक और सम्बन्ध-विच्छेद सम्बन्धी प्रश्न भी उसी तरहके हैं। समयकी गतिको पहचाननेवाले सुधारक जब इन प्रश्नोंपर वर्तमान दृष्टिकोणसे विचार करते हैं, तब देशका एक वर्ग धर्ममें हस्तक्षेप होनेका हल्ला करने लगता है; परन्तु यह हल्ला है निःसार, इसमें सन्देह नहीं है। समाजकी व्यवस्थाओंमें, उन व्यवस्थाओंके आधारभूत धर्म-वचनोंका जब परिस्थितिके साथ सामञ्जस्य न रहे, तब यह कर्तव्य देशके विद्वानोंका हो जाता है कि वे सामञ्जस्य स्थापित करें और इसके लिए यदि जरूरत हो, तो कानूनकी भी सहायता लें। धर्म और कानून वस्तुतः दो चीजें नहीं हैं। प्राचीनतम युगमें ये दोनों बातें एक ही रूपमें थीं, धर्मने कानूनको जन्म दिया था और अब कानूनको धर्मसे उऋण होना चाहिए, जहां समयकी प्रगतिके साथ धर्म और समाजका सामञ्जस्य नहीं रह गया है, वहां उसे स्थापित करनेके लिए कानूनको आगे आना चाहिए।

महेन्द्र

श्री एस० डी० लवरा, बी० ए०

"तो क्या आप स्थानान्तरित न होंगे ?"

"नहीं।"

"मैं जाकर यही कह दूं ?"

"हां, तुम अपनी स्वामिनीसे जाकर कह सकते हो कि नावरिके लिए वे अन्य स्थानका अन्वेषण कर लें।"

श्रावणकी अनुरागमयी सन्ध्या! ऊपर आकाशको आवृत किये हुए सुनील मेघ, नीचे आगत यौवना हरिता धरणी तथा सिंहलके लहराते हुए विशाल सागरके तटपर सिंहल-राजकुमारी नावरिके लिए उपस्थित! सागर-तटपर उसने पहुंचकर देखा कि उसके नित्यके स्थानपर कुछ विदेशी पोतादि लिये हुए आ ठहरे हैं। 'क्यों?' दुर्द्धर्ष राजकुमारीकी भृकुटी वक्र हो गयी—'अभी जाकर उन्हें स्थानान्तरित होनेकी आज्ञा दो।' प्रणधि गया और कुछ अवकाशके पश्चात् लौट आकर निवेदन किया—'वे लोग नहीं हटना चाहते, राजकुमारीजी!'

'नहीं हटना चाहते?' राजकुमारीके नेत्रोंसे अग्नि-वर्षा होने लगी—'देखती हूं मैं, उद्धत यात्री।'

दूसरे ही क्षण राजकुमारी यात्रियोंके सम्मुख उपस्थित थी। अनुचरको आज्ञा हुई—'सब सामग्री उठाकर प्रवाहित कर दो जलमें।' इसी समय उसने देखा, सम्मुख खड़ा है कषाय वस्त्रोंमें एक बौद्ध भिक्षु। वह क्षण-भरको ठहर गयी—'भिक्षु, क्या आप स्थानान्तरित न होंगे?'

"नहीं।"

"यही अन्तिम निश्चय है?"

"निश्चय।"

पुनः आज्ञा हुई—'प्रवाहित कर दो जलमें सब सामग्री।' सेवक आगे बढ़ा। इसी समय जलद-गम्भीर शब्द हुआ—'ठहरो।'

सेवक निस्तब्ध खड़ा रह गया।

'मैं कहती हूं, हट जाओ भिक्षु।' और साथ ही सेवकको पुनः आज्ञा हुई। भिक्षुने दृढ़ स्वरमें कहा—'नहीं।' और सेवक उसी प्रकार खड़ा रह गया। राजकुमारीके नेत्रोंसे अग्नि-वर्षा होने लगी—'मेरी अवहेलना? विजय! क्या तुम राज्यका शिष्टाचार भूल गये हो? मैं सिंहलकी राजकुमारी तुम्हें आज्ञा देती हूं—शीघ्रता करो।'

भिक्षुने एक बार नेत्र उठाकर उसकी ओर देखा—'देवानाम् प्रियदर्शिन धर्मपद सम्राट् अशोकका पुत्र तुमको आज्ञा देता है—विजय! तुम हट जाओ।'

'कुमार महेन्द्र!' अनुचर और राजकुमारीने साथ ही अस्फुट स्वरसे कहा।

महेन्द्र नेत्र अवनत किये खड़े थे। राजकुमारीका मुख लज्जासे आरक्त हो गया—'अपने प्राघूर्णिक, सिंहलराज और सिंहल-निवासियोंके प्राघूर्णिकसे क्षमा-याचना करती हूं।' उसने उनके चरणोंमें झुककर कहा।

'कल्याण हो—अमिताभ तुम्हारे हृदयको आलोकित करें।'

फिर दूसरे दिन विशाल जन-समूहके सम्मुख पुनीत बोधि-वृक्षको स्थापित करते हुए कुमार महेन्द्रने अनुभव किया कि उस विशाल जन-समूहके असंख्य नेत्रोंमें भी वे किन्हीं दो नेत्रोंको भुला नहीं पा रहे हैं। उन शत-शत चक्षुओंकी दृष्टि-रेखाओंके सघन जालका प्रभेदन करके आती हुई एक दृष्टि मानो सीधी आकर उनके हृदयमें चुभ रही है।

वृक्ष स्थापित हुआ। सिंहल-कुमारी सखियों सहित स्वर्ण-कलशमें जल लेकर आयी। कुमारने वृक्षका सिञ्चन किया—'आज मैं कर रहा हूं; किन्तु कलसे इसकी शुश्रूषा आप ही को करनी होगी कुमारीजी!' राजकुमारी लजा गयी और फणिज्झक वृक्ष नवप्राण-से पाकर लहरा उठा।

सिंहलके महाराज और महिषीके नेत्र जलसे परिप्लावित हो गये और शत-शत व्यक्तियोंके साथ उनके शिर श्रद्धासे अवनत हो गये।

'युवराज!' महाराजने थोड़ी देर बाद कहा—'दरिद्रकी कुटियापर चलकर मुझे कृतार्थ करें।'

'भिक्षुको युवराज कहकर युवराज कुणालका अपमान न करें, महाराज!' फिर दूसरे ही क्षण उन्होंने कहा—'मैं कुटीपर

जानेकी आज्ञा चाहता हूं, बहन सङ्घमित्रा आपके साथ जायेंगी।' कहकर वे द्रुतगतिसे कुटीकी ओर चल दिये।

फिर एक दिन समुद्रके तटपर—

कुमार महेन्द्र चुपचाप खड़े थे। सम्मुख भारत और सिंहल-के अञ्चलकी पवित्र ग्रन्थि—अपार जलराशि लहरा रही थी। हठीली देवबाला—सन्ध्या आकाशपर निशाका चित्राङ्कन कर रही थी। महेन्द्रने देखा, तूलिकाके एक ही स्पर्शसे चित्रित अन्धकारको प्रभेदित करता विधु-सा मुख, शरीरको आल-बालमें घेरे हुए उज्ज्वल रत्न-जटित श्यामल परिधान, पैरोंमें 'मरमर' के नूपुर और हाथोंमें कुमुदोंके कङ्कण!

सहसा वे वृक्ष-पल्लवकी एक नौका बनाते और फिर उसे उदधिकी लहरोंमें छोड़ देते। एक ही क्षणमें वे देखते कि एक ऊर्मिके साथ वह अत्यन्त ऊपर उठ जाती और फिर नीचे गिर जाती। निमिष-भरमें किसी दूसरी ऊर्मिके साथ तटसे दूर—अत्यन्त दूर जा पहुंचती और फिर दूसरे ही क्षण किसी अन्यके साथ उनकी वह पल्लव-निर्मित नौका पुनः कूलपर लौटकर उनके चरणोंके निकट शिथिल-सी आ पड़ती। महेन्द्र उसे देखते, मुसकराते और फिर उनके धवल अपाङ्गके एक कोणमें दो उज्ज्वल मुक्ता चमक उठते।

सहसा कोई कौतुकपूर्ण हंसीसे उन्हें चौंका देता।

'तुम सिंहल-कुमारी?' महेन्द्रने घूमकर कहा।

'कुमार महेन्द्र बाल्यक्रीड़ामें व्यस्त थे क्या?'

'तुम्हींने तो कहा था न, सिंहल-कुमारी, सिंहलकी वनि-तायें विक्षुब्ध सागरके तटपर अपने नन्हें-नन्हें प्रदीप प्रज्ज्वलित करती हैं—उनके प्रियतमका पग न जाने किस तममय पथपर होगा, यह विचारकर; उन्हें प्रकाशकी एक रेखा देनेके उद्देश्यसे! '

सिंहल-कुमारी मौन।

'इस सागरके इस ओर सिंहल है, उस ओर भगवान् तथागतका भारत है। अपनी नन्हीं नैयापर अपना नाम लिखकर मैं उसे उस पार भेज रहा था। पता नहीं, लहरोंकी किस क्रीड़ाका केन्द्र बनकर, वह उस पार पहुंचकर किस अरुणिम सन्ध्यामें भाई कुणालको मिल जाती। वह उसे उठाकर देखता और जान लेता कि वह मेरी नाव है। किन्तु तुमने तो स्वयं ही देख लिया, राजकुमारी! किस प्रकार मेरी आकांक्षा लहरोंमें उठकर, गिरकर, मध्यसागरमें पहुंच-कर और कूलकी ओर लौटकर जहांसे चली थी, वहीं आकर सो गयी है!'

उनके नेत्र झर-झर झर रहे हैं।

एक क्षण चुप रहकर राजकुमारीने कहा—'दर्शनके उस आदि केन्द्र भारतके दर्शनकी मुझे बड़ी इच्छा है, जिस भूमिपर भगवान् तथागतने जन्म लिया था, जिसके कण-कणमें दर्शनके गहन तत्त्वोंकी मीमांसा अन्तर्निहित है, उसे एक बार सिरसे लगानेकी बड़ी साध है......'

अचानक वह देखती कि महेन्द्र एक धीमा चीत्कार करके भूमिपर गिर पड़े। एक बाण उनका भाल बिद्ध कर गया था। उसने दौड़कर उनके सिरको अङ्कमें ले लिया।

दूसरे ही क्षण पीछेसे अट्टहासका भयानक शब्द हुआ—'आदि कालसे शिव और शक्तिके उपासक सिंहलमें कायरोंके धर्मका उपदेश......?'

'तू श्रमण?' राजकुमारीने क्रोधसे कहा—'क्या यही तेरा वीरोंका धर्म है कि इस एकान्तमें अपने इतने अधिक साथी लेकर आया है?'

अचानक भयङ्कर कोलाहल मच गया और थोड़ी ही देरमें श्रमण अपने साथियों सहित बन्दी था।

कुटीमें मूर्छित महेन्द्रने दृगोन्मेष किया—

'कौन, सङ्घमित्रा?'

'वह तो नहीं है।'

'तुम राजकुमारी?'

'जी।' उसने लज्जासे सिर झुका लिया।

'कितनी सुन्दर थी वह बेला, जब मैं मृत्युके निकट पहुंच गया था।'

'ऐसा क्यों कहते हैं कुमार?' उसने उनके मुखपर अपना हाथ रख दिया—'आपको मेरी शपथ है।'

महेन्द्रने कुछ मुसकराकर कहा—'तब मैं मौन ही रहूंगा, तुम्हारी—अपनी प्राणदात्रीकी शपथकी अवहेलना नहीं कर सकता।'

'मुझे लज्जित न करें, कुमार!'

'नहीं राजकुमारी, कृतज्ञता-प्रकाश करना लज्जित करना कदापि नहीं। सिन्धु-तीरकी वह अनुरागमयी मूर्ति—वह अञ्चलकी शीतल बयार—क्या विस्मरण की जा सकती है? विचार करता हूं, राजकुमारी, यदि इसी प्रकार दो

आंखोंमें स्नेहका प्रकाश देखते हुए अन्तिम निश्वास ले सकता, तो......'

'फिर वही कहने लगे कुमार ?'

'भूल भी तो नहीं पाता......अच्छा, बहन सङ्घमित्रा कहां हैं ?'

'वे राजसभामें गयी हैं, आज श्रमणका निर्णय है न !'

'तब मेरा वहां पहुंचना आवश्यक है।' और वे आवेशमें उठकर चल दिये। राजकुमारी चकित-सी देखती रह गयी।

फिर राजसभामें—

बन्दी श्रमण अपने अनुचरों सहित खड़ा था। सिंहल-राजने अन्तमें निर्णय सुनाया—'राज्यके अतिथि, सम्राट् अशोकके पुत्र, भिक्षु महेन्द्रपर आक्रमण करनेके अपराधमें श्रमणको प्राणदण्ड......'

"ठहरिये महाराज !"—सहसा महेन्द्रने प्रवेश करके कहा।

सङ्घमित्राने दौड़कर महेन्द्रको पकड़ लिया—'भैया—भैया।'

'नहीं, मुझे छोड़ दो बहन !...वह मेरा अपराधी है, महाराज, उसकी दण्ड-व्यवस्था मैं करूंगा।'

महाराजने सिंहासन रिक्त कर दिया।

'श्रमणको बन्धन-मुक्त कर दो और उसके अस्त्र उसे दे दो—' सिंहासनारूढ़ होकर कुमार महेन्द्रने कहा। राजसभा चकित हो गयी।

सङ्घमित्रा पुनः चिल्ला उठी—'भैया-भैया, तुम अभी बहुत निर्बल हो।'

'ठहरो, मौन रहो सङ्घमित्रा। मैं इस समय न्यायासन-पर हूं और वह शिष्टाचार चाहता है।'

सङ्घमित्रा सजल नेत्रोंसे पृथ्वीकी ओर देखने लगी।

'श्रमण !' कुमारने पुनः कहा—'उस दिन रात्रिके अन्ध-कारमें जो कुछ नहीं कर सके, आज उसे दिनके प्रकाशमें करो—देखो, विचलित मत होना। लक्ष्य-साधन करो।' कहकर कुमार सिंहासनसे उतर आये।

श्रमणने धनुष-बाण फेंक दिया—'मुझे क्षमा कीजिये, देव !' वह उनके चरणोंमें गिर पड़ा। समस्त राजसभा सम-वेत स्वरसे कह उठी—

अमिताभकी जय,
सम्राट् अशोककी जय,
कुमार महेन्द्रकी जय !

एक दिन—सन्ध्याके प्रथम चरणके साथ ही महेन्द्र हाथमें भिक्षा-पात्र लेकर निकल पड़ते और एक द्वारके सम्मुख पहुंचते ही देखते कि कोई अपने चञ्चल पगोंके नूपुर शिञ्जित करती हुई अत्यन्त सलज्ज भावसे भिक्षा देती और प्रश्न करती—'आज कुमार किस ओर गये हैं ?'

महेन्द्रने चौंककर सिर उठाया। चन्द्रके धूमिल प्रकाशमें उन्होंने देखा कि सिंहल-कुमारी उनके सम्मुख खड़ी है। उस शीतल समयमें भी उन्हें ज्ञात हुआ कि उनका सम्पूर्ण शरीर जल उठा है। और सिंहल-कुमारीका तो यह नित्यका अभ्यास ही हो गया था कि वह सन्ध्याके बहुत पूर्व ही से अपनी उत्सुकतापूर्ण आंखोंको पथमें बिछाकर द्वारपर बैठी रहती, भिक्षा देती और फिर महेन्द्रकी दिशाके सम्बन्धमें पूछती, 'एक-न-एक दिन वे मेरे द्वारपर आयेंगे अवश्य,' इस आशासे ! आज अपने उसी अभ्यासके कारण वह यह भूलकर बैठी थी—जब उसका चिर-इच्छित याचक स्वयं उसके द्वारपर आ गया था।

और महेन्द्र इतने दिनोंसे जिस निर्बलताको अपने हृदयमें छिपाये चले आ रहे थे, वह इस समय सहसा अट्टहास कर उठी। दिनमें जब वे उपदेश करते रहते, तब शत-शत चक्षुओं-के लक्ष्य बने रहनेपर भी उन्हें प्रतीत होता कि वे किन्हीं दो चक्षुओंका एकमात्र केन्द्र बनकर आत्मविस्मृत-से हुए जा रहे हैं। उस दृष्टिसे मानो वे आजसे नहीं, युग-युगसे परिचित हैं और वह सर्वप्रथम सागर-तटपर, फिर बोधिवृक्षकी स्था-पनाके समय उनके हृदयमें प्रवेश करके वहांपर अपना चिर-निवास-स्थान बना गयी है। अत्यन्त चेष्टा करके भी वे उसको वहांसे निर्वासित नहीं कर पाते। अवश्य ही उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि वे राजद्वार नहीं जायेंगे; किन्तु आज न जाने किस अचेतनताने उन्हें वहीं लाकर खड़ा कर दिया था, जहांपर कभी न जानेकी उन्होंने प्रतिज्ञा की थी। जितना ही वे दूर रहना चाहते थे, उतना ही निकट आता जाता था, उनका हृदय, उस राजकुमारीके—विद्रोह करके आत्मा-के विरुद्ध ! बुद्धिके विरुद्ध !!

एक क्षणके पश्चात् ही भिक्षापात्र 'झन्न' से भूमिपर गिर पड़ा।

'कुमार !' सिंहल-कुमारीने दौड़कर उन्हें सहारा दिया।

'सिंहल-कुमारी !'

उस समय महेन्द्रको अपने हृदयका स्पन्दन तक स्पष्ट सुनाई दे रहा था ।

'कितना दाह है यहां—इस हृदयमें !' राजकुमारी आज विश्वके सम्पूर्ण नियम-उपनियमोंको भूल गयी है ।

'सिंहल-कुमारी ! मुझको उद्भ्रान्त मत करो । मेरे इस विरक्त साधनामय हृदयमें प्रेम कब और कहांसे आ गया, वह तो ज्ञात नहीं हुआ; किन्तु एक दिन मैंने अचानक, अपनी सम्पूर्ण सजगताके साथ देखा कि वहांपर उसका आधिपत्य स्थापित हो गया है—भिक्षु महेन्द्रके विरागी हृदयमें ।·········नहीं, कुमारी नहीं, अब अपनेपर अधिक विश्वास करना, अपनी साधनाकी अधिक परीक्षा लेना भयङ्कर हो सकता है । मैं कल ही भारत लौट जाऊंगा ।' थोड़ी देर चुप रहकर महेन्द्रने फिर कहा—'तुम्हारी वेदनाका मैं अनुभव कर रहा हूं, राजकुमारी ! किन्तु प्रेम—वास्तविक प्रेम वही है, जो अन्तर ही में रहता है और अन्तर ही में फलता-फूलता है । वह सामीप्य चाहता है; किन्तु आत्मिक, मानसिक, शारीरिक नहीं । शारीरिक पार्थक्य अथवा सामीप्य दोनों ही उसके लिए एक-से हैं, इसीलिए दुःखसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं, वियोगका वहां कोई स्थान नहीं, वह चिरसुखमय है, अनन्त आनन्दप्रद !··· कल निश्चय ही मुझे जाना होगा ।'

सहसा राजकुमारीका अश्रु-प्रवाह रुक गया—'तो तुम जाओगे ?'

'हां ।'

'तब जाओ, मेरे निर्वाण-पथके पथिक ! तुम्हारे मार्गमें मैं प्रत्यूह बनकर नहीं उपस्थित होऊंगी । मैं प्रहृष्टमना होकर तुम्हें विदा देती हूं······तुम्हारा वियोग ही मुझे साधनाका पथ दिखला देगा । मैंने तुम्हें बाहुपाशमें बद्ध करके रखना चाहा था; किन्तु वहांसे तो तुम भाग चले, अब नयनोंमें बन्द करके रखूंगी, देखूं, तुम वहांसे कैसे भागते हो !'

महेन्द्रके नेत्र जलपूर्ण हो गये ।

'आप रो रहे हैं कुमार ? जो प्रेम आप मुझे देते, वह अब विश्वके समस्त आर्तहृदयोंपर निछावर कर दीजियेगा । मैं नित्य सागरके तटपर बैठकर दूर, सुदूर—जहां क्षितिजपर मेघ और सागर-जल-राशि परस्पर आलिङ्गन करने लगते हैं—उसके भी उस पार बसे हुए दार्शनिक भारतके दर्शन किया करूंगी । एक दिन सन्ध्याके समय सिंहलके तटपर अनेक पोत आकर खड़े हो जायेंगे । मैं देखूंगी कि हिमालयसे लेकर कुमारिका तक फैले हुए सुविशाल मौर्य-साम्राज्यमें अपनी-अपनी वस्तुयें विक्रय करके, सिंहलके व्यापारी मुक्ताओंकी मञ्जूषा लिये लौट आये हैं—उनके वर्षोंसे अन्धकाराच्छादित गृह आलोकित हो उठे हैं और उनकी गृहिणियां आरति-थाल लेकर सागर-तटपर आयी हैं···देखूंगी कि मेरा पथिक अब भी नहीं लौटा है । फिर, मेरी प्रतीक्षा पुनः आरम्भ हो जायेगी···एक वर्ष, दो वर्ष, सम्पूर्ण जीवन-भर !'

राजकुमारी अधिक न कह सकी, उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया ।

कुमार महेन्द्र धीरेसे कुटीकी ओर चल दिये ।

दूसरे दिन सिंहलका समुद्रतट असंख्य नर-नारियोंसे परिपूर्ण हो गया । कुमार महेन्द्रको भेजने महाराजके पोतको लेकर सिंहलके महानाविक स्वयं भारत जायेंगे । प्रस्थानका समय आ गया । उसी समय मङ्गल-वाद्य बजने लगे । सिंहलके महाराजने अवरुद्ध कण्ठसे निवेदन किया—'आदिकालमें एक बार भारतने सिंहलपर सामरिक विजय प्राप्त की थी और अब उसने उसपर आध्यात्मिक विजय प्राप्त की है । सम्राट् अशोकसे कहियेगा कि उन्होंने मुझपर······।' वे अधिक न कह सके और बालकोंकी भांति रो पड़े । महानाविकने आकर निवेदन किया—'पोत तैयार है ।' शतशत कण्ठोंसे जयध्वनि हुई । कुमारने एक बार उत्सुकतापूर्ण दृष्टिसे विशाल जन-समूहकी ओर देखा । किन्तु उनकी दृष्टि निराश होकर क्षण-भर ही में लौट आयी । वे पोतकी ओर चल दिये । समीप पहुंचकर उन्होंने देखा कि राजकुमारी पोतको पकड़े हुए चुपचाप खड़ी है ।

'मैं जा रहा हूं, राजकुमारी !' उन्होंने धीरेसे कहा ।

छिपाकर अपने अश्रु पोंछते हुए राजकुमारीने मन्द स्मितके साथ महेन्द्रको प्रथम बार भिक्षु कहकर सम्बोधित करते हुए कहा—'भिक्षु, जाते समय हृदय लिये जा रहे हो; किन्तु दे कुछ भी न सके !'

महेन्द्रने शून्य दृष्टिसे अन्तरिक्षकी ओर देखते हुए कहा—'दे सकें, भिक्षुओंके पास ऐसा होता ही क्या है, राजकुमारी ?' और फिर पोतपर आरूढ़ हो गये ।

———



इतिहासपर खाद्यपदार्थोंका प्रभाव

मानव-जीवनपर रसोईघरका काफी प्रभाव पड़ता है। रासायनिक खाद्यके कारण ही फ्रान्सकी राज्य-क्रान्ति हुई थी और भविष्यमें इसी एक कारणसे जर्मनीमें भी राष्ट्र-विप्लव हो सकता है। प्याज खानेके कारण नेपोलियनको एक बड़े युद्धमें पराजित होना पड़ा था। ब्रिटेनके इस भूमण्डल-व्यापी साम्राज्य-विस्तारका मूल कारण शलगम है। मुख्यतः खाद्यमें परिवर्तन होनेके कारण ही बन्दरका कुरूप मनुष्यके रूपमें परिणत हो गया। मोटर ड्राइवर अगर अधिक परिमाणमें सलगम, हरे साग और तरकारियां खायें, तो बहुत कम दुर्घटनायें हों—आधुनिक खाद्य-विशेषज्ञोंका यही मत है।

शायद किसीको इस बातका विश्वास न हो, पर यह सच है कि सृष्टिके आरम्भमें जिस दिन हव्वाको निषिद्ध फल खानेके कारण स्वर्गसे निकाला गया, उसी आदिम युगसे मानव जातिके इतिहासमें खाद्य अनेक विचित्र घटनाओंके लिए जिम्मेवार है।

प्याजके साथ भेड़का मांस खानेके कारण नेपोलियन-को लिपजिगके युद्धमें हारना पड़ा था। प्याज खानेसे उनकी विचार-शक्ति नष्ट हो गयी। मांसके संरक्षणके लिए मसाले-की खोजमें बाहर निकलनेपर कोलम्बसने अमेरिकाका पता लगाया।

१९०९ में रूस-जापान-युद्धमें जापानकी विजय मुख्यतः दूध और ताजी साग-सब्जीके कारण हुई। उस युद्धके पहले जापानी सेनाके एक चौथाई सैनिक बेरीबेरी रोगसे पीड़ित रहते थे। इसका कारण यह था कि वे मशीनका छंटा चावल खाते थे।

स्वीडेनसे गाजर मंगाकर इंगलैण्डमें बैलों और भेड़ोंको खिलाया जाता था। इसलिए इंगलैण्डवालोंको कभी खाद्य-का अभाव नहीं रहा। और इसीलिए आज अंगरेज पृथ्वीके एक चौथाई भागपर शासन कर रहे हैं।

मिश्रकी ममियोंके दांतोंकी परीक्षा कर वैज्ञानिकोंने यह प्रमाणित किया है कि ईसा मसीहके चार हजार वर्ष पहले ही मिश्रका अधःपतन शुरू हो गया था। और उसका मूल कारण था विटामिन-हीन खाद्य खाना।

क्लियो पेट्राके लिए सुन्दर भोजन तैयार करनेके लिए मार्क एण्टनीने उनके रसोइयेको पुरस्कार-स्वरूप एक शहर दिया था।

रोम साम्राज्यके ध्वंसका कारण रोमन राजाओंका पेटू होना था। कहा जाता है कि गयूस जुलियस बेरासमेक्सिमस हर रोज आधा मन मांस खाते थे और छः गैलन शराब पीते थे। इस तरह गुरु भोजन करनेके फलस्वरूप रोमन राजाओं-की तोंद निकल आयी और उनकी बुद्धि भी कुछ कम हो गयी। डिडियस जब सम्राट् हुए, तब वह खतरेकी आशङ्कासे कानून बनाकर कम भोजनकी चेष्टा करने लगे। पर राजाके प्रधान दरबारी अपना भोजन कम करनेको तैयार नहीं हुए। फलस्वरूप छः महीनेके अन्दर ही डिडियसको किसीने गुप्त रूपसे मार डाला। इसी प्रकार अति भोजन करनेके कारण ही रोमन क्षुधार्त असभ्य जर्मनोंके एक दल द्वारा पराजित हुए।

आज जर्मनीकी खाद्य-सामग्रीकी खोजने इतिहासमें नये-नये अध्यायोंकी सृष्टि की है। बहुतोंका मत है कि यूक्रेनके गेहूंके खेतोंके लिए ही जर्मनीने जेकोस्लोवाकियाको जीता। डेञ्जिग और पोलैण्डपर भी इसीलिए अधिकार जमाया। जापान चीनके साथ वहांके धानके खेतोंको अपने काबूमें करनेके लिए युद्ध कर रहा है।

जर्मनीमें रासायनिक खाद्य तैयार करनेकी बराबर परीक्षा की जा रही है। वहांके वैज्ञानिकोंने लकड़ीके बुरादेसे रोटी, चीनी, यहां तक कि चाकलेट तैयार करनेकी भी प्रणाली खोज निकाली है। १७८९ में फ्रान्सके भाग्यमें जो बदा था, वही आज जर्मनीमें भी होगा। फ्रान्सके राजाओंने फेंके हुए कूड़ेसे जिलेटिनकी तरह एक प्रकारका खाद्य तैयार कर गरीब किसानोंकी क्षुधा-तृप्ति करनेकी चेष्टा की। फलस्वरूप उन क्षुधार्त्त किसानोंने फ्रान्सकी सरकारके विरुद्ध बगावत कर दी।

जर्मनीके लोग बहुत आलू खाते हैं, इसलिए १८४८ की जर्मन राज्य-क्रान्ति सफल नहीं हो सकी। यह मत वहांके एक प्रसिद्ध खाद्यविद् लुडविग एण्डियाज फरवाशका है।

खाद्य-परिवर्तनके फलस्वरूप हमारे मुखकी आकृति और गठनमें बहुत परिवर्तन हुआ है। प्रागैतिहासिक युगके मनुष्य कच्चा या अधपका मांस खाते थे, इसलिए उनके चेहरे बदसूरत होते थे। अब अच्छी तरह पके मांस तथा अन्य नरम चीजोंके खानेसे मनुष्यके मुखके गठनमें रूपान्तर हो गया। प्राचीन कालके जङ्गली मनुष्योंकी अपेक्षा आजके मनुष्यका चेहरा कहीं सुन्दर है। चबानेवाली मांस-पेशी दुर्बल हो गयी और दांत छोटे-छोटे तथा घने हो गये हैं। मुख अण्डाकार हो गया है और ठुड्डी सुन्दर हो गयी है। नरम खाद्य खानेसे सिरके अवयवोंपर कम ज़ोर पड़ता है, इसलिए सिर गोल और कपाल ऊंचा हो गया है, और कोटरोंमें पड़ी आंखें कुछ ऊपर उठ आयी हैं। खाद्य-परिवर्तनके फलस्वरूप मनुष्यके चेहरेमें और भी परिवर्तन हो सकते हैं। उस समयके मनुष्य म्यूजियमोंमें हमारे चेहरोंके माडल देखकर घृणासे नाक सिकोड़ेंगे। खाद्यके विषयमें मनुष्य क्रमशः अभिज्ञता प्राप्त कर रहा है और यह आशा की जाती है कि भविष्यके मनुष्य हम लोगोंकी तुलनामें मानसिक और शारीरिक शक्तिमें बहुत बड़े होंगे। प्रागैतिहासिक मनुष्योंके कङ्कालोंकी परीक्षा करके देखा गया है कि वे निकृष्ट भोजन करनेके कारण रिकेट और बात-रोगसे पीड़ित रहते थे। खाद्य-पदार्थोंके गुण-अवगुणका आविष्कार होनेसे अनेक असाध्य और कष्टसाध्य रोग आराम हो गये हैं। आयोडिन-युक्त खाद्यने गलगण्डको और नीबू एवं चूनेने स्कार्वि रोगका दमन किया है। दूधसे राजयक्ष्माके रोगियोंकी संख्या कम हो गयी है (भारतमें नहीं), रतौन्धी और क्षीणदृष्टिका कारण खाद्यपदार्थकी खराबी है।

अकालके समय भारत, बर्मा और स्वीडेनके किसान पेड़ोंकी छाल खाकर रहते हैं। आजकल भी अफ्रीकामें वे स्त्रियां, जिन्हें बच्चे हो गये हैं, राख खाती हैं। राखमें केलशियम या चूनेके रहनेसे बच्चोंके दांत और हड्डीके गठनमें बहुत मदद पहुंचती है।

अफ्रीकाके असभ्य अधिवासी पहले अपने शत्रुका बधकर उसे आगमें पकाकर खाते थे। वर्तमान युगका मनुष्य भी बकरा, भेड़ा, मुर्गी आदिके सिवा और भी नाना प्रकारके जीव-जन्तुओंका भक्षण करता है।

राजनीतिज्ञोंकी परीक्षा

सभी देशोंमें, वहांकी व्यवस्थापिका सभाओंमें कुछ लोग अपने पैसेके बलसे अथवा अन्य उपायोंसे निर्वाचन आन्दोलन-में सफलता प्राप्त कर पहुंच जाते हैं, हालां कि उन्हें राजनीतिक विषयोंका बहुत कम ज्ञान रहता है। वे देशकी शासन-व्यवस्थामें कुछ मदद नहीं पहुंचाते, बल्कि अपने पदका दुरुपयोग कर अपना स्वार्थ-साधन करते हैं। ऐसे लोगोंके लिए 'ग्लासगो इवनिङ्ग टाइम्स' में एक लेखकने यह सुझाव रखा है कि जो लोग पार्लमेण्टका सदस्य होना चाहते हैं, उनकी वकीलों और डाक्टरोंकी तरह परीक्षा होनी चाहिए। उसमें उत्तीर्ण होनेपर वे सदस्य होनेके लिए उपयुक्त समझे जायं। उसने बतलाया है कि उस परीक्षाका निम्न आशयका प्रश्न-पत्र होना चाहिए:—

१—क्या आप राजनीतिमें रुपयेके लिए, देशके लिए प्रवेश कर रहे हैं?

२—१८८२ में ग्लेडस्टोनने क्या कहा था?

३—आप कामन्सको एक पार्टी समझते हैं अथवा दावतमें शामिल होनेके लिए आये हुए मेहमानोंकी मजलिस?

४—यदि पार्लमेण्टके सदस्योंको वेतन न मिले, तो क्या फिर भी आप राजनीतिमें दिलचस्पी लेंगे? इस विषयमें अपनी स्पष्ट राय लिखिये।

५—आप जो कुछ कहते हैं, क्या उसके अनुसार कार्य करते हैं?

६—सम्राट्, देश और निर्वाचन-क्षेत्रमेंसे किसको आप सबसे अधिक महत्त्व देते हैं?

चोरों और ठगोंसे बचनेके लिए

लाखों जन-संख्यावाले बड़े-बड़े नगरोंमें, जहां पुलिस काफ़ी संख्यामें होती है, चोर, उठाईगीरे, गिरहकट, ठग और झांसेबाज भी बहुत ज्यादा तादादमें जमा हो जाते हैं। कलकत्तेमें इस तरहके लोगोंके हथकण्डोंसे जनताको सावधान करनेके लिए पिछले दिनों पुलिसके एक जिम्मेदार अधिकारीने कितने ही उपायोंका सङ्केत किया था। इसमें तो सन्देह ही नहीं है कि पुलिसका काम चोरों और गिरहकटोंसे लोगोंको बचाना और पता लगाकर उन्हें ठिकाने पहुंचाना है। पुलिस यह सब करती भी है; परन्तु इस तरहकी दुर्घटनाओंको रोकनेके लिए जितना कर्तव्य पुलिसका है, उससे कम जनताका नहीं है। क्षतिसे बचनेके लिए तो जनताको ही सतर्क रहना होगा।

न्यूयार्क (अमेरिका) में पुलिसने नागरिकोंको चोरों, गिरहकटों और ठगोंके हथकण्डोंसे बचनेके लिए कितनी ही बातोंका निषेध किया है। इनका उल्लेख कम मनोरञ्जक न होगा:—

घरसे बाहर जानेके समय खिड़कियोंपर पर्दा न डालो और न कोई ऐसा काम करो, जिससे यह मालूम हो कि आप कितने समयमें लौटेंगे। चालाक चोर इस जानकारीसे लाभ उठा सकते हैं।

अपनी चाबियोंको चटाईके नीचे, दरवाजेके ऊपर या लेटर बक्समें मत छोड़ जाओ।

रसोईके पासकी आलमारियोंमें ताला लगाना मत भूलो।

दरवाजेके बाहर ताला मत लगाओ, क्योंकि उससे आपके घरमें न होनेका पता चल जाता है।

रातको घरसे बाहर मत जाओ। यदि जाना ही हो, तो कमसे कम एक बत्ती जलती छोड़कर जाओ। साधारणतः चोर उस मकानमें नहीं घुसते, जिसमें प्रकाश होता है।

अगर आपकी चाबी खो गयी हो या किसीने उसे चुरा लिया हो, आपको नया ताला लानेसे चूकना नहीं चाहिए।

दरवाजेको भीतरसे बन्द किये बिना मत रहो। इससे स्त्रियोंके लिए भय नहीं रहता।

बिछौनेके नीचे, तस्वीरोंके पीछे, गद्दोंमें या दूसरी चीजोंमें न तो रुपये रखो और न अन्य मूल्यवान् वस्तुयें। घरमें घुसते ही चोर पहले इन्हीं स्थानोंकी खोज करते हैं।

जिस समय चोर चोरी करनेके प्रयत्नमें हो, उत्तेजित मत हो, प्रकाश भी मत करो, चुपचाप टेलीफ़ोन द्वारा या किसी अन्य उपायसे पुलिसको खबर करो।

एजेण्ट, कनवेसर या बिजली-घरके कर्मचारी आदिके रूपमें जो लोग आयें, उन्हें अपने कमरेमें तब तक मत आने दो, जब तक यह निश्चय न हो जाय कि वे सचमुच वही हैं।

अपरिचित व्यक्तियोंको यह मत बतलाओ कि पड़ोसी कहीं गये हुए हैं।

अजनबी आदमियोंसे ऐसी कोई चीज न खरीदो, जो बहुत सस्ती हो। अक्सर यह पाया जाता है कि ऐसी चीजें या तो बनावटी होती हैं या चोरीकी। अगर जरूरत हो, तो तुरन्त ही पुलिसको भी बुलाना चाहिए।

घरेलू नौकरोंको रखनेसे पहले उनके विषयमें अच्छी तरह जांच कर लो। यह जांच टेलीफोनपर नहीं होनी चाहिए, क्योंकि अक्सर नौकरीके उम्मेदवार अपने मतलबका टेलीफोन नम्बर बतला देते हैं।

जिन व्यक्तियोंके धनी मालूम होने, बातचीत करनेमें कुशल होने या शिष्टाचार दिखलानेके कारण आप आकर्षित हुए हों, उनपर विश्वास मत करो। यह याद रखो कि अप टू डेट चोर कभी चोर नहीं मालूम होते।

बाहर जाते समय कपड़ोंको हवामें बाहर मत टांग जाओ।

किसी दूकानमें जब सौदा देखने लगो, अपना हेण्डबेग हाथसे अलग मत रखो। चोर हमेशा ही ऐसे अवसरकी ताकमें रहते हैं।

रास्तेमें या मोटरमें मत सोओ। इससे गिरहकटोंको अवसर मिल जाता है।

किसी भी आदमीके पूछनेपर जेबसे घड़ी निकालकर समय बतलाते रहनेकी आदत छोड़ो। इससे चोरोंको घड़ी झटककर भाग जानेका मौका मिलता है।

कहीं बाहर जाना हो, तो अपने ग्वाले और अखबारके हाकरको उसकी सूचना पहलेसे ही अवश्य दो; क्योंकि आपकी अनुपस्थितिका इससे अच्छा सबूत दूसरा नहीं हो सकता कि आपके दरवाजेपर दूध रखा हो और अखबार पड़ा हो।

पास बैठे हुए किसी व्यक्तिको अपने चेहरेके पास अखबार मत लाने दो और यह समझ लो कि वह व्यक्ति या तो आपकी किसी चीजकी ताकमें है या आपकी कोई चीज उठानेकी कोशिशमें लगे हुए किसी गिरहकटको आपकी निगाहसे छिपा रहा है।

ये सूचनायें जितनी उपयोगी न्यूयार्कके नागरिकोंके लिए हैं, उतनी ही अन्य बड़े नगरोंके निवासियोंके लिए भी हैं।—माताप्रसाद अग्रवाल, बी० ए०।

युद्ध-क्षेत्रमें कुत्तोंकी सेवा

युद्धमें कुत्ते कितनी मूल्यवान् सेवायें करते हैं, इसे यहां बहुत कम लोग जानते हैं। अर्सा हुआ, हरबिन (मञ्चूको) के एक समाचारमें बतलाया गया था कि "वहां कुत्तोंकी भी बन आयी। रक्षा-सम्बन्धी सैनिक प्रदर्शनमें लगभग १००० कुत्तोंने भाग लिया, सारे नगरमें परेड की। इन सब कुत्तोंको युद्धके लिए खास तौरसे शिक्षा दी गयी है।" उन्हीं दिनों जर्मनीके एक समाचारसे मालूम हुआ था कि वहां युद्धके लिए ९०००० कुत्तोंको तैयार किया जा रहा है। कहा तो यहां तक गया था कि जर्मनीकी पैदल सेनाके प्रत्येक रेजिमेण्टके साथ एक बटालियन कुत्तोंकी भी रहती है। आस्ट्रियामें सैनिक शिक्षा पाये हुए कुत्तोंका महत्त्व इतना अधिक समझा जाता था कि उन्हें गैसके नकाब तक पहनाये जाते थे। इंगलैण्डमें मेजर रिचर्डसनका स्कूल कुत्तोंको सैनिक कार्योंकी शिक्षा देनेके लिए मशहूर ही है।

मनुष्यने जबसे दूसरोंपर चढ़ाइयां करना सीखा है, कुत्ते भी युद्ध-क्षेत्रमें जाते रहे हैं। ईसासे ४००० वर्ष पहलेके जो लेख मिश्रमें दीवालोंपर पाये गये हैं, उनसे प्रकट है कि आक्रमण होनेपर मिश्र देशके निवासी शत्रुओंको भगानेके लिए जङ्गली कुत्तोंसे काम लेते थे। केल्ट लोग बड़े खूंख्वार कुत्ते पालते और उनके गलेमें नुकीले तकुएदार पट्टे बांधकर रखते थे और जब कोई शत्रु चढ़कर आता, उसपर इन कुत्तोंको छोड़ देते थे। इंगलैण्डके राजा ८ वें हेनरीने स्पेनके राजा ९ वें चार्ल्सके पास ४०० कुत्ते भेजे थे और ये कुत्ते इतनी बहादुरीसे लड़े कि फ्रान्सीसियोंको मैदान छोड़कर वहांसे भागना ही पड़ा। फ्रेडरिक महान्‌ने सबसे पहले इस बातको समझा कि आधुनिक ढङ्गकी लड़ाईमें भी इन कुत्तोंका मूल्य हो सकता है। उन्होंने कुत्तोंसे सन्तरियों, हरकारों और एम्बुलेन्सके सहायकोंका काम लिया। वर्तमान महासमरमें कुत्ते क्या काम कर रहे हैं, इस विषयका विवरण यद्यपि अभी तक नहीं आया है, तथापि गत महासमरमें १९१४ से १९१८ तक कुत्तोंने सेनाके साथ रहकर अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य बड़ी सफलताके साथ किये थे।

फ्रान्समें जब खाइयोंमें युद्ध हो रहा था, ये कुत्ते रेडक्रास और एम्बुलेन्स दलके साथ रहते थे। उनकी सूंघने और सुननेकी शक्ति साधारणतः मनुष्यसे अठगुनी होती है, इसीलिए वे रात-दिन घायलोंका पता लगानेमें व्यस्त रहते थे। कुत्तोंको मुर्दा और जिन्दा आदमीको पहचाननेका अभ्यस्त बना दिया जाता है और यह भी सिखला दिया जाता है कि जब वे किसी घायलके पास पहुंचें, तब भूंकें नहीं। उनके पास प्राथमिक उपचारका सामान तो रहता ही था, वे घायल सिपाहीके पास जाकर खड़े हो जाते। सिपाही यदि स्वयं इस अवस्थामें होता कि पट्टी बांध सके, तो बांध लेता। इसके बाद वह कुत्ता वर्दीमेंसे एक चिथड़ा फाड़कर भाग जाता और उधरसे स्ट्रेचरवालोंके साथ लौटता। इस तरह कई कुत्तोंने सैकड़ों सिपाहियोंकी जान बचायी। फ्रान्सकी सेनाके एक कुत्तेने दो दिन लगातार कोशिश करनेके बाद ९ ऐसे घायलोंका पता लगाया, जिन्हें और कोई नहीं खोज सकता था और जो लाशोंके ढेरमें दबे हुए थे। बेल्जियमके एक फौजी कुत्तेने एक सालसे भी कम समयमें २००० सिपाहियोंकी प्रायः रक्षा की थी।

ब्रिटिश सेनाके साथ एरीडेल जातिके जो फौजी कुत्ते रहते थे, उनसे स्काउटों और सन्तरियोंका काम लिया जाता था। उनके कान और नाक इतनी तेज थी कि वे आध मील दूरसे ही सुन और सूंघ लेते। शत्रु और मित्र सैनिककी वर्दी

तो वे पहचान ही लेते थे, उनकी स्मृति भी इतनी अच्छी थी कि २०० शब्दों तककी आज्ञाको वे समझ लेते और उसका पालन करते थे। तोपके गोलोंका उन्हें डर नहीं लगता था और टोह लगाकर जब वे लौटते, धीरेसे भूंककर पहरेदारोंको यह बतलाते कि कई सौ गज दूर खाइयोंसे जर्मन सैनिक अन्धकारमें आक्रमण करनेके लिए रवाना हो चुके हैं। शत्रु अपनी मशीनगनोंको छिपाकर जहां मोर्चा लगाते, वहां ये फौजी कुत्ते स्काउटोंको पहुंचा देते थे।

बेल्जियममें जिस समय फ्लेण्डर्सके क्षेत्रमें युद्ध चल रहा था, शेफर्ड नामक जातिके कुत्ते मशीनगनोंको खींचते थे। अनुभव यह बतलाता है कि जिस समय तोपें आग उगल रही हों, घोड़ोंकी अपेक्षा कुत्ते अधिक काम देते हैं। वे शत्रुसे बचाते तो हैं ही, उसके हाथ तोपें भी नहीं पड़ने देते। रूसमें गैसके नकाब पहने हुए ये फौजी कुत्ते सनसनाती हुई गोलियों और गैसके बीचसे अपना रास्ता तयकर सैकड़ों कारतूस अपने सैनिकोंके पास पहुंचाते थे। इसी तरह इटलीमें जो सैनिक पहाड़ोंपर, मनुष्यों और घोड़ोंके लिए दुर्गम और कहीं-कहीं अगम पहाड़ोंपर मोर्चा बनाकर डटे हुए थे, उनके पास रसद पहुंचानेका काम फौजी कुत्तोंसे लिया जाता था। फौजी कुत्ते ४५ पौण्ड गोली-बारूद ले जा सकते हैं और साधारण तरीकेसे टेलीफोनका तार भी बिछा सकते हैं।

अमेरिकासे यद्यपि कोई कुत्ता समुद्र-पार नहीं भेजा गया था, तथापि कितने ही कुत्ते छिपाकर वहां पहुंचा दिये गये थे और उन्होंने युद्धमें सराहनीय सेवा की थी। एक कुत्ता विङ्ग तो कोरीडनके केम्पमें ही पैदा हुआ था। एक मशीन-गन कम्पनीने उसे अपने साथ रख लिया और बादमें उसे फ्रान्स आना पड़ा। इस फौजी कुत्तेको ९ क्षेत्रोंमें काम करना पड़ा था। जहरीली गैसके आक्रमणका पता लगानेकी इस कुत्तेमें विचित्र शक्ति थी। इधर आक्रमण हुआ नहीं कि विङ्गको उसका पता चल जाता। उसने कितनी ही बार चेतावनी देकर सैकड़ों अमेरिकन सैनिकोंको बचाया। जहरीली गैससे स्वयं विङ्गको बड़ी हानि हुई थी; परन्तु वह बहुत दिनों तक जीवित रहा और उसने कई बार सम्मान पाया। संसारमें केवल विङ्ग ही एक ऐसा कुत्ता था, जिसे फौजी भत्ता मिलता था और जिसे सरकारने पदक दिया था। विङ्ग जन्मसे फौजी कुत्ता था, फौजी कुत्तेकी हैसियतमें ही उसका अन्त हुआ और पूरे फौजी सम्मानके साथ ही उसे दफन किया गया।

वर्तमान महासमरसे पहले यूरोपके प्रायः सभी देशोंमें फौजी कुत्ते तैयार किये जा रहे थे। कहते हैं, फ्राङ्कफर्ट (जर्मनी) में इन कुत्तोंका जो स्कूल है, उसमें २००० कुत्तोंको एक साथ शिक्षा दी जाती थी। संसारमें अपने ढङ्गका यह सबसे बड़ा स्कूल है। जेना नामक स्थानमें फौजी कुत्तोंका सरकारी अस्पताल भी है। फ्रान्स, इटली, बेल्जियम, हालैण्ड और बलगेरियामें कुत्तोंको फौजी शिक्षा देनेके लिए कालेज हैं। टोह लगाने जाना, भयावह स्थानोंमें होकर निकलना, खबर और रसद पहुंचाना, ऊंची-नीची जमीनमें मशीन-गनोंको खींचना और गोली-बारूद ले जाना, शत्रुके सैनिकोंको हथियार छोड़ देनेके लिए विवश करना, उन्हें पकड़ लेना और रोक लेना, निश्चित समयपर फूटनेवाले साधारण और गैसके बमोंको ले जाना और उन्हें शत्रुकी लाइनोंमें रख आना—ये सब काम हैं जिनकी शिक्षा इन कालेजोंमें फौजी कुत्तोंको दी जाती थी।

समाचार-पत्रोंकी स्वाधीनता

समाचार-पत्रोंने अपनी स्वतन्त्रताके लिए कितनी ही बार बड़े साहससे काम लिया है। इन साहसपूर्ण कार्योंके सिलसिलेमें "फ्राङ्कफर्टर जीतुङ्ग" नामक जर्मन पत्रकी घटना हमारे सामने है, जो १९२३ में घटित हुई थी। १९२३ में फ्रान्सीसी जर्मनीके रूर प्रान्तपर चढ़ गये थे और फ्राङ्कफर्ट नामक स्थानमें पहुंच गये थे। वहांके नागरिकोंने इसका बड़ा प्रतिवाद किया, दङ्गा हुआ और कितने ही नागरिक गोलीके शिकार हुए। फ्रान्सीसी सेनापतिकी आज्ञासे एक मेजर "फ्राङ्कफर्टर जीतुङ्ग" पत्रके दफ्तरमें गया और सम्पादकोंको पत्रमें जनसाधारणके लिए एक चेतावनी छापनेकी आज्ञा दी। एक घण्टा पीछे वह नोटिस फ्रान्सीसी सेनाके हेड क्वार्टरमें वापिस पहुंच गया। उसके साथ कागजकी स्लिप नत्थी थी, जिसपर लिखा हुआ था—"फ्राङ्कफर्टर जीतुङ्ग" का सम्पादक-मण्डल आपको इस पत्रके साथ लौटाया हुआ नोटिस भेजनेके लिए धन्यवाद देता है, परन्तु अत्यन्त खेद इस बातका है कि उसे छापा न जा सकेगा; किन्तु इससे नोटिसकी उपयोगिताके सम्बन्धमें कोई बात नहीं समझनी चाहिए।

फ्रान्सीसी सेनापतिके लिए सम्पादकका यह पत्र पाकर चुप हो जाना असम्भव ही था। वे क्रोधसे भर गये। थोड़ी देर पीछे कितने ही पदक लगाये हुए एक फ्रान्सीसी जनरल चरमराता हुआ समाचार-पत्रके दफ्तरमें पहुंचा और धमकी देकर कहा—"मैं आज्ञा देता हूं कि यह नोटिस कल सवेरे पहले पृष्ठपर चार कालमोंकी चौड़ाईमें खूब मोटे टाइपमें छापा जाय।"

सम्पादकने उत्तर दिया—"आप भ्रममें हैं। फ्राङ्कफर्टर जीतुङ्गको कभी किसीका हुक्म नहीं मिला। आप पत्र जब्त कर सकते हैं, प्रेस नष्ट कर सकते हैं, इमारत जला सकते हैं और सम्पादकोंको गोलीसे उड़ा सकते हैं; परन्तु यह कोई नहीं कह सकता कि पत्रमें क्या छापा जाय और क्या नहीं।"

यह सुनना था कि फ्रान्सीसी जनरल आगबबूला हो गया। काफी गर्जन-तर्जनके बाद अन्तमें उसे झुकना पड़ा। उसने सोचा, पत्रको नष्ट कर देने और सम्पादकोंको फांसी दे देनेसे भी लाभ क्या होगा। आखिर जनताको सूचना ही तो देनी है।

जनरलका पारा उतर आनेपर सम्पादकने कहा—"अब, अगर आप भलमनसाहतके साथ यह नोटिस छापनेके लिए कहें और अगर हम यह समझें कि लोगोंके फायदेके लिए उसे छापना ठीक है, तो हम उसे जब, जहां ठीक समझेंगे, छाप देंगे।"

इसपर फ्रान्सीसी जनरलने क्षमा-याचना की और इस विवादका अन्त यहीं हो गया।

जर्मनीमें, हिटलरके जर्मनीमें वर्तमान महासमर आरम्भ होनेसे पहले ही समाचार-पत्रोंकी यह स्वतन्त्रता केवल स्मृतिके रूपमें रह गयी थी। फ्राङ्कफर्टर जीतुङ्ग भी हिटलर-शाहीसे अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षा नहीं कर सका था।

इस घटनाके कई साल बाद फ्राङ्कफर्टर जीतुङ्गके सम्पादक अमेरिका गये और वहांके एक बड़े अखबारके सम्पादकसे समाचारपत्रोंकी स्वाधीनताके सम्बन्धमें बातचीत की। अमेरिकन पत्रके सम्पादकने कहा—"सब जानते हैं कि पत्रमें वही लिखना होगा, जो उसका प्रकाशक चाहता हो। वैसा न लिखा जाय, तो अपना स्थान खाली कर जाना पड़े।" जर्मन पत्रकारके चकित होनेपर अमेरिकन पत्रके सम्पादकने कहा—"आप इस बातको समझ नहीं सकते; क्योंकि जर्मनीमें समाचारपत्रोंको स्वतन्त्रता नहीं है।"

जर्मन पत्रकारने जब यह कहा कि यद्यपि जर्मनीकी नेशनल प्रेस पालिसी है, तथापि वहां स्थानीय सेंसर नहीं है और जर्मन पत्रकारको स्वयं यह निश्चय करना होता है कि जन-हितके ख्यालसे उसे कब अपने कामपर कुछ प्रतिबन्ध लगा लेने चाहिए, तब अमेरिकन पत्रकारको बड़ा आश्चर्य हुआ। बात-चीतके सिलसिलेमें जर्मन पत्रकारने प्रश्न किया—"समाचार-पत्रोंकी स्वतन्त्रता आपके यहां वास्तवमें कितनी है?"

अमेरिकन पत्रकारने कहा—"स्वभावतः हमें कुछ बातोंका ख्याल रखना ही पड़ता है। हमें प्रकाशकका ख्याल रखना पड़ता ही है और विज्ञापनदाताओंका भी। परन्तु अगर हम सहमत न हों, तो किसी भी अन्य पत्रमें काम कर सकते हैं। इससे हमें स्वतन्त्रताकी अनुभूति होती है।"

अमेरिकन पत्रकारकी दृष्टिमें इस बातका बड़ा महत्त्व था कि पैसोंवाली नौकरी न छोड़नेकी आवश्यकताके सिवाय अन्य कोई उसपर दबाव न डाले। इस सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट करते हुए जर्मन पत्रकारने अपने पत्र फ्राङ्क फर्टर जीतुङ्गकी २७ जनवरी सन् १९३८ की संख्यामें प्रश्न किया था—"क्या किसी व्यक्तिके लिए यह गौरवपूर्ण है कि वह सम्पूर्ण राष्ट्रके सामूहिक ध्येयके निमित्त अपनेको अर्पण कर देनेके बजाय पैसोंको दृष्टिमें रखकर किसी व्यक्तिके स्वार्थों और इच्छाओंको आत्मसमर्पण कर दे?"

इस सिलसिलेमें एक अन्य बात भी उल्लेखनीय है। लियो सी० रोस्टनने "वाशिङ्गटनके संवाददाता" नामक पुस्तकमें एक प्रश्न किया है—"कोई पत्रकार जो कुछ देखता है और सोचता है, उसके सम्बन्धमें ईमानदारीसे लिखकर देनेके लिए वह कितना स्वतन्त्र है?" इस प्रश्नका उत्तर मिस्टर रोस्टनको अक्सर जो मिला, वह यह है—"सब जानते हैं कि लिखना वही चाहिए, जो सम्पादक चाहता हो।"

एक अमेरिकन पत्रके संवाददाताने किसी नये कानूनके सम्बन्धमें कुछ बातें लिखकर दी थीं। संवाददातासे पत्रकी ओरसे पूछा गया कि नये कानूनके मसविदेके सम्बन्धमें वे सब बातें क्या ठीक हैं? संवाददाताने उन सब बातोंको ठीक पाया, परन्तु सम्पादक-मण्डल यह निश्चय न कर सका कि

उस सचाईको छापा जाय या नहीं। फलतः संवाददातासे रोज ही यह प्रश्न किया जाता था कि क्या वे बातें सचमुच ठीक हैं। कई दिन तक परेशान होनेके बाद संवाददाताने उस रिपोर्टको रद्द कर दिया और जिस तरहका विवरण सम्पादकको अभीष्ट था, लिखकर दे दिया।

व्यवहारिक विनोद

फ्रान्सके प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ मोशिये क्लिमेंशू उन दिनों पूर्वी द्वीप-समूहके एक टापूमें थे। एक दिन जब वे एक गांवमें होकर जा रहे थे, उन्होंने एक दूकानमें एक छोटी मूर्ति देखी। उन्होंने दूकानदारके पास जाकर कहा—"मुझे यह मूर्ति पसन्द है। इसका मूल्य क्या है?"

"आपकी खातिर ७५)रुपये।"—दूकानदारने उत्तर दिया।

मोशिये क्लिमेंशूने कहा—"अपनी खातिर मैं ४५) दे सकता हूं।"

दूकानदारने आकाशकी ओर हाथ उठाकर कहा—"४५) रुपये! आप मजाक कर रहे हैं। कोई सुनता तो क्या कहता?"

फ्रान्सीसी राजनीतिज्ञने फिर कहा—"४५) रुपये।"

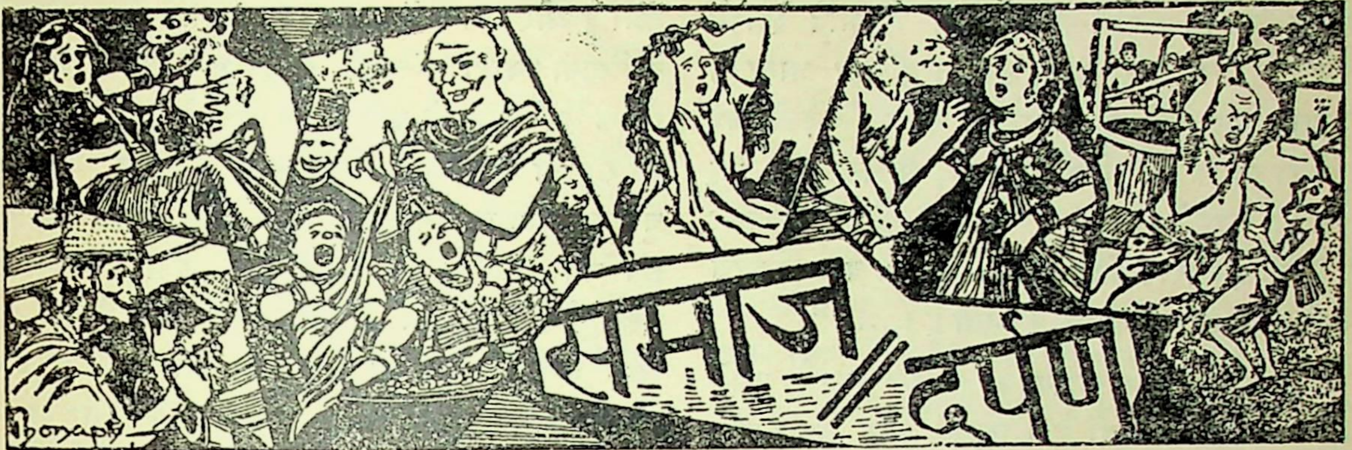
इसपर झल्लाने-जैसा भाव बनाकर दूकानदारने कहा—"हो नहीं सकता। इससे तो मैं आपको यों ही दे देना अच्छा समझूंगा।"

"मञ्जूर।"—यह कहकर मोशिये क्लिमेंशूने वह मूर्ति ली और उसे जेबमें रखते हुए कहा—"धन्यवाद, आपकी बड़ी कृपा है। आपने मुझे एक मित्रके रूपमें ही यह भेंट दी है। इसलिए आप बुरा न मानेंगे, अगर मैं भी आपको कुछ भेंट दूं।"

"नहीं, बिलकुल नहीं।"

मोशिये क्लिमेंशूने अपनी जेबसे ४५) निकाले और उसके हाथमें रखकर चलते हुए कहा—"इन्हें किसी अच्छे काममें लगा दीजियेगा।"





समाजमें लड़कियोंका जन्म

कानपुरसे हमारे परिचित एक सज्जन लिखते हैं—"समाजकी शोचनीय अवस्थाका एक चित्र मेरी आंखोंके सामने है और मैं यह अनुभव करता हूं कि जब तक इस अवस्थामें सुधार नहीं किया जायगा, घरमें लड़कों और लड़कियोंको समान व्यवहार और माता-पिताके समान प्रेम-का अधिकारी नहीं समझा जायगा, तब तक हिन्दू-समाजकी वर्तमान दुर्दशाका अन्त नहीं होगा। आप यह जानकर खुश होंगे कि लगभग तीन सप्ताह पूर्व मेरे लड़की हुई है। मेरे माता-पिता और अन्य गुरुजनोंको जबसे यह मालूम हुआ था कि मेरी स्त्री गर्भवती है, तबसे घरमें एक अजीब खुशी-सी रहती थी। आजकल प्रायः सभी घरोंमें सास और बहूमें जैसी कटुता देखनेमें आती है, वैसी कोई बात मेरे घरमें नहीं थी, फिर भी जो मुंहफुलौअल कभी-कभी हो जाती थी, स्त्रीके गर्भवती होनेके बाद वह भी बन्द हो गयी। मेरी माताको मेरी स्त्रीका बड़ा ध्यान रहने लगा, उससे बड़ी-बड़ी आशायें की जाने लगीं। पता नहीं, वे क्या सोचती थीं। मुझसे वे इस सम्बन्धमें कुछ ज्यादा न कहती थीं; परन्तु जब कुछ कहतीं, उनकी आंखों और उनकी बातोंसे आशा और हर्ष टपकता था। प्रसव-काल जब समीप आने लगा, माताके कहनेसे पिताजी घरमें तरह-तरहकी चीजें लाकर जमा करने लगे, मानों कोई बड़ा समारोह होनेवाला हो। आखिर वह दिन भी आया। उस दिन दोपहरको जब मैं कुछ देरके लिए कार्यवश बाहर गया हुआ था, मेरी स्त्रीने लड़की-को जन्म दिया। मुझे यह समाचार मेरे पड़ोसीने रास्तेमें ही सुनाया—"लड़की हुई है!" उसके यह कहनेमें ही कुछ ऐसा भाव था कि मानो कुछ नहीं हुआ, मानो लड़की होनेसे तो कुछ न होना ही अच्छा था। घर पहुंचनेसे पहले अपने एक वृद्ध पड़ोसीसे मेरी भेंट हो गयी। उन्होंने तमाखू फांकते-फांकते मेरी ओर देखा और अपने होठोंको कुछ इस तरह बनाया, मानो मैं कोई बाजी हार गया होऊं। पिताजी बैठकमें बैठे हुए थे। उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा; परन्तु उनके चेहरेसे कुछ ऐसा मालूम होता था, मानो कोई जटिल समस्या पैदा हो गयी हो। थोड़ी देर तक हम दोनों इसी तरह चुप रहे। जब पुरोहितजी राशि गिनने आये और मैं किसी कार्यसे भीतर गया, देखा कि मेरी दादी अलग एक कोनेमें मुंह लटकाये बैठी हुई हैं। मेरी मां चल-फिर रही थीं; परन्तु चेहरेसे मालूम होता था कि उनकी आशाओंपर पानी पड़ चुका है और अभिलाषा और उमङ्ग मनकी मनमें ही रह गयी। पड़ोसकी एक बुढ़ियाने मेरी ओर देखकर कहा—डिग्री आ गयी है, डिग्री! अब रुपया जमा करो! सबकी बातोंसे मेरी अजीब हालत थी और मुझसे भी ज्यादा अजीब हालत थी मेरी स्त्रीकी, जिसे लड़की-को जन्म देनेका—कुटुम्बपर एक भार लादनेका कसूरवार समझा जा रहा था और इसी दृष्टिसे उसके साथ सारी बातें की जा रही थीं। किसी बालकके जन्म लेनेपर जो उत्सव मनाये जाते हैं, वह सब भी 'लड़की' की दृष्टिसे मनाये गये। लड़का होनेकी आशासे जो तैयारियां की गयी थीं, वे तैयारियां ही रह गयीं, लड़की हो जानेके कारण वैसी धूम-धामसे उत्सव नहीं मनाये गये।

"यह तो लड़कीके जन्मके सम्बन्धमें हुआ, बादमें तो लड़के और लड़कीके लालन-पालनमें पूरा भेद-भाव देखनेमें आता है। पराया धन समझकर इस तरह रखा जाता है, मानो उसके प्रति कोई खास दायित्व न हो। लड़की जब कभी किसी चीजके लिए जिद करती है, मां कहती है, "तू क्या गयामें हाड़ ले जायगी? पड़ोसिनें मुंह बिचकाकर कहती हैं कि इस पराये धनसे क्या लहना है। यह मनोवृत्ति आरम्भसे अन्त तक अपना काम करती है।......"

ऊपर समाजकी जिस अवस्थाका उल्लेख हुआ है, उसमें कुछ भी अतिशयोक्ति नहीं है। लड़कों और लड़कियोंके सम्बन्धमें समाजमें जो यह भेद-भावपूर्ण मनोवृत्ति देखनेमें आती है, वह बिलकुल नयी नहीं है। घाघ कविने "जो पहिलौटी बिटिया होय" लिखकर कहा था कि "घाघ कहैं दुःख कहां समाय?" किन्तु यह मनोवृत्ति चाहे नयी हो या पुरानी और उसके मूलमें चाहे कितनी ही कुरीतियां और प्रतिकूल परिस्थितियां हों, इसमें सन्देह नहीं है कि वह है अत्यन्त घृणित और शोचनीय—इतनी घृणित और शोचनीय कि उसपर विचार करते ही लज्जासे सिर नीचा हो जाता है। विवाहके समय दहेजकी कुप्रथाको दृष्टिमें रखकर माता-पिता या कुटुम्बके अन्य व्यक्तियोंको चिन्ता हो तो हो—यद्यपि इतने समय पहले न तो उसमें कोई औचित्य है और न उसका कोई अर्थ है—परन्तु हम देखते हैं कि लड़की पैदा होनेपर पड़ोसियों तकका, जिन्हें कुछ मतलब नहीं है, उत्साह भङ्ग हो जाता है—जब कि असलियत यह है कि लड़कीको अपने माता-पितासे जो ममता होती है, वह लड़कोंको नहीं होती—कितने ही लड़के तो माता-पिताकी बड़ी दुर्गति करते देखे जाते हैं! इससे अधिक दुःखका विषय और क्या होगा कि जिस समय हमारे घरमें लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा अवतीर्ण हो रही हों, कुटुम्बी हर्षसे स्वागत करनेके बजाय उदास हो रहे हों और उनमेंसे कोई-कोई तो सचमुच ही आंसू भी बहा रहे हों। हतभाग्य हिन्दू समाज ही है, जिसमें यह दृश्य देखनेमें आता है। संसारमें सभ्यताका, सभ्यता-गुरु होनेका दावा रखनेवाली हिन्दू जातिको छोड़कर और किसी भी जातिमें यह शोचनीय अवस्था देखनेमें नहीं आती। आज समाजमें शिक्षिता स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोंकी अपेक्षा जो इतनी कम है, देवियोंका स्वास्थ्य पुरुषोंकी अपेक्षा आज जो इतना अधिक गिरा हुआ है और असमयमें कष्टसाध्य बीमारियोंसे पीड़ित होकर वे जितनी ज्यादा संख्यामें मृत्यु-मुखमें जा रही हैं, जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें आज वे पुरुषोंसे जो पिछड़ी हुई हैं और पुरुषोंका सहारा ताकती हैं और अगणित घरेलू अत्याचारोंको चुपचाप बे-जबान बनकर सहन करती हैं, उसका मूल कारण इस मनोवृत्तिमें है, जो लड़कों और लड़कियोंके सम्बन्धमें फैली हुई है। सचमुच वे माता-पिता धन्य हैं, जो कन्या-रत्नको जन्म देते हैं। यह कौन नहीं जानता कि जगज्जननी सीता, विदुला, गार्गी, मैत्रेयी, अनुसूया, कुन्ती और कौशल्या, सब लड़कियां ही तो थीं, जिन्होंने न केवल अपने माता-पिताको, सारे देशको गौरव प्रदान किया है। कौन जानता है कि आज जिस लड़कीके जन्म लेनेपर कुटुम्बी उदास हो रहे हैं, वही आगे चलकर दुर्गावती, लक्ष्मीबाई, मीराबाई और जीजाबाई नहीं बनेगी। विवाह-सम्बन्धी कुरीतियोंके कारण माता-पिताको जो कठिनाइयां हो सकती हैं या होती हैं, उनसे हम अनभिज्ञ नहीं हैं; परन्तु इन कठिनाइयोंसे निस्तार पाने और कुरीतियोंके मूलपर कुठाराघात करनेका उपाय भी इसके सिवाय दूसरा नहीं है कि लड़कियोंका लालन-पालन और शिक्षण, लड़कोंके समान ही किया जाय और जन्म लेनेके साथ ही उनके विवाहकी चिन्ता न कर इस बातका सङ्कल्प किया जाय कि उनके प्रति माता-पिताका कर्तव्य कैसे पूरा किया जा सकता है, उन्हें पितृ-गृह और पति-गृहकी शोभा, देशकी गौरव-गरिमा, योग्य कन्या, योग्यतर सहधर्मिणी और योग्यतम माता कैसे बनाया जा सकता है।

बाल-विवाह और बालिकाओंकी शिक्षा

यह तो सभी जानते हैं कि बाल-विवाह और पर्देकी कुप्रथाका सबसे अधिक घातक प्रभाव देशमें बालिकाओंकी शिक्षापर पड़ता है। बालिकाओंका विवाह होनेके बाद बहुत कम माता-पिता उनकी शिक्षाको जारी रखना चाहते हैं। यह विवाह यदि छोटी उम्रमें हो, तो उससे बालिकाओंकी शिक्षाकी और भी अधिक क्षति होती है; क्योंकि छोटी उम्रमें इतनी शिक्षा नहीं हो पाती कि शिक्षाकी दृष्टिसे उसका कुछ मूल्य हो।

हमारे सामने भारत-सरकारकी शिक्षा-सम्बन्धी पञ्च-वर्षीय रिपोर्ट है। इसमें १९३२ से १९३७ तककी शिक्षा-सम्बन्धी प्रगतिपर विचार किया गया है। आरम्भमें जो कुछ लिखा गया है, उसकी दृष्टिसे इस रिपोर्टका बालिकाओंकी शिक्षा-सम्बन्धी यह अंश विशेष महत्त्वपूर्ण है—"आलोच्य कालकी एक खास बात यह है कि बालिकाओंकी शिक्षाके महत्त्वके सम्बन्धमें जनतामें सर्वत्र जागृति हुई। पहले जिन विचारोंके कारण लड़कियोंकी शिक्षामें बाधा पड़ती थी, वे अब धीरे-धीरे नष्ट होते जा रहे हैं, बाल-विवाह गैरकानूनी ठहरा दिया गया है और पर्दा-प्रथामें भी कुछ शिथिलता आ गयी है। १९३२ में कुल २४९३००० लड़कियां पढ़ रही थीं; परन्तु १९३७ में प्रतिशत २५.९ वृद्धि होकर उनकी संख्या ३१३८००० हो गयी। प्राथमिक स्कूलोंके सिवाय शिक्षा-सम्बन्धी अन्य सभी संस्थाओंकी संख्या भी बढ़ गयी। बालिकाओंकी शिक्षाका व्यय १९३१-३२ के २३९००००० रुपयोंसे बढ़कर १९३६-३७ में २६९००००० हो गया; परन्तु अभी तक साधारणतः यह मनोवृत्ति देखनेमें आती है कि शिक्षाके लिए जब कोई रकम मिलती है, उसका ज्यादा हिस्सा लड़कियोंकी अपेक्षा लड़कोंकी शिक्षाके लिए दिया जाता है। सहशिक्षाको लोग जैसा पहले पसन्द करते थे, वैसा ही करते रहे। कई प्रान्तोंमें लड़कोंकी शिक्षा संस्थाओंमें पढ़नेवाली लड़कियोंकी संख्या बढ़ रही है। १९३६-३७ में जो ३१३८००० लड़कियां पढ़ रहीं थीं, उनमेंसे १३६२००० लड़कियां लड़कोंके स्कूलोंमें थीं।"

बालिकाओंकी शिक्षाके सम्बन्धमें जनसाधारणमें जो जागृति देखनेमें आ रही है और उसके सम्बन्धमें पुराने विचारोंका प्रभाव जिस तरह नष्ट होता जा रहा है, वह तो प्रत्यक्ष ही है, बालिकाओंकी शिक्षाके लिए जो समाज-सेवक प्रयत्नशील हैं, उनके लिए रिपोर्टके इस अंशमें कई महत्त्वपूर्ण सूचनायें हैं। उन्हें यह जान लेना चाहिए कि शिक्षा-प्रसार-सम्बन्धी प्रयत्न सफल: होनेके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि बाल-विवाह और पर्देकी कुप्रथाओंको बिलकुल ही उठा दिया जाय और इस मनोवृत्तिको बदल दिया जाय कि जब कोई रकम शिक्षा-प्रसारके लिए मिल सके, तब उसका ज्यादा भाग लड़कोंकी शिक्षाकी मदमें दिया जाय, लड़कियोंकी शिक्षाके मुकाबिलेमें लड़कोंकी शिक्षाको ज्यादा महत्त्व दिया जाय। शिक्षित पुरुषों और स्त्रियोंकी संख्यामें जो इतना अन्तर है, उसके लिए यह दूषित मनोवृत्ति भी कम जिम्मेदार नहीं है।

अप्रासङ्गिक न होगा, यदि इस स्थानपर रिपोर्टकी एक अन्य बातका भी उल्लेख कर दिया जाय। हमें यह बतलाया गया है और ठीक है कि "कई प्रान्तोंमें हरिजन छात्रोंकी संख्या भी बहुत ज्यादा हो गयी है और सार्वजनिक स्कूलोंमें उनके पढ़नेके सम्बन्धमें जनतामें जो विरोध था, वह बड़ी शीघ्रतासे दूर हो रहा है।" यह शुभ-लक्षण है, जो यह बतला रहा है कि देश करवट ले रहा है, समाजका चोला बदल रहा है।

समाज-सेवाका एक क्षेत्र

स्वदेशके कितने ही भागोंमें, खासकर पहाड़ी इलाकोंमें कितनी ही जातियां हैं जो सामाजिक दृष्टिसे बहुत पिछड़ी हुई हैं। राजपूताना, छोटानागपुर, आसाम और मध्य-प्रान्तके कितने ही पहाड़ी इलाकों और पहाड़ी जातियोंके नाम इस सिलसिलेमें लिये जा सकते हैं। ये पहाड़ी जातियां जङ्गलोंमें छोटी-छोटी बस्तियोंमें झोंपड़ोंमें रहती हैं। इनमें रहन-सहन, खान-पान और भेष-भूषासे लगाकर रीति-रिवाज तक सारी बातोंमें अपनापन पाया जाता है। इनकी भाषा अपनी है, परन्तु शिक्षाके लिए कोई खास व्यवस्था नहीं है और न कोई ऐसी संस्था ही है जो इन जातियोंके सम्पर्कमें आकर उनकी सामाजिक स्थितिको ऊंचा उठाने, उनके जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोणको उन्नत बनानेका श्रेष्ठ कार्य इस समस्याकी व्यापकताकी तुलनामें कर रही हो। क्या हुआ यदि कुछ संस्थायें अपनी अल्प शक्तियोंसे इन जातियोंमें कहीं-कहीं कुछ कार्य कर रही हों—यह प्रश्न कई करोड़ देशवासियोंकी सामाजिक स्थिति सुधारनेका, उन्हें हृदयसे लगानेका है और अपनी धुनके पक्के समाज-सेवकोंको वैसे ही व्यापक सङ्गठनके साथ प्रयत्नशील होना चाहिए।

हमारे सामने मध्यप्रान्तकी कुछ पहाड़ी जातियोंका विवरण है, जिनमें चोरीका पेशा बहुत ही अच्छा समझा जाता है। ये घास-फूस या ताड़के पत्तोंके झोंपड़ों या बांसकी खपच्चों और मिट्टीके बने हुए घरोंमें रहती हैं। झोंपड़े तो ये साफ-सुथरे रखती हैं, परन्तु इनके कपड़े बड़े मैले होते हैं। फट

जानेके डरसे ये लोग कपड़े बहुत कम धोते हैं। अगर कोई उन्हें कपड़ा धोना सिखलाये, तो ये उसे अपना शत्रु समझते हैं। वे सब प्रायः मांस खाते हैं और बहुतेरे तो किसीका भी मांस खा सकते हैं। अलबत्ता, उनमें जो अपनेको हिन्दू कहते हैं, वे गो-मांस नहीं खाते हैं। जब मांसआसानीसे नहीं मिलता, बस्तीके पेशेवर चोरोंको वे यह काम सौंपते हैं और ये पेशेवर चोर बाहरसे जानवर उठा लाते हैं। इस प्रयत्नमें अगर वे पकड़े जाते हैं और सजा हो जाती है, तो सारी बस्ती मिलकर उनके परिवारके भरण-पोषणका भार उठाती है।

पुराने ढर्रेके करघोंपर वे अपनी जरूरतके लिए मोटा-झोटा कपड़ा तैयार कर लेते हैं। फलोंका खाना आवश्यकतामें शामिल नहीं है। चावल उन्हें बहुत पसन्द आता है। पृथ्वीको वे माता मानते हैं। उनका विश्वास है कि हल जोतनेसे माताको चोट पहुंचती है इसीलिए वे हल नहीं चलाते और डण्ठलोंको जला देनेसे खेतमें जो राख हो जाती है, उसीमें बीज बो देते हैं।

शराब पीनेका इनमें बहुत चलन है। जब तक शराब न पी जाय, इनका कोई भी सामाजिक कार्य पूरा नहीं होता। ये अपने देवताओंकी पूजामें भी शराबका व्यवहार करते हैं। एक जातिमें कुछ समय पहले तक यह रिवाज भी प्रचलित था कि लड़कीको जबर्दस्ती उड़ा ले जाकर विवाह कर लेते थे। मृतकोंको या तो जलाया जाता है या गाड़ दिया जाता है। एक जातिमें प्रमुख व्यक्तियोंको मरनेपर जलाया जाता है और गरीबोंको गाड़ दिया जाता है। जलाने या गाड़नेकी जगह मृतकके सिरकी ओर एक बड़ा पत्थर रख देते हैं। मृतकका स्थान समाजमें जितना ही ऊंचा हो, पत्थर उतना ही बड़ा होता है। यदि कोई व्यक्ति घरमें मर जाय, तो परिवारके अन्य लोग उस घरको छोड़ जाते हैं, उसे मृतकका स्मारक मानने लगते हैं; परन्तु उसकी मरम्मत नहीं करते, परिणाम यह होता है कि कुछ समय पीछे वह स्मारक अपने आप नष्ट हो जाता है।

यह विवरण कुछ विस्तारके साथ देनेमें हमारा उद्देश्य यह है कि इन इलाकोंकी अर्धसभ्य अवस्थाकी ओर, सेवाके एक विस्तृत क्षेत्रकी ओर समाज-सेवकोंका ध्यान विशेष रूपमें आकर्षित हो और वे यह देखें कि लाखों देशवासियोंको हृदयसे लगानेका कैसा अच्छा अवसर उनके सामने है। जो अवस्था मध्यप्रान्तके इलाकोंमें है, वही न्यूनाधिक अन्य भागोंमें भी है। एक जमाना था, जब असभ्य और अर्धसभ्य देशोंमें आर्य संस्कृतिका विस्तार करनेके लिए इस देशके आर्यजन संसारके कोने-कोनेमें पहुंचते थे, क्या हम इसी देशमें अपने इन करोड़ों भाइयोंके पास नहीं पहुंचेंगे, जो अपने एक रूपमें हिन्दू ही हैं और जिन्हें ईसाई धर्ममें लाने और रोमन लिपि सिखलानेके लिए कितने ही मिशन काम कर रहे हैं।





प्रगतिशील साहित्य

प्रगतिशील साहित्यके सम्बन्धमें इन दिनों जो हलचल है, उसका अपना महत्त्व है और उस प्रगतिका परिणाम है, जो देशमें विभिन्न क्षेत्रोंमें देखनेमें आ रही है। साहित्य जनताकी मानसिक भावनाओंका चित्र है और जब हम जनताकी इन भावनाओंको आगे बढ़ते और ऊंचा उठते हुए पाते हैं, तब साहित्यपर भी उसका प्रभाव पड़ना ही चाहिए। सच्ची प्रगति वही है, जो सर्वाङ्गीन हो—चाहे इस प्रगतिका क्षेत्र राजनीतिक हो या साहित्यिक। एक ही दिशामें बढ़कर हम वास्तविक अर्थमें उन्नति नहीं कर सकते, उससे अपेक्षित हितसाधन नहीं हो सकता। पूर्वकालमें साहित्यमें कविता-की कुछ दिशाओंमें खूब उन्नति हुई; परन्तु उससे बहुत ही सीमित हित हुआ। हमारे शरीरका कोई एक अङ्ग खूब पुष्ट भी हो जाय, तो उससे कितना हित हो सकता है, यदि उसी अनुपातमें हमारे शरीरके अन्य अवयवोंका विकास न हो। साहित्य-शरीरके सम्बन्धमें भी यही बात है और यह साहित्यके केवल विभिन्न अङ्गोंके सम्बन्धमें ही सच नहीं है, उन विचारों, भावनाओं और विषयोंके सम्बन्धमें भी सच है, जिनका साहित्यमें विवेचन होता है। इन विचारों और भावनाओंको भी एकाङ्गी नहीं, सर्वाङ्गीन होना चाहिए—उनसे जनताकी सभी आवश्यकताओंकी पूर्ति होनी चाहिए। जो साहित्य जनताकी सभी तरहकी सामयिक आवश्य-कताओंकी पूर्ति नहीं करता, वह अधूरा है, वह प्रगतिशील होनेका दावा नहीं कर सकता।

प्रगतिशील साहित्यके लिए केवल यही आवश्यक नहीं है कि वह जनताकी सामयिक भावनाओंको व्यक्त करे—सामयिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करे, उसमें यह क्षमता भी होनी चाहिए कि वह सामयिक भावनाओंको ऊंचा उठाये और आवश्यकताओंका प्रगतिशील भविष्यके साथ साम-ञ्जस्य स्थापित करे, जनसाधारणको एक ऐसे धरातलपर पहुंचाये, जहांसे उसे अपनी आगेकी दिशाका स्पष्ट बोध हो सके। जो साहित्य वर्तमान आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेके साथ ही भविष्यकी दिशाका बोध कराता है और उसके लिए जनसाधारणको अनुप्राणित करता है, वही प्रगतिशील साहित्य है। यह तो पहले ही मान लिया गया है कि आवश्यकताओंसे हमारा अभिप्राय सभी तरहकी आवश्यकताओंसे है।

एक बात और—अमेरिकाके प्रसिद्ध साहित्यिक अप्टन सिनक्लेयरने एक स्थानपर लिखा है—"मार्क्स क्या कहते हैं, इससे मुझे क्या? सेण्ट लूथरके कथनसे भी मुझे कोई मतलब नहीं है। मेरा विचार तो यह है कि जीवनको, जीवनकी समस्याओंको अपनी आंखोंसे देखो और विवेक जो निर्णय करे, उसे सरल भाषामें लिख डालो।" अप्टन सिनक्लेयरके इस कथनका यह अभिप्राय नहीं है कि हमें संसारको प्रगति देनेवाले विचारकोंकी ओरसे अपनी आंखें बन्द कर लेनी चाहिए और उनके अनुभवसे कोई लाभ नहीं उठाना चाहिए। जो साहित्यकार हमसे पहले हो चुके हैं या जो हमारे समकालीन हैं और जिन्होंने संसारको अपने विचारोंके रूपमें अमूल्य निधि प्रदान की है, हमें उससे तो

पूरा लाभ उठाना ही है; परन्तु जो बात अच्छी तरह जान लेनेकी है, वह यह है कि केवल मार्क्स या लूथरके विचारों-से काम नहीं चल सकता, केवल उनसे हमारे समाज और साहित्यको प्रगति नहीं मिल सकती, यदि हमारा जीवन जन-साधारणके जीवनके साथ घुलमिल न गया हो, हमारा साहित्य जनसाधारणके जीवनका एक अङ्ग न बन गया हो और इस तरह अङ्गीभूत जीवनकी समस्याओं और परिस्थितियोंका उन विचारोंके साथ सामञ्जस्य न कर लिया गया हो, जिन्होंने संसारके कितने ही भागोंको प्रगति दी है। अपनी अनुभूतिके अभावमें मार्क्स या लूथरके प्रगतिशील विचारों-का मूल्य कितना हो सकता है, इस विषयमें सबका एकमत होना तो असम्भव ही है; परन्तु जनसाधारणके जीवनके साथ अपनेको मिला देने और समस्याओं एवं परिस्थितियोंका मनन कर उनका हल निकालनेका प्रयत्न करनेसे स्वदेशमें भी मार्क्स और लूथर पैदा हो सकते हैं।

अमीर खुसरोका स्वदेश-प्रेम

हिन्दीके मुसलमान कवियोंमें अमीर खुसरोका बड़ा ऊंचा स्थान है। वे बड़े जिन्दादिल कवि थे। उनकी मुक-रियां और पहेलियां सर्वसाधारणमें खूब प्रचलित हैं। वे हिन्दीके अपने ढङ्गके पहले कवि थे। आज जिस खड़ी बोलीको हम सब फलता-फूलता देख रहे हैं, उसका बीज उनकी कवितामें विद्यमान था। यद्यपि वे तुर्क थे और फारसीके एक माने हुए सर्वश्रेष्ठ कवि थे, फारिस तकमें उनका बड़ा आदर था, तथापि इस देशकी प्रत्येक वस्तुसे उन्हें बड़ी ममता थी। फारसीमें उनकी लिखी हुई एक पुस्तक है नूहे-सि-पेहर। दिल्लीके पठान बादशाह अल्लाउद्दीन खिलजीके उत्तराधिकारी कुतुबुद्दीनको उन्होंने यह पुस्तक समर्पित की है। कहते हैं, इस किताबके लिए उन्हें एक हाथीके वजनके बराबर रुपये दिये गये थे। इस पुस्तकमें ९ अध्याय हैं। अमीर खुसरोने पुस्तकके तीसरे अध्यायमें इस देशकी बड़ी प्रशंसा की है, इसे संसारके सब देशोंसे बड़ा बतलाया है और कितने ही गुणोंका बखान करनेके बाद इस देशकी श्रेष्ठताके १० कारण बतलाये हैं। वे लिखते हैं—"मैंने जो कुछ कहा है, उसमें सन्देह कर उसकी उपेक्षा न की जाय, इसी कारण मैं एक नहीं, दस सबूत देता हूं :—(१) हिन्दु-स्तानमें सर्वत्र विद्या और ज्ञान बहुत पाया जाता है। (२) दूसरे लोगोंकी भाषाको हिन्दुस्तानी बहुत आसानीसे और अच्छी तरह बोल लेते हैं, जब कि तुर्क, मुगल और अरब हिन्दुस्तानियोंकी भाषा नहीं बोल सकते। (३) ज्ञान सीखनेके लिए अन्य देशोंसे लोग हिन्दुस्तानमें आये हैं; परन्तु हिन्दुस्तानके ब्राह्मणोंने अन्य देशोंके लोगोंसे ज्ञानकी भिक्षा मांगनेके लिए कभी अपने देशकी सीमासे बाहर कदम नहीं रखा। (४) ये हिन्दुस्तानी ही तो थे, जिन्होंने 'हिन्दसा' और 'सिफर' का आविष्कार किया और जिसे बादमें यूनानियोंने भी स्वीकार किया। (५) पञ्चतन्त्र हिन्दुस्तानमें लिखा गया था। (६) शतरञ्जका आवि-ष्कार हिन्दुस्तानियोंने किया है। (७) हिन्दुस्तानकी सङ्गीत-कला संसारके अन्य देशोंकी सङ्गीत-कलासे निश्चय ही श्रेष्ठ है। (८) ब्राह्मण अपने बुद्धि-बलसे अरस्तूके ग्रन्थों-की धज्जियां उड़ा सकते हैं। (९) बुद्धिके प्रत्येक क्षेत्रमें हिन्दुस्तान संसारके अन्य देशोंसे कहीं अधिक आगे है। (१०) शरीर-तत्त्व, गणितकला, ज्योतिष, ग्रह-नक्षत्र-विज्ञान, सभी विषयोंमें हिन्दुस्तानी बाकी सब लोगोंसे बढ़-चढ़कर हैं। फिर, हिन्दुस्तान इसलिए भी श्रेष्ठ है कि उसने खुसरोको जन्म दिया है।"

अमीर खुसरोका जन्म १२५३ ई० में पटियालीमें हुआ था और उन्हें अपने हिन्दुस्तानी होनेका बड़ा गर्व था। उन्होंने उस कालके अन्य मुसलमान बादशाहों और सर्व-साधारण मुसलमानोंकी तरह हिन्दुस्तानको अपना लिया था। हिन्दुस्तानकी शोभा, हिन्दुस्तानकी विद्या और कला, हिन्दुस्तानकी जल-वायु और हिन्दुस्तानकी बोली, सबपर उन्हें अभिमान था। कोई आश्चर्य नहीं है, यदि अमीर खुसरोने अपनी कवितामें फारसी शब्दोंके साथ ही उपयुक्त हिन्दी शब्दोंको रखा और एक नयी प्रगतिको जन्म दिया।

अमीर खुसरोको इस देशकी बोलीसे इतना प्रेम था कि वे अपनी फारसी कवितामें भी हिन्दीके शब्दोंको रख देते थे। यह माना जाता है कि किसी अन्य कविने फारसी कवितामें इतने ज्यादा हिन्दी शब्दोंका व्यवहार नहीं किया। इस देशके फूलों, फलों, सर्वसाधारणके कामकी चीजों और देहातमें बोले जानेवाले शब्दों तकका व्यवहार वे अपनी कवितामें करते थे। उन्होंने अपनी फारसीकी कवितामें एक

लाइनमें 'साल' शब्दका व्यवहार वृक्ष-विशेषके अर्थमें किया था। फारिसमें साल शब्दका व्यवहार "वर्ष" के अर्थमें होता है। इसलिए वहां खुसरोकी कविताकी वह पंक्ति समझनेमें एक बार बड़ी कठिनाई हुई थी।

अमीर खुसरो कवि ही नहीं, सङ्गीतज्ञ भी थे। उन्होंने नये तर्जकी नौ चीजोंको निकाला था—कौल, कलबाना, तराना, खयाल, नक्श, गुल, बसीत, तिल्लाना और सोहला। ये सब फारसी और हिन्दीकी राग-रागिनियोंकी मिलावटसे तैयार किये गये थे। उनके 'कौल' के गायनसे एक बार बादशाह अलाउद्दीन खिलजी इतने प्रसन्न हुए कि उन्हें कव्वालीकी उपाधि ही दे दी।

आगामी सम्मेलन और उसके अध्यक्ष

भाषा और साहित्यकी और उसके द्वारा देश एवं मानव-समाजकी जो सेवा की जा रही हो, उसे भुलाकर यदि हममेंसे कुछ लोग तुच्छ स्वार्थोंके पीछे अपना कर्तव्य भूल जायं और वह करनेपर उतारू हो जायं जो नहीं करना चाहिए, तो इससे ज्यादा दुःखकी बात और क्या हो सकती है? हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका जो अधिवेशन पूनामें होने जा रहा था, उसके सिलसिलेमें कुछ इसी तरहकी खेदजनक घटनायें हुई हैं और नहीं कहा जा सकता कि इनका अन्त किस तरह होगा।

सम्मेलनको महाराष्ट्रके लिए काका कालेलकरके निमन्त्रण देने, पूनेमें स्वागत-समितिके बनने और उसके निर्वाचनसे राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके सञ्चालकों—काका कालेलकर पार्टीके हट जाने, श्री वैशम्पायनके स्वागताध्यक्ष चुने जाने और बादमें सम्मेलनको बम्बईके लिए काका कालेलकरके पुनः आमन्त्रित करनेकी घटनायें सर्वसाधारणका विषय बन चुकी हैं। इन सब बातोंपर सम्मेलनकी स्थायी समितिमें विचार हुआ। स्वागत-समितिकी ओरसे श्री देशमुखने स्थायी समितिको बतलाया कि "स्वागत-समितिकी सारी कार्यवाही नियमानुकूल थी। अन्य पक्षके लोग निर्वाचनमें हराये नहीं गये, बल्कि उनके नाम ही वापिस ले लिये गये, जिससे स्वागत-समिति उन्हें चुन नहीं सकी। इस दशामें स्वागत-समितिपर पक्षपातका दोषारोपण करना और उसका निमन्त्रण अस्वीकार करना उचित न होगा।" काका कालेलकरने जो कुछ



श्री सम्पूर्णानन्दजी

कहा, उसका यही तात्पर्य था कि स्वागत-समितिके सङ्गठनमें कुछ भी परिवर्तन हुए बिना उनका और उनके साथियोंका सहयोग सम्भव नहीं है।

सम्मेलनकी स्थायी समितिने अपनी उपसमितिकी सिफारिशके अनुसार "मेल-मिलापके अन्य मार्ग खोज निकालनेके लिए" यह निश्चय किया कि सम्मेलनकी तिथियां हटा दी जायं और दोनों पक्षोंके सहयोगसे पूनेमें ही सम्मेलन करानेका यत्न किया जाय। इसके लिए स्थायी समितिने एक कमेटी बना दी है, जो सम्भवतः वर्धा और पूनामें जाकर दोनों पक्षोंको मिलानेकी कोशिश करेगी।

इस विवरणसे यह तो साफ ही है कि स्वागत-समिति सम्बन्धी सारा झगड़ा किसी सिद्धान्तके लिए नहीं, स्वागत-समितिके पदों और स्थानोंके लिए है और यह बड़े खेदकी बात है। हमें यह जानकर प्रसन्नता हुई है कि स्थायी समितिने सम्मेलनको पूनेमें ही करानेके लिए सचेष्ट होनेका निश्चय किया है। सम्मेलनको जब पूनेमें करनेका निश्चय किया गया था, तब पूनेमें ही उसके होनेमें प्रतिष्ठा है।

सम्मेलनके सभापति-पदके लिए संयुक्त प्रान्तके भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री श्री सम्पूर्णानन्दजीका निर्वाचन सर्वथा उपयुक्त

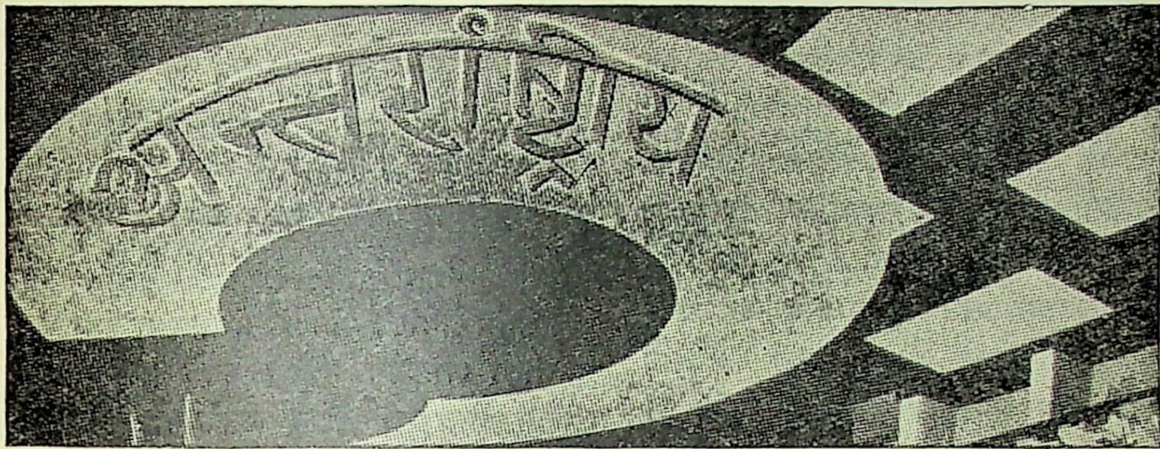
और सामयिक है और हमें इससे हार्दिक प्रसन्नता हुई है। श्री सम्पूर्णानन्दजी साहित्यिक हैं और देशकी प्रगतिको जाननेवाले साहित्यिक हैं। आज देशमें हिन्दी और हिन्दुस्तानीका जो प्रवाह चल रहा है, उसके सम्बन्धमें भी उनके विचार बहुत सुलझे हुए हैं। हमें आशा है, वे अपने प्रभावसे स्वागत-समितिके दोनों पक्षोंको मिलाकर एक कर देनेमें समर्थ होंगे और साहित्य-प्रेमियोंको शीघ्र ही यह जाननेका अवसर मिलेगा कि उन्हें पूना चलनेके लिए कब तैयार होना चाहिए।

ये पंक्तियां लिख चुकनेके बाद श्री काका कालेलकरका वक्तव्य पढ़नेमें आया है। वे लिखते हैं—"यदि शङ्करराव देव मेरी सलाह मानकर अखिल महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिको ही स्वागत-समिति बनाते, तो कोई झगड़ा नहीं पैदा होता; किन्तु उन्होंने एक नयी स्वागत-समिति बनाना पसन्द किया और महाराष्ट्र-भरसे स्वागत-सदस्य बनाये। जब उन्होंने सभी पक्षोंके लोगोंका सहयोग मांगा, तब उनको खयाल भी नहीं था कि पूनाके चन्द लोग उसी दिन सदस्य बनकर और अपना बहुमत बनाकर उनको और उनके साथियोंको हटा देंगे।"

इससे स्पष्ट है कि काका कालेलकर और उनके साथी स्वागत-समितिके पदाधिकारियोंके स्थानोंपर जिन्हें चाहते थे, उनके नहीं चुने जानेकी ही शिकायत मुख्य है। काका कालेलकरने "उसी दिन सदस्य बनकर अपना बहुमत बना लेने" की जो बात लिखी है, वह यदि सच हो तो अनुचित है; परन्तु उसमें ऐसी कोई बात नहीं है कि साथियों समेत उनके स्वागत-समितिसे अलग हो जानेमें औचित्य समझा जा सके। सार्वजनिक संस्थाओंमें जहां बहुमतसे प्रत्येक विषयका निर्णय होता है, कार्यकर्ताओंको वैसी स्थितिके लिए पहलेसे ही तैयार रहना चाहिए।

हमें आशा है, इस विवादका अब अन्त होगा और दोनों पक्ष एक होकर सम्मेलनको सफल बनानेकी चेष्टा करेंगे।

———



युद्धकी भयङ्कर स्थिति

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति आज इतनी गम्भीर है कि कोई भी निश्चित रूपसे यह नहीं कह सकता कि कल क्या होगा और इस अवस्थाका अन्त किस तरह होगा। जर्मनीकी दृष्टिमें आज किसी देशकी तटस्थताका कोई मूल्य नहीं है, प्रश्न केवल उसकी जरूरत और सुविधाका है। गत अप्रैलमें एक ही साथ डेनमार्क और नारवेको अचानक जर्मनीके अन्याय्य आक्रमणका शिकार होना पड़ा था। डेनमार्कने तो अपनी सैनिक स्थितिसे विवश होकर जर्मनीका मुकाबला नहीं किया और प्रतिवादके साथ जर्मनीकी जबर्दस्तीके आगे शिर झुका दिया; परन्तु नारवेने लड़नेका निश्चय किया और शक्ति-भर जर्मनोंसे मोर्चा लिया। नारवेकी सहायताके लिए यद्यपि मित्र सेनायें पहुंच गयी थीं, तथापि जर्मनीने जितनी शीघ्रतासे दक्षिण नारवेके सभी महत्त्वपूर्ण स्थानोंपर अधिकार कर लिया था, उसका परिणाम यह हुआ कि अन्तमें मित्र सेनाओंको ट्रौण्ढीमसे लौट आना पड़ा और नारवेमें ब्रिटेनकी इस विफलताके परिणाममें उस मन्त्रि-मण्डलका अन्त हुआ, जो म्यूनिक काण्ड जैसे अन्यायके लिए जिम्मेदार था और जिसकी नीतिसे जर्मनीको वर्तमान महासमरसे पहले कम प्रोत्साहन नहीं मिला था। मिस्टर चेम्बरलेनके स्थानपर आज मि० विंस्टन चर्चिल प्रधान मन्त्री हैं और रक्षा-विभागका दायित्व भी उन्हींपर है।

ब्रिटेनमें जिस समय यह परिवर्तन हो रहा था, जर्मनीने तीन अन्य तटस्थ देशों—हालैण्ड, बेल्जियम और लक्समबर्गपर आक्रमण कर दिया। जबसे युद्ध आरम्भ हुआ है, हालैण्ड और बेल्जियम बड़े यत्नसे अपनी तटस्थताकी रक्षा करते आ रहे थे; परन्तु जर्मनीने उन्हें तटस्थ नहीं रहने दिया। फ्रान्स और जर्मनीकी सीमापर जैसी सुदृढ़ मोर्चेबन्दी है, उससे पहलेसे ही हालैण्ड और बेल्जियमके जर्मन आक्रमणका शिकार होनेकी पूरी सम्भावना थी। घटनाओंने यह साबित कर दिया है कि यह सम्भावना अयथार्थ नहीं थी।

हालैण्ड, बेल्जियम और लक्समबर्गने यद्यपि जर्मनीके खिलाफ युद्ध-घोषणा की है और भयङ्कर संग्राम हो रहा है, तथापि हालैण्डकी रानी विलेहेलमिना और उनकी सरकार लन्दन चली गयी है। लक्समबर्गकी डचेजने पेरिसमें आश्रय लिया है और बेल्जियमके राजाने बड़ी वीरतासे अपनी सेनाओंके साथ युद्ध-क्षेत्रमें १८ दिन तक जर्मनोंसे मोर्चा लेते रहकर अन्तमें आत्मसमर्पण कर दिया; किन्तु बेल्जियमके मन्त्रियोंने इस स्थितिको स्वीकार नहीं किया है, राजाका यह कार्य अवैध बतलाया है और अन्त तक लड़ते रहनेका निश्चय किया है। मित्र सेनायें भी उनका साथ दे रही हैं। किन्तु इस आत्मसमर्पणसे जर्मनोंके डङ्कर्क तक पहुंचनेका रास्ता साफ हो गया है।

जर्मनोंने हालैण्ड और बेल्जियमपर हमला करने और उत्तरकी ओरसे फ्रान्सकी सीमामें भी बहुत दूर तक बढ़ जानेमें एक नये कौशलसे काम लिया है, जिसकी पहले कल्पना भी नहीं की गयी थी। नारवेपर आक्रमण करनेके समय जर्मनोंने हवाई जहाजोंसे छतरीके सहारे सैनिकोंको उतारनेकी नीतिका परिचय दिया था; परन्तु हालैण्ड और बेल्जियमपर आक्रमण करनेमें इस तरीकेसे इतने अधिक सैनिकोंको उतारा गया कि चकित रह जाना पड़ा। जर्मनोंने जिस दूसरे तरीकेसे काम लिया, वह यह था कि थोड़े-से

सैनिकोंकी टुकड़ियां तेज मोटर-साइकिलों और अन्य मोटरों-पर बड़ी शीघ्रतासे आगे बढ़ जातीं और ऐसे स्थानों तक जा पहुंचतीं, जहां साधारणतः उनके इतने शीघ्र पहुंचनेकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। इन टुकड़ियोंके पीछे जर्मनीकी आधुनिक यन्त्रोंसे सुसज्जित सेना उन स्थानोंमें अपनी स्थिति सुदृढ़ बनानेके लिए बढ़ती। आक्रमण करनेमें जर्मन सेनाओंने आरम्भमें जो वेग दिखलाया, उससे सभीको चकित रह जाना पड़ा; परन्तु उसके बाद तो फ्रान्स और ब्रिटेनकी सेनाओंने जिस तरह साहसके साथ जर्मनीका मुकाबला किया है, उससे पेरिसकी ओर जर्मनीकी गति रुक गयी है और कितने ही स्थानोंसे जर्मनोंको पीछे हटा दिया गया है। जिस समय ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं, जर्मनी कैलेकी ओर बढ़नेका प्रयत्न कर रहा है—यद्यपि जर्मनीकी ओरसे कैलेपर अधिकार कर लेनेका दावा किया गया है। इंगलिश चैनलके इस पार फ्रान्समें कैले और उस पार ब्रिटेनमें डोवर है। जर्मनीकी यह प्रगति बतला रही है कि वह इंगलैण्डपर सीधा आक्रमण करनेके लिए उपयुक्त स्थानपर अधिकार कर लेना चाहता है।

नारवे, हालैण्ड, बेल्जियम, लक्समबर्ग और फ्रान्सके उत्तरी भागमें असैनिक जनताके साथ जर्मन सैनिक जो अत्याचार कर रहे हैं, जिस बर्बरताका परिचय दे रहे हैं और राक्षसी वृत्तिसे जिस तरह बम बरसाकर स्त्रियों, बच्चों, बूढ़ों और निःशस्त्र जनताको भून रहे हैं, उसकी कल्पनासे ही दिल दहल उठता है। अमेरिकाके प्रेसीडेण्ट रूजवेल्टके शब्दोंमें "यूरोपके इस भयङ्कर नर-संहार और जर्मनीके बर्बर अत्याचारोंकी ऐसी बातें सुननेमें आयी हैं, जिनपर सहसा विश्वास नहीं होता और जिन्हें सुनकर संयुक्तराज्य अमेरिकाको बड़ा धक्का लगा है।"

बहुत दिनों तक युद्ध चलानेकी दृष्टिसे जर्मनीकी अवस्था ठीक नहीं है। सम्भवतः इसीलिए जर्मनी इस समय अपनी सारी शक्ति लगाकर आक्रमण कर रहा है। एक समाचारमें यह भी बतलाया गया था कि हिटलरने नाजी अफसरोंकी कान्फरेन्समें १५ अगस्त तक शान्ति स्थापित कर देनेकी प्रतिज्ञा की है। १५ अगस्त तक शान्ति स्थापित हो सकेगी या नहीं, यह आज किसीके लिए भी कहना कठिन है; परन्तु जो बात सब देख रहे हैं, वह यह है कि युद्ध अपने महाभयङ्कर रूपमें अब आरम्भ हुआ है और इससे भी अधिक भयङ्कर रूपमें आगे उसके प्रकट होनेकी सम्भावना है। साथ ही यह भी निश्चित है कि आज फ्रान्स और बेल्जियममें जो भयङ्कर युद्ध हो रहा है, उसके परिणामपर युद्धकी भावी दिशा निर्भर है। यह दिशा जाननेके लिए संसारको अभी कुछ समय तक यूरोपकी घटनाओंकी प्रतीक्षा करनी होगी।

जर्मन सेनाकी पांचवीं श्रेणी

जर्मन सेनाकी पांचवीं श्रेणी क्या बला है? हालैण्डपर जर्मनीका आक्रमण होनेसे पहले उसका नाम बहुत कम सुननेमें आया था; परन्तु उसके बाद उसके सम्बन्धमें जो कुछ मालूम हुआ है, वह विभिन्न देशों, खासकर यूरोपके विभिन्न देशोंको चौकन्ना और सतर्क कर देनेके लिए काफी है। कहते हैं कि यह जर्मन सेनाका गुप्त सङ्गठन है। जर्मनी-को जिन देशोंकी अवस्था अपने उद्देश्योंके अनुकूल बनानी होती है, उनमें वह अपनी सेनाकी इस श्रेणीका उपयोग करता है। उन देशोंमें जो जर्मन पहलेसे ही बसे रहते हैं, वे इस श्रेणीसे सम्बन्ध जुड़ जानेके बाद पहले तो उस देशके लोकमतको जर्जर करनेका प्रयत्न करते हैं। इसके लिए वे उन देशोंकी वर्तमान सरकारके विरुद्ध राजनीतिक पार्टियों और अल्प-संख्यक आन्दोलनका उपयोग करते हैं। यूगोस्लाविया-में यही हुआ। जर्मनीका जिस क्षेत्रपर अधिकार हो गया है, उसमें रहनेवालोंके जो स्वजन-सम्बन्धी शरणार्थी बनकर अन्य देशोंमें चले गये हैं, उनका भी उपयोग किया जाता है। सैनिक महत्त्वकी बातोंको जानकर जर्मन अधिकारियोंके पास पहुंचाना भी इस श्रेणीके सैनिकोंका काम है। वैसे ये सैनिक गुप्त रहकर अपना काम करते हैं; परन्तु उपयुक्त समय आनेपर बेतारके स्टेशनों, टेलीफोन-घरों और बिजलीके कारखानों आदि महत्त्वपूर्ण स्थानोंपर अधिकार कर लेना भी इनके कार्यक्रममें शामिल है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि सङ्गठन बिलकुल चुस्त और खूब व्यापक होनेपर भी उसका भेद नहीं फूटता। हालैण्डमें जब जर्मनीका हमला हुआ और हवाई जहाजोंसे छतरीके सहारे असंख्य सैनिक जगह-जगह उतरे, पांचवीं श्रेणीके इस सङ्गठनसे उन्हें बड़ी सहायता मिली, हालैण्डमें पांचवीं श्रेणीके जो गुप्त सैनिक पहलेसे ही थे, उन्होंने बड़ी सहायता पहुंचायी।

हालैण्डमें जर्मन सेना-विभागके इस सङ्गठनका जो रूप देखनेमें आया और उसने जिस तरह अपना काम किया,

उससे फ्रान्स, ब्रिटेन और यूरोपके अन्य देशोंका पहलेसे ही सावधान होना स्वाभाविक ही है। इस पांचवीं श्रेणीके सङ्गठनसे केवल यूरोपके देश ही सतर्क नहीं हुए हैं, अमेरिका तकको चौकन्ना होनेकी जरूरत पड़ गयी है। उस दिन प्रेसीडेण्ट रूजवेल्टने जर्मन सेनाकी इस श्रेणीका उल्लेख करते हुए कहा—"जासूसों, भेदियों और विश्वासघातियोंके साथ कड़ी कार्यवाही की जानी चाहिए। नये दलोंको छोड़ा जा रहा है। जो भयावह स्थिति सामने है, उसमें हममें फूट डालने और हमें कमजोर बनानेके लिए योजनापूर्वक प्रचार-कार्य आरम्भ हो रहा है। फूट डालनेवाले ये दल विष हैं, असली रूपमें विष हैं और पुरानी दुनियाकी तरह इन्हें नयी दुनियामें नहीं फैलना चाहिए।"

युद्ध और अमेरिका

वर्तमान महासमरके आरम्भसे ही सारे संसारकी दृष्टि अमेरिकाकी ओर लगी हुई है। इसका एक खास कारण यह भी है कि गत महासमरके आरम्भमें अमेरिका मित्रराष्ट्रोंके साथ नहीं था, परन्तु बादमें वह साथ हो गया और ऐसे समयमें साथ हुआ कि मित्र-पक्षकी विजय निश्चित हो गयी। वर्तमान युद्ध आरम्भ होनेसे पहले ही अमेरिकाने यूरोपके झगड़ोंसे तटस्थ रहनेकी नीति ग्रहण कर रखी थी। स्पेनके गृह-युद्धको अभी बहुत समय नहीं बीता है, जब अपनी तटस्थताकी रक्षा करनेके लिए अमेरिकाने बड़ी शीघ्रतासे कानून बनाकर जहाजपर लदी हुई युद्ध-सामग्रीको नहीं चलने दिया था। जहां तक वर्तमान युद्धका सम्बन्ध है, अमेरिका अपनी तटस्थताके उस रूपमें उचित सुधार कर चुका है और आज अमेरिकाके कारखाने मित्रराष्ट्रोंके लिए ५० हजार हवाई जहाज और अन्य युद्ध-सामग्री बनानेमें लगे हुए हैं और प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट एवं अमेरिकन सरकारके प्रमुख व्यक्तियोंका प्रत्येक शब्द यह बतला रहा है कि उनकी हार्दिक सहानुभूति मित्रराष्ट्रोंके साथ है; परन्तु अमेरिकामें ऐसा भी एक दल है और वह दल काफी शक्तिशाली है, जो यह चाहता है कि अमेरिका इस युद्धसे बिलकुल अलग रहे। इस दलका ख्याल है कि यूरोपमें नर-संहार होता है तो होता रहे, अमेरिकाका उससे क्या बिगड़ता है; मानवताके नामपर जो सहायता की जा सकती हो, वह करनी चाहिए; परन्तु युद्धसे दूर ही रहना चाहिए। दूसरा पक्ष इससे पूर्ण सहमत नहीं है। उसका विचार है कि युद्धसे रहना तो दूर ही चाहिए; परन्तु यह सोचना ठीक नहीं है कि यूरोपमें जो युद्ध हो रहा है, उसका अमेरिकापर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। प्रभाव तो पड़ ही रहा है और ज्यों-ज्यों अधिक समय बीतता जा रहा है, प्रभाव भी अधिकाधिक बढ़ रहा है।

यूरोपकी घटनाओंकी प्रतिक्रिया अमेरिकापर जिस रूपमें हो रही है, उससे अमेरिकाको युद्धसे अलग रखनेवाले पक्षकी आवाज कुछ मन्द होती जा रही है। उस दिन हालैण्डके एक जनरलने जब आत्मसमर्पण किया, अमेरिकाके पत्रोंने खुले रूपमें अमेरिकाका हस्तक्षेप होनेकी सम्भावना प्रकट की। नारवे, हालैण्ड, बेल्जियम और लक्समबर्गके साथ जर्मनीने न्यायके विरुद्ध जो जबर्दस्ती की है, उससे अमेरिकाकी तटस्थताके पक्षकी बड़ी क्षति हुई है। गत मईके अन्तिम सप्ताहमें प्रेसीडेण्ट रूजवेल्टने कहा है कि "अमेरिकाके सबसे अलग रहनेका ख्याल व्यर्थ है। सबसे अलग रहनेके इस सिद्धान्तके आधारपर जो रक्षा-नीति स्थिर की जायगी, उससे भविष्यमें दूसरोंको आक्रमण करनेका प्रोत्साहन मिलेगा। पिछले दो सप्ताहोंकी घटनाओंने सबसे अलग रहनेके पक्षपातियोंका भ्रम दूर कर दिया है। उनका यह भ्रम दूर हो गया है कि अमेरिका दूर और अलग है, इसलिए जो खतरे दूसरे देशोंको हैं, वे अमेरिकाको नहीं।" इन सब बातोंसे पता चलता है कि अमेरिकाका लोकमत स्थितिकी गम्भीरताको धीरे-धीरे अनुभव कर रहा है और हवाका रुख बतला रहा है कि वह इस युद्धको अनिश्चित काल तक यों ही नहीं देखता रह सकता।

गत महासमरमें अमेरिकन सेनाओंके कमाण्डर जनरल परशिङ्ग थे। उन्होंने पिछले दिनों यह कहा है कि "कोई नहीं कह सकता कि हमें युद्धमें कब फंस जाना पड़े।" जहां तक अमेरिकाका प्रश्न है, जनरल परशिङ्गका कथन ठीक प्रतीत होता है।

इटलीका रुख

इटलीकी सहानुभूति तो जर्मनीकी ओर है ही, एक बार तो ऐसा भी मालूम होने लगा कि जर्मनीका साथी बनकर उसका युद्धमें शामिल होना, कुछ दिनोंका प्रश्न है। इटलीमें छात्रोंके प्रदर्शन बढ़ रहे हैं। इन प्रदर्शनोंमें मित्र-राष्ट्र-विरोधी नारे लगाये जाते हैं। मिलानमें छात्रोंके एक

प्रदर्शनमें कहा गया कि "जर्मनी चिरञ्जीवी हो, फ्रान्स और ब्रिटेनकी मृत्यु हो।" छात्रोंने दीवालोंपर यह भी लिख दिया—"हम लन्दनमें हिटलरको और पेरिसमें मुसोलिनी-को चाहते हैं।" इसी तरहके प्रदर्शन इटलीके कितने ही नगरोंमें हुए हैं, जिनमें "अभी नहीं, तो कभी नहीं" की ध्वनिसे आकाश गुंजाया गया है। इटलीमें ब्रिटिश विरोधी भावोंकी गहराईका कुछ अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि लार्ड हारविकेको एक क्रीड़ा-गृहमें इसीलिए एक तमाचा खाना पड़ा कि उन्होंने अपने सामनेकी मेजसे एक ब्रिटिश विरोधी पर्चेको नीचे गिरा दिया था।

इटली यह अनुभव करता है कि भूमध्य सागर उसका क्षेत्र है और उसपर केवल इटलीका ही प्रभुत्व होना चाहिए। उसे भूमध्य सागरपर किसी अन्य शक्तिका प्रभाव स्वीकार नहीं है। लन्दनमें इधर आयी हुई रिपोर्टोंके अनुसार गत २१ अप्रैलको सीन्योर मुसोलिनीने फासिस्टोंकी एक सभामें कहा कि "जो परिस्थिति है, उसमें हम हमेशा ही तमाशाई नहीं रह सकते। हमें तैयार होना चाहिए। हम सचमुच जिब्राल्टर और स्वेजके बीच कैद हैं।"

यह मनोभाव होनेपर भी इटली अभी तक तटस्थ बना हुआ है। इसमें रहस्य कुछ भी नहीं है। भूमध्य सागरमें इटलीको यदि अपने प्रभुत्वका विस्तार करना हो, तो उसे अपनी नौ-शक्तिका विस्तार पहले करना होगा। मालूम होता है, अभी तक इस दृष्टिसे इटली पूरी तरह तैयार नहीं है। पिछले दिनों इटालियन सिनेटमें जल-सेना सम्बन्धी बजट पेश करते हुए एडमिरल कावानारीने कहा था कि "३५ हजार टनका चौथा जङ्गी जहाज जूनमें समुद्रमें उतार दिया जायगा। ३४०० टनके कई क्रूजर बनकर तैयार हो जानेवाले हैं और निश्चित समयपर पूरे हो जायेंगे। पन-डुब्बियां करीब-करीब तैयार हो चुकी हैं।" इस स्थितिमें इटलीके इन प्रदर्शनोंका कारण यही मालूम होता है कि उसे मित्र-राष्ट्रोंकी शक्ति बंटाये रखना अभीष्ट है। देखा गया है कि जर्मनीने जब-जब कोई जोरदार आक्रमण किया, इटलीमें उसके पहले या साथ ही प्रदर्शनोंका जोर बढ़ गया है।

———

दिन ११-२० बजे

ओहो इतना दर्द
इतना सिर दर्द!
ओह!

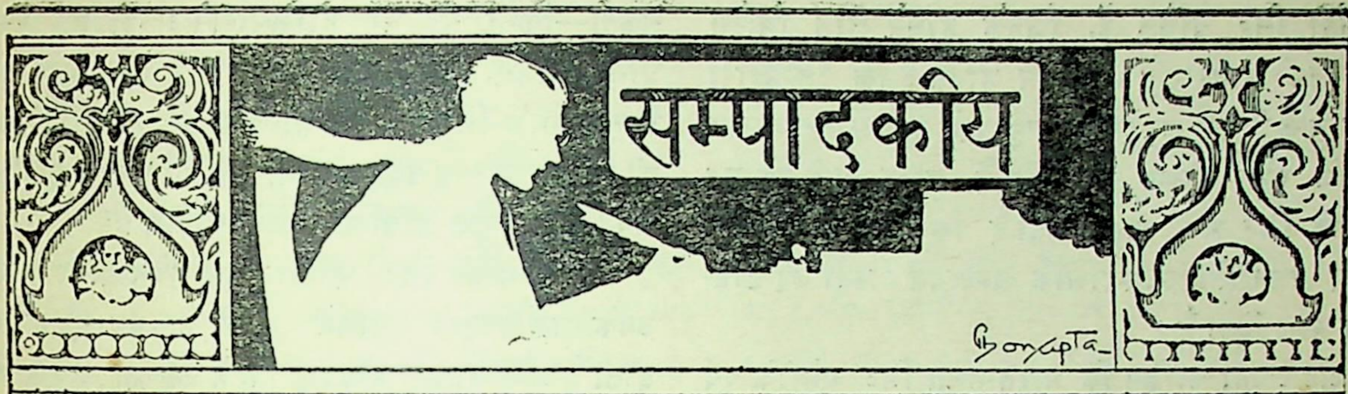
दिन ११-३० बजे

आहा! दर्द दूर!
सारिडन को
धन्यबाद

Saridon
ANALGESIC TABLETS

सारिडन

सब प्रकार का दर्द दूर करता है



नये भारतमन्त्री और उनकी नीति

ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलमें इधर जो परिवर्तन हुआ है, मि० चेम्बरलेनकी जगहपर मि० चर्चिल प्रधान मन्त्री और लार्ड जेटलैण्डकी जगहपर मि० एमेरी भारत-मन्त्री हुए हैं, यह इस देशकी दृष्टिसे कैसा है? यह प्रश्न बहुत लोगोंके मनमें उठ सकता है और उठता है। जहां तक स्वदेशकी राजनीतिक समस्या हल होनेकी बात है, यह इसी देशवासियोंके सङ्कल्प, सङ्गठन और त्यागपर निर्भर है और हमारा यह विश्वास कभी नहीं रहा है कि समुद्र-पार बैठे हुए कोई चर्चिल या एमेरी यह समस्या हल कर सकते हैं। अलबत्ता, यदि ब्रिटिश अधिकारियोंमें सद्विवेक, दूरदर्शिता और समयकी प्रगतिको जाननेकी क्षमता हो, तो वे भारत और ब्रिटेनके पारस्परिक सम्बन्धको सद्भावपूर्ण बनाये रखनेमें सहायक हो सकते हैं। खेद है कि मि० चर्चिल और मि० एमेरी इस कोटिके ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंमें नहीं हैं।

मि० चर्चिल अपनी साम्राज्य-भक्तिके लिए विख्यात हैं, वे ब्रिटिश साम्राज्यका एक कोना भी इधरसे उधर नहीं होने देना चाहते। इस देशकी महत्त्वाकांक्षाओंका तो उन्होंने हमेशा ही विरोध किया है। मार्च १९३१ में इण्डियन एम्पायर सोसायटीके तत्वावधानमें एक सभा मार्लबरोके ड्यूककी अध्यक्षतामें 'हिन्दुस्तानमें हमारा कर्तव्य' इस विषयपर विचार करनेके लिए हुई थी। उसमें मि० चर्चिलने कहा था—"मैं गांधीको आत्मसमर्पण करनेके विरुद्ध हूं। मैं इन वार्तालापों और समझौतोंके खिलाफ हूं, जो लार्ड इरविन और मि० गांधीके बीच हो रहे हैं। गांधी चाहते हैं हिन्दुस्तानसे ब्रिटेनको निकाल देना, ब्रिटेनके व्यापारको हमेशाके लिए उठा देना और ब्रिटिश शासनके बजाय ब्राह्मणोंका प्राधान्य स्थापित करना। गांधीके साथ कभी आपका समझौता नहीं हो सकेगा।......प्रत्येक ब्रिटिश स्वार्थ, आवश्यक संरक्षण और शान्ति रखने एवं उन्नति करनेके साधनोंको छोड़कर अगर गांधीके साथ समझौता किया, तो उसी समयसे हिन्दुस्तानमें गांधीका प्रभाव नहीं रह जायगा।.........गांधीके पीछे भागना, उनकी बातोंको मानकर कोई कार्य करनेकी कोशिश करना और यह सोचना कि मि० रामजे मेकडानल्ड, मि० गांधी और लार्ड इरविन हिन्दुस्तानमें शान्ति बनाये रख सकेंगे, उन्नति कर सकेंगे, सपनेको कार्यान्वित करना है। इसका परिणाम जागनेपर भयङ्कर होगा। इन भयावह मार्गोंसे समय और शक्ति रहते हट जाओ।"

गांधी-इरविन समझौता हो जानेपर १९३१ में ब्रिटिश पार्लमेण्टमें मि० चर्चिलने कहा था—"हमारा मत है कि भारतीय जनताकी भलाईका दायित्व ब्रिटिश पार्लमेण्टपर है और व्यवहारतः उसे छोड़ा नहीं जा सकता। पार्लमेण्ट यदि कोई वैधानिक परिवर्तन करना चाहे, तो यह भारतीय लोकमतके गरम दल या किसी अन्य दलके साथ समझौता होनेपर निर्भर नहीं है—यद्यपि इन दलोंकी रजामन्दी खुशीकी बात होगी। वे केवल इसी बातपर निर्भर हैं कि हिन्दुस्तानकी जनताके प्रति हम अपना सही-सही कर्तव्य पूरा करें। यदि हिन्दुस्तानियोंको और अधिक निर्णायक अधिकार दिये जायं, तो परीक्षणके रूपमें देना चाहिए, उनपर लगातार निगाह रखनी चाहिए और यदि अधिकारोंका दुरुपयोग हो, उनसे ठीक तरहसे काम न लिया जाय, तो उन्हें लौटा भी लेना चाहिए।"

यही मि० चर्चिल हैं, जिनके हाथमें आज ब्रिटिश साम्राज्यकी बागडोर है। यह हम मानते हैं कि जिम्मेदारी बहुधा चौकड़ी बन्द कर देती है, मनुष्यको बहुत सोच-समझकर बोलनेके लिए विवश कर देती है; परन्तु अभी तक यह माननेके लिए कोई कारण नहीं है कि मि० चर्चिलने इस देशकी राजनीतिक समस्याओंके सम्बन्धमें अपना वह दृष्टि-कोण बदल दिया है।

अब देखना चाहिए कि भारत-मन्त्री मि० एमेरीके पूर्व विचार क्या थे और इस समय वे क्या कह रहे हैं? मि० एमेरीके राजनीतिक विचार उदार हैं। उनका विश्वास 'स्वशासन' में है। ब्रिटिश पार्लमेण्टमें जब वर्तमान भारतीय विधानपर विचार हो रहा था और मि० चर्चिल सुधारोंकी प्रगतिपर जो आक्षेप करते थे, उनका करारा उत्तर मि० एमेरी दिया करते थे। इन्होंने एक बार ऐसे ही अवसरपर पार्लमेण्टमें कहा था—"अतीत कालमें हमने जहां कहीं स्वशासनाधिकार दिये हैं, सफलता मिली है।......यदि हम इस समय कार्य करें, हमारे देरी करनेके फलस्वरूप निराशा-से सारे हिन्दुस्तानका जी खट्टा हो जाय और कटुता पैदा हो जाय, इससे पहले ही कुछ कर गुजरनेका अभी समय है। अलबत्ता, इसमें खतरे हैं; परन्तु इस साम्राज्यको बनानेमें अनेक बार हमने महान् कार्य करनेका साहस किया है और ये कार्य सफल हुए हैं।"

मि० एमेरीके विचार यहीं तक सीमित नहीं हैं। भारत-मन्त्रीके पदका उत्तरदायित्व संभालनेके लगभग १ महीने पहले उन्होंने कहा था—"हिन्दुस्तान स्वतन्त्रता पानेके योग्य होनेकी स्थितिमें पहुंच गया है। जहां तक मानसिक उन्नतिका प्रश्न है, हिन्दुस्तान एशियाके सभी राष्ट्रोंमें सबसे बढ़कर है। ब्रिटिश पार्लमेण्टके सभी मेम्बर चाहते हैं कि हिन्दुस्तानकी शिकायतोंको जल्दीसे जल्दी दूर किया जाना चाहिए। जानकारी रखनेवालोंने सब बातोंके विषयमें अच्छी तरह तलाश कर लिया है और प्रत्येकको यह विश्वास हो गया है कि अपना प्रबन्ध स्वयं करनेकी योजना बना सकनेकी स्थितिमें हिन्दुस्तान हो गया है, शर्त यही है कि सभी सम्प्रदायोंमें वह समझौता भी कर सके। हमने घर बनानेमें हिन्दुस्तानियोंकी सहायता की; परन्तु यदि वे अपना घर फिर बनाना चाहते हों, ब्रिटेनको उसपर आपत्ति नहीं हो सकती—किन्तु यह घर होशियारीसे अच्छी तरह बनाया जाना चाहिए, जिससे भविष्यमें गिर न पड़े। मेरी रायमें हिन्दुस्तानके लिए विभिन्न प्रान्तोंके १०-१२ प्रतिनिधियों-की विधान परिषद् उपयुक्त होगी। ये प्रतिनिधि यूरोपियनों समेत सभी वर्गोंके प्रतिनिधि होने चाहिए।"

भारत-मन्त्री मि० एमेरीके इन विचारोंको जब हम उनके पार्लमेण्टवाले बयानमें खोजते हैं, तब बड़ी निराशा होती है और मालूम होता है कि वे पहलेकी अपनी सारी बातें भूल गये हैं। उस दिन उन्होंने पार्लमेण्टमें भारत-सम्बन्धी नीति बतलाते हुए कहा कि "हमारा ध्येय है ब्रिटिश राज्यसङ्घमें हिन्दुस्तान द्वारा स्वतन्त्र और समान साझेदारी प्राप्त किया जाना। हम यह मानते हैं कि यह काम स्वयं हिन्दुस्तानियोंका है कि वे हिन्दुस्तानकी परिस्थिति और दृष्टिकोणके लिए उपयुक्त विधान तैयार करनेमें महत्त्वपूर्ण भाग लें। युद्धके अन्तमें वर्तमान विधान-की योजना और जो नीति और योजना उसके आधार-भूत हैं, उसपर पुनः विचार करनेका जो वचन दिया जा चुका है, उसका अभिप्राय यह है कि वैसा आपसी वाद-विवाद और समझौतेकी बातचीतसे होगा, कोई निर्णय लादकर नहीं। सभी सम्प्रदायों और स्वार्थोंमें सर्वसम्मत उचित समझौता होनेका रास्ता साफ होनेके लिए जो कुछ करनेकी जरूरत हो, उसमें देरी करनेकी हमारी इच्छा नहीं है। इसके विपरीत वैसा समझौता होनेमें अपने हिस्सेका कार्य करनेके लिए हम बहुत उत्सुक हैं; परन्तु इस समय कठिनाई यह है कि हिन्दुस्तानमें तीव्र मतभेद है, जिसका प्रभाव भावी विधान सम्बन्धी मौलिक प्रश्नोंपर और इस समस्यापर विचार करने तक पर पड़ रहा है। मैं यह नहीं मानता कि यह मतभेद मिट नहीं सकता। किसी-न-किसी तरह ऐसा कोई अस्थायी उपाय निकालना मैं हिन्दुस्तानी राज-नीतिज्ञोंकी शक्तिके बाहर नहीं समझता कि प्रान्तोंमें पद स्वीकार कर लिये जायं और शासन-सभाओंमें जनताके प्रतिनिधियोंको नियुक्त किया जा सके।"

भारत-मन्त्रीके इस वक्तव्यसे स्वदेशकी राजनीतिक परि-स्थितिमें कोई अन्तर नहीं हुआ है। इसमें उन्हीं सब बातों-का पिष्ट-पेषण है, जिन्हें उनसे पहलेके अधिकारी कह चुके हैं। कांग्रेस विधान-परिषद् चाहती है, जिसे स्वदेशके लिए

शासन-विधान बनानेका पूरा अधिकार हो। भारत-मन्त्री यह विधान बनानेमें हिन्दुस्तानियोंका भी "महत्त्वपूर्ण भाग" रहनेकी बात कहते हैं। साम्प्रदायिक समस्या सम्बन्धी "तीव्र मतभेद" तो एक बहाना मात्र है, जिसका हमारे जन्मसिद्ध अधिकारके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो हमारी घरेलू समस्या है, जिसे किसी न किसी तरह हल कर ही लिया जायगा; परन्तु इसकी आड़में इस देशका अपना विधान स्वयं तैयार कर सकनेका अधिकार तो अस्वीकार नहीं किया जाना चाहिए। भारत-मन्त्री हमारा यह स्वभाग्य-निर्णयका अधिकार अस्वीकार कर रहे हैं, यही खेदका विषय है। ब्रिटिश अधिकारियोंने जिस ढङ्गसे साम्प्रदायिक समस्याको रखा है, उससे अभी तक उस तीव्र मतभेदको प्रोत्साहन ही मिला है, जिसे मिटाया जा सकता है और जिसके दूर होनेका सर्वोत्तम उपाय महात्मा गांधीने सुझाया है; परन्तु मि० एमेरीने महात्मा गांधीके अनुभवसे लाभ न उठाकर पहलेके अधिकारियोंके स्वरमें स्वर मिलानेका प्रयत्न किया है। औपनिवेशिक पदके ध्येयकी बात तो देशवासी एक युगसे सुनते आ रहे हैं और यह आज भी उतनी ही दूर है, जितना पहले कभी था।

उत्तरदायित्व आ पड़नेपर, बातें बनानेका समय बीत जानेके बाद कुछ कर दिखलानेका अवसर आनेपर किसी व्यक्तिके विचारोंमें कितना अन्तर हो सकता है, इसका एक उदाहरण नये भारत-मन्त्री मि० एमेरी हैं।

चिन्ताका विषय

देशकी जन-संख्या जिस हिसाबसे बढ़ रही है, उसी हिसाबसे यदि शिक्षाका भी प्रसार हो, तो अनन्त काल तक वह दिन नहीं आ सकता, जब इस देशसे निरक्षरता बिलकुल ही दूर हो जायगी; परन्तु यहां तो अवस्था ही कुछ और है—देशकी जन-संख्या जिस अनुपातमें बढ़ रही है, उसी अनुपातमें शिक्षाका प्रसार नहीं हो रहा है। १९२१-३१ तक जन-संख्याकी औसत वृद्धि जहां १० प्रतिशत है, वहां साक्षर जनोंकी संख्यामें कुल १ प्रतिशत वृद्धि हुई है। इसका अभिप्राय यह है कि देशमें निरक्षरताका प्रसार हो रहा है। यह बड़े खेदका विषय है और इसकी कोई सीमा नहीं रहती, जब यह मालूम होता है कि जो बच्चे पढ़ना-लिखना आरम्भ करते हैं, उनमेंसे लगभग ७२ प्रतिशत साक्षर होनेसे पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं। यहां यह मान लिया गया है कि किसी व्यक्तिको साक्षर होनेके लिए कमसे कम प्राइमरी स्कूलकी चतुर्थ श्रेणी तककी शिक्षा होनी ही चाहिए। इसका अर्थ यह हुआ कि नाम लिखानेके बाद प्रतिशत ७२ लड़के चतुर्थ श्रेणी तक पहुंचनेसे पहले ही पढ़ना-लिखना बन्द कर देते हैं और प्राथमिक शिक्षापर जो ७ करोड़ रुपया व्यय होता है, उसका अत्यधिक भाग एक तरहसे व्यर्थ ही चला जाता है। यद्यपि चतुर्थ श्रेणी तक पहुंचनेवाले छात्रोंकी संख्या बढ़ रही है, १९२७-३२ में जहां वह ४१८६००० थी, वहां १९३२-३७ में ४९३३००० हो गयी, तथापि यह तो मानना ही होगा कि ७२ प्रतिशत छात्रोंका चतुर्थ श्रेणी तक न पहुंचना बड़ी चिन्ताका विषय है। सरकारी रिपोर्टमें इसका मुख्य कारण यह बतलाया गया है कि बच्चे जहां थोड़े बड़े होकर इस लायक हुए कि माता-पिताके काममें सहायता पहुंचा सकें, हाथ बंटा सकें, वैसे ही उन्हें स्कूलसे उठा लिया जाता है। इसके सिवाय अन्य कारण भी हैं, जैसे कितने ही स्कूलोंमें प्राइमरी तककी शिक्षाकी व्यवस्था न होना, योग्य अध्यापकोंका काफी संख्यामें न होना, प्रभाव-शून्य शिक्षाप्रणाली और निरीक्षणकी व्यवस्था आदि। इन सब बातोंके अलावा एक अन्य कारण यह भी है कि लोगोंको इस बातके लिए कोई प्रोत्साहन नहीं दिया जाता कि उन्हें अपने बच्चोंको पढ़ाना चाहिए और स्कूलमें नाम लिखानेके बाद कमसे कम प्राइमरीकी चतुर्थ श्रेणी तक शिक्षाको जरूर जारी रखना चाहिए। यही कारण है कि इस देशमें निरक्षरताने डेरा डाल दिया है और अभी उसके पैर उखड़नेकी कोई सूरत सामने नहीं है।

जहां हिन्दू शवदाह नहीं कर सकते

ट्रिनीडाड ब्रिटिश साम्राज्यका उपनिवेश है और देशवासियोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वहां रहनेवाले हिन्दुओंको अपना अन्त्येष्टि-संस्कार तक धर्मविधिके अनुसार करनेकी सुविधा नहीं है। हिन्दुओंको सार्वजनिक स्वास्थ्यके नामपर अपने मुर्दोंको जलाने नहीं दिया जाता और मजबूर होकर उन्हें जमीनमें गाड़ना पड़ता है। यह कहा जाता है कि आस-पास जो अन्य लोग रहते हैं, उन्हें

शवदाहपर आपत्ति है। यह अवस्था केवल ट्रिनीडाडकी ही नहीं है, ब्रिटिश गायना और जमैकामें भी हिन्दुओंको अपना मुर्दा जलानेके अधिकारसे वञ्चित रखा गया है—यद्यपि हिन्दू इस बातके लिए तैयार हैं कि श्मशानके लिए ऐसी जगह निश्चित कर दी जाय कि सार्वजनिक स्वास्थ्यको क्षति न पहुंचे, वह स्थान चारों ओरसे घिरा हुआ हो जिससे किसीको आपत्ति न हो और शवकी भस्म किसी नदीमें प्रवाहित न कर समुद्रमें छोड़ी जाय। शव-संस्कारकी भांति ही एक अन्य समस्या है विवाह। ब्रिटिश गायना, जमैका और ट्रिनीडाडका कानून हिन्दू-विवाह-विधिको नहीं मानता, जब तक उसकी रजिस्ट्री न करा ली गयी हो। ब्रिटिश गायनामें तो कानूनन् विवाह होनेसे पहले उसके सम्बन्धमें सरकारी सार्टिफिकेट ले लेना आवश्यक है। यदि यह सार्टिफिकेट न लिया जाय और विवाह कर लिया जाय, तो उसे जायज नहीं माना जाता और न उस विवाहकी सन्तान जायज समझी जाती है। इसी तरह यदि विवाहसे पहले सार्टिफिकेट ले लिया जाय; किन्तु यदि उसकी रजिस्ट्री न करायी जाय, तो भी विवाह नाजायज हो जाता है। यह स्थिति बहुत ही शोचनीय है और उसके कारण ट्रिनीडाड, ब्रिटिश गायना और जमैकाके प्रवासी हिन्दुओं और उनके उत्तराधिकारियोंको नित्य ही बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। लगभग डेढ़ वर्ष पहले १९३८ के नवम्बर-दिसम्बरमें एक रायल कमीशन ऊपर बतलाये हुए उपनिवेशोंकी अवस्था देखने गया था और उस समय प्रवासी हिन्दुस्तानियोंकी शिकायतें कमीशनके सामने रखनेके लिए मि० जे० डी० टाइसनको भेजा गया था। यह सब हुआ; परन्तु हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिमें अभी तक कुछ भी अन्तर नहीं आया है और सामाजिक और धार्मिक ही नहीं, राजनीतिक शिकायतें भी ज्योंकी त्यों बनी हुई हैं। साम्राज्य-परिषद्ने मुद्दत हुई, उपनिवेशोंमें हिन्दुस्तानियोंको समान सुविधायें दिये जानेका प्रस्ताव पास कर दिया था; परन्तु वैसा प्रस्ताव पास कर देनेका अर्थ ही क्या है, जब हम देखते हैं कि प्रायः सभी उपनिवेशोंमें प्रवासी हिन्दुस्तानियोंको कितनी ही सुविधाओंसे वञ्चित रख छोड़ा गया है और कई उपनिवेशोंमें तो प्रस्ताव पास हो जानेके बाद भी कितने ही अधिकारोंको छीन लिया गया है। प्रवासी भाइयोंकी यह परिस्थिति मातृभूमिकी अवस्थाकी छाया-मात्र है और जब स्वदेश अपना गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त करेगा, उनकी परिस्थिति भी बदल जायगी।

जहाज-निर्माणका व्यवसाय

स्वदेशका समुद्र-तट लगभग ५००० मील लम्बा है, फिर भी जहाजका उद्योग-धन्धा अत्यन्त शोचनीय अवस्थामें पड़ा हुआ है। जहाजके उद्योग-धन्धेसे हमारा अभिप्राय है जहाज बनाना और अन्य देशों तथा भारतके बीच जहाजोंको चलाना—माल और यात्रियोंको ले जाना और ले आना। इस उद्योग-धन्धेके महत्त्वपूर्ण होनेका कारण एक और भी है और वह यह है कि इतना लम्बा समुद्र-तट रखकर हमें उसकी रक्षा करनेमें भी तो समर्थ होना चाहिए। इस दृष्टिसे आज हम निश्चित रूपसे ब्रिटिश जल-सेनापर निर्भर हैं और भारतीय जल-सेना हमारी आवश्यकताकी दृष्टिसे कुछ भी नहीं है। जहां तक यात्रियों और मालको लाने और ले जानेका प्रश्न है, इस उद्योगपर अन्य देशोंकी जहाजी कम्पनियोंने दखल कर रखा है और भारतीय समुद्र-तटके स्थानोंके बीच ही भारतीय जहाज माल ढोते और यात्रियोंको ले जाते हैं और इसमें भी कभी-कभी विदेशी कम्पनियोंके जहाजोंके साथ कठोर स्पर्द्धाका सामना करना पड़ जाता है। इन कठिनाइयोंके बीच कौन यह आशा कर सकता है कि जहाजोंका उद्योग-धन्धा पनप सकता है, यदि सरकार उसे समुचित प्रोत्साहन और यथेष्ट संरक्षण न दे। इस उद्योग-धन्धेकी ओर सरकारका ध्यान आकृष्ट होनेका प्रयत्न हमेशा ही होता रहा है; परन्तु उसका कुछ निश्चित प्रतिफल देखनेमें नहीं आया। यूरोपीय महासमरने आज उस आवश्यकताको हमारे सामने बिलकुल ही स्पष्ट रूपमें रख दिया है। ब्रिटेन भी आज यह अनुभव कर रहा है कि साम्राज्यके विभिन्न देशोंमें यदि जहाज बनानेके बड़े-बड़े कारखाने हों, तो यह सबके सम्मिलित लाभकी दृष्टिसे अच्छा ही है। ब्रिटेनने कनाडाको जल-सेना सम्बन्धी कितनी ही नौकाओंका आर्डर दिया है। आस्ट्रेलियाकी सरकारने जहाज बनानेके उद्योग-धन्धेको सफल बनानेके लिए आर्थिक सहायता देनेकी नीति स्वीकार की है। स्वयं ब्रिटेनने भी जहाजी कम्पनियोंको आर्थिक सहायता देनेकी नीति इसलिए

अङ्गीकार की है कि वे अपने जहाजोंको स्वयं इंगलैण्डमें बनानेमें समर्थ हो सकें। इस अवस्थामें यह उचित ही होगा कि भारत-सरकार जहाजोंके निर्माण और यातायातके उद्योग-धन्धेकी आर्थिक सहायता करने, उसे उचित प्रोत्साहन और संरक्षण देनेके प्रश्नपर गम्भीरतासे विचार करे। यह राष्ट्रीय महत्त्वका प्रश्न है और अधिक समय तक इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। स्वराज्यशाली भारत अपने जहाजोंके लिए दूसरे देशोंपर निर्भर होनेकी कल्पना नहीं कर सकता।

प्रत्येक भारतीयकी औसत आय

प्रत्येक भारतीयकी सालाना औसत आमदनी कितनी है—इस ओर हमेशा ही देशके राजनीतिज्ञों और अर्थ-शास्त्रियोंका ध्यान आकर्षित होता रहा है। दादाभाई नौरोजीके समयसे लगाकर इस समय तक लगभग ११ बार औसत आमदनी निकालनेका प्रयत्न किया गया है। यह औसत आमदनी सालाना २०) से लगाकर १०७) तक जांची गयी है। इस अन्तरके कई कारण हो सकते हैं। एक कारण तो लगभग ५० वर्षका समय ही है, जब विभिन्न वर्षोंमें औसत आमदनीका हिसाब लगाया गया, फिर इतने अर्सेमें आमदनीमें काफी अन्तर भी पड़ सकता है। इसके अलावा अंकड़ोंके अभाव और औसत आमदनी निकालने-वालोंकी भूलोंका भी बड़ा असर पड़ सकता है। जो हो, हालमें ही अहमदाबादके डा० वी० के० आर० वी० रावने प्रत्येक भारतीयकी सालाना औसत आमदनी १९३१-३२ के अंकड़ोंके आधारपर निकालकर बतलायी है। उनके मतानुसार यह ६२) है। इस देशमें अंकड़े पूरे नहीं मिलते। फिर, जो अंकड़े मिलते हैं, उनपर कितना भरोसा किया जा सकता है, यह भी एक प्रश्न है। उदाहरणके लिए कृषिकी उपजके अंकड़े लीजिये, जिनमें प्रायः कम उपज दिखलायी जाती है। इसी तरह इनकम टैक्सकी रकमके आधारपर भी आमदनीकी यथार्थ रकम नहीं निकाली जा सकती। फिर, यह भी सम्भव है कि डा० रावने स्वयं भी हिसाब लगानेमें आमदनीका ज़्यादा अनुमान कर लिया हो। उदाहरणके लिए राष्ट्रको दूधसे कितनी आय होती है, यह निकालनेके लिए डा० रावने मान लिया है कि शहरोंमें रुपयेका ४ सेर और गांवोंमें ६॥ सेर दूध बिकता है। यह अनुमान सर्वथा ठीक नहीं है, इसीलिए यह दावा नहीं किया जा सकता कि सालाना आमदनीका जो औसत निकाला गया है वह बिलकुल ठीक है, फिर भी इस अनुमान और वास्तविक आयमें कमसे कम अन्तर रहनेकी सम्भावना है और डा० रावके मतानुसार यह अन्तर प्रतिशत ६ से ज्यादा नहीं हो सकता। जो हो, ६२) की औसत आमदनी यह बतलाती है कि स्वदेशवासी कैसी भयङ्कर गरीबीमें अपने दिन बिता रहे हैं। यह राष्ट्रके जीवन और मरणका प्रश्न है। कौन नहीं जानता कि गरीबीने हमारी जीवनी शक्तिको कम कर दिया है, देशवासियोंको सुखा डाला है और उनके सूखे हुए चेहरोंपर, निराशापूर्ण नेत्रों और शरीर ढकनेके चिथड़ोंमें उसे प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। ग्राम-उद्योगोंके ह्रास और शिक्षित वर्गकी बेकारीने देशकी इस गरीबीको गत २०-२५ वर्षमें और भी अधिक बढ़ा दिया है, इसमें सन्देह नहीं है। महात्माजी ग्राम-उद्योग-धन्धोंको जब नया जीवन दे रहे हैं, तब निश्चय ही देशकी गरीबी और बेकारी दूर करनेके लिए ऐसा प्रयत्न कर रहे हैं, जो कभी व्यर्थ नहीं जा सकता; परन्तु इस सम्बन्धमें सरकार क्या कर रही है? देशकी गरीबी और बेकारी दूर करनेके लिए उसने क्या कोई योजना तैयार की है? यह दुःखका विषय है कि असीम साधन होनेपर भी देशवासी गरीबी और बेकारीका असह्य कष्ट भोग रहे हैं—और प्रतिवर्ष कितने ही विवश होकर आत्मघात तक कर रहे हैं। माता अन्नपूर्णाके देशकी यह दुर्दशा!

स्थायी बन्दोबस्त प्रणालीका भविष्य

लगभग १५० वर्ष पहले बङ्गालमें लार्ड कार्नवालिसने जमीनका स्थायी बन्दोबस्त किया था; परन्तु : बङ्गाल-सरकारके एक कमीशनके बहुमतकी सिफारिशोंके अनुसार यदि कभी कार्य हुआ, तो लार्ड कार्नवालिसका वह बन्दोबस्त अस्थायी साबित होने जा रहा है। कमीशनकी नियुक्ति ५ नवम्बर १९३८ को हुई थी। उसके अध्यक्ष सर फ्रान्सिस फ्लाउड थे। कमीशनके बहुमतने अपनी रिपोर्टमें सिफारिश की है कि "१७९३ ईस्वीमें स्थायी बन्दोबस्त करनेमें चाहे कुछ भी औचित्य रहा हो; परन्तु वर्तमान अवस्थाके लिए वह उपयुक्त नहीं है। जमींदारी प्रथामें इतने दोष आ गये हैं

कि राष्ट्रीय स्वार्थोंके लिए अब उसका कोई उपयोग नहीं है, अतएव स्थायी बन्दोबस्तकी वर्तमान प्रणालीके स्थानपर जमीनकी किसी ऐसी बन्दोबस्त-प्रणालीको जारी करना चाहिए, जिसमें खेत जोतनेवाले किसानका सरकारके साथ सीधा सम्बन्ध रहे।" यह रैयतवारी बन्दोबस्त-प्रणाली तभी सम्भव है, जब किसान और सरकारके बीच जमींदारी-अधिकारोंको सरकार अमान्य ठहरा दे या खरीद ले। कमीशनके बहुमतने मुनाफेसे १० गुना अधिक मूल्य देकर ये अधिकार खरीद लेनेकी सलाह दी है और अनुमान लगाया है कि इस तरह जमींदारियां खरीदनेके लिए सरकारको ७७ करोड़ ९० लाख रुपये कर्ज लेने पड़ेंगे। कमीशनके अल्पमतकी दृष्टिमें बङ्गालके किसानोंकी वर्तमान शोचनीय अवस्थाके लिए स्थायी बन्दोबस्त जिम्मेदार नहीं है। अल्पमतकी रायमें उसका कारण है—बढ़ती हुई जन-संख्याका जमीनपर भार और उत्तराधिकार सम्बन्धी हिन्दू-मुसलिम कानून, जिससे जमीन छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बंट गयी है, वर्षमें अधिक समय तक किसानोंकी बेकारी और १९२९ से इधर खेतीसे पैदा होनेवाली जिंसोंकी मन्दी। जमींदारियां खरीदनेकी योजना आर्थिक दृष्टिसे तो भयावह है ही, वास्तविक अवस्थाकी दृष्टिसे भी अवाञ्छनीय है। अल्पमतका अनुमान है कि जमींदारियोंके मुनाफेसे लगभग २२॥ लाख आदमियोंकी गुजर होती है। फिर बङ्गालमें इतनी जमीन भी तो नहीं है कि किसानोंकी कमसे कम आवश्यकताओंकी पूर्ति हो सके। बङ्गालमें एक परिवारके लिए औसतसे ५ से लगाकर ८ एकड़ तक जमीन पर्याप्त समझी जाती है; परन्तु खेतीकी सारी जमीनको यदि बांटा जाय, तो औसत ४॥ एकड़ आता है और इस समय ४१.९ प्रतिशत किसान-परिवारोंके पास कुल दो एकड़ या इससे भी कम जमीन है।

कमीशनके बहुमत और अल्पमतकी इन सम्मतियोंके बीच एक सचाई यह है कि बङ्गालके किसानोंकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय है और इसे दूर किया जाना चाहिए। कमीशनके अल्पमतके एक सदस्यकी दृष्टिमें बङ्गालके किसानोंकी अवस्था जापानके किसानोंसे अच्छी है। एक अन्य सदस्यने उनपर देशके अन्य प्रान्तोंसे लगानका बोझ कम बतलाया है। यह हो सकता है; परन्तु इससे बङ्गालके किसानोंकी समस्याका महत्त्व कम नहीं होता। यह सही है कि किसानोंकी वर्तमान अवस्थाके मुख्य कारणोंपर विचार करनेके समय उन बातोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, जिन्हें अल्पमतने बतलाया है; परन्तु स्थायी बन्दोबस्त यदि न रहे और किसान एवं सरकारके बीचमें जमींदारी अधिकार न रह जायं, तो किसानोंका लगान कम किया जा सकता है, उनपर लगानका जो बोझ लदा हुआ है, उसे हलका किया जा सकता है। क्या इस बातको अल्पमत अस्वीकार कर सकता है? रहा २२॥ लाख आदमियोंकी गुजरका प्रश्न—यह विषय हमारी दृष्टिमें कई करोड़ जनताके हितके मुकाबलेमें ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं है, विशेषतः जब कमीशनके बहुमतने मुनाफेसे १० गुना ज्यादा मूल्य देकर जमींदारी-अधिकार खरीदनेकी सिफारिश की हो। जो हो, एक बार यह सिद्धान्त मान लिये जानेकी जरूरत है कि जमीनकी बन्दोबस्त-प्रणालीको बदला जा सकता है, यदि जमीनसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखनेवाले किसानोंका हित उसमें हो। यह सिद्धान्त निश्चित हो जानेपर इस प्रश्नको बादमें सुलझाया जा सकता है कि उसे कैसे बदला जाय, जिससे किसी वर्गके साथ अन्याय नहीं हो। लार्ड कार्नवालिसने कभी बङ्गालकी वर्तमान बन्दोबस्त-प्रणालीको स्थायी रखनेका वादा किया था, यह कोई दलील नहीं है। जमाना बदल रहा है और जमीनकी बन्दोबस्त-प्रणाली भी उसके लिए अपवाद नहीं है।

———



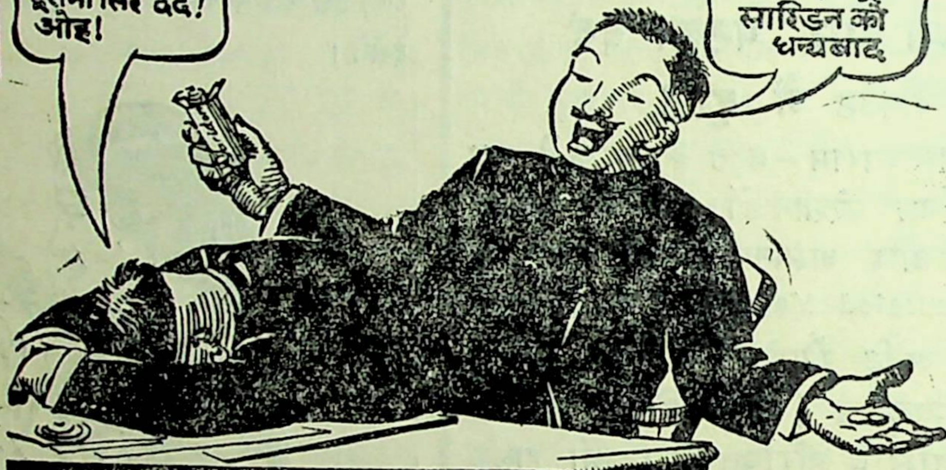
'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट कलकत्तासे पं० मातासेवक पाठक द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

प्रस्तुत पुस्तकमें, जैसा कि इसके नामसे स्पष्ट होता है, श्री सावरकरका जीवन-चरित अङ्कित किया गया है। श्री सावरकरके सम्बन्धमें जनताको काफी दिनोंसे दिलचस्पी रही है और इसमें सन्देह नहीं कि उनका जीवन-इतिहास अनेक रोमाञ्चकारी घटनाओंसे भरा हुआ है।

प्रस्तुत पुस्तकमें १८ अध्यायोंमें श्री सावरकरके सम्बन्धमें प्रारम्भसे लेकर अब तककी बातोंका समावेश किया गया है। लेखन-शैली आकर्षक है ; पर सबसे अधिक आकर्षक हैं श्री सावरकरके साहस-भरे कार्य, जिन्हें पढ़नेमें उपन्यासका-सा मजा आता है। श्री सावरकरकी राजनीतिसे किसीका चाहे जितना भी मतभेद हो; पर इस निःस्वार्थसेवी वीरके साहस, लगन, त्याग एवं कष्टसहनकी प्रशंसा सभी करेंगे। अतः पुस्तक चावसे पढ़ी जायगी, इसमें सन्देह नहीं। पर लेखकने पुस्तकके अन्तमें कुछ ऊटपटांग बातोंका समावेश अति उत्साहमें आकर न कर दिया होता, तो इसका मूल्य कुछ घट न जाता। सावरकर महोदयका सम्मान केवल 'हिन्दू राष्ट्रपति' के रूपमें सब नहीं करते। इस मनुष्यमें एक आकर्षक व्यक्तित्व और उस व्यक्तित्वके भीतर शक्तिका 'डिनामाइट' है, जो लोगोंको उसका प्रशंसक बना देता है, अतः इस वीर पुरुषको केवल एक हिन्दूके रूपमें ही सब नहीं देखेंगे।



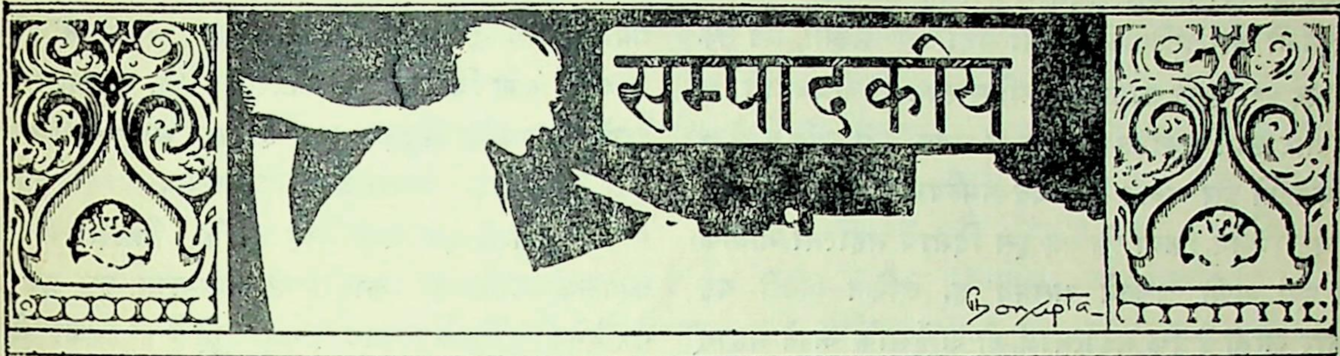




दिन ११-२० बजे
ओहो इतना दर्द इतना सिर दर्द! ओह!
दिन ११-२० बजे
आहा! दर्द दूर! सारिडन को धन्यबाद



Saridon
ANALGESIC TABLETS
सारिडन
सब प्रकार का दर्द दूर करता है



गांधीजी जिम्मेदारीसे मुक्त

वर्धामें पिछले दिनों होनेवाली कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निश्चय किया है, जिसके अनुसार उसने गांधीजीको अहिंसाके अपने महान् सिद्धान्तका प्रचार करनेके लिए कांग्रेसके कार्यक्रमको निर्धारित एवं सञ्चालित करनेकी जिम्मेवारीसे मुक्त कर दिया है; क्योंकि कांग्रेसको बाहरी आक्रमण तथा आन्तरिक शान्तिके सम्बन्धमें वर्तमान परिस्थितिके अनुरूप ही अपनी नीति बनानी होगी। वर्किङ्ग कमेटीने यह निश्चय जिस पृष्ठ-भूमिपर किया है, वह भी प्रस्तावमें सन्निहित है। उसका पूरा प्रस्ताव यों है :—

"यूरोपमें इधर एकके बाद एक जो दुःखद घटनायें हुई हैं और खासकर फ्रान्सकी जनतापर जो विपत्ति गिरी है, उससे कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी अत्यन्त विचलित हो उठी है। इन घटनाओंके परिणाम बहुत दूर तक पहुंचनेवाले हुए हैं एवं आगे ऐसी और घटनायें घटनेकी सम्भावना है, जिससे परिस्थिति अधिक नाजुक और समस्यायें अधिक जटिल हो जायेंगी।

यूरोपीय युद्धके आरम्भ-कालसे ही कांग्रेसने अपने सिद्धान्त और भारतको एक स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर देनेकी मांगके प्रति ब्रिटिश सरकारके रुखके आधारपर अवलम्बित नीतिका अनुसरण किया है। रामगढ़ कांग्रेसके प्रस्ताव द्वारा इस नीतिकी पुष्टि की गयी। किस तरीकेसे इस नीतिको काममें लाया जाय, यह परिस्थितिपर निर्भर करता है, जो कि हर रोज बदल रही है। जो समस्यायें पहले दूर थीं, वे अब करीब आ गयी हैं, इसलिए बहुत जल्द इन्हें हल करनेकी जरूरत है। राष्ट्रीय आजादी हासिल करनेकी समस्याके साथ-साथ अब हमें सम्भावित बाहरी आक्रमण और भीतरी अशान्तिसे आजादी और देशकी रक्षाके प्रश्नपर भी विचार करना होगा।

दूसरे लोगों और देशोंपर आधिपत्य जमानेकी साम्राज्यवादी आकांक्षा और शस्त्रीकरणकी दौड़के परिणाम-स्वरूप ही यह यूरोपीय युद्ध हुआ है, जिसने मनुष्य जातिका कष्ट उस चरम-सीमा तक पहुंचा दिया है, जो अब तक अज्ञात था। इस युद्धने राष्ट्रीय आजादी और जनताकी स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेमें सङ्गठित हिंसाकी, चाहे वह कितने भी विशाल दायरेमें हो, अयोग्यता प्रकट कर दी है।

निस्सन्देह यह बात स्पष्ट हो गयी है कि युद्धसे शान्ति और आजादीकी स्थापना नहीं हो सकती, इसलिए संसारको अब दोमें किसी एकको चुन लेना है—युद्धके द्वारा पूर्ण रूपसे पतन और विनाश अथवा समस्त जनताकी आजादीके आधारपर शान्ति और अहिंसाका मार्ग, जिसे महात्मा गांधीने युद्धसे पीड़ित और शान्ति चाहनेवाले संसारको दिखाया है और जो सशस्त्र आक्रमणसे जनताके अधिकारों और उसकी आजादीकी रक्षा करनेके लिए युद्धका स्थान लेनेवाले, सङ्गठित अहिंसाके रूपमें एक अस्त्रके समान है। महात्माजी महसूस करते हैं कि मानव-इतिहासके इस सङ्गीन मौकेपर कांग्रेसको इस आदर्शका पालन करना चाहिए और यह घोषित कर देना चाहिए कि भारत बाहरी आक्रमण अथवा भीतरी अशान्तिसे अपनी आजादीकी रक्षा करनेके लिए सशस्त्र सेनायें रखना नहीं चाहता।

वर्किङ्ग कमेटी यद्यपि यह मानती है कि कांग्रेसको अपनी आजादीकी लड़ाईमें अहिंसात्मक सिद्धान्तका पालन दृढ़ता-

पूर्वक करना होगा, तथापि वह तेजीसे बदलनेवाली आजकी दुनियामें इस दिशामें मानव शक्तिकी वर्तमान अपूर्णताओं और त्रुटियोंकी उपेक्षा नहीं कर सकती, जब तक जनतापर पूर्ण रूपसे कांग्रेसका अहिंसात्मक नियन्त्रण हो न जाय और लोग सङ्गठित अहिंसाका सबक भली भांति न सीख लें। कमेटीने इस प्रकार उपस्थित समस्यापर विचार करनेके बाद यह निश्चय किया कि वह इस दिशामें महात्मा गांधीके साथ पूर्ण रूपसे चलनेमें असमर्थ है, लेकिन कमेटी यह स्वीकार करती है कि महात्माजीको अहिंसाके अपने महान् आदर्शका विस्तार करनेके लिए स्वतन्त्र कर देना चाहिए। इसलिए भारतकी वर्तमान स्थितिमें कांग्रेसको जिस प्रोग्राम-के अनुसार कार्य करना है, उसे कार्यान्वित करनेकी जिम्मे-दारीसे महात्माजीको मुक्त कर देना चाहिए।

वर्किङ्ग कमेटीने इस सम्बन्धमें जिन कई अन्य प्रश्नोंपर विचार किया है, वे वर्तमानसे सम्बन्धित नहीं हैं, यद्यपि निकट भविष्यमें वे आ सकते हैं। कमेटी यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि राष्ट्रीय आजादीकी लड़ाईमें अहिंसाकी मौलिक नीति और तरीका पूर्ण रूपमें जारी है और राष्ट्रीय रक्षाकी हद तक उनका विस्तार हो सकनेमें असमर्थताके कारण उनपर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।"

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिकी जो उलझनें इधर पिछले वर्षोंसे बढ़ती गयी थीं, उनमें कांग्रेसकी स्थितिकी अस्पष्टता भी बढ़ती जा रही थी, अतः वर्धाके इस निश्चयने कांग्रेसकी स्थितिको अत्यन्त स्पष्ट कर दिया है, यह सन्तोष-की बात है। राष्ट्रीय स्वाधीनताके लिए कांग्रेसने पूर्ण अहिंसात्मक साधनोंका ही अवलम्बन करनेकी बात कही है, पर आन्तरिक अशान्ति एवं बाहरी आक्रमणोंसे देशकी रक्षाके लिए उसने अभी इस अहिंसाको प्रभावशाली नहीं माना है, यह हमारे लिए और भी सन्तोषजनक है, क्योंकि हमने कितनी ही बार इन कालमोंमें ठीक ऐसा ही मत प्रकट किया था। सदासे हमारा मत रहा है कि अहिंसाका सिद्धान्त देशकी स्वाधीनता प्राप्त करनेके साधनके रूपमें तो ठीक है, पर बाहरी आक्रमणोंसे आत्मरक्षार्थ यह विशाल पैमानेपर सफल नहीं हो सकता और इसीलिए जब गांधीजीने अबसीनिया और जेकोस्लोवेकिया जैसे देशोंको पशुबलके सामने शस्त्रास्त्र रख देनेकी बात कही, तभी हमने उसका विरोध किया है। अहिं-सात्मक साधनों की सफलता जिन बातोंके आधारपर हम सोचते हैं, बाहरी आक्रमणोंमें वे नहीं होतीं, अतः उसका प्रयोग सफल ही नहीं हो सकता। इतिहासने भी इन्हीं तथ्योंको स्पष्ट किया है। कांग्रेसका इस समयका निर्णय देशके लोकमतके अनुकूल हुआ है, इसमें सन्देह नहीं।

प्रस्तावकी प्रतिक्रिया

पर देशका एक भाग वह भी है, जिसपर गांधीजीको कांग्रेसकी नीति एवं कार्यक्रमसे अकस्मात् इस प्रकार मुक्त कर देनेकी प्रतिक्रिया अच्छी नहीं हुई है। उसका विश्वास है कि इस समय कांग्रेसको उनके नेतृत्वकी आवश्यकता है और कांग्रेस उनके नेतृत्व बिना चल नहीं सकती।

इस सम्बन्धमें कई बातें हैं, जिन्हें उक्त निर्णयके समर्थकों और विरोधियों, दोनोंको समझ लेना चाहिए। पहली बात तो यह है कि बम्बई कांग्रेसमें कांग्रेसके नेतृत्वसे अपनेको मुक्त करनेके लिए उसका उद्देश्य बताते हुए गांधीजीने स्वयं कहा था कि वे चाहते हैं कि देश केवल उन्हींपर निर्भर न रहे। उनपर निर्भर रहनेकी जो आदत कांग्रेसको पड़ गयी है, और उसने अपनी सोचने और निर्णय करनेकी जो शक्ति खो दी है, उसका विकास होने लगेगा, जब गांधीजी उसके नेतृत्वसे हट जायेंगे। गांधीजीके इस तर्कमें काफी जोर है और हम स्वीकार करते हैं कि गांधीजीका मत इस विषयमें खूब स्पष्ट है और उनका निश्चय देशके हितोंके अनुकूल ही रहा। अतः वर्किङ्ग कमेटीने जो कुछ किया है, निश्चय ही गांधीजीकी सम्मति और उनके मतके अनुकूल ही किया है। और जैसा कि पं० जवाहरलालजीने अपने एक वक्तव्यमें कहा है और जैसा कि बम्बई कांग्रेसके समयसे अब तक नियमानुकूल कांग्रेससे अलग रहनेपर भी गांधीजीका सच्चा परामर्श एवं नेतृत्व कांग्रेसको मिला है, उसे देखते हुए इस बातकी सम्भावनाओंकी आशा हम अवश्य करते हैं कि गांधीजीका सहयोग देशको मिलता ही रहेगा।

और इसके स्पष्ट कारण हैं। बीस साल तक जो गांधीजी देशके सर्वमान्य नेता रहे हैं, बीस साल तक जो गांधीजी कांग्रेसके एकमात्र सूत्रधार रहे हैं और बीस साल तक जिन गांधीजीकी विचार-धाराका प्रचार और प्रयोग कांग्रेसके नेतृत्वमें भारतकी जनता करती रही है, उससे एक प्रस्ताव पास करके ही उसे मुक्त कर देना कुछ इतना आसान भी

नहीं है। हां, इससे गांधीजीकी उलझनोंका अन्त हो जायगा और कांग्रेस तथा गांधीजीके दृष्टिकोण एवं उसके अनुसार नीति-निर्धारण एवं कार्यक्रमका सञ्चालन करनेमें जो परस्पर विरोधात्मक शक्तियां उठ खड़ी होती थीं, उनका इस प्रस्तावने अन्त कर डाला है, यह सन्तोषकी बात है। देशके सामने अब कांग्रेसकी नीति एवं स्थिति इतनी स्पष्ट हो चुकी है, जो जनता एवं अधिकारियोंके लिए भी उपयोगी है।

इस नीतिकी सफलता तीन बातोंपर निर्भर करती है। कांग्रेसमें नेतृत्वकी क्षमता, दूसरे दलोंपर इसकी प्रतिक्रिया एवं जनता और सरकारकी आवश्यकतायें। पहली बात तो यह है कि वर्षों गांधियन विचार-धाराके घनिष्ट सम्पर्कमें रहने और उससे प्रभावित होनेवाला नेतृत्व अकस्मात् अपनेको उससे सर्वथा पृथक् नहीं कर सकता। दूसरी बात यह है कि इस देशके साम्प्रदायिक दल कभी भी राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे न सोचकर केवल साम्प्रदायिक हितोंके नामपर लड़ रहे हैं, अतः समस्त देशके लिए कांग्रेसके किसी निश्चयकी प्रतिक्रिया उनपर एक निराले ढङ्गसे होती है और जनताकी आवश्यकतायें चाहे जो भी हों, सरकारकी प्रगति इस विषयमें काफी शिथिल होती रही है। पर कांग्रेस पिछली दो कठिनाइयोंसे निराश कभी नहीं हुई है, अतः यदि कांग्रेसने अपनी इस नयी नीतिका सञ्चालन कर देशको अपनी स्वाधीनताके लिए अहिंसात्मक साधनोंको अपनाने तथा बाहरी आक्रमणोंसे देशकी रक्षाके लिए सभी उचित साधनोंको एकत्रकर देशको तैयार रखनेका कार्यक्रम अपनाया और निःशङ्क इस दिशाकी ओर कदम उठाया, तो निश्चय ही उसका यह निर्णय देशके हितोंके अनुकूल होगा और वह शक्ति-सञ्चय कर सकेगी।

वायसरायको नये अधिकार

युद्धकी निरन्तर उलझती हुई परिस्थितिमें इस बातकी आशङ्का की जाने लगी है कि ह्वाइट हाल और भारतमें सीधा सम्पर्क सम्भवतः न रह सके, और ह्वाइट हालके आदेशके बिना वायसराय महोदय परिस्थितियोंके अनुकूल कारवाई करनेमें अक्षम न रह जायें, इसलिए वायसरायको इन मामलोंमें अधिकार दे देना ही मि० एमेरीके उस बिलका उद्देश्य था, जिसे अब कानूनका रूप मिल चुका है। १९३५ के भारतीय शासन-विधानकी धारा ११० के अनुसार यूरोपियनोंको सेनामें भरती करनेके सम्बन्धमें भारतको कानूनन् कोई अधिकार न था; क्योंकि इससे आर्मी ऐक्ट, नेवी ऐक्ट आदिके विरुद्ध बात होती, और उधर यूरोपियनोंके लिए बनाया गया पहला कानून, जिसके अनुसार यूरोपियनोंकी सैनिक योग्यताकी जांचका अधिकार मिला था, उसपर यूरोपियनोंकी ओरसे स्वेच्छापूर्वक ऐसा करनेका कोई खास उत्साह नहीं दिखाई पड़ा, इसलिए तत्सम्बन्धी वायसरायकी वैधानिक कठिनाइयोंका अन्त कर उन्हें पूर्ण अधिकार देना भी उक्त ऐक्टका उद्देश्य है। वायसरायकी आर्डिनेन्स बनानेकी क्षमतामें भी इस कानूनसे वृद्धि हुई है, जैसा कि उसकी तीसरी और चौथी धाराओंसे स्पष्ट है। भारतीय व्यवस्थापिका सभा भी अब उनके इन अधिकारोंके विरुद्ध कुछ नहीं कह सकती; क्योंकि उक्त ऐक्टके अनुसार अब वे सीधे पार्लमेण्टके नियन्त्रणमें काम करते माने जायेंगे। भारतीयोंके सम्बन्धमें उन्हें पहलेसे अधिकार मिल चुके हैं।

देशकी रक्षाका प्रश्न

१९३९—४० के लिए सुरक्षा विषयक संशोधित बजटमें, जो सम्राट्की सरकारके समझौतेके आधारपर बनाया गया था, उसके अनुसार, ४९.२९ करोड़का अनुमान लगाया गया था। साधारण बजटकी अपेक्षा यह ४.११ करोड़ अधिक था। फिर नये वर्षके बजटका तखमीना सुरक्षाके लिए ५३.५२ करोड़ लगाया गया। और अब भारत-सरकारके एक वक्तव्यके अनुसार सुरक्षाकी योजनाओंको कार्यान्वित करनेमें २० करोड़ वार्षिक और भी बैठेगा। फिनान्स मेम्बरने अनुमान लगाया था कि सुरक्षाके लिए प्रायः ८ करोड़ और भी अधिक खर्च होगा; पर अब सब मिलाकर, सैनिक तैयारी, शस्त्रास्त्र-निर्माण, गोली-बारूदकी तैयारी तथा दूसरी युद्ध-सामग्रियोंके निर्माणमें प्रायः ७३ करोड़ रुपये लग जायेंगे। २८ जूनको वायसराय महोदयने शिमलासे एक आर्डिनेन्स निकाला है, जिसके अनुसार युद्धसामग्री तैयार करनेवाले कारखानोंमें काम करनेके लिए सुदक्ष शिल्पियोंकी अनिवार्य भर्ती की जायगी। आगामी चन्द महीनोंमें इन फौजी कारखानोंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए चार हजारसे ऊपर शिल्पियों एवं कारीगरोंकी अनिवार्य भर्ती होगी। अगर ये

कर्मचारी फिलहाल खाली न होंगे, तो इस आर्डिनेन्समें सरकारको यह अधिकार दिया गया है कि वह सम्बन्धित कारखानेदारोंको इस बातके लिए बाध्य कर सकती है कि वे अपने कारखानेसे इन कारीगरोंको, युद्ध-सामग्री तैयार करनेके लिए कायम किये गये कारखानोंमें काम करनेको फौरन् मुक्त कर दें।

आर्डिनेन्समें सरकारको यह भी अधिकार दिया गया है कि विशेष आवश्यकताके खतम हो जानेपर वह इन कारीगरोंको अपने पहलेके कामपर फिर नियुक्त करा दे और उनकी नौकरी जाने न पाये। इस तरह हटाये गये चतुर कारीगरोंके रिक्त स्थानोंपर स्थापित टेकनिकल कारखानोंमें कारीगर तैयार करनेकी व्यवस्था करनेके लिए एक विभागीय समिति स्थापित की जायगी, जो एक महीनेके भीतर इस दिशामें जरूरी काररवाई करनेकी बाबत रिपोर्ट पेश करेगी।

इस सम्बन्धमें निकाले गये एक प्रेस नोटमें कहा गया है कि तेजीके साथ यूरोपकी बदतर होती हुई परिस्थितिको मद्देनजर रखकर यह जरूरी हो गया है कि समूचे ब्रिटिश उपनिवेशोंमें युद्ध-प्रयासका कार्य बड़ी तेजीके साथ शुरू कर दिया जाय और इस दिशामें जरा भी ढिलाई न होने पाये। ब्रिटेन और उसके मित्रराष्ट्रोंकी मददमें हिन्दुस्तान भी बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग ले रहा है। अब मौका आ गया है कि युद्ध-प्रयासमें भारतवर्ष पूरी मुस्तैदीके साथ लग जाय। बाहरी हमलेसे भारतवर्षकी रक्षा करनेके लिए यथासम्भव पूरी सतर्कता रखी गयी है, लेकिन भारतवर्षको केवल अपने ही साधनोंपर निर्भर नहीं रहना चाहिए, बल्कि निकट एवं मध्य-पूर्वमें शस्त्रास्त्रों एवं युद्ध-सामग्रीकी आवश्यकताओंको पूरा करनेमें भी उसे सहायक होना चाहिए।

राष्ट्रकी महत्त्वाकांक्षा

भारतका सुरक्षा सम्बन्धी व्यय सदासे बहुत ऊंचा रहा है और इसके परिणाम देखते हुए सरकारकी नीति सदा राष्ट्रवादियोंकी आलोचनाका विषय रही है। पर युद्धकालकी आकस्मिक आवश्यकताओंकी अवहेलना नहीं की जा सकती और उधर कांग्रेसने भी सुरक्षाके लिए अपनी अहिंसात्मक नीतिमें त्याग कर देशकी सुरक्षाके लिए सैनिक तैयारी एवं शस्त्रास्त्रोंमें विश्वास प्रकट किया है, अतः सरकारके लिए यह मनोवैज्ञानिक परिस्थिति अनुकूल हो जाती है; किन्तु इस दिशामें जनताको सन्तोष होगा, यदि लोकमतकी उपेक्षा न कर भारतकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्ति कर उसे स्वयं सुरक्षामें पूरी दिलचस्पी लेनेके लिए विवश किया जाय। आज जब यूरोपमें पशुबलका ताण्डव नृत्य हो रहा है, तब भारत उससे अपनी रक्षा करनेके लिए अपनेको इतना असहाय पा रहा है। सेनाके भारतीयकरणकी मांगको ब्रिटेन सदासे ठुकराता आया, अन्यथा आज हम अपनेको इतना निरुपाय न पाते। हमारी यह असहायता ही है, जिससे हम साधारण घटनाओंसे भी विचलित हो जाते हैं। हमारा ख्याल है कि वर्तमान परिस्थितियोंमें भारतकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्ति तत्काल होनी चाहिए, अन्यथा जैसा कि 'स्टेट्समैन' के सम्पादक श्री आर्थर मूरने कहा है—एक-एक दिन हम लोग भारतमें खो रहे हैं। 'भारतीयोंको स्वेच्छापूर्वक युद्धमें विजय प्राप्त करनेका अवसर दो'। कांग्रेसने भी इसे स्पष्ट कर दिया है, वह गणतन्त्रके लिए लड़नेको तैयार है, पर उस गणतन्त्रका प्रयोग वह यहां भी देखना चाहती है और अगर भारतसे समान रूपसे त्याग करनेको कहा जाता है, तो उसे समानाधिकार भी मिलना चाहिए। मैञ्चेस्टर गार्जियनने २१ जूनको ठीक ही लिखा है :—

"हिन्दुस्तानमें यह बात मन्जूर की गयी है कि भारतके लोग और अधिकांश भारतीय नेता भी युद्ध-सम्बन्धी प्रचेष्टाओंमें सहयोग देने और बढ़ानेके लिए चिन्तित हैं। किन्तु भारतवासी और जो लोग उनकी ओरसे बोलते हैं, वे यह चाहते हैं कि स्वायत्त-शासन-प्राप्त उपनिवेशोंकी तरह उन्हें भी राजनीतिक समताका अधिकार मिले और उनका यह हक मन्जूर किया जाय। इस गहरी भावनाके प्रति भला हम अपनी सहानुभूति कैसे न प्रकट करें; और जब कि हम उनसे यह चाहते हैं कि वे समान रूपसे सहायक हों, तो ऐसी दशामें उन्हें भी समान राजनीतिक अधिकार प्रदान करना चाहिए और उसी तरह उनके साथ वर्ताव करना चाहिए। जहांके लोग अपना हक समझते हैं, अपने देशकी भावना व्यक्त करते हैं और उसके भाग्यका नेतृत्व करते हैं, वे अपनी पूरी क्षमता एवं उत्कण्ठा तभी दिखा सकते हैं, जब कि अधिकारके साथ उनपर विश्वास किया जाय और इस ख्यालसे उनपर विश्वास किया जाय कि जैसे वे अपने देश और अपनी जनताके जिम्मेदार आदमी हों। हमें विश्वास

है कि मि० एमरी महान् कठिनाइयोंके बावजूद भी, यह जानते होंगे कि यह एक बहुत बड़ा कर्तव्य पूरा करनेका एक बहुत अच्छा मौका है। तदनुकूल अविलम्ब आचरण करना चाहिए। हमें पूरी आशा है कि मि० एमरी और ब्रिटिश सरकार प्रतिगामी सुझावों एवं विचारोंसे बचकर इस जानकारीमें साहसके साथ कार्य सम्पादन करेंगे कि इस समय जब कि हमारी महान् परीक्षा हो रही है, राजनीतिज्ञतापूर्ण काम करनेका यही सबसे अच्छा मौका है। इस मौकेपर हमें अपनी राजनीतिक समझदारीका परिचय देते हुए भारतमें विश्वास प्रकट करना चाहिए।''

इस समय, जब ये पंक्तियां लिखी जा रही हैं, वायसराय और गांधीजीमें विचार-विनिमय हो रहा होगा। मि० जिन्नासे पहले ही वायसराय विचार-विमर्श कर चुके हैं। इसके पहले भी वे दर्जनों नेताओंसे मिल चुके हैं। आसन्न सङ्कट-काल उनके सामने है। देशकी राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षायें वे जानते और उनकी पूर्तिके बाद देशके गणतन्त्रके लिए सब कुछ त्याग करनेकी भावनासे भी वे अपरिचित नहीं हैं, ऐसी दशामें आशा है, उनका यह वार्तालाप औरोंकी भांति ही निराशाजनक परिणाममें समाप्त न होकर परिस्थितिकी आवश्यकताओंके अनुसार ही सफल होगा। आशा है, ब्रिटेन इस सुअवसरको खोनेकी कभी भूल न करेगा।

फ्रान्सका आत्म-समर्पण और दूसरी समस्यायें

फ्रान्सका आत्म-समर्पण वर्तमान महायुद्धकी सबसे सनसनीखेज, अप्रत्याशित एवं महत्त्वपूर्ण घटना हुई है। मो० रेनोके प्रधान मन्त्रीके पदसे हटने और मार्शल पेतांके नेतृत्वमें नवीन सैन्य-मन्त्रिमण्डलके बनते ही फ्रान्स आत्म-समर्पण कर देगा, इसकी कल्पना किसीने नहीं की थी, तथापि मार्शल पेतांके तत्सम्बन्धी वक्तव्यसे पता चलता है कि यह आत्मसमर्पण अपेक्षाकृत देर ही से हुआ है, जबकि दूसरे लोग इसे अप्रत्याशित समझते हैं।

पर फ्रान्सका आत्म-समर्पण आज एक तथ्यके रूपमें है और जर्मनी और इटलीसे फ्रान्सने सन्धि कर उन्हें जैसे अधिकार दे दिये हैं, उनसे उक्त दोनों देशोंके हाथमें महत्त्वपूर्ण स्थान तथा साधन आ गये हैं। ब्रिटेनके लिए फ्रान्सके आत्म-समर्पणने कुछ कठिनाइयां उत्पन्न कर दी हैं यद्यपि उसने अन्त तक युद्ध जारी रखनेका ही निर्णय किया है, जैसी कि आशा थी। अन्तर्राष्ट्रीय घटनायें इतनी तेजीसे बदलती जा रही हैं कि इस सम्बन्धमें निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता, "स्थिति अत्यन्त अ-सुरक्षित एवं अनिश्चित है" जैसा कि ब्रिटिश प्रीमियर मि० विन्स्टन चर्चिलने कहा है। नारवेसे लेकर फ्रान्स तक शत्रुओंके हाथमें समुद्री किनारा पड़ गया है। स्पेन यद्यपि तटस्थ है, पर उसका रुख शत्रुदेश-जैसा ही है। उधर टर्की युद्धसे अलग रहना चाहता है; पर मिश्रके साथ १९३६ में ब्रिटेनकी जो सन्धि हुई है, उसके रहते हुए मिश्रको युद्धमें पड़ना चाहिए। रूमानियामें तानाशाहीकी स्थापना हो गयी है और बलगेरिया तथा युगोस्लेविया सतर्कतापूर्वक स्थितिपर आंख लगाये हुए हैं, इसलिए इधरसे स्थितिकी जटिलतायें बढ़ती गयी हैं; पर इसके साथ ही कुछ ऐसे तथ्य भी हैं, जो उपेक्षणीय नहीं हैं। ब्रिटेनके जङ्गी बेड़े अब भी अपना जोड़ नहीं रखते, और इंगलिश चेनलका पार करना राइने और एलका पार करना नहीं है। ब्रिटेनमें दुश्मनोंकी फौजका उतरना भी उतना आसान नहीं है और नात्सीवादके विरुद्ध ब्रिटेनकी जैसी आन्तरिक घृणा है, वह उसके निवासियोंके लिए आत्मबल देनेवाला एक महान् तथ्य है। वास्तवमें फ्रान्सके आत्मसमर्पणसे अनेक सम्भावनाओंसे भरी परिस्थिति उत्पन्न हो गयी है; पर ब्रिटेन उनका सामना करनेकी शक्ति रखता है और वह सामना करेगा, जैसा कि उसके दृढ़ निश्चयकी सूचना प्रीमियर दे चुके हैं।

रङ्गीन जातियां और युद्ध

"अफ्रीकाके श्वेताङ्गोंके लिए यह एक अपमानजनक बात होगी, अगर आदिवासियों एवं रङ्गीन जातियोंको यूरोपियनोंके विरुद्ध युद्धमें भाग लेने दिया गया" जेनरल जे० सी० जी० केम्पने हाल ही में दक्षिण अफ्रीकाकी एसेम्बलीमें भाषण करते हुए ऐसा कहा था और इसके बाद ही एक दूसरे सदस्य जेनरल ई० ए० कनरायने भी कहा था, "यदि आदि वासियों और रङ्गीन जातियोंको शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित कर दिया गया, तो श्वेत सभ्यताका शीघ्र ही अन्त हो जायगा।" ये दोनों ही

अक्लके पुतले हर्टजोग पार्टीके हैं, जिसके कारनामोंसे सभी परिचित हैं। ये सभी जानते हैं कि जर्मन रङ्गीन जातिके नहीं हैं, जिनसे सभ्यताके विनष्ट होनेकी बात कही जाती है; पर इनके विरुद्ध भी ये रङ्गीन जातियोंको लड़नेके लिए तैयार नहीं होने देना चाहते। जेनरल स्मट्सने उक्त वक्ताओंको उत्तर देते हुए जो वक्तव्य दिया, वह भी सन्तोषजनक नहीं था। उन्होंने कहा कि सरकारने श्वेताङ्गों तथा रङ्गीन जातिके लोगों—दोनोंके युद्धमें भाग लेनेका निश्चय किया है, पर उन्हें शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित करनेका कोई प्रश्न नहीं है। इन रङ्गीन जातियोंका एक दल तथा श्वेताङ्गोंके दो जत्थे तैयार किये जायेंगे, पर उन्हें युद्धमें क्रियात्मक भाग नहीं लेना पड़ेगा। इस देशकी परिस्थिति तथा लोकमत इसीके पक्षमें है।

इस प्रकारकी मनोवृत्ति गणतन्त्र तथा उसके नामपर लड़नेवाले श्वेताङ्गोंके लिए जितनी घातक है, उतनी रङ्गीन जातियोंके लिए नहीं। रङ्गीन जातियोंको इससे बढ़कर अपमान और अत्याचार सहन करने पड़े हैं और सभ्यताके परम पुजारी ये दोनों वीर सभ्यताकी रक्षाकी जो यह भण्डता दिखा रहे हैं, उसका मर्म रङ्गीन जातियां अब जान गयी हैं; वे जान गयी हैं कि उन्हें शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित करनेमें सभ्यताका नहीं, श्वेताङ्गों द्वारा होनेवाले उनके शोषणका अन्त हो जायगा। और इसीलिए वे उन्हें किसी प्रकारका अधिकार देनेके पक्षमें नहीं हैं। पर बीसवीं सदीके इस मध्यकालमें 'मूर्खोंके स्वर्ग' में रहनेकी यह मनोवृत्ति तो हास्यास्पद और उनके लिए ही दुर्भाग्यपूर्ण कही जायगी।

अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वके कुछ खास तथ्य

पिछले दिनों अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वके कुछ खास तथ्य सामने आये हैं, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

जापानने फ्रान्स और ब्रिटेनकी सरकारोंसे 'मैत्री-भाव' में इस बातकी प्रार्थना की है कि फ्रेञ्च इण्डोचीन तथा बर्मा होकर चीनमें शस्त्रास्त्र न जाने पायें। जापानकी इस 'मैत्री-भाव' की 'प्रार्थना' की ध्वनि सीधे तौरपर यह होती है कि वह किसी भी तरह उक्त दोनों द्वारोंको चीनके लिए रोकना चाहता है।

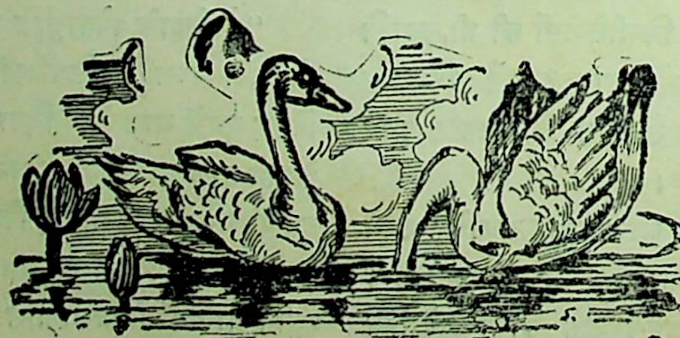
सीरिया और टर्कीने पूर्वी भूमध्यसागरकी स्थितिको ज्योंकी त्यों बनाये रखनेके लिए 'मैत्री-भाव' बनाये रखने तथा तीसरी पार्टी द्वारा इसमें परिवर्तन करनेवाले प्रयत्नोंके विरुद्ध पारस्परिक सहयोगका समझौता किया है।

अमेरिकाकी सरकारने पनामा नहरके दोनों किनारोंपर सुरङ्गें बिछायी हैं। पुराने अमेरिकाके प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने अपने मन्त्रिमण्डलमें स्टिम्सन तथा रिपब्लिक पार्टीके नेता मि० नाक्सको सम्मिलित कर लिया है। ये दोनों मित्र-राष्ट्रोंके प्रति सहानुभूतिपूर्ण रुख रखते हैं।

ब्रिटिश सरकार मार्शल पेतांकी सरकारको नहीं स्वीकार करती, पर जापानके वैदेशिक विभागके एक व्यक्तिने पेतां-सरकारको माननेकी स्वीकृति दी है।

रूसका अल्टिमेटम स्वीकार कर रूमानियाने बेसरबिया तथा उत्तरी बुकोविना रूसको दे दिये।

यह तथा इस प्रकारकी दूसरी कई घटनायें अन्तर्राष्ट्रीय सम्भावनाओंसे भरी हुई घटित हुई हैं, जो आगे चलकर अपना महत्त्व स्वतः स्पष्ट करेंगी।



'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट कलकत्तासे पं० मातासेवक पाठक द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

सचित्र मासिक

विश्वमित्र



जुलाई
१९४०

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ॥=)

विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

कोकोला

केश तेल और

साबुन

भारतका गौरव है



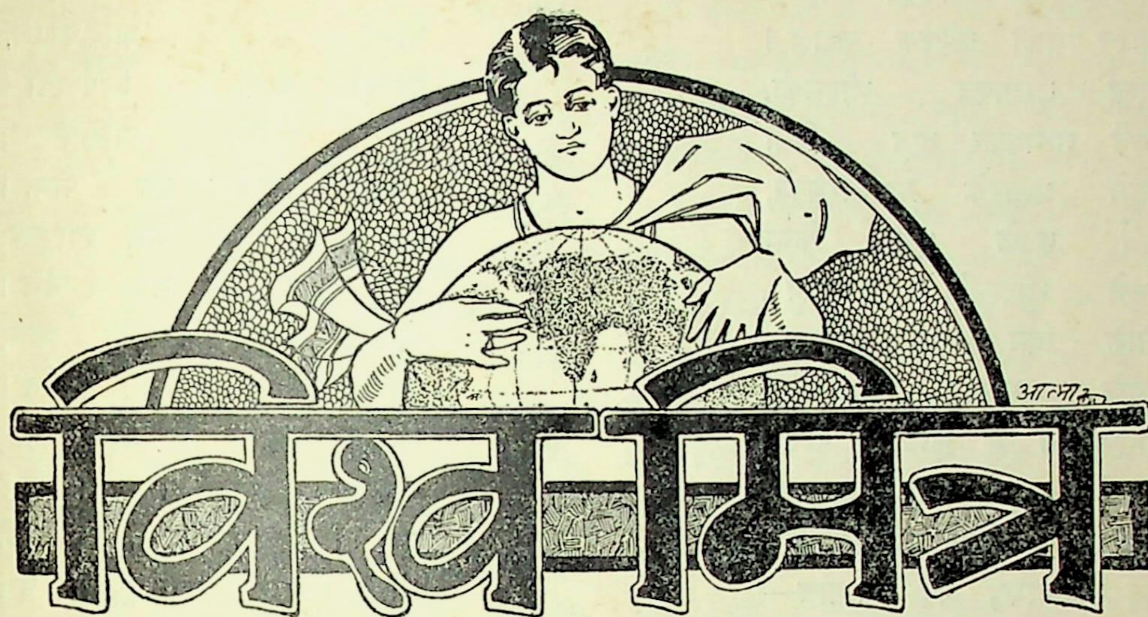


जुयेल अफ इण्डिया

कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई, मद्रास, रंगून, सिंगापुर।

विषय-सूची





सम्पादक—
शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

जुलाई, १९४० | वर्ष ८, खण्ड १६ | आषाढ़, १९९७
अङ्क ४, पूर्ण संख्या ९४

एक प्रश्न

क्या सुनने आयी हो प्रेयसि,
किसने यह जीवन विफल किया ?
किसने अणु-अणुको किया व्यर्थ,
किसने पल-पलको अनल किया ?
किससे स्वप्नोंका कुञ्ज देख,
तन्द्रिल अंगड़ाई ले डाली ?
किसके नयनोंमें भरी प्रलय,
मेरे जीवनकी हरियाली ?
किसका नीरव सङ्कोच मृदुल—
मेरे अन्तरपर इतराया ?
किसका मीठा-सा तिरस्कार
मेरे तन-मनमें मुसकाया ?
क्या कह दूं मेरे इन प्राणों—
में किसके स्पर्शोंका स्पन्दन ?
इस गतिपर—इस दुर्गतिपर भी—
किसका उत्पीड़न—कौन जलन ?
क्या देख रही हो दूर खड़ी—
मेरी असफलता प्रगतिहीन ?
मेरा स्वरूप ? चेष्टा मेरी ?
अथवा आच्छादन छिन्न-दीन ?
क्या मेरी कुछ दुर्बलतायें—
तुमको लगती हैं अधःपतन ?
या खोज रही हो शून्य बीच,
इस वर्तमानमें आकर्षण ?
आकर्षण ? कैसा तुच्छ प्रश्न —
लिप्साका तमसाच्छन्न जाल।

इस जागरूक मनकी हिंसा,
प्रशस्त पथका कण्टक कराल।
तरसा - तरसाकर जीवनको,
इसने मानवका खून पिया
इसने प्रस्तरके महास्तम्भको,
जर्जर करके धूल किया
इसने भविष्यके स्वप्नोंपर,
निशि - दिन करवाया अट्टहास
इसके मायावी होठोंमें,
दानवताका है कुटिल वास।
यह दिग्भ्रम है—यह अन्धकार,
सब कुछ काला बाहर-भीतर।
यह मोह-पाश, यह गर्त-वास—
यह महानाशकी दृष्टि प्रखर!
माना, मैंने आकर्षणमें,
तुमको अन्तरसे लिपटाया।
माना, मैंने आकर्षणमें,
जीवनका दुर्लभ रस पाया।
कर पाया मैंने मन व्याकुल,
कर पाया मैंने तन्द्रिल तन।
चेतना त्याग, मूर्च्छना जगा,
लिप्साका देखा नव नर्तन।
लेकिन उठता है प्रश्न एक,
परिणाम कहो उसका क्या है?
तुम क्षितिज-शिखा-सी दूर खड़ीं
बोलो, कारण इसका ःक्या है?

—भगवतीप्रसाद वाजपेयी।

समाजका यह नैतिक धरातल !

श्री शिवदेव उपाध्याय, बी० ए० बी० एल०

नवीन और प्राचीन विचार-धाराओंका सङ्घर्ष सदासे चला आया है—सभी युगों और सभी देशोंमें। समाजकी आवश्यकताओंको लेकर जो परिवर्तन वाञ्छनीय होते हैं, उनकी उपेक्षा एक ऐसी जड़ता लाना चाहती है, जिसके विरुद्ध क्रियाशील शक्तियां टकराती और सङ्घर्ष उत्पन्न करती हैं। नये और पुरानेका यह सन्धिकाल सदा ही बना रहता है; क्योंकि किसी समय-विशेषमें परिवर्तन स्पष्ट रूपसे भले ही दिखाई पड़ें, वास्तवमें सामाजिक जीवनमें इन परिवर्तनोंको सम्भव बनानेवाली शक्तियां पहलेसे टकराती रहती हैं, इसलिए यह सङ्घर्ष भी स्थायी होता है। एक देशने एक युगमें जिन बातोंको अपने जीवनकी महान् चेतना मान रखा हो, वही उसमें जड़ता लाने लगती हैं और सम्भव है, दूसरे देशों और दूसरे युगोंमें वह जड़ता ही एक नयी चेतनाके लिए उद्बोधन प्रदान करे।

और तब मानव इस स्थितिमें कुछ उलझा-उलझा-सा रहता है। वह निर्णय नहीं कर पाता कि वास्तवमें सही रास्ता कौन-सा है। इस चौराहेपर खड़े होकर उसे सूझता नहीं कि आखिर कौन-सी राह वह पकड़े। उसके पुराने परिचित मार्गका उसे पता है; पर राहगीर यह भी कहता है कि अभी जो इन दूसरे मार्गों की मरम्मत हुई है, वे अधिक सुविधाजनक हैं।

सामाजिक जीवनमें यह विशृङ्खलता उत्पन्न करनेवाली स्थितियां होती हैं। और तब ऐसे मनुष्योंकी स्थिति बड़ी टेढ़ी हो जाती है, जिन्हें सच्ची राहका निश्चय नहीं हो पाता। हृदय और बुद्धिका भी सङ्घर्ष यहींसे चलता है। तर्क द्वारा किसी बातके प्रमाणित हो जानेपर भी, जब बुद्धि पराजित हो चुकी होती है तब भी, हृदयने जिन्हें सदासे अपनाया है, उन्हें तत्काल छोड़नेपर तैयार नहीं हो पाता। और ये स्थितियां हैं, जिनसे आज भारत गुजर रहा है। हमारे समाजमें आज विभिन्न और कितनी ही परस्पर-विरोधी विचार-धारायें टकरा रही हैं। एक ओर प्राचीनताका मोह हममें जड़ता भर रहा है और दूसरी ओर ऐसी शक्तियां उठ रही हैं, जो किसी सीमा तक अपने प्रवाहमें विचार-सन्तुलन भी नष्ट करती दिखाई पड़ती हैं।

इस सङ्घर्षके बीचमें सत्यासत्यका ठीकसे निर्णय न कर सकनेकी दशामें प्राणी अगर उलझा-सा है, तो ऐसे लोगोंका भी अभाव नहीं है, जो अपनी बौद्धिक चेतनाका सदुपयोग इस सङ्घर्षसे लाभ उठानेमें ही करते हैं। ऐसे प्राणियोंकी कमी कब और किस समाजमें रही, जिन्होंने प्रचलित विचार-धाराओंको ही अपने निजी हित-साधनका द्वार नहीं बताया ? कब ऐसे लोगोंका अभाव रहा है, जिन्होंने विजेताओंकी पिछली पंक्तिमें घुसकर लूटके मालमें हिस्सा लेनेकी मनोवृत्ति न रखी हो ? ऐसी स्थितियोंसे प्राचीनके खण्डहरोंपर जो नयी इमारतें बनती हैं, सर्वसाधारणका लाभ उनसे होता ही है; पर बात तो उनकी है, जो उन नयी इमारतोंके केवल इसलिए समर्थक हो जाते हैं कि उनकी निर्माण-अवस्थामें उनके स्वार्थ-साधन हो सकेंगे। ये उस श्रेणीके अवसरवादी हैं, जिनका अपने स्वार्थके अतिरिक्त और किसी बातमें विश्वास नहीं है। यह उन शस्त्रास्त्र निर्माण करनेवाले कारखानेके हिस्सेदार राज-नीतिज्ञोंकी श्रेणीके हैं, जो सदा मृत्युका ही सौदा कर अपना स्वार्थ-साधन किया करते हैं। युद्ध-कालमें उन राष्ट्रोंके समान ऐसे व्यक्तियोंकी स्थिति है, जो दोनों लड़ाकू पक्षोंके हाथ हथियार बेचते हैं। दोनों ही पक्षोंको समान रूपसे सुसज्जित करनेमें न तो गणतन्त्रकी ही रक्षा होती है और न विश्व-शान्तिके ही स्तम्भ गिरनेसे बच रहते हैं; पर इससे वह देश निश्चय ही मालामाल हो जाता है।

लेकिन क्या यह राजनीतिक समस्याका कोई समाधान पेश करना हुआ ? किसी भी पक्षके लिए क्या उनका यह सक्रिय समर्थन हुआ ? और क्या किसी भी पक्षकी विजय अथवा पराजयमें उनकी दिलचस्पी है ?

और शस्त्रास्त्रके—मौतके—सौदागर यह जो कुछ करते हैं, वही दूसरे रूपोंमें दूसरे क्षेत्रोंमें वे लोग करते हैं, जो उसी मन्त्रसे दीक्षित हैं। कूटनीतिज्ञ राजनीतिक नेता सोचता है, अमुक सिद्धान्त देशके लिए बेकार है। उसका मन कहता है, अमुक पदार्थ देशके लक्ष्योंको चरितार्थ न कर सकेगा; पर वह बाहर इसका समर्थन करता है, इसके नामपर समस्त देशको बलिदान करनेके लिए ललकारता है। उसकी वाणीमें भाषा-का ओज और आत्म-विश्वासकी दृढ़ता होती है। सबेरे व्याख्यान देता है, तो रातमें उसे उसके समर्थनके लिए तर्क ढूंढ़ने पड़ते हैं, और तर्क कमजोर पड़ने लगे, तो आत्माकी आवाजके नामपर, अपनेसे बड़े नेताके नामपर और सबसे अधिक देशके नामपर अपने तुच्छ, किन्तु विचारपूर्ण निर्णयके अनुसार वह अज्ञानियोंकी पल्टनको अपनी उस बातपर चला देता है, जिसमें उसका अपना विश्वास नहीं है। अनुयायियोंकी कहीं कमी नहीं है, केवल नेता चाहिए।

आप नेतृत्वके लिए ललकारिये और संसारमें प्रचलित मोहक मन्त्रोंके नामपर जनतासे अपील कीजिये, और आप आश्चर्य करेंगे कि आपमें नेतृत्वकी तनिक भी क्षमता न होनेपर भी कितने ही आपके नेतृत्वके नीचे काम करनेको तैयार हैं। अगर ऐसा न होता, तो गणतन्त्र सर्वत्र विफल न होता, निर्वाचन-प्रणालियोंके परिणाम महान् बुद्धिजीवियोंकी पराजयमें दिखाई न पड़ते, जनसंख्याकी वृद्धिके साथ-साथ मत-मतान्तरोंकी भी संख्या बढ़ती न चलती। और आचार्य कृपलानी जिसे भारतकी प्रतिभा कहते हैं, उसका ऐसा सुन्दर विकास न हुआ होता !

प्रकाशक सोचता है, नेताकी वाणी देशका सच्चा प्रति-निधित्व नहीं कर रही है। उसका मन कहता है, देशकी आत्मा और कहीं है और नेता अपनी जिदके कारण, अपना नेतृत्व बनाये रखनेके लिए, देशके लिए नहीं, अपनी विचार-धाराओंके प्रचारके मोहसे—और यह सब मानवीय भावनायें हैं, इन्हें दोष या गुण हम नहीं कहना चाहते—अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करना चाहता है; पर वह कहता है और नेताके महान् व्यक्तित्वका भय उससे कहलवाता है कि नेताके विरुद्ध आवाज उठानेवाला व्यक्ति देशका शत्रु है, नेताका सिद्धान्त विश्वको एक देन है। उसके अपने स्वार्थ कहते हैं कि वह विशाल बहुमतका होकर रहे, और जब कि ऐसा होकर रहनेमें वह अपनेको तर्कतः गणतन्त्रवादी भी प्रमाणित करता है। उसकी आवाज बहुसंख्यकोंकी आवाज है और इसलिए जनताकी आवाज है।

और जनताकी यह आवाज उसे जनताके शोषणके लिए सारे अधिकारोंसे सुसज्जित कर देती है। संसारमें सदासे मूर्खोंकी अधिकता रही है और उनकी अपेक्षा कम मूर्खोंने सदा उनसे लाभ उठाया है। आधुनिक सभ्यताने जहां अनेक दिशाओंमें महान् परिवर्तन किये हैं, वहां उसने मनुष्यका आन्तरिक परिवर्तन भी एक विशाल पैमानेपर

किया है। वह आज अपनेको छिपानेकी कलामें खूब पटु हो गया है। पदलाघवता (Brevity) को जब कलाकी आत्मा कहा गया था, तब भी उसका उद्देश्य यही था। राजनीतिमें इस प्रकारकी भाषाको खूब महत्त्व दिया जाता है, जिससे एकही अर्थ न निकल सके। गांधीजीके सम्बन्धमें उनके मन, बचन, कर्मसे एक होनेकी बात कही जाती है; पर 'टाइम्स आव इण्डिया' के एक संवाददाताने एक बार जब उनका वक्तव्य लिया था, तो उसकी तात्कालिक प्रसन्नताको नष्ट करनेवाली शीघ्र ही यह भावना भी आयी कि इसके कई अर्थ होते हैं। कहनेका अर्थ यह नहीं कि गांधीजीने जान-बूझकर ऐसा किया था या नहीं और राजनीतिमें ऐसी कूटनीतिक भाषाका महत्त्व देखते हुए यह वाञ्छनीय था या नहीं, तथ्य यह है कि आजकी दुनियाने यह छिपानेकी कला खूब सीख ली है और भौतिक सफलताओंके लिए इसकी अनिवार्यतामें भी लोगोंका विश्वास होता जा रहा है।

तो दूसरे विशाल क्षेत्रोंमें विशाल पैमानेपर इस भण्डताका जो उपयोग हो रहा है, दैनिक व्यक्तिगत जीवनमें भी इसके प्रयोग कम नहीं हो रहे हैं। ये प्रयोग हमारे नैतिक साहसको क्षीण करते चल रहे हैं, इससे समाजकी नींव दिनों-दिन क्षीण होती चल रही है। मिथ्या विचारोंका ताना-बाना इतना कमजोर और क्षणिक नहीं होता कि हमारी आत्माको वह न बांध सके, हमारे कार्यौंको वे विचार न प्रभावित कर सकें। समय तो बल्कि ऐसा आया है, और हम इतने उलझे-से होते हैं कि उनसे निकलनेकी राह नहीं सूझती। अपने मिथ्या विचारों एवं मिथ्या आचरणोंसे हम जिस कुहासेको फैलाते हैं, उसमें हमारी अपनी ही आंखें ओझल होने लगती हैं।

तब उस सन्ततिपर, जनताके उस अंशपर विचार कीजिये, जिसने इन आचरणोंको सही समझनेकी मूर्खता की। उसके लिए राह कहां है?

और इसकी प्रतिक्रिया? व्यक्ति और समाजकी यातनाओंकी संख्या, अवधि और परिधि बढ़ती ही जा रही है। समानाधिकार, स्वभाग्य-निर्णय, नागरिक अधिकार—न जाने कितने वर्षोंसे मनुष्यको भ्रममें डाले हुए हैं; पर इनसे उत्पन्न आशायें कभी भी कार्यान्वित न हो सकीं। राजनीतिक गणतन्त्रकी कमर सर्वत्र आर्थिक असमानताने तोड़ डाली है और समाज तथा जीवनकी यह विषमता मनुष्यमें अपराधी मनोवृत्तिका ऐसा बीज वपन करती जा रही है, जो भीषण सम्भावनाओंसे भरा हुआ है।

तो सार्वजनिक जीवनकी यह भण्डता आज हमारे समाजके भीतर भीषण विषैले कीटाणु भरती जा रही है। हमारा नैतिक बल निरन्तर क्षीण होता जा रहा है और आत्माका कलुष इन मनोवृत्तियोंके आधारपर घटता नहीं, बढ़ता ही जा रहा है।

आजका युग और इस युगकी सभ्यता सर्वत्र इसी प्रकारकी विषैली सम्भावनाओंको लेकर चल रही है। और समाज सत्यका साक्षी है। किस देशमें किसी लक्षाधीशको एक सुयोग्य नागरिकको निर्वाचनमें मत देते देखा गया, जब कि ऐसे सैकड़ों सुयोग्य नागरिक और उनके हितैषी नेता भी उसकी उंगलियोंके इशारेपर नाचते देखे जाते हैं। व्यवस्थापकोंने मताधिकारमें साम्यवादकी स्थापना कर दी; पर आर्थिक आधारोंने उसे कार्यान्वित होते ही तहस-नहस कर डाला। यह आर्थिक असमानता ही गणतन्त्रको ले डूबी और गणतन्त्रके डूबनेका अर्थ केवल एक राजनीतिक विचारधाराकी पराजय-मात्र नहीं है, समस्त मानव-जातिके आन्तरिक सन्तोष और उसकी मङ्गलकामनाओंकी पराजय भी है।

हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्थामें भी इसके असंख्य उदाहरण मिलेंगे। महिलाओंकी सभामें सार्वजनिक मञ्चसे कितने ही समाज-सुधारकोंको 'देवियों' को कर्म-क्षेत्रमें उतरने और पुरुषोंके साथ नये युगका निर्माण करनेका आह्वान करते आपने सुना होगा। पर्देके बहिष्कारके लिए, नारी जातिको घरकी चहारदीवारोके बाहर निकालनेके लिए, उसमें बल और साहस भरकर उसे अबलासे सबला बनानेके लिए व्याख्यानदाताओंकी संख्या बढ़ती जा रही है, उनके उद्धारके लिए संस्थायें स्थापित होती जा रही हैं और पिछले बीस वर्षोंमें उनके लिए साहित्य-निर्माणकी योजनायें और प्रकाशन-संस्थायें भी बढ़ती ही गयी हैं, तुलसी, बिहारी, मतिरामके साथ-साथ शेली, बायरन, ब्राउनिङ्ग और कीट्सका मर्म समझानेके लिए महिला-शिक्षा-संस्थाओंकी भी वृद्धि रुकी नहीं है; पर उस महिलाके दुर्भाग्यकी कल्पना कीजिये, जिसने समाजके इन सारे प्रयत्नोंको

सही समझकर इधर कदम उठाया । विगत असहयोग आन्दोलनमें काम करनेवाली महिलाओंके सम्बन्धमें अपशब्द कहने और सन्देह करनेवाले लोगोंकी कमी नहीं रही। भाई परमानन्दके उस वक्तव्य तथा उसपर उठनेवाले प्रतिवादको लोग भूलें न होंगे, जो उन्होंने अन्दोलनमें भाग लेनेवाली महिलाओंके सम्बन्धमें दिया था । लेकिन यह तो एक भाई परमानन्द थे, जिनकी वास्तवमें भूल यह थी कि उन्होंने जो कुछ सोचा, उसे स्पष्ट कह दिया, अन्यथा इस विषयको लेकर ऐसा मत रखनेवाले असंख्य परमानन्द इस देशमें हैं। कर्म-क्षेत्रमें काम करनेवाली महिलाओंको लेकर, पुरुषोंके साथ उनके साधारण सङ्घर्षको लेकर, आधुनिक सभ्यता सम्बन्धी उनके अग्रसर विचारोंको लेकर कानाफूसी करनेवालों और भीतरसे घृणा करनेवालोंकी संख्या इस देशमें कम नहीं है। और इस संख्यासे उन्हें भी अलग नहीं किया जा सकता, जो बाहर देवियों, नारी जातिके उत्थानके लिए अपनी वाग्धारासे जल-प्रपातको भी मात करना चाहते हैं। ये दुरङ्गी हरकतें हैं। और नारी-समाजपर इनकी कैसी प्रतिक्रिया होगी, इसका अनुमान लगाना बहुत कठिन नहीं है।

इस प्रकारकी स्थितियोंकी जिम्मेदारी जिन बातोंपर है, वे या तो इस प्रकारकी भण्डताके अन्तर्गत आती हैं कि सोचा जाय कुछ और कहा जाय कुछ, और यह या तो इसलिए कि इससे हमारा स्वार्थ-साधन हो रहा हो, अथवा हममें इतना नैतिक बल न हो कि हम स्पष्टतापूर्वक अपनेको प्रकट कर सकें।

लेकिन जिम्मेदारी चाहे जिन कारणोंपर हो, इनके परिणाम समाजके लिए कभी भी अच्छे नहीं हो सकते। ऐसी जनता, जो अपने लिए स्वयं निर्णय नहीं कर सकती, ऐसी जनता, जिसके पास स्वयं निर्णय करनेकी क्षमता नहीं है, उसके समक्ष ये सब बातें भीषण परिणाम लेकर आती हैं। हमारे सार्वजनिक जीवनमें पिछले बीस वर्षोंसे जिस बहुमुखी क्रान्तिकी विचार-धारा बह निकली थी, उसकी इतनी सीमित सफलता केवल तत्सम्बन्धी होनेवाले प्रयोगोंको लेकर हमारे ढोंगके कारण हुई। गांधीजीने स्वयं कितनी ही बार सार्वजनिक जीवनकी इस भण्डतापर दुःख प्रकट किया था। वस्तुतः हमारा नैतिक धरातल अत्यन्त नीचा हो गया है। चरित्रका अर्थ हमारे यहां सिर्फ यौन-सम्बन्ध लिया जाता है। कोई कितना भी झूठ क्यों न बोले, छल-फरेब, जनताका शोषण कोई कितना भी क्यों न करे, दुरङ्गी चालोंसे कोई समाजको कितना भी क्यों न ठगे, समाजमें उसका स्थान फिर भी उस व्यक्तिसे अच्छा है, जिसमें यौन-सम्बन्धी थोड़ी-सी दुर्बलता है। हमारे देशमें जिसे पाश्चात्य सभ्यताके नामसे पुकारा जाता है, उसे कोसनेवाले लोगोंकी संख्या अनगिनत है और केवल इसलिए कि उस सभ्यताके अन्तर्गत नारी और पुरुषको स्वाधीनतापूर्वक मिलनेकी स्वाधीनता है, अतः चरित्रहीनता है! हमारे यहांके इन 'महात्माओं'ने कभी भी यह सोचनेका कष्ट नहीं किया कि हजारों मील दूरसे आकर उसी सभ्यताके विलासी युवकोंने हिमालयकी चोटी नापी है, समुद्रोंके भीतर घुसकर उसके रहस्योंका पता लगाया है, अनन्त अन्तरिक्षमें उन्होंने प्राणोंका मोह छोड़कर हजारों मीलका विचरण किया है। शरीरको नश्वर और आत्माको अमर तथा अपनेको चरित्रमें महात्मा माननेवाले हमारे समाजके कितने व्यक्तियोंमें ऐसा जीवट स्वप्नमें भी आया है?

सच तो यह है कि हमने आज अपना आत्मविश्वास खोया है, अपनी नैतिकता खोयी है और आध्यात्मिकतामें विश्वास करनेका हम चाहे जितना भी ढिंढोरा पीटें, हमारा दृष्टिकोण नितान्त स्वार्थमय हो गया है। समाजको ये बातें पुनर्जीवन नहीं दे सकतीं। आप एक ओर अस्पृश्यताका अस्तित्व वेदोंमें प्रमाणित करते रहेंगे और साथ ही चाहेंगे कि अछूतोंका उद्धार हो जाय; एक ओर आप नारी-समाजको पुरुषोंके साथ कर्मक्षेत्रमें उतरनेका आह्वान करेंगे और साथ ही पुरुषकी छायासे ही उनके सतीत्वके नष्ट हो जानेकी आशङ्कासे दहल जायेंगे। एक ओर भावी सन्ततिके लिए नैतिकताके उपदेश झाड़ते रहेंगे और उसीके साथ छल और दम्भको भी अपने जीवनका मूल-मन्त्र मानते चलेंगे। यह सारी स्थितियां वाचा और कर्मणा, यह विभेद सामाजिक प्रतिक्रियाओंके लिए अच्छे नहीं होते। हमारे सामाजिक पुनरुद्धारका बहुत-सा कार्य इसके कारण ही रुका-सा पड़ा है। आवश्यकता है आजके प्रश्नोंपर अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ, सन्देहरहित, सजीव एवं नैतिक दृष्टिकोणकी।

———

किन्तु....?

श्री 'पहाड़ी'

फिर वही बात :

हरीशबाबू हाजिर हैं। और मन-ही-मन चाहे विश्वनाथ कितना ही झुंझलाये, चुपके बिस्तरसे उठकर पूछा, "क्या बात है।"

"घूमने नहीं चलोगे।"

"क्या बजा है ?"

"सिर्फ साढ़े पांच।"

"तब यों क्यों नहीं कहता है कि आधी रात ही घूमने चलना पड़ेगा।"

"आठ बजे तक सोते रहना भी ठीक नहीं। किस डाक्टरकी बनायी दिनचर्याकी पाबन्दी हो रही है।"

विश्वनाथने कुछ भी जवाब नहीं दिया। उसे हरीशकी जिन्दादिली पसन्द है। डाक्टरोंके इञ्जक्शनोंसे कुछ फायदा हो चाहे नहीं, हरीशकी बातें स्वस्थ होती हैं। लेकिन जनवरीके महीनेमें तड़के, सुबह कोई आकर कहे, घूमने चलो—यह निरा पागलपन है। जानकर भी विश्वनाथ चुप ही रह गया। तकरार बढ़ानेका वह आदी नहीं है। फिर भी सवाल करना जरूरी लगा, "आज यह सुबह-सुबह घूमनेकी सनक कैसे सूझी।"

"कल नुमायशमें सीता मिली थी।"

"वह मिली थी ?"

"हां, शायद कहीं रिश्तेदारीमें आयी है। और आज सुबहकी डाकगाड़ीसे वह चली जावेगी।"

"तभी यह घूमनेका शुभ मुहूर्त तूने ढूंढ़ा है।"

"मैंने !"

"इसीके लिए बेवक्त मेरा भी फजीता किया। मजेकी नींद आ रही थी। सीता तो......।"

"मैं खुद परेशान हूं। कल नुमायशमें एक 'स्टॉल' पर खड़ा था। सोचा, कहीं आवारोंमें नाम न लिख लिया जावे, इसीलिए खरीदारी करनेकी कुछ ठहरायी थी। सभ्य और भले आदमीके लिए यह हितकर है। तौलिये, बनियान और सूटिंगके कपड़े देख रहा था, कि एक हल्की हंसीकी आवाज़ कानोंमें पड़ी। सामने देखा, सीता कुछ औरतोंके साथ खड़ी है। उसने मुझे देखकर परदा कर लिया था। मैं अवाक् रह गया। तीन सालसे जिस सीताके बारेमें कोई ज्ञान नहीं, वह इस तरह मिलेगी, किसे उम्मेद थी। पहले थोड़ा सन्देह उठा। तो भी वह सीताका ही ढांचा था। साथ दो बच्चे। चेहरेपर कुछ गम्भीरता आ गयी थी। नीचे खड़ी लड़की न जाने क्यों बार-बार—भाभी, भाभी ! चिल्ला रही थी।"

"और लड़का ?"

"वह तो उस पांच सालके लड़केको गोदीमें लिये हुए थी। कान्तिको तो मैं पहचान ही गया। उसकी बड़ी-बड़ी आंखोंकी डेबलियां और चेहरा बिलकुल सीताका-सा ही है। लगा, वही सीताका बचपन भी कभी रहा होगा।"

"लेकिन हरीश, कई बार तूने सीताके न देखने तककी कसमें खायी थीं। पांच सालसे जो रिश्ता टूट गया, उसे जोड़ लेनेकी सामर्थ्य भी तुझमें नहीं है। परसों ही तू दलील कर रहा था—सीताके लिए तेरे दिलमें कोई भी विद्रोह बाकी नहीं। तू उस आडम्बरसे अपनेको बरी कर, कमजोर साबित हो, अकर्मण्य भी कहलानेका कायल नहीं......।"

"यह मैं भी इनकार नहीं करता। घटनाओंपर तो मेरा अपना अधिकार नहीं। हमेशा ही हममें झगड़ा बढ़कर, समझौता हो जाया करता था। एक दिनकी बात है। मैं उस दिन 'हिल-स्टेशन' छोड़नेवाला था। आठ-दस दिन वहां रहकर मन नहीं लगा। सीता भी उन दिनों अनमनी रही। कभी उसने बातें नहीं कीं। हमेशा छुप-छुपकर रहना सीख लिया था। जब मैं लारीकी अगली सीटपर बैठ गया और लारी चलने लगी, देखा मैंने—सीता अपने परिवारवालोंके साथ पिछली सीटपर बैठी हुई थी। कान्ति बार-बार मेरे पास आनेको मचलती। एक बार हिम्मत कर उसने पुकारा—चाचाजी। लेकिन एक चपत खाकर रोने लगी। सीताका श्वसुर भी कुछ नाखुश लगा।"

उसकी नाखुशी ठीक तो थी हरीश। तू ठहरा लोफर।

भले आदमियोंसे तुझे कुछ भी मतलब नहीं रहता है। और आदमीके लिए प्रेम करना एक साधारण घटना है, नारीका जीवन तो मिट जाता है न। पुरुषके खूनका आपेक्षिक घनत्व अधिक होनेकी वजह, नारीसे वह बलवान भी है ही। और तू तो......।"

"मैं हूं पशु और आवारा। दुनिया-भरका विद्रोह जैसे कि मैंने बटोर लिया है। जानता है, मेरी इस सारी उच्छृङ्खलताकी जिम्मेदारी किसपर है। क्यों मेरा मन स्वस्थ नहीं और इस तरह मारा-मारा फिरता हूं।"

"वही तेरी सीता।"

"बात ठीक है। सीताने मनमें भारी अविश्वास पैदा किया है। उसका विधवा हो जाना भारी भय पैदा करता था। पहले वह दिन-भर रोती रहती थी। लेकिन दो बच्चोंके बाद भी उसकी आंखोंमें यौवनकी भूख थी। हिस्टीरियाके दौरेका उपचार काफी कठिनतासे होनेके बाद, अपनी सभ्यतासे बाहर यदि पशुओंकी दुनियामें झांकता हूं......।"

"क्या, क्या ?"

"पशु-जीवनका मनोविज्ञान, क्यों, डरकी क्या बात है। उनका भी एक सरल कानून है। मधुमक्खियोंका छत्ता देखो एक रानी होती है, कई नर और बाकी सब मजदूर। सबसे सबल मर्द राजा बनता है। बाकी नर मार डाले जाते हैं। एक दिन वह मर्द भी मर जाता है। रानी अण्डे देती है। मजदूर-मजदूरनीके आगे वासनाका सवाल नहीं होता। चिड़ोंकी आवाज सुनी है, मेंढकोंकी टेंटें टें, पक्षियोंके गाने—सब वासनाका तकाजा है। हरएक अपने स्वरसे अपनी जातिकी मादाको मोह लेना चाहता है। जानवरोंमें कुछ नरोंके सींग होते हैं, वह भी 'सेक्स' के सवाल हल करनेको ही हैं। सबसे बलवान हिरन और बारहसींगा कई पत्नियां रखते हैं। कमजोर मार डाले जाते हैं। हम सभ्य हैं, हमारे पुरुष-नारीमें सेक्स इसीलिए तेज होता जा रहा है।"

"तब मनुष्यमें तू एक नये धर्मका प्रचार करनेकी ठान रहा है।"

"नहीं-नहीं। सीताके भीतर एक लुभावनापन मैंने महसूस किया था। जब कि काफी जान-पहचानके बाद, एक रात्रि उस सीताने अपने मकानका दरवाजा खोल दिया था, तो मैं अचरजमें रह गया। वह क्या एक बावली नारी थी।"

"तब सीताका चरित्र !"

"नारीका चरित्र न ? मैंने उसका सर्वदा विश्वास माना है। व्यर्थ एक विवाद चलाना अनुचित है। नारी इतनी कोमल नहीं, जितनी गणना पुरुष जातिने की है। सीताके लिए मेरे दिलमें हमेशा आदर रहा और आज भी उतना ही है। नारीकी कमजोरीका एक वहम कभी-कभी दिलमें जरूर उठता है। यह भी आज मैं जान लेना चाहता हूं कि क्यों सीताने उस आधी रातको अपने मकानका दरवाजा खोला था। तब मुझे दुनियाका कोई ज्ञान न था। अब सवाल पूछ लेनेवाली सामर्थ्य मुझमें है। इस बातको भी ऐलानिया कहता हूं, सीताने मेरी जिन्दगी बिगाड़ डाली। व्यर्थ मुझे दुनियामें फेंक दिया। कहीं भी मेरा मन नहीं लगता है। हमेशा एक बेचैनी और अड़चन घेरे रहती है।"

"और तेरी वह दूधवालेकी लड़की हरीश !"

"लच्छी ! परसोंसे लापता है।"

"चली गयी ?"

"हां, मेरे आगे परसों वह बड़ी देर तक रोती रही। कहती थी—अब मेरे बच्चा होनेवाला है।".

"बच्चा !" असमञ्जसमें मैं बोला था।

"सातवां महीना है।"

"भला मुझे महीनोंका क्या ज्ञान होता। कुछ न कह, सोचा कि कहीं नौकरी अब करनी ही पड़ेगी। उस बच्चेको देखनेकी भी बड़ी ख्वाहिश थी।"

"सात महीनेके: बच्चेको लेकर वह क्यों भाग गयी। कहां अब मारी-मारी डोलेगी।"

"दो साल वह मेरे साथ रही। भारी अपमान और अपवाद मैंने उसके लिए सहा। एक साधारण नौकरानीकी हैसियतसे न रख, अपनी गृहस्थीके लायक उसे बनाया था। सीताने जब एक दिन दुतकार दिया था, मुझे कुछ भी नहीं सूझा। कालेजमें तब पढ़ा करता था। यह लड़की अपने बूढ़े बापके साथ दूध देने होस्टलमें आती थी। मैं उलझ गया। भविष्यकी कोई परवाह नहीं की। उसको साथ ले लिया था। फिर हम दोनों साथ रहे। अन्दाज था कि ताजिन्दगी साथ रहेंगे, किन्तु......?"

"किन्तु नहीं......। वह भी भाग गयी है, तब जाकर तुझे आज सीताकी याद आयी। क्यों हरीश, यह बात

क्या है। सीता एक गृहस्थीके भीतरकी नारी है और लच्छी तो……।"

"नहीं, नहीं—नहीं। तुलना करनेका मुझे कोई भी अधिकार नहीं है। कल नुमायशमें सीताको खड़ी देखकर, एकाएक ख्याल आया कि सीताके अलावा कोई भी मेरी नहीं है। हमारे बीचवाला समझौता सही था। सीता भले ही विधवा हो, उसे मैं अपनी सगी गिनता हूं। इसके लिए सीता और मैंने समाजकी आज्ञा नहीं मांगी। सिर्फ एक रुकावट थी। सीताका पति दो बच्चे सीताको सौंप गया था। यदि वे दो बच्चे नहीं होते, मैं सीताको अपनी गृहस्थीमें फुसला लाता। हम दोनों एक ठीक-सी गृहस्थी चालू करते। न मैं दुनियामें इस तरह मारा-मारा डोलता, न सीताको छुप-छुपकर चलना लाजिम था। एक दिन सीतासे मैंने अपनी इस गृहस्थीकी बात कही थी।"

"क्या बोली वह ?"

"कुछ नहीं—कुछ नहीं। स्तम्भित रह गयी थी, चुपचाप बड़ी देर आंखें फाड़-फाड़कर मुझे देखकर, घूरते कहा था—'पापी हो तुम। अन्यथा ऐसी बातें नहीं गढ़ते।' मैं बात कहां पकड़ पाया था।"

"चाहते होगे इस शरीरपर कब्जा करना। पुरुष हो न। लेकिन हमारी असमर्थता दैविक है। यह सब सोचते-सोचते, क्यों तुम दुनिया-भरकी बातें मन-ही-मन गढ़ा करते हो।"

"कब कोई बात मैंने सोची है।"

"तब यह इतनी बातें क्या कह रहे थे। मेरी गृहस्थी—विधवाकी ! राम-राम, ऐसी बात आगे मत कहना। दुनिया-के आगे सीधा मुंह खड़े रहने देनेका इरादा भी तुम्हारा नहीं है। दो बच्चे हैं। मुझे और क्या चाहिए। भगवान बच्चोंको बचा ले, बहुत है।"

"विधवाके इस ब्रह्मचर्यपर मैं अवाक् रह गया था। पतिकी याद कर बड़े-बड़े आंसू उसके ढुलक गये थे। स्तब्ध कुछ देर मैं बैठा-का-बैठा रह गया था, कि तभी कान्ति आयी और बोली—चाचाजी।"

"क्या है बेटी ?"

"बिलायती मिठाई नहीं लाये हो।"

"भूल गया।"

"रोज भूल जाते हो। अच्छा, हमारे चाचा तुम नहीं हो।"

"कितनी मिठाई खावेगी,-सीता बोली थी। और कान्ति मांके डरसे, मुझसे चिपट गयी थी। तभी मैंने कान्तिसे पूछा था—कान्ति, तू सबसे ज्यादा किसे प्यार करती है ?"

"तुमको।"

"सीताको नहीं।"

"कान्तिने एक बार अपनी मांकी ओर देखा और फिर सिर हिलाकर इन्कार किया। मैंने कान्तिको उसकी मांका नाम कहना भी सिखला दिया था। वह मेरे आगे मांको सीता कहती थी। सीता फिर भी चुपचाप मलिन बैठी रही। जैसे कि उसका भीतरी विद्रोह सुलग चुका हो। कई बार वह अनमनी हो उठी और कपड़े संभालने लगी। एक बार वह कुछ मुझसे कहनेको भी पास आयी और फिर चली गयी। कोई भारी अड़चन जैसे कि बीचमें मैंने डाल दी थी। इस भारी चुप्पीसे मैं भी ऊब बैठा। पूछा-कान्ति, तू मेरे साथ चलेगी।"

"कहां !"

"चाचीके पास।"

"चलूंगी।"

"और सीता।"

"वह नहीं जावेगी। मुझ मारती है।"

"तभी सीता हंस पड़ी थी। बोली—कहां है री तेरी चाची ?"

"देश।"

"तब चली जा।"

"खुशी फिर भी सीताके मनमें नहीं आयी। चेहरेका रङ्ग उड़ गया था। मैंने गृहस्थीकी उस व्यवस्थाको सौंपकर जैसे कि भारी दुःख और पीड़ा उसे पहुंचायी हो।"

"हरि, क्या इस तरह, सीताकी लड़कीकी मार्फत, उसके जीवनमें तू पागलपन फैलाना नहीं चाहता था।"

"मैं ! क्या ? कान्ति और सीता दोनोंको आपसमें मैं खुद पास-पास बैठाना चाहता था। जानकर कि सीताकी भारी एक जरूरत वह लड़की थी। उसे संवारनेमें ही सीता अपनी सारी बुद्धि और वक्त भी खर्च करना जान गयी थी। तब वेबी बहुत छोटा था—शायद छः-सात महीनेका।"

"नुमायशमें कान्तिको पास बुलाकर, तूने प्यार करना नहीं चाहा।"

"कान्ति बच्ची है। भूल गयी है। और आश्चर्यकी बात

तो यह है, कि सीताने मुझ देख, औरतोंकी ओट ले ली थी।"

"तब तुझे कैसे मालूम हुआ कि वह कल जा रही है।"

"मैंने उसकी बातें-सुन ली थीं। सीता अपनी किसी सहेली-से यह कह रही थी।"

"तब तो मैदान फतह कर लिया।"

"कुछ भी बात समझमें नहीं आती है। उस दिन जब मैं जानेको था, सीता बोली—रातको आओगे। तुम्हारी गृहस्थीकी बातपर विचार करना पड़ेगा।"

"सीताने कहा था?" विश्वनाथने हरीशको घूरा।

"सीताकी उदासी मुझे डस गयी थी। मैं सीतासे माफी मांग लेना चाहता था। कसूरवार तो था ही। और आधी रात को सीताने बुलाया था। सीता पीली पड़ गयी थी। उसका सारा चेहरा घुला हुआ था। सुफेद धोतीमें वह थी। उसका आभूषण-हीन मुंह देख मैं डर गया। मैं मेजसे लगी कुर्सीपर बैठ गया था। सीता पलंगपर लेटकर, बच्चेको थपथपाती रही। मैं चुप अवाक् था। सीताको देखनेका साहस न हुआ। आधी रात। सीताके इस करतबपर बार-बार डर जाता था। तभी सीता बोली—'गलतफहमी हममें हुई है। मैं अपनी इस गृहस्थीसे सन्तुष्ट हूं। तुम पुरुष हो, सबल हो।' अनायास उसकी आंखोंसे आंसू बहने लगे। मैं ऐसी स्थिति-से परिचित नहीं था। मैंने सीताको कुछ भी नहीं समझाया। वह सीता आखिर मुझसे क्या चाहती थी। क्या मेरा उससे सरोकार था। मैं उसका एक साधारण परिचित था। रिश्ते-वाली कोई भी हैसियत मेरी अपनी निजी नहीं थी। उसकी पीड़ाका अन्दाज अक्सर लगाया करता था। कुछ भी मैं बोला नहीं। चुपचाप सीढ़ियोंसे नीचे उतर गया था। नीचे-से मैंने देखा था कि सीता अपने जीनेमें खड़ी है—वह खड़ी ही रही।"

"बिलकुल नयी उलझन है!"

"इस सीताने ही मुझे पंगु बनाकर जीवन चलानेको मज-बूर किया। अपने उत्तरदायित्वको भूल गयी। उसे शायद यह मालूम नहीं कि मेरा अपना निजी कोई भी व्यक्तित्व नहीं है। मैं तो निपट चुका हूं। कुछ शरीरपर प्राणोंका मोह है, इसीलिए जीवित हूं, अन्यथा कोई भी उत्साह नहीं। आज किसी 'अपने' के पास पड़े रहनेको दिल तड़पता है। दुनिया और दुनियादारीसे ऊब उठा हूं। कहीं ठहरनेको मन नहीं करता। कुछ भी ठीक नहीं लगता। कोई अपना ऐसा नहीं, जिसे सारी बात सौंप निश्चिन्त रह सकूं। यदि सीता जरा सावधान हो चाहती, मैं ऐसा नहीं होता। मैं इतना निकम्मा नहीं था। फिर भी......।"

"हरीश, सीताको कोसना भी ठीक नहीं होगा। कौन जाने, वह क्या-क्या भुगत रही हो।"

"सीताने ही अपना वादा पूरा नहीं किया। उसने हमेशा अपने सुख-दुःखके हाल चिट्ठीमें लिखनेका वादा किया था। वह भूल गयी। मैंने कई चिट्ठियां डालकर याद दिलायी, फिर भी कोई जवाब नहीं मिला।"

"शायद उसे मौका नहीं मिलता हो?"

"मौका, झूठ बात है। वह खुद नहीं चाहती। उस दिन वह 'हिल-स्टेशनसे' साथ-साथ लारीमें आयी थी। स्टेशनपर कहा था उसने—मुझे चिट्ठियां मत लिखा कर, मैं जवाब नहीं दूंगी।"

"और तुमको बात लग गयी।"

"क्या करता मैं। दिलकी पीड़ा बढ़ गयी थी। सीताके उस अन्यायने मुझे निर्जीव बना डाला। उन्हीं दिनों लच्छी दूध देने होस्टल आया करती थी। उसकी शोहरत भी थी। लच्छी मेरे साथ रहनेको तैयार हो गयी। मैं कुछ क्या करता। साथ अपने उसे कर लिया।"

"सीता जानती है?"

"उस 'हिल-स्टेशन' के बच्चे-बच्चेको मालूम है। यह चर्चा हरएकके कानमें पड़ी। मेरी इस आवारागर्दीपर सारा समाज नाखुश हो गया। उस सबकी परवाह न करके भी मैंने सोचा था, हमेशा लच्छीके साथ रहूंगा। इन दो सालोंमें मैंने लच्छीको सब काम-काज भी सिखला दिया था। वह हर तरह घरके भीतर-बाहर निभने लगी थी। उस होनेवाले बच्चेके साथकी जिम्मेदारीके लिए भी मैं तैयार था।"

"तब वह भाग क्यों गयी।"

"खुद मुझे कुछ भी मालूम नहीं है। उसके मनकी बात मैं कभी निकाल नहीं सका। लच्छीको हर तरह खुश रखने-की कोशिश मैंने की, फिर भी वह चली गयी। बातका कुछ भी अन्दाज मैं नहीं लगा सका हूं।"

"उसकी खोज की।"

"सब जगह ढूंढ़ आया हूं।"

"तब ?"

"वह यह कहती थी कि उसकी शादी एक जगह तय हो चुकी है। उसकी ससुरालवालोंने उसके लिए गहने बनवाये थे। उन गहनोंको भी कई बार उसने पहना था। उन गहनोंकी एवजमें काफी रुपये देकर मैंने उसे साथ रखा था। वह अपने होनेवाले भावी पतिका मखौल भी कई बार मेरे आगे उड़ाया करती थी। एक-एककर उसके गहने बेचनेकी मजबूरी मेरे आगे आयी। वह नाखुश रहने लगी। कितना ही उसे समझाता, कि मां-बापके खुश होते ही लाखोंकी जायदादकी मलकिन वह बन जावेगी। फिर भी गहनोंका अफसोस वह अपने मनसे नहीं हटा सकी। परसों वह कुछ झगड़ पड़ी थी। उसकी झेंवरियां बेचकर जब लौटा, तो वह बोली—मैंने गलती की, जो तुम्हारे साथ भाग आयी। वहां होती, यह सब देखना नहीं होता।"

"तब वहीं क्यों नहीं चली जाती।" मैंने मजाक किया।

'चली जाऊंगी। क्या आंखें दिखलाते हो।'

"अधिक बात मैंने नहीं की। बाहर आकर बहुत सोचा और तय पाया कि हमारी सामाजिक व्यवस्था एक दिन कड़ी नहीं रहेगी। पशुओंकी तरह अन्त होगा। जहां न गृहस्थ है, न कोई कानून। सिर्फ अपने आगेकी सृष्टिके लिए, वहां नर और मादाकी गणना है। उसके भीतर न स्वार्थ है, न कोई और तत्व। हमारा ज्ञान और यह इतनी सारी व्यवस्था गलत ही न साबित हुई। पशुओंमें न अपना है, न पराया। सारा धन्धा-रोजगार-सा नहीं है कि आड़की जरूरत पड़े। वह सारी बुद्धि मैं पा लेना चाहता था। नहीं तो लच्छीको इस तरह चला जाना नहीं होता, न उसे अपनी गृहस्थीमें रख लेनेवाला स्वार्थ ही पैदा होना जरूरी रह जाता। तुम्हीं सोचो कि बेकार हमारी सभ्यताने नारीका मूल्य बढ़ा दिया है। इसीलिए तो एक वेश्या कीमतकी भूखी होती है।"

"क्या-क्या? हरीश क्या कहते हो। लच्छीवाला बर्ताव और सीताका, कुछ ऐसा नहीं कि हरएकपर लागू हो। न इन सारे चालू सामाजिक नियमोंकी विवेचना करनी ही ठीक होगी।"

"नहीं जानते तुम, लच्छी कहां चली गयी है।"

"अपने पिताके घर। और जायेगी कहां। छोटे घरकी लड़की ठहरी। उसकी दूसरी शादी हो ही जावेगी। यह तो उनके यहां मामूली बात है।"

"तुम्हारी यह धारणा गलत है। वह अपने उस आदमीके पास गयी है, जिससे उसकी शादी तय हुई थी। मेरे साथ चले आनेके बाद भी, उसका ख्याल वह भूल नहीं सकी। हम लोग ठहरे सभ्य श्रेणीके लोग। उसे अपनेसे मेल खाते व्यक्तित्वकी जरूरत थी। मेरे बाहरी टीमटामवाले व्यक्तित्वपर अधिक दिनों तक वह रीझी नहीं रह सकी। एक दिन मां बन जानेपर, अपना अपराध उसे ज्ञात हो आया। यह भी वह समझी कि भावुकताकी वजह एक गलत आदमीका आश्रय उसने लिया है। अब उस सही आदमीके पास जाकर वह माफी मांग लेगी।"

"माफी?"

"उन लोगोंमें सहृदयताका बर्ताव होता है। वहीं उसे जगह मिलेगी। और अपने आदमियोंके बीच रहकर, उसे खुशी भी होगी।"

"क्या?"

"तुम शायद यह नहीं जानते होगे कि उसको बचपनसे गाय-भैंसोंका ज्ञान था। गायें कै तरहकी होती हैं। कौन घास किस मौसममें दी जानी चाहिए। यदि उनको यह बीमारी होगी, कौन-सी दवा दी जानी चाहिए। उस समाजकी बातें किताबोंमें नहीं मिलती हैं। कई बार उसने एक गाय पालनेकी चाह प्रकट की। वह सब काम निभा लेनेको कहती थी। अपने भावी पतिके गाय-भैंसोंकी तादाद भी उसे मालूम थी। उन पशुओंपर उठते, उसके दिलके कुतूहलका कोई भी जवाब मेरे पास नहीं था। मैं कभी-कभी ऊब जाता। उसके असन्तोषको जानकर भी चुप रहना सीखा था। यह परवशता थी। पहले एकाएक वह बहाना पा मेरे साथ चली आयी। जब उसने सोचना शुरू किया, अनुचित मेरा साथ लगा। मैं अपनी किताबें व अखबार पढ़ा करता, वह अपनी गाय-भैंसोंवाली दुनियामें लीन रहती थी। और अवसर पाकर ही......।"

"हरि-हरि......।"

"क्यों, क्या बात है।"

"और वह बच्चा?"

"बच्चा तो होगा ही। इसे अपवाद वह समाज नहीं

गिनता। वहां पुरुष और नारी दोनोंका कसूर यह गिना जाता है। लच्छीका मान नहीं घटेगा, वह बचपनकी गलती आगे जीवनमें तुफेल बनकर खड़ी नहीं होगी। वे कड़ा बर्ताव नहीं बरता करते हैं। वह पति भी लच्छीको पाकर फूला नहीं समावेगा। एक व्यर्थके नैतिक ढोंगकी परवाह वे नहीं किया करते हैं। चलोगे स्टेशन ?"

"स्टेशन !"

"सीताको देख आवें।"

"हरीश।"

"विश्वनाथ, सीताको देखनेके बाद तुम मुझे सही-सही समझ सकोगे।"

"तुम्हारी सीता और लच्छीको तुमसे सुनकर ही तसल्ली हो जाती है। वे जिन्दा रहें—चिरकाल तक।"

"मौत तो सिर्फ तुमको आवेगी। और तो सब अमर हैं न।"

"तू स्टेशन जावेगा।"

"जरूर-जरूर। तुम भी चलो। सीतासे सारी बातें पूछूंगा। बहुत कुछ उसे समझाना भी है। लच्छीकी बातें भी उसे सुनानी हैं। यह सरासर धोखा उसने दिया है।"

"धोखा !"

"तब क्या यह है।"

"खैर, सीता तुमसे बातें करेगी।"

"मैं उसके आगे खड़ा होकर सवाल पूछूंगा। सब्र मुझे नहीं है।"

"लेकिन हरीश।"

"क्या—क्या विश्वनाथ !"

"यह पशुओंका समाज नहीं है।"

"होने दो।"

"यहां कायदे-कानून हैं।"

"और लच्छीका समाज ?"

"जाने दे उसे। क्या तुझे स्टेशनपर देखकर सीताको खुशी होगी।"

"तो कहनेकी जरूरत क्या थी कि वह उस गाड़ीसे जा रही है।"

"वह चाहती थी कि तुम स्टेशन आओ, लेकिन डर गयी। वह असहाय है। उसके अपने हाथमें कुछ नहीं है। कान्ति बीमार रहती है। उसे 'लीवर' की बीमारी है। वह लड़का भी बहुत कमजोर है।"

"क्या विश्वनाथ ? तुम कैसे जान गये हो।"

"कल 'वाइफ' से उसने सारी बातें कही थीं।"

"भाभीसे ?"

"तुम्हारी भाभी तुम्हारी सारी दास्तान जानती है। मैं उससे कह चुका हूं। कल वहां बैठने भी वह गयी थी।"

"क्या कहा था सीताने ?"

"अपना ही दुखड़ा रोती रही।"

"फिर——।"

"यह भी कहा कि वे शादी कर लें। इस तरह मारे-मारे फिरना अनुचित है।"

"क्या ! वह ऐसा नहीं कह सकती है। झूठ बात है। केवल एक दिखलावा है।"

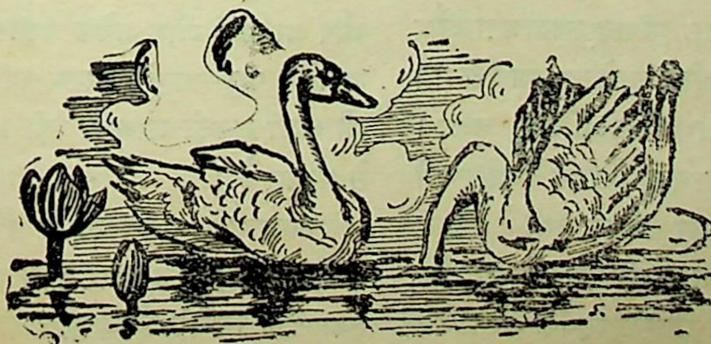
"सच सब कुछ है। उसने हाथ जोड़कर कहलाया है कि तुम स्टेशन मत आना।"

"मैं तो जाऊंगा।"

"जानेसे मैं रोकता नहीं हूं......।"

"वही समाज, वही सब कुछ, किन्तु......?..."कहकर हरीश चुपचाप कुर्सीपरसे उठ खड़ा हुआ। उसका चेहरा मुर्देकी तरह सफेद पड़ गया था।

———



सामाजिक और राजनीतिक

श्री विष्णु

आज हम शङ्काके युगमें रहते हैं। अडिग और अखण्ड श्रद्धा किसीमें नहीं है। हर वस्तु और हर कार्यके पहले एक बहुत बड़ा 'क्यों ?' और 'कैसे ?' हम देखते हैं। यह जागृति है अथवा पतन, इसपर भी विवाद हो सकता है और विवादका होना यही सूचित करता है कि दोनों अवस्थाओं (जागृति अथवा पतन) की सम्भावना है। प्रश्न होने न होनेका नहीं है, बल्कि माप और सीमाका है; लेकिन इतनी बुद्धि मानवमें नहीं है, इसी कारण विश्वमें सङ्घर्ष हुआ है और अनादि काल तक होता रहेगा।

यही समस्या सामाजिक अथवा राजनीतिक क्रान्ति (या सुधार) के सम्बन्धमें विचार करते समय सामने आ जाती है। लेकिन यह केवल बुद्धिका प्रश्न नहीं है। इस प्रश्नका अप्रत्यक्ष कल्पनासे भी कोई सम्बन्ध नहीं है। हमारे युगकी अथवा भूतकालकी जो घटनायें हमारे सामने हैं, उन्हींके आधारपर इसका सहज निर्णय हो सकता है।

समाजका अर्थ है समूह, यानी व्यक्तियोंके समूहका नाम समाज है। काल, देश, जाति और धर्मके अनुसार व्यक्तियोंके अनेक समाज हैं। समाजके सङ्गठनके लिए नियम और विधान भी हैं। जो भी वस्तु अस्तित्वमें आती है, उसका आधार अवश्य होता है, नहीं तो वह जी न सकेगी। इसीलिए मानवने जिस दिन समाजका निर्माण किया, उसी दिन उसके जीवनके लिए व्यवस्था भी की। न जाने कब और कैसे पुरुष और स्त्रीका प्रथम मिलन हुआ ? इसी प्रथम मिलनपर समाजकी नींव खड़ी है। मानव मूलतः स्वतन्त्र और स्वार्थी जीव है। प्रत्येक पुरुष और स्त्रीने अपनी-अपनी स्वतन्त्रता और स्वार्थका कुछ भाग समाजको दिया, अर्थात् स्वतन्त्रता और स्वार्थका आपसमें साझा करके उपयोग करनेका प्रण किया। प्रारम्भिक दशामें यह बिलकुल स्वाभाविक तौरपर हुआ। पुरुष जानता था, स्त्रीमें उसका आनन्द निहित है और स्त्री जानती थी, पुरुषके बिना अब उसका जीवन नहीं है। इसी कारण दोनों अपने-अपने स्वार्थको अपने ही एक बड़े स्वार्थके लिए छोड़कर एक-दूसरेका काम भी प्रसन्नतापूर्वक करते थे।

मानवने अपने सुख और सद्भावनाके लिए अपनेको समाजके बन्धनमें डाला था, लेकिन उसका यह स्वप्न पूरा नहीं हुआ। मानवके आन्तरमें, जिसे मन कहते हैं, तीन गुणोंका मिलन है—सत, रज, तम। जिस प्रकार जीवनकी रक्षा करनेवाली वायुमें आक्सिजनके साथ-साथ नाइट्रोजन और कार्बोलिक ऐसिड गैस भी है, उसी प्रकार मानवके मनमें सतके साथ रज और तम भी है। जब तक इन गुणोंकी मात्रा ठीक रहती है, मानव और मानव द्वारा निर्मित समाज ठीक रहता है। जिस समय किसी एककी कमी या ज्यादती हो जाती है, उसी समय जीवनका सन्तुलन गिर जाता है। सन्तुलनका गिरना समाजमें अव्यवस्था पैदा कर देता है और इसी अव्यवस्थाको दूर करनेके लिए सुधार या क्रान्तिकी जरूरत है।

विकासके प्रारम्भिक कालमें ऐसा ही हुआ। असन्तुलित समाजमें व्यक्तियोंके स्वार्थ टक्कर खाने लगे। उस समय जो इस टक्करसे ऊपर उठे, उनके मनमें इसे दूर करनेके विचार पैदा हुए। ये ही विचार कालके साथ-साथ अनेक नियमोंमें बदल गये। विवाह, वर्ण, स्त्री और पुरुषके अधिकार, कुटुम्ब आदि संस्थाओं और अधिकारोंका जन्म इसी टक्करसे बचनेका विचार था। धीरे-धीरे और अनन्त वर्षोंमें जाकर ये प्रणालियां विकसित हुईं। इनमें निरन्तर परिवर्तन भी होता रहा। फिर एक समय आया, जब मानवके स्वाभाविक गुणोंका सन्तुलन यहां भी गिर गया। आखिर मनुष्यने ही तो इन नियमोंका विधान किया था। सन्तुलनके बिगड़नेपर संस्थायें दूषित हो गयीं। अनेक प्रकारके विवाह, नाना वर्ण और जातियां और अनेक प्रकारके नियम शक्तिशाली पुरुषोंने बनाये। पशु-जगत्‌के मत्स्य-न्यायके आधारपर शक्तिशालीकी सत्ता सबको माननी पड़ी। मानव भूल गया कि वह पशुसे बढ़कर है।

समाजको इस प्रकार विकारग्रस्त होते देखकर कुछ सात्विक मनुष्योंके मनमें द्वन्द्व चलता रहा और उन्होंने व्यवस्था ठीक रखनेके लिए कुछ और नियम बनाये। ये अप्रत्यक्ष

शक्तिके आधारपर थे। उनका सम्बन्ध स्वर्ग और नरकसे था। नियमका पालन करनेसे स्वर्ग मिलेगा, यह प्रलोभन मानवको दिया गया और नियमका उल्लङ्घन करनेपर नरकका भय दिखाया गया। पूजा, अनुष्ठान, व्रत और यज्ञ इन सबका आधार यही समाज-सुधार था; परन्तु अप्रत्यक्ष मन चिरस्थायी तो नहीं होता। शक्तिशाली मानवने प्रत्यक्षके सामने अप्रत्यक्षको भुला दिया। पूजा, अनुष्ठान, व्रत और यज्ञ आदि विधानोंके अर्थ उसने अपने स्वार्थके लिए लगाये और उनको इस विधिसे सञ्चालित किया कि वे उसीका स्वार्थ सीधा कर सकते थे। विश्वके इतिहासमें वह समय प्रत्येक देश और जातिमें आया, जब धर्मके नामपर रक्तके सागर बहाये गये, धर्मके नामपर मानव-जीवनके साथ होली खेली गयी। उसी धर्मके नामपर, जो मनुष्य और मनुष्य-समाजको विकार-रहित करनेके लिए था।

ऊपर हमने देखा कि समाज और धर्मके नियमको पालन करानेके लिए कुछ मनुष्योंके हाथमें शक्ति थी। यह शासन-प्रणालीका बीज था, यद्यपि आगे आनेवाली राज-व्यवस्थासे यह अवस्था भिन्न थी; क्योंकि इसकी नींव सतोगुणपर आश्रित थी। सामाजिक और धार्मिक नियमोंका सम्बन्ध बहुत करके मनुष्यके आन्तरिक जीवनसे था। वाह्य जीवनकी रक्षाके लिए भी कुछ नियम मानव-समाजमें प्रचलित थे। किसी न किसी रूपमें एक वर्ग, जिसका काम नागरिक व्यवस्था करना था, प्रत्येक मानव—भूखण्डमें पनप रहा था। कालान्तरमें धर्म संस्थाके दूषित हो जानेपर इसी राजनीतिक शक्तिने समाजकी व्यवस्थाका अधिकार लिया। यह अधिकार बलप्रयोगके आधारपर था। यहां मनुष्यके आन्तरिक गुणोंसे अपील नहीं की जाती थी, न अप्रत्यक्ष शक्तिका भय या प्रलोभन था। इस बलप्रयोगको व्यवहारिक रूपमें लानेके लिए न्याय, कानून और दण्ड-व्यवस्थाकी सृष्टि हुई। न्यायने कहा—'मनुष्य स्वतन्त्र है। उसे जीनेका हक भी है। एक मानव दूसरेपर अधिकार नहीं कर सकता। जो मानव नियमोंका पालन नहीं करेगा, वह दण्डका अधिकारी होगा।' यह बात देखनेमें बड़ी सुन्दर थी; परन्तु मानवके आन्तरिक इतिहासने फिर अपनेको दुहराया। शक्ति-सम्पन्न मानवने कानूनके मनमाने अर्थ लगाये और जो कमजोर थे, उन्हें पनपनेका हक नहीं दिया। उन्हें नष्ट कर दिया अथवा सिसकनेको जीता छोड़ दिया। इस प्रकार न्यायके मूल सिद्धान्तकी हत्या कर दी गयी। प्रो० हेरल्ड लास्कीके शब्दोंमें हम मान लेते हैं कि "शासन करनेवालोंमें बुद्धिमत्तापूर्वक या न्यायपूर्वक काम करनेकी इच्छा होती है; परन्तु जिन-जिन लोगोंका जीवन भिन्न-भिन्न प्रकारका है, वे विचार भी भिन्न प्रकारसे करते हैं और समष्टि रूपसे समाजके हितसाधनके लिए कौन-से निधि-निदेश अन्ततः अभीष्ट हैं, इस समस्यापर विचार करनेके लिए प्रत्येक वर्ग अपने मस्तिष्कके भीतर कुछ अस्पष्ट और अर्धसंज्ञात तर्क रखता है और उसी दृष्टिसे विचार करता है।...हम सब अपने अनुभवोंके बन्दी हैं।" तब यह बुद्धिमत्ता और न्याय विभिन्न मानव—वर्गोंके अनुभवकी ढाल लेकर आपसमें टकराते और समाजको नष्ट करते रहे।

ये सब बातें शीघ्रतासे नहीं घटित हुईं। धीरे-धीरे अनन्त वर्षोंमें ये परिवर्तन हुए। मानव जान भी न पाया और जहां उसने जाना, वहीं विरोध और क्रान्तियां हुईं। इन सब बातोंका सिलसिलेवार संक्षेपमें वर्णन करनेका मतलब केवल यही है कि धार्मिक हो अथवा राजनीतिक, प्रत्येक सत्ताका उदय समाजका सुधार करनेके लिए हुआ था। वे स्वतन्त्र रूपमें कुछ भी नहीं हैं। धर्म तो ईश्वर और मानवके बीचकी वस्तु है। समाजका उससे कुछ भी प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं। इसी प्रकार नागरिक व्यवस्थाको नियन्त्रित करनेवाली राजनीतिक सत्ताकी मौलिक महत्ता भी कुछ नहीं है। लेकिन ऐसा कहकर राजनीतिक शक्तिको हटाया नहीं जा सकता। वह तो आत्महत्या करना होगा। मानवके पास शरीर और आत्मा दोनों हैं। एकके बिना उसका अस्तित्व नहीं है। समाज-नीति मानवकी आत्मा है और राजनीति शरीर। सुन्दर और स्वस्थ शरीरमें आत्माका निवास होता है। शरीरके अशक्त हो जानेपर आत्मा क्षीण हो जाती है। दूसरी ओर जब आत्मा मलीन हो जाती है, तो शरीर स्वयं दुर्बल हो जाता है। पौष्टिक भोजन भी उसे जीवन नहीं दे सकते। जिसकी आत्मा मलीन नहीं हुई है, वह आंख खुली रखकर शरीरको स्वस्थ और सुन्दर बना सकता है, लेकिन जिसकी आत्मा मर चुकी है, वह शरीरकी रक्षा नहीं कर सकता। यह दोनोंका भेद है। इसीको लक्ष्य करके शायद फर्डिनेण्ड लासेल ने लिखा है—"शासन-पद्धति-सम्बन्धी प्रश्न मुख्यतः अधिकारके प्रश्न नहीं, वरन् शक्तिके प्रश्न होते हैं। किसी

देशकी वास्तविक शासन-पद्धतिका अस्तित्व उस देशमें पायी जानेवाली शक्तिकी वास्तविक दशामें ही होता है। इसीलिए राजनीतिक रचनाओंका मूल्य और स्थिरता तभी होती है, जब वे समाजमें कार्यतः विद्यमान शक्तियोंकी अवस्थाओंको ठीक-ठीक प्रकट करती हैं।" इसीलिए जो भी शक्ति अपनी सफलता चाहती है, उसे पहले समाजकी शक्तिको माप लेना जरूरी है। जिन देशोंने गुलामीके बन्धन तोड़े हैं या विश्वमें सिर उठाया है, उन्होंने प्रथम इसी सामाजिक शक्तिका सञ्चय किया था। इतिहासके पन्नोंमें ऐसी अनेक घटनाओंका वर्णन आया है। अरब जातिकी अद्‌भुत राजशक्तिका कारण हजरत मुहम्मदका मुसलमानी मत था, जिसने उस क्षीण जातिमें सामाजिक क्रान्ति पैदा करके उसे ऊपर उठा दिया। इंगलैण्डने प्यूरीटिनिज्मके द्वारा राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त की थी। जर्मनीमें लूथरने जो सुधार-घोषणा की, उसने आगे बढ़कर समस्त यूरोपमें राजनीतिक उथल-पुथल मचा दी थी। रूसमें भी महात्मा टाल्स्टायके विचार राजक्रान्तिके लिए एक बड़ा साधन बने थे। भारतमें भी अभी-अभी ब्रह्मसमाज और आर्यसमाजकी सामाजिक क्रान्तियां-कांग्रेसको राजक्रान्तिके लिए मैदान तैयार करनेके लिए ही हुई थीं। पुरातन भारतमें तथागत बुद्धकी सामाजिक क्रान्तिकी नींवपर चन्द्रगुप्त और अशोकके महान् साम्राज्य स्थापित हुए थे। गुरु नानककी सामाजिक विचार-धारा गुरु गोविन्दके समयमें अद्‌भुत राजनीतिक शक्तिका कारण बनी। महाराष्ट्रमें शिवाजीकी राजक्रान्तिसे पहले महाराष्ट्र साधु-सन्त समाजकी आत्मा जगा चुके थे।

(२)

इस समस्यापर दूसरे पहलूसे विचार करना उचित होगा। ऊपर हम कह चुके हैं कि राजनीतिक शक्तिका विकास सामाजिक जीवनको नियन्त्रित रखनेके लिए हुआ था। राजतन्त्रमें समाजपर विधि-निर्देश द्वारा नियन्त्रण रखा जाता रहा है, उसमें समाजके रोगोंको समूल दूर करनेका कोई उपाय नहीं होता। समाजमें ऐसे अनेक रोग हैं, जिनपर राजशक्तिका अधिकार ही नहीं होता। राज्य यह तो कह सकता है कि विधवा स्त्रीका उत्पन्न पुत्र नाजायज है; पर वह यह नहीं कह सकता कि विधवा स्त्रीको विवाह करनेका उतना ही अधिकार है, जितना कुमारीको। वह एक भङ्गीको ब्राह्मणके स्थानपर बैठानेका अधिकार नहीं देता। वह एक वैश्य पुरुषसे ब्राह्मण नारीमें उत्पन्न पुत्रको पिताकी जायदादपर अधिकार नहीं जमाने देगा, क्योंकि पुत्र अवैध है; परन्तु राजसत्ता यह नहीं कर सकती कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, भङ्गी इन सबमें गुणकर्मानुसार विवाह आवश्यक कर दे। ऐसी अनेकों बातें हैं। तब यह स्पष्ट है कि राजसंस्थाके अधिकार सीमित हैं और उनका वास्तविक विधायक समाज है। समाजमें जो शक्तिशाली थे, उन्होंने कुछ नियम बनाये और स्वनिर्मित राजसंस्थाको सौंप दिये कि वह बलप्रयोग द्वारा उनका पालन समस्त जनतासे करावे। उनकी रक्षाके लिए शास्त्र और स्मृतियां भी उन्होंने रचीं और मानव-उद्धारका दावा करके मानव-संहार कर डाला। इससे भी आगे जो शक्तिशाली थे, उन्होंने स्वयं अपने बनाये कानूनकी अवहेलना की; पर न्याय उन्हें दण्ड न दिला सका। यह बात विवाद पैदा करती है। विवाद हम नहीं चाहते, क्योंकि उसका अन्त नहीं है; पर इतना स्पष्ट है कि राजतन्त्र अपनेमें कुछ भी नहीं है।

सन् १९१२ में होनेवाली इलाहाबाद कांग्रेसके प्रधान मि० डब्ल्यू० सी० बनर्जीने कहा था—"मैं उन लोगोंसे सहमत नहीं, जो कहते हैं कि जब तक हम अपनी सामाजिक पद्धतिका सुधार नहीं करते, तब तक हम राजनीतिक सुधारके योग्य नहीं हो सकते। मुझे इन दोनोंके बीचमें कोई सम्बन्ध नहीं दीखता।......क्या हम (राजनीतिक सुधारके लिए) इसलिए योग्य नहीं, क्योंकि हमारी विधवाओंका पुनर्विवाह नहीं होता और दूसरे देशोंकी अपेक्षा हमारी लड़कियां छोटी उम्रमें ब्याह दी जाती हैं? या हमारी पत्नियां या पुत्रियां हमारे साथ गाड़ीमें बैठकर हमारे मित्रोंसे मिलने नहीं जातीं? या क्योंकि हम अपनी बेटियोंको आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज नहीं भेजते (हर्ष-ध्वनि)।"

मि० बनर्जी उन्हीं लोगोंमेंसे थे, जो अपने पक्षके लिए भोले लोगोंको भड़काया करते हैं। स्त्री जातिकी स्वतन्त्रतासे आक्सफोर्ड और केम्ब्रिज जानेका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। आजादीका किसी भी दुर्गुणसे सम्बन्ध नहीं है। जब कोई आजादी मांगता है, तो वह आजादीकी मर्यादाको जानता है और यदि आजादी पाकर कोई आत्म-हत्या करता है, तो करे। स्त्रियोंको आजादी देनेसे वे

व्यभिचार करेंगी, इसी काल्पनिक आशङ्कासे उन्हें आजादीसे रोकना तो पाप है। हम मानते हैं, आजादीका दुरुपयोग करनेसे वे उच्छृङ्खल बनेंगी, परन्तु साथ ही यह भी तो सत्य है कि आजादीके बिना जीवन नहीं है।

हम बहुत आगे बढ़ गये। मि० बनर्जी जैसोंको सीधा-सा उत्तर दिया जा सकता है। सिन्धको मोहम्मद बिन कासिमने जीता था। यह मुसलमानोंकी भारतपर पहली विजय थी। मानो यह भारतकी निरन्तर दासताकी चेतावनी थी और इसका कारण था जाति-पाँतिका भेद। दाहिरकी सेनामें चौहानोंको क्षत्रिय नहीं माना गया और वे रुष्ट हो गये। सिकन्दर जब आया था, तो नन्दवंशमें भी यही घटना घटी थी। राजवंशको दासियोंके साथ अपनी कामवासना तृप्त करनेका अधिकार तो था, पर उसके फलस्वरूप उत्पन्न पुत्रोंको कुछ भी अधिकार नहीं था। यदि तब आर्य-जातिमें चाणक्य जैसे पुरुष न होते, तो शायद भारतकी दासताकी तारीख बहुत पुरानी हो गयी होती। ऐसे लोगोंके कार्यका प्रायश्चित्त आज गांधीजी कर रहे हैं। अछूतोद्धार कांग्रेसका एक मुख्य प्रोग्राम है। उनसे मतभेद रखनेवाले लोग आज भी हैं। परन्तु अधिकांश उनमेंसे वे ही हैं, जो मानव-मात्रके अधिकार एक मानते हैं और जो साम्यवादके द्वारा एक नयी सामाजिक प्रणालीको जन्म देना चाहते हैं। उनकी बात वादकी है। उससे हमें कभी विरोध नहीं। राजा स्वयं यह कार्य करे अथवा हरिजन-सङ्घ अथवा कोई और संस्था; परन्तु यह निश्चित है कि इस समस्याको सुलझाये बिना कोई देश स्वतन्त्रताकी ओर नहीं बढ़ सकता।

आजकी सभ्यताके युगमें जब मानव-एकताके अमर प्रयत्न हो रहे हैं, हमारे भारतमें लाखों मनुष्य हैं, जो नीच कहलानेवाली जातियोंमें जन्म लेनेके कारण (१) मन्दिरमें देव-दर्शनको नहीं जा सकते, (२) वे सुन्दर और रङ्गीन कपड़े नहीं पहन सकते, (३) उनके बच्चे उच्च वर्गवालोंके साथ एक स्कूलमें नहीं पढ़ सकते और इससे भी भयङ्कर युग अभी-अभी बीता है, जब उनके चलनेके लिए सड़कें भी अलग थीं। पेशवाके राज्यकालमें तो उन्हें गलेमें हांडी लटकाकर चलना पड़ता था, जिससे वे सड़कपर थूक न सकें और आर्य-पुरुषोंके पैर उनके थूकपर न पड़ सकें। वे अपने पीछे झाड़ू बांधते थे, जिससे उनके पद-चिन्ह मिटते जायें और आर्य-जातिके पैर उन दूषित मानवोंके पद-चिन्होंपर न पड़ सकें।

इन्हीं अवस्थाओंको सामने रखकर एक समाज-सुधारक भी पूछ सकता है—क्या अपने पैरोंको काटकर तुम भागनेका साहस कर सकते हो? क्या इतने वर्गको जीनेका अधिकार न देकर भी तुम अपने लिए आजादी मांग सकते हो? राजनीतिके पास इसका कोई उत्तर नहीं है। वह तो पंगु है। यह मानकर भी कि यह अन्याय है, वह समाजकी अपेक्षा करेगी। समाजके अधिकारी आकर कहेंगे कि हम अछूतोंके लिए मन्दिर खोलना चाहते हैं, तो राज्य उसका पालन करवा सकता है।

एक और बात कही जाती है कि वर्तमान असमताका कारण आर्थिक है। ऐसा कहनेवाले मानते हैं कि राजनीति समाप्त हो चुकी है और केवल आर्थिक प्रश्न संसारके सामने है। लेकिन हम कहते हैं कि जो आर्थिक असमता आज हम देखते हैं, उसका कारण सामाजिक रोग हैं। समाजके अनेक वर्ग, वर्ण और जातियोंके भेदने ही एक मानवको अनन्त धनका स्वामी तथा दूसरेको टुकड़े-टुकड़ेका मोहताज बनाया है। साम्यवादी इस असमताको मिटानेके लिए कहते हैं कि वैयक्तिक आर्थिक लाभको मिटा दिया जावे। यह सिद्धान्त तो सुन्दर है, परन्तु इसका आश्रय बलप्रयोगपर है। आर्थिक समता कायम कर देनेपर भी यह निश्चित नहीं कि मनुष्यमें ये विषमतायें नहीं रहेंगी। वे तो रहेंगी। हम देखें तो सुन्दर और असुन्दर, बली और निर्बलकी असमता भी कम भयङ्कर नहीं है। इसका तो एकमात्र निदान सामाजिक क्रान्ति ही है कि सब मानव मूलतः एक हैं। धनी और निर्धन, बली और निर्बल, सुन्दर और असुन्दर सबके स्थान और अधिकार एक हैं। उनमें रोटी, बेटी, खानपान आदि सब व्यवहार बिना किसी भेदभावके हो सकते हैं। इस ओर जितनी भी सफलता मानवके प्रयत्न पा सकते हैं, वही चिरस्थायी होगी, अन्यथा एक शक्तिके प्रयत्न दूसरी शक्तिके प्रयत्नों द्वारा नष्ट किये जा सकते हैं। एक बात हम फिर कह दें कि साम्यवादके उद्देश्योंसे हमारा विरोध नहीं है। वह तो हमारी सामाजिक क्रान्तिका एक अङ्ग है, लेकिन शक्तिके प्रयोगकी बात हमें अपने उद्देश्य प्राप्त न करने देगी, यह हमारा निश्चित मत है। कानूनसे शिक्षा और संस्कारमें

अधिक बल है। और फिर केवल बल ही तो नहीं है। बल तो तर्कमें भी बहुत है, लेकिन उसमें जीवन कहां है। जीवन तो उसे श्रद्धा ही दे सकेगी। तब तर्क यानी बुद्धिके साथ श्रद्धाका मिलन सच्ची शक्तिका उदय है। शिक्षा और संस्कारके साथ यह नियम और कानूनका मिलन है। आजके युगका सन्देश एक पक्षका पोषण नहीं है, वह तो विभिन्न तत्त्वोंमें एकरसतासे देखनेका आदेश करता है। डा० सर राधाकृष्णन्‌ने एक बार कहा था— 'हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था असमतामूलक है। जब तक इससे अधिक अच्छी व्यवस्था और सुस्थिति हम नहीं उत्पन्न कर सकते, तब तक पशुशालायें, अनाथाश्रम और औषधालय हमारी यातनाओंको बढ़ानेके सिवा और कुछ नहीं कर सकेंगे। इनकी अपेक्षा तो हम सब भूखों मर जायें और हमारा देश निर्वंश हो जाये, यही अच्छा है।'

सच तो यह है कि जो जीनेका अधिकार छीनना चाहता है, उसे जीनेका हक ही क्या है? क्या यह सम्भव नहीं है कि हम अछूतोंको आज भी इसी प्रकार सताते रहें, तो एक दिन वे हमारे विरुद्ध हमारे विरोधियोंसे मिल जायेंगे और हमारा नाश कर देंगे। जो सामाजिक सुधारके विरोधी हैं, वे सम्भवतः इसका मूल्य नहीं जानते। वे राजनीति भी नहीं जानते।

लेकिन समाज-सुधार या क्रान्तिका प्रश्न केवल अछूतोंका प्रश्न तो नहीं है। अनेक जातियां हममें हैं। जाति-पांतिके कारण जो भेदभाव और मनोमालिन्य मानव-मानवके बीचमें पैदा हो चुका है, वह हमें राज-व्यवस्थाके लिए एकमत कैसे होने देगा? हमारी स्त्री जाति अपनेको भूल ही बैठी है। अनन्त वर्षोंसे पददलित होते-होते उन्हें अज्ञानने इतना जकड़ा है कि वे प्रकाशमें आनेसे भी डरती हैं। स्वामी दयानन्द और ब्रह्मसमाजके आन्दोलनने जब उन्हें सचेत किया, तभी वे गांधीजीके आह्वानपर देशके लिए मरनेको आतुर हो उठी थीं।

इसके अतिरिक्त वेश्याओंका समाजमें स्थान, समष्टिगत व्यभिचार, धर्मकी स्थिति, रोटी-बेटीका प्रश्न, विधवाकी स्थिति, विवाह-संस्थाका दुराचार, विदेश-यात्रा आदि अनेक गम्भीर समस्यायें हैं। इनमेंसे कुछ तो कालके चक्रमें फंसकर टूट चुकी हैं। लेकिन अभी जो बाकी हैं, वे किसी भी जातिके जीवन-मरणका प्रश्न हैं। इनका विस्तृत विवेचन बादका प्रश्न है, अभी तो केवल यही दिखाना है कि रोगी और निर्जीव समाज स्वतन्त्रताका उपयोग नहीं कर सकते और स्वतन्त्रता ले भी ली, तो वह जनहित न कर सकेगी। संस्कृतिविहीन स्वतन्त्रता तो हेय है, यह हमारा मत है। इसीलिए हम कहते हैं कि ये प्रश्न आवश्यक हैं। और उनका उत्तर मिलना आवश्यक है।

लक्ष्यको कौन भूलता है; पर मार्गकी जो रुकावटें हैं, उनसे जूझे बिना भी वहां कौन पहुंचा है? रुकावटसे भय हो, यह मानवका गुण नहीं है। वह रुकावटको कुचल दे, उसे भूलकर आगे बढ़नेकी चेष्टा करे, यही उसकी जागरूकता है। जागरूकता यदि समाजमें है, तो वह अपना मार्ग ढूंढ़ लेगा। उसे राजनीतिक स्वतन्त्रताकी अपेक्षा नहीं है। सच तो यह है कि मानवकी स्वतन्त्रताके सामने राजनीतिक स्वतन्त्रताका मूल्य ही नहीं है।

क्रान्तिका आरम्भ मानवके अन्दरसे हो, पर इस क्रान्ति शब्दसे धोखा न हो। यह क्रान्ति रक्तकी नहीं, केवल दृष्टिकोण, नैतिक मूल्य और मापदण्ड बदलनेकी क्रान्ति है, सबसे बढ़कर अपनेको पहचाननेकी क्रान्ति है कि मैं मैं हूं। जैसा मैं हूं, वैसे ही दूसरे हैं। मुझे अपने बलपर जीना है। मुझे चिन्ता नहीं करनी कि अदृष्ट शक्ति मेरी सहायता करती है या नहीं। मैं अदृष्ट शक्तिका विचारक नहीं, केवल अपना विचारक हूं। जब ऐसा होगा, तो समाजकी विभिन्नतासे हमें भय न होगा; क्योंकि तब वह जीवनको शक्ति देगी और विषमताको नष्ट करेगी।



लाशोंका कारखाना

श्री विश्वनाथ सेठी, एम० एस-सी०

कहावत है कि युद्ध छिड़नेपर सत्य सबसे पहले उसका शिकार होता है—"When war is declared, Truth is the first casuality." और इसमें सन्देह नहीं कि युद्ध छिड़नेपर राष्ट्रोंको सत्यासत्यका निर्णय करनेका ध्यान नहीं रह जाता, बल्कि जान-बूझकर मिथ्या प्रचार करनेका भी प्रयत्न किया जाता है।

युद्धकालमें जब अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिहिंसा और प्रतियोगिता काफी बढ़ जाती है, जब देशवासियोंसे हानिप्रद खबरोंको छिपाने और उनके उत्साहको बढ़ानेवाली बातोंके ही प्रचार करनेकी आवश्यकता होती है, जब तटस्थ देशोंको आकर्षित करने एवं शत्रुओंको धोखा देनेकी आवश्यकता होती है, तब राष्ट्रोंके लिए झूठकी बहुत बड़ी उपयोगिता है।

गोबेल्सने एक बार कहा था कि मिथ्या-प्रचारके मानी हैं कि प्रचार इस ढङ्गसे किया जाय कि प्रचारकको स्वयं उस मिथ्याके सत्य होनेका भ्रम और फिर उसमें विश्वास हो जाय।

व्यक्तिके जीवनमें जो सच है, विशाल पैमानेपर राष्ट्रके जीवनमें भी वही सच है। मनुष्यकी झूठ बोलनेकी आदत कभी कम नहीं होगी, पर झूठ बोलनेकी आदतसे भी बढ़कर उसकी विश्वास करनेकी आदत है। झूठी अफवाहोंमें जो दिलचस्पी होती है, वह साधारण नहीं। सत्य सम्भवतः उतना आकर्षक न हो, जितना अर्द्ध-सत्य। इसीलिए अबोध जनतामें अपना उल्लू सीधा करनेके ख्यालसे राष्ट्रों द्वारा तरह-तरहके प्रचार किये जाते हैं।

मिथ्या-प्रचारके कई रूप होते हैं। पहला, बिलकुल सीधा-सा तरीका है कि सरकारी तौरपर कुछ खास बातोंके प्रचारकी आवश्यकता समझकर उन्हें प्रचारित किया जाय। जैसा कि एक फ्रेञ्च राजनीतिज्ञने एक बार कहा था कि जब तक दो राष्ट्रोंके सैनिक एक-दूसरेके विरुद्ध शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित खड़े रहेंगे, तब तक मशीनगनों और गोलियोंकी भांति ही मिथ्या-प्रचारक राजनीतिज्ञ भी बने रहेंगे।

मिथ्या-प्रचार होते देखकर उसे बिना रोके बढ़ने देना, किसी वक्तव्यके शब्दों अथवा पंक्तियोंको इस प्रकार निकाल देना जिससे अपना हित-साधन हो, जान-बूझकर घटना-विशेषको अतिशयोक्ति अथवा अत्यन्त कम करके कहना, नकली फोटो प्रचारित करना, क्योंकि 'कैमरा झूठ नहीं बोलता' के अनुसार वैसे फोटोको विश्वसनीय समझना, अत्याचार सम्बन्धी मनगढ़न्त बातें, सैनिकोंको आत्मसमर्पण करनेसे रोकनेके लिए शत्रुओं द्वारा गिरफ्तार सेनापर होनेवाले भीषण अत्याचारों और यन्त्रणाओंकी कहानियां प्रचारित करना, मनगढ़न्त कहानियोंका प्रचार करना आदि मिथ्या-प्रचारके कितने ही तरीके हैं, जिन्हें विभिन्न राष्ट्र अपनाते हैं।

इन मिथ्या-प्रचारोंकी सफलता इस बातपर भी निर्भर करती है कि प्रचार करते समय इस बातका ध्यान रखा जाय कि उनका प्रचार कैसी जनताके लिए किया जा रहा है। उदाहरणार्थ धार्मिक लोगोंके बीचमें यह प्रचार सफल होता है कि अमुक राष्ट्र जहां-जहां विजय प्राप्त करता है, वहांके धार्मिक स्थानोंको जलाता जा रहा है और इसके साथ कुछ जले हुए धर्मस्थलोंके फोटो जनतामें उस राष्ट्रके विरुद्ध भीषण भावना उत्तेजित कर देंगे। लेकिन यही प्रचार नास्तिकोंमें उस राष्ट्रके प्रति सराहनाकी भावना भर देगा। बुद्धिजीवियोंके बीचमें इस बातका प्रचार करना आवश्यक होता है कि अमुक युद्ध किन महान् आदर्शोंके लिए लड़ा जा रहा है। हिटलर कहता है, उसका उद्देश्य है शान्तिकी स्थापना; पर दूसरे राष्ट्र उसके मार्गमें बाधक हो रहे हैं, इसीलिए यह युद्ध हो रहा है! युद्धकालमें इस प्रकारके निरर्थक वाक्य अक्सर जनताकी आंखोंमें धूल झोंकनेके लिए कहे जाते हैं।

सरकारों द्वारा जहां इस प्रकारके प्रचार स्वेच्छापूर्वक किये जाते हैं, वहीं युद्धकालीन अफवाहोंकी भी कमी नहीं रहती। किसी और समय ऐसी अफवाहोंमें कोई विश्वास करे या न करे; पर ऐसे समय, जब सत्यासत्यका निर्णय करना काफी कठिन रहता है और जब उसके लिए कोई उतना

व्यग्र भी नहीं रहता, ऐसी अफवाहें अबाध गतिसे बढ़ती चलती हैं। अफवाहोंमें एक खास विशेषता यह भी होती है कि वे अपने आप रास्ता खोजती हैं। यद्यपि ऐसी भी अफवाहें होती हैं, जिनसे किसीका खास सम्बन्ध हो या न हो, पर दिलचस्प होनेके कारण उन्हें लोग स्वतः फैला देते हैं। युद्धकालमें अखबारों द्वारा भी कभी-कभी कितनी ही ऐसी बातें फैलायी जाती हैं, जिनमें पाठकोंका मनोरञ्जन करनेके अतिरिक्त और कोई उद्देश्य नहीं रहता और जब एक बार ऐसी कोई बात सामने आयी, तब मनुष्यकी युद्धकालीन भावुकताके कारण उन्हें बढ़ते देर नहीं लगती।

आज एक महायुद्ध चल रहा है, जिसमें सदाके युद्धकी भांति ही मिथ्या-प्रचारमें भी नवीनतायें प्रकट होंगी; पर अभी उनके सत्यासत्यका निर्णय करना असम्भव है। विगत महायुद्धके दिनोंमें भी ऐसा ही हुआ था। कितनी ही खबरें तो उन दिनों ऐसी उड़ीं, जिनके सम्बन्धमें वास्तविक जानकारी वर्षों बाद हो सकी।

विगत महायुद्धमें प्रचलित ऐसी कितनी ही बातोंको लेकर ब्रिटिश पार्लमेण्टके एक सदस्य आर्थर पोन्सबीने एक पुस्तक लिखी है, जिसमें लेखकने प्रामाणिकताके साथ ऐसी बातोंका संग्रह किया है। इन पृष्ठोंमें उक्त पुस्तकके आधार-पर ऐसी कुछ बातें यहां दी जा रही हैं। इन बातोंके देनेका, उक्त लेखकके ही शब्दोंमें, "व्यक्ति-विशेष अथवा अधिकारियोंपर न तो दोषारोपण करना है और न राष्ट्र-विशेषको राष्ट्र-विशेषकी अपेक्षा अधिक दोषी अथवा झूठा प्रमाणित करना है।" जैसा कि हमने कहा है, इस प्रकारकी बातोंके फैलनेकी जिम्मेदारी कभी-कभी जिम्मेदार व्यक्तियोंपर होती भी नहीं। वे स्वतः किसी अज्ञात स्रोतसे निकलती और स्वतः आकाशबेलिकी तरह पनपती और बढ़ती चलती हैं।

विगत महायुद्धमें जैसी बेपरकी बातें उड़ीं, उनमें सबसे अधिक उत्तेजक और सनसनीखेज बात थी जर्मनोंकी 'लाशोंकी फैक्टरी'-सम्बन्धी अफवाह। सारे संसारमें यह अफवाह तूफानकी तेजीसे फैली। और संसारके अनेक विख्यात पत्रों, व्यक्तियों एवं ब्रिटिश पार्लमेण्टमें इसको लेकर वर्षों दिलचस्पी बनी रही। पहले-पहल १९१७ में यह अफवाह उड़ी और १९२९ में जाकर इसका अन्त हुआ, जब जर्मन सरकारके वक्तव्यपर विश्वास कर ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीने पार्लमेण्टमें इसे सदाके लिए दफना दिया। हमारे महाराज बीकानेरने भी २१ अप्रैल १९१७ को लन्दन 'टाइम्स' में लिखकर इसपर घृणा प्रकट की थी।

कहानी यों बतायी जाती है कि जर्मनोंने यह सोचा कि लड़ाईमें मरे हुए व्यक्तियोंकी लाशें बेकार न जाने पायें, इसलिए लाशोंकी एक फैक्टरी खोलकर उनसे और कामोंके लिए चर्बी निकालकर बाकी शरीरसे खाद तैयार की जाय।

इस सम्बन्धमें १६ अप्रैल १९१७ को 'टाइम्स' ने लिखा था :—"फरवरी १९१७ में जर्मनी छोड़ते हुए एक अमेरिकन कौन्सुलने स्विजरलैण्डमें कहा था कि जर्मन मुर्दोंसे ग्लिसरिन चुआ रहे हैं।"

उसी दिनके पत्रमें यह भी निकला :—"बर्लिनके 'लोक-लेञ्जियर'के संवाददाता हर कार्ल रोजनेरने विगत मङ्गलवारको पहली बार इस बातको स्वीकार करते हुए लिखा कि जर्मन लोग मृत सैनिकोंकी लाशोंका कैसा उपयोग करते हैं। एवरिङ्ग कोर्टसे जाते हुए एक बदबू-सी उठती है, मानो कुछ जल रहा है। यह वह स्थान है, जहां 'शव सदुपयोग समिति' (Corpse Exploitation Establishment) है। लाशोंसे जो चर्बी निकाली जाती है, उसका लुब्रिकेटिङ्ग तेल बनाया जाता है और फिर शरीरको मशीनके भीतर डालकर पशुओंके खानेके लिए उसका बुरादा निकाल लिया जाता है और जो बच रहता है, वह खादके काम आता है। कोई भी वस्तु बरबाद नहीं होने दी जाती।"

इस कहानीका प्रचार चाहे जैसे हुआ हो—लेकिन उस समय यह 'कहानी' मानी भी नहीं जाती थी—पर इसका उपयोग प्रचारार्थ किये जानेके सुझाव तत्काल दिये जाने लगे थे। सी० ई० बनकरीने १८ अप्रैलके 'टाइम्स' में ऐसा ही सुझाव पेश करते हुए तटस्थ देशों तथा पूर्वमें इसके प्रचारकी बात कही थी, जिससे बौद्ध, हिन्दू तथा मुसलमान इस घृणा-पूर्ण कार्यसे स्तम्भित रह जायें। वैदेशिक विभाग, इण्डिया आफिस तथा औपनिवेशिक विभागसे इसके ब्राडकास्ट करनेका भी सुझाव पेश किया गया था और उसके दूसरे दिन १९ अप्रैलके 'टाइम्स'में इस प्रकारके और भी पत्र प्रकाशित हुए थे।

२४ अप्रैल १९१७ के 'टाइम्स'में ई० एच० पार्करका एक

पत्र प्रकाशित हुआ था, जिसमें ३ मार्च १९१७ के 'नार्थ चाइना हेरल्ड'में प्रकाशित पेकिङ्गमें जर्मन मिनिस्टर तथा चीनी प्रीमियरकी एक बातचीतका भी प्रसङ्ग था, जिसमें कहा गया था : "......लेकिन बातचीतका सिलसिला भङ्ग हो गया, जब एडमिरल वान हिङ्केने लाशोंसे चर्बी निकालनेकी वैज्ञानिक प्रक्रियाकी बात बतायी। उसने बड़े तपाकके साथ यह बात बतायी कि जर्मन लाशोंसे चर्बी निकाल रहे हैं, और ऐसे रासायनिक पदार्थ तैयार कर रहे हैं, जिनकी बारूद बनानेमें आवश्यकता होती है। चीनी प्रीमियर यह सुनकर दङ्ग रह गये थे।"

लाशोंकी इस जर्मन फैक्टरीकी बात केवल पत्रों तक ही सीमित नहीं रह गयी थी। पार्लमेण्टमें भी इसको लेकर कितनी ही बार प्रश्नोत्तर हुए थे। ३० अप्रैल १९१७ को हाउस आव कामन्समें जो प्रश्नोत्तर हुए थे, उनसे इस बात-पर काफी प्रकाश पड़ता है।

मि० रोनाल्ड मैकनिलने प्राइम मिनिस्टरसे पूछा कि क्या वे मिश्र, भारत तथा साधारणतः समस्त पूर्वमें इस बातको यथासम्भव अधिकसे अधिक प्रचारित कर सकेंगे कि जर्मन लोग अपने मरे हुए सैनिकों तथा दुश्मनोंके सैनिकोंकी लाशें सुअरोंके खानेके लिए एकत्र कर लेते हैं।

मि० डिलनने एक्सचेकरके चान्सलरसे पूछा कि क्या उनका ध्यान इस देशमें विस्तृत रूपसे प्रचारित इस समाचार-की ओर गया है कि जर्मनोंने लाशोंसे चर्बी निकालनेके लिए बहुत-सी फैक्टरियां खोल रखी हैं? क्या लार्ड कर्जन जैसे कितने ही प्रमुख व्यक्ति भी इसका समर्थन करते हैं और क्या सरकारके पास इसमें विश्वास करनेके लिए काफी प्रमाण हैं? अगर उसे इस बातका पता हो, तो क्या सरकार हाउसको इस सम्बन्धकी सारी बातें बतायेगी?

लार्ड राबर्ट सेसिल : उक्त दोनों प्रश्नोंके उत्तरमें सर-कारको इससे अधिक कोई जानकारी नहीं कि जर्मन अख-बारोंमें ये बातें प्रकाशित हुई थीं और उन्हींसे इस देशके अखबारोंने उद्धृत की हैं। जर्मनीमें सैनिक अधिकारियोंके दूसरे कार्योंको देखते हुए उनके इस कार्यपर अविश्वास किया जाय, ऐसी कोई बात नहीं दिखाई पड़ती। आम तौरपर प्रचलित होनेके कारण इस बातको सम्राट्की सरकारने प्रकाशित होने दिया है।

मि० मैकनील : जर्मनी द्वारा ही प्राप्त इस कहानीका पूर्वमें प्रचार करनेके लिए क्या सरकार कोई व्यवस्था करेगी?

लार्ड सेसिल : इस सम्बन्धमें जो बातें की जा चुकी हैं, उनसे अधिक कुछ करना इस समय वाञ्छनीय नहीं है।

मि० डिलन : तो इसका अर्थ क्या हम यह समझें कि इस बातकी सच्चाईका सरकारके पास कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है और इसकी सत्यतामें उसका विश्वास नहीं है। और इसकी छानबीन करनेके लिए उसने कोई कोशिश नहीं की। क्या सरकारका ध्यान इस बातकी ओर आकर्षित हुआ है कि ऐसे वक्तव्योंका मिनिस्टरोंकी स्वीकृतिसे—अगर ये बातें असत्य हैं, जैसी कि वास्तवमें ये हैं—प्रकाशित होने देना न केवल घृणित, बल्कि इस देशके लिए अत्यन्त हानिकारक भी है।

लार्ड सेसिल : सदस्य महोदयको सम्भवतः उन बातोंकी जानकारी है, जिनकी हमें नहीं है। मैं तो सिर्फ उन्हीं वक्तव्यों-के आधारपर कुछ कह सकता हूं जो अखबारोंसे प्राप्त हुए हैं। मैं हाउसको पहले ही बता चुका हूं कि इससे अधिक हमें कुछ भी नहीं मालूम। हमारे पास तो 'लोक लेञ्जियर'से उद्धृत 'टाइम्स'का वक्तव्य है। ये बातें पत्रोंमें प्रकाशित हो चुकी हैं और यही हमारी समूची जानकारी है।

मि० डिलन : क्या लार्ड महोदयका ध्यान 'फ्रैङ्क फर्तुर जीतुङ्ग' तथा दूसरे प्रमुख जर्मन पत्रोंमें प्रकाशित उन तथ्यों-की ओर आकर्षित हुआ है, जिनमें इस बातकी सारी विधियां बतायी गयी हैं कि किस प्रकार उक्त फैक्टरियोंमें लाशोंको उबालकर, चर्बी निकाली जाती है। यह कहानी सच्ची है या झूठी, इसका पता लगानेके लिए क्या सरकार कोई काररवाई करना चाहती है।

लार्ड राबर्ट सेसिल : इस सरकारका न तो यह काम है और न इसके लिए यह सम्भव ही है कि वह इस बातका पता लगाये कि जर्मनीमें क्या हो रहा है। सदस्य महोदयने अपना सुझाव पेश करनेमें किसी औचित्यसे काम नहीं लिया है। जहां तक 'फ्रैङ्क फर्तुर जीतुङ्ग'के लेखका सवाल है, मैंने उसे देखा नहीं है। पर मैंने इस सम्बन्धमें जर्मन सरकारके वक्तव्यको देखा है। लेकिन जर्मन सरकारके किसी भी वक्तव्यको मैं कोई महत्त्व नहीं देता।

मि० डिलन : मैं पूछना चाहता हूं कि सम्राट्के मिनि-

स्टर, युद्ध-मन्त्रिमण्डलके एक सदस्यको, ऐसी अफवाहोंपर स्वीकृति देनेके पहले क्या इसकी जानकारी हासिल करनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिए थी।

लार्ड सेसिल : मेरा ख्याल है कि मन्त्रिमण्डलका कोई भी सदस्य इस देशके एक प्रमुख पत्रमें प्रकाशित वक्तव्यपर अपनी रायजनी कर सकता है। उसने सिर्फ इतना ही किया था और उसने उसके लिए अपने ऊपर जिम्मेदारी नहीं ली थी। (एक सदस्य : ली थी।) मुझे पता चला है कि उसने जिम्मेदारी नहीं ली थी। उसने कहा था—"जैसा कि पत्रोंमें कहा गया है।"

मि० ओथवेट : मैं जान सकता हूं कि लार्ड महोदयको इस बातकी जानकारी है कि इस प्रकारके समाचारोंके प्रचार (प्रतिवाद) से ब्रिटिश जनतामें चिन्ता बढ़ गयी है, जिसके बच्चे युद्ध-क्षेत्रमें मारे गये हैं—और जिसका ख्याल है कि उनकी लाशोंका भी यही उपयोग किया गया होगा। क्या इसी आधारपर सरकारका यह कर्तव्य नहीं हो जाता कि वह इसके सम्बन्धमें पता लगाये।"

१७ मई १९१७ के 'टाइम्स'ने राइख्स्टागमें दिये गये हर जिमरमैनके एक वक्तव्यका उल्लेख किया था, जिसमें कहा गया था कि यह अफवाह झूठी है और सर्वप्रथम फ्रान्सीसी अखबारोंने यह अफवाह उड़ायी।

हाउस आव कामन्समें २३ मई १९१७ को एक वक्तव्य मि० आस्टिन चेम्बरलेनने दिया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि भारतको इसकी रिपोर्ट दी जायगी।

लन्दनके सुप्रसिद्ध हास्यरसके पत्र 'पञ्च'में इस फैक्टरीका एक व्यंग्य चित्र प्रकाशित हुआ था, जिसके नीचे लिखा था :

कैसरने (१९१७ में) रंगरूटोंमें भाषण करते हुए कहा था, "और इस बातको मत भूलो कि तुम्हारा कैसर जीवित या मृत, किसी भी अवस्थामें तुम्हारा उपयोग कर लेगा।"

कुछ ही दिनोंके भीतर सारे संसारमें यह अफवाह फैल गयी। लन्दन 'टाइम्स' ने २२ अक्टूबर १९२५ को अपने न्यूयार्कके संवाददाताकी रिपोर्ट यों प्रकाशित की थी :—

ब्रिगेडियर-जेनरल चार्टरिसकी नेशनल आर्ट्स क्लबकी एक दुर्भाग्यपूर्ण वक्तृतासे यहां बड़ी ही दुःखद भावना उत्पन्न हो गयी।

इस सम्बन्धमें कुछ राजनीतिज्ञोंने यों राय प्रकट की थी:—

लायड जार्ज : मेरी नजरसे यह कहानी समय-समयपर विभिन्न रूपोंमें गुजरी। मैंने न तो उस समय इसमें विश्वास किया था और न अभी करता हूं। ब्रिटिश प्रचार विभागकी ओरसे इसका प्रचार कभी नहीं किया गया, बल्कि उसने तो उसे ठुकरा दिया।

मि० मास्टर मैन : हमने कभी भी इस कहानीको सच नहीं माना और न अधिकारियोंने ही इसे विश्वसनीय समझा। हमने इसे अपने प्रचारका साधन नहीं बनाया। हमने तो सिर्फ उन बातोंका प्रचार किया, जिनका पता हमें लग सका था।

मि० मैकफर्सन : मैं उस समय युद्ध-विभागके आफिसमें था, जब यह कहानी सुनाई पड़ी। और जब यह कहानी सुनाई पड़ी, तब हमें इसकी सत्यतामें कभी सन्देह नहीं हुआ। हमें मालूम नहीं कि किसने इसे ईजाद किया, पर हमें इसकी सत्यतामें तनिक भी सन्देह होता, तो किसी भी प्रकार इसका उपयोग हमने न किया होता।

वर्षों यह कहानी प्रचलित रही और इस बातका पता लगानेकी कोशिश नहीं की गयी कि इसकी वास्तविकता क्या है। हाउस आव कामन्समें २४ नवम्बर १९२५ को एक वक्तव्य देते हुए सर एल० वर्थिंगटन इवान्सने कहा था : प्रश्न यह नहीं है कि कहानी सच है या झूठ। मेरा सम्बन्ध सिर्फ इस बातसे है कि हमें जो जानकारी थी, उसीपर युद्ध विभागने काम किया। अगर इस बातके प्रमाण नहीं मिलते, तो निश्चय ही इसका रूप बदल जाता; पर मैंने तत्कालीन अधिकारियों द्वारा प्राप्त जानकारियोंके आधारपर ही काम किया था।

इस प्रकार कितने ही वर्षों तक युद्ध-कालकी यह कहानी अपनी विचित्रता लिये फैलती रही। और मजा यह है कि वर्षों लोगोंमें इसके प्रति दिलचस्पी कम नहीं हुई। अन्तमें २ दिसम्बर १९२५ को हाउस आव कामन्समें आस्टिन चेम्बरलेनने मि० आर्थर हैण्डर्सनके एक प्रश्नके उत्तरमें कहा था:—

युद्ध-सचिवने सप्ताह-भर पहले हाउस आव कामन्समें १९१७ में प्रचलित लाशोंकी फैक्टरीके सम्बन्धमें आपके सामने वक्तव्य दिया था। उन्होंने बताया था कि किस प्रकार १९१७ में सम्राट्की सरकारको इसके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त हुई थी। जर्मन सरकारकी ओरसे जर्मन रीख-

के चान्सलरने अब मुझे इस बातकी घोषणा करनेका अधिकार दिया है कि उक्त कहानी बिल्कुल बे-बुनियाद है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सम्राट्की सरकारकी ओरसे मैं इस वक्तव्यको स्वीकार करता हूं और आशा करता हूं कि इस झूठी रिपोर्टका सदाके लिए अन्त हो जायगा।

और तब इसका वास्तवमें अन्त हो गया।

लाशोंकी इस फैक्टरीके सम्बन्धमें और भी कितने ही वक्तव्य कितने ही देशोंमें दिये गये थे। आम जनताके अतिरिक्त सरकारें भी इसमें कुछ कम दिलचस्पी नहीं लेती थीं।

विगत युद्धमें इस प्रकारकी कितनी ही अफवाहें उड़ती थीं, जो दिलचस्पीके लिहाजसे एकदम अनोखी होती थीं। लेकिन केवल उसी युद्धकी नहीं, प्रत्येक युद्धकालकी यह एक साधारण बात है।

यूरोपीय राजनीतिमें स्वीडन

श्री रामाधीन अग्निहोत्री, बी० ए०, बी० टी०

यूरोपके सभी छोटे-बड़े राष्ट्र एक ओर निरस्त्रीकरणकी चर्चा चलाते रहे, और दूसरी ओर लुक-छिपकर अथवा लोकमतको ठुकराकर स्पष्ट रूपसे अपनी पाशविक शक्ति बढ़ानेमें अहर्निशि संलग्न रहे। ज्यों ही जर्मनीने मित्र-राष्ट्रोंकी अन्तिम चेतावनीका तिरस्कार कर पोलैण्डपर तूफानी हमला कर दिया, त्यों ही सारे यूरोपमें सनसनी फैल गयी, निर्बल राष्ट्रोंपर भारी आतङ्क छा गया और उनके सिरपर भयका भूत सवार हो गया। राष्ट्रीय सेनाओंको युद्धके पैमानेपर लानेके लिए यूरोपके सभी देशोंने सैन्य-सञ्चालन तथा आम भर्तीके अहकाम जारी कर दिये। समयके साथ युद्धका क्षेत्र विस्तृत होता गया और साथ ही लड़ाईमें भयङ्करता भी आती गयी। ग्रीष्म-कालके प्रारम्भ होते ही गत ९ मार्चको जर्मनीने एक साथ ही अचानक डेनमार्क तथा सुदूरस्थ नार्वेपर आक्रमण कर दिया। यह आक्रमण दोनों देशोंके लिए घातक सिद्ध हुआ। डेनमार्कमें स्थित जर्मन सेनायें दक्षिणी स्वीडनसे अब केवल १० मील चौड़े बाल्टिक सागरके मुखद्वार 'सुण्ड' से ही पृथक् रह गयीं। इस प्रकार स्वीडन अपने जीवन-पड़ोसी नार्वेके पराजित हो जानेपर तीन दिशाओंसे जर्मनीकी तूफानी सेनाओंसे घिर गया। ऐसी विकट परिस्थितिमें स्वीडनका युद्धसे परे रहना कठिन-सा प्रतीत होने लगा। परन्तु सौभाग्यसे उसकी भौगोलिक स्थिति, समयोचित सतर्कता तथा दो सबल पड़ोसी राष्ट्रों—नात्सी जर्मनी और साम्यवादी रूस—को समान रूपसे प्रसन्न रखनेकी कुशल नीतिने उसे कुछ कालके लिए हर हिटलरकी शनि-दृष्टिसे अछूता बचा दिया। परिणामतः युद्धकी काली घटायें उत्तरसे हटकर पश्चिममें हालैण्ड, बेलजियम और लक्सेम्बर्गपर जाकर छायीं और उन्हें एक सप्ताहके अन्दर ही काल-कवलित कर लिया।

स्वीडनको अपनी रक्षाकी तैयारी करनेका यह स्वर्ण अवसर मिल गया। इस समय जब दो बड़े मूजियोंमें खटपट हो रही है, तब वह अपने बचनेकी झटपट फिक्र कर रहा है। स्वीडन इस समय अपने रक्षाके साधनोंमें उसी प्रकार लगा हुआ है, जिस प्रकार 'म्यूनिक सन्धि' के पश्चात् ब्रिटेन तन, मन और धनसे लगा था। वायुयान-विध्वंसक तोपों और अपनी राजधानी स्टाकहोमके हवाई हमलोंको रोकने तथा नगरको रिक्त कर देनेकी प्राकृतिक शक्तिमें स्वीडन सानुपातिक दृष्टिसे सन् १९३९ के पूर्व ब्रिटेनसे कहीं अधिक अच्छी दशामें है।

स्थल सेना—स्वीडनमें फौजोंकी भर्ती देशव्यापी सेवाके सिद्धान्तपर निर्भर है। परन्तु सैनिक शिक्षा देनेके लिए कुछ स्वेच्छानुसार भर्ती हुए पदाधिकारियोंकी एक स्थायी सेना देशमें रहती है। अनिवार्य 'सैनिक सेवा' का कार्य बीस वर्षकी आयुसे आरम्भ होता है, और इस सेवाका अन्त पैंतालीस वर्षकी उम्रके बाद होता है। प्रथम पन्द्रह वर्ष तक पुरुष सक्रिय सेनाके सैनिक रहते हैं, तत्पश्चात् अन्तिम ग्यारह वर्ष तक 'लैण्ड स्टार्म' नामक रक्षित सेनाके सदस्य रहते हैं; पर आवश्यकता पड़नेपर सैन्य-सेवा-हित किसी भी क्षण बुलाये जा सकते हैं। पैदल सेनाके साधारण सिपाहियोंको प्रारम्भमें १७५ दिनकी शिक्षा दी जाती है; पर विशेषज्ञोंको २२५ दिनकी शिक्षा देनी पड़ती है। घुड़सवारों, तोप-

न्दाजों तथा इञ्जीनियरोंका शिक्षण-काल २०० दिनका होता है। पैदल सेनाको दो बार पच्चीस-पच्चीस दिनोंके लिए पुनः सैनिक शिक्षा देनेके लिए बुलाया जाता है; परन्तु घुड़सवारों, इञ्जीनियरों और तोपन्दाजोंको दो बार तीस-तीस दिनकी शिक्षा प्राप्त करनेको बुलाया जाता है।

देशकी सम्पूर्ण पैदल सेना चार भागोंमें विभक्त है। सारे देशमें २२ पैदल सेनायें, ४ रिसाले और ७ तोपखाने हैं। सन् १९३७ के उपलब्ध आंकड़ोंके अनुसार स्वेडिश सेनामें १७४० सेनानी और ७२८२ स्वयं भर्ती हुए छोटे अफसर थे। उसी वर्ष देशमें अनिवार्य रूपसे सैनिक शिक्षा पानेवालोंकी संख्या ४०,००० थी। सम्प्रति सक्रिय सेनाके रजिस्टरोंमें मुन्दर्ज सिपाहियोंकी कुल तादाद ९,७९,००० है; और 'रक्षित सेना' में सर्व प्रकारके सैनिकोंकी संख्या २,८०,००० है। १९३७-३८ के राष्ट्रीय बजटमें स्वीडनकी शान्तिप्रिय सरकारने १७१,०००,००० क्रोनर (क्रोनर=१ शि० १॥ पें०) की व्यवस्था स्थल, जल तथा वायु-सेनाओंके लिए की थी।

ऋतुकालके अनुसार स्वीडनकी शान्ति-कालकी सेनामें ३४,००० से ६०,००० के बीच सैनिक घटा-बढ़ा करते हैं। इनमेंसे केवल १९,००० सैनिक देशकी स्थायी सेनामें रहते हैं। इस प्रकार वार्षिक सेनामें समयानुकूल १९,००० से लेकर ४१,००० सैनिकोंका अन्तर पड़ा करता है। इन आंकड़ोंको दृष्टिगत रखते हुए कोई भी पाठक स्वेडिश स्थायी सेनाको ६० लाखसे अधिक जनसंख्याके देशके लिए, जहां केवल 'सैनिक सेवा' ही अनिवार्य नहीं, वरन् जहां सदियोंसे सैनिक परिपाटी चली आती है, नगण्य कह सकता है। परन्तु नात्सी आक्रमणके भयसे भयभीत होकर इस समय सारे देशमें सैन्य-सञ्चालन कर दिया गया है, जिसके फलस्वरूप देशकी वर्तमान स्थायी सेना शान्ति-कालकी सेनासे लगभग चौगुनी बढ़ा दी गयी है, अर्थात् १,९०,००० हो गयी है। सैनिक पदाधिकारियोंकी गणनाके अनुसार स्वीडन किसी भी भावी युद्धमें ४,००००० से अधिक सिपाहियोंको दो-चार दिनोंके अन्दर रणस्थलमें उपस्थित कर सकता है।

नौ-सेना—स्वीडनकी नौ-सेनामें, जो इस समय जर्मनी द्वारा बाल्टिक सागर तथा निकटवर्ती खाड़ियोंमें प्रचुर मात्रामें सुरङ्गें बिछा देनेके कारण बहुत कुछ अंशोंमें निरर्थक-सी हो गयी है, ११ तट-रक्षक लड़ाकू जलपोत, १४ विध्वंसक, ३१ टारपीडो जहाज, लगभग २० पनडुब्बियां, सुरङ्गें बिछानेवाला एक जहाज तथा अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित १ क्रूजर है। इनके अतिरिक्त अनेकों बोझा ढोनेवाले व्यापारिक जहाज और नाविकोंको शिक्षा देनेवाले छोटे-छोटे जहाज हैं। नवीन योजना (१९३८—४३) के अनुसार ३ क्रूजर, ४ टारपीडो जहाज, ३ जलमग्न नौकायें, १ डिपो जहाज और १२ मोटर टारपीडो जहाजोंका निर्माण द्रुतगतिसे हो रहा है। सन् १९३७ के अन्तमें स्थायी नौ-सेनामें ३१० बड़े अफसर ६०० वारण्ट अफसर तथा ३२०० अन्य छोटे पदाधिकारी तथा नाविक थे। इन श्रेणियोंके अतिरिक्त देशमें अनिवार्य रूपसे भर्ती किये हुए नाविक तथा रक्षित नौ-सेनाके सदस्य हैं।

तोपखाना—शाही समुद्रतटीय तोपखानेका प्रबन्ध नौ-सेनाके सुपुर्द है, और उसकी देख-रेख एक जनरलकी अध्यक्षतामें होती है। देशकी रक्षाके लिए समुद्रतटपर अनेकों सुदृढ़ दुर्ग बने हुए हैं, जिनमेंसे विशेष उल्लेखनीय 'वैक्सहोम" 'कार्ल्सक्रोना' तथा 'हेन्सो' हैं, जो क्रमशः देशकी सुरम्य राजधानी स्टाकहोम, पश्चिमतटीय सुविख्यात बन्दरगाह गोथेनबर्ग और 'हार्नोसैण्ड' की रक्षा करते हैं। तटीय तोपखानोंके रक्षार्थ गाटलैण्ड द्वीपमें एक फौज तैयार की जा रही है। नवीन सङ्गठनके अनुसार तोपखानोंके स्थायी कर्मचारियोंमें अनिवार्य तथा रक्षित सिपाहियोंके अतिरिक्त १४० अफसर, २२० वारण्ट अफसर और ९४० छोटे पदाधिकारी तथा सिपाही हैं।

हवाई सेना—स्वीडनको युद्धके समय शत्रुके हवाई आक्रमणोंसे अपने नागरिकोंकी रक्षाके लिए चिन्तित होनेका कोई कारण नहीं, क्योंकि देशकी जनसंख्याका केवल ३९ प्रतिशत नगरों तथा कस्बोंमें बसता है। आवश्यकता पड़नेपर उसे केवल ३,०००,०० व्यक्ति देशके एकमात्र विशाल नगर स्टाकहोमको खाली करनेमें निकालने पड़ेंगे। परन्तु यह संख्या देशकी सम्पूर्ण जनसंख्याका केवल ९ प्रतिशत है। साथ ही उसके पास अगणित उत्तम वायुयान-नाशक तोपें हैं।

स्वीडनकी हवाई सेनाका अध्यक्ष एक उच्च पदाधिकारी होता है, जिसकी सहायताके हेतु एक हवाई अमला रहता है। वायुयान-सञ्चालनकी क्रिया तथा वायु-युद्धकी विधि

सिखानेके लिए देशमें एक हवाई स्कूल भी है। सन् १९३७ के अन्तमें बायुयानों तथा सर्वकोटिके उड़ाकुओंकी संख्या क्रमशः २६० और १००० थी। इस समय देशकी हवाई सेना सात छोटे-छोटे दस्तोंमें बटी हुई है। इनमेंसे ४ दस्ते बम बरसानेवाले, २ पैदल या नौसेनाके सहयोगमें शत्रुकी खोज करनेवाले और केवल १ दस्ता आकाशमें युद्ध करनेवाला है। तीनों प्रकारके वायुयानोंकी यह भारी विषमता विशेषतया हवाई हमलोंका सामना करनेके समय हृदयमें खटकनेकी चीज है।

सैनिक परिपाटी—किसी भी देशकी रक्षाका प्रश्न सैनिकोंकी संख्यासे ही हल नहीं हो जाता। इसके लिए सैनिक परिपाटीकी भी आवश्यकता है। आजसे लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व वीर स्वीडोंने अपनी खोयी हुई स्वतन्त्रताको प्राप्त करनेके लिए डैनिशोंके विरुद्ध तलवार उठायी थी। तबसे शान्तिमय जीवन व्यतीत करते रहनेके कारण उनका राष्ट्रीय लक्ष्य युद्ध द्वारा राज्य-विस्तार नहीं, वरन् स्वदेशकी रक्षा करना है। सन् १९३६ तक वह अनन्त शान्ति और संसारव्यापी निश्शस्त्रीकरणकी आशा करता रहा, जिसके कारण उसकी सरकार उत्तरोत्तर साम्यवादी प्रजातन्त्रात्मक और शान्तिप्रिय होती गयी। जो धन और युद्धकी सामग्री रंगरूटोंकी पूरी वार्षिक सेनाके सिखानेमें खर्च करनी पड़ती, उसे स्वीडन अपनी शान्तिपूर्ण नीतिके कारण बचाता रहा। लगभग दस वर्ष तक उसने अपनी सम्पूर्ण सेनाको फौजी झण्डेके नीचे न बुलाया। जैसा कि ऊपर कह आये हैं, स्वीडनके पैदल सिपाहियों तथा विशेषज्ञोंका प्रारम्भिक सैनिक शिक्षाकाल क्रमशः १७९ और २२९ दिनोंसे अधिक नहीं है। इन आंकड़ोंकी तुलना जब हम फिनलैण्डके सानुपातिक १२ तथा १८ महीनोंसे करते हैं, तब वहांकी निर्बलता स्वयंसिद्ध हो जाती है। जितना अधिक कोई स्कैण्डिनेवियामें ठहरता है, उतना ही अधिक वह महसूस करता है कि यूरोपके उत्तरी देशोंमें केवल फिनलैण्डने ही अपनी रक्षाकी समस्यापर गम्भीरतापूर्वक ध्यान दिया है।

स्वीडनके प्रमुख सैनिक विशेषज्ञ कर्नल ब्राटने देशकी रक्षा-प्रणालीकी इसी मौलिक निर्बलतापर अपनी तर्जनी रखी है। इस अल्पकालीन सैन्य-सेवासे उत्पन्न निर्बलताको दूर करनेके लिए 'स्थायी सेना' के पदाधिकारी सदैव प्रयत्नशील रहे हैं, और आज भी यथाशक्ति कोशिश कर रहे हैं। इसके साथ ही वहांके सैनिकोंके लड़ाई करनेके हथियार पुराने ढङ्गके हैं, जिनका सुधार शीघ्रतासे किया जा सकता है। यहांकी सेना मोटरों तथा मशीनगनोंसे सुसज्जित आधुनिक कालकी सेनाओंके विरुद्ध युद्ध करनेमें सर्वथा अयोग्य है। अब मौजूदा प्रश्न यह है कि स्वीडन अपनी सेनाओंकी उन्नति किस प्रकार कर रहा है। देशकी राजधानीके आसपास नित्यप्रति सैनिक प्रदर्शन ही इसका एकमात्र उत्तर है। वह शान्तिपूर्वक अपनी रक्षित सेनाओंको बुला रहा है और उन्हें सैनिक शिक्षा दी जा रही है, जो उन्हें युद्धके प्रथम आघातको सहन करनेके लिए योग्य बनायेगी। अन्य लोग बन्दूक चलानेकी शिक्षा ग्रहण करनेके लिए हर प्रकारसे बाध्य किये जा रहे हैं। अन्तमें विभिन्न रायफल क्लबोंका राष्ट्रीय सेनामें एकीकरण हो जाना, जिसमें देशका प्रत्येक स्वस्थ नवयुवक सक्रिय भाग लेगा, अवश्यम्भावी है।

स्वीडनका स्वदेश-रक्षाके लिए नैसर्गिक झुकाव अन्य तटस्थ राष्ट्रोंके लिए अनुकरणीय है। वह सदैव रूससे डरता रहा है, अतएव उसने अपने पूर्वीय तटपर ही रक्षाके तमाम साधन जुटाये हैं। रूसी राहुसे ही बचनेके लिए उसने अपनी उत्तरी सीमापर 'बोडेन'के किलेका निर्माण किया है, जो आर्कटिकसे आनेवाले मार्गकी भलीभांति रक्षा करता है। यहीं समुद्र-तटसे चालीस मील दूर इसने देशान्तरमुखी प्रमुख रेलें बनायी हैं, ताकि आवश्यकता पड़नेपर वह शीघ्रातिशीघ्र अपनी सेनायें तथा युद्धकी सामग्री वहां भेज सके। धुर दक्षिणमें माल्मोका प्रसिद्ध बन्दर है, जो रेल द्वारा गोथेनबर्गसे जुड़ा हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि देशमें यातायातके मुख्य साधन हैं, जनतामें पर्याप्त सतर्कता है, चारों तरफ काफी फौजी तैयारी है, और सबसे अधिक उनमें स्वदेश-रक्षाके लिए स्वाभाविक झुकाव है।

उपर्युक्त साधन और गुण ही यदि एकमात्र वर्तमानकालीन युद्धमें विजय पानेके उपकरण होते, तो बहुतेरे देशोंको इतनी शीघ्रतासे जर्मनीके सम्मुख नतमस्तक होनेकी नौबत न आती। मिथ्याभिमानसे अपनेको सबल समझनेवाले राष्ट्र अपने निर्बल शत्रुको चारों ओरसे घेरकर आर्थिक युद्धमें पराजित करना ही अपनी रणचातुरी समझते हैं। इसलिए यह परमावश्यक है कि आक्रामक तथा आक्रान्त

दोनों ही अपनी युद्धोपयोगी सामग्रीके लिए स्वावलम्बित हों।

स्वीडनमें खाद्य तथा पेय पदार्थोंकी उपज पर्याप्त होती है। अतः उसे अपनी आवश्यकताओंके लिए किसी दूसरेका मुंह ताकना नहीं पड़ता। प्रति वर्ष उसे केवल २० सहस्र टन गेहूं विदेशोंसे मोल लेना पड़ता है। दक्षिणी स्वीडनकी कृषि-उपयोगी समतल भूमि आवश्यकता पड़नेपर नात्सियोंके लिए अनाजकी उत्तम मण्डी सिद्ध होगी। मध्य स्वीडनमें पशु-पालनका कार्य बहुतायतसे होता है। सन् १९३६ में देशमें ६,२०,००० घोड़े, २९,६२,००० मवेशी, ४,९०,००० भेड़ें और उनके बच्चे तथा १३,००००० सुअर थे। अतएव यह पूर्णतया स्पष्ट है कि लड़ाईके कालमें स्वीडनको मांस, मक्खन तथा पनीर आदिके लिए दूसरेका मुखापेक्षी नहीं होना पड़ेगा। स्टाकहोम और गोथेनबर्गके अक्षांशोंमें देशके विशाल कोणधारी बनोंका आरम्भ होता है। राजधानीके उत्तरमें डैनमोराका प्रसिद्ध खनिज प्रदेश है, जहां लोहा आदि युद्धोपयोगी खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। यहीं ग्रङ्गेसबरीकी प्रसिद्ध लोहेकी खानें हैं, जहां प्रति वर्ष लगभग १० लाख टन कच्चा लोहा निकाला जाता है और आक्सेलोसुण्डके बन्दरसे विदेशोंको भेजा जाता है। इसी प्रदेशमें बोफर्सकी सुविख्यात फैक्टरियां हैं, जहां देशकी आवश्यकताके लिए हथियार तथा गोली, बारूद आदि युद्धकी सामग्री तैयार की जाती है।

इस धनाढ्य प्रदेशके उत्तरमें केवल शीतकटिबन्धीय बन हैं। यहीं स्वीडनकी उन्नतिशील लैपलैण्डकी लोहेकी खानें हैं, जहांकी वार्षिक उपज १ करोड़ १० लाख टन है और जो जर्मनीके भावी आकर्षणका प्रमुख कारण कही जाती हैं। मध्य स्वीडनपर प्रभुत्व स्थापित कर लेनेका अर्थ वहांके तमाम कारखानों तथा वहांकी विशाल युद्ध-सामग्रीको छीन लेना है। यह प्रदेश प्रति वर्ष १ करोड़ ९० लाख पौण्डकी लागतका माल तैयार कर निर्यातके रूपमें बाहर भेजता है। निश्चय ही यह अत्यन्त लाभदायक व्यापारोपयोगी वस्तुओंके उत्पादनका केन्द्र है, जिनसे जर्मनी बाल्कन देशोंसे लाभपूर्ण व्यापार कर सकता है। मध्य और उत्तरी स्वीडन प्रति वर्ष ४० करोड़की कीमतका कागज, लकड़ीका गूदा तथा लकड़ी बाहर भेजता है। यह रकम देशके कुल निर्यातका लगभग ४९ प्रतिशत है, और नात्सियोंके आकर्षणका द्वितीय कारण हो सकती है। इस बृहत् सूचीकी पूर्तिके लिए यह बताना आवश्यक है कि स्वेडिश सरकारके पास विदेशी सरकारोंकी २० करोड़ पौण्डकी लम्बी रकम जमा है। विजित नार्वेका भी थोड़ा-सा सोना इसके पास जमा है।

स्वीडनका एकमात्र आयात, जिसकी उसे वास्तवमें चाह रहती है, ६० लाख टन कोयला है। इसे वह प्रति वर्ष इंगलैण्ड से खरीदता है। देशमें कोयलेकी कमी अभीसे महसूस होने लगी है। वर्तमान युद्धके कारण इंगलैण्डसे कोयला खरीदनेमें बड़ी कठिनाई पैदा हो गयी है। ऐसी परिस्थितिमें कच्चे लोहेके बदले जर्मनी स्वीडनको कोयला भेजता रहेगा। इस प्रकार स्वीडन और जर्मनी दोनों ही अपनी-अपनी आवश्यकताओंके लिए एक-दूसरेपर आश्रित हैं। स्वीडनसे लोहेका वार्षिक निर्यात अधिकसे अधिक १ करोड़ २० लाख टन है। इसमेंसे केवल जर्मनीने सन् १९३८ और १९३९ में प्रति वर्ष ८०-९० लाख टन लोहा खरीदा। इस समय जर्मनी और भी अधिक अपनी लोहेकी आवश्यकताके लिए स्वीडनपर निर्भर है; क्योंकि मित्र-राष्ट्रोंके घेरेके कारण फ्रान्स, स्पेन, उत्तरी अफ्रीका आदिसे उसके पास लोहा आना असम्भव हो गया है। ऐसी दशामें स्वीडनकी लोहेकी खानोंमें जर्मनीका स्वार्थ बढ़ गया है, और अब जर्मनीके हाथों लोहेका बेचना अथवा न बेचना केवल स्वीडनकी स्वेच्छापर ही नहीं निर्भर है। उसे अपने देशको हर हिटलरके क्रोधानलसे बचानेके लिए इच्छा रहते या न रहते हुए भी लोहेका भेजना जारी रखना पड़ेगा। इस समय उसकी स्वतन्त्रता उसके दो प्रबल पड़ोसी जर्मनी तथा रूसकी दयादृष्टिपर ही निर्भर है। दोनोंसे ही मैत्री रखनेमें उसका कल्याण है। एक राष्ट्रके भी मित्र होनेपर, दूसरा राष्ट्र इसपर चढ़ाई करनेकी मूर्खता न करेगा; क्योंकि ऐसी दशामें दो नये मित्रोंमें ही भीषण युद्ध छिड़ सकता है, और समस्त यूरोपको आपसमें बांटनेके उनके मन्सूबोंपर पानी फिर सकता है।



भाग्य या भूख ?

श्री मोहनसिंह सेंगर

देवकी बाबू हाथ धोकर खाना खानेके लिए आसनपर आ बैठे थे और उनकी पत्नी थाली परोस रही थी। सहसा थाली परोसना रोककर सुभद्राने कहा—"वह देखो। सुना तुमने ? आवाज आयी न ?"

"फिर वही आवाज ! आवाज ! काहेकी आवाज ?" झुंझलानेके स्वरमें देवकी बाबूने कहा—"जब देखो तब वही आवाजकी रट लगी रहती है। मैं पूछता हूं, तुम्हें हो क्या गया है, सुभद्रा ? जब देखो तब वही लोगोंका राम-रसरा। कभी यह आवाज आयी, कभी वह आवाज आयी। मैं पूछता हूं, तुम्हें इससे मतलब ?"

"मतलब कैसे नहीं ?" तेवर चढ़ाकर थाली परोसते हुए सुभद्राने कहा—"अरे पड़ोसी न सही, पर इन्सानके नाते तो तुम्हारा कुछ फर्ज है ? मैं इतने दिनोंसे तुमसे कह रही हूं कि यह पड़ोसी रोज अपनी औरतको मारता-पीटता है। मुझसे यह नहीं देखा-सहा जाता। या तो जाकर उसे समझाओ-बुझाओ या फिर यह मकान ही छोड़ दो।"

"धीरे बोलो, धीरे,"—दबी हुई आवाजमें देवकी बाबूने कहा—"कहीं वह सुन न ले, वर्ना लेनेके देने पड़ जायंगे। खामखा बैठे-बिठाये झगड़ा करवाओगी।"

"झगड़ेकी इसमें बात ही क्या है ?" थाली परोसकर पतिके आगे सरकाते हुए सुभद्राने कहा।

"झगड़ेकी बात तो है ही। तुम कैसे कह सकती हो कि वह अपनी औरतको मारता है ? सुनी-सुनाई बातोंपर विश्वास......"

"सुनी-सुनाई बातोंपर विश्वास मैं नहीं करती;"—बीचमें ही बात काटकर सुभद्राने कहा—"पर अपने ही कानोंपर अविश्वास कैसे किया जाय ? यह जो रोज धमाधम् होती है, क्या सब हवाका या मेरे कानोंका ही फितूर है ?"

"न हो, पर धमाधम् उस पड़ोसीकी औरतके पिटनेकी ही होती है, यह कैसे मान लिया जाय ? अक्सर ऊपर छतपर खेलते हुए बच्चे जब इधर-उधर दौड़ते हैं, तब भी ऐसा शब्द होता है।"

"लेकिन रातको १०-१०, १२-१२ बजे किसके बच्चे छतपर खेलते और दौड़ते हैं ? तुमने तो जैसे मुझे बिलकुल पागल ही समझ रखा है।"

"हर्गिज नहीं। ऐसा समझता, तो तुम्हारे साथ शादी ही क्यों करता ?" मुस्कराते हुए देवकी बाबूने कहा—"लेकिन सुभद्रा, तुम यह नहीं सोचतीं कि इस जमानेमें भला कौन शरीफ आदमी अपनी औरतपर हाथ उठाता है ?"

"जी हां, क्यों नहीं ? इस अभागे देशमें अब भी ऐसे नर-पिशाचोंकी कमी नहीं है, जो अपनी औरतोंपर हाथ उठानेमें सङ्कोच करें।"

"देखो, हमने तो तुमको कभी फूलकी छड़ी तकसे नहीं छुआ।"

"छूते कैसे ? मैं कोई मोम या मिट्टीकी तो बनी हूं नहीं।"

"अच्छा-अच्छा, फिर, कहो भी, क्या बात है ?"

"अभी भी क्या कुछ कहनेको बाकी रह गया है ? इतने दिनोंसे तो तुमसे कह रही हूं; पर तुम्हारे कानपर जैसे जूं तक नहीं रेंगती। उल्टा बहस कर मुझे ही झुठलानेकी कोशिश करते हो। जाने तुम भी कैसे आदमी हो ! तुम्हारा दिल है या पत्थर ?"

"तो फिर तुम्हीं बताओ, क्या करूं ? बैठे-बिठाये उससे झगड़ा मोल लूं ? अगर मान भी लें कि वह अपनी औरतको पीटता है, तो हम क्या करें ? जब वह उसकी औरत है, तो वह चाहे उसे पीटे, चाहे प्यार करे, चाहे और कुछ। किसी तीसरे आदमीको उनके मामलेमें दखल देनेका क्या अधिकार ?"

"जब आप जैसे समझदार आदमी ही ऐसा कहते हैं, तो कुपढ़ और मूर्खोंके बारेमें क्या कहा जाय ? आखिर पुरुष जो हुए ! पतिके अबाध और असीम अधिकारोंकी दुहाई देनेमें हर पुरुषका स्वार्थ जो है। लेकिन क्या औरतोंके जी-जान नहीं है ? उनको कुछ भी अधिकार नहीं ? पुरुष उनका मनमाना उपयोग या दुरुपयोग करें और वे चूं भी

नहीं करें ? क्या उन्हें केवल जुल्म और ज्यादती सहने-भरका 'अधिकार' है ?''

देवकी बाबूने सुभद्राके चेहरेके बदलते हुए रङ्गसे भावी सङ्कटकी आशङ्काको भांप लिया। अभी वे उसके पीहर जानेके अल्टिमेटमका सामना करनेको तैयार न थे। हंसकर बात टालनेके विचारसे बोले—"लेकिन अधिकारोंकी बहस खानेके बाद भी तो हो सकती है।''

"वह तो किसी भी वक्त हो सकती है;''—तेवर चढ़ाकर सुभद्राने कहा—"लेकिन बहस करता कौन है ? तुम सब पुरुष-पुरुष एक हो। सारे अधिकारोंका ठेका तो तुम्हींने ले रखा है न ? औरत पिटती है, तो पिटे; जलील और अपमानित होती है तो हो, तुम्हें इससे क्या ?''

इस बार कुछ भी कहनेका साहस देवकी बाबूको नहीं हुआ। कुड़ा करके वे चुपचाप बैठकमें चले गये।

(२)

देवकी बाबूके सामनेवाला मकान मनहूस है या उसमें भूतोंका आवास है या कोई खास खराबी है, ऐसा तो कभी सुना नहीं गया। फिर भी न मालूम क्यों, उसमें आकर रहनेवाला कोई भी किरायेदार ६-७ महीनोंसे ज्यादा उसमें न टिका। इसका ठीक-ठीक कारण तो आज भी एक पहेली बना हुआ है। मुहल्ले-भरमें यह बात एक खासे अच्छे तज़किरेका आधार बन गयी है और इस मकानमें आनेवाले हर आदमीकी सूरत-शक्ल और गति-विधिको मुहल्लेवाले असाधारण कुतूहलसे देखते हैं।

इस बार एक बङ्गाली बाबूके जानेके बाद कौन किरायेदार आकर उस मकानमें रहा है, यह किसीको नहीं मालूम। सुना है कि नया किरायेदार एक नौजवान बाबू है और साथमें एक औरत भी है, जो शायद उसकी बीवी है। मकानके इतिहासने आस-पासके लोगोंको उनके प्रति जितना उत्सुक बनाया था, उससे कहीं अधिक उत्सुकता पैदा हुई उनके रहन-सहनके रहस्यपूर्ण ढङ्गसे। वे कब घरमें होते थे और कब बाहर, यह बहुत कम लोगोंको ही मालूम होता था। घरका दरवाजा या तो भीतरसे बन्द होता था या उसमें बाहरसे ताला लगा होता था। ऊपरके कमरेकी सब खिड़कियां और दरवाजे हर वक्त बन्द रहते थे। रोशनदानसे दिखाई पड़नेवाले प्रकाशसे मालूम होता था कि कमरेमें रोशनी हो रही है। कभी-कभी तो बाहर ताला पड़ा होता था और भीतर रोशनी हो रही होती थी। इससे पैदा हुई उत्सुकताको लोग यह कहकर शान्त कर लिया करते थे कि शायद बाहर जाते समय वे लोग बिजली बत्ती गुल करना भूल गये होंगे। कभी-कभी ऐसा भी होता था कि बाहर ताला पड़ा होने और ऊपरके कमरेमें रोशनी होनेके साथ ही साथ वहांसे कभी-कभी किसीके रोने या जोर-जोरसे बोलने-बतलानेकी भी आवाज आ जाती थी। बिजलीकी बत्ती भी न मालूम कितनी बार जलती और बुझती रहती थी।

इस सम्बन्धमें सबसे अधिक उत्सुक थे देवकी बाबू और उनकी पत्नी सुभद्रा। अपने इन पड़ोसियोंकी चर्चा उनकी दिनचर्याका एक अङ्ग-सा बन गयी थी। इसे लेकर रोज कमसे कम एक बार हंसी-मजाक या बहस जरूर होती थी। ताले और रोशनीकी असम्बद्धता इस रहस्यको जैसे और भी गहन बनाती जा रही थी। कई बार सुभद्राने देवकी बाबूसे इसके सम्बन्धमें ठीक-ठीक जानने और कुछ करनेको कहा, पर उनकी समझमें ही नहीं आया कि क्या करें ? अगर कुछ समझमें आ भी जाता, तब भी बदनामीके डरसे कुछ करनेका साहस वे अपनेमें नहीं पा रहे थे। कांटेके तारमें उलझे हुए कुरतेको निकालनेके लिए धोतीको हिलगा लेना वे बुद्धिमत्ता नहीं समझ रहे थे। इसीलिए चुप थे। पर सुभद्राके तकाजे कम नहीं हो रहे थे।

उस दिन जब देवकी बाबू दफ्तरसे जरा देरसे लौटे, तो देखा कि सुभद्रा छतपर खड़ी हुई ईंटोंकी जालीमेंसे सामनेवाले मकानकी ओर बड़ी तन्मयतासे देख रही है। वहां कोई भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। खिड़कियां और दरवाजे सब यथापूर्व बन्द थे। रोशनदानसे प्रकाश बाहर झांक रहा था।

हाथसे इशारा करके सुभद्राने देवकी बाबूको अपने पास बुलाया और चुपकेसे उनके कानके पास मुंह करके कहा—"यहां चुपचाप खड़े होकर जरा सुनो, क्या हो रहा है ?''

दोनों सांस रोककर चुपचाप खड़े हो गये। किवाड़ बन्द होनेसे सामनेवाले मकानमें दिखाई तो कुछ भी नहीं दिया, पर किसीके लात-घूंसोंसे पिटने और सिसकनेकी आवाज जरूर आ रही थी। कभी-कभी किसीके कुछ बोलनेका भी आभास होता था; पर कौन क्या कह रहा है, यह साफ-

साफ सुनाई नहीं पड़ रहा था। देवकी बाबूको जैसे अपने कानोंपर विश्वास नहीं हो रहा था। सांस रोके हुए वे सब कुछ बड़े ध्यानसे सुन रहे थे। बीच-बीचमें उन्हें ऐसी आहट भी मालूम होती थी, जैसे किसीका सिर फर्श या दीवारसे टकरा गया हो। अधिक देर तक वे वहां खड़े न रह सके। चुपचाप कमरेमें जाकर कपड़े बदलने लगे।

कुछ क्षण बाद सुभद्राने कमरेमें प्रवेश किया और बत्ती जलायी। जब दोनोंने एक-दूसरेके चेहरेकी ओर देखा, तो उन्हें ऐसा लगा कि आज उनके भाव एक-दूसरेसे बिलकुल भिन्न नहीं हैं। सुभद्राकी आंखोंका पानी साफ झलक रहा था। वह गुमसुम बिजलीके स्विचके पास पड़े हुए सोफेपर पड़ रही। देवकी बाबूके मुंहसे जैसे आज कोई शब्द ही न निकल रहा हो। साहस कर, भर्रायी हुई आवाजमें, वे बोले—"सुभद्रा, जरा इसकी औरतसे कुछ हाल-हवाल तो मालूम करो कि बात क्या है, शायद फिर कुछ किया जा सके।"

"लेकिन कैसे करूं? मैंने तो बहुतेरी कोशिश की, मगर उसकी तो कभी सूरत ही दिखाई नहीं देती। मकानका दरवाजा तो हमेशा बन्द ही रहता है। फिर भी कुछ तो होना ही चाहिए।"

"देखो, कुछ सोचेंगे।" कहकर देवकी बाबू नीचे जानेको जीनेकी तरफ चल दिये।

(३)

सुभद्रा किसी कार्यवश ज्यों ही दरवाजेपर आयी, उसकी नजर सामनेवाले दरवाजेके पास खड़ी हुई एक मंझले कदकी दुबली-पतली स्त्रीपर पड़ी, जो अपने मैले-कुचैले वस्त्रोंको एक साफ सफेद चादरसे ढंके खड़ी थी। सुभद्राके पांवोंकी आहट पाकर उसने आंखें ऊपर कीं और दूसरे ही क्षण फिर नीचे कर लीं। सुभद्राने इस मौकेको हाथसे न खोनेका निश्चय कर एक तीर छोड़ा—

"बड़े भाग्य कि आज तुम्हारे दर्शन हो गये बहन!"

पर सामने खड़ी हुई स्त्रीने कुछ नहीं कहा। न आंखें ही ऊपर कीं।

सुभद्राने दूसरा तीर छोड़ा—"आज कहां जा रही हो, बहन?"

इस बार उसने अपनी शर्मीली आंखें ऊपर उठायीं और बड़े कातर स्वरमें केवल एक शब्द कहा—"अस्पताल।"

"क्यों, क्या कुछ तबियत खराब है?" सुभद्राने पूछा।

उत्तरमें कुछ कहनेके बजाय उसने आंखें फिर नीची करके स्वीकृतिमें सिर हिला दिया।

"तो क्या अकेली ही जाओगी?" सुभद्राने फिर प्रश्न किया।

"नहीं,"—उसी तरह आंखें नीची किये हुए कातर स्वरमें वह बोली—"वे साथ जा रहे हैं। तांगा लाने अड्डे तक गये हैं।"

"तुम कभी इधर क्यों नहीं आतीं?" सुभद्राने पूछा।

सुभद्राका वाक्य पूरा होते न होते उसका पति तांगा लेकर आ पहुंचा। उसकी बातका उत्तर वह नहीं दे सकी। सुभद्रा किवाड़की ओटमें हो गयी। दोनोंको लेकर तांगा चल पड़ा—अस्पताल या न मालूम और कहीं!

तांगेके लौटनेकी आशासे सुभद्रा घरका थोड़ा-बहुत काम करके बार-बार दरवाजेके पास आती और कुछ न पाकर फिर लौट जाती। ज्यों ही किसी घोड़ेकी टापोंसे तांगेके आनेकी आहट-सी होती, वह द्वारपर आ जाती और इच्छित व्यक्तियोंको तांगेमें न पाकर फिर लौट जाती। इस तरह उसके कोई डेढ़ घण्टे तक परेड करनेके बाद आखिर वही तांगा लौटा। पर इस बार दोनों साथ ही उतरे और भीतर जाकर दरवाजा बन्द कर लिया, इससे सुभद्राको अपनी पड़ोसिनसे बातचीत करनेका अवसर नहीं मिल सका। इसपर वह कुछ खिन्न और निराश-सी हुई।

इसके बाद तो सुभद्राने प्रायः दरवाजेके पास ही बने रहनेका जैसे नियम-सा बना लिया। जब भी कोई तांगा आता-जाता, वह अपने पड़ोसियोंसे भेंट होनेकी आशासे दरवाजे तक आती और फिर निराश होकर लौट जाती। इस तरह कई दिन, हफ्ते और महीने बीत गये; पर सुभद्राको फिर कभी अपने पड़ोसियोंके दर्शन नहीं हुए। कभी-कभी तो सुभद्राको यह भी आशङ्का होने लगती कि कहीं वे मकान छोड़कर चले न गये हों—क्योंकि मार-पीटकी 'धमाधम्' अब बहुत कम हो गयी थी; लेकिन ऊपरके कमरेके बन्द दरवाजे और रोशनदानमेंसे छनकर आनेवाली रोशनी इस आशङ्काको निर्मूल और निराधार बना देती थी।

(४)

घरके सहनमें आराम-कुर्सीपर बैठी हुई सुभद्रा कुछ बुन रही थी। नीचे रखी हुई डलियामें कुछ सलाइयां और ऊनका

एक गोला पड़ा था। उसकी दोनों आंखें दोनों हाथोंकी गतिपर स्थिर थीं। सहसा पीछेसे किसीके धीरेसे खांसनेकी आवाज आयी। सुभद्राने मुड़कर देखा। उसे अपनी पड़ोसिनको पहचाननेमें देर न लगी। "अरे, तुम आज इधर कैसे भूल पड़ीं?" कहते हुए वह हकबकाकर उठ खड़ी हुई। आगन्तुकाको हाथ पकड़कर कुर्सीकी ओर खींचते हुए वह बोली—"बैठो बहन, तुम्हारे तो फिर कभो दर्शन भी न हुए। मुझे तो तुमसे बहुत-सी बातें करनी थीं।"

आंखें नीची किये हुए कातर स्वरमें वह बोली—"बैठने या बातें करनेका यह समय नहीं है। मैं आपको एक कष्ट देने आयी हूं।"

"कष्ट कैसा, जो काम हो निःसङ्कोच कहो, बहन। आखिर मैं हूं किसलिए?"

"उनकी तबियत रातसे बहुत खराब है। कै-पर-कै कर रहे हैं। आप किसी दवा या डाक्टरका प्रबन्ध कर सकेंगी?"

"हां, हां, क्यों नहीं। मैं अभी नौकरको भेजकर डाक्टरको बुलवाये देती हूं। तुम उनके पास चलो।"

अपनी पड़ोसिनको बिदा कर सुभद्राने नौकरके द्वारा डाक्टरको बुलवा भेजा। डाक्टरने आकर मरीजको देखा और बतलाया कि चिन्ताकी कोई बात नहीं, शराब अधिक पीनेका यह परिणाम है। उसने नुस्खा लिख दिया। नौकर शीघ्र ही दवा लेकर वहां दे आया।

कोई दो-ढाई घण्टे बीते होंगे कि सुभद्राने देखा, उसकी पड़ोसिन फिर आ रही है। इस बार उसकी आंखें नीचेकी ओर नहीं झुकी हैं। उसके नीले अधरोंपर फीकी-सी एक मुस्कराहट है। बड़ी विनम्रतासे हाथ जोड़कर वह बोली—"आपने आज उनकी जान बचा दी, वर्ना मैं अकेली असहाय अबला भला क्या करती? आपका यह एहसान मैं कभी भी न भूलूंगी।"

"छोड़ो भी इन बातोंको। अब तो बैठोगी न? उनकी तबियत अब कैसी है?"

"अब तो अच्छी है।"—जमीनपर बिछी शीतलपाटीपर बैठते हुए उसने कहा—"उन्हें दवासे आराम पहुंचा मालूम होता है, इसीसे नींद आ गयी है। अब मैं थोड़ी देर यहां बैठ सकती हूं।"

"लेकिन बहन, तुम अपना नाम तो बताओ। मैं क्या कहकर तुम्हें सम्बोधित करूं?"

"इसकी कोई खास जरूरत न हो, तो जाने ही दीजिये। आपके मुंहसे 'बहन' शब्द सुनकर मेरी छाती प्रसन्नता और गर्वसे फूल जाती है। कितना प्यारा लगता है यह शब्द!"—कुछ रुककर—"पर नहीं, आप-जैसी सतवन्ती और आदर्श गृहिणीकी बहन मुझ-जैसी पतिता कैसे हो सकती है? आप मुझे आजसे प्रेमा कह सकती हैं।"

सुभद्राने देखा—आगन्तुकाकी आंखें भर आयी हैं। उसके नीले अधरकी मुस्कराहट अदृश्य होकर जैसे अपनी नम्र कंपकंपी-भर छोड़ गयी है। उसके होठों, कपोलों, ललाट और कानोंके पास चोटोंके लाल-नीले निशान उसके गोरे शरीर पर दर्पणके मैलकी तरह सुस्पष्ट दिखाई पड़ रहे हैं। उसका प्रफुल्ल यौवन जैसे असमय ही जराजीर्ण होनेकी होड़ कर रहा हो। शरीरके घावों और मैले वस्त्रोंके रूपमें जैसे उसका विवर्ण सौन्दर्य अपनी मूक कथा स्वतः कह रहा था। आंखोंमें उमड़े हुए आंसुओंका उपसंहार तो जैसे सुभद्राके लिए दुःसह हो चला था। कुर्सीसे उठकर प्रेमाके पास बैठते हुए वह बोली—"यह तुम्हारा क्या हाल है, बहन?"

आंचलके छोरसे अपनी आंखें पोंछकर कृत्रिम मुस्कराहटसे प्रेमाने कहा—"कोई खास बात तो नहीं। इधर कई दिनोंसे स्वास्थ्य ठीक नहीं रह रहा है।"

"लेकिन तुम्हारी देहके ये निशान भी क्या अस्वस्थताकी ही वजहसे हैं?"

प्रेमा चुप रही। इसका कोई जवाब वह नहीं दे सकी।

"तुम तो बहन ऐसी सख्त निगरानीमें रहती हो कि शायद जेलके कैदी या पिंजरेके पञ्छी भी न रहते होंगे।"

इस बार भी प्रेमा कुछ न बोली।

"यह जो तुम्हारे साथ रहते हैं, यह कौन हैं?"

"यह तो मेरे……" सहसा प्रेमा रुक गयी। फिर कुछ क्लान्त-से स्वरमें बोली—"मेरे पति ही हैं।"

"लेकिन पति इतना क्रूर कैसे हो सकता है, बहन। यह रोज-रोजकी मार-पीट मुझसे तो सुनी नहीं जाती—न मालूम तुम कैसे सहती होगी?"

प्रेमा कुछ कहना चाहती थी, पर उसके मुंहसे जैसे कोई शब्द ही न निकल रहा हो। नीची आंखें किये वह चुपचाप

बैठी रही। सुभद्राने चिबुक पकड़कर जब उसका मुंह ऊपर उठाया, तो देखा कि उसकी आंखोंसे बड़े-बड़े मोतियोंके-से आंसू ढुलक रहे हैं। नीले पड़े हुए उसके होंठ भय और अन्तसके तूफानके कारण कांप रहे थे। सुभद्रा उसकी इस मुख-मुद्राको अधिक देर न देख सकी। उसकी आंखें बरस पड़ीं और प्रेमाको अपनी छातीसे लगाकर वह बोली—"मेरी भोली बच्ची, तू मुझे ही धोखा देनेकी कोशिश क्यों कर रही है? सारी बातें मुझसे साफ-साफ क्यों नहीं कहती? शायद मैं तेरी कुछ सहायता कर सकूं।"

"आपको भला धोखा देनेकी धृष्टता मैं कैसे कर सकती हूं? सच बात तो यह है कि मुझे कुछ कहनेका साहस ही नहीं होता। अपनी इस दुरवस्थाका कारण मैं स्वयं और मेरी नासमझी है।"

"फिर भी, कुछ पता तो लगे कि बात क्या है?"

"मैं लाहौरके एक प्रतिष्ठित घरानेकी लड़की हूं। यह जो मेरे साथ रह रहा है, मेरा पति नहीं है। इसका नाम राम......नहीं प्रकाश है। यह हमारे घरके पास ही रहता था। अपनी नासमझी और इसके प्रलोभनोंसे मैं इसके चक्करमें फंस गयी। हम दोनों एक-दूसरेको 'प्रेम' करने लगे। इस रहस्यका भण्डाफोड़ हो जानेके डरसे यह मुझे एक दिन चुपकेसे दिल्ली भगा लाया। यहां लाकर इसने मेरे साथ जो कुछ किया, वह बयानके बाहर है।"

यह कहकर प्रेमा फफक-फफककर रोने लगी। कुछ संभलकर उसने फिर कहना शुरू किया—"घरसे भागते समय मैं जो कुछ जेवर और रुपये-पैसे लायी थी, वह थोड़े ही दिनोंमें खत्म हो गये। अब हाथ तङ्ग हो चला। प्रकाशने इधर-उधर नौकरीकी बहुत तलाश की, पर अच्छी योग्यता न होनेसे इसमें कोई सफलता नहीं मिली। और कोई उपाय न देख इस नर-पिशाचने मुझे वेश्या-वृत्ति स्वीकार करनेपर मजबूर किया। पहले तो मैं इसके लिए राजी नहीं हुई, पर जब इसने और इसके मित्रोंने लगातार कई दिनों तक मुझे बुरी तरह मारा-पीटा और मेरी मिट्टी खराब की, तो मेरे सामने इस पाप-कर्मके लिए तैयार होनेके सिवा और कोई रास्ता ही नहीं रहा। पिछले दो-तीन महीनोंमें इसने मेरी जो दुर्दशा की है, वह मैं आपको जबानसे वर्णन कर नहीं बतला सकती। जरा यह देखिये—"कहकर प्रेमाने अपना जम्पर ऊपर उठाया। उसके सीनेके घावों और मारके निशानोंको देख सुभद्राने कांपकर अपनी आंखें बन्द कर लीं।

दोनों थोड़ी देर तक चुपचाप बैठी-बैठी आंसू बहाती रहीं। फिर प्रेमाने अंचलके छोरसे आंसू पोंछे और उठते हुए कहा—"अब जाती हूं। शायद उन्हें दवा देनी होगी। मौका मिला, तो फिर आऊंगी। मुझे इस नरकसे निकालनेकी आप कोई कोशिश करें—वर्ना सड़ तो रही ही हूं।"

"लेकिन बहन, तुमने अपने घरका पता तो बताया ही नहीं। बताओ तो तुम्हारे माता-पिताको खबर ही कर दें। शायद वे ही तुम्हारा उद्धार कर सकें।"

"नहीं, उनका नाम-पता मैं जान-बूझकर बताना नहीं चाहती। मेरा भाग आना क्या उनके लिए कम बदनामी-का बायस होगा? मैं या आप जानती हैं कि यह मेरी गलती और बेवकूफी है, पर दुनिया तो उन्हींको दोष देगी? फिर मेरा उस घरमें वापस जाना समाजके कितने कर्णधारों-को सह्य और सुखकर होगा? वह तो बल्कि जलेपर नमक छिड़कना होगा।"

"अच्छी बात है। मैं ही कुछ करूंगी।"

एक गहरा निःश्वास छोड़कर प्रेमा चली गयी।

(९)

प्रेमाके हाथसे चायका प्याला लेते हुए प्रकाशने कहा—"जाओ, जरा देखो दरवाजा कौन खटखटा रहा है?"

प्रेमाने जाकर ज्यों ही दरवाजा खोला, देवकी बाबू खड़े दिखाई दिये। दरवाजा आधा खुला छोड़ एक लम्बा-सा घूंघट खींच वह पीछे हट गयी। देवकी बाबूने आंखें नीची किये हुए कहा—"प्रकाशकी तबियत अब कैसी है? मैं आ सकता हूं?"

"जी हां, खुशीसे तशरीफ ले आइये।" भीतर चारपाई-पर बैठे-बैठे ही प्रकाशने कहा।

प्रेमा दूसरे कमरेमें चली गयी। देवकी बाबूने भीतर पहुंचकर प्रकाशकी चारपाईके पैतानेके कोनेपर बैठते हुए कहा—"कहिये, अब आपकी तबियत कैसी है? जो कुछ हल्का हुआ?"

"जी हां, अब तो काफी फर्क नजर आता है।"—बना-वटी मुस्कराहटके साथ प्रकाशने कहा।

"आजकल मौसम बदल रहा है, इसलिए खाने-पीनेका एहतियात न रखनेसे वैसे ही हालत खराब होनेका अन्देशा रहता है।"

"जी हां, जी हां, बिलकुल। आप तो खुश हैं ?"

"ईश्वरकी कृपा है।"

"और सुनाइये, क्या हाल-चाल है ?"

"कोई खास तो नहीं। आज दफ्तरकी छुट्टी है, इसलिए सोचा, आपको चलकर देख ही आऊं। घरसे कई बार कहा भी, मगर आजकल कामका इतना दबाव है कि दम मारने तककी फुर्सत नहीं। इसीलिए आ नहीं सका। आप तो इतने सङ्कोचशील हैं कि इतने दिनोंसे यहां रहनेके बावजूद कभी सलाम-बन्दगी भी नहीं।"

"जी हां, बेशक। मुझे भी इसके लिए सख्त अफसोस है। लेकिन इधर मुझे बाहर इतना ज्यादा रहना पड़ा कि रातको १०-११ बजेसे पहले कभी घर लौटा ही नहीं। उस वक्त भला किसी शरीफ आदमीको क्या तकलीफ दी जाय।"

"तकलीफकी इसमें क्या बात है ? वह घर और यह घर कोई दो थोड़े ही हैं। आप मुझे अपने बड़े भाईकी जगह समझें। जब जिस चीजकी जरूरत हो, आप बिला किसी झिझक या तकल्लुफके कह सकते हैं।"

"क्यों नहीं। भला इसमें तकल्लुफकी क्या बात ?"

दस-दस रुपयेके दो नोट जेबसे निकालकर प्रकाशको देते हुए देवकी बाबूने कहा—"यह आपके खर्चके लिए हैं। मेरा अनुमान है कि आपका हाथ इन दिनों काफी तङ्ग होगा। फिर जब जरूरत पड़े, आप मुझसे कह सकते हैं।"

नोटोंकी ओर देखकर देवकी बाबूसे प्रकाशने कहा—"लेकिन जब मुझे जरूरत होगी, आपसे मांग लूंगा। इस वक्त तो कतई जरूरत नहीं है।"

"नहीं, यह सब कुछ नहीं। आपको इन्हें रखना ही होगा। अब मैं चलता हूं। फिर आऊंगा।" यह कहकर देवकी बाबू उठे और चुपचाप जीनेकी ओर चल दिये।

दो-एक क्षण चुपचाप प्रकाश सामने पड़े हुए नोटोंकी ओर देखता रहा। इतनेमें ही भय-विह्वल हरिणीकी तरह इधर-उधर देखती हुई प्रेमा वहां आ पहुंची। नोटोंको देखकर आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नतासे बोली—"ओहो, आज तो रुपये बरसे हैं, रुपये ?"

"हां बरसे हैं। ले, ले जाकर अपने सिरपर मार ले।"—दोनों नोटोंको प्रेमाके सामने फेंकते हुए प्रकाशने कहा—"मालूम होता है, तूने इनके यहां जाकर सारा रोना रोया है। वर्ना इन्हें कैसे मालूम कि हमारे पास खाने तकको पैसे नहीं? और न मालूम किस मकसदसे देवकी बाबू यह रुपये दे गये हैं?"

"तुम हर वक्त दूसरोंपर शक ही किया करते हो। मैंने तो किसीसे कुछ भी नहीं कहा। वे क्या नहीं जानते कि तुम इतने दिनोंसे बीमार हो। काम-धन्धा भी कोई खास नहीं। इसीसे दे गये कुछ रुपये। और उनका मकसद क्या हो सकता है ?"

कुछ देर चुप बैठे रहनेके बाद प्रकाशने कहा—"मालूम होता है कि तू मुझे यहां भी बे-फिक्रीसे न रहने देगी ?"

बिना कुछ जवाब दिये प्रेमा जिस दरवाजेसे आयी थी, उसीमें होकर दूसरे कमरेमें चली गयी।

(६)

देवकी बाबू जब दफ्तरसे लौटे, तो सुभद्राने उन्हें बताया कि उनके पड़ोसी न मालूम कब मकान छोड़कर चले गये? पिछले ३ महीनोंका किराया भी, सुनते हैं, उन्होंने नहीं दिया। मकान-मालिकके मुंशीसे यह जानकर उन्हें और भी आश्चर्य हुआ कि युवकका नाम प्रकाश नहीं, रामचन्द्र था या उन्हें उसने ऐसा ही बतलाया था। उन्हें और सुभद्राको इस बातका अफसोस तो हुआ कि वे प्रेमाके उद्धारके लिए कुछ भी नहीं कर सके, पर अब तो हो ही क्या सकता था? उसका अपना भाग्य!

प्रेमा और प्रकाशका उन्हें फिर कोई पता नहीं लगा। कुछ दिन बाद उनकी निगाह वहींके एक दैनिक पत्रके स्थानीय-समाचारोंके कालममें छपी निम्न खबरपर पड़ी—

"दुराचारके खानगी-अड्डोंका पुलिस इन दिनों बड़ी सरगर्मीसे पता लगा रही है। कल रातको उसने रामचन्द्र नामके एक 'शरीफ आदमी' के घरपर छापा मारा और उसे अपनी औरतसे पेशा करवाने और उसकी कमाईपर रहनेके जुर्ममें गिरफ्तार किया!"

इस तरहकी खबरें इस कालममें वे पहले भी कई बार पढ़ चुके हैं, पर न मालूम क्यों आज इसे पढ़कर वे अपने आंसू न रोक सके!

अछूतोद्धारके कुछ प्रचण्ड उपाय

श्री सन्तराम, बी० ए०

इस कलिकालमें जो अकेला है, असङ्गठित है, जो अपने भाइयोंके साथ मिलकर नहीं रहता, वही दुर्बल है। उसका पराभव, वरन् विनाश अवश्यम्भावी है। मुट्ठीभर लोग भी जब दृढ़तापूर्वक सङ्गठित हो जाते हैं, तो बहुसंख्यक जातिका मुंह मोड़ देते हैं। सङ्गठित असत्य भी असङ्गठित सत्यको दबा लेता है। भारतमें हिन्दुओंकी दुर्दशाका मूल कारण इसी सिद्धान्तकी अवहेलना है। हिन्दुओंने अपनी दुर्दशापर कभी इस दृष्टिसे विचार ही नहीं किया। वे चिरकालसे अपनेको बेगाना बनाते आ रहे हैं, अपने बन्धु-बान्धवोंको धक्के देकर और ठोकरें मारकर हिन्दू-समाजसे बाहर ढकेलते आ रहे हैं; बेगानोंको, वरन् बाहर निकले हुए अपने ही बन्धुओंको अपनानेका कभी इन्हें विचार तक नहीं आता। इनका सारा तत्त्वज्ञान ही फूट, जुदाई और पृथक्त्व-का तत्त्वज्ञान है। इनको प्रत्येक वस्तुमें भिन्नता दिखलाने-में ही प्रसन्नता होती है। ये राष्ट्रको चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—और अगणित उपवर्णोंमें, स्त्रीको तीन प्रकारों—पद्मिनी, चित्रिणी और शङ्खिनी—में, पुरुषको तीन भेदों—शश, वृष और अश्व—में बांटकर ही आनन्दित होते हैं। ये एक ईश्वरमें तो सब भूतोंको देख सकते हैं; परन्तु सब भूतोंमें एक ईश्वरको देखना इन्होंने नहीं सीखा। इसीलिए ये सामूहिक जीवनकी महत्ताको स्वीकार न करके सारा बल व्यक्तिगत पवित्रतापर ही देते हैं। इस व्यक्तिगत पवि-त्रताका भाव इनमें यहां तक बढ़ गया है कि आज यह कहावत है—तेरह चूल्हे और नौ कन्नौजिये।

सहस्रों वर्षोंसे अछूत और भील लोग भारतमें रहते आ रहे हैं। परन्तु सवर्ण हिन्दुओंको कभी इनको राष्ट्रका अङ्ग बनानेका विचार तक नहीं आया। जिस प्रकार वे रामायण-कालमें हिन्दू-समाजसे बिलकुल अलग थे, आज भी उसी प्रकार पृथक् पड़े हैं। हिन्दुओंने इस सुप्त भयका कभी अनु-भव ही नहीं किया। उन्हें यह विचार तक नहीं आया कि इस प्रकार अलग पड़े रहनेसे ये लोग भी एक दिन हमारे राष्ट्रके लिए भारी भयका रूप धारण कर सकते हैं। अब जब वे ईसाई और मुसलमान होने लगे हैं, तो हिन्दुओंके कानपर भी जूं-सी रेंगने लगी है। परन्तु इस भयकी गम्भीरताका उन्होंने अभी तक भी यथोचित रूपसे अनुभव नहीं किया। इसीलिए वे अस्पृश्यता-निवारणके नामपर जो उपाय कर रहे हैं वे केवल कामचलाऊ हैं; उनसे अस्पृश्यताकी जड़ नहीं कट सकती; हां, कुछ कालके लिए अछूतोंका हाहाकार चाहे बेशक बन्द हो जाय तो हो जाय। परन्तु हिन्दू राष्ट्रके शाश्वत कल्याणके लिए यह आवश्यक है कि अस्पृश्यताका महारोग सदाके लिए दूर हो जाय। अछूत लोग ईसाई या मुसलमान बनकर सवर्ण हिन्दुओंके लिए कहीं भारी सङ्कटका कारण न हो जायं, यदि इसी भावसे उनके आंसुओंको पोंछनेका दिखलावा किया जायगा, तो इसका फल सिवा पश्चात्तापके और कुछ न होगा। कारण यह कि काठकी हण्डिया बहुत दिन नहीं चढ़ सकती।

अछूतपन स्वयं कोई रोग नहीं, यह वर्ण-भेद-रूपी महा-व्याधिका एक बाह्य लक्षण है। वर्ण-भेद क्रमिक अछूतपन (graded untouchability) है। इसमें ब्राह्मणसे लेकर भङ्गी तक सभी हिन्दू एक-दूसरेके लिए अछूत हैं, अन्तर केवल उनकी अस्पृश्यताके अंशका है। उनमेंसे कोई कम अछूत है और कोई अधिक। इसलिए जब तक जाति-भेदका समूल नाश नहीं होता, तब तक अस्पृश्यताका मूलोच्छेदन सम्भव नहीं। हरिजन-सेवक-सङ्घके प्रधान मन्त्री श्रीयुत अमृतलाल व० ठक्करने भी इस सत्यको सङ्घकी सन् १९३२-३३ की रिपोर्टमें इन शब्दोंमें स्वीकार किया है—"परन्तु भारतमें आजकल जिस प्रकारकी अस्पृश्यता प्रचलित है, यद्यपि उसका सम्बन्ध मैले काम करने और मैला भोजन खानेके साथ है, तो भी ये बातें उसका आधार नहीं। संस्थाके रूपमें, यह वर्ण-भेदका युक्ति-सङ्गत परिणाम है। यह वर्ण-भेद हिन्दू सामाजिक सङ्गठनका एक अङ्ग प्रतीत होता है। इसलिए अस्पृश्यताका मूलोच्छेद केवल वर्तमान वर्ण-भेदको मिटा देने या कमसे कम उसका रूपान्तर कर देनेसे ही हो सकता है। हमारा सङ्घ इनमेंसे कोई भी काम नहीं

कर रहा है, क्योंकि हमारा उद्देश्य अधिक परिमित है।"

अस्पृश्यता-निवारणकी दो रीतियां हो सकती हैं। कुछ सवर्ण हिन्दू यह माने बैठे हैं कि अस्पृश्यताका सम्बन्ध अछूत व्यक्तिके अपने व्यक्तिगत आचरणके साथ है। यदि वह दरिद्र एवं दुखी है, तो इसका कारण यह है कि वह अवश्य पापी एवं दुराचारी है। इस सिद्धान्तको मानकर इस विचारके समाज-सुधारक सारा बल अछूतोंमें वैयक्तिक सद्गुण उत्पन्न करनेपर देते हैं। इसलिए ये लोग अछूतोंमें मादक द्रव्योंके त्याग, व्यायाम, स्वच्छता, सहयोग, पुस्तकालयों और स्कूलोंका प्रचार करते हैं। उनकी धारणा है कि इससे अछूत अधिक अच्छे और पुण्यात्मा बन जायंगे।

परन्तु इस प्रश्नके समाधानकी एक और रीति भी है। उसका आधार यह सिद्धान्त है कि मनुष्यका दुःखी या सुखी, दुरात्मा या पुण्यात्मा होना उस परिस्थिति और अवस्थापर निर्भर करता है, जिसमें रहनेके लिए वह विवश होता है। यदि कोई व्यक्ति दुःखी अथवा दरिद्र है, तो इसका कारण यह है कि उसकी परिस्थिति अनुकूल नहीं। निस्सन्देह इन दोनों रीतियोंमेंसे पिछली रीति अधिक ठीक है। पहली रीतिसे हो सकता है कि इने-गिने कुछ दलित उस वर्गके समतलसे ऊपर उठ जायं, जिसमें उनका जन्म हुआ है। परन्तु यह रीति सारी अछूत जातिको साधारण रूपसे ऊपर नहीं उठा सकती। दलितोद्धार-मण्डलों, हरिजन-सेवक-सङ्घों और आर्यसमाजियोंका उद्देश्य अछूत जातिके थोड़े-से लड़कों या अटकलपच्चू कुछ लोगोंकी सहायता करना नहीं, वरन् सारी अछूत जातिको उठाकर उच्च समतलपर ले जाना होना चाहिए। इसलिए इन संस्थाओंको अपनी शक्ति ऐसे कामोंमें नष्ट नहीं करनी चाहिए, जिनका उद्देश्य अछूतोंमें वैयक्तिक सद्गुण उत्पन्न करना है। इसके विपरीत इनकी सारी शक्ति उस कार्यक्रमपर लगनी चाहिए, जिससे अछूतोंकी सामाजिक परिस्थितिमें परिवर्तन हो सकता है। इसके लिए कतिपय क्रियात्मक उपाय ये हैं :—

१. नागरिक अधिकारोंका अभियान

अस्पृश्यता-निवारक सङ्घोंको सबसे पहले जो काम हाथमें लेना चाहिए, वह यह है कि वे समूचे भारतमें अछूतोंको उनके नागरिक अधिकार दिलाने—यथा ग्राम-कूपसे जल भरने, स्कूलमें भरती होने, टांगा आदि वाहनोंमें बैठने—के लिए मुहिम जारी करें। ग्रामोंमें ये काम करनेसे ही हिन्दू-समाजमें वह आवश्यक सामाजिक क्रान्ति उत्पन्न हो सकती है, जिसके बिना अछूतोंके लिए समताकी सामाजिक स्थिति प्राप्त करना कभी सम्भव न होगा। परन्तु इन अछूतोद्धारकोंको यह जान लेना आवश्यक है कि यदि नागरिक अधिकारोंका यह अभियान चलाया गया, तो इन्हें किन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ेगा। कुछ वर्ष हुए जब बम्बई प्रान्तके कोलाबा और नासिक जिलोंमें डीप्रेसड क्लासिज इन्स्टीट्यूट और सोशल इक्वालिटी लीगने ऐसी मुहिम जारी की थी, तो वहां क्या कुछ घटनायें घटित हुई थीं? सबसे पहले तो अछूतों और सवर्ण हिन्दुओंमें फिसाद होंगे। उनमें सिरफटौल होगा और फौजदारी मुकद्दमे चलेंगे। इस द्वन्द्वमें अस्पृश्योंको बहुत हानि उठानी पड़ेगी, क्योंकि अधिकार-प्राप्त लोग सदा उनके विरुद्ध होंगे। दूसरी बात यह है कि ज्यों ही ग्रामवासी देखेंगे कि अछूत हमारी समताका पद प्राप्त करनेका उद्योग कर रहे हैं, वे सम्भवतः तत्काल अछूतोंका पूर्ण बहिष्कार कर देंगे। हमें हिंसा, कष्ट, बेकारी एवं अनशनकी वे कहानियां भूली नहीं, जो अछूतोंने स्टार्ट कमेटीके सामने सुनायी थीं। श्री० अमृतलाल व० ठक्कर भी उस कमेटीके सदस्य थे। यह शस्त्र कितना कठोर है और अछूतोंके अपनी पतित अवस्थासे ऊपर उठनेके उद्योगोंको रोकनेमें इसकी शक्ति कितनी भयङ्कर है, इस विषयमें कुछ अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं।

हमने केवल दो ही ऐसी रुकावटोंका उल्लेख किया है, जो समाज-सुधारकोंको दूर करनी पड़ेंगी, तभी सामाजिक अधिकारोंका यह अभियान सफल हो सकेगा। समाज-सुधारक संस्थाओंको गांवोंमें कर्मचारियोंकी एक सेना रखनी होगी, जो अछूतोंको उनके अधिकारोंकी प्राप्तिके निमित्त युद्ध करनेके लिए उत्साहित करेगी और देहातमें उत्पन्न होनेवाले कानूनी झगड़ोंको सफल बनानेमें अछूतोंको सहायता देगी। यह कार्य-प्रणाली इतनी अमोघ है कि निःसङ्कोच भावसे यह कहा जा सकता है कि अछूतोद्धारक संस्थाओंको शेष सब बातोंके सामने इस कामको आधार-भूत और प्रमुख समझना चाहिए। यह सत्य है कि इस कार्यक्रमपर आचरण करनेसे सामाजिक गड़बड़ और मार-पीट होनेकी भारी

आशङ्का है, परन्तु इससे बचना किसी प्रकार सम्भव नहीं। इस गड़बड़से डरनेसे अस्पृश्यताकी जड़ उखाड़नेमें कभी सफलता नहीं हो सकती।

जो लोग यह समझे हुए हैं कि सवर्ण हिन्दुओंमें चुपचाप युक्तियुक्त विचारोंका प्रचार होते रहनेसे उनकी कट्टरता एवं मूर्खता दूर हो जायगी और वे छूतछातको छोड़ देंगे, वे भारी भ्रममें हैं। कट्टरपन्थी सवर्ण हिन्दुओंमें चुपके-चुपके बुद्धि-सङ्गत विचारोंका सञ्चार करनेसे अछूत जातियोंका उद्धार नहीं हो सकता। सबसे पहली बात तो यह है, शेष सब मनुष्योंकी भांति सवर्ण हिन्दू दलितोंसे छूतछात करनेमें रूढ़िका दास है। प्रायः लोग किसी मनुष्यके उपदेश अथवा प्रचारके कारण ही अपने उस आचरणका परित्याग नहीं कर देते, जिसकी उनमें प्रथा है। परन्तु जब इस रूढ़ि-मूलक आचरणके पीछे धर्मकी व्यवस्था भी हो या मान ली गयी हो, तो केवल प्रचार और उपदेश, यदि इस आचरणका प्रतिवाद न किया जाय और इसके मार्गमें बाधा न उपस्थित की जाय, मनपर कोई भी प्रभाव उत्पन्न किये बिना हवाके साथ ही कुहरेकी भांति उड़ जाता है। अछूतोंका उद्धार केवल तभी हो सकता है, जब सवर्ण हिन्दुओंको सोचनेके लिए बाध्य किया जाय और अनुभव कराया जाय कि इन्हें अपने आचरणको अवश्य बदलना पड़ेगा। परन्तु यह तभी हो सकता है, जब आप उनके रूढ़ि-मूलक आचरणके विरुद्ध प्रत्यक्ष रूपसे कार्यवाही करके सङ्कट उत्पन्न कर दें। यह सङ्कट उन्हें सोचनेके लिए बाध्य करेगा। जब एक बार वे सोचना आरम्भ कर देंगे, तो फिर वे किसी दूसरी रीतिकी अपेक्षा अपनेको बदलनेके लिए अधिक उद्यत हो जायंगे। अछूतोद्धारके विरोधियोंको यथासम्भव बहुत कम चिढ़ाने अथवा दूसरे शब्दोंमें न्यूनतम बाधा और चुपके-चुपके बुद्धि-सङ्गत विचारोंका सञ्चार करनेकी नीतिमें बड़ा दोष यह है कि इससे सवर्ण हिन्दुओंको सोचनेके लिए विवश नहीं होना पड़ता और न सङ्कट ही उपस्थित होता है। महाड़के चौदर तालाब, नासिकके कलारम मन्दिर और मलाबारके गुरुवयूर मन्दिरके सम्बन्धमें प्रत्यक्ष रूपसे कार्यवाही करनेसे थोड़े ही दिनोंमें जो परिणाम हुआ है वह, सुधारक लोग चाहे दस लाख दिन तक उपदेश करते रहते, कभी न होता। मुसलमानोंके सम्बन्धमें आज हिन्दुओंका और विशेषतः कांग्रेसका जो अति उदार भाव हम देख रहे हैं, वह कभी न होता, यदि मुसलमान कांग्रेस और हिन्दुओंको अपने विषयमें विचार करनेके लिए बाध्य न कर देते। इसलिए यह परम आवश्यक है कि अस्पृश्यता-निवारणका दम भरनेवाली संस्थायें अस्पृश्योंको सामाजिक अधिकार दिलानेके लिए प्रत्यक्षतः कार्यवाही करनेके इस अभियानको हाथमें लें। इस अभियानमें जो कष्ट और कठिनाइयां आयेंगी, उनका हमें ज्ञान है। गत अनुभवके आधारपर हम कह सकते हैं कि यदि सुधारक लोग इस कार्यमें सफलता चाहते हैं, तो शान्ति और व्यवस्थाकी उत्तरदायी शक्तियोंका उनके पक्षमें होना आवश्यक है। इसीलिए जान-बूझकर इसमें मन्दिर-प्रवेशका कार्यक्रम सम्मिलित नहीं किया गया और इसे सामाजिक प्रकारके सार्वजनिक अधिकारों तक ही सीमित रखा गया है। इन अधिकारोंकी रक्षा करना गवर्नमेण्टका कर्तव्य है।

सबके लिए समान अवसर

अस्पृश्यता-निवारक सङ्घोंको दूसरा काम यह करना चाहिए कि अछूतोंके लिए उन्नतिके समान अवसर दिये जायं। अछूतोंको समान अवसर न मिलनेका कारण उनका अछूतपन है। कौन नहीं जानता कि गांवों एवं नगरोंमें अछूत भाई भाजी-तरकारी और दूध-मक्खन आदि बेचकर दूसरे लोगोंकी भांति आजीविका नहीं चला सकते। सवर्ण हिन्दू ये खाद्य-पदार्थ एक अहिन्दूसे मोल ले लेगा, परन्तु दलित हिन्दूसे नहीं।

नौकरीके सम्बन्धमें अछूतकी दशा बहुत ही बुरी है। सरकारी विभागोंमें उसके लिए रुकावट है। उसे कुछ दिन पहले तक कान्स्टेबल, वरन् हरकारा तक नहीं बनाया जाता था। कला-कौशलमें भी उसकी दशा कुछ अच्छी नहीं। अमेरिकामें नीग्रोकी भांति, उसे समृद्धिकालमें सबसे पीछे नौकर रखा जाता और दुरवस्थामें सबसे पहले निकाल दिया जाता है। यदि कहीं वह पैर जमा भी ले, तो उसकी उन्नतिकी सम्भावना क्या है? अहमदाबाद और बम्बईकी मिलोंमें उसे सबसे कम पारिश्रमिकवाले विभागमें सीमित रखा जाता है, जहां वह केवल २५) मासिक कमा सकता है। अधिक पारिश्रमिकवाले विभाग, जैसे कि बुनाई-विभाग, उसके लिए स्थायी रूपसे बन्द हैं। कम वेतनवाले विभागोंमें

भी वह सर्वोच्च पदपर नहीं पहुंच सकता। अफसरका पद सवर्ण हिन्दूके लिए रक्षित रहता है। अछूत कर्मचारी चाहे कितना ही निपुण और पुराना क्यों न हो, सदा उसके अधीन ही बना रहता है। जिन विभागोंमें फुटकर कामके अनुसार वेतन दिया जाता है, वहां भी वह सामाजिक भेदके कारण सवर्ण हिन्दू श्रमिक-जितना नहीं कमा सकता। लपेटनेके विभाग और रीलिङ्ग डिपार्टमेण्टमें काम करनेवाली अछूत जातिकी मजदूर स्त्रियोंको बहुधा यह शिकायत बनी रहती है कि नायकिनें कच्चा माल सब स्त्रियोंमें एक समान या उचित अनुपातसे बांटनेके बजाय साराका सारा सवर्ण हिन्दू मजदूरनोंमें ही बांट देती हैं और उन्हें खाली हाथ बैठे रहना पड़ता है। अस्पृश्यता-निवारक सङ्घोंको उचित है कि वे इस आचरणकी निन्दामें लोकमत उत्पन्न करके और असमताकी आवश्यक घटनाओंपर कार्यवाही करनेके लिए समितियां स्थापित करके इस प्रश्नको हाथमें लें। रुईके कारखानोंमें बुनाई-विभाग अछूतोंके लिए खुल जानेसे बहुत-से अछूतोंको अच्छी आजीविका हाथ लग जायगी। सवर्णों-की बहुत-सी प्राइवेट कम्पनियां और फर्म अछूतोंको उनकी योग्यताके अनुसार विभिन्न काम देकर उनकी बड़ी सहायता कर सकते हैं।

सामाजिक सम्पर्क

अन्ततः, अस्पृश्यता-निवारक संस्थाओंको चाहिए कि वे उस घिन और मचलीको दूर करनेका प्रयत्न करें, जो सवर्ण हिन्दू अछूतोंके प्रति अनुभव करते हैं और जिसके कारण ये दो विभाग एक-दूसरेसे इतने पृथक् रहे हैं कि सर्वथा भिन्न और जुदा अस्तित्व बन गये हैं। इसमें सफलता प्राप्त करनेकी सर्वोत्तम रीति दोनोंमें अधिक घनिष्टता उत्पन्न करना है। किसी कार्यमें मिलकर सम्मिलित होनेसे ही वह अजनबीपनका भाव दूर हो सकता है, जो दो व्यक्ति एक-दूसरेसे मिलनेपर अनुभव करते हैं। इसकी सर्वोत्तम रीति यह हो सकती है कि सवर्ण हिन्दू अछूतोंको अपने घरोंमें अतिथि या सेवकके रूपमें प्रविष्ट करें। इस प्रकार जो सच्चा सम्पर्क स्थापित होगा, वह दोनोंको सम्मिलित जीवनसे परिचित कर देगा और उस एकताके लिए मार्ग तैयार करेगा, जिसके लिए हम सब यत्नवान हैं। परन्तु खेद है कि बहुत-से सवर्ण हिन्दू, जो अपनेको अछूतोद्धारके समर्थक प्रकट करते हैं, इसके लिए तैयार नहीं।

महात्माजीके दस दिनके उस अनशन व्रतमें, जिसने समूचे भारतको हिला दिया था, बली पारली और पहाड़में अनेक सवर्ण हिन्दू नौकरोंने इसलिए काम छोड़ दिया था कि उनके स्वामियोंने अछूतोंको भाई बनाकर छूतछातकी प्रथाको तोड़ दिया था। आशा थी कि वे लोग नौकरोंकी स्ट्राइकको तोड़कर पथ-भ्रष्ट हिन्दुओंके लिए अपने-अपने नगरोंमें उदाहरण प्रतिष्ठित करेंगे। परन्तु उन्होंने इसके बजाय कट्टरपन्थियोंके साथ सन्धि करके उनको पुष्ट किया। नहीं कह सकते कि अछूतोंके ऐसे फसली दोस्त उनके कहां तक सहायक होंगे। विपत्तिग्रस्त लोगोंको इस बातसे बहुत कम सान्त्वना मिल सकती है कि उनके भी हितचिन्तक हैं, यदि वे हितचिन्तक सहानुभूति दिखानेके सिवा और कुछ नहीं करते। अछूतोंको इन सवर्ण हिन्दू हितचिन्तकोंपर तब तक विश्वास न होगा, जब तक यह सिद्ध न हो जाय कि यदि उन्हें अछूतोंके लिए अपने बन्धु-बान्धवोंसे लड़ना पड़े, तो वे उनसे ठीक उसी प्रकार लड़नेको तैयार हैं, जिस प्रकार अमेरिकामें नीग्रो लोगोंको दासत्वसे छुड़ानेके लिए उत्तरके गोरे अपने ही बन्धु-बान्धव दक्षिणके गोरोंके साथ लड़े थे। परन्तु इस बातको अलग रखते हुए भी यह आवश्यक प्रतीत होता है कि अछूतोद्धारक संस्थायें अछूतों और सवर्ण हिन्दुओंके बीच सम्पर्क स्थापित करनेकी आवश्यकता उपर्युक्त रीतिसे हिन्दुओंके हृदयपर अङ्कित कर दें।

कर्मचारी

इस कार्यक्रमको पूरा करनेके लिए कर्मचारियोंकी एक बड़ी सेना रखनी पड़ेगी। सामाजिक कार्यकर्ता नियुक्त करना कदाचित् एक छोटा-सा प्रश्न समझा जाय, परन्तु वास्तवमें देखा जाय, तो इस कार्यके लिए उपयुक्त मनुष्योंका निर्वाचन एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बात है। किसी कामको करानेके लिए पैसे लेकर काम करनेवाले बहुतेरे मिल जाते हैं। परन्तु ऐसे भाड़ेके टट्टू अस्पृश्यता-निवारक सङ्घका उद्देश्य पूरा नहीं कर सकते। महात्मा टालस्टायका कथन है—"जिनके हृदयमें प्रेम है, वही सेवा कर सकते हैं।" हमारी रायमें अछूत जातियोंमेंसे लिये हुए कार्यकर्ता इस कसौटीपर अधिक खरे

उतर सकते हैं। इसलिए किसे कार्यकर्ता नियुक्त करना चाहिए और किसे नहीं, इस बातका निर्णय करते समय प्रश्नके इस अंशको भी दृष्टिमें रखना चाहिए। यह नहीं कहा जा सकता कि अछूतोंमें ऐसे लुच्चे नहीं, जो सामाजिक सेवाको अपनी अन्तिम शरण बनाते हैं। परन्तु स्थूल रूपसे कहें, तो कह सकते हैं कि अछूतोंमेंसे लिया हुआ कर्मचारी इस कामको प्रेमसे करेगा। और यह बात अस्पृश्यता-निवारक संस्थाओंकी सफलताके लिए परम आवश्यक है।

दूसरी बात यह है कि कई ऐसी संस्थायें हैं, जो किसी श्रेणी अथवा उद्देश्यका विचार छोड़कर समाज-सेवाके काममें लगी हुई हैं। यदि इनको कुछ सहायता मिल जाय, तो वे अस्पृश्यता-निवारणका काम भी परिशिष्टके रूपमें करनेको तैयार हो सकती हैं। परन्तु इस प्रकारका किरायेपर कराया हुआ काम कोई स्थायी प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकता। काम करनेवालोंके लिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि उनका सारा ध्यान एक काम और केवल एक ही काममें लगा हो। हम ऐसी संस्थायें और सङ्घ चाहते हैं, जिन्होंने जान-बूझकर अपनेको संकुचित बनाया हो, ताकि वे अपने कामके लिए उत्साह रख सकें। यह काम यदि किसीको देना हो, तो उन लोगोंको देना चाहिए, जो शेष सब काम छोड़कर केवल अछूतोंके काममें ही लगनेको तैयार हों।

यह बात कदाचित् बालफोरने कही थी कि ब्रिटिश-साम्राज्यको कोई राजनियम नहीं, वरन् प्रेम ही बनाये रख सकता है। यही बात हिन्दू-समाजपर भी समान रूपसे चरितार्थ होती है। अछूत और सवर्ण हिन्दुओंको किसी कानूनसे, विशेषतः पृथक् निर्वाचनके बजाय सम्मिलित निर्वाचनसे, इकट्ठा नहीं रखा जा सकता। केवल एक ही बात इनको संयुक्त रख सकती है और वह है प्रेम। परिवारसे बाहर, केवल न्यायसे ही प्रेमका द्वार खुलना सम्भव है। इसलिए अस्पृश्यता-निवारक संस्थाओंका यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे देखें कि सवर्ण हिन्दू अछूतके साथ न्याय करता है। यदि वह न करता हो, तो उससे कराया जाय। यदि ये संस्थायें ऐसा नहीं कर सकतीं, तो इनका होना और न होना दोनों बराबर है।

गीत

कब हंसे ये प्राण मेरे ?
कल्प बीते मौन, कब—
पूरे हुए अरमान मेरे ?
कब हंसे ये प्राण मेरे ??

साधना नीरव हृदयकी
हो सकी कब सफल ? आकुल
कब मिटी तृष्णा प्रणयकी ?
कब खिले मानस-विपिनमें
सुख-मुकुल अम्लान मेरे ?
कब हंसे ये प्राण मेरे ??

एक युगसे मैं अकिञ्चन
कर रहा जिन प्रिय पदोंपर
प्रेम-पुष्पाञ्जलि समर्पण ;
कब मिले उस देवताके
कुछ मधुर वरदान एरे ?
कब हंसे ये प्राण मेरे ??

—जितेन्द्रकुमार।

समाज किधर जा रहा है ?

श्री कस्तूरमल बांठिया, बी० काम०

पूर्वी और पाश्चात्य संस्कृतिका हमारे देशमें आज घोर सङ्घर्ष चल रहा है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि जीवनके प्रत्येक ही क्षेत्रमें पाश्चात्य संस्कृति पौर्वात्य संस्कृतिपर आज इतना अधिक आतङ्क जमाती जा रही है जिसकी कुछ हद नहीं। यह सङ्घर्ष मानवीय शक्ति द्वारा रोका जा सकेगा अथवा इसमें पौर्वात्य संस्कृति अपना रूप अविकल रख सकेगी, यह कहनेकी कोई हिमाकत नहीं कर सकता। और न यही कोई बतला सकता है कि इस सङ्घर्षसे निकलनेवाली नवीन संस्कृतिका अन्तिम रूप क्या होगा; अस्तु।

सामाजिक क्षेत्रमें इस सांस्कृतिक सङ्घर्षने कितनी उथल-पुथल मचा दी है, यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि इसका स्पष्ट आभास हम अपने जीवनके प्रत्येक पहलूमें आज पाते हैं। एक बात जो इस सङ्घर्षमें हम पूर्णतया स्पष्ट देख पा रहे हैं, वह यह है कि इस सङ्घर्षने हमारे संस्कारोंको परिमार्जन किये बिना ही हमारे रहन-सहनमें घोर परिवर्तन कर दिया है।

यह तो आप मानेंगे ही कि भारतीय समाजमें तुर्याश्रमी संस्कार कूट-कूटकर भरे हुए हैं। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, ये चार व्यवस्थायें जबसे हमारे पूर्वज ऋषियों-ने प्रचलित कीं, तबसे आज तक बराबर मान्य हैं। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास भले ही गौण रूप धारण कर जायें, जैसा कि आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं; परन्तु गृहस्थाश्रम व्यवस्थाका भङ्ग कदापि न हो पावे, इसीलिए जान पड़ता है, हमारे ऋषि-महर्षियोंने ये दो विधान किये होंगे कि कन्या अविवाहित न रहे और पिण्डदान न करनेवाले पुत्रके अभावमें मृतात्मा पितृ-लोकमें अशान्त रहे।

पुत्र-प्राप्ति जीवनका एक ऐसा ध्येय बना दिया गया था कि उसके लिए बहुपत्नीत्व भी, जिसे आजका सभ्य संसार हीन और घृणास्पद मान रहा है, उपयुक्त मान लिया गया था और आज भी हमारे संस्कार इसको छोड़ने-में कुण्ठित होते हैं। चाहे महर्षियोंका इन व्यवस्थाओंके स्थापित करनेमें तबकी समाज-व्यवस्थाकी पुष्टिका ही हेतु रहा हो, परन्तु हम हिन्दू कहलानेवाले आज भी अपना यही परम धर्म माने हुए हैं कि माता-पिताका अपने पुत्र-पुत्रियोंको कुंवारे रहने देना, अपने लिए घोर पाप बटोरना है। अतः चाहे लड़के-लड़की गृहस्थी संभालनेके बिलकुल ही अयोग्य क्यों न हों, फिर भी हम येन-केन-प्रकारेण उनकी गृहस्थी बसा ही देते हैं और अपने आपको एक बड़े ऋणसे उऋण हुए समझते हैं।

पर पाश्चात्य शिक्षा और संस्कृतिके सङ्घर्षने हमारे नवयुवक और नवयुवतियोंके गार्हस्थ्य-सम्बन्धी विचारोंमें बहुत ही उथल-पुथल मचा दी है। वे अब इसे मानवीय जीवन-का एक अनिवार्य कर्तव्य माननेको कतई तैयार नहीं हैं। यही नहीं; पर वे अधिकाधिक इस विचारमें दृढ़ होते जा रहे हैं कि विवाहका एकमात्र लक्ष्य वैषयिक साधनाके लिए किसी एक व्यक्तिपर जीवनान्त एकाधिकार प्राप्त करना है। सन्तानके लिए, गृह-सुखके लिए, जीवन-साहचर्यके लिए अथवा और किसी ऐसे ही काल्पनिक सुखके लिए विवाह किया जाना आवश्यक है, यह बात उन्हें उचित नहीं दीख पड़ती। क्योंकि यह कौन नहीं जानता कि विवाहित स्त्री-पुरुष भी सन्तान-विहीन होते हैं, गृह-सुखसे वञ्चित रहते हैं, और आजन्म एक-दूसरेको अपने साहचर्यसे दुःखी करते रहते हैं। निःस्वार्थके स्थानमें पति-पत्नियोंमें भी कभी-कभी स्वार्थ इतनी अधिक मात्रामें पाया जाता है कि जिसकी कल्पना तक नहीं की जा सकती। सौन्दर्य और प्रेमकी उपासना विवाहमें ही हो सकती है, यह कहना सौन्दर्य और प्रेमकी हंसी उड़ाना है।

यह विचार-श्रेणी चाहे कुत्सित कही जाय और चाहे और कुछ, परन्तु यह निर्विवाद है कि इसीके परिणाम-स्वरूप कमसे कम आजका नवयुवक तो विवाहको अपने-आपपर निरर्थक उत्तरदायित्वका बोझ मानकर, उससे उत्तरोत्तर अधिक मुंह फेर रहा है। अथवा उसके लिए दहेजके रूपमें लड़कीके पितासे एक भारी रकम मांगना अपना

हक समझता है। नवयुवक स्वतन्त्र है, इसलिए हम उसकी ऐसी मन्त्रणाको स्पष्ट सुन ही नहीं पाते, परन्तु उसके कार्य-रूपमें परिणत होनेके डरसे भी आतङ्कित रहते हैं और जहां तक बस चलता है, उसे लुभा-ललचाकर फुसला लेते हैं और यह बोझ डाल ही देते हैं।

यह विचार-श्रेणी हमारे सुधारकोंपर भी आतङ्क जमाये हुए है। वे भी विवाहको व्यभिचारका एकाधिकार-मात्र मानते हैं। तभी तो वे यही कह-कहकर प्रौढ़ विधुरोंके विवाहोंके प्रति विरोधका बवण्डर खड़ा कर पाते हैं कि ये विधुर अपनी कामाग्निमें एक अबला नवयुवतीको जबरदस्ती होम कर रहे हैं। सुधारक लोग यह विरोधी आन्दोलन करते समय भूल ही जाते हैं कि कमसे कम आजके इस भौतिकता-प्रधान समयमें विवाह ही वैषयिक साधनका एकमात्र साधन नहीं है। नहीं-नहीं, रामराज्यमें भी वेश्यायें और व्यभिचारिणियां थीं और आज भी हैं, जो विषयान्ध पुरुषोंको धनके लिए अपना शरीर हर समय हर तरहसे बेचनेको तैयार हैं।

सुविख्यात लेखक एच० जी० वेल्सने ठीक ही तो कहा है—"सहचरका अभाव, और मित्रशून्य स्थानमें फालतू समय ये दोनों बातें भी मनुष्यके लिए वेश्या-साहचर्य उतना ही आवश्यक कर देती हैं, जितनी कि पाशविक पिपासा। वेश्यायें इन सहचर-विहीन बेचैन मनुष्योंके साथ केवल इधर-उधर घूमती-फिरती ही नहीं हैं, परन्तु वे उनकी बातें भी दिलचस्पीसे सुनती हैं। उनकी प्रशंसा करती हैं और उन्हें सान्त्वना देती हैं। सारांश यह कि वे सच्ची मित्रता और प्रेमका आदान-प्रदान करती हैं। वे निरी नैमित्तिक रूपसे पुरुषोंकी कामैषणाको ही शान्त नहीं करतीं, परन्तु जिसका वे क्रय-विक्रय करती हैं, वह इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ होता है। और वह स्त्रीत्व है। पुरुषमन स्त्रीपर स्वभावसे ही किस हद तक अवलम्बित रहता है, इसकी वे प्रत्यक्ष साक्षी होती हैं।" ×

वेल्सका मत डा० आइवन ब्लाकके मतसे एकदम भिन्न है। परन्तु नवयुवक जब तक अनुभव-शून्य है, यह समझ ही नहीं सकता कि विवाहसे मनुष्य अपनी किस कमीको पूरा करना चाह रहा है। इसीलिए वह विवाहको जीवनकी दिक्कतोंकी शुरूआत समझकर उससे दूर भागता रहता है। पर अन्तमें वह फंस ही जाता है और विवाह कर लेता है। क्योंकि वह अकेला जीवनकी कठिनाइयोंको झेलनेमें असमर्थ है। और ये जीवनकी कठिनाइयां जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, वैसे ही असह्य और परापेक्षी होती जाती हैं। माता-पिता, जिन्हें इन कठिनाइयोंका अनुभव अच्छी तरह हो चुका है, इसीलिए सन्तानका विवाह करना अपना परमधर्म समझते हैं, जिससे उनकी सन्तान अपने जीवनका उद्देश्य सफल कर सके।

जैसा कि मनुष्य-समाजका सङ्गठन हो चुका है, सामान्य सद्गृहस्थ विवाह इसलिए करता है कि उसे गृहस्थी संभालनेवाला कोई मिल जाये। वह दिन-भरका हारा-थका जब सांझको घर लौटे, तो उसे दो मीठी बातें कहकर कोई उसकी थकान दूर कर दे। गरम-गरम भोजन थालीमें परोसकर खानेके लिए दे दे। और अन्य तरहसे उसको आराम पहुंचावे। सब मनुष्योंको विवाह करनेपर ऐसा सारा आराम मिलता ही हो, यह बात यद्यपि सच नहीं है; परन्तु फिर भी यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि मध्यस्थ और गरीब लोगोंके लिए विवाहमें जो भी थोड़ा-बहुत आराम मिलता है, वह उनके जीवनमें स्फूर्तिदायक होता ही है। असल बात तो यह है कि विवाहकी सच्ची आवश्यकता मध्यवित्त या गरीबको ही है। मालदारको न तो साथीकी कमी रहती है और न सेवककी। न अपनी विषयी प्रवृत्तियोंको दमन करनेकी और न उनकी तृप्तिके साधन जुटानेकी। उन्हें तो इसके विपरीत यह आवश्यकता होती है कि कोई ऐसा साथी मिले, जो उनका ऐश-अशरतमें दिलोजानसे साथ दे। जिससे उन्हें अधिकाधिक रस-भरा आदान-प्रदान मिले। जो उनकी मित्रमण्डलीमें शोख और सुन्दरतामें अपना सानी न पावे। ऐसे साथीके साथ क्या किसीकी आजीवन निभ सकती है ? परन्तु फिर भी हमारी दौड़ उसी तरफ लगी है। धनिक वर्गकी देखा-देखी मध्यवित्त और गरीब लोग भी ऐसे ही साथीकी कल्पना करते-करते आज अपना जीवन नीरस व निराशामय बना रहे हैं।

स्त्री-पुरुषोंकी समानता और समानाधिकारपर किसी तरहके अपने विचार न प्रकट करते हुए हमारा कहनेका

× H. G. Wells :-Wealth, Welfare & Happiness of Mankind. page 569.

तात्पर्य यह है कि ऊपर कथित विचार-धाराने हमारे जीवनकी कठिनाइयोंको बेहद बढ़ा दिया और दिन-दिन बढ़ा रही है। उदाहरणके लिए आप एक नवयुवकको ही लीजिये, जो विवाहको बन्धन समझकर घृणा करता है। ऐसे नवयुवकका हिन्दू सम्मिलित परिवारमें भी निर्वाह नहीं हो सकेगा; क्योंकि उसमें त्यागकी भावना भी कम होती है। यदि वह सम्पन्न हो, तो शायद अंगरेजी होटलोंका रहवास स्वीकार कर ले। परन्तु मध्यवित्त अथवा गरीब होनेपर उसके लिए यही समस्या उठ खड़ी होती है कि वह खाने-पीने आदिकी कैसी व्यवस्था करे? हलवाईसे रोजाना पूड़ी-कचौड़ी लेकर खाना भी उसको नहीं पुसा सकता और न वह स्वयम् ही दोनों समय हाथसे खाना पकाता हुआ अपनी तरक्की कर सकता है। अब वह प्रबन्ध करे, तो कैसे और कहां?

यूरोप आदि पाश्चात्य देशोंमें जहां नवयुवक और नवयुवती अपने आपको विवाह-बन्धनसे विमुक्त रखनेके अधिक शौकीन हैं, उन्हें ऐसी कोई कठिनाई नहीं सताती। क्योंकि वहांकी समाज-व्यवस्थाने सिर्फ होटलोंको ही नहीं, परन्तु ऐसे बोर्डिङ्ग हाउसोंको भी पहले ही से जन्म दे दिया था, जिनमें रहकर वे प्रायः उतने ही सस्तेमें अपनी गुजर कर सकते हैं, जितना वे घर बसाकर शायद करनेकी चेष्टा करते। ये बोर्डिङ्ग हाउस आपको सिर्फ बड़े शहरों ही में मिलते हों, ऐसी भी बात नहीं है। आप छोटेसे छोटे गांवमें भी चले जाइये और यदि आप वहां रहना चाहें, तो आपको किसी-न-किसी परिवारमें रहनेके लिए स्थान मिल जायेगा। क्या हमारे भारतवर्षमें ऐसी कोई भी सुविधा अब तक कायम हुई है?

इन बोर्डिङ्ग हाउसोंको हम भारतीय शायद छुपे वेश्यालय कह दें। परन्तु यह हमारा अक्षम्य अपराध होगा। क्योंकि वहां सम्भ्रान्त परिवार भी बोर्डरोंको रखना बुरा नहीं समझते। सच तो यह है कि इसे वे एक तरहकी समाज-सेवा मानते हैं। और दरहकीकत यह समाज-सेवा है भी। क्योंकि जबसे पुरुषने अपना शिकारी जीवन भुलाकर घरेलू जीवन बना लिया है, तबसे ही इसके गृह-प्रबन्धका भार स्त्रीने संभाल लिया था। और आज भी वही संभाले हुए है।

वैज्ञानिकोंने स्त्री-जीवनको मुख्य तीन भागोंमें विभक्त किया है—(१) पत्नी और मातृत्व, (२) सहचरी और (३) साझीदार। सुप्रसिद्ध नाट्यकार मि० शाके मतानुसार जीवन-संग्राममें असफल स्त्री अन्तमें पत्नी बनकर भी सफलता प्राप्त करनेकी चेष्टा कर सकती है और करती भी है। स्त्रियोंका महान् मातृत्व क्या है? महात्माजी कहते हैं कि मातृत्वका धर्म ऐसा है, जिसे अधिकांश स्त्रियां सदा ही धारण करती रहेंगी। मगर उसके लिए जिन गुणोंकी आवश्यकता है, उनका पुरुषोंमें होना जरूरी नहीं। वह सहनेवाली है। वह करनेवाला है। वह स्वभावसे घरकी मालकिन है। वह कमानेवाला है। वह कमाईकी रक्षा करती है और बांटती है। वह हर मानेमें पालक है। मानव-जातिके दुधमुंहे बच्चोंको पाल-पोसकर बड़ा करनेकी कला उसीका विशेष धर्म और एकमात्र अधिकार है। वह संभाल न रखे, तो मानव-जाति नष्ट हो जाये।

साहचर्य और साझा तो आसायशकी चीजें हैं, जिनमें हिस्सा बंटानेवाले तो हर जगह मिल सकते हैं। परन्तु मनुष्य-प्राणी संसारमें साहचर्य और साझेसे ही जीवित नहीं रह सकता। उसे रक्षककी, पोषककी और प्रेमसे कर्तव्यकी ओर झुकानेवालेकी आवश्यकता रहती है। ऐसे सङ्गीके साथमें वह आधा पेट खाकर भी न केवल जीवित ही रह सकता है, अपितु अपना जीवन-कर्तव्य भी पूरा करता रह सकता है।

परन्तु आज हम दोनों ही लक्ष्योंसे भ्रष्ट होते जा रहे हैं। अपने पौर्वात्य आदर्शको तो हम पुरातन और समयसे पिछड़ा हुआ कहकर छोड़ रहे हैं; परन्तु पाश्चात्य आदर्शको हम अपने जीवनमें सम्पूर्णतया इसलिए नहीं उतार पाते हैं कि हमारी संस्कृति हमारा पीछा नहीं छोड़ रही है। क्या इस तीतर-बटेरवाली संस्कृतिसे हम जीवित रह सकेंगे, यही हमारा आप लोगोंसे प्रश्न है। विवाहसे निस्सन्देह जीवनकी जिम्मेदारियां बढ़ती हैं; परन्तु इससे साधारणतया जीवन जीने योग्य हो जाता है और जिम्मेदारियां संभाली जा सकती हैं।

विवाहसे जीवनकी कठिनाइयां बढ़नेका प्रधान कारण यह है कि हमारा स्त्री-वर्ग साधारणतया इन कठिनाइयोंको महसूस कर उन्हें दूर करनेमें हमारी मदद ही नहीं करता है,

यही नहीं; बल्कि वह उन्हें उत्तरोत्तर बढ़ाता रहता है। वह प्राणान्त तक परम्परा और गतानुगतिकताको जकड़े रहता है। और हमें भी उसमें जकड़े रखता है। इस फेरमें पड़कर आशावादी नवयुवककी सारी आशाओंपर पानी फिर जाता है। इसीलिए वह इससे दूर भी भागता है। परन्तु इस प्रकार दूर भागना तो कठिनाइयोंको जीतना नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इससे ये कठिनाइयां हमारे जीवनमें अन्य रूपमें प्रकट होने लगती हैं, जिन्हें अकेले न झेल सकनेके कारण हम और भी जल्दी लक्ष्यहीन हो जाते हैं। इसलिए विवाहको निरर्थक और बन्धनपूर्ण कहकर त्याग देनेसे हमारा कार्य सिद्ध न होगा। हमें उन कठिनाइयोंका समयानुसार सामना करना ही होगा, चाहे ऐसा करनेमें हमारी परम्पराका उत्थापन हो अथवा हमें उसके लिए वे ही आधुनिक उपचार काममें लाने पड़ें, जो आज पाश्चात्य देशोंमें स्पष्ट रूपसे लाये जा रहे हैं। हम बहती हुई हवाके विरुद्ध निश्चल किसी भी तरहसे खड़े नहीं रह सकेंगे।

युद्ध-भूमिमें एक पत्रकारके रोमाञ्चक अनुभव

श्री श्याम उपाध्याय

संसारके किसी कोनेमें युद्धकी प्रचण्ड ज्वालायें प्रज्वलित हो रही हों, रणदेवीकी रण-भेरीका कम्पित करनेवाला स्वर किसी भी क्षेत्रसे आ रहा हो, युद्धके काले बादल शीतसे शीत और उष्णसे उष्ण देशमें मंडरा रहे हों, सभ्य एवं शिक्षित समुदाय वहांके सच्चे संवाद, युद्धस्थलकी सच्ची खबरें तथा घटनायें जाननेको उत्सुक रहता है। उसकी इस जिज्ञासु प्रवृत्तिको शान्त करनेके हेतु उन्नत समाचार-पत्र अपने विश्वसनीय विद्वान् पत्रकारों, संवाददाताओंको, चित्र खींचनेके कैमरे और छोटी हलकी टाइपकी मशीनोंको लेकर युद्धस्थलके लिए विदा करते हैं, जहांसे उन्हें गोलियों, तोपोंकी गड़गड़ाहट, तलवारोंकी चमचमाहट और बम बरसानेवाले हवाई जहाजोंकी घरघराहटके मध्य हृदय थामकर अपनी नन्हीं-सी जानपर खेलकर जीवटके साथ खबरों, संवादों, घटनाओं और चित्रोंको एकत्रित करके अपने सम्पादकों, समाचार-पत्रोंके लिए शीघ्रसे शीघ्र साधन द्वारा अधिकसे अधिक सामग्री भेजनेका प्रयास एवं व्यवस्था करनी पड़ती है। हम लोगोंकी जानकारी, जिज्ञासु-वृत्तिके लिए उन्हें क्या-क्या कष्ट उठाने पड़ते हैं, उसका एक छोटा-सा नमूना मि० हैरी ग्रीनवालके अनुभवोंसे हो जायगा।

ग्रीनवालके युद्धकालीन कष्टोंके विषयमें कुछ लिखनेके पूर्व यह बतलाना आवश्यक है कि वह साधारण शिक्षा पाया हुआ एक साहसी, असंयमी, सम्पन्न घरानेका परित्यक्त युवक था, जिसे उसका बाप पूर्ण बेवकूफ समझ बैठा था। भाग्य या परिस्थितिवश उसे सफलता भी कभी न मिली। सर्वप्रथम वह एक दर्जीके पास काम करने लगा, तत्पश्चात् हिसाबका काम सीखने न्यू क्रास भेजा गया, कुछ दिन बाद एक कपड़ेवालेका एजेण्ट बना, पर एक भी थान न बेच सका। अस्तु, उसी दूकानपर ग्राहकोंको दिखलानेके बाद थानोंको समेटकर तरतीबसे रखनेका कार्य किया। यहांसे पृथक् होते ही पुनः एक दर्जीके पास उम्मेदवारोंमें रखा गया, यह काम छोड़ यह पेरिस चला गया; पर वहां भी मन न लगा। अस्तु, लन्दनमें ही एक दूकानदारका साझीदार बनकर काम किया, उसका भी दिवाला निकाल दिया। कबूतरको कुआं वाली कहावतके अनुसार वह फिर पेरिस पहुंचा और नाचघर खोला, जो कुछ दिन चलकर बन्द हो गया, यहां तक कि भूखों मरनेकी नौबत आ गयी, तब सदैवकी तरह मांसे धनयाचना कर घर पहुंचा, इसके बाद उसने लेखनी उठायी और पत्रकार बननेकी धुनमें संवाददाता और कहानी-लेखनसे प्रारम्भ किया। भवितव्य कहिये या विधिका खेल, संसारपर युद्धके बादल मंडराने लगे। जर्मनीने तलवारें म्यानसे निकालीं और पड़ोसी राष्ट्रोंपर धावा कर दिया, अतः मि० ग्रीनवालको 'काण्टीनेण्टल' एवं 'डेलीमेल' नामक पत्रके युद्ध-संवाददाताकी हैसियतसे युद्धकी ओर प्रस्थान करना पड़ा।

युद्ध-संवाददाताको अन्य संवाददाताओंकी भांति जेबमें सदैव अधिकार-पत्र साथ रखना पड़ता है, जिसपर मोटर ड्राइवरोंके लाइसेन्सकी तरह उसका फोटो भी

साथ चिपका रहता है। साधारण संवाददाताओंको अपना फोटो साथ रखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती ; पर पश्चात्य देशोंके उन्नत कहे जानेवाले पत्रोंमें यह प्रथा चल पड़ी है, ताकि उनके अधिकार-पत्रोंके चोरी जानेपर या गुम हो जानेपर अन्य अनधिकारी व्यक्ति उनका दुरुपयोग न कर सके। युद्ध-संवाददाताओंके लिए यह भी आवश्यक है कि वे जेबमें हर समय काफी पैसे एवं इस बातका पुख्ता प्रमाण रखें कि वे युद्धमें अमुक पत्रके प्रतिनिधिके रूपमें कार्य कर रहे हैं। इसका यह कारण है कि युद्धमें अवाञ्छनीय व्यक्तिसे बड़ा अभद्र, अशिष्ट और असभ्य व्यवहार किया जाता है। जैसा कि लेखके अगले भागसे ज्ञात होगा, किसी शङ्कित व्यक्तिको, जिसके जासूस या गुप्तचर होनेकी शङ्का की जाती है, तुरन्त ही गिरफ्तार करके बन्द कर दिया जाता है और युद्ध-नियमोंके अनुसार गोलीसे भी उड़ा दिया जाता है।

× × ×

रविवारके दिन भगवान् ईसाका स्मरण कर ग्रीनवालने युद्धस्थलकी ओर प्रस्थान किया। तमाम स्टेशनोंपर मिलिटरीका कड़ा पहरा होनेके कारण एक नदीके किनारे चलते हुए घमसान युद्धके निकट पहुंचा। उसने पड़ोसके व्यक्तियोंसे ज्ञात किया कि कुछ दूरपर ही गोलाबारी हो रही है और जर्मन सेनायें दस मील पीछे हटा दी गयी हैं। ज्यों ही वह आगे बढ़ रहा था कि चौकीदारोंने उसे कई स्थलोंपर रोका; पर पुलिस द्वारा संवाददाताओंको जो संरक्षण-पत्र युद्धके समय दिया जाता है, उसको दिखलानेपर सैनिक एक कदम हटकर सलाम करके आगे बढ़नेकी इजाजत दे देते थे। पर जैसे ही वह गोरने पहुंचा, एक सैनिक अफसर द्वारा रोक लिया गया, जो न तो मीठे-मीठे विनम्र शब्दों और न पुलिस-पाससे पिघल सका; पर जैसे ही उसे यह कहा गया कि गर्मी काफी है, क्या हर्ज है कि साईडरके एक-दो गिलास पीकर दिलको शान्त किया जाय, वह तैयार हो गया। साईडर समाप्त करके ग्रीनवालने आफिसरसे हाथ मिलाया और आगे बढ़ गया। पाश्चात्य प्रदेशोंमें जो कठिन काम मीठी-मीठी बातोंसे नहीं निकल सकते हैं, वे शराबकी एक पेगसे बड़ी ही सरलतासे हो जाते हैं।

संवाददाता युद्धके इतना निकट पहुंच चुका था कि स्ट्रेचर एवं गाड़ियोंपर जाते हुए आहत व्यक्ति उसके समीपसे ले जाये जाते थे। समीप ही बम द्वारा विध्वंसित मकानोंके खण्डहर दृष्टिगोचर होते थे, रह-रहकर तोपोंके धड़ाके सुनाई पड़ते थे। जिससे भयभीत होकर पक्षी और परिन्दे फड़फड़ाते हुए आकाशमें चक्कर लगाते थे। दिन-भर युद्ध-प्रदेशोंमें भ्रमण करते-करते जब सन्ध्याने अपनी काली चादरसे भूतलको आच्छादित करना आरम्भ किया, दिनकर भी अपनी लम्बी यात्राके बाद विश्रामको विवश हो गये, तो ग्रीनवालको भी अपने डेरेपर पहुंचनेकी सूझी। दिनको निर्भय घूमनेवाला साहसी रात्रिको कुछ वैसे ही घबरा जाता है, तिसपर युद्धस्थलमें, जहां पद-पदपर लाशें पड़ी हों, पल-पलमें आहतोंका करुण क्रन्दन सुनाई पड़ता हो, जीवटवाले व्यक्तिके लिए भी भयभीत हो जाना अनहोनी बात नहीं है। जब यह ज्ञात हुआ कि समीप ही शत्रु डेरा डाले पड़े हैं, ग्रीनवालका दिल और भी धड़कने लगा। उसने इतना धीरे-धीरे चलना प्रारम्भ किया कि जूतोंकी आहट भी न हो। इस पदध्वनि और चलनेकी चरमर और खटखटके शब्दोंको बचानेके लिए वह सड़क छोड़कर घासपर चलने लगा। पासके पेड़में बिजलीका प्रकाश हुआ, ज्यों ही घबराया हुआ वह अपने डेरेकी ओर बढ़ा हुआ चला जा रहा था कि 'Halte-la' 'ठहरो' का शब्द सुनाई पड़ा, जिसके उत्तरमें Fesuis Anglais यानी 'मैं अंगरेज हूं' कहा ही था कि इतनेमें कुछ सैनिक सङ्गीन थामे हुए उसके समीप आये। ये सब दयालु सैनिक थे और अखबार सम्बन्धी कागजोंको देख-भालकर, जिनको सम्भवतः वे समझ नहीं सके हों, संवाददाताको आगे बढ़ने दिया।

इस घटनासे छुटकारा हुआ ही था कि अंधेरेमें साइकिलपर चढ़ा हुआ एक व्यक्ति मिला, जो पास आकर उतर गया। प्रायः यह देखा जाता है कि भयपूर्ण स्थलोंमें एकसे दो होकर चलना प्रिय लगता है, इसी सिद्धान्तके अनुसार बाइसिकलआरूढ़ व्यक्ति पैदल होकर साथ हो लिया। जैसे ही समीपका गांव आया, ग्रीनवालने रात्रिके विश्रामकी खोजमें एक मकानके द्वारको थपथपाया; परन्तु बहुत देर बाद ज्ञात हुआ कि घर जनशून्य है और सभी व्यक्ति मकानमें ताला लगाकर गांव छोड़कर भाग चुके हैं। रात्रिकी काली चादर और गहरी होती जाती थी। हाथसे हाथ नजर नहीं आता था। एक गजसे अधिक दूरकी वस्तु दिखाई नहीं पड़ती थी। इतनेमें ही सैनिकोंकी पदाहट सुनाई पड़ी। साइकल लिये हुए

व्यक्तिने कहा कि ये फ्रेञ्च सैनिक हैं; पर अंधेरेके कारण उनकी वर्दियां पहचानी नहीं जा सकती थीं। अतः एक सैनिकसे पूछा कि यह कौन-सी फौज है? उससे ज्ञात हुआ कि यह इस्सेक्स रेजिमेण्ट, जो ब्रिगेडियर जनरल मि० स्नोके अधीन काम कर रही है, विश्राम करने जा रही है।

सैनिकोंके गुजरते ही ज्योंही ग्रीनवालने अपने पासके साथीकी ओर ध्यान दिया, वह भयातुर होकर भाग निकला था; पर थोड़ी ही देरमें एक और साथी मिल गया, जो मोटर साइकिलपर चढ़कर सैनिकोंकी डाक इधर-उधर ले जाता था। किस्मतसे वह भी भूखा-प्यासा, पूरा थका हुआ था। कुछ दूर चलनेपर भगवान्‌की कृपासे एक हंसमुख रोटी बनानेवाला मिल गया, जिसने अपने परिवारके साथ भोजन करनेका उन्हें निमन्त्रण दिया। युद्ध-क्षेत्रोंमें ऐसे व्यक्तियोंकी अत्यन्त कमी देखी जाती है। जब वे दोनों भरपेट भोजन कर चुके, तो अपने आहारका मूल्य चुकानेकी इच्छा प्रकट की, जो हंसमुख नानबाईने अस्वीकार कर दी। इस प्रकार समयपर सहायता देनेवालेको धन्यवाद देकर ज्योंही रवाने हुए, मोटर साइकिल सवारने कहा कि वह पास ही इस्सेक्स लाइनमें जाकर सो रहेगा। वह अपनी बातको समाप्त भी न कर पाया था कि वे इतनेमें ही आर्मी सर्विस क्राप्सकी एक टुकड़ी आ पहुंची और रोटी बनानेवालेके मकानके समीप ही मैदानमें अपना डेरा डाल दिया। ग्रीनवालने सेनाध्यक्षसे प्रार्थना की कि क्या वह एक रात-भरके लिए उनकी सेनाके साथ सो सकता है। उसे कहा गया कि उसकी सेना अत्यन्त थकी हुई आयी है और सभी उसके दुःखको समझ सकते हैं। दयालु सैनिकोंने उसे कुछ कम्बल ओढ़ने और बिछानेके लिए दिये तथा सोनेके पूर्व भोजनमें शरीक होनेको भी कहा। यद्यपि ग्रीनवालने थोड़ी देर पहले ही रोटी बनानेवालेके यहां भोजन किया, फिर भी सैनिकोंके आग्रहको देखकर उसने थोड़-सा पनीर, बिस्कुट और शराब आदिमें सहयोग दिया और सोनेकी व्यवस्था करने लगा। उसकी थकी पलकें झिपने भी न पायी थीं कि समीपके सोये हुए सैनिकने दुलत्ती मारना प्रारम्भ किया, अतः उसे उठाकर सीधा सुलाया, उसकी थकान पूरी-सी मिटने भी नहीं पायी थी कि सेनाको कूचकी आज्ञा मिली। अनिच्छापूर्वक वह भी उठा और सैनिकोंके साथ तैयार हो गया। आदमी और घोड़ेकी चाल मिलना कठिन है; अस्तु, थके हुए पैरोंसे उनके साथ दुलकी लगानेपर बड़ी कठिनतासे उनका साथ वह कर सका। इतनेमें ही उसे रोने और जोर-जोरसे चिल्लाने-चीखनेकी आवाज समीपकी एक झोंपड़ीसे आती मालूम हुई और झोंपड़ीके पास पहुंचनेपर रुदन करती हुई एक स्त्री अपने बिलखते हुए बच्चेको गोदमें लिये हुए और दो छोटे-छोटे बालकोंके साथ, जो उसका लहंगा पकड़े हुए थे और सभी जोर-जोरसे चिल्लाकर सुबकियां भर रहे थे, सेनाध्यक्षके पैरोंपर गिर पड़ी, एवं क्षमा-याचना तथा प्राण बचाने और दयाके लिए घुटने टेककर आतुर स्वरसे प्रार्थना करने लगी। उसे आशङ्का थी कि यह जर्मन सेना है, जो उसे तथा उसके बच्चोंको क्रूरतापूर्वक संहार करके यमलोक भेजकर झोंपड़ेमें आग लगा देगी।

बड़ी कठिनतासे उस स्त्रीको शान्त किया और पुलिसके दो घुड़सवार वहां पहुंच गये। उस स्त्रीने बतलाया कि रातसे ही उसके घरमें एक जर्मन चोर घुसा पड़ा है और अब इस सेनाको देखकर उसे भय हुआ कि शेष जर्मन पल्टन प्रातःकाल होनेपर पहुंची है और अब उसकी खैर नहीं है। उसके कहनेपर दो घुड़सवार उसकी झोंपड़ीमें पिस्तौल लिये पहुंचे। पहले तो कुछ हाथापाईकी आवाज आयी, फिर आपसी कहा-सुनीके बाद जोरसे हंसी सुनाई दी। अन्तको एक सैनिक शराबके नशेमें चूर, लाल-लाल आंखोंवाले एक व्यक्तिको पकड़कर पासके उद्यानसे बाहर निकला और कहा कि लो, यह तुम्हारा जर्मन चोर है। वास्तवमें यह वही मोटर साइकिल सवार था, जो ग्रीनवालके साथ रोटी बनानेवालेके यहां खूब शराब पी चुका था। पुलिस उसे पकड़कर ले गयी। संबाद पानेके लोभमें एक बार फिर ग्रीनवाल अकेला रह गया। वह यह सोच ही रहा था कि तेज रफ्तारसे चल आगे पहुंची हुई सेनाके साथ हो ले, कि उसे पीछेसे मोटरकी आवाज सुनाई पड़ने लगी और कुछ देरमें ही एक भूरे रङ्गकी समर-मोटर पास आकर रुक गयी, जिसमें दो अफसर बैठे हुए थे। उन्होंने टूटी-फूटी फ्रेञ्च भाषामें पूछा कि क्या वे विलन्यू सेण्ट जार्ज जानेवाली ही सड़कपर हैं? यदि इस प्रश्नका उत्तर फ्रेञ्च भाषामें ही दिया जाता, तो अच्छा होता, पर ग्रीनवालने अंगरेजीमें कहा कि वह स्वयं यहांके मार्गोंसे अनभिज्ञ है। इसपर दोनों अफसरोंने काना-

फूसी करके कुछ विचार-विमर्श किया और ग्रीनवालको मोटरपर बैठनेको कहा। अन्धेको दो आंखे ही चाहिए। अतः हमारे थके हुए संवाददाता धन्यवादकी बौछार करके मोटरमें बैठ गये। इसमें बैठे हुए दो और भी सज्जन थे, जिन्होंने कहा कि वे जर्मनों द्वारा गिरफ्तार कर ही लिये गये थे कि एक स्कूल मास्टर द्वारा साधारण वस्त्र भेंट किये जानेपर उन्होंने अपनी सैनिक पोशाक उतार, सादे वस्त्र पहनकर जान बचायी है।

कुछ ही दूर चल पाये थे कि एक विशाल दुर्गके फाटक खुलनेकी आवाज आयी और ग्रीनवालकी नींद उड़ गयी। उसने क्या देखा कि ऊंचे विस्तृत हातेमें दोनों ओर फौजकी मोटरें खड़ी हैं। साधारण वस्त्र पहने हुए दोनों व्यक्ति यहीं उतार दिये गये और ग्रीनवालको साथ चलनेके लिए कहा गया। एक कमरेमें ले जाकर उससे प्रश्न पूछे गये और प्रश्नोंपर जिरह की गयी। उसके बाद खानातलाशीकी बारी आयी। कोटकी सारी जेबोंसे कागजपत्र, नोट-बुक, बटुआ आदि निकाल लिये गये। उन्होंने नोट-बुकके एक-एक पन्नेकी जांच की और अखबारोंके प्रमाण-पत्र, अधिकार-पत्र-पुलिस द्वारा दिये गये संरक्षण सम्बन्धी समस्त कागजोंका अवलोकन किया गया। कई प्रश्न भी इस सम्बन्धमें किये गये।

अंगरेजीमें बोलकर जो गलती ग्रीनवालने की थी, उसको अब महसूस करने लगा। दूसरी भूल मोटरमें बैठनेकी की थी, वह अखरने लगी। उसे शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि वह बन्दी है। जितने भी सैनिक और अफसर वहां खड़े थे, वे उसे शङ्का-युक्त दृष्टिसे विलोक रहे थे। इन अफसरोंके साथ एक फ्रेञ्च पत्रकारका चेहरा दीख पड़ा, जिससे वह एक सप्ताह पूर्व ही बातें कर चुका था। उससे प्रार्थना की कि वह उन लोगोंकी आशङ्काको निर्मूल करके स्पष्ट कर दे कि ग्रीनवाल-को वह जानता है एवं यह किसी राष्ट्रका गुप्तचर अथवा भेदिया नहीं है, वस्तुतः युद्ध-संवाददाता एवं पत्रकार है। पर विपत्तिके समय परिचित भी अनजान बन जाते हैं। उस फ्रेञ्च पत्रकारने साफ तौरपर कह दिया कि वह उसे जानता भी नहीं है, न उसने उसे कभी पहले देखा ही है। ग्रीनवालकी मुखाकृति देखने योग्य हो गयी। उसके मुखपर हवाइयां उड़ने लगीं, उसके बदनमें काटो तो खून नहीं, निराशासे वह पैरोंसे जमीन खोदने लगा।

मध्यमें खड़े हुए अफसरने—जिसका नाम पीछे ज्ञात हुआ कि जनरल स्नो था—गम्भीर स्वरमें कहा कि वह समर-कैदी है। इतना कहना था कि बन्दूक लिये हुए सिपा-हियोंकी एक टुकड़ीने एक तबेलेमें ले जाकर बन्द कर दिया। दिनभर वह यहीं भूखा-प्यासा बन्द रहा और रातको यहां सोनेसे इनकार कर दिया। अतः भोजनके बाद उसे घासके पूले बिछानेको दिये गये और फ्रेञ्च घुड़सवारोंके मध्य सिर-हानेमें तकियेके स्थानपर जीनोंको रखकर वह सुखसे सो गया। प्रातःकाल सैनिक मजिस्ट्रेट कैप्टन जेम्सने आकर उससे बातें कीं और ग्रीनवालने यह कहा कि यदि उन्हें विश्वास नहीं है कि वह पत्रोंका संवाददाता ही है, तो वे 'डेलीमेल'के सम्पादकको तार देकर पूछ लें; किन्तु उसने यह करनेसे इनकार कर दिया। हां, उसने बड़ी कृपा करके ग्रीनवालकी धर्मपत्नीको तार द्वारा संक्षेपसे सूचित कर दिया। एक पम्पके समीप ग्रीनवालको निमटने, मुंह-हाथ धोनेकी आज्ञा अन्य समर-कैदियोंके साथ दी गयी, जो या तो वास्तवमें गुप्तचर थे या इनपर भेदिया होनेकी आशङ्का करके इन्हें गिर-फ्तार कर लिया गया था। पहरेदार घण्टे-घण्टेमें बदलते रहते थे लगभग सभी अच्छे स्वभावके और बातूनी थे, जिनसे वाद-विवाद करके सहजमें समय व्यतीत हो जाता था। वे अक्सर युद्ध सम्बन्धी ही बातें आपसमें किया करते थे और इस कल्पनामें विलीन रहते थे कि युद्ध कब तक समाप्त हो जायगा। उन लोगोंकी धारणा थी कि लड़ाई आगामी बड़े दिनों तक बन्द हो जायगी।

कुछ देर बाद ही ग्रीनवालको नाश्तेके लिए ले जाया गया और बड़ी सभ्यताके साथ मुरब्बा, बिस्कुट और चाय दी गयी। इसके बाद समीपका वातावरण कोलाहलमय हो गया; इससे अनुमान लगाया जा सकता था कि निकट ही युद्ध प्रारम्भ हो गया है। मध्याह्नको कैप्टन जेम्सने आकर सूचना दी कि उसके लिए गवर्नमेण्ट हेड क्वार्टरको सूचित किया है और आदेश मांगा है कि क्या किया जाय? उनके जाते ही सशस्त्र सैनिकोंकी एक टुकड़ीने ग्रीनवालको घेर लिया। उसे सङ्गीनोंके कड़े पहरेके बीच एक अन्य स्थलपर ले जानेकी तैयारी होने लगी। रास्ते-भरके लिए उसे हिदायत थी कि किसीसे बात न करे और जो सैनिक उससे बात करनेकी चेष्टा करता, उसे वहांसे हटा दिया जाता।

दिन-भर समीपके कोलाहलमें कोई अन्तर नहीं पड़ा, ऐसा अनुमान होता था कि यह पासके युद्धकी आवाज है, जो आंखोंसे ओझल था। रात पड़नेके पूर्व वे सब बलीन्यू-ली-कोम्ट पहुंच चुके थे।

रातका पड़ाव पुनः एक किलेमें हुआ और ग्रीनवालको सबसे ऊपरके एक कमरेमें बन्द कर दिया गया, जिसमें पहलेसे ही बहुत-से कैदी बन्द थे। इनमें दो तो अंगरेज सिपाही, दो अपने-आपको बेलजियन शरणार्थी बतलाते थे, तीन घुड़सवार, बहुत-से नागरिक और एक वही कैदी था, जो दो दिन पूर्व शराबके नशेमें उस अबलाके घरमें छिपा हुआ पाया गया था। रातमें सब लोग कानाफूसीमें बातें करते रहे, ताकि बाहर खड़े पहरेदार सुन न सकें। पौ फटनेके पहले दोनों अंगरेज सैनिक कमरेसे बाहर निकाले गये और उन्हें गोली मार दी गयी। प्रातःकाल होते ही ग्रीनवालको फिर सङ्गीनोंके पहरेमें पैदल रवाना कर दिया गया और रात पड़नेके पूर्व वे माण्ट मिरेल नामक स्थानपर पहुंचे। और जिस दुर्ग (गढ़) में इन लोगोंने पड़ाव डाला, वह कुछ घण्टों पूर्व ही जर्मन सैनिकोंके कब्जेमें था। ऐसा प्रतीत होता था कि वे यहांसे अभी खाना खाते-खाते भागकर जङ्गलमें छिपे हैं, क्योंकि आधा खाया हुआ भोजन अस्तव्यस्त दशामें मेज-कुर्सियों और बेल-बूटेदार सोफोंपर बिखरा पड़ा था; समीपकी झाड़ियोंमें तीन जर्मन कैदियोंको छिपे पाया, जिन्हें सैनिक वहीं छोड़ गये थे और उन्होंने भयसे झाड़ियोंमें ही पनाह ली। रातको ग्रीनवाल उन कैदियोंके साथ ही सोया और ज्ञात हुआ कि वे ३६ वीं रेजिमेण्ट आफ इन्फेण्ट्रीकी ९ वीं कम्पनीके सैनिक थे। इनसे ग्रीनवालने एक कमरबन्द एक फ्राङ्कमें खरीदा।

ग्रीनवालको यह आशङ्का बनी रही कि वह भी कहीं गोली मारकर यमलोक न पहुंचा दिया जाय; पर जब उसे उपर्युक्त तीन जर्मन कैदियोंके साथ मोटर लारीमें बैठाकर टउर्नन भेजनेकी तैयारी होने लगी, तो जीमें जी आया। यहां भी वह पहरेके अन्दर रखा गया और अन्तमें एक दिन यहांसे भी अन्न-जल उठ गया। प्रातःकाल ही ग्रीनवालको एक पशुगाड़ीमें ले जानेकी व्यवस्था होने लगी और कहा गया कि उसे लिमोगीज ले जायंगे, जहां तीन दिनमें पहुंचा जायगा। गाड़ीके तैयार करते समय एक मिट्टीके टीलेपर वह इन्तजारमें बैठा था, इतनेमें ही एक अंगरेज अफसरकी मोटर उधरसे निकली। न जाने क्यों, अथवा संवाददाताके सौभाग्यसे समझिये, उसने गाड़ी रोक दी और सारी घटना सुनी, जिसकी सत्यताको जाननेके अभिप्रायसे वह स्थलके अधिकारियोंसे भी मिला। थोड़ी देरमें वह वापस आया और ग्रीनवालसे कहा कि यदि वह सौगन्ध खाकर ईमानसे इस बातको स्वीकार करे कि वह रास्तेमें भागनेका प्रयास न करेगा, तो वह इस बातका प्रयत्न करे कि उसे मोटरसे मिलून तक ले जा सके; जहां वह किसी विशेष कामसे जा रहा है।

ग्रीनवालको इस बातसे हर्ष हुआ कि तीन दिनमें धीरे-धीरे पहुंचनेवाले छकड़ेसे यह मोटर कहीं बेहतर है। उसने विश्वास दिला दिया कि वह भागनेकी चेष्टा न करेगा। आफिसरके प्रयाससे उसके समस्त कागज-पत्र, रुपये-पैसे उसे वापस सौंप दिये गये। जिस समय मोटर मिलून पहुंची, जोरकी वर्षा हो रही थी। गाड़ीसे उतरते ही उसे जनरल सर नैविल मेकरैडीके समक्ष पेश किया गया, जो कि आयरलैण्डसे युद्धस्थलपर आये थे। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि कैदी एक संवाददाता है, तो उन्होंने पहला प्रश्न किया कि क्या तुम अमुक......व्यक्तिको जानते हो, जो तुम्हारे पत्रका ही एक संवाददाता है। ग्रीनवालके हां कहनेपर वह उसे कर्नल बनबरीके पास ले गया, जो कि युद्ध-स्थलके न्यायाधीशके पदपर काम कर रहे थे। उन्होंने कहा, यह मान भी लिया जाय, जैसा कि यह कहता है कि यह संवाददाता है, पर यह गुप्तचर और भेदिया भी है। उन्होंने यह भी कहा कि एक गुप्तचरको संवाददातासे वे बुरा समझते हैं। एक बार फिर ग्रीनवालके समस्त कागज और पैसे जब्त कर लिये गये और हाथोंमें हथकड़ी डाल दी गयी। यह दशा देखकर उसने अधीर स्वरमें पूछा कि अब मेरा क्या किया जायगा? कर्नलने मुसकराकर कहा, घबराओ मत; अधिक कुछ नहीं कह सकता हूं, पर इतना विश्वास रखो कि तुम्हें गोली नहीं मारी जायगी।

रातके समय उसने आफिसरोंके साथ ही भोजन किया, जो कि वहांके हवाई अड्डेके संरक्षक थे। उसके बाद मिलून कन्या पाठशालामें वह सुला दिया गया और यहीं उसने सुना कि उस मोटरमें लानेवाला अफसर अपने स्थलको

बदलकर ९ बजे कौलोमियर प्रस्थान करनेवाला है। प्रातःकाल चार बजे ही तीन खाकी वर्दियोंमें सुसज्जित सैनिकोंने उसे जगाया। यह देखकर उसके मानसपटलपर उन दो अंगरेजों-का चित्र अङ्कित हो गया, जिन्हें इसी समय प्रातःकालकी वेलामें गोलीसे मार दिया गया था। उन्होंने जल्दी ही कपड़े बदलनेकी आज्ञा दी और रातको खोली गयी हथकड़ियां फिर पहना दी गयीं। जिस समय ग्रीनवाल स्कूलके बाहर आया, जनरल अपनी मोटरमें आरूढ़ हो चुका था। लगभग सारी सेना भी प्रस्थान कर चुकी थी, केवल साधारण वेशमें रहनेवाले दो सरकारी गुप्तचर रह गये थे। उन्होंने ग्रीनवालकी हथकड़ियां खोल दीं और एक कमरेमें ले जाकर उससे प्रश्न पूछे एवं जिरह की तथा कर्नल बनबरीका हस्ताक्षर किया हुआ एक पत्र भी बतलाया, जिसमें लिखा था कि युद्धकी समाप्ति तक कैदीको चिरची मीडी नामक जेलखानेमें रखा जाय। अस्तु, वे गुप्तचर अपने साथ उसे मोटरमें बैठाकर जेल-खाने ले गये। एक बार पुनः उसके कागजात, पास आदि देखे गये और जेलर द्वारा प्रश्न पूछे गये। गुप्तचरोंने बयानोंमें कागज़-के कई पन्ने काले किये और ग्रीनवालने उन सब आदमियोंके नाम बतला दिये, जिन्हें वह वर्षोंसे जानता था। अन्तको उसे एक गुप्तचरका भी नाम स्मरण आया और पूछा कि क्या वह नजदीक ही मिल सकता है। सौभाग्य कहिये अथवा यातनाओंका अन्त समझिये, गुप्तचर पासके कमरेमें ही बैठता था। उसने आकर पहचान कर दी और दो मिनट बाद ही वह स्वतन्त्र कर दिया गया। जेलसे मुक्त होकर ग्रीनवाल आज भी पत्रकारका काम कर रहे हैं। संसार-भ्रमण भी कर चुके हैं और सभी प्रदेशोंसे उनकी मांग आती रहती है। कुछ वर्ष पूर्व वे भारत भी आये थे।

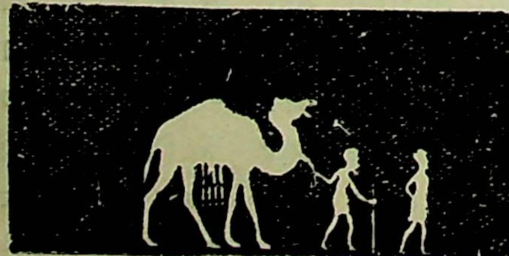
गीत

दीप-शिखा अब बुझी हुई है!

कितने सपनोंको पी करके, आंसूके अमृत-सर भरके,
जीवित थी अब तक पर जलनेकी आशा अब छुईमुई है!
दीप-शिखा अब बुझी हुई है!

खिली धूप-सी लौ तो सोयी, धूमरेख-छाया भी खोयी,
नीलमके महलोंपर उड़ती चिह्नोंकी कुछ शेष रुई है!
दीप-शिखा अब बुझी हुई है!

—सुमित्राकुमारी सिनहा।



नेता

श्री अलखमुरारी हजेला, एम० ए०

जीवनमें एक घटना घटित हुई थी। प्रेममयी थी, मधुमें सनी थी। मीठी-मीठी थी, पर खट्टी-खट्टी। उसे आज सुनाता हूं।

तब मैं इतना बड़ा 'हीरा' नहीं था। नहीं, इतना छोटा भी नहीं था। वहां जो मजदूरोंके सामने नयी बस्ती बन गयी है, जब कोई उसे पूछनेवाला नहीं था, तब किसीने कौड़ियोंमें वह जमीन मोल ली थी। फिर मकानोंकी तङ्गीसे शहरका वह कोना भी आबाद होने लगा। उस नयी बस्तीमें एक हिलोर आ गयी।

× × ×

गर्वीली थी, शर्मीली थी—किसीसे वह बोली नहीं! सृष्टि यदि ऐसा निपुण रूप कहीं दोहरा न पायी, तो इसमें उसका कौन दोष! जब बाबू जानेको होते, तो उन्हें पहुंचानेके लिए बहुधा वह द्वार तक चली आती। वे जाने किस दफ्तरमें काम करते थे। पर—बाबू आ गये थे, मानो मजदूरोंके भाग्यसे। उनकी कन्या मजदूरोंकी देवी थी।

× × ×

दोके चार सही, पर पढ़ देती। वह कुछ भी पढ़ देती—ठीक था। ···किसीसे वह बोली नहीं।

"लो!" वह बादामी टूटा-सा कागज मैंने उसे सौंप दिया।

ननकू महाजन झगड़ रहा था, 'दस हैं।' पर मुझे तो याद था, सातका ही प्रोनोट लिखा था। कागज हाथमें लेकर वह घूरती रही।

"इसे पढ़ दो···" मैंने फिर कहा।

ननकू खिसिया गया। प्रोनोट मैंने छीन लिया था। छीनकर उसे दिया था। अब ननकूका फन्दा बेकार हो जायगा। यदि रूपाङ्गिनीके रूपने न रोक लिया होता, तो वह वहांसे भाग जाता।

प्रोनोट हाथमें लिये उसी तरह कुशल स्वरूपा मुझे देखती रही। जब ननकू कहने लगा "माई, मेरे दस हैं। दिला दो।" तब मैं भी धैर्य खो बैठा—"जल्दीसे पढ़ दो। इसे बतला दो, कितने हैं।"

फिर भी वह बोली नहीं।

उसके हाथमें सधे हुए प्रोनोटका दूसरा कोना पकड़कर मैंने झकझोर दिया। मेरे सन्देशसे रोमाञ्च न हो जाये, इसीलिए जल्दीसे प्रोनोट उसीके हाथमें छोड़ दिया। स्थिर-सा, मूर्ति-सा मैं खड़ा रहा।

आशावादी झूठा ननकू अब भी चुप नहीं हुआ—"माई, मेरे दस हैं, दिला दो।"

ननकूसे वह नहीं बोली। मुझे असमञ्जसमें डालकर बाबूकी कन्या पूछने लगी—"तुमने बिलकुल नहीं पढ़ा?"

मैं मूर्ख उसे क्या बताता। आंखें फेरकर कह दिया—"नहीं।"

उसे क्रोध आया—"तुम यहीं रहते हो?"

फिर आंखोंसे जब मैंने कह दिया "हां", क्षणभरमें उसे तरस आ गया।"

× × ×

गांजा छोड़ दिया, चरस छोड़ दिया, जुआ छोड़ दिया। न जाने क्या-क्या पढ़ा। पहले जरा छुट्टी मिलनेपर हम कारखानेमें काम करनेवाली औरतोंपर आंखें सेंक लिया करते थे। पर अब अवकाश ही कहां था।

मिलका काम जब खतम हो जाता, पढ़ाई शुरू होती। जो मैं पूछता, वह उन्नीस वर्षकी देवबाला मुझे पढ़ाती। वह कालेजमें जाती थी। न जाने कितना ज्ञान उसके कपालमें छिपा था। ...दो वर्षमें तो उसने मुझे बहुत समझा दिया। पहला अक्षर तो उसके तरसमें सीखा। फिर दयासे उसने कितना पढ़ा दिया।

अपढ़को ज्ञानकी लौने दीवाना बना दिया। अपने साथियोंसे मैं दूर निकल आया था। जब मैं शिक्षित होने लगा, तो एक दिन एक छोटी-सी पुस्तक 'मजदूरोंका आन्दोलन' मोल ले ली। उसीके आगे तो हिचक जाता था! इतने दिनोंसे सोचता था, यदि इस शिक्षाका उपहार दे पाता। धीरेसे वही उसके करोंमें अर्पित कर दी। पुस्तक हाथमें लेकर उसने नम्र आंखोंसे देख लिया। फिर कुछ

गुनगुना दिया।...उससे कौन कहता, पर मैं सोच रहा था, उसके लिए तो मैं दरिद्र नहीं।

फिर तो शह नित्यका पाठ—कालेजमें पढ़ा हुआ सारा अर्थशास्त्र मुझे पढ़ाने लगी। मजदूर क्यों कर्जेंसे लदा है? टट्टी-जैसे मकानोंमें रहता है। स्वास्थ्य और जीवन उसने प्रकृतिपर निर्भर कर दिया है। वह वेश्यागामी बन गया है। हर बार किसी-न-किसी दफाके चक्करमें पड़ा है।... कपड़ेका उसे होश नहीं। पेटभर खाना उसे मिलता नहीं।—मांग कम होते हुए भी मजदूरोंका परिवार बढ़ता जाता है। विपत्तियोंको वह विधाताकी देन जानता है। ...चोरीसे पेट भर लेगा, पर अधिक वेतन पा जाना तो उसे असम्भव जान पड़ता है।

ऐसी बातें करती थी वह स्वरूपा! अचम्भित स्वरमें एक बार मैंने ठठोलीमें कह दिया—"तुम तो एक वेद हो।" वह मेरी हंसीका तत्त्व जानती थी। वह—बोली नहीं।

जब स्वरूप रानीकी बातें मुझे सूझने लगीं, मजदूरोंके अनजाने क्षेत्रमें मैं बढ़ता गया।

× × ×

एक बार मैं कांप गया। मिलके मालिकने मुझे नोटिस दे दिया था।

"स्वरूपा! यदि नौकरी छूट गयी?"

"हटो हीरा! इतना कायर बनते हो? उस दिन तो तुम कहते थे, रीछ मारते समय जब उसका पञ्जा तुम्हारे माथेपर लगा, तुम तनिक भी नहीं घबराये।"

"पर स्वरूपा! रीछका भय तो एक क्षणका भय था। यह तो क्षण-क्षणका भय जीवन-भरके लिए है। भाईसे मैं अलग हो चुका हूं, तुम जानती हो। वह तो मिल-मालिकका गुर्गा है। मुझसे खार खाये बैठा है।"

"तुम मेरे यहां रह जाना हीरा।" मैं क्या कह पाता? बाबू तो कभी-कभी हाट-बाटसे कुछ सौदा-सुलुफ ही मंगवा लेते थे। पर उसकी चाकरी जो मिल जाती! मैं जगके सारे धन्धे छोड़ देता।

पहाड़ी निर्झरणीकी भांति वह आवेशमें बहती गयी—"तुम कहते थे, स्वरूपा! तुमने मुझे ऐसा पढ़ा दिया... इतनी शक्ति दे दी, तुम्हारे कहनेको मैं कभी न टालूंगा।"

सचमुच मुझे उसकी सेवा अच्छी लगती थी। मैं पूछ बैठा—"अब रहने दो।...बताओ, इतने उद्योगके बाद क्या होगा?"

× × ×

यों किसीसे वह बोलती न थी। पर शिक्षा देनेमें निपुण थी। कुशल स्वरूपाने व्याख्यानका एक-एक शब्द मुझे याद करा दिया। सचमुच वह एक 'वेद' थी। उसने अगणित सूत्र मेरे मनमें उलझा दिये।

...जब मैं व्याख्यान दे चुका, मेरे पास ही बैठी हुई वह मुझे दीख पड़ी। हर्षमें वह खिली जा रही थी।

लोगोंने मुझे घेर लिया। मैं जल्दीसे उसकी ओर बढ़ गया—"स्वरूपा!" उन दो आंखोंसे वह मेरा उर भर दे रही थी।

चलनेकी राह किधरसे मिलती। भीड़ बढ़ती गयी। वह—किसीसे बोली नहीं।

× × ×

जब मैं नेता बनने लगा, बड़ी-बड़ी उलझनें सुलझने लगा, तब आत्मविश्वासमें सङ्कल्पकी सूझी।

एक समय खलबलाया-सा मैं उससे कह बैठा—"देवी, तुम्हींसे नेता बना, तुम्हारे बिना नेता रह न सकूंगा।"

"मैं कहां जाती हूं?" कुशल स्वरूपाने कहा।

मेरे मनकी वाणी क्या वह आज तक नहीं समझी?

"तुम मेरी जीवन-सङ्गिनी बनी रहो..."

पलभरको देवी फिरसे बाला बन गयी। उस बालपनमें वह हंसी।

हंस लो! उसकी हंसी थी, "अविवाहित जीवनकी सेवा सुन्दर है...सारी शिक्षा भूल रहे हो? तुमने कहा था, स्वरूपा! तुम्हारा कहना कभी न टालूंगा।...पागल बने हो हीरा?"

अकस्मात् मैं कह उठा—"स्वरूपा! तुम एक वेद हो। किन्तु पागल करके उंगली उठा दी।"

मैं नेतापनके जङ्गलमें विचरण करने लगा।

× × ×

वहांका देशनिकाला आज भी उसीके सिद्धान्तोंका नेता बना हूं, किन्तु क्या उस देशमें अब नेता नहीं रहते?

———

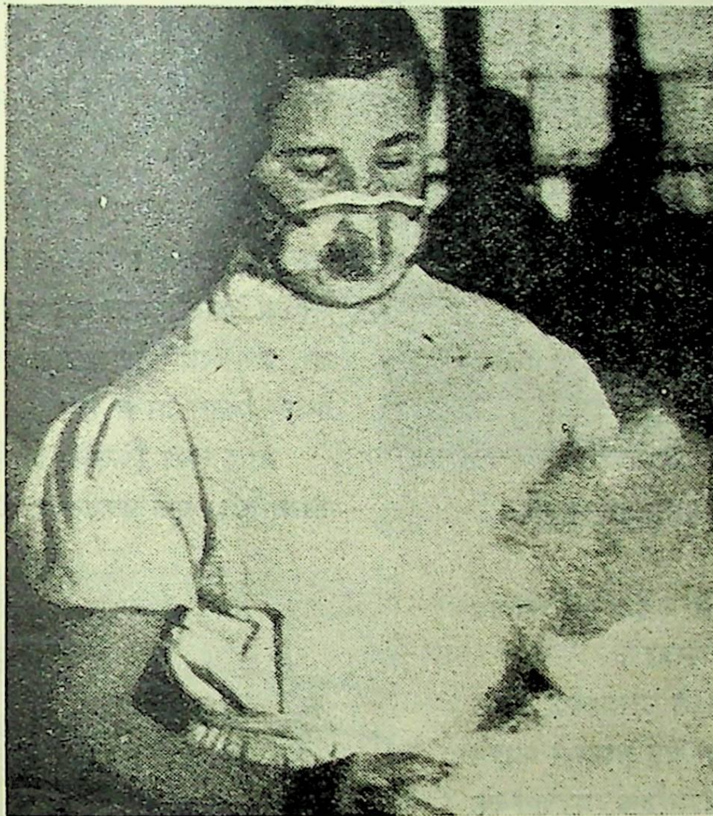
एरसात्स

डा० धनीराम प्रेम, बर्मिङ्घम

आज अनेक बड़े-बड़े देश ऐसे हैं, जिन्हें जीवनके लिए अनेक आवश्यक वस्तुयें दूसरे देशोंसे लेनी पड़ती हैं। जर्मनी भी इन्हीं देशोंमेंसे एक है। जर्मनीको कई प्रकारकी वस्तुयें बाहरसे मंगानी पड़ती हैं। स्वयं जर्मनीके निवासियोंके लिए अनेक प्रकारमें खाद्य पदार्थ बाहरसे आते हैं। लोहा, तांबा, लकड़ी, मेंगनीज, पेट्रोल आदि अन्य वस्तुयें भी बाहरसे मंगायी जाती हैं। साथ ही उद्योगधन्धोंके लिए कच्चा माल भी बड़े परिमाणमें बाहरसे आता है।

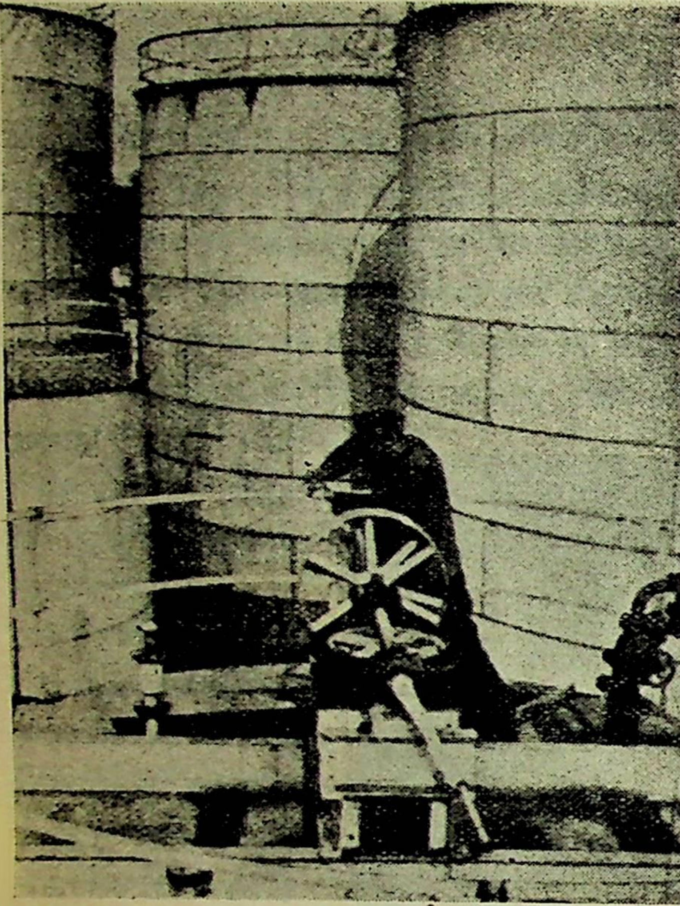
इंगलैण्ड तथा मित्र-राष्ट्र इस बातको जानते हैं। इसीलिए उन्होंने सामुद्रिक प्रतिबन्ध जारी किया है। मित्र-राष्ट्रोंका विश्वास है कि थोड़े समयमें ही जर्मनीका आवश्यक वस्तुओंका भण्डार खाली हो जायगा। और यदि मित्र-राष्ट्र बाहरसे नया माल जर्मनीमें न जाने दें, तो जर्मनीको विवश होकर पराजय स्वीकार करनी पड़ेगी। सामुद्रिक प्रतिबन्धको इसीलिए मित्र-राष्ट्र 'आर्थिक अस्त्र' कहते हैं और इसकी शक्तिको अन्य अस्त्रोंकी शक्तिसे अधिक मानते हैं।

क्या युद्ध छेड़ते समय जर्मनी इस अस्त्रसे अनभिज्ञ था? नहीं! क्योंकि पिछले महायुद्धमें भी इस अस्त्रने मित्र-राष्ट्रोंकी बड़ी सहायता की थी। हिटलरके हाथमें जिस समय शक्ति आयी, तो उसे यह विदित था कि एक दिन उसकी आकांक्षाओंके मार्गमें ब्रिटेन व फ्रान्स बाधा डालेंगे। और इसका अर्थ था महायुद्ध। इसीलिए हिटलरने इस भावी महायुद्धके लिए प्रकाश्यमें तथा गुप्त रूपसे तैयारी करनी शुरू कर दी। हिटलरको यह मालूम था कि पिछले महायुद्धमें जर्मनीकी पराजयका एक बड़ा कारण सामुद्रिक प्रतिबन्ध था। इसका सामना करनेके लिए उसके सामने दो उपाय थे—पहला तो यह कि आवश्यक वस्तुओंका अपरिमित संग्रह कर लिया जाय और उनकी खपत कम कर दी जाय; दूसरा यह कि वैज्ञानिकों द्वारा आवश्यक वस्तुओंकी कृत्रिम रूपसे प्रयोगशालाओं तथा कारखानोंमें नकल करायी जाय। जर्मनमें इस प्रकारकी नकली वस्तुओंको 'एरसात्स' कहते हैं।



महिला शीशेके ऊनी कपड़े पहनकर काम कर रही है।

शक्ति प्राप्त करते ही हिटलरने नकली वस्तुओंके बनानेके लिए वैज्ञानिकोंको अकथनीय सुविधायें दीं। सारे देशकी वैज्ञानिक शक्ति इस दिशामें लग गयी। कुछ दिनों तक यह प्रयत्न प्रयोग-रूपमें रहा, परन्तु धीरे-धीरे नकली वस्तुओंको प्रचुर संख्यामें बनानेके लिए कारखाने खुल गये। गोयरिङ्गने स्वयं १९३६ में इस सफलताको घोषित किया था। परन्तु संसारने इसे एक तमाशा समझा। हिटलरके लिए यह अच्छा ही हुआ। वह बिना बाधाके, बिना विरोधके अपना कार्य करता गया। नकली चीजें बनने लगीं, बिकने लगीं,



आलूसे अलकोहल निकाला जा रहा है।

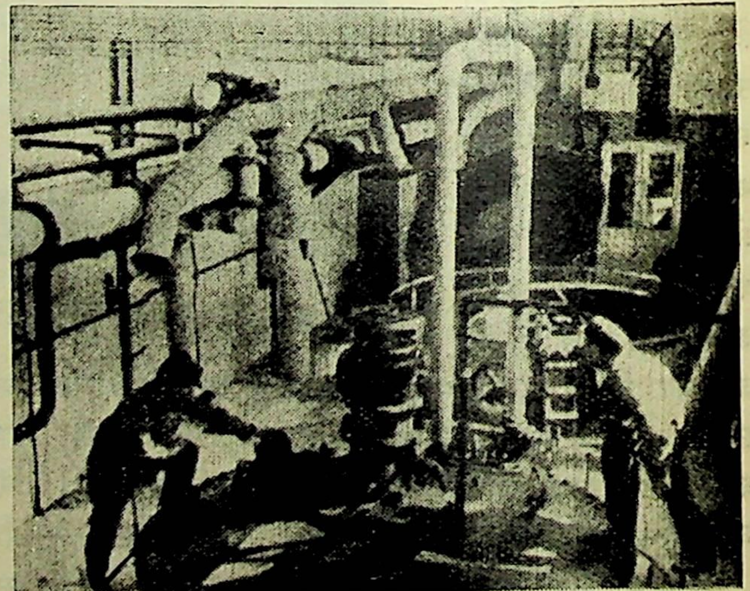
प्रयोगमें आने लगीं। कुछ अच्छी रहीं, कुछ खराब रहीं। परन्तु उनका बनना जारी रहा।

युद्धके लिए आजके युगमें सबसे आवश्यक पेट्रोल तथा मशीनका तेल है। जर्मनीको यह बाहरसे काफी परिमाणमें मंगाना पड़ता है। सामुद्रिक प्रतिबन्धके कारण यह जहाजों द्वारा नहीं आ सकता। रूमानियासे रेल द्वारा लानेमें समय व पैसा बहुत अधिक खर्च होता है। इसलिए जर्मनीमें पेट्रोल व तेल कोयलेसे निकाला जाता है। जर्मनीमें कोयलेकी कमी नहीं, हालांकि इस प्रकारका पेट्रोल कुछ महंगा पड़ता है। फिर भी युद्धके पहले जर्मनीमें एक वर्षमें ऐसा पेट्रोल २० लाख टन तैयार हुआ था। इसके अतिरिक्त आलुओंसे लगभग डेढ़ लाख टन अलकोहल बनाया गया था, जो पेट्रोलमें मिलाकर प्रयोगमें लाया गया। कोक (जला हुआ कोयला) से छः लाख टन तेल निकाला गया। छः लाख टन पेट्रोल स्वयं जर्मनीकी भूमिमेंसे निकाला जाता है। इस प्रकार प्राकृतिक तथा कृत्रिम पेट्रोल मिलाकर जर्मनीकी आवश्यकताको बड़े अंशमें पूरा करते हैं।

पिछले महायुद्धमें जर्मनीमें साबुनका बड़ा अभाव था। उस समय जर्मनोंने नकली साबुन बनाया था, किन्तु वह इतना बुरा था कि लोग उसके बजाय बिना साबुनके रहना पसन्द करते थे। इस बार यह कमी पूरी कर ली गयी है। कोयलेसे पेट्रोल निकालनेमें 'पेरेफीन' नामका एक पदार्थ भी निकलता है। चर्बीकी जगह जर्मन अब इस पेरेफीनसे साबुन बनाते हैं। परन्तु यह सारे देशकी मांग पूरी नहीं कर सकता, इसीलिए यह एक अमुक मात्रासे अधिक किसीको नहीं मिलता।

पेट्रोलके बाद युद्धके लिए आवश्यक वस्तुओंमें लोहेका नम्बर आता है। लोहेके बिना काम तो नहीं चल सकता, लेकिन उसकी जगह कई बातोंमें अल्यूमिनियमने ले ली है, जो जर्मनीमें बोक्साइट तथा साधारण चिकनी मिट्टीसे तैयार किया जाता है।

बालू तथा चिकनी मिट्टीसे तरह-तरहका शीशा बनाया जाता है। एक प्रकारका शीशा तो इतना कड़ा होता है



कीचड़ भी बेकार नहीं जाने पाता। शहरके पनालोंमें बहनेवाली गन्दगीसे उत्पन्न बिजलीसे शहरमें रोशनी की जाती है।

कि धातुकी भांति टूट नहीं सकता। नल आदि बनानेमें लोहेकी जगह इसी शीशेका प्रयोग होता है।

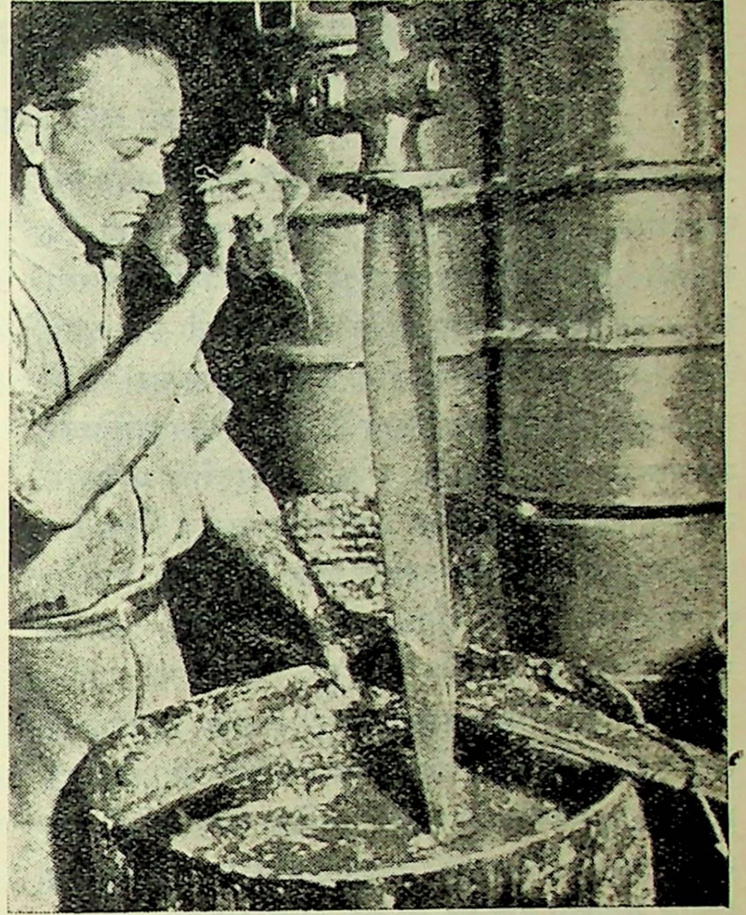
नकली वस्तुओंमें सबसे मुख्य है 'रेसिन'। यह कोलतारसे बनायी जाती है। इससे प्याले, तश्तरी, ग्लास, छुरी, कांटे, कुन्दे, मोटरकारका ढांचा आदि अनेक आवश्यक चीजें बनायी जाती हैं। इनसे मशीनोंके भी कई भाग बनते हैं। इस प्रकार लोहे तथा अन्य धातुओंकी बचत हो जाती है।

जर्मनीमें रुई व ऊनकी कमी है। इसलिए वस्त्रोंका अभाव होना आवश्यक है। इस अभावको दूर करनेके लिए वैज्ञानिकोंने लकड़ीसे धागा बनाया है, जो रुई व ऊनके धागोंमें मिलाकर बुना जा सकता है। इसमें एक बड़ा दोष है; यदि इस नकली धागेकी मात्रा ४० प्रतिशतसे अधिक हो, तो कपड़ा जल्दी खराब हो जाता है। आजकल जर्मनीमें इसकी मात्रा ६० प्रतिशत रहती है, इसलिए लोगोंको बड़ी शिकायत रहती है। मछलीके चर्म और मुर्गे आदि चिड़ियोंके परोंसे कपड़ा तथा शीशासे ऊन बनानेका प्रयत्न हो रहा है, परन्तु कहा नहीं जा सकता कि यह प्रयत्न कहां तक सफल होगा।

कागज सभी देशोंमें लकड़ीसे बनाया जाता है। लेकिन लकड़ी युद्धके लिए अन्य कामोंमें भी आती है। इसलिए लकड़ीकी बचत करनेके लिए जर्मनीमें कागज आलूके पत्तोंसे बनाया जाता है।

रबर और चमड़ा भी आवश्यक वस्तुयें हैं। जर्मनीमें इनकी, विशेषतया रबरकी कमी है। इसकी जगह उन्होंने 'बूना' नामक नकली रबर बनायी है। बूना बनानेके लिए केवल कोयला व चूनाकी आवश्यकता पड़ती है, जिनकी जर्मनीमें कमी नहीं।

विज्ञान खाद्यपदार्थोंमें भी अपनी करामात दिखा रहा है। मछलियोंसे अण्डेका सफेद भाग बनाया जाता है। लकड़ीसे शकर निकाली जाती है। नकली काफी व नकली मक्खन भी बन चुका है। चौकेकी बची हुई चीजोंमेंसे जानवरोंके लिए चारा निकाला जाता है।



कोयलेसे वैज्ञानिकोंने लाखों टन पेट्रोल तैयार किया है।

इस प्रकार जर्मनी वर्षों पहलेसे ही इस युद्धकी तैयारी कर रहा था। जर्मनोंका यह कहना कि यह युद्ध ब्रिटेन व फ्रान्सने उनके मत्थे मढ़ा है, बिलकुल गलत है। लेकिन क्या जर्मनीकी ये तैयारियां सामुद्रिक प्रतिबन्धसे उसकी रक्षा कर सकेंगी? चूंकि अब युद्ध जोरोंसे लड़ा जा रहा है, जर्मनीको इन नकली चीजोंकी अधिकसे अधिक आवश्यकता पड़ेगी। उनके प्रथम श्रेणीके कारखानोंके लिए भी उस आवश्यकताको पूरा करना सम्भव न होगा। मित्र-राष्ट्रोंको नकली चीजें बनानेकी आवश्यकता नहीं, क्योंकि उन्हें प्राकृत चीजें प्रचुर मात्रामें मिल रही हैं। इसलिए एरसात्सकी अन्तमें अवश्य ही पराजय होगी।

———



एशिया : आत्माके बदले तलवार

श्री चन्द्रशेखर, एम० ए०

यूरोप और एशियाकी, जीवनके दूसरे क्षेत्रोंकी भांति ही, राजनीतिक क्षेत्रमें भी विभिन्न विचार-धारायें रही हैं। दोनोंकी सभ्यताओं और संस्कृतियोंमें भी विभिन्नता रही है और इन विभिन्नताओंमें जहां कितनी ही बातें स्पष्ट होती हैं, वहां सबसे स्पष्ट बात यह होती है कि यूरोपने जहां अधिकांशतः पशुबलपर विश्वास किया है, वहां एशिया शान्तिका उपासक रहा है। संसारके अनेक महापुरुषोंमें एशियामें उत्पन्न होनेवालोंने ही प्रायः शान्तिका उपदेश दिया है। एशियाकी जीवनके चरम-लक्ष्यको लेकर जो धारणा रही है, वह है आध्यात्मिक ; और यूरोप भौतिकताका उपासक रहा है।

और इस चरम-लक्ष्यको रखकर दोनोंके क्रियाकलाप तथा उसकी प्रतिक्रियायें जैसी होनी चाहिए थीं, वैसी ही हुई हैं। शताब्दियोंसे जिन देशोंने भौतिक सफलताओंको कुछ भी महत्त्व न दिया हो, वे अगर भौतिकवादी यूरोपीय राष्ट्रोंसे पशुबलमें हीन रहें, तो यह अस्वाभाविक नहीं है। इसीलिए एशियामें यूरोपीय राष्ट्रोंकी लूट-खसोट जारी रही है और एशियाने अपनेको इसके प्रतिरोधके लिए अपेक्षाकृत निर्बल पाया है। सदियोंका इतिहास जो रङ्गीन जातियोंपर श्वेताङ्गोंके अत्याचारोंकी असंख्य मार्मिक कहानियोंसे भरा पड़ा है और उनकी वीभत्स लीलाओंकी जो सीमा नहीं दिखाई पड़ती, उसका कारण एशिया और यूरोपकी इस विचार-धाराके अन्तरमें है। आत्मिक, आध्यात्मिक शक्तियोंके बलपर जीवन-यापन करना ही जिसका लक्ष्य हो, ऐसा एशिया सदासे भीषण हथकण्डों एवं पशुबलका शिकार हुआ है और आज भी वह अपनेको विमुक्त नहीं पाता कि अपने विकासके मार्गपर स्वेच्छापूर्वक चल सके। चारों ओरसे वह विवशताओंकी शृङ्खलामें बंधा कराह रहा है।

पर इसकी प्रतिक्रिया क्या हुई है ? आध्यात्मिक शक्तियोंको जब पशुबलने कुचलना प्रारम्भ किया और उसके इस प्रयत्नमें सफलता भी काफी मिलने लगी, तो धर्म और ईश्वरके प्रति मनुष्यका विश्वास उड़ने लगा। आज जो वास्तव रूपमें नास्तिकोंकी इतनी बड़ी पल्टन खड़ी दिखाई पड़ रही है, वह आध्यात्मिक शक्तियोंपर पशुबलकी विजयकी प्रतिक्रिया है और यह प्रतिक्रिया आज भीषण रूपोंमें हमारे सामने उपस्थित है। मानव-जातिकी सभ्यताके लिए यह सबसे बड़ा अभिशाप हुआ है, जिसने वर्तमानके साथ-साथ मानवका भविष्य भी अन्धकारपूर्ण कर दिया है।

यूरोपकी भौतिक महत्त्वाकांक्षाओंने राष्ट्रोंमें जैसी घृणा एवं प्रतिहिंसाकी भावना भर दी है, उसका परिणाम आज एक भीषण युद्धके रूपमें दिखाई पड़ा है। यह जो संहार-लीला चल रही है, केवल यही एक हानि होती, तो भी इसकी भीषणताको सीमित समझा जाता। लेकिन सच तो यह है कि मनुष्यका अगर यह विश्वास हुआ कि पशुबल, शस्त्रास्त्र, लूट-खसोट, छल-प्रवञ्चना एवं विश्वासघात ही सफलताके साधन हैं, तो संसारके लिए, संसारकी शान्ति एवं मानव-संस्कृतिके लिए यह बड़ी ही भीषण सम्भावनाओंसे भरी हुई स्थिति होगी। वर्तमान सभ्यतामें मनुष्यने जहां बहुत कुछ पाया है, वहां खोया भी उसने बहुत कुछ है। कितने ही ऐसे मनुष्य हैं, जिन्हें दो पैरोंवाला खूंखार पशु कहनेमें क्या आपत्ति हो सकती है ? कितने ही मनुष्योंकी रक्त-पिपासा क्या किसी हिंस्र पशुसे कम दिखाई पड़ती है ? यूरोपमें आज सामूहिक हत्याओं एवं भीषण काण्डोंका बाजार गर्म है, उसे किसका परिणाम कहें ?

इसीलिए हम कहते हैं कि एशियाने यूरोपके सम्पर्कमें आकर जहां अपना शोषण कराया है, वहां उसकी जो सबसे बड़ी प्रतिक्रिया हुई है, वह यह है कि उसने सीखा है कि संसारमें अगर जीना है, संसारके महत्त्वाकांक्षी उन्मत्त व्यक्तियों एवं राष्ट्रोंसे अगर अपनी रक्षा करनी है, तो उसे भी सारे मारात्मक शस्त्रास्त्रोंसे अपनेको सुसज्जित कर लेना चाहिए। यूरोपके 'माडल' पर जापानको बढ़ते और उन्नत होते हुए भी उसने देखा और उसकी धारणा और भी दृढ़ हुई। अधिकारपर उसने शक्तिकी विजय देखी और वह भी शक्ति-सञ्चय करनेकी तरफ बढ़ा। आत्माके बदले उसने तलवारमें विश्वास करना सीखा।

पिछले कुछ दिनोंमें एशियाई देशोंने इसीलिए अपनी सामरिक शक्ति बढ़ानेकी कोशिश की है, फिर भी यूरोपीय राष्ट्रोंके मुकाबिले उनकी स्थिति नगण्य-सी ही है। लेकिन एशियाई देशोंका भ्रमण करनेवाला कोई भी व्यक्ति इससे इनकार नहीं कर सकता कि अपनी आर्थिक एवं राजनीतिक क्षमताओंके अनुसार चीन, फिलीपाइन्स, मलाया, श्याम, फ्रेंच इण्डोचीन और फारमोसा—सभीने अपनेको शक्तिशाली बनानेकी कोशिश की है। उक्त देशोंकी दरिद्रता, पिछड़ी हुई विचार-धारा एवं वैज्ञानिक साधनोंकी न्यूनता तथा दूसरे कितने ही कारणोंसे वे अब भी बहुत पीछे हैं। एशियाके अधिकांश देश अपने विकासके सारे साधनोंका स्वेच्छापूर्वक उपयोग करनेके लिए भी स्वतन्त्र नहीं हैं। राजनीतिक अथवा आर्थिक अथवा दोनों ही गुलामियोंसे उनके हाथ-पांव बंधे हैं। इनमें जापानको पूरी आजादी है और उसने सारे साधन एकत्र कर लिये हैं।

जापानको ही पहले लें। जापानमें इस समय एक सैनिक फैसिस्ट शासन चल रहा है और मञ्चूरिया लेनेके बादसे उसका सैन्य-व्यय तीन-चार गुना बढ़ गया है। सोवियट यूनियन और मञ्चूकोके सीमान्तपर जापानकी किलेबन्दी अद्भुत है। बजटका आधा भाग सैनिक तैयारीमें लग जाता है, जिसका एक चौथाई कर्ज लेकर पूरा किया जाता है। इस राष्ट्रीय ऋणका सूद भी जोड़कर इसमें सम्मिलित कर दिया जाय, तो कहना न होगा कि शासन चलानेके लिए जापानके पास बहुत कम पैसे बच रहते हैं। देशकी आर्थिक स्थितिको देखते हुए इतना बड़ा सैन्य-व्यय जापानको और सारी दिशाओंमें अत्यन्त मितव्ययी होनेके लिए विवश कर देता है। इस्पात तो सेनाके लिए ही सुरक्षित कर दिया गया है। आयातपर कड़ा प्रतिबन्ध है और इस बातका ध्यान रखा जाता है कि सेनाकी आवश्यकताओंकी पूर्ति पहले की जाय और बादको दूसरे लोगोंकी।

मञ्चूकोकी सुरक्षाके लिए जबर्दस्त किलेबन्दी कर उसे सब प्रकारसे स्वावलम्बी बनानेका प्रयत्न जारी है। रेलवे, सीमेण्ट, लोहा, इस्पात और तेल-सम्बन्धी प्रयत्न बड़ी तेजीसे चल रहे हैं और इन सबका अर्थ है कि सोवियट यूनियनसे यदि किसी समय युद्ध चल भी पड़े, तो मञ्चूकोमें जापान अपनेको खूब शक्तिशाली पाये। यहां तक कि किसानों तकको युद्ध-कला, खासकर गुरिल्ला युद्ध-कला सिखायी जाती है।

लेकिन जापानसे भी अधिक तेजीसे तैयारी की है रूसने। व्लाडीवोस्टकमें रूसका वायुयान-अड्डा है, जिससे ३॥ घण्टेके भीतर रूसी वायुयान जापानपर बम-वर्षा कर सकते हैं। १९०४-५ में जारकी जिस सेनाने मञ्चूरियामें प्रवेश किया था, उसकी अपेक्षा सोवियट सेना कहीं अधिक शक्तिशाली है। मञ्चूकोके सीमान्तपर कितनी सोवियट सेना है, इसे ठीक-ठीक तो नहीं बताया जा सकता; पर अनुमान किया जाता है कि २५०,००० से कम न होगी। जापानी सेनाके सम्बन्धमें कुछ लोगोंका अनुमान है कि वह सोवियट सेनाकी आधी है।

जापान अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें अपनी सैन्य-शक्ति बढ़ानेका प्रयत्न इधर कई वर्षोंसे करता आ रहा है। इंगलैण्ड, अमेरिका और जापानमें जो ५:५:३ का अनुपात वाशिङ्गटन-सन्धिके अनुसार स्थापित हुआ था, उसे जापानने लन्दनके नौ-सेना-सम्मेलनमें समझौता करके तोड़ना चाहा। क्योंकि जापान उक्त देशोंसे घटकर नहीं रहना चाहता था। पर जब उसकी बात नहीं मानी गयी, तो वह सम्मेलनसे हट गया और स्वेच्छापूर्वक तैयारी करने लगा। जापानके लिबरल नेता ओकियो ओजाकीने एक बार जापानकी व्यवस्थापिका सभा डायटमें भाषण करते हुए कहा था—"सेना-विभाग कहता है कि उसे पैसेकी आवश्यकता है, लेकिन वास्तवमें आवश्यकता है आदमियोंकी। जापानकी जनसंख्या सिर्फ ७०,०००,००० है और सोवियट यूनियन एवं चीनमें सैकड़ों लाख आदमी हैं। नौ-सेना विभागके लिए पैसे चाहिए, पर सच तो यह है कि अमेरिका और ब्रिटेन सम्पत्तिमें जापानसे बहुत आगे हैं। उनमें और जापानमें बादलों और कीचड़का-सा अन्तर है।" लेकिन इस कीचड़ने बादलोंकी तुलना करनेमें कोई बात उठा नहीं रखी है। चीनमें इसने ब्रिटेन और अमेरिका दोनोंको धता बतानेमें भी कोई बात उठा नहीं रखी है। इस विषयमें जापानकी जो सबसे बड़ी विशेषता रही है, वह है जापानी जनताकी देशके लिए महान् कष्ट सहने एवं त्याग करनेकी प्रवृत्ति। दूसरे देशोंमें जहां इसके लिए जनताको तैयार करना पड़ता है, वहां जापानकी जनता स्वयं अपनी सरकारपर दबाव डालती है कि वह अच्छी सैनिक तैयारी करे। क्योंकि कुछ

जापानी देशभक्तोंने जापानी जनताके हृदयमें यह भाव कूट-कूटकर भरनेकी कोशिश की है कि जापान सारे संसारपर शासन कर सकता है। और एक बार तो एक जिम्मेदार व्यक्तिने १९२९ में संसार-विजयके लिए जापानी सरकारके पास एक योजना भी पेश की थी। जापानी जनताका यह उत्साह इस अंश तक बढ़ गया है कि जब-जब जापानी सरकार किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय मामलेमें समझौतेकी नरम नीतिका अवलम्बन करना चाहती है, तभी सरकारको या तो हटना पड़ता है, अथवा बड़े-बड़े अधिकारियोंकी हत्या करनेसे भी वे नहीं चूकते। जापानके कितने ही मन्त्रिमण्डलोंको इसीलिए जनताके रोपका शिकार होना पड़ा है।

सोवियट यूनियनकी सैनिक तैयारीके सम्बन्धमें रूसने सदा सभी बातोंको गुप्त रखनेकी कोशिश की है, और जो कुछ बातें सामने आयी हैं, अनुमानके आधारपर ही। कुछ लोगोंका अनुमान तो यह है कि कभी-कभी रूसने संसारके सभी देशोंकी अपेक्षा अधिक रुपया शस्त्रास्त्रोंपर खर्च किया है। एक संस्था 'फारेन पालिसी एसोसियेशन' ने १९३६ में विभिन्न राष्ट्रोंकी सैनिक तैयारियोंपर खोज करनेके बाद यह निष्कर्ष निकाला था कि उस साल रूसने ३,०००,०००,००० डालर खर्च किये थे। उस वर्ष किसी भी देशने इतना धन नहीं लगाया था। उस साल जापानने ३००,०००,००० डालर खर्च किये थे।

पूर्वी साइबेरियामें रूसकी तैयारियां और भी गुप्त रखी गयी हैं; पर आमूर और उसूरी नदियोंपर उसकी किलेबन्दी अभेद्य बतायी जाती है और उधर व्लाडीवोस्टककी उसकी तैयारी युद्धकालमें कोरियाके साथ जापानका सम्बन्ध आसानीसे काट सकेगी। रूस और जापानके सैन्य-सीमान्त आमूर, उसूरी और चार्गुन नदियोंसे सटे हुए हैं। हयाशीने १९३७ में एक वक्तव्य देते हुए कहा था कि मञ्चूरियापर जापानका अधिकार हो जानेके बादसे २४०० छोटे-मोटे सङ्घर्ष रूस और जापानमें हो चुके हैं। सङ्घर्षोंकी यह विशाल संख्या आशाजनक भी है और निराशाजनक भी। आशाजनक तो इसलिए कि इतनी अधिक घटनाओंके होते हुए भी रूस या जापान किसीने भी इनके बहाने विशाल युद्ध करनेका इरादा नहीं किया और निराशाजनक इसलिए कि ये घटनायें स्पष्ट करती हैं कि दोनों देशोंमें सदिच्छापूर्ण भावनायें नहीं हैं।

अपने गृहयुद्धों और जापानी युद्धोंकी वजहसे चीनको भी शस्त्रास्त्रोंकी तैयारीकी दौड़में तेजीसे चलकर भाग लेना पड़ा है। चीनके बजटका प्रायः ४० फीसदी भाग सैनिक तैयारीमें जाता है और इसके अतिरिक्त प्रान्तोंके बजटका भी काफी अंश सेनापर खर्च होता है। चीनने अपनी आकाश-सेना तैयार करनेमें काफी सम्पत्ति लगायी है। १९३६ में अमेरिकासे जिन-जिन देशोंमें वायुयान गये थे, उनमें चीनके लिए उसका निर्यात सबसे अधिक था। कई साल तक एक जर्मन युद्ध-विशारद जेनरल फान फाल्केन हासेन नानकिनमें रहकर चीनियोंको सैन्य-शिक्षा देता रहा है।

चीनके विद्यार्थियों तथा सरकारी कर्मचारियोंके लिए सैन्य-शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी है।

रूस, जापान और चीन जैसे एशियाके विशाल देशोंमें ही यह तैयारी इतने जोर-शोरसे नहीं हो रही है। एशियाके छोटे-छोटे राष्ट्रोंने भी इस सम्बन्धमें तेजीसे चलना शुरू किया है। यहां तक कि फिलीपाइन्स द्वीप-समूहमें भी नवजागरण आया था। एक समय था, जब मनिला तथा उसके आसपास अमेरिकाके चार-पांच हजार सैनिक ही फिलीपाइन्सकी रक्षाके लिए काफी समझे जाते थे। पर इधर कई वर्षोंसे वह भी किसी भी दुर्घटनाके लिए अपनेको शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित कर रहा है। यों भी उसे तैयार रहना है; क्योंकि समझौतेके अनुसार ४ जुलाई १९४६ में उसे पूर्ण स्वाधीनता मिल जायगी और तब तक उसे पूरी तरह स्वावलम्बी हो जाना चाहिए। जापानके विश्व-विजयके स्वप्नसे फिलीपाइन द्वीप-समूह छूट नहीं जाता, अतः वह देश समय रहते ही सचेत हो गया है। मेजर जेनरल डगलस मैक आर्थरने फिलीपाइन्सको समर-सज्जासे सुसज्जित करनेमें बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। उन्होंने एक बार कहा था कि फिलीपाइन द्वीप-समूहपर चढ़ाई करके कोई आसानीसे विजय नहीं प्राप्त कर सकता। इसके कारण बताते हुए उन्होंने कहा था कि वहां हवाई जहाज आसानीसे नहीं उतारे जा सकते, उसका समुद्र-तट भी उसकी रक्षा करेगा और गुरिल्ला युद्धके लिए भी वहां खूब सुविधायें हैं। लेकिन दूसरे कितने ही पर्यवेक्षक डगलसके समान आशावादी नहीं हैं। आकाश-युद्धसे फिलीपाइन्सको पराजित करनेमें वे किसी उन्नत देशके लिए बहुत कठिनाई नहीं समझते।

प्रायः ७०० द्वीप दक्षिण और दक्षिण-पश्चिममें नीदरलैण्ड इण्डीजसे मिलते हैं। उक्त अञ्चलोंमें जापानका बहुत अधिक व्यापारिक प्रवेश हुआ है और जापानी तथा डच जहाजों-की प्रतियोगिता उनमें बराबर चलती रही है। इन विशाल और सम्पन्न अञ्चलोंमें जापानका प्रवेश केवल आर्थिक ही है अथवा राजनीतिक भी, यह बात डच अधिकारियोंको बराबर चिन्तित करती रही है। इसीलिए सूरबया तथा न्यूगिनीमें रक्षात्मक तैयारियां भी की गयी हैं।

लेकिन अपनी इन तैयारियोंकी अपेक्षा डच इस बातसे भी अपनेको बहुत अधिक सुरक्षित समझते हैं कि सिङ्गापुरमें ब्रिटेनका नौ-सेना-अड्डा इतना मजबूत है और यद्यपि ग्रेट ब्रिटेन और नीदरलैण्ड्समें ऐसा कोई समझौता नहीं है, पर दक्षिण-पूर्व एशियामें ब्रिटेनके जो हित हैं, उनके कारण उधर जापानकी महत्त्वाकांक्षाओंको ब्रिटेन पनपने नहीं देगा। ईस्ट इण्डीजके तेल-क्षेत्रमें (जोपूर्वी एशियामें सबसे बड़ा तेल-क्षेत्र है) जो ब्रिटिश शेल कम्पनी है, उसके कारण भी ब्रिटेन जापानको उधर आंख न उठाने देगा।

मलाया प्रायद्वीपके एक किनारे सुदूर पूर्वका यूरोपके लिए एक प्रमुख द्वार सिङ्गापुर एक जङ्गलसे अब संसारका एक प्रमुख नौ-सेना-अड्डा हो गया है, जिससे सुदूर पूर्वमें ब्रिटेन-की स्थिति बड़ी मजबूत हो गयी है, और इसीलिए वह जापानकी आंखोंमें बराबर खटकता रहता है। १९२२ में होनेवाली वाशिङ्गटन-सन्धिके अनुसार प्रशान्त महा-सागरमें किलेबन्दीकी मुमानियत कर दी गयी थी। पर सिङ्गापुरके लिए ऐसी कोई बाधा न थी। सिङ्गापुर पूर्वका जिब्राल्टर हो गया है और पूर्वी एशियाके लिए ही नहीं, उसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व हो गया है। चीन और भारत वहां मिलते हैं। सिङ्गापुरसे ही मलायाका रास्ता है, जो जिस्ते और रबरके ख्यालसे संसारमें एक प्रमुख स्थान रखता है। सिङ्गापुरसे कोई जहाजी बेड़ा एक ओर नीदर-लैण्ड्स ईस्ट इण्डीज द्वीप-पुञ्जोंकी रक्षा कर सकता है, दूसरी ओर दक्षिणसे आस्ट्रेलियाकी रक्षा हो सकती है और तीसरी ओरसे भारतकी तरफ किसीको भी बढ़नेसे वह रोक सकता है। यूरोप और सुदूर पूर्वके बीच दौड़नेवाले हवाई जहाजोंका भी वह अड्डा है। कई दृष्टियोंसे सिङ्गापुर ब्रिटिश सत्ताका एक गढ़ हो गया है और यह गढ़ पिछले वर्षोंमें अभेद्य-सा हो गया है। मलायाके उत्तरमें है श्याम। श्याममें प्रवेश करते ही धानसे लदी हरियालीके दर्शन होते हैं और जिधर देखिये, छोटे-छोटे बच्चे नङ्गे-धड़ङ्गे भैंसोंको हाथी बना, उन्हें दौड़ाते दिखाई पड़ते हैं।

एक समय था, जब श्यामका महत्त्व इसके प्राकृतिक सौन्दर्य और इसके प्रचलित रीति-रिवाजोंकी कहानियोंमें था। पर आज वह अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंको लेकर महत्त्वपूर्ण हो गया है। जापानकी कूटनीति वहां भी दांव-पेंच चल रही है। ब्रिटेनका भी वह प्रभाव-क्षेत्र है और श्याममें चीनी व्यापारी हैं, जिनका उद्देश्य अधिकसे अधिक सम्पत्ति बटोरकर अपने देशमें भेजना ही रह गया है। सरकारके ब्रिटिश सलाहकार मि० डब्ल्यू० ए० एम० डालने अपनी १९३६-३७ की रिपोर्टमें बल्कि कहा भी था कि विदेशोंके खर्च तथा श्याम प्रवासी चीनियों द्वारा स्वदेशको जानेवाली लम्बी-लम्बी रकमोंसे श्यामकी मुद्रा-नीतिके स्थायित्वमें खतरा आ सकता है।

दक्षिण-पूर्व एशियामें श्याम ही एक स्वतन्त्र देश है, इसलिए वह अन्तर्राष्ट्रीय कूटनीतियोंके सङ्घर्षका स्थल हो रहा है। श्यामकी नयी राष्ट्रीय सरकारके बनते ही ब्रिटिश क्षेत्रोंमें आशङ्का होने लगी थी कि इसका झुकाव कहीं जापानकी तरफ न हो जाय। जापानका व्यापार वहां खूब बढ़ने लगा। जापानके लिए श्याममें रुईके उत्पादनकी जांच करनेके लिए जापानी विशेषज्ञोंका एक मण्डल वहां पहुंच गया। श्यामके कितने ही युवक नौसेना-कला सीखनेके लिए जापान भेजे गये और इस बातकी अफ़वाह बड़े जोरों-पर उड़ने लगी कि जापानकी आर्थिक सहायतासे मलाया प्रायद्वीपके तङ्ग रास्ते क्राके मुहानेसे एक नहर श्याम द्वारा निकाली जायगी, जिसका अर्थ सिङ्गापुरका आर्थिक एवं राजनीतिक महत्त्व क्षीण करना ही होगा। इस सम्बन्धमें यह बात भी भूलनी नहीं चाहिए कि श्याम तीन ओरसे ब्रिटिश राज्यसे घिरा हुआ है। दक्षिणमें मलाया है और पश्चिम तथा उत्तर-पश्चिममें बर्मा है।

इस प्रकार एशिया अपनेको यूरोपके सांचेमें ढालनेका प्रयत्न कर रहा है। अन्यथा अपने आर्थिक शोषणके बाद उसे अपने अस्तित्वकी भी आशङ्का होने लगी है। यद्यपि शस्त्रास्त्रोंकी इस दौड़में एशिया अभी बहुत पीछे है, पर एशियाई

देशोंके वार्षिक बजट प्रति वर्ष इस दिशामें उनके अग्रसर होनेका प्रमाण देते हैं। लेकिन एशियाकी इस तैयारीको यूरोपकी तैयारीका ही रूप कभी न समझना चाहिए—एशियाकी तैयारी—जापानको छोड़कर अधिकांशतः आत्म-रक्षाके लिए ही है। और जापान ही क्या यूरोपीय राष्ट्रोंसे इस प्रकार सुरक्षित रहता, यदि उसने उन्हींके मुकाबिलेकी सारी तैयारी न कर ली होती? एशियाको आत्मा रखकर तलवार उठानी पड़ी है। और इसके लिए यूरोपीय राष्ट्रोंने ही उसे विवश किया है।

———

एकाकी विसर्जन

कितनी इच्छाओंको लेकर सांझ-प्रात नित आये
देवि! प्रतीक्षामें मैंने भी युग-युग जाग बिताये
भाग रहा जीवनका रथ है, पगडण्डी यह गीली
आज प्राण हैं लौट रहे आंसूमें प्यार छिपाये

ढुलक रहा मोती-सा मेरा जीवन जग-शतदलपर
चकित आज हैं प्राण मौन निज सांसोंपर पल-पलपर
तृषित लोचनोंमें अब तक है जगी लालसा-डोरी
मृत्यु खड़ी है पास और मैं एकाकी भूतलपर

पश्चिममें हो गयी अस्त जब दिनकी अन्तिम रेखा
नभ-समाधिपर सन्ध्याको उडु-दीप जलाते देखा
घोर निराशाकी रजनीमें तारे मौन पड़े हैं
अन्त समय मेरे जीवनकी गत स्मृतियोंका लेखा

अपनी ही छायासे डर मैं रुक जाता चल मगमें
चिन्ता घेर रही आगेसे व्याधा-सी पग पगमें
पाल रहा युग-युगसे उरमें अवनि-गर्भकी ज्वाला
भटक रहा हूं देवि! सिन्धुकी प्यास लिये चिर जगमें

इच्छा थी, जीवन-डेरेमें साथ चार दिन बीते
यौवनका परिधान पहन हम प्रेम-कलश पी जीते
पर न हुआ कुछ, एक स्वप्न था; चार घड़ीका जीवन
बीत गया; अन्तिम क्षण आया विरह-हलाहल पीते!

एकाकी हूं खड़ा, नहीं कोई दिखता सरि-तटपर
हंस है रहा तिमिर मुंह खोले प्रिय जीवनको ढककर
कब तक हाय! संभाल सकेगा प्राण दीप जीवनका?
झञ्झा उठी मरणकी है इस महा-निशामें हंसकर

टूट बिखर रजमें सोयेगी प्रिय तस्वीर सजीली
ढेर रहेंगी लगी कब्रपर स्वप्न-पत्तियां पीली
अन्तर्हित सब गूढ़ गर्तमें, औ' मलीन यह छाया
लुप्त रहेगी, जब आयेगी ऊषा कल दृग-गीली!

—महेश्वरीप्रसाद।

घटना-चक्र

श्रीमती आर० रङ्गनायकी

शामके वक्त, श्याम—मेरे फुफेरे भाई-ने कालेजसे घर आकर किताबोंको मेजपर फेंक दिया और पिताजीके कमरेमें जा खाटपर लेट गया। मेरी मां तब साड़ी खरीदने बाजार गयी थी। इसलिए मैं धीरजसे श्यामके पास गयी और दुःखसे बोलीः—'क्यों भाई, तबियत ठीक नहीं है क्या ?' श्यामने मुसकराकर जवाब दियाः—'हां राधा, सिरमें दर्द बहुत ज्यादा है। मालूम होता है कि शायद बुखार भी आवे।' यह कहकर मानो किसी बातकी याद करते हुए मुझे कमरेसे बाहर चले जानेका इशारा किया। मैं हंसकर उसके पास खाटपर आ बैठी और हाथोंसे उसका मुंह सामने कर कहा—'कोई परवाह नहीं, तुम डरो मत। मां अभी-अभी बाहर गयी है। लौट आनेमें देर लगेगी।' तब तो उसने एक बार मेरी ओर प्यार-भरी नजर डाली और फिर थककर आंखें बन्द कर लीं। मैंने उसके मुंहमें थरमामीटर रखा, तो बुखार १०३ डिग्री था। चिन्तित होकर मैंने कहा—'भाई, इसी खटियाके ऊपर बिस्तर बिछाऊंगी, जरा आरामसे सो जाओ।' लेकिन उसने इनकार कर दिया। उसने मीठी आवाजसे कहा, बिस्तरकी कोई जरूरत नहीं। मेरे छोटे कमरेमें जमीन-पर एक चटाई बिछा दो, तो काफी है। झट मैंने उसके कहे अनुसार एक चटाई बिछा दी।

इतने हीमें मेरी मां वहां आ पहुंची। फुफेरे भाईको पिताकी खाटपर देखकर जल उठी और बोली—'अरे श्याम! इसी घरका अन्न खाकर तुम्हें जरा भी शरम नहीं कि मामाकी ही खाटपर जा लेटे हो? मेरा यहां आना भी तुमने नहीं देखा। छिः! खाटसे जल्दी उतरो।' मांकी ये बातें सुनकर मेरी आंखें आंसुओंसे भर गयीं; मैंने उन्हें तुरन्त पोंछ डाला।

धीरेसे उठकर श्यामने आदरके साथ कहा—'नहीं मामी, मुझे एकाएक बुखार चढ़ आया और सिर दर्द करने लगा, कालेजसे पैदल आनेके परिश्रमसे ऐसा थका कि झट मामाकी खाटपर आकर लेट गया। अपने कमरेमें अभी चला जाता हूं। क्षमा कीजिये।' यह कहकर वह किसी तरह अपने कमरे-में जाकर चटाईपर लेटा। यह सारा दृश्य देखकर मेरा हृदय टूक-टूक हो रहा था। अब मांका क्रोध मेरे ऊपर आ धमका। उन्होंने मुझसे कहा, 'क्यों री, फुफेरे भाईकी शुश्रूषा करने आयी थी?' मैंने इसका कोई जवाब न दिया, चुपचाप वहांसे बाहर चली आयी।

(२)

जब श्यामसुन्दर आठ सालका लड़का था, तभी उसके पिता स्वर्ग चल बसे थे। उसकी विधवा मां अपने एकलौते पुत्र—श्यामसुन्दरको लेकर अपने भाई, अर्थात् मेरे पिताके घरमें दस हजार रुपयोंकी पूंजी लाकर रहने लगी। उसने अपना सारा धन मेरे पिताके हवाले कर दिया। अपनी धनी ननदको मेरी मांने आदरके साथ ही रखा था। यद्यपि मेरे पिताजीके दिलमें कोई बुरा ख्याल नहीं था, तो भी उन्होंने उसके धनको घर-बारके खर्चके लिए व्यय कर दिया। जब मेरी बुआको यह मालूम हो गया कि उसका सारा धन इधर-उधर हो गया और उसके पुत्र श्यामके लिए एक भी पैसा बचा नहीं, तो उसे बड़ा दुःख हुआ और उसी दुःखमें वह बीमार होकर मर गयी। मेरी बुआके मरते समय श्यामसुन्दरकी अवस्था बारह सालकी थी। आखिर वक्त मेरी बुआ श्यामको मेरे मां-बापके सुपुर्द कर, इस दुनियासे सदाके लिए बिदा ले गयी।

उसके बारेमें कुछ कहना चाहूं, तो मेरे दिलमें बड़ा दुःख होता है। मेरी बुआकी अन्तिम याचनाको मां-बाप बिलकुल भूल गये। श्यामपर मेरी मां जो अत्याचार करती है, उसकी गिनती ही नहीं। उसकी शिक्षाके लिए मेरे पिताने एक भी पैसा खर्च नहीं किया। बहुत अक्लमन्द होनेके कारण वह पहले दर्जेसे छात्रवृत्ति पाता आया है।

बुआका धन जबसे खतम हो गया, तबसे मेरी मां उनसे घृणा करने लगी। लेकिन बुआके जीवित रहते समय उसे बाहर प्रकट नहीं कर सकी। उसके मरनेके बाद श्यामको नौकरसे भी नीचतर मानने लगी। मेरे पिताके दिलमें उसके प्रति प्रेम अवश्य था, पर उसे मेरी मांके आगे जाहिर करते डरते थे। इतना अत्याचार सहकर भी श्याम मेरी मां और बापके साथ हमेशा इज्जत और नम्रतासे रहता था। मुझे तो मां इस बातके लिए कभी-कभी डांटा भी करती थी कि मैं श्यामसे प्यार करती हूं।

उस दिन, जिस दिनकी बात मैं कह रही थी, श्याम इण्टरमीजियट परीक्षाके अन्तिम दिनके पर्चेका उत्तर लिखकर घर आया था। उस समय उसकी उमर सत्रह बरसकी थी और मेरी बारह। उसके बाद एक हफ्ते-भर बुखारसे पीड़ित होकर पड़े रहते समय भी मेरी मांने उसपर जो निर्दयता दिखायी, उसकी याद आते ही आज भी मेरा दिल कांप उठता है। उस समय मेरी मांकी कठोरताको देखकर भी पिताने मुंह नहीं खोला। वे चुप ही रहे।

(३)

इस घटनाके दो महीनेके बाद एक दिन मेरे पिताजी दालानमें बैठकर अखबार पढ़ रहे थे और मां वहीं बैठकर माला गूंथ रही थी। पिताजी एकाएक अपने-आपको भूलकर बोल उठे कि अरे! हमारा श्याम तो परीक्षामें प्रान्त-भरमें सर्वप्रथम उत्तीर्ण हुआ है। मेरी मांने यह सुनकर भी मुख फेर लिया। लेकिन मैं यह सुनकर फूली नहीं समायी।

उस दिन बाहरसे श्याम घर लौट आया, तब उसे देखकर पिताजीने बड़े प्यारसे बुला लिया और पीठपर हाथ फेरते हुए कहा कि श्याम, तुमने परीक्षामें खूब सफलता पायी है। क्या तुमने अखबार नहीं देखा? यह सुनते ही उनका मुंह लज्जाके कारण लाल हो गया। उन्होंने नम्रतासे जवाब दिया—"हां, एक मित्रके यहां मैंने समाचार-पत्रमें देख लिया। यह सब आपका आशीर्वाद है।" उसके यों कहते समय ही मांकी, अन्दरसे कुछ गुनगुनाहट-सी मुझे सुनाई दी।

मैं, पिताजी और श्यामसुन्दर तीनों जब बैठकर भोजन कर रहे थे, तब मेरी मांने गोलीकी तरह ये बातें दाग दीं—'परीक्षामें तो जैसे-तैसे उत्तीर्ण हो गये, मगर नौकरीकी जल्द कोशिश करो। दूसरोंके गले कब तक......।' मैंने तुरन्त श्यामकी ओर नजर डाली, तो देखती क्या हूं कि उसकी आंखोंसे आंसुओंकी दो-चार बूंदें गिरने लगीं। यह देखकर मेरा दिल दुःखके कारण कांपने लगा। मैंने सोचा कि मैं बड़ी बदनसीब हूं, जो इस पापिनके पेटसे पैदा हुई। हस्ब-दस्तूर पिता चुप ही रहे।

उस रातको मुझे बड़ी देर तक नींद नहीं आयी। श्यामकी बात सोचती और रोती-रोती अन्तको निद्राकी शरण गयी। स्वप्नमें मैंने श्यामको आत्महत्या करते हुए देखा। यह दृश्य मेरे सामने आते ही मैं बेहद घबड़ा उठी, चिल्लाना चाहा, पर बात बाहर न निकली। सहसा मेरी आंखें खुल गयीं। मैंने मांको पुकारना चाहा, मगर मुझे इस बातका यकीन हो गया कि मैंने केवल स्वप्न ही देखा है। फिर, मैं नींदकी गोदमें दम लेने लगी।

मेरे जागनेपर मालूम हुआ कि श्यामसुन्दर किसीसे बिना कहे-सुने कहीं चले गये। मेरी मांको तो इस बातसे बड़ा ही आनन्द हुआ। लेकिन पिताने कुछ दिन तक उसकी खोज तो लगायी; पर जब कुछ टोह न लगी, तो बादको खोजना भी बन्द कर दिया। बहुत दिन हुए, आज तक उसकी कुछ भी खबर नहीं लगी।

(४)

मेरे पिता मद्रासमें वकील हैं। अब उनकी आमदनी कुछ ज्यादा होने लगी। मांने एक दिन कहा—'देखो, उस अभागेके हमारे घरसे निकल जाते ही आमदनी भी बढ़ने लगी।' यह सुनकर मेरे हृदयमें बड़ी कड़ी चोट लगी, पर क्या करती?

श्यामको गये पांच साल बीत गये। मां-बाप तो उसे बिलकुल ही भूल गये। लेकिन मेरे हृदय-मन्दिरमें वह सदा विराजमान रहते। अब मेरी अवस्था सत्रह वर्षकी हो गयी। मैं पिछली मार्चमें स्कूल-फाइनल परीक्षा दे आयी और परिणामकी प्रतीक्षा करती रही।

इसी बीच, एक दिन पिताने मांसे कहा कि आई०सी०एस० परीक्षामें उत्तीर्ण, कलेक्टरीके कामपर नियुक्त किया गया एक युवक राधाको देखनेके लिए एक हफ्तेमें मद्रास आनेवाला है, जिसका नाम एस० सुन्दर है। यह बात कानोंमें पड़ते ही मेरा सिर चक्कर खाने लगा और मैं नीचे बेहोश होकर गिर पड़ी। जब मेरा होश वापस आया, तब मैंने मां-बापको घबराहटके साथ अपना उपचार करते देखा। मांने प्यारसे कहा—"राधा, तबियत कैसी है? क्या डाक्टर बुलाऊं?" तब मैंने मां-बापसे मुखातिब होकर कहा—'अगर आप दोनोंका मुझपर सच्चा प्रेम है, तो कृपा करके मेरे लिए कोई वर मत खोजिये। मैं अपना हृदय श्यामको अर्पण कर चुकी हूं। जिस समय वह कुशलसे घर वापस आयें, तभी मैं उनसे विवाह करूंगी। अगर वह न आवें, अथवा दूसरी लड़कीसे विवाह करें, तो मैं कुमारी रहकर अपने दिन काटूंगी।' मेरी ये बातें सुनकर पिता चुप रहे।

लेकिन मांके मुंहपरसे कुछ देरके पहले झलकता हुआ प्यार और दुलारका भाव अचानक बदल गया। उन्होंने अपना निज रूप धारण किया, फिर गुस्सेसे कहा—'छिः, नासमझ लड़की, इतने साल गुजर जानेके बाद भी तुम उस दरिद्रको नहीं भूलीं? कौन जाने कि वह अब कहां और कैसे रहता है? तुम उसके बारेमें मत सोचो। कलेक्टरकी पत्नी बनना तुम्हारे भाग्यमें लिखा है। तुम क्यों उस बदनसीब, राहके भिखारीकी फिक्रमें पड़ी हो।' इस प्रकार मां मुझे कोसने लगी। लेकिन मेरे पिताके मुंहसे कोई बात न निकली। मैं अपना मुंह ढांपे पड़ी रही और सिसकियां लेने लगी। मुझे पूरा यकीन हो गया कि अब मेरे रोने-धोनेका कोई असर नहीं होगा।

(५)

जिस दिन आई० सी० एस० पास वर मुझे देखने आनेवाला था, उसके पहले दिन शामके समय मैं अपने कमरेमें अकेली बैठी रही। मां-बाप सामान खरीदने बाजार गये हुए थे। मेरे परीक्षामें प्रथम श्रेणीमें उत्तीर्ण होनेका समाचार उसी दिन आया था। लेकिन इस खबरसे मुझे कुछ भी खुशी नहीं हुई। उस समय एक बूढ़े पहरेदार नौकरके सिवाय घरपर कोई नहीं था। वह भी बगीचेमें काम कर रहा था। एकान्त होते ही रोजकी तरह मैं अपने कमरेमें बैठकर सोचने लगी कि अगर वह आई० सी० एस० वर कल मुझे देखकर पसन्द करे, तो मैं क्या करूं?

इसी बीचमें कोई आधा घण्टा बीता होगा कि एक मोटर गाड़ी द्वारपर आ लगी। किसीके अन्दर आनेकी आहट मेरे कानोंमें पड़ी, पल-भरमें देखती क्या हूं कि एक सुन्दर सजीला युवक मेरे कमरेमें दाखिल हुआ। उसका चेहरा तो मेरे लिए परिचित-सा मालूम पड़ा। मगर, ठीक याद नहीं पड़ता था। मुझे मौन देख उस पुरुषने मुसकराकर कहा—'क्यों राधा! तुम इतनी जल्दी अपने श्यामको भूल गयीं? यह क्या उचित है?' मेरी स्मृति जाग उठी, मारे खुशीके चिल्ला उठी—श्याम, क्या सचमुच तुम मेरे सामने खड़े हो या मैं स्वप्न देख रही हूं?

श्यामने प्यारसे मुझे अपने पास खींचकर कहा—मेरी प्यारी राधा, तुम्हारे चेहरेसे मालूम होता है कि तुम किसी विषम चिन्तासे दुखित हो। मुझे नहीं बताओगी?

तब मैंने अपने दुःखका कारण उससे कहा। यह सुनते ही उसने हंसकर कहा—'प्यारी राधा, तुम डरो मत। तुम्हें देखनेके लिए आई० सी० एस० वाला वर कल नहीं आयेगा। वह आज अभी तुम्हारे सामने खड़ा है।

(६)

इस अचम्भेसे संभलनेके पहले ही मां-बाप आ पहुंचे। श्यामसे और बातें करनेका समय मुझे नहीं रहा। माता-पिताको देखकर श्यामने बड़ी नम्रतासे प्रणाम किया, फिर कहा—'मामी! आपके आशीर्वादसे आई० सी० एस० परीक्षामें उत्तीर्ण हो आया हूं।' यह सुनकर मांके चेहरेपर पछतावा और शर्मका भाव झलकने लगा। मेरे पिताने श्यामको देखकर कुछ भी आश्चर्य प्रकट नहीं किया; यह देखकर मुझे बड़ी हैरानी हुई। श्याम और पिताको एक दूसरेको एक खास तौरसे देखते देख मुझे ताज्जुब मालूम पड़ा।

फिर विवाह पूरा होने तक श्यामसे अच्छी तरह बातचीत नहीं कर सकी। मांने श्यामको जिस तरहसे ठाठबाटसे सजाया, उपचार किया, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

शादी हो गयी। मेरी इच्छा पूर्ण हुई। अपने हृदयकी मूर्तिको मैं पा गयी। उस शहरको मैं और श्याम रवाना हुए, जहां उनकी सब-कलेक्टरीकी नौकरी हुई है। पिता स्टेशनपर आये थे। जब श्याम प्रणाम कर बिदा लेने लगे, तो उनकी आंखोंमें आंसू आ गये। उसी समय गाड़ी रवाना हुई। असीम खुशीके कारण मैं पागल-सी हो गयी। श्याम कुछ देर तक मुझे गौरसे देखकर फिर बोले—'क्यों राधा, क्या सोचती हो?'

मैंने कहा—'मैं उस भाग्यदेवताको मन ही मन मना रही हूं, जिसने तुम्हें मुझे ला दिया है।' यह सुनकर उसने सन्दूक खोला और उसमेंसे एक फोटो निकाल लिया। वह मेरे पिताका फोटो था। उसने गम्भीरतासे कहा—'पहले इस देवताकी पूजा करो। अगर यह उदार-हृदय महीने-महीने बिना किसीसे कहे, चुपचाप धन नहीं भेजते, तो मैं कैसे पढ़कर आई० सी० एस० पास करता और कैसे तुम्हें पानेके योग्य हो सकता?'

यह कहकर उसने फोटोको अपनी आंखोंपर रख लिया। अब मैं सब कुछ समझ गयी। मेरी आंखोंसे आनन्दाश्रु बहने लगे।

———

कर्म और कर्मफल

श्री अनिलवरण राय

कर्मफलमें हिन्दुओंका बड़ा दृढ़ विश्वास है, मानो वह विश्वास उनकी रग-रग तकमें भरा हुआ हो। परन्तु कर्म किस प्रकार फल उत्पन्न करता है—यह तत्त्व अत्यन्त जटिल है, गीता कहती है, 'गहना कर्मणो गतिः'—कर्मकी गति गहन है। साधारण तौरपर इस विषयमें जो लोगोंकी धारणा है, वह घोर अदृष्टवाद है। हिन्दुओंके अधिकांश पुराणोंमें कर्मवादका जो वर्णन मिलता है, वह प्रायः इस प्रकार है :—

हरिणापि हरेणापि ब्रह्मणापि कथं च न।
ललाटलिखिता रेखा परिमार्ष्टुं न शक्यते॥

पूर्वजन्मके कर्मफलके अनुसार ललाटमें जो लिख गया है, उसे कोई टाल नहीं सकता—भोगके द्वारा जब सब कर्मोंका क्षय हो जायगा, केवल तभी हमारे दुःखोंका अन्त होगा। इस प्रकार विश्वास रखनेसे सब प्रकारके दुःखोंके भीतर एक प्रकारकी सान्त्वना और सहनशक्ति अवश्य प्राप्त होती है; परन्तु जातिकी दुर्बलताके युगमें इसके कारण घोर जड़ता, तामसिकता, निष्क्रियता उत्पन्न होती है—इस प्रकार अदृष्ट-वादसे, कर्मवादसे हिन्दुओंको बहुत अधिक हानि पहुंची है और आज भी पहुंच रही है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु वास्तवमें यह हिन्दुओंके कर्मवादकी विकृति है—बौद्धधर्मके प्रभावसे यह विकृति उत्पन्न हुई थी। उपनिषद् और वैदा-न्तिक दर्शनोंमें हम जिस कर्मवादको पाते हैं, वह ऐसा निराशासे भरा हुआ अदृष्टवाद नहीं है। वहांपर अदृष्टके साथ पुरुषकारका समन्वय किया गया है। बौद्धधर्मके साथ हिन्दूधर्मका भेद यही है कि बौद्धधर्ममें आत्मा या पुरुष कुछ भी नहीं है और हिन्दूधर्मके अनुसार आत्मा ही सब कुछ है, सर्वं खल्विदं ब्रह्म। यह सारा जगत् आत्माके अन्दर है, आत्माके द्वारा है और आत्माके ही लिए है। हम जो कुछ सोचते-विचारते हैं, जो कुछ कार्य करते हैं, जो कुछ अनुभव करते हैं, वह सब आत्माके लिए है। प्रकृति आत्माके ऊपर निर्भर करती है, इसकी सारी गति, सारे खेल, सारी क्रियायें आत्माके लिए हैं।

कार्य-कारणकी शृङ्खलाके अतिरिक्त अदृष्ट नामकी और कोई चीज नहीं, और यह शृङ्खला है नियमका ही एक दूसरा नाम—और नियम है पुरुषकी तृप्तिके लिए, भोगके लिए प्रकृतिके कर्मकी धारा। पाश्चात्य दर्शनमें इसको नियम कहा जाता है और हम लोगोंके दर्शनमें इसको धर्म कहा जाता है, यही विश्वकी क्रियाको धारण किये हुए है। प्रत्येक वस्तुका एक धर्म है और उसका कर्म उस धर्मके अनुसार ही परिचालित होता है:—जैसे, आगका धर्म है जलाना, जलका धर्म है शीतलता। प्रत्येक जीवका धर्म है, उसी तरह प्रत्येक श्रेणी या जातिका धर्म है, उसी तरह विश्वका भी धर्म है और ये सभी अपने-अपने धर्मके अनुसार ही कर्म करते हैं। विश्वके धर्मके अनुसार एक-एक प्रकारका कर्म एक-एक प्रकारका विशिष्ट फल प्रदान करता है। यही कार्य-कारणका सारा नियम है।

हिन्दुओंके मतानुसार केवल हमारा बाह्य कर्म और वाक्य ही नहीं, बल्कि हमारा विचार, हमारा भाव भी कर्मका ही अङ्ग है और ये सभी कर्म फल उत्पन्न करते हैं। और कृत कर्मका फल भी नाना प्रकारका होता है। एक प्रकारका फल है—हमारे विचार, अनुभूति और कर्मधाराके द्वारा इस जीवनमें हमारे अन्दर ऐसे अनेक प्रकारके अभ्यासों और संस्कारोंकी सृष्टि होती है, जो दूसरे जन्ममें हमारे सुख या दुःखके कारण होते हैं। मनुष्यकी मृत्यु होनेपर उसके शरीर और प्राण ही विश्व-शरीर और विश्व-प्राणमें मिल जाते हैं; परन्तु उसका सूक्ष्म शरीर अपनी शक्तियों और संस्कारोंको अपने साथ ले जाता है और उसीके अनुसार दूसरे जन्ममें उसका जीवन निर्धारित होता है। बृहदारण्यक उपनिषद्की टीकामें सुरेश्वराचार्य कहते हैं :—

जन्मान्तरारम्भहेतुः किं स्यादिति तदुच्यते।
विद्या सम्पादिता तेन पुरा कर्म च यत्कृतम्।
या वासना च तत् सर्वं जन्मभोग्यादि कारणम्॥

और एक प्रकारका फल होता है, हम अपने कर्मके द्वारा जब दूसरेका कल्याण या अकल्याण करते हैं, तब उसके फल-

स्वरूप हमें सुख या दुःख भोगना पड़ता है। फिर एक प्रकारके कर्मकी प्रतिक्रियाके रूपमें विपरीत प्रकारके कर्मकी उत्पत्ति होती है और उसके अनुसार सुख-दुःख भोग करना पड़ता है। यही कर्मका श्रृङ्खल, कर्मका बन्धन है। इसीको हिन्दू अदृष्ट कहते हैं और इससे मुक्ति पानेके लिए साधना करते हैं।

बौद्धधर्मके मतानुसार प्रकृतिकी यह कार्य-कारण-श्रृङ्खला ही विश्वका चरम नियम है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है—अतएव कोई इसे अतिक्रम नहीं कर सकता। भोगके द्वारा पूर्व कर्मका क्षय कर तथा नये कर्मोंको सञ्चित न कर निर्वाण प्राप्त करना ही, शून्यमें विलीन हो जाना ही दुःख निवारण करनेका सच्चा मार्ग है और यही मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है। परन्तु हिन्दू-मतानुसार प्रकृति ही सब कुछ नहीं है, हमारे भीतर एक ऐसी चीज वर्तमान है, जो प्रकृतिसे परे है, ईश्वर, प्रभु, विभु है। वह चिर-मुक्त और आनन्दमय है। यही हमारा आत्मा है। यह आत्मा मूलतः विश्वके परम आत्माके साथ एक है। आत्मा कर्म नहीं करता, इसीसे वह अपने कर्मके द्वारा बद्ध भी नहीं होता। प्रकृति ही कर्म करती है, सब वस्तुओंका स्वभाव निश्चित करती है, प्रकृतिसे ही नियम या धर्म उत्पन्न होता है। आत्मा या पुरुष स्वभावको धारण किये रहता है, कर्म और उसके फलको देखता है, भोग करता है, नियम या धर्मके लिए अपनी अनुमति देता है। आत्मा ही राजा, प्रभु, ईश्वर है, उसकी अनुमतिके बिना प्रकृति कुछ भी नहीं कर सकती; परन्तु वह राजा उस नियमसे ऊपर और मुक्त है।

पुरुषकी अनुमति देनेकी जो यह क्षमता है, यहींपर हमारी स्वाधीनता विद्यमान है। पुरुष अनुमति देता है कि उसका जीवन, उसका भोग देश, काल और निमित्तके द्वारा सीमाबद्ध होगा, स्वभाव और धर्मके द्वारा नियन्त्रित होगा; फिर प्रकृति उसीके अनुसार जीवनलीला प्रकट करती है, विकसित करती है। पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ, रोग-स्वास्थ्य, सुख-दुःख—इन सबके लिए पुरुष या तो अनुमति देता है या नहीं देता, अपनी आसक्तिके अनुसार पुरुष जो चाहता है, प्रकृति उसीकी निरन्तर सृष्टि करती है। पुरुष जिस चीजसे विरक्त हो जाता है, उदासीन हो जाता है, उसे प्रकृति बन्द कर देती है। परन्तु प्रकृतिमें जो गति एक बार आरम्भ हो जाती है, उससे पुरुषके अनुमति हटा लेनेपर भी, उसे प्रकृति उसी क्षण बन्द नहीं कर सकती। तब पुरुष दृढ़ताके साथ जो कुछ इच्छा करता है, सङ्कल्प करता है, उसके अनुसार धीरे-धीरे प्रकृति अवश्य परिवर्तित हो जाती है। यही साधनाका रहस्य है। पुरुषकी इच्छासे ही जगत् चल रहा है, अदृष्ट इस इच्छाको पूरा करनेकी ही एक प्रक्रिया-मात्र है। आज आधुनिक जगत् इस बातको समझने लगा है।

परन्तु हम प्रकृतिके प्रभु हैं—इस बातका जीवनमें अनुभव प्राप्त करनेके लिए हमें अपने अन्दर विद्यमान आत्माके साथ युक्त होना चाहिए—अपनी इच्छाको विश्व-पुरुषकी इच्छाके साथ एक कर देना चाहिए। मूलतः हम उस विश्व-पुरुषके साथ एक हैं; परन्तु व्यष्टिगत वैचित्र्यके विकासके लिए मनुष्यको जो स्वाधीनता दी गयी है, उसका व्यवहार जब मनुष्य अज्ञानके वश होकर करता है, तब वह अपनेको बद्ध समझता है। जब हम ज्ञानपूर्वक उस स्वाधीनताका व्यवहार करते हैं, तब वही विश्वपुरुषकी इच्छाके प्रति हमारा आत्मसमर्पण कहलाता है। हमारी ही जो श्रेष्ठ सत्ता है, उसीके प्रति आत्मसमर्पण करके हम परम मुक्ति और ईश्वरत्व प्राप्त करते हैं।

भगवान् विश्वके अधीश्वर हैं और व्यष्टिगत जीव उन्हीं-का प्रतिनिधि है; जीवकी जो व्यष्टिगत प्रकृति है, उसके ऊपर वह भी ईश्वर, प्रभु है। प्रत्येक जीवका विशिष्ट धर्म है, उसके सभी कर्म उसी धर्मके द्वारा परिचालित होते हैं। तब क्या मनुष्य पूर्ण रूपसे अपनी प्रकृतिके वशमें है, उसका क्य कोई भी दायित्व नहीं? परन्तु उसकी प्रकृति तो उसकी ह अपनी सृष्टि है, उसके प्राक्तन कर्मका फल है; और जिसकी सृष्टि उसने स्वयं की है, उसे वह परिवर्तित भी कर सकता है। मनुष्यकी प्रकृति और कर्म कैसा होगा, इसका निश्चय विश्व-प्रकृतिके द्वारा होता है; परन्तु इस विश्वप्रकृतिके नियमका ही एक अंश यह है कि हमारा अन्तरात्मा बार-बार जो कुछ चाहेगा, उसीके अनुसार वह हमारे जीवनका विकास करेगी। नाना प्रकारकी अभिज्ञताके द्वारा अपनी प्रकृतिका विकास करनेके लिए मनुष्यको स्वाधीनता दी गयी है, मनुष्य जब उस स्वाधीनताका उपयोग अनुचित ढङ्गसे करता है, तब उसकी प्रकृतिके अन्दर नाना प्रकारकी बाधाओं और बन्धनोंकी सृष्टि होती है; परन्तु मनुष्य यदि दृढ़ सङ्कल्पके साथ उन सब

बाधाओंको दूर करना चाहे, तो फिर उसकी प्रकृति भी बदल जाती है। पहले मनुष्यने अपनी शक्तिका जिस प्रकारसे उपयोग किया था, उसीके अनुसार विश्व-प्रकृतिने भी उसके साथ व्यवहार किया, और अब वह जिस प्रकार व्यवहार करेगा, विश्वप्रकृति भी उसीका प्रतिफल देगी—यही कर्मवादका मूल रहस्य है।

विश्व-प्रकृति किस प्रकारसे हमारे कर्मका फल देती है, यह समझना बहुत कठिन है; कारण, प्रकृतिके अन्दर नाना स्तर हैं, देह, प्राण, मन इत्यादि विभिन्न स्तरोंके विभिन्न नियम, विभिन्न धर्म हैं, उन सबकी जटिल क्रिया-प्रक्रियाके द्वारा कर्मकी गति और धारा निर्धारित होती है। जब हम विश्वपुरुषकी चेतनाके अन्दर प्रवेश करेंगे, तभी हम कर्मका पूरा-पूरा अर्थ समझनेकी आशा कर सकते हैं। अपनी अज्ञानपूर्ण मानुषी मन-बुद्धिके द्वारा हम उसका आंशिक क्षीण आभास-मात्र पा सकते हैं। मोटे तौरपर यह कहा जा सकता है कि हम जैसा कर्म करते हैं, उसीके अनुसार फल पाते हैं; परन्तु वह फल ठीक कैसा और कितना होगा, इसका सूक्ष्म रूपमें हिसाब करके कहना सम्भव नहीं; क्योंकि वह बहुत जटिल शक्तियोंकी क्रिया-प्रतिक्रियाके द्वारा निर्धारित होता है। इसी कारण कर्मफलको अदृष्टकी क्रिया कहते हैं।

कर्मकी कुछ धाराओंका विश्लेषण किया जा सकता है। सबसे पहले है जड़ जगत्का नियम। आगमें हाथ डालनेसे हाथ अवश्य जलेगा; जहांपर प्रकृतिके नियमके अनुसार भूकम्प होता है, वहांपर जो लोग रहेंगे, उनको उसका फल भोगना ही होगा। यदि प्रकृतिको पद-पदपर यह हिसाब करना पड़े कि कौन बचेगा या कौन मरेगा और फिर उसके अनुसार अपनी कर्मधाराको बदलना पड़े, तो नियमानुगत जड़ जगत् ही नहीं रह सकेगा, और जड़ जगत् न होनेपर मनुष्य ही कहां रहेगा, उसका धर्माधर्म, उसका सुख-दुःख ही कहां रहेगा? अतएव जड़ जगत्में जो लोग रहना चाहते हैं, अपने जीवनका विकास करना चाहते हैं, उन्हें जड़ जगत्के नियमोंको जानकर और सावधान होकर चलना ही होगा, अन्यथा असावधानीका फल उन्हें भोगना ही होगा। जड़ जगत्में प्राणका विकास कर उसके भीतरसे होकर चैतन्यका उच्चसे उच्चतर विकास होता है, यही पार्थिव क्रमविवर्त्तनका लक्ष्य तथा विश्व-पुरुषकी इच्छा मालूम होती है, इसके अतिरिक्त विवर्त्तनकी और कोई युक्तिसङ्गत व्याख्या नहीं पायी जाती। प्राकृतिक दुर्घटनाके कारण जितने जीव ध्वंस होते हैं, उनकी क्षतिको प्रकृति निरन्तर अजस्र जीवोंकी सृष्टि करके पूरी कर रही है और इस प्रकार जीवनकी धाराको सुरक्षित रखते हुए विश्व-पुरुषकी इच्छा पूरी कर रही है।

परन्तु साधारण तौरपर कर्मफलका जो अर्थ समझा जाता है, उससे ऐसा मालूम होता है कि जगत्में एक प्रकारके नैतिक नियमका राज्य है, न्याय-अन्याय, पाप-पुण्यका विचार है और तदनुसार मनुष्यको अपने-अपने कर्मका फल भोगना पड़ता है। परन्तु वास्तवमें न्याय या पुण्यके साथ सांसारिक सुख-दुःखका कोई अन्तरङ्ग सम्बन्ध नहीं है—न्याय और पुण्यका एक आदर्श और नीति है, बहुत बार उसका अनुसरण करनेके लिए बहुत कुछ त्याग करना, कष्ट स्वीकार करना पड़ता है, और उस आदर्शका अनुसरण करनेसे हमें जो फल प्राप्त होता है, वह है हमारे मनकी, चरित्रकी, आत्माकी उन्नति, बाहरी कोई सफलता या विजय नहीं। तो भी साधारण मनुष्यके बाह्य सुखभोगमें आसक्त होनेके कारण उसे सुखका लोभ दिखाकर ही पुण्यवान, नीतिवान बनानेकी चेष्टा की जाती है और इसी कारण प्रधानतः धर्म-शिक्षाके रूपमें यह कहा जाता है कि नैतिक आदर्श, न्याय, पुण्य इत्यादिका पालन निष्काम, निःस्वार्थ भावसे अवश्य करना चाहिए; व्यक्तिगत स्वार्थका हिसाब लगानेपर भी यह मालूम होता है कि इस आदर्शका अनुसरण करना ही युक्तिसङ्गत है, अन्त तक न्यायका ही पथ, धर्मका ही पथ सबसे अधिक लाभदायक है; क्योंकि इस जगत्में एक न्यायशील विचार-कर्त्ता हैं; मनुष्यसे कहा जाता है कि पापी लोग ध्वंस हो जायंगे, धार्मिक लोग ही सौभाग्यशाली होंगे, धर्मका मार्ग ही सच्चे सुखका मार्ग है। परन्तु वास्तविक जीवनमें यह देखा जाता है कि यह सत्य नहीं है, और मनुष्य भी सर्वदा अपने-आपको धोखा नहीं दे सकता, इस कारण यह कहा जाता है कि पाप-पुण्यका फल यदि यहां न मिले, तो स्वर्ग और नरकमें तथा परजन्ममें उसे भोगना पड़ता है।

इसमें सन्देह नहीं कि इस साधारण मतमें बहुत कुछ सत्य विद्यमान है और इसके लिए परकालका हिसाब लेनेकी जरूरत नहीं होती, बल्कि इस पृथ्वीपर ही इसकी सत्यताका पर्याप्त प्रमाण पाया जाता है। परन्तु यह केवल आंशिक रूपमें

ही सत्य है—कर्मके फलकी सृष्टि करनेमें नैतिक नियमोंके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारकी शक्तियां कार्य करती हैं और, पाप-पुण्यके फलस्वरूप ठीक परिमाणके अनुसार बाह्य दुःख या सुख मिलेगा—इस स्थूल नियममें बहुत व्यतिक्रम देखा जाता है ; अतएव यही इस विषयका सम्पूर्ण सत्य नहीं है। यदि वास्तवमें नैतिक नियमका ही जगत्‌में प्राधान्य होता, तो फिर बहुत बार शुभ फल प्राप्त करनेके लिए अशुभ उपायका क्यों अवलम्बन करना पड़ता ? बहुत बार देखा जाता है कि जो अन्याय और पापके पथका अनुसरण करते हैं, वे बहुत शीघ्र अपने कार्यमें सफलता प्राप्त करते हैं, 'जहां धर्म वहां विजय' का नियम भी वास्तविक जीवनमें लागू नहीं होता। अन्तमें यदि धर्मकी जय होती है, तो वह केवल धर्मके ही जोरसे नहीं होती, उसके साथ शक्तिका भी योग रहता है। महाभारतमें अन्तमें धर्म-पक्ष युधिष्ठिर आदिको विजय प्राप्त हुई थी; परन्तु वह केवल धर्मके जोरसे नहीं प्राप्त हुई थी, उसके लिए अर्जुन-जैसे धनुर्धरकी भी आवश्यकता हुई थी। फिर भी व्यक्तिगत, समष्टिगत या जातिगत सफलताके लिए जो शक्तियां कार्य करती हैं, उनमें धर्म और नैतिकताका भी एक स्थान है और जो उसके विरुद्ध आचरण करते हैं, उनको किसी-न-किसी दिन उसका अशुभ फल भोगना ही होता है। भारतके जिन नेताओं और राजाओंने अपने अन्दर कलह करके इस सोनेके देशको मुट्ठीभर बनियोंके हाथमें सौंप दिया था, उनके उस कर्मका अशुभ फल भारतीय जाति दो सौ वर्षोंसे भोग रही है। अंगरेजों और फरासीसियोंके साम्राज्यवादी कृत्योंके फलस्वरूप आज उनके ऊपर जर्मनीके साम्राज्यवादकी भीषण विपत्ति टूट पड़ी है।

कर्मका फल होता है; परन्तु ठीक किस नियमके अनुसार यह फल आता है, इसका ठीक-ठीक निर्णय करना मनुष्यकी साधारण बुद्धिसे परे है, यद्यपि इस विषयमें एक स्थूल नियम कायम करके मनुष्यको पापसे निवृत्त और पुण्यमें प्रवृत्त करनेकी चेष्टा की जाती है। कार्यतः कर्मवादसे हम केवल इतनी शिक्षा निश्चित रूपसे ले सकते हैं कि केवल प्रकृतिकी प्रेरणासे, काम, क्रोध, लोभ आदि रिपुओंकी प्रेरणासे अन्धेकी भांति न चल कर्तव्याकर्तव्यकी विवेचना करके ही कार्य करना उचित है। किसी भी तरह हमें अदृष्टवादको प्रश्रय नहीं देना चाहिए, क्योंकि हमारा वर्तमान दुःख यदि हमारे प्राक्तन कर्मका फल हो, तो हम अपने वर्तमान कर्मके द्वारा उस अशुभको जय भी कर सकते हैं, हिन्दूशास्त्रोंमें इसी कारण पुरुषकारके ऊपर ही विशेष जोर दिया गया है। योगवाशिष्टमें स्पष्ट रूपमें यह कहा गया है—

अथो येदशुभो भावः त्वां योजयति सांकृते।
प्राक्तनस्तद् आशु यत्नाज् जेतव्यो भवता बलात्॥

किसीको दुःख भोग करते हुए देखकर यह मानना कि वह अपने पापका फल भोग रहा है और उसका प्रतिकार करनेके लिए आगे न बढ़ना कर्मवादका जघन्य अपव्यवहार है। कारण, हम कह चुके हैं कि सब प्रकारके दुःख पूर्वकृत पापके कारण ही आते हों, ऐसी बात नहीं है, नाना प्रकारकी शक्तियोंके, नाना प्रकारके कारणोंके समवायसे मनुष्य सुख-दुःखरूपी फल प्राप्त करता है ; इसके अतिरिक्त अनेक समय ऐसा भी होता है कि एक आदमीके कर्मका फल किसी दूसरे आदमीको भोगना पड़ता है। और यदि पापके फलसे ही कोई दुःख पावे, तो फिर उस दुःखभोगके द्वारा ही उसके कर्मका भोग शेष हो गया—यह भी कौन कह सकता है ? अतएव कर्मवादकी दुहाई देकर किसीके दुःखको निवारण करनेसे अलग होना अथवा उसके दुःखकी मात्रा और भी बढ़ा देना हृदयहीनताका ही परिचायक है। दूसरी ओर, यदि यह ठीक हो कि जगत्‌के शाश्वत नियमके अनुसार सभी अपने-अपने कर्मका फल पायेंगे, तब फिर मनुष्यके लिए, समाजके लिए यह उचित नहीं है कि वह किसीको किसी पाप या अपराधके लिए दण्ड दे—जो लोग किसी भी कारणसे मनुष्यको दण्ड देते हैं, उन्हें उस दण्ड देनेके कर्मका फल भोगना ही होगा। अत्याचारी समाज स्वयं अपने अकल्याणको बुला लाता है। समाजका कर्तव्य यह नहीं है कि वह पापीको, अपराधीको दण्ड दे, बल्कि उसका कर्तव्य यह है कि वह ऐसी व्यवस्था करे, जिससे पापी, अपराधी मनुष्य अपना सुधार कर सके।

लौकिक धर्मोंकी जो यह शिक्षा है कि भगवान् न्यायके अवतार हैं, वह पापीको पापके लिए दण्ड देते हैं, पुण्यवानको पुरस्कार देते हैं, यह मानवीय राजाका आदर्श विश्वराजाके ऊपर आरोप करना है; इस तरह साधारण लोगोंको

भय दिखाकर या लोभ दिखाकर समाजमें एक प्रकारकी सुव्यवस्था रखी जा सकती है (इस युगमें अब यह भी सम्भव नहीं); परन्तु इस प्रकार मनुष्यको पुण्यात्मा नहीं बनाया जा सकता। दुःखके भयसे, सुखके लोभसे जो पुण्य किया जाता है, वह पुण्य ही नहीं है; जो न्याय है, जो सत् है, न्याय या सत् होनेके नाते ही उसे करना, फलाफलकी ओर दृष्टि न डालना यही वास्तविक पुण्याचरण है। इस प्रकारके पुण्यकर्मके द्वारा मनुष्यके आत्माकी उन्नति होती है, उसकी प्रकृति शुद्ध और रूपान्तरित होती है—यह विश्वके शाश्वत नियमके अनुसार ही होता है, इसके लिए किसी अपार्थिव राजाको पाप-पुण्यका विचार करके दण्ड या पुरस्कार देनेकी व्यवस्था नहीं करनी पड़ती। विश्व-नियमके अनुसार केवल पापीको ही दण्ड नहीं मिलता, भूलके लिए, अज्ञानके लिए, बेवकूफीके लिए, दुर्बलताके लिए, सङ्कल्प और तपस्यामें त्रुटि करनेके लिए भी मनुष्यको दुःख भोगना पड़ता है। इस नियमका मर्म यही है कि हमारे अन्दर जो त्रुटियां, भूलें या दुर्बलतायें हैं, उन सबका फल हमें भोगना होगा, कभी-कभी वह फल साङ्घातिक भी हो सकता है; हम अपने कर्मकी, व्यवहारकी त्रुटिको सुधार सकते हैं, परन्तु हम यदि ऐसा न करें, तो उसका फल हमें भोगना ही होगा, यहां तक कि अपनी त्रुटिकी तुलनामें कहीं अधिक दुःख हमें भोगना पड़ सकता है, एक सामान्य भूलके कारण हमारी सारी तपस्याका फल नष्ट हो सकता है। यह नियम चाहता है कि मनुष्यको जो स्वाधीनता दी गयी है, इच्छा-शक्ति दी गयी है, उसका सद्व्यवहार करके वह अपनेको पूर्ण, निर्दोष बनावे, अपने अन्दर निहित भागवत सत्ताको विकसित करे। जब तक वह ऐसा नहीं करता, तब तक उसे आघातपर आघात खाना ही होगा।

कर्मकी एक और धारा होती है, उसे हम प्रतिशोधकी नीति कह सकते हैं। किसीके ऊपर हमने पत्थर फेंका, किसी गुप्त शक्तिकी क्रियाके द्वारा वह पत्थर लौटकर हमारे सिर लगा। हमने एक आदमीका सर्वनाश किया, कुछ दिन बाद हमारा भी सर्वनाश होने लगा। संसारमें साधारण तौरपर इस प्रकारका कर्मफल दिखाई न देनेपर भी किसी-किसी क्षेत्रमें ऐसा होता है और ऐसे दृष्टान्तके द्वारा मनुष्यकी असत् प्रकृति बहुत कुछ संयत होती है। तब इसका कोई कटा-छंटा सुनिश्चित नियम नहीं। कर्मकी एक दूसरी धारा यह है कि शुभ शुभकी सृष्टि करता है और अशुभ अशुभकी। यह नीति भी कुछ अंशमें सत्य है और मनुष्यकी व्यावहारिक बुद्धि इसका हिसाब करके चलनेकी चेष्टा करती है। परन्तु इसके ऊपर भी पूरी तरहसे निर्भर नहीं किया जा सकता। क्योंकि बहुत बार ऐसा देखा जाता है कि हमारे शुभ कर्मका फल अशुभ होता है और फिर अशुभ कर्मका फल शुभ होता है। ईसा मसीहने शान्ति और प्रेमकी वार्ताका प्रचार किया और उन्हें 'क्रास' पर चढ़ना पड़ा। दूसरी ओर आटिला और चङ्गेज खां मृत्यु-काल तक सिंहासनपर आसीन रहे।

अतएव ऐसा मालूम होता है कि यह निश्चित करना कठिन है कि कर्मका फल ठीक किस नियमसे आता है, क्योंकि उसके अन्दर नाना प्रकारकी धारायें मिली हुई हैं। और यह नियम है ईश्वरका नियम, वह इसी नियमके द्वारा जगत्में अपनी इच्छा पूर्ण कर रहे हैं। उस इच्छाकी पूर्तिके लिए आवश्यक होनेपर वह इस नियमका व्यतिक्रम भी कर सकते हैं, इसी कारण भगवान्के शरणापन्न होकर मनुष्य समस्त कर्म और कर्मफलसे शीघ्र मुक्त हो जाता है। सभी नियमोंका चरम-लक्ष्य है भगवान्के साथ मिलन—पूर्ण शरणागतिके द्वारा जो मनुष्य भगवान्के साथ युक्त हो जाता है, वह सभी नियमोंसे, सम्पूर्ण कार्य-कारण-श्रृङ्खलासे ऊपर चला जाता है।

———



जीनेकी कला

श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०

जीवनमें सफलता प्राप्त करनेके लिए यह नितान्त आवश्यक है कि आप जीनेकी कलाको समझें। जिन्दगीका प्रति क्षण आपको चुनौती देता है कि आप बाह्य तथा आन्तरिक शक्तियोंके खिलाफ मोर्चा लें। यदि आप जागरूक रहे तथा सहजबुद्धिसे आपने काम लिया, तो वह क्षण निस्सन्देह आपके लिए विजयकी घड़ी साबित होगा; किन्तु यदि आप वहां गाफिल पड़े या मौकेसे चूक गये, तो वही क्षण आपके लिए निराशा-जनक साबित हो सकता है।

केवल बाह्य परिस्थितियां ही हमारे जीवनकी सफलताओंपर पूर्ण नियन्त्रण रखती हैं—ऐसा सोचना एक भारी गलती है। समान परिस्थितियोंमें भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न तरहसे पेश आते हैं। जिन्दगीका प्रत्येक दिन हमारे लिए एक बहुमूल्य प्रयोग है। आनेवाले कलके लिए हम अपने इस प्रयोगसे सबक सीख सकते हैं। अपने ही तजरुबे नहीं, अन्य लोगोंके तजरुबेसे भी हम फायदा उठा सकते हैं।

आपने इतने दिन इस संसारमें बिताये हैं। इस लम्बे अरसेमें आपने अपने व्यक्तित्वका कहां तक विकास किया है? दुनियामें आगेको कदम बढ़ानेके लिए सबसे कीमती पूंजी आपका व्यक्तित्व, आपका ज्ञान है। आपके व्यक्तित्वमें निहित हैं—आपकी आदतें, आपकी रुचि, आपका ज्ञान और आपकी दूसरोंको प्रभावित करनेकी क्षमता। आपके व्यक्तित्वके ये भिन्न-भिन्न पहलू जिस हद तक उन्नति कर पाये होंगे, उतनी ही अधिक सम्भावना आपके जीवनके सफल होनेकी हो सकती है।

तो जरा आप अपने अन्दर झांकिये। जरा इन प्रश्नोंका उत्तर ढूंढ़िये और तब आपको मालूम होगा कि आप अपने व्यक्तित्वका निर्माण कहां तक कर पाये हैं। क्या आप समूचा दिन अकेले व्यतीत कर सकते हैं? इस अवकाशमें क्या आप अनेक ऐसे काम करते हैं, जो आपके ध्यानको आकर्षित रखते हैं? कहीं आप मनहूसोंकी-सी सूरत बनाकर उदास तो नहीं बैठ रहते? सन्ध्याके डूबते हुए सूर्यकी अरुणिमा अथवा सिनेमाके वक्त या चा-पार्टीमें यदि आपका साथी न आ सका, तो आपकी तबियत एकदम उचट तो नहीं जाती? यदि ऐसे मौकोंपर आप अकेले ऊबते नहीं, बल्कि उल्लासके साथ अपना समय व्यतीत कर लेते हैं, तो आप अपनी गिनती उन व्यक्तियोंमें कर सकते हैं, जिनकी आत्मनिर्भरताका विकास पर्य्याप्त रूपमें हो चुका है।

आत्म-संयमका भी आपके व्यक्तित्वमें एक विशिष्ट स्थान है। जिन्दगीके खेलमें दांव-पेंच लगाते समय आत्म-संयमसे बड़ी मदद मिलती है। धैर्य्य और आत्म-संयम ही आपकी गाढ़े समयपर मदद करते हैं। अतः इसकी जांचके लिए भी आपको अपने अन्दर झांकना होगा। तो जरा इन प्रश्नोंपर गौर कीजिये—किसी काममें असफल होनेपर क्या आप झल्ला उठते हैं? क्या ऐसे मौकेपर झूठ-मूठका, एक हठीले बालककी तरह, आप बावेला मचा देते हैं? नाकामयाबी हासिल होनेपर क्या आप हफ्तों तक उसीके रञ्जमें पड़े रहते हैं या जल्द ही उसके प्रतिकारके लिए नयी योजना बना लेते हैं?

अब देखना है, आपकी निपुणताका क्या हाल है। अपने पेशेमें आप निपुणता प्राप्त किये बगैर कभी स्वयं अपने पैरोंपर खड़े हो ही नहीं सकते, और न अगली लाइनमें ही पहुंचनेकी कभी आशा कर सकते हैं। जो आदमी अपने कामको बखूबी जानता है, वह किसीकी मददका मुहताज नहीं रहता—अपना कन्धा ऊंचा करके वह सबके सामने निकल सकता है। इसके प्रतिकूल जो लोग अपने काममें कच्चे होते हैं, उनके दिलमें हर वक्त एक धुकधुकी-सी पैठी रहती है। दूसरोंकी बांह पकड़े बगैर वे एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। इस सिलसिलेमें इन प्रश्नोंपर गौर करना हितकर होगा—

क्या आप अपनी गलतियोंकी जिम्मेवारी दूसरोंके ऊपर न डालकर स्वयं अपने कन्धोंपर उसे ले लेते हैं? क्या आप किसी समस्यापर निर्णय बिना द्विधामें पड़े ले सकते हैं? क्या बिना अफसोस किये या पछताये, आप पुरानी योजनाको छोड़कर नयी योजनाको अपना लेते हैं? क्या एकाएक

नवीन परिस्थितियोंमें पड़ जानेपर आप बिना घबराये हुए फौरन् अपना आगेका कार्य्यक्रम निश्चित कर सकते हैं? क्या जब आपके प्रति अन्याय होता है, तो समझौतेकी बात न सोचकर आप उस अन्यायके प्रतिकारकी मांग निडर होकर पेश कर सकते हैं? क्या आप जज्बात और जोशको पीछे धकेलकर अपनी बुद्धिके सहारे हर मसलेको तय कर सकते हैं? क्या आपकी गलतियां दिखायी जानेपर आप वास्तवमें आलोचकके प्रति कृतज्ञ होते हैं? उत्तेजना पानेपर भी क्या आप अपने क्रोधको वशमें रखते हैं? क्या अपने रास्तेमें आनेवाली अड़चनोंको दूर करनेके लिए अन्य लोगोंसे परामर्श लिये बगैर आप समुचित उपाय स्वयं सोच सकते हैं? क्या आपको अपने निर्णयपर स्वयं भरोसा है, चाहे बादमें वह गलत ही क्यों न साबित हो? अपने कामके सम्पादनमें क्या आप महसूस करते हैं कि उसे जितनी अच्छी तरह अन्य कोई सम्पादित कर सकता है, उतनी ही अच्छी तरह आपने भी उसे सम्पादित किया है? क्या ऐसी परिस्थितिमें भी, जब कि वे लोग, जिन्हें आप आदरकी दृष्टिसे देखते हैं, आपके खिलाफ राय रखते हैं, आप अपनी रायपर टिके रह जाते हैं?

यदि इन प्रश्नोंके उत्तरमें आप 'हां' कह सकते हैं, तो अवश्य आप अपनेको अपनी निपुणताके लिए बधाई दे सकते हैं। और यदि आप अपनेमें निपुणताकी कमी महसूस करते हैं, तो फौरन् कमर कसकर अपनी इस कमीको दूर करनेमें जुट जाइये, वर्ना अपने पेशेमें आप जीवन-पर्यन्त पिछली पांतमें ही पड़े सड़ते रहेंगे।

अपने काममें निपुण व्यक्ति दूसरोंकी खूबियोंकी जी खोलकर प्रशंसा भी करता है। व्यर्थमें वह परछिद्रान्वेषण नहीं करता। दूसरोंकी नाहक नुक्ताचीनी केवल ऐसे लोग किया करते हैं, जो स्वयं अपनी कमजोरी महसूस करनेके कारण 'इन्फीरियारिटी काम्प्लेक्स' के शिकार बने हुए होते हैं। निपुण व्यक्ति नये कामको बखूबी अञ्जाम देता है, वह चुपचाप बैठकर हैरान दिलसे सोचता नहीं है कि मैं अमुक काम कर सकता, तो अच्छा था। थ्योरीको प्रैक्टिसमें सोचनेको काममें परिणत करना वह जानता है। अपनी हार और नाकामयाबीको वह अपना कीमती अनुभव बनाकर भविष्यमें उसीके आधारपर सफलता प्राप्त करता है। अपनी तमाम शक्तियोंको अपने लक्ष्यपर केन्द्रित करके वह सफलताकी ओर पूरे इतमीनानसे बढ़ता है। निपुणतामें जागरूकता, सतर्कता, अध्यवसाय सभी कुछ शामिल हैं। इन्हींकी मददसे निपुण व्यक्ति रूढ़िवादिता, प्रारब्ध तथा जनमतसे लोहा लेता है। वह जानता है, किस प्रकार अपनी आदत, अनुभव, ज्ञान, अभिलाषा और बुद्धिका इस्तेमाल अभीष्ट लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए किया जा सकता है। अपनी इच्छाओंपर उसे पूर्ण नियन्त्रण है। सारांश यह कि आत्मसंयम, एकाग्रता और दूरदर्शिता तथा सहज-बुद्धि निपुणता प्राप्त करनेके प्रमुख साधन हैं।

पतिङ्गेकी तरह जिस व्यक्तिका मस्तिष्क एक चीजपरसे कूदकर दूसरी चीजपर हरदम जानेको तैयार रहता है, वह कभी भी पूर्ण रूपसे सफल हो ही नहीं सकता। गौरसे देखा जाय तो वास्तवमें ये ही बेचारे दुनियाका सारा काम, जिसमें अनायासका परिश्रम होता और थकावट आती है, करते रहते हैं; किन्तु न तो उनका लाभ होता है और न उन्हें किसी प्रकारका श्रेय ही मिलता है। क्योंकि किसी एक कामसे चिपटकर लगनके साथ उसमें लगकर उन्होंने कभी उसमें विशेष योग्यता हासिल ही नहीं की। जेठकी दुपहरियाकी प्रखर सूर्य्यरश्मियां भी तिनकेको साधारणतः नहीं जला सकतीं; किन्तु आतशी शीशे द्वारा जब उन्हींको एक बिन्दुपर केन्द्रित कर लेते हैं, तो फौरन् तिनकेमें आग लग जाती है। विज्ञानका यह नियम आपकी मानसिक शक्तियोंपर भी लागू है। चन्द मिनट तक भी जो किसी एक विषयपर सोच नहीं सकता, जो अपनी बिखरी हुई मानसिक शक्तियोंको एकत्रित नहीं कर सकता, उसे हर काममें यदि नाकामयाबी हासिल हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या?

प्रतिदिन हमें अपने जीवनमें काहिलीके खिलाफ भी लड़ना पड़ता है। निर्जीव जगत्का नियम है—निश्चल पड़े रहना। हमारे शरीरका भी यही हाल है। आरामतलबी और काहिली हमारे शरीरको भी खूब पसन्द है—अतः जब कभी भी किसी ऐसे कामको शुरू करना हुआ जिसमें परिश्रम करना पड़ता है, हमारी काहिली हमारे सामने आ खड़ी होती है। उसे धक्का देकर अलग हटाना जरूरी होता है। एक जगहपर खड़ी हुई गाड़ीको जब कहीं खींचकर ले जाना होता है, तो पहले उसे जमीनसे छुड़ाना होता है—और ऐसा करनेके

लिए पर्याप्त बल लगानेकी जरूरत होती है। स्वयं अपनी काहिलीको भी दूर करनेके लिए सक्रिय प्रयत्न करनेकी आवश्यकता होती है। एक-दो बार इस काहिलीको यदि परास्त कर दिया गया, तो भविष्यमें इससे मोर्चा लेना और भी आसान हो जाता है। एक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकने इस ढङ्गकी काहिली दूर करनेके लिए एक उपयोगी नुस्खा बताया है कि आप अपनेको शरीरसे अलग जानें। शरीर यदि काहिलीका अनुभव करता है, तो उसे डांट दीजिये और काममें उसे जबर्दस्ती लगाइये। गाड़ी जब एक बार अपने स्थानसे डिग गयी, तो फिर उसे चालू रखनेमें कोई खास दिक्कत पेश न आयेगी।

कोई नयी पुस्तक पढ़नी है या कोई लम्बा पत्र लिखना है, और हम उसे शुरू करनेसे भागते हैं। कभी पेन्सिलकी नोक ठीक करने लगते हैं, तो कभी अखबारमें अपना मन बहलाने लगते हैं। और तुर्रा यह कि हम जानते रहते हैं कि इस पुस्तकमें हमारा मन लगेगा या उस पत्रके लिखनेमें हमारी पूरी दिलचस्पी है। ऐसे मौकेपर हमें अपनी काहिलीपर विजय प्राप्त करनेके लिए अपने शरीरके प्रति थोड़ी निष्ठुरता दिखानी होगी। "फिर कभीके बजाय तुरन्त अभी" इस आदर्श वाक्यको सदैव हमें ध्यानमें रखना लाजिमी है।

जीवनके हरएक पहलूमें हमें भिन्न-भिन्न श्रेणीके व्यक्तियोंसे मिलना-जुलना पड़ता है। अजनबी शख्ससे मिलते समय आप घबरा तो नहीं उठते? क्या आप भरसक प्रयत्न करते हैं कि अनजान लोगोंसे आपको मिलना-जुलना न पड़े? मित्रोंकी टोलीमें घूमनेके बजाय क्या आप घरके एकान्तमें बैठकर दिलचस्प पुस्तक पढ़ना ज्यादा पसन्द करते हैं? दूसरोंके सामने क्या आपको अपनी सादगी और मामूली पोशाकके बारेमें चिन्ता हो उठती है? कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय लेनेके पहले क्या दूसरोंसे परामर्श लेना आप जरूरी समझते हैं? क्या अकसर मौकोंपर आपको उदासी और उन्मन भावनाओंका दौरा हो आता है? यदि इन प्रश्नोंके उत्तरमें आप 'हां' कहते हैं, तो आपकी गिनती अन्तर्मुखी (इण्ट्रावर्ट) व्यक्तियोंमें होगी। ऐसे व्यक्ति वाह्य संसारके संसर्गसे भागते हैं। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अन्तर्मुखी व्यक्ति समाजमें न तो लोकप्रिय हो सकता है और न वह विशेष कामयाबी ही हासिल कर सकता है। ऐसे व्यक्ति अच्छे लेखक, कलाकार या वैज्ञानिक बन सकते हैं; क्योंकि ऐसे पेशोंमें अधिक लोगोंसे मिलना-जुलना आवश्यक नहीं। किन्तु वकालत, एजेन्टी या डाक्टरी सदृश पेशेमें यह नितान्त जरूरी है कि आप लोगोंसे मिलें-जुलें और उन्हें अपनी ओर आकर्षित भी कर लें। यदि आपकी प्रकृति अन्तर्मुखी है, तो इन पेशोंमें आप हरगिज कामयाबी हासिल नहीं कर सकते।

इसके प्रतिकूल वहिर्मुखी प्रकृतिवाले व्यक्ति हर घड़ी और लोगोंसे मिलनेके लिए लालायित रहते हैं। इनकी खास पहचान यह है कि ये अपने अनुभवके किस्से दूसरोंको सुनानेके लिए हमेशा उत्सुक रहते हैं। अपना काम छोड़कर भी दूसरोंके काममें शामिल होना उन्हें अभीष्ट होता है। अपने ख्यालात जाहिर करनेमें ये जरा भी नहीं हिचकते। बचपनसे ही खेल आदिमें अपनी टोलीका ये नेतृत्व करते रहते हैं। दूकानदारके कहनेमें आकर बे-जरूरतकी चीजें ये कभी नहीं खरीदते। अजनबियोंसे भरे हुए कमरेमें प्रवेश करनेमें इन्हें जरा भी हिचक: नहीं होती। बहस-मुबाहिसेमें आसानीसे ये लोग गर्म हो उठते हैं। इनके मित्रोंकी संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों इनकी प्रसन्नता भी बढ़ती है।

सार्वजनिक जीवनमें वहिर्मुखी व्यक्ति ही नाम कमा पाते हैं। नेता, एजेण्ट, वकील प्रायः वहिर्मुखी प्रकृतिके हुआ करते हैं। किन्तु ऐसे व्यक्ति किसी खास हुनरमें माहिर नहीं हो सकते। इनकी बहुत-सी शक्ति अन्य व्यक्तियोंके संसर्गमें बिखर जाती है। जमकर ये किसी एक काममें लग नहीं सकते और न अपनी समूची शक्तियोंको एक विन्दुपर केन्द्रित ही कर सकते हैं।

अब जरा अपनी जांच कीजिये और देखिये, कहीं आप ऐसे पेशेमें तो नहीं पड़े हुए हैं जो आपकी प्रकृतिके खिलाफ है। यदि आप वहिर्मुखी प्रकृतिके हैं, तो आप अपनी शक्तियोंको केन्द्रित करनेका अभ्यास कीजिये—जब किसी कामको आप हाथमें लेते हैं, तो उसे पूरा किये बगैर मत छोड़िये। भीड़के पीछे चलनेकी आदत छोड़कर अपनी स्वतन्त्र राय कायम करना सीखिये। जल्दी ही उत्तेजित होनेकी बानको भी छोड़िये; गम्भीर स्वभाव अपने अन्दर पैदा कीजिये। और

यदि आप अन्तर्मुखी प्रकृतिके हैं, तो जरा अपनी अंधेरी कोठरीसे बाहर निकलिये, और जिस दुनियामें आपको अपनी जिन्दगी बसर करनी है, उस दुनियाके लोगोंसे विचारोंका आदान-प्रदान कीजिये—उनके आमोद-प्रमोदमें दिल खोलकर शामिल होइये। अपने खास पेशेके दायरेसे बाहरकी चीजोंमें भी दिलचस्पी लीजिये, क्योंकि जब तक आप अन्य व्यक्तियोंके मामलोंमें दिलचस्पी न लेंगे, तब तक आपकी सुहबतके लिए लोग उत्सुक भी नहीं हो सकते।

विज्ञानके प्रभावसे ओत-प्रोत इस आजके संसारमें भी हजारों व्यक्ति असफलताका पत्थर गलेसे बांधे हुए अपने पेशेमें एक भार-स्वरूप जिन्दगी घिता रहे हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि आपके अन्दर प्रतिभा तो किसी और पेशेकी है और आप किसी और पेशेमें पड़े हुए हैं। आपके अन्दर एक ऊंचे दर्जेके साहित्यज्ञ और कलाकार होनेकी योग्यता है; किन्तु समाजके बन्धनोंमें पड़कर आप कलकत्तेके बाजारमें दलाली करते फिरते हैं। वैज्ञानिक अन्वेषण करनेकी योग्यता आपके अन्दर मौजूद है; किन्तु आप तनखाहके लोभसे आई० सी० एस० बनकर रामलीला और ताजियेका प्रबन्ध कर रहे हैं। इसी प्रकार कितने ही व्यक्ति गलत जगहोंमें पड़े हुए हैं—न तो वे अपने पेशेमें कामयाबी हासिल कर पाते हैं और न उसमें उनका मन ही लग पाता है।

सफल जीवन बिता सकनेके लिए उपर्युक्त बातोंके अतिरिक्त मौलिकताकी भी जरूरत होती है। यदि आपके अन्दर नयी-नयी बातोंके बारेमें सोच सकनेकी क्षमता है, तो निस्सन्देह आप अपने पेशेमें अन्य लोगोंसे हमेशा दो-चार कदम आगे रहेंगे। मौलिकता एक ऐसा गुण है, जो आपको फौरन् औसत दर्जेके व्यक्तियोंसे ऊंचा उठा देता है।

बेशक नयी बातोंको लेकर आगे बढ़नेमें अनेक खतरे हैं; किन्तु दुनिया ऐसे ही हिम्मतवर लोगोंके माथेपर सेहरा बांधती है। सैकड़ों हजारों व्यक्ति जिस लाइनपर सोचते आ रहे हैं, यदि उसी लाइनपर आप भी सोचेंगे, तो कौन आपकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित हो पायेगा? गलत या सही, भीड़से अलग जब आप खड़े होंगे, तभी लोग आपकी ओर दृष्टि फेर सकेंगे।

विज्ञानके इतिहासके पिछले पन्नोंको उलटिये, तो आप देखेंगे कि तत्कालीन रूढ़िको छोड़कर जिन लोगोंने अपने तर्जपर वैज्ञानिक गुत्थियोंको सुलझानेका प्रयत्न किया, उनका नाम संसारमें सदैवके लिए अमर हो गया। किन्तु अपनी मौलिकताके लिए उन्होंने कितने महंगे दाम चुकाये थे? क्या आपको मालूम है, गैलीलियो सरीखे कोटीके वैज्ञानिकको जेलकी दीवारोंके भीतर कितने दिनों तक अपने मौलिक विचारोंके कारण सड़ना पड़ा था? कोपर्निकसने पहली बार यह कहनेकी जुरअत की थी कि पृथ्वी अचल नहीं है, वरन् यह सूर्य्यके चारों ओर प्रदक्षिणा लगाती है—इस सिद्धान्तके प्रचारके कारण कोपर्निकसको क्या हद दर्जेकी यातना नहीं सहनी पड़ी थी? डार्विनके विकासवादके सिद्धान्तमें भी अपूर्व निर्भीकताकी एक लम्बी कहानी निहित है।

सच तो यह है कि मौलिकताके बिना किसी भी क्षेत्रमें उन्नति हो ही नहीं सकती। आगे बढ़नेके लिए जरूरी है कि वृत्ताकार रास्तेसे निकलकर घेरेके बाहर कदम उठाया जाय। अनेक व्यक्तियोंके दिमागमें मौलिक विचार पैदा होते अवश्य हैं; किन्तु उनके अन्दर इतना साहस या शक्ति नहीं कि उसे वे कार्य्यान्वित कर सकें। अतः ये अधखिली कलियां योंही मुरझाकर नष्ट हो जाती हैं। आलस नहीं, कायरताके कारण लोग नयी स्कीमोंको अमली जामा पहनाते हुए डरते हैं। ऐसे लोग नयी स्कीम चालू करके खतरा उठाना नहीं चाहते। बड़े-बड़े राष्ट्रोंके इतिहाससे भी इसी बातकी पुष्टि होती है। चीनने मौलिक और नयी-नयी बातोंका सोचना त्याग दिया, फौरन् वह गहरे गर्त्तमें पहुंच गया। रोम-साम्राज्यके अन्दरसे मौलिकता गयी, तो कुछ ही वर्षोंमें रोम-साम्राज्य भी छिन्न-भिन्न हो गया।

यह सही है कि मौलिक रास्तेपर चलनेवालोंने हमेशा ही सफलता हासिल नहीं की है—अपने अनुमानमें अकसर ऐसे लोगोंने भारी धोखा खाया है। किन्तु यह भी सही है कि बिना मौलिक रास्तेपर चले आज तक किसी भी शख्सने देश, समाज, धर्म या विज्ञानको एक कदम भी आगे नहीं बढ़ाया है। कामयाब जिन्दगीका गुर है—मौलिकता+अध्यवसाय+साहस+लक्ष्यमें विश्वास।



समस्याका समाधान

श्री लक्ष्मीनाथ श्रीवास्तव प्रशान्त, बी० ए०

धीरे-धीरे टहलते हुए दार्शनिकने एक बार नीचे-ऊपर और फिर सामनेके विस्तीर्ण बन-प्रान्तरकी ओर अवसाद-भरे नेत्रोंसे देखा। पार्श्वमें नदीकी लहरें उछलती-कूदती, इठलाती भागी जा रही थीं और उस पार बन-कुक्कुटोंका झुण्ड दियारेके अनाजोंका भक्षण कर रहा था। अपराह्नका पीलापन सन्ध्याकी लालिमामें शनैः-शनैः परिवर्तित हो रहा था। मन्द-मधुर हवा चल रही थी।

दार्शनिक बेचैन था। दर्शनकी जटिल गुत्थियोंमें माथा उलझाकर उसने अपने अन्तरको आलोड़ित कर रखा था। जीवनकी अन्धाधुन्ध दौड़में वह अपने सिद्धान्तोंके बलपर कूदना चाहता, पर सदा अपनेको अक्षम, अज्ञानी-सा पाता। अनेकों ग्रन्थोंकी उसने रचना की, प्रसिद्धि पायी। यश और समृद्धि भी मिली। पर मन उसका सदैव बेचैन रहता। सिद्धार्थकी व्याकुल आत्मा मानो अभ्यन्तरमें पैठ उससे वसुधाके दुःख-दैन्यका दमन करवाना चाहती। वह दर्शनकी गुत्थियोंमें दिन-रात उलझा रहता। जीवनका लक्ष्य क्या है? परम शान्तिका मार्ग कौन-सा है? जगत्के जञ्जालका सुलझाव कहां है?—इत्यादि प्रश्न उसके मस्तिष्कको डांवाडोल किये रहते। इन्हीं चिन्ताओंमें वह सब कुछ भूला रहता। परिवारकी चिन्ता नहीं, दुनियाकी खबर नहीं। पत्नी उसे टोक-टोककर भोजन कराती, इष्ट-मित्र उसके बिगड़ते कामोंकी सुधि दिलाते। पूर्वजोंकी अर्जित सम्पत्ति हो और प्रकृतिका दिया हुआ मस्तिष्क; फिर दर्शनकी गवेषणा क्यों न हो। निरन्तर वह दर्शनसे लिपटा रहता।

दार्शनिक बेचैनीमें इधर-उधर टहलता रहा। समस्याका समाधान नहीं। वह क्या करे, कहां जाय। और क्या सोचे। अन्यमनस्क-सा फिर भी वह सोचता रहा। गहन-विचार-सरितामें पड़ी मनकी नैयाको कहीं किनारा नहीं। कोई सहारा नहीं। प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानोंके 'वाद'-बवण्डरसे यह डगमगाती नाव और भी डूबने-डूबनेको हो आती है। निर्णय-उपकूल और दूर चला जाता है। वह विकल-हृदय जङ्गलके झुरमुटोंकी ओर मुड़ा। खट-खट, खट-खटकी कठोर-शुष्क आवाजने अचानक उसकी विचार-धारामें व्याघात दिया। दार्शनिकने चिढ़ी हुई आंखोंसे उधर देखा। पाकड़के पुराने पेड़की मोटी डालको एक लकड़हारा काट रहा है। कुछ कटा है, कुछ कटनेको बाकी है। टांगा अबाध, अथक गतिसे चल रहा है। लकड़हारा पसीनेसे लथपथ है। हांफ रहा है। प्रति क्षेपपर 'खट' की आवाजके साथ उसके मुखसे अनायास ही निकल जाता है-'हुंह'-उसकी थकानका सहज द्योतक। और इस खट-हुंह, खट-हुंहके सम्मिलित स्वरके साथ-साथ दिनका प्रत्येक पल बीत रहा है। लोहित वर्णकी रवि-रश्मि उस लौह-शस्त्रको कान्ति प्रदान करती हुई किञ्चित्-किञ्चित् क्षीण हो रही है। सब कुछ भूलकर वह एकान्तचित्त डाल काटता चला जा रहा है। एक-एक क्षेप मञ्जिलका एक-एक डग है। प्रति क्षेपके साथ जरा-सी चुन्नो उड़ती है और डाल कटने-कटनेको होती आती है। लकड़-हारा यह देख-देख परम सन्तोषके साथ अपने काममें लगा हुआ है। एक मन, एक प्राण। मानो उसके जीवनकी यही एकान्त साधना है, उसे ही पूर्ण पाकर वह सब कुछ पा जायेगा। और कुछ चाहना नहीं, कोई दूसरी कामना नहीं।

टांगेकी कर्कश आवाज और चकमकसे चिड़ियां चांव-चांव करती पेड़के इर्द-गिर्द मड़रा रही हैं। दार्शनिक उन्हें देख रहा है, देख-देखकर कुढ़ रहा है। अपने विचारोंमें व्याघात वह सह नहीं सकता। और बिना विचारे वह रह भी नहीं सकता। विचार, विचार, विचार। उसके जीवनमें और है ही क्या। उसे कौन समझावे। वह चिढ़कर वहांसे चला जाना चाहता है। घर जाकर अपने कमरेकी सभी खिड़कियों और दरवाजोंको बन्द कर एक मक्खीको भी उसमें नहीं रहने देगा। और वहीं खूब विचारेगा। व्याघात वह सह नहीं सकता और बिना विचारे रह भी नहीं सकता। वह विचारते ही विचारते उठता है और उन्हींमें डूबा चला जाता है।

× × ×

दस वर्ष बीत जाते हैं। दार्शनिककी अवस्था शोचनीय हो जाती है। उसका घर उजड़ जाता है। सम्पत्ति नष्ट हो जाती है—कुछ कारिन्दोंके हाथ जाकर, कुछ सम्बन्धियोंके। उसे अपने विचारोंसे फुर्सत ही कहां मिलती थी कि यह सब देखता। पत्नी बीमार पड़ी और घुल-घुलकर मर गयी। दर्शनकी गुत्थियां सुलझ नहीं पाती थीं। दार्शनिकको अवकाश नहीं मिलता था, डाक्टरको कौन बुलावे, सेवा-शुश्रूषा कौन करे। सीता-सी बहूका वियोग मांको असह्य हुआ और वे भी चल बसीं। दार्शनिकके परिवारमें अब केवल दो प्राणियोंका बसेरा है। एक स्वयं उसका और दूसरा उसकी एकमात्र सन्तान सप्तवर्षीया कन्याका। वैभवके स्मृति-स्वरूप, दाम्पत्यकी धरोहर-सी। तब दार्शनिकको विचारोंसे अवकाश नहीं मिलता था, सिद्धान्तोंके निराकरणमें मन-मस्तिष्क बेचैन रहते थे, अब उसे कामसे फुर्सत नहीं। उसकी अबोध बच्ची है बेमांकी। घरमें दाने नहीं, कपड़े नहीं। दार्शनिक कभी भर पेट खाता है, कभी आधा पेट। पर उसकी अबोध बच्ची—बे-मांकी, उसे खाना चाहिए, कपड़े चाहिए। और चाहिए पिताका प्यार भी। दार्शनिकके सिद्धान्तोंमें विराट् परिवर्तन होता है। उसकी साधनाकी दिशा ही बदल जाती है। बेमांकी लड़की, अन्न-वस्त्र-विहीन परिवार, पुत्री उसके जीवनका आधार। मायाके महान् सागरमें एक उद्वेलन होता है, उसीमें दर्शनकी गुत्थियां सदाके लिए विलीन हो जाती हैं। वह कठिनसे कठिन परिश्रम करता है और अपनी प्यारी पुत्रीकी दिलजोई करता है। बहुत कुछ सोच-समझकर उसने लकड़ी काटनेका काम उठा रखा है। प्रतिदिन जङ्गलमें जाकर लकड़ियां काटता है और शामको बाजारमें बेच देता है। उसीसे दो प्राणियोंका खाना-कपड़ा चल जाता है। दुनियासे उसे कोई वास्ता नहीं। भीड़-भड़क के कामोंमें उसकी चाहना नहीं। लकड़ियोंको बेचना और अपनी एकान्त कुटियामें पुत्रीके सङ्ग सहवास, उसके जीवनके यही दो नियत कार्यक्रम हैं। और परम सन्तोष और शान्तिके साथ उसके दिन कटते जा रहे हैं। चिन्ताकी एक रेखा भी नहीं। उसके दैनिक कार्यक्रममें सबसे आह्लादकारी समय वह होता है, जिस समय शामको लकड़ियां बेचकर वह अपने और बच्चीके लिए भोजनकी सामग्री खरीदता है और उसके लिए कुछ मिठाइयां; और उत्सुकता-पूर्वक तेजीसे कदम बढ़ाता हुआ अपनी कुटियाकी ओर चल देता है। लड़की कभी अपना पाठ पढ़ती होती है, कभी तितलियोंके पीछे दौड़ती हुई होती है और कभी अपने झोंपड़ेको फूलोंसे सजाकर पिताको घूम-घूमकर दिखाती है। दस कदम दूर ही से वह दौड़कर पिताके कन्धोंसे लिपट जाती है और पिता-पुत्री इधर-उधरकी बातें किया करते हैं। रातमें खा-पीकर लड़की दुलारसे कहती है —बाबू ! कोई कहानी कहो ! और दार्शनिक बड़े प्रेमसे, एकान्त तल्लीनतासे राम-सीताकी, नल-दमयन्तीकी कहानियां सुनाता है। इसी तरह हंसते-बोलते दोनों प्रगाढ़ निद्रामें अभिभूत हो जाते हैं। दिन-भर तो उसे कुछ सोचनेका अवकाश ही नहीं मिलता, रातकी बेहोशीमें कभी-कभी, मधुर स्वप्नकी तरह अतीतकी एक हल्की स्मृति उसके उर-अन्तरमें एक कोमल हिल्लोल-सी उठा जाती है। वह एक क्षणको व्यस्त होता है, पर दूसरे ही पलमें अपनी अमूल्य निधि, प्यारी बच्चीकी ओर देखता है—चांदनीके सुहासित प्रकाशमें, उसकी मुंदी पलकोंपर जगत्की सुषमा विराजती होती, निर्दोष सुन्दर आननकी आभामें दार्शनिकके विस्मृत वैभव और प्रत्याशित प्रणयकी छाया लोटती होती। वह सब कुछ भूल जाता। हृदयके रससे भींगी पलकोंसे वह अपने जिगरके टुकड़ेको निहारता और उसीमें सब कुछ पाकर परम सन्तोषकी सांस लेता। पवनके पङ्खोंके सहारे प्रकृतिका शान्ति-सन्देश उसे पुनः थपकियां देकर सुला देता। उसके अत्यन्त नियमित और कठोर जीवनकी ये घड़ियां रूखे भोजनमें चटनीका काम करतीं। और जैसे विश्वके वैषम्यसे अलग उसके दिन कटते होते।

× × ÷

'खट-खट'—'खट-खट'

नदीका किनारा है। उसके पार्श्वका वन-प्रान्तर। पाकड़के पेड़की मोटी डालको एक लकड़हारा तल्लीनतापूर्वक काट रहा है। कुछ कटा है, कुछ कटनेको बाकी है। वह पसीनेसे लथपथ है, हांफ रहा है। प्रतिक्षेपपर 'खट' की आवाजके साथ, उसके मुखसे निकल जाता है—हुंह। उसकी थकानका द्योतक। और इस 'खट-हुंह'—'खट-हुंह' के सम्मिलित स्वरके साथ दिनका प्रत्येक पल बीत रहा है। लोहित वर्णकी रवि-रश्मि उस लौह-शस्त्रको कान्ति प्रदान करती हुई किञ्चित्-किञ्चित् क्षीण हो रही है। सब कुछ—जैसे अपनेको

भी—भूलकर वह डाल काटता चला जा रहा है। अन्तः प्रदेश-में विद्यु त्-लहरकी नाईं एक विचार-धारा दौड़ जाती है—बापकी प्रतीक्षामें ताकती प्यारी बेटी, निर्जन झोंपड़ीका शान्त वातावरण, अनन्त मनुहारोंमय बाप-बेटीका प्यार-भरा कथोपकथन। और दूने उत्साहसे वह लकड़ी काटने लगता है।

सुहावनी सन्ध्या और रात प्रकृतिके किसी एकान्त कोनेसे शनैः शनैः खिसकती चली आ रही हैं। और टांगेका प्रत्येक क्षेप मञ्जिलका एक-एक डग है।

कई वर्षों पहलेकी समस्या—जब दर्शनकी गुत्थियोंसे मन-मस्तिष्कको उलझाये, घूमता-घामता दार्शनिक, पसीनेसे लथपथ किसी लकड़हारेको देख रहा था—शायद हल हो गयी थी।...शायद...।

———

तेलका युद्ध

श्री 'चन्द्र'

आजकी लड़ाई पिछली लड़ाईसे बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। उस लड़ाईमें भाग लेनेवाले राष्ट्रोंको कई कठिन समस्याओंका सामना करना पड़ा, जैसे अस्त्र-शस्त्र, भोजन-सामग्री व धन आदिकी समस्यायें। लेकिन अब जो उनके सामने मुख्य और सबसे कठिन समस्या है, वह तेल-की है। यह कहना अनुचित न होगा और प्रायः सभी अनुभवी राजनीतिज्ञ कह रहे हैं कि जिसने इस समस्याको हल कर लिया, उसकी अबकी अवश्य विजय होगी। इसी समस्याको हल करनेके लिए प्रायः प्रत्येक देशके सरकारी वैज्ञानिक जी-जानसे जुटे हुए हैं और उन्हें इसमें बहुत कुछ सफलता भी मिली है, अर्थात् कुछ देशोंने बीज आदि चीजोंसे तेल निकालना भी आरम्भ कर दिया है। जापान जैसे अनुभवी राष्ट्र तथा अन्य राष्ट्रोंने तो चाबीदार मोटरों व पेट्रोलके बदले कोयला या ऐसी ही कोई अन्य चीजें इस्तेमाल करनी शुरू कर दी हैं, जिससे जितना ज्यादा हो सके, लड़ाईके लिए या जरूरतके लिए पेट्रोल जमा कर लिया जाय। क्योंकि सभी देशोंको आशा है कि अगर लड़ाईमें वे शामिल न हुए, तो भी वे इसे बेच-बेचकर बहुत ज्यादा लाभ उठा सकेंगे।

गणनाके अनुसार मालूम हुआ है कि लड़ाईकी बड़ी लारीके २५ मील चलनेमें एक गैलन, हवाई जहाजके २ मील चलनेमें करीब २। गैलन, समुद्री जहाजके एक घण्टे चलनेमें ७॥ टन, टैङ्कके १॥ मील चलनेमें एक गैलन व सबमाइनके एक घण्टे चलनेमें करीब १/४ टन तेल खर्च होता है। इन दिये हुए अङ्कोंसे सहज ही में यह नतीजा निकाला जा सकता है कि अबकी इस लम्बी लड़ाईमें लड़ाकू राष्ट्रोंको इन लड़ाईके मुख्य हथियारों-के लिए कितने अधिक पेट्रोलकी आवश्यकता पड़ेगी। जर्मनी जैसे लड़ाकू राष्ट्रोंने तो हजारों छोटे-बड़े अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हथियार बना भी डाले। लेकिन इस समस्याने उन्हें एकदम चौकन्ना कर दिया है और अब वे इस फेरमें हैं कि अब उन छोटे-छोटे राष्ट्रोंको हड़पना या दबाना चाहिए, जिनके पास तेल-की काफी खानें हैं। और यही कारण है कि जर्मनी व रूस रूमानियापर; इटली यूगोस्लेविया और अन्य तेलवाले मुसलिम राष्ट्रोंपर और जापान डच ईस्ट इण्डीजपर बुरी तरह-से आंख गड़ाये हुए है।

तेलवाले देशोंमें मुख्य देश ये हैंः—अमेरिका, रूस, ईरान, रूमानिया, ईराक, मेक्सिको, डच ईस्ट इण्डीज, बर्मा, कनाडा और जर्मनी ; जिनकी सहायतासे तेलकी कमी पूरी की जा सकती है और ये देश हजारों गैलन तेल प्रतिदिन सहज ही दे सकते हैं। इन तेल निकालनेवाले देशोंमें पहला नम्बर अमेरिकाका है, जो करीब २००,०००,००० टन तेल निका-लता है; दूसरा नम्बर रूसका है, जो करीब ३०,०००,००० टन (इसमें पोलैण्डका भाग भी शामिल है) तेल निकालता है; तीसरा ईरान है, जो करीब १०,१९९,३७० टन; चौथा रूमानिया व डच ईस्ट इण्डीजका है, जो करीब ८,०००,०००

और ६,०००,००० टनके बीच तेल निकालते हैं। पांचवें मेक्सिको और ईराक हैं, जो ९,५००,००० से लेकर ४,०००,००० टन तक निकालते हैं। बाकी अन्य देश यानी बर्मा, कनाडा, जर्मनी इत्यादि १,०००,००० से लेकर ५००,००० टन तक तेल निकालते हैं। इन देशोंके पास अपनी रक्षाके लिए तो तेल काफी जमा ही है, ये दूसरे देशोंको भी अच्छी तरहसे काफी लाभ उठाकर तेल दे सकते हैं। सच पूछिये तो अबकी लड़ाईमें विजय पानेका उत्तरदायित्व इन्हीं देशोंपर है।

इन तेलवाले देशोंमें ज्यादातर ब्रिटेन ही के सहायक हैं। तेलकी खनिजमें पहला नम्बर रखनेवाला अमेरिका तो पिछले युद्धमें भी इसका सहायक था, और अबकी भी इसकी नीति स्पष्ट है कि या तो यह पूर्णरूपसे ब्रिटेनके साथ रहेगा, या फिर तटस्थ रहेगा, लेकिन ब्रिटेनको यह दोनों रूपसे सहायता देगा। दूसरे तेलवाले देश, जैसे बर्मा, कनाडा, ईराक और ईरानके तेलपर तो बहुत कुछ ब्रिटेनका पूरा नियन्त्रण है। दूसरी बात उसकी सुन्दर स्थिति और धनपर है। नक्शे देखनेसे मालूम होगा कि ब्रिटेनके जहाज इन तेलवाले देशोंमें सहज हीमें जा-जाकर तेल दे सकते हैं। यह आसानी जर्मनीको नहीं है। ब्रिटेनका जहाजी रास्ता इतना अच्छा है कि वह प्रायः अपने मित्रोंसे सहज ही में व्यापार कर सकता है, और जिस चीजकी उसे जरूरत होगी, वह सहज ही में मंगा सकता है। दूसरी आसानी उसके धनवान होनेकी है। क्योंकि कोई भी देश ऐसा नहीं है, जो बिना लाभके किसीको कुछ दे, और वे सभी जानते हैं कि ब्रिटेन बड़ा धनवान राष्ट्र है, अगर उसे तेल बेचेंगे, तो लाभ भी बहुत ज्यादा होगा।

ब्रिटेन और फ्रान्सके राजनीतिज्ञोंके अनुसार दोनोंको मिलाकर करीब ५०, ०००, ००० टन तेल प्रति वर्षके हिसाबसे आवश्यकता पड़ेगी। इतना तेल तो इन लोगोंको केवल ईरान, ईराक और कनाडासे प्राप्त हो सकता है, बल्कि इनको अपने पिछले पक्के साथी अमेरिकाके १००,०००,००० टन तेलमेंसे बहुत कुछ हिस्सा प्राप्त हो जायेगा। और हम लिख चुके हैं कि ब्रिटेनका समुद्री रास्ता इतना सुन्दर है कि आवश्यकता पड़नेपर वह हर जगहसे तेल ले सकता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रिटेन और फ्रान्सके लिए यह समस्या बहुत सरलतासे हल हो सकती है। और यही कारण है कि ब्रिटेन और फ्रान्स निश्चिन्त होकर युद्धमें डटे हुए हैं। क्योंकि वे जानते हैं कि तेलकी सहायता तो उनपर यथाशक्ति है ही। दूसरी बात भोजन व अस्त्र-शस्त्रकी है, जो उनके पास हैं ही। अगर जरूरत पड़ी, तो अकेले अमेरिका, कनाडा व आस्ट्रेलिया इन सब बातोंमें सहायता देनेमें काफी हैं।

दूसरी तरफ हम देखते हैं कि जितनी ही ब्रिटेनको तेल पानेमें सहूलियत है, उतनी ही जर्मनीको कठिनाई। न तो जर्मनीके पास कोई ऐसा सुन्दर बन्दरगाह है और न उसकी स्थिति ही इतनी अच्छी है कि वह ब्रिटेनकी तरह सब देशोंसे स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार कर सके। न उसका इटलीको छोड़कर ऐसा कोई तेलवाला देश साथी है, जिसपर वह निर्भर रह सके। दूसरी बात यह है कि सभी राष्ट्र यह जानते हैं कि जर्मनी एक दिवालिया राष्ट्र है, अगर इसे तेल देंगे तो कुछ भी लाभ न होगा; यही कारण है कि कुछ देशोंको छोड़कर कोई भी देश इसे कर्जपर तेल नहीं देना चाहता और नगद धनकी जर्मनीमें कमी है।

इतना होते हुए भी यह न समझ लेना चाहिए कि जर्मनी इस समस्यामें पूरा दिवालिया है। वह भी इस समस्यामें अपनेको किसीसे कम तगड़ा नहीं रखना चाहता। हिटलर बड़ा चालाक आदमी है। वह जानता था कि उसे इस समस्याका सामना करना पड़ेगा, यही कारण था कि उसने पहलेसे ही जर्मनीमें तेल इकट्ठा करना शुरू कर दिया था, जो कि बहुत काल तक उसके काम आ सकता है। इधर रूस भी, जिसमें करीब ३०,०००,००० टन तेल निकलता है, वह भी इसका मित्र हो गया है, जिससे इसके हौसले बढ़ गये हैं; क्योंकि रूससे धन और तेल दोनों ही की सहायता इसे प्राप्त होगी। और इधर रूमानियाकी ऐसी बुरी स्थिति पड़ गयी है कि लाजिमी उसे जर्मनीको तेल देना पड़ता है।

फ्रान्सके एक अनुभवी राजनीतिज्ञके अनुसार अबकीवाली पूरी लड़ाईके लिए कुल ७०,०००,००० टन तेलकी आवश्यकता पड़ेगी (क्योंकि लोगोंका ख्याल है कि लड़ाई करीब एक साल या और कुछ थोड़े महीने चलेगी)।

अब देखना चाहिए कि इसमेंसे जर्मनी कितना तेल पा सकता है, जिससे लड़ाईमें डटा रहे। ब्रिटेन और फ्रान्स-

के राजनीतिज्ञोंके अनुसार, पोलेण्डके जर्मनीमें मिल जानेसे करीब ८००,००० टन तेल तो वह खुद निकालता है, ६००,००० टन (या इससे कुछ अधिक) का रूससे वादा है, ४८०,००० के करीब रूमानिया इसे तेल दे सकता है। कहा जाता है कि करीब ७, ५००,००० टन तेल इसपर पहले जमा था। बाकी बहुत-सा तेल इसे खरीदनेपर अमेरिका, ईरान व ईराक इत्यादि देशोंसे प्राप्त होगा। इसी तेलकी समस्याको पूरा करनेके लिए उसने जापानको डच ईस्ट इण्डीज-के लिए उसका दिया है, जो कि तेल निकालनेमें करीब रूमानियाके बराबर है। और अभी हालमें खबर भी आयी थी कि जापान डच इण्डीजपर हमला करनेकी बात सोच रहा है।

इस प्रकार हमने देख लिया कि इस समस्यामें प्रायः दोनों ही तगड़े पड़ते हैं। तिसपर भी दोनों ही विरोधियों-को कुछ न कुछ शङ्का बनी ही है कि ईश्वर जाने, आगे क्या होगा? क्या मालूम, कोई साथी सहायता देनेमें मुकर जाये या दुश्मन बन बैठे? इस बातका ज्यादा खतरा जर्मनीको ही है; क्योंकि अपनी ताकत और इटलीको छोड़कर कोई भी स्पष्ट उसका पक्का साथी नहीं है, जिसपर वह निर्भर रह सके। रूस, रूमानिया और जापानकी कोई स्पष्ट नीति नहीं, इसी कारण जर्मनी इनपर पूर्ण विश्वास नहीं करता, तथापि वह इन्हें अपना सच्चा मित्र समझता है। केवल इतने ही खटकेके होनेसे जर्मनी ब्रिटेनसे इस समस्यामें कमजोर पड़ता है।

इधर ब्रिटेनके लिए हम लिख चुके हैं कि ब्रिटेन ईराक, ईरान और कनाडासे ५०,०००,००० टन तेल सरलता-से प्राप्त कर सकता है। धनवान होने व उपनिवेशों तथा अमेरिकाके साथ होनेसे इसका खतरा जर्मनीसे कम है।

इस कारण सभी अनुभवी राजनीतिज्ञ कह रहे हैं कि इस लड़ाईमें तेलकी समस्या सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। कहते हैं कि पिछले महायुद्धमें किसी अनुभवी राजनीतिज्ञने कहा था कि "कोई ऐसा भी समय आयेगा, जब कि एक बूंद तेलका मूल्य एक बूंद खूनके बराबर होगा," जो कि इस लड़ाईमें लड़ाकू राष्ट्रोंके लिए अक्षराक्षर सत्य सिद्ध हो रहा है और आगे (सभ्य ?) लड़ाइयोंमें होगा!

———



रूमानिया

श्री श्यामनारायण कपूर, बी० एस-सी०

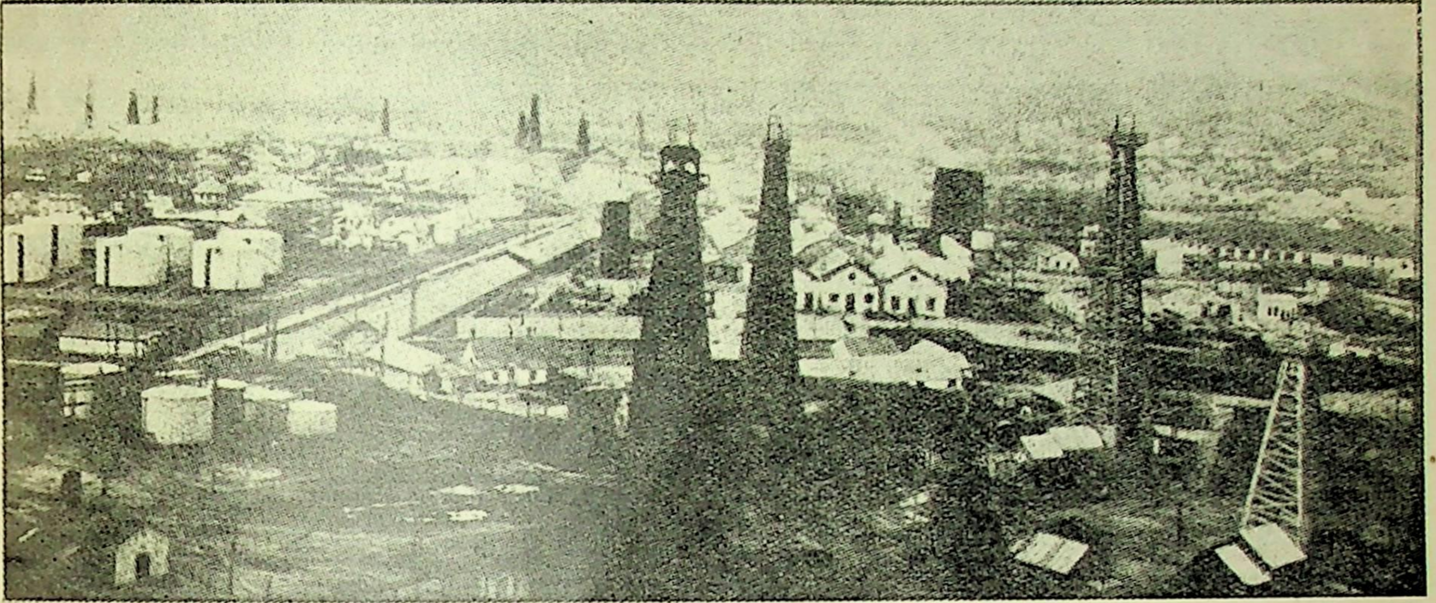
रूमानियाकी उर्वरा भूमि मनुष्य और वर्तमान युद्धमें मनुष्यके दाहिने हाथ मेशीन, दोनों ही के लिए प्रचुर मात्रामें खाद्य पदार्थ उत्पन्न करनेकी क्षमता रखती है। प्रकृतिने भी रूमानियाको चीड़के विशाल वन और खनिज तेलका अनन्त भण्डार प्रदान करके उसे और अधिक समृद्धिशाली बना दिया है। रूसके बाद यूरोपमें सबसे अधिक खनिज तैल—पेट्रोल, रूमानियामें ही उत्पन्न होता है। संसारके समस्त पेट्रोल-उत्पादक क्षेत्रोंमें भी रूमानियाको प्रमुख स्थान प्राप्त है। यहां प्रति वर्ष लगभग ७० लाख टन पेट्रोल तैयार किया जाता है। पेट्रोल ही के समान रूमानियामें गेहूं और दूसरे अनाजोंका भी बाहुल्य है। अपनी जरूरतोंको पूरा करनेके बाद रूमानियामें विदेशोंको भेजनेके लिए बहुत काफी पेट्रोल, गेहूं और दूसरे अनाज बच जाते हैं। रूमानियाका यही वैभव और प्राकृतिक सम्पत्ति आजदिन उसकी स्वाधीनताको खतरेमें डाले हुए है।

रूमानियाके पड़ोसी उसके इस वैभवपर ईर्ष्या करते हैं। हिटलर और स्टेलिन दोनों ही उसे अपना ग्रास बनानेकी चेष्टामें हैं। जर्मनीको हमेशा ही पेट्रोलकी जरूरत बनी रहती है। वर्तमान युद्धने उसकी इस आवश्यकताको और अधिक प्रबल एवं व्यापक बना दिया है। आम तौरपर जर्मनी प्रतिवर्ष विदेशोंसे जितना पेट्रोल खरीदता है, वह सब उसे रूमानियासे मिल सकता है। पिछले वर्ष जर्मनीमें विदेशोंसे जितना पेट्रोल आया था, उतना ही पेट्रोल रूमानियामें उत्पन्न हुआ था। अपनी युद्ध-नीतिको सफल बनानेके लिए जर्मनी रूमानियाको जर्मन साम्राज्यका एक अङ्ग बनानेके लिए अत्यन्त उत्सुक है। उधर रूस भी रूमानियाको हड़प जानेके लिए आये दिन नये बहाने ढूंढ़ रहा है। प्रस्तुत लेखमें इसी रूमानियाके बारेमें संक्षेपमें कुछ ज्ञातव्य बातें बतलायी जायंगी।

रूमानियाकी गणना यूरोपके नये राज्योंमें की जाती है। रूमानियाका कोई अपना पुराना इतिहास है भी नहीं। वास्तवमें रूमानियाको बने हुए अभी पूरे १०० साल भी नहीं हुए। १८५९ ई० में वालेशिया और मालदेविया नामक दो रियासतोंको जोड़कर रूमानियाका निर्माण किया गया था। परन्तु आधुनिक रूमानिया तो और भी बादकी बात है। वर्तमान रूमानियाका आधेसे अधिक भाग और आधेसे अधिक आबादी, उसमें महायुद्धके बाद शामिल किये गये हैं। रूमानियाके तीन प्रमुख प्रान्त बेसारबिया, बुकोविना और ट्रान्सिलवेनिया रूमानियामें १९१८-१९ में शामिल किये गये थे। बेसारबिया रूससे और ट्रान्सिलवेनिया हंगरीसे लेकर रूमानियामें मिला दिये गये थे।

रूमानियाकी आबादी १९३० में होनेवाली जनगणनाके अनुसार १ करोड़, ८० लाख, २५ हजार है। इसमेंसे २३,४४००० बेसारबियामें, २३,२६००० ट्रान्सिलवेनियामें और ८ लाख व्यक्ति बुकोविनामें रहते हैं। रूमानियाका कुल क्षेत्रफल १ लाख २२ हजार २८२ वर्गमील है। रूमानियाके पूर्वमें कालासागर है, और बाकी भाग बलगेरिया, यूगोस्लेविया, हंगरी, पोलैण्ड और रूससे घिरे हैं। पोलैण्डका जो भाग रूमानियासे मिला हुआ है, वह अब रूसके कब्जेमें है।

रूमानियाकी आबादी भी विभिन्न जातियोंका मिश्रण है। रूमानियाके मूल निवासियोंके अतिरिक्त हंगेरियन, जर्मन, रूसी, तुर्क, बलगार्स (बलगेरियाके निवासी), जिप्सी और यहूदी भी वहां प्रचुर संख्यामें आबाद हैं। रूमानियाके खास निवासी इटैलियन लोगोंसे बहुत मिलते-जुलते हैं। उनकी भाषा भी बहुत कुछ इटलीवालों ही से मिलती-जुलती है। उसका उद्गम लेटिन भाषा ही है। विभिन्न जातियोंके देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें आबाद होनेके कारण उन सबके रीति-रिवाज और आचार-व्यवहारमें भी बड़ा अन्तर है। रूमानियाके अधिकांश निवासी ईसाई हैं; परन्तु यहूदियों और मुसलमानोंकी भी अच्छी संख्या है और उन्हें पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। ईसाई गिरजाघरोंके साथ ही साथ स्थान-स्थानपर यहूदियोंके सिनेगाग और मुसलमानोंकी मसजिदें भी देखनेमें आती हैं। जिप्सियोंके झुण्डके झुण्ड



रूमानियाका तेल-क्षेत्र, जिसपर लोलुप राष्ट्रोंकी दृष्टि गड़ी हुई है।

गांवोंमें घूम-घूमकर किसानोंका मनोरञ्जन करते रहते हैं।

रूमानियाका मुख्य उद्यम कृषि है। देशके अधिकांश निवासी खेती-बारीमें लगे रहते हैं। गेहूं, जौ और मकई बहुतायतसे पैदा की जाती है। इधर हालके कुछ वर्षोंसे उद्योग-धन्धोंको सङ्गठित करने और नये उद्योग-व्यवसाय जारी करनेके प्रयत्न भी किये जाने लगे हैं। गेहूं और तेलके अतिरिक्त रूमानियामें बहुत-से महत्त्वपूर्ण खनिज पदार्थ भी पाये जाते हैं। लोहा, तांबा, कोयला, जस्ता, पारा, सोना और अल्यूमिनियम रूमानियामें मिलनेवाले कुछ प्रमुख खनिज पदार्थ हैं। इन सबको भली भांति काममें लानेके उद्देश्यसे रूमानियामें जल-बलसे बहुत सस्ती बिजली पैदा करनेकी भी कोशिश की जा रही है। जल-विद्युत्के पूर्ण रूपसे उन्नत हो जानेपर रूमानियाका महत्त्व और अधिक बढ़ जानेकी पूरी सम्भावना है।

यूरोपके अन्य देशों ही के समान रूमानियामें भी सैनिक शिक्षा अनिवार्य है। इधर हालकी घटनाओंने रूमानियाको भी दूसरे यूरोपियन देशोंकी तरह सैनिक तैयारी करनेके लिए विवश कर दिया है। सैनिकोंकी संख्या बढ़ाकर लगभग २५ लाख कर दी गयी है। इन सैनिकोंको आधुनिक अस्त्र-शस्त्र और दूसरे वैज्ञानिक साधनोंसे सुसज्जित किया गया है। साधारण सेनाके साथ ही साथ जल-सेना और हवाई सेना भी सङ्गठित की गयी है। हवाई सेनाके सङ्गठनमें अंगरेजोंका प्रमुख हाथ है। हाल ही में इंगलैण्डने रूमानियाको अपने ब्लेनहीम नामक प्रसिद्ध वायुयान भेजे हैं। इन वायुयानोंसे हवाई सेनाके तीन दलोंका सङ्गठन किया गया है। ६ मास पहले हवाई सेनामें ८०० वायुयान और १२००० सैनिक बतलाये जाते थे। इंगलैण्डसे हवाई जहाज मंगानेके अतिरिक्त कुछ लड़ाकू वायुयान देशमें भी तैयार करनेका प्रबन्ध किया जा चुका है। काले सागरमें जल-सेना भी पहलेकी अपेक्षा मजबूत बनायी जा रही है। अपनी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए रूमानिया अपने आपको पूरे तौरपर तैयार करनेकी चेष्टा कर रहा है।

रूमानियाका शासन दो व्यवस्थापिका सभाओं द्वारा होता है। एक सभाके सदस्य जनसाधारण द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। प्रत्येक बालिगको वोट देनेका अधिकार प्राप्त है। यह सभा चेम्बर आव डिपुटीज कहलाती है। दूसरी सभा सीनेट कहलाती है। सीनेटमें निर्वाचित और नामजद दोनों ही प्रकारके सदस्य होते हैं। कुछ व्यक्ति आजीवन सीनेटके सदस्य बना दिये जाते हैं। व्यवस्थापिका सभायें शासन-प्रबन्धके लिए प्रधान मन्त्रीके नेतृत्वमें अपना मन्त्रिमण्डल नियुक्त करती हैं। यही मन्त्रिमण्डल सब काम देखता है।

प्रकट रूपमें यह प्रबन्ध जनसत्तात्मक मालूम होता है। परन्तु रूमानियाके बादशाह कैरोल द्वितीय रूमानियापर एक डिक्टेटरकी भांति हुकूमत करते हैं। उन्होंने शासन-प्रबन्ध

और शिक्षा आदिके बारेमें बहुत सुधार किये हैं। १९२६ में उन्हें गद्दीसे उतार दिया गया था; परन्तु १९३० में वे फिर रूमानियाकी राजधानी बुखारेस्ट लौट आये और शासन-कार्य चलाने लगे हैं।

डिक्टेटरों द्वारा शासित दूसरे यूरोपियन देशोंकी तरह रूमानियामें भी वर्दी पहननेका चलन बहुत लोकप्रिय हो गया है। सरकारकी ओरसे भी वर्दी पहनना अनिवार्य-सा बना दिया गया है। स्त्रियोंको भी वर्दी पहननी होती है। सिविल सर्विसमें काम करनेवाली स्त्रियोंको काम करते समय अपनी नीली वर्दीमें रहना पड़ता है। युवक-आन्दोलनका रूमानियामें भी काफी प्रभाव है। अपनी छोटी आयुमें ही बालक-बालिकायें इस आन्दोलनमें सम्मिलित हो जाते हैं। स्कूलोंमें पढ़नेके साथ ही साथ उन्हें साधारण सैनिक शिक्षा भी दी जाती है। छुट्टियोंके दिनोंमें शिविर सङ्गठित किये जाते हैं। कुछ वर्ष पहले तक जनसाधारणको शिक्षा-सम्बन्धी विशेष सुविधायें न प्राप्त थीं। नवीन शासन-सुधारोंके काम-में लाये जानेसे अन्य क्षेत्रों ही के समान शिक्षा-विभागमें भी महत्त्वपूर्ण सुधार हुए हैं। उद्योग-धन्धोंके आधुनिक ढङ्गके स्कूलों और पुस्तकालयोंका सङ्गठन किया गया है। बादशाह कैरोल भी जनताके, विशेषकर किसानोंके जीवनमें विशेष दिलचस्पी लेने लगे हैं।

जैसा कि इस लेखके शुरूमें बतलाया गया है, रूमा-नियाका राज्य १८५९ ई० में वालेशिया और मालदेविया नामक दो रियासतोंको मिलाकर बनाया गया था। ये दोनों रियासतें उन दिनों टर्कीके अधीन थीं। नये राज्यका सङ्गठन हो जानेपर भी रूमानिया १८७८ तक टर्की ही के अधीन रहा। १८७८ में रूमानिया स्वतन्त्र हो गया और १८८१ ई० में मौजूदा बादशाह कैरोलके दादा, कैरोलने अपनेको रूमानियाका बादशाह घोषित किया। १९१४ में उसकी मृत्यु हो गयी और उसका बेटा फर्डिनेण्ड गद्दीपर बैठा। महायुद्ध आरम्भ होनेपर फर्डिनेण्डने अंगरेजोंका साथ दिया। अंगरेजोंका साथ देनेके कारण जर्मनीने रूमानियापर जबर्दस्त आक्रमण किया और रूमानियाके अधिकांश भागपर अपना कब्जा कर लिया। उन दिनों भी जर्मनीको आजकल-की तरह पेट्रोलकी सख्त जरूरत थी; परन्तु रूमानियापर कब्जा कर लेनेपर भी वह उसके पेट्रोलको समुचित रूपसे



रूमानियाकी महिलायें भी किसी सङ्कट-कालके लिए पहलेसे तैयार हैं।

काममें न ला सका। शत्रु पेट्रोलका लाभ न उठा सके, इस उद्देश्यसे रूमानियाकी फौजने पेट्रोलके अधिकांश कुओं और कारखानोंको हारते-हारते नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। महायुद्धकी समाप्तिके बाद रूमानियाके इस प्रमुख व्यवसायका फिरसे सङ्गठन किया गया है। महायुद्धकी समाप्तिपर रूमानियाको हरजानेके तौरपर रूसी सूबा बेसारबिया भी दे दिया गया। रूसको यह बात बराबर बहुत अखरती रही है। वह बराबर इस बातका मौका ढूंढ़ता रहा है कि वह अपने इलाकेको किस तरह रूमानियासे वापस ले सके।

वर्तमान युद्ध शुरू होते ही रूसकी ओरसे बेसारबियाके रूसी निवासियोंमें—जो वहां अल्पमतमें हैं—आन्दोलन शुरू कर दिया गया। कोशिश की जा रही है कि बेसारबियाके निवासी स्वयं इस बातकी घोषणा कर दें कि उन्हें रूमानियाकी हुकूमतमें बहुत तकलीफ मिल रही है और वे फिर रूसमें शामिल हो जाना चाहते हैं। इस बातकी भी अफवाह उड़ायी गयी थी कि रूस और जर्मनीमें रूमानियाके बारेमें परस्पर समझौता हो गया है। और यदि इन दोनोंको रूमानियापर आक्रमण करना ही पड़ा, तो रूस बेसारबियापर कब्जा कर लेगा और जर्मनी रूमानियाके पेट्रोल-उत्पादक क्षेत्रोंपर। परन्तु जर्मनीके लिए रूमानियापर कब्जा कर लेना अब आसान काम नहीं रह गया है। उसे रूमानियापर आक्रमण करनेके लिए हंगरी होकर जाना होगा। पोलैण्डका वह भाग, जो रूमानियासे मिला हुआ है, रूसके कब्जेमें है। हां, यदि रूस और जर्मनी दोनों मिलकर रूमानियापर आक्रमण करें और रूस जर्मन सेनाको रूसी पोलैण्डमें होकर जाने दे, तो सर्वथा नवीन परिस्थितियां उत्पन्न हो जायंगी।

वर्तमान युद्ध आरम्भ होनेपर बालकन प्रायद्वीपके सभी राष्ट्रोंने अपनेको युद्धसे तटस्थ घोषित किया। रूमानिया भी युद्धमें तटस्थ है और बराबर अपनी तटस्थताकी रक्षा कर रहा है। परन्तु फिर भी वह पूरे तौरपर निश्चिन्त नहीं है। इंगलैण्ड और फ्रान्स दोनों ही उसपर काफी दबाव डाल रहे हैं। विगत महायुद्धकी मित्रताकी याद दिलाकर अपने गुट्टमें शामिल होनेका आग्रह भी कर रहे हैं। उधर जर्मनी अलग दबाव डाल रहा है। रूससे वह स्वयं भयभीत हो रहा है। इधर जर्मनीने तटस्थ देशोंके साथ जैसा व्यवहार किया है, उससे रूमानियाकी स्थिति और भी नाजुक हो गयी है। परन्तु जर्मनीको एकदमसे रूमानिया रुष्ट भी नहीं करना चाहता। अभी पिछले दिनों जर्मनी और रूमानियामें फिरसे व्यापारिक सन्धि हुई है और इसके अनुसार रूमानियाने जर्मनी और जर्मनी द्वारा रक्षित राज्योंसे (पोलैण्डके अतिरिक्त) व्यापार करना स्वीकार किया है। इस सन्धिसे कुछ ही दिन पहले रूमानियाने अपने देशसे गेहूं बाहर भेजना बन्द करनेकी घोषणा की थी। इस सन्धिके अनुसार इस घोषणाके पूर्व जर्मनीको माल भेजनेके लिए जो कण्ट्रैक्ट हो चुके हैं, उनको पूरा करनेका आश्वासन दिया गया है।

रूमानिया, इसके अलावा भी अपनी देशी और विदेशी दोनों ही नीतियोंमें बड़ी सतर्कतासे काम ले रहा है। रूमानियाके विभिन्न राजनीतिक दलोंको सन्तुष्ट करके एक संयुक्त मोर्चा बनानेकी चेष्टा की जा रही है। और इसमें बहुत कुछ सफलता भी मिली है। इसके अतिरिक्त रूमानिया अपने पड़ोसियोंसे भी मैत्री पुष्ट करके पारस्परिक सहयोग और सद्भाव बढ़ानेकी चेष्टा कर रहा है। परन्तु आज यूरोपमें जो राजनीतिक एवं आर्थिक सङ्घर्ष हो रहा है, अपने-अपने स्वार्थों के लिए, स्वाधीनताके नामपर जो खूंरेजी हो रही है, उसे देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि आजके शान्त रूमानियामें किस दिन रणभेरी बज उठेगी।



अपने कविके प्रति

चुन लो मोती मानसके मेरे, ओ मञ्जुल कलहंस सखे !
यह जीवन रैन अंधेरी तुम श्रीमन्त नखत अवतंस सखे !

प्राणोंके प्यालेमें सुखकी दुखकी जो भरी गरल-हाला
तुम उसमें एक तरङ्ग लिये हो बुदबुद-मयी फेन-माला

साकी ! तेरे बिन मोल कौन, यह मिट्टीका प्याला रीता !
कोरे कागजका तन कैसे बनता शुचि रामायण-गीता !

मेरी पार्थिव लाचारीके तुम वियति-बिहारी पङ्ख सखे !
प्रभुके मुझ प्रेम-पुजारीके तुम नव ॐकारी शङ्ख सखे !

तुम उड़ो कनक-पञ्छी मेरे, इस गहन कुहासेसे ऊपर
सो रहे निराशामें अधीर कितने ये प्रात-विहग भूपर

कुहरान,—प्रातका पथ संवरा, यह वही धूल नभको घेरे
तुम वह खग बनो कुहासेमें जो नव प्रकाश हेरे टेरे !

उमड़ी यह गोल-गोल आंधी कम्पित हैं नगर गांव-खेरे
इस विश्व-विटपके जीर्ण-शीर्ण उड़ रहे पत्र पियरे-पियरे

उड़ रही छिपी स्वरमें इनकी नव जीवनकी बदली-कजली
तुम जान रहे कटनेपर ही फलती है संसृतिकी कदली

फिर क्यों उदास मेरे माली ! लू कौन न जिसमें नमी हुई
इस जगके आलवालमें कब नव-नव प्रवालकी कमी हुई !

प्रभुकी करुणामें अचल भक्ति-सी क्षितिमें छांह उछाह-भरी—
जो ग्रीष्म दुरन्त ज्वलन्त अग्निकी सेज चढ़ी भी हरी-भरी

उन तपस्विनी दूबोंकी बन तू शीतल सुन्दर शाख सखे !
बन जगकी संसृति-शकुन्तलाको ढकनेवाले पांख सखे !

कल जिनका तुङ्ग गरूर-शृङ्ग नभको लज्जित करते देखा
प्रभुताकी स्वर्ण-तरीपर चढ़ उदयास्त जिन्हें तिरते देखा

अब गिरी गाज सुध-बुध उन नीरी-जारोंको खोते देखा
सच कहो परन्तु कभी फूलोंको भी तुमने रोते देखा ?

जब खड़ी विश्वपतिके आंगन यह प्रकृति-उर्वशी-सी दासी
वर्बर कर सकते ध्वस्त कभी क्या मानवकी मथुरा-काशी ?

तुझको निदेश उस चिर सुन्दरका गुञ्जित करो दिगन्त सखे !
तुम कोकिल अमर अजर यह प्रभुका पावन सृष्टि वसन्त सखे !

—केसरी ।

अपहृत हिन्दू नारियोंकी समस्या

श्री ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

आंसुओंकी धारामें विश्वकी जितनी पीड़ायें पाली जाती हैं, उनमें सबसे अधिक तीव्र एवं मर्मभेदी उन अभागिनी नारियोंकी अश्रुधारामें बसती हैं, जो मानव-समाज और विशेषकर पुरुष-समाजके निष्ठुर अत्याचारोंके द्वारा, केवल अपने गृहोंसे ही नहीं, वरन् अपने समस्त सुखों और उन सुखोंकी कोमल स्मृतियोंसे अपहृत हैं। श्रीयुत जयकरने अपने एक वक्तव्यमें बताया था कि हमारे देशमें भगायी जानेवाली हिन्दू युवतियों और बालिकाओंकी संख्या औसतन् प्रतिदिन ११ है और जिनका पता नहीं लगता, उनकी संख्या अलग है। यही कारण है कि प्रतिदिन हमें समाचार-पत्रोंमें इस प्रकारकी एक-दो घटनाओंका रोमाञ्चकारी वर्णन पढ़नेको मिलता है। प्रतिदिन ११ हिन्दू युवतियोंका अपहरण, और प्रत्येकके साथ अपना-अपना अन्याय, अत्याचार और हमारी निर्बलताकी करुण कथा एक ऐसी क्रूर वस्तुस्थिति है, जिसके प्रति कभी-कभी निराशाजनक उदासीनताका अनुभव किये बिना कोई नहीं रह सकता।

किन्तु नारी-अपहरणका स्त्री-मनोविज्ञानसे बहुत अधिक सम्बन्ध है। इस शास्त्रकी उपेक्षा करके हम इस सामाजिक व्याधिसे मुक्त नहीं हो सकते। प्रकृतिने स्त्रियों और पुरुषोंमें स्त्री-प्रवृत्ति इतनी प्रबल रखी है कि कड़े धार्मिक अनुशासनों और कठोर राजनैतिक दण्डोंके होते हुए भी जब-जब उनको आपसमें अमर्यादित रूपसे मिलने-जुलनेका अवसर मिलेगा, वे निश्चय ही सभी मर्यादाओं और बाधाओंको कुचलकर मनोविकारोंका शिकार हो जायंगे। यह किसी एक देश, किसी एक जाति या किसी एक युगकी बात नहीं है। आज होता है और आगे भी होता रहेगा। मानव-प्रकृति ही कुछ इस तरहकी बनी है। यद्यपि हम इस बातको अस्वीकार नहीं कर सकते कि भारत तथा अन्य देशोंमें नारी-अपहरणकी समस्याओंके भीतर भिन्न-भिन्न कारण और पृथक्-पृथक् शक्तियां काम कर रही हैं; पर कारण और शक्तियोंकी भिन्नतासे परिणाममें कोई अन्तर नहीं आता। जिस प्रकार भारतमें, ठीक उसी प्रकार यूरोप तथा अमेरिकामें अपहृत नारियोंका जीवन असह्य एवं दूभर है तथा वेश्यालयों अथवा इस प्रकारके अन्य विलासितापूर्ण पाप और व्यभिचारके अड्डोंके आडम्बरपूर्ण जीवनमें सदैव उनके हृदयोंसे यौन-निःश्वास निर्गत होते हैं।

कुछ दिन पूर्व इस बातका अनुमान किया गया था कि केवल इंगलैण्ड तथा वेल्स प्रान्तोंसे ही प्रति वर्ष कमसे कम पचास सहस्र युवतियां उड़ायी जाती हैं। जिस दायित्वपूर्ण अंगरेजी पत्रमें मैंने यह बात पढ़ी है, उसीमें आगे इस प्रकार लिखा है:—

"इन भगायी गयी बालिकाओंमें अधिकांशके सम्बन्धमें बिलकुल ही पता नहीं लगता। परन्तु कभी-कभी कुछ सनसनीपूर्ण घटनाओंसे उन युवतियोंमें एक बड़ी संख्याका भाग्य सुस्पष्ट रूपसे प्रकट हो जाता है।"

यह तो रही ब्रिटेन-जैसे सभ्य एवं उन्नतिशील राष्ट्रकी बात। मिस मेयोकी जन्म-भूमि अमेरिकाकी भयानकताका अनुमान करना कठिन है। अभी कुछ दिन पूर्व संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाके पेन्सिल्वेनिया नामक राष्ट्रमें नारी-अपहरणके केवल एक दृष्टान्तकी चर्चा पत्रोंमें इस प्रकार प्रकाशित हुई थी :—

"पेन्सिल्वेनियाके छोटे और बड़े व्यावसायिक नगरोंकी सुन्दर पुत्रियोंकी मातायें सदा उन श्वेतदस्युओंके भयमें रहती हैं, जो तरुणियोंको बलपूर्वक कैद कर मोटरोंमें ले भागते हैं।"

दर्जनों तरुणियोंने इस प्रकारकी घटनाओंके भयानक वृत्तान्त पुलिससे कहे हैं। वे सभी ऐसे पुरुषों द्वारा सड़कोंपरसे भी गयीं और उन्होंने उन्हें न्यूयार्कमें सिनेमाकी अच्छी नौकरियां देनेका वचन दिया। जेजी वाल्टरसन नामक एक पन्द्रह वर्षीया बालिकाने पुलिसके सामने अपना बयान देते हुए कहा कि जब दो पुरुषोंने उसे 'स्टेज' में अच्छी नौकरी दिलानेका बचन दिया और जब उसने उसे अस्वीकार कर दिया, तो वे दोनों पुरुष उसे बलपूर्वक घसीटकर अपनी मोटरमें ले गये, पर किसी प्रकार बड़े

प्रयत्नोंके साथ वह अपनेको उनके चंगुलसे मुक्त कर सकी।

× × ×

मुसलमानोंमें अपहरणकी घटनायें कुछ कम नहीं हैं। मनुष्य-प्रकृति सर्वत्र एक-सी है। लेकिन वर्तमान हिन्दू-समाज और मुसलिम और क्रिश्चियन समाजमें अन्तर है। उन समाजोंमें नारी-अपहरणसे थोड़ी-सी सामाजिक अशान्तिके सिवा और कोई बड़ी हानि नहीं होती। परन्तु हिन्दू नारीका अपहरण हिन्दू-समाजकी घोर हानि ही नहीं, वरन् एक प्रकारसे उसकी मृत्यु है। मुसलमान स्त्री अपहृत होनेपर भी मुसलमान ही रहती है। वह हिन्दू बनकर हिन्दू धर्ममें खप नहीं सकती। भारतमें हिन्दू और मुसलमान इकट्ठे रहते हैं। इसलिए उनका एक-दूसरेकी स्त्रियोंको भगाना बहुत साधारण-सी बात है। कड़े सामाजिक बन्धन, धार्मिक भय और राजदण्डका शासन इसे किसी बड़ी हद तक रोक नहीं सकता। भारतीय अमेरिका और यूरोपसे गोरी स्त्रियां लाते हैं। अमेरिकामें निग्रो लोगोंसे इतनी घृणा होते हुए भी वहां गोरा और काला रक्त मिल ही जाता है। तिलक-धारी पण्डितोंका मुसलमानिनों और भङ्गिनोंसे सम्बन्ध हो ही जाता है। मनुष्यकी प्रवृत्ति ही ऐसी है। वासनाका वेग सभी बन्धनोंको तोड़ डालता है। कहनेका आशय यह कि यह दुष्टकृत्य पूर्णरूपसे बन्द नहीं हो सकता। हां, इसका मर्यादासे अधिक बढ़ जाना खतरनाक है। हिन्दुओंके लिए इस ओर ध्यान देना आवश्यक है, नहीं तो उनका राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक पतन निश्चित है। तो फिर करना क्या चाहिए?

इसमें सन्देह नहीं कि अनमेल विवाह, विधवा विवाह-का निषेध सासोंका बहुओंके साथ दुर्व्यवहार और पतियोंका पत्नियोंको अपने पिताके यहांसे रुपये लानेके लिए तङ्ग करना आदि बहुत-सी कुरीतियोंसे दुखी होकर भी कुछ स्त्रियां घरसे भाग जाती हैं और इन कुरीतियोंकी जितनी जल्दी हो सके, रोक-थाम होनी चाहिए। परन्तु ये बुराइयां कुछ ऐसी नहीं, जो केवल हिन्दू-समाजमें ही हों। मुसलमानोंमें यह दुर्गुण हिन्दुओंसे कम नहीं है। मुसलमानोंमें भी सैयद और राज-पूत-जैसी कई जातियां विधवाओंका विवाह नहीं करतीं। परन्तु हिन्दुओंमें एक और बड़ी खराबी फैल रही है। हमारे कुछ पत्र और पत्रिकायें हिन्दू स्त्रियोंके सामने हिन्दू समाजका ऐसा वीभत्स चित्र अङ्कित करती हैं, मानो समस्त दुनियाकी क्रूरता, नृशंसता, अन्याय-व्यभिचार सब हिन्दुओंमें ही पुञ्जीभूत हो रहा है और हिन्दू स्त्रियोंपर बहुत बड़ा अत्या-चार हो रहा है। इसका कुफल यह होता है कि हमारी अनुभवहीन, कच्ची अक्लकी भावुक लड़कियोंमें व्यर्थ ही हिन्दू पुरुषोंके प्रति घृणा उत्पन्न होती है और वे मुसलिम आदि दूसरे समाजोंको, जिनका उन्हें ज्ञान नहीं होता, अच्छा समझने लग जाती हैं और जरा-सा भी बहाना मिलनेपर भाग जाती हैं, पीछेसे चाहे उन्हें अपनी भूलपर रोना ही पड़े। मैं अभिमानके साथ कह सकता हूं कि इस गये-बीते समयमें भी हिन्दूके समान स्त्रीका सम्मान करनेवाला, पत्नी-भक्त और प्रेमी पति दूसरा कोई नहीं है। हिन्दू पत्नी अब भी अपने घरकी रानी है। हिन्दुओंमें बहुविवाहकी मनाही न होते हुए भी एक ही विवाहकी प्रथा है। हजारमें एकाध यदि दूसरा विवाह करता भी है, तो वह बहुत ही लाचारीकी हालतमें। परन्तु मुसलमानोंमें यह आम रिवाज है। हालमें उनकी एक पत्रिकामें एक शिकायत छपी थी कि आजकल मुसलमान गैर-मुसलमान बनने लगे हैं; क्योंकि वे अपनी लड़कीका सम्बन्ध करनेके पूर्व पूछने लगे हैं कि पुरुषके पहले-की कोई स्त्री तो मौजूद नहीं। मुसलमान स्त्रियां अपने पतियों-से इतनी तङ्ग हैं कि यदि हिन्दू पुरुष उन्हें ग्रहण करना चाहें, तो वे सहर्ष उनके साथ विवाह करनेको तैयार हो जायं। वे अपनी हिन्दू बहनोंकी स्वतन्त्रताको ईर्ष्याकी नजरसे देखती हैं। पर बेचारी करें क्या, विवश हैं। पिछले दिनों पञ्जाबकी मुसलमान स्त्रियोंमें एक लहर-सी बह चली थी। वे ईसाई होकर तलाक प्राप्त कर लेती थीं और अपने अत्याचारी मुसलिम पतिसे छुटकारा पाकर किसी दूसरेसे विवाह कर लेती थीं। इसपर मुसलिम समाज बहुत चिन्तित हो गया था। अब भी मुसलमान देवियोंको अपने छुटकारेके लिए इसी उपायका अवलम्बन करना पड़ता है।

मैं अपने अनुभवसे कहता हूं कि जितनी हिन्दू स्त्रियां भागकर मुसलमानोंमें जाती हैं, उनमेंसे अधिकांश पीछेसे बहुत ही पछताती हैं। परन्तु रोने-पीटने, चीखने-चिल्लानेके सिवा फिर वे अपनी मुक्तिका कोई उपाय नहीं कर सकतीं। वे कैदियोंकी तरह चहारदीवारीमें बन्द कर दी जाती हैं। पर्दे-

के अन्दर कैद हो जानेसे बाहर वे संसारको अपना दुख-दर्द नहीं सुना सकतीं और भीतर ही भीतर घुल-घुलकर मर जाती हैं।

मनु आदिने जो यह लिखा है कि बचपनमें पिता, जवानीमें पति और बुढ़ापेमें पुत्र स्त्रीकी रक्षा करे, स्त्री अरक्षित कभी न रहे, यह स्त्री जातिपर कोई लाञ्छन नहीं है, वरन् उसकी प्रकृतिका गम्भीर अध्ययन करके निकाला हुआ एक तथ्य है। इसकी अवहेलना करनेसे स्त्री और पुरुष दोनों जातियोंका अपकार होता है।

मनुने लिखा है:—

नैता रूपं परीक्षन्ते नासां वयसि संस्थितिः
रूपं वा निरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते।
पौंश्चल्याच्चलं चित्ताच्च नैःस्नेह्याच्च स्वभावतः
रक्षिता यत्नतोऽपीह भर्तृष्वेता विकुर्वते।
एवं स्वभावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापति निसर्गगम्
परमं यत्न मातिष्ठेत् पुरुषो रक्षणं प्रति।

—स्त्रियां न पुरुषकी सुन्दरताको परखती हैं, न उसकी आयुको देखती हैं, चाहे सुन्दर हो या असुन्दर, वे पुरुषमें लिप्त हो जाती हैं। प्रजापतिने स्त्रियोंका स्वभाव ही ऐसा बनाया है, इसलिए पुरुषोंको चाहिए कि बड़े यत्नसे स्त्रियोंकी रक्षा करें।

स्त्रियोंकी झूठी चापलूसी करके उनको प्रसन्न करनेवाले, हर बातमें स्त्री और पुरुषको बराबर माननेवाले और भारतवर्षमें रहते हुए भी अपनेको इंगलैण्डमें समझनेवाले, हिन्दू ऊपर लिखी हुई सम्मतिके लिए मनु और उसके साथ ही शायद मुझे भी बुरा-भला कहें; परन्तु अनुभव बताता है कि मनुकी बात सत्य है। जो भी व्यक्ति इसकी अवहेलना करता है, उसे पीछे रोना ही पड़ता है।

जहां-जहां भी स्त्रियोंकी स्वतन्त्रता और पुरुष और स्त्रीकी समानताके नामपर स्वच्छन्दता की गयी है, वहां पश्चात्ताप करनेके सिवा और कुछ भी परिणाम नहीं हुआ है।

× × ×

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जिस प्रकार मुसलिम स्त्रीकी रक्षाके लिए मुसलमान लोग पल-भरमें हजारोंकी संख्यामें एकत्र हो जाते हैं और अदालत और पुलिसकी भी परवाह न करके उसे छीन ले जाते हैं, वैसे हिन्दू बिलकुल नहीं करते। ऐसे अवसरोंपर हिन्दू युवक दुम दबाकर भाग जाते हैं या हिन्दू स्त्रीको सङ्कटमें देखकर भी पास खड़े हंसते रहते हैं। वास्तवमें देखा जाय, तो इसमें युवकोंका उतना दोष नहीं। उनकी कायरता और दुर्बलताका मूल कारण हिन्दुओंकी वर्णव्यवस्था है। एक मुसलमान अपनेको एक बड़ी भारी जातिका एक अङ्ग अनुभव करता है। वह समझता है कि सात करोड़ मुसलमान उसके भाई हैं, विपत्तिमें वे उसकी सहायता करेंगे। इसलिए वह अपनेको एक नहीं, सात करोड़ समझता है। इसके विपरीत हिन्दू अपनेको अकेला समझता है। उसने कभी २३ करोड़को अपना भाई समझा ही नहीं। वह तो अपनेको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, चमार या कहार समझता है, हिन्दू नहीं। हिन्दूका भाई-चारा केवल उसकी अपनी ही छोटी-सी बिरादरी है। इसलिए लड़ाई-झगड़ेके मौकेपर वह अपनेको अकेला और कमजोर पाता है और जान बचाकर भागता है।

यदि आज हमारे युवकोंमें जातीय अभिमान व आत्म-गौरवकी भावनायें तथा युवकोचित साहसकी कमी न होती, तो हमें हिन्दू नारियोंकी यह दुर्गति कभी भी देखनेको न मिलती। इसके विपरीत हमारे अधिकांश नवयुवक एक ऐसी लज्जाजनक मनोवृत्तिके शिकार हो रहे हैं, जिसके कारण इस जातीय अपमानका विरोध करनेके स्थानमें वे उसके उत्साहित करनेके कारण बन रहे हैं। जिन घटनाओंको देखकर प्रत्येक हिन्दूका रक्त खौल उठना चाहिए, अपने तथा अपनी जातिका कलङ्क व अपमान समझकर जिन घटनाओंको बन्द करनेके लिए, प्रत्येक हिन्दूको अपने प्राण तक अर्पण करनेमें सङ्कोच नहीं होना चाहिए, उन्हीं लज्जाजनक घटनाओंका रोमाञ्चकारी वर्णन सुनकर हमारे कानोंपर जूं तक नहीं रेंगती। अन्य जातियोंके उदाहरण हमारे सामने हैं। अंगरेज युवतियां स्वतन्त्रतापूर्वक चाहे जहां घूमती हैं, उनकी ओर आंख उठाने तकका साहस किसीको नहीं होता। अभी तक वह घटना भूली नहीं है। कुछ वर्ष पूर्व किसी अंगरेज युवतीको सीमाप्रान्तके पठान भगा ले गये थे, जिससे समस्त ब्रिटिश साम्राज्य दहल गया था। और जब तक लड़की वापस नहीं मिली, तब तक अंगरेजोंने चैन नहीं लिया। अभी कुछ दिन पूर्व एक मुसलमान घरानेकी युवा लड़कीने सजातीय गुण्डों द्वारा पीड़ित होकर एक आर्य

अनाथालयकी शरण ली। उसने अदालत व पुलिसके सामने स्पष्ट कहा था कि वह बालिग है तथा उसने अपनी इच्छासे ही उस मार्गका अनुसरण किया था। अब वह किसी अवस्थामें भी लौटकर अपने घर नहीं जाना चाहती। दूसरे दिन लड़की खुली अदालतमें बयान तक न दे सकी। हजारों उत्तेजित मुसलमान लठैत अदालतको चारों ओरसे घेरे खड़े थे। उनका कहना था कि अदालत व लड़की चाहे जो कहे, लेकिन हम लोग लड़कीको लिये बिना नहीं लौटेंगे। आखिर मजबूरन् लड़की मुसलमानोंके हवाले कर दी गयी। क्या कभी किसी हिन्दू युवतीके लिए हिन्दुओंने भी ऐसा जाति-प्रेम दिखाया है ?

हमारी नयी रोशनीके बाबू लोग जो हिन्दू स्त्रियोंको उलाहना दिया करते हैं कि वे अंगरेज स्त्रियोंकी तरह स्वतन्त्रतापूर्वक अकेली क्यों नहीं घूमतीं, डरती क्यों हैं, उन्हें गुण्डोंका मुकाबला करना चाहिए। वे यह नहीं सोचते कि अंगरेज स्त्रियोंकी निडरता उनके व्यक्तिगत शारीरिक बलमें नहीं, वरन् उनकी जातिके सामूहिक बलमें है, जिसको वर्णव्यवस्थाने हिन्दुओंमेंसे बिलकुल नष्ट कर दिया है। यदि नारीके पीछे उसकी रक्षा करनेवाला समाजका सामूहिक बल न हो, तो वह अकेली कुछ भी नहीं कर सकती।

इसलिए स्पष्ट है कि हिन्दू स्त्रियोंका अपहरण बन्द करनेके लिए हिन्दुओंकी जाति-पांतिका विध्वंस करके उनकी मनोवृत्तिको बदलनेकी जरूरत है। यदि गुण्डों-बदमाशोंको यह विश्वास हो जाय कि हिन्दू युवतियोंको भगाना खतरेसे खाली नहीं है, तो वे ऐसा दुस्साहस न कर सकेंगे। अभी तक वे हिन्दू स्त्रियोंको पञ्चायती हलवा समझते हैं। वे जानते हैं कि उनको हाथ लगाते ही उनपर उनका जन्म-सिद्ध अधिकार हो जाता है। वे जानते हैं कि हिन्दुओंमें विरोध करनेका साहस नहीं है।

———

आकांक्षा

विकल मानवके उरका सिन्धु
लहरियों-सी उसमें दिन - रात
नाचती आकांक्षायें मौन
साथ मिल ज्ञात और अज्ञात !

किया इसने निर्मित अभिराम
कुसुम कण्टकमय पथपर जाल,
निराशा - आशा - फलसे युक्त
करी इसने जीवन-तरु-डाल !

जगत्के मरुथलमें विस्तीर्ण
हमारा जीवन - मार्ग अछोर
यहां बन मृग-जल-सी यह क्रूर
हमें भटकाती है निशि भोर।

बिना आकांक्षा जीवन - स्रोत
कहांसे पायेगा गति गान ?
बिना आकांक्षा ध्येयकी ओर
बढ़ेगा कैसे जीवन - यान ?

कभी उठ असित घटा-सी शीघ्र
विहंसते मानसमें चुपचाप
बनाती अश्रु-वृष्टिको फैल
हृदयकी पीड़ाओंकी भाप !

अरे यह मानवको अभिशाप
अरे यह मानवको वरदान—
संभाले विह्वल उरका भार
बढ़े वह निज पथपर अविराम !

—ब्रजमोहन गुप्त।

मजदूरोंकी कुछ समस्यायें

श्री विनयकुमार

भारतके मजदूर-आन्दोलनकी प्रगतिपर विचार करनेके बाद कोई इस निर्णयपर पहुंच बिना नहीं रह सकता कि भारतमें मजदूर-आन्दोलन अभी काफी कमजोर है, इसीलिए उनकी मांगोंकी उपेक्षा की जाती है । बम्बईकी कपड़ेकी मिलोंमें अभीकी हड़ताल और उसका जिस रूपमें अन्त हुआ, वह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। लाभका सारा अंश हजम कर जानेकी प्रवृत्तिको रोकने और देशमें नवीन आर्थिक प्रणालीकी स्थापनाकी समस्या देशके अर्थ एवं समाज-शास्त्रियोंके सम्मुख है। मजदूर-आन्दोलनका यह एक ऐसा पहलू है, जिसका उत्तरदायित्व मजदूरों और मिल-मालिकोंको छोड़कर अन्योंपर भी है। कितनी ही हड़तालें मजदूर करें अथवा पूंजीपति कितनी ही उदारता दिखायें, इस आन्दोलनकी विशुद्ध आर्थिक समस्याका हल कर सकना उनके लिए कठिन है। पर इन आर्थिक समस्याओंके अतिरिक्त कुछ ऐसी समस्यायें भी हैं, जो मजदूरोंको पशुवत् जीवन व्यतीत करनेको बाध्य करती हैं और यदि पूंजीपति और मजदूर नेता चाहें, तो बिना किसी प्रकारके सङ्घर्षके उनका सरलतासे हल कर सकते हैं ।

विशुद्ध आर्थिक समस्याओंमें मजदूरोंकी इन अवस्थाओंपर भी विचार किया जाना चाहिए :—(१) मजदूरीमें वृद्धि, (२) मजदूरोंके लिए प्राविडेण्ट फण्ड एवं दुर्घटना आदिके समयकी क्षतिकी पूर्ति और (३) सवेतन छुट्टियां।

यदि हम यह कह दें कि भारतमें आजका मजदूर-आन्दोलन आर्थिक समस्याके इन्हीं अङ्गोंके पूर्त्यर्थ है, तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। भारत संसारमें एक ऐसा देश है, जहां चीनको छोड़कर सबसे कम मजदूरी मजदूरोंको मिलती है। सरकारकी ओरसे ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, जो मजदूरीकी कमसे कम दर नियत कर सके ।

मजदूरोंकी आर्थिक समस्याओंके हल करनेको महत्त्वपूर्ण आन्दोलन हुए हैं और होते रहते हैं। उनमें जितनी शक्तिका व्यय होता है, उतनी सफलता नहीं मिलती। इसके अनेक कारण हैं। इन विशुद्ध आर्थिक समस्याओंके अतिरिक्त मजदूर-आन्दोलनकी कुछ ऐसी समस्यायें भी हैं, जिनका उद्गम यद्यपि अर्थसे है, तथापि उन्हें इस आन्दोलनकी नैतिक समस्यायें कहना अधिक उपयुक्त होगा। इनके विषयमें न तो मजदूर नेताओंने कोई महत्त्वपूर्ण आन्दोलन किया है, न मजदूरोंने स्वयं ही बहुत अनुभव किया है। वर्तमान मजदूर नेताओंके इन समस्याओंको हाथमें न लेने और महत्त्व न देनेका कारण यह है कि किसी भी पहलूको वे अर्थकी अथवा राजकीय दृष्टिसे ही देखते हैं, नैतिक दृष्टिसे नहीं। इतना सब होनेपर भी यह कहना न होगा कि ये गैर-आर्थिक समस्यायें मजदूरोंकी वर्तमान दुरवस्थाके महत्त्वपूर्ण कारण हैं। उन समस्याओंमें ये मुख्य हैं—(१) मजदूरोंकी भर्ती, (२) ऋणका बोझ।

मजदूरोंकी भर्ती

पूर्व इतिहास—भारतमें कारखानों, खदानों व अन्य स्थानोंमें मजदूरोंकी भर्तीकी वर्तमान प्रणाली आजसे एक शताब्दीसे भी पूर्वसे प्रचलित उस बर्बर कुली-प्रथाका परिवर्तन-मात्र है, जिसके द्वारा विदेशी कम्पनियां भोले-भाले गरीब भारतीयोंको अनेक प्रकारके लालच देकर मजदूरोंके रूपमें भर्ती कर विदेशोंमें खेतीके कामके लिए ले जाती थीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके भारतमें आनेके बाद सन् १८३६ में यह कुली-प्रथा—शर्तबन्दी मजदूरी—कानूनन् जायज कर दी गयी। मजदूरोंकी भर्तीकी इस प्रथाको ('Indentured Labour') 'शर्तबन्दी मजदूरी' प्रथा कहते थे। इस प्रथाका उल्लेख सरकारी रिपोर्टोंमें निम्न प्रकार है:—

"उपनिवेशोंकी सरकारें भारतके मुख्य शहरोंमें अपने एजेण्ट नियुक्त करती थीं, जो मजदूर भर्ती करनेवालोंको नौकर रखते थे। ये नौकर, लोगोंको मजदूर बनकर विदेश जानेको तैयार करते थे और मजिस्ट्रेटके सामने ले जाकर रजिस्टरमें नाम लिखवा देते थे। वे मजदूर बम्बई, कलकत्ता अथवा मद्रास ले जाये जाते थे और वहां एजेण्टोंकी स्वयंकी निगरानीमें रखे जाते थे।"

उपर्युक्त प्रणालीके विषयमें स्व० श्री सी० एफ० एण्डरूज-

ने अपनी "इण्डिया एण्ड पेसिफिक" नामक पुस्तकमें जो लिखा है, वह इस प्रथाकी बर्बरता और पाशविकताके दिग्दर्शनके लिए यथेष्ट है :—

"भारतमें मजदूरोंकी भर्तीकी वह सम्पूर्ण प्रथा बहुत बदनाम थी, क्योंकि मजदूर भरती करनेवाले (दलाल) अपने उद्देश्यके पूर्त्यर्थ सब नीच उपायोंका अवलम्बन करते थे और जब एक जिला (जहां वे भरतीका काम करते थे) उनके विरुद्ध बगावत कर देता था, तो वे दूसरे जिलेमें प्रवेश करते थे।" आगे वे लिखते हैं :—

"शर्तबन्दी मजदूर-प्रथाके अन्तर्गत गरीब ग्रामीण मजदूरोंकी दशा अत्यधिक करुणाजनक थी। इस प्रथाके अन्तर्गत काम करनेवाले ग्रामीण मजदूरोंमें आत्महत्याकी संख्या इसका ज्वलन्त प्रमाण है। क्योंकि भारतीय ग्रामोंमें आत्महत्या प्रायः नहीं-सी है।"

भारतीय मजदूरोंको विदेशोंमें गुलाम बनाकर भेजनेकी उपर्युक्त प्रणालीमें सन् १८८३ में कुछ परिवर्तन किया गया था, पर पूर्णरूपेण यह प्रणाली सन् १९२० में बन्द की गयी थी। आज भारतमें भिन्न-भिन्न कारखानों अथवा खदानों या चायकी खेती आदिमें मजदूरोंकी जो भर्ती की जाती है, वहां यद्यपि उपर्युक्त प्रणाली अपने प्रारम्भिक रूपमें नहीं है, पर उसके मूल दो सिद्धान्तों—(१) दलालों द्वारा भर्ती और (२) शर्तबन्दी—मेंसे प्रथम आधारको तो सर्वत्र काममें लाया ही जाता है और आसाम प्रान्तमें तो यूरोपियन कम्पनियों द्वारा की जानेवाली चायकी खेतियोंमें उस पुरानी प्रणालीके दोनों सिद्धान्त आज भी अधिकांश रूपमें काममें लाये जाते हैं।

खदानों, कारखानों अथवा चाय आदिकी खेतीके मालिक मजदूरोंकी भर्ती करनेके लिए ठेकेदार रखते हैं। ये ठेकेदार गांव-गांवमें घूमते हैं और ग्रामीणोंकी गरीबी और कर्ज-समस्याका अनुचित लाभ उठाकर उन्हें शहरकी चटकीली-भड़कीली बातों और अधिक मजदूरीका लालच देकर भर्ती कर लेते हैं। यह ठीक है कि गांवोंकी अपेक्षा उन्हें शहरोंमें अधिक मजदूरी मिलती है, पर उन गरीबोंको शहरके खर्चीले रहन-सहनका कुछ भी ज्ञान नहीं होता। ठेकेदार अनेक स्थानोंपर उन भावी मजदूरोंको स्वयं कर्ज देकर उनका पिछला कर्ज भी चुका देता है। इस प्रकार दिये गये ऋणको व्याज सहित वसूल करनेमें बादमें वह जिस निर्दयतासे काम लेता है, वह हृदयको हिला देनेवाली है। इस तरह जो ठेकेदार होता है, उसके दो धन्धे चलते हैं। प्रथम कम्पनीके मालिकसे प्रति मजदूर पीछे दलाली मिल जाती है और इधर मजदूरोंके साथ उनका लेन-देनका व्यापार भी बहुत अच्छी तरहसे चलता है। गरीब देहाती अधिक सुखकी आशासे दलालोंके फन्देमें फंसकर शहरमें आ जाता है और पूरा जीवन केवल उस दलाल द्वारा दिये गये ऋणको ही चुकानेमें व्यतीत कर देता है। इस विषयमें पाठक अन्यत्र दिये गये उदाहरणसे मेरे कथनकी सचाईको जान सकेंगे।

भारतीय मिलोंमें मजदूरोंकी भर्ती 'जाबर' लोग किया करते हैं। उसीके अधीन मजदूर रखने या अलग करनेका काम होता है। वह मजदूर भरती करते समय मजदूरोंसे अपनी पूरी दलाली वसूल करता है। अनेक स्थानोंपर तो जाबर लोग अपनी एक निश्चित दर बना लेते हैं। प्रति मजदूर पीछे उसे १०), १५) या २०) तक मिल जाता है। यदि उसे इकट्ठे १००), २००) की आवश्यकता हो, तो वह १०, १५ मजदूरोंको किसी न किसी बहाने नौकरीसे अलग कर देता है और दूसरे मजदूरोंकी भरतीके समय अपनी मनोवाञ्छित रकम उनसे प्राप्त कर ले सकता है। इस विषयमें श्री जान गुन्थरने अपनी पुस्तक 'इनसाइड एशिया' (Inside Asia) में एक अच्छा उदाहरण दिया है। वे लिखते हैं :—

"मान लीजिये, आपको नौकरी चाहिए। आप जाबरके पास गये। जाबर आपसे इस प्रकार नौकरी दिलानेके लिए कुछ इनाम चाहेगा। कानपुरमें साधारणतः जाबर २०) लेता है। आपके पास २०) नहीं हैं। परन्तु यह पारितोषिक काम मिलनेके लिए आवश्यक है। अतः आपने २०) उसी जाबरसे उधार ले लिये, जो कि लेन-देनका व्यवसाय भी करता है। उसके बाद आपको खानेके लिए भी कम्पनीके भण्डारसे क्रेडिटपर मिल जायगा, क्योंकि वही जाबर स्टोरकीपर भी है। व्याजकी साधारण दर दोअन्नी रुपया मासिक है, जो करीब १५०) सैकड़ा होता है। जाबर यह कभी नहीं चाहेगा कि आप उसका कर्ज चुका दें। वह व्याजपर ही धनवान होता जाता है।" (पृष्ठ ४२९-३०)

भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें खदानोंमें मजदूरोंकी भर्तीके

भिन्न-भिन्न तरीके हैं। बिहार और उड़ीसामें मजदूरोंकी भरती करनेके लिए सरदार होते हैं। ये सरदार ग्रामोंमें घूम-घूमकर मजदूर इकट्ठा करते हैं। इस प्रकार वह सरदार जिन मजदूरोंको इकट्ठा करता है, उन्हींका वह सरदार बन जाता है। उसीके अधीन वे मजदूर काम करते हैं। इस प्रकार मजदूर भरती करनेके लिए उस सरदारकी आवश्यकतानुसार ८), १०) और १२) तक भी प्रति मजदूरके लिए एडव्हान्स दिया जाता है। इसके सिवा कम्पनियोंसे उसे वेतन या दलाली और मिलती है।

मध्यभारतमें दो, तीन और चार पैसे तक प्रति सप्ताह प्रति मजदूरको उस मुकद्दरको देना होता है, जो उन्हें भरती करता है। आसाममें यूरोपियन कम्पनियोंकी चायकी खेतियोंमें अभी तक भी शर्तबन्दी मजदूरी किसी न किसी रूपमें चलती है। २४ मई सन् १९२९ ब्रिटिश गवर्नमेण्टने एक शाही कमीशनकी नियुक्ति की थी। इस कमीशनने आसामके चायके बगीचोंमें काम करनेवाले मजदूरोंकी इस शर्तबन्दी मजदूरी-प्रणालीकी जांच कर कुछ सूचनायें दी थीं और उन्हीं सूचनाओंके आधारपर भारत-सरकारने मार्च सन् १९३२ में केन्द्रीय धारा-सभामें एक बिल पेश किया, जो पास होकर अप्रैल सन् १९३३ में अमलमें लाया गया। उक्त कानूनके अनुसार—

(१) लायसन्सशुदा सरदार ही मजदूरोंको भरती करनेका काम कर सकते थे।

(२) १६ वर्षकी अवस्थासे कमके बालक जब तक कि उनके माता-पिता साथ न रहें, भरती नहीं किये जा सकते।

(३) जो मजदूर बाहरसे काम करनेके लिए लाये जाते हैं, उन्हें तीन वर्षके पश्चात् अपने घरोंको जानेका पूरा अधिकार होगा।

(४) तीन वर्षके भीतर भी मजदूर अपने घरको लौट सकेगा, यदि यह बात 'सिद्ध' कर दी जायगी कि उसे कम्पनीकी या व्यक्तिकी ओरसे उचित काम नहीं दिया जाता अथवा उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता अथवा उसकी मजदूरी नियमपूर्वक नहीं दी जाती।

(५) इसके सिवा मजदूरको कानूनन् कभी भी लौटनेका अधिकार है, यदि ठेकेदार अथवा मालिक मजदूरसे मारपिटाई करे।

कानूनकी उपर्युक्त धाराओंसे यह प्रतीत होता है कि आसाममें अभी भी वह बर्बर शर्तबन्दी मजदूर-प्रथा प्रचलित है, जिसके विषयमें स्व० गोखलेने कहा था कि "यह प्रथा स्वतः अन्यायपूर्ण है, छल-कपटकी नींवपर स्थित है और बल द्वारा इसका सञ्चालन होता है।"

आसाममें मजदूर-प्रथाके लिए उक्त कानून है। आसामके चायके बगीचोंमें काम करनेवाले मजदूरोंपर होनेवाले अत्याचार भारत-प्रसिद्ध हैं। कानून उस प्रथामें और अधिक बुराइयोंको रोकनेके लिए है, न कि प्रणालीको बदलनेके लिए। गरीब मजदूरके लिए, जिसके पास खानेको पैसा नहीं होता, जो ठेकेदारोंके कर्जसे दबा होता है, यह सम्भव ही नहीं है कि वह कानूनकी शरण लेकर किसी अन्यायको 'सिद्ध' कर, अपने अधिकारोंकी रक्षा कर अपने घर सुरक्षित लौट सके। तीन वर्षके भीतर तो क्या, उसके बाद भी कर्जसे दबे होनेके कारण उन्हें वहीं पशुवत् जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है। सन् १९३१-३२ के तद्विषयक अङ्कोंसे प्रतीत होता है कि उस वर्षमें ९०००० से भी अधिक मजदूर आसाममें भरती किये गये और करीब ७९ ठेकेदारोंपर मजदूरोंकी भरती करनेमें अन्याय और अत्याचार करनेके कारण मुक़दमे चलाये गये। इन प्रकट मामलोंके अतिरिक्त अप्रकट अनेक अत्याचार होते हैं, जो कानूनकी दृष्टिसे किसी प्रकार बच जाते हैं। मजदूरोंकी भरतीकी यह प्रणाली सिद्धान्ततः ही पाशविक और अनुचित है। उक्त प्रथाके विषयमें श्री सी० एफ० एण्डरूजके ये शब्द हमारे कर्तव्यकी ओर स्पष्ट सङ्केत करते हैं कि "यदि भारतवर्षके शुभ नामको अधिक कलङ्कित होनेसे बचाना हो, तो यह पूर्णतः स्पष्ट है कि इस भ्रष्ट प्रथाको अब एक दिन भी कायम नहीं रखना चाहिए।"

मजदूरोंकी भरतीकी वर्तमान प्रणालीमें मुख्यतः दो बुराइयां हैं, जिनका शीघ्रातिशीघ्र दूर होना आवश्यक है :—

(१) शर्तबन्दी मजदूरी—चाहे आसाममें चायकी खेतीके लिए हो अथवा बिहार और मध्यप्रान्तकी कोयलेकी खदानें हों, कहीं भी इस अवाञ्छनीय प्रथाको रहने न देना चाहिए। मजदूरोंको मानवोचित अधिकारोंसे वञ्चित रख उन्हें पशुवत् जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य करना वास्तवमें न केवल सम्बन्धित सरकार, वरन् सम्पूर्ण राष्ट्रके लिए कलङ्ककी बात है।

(२) मज़दूरोंकी भरतीके लिए दलालोंका उपयोग—उक्त प्रणालीसे न केवल मजदूरोंमें ही आर्थिक बुराइयां पैदा होती हैं, वरन् सम्पूर्ण राष्ट्रको इस घूसखोरीकी प्रथासे अत्यन्त हानि पहुंचती है। जापानी माल संसारके बाजारमें क्यों सस्ता बैठता है, इसके कारणोंका उल्लेख करते हुए जान गुन्थरने अपने पूर्वोक्त ग्रन्थमें लिखा है कि "दूसरा कारण औद्योगिक क्षेत्रमें ईमानदारीका होना है। जापानी फैक्ट्रीमें घूसखोरी नहीं है, इनाम भी नहीं है और न जाबर या दलाल ही हैं, जिन्हें किसी प्रकार धन देना पड़े।"

राष्ट्रोन्नतिके इस महत्त्वपूर्ण कार्यकी ओर मजदूर नेताओंको ध्यान देना चाहिए। इसमें पूंजीपतियोंका पूर्ण सहयोग भी सरलतासे प्राप्त किया जा सकता है।

२ ऋणका बोझ

मजदूरोंकी आज़की दयनीय अवस्थाके कारणोंमेंसे एक प्रधान कारण उनकी ऋण-समस्या है। शाही कमीशनने मज़दूरोंकी ऋण-समस्याके बारेमें लिखते हुए कहा है कि "मजदूरोंकी गरीब स्थितिके कारणोंमें ऋणी बोझ प्रधान है।"

मजदूरोंकी ऋण-समस्याके विषयमें यद्यपि ठीक-ठीक अङ्क प्राप्त नहीं होते, तथापि जो कुछ भी होते हैं, उनपरसे ही यह ज्ञात होता है कि ७० से ७९ फीसदी मजदूर ऋणके बोझसे दबे हुए हैं। बम्बई प्रान्तके तद्‌विषयक अङ्कोंसे ज्ञात होता है कि वहां ६० से ७० प्रतिशत मजदूर ऋणी हैं। पञ्जाबमें खेतीमें काम करनेवाले मजदूर भारतमें सबसे अधिक कर्जदार हैं। मद्रास प्रान्तमें भी मजदूर अत्यधिक कर्जदार हैं और यह कहा जाता है कि मजदूरोंका ७९ प्रतिशतसे भी अधिक वेतन "पे-डे' के दिन साहूकारों द्वारा छीन लिया जाता है। मजदूरोंके ऋणकी तादादके विषयमें बम्बई लेबर आफिसके अङ्कोंसे ज्ञात होता है कि प्रति मज़दूरपर औसतन् उसके २॥ मासके वेतनके बराबर ऋण होता है। अहमदाबादमें सन् १९२६ से १९३० तक ६९ प्रतिशत परिवार कर्जदार थे। यों तो सम्पूर्ण भारतीय किसान और मजदूर ऋणके बोझसे दबे हुए हैं; परन्तु यदि तुलनात्मक दृष्टिसे विचार किया जाय, तो जितना मजदूरोंका कर्ज उनके लिए दुःखदायी है, उतना किसानोंका कर्ज उनके लिए दुःखदायी नहीं है। मजदूरोंके लिए भी ऋणका बोझ उतना दुःखदायी नहीं होता, जितना कर्जकी वसूलीके तरीके और ब्याजकी दर होती है। किसानोंको कर्ज देने वाले अक्सर अधिक सम्पतिशाली सेठ-साहूकार होते हैं। उनकी ब्याजकी दर अनेक मामलोंमें अनुचित नहीं होती। ऋणकी वसूलीके लिए वे कानूनी कार्यवाहीकी शरण लेते हैं। परन्तु मजदूरोंमें लेन-देनका व्यवसाय करनेवाले साधारणतः कम पूंजीवाले और निम्न सामाजिक श्रेणीके लोग होते हैं। कर्जकी वसूलीके लिए वे कानूनी कार्यवाही द्वारा समय और धन नष्ट करना पसन्द नहीं करते। इसका परिणाम यह होता है कि १०) का कर्ज लेकर एक मजदूर २४ घण्टेकी परेशानी मोल ले लेता है। मिलके फाटकसे घरके दरवाजे तक वह जहां जाये, अपने पीछे डण्डेवाला पठान हर समय पायेगा। इस विषयमें शाही कमीशनने अपनी रिपोर्टमें लिखा है :—

"बहुत-से साहूकार, जो मजदूरोंपर शिकारकी नाईं तके रहते हैं, न्यायालयकी कार्यवाहीकी अपेक्षा पाशविक शक्तिपर ही निर्भर रहते हैं। उनका न्यायाधीश लाठी ही है, जिससे वे अपील करते हैं। और "पे-डे" के दिन कारखानोंके बाहर अपने कर्जदारोंसे रुपया वसूल करनेके हेतु भूखे शेरकी तरह वे उनपर झपट पड़ते हैं।" [पृष्ठ २३९]

इसका उपाय बताते हुए कमीशनने लिखा है कि "किसी भी कारखानेके पास इस प्रकार कर्ज-वसूलीके हेतु घेरा डाले रखनेको फौजदारी और "कागनिजेबल' अपराध बना देना चाहिए।"

इस विषयमें बङ्गाल और मध्यप्रान्तकी सरकारोंने कुछ कदम उठाया है। बङ्गाल सरकारने सन् १९३४ में "बङ्गाल मजदूर रक्षा कानून" (Bengal Workman's Protection Act, 1934.) नामक कानून पास किया, जिसके अनुसार ऐसे व्यक्तिको, जो किसी कारखाने, खदान, डाक या रेलवे स्टेशनके पास मज़दूरोंसे पैसा वसूल करनेके लिए चक्कर काटता हो, ६ मास तककी सजा हो सकती है। बङ्गाल सरकारसे मध्यप्रान्तीय सरकारने एक कदम और आगे बढ़ाया और सन् १९३६ में एक बिल पेश किया, जिसके अनुसार काम करनेके स्थानके सिवा रहनेके स्थानपर भी उसी हेतु चक्कर काटते रहना भी आपत्तिजनक था। सेलेक्ट कमेटीने इस बिलमें कुछ परिवर्तन किया और सन् १९३७ में वह कानून बन गया।

कर्ज-वसूलीकी दुःखजनक प्रणालीके अतिरिक्त मजदूरोंके लिए ब्याजकी दर भी असहनीय-सी है। इस विषयमें श्री जान गुन्थरने एक उदाहरण दिया है। वे लिखते हैं कि "इस प्रकारका एक मामला हुआ है, जिसमें एक व्यक्तिको ११०) का ऋण दिया गया था। उस व्यक्तिने मूलधनपर ९७०) केवल ब्याज दिया था और अन्तमें पुलिसने उसमें हस्तक्षेप किया।"

मजदूरोंको दिये जानेवाले कर्जपर दो आना प्रति रुपया प्रति मास अथवा १५०) सैकड़ा सालाना ब्याज लेना एक बहुत ही साधारण बात है। इसे सिवा अमानुषिक व्यवहारके और क्या कहा जा सकता है?

जिन लोगोंका मजदूरोंसे कुछ थोड़ा भी सम्बन्ध होता हैं, वे जानते हैं कि इस कर्जके कारण उन्हें किस प्रकार पशुवत् जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है। यहां तक कि अपनी स्त्रियोंकी इज्जत तक भी बचानेमें वे असमर्थ हो जाते हैं। मनुष्यका मनुष्यपर इससे बढ़कर और अधिक अत्याचार क्या हो सकता है? इस विषयमें पूंजीपति, सरकार और मजदूर नेताओंके सङ्गठित प्रयत्नसे कुछ कार्य किया जा सकता है। इसके लिए निम्नलिखित कुछ उपाय काममें लाये जा सकते हैं :—

१—मालिक स्वयं मजदूरोंको आवश्यक कर्ज देनेकी व्यवस्था करे। उचित ब्याजके साथ वह न्यायोचित ढङ्गसे मासिक वेतनमेंसे पैसा वसूल कर सकता है।

२—सरकार कानून द्वारा लायसेन्स-प्राप्त व्यक्तियोंको ही मजदूरोंको कर्ज देनेका अधिकार दे सकती है। लायसन्सकी शर्तोंमें कर्ज-वसूलीके तरीके और ब्याजकी दर विषयक साधारण शर्तें ही होनी चाहिए, ताकि वह कुछ लोगोंकी "मोनोपली" ही न बन जाय।

३—मजदूर नेता शिक्षा-प्रचार, रात्रि-पाठशालाओं, सभाओं, पोस्टरों और मेजिक लेण्टर्न द्वारा मजदूरोंको मितव्ययतासे लाभ और कर्जकी बुराइयां बताकर कर्ज लेनेकी उनकी आदत तथा अन्य प्रकारके उनमें प्रचलित दुर्व्यसनोंको कम करनेका प्रयत्न करें।

इस दिशामें इस प्रकारके रचनात्मक और ठोस कार्यसे ही मजदूरोंकी वर्तमान दयनीय अवस्थामें सुधार हो सकता है। क्या यह आशा की जा सकती है कि भारतके पुनर्निर्माणमें मजदूरोंकी महत्त्वपूर्ण समस्याको विस्मृत नहीं किया जायगा?

———





युद्धकालीन कुछ मनोरञ्जक बातें

कहा जाता है कि प्रेम और युद्धमें कोई बात अनुचित या असम्भव नहीं है। इसलिए युद्धकालमें कुछ अजब और मनोरञ्जक बातें सुनाई पड़ती हैं। विभिन्न विदेशी पत्रोंसे लिये गये कुछ नमूने यों हैं :—

इटलीकी शक्ति : इटली यद्यपि अब जर्मनीके साथ लड़ रहा है, पर जब तक वह युद्धमें पड़ा नहीं था, तब तक उसको लेकर तरह-तरहकी अटकलें लगायी जा रही थीं। एक बार पश्चिमी मोर्चेपर लड़नेवाले जेनरल गेमलिनने एक पत्र-प्रतिनिधिके यह पूछनेपर कि इटलीकी सैन्यशक्ति कैसी है, कहा—"अगर इटली तटस्थ रहे, तो उसकी देख-रेखके लिए मुझे ५ डिविजन सैनिकोंकी आवश्यकता पड़ेगी। अगर वह हिटलरके साथ जाकर हमारे विरुद्ध युद्ध करने लगे, तो उसे हरानेके लिए मुझे दस डिविजन सैनिक चाहिए। लेकिन अगर वह मित्र-शक्तियोंकी ओरसे लड़ाईमें भाग ले, तो उसकी सहायताके लिए मुझे १९ डिविजन भेजने पड़ेंगे।

सेन्सर : युद्ध-कालमें सेन्सरका महत्त्व खूब बढ़ जाता है। और यह किस हद तक साधारण पत्र-व्यवहारोंपर भी कड़ाई करता है, इसके नमूने भी बड़े मनोरञ्जक हैं। एक बार एक पुरुषने अपनी प्रेमिकाके नाम एक पत्र लिखा। पत्रको सेन्सर अफसरने खोलकर पढ़ा और प्रेमिकाके पास भेज दिया। बड़े चावसे प्रेमिकाने पत्र खोला, तो देखा सारे पत्रपर सेन्सरकी लाइनें खिंची हुई हैं और पत्रकी एक भी पंक्ति पढ़ी नहीं जा सकती। सिर्फ ऊपरकी पंक्तिमें 'प्रिय जेन' और अन्तमें "तुम्हारा अपना गिलबर्ट" यह अंश बिना सेन्सर हुए सही-सलामत प्रेमिकाके पास तक पहुंच सका।

ऐसी ही एक घटनाका उल्लेख 'नार्थ चाइना हेरल्ड'ने किया है। एक डेनिश युवती अपने प्रेमीके पत्रकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसे प्रेमीसे एक विस्तृत पत्रकी आशा थी कि अकस्मात् एक दिन सेन्सर बोर्डका एक लिफाफा उसे मिला, जिसमें लिखा था : "इस पत्रमें आपके प्रेमी मि० ......का एक लम्बा-चौड़ा पत्र था। वह बड़ा बातूनी मालूम होताहै। उसने ऐसी न जाने कितनी बातें लिख मारी थीं, जिनका उससे कोई सम्बन्ध नहीं, इसलिए वह पत्र नष्ट कर दिया गया।

"लेकिन हम आपको विश्वास दिलाना चाहते हैं कि वे बहुत आरामसे हैं और आपके लिए अभिवादन, प्रेम और असंख्य चुम्बन भेज रहे हैं।"

"दूसरी बार जब आप उन्हें पत्र लिखने लगें, तो उन्हें सावधान कर दें कि वे आपको सिर्फ प्रेम-पत्र ही लिखा करें। और तब वे पत्र बड़ी आसानीसे आपके पास पहुंच जाया करेंगे।"

जब तक गञ्जे न हो जायें : सङ्कटकालमें प्रत्येक देश अपने नागरिकोंसे देशके लिए त्याग और बलिदानकी मांग पेश करता है, इसलिए अगर जर्मनी भी ऐसा करे, तो इसमें किसी प्रकारके आश्चर्यकी बात नहीं है। लेकिन लिपजिगके एक पत्रने जर्मन पुरुषों और नारियोंसे एक अनोखा त्याग करनेको कहा है। उसने लिखा है कि आशा की जाती है कि देशभक्त जर्मन पुरुष और स्त्रियां अपने केश काटकर राष्ट्रको भेंट करेंगी, जिससे जर्मनोंको दूसरे देशोंसे ऊन और केल्ट खरीदनेकी आवश्यकता न रह जाय।

प्रेमके लिए आश्रय : युद्धकालीन बम-वर्षासे नागरिकोंकी रक्षाके लिए जो छिपनेके आश्रय बनाये गये हैं, उनका एक और उपयोग होने लगा है, जैसा कि 'नाटिङ्गम पोस्ट' ने लिखा है। अधिकारियोंने अबसे निश्चय किया है कि इन सारे आश्रयस्थलोंको ताला लगाकर बन्द करके रखा जाय। "यह संयोगकी बात है कि हमारे लिए रातको खतरेकी घण्टी नहीं बजानी पड़ी" एक ए० आर० पी० अफसरने बताया, "नहीं तो नागरिकोंको बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता, क्योंकि देखा गया कि कितनी ही बार प्रेमी-प्रेमिकायें उक्त आश्रय-स्थलों" में रातमें पायी गयी हैं। आखिर प्रेमके लिए भी तो आश्रय चाहिए!

आकाशसे प्रश्नोंकी वर्षा : रायल एयर फोर्स द्वारा जर्मनोंके बीचमें आकाशसे जो पर्चे गिराये गये थे, उनमें कैसी-कैसी बातें रहीं, इसका नमूना 'पेरिस सोर' ने छापा है। राइनलैण्डके उद्योग-क्षेत्रोंमें काम करनेवालोंसे ये प्रश्न पूछे गये थे :—

फील्ड मार्शल गोयरिंगको जर्मन जनताकी बचत आमदनीको खर्च करनेका अतिरिक्त अधिकार क्यों दिया गया है?

इसका क्या अर्थ कि वेतन मुद्रामें न होकर बाण्ड द्वारा होगा?

रीख बैङ्कके प्रेसिडेण्ट डा० वाल्टर फङ्क बार-बार क्यों इस बातको दुहरा रहे हैं कि जर्मनीमें कागजके नोट अत्यधिक नहीं चलाये जायेंगे, जबकि वे जानते हैं कि ठीक इसका उल्टा होनेवाला है।

जर्मन मजदूरोंको उन मशीनोंके लिए किस्त चुकाते रहनेके लिए क्यों मजबूर किया गया, जब कि यह बात स्पष्ट है कि कमसे कम युद्धकालमें तो वे मशीनें उन्हें नहीं मिल सकतीं।

उन पर्चोंपर नात्सीदलका स्वस्तिक चिह्न भी छपा रहा है।

वे भी सिनेमा देखते हैं

संसारका भ्रमण करनेवाले एक अमेरिकन पत्रकारने अपने अनुभवोंका वर्णन करते हुए लिखा है कि यूरोप और एशियाके वर्तमान महान् व्यक्तियोंमें अनेक फिल्मोंमें बड़ी दिलचस्पी लेते हैं। इस सम्बन्धमें उसने गांधीजी, चांग-काई-शेक, स्टैलिन, जापानके सम्राट्, हिटलर, मुसोलिनी, फ्रैङ्को तथा नार्वे और स्वीडनके राजाओंका उल्लेख किया है।

गांधीजीसे मुलाकात करनेपर उस पत्रकारको यह देखकर बड़ी निराशा हुई, जैसा कि उसने लिखा है कि, उनका उस दिन मौनव्रत था। अतः उन्होंने किसी भी प्रश्नका उत्तर नहीं दिया। उसने लिखा है :—मैं इस बातपर सोच ही रहा था कि मेरी ८५ सौ मीलकी यात्रा असफल हुई कि मुझे पता लगा कि भारतका यह महान् पुरुष मुझसे एक प्रश्न करना चाहता है। उन्होंने कहा :—

"मैं अमेरिकाके बारेमें बहुत कम जानता हूं, महाशय। अमेरिकाको जो कुछ मैं जानता हूं, केवल उसकी फिल्मों द्वारा ही, जिन्हें मैं समय-समयपर देखा करता हूं। पर आप किस श्रेणीके व्यक्ति हैं?"

पहले तो मैंने सोचा कि मैं गांधीजीसे यह कह दूं कि अमेरिकामें श्रेणी-भेद है ही नहीं, पर मैंने सोचा कि पहले उनके इस प्रश्नका और भी खुलासा करवा लूं। अतः उन्होंने कहा : "आप किस श्रेणीके हैं? आप गुण्डा, भद्र अथवा प्रेमी—किस श्रेणीके हैं!"

अमेरिकन फिल्मोंकी यह बड़ी ही सच्ची आलोचना है, इसमें सन्देह नहीं, पर लेखकको इस बातमें विश्वास करना असम्भव है, क्योंकि गांधीजी वस्तुतः फिल्म देखते ही नहीं और यह आलोचना तो अमेरिकन फिल्मोंकी अच्छी जानकारीके बाद ही की जा सकेगी।

जेनरल मोला और फ्रैङ्कोके सम्बन्धमें लेखकने लिखा है कि उन्हें अपराध और खूंरेजी-भरी रहस्यमयी फिल्में अधिक पसन्द हैं। लेकिन स्पेनमें जब राजा अलफेंजोका शासन था, तब प्रेम और श्रृङ्गारकी फिल्में बहुत पसन्द की जाती थीं। "अष्टम हेनरी' के व्यक्तिगत जीवनपर बनी फिल्म अलफेंजोको बहुत पसन्द थी।

बेलजियमके राजाका फिल्म-प्रेम प्रसिद्ध है। उन्हें जो फिल्में पसन्द आ जाती थीं, उन्हें कई बार देखते थे। 'थिन मैन' उन्होंने ग्यारह बार देखा था।

जर्मनी छोड़नेके बादसे कैसर नियमानुकूल सप्ताहमें दो दिन फिल्म देखते हैं। अमेरिका और ब्रिटेनकी सभी बढ़िया फिल्में उन्होंने देखी हैं।

फ्रान्सके वर्तमान प्रेसिडेण्ट लेब्रून तथा हेरियोका भी फिल्म-प्रेम प्रसिद्ध है। पहलेको शर्ली टेम्पुल तथा दूसरेको चार्ली चैपलिन बहुत पसन्द है।

हिटलर और मुसोलिनी फिल्में अधिक नहीं देखते, पर साम्यवादकी भावनावाली फिल्में उन्हें बेहद नापसन्द हैं।

स्वीडनके राजा गुस्टव तथा नारवेके हेकन फिल्मोंके बड़े प्रेमी हैं। गुस्टव हफ्तेमें कमसे कम चार फिल्में देखते हैं और हेकन हफ्तेमें आठ।

अमेरिका फिल्म बनानेवाले देशोंका राजा है और उसके प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टके अतिथि इस बातको जानते हैं कि दावत खानेके बाद वे अमेरिकाकी बढ़ियासे बढ़िया फिल्में भी दिखाकर अतिथियोंका स्वागत करते हैं।

कलापूर्ण फिल्में बनानेके लिए रूसकी संसार-भरमें काफी प्रसिद्धि है। अमेरिकन फिल्में वहां कम पसन्द की जाती हैं, क्योंकि स्टैलिनका ख्याल है कि वे फिल्में राजनीतिक दृष्टिकोणसे अनुचित प्रभाव डालनेवाली होती हैं। वह या तो वाल्ट डिसनेके मनोरञ्जक कार्टून पसन्द करता है अथवा "विवा विल्ला" जैसी क्रान्तिकारी विषय रखनेवाली फिल्में; फिर भी वह अमेरिकाकी उन फिल्मोंको काफी पसन्द करता है, जिनमें या तो गुण्डाशाही दिखायी जाती है अथवा उच्चकोटिका चरित्र-चित्रण। क्लार्क गेबुल, वालेस बीयरी और पालमुनी उसे बहुत पसन्द हैं। यूने लायन्सने अभी स्टैलिनका जो जीवन-चरित्र लिखा है, उसमें इन बातोंपर भी प्रकाश डाला है।

कल्पनासे रुपये कमाओ

काम करनेकी शैली सबकी अपनी होती है और अनुभवोंके आधारपर कोई भी अपने लिए समझ सकता है कि कौन-सी शैली उसके उपयुक्त है। लेखकोंके सम्बन्धमें मशहूर है कि वे बहुधा रातको लिखा करते हैं और कवियोंने एकान्त रात अथवा सवेरा अपने लिए पसन्द किया है। कितने ही लोगोंका विश्वास है कि कुछ घण्टे नियत कर उन्हींमें काम करना चाहिए, और कुछ करते भी हैं; पर देखा गया है कि मौलिक ढङ्गसे सोचनेवाले—चाहे वे कलाकार हों, चाहे व्यापारी—सदा अनियमित ढङ्गसे काम करते हैं। वे बंधी हुई घड़ियोंमें बंधे हुए काम भले ही कर सकते हों, पर कोई मौलिक सूझ उनके पास नहीं हो सकती।

डोलर्ड लेयरने एक पुस्तक लिखी है, जिसका विषय है कि काम करनेकी क्षमता कैसे बढ़ायी जाय। उसने अमेरिकाकी जलवायुके लिए लिखा है कि वहांके लोगोंमें आम तौरपर ६५ अंशके तापमान तथा अप्रैल और अक्टूबरमें अत्यधिक काम करनेकी क्षमता होती है। भारतके सम्बन्धमें ठीक-ठीक यही बात लागू नहीं हो सकती; पर आम तौरपर सवेरे काम करनेकी शक्ति तथा विचार-शक्ति कहीं अच्छी रहती है और ज्यों-ज्यों दिन बढ़ता चलता है, यह शक्ति घटती चलती है। सन्ध्याका भोजन कर लेनेके बाद एक बार फिर थोड़ी देर तक काम करनेको जी चाहता है। एक व्यक्तिने अपने अनुभवोंके बलपर लिखा है:—

सवेरेका समय ऐसा है, जिसमें मनुष्यकी शक्तियां विश्रामके बाद पहली बार जगी होती हैं। अतः उन्हें तत्काल काममें न लगा दीजिये, तो वे फिर सोनेकी तैयारी करने लगेंगी। पहले मेरी आदत थी कि मैं सवेरे दोस्तोंके साथ बैठकर चाय पीता, धूम्रपान करता और गप्पें लड़ाता; लेकिन थोड़े दिनोंके बाद ही एक-दो बार प्रयत्न करनेपर मैंने उनकी अनुपस्थितिमें अपनेको शिथिल पाया। मैंने अब अपनी उस आदतमें सुधार कर लिया है और अब मैं सवेरे अपने काममें लग जाता हूं। सवेरेका समय दोस्तोंके साथ गप्पें करनेका नहीं है। यह समय बड़ा ही कीमती है।

रे गाइल्सने अपनी पुस्तक "अपनी कल्पनासे रुपये कमाओ" में लिखा है:—मैं जब पहली बार विज्ञापन लिखनेपर नियुक्त हुआ, तब उस कमरेमें तीन व्यक्ति और बैठते थे। तीनोंके साथ मेरी खूब बनने लगी। हम लोग यहां तक एक दूसरेसे हिलमिल गये कि साथ-साथ सिनेमा देखने जाते, प्रतिदिन एक साथ खाना खाते और घूमने जाते। हम लोगोंकी दिलचस्पी एक दूसरेसे बढ़ने लगी।

इस तरह कई सप्ताह बीत गये; पर हम लोगोंमेंसे प्रत्येकने महसूस किया कि यह उमङ्ग अब घटने लगी है। पहलेवाला वह उत्साह नहीं आता। प्रत्येकने यही महसूस किया; पर सङ्कोचके मारे किसीने भी प्रकट नहीं किया। अन्तमें अपने आप यह हुआ कि हम लोग कभी-कभी अकेले और इसी तरह दो-दो करके आने-जाने लगे। और हम सभीने महसूस किया कि हमारी दिलचस्पी फिर बढ़ने लगी। वास्तवमें हममें जो एकरसता आ गयी थी, एक बंधी

शैलीके बन्धनमें जो हम पड़ गये थे, वह नष्ट हो गयी, तो फिर आनन्द आने लगा।

रोजाना एक ही तरहसे न खाओ और न एक ही चीज खाओ। रोज-रोज वही खाते रहे, तो देखोगे कि कभी-कभी खानेकी तरफ मन नहीं बढ़ेगा। भोजनका असर सिर्फ शरीरपर ही नहीं, मनपर भी पड़ता है और जब ऐसा है, तब मनको जो परिवर्तन प्यारा है, वह भी उसे जरूर चाहिए। कामके सम्बन्धमें भी यही बात है। मोनोटनी—एकरसता कभी अच्छा परिणाम नहीं दे सकती और न एक ही शैली कभी कोई महान् विचार उत्पन्न होने देती।

निर्वासितोंको फिक्र नहीं

जेकोस्लोवेकियाके राष्ट्रपति डा० एडवर्ड बेनेसके सम्बन्धमें भाषण करते हुए डा० गोबेल्सने एक बार कहा था :—मैं उसकी तनिक भी परवाह नहीं करता, वह तो एक भागने-फिरनेवाला नष्ट-भ्रष्ट निर्वासित है। इसपर एक अमेरिकन पत्र 'ट्रिब्यून' ने टिप्पणी करते हुए लिखा है :—गोबेल्स निर्वासितोंको कुछ भी महत्त्व नहीं देना चाहता। लेकिन मानव-जातिके इतिहासके कितने ही महत्त्वपूर्ण और दिलचस्प अध्याय निर्वासितोंके लिखे हुए हैं।

वर्तमान रूसकी सृष्टि लेनिन तथा उसके निर्वासित मित्रों द्वारा ही हुई है, जो १९१७ में रूसमें वापस आये थे।

रिपब्लिक चीनके प्रथम प्रेसिडेण्ट सन यात सेन २६ साल पहले अनेक वर्षों तक निर्वासित रहनेके बाद आये थे।

प्रथम महायुद्धके पहले वर्षों तक निर्वासित रहनेवाले पिल्सडुस्कीके हाथों द्वारा ही पोलैण्डके प्रजातन्त्रकी प्रतिष्ठा हुई थी।

कितने ही ऐसे भी निर्वासित अवश्य हैं, जो केवल गरजते हैं और बरस नहीं सकते; पर डा० बेनेस भी क्या ऐसे ही हैं?

जर्मनीके लिए ईश्वरकी व्यवस्था

जर्मनीका डा० गोबेल्स प्रचारकार्यमें अपने हथकण्डों एवं मिथ्या दम्भोंके लिए विश्व-भरमें प्रसिद्ध हो चुका है। कहा जाता है कि निधड़क झूठ बोलनेमें वह संसारमें अद्वितीय है। गोबेल्सने मिथ्या-प्रचारको एक वैज्ञानिक रूप दे दिया है और जर्मनीके कितने ही पत्रोंने भी इस विज्ञानकी थोड़ी बहुत जानकारी हासिल की है। एक नात्सी पत्रका एक अंश इस बातको प्रमाणित करेगा कि जर्मन जनताको ठगनेके लिए वहां कैसी-कैसी अनर्गल बातें फैलायी जाती हैं। उक्त पत्रने लिखा है :—

"कभी-कभी ऐसे लोग भी मिल जाते हैं, जिनका ख्याल है कि दूसरोंकी अपेक्षा वे बहुत अधिक जानकारी रखते हैं। और जब वे सोचते हैं कि उनकी बात कोई नहीं सुन रहा है, तब वे आपसमें कानाफूसी करने लगते हैं कि "यह निश्चय ही सन्देहपूर्ण है कि हमारी विजय होगी, क्योंकि हमें याद रखना चाहिए कि पिछले महायुद्धमें हमारी करारी हार हुई थी।"

ऐसे बेहूदे मूर्खों तथा उनके सम्पर्कमें आनेवाले अपने देशवासियोंसे हम कह देना चाहते हैं कि उन्हें एक बातका ध्यान रखना चाहिए कि वर्तमान युद्धकी तुलना विगत महायुद्धसे कभी नहीं हो सकती।

यूरोपमें जर्मनीकी एक महान् शक्तिके रूपमें प्रतिष्ठा, रीखका अन्तरिक पुनर्गठन, नात्सी जर्मनीकी वैदेशिक नीतिकी महान् सफलता ('घेरा' डालनेके प्रयत्नोंका विध्वंस और बृहत्तर जर्मनीका उदय)—इन बातोंसे समझदार व्यक्तियोंको स्पष्ट मालूम हो जाना चाहिए कि भगवान् हमसे और भी महान् कार्य करवाना चाहता है।

इस संसारमें अकारण कुछ नहीं होता और दैवी इच्छा, जो सदा हमारे साथ रही है, कभी भूल नहीं कर सकती।

हम विजयके लिए बुलाये गये हैं और हमारी विजय होकर रहेगी, क्योंकि अपना कार्य सम्पादन करनेके लिए भगवान् उन्हींको नियुक्त करते हैं, जिन्हें वह इसके योग्य समझते हैं।

क्षुद्रों और चेतनारहित व्यक्तियोंसे एक बात और कह देनी है। उन्हें इस बातके लिए सावधान हो जाना चाहिए कि उनकी भी गणना मनुष्य जातिके उन क्षुद्रोंके साथ ही होगी, जिन्हें बीती शताब्दियोंसे निकालकर हमने अपने साथ जर्मन व्यवस्थामें लिया है।

दुनिया पागल हो रही है

समाज-शास्त्रियों एवं वैज्ञानिकोंने मानव-जातिके लिए जितनी भीषण भविष्यवाणियां की हैं, उनमें उन्होंने यह भी

97, 98 नं० पेज नहीं हैं फटा हुआ है

लेखनकलाके मादम तबोईके कुछ अनुभव

मादम तबोई फ्रेञ्च महिला हैं। उन्होंने पत्रकार-कलामें अद्भुत दक्षता प्राप्त की है। राजनीतिक रहस्योंका उद्‌घाटन एवं राजनीतिक भविष्य वाणियां आपकी इतनी सच उतरती रही हैं कि आपने जो कुछ लिखा, उसमें विश्वास करनेकी प्रवृत्ति आम तौरपर लोगोंमें रही है। इसलिए पिछले दिनों जब यह समाचार आया कि मादम तबोईको जर्मनोंने गिरफ्तार कर लिया है, तो संसार-भरके पत्रकारोंको इससे दुःख हुआ। पर अब पता चला है कि वे सुरक्षित लन्दन पहुंच गयी हैं।

मादम तबोईको पत्रकार-कलामें कैसे इतनी सफलता प्राप्त हुई और इसके लिए प्रारम्भमें उन्हें कैसी कठिनाइयां झेलनी पड़ीं, इसके सम्बन्धमें उन्होंने स्वयं लिखा है। उनके लेखसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि अत्यधिक सभ्य कहे जानेवाले देशोंमें भी महिलाओंके सम्बन्धमें लोगोंके कैसे विचार हैं।

उन्होंने लिखा हैः—फ्रान्समें महिलाओंके लिए राजनीतिमें कोई स्थान नहीं रह गया है। अतः जो इस विषयमें दिलचस्पी लेती हैं, उन्हें लिखने-पढ़नेका सहारा लेना पड़ता है। लेकिन इस क्षेत्रमें भी जब तक वे काफी ख्याति अर्जन न कर लें, उन्हें काफी ठोकरें खानी पड़ती हैं। १९२४ से लेकर अब तक मुझे ऐसा ही करना पड़ा है।

१९२४ में मैंने एक प्रसिद्ध प्रान्तीय पत्रके सम्पादकसे मुलाकात कर उनसे इस बातकी प्रार्थना की, कि मुझे वे अपने पत्रके लिए राष्ट्र-संघके संवाद देनेका काम दें। पत्र-सम्पादकने इसका उत्तर दिया—"लेकिन आप तो महिला हैं! अगर मैं आपको यह काम सौंप भी दूं, तो आपको अपने लेखोंपर हस्ताक्षर ऐसा करना पड़ेगा कि पाठक इसे समझ न सकें। मेरे जैसे महान् पत्रको एक स्त्रीको नियुक्त कर नयी रीति नहीं चलानी चाहिए।" मुझसे नमूनेके तौरपर एक लेख मांगा गया। कई दिनोंके बाद मेरी नियुक्ति हो गयी। पर इस शर्तपर कि मैं अपना नाम जी० आर० तबोई लिखा करूं और सदा उसमें पुलिङ्ग संज्ञाका प्रयोग करूं।

थोड़े दिनके बाद मैंने अपनी ऐतिहासिक पुस्तक लिखी और इसके लिए प्रकाशक ढूंढ़ने निकली। मैं एक बहुत बड़े प्रकाशकके पास गयी। उसने कहा—"मादम, आप मुझसे कैसे उम्मेद करती हैं कि मैं एक महिला द्वारा लिखित ऐसी गम्भीर पुस्तक प्रकाशित कर सकता हूं। प्रेम विषयक कोई उपन्यास अथवा कोई भ्रमण-वृत्तान्त हो, तो बात दूसरी है। मगर एक ऐतिहासिक ग्रन्थ—असम्भव!"

इससे तनिक भी हताश न होकर मैं इससे भी प्रसिद्ध एक दूसरे प्रकाशकके पास गयी। उसने जरा अविश्वास, किन्तु नम्रतासे कहा—"आप अपनी पुस्तक रख जाइये। मेरे देख लेनेके दो-तीन दिन बाद आइये।" मेरे वहां फिर जानेपर उसने कहा—"आपकी पुस्तक, मादम, बहुत सुन्दर है, पर अफसोस है कि आप स्त्री हैं। मुझे इसे प्रकाशित करना चाहिए, लेकिन मैं चाहता हूं कि आप अपना नाम जी० तबोई लिखें, जी० से लोग जार्ज या गैस्टन समझ लेंगे। पाठक नहीं समझ सकेगा कि आप नारी हैं और आपकी पुस्तक बहुत सफल होगी।"

मैं इससे बड़ी व्यग्र हो उठी और अध्यापकके पास गयी। उन्होंने कहा—"तुम्हें व्यग्र होनेकी आवश्यकता नहीं है। यह तो एक प्रकारकी प्रशंसा है, जो पुरुष नारीकी किया करते हैं। इससे स्पष्ट है कि हृदयमें वे एक नारीके मस्तिष्क और उसके कार्यसे डरते हैं।"

१९१४ में मेरे चाचा जूल्से कैम्बन बर्लिनसे, जहां वे फ्रान्सीसी राजदूत थे, पेरिस आये और वैदेशिक विभागके स्थायी प्रधान नियुक्त हुए। राजनीतिमें मेरी दिलचस्पी अब तक बढ़ गयी थी और मेरे चाचाने इसमें और भी प्रोत्साहन दिया। उस समयसे फ्रान्सकी व्यवस्था-परिषद्की शायद ही कोई ऐसी बैठक हुई हो, जिसमें मैं दर्शककी हैसियतसे उपस्थित न रही होऊं।

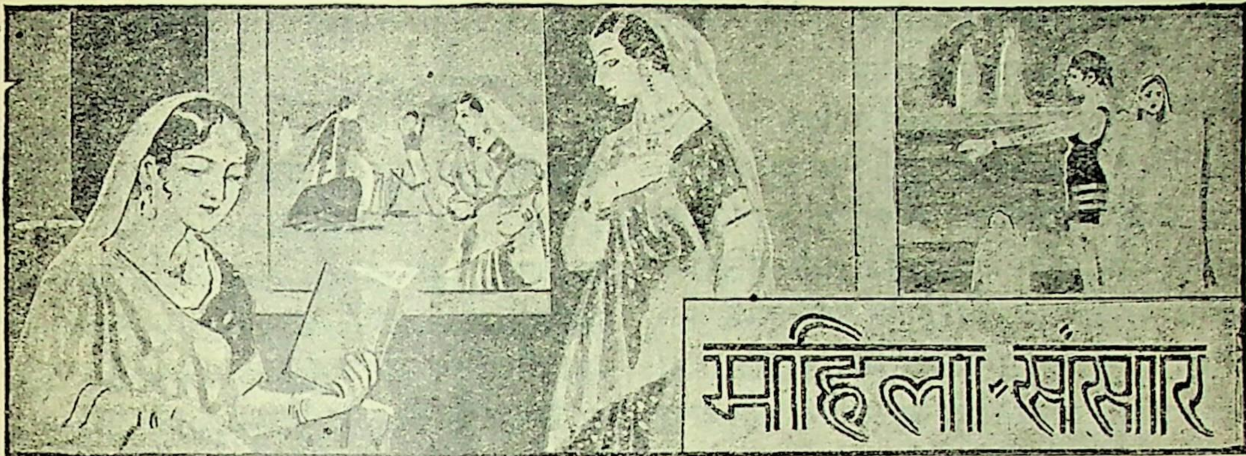
राष्ट्र-सङ्घकी स्थापनासे मुझे बेहद प्रसन्नता हुई थी, और उसकी एक भी बैठककी मैंने उपेक्षा नहीं की। बराबर मैं उसमें जाती और उसके सम्बन्धमें अपने परिवारवालोंको लम्बे-लम्बे पत्र लिखा करती, जिनमें मैं ब्रायांकी व्यंग्योक्तियों, बेनेस, टेटेलेस्कू, स्ट्रेसमैन और निट्टीकी मुलाकातोंका जिक्र करती। मेरे चाचाने मुझे प्रोत्साहन दिया कि मैं अस्पष्टताके साथ राजनीतिक प्रश्नोंपर अपने विचार प्रकट करूं और राजनीतिक व्यक्तियोंके सम्बन्धमें उनकी छोटी-छोटी दिलचस्प बातोंपर लिखूं। मुझे याद आता है, मैंने जर्मन वैदेशिक मन्त्री हर श्रुबर्टसे भेंट कर आल्सक-लोरेनपर

की गयी उनकी समस्त बातोंको एकदम अ-कूटनीतिक भाषा-में लिख डाला था, जिसका परिणाम यह हुआ कि मुझे पहली बार ही कठिनाइयोंमें पड़ जाना पड़ा और कहना चाहिए कि यह मेरी अन्तिम कठिनाई भी नहीं हुई।

संवाद देनेका काम करनेवाली नारियोंके सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि अपने अपमानका ठीक बदला वे नहीं ले सकतीं। अधिकसे अधिक वे अदालतकी शरण ले सकती हैं, पर इसके लिए उन्हें ऊपरसे और बड़ी परेशानी उठानी पड़ती है। १९३२ से १९३९ तक बराबर मुझपर यह अभि-योग लगाया जाता रहा है कि मुझे क्रेमलिनसे पैसे मिलते हैं, क्योंकि मैं बराबर फ्रान्स और रूसकी सन्धिका समर्थन करती रही। मेरे पुरुष सहकर्मियोंपर भी ऐसे ही अभियोग लगाये जाते रहे हैं, पर वे सदा इसका उत्तर पिस्तौलसे या द्वन्द्व युद्ध करके देना चाहते और इससे मामला शान्त हो जाता। पर मैं नारी होकर क्या करती? मैं तो अपमान होनेपर पत्रोंको लिखती—"महाशय, आप द्वारा होनेवाला प्रत्येक अपमान मेरे लिए सम्मानजनक ही है।"

पत्रकार-कलामें एक और बात यह देखनेमें आयी कि पुरुष पत्रकार महिलाओंके नीचे काम नहीं करना चाहते। जब मैं 'यूरो'के वैदेशिक संवादोंकी प्रधान सम्पादिका थी, तो मैंने एक नया साधन खोज निकाला। मैं पत्रके दफ्तर-में कभी न जाती। घरपर बैठकर सहकारी सम्पादकोंको टेलीफोनपर आदेश दे देती। इससे वे अपना अपमान नहीं समझते थे। एक और कठिनाई भी नारियोंके लिए है। मिनिस्टर नारियोंकी स्थितिका विश्लेषण करनेमें उतना कष्ट नहीं उठाते, क्योंकि वे उन्हें उतना महत्त्व ही नहीं देना चाहते।

लेकिन एक बात नारियोंके लिए सुविधाकी है। भाषण करनेके लिए उनके उठनेपर सभ्यता और शिष्टाचारके नाते उनके बोलनेमें कोई आपत्ति नहीं की जाती।



समाजमें नारियोंकी स्थिति

उस पाश्चात्य विद्वान्‌ने ठीक ही कहा था कि अगर किसी समाजकी सभ्यताका पता लगाना हो, तो पहले इस बातका पता लगाओ कि उस समाजमें नारियोंकी क्या स्थिति है। समाजमें नारीकी स्थिति इस प्रकार समाजकी सभ्यताका पैमाना है। पर इस पैमानेसे देखनेपर आज हमारे समाजकी सभ्यता और संस्कृतिके सम्बन्धमें लोगोंकी क्या धारणा हो सकती है, यह आज सामाजिक सुधार चाहनेवालों और नारी-समाजको उन्नत अवस्थामें देखनेकी लालसा रखनेवालोंको सोचना चाहिए। सामाजिक दृष्टिकोणसे नारी नगर आधी दुनिया है, तो व्यक्तिगत रूपसे वह अर्द्धाङ्गिनी है। हिन्दू धर्ममें जो अर्द्धनारीश्वरकी कल्पना की गयी है, उसका मर्म साधारण लोग भी सफलतापूर्वक समझ सकें, इसीलिए उसने नारीको अर्द्धाङ्गिनी बताया और हिन्दू धर्मके अनुसार होनेवाले विवाहोंका अर्थ यह लगाया गया कि विवाह हो जानेपर पुरुष और नारीका अस्तित्व अलग-अलग नहीं होता, बल्कि दोनोंमें इतना एकात्म्य हो जाता है कि रक्त, मांस, मज्जा सभीसे वे एक हो जाते हैं। धर्म-ग्रन्थोंके इस आधारपर ही प्रीवी कौन्सिलके फैसलोंमें यह बात स्वीकार की गयी।

पर समाजमें आज इस महान् सिद्धान्तकी वस्तुतः कितनी उपेक्षा की जा रही है! जिस नारीको अर्द्धाङ्गिनी कहा जाता है, उसे समाजने आज किस स्थितिमें डाल दिया है? समाजमें नारीकी आज क्या स्थिति है? सभी तरहकी शिक्षा-दीक्षासे शून्य आज वह घरकी चहारदीवारीके भीतर पड़ी सड़ती है और इस प्रकार संसार-भरका अन्धविश्वास, संसार-भरका अज्ञान उसके भीतर भरा रहता है। प्रकाश न हो, तो अन्धकार मिटे कैसे? पर समाज नारीको शिक्षा नहीं देना चाहता, वह उसे घरके बाहर भी आने नहीं देना चाहता और दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि आज भी ऐसे लोगोंका अभाव नहीं है, जो इस विषयपर विवाद करते हैं कि नारीको उच्च शिक्षा देनी चाहिए या नहीं। नारीको स्वाधीनता तो मिलनी ही नहीं चाहिए, पर अगर मिले, तो किस अंश तक। क्या घरके बाहर वह अकेली जा सकती है, उसे क्या ऐसा करनेका कुछ भी अधिकार प्राप्त है?

और मजा यह है कि ये सब प्रश्न इसलिए उठाये जाते हैं कि पुरुष जातिको इस बातकी आशङ्का सदासे रही है कि नारीको पढ़ा-लिखाकर समाजमें निकालनेका अर्थ होगा, उसकी चरित्र-हीनता। अपने सतीत्वके नामपर वह आज दासत्वका जीवन व्यतीत कर रही है। सतीत्वके नामपर वह 'लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर' बनी हुई है और सतीत्वके नामपर उसे और तो और, घरके भीतर भी पर्देमें रहना पड़ता है। जैसे इसका अर्थ यह हुआ कि यूरोप-अमेरिकाकी महिलाओंमें सतीत्व है ही नहीं, जैसे वहांके पुरुषोंके लिए अपनी पत्नियोंकी चरित्रहीनताका कोई अर्थ नहीं।

लेकिन वास्तवमें बात ऐसी नहीं है। यूरोप और अमेरिकाके सामाजिक दृष्टिकोण दूसरे हैं। वे अपनी पत्नियोंको इतना निर्बल नहीं समझते कि वे बाहर आयीं और गुण्डोंका शिकार हुईं। उनका चरित्र भी इतनी नाजुक चीज नहीं समझा जाता कि घरसे बाहर निकलते ही नारियोंके सतीत्व-

का खून हो जाय। उनका दृष्टिकोण जीवनके प्रति अधिक स्वस्थ है, और साथ ही वहांकी नारियां अपनेको अधिक सबल समझती हैं और वास्तवमें हैं। हमारे यहांकी असूर्यम्पश्या नारियां अपने इर्द-गिर्दके स्थानोंका भी पता-ठिकाना नहीं जानतीं और कौन भारतीय इस बातका अनुभव नहीं कर सका होगा कि हमारी नारियां बाहर निकलते ही कितना चौंकती और घबराती हैं। ऐसी नारियोंको अबला समझना अस्वाभाविक नहीं है, पर उनकी इस स्थितिकी जिम्मेदारी किसपर है। यूरोप और अमेरिकाकी नारियां अगर अकेले बाजार जाकर सौदा कर लायेंगी और अपने ऊपर अत्याचार होनेकी उन्हें तनिक भी आशङ्का नहीं होगी, तो इस कारणसे नहीं कि वे पुरुषों द्वारा सुरक्षित हैं, बल्कि इसलिए कि वे अपनेको असहाय नहीं समझतीं। घरके बाहर निकलते ही उन्हें विदेश-सा नहीं जान पड़ता और न नजाकतको उन्होंने गुण मान रखा है। नारीका जो आदर्श कवितामें रखा गया था, उस नजाकतके विरुद्ध वे आज अपनेको अधिल सबक, स्वस्थ और निर्भीक मानती और वैसी ही बनाना चाहती है। "चकित हिरनी-सी कमल-नयनी" का आदर्श उन्हें प्यारा नहीं है। वे तो आज जरूरत पड़नेपर युद्धमें भी भाग ले सकती हैं, जबकि हमारे यहांकी देवियोंकी महिमा अब भी कलाकारोंकी दृष्टिमें केवल कटाक्ष चलानेमें ही है। यह है हमारे समाजका नैतिक धरातल!

तो समाजकी इस दयनीय अवस्थाकी जिम्मेदारी किसपर है? पहले तो आप नारियोंको सारे बन्धनोंसे जकड़ रखेंगे और इस प्रकार उनके विकासके सारे साधनों और सारी सुविधाओंसे उन्हें रहित कर देंगे और जब उनकी स्थिति ऐसी दयनीय हो जायगी, तब आप उन्हें अबला कहकर उन्हें उपेक्षाकी नजरसे देखेंगे। धर्मग्रन्थोंने नारीको विवाह हो जानेपर अर्द्धाङ्गिनी बनाया; पर आधा अङ्ग अगर इस प्रकार निर्बल और अविकसित रह गया, तो दूसरा आधा अङ्ग कभी पूर्ण विकसित हो सकता है? नारियोंकी यह दुरवस्था केवल नारी-समाजके लिए ही घातक नहीं है, बल्कि सारे समाजपर इसकी प्रतिक्रिया हुए बिना नहीं रह सकती। सन्तान समाजका अङ्ग है और नारीकी स्थितिका अबोध सन्तानपर बहुत बड़ा असर पड़ता है, इसलिए नारीकी स्थितिका सारे समाजपर प्रभाव पड़ता है।

इसलिए आवश्यकता इस बातकी है कि हम आंखें खोलकर देखें कि नारी-सम्बन्धी हमारी नीतिकी प्रतिक्रिया समाजके लिए कितने भीषण परिणामोंको लेकर उपस्थित होती है। हम आंखें खोलकर देखें कि हमने नारीको जो इतने बन्धनोंसे जकड़ रखा है, उससे सारे समाजकी कैसी दुर्गति हो रही है। नारीकी अशिक्षा परिवारोंमें आज जिस गृह-कलहका बीज बो रही है, नारीकी निर्बलता और बाहरी दुनियासे उसकी इतनी पृथकता आज उसमें कितनी निर्बलता और उसके परिणाम-स्वरूप गुण्डों और अत्याचारियोंका शिकार होनेके लिए कितना साधन जुटा रही है, नारीकी असभ्यता और प्रगतिके साथ चलनेमें उसकी अयोग्यतासे आज कितने ही दम्पतियोंका वैवाहिक जीवन विषमय बन रहा है, और इसके दुष्परिणाम किस प्रकार सामाजिक अपराधों और भीषण काण्डोंके रूपमें दिखाई पड़ रहे हैं, इनकी ओर हमारा ध्यान नहीं जाता, तो हमारा सारा समाज ही किसी दिन चलकर उस अवस्थामें पहुंच जायगा, जब कि समस्त शरीर विषकी एक बूंदसे जहरीला हो जाता है। इसलिए समाजको इस आत्म-घातकी राहसे अलग चलना चाहिए। समाजको नारीको मुक्ति देनी होगी, उसकी उच्छृङ्खलता और उसकी दानवी पिपासाके लिए नहीं, उसकी मानवता और उसकी आत्माके विकासके लिए। नारीको उसकी उन्नतिके सारे साधनोंसे वञ्चित कर देनेका अर्थ समाजको पंगु बना देनेके समान है।

समाज आज नारीको किसी प्रकारकी भी स्वाधीनता नहीं देना चाहता; इसके लिए वह कारण यह बताता है कि इससे नारीमें चरित्रहीनता आ सकती है। यद्यपि यह कोई तर्क नहीं है, पर अगर इसे मान भी लिया जाय, तो भी इसके लिए नारियोंको ही दोषी क्यों बताया जाय। पुरुष इसमें नारीकी अपेक्षा कहीं अधिक दोषका भागी है, पर इसके लिए पुरुषको तो कभी जञ्जीरोंमें बांधकर नहीं रखा गया। किन्तु पुरुषोंके अपराधके लिए नारीको कठोर यातनायें दी जा रही हैं। ऐसी थोथी बातें अब नारी-समाजको भुलावेमें नहीं डाल सकतीं, अब तो आवश्यकता है कि पुरुषोंके समान ही उसे भी सारे अधिकार दिये जायें और वह भी अपने और साथ ही समाजके पुनरुद्धारमें अपनी सारी शक्तियोंसे योगदान दे सके।

—मनोरमा गुप्त, एम० ए०

चीनी नारियोंका आदर्श

जापानके इतने दिनों तक युद्ध करते रहनेपर भी चीनके कुछ अञ्चलोंपर ही उसका झण्डा गड़ सका है, पर कहीं भी चीनकी आत्मा कुचली नहीं जा सकी है। चीनके कितने ही पर्यटकोंने अत्यन्त प्रशंसापूर्ण शब्दोंमें यह बात मञ्जूर की है कि चीनके घरोंमें इस कठिन सङ्कटकालमें भी उस आतङ्क और निराशाके दर्शन नहीं होते, जिसकी कल्पना चीनके शत्रुओंने की थी। मादम चांग-काई-शेकका योगदान चीनके युद्धमें अत्यन्त मूल्यवान साबित हुआ है, पर चीनके घरोंमें उनके आदर्शका जैसा परिणाम दिखाई पड़ा है, उसका उदाहरण शायद ही अन्यत्र दिखाई पड़े।

जापानके युद्धके कारण और वह भी उसके दीर्घकालीन होनेके कारण चीनी घरोंमें असन्तोष फैलता और पारिवारिक प्रश्नोंकी परेशानियोंमें पड़कर चीनका नैतिक साहस बहुत कुछ क्षीण हो जाता, पर चीनी नारियोंने कभी भी ऐसा होने नहीं दिया। चीनी नारियोंने कभी भी अपने व्यक्तिगत दुःखोंको देश-सेवाके सामने प्रधानता नहीं दी। चीनी नारियां सदासे परिश्रमी और मितव्ययी रही हैं और इस सङ्कटकालमें उनके ये गुण और भी विकसित हो गये हैं। इस दीर्घकालीन युद्धमें चीनको काफी स्वावलम्बी होना पड़ा है, क्योंकि दूसरी सरकारें उसे उधार माल नहीं देना चाहतीं। चीन और जापानके सैनिक युद्धके अतिरिक्त दोनों देशोंके सिक्कों—युआन और येन—का युद्ध भी कुछ कम नहीं हो रहा है, इसलिए विदेशोंका बाजार चीनियोंके लिए जरा महंगा पड़ रहा है। युद्धकी स्थितिके कारण उसके लिए यह वाञ्छनीय भी नहीं रहा कि वह दूसरोंके सहारे पड़ा रहे।

इन सारी स्थितियोंका मुकाबला कैसे किया जाय? चीनी नारियोंके कार्य इस प्रश्नका उत्तर देते हैं। एक पत्रकारने चीनका भ्रमण करनेके पश्चात् लिखा है :—

"चीनी महिलाओंकी श्रमशीलता और सहन करनेकी शक्ति देखकर मैं दङ्ग रह गया हूं। शहरोंसे लेकर गांवों तकका मैंने भ्रमण किया है और मैंने सर्वत्र यही बात देखी कि नारियां अपने परिवारोंको स्वावलम्बी बनानेके लिए इतनी चिन्ताशीलता दिखाती और इतना श्रम करती हैं। स्त्रियां घरके सारे काम-काज खुद करतीं, और अपने घरके लिए चर्खेपर इतना अधिक सूत तैयार कर लेती हैं, जो काफी होता है। वे अपना समय तनिक भी बरबाद नहीं होने देतीं और श्रमका जो महत्त्व है, उसका उन्होंने अनुभव किया है। उनके घरोंके कितने ही सामान उनके बनाये हुए मिलेंगे अथवा जिन सामानोंको उन्होंने स्वयं नहीं बनाया है, वे उन सामानोंके बदलेमें आये हैं, जिन्हें उन्होंने स्वयं तैयार किया था। बिना किसी दफ्तर अथवा कर्मचारीके उनके मुहल्लोंमें ऐसा काम होता है, मानो सहयोग-समितियां काम कर रही हों। इस कठिन कालमें उन्होंने चर्खेको इस प्रकार अपनाया है और गृह-शिल्पोंको उन्होंने इस उन्नत दशाको पहुंचाया है कि चीनके गांवोंका परावलम्बन बहुत अंशोंमें दूर हो गया है। वे केवल उन बातोंके लिए दूसरोंका मुंह ताकते हैं, जिन्हें वास्तवमें कर नहीं सकते।



कुमारी बुलबुल मित्रा—इस वर्ष आपने नागपुर यूनिवर्सिटीसे इतिहासमें एम.ए. पास किया है। हिन्दू यूनिवर्सिटीसे सङ्गीतमें भी आप ग्रेजुएट हैं।

"जापानके आक्रमणोंसे चीनकी आर्थिक कमर कभी टूट गयी होती और उसके नैतिक साहसका दिवाला निकल गया होता, अगर चीनी महिलाओंसे इनकी रक्षा न हुई होती। चीनी महिलाओं द्वारा ऐसा प्रबन्ध होनेपर चीनी पुरुषोंको परिवारकी कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती कि उन्होंने घरको नहीं संभाला, तो उसकी दशा दयनीय हो जायगी। चीनी जीवनमें ये दोनों ही बातें महान् नैतिक साहस भरनेवाली सिद्ध हुई हैं। और यह कहनेमें मुझे तनिक भी हिचक नहीं होती कि पुरुषोंके युद्धमें नारियोंका यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान है।"

क्या शिक्षित लड़कियां विवाहके अयोग्य होती हैं ?

एक महाराष्ट्र विदुषीने शिक्षित लड़कियोंकी वैवाहिक समस्यापर लिखते हुए कहा है :—

एक समय था, जब हमारे देशके युवक:दहेज आदिका प्रलोभन छोड़कर इस बातपर जान देते थे कि कोई शिक्षित युवती विवाहके लिए मिल जाय। उस समय स्त्री-शिक्षाका नितान्त अभाव था और युवक शिक्षा प्राप्त कर नया दृष्टि-कोण और नयी उमङ्गें लेकर निकलते थे, तब उन्हें इस बातकी खोज होती थी कि कोई ऐसी सहचरी मिले, जो जीवनमें उनके लिए भार न हो और जिससे मानसिक सामञ्जस्य भी स्थापित किया जा सके।

यह ऐसी स्थिति थी, जिसमें मध्यवित्तके लोग अपनी सारी आशायें कन्याकी शिक्षाकी ओर लगाये रहते। वे समझते, अगर उनके पास काफी पैसे दहेजके लिए नहीं हैं, तो भी उन्हेंने अच्छा घर-वर मिल जायगा, अगर उन्होंने कन्याको शिक्षित एवं सुसंस्कृत कर दिया। और जब यह भावना बढ़ी, तो पुराने बिचारके लोगोंके विरोधी रहते हुए भी कन्याओंकी शिक्षाकी औसत बढ़ने लगा। पिछले वर्षोंमें स्त्री-शिक्षाका उन्नत प्रगतिमें इस विचारका महत्वपूर्ण स्थान है।

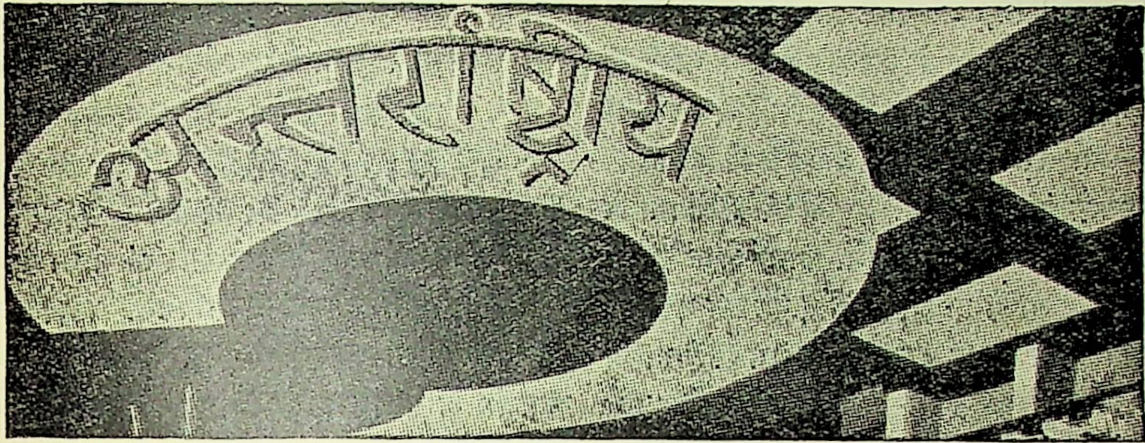
पर आजकी स्थिति क्या है ? आज क्या नारी-शिक्षा-का मूल्य वही रह गया है ? आज शिक्षित नारीके लिए सुयोग्य वरोंका अभाव क्यों हो गया है ? समाजके सामने यह प्रश्न बड़ी उलझनोंके साथ आया है और यह अपना समाधान चाहता है।

क्या शिक्षित युवती विवाहके-वैवाहिक गार्हस्थ्य जीवन-के योग्य नहीं होती ?

युवक उत्तर देता है, हो सकती है, पर होती नहीं। वह कहता है कि शिक्षा पाकर नारी गृहस्थीके कामोंके लिए अयोग्य होती है। वह उन सारी बातोंमें दिलचस्पी नहीं लेती, जिनके बिना गार्हस्थ्य जीवनकी गाड़ी चल नहीं सकती। उसे जो शिक्षा मिलती है, उसके साथ-साथ वह तब तक गृहस्थीके योग्य नहीं हो सकती, जब तक कि उससे विवाह करनेवाला व्यक्ति काफी सम्पत्तिशाली न हो। उसके मिजाज ऐसे हो जाते हैं, उसकी स्वाधीनता और समाना-धिकारकी इच्छा ऐसी हो जाती है और उसकी आदतें इतनी खर्चीली हो जाती हैं कि साधारण श्रेणीका युवक उनका बोझ उठा नहीं पाता और उसका वैवाहिक जीवन, विवाहके पहलेका सारा रोमान्स ही नष्ट हो जाता है।

युवककी इस शिकायतमें कोई तथ्य नहीं है, ऐसा तो नहीं कह सकते, पर इसकी जिम्मेदारी नारीपर ही एकमात्र नहीं है। शिक्षा और संस्कृति पाकर नारी अगर आत्मचेतनामें अधिकार पहचानती और उसे पाना चाहती है, तो उसका यह अपराध नहीं है और इसके लिए अगर वह प्रियपात्री नहीं हो पाती, तो यह उसका दुर्भाग्य मैं न मानूंगी। नारी-को लेकर युगोंसे जो धारणा बनी आयी है, उसमें परिवर्तन-की आवश्यकता है और इसमें जब तक परिवर्तन नहीं हो जाता, तब तक दाम्पत्य-जीवन सुखकी सच्ची नींवपर खड़ा नहीं हो सकता। पुरुष नारीको दासी बनाकर रखनेमें ही सुख मानता है, तो यह उसकी सच्ची भावना नहीं है और न इसके आधारपर दुनिया चल ही सकेगी। पुरुष और नारी-को युगधर्मके अनुकूल एक दूसरेके अधिकारोंके प्रति अपना-अपना कर्तव्य पहचानना होगा और इसकी पहचानसे ही उन साधनोंको सोच निकालना होगा, जो हमारे व्यक्तिगत जीवनके सुखके आधार होकर सार्वजनिक सुख—शान्तिकी स्थापना कर सकेंगे। हां, इस बातमें मैं इनकार नहीं कर सकती कि भारत जब विलायत नहीं है, तब भारतीय बहनों-की शिक्षा-दीक्षाका निश्चय करते समय अपनी और समाज-की आवश्यकताओंकी उपेक्षा नहीं करनी होगी। ऊपरके प्रश्नका उत्तर इसी बातमें सन्निहित है।





विराम-सन्धि

जर्मनीके सामने फ्रान्सके आत्मसमर्पण कर देनेके कारण जर्मनी और फ्रान्स तथा फ्रान्स और इटलीमें जो विराम सन्धियां हुई हैं, उनकी शर्तें ऐसी हैं, जो फैसिस्ट शक्तियोंको युद्धकालमें और भी प्रभावशाली बना देनेवाली हैं। उक्त राष्ट्रोंकी प्रामाणिक रूपमें सन्धिकी जो शर्तें प्रकाशित की गयी हैं, वे यों हैं :—

फ्रान्स और इटलीकी सन्धिकी शर्तें

फ्रान्समें, फ्रेञ्च उत्तरी अफरीकामें, फ्रेञ्च उपनिवेशोंमें तथा उन प्रदेशोंमें जहां राष्ट्रसङ्घके आदेशसे फ्रान्स शासन करता है, फ्रान्स युद्ध बन्द कर देगा। जल-युद्ध और आकाश-युद्ध भी फ्रान्स बन्द कर देगा।

विराम सन्धिकी शर्तें लागू होनेपर, और वे जब तक लागू रहेंगी तब तक, सब युद्धक्षेत्रोंमें इटालियन सेनायें उन स्थानों-पर कायम रहेंगी, जहां तक वे पहुंच चुकी हैं।

फ्रान्समें इटालियन सेनायें जहां रहेंगी, वहांसे ५० किलो-मीटर आगे तकके फ्रेञ्च प्रदेशमें विराम-सन्धि-कालमें कोई सेना नहीं रहेगी।

ट्यूनिसमें लीबिया और ट्यूनीसियाकी सीमा-रेखा और साथके नक्शेमें बनायी गयी रेखाके बीचके प्रदेशमें विराम-सन्धिकालमें कोई सेना न रखी जा सकेगी।

अलजीरियामें और लाइबेरियाके दक्षिणके उन फ्रेञ्च अफरीकन प्रदेशोंमें, जो लीबियाकी सीमापर हैं, विराम-सन्धि-कालमें लीबियाकी सीमासे २०० किलोमीटर चौड़े प्रदेशमें कोई सेना न रहेगी।

इटली और ब्रिटिश साम्राज्यके बीच जब तक युद्ध चल रहा है, तब तक तथा विराम-सन्धिकालमें फ्रेञ्च सुमालीलैण्ड-के सारे समुद्र-तटपर कोई सेना न रखी जा सकेगी।

इटलीको बराबर इसका पूरा अधिकार रहेगा कि सब तरहकी बारबरदारीके लिए जीबूती बन्दरगाह, उसके सब उपकरण तथा जीबूती-अदीस अबाबा रेलवेकी फ्रेञ्च लाइनका उपयोग करे।

इन प्रदेशोंसे युद्ध बन्द होनेके बाद दस दिनके अन्दर फ्रेञ्च सेनायें हटा देनी होंगी—किलेबन्दीकी बारिकों, शस्त्रा-गारों और सैनिक इमारतोंकी देख-भालके लिए आवश्यक कर्मचारी तथा उस प्रदेशमें शान्ति-रक्षाके लिए आवश्यक सेना ही, जिसकी संख्या बादमें इटालियन विराम-सन्धि-कमीशन निश्चित करेगा, वहां रखी जा सकेगी।

इटली और ब्रिटेनके बीच जब तक युद्ध हो रहा है, तब तक तूलों, बिजातें, आजाशियो और ओरानाके जल-सैनिक अड्डों तथा सैनिक प्रदेशोंसे १५ दिनके अन्दर सब सेना हटा ली जायगी।

विराम-सन्धिकी शर्तोंके पालनकी गारण्टीके तौरपर इटली यह मांग पेश: कर सकता है कि जो फ्रेञ्च सेनायें इटा-लियन सेनाओंसे लड़ीं या जो इटालियन सेनाओंके सामने खड़ी हैं, उनके सब या कुछ शस्त्रास्त्र, तोपें, फौलादी गाड़ियां, टङ्क, मोटर गाड़ियां, घोड़ा गाड़ियां और गोला-बारूद इटली-को दे दी जायं।

फ्रेञ्च जङ्गी बेड़ा निर्दिष्ट बन्दरगाहोंमें एकत्र होगा और जर्मनी-इटलीकी निगरानीमें विघटित कर दिया जायगा तथा उसके शस्त्रास्त्र ले लिये जायंगे—केवल वे जङ्गी जहाजी दस्ते

छोड़ दिये जायंगे, जिन्हें जर्मनी और इटलीकी सरकारें फ्रेञ्च उपनिवेशोंकी रक्षाके लिए आवश्यक समझेंगी।

वे सब फ्रेञ्च जङ्गी जहाज, जो फ्रान्सके समुद्रके बाहर हों —उन्हें छोड़कर, जो फ्रेञ्च उपनिवेशोंकी रक्षाके लिए आवश्यक माने जाते हैं—फ्रान्सके बन्दरगाहोंमें वापस लाये जायंगे।

इटली-सरकार घोषणा करती है कि उसके नियन्त्रणमें रखे गये फ्रेञ्च जङ्गी जहाजोंसे इस युद्धमें काम लेनेका उसका इरादा नहीं है और सन्धि हो जानेके बाद वह इन जहाजों-को पानेका दावा नहीं करना चाहती। विराम-सन्धिकालमें इटली सरकार फ्रेञ्च जहाजोंसे सुरङ्गें साफ करनेके लिए कह सकती है।

फ्रेञ्च अधिकारियोंको उन सब जलसैनिक महत्त्वके प्रदेशों तथा जलसैनिक अड्डोंसे, जिनमें सेना न रखी जा सकेगी, दस दिनके अन्दर सुरङ्गें आदि निकालकर उन्हें निरापद बना देना पड़ेगा।

फ्रेञ्च सरकार इसकी जिम्मेदारी लेती है कि अपनी सेना-के सैनिकों तथा साधारणतः फ्रेञ्च नागरिकोंको इटलीके विरुद्ध युद्धमें योग देनेके लिए अपने प्रदेशसे बाहर न जाने देगी।

फ्रेञ्च सरकार इसकी जिम्मेदारी लेती है कि व्यापारी जहाजोंको तबतक बन्दरगाहोंमें रहना पड़ेगा, जबतक जर्मनी तथा इटलीकी सरकारें उन्हें पूर्णतः या अंशतः काम करनेकी अनुमति न दें।

माल ढोनेवाले जो फ्रेञ्च जहाज विराम-सन्धिके समय फ्रान्सके या फ्रान्सके नियन्त्रित बन्दरगाहोंमें न हों, वे ऐसे बन्दरगाहोंमें बुला लिये जायंगे या उन्हें तटस्थ देशोंके बन्दर-गाहोंमें चले जानेका आदेश दिया जायगा।

माल ढोनेवाले जो इटालियन जहाज इटलीको माल ले जाते हुए पकड़े गये हों, वे इटलीके सिपुर्द कर दिये जायंगे।

फ्रेञ्च प्रदेश या फ्रेञ्च शासित प्रदेशोंसे कोई हवाई जहाज बाहर न जायगा। सब फ्रेञ्च हवाई अड्डे सारे उपकरणों सहित इटली या जर्मनीके नियन्त्रणमें रहेंगे।

फ्रान्सके सब बेतारके तारके स्टेशन बन्द हो जायंगे। फ्रान्स और उत्तर अफ्रीका, शाम तथा फ्रेञ्च सुमालीलैण्डके बीच बेतारके सम्बन्धके बारेमें इटालियन विराम-सन्धि-कमीशन निश्चय करेगा।

सब इटालियन युद्धबन्दी और राजनीतिक कारणों या युद्धके सम्बन्धमें नजरबन्द, गिरफ्तार या कैद सब इटालियन नागरिक तुरत इटली सरकारके हवाले किये जायंगे।

जर्मनी और फ्रान्सकी सन्धि

सन्धिके लिए जर्मनीने जो शर्तें पेश की थीं, उनका निम्न-लिखित संक्षिप्त आशय २३ जूनको लन्दनमें प्रकाशित हुआ था, जिसे मार्शल पेतांकी सरकारने स्वीकार कर लिया :—

जर्मनी फ्रान्सके समस्त पश्चिमी समुद्रतट तथा जेनेवासे टौर्सतक खींची जानेवाली रेखाके उत्तरके सभी प्रदेशोंपर जर्मनी अधिकार कर लेगा, जिसका व्यय-भार फ्रान्स उठायेगा।

फ्रान्सकी सशस्त्र सेनाओंको अगङ्कर सैनिकोंको निरस्त्र कर दिया जायगा। अनधिकृत फ्रान्समें कितनी बड़ी सेना रहेगी इसका निर्णय जर्मनी तथा इटली करेंगे।

जर्मनी अच्छी अवस्थामें सभी तोपखानों, टैङ्कों, विमानों तथा युद्ध-सामग्रियोंको समर्पित कर देनेकी मांग पेश कर सकता है।

कोई भी फ्रेञ्च सेना फ्रान्ससे बाहर अन्यत्र नहीं जा सकती। कोई भी भौतिक सामग्री ब्रिटेन नहीं भेजी जा सकती। कोई भी फ्रेञ्च व्यापारिक जहाज बन्दर नहीं छोड़ सकता और फ्रान्सके बाहर जितने जहाज हैं, उन्हें अवश्य बुला लेना होगा।

सारी औद्योगिक संस्थाओं तथा स्टाकोंको सुरक्षित अवस्थामें जर्मनीके हवाले कर देना होगा। यही शर्त सभी बन्दरों, किलों, नौ-कारखानों तथा यातायातके साधनोंके लिए भी है।

अनधिकृत प्रदेशके किसी रेडियोसे काम नहीं लिया जायगा।

जर्मनी तथा इटलीको वाणिज्य-सामग्रियोंके आदान-प्रदानके लिए फ्रान्सको सुविधायें देनी होंगी।

युद्धकालके जर्मन बन्दियोंको छोड़ देना होगा। किन्तु फ्रान्सके युद्धकालीन बन्दियोंको सन्धिपर समझौता होने तक बन्दी अवस्थामें रखा जायगा।

फ्रेञ्च जहाजी बेड़ेको फ्रान्सके प्रादेशिक समुद्रमें लाना होगा, जहां जहाजोंको निरस्त्र किया जायगा और जर्मन तथा इटालियन देख-रेखमें उन्हें उन बन्दरोंमें नजरबन्द रखा

जायगा, जिनका निर्देश जर्मनी तथा इटली करेंगे। बेड़ेका कुछ भाग, जिसका निर्णय जर्मन तथा इटालियन सरकारें करेंगी, फ्रान्सके उपनिवेशोंके हितोंकी रक्षाके लिए स्वतन्त्र रहेगा।

इटालियन सरकारके साथ इसी प्रकारकी सन्धि फ्रेञ्च सरकार द्वारा कर लेनेपर तुरन्त ही उक्त सन्धिके अनुसार कार्य किया जायगा, यदि फ्रेञ्च सरकार इन शर्तोंको पूरा नहीं करेगी, तो जर्मनी जब चाहेगा, तभी सन्धिको रद्द कर सकता है।

बादको जर्मन सरकारकी न्यूज एजेन्सी द्वारा प्रकाशित सन्धिकी शर्तों और उपर्युक्त शर्तों में थोड़ी-सी भिन्नता पायी जाती है। इसके अनुसार फ्रान्सके जिन अञ्चलोंपर जर्मनोंका अधिकार हुआ है, उनके सभी अधिकारियों तथा सार्वजनिक आफिसोंको फ्रान्सकी सरकारको तत्काल आदेश देना होगा कि वे जर्मन कमाण्डकी सारी आज्ञाओंको ठीक-ठीक मानकर उनके अनुकूल आचरण करें।

एक दूसरी शर्तके अनुसार फ्रान्समें न केवल युद्धकालके जर्मन बन्दियोंको छोड़ना होगा, बल्कि दूसरे नागरिकोंको भी, जो जर्मनीके पक्षमें प्रचारके अपराधमें पकड़े गये हैं, तत्काल रिहा करना होगा।

जर्मनीने वचन दिया है कि फ्रान्सके जहाजी बेड़ेका लड़ाईमें कोई उपयोग नहीं किया जायगा और न लड़ाईके बादकी सन्धिके बाद जर्मनी उसके लिए अपना दावा ही पेश करेगा। कुछ और शर्तों में भी इधर-उधरके फेरफार हुए हैं।

रूसके लिए बेसरबियाका महत्त्व

२९ जूनके 'न्यूयार्क टाइम्स'ने इस बातका रहस्योद्घाटन किया था कि रूस और जर्मनीमें इस बातका समझौता हो चुका है कि बेसरबिया रूसको वापस मिले और उसने यह भी लिखा कि जर्मनी इस बातके लिए जोर डाल रहा है कि इसके लिए युद्ध करनेकी भी आवश्यकता न पड़े।

कुछ वर्षोंके बाद अकस्मात् बेसरबियाका नाम रूसकी मांगोंके साथ प्रकट हुआ है, इसलिए कुछ लोग चौंक पड़े हैं। लेकिन एक समय था, जब बेसरबियाको लेकर रूसमें बराबर प्रचार होता रहा है। बोलशेविक सरकारकी स्थापनाके बादसे १९२६-२७ तक यह प्रचार होता रहा। उस समय सोवियट रूसने इस ख्यालसे यह प्रचार करना नहीं शुरू किया था कि उसका यह पुराना प्रान्त उसे मिल जाय। बल्कि इसका उद्देश्य कुछ और ही था। बात यह थी कि रूसी यूक्रेनमें उन दिनों सच्चे कम्यूनिस्टोंकी संख्या बहुत कम थी और वहांकी भी बहुसंख्यक जनता—किसानोंको रूसने इस बातका आश्वासन, बल्कि वचन दिया था कि वे सभी यूक्रेनियनोंको एक सूत्रमें जोड़ देंगे। यह आश्वासन रूस तथा उसकी विचार-धाराके प्रति उन्हें आकर्षित करनेके लिए दिया गया था। रूसके लिए यह साधारण समस्या न थी, क्योंकि इसका अर्थ था पूर्वी गैलीशिया, वल्हीनिया, उत्तरी बेसरबिया और उत्तरी बुकोविनाके सभी यूक्रेनियनोंको एकत्र करना। लेकिन रूसमें यूक्रेनके जो हित थे, उनका तकाजा था कि रूस इतनी बड़ी जिम्मेदारी ले और इसलिए रूसने बेसरबिया लौटानेके लिए गैलीशियामें आन्दोलन करना शुरू किया।

तो फिर इधर वर्षों रूसने यह आन्दोलन ढीला क्यों कर दिया? इसके सम्बन्धमें दो बातें हैं। पहली बात तो यह है कि आगे चलकर यूक्रेनकी स्थितिपर रूसका बहुत अधिक नियन्त्रण हो गया। वहांके विद्रोहियोंको दबा दिया गया और रूसके लिए, क्रान्तिके बाद ही अपनी प्रारम्भिक अवस्थाओंके बाद, इस बातकी आवश्यकता नहीं रह गयी कि यूक्रेनको समझा-बुझाकर रखा जाय, क्योंकि तब तक यूक्रेनपर रूसका एक प्रकारसे शासन-सा हो गया।

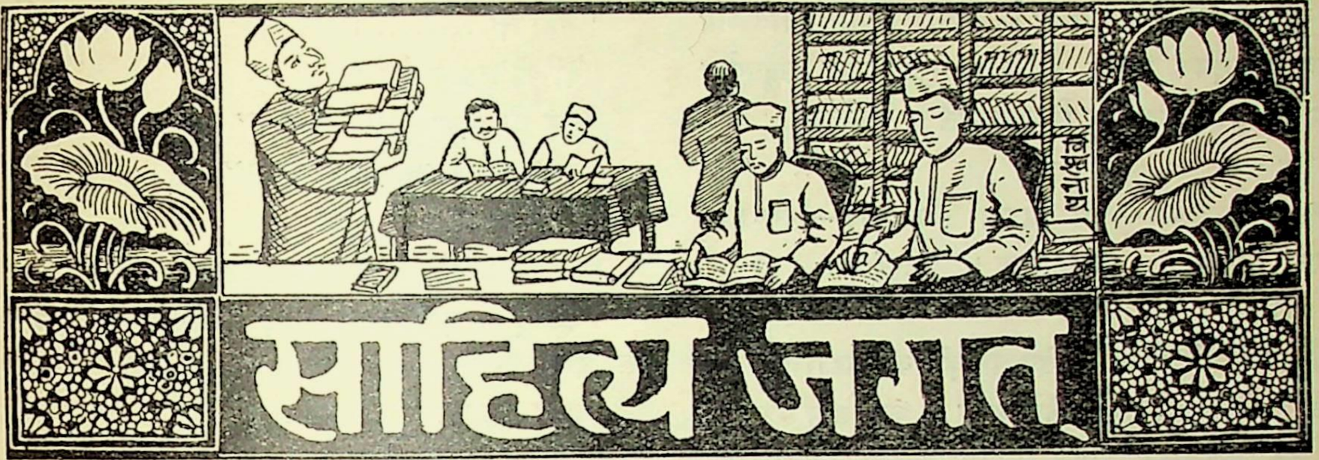
दूसरा कारण यह हुआ कि जेकोस्लोवेकियाके साथ रूसका मैत्री-सम्बन्ध अब तक बढ़ चला था और लघुराष्ट्रोंके साथ सुन्दर सम्बन्ध बनाये रखनेके लिए रूमानियाके साथ सदिच्छापूर्ण भावना रखना आवश्यक हो गया।

लेकिन आजकी जैसी स्थिति हो गयी है, उसमें रूस फिर बेसरबियाकी मांगको चाहने लगा है। इस सम्बन्धमें आर्थिक कारणोंसे भी आवश्यक हैं राजनीतिक कारण। यूरोपके नक्शेपर नजर डालते ही बेसरबियाका राजनीतिक महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। समस्त बाल्टिक किनारोंपर रूसी फौज रहती है। उत्तर-पश्चिममें लिथुआनिया लालसेनाका एक अड्डा है। दक्षिण और दक्षिण-पूर्वमें पूर्वी गैलीशिया है, लेकिन वहां रूसकी स्थिति उतनी मजबूत नहीं है, क्योंकि पीछे ही रूमानिया है। लेकिन रूस केवल अपनी फौजी स्थिति ही

यहीं मजबूत करनेके लिए उसे नहीं लेना चाहता, बल्कि उसे प्राप्त कर उसके लिए रूस-रूमानिया-सीमान्त—नीस्टर नदीके मैदानों तथा डेन्यूबके मुहानेकी ओर बढ़नेका अवसर मिलेगा, जिससे दक्षिण-पूर्वसे मध्य यूरोपमें प्रवेश करनेका उसे वैसे ही रास्ता मिल जायगा, जैसे बाल्टिक राज्योंपर रूसके प्रभुत्वके कारण उत्तरमें उसे अवसर मिला है। इसका अर्थ यह होगा कि बेसरबिया, उत्तरी बुकोविना, पूर्वी गैलीशिया उसके हाथमें आ जायेंगे।

पिछले दिनों बाल्कन राज्योंमें रूसके जो प्रयत्न हुए हैं, उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि रूस बेसरबिया चाहता है। वर्षोंसे बलगेरियाके साथ रूसके कूटनीतिक सम्बन्ध रहे हैं, पर किसीने इस तरफ कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। इधर हालमें रूसकी वैदेशिक नीतिमें उसका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो गया है। बलगेरियाके साथ रूसने व्यापारिक सन्धि की है, पर इसका उद्देश्यकी आर्थिक नहीं, राजनीतिक ही है। क्योंकि बलगेरियाके आयात और निर्यात दोनों रूसके समान ही हैं। बलगेरिया जिन वस्तुओंको बाहर भेजता है, उनकी रूसमें अधिकता है और बलगेरियाको जिन मशीनों, कल-पुर्जोंकी आवश्यकता होती है, उसकी कमी स्वयं रूसमें रहती है। अतः दोनोंके आर्थिक समझौते भी राजनीतिक महत्त्व ही रखते हैं। और नक्शेपर एक नजर डालते ही किसके सामने यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि बेसरबियाके लिए बलगेरियाको प्रभाव-क्षेत्र बनाना कितना आवश्यक है।

इतना लिखनेके बाद २८ जूनको पता चला है कि रूमानियाने बेसरबिया तथा उत्तरी बुकोविना रूसके हवाले कर दिया।



साहित्य-निर्माणका कार्य

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन हिन्दीकी प्रतिनिधि संस्था है और समस्त हिन्दी भाषा-भाषियोंका ही नहीं, दूसरी भाषाओंके विद्वानोंका भी इस संस्थाको सहयोग एवं सहानुभूति प्राप्त है। सच्ची लगनके कुछ कर्मी भी उसे प्राप्त हैं और आज उसकी जैसी स्थिति है, उसमें अपने पास साधन एकत्र करनेमें भी उसे बहुत कठिनाइयां नहीं उत्पन्न होंगी।

पर सम्मेलनसे एक शिकायत आम तौरपर लोगोंकी रही है कि उसने हिन्दी-प्रचारके लिए जहां काफी महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किये हैं, वहां ठोस साहित्य-निर्माणकी ओर उसने ध्यान नहीं दिया है। सम्मेलन-जैसी संस्था इस विषयमें अब तक बहुत पीछे पड़ी हुई है। उसे चाहिए कि वह ठोस साहित्य-निर्माणकी दिशामें कदम उठाये। उसका कर्तव्य केवल हिन्दी-परीक्षाओंका सञ्चालन तथा उन परीक्षाओंके लिए पाठ्य पुस्तकें निकालनेमें ही समाप्त नहीं हो जाता। हिन्दीके दूसरे अभावोंकी पूर्तिपर भी उसे ध्यान देना चाहिए। वह हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन है, केवल हिन्दी-प्रचार-समिति नहीं।

हिन्दी-साहित्यके कितने ही ऐसे अङ्ग हैं, जिनकी पूर्ति होनी आवश्यक है। कितने ही विषयोंपर हमारे यहां अब भी साहित्यकी कमी है और केवल व्यापारिक दृष्टिसे प्रकाशन-कार्य करनेवाली संस्थाओंसे इस बातकी आशा करना कि वे ऐसे कामोंको हाथमें ले सकेंगी, जिनकी आर्थिक दृष्टिसे सफलता सन्देहजनक है, कठिन है। यह काम तो ऐसी संस्थायें हाथमें लें, तभी इसमें सफलता मिल सकती है। नागरी-प्रचारिणी-सभा इस दिशामें निश्चय ही सन्तोषजनक कार्य कर रही है। सभाकी इस विशेषताके हम सदासे प्रशंसक रहे हैं कि बाहरी धूमधाम और आत्म-विज्ञापनसे दूर रहकर उसने सदा साहित्यके उत्थानके लिए महान् कार्य किये हैं।

इस तरहके ठोस साहित्य-निर्माणके कार्यमें सम्मेलनका भाग बहुत उल्लेखनीय नहीं रहा है। उसने इस दिशाकी ओर ध्यान ही कब दिया? हमारा ख्याल है कि आज जब हिन्दीके ऊपर भारतकी जिम्मेदारी आयी अथवा आनेवाली है, तब सम्मेलनको इस महान् प्रश्नकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। सम्मेलन चाहे तो इसके लिए साधन एकत्र हो सकते हैं।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन समस्त हिन्दी भाषा-भाषियों एवं अनुरागियोंके धन्यवादके पात्र हैं, जिन्होंने पूना-सम्मेलनके सम्बन्धमें उत्पन्न कठिनाइयोंका अन्त कर डाला है। हमें यह देखकर प्रसन्नता हुई है कि श्री कालेलकरजीने अपनी मांगें वापस ले ली हैं और अब वे निर्वाचित स्वागत-समितिको सहयोग देंगे। मईकी संख्यामें इस विषयपर हमने विस्तृत रूपसे लिखा था और आज जैसा इन घटनाओंका अन्त हुआ है, उसीके लिए हमने लिखा भी था। सारी कठिनाइयां स्वागत-समितिके निर्वाचन-परिणामको लेकर उत्पन्न हुई मालूम होती हैं, यह हमने लिखा था और बादको इस प्रसङ्गपर जो प्रकाश पड़ा है, उससे भी यही बात प्रमाणित होती है।

खैर। हमें प्रसन्नता है कि इस दुःखद प्रसङ्गका इतना सुन्दर अन्त हुआ है। आशा है, स्वागत-समितिवाले अब काकाजीके अनुभव, उनकी लगन एवं साधनोंका सदुपयोग सम्मेलनको सफल बनानेके लिए करनेसे न चूकेंगे।

× × ×

सफर। लेखक—'श्री पहाड़ी'; प्रकाशक—सरस्वती प्रकाशन मन्दिर, इलाहाबाद। पृष्ठ-संख्या २७१; मूल्य १॥)।

'विश्वमित्र'के पाठकोंके लिए 'पहाड़ी' की कहानियां कुछ नयी नहीं हैं। 'मनोवैज्ञानिक पहलू,' 'आखिरी स्केच,'-'अकारणकी व्याख्या', 'एक विराम' आदि रचनाओंको पढ़नेके बाद यह आशा कुछ अनुचित न थी कि 'पहाड़ी' आधुनिक हिन्दी कहानी-लेखकोंमें आगे चलकर अच्छा स्थान बना सकेंगे। वह एक सर्जनकी तरह मनोभावोंको चीरफाड़कर केवल दिमागी ऐयाशीका ही साधन नहीं बनाते, बल्कि पाठकोंके लिए सोचने-समझनेका ठोस मसाला भी देते हैं। समाजमें नारीकी स्थिति एवं तत्सम्बन्धी कितनी ही बातें इसमें आयी हैं।

प्रस्तुत कहानी-संग्रहको पेश करते हुए लेखकने स्वयं कहा है—"न आज नारी केवल भावुकतापर टिकी है। वह भावुकतापर एक वैज्ञानिककी तरह विश्वास करती हुई खुद दलील करना सीख गयी है।......नग्न चीज वीभत्स लगती है। लेकिन मुंह छुपाकर चलना भी एक नैतिक अपराध होगा। ....इस पुस्तकके सब पात्र समाजके पात्र ही हैं। उनको पहचानकर भी मैंने उनकी स्वतन्त्रतामें रुकावट डालनी नहीं चाही। मैं तो उनके और पाठकोंके बीच एक जरिया मात्र हूँ"

आजका समाज तबदीली चाहता है, पर वह एक दिनका काम नहीं। इसीलिए लेखक सिर्फ अपनी कहानियोंमें भविष्यके लिए एक इशारा करनेके अलावा और कोई राय अभी देना नहीं चाहता है। वह आजके समाजकी रक्षा चाहता है। उसके कायदे-कानूनोंके प्रति फिर भी उसके पात्रोंमें भारी विद्रोह है।

'पहाड़ी' की कहानियां दिलको छू लेती हैं और उनके पात्र कुछ ऐसा आकर्षण रखते हैं, जो पढ़ते ही स्मृतिसे उतर नहीं सकते। उनके डायलग आकर्षक और मार्मिक होते हैं:—

"आप शादी करेंगे?"

"नहीं तो.........।"

"देखिये झूठ न बोलिये।"

"कह तो दिया नहीं...नहीं।"

"क्या वाकई सच कहते हो?"

"हां...हां।"

"माना करोगे तो कैसी बीबी लाओगे?"

"कह दूं...मुमताज-सी।" [तो इन्होंने चन्दाको जरूर देखा है]

"क्या तुम चाय नहीं पीतीं?"

"पीती तो हूं।"

"साथ-साथ पीना बुरा लगता है?"

"अभी पूजा नहीं की।"

"यह पूजा कबसे सीखी है।" [निरुपमा]

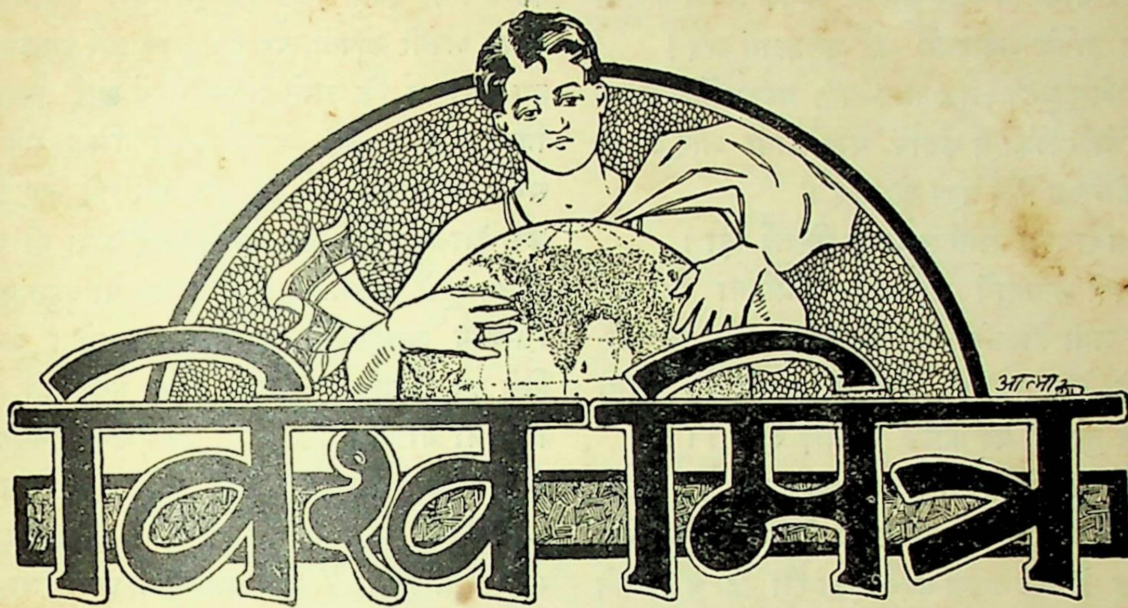
'गाड़ीने सीटी दी, चल दी। हरएकको धक्का लगा। वह एक ओर झुकी। फिर अपनेको पकड़ लिया।'

'.........। बच्चेको गोदीमें लिया। उसकी आंखोंका भोलापन एक अज्ञानता। बच्चा पास लगा। उसे नजदीक पाया। अपनेसे चिपटता वह जान पड़ा। वह देख-देख मुस्कराती थी।' [एक अध्याय]

'इलाहाबादमें कटराकी लम्बी सड़कपर एक ओर गेंदाकी पानकी दूकान है। वह निरा पान ही नहीं देती, साथमें एक मुस्कान भी कर देती है।'

लेखककी कई कहानियां बड़ी मार्मिक हैं और उनका हिन्दीमें महत्त्वपूर्ण स्थान होगा। लेखक गहराई तक डूबते हैं, पर उनकी भाषा थोड़ी उलझी, थोड़ी अटपटी-सी है, जो कभी-कभी भावोंका प्रवाह रोकती-सी है। हमारा ख्याल है कि इसमें परिमार्जनकी आवश्यकता है। 'पहाड़ी'के पास अभी कहनेको बहुत कुछ है और वे और भी अच्छा कह सकें, यह हमारी आशा है। और कहानीके क्षेत्रमें उनसे और ऊंचे साहित्यकी आशा करना निराधार भी नहीं है।

स्वातन्त्र्य वीर सावरकर। लेखक—श्री चन्द्रगुप्त वेदालङ्कार; प्रकाशक—दयालु आर्य भारत कम्पनी; गन्ना स्ट्रीट, लखनऊ। छपाई-सफाई साधारण; पृष्ठसंख्या १९२, मूल्य ॥।)



सम्पादक—
शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

अगस्त, १९४० वर्ष ८ संख्या ९५ श्रावण, १९९७

इंगलैण्डके उन्नत जेलखाने

प्रो० चन्द्रशेखर, एम० ए० डी० लिट्

जोन्स आज जेलसे छूटेगा।

किलेकी भांति सामने एक विशाल भवन खड़ा है और उसके सामने—फाटकपर बाहर एक युवती प्रतीक्षा कर रही है। वह मेरिया है। आज उसका प्रेमी जोन्स जेलसे छूटनेवाला है। बेचारेसे भूल हो गयी और जेलमें डाल दिया गया था। मेरियाकी आंखें भर आयी हैं। मुंहपर स्निग्धता है, और वह रह-रहकर सुबकियां ले लेती है, जैसे रोते-रोते थक जानेके बाद बहुधा हुआ करता है। मेरियासे थोड़ी दूरपर एक बूढ़ा खड़ा है। बूढ़ेकी पेशानीपर पसीनेकी हल्की-हल्की बूंदें हैं, आने-जानेवालोंने उसका ख्याल नहीं किया, नहीं तो वे देखते कि बूढ़ेका चेहरा रह-रहकर कितना गम्भीर हो जाया करता था। उसके दिमागमें अबसे वर्षों पहलेकी घटनायें याद आ रही थीं, जब वह दूसरेके अपराधके लिए जेलमें डाल दिया गया था। बेचारा कानूनी शिकञ्जेमें आ गया था, लड़नेके लिए पैसे न थे और न उस ईमानदार आदमीमें नम्रता ही इतनी थी कि भाग्यके इस उपहासके सामने घुटने टेक देता। पर न्यायाधीशके फैसलेके सामने घुटने टेकनेके अतिरिक्त और कोई उपाय न था। बूढ़ा जेलमें डाल दिया गया।

बूढ़ा जेलमें डाल दिया गया, और मेरियाने बूढ़ेसे उसके जेल-जीवनकी अनेक कहानियां सुनी हैं। छोटी-छोटी बातोंके लिए पीठपर लगनेवाले कोड़े! चोरीसे एक सिगरेट पीनेके

अपराधमें कठोर यातनायें और समयसे अधिक अपनी पत्नीसे बात करते रह जानेके अपराधमें कई मुलाकातें बन्द !

और इसीलिए बूढ़ा आज आप-बीती घटनाओंकी उधेड़-बुनमें है, और मेरियाको ये कथायें याद आतीं और उसका भोला हृदय जोन्सके लिए तड़प उठता है।'

कि जोन्स सचमुच सामनेसे आता दिखाई पड़ा।

बूढ़ेने अपनी भावनायें संभालीं, पर मेरिया विचलित हो गयी, वह अभी फाटकके भीतर ही था। केवल सींखचोंसे मेरिया उसे देख पाती थी और उसे लगता था, मानो थोड़ी देर और हुई, तो वह फाटक ही तोड़ डालेगी।

लेकिन जोन्स मुसकराता हुआ निकल रहा है। उसके चेहरेपर न तो अनावश्यक गम्भीरता है और न आंखोंमें आंसू ही। वह तो उल्टे प्रसन्न-बदन बढ़ता आ रहा है। उसने मेरियाको पहले देखा और खिल उठा। बूढ़ा व्यक्ति फाटककी ठीक सीधमें न था, अतः वह तब तक नहीं दिखाई पड़ा, जब तक जोन्स ठीक फाटकपर न आ गया। अब वह संयत हो गया था।

यह बूढ़ा और वह जोन्स, दोनों जेल हो आये। एक यातनाओंकी यादमें आज भी व्यथित हो उठता है और दूसरा यातनाओंसे अभी निकलकर आनेपर भी प्रफुल्लित दिखाई पड़ रहा है।

ये दोनों ही इंगलैण्डके जेलखानेसे निकले हैं, पर दोनोंपर जो प्रतिक्रियायें हुई हैं, वे एक-दूसरेसे बहुत भिन्न हैं।

और वास्तवमें इंगलैण्डकी जेलोंमें पिछले कुछ वर्षोंसे जो सुधार हुए हैं, उनके कारण ही जोन्स उन यातनाओंकी याद कर घबराता नहीं, जिन्हें सोचकर पचीस वर्ष पहले जेलसे लौटनेवाला बूढ़ा आज भी विचलित हो जाता है। इंगलैण्डके जेलखाने आज बहुत उन्नत हो गये हैं, उनमें इतने अधिक सुधार हो गये हैं कि उनका कायापलट-सा हो गया है।

जेलखाने सामाजिक व्यवस्थाके अनिवार्य अङ्ग हैं। एक मनोवैज्ञानिकने एक बार एक सभामें भाषण करते हुए कहा था, "किसी-न-किसी समय हरएक नागरिक अपनेको जेल जाने लायक बना ही लेता है। इस सभामें कौन ऐसा है, जिसने कभी चोरी नहीं की हो, या जिसने कभी अनुचित तरीकेसे पैसे न कमाये हों।" सभाके लोग सुनकर चौंक पड़े थे। पर उनमें केवल एक बूढ़ा था, जिसने क्षोभके साथ उठकर अपनी कांपती, पर दृढ़ आवाजमें इसका प्रतिवाद करते हुए कहा था कि उसने जीवन-भरमें कोई ऐसा काम नहीं किया, जिससे उसे जेलकी सजा मिल सके। और इसमें सन्देह नहीं कि कितने ही जेल नहीं गये हुए हैं, पर जेलसे बचानेवाली बात केवल उनकी निर्दोषिता ही नहीं रही है, बल्कि दूसरे कारण भी रहे हैं। अन्यथा बहुत कम लोग होंगे, जिन्होंने कानूनकी उपेक्षा न की हो। अगर कोई अपने किये हुए कामोंको एकदम भूल गया हो, तो हम याद दिलाना चाहते हैं कि क्या उसने कभी इनकम-टैक्स लगनेवाली रकम लिखनेसे छोड़ नहीं दी है, कभी ट्राम या बसमें उसने कम दामके टिकटमें अधिक दामके डिब्बोंमें सफर नहीं किया है, कभी शराब पीकर बेहोश नहीं हुआ है, कभी अन्धेरा होनेपर भी बिना रोशनीके साइकिल नहीं चलायी है। कभी उसने क्या ऐसा कोई काम नहीं किया, जिसे उसे करना चाहिए था अथवा ऐसा काम किया, जिसे उसे नहीं करना चाहिए था। इन सारे कामोंके परिणाम जेलकी छायाके नीचे आपको खड़ा कर सकते हैं, पर वास्तवमें आप इससे बचे रहते हैं, क्योंकि इससे बचानेवाली भी अनेक बातें मनुष्योंने सोच निकाली हैं।

अपराधोंके लिए दण्ड-व्यवस्थाओंकी अनिवार्यतासे कोई इनकार नहीं कर सकता, पर उन व्यवस्थाओंके सम्बन्धमें भी कितनी ही बातें कही जा सकती हैं। एक समय ऐसा था, जब मामूली अपराधोंके लिए भी बड़े कठोर दण्ड दिये जाते थे और जेल-जीवन तो अपराधियोंके लिए भीषण नारकीय रूपमें ही बिताना पड़ता था।

लेकिन पिछले कुछ वर्षोंमें जेलमें काफी सुधार किये गये हैं। अपराधोंको रोकनेके ख्यालसे मृत्यु-दण्डकी व्यवस्थाकी असफलताके कारण जब दीर्घकालीन जेल-जीवनकी ही व्यवस्थाओंपर जोर डाला जाने लगा और साथ ही लोगोंमें इस बातकी भावनाका भी उदय हुआ कि जेलोंमें जानेवाले मनुष्य भी समाजके अङ्ग हैं और जेलसे छूटनेके बाद उन्हें फिर समाजमें ही रहना होगा, तब जेलोंमें सुधार करनेकी आवश्यकता अनिवार्य हो गयी, जिससे जेलसे छूटते-छूटते अपराधियोंकी मानसिक वृत्तियोंमें इतना सुधार हो जाय कि समाजके लिए वे अवाञ्छनीय न रह जायें। क्योंकि अगर

ऐसा न हो, तो जेल-यातनाओंका कोई अर्थ नहीं होता। दण्ड-व्यवस्थाका वास्तविक मर्म तो यही है कि इससे उस व्यक्तिका सुधार हो जाय और साथ ही दूसरे लोग भी अपनी अवाञ्छनीय हरकतोंसे बाज आयें। इसलिए यह आवश्यक हो गया कि जेलके नियमोंमें सुधार किये जायें और वहांका वातावरण ऐसा बनाया जाय, जिससे जेल-यात्री अपने किये हुए कुकर्मोंसे अपनेको केवल क्षुद्र ही न समझें, बल्कि पश्चात्तापके बाद वे आगेसे सद्कार्योंमें दिलचस्पी भी लेने लगें। इस दिशामें एलिजाबेथ फ्लाईके प्रयत्न अत्यन्त सराहनीय हैं। इस प्रतिभाशील महिलाका हृदय सुधारोंके लिए तड़प रहा था। इसके हृदयमें ज्वालामुखी धधक रहा था और कहना कठिन है कि हावर्डके बाद और किसीने एलिजाबेथसे अधिक प्रभावशाली प्रयत्न जेल-सुधारोंके लिए किये। इस महिलाके प्रयत्नोंका परिणाम न केवल इंगलैण्डमें, बल्कि सारे यूरोपमें दिखाई पड़ा है।

इंगलैण्डके जेल विभागपर इसका प्रभाव सबसे अधिक पड़ा। पहलेकी जेलोंमें हालत यह होती थी कि जवान, बूढ़े, चोर, लफङ्गे, सब एक साथ डाल दिये जाते थे, और उनका समय दिनभर गाली-गलौज, मार-पीटमें ही बीत जाता था। वे जैसी गन्दी कोठरियोंमें रहते थे, उनसे भी अधिक गन्दगी उनके मस्तिष्क और हृदयमें भर जाती थी। उनके साथ मनुष्यताका व्यवहार नहीं किया जाता था और रहनेके स्थानोंसे साफ-सुथरे तो सुअरोंके बाड़े और अस्तबल होते थे। एक लेखकने लिखा है कि १८ वीं शताब्दीकी जेलोंकी गन्दी कोठरियां एक प्रकारके विश्वविद्यालयके समान थीं, जिनमें अपराधी अनेक गन्दे पाप एवं भ्रष्टाचरण ही सीखता था, और उन्नीसवीं शताब्दीकी जेलोंकी कोठरियां तो जैसे जिन्दा कब्रें होती थीं, जिनमें शरीर और आत्मा दिनों-दिन क्षीण होती चलती थी। अपराधी जेलोंसे निकलते तो थे क्षीण शरीर; पर भीषण हृदय लेकर। वे समाजके लिए कोढ़ होते थे और वास्तवमें अनेक रोगोंके कीटाणु लेकर निकलते थे।



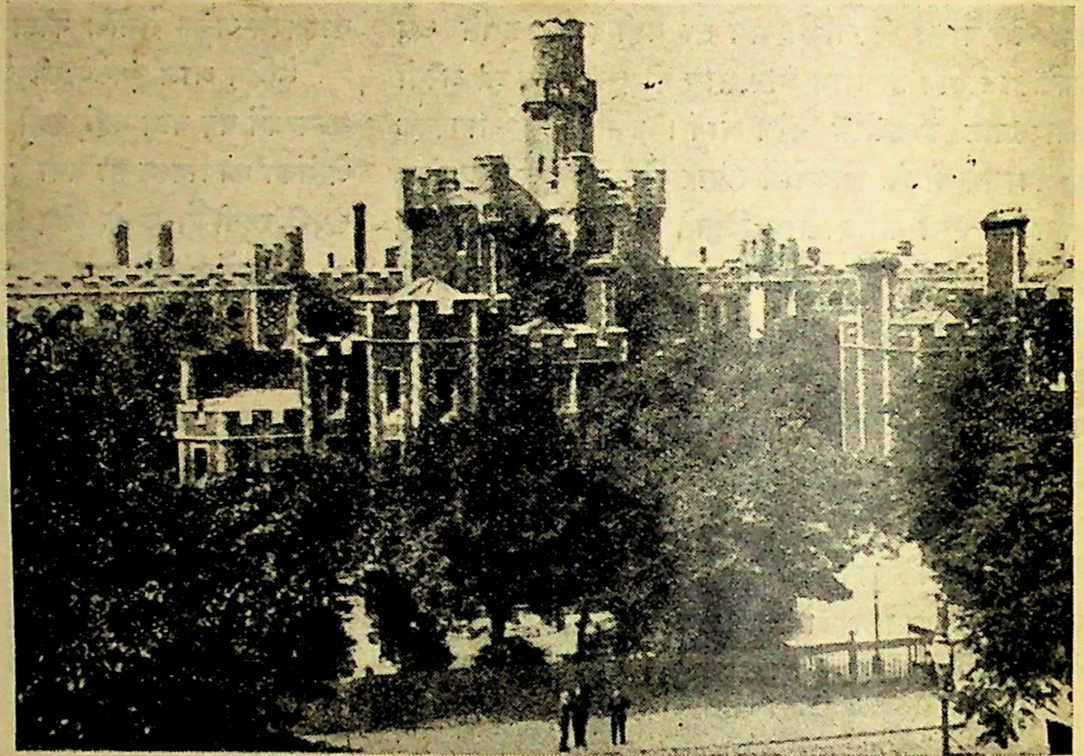
श्रीमती फ्लाई—जेलोंमें होनेवाले अनेक सुधारोंका श्रेय इस मनस्विनी महिलाको है।

लेकिन आज इंगलैण्डकी जेलोंकी अवस्था जाननेवालोंके सम्बन्धमें यह बात नहीं कही जा सकती। आज इंगलैण्डकी जेलोंका कायापलट हो गया है। उनकी कोठरियां आज साफ-सुथरी रहती हैं, उनके लिए मिलने-जुलनेकी ही सुविधा नहीं रहती, पढ़ने-लिखने तथा दस्तकारी सीखनेकी भी उन्हें काफी सुविधायें रहती हैं, भोजनमें उनके सुधार हुए हैं और सबसे बढ़कर बात यह हुई है कि उनके साथ आज पशुओंकी तरह नहीं, मनुष्योंकी तरह व्यवहार किया जाता है। जोन्सने जेल जाकर केवल यह जाना कि उसने भूल की और सुधारके लिए उसकी आत्मा तड़प उठी थी, न तो वह कोई बुरी आदत लेकर लौटा है और न कोई संक्रामक रोग लेकर ही। उसका शरीर क्षीण नहीं हुआ है और न आत्मा ही इतनी कुचल गयी है।

पर इस तरहका जीवन बितानेका—जेलमें भी इस तरहकी सुविधाओंके मिलनेका अर्थ क्या यह है कि जोन्स फिर भी जेल जाना चाहेगा? बाहर रहकर उसे जो परिश्रम करनेपर भी भरण-पोषणकी कठिनाइयां उठानी पड़ रही हैं, उनसे जेलमें उसे जो छुटकारा मिला रहा है, इसके प्रलोभनमें क्या वह बार-बार जेल जाना चाहेगा?

यह सवाल बहुतोंके मनमें उठा करता है। बहुतोंने तो इसीके आधारपर जेलमें सुविधाओंके देनेका विरोध किया है। लेकिन सच तो यह है कि जोन्स जितने दिनों तक मेरियासे अलग रहा है, उसका मन सदा आन्तरिक व्यथासे पीड़ित रहा है। जेलमें उसे वह स्वाधीनता कहां थी, जो बाहर मिलती है। पार्कहर्स्ट जेलके गवर्नरने अपने वर्षोंके निजी अनुभवोंके आधारपर एक बार कहा था कि जेलमें चाहे जितनी सुविधायें दी जायें, जेलोंको चाहे जितना सुखमय

बना दिया जाय, यह कभी नहीं हो सकता कि मनुष्य उन्हें कभी छोड़ना ही न चाहे अथवा निकाले जानेपर भी अपराध करके पुनः उनमें आना चाहे। वास्तवमें सबसे बड़ी चीज है स्वाधीनता, जिसे भीषणसे भीषण अपराधी और काहिल भी चाहते हैं और यह ऐसी चीज है, जो जेलकी दीवारोंके भीतर नहीं प्राप्त होती। मनुष्योंके जीवनके दूसरे प्रश्नोंपर चाहे जैसे विचार हों, पर स्वेच्छाचरण सभी चाहते हैं।

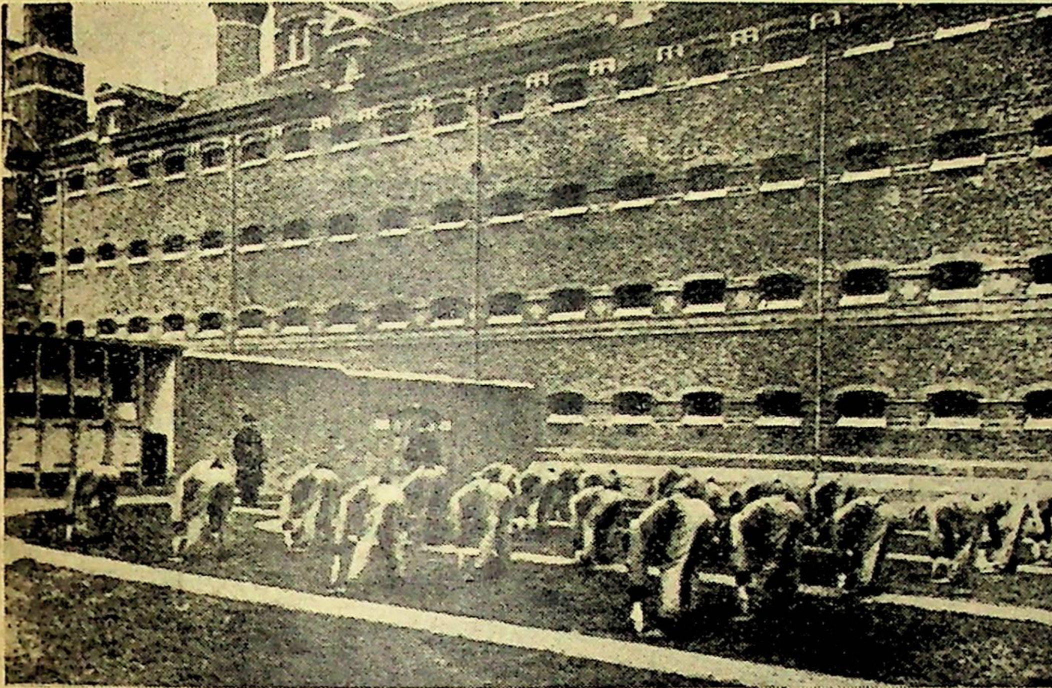


जेलका एक हिस्सा, जिसमें कैदियोंके लिए सङ्गीत-वाद्यकी भी व्यवस्था है।

(२)

किसीको जेल हो गयी, केवल यह कह देनेसे इंगलैण्डमें कुछ भी अर्थ न समझा जायगा, जब तक यह भी न बता दिया जाय कि जिसे जेल हुई है, वह स्त्री है या पुरुष, उसकी अवस्था क्या है, उसका स्वास्थ्य कैसा है, उसकी मानसिक स्थिति कैसी है, उसका पहला रेकर्ड और आचरण कैसा है, उसे सजा कितने दिनकी और कहां मिली है। इस तरहकी कितनी ही बातोंके आधारपर विभिन्न जेलोंमें आदमी भेजे जाते हैं। १६ से २३ सालके नवयुवकोंको बोर्स्टल संस्थाओंमें भेजा जाता है। यह भी एक प्रकारकी जेल है, पर इसका मूल उद्देश्य अपराधियोंका सुधार करना है। बड़े-बड़े अपराधोंमें दोषी पाये जानेवाले नवयुवक भी उस अवस्थाके अन्तर्गत बोर्स्टलमें भेजे जाते हैं। यहां भी लड़के और लड़कियोंके लिए ही अलग-अलग विभाग नहीं हैं, बल्कि उनकी मानसिक और शारीरिक अवस्था, अपराध तथा आम तौरपर आचरणकी बातें देखी जाती हैं। ऐसी दस संस्थायें इंगलैण्डमें हैं।

इन संस्थाओंमें रहनेवालोंको उनकी अवस्थाओंके अनुसार सुधारने और शिक्षा देनेकी व्यवस्था की गयी है। यहांकी रहन-सहनमें अपराधियोंपर प्रतिबन्ध अवश्य है; पर उन्हें ऐसी अनेक सुविधाओंका उपयोग करनेकी आज्ञा है, जिन्हें वे बाहर कर सकते थे। वहां उन्हें अपने कपड़े पहननेकी इजाजत है। चाहे जितनी चिट्ठियां भेजें और प्राप्त करें, पर सभी अधिकारियों द्वारा सेन्सर की जाती हैं। दिनमें चाहे जितने लोग मिलने आयें, पर एक साथ तीनसे अधिक नहीं आ सकते। अपराधी चाहे, तो अपने सालिसीटरसे मिलने, मामलेके बारेमें परामर्श लेने-देने तथा कागज-पत्र भी लेने-देनेकी आज्ञा उसे है। जेलके भीतर अगर वह चाहे, तो काम करके कमा भी सकता है। यों काम करनेके लिए कोई बाध्य नहीं है, पर अपनी मर्जीसे कोई काम करना चाहे, तो उसे तीन शिलिंग प्रति सप्ताहके हिसाबसे मजदूरी भी मिलती है। इस प्रकारकी व्यवस्था वयस्क अपराधियोंके लिए भी है, जो ब्रिक्स्टनकी हवालातमें मामला चलते रहनेकी अवस्थामें रखे जाते हैं। कुछ वर्ष पहले जेलमें प्रवेश करते ही जहां आप कैदियोंको गाली-गलौज करते या मार-पीट करते देखते और कितने ही ऐसे कैदी आपको मिलते, जिनकी



जेलके सामने कैदी व्यायाम कर रहे हैं। उनके स्वास्थ्यके लिए सभी आधुनिक उपकरणोंको जेलमें एकत्र किया गया है।

खून-भरी आंखें देखकर आप सिहर जाते, वहां आज उनकी अवस्था देखकर आपको न डर लगेगा और न आपको घृणा ही होगी। एक कैदीके कमरेमें चलिये। कमरा साफ-सुथरा और बिजलीकी रोशनीसे प्रकाशित है। एक ओर ऊंचा-सा तख्त बिछा है, जिसपर चटाईके ऊपर एक गद्दा बिछा है। दो तकिये पड़े हुए हैं और उधर खूंटेपर दो तकियोंके धुले हुए खोल लटक रहे हैं, जो अभी धुलकर आये हैं, लेकिन कैदी अभी पढ़नेमें मशगूल होनेके कारण उन्हें बदल नहीं सका है। वह अभी भी बैठा पढ़ रहा है। खिड़कीके सामने दीवालमें सटी हुई एक मेज है, जिसके सामने एक कुर्सी लगी है। मेजपर बाइबिलकी एक प्रति पड़ी हुई है और कैदी लाइब्रेरीसे मंगाकर शरलाक होम्सका उपन्यास पढ़ रहा है, जिसमें समस्त अतिथियोंके बीचमेंसे लेडी मिलरका मोतियोंका हार न जाने कैसे किसीने उड़ा दिया है। कैदीको शायद इस तरहके हथकण्डोंका कुछ अपना अनुभव हो, इसलिए हाथकी इस सफाईपर वह एकदम आत्म-विभोर होकर पढ़ रहा है। मेजपर दो-एक तस्वीरें भी हैं। दो फोटोग्राफ। पता नहीं, किसके हैं; पर उन्हें कोई छीन नहीं सकता। कैदीको उन्हें रखनेकी आज्ञा है। एक दूसरे किनारेपर एक शेल्फ है, जिसमें कुछ और पुस्तकें हैं, और एक तिपाईपर उधर खानेके बर्तन, पीनेके स्वच्छ बर्तन, नमक तथा दूसरी कई चीजोंसे भरे हुए शीशेके बर्तन तरतीबसे रखे हुए हैं, और ऊपर कई ब्रश दिखाई पड़ रहे हैं, दांतके, केशके, कपड़ोंके। मेजपर कुछ कागज पड़े हैं, जिनपर जेलका पता-ठिकाना और बायीं ओर वे नियम छपे हैं, जिनके अनुसार कैदी पत्र-व्यवहार कर सकता है। यह वह कैदी है, जिसे कई दिनों-के बाद हमने देखा है। इसके लिए इस बातकी भी व्यवस्था हो गयी है कि इसे किस विषयकी शिक्षा दी जा सकती है। कैदियोंके भर्ती होनेके दूसरे दिन ही इसका निश्चय कर दिया जाता है।

साढ़े छः बजे जेलका घण्टा बजते ही कैदी उठते और हाथ-मुंह धोकर तैयार हो जाते हैं। शीघ्र ही उन्हें नाश्ता मिलता है, जिसमें कई चीजें शामिल रहती हैं। पहले सपरिश्रम कारावासदण्ड जिन्हें दिया जाता था, उन्हें वास्तवमें कठोर यातनायें भुगतनी पड़ती थीं। पर जबसे जेलोंका यह कायापलट हुआ है, तबसे सपरिश्रम कारावासका अर्थ यह है कि ऐसे कैदियोंको नाश्ताके साथ चाय नहीं मिलती।

नाश्ता ले लेनेके बाद कैदियोंको कामपर भेजा जाता है। यह काम भारतीय जेलोंकी भांति चक्की पीसना नहीं है, बल्कि जिस कैदीमें जिस दस्तकारीके सीखनेकी प्रतिभा मालूम होती है, उसीके सिखानेके लिए उसे ऐसी ही दूकानमें भेजा जाता है। जूतेकी दूकान, दर्जीकी दूकान, बेकरी, ब्रुश बनानेकी दूकान आदि कितनी ही दूकानोंमें कैदियोंको अलग-अलग टोलियोंमें भेजा जाता है और वहां वे उन विषयोंके जानकारों द्वारा उनकी शिक्षा ग्रहण करते हैं।

इस तरहकी शिक्षा देनेका तात्पर्य यह है कि जेलसे निकलनेपर कैदी असहायावस्थामें पड़े न रह जायें, जिसका परिणाम अपराधी प्रवृत्तिके विकासमें प्रायः दिखाई पड़ता है, बल्कि वे अपनी जीविकाका उपार्जन कर सकें। जिन दूकानोंमें कैदियोंको ले जाकर शिक्षा दी जाती है, कभी-कभी तो उन्हींमें उनके छूटनेपर काम मिल जाता है। लेकिन जिन्हें नहीं मिलता, वे भी कला इतनी अच्छाईके साथ सीख लेते हैं कि दूसरी दूकानोंमें काम मिलनेमें सहूलियत हो जाती है।

इस सम्बन्धमें एक बात और जाननेकी है। इन कैदियों-के इस प्रकारके काम करनेके घण्टे नियत हैं। लेकिन अगर कोई कैदी चाहे, तो और भी श्रम करके अपने लिए कुछ कमा सकता है। उसकी यह कमाई उसके नामसे जेलमें जमा होती चलती है और जेलसे छूटते समय उसे मिल जाती है। कभी-कभी तो यह देखा गया है कि जेलसे छूटते समय किसी कैदीके पास इतना पैसा रहा है कि उसने निकलते ही अपने लिए शान्त और निर्दोष जीवन-यापनके लिए व्यव-स्थायें कर ली हैं। इस कमाईका बहुत थोड़ा अंश कैदियोंको जेलके भीतर मिल पाता है। फुटबालकी मैचोंपर बाजी लगाने, किसी खास चीजको बाहरसे मंगानेके लिए ही—जिसकी इजाजत हो—उस उपार्जित रकममेंसे कुछ दिया जा सकता है, अन्यथा सबका सब जमा रहता है। और सच तो यह है कि जेलमें उन्हें खर्च करनेकी जरूरत भी बहुत कम पड़ती है, क्योंकि जेलोंमें सभी आवश्यकताकी चीजें उन्हें मिल जाती हैं।

जेलमें ही कैदियोंको बढ़िया-बढ़िया लेक्चर सुननेको मिल जाते हैं, एक बार खानेके साथ सोलह-सोलह पदार्थ खानेको मिल जाते हैं, तमाशे और सङ्गीतका आयोजन उनके लिए रहता है। शार्टहैण्ड और टाइप करना जानने-वाले ऐसे कितने ही परोपकारी भावनाके मनुष्य हैं, जो कैदियोंको शिक्षा देनेके लिए जेल-अधिकारियोंको सहयोग देते हैं। इसी प्रकार अंगरेजी, फ्रेञ्च, स्पेनिश भाषाओंकी शिक्षा दी जाती है। उन्हें अर्थ-शास्त्र तथा राजनीतिकी शिक्षा देनेवाले भी मिल जाते हैं और आधुनिक घट-नाओंके सम्पर्कमें भी उन्हें लानेका प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकारकी कितनी ही व्यवस्थायें १९२२ से हुई हैं। उन दिनों जेलोंके कमिश्नर सर मारिस वालर थे, जिन्होंने सदा इस बातका प्रयत्न किया कि जेलकी दीवारोंके भीतर कैदियों-को जरूर बन्द किया जाय, पर उनके लिए ज्ञान-विज्ञान, मानवता और चरित्र-सुधारके दरवाजे न बन्द किये जायें।

कुछ दिनोंसे इंगलैण्डकी कुछ जेलोंमें चुने हुए व्यक्तियोंको लेकर कुछ और प्रयोग हो रहे हैं। वेकफील्डमें जानेवाले कैदियोंमेंसे कुछ अच्छे चाल-चलनके कैदियोंको चुन लिया जाता है और उन्हें जेलकी कोठरियोंमें न रखकर कैम्पोंमें रखा जाता है, जहां उन्हें खेती करना तथा इसी प्रकारके कितने ही काम सिखाये जाते हैं। इन्हें इतनी स्वाधीनता दी जाती है कि नाम-मात्रको ही ये कैदी रह जाते हैं। ठीक ढङ्गसे काम करनेपर सजाकी अवधि बाकी रहते भी वे छोड़ दिये जाते हैं। इस बीचमें उन्हें अपने थानेमें समय-समयपर खबर देते रहना पड़ता है।

यों तो जेलोंके साथ बने अस्पतालोंको सभी आधुनिक आविष्कारोंसे संयुक्त करके रखा जाता है, जिससे किसी प्रकारकी भी बीमारीका इलाज कर कैदियोंको स्वस्थ रखा जा सके। पर इधर वारउड स्क्रबमें एक और प्रयोग चल रहा है। एक नया विभाग खोला गया है, जिसमें कैदियोंकी मानसिक परीक्षा करके उनके मानसिक विकारोंकी चिकित्सा की जाती है। इस प्रयोगमें अब तक जो सफलता मिली है, उसके आधारपर आशा की जाती है कि ऐसे विकारोंको भी दमन करनेमें आगे सहायता मिल सकेगी, जिनके कारण मनुष्योंमें चोरी करने, डाका मारने तथा खून-खच्चर करनेकी प्रवृत्ति होती है। इस प्रयोगपर जेलके अधिकारियोंको बड़ी आशायें हैं।

———



मृत्युके बाद

चन्द्रलोकमें पहुंची जब मैं,
निविड़ नींदके बाद,
प्रभुने मुझसे पूछा,
कितने पाठ तुम्हें हैं याद ?
शीश नवाकर बोली तब मैं,
चार पाठ—कुल चार,
प्रथम पाठ जो तुमसे सीखा,
बालकालका सार।
जल-थल-नभमें अमर लोकमें,
परश तुम्हारा पाया था,
प्रकृति और अपने अन्तरमें
छवि-प्रकाश फैलाया था।
उतरी इन्द्रपुरी वसुधापर,
उसके हम-तुम वासी थे,
मुंदी-अधखुली आंखोंके वे,
सुन्दर स्वप्न-निवासी थे।
चमचम करती दीप-शिखा शुचि
शुक्र तारा-सी उज्ज्वल थी,
पंखुरियों-सी नील कमलकी,
मुसकानों-सी भोली थी।
सतरङ्गी उस इन्द्रधनुष-सा,
यौवन इठलाता आया,
कोयलने अपनी तानोंमें
पाठ दूसरा सिखलाया।
स्वप्न-जालमें मैं भूली-सी,
घर भूली, सबको भूली,
जीवन-मीड़ तरल हो आयी,
मुलतानी लयमें डूबी।
आंखोंके बहुरङ्गी डोरे,
स्वप्न बुन रहे पलकोंमें,
मृदुल भावनायें मेरी उलझीं—
अपनी कुञ्चित अलकोंमें।
पाठ चातकीने सिखलाया,
दुखकी करुण कहानी-सी,
पल-भरकी वह अवधि
और यह रैन सदा पहचानी-सी।
आंसूमें यौवनका सपना
बूंद-बूंदकर ढल पड़ता,
जीवन-तरुकी डालीका
प्रत्येक पत्र यों हिल पड़ता।
प्रथम मिलनकी वह होली,
सब सूख गया रस औ रोली,
खारी बूंदोंका समुद्र यह
जीवन बस—सूखी झोली।
जीवनका कटु सत्य हंस उठा,
आंख-मिचौनी यह भूली,
पंखुरियोंकी सेज बनी,
यह मेरे हित दारुण शूली।
चौथा पाठ स्वयंसे सीखा,
हृदय - रक्तके आंसूमें;
परश तुम्हारा व्याप रहा था
मेरे श्वास—प्रश्वासोंमें।
अङ्कित हुआ जगतका सपना,
मेरे मनमें, प्राणोंमें,
सिहर-सिहरकर जाग उठी मैं,
शेष रातके सपनेमें।
धरा-गगनका मेल अनोखा,
झूल रही पतली-सी डोर,
यहां पड़ा यौवन रोता,
जीवन जा रहा वहां—उस ओर।
रूप - माधुरी मोह - जालमें
मैं अब तक यों खोयी थी,
अपना असली रूप देखकर
सिसक-सिसककर रोयी थी।
भर विस्मय-आंसू पलकोंमें
स्तब्ध, त्रस्त, अ-डोली थी,
सत्य-सत्य यह ऐसा कुण्ठित!
सिहर-सिहरकर बोली थी।

— कुमारी बुलबुल मित्रा, एम० ए०

रहस्यमयी

श्रीमती उषादेवी मित्रा

शान्तिकी मूर्च्छना-सी सोमवती नदी ग्रामकी गोदमें उच्छ्वास-भरे गीत गाया करती। उसके भंवरोंमें शङ्खनाद-ध्वनि गुञ्जना करती। सोमके तीरवर्ती वृक्षोंपर और अध-टूटे मन्दिरोंके गुम्बजोंपर सहस्रों काग पक्षियोंका नित्य मेला-सा लगा रहता। प्रातः-सन्ध्या गायें जलपान करतीं, उनके तृप्त उद्गारोंसे जैसे सोमका हृदय भर उठता।

कभी वह कूदती-फांदती पत्थरोंकी सीढ़ियों तक चली जातीं, और तब सीढ़ियोंपर बैठे हुए श्वेत बगुलोंकी पङ्क्तमें एक आतङ्क उपस्थित होता। और कदाचित् उस आतङ्कको देखकर पनिहारिनकी कलसियां सूनी ही लौट जातीं। प्रातः-सन्ध्या उसके तीरपर नर-नारियोंकी भीड़ लग जाती। तब उसके तीरवर्ती झाड़ी-झुरमुटोंमें दबकी सारिका चहचहाने लग जाती।

अस्तमित सूर्य-किरण नितकी भांति नदी-जलमें पड़ी रामधनुषके रङ्गोंको आंक रही थी। और चित्रकार प्रद्युम्न नितकी भांति मन्दिरके भग्न द्वारपर बैठा उद्भ्रान्त दृष्टिसे नदीकी ओर निहार रहा था।

उसके चित्रका आधार थी यही नदी सोम। आज जो विश्वकी डेहरीमें वह एक विख्यात कलाकार बन बैठा है, वह सब तो इसी नदीकी देन थी न। इस नदीके विशाल हृदयसे उसे चित्रके न जाने कितने आइडिया नित नवीनतर रूपमें मिला करते। कभी वह यहांकी नग्न प्रकृतिको नग्नतर कर आंक देता, कभी स्नानार्थी-स्नानार्थिनियोंके सौन्दर्यको नवीनतर कर तूलिकामें भर लेता, कभी किसी अन्ध भिखारीके ज्योतिहीन नेत्रोंमें आत्माकी अन्तर्ज्योति भर देता, चित्र उसके सजीव-से-वाङ्मय हो उठते। दुनिया तब उन्हें श्रेष्ठतर आसनपर बैठा देती। कभी प्रद्युम्न नदीके विशाल हृदयसे विशालताका रहस्य-भेद करनेमें लग जाता। प्रातः-सन्ध्या उसी तन्मयतामें निकल जाते, रात्रि प्रभात हो जाती, और तब शहरकी सुरम्य अट्टालिकामें बैठी माता दुश्चिन्तासे आंसू बहाती। प्रद्युम्न घर लौटना भूल जाता, चित्रशाला रुद्धद्वार रहती; दर्शक, क्रेता लौट जाते। दासी-चाकर प्रभुकी अनुपस्थितिकी घोषणा कर देते।

कभी दिनके बाद दिन निकल जाते—प्रद्युम्न गृहमुखी न होता। शङ्कित माता शहर-भरमें उसकी खोज कराती। परन्तु फिर भी सोमतीरका शिल्पी-आवास गोपन होकर रह जाता। दुनियाको इसकी कल्पना तक न हो पाती, और न प्रद्युम्न-ही इसका सन्देश किसीको देना चाहता।

सूर्य धीर गतिसे पर्वतकी आड़में चल पड़ा, रश्मियोंमें गुलाल-जैसे छींटे नदी-जलमें अस्पष्ट हुए और तब कहारोंके कन्धेपर धरी वह स्वर्ण-कलश-युक्त पालकी नितकी भांति वस्त्रावृत अवस्थामें नदीपर पहुंच गयी। वाहकोंने पालकी जलपर रखी। अवगुण्ठनवती वह नारी जलमें उतरी। वाहकगण जरा हट गये और तब घण्टों जलमें बैठी वह नारी न जाने क्या करने लगी। कौन-सी खोयी हुई वस्तुको ढूंढ़ने लगी।

और तब शीघ्रकरसे तूलिका थामे प्रद्युम्न अवगुण्ठनवतीका चित्र आंकनेमें लग जाता। कभी तीक्ष्ण दृष्टिसे उस अवगुण्ठनके भीतरका रहस्य उद्घाट करनेकी चेष्टा करता, तूलिकाके रेखा-पातसे कल्पनालब्ध केसरवनकी राजकन्याके अवगुण्ठनावृत, अनुपम मुखको साकार करना चाहता, कस्तूरीका सौरभ बूंद-बूंदकर तूलिकामें भर देता, चन्द्र-सुषमाको तूलिकाके अग्र भागमें पकड़ लेना चाहता। नदीके गानको रङ्ग-तूलिकासे साकार करना चाहता। कभी अन्तर्व्यथासे हाहाकार कर उठता।—अरी रहस्यमयी, महीयसी, वसन्तकी रानी, जरा घूंघट तो हटा, पल-भरके लिए—केवल पल-भरके लिए ही तो हटा दे। शिल्पीकी तूलिकामें जीवित रूपका रङ्ग तो कभी लगने दे। यह शव-साधना—हां, रूपकी यह शव-साधना दुनियामें कब तक चल सकेगी? और शिल्पी भी शव-साधक बना-बना तूलिकाको कब तक जीवित रख सकेगा?

कभी प्रद्युम्न रो पड़ता, उठकर बाहर आता, सीढ़ियां तय करता; किन्तु तभी वह लौट पड़ता, सहमकर तूलिका संभालता और उस वस्त्रावृत रहस्यका मर्म उद्घाटन करनेमें जुट पड़ता। नितकी भांति वह चल देती और व्यर्थ हाहा-

कारमें दबा शिल्पी बैठा रह जाता दूसरे दिनकी प्रतीक्षामें।

उस दिन भी सदाकी तरह सब कुछ चल रहा था। व्यतिक्रम था तो केवल इतना ही कि वह रहस्यमयी नारी भोर बेलामें न आकर, आयी थी भरी सांझमें।

(२)

मनुष्यकी जिज्ञासा कभी दुर्निवार हो जाती है, और तब कभी वह उन्मादकी भावनामें पर्यवसित होकर तृप्त भी होना चाहती है। कदाचित् वह स्थिति हो गयी थी उस केसर-सुगन्धित भोरकी बेलामें प्रद्युम्नकी।

उन्मादीकी भांति वह नदी-जलको मथता हुआ तैर रहा था—लहरियोंको हाथसे उछालता हुआ। रङ्गकी कटोरियां, तूलिका और समाप्त चित्र उस दिन मन्दिर-द्वारपर नहीं, किन्तु नदी-सोपानपर पड़े हुए थे। और वह एक जङ्गली हवाके झोंकेकी तरह जलको विमर्दित करता फिर रहा था। उस दिन उसके साथ थी केवल बगुलोंकी टोली।

धीरे-धीरे चलकर वह पालकी पहुंची। जलमें पालकी उतारकर वाहकगण हट गये। वस्त्रावृता नारी जलमें उतरी। एक बार उस उन्मत्त-पवन-जैसे सन्तरणकारीके प्रति देखा, फिर जलमें बैठ गयी और निविड़ मनोयोगसे जैसे जलका हृदय देखने लगी।

प्रद्युम्न कब जलसे निकला और कब सिक्त वसन ही से सोपानपर बैठा उस स्नानार्थिनीका चित्र आंकनेमें लग गया, सो वह कुछ नहीं जानता। उस पहेली-सी नारीका चित्र आंकते न जाने कितने दिन निकल गये होंगे, पर न वह चित्र पूर्ण होनेको आता और न उसकी आतुर जिज्ञासा पूर्ण होती। सामनेकी यवनिका न हटती। देखता वह इस पहेलीको दूरसे—उसी मन्दिरके द्वारपरसे। आंकता वह अधूरा-सा चित्र और बस।

इतने निकटसे उसने उसे कभी न देखा। सान्निध्यकी मादकतासे हाथकी तूलिका उसकी रंग उठी। और जब वह इन्द्रधनुषके सातो रङ्गोंको उस मुखमें भरनेको हुआ, तब हो गयी एक अनहोनी बात।

सहसा रहस्यकी यवनिका शिल्पीके नेत्र-समीपसे हटी। सो हटी भी तो ऐसे सहसा, कि परिचयके प्रथम मुहूर्तमें प्रद्युन रह गया—मूक, वधिर, हतचेतन-सा।

"तुम—तुम चित्रकार? तो इतने दिन छिपकर रहे भी कहां?" और उत्तर-प्रत्युत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही वह मुक्त अवगुण्ठनवती पूछ चली—"इसी जलके नीचे? और यह चित्र?"—और तब खिन्न, उदास हंसकर कहने लगी—"अधूरा जो है यह चित्र।"

"अधूरा?" शिल्पीने सहमकर नेत्र उठाये—किस अलैयाके पीछे वह इतने दिन भटका मर रहा था? मलय-पर्वतकी किन्नरी? कहां है वह कल्पनाका मादक-भरा पारिजात? यह तो उसीके घरकी माता, बहनकी स्नेहसनी, व्यथा, आघात-पीड़ित नारी-मूर्ति है।

सम्भ्रम, श्रद्धासे शिल्पी कह उठा—"तो बहन, पूरा भी तो अब मैं कर दूंगा न।"

"तुम करोगे और इसे ही पूरा? असाध्य है, असाध्य।"

"तो?" निविड़ विस्मयके आवरणमें घिरे-घिरे पूछा प्रद्युम्नने।

"और पूराकर इसे मुझे ही दोगे न?"

"यदि तुम चाहोगी बहन, तो अवश्य दूंगा।"

"अच्छा, लाओ मेरे पास।"

चित्र हाथमें लिये देखते-देखते वह बोली—"जलमें यह जो नारी बैठी है, सो ठीक है।"

"तो?"

"एक बालिका पद्म-पंखुड़ी-सा रङ्ग, पद्म-पराग-सी मुखाकृति, समझे न भाई? तीन वर्षकी बालिका। उसे सुला दो इस जलके नीचे। समझे न तुम?"

सिर हिलाकर प्रद्युम्न बोला—ऐसे, जैसे सब कुछ समझ गया हो—"हां, ठीक है।"

फिर वह आंकने लगा।

"और तुम मेरे भाई हो न? नाम क्या है?"

"प्रद्युम्न।"

"अच्छा तो प्रद्युम्न, तुम मुझे दीदी क्यों न कहो?"

और जब तक प्रद्युम्न कुछ कहे, तब तक वह चित्रपर झुक पड़ी—"फिर भी अधूरा।"

"अधूरा है—अब भी?"

"अधूरा—अधूरा। कहां है वह युवक? इस स्वर्ग-सुषमाको जलमें डुबोता हुआ कहां है वह युवक?"

प्रद्युम्नने विराट् विस्मयसे उस स्त्रीके प्रति देखा।

"जल्दी करो, जल्दी। हां, बस यहींपर आंक दो युवकको। नहीं-नहीं, यह मुखाकृति कैसी ? कार्तिककी मूर्ति देखी है तुमने ? बस, तो उसीकी तरह, वैसे ही हैं वह। अरे ऐसा नहीं। यह ज्योतिहीन आंखें कैसी ? ज्वलन्त अग्निकी चिनगारी देखी है प्रद्युम्न ? बस वैसी ही। अच्छा तो कल आऊंगी।"

वह नितकी भांति अवगुण्ठनसे मुंह ढांके चल दी। और प्रद्युम्न स्तब्ध—विमूढ़-सा बैठा रह गया।

(३)

वह स्नानार्थिनी नित आती। चांदीके डब्बेमें भरकर नित प्रद्युम्नके लिए फल-मिष्टान्न, पिष्टक ले आती, वाहकोंकी दृष्टि बचाकर उसे भोजन कराती, और तब तृप्त श्वास खींचती हुई चित्रपर झुक पड़ती। चित्र देखते-देखते कह उठती—"अधूरा है।"

"अब भी अधूरा है दीदी ?"—निराशासे वह पूछता।

"है न प्रद्युम्न। इन आंखोंकी ओर देखो। पा गये तुम उस मुखर भाषाको ? नहीं ? तो फिर देखो। अरे पागल, यह क्या कर बैठा है ? इन नेत्रोंमें यह स्वप्नका नशा कैसा ? लुट जाने और खोनेकी व्यथाको भर दो। देखें। हां। जरा और मनोयोगसे काम लो भैया। अच्छा, चली।"

उस दिन—और दूसरा दिन भी निकल गया—वह नहीं आयी, प्रद्युम्नकी दीदी नहीं आयी। न किसीने उसके शुष्क मुखके प्रति लौटकर देखा, न किसीने आग्रह-आदरसे जलपान कराया, और अपने प्रति इस अवहेलनाके लिए न किसीने प्रेमपूर्ण शासन ही किया।

तीसरे दिनकी सन्ध्या भी जब व्यतीत होनेको हुई, तब प्रद्युम्न अस्थिर हो उठा। चित्र उसका पूर्ण हो चुका था कल ही। अब देर थी मात्र दीदीके आनेकी और चित्र उसे सौंपनेकी, और बस।

सन्ध्याकी अंधेरीमें प्रद्युम्न सहसा चौंक पड़ा। विराट् विस्मयसे वह मन्दिर-द्वारपर आकर खड़ा हो गया। नहीं, जलमें नहीं, पालकी उसके द्वारपर खड़ी थी। वाहकगण हट गये और वह अवगुण्ठनवती उतरी।

असङ्कोच, अधीर प्रद्युम्नने उसका हाथ पकड़ लिया—"दीदी ! अरे, तुम्हें तो जोरका ज्वर है।"

मन्दिरमें प्रवेश कर उसने अवगुण्ठन हटाया, स्नेहसे उसे देखा, बोली—"पागल लड़के, इसमें चौंकनेकी बात क्या है ? बुखार आ गया है, उतर जायगा। आज तो फिर भी अच्छी हूं।"

"दो दिनमें कितनी सूख गयी हो दीदी। घरका पता भी नहीं देतीं, कि वहां तक जाऊं।"

"घरका पता ?"—वह ऐसी चौंकी कि जिसे देखकर प्रद्युम्न चकित रह गया।

"क्या करोगे पता जानकर ? नहीं-नहीं, वहांपर मत जाना—मत जाना।"

उसका स्वर प्रद्युम्नको एक आर्तनाद-सा लगा।

"देखें चित्र।"

वह सहमी और चित्रमें ऐसी समा रही कि घण्टा-भर उसी तन्मयतामें निकल गया।

वह उठी—ऐसे सहसा उठी, कि प्रद्युम्नको कुछ कहने-सुनने तकका समय न मिला।

"चली, प्रद्युम्न। चित्र लिये जाती हूं।"

चल दी अवगुण्ठनवती।

दूसरे दिन प्रद्युम्न एक उदासी, एक आलस्यमें समाया बैठा था—उसी मन्दिरमें। पहुंची वह नारी—उन्मत्त आंधी की तरह।

"प्रद्युम्न, प्रद्युम्न, मेरे भैया, ले, इसे छिपाकर रख दे। हवा तकको खबर न लगने पावे इसकी। छिपाकर रख दे भैया।"

वही चित्र था। प्रद्युम्नने उसे ले लिया।

साहस देता हुआ बोला प्रद्युम्न—"घबराना कैसा दीदी, मैं जो हूं तुम्हारा भाई, मेरे पाससे कौन ले सकता है चित्रको। विश्वास रखो।"

वह सहमी-सी, मधुर हंसी—"अच्छा, मैं चली।"

'ऐसी जल्दी।"

"इसे रख लेना। वक्त नहीं है, वरना इन मिठाइयोंको अपने सामने बैठाकर तुम्हें खिलाती। वर्द्धमानसे सीताभोग, खाजे आये थे, थोड़े-से ले आयी तुम्हारे लिए। खा लेना।"

प्रद्युम्न उसका पथरोध करके खड़ा हो गया—"भाईके पास यह छिपाना कैसा ? बताओ, कहो, मुझे जानने दो, समझने दो—वह व्यथा, जो कि मेरी दीदीके हृदयको

आच्छन्न किये रहती है, है कैसी ? और यह चित्रका व्यक्ति, यह परी-सी लड़की—है कौन ?"

वह खिन्न हंसी—"और इसे अगर तुम जानना नहीं चाहो, तो ?"

उसने एक बार उस रहस्यमयीकी ओर देखा, फिर दीर्घश्वासके साथ बोला—"अच्छी बात है। किन्तु कहती जाओ—जी तुम्हारा कैसा है ?"

"मैं ? अच्छी तो हूं।"

"झूठ।"

प्रद्युम्नने उसके माथेपर हाथ रखा, अग्नि-जैसा जल रहा था। वह सिहर उठा।

रमणी स्नेहसे हंसी—"पागल लड़का।"

इसके बाद वह जैसे आयी थी, वैसे ही निकलकर चल दी।

(४)

वह रहस्यमयी जो गयी, फिर चौथे दिनके प्रातःकालमें भी नहीं आयी। प्रद्युम्न आशा-आश्वाससे घड़ियां गिनता रहता, प्रातः-सन्ध्या निकल जाती और रात्रि भी जागकर बिताता। किन्तु उसकी स्नेहमयी दीदीकी पालकी न दिखती, न दिखती।

उस दिन जब निराश वेदनासे प्रातःकी घड़ियां गिननेमें वह लगा था, तब मन्दिर-सोपानपर पदध्वनि हुई। विपुल उल्लाससे खड़ा हो गया प्रद्युम्न—दीदीकी अगवानीके लिए। किन्तु—किन्तु यह क्या ? दीदीके स्थानमें यह कैसा—कहांका उन्मादी पहुंच गया है ? एक अपरिचित पुरुष उसके सामने खड़ा था।

और प्रद्युम्नकी भटकी हुई दृष्टि जब उसके मुखपर निबद्ध हुई, तब वह सिहरकर स्तब्ध हो रहा—यही तो है—उस चित्रका वह राक्षस पुरुष।

राक्षस ? हां, प्रद्युम्न इसे राक्षस ही कहेगा ! क्यों ? सो वह स्वयं ही नहीं जानता।

"एक चित्र बनाया है तुमने ?" उसने पूछा।

"एक चित्र ? परन्तु महाशय, मैं चित्रकार हूं, ऐसे कितने ही चित्र बनाये होंगे।"

"ठीक है। मेरा मतलब उसी एक चित्रसे है। आप मुझे अपने चित्र दिखला सकते हैं ?"

"यहां जो कुछ है, देख सकते हैं।"

"एक चित्र मेरी पत्नी कई दिन पहले ले गयी थीं। मैं उसे ही देखना चाहता हूं।"

"आपकी पत्नी ?"

"हां, मेरी पत्नी। आप शायद नहीं जानते, वह उन्मादिनी हो गयी है।"

"किन्तु महाशय, मुझे तो आप ही के उन्मादी होनेका सन्देह है।"

और इसके बाद प्रद्युम्नने विस्मयसे देखा, वह व्यक्ति पवँन-वेगसे चल पड़ा।

× × × ×

इसके बाद कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये, प्रद्युम्नसे उस रहस्यमयीकी भेंट नहीं हुई।

अब भी चित्र बनाते-बनाते प्रद्युम्नका चित्त कभी भटक पड़ता है—उसी रहस्यमयीके द्वारपर।

अब भी कभी एक आच्छन्न सन्ध्या-वेलामें प्रद्युम्न आकर उसी मन्दिरमें बैठा रहता है—प्रातःकी प्रतीक्षामें।

अब भी कभी उस चित्रको देखते-देखते प्रद्युम्नके आंसू बह निकलते हैं।



साम्राज्यवाद और युद्ध

प्रो० शङ्करसहाय सक्सेना, एम० ए० एम० काम०

आज अन्तर्राष्ट्रीय सङ्कट उपस्थित है, पृथ्वीको निरीह स्त्री-पुरुषों और सुकुमार बच्चोंके शवोंसे पाट देनेका भयानक खेल खेला जा रहा है। शताब्दियोंके परिश्रमके फलस्वरूप मानव जातिने जिन सुन्दर वस्तुओंका निर्माण किया था, उनको नष्ट करनेके लिए सारी विध्वंसक शक्तियां एकत्रित हो गयी हैं। लेकिन यह सब क्यों? एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रका गला काटनेके लिए इस प्रकार आतुर क्यों हो उठा है? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसको आज इस विश्वव्यापी युद्धके वातावरणमें कोई भी व्यक्ति ठण्डे दिमागसे सोचना नहीं चाहता। किन्तु यह न भूल जाना चाहिए कि बीसवीं शताब्दीके आरम्भसे आज तक युद्धोंकी जो पुनरावृत्ति हो रही है, उसका एक ही कारण है—"उपनिवेशों तथा आश्रित देशोंका प्रश्न।" अठारहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दीमें जर्जर सामन्तशाहीसे उत्पीड़ित तथा रूढ़िवादमें फंसे हुए एशियाई, अफ्रीकन, दक्षिण अमेरिका तथा ओशेनियाके निर्बल राष्ट्रोंको कतिपय प्रबल यूरोपीय राष्ट्रोंने दबोच लिया। प्रकृतिकी देनसे भरे हुए इन निर्बल राष्ट्रोंका आर्थिक शोषण करके साम्राज्यवादी राष्ट्रोंने अपने रहन-सहनका दर्जा बहुत ऊंचा कर लिया और अपने उद्योग-धन्धोंकी कल्पनातीत उन्नति कर ली। उन्नीसवीं शताब्दीके अन्तमें दो अत्यन्त प्रबल एवं महत्त्वाकांक्षी राष्ट्रों—जर्मनी और जापान—का उदय हुआ, उन्होंने देखा कि वे भी अन्य साम्राज्यवादी राष्ट्रोंकी ही भांति वैभवशाली बनना चाहते हैं, तो उन्हें भी अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहिए। इधर मुसोलिनीके नेतृत्वमें इटलीकी साम्राज्य-लिप्सा जाग पड़ी है। किन्तु पृथ्वीका बटवारा तो पहले ही हो गया था; अस्तु, इन महत्त्वाकांक्षी राष्ट्रोंके लिए दो ही रास्ते थे, या तो वे स्वतन्त्र निर्बल राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रताका अपहरण करें अथवा पुराने साम्राज्यवादी राष्ट्रोंके उपनिवेशों तथा आश्रित देशोंको छीन लें। यही कारण है कि ये तीनों राष्ट्र आज अपनी रणवाहिनीको लेकर विश्व-विजयके लिए निकल पड़े हैं। इस महायुद्धका जो भी परिणाम हो, किन्तु यह निश्चित है कि जब तक साम्राज्यवादकी भावना नष्ट नहीं होती और प्रत्येक राष्ट्रको आर्थिक उन्नति करनेका एक समान अवसर नहीं मिलता, पृथ्वीपर युद्धके बादल मंडराते रहेंगे।

इस समय संसारमें ९ प्रमुख साम्राज्यवादी राष्ट्र हैं:—ब्रिटेन, फ्रान्स, हालैण्ड, जापान, संयुक्तराज्य अमेरिका, बेलजियम, इटली, पुर्तगाल, स्पेन और जर्मनी। इनमें पुर्तगाल और स्पेनके साम्राज्य पतनकी ओर अग्रसर हैं। आज जो भी भू-भाग इन दो राष्ट्रोंके अधिकारमें हैं, वे प्राचीन विशाल पोर्तगीज तथा स्पेनिश साम्राज्यके अवशेष-मात्र हैं। यदि भविष्यमें ये बचे हुए प्रदेश भी इन राष्ट्रोंके हाथसे निकल जायं, तो कोई आश्चर्य न होगा। हालैण्ड और बेलजियमके साम्राज्य दूसरी श्रेणीके हैं। जर्मनी द्वारा हालैण्ड तथा बेलजियमके पदाक्रान्त होनेके पूर्व इन दोनों साम्राज्योंकी स्थिति यह थी कि इनके साम्राज्यका क्षेत्रफल बढ़ना रुक गया था और भविष्यमें उनके बढ़नेकी कोई सम्भावना भी नहीं थी; किन्तु वे अपने साम्राज्यको क्षीण न होने देनेमें सफल हुए थे। इस युद्धके उपरान्त हालैण्ड और बेलजियमके साम्राज्य भी पतनकी ओर अग्रसर होंगे, इसमें सन्देह नहीं है। फ्रान्स और ब्रिटेन संसारमें सबसे बड़े साम्राज्यवादी राष्ट्र हैं। संसारके बड़े-बड़े भूभाग इन राष्ट्रोंके अधिकारमें हैं, साथ ही ये बराबर अपने साम्राज्य-विस्तारके लिए प्रयत्नशील रहे हैं। पिछले महायुद्धके उपरान्त जर्मनीके समस्त उपनिवेशोंको इन्होंने अपने साम्राज्यमें संरक्षित प्रदेश (Mandate) के रूपमें मिला लिया। किन्तु ब्रिटेन और फ्रान्सने बीसवीं शताब्दीमें अपने साम्राज्यको और अधिक बढ़ानेके लिए प्रयत्न नहीं किया। बीसवीं शताब्दीमें वे आक्रमणकारीके रूपमें नहीं दिखलाई दिये।

संयुक्तराज्य अमेरिका इन सबसे भिन्न है। उसने साम्राज्य-विस्तारका विचार छोड़ दिया है और क्रमशः अपने अधिकृत देशोंको अपनी अधीनतासे मुक्त करनेकी नीति-को उसने अपना लिया है। इसी नीतिके परिणाम-स्वरूप

१९४३ में फिलीपाइन्स द्वीप-समूहको पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त हो जायेगी।

शेष तीन साम्राज्यवादी राष्ट्र जर्मनी, जापान तथा इटली साम्राज्य-विस्तारकी लालसाके वशीभूत होकर रण-यात्राके लिए निकल पड़े हैं। जापान मञ्चूरियाको निगलकर महा-राष्ट्र चीजको हड़पनेमें लगा हुआ है और पूर्वीय द्वीप-समूह तथा फिलीपाइन्सको ललनायी हुई आंखोंसे देख रहा है। इटली अबसीनिया और अलबानियाको लेकर आज युद्धकी लूटमें साझा करनेके लिए जर्मनीके साथ हो गया है। पिछले महायुद्धमें जर्मनीसे उसके उपनिवेश छीन लिये गये थे, उसी-का प्रतिशोध लेनेके लिए, तथा विशाल जर्मन साम्राज्य स्थापित करनेके लिए ही हिटलरने इस मृत्यु-यज्ञमें जर्मनोंकी आहुति देनेका निश्चय किया है। यदि देखा जाये, तो पिछला महायुद्ध तथा वर्तमान महायुद्ध केवल उपनिवेशों तथा आश्रित देशोंके लिए ही लड़ा गया। अस्तु, यह जान लेना आवश्यक है कि इन उपनिवेशों तथा आश्रित देशोंसे साम्राज्य-वादी राष्ट्रोंको कितना लाभ होता है और जर्मनी तथा जापानका यह दावा कहां तक ठीक है कि उनकी जनसंख्याके भरण-पोषणके लिए उपनिवेशोंकी अत्यन्त आवश्यकता है।

एक विचित्र बात यह है कि जिन राष्ट्रोंके पास उपनिवेश और आश्रित देश हैं, वे उनसे होनेवाले लाभको स्वीकार नहीं करते। ब्रिटेन और फ्रान्सके राजनीतिज्ञ यह कहते नहीं थकते कि हमें अपने अधिकृत देशोंसे कोई आर्थिक लाभ नहीं है, इसके विपरीत कहते हैं, हमें उनके कारण बहुत-सी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। फिर भी वे अपने आश्रित देशोंको छोड़नेके लिए तैयार नहीं हैं। इसके विरुद्ध जिन राष्ट्रोंके पास उपनिवेश नहीं हैं, उनका कहना यह है कि हमारी सारी आर्थिक कठिनाइयोंका मूल कारण हमारे पास उपनिवेशोंकी कमी है।

आज जापान और जर्मनी इसी आधारपर उपनिवेशोंके लिए अपना दावा उपस्थित करते हैं। वहांके राजनीतिज्ञोंने अपने देशवासियोंके मस्तिष्कमें यह बात अच्छी तरहसे बैठा दी है कि देशकी बढ़ती हुई जनसंख्याके भरण-पोषणके लिए उपनिवेशोंकी नितान्त आवश्यकता है। प्रत्येक जापानी और जर्मन यह समझ बैठा है कि साम्राज्य-विस्तारके द्वारा ही उनकी कठिनाइयां हल होंगी। साधारण जर्मन और जापानीके गलेके नीचे यह बात बहुत जल्दी उतर जाती है, क्योंकि वह देखता है कि अंगरेज और फ्रान्सीसी अपने विशाल साम्राज्यके ही कारण वैभवशाली हैं। किन्तु ध्यानसे देखा जाये, तो बढ़ती हुई जनसंख्याके प्रवासके लिए उपनिवेशोंकी आवश्यकता नहीं है। यह बात तो केवल अपने दावेको युक्तिसङ्गत सिद्ध करनेके लिए कही जाती है।

उन्नीसवीं शताब्दीमें लगभग चार करोड़ जनसंख्या यूरोपसे प्रवास करके गयी और लगभग दो करोड़ दस लाख फिर वापस लौट आयी। इसका अर्थ यह हुआ कि वास्तवमें लगभग १ करोड़ ९० लाख स्त्री-पुरुषोंने यूरोपीय देशोंको छोड़कर अन्य देशोंको अपना घर बनाया। इससे यह न समझना चाहिए कि ये प्रवासी उपनिवेशोंमें ही जाकर बस गये। संसारके अधिकांश साम्राज्यवादी राष्ट्र यूरोपीय हैं, अतएव यदि जनसंख्याके प्रवासके लिए उपनिवेशोंकी आवश्यकता है, तो इन प्रवासियोंको अपने देश द्वारा शासित उपनिवेशोंमें ही जाकर बसना चाहिए था। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। १ करोड़ ९० लाख प्रवासियोंमेंसे केवल पांच लाख ही जाकर उपनिवेशोंमें बसे। यूरोपीय देशोंके तीन चौथाई उपनिवेश अफ्रीकामें हैं; किन्तु वहां केवल २ प्रतिशत और एशियाके उपनिवेशोंमें केवल १ प्रतिशत प्रवासी जाकर बसे। अमेरिका महाद्वीप, जहां कि यूरोपीय राष्ट्रोंके अधि-कारमें अपेक्षाकृत बहुत कम भूमि है, वहां ९० प्रतिशतसे भी अधिकने प्रवास किया। हालैण्डके अधिकारमें अत्यन्त बहुमूल्य उपनिवेश हैं और हालैण्डमें आबादी बहुत घनी है, फिर भी डच लोग ईस्ट इण्डीजमें जाकर नहीं बसे। आज तक जितने डच इन द्वीपोंमें जाकर बसे, उससे १७,००० अधिक इन द्वीपोंसे हालैण्डमें वापस लौट आये। बेलजियममें भी आबादी बहुत घनी है और उसके अधिकारमें बेलजियमके क्षेत्र-फलसे पचवासी गुने क्षेत्रफलके उपनिवेश हैं, फिर भी १९१३ से १९३९ तक केवल १९० बेलजियन इन उपनिवेशोंमें जाकर बसे हैं। १९१४ के महायुद्धके पूर्व सब जर्मन उपनिवेशोंमें केवल १९,००० जर्मन रहते थे, जब कि न्यू-यार्कके मनहट्टन जैसे छोटे-से द्वीपमें ही इससे तिगुने जर्मन निवास करते थे। इटलीसे प्रतिवर्ष चार लाखके लगभग प्रवास करते हैं, पूर्वी अफ्रीकाके इरिट्रिया प्रदेशको उसने सन् १८८९ में प्राप्त किया; किन्तु वहां आज भी ५००० इटैलियनसे अधिक

निवास नहीं करते। ब्रिटेनके सम्बन्धमें यह अवश्य कहा जा सकता है कि प्रवासकी दृष्टिसे उपनिवेश इतने महत्त्व-हीन नहीं हैं। फिर भी जितनी जनसंख्या ब्रिटेनसे प्रवास करती रही है, उसकी ६० प्रतिशतके लगभग संयुक्तराज्य अमेरिकामें और लगभग ४० प्रतिशत ब्रिटिश उपनिवेशोंमें जाकर बसती रही है। जापानके पास कोरिया और फारमोसा बहुत दिनोंसे हैं और कुछ वर्षोंसे मञ्चूरिया भी उसके अधिकारमें है; परन्तु कोरिया और फारमोसामें प्रयत्न करनेपर भी बहुत कम जापानी जाकर बसे हैं। जबसे मञ्चूरिया जापानके अधिकारमें आया है, उस समयसे जितने जापानी वहां जाकर बसे हैं, उससे दसगुने चीनी वहां जाकर बस चुके हैं।

ऊपर दिये हुए अङ्कोंसे यह स्पष्ट हो जायगा कि साम्राज्यवादी राष्ट्रोंने अपने उपनिवेशोंका प्रवासके लिए विशेष उपयोग नहीं किया। अधिकतर यूरोपीय देशोंके प्रवासी संयुक्तराज्य अमेरिकामें जाकर बसे और वह भी तब, जब कि वह स्वतन्त्र हो गया। अतएव यह कहना कि किसी देशको उपनिवेश इसलिए चाहिए, क्योंकि उसकी बढ़ती हुई आबादीके लिए देशमें जगह नहीं है, ऊपरसे चाहे कैसा ही ठीक प्रतीत हो, उसमें तथ्य कुछ नहीं है।

प्रवासके लिए अनुकूल जलवायु तथा जीविका-उपार्जनकी सुविधायें आवश्यक हैं। यही कारण है कि अधिकांश यूरोप-निवासी संयुक्तराज्य अमेरिका जाकर बस गये। यदि देखा जाय, तो भारतवर्ष और महादेश चीनको अपनी जनसंख्याके लिए प्रवास-क्षेत्रोंकी नितान्त आवश्यकता है, लेकिन उनके लिए सब उपनिवेशोंके द्वार बन्द हैं। यही नहीं कि कानून बनाकर आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका तथा संयुक्तराज्य अमेरिकामें उन्हें घुसने नहीं दिया जाता, वरन् जिन भारतीयोंने अपने पसीनेको बहाकर दक्षिण अफ्रीकाको रहनेके योग्य बनाया, उन्हींको अपमानित करके निकाल बाहर करनेका षड्यन्त्र चल रहा है।

किन्तु फिर उपनिवेशों और अधीन देशोंके लिए इतनी हाय-हाय क्यों है और उनके लिए अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घर्ष क्यों उपस्थित होता है? बात यह है कि प्रत्येक सबल राष्ट्र अपने अधीन देशोंका शोषण करके तथा उन्हें लूटकर मालामाल होना चाहता है। वास्तवमें यदि देखा जाय, तो आश्रित देशोंके आर्थिक शोषणसे साम्राज्यवादी राष्ट्रोंके बड़े-बड़े पूंजीपतियों तथा व्यवसायियोंकी ही तिजोरियां भरती हैं। प्रत्येक साम्राज्यवादी राष्ट्रकी वैदेशिक नीति वहांके पूंजी-पतियोंके इशारेपर चलती है। ये पूंजीपति अपने देश-वासियोंको भुलावेमें रखनेके लिए खरीदे हुए पत्रों तथा राजनीतिज्ञों द्वारा इस बातका प्रचार कराते रहते हैं कि यदि साम्राज्य नहीं रहा, तो बाजारके अभाव तथा कच्चे मालकी कमीके कारण देशके उद्योग-धन्धे चौपट हो जायेंगे, जिसका परिणाम होगा कि देशमें भयङ्कर बेकारी फैल जायेगी। साधारण जनता इस प्रचारसे प्रभावित होकर यह समझती है कि हमारी आर्थिक उन्नतिके लिए अधीन देशोंका शोषण आवश्यक है।

यदि देखा जाय, तो साम्राज्यवादी राष्ट्रोंने इस बातकी भरसक चेष्टा की है कि उनके उपनिवेशों तथा संरक्षित देशोंमें अन्य देशोंकी पूंजी न लग सके। विदेशी पूंजीको अपने उपनिवेशोंमें न आने देनेके लिए प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष दो तरीकोंसे काम लिया जाता है। जापान और फ्रान्सने तो नियम बनाकर अपने अधीन प्रदेशोंमें विदेशी पूंजीका आना रोक दिया है। फ्रेञ्च उपनिवेशोंमें एक कानून है कि किसी कम्पनीके दो तिहाई हिस्सोंके मालिक जब तक फ्रेञ्च लोग न हों, तब तक कोई विदेशी उसके हिस्से नहीं खरीद सकता। जापान अपने अधीन देशोंमें किसी अन्य देशवासीको पूंजी लगानेकी आज्ञा प्रदान नहीं करता और जो भी कारखाने (विदेशियोंके) पहलेसे मौजूद हैं, उन्हें क्रमशः खरीदता जा रहा है। ब्रिटेन, हालैण्ड तथा बेलजियमने यद्यपि प्रत्यक्ष रूपसे विदेशी पूंजीको अपने अधीन प्रदेशोंमें लगनेसे नहीं रोका, परन्तु अप्रत्यक्ष रूपसे उन्होंने अपने प्रभुत्वका उपयोग किया; जिसका फल यह हुआ कि उनके अधीन प्रदेशोंमें अधिकांश उन्हींकी पूंजी लगी है। साम्राज्यवादी राष्ट्रके पूंजीपति अधीन देशोंमें अपनी पूंजी लगाकर मनमाना लाभ उठाते हैं, अधीन देशका आर्थिक शोषण करते हैं, क्योंकि उन्हें राज्य द्वारा बहुत-सी सुविधायें मिलती हैं।

किन्तु साम्राज्यवादी राष्ट्रोंको अपने अधीन देशोंसे केवल यही लाभ नहीं होता कि वहां उनके व्यवसायियोंकी पूंजीके लिए व्यापक क्षेत्र मिलता है, वरन् एक सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि उन्हें अपने उद्योग-धन्धोंके लिए कच्चा

माल मिलता है। जिन देशोंने निर्बल राष्ट्रोंको हथियाकर अपने अधीन कर लिया है अथवा जो सबल राष्ट्र आज अपने साम्राज्यको बढ़ाना चाहते हैं, उनके सामने अपने उद्योग-धन्धोंके लिए कच्चे मालको उत्पन्न करनेवाले प्रदेशों और तैयार मालके लिए बाजारोंकी आवश्यकता है। बात यह है कि ये सब देश औद्योगिक देश हैं। उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिके साथ-साथ इन देशोंमें एक प्रबल पूंजीवादी वर्ग कायम हो गया है। क्रमशः इन देशोंमें बड़े-बड़े ट्रस्ट तथा एकाधिकार स्थापित हो गये, जिनके कारण देशकी अधिकांश पूंजी कतिपय पूंजीपतियोंके हाथमें चली गयी। ये पूंजीपति ही वास्तवमें अपने देशकी सरकारके प्रभु होते हैं। इन्हींके इशारेपर वहांकी सरकार नाचा करती है। यही कारण है कि आज प्रत्येक साम्राज्यवादी राष्ट्र अपने उद्योग-धन्धोंके लिए कच्चे पदार्थ उत्पन्न करनेवाले क्षेत्रोंको सुरक्षित रखना चाहता है और अपने आश्रित देशोंके बाजारोंमें किसी दूसरे प्रतिद्वन्द्वीको घुसने नहीं देना चाहता।

फ्रान्सने आरम्भसे अपनी व्यापारिक नीति इस प्रकारकी रखी है कि जिससे अन्य देश उसके उपनिवेशों तथा अधीन देशोंसे व्यापार न कर सकें। फ्रेञ्च साम्राज्यमें फ्रेञ्च मालपर बहुत कम कस्टम ड्यूटी लगायी जाती है और विदेशोंसे आनेवाले मालपर अधिक कस्टम ड्यूटी लगायी जाती है। इसी प्रकार जापान अपने प्रभाव-क्षेत्रोंमें विदेशी व्यापारको पनपने नहीं देना चाहता। ब्रिटेनने आरम्भमें अपने साम्राज्यमें अपना एकाधिकार स्थापित किया। जब ब्रिटेनकी औद्योगिक स्थिति बहुत अच्छी हो गयी, तो बीचमें उसने मुक्तद्वार-नीतिको अपनाया। परन्तु १९१८ के उपरान्त जब उसको अन्य औद्योगिक देशोंकी प्रतिस्पर्धा असह्य हो उठी, तो उसने फिर साम्राज्यान्तर्गत रिआयतको अपनाया और ओटावाका व्यापारिक समझौता उसी नीतिके आधारपर किया गया। सारांश यह कि प्रत्येक साम्राज्यवादी राष्ट्र अपने प्रभाव-क्षेत्रका अपने औद्योगिक विकासके लिए उपयोग करता है। उपनिवेश और अधीन देश साम्राज्यवादी राष्ट्रोंके लिए अत्यन्त मूल्यवान हैं। प्रथम तो साम्राज्यवादी राष्ट्र सब प्रकारसे अपने अधीन राष्ट्रोंका आर्थिक शोषण करते हैं, उदाहरणके लिए वे अपने युवकोंको उपनिवेशों तथा अधीन देशोंमें ऊंचे पदोंपर भेजते हैं। उपनिवेशों तथा अधीन देशोंमें साम्राज्यवादी राष्ट्र अपनी सेना रखते हैं, जिसका व्यय उनपर पड़ता है। इस प्रकार देशमें बेकारी दूर करनेका उपनिवेश तथा अधीन देश एक मुख्य साधन हैं। फिर कच्चा माल उत्पन्न करने तथा तैयार मालकी खपतका भी काम यही करते हैं। जो धन्धे इन उपनिवेशों तथा अधीन क्षेत्रोंमें खड़े किये जाते हैं, उनमें भी पूंजी साम्राज्यवादी राष्ट्रके पूंजीपतियोंकी ही लगती है और अधिकतर धन्धोंपर उन्हींका एकाधिपत्य होता है।

यही कारण है कि जिनके पास साम्राज्य हैं, वे उसे छोड़ना नहीं चाहते और जो सबल राष्ट्र आज औद्योगिक उन्नति कर चुके हैं, वे साम्राज्य स्थापित करनेके लिए बल-प्रयोग करनेपर उतारू हैं।

अतएव स्पष्ट है कि जब तक यह समस्या हल नहीं होती, तब तक युद्धकी विभीषिकासे मानव जातिका छुटकारा नहीं हो सकता। जब तक संसारमें साम्राज्यवाद कायम है, तब तक एक जाति दूसरी जातिका गला काटनेके लिए तैयार रहेगी। यदि मानव जातिको इन युद्धोंसे बचाना है, शताब्दियोंके परिश्रमके फलस्वरूप उत्पन्न हुई सभ्यताकी रक्षा करना है, तो संसारसे साम्राज्यवादकी भावनाको नष्ट करना होगा।

इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि यदि साम्राज्यवाद नष्ट कर दिया जाय और अधीन राष्ट्रोंको मुक्त कर दिया जाय, तो युद्धकी विभीषिकाका सर्वदाके लिए अन्त हो जायेगा। उग्र-राष्ट्रीयता भी युद्धका कारण बन सकती है। और जापान, जर्मनी तथा इटलीके रणोन्माद इसी भावनाकी उपज हैं। उस दिन स्पेनके तानाशाह फ्रैङ्कोने स्पष्ट ही कहा था कि राष्ट्रकी महत्ता इस बातमें होती है कि वह साम्राज्यवादकी भावनाका विस्तार करे। परन्तु फिर भी साम्राज्यवादके नष्ट होनेसे युद्धोंकी सम्भावना बहुत कम हो जायेगी।

आवश्यकता इस बातकी है कि समस्त साम्राज्यवादी राष्ट्र अपने अधीन उपनिवेशों तथा देशोंको स्वतन्त्र कर दें। भारतवर्ष, सीरिया, पैलेस्टाइन, ईराक, कोरिया, मञ्चूरिया तथा चीन ऐसे राष्ट्र हैं कि जो स्वयं अपना प्रबन्ध कर सकते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि न होना चाहिए कि जो देश किसी प्रकार

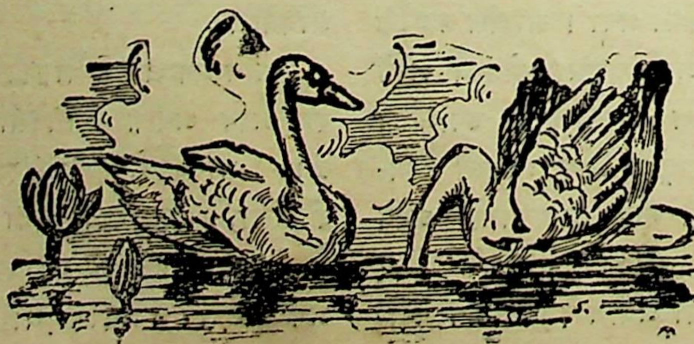
पिछड़े हुए हैं, उन्हें इसी बहाने परतन्त्र बनाये रखा जाये। प्रत्येक देशको, फिर वह चाहे कितना ही पिछड़ा हुआ क्यों न हो, आत्मनिर्णयका अधिकार मिलना चाहिए। साथ ही इस बातका प्रयत्न करना चाहिए कि जिन देशोंकी सभ्यता तथा भाषा एक-सी हो, उनको सङ्घोंमें सङ्गठित कर दिया जाये। उदाहरणके लिए अफ्रीकाके उपनिवेश स्वतन्त्र कर दिये जायें और उनके सङ्घ बना दिये जायें। यह प्रश्न हो सकता है कि जो देश बहुत पिछड़े हैं, क्या उनको इसी प्रकार छोड़ देना ठीक होगा। इसके लिए यह व्यवस्था की जा सकती है कि यदि ऐसे पिछड़े देश चाहें, तो अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घको सहायता ले सकते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ कतिपय योग्य व्यक्तियोंके कमीशनके द्वारा उन देशोंकी सहायता कर सकता है। ऐसा कभी न होना चाहिए कि ऐसे देशोंको किसी राष्ट्र-विशेषकी देखभालमें रख दिया जाये। शासनादेश—मैण्डेट—पद्धतिके बुरे परिणामको हम देख चुके हैं, अतएव उसको दुहरानेकी आवश्यकता नहीं है।

केवल साम्राज्यवादको नष्ट कर देनेसे ही युद्धका सर्वथा अन्त नहीं हो जायगा। युद्धका सर्वथा अन्त करनेके लिए इस बातकी आवश्यकता होगी कि साम्राज्योंके लुप्त हो जानेपर प्रत्येक राष्ट्रको अपनी राजकीय सत्ताका कुछ अंश त्याग देना पड़े। एक सत्तावान सङ्घ—फेडरेशन—स्थापित किया जाये, जिसके हाथमें सम्बन्धित राष्ट्रोंकी व्यापार-नीति, मुद्रा-नीति, प्रवास तथा आवासका प्रश्न तथा अन्य आवश्यक प्रश्न सौंप दिये जायें।

यह ध्यान रखनेकी बात है कि वर्तमान राष्ट्रसङ्घकी भांति ही यदि अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घका सङ्गठन किया गया, तो उसकी भी वही दशा होगी, जो कि राष्ट्रसङ्घकी हुई है। प्रत्येक सदस्य राष्ट्रको अपनी राजकीय सत्ताका कुछ अंश त्याग देना होगा और वह राजकीय सत्ता उस अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घको प्राप्त होगी। वास्तवमें यह भूलना नहीं चाहिए कि विश्व-शान्तिकी व्यवस्था एवं मानवकी कल्याण-भावनाके विकासके लिए राष्ट्रसङ्घ नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घकी आवश्यकता है। तभी भविष्यमें युद्धकी विभीषिकाका अन्त हो सकेगा।

आज यह असम्भव प्रतीत होता है; किन्तु इसके बिना कोई चारा नहीं है। आरम्भमें जिन राष्ट्रोंकी सभ्यता, भाषा अथवा संस्कृति एक-सी हो, उनके पृथक्-पृथक् सङ्घ स्थापित किये जायें, फिर अन्तर्राष्ट्रीय सङ्घ स्थापित हो सकेगा। उदाहरणके लिए यूरोपीय राष्ट्रोंका एक सङ्घ हो, एशियाके पश्चिमीय राष्ट्रोंका एक सङ्घ तथा पूर्वीय राष्ट्रोंका दूसरा सङ्घ हो। इसी प्रकार अन्य सङ्घ स्थापित किये जायें।

जिस समय एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रको समूल नष्ट कर देनेपर तुला हुआ है, उस समय इस प्रकारका प्रस्ताव एक मधुर कल्पनाके अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा जायेगा। किन्तु यदि सभ्यता तथा मानव जातिकी रक्षा करना अभीष्ट है, तो उग्र राष्ट्रीयता तथा साम्राज्यवादकी भावनाको तिलाञ्जलि देनी ही होगी, इसके बिना निस्तार नहीं है।

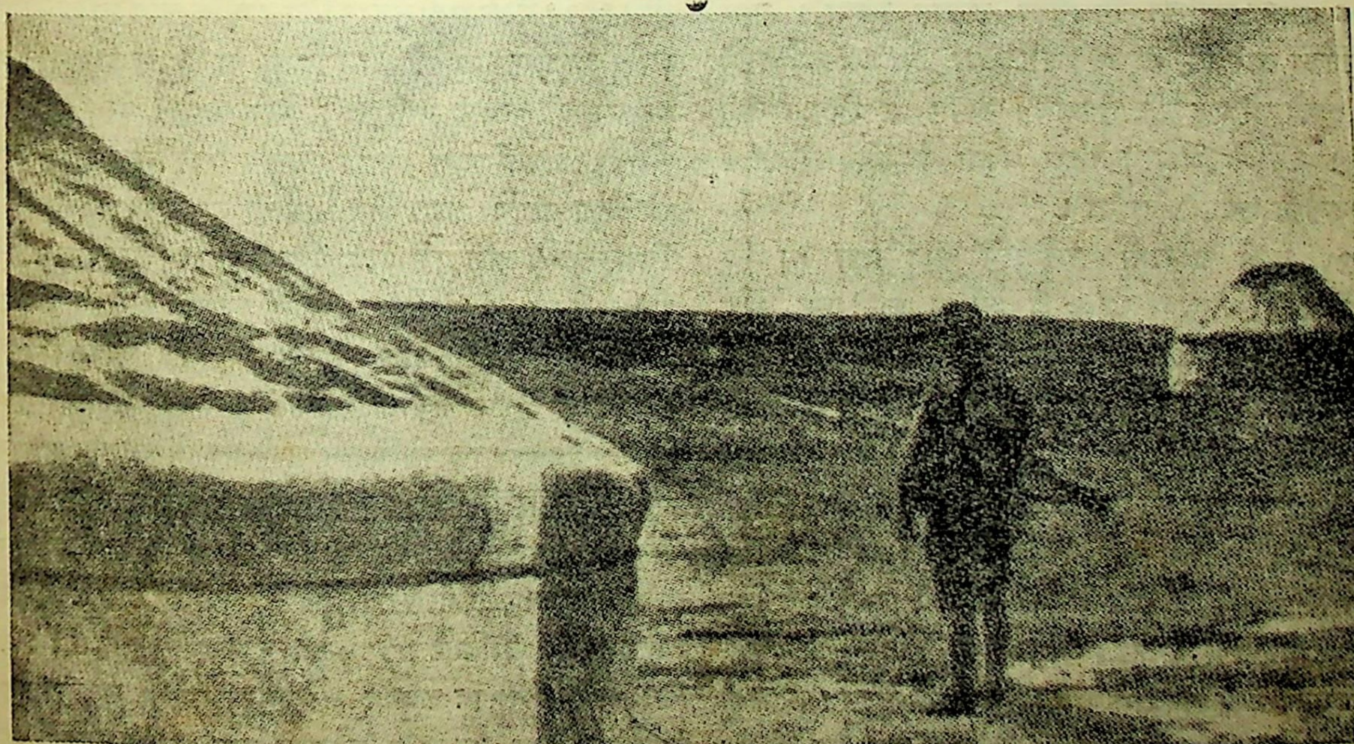


एशियाके भाग्य-निर्माणमें दो प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्रोंके प्रयोग

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालङ्कार

उनतीस मार्चको रूसी पार्लमेण्टमें भाषण देते हुए मो० मोलोटोवने कहा—"जापानको अवश्यमेव इस बातको अनुभव करना चाहिए कि सोवियट यूनियन अपने हितोंकी हत्या सहन नहीं करेगा। इसको समझनेके बाद ही जापानके साथ हमारा सम्बन्ध सन्तोषजनक रूपसे स्थापित हो सकता है।"

सम्भवतः मो० मोलोटोवका सङ्केत साखलिन द्वीपमें घटी घटना और उस सम्बन्धमें एक मास पहले जापानी डायटमें परराष्ट्र-मन्त्री द्वारा दिये गये वक्तव्यकी ओर था। जापानी परराष्ट्र-मन्त्रीने कहा था—उत्तरीय साखलिनमें जापानी अधिकारोंमें सोवियटके हस्तक्षेपात्मक कार्योंके विरुद्ध मास्कोमें बहुत बार गवर्नमेण्ट विरोध दाखिल कर चुकी है, मगर स्थितिमें प्रकट रूपसे कोई सुधार नहीं हुआ है। परराष्ट्र-मन्त्रीने रूसके साथ जापानका सम्बन्ध बताते हुए दबे शब्दोंमें कहा—यह कहना कठिन है कि इस समय व्यापारिक सन्धि-चर्चा सफल होगी, दीर्घ कालके लिए मछली पैक करनेकी चर्चा भी अभी सन्धिकी तफसीलकी बहस तक आगे नहीं बढ़ी है। नोमोनइन (मङ्गोलिया) सीमा कमेटी किसी समझौतेपर पहुंचनेमें विफल रही, मगर मन्चूको-रूस सीमाके निश्चयके प्रश्नपर अब पृथक् रूपसे मास्कोमें बातचीत शुरू होगी। दूसरी ओर युद्ध-मन्त्रीने कहा,—चूंकि नोमोनइन (मङ्गोलिया) सीमाप्रान्तपर रूसी सेना प्रायः सीमा भङ्ग करती रहती है, अतः सीमा निर्धारित करना वहां कठिन है। एक प्रश्नकर्त्ताने पूछा, क्या यह सच है कि सोवियट सेनाने उन जापानियोंको गिरफ्तार कर लिया, जो कि लाशों, कैदियों और नजरबन्दोंकी खोज-खबर लेने नोमोनइन प्रदेश गये थे और उनका नोमोनइन-काण्डसे कोई सम्बन्ध नहीं था। इस प्रश्नका उस समय कोई जवाब नहीं दिया गया। मगर बादमें दोनों धारा-सभाओंकी बजट-कमेटीकी बन्द कमरेमें हुई बैठकमें युद्ध-मन्त्रीने नोमोनइन-काण्डपर एक विस्तृत वक्तव्य दिया। इससे स्पष्ट है कि रूस और जापानका पार-



रूस और जापानका सीमान्त, जिसपर अब तक २४०० 'घटनायें' हो चुकी हैं! जापानी सन्तरी पहरा दे रहा है।

स्परिक सम्बन्ध अच्छा नहीं है। साथ ही इन पंक्तियोंसे यह भी मालूम हो जाता है कि दोनों राष्ट्रोंके सङ्घर्षका मूल कारण क्या है।

रूस और जापानकी महत्त्वाकांक्षाओंका सङ्घर्ष मङ्गोलिया और मञ्चूरियामें होता है, फलतः यहां सीमान्तपर दोनोंमें सदा झगड़ा रहता है और दोनों देश अभी तक इस प्रदेशमें सम्मत सीमा-रेखा खींचनेमें समर्थ नहीं हुए हैं। सीमाके झगड़ेके अलावा दूसरा विवादका कारण रूसी समुद्रमें जापानके मछली पकड़नेका अधिकार है।

जापान और रूसकी जिम्मेदारी—मञ्चूको, चीनका पहला उत्तर-पूर्वीय प्रान्त, चीनके उत्तर-पूर्व और कोरियाकी सीमासे हजारों मील रूसकी सीमा छूती चली गयी है और जापानने इस सीमाकी रक्षाकी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले रखी है। यदि सीमाका निश्चय हो जाता और दोनों देशोंके नक्शे एक ही सीमा सूचित करते, तो दोनों देशोंके बीच झगड़ेका एक मुख्य कारण न रहता। 'जहां मरजी जाओ' की नीतिके अनुसार सीमा-रेखा खींचनेके कारण गलतफहमी पैदा हो जाती है। जापान और रूसके मानचित्र एक ही सीमा नहीं बताते। इस झगड़ेको दूर करनेके लिए जापानने एक सीमा-कमीशन बिठानेका प्रस्ताव किया। मगर जापानका साथ ही यह भी आग्रह था कि उस कमीशनमें मञ्चूकोको भी एक सीट दी जाय। रूस इससे सहमत नहीं हुआ। क्योंकि जापानको इस प्रकार दो वोट मिलते थे और रूसको एक मिलता था।

१९३१ में जापानी पार्लमेण्टमें कहा गया था कि मञ्चूरियाकी सीमापर २४०० से अधिक झगड़े हुए, और अधिकांश उनमेंसे अनिर्णीत रहे। लगभग दो साल पहले मञ्चूकोकी सीमासे लगी आमूर नदीपर गम्भीर काण्ड हो गया। सोवियट सेनाने दो द्वीपोंपर अधिकार कर लिया था और उनका अग्नि-बोट मञ्चूको-सेनाने डुबो दिया। बादमें रूसी सेना द्वीप खाली कर चली गयी और जापानने यह स्थान फिर अपने अधिकारमें कर लिया। इसके कुछ दिन बाद एक अजीब घटना हुई। एक उच्च सोवियट सैनिक अधिकारी मञ्चूकोकी सीमामें दाखिल हुआ और उसने जापानी सेनाके निकट आत्म-समर्पण कर दिया। बात यह हुई कि स्टैलिनने साइबेरियामें यूरोपियन रूसके समान शुद्धि (पर्ज) का काम उस अफसरको सौंपा था। मगर उसको सन्देह हो गया कि उसके बाद उसकी भी वही हालत होगी, अतः वह जापानके साथ जाकर मिल गया। तोकियोने उस समय घोषणा की थी कि मञ्चूकोका अतिथि रूसकी सुदूर पूर्व सम्बन्धी बहुमूल्य योजना लाया है। इसी वक्तव्यमें कहा गया था कि ९० पनडुब्बियां, २००० विमान व्लाडीवास्टकमें और बाह्य मङ्गोलियाके लिए—जो साइबेरिया और चीनके बीच है—४००००० सैनिक बैकल झीलमें रखे गये हैं।

स्वभावतः प्रश्न उठ सकता है कि रूसको मङ्गोलियाकी रक्षाकी चिन्ता क्यों है। इसके लिए पिछले बीस सालके इतिहासपर एक दृष्टि डालना आवश्यक है, क्योंकि मङ्गोलिया सुदूर पूर्वकी युद्धीय व्यूह-रचनाकी दृष्टिसे कुञ्जी है। इससे रूस और चीनके पारस्परिक सम्बन्धपर भी प्रकाश पड़ेगा।

मङ्गोलिया १९२१ में—यदि तीसरी पार्टी हमला करेगी, तो सोवियट गवर्नमेण्ट मङ्गोलियन पीपल्स रिपब्लिककी मदद करेगी, यह समझौता १९२१ से है, जब कि सोवियट और मङ्गोलियन गवर्नमेण्टने मिलकर अपने आक्रमणकारीका मुकाबला किया था। उसी समय यह सन्धि हुई थी। १९२१ में जापानी सेनाने मित्र-राष्ट्रोंके साथ साइबेरियाके अन्दर हस्तक्षेप करनेमें भाग लिया था और जापानी सेना वापस नहीं बुलायी गयी थी। बैरन उनजर्न वान स्टर्नबर्गने सोवियट गवर्नमेण्टपर हमला करनेके लिए बाह्य मङ्गोलियाको अड्डा बनाया था। चीन विद्रोही मङ्गोलिया और बोल्शेविक विरोधी प्रतिगामियोंके विरुद्ध कठोर कार्रवाई करनेके विचारमें था। उनजर्नकी हरकतोंने रूसको हस्तक्षेप करनेका अच्छा बहाना दे दिया। चीनके विरोधके बावजूद लाल और साइबेरियन सेनाने मिलकर क्रान्तिकारी मङ्गोलियन सेना—जिसको कि सोवियटने अपने प्रदेशमें बनानेमें मदद दी थी—के सहयोगसे उरगापर आक्रमण किया और उनजर्नकी सेनाको नष्ट कर दिया। इसके साथ ही 'पीपल्स रिवोल्युशनरी गवर्नमेण्ट' मङ्गोलियामें स्थापित की गयी। नयी गवर्नमेण्टका पहला काम सोवियट गवर्नमेण्टसे अपील करना था कि जब तक दोनोंके समान शत्रुका आतङ्क दूर नहीं होता, तब तक सोवियट सेना वापस न लौटायी जाय। नयी गवर्नमेण्टसे दोस्ती प्रकट करनेके लिए ९ नवम्बर १९२१ को बाह्य मङ्गो-

लियासे सोवियटने एक गुप्त सन्धि की और उसकी स्वाधीनता वस्तुतः स्वीकार कर ली।

उनजर्नसे सोवियटकी हुई लड़ाईके फलस्वरूप ६५०० लाल सेना मङ्गोलियामें बनी रही। इस कारण चीन और सोवियटमें मनोमालिन्य उत्पन्न हो गया। मगर ३१ मई १९२४ की सन्धिमें रूसने यह स्वीकार कर लिया कि बहिर्मङ्गोलिया चीनका एक भाग है, और उसपर चीनकी प्रभुता भी स्वीकार की। इसके बाद मङ्गोलियाका नाम कुछ दिन तक प्रसिद्धिमें आना बन्द हो गया। मगर मञ्चूको राज्यके जन्मके साथ यह फिर प्रसिद्धिमें आ गया।

स्थिति यह है कि मञ्चूको और मङ्गोलिया के बीच होनेवाला झगड़ा वस्तुतः मञ्चूकोके मित्र व संरक्षक जापान और मङ्गोलियाके मित्र रूसका झगड़ा है। आर्थिक और सैनिक कारणोंसे जापान मङ्गोलियाके साथ निकट और घनिष्ट सम्बन्ध बढ़ाना चाहता है। मङ्गोलियाके उत्तरीय प्रदेश यदि सैनिक दृष्टिसे जापानके नियन्त्रणमें हों, तो बैकल झीलके प्रदेशमें सोवियट-साइबेरियन रक्षाके पार्श्व भागके लिए यह एक भयङ्कर खतरा होगा, और यदि सोवियट मोर्चाबन्दी यहां टूट जाती है, तो सोवियट-मञ्चूको सीमापर तैनात दो लाख लाल सेना और छः सौ वायुयानोंसे जापानको कुछ भी भय न रह जायगा। यही कारण है कि वाङ्ग-चिङ्ग-वीके नेतृत्वमें चीनमें नवीन केन्द्रीय गवर्नमेण्ट स्थापित करते हुए आन्तरिक मङ्गोलियामें जापानने जापानी सेना रखनेकी शर्त रखी है। १९३५ में मञ्चूको और बहिर्मङ्गोलियाकी सीमापर अनेक छोटे-मोटे युद्ध हुए। एक समय प्रतीत होता था कि रूस-जापानके बीच लड़ाई छिड़ जायगी। मङ्गोलियनोंका ख्याल था कि जापानी-मञ्चूरियन सेना मङ्गोलियाकी स्वाधीनता नष्ट करके इसको दूसरा मञ्चूको बनाना चाहती है और चीन तथा सोवियटपर आक्रमण करनेका अपना मार्ग प्रशस्त कर रही है। इसलिए वे आशा करते थे कि सोवियट यूनियन 'मङ्गोलियन पीपल्स रिपब्लिक'की रक्षा करनेके लिए जापानके विरुद्ध तलवार उठायेगा।



चीनी सोवियट शहर फूशिशकी एक प्रमुख सड़कपर यह पोस्टर लगा है, जिसमें चहार और होपे जापानियोंसे छीन लेनेके लिए उभाड़ा गया है।

स्टैलिनकी धमकी—मङ्गोलियनोंकी आशा पूरी हुई। मङ्गोलिया-मञ्चूको सीमापर जब विरोध उच्च सीमापर पहुंचा हुआ था, तब १ मार्च १९३६ को स्टैलिनने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घोषणा की। घोषणाका सार है—यदि जापान

'मङ्गोलियन पीपल्स रिपब्लिक'पर हमला करनेका साहस करेगा और उसकी स्वतन्त्रताका अपहरण करेगा, तो हम मङ्गोलियन पीपल्स रिपब्लिककी उसी तरह सहायता करेंगे, जैसे कि १९२१ में हमने की थी।

बादमें पता चला कि जनवरी १९३६ में और उसके बाद मङ्गोलियन गवर्नमेण्टने सोवियट यूनियनसे अनुरोध किया कि १९३४ का भद्रजनोंका समझौता लिखित रूपमें किया जाय और १२ मार्चको उलान बन्दरमें नवीन समझौतेपर दस्तखत हो गये। ७ अप्रैलको चीनने इसके विरोधमें सोवियटको एक जबर्दस्त विरोध-पत्र भेजा और लिखा कि यह १९२४ के समझौतेके विरुद्ध है, और चीन राष्ट्रकी अक्षुण्णताको इससे हानि पहुंचायी गयी है। चीन गवर्नमेण्टने कहा कि १९२४ की चीन-सोवियट सन्धिके यह विरुद्ध है, और गैरकानूनी है, अतः चीन नवीन समझौतेको स्वीकार नहीं करेगा।

इस समझौतेपर दो दृष्टियोंसे विचार करना चाहिए। कानूनी और राजनीतिक दृष्टि। कानूनी दृष्टिसे सोवियट यूनियनका बहिर्मङ्गोलियासे सीधा सन्धि करना कानूनन् नहीं कहा जा सकता, क्योंकि बहिर्मङ्गोलिया चीनका एक भाग है। सोवियट गवर्नमेण्टका जवाब था कि यह एक विभागीय समझौता है और उसी प्रकारका है, जैसा कि सोवियट-मुकदन समझौता था, और चीन-सरकारने उसका विरोध नहीं किया था। मगर तथ्य यह है कि चीनने उसका भी विरोध किया था और रूसका ध्यान इधर खींचा था कि 'स्थानीय अफसरों'से, गवर्नमेण्टकी सहमतिके बिना करार करना अन्तर्राष्ट्रीय कानूनके विरुद्ध है और यह मञ्चूरिया-की स्वाधीनता स्वीकार करनेके समान है; जो कि एक मित्र-राष्ट्रके लिए अमैत्रीपूर्ण कार्य है। इसके साथ यह भी सच है कि बादमें एक वक्तव्यके साथ पेकिङ्ग गवर्नमेण्टने उस समझौतेकी वैधता स्वीकार कर ली थी।

दूसरी बात यह है कि बहिर्मङ्गोलिया अत्यन्त निर्बल है। वह रूसकी कुछ मदद नहीं कर सकता। अतः यह समझौता एकपक्षीय है। सोवियट यूनियनको, इसके अनुसार, प्रदेशकी रक्षाके लिए बहिर्मङ्गोलियामें सब आवश्यक उपाय काममें लानेका अधिकार है। रक्षात्मक और निरोधात्मक उपाय निश्चय ही व्यापक और विस्तृत होंगे। वे सेना-सम्बन्धी ही नहीं होंगे, अपितु आधुनिक युद्धके उपयुक्त आर्थिक उपाय भी होंगे। फलतः बहिर्मङ्गोलिया रूसका एक रक्षित राज्य होगा। इस अवस्थामें यह नहीं कहा जा सकता कि चीनकी प्रभुताको अमान्य नहीं किया गया है।

इस समझौतेने एक कठिनाई भी उत्पन्न कर दी है। यदि रूसपर कोई चढ़ाई करे, तो बहिर्मङ्गोलिया रूसकी मदद करनेको बाध्य है। इसका अर्थ हुआ कि चीन चाहे या न चाहे, उसको रूसकी ओर होना होगा। चीन इससे हास्या-स्पद स्थितिमें पड़ जायगा। चीन इससे तटस्थ नहीं रह सकता और इस प्रकार वह अपने मित्र राज्यके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन न कर सकेगा। यदि शत्रु विजयी हुआ और उसने बहिर्मङ्गोलिया मांगा, तो ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी, जिसकी इतिहासमें दूसरी कोई मिसाल नहीं और उसके परिणामकी अभी कल्पना नहीं की जा सकती। चीनको एक विदेशी युद्धमें, जिसमें कि वह कानूनी दृष्टिसे सम्मिलित नहीं था, अपना एक भाग अपनेसे जुदा कर देना पड़ेगा। यदि यह मामला स्थानीय भी हो, तो भी इस समझौतेका इसके अलावा और कोई परिणाम न होगा। बहरहाल स्थिति यह है कि बहिर्मङ्गोलिया रूसका उसी प्रकार संरक्षित राज्य है, जिस प्रकार मञ्चूको जापानका है। भेद इतना है कि जहां जापान मञ्चूकोपर चीनी गवर्नमेण्टकी प्रभुता तक स्वीकार करनेसे इनकार करता है, वहां रूस बहिर्मङ्गोलियापर चीन गवर्नमेण्टकी सत्ता और प्रभुता स्वीकार करता है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि जापान अन्तर्मङ्गोलियामें जापानी फौज रखनेके लिए इतना अधिक आग्रह क्यों करता है। जापान और रूसके बीच झगड़ेका दूसरा कारण साइबेरियन उत्तरीय प्रशान्त महासागरमें मछली मारनेका जापानी अधिकार है।

प्रशान्तका झगड़ा—रूस-जापान युद्ध (१९०४-५) समाप्त होनेपर दोनों देशोंके बीच पोर्ट्समाउथ-समझौता (१९०५) हुआ था। इस समझौतेके अनुसार जापान उत्तरी प्रशान्त सागरमें मछली मारनेके अधिकारका दावा करता है। दोनों देश इस सन्धिको भङ्ग करनेका एक-दूसरेपर आरोप करते हैं। रूसका कहना है कि जापानने सन्धिकी इस धाराको भङ्ग किया है कि दक्षिण मञ्चूरिया रेलवेके साथ-साथ प्रति मील १५ से अधिक जापानी सैनिक नहीं रखे जावेंगे।



साखलिनका वह प्रान्त, जहां कुत्ता-गाड़ियों द्वारा ही आना-जाना सम्भव है।

जापान इस अभियोगको स्वीकार करता है। मगर उसका कहना है कि मञ्चूकोका स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो जानेसे और 'जापान-मञ्चूको-रक्षा-समझौता' हो जानेके कारण स्थिति सर्वथा बदल गयी है। इस बदली हुई स्थितिमें जापान सन्धिमें विहित मर्यादासे अधिक सैनिक रखनेको बाध्य है। जापान-का यह भी विश्वास है कि रूस मछली मारनेके सम्बन्धमें सन्धि जल्दी इसलिए नहीं करता, क्योंकि वह जापानसे बदला लेना चाहता है। जापान मानता है कि उसने चाइ-नीज ईस्टर्न (उत्तरी मञ्चूरिया) रेलवेकी खरीदका सारा दाम नहीं चुकाया है। मगर उसका कहना है कि केवल ६००००० येन बकाया रह गये हैं। जापान इस बकाया रकमको देनेके लिए तैयार है, मगर रूस मञ्चूकोकी मांग स्वीकार करनेके लिए तैयार नहीं है, इसलिए जापानने यह रकम रोक रखी है। एक समय स्थिति इतनी विकट हो गयी थी कि उप-युद्ध-मन्त्रीने धमकी दी थी कि यदि रूस मामला जल्दी नहीं निपटायेगा, तो जापान चीनके साथ लड़ते हुए भी रूससे लड़ाई छेड़ देगा। इस धमकीका कुछ दिन बाद समर्थन करते हुए परराष्ट्र-विभागने कहा—जापान और सोवियटके बीच सहज सम्बन्ध बनाये रखने और फलतः पूर्वी एशियामें शान्तिकी सुरक्षाके लिए मछली मारनेके सवालका शीघ्र तस्फिया होना चाहिए। मगर परराष्ट्र-विभागकी इस घोषणासे भी रूस क्षुब्ध न हुआ। जापानी लेखकोंने रूसके विरुद्ध शिकायतोंकी एक तालिका बनायी है। इसमें मुख्य शिकायत यह है कि सोवियट यूनियन चीनकी राष्ट्रीय गवर्नमेण्टकी मदद कर रहा है, जिसके कारण जापान चीनकी लड़ाईको जल्दी समाप्त नहीं कर सक रहा है और इस प्रकार रूस 'पूर्वी एशियामें नवीन व्यवस्था' स्थापित करनेमें जापानके मार्गमें बाधक हो रहा है।

जापानी चांगकूफेंगकी घटनाको भी नहीं भूले हैं और तूमेन नदीके पश्चिममें जापानी सेनाके हट जानेपर ऐति-हासिक चोटीपर फहरा रहा हंसिया-हथौड़ायुक्त लाल झण्डा

उनकी आंखोंमें सदा शूलकी तरह चुभता है। जापानी यह भी कहते हैं कि चांगकूफेंग प्रदेशमें रूस किलेबन्दी कर रहा है और वहां युद्ध-सामग्री जमा की जा रही है।

जापान द्वारा रूसके विरुद्ध लगाये गये अभियोग निराधार ही नहीं हैं। यह सत्य है कि बहिर्मङ्गोलियाकी सीमापर रूसने देशी सेनाको हटाकर रूसी सेना तैनात कर रखी है।

सोवियटका उद्देश्य—सोवियट रूस अपने प्रदेशसे विदेशी हस्तक्षेपको दूर करनेके ख्यालसे वस्तुतः इस नीतिका अनुसरण कर रहा है और जापानको दिये गये अधिकारको रद्द कर रहा है। जापानको रूसने सोवियट उत्तरी प्रशान्त महासागरमें मछली पकड़नेका अधिकार, उत्तरी काराफूटो (साखलिन) में तेल निकालने और कोयलेकी खानोंसे कोयला निकालनेका अधिकार दे रखा था। रूस अब ये सब अधिकार जापानको देना नहीं चाहता।

इस समय स्थिति यह है कि उत्तरीय प्रशान्त महासागरमें जापानके पास मछली पकड़नेके सात प्रदेश थे, जिनमेंसे तीन रूसने वापस ले लिये हैं। लड़ाईमें ह्वेल मछलीके तेलके उपयोग और महत्त्वको जाननेवालोंसे छिपा नहीं है कि जापानके इस अधिकार-हरणसे उसको कितना जबर्दस्त धक्का पहुंचा है।

साइबेरियन रेलवे—रूसने ६००० मील लम्बी ट्रान्स-साइबेरियन रेलवे अब दोहरी लाइनवाली बना ली है। इस कारण रूस-जापानमें लड़ाई छिड़नेपर जापानी सेना जिस प्रकार अपने घर और सैनिक अड्डोंके पास होगी, उसी प्रकार सुदूर पूर्वी लाल सेना भी अपने सैनिक अड्डोंके पास होगी। नयी बनी ७००० मील लम्बी रेलवे लाइन सुदूर पूर्वमें सम्भावित लड़ाईमें महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगी। ट्रान्स-साइबेरियन रेलवेका जो नक्शा जापानके पास है, उससे मालूम होता है कि इस रेलकी एक ब्राञ्च बैकल झीलके पश्चिममें ताईशेटसे ४०० मील लम्बी चली गयी है और दूसरी ब्राञ्च क्रान्सनोयास्कके पूर्वमें ३०० मील तक चली गयी है। ताईशेटसे लाइन पूर्वमें बैकल झीलके उत्तरीय किनारोंको छूती हुई चली गयी है। पुरानी ट्रान्स-साइबेरियन रेलवेकी दूरी यहांसे अधिकसे अधिक १०० मील है। इसके बाद यहांसे यह पूर्वमें ४०० मील चली गयी है, जहां फिर वह दक्षिण-पूर्वकी ओर कर्व खाती हुई पुरानी ट्रान्स-साइबेरियन रेलवे और आमूर नदीके उत्तरीय मोड़से ६० मील दूर रह जाती है। इसके बाद यह तारतरीकी खाड़ीपर स्थित बन्दरगाह मोगोतो (सोवियट सकाया) पर पहुंचती है, जो कि ब्लाडीवास्टक बन्दरगाहसे ४०० मील दूर है। इसकी कुल लम्बाई १८००-२००० मील है। यह अनेक रेलवे लाइनोंसे जुड़ी हुई है। इन लाइनोंका केन्द्र आमूर नदीपर स्थित महत्त्वपूर्ण सैनिक अड्डा ब्लाडी वेशशेन्स्क है। इस लाइनको बनानेका उद्देश्य यह है कि यदि जापानी सेना बैकल झीलके पास पुरानी ट्रान्स-साइबेरियन रेलवेको भी काट दे, तब भी पश्चिमी रूसका सुदूर पूर्वी लाल सेनासे सम्बन्ध अविच्छिन्न बना रहे। सोवियट सेनाके लिए यह लाइन कितनी महत्त्वपूर्ण है, इसका अन्दाजा तब लगाया जा सकेगा, जब कि बैकल झील और जापानके बीचकी दूरी एक ओर और दूसरी ओर उराल पहाड़की दूरी नापी जाय। जापानी सेना चहार या आन्तरिक मङ्गोलियासे यदि दाखिल होनेमें सफल हुई, तो वह अपने घरसे २३०० मील दूर होगी और यदि रूसी सेना बैकल झीलके उत्तरमें हटनेको बाध्य हुई, तो वह यूरालके विस्तृत सोवियट सैनिक व औद्योगिक केन्द्रसे २३०० मील दूर होगी। इसके अलावा बहुत-से सोवियट जत्थे बैकल झीलसे लेकर ब्लाडीवास्टक तक यातायातमें रहेंगे। इसलिए जापानी यदि बैकल झीलपर रूसी सेनासे लड़कर लाल सेनाका सम्बन्ध शेष रूससे पुरानी रेलवे लाइन काटकर काटनेकी महत्त्वाकांक्षा रखते हैं, तो वे सर्वथा विफल होंगे। इसके अतिरिक्त उनको दुश्मनके समान ही अपना यातायात कायम रखना होगा।

एक बात और ख्याल रखनेकी है। नवीन ट्रान्स-साइबेरियन रेलवे और पुरानी डबल लाइन ट्रान्स-साइबेरियन रेलवेके अलावा रूसने १००० मील लम्बी तुर्किस्तान-साइबेरियन रेलवे बनायी है, जो कि चीनी तुर्किस्तानकी सीमाको छूती हुई चली गयी है। चीनके साथ यातायात जोड़नेवाली यही एक रेलवे है। यह वही मार्ग है, जहांसे चङ्गेज खांका काफिला आलमाआनासे (यहां ट्राटस्कीने अपने निर्वासनके कुछ दिन बिताये हैं) उरूनशी होता हुआ लानचो जाता था। आज इस मार्गसे रूसी अफसर और गोला-बारूदके ट्रक आते-जाते हैं। रूसी इतनेसे ही सन्तुष्ट

नहीं हुए हैं। उन्होंने बहिर्मङ्गोलियामें मोटर-पथोंका जाल बिछा दिया है और आन्तरिक मङ्गोलियाकी जापानी चौकियों तक अपनी मोटरकी सड़कें ले गये हैं।

सैनिक शक्ति—सुदूर पूर्वी लाल सेनामें १०००००० सैनिक हैं। जापानी सेनामें भी लगभग १० लाख सैनिक हैं। जापानी सेनाका आधा हिस्सा ही इस समय चीनमें लड़ रहा है। शेषआधा हिस्सा मञ्चूको-साइबेरिया और बहिर्मङ्गोलियाकी सीमापर तैनात है। पिछले तीन सालोंमें सीमापर, जापानी अधिकारियोंके अनुसार, ४०० से अधिक युद्ध हो चुके हैं और हजारों सैनिक मारे गये हैं, मगर इसकी खबर बाहरी दुनियाको नहीं मिली है। परन्तु इसपर भी दोनों देशोंमें लड़ाई नहीं हुई है। सीमापर होनेवाली लड़ाइयोंका जापानी रेकर्ड १९३८-३९ का नहीं मिला है। मगर पिछला रेकर्ड इस प्रकार है—१९३५ में २८०, १९३६ में ३०, १९३७ के पहले ६ मासमें ८०। इसलिए अमेरिकन पत्रकारोंका अनुमान है कि १९३८के अन्त तक ४०० मुठभेड़ें हुई हैं। इसपर भी लड़ाई नहीं हुई। क्योंकि सुदूर पूर्वी लाल सेना अपने आपमें एक स्वतन्त्र सेना है। मास्को इसको आत्मनिर्भर बनानेके प्रयत्नमें लगा हुआ है। इसलिए वह लड़ाई छेड़नेको उत्सुक नहीं है। साइबेरियाकी आबादी पिछले कुछ सालोंमें ३,०००,००० बढ़ी है और अब इसकी जनसंख्या १०,०००,००० कूती जाती है। इस तरहसे साइबेरिया यूरोपियन रूससे स्वतन्त्र होता जा रहा है। कूजनेटज्क द्वाबेकी कोयलेकी खानें, मैगनीटोगोस्कका लोहा, तोपखाना, यूरालमें रासायनिक द्रव्योंके कारखाने और टैङ्क और ट्रैक्टर बनानेकी



काराफूटोके जङ्गलोंसे राज्यको बहुत बड़ी आमदनी होती है। जङ्गलमें इस प्रकारके कितने ही कैम्प बने हैं।

फैक्टरियां सुदूर पूर्वी लाल सेनाको बन्दूकसे लेकर हरएक चीज देंगी। साइबेरियाका दावा है कि वह वायुयान भी बना सकता है, इसके लिए वह मास्कोपर निर्भर नहीं है। युद्धशास्त्री इस बातमें सहमत हैं कि रूसकी यूरोपियन सेनाको तो मार्शल तूखाचेवस्की और अन्य सात जनरलोंकी हत्यासे धक्का पहुंचा है, मगर सुदूर पूर्वकी सेना ज्योंकी त्यों बनी रही है।

ब्लाडीवास्टकमें रूसी हवाई बेड़ा, जापानी हवाई बेड़ेसे अधिक शक्तिशाली है। १००० प्रथम श्रेणीके जङ्गी वायुयान

हैं और २००० सुरक्षित जङ्गी विमान हैं। रूसी अभिमानसे कहते हैं कि वे पहले हमलेमें जापानी हवाई बेड़ेको अधमरा कर देंगे।

आर्थिक शक्ति—जापानकी आर्थिक शक्ति रूस, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और ब्रिटिश साम्राज्यके मुकाबले नगण्य है। ये तीनों राष्ट्र आत्म-निर्भर हो सकते हैं, मगर जापान नहीं। किन्हीं सात महान् राष्ट्रोंकी अपेक्षा जापान दूसरोंपर अधिक निर्भर है। जापानके पास अपने लायक चावल, मछली, फली आदि पर्याप्त हैं। मगर इनके सहारे वह लड़ाई देर तक नहीं चला सकता।

जापानको प्रतिवर्ष २२,०००,००० पेट्रोल-पीपोंकी जरूरत होती है, जिसमेंसे केवल $\frac{1}{6}$ जापानमें उत्पन्न होता है। कच्चे लोहेकी दो तिहाई जरूरत उसे बाहरसे पूरी करनी पड़ती है। इसी प्रकार मैगनीज ५० प्रतिशत, तांबा ४० प्रतिशत और निकल, पारा और रबड़ सबका सब बाहरसे मंगाना पड़ता है। ये सब चीजें तोपें, युद्ध-सामग्री, गोला-बारूद और यातायातके साधनोंके लिए परम आवश्यक हैं। विदेशी व्यापार उसके लिए जीवन और मृत्युका प्रश्न है। जापानकी एक तिहाई जनता रेशमके निर्यातपर जीती है। उसके सारे उद्योग-धन्धोंकी पैदावारका पांचवां हिस्सा निर्यात होता है। जर्मनी और इटली जापानके आयात मालका केवल बीसवां भाग पूरा करते हैं और उसके निर्यातका केवल २ प्रतिशत लेते हैं। इसके विपरीत संयुक्त राष्ट्र अमेरिका और ब्रिटिश साम्राज्य उसके निर्यात-व्यापारका ५० प्रतिशत लेते हैं और आयात मालका ५० प्रतिशतसे ऊपर पूरा करते हैं।

युद्ध-व्यय—जापानी बजटके अनुसार जापान चीन-युद्धमें प्रतिमास ४५०,०००,००० येन खर्च कर रहा है। एक जापानी सेनापतिके अनुसार यदि जापानकी रूससे लड़ाई हो, तो जापानको इससे तिगुना १३,५०,०००,००० येन प्रतिमास खर्च करना पड़ेगा। इसका अर्थ है कि जापानको एक सालमें ४,८००,०००,००० डालर रूससे लड़ाई करनेपर खर्च करने होंगे। यदि ये अङ्क ठीक हैं, तो जापानको अपनी सारी सम्पत्ति युद्धमें फूंक देनी होगी। सरकारी जापानी इयर बुकमें सम्पूर्ण जापानका राष्ट्रीय धन १९३० में ११०,-११८,०००,००० येन कूता गया था। इसका अर्थ है कि उसको अपनी राष्ट्रीय सम्पत्तिका दसवां हिस्सा प्रतिवर्ष रूससे संग्राम करते हुए खर्च करना होगा। इन अङ्कोंको अक्षरशः ठीक-ठीक न मान लेना चाहिए। ये केवल इस बातको दिखानेके लिए दिये गये हैं कि यदि रूस-जापान-युद्ध हो, तो जापानको प्रति वर्ष सम्भवतः कितना खर्च करना होगा।

सोवियट-मञ्चूरियन सीमापर सब उपयुक्त जगहोंपर किलेबन्दी कर रखी गयी है। साइबेरियन लाल सेनाका दावा है कि यदि मास्कोसे उसका सम्बन्ध कट जाय, तब भी वह लड़ सकती है। उधर जापानने भी, ख्याल किया जाता है कि, लड़ाईके लिए आवश्यक सब सामान साल-भरके वास्ते जमा कर रखा है।

रूसको निकल और रबड़ आयात करना पड़ता है। पेटसामोपर नियन्त्रण हो जानेसे निकलकी समस्या भी कुछ हद तक हल हो गयी है। मगर यदि पेटसामोकी निकलकी खानें पहलेके समान अंगरेजोंके पास ही रहीं, तब भी रूसके पास सोनेकी कमी नहीं है। विदेशी विशेषज्ञोंके अनुसार ५००,०००,००० डालरका सोना रूसके पास है। सम्भव है, इससे दुगुना उसके पास हो। स्वर्णकी उत्पत्तिमें इस समय उसका नम्बर दक्षिण अफ्रीकाके बाद दूसरा है। इसलिए रूस, संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाको छोड़कर, और किसी राष्ट्रकी अपेक्षा अकेले ही लड़ाई लड़ सकता है। रूस-फिन लड़ाईसे इस स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं आया है।

रूसके पास अनाजकी कमी नहीं है। १९३७ में १११,-३८४,००० मैट्रिक टन फसल हुई थी, जब कि १९३१ में ८०१८०-००० और १९३२ में ६९,०००,००० और जब कि कमेलिन्-को ६,०००,००० आयात करना पड़ा था। आज रूस इस दृष्टिसे आत्म-निर्भर है।

इस सारी परिस्थितिको देखते हुए, और यह न भूलते हुए कि कोरियन समुद्र-तटपर जापान ब्लाडीवास्टकके मुकाबले राशिनका बड़ा भारी बन्दरगाह बना रहा है, और चीनपर हमला उसने बाह्यमङ्गोलियासे आनेवाली रूसी सेनासे अपने वाम भागको बचानेके ख्यालसे किया है, इस बातकी निकट भविष्यमें कोई सम्भावना नहीं दीखती कि रूस और जापानमें सीमाप्रान्तके झगड़ोंको लेकर सङ्घर्ष होगा। इसलिए सोवियट यूनियन और जापानके बीच लड़ाई होनेकी आशङ्का अभी निर्मूल समझनी चाहिए।

हिन्दीमें राजनीतिक साहित्य

श्री शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी० ए० बी० एल०

मिल्टनने एक जगह लिखा है कि मुझे किसी देशका साहित्य दिखाओ और बगैर कुछ और जाने हुए मैं तुमको बतला दूंगा कि वह देश कैसा है—आजाद या गुलाम, ऊंची सभ्यताका या असभ्य, बलवान या कमजोर, बहादुर या डरपोक।

और मिल्टनने यह जो कुछ कहा था, उसका कारण है। साहित्य युगका दर्पण होता है—साहित्यमें युगकी छाप दिखाई पड़ती है—समाजका वास्तविक प्रतिबिम्ब उसमें झलकता है, और उस प्रतिबिम्बमें हम देखते हैं जनताकी सच्ची मनोभावनायें, समाजका तत्कालीन प्रश्नोंके प्रति रुख और इसलिए साहित्य व्यक्ति एवं समाजकी भावनाओंका कलात्मक इतिहास होता है।

किन्तु साहित्यका काम केवल इतना ही नहीं है। जिस प्रकार वस्तुस्थितिका दिग्दर्शन और विश्लेषण उसका कार्य है, उसी प्रकार भविष्यका सृजन भी उसका लक्ष्य होना चाहिए। साहित्यमें केवल अतीत और वर्तमानको लेकर चलनेवाले कलाकारकी रचनाओंका ही मूल्य होता, तो कलाकी परिधि बहुत ही सीमित होती, उसकी सम्भावनायें एक संकुचित सीमामें बंधी होतीं और इस प्रकार उसमें एक जड़ता आती, जिसका मूल्य काल और युगविशेषके साहित्यिक इतिहासके अतिरिक्त और कुछ न होता। पर साहित्यकी सम्भावनायें उतनी सीमित नहीं हैं। उसका कार्य केवल अतीत और वर्तमानको लेकर ही नहीं है, वह जैसा जो कुछ चल रहा है, केवल उसका उल्लेख-मात्र नहीं है, जैसा जो कुछ होना चाहिए, यह भी वह बताता है। यह बात सच है कि सभी साहित्यों और सभी युगोंमें सदा ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ करते। पर इसकी सम्भावनाओंसे इनकार नहीं किया जा सकता। अन्यथा ऐसे साहित्यिकोंको मानव-समाजने पाया न होता, जिन्होंने मानवकी समस्त विचार-धारायें बदल दीं, जिन्होंने संसारमें महान् क्रान्तियोंको सम्भव बनाया और जिनके महान् स्वप्नोंने दुनियाका नक्शा बदल दिया।

हमारा साहित्य आज एक संक्रान्ति-कालसे गुजर रहा है। भारतमें दूसरे क्षेत्रोंमें जो पुनर्जागरण आया है, उसने साहित्यमें भी प्राण-स्पन्दन भरे हैं। हमारे साहित्यको आज न केवल युगका प्रतिबिम्ब बनकर चलते रहना है, बल्कि उसे नये युगका सन्देश भी देना है। सदासे साहित्य संस्कृतिका निर्माण, समाजका परिष्कार एवं मानवका पथ-प्रदर्शन करता रहा है। और इसलिए साहित्यको पिछली पीढ़ियोंका स्मारक, वर्तमान पीढ़ीका दर्पण एवं भावी पीढ़ियोंका प्रकाश-स्तम्भ भी बनना होगा। भारतीय राष्ट्रका यह रेनेसां कभी पूर्ण नहीं हो सकता और इसकी सम्भावनायें कभी चरितार्थ नहीं हो सकतीं, यदि हमारे साहित्यका मानस-क्षितिज केवल गतानुगतिक भावनाओंसे संकुचित बना रह गया।

तो क्या हमारे लिए यह सोच लेना—अतीतमें हमने क्या किया, उसमें झांककर यह देख लेना क्या आवश्यक नहीं हो जाता कि हमारे साहित्यने अपनी इन स्वाभाविक सम्भावनाओंको कहां तक हमारे लिए चरितार्थ किया? कहां तक हमारा साहित्य आज हमारी दैनिक आवश्यकताओंको पूरा करता और कहां तक हमारे मनमें उठनेवाले सन्देहोंका निराकरण करनेकी क्षमता इसमें आ सकी है।

और इस दृष्टिसे जब हम हिन्दी-साहित्यके अतीतका सिंहावलोकन करते और उसके वर्तमानपर एक नजर डालते हैं, तो सचमुच निराशा होती है। पण्डित जवाहरलालजीके शब्दोंमें हम आजकलकी दुनियाको समझना चाहते हैं, जो ऊपरी घटनायें होती हैं और जिनके सम्बन्धमें हम समाचार-पत्रोंमें पढ़ते हैं, उनके पीछे हम देखना चाहते हैं, ताकि हम समझ सकें कि वे क्यों हुए; संसारमें बड़े-बड़े परिवर्तन हो रहे हैं, नक्शेकी लकीरें रोज बनती-बिगड़ती जा रही हैं, एक विशाल पैमानेपर हम राष्ट्रोंकी पारस्परिक प्रतिहिंसा, घृणा और क्षोभको लड़ते देख रहे हैं, इसलिए हम जानना चाहते हैं कि कौन-सी वे आन्तरिक शक्तियां हैं, जो मनुष्यको इधर-उधर ढकेल रही हैं, कौन-सी भावधारायें हैं, जो भीतर ही भीतर

टकरातीं और ऊपरकी उत्ताल-तरङ्गोंका कारण बन रही हैं, क्या-क्या ख्यालात उनके दिमागोंमें भरे हुए हैं, कौन-सी उमङ्गें क्यों उठतीं और नीचे गिरती जा रही हैं, कौन-कौन-से बड़े-बड़े सवालात दुनियाको और हमारे देशको परेशानीमें उलझाये हुए हैं।

हमारे, आपके, सबके सामने यह और इस तरहके सैकड़ों सवाल हैं, जो परेशानी बढ़ाये हुए हैं, आप इनके जवाब ढूंढ़ते हैं, इनकी गांठोंको आप खोलना चाहते हैं, इसलिए हर समय आपको रोशनीकी तलाश रहती है, जो अन्धेरेमें उजाला करे, और आप देख सकें कि दुनियामें आज जो कुछ हो रहा है, उसका मर्म क्या है ?

क्योंकि सच तो यह है कि आप आज दुनियासे अलग होकर नहीं सोच सकते। अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिजपर जो शक्तियां उठती और परस्पर टकरा रही हैं, उनके परिणामोंसे आज आप अपनेको अलग नहीं रख सकते। यह परिणाम निकलते और हमको, आपको, सबको प्रभावित करते हैं, पर इस अन्धकारको तो देखिये कि हम इसमें राह टटोलते, सूने हाथ फैलाये बढ़ना चाहते हैं और टकराकर गिर पड़ते हैं। हमें रोशनी चाहिए, पर हमारी स्थिति यह है कि हममेंसे कितने ही यह भी नहीं जानते कि हमें रोशनी चाहिए !

हमारा साहित्य क्या हमें वह रोशनी दे रहा है ? हमारा साहित्य क्या हमें यह भी समझनेकी क्षमता दे रहा है कि हमें क्या चाहिए ? दुनियामें आज जो कुछ हो रहा है, उसे समझानेके लिए क्या हमारे साहित्यमें आज भी क्षमता है ? प्रतिदिन होनेवाली घटनाओंकी पृष्ठ-भूमि भी क्या हमारा साहित्य हमें दिखा सकता है, जिससे हम उनके आधार समझ सकें ?

उत्तरके लिए बहुत अधिक नहीं सोचना पड़ेगा, क्योंकि यह स्वतः स्पष्ट है। हिन्दीमें ऐसे साहित्यका नितान्त अभाव है, जिससे आज हम संसारमें उठनेवाली आर्थिक एवं राजनीतिक भावधाराओंको समझ सकें। यों तो हिन्दी-साहित्यके अभावोंकी एक ऐसी सूची है, जो जहां हमें हमारी अपूर्णतापर लज्जित करती है, वहीं अत्यन्त परिताप भी पैदा करती है, पर राजनीतिक साहित्यका तो हमारे यहां नितान्त अभाव है। इस राजनीतिके साथ ही हम अर्थनीति-को भी ले रहे हैं, क्योंकि राजनीति कभी-कभी—बल्कि प्रायः आर्थिक स्थितियोंकी दासी रही है। राजनीति तो प्रायः एक कठपुतलीका तमाशा है, जिसके पीछे अनेक शक्तियां हैं, जो उसका सञ्चालन करती हैं। बड़ी-बड़ी मशीनों और कारखानोंने दुनियामें जो अद्‌भुत क्रान्तियां की हैं, राष्ट्रवाद, प्रजातन्त्र, पूंजीवाद, साम्यवाद, यह सारेके सारे राजनीति-का स्वरूप पकड़े अन्तरमें आर्थिक आत्मा छिपाये हुए हैं। साम्राज्यवादका आर्थिक उद्देश्य—फैसिज्ममें जो आज अपनी चरम सीमापर पहुंच रहा है—राजनीतिकी आत्मा है और इतना ही नहीं, राजनीति आज हमारे जीवनमें दैनिक आवश्यकता—एक अनिवार्य आवश्यकता हो गयी है। क्योंकि जैसा कि प्रो० अडल्स हक्स्लेने टाइम एण्ड टाइड (Time and Tide) में एक बार लिखा था :—

We also have political theorists, who are prepared to condone and even sanctify, in the name of their black or red political creed, every form of state-organised atrocity, from the flogging of individuals to the whole-sale messacre of dissenting minorities and general war.

और ये सब घटनायें आज हमारे सामने होती चल रही हैं, दुनियाका पुराना चेहरा मिटता और नया बनता चल रहा है, पर हिन्दीका पाठक तत्सम्बन्धी साहित्यके अभावमें इन सभी गतिविधियोंसे अनभिज्ञ है। वह राजनीतिके इन सब परिवर्तनोंको देखता, चौंकता और भौचका-सा रह जाता है, वह समझ नहीं पाता कि इनका मर्म क्या है, इनकी पृष्ठ-भूमि और इनकी सम्भावनायें क्या हैं ?

राजनीतिका हमारे साहित्यमें नितान्त अभाव है। जो कुछ पुराना साहित्य है भी, वह या तो प्रायः असामयिक है अथवा कुछ इस ढङ्गका है, जो लाभ पहुंचानेके बजाय कुछ हानिकर है। यों गिननेको सौ-पचास पुस्तकें निकल आयेंगी, पर सारे संसारमें जैसे-जैसे परिवर्तन होते गये हैं, और जितनी शीघ्रतासे, उसमें प्रगतिके साथ-साथ चलनेके बजाय अगर हम कहीं रह गये, तो हमारा अकल्याण हुए बिना नहीं रह सकता। साहित्य-गोष्ठीका आदेश पाकर जब हमने इस सम्बन्धकी थोड़ी-सी छानबीन शुरू की और हिन्दीके राज-नीतिक साहित्यको उठाकर देखनेका प्रयत्न किया, तो हम

जिन परिणामोंपर पहुंचे, उनकी बात सुनकर आप बुरा चाहे जितना मानें, पर इस तथ्यसे आप इनकार नहीं कर सकते कि इस विषयमें जो पुस्तकें लिखी गयी हैं, उनमेंसे कितनी ही में बड़ी गलत बातें आयी हैं, कितनी ही में आज बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं और आज कितनों ही का चेहरा इतना बदल गया है कि पुराना चेहरा पहचान तो बताता ही नहीं, उल्टे भ्रम पैदा कर सकता है। कई पुस्तकोंके दस वर्ष पहलेके संस्करण आज भी ज्योंके त्यों बाजारमें बिक रहे हैं, और अगर किसी प्रकाशकने कवर बदलकर प्रकाशन वर्षको अप-टु-डेट कर दिया—जो हिन्दीमें कोई असम्भव कल्पना नहीं है—तब १९४० के ये संस्करण कितने सत्यानाशी हो सकते हैं, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

राजनीतिक साहित्यकी व्यापकताके अन्तर्गत कई अङ्ग आते हैं। इन अङ्गोंके वैज्ञानिक विवेचनकी यहां आवश्यकता नहीं है, पर इन सबका हिन्दीमें नितान्त अभाव है। राजनीति-विज्ञान तथा राजनीतिक सिद्धान्तों—वादोंको लेकर स्टैण्डर्ड पुस्तक एक भी हिन्दीमें नहीं है। जो प्रकाशन हुए हैं, वे बहुत प्रारम्भिक अवस्थाके नवसिखुओंके लिए हैं, पर मजा यह है कि उनसे भी लाभ अधिकतर वही उठा सकते हैं, जो अंगरेजी अथवा दूसरी उन्नत भाषाओंमें उनसे परिचित हैं। इसके कई कारणोंमें दो प्रमुख हैं। पहली बात है पारिभाषिक शब्दोंका अभाव, जिसे अंगरेजीके शब्दोंसे व्याख्या करनेकी कोशिश की जाती है, जिसका अर्थ है कि घोड़ेके सामने गाड़ी खड़ी करना। जो लोग 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' नहीं समझते, उन्हें यह शब्द आप Dialectic Materialism से नहीं समझा सकते, जब तक कि वे वास्तवमें इसे मूलतः न समझते हों। दूसरी कठिनाई इस सम्बन्धमें प्रचुर साहित्यके अभावकी है। एक पुस्तकसे अगर आपकी कठिनाइयोंका अन्त नहीं हुआ, तो उसके उलझे प्रश्नोंकी मीमांसा आपको अन्यत्र नहीं मिल सकती, क्योंकि तत्सम्बन्धी ज्ञानकोष नितान्त सीमित है।

यूरोप, अमेरिका और एशियाके विभिन्न देशोंके विधानोंपर अप-टु-डेट हिन्दी पुस्तक हमारे देखनेमें एक भी नहीं आयी है, और इसका परिणाम यही नहीं हुआ है कि साधारण हिन्दी-पाठकोंका तत्सम्बन्धी अज्ञान नहीं दूर हो सका, बल्कि बिना अंगरेजी पढ़े हुए पत्रकारों तकको अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। वे वहांके वैधानिक परिवर्तनोंका न तो महत्त्व जानते हैं और न तत्सम्बन्धी समाचारोंको ही ठीक-ठीक समझ पाते हैं। आयरिश 'डेल' और जापानी 'डायट'के सम्बन्धमें अगर डबलिनसे डायट और टोकियोसे डेलके समाचार अगर कोई एजेन्सी वितरित कर दे, तो दूसरे दिन आपको पत्रोंमें काफी मनोरञ्जक सामग्री मिल जायगी, यद्यपि हिन्दी जनतामें अब भी इतना अज्ञान है कि इसके पत्रकार अथवा पत्रको कोई नुकसान नहीं उठाना होगा। क्योंकि उसने तो यह शब्द भी नहीं सुना। खेद है, पर यह तथ्य है, कि हिन्दी पाठकोंका बौद्धिक धरातल बहुत ऊंचा नहीं है। और जिनका ऊंचा है, वह भी हिन्दी-पठनसे नहीं हुआ है।

जब राजनीति-विज्ञान एवं सिद्धान्त-सम्बन्धी पुस्तकोंका इतना अभाव हो, तब अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, विश्वका आर्थिक इतिहास, मुद्रानीतिके परिवर्तन, अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओंके महत्त्वके स्पष्टीकरण, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिके इतिहास एवं सन्धियोंकी शर्तोंको देकर उनकी व्याख्या करनेवाले प्रकाशन कितने होंगे, इसका अनुमान करना सहज है; और इस पैमानेपर वैधानिक कानून तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्थाओंपर प्रकाशनकी बात तो स्वप्न-सरीखी है। आप कहेंगे, ये बड़ी-बड़ी पुस्तकें हैं, पर सच तो यह है कि यूरोप और अमेरिकासे निरन्तर प्रकाशित होनेवाला तत्सम्बन्धी साहित्य पचीस-पचास रुपयोंका है, तो पचीस-पचास आनोंसे कममें भी उनके दर्जनों ट्रैक्ट आपको हर मास मिलते हैं। हमें सन्देह है कि हिन्दीका पाठक जिन पत्रोंके लिए पैसे देता है, उन्हें भी वह ठीक ढङ्गसे समझ पाता है। उदाहरणार्थ, इधर काफी अर्सेसे वार्साईकी सन्धिकी चर्चा सभी छोटे-बड़े पत्रोंमें हो रही है, पर हिन्दीका पाठक न तो उन सब पत्रोंमें और न पुस्तकोंमें ही उसकी शर्तें देख पाता है। वार्साईकी सन्धि संसारकी एक महान् घटना थी, और उसका महत्त्व अनेक वर्षोंके लिए था। पर हिन्दीके किसी प्रकाशकने उसपर ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं समझी। और आपको आश्चर्य न होगा कि अभी उस दिन हमारे स्थायी पुस्तक-विक्रेताने आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीकी नयी पुस्तक—मई १९४० की निकली हुई—हमारे पास भेजी है, जिसमें

विल्सनकी चौदह शर्तोंसे संयुक्त, वार्साई-सन्धिकी व्याख्या-सहित कुछ शर्तें हैं, और जिसका मूल्य है सिर्फ तीन पेन्स।

हिन्दीमें राजनीति-साहित्य जो कुछ प्राप्त होता है, उसमें वृन्दावनके श्री भगवानदास केला द्वारा प्रकाशित साहित्यकी प्रधानता है। केलाजीने इस सम्बन्धमें काफी प्रयत्न किये हैं और जिन विषयोंको उन्होंने उठाया है, उन्हें प्रारम्भिक ज्ञान प्राप्त करने योग्य बनानेका उन्होंने प्रयत्न किया है। पर कुछ तो अनाकर्षक प्रकाशन, कुछ सजीव भाषाका अभाव और कुछ दूसरे साधारण कारण, जिनका उल्लेख हमने बादको किया है, उनकी पुस्तकोंके अपेक्षाकृत कम चलनेके लिए जिम्मेदार हैं। यह कम चलनेकी बात हमें स्वयं केलाजीने बतायी है, अतः हमें उनपर विश्वास करना पड़ा है।

अबसे बीस साल पहले सर्वश्री सम्पूर्णानन्द, श्रीप्रकाश, लक्ष्मणनारायण गर्दे, अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी, महावीर-प्रसाद द्विवेदी, गोपाल दामोदर तामस्कर, सुपार्श्वदासजी गुप्त, मातासेवक पाठक, भवानीदयाल संन्यासी, उदयवीर शास्त्री, दयाशङ्कर दुबे, प्राणनाथ विद्यालङ्कार, राधाकृष्ण झा आदिके कुछ राजनीतिक एवं अर्थनीतिक ग्रन्थ निकले थे, जिनमें कुछ आज प्रायः बेकारसे हैं। एक बात देखनेमें यह आयी है कि इस प्रकारके अधिकांश ग्रन्थ १९१७ और १९२१ के बीचमें लिखे गये हैं। इसके दो कारण समझमें आते हैं। माण्टेगू-चेम्सफोर्ड सुधारोंके प्रचलित होनेसे लोगोंमें राजनीतिक भावनाका उदय तथा तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलनके साथ उसमें दिलचस्पी। उस समय ऐसे भी कुछ ग्रन्थोंका प्रकाशन हुआ था, जिनमें हल्की भावुकता ही नजर आती थी। आम तौरपर लोग सरसरी तौरपर ही लिखते थे, अच्छे अध्ययन-का उनमें प्रायः अभाव-सा दिखाई पड़ता है। कितने ही तो कोरे अनुवाद और कितने ही असत्य तथ्योंके वर्णन-मात्र रहे हैं।

१९३० के सत्याग्रह-आन्दोलन तथा १९३९ के नवीन भारतीय सुधारोंके बादसे हिन्दीमें कुछ राजनीतिक प्रकाशन हुए। देशकी अवस्था तथा देशकी आवश्य-कताओंको लेकर कुछ पुस्तकें राजनीतिक दृष्टिकोणसे लिखी गयीं और शासन-सुधार-सम्बन्धी ग्रन्थ भी, जिनमें गवर्नमेण्ट आव इण्डिया ऐक्ट १९३९ के कई अनुवाद हैं, निकले। पर अधिकांश उसके आधारपर ही लिखे गये वास्त-विक अनुवाद नहीं। इस सम्बन्धमें श्री भगवानदास केला, पं० श्रीकान्त ठाकुर विद्यालङ्कार और डा० रामप्रसाद त्रिपाठीके ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय हैं।

दूसरे राजनीतिक प्रश्नोंपर हिन्दीमें मेरठ, बनारस,-इलाहाबाद और लखनऊसे भी कुछ ग्रन्थ निकले हैं। इनमें समाजवाद, मार्क्सका द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, राज्य और व्यक्ति, भारतीय राजस्व, कम्यूनिज्म क्या है, साम्यवाद क्या है, आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। विभिन्न वादोंको लेकर भी छोटी-मोटी पुस्तकें निकली हैं। श्री जवाहरलालके राजनीतिक लेखोंके संग्रह भी निकले हैं, तथा कुछ प्रकाशन और भी हैं, जिनमें श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र तथा श्री यादवेन्दुजीके ग्रन्थ मुख्य हैं।

पुस्तकोंके रूपके अतिरिक्त सामयिक पत्र-पत्रिकाओंमें राजनीतिक लेखोंसे भी इस दिशामें काम हो रहा है। कान-पुरकी 'प्रभा' ने कभी इस दिशामें अच्छा काम किया था, मा० 'विश्वमित्र' में राजनीतिक साहित्य प्रतिमास काफी अंशोंमें निकलता है। विशालभारत, सरस्वती और माधुरीमें भी कभी-कभी तद्विषयक लेख रहते हैं। दो-एक छोटे-मोटे पत्र आज ऐसे निकल रहे हैं, जिन्होंने अपनी सीमित शक्तियोंके साथ इस ओर ध्यान दिया है।

पर इतना सब होते हुए भी राजनीतिक साहित्यका हिन्दीमें काफी अभाव है। हिन्दी-लेखकों और प्रकाशकों-का ध्यान इस विषयकी ओर अपेक्षाकृत बहुत कम गया है। जो साहित्य हमारे पास है, वह अभी अधूरा है और ऊंचे धरातलका नहीं है। यही कारण है कि अंगरेजी आदि विदेशी भाषाओंके जानकार इस सम्बन्धके अध्ययनके लिए हिन्दीकी ओर नहीं देखते। शेष पाठकोंको विवशतावश इसीपर निर्भर रहना पड़ता है।

तो इसके साथ प्रश्न यह उठ खड़ा होता है कि हिन्दीमें राजनीतिक साहित्यका अभाव क्यों है? इसके कितने ही कारण हैं, जिनमेंसे कुछ प्रमुख कारण हमारी रायमें ये हैं:—

(१) भारतमें हिन्दी भाषा-भाषियोंकी संख्या यद्यपि १३ करोड़ है और समस्त भारतमें अन्तर्प्रान्तीय भाषाके उपयोगमें भी हिन्दी ही आती है, पर भारतीय राजनीतिका

सञ्चालन हिन्दीके द्वारा न होनेके कारण हिन्दीको वह प्रधानता कभी न मिली, जो वस्तुतः मिलनी चाहिए। भारतकी राजनीति जब तक माडरेटोंके नेतृत्वमें रही, तब तक अंगरेजीको छोड़कर किसी भाषामें वे न बोल सकते, न सोच सकते थे। किसानोंको ललकारनेके लिए भी—यद्यपि ऐसा करनेकी आवश्यकता उन्होंने कभी महसूस नहीं की—उन्हें अंगरेजीका ही सहारा लेना पड़ता था। सरकारी कागजात, सरकारी वक्तव्यों, अथवा अपने प्रस्तावोंमें उन्हें कामा, विरामसे फुरसत नहीं मिलती थी और यह सब भी होता था अंगरेजीमें, इसलिए देशकी राजनीतिक शिक्षा न तो हिन्दी द्वारा हुई और न हिन्दीमें ऐसे साहित्यकी बात ही सोची गयी। हिन्दी बोलनेवाली जनतामें न तो उन्हें जाना पड़ा, न उनके विचारोंकी अभिव्यक्ति ही हिन्दीके साधन द्वारा हुई और न हिन्दीमें राजनीतिक साहित्य ही पैदा हुआ।

(२) देशकी शिक्षाका माध्यम हिन्दी न होनेके कारण—हम दूसरी भारतीय भाषाओंकी बात नहीं कहते—हिन्दीमें उन विषयोंकी रचना हो ही नहीं सकती थी जिनके केवल जनताके भरोसे चलनेकी पूरी आशा न हो। उपन्यासों, कहानियों, कविताओंके ग्रन्थोंकी रचना बराबर इसी ख्यालसे होती गयी और इसी ख्यालसे राजनीति, अर्थनीति आदि विषयोंके ग्रन्थ न बने। हिन्दीके साहित्यिकोंने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया। हमारा ख्याल है, और बिना किसी प्रकारका किसीपर आक्षेप करनेकी भावनासे कहनेकी आज्ञा आपसे चाहते हैं कि हिन्दी साहित्यिकोंमें—जो केवल साहित्यिक हैं—कवितादि साहित्यको छोड़कर ठोस, गम्भीर अध्ययन करनेकी प्रवृत्ति हमने कम देखी है। समयकी प्रगतिके साथ चलनेकी वे आवश्यकता महसूस नहीं करते और जब आवश्यकता महसूस न करके, उस दिशामें कुछ प्रयत्न नहीं करते, तो समयके साथ वे चल भी नहीं सकते। किसी कवि और औपन्यासिकसे उसे अपना काम छोड़कर राजनीतिक साहित्य ही रचनेकी बात हम नहीं कहते, पर आधुनिक विचार-धाराओंसे वे अलग कैसे रह सकते हैं। हिन्दीके पाठकोंका बौद्धिक धरातल हमें बहुत ऊंचा नहीं मिला। हमने तो कालेजों और यूनिवर्सिटीके छात्रोंके सम्पर्कमें भी आकर यही देखा है कि अधिकांश देव और बिहारीमें जितनी दिलचस्पी लेते हैं—और हम इसे बुरा नहीं समझते बशर्ते कि इससे दूसरे सांस्कृतिक एवं बौद्धिक साधनोंसे वे अछूते न रह जायें—उतनी राजनीतिमें नहीं। वे—सभी नहीं—प्रगतिशील विचार-धाराओंसे अलग-से रहते हैं। एक समय तो ऐसा भी था, जब अधिकारियों द्वारा भी ऐसा साहित्य पढ़नेसे निरुत्साहित किया जाता था, और वह समय अलीगढ़ यूनिवर्सिटीमें आज भी है, जहां एच० जी० वेल्सकी पुस्तकें ही नहीं, आधुनिक राजनीतिक विचार-धाराओं—साम्यवाद, समाजवाद आदिके सम्बन्धका साहित्य भी पढ़नेका प्रोत्साहन नहीं दिया जाता—यह बात कुछ दिन पहले वहांसे प्राप्त रिपोर्टोंके आधारपर हम कह रहे हैं।

(३) हमारे साहित्यिकोंमें अगर ठोस राजनीतिक साहित्यका अध्ययन कर तत्सम्बन्धी साहित्य-सृजनकी प्रवृत्तिका अभाव है, तो हमारे प्रकाशकोंसे क्या आशा की जा सकती है, जो ऊंचे धरातलकी चीजें प्रकाशित करनेकी ही प्रवृत्ति नहीं दिखाते। एक बात और है। हमारा ख्याल है, आप बुरा न मानेंगे, यदि हम एक कठोर सत्य कहनेका साहस करें। हमारे अधिकांश प्रकाशकोंमें उच्च साहित्य—और वह भी राजनीति और अर्थनीति आदिका साहित्य—समझनेकी क्षमताका भी काफी अभाव है। जिस चीजको स्वतः वे समझ नहीं सकते, और जबर्दस्त मांग भी जिस चीजकी न हो, उसके प्रकाशनकी ओर वे भला कब ध्यान दे सकते हैं! प्रकाशन-व्यवसाय भी हमारे यहां अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्थामें है। यूरोप और अमेरिकाकी भांति यहां न तो ऐसे गिल्ड्स हैं, जो ऐसे विषयोंको उठा सकें, और न प्रकाशकोंमें ऐसी स्वतः क्षमता है, इसलिए हिन्दीमें राजनीतिक साहित्य-जैसे कितने ही अङ्ग यों ही पड़े हुए हैं।

(४) हिन्दीमें राजनीतिक साहित्यकी प्रकाशन-सम्बन्धी कुछ और कठिनाइयां भी हैं, जैसे पारिभाषिक शब्दोंका अभाव। साहित्यमें दूसरी भाषाओंके शब्दोंको लेकर अपना बनानेकी हमारी सङ्कीर्णता भी है। अंगरेजीको देखिये, उसने कितने ही शब्द दूसरी भाषाओंसे लिये हैं, फ्रेञ्च शब्दोंका अच्छा प्रतिशत अंगरेजीमें है, पर हिन्दीमें अभी ऐसे शब्दोंका अभाव है, जो आजकी समस्त विचार-धाराओंको बोधगम्य रूपमें प्रकट कर सकें। नागरी-प्रचारिणी-सभा और

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-जैसी संस्थाओंका यह काम है कि वे हिन्दीके चुने हुए विद्वानोंकी एक समिति बनायें और संसारकी आधुनिक विचारधाराको स्पष्ट करने लायक शब्द निर्धारित करें और इस बातका प्रयत्न करें कि वही शब्द समस्त हिन्दी प्रकाशनों और समाचार-पत्रोंमें प्रामाणिक माने जायें। अन्यथा हमारे लेखकों और पाठकों—दोनोंकी कठिनाइयोंका अन्त होनेका नहीं। दो शब्द लीजिये। Dialectic Materialism के लिए किसीने अगर द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद लिखा, तो किसीने परिवर्तनात्मक भौतिकवाद और किसीने और कुछ। ट्रेड यूनियन (Trade Union) के लिए हमने हिन्दीमें 'व्यापार-सङ्घ'का प्रयोग होते देखा है और अगर उसके साथ अंगरेजी शब्द ट्रेड यूनियन भी लिखा न होता और हमने 'व्यापार-सङ्घ'से अहमदाबादके मिल-मालिकोंकी कोई संस्था समझा होता, तो क्या अनुचित होता। 'ट्रेड यूनियन'का शब्दशः 'व्यापार-सङ्घ' अनुवाद ऊपरसे निर्दोष मालूम हो सकता है और इसीलिए खतरेकी सम्भावना भी अधिक है। पर ट्रेड यूनियनके पीछे इतने दिनोंका जो इतिहास है और इस शब्दसे जो बातें सुनते ही समझमें आ जाती हैं, उन सबकी हत्या 'व्यापार-सङ्घ'से हो जाती है। हमारा प्रति मासका यह व्यक्तिगत अनुभव है कि इस प्रकारकी भाषा-सम्बन्धी कठिनाइयां हिन्दीके सामने बहुत हैं। कितने ही लेखक ऐसे शब्द अंगरेजीमें लिखकर शेष वाक्य हिन्दीमें लिखते चलते हैं, लेकिन उसी रूपमें वे लेख निकल जायें, तो सिर्फ हिन्दी जाननेवाला खाक-पत्थर कुछ भी समझ न सके। इस कठिनाईसे भी हिन्दीमें राजनीतिक साहित्य तैयार होनेमें बाधा पड़ती है। हिन्दीमें यद्यपि 'राजनीतिक शब्दावली' जैसी दो-एक पुस्तकें हैं, जिनमें इस समस्याके समाधान करनेका प्रयत्न किया गया है, पर यह प्रयत्न सफल नहीं हो सका है। मि० चर्चिलने उस दिन कामन्समें जब कहा, "We may be attacked, we may be invaded even." तब उसका अनुवाद करनेका प्रयत्न करते ही हिन्दीकी कठिनाई स्पष्ट हो जाती है। साधारणतः हिन्दीमें अटैक (attack) और इनवेड (invade) के लिए अलग अलग ठीक पर्यायवाची शब्द मिलना मुश्किल है और आप इसपर यह सोचते हुए विचार कीजिये कि हिन्दी पत्रकारके सामने तीन बजे रातको यह भाषण मिलता है और दो घण्टेके भीतर इसका हिन्दी अनुवाद छापकर उसे पाठकोंके पास भेज देना है, जिनके पास इस अनुवादपर अपना निर्णय देनेका पत्रकारकी अपेक्षा कई गुना समय है। साथ ही जिम्मेदारी भी उतनी नहीं। तो हिन्दी-लेखकके सामने यह कितनी जटिल समस्या है, यह स्पष्ट हुआ।

(५) एक लम्बे अर्सेसे हिन्दुस्तान पराधीन है। हिन्दुस्तानकी राजनीतिका सञ्चालन अंगरेजी द्वारा हो रहा है। हिन्दीमें राजनीतिक साहित्यकी आम जनताने कोई उपयोगिता नहीं समझी। कैसी सरकार हो, जनताके उसके विरुद्ध क्या अधिकार हैं, क्या होने चाहिए, मताधिकार किसे कहते हैं, कैसे मिलते हैं, यह सब जाननेकी उसे जरूरत न थी, जब कि यह सब उसके पास न थे। राजनीतिक अधिकार उसके पास न थे, तब उन अधिकारोंका उपयोग करना वह कैसे जाने। हिन्दी गद्यका विकास अभी कल हुआ है, और अभी कल हमने अपने लिए सोचना शुरू किया है, ऐसी दशामें राजनीतिक भाषा, राजनीतिक साहित्य हमारे लिए दूरकी चीज रही है। हमारे वर्तमान साहित्यको ब्रजभाषाकी जो वसीयत मिली है, उसका उपयोग हमारे हिन्दीके वर्तमान कलाकार भी कर रहे हैं। एक जमानेसे हमने राजनीतिक उत्तरदायित्वोंसे अपनेको मुक्त कर कच, कुच, कटाक्षोंकी महिमा ही गायी, तो आज तक हम प्रेयसिके अधरोंमें ही अमृत खोजते जा रहे हैं! हमें दैनिक आवश्यकतायें समझनेकी प्रवृत्ति नहीं है, कला कलाके लिए—अर्थात् 'मैं अपने लिए' के सिद्धान्तका राग हमने आज भी अलापना छोड़ा नहीं है। "स्वान्तः सुखाय" रचनाओंकी आज भी वही पूजा हो रही है, क्योंकि कल्याण चाहनेवाला कठोर साहित्य हमें उतना नहीं अपील करता, जितना हमें प्रसन्न कर देनेवाली सस्ती भावुकता! अतः हमारा साहित्यिक अपनेको समाजकी इकाई मानकर लोक-शिक्षणको महत्त्व देनेकी अपेक्षा लोक-मनोरञ्जन करना ही अधिक चाहता है। और पाठकोंको देखिये कि वे दस-बीस तुकबन्दियोंके रचयिताका भी अभिनन्दन करनेको तैयार हो जायेंगे, जब कि राजनीतिके महान् लेखकको भी वे साहित्यिक माननेसे भी इनकार करेंगे!

और इन सबकी प्रतिक्रियायें कैसी हो रही हैं? एक ओर

राजनीतिक क्षमताका अभाव हमें तत्सम्बन्धी साहित्यकी रचना करने अथवा पढ़नेके लिए प्रोत्साहित नहीं करता और दूसरी ओर हमारी जातीय प्रवृत्तियां अभी उतनी सचेतन नहीं हो सकीं। हमने राजनीतिक अधिकारोंकी बात इसी प्रसङ्गमें कही है। आप देखेंगे कि अरस्तू और कौटिल्यने एक जमानेमें राजनीतिकी बातें बतायीं, क्योंकि उनके लिए उनकी व्यावहारिक उपयोगिता थी, पर जबसे हिन्दीने अंगड़ाइयां ली हैं, हिन्दी भाषा-भाषियोंके लिए उसकी कोई खास उपयोगिता नहीं रही। ज्यों-ज्यों अधिकार मिलते गये हैं, तत्सम्बन्धी साहित्य भी बढ़ता गया है। इसका उल्टा भी कुछ अंशोंमें ठीक है, हमारी राजनीतिक चेतनाका अभाव भी हमारी राजनीतिक क्षमताके अभावके लिए जिम्मेदार है, पर परिणाम अन्ततः यही रहा कि हमारे पास ऐसे साहित्यका अभाव रहा।

इस विषयको हम और अधिक बढ़ाना नहीं चाहते। आपके सामने हमने कुछ तथ्य रखे हैं, हिन्दी साहित्यकी महान् सम्भावनायें हमने आपके सामने रखी हैं, हिन्दीका भविष्य उज्ज्वल है, यह भी हमारा विश्वास है, पर इन सबके साथ हिन्दीकी जिम्मेदारियां भी बहुत बड़ी हैं। हिन्दी आज राष्ट्र-भाषा होने जा रही है और जब हिन्दीका यह दावा है, तब हिन्दीको इस दावेके योग्य अपनेको प्रमाणित भी करना होगा। हिन्दी-साहित्यमें कविता छोड़कर और कुछ भी नहीं है, यह हम आज काफी अर्सेसे सुनते आये हैं—आज भी सुन रहे हैं। श्री रवीन्द्रनाथसे, हमें स्मरण है, भरतपुर साहित्य-सम्मेलनके अवसरपर एक सन्देश मांगा गया था, जिसपर रवीन्द्रनाथने कहा था कि तुम अपनी भाषाको उन्नत करो, लोग स्वतः उस ओर आकर्षित हो जायेंगे।

कितनोंको यह बात खटकी थी, पर कितनोंने इसके लिए प्रयत्न किया।

इसीलिए आज जब दुनिया नये चेहरे बदल रही है, जब मनुष्यके सामने अनेक नयी समस्यायें आयी हैं, नये प्रश्नोंको लेकर लोग उलझ रहे हैं, और इन सारे प्रश्नोंकी तहमें राजनीति एवं अर्थनीति छिपी बैठी हैं, तब इनकी उपेक्षा हम नहीं कर सकते। आवश्यकता है कि हम इनके सम्बन्धमें नये भावोंसे अनुप्राणित हो, साहित्य-सृजन करें। जिस जातिके बच्चे राजनीतिका ककहरा भी नहीं जानते, उसके सम्बन्धमें मिल्टनकी शुरूकी पंक्तियोंके अनुसार संसारकी क्या धारणा होगी? इसलिए हमारा अनुरोध है कि आप समस्याकी गम्भीरता समझें, जैसा कि आप समझ रहे हैं, और इसे सुलझानेका आप प्रयत्न करें, जैसा कि आपसे हमें आशा है। राजनीतिक साहित्यके अभावकी बात हमने कही है, जिसमें प्रारम्भिक बातोंके अतिरिक्त ऊंची बातें भी हैं। जिस यूरोप और अमेरिकामें यह साहित्य खूब विकसित हो रहा है, वहां भी इस दिशाको और भी उन्नत करनेके प्रयत्न जारी हैं और हमारे लिए, जिनके लिए यह प्रारम्भिक आवश्यकतायें हैं, यह उपेक्षाके विषय बन रहे हैं। हमें स्मरण आता है कि कुछ वर्ष पहले, सम्भवतः १९३९ में, पेरिसमें यूरोप और अमेरिकाके साहित्यिकोंका एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ था, जिसमें अनेक विषय विचारार्थ उपस्थित थे। उनमें संस्कृति, मानवता और राष्ट्रीयता, मानवता और व्यक्ति, श्रमजीवी मानवता (Proletarian Humanism) व्यक्ति और राज्य, लेखक और मजदूर, राष्ट्रीय संस्कृतियोंका पारस्परिक सम्बन्ध, राष्ट्रीय संस्कृतियां और मानवता, राष्ट्रीय संस्कृतियां और सामाजिक वर्ग, वर्ग और संस्कृति, राष्ट्रीय अल्पसंख्यकोंका साहित्यिक आत्म-प्रकाश, राष्ट्रीय वास्तविकताके विरुद्ध राष्ट्रीयता (Nationalism as opposed to the national realities) युद्ध और संस्कृति, औपनिवेशिक जातियोंका साहित्य, जनता और लेखक, सोवियट साहित्यकी शिक्षायें, साहित्य और श्रमजीवी, समाजके दर्पण और आलोचनाके रूपमें साहित्य, आदि विषय प्रमुख थे। इस विषय-सूचीके कितने प्रश्न हैं, जिनपर हमारे साहित्यमें प्रकाश मिलेगा?

लेकिन यह अभाव जहां तथ्यके रूपमें हमारे सामने आते हैं, वहां इनके निराकरणकी ओर भी इनसे सङ्केत मिलना चाहिए। और यह सङ्केत समस्त हिन्दी-संसारसे है। इस दिशामें लगनके साथ ठोस काम होनेकी आवश्यकता है।*

———

*स्थानीय हिन्दी-साहित्य-गोष्ठीमें ७ जुलाई १९४० को पठित।

वह बोली ही नहीं

श्री विष्णु

घड़ी-भर पहले जिस घरमें उछाह और आनन्द छलका पड़ता था, वहीं अब सन्नाटा छा गया। न जाने घरकी दासी विशाखाने क्या देखा कि आंखें चढ़ाकर फुस-फुस कर उठी—'बापरे......!'

और फिर क्षण-भरमें एक कानसे दूसरे कान तक यह बात उड़ चली कि विधवा सुमित्रा विवाहके सब पवित्र कामोंमें आगे रहेगी। उसके बिना पत्ता भी न हिलेगा। यह जैसे बारूदके पलीतेमें आग देनेकी बात थी। कई दिनसे यह युवती विधवा खटक तो सबको रही थी, पर बाहरकी आयी-गयी स्त्रियोंमें इतना साहस कहां था कि घरकी मालकिन भगवतीको यह सुझातीं कि बहू! लड़कीके विवाह-टेहलेमें विधवाकी छाया भी नहीं पड़नी चाहिए। पर आज बिना सुझाये यह बात भगवती तक पहुंच गयी। तेल चढ़ानेकी बात थी। बड़ी—बूढ़ी स्त्रियां उत्साहसे भरी गीत गा रही थीं। और जो युवती थीं, वे बनी-ठनी, गहनों-कपड़ोंसे लदी इधरसे उधर आ-जा रही थीं। उन्हें विवाहकी इतनी चिन्ता नहीं थी, जितनी अपने गहनों और कपड़ोंकी कि कोई देखे और कहे—'अरे, तुम्हारा हार तो बड़ा भारी है।'

'तुम्हारी साड़ीकी चमक इन्द्र-सभाको मात करती है।'

'तुम्हारा झूमर कितना सुन्दर है?'

'अरी, तेरे कर्णफूल किसने बनाये थे, भला?'

और उत्तरमें वे सब भामा, मालती, सत्या और प्रभावती गद्गद होकर मुस्करा उठतीं। उस मुस्कराहटके सामने शब्दोंकी भाषा हार मान लेती। उन्होंने भी यह बात सुनी और सुनकर कोई हंसी, तो किसीने दांतों-तले उंगली दाबी—'यह भी कहीं होता है।' भगवती उस समय दीवानखानेमें पतिसे कुछ जरूरी सलाह कर रही थी कि अभी तक कौन-कौन नहीं आया और उन्हें लेने आज ही किसे जाना चाहिए। उसकी पहली सन्तानका विवाह था। खुशीसे उसका रोम-रोम फूला था और दिन-भर पिसकर भी उसके चेहरेकी आभा बढ़ती ही जा रही थी। इसी समय, जब बाहर नौबतखानेसे तुरहीकी आवाज उसकी छातीमें हिलोरें पैदा कर रही थी, उसे यह समाचार मिला। सुनकर वह जल उठी। झपटी-झपटी विशाखाके पास आयी। बोली—किसने कहा तुमसे?

विशाखा कांपी तो, पर बोली—बिटिया ही कहती थी, मांजी! और फिर सुहाग-पिटारी तो मैंने आप ही सुमित्राके हाथमें देखी थी।

भगवती क्या कहती? उसका मुख फीका पड़ गया, आंखें जल उठीं। आसपास खड़ी स्त्रियां अवसर न चूकीं। सहानुभूतिसे भरकर एक बोली—बहू! तुम समझदार हो। इस लड़कीको तुमने रखा ही क्यों?

दूसरीने कहा—भगवती! ऐसी शुभ घड़ी कब आती है? उस लड़कीको कहीं भेज दे!

तीसरी बोली—ठीक है। यहां रहेगी, तो लड़की जिद करेगी।

चौथी भी चुप न रही—न जाने इस बातका क्या फल हो! जन्म-भरकी विपता है यह! और न जाने क्या-क्या उन्होंने सुझाया कि शुभ कर्मोंमें अशुभ हाथ लगते देखकर देवता क्रुद्ध हो जाते हैं। विधवा अशुभ है और उसकी छाया पापकी छाया है। उसे तो लड़कीके पास भी नहीं आना चाहिए। भगवती सुनती ही रही, बोली नहीं। उसका मन भयसे कांप रहा था। वह अपनी लड़की सुभद्राको जानती थी। लाड़-प्यारमें पली वह लड़की स्कूलमें दसवीं तक पढ़ आयी थी। उसे कैसे समझा सकेगी यह, वह नहीं समझ पाती थी। वह वहांसे हट गयी और उसे बहुत पुरानी बातें याद आने लगीं। लगभग तीन वर्ष पहलेकी बात थी। कार्तिक-स्नानके समय उनका डेरा गङ्गा-तटपर लगा था। पिताके साथ सुभद्रा नदीके पार मेला देखने गयी थी। वह डेरेमें बैठी-बैठी गङ्गाकी पवित्र धाराको देख रही थी कि निरत कल-कल करती गङ्गा बह रही है। सदा-सदासे लोगोंने उसे बहते देखा। शायद सदा-सदा तक वह ऐसे ही बहती रहेगी। उसे बहते रहनेमें सुख है। रुककर उसने कभी न देखा कि कौन-कौन उसके तटपर आया? कौन-कौन उसके वक्षपर कूदा? कौन-कौन उसके उदरमें सदा-सदाके लिए समा गया?

निर्लिप्त-सी वह एक बात जानती है—'मुझे बहना है और मैं बह रही हूं।'

ऐसी ही गङ्गाको भगवती देख रही थी या करुणासे गद्-गद होकर पति, पुत्र, पुत्रीकी मङ्गलकामना कर रही थी कि सुभद्रा आकर बोली—'मां!'

'बेटी।'—भगवतीने कहा और अचरजसे देखा—भयसे कांपती एक और लड़की उसके साथ है। देखकर बोली—कौन है यह?

सुभद्राने कहा—इसका नाम सुमित्रा है। यह विधवा है और...। जैसे कहती-कहती सुभद्रा लड़की तेज हो उठी। आंखें चमक आयीं और वह बोल न सकी। भगवतीको अचरज हुआ, बोली—क्या है सुभद्रा?

लेकिन सुभद्रा नहीं बोली। सुमित्राने ही उसे बताया कि वह ससुरके साथ स्नान करने आयी थी। कल वे मेला देखने गये थे, अभी तक नहीं लौटे हैं और शायद लौटेंगे भी नहीं...। कहती-कहती वह सुमित्रा रो पड़ी। सुभद्राकी आंखें भी भर आयीं। भगवतीने परिस्थितिको समझा। विधवा नारी तीर्थमें रहा करती है—यह वह जानती थी; लेकिन सुमित्रा-जैसी विधवासे वह क्या कहे, यह वह समझ न सकी कि सुभद्रा बोली—'मां। एक बात कहती हूं।'

'कहो बेटी।'

गिड़गिड़ाती-सी सुभद्रा बोली—'सुमित्राको अपने घर रख लो मां।'

'अपने घर?'—भगवतीने अचकचाकर कहा।

'हां, मां! तुम मना मत करना। मैं भीख मांगती हूं।'—ऐसा कहती-कहती पढ़ी-लिखी लड़की सुभद्रा रो पड़ी। भगवती घबरा गयी। उसने सुभद्राको छातीमें भरकर कहा—'तुम रोने क्यों लगी, बेटी? तुम्हारे पितासे पूछकर हम सुमित्राका ठीक-ठीक प्रबन्ध कर देंगे।'

और उसने सुमित्राका हाथ पकड़कर अपने पास बिठा लिया। गौरसे देखा कि युवती विधवाकी सूरत कितनी भोली है! कितनी गहरी वेदना उसकी छातीमें भरी है! धीरे-धीरे उसने सब कहानी सुन ली। समझ लिया कि जवान और खूब-सूरत विधवा कुलमें कलङ्कका कारण होगी, यह सोचकर धर्म-भीरु वृद्ध ससुर उस राक्षसीको माता गङ्गाको सौंप गये हैं। जैसे उन्होंने माना था कि गङ्गाके किनारे उनकी सुन्दर विधवा बहू जो पाप कमावेगी, वह उनके लेखेमें न लिखा जाकर जलकी धारामें बह जावेगा...! और अपने कमरेमें बैठे-बैठे भगवती सोच गयी कि किस प्रकार न चाहकर भी वह सुमित्रा-को अपने साथ ले आयी थी। सुभद्राकी बात और फिर उसके मनकी करुणा, दोनोंकी इकट्ठी शक्तिके सामने समाज-का भय ठहर न सका। अचरज तो यह कि उसके बाद किसीमें साहस भी नहीं हुआ कि कोई कहे—भगवती! तुमने अपने घरमें पापका वृक्ष लगाया है। जो सामने छाती खोलकर खड़े होते हैं, समाज उनसे डरता है। अन्यायका शासन तो कापुरुषोंपर होता है। सुभद्रा जो पढ़ी-लिखी लड़की थी, उसने अपनी बुद्धि और स्नेहको लेकर मांको शक्ति दी कि ठहरकर जवाब दे सके। लेकिन आज परिस्थिति दूसरी थी। आज तक सुभद्राके लिए ही उसने सुमित्राको बेटी मानकर रखा और आज सुभद्राके लिए ही उसके मनमें सुमित्राके प्रति एक भाव पैदा हुआ, जिसे वह ठीक-ठीक नहीं समझ पा रही थी। उसे सोचते-सोचते वह बीच ही में उमड़ आती थी। कैसे सोचती वह कि सुमित्राको ठीक विवाहके दिन घरसे बाहर भेज दे?

नहीं, नहीं!—उसने सोचा—मैं उसे न कह सकूंगी।

लेकिन—मनने धीरेसे कहा—तुम्हारा बेटीके सुहागका सवाल है!

बेटीका सुहाग......वह फुस-फुस कर उठी कि शीघ्रतासे खट-खट करती सुभद्रा वहां आगयी। उसका मुंह तमतमा रहा था। आंखोंकी लज्जा जो कई दिनसे उमड़ी पड़ती थी, आज सहसा दूर हो गयी थी। वह तीव्र स्वरमें बोली—'यह सब क्या है, मां?'

भगवती हंसी और कांपी—'क्या है, बेटी?'

'कि तुम सुमित्राको गांव भेज रही हो।'

'सुनो बेटी......।'

'सुनूंगी मां। पर कहती हूं, सुमित्रा मेरे रहते कहीं नहीं जा सकती। सुहाग मेरा फूटेगा। मैं संभाल लूंगी...।'

'क्या कहती हो बेटी......।'

'ठीक कहती हूं, मां। सारे घरमें फुस-फुस हो रही है। हाथ नचा-नचाकर विशाखा न जाने क्या-क्या कह रही है और सुमित्रा रोती चली जा रही है। यह सब क्या है और उन लोगोंका सुमित्रासे क्या सम्बन्ध है?'

भगवती घबरा रही थी, पर हंसती-हंसती बोली—'वे सब तुम्हारे भलेके लिए कहती हैं बेटी! और फिर तीन-चार दिन-की बात है। बिदाके दिन उसे बुला लूंगी। सच कहती हूं, बेटी......।'

'सच-झूठ मैं नहीं जानती, मां।'—सुभद्रा सहसा द्रवित हो आयी—'सुमित्रा तुम्हारे पेटकी होती, तो क्या करती, मां! एक दिन हाथ जोड़कर तुमसे मैंने भीख मांगी थी कि सुमित्रा अनाथ है। उसे अपनी बेटी......।'

और आगे न बोल सकी, रो पड़ी। भगवती जो मां थी, बेटीको छातीमें भरकर करुणासे बोली—आज तक बेटी ही तो समझ रही हूं। तू कह तो! इस अवसरपर उसे भेजते छाती फटती है, पर मैं क्या करूं? छातीका फटना ही तो सब कुछ नहीं है। अपनेको छुड़ाते-छुड़ाते सुभद्राने कहा—सब कुछ क्या है, यह मैं नहीं जानती; पर कहती हूं, सुमित्रा जायेगी, तो मैं भी जाऊंगी......।

चुनौती देकर सुभद्रा चली गयी। भगवती कांप उठी। उसका हृदय धक-धक कर उठा।

(२)

उधर सुमित्रासे भी यह बात छिपी नहीं थी। जबसे उसने सुना था, एक द्वन्द्व-सा उसके दिलमें मच रहा था। ऊपर एकान्तमें दीवारसे सटकर आसमानकी तरफ देखती-देखती वह बहुत-सी बातें सोच गयी कि कभी वह भी मां-बापकी लाडली थी। कभी प्यार-दुलारकी लोरियोंमें उसका भी लालन-पालन हुआ था और कभी इसी प्रकार मङ्गल-गानकी हुल-हुल ध्वनिमें एक दिन लाल चंदोवेके नीचे उसने भी एक युवकके साथ अग्निकी सात परिक्रमा कर अपना पति पाया था। फिर यह भाग्यकी बात थी कि विवाहके साल-भर बाद ही उसकी मांगका सिन्दूर पुछ गया और उसके अरक्षित यौवनकी बात पर खोलकर उड़ चली।

फिर यह बात भी उसे याद आयी कि सास-ससुरने उसे कलङ्किनी कहा। गली-मोहल्लेवाले उसकी छायासे भागने लगे, लेकिन पड़ोसके युवक कभी आंख उठाकर उसे देख लेते और लम्बी सांस खींचकर पाससे गुजर जाते। सासने एक दिन कहा था—इन बालोंको काट डाल। कौन है जो इन्हें देखेगा? यह सुनकर जैसे वह कांप उठी थी। बालोंने क्या अपराध किया है? यह वह जान न पायी थी। इसीलिए उसने बाल काटे भी नहीं। कानोंके कर्णफूल भी वैसे ही पड़े रहे और पैरके बिछुये बड़ी कठिनतासे वह निकाल सकी थी। सफेद धोती पहिननेकी बात भी उसे न रुची। वह जानती थी, मेरा भाग्य फूटा है; पर फूटे भाग्यपर गूदड़ लादनेकी क्या जरूरत है? और फिर अभी वह बच्ची ही तो थी। हृदय भी था और उसमें निरत धक-धक भी होती थी। धक-धककी वाणी जो कुछ कहती, उसे उसका यौवन अनसुना भी न कर पाता था। इसी कारण सासने एक दिन ससुरसे कहा—'सुनते हो। यह कुलबोरन है।'

ससुर बोले—'सच?'

'हां! कुलको कलङ्क लगावेगी......।'

और फिर दोनोंने देर तक फुस-फुस की। किसी युवकका नाम ही उसने सुना था, बाकी कुछ नहीं; पर अचरज तो यह हुआ कि कार्त्तिक-स्नानपर सासने कहा—बहू! तेरे ससुर गङ्गाके मेलेपर जा रहे हैं। तू भी चली जा। तूने कब दुनिया देखी है। तीर्थ है और तीर्थपर देवता बसते हैं।

सुमित्रा तब कांपी थी, क्योंकि सासने अतीव करुणासे भरकर उसे विदा किया था। ना कहने पर रास्तेके लिए ढेर-सारी पूरियां बांध दीं और दस रुपये देकर बोली—परदेशमें न जाने क्या हो? पासका पैसा वक्तपर काम आता है।

और उसके बाद......।

यह उसके जीवनका खुला पृष्ठ था। पागल-सी अपने डेरेमें बैठी वह ससुरकी बाट देख रही थी कि अब आवें, अब आवें! वह 'अब' इतना बड़ा हुआ कि पूरे २४ घण्टे बीत गये, लेकिन 'अब आवें' का अन्त नहीं आया। उसका दिल भय और करुणासे उमड़ आया। फूट-फूटकर रोने लगी। आसपासके लोगोंको शङ्का उठी और तीर्थके पण्डे शिकार जानकर जाल लेकर दौड़े; पर उसका सौभाग्य कहिये अथवा दुर्भाग्य कि सुभद्राके साथ उसके पिता वहीं आ गये। परि-स्थिति समझकर बोले—'अपना पता तो बता सकोगी न?'

'पता'—उसने सिसकते-सिसकते कहा—'अब वहां न जाऊंगी मैं।'

'तब......।'

'किसी अनाथालयमें पहुंचा दो मुझे।'

वे सोचमें पड़ गये कि सुभद्रा बोल उठी—'अपने डेरेपर ले चलो, पिताजी।'

'डेरेपर......।'

'हां पिताजी।'—और सुमित्राके करीब जाकर बोली—'हमारे डेरेपर चलोगी ?' सुमित्रा चौंक पड़ी। उसने देखा कि उसकी आयुकी एक सुन्दर लड़की उसपर सदय होकर अपने घर चलनेको कह रही है। उसे करुणासे भय लगने लगा था, पर सासकी करुणा और इस लड़कीकी करुणामें उसने एक अन्तर पाया, इसीसे बोली—'चलूंगी बहिन !'

और तबसे आज तक इसी लड़की सुभद्राकी करुणा-ममताके सहारे वह जीवनके मार्गपर बढ़ी जा रही है। उसने सदा ही इस घरको अपना समझा। सदा ही उसने सुभद्राके मां-बापसे वही स्नेह पाया, जो सुभद्राको मिला था। एक दिन भी उसने न जाना था कि वह अनाथा विधवा और दूसरोंके टुकड़ोंपर पलनेवाली तिरस्कृत आत्मा है; पर आज जैसे यह सब साकार बनकर उसके सामने आ खड़े हुए। मानो उसने आज साफ-साफ सुना—अभागिन नारी ! अपना सुहाग खोकर दूसरोंके सुखमें भी कांटा बनकर आयी है...!

और यही सोचकर वह फूट-फूटकर रो पड़ी। खूब रोयी, आंखें सुर्ख हो गयीं। दिल फटा पड़ने लगा। जीमें आया, छतसे कूदकर प्राण दे दे। क्या जरूरत है इन प्राणोंकी, जिनके प्रति किसीके मनमें न करुणा है, न ममता। जो योंही भार बनकर जी रहे हैं। दुनियामें उनका अपना कोई भी नहीं। कोई भी नहीं......।

वह उठती कि उसी समय भगवती उसे ढूंढ़ती-ढूंढ़ती वहां आगयी। क्षण-भर उसे देखा, फिर बोली—सुमित्रा ! बेटी, तुम रोती हो !

सुमित्रा हठात् चौंक पड़ी। संभलकर बोली—नहीं तो, मां।

लेकिन भगवती जानती थी। उसने कहा—रोनेकी बात है; पर बेटी ! कभी-कभी यह रोना सहना भी पड़ता है। तुम भी सह लो। दो-तीन दिनकी बात है। बिदावाले दिन तुम्हें फिर यहीं बुला लूंगी।

सुमित्रा कांप उठी। बोली नहीं।

भगवतीने पास आकर उसे छातीमें भर लिया, कहा—बात दिलकी होती है। उससे मैं तुम्हें दूर न होने दूंगी बेटी। परन्तु......

कि सहसा उसकी वाणी रुंधने लगी। सुमित्राने यह सब देखा और साहस जैसे उसमें उमड़ आया, बोली—मां ! मैं जानती हूं। आप जो कहेंगी, वही करूंगी। वह यह बात कह गयी कि मांका दिल बंधा रहे। वह बंधा भी रहा, पर उसका अपना दिल......।

उसे तो टूट जाना ही चाहिए था।

× × ×

भगवतीको शान्ति मिली; पर वह जानती, कि काम आसान नहीं है। इसी कारण विवाहके घरमें आनन्दके काम करते-करते भी उसका मन वेदनासे भरा ही रहा और फिर सुमित्राको वह प्रेम भी इतना करने लगी थी कि उसके भेजनेकी बात उसके दिलको काट रही थी। परन्तु बात बेटीके सुहागकी थी। बेटीके जीवन-मरणका प्रश्न था और सुमित्रा स्वयं भी तो शङ्काका प्रत्यक्ष प्रमाण थी। उसके विरोधमें तर्क करनेवाला कोई भी न था। अपने ही मनमें शङ्का पैदा हो जाती थी। परन्तु वह तो डिक्टेटरके सामने विरोधी पक्षकी जैसी बात थी।

और इसी उधेड़-बुनमें दिन बीता, सन्ध्या आ गयी। प्रकाश जगमग-जगमग कर उठा। खाने-पीनेकी बात हुई। फिर रात-भर नाचने-गानेके लिए सब आयीं-गयीं नीचे आंगनमें जमा हुईं। भगवती भी थी; पर मन उसका खिन्न था। इसी कारण जल्दी लौट आयी और अपने कमरेमें बैठकर विचारोंमें डूब गयी। बाहर चन्द्रमाका स्वच्छ प्रकाश फैला था। खिड़कीकी दरारोंसे होकर कुछ किरणें कमरेमें आकर बिखर गयीं। भगवतीने उन्हें देखा और सोचा—इन किरणोंकी तरह मैं भी स्वतन्त्र होती, तो......।

तो......किसीने प्रश्न किया।

लेकिन प्रश्नका उत्तर वह न दे सकी और फिर सुमित्राकी बात किरणोंके ऊपर उठकर उसके सामने आ गयी। उसने सोचा, सवेरे जब 'रतजगे' की थकानसे दबी हुई सब सो रही होंगी, तो वह सुमित्राको भेज देगी......।

भेजनेकी बात याद आते ही उसकी छाती फिर फटने लगी......।

उसने कहा—क्यों न किसी पड़ोसीके घर ही वह रहे ?

लेकिन फिर तर्क उठा—सुभद्रासे वह छिप न सकेगी। यह तर्क प्रबल था। वह झुक गयी। सोचा उसने, गांव चले जानेपर तो लौटना जरा मुश्किल है। सुभद्राकी जड़ी भी तो

लौटानेमें एक दिन लगेगा। यही बात उसे ठीक लगी, मानो डूबतेको तिनकेका सहारा था। दिल तो उसका अब भी धक-धक कर रहा था। पतिको भी तो सारी बातें समझानी थीं। वह उठी और खिड़कीके किवाड़ खोल दिये, मानो वह घुट रही थी और मुक्ति चाहती थी। ढेरका ढेर चन्द्रमाका प्रकाश उसके ऊपर बिखर गया। वह अन्दर ही अन्दर मुसकरा उठी और बाहरकी निस्तब्ध रात्रिका शब्दहीन गान सुनने लगी। नीचे चौकसे नाच-गानेकी हुल-हुल-ध्वनि आ रही थी, पर बाहरकी दुनियामें जङ्गलके वृक्ष-पौदे और नगरके भवन-खंडहर प्रकाशकी धवल चादर ओढ़े मौन निस्तब्ध खड़े थे। इसी प्रकार बाहरकी भगवती शान्त थी, पर भीतर एक तूफान मचा था कि ठीक इसी समय किसीके नीचे उतरनेकी आवाज उसके कानोंमें पड़ी। वह चौंकी। झांककर देखा—एक स्त्री बाहर जीनेसे होकर नीचे उतर रही है। कौन है यह?

'कौन?' उसने पुकारना चाहा कि वह सिरसे पैर तक कांप उठी। उसने पहचाना, वह सुमित्रा थी। एक सफेद धोती पहिने चुपचाप खाली हाथ चली जा रही थी।

कहां जा रही है यह आधी रातको?—भगवती फुसफुस कर उठी।

और फिर चाहा कि स्वाभाविक रूपसे जोरसे पुकारकर कहे—सुमित्रा! ओ बेटी। कहां जा रही हो इस समय?

लेकिन अचरज कि उसकी आवाज नहीं निकली। किसीने उसका गला दबा लिया। वह बोल नहीं सकी। वह बोली ही नहीं......!

आपका पुनर्जन्म होना आवश्यक है

श्री सन्तराम, बी० ए०

स्व वह नहीं है, जो जन्मके साथ आपको मिला होता है। यह वह है, जिसे आप अपने दैनन्दिन जीवनमें निरन्तर उत्पन्न कर रहे हैं। जिन अनुरागोंको आप उत्पन्न करते हैं, जिन विचारोंको आप अपने मनमें उठने देते हैं, जिन आदर्शोंके पीछे आप चलते हैं, जिन प्रतिक्रियाओंमें आप आनन्द लेते हैं, उन्हींपर उस स्वका सबल या निर्बल, ऊसर या उर्वर और दुःखद या सुखद होना निर्भर करता है।

जीवनकी सबसे बड़ी सिद्धि अपने आपको निरन्तर बार-बार नये सिरेसे बनाते रहनेमें है, यहां तक कि अन्तको आपको ज्ञान हो जाय कि जीना कैसे चाहिए। "आपका पुनर्जन्म होना आवश्यक है," यह बात जितनी परम्परागत ब्रह्मविद्यामें सत्य है, उतनी ही अभिनव मनोविज्ञानमें भी। प्रत्येक क्रोध, जिसको आप प्रोत्साहित करते हैं, प्रत्येक रोष, प्रत्येक नैराश्य, प्रत्येक अभिमान—और, इसके विपरीत, प्रत्येक आत्मसंयम, प्रत्येक उच्च तितिक्षा, नम्र सत्यसे प्रत्येक टक्कर—स्वको या तो भङ्ग करती है या सुदृढ़ बनाती है।

जब "इससे क्या लाभ?" का भाव आपपर छाने लगे, तो किसी ऐसे जीवन-चरितको पढ़ना आरम्भ कर दीजिये, जिसके पन्ने उन महान् आत्माओंकी कथाओंसे देदीप्यमान् हैं, जिन्होंने आत्माको सारथी और शरीरको उसका वाहन बनाकर दिखाया था। महात्मा ईपिक्टेटसके शब्दोंको स्मरण कीजिये, जिन्होंने कहा था, "याद रखो, प्रत्येक भोजमें दो पाहुनोंको खिलाना होता है—एक शरीर और दूसरा आत्मा; और कि जो कुछ आप शरीरको देते हैं, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है; परन्तु जो कुछ आप आत्माको देते हैं, वह सदाके लिए बना रहता है।"

ईपिक्टेटसकी आत्मकथा संसारकी एक बहुमूल्य वस्तु है। वह पहले एक गुलाम था, लंगड़ा था, जीवनको सुखी बनानेवाली वस्तुओंकी दृष्टिसे नितान्त निर्धन था। परन्तु उसने बलपूर्वक आत्माको शरीरका स्वामी बनाकर अपनेको सब युगोंकी एक महान् विभूति बना दिया। उसने संसारको ऐसे विचार दिये, जिनसे इच्छा रखनेवाले स्त्री-पुरुषोंने अपनेको अधिक सच्चे अर्थोंमें जीवनके स्वामी बना लिया।

राबर्ट लुई स्टीवन्सन एक समय बहुत अधिक बीमार हुए थे। उनके जीनेकी कोई आशा नहीं थी। रोगके साथ

घोर संग्रामके बाद उन्होंने जो पत्र लिखा, वह स्मरण रखने योग्य है। वे लिखते हैं—"तो भी मैं मरना नहीं चाहता था। मैं अनुभव करता था कि मैं अभी तक कोई ऐसा शुभ कार्य नहीं कर पाया, जिससे मेरा जीवन सफल कहला सके; मैंने अपने ऊपर कई ऐसे दायित्व ले रखे हैं, जिनको परे फेंकनेका मुझे अधिकार नहीं; मेरे लिए मरना कायरता और युद्धसे भागनेके समान होगा।"

स्टीवन्सनके वीरतापूर्ण शब्द इतिहासमें महान् आत्माओंका एक नमूना हैं। शायद यह हेलन कलर थी, जिसने कहा था, "यद्यपि यह संसार दुःखोंसे ठसाठस भरा है, तो भी इन दुःखोंपर विजय पानेवाले भी इस जगत्में बहुतेरे हैं।" उसके ये शब्द बिलकुल स्टीवन्सनके ही रङ्गमें रंगे हैं। सर वालटर स्काटका सेक्रेटरी कहता है कि मरणासन्न अवस्थामें यद्यपि स्काट पीड़ासे कराहकर बोल रहा था, तथापि उसने काम करना बन्द करनेसे इनकार कर दिया। उसने केवल इतनी ही प्रार्थना की कि "दरवाजे बन्द कर दिये जायं, ताकि मेरे कराहनेका शब्द मेरे परिवार तक न पहुंचे।" स्काट उस विचारपर आचरण कर रहा था, जिसे बादको स्टीवन्सनने इस सजीव वाक्यमें प्रकट किया—"सच्चा स्वास्थ्य इस बातमें है कि मनुष्य इसके बिना भी काम चला सके।"

ये वे लोग हैं, जिनके नाम संसार जानता है। परन्तु अंधेरी छोटी-छोटी कोठरियोंमें, गन्दे खेतोंमें, कामसे चकनाचूर दफ्तरोंमें, नगरके बाजारोंमें विषम कार्य करते हुए, और उन लोगोंमें, जिनके जीवन भाग्यके वाम होनेसे उलट-पलट हो गये हैं, आपको इनके योग्य साथी मिल सकते हैं। एक ऐसा ही सज्जन लिखता है, "कभी-कभी मुझे प्रसन्नता होती है कि मुझे परीक्षाओंमेंसे होकर निकलना पड़ा, क्योंकि इनसे मुझे मनकी शान्ति, दूसरोंको समझने और उनकी बातको सहारनेकी शक्ति प्राप्त हुई है।" मनुष्य शान्तिमें रहेगा या विषादमें—और अधिकांशमें उसका शरीर तन्दुरुस्त रहेगा या रुग्ण—इसका निश्चय उसके बाहरसे कमाये हुए धनसे नहीं, वरन् भीतरसे विकसित किये हुए स्वसे होता है।

हितकर जीवनके लिए मानसिक आत्म-प्रभुत्व—रचनात्मक विचार-निर्देशका स्वभाव—शारीरिक स्वस्थताकी अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। भावनामय शक्ति जो, आपके विचारोंको मिली है, या तो सर्वनाशकी ओर ले जायगी या उत्पत्तिकी ओर। अब यह आपकी अपनी इच्छा है कि इस शक्तिको किसी भावनाके केवल भावुक उपयोगमें नष्ट होने दें या किसी साहस एवं उच्चाकांक्षापूर्ण कार्यकी ओर आपको ढकेलने दें।

बह जानेवाले व्यक्तिके सिरमें जो भी विचार आ जाता है, वह उसे दबानेके बजाय उसे ही सोचने लगता है, और जो भी भावना उठती है, वह उसीके अधीन हो जाता है। परन्तु जो मनुष्य ऐसा स्व बनानेमें लगा है, जिसके साथ वह किसी प्रकारके सुखमें रह सकता है, वह व्यर्थ सोचते रहनेके स्वभावोंको निरन्तर रोकता रहता है और भावुकताके अधीन होकर कभी क्रोध, रोष, लागडाट, आलोचना या निराशाका चिन्तन नहीं करता। वह उद्धार करनेवाली भावनाओंको जानबूझकर बढ़ाता है। भीतरी साथीके रूपमें एक ऐसे स्वकी आवश्यकता होनेके कारण, जिसमें सन्तुलन, बल और साहसपूर्ण उच्चाकांक्षा हो, वह अपने हाथके नीचे कोई एक ऐसी पुस्तक रखता है, जो बड़ा बननेके लिए उत्तेजित करती है; वह अपने-आपको ईपिक्टेटस, स्काट और स्टीवन्सन-जैसी महान् आत्माओंके साहचर्यमें अपना दैनन्दिन जीवन बिताना सिखाता है, जिन्होंने अपने मन एवं आत्माके बलसे उन कठिनाइयोंको जीता था, जो सम्भव था कि उनके जीवनोंको ही नष्ट कर देतीं। वह जब तक जीता है, वृद्धि और विकासको ही अपने हृदयकी अभिलाषा बनाता है।

———



धर्मके व्यवसायी ये पण्डे और पुजारी

श्री व्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

आज हिन्दू-समाजके अन्तस्तलमें पतनकी जो भयानक शक्तियां काम कर रही हैं, उनका स्मरण करते ही हृदय दहल जाता है—आत्मा प्रकम्पित हो उठती है! हिन्दुओंका पतन बड़े ढङ्गसे हो रहा है। इनके सर्वनाशका विध्वंसात्मक चक्र आजसे नहीं, बहुत दिनोंसे चल रहा है और उसका प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ है कि हिन्दू जातिका जीर्ण-शीर्ण कलेवर आज अन्धकूपके किनारेपर खड़ा हुआ अपनी अन्तिम सांसें ले रहा है। उसकी सारी शक्तियां छिन्न-भिन्न हो गयी हैं, अङ्ग अस्त-व्यस्त हो गया है, स्वतन्त्रता नष्ट हो गयी है और उसका अन्तिम अवलम्ब—उसकी विशाल जनसंख्या भी, जिसका उसे सबसे अधिक गर्व था, दिनोंदिन क्षीण होती जा रही है। हिन्दुओंकी उदासीनता और अपरिवर्तन-शीलताने इस रोगकी जड़को इतना पुष्ट कर दिया है कि वह क्रमशः असाध्य होता जा रहा है। यदि कुछ दिनोंके भीतर ही—निकट भविष्यमें ही—इस ओर विशेष ध्यान न दिया गया, तो इस विशाल जातिका सर्वनाश एक निश्चित सत्य है।

इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दू-समाजके पतनके अनेक कारण हैं। लेकिन उन अनेक कारणोंमें एक कारण–और भयङ्कर कारण, हमारे धर्मजीवी हैं। किसने हिन्दू जातिको दिमागी गुलामीमें फंसाकर इस लोक और परलोकके स्वार्थोंकी स्वतन्त्र चिन्तनाके अधिकार छीन लिये हैं?—इन्हीं धर्मजीवियोंने! किसने असंख्य अन्धविश्वासों और ढकोसलोंकी सृष्टि करके हिन्दू जातिको प्रपञ्ची बनाया?—इन्हीं धर्मव्यवसायियोंने। किसने हिन्दू समाजको ऊंच-नीच, छुआछूतका भेद सिखा-कर संसारकी महा जातियोंके मनमें विरक्ति उत्पन्न की?—इन्हीं धर्मजीवियोंने!

मैं आपसे पूछता हूं कि क्या धर्म भी व्यवसायकी वस्तु है? क्या धर्म बेचा और खरीदा जा सकता है? क्या यह पाखण्ड नहीं कि धर्मको जब एक आदमी पुण्य समझे और तभी दूसरा उसे पैदा करनेका साधन?

आप सारे हिन्दुस्तानमें घूम आइये, धर्मके व्यवसायियों-की सर्वत्र भरमार है। इन व्यवसायियोंकी करोड़ोंकी आय-को देखकर आप कलेजा थामकर बैठ जायेंगे। चाहे और रोजगारमें भले ही नुकसान हो, पर इसमें नफा ही नफा है। अमीर और गरीब लोग अन्धों और कुबुद्धोंकी भांति अपनी गाढ़ी कमाई धर्म-खाते लगाते हैं। जिस देशमें ९० वर्षके भीतर १७ अकाल पड़ें और उसमें डेढ़ करोड़ आदमी भूखसे तड़प-तड़पकर मर जायं, जिस देशमें प्रति वर्ष १० लाख, प्रतिमास ८६ हजार, प्रतिदिन २८८०, प्रति घण्टे १२० और प्रति मिनट दो मनुष्य 'हाय रोटी! हाय रोटी!!' करते अपने प्राणोंकी बलि दे रहे हों, जहां ५० लाख भिखारी टुकड़े मांगते फिरें, जहां १० करोड़ किसान आधे पेट खाकर जीवित रहें और जहां ये मुसण्डे धर्मव्यवसायी, जिनसे देशको कुछ भी लाभ नहीं हो रहा है, प्रजाकी गाढ़ी कमाईका ६० करोड़ रुपया प्रति वर्ष खा जायं; क्या देश इसपर विचार नहीं करेगा?

समस्त भारतवर्षमें मिलाकर १५०० से ऊपर प्रसिद्ध तीर्थ हैं, जिनमें अनगिनत मन्दिर और बेशुमार देवता बैठे यात्रियों-की प्रतीक्षा करते रहते हैं। इन तीर्थोंमें प्रति वर्ष लगभग ९ करोड़ यात्री पहुंचते हैं और डेढ़ अरबसे ऊपर धन जनताका इनके मध्ये खर्च होता है, जिसमेंसे, जैसा कि ऊपर बताया गया है, ६० करोड़के लगभग महन्तों, पण्डों और पुजारियोंके पेटमें जाता है।

आज महन्तों और पुजारियोंकी सम्पत्तिका अन्दाज लगाना कठिन है। वे लखपती और करोड़पती बने हुए हैं। वे जमींदारी करते हैं, खेती कराते हैं, कर्ज देते हैं, किरायेके लिए मकान बनवाते हैं, व्यापार करते हैं और ठाठ-बाटका जीवन व्यतीत करते हैं। हमारे एक परिचित सज्जनको कुछ रुपयोंकी जरूरत थी, पर कर्ज मिलनेका कोई मार्ग सामने नहीं था। उनसे एक दूसरे व्यक्तिने कहा कि वे अमुक अखाड़ेके महन्तके पास चलें, वह पचास हजार तक कर्ज दे सकता है। पूछनेपर मालूम हुआ कि उक्त महन्तने कितने ही व्यवसा-यियों, जमींदारों और ताल्लुकेदारोंको इसी तरह लाखों

रुपये कर्जमें दे रखे हैं। नागा लोगोंके किसी-किसी अखाड़ेकी सम्पत्तिका मूल्य १ अरब रुपयेके लगभग बताया जाता है और उसके कोषमें करोड़ों रुपये नकद रहते हैं। एक बार हम अयोध्याके एक मन्दिरमें गये। वहां पूछनेपर मालूम हुआ कि मन्दिरकी सालाना आमदनी ढाई-तीन लाखके करीब है और खर्च इससे बहुत कम है। जो रुपया बचता है, वह मन्दिरके नीचे बने विशाल तहखानेमें रख दिया जाता है और कभी निकाला नहीं जाता। इस प्रकार अब तक वहां कितने ही करोड़ रुपये एकत्र हो चुके हैं। मध्य-भारतके एक मन्दिरके बारेमें, पढ़ा था कि उसके अधिकांश अनुयायी जौहरीका काम करते हैं, और एक-दो वर्षके बाद जब वे उसकी यात्राको आते हैं, तो एक रत्न मूर्तिको भेंट करते हैं। वे रत्न भण्डारमें एकत्र होते रहते हैं और उनका मूल्य अब करोड़ों तक पहुंच चुका है। ऐसा अभागा मन्दिर या महन्त तो शायद ही कोई होगा, जिसके पास लाख पचास हजारकी सम्पत्ति न हो। बहुत-से महन्त और पुजारी हाथी-घोड़े रखते हैं, उनके यहां रक्षाके लिए बन्दूकधारी रक्षक नियुक्त रहते हैं। वे लोग सोने, चांदीके बर्तनोंमें खाते हैं, जरी और कमख्वाबके कपड़े पहनते हैं, लाखों रुपयेके मूल्यके रत्नजड़ित आभूषण धारण करते हैं। बहुतोंको राजाके-से अधिकार तक मिले हैं।

× × ×

सदाचारकी जैसी मिट्टी पलीद आजकलके कितने ही धर्म-व्यवसायियोंने की है, उसका कोई ठिकाना ही नहीं। जो धर्मगुरु या मन्दिरोंके महन्त जनताके पूज्य माने जाते हैं और जिनके चरणोंकी रज प्राप्त करनेके लिए लोग हजारों रुपये खर्च कर डालते हैं, उनके ही चरित्र और कर्मोंका जब भेद खुलता है, तो अवाक् रह जाना पड़ता है। ये धर्म-व्यवसायी लोग नित्य बढ़ियासे बढ़िया और कीमतीसे कीमती भोजन करते हैं, सजे हुए सुखकर मकानों और हवेलियोंमें रहते हैं, मखमली गद्दे-तकियोंपर सोते हैं, पचास-पचास और सौ-सौ रुपये तोले तकके इत्र लगाते हैं, पान, बीड़ी, सिगरेट, गांजा, भांग, शराब आदि समस्त नशीली और उत्तेजक चीजोंका सेवन करते हैं। कितने ही तरह-तरहकी शक्तिवर्धिनी दवाइयां, कस्तूरी, केसर, सोनेके वर्क, मोतीका चूना और भस्में आदि खाते हैं। ऐसी दशामें अगर उनका मन पागल होता है, तो इसमें आश्चर्य ही क्या? इन सब सामग्रियोंका उपभोग करते हुए भी जो निर्विकार और निर्लेप रह सके, उसे जीवन्मुक्तके सिवा और कुछ नहीं कहा जा सकता।

तात्पर्य यह कि हमारे अधिकांश धर्म-व्यवसायियोंका काम आज खाने-पीने और मौज करनेमें ही व्यतीत हो रहा है, और इनके इस निरर्थक एवं सारहीन जीवनके कारण हिन्दू-समाज तथा हिन्दू-धर्मावलम्बियोंकी अतुल सम्पत्तिका प्रति वर्ष संहार हो रहा है—उस अतुल सम्पत्तिका, जिसके द्वारा प्रत्येक हिन्दू आज उचित शारीरिक, मानसिक, नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा प्राप्त कर सकता था। और उस अतुल सम्पत्तिका, जिसका समुचित उपयोग होनेसे हिन्दुओंकी यह दुर्दशा और अधःपतन न होता, जो हो रहा है। एक ओर हिन्दू धर्मके नामपर अभिमान करनेवाले पेटकी ज्वालासे तड़प रहे हैं, एक ओर राम और गङ्गाजीके नामलेवाओंके अभागे अबोध बच्चे ईसाइयोंके हाथ कुछ आने और पैसेपर इसलिए बेच दिये जाते हैं कि उनके पास पेट भरनेके लिए कोई भी सामग्री नहीं और वे अपने अभागे बच्चोंका भरण-पोषण करनेमें विवश हैं, और दूसरी ओर मठोंमें करोड़ोंकी सम्पत्तियां भरी पड़ी हैं, जिससे हिन्दू-धर्मका कुछ भी प्रचारकार्य नहीं हो रहा है।

× × ×

ऊपर हमने मन्दिरों और मठोंके सम्बन्धमें धार्मिक रूपसे होनेवाले जिन दूषणों और पापोंकी चर्चा की है, उसका मतलब यह नहीं कि हमें आज उनके अस्तित्वकी आवश्यकता नहीं है। हमारा मतलब यह भी नहीं है कि सर्वत्र ऐसा ही अनाचार हो रहा है। कितने ही स्थानों पर जानेसे तो वास्तवमें श्रद्धा होती है। हमारी दृष्टिमें ये मठ-मन्दिर हिन्दू-धर्मके प्राण हैं। ये हमारे लिए दुर्गके रूपमें हैं—उन विशाल दुर्गोंके रूपमें, जहां हमारे धर्मकी सर्वोत्तम शक्तिका सञ्चार एवं विकास हो सकता है। हम तो चाहते केवल यह हैं कि इनके वर्तमान रूपमें वास्तविक सुधार किया जाय। इनकी सम्मिलित आयका पूरा नहीं तो आधा भाग सार्वजनिक हित एवं राष्ट्रीय मुक्तिके लिए व्यय किया जाय। इस प्रकार हम अपने देशको ही स्वतन्त्र कर सकेंगे, सो बात नहीं, देशकी स्वतन्त्रता हमारी धार्मिकताको भी स्वतन्त्र करेगी ; कारण,

पराधीन राष्ट्रके धर्म भी पराधीन होते हैं और किसी भी धर्मका उचित धार्मिक उपयोग अथवा विकास, राष्ट्रको स्वतन्त्र किये बिना नहीं हो सकता। इस कारण राष्ट्रीय दृष्टिसे ही नहीं, वरन् धार्मिक दृष्टिसे भी आज इस बातकी अत्यन्त आवश्यकता है कि हम अपने मठों और मन्दिरोंके सुधारमें लग जायें। हमारा तो विश्वास है कि हमारी इन धार्मिक संस्थाओंका सुधार, स्वयं राष्ट्रीय दृष्टिसे भी विगत एवं भावी सत्याग्रह-आन्दोलनसे कम महत्त्व नहीं रखता। प्रचलित प्रथाके दूषणसे आज इनपर कुछ विशेष व्यक्तियोंका सर्वस्व अधिकार भले ही हो गया हो, पर यह अधिकार सर्वथा असङ्गत एवं अन्यायपूर्ण है। न्यायके रूपमें भी चाहे हमारे मठों और मन्दिरोंपर मठाधीशों एवं पण्डोंका अधिकार भले ही हो, पर स्वयं वे मठाधीश और पण्डे हिन्दू-धर्मावलम्बी जनताके प्रति उत्तरदायी हैं और इस बातका प्रमाण बड़ी सुविधाके साथ दिया जा सकता है कि इस प्रकारकी धार्मिक संस्थाओं और दैवी सम्पत्तिपर प्राचीन कालमें उस धर्मकी अनुयायी जनताका सर्वस्व अधिकार रहा है। मठाधीशोंके निर्वाचनकी आज जो प्रथा है, वह पहले न थी। जनताका इस निर्वाचनमें पूर्ण अधिकार था। और थोड़ी देरके लिए यह मान भी लिया जाय कि मठों और मन्दिरों-पर जनताका अधिकार प्राचीन कालमें नहीं था, तो भी इससे यह परिणाम नहीं निकलता कि आज भी, भविष्यमें भी ऐसा ही हो।

मठों और मन्दिरोंपर सार्वजनिक अधिकार प्राप्त करनेके निमित्त, इन अभागी धार्मिक संस्थाओंको अनाचारका क्रीड़ाक्षेत्र होनेसे रोकनेके निमित्त, प्राचीन कालकी भांति इन्हें सार्वजनिक उपयोगकी संस्थाओंके रूपमें परिणत करनेके निमित्त, हिन्दू धर्म एवं हिन्दू जातिके लिए इन्हें स्वतन्त्रता प्राप्त करनेका केन्द्र बनाने तथा उनकी दासता छुड़ानेके निमित्त, एवं मरणोन्मुख हिन्दू जातिमें एक नवीन शक्ति, नवीन स्फूर्ति तथा नवजीवन सञ्चार करनेके निमित्त आज हमें पूरी शक्तिके साथ तैयार होनेकी जरूरत है। इन धार्मिक संस्थाओंपर हमारा पूरा अधिकार हो। हम अपने बहुमतसे ही मठाधीशोंका निर्वाचन कर सकें तथा अपने बहुमतसे ही अयोग्य, लम्पट, कामी एवं पतित महन्तों एवं पुजारियोंको उनके अधिकारसे वञ्चित कर सकें। इतना ही नहीं, हम स्वयं महन्तोंके तथा आवश्यकीय धार्मिक कार्योंके व्ययका ब्योरा तैयार करें। इस प्रकार इन संस्थाओंपर आर्थिक प्रभुत्व पानेसे ही ७९ लाखसे अधिक धर्म-व्यवसायी कार्यकर्त्ता हमारे अधिकारमें आ सकते हैं। इन धर्म-व्यवसायियोंका यदि सुधार कर दिया जायगा, तो यही स्वयंसेवक दलके समान बन सकेंगे। बल्कि यों कहिये कि उससे भी अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे। स्वयंसेवकोंको फिर भी घरका बहुत-सा बन्धन रहता है और कितनों हीको आर्थिक चिन्तायें भी रहती हैं, परन्तु ये लोग इन सब झञ्झटोंसे मुक्त होते हैं। इनको न घर-बारकी चिन्ता होती है और न जोरू-बच्चोंकी फिक्र। इनके खाने-पीनेका प्रबन्ध अब भी समाजने कर रखा है; फिर जब ये समाजको हानि पहुंचानेके बजाय उसके सच्चे सेवक बन जायेंगे, तब तो यह प्रश्न बिलकुल ही न रहेगा।

लेकिन मठों और मन्दिरोंका सुधार आसान नहीं है। धर्म-सुधारके इस आन्दोलनमें लाखोंकी संख्यामें हमें उन लोगोंका विरोध सहना पड़ेगा, जो हमारे अपने हैं, जिनके धर्म और अधर्मकी समस्या हमारे धर्म और अधर्मकी समस्या है, जिनके पाप और पुण्यका प्रश्न स्वयं हमारे पाप और पुण्यका प्रश्न है तथा जिनके जीवन और मरणकी समस्या हमारे जीवन और मरणकी समस्या है। ये हमारे अपने, हमारे भगवान्‌को अपना भगवान् और हमारे धर्म-शास्त्रोंको अपना धर्म-शास्त्र कहनेवाले, उस समय हमारे रक्तके प्यासे होंगे; कारण, मन्दिरों और मठोंका सुधार इनके सारे विलास और वैभवोंका घातक होगा।

परन्तु इस विरोधके भयसे हम भगवान्‌के पवित्र पथको दूषित करनेवाली तथा भगवान्‌के नामपर अनाचार एवं नाना भांतिके दुर्गुण उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियोंका सामना किये बिना नहीं रह सकते। एक ओर जहां थोड़े-से लोगोंके विरोधोंका सामना करना है, वहीं दूसरी ओर अखिल हिन्दू जाति एवं हिन्दू धर्मके जीवन और मरणका प्रश्न है। इन विरोधोंके भयसे हम हिन्दू संस्कृति एवं हिन्दू धर्मका सत्यानाश होनेमें सहायक नहीं हो सकते और न आंख और हृदय होते हुए हम अपने सर्वनाशका दृश्य ही देख सकते हैं।

मैं मानता हूं कि प्रारम्भमें कठिनाइयोंका आना

अनिवार्य है, पर जहां दस-बीस स्थानोंमें सफलता मिली, शेष लोग स्वयं ही परिस्थितिके सामने सिर झुका देंगे। इसके लिए सबसे पहला कार्य जनमतको तैयार करना है। जब जनता इनमें फैली खराबियों और इनसे होनेवाली हानियोंको समझ जायगी तथा इनका पक्ष-समर्थन करना बन्द कर देगी, तो इनकी स्थिति अपने-आप कमजोर हो जायगी। सच तो यह है कि इनके अस्तित्व और बुराइयों-की जिम्मेदारी पूर्णतया हिन्दू-समाजपर ही है। यदि सर्व-साधारण इनके कार्यों और चरित्रोंपर ध्यान रखने लगें, तो इनका सुधार अनायास हो जाय! और इनका सुधार हो जानेका अर्थ मठ और मन्दिरोंका सुधार समझिये। इस तरह मठ-मन्दिरोंका सुधार साधारण रूपसे राष्ट्रकी राजनीतिक और विशेष रूपसे हिन्दू जातिकी धार्मिक स्वतन्त्रताका वह अध्याय खोलेगा, जिसकी समस्या इतिहासकारों और राजनीतिज्ञोंके लिए एक महत्त्वपूर्ण रहस्यकी बात होगी।

———

प्लेटोकी प्रणय-व्याख्या

श्री प्रभागचन्द्र शर्मा

अप्टन सिंक्लेयरने अपने एक उपन्यासमें एक सरकारी अफसरके मुंहसे एक तथाकथित कम्यूनिस्ट पीटरको 'फ्री लव' मुक्त प्रेमके बारेमें समझाते हुए एक सुन्दर प्रकरण लिखा है। उसके जवाबमें पीटर आश्चर्य-मिश्रित हर्षसे पूछता है, क्या उस दलके लोगोंमें सचमुच प्रेम होता है, कुछ धेला-पैसा नहीं देना पड़ता? ओह! कमबख्त, मैंने जितना प्रेम अब तक किया, सबमें मुझे काफी पैसा खर्च करना पड़ा! ऐसी जगह मैं जरूर जाऊंगा, जरूर प्रेम करूंगा; और हां, तुम्हारी सरकारके लिए जासूसी भी कर देखूंगा। अस्तु, यह तो हुई पावनतम प्रेम-तत्वकी वर्तमान दिनों-दिन अधोमुखीन वास्तव प्रवृत्ति। मैं यह लेख उन्मुक्त उच्छृङ्खल प्रेम-विवेचना-के लिए नहीं, बल्कि प्रेमको मुक्त रूप देनेके लिए लिख रहा हूं। आज हम बौद्धिक दृष्टिसे जितने प्रखर लग रहे हैं, जीवन-पक्ष-में उतने ही ढीले, फिसलन-प्रिय भी हो चले हैं। कला, वास्तविकता, वैज्ञानिकता और उन्मुक्तताकी आड़में यह सर्वथा भुलाया जा रहा है कि प्रत्येक आदर्श वस्तुका एक स्वाभाविक आधार होता है और प्रत्येक प्राकृतिक वस्तुका आदर्शमय विकास भी होता रहता है। परिणाम यह हुआ कि हम चिन्तनमें अस्वस्थ हो गये। आदर्श प्रणयके दार्शनिक विचारक प्लेटोकी अपनी एक प्रेमकी रूपरेखा है। वह एक फीसदीमें भी अमान्य नहीं हो सकती। प्लेटोने लिखा है: 'वह, जिसे जीवनमें प्रेम स्पर्श नहीं करता—अन्धकारमें, भ्रान्तिमें चल रहा है।" महान् वैज्ञानिक ला प्लेस जब मरने लगे, तो बीसों आदमी शान्ति-सुख देनेके लिए इर्द-गिर्द घिरकर उनकी अमूल्य पुस्तकों और आश्चर्यकारी अनुसन्धानोंकी प्रशंसा करके उनकी चिरकालीन अमरता समझाने लगे। उन्होंने क्रोधसे कुढ़कर दुःख-भरे स्वरमें कहा—नहीं, यह सब वृथा है। लोगोंने पूछा, तब अमर, दिव्य क्या है?- बूढ़ेने जीवनकी अपनी अन्तिम सांसमें कहा:—'प्रेम!'—(मेन्शन्स आव फिलासफी पृ० १७०)

प्रेमका शरीर-शास्त्रीय वैज्ञानिक विश्लेषण इस लेखका उद्देश्य नहीं है। मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक धरातल यहां लिया गया है। मनुष्यके, एक लौकिक और एक आध्यात्मिक, दो व्यक्तित्व होते हैं। एक मनोलोक होता है, एक देह-लोक। एक प्रवृत्तिका निवास-गृह है, दूसरा विचार-का दिव्य मन्दिर। प्रवृत्तिमें विकार है, विचारमें विभुता। प्लेटोकी प्रेम-भावनाका सन्देश है विकारोंके मुक्त होकर विभुताके संस्पर्श, आकर्षणसे आलिङ्गन करना। मूर्त्तसे अमूर्त्त मोही हो उठना! स्थूलसे अपदार्थसे प्रति ललक पड़ना। रक्त-मांस-सौरभसे उभरकर भाव-सौन्दर्यकी अतल स्नेह-राशिमें डूब जाना। इटलीके महाकवि दान्तेने रणक्षेत्र-के नरसंहारी अनिवार्य सैनिक जीवनसे उलझकर उस महा-मानवकी दृष्टि पायी कि जिसने बीट्रिस नामकी रईसजादी एक ९ वर्षीया बालिकाको प्रथम बार और १८ वर्षकी उम्रमें

दो अन्य औरतोंसे घिरकर सड़कके दूसरे किनारेसे मात्र सलज्ज नत नमस्कार करते हुए दूसरी बार देखा और बस ......! जीवनमें फिर कभी देखना तक नहीं हुआ !! इतने रूप-दर्शन-भरसे दान्तेने जिस अनुपम ग्रन्थ 'डिवाइन कामेडिया' की रचना की, उसके दिव्य प्रकाशकी प्रेरणा-किरणें मानो शताब्दियोंकी तह चीरकर स्फुरण दे रही हैं। और जैसे १९ वीं सदीमें वेदना-गायक अंगरेजी कवि शेलीको वही अलौकिक रूप-आभा "सौन्दर्य लक्ष्मीकी स्तुति" नामक कवितामें यों लिखनेको बाध्य कर गयीः—"एक अदृश्य शक्तिकी महान् छाया, इस जगत्में हमारे बीच तैरती घूम रही है। यह छाया चञ्चल है, मधुर है, रहस्यमयी है, और हम सबको प्यारी है ! हमारी पूर्णता उसीके आविर्भावमें निवास करती है, और उसीके अभावमें हमारा अवसाद होता है।" प्लेटोके प्रेमकी जननि किसी ऐसे ही रूपकी छायामें निवास करती है। शुष्क शरीर-शास्त्रज्ञ लोगोंकी धारणाका पुष्टीकरण फोरेल या फ्रायडके इस कथनमें है कि "समस्त प्रेमकी आधार-भूमि यौन-सम्बन्ध है।" प्रेम इच्छा है और इच्छा कामसे अनुप्राणित है। अतः प्रेम वासना है। वासना अगर है प्रेम, तो वह आजकी है, कलकी है, एक समय-विशेषके लिए है; तब वह प्रेम नहीं है। शोपेनहर, अपनी पुस्तक 'दि वर्ल्ड : एज़ विल, एज़ आइडिया' में लिखता हैः— "प्रत्येक उसे प्यार करता है, जिसका उसमें अभाव है।" खुद प्लेटोने "सिम्पोसियम" में कहलवाया है कि "एक समय था, जब स्त्री-पुरुष दोनों एक रूप थे। लेकिन मनुष्यकी दुष्टताके कारण ईश्वरने उस तत्त्वके दो टुकड़े कर दिये। और तबसे एक आधा भाग दूसरे आधे भागका सामीप्य पानेके लिए बेतरह तड़पता रहता है। इच्छा और सम्पूर्णकी चाहका जोर। बस यही प्रेम है।"

विज्ञानवादी भी मानते हैं कि विपरीत तत्त्व, जो कि पुरुष और नारीके दैहिक-निर्माणमें लगे हैं, एक दूसरेके प्रेरक-पूरक हैं। यानी परस्परावरोधी तत्त्व एक दूसरेकी ओर खिंचते हैं। किन्तु प्रश्न यहां यह नहीं है। यथार्थवादी लोग प्लेटोनिक प्रेमके प्रति उपेक्षाभाव इसलिए रखते हैं कि मौजूदा असन्तुलित समाज-व्यवस्थामें नारीकी अत्यन्त पुनीत भावना और कायरतामें जो सतत सङ्घर्ष हो रहा है, उससे उसकी नैसर्गिक आकांक्षापर अस्वाभाविक आचरणको प्रभुत्व दिया जाता है। इसकी सम्पूर्ण सफलताका अर्थ भी यह होता है कि उद्दाम आकर्षणसे त्रस्त नारी स्वच्छन्द रहनेपर अपनी इच्छाके मातहत और दिनमें लौकिक आचरणवादके सङ्कोचसे अनिच्छापूर्वक जीनेको बाध्य होती है। इस अनावश्यक दबावके चलते धार्मिक और नैतिक दोनों आस्थाकी नारियां अधोगामी हो रही हैं। एक कैथोलिक मत-विश्वासकी नन दुनियाके सामने देवी होती है, परन्तु अपने हृदयके सामने वह स्वभावतः रमणी रहती है। इस भावके उदाहरण और विस्तारमें नहीं जाऊंगा। मैं अपने एक लेख "नारी, प्रेम और काव्य" में पहले लिख चुका हूं। दूसरे, नैतिक आस्थावाली नारीका "व्यक्ति-विशेषकी ओरका आकर्षण व्यक्तिमात्रके लिएका आकर्षण हो जाता है।"—(वूमेन एण्ड लव, पृ० ६१) क्योंकि एक व्यक्तिकी निर्बलता, शक्तिहीनता वह समझ सकती है। परन्तु यह कैसे वह समझ ले कि सारी मनुष्य-जाति इतनी कायर होगी कि बाहरी दबावके डरसे उसे प्राप्त करनेमें निकम्मी साबित हो जाय ! फलतः एक नारी अपने स्वाभाविक गुणधर्मके खिलाफ जीवन-यापन करनेको लाचार होती है और दूसरीका एकपतिव्रत, सतीत्व नष्ट होता है। अब तक हमारा समाज इसी विभाजनके अवाञ्छित चमत्कारमें भ्रमित था। अब लोग भ्रान्तिके इस घटाटोपको चीर आये हैं। शास्त्रकी नारी, रूढ़िगत धर्मकी नारी, सधन वर्गकी वासनामयी नारी, दो दानेके लिए देह बेचती फिरनेवाली नारीसे ऊपर एक ऐसी महाभागा नारीका स्वप्नाभास नवयुगका रचनाकार देखने लगा है कि जिसका रङ्ग और उजेला भूमिसे नभकी ओर प्रकाश फेंकता दीख पड़े ! लेकिन जो व्यक्ति मन आज भी गम्भीरसे गम्भीर सत्यों तककी ओर सन्देहकी दृष्टिसे देखनेका लज्जाहीन आचरण करता है, वह क्या उस रुग्णमना मृत समाजका प्रतिनिधित्व नहीं करता, जो ऊपरसे सफेदी पुती हुई कब्रसे अधिक और कुछ नहीं है ? यह स्थिति हुई इसलिए कि हम एक लम्बे अरसेसे मुक्ति और शक्तिदात्री नारीको तो खुली आंखों घृणासे ढकेलते रहे और आंखें मूंदकर न जाने किस मुक्तिदाताकी आराधना करते रहे ! धर्म हमारे चिन्तन, हमारे आचरणकी आत्मा होनेके बजाय हमारे स्वाभाविक गुणधर्मका असहयोगी पहरेदार हो गया।

प्रेम, मानव-आत्माकी सजातीय वृत्ति है। और सर्वतोमुखी विस्तार करे, यह उसका स्वभाव-गुण है। ईसाके पूर्व, जब कि प्लेटोका आविर्भाव हुआ, मानव-जाति यद्यपि पूर्णतः पशु नहीं थी, किन्तु नितान्त बर्बर अवश्य थी। नग्न यौन-सम्बन्ध, पाशविक वासनाभाव पुरुषोंमें था। इसके सिवा उस युगका मानव संस्कृतिसे शून्य, सभ्यतासे दूर भी था। धर्मने यह घोषित कर दिया था कि नारीका दिव्य कुछ होता ही नहीं है। वह निरी वासना-तृप्तिका साधन है। नरकका द्वार है। इस प्रकार दोहरा पाशविक प्रोत्साहन मानवकी वासनाको उस समय दिया गया था। यही कारण हुआ कि तबसे लगाकर आज तक नारीको निम्न स्थितिमेंसे होकर आना पड़ा। दुःख और यातनाके कलेवरमें युग-युगसे दबी नारीकी सुकोमल देह उस समय नीतिकारकी आंखोंको ऐसा आभास देती थी, मानो यह धर्मान्धता उसे कुचलकर, दाबकर समूल मिटा देना चाहती है! कठोर वैज्ञानिक, विशुद्ध शरीर-शास्त्रीय दृष्टिकोणसे देखें, तो 'आदम'की 'इवा' भी पहले दिन उसके राक्षस, उसके देह-स्थित विषकी पाशविक प्रवृत्तिकी तृप्तिदात्री बनी थी। लेकिन दिन आया कि नारीकी देह फैली, उसका रूप सीमा लांघ चला, उसके गुणोंपर चढ़कर लोग निर्गुण तक पहुंचे और उसके आकर्षणका साम्राज्य कृषककी अपनी भरी-पूरी लहलहाती खेतीके प्रति प्रकट हो पड़नेवाली अतृप्त आकांक्षासे हजार गुना विस्तीर्ण हो गया!

एक नर और एक नारी अनेक हुए, और इस अनेकताने ही नर-नारीके सम्बन्धोंका जरूरी विभाजन भी कराया। नर-नारीमें चार मुख्य सम्बन्ध हुए—पत्नी, बहिन, कन्या और माताके! धीरे-धीरे टुकड़ियां बनीं, दल बने, वर्ग बने, जाति बनी, समाज और उसके नियम बने और गांव एवं देशके रूपमें इस क्रम-व्यवस्थाकी परिसमाप्ति हुई! अब सभ्यताकी स्थापना की गयी। इसीमें बर्बरता भी लिपटकर व्यक्तिमें प्रवेश पा गयी। फलतः नारी और नरके व्यक्तिगत खिंचाव-लगावपर बाहरी शस्त्रक्रिया शुरू हुई। स्त्रीके पाशविक प्रवृत्तियोंका आकर्षण बनकर जीवनमें आते ही पुरुषका प्रारम्भिक दृष्टिकोण ही स्वार्थपूर्ण और शासक मनोविकार लेकर आगे आया। इसीके चलते तृप्तिके बाद उसे निकाल देने, पुरुषकी वासना भड़क उठनेपर कहीं अन्य नारीकी गोद पाने, इस अनाचारसे भी तुष्टि न पानेपर तलाक कर दिये जाने, पति और जार लोगों द्वारा काटी जाकर खुद भोज्य बन जाने, मजदूरीका सहारा बनने और बहु-पुरुषोंकी सम्पत्ति बनने आदि सभी परिवर्तनोंमेंसे होकर आज नारी अपना चिरसौन्दर्य, बुद्धि और सदाशयता लेकर समाजमें खड़ी हुई है! आज भी दूसरा व्याह करके अपने ही रक्त-मांसके सलोने पिण्डके प्रति निर्दय हो उठने और बापके न होनेपर भूखसे पीड़ित बच्चोंको स्वयं मांके हाथों मारनेको बेच देनेकी अमानवीय प्रवृत्ति कायम है। तब भी सभ्यता, सभ्यता बनी हुई है! कानूनकी आंखोंमें इस चीजकी क्षमा निवास पाती है! धर्म भी आपत्ति-कालमें अमर्यादाको समझ सकता है। लेकिन मन जिसे न जान पाये, ऐसा कोई पाप नहीं है। मानसिक विकास जैसे-जैसे होता गया है, हम इतिहासमें देखते हैं, नारीका कल्याणरूप अधिकाधिक खिलता चला है।

नर-नारीके आकर्षणको श्रेष्ठतम होनेके लिए उसमें माधुर्यकी प्रतिष्ठा अनिवार्य है। बहुत अंशोंमें यही सच भी है कि इस रसका उद्भव यौन-बन्धनसे होता है। नारीका सौन्दर्य ही मात्र ऐसा है जरूर, जो इस रसका बोध करा सकता है। "जिस देशमें इसकी धारणा जितनी क्षीण होती है और बन्धन जितना क्षण-स्थायी, होता है उस देशमें नर और नारीका पारस्परिक सम्बन्ध भी उसी अनुपातमें और उतना ही हीन होता है।" (शरद् चटर्जी) इमर्सनने लिखा है कि यदि किसी देशकी संस्कृति, सभ्यताका अन्तरङ्ग देखना चाहते हो, तो उस देशकी कुमारिकाओंके अधरपर देखो!

लेकिन प्लेटोने (४२७ से ३४७ तक) उसी आदि असभ्य बर्बर मानवतासे कहाः—"बहुत-सी सामाजिक और राजनीतिक खराबियां, जिनके आज तुम शिकार हो—तुम्हारे बूतेकी हैं। केवल इच्छा और साहस दो उन्हें बदल देनेके लिए। तुम अधिक ऊंचे ढङ्गसे जीवन-यापन कर सकते हो। अगर वैसा करना चाहो और उसे कार्यान्वित कर सको, तो। तुम अपनी शक्ति तक अभी जागरूक नहीं हुए हो।"

यह नियम रहा है कि साधनाशील, प्राचीन पुरुषका विचार-सङ्केत, आधुनिक व्यक्तिकी वक्तृता बन जाया करता है। प्लेटोने इस बीभत्स पशुतासे मानव-जातिको मुक्त करनेके

लिए प्रेमको सत्य, सुन्दर और शिवका स्वरूप देकर वासनासे मुक्त, दैहिक अतृप्तिसे दूर ले जानेका जो प्रयत्न किया, वह उस दिन लोगोंकी समझमें नहीं आ सकता था; शताब्दियों-के बाद आज यह लग रहा है कि प्रेमके प्लेटो-वर्णित स्वरूपके सिवा और किसी रूपकी आवश्यकता नहीं है।

रोम और ग्रीसमें प्लेटोके प्रणय-सम्बन्धी विचार बहुत प्रिय हुए। ग्रीक और रोमन जातिकी सृजनशीला और कलात्मक प्रवृत्ति इतनी ऊंची उठी कि उसने मानवताके शेष इतिहासको प्रकाशित कर दिया। किन्तु यह, लोगोंने अन्त तक नहीं माना कि नारीकी शारीरिक रचना-में कहीं दिव्य भावनाका रञ्च-मात्र भी स्पन्दन है! जर्मन नीतिकार एमिल लुक्काने लिखाः—"जब प्लेटोनिक प्रेम-सिद्धान्तोंपर विचार करते हैं, तो यह स्पष्ट लगता है कि प्लेटोने किसी निश्चित तत्त्वपर अपने प्रेम-भावकी परिसमाप्ति नहीं की। विशुद्ध प्लेटोनिस्ट दृष्टिकोणसे व्यक्तिके लिए प्रेम यह मात्र एक वास्तव प्रेम तक ले जानेवाली पगडण्डी है। लेकिन प्रेम, वास्तव तत्त्वरूप प्रेम तो चिर सुन्दरकी ओर, शाश्वत विचारोंकी ओर मानवकी सुदृढ़ पहुंचमें है। विश्व-प्रेमका सिद्धान्त भी इसी एकके घेरेसे ऊपर अखिलपर छा जानेका कल्याणप्रद विस्तार है, जो प्लेटोनिक प्रेमकी परम्परामेंसे ही पूर्ण रूप प्राप्त कर जानेपर बिरले मानवको प्राप्त होता है।"

विश्व-काव्य-धाराने तर्क, विज्ञान, शरीर-शास्त्र सबके बाद भी यह सिद्ध कर दिया है कि प्रेमरसका निवास अन्तःकरणमें है। एरिस्टाटलने कहा कि विचार हृदयमेंसे अग्रसर होता है। प्लेटोने जाना, इच्छाका मूल स्थल अन्तःकरणमें है। और मानवीय व्यक्तित्वके विकासमें इच्छा-का तर्कसे सङ्घर्ष अनिवार्य भी हो जाता है। इसी सङ्घर्षमें न्याय और निर्णय-बुद्धिका आविर्भाव हो पड़ता है। क्योंकि परम्परा, रूढ़ि और धर्मान्धताकी जड़ें मानवके अन्तरङ्गमें आसीन हो जाती हैं, इसलिए जब तक मानव-जीवनके अन्तःकरण तक विकसित ज्ञान-किरणें नहीं पहुंचतीं, तब तक मानव भ्रान्तिके महासागरसे न जाने कब तक और नहीं उठता! इसीलिए एरिस्टाटल, प्लेटो और उनके बादके विचारकोंने मनोविज्ञान-शास्त्रकी छान-बीन करके मानव-मनको स्वस्थ बनानेका सदुद्योग किया।

आज मनोविकासकी उन्नत स्थितिपर आकर जब हम नारीके विषयमें सोचते हैं, तो प्लेटोकी प्रणय-परिभाषा न केवल महत्त्वपूर्ण लगती है, बल्कि अनिवार्य जान पड़ती है। नारीको 'नरकका द्वार' कहकर समाजने कुछ कम अतःपात नहीं देखा; तब हम आज नारीको महाभागा मानकर ही सृष्टि-रहस्यके गुह्यतर चमत्कारोंसे भावी जीवन-को अलंकृत करेंगे। नारीके त्याग, स्नेह, सेवाकी ऊष्मामें जब हम यह विकारग्रस्त देह निर्लिप्त भावसे दाबकर जीवनकी सांस लेंगे, तो अन्धकार, चाहे वह धर्मका हो, चाहे रूढ़िका हो, चाहे अज्ञानका हो; क्षण-भरमें दूर हो जायगा। कहा नहीं जा सकता कि वे शास्त्रकार थे या शास्त्र-प्रचारक, जो समाज-जीवनसे इतने दूर जा पड़े थे कि जिनका आदेश था—"कृश, रुग्ण, कोढ़ी कुमारिका तो ब्याह कर सकती है; किन्तु स्वस्थ, मस्त, रूपवती, गुण-निधाना विधवा बालिका आजीवन किसी पुरुषकी ओर देखे तक नहीं।" नारी त्याग-मयी है। वह जिसे प्रेम करेगी, उसके लिए, उसकी कीर्तिके लिए, उसके मानके लिए, उसके सुखके लिए अपने रक्तकी बूंद-बूंद चुपचाप देते रहकर चाहे स्वयं भले ही चुक जाय; किन्तु पुरुषके आनन्दका अन्त कदापि नहीं होने देगी। नारीके इसी रूपपर बर्बर और अन्धयुगके जो अनेकों आवरण पड़े हुए थे, उन्हें प्लेटोने एक-एककर उठा दिया है। और मानव-कल्याणरूपी पुनीत नारीका साक्षात् कराके प्रेमकी उस उच्चतर भाव-धाराको जनसमुदायकी कलङ्कपूर्ण मनोभूमिपर बहाना चाहा है कि जिसके संस्पर्शसे एक बार पुनः आजकी दलित, गलित, मन्द, रुग्ण मानवता लहराने लग जाय!

———



आरीफ

श्री 'लवरा', बी० ए०

कुहू ! पागल कोयलिया कुहुक उठी ।

'सदा कू-हूका निराशामय सन्देश ही देती रहेगी ? इस अनन्त कालिमामय कूहूके अञ्चलमें कोई चितेरा आकर कभी सतरङ्गा चित्र भी अङ्कित करेगा ?'

'दो दिनका बसन्त है बेगम साहिबा, इसीलिए यह पगली अपने प्राणोंकी व्यथा साकार कर रही है। दुखमें क्रन्दन ही तो सबसे अधिक सहानुभूति दिखलाता है !'

'दो दिनके लिए ?'—युवराज्ञी जहांआराने अस्फुट स्वरमें कहा—'जी हां, केवल दो दिनके लिए ही वाटिकामें बसन्त आता है, कलियां मुसकरा पड़ती हैं, आम्रकाननमें कोयलिया कूकती है, मतवाला बना देनेवाला समीर चलता है और विश्व सिहर उठता है ! फिर पतझड़ आता है—पुष्प मुरझा जाते हैं, पल्लव पतित हो जाते हैं, पत्र-विहीन वृक्षपर बैठकर कागा करुण स्वरसे करता है—कांव ! कांव !! पतझड़की उन्मादिनी बयार सूखे पत्तोंकी बांसुरी बजाती है और उसकी लयपर विश्व कांप उठता है । किन्तु बस दो दिनके लिए ।'

'बसन्तके बाद पतझड़ आता है ?'

'......और पतझड़के बाद बसन्त !'

युवराज्ञीने प्रेक्षण-क्रीड़ा अवरुद्ध कर दी । इस निस्तब्ध दोपहरीमें जब वह हृदय-वीणाके सभी तारोंको झंकृत करनेकी चेष्टा कर रही थी, तब अचानक खानमने विश्वकी अस्थिरताका यह चित्र उपस्थित करके उस मनोमुग्धकारी तारतम्यमें विषमताका सृजन कर दिया ।

'तब क्या खानम, मेरे विजयी मुबारककी कीर्ति भी क्षणिक ही सिद्ध होगी? आज वह सन्ध्याकी लड़ाईमें हार जायगा ?'

'सम्भव है ऐसा ही हो···सहावत है आपका अस्वस्थ और मुबारकको उसके अतिरिक्त और कोई संभाल सकता है, इसमें सन्देह है; किन्तु...?'

'किन्तु क्या खानम ?' जहांआराने उत्सुकतासे प्रश्न किया ।

'एक नया गुलाम है, वह कहता है कि मैं मुबारकको संभाल लूंगा । आजकी लड़ाईमें उसे ही···'

'जो कुछ इच्छा हो, करो खानम, मुझे तो दूर तक प्रकाशकी रेखा नहीं दिखाई पड़ती । बसन्त आ चुका, अब पतझड़ आयेगा । मुबारक और उसके साथ ही जहांआराकी कीर्ति नष्ट हुई आज ! खानम ! मैं हारकर रहूंगी कहां ?' युवराज्ञी आंचलसे मुंह छिपाकर रोने लगी ।

× × ×

वह सन् १६४४ के मार्चकी २६ वीं सन्ध्या थी ।

देखते ही देखते सहसा आंधीवाले बादल सुनील दिगन्तमें छा जाते । बादल किसी भागे हुए बन्दी-वीरकी खोजमें पागलके समान इधर-उधर भटकते । प्रकृति कांप उठती ।

आगरेके विशाल दुर्गमें अनेक अरुणिम प्रदीप प्रज्वलित हो उठते । अपने कक्षमें राजकुमारी जहांआरा क्रीड़ावश स्वयं एक दीपक जलाती । कम्पित दीपशिखा शून्यकी ओर इङ्गित कर उठती ।

राजकुमारी उसे देखती रहती, एक क्षण, दो क्षण......! फिर कहींसे भटकता हुआ आ जाता एक शलभ । दीपशिखा एक बार हिलकर उसका स्वागत करती और वह उसकी परिक्रमा करने लगता । राजकुमारीने धीरेसे कहा—'क्षणभरमें क्षार हो जायेगा—जा भाग जा !' नहीं सुना कुछ भी उस पागलने । राजकुमारीने उसे हाथसे हटा दिया । किन्तु वह फिर आ गया । दीपशिखाने अट्टहास किया, एक बार, और फिर उसे आत्मसात् कर लिया । 'शान्ति'—राजकुमारीने एक दीर्घ निश्वास लेकर कहा ।

इसी समय प्राचीरपर फिर एक छाया नृत्य करने लगी । राजकुमारीने देखा, एक लघु प्राणी पुनः उसके चक्कर काट रहा है । अचानक वह दौड़कर उसके पास गयी और उसे बुझा दिया । इसी समय कक्षमें कोई अट्टहास कर उठा—'दीपक बुझा देनेसे तो विश्वका नियम बदल नहीं जायेगा ।'

जहांआरा दौड़कर पितासे लिपट गयी—'कितनी खराब है यह शिखा, सबको जलाने ही में सुख है इसे···'

'वह स्वयं जलती है, किसीको जलनेका निमन्त्रण तो नहीं देती ।'

'फिर मूर्ख हैं ये शलभ ?'

'सौन्दर्यसे प्रेम करना पाप नहीं।' चिर प्रेमीसम्राट् शाहजहांके हृदयमें मुमताजकी स्मृति जाग उठी।

'सौन्दर्य ही फिर अभिशाप है।' राजकुमारीने दीपकको पुनः प्रज्वलित करते हुए कहा।

'सौन्दर्य ? अभिशाप ?' सम्राट्के विशाल नेत्रोंने मुमताजको अर्घ्य दिया और वे वातायनका आवरण हटाकर अर्धनिर्मित ताजको देखने लगे—अचञ्चल ! अकम्पित !!

कक्षमें उच्छृङ्खल वायुके एक झोंकेने आकर युवराज्ञीके उत्तरीयको चञ्चल कर दिया। सुवासित इत्र-पूर्ण उत्तरीय धू-धू करके जल उठा। सम्पूर्ण दुर्ग अस्थिर हो गया।

× × ×

'खानम !'

'हुजूर !'

'मानव कितना दुर्बल है !'

'..................'

'जहांपनाह उस समय स्वयं मेरे निकट उपस्थित थे; किन्तु अपनी पुत्रीको, भारतकी युवराज्ञीको अग्निकी एक चिनगारसे नहीं बचा सके।'

खानम उठकर जाने लगी।

'कहां जा रही हो ?'

'जहांपनाहको बुलाने।'

'रहने दे। वे अभी ही तो उठकर गये हैं। समस्त साम्राज्यको एक अकिञ्चन नारीके लिए विस्मरण कर देना क्या ठीक है खानम ?···रोज ही तो देखती हूं कि एक हजार स्वर्ण-मुद्रायें मेरे सिरके नीचे रखकर प्रातःकाल वितरित कर दी जाती हैं। अपने लिए तो नहीं, किन्तु दरिद्र याचकोंके लिए ···'

इसी समय शाहजहांने कक्षमें प्रवेश किया।

'कैसी तबियत है बेटी ?'

'आप चिन्ता न करें, सौन्दर्यका अभिशापित निर्मोक दूर हो चुका है, कितनी शान्ति है अब !'

'ऐसा नहीं कहते बेटी ! यह आरीफ कहता है'—उन्होंने पास ही खड़े हुए व्यक्तिकी ओर इङ्गित करके कहा—'कि यह तुम्हें बिलकुल अच्छा कर देगा।'

'उपचारक हैं ? वैद्य या हकीम ?...कुछ भी हो पिताजी, मैंने आपके राज्यके प्रत्येक कोणके उपचारकोंको तो देख लिया। किधरसे आये हैं यह ? उत्तर, पश्चिम, पूर्व···?'

शाहजहांने उसके कथनपर ध्यान न देकर आरीफसे कहा—'देखते हो ?'

'जी हां, जहांपनाह।'

'अच्छा कर सकोगे ?'

'अवश्य।'

'बहुत खूब। अबसे तुम्हें शाहजादीके स्वस्थ होने तक यहीं रहना पड़ेगा।'

फिर दो मास पश्चात्—

शाहजादी दुग्ध-फेनिल स्निग्ध शय्यापर नेत्र अवरुद्ध किये पड़ी थी। पास ही आरीफ बैठा उसके परिक्लान्त विपण्ण मुखकी ओर देख रहा था। मस्तिष्कमें उसके अतीतका एक चित्र है—

वह दुर्गके सामनेवाले बड़े मैदानमें मुबारकको लड़ा रहा है। अन्तमें विजय उसीकी हुई। किसी मुखने क्षण-भरको प्रकट होकर उसके सम्मुख एक स्वर्ण-हार फेंक दिया। उफ ! कितना सुन्दर था वह मुख। धानी रङ्गका लहराता हुआ उत्तरीय, चन्द्रकिरण-सी ज्योति···! किन्तु केवल एक क्षणके लिए। और फिर उस मुखको हृदयपर अङ्कित करके भी स्मरण न कर सका—कहां युवराज्ञी जहांआरा और कहां आरीफ एक साधारण गुलाम ! किन्तु आज वह उसी प्रतिमाके कितने अधिक समीप है ! सहसा राजकुमारीने नेत्र उन्मुक्त कर दिये—

'आरीफ !'

'हुजूर !'

'तो तुमने मुझे बचा ही लिया ! मेरी अचेतनावस्थामें तुमने मेरी कितनी अधिक परिचर्या की है, मुझे अब भी कुछ-कुछ स्मरण है। तुम मेरी अलक-राशिको संयत करके मरहम लगाते थे। यदि तुमको नहीं, तो कमसे कम तुम्हारे कम्पित स्पर्शको मैंने तभी पहचान लिया था।······ अच्छा, तुमने क्या पुरस्कारकी आशासे यह उपकार किया है ?'

'आशा ? उसको तो मैंने केवल एक ज्योतिरिङ्गण ही समझा है। क्षण-भरकी चमक जानेके पश्चात् उसका अस्तित्व कितने गम्भीर अन्धकारमें विलीन हो जाता है।'

'निराशा पाप है आरीफ ! शलभ बनकर आशाज्योतिकी परिक्रमा करो, फिर देखो, वह विधुत ज्योति तुम्हारा स्वागत करेगी, तुम्हें आत्मसात् कर लेगी ।'

'उस कम्पनमें 'नहीं-नहीं' निहित है राजकुमारी ! मुग्ध शलभ जब उसके निकट जाता है, तब वह सिर हिलाकर 'नहीं-नहीं' करती है और ऊपरकी ओर इङ्गित करती है—जो 'सत्य' है, उस अनन्त सत्ताका स्मरण दिलाती है। किन्तु अनेक युग व्यतीत करके भी शलभ उसके इस उपदेशको नहीं समझ सका।'

'प्रेम और त्याग, त्याग और प्रेम, यही तो जीवन है। विधाताने दोनोंका सृजन एक ही समय, एक ही कल्पनाके आधारपर किया था।'

'आप कवि हैं युवराज्ञी।'

'वह भी कोई बड़ी बात है आरीफ ? कविको महान् समझना, कुछ दूरकी वस्तु समझना उसका अपमान करना है। प्रकृति सारे संसारको सन्देश देती है, सब उसकी भाषा नहीं समझ पाते, इसीलिए कवि मध्यस्थ बनकर उसको स्पष्टमात्र कर देता है। तुमने नहीं देखा क्या—हंसते हुए पुष्प, रोती हुई शबनम, गाता हुआ कागा, रोती हुई कोयल, चञ्चल सरिता, गम्भीर मेघ, सब कितना दिव्य सन्देश लेकर आते हैं—कितना सरस एवं मादक !'

आरीफ चुपचाप बैठा है, मानो उसकी समझमें जहांआराकी बातें बिलकुल ही न आयी हों। उसके ज्ञानने युवराज्ञीके रहस्यको छूना चाहा, किन्तु असफल रहा। सीमित ज्ञान अपनी सीमाके बाहर निस्सहाय हो जाता है, और रहस्यके पीछे दौड़नेके लिए आधारहीन दिगन्तमें उड़ना पड़ता है न !

× × ×

कितने ही दिन आये और चले गये।

आरीफने अपनी परिधिमें ही जहांआराकी परिक्रमा करते हुए कब पांच मास व्यतीत कर दिये, उसे ज्ञात ही न हुआ। निःसङ्ग अचेतनामें उसे द्वारपर आयी हुई उन उषाओं और सन्ध्याओंकी कुछ खबर ही न हुई कि वे कब आयीं और कब चली गयीं। उनका ध्यान तो उसे उस दिन आया, जब सम्राट् शाहजहांने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और उसकी तौलके बराबर स्वर्ण तथा हाथी-घोड़े देकर उसे राज्यका एक उच्च मनसबदार बना दिया।

तबसे आरीफ अपने प्रासादके वातायनसे नित्य सामने खड़े हुए विशाल दुर्गको देखता। ऐसी कितनी ही उषाओं और सन्ध्याओंको वह जहांआराके निकट बैठकर एक टक उसके मुखकी ओर देखते हुए काट चुका था। कितने ही सूर्यास्तोंको उसने उसके कक्षमेंसे अनिमेष दृष्टिसे देखा था। किन्तु आजके सूर्यास्त और उनमें कितना अन्तर था ! निरन्तर दुर्गको देखते-देखते अब उसको ऐसा प्रतीत होता था, मानो उस बृहदाकार पाषाण-दुर्गसे उसका कोई चिर पुरातन सम्बन्ध हो। कितनी ही रङ्गीन सन्ध्याओंमें वह देखता कि एक वातायनमें उसका चिरपरिचित धानी उत्तरीय क्षण-भरको चमककर फिर अदृश्य हो गया है। कल्पना-चक्षु-वीक्षित वह दृश्य कितना सुन्दर होता। उन स्वर्गिक उषाओं और सन्ध्याओंमें जब मानिनी यौवनश्री उसके द्वारपर याचिका बनकर आयी, तब वह उसे पहचान ही न सका और फिर यह भी न जान सका कि एक दिन किस प्रकार वह रूठकर सदाको उसे छोड़कर चली गयी।

रात्रिमें जब सब लोग सो जाते, तब आरीफ देखता कि किला किस प्रकार शान्त होकर प्रगाढ़ निद्रामें मग्न है। अभी क्षण-भरमें क्षपाके अङ्कमें उषा खेलने लगेगी और उसके साथ ही यह मादक दुर्ग चञ्चल हो उठेगा—कोलाहलपूर्ण; किन्तु अभी कितना शान्तिपूर्ण है ! कितना विश्राम-पूर्ण !!

सुनील दिगन्तमें एक-एक करके तारे निकलते, चन्द्र हंसता और आरीफको ज्ञात होता, मानो वे उसकी ओर इङ्गित कर रहे हों। नित्य एकाकी शून्य-भावसे आकाशकी ओर देखते-देखते अब उसे प्रतीत होता था कि वह सारे तारोंको पहचान गया है। सप्तऋषि ध्रुवकी परिक्रमा करते, फिर मध्य रात्रिके पश्चात् दुर्गकी ओटमें छिप जाते और आरीफ सोचता—काश, मैं तारा होता। आरीफ देखता रहा इसी भांति उस दुर्गको, कभी प्रकाशमें, कभी अन्धकारमें, कभी ज्येष्ठके उष्ण उच्छ्वासोंमें, कभी श्रावणके हलके लहरेमें ! किन्तु इतिहासकारने इस मध्यमें न जाने कितने पृष्ठ लिख डाले। नियतिने अपना मार्ग परिवर्तित किया और सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य एक बार अस्त-व्यस्त हो उठा।

× × ×

वह सोलह सौ छांछठके प्रथम मासकी बाइसवीं सन्ध्या थी।

आगरा दुर्गका स्तूप मेघ और चन्द्रिकाकी आंखमिचौनी देखते-देखते ऊंघने-सा लगा था। इसी समय किसीने भीतर आकर कहा—'पादशाह बेगम।' जहांआरा चौंक उठी—'तुम आरीफ···? क्या इस समय मेरा उपहास करने आये हो आज ? 'बेगम साहिबा' और 'पादशाह बेगम' जिसने उपाधियां दी थीं—देखते हो सामने, वह बन्दीगृहको, संसारको, उसके राज्यको, सबको छोड़कर अब चैनसे सो रहा है।'

'जहांपनाह और आप, आज दोनों ही को मुक्त कराने आया हूं......शीघ्र चलिये, गुप्तद्वारपर मेरे अनुचर......'

'चुप रहो आरीफ! किसको तुम मुक्त करते हो ? अब यहांपर कोई बन्दी नहीं। जो बन्दी था, वह आज बन्धनहीन होकर उन्मुक्त दिगन्तमें घूमनेको चला गया है।'

'क्या कह रही हैं आप ?' आरीफ आगे बढ़ा, किन्तु जहांआरा मार्गमें आ गयी—'नहीं आरीफ, नहीं। देखते नहीं, अभी-अभी तो वे ताजमहलको देखते-देखते सोये हैं, कई दिनोंमें उन्हें आज ही तो निद्रा आयी है, उन्हें मत छेड़ो... देखोगे ? इधर देखो, सोनेपर भी उनका मुख ताज ही की ओर है......!' और फिर वह सम्राट्के निष्प्राण शरीरसे लिपट गयी।

आरीफके नेत्रोंसे दो बूंद आंसू गिर पड़े—'विचार किया था कि उत्कोच और कूटनीतिसे अपने सम्राट्को मुक्त कर लूंगा; किन्तु मृत्यु मुझसे भी पहले उन्हें मुक्त करके ले गयी।'

'क्या कहते हो तुम ? मयूर-सिंहासनपर बैठनेवाले सम्राट्, ताजमहल बनवानेवाले शाहजहां लुक-छिपकर नहीं भागा करते आरीफ! जब जहां इच्छा होगी, वे जायेंगे। कौन रोक सकता है उन्हें ? कौन ? कौन ?'

'आपकी तबियत शायद ठीक नहीं है। क्या आप जरा बाहर चलेंगी ?' जहांआरा अट्टहास कर उठी—'क्या मुझे मुक्त कराना चाहते हो, आरीफ ?......पुष्प जब मुरझाकर धूलि-धूसरित हो गया, तब फिर सिञ्चनसे क्या लाभ ? मेरे जीवनकी अब कोई कल्पना नहीं। तुम जाओ आरीफ......।' इसी समय किसीने आरीफके कन्धेपर हाथ रख कहा—

'सम्राट् औरङ्गजेबकी आज्ञासे आपको बन्दी बनाया गया।'

आरीफने सिर झुकाकर धीरेसे कहा—'चलो।'

× × ×

१९ वर्ष पश्चात्।

एक सन्ध्याको निजामुद्दीन औलियाके मकबरेमें एक नव-निर्मित भूली हुई कब्रके निकट एक वृद्ध व्यक्ति आकर खड़ा हो गया। उसने कब्रपरकी पांशुको साफ किया और एक दीपक जलाकर उसपर रख दिया। ज्योतिरेखामें समाधिके अक्षर उद्दीप्त हो उठे—

'हरी घासके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु मेरी समाधिको आवृत न करे; क्योंकि दीनोंकी समाधियोंके लिए घास ही सर्वाधिक उपयुक्त वस्तु है।

'दीन नश्वर जहांआरा, चिश्तके ख्वाजाओंकी शिष्या और सम्राट् जहांगीरकी पुत्री। रमजान १०९२ हिजरी।'*

*एक ऐतिहासिक तथ्यके आधारपर।



क्या हिन्दू विदेशी हैं ?

श्री नागेश्वरप्रसाद

पश्चिमी विद्वान् संसार-भरके इतिहासमें सृष्टि-निर्माणसे लेकर वर्तमान कालकी घटनाओं तक नवीन छानबीन द्वारा ऐसी क्रान्ति ला रहे हैं कि इतिहासका कायापलट-सा हो रहा है। उनके द्वारा अनेक नवीन उप-सिद्धान्त स्थापित किये गये हैं और एक नयी विचार-धारा बहायी गयी है। अपने भगीरथ परिश्रमके द्वारा उन्होंने जो परिणाम निकाले हैं, वे ऐसे हैं कि उन्हें देखकर ऐसा सोचा जा सकता है कि आजसे लगभग एक सदी पूर्व दुनियाके लोगोंमें ऐतिहासिक जांच-पड़तालकी बुद्धिका अभाव था—कमसे कम आजकी-सी जांच-प्रणाली तो उन्हें ज्ञात थी ही नहीं। संसारकी विभिन्न जातियोंका एक तुलनात्मक इतिहास तैयार किया गया है और इस आधारपर पहलेके कितने ही मत गलत सिद्ध किये गये हैं। यद्यपि वे नवीन मत भी बहुत अंशमें भ्रामक हैं, परन्तु उनके भ्रामक होते हुए भी खूब काफी समय और श्रम लगाकर वे इतने अधिक पुष्ट कर दिये गये हैं कि संसारको उन्हें स्वीकार करना पड़ता है। क्योंकि उनका मुकाबला करनेके लिए उससे भी ज्यादा समय और श्रम चाहिए। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके प्रभुत्व-कालमें प्राचीन भारतीय इतिहासकी जांच-पड़ताल उस ढङ्गसे होने लगी, जो वैज्ञानिक पद्धति कही जाती है। उन विद्वानोंने भारतीय तथा समकालीन अन्य देशीय इतिहासोंका गहरा अध्ययन कर भारतवर्षका प्राचीन इतिहास तैयार किया। 'गहन अन्धकारसे टटोलकर निकाली हुई' यही सामग्री भारतीयोंको बतायी जाती है। भारतीय विद्वान् भी नयी रोशनीकी चकाचौंधमें उन मतोंके आगे सिर झुका देते हैं; क्योंकि गलत होते हुए भी उनका खण्डन करनेकी क्षमता अपने अन्दर वे नहीं पाते। फिर भी, पश्चात्योंकी खोजी हुई अनेक बातें गलत सिद्ध कर दी गयी हैं, जिनके अकाट्य प्रमाण सबको स्वीकार करने पड़े हैं।

उन्हीं पाश्चात्य विद्वानों एवं पुरातत्त्ववेत्ताओं द्वारा यह मत स्थिर किया गया है कि भारत, ईरान तथा यूरोपकी गोरी कही जानेवाली जातियां किसी जमानेमें एक ही स्थानमें एक परिवारके रूपमें रहती थीं। वह परिवार धीरे-धीरे अपने स्थानसे आगे-पीछे हटते हुए एशिया और यूरोपके अनेक हिस्सोंमें फैल गया। भारतमें उनके आनेसे पहले उनसे न्यूनतर सभ्य जाति रहा करती थी, जिसे आज अनार्य कहा जाता है। इस मतका आधार तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—(क) धर्म, (ख) भाषा और (ग) आकृति।

समस्त तथाकथित आर्य जातियोंमें धर्मकी समानता दिखानेवालोंने दिखाया है कि किस तरह भारतीय, ईरानी, केरात और लैटिन लोगोंकी पूजा-पद्धति एक थी, वे एक ही प्रकारके देवताओंकी उपासना किया करते थे। वेदमें वर्णित देवताओंके नाम उनके देवताओंके नामोंसे मिलते हैं। इस विषयपर अधिक प्रकाश बोग्जकुईकी खुदाईसे मिलता है, जिसमें एक हेटाइट राजा और मित्तानी राजाका सन्धि-पत्र मिला है। "उस सन्धि-पत्रमें जिन देवोंके नाम मिलते हैं, वे मित्र, वरुण, इन्द्र, नासत्य (अश्विनी) हो सकते हैं। ये भारतीय देवोंके नाम हैं (पार्जीटर पृ० ३००)।" इसी तरह सुप्रसिद्ध भाषातत्त्वविद् सर जार्ज ग्रियर्सनने पूर्व एवं पश्चिमकी दर्जनों भाषाओंका तुलनात्मक अध्ययन कर यह सिद्ध कर दिखाया है कि ईरान तथा यूरोपकी प्रायः सभी भाषायें संस्कृतकी सहेली हैं। किन्तु कतिपय विद्वान् इस मतसे भिन्न अपना विचार रखते हैं। कितनों हीने इस एकताके सिद्धान्तका जोरदार खण्डन किया है। एक ओर ग्रियर्सनने दिखाया है कि द्राविड़ (अनार्य) भाषा संस्कृतसे बिलकुल भिन्न है, तो दूसरी ओर प्रो० रैपसन नामक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ लिखते हैं कि "संस्कृत भाषाका प्राचीनतम रूप ईरानियोंकी भाषासे भेद रखता है। वह—वेदोंकी भाषा—यूरोपीय भाषाओंसे भी नहीं मिलती है, किन्तु उसमें द्राविड़ोंकी भाषाओंसे बहुत कुछ समानता है।" (प्राचीन भारतका इतिहास—रैपसनकृत पृ० ४९)।

किन्तु आज तो धर्म अथवा भाषाकी एकताके आधारपर मूल जातिकी एकता स्थापित करनेकी पद्धति पुरानी पड़ गयी है। विद्वानोंकी ऐसी राय है कि भाषा अथवा धर्मके सम्बन्धसे एकजातीयता सिद्ध करना सर्वदा सत्य नहीं हो

सकता। वैदिक इण्डिया (Vedic India) नामक पुस्तकके लेखकने इसपर अच्छा प्रकाश डाला है। वह लिखते हैं कि "एक जाति जो किसी भाषाको बोलती है, आवश्यक रूपसे उसी मूल जातिका अङ्ग नहीं हो सकती, जिसने उस भाषाको पैदा किया है।" इसका कारण उन्होंने बताया है कि व्यापार, राजनीतिक संयोग, पराधीनता अथवा आक्रमणके द्वारा भी भाषाका लेनदेन होता है। अन्तर्विवाह इस कमीको पूरा कर देता है। अतएव उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला है कि "यह कहना बिलकुल अवैज्ञानिक है कि अमुक जाति आर्य-भाषा बोलती है, इसलिए आर्य-वंशकी है (पृ० ३११)।" गाल जातिके लोगोंने लैटिन भाषाको अपना लिया था; पर वे लोग रोमन वंशके नहीं हो गये थे।

परन्तु अब तो आकृति-परीक्षाने इस आर्य-अनार्य-विभाजनके सिद्धान्तपर मानो मुहर जड़ दी है। इसकी इतनी बड़ाई होती है, मानो इसमें कुछ त्रुटि है ही नहीं। ऐसा लगता है कि मूल जाति-निर्णय करनेका एक प्रत्यक्ष प्रमाण उनके हाथ लग गया। फिर भी हर्षका विषय है कि बहुतेरे विद्वान् प्रारम्भसे ही इस बातकी घोषणा करते आ रहे हैं कि आकृतिके अनुसार मूल जातिका निर्णय करना एक महा भ्रम है। एक फ्रेञ्च विद्वान्ने (Race Prejudice पृ० २२१में) विभिन्न जातियोंके अस्तित्वका जोरदार खण्डन किया है। वह लिखते हैं कि "आर्य जातिकी जो सच्ची पहचान रखी गयी है, उसके अनुसार आज तक एक भी सच्चा आर्य नहीं देखनेमें आया—किसीका सिर मिलता है तो नाक नहीं, रङ्ग मिलता है तो कद नहीं। इसी तरह किसी भी मूल जातिका एक भी सच्चा आदमी नहीं खोज निकाला जा सकता। फिर किस आधारपर यह पद्धति कायम की गयी?" डार्विन तथा उनके अनुयायियोंको जीवोत्पत्तिकी एक नवीन कल्पना स्थिर कर पशुओं और पौधोंके श्रेणी-विभाजनमें जो सफलता मिली, उसके अतिरेकमें वे यह भूल गये कि मनुष्यमें उस तरहका विभाजन नहीं हो सकता। "डार्विन-पद्धतिके विशाल कार्यको देखकर वे उसका अपूर्ण तथा व्यावहारिक पहलू देखनेसे रह गये। जो-जो सिद्धान्त पशुओं एवं पौधोंपर लागू हो सकते थे, उन्हें मनुष्योंपर भी निर्दयतापूर्वक लागू कर दिया (पृ० २६)।" किन्तु चूंकि उन पदार्थोंकी तरह मानव-समाजमें आकृति-प्रकृतिका भेद देखनेमें आता है, अतएव यह नहीं कहा जा सकता है कि उस आधारपर उनके बीच भी मौलिक श्रेणी-विभाजन सम्भव है। क्योंकि ऐसा करनेका कोई कारण नहीं देखनेमें आता।

उक्त फ्रेञ्च विद्वान्ने सिद्ध कर दिखाया है कि नस्ल तथा रक्तके आधारपर भिन्न जातियोंका विभाजन हो ही नहीं सकता। परीक्षा करके यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रत्येक जाति, प्रत्येक वंशमें विभिन्न आकृतिके मनुष्य पाये जाते हैं। नीचेकी तालिका उसका एक उदाहरण है:—

जातिका नाम	परीक्षित मनुष्योंकी संख्या	अल्प कपाल	मध्य कपाल	दीर्घ कपाल
स्लाव	१००	३	२५	७२
जर्मन	६०७	१६%	४१%	४३%
उत्तरी जर्मन	१००	१८	५१	३१
ग्रीक	१००	१५	३१	५४
वेनेशियन	१००	१७	३८	४५
निग्रो	१००	५६	३८	६

इसी प्रकार भारतीयोंमें भी भिन्न कपाल तथा खोपड़ीके लोग पाये जाते हैं और वह भी एक ही परिवार तथा कुटुम्बमें। तथाकथित आदि निवासियोंके सम्बन्धमें भी यही बात कही जा सकती है। "आसामकी जनसंख्यामें चार किस्मके लोग पाये जाते हैं—चौड़ा कपाल और लम्बी नाक, छोटा कपाल और लम्बी नाक, छोटा कपाल और छोटी नाक एवं चौड़ा कपाल और छोटी नाक (The Ho and Naga Tribes in Assam—Introduction)।" स्पष्ट है कि इस आधारपर उनमें विजातीय मूल छांटनेकी चेष्टा व्यर्थ है; क्योंकि वह आधार ही नहीं ठहरता। "आसामकी नागा जातिमें ७६ से ८१ तकका कपालमान और ७९ से ८८ तकका नासिकामान पाया जाता है (पृ० १६३)।" रङ्गमें भी "वे भूरे हैं, यद्यपि उनका भूरापन भी कहीं हलका और कहीं गाढ़ा है। उनमें पीलेपनका भी मिश्रण है, पर कई लोग तो बिलकुल गोरे हैं। थाक (नागा जातिकी एक शाखा) का भूरापन लाल-मिश्रित है और कहीं-कहीं पीला भी (पृ० १६३)।"

'रेस प्रेजुडिस' (Race prejudice) के लेखक लिखते हैं कि "जो हब्शी अफ्रीकासे उत्तरी अथवा दक्षिणी

अमेरिकामें बसाये गये हैं, उनके रङ्गमें कुछ पीलापन आ गया है और उनकी शकल भी कुछ बदल गयी है। उनकी तुलना उनके पुराने अफ्रीकन साथियोंसे करनेपर आश्चर्य होता है कि एक शताब्दीमें उन दोनोंमें कितना परिवर्तन हो गया (पृ० ९९)।" स्थानान्तर ही उनके इस परिवर्तनका कारण हो सकता है, क्योंकि अमेरिकामें गोरे-काले खूनके मिश्रणकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

शारीरिक बनावट जिन चीजोंपर निर्भर करती है, वह लेखकके मतसे वातावरण है। उस शब्दकी व्याख्या करते हुए वह कहते हैं कि "जलवायु, भूमिकी रचना, सामाजिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन, सांसारिक सुख वातावरण तैयार करनेमें सहायक होते हैं (पृ० १३०)।" फिर "सूरतकी भिन्नताके अनेक कारण हैं—पहला स्थान तो जलवायुका है, जिसमें भोजन और रहन-सहन भी शामिल है।" "जब हम किसी ऊंचे पहाड़पर चढ़ते हैं, तो हम ऊपरके मनुष्य, पशु अथवा पौधोंको कम मजबूत तथा कम गठीला पाते हैं। कभी-कभी तो उनके खास-खास अङ्ग कमजोर हो जाते हैं।"··· "इस प्रकार भूमिकी रचना, मिट्टीमें खनिजपदार्थोंका मिश्रण आदि शारीरिक बनावटपर असर डालते हैं (पृ० १३४)।" "भारतमें लाये गये विलायती कुत्ते (बुल डाग) अपनी भयङ्करता और शक्ति ही नहीं कुछ अंशमें खोते, बल्कि उनका नीचेका जबड़ा भी कुछ बदल जाता है, ऐसा देखा जाता है। (पृ० १३७)।"

रङ्गके आधारपर मानव-विभाजनकी व्यर्थ चेष्टा की जाती है। किसी भी देशमें, खासकर भारतमें तो रङ्गकी विभाजक रेखा खींची नहीं जा सकती। न तो सभी जङ्गली लोग काले वर्णके होते हैं और न सभी शहरी गोरे। वात्सके कथनानुसार तो "शरीरका रङ्ग गर्मी, हवाकी नमी, पोषण, जङ्गल, भौगोलिक स्थिति आदिपर निर्भर करता है।" "बोंगोंके निग्रो लोगोंका रङ्ग कुछ लाली लिये होता है; क्योंकि वहांकी भूमिमें लोहेका अंश अधिक है।" मि० सिम्पसन अपनी 'विश्व-भ्रमणका वर्णन' (A Narrative of Journey Round the World) नामक पुस्तकमें लिखते हैं कि भिन्न-भिन्न देशोंमें यहूदी लोगोंका रङ्ग गोरासे लेकर काला तक होता है। इसी प्रकार खोपड़ीकी विभिन्न बनावटके बारेमें यह नहीं भूलना चाहिए कि भोजनके प्रभावसे उसकी शकल भी बदल सकती है। डार्विनने भी यह माना है कि "बहुत-सी प्रवासी जातियोंकी खोपड़ी प्रत्यक्ष बदल गयी है।········· इसी तरह एक ही श्रेणीके पुरुषसे स्त्रीकी खोपड़ी नहीं मिलती।" "हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि नाकका रूप बहुत कुछ चेहरेकी बनावटपर निर्भर करता है।" मि० नेशफीड 'उत्तर-पश्चिमी भारतमें जाति-प्रथा' (Caste-system in N. W. India & Oudh) में बिलकुल साफ तौरसे लिखते हैं कि "भारतीय जनसमाजको आर्य और अनार्यमें विभाजित करनेकी प्रणाली नयी है। पर भारतीय जनतामें निश्चयपूर्वक एक नस्ल है। अधिकांश ब्राह्मण दूसरी जातिके लोगोंसे अधिक गोरे अथवा सुन्दर नहीं पाये जाते और न एक भङ्गीसे वे भिन्न नस्लके हैं (पृ० २७१)।"

वस्तुतः 'आर्यन' शब्दके विषयमें महान् भ्रम फैला हुआ है और इस शब्दकी आजकी प्रचलित परिभाषा हमारे प्राचीन ग्रन्थों एवं अनुश्रुतियोंसे बिलकुल मेल नहीं खाती। सारी गलतफहमियोंकी यही जड़ है। आर्य शब्द (संस्कृत भाषामें) श्रेष्ठताका बोध करता है। भारतीय ग्रन्थोंके अनुसार आर्य उसे कहना चाहिए, जो वर्णाश्रमका पालन करता हुआ वैदिक धर्ममें विश्वास रखता है। ऋग्वेद (१.५१.८) के अनुसार धर्मात्मा और कर्तव्यपरायण व्यक्ति आर्य और उससे च्युत व्यक्ति अनार्य कहा जाता है। निरुक्त (६.२०) ने उक्त ऋचामें आर्यका अर्थ किया है आर्यः ईश्वर पुत्रः और अनार्यका दस्यते कर्माणि। सायणाचार्यने भी (ऋग्० १.३३.४) अनार्यका 'दस्युः चोरं वृत्तं वा' ऐसा अर्थ किया है। सबने कर्मके ऊपर ही आर्य-अनार्यका भेद रखा है, नस्लकी बात किसीने कहीं नहीं लिखी। मनु महाराज तो यहां तक कहते हैं (१०.५०) कि "आर्य जातिसे बाहर जितने हैं, वे सभी म्लेच्छ माने जाने योग्य हैं, चाहे वे आर्य भाषा बोलें अथवा दूसरी।" एकजातीयताका समर्थन भी करते हैं। मनु-स्मृति (१०.४) में लिखा है कि पुण्ड्र, आन्ध्र, द्राविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद इत्यादि वैदिक कर्मोंकी अवहेलना करनेके कारण दस्यु (अनार्य) बना डाले गये। ऐतरेय (६.१८) के अनुसार भी विश्वामित्रके पचास पुत्र अनार्य बना डाले गये, जिनके नामपर पुण्ड्र, आन्ध्र, सवर, पुलिन्द आदि जातियां बनीं। सम्भव है कि ये बातें सत्य नहीं हों, पर यह तो निश्चय ही प्रतीत होता है कि

प्राचीन कालके, अपनी सभ्यता-संस्कृतिके अभिमानी ब्राह्मण, जो अपनेको आर्य कहनेका गौरव रखते थे, दूसरी न्यूनतर जातियोंको अपनेमें हर्गिज नहीं गिना सकते, अगर सचमुच ऐसा नहीं होता। यूरोपीय विद्वानोंने एक भ्रम फैला दिया है, जिसे भारतीय ऐतिहासिक भी आंख मूंदकर मानते चले आ रहे हैं। इस भ्रमका सूत्रपात उस समय हुआ, जब उन्हें वेदोंके अन्दर आर्य और दस्यु—ये दो शब्द मिले। भाषाकी समताके आधारपर भारत, ईरान और यूरोपमें एक ही नस्ल होनेकी कल्पना उन्होंने पहले ही कर ली थी, अतएव उन्होंने सुविधापूर्वक सभ्य भारतीयोंको आर्य और असभ्यावस्थामें पड़े हुओंको दस्यु नाम देकर अनार्य कह डाला। वर्ण शब्दकी भी एक गलत व्याख्या कर डाली। वर्णका अर्थ रङ्ग लगाकर उन्होंने यह सुझाया कि भारतवासी पहले दो वर्णों (रङ्गों)—आर्य और अनार्य—में विभक्त थे, पर पीछे चार भाग हो गये। फिर भी यह कहां सिद्ध होता है कि दोनों वर्णवाले दो नस्लके थे! वर्ण शब्द वृ (=चुनना) धातुसे बना है और उसका अर्थ चुनाव है। वर्ण-व्यवस्था वस्तुतः पेशेका चुनाव है। गुरुकुल, हरद्वारके आचार्य स्वर्गीय रामदेवजीने 'आर्य और दस्यु' नामक पुस्तकमें दरसाया है कि विदेशी विद्वानोंको वेदकी ऋचाओंमें आर्य और दस्युके विषयमें कैसा भ्रम हुआ है। उन मन्त्रों (ऋग् १.५१.८;१०.८६.१९;१.१०.३३; १.१००.८;१.१७४.८) का अर्थ, जिनमें वे नाम आये हैं, संक्षेपमें यह है—"आर्य और दस्युका भेद जानो। हे इन्द्र! दस्युओंपर अपना अस्त्र फेंको। उन्हें कुचल डालो, आदि।" पर क्या इससे यह सिद्ध होता है कि उनमें मौलिक भेद होना जरूरी है?

आर्य-अनार्य मत माननेवाले विद्वानोंको अनेकों बार अपनी मत-पुष्टिमें कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है। प्रो० म्योर (Aryavartic home पृ० २६०) लिखते हैं—मैंने ऋग्वेदमें दस्युओं एवं असुरोंके नामोंकी जांच की; पर उनमेंसे एक भी नाम ऐसा नहीं मिला, जो अनार्य भाषाका शब्द हो। प्रो० मैक्समूलर (Muir's Sanskrit Text पृ० २८९) लिखते हैं कि दस्युका अर्थ केवल शत्रु है। क्योंकि जब दस्युओंका नाश करनेके कारण इन्द्रकी स्तुति की जाती है, तो उस जगह दस्युसे ऐसा सिद्ध नहीं होता कि उनका बर्बर वंश हो। आर्य-ब्राह्मण वशिष्ठको विश्वामित्रने झगड़ा होनेपर 'यातुधान' कह दिया था। और भी कुछ दूसरे नाम कहे गये थे, जो अनार्योंके लिए खासकर प्रयुक्त होते हैं। अगर अनार्य दूसरी जातिके होते, तो ऐसा नहीं कहा जा सकता।

इस तरह यह सिद्धान्त कि भारतवर्षके आदि निवासी सन्थाल, द्राविड़, मुण्डा, कोल कहलानेवाले लोग हैं और आर्य पीछे पश्चिमी राहसे आये, गलत एवं हानिकर है। प्रथमतः अत्यधिक अनुसन्धानके पश्चात् भी यह अभी तक निश्चित नहीं किया जा सका कि आर्योंका आदि निवास कहां हो सकता है। उत्तरी ध्रुव प्रदेशसे लेकर भारत और जर्मनी तकके अनेकों नाम लिये जाते हैं; पर कोई नाम ऐसा नहीं है, जो विवादसे खाली हो। दूसरी बात यह भी है कि यह माननेके लिए भी कोई पक्का सबूत नहीं है कि आर्य लोग पश्चिमसे भारतमें पधारे। पार्जीटर महोदय, जिन्होंने प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक अनुश्रुतियोंको सुलझानेमें सबसे ज्यादा परिश्रम किया है, उपर्युक्त मतका तीव्र विरोध करते हैं। उत्तर-पश्चिमकी ओरसे भारतीयोंके प्रवेश करनेके विरुद्ध उनके द्वारा दिये गये प्रमाणोंमेंसे कुछ नीचे दिये जाते हैं:—(१) पश्चिमी भारत कभी पवित्र नहीं माना गया है, जैसा कि आर्योंके पहले-पहल उसी भूमिमें पदार्पण करनेके कारण माना जाना चाहिए था। (२) भारतीय ग्रन्थोंमें इसका कहीं सङ्केत भी नहीं मिलता। (३) भारतकी मुख्य वंशावलियोंका प्रारम्भ ऐसा लिखा मिलता है, जिससे यह नहीं सिद्ध होता कि उनका सम्बन्ध कहीं बाहरसे हो, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि वे यहीं पैदा हुए हों। (४) सम्भवतः आर्य लोग मध्य हिमालयकी ओरसे भारतमें पहुंचे थे, क्योंकि वह भाग सदैव पवित्र माना गया है। (५) अगर ऐसी बात होती कि वेदोंकी रचनाके पूर्व ही वे भारतमें प्रवेश कर सरस्वती नदी तक बढ़ आये होते, तो इसका कारण समझमें नहीं आता है कि वेदोंमें नदियोंके नाम पूर्वसे पश्चिम आये हैं, न कि पश्चिमसे पूर्व। गङ्गाका नाम सबसे पहले आया है, जहां वे उस समय पहुंचे भी नहीं होंगे। किन्तु चूंकि पार्जीटर भी उसी पाश्चात्योंकी श्रेणीके थे और आर्योंका बाहरसे आना अस्वीकार करनेको वे किसी तरह तैयार नहीं थे, इसलिए पश्चिमी द्वारसे नहीं सही, तो हिमालयकी ओरसे ही उनका आना मान लिया। उनके उपर्युक्त प्रमाणोंसे

तो यह साफ सिद्ध होता है कि आर्य बाहरसे आये ही नहीं। अपनी सारी कृतियोंमें उन्होंने यह कहीं नहीं दिखाया कि किस आधारपर वह उनका बाहरसे आना सिद्ध करते हैं, चाहे किसी राहसे आये हों। फ्रेञ्च विद्वान् जे० फाइनो (J.Finot) ने बहुत दुरुस्त कहा है कि 'क्या इतने गहरे मतभेदों और तीव्र विरोधोंके बावजूद भी हम आर्य नस्ल अर्थात् आर्य पद्धतिका नाम ले सकते हैं और किसी चीजको अनार्य कहकर आर्य नामक किसी काल्पनिक पदार्थसे, जिसकी सत्ता कभी नहीं रही, भिन्न मान सकते हैं?' उन्होंने अनेकों यूरोपीय विद्वानोंकी राय लिखकर यह दिखाया है कि किस तरह वे दूसरेका विरोध करते हैं; पर कुछ तय नहीं कर पाते। प्रो० मैक्समूलर जब यह लिखते हैं, तब उनका समर्थन भी इस तथ्यके प्रति पाया जाता है कि 'वह मानव-शास्त्री, जो आर्य नस्ल, आर्य रक्त अथवा आर्य केशकी बात कहता है, उसी तरह भ्रमका शिकार है, जिस तरह वह भाषा-शास्त्री, जो दीर्घ-कापाल शब्दकोष अथवा अल्पकापाल व्याकरणकी बात करता हो (पृ० २२९)।" इसलिए उक्त फ्रेञ्च लेखक लिखते हैं:—"आजकल एक तरीका हो गया है कि जब दो तरह-की मनोवृत्तियों अथवा प्रणालियोंकी तुलना करना होता है, तो एकको आर्य और दूसरीको अनार्य कह डाला जाता है। इतनेसे यह समझ लिया जाता है कि सब कुछ कह दिया गया।" कितनोंने तो 'आर्य' को एक काल्पनिक नाम (myth) मान लिया है। उनकी दृष्टिमें नस्लके अर्थमें आर्यकी हस्ती कभी नहीं रही। किन्तु इतनी सारी गलतियोंका कारण एक ही है कि उन महानुभावोंको आर्य-की भारतीय परिभाषासे परिचय नहीं था। निश्चय ही यह नस्ल सम्बन्धी नाम नहीं है, जिसकी पहचान भाषा अथवा आकृतिसे हो और न यह शब्द आर्यावर्तसे बाहरवालोंके लिए प्रयुक्त होता था। भारतीयोंने अपनेको मानव जातिके प्रारम्भिक विकास-कालसे ही आर्य कहना जारी किया था, चाहे उन्होंने बाहरसे इस देशमें प्रवेश किया हो अथवा यहीं उत्पन्न हुए हों, इसका खास महत्त्व नहीं है; क्योंकि इतना स्पष्ट है कि उनसे पहले यह देश बिलकुल वीरान था और उन्होंने ही इसे बसाया। अतः आजके हिन्दू किसी तरह विदेशी सिद्ध नहीं किये जा सकते। जो समाज-बहिष्कृत हो जङ्गलोंमें भगा दिये जाते थे, वे ही उस समय दस्यु और अब अनार्य कहाते थे। समाज-बहिष्कारका यह रिवाज अब तक जङ्गली लोगोंमें प्रचलित है। सन्थालोंके विषयमें प्रसिद्ध ऐति-हासिक सर विल्सन (पृ० ४९) कहते हैं—"उनमें जाति-बन्धन इतना दृढ़ है कि बहिष्कार ही उनका एकमात्र दण्ड है। अपराधीके 'आग पानी बार देने' तथा गांवसे बाहर जङ्गल भेज देनेका नियम अभी तक उनमें चला आता है।" ये तथाकथित आदिवासी अभी तक अपनी कितनी ही प्राचीन आर्य-कालीन रीतियोंका पालन करते आ रहे हैं, जिन्हें अबके हिन्दुओंने प्रायः त्याग दिया है। विवाह-पद्धति, प्रौढ़-विवाह, व्यभिचारसे घृणा, एकपत्नीत्व, पञ्चायत, सूर्याग्निकी पूजा, मृतक-दहन आदि प्राचीन आर्यों द्वारा पाले जाते थे और धर्म-ग्रन्थोंमें इनका विधान है। ये लोग अभी भी इनपर दृढ़ हैं।

प्रारम्भमें ही एक गलत नीतिको अख्तियार कर लेनेसे उन लोगोंसे सदैव गलती ही होती रही। उनके निकाले निष्कर्ष भी कितने ही गलत हैं। श्रीयुत पार्जीटरने अपेक्षाकृत अधिक मिहनत की है, पर उसी अनुपातसे उतनी बड़ी गलती भी की है। यहां तक कि उन्होंने लिख मारा कि वैदिक ब्राह्मणोंका सम्बन्ध अनार्यों से था, आर्योंसे नहीं। आर्यों से उनका सम्बन्ध पीछे हुआ (प्राचीन भारतीय अनुश्रुति पृ० ३०६)। उसके लिए उन्होंने ये कारण बताये हैं:—दैत्य, दानव, असुर आदि अनार्य थे (इसे उन्होंने स्वयंसिद्धवत् मान लिया!) और ब्राह्मण उनके पुरोहित पाये जाते हैं। हिरण्यकशिपु (दैत्य=अनार्य) के पुरोहित एक भार्गव (=आर्य) थे और वशिष्ठ स्वयं उनके होता थे। इन्द्र (=क्षत्रिय =आर्य) ने बहुत-से दानवों (अनार्यों), जैसे वृत्र, नमुचिको मारा, जो ब्राह्मण थे। किन्तु पार्जीटरको भी घबड़ाहट पैदा हुई, जब वेदोंमें ब्राह्मणों द्वारा इन्द्रकी स्तुति वृत्र-संहारके कारण पाते हैं। किसी तरह इसे भी उन्होंने यह कहकर सुलझा लिया कि वेद पहले तो अनार्यों की कृति थे, पीछे आर्यों ने उन्हें अपना लिया; पर उन्हें भी कई स्थलोंमें सन्देह होते रहे, जिनका निराकरण न कर सकनेके कारण उन्हें ज्योंका त्यों छोड़ दिया। एक सन्देह यह प्रकट किया है कि वशिष्ठ और भार्गव—ये संस्कृत नाम अनार्योंके पुरो-हितोंमें क्योंकर हो सकते थे। इससे छुटकारा यह कहकर

पा लिया कि सम्भवतः पीछे अनार्य नामोंके संस्कृत रूप बना डाले गये हों। इसी तरह अपनी बात बनाये रखनेके लिए जिसे-तिसे मनमाना आर्य-अनार्य बना डाला। केवल एक स्पष्टीकरणसे ही सारे भ्रम, सारे दोष दूर हो जाते कि अनार्य कहानेवाले लोग भी कभी आर्य ही थे, जो सामाजिक नियमोंके उल्लङ्घनके दण्डस्वरूप आज जङ्गलोंमें इस दशाको प्राप्त हैं। उन्हें भी अन्तमें यह स्वीकार करना पड़ा है कि क्षत्रिय (=आर्य) भी दैत्य, दानव आदि कहे जाते थे (जैसे वृषपर्वा, कंस, जरासन्ध)। हिन्दू बौद्धोंको, जो उनकी ही नस्लके थे, म्लेच्छ कहते थे। फिर भी वह सच्ची बात कबूल करनेसे रह जाते हैं। एक अंगरेज होकर उनका तो इसमें लाभ ही था कि भारतवर्षका खूब काफी विभाजन भिन्न-भिन्न पहलुओंसे हो। दुःख है कि भारतीय विद्वानोंने भी इसे मान लिया है। पण्डित जयचन्द्रने (भारतीय इतिहासकी रूप-रेखा जिल्द १) उक्त कथनके विरोधका बीड़ा तो उठाया; पर चूंकि वह भी उसी विचार-धारामें बहनवाले थे, इसलिए दैत्यादिकोंको उन्होंने भी अनार्य मान लिया और यह कहकर मामला समाप्त कर दिया कि "कदाचित् ऐल (= आर्य) की अपेक्षा मानव (=अनार्य) पर ब्राह्मणोंका आदिमें अधिक प्रभाव रहा हो। किन्तु मुझे इसमें भी सन्देह है।" "मत्स्य-पुराणानुसार मनुने मालाबारकी ओर जाकर तपस्या की थी, और उन लोगोंकी समझमें मनु तो अनार्य देशमें प्रवेश नहीं कर पाये थे, अतः मनुको भी अनार्य सिद्ध कर दिया गया (वैदिक इण्डिया पृ० ३४६)।"

———

यात्री

स्नेही सङ्गी सबसे विहीन
अपने दुख-सुखमें हुआ लीन
डगमग पग बढ़ता आया है यात्री इस पथपर अन्तहीन
सहकर विपदाओंके प्रहार
पथश्रमसे थककर बार-बार
गिर-गिरकर फिर-फिर संभल-संभल वह उठा, पराजयको बिसार
जब तक अवशेष तनिक भी बल
जब तक आशाका दृढ़ सम्बल
दुर्गम जीवनके पथपर वह बढ़ता ही जायेगा अविचल
औ' एक दिवस जब मुग्ध प्राण
गायेंगे मृदु चिर-मिलन गान
संसृतिमें वह खो जायेगा सागरमें बुद्बुदके समान

—प्रयागनारायण त्रिपाठी

दीप-शिखा

श्री रामसरन शर्मा

चारों ओर बन्द कमरेमें दीपक जल रहा था। एकदम स्थिर, सीधी लौ, उसके अन्धकारको बाहर ही रोके थी।

दीपकके सामने एकाग्र मनसे वह साड़ीपर सलमा टांक रही थी। बिलकुल चुपचाप। केवल उंगलियां चल रही थीं। बस।

दीप-शिखा-सी ही सुन्दर, वैसी ही स्थिर, एकाग्र।

पुरानी गूदड़-सी रजाई कन्धोंपरसे खिसककर नीचे, उसके चारों ओर पड़ी थी।

कमरा पुराना, पुराने कपड़ोंसे अलंकृत था। मैले-से गद्देपर वह बैठी थी।

हां, हाथोंमें थीं चांदीकी चूड़ियां। माथेपर बिन्दी न थी। और था, मैली पेवन्ददार धोतीमें छिपा-छिपाया-सा, पर मुखसे उबलता-सा, उसका रूप।

वह विधवा थी। अनाथ थी। तभी तो आधी रातको आंखें फोड़कर भी सलमा टांक रही थी।

रोटी तो चाहिए न?

सहसा दूरपर घण्टे बजने लगे। ऊपरको देखकर वह सुनने लगी—एक, दो,......बारह।

एक लम्बी सांस फेंककर, उसने सामनेकी साड़ीको देखा, हाथ रोककर उंगलियां चटकायीं, और फिर काममें लग गयी।

कल तक काम देना था। कल पैसे न मिलनेपर तो भूखा ही रहना पड़ेगा।

थोड़े-से दिन हुए—चार बरस—जब वह ब्याहकर आयी थी। सारे अरमानोंसे ओतप्रोत, बचपनको छोड़कर वह यौवनकी ओर बढ़ रही थी।

उस कच्चे-से कमरेमें, लालटेनके प्रकाशमें, घूंघटमेंसे, उड़ती-सी निगाहसे, उसने देखा था उन्हें—देखकर निहाल हो गयी थी।

पति, प्रेमसे विभोर हुआ, दिन-भर जैसे-तैसे फेरी लगाकर, दिये जलते ही घर आता था।

द्वारपर होती थी वह।

सपने-से दिन—आह! न जाने कितनी बार उसने उनकी यादमें आंसू बहाये थे।

आंसू सूख गये थे अब।

दिन भी बीत गये थे।

मानो सहसा आंखोंका बीमार खिड़कीसे एक निगाह डाले सौन्दर्यमयी ऊषापर, और, फिर आंखें खो दे।

ऐसी ही पीड़क, मोहक थी वह स्मृति।

फिर, एक दिन उसका पति, यों ही, बीमार पड़कर चला गया।

तबसे उस अन्धेरे जीवनमें वह घुट रही थी। कच्ची कोठरी, रात-दिन आंख फोड़कर काम, तब कहीं दो रोटियोंका डौल होता था।

छोटी-सी कैंचीसे उसने डोरा काट दिया। सुई रखकर, एक अंगड़ाई ली।

साड़ी बन गयी थी।

दियेके पीले प्रकाशमें सलमा, नीले रेशमपर, झलमला रहा था।

कैसी सुन्दर थी वह साड़ी।

काश वह भी—ओह! यह कैसे हो सकता था। उसकी आंखें सोती-सी हो गयीं। थकान बेहद जान पड़ने लगी। अङ्ग-अङ्ग दुख रहा था।

न जाने क्या सोचकर वह उठी। सामने दीवारपर लगे मैले, टूटे शीशेके सामने खड़ी हो गयी।

साड़ीका पल्ला सिरपर रख लिया।

ओह! कैसी सुन्दर!—उसने झटसे पल्ला हटा लिया।

धमसे जाकर खाटपर पड़ गयी। मुंह छिपाकर।

दियेकी सीधी लौ एक बार हिलकर रह गयी।

दूसरे दिन बूढ़े दूकानदारने मनकी प्रसन्नताको दबाकर, साड़ीमें नुक्स निकालना शुरू किया।

काम टेढ़ा-सा, भद्दा-सा था। न जाने क्यों सोफियाना-सा न था······। वह चुपचाप सुनती रही। सदाकी तो बात थी।

सहसा दूकानदार रुक गया। दूकानपर रुकी मोटरसे उतरे एक स्त्री और पुरुष। स्त्री झलमल करती-सी, जेवरोंसे लदी—बेहद लाल होंठ, काली आंखें·······

न जाने क्यों 'वह' सहम-सी गयी।

"कैसी लाजवाब साड़ी है," सुन्दरीने कहा।

दूकानदारने जल्दीसे पैसे बढ़ाते हुए कहाः—

"लो, यह अपनी मजदूरी।"

उसने पैसे ले लिये। दूकानसे निकल आयी। पर, जा न सकी। वहीं सिकुड़ी-सिकुड़ाई-सी रुक गयी।

"बाईजी," बूढ़ा दूकानदार कह रहा था, "आपके ही लायक चीज है। रास्ता चलना न रुक जाये, तो कहियेगा।"

बाईजी!

वह वेश्या थी। वेश्या!

बाहर सर्दीसे कांपती, डरी-सी, भौचक-सी उसने देखा कि साड़ी सवा सौ रुपयेमें बिक गयी।

वेश्याने ले ली थी।

उसने कसकर अपनी मुट्ठी दबा ली। उसमें केवल बारह आने पैसे।

वह घर चली आयी।

दिया जलाकर काम करने बैठी। पर, न जाने क्यों, आज मन नहीं लग रहा था। कुछ धड़कन-सी, चञ्चलता-सी लग रही थी।

बारह आने—सवा सौ रुपये—वह वेश्या·········

उसने उड़ती-सी आंखोंसे देखा आईनेमें।

वह उस वेश्यासे अधिक सुन्दर थी। कहीं अधिक।

वह सोचने लगी, उस वेश्यामें ऐसी बात ही क्या थी? क्या?

वह मोटरमें बैठकर, साड़ी पहनकर·········और उसे तो आज भी रात-भर आंखें फोड़नी थीं। रोज ही तो।

एक दिन वह बुढ़िया हो जायेगी·········या बीमार·········आंखें तो फूट ही जायेंगी·········

फिर?

भीख।

ओह!

वह खिड़की खोलकर बाहरकी ओर झांकने लगी। अपने मनकी हलचल, वह अज्ञात उत्सुकता, जो उसमें समा गयी थी, उससे बचना तो होगा ही।

किसीने दरवाजा खटखटाया। एकबारगी ही उसका दिल धड़धड़ा उठा। वह चीखते-चीखते रह गयी।

कांपते-कांपते उसने किवाड़ खोल दिये।

देखा—वेश्याका साथी पुरुष।

उसे पसीना आ गया। उस जाड़ेमें।

पुरुषने देखा उसे, कमरेको, पसीनेकी बूंदोंको—उसकी आंखें चमकीं।

"मुझे एक साड़ी कढ़वानी है," उसने बड़ी सज्जनतासे कहा, "इसीलिए आपको कष्ट दिया है।"

वह चुप। गला सूख रहा था। बोले तो कैसे, बोला भी जाये।

पुरुष कहता गया :—

"दूकानदारने आपका पता बता दिया था। जल्दीका काम था।" दो कदम आगे बढ़कर उसने कहा, जरा मुस्कराकर, "आप बड़ा सुन्दर काढ़ती हैं, जैसी सुन्दर हैं, वैसा ही·········।"

वह तो एक टक उसकी ओर देख रही थी। वेश्या······ साड़ी·········सवा सौ रुपये·········बारह आने·········

पुरुषने नोटोंकी एक गड्डी निकालकर कहा :—

"यह आपकी भेंट है।"

नोट! इतने सारे!

कमरा हिल रहा था। सब कुछ हिल रहा था। दीपक भी।

अंधेरा-सा·········कानोंमें सनसनाहट-सी·········

वह कह रहा थाः—

"आपकी तबियत ठीक नहीं है क्या?·········अरे!"

वह उसकी गोदमें बेहोश थी।

सुबह—

दीपक बुझ गया था। दीप-शिखा खो चुकी थी।

वह उसकी गोदमें पड़ी थी। बुझी-सी।

———



एशियाका फ्रान्सीसी उपनिवेश—इण्डो-चीन

श्री कमलाकान्त शर्मा, एम० ए०

ब्रिटेनके बाद फ्रान्स ही ऐसा देश था, जिसका साम्राज्य संसारके विभिन्न भागोंमें फैला हुआ था। अब फ्रान्सके आत्म-समर्पणके बाद उसके उपनिवेशोंकी स्थिति बड़ी विकट हो गयी है। उनके भविष्यके सम्बन्धमें यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि वे फ्रान्सके अधीन रहेंगे अथवा विजयी धुरी-शक्तियोंमें उनका बंटवारा हो जायगा। फ्रान्सका सबसे बड़ा उपनिवेश एशियाके दक्षिण-पूर्वी कोनेमें इण्डो-चीन है, जिसे उसने बहुत धन और शक्ति लगाकर विकसित किया और आधुनिक रूप दिया है।

एशियामें फ्रान्सके इस उपनिवेशकी जड़ कैसे जमी, इसका मनोरञ्जक इतिहास है। सन् १७८७ में पिगानो डि बेहां नामक एक दूरदर्शी फ्रेञ्च पादरीने फ्रान्सके राजा १६ वें लुई और कोचीन-चीनके राजामें एक सन्धि करायी। फ्रान्सकी राज्यक्रान्तिके कारण वह सन्धि रद्द हो गयी। पर बहुत-से फ्रान्सीसी पूर्वमें अपने साम्राज्यका विस्तार बढ़ाना चाहते थे, इसलिए वे उत्तमाशा अन्तरीप होते हुए कठिन समुद्री यात्रा कर सुदूर पूर्व पहुंचे। वहां उन्होंने कोचीन-चीन और अनामके राजाओंको, उनके उत्तरसे आक्रमण करनेवाले अर्द्ध जङ्गली शत्रुओंको परास्त करनेमें सहायता पहुंचायी। उस समय वहां फ्रान्सकी देखरेखमें किलेबन्दियां की गयीं, जहां फ्रेञ्च सेनायें अर्द्धशताब्दी बाद आगे बढ़नेसे रोक दी गयीं और उन्हें इण्डो-चीनपर प्रभुत्व कायम करनेमें कामयाबी न मिल सकी।

कुछ वर्षों तक तो ये फ्रान्सीसी यात्री वहांके शासकोंके सलाहकार बने रहे और इस प्रकार फ्रान्सका प्रभाव क्रमशः जमता गया। पर बादको जब अनाम और कोचीन-चीनके लोगोंको मालूम हुआ कि फ्रान्सकी ओरसे उनके देशोंको पराधीन बनानेकी गुप्त चेष्टा हो रही है, तो राज्य-भरमें फ्रान्सके विरुद्ध विद्रोह फैल गया। इस बीच फ्रान्सीसियोंने वहां अपना बहुत अधिक उपनिवेश कायम कर लिया था और ईसाइयोंकी ओरसे जोरोंसे धर्म-प्रचारका कार्य भी हो रहा था। साहसी धर्म-प्रचारक देश-भरमें फैले थे और विद्रोहके फलस्वरूप उनमें कितने ही मार डाले गये। इससे क्रुद्ध हो फ्रेञ्च सरकारने वहां हजारों सैनिक भेजे और कोचीन-चीन तथा अनामके राजाओंसे घमासान युद्ध हुआ।

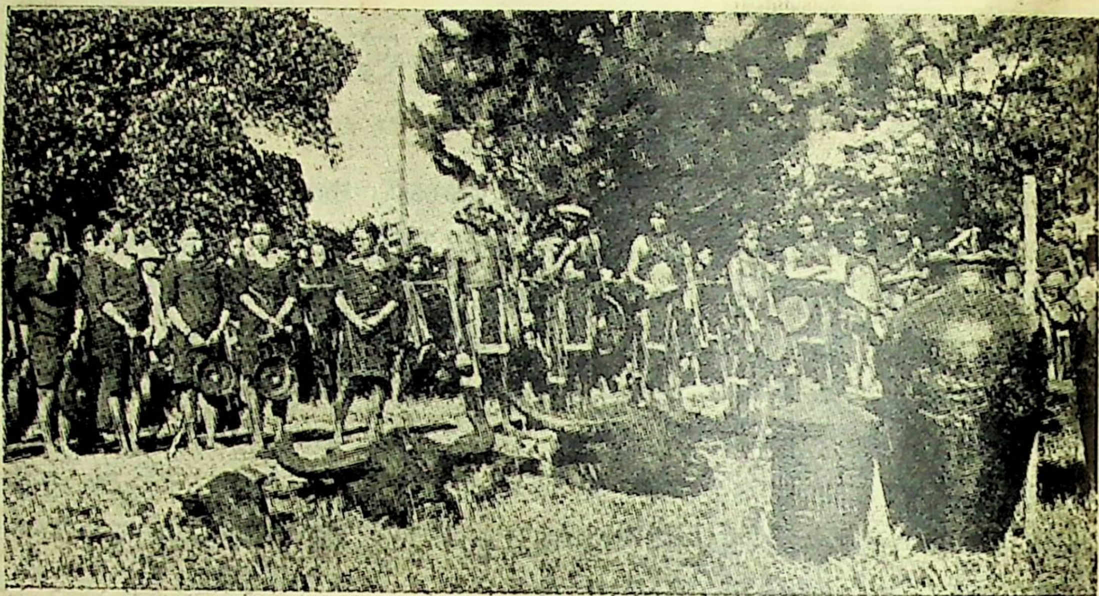
यह सन् १८५८ की बात है। उस समय फ्रान्सको अनामके प्रधान शहर टूर्न और कोचीन-चीनके सेगोनपर कब्जा करनेके पहले बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। फिर भी लगातार चालीस वर्षों तक फ्रान्सको उन्हें अपने अधिकारमें रखनेके लिए सङ्घर्ष करते रहना पड़ा। इस युद्धमें कितने ही ऐसे आदमी हताहत हुए, जिन्होंने लड़ाईमें भाग नहीं लिया था। उनमें आठ विशप और पन्द्रह मुख्य-मुख्य धर्म-प्रचारक भी थे। लड़नेवाले फ्रान्सीसी सैनिकोंमें हजारों अफसर तथा सिपाही रोगों और भयानक युद्धके शिकार हुए। यहांकी घातक जल-वायुसे युद्धमें मारे गये आदमियोंसे कहीं अधिक आदमियोंकी मृत्यु हुई। इस युद्धमें फ्रान्सके कई लाख फ्रैङ्क खर्च हुए।

अब प्रश्न यह है कि इतने धन और जनकी क्षति उठाकर एक देशको अपने अधिकारमें करनेमें फ्रान्सका क्या लाभ था? किसलिए उसने अपने किसानोंपर बेहद टैक्सका भार लादकर फ्रेञ्च नवयुवकोंको सुदूर एशियामें युद्धके अग्निकुण्डमें झोंक दिया? इसका कारण वही है, जिसके लिए उसने अन्य उपनिवेशोंकी स्थापना की। उसे विश्वास था कि वह एक दिन इण्डो-चीनके प्रचुर प्राकृतिक साधनोंको अपने उपयोगमें ला सकेगा।

पूर्वमें कोचीन-चीन और कम्बोडियाके समान चावल उत्पन्न करनेके लिए सुविधाजनक भू-भाग दूसरा नहीं है। फ्रान्सीसियोंके दिलमें यह बात अच्छी तरह बैठ गयी कि एशियाके इस दक्षिण-पूर्वी कोनेमें इतना अधिक चावल तैयार किया जा सकता है, जिससे न केवल फ्रान्सकी आवश्यकताओंकी पूर्ति होगी, बल्कि हजारों टन चावल चीन तथा अफ्रीकाके फ्रेञ्च उपनिवेशोंमें भी भेजा जा सकता है।

वास्तवमें यही बात हुई। फ्रान्सने बड़े धैर्यसे लड़ाई जारी रखी और एक-एक करके सबको परास्तकर पूर्वमें इस विशाल

उपनिवेशकी स्थापना की। यद्यपि बीच-बीचमें अकस्मात् अशान्तिकी आग भड़क उठती रही है, फिर भी अब तक इण्डो-चीनमें फ्रान्सका सिक्का जमा हुआ है। अब यह पांच भागोंका एक साम्राज्य बन गया है, जिसमें कोचीन-चीनका उपनिवेश और कम्बोडिया, अनाम, टानकिन और लाओसके रक्षित देश सम्मिलित हैं। कम्बोडिया, अनाम और लाओस वहांके परम्परागत राजाओंके अधिकारमें हैं, जिन्हें सेगोनके फ्रेञ्च गवर्नर जेनरलसे कुछ विशेष सुविधायें मिली हैं। उन्हें अपने पुराने कार्य-क्रम और पूर्वीय ढङ्गके दरबार रखनेकी अनुमति मिली हुई है। इस कामके लिए उन्हें पेन्शनके रूपमें बहुत काफी रुपया दिया जाता है। पर फ्रेञ्च अधिकारी उनके प्रत्येक सरकारी कार्यकी देखरेख करते रहते हैं।



इण्डो-चीनवालोंका महोत्सव। बलिदान किये हुए भैंसोंके सिर सामने पड़े हैं।

इस प्रकारके प्रबन्धसे इण्डो-चीनके आर्थिक उत्पादनमें बहुत अधिक वृद्धि हुई। चावलकी पैदावारके सम्बन्धमें फ्रान्सीसियोंने जो आशातीत कल्पना की थी, वह अन्तमें १९२९ में सत्य हुई। उस वर्ष १२ लाख टनसे अधिक चावल पैदा हुआ, जिसमें ९ लाख टन हांगकांग बन्दरगाहके रास्ते चीन भेजा गया, बाकी फ्रान्स तथा फ्रान्सके दूसरे उपनिवेशों—खासकर अफ्रीकामें भेजा गया।

इसके साथ ही दूसरी वस्तुओंके उत्पादनके लिए भी प्रयोग किये गये, जिनमें कितनी ही चीजोंमें खूब सफलता मिली। रबरके पौधे रोपे गये और १९३१ तक इनका कितना विकास हुआ, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि



चालीस-चालीसके जत्थे नाव खेनेकी प्रतियोगितामें भाग ले रहे हैं। देशका यह एक अत्यन्त लोकप्रिय खेल समझा जाता है।

१९३१ में ७५,००० एकड़ जमीनमें इनके पेड़ लहलहाते दिखाई पड़े। चाय, गन्ना, रुई, काफी और सनके उत्पादनके लिए भी प्रयत्न हुए। इस बातका भी अनुमान लगाया गया कि कई खनिज पदार्थोंको भी प्राप्त किया जा सकता है और इस दिशामें जो प्रयत्न हुए, उनके परिणामस्वरूप कोयला, चूना और जिस्तेका उत्पादन होने लगा। लाओस जिलेमें सोनेकी खानका भी पता लगा।

फ्रान्सीसियों द्वारा इस बातके प्रयत्न हो ही रहे थे कि किस प्रकार इण्डो-चीनके प्राकृतिक उपादानोंको विकसित किया जाय। इसके साथ ही इसके भी प्रयत्न चलने लगे कि उनका उपयोग अधिकसे अधिक किस प्रकार किया जाय। इसके लिए सिंचाईके लिए नहरें निकाली गयीं, सड़कें तैयार की गयीं और कई जलमार्ग तैयार किये गये। अङ्कोर तथा उसके आस-पासकी जमीन उन दिनों श्यामके अधिकारमें थी। श्याम निर्बल था, इसलिए फ्रान्सने उसे दबाकर उक्त अञ्चलोंको प्राप्त करना चाहा। इसके लिए उसने बहाना भी निकाल लिया। पहले तो श्यामने फ्रान्सका विरोध किया; पर अन्तमें जब उसकी सहायताके लिए कोई नहीं गया, तब उसे निराश होकर वह अञ्चल फ्रान्सको दे देना पड़ा। उसीमें खेमरोंके मन्दिर भी थे, और फ्रान्सने उन सबका उपयोग करनेके लिए ही उनपर कब्जा करना चाहा था। इतने मूल्यवान स्थलको श्यामवालोंने यों ही व्यर्थ-सा छोड़ रखा था और फ्रान्सके हाथमें वह न आया होता, तो न जाने कब तक यह रहस्यपूर्ण शहर अपने भग्नावशेषोंमें लिपटा पड़ा रहता।

इसके बाद चीनके साथ समझौता करके टोकिनसे यूनन तक ही नहीं, बल्कि यूनंफू तक रेलवे निकाली गयी।

यह सब योजनायें दस सालमें कार्यान्वित की गयीं और इस बातकी आशा की जाने लगी कि फ्रान्सके लिए इण्डो-चीनका यह उपनिवेश आशासे अधिक लाभप्रद होगा।



भाला चलानेकी शिक्षा सभी मूल निवासियोंके लिए प्राचीन कालसे ही अनिवार्य है।

आम तौरपर फ्रान्सीसी सरकारने इण्डो-चीनके आर्थिक विकासके लिए काफी प्रयत्न किये और इण्डो-चीनको आधुनिक रूप देनेमें उसने कोई बात उठा न रखी; पर इण्डो-चीनकी जनतापर इसकी क्या प्रतिक्रिया हुई? क्या इण्डो-चीनकी फ्रान्सीसी शासन-व्यवस्थासे वहांकी जनता सन्तुष्ट है?

इण्डो-चीनका पिछले दस सालोंका इतिहास बताता है कि किस प्रकार वहां वर्तमान शासन-व्यवस्थाके विरुद्ध उपद्रव होते रहे हैं। अनाम और टोकिनमें तो देशी फौजने भी विद्रोह कर दिया था। टोकिन और अनाम इन दो अञ्चलोंके लोगोंमें राजनीतिक चेतना अधिक आयी है। वहां एक क्रान्तिकारी दल भी काम करता है, जिसमें कम्यूनिस्टोंका



इण्डो-चीनकी सुन्दरियां।

कि किस प्रकार फ्रान्स-की इस विशाल सम्पत्ति-का लाभ उठाया जाय। फ्रान्सीसी पूंजीपतियोंकी इतनी सम्पत्ति लगी हुई है कि इसीके कारण वे पेरिससे वहांका शासन चलाना चाहते हैं और इसके लिए उन्हें ऐसे-ऐसे काम करने पड़ते हैं, जिनका उपनिवेश-निवासी विरोध करते हैं।

इण्डो - चीनके खास उत्पादन-पदार्थोंमें चावल-का प्रमुख स्थान है; पर फ्रान्स द्वारा ऐसे प्रतिबन्ध लगाये गये हैं, जिनके कारण इण्डो-चीनके धान-के खेतिहरोंकी कठि-नाइयां बुरी तरह बढ़ गयी हैं। १९३३ में उनके एक दलने फ्रान्स-सरकार-के पास एक मेमोरेण्डम

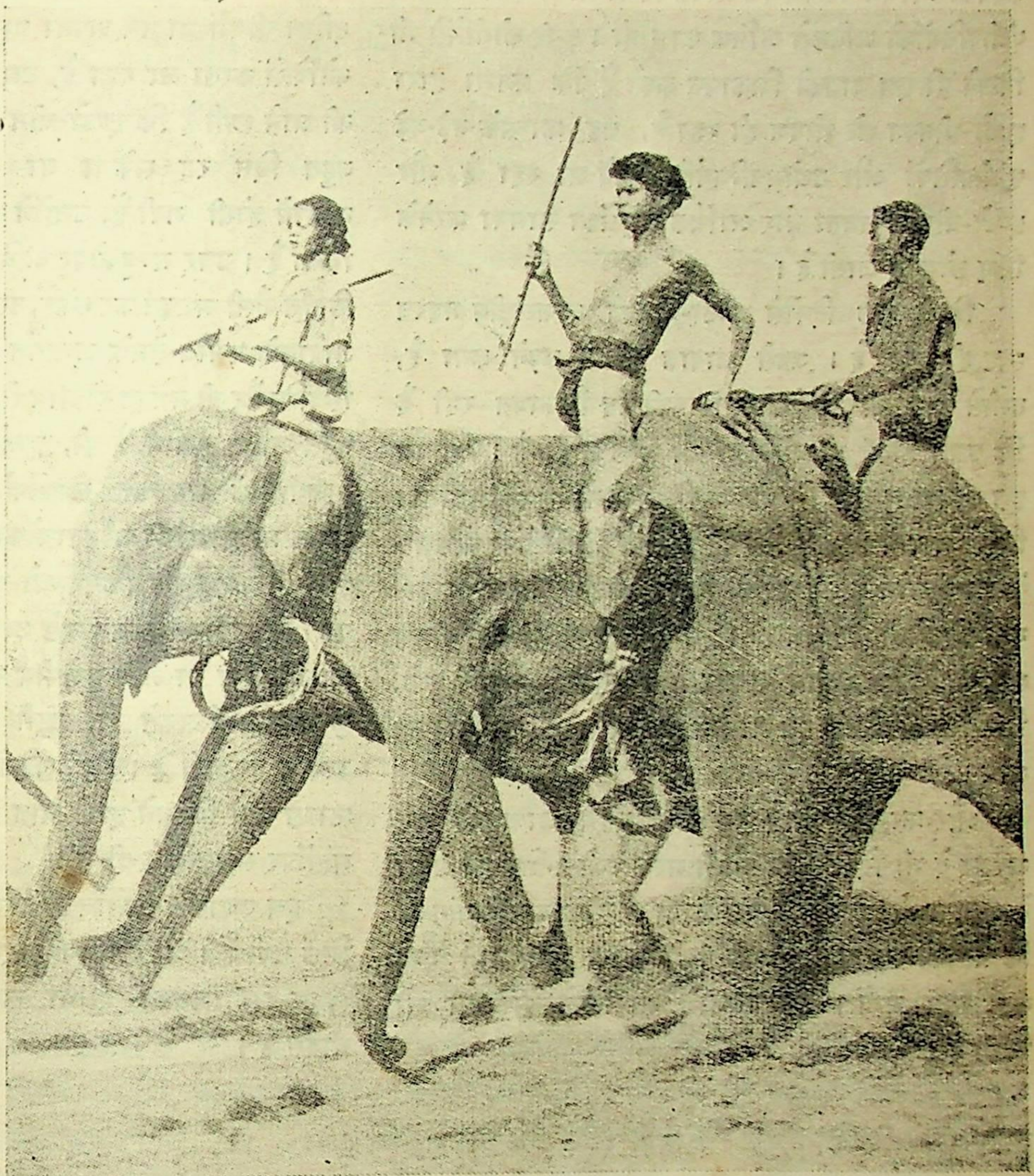
हाथ प्रमुख बताया जाता है। वे फ्रेञ्च शासनको विवश होकर मानते हैं और इन्होंने पूर्ण स्वाधीनताके अपने ध्येय-को कभी छोड़ा नहीं है। उक्त विद्रोहका लक्ष्य भी यही बताया जाता है। उसका दमन भी बड़े जोरोंसे किया गया था। पन्द्रह दिनोंके भीतर ३० प्रमुख व्यक्तियोंको फांसी दी गयी थी। और इसका परिणाम यह हुआ था कि लोगों-में और भी विद्रोहकी भावनायें दिखाई पड़ीं। अनामके विद्रोहोंका महत्त्व समझनेके लिए यह जानना भी आवश्यक है कि इस उपनिवेशकी ⅘ आबादी अनाममें है।

इण्डो-चीनमें इसके बादसे जैसी अवस्थायें होती गयी हैं, उनमें फ्रान्सके लिए नयी समस्यायें उत्पन्न हुई हैं। इण्डो-चीनमें फ्रान्सकी अगाध सम्पत्ति उसके विकासके लिए लगी हुई है और पिछले कई वर्षोंमें फ्रान्सके सामने समस्या यही रही है

भेजा था, जिसमें उन्होंने अपनी विपत्तियोंका बड़ा दर्दनाक वर्णन किया था। फिर भी, उनकी कुछ भी सुनवाई नहीं हुई। इसके विपरीत धानकी खेतीपर भी कुछ प्रतिबन्ध लगा दिये गये।

यह सब फ्रान्सके गेहूंके खेतिहरोंकी एक संस्थाके इशारेपर किया गया। पर इससे इण्डो-चीनके निवासियोंको बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। 'ला प्रेस डी इण्डो-चीन'के सम्पादक मो० हेनरीने इस नीतिका जबर्दस्त विरोध किया। उसने इसके आधारपर तथा इण्डो-चीनकी मुद्रानीतिके आधारपर फ्रान्सीसी सरकारका जबर्दस्त विरोध किया। उसने इस नीतिको फ्रान्सीसी पूंजीपतियोंके स्वार्थ-साधनका उद्देश्य बताया। उक्त सम्पादकने इण्डो-चीनकी मुद्राको फ्रेञ्च मुद्रासे संयुक्त कर उसे सदाके लिए स्थिर कर देनेका विरोध

करते हुए कहा था कि इसका परिणाम यह हुआ है कि इण्डो-चीनवालोंको स्वर्ण-मुद्राके आधारपर खेती करके रजत-मुद्राके बाजारमें उत्पादनको वेचना पड़ता है।



हाथियोंकी दौड़—मूल निवासियोंका एक प्यारा खेल।

इण्डो-चीनके शासन-प्रबन्धकी सबसे बड़ी विकट समस्या करकी है। यहांके निवासियों द्वारा उत्पन्न पदार्थोंका मूल्य प्रायः चौथाई हो गया है; पर करमें किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई है। इसके साथ ही दूसरी कठिनाई यह है कि मूल निवासियोंकी उपेक्षा करके फ्रान्सके ही व्यक्तियोंको वहांकी नौकरियों तथा दूसरे विभागोंमें भरनेका प्रयत्न किया जाता है और उन्हें लम्ब-लम्बी तनख्वाहें दी जाती हैं। जब कभी वहां नौकरियोंमें काट-छांट होने लगती है, तभी फ्रान्सीसियोंको सुरक्षित रखनेकी कोशिश की जाती है।

इण्डो-चीनकी आर्थिक दुरवस्थाका एक और कारणहै फ्रान्सकी व्यापारिक विभेदकी नीति। फ्रान्सकी कोई भी चीज इण्डो-चीनमें बिना किसी प्रतिबन्धके जा सकती है। उसके लिए किसी प्रकारकी चुङ्गी नहीं देनी पड़ती; पर दूसरे किसी भी देशके इण्डो-चीनके आयातपर बड़ी कड़ी चुङ्गी लगायी गयी है। इसके परिणाम-स्वरूप इण्डो-चीनमें फ्रान्सीसी व्यापार लहलहा रहा है, पर दूसरे देशोंके साथ उसका व्यापार चौपट हो गया है। चीनने इसका प्रतिशोध भी लिया है। उसने चीनमें जानेवाले इण्डो-चीनके चावलपर प्रतिबन्ध लगा दिया है। वहांका चावलका व्यापार यों ही खराब-सा हो गया था अब चीनके इस प्रतिबन्धसे अवस्था और भी खराब हो गयी; क्योंकि इधर बर्मा और श्याम चावलको लेकर इण्डो-चीनके बहुत बड़े प्रतिद्वन्द्वी रहे हैं।

इन सब बातोंके आधारपर इण्डो-चीन-निवासी फ्रान्सीसी शासनसे असन्तुष्ट रहते हैं। उनका विश्वास है कि उपनिवेशकी राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओंका रूप इस

लक्ष्यको ध्यानमें रखकर निर्धारित किया जाता है कि फ्रान्सके पूंजीपतियोंको अधिकसे अधिक लाभ हो। दूसरे लोगोंमेंसे भी कितने ही इस बातकी शिकायत करते हैं कि फ्रान्स द्वारा इण्डो-चीनका जो शोषण हो रहा है, वह फ्रान्सके बड़े-बड़े पूंजीपतियों और उद्योगधन्धियोंके पेटमें जा रहा है और इण्डो-चीनकी जनता घोर आर्थिक सङ्कटोंका सामना करनेके लिए छोड़ दी जाती है।

पिछले कुछ दिनोंसे इण्डो-चीनका अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व स्पष्ट हो गया है। जबसे जापान चीनसे लड़ने लगा है, तभीसे इण्डो-चीनको लेकर जापानकी यह शिकायत रही है कि उससे होकर चीनको सहायता मिल जाती है। जापान इस बातपर तुला है कि चीनको किसी भी मार्गसे कोई सहायता मिलने न पाये। इसके लिए वह उन सभी सीमान्तोंपर चौकसी-के साथ ध्यान लगाये हुए है, जिनसे होकर चीनको सहा-यता मिलनेकी गुञ्जायश हो। इस दृष्टिसे इण्डो-चीनका महत्त्व स्पष्ट था, अतः जापान-सरकार ऐसे मौकेकी ताकमें थी, जिसमें इण्डो-चीनके इस मार्गको बन्द करानेकी कार्रवाई की जाय।

और फ्रान्सके विरुद्ध जर्मनीके युद्धने जापानको यह अवसर दे भी दिया। फ्रान्सीसी सरकारको कठिनाईमें फंसा देख जापानने इस ओर नजर उठायी और इस बातकी मांग की कि चीनको सहायता देनेवाले इण्डो-चीनके सभी मार्ग बन्द कर दिये जायें। इस दिशामें जापानको सफलता भी मिली है।

लेकिन युद्धको लेकर इधर जैसी उलझनें बढ़ी हैं और दक्षिण चीनमें जापान अपना प्रभुत्व स्थापित करनेकी जैसी कोशिशें करता जा रहा है, उसमें इस बातकी आशङ्का भी की जाने लगी है कि इण्डो-चीन फ्रेंञ्च उपनिवेशकी हैसियतसे बहुत दिन रह सकेगा या नहीं। पिछले दिनों जैसी घटनायें होती गयी हैं, उन्होंने इस आशङ्काको और भी पुष्ट किया है। उधर मञ्चूकोपर अधिकार कर जापानने अपनी स्थिति जैसी मजबूत कर ली है, उसी प्रकार अगर कहीं इण्डो-चीन जापानके प्रभाव-क्षेत्रके अन्तर्गत आया, तो पूर्वमें जापानकी स्थिति और भी मजबूत हो जायगी। क्योंकि श्यामपर जापानका बहुत अधिक प्रभाव है ही, इण्डो-चीनपर हो जानेसे उसे कई राजनीतिक महत्त्वके स्थलोंको लेकर अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओंको चरितार्थ करनेका अवसर मिल जायगा।

इसलिए पूर्वके लिए इण्डो-चीनकी स्थितिमें यह खतरा है। पर जिस प्रकार विगत युद्धसे उत्पन्न परिस्थितियोंसे जापानने लाभ उठाया था और यूरोपीय राष्ट्र युद्ध-रत होनेके कारण कुछ कर नहीं सकते थे, उसी प्रकार परिस्थिति अब भी उत्पन्न हो गयी है। पिछले दिनों अनेक उलझनोंके कारण फ्रान्स और ब्रिटेनने इण्डो-चीन और बर्माको लेकर जापानकी मांगोंपर स्वीकृति दे दी है।

इस ख्यालसे जापानको अपने युद्धके लिए कई सुविधायें मिल गयी हैं। अब जापानके सामने केवल अमेरिकाका प्रश्न है, पर इस प्रश्नका सीधा सम्बन्ध इण्डो-चीनसे नहीं—चीनसे है।



प्रजातन्त्रके मौलिक तत्त्व

श्री रामनारायण 'यादवेन्दु', बी०ए० एल-एल०बी०

प्रजातन्त्रका सिद्धान्त भारतके लिए नया सिद्धान्त नहीं है। वैदिक कालमें और उसके बाद मौर्य्य-कालमें हम प्रजातन्त्रात्मक शासन-प्रणालीका चरम विकास पाते हैं। समय परिवर्तनशील है और उसके साथ-साथ सामाजिक संस्थाओं-में भी परिवर्तन होना अनिवार्य है। कई हजार वर्षोंके बाद यूरोप और अमेरिकामें प्रजातन्त्रात्मक शासन-प्रणालीका विकास हुआ। आज प्रायः २५० वर्षोंमें प्रजातन्त्रने यूरोप और अमेरिकामें कई युगोंसे प्रविष्ट होकर अपनी वर्तमान अवस्थाको प्राप्त किया है। इसमें कोई शक नहीं कि आधु-निक प्रजातन्त्र और प्राचीन कालीन भारतीय प्रजातन्त्रमें समानतायें देखना व्यर्थ प्रयास होगा। भारतीय प्रजातन्त्र प्रणाली अपने युगकी सभ्यता, संस्कृति और सामाजिक अवस्थाओंके अनुकूल भारतमें सफल हुई। परन्तु उसका यह तात्पर्य नहीं कि वह प्रणाली भी आज भारतमें सफलता प्राप्त कर सकेगी।

आजके युगमें कहा जाता है, प्रजातन्त्रका पतन हो चुका है—उसके स्थानपर अधिनायक-तन्त्रने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। परन्तु वास्तवमें ऐसी कल्पना निराधार है। प्रजातन्त्रका मानवीय उच्च आदर्श सब युगोंमें और सब देशोंमें सदैव पूजनीय रहेगा। हां, यह तो सम्भव है कि उस उच्च आदर्शके अनुसार कोई देश किसी समयमें प्रजातन्त्रात्मक प्रणालीकी प्रतिष्ठा करनेमें सफल न हो सके।

इसमें सन्देह नहीं कि पाश्चात्य देशोंमें प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली—प्रजातन्त्रका आदर्श नहीं—असफल सिद्ध हुई है। यूरोप और अमेरिकामें प्रजातन्त्रात्मक प्रणालीके अनेक दोषों और असफलताओंके कारण जनताकी प्रजातन्त्रमें श्रद्धा नष्ट होती जा रही है और इस मनोवृत्तिसे प्रत्येक देशके 'सत्ताकी राजनीति'में विश्वास करनेवाले नेता अपना अधिनायकत्व स्थापित करनेमें सफल होते दृष्टिगोचर हो रहे हैं। अतः यहां हम प्रजातन्त्रके मौलिक तत्त्वोंपर विचार करना उपयुक्त समझते हैं। कितने ही देशोंमें 'सत्ताकी राजनीति' के कुचक्रमें फंसकर नेता प्रजातन्त्रके वास्तविक स्वरूप और उसके आदर्शों एवं लक्ष्यको त्यागकर अपनी स्वार्थ-सिद्धिमें संलग्न हैं और जनताको यह धोखा दिया जा रहा है कि प्रजातन्त्रका यही रूप वास्तविक प्रजातन्त्र है। आज संसारमें यही भ्रामक विचार तथा भावनायें अशान्ति और असन्तोषका कारण बन रही हैं।

प्रजातन्त्रका आधार—सबसे पूर्व हमें यह विचार करना है कि प्रजातन्त्रका आधार क्या है। ईश्वरने मनुष्योंको स्वतन्त्र पैदा किया है। वे किसी बन्धनमें नहीं हैं। मनुष्योंमें परमात्माने समानता पैदा की है। सभी मनुष्योंको हृदय और मस्तिष्क प्रदान किया है, जिनका विकास कर वे आध्यात्मिक तथा भौतिक सभी प्रकारके सुखोंका अनुभव कर सकते हैं। यह तो स्वयंसिद्ध है कि मनुष्य अपनी मानसिक और शारीरिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों-का सामञ्जस्यपूर्ण विकास स्वाधीन दशामें ही कर सकते हैं। यदि वे दूसरोंके बन्धनोंमें रहें; तो उनके विकासमें बाधा पड़ना स्वाभाविक ही है। यह भी स्वयं-सिद्ध है कि मानव-जीवनका लक्ष्य शान्ति और आनन्दकी प्राप्ति है। अतः समाज और राज्यको ऐसी व्यवस्था करना चाहिए, जिसमें समस्त मानव अपने इस चरम लक्ष्यकी प्राप्तिके लिए पुरुषार्थ कर सकें। जिस समाजमें समाजके कानूनकी व्यवस्था एवं नियन्त्रणकी सत्ता कुछ लोगोंके हाथमें होगी, उसमें अधिकांश जनता आनन्द-प्राप्तिके लिए प्रयत्न करनेमें सफलता प्राप्त नहीं कर सकती। अतः इसका निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक मनुष्यको अपने समाज, राष्ट्र तथा राज्यकी नीतियोंके निर्माणमें योगदान देना चाहिए। क्योंकि जब तक सभी मनुष्योंको अपनी आकां-क्षाओंकी अभिव्यक्तिका सुयोग नहीं मिलेगा, तब तक समाज या राज्य यह निर्णय नहीं कर सकेगा कि समाज या राज्यके लिए कौन-से नियम हितकारी हैं और कौन-से नियमोंके पालन न करनेसे समाजकी हानि है। बस, प्रजातन्त्रका मूलाधार यही है।

अमेरिकाकी स्वाधीनताकी घोषणा (१७७६) में यह

घोषित किया गया है कि—

"हम इन सत्योंको स्वयंसिद्ध मानते हैं कि सब मनुष्य समान पैदा किये गये हैं; सृष्टि-कर्त्ताने उन्हें कुछ जन्मसिद्ध अधिकार प्रदान किये हैं; इन अधिकारोंमें जीवन-स्वाधीनता और आनन्द-प्राप्तिके अधिकार शामिल हैं; इन अधिकारोंकी सुरक्षाके लिए सरकारोंकी स्थापना की गयी है, जिन्हें उचित सत्ता जनताकी सम्मतिसे प्राप्त हुई है।"

इसके बाद अगस्त सन् १७९१ में फ्रान्सकी राष्ट्रीय परिषद्ने मानव-अधिकारोंकी घोषणा इस प्रकार की—

"अपने अधिकारोंके सम्बन्धमें मनुष्य समान पैदा हुए हैं।"

"राजनीतिक समाजका उद्देश्य मनुष्यके जन्मसिद्ध तथा प्राकृतिक अधिकारोंकी रक्षा करना है। ये अधिकार हैं नागरिक स्वाधीनता, सम्पत्ति, सु-रक्षा, अत्याचारोंका विरोध।"

"समस्त प्रभुताका सिद्धान्त राष्ट्रमें निहित है। कोई भी व्यक्ति किसी ऐसी सत्ताका प्रयोग नहीं कर सकता, जो स्पष्ट-रूपसे उससे (राष्ट्रसे) प्राप्त न हुई हो।"

"समस्त नागरिकोंको व्यक्तिगत रूपसे या अपने प्रति-निधियों द्वारा कानूनोंके बनानेके लिए एकत्रित होनेका अधिकार है। कानूनकी दृष्टिमें बराबर होनेके कारण वे सब समान हैं; वे उन समस्त पदों तथा सार्वजनिक सम्मानोंके अधिकारी हैं।"

"फिर भी व्यक्तिको उसके मत व विचारोंके कारण दमन न करना चाहिए।"

उपर्युक्त दोनों घोषणाओंके अवतरणोंसे यह स्पष्ट है कि मानव-समाजके सब व्यक्ति परस्पर समान हैं; सृष्टि-कर्त्ताने उन्हें स्वतन्त्र पैदा किया है। समान होनेसे सब मनुष्य एक विशाल मानव-परिवारके सदस्य हैं। अतः उनमें बन्धुत्वकी भावनाका होना भी सम्भव है—स्वाभाविक है। यही कारण है कि फ्रान्सकी राज्यक्रान्तिके समयसे ही स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व प्रजातन्त्रके आवश्यक तत्त्व माने गये हैं। समानता और स्वाधीनताके बिना प्रजातन्त्रकी कल्पना सम्भव नहीं। किसी भी देशमें प्रजातन्त्रके स्वरूपको जाननेके लिए आप उस देशकी जनताकी स्वाधीनता और समानताका अध्ययन करें, तो आपको यह एक सच्ची कसौटीका काम देगे।

स्वाधीनता—नागरिक स्वाधीनता प्रजातन्त्रका प्राण है। नागरिक स्वाधीनताके अभावमें एक स्वाधीन राष्ट्र भी सच्चे प्रजातन्त्रका विकास नहीं कर सकता। जिस प्रकार प्राणके अभावमें शरीरकी सजीवता नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार नागरिक स्वाधीनताके अभावमें प्रजातन्त्रका पतन हो जाता है। नागरिक स्वाधीनताको इतना अधिक महत्त्व दिया गया है कि प्रत्येक प्रजातन्त्रात्मक राज्यके शासन-विधानमें नागरिकोंके मौलिक अधिकारोंकी घोषणाको सर्वप्रथम स्थान दिया गया है।

नागरिक स्वाधीनतामें स्वाधीनताकी व्यापक भावनाका समावेश है। नागरिक जीवनके चतुर्मुखी विकास तथा नागरिकके व्यक्तित्वकी पूर्णताके लिए जितनी तथा जितने भी क्षेत्रोंमें स्वाधीनताकी आवश्यकता हो, उसे नागरिकके लिए सुरक्षित रखना राज्यका परम कर्त्तव्य है। स्वाधीनता और स्वच्छन्दतामें बड़ा अन्तर है। स्वाधीनताका अभिप्राय यह नहीं है कि राज्यमें प्रत्येक नागरिकको ऐसी स्वच्छन्दता प्राप्त हो कि वह दूसरोंकी स्वाधीनताका तनिक भी आदर किये बिना मनोवाञ्छित ढङ्गसे कार्य करे या आचरण करे।

नागरिक स्वाधीनतामें निम्नलिखित सम्मिलित हैं:— (१) विचार-स्वाधीनता, (२) मत-प्रकाशनकी स्वाधीनता, (३) भाषण-स्वाधीनता, (४) सभामें सम्मिलित होनेकी स्वाधीनता, (५) धार्मिक स्वाधीनता, (६) राजनीतिक स्वाधीनता, (७) व्यक्तिकी स्वतन्त्रता, (८) सामाजिक स्वाधीनता।

प्रजातन्त्रका सार इसीमें है कि प्रत्येक नागरिकको अपने राष्ट्रके शासनकी नीतिका निर्माण करनेका अधिकार है। जब हम नागरिकके इस अधिकारको स्वीकार कर लेते हैं, तो हमें उपर्युक्त प्रकारकी नागरिक स्वाधीनताको भी स्वीकार करना पड़ेगा। जिस राष्ट्रमें नागरिकोंको अपने शरीरकी स्वतन्त्रता प्राप्त न हो, वह अन्य प्रकारकी स्वा-धीनताका भोग भी कैसे कर सकता है। स्वेच्छाचारी शासक उसे जब चाहे, कारागारमें बन्द कर सकता है—चाहे वह राज्यके किसी कानूनके अनुसार अपराधी हो या न हो। जब नागरिकोंको विचार-स्वाधीनता प्राप्त न हो, तो यह कैसे सम्भव है कि नागरिक अपना मानसिक विकास कर सकेंगे। वास्तवमें मानसिक गुलामी शारीरिक गुलामीसे

कहीं अधिक खतरनाक है। जब नागरिकोंको विचार-स्वाधीनता तथा भाषण-स्वाधीनता न हो, तो फिर नागरिकोंकी आकांक्षाका ज्ञान कैसे हो सकता है। परन्तु, मान लिया जाय कि किसी राज्यमें नागरिकोंको विचार-स्वाधीनता और भाषण-स्वाधीनता प्राप्त है, और सभामें सम्मिलित होनेका अधिकार नहीं, तो उपर्युक्त दोनों प्रकारकी स्वाधीनता किस कामकी। मनुष्य अपने विचार प्रकट करता है दूसरों तक उन्हें पहुंचानेके लिए और दूसरों तक पहुंचानेके साधन मुख्यतः दो ही हैं—भाषण और लेखन। अब यदि नागरिकोंके सभामें सम्मिलित होनेपर प्रतिबन्ध लगाया जाय अथवा समाचार-पत्रों और साहित्यके 'मुद्रण तथा प्रकाशन'पर प्रतिबन्ध लगा दिये जायें, तो भी यह सम्भव नहीं कि नागरिक स्वतन्त्र रूपसे अपनी आकांक्षाओंको व्यक्त कर सकेंगे। अब धार्मिक स्वाधीनताके प्रश्नपर विचार कीजिये। धर्मका सम्बन्ध जीव और ईश्वरसे है। राज्यका इससे इस अर्थमें कोई सम्बन्ध नहीं कि प्रत्येक व्यक्ति अपने विश्वासों और धारणाओंके अनुसार आत्म-दर्शन करने या मुक्ति प्राप्त करनेमें स्वतन्त्र है। राज्यका उद्देश्य है नागरिकोंको आनन्द-प्राप्तिके साधन जुटाना तथा सुयोग प्रदान करना। ऐसी दशामें राज्यको किसी वर्ग-विशेष या व्यक्ति-विशेषके धार्मिक विश्वासोंको नष्ट करनेका प्रयत्न न करना चाहिए। हां, राज्य ऐसे विश्वासों तथा विचारोंके दमनका प्रयत्न कर सकता है, जो धर्मके रङ्गमें रंगे होते हैं, परन्तु वस्तुतः जनतामें भ्रष्टाचार और अनैतिकताका प्रचार करते हैं।

नागरिकोंके लिए राजनीतिक स्वाधीनताकी अत्यन्त आवश्यकता है। राजनीतिक स्वाधीनताका अर्थ यह है कि राष्ट्रके प्रत्येक नागरिकको राज्यके शासन-सञ्चालन-कार्यमें भाग लेनेका अधिकार हो।

स्वाधीनताके सम्बन्धमें एक महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर विचार कर लेना आवश्यक है। नागरिक स्वाधीनता स्त्री-पुरुषमें भेद-भाव नहीं स्वीकार करती। नागरिक स्वाधीनताके भोगका स्त्रीको पुरुषके ही समान अधिकार प्राप्त है। रूसने इस दिशामें संसारके राष्ट्रोंका मार्ग-दर्शन किया है। वहां स्त्रियोंको आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, सार्वजनिक तथा राज्य-सम्बन्धी क्षेत्रोंमें पुरुषोंके बराबर ही अधिकार प्राप्त हैं। वहां स्त्रियोंको पुरुषोंके समान ही काम करनेका अधिकार है; उन्हें कामकी मात्रा तथा विशेषताके अनुसार पुरुषोंके बराबर ही वेतन मिलता है। सामाजिक बीमा, विश्राम तथा शिक्षा पानेके अधिकार भी पुरुषोंके बराबर हैं। बालकों तथा माताओंके हितोंकी रक्षाके लिए राज्यकी ओरसे व्यवस्था है। गर्भावस्था तथा प्रसूतावस्थामें स्त्रियोंको वेतन तथा भत्ते सहित अवकाश मिलता है। रूसमें मातृ-मन्दिरों, शिशुशालाओं तथा विद्या-मन्दिरोंकी समुचित व्यवस्था है।

रूसमें पहले प्रारम्भमें धर्म-विरोधी प्रचार किया गया। इसका कारण यही था कि रूसमें धर्म और राज्य, अर्थात् पादरीशाही और जारशाहीका घनिष्ट सम्बन्ध था। जब १९१७ में रूसी क्रान्तिके समय जारशाहीका अन्त कर दिया गया, तो उसके साथ-साथ पादरीशाहीका भी खात्मा कर दिया गया। परन्तु सन् १९३६ के रूसी शासन-विधानने नागरिकोंके स्वेच्छानुसार धर्म-ग्रहण करने तथा धर्म-विरोधी प्रचार करनेकी स्वाधीनताको स्वीकार कर लिया है।

अतः यह तो स्पष्ट ही है कि राज्यमें प्रजातन्त्रकी प्राप्तिके लिए नागरिक स्वाधीनताकी अत्यन्त आवश्यकता ही नहीं है, प्रत्युत् वह प्रजातन्त्रका आधार है।

समानता—राज्यमें स्वाधीनताके साथ-साथ नागरिकोंमें समानता भी आवश्यक है। फ्रान्स तथा अमेरिकाकी स्वाधीनताकी घोषणाओंमें यह स्पष्ट शब्दोंमें घोषित किया गया है कि सब नागरिक समान हैं।

नागरिकोंकी समानताका प्रश्न वास्तवमें बड़ा विकट है। यदि आज संसारके प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रोंमें प्रजातन्त्रात्मक प्रणालीका पतन हो रहा है, तो उसका एक मुख्य कारण है उन राष्ट्रोंमें घोर नागरिक असमानता। इसलिए यहां हमें समानतापर तनिक विस्तारसे विचार करनेकी आवश्यकता है। संसार-प्रसिद्ध लेखक जेम्स ब्राइसने समानता चार प्रकारकी मानी है:—

(१) नागरिक समानता—इसका अभिप्राय यह है कि कानूनके क्षेत्रमें सब नागरिकोंको समान पद प्राप्त है। अपने व्यक्ति, शरीर, सम्पत्ति तथा पारिवारिक सम्बन्धोंको सुरक्षित रखनेका सभी नागरिकोंको समान अधिकार प्राप्त है। यदि

उनके इन अधिकारोंपर आघात हो, तो वे न्यायालयमें अपील कर सकते हैं।

(२) राजनीतिक समानता—यह समानता उस राज्यमें होती है, जिसमें समस्त नागरिकोंको या कमसे कम समस्त वयस्क पुरुष नागरिकोंको शासनमें भाग लेनेका अधिकार होता है और राज्यकी किसी भी नौकरीपर नियुक्त होनेकी समान रूपसे योग्यता होती है।

(३) सामाजिक समानता—सामाजिक समानता उस राज्यमें या समाजमें होती है, जिसमें कानून या प्रथा द्वारा समाजके विविध वर्गों या समुदायोंमें भेद-भाव नहीं माना जाता; जैसे सार्वजनिक संस्थाओं या स्थानोंमें प्रवेशका अधिकार।

(४) प्राकृतिक समानता—प्राकृतिक समानता शायद उस समानताके लिए सबसे उत्कृष्ट नाम है, जो समस्त मानव प्राणियोंके जन्मके समय मौजूद होती है। प्रत्येक मानव पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियोंको साथ लेकर पैदा होता है।

पाश्चात्य देशोंमें प्रजातन्त्रके समर्थकोंका यह विचार है कि यदि हम राज्यमें नागरिकोंके लिए राजनीतिक समानताकी व्यवस्था कर देते हैं, अर्थात् प्रत्येक नागरिकको अथवा प्रत्येक बालिग पुरुषको मताधिकार प्राप्त हो जाता है, तो एक प्रकारसे राष्ट्रमें नागरिकोंमें समानता प्रतिष्ठित हो जाती है। एक सेठको, जो कई बैङ्कों तथा कारखानोंका डायरेक्टर है, तथा एक साधारण मौरूसी काश्तकारको, जो गांवमें २-३ बीघे जमीनको जातने-बोनेवाला श्रमिक है, राजनीतिक समानता केवल मताधिकारसे ही प्राप्त नहीं हो सकती। इसमें सन्देह नहीं कि एक लखपती सेठ तथा एक कारखानेके मजदूर, दोनोंको एक मत देनेका अधिकार है। परन्तु वास्तवमें ऐसा नहीं है। राजनीतिक क्षेत्रमें समान मताधिकार आर्थिक क्षेत्रमें विषमताके कारण राजनीतिक समानताकी प्रतिष्ठा नहीं करता। एक सेठ चुनावमें लाखों रुपये व्यय करके हजारों मतदाताओंको खरीदकर एसेम्बलीमें जा सकता है और वहां अपने रुपयेके प्रभावसे अपने दलमें प्रभुत्व प्राप्त कर मन्त्रि-मण्डलका सदस्य भी नियुक्त किया जा सकता है और इस प्रकार वह शासन-सञ्चालनमें भाग लेनेमें समर्थ हो सकता है। दूसरी ओर एक साधारण मजदूर या सामान्य स्थितिका एक विद्वान् और शिक्षित व्यक्ति, मताधिकारका अधिकारी होनेपर भी धारा-सभामें नहीं चुना जाता। यह सब क्यों है? केवल इसलिए कि समाजमें आर्थिक विषमता है, और इस कारण राजनीतिक क्षेत्रमें भी विषमता दृष्टिगोचर होती है।

यदि वास्तवमें मताधिकार राजनीतिक समानताकी स्थापना करता है, तो क्या कारण है कि मजदूर व किसान, सुयोग्य और शिक्षित होनेपर भी, सेठों, पूंजीपतियों और जमींदारोंके मुकाबिले धारा-सभाओंमें सदस्य चुनकर क्यों नहीं भेजे जाते। दूसरी ओर अर्द्धशिक्षित और अयोग्य पूंजीपति तथा जमींदार एसेम्बलीके सदस्य चुने जाते हैं।

अतः सफल प्रजातन्त्रके लिए राजनीतिक समताके साथ-साथ आर्थिक समता और आर्थिक न्यायकी आवश्यकता है।

बन्धुत्वका आदर्श—जब राज्यके नागरिक स्वाधीनताका भोग करेंगे और समाजमें राजनीतिक तथा आर्थिक समताकी स्थापना हो जायगी, तब वास्तवमें सच्चे बन्धुत्वकी प्रतिष्ठा होगी।

ऐसे प्रजातान्त्रिक राज्य या राष्ट्रमें न पूंजीवाद रहेगा और न साम्राज्यवाद ही रहेगा। सच्चा प्रजातन्त्र साम्राज्यवाद और पूंजीवादका समर्थक नहीं है। प्रजातन्त्र तो समस्त मानव-समाजमें नागरिक स्वाधीनता और राजनीतिक तथा आर्थिक समताके आधारपर विश्व-बन्धुत्वकी स्थापना करना चाहता है, जिससे मानव-समाज आनन्दकी प्राप्ति कर सके।

पूंजीवादी समाजमें अथवा साम्राज्यवादी आधिपत्यके अन्तर्गत किसी भी राज्यकी प्रजा आनन्दकी प्राप्ति नहीं कर सकती। इसलिए नवीन प्रजातन्त्र इन दोनों प्रणालियोंका परित्याग करके ही संसारमें शान्ति और आनन्दकी सृष्टि करनेमें सफल हो सकेगा।

पाश्चात्य देशोंमें प्रजातन्त्र-प्रणालीकी असफलता तथा उसके पतनका कारण है उसका पूंजीवाद तथा साम्राज्यवादसे संयोग। पूंजीवादके साथ मेलके कारण पाश्चात्य प्रजातन्त्र साम्राज्यवादी प्रजातन्त्र हो गया।

लाखोंकी संख्यामें छपनेवाले कुछ पत्र

श्री विश्वनाथ सेठी, एम० एस-सी०

अंगरेजीकी पत्रकार-कला आज इतनी उन्नत अवस्थाको पहुंच चुकी है कि उसे 'फोर्थ स्टेट' कहते हैं। शासन-प्रबन्धमें उन पत्रोंका जबर्दस्त हाथ होता है; क्योंकि लोकमत तैयार करनेमें उनका-सा प्रभाव शायद ही किसी औरका हो।

इसीलिए इंगलैण्ड और अमेरिकाके पत्रोंका सरकार तथा जनता दोनोंपर खूब प्रभाव रहता है। ऐसे कितने ही पत्र हैं, जिनके लाखोंकी संख्यामें ग्राहक हैं और कितने ही दूसरे देशोंमें भी हजारोंकी संख्यामें जाते हैं। ऐसे पत्र भी हैं, जिनके सम्बन्धमें कहा जाता है कि वे चाहें, तो कोई मन्त्रिमण्डल टिका रहसकता है और न चाहें, तो नहीं टिक सकता। जापान-जैसे उन्नत देशोंमें भी कई ऐसे पत्र हैं, जिनका सरकारपर खूब प्रभाव है।

और सरकारपर प्रभाव क्यों न रहे? जिन देशोंमें प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था है, वहां लोकमतके अनुसार शासन होता है और ये पत्र लोकमत बनानेमें और दूसरे कारणोंकी अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली होते हैं।

इस जगह अमेरिकन पत्रोंको छोड़कर हम केवल कुछ प्रभावशाली ब्रिटिश पत्रोंके सम्बन्धमें संक्षेपमें कुछ लिखना चाहते हैं। इससे पता चल जायगा कि ब्रिटेनमें पत्रकार-कलाका कितना विकास हो चला है और वहांके लोगोंमें पत्र पढ़नेकी कितनी रुचि पायी जाती है। हमारे देशमें निकलनेवाले पत्रोंके सम्बन्धमें पूरी जानकारीकी बातें नहीं मिलतीं; पर इतना तो स्पष्ट ही है कि इन पत्रोंके मुकाबले हमारे देशके पत्रोंकी दशा बड़ी दयनीय है। प्रचार और प्रभाव दोनों ही दृष्टियोंसे इनकी अवस्था अच्छी नहीं है।

पहले 'टाइम्स' को लें। लन्दन 'टाइम्स' उन पत्रोंमेंसे है, जो अपने प्रचारके लिए नहीं, अपने प्रभावके लिए विख्यात हैं। ब्रिटेनके कई पत्रोंका प्रचार 'टाइम्स' की अपेक्षा कई गुना है, पर उसका-सा प्रभाव किसी पत्रका नहीं। 'टाइम्स' के सम्पादक उन व्यक्तियोंमेंसे हैं, जिनका ब्रिटिश राजनीतिमें महत्त्व-पूर्ण स्थान है। इसीलिए 'टाइम्स' की नीतिमें लोग सरकारी नीतिका आभास देखनेकी कोशिश करते हैं।

'टाइम्स'का स्वत्वाधिकार 'टाइम्स पब्लिशिंग लिमिटेड' के हाथमें है। मृत्युके समय लार्ड नार्थक्लिफ उसके प्रमुख भागीदारोंमेंसे थे। उनकी मृत्युके बाद जान जे० आस्टरने उनका हिस्सा खरीद लिया। उक्त कम्पनी सार्वजनिक है और उसका वार्षिक विवरण प्रकाशित होता है। उसके अन्तिम प्रचार-सार्टिफिकेटके अनुसार उसकी दैनिक बिक्री २०४,४९१ है।

'डेली टेलीग्राफ' का किस्सा उसके स्वत्वाधिकारी लार्ड केमरोजने स्वयं लिखा है। उन्होंने लिखा है:—१९१९ से ही मैं 'सण्डे टाइम्स' का प्रधान सम्पादक था। उस पत्रकी सफलतासे उत्साहित होकर किसी गम्भीर दैनिकको लेकर मैंने परीक्षा करनेका इरादा किया। 'डेली टेलीग्राफ' के एक प्रमुख हिस्सेदार लार्ड बर्नहमको मेरे इस विचारका पता चला, तो उन्होंने मुझसे मुलाकात की और अन्तमें मेरे भाई, लार्ड केम्सले, लार्ड इलिफ और मैंने 'डेली टेलीग्राफ' को लेनेका निश्चय किया।

२ जनवरी १९२८ को हम लोगोंने उसे अपने हाथमें लिया। उस समय उसकी बिक्री ८४,००० के करीब थी। पत्रका मूल्य २ पेन्स था; पर 'टाइम्स'की भांति स्कूल-मास्टरों, पादरियों, सिविल सर्विसवालों तथा कुछ दूसरे पेशेवालोंको एक पेन्समें ही दिया जाता था।

हम लोगोंने जिस समय उसका पुराना मूल्य एक पेन्स फिर कर दिया, उस समय फ्लीट स्ट्रीटमें (लन्दनके अधिकांश पत्रोंके कार्यालय इसी सड़कपर हैं) अथवा दूसरी जगहोंपर भी ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत कम थी, जिन्होंने यह सोचा हो कि इसकी बिक्री आजकी-सी—७६३,००० दैनिक हो जायगी। मैं स्वयं भी इतना आशावादी न था। पहले पत्रमें प्रथम पृष्ठपर जन्म, विवाह, मृत्यु तथा दूसरे विभिन्न विज्ञापन रहते थे, जिन्हें हटाकर हम लोगोंने प्रथम पृष्ठ ताजे समाचारोंके लिए सुरक्षित कर दिया। परिवर्तन इस

ख्यालसे किया गया था कि दिनके ताजे समाचार इस तरहसे छापे जायें कि पत्र बिना उलटे ही मिल जायें। इससे आमदनी बढ़ने अथवा घटनेकी कोई खास सम्भावना न थी, पर आम तौरपर इसे पाठकोंने खूब पसन्द किया। लेकिन कुछ पाठकोंको यह परिवर्तन पसन्द भी नहीं आया। और यह स्वाभाविक ही था—किसी पुराने पत्रमें बड़ा परिवर्तन आम तौरपर पसन्द किया भी नहीं जाता। अक्टूबर १९३७ में 'डेली टेलीग्राफ' में ही मार्निङ्ग पोस्ट भी सम्मिलित हो गया।

'टाइम्स' और 'डेली टेलीग्राफ' तथा दो अर्थ-सम्बन्धी एवं एक खेलकूद-सम्बन्धी पत्रको छोड़कर लन्दनमें ६ दैनिक तथा तीन सन्ध्याकालीन पत्र हैं। इनमेंसे दो अपने ढङ्गके निराले पत्र—डेली स्केच और डेली मिरर—हैं। बाकी चार डेली एक्सप्रेस, डेली हेरल्ड, डेली मेल और न्यूज क्रानिकल हैं, जो सबसे लोकप्रिय हैं और जिस क्रमसे उनके नाम लिखे गये हैं, उसी क्रमसे उनका प्रचार भी है। 'डेली एक्सप्रेस' का प्रचार सबसे अधिक है। लार्ड बीवर ब्रुक इसके सञ्चालक हैं। जिस कम्पनीके प्रधानकी हैसियतसे लार्ड बीवर ब्रुक 'डेली एक्सप्रेस' का सञ्चालन करते हैं, उसीके सञ्चालनमें 'सण्डे एक्सप्रेस' और 'इवनिङ्ग स्टैण्ड भी हैं।'

'डेली एक्सप्रेस' के बराबर ही समाजवादी पत्र 'डेली हेरल्ड' का भी प्रचार है। पहली बार १९१२ में इसका दैनिक संस्करण निकला और प्रारम्भिक दिनोंमें इसे अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता। १९३० में ओढम्स लिमिटेडने इसे अपने हाथमें लिया। ५१ प्रतिशत शेयर ओढम्सके हाथमें आये और बाकी ४९ मजदूर दलके ३२ सदस्योंके हाथमें—दलके ट्रस्टीकी हैसियतसे रह गये। कम्पनीके ९ डाइरेक्टरोंमें ५ ओढम्सके और ४ मजदूर दलके रहते हैं। राजनीतिक सिद्धान्त और नीतियोंको छोड़कर और सभी प्रकारका नियन्त्रण ओढम्सके हाथमें चला गया। पर इस बातका अधिकार पार्टीने सुरक्षित रखा है कि अगर पार्टीकी नीतिके विरुद्ध पत्रमें कोई बात निकल जाये, तो इसके लिए मजदूर दलको अधिकार प्राप्त हैं। इस बातकी जांचके लिए पार्टीको पञ्चायत बैठानेका भी अधिकार है। इस समय 'डेली हेरल्ड' का प्रचार प्रतिदिन २० लाखसे भी अधिक है।

पार्टीके कितने ही सदस्योंके जैसे राजनीतिक विचार हैं, उन सबका प्रचार पत्र द्वारा नहीं हो पाता और थोड़ी-सी राजनीतिक विभिन्नताके अतिरिक्त दूसरे अन्तर्राष्ट्रीय विषयों तथा समाचारोंपर इसकी भी नीति वैसी ही है, जैसी इसके दूसरे सहयोगियोंकी है।

तीसरा स्थान है 'डेलीमेल' का। लार्ड नार्थक्लिफने १८९६ में इसकी प्रतिष्ठा की थी, और सालों दैनिक पत्रोंमें इसका सर्वश्रेष्ठ स्थान बना रहा। इसीके साथ 'इवनिङ्ग न्यूज' तथा 'सण्डे डिस्पैच' भी संयुक्त हैं। 'इवनिङ्ग न्यूज' सन्ध्यकालीन पत्रोंमें सबसे अधिक निकलता है।

'डेली न्यूज' और 'डेली क्रानिकल' को मिलाकर 'न्यूज क्रानिकल' निकलता है। 'डेली क्रानिकल' के किसी समय मि० लायड जार्ज मालिक थे। और उस समय इसका प्रचार सात-आठ लाखके बीचमें था। पर कई कारणोंसे १९३० में यह 'डेली न्यूज' में मिला दिया गया। 'डेली न्यूज' पहले भी दो लिबरल पत्रों—'मार्निङ्ग लीडर' और 'वेस्टमिनिस्टर गजट' को हजम कर गया था। २८ साल तक शामको प्रकाशित होनेके बाद लार्ड काउड्रे ने इसे प्रातःकालीन पत्र बनाया। कहा जाता है कि अपने २८ सालके जीवनमें इस पत्रने सिर्फ एक साल लाभ उठाया, अन्यथा सदा घाटा देता रहा। एफ० कसथर्स गोल्डके व्यंग्यचित्र इसकी विशेषता थे और जे० ए० स्पेण्डरके अग्रलेखोंकी भी बड़ी प्रशंसा होती थी, पर पत्रकी आर्थिक अवस्था कभी सुधरी नहीं। प्रातःकालीन दैनिक रूपमें ३ लाखसे अधिक इसका प्रचार कभी नहीं हुआ। लार्ड काउड्रे तथा उनके उत्तराधिकारियोंने प्रायः ७॥ लाख स्टर्लिङ्गका घाटा इस पत्रको लेकर उठाया। अन्तमें इसे 'डेली न्यूज' की शरण लेनी पड़ी।

'न्यूज क्रानिकल' डेली न्यूज लि० के अधिकारमें है। दो-दो शिलिङ्गके शेयरोंमें ९६३,१८९ पौण्ड मूलधन इस कम्पनीका है, पर वास्तवमें 'न्यूज क्रानिकल' में इससे भी अधिक पूंजी लगी हुई है।

'न्यूज क्रानिकल' का प्रचार १३ लाख १७ हजार १७९ बताया जाता है। सर वाल्टर लिटन इसके प्रबन्धक हैं। और इन्हींकी देख-रेखमें सन्ध्याकालीन पत्र 'स्टार' भी निकल रहा है, जिसकी ५०२,६३९ प्रतियां छपती हैं। सन्ध्याकालीन पत्रोंमें स्टारका दूसरा स्थान है।

रविवारको निकलनेवाले पत्रोंमें 'आब्जर्वर' तथा

'सण्डे न्यूज आव दी वर्ल्ड' प्रमुख हैं, जिनमें सण्डे न्यूज आव दी वर्ल्डका प्रचार सबसे अधिक है। कोई भी अंगरेजी अखबार, दैनिक या साप्ताहिक, इतना नहीं छपता। इस पत्रकी ३,७५०,००० प्रतियां छपती हैं।

संक्षेपमें लन्दनमें कुल आठ दैनिक, तीन सन्ध्या कालीन और दस रविवारको निकलनेवाले पत्र हैं। इनमें सबकी अलग-अलग कुछ-न-कुछ विशेषतायें हैं, जिससे पाठकोंको मनके मुताबिक पढ़नेकी सामग्री खरीदनेकी सुविधा है। कितने ही कई पत्र एक साथ खरीदते हैं।

इन लाखोंमें छपनेवाले एक-एक पत्रके समान भी क्या संख्या पहुंच सकती है, यदि हिन्दीके सभी पत्रोंकी प्रचार-संख्या एकमें जोड़ दी जाय?

गीत

आओ, भंवरमें नौका खोलें।
तूफानी लहरोंके पथपर—दो मिल आज एक हम हो लें॥
हम दो दीप जलें लहरोंपर,
अश्रु-कणोंका अर्घ्य-दान ले;
पल-भर निरख परस्पर निजको—
बुझें, युगोंका विरह-गान ले;—
तम ले साथ मिलें आभासे—चञ्चल धारापर हंस डोलें॥
आओ, भंवरमें नौका खोलें॥

आज खेल लें प्रलय-ज्वारसे,
हम तुम मिलकर आंख-मिचौनी;
बस ले मोम-हृदयमें पावक,
रह न जाय कुछ भी अनहोनी;—
नाश-अङ्कमें भी मुसकाकर—क्यों न प्रेमकी बोली बोलें॥
आओ, भंवरमें नौका खोलें॥

भू-नभ मिलते आंक शून्यमें—
सतरङ्गी मुसकान छबीली;
हम भी आदि-अन्तसे मिल लें—
पहिन मृत्यु-जय-माल रंगोली;
चल सखि इस अवसान-तुलापर, दिव्य अमरताको हम तोलें।
आओ, भंवरमें नौका खोलें॥

—नर्मदाप्रसाद खरे।

मैंने एक साइकिल खरीदी.......!

श्री ए० एस० बुखारी "पतरस", एम०ए०

एक दिन मिर्जा साहब और मैं बरामदेमें साथ-साथ कुर्सियां डाले चुपचाप बैठे थे। जब दोस्ती बहुत पुरानी हो जाय, तो बातचीतकी खास जरूरत नहीं रह जाती। और दो दोस्त एक-दूसरेकी खामोशीसे भी आपसमें मजे ले सकते हैं। यही हालत हमारी थी। हम दोनों अपने-अपने खयालातमें डूबे हुए थे। मिर्जा साहब तो खुदा जाने क्या सोच रहे थे, लेकिन मैं जमानेकी रङ्गीनियोंपर गौर कर रहा था। दूर सड़कपर थोड़ी-थोड़ी देरके बाद एक-न-एक मोटरकार गुजर जाती थी। मेरी तबीयत कुछ ऐसी मिली है कि जब कभी मैं किसीकी मोटरकारको देखूं, मुझे जमानेकी रङ्गीनियोंका खयाल जरूर सताने लगता है। और मैं कोई ऐसी तरकीब सोचने लगता हूं, जिससे दुनियाकी तमाम दौलत सब आदमियोंमें बराबर बांट दी जाय। अगर मैं सड़कपर पैदल जा रहा हूं और कोई मोटरकार इस अदासे गुजर जाय कि रास्तेकी सारी गर्द उड़कर मेरे फेफड़ों, मेरे दिमाग, मेरे मेदे और मेरी तिल्ली तक पहुंच जाय, तो उस दिन मैं घबराकर इल्मे कीमियाकी वह किताब निकाल लेता हूं, जो मैंने एफ० ए० में पढ़ी थी और इस गरजसे उसका अध्ययन करने लगता हूं कि शायद बम बनानेका कोई नुस्खा हाथ आ जाय।

मैं कुछ देर आहें भरता रहा। मिर्जा साहबने कुछ ध्यान न दिया। आखिर मैंने खामोशीको तोड़ा और मिर्जा साहबसे कहा—मिर्जा, हममें और जानवरोंमें क्या फर्क है?

मिर्जा—भई, कुछ होगा ही न आखिर!

मैं—मैं बताऊं तुम्हें?

मिर्जा—बोलो!

मैं—कोई फर्क नहीं। सुनते हो मिर्जा? कोई फर्क नहीं हममें और जानवरोंमें............कमसे कम मुझमें और जानवरोंमें—कोई फर्क नहीं। हां-हां, मैं जानता हूं, तुम नुकताचीनी करनेमें बड़े तेज हो। कह दोगे कि जानवर जुगाली करते हैं, तुम जुगाली नहीं करते। उनके दुम होती है, तुम्हारे दुम नहीं। लेकिन इन बातोंसे क्या बनता-बिगड़ता है। इनसे तो सिर्फ यही जाहिर होता है कि वह मुझसे बढ़े-चढ़े हैं। लेकिन एक बातमें मैं और वह बिलकुल बराबर हैं। वह भी पैदल चलते हैं, मैं भी पैदल चलता हूं। इसका तुम्हारे पास क्या जवाब है? जवाब नहीं। कुछ है, तो कहो। बस, चुप हो जाओ। तुम कुछ नहीं कह सकते। जबसे मैं पैदा हुआ हूं, उस दिनसे पैदल चल रहा हूं—पैदल! तुम पैदलके माने नहीं जानते। पैदलके माने हैं जमीनकी छातीपर इस तरहसे हरकत करना कि दोनों पांवोंमेंसे एक जरूर जमीनपर रहे। याने तमाम उम्र मेरे हरकत करनेका तरीका यही रहा है कि एक पांव जमीनपर रखता हूं, दूसरा उठाता हूं। दूसरा रखता हूं, पहला उठाता हूं। एक आगे, एक पीछे—एक पीछे, एक आगे! खुदाकी कसम, इस तरहकी जिन्दगीसे दिमाग सोचनेके काबिल ही नहीं रहता। हवास बेकार हो जाते हैं, भावनायें मर जाती हैं और आदमी गधेसे बदतर हो जाता है!

मिर्जा साहब मेरे इस लेक्चरके बीचमें कुछ इस बेपरवाहीके साथ सिगरेट पीते रहे कि दोस्तोंकी बेवफाईपर रोनेको जी चाहता था। मैंने बेहद हिकारत और नफरतके साथ मुंह उनकी तरफसे फेर लिया। ऐसा मालूम होता था कि मिर्जाको मेरी बातोंपर यकीन ही नहीं आता। गोया मैं जो अपने खयालात जाहिर कर रहा हूं, वे खयाली ही हैं। याने मेरा पैदल चलनेके खिलाफ शिकायत करना काबिले गौर नहीं है। याने मुझे किसी सवारीका हक ही नहीं। मैंने दिलमें कहा—अच्छा मिर्जा, यों ही सही, देखो तो मैं क्या करता हूं।

मैंने अपने दांत भींच लिये और कुर्सीके दोनों हाथोंपरसे झुककर मिर्जाके करीब पहुंच गया। मिर्जाने भी सर मेरी तरफ मोड़ा। मैं मुसकरा दिया, लेकिन मेरी मुसकराहटमें जहर मिला हुआ था। जब मिर्जा सुननेके लिए बिलकुल तैयार हो गया, तो मैंने चबा-चबाकर कहा:—

"मिर्जा, मैं एक मोटरकार खरीदने लगा हूं।"

यह कहकर मैं बड़ी बेफिक्रीके साथ दूसरी तरफ देखने लगा। मिर्जा बोले—क्या कहा तुमने? क्या खरीदने लगे हो?

मैंने कहा—सुना नहीं तुमने ! मैं एक मोटरकार खरीदने लगा हूं। मोटरकार एक ऐसी गाड़ी है, जिसे कुछ लोग मोटर कहते हैं। कुछ लोग कार कहते हैं। लेकिन चूंकि तुम जरा कुन्द जिहन हो, इसलिए मैंने दोनों लफ्ज एक साथ इस्तेमाल कर दिये, ताकि तुम्हें समझनेमें कोई दिक्कत न पेश आये।

मिर्जा बोले—"हूं।"

अबकी मिर्जा नहीं, बल्कि मैं बेपरवाहीसे सिगरेट पीने लगा। भवें मैंने ऊपरको उठा लीं। सिगरेटवाला हाथ मैं मुंह तक इस अन्दाजसे लाता और हटाता था कि बड़े-बड़े ऐक्टर उसपर ईर्ष्या करें।

थोड़ी देरके बाद मिर्जा फिर बोले—"हूं।"

मैंने सोचा, असर हो रहा है। मिर्जा साहबपर रोब पड़ रहा है। मैं चाहता था, मिर्जा कुछ बोले, ताकि मुझे मालूम हो कि कहां तक प्रभावित हुआ है। लेकिन मिर्जाने फिर कहा—"हूं।"

मैंने कहा—"मिर्जा, जहां तक मुझे मालूम है, तुमने स्कूल, कालेज और घरपर दो-तीन जबानें सीखी हैं। और इसके अलावा तुम्हें कई ऐसे शब्द भी आते हैं, जो किसी स्कूल या कालेज या शरीफ घरानेमें नहीं बोले जाते। फिर भी, इस वक्त तुम्हारा कलाम 'हूं' से आगे नहीं बढ़ता। तुम जलते हो मिर्जा, इस वक्त तुम जो कुछ सोच रहे हो, उसे अरबी जबानमें हसद कहते हैं।"

मिर्जा साहब कहने लगे—"नहीं, यह बात नहीं है। मैं तो सिर्फ खरीदनेके लफ्जपर गौर कर रहा था। तुमने कहा, मैं एक मोटरकार खरीदने लगा हूं। तो मियां साहबजादे, खरीदना एक ऐसा काम है कि उसके लिए रुपये वगैरहकी जरूरत होती है। वगैरहका बन्दोबस्त तो बखूबी हो जायगा, लेकिन रुपयेका बन्दोबस्त कैसे करोगे ?"

यह अड़चन तो मुझे सूझी ही न थी। लेकिन मैंने हिम्मत न हारी। मैंने कहा—"मैं अपनी कई कीमती चीजें बेच सकता हूं।"

मिर्जा बोले—"कौन-सी, मसलन् ?"

मैंने कहा—"एक तो अपना सिगरेटकेस बेच डालूंगा।"

मिर्जा कहने लगे—"चलो, दस आने तो यह हो गये। बाकी ढाई-तीन हजारका इन्तजाम भी इसी तरह हो जाय, तो सब काम ठीक हो जायगा।"

उसके बाद जरूरी यही मालूम हुआ कि गुफ्तगूका सिलसिला कुछ देरके लिए रोक दिया जाय। चुनांचे मैं मिर्जासे बेजार होकर खामोश हो रहा। यह बात समझमें न आयी कि लोग रुपया कहांसे लाते हैं। बहुत सोचा, आखिर इस नतीजेपर पहुंचा कि लोग चोरी करते हैं। इससे कुछ इतमीनान भी हुआ।

मिर्जा बोले—"मैं तुम्हें एक तरकीब बताऊं। एक बाइसिकल ले लो।"

मैंने कहा—"वह रुपयेका सवाल तो फिर भी ज्योंका त्यों रहा।"

कहने लगे—"मुफ्त।"

मैंने हैरान होकर पूछा—"मुफ्त ! वह कैसे ?"

कहने लगे—"मुफ्त ही समझो। आखिर दोस्तसे कीमत लेना भी कहांकी शराफत है। अलबत्ता तुम्हें अगर अहसान कबूल करना गवारा न हो, तो और बात है।"

ऐसे मौकेपर जो हंसी मैं हंसता हूं, उसमें एक मासूम बच्चेकी खुशी, जवानीकी खुशदिली, उबलते हुए फव्वारोंका सङ्गीत और बुलबुलोंका नगमा सब एक-दूसरेके साथ मिले होते हैं। चुनांचे मैं यह हंसी हंसा और इस तरह हंसा कि खिली हुई बाछें फिर घण्टों तक अपनी असली जगहपर वापस न आयीं। जब मुझे यकीन हो गया कि एकदमसे कोई खुशखबरी सुननेसे दिलकी हरकत बन्द हो जानेका जो खतरा होता है, उससे बचा हुआ हूं, तो मैंने पूछा—'है किसकी ?'

मिर्जा बोले—"मेरे पास एक बाइसिकल पड़ी है, तुम ले लो !"

मैंने कहा—"फिर कहना, फिर कहना।"

कहने लगे—"भई, एक बाइसिकल मेरे पास है, जब मेरी है, तो तुम्हारी ही है, तुम ले लो।"

यकीन मानिये, मुझपर घड़ों पानी पड़ गया। शर्मके मारे पसीना-पसीना हो गया। चौदहवीं सदीमें ऐसी बेगरजी और उदारता भला कहां देखनेमें आती है। मैंने कुर्सी सरकाकर मिर्जाके पास कर ली। समझमें न आया कि उनके इस अहसानका शुक्रिया किस तरह अदा करूं !

मैंने कहा—मिर्जा, सबसे पहले तो मैं इस गुस्ताखी और बेअदबीकी माफी मांगता हूं, जो अभी मैंने तुम्हारे साथ

बातचीतमें बरती है। दूसरे, मैं उम्मेद करता हूं कि तुम मेरी साफगोईकी दाद दोगे और मुझे अपनी रहमदिलीके सदकेमें माफ कर दोगे। मैं हमेशा तुमको निहायत खुदगरज, मक्कार और कमीना समझता रहा हूं। देखो, नाराज मत होना। इन्सानसे गलती हो ही जाती है। लेकिन आज तुमने अपनी शराफत और दोस्तीका सबूत दिया है और मुझपर साबित कर दिया है कि मैं कितना काबिले नफरत, ओछा और तङ्गखयालका नीच आदमी हूं। लिहाजा, मुझे माफ कर दो।

मेरी आंखोंमें आंसू भर आये और करीब था कि मैं मिर्जाके हाथका बोसा लेता और अपने आंसुओंको छिपानेके लिए उसकी गोदमें सर रख देता; लेकिन मिर्जा साहब कहने लगे :—

"वाह, इसमें मेरी उदारता क्या होती? मेरे पास एक बाइसिकल है, जैसे मैं सवार हुआ, वैसे तुम सवार हुए।"

मैंने कहा—"मिर्जा, मुफ्तमें न लूंगा। यह हर्गिज नहीं हो सकता।"

मिर्जा कहने लगे—"बस, मैं इसी बातसे डरता था। मैं जानता था कि तुम किसीका अहसान लेना गवारा न करोगे। हालांकि खुदा गवाह है, अहसान इसमें कोई नहीं।"

मैंने कहा—"खैर, कुछ भी सही। तुम सचमुच मुझे उसकी कीमत बता दो।"

मिर्जा बोले—"कीमतका जिक्र करके तुम गोया मुझे कांटोंमें घसीटते हो और जिस कीमतपर मैंने खरीदी थी, वह तो बहुत ज्यादा थी। और अब तो वह इतनेकी रही भी नहीं।"

मैंने पूछा—"तुमने कितनेमें खरीदी है?"

कहने लगे—"मैंने पौने दो सौमें ली थी, लेकिन उस जमानेमें बाइसिकलोंका रिवाज जरा कम था। इसलिए कीमतें जरा ज्यादा थीं।"

मैंने कहा—"क्या बहुत पुरानी है?"

बोले—"ऐसी पुरानी भी क्या होती। मेरा लड़का उसपर कालेज आया-जाया करता था। और उसे कालेज छोड़े अभी दो साल भी नहीं हुए। लेकिन इतना जरूर है कि आजकलकी बाइसिकलोंसे जरा मुखतलिफ है। आजकल तो बाइसिकलें टीनकी बनती हैं, जिन्हें कालेजके सर-फिरे लौंडे सस्ती समझकर खरीद लेते हैं। पुरानी बाइसिकलोंके ढांचे मजबूत हुआ करते थे।"

"मगर मिर्जा, पौने दो सौ तो मैं हर्गिज नहीं दे सकता। इतने रुपये मेरे पास कहांसे आये, मैं तो इससे आधी कीमत भी नहीं दे सकता।"

मिर्जा कहने लगे—"तो मैं तुमसे पूरी कीमत थोड़े ही मांगता हूं। अव्वल तो मैं कीमत लेना ही नहीं चाहता। लेकिन……।"

मैंने कहा—"न मिर्जा, कीमत तो तुम्हें लेनी ही पड़ेगी। अच्छा, तुम यों करो। मैं तुम्हारी जेबमें कुछ रुपये डाले देता हूं। तुम घर जाकर गिन लेना। अगर तुम्हें मञ्जूर हुए, तो कल बाइसिकल भेज देना। वरना रुपये वापस कर देना। अब यहां बैठकर मैं तुमसे सौदा चुकाऊं? यह तो कुछ दूकानदारोंकी-सी बात मालूम होती है।"

मिर्जा बोले—"भई, जैसी तुम्हारी मर्जी, मैं तो अब भी यही कहता हूं कि कीमत-वीमत जाने दो, लेकिन मैं जानता हूं कि तुम न मानोगे।"

मैं उठकर अन्दर कमरेमें आया। मैंने सोचा, इस्तेमाल की हुई चीजकी लोग आम तौरपर आधी कीमत देते हैं, लेकिन जब मैंने मिर्जासे कहा था कि मिर्जा, मैं तो आधी कीमत भी नहीं दे सकता, तो उसने इसपर इनकार भी नहीं किया था। वह बेचारा तो बल्कि यही कहता रहा कि तुम मुफ्त ही ले लो। लेकिन मुफ्त मैं कैसे ले लूं। आखिर बाइसिकल है, एक सवारी है। फिटनों और घोड़ों, मोटरों और तांगोंके मुकाबलेमें शुमार की जाती है। बक्सको खोला, तो मालूम हुआ कि कुल ४६) रुपये हैं। ४६) तो कुछ ठीक रकम नहीं। ४५) या ५०) हों, जब भी बात है। ५०) तो हो नहीं सकते और अगर ४५) देते हैं, तो ४०) क्यों न दिये जायं। जिन रकमोंके आखीरमें सिफर आता है, वह रकमें कुछ ज्यादा माकूल मालूम होती हैं। बस, ठीक है। ४०) दे दूंगा। खुदा करे, मिर्जा कबूल कर ले।

बाहर आया। ४०) मुट्ठीमें बन्द करके मैंने मिर्जाकी जेबमें डाल दिये और कहा—"मिर्जा, इसको कीमत न समझना। लेकिन अगर एक मुफलिस दोस्तकी हकीर-सी रकम मञ्जूर करना तुम्हें अपनी तौहीन न मालूम हो, तो कल बाइसिकल भेजवा देना।"

मिर्जा चलने लगे, तो मैंने फिर कहा कि मिर्जा, कल जरूर सुबह-सुबह ही भेजवा देना। रुखसत होनेसे पहले मैंने

फिर एक दफा कहा—"कल सुबह आठ-नौ बजे तक पहुंच जाय। देर न करना······खुदा हाफिज······और देखो मिर्जा, मेरे थोड़े-से रुपयोंको भी ज्यादा समझना······खुदा हाफिज······और तुम्हारा बहुत-बहुत शुक्रिया, मैं तुम्हारा अहसानमन्द हूं। और मेरी गुस्ताखीको माफ कर देना। देखो न, कभी-कभी यों ही बेतकल्लुफीमें······कल सुबह आठ-नौ बजे तक······जरूर······खुदा हाफिज!"

मिर्जा कहने लगे—"जरा इसको झाड़-पोंछ लेना और तेल वगैरह डलवा लेना। मेरे नौकरको फुरसत हुई, तो मैं खुद ही डलवा दूंगा। वरना तुम खुद डलवा लेना।"

मैंने कहा—"हां, हां, वह सब कुछ हो जायगा। तुम कल भेज जरूर देना। और देखना, आठ बजे तक या साढ़े सात बजे तक जरूर पहुंच जाय। अच्छा···खुदा हाफिज!"

रातको बिस्तरपर लेटा, तो बाइसिकलपर सैर करनेके तरह-तरहके प्रोग्राम बनाता रहा। यह इरादा तो पक्का कर लिया कि दो-तीन दिनके अन्दर-अन्दर आसपासके तमाम मशहूर ऐतिहासिक खंडहर और इमारतोंको नये सिरेसे देख डालूंगा। इसके बाद अगले गरमीके मौसममें हो सका, तो बाइसिकलपर कश्मीर वगैरहकी सैर करूंगा। सुबह-सुबह हवा खानेके लिए हर रोज नहर तक जाया करूंगा। शामको ठण्डी सड़कपर जहां और लोग सैरको निकलेंगे, मैं भी सड़ककी साफ जमीनपर हलके-हलके खामोशी-के साथ हाथी-दांतके एक गेंदकी तरह गुजर जाऊंगा। डूबते हुए सूरजकी रोशनी बाइसिकलके चमकीले हिस्सोंपर पड़ेगी, तो बाइसिकल जगमगा उठेगी और ऐसा मालूम होगा, जैसे एक राजहंस जमीनके साथ-साथ उड़ रहा है। वह मुसकराहट, जिसका मैं ऊपर जिक्र कर चुका हूं, अभी तक मेरे होठोंपर खेल रही थी। दिल चाहता था कि अभी भाग-कर जाऊं और इसी वक्त मिर्जाको गले लगा लूं।

रातको सपनेमें दुआयें मांगता रहा कि खुदा करे, मिर्जा बाइसिकल देनेपर राजी हो जाय।

सुबह उठा, तो उठनेके साथ ही नौकरने यह खुशखबरी सुनायी कि हुजूर, वह बाइसिकल आ गयी है।

मैंने कहा—"इतने सवेरे!"

नौकरने कहा—"वह तो रात ही को आ गयी थी। आप सो गये थे, मैंने जगाना मुनासिब न समझा। और साथ ही मिर्जा साहबका आदमी यह ढिबरियां कसनेका एक औजार भी दे गया है।"

मैं हैरान तो हुआ कि मिर्जा साहबने साइकिल भेजवा देनेमें इस कदर जल्दीसे क्यों काम लिया। लेकिन इस नतीजे-पर पहुंचा कि आदमी निहायत शरीफ और ईमानदार हैं। रुपये ले लिये थे, तो साइकिल क्यों रोक रखते।

नौकरसे कहा—देखो, यह औजार यहीं छोड़ जाओ, और देखो, बाइसिकलको किसी कपड़ेसे खूब अच्छी तरह झाड़ो और यह मोड़पर जो साइकलवाला बैठता है, उससे जाकर बाइसिकलमें डालनेका तेल ले आओ और देखो—अबे भागा कहां जा रहा है! हम जरूरी बात तुमसे कह रहे हैं। बाइसिकलवालेसे तेलकी एक कुप्पी भी ले आना। और जहां-जहां तेल देनेकी जगह है, वहां तेल दे देना और उससे कहना कि कोई घटिया-सा तेल न दे दे, जिससे तमाम पुरजे ही खराब हो जायं। बाइसिकलके पुरजे बड़े नाजुक होते हैं। और बाइसिकल बाहर निकाल रखो। हम अभी कपड़े पहन-के आते हैं। हम जरा सैरको जा रहे हैं और देखो, साफ कर देना और बहुत जोर-जोरसे कपड़ा भी मत रगड़ना, बाइसि-कलका पालिश घिस जाता है।"

जल्दी-जल्दी चाय पी—गुसलखानेमें चल-फिरकर "चल-चल चंबेली बागमें" गाता रहा। इसके बाद कपड़े बदले, औजारको जेबमें डाला और कमरेसे बाहर निकला।

बरामदेमें आया, तो बरामदेके साथ ही एक अजीबो गरीब मशीन दिखाई दी। ठीक तरह पहचान न सका कि क्या चीज है! नौकरसे दरियाफ्त किया—"क्यों बे, यह क्या चीज है?"

नौकर बोला—"हुजूर, यह बाइसिकल है।"

मैंने कहा—"बाइसिकल? किसकी बाइसिकल?"

कहने लगा—"मिर्जा साहबने भेजवायी है। आपके लिए।"

मैंने कहा—"और जो बाइसिकल रातको उन्होंने भेजी थी, वह कहां गयी?"

कहने लगा—"यही तो है।"

मैंने कहा—"क्या बकता है। जो बाइसिकल मिर्जा साहबने कल रातको भेजी थी, वह बाइसिकल यही है?"

कहने लगा—"जी हां।"

मैंने कहा—"अच्छा" और फिर उसे देखने लगा। पूछा, "इसको साफ क्यों नहीं किया ?"

"हुजूर दो-तीन दफा साफ किया है।"

"तो यह मैली क्यों है ?"

नौकरने इसका जवाब देना शायद मुनासिब न समझा।

"और तेल लाया ?"

"हां हुजूर, लाया हूं।"

"दिया ?"

"हुजूर, वह जो तेल देनेके छेद होते हैं, वह नहीं मिलते।"

"क्या वजह ?"

"हुजूर, धुरोंपर मैल और जङ्ग जमा है। वह सूराख कहीं बीच ही में दब-दबा गये हैं।"

धीरे-धीरे मैं उस चीजके पास आया, जिसे मेरा नौकर बाइसिकल बता रहा था। उसके अजीबोगरीब पुरजोंपर गौर किया, तो इतना तो साबित हो गया कि बाइसिकल है; लेकिन उसकी मशीन और ढांचेको देखकर मुझे यकीन कर लेना पड़ा कि यह बाइसिकल (?) हल, चरखा और रहटके बननेके पहले तैयार की गयी है। पहियेको घुमा-घुमाकर वह सूराख तलाश किया, जहां किसी जमानेमें तेल दिया जाता रहा होगा। लेकिन अब उस सूराखमेंसे आमदोरफ्तका सिलसिला बन्द था। चुनाञ्चे नौकर बोला—"हुजूर, वह तेल तो सब इधर-उधर बह जाता है, बीचमें तो जाता ही नहीं।"

मैंने कहा—"अच्छा, ऊपर ही ऊपर डाल दो, यह भी फायदेमन्द होता है।"

आखिरकार बाइसिकलपर सवार हुआ। पहला ही पांव चलाया, तो ऐसा मालूम हुआ, जैसे कोई मुर्दा अपनी हड्डियां चटखा-चटखाकर अपनी मर्जीके खिलाफ जिन्दा हो रहा है। घरसे निकलते ही कुछ थोड़ी-सी उतराई थी, उसपर बाइसिकल खुद-बखुद चलने लगी, लेकिन इस रफ्तारसे, जैसे तारकोल जमीनपर बहता है। और साथ ही भिन्न-भिन्न हिस्सोंसे तरह-तरहकी आवाजें निकलनी शुरू हुईं। उन आवाजोंके भिन्न-भिन्न गिरोह थे। "चीं चां चूं" की आवाज ज्यादातर गद्दीके नीचे और पिछले पहियेसे निकलती थी, "खट खड़-खड़ खड़ड़" की आवाज मडगार्डोंसे आती थी, "चर चर्रख चर चर्रख" की सुरीली आवाज जञ्जीर और पैडलसे बरामद हो रही थी। जञ्जीर ढीली थी। मैं जब कभी पैडलपर जोर डालता था, जञ्जीरमें एक अंगड़ाई-सी पैदा होती थी, जिससे वह तन जाती थी और "चड़चड़" बोलने लगती थी। और फिर ढीली हो जाती थी। पिछला पहिया घूमनेके अलावा जरा झूमता भी था, याने एक तो आगेको चलता था और उसके अलावा दाहनेसे बायें और बायेंसे दाहनेको भी हरकत करता था। चुनाञ्चे सड़कपर जो निशान पड़ता जाता था, उसको देखकर ऐसा मालूम होता था, जैसे कोई मस्त सांप लहराता हुआ निकल गया है। मडगार्ड थे तो सही, लेकिन पहियोंके ठीक ऊपर न थे। उनका फायदा सिर्फ यह मालूम होता था कि इन्सान पूरबकी ओर सैर करनेको निकले और सूरज पश्चिममें डूब रहा हो, तो मडगार्डोंकी बदौलत टायर धूपसे बचे रहेंगे। अगले पहियेके टायरमें एक बड़ा-सा पेवन्द लगा हुआ था, जिसकी वजहसे पहियेके हर चक्करमें एक दफा दम-भरके लिए जोरसे ऊपर उठ जाता था और मेरा सर पीछेको यों झटके खा रहा था, जैसे कोई लगातार ठोड़ीके नीचे मुक्के मारे जा रहा हो। पिछले और अगले पहियेको मिलाकर "चूं चूं फट"—"चूं चूं फट"—"चूं चूं फट"·········की आवाज निकल रही थी। जब उतराईपर बाइसिकल जरा तेज हुई, तो मानो एक भूचाल-सा आ गया और बाइसिकलके कई और पुरजे, जो अब तक सोये हुए थे, बेदार होकर बोलने लगे। इधर-उधरके लोग चौंके। माताओंने अपने बच्चोंको सीनेसे लगा लिया। खरड़-खरड़-खरड़के बीचमें पहियोंकी आवाज अलग सुनाई दे रही थी, लेकिन चूंकि बाइसिकल अब पहलेसे तेज थी, इसलिए "चूं चूं फट·········चूं चूं फट"·········की आवाजने अब "चूंचूंफट·········चूंचूंफट" की सूरत अख्तियार कर ली थी। तमाम बाइसिकल किसी अफ्रीकी जबानमें बोल रही थी।

इस कदरकी तेज चाल बाइसिकलके नाजुक मिजाजपर गिरां गुजरी। चुनाञ्चे उसमें एकदमसे दो तबदीलियां पैदा हो गयीं। एक तो हैण्डिल एक तरफको मुड़ गया, जिसका नतीजा यह हुआ कि मैं जा तो सामनेको रहा था, लेकिन मेरा तमाम जिस्म दायीं तरफको मुड़ा हुआ था। इसके अलावा बाइसिकलकी गद्दी एकाएक छः इञ्चके करीब नीचे बैठ गयी।

चुनाञ्चे जब पैडल चलानेके लिए मैं टांगें ऊपर-नीचे कर रहा था, तो मेरे घुटने मेरी ठोड़ी तक पहुंच जाते थे। कमर दोहरी होकर बाहरको निकली हुई थी और साथ ही अगले पहियेकी अठखेलियोंकी वजहसे सर बराबर झटके खा रहा था।

गद्दीका नीचा हो जाना बेहद तकलीफ देने लगा। इसलिए मैंने मुनासिब यही समझा कि उसको ठीक कर लूं। चुनाञ्चे मैं बाइसिकलको ठहराकर नीचे उतरा। बाइसिकलके ठहर जानेसे एकदमसे जैसे दुनियामें खामोशी-सी छा गयी। ऐसा मालूम हुआ, जैसे मैं किसी रेलके स्टेशनसे निकलकर बाहर आ गया हूं। जेबसे मैंने औजार निकाला। गद्दीको ऊंचा किया। कुछ हैण्डिलको ठीक किया और दोबारा सवार हो गया।

दस कदम भी चलने न पाया था कि अबके हैण्डल भकसे नीचा हो गया। इतना कि गद्दी अब हैण्डलसे कोई फुट-भर ऊंची थी। मेरा तमाम जिस्म आगेको झुका हुआ था। तमाम बोझ दोनों हाथोंपर था, जो हैण्डलपर रखे थे और बराबर झटके खा रहे थे। अब जरा आप मेरी हालतकी कल्पना करें, तो आपको खुद मालूम हो जायगा कि मैं दूरसे ऐसा मालूम हो रहा था, जैसे कोई औरत आटा गूंध रही हो। मुझे इस उपमाका बड़ा तेज अनुभव था, जिसकी वजहसे मेरे माथेपर पसीना छूट आया। मैं दायें-बायें लोगोंको कनखियोंसे देखता जाता था। यों तो हर शख्स मील-भर पहले ही से मुड़-मुड़कर देखने लगता था, लेकिन उनमें कोई भी ऐसा न था, जिसके लिए मेरी मुसीबत मजाकका कारण न बन गयी हो।

हैण्डल तो नीचा हो ही गया था। थोड़ी देरके बाद गद्दी भी फिर नीची हो गयी और मैं मय शरीरके जमीनके पास पहुंच गया। एक लड़केने कहा—"देखो, यह आदमी क्या कर रहा है?" गोया उस बदतमीजके नजदीक मैं कोई करतब दिखा रहा था। मैंने उतरकर फिर हैण्डल और गद्दीको ऊंचा किया।

लेकिन थोड़ी देरके बाद उनमेंसे एक-न-एक फिर नीचा हो जाता। मैं यही सोचता रहता कि अबके गद्दी पहले बैठेगी या हैण्डल? चुनाञ्चे निडर होकर न बैठता, बल्कि जिस्मको गद्दीसे जरा ऊपर ही रखता। लेकिन उससे हैण्डलपर इतना बोझ पड़ जाता कि वह नीचा हो जाता।

जब दो मील गुजर गये और ऊपर-तलेने एक मुकर्रर बाकायदगी अख्तियार कर ली, तो फैसला किया कि किसी मिस्त्रीसे पेंच कसवा लेना चाहिए। चुनाञ्चे बाइसिकलको एक दूकानपर ले गया।

बाइसिकलकी खड़खड़से दूकानमें जितने लोग काम कर रहे थे, सबके सब उठकर मेरी तरफ देखने लगे। लेकिन मैंने जी कड़ा करके कहा—जरा इसकी मरम्मत कर दीजिये।

एक मिस्त्री आगे बढ़ा। लोहेकी एक लम्बी-सी छड़ उसके हाथमें थी, जिससे उसने कई जगहपर बड़ी बेदर्दीके साथ ठोंक-पीटकर देखा। मालूम होता था कि उसने बड़ी तेजीके साथ सारे हालका अन्दाजा लगा लिया है। लेकिन फिर भी मुझसे पूछने लगा—"किस-किस पुरजेकी मरम्मत कराइयेगा?"

मैंने कहा—"बड़े गुस्ताख हो तुम, देखते नहीं कि सिर्फ हैण्डल और गद्दीको जरा ऊंचा करके कस दो, बस और क्या? उनको मेहरबानी करके फौरन् ठीक कर दो और बताओ, कितने पैसे हुए?"

मिस्त्री कहने लगा—"मडगार्ड भी ठीक कर दूं?"

मैंने कहा—"हां, वह भी ठीक कर दो!"

कहने लगा—"आप अच्छा करें, यदि बाकी चीजें भी ठीक करा लें।"

मैंने कहा—"अच्छा, कर दो।"

बोला—"यों थोड़ा ही हो सकता है। दस-पन्द्रह दिन-का काम है। आप इसे हमारे पास छोड़ते जाइये।"

मैंने कहा—"और पैसे कितने लोगे?"

कहने लगा—"बस, तीस-चालीस रुपये लगेंगे।"

मैंने कहा—"बस जी, जो काम तुमसे कहा है, कर दो। और बाकी मामलोंमें दखल देनेकी जरूरत नहीं।"

थोड़ी देरमें हैण्डल और गद्दी फिर ऊंची करके कस दी गयी। मैं चलने लगा, तो मिस्त्रीने कहा—"कस तो दिया है, लेकिन पेंच सब घिसे हुए हैं। अभी थोड़ी देरमें फिर ढीले हो जायेंगे।"

मैंने कहा—"हैं, बदतमीज कहींका। तो दो आने पैसे मुफ्तमें ले लिये।"

बोला—"जनाब, आपको बाइसिकल भी तो मुफ्तमें मिली होगी। यह आपके दोस्त मिर्जा साहबकी है न?—

लल्लू, यह वही बाइसिकल है, जो पिछले साल मिर्जा साहब यहां बेचनेको लाये थे। पहचानी तुमने? भई, सदियां ही गुजर गयीं, लेकिन इस बाइसिकलकी खता माफ होनेमें नहीं आती। न जाने बेचारीने पिछले जन्म कौन-सा पाप किया था।"

मैंने कहा--"वाह, मिर्जा साहबके लड़के इसपर कालेज आया-जाया करते थे, और उनको अभी कालेज छोड़े दो साल भी नहीं हुए।"

मिस्त्रीने कहा—"हां, यह ठीक है; लेकिन मिर्जा साहब खुद जब कालेजमें पढ़ते थे, तो उनके पास भी तो यही बाइसिकल थी।"

मेरी तबियत यह सुनकर कुछ मुर्दा-सी हो गयी। मैं बाइसिकलको साथ लिये आहिस्ता-आहिस्ता पैदल चल पड़ा। लेकिन पैदल चलना भी मुश्किल था। इस बाइसिकलके चलानेमें ऐसे-ऐसे पुट्ठोंपर जोर पड़ा था, जो आम बाइसिकलोंके चलानेमें इस्तेमाल नहीं होते। इसलिए टांगों और कन्धों, कमर और बाजुओंमें जा-बजा दर्द होता था। मिर्जाका ख़याल रह-रहकर आता था, लेकिन मैं हर बार कोशिश करके उसे दिलसे हटा देता था, वरना मैं पागल हो जाता और जुनूनकी हालतमें पहली हरकत मुझसे यह होती कि मिर्जाके मकानके सामने बाजारमें एक जलसा करता, जिसमें मिर्जाकी मक्कारी, बेईमानी और दगाबाजीपर एक लम्बा-चौड़ा लेक्चर देता। और सारे इन्सान कहलानेवाले जीवों तथा उनकी आनेवाली सन्तानको मिर्जाकी नापाक हरकतसे आगाह करता और उसके बाद एक चिता जलाकर उसमें जिन्दा जलकर मर जाता।

मैंने बेहतर यही समझा कि जिस तरह हो सके, अब इस बाइसिकलको औने-पौने दामों बेचकर जो वसूल हो, उसीपर सब्र करके बैठ जाऊं। बलासे दस-पन्द्रह रुपयेका घाटा ही सही, चालीसके चालीस रुपयेका नुकसान तो न उठाना पड़ेगा। रास्तेमें बाइसिकलोंकी एक और दूकान आयी, वहां ठहर गया।

दूकानदार बढ़कर मेरे पास आया। लेकिन मेरी जबानमें जैसे ताला लगा हुआ था। उम्र-भर कभी किसी चीजके बेचनेकी नौबत न आयी थी। मुझे यह भी मालूम नहीं कि ऐसे मौकेपर क्या कहा जाता है। आखिर बड़े सोच-विचार और बड़ी देरके बाद मुंहसे सिर्फ इतना निकला कि "यह बाइसिकल है।"

दूकानदार कहने लगा—"फिर?"

मैंने कहा—"लोगे?"

कहने लगा—"क्या मतलब?"

मैंने कहा—"बेचते हैं हम!"

दूकानदारने मुझे ऐसी नजरसे देखा कि मुझे यह महसूस हुआ, मुझपर चोरीका शक कर रहा है। फिर बाइसिकलको देखा। फिर मुझे देखा। फिर बाइसिकलको देखा। ऐसा मालूम होता था कि फैसला नहीं कर सकता। आदमी कौन-सा है और बाइसिकल कौन-सी है। आखिरकार बोला—"क्या करेंगे आप, इसको बेचकर?"

ऐसे सवालोंका खुदा जाने क्या जवाब होता है, मैंने कहा—"क्या तुम यह पूछना चाहते हो कि जो रुपये मुझे वसूल होंगे, वह खर्च कैसे होंगे?"

कहने लगा—"वह तो ठीक है, मगर कोई इसको लेकर करेगा क्या?"

मैंने कहा—"इसपर चढ़ेगा और क्या करेगा?"

कहने लगा—"अच्छा, चढ़ गया—फिर?"

मैंने कहा—"फिर क्या? फिर चलायेगा और क्या?"

दूकानदार बोला—"अच्छा? हूं, खुदाबख्श, जरा यहां आना। यह बाइसिकल बिकने आयी है।"

जिन हजरतका नाम खुदाबख्श था, उन्होंने बाइसिकलको दूर ही से यों देखा, जैसे बू सूंघ रहे हों।

इसके बाद दोनोंने आपसमें मशविरा किया। आखिरमें वह, जिनका नाम खुदाबख्श नहीं था, मेरे पास आये और कहने लगे—"तो आप सचमुच बेच रहे हैं?"

मैंने कहा—"तो और क्या, महज आपसे बातें करनेका शौक चर्राया था, जो घरसे यह बहाना गढ़कर लाया हूं।"

कहने लगा—"तो क्या लेंगे आप?"

मैंने कहा—"तुम्हीं बताओ?"

कहने लगा—"सचसच बताऊं?"

मैंने कहा—"हां।"

फिर कहने लगा—"सचसच बताऊं?"

मैंने कहा—"अब बताओगे भी, या यों ही पहेलियां बुझाते रहोगे!"

कहने लगा—"तीन रुपये दूंगा इसके।"

मेरा खून खौल उठा और मेरे हाथ, पांव और होंठ गुस्सेके मारे कांपने लगे। मैंने कहा—"ओ छोटी जातके जलील इन्सान, मुझे अपने अपमानकी परवाह नहीं। लेकिन तूने अपनी बेहूदा हरकतसे इस बेजबान चीज (बाइसिकल) को जो सदमा पहुंचाया है, उसके लिए मैं तुझे कयामत तक भी माफ नहीं कर सकता।" यह कहकर मैं बाइसिकलपर सवार हो गया और अन्धाधुन्ध पांव चलाने लगा।

मुश्किलसे २० कदम गया होऊंगा कि मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे जमीन एकबारगी उछलकर मुझे आ लगी है। आसमान मेरे सरपरसे हटकर मेरी टांगोंके बीचमेंसे गुजर गया और इधर-उधरकी इमारतोंने एक-दूसरेके साथ अपनी-अपनी जगह बदल ली है। होश-हवास जब ठिकाने लगे, तो मालूम हुआ कि मैं जमीनपर इस बेतकल्लुफीसे बैठा हूं, गोया बड़ी मुद्दतसे मुझे इस बातका शौक था, जो आज पूरा हुआ। इर्द-गिर्द कुछ लोग जमा थे। कितने ही तो हंस रहे थे। सामने दूकान थी, जहां अभी-अभी मैंने साइकिलका मोल-तोल किया था। मैंने अपने चारों तरफ आंखें फाड़-फाड़कर देखा, तो मालूम हुआ कि मेरी बाइसिकलका अगला पहिया बिलकुल अलग होकर लुढ़कता हुआ सड़कके उस पार जा पहुंचा है और बाकी बाइसिकल मेरे पास पड़ी है। मैंने फौरन् अपने आपको संभाला। जो पहिया अलग हो गया था, उसको एक हाथमें उठाया। दूसरे हाथमें दूसरेको थामा और चल खड़ा हुआ। यह महज एक बौखलाहट थी, वरना बाइसिकल मुझे इतनी प्यारी न थी कि उसको इस तरह लटकाये-लटकाये फिरता।

जब मैं यह सब कुछ उठाकर चल दिया, तो मैंने अपने आपसे पूछा कि यह तुम क्या कर रहे हो—कहां जा रहे हो? तुम्हारा इरादा क्या है और यह दो पहिये काहेको लिये जा रहे हो?

सब सवालोंका जवाब यही मिला कि देखा जायगा। फिलहाल तुम यहांसे चल दो। सब लोग तुम्हें देख रहे हैं। सर ऊंचा रखो और चलते जाओ। जो हंस रहे हैं, उन्हें हंसने दो। इस किस्मके बेहूदा लोग हर कौम और हर मुल्कमें पाये जाते हैं। आखिर हुआ क्या! सिर्फ एक जरा-सी दुर्घटना। बस, दायें-बायें मत देखो, चलते जाओ!

लोगोंकी फबतियां भी सुनाई दे रही थीं। एक आवाज आयी—"बस हजरत, गुस्सा थूक डालिये।" एक दूसरे साहब बोले—"बेहया बाइसिकल, घर पहुंचके तुझे मजा चखाऊंगा।" एक सफेद दाढ़ीवाले भले आदमी अपने पोतेकी उंगली पकड़े जा रहे थे, बोले—"देखो बेटा, यह सरकसकी बाइसिकल है, इसके दोनों पहिये अलग-अलग होते हैं।"

लेकिन मैं चलता गया। थोड़ी देरके बाद मैं आबादीसे दूर निकल गया। अब मेरी रफ्तारमें कुछ नरमी आ गयी थी, मेरा दिल जो कई घण्टोंसे एक अजीब पेंचोताब खा रहा था। अब बहुत हलका हो गया था। मैं चलता गया, चलता गया, यहां तक कि दरिया किनारे तक पहुंच गया। पुलके ऊपर खड़े होकर मैंने इस बेपरवाहीके साथ दोनों पहियोंको एक-एक करके फेंक दिया, जैसे कोई लेटर बक्समें खत डालता हो, और वापस शहरको रवाना हो गया।

सबसे पहले मिर्जाके घर गया। दरवाजा खटखटाया। मिर्जा बोले—"अन्दर आ जाओ।"

मैंने कहा—"आप ही जरा बाहर तशरीफ लाइये!"

वह बाहर आये, तो मैंने वह औजार उनकी खिदमतमें पेश किये, जो उन्होंने बाइसिकलके साथ मुझे मुफ्तमें दिये थे। और कहा—"मिर्जा साहब, आप ही इन औजारोंके साथ दिल बहलाया कीजिये, मेरा जी भर चुका है।"

इसके बाद रूमालसे मुंह पोंछता अपने घर चला आया।

अनुवादक—"आजाद"।



खानाबदोशोंका निराला जीवन

श्री ए० पी० अग्निहोत्री

संसार-भरमें विचरण करनेवाले खानाबदोशों—जिप्सियोंकी इतनी बड़ी संख्या है कि अब उनकी एक जाति बन गयी है। वे चाहे जिस देशमें हों, चाहे जिस भाषामें बातचीत करते हों; पर उनके रहन-सहनमें इतना अधिक साम्य है कि एक देशके खानाबदोशोंको दूसरे देशके खानाबदोशोंसे अलग करना प्रायः असम्भव-सा है।



भारतकी एक खानाबदोश सुन्दरी—अपनी बांसुरी, भाला, कुत्ता तथा दूसरे सामानों सहित।

और सच तो यह है कि एक देशके खानाबदोश और दूसरे देशके खानाबदोश कैसे ? उनका घर कोई एक देश है ? सर्वदा मनमाना विचरण करनेमें इन्होंने इतनी स्वाधीनता ले रखी है कि सारा संसार ही इनका घर हो गया है। देशोंकी भौगोलिक सीमायें इन्हें नहीं बांध सकतीं और न जलवायुका ही इनपर कोई खास असर दिखाई पड़ता है। ठण्डेसे ठण्डे और गरमसे गरम देशोंमें ये एक समान रहते देखे जाते हैं। इनका अपना कोई देश नहीं, समस्त भूमण्डलके ये सदा चलनेवाले पर्यटक हैं—एक ऐसा रास्ता, जो कभी समाप्त न हो। एक जिप्सी भारतमें पैदा हुआ, इंगलैण्डमें बढ़ा, बलगेरियामें जाकर पला और दक्षिण अफ्रीकामें जाकर मरा।

जिप्सियोंके सम्बन्धमें लोगोंमें तरह-तरहकी धारणायें बनी हुई हैं। उनकी उत्पत्ति, उनके सामाजिक जीवन, विवाह, परिवार तथा जीविकोपार्जनके साधनोंको लेकर अनेक तरहकी बातें प्रचलित हैं।

खानाबदोशोंकी उत्पत्ति एवं भाषाके सम्बन्धमें कितने विद्वानोंने खोज की है और उन्होंने कई तरहके निष्कर्ष निकाले हैं, जिनमें सभी एकमत भी नहीं हैं। कुछका कहना है कि वे यहूदी हैं, लेकिन कुछ उनकी उत्पत्ति मिश्रमें मानते हैं। कई शताब्दियों तक लोगोंकी धारणा यही रही; पर अब कुछ विद्वानोंका मत यह भी है कि शुरू-शुरूमें भारतमें उनकी उत्पत्ति हुई। बादको वे दूसरे देशोंमें भी गये।

१७८२ में रुडीगर नामक एक लेखकने अपनी खोजोंके ही आधारपर लिखा था कि खानाबदोश भारतकी निम्न जातियोंके लोग हैं। उसका कहना है, तैमूरलङ्गने उन जातियोंके लोगोंको भारतसे भगा दिया और वे दूसरे देशोंमें मारे-मारे फिरने लगे। सम्भवतः १४०९ ई० के आस-पास ऐसा हुआ होगा। उनकी भाषामें संस्कृत तथा दूसरी भारतीय भाषाओंके शब्द तथा व्याकरणके नियम एक-से दिखाई पड़ते हैं। उनके शरीर और केशके रङ्ग काले तथा आंखें गहरी एवं काली होनेके कारण भी ऐतिहासिकोंने उन्हें भारतीय माना है।

लेकिन वास्तवमें बात यह दिखाई पड़ती है कि खानाबदोशोंकी उत्पत्ति किसी खास देशमें नहीं हुई। वे कितने ही



बलगेरियाकी खानाबदोश नारियां।

देशोंसे उठे, और आपसमें मिलते-मिलाते विभिन्न देशोंमें भ्रमण करते रहे। और जहां-जहां वे गये, उन्होंने उन देशों-की भाषाका कुछ-न-कुछ अंश ग्रहण कर लिया; क्योंकि प्रत्येक देशमें बिना भाषा जाने जीविकोपार्जन करना असम्भव था। ग्रीक, हङ्गेरियन, जर्मन और दूसरी भाषाओं-के शब्दोंके ग्रहण करनेके आधारपर इस बातका अनुमान लगाया जाता है कि उनके प्रवासका मार्ग क्या रहा होगा। सम्भवतः अरमेनिया, अरब, फारस, टर्की और एशिया माइ-नरको पारकर वे बाल्कन देशोंमें गये होंगे। इसके बाद वे मिश्र गये। मिश्र-निवासियोंके साथ उनका इतना अधिक मेल खा जाता था कि कितने ही लोग उन्हें मिश्रका ही समझने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि उन्हें बड़ी सुवि-धायें मिलने लगीं। मिश्रमें आज भी उनकी संख्या बहुत अधिक है और उनके रीति-रिवाजोंमें भी मिश्रीपन बहुत अधिक है।

पन्द्रहवीं शताब्दीके मध्यमें यूरोपमें खानाबदोशोंकी अधिकता हुई। यूरोपके प्रायः सभी बड़े-बड़े शहरोंमें उनका स्वागत हुआ। पोप और कैसरने तो व्यक्तिगत रूपसे उनका स्वागत किया। इंगलैण्डके अर्ल आव सरेने १९१९ में टेम्परिङ्ग हाल, सफाकमें 'जिप्शियनों' की आवभगत की। उन्होंने उन्हें 'जिप्शियन' इसलिए कहा था, क्योंकि उनका ख्याल था कि जिप्सी ईजिप्टसे आये थे। जिप्सियोंका उन दिनों बड़ा आदर होता था। खानाबदोशोंका बादशाह चार्ल्स बासविले अपने जमानेमें इंगलैण्डके कितने ही महापुरुषोंका मित्र था। इंगलैण्डके भद्र समाजमें बराबर मिलता और उसके साथ आदरपूर्ण व्यवहार किया जाता था। १७०९ में वह मरा, तो यार्कशायरके यार्शिंगटनमें दफनाया गया। कहा जाता है कि इसकी आमदनी ढाई-तीन सौ रुपये प्रति-मास थी।

खानाबदोशोंका यूरोपीय देशोंमें आते ही जैसा स्वागत हुआ था, शीघ्र ही उनका वैसा ही विरोध भी होने लगा। उनके सम्बन्धमें सर्वत्र शिकायतें होने लगीं। सभी इन्हें चोर और लफङ्गा कहने लगे। और जिस जर्मनीमें कैसरने पहले-



इंगलैण्डके तीन खानाबदोश—तीनों एक कहानीका मजा ले रहे हैं।



स्पेनके खानाबदोशोंके विवाहका दृश्य। (ऊपर) खानाबदोश महोत्सव मना रहे हैं। उनका सरदार भीख मांगनेका अभिनय कर रहा है।

पहले उनका ऐसा स्वागत किया था, उसी जर्मनीमें उनके विरुद्ध बड़े कड़े कानून बनाये गये। खोज-खोजकर खानाबदोशोंको भगाया गया। उन्हें बड़ी-बड़ी यातनायें दी गयीं, यहां तक कि ईसाई धर्मका विश्वासघाती भी उन्हें कहा गया।

खानाबदोशोंकी शिक्षा-दीक्षाके लिए यद्यपि कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता था, पर वे बड़े ही चालाक होते रहे हैं। उनकी तीक्ष्ण आंखें उनकी चतुरताका प्रमाण देती हैं। अठारहवीं शताब्दीमें उन्होंने स्काटलैण्डमें एक लोहेका कारखाना खोल रखा था। वे धूर्त इतने होते हैं कि १५४९ में उन्होंने सरकारी मुहरकी नकल कर डाली थी और हंगरीमें उन्होंने गोले-बारूद भी बनाने शुरू कर दिये थे। लेकिन या तो इन बातोंका वे प्रबन्ध न कर सके अथवा किसी और कारणसे ये सब बातें उनके हाथसे जाती रहीं। अब वे चटाई बनाने, चाकूपर शान चढ़ाने तथा इसी तरहके कुछ दूसरे काम करते हैं। पर अधिकांश खानाबदोशोंकी टोलियां नाच-तमाशा दिखाकर, जादू-टोना करके तथा दूसरे खिलवाड़ करके पैसा पैदा करती हैं। बड़ी-बड़ी टोलियोंमें वे अपने सब साज-सरञ्जाम छोटी-छोटी घोड़ियोंपर लादकर देहातोंमें घूमते और नाच-तमाशे दिखाकर देहातियोंसे पैसे लेते हैं। जहां-जहां वे जाते हैं, उनका सब साजोसामान उनके साथ होता है। वे देहातके बगीचोंमें डेरा डाल देते हैं और हफ्ते-दो-हफ्ते रहनेके बाद किसी अन्य स्थानपर रहते हैं। कई बार खानाबदोशोंपर चोरी करने तथा इस प्रकारके कितने ही उपद्रव करनेके अभियोग लगाये गये हैं। उनपर बच्चे चुरानेका भी अभियोग लगाया जाता है। कितनी ही बार ये बातें प्रमाणित भी हो चुकी हैं।

जिप्सियोंकी सबसे अधिक ख्याति—जहां कहीं भी वे हैं—सङ्गीत एवं नृत्य-कलाके लिए बहुत अधिक है। सारङ्गी या सितारके साथ गाने गाते हैं और कभी-कभी वे अभिनय भी करते हैं, जिनका कथानक बहुश्रुतियां अथवा इतिहासके उपाख्यान होते हैं। कभी-कभी नारियां नाचती-गाती और पुरुष सितार बजाते हैं। खानाबदोशोंके बारेमें कहा जाता है कि वे घोड़ोंको पहचाननेमें बड़े दक्ष होते हैं। ताशका खेल तो उन्हींका ईजाद किया बताया जाता है।

खानाबदोशोंको यद्यपि कितने ही लोग बदमाश समझते हैं और उनकी शैतानियतके कितने ही किस्से कहे जाते हैं, और इसमें सन्देह नहीं कि कभी-कभी वे बुरी हरकतें करनेसे बाज नहीं आते; लेकिन उनका सारा समाज ही अवाञ्छनीय हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनके समाजमें—और वास्तवमें उनका भी समाज होता है—सारी व्यवस्थायें होती हैं। उनका एक मुखिया होता है, जिसके अधिकार काफी होते हैं और उन्हींके अनुसार उसकी जिम्मेदारियां भी होती हैं। नारियोंकी देखभाल करनेके लिए एक बूढ़ी महिला भी मुखियाका काम करती है। उनकी अपनी पञ्चायत होती है, जिसमें कुछ चुने हुए वयस्क भाग ले सकते हैं।

वे बाकायदे सामाजिक नियमोंका उल्लङ्घन करनेवालेको दण्ड देते हैं। उनका सबसे कठोर दण्ड यह होता है कि अपराधीको दलसे निकाल दिया जाय।

इन खानाबदोशोंकी क्रूरता और ठग-विद्याकी यद्यपि बड़ी शिकायत की जाती है, पर इनके जीवनकी आन्तरिक जानकारी जिन्हें है, वे जानते हैं कि इनके भीतर दयालुता और परोपकारकी भावना कूट-कूटकर भरी रहती है। बच्चोंके ये बड़े प्रेमी होते हैं।

और उनकी गृहस्थी और उनका दाम्पत्य जीवन? खानाबदोशोंका प्रेम संसार-प्रसिद्ध है। इन बेचारोंके पास जब अच्छे-अच्छे उपहार देनेको नहीं हैं, साज-शृङ्गारके लिए जब इन्हें सदा तङ्गी बनी रहती है, तब हृदयको ही वे क्यों न निछावर कर दें। उनका कारवां चलता है और कारवांमें युवक और युवतियां साथ-साथ नाचते-गाते चलते हैं। आंखें मिलती हैं और हृदय मिल जाते हैं। खानाबदोशोंके विवाह प्रायः ऐसे ही होते हैं। कभी-कभी अगर एक ही युवतीके दो प्रेमी हो गये, तो दोनोंमें द्वन्द्व-युद्ध भी होता है। हालांकि उनकी पञ्चायतमें इस प्रकारके सवाल भी पेश हो सकते हैं और वहां पुरानी नजीरें पेश की जाती हैं।

खानाबदोशोंमें एक खास बात यह भी देखी जाती है कि वे हस्तरेखा-विज्ञानमें बड़ी दिलचस्पी लेते हैं और अच्छेसे अच्छे घरोंमें उनकी स्त्रियां हाथ देखने जाती हैं। कभी-कभी इनके कारण बड़े-बड़े काण्ड भी हो गये हैं।

खानाबदोशोंकी आज-कल कोई पूछ नहीं है। पर यों उनका जीवन रोमाञ्चक घटनाओंसे भरा होता है और अनुभवी खानाबदोशोंकी कहानियां जिन्होंने सुनी हैं, वे जानते हैं कि वे कितनी रोमाञ्चकारी—कितनी दिलचस्प होती हैं।

———


सवेरे ८-३० बजे
ओह, असाध्य सिर दर्द !
सबेरे ८-४० बजे
वाह दर्द दूर होगया सारिडन को धन्यवाद!
Saridon
ANALGESIC TABLETS
सारिडन
सब प्रकार का दर्द दूर करता है



स्त्री राष्ट्र और पुरुष राष्ट्र

हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि लैङ्गिक भेद व्यक्ति तक ही सीमित नहीं हैं, वरन् वे जातियों तथा राष्ट्रोंको भी प्रभावित करते रहते हैं। राष्ट्रसङ्घके अधिवेशनमें जो कुछ भी चहल-पहल होती है, वह पुरुष-राष्ट्रों और स्त्री-राष्ट्रोंके बीचके सङ्घर्षके फलस्वरूप है। राष्ट्रोंके इस लैङ्गिक भेदका पैमाना राष्ट्र-विशेषकी भौगोलिक परिस्थितियां, जल-वायु, भाषा, नैतिकता, कला और संस्कृति है। राष्ट्रोंके इन लैङ्गिक सम्बन्धोंको समझना ही संसारके वर्तमान राजनीतिक ऊहापोह और इतिहासके रक्तरञ्जित पृष्ठकी गहराईको जानना है। संसारकी समस्याओंका यह नया दृष्टिकोण है और इससे हम मनुष्यकी राजनीतिक हलचलोंके एक आधारभूत सिद्धान्त तक पहुंच जाते हैं।

राष्ट्रोंके लैङ्गिक भेदको और स्पष्टतासे समझनेके लिए हमें यह भी जानना आवश्यक है कि मनुष्य जातिने अपने आचरणको कैसे प्रकाशित किया। भारतीय इतिहाससे ही यह प्रकट हो जाता है कि किस प्रकार हमारे यहां लैङ्गिक भेद रहे। गङ्गा-तटके कछार और सिन्धु नदीके किनारे रहनेवाले लोग आरामतलबीमें पड़ गये और फलस्वरूप वे तातार या इसी तरहके मरुस्थलोंके लोगोंका शिकार बन जाते रहे। यह किस्सा अकेले भारतमें ही नहीं रहा। मेसोपोटामिया और नील नदीके कछारमें भी यही किस्सा रहा। सीननदीका कछार भी इसी तरहसे गुजरा और इस प्रकार यह स्पष्ट रहा कि पुरुषत्वपूर्ण जातियोंकी उत्पत्ति इन कछारोंमें तो नहीं हुई। बुन्देले या राजपूत, या कछवाहा अथवा मराठे ऐसी जलवायुकी उत्पत्ति नहीं थे, जैसी कि गङ्गा-यमुनाके कछारमें थी। संसारके इतिहासको छान डालिये, लेकिन आप यही पायेंगे कि किस प्रकार ऐसी जलवायुमें रहनेवाले लोग सहज शिकार हो गये। इसका पता भाषाओंसे चलता है। मङ्गोलियन भाषाकी उत्पत्ति गोबीके मरुस्थलमें हुई और आज जो हिन्दी-हिन्दुस्तानीका झगड़ा चल रहा है, उसकी उत्पत्ति ईरानके मरुस्थलोंसे हुई, क्योंकि विजितोंका पराजितोंपर भाषा लादना सदैवका नियम रहा है। और जब-जब पुरुष-राष्ट्रोंका सम्पर्क स्त्री-राष्ट्रोंसे हुआ, तब-तब स्त्री-राष्ट्रोंकी सभ्यताने पुरुष-राष्ट्रोंको डुबो दिया। भारतमें भी मुगल क्या कम खूंख्वार थे, और क्या कम योद्धा? निश्चय ही वे पुरुष-राष्ट्रकी उत्पत्ति थे। लेकिन भारतमें आकर उनपर स्त्री-राष्ट्र भारतका प्रभाव पड़ा। वे स्वयं इस प्रभावमें आ गये, और सांस्कृतिक स्त्री-राष्ट्रमें वे अपनी पुरुष-राष्ट्रकी मनोवृत्तियोंको मिलाकर फिर राजपाट ही नहीं खो बैठे, लेकिन एकदम सन गये। इस प्रकार संसारमें सर्वत्र यही किस्सा हुआ।

हां, तो पुरुष-राष्ट्रों और स्त्री-राष्ट्रोंकी कसौटी क्या है? उनमें वही फर्क होता है, जो स्त्री और पुरुषके बीच होता है। प्रोफेसर फ्रोबेनियसने प्राच्य खण्डहरों, सभ्यता और इतिहासके बाद विज्ञानके इस नये विषयपर रोशनी डाली है। जिस प्रकार स्त्रियोंमें उनके मनोभावके अनुसार आचरण करनेकी प्रवृत्ति होती है, उसी प्रकार स्त्री-राष्ट्रोंका शासन जनताकी मनोवृत्तियोंके प्रवाहके अनुसार होता है। जो पुरुष-राष्ट्र

होते हैं, उनमें नेता जनताका स्थान ग्रहण कर लेता है। स्त्री-राष्ट्रमें नेतृत्व जनताके हाथमें रहता है, और पुरुष-राष्ट्रोंमें नेता धूलसे उठते और सर्वोपरि आसन तक पहुंच जाते हैं। स्त्री-राष्ट्र चूंकि जनताके मनोभावोंके अनुसार शासित होते हैं, अतएव ऐसे राष्ट्रोंमें पार्लमेण्टरी शासन-पद्धति अधिक काम-याब होती है और जाति-विशेषके इन मनोभावोंसे प्रभावित होनेके कारण उनका प्रभाव रहता है। यही कारण है कि स्त्री-राष्ट्रोंमें लोगोंके प्रतिनिधि जनताके मनोभावोंके अनुकूल जातिके अनुसार चुने जाते हैं। लेकिन पुरुष-राष्ट्रमें नेतृत्व समाजके एक नियमित विधानपर चलता है। नेतृत्व पुरुष-राष्ट्रमें व्यक्तिका विकास है, और कोई किसी काममें क्यों न हो, उसकी एक दिलचस्पी यह रहती है कि काबिल आदमी ऊंचा उठे। पुरुष-राष्ट्रोंमें नेतृत्व जनताके मतसे नहीं होता, वरन् नेतृत्व व्यक्तित्वके विकासकी सीमा प्रकट करता है। नतीजा यह स्वभावतः ही होता है कि स्त्री-राष्ट्रोंका शासन जनताके प्रतिनिधियोंपर होता है। नेतृत्व वहांपर जनताके मनोभावोंकी उपज होता है। पुरुष-राष्ट्रमें शासन उन लोगों द्वारा होता है, जो स्वाभाविक विकाससे नेतृत्व-की ओर पहुंचे हैं और इस कारण पुरुष-राष्ट्रका शासन थोड़े-से लोगोंके हाथमें होता है। वे किसी जाति-विशेषकी तरफ जिम्मेदार न होकर सारे राष्ट्रके प्रति जिम्मेदार होते हैं।

इस परिभाषाके दो व्यावहारिक उदाहरण लें लीजिये। जर्मनी और फ्रान्स सदियोंसे कभी दोस्त नहीं हो सके। यह राष्ट्रोंके लैङ्गिक भेदके ही कारण है। फ्रान्स प्रधानतः स्त्री-राष्ट्र है और जर्मनी पुरुष-राष्ट्र। जिस तरह कि स्त्रियोंको प्राकृतिक स्वरूपमें केवल मनोभावोंसे निर्णय करनेकी आदत पड़ जाती है, उसी तरह फ्रान्सका भी हाल है। जर्मनीमें निर्णयकी नींव अनुभव और शिक्षापर रहती है। फ्रान्सके इतिहासको उलट-पलट डालिये। फ्रान्सकी मनोभावनाओंका केन्द्र पेरिस रहा है, जिस तरह कि स्त्रीकी मनोभावनाओंका केन्द्र हृदय होता है। फ्रान्सकी मनोभावनायें इसलिए पेरिस-से ही प्रभावित होती आयी हैं। पेरिस ही फ्रान्सका मर्मस्थल है। इसके विपरीत जर्मनीका इतिहास देखिये। जर्मनीमें हर-एक कौममें एक-एक नेतृत्व रहा और उसके केन्द्र बर्लिन, ड्रेस-डन, म्यूनिख, स्टटगार्ट इत्यादि रहे। इस दृष्टिसे जर्मनी जहां बहुत-से छोटे-छोटे नेतृत्वोंके विकासके सङ्गठनके बाद एक महाराष्ट्रके रूपमें प्रकट हुआ है, वहां फ्रान्स इस दृष्टिसे केवल एक ही कौम रहा है, जिसका केन्द्र पेरिस है। इस अन्तरके कारण स्त्री-राष्ट्रोंकी तुलना हम पराग-भरे फूलोंसे कर सकते हैं, जो अपनी ओर सबको आकर्षित करते हैं। चूंकि फ्रान्स स्त्री-राष्ट्र है, अतएव वह अनादि कालसे अपनेमें भिन्न-भिन्न जातियोंको मिलाता आया है और आज फ्रान्समें काले भी उसके समाजमें जज्ब हो गये हैं। जो-जो स्त्री-राष्ट्र हैं, उनके ये समान गुण हैं। पुरुष-राष्ट्र जर्मनीमें यह सम्भव नहीं है। वहांकी मनोवृत्ति और सांस्कृतिक विकास ऐसा है कि जर्मनको छोड़कर अन्य जातियां उसमें चाहे जितने समय रहें, वे अलग ही रहेंगी। यही कारण है कि जर्मनीमें अभी तक विदेशी जातियां जज्ब नहीं हो सकीं। जर्मनीमें यहूदियोंके विरुद्ध जो जिहाद चल रहा है, वह कितना ही अनुचित क्यों न हो, लेकिन जर्मनोंके लिए यह एक पसन्दकी बात है। जर्मन इसे सांस्कृतिक दृष्टिके कारण पसन्द करते हैं।

जब-जब जर्मनीमें दुर्दिन आये, तो वे तभी तभी, जब जर्मनीकी पुरुष संस्कृतिमें स्त्री-संस्कृतिका मेल हुआ। ऐसा पहला अवसर तब आया, जब जर्मनीको जीतनेके बाद नेपोलियन संस्कृति-की फौज छोड़ गया। यही हाल उसने प्रशियाका किया। प्रशियामें फ्रेडरिक ग्रेटने ज्योंही फ्रेञ्च विचारों, फ्रेञ्च संस्कृतिको अपनाया और लोगोंने उसे पसन्द किया, त्योंही फ्रेडरिककी जमीन हिलने लगी। फ्रेडरिकको सिंहासन ही नहीं खोना पड़ा, वरन् पार्लमेण्टरी गवर्नमेण्ट भी स्थापित हो गयी। महायुद्धके बाद भी जर्मनीकी यही स्थिति थी। जर्मनी अनादिकालसे पुरुष-राष्ट्र है, जिसमें कि सांस्कृतिक आधारपर व्यक्तित्वका विकास होकर नेतृत्व प्राप्त होता है। पार्लमेण्टरी पद्धति जर्मनीकी पुरुष-संस्कृतिके अनुकूल ही नहीं थी और इस कारण उसे असफलता प्राप्त हुई। पार्लमेण्टरी पद्धति अ-जर्मन थी और जर्मनीको जिन्दा रहनेके लिए नेतृत्वकी आवश्यकता थी, वोटोंकी नहीं। यही कारण है कि पार्लमेण्टरी पद्धतिके रहते हुए भी जर्मनीमें हिटलरका अभ्यु-त्थान हो सका। क्योंकि जर्मनीका सांस्कृतिक इतिहास ऐसा है कि उसमें पार्लमेण्टरी पद्धति चल ही नहीं सकती। पुरुष-राष्ट्रका यह आधार भूत ही गुण होता है और यही कारण है कि जब जर्मनीको उसके अनुकूल शासन-पद्धति मिल गयी, तब उसको चैन आया।

लेकिन इस सबसे एक परिणाम अवश्य निकलता है कि फ्रान्स और जर्मनी कभी मित्र नहीं हो सकते, चाहे वे कितना ही चाहें। दोनोंकी संस्कृति अलग-अलग धरातलपर घूमती है और इसलिए उनका मिलना असम्भव है।

लेकिन स्त्री-राष्ट्र और पुरुष-राष्ट्रसे यह मतलब कदापि नहीं है कि स्त्री-राष्ट्र, पुरुष-राष्ट्रसे नीचा होता है। दोनों अपने-अपने क्षेत्रमें अपनी-अपनी मर्यादा भरते हैं। लेकिन दुनियामें संस्कृतिके इतिहासके आधारपर जो भेद बन गये है, उनमें वर्तमान समस्याओंके भविष्यकी झलक मिलती है। जैसा कि कहा गया है, जर्मनीके सांस्कृतिक स्वरूपमें पुरुष मनोवृत्तिके कारण पार्लमेण्टरी पद्धति तब तक नहीं चल सकती, जब तक कि स्त्री-संस्कृति उसमें जज्ब न हो जाय। जिस तरह अधकचरा जज्ब महायुद्धके बाद हुआ, उसमें पुराने मनोभावोंको उभरनेका मौका मिल गया। दक्षिण अमेरिकामें भी यही समस्या है, वहांपर पुरुष और स्त्री-राष्ट्रोंकी संस्कृतिका सम्मिलन हो रहा है और फल यह हो रहा है कि दोनों संस्कृतियोंमेंसे किसी एकको दबानेमें पूरी सफलता न होनेके कारण वहांकी सरकारें हमेशा डगमगाती रहती हैं। अमेरिका (संयुक्त राष्ट्र) वास्तवमें दूसरे प्रकारकी उपज है, जिसमें कि जातियां जज्ब हो रही हैं और वह स्त्री-राष्ट्रोंकी सीमामें आता है। लेकिन पुरुष-राष्ट्रकी दूसरी सीमा जापान है, जहां कि संस्कृतियां सब गयीं, लेकिन उनकी पुरुष संस्कृति ही कामयाब रही। हमारे एशियामें भारतके लिए पार्लमेण्टरी शासन उसकी स्त्री-प्रकृत संस्कृतिके कारण अनुकूल है, लेकिन टर्की और अफगानिस्तानमें तो दूसरी मनोवृत्तियां हैं, जिनमें पुरुष-संस्कृति व्यक्तित्व चाहती है। इसलिए पूर्व और पश्चिमके बीचमें बड़ी खाइयां हैं, जो राजनीतिके दांव-पेंचसे भी गहरी तहमें हैं और इस कारण संसारमें तब तक शान्ति नहीं होती, जब तक कि एक संस्कृति दूसरीपर हावी हो नहीं जाती। वासोईकी सन्धिकी यह असफलता है कि उसने अङ्कगणितकी नाईं एक ही लाठीसे सबको हांका और संस्कृतिके इन विभिन्न स्वरूपोंके कारण उसे अब मुर्दा होना पड़ा है।

—विष्णुदत्त मिश्र 'तरङ्गी'

अदालतके खम्भोंपर सुन्दरियोंके चुम्बन-चिह्न

तलाककी प्रथायें तो सभी पाश्चात्य देशोंमें हैं और अमेरिकाके कुछ राज्योंमें प्रतिवर्ष होनेवाले तलाकोंकी संख्या बहुत बड़ी है; पर तलाकोंकी सबसे बड़ी संख्या पहुंचती है उसके रेनो शहरमें। कई वर्षोंके अङ्कोंको देखनेसे पता लगता है कि वहां प्रतिवर्ष ६००० शादियों तथा ३००० तलाकोंका औसत पड़ता है। यह 'होलीउड' के पास है और कहा जाता है कि रेनो न होता, तो सम्भवतः होलीउडके फिल्म-निर्माताओंने उसे बहुत पहले छोड़ दिया होता।

रेनोकी आबादी मुश्किलसे १८००० की है और इसकी सारी व्यवस्था तलाकके मामलोंसे होनेवाली आमदनीसे होती है। अमेरिकाके कुछ राज्योंके तलाक सम्बन्धी कानून काफी कठोर हैं, अतः जब दम्पतिमें नहीं बनती, तो वे अपने राज्यको छोड़कर रेनो पहुंच जाते और तलाक दे देते हैं।

यही वह शहर है, जिसमें सुन्दरियां अपनी विवाहकी अंगूठी फेंककर दीवाल चूमने लगती हैं। रेनोमें एक दिलचस्प प्रथा है कि तलाक पानेके बाद सुन्दरियां अपने होंठ रंगतीं और जिस भवनमें अदालत बैठती है, उसके खम्भोंको चूमती हैं। उनके रङ्ग-रञ्जित अधरोंके निशान खम्भोंपर लग जाते हैं। उन स्तम्भोंपर आज भी कोई कितने ही चुम्बन-चिह्न देख सकता है।

रेनोकी अदालत तथा रेलवे स्टेशन—ये दो आकर्षक स्थान हैं। बड़े-बड़े फिल्म-अभिनेता और विश्व-प्रसिद्ध अभिनेत्रियोंका विच्छेद एवं मिलन देखनेके लिए अदालतके सामने बहुत बड़ी भीड़ लग जाती है। जज कर्लन १०० से अधिक मामलोंका निपटारा एक दिनमें कर डालते हैं। "अगर किसी स्त्रीका पति उसके कमरेमें गीत शुरू करते ही बाहर निकल जाय, अगर पत्नी नींदमें खुर्राटे भरती हो, अगर पति पत्नीके साथ समुद्र-स्नानके लिए जानेसे इनकार करे, अगर पति भद्दे पाइपसे तम्बाकू पीता हो, ब्रिज खेलते समय अगर वह धोखाधड़ी करे अथवा दबङ्गी करना चाहे", तो रेनोमें तलाक आसानीसे मिल जायगा।

तलाकके किसी भी मामलेमें कोई उज्र करनेवाला हो या न हो, वकीलका करना अनिवार्य है। रेनोके वकीलों-

के पास तलाकके मामलोंकी भरमार रहती है और अधिकांश १०० पौण्डसे लेकर दस हजार पौण्ड मासिक तक कमाते हैं। रेनोकी सड़कोंपर चलते समय आप देखकर हैरान रह जायेंगे कि कतारकी कतार ऐसे मकानोंकी है, जिनपर किसी वकील-के नामकी तख्ती लगी हुई है।

रेनोको स्त्रियोंकी नगरी कहा जाय, तो भी कोई आश्चर्य नहीं। वहां स्त्रियोंकी ही संख्या अधिक है। सम्भवतः दसके पीछे एक पुरुष होगा। तलाक-प्राप्त अधिकांश स्त्रियां तब तक प्रायः वहीं रहती हैं, जब तक कि और कोई शादी ठीक नहीं हो जाती। इस प्रकारकी स्त्रियोंने कितनी ही दूकानें वहां खोल रखी हैं, जिनमें खासकर विवाहकी अंगूठियां और विवाहके वस्त्रादि बिकते हैं। होटलों और जलपान-गृहोंकी भी वहां बहुत बड़ी संख्या है।

ऐसे लोगोंकी भी कमी नहीं है, जो रेनोमें अपनी प्रेम-पिपासा बुझाने जाते हैं। अपहरणके मामले भी वहां बहुत होते हैं। फिल्म-अभिनेत्रियोंके दिल-बहलावकी रेनो एक खास जगह है। जल्दीसे जल्दी शादी करने और सुहागरात मनानेके बिहानसे ही तलाकके लिए अदालतका दरवाजा खटखटानेवाले लोगोंकी रेनोमें कमी नहीं है। विवाह और तलाकके लिए गवाहोंकी भी कमी रेनोमें नहीं है, पर वहां कोई काम बिना भरपूर पैसा खर्च किये नहीं हो सकता। घुड़दौड़का भी वहां प्रबन्ध है और जुएके अड्डोंकी तो गिनती ही क्या।

शान्तिके साथ समय काटनेवालोंके लिए भी रेनोमें बड़ी सुन्दर व्यवस्था है। रेनोकी झीलोंमें मछली फंसानेका बड़ा सुन्दर प्रबन्ध है, लेकिन मछलियां इतनी बड़ी-बड़ी हैं कि अक्सर इस बातके लिए प्रतिद्वन्द्विता होती है कि कौन छोटीसे छोटी मछली फंसाता है। अमेरिकाके भूतपूर्व राष्ट्र-पति हूवरको एक बार ४ पौण्डकी मछली फंसानेपर पुरस्कार मिला था।

सबसे छोटी मछलीको लेकर एक और दिलचस्प घटना हो गयी। एक बार एक सुन्दरीने अपने पतिको तलाक दिया। तलाक हो जानेके बाद बहुत-से आदमियोंके साथ वे भी मछली फंसाने गये। उस दिन भी सबसे छोटी मछली फंसानेके लिए बाजी लगायी गयी। अन्तमें देखा यह गया कि जिस पुरुषको तलाक दिया गया था, उसीने बाजी जीती, इसलिए वह पुर-स्कारका मुस्तहक हुआ, लेकिन उसे सबसे सुन्दर पुरस्कार यह मिला कि उसकी परित्यक्ता पत्नी इस खुशीमें दौड़कर उससे लिपट गयी और उसी दिन उन्होंने फिर शादी कर ली।

इस प्रकारकी एक-दो सुन्दर घटनाओंकी बात छोड़ दें, तो रेनोकी सारी रंगरेलियां आंसुओंमें ही लिखी जाती हैं। नयी शादी करके लौटनेवालोंकी संख्या रेनोमें कम होती है, अधिकांश तो वहां सम्बन्ध-विच्छेदके लिए ही जाते हैं। रेलवे स्टेशनपर उतरनेवालोंके गम्भीर और उदास चेहरे दिलमें पीड़ा उत्पन्न करते हैं। सैकड़ोंकी भीड़ ट्रेन आनेके काफी पहलेसे ही वहां जमा हो जाती है और वे सभी उन लोगों-को देखते हैं, जो एक ही डिब्बेसे अलग होनेके लिए रेनोमें आते हैं। कभी-कभी वे एक ही डिब्बेमें तलाक होनेपर वापस भी जाते हैं। ये सारी बातें रेनो चुपचाप पाषाण बना देखता-सुनता रहता है। क्योंकि रेनो जानता है कि वह दो प्रेमियोंकी जुदाईपर ही टिका हुआ है। अगर तलाककी ऐसी व्यवस्था उसने न कर डाली होती, तो उसका अस्तित्व भी न होता। इसीलिए रेनो संसार-भरमें तलाकके लिए प्रसिद्ध है। तलाकके व्यापारमें संसारमें उससे बढ़कर और कोई नहीं।

जापानी बच्चोंके खिलौने

जापानियोंकी देशभक्ति संसार-भरमें प्रसिद्ध है और इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि जापानियोंको बचपनसे ही ऐसी शिक्षा दी जाती है, जिसका उद्देश्य उन्हें आगे चलकर देशभक्त नागरिक तैयार करना होता है। जापानकी सरकार इसके लिए कितनी सावधान रहती है, इसका पता इन बातोंसे लगेगा कि जापानी स्कूलोंमें पढ़ायी जानेवाली पुस्तकोंमें हमारे देशकी भांति गधों और मेढकोंकी कहानियां नहीं पढ़ायी जातीं, बल्कि उन्हें शिक्षा नये ढङ्गसे—देशकी आवश्यकताओंके अनुसार दी जाती है। उन्होंने ऐसा प्रबन्ध कर रखा है कि प्रचार-कार्यको इतना मनोरञ्जक बनाया जा सके, जिससे बच्चे मनोरञ्जनके साथ-साथ ज्ञान-वर्द्धन भी कर सकें।

जापानी बाजारोंमें आप जाइये, तो वहां खिलौने भी ऐसे मिलेंगे, जिनमें बच्चोंके सीखने लायक अनेक बातें मिल जायेंगी। हमारे यहां बच्चोंको गुड़ियोंका खेल सिखाया

जाता है। उन्हें उनका ब्याह रचना सिखाया जाता है। पर जापानी बच्चोंके कुछ खिलौने देखते ही आपको पता चलेगा, कि सारीकी सारी जाति कितनी चेतनायुक्त हो गयी है। किसी भी बिसातीकी दूकानपर चले जाइये, वहां आप टैङ्क, मशीनगन, हवाई जहाज, ऐण्टी-एयर-क्रैफ्ट, बन्दूक, पनडुब्बी तथा इसी प्रकारके कितने ही खिलौने पायेंगे। चीन-जापान-युद्ध सम्बन्धी खिलौने भी आपको मिलेंगे, जिनमें दिखाया गया होगा कि चीनपर जापानका नवीन सूर्योदयका झण्डा उड़ रहा है।



"तैयार : दागो" जापानका बाल-सेनापति बाल-सैनिकोंको आज्ञा देता है, और सैनिक चीनपर गोली दागने लगते हैं। ऊपर 'नव वर्ष सुखदायी हो' जापानी :भाषामें लिखा हुआ है।

जापानमें अभी कुछ दिन पहले जापानी राष्ट्रकी २६०० वीं जयन्ती मनायी गयी थी। उस अवसरपर जापानी] बाजारोंमें लाखोंकी संख्यामें तस्वीरें बिकती थीं, जिनमें जापानी बच्चोंके लिए बच्चोंके रूपमें ही सैनिक जीवन दिखाया गया था। जापानी बालक आकाशमें उड़ रहा है, जापानी बालक मशीनगन चला रहा है, जापानी बालक चीनपर—चीनके नक्शेको लक्ष्य बनाकर निशाना लगा रहा है। इस प्रकार-के भावोंकी दर्जनों प्रकारकी लाखों तस्वीरें बाजारोंमें बिकने आयी थीं। सेलूलाइडके हजारों गुड्डे इस तरहके भावों-पर बने हुए बाजारोंमें बिक रहे थे।



"तीन जीवित बम"—जापानका एक अनोखा खिलौना। १९३१ में शङ्घाईपर जापानके घेरेके सम्बन्धमें होनेवाली एक घटनाके आधारपर। चीनके बिजलीके तारोंको नष्ट करनेके लिए तीन जापानियोंने बमके साथ कूदकर जापानी सेनाके लिए रास्ता साफ किया था। जापानमें यह खिलौना लाखोंकी संख्यामें बिका।

आज जब चीनके साथ जापानका युद्ध चल रहा है और जापानियोंके लिए सैनिक शिक्षा अनिवार्य-सी है, तब बचपनसे ही बच्चोंको युद्धीय भावों-पर बने हुए खिलौनोंसे बड़ा प्रोत्साहन मिलता है। युद्धकी विभीषिका बच्चोंके दिलोंसे निकल जाती है और बचपनसे ही जो ये संस्कार बनते हैं, वे आगे चलकर पुष्ट होते चलते हैं। हमारे देशमें इसी उम्रके बच्चोंको मातायें हौवा, भूत काट लेगा, अमुक पेड़पर भूत रहता है, एक ओर यह कहकर डाटती हैं और दूसरी ओर बच्चे गुड़ियोंका ब्याह रचते हैं, बचपनसे ही बच्चोंमें विवाहादि सम्बन्धी विचार भर दिये जाते हैं।

भारतीय बाजारोंमें मिलनेवाले खिलौने अधिकांशतः राजा-रानीके होते हैं, और शेषमें चक्की पीसने, उपले पाथने आदिके भाव दिखाये जाते हैं। कोई कह सकता है कि यही भारतके वर्तमान युगका चित्रण है, तो उससे कहना होगा कि इसी युगको लेकर भारत सदा चल नहीं सकता। भारतका भावी युग कैसा होगा, बच्चोंके सामने यह स्वप्न भी चित्रित करना आवश्यक है।

पतिव्रतायें पतिकी खोपड़ी पूजती हैं

सैकड़ों साल पहले फिलीपाइन, केरोलीन, मार्शल द्वीपपुञ्जोंसे होकर भू-पर्यटकोंने एक द्वीप खोज निकाला था



स्त्री अपने मृत पतिकी खोपड़ी लिये जा रही है।

पोलीनेशिया, जिसके रीति-रिवाजोंपर संसार-भरमें अब भी काफी साहित्य निकलता रहता है। पोलीनेशियाके निवासियोंने अभी भी अपनी प्राचीन सभ्यताकी अनेक बातें रख छोड़ी हैं। उन्हें आधुनिक सभ्यताके पैमानेसे देखनेसे चाहे जो समझा जाये, पर पोलीनेशियन उनपर लज्जित नहीं हैं और न उन्हें छोड़ना चाहते हैं। उनमें बीमारियोंमें इलाज अब भी नहीं होता; क्योंकि किसी भी बीमारीके बारेमें उनका विश्वास यही होता है कि रोगीपर किसी प्रेतात्माका प्रभाव पड़ गया है। इसलिए जादू-टोना द्वारा ही रोगीका इलाज किया जाता है। इस सम्बन्धमें एक मनोरञ्जक बात एक पर्यटकने लिखी है। उसने लिखा है कि जब कोई व्यक्ति बीमार पड़ जाता है, तब बेतकी पतली-पतली दो लकड़ियां, जिनकी लम्बाई १८ इञ्चसे कम नहीं होती, निगलवायी जाती हैं। अगर रोगी समूचे बेतको निगल गया, तब तो यह समझा जाता है कि प्रेतात्मासे अब छुटकारा मिल गया; पर अगर बेत नहीं निगला जा सका, तो समझना चाहिए कि भूत पेटमें बैठा हुआ है और वही बेत पेटमें नहीं जाने दे रहा है। पर्यटकको देखकर आश्चर्य हुआ कि कितने ही लोग इतनी-इतनी लम्बी बेतोंकी छड़ियां निगल गये हैं। और जगहोंपर ऐसी बेतोंकी छड़ियां निगल जाना ही शायद प्रेतात्माका प्रभाव समझा जाता, पर पोलीनेशियाकी तो बात ही निराली है।

पोलीनेशियाकी एक दूसरी प्रथा है, जो आम तौरपर सभी तरहके लोगोंमें प्रचलित है। आदिम निवासियोंमें आम तौरपर लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं। अतः अगर किसी पुरुषकी मृत्यु लड़ाईमें हो गयी, तो मुर्दा उसके परिवारवालोंके हवाले कर दिया जाता है और पत्नी अपने पतिकी खोपड़ी अपने पास रख लेती और वह वर्षमें एक दिन—जिस दिन पतिकी मृत्यु हुई थी—उसकी पूजा करती है। लेकिन खोपड़ी सदाके लिए स्मृति-चिह्नकी भांति रखी रहती है। मेहमानोंके आनेपर ऐसी खोपड़ियां बड़े गर्वके साथ दिखायी जाती हैं। पुरुष भले ही युद्धमें काम आया, पर वह लड़कर मरा, इसमें परिवारका गौरव बढ़ा समझा जाता है।

प्रवासी भारतीय

प्रवासी भारतीयोंके सम्बन्धमें भारतीयोंकी दिलचस्पी होनी स्वाभाविक है। और जबसे युद्ध छिड़ा है, तबसे उनके सम्बन्धमें और भी चिन्ता प्रकट की जाने लगी है। प्रवासमें रहनेवाले भारतीयोंकी संख्याका ठीक-ठीक पता नहीं चलता, पर समय-समयपर प्राप्त रिपोर्टोंके आधारपर उनकी संख्या यों बतायी जाती है:—

देश	भारतीय	कबकी रिपोर्टके अनुसार
अबसीनिया	२,१००*	१९३०
अदन	८,१६८	१७३७
अफगानिस्तान	१५०*	१९३३
आस्ट्रेलिया	२,४०४	१९३३
बर्मा	१०,१७,८२५	१९३१
बहरीन	५००	१९३१
बेलजियन काङ्गो	३७२	१९३२
ब्रेजील	२,०००*	१९३१
ब्रिटिश मलाया	१,५४,८४९	१९३७
ब्रि० नार्थ बोर्नियो	१,२९४	१९३१
ब्रि० गायना	१,४२,९७८	१९३७
ब्रि० सुमालीलैण्ड	५२०*	१९३१
ब्रि० हुण्डूरास	४९७	१९३१
लङ्का	८,००,०००*	१९३८
चीन	अज्ञात	——
केप कोलोनी	१०,९६२	१९३६
कनाडा	१,५०९	१९३१
डच ईस्ट इण्डीज (जावा, सुमात्रा आदि)	२७,६३८	१९३०
डच गायना	३७,९३३	१९३५
मिश्र (सूदान सहित)	१,०२५	१९३१
विभिन्न यूरोपीय देश	१,०००*	१९३७
फ्रेञ्च इण्डो-चीन	६,०००*	१९३१
फिजी	८९,०००	१९३७
ग्रेट ब्रिटेन	८,०००	१९३६
जिब्राल्टर	८०	१९३२
ग्रेनेडा	५,०००	१९३२
हेजाज	अज्ञात	——
इटैलियन सुमालीलैण्ड	३२०	१९३२
हाङ्गकाङ्ग	४,७४५	१९३१
जमाइका	१८,६६९	१९३६
जापान	३००*	१९३१
केनिया	४२,३८८	,,
माल्डिव्स	५५०	१९३६
मारिशस	२६९,७०१	१९३७
मस्कट	४४१	१९३३
माल्टा	४१	,,
मोरक्को	२०	१९३२
मेडागास्कर	७९४५	१९३१
मुजम्बिक	५०००	,,
नेटाल	१८३,६४६	१९३६
उत्तरी रोडेशिया	४२०*	१९३७
नयासलैण्ड	१६३१	,,
न्यूजीलैण्ड	१,१६६	१९३२
नाइगेरिया	३२	१९३७
ओरञ्ज रिवर कलोनी	२९	१९३६
फिलीपाइन	१,०००	१९३९
पनामा	३००	१९३१
पैलेस्टाइन	६०	१९३१
फारस	५००	१९३३
रीयूनियन	१,५३३	१९३३
सेण्टलूसिया	२,१८९	१९२१
श्याम	५,०००*	१९३१
सेचेल्स	५०३	,,
दक्षिणी रोडेशिया	२,१८४	१९३६
तांगानायिका	२३,४२९	१९३१
ट्रान्सवाल	२९,५६१	१९३६
टर्की	३७	१९३३
त्रिपोली	२०	१९३१
ट्रीनीडाड	१४५,०८५	१९३७
अमेरिका	५,८५०	१९३७
युगण्डा	१८,८००	१९३७
जञ्जीबार	१४,२४९	१९३१
कुल	३७,१७,०४३	

* अनुमानतः





समाजके दो प्रश्न

हिन्दू-समाजकी आज एक विचित्र अवस्था है। एक ओर इसकी विशेषताओंके गुण गाये जाते हैं और इस बातके लिए इसकी सराहना की जाती है कि भारतमें चलनेवाले अनेक धर्मों, सामाजिक नीतियों आदिको इसने उदरसात् कर लिया है, और दूसरी ओर इस आधारपर इसके कोसनेवालोंकी भी संख्या कम नहीं है कि हिन्दू-समाजमें सङ्कीर्णता इस सीमा तक पहुंच चुकी है कि अपने समाजके ही करोड़ों भाइयोंके लिए इसमें स्थान नहीं। ये सभी भाई हिन्दू-समाजके ही हैं, सवर्ण हिन्दुओंके समान ही ये भी उन्हींके देवताओंकी पूजा करते हैं, उनके समान ही ये भी अपने धर्मके लिए भारीसे भारी त्याग करनेको तैयार हैं, पर इन्हें अछूत कहकर समाजसे निकाल बाहर किया गया है। इन अछूतोंके अपमानों और इनपर होनेवाले अत्याचारोंकी घटनायें लिखनेकी आवश्यकता नहीं है, इनसे कौन हिन्दू परिचित नहीं है। राम और कृष्णके ये उपासक राम और कृष्णके दूसरे उपासकों द्वारा कितनी लाञ्छना, कितना तिरस्कार और कितना अन्याय सह रहे हैं, इससे कौन परिचित नहीं है।

पर इनके अतिरिक्त हमारे समाजमें कुछ और भी अछूत हैं, जो यद्यपि हमारे साथ हैं, पर उनके साथ होनेवाला हमारा व्यवहार अछूतोंका-सा ही है। क्या किसीने सोचा है कि भारतीय नारियोंको लेकर आज जो अपहरणके काण्ड बढ़ते ही जा रहे हैं, उनके मूलमें कितनी शक्तियां काम कर रही हैं? नारियोंको वासनाओंकी दासी कहकर ही आप इस समस्यासे छुटकारा नहीं पा सकते। इसके निवारणके लिए अगर आप कुछ भी साधन अपनाना चाहते हैं, तो इसके लिए उन सारी शक्तियोंपर आपको विचार करना होगा, जिनके कारण एक अरसेसे हिन्दू-जातिको भीतर ही भीतर जर्जर करनेवाली ध्वंसात्मक शक्तियां घुनका काम करती आ रही हैं।

क्या कारण है कि हिन्दुओंकी संख्या बराबर घटती जा रही है, जब कि दूसरी जातियोंकी संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। यह केवल धार्मिक ह्रास ही नहीं है, आज जब राजनीतिपर भी जनसंख्याका ऐसा प्रभाव पड़ता है, तब हिन्दू-जातिकी यह निरन्तर क्षीण होनेवाली संख्या अत्यन्य भयावह है।

हिन्दू जातिके इस भीषण ह्रासके लिए यद्यपि अनेक कारण जिम्मेदार हैं, पर अछूतों और नारियोंपर होनेवाले अत्याचार इसके मूल कारण हैं। न जाने कितने अछूत सवर्ण हिन्दुओंके व्यवहारोंसे ऊबकर दूसरे धर्मोंमें शरण ले चुके हैं। उन्हें आप धर्मकी महिमा बताकर हिन्दू बने रहनेका उपदेश नहीं दे सकते, जब कि वे भूखों मर रहे हों, जब कि उनके बच्चोंके लिए शिक्षा-दीक्षाके प्रबन्धकी तो बात ही क्या, उनके लिए दो चम्मच दूधका तो सवाल ही क्या, भरपेट अन्न तक मिल नहीं पाता। जो रोटीके लिए तड़प रहे हैं, उन्हें आप देवमूर्तियोंकी झांकी दिखाकर सन्तुष्ट नहीं कर सकते। हिन्दू धर्मकी महिमा, वेदोंकी अपौरुषेयता और स्मृतियोंका ज्ञानभण्डार उनके किस कामका, जब उनके लिए आपने इन चीजोंकी भी मनाही कर दी है। रामायणमें एक कहानी है कि एक शूद्रके तपस्या करनेके कारण ब्राह्मणोंकी सन्तानें

मरने लगी थीं और तब रामचन्द्रने, जिन्हें मर्यादा-पुरुषोत्तम कहा जाता है, शूद्रकी हत्या करके धर्मकी मर्यादा स्थापित की। हिन्दू जातिको आज पतन मुंह बाये खा जानेको खड़ा है, तभी तो आज हर सवर्ण हिन्दू राम बनकर हर हरिजन-से धर्मकी मर्यादाकी रक्षा करनेको तीर-धनुष लिये खड़ा है।

रामकी वह कहानी चाहे झूठ हो चाहे सच, पर इसकी प्रतिक्रिया हिन्दुओंके पण्डित-वर्गपर अच्छी नहीं हुई है। हमने स्वयं कितने ही सवर्णोंको इसीके आधारपर हरि-जनोंके पढ़ने-लिखनेका विरोध करते सुना है। और इस अक्लकी ही बलिहारी है, जो हिन्दुओंकी संख्या निरन्तर घटती जा रही है। विधर्मियोंके साथ भी हमारा उतना ही बुरा व्यवहार नहीं होता, जितना अपने ही भाई अछूतोंके साथ।

नारियोंकी स्थिति भी समाजमें बहुत सराहनीय नहीं है। उन्हें कितने ही नागरिक अधिकार तो हैं ही नहीं, उल्टे उनकी तनिक-सी भूलें भी—जिनकी पूरी जिम्मेदारी उन्हींपर नहीं होती—कभी माफ नहीं की जातीं। आज न जाने कितनी सुखदा और आशा, छाया और करुणा, शकूरन बीबी और हसीना बानू बनी हिन्दुओंकी पापलीलाका साधन हो रही हैं। आज न जाने कितनी हिन्दू विधवायें दूसरी जातियोंके अन्तर्गत जाकर हिन्दुओंके नामपर जहरके घूंट पी रही हैं। हिन्दू समाजमें इतनी उदारता है कि वह किसी राजा-महाराजाको भी विधर्मीको ब्याह लानेपर आशीर्वाद दे सके, हिन्दू समाजमें इतनी उदारता है कि वह एक गायके नामपर जमीन-आसमान एक कर सके। उसमें यह भी उदारता है कि वह रम्मो और छम्मोके नामपर अपने पूर्वजोंकी कमाईका श्राद्ध कर डाले; पर उसमें किसी हिन्दू नारीके अपहरण हो जानेपर, किसी आततायी द्वारा उसकी बदनामी फैलाये जानेपर उसे अपने घरमें—अपने समाजमें लानेकी उदारता नहीं है! अबोध बच्चियोंपर धर्मके नामपर छुरी चलानेमें उसे तनिक भी हिचक नहीं होती और उधर जहां वे अपना सब कुछ श्राद्ध कर डालते हैं, उन्हें समाजमें स्थान देनेके नामपर सारा हिन्दू धर्म रसातलको चला जायगा। हमारी यह सङ्कीर्णता हमें सर्वनाशकी ओर किस गतिसे ढकेलती चली जा रही है, इसे हम देखते हुए भी नहीं देखना चाहते। समस्त हिन्दू जाति आज कातर क्रन्दन कर रही है, पर धर्मध्वजियोंके कान घण्टा-घड़ियालोंका घोष सुनते-सुनते इतने बहरे हो गये हैं कि अबलाओंकी करुण पुकार सुन ही नहीं सकते।

हमारे समाजका यह चित्र है और यह कितना दयनीय है, यह किसे बताया जाय, सभी तो देखते हुए भी अन्धे हो रहे हैं।

दहेजकी यह भीषणता!

बङ्गाल प्रान्तीय व्यवस्थापिका परिषद्में विगत २६ जुलाईको बङ्गाल-दहेज-प्रतिबन्ध बिल पेश किया गया, जिसे लोकमत जाननेके ख्यालसे प्रचारित करनेका प्रस्ताव पास किया गया। २६ जनवरी १९४१ तक इसपर लोकमत प्रकट हो जाना चाहिए।

व्यवस्थापिका परिषदोंमें उपस्थित मसविदोंपर लोकमत जाननेकी प्रथा है और बहुमत द्वारा किसी भी बिलके लिए ऐसा निर्णय किया जा सकता है। पर बङ्गालका लोकमत क्या इस विषयपर अब तक स्पष्ट नहीं हो सका है? जिस बङ्गालमें, जैसा कि प्रस्तावकने कहा है, कितने ही परिवार दहेजके कारण तबाह हो गये हैं, जिस बङ्गालमें कन्याका जन्म ही एक भीषण घटना समझी जाती है, जिस बङ्गालमें दहेजकी भीषणताके कारण कितने ही माता-पिताओं-को घर-द्वार तक बेच देना पड़ता है और जिस बङ्गालमें कितनी ही युवतियोंको दहेजकी वेदीपर अपना बलिदान चढ़ा देना पड़ा है, वहां अभी भी लोकमत जाननेके लिए ऐसी व्यवस्थाओंको टाल दिया जाय, यह कुछ अजब व्य-वस्था है। ये सब ऐसी व्यवस्थायें हैं, जिनका सामाजिक व्यवस्थाओंसे घनिष्ट सम्बन्ध है और ऐसे मामलोंमें लोकमतको ठीक ढङ्गसे स्पष्टतः समझ लेना वाञ्छनीय भी है। पर इतनी लम्बी अवधिकी कोई आवश्यकता न थी, क्योंकि दहेजकी प्रथासे समस्त बङ्गालको काफी कठि-नाइयोंका सामना करना पड़ रहा है।

यों तो दहेजकी प्रथा कुछ ऐसी है, जिसे कानून बनाकर भी रोकना तब तक सम्भव न होगा, जब तक कि लोग स्वयं इस बुराईसे बचनेके लिए दृढ़प्रतिज्ञ न हो जायें; पर सभी देशोंमें इस प्रकारकी कानूनी व्यवस्थाओंकी आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि मनुष्य कठिनाइयोंको जानते हुए भी प्रथाओंको छोड़नेमें अपनेको निर्बल पाता है।

और फिर यह दहेजकी प्रथा तो निश्चय ही नारी जाति-के लिए महान् कलङ्ककी बात है। क्या कारण है कि कन्याके विवाहके लिए पिताको रिश्वतके रूपमें एक लम्बी रकम देनेको बाध्य किया जाय ? लड़के-लड़कीके विवाहमें दोनोंको क्यों समानता न दी जाय, क्यों कन्याके अभि-भावकोंको अपना घर-द्वार बेचकर भी रिश्वतकी यह रकम एकत्र करनी पड़े ? यद्यपि देखते हम यह हैं कि लड़कोंके अभिभावकोंको भी अपनी कन्याओंके लिए उन्हीं कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। पर जब तक उनपर स्वयं ये कठिनाइयां नहीं आतीं, तब तक वे स्वयं भी धांधली-पनसे काम लेते हैं। इस प्रकार सभीको इन कठिनाइयोंसे परेशान होना पड़ता है; पर ऐसी जहालत भरी हुई है कि कोई चेतना नहीं चाहता। यों तो कन्याओंके लिए अभि-भावक स्वयं अधिकसे अधिक खर्च करना चाहते हैं; पर उन्हें मजबूर क्यों किया जाय ? विवाह खरीद-फ़रोख्त नहीं है, यह एक पवित्र बन्धन है, फिर इसमें रिश्वत और शर्तकी जरूरत क्या ?

और मजा यह है कि इस घातक और घिनौनी प्रथाका प्रचार शिक्षाके प्रचारके साथ-साथ घटता नहीं, बढ़ता ही जा रहा है। शिक्षितोंमें यह रोग और बुरी तरह घर करता जा रहा है। जिनसे सुधार और संस्कृतिकी आशा की जाय, वही इस घिनौनेपनको सहारा देकर खड़ा करें, इससे बढ़कर शोचनीय बात और क्या होगी। एक ओर आप नारीको समानताका पद देते हैं और दूसरी ओर उसका सौदा करते हैं। मातृ-जातिका यह कितना भीषण अपमान है ! और इस अपमानके परिणाम-स्वरूप कितने घर उजड़ गये ! कितनी ही युवतियां विष खाकर, साड़ीपर मिट्टीका तेल छिड़ककर आग लगाकर, कुएं में कूदकर जीवन-लीला समाप्त कर चुकी हैं और कितनी ही घरोंसे भागकर किसी विधर्मीके घरमें पड़ी भाग्यको रो रही हैं और कितनी ही अड्डोंमें जीवन-की सारी पवित्रताओंका श्राद्ध कर रही हैं।

रूढ़ियां कहां पनपती हैं ?

भारतीय समाजकी अनेक रूढ़ियों द्वारा समाजका कितना अहित हो रहा है, इसका बड़ा मर्मभेदी वर्णन उस दिन एक महाराष्ट्र महिलाने किया, जिसने नारी जातिकी शिक्षापर जोर डालते हुए कहा कि हमारे समाजको ऊंचीसे ऊंची शिक्षा मिल रही है, भारत उन्नतिशील देशोंके सम्पर्कमें आया है, भारतसे नवीन विचार-धारायें टकरा रही हैं, फिर भी हमारा समाज उन्नतिकी दौड़में इतना पीछे क्यों पड़ा रह गया है। यह सवाल है, जो हरएकके दिलमें उठता है और हरएक अपने-अपने ख्यालसे इसका समाधान करना चाहता है।

मैंने भी इस सवालपर ध्यान दिया है और इसका उत्तर जो मुझे सूझा है, वह यह है कि हमारा समाज अभी ऐसी अनेक रूढ़ियोंमें फंसा हुआ है, जो भारतके पैरकी बेड़ी हो रही हैं। उन्होंने हमारे पांव बांध रखे हैं और कोशिश करने-पर भी हमारे कदम आगे नहीं बढ़ पाते हैं। ये रुढ़ियां कई तरहकी हैं और इनके सम्बन्धमें सभीको थोड़ी-बहुत जान-कारी है। अन्धविश्वासके आधारपर भी ये टिकी हुई हैं और दुर्भाग्यवश ये अन्धविश्वास इसलिए नहीं हट पाते हैं कि धर्मका इन्हें सहारा मिला है। इन रूढ़ियोंका निवास हमारे घरोंमें होता है और हमारे घरोंकी नारियां इन सांपोंको दूध पिलाकर पालती हैं, जो उन्हींका संहार करते हैं। भारतकी अनेक रूढ़ियां हमारे घरोंमें पनप रही हैं और घरकी नारियां उन्हें सींचती हैं।

हमारे नवीन ज्ञान-विज्ञानके सम्पर्कमें आनेकी बात कही जाती है, पर नारियां आज भी घरकी चहारदीवारीके भीतर हैं। हमारा एक कदम आगे बढ़ नहीं सकता, जब तक दूसरा लंगड़ा हो। जब घरकी नारी अपङ्ग होकर घरमें बैठी है, जब उसे उन कामोंके परिणाम समझनेकी क्षमता नहीं है जिन्हें वह करती है, तब उसपर क्या दोषारोपण किया जाय, अगर वह उन रूढ़ियों, उन अन्धविश्वासों, उन परम्पराओंको छोड़ना नहीं चाहती, जो समाजके लिए घातक हैं। इसी-लिए हमने कहा कि इन रूढ़ियोंकी जड़ हमारे घरमें है और इनका मूलोच्छेद तब होगा, जब नारीको समाज शिक्षित करके सामाजिक क्षेत्रमें काम करने योग्य बना लेगा। केवल पुरुषोंकी उन्नति, केवल आधे समाजकी उन्नति होगी। सारा समाज तो उन्नत नारी-समाजको लेकर ही उठेगा।

———



साहित्यका नया दृष्टिकोण

समस्त हिन्दी भाषा-भाषियोंके लिए निश्चय ही यह सन्तोषकी बात है कि हिन्दी राष्ट्र-भाषाके रूपमें गृहीत हो रही है—अन्तर्प्रान्तीय भाषाका रूप तो इसने व्यवहारतः पहलेसे ही ग्रहण कर रखा है। पर इसके इस पदसे जो उत्तर-दायित्व इसपर आ गये हैं, उनपर अगर ध्यान नहीं दिया गया, तो क्या हम इस महत्त्वपूर्ण पदकी मर्यादा रख सकेंगे? संसारके सामने जो समस्यायें हैं, ऐसी समस्यायें, जिनमें हमारा मस्तिष्क उलझ रहा है, जिनकी गाठें, हम खोलना चाहते हैं और जिनके समाधानपर हमारी अनेक समस्याओं-का हल हमें मिलेगा, उनपर हिन्दीमें कोई प्रकाश है? हिन्दीमें आज क्या हम ऐसी चीजें देख सकेंगे, जिनमें राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओंका समाधान मिले?

कहां मिलेगा? हमने सिर्फ अहम्मन्यता सीखी है, हमने सिर्फ अपना ढिंढोरा पीटना सीखा है और अगर आज गांधी या जवाहरलाल मार्मिक अनुतापसे कह दें कि हिन्दी-में रवीन्द्रनाथ कहां हैं, हिन्दीमें जगदीशचन्द्र बसु कहां हैं, तो हमने उन्हें केवल कोसना सीखा है। हमारी दशा उस व्यक्तिकी भांति है, जिसके पास हो कुछ भी नहीं; पर जो ऐसा सुझानेवालेको ही उल्टे मूर्ख और अन्धा कहकर गाली देना शुरू कर दे।

और मैं जो यह कुछ कह रहा हूं, सो कुछ कम परिताप-के साथ नहीं। यों तो हिन्दीके बर्नार्ड शा भी हैं, हिन्दीके चेखोव और टामस हार्डी भी हैं, हिन्दीके रवीन्द्र और शर-चन्द्र भी हैं, पर ये सब हिन्दीके हैं। किसीने कभी किसीको यह भी कहते सुना है कि बर्नार्ड शा अंगरेजीके चतुरसेन शास्त्री हैं, शरच्चन्द्र बंगलाके प्रेमचन्द थे। बात कुछ चुभती-सी है, पर सत्य चुभता ही है—उसकी सरलताकी नोक काफी तेज होती है। दूसरी भाषाओंके महान् लेखकोंके साथ अपने लेखकोंका विज्ञापन करना अपनी महत्ता नहीं, हीनता स्वीकार करनेका एक तरीका है। हमने उस दिन एक अंगरेजी फिल्म पत्रमें शर्ली टेम्पुलका चित्र देखा, जिसके नीचे लिखा था—"शर्ली टेम्पुल—होलीउडकी वासन्ती।" वासन्ती और शर्ली टेम्पुलकी कोई तुलना नहीं है। पर लेखकने नयी बात कही थी, इसलिए बात जंची और इसके साथ ही हिन्दीके एक पत्रका वह विज्ञापन याद आया, जिसमें हिन्दीके एक लेखकके लिए लिखा था : हिन्दीके बर्नार्ड शा। पता नहीं, उक्त विज्ञापन-लेखकने शाके कितने ग्रन्थ पढ़े थे और किस आधारपर शाके साथ उक्त हिन्दी-लेखककी तुलनाकर कितना दोनोंमें साम्य पाया था; पर उसने हिन्दी-लेखकको बर्नार्ड शा बता दिया, क्योंकि ऐसा करके उनकी पुस्तकें वह अधिक बेच सकेगा, ऐसी उसे आशा थी।

हिन्दीमें शेली, कीट्स और बायरन तो कितने ही हैं, वाल्टर स्काट और मोपांसां भी पैदा हुए हैं। आप हिन्दीके नये प्रकाशनोंको उठा लीजिये, यह सब आपको स्पष्ट घोष-णाओंमें मिल जायेंगे। पर वास्तवमें बात क्या ऐसी है? वास्तवमें क्या हमने संसारके चुने हुए महारथियोंके मुका-बले अपने साहित्यकारोंको पाया है? हम हिन्दी-साहित्य-के निन्दक नहीं हैं, हम इसका उत्थान चाहते हैं; पर उत्थान-

के नामपर हम स्वांग और भण्डता पसन्द नहीं करेंगे। आवश्यकता इस बातकी है कि हम सच्ची भावनाओंके साथ हिन्दीका सर्वे करें और देखें कि हमारे पास क्या है। परिस्थितियोंने हमारे लिए आवश्यकतायें कैसी उत्पन्न की हैं। महान् कलाकारोंको चुनकर उनकी जोड़में हिन्दीके लेखकोंकी घोषणा कर देनेसे ही होता, तो कहना क्या था।

लेकिन यह सब कैसे हो? जब तक हमारे दृष्टिकोणमें परिवर्तन नहीं हो जाता, जब तक हम अपनेको खुश करने अथवा जनताके मनोरञ्जन करनेकी लालसा नहीं रोकते, तब तक ऐसी रचनाकी आशा नहीं की जा सकती, जो हमारी—मानवकी समस्याओंका समाधान कर सके। बर्नार्ड शाने एक बार कहा था कि मैं कलाके लिए एक पंक्ति भी न लिखूंगा, क्योंकि "कला कलाके लिए है," यह आत्मघातक सिद्धान्त है। हमारा साहित्यकार जब तक अपनेको समाजका एक अङ्ग मानकर नहीं चलता, जब तक वह नहीं महसूस करता कि समाजके सुख-दुख उसके सुख-दुख हैं, तब तक ऐसी रचना करनेमें असमर्थ रहेगा, जिससे समाजका कल्याण-साधन हो सके।

हमारे यहांके कलाकार रोते हैं कि समाजमें उनका सम्मान नहीं होता। हमारे कलाकार शिकायत करते हैं कि उनकी जीविका चलानेके लिए भी कोई साधन नहीं है; और उनका रोना और शिकायत करना काफी अंशोंमें सत्य भी है; पर इसके लिए जिम्मेदार कौन है, क्या कभी उन्होंने यह सोचनेका कष्ट नहीं उठाया? समाजके उपकारके लिए अगर आप कुछ नहीं करते हैं, तो समाज आपकी परवाह क्यों करे? कविजीने गरीबोंकी दयनीय दशाका ऐसा बर्णन कभी नहीं किया कि उनके प्रति मानवता आकर्षित होती, उनकी अवस्थामें सुधार करनेकी ओर लोगोंका ध्यान जाता, उन्होंने तो अपने कमरेमें चटाईपर लेटे-लेटे हृत्तन्त्रीका नाद सुना और स्वर्गकी अप्सराओंके आगमनमें पलक-पांवड़े बिछाये, किन्नरियों, परियोंकी रास-क्रीड़ामें ही उनके दिनके स्वप्न उठते और गिरते हैं, मकानके नीचे रातमें ठिठुरकर एक भिखारी मर गया है; पर उस वीभत्स दृश्यका ख्याल करते ही कल्पना कलुषित हो जाती है, कलाकारजीको इस नश्वर, सांसारिक वीभत्सतासे मतलब क्या? वे तो कलाके लिए लिखेंगे। और आप कलाके लिए लिखकर समाजकी वास्तविकताओंको भुलाकर मृगतृष्णाके पीछे भाग रहे हों, तो समाजकी कृतघ्नताका रोना कैसा? समाजके लिए आपने क्या किया, जो उसे आप अपने प्रति कृतज्ञ बनाये रखना चाहते हैं? इस तरहकी कला-उपासना चलनेकी नहीं। यूरोपीय साहित्यमें इस तरहकी कितनी कलात्मक कवितायें आप देखते हैं? और नहीं देखते, तो आपने कभी सोचनेका कष्ट क्यों नहीं किया कि 'कला कलाके लिए' लिखकर भूखों मरनेकी प्रतिज्ञा वहांका कलाकार आज क्यों नहीं करता?

एक था साहित्यकार रूसो, जिसने फ्रेञ्च राज्यक्रान्तिको सम्भव बनाया और दुनिया आज भी उसे पूजती है। और एक था कलाकार मौक्सिम गोर्की, जिसने रूसी क्रान्तिकी सफलताके लिए अपनी कला निछावर कर दी और जब वह मरा, तो स्टैलिनने उसकी अर्थी टेकी।

आप कहेंगे, वे प्रचारक थे, जनताके लिए—भूखोंके लिए हाय रोटी, हाय रोटी चिल्लाते रहे। और जनता सुनेगी, तो वह आपसे कहेगी कि आपके 'पंखुरियोंके रुदन' से उसे मतलब क्या? 'आकाशकी तारिकाओंके विलाप' की उसे जरूरत क्या? यही सब सुनकर अगर आप उनकी सहानुभूति चाहते हैं, तो यह सुख-स्वप्न कैसे चरितार्थ हो?

इसलिए व्यक्ति एवं समाज दोनोंकी दृष्टिसे हिन्दीके साहित्यकारोंको परिस्थिति समझनी चाहिए। वे वास्तविकताओंकी उपेक्षा नहीं कर सकते, और करेंगे, तो उनकी यह आत्मघातक नीति साहित्यका भी बहुत उपकार न करेगी।—दिव्य चक्षु।

* * *

गुप्त भारतकी खोज। लेखक—डा० पाल ब्रण्टन; अनुवादक—श्री वेङ्कटेश्वर शर्मा शास्त्री; प्रकाशक—भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद; जिल्द, कागज, छपाई-सफाई सुन्दर; पृष्ठ-संख्या ५५३; मूल्य ३)

पाल ब्रण्टनने पिछले दिनों भारत-भ्रमण करके अपने निजी अनुभवोंके आधारपर एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें उन्होंने भारतमें पाये जानेवाले योगियों तथा आध्यात्मिक शक्तियोंसे सम्पन्न व्यक्तियोंकी योग-सम्बन्धी सफलताओंका जिक्र किया था। इसके कुछ अंश 'विश्वमित्र' में कुछ दिन पहले निकल भी चुके थे। अब इसका हिन्दी अनुवाद

निकाला गया है। पुस्तक काफी ज्ञानवर्द्धक तथा मनोरञ्जक है और साथ ही हिन्दीमें एक नये प्रकारका साहित्य देती है, अतः हिन्दी-पाठकोंके लिए निश्चय ही यह कामका प्रकाशन है। मूल पुस्तकका अनुवाद भी अच्छा हुआ है और उसकी रोचकताको रक्षा इसमें की गयी है। साथ ही अनेक चित्र भी दिये गये हैं। इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तकमें वर्णित कितनी ही बातें ऐसी हैं, जो अचरजमें डाल देती हैं; पर लेखकने अपने अनुभवोंसे लिखी हैं, इसलिए इस सम्बन्धमें कुछ कहना कठिन है।

पर एक बात पाल ब्रण्टनकी इस पुस्तकके पढ़नेपर हमने पहले भी महसूस की थी और इस अनुवादने वह बात फिर याद दिलायी है कि हमारे ही देशके कितने ही रहस्य हमसे तब तक अनजाने रह जाते हैं, जब तक दूर देशके व्यक्ति उनपर प्रकाश नहीं डालते। और तो और, जिस आध्यात्मिकताके लिए यह देश संसार-प्रसिद्ध है, उसके सम्बन्धमें भी हमारी वर्तमान स्थितिपर विदेशियों द्वारा ही पहले प्रकाश पड़ता है। हममें आज यह कितनी जड़ता आ गयी है!

'गुप्त भारतकी खोज' हिन्दीवालोंके लिए एक नये ढङ्गकी पाठ्य-सामग्री देती है, इसलिए हिन्दी-पाठकोंको इसे पढ़ना चाहिए।

वेणी-संहार। मूल लेखक—कविवर भट्ट नारायण; अनुवादक—श्रीहरदयालु सिंह; प्रकाशक—इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद; कागज, छपाई-सफाई सुन्दर; पृष्ठ-संख्या १८३।

वेणी-संहार संस्कृत-साहित्यका एक सुन्दर ग्रन्थ है, जिसका अनुवाद हिन्दी-पाठकोंके लिए इस प्रकाशनने सुलभ कर दिया है। अनुवादकने मूलकी भांति ही इसका गद्य-पद्यात्मक अनुवाद किया है और प्रारम्भमें एक अच्छी-सी भूमिका भी दी है, जिसमें मूल लेखकके विषयमें कई खोजकी बातें तथा नाटक एवं वर्तमान पुस्तककी आलोचना आदि कई विषयोंपर विद्वत्ता-पूर्वक लिखा है। वेणी-संहारका परिचय नये सिरेसे नहीं देना है, यह वीर-रसका नाटक—जिसमें अन्य रसोंका भी समावेश है—सदा चावसे पढ़ा जाता रहा है और अब भी पढ़ा जायगा। प्रकाशन उपयोगी है।

भारतीय सभ्यताका विकास। लेखक—श्री कालिदास कपूर, एम० ए० एल० टी०; प्रकाशक—नवलकिशोर प्रेस, हजरतगञ्ज, लखनऊ; पृष्ठ-संख्या ८३; छपाई-सफाई सुन्दर; मूल्य ॥)।

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने, जैसा कि इसके नामसे स्पष्ट है, भारतीय सभ्यताके क्रमिक विकासपर प्रकाश डाला है। दूसरे देशोंमें भी भारतीय सभ्यता किस तरह पहुंची और विकसित हुई तथा समय-समयपर दूसरी सभ्यतायें किस प्रकार निकलीं और भारतीय सभ्यताके साथ उनका सम्बन्ध हो गया, यह सारी बातें बड़ी ही सरल, किन्तु प्रवाहमयी भाषामें कही गयी हैं। अनेक चित्रोंसे पुस्तक और भी उपयोगी हो गयी है। पुस्तक निस्सन्देह ज्ञानवर्द्धक एवं मनोरञ्जक है। विद्यार्थियोंके लिए तो इसकी उपयोगिता और भी अधिक है।

वीर बाला (त्रैमासिक पत्रिका)। सम्पादक-मण्डल—प्रो० प्रेमनारायण माथुर, प्रकाशचन्द्र गोयल, सज्जनदेवी अग्रवाल और छात्रा सम्पादिका कुमारी शान्ति; प्रकाशक—श्री राजस्थान बालिका विद्यालय, निवाई, जयपुर; वार्षिक मूल्य १॥); एक प्रति ।≡)।

शिक्षा, राजनीति, समाज-नीति आदि विषयोंपर कविता और कहानियोंसे संयुक्त यह पत्रिका उक्त संस्थासे प्रकाशित होती है। हमने इसके कई अङ्क देखे हैं, और जिस उद्देश्यको लेकर यह प्रकाशित की जा रही है, उसमें इसे सफलता मिलेगी, ऐसी आशा है। लेख उच्चकोटिके होते हैं और विविध विषयोंको देनेका प्रयास किया जाता है, जिससे संस्थाके ही नहीं, बाहरके लोगोंके लिए भी इसकी उपयोगिता है। दूसरी संस्थाओंके लिए यह एक अनुकरणीय प्रयत्न है।





महिलायें सत्याग्रह करेंगी?

युक्तप्रान्तीय महिला-कान्फरेन्सका एक अधिवेशन उस दिन बेगम हमीद अलीकी अध्यक्षतामें हुआ, जिसमें महिलाओंने इस बातकी शिकायत की कि आज भी उन्हें कितनी ही बातोंके अधिकार नहीं मिले हैं, जिससे उनकी उन्नतिमें बाधायें बनी हुई हैं। उनके कानूनी अधिकारोंमें अब भी बड़ी खामी है, जिससे उन्हें स्वावलम्बनका जीवन बितानेकी अपेक्षा सदा दूसरोंका मुंह ताकना पड़ता है। सम्मेलनमें यह भी कहा गया कि अगर महिलाओंकी उचित मांगें स्वीकार नहीं की गयीं, तो वे सत्याग्रह करेंगी।

भारतमें नारी जातिका आन्दोलन पुराना नहीं है, और इसकी एक बहुत बड़ी विशेषता यह रही है कि पुरुषों द्वारा ही पहले यह सञ्चालित किया गया और अबभी पुरुषोंकी सारी सहानुभूति उनकी उचित मांगोंसे है, यह बात सच है; पर इसमें भी सन्देह नहीं कि भारतीय महिलाओंको अभी ऐसे कितने ही अधिकार नहीं मिले हैं, जो अबसे बहुत पहले उन्हें मिल जाने चाहिए थे। वे आज भी अनेक विवशताओं-में बंधी हुई हैं। उनकी शिक्षाकी ओर आज भी ध्यान नहीं दिया जाता, पिताकी सम्पत्तिमें उनका कोई अधिकार नहीं, विवाहमें उन्हें उनके अभिभावक चाहे जिसके गले बांध दें, तलाकका कानून स्पष्टतः पुरुषोंके पक्षमें है। पति जब चाहे तो पत्नीको तलाक दे दे, पर पत्नी किसी भी दशामें पतिको छोड़ नहीं सकती। यद्यपि हम जानते हैं कि हिन्दू कानूनमें तलाक नामकी कोई बात नहीं है; पर पतियोंको इस बातका अधिकार है कि वे अपनी पत्नियोंको जब चाहें, अपनेसे अलग कर दें। उन्हें सिर्फ उनके भरण-पोषणके लिए विवश होना होगा। लेकिन वे चाहें, तो उन्हें अलग किये बिना भी दूसरी शादी करके पहली पत्नियोंको आजन्म रोनेके लिए छोड़ दें अथवा पत्नियां चाहें, तो विष खाकर, कुएं में गिरकर, कपड़ेपर मिट्टीका तेल छिड़क आग लगाकर जल मरनेको तैयार हो जायें। नारीको अन्धे, बधिर, कोढ़ी पतिका अपमान करनेपर भी नरकमें जाना पड़ेगा और पुरुष अपनी रङ्गीन मिजाजीके नामपर सुन्दर तरुणीको लात मारकर अलग कर दे सकता है और एक साथ दो-दो, चार-चार पत्नियां रख सकता है?

इस प्रकार समाजकी सारी व्यवस्था ही इस ढङ्गसे रखी गयी है कि नारीके लिए कोई अवसर नहीं मिल सकता और उधर कुछ कानूनी अधिकार हों भी, तो सामाजिक व्यवस्थायें कुछ इस ढङ्गकी हैं कि उनका उपयोग करनेका कोई अवसर ही नारीको मिल नहीं सकता।

इसलिए नारी जब वर्तमान व्यवस्थासे तङ्ग आकर इससे मुक्ति पाना चाहती है, तब वह सत्याग्रह करनेकी धमकी देती है।

नारी अपने अधिकारोंके लिए सत्याग्रह करेगी—यह बात कुछ ऐसी है, जिसे सुनकर लोग चौंके हैं। उन्हें शायद पता नहीं कि यूरोप और अमेरिकामें नारीको अपने अधिकार प्राप्त करनेके लिए कभी-कभी बड़े कठोर उपायोंका अवलम्बन करना पड़ा है। कभी-कभी साधारण-से गृह-युद्ध-की नौबत आयी है और कभी-कभी काफी खून-खराबी हुई है। इंगलैण्डका मताधिकार-आन्दोलन भी बहुत

आसानीके साथ नहीं चल पाया था, उसे भी कई बार कण्टकाकीर्ण पथपर चलना पड़ा था।

भारतका नारी-आन्दोलन, जैसा कि हमने कहा है, इन कठिनाइयोंसे अलग रहा है। इसके दो कारण हैं। पहली बात तो यह है कि पुरुषोंने स्वयं नारी-आन्दोलनको प्रोत्साहन और सहयोग दिया है और दूसरा कारण यह रहा है कि नारीको अगर कितने ही अधिकार नहीं रहे हैं, तो पुरुषको भी नहीं रहे हैं। भारतका पुरुष-समाज ही दूसरे स्वतन्त्र देशोंके समान राजनीतिक सत्ता-प्राप्त समाज नहीं रहा है, जिसके विरुद्ध नारी आन्दोलन करती। यहां तो सभी भारतीय पुरुष और नारी समान रूपसे अपने अधिकारोंके लिए एक दूसरी सत्ताका मुंह देखते रहे हैं। इसके लिए उन्होंने आन्दोलन भी किया है और नारीने समान रूपसे इस आन्दोलनमें पुरुषका साथ दिया है। १९३० के सत्याग्रह-आन्दोलनमें भारतीय नारियोंने अपार साहस और अदम्य उत्साह दिखाया था।

इन सारी परिस्थितियोंको देखते हुए यह आवश्यक हो जाता है कि नारियोंके उचित अधिकार उन्हें दिये जायें। भारतका पुरुष-समाज स्वयं गुलाम है और उसे अपनी ओरसे फिर नारी जातिको गुलाम बनानेके लिए उत्सुक नहीं रहना चाहिए। पुरुष-समाज चाहे तो नारियोंकी कितनी ही कठिनाइयोंका अन्त हो सकता है और उन्हें सत्याग्रह करनेकी जरूरत न पड़े। लेकिन अगर नारी सत्याग्रह कर दे, तो जरा कल्पना कीजिये, हमारे घरोंकी क्या दशा हो जाय।

युद्धमें नारियोंका सहयोग

युद्धमें ब्रिटिश नारियोंने खतरोंकी तनिक भी आशङ्का न करके सहयोग देना शुरू किया है। या तो वे ऐसी संस्थाओं द्वारा अपनी सेवायें अर्पित कर रही हैं, जिनका सम्बन्ध पुरुषोंसे है, अथवा वे अपनी नयी संस्थायें खोलकर राष्ट्रके युद्ध-सम्बन्धी होनेवाले प्रयत्नमें सहयोग दे रही हैं।

औद्योगिक क्षेत्रमें नारियोंका सहयोग पूर्ण सराहनीय है। १९३९ में ४,०८८,९०० नारियां बीमा किये हुए उद्योग-धन्धोंमें थीं, ४७,००० खेतीके काममें, ६८०,००० सूती उद्योग-धन्धोंमें, ९२,००० इञ्जीनियरिङ्गमें, ४४०,००० मोटर, साइकिल, हवाई जहाजके कारखानोंमें और ३३०,००० धातुके कारखानोंमें काम कर रही थीं, और १९३९ के अन्तिम दिनोंमें इनकी संख्या और भी बढ़ गयी है।

सेनामें इस समय लगभग १९,००० स्त्रियां स्वयंसैनिकका काम कर रही हैं। इनके अतिरिक्त सैनिकोंके लिए भोजन, कपड़ोंकी सफाई और क्लर्कीके काममें चार-पांच हजार स्त्रियां लगी हुई हैं। ये स्त्रियां नौ-सेना विभागके अन्तर्गत काम कर रही हैं। इनसे भी अधिक संख्या उन महिलाओंकी है, जो खाना पकाने, भण्डार-गृहकी देखभाल करने, मोटर चलाने, भोजन बनाने तथा सैनिक अड्डोंपर विभिन्न विभागोंमें काम करनेमें लगी हैं। ऐसे कितने ही विभागोंमें अब तक पुरुषोंकी अधिकता थी; पर पुरुषोंकी आवश्यकता जब सेना-विभागमें पड़ी, तब स्त्रियोंने स्वयं उन कामोंको अपने हाथमें लेकर पुरुषोंको युद्धमें लड़नेके लिए मुक्त कर दिया। इन स्त्रियोंकी संख्या प्रायः २९,००० है, जिनमें लगभग ११,९०० क्लर्क, ६०० रसोई बनानेवाली, ६०० अर्दली और १८०० ड्राइवर हैं।

युद्धके प्रारम्भिक दिनोंमें हवाई विभागमें २००० स्त्रियां काम करती थीं, लेकिन युद्धकी प्रगतिके साथ-साथ इस विभागमें भी स्त्रियोंकी संख्या बढ़ी है।

इतनी विशाल संख्या उन नारियोंकी है, जो युद्धक्षेत्रमें सैनिक कार्य अथवा इस प्रकारके दूसरे कार्य करती हैं। इनके अतिरिक्त ऐसी नारियोंकी संख्या बहुत विशाल है, जिन्होंने युद्धक्षेत्रके सैनिकों तथा नागरिकोंके हताहत होनेपर सेवा-शुश्रूषाका कार्य अपने हाथमें लिया है। ३१ दिसम्बर १९३९ तक २३,३२९ नर्सोंको शिक्षित कर इस कामके लिए तैयार किया गया था और ९२,००८ नारियोंको उक्त सेवा-शुश्रूषाके काममें सहायता पहुंचानेके लिए नियुक्त किया गया था। यह संख्या इंगलैण्ड और वेल्सकी है। स्काटलैण्डमें भी नारियोंने कुछ कम सहयोग नहीं दिया है। वहां २,४९० शिक्षित नर्सों, ९२९ सहायक नर्सों तथा उनकी सहायताके लिए ७९० नारियोंको भरती किया गया। ये सब नारियां खतरेकी कुछ भी परवाह न करके युद्धमें अपनी सेवायें अर्पित करनेके लिए तैयार हुई हैं।

नारी किसलिए ?

सदासे नारी पुरुषके लिए एक उलझन, एक रहस्य रही है; किन्तु आज दिन नारी अपने लिए ही एक

उलझन है एक समस्या हो उठी है। वह स्वयं अपनेको नहीं समझ पाती। वह जैसे भटक गयी है—पथ-भूली है। 'नारी-स्वतन्त्रता' के लिए जो आन्दोलन भारतमें हुए हैं और हो रहे हैं, वे वास्तवमें अधिकतर पुरुषोंने ही प्रारम्भ किये हैं, और उनके प्रमुख सञ्चालक भी वही रहे हैं। और वे आन्दोलन एक तरहसे पुरुषके प्रति विद्रोहके ही रूपमें हैं। इसलिए इन आन्दोलनोंकी रूपरेखा कभी स्पष्ट नहीं हो पायी, निखर नहीं पायी, जोर नहीं पकड़ पायी, और उधर समाजका रूप भी कुछ भयानक हो उठा है। और ताज्जुब तो यह है कि इन आन्दोलनोंकी कार्यकर्त्री नारियां इस तथ्यको जानती भी रहती हैं! तो इस प्रकार दोष नारी ही के सिरपर आ जाता है। पर वह भी क्या करे? अपने वास्तविक अस्तित्वको घर- गृहस्थीकी मोटी धोतीमें रक्षा करनेवाली नारी आज अपने सभाके कपड़ो और बढ़-बढ़कर व्याख्यान देने तथा लेख लिखनेके आवरणमें भी नहीं छिपा पाती। छिपाना तो दूर रहा—वह और भी आवरण-हीन हो जाती है। धूर्तोंकी चालमें पड़कर अपनी स्वतन्त्रता, मान, सम्मानके अपहरण करनेवाले पुरुषको वह इस बांध टूटनेके प्रवाहमें और भी असाधारण गति और तीव्रतासे आत्म-समर्पण करती है, यहां तक कि अक्सर ही वह औचित्यकी सीमाका भी उल्लङ्घन कर जाती है। मेरा अभिप्राय समाज द्वारा निर्धारित नैतिकताके औचित्यसे नहीं है, वरन् प्रकृति द्वारा स्थापित सन्तुलनकी सीमाओंसे है। और प्राकृतिक सीमाओंका उल्लङ्घन मानवके लिए सदैव अभिशाप हो उठता है—क्योंकि वही केवल एकमात्र पाप है—बुराई है, दुर्नीति है।

तो इस प्रकार हम देखते हैं कि नारियां जो अन्य नारियों और समस्त नारी-जातिका कल्याण करनेके लिए निकली थी, स्वयं अपनी रही-सही स्वतन्त्रता भी खो बैठती हैं। उन्हें एक तरहका अनुभव होता है, जिसकी भयानकता उन्हें सकपका देती है। आजकी लड़की—जो कलकी पूर्ण नारी है—कुछ पसोपेशमें है, एक

तरहकी भूल भुलैयामें है, चक्करमें पड़ी हुई है; उसके सामने अपना अस्तित्व और उसका वास्तविक महत्त्व स्पष्ट नहीं है। पुरुषके प्रति विद्रोह करना उसे सिखाया जाता है, और इसलिए कि वह फिर उसी पुरुषके पास आकर रहे। उसके दिलमें सन्देह और अविश्वास जड़ पकड़ लेते हैं। नतीजा यह होता है कि विवाह होनेपर नयी-नयी तरहकी उलझनें पैदा होती हैं। और क्योंकि आजकी लड़की पढ़ी-लिखी है, इसलिए वह अशिक्षित और मूर्ख स्त्रियोंकी तरह लड़ती नहीं है, कलह नहीं करती है, मन-ही-मन अनजाने सुलगती रहती है। नतीजा होता है, हिस्टीरिया और तपेदिक। यह दशा देखकर बहुत-सी नारी-आन्दोलनकी नेत्रियां यह शिक्षा देने लगी हैं कि लड़कीको जहां तक हो सके, आजन्म कुमारी रहना चाहिए, और यदि वह विवाह भी करे, तो ऐसे पुरुषसे, जिसे वह वशमें रख सके। परन्तु असली मनोवृत्ति आजकी पढ़ी-लिखी लड़कीकी बिलकुल भिन्न है। वह यदि मैट्रिक पास हुई, तो ग्रेजुएट पति चाहती है। आई० ए० हुई, तो एम० ए० और अगर बी० ए० हुई, तब तो लिटरेचरमें डाक्टर या फिर डिप्टी कलक्टर और कलक्टरसे नीचे पद-प्राप्त पतिको अस्वीकार करनेके लिए कमर बांध लेती है। इससे जाहिर यह होता है कि नारी अपनेसे श्रेष्ठ व्यक्तिको ही अपना साथी बनाना चाहती है। किन्तु जो लड़कियां इन आन्दोलनोंकी झोंकमें बहक जाती हैं वे फिर एकको पानेके लिए अनेकके पीछे दौड़ती हैं, और उन बेचारियोंका जीवन बर्बाद हो जाता है। इधरकी रहती है, न उधरकी। मां बननेके सौभाग्यकी भी उन्हें अपनेको सुन्दर और उत्तरदायित्वसे मुक्त रखनेके लिए हत्या करनी पड़ती है।

इन सब बातोंका अभिप्राय यह नहीं है कि नारी कमजोर है, इसलिए उसका निरन्तर शोषण किया जाये; उसके साथ पशुताका व्यवहार किया जाये और नीच समझा जाये। नारी नीच कभी भी नहीं है और उसकी कमजोरी ही वास्तवमें सृष्टिकी सबसे बड़ी आश्चर्यजनक महानता है। नारीसे ही उत्पन्न पुरुष क्योंकर अपनी पत्नीका अपमान कर सकता है—उसे नीच समझ सकता है, यह समझमें नहीं आता। एक ओर तो लोग उपदेश देते हैं, मांकी पूजा करो; दूसरी ओर कहते हैं, पत्नीको मानव भी मत समझो। यह विषमता उठ खड़ी हुई थी अवश्य और यवनकालसे आज तक हमारे समाजमें बढ़ी चली आयी है। यवनकालमें तत्कालीन परिस्थितियोंके कारण पर्देका नियन्त्रण उचित ही था, किन्तु आज अवश्य ही वह अनुचित है। शिक्षा भी आवश्यक है। पर कहना नहीं होगा कि जिन वर्गोंमें वास्तवमें पर्दा था, वे अधिकतर बुर्जुआ ही थे और वहांसे पर्दा अब खुद पर्देमें हो गया है। रही शिक्षाकी बात, सो तो भारतमें आज पुरुष ही शिक्षित नहीं हैं; इसलिए पुरुषोंके विरुद्ध स्त्रियोंकी अशिक्षाका दोषारोपण करना अन्याय-सा है। कोई भी शिक्षित पुरुष अपनी पत्नी और पुत्रीको अशिक्षित नहीं देखना चाहता; पर उसका शिक्षाका दृष्टिकोण यदि भिन्न हो, तो बात दूसरी है और कोई बुरी नहीं। औरतोंकी शिक्षा हिटलर और राधाकृष्णन बननेके लिए नहीं होनी चाहिए; न लेनिन और आइन्स्टीन बनानेके ही ध्येयसे उन्हें स्कूल भेजा जा सकता है; क्योंकि एक नारी मैडम चांग-काई-शेक हो सकती है, एक नारी मादम क्यूरी हो सकती है, एक ही नारी श्रीमती रूजवेल्ट हो सकती है, परन्तु सब नहीं; ठीक इस तरह, जिस तरह कि सभी पुरुष हिटलर लेनिन, और आइन्स्टीन नहीं हो सकते। ये उदाहरण अपवाद-स्वरूप हैं, और आप ही बन जाते हैं। इनके लिए कोई व्यक्ति विशेष प्रयत्न नहीं करता, न कोई नियम ही बनाता है।

तब नारीकी शिक्षा कैसी हो? यह प्रश्न उठता है।

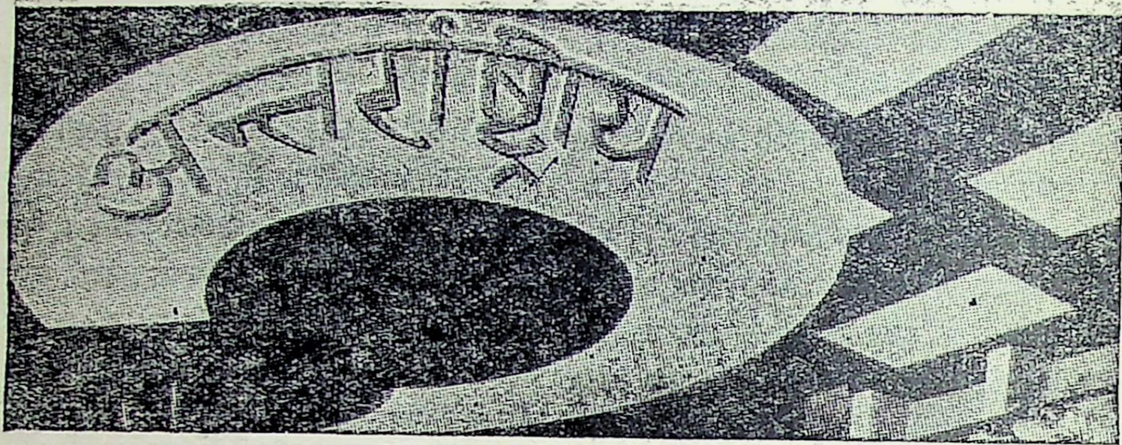
गोर्कीका कहना है—'औरतोंके दिमागमें अच्छे ख्यालात जरा कम उठा करते हैं, परन्तु उठा जरूर करते हैं।" किन्तु मेरा ख्याल है कि अच्छे ख्यालात पहले औरतोंके ही दिमाग-उठा करते हैं, मैं अगर उठा नहीं करते, तो उनको पुरुषके दिमागमें उठानेवाली वह अवश्य ही होती है; पुरुष केवल उन ख्यालातोंको शक्ल देता है, क्योंकि उसमें प्रकृतिदत्त कार्यारम्भ करनेकी आदि प्रवृत्ति जो है। आदम और ईवकी कहानी है—इतनी ही पुरानी, जितने पुराने आदम और ईव हैं। सृजनके लिये पुरुष कार्य शक्ति है। ईवने ही आदमको सेब तोड़नेके लिए उकसाया था और आदमने वह वर्जित फल तोड़ लिया था। फलस्वरूप पृथ्वीपर सृष्टिका आदि हुआ। अर्थात् नारी ही प्रथम प्रेरक शक्ति है। कार्यके लिए प्रेरणा और विचार अनिवार्य हैं, जैसे शिशुके लिए गर्भ! तो इस प्रकार जीवनके अन्य सभी

विभागोंमें भी नारीका अस्तित्व प्रेरक शक्तिके रूपमें अनिवार्य है—परन्तु कार्य सम्पन्न करनेमें उसे केवल अकर्मक रहना है, वास्तविक कार्य नहीं करना है—कार्यका बीजारोपण हो जानेपर उसका पोषण करता है—उसके बढ़नेके लिए उसे शक्ति प्रदान करता है। बच्चोंको पढ़ानेके लिए स्कूल नहीं जाता है, बल्कि स्कूल पढ़ने जानेवाले बच्चोंको पढ़नेके लिए सुयोग्य रखनेके लिए उचित शक्ति और स्वास्थ्य प्रदान करता है। उसका स्थान घरमें ही है, दफ्तरमें नहीं! घरके उपयुक्त ही उसे पूरी-पूरी शिक्षा मिलनी चाहिए। आकाशके तारोंकी गतिविधि जाननेकी जरूरत उसे नहीं है। मानवको प्रेरणा देनेवाली जितनी भी कलायें हैं, उनमें उसे दक्ष होना चाहिए।

बीवरके निकोलसने कहा है कि "प्रेम और विवाहमें जरा-सा भी कोई सम्बन्ध है, यह मेरी समझमें कभी नहीं आया। और यह बात तो बिलकुल साफ है कि विवाहित जीवनको सफल करनेके लिए पति-पत्नीको परस्पर प्रेम करना ही नहीं चाहिए। कारण कि सच बात तो यह है, माके मानी है साथ-साथ जिन्दगी बिताना, और पत्नियां ही केवल हमारी साथी नहीं हैं—केवल उन्हींके साथ तो हमारा जीवन नहीं कटता। मुझे अपने सेक्रेटरी, अपने रसोइये और किसी कदर अन्य बहुत-से लोगोंके साथ रहना ही पड़ता है। अब अगर मैं अपने इन साथियोंसे प्रेम करने लगूं, तो बावला हो जाऊं और जिन्दगी दूभर हो उठे।"

मेरा ख्याल है कि प्रेम और विवाहमें यह सम्बन्ध भले ही न हो कि प्रेम पहले हो और विवाह बादको, क्योंकि विवाहके बाद भी प्रेम अक्सर हो ही जाता है; किन्तु पत्नी और साथियोंकी तरह नहीं है। अन्यान्य सभी साथी पत्नीमें पाये जा सकते हैं, पर अन्यान्य साथियोंमें नहीं। असली 'साथ' नामकी चीज पूरी तरहसे केवल पत्नी ही दे सकती है—कोई पत्नी न दे, यह बात दूसरी है। विवाह आवश्यक है। विवाह किसी भी रूपमें हो—किसी भी प्रकारसे हो; किन्तु उसका होना आवश्यक है। विवाह न करना पाप है। मां होनेपर स्त्रीके लिए सहारेकी जरूरत है, उसके लिए घरकी सत्ता जरूरी है, इसीलिए। प्रेम नारीका प्रमुख गुण है और सब प्रकारकी सृष्टि का आदि साधन। पूरी तरहसे नारी ही पुरुषसे प्रेम करके महान्‌से महान् सृजन कर सकती है। पत्नीके रूपमें नारीसे पुरुषसे झगड़ेका अर्थ पत्नीत्वके अस्तित्वकी हीनता नहीं है और न वह नारीकी आदि मूल प्रकृतिका ही दोष है। ये व्यक्तिगत स्वभावकी बातें हैं। जीवनके प्रत्येक विभागमें पुरुषका पुरुषसे भी पग-पगपर झगड़ा होता है। इसलिए यह कोई बात नहीं है। जीवनमें हर एक जगह सन्तुलनकी आवश्यकता है—एक समताकी आवश्यकता है—परस्पर उचित सहयोगकी आवश्यकता है। केवल नारी ही एक ऐसा उपादान है, जो पूर्ण रूपसे पुरुषकी पूरक है-उसकी पूरी-पूरी साथिन। अपने इसी रूपको अक्लमन्दी, समता और सन्तुलनसे आजकी प्रत्येक लड़कीको अपनाना चाहिए, तभी वह भारतके भव्य राष्ट्रका निर्माण करनेमें योग दे सकेगी।

—कान्तिचन्द्र सोनरिक्सा।



सुदूर पूर्व और अमेरिका

यूरोपीय युद्धसे अमेरिका क्या सीखे ? भावी सङ्घर्षोंकी आशङ्काओंको निर्मूल बनानेके लिए अमेरिका क्या चीनमें जापानकी प्रगति रोकनेके लिए क्रियात्मक उपाय काममें लाये ? आज चीनमें जब अमेरिकाके कदम बढ़ते दिखाई पड़ रहे हैं, तब समस्त अमेरिकनोंके सामने यह समस्या उठ खड़ी हुई है कि अमेरिकाकी सुदूर पूर्वकी समस्याओंपर क्या नीति हो। 'क्या हम एशियामें लड़ें' ग्रन्थके लेखक और कोलम्बिया यूनिवर्सिटीमें अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिके प्रोफेसर नथनियल प्रेफरने एक लेख लिखकर बताया है कि अमेरिकाको सभी क्रियात्मक उपायोंसे जापानकी प्रगति रोकनी चाहिए। १९३५ में जिस प्रकार इटलीको रोकनेकी कोशिश न की गयी, इसके बाद आस्ट्रियामें और फिर म्यूनिखमें जर्मनीके सामने जो आत्मसमर्पण किया गया, इसका परिणाम आज भीषण युद्धमें दिखाई पड़ रहा है।

इसी प्रकार सुदूर पूर्वमें होनेवाले युद्धकी सम्भावनाओंको रोकनेके लिए हमने कोई प्रयत्न नहीं किया, तो पाश्चात्य प्रजातन्त्रात्मक राष्ट्रोंको जो मूल्य चुकाना पड़ रहा है, उससे अधिक मूल्य अमेरिकाको चुकाना पड़ेगा।

युद्धसे अलग रहनेकी अमेरिकाकी नीति एक ऐसी चीज है, जो वास्तवमें तथ्यके रूपमें गलत हो चुकी है। यूरोपको लेकर अमेरिकाने अपना सारा ढोंग छोड़ दिया है। पर जापानको लेकर अमेरिका चीनमें वही नीति चल रहा है। सुदूर पूर्वकी स्थिति बिगड़ती जा रही है, पर अमेरिका अभी भी जापानको शस्त्रास्त्र देता जा रहा है। अमेरिकाकी ही मददसे जापानकी चीनपर जो विजय होगी, वह अमेरिकाके हितोंके कितने प्रतिकूल होगी, इसपर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं महसूस की जा रही है।

सुदूर पूर्वमें अमेरिकाके क्या हित हैं ? पहली बात तो यह है कि प्रशान्त महासागरके तटवर्ती देशोंपर किसी भी शक्तिका प्रभुत्व स्थापित न होने पाये, इसके लिए आवश्यक यह है कि सोवियट रूस अथवा जापानको चीनपर नियन्त्रण करनेकी शक्ति प्राप्त करनेसे रोका जाय।

अगले कुछ महीनोंमें अमेरिकाको प्रसन्न करनेके लिए जापान कुछ रियायतें दे सकता है, पर अमेरिकाको यह स्वीकार नहीं करना चाहिए। जापानका यह इरादा बिलकुल साफ हो चुका है कि वह चीनमें किसी भी दूसरी शक्तिको देखना नहीं चाहता है, इसलिए अमेरिकाको कुछ रियायतें मञ्जूर कर अपना प्रभाव-क्षेत्र सङ्कीर्ण नहीं करना चाहिए। इसलिए जापानको सभी प्रकारसे न रोकना अमेरिकन हितोंके सर्वथा प्रतिकूल है।

इस सम्बन्धमें रूसका खतरा भी स्पष्ट रूपसे समझ लेना चाहिए। रूसका खतरा इस ख्यालसे और भी भयावह हो जाता है कि वह चीनका उपयोग अपनी विचार-धाराके लिए कर सकता है। अगर जापानसे तङ्ग आकर चीनने आत्म-समर्पण कर भी दिया, तो चीनकी कम्यूनिस्ट सेना ऐसा नहीं कर सकती; क्योंकि उसे अपनी पार्टी और रूसकी जबर्दस्त सहायता मिलेगी। इस प्रकार अगर चीन रूसके नियन्त्रणमें चला गया, तो इससे बढ़कर खतरा और क्या हो सकता है, अगर चीनके करोड़ों आदमियोंने स्टैलिनके सङ्केतपर लाल क्रान्तिके लिए प्रयाण कर दिया। रूस या जापान

किसीका भी चीनपर प्रभुत्व स्थापित होनेकी दशामें चीनसे ब्रिटेन, फ्रान्स और अमेरिकाका प्रभुत्व मिट जायगा। इस अवस्थामें जो युद्ध होगा, उसमें अमेरिकाको भाग लेना ही होगा।

दस सालसे हम देख रहे हैं कि जापानका प्रभाव-क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है और यदि चीनपर जापानी साम्राज्यवादका झण्डा गड़ जाय, तो प्रशान्त महासागरमें अमेरिकाकी स्थिति राजनीतिक और भौगोलिक दोनों दृष्टियों-से भयावह हो जायगी।

फिलीपाइन द्वीपपुञ्ज और हवाईकी स्थितिके बारेमें भी हमें भूलना नहीं चाहिए और प्रशान्त महासागरमें हमारी लिए शताब्दीसे जो स्थिति रही है, उसका महत्त्व हमारे एक आज भी है।

अन्तर्राष्ट्रीय शान्तिका दुराशा

मि० चेम्बरलेनने म्यूनिख पैक्ट करके हिटलरके हाथमें यूरोपकी कुञ्जी दे दी, ऐसा आम तौरपर कहा जाता है, और जर्मनीने इस पैक्टकी जैसी छीछालेदर करके यूरोपको सर्व-नाशके तटपर लाकर खड़ा किया, यह जो लोग देखते हैं, उनका यह विश्वास करना कठिन नहीं है कि जर्मन कूट-नीतिको ऐसा प्रोत्साहित करना अनुचित हुआ; पर चेम्बर-लेनकी नीति स्पष्ट थी। वे संसारको युद्धसे बचाना चाहते थे और उन्होंने म्यूनिख पैक्टके बाद स्वयं घोषणा की थी कि हमारे समयके लिए शान्तिकी स्थापना हो गयी।

लेकिन शान्तिकी स्थापना अभी दुराशा-मात्र निकली है। जर्मनी आज यूरोपके साधनोंको लेकर खड़ा है और अभी भी उसकी नीति एकदम स्पष्ट नहीं हुई है कि वास्तवमें वह क्या चाहता है। विश्व-विजयका स्वप्न देखनेवाले नात्सी अभी अगर चुप भी हो जायें, तो भी उन्होंने अपने इतने वचन भङ्ग किये हैं कि उनकी बातोंपर अन्तर्राष्ट्रीय जगतमें आज कुछ भी मूल्य नहीं लगाया जाता। इसीलिए आज जैसी परिस्थिति है, उसमें फिलहाल शान्तिकी सम्भावना नहीं दिखाई पड़ती।

लेकिन अमेरिका तथा दूसरे देशोंके कुछ विचारकोंने इस स्थितिमें इस प्रश्नपर भी सोचना शुरू कर दिया है कि इस युद्धका अन्त चाहे जैसे हो, आवश्यक तो यह है कि स्थितियां इस प्रकारकी बना दी जायें कि अन्तर्राष्ट्रीय मसलोंको हल करनेके लिए युद्धका एक साधनके रूपमें प्रयोग करना भी बन्द कर दिया जाय। पहले भी इस प्रकारके प्रयत्न हुए थे और विचारकोंने सदासे लोक-कल्याणकी भावनासे इसका अन्त चाहा है।

इसके लिए क्या उपाय है? विचारकों तथा राजनी-तिज्ञोंके दृष्टिकोणमें अन्तर होता है। विल्सन यद्यपि राज-नीतिज्ञ ही थे, पर हमारा ख्याल है कि वे विचारक भी बहुत बड़े थे। आदर्शवाद उनके कार्यों एवं नीतियोंका पैमाना था। अपने आदर्शवादके आधारपर ही उन्होंने राष्ट्रोंके निपटारेकी कोशिशें कीं। राष्ट्र-सङ्घकी सूझ यद्यपि उनकी अपनी नहीं थी, क्योंकि बहुत पहलेसे अमेरिकामें इस प्रकार-के प्रयत्न चल रहे थे। पर विल्सनने इस स्वप्नको चरितार्थ किया। राष्ट्रोंके स्वभाग्य-निर्णयका सिद्धान्त भी विल्सनने खूब प्रचारित किया और युद्ध सदाके लिए बन्द हो जाय, सर्वत्र प्रजातन्त्रकी स्थापना हो, यह उनका सुख-स्वप्न रहा।

पर उधर थे मि० लायड जार्ज। राजनीतिके प्रकाण्ड पण्डित और एक महान् राष्ट्रके विजेता प्रतिनिधिके रूपमें। वार्साईकी जो सन्धि हुई, उसमें तथा राष्ट्र-सङ्घके निर्माणमें, विल्सनके आन्तरिक भावोंकी रक्षा नहीं हो सकी। उधर विल्सन अमेरिकामें भी अपना प्रभुत्व खो बैठे।

और इस बीचमें अन्तर्राष्ट्रीय अशान्ति बराबर होती रही। विगत महायुद्धकी प्रतिक्रिया अनेक देशोंपर वाञ्छ-नीय नहीं हुई। जिस प्रकार शक्तियोंका सङ्गठन किया गया, उसमें निश्चित रूपसे संसार दो भागोंमें बंटा दिखाई पड़ा—एक सन्तुष्ट राष्ट्रोंका गुट तथा दूसरा असन्तुष्ट राष्ट्रोंका। इसके अतिरिक्त उपनिवेश तथा दूसरे अधीनस्थ देश रहे, जो विभिन्न राष्ट्रोंकी मर्जीपर रहे।

महायुद्धके बादकी यह नवीन स्थिति थी, जिसमें असन्तुष्ट राष्ट्रोंका असन्तोष बढ़ता गया और सन्तुष्ट राष्ट्र कुछ खोकर भी शान्ति बनाये रखना चाहते थे। यूरोप और एशियामें जो छोटे-मोटे युद्ध होते रहे हैं, उन सबके भीतर इस प्रकारकी मनोवृत्ति काम करती रही है। और म्यूनिख पैक्टमें हम इस मनोवृत्तिकी चरम सीमा देखते हैं।

पर अब इस मनोवृत्तिका खातमा हो गया है। पहले महायुद्धसे लेकर वर्तमान महायुद्धके भीतरकी अवधिमें यही

स्थिति रही है। अब हमें इससे सबक लेना चाहिए और ऐसी भूल नहीं करनी चाहिए कि एक युद्धके समाप्त होते ही उसीकी प्रतिक्रिया-स्वरूप दूसरा युद्ध भी लड़ना पड़े। अन्यथा इस प्रकारकी अन्तर्राष्ट्रीय अशान्तियोंकी समाप्तिकी आशा ही नहीं करनी चाहिए।

चीन-जापान-युद्धका चौथा वर्ष

विगत ७ जुलाईसे चीन-जापान-युद्धका चौथा वर्ष प्रारम्भ होता है। जिस वक्त १९३७ में जापानने चीनपर विराट् रूपमें आक्रमण किया था, उस समय कितने ही लोगोंने इसे चूहे-बिल्लीकी लड़ाई कहकर इस बातकी आशङ्का प्रकट की थी कि जापान चीनको बहुत जल्द उदरसात् कर जायगा। यहां तक कि चीनके साथ सहानुभूति रखनेवालोंको भी इस बातकी आशङ्का थी कि कहीं चीन जापानसे बुरी तरह पराजित न हो जाय। चीनियोंके दृढ़ निश्चय और त्यागको बहुतोंने दम्भ बताया था और जापानके सामने उसके खड़े होनेका मजाक उसके शत्रु उड़ाते थे।

पर लोगोंके अनुमानसे सत्य अधिक स्पष्ट निकले। चीन आज तीन सालसे लड़ता जा रहा है। उसने इन कठिनाइयोंका सामना जिस वीरतासे किया है, वह अनोखी है। दो बराबरके शत्रुओंके युद्धकी दशा और होती है; पर जापानके मुकाबिले चीन कभी तैयार न था, और न चीनका मनोवैज्ञानिक धरातल ही ऐसा था कि इतने प्रबल शत्रुसे सामना करनेके लिए वह तत्काल तैयार हो जाय। वर्षों चीन गृह-युद्धमें तबाह होता रहा था, और गृह-युद्धके बाद भी राजनीतिक विचार-धाराओंका सङ्घर्ष चीनमें सदा होता रहा। चीनके सरदारोंका आपसी वैमनस्य, उनकी स्वार्थान्धता बदनाम थी, और इन सबका परिणाम यह हुआ कि चीनकी दशा ऐसी न थी कि वह किसीसे मोर्चा ले सके।

पर जापानी आक्रमणने चीनके लिए वह काम कर दिखाया, जिसकी सम्भावना पहले न दिखाई पड़ती थी। श्रीमती पर्लबकने इसे लक्ष्य करके लिखा था कि चीनने बहुत दिनोंके बाद अपने जीवनमें एकताके दर्शन किये और शत्रुसे संयुक्त मोर्चा लिया। यह सब जापानके आक्रमणके कारण हुआ। चीनी जीवनकी एकता जापानी आक्रमणके अभिशापमें वरदानके रूपमें चीनको मिली, और इस लिहाजसे जापानी आक्रमण चीनके लिए केवल नुकसानदेह ही नहीं हुआ। पर्लबकने यह भी कहा था कि इस चीन-जापान-युद्धमें चीन हार भले ही जाय, पर जापान जीत नहीं सकता। उनके कहनेका तात्पर्य यह था कि चीनकी आत्मा अजेय है और उसके विस्तृत क्षेत्रफलके चालीस करोड़ आदमियोंको, जो जापानसे घृणा करते हैं, पराजित करके शासनके अन्तर्गत लाना एकदम असम्भव है।

और आज जब चीन-जापान-युद्धका चौथा वर्ष चल रहा है, इस अवसरपर चीनने जो कुछ किया, उसका सिंहावलोकन करनेपर स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि चीनने अद्भुत पराक्रम, अदम्य साहस और महान् क्षमता दिखायी। चीनने दिखाया कि वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे पिछड़े हुए राष्ट्र भी अटल निश्चय और निर्भीक साहस लेकर किस प्रकार बड़ेसे बड़े शत्रुका सामना कर सकते हैं। चीनने दिखलाया कि यदि देश संयुक्त मोर्चा लेकर आगे चले और विभिन्न दल अपने स्वार्थोंका पागलपन छोड़कर कदम उठायें, तो बड़ीसे बड़ी शक्तियां उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकतीं। इन तीन वर्षोंके भीतर जापानने जितनी हानि उठायी है, उसके मुकाबिलेमें लाभ उसका बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं रहा है और उधर चीनका साहस अब भी अटल और अमर दिखाई पड़ रहा है।

विगत सात जुलाईको युद्धकी तीसरी वर्षगांठ जापानमें मनायी गयी। जापानियोंने उस दिन अपनी वीरताका गुणगान किया और लुटेरोंकी भांति अपने लूटके मालोंको देख-देखकर खुशियां मनायीं। इम्पीरियल हेड क्वार्टरसे एक विवरण प्रतिदिन प्रकाशित किया गया था, जिसमें बताया गया कि बहुत बड़ी संख्यामें बन्दूकें, रायफल, टैङ्क और जङ्गी जहाज जापानियोंने चीनसे छीने। वक्तव्यमें यह भी कहा गया कि जापानी हवाई जहाजोंने चीनके ३९६ हवाई जहाज आकाशमें नष्ट किये और १६८ वायुयानोंको जमीनपर नष्ट किया। मञ्चूको और बहिर्मङ्गोलियाके सीमान्तपर जापानने रूसके १३४० वायुयान गिराये और ३० वायुयानोंको जमीनपर नष्ट किया। अनुमानतः चीनके २० लाख सैनिक मरे अथवा आत्मसमर्पण किया। जापानके केवल ८५ हजार आदमी मरे और उक्त सीमान्तपर १३७ तथा चीनमें ९७ वायुयान नष्ट हुए।

अगर वक्तव्यकी आधी बातें भी सच मान ली जायें, तो भी इनसे जापानका गौरव नहीं बढ़ता। इससे चीनकी ही सराहना करनी पड़ती है।

युद्ध और हिटलर

फ्रान्सके आत्मसमर्पणके बाद हिटलरने राइख्स्टागमें जो भाषण उस दिन दिया था, उसमें उसने युद्धकालका सिंहावलोकन करते हुए यह भी कहा—"कुछ हफ्ते पहले ही मि० चर्चिल कह चुके हैं कि वे युद्ध चाहते हैं। कुछ हफ्ते पहले ही यह कहकर कि हमारे सैनिक अड्डोंपर बम-वर्षा हो रही है, हमारे सैनिकोंपर बम बरसाना शुरू कर दिया है।

"मैंने अभी तक इसका बदला लेनेका हुक्म नहीं दिया है। लेकिन इसके मानी यह नहीं हैं कि हमारा जवाब भी बम बरसाना होगा। हम सब अच्छी तरह जानते हैं कि हमारे जवाबसे—जो एक दिन हम देंगे—ब्रिटेनके नागरिकोंकी बुरी दुर्गति होगी। मि० चर्चिलको यह विश्वास कर लेना चाहिए कि उस विशाल साम्राज्यका अन्त हो जायगा, जिसे नष्ट करनेका हमारा कुछ भी इरादा नहीं था। मैं इस बातको महसूस करता हूं कि अगर यह महायुद्ध जारी रहा, तो हममेंसे एकका अन्त हो जायगा। मि० चर्चिलका ख्याल है कि जर्मनीका अन्त होगा और मैं जानता हूं कि अन्त ब्रिटेनका होगा। मैं दयाकी प्रार्थना करनेवाले पराजितकी भांति नहीं, मैं विजेताकी हैसियतसे बोल रहा हूं, मुझे कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता कि युद्ध क्यों जारी रखा जाये। हमें उस बलिदानको बचाना चाहिए जिसमें लाखों आदमी बलि चढ़ जायेंगे। सम्भव है कि मि० चर्चिल मेरे इस वक्तव्य-पर यह कहकर ध्यान न दें कि मेरा वक्तव्य भय और विजयपर अविश्वासपर अवलम्बित है। ऐसी दशामें भविष्यमें होनेवाली घटनाओंसे मेरी आत्मामें ठेस न लगेगी।"

हिटलरके इस भाषणमें धमकी एवं समझौतेका जो सङ्केत है, ब्रिटिश सरकारकी ओरसे लार्ड हेलीफाक्सने इसका उत्तर दे दिया है। ब्रिटेनने युद्ध जारी रखनेके अपने सङ्कल्पको दुहराया है। अतः युद्ध अभी चलेगा और ब्रिटेनकी घोषणाओंके अनुसार नात्सीवादके अन्त तक चलेगा।

रूजवेल्ट फिर निर्वाचन-क्षेत्रमें

अमेरिकाके वर्तमान राष्ट्रपति रूजवेल्टको वहां प्रजा-तन्त्र दलने तीसरी बार उक्त पदके लिए मनोनीत किया है। उनके प्रतिद्वन्द्वी भी उतने मजबूत नहीं हैं और वाणिज्य-व्यवसायके प्रतिनिधियों द्वारा भी न्यू डीलमें काफी परि-वर्तन हो जानेके कारण उनके प्रबल विरोधकी गुञ्जायश नहीं है। आम तौरपर एक ही व्यक्ति लगातार अमेरिकाका प्रेसिडेण्ट तीसरी बार नहीं चुना जाता; पर मि० रूजवेल्टका विशाल बहुमतसे चुना जाना निश्चित है। मित्र-शक्तियोंके लिए यह शुभ लक्षण है। नात्सियोंके लिए यह निर्वाचन निराशा-जनक है।





पूर्ण स्वाधीनताकी घोषणा

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीका जो महत्त्वपूर्ण अधिवेशन विगत २७-२८ जुलाईको पूनामें हुआ, उसने ८ जुलाईको दिल्लीमें कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी द्वारा स्वीकृत प्रस्तावपर अपनी स्वीकृति दी। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सामने यह एक महत्त्वपूर्ण विषय था। दिल्लीमें होनेवाली वर्किङ्ग कमेटीकी बैठक तथा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकके बीचके सप्ताहोंकी अवधिके भीतर प्रस्तावोंपर होनेवाली प्रतिक्रियायें स्पष्ट हुई हैं, अतः सदस्योंके सामने लोकमत स्पष्ट रहा है और जैसा कि श्री राजगोपालाचार्य तथा सरदार पटेलने अपनी वक्तृताओंमें कहा था, उन्होंने उसका उपयोग भी किया है।

कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीके जिस प्रस्तावपर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने स्वीकृति दी है, वह यों है :—

"वर्किङ्ग कमेटीने उन गम्भीर घटनाओंपर ध्यान दिया है, जिनके कारण भारतीय राजनीतिक गतिरोधकी समस्या सुलझानेकी बात जरूरी महसूस होती है। और कांग्रेसकी स्थिति स्पष्ट करना वाञ्छनीय समझकर उसने अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओंको देखते हुए सारी परिस्थितिकी एक बार फिर जांच की है।

"पहलेकी अपेक्षा वर्किङ्ग कमेटीका अब और भी दृढ़ विश्वास हो गया है कि भारत तथा ब्रिटेनके सामने जो समस्यायें उपस्थित हैं, उन्हें सुलझानेका एकमात्र उपाय है ब्रिटेन द्वारा भारतकी पूर्ण स्वाधीनतापर स्वीकृति, और इसलिए उसकी रायमें इसकी तत्काल स्पष्ट घोषणा हो जानी चाहिए और इसे क्रियात्मक रूप देनेके लिए केन्द्रमें एक अस्थायी राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना की जाय, जो यद्यपि अस्थायी, पर केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद्के समस्त निर्वाचित सदस्योंकी विश्वासपात्र हो और जिसे प्रान्तोंकी जिम्मेदार सरकारका अधिकसे अधिक सहयोग प्राप्त हो।

"वर्किङ्ग कमेटीकी रायमें जब तक ऐसी घोषणा नहीं हो जाती और इसके अनुरूप जब तक ऐसी राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना अविलम्ब नहीं हो जाती, तब तक सुरक्षाके लिए देशकी मौलिक एवं नैतिक शक्तियोंको सङ्गठित करनेके सारे प्रयत्न किसी तरह भी स्वेच्छापूर्वक अथवा स्वतन्त्र देशके रूपमें नहीं हो सकते और इसलिए वे प्रभावशाली नहीं होंगे।

"वर्किङ्ग कमेटी घोषणा करती है कि अगर ये व्यवस्थायें कर दी जायें, तो देशकी सुरक्षाके लिए वर्किङ्ग कमेटी कांग्रेसको पूरी शक्ति लगाकर काम करनेके लिए तैयार कर देगी।"

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने इस प्रस्तावपर बहुमतसे अपनी स्वीकृति दी है, और प्रस्ताव कुछ ऐसा है, जिसपर सभी एक राय हो भी नहीं सकते थे। हमारा यह भी विश्वास है कि ऐसे लोगोंका भी अभाव नहीं होगा, जो इस प्रस्तावमें कांग्रेसका वह उच्चादर्श नहीं देखेंगे। अ० भा० कांग्रेस कमेटीके मतामतका रूप ही बहुत-सी बातें स्पष्ट करता है। २७ जुलाईको उसकी बैठकमें अ० भा० कांग्रेस कमेटीके कुल ३८७ सदस्योंमेंसे केवल १८२ उपस्थित थे। इनमें ४० तटस्थ रहे, जिनमें सर्वश्री राजेन्द्रप्रसाद, जवाहरलाल नेहरू तथा शङ्करराव देव भी थे। प्रस्तावके पक्षमें ९९ और विपक्षमें ४७ वोट आये। अगर इन्होंने प्रस्तावका विरोध

किया होता, तो प्रस्ताव मुश्किलसे आठ वोटोंकी अधिकतासे पास होता। यह स्थिति स्पष्ट करती है कि प्रस्तावके सम्बन्धमें सदस्योंकी आन्तरिक भावनायें क्या हैं। इस सम्बन्धमें दो बातोंपर और भी ध्यान देना चाहिए। गांधीजीने इस बातकी अपील की थी कि जो लोग वर्किंग कमेटीके प्रस्तावसे सहमत न हों, वे उसके मार्गमें बाधा न डालें; और दूसरी बात यह है कि पूनामें जो बैठक हुई है, उसमें कुल सदस्योंके आधे भी उपस्थित न थे। कुल ३८७ सदस्योंमेंसे—अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके दफ्तरमें जांचसे जो पता लगा, उसके अनुसार—१८२ उपस्थित थे, इसका अर्थ यह हुआ कि २०५ सदस्य अनुपस्थित रहे।

प्रस्तावमें विधान-निर्माण-परिषद्की मांग छोड़ दी गयी है और अभी जो व्यवस्थापिका परिषद् है, राष्ट्रीय सरकारको उसीका विश्वास-भाजन होना चाहिए। अगर मांग स्वीकृत हो जाय, तो स्वभावतः प्रान्तोंमें फिर उत्तरदायित्वपूर्ण मन्त्रिमण्डलोंकी स्थापना हो जायेगी।

प्रस्तावके सम्बन्धमें दो बातें और भी ध्यान देने योग्य हैं। समाजवादियों और साम्यवादियों द्वारा इसका विरोध किया जाना तथा इस बातका बार-बार उल्लेख, कि ब्रिटेनको वर्तमान युद्धमें सहायता न दी जाये। दूसरी बात है श्री जवाहरलाल नेहरूका वह प्रश्न, जिसमें उन्होंने श्री राजगोपालाचार्यसे यह स्पष्ट करनेके लिए पूछा कि क्या यह प्रस्ताव अनिश्चित काल तक यों ही पड़ा रहेगा अथवा दो-तीन सप्ताहों तक ही ब्रिटिश सरकारके सन्तोषजनक उत्तरकी प्रतीक्षा की जाये। श्री राजगोपालाचार्यने कहा कि "मैं पण्डित जवाहरलाल नेहरूसे सहमत हूं कि इसे अनिश्चित काल तक यों ही पड़ा नहीं रहने दिया जा सकता। लेकिन इसके साथ ही मैं समयकी कोई मियाद भी निर्धारित करनेके पक्षमें नहीं हूं।"

ये सारी बातें स्पष्ट करती हैं कि प्रस्तावको लेकर सदस्योंमें कैसी प्रतिक्रिया हुई है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियां जैसी होती गयी हैं, सम्भवतः उनकी 'एक्सपिडियेन्सी'—सामयिक आवश्यकता—ही इस प्रस्तावका मूल आधार है। कांग्रेसका यह एक नया प्रयोग है और ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ खास व्यक्ति इस प्रयोगमें इतना विश्वास रखते हैं कि उन्हें दूसरे लोग अवसर देना चाहते हैं। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि बहुत लम्बी-चौड़ी बातोंका समय यह नहीं है और जो लोग रामगढ़ कांग्रेसकी स्थितिसे वर्तमान स्थितिमें कोई परिवर्तन नहीं देखते, उनसे तो कुछ कहना ही कठिन है; पर देशको इस समय वास्तविकताओंका सामना करना पड़ रहा है, अतः कांग्रेसके, एक वर्गका व्यवहारवाद अगर इस रूपमें भी सफल हो सके, तो प्रयोगका यह अवसर बहुत अवाञ्छनीय नहीं समझा जा सकता, बशर्ते कि हम देशके लक्ष्यको सामने रखें और उस लक्ष्यके अनुकूल अपनेको बना सकें।

पुनर्जन्मको आशामें आत्मघात

उक्त प्रस्तावके विषयमें बोलते हुए आचार्य नरेन्द्रदेवने कहा कि इसको स्वीकार करनेसे हमारा गौरव नष्ट होगा, और यह तो ऐसा हुआ, जैसे पुनर्जन्मकी आशामें आत्मघात कर लेना। ब्रिटिश सरकारका भारतीय प्रश्नपर जो रुख अब तक स्पष्ट हुआ है और जिसपर भारत-सचिव मि० अमेरीके इस वक्तव्यसे रोशनी पड़ती है कि उन्हें कोई वक्तव्य नहीं देना है, क्योंकि भारतमें कोई गम्भीर परिस्थिति नहीं है; उससे देशके सचेतन लोकमतको जो निराशा हुई है, वह आचार्य नरेन्द्रदेवके शब्दोंमें ध्वनित हो उठी है। श्री जवाहरलालकी दो-तीन सप्ताहोंकी अवधिको लेकर जो स्पष्टीकरण करनेकी भावना थी, उसका आधार भी ब्रिटेनका यह रुख है। लेकिन यह दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जायगा, यदि कांग्रेसके इस सदिच्छापूर्ण रुखको भी ब्रिटिश कूटनीतिने उसकी कमजोरी समझा और इसपर ध्यान देनेकी जरूरत न समझी।

देशकी सुरक्षा और अहिंसा

विगत जूनमें गांधीजीको जिम्मेदारीसे मुक्त करते हुए कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीने एक प्रस्ताव पास करते हुए देशकी स्वाधीनताके लिए अहिंसात्मक साधन अपनानेपर जोर दिया था; पर देशकी सुरक्षा भी अहिंसासे होगी, इसके प्रतिकूल उसने मत प्रकट किया था। पिछले दिनों अ० भा० कांग्रेस कमेटीने इसपर भी अपनी स्वीकृति दी है।

इस सम्बन्धमें हमारा निश्चित मत रहा है और हमने स्पष्टतापूर्वक इन पृष्ठोंमें उन्हें लिखनेका साहस किया है। इसलिए अ० भा० कांग्रेस कमेटी द्वारा कांग्रेसकी इस नीतिपर

स्वीकृति मिलनेसे हमें स्वभावतः प्रसन्नता हुई है। पिछली संख्यामें 'गांधीजी जिम्मेदारीसे मुक्त' शीर्षकके नीचे इस विषयपर हम स्पष्ट और विस्तृत रूपसे लिख चुके हैं। अतः उन बातोंको दुहराना अनावश्यक है।

नात्सीवादका फ्रेञ्च संस्करण

जुलाई १९८९ और जुलाई १९४०—दोनोंमें कितना अन्तर है? पहलेने फ्रान्समें प्रजातन्त्रकी रूपरेखा देखी, जिसने संसारके सभी सभ्य देशोंको प्रभावित किया है और आज १९४० की जुलाईमें वह मार्शल पेतांके नेतृत्वमें पतित वेसाइल-को पुनः उठाकर जीवित करना चाहता है। विगत ११ जुलाई-को फ्रान्सकी दोनों व्यवस्थापिका सभाओंने सम्मिलित बैठकमें फ्रान्सके लिए जिस विधानकी रूपरेखापर स्वीकृति दी है, वह नात्सीवादके फ्रेञ्च संस्करणके अतिरिक्त और क्या है? फ्रान्सने एक विदेशी पशुबलके सामने आत्म-समर्पण किया, यह संसारकी दयनीय घटना थी; पर विदेशी पशु-बलसे बढ़कर प्रजातन्त्रके इन फ्रान्सीसी हत्यारोंने फ्रान्सकी क्षति की है, जिन्होंने विदेशी नात्सियोंके सङ्केतपर फ्रान्सकी जनताके लिए नये विधानके रूपमें भीषण नाग-पाश तैयार किया है। आश्चर्य-सा लगता है कि अपनी परा-जयके बाद ही—जब कि अभी युद्ध चल ही रहा है और जब कि ब्रिटेन नात्सीवादके अन्त तक युद्ध करनेके निश्चय-पर अटल है और फ्रान्सके पुनरुद्धारके लक्ष्यको उसने कभी छोड़ा नहीं है—फ्रान्सने एकदम तानाशाही स्थापित करनेका निश्चय कैसे कर लिया! नवीन विधानके अनुसार मार्शल पेतांके १२ मन्त्रियोंमें एक मो० लावा भी है, जिसे इटली-अबसीनिया-युद्धके समय अबसीनियाके बंटवारेकी योजना बनानेके कारण पदच्युत कर दिया गया था। पेतांके बाद लावा फ्रान्सका तानाशाह होगा।

और इसके लिए राहकी सफाई शुरू हो गयी है। मोशिये दलादिये और मोशिये रेनों तथा मो० ब्लुम, मो० मैण्डेल और जनरल गेमलिनके साथ ही पिछली सरकारके कई व्यक्तियोंपर देशद्रोहका मामला चल रहा है। यह रेनों वही व्यक्ति है, जिसने मार्शलको फ्रान्स बुलाकर सारी फ्रान्सीसी शक्ति उसके हाथमें सुपुर्द कर दी थी! जर्मनीके नात्सी हथकण्डोंके ये दो पृष्ठ हैं, जिन्हें मार्शलने अपने विदेशी मालिकोंसे उधार लिया है। नात्सियोंकी रक्त-पिपासाके लिए इन फ्रान्सीसियोंका बलिदान किया जा रहा है! जर्मन प्रेस इस बातपर विश्वास नहीं करना चाहता है कि फ्रान्स यह प्रयत्न ईमानदारीके साथ कर रहा है। अतः फ्रान्सके वर्तमान विधाता यह सब करके ईमानदारीका सबूत दे रहे हैं!

फ्रान्सका यह पतन! पर अभी तो पतनका क्रम जारी ही है। नात्सियोंकी दृष्टि अभी उपनिवेशोंपर है। सिन्योर ग्यादा कहते हैं कि फ्रान्सको यूरोपीय शान्तिके लिए अधिकसे अधिक त्याग करना चाहिए। मार्शल पेतां फ्रान्सका नात्सी संस्करण कर उसे हिटलरके चरणोंमें चढ़ा देनेके लिए तुले बैठे हैं!

बाल्टिक राज्य सोवियटमें

इस्थोनिया, लटविया और लिथुआनिया—तीनों बाल्टिक राज्योंने सोवियट शासन-प्रणाली स्थापित कर ली और पहली अगस्तको सुप्रीम सोवियटकी बैठक होनेपर उन्हें सोवियट रूसमें नियमानुकूल मिला लिया जायगा। साल-भर पहले इन राज्योंको लेकर तरह-तरहकी अटकलें लगायी जा रही थीं, जब कि यह उस समय भी निश्चित हो गया था कि रूसने इनके साथ उस समय जो सन्धियां की थीं, उनका उद्देश्य बाल्टिक अञ्चलमें प्रभाव-विस्तार करना था। पर अन्तर्राष्ट्रीय घटनायें जिस तेजीसे यूरोपमें घटती गयी हैं, उनमें बाल्टिक राज्योंके लिए अपनी स्वाधीनताकी रक्षाका प्रश्न जटिल हो उठा था। मध्य यूरोपमें धुरी-शक्तियोंके संयुक्त मोर्चेके सामने उक्त राज्योंकी तटस्थता अथवा स्वाधीनता असम्भव थी। नारवेके भाग्यने उधर उक्त राज्योंके सामने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि रूस और जर्मनीमें क्या अन्तर है, अतः बाल्टिक राज्यों-ने एक प्रकारसे आत्म-समर्पण कर दिया। उनका यह आत्म-समर्पण रूसकी शक्तिके सामने पराजयकी भावनासे ही नहीं किया गया है, जर्मनीके रणोन्मादके कारण भी।

रूसके सामने बाल्टिक राज्योंके इस आत्म-समर्पणने मध्य यूरोपके सारे कूटनीतिक वातावरणको बदल दिया है। १९२० में फ्रान्स और ब्रिटेनने जिन कारणोंसे इनकी सृष्टि की थी, उनका भी रूप मध्य यूरोपमें जर्मनीके प्रभावके कारण बदल चुका था, इसीलिए रूसके इस प्रभाव-विस्तारसे भी

ब्रिटेन उतना चिन्तित नहीं मालूम होता।

और इसका कारण स्पष्ट है। बाल्टिक राज्योंपर रूसका प्रभाव हो जानेसे जर्मनीके लिए उधर कोई अवसर नहीं रह गया, इतना ही नहीं, नारवे और डेनमार्कपर जर्मनीका नियन्त्रण होनेपर भी समस्त स्कैण्डीनेवियापर रूसका प्रभाव रहेगा और इस प्रकार रूस और जर्मनी एक-दूसरेके सच्चे विश्वास-पात्र न हो सकेंगे। जिस पोलैण्डको रूस-जर्मन युद्धका एक क्षेत्र समझा जाता था और जिसको लेकर पहले युद्ध हो भी चुके थे, उसका महत्त्व आज आधे पोलैण्ड, फिनलैण्ड तथा बाल्टिक राज्योंपर रूसका प्रभुत्व हो जानेसे कितना बढ़ जाता है। इसकी प्रतिक्रिया बाल्कन राज्योंपर भी होती है। उधरसे रूसके एकदम निश्चिन्त हो जानेका अर्थ यह होता है कि बाल्कन राज्योंको लेकर रूसकी वैदेशिक नीति अबाध गतिसे सञ्चालित की जा सके और वास्तवमें पिछले कुछ दिनोंसे ऐसा ही हो भी रहा है। बेसरबिया और उत्तरी बुकोविना वह ले चुका है और उधर टर्की और रूसमें भी कूटनीतिक दांवपेंच चल रहे हैं, जिन्हें जर्मनोंने प्रोत्साहित करनेका भी प्रबन्ध किया है। जार-कालीन उक्त अञ्चलोंको बिना युद्धके सोवियटने पुनः ले लिया है। स्टैलिनको आज इसीलिए महत्त्वाकांक्षी साम्राज्यवादी कहा जा रहा है; पर रूसने विश्व-क्रान्ति कर सर्वहाराका गणतन्त्र स्थापित करनेकी जो नीति अपनायी थी, पोलैण्ड, फिनलैण्ड तथा बाल्टिक राज्योंमें उसने उसे ही कार्यान्वित किया है, रूसके हिमायती यह कहते हैं। यह प्रश्न सामरिक वातावरणके बाद स्पष्ट होगा कि उक्त राज्योंकी सारी आन्तरिक एवं वैदेशिक नीतिमें आमूल परिवर्तन कर सोवियटमें उन्हें सम्मिलित करनेमें रूसने किस अंश तक अपनी विचार-धाराका प्रचार चाहा है और किस अंश तक उन्हें अधिकारमें करनेमें आत्मरक्षाका लक्ष्य था। पर इतना तो अभी स्पष्ट है कि उसके इन कार्योंने मध्य यूरोपकी कुञ्जी उसके हाथमें दे दी है और जर्मनी तथा इटलीके मार्गमें इसका यह प्रभाव-विस्तार हिमालयकी तरह आकर खड़ा हो गया है। वर्तमान युद्धमें रूसके इन कार्योंकी प्रतिक्रिया ब्रिटेनके पक्षमें होनी चाहिए, बशर्ते कि बाल्कन देशोंमें होनेवाले कूटनीतिक युद्धके परिणाम ब्रिटेनके प्रतिकूल न चले जायें; क्योंकि रूमानियाका रुख एकदम परिवर्तित हो गया है और मण्ट्रियोका भविष्य क्या होगा, इसके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें अभी स्पष्ट नहीं हो सकी हैं। काला सागर और भूमध्य सागरमें रूसी बेड़ेके प्रवेशकी भी कल्पना आज असम्भव नहीं समझी जाती और निकट पूर्वकी स्थिति भी कुछ कम सम्भावनाओंसे भरी नहीं है।

राष्ट्र-सङ्घ

विगत महायुद्धके पश्चात् स्थापित होनेवाली व्यवस्थाओंका एक-एक करके अन्त होता गया है और अब राष्ट्र-सङ्घका भी अन्त होने चला! मो० एवनलने पेतां सरकारकी आज्ञासे राष्ट्र-सङ्घके मन्त्रित्वसे इस्तीफा दिया है और अब खबर है कि फ्रान्स राष्ट्र-सङ्घसे इस्तीफा दे देगा। जर्मनी, जापान, इटली, स्पेन तथा अनेक राष्ट्रोंके सङ्घसे अलग हो जानेपर फ्रान्स और ब्रिटेनका ही वह सङ्घ रह गया था, और इस युद्धने फ्रान्सको भी उससे अलग कर फिलहाल उसकी हत्या कर डाली है। और अब धुरी शक्तियों द्वारा होनेवाले इस प्रकारके प्रयत्नोंका भी समाचार मिल रहा है कि स्विजरलैण्ड सङ्घको जेनेवासे निकाल-बाहर करे।

राष्ट्र-सङ्घने मञ्चूरिया, चीन, अबसीनिया, स्पेन, आस्ट्रिया, जेकोस्लोवेकिया तथा दूसरे कितने ही अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वके प्रश्नोंपर जो कायरता एवं मूर्खतापूर्ण नीति दिखायी थी, उसका परिणाम आज एक डरावनी विभीषिकाके रूपमें दिखाई पड़ा है और अन्तमें उसने अपने ही कर्मोंसे आत्मघात कर लिया, यह भी कहना क्या अनुचित होगा? पर राष्ट्र-सङ्घकी यह दशा निश्चय ही शोचनीय कही जायगी; क्योंकि उसके लक्ष्य और उद्देश्यसे किसीको आपत्ति नहीं हो सकती।

बाल्कन राज्योंकी उलझन

यूरोपके नक्शेमें परिवर्तन लानेवाली कुछ लकीरें बाल्कनसे उठ रही हैं। रूमानियामें रूस और जर्मनीके स्वार्थ टकरा रहे हैं और हिटलरने यदि ब्रिटेनके साथ इतना भीषण युद्ध न ठान लिया होता, तो रूस और जर्मनी सम्भवतः इतनी शान्त प्रगतिसे न चल सकते थे। बेसरबिया तथा उत्तरी बुकोविना रूस ले चुका है और उत्तर तथा पश्चिम मध्य यूरोपमें वह अपनी स्थिति इतनी सुदृढ़ कर चुका है कि बाल्कनमें जर्मनी इस समय रूसको असन्तुष्ट करनेका

खतरा नहीं उठाना चाहता, यद्यपि रूसकी गतिविधिसे वह तथा इटली दोनों असन्तुष्ट हैं।

लेकिन ऊपरकी इस शान्तिके भीतर तीनों राष्ट्रोंकी कूटनीतियोंके युद्ध चल रहे हैं। बलगेरिया और हंगरी इस युद्धमें आगे किये गये हैं। रूमानिया रूसके हाथमें पूरा-पूरा चला जाय, इसके पहले हंगरी अपना दावा रखकर हिटलरकी कृपासे उसे पूरा करा लेना चाहता है। बलगेरियाकी इच्छायें भी स्पष्ट हैं। और उधर इटली है, जो पूर्वी यूरोपमें अपने विस्तारके मार्गमें कोई बाधा नहीं आने देना चाहता। इसलिए यदि जर्मनीके कारण रूस और इटलीका सङ्घर्ष न बचा रह सके, तो बाल्कनकी स्थिति बड़ी विकट हो जायगी; क्योंकि जैसा कि मि० बटलरने कहा है, "दोनों देशोंकी प्रतिद्वन्द्वितायें पुरानी हैं और इटली तथा रूस दोनोंके बाल्कन सम्बन्धी अपने-अपने दृष्टिकोण हैं।" इस सम्बन्धमें इटैलियन पत्रोंने कितनी ही बार इस युद्ध-कालमें भी अपना मत स्पष्ट किया है।

पर जर्मनी मध्य यूरोपमें जिस प्रकार अपना प्रभुत्व स्थापित करनेमें समर्थ हुआ है, वह रूसके लिए—जिसे कुचल देनेके लिए नात्सियोंकी धमकियां पुरानी नहीं पड़ी हैं—कभी प्रसन्नताका कारण नहीं रहा है। 'एकानोमिस्ट' ने पिछले दिनों लिखा था:—"प्रत्येक जर्मन विजयपर रोममें लोगोंके आनन्दातिरेककी सीमा नहीं रह जाती; पर मास्कोमें इससे उदासी छा जाती है। मास्कोके पत्रोंमें इस बातको प्रमाणित करनेके प्रयत्न किये जाते हैं कि मित्र-शक्तियोंके साधन अपार हैं और उनकी खास शक्तियां ज्योंकी त्यों बनी हुई हैं।......मास्कोके पत्र चर्चिलके शासनकी प्रशंसा करते हैं।"

वास्तविक तथ्य यह है कि बाल्कनमें हिटलर और स्टैलिनके सङ्घर्षके साथ-साथ दोनोंमें विश्वास न करनेके भी काफी आधार हैं। इसलिए सोवियट रूस कभी न चाहेगा कि जर्मनी समस्त यूरोपका स्वामी बनकर रहे; क्योंकि पोलैण्ड, फिनलैण्ड, रूमानिया और युक्रेन—ये सब ऐसे स्थल हैं, जो किसी समय भी विजेता जर्मनी और रूसमें युद्धके कारण हो सकते हैं। उधर हिटलर समझता है कि वर्तमान युद्धने रूसके सामने एक सुन्दर अवसर ला दिया है और बड़ी सतर्कतापूर्वक रूस उसका उपयोग करता चल रहा है। जर्मनी जब मित्र-शक्तियोंसे लड़ रहा है, तब रूस यूरोपके महत्त्वपूर्ण स्थानोंको अपने अधिकारमें करता जा रहा है।

बाल्कन देशों, रूमानियामें ब्रिटेनके भी हित हैं। कुछ प्रत्यक्ष और कुछ अप्रत्यक्ष। स्विजरलैण्ड, स्वीडेनकी लोहेकी खानें और रूमानियाका तैल तथा हंगरी, बलगेरिया और दूसरे देशोंकी फसल जर्मनीके हाथ आ जाती है, तो ब्रिटेनका सारेका सारा जहाजी घेरा—ब्लाकेड—अपने आप मर जाता है, और जर्मनीको दीर्घकालीन युद्धके लिए साधन मिल जाते हैं। टर्कीका रुख ब्रिटेनके लिए अस्पष्ट है; पर जर्मनीके साथ उसकी व्यापारिक सन्धि हुई है और रूसके साथ उसके भाव विरोधी रूपमें नहीं हो सके हैं।

ये सारी परिस्थितियां बाल्कनकी समस्याको जटिल बना देती हैं और इस समस्याका समाधान चाहे जिस रूपमें हो, यूरोपके नक्शेमें परिवर्तन लानेवाली वहांसे जो लकीरें उठ रही हैं, वे वर्तमान युद्धके लिए भी काफी सम्भावनाओंसे भरी हुई हैं। अगले दिनोंमें बाल्कनकी राजनीति यूरोपीय राजनीतिकी प्रधान समस्या होगी।

कांग्रेस और लीग

मि० मुहम्मद अली जिन्ना भारतीय राजनीतिमें एक अनोखा व्यक्तित्व रखते हैं। कभी हिन्दू-मुसलिम एकताके सन्देशवाहक-के रूपमें दिखाई पड़े हैं, कभी मुसलिम लीगको घृणाकी नजरसे देखते हैं, क्योंकि वह साम्प्रदायिक संस्था है, कभी सरकारको कोसते हैं और कभी व्यवस्थापिका परिषद्में सरकारको उनके ही सहारे अपनी विजयका भरोसा होता है, कभी कांग्रेसके साथ मत देकर सरकारको हरा रहे हैं, तो कभी कांग्रेससे देशकी मुक्तिके लिए खुदासे दुआयें मांग रहे हैं। अपने कीमती अंगरेजी लिबासमें यह अनोखा राजनीतिज्ञ ठेठ मुसलमानोंकी सभामें अंगरेजीमें मुसलिम संस्कृतिकी रक्षाके लिए प्रोत्साहन देता है। अभी भारतकी राजनीतिक समस्या सुलझानेके लिए वायसराय महोदयसे मिल रहे हैं, तो दूसरे क्षण तब तक सारी व्यवस्थाओंको असम्भव बताते हैं, जब तक देश हिन्दू-मुसलिम भागोंमें विभाजित नहीं हो जाता। भारतीय राजनीतिका इतिहासकार इस अनोखे व्यक्तित्व-पर हैरान हो जायगा और आगे आनेवाली पीढ़ियां पहचान न सकेंगी कि ये एक ही जिन्नाके समय-समयपर विभिन्न रूप

हैं अथवा सब अलग-अलग रहे हैं। क्योंकि एकका दूसरेसे कोई सामञ्जस्य नहीं।

और ऐसा है यह व्यक्ति, जिसके सञ्चालनमें आज मुसलिमलीग है और इस लीगके प्रेसिडेण्टकी हैसियतसे यह अपने ही धर्मके एक ऐसे व्यक्तिको अशिष्ट भाषामें फटकारते हैं, जिसे समस्त मुसलिम जगत् अपने धर्मका एक महान् विद्वान् मानता है और जिसका एकमात्र अपराध यह है कि वह एक ऐसी राजनीतिक संस्थाके अध्यक्ष-पदपर है, जिसके दरवाजे सभी धर्मों और सभी वर्गोंके लिए खुले हुए हैं और जिसके अनुयायियोंकी संख्या कई लाख है और इसमें मुसलमानोंकी संख्या उस संस्थासे बहुत अधिक है, जिसके मि० जिन्ना प्रेसिडेण्ट हैं। और मि० जिन्ना द्वारा मौलाना आजादका अपमान उस प्रयत्नके लिए होता है, जिसका उद्देश्य है दोनों संस्थायें मिलकर चलें, हिन्दू-मुसलमान भाई-भाईके समान होकर रहें। यह उद्देश्य था मौलाना आजादके उस विश्वसनीय तारका, जिसका उत्तर मि० जिन्नाने सार्वजनिक रूपसे मौलाना आजादके अपमानके रूपमें दिया और जिसने लीग और कांग्रेसको एक-दूसरेसे काफी दूर फेंक दिया। हिन्दुस्तानकी ये दोनों जातियां तो एक होकर रहेंगी, इसमें सन्देह नहीं; पर भावी इतिहासकार मि० जिन्नाकी ऐसी हरकतोंके बारेमें क्या लिखेंगे, यह भी कभी उन्होंने शान्त होकर सोचा ? मि० जिन्ना मनस्तत्त्व-विश्लेषणके लिए आज एक अनोखी दिलचस्पीके विषय हो रहे हैं।

हालवेलका स्मृति-स्तम्भ

'अन्त भला सो भला' कहावत है और इसके अनुसार कालकोठरीकी घटनाके स्मारक-स्वरूप कलकत्तेमें जिस 'हालवेल मानूमेण्ट' की स्थापना की गयी थी, उसे हटानेका अन्तिम निर्णय बङ्गाल-सरकारने किया और उस दिन प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभामें उसकी घोषणा भी कर दी, यह सन्तोषकी बात है। मद्रासमें कांग्रेसी सरकारकी स्थापना होते ही ऐसे ही कर्नल नीलकी मूर्ति हटा दी गयी थी। अन्तर यह था कि मद्रास-सरकारने तत्काल काम किया, और बङ्गाल-सरकारके लिए लोकमतको इतना जागृत और एक अंश तक उत्तेजित भी कुछ लोगोंको करना पड़ा। प्रसन्नताकी बात है कि बङ्गाल-सरकारने एसेम्बलीमें तत्सम्बन्धी घोषणा करके मामलेको और बढ़ने नहीं दिया।

उड़ीसामें विश्वासघातका प्रयत्न

मध्यप्रान्तमें किसी समय डा० खरेने कांग्रेसके प्रति विश्वासघात करनेकी जैसी उत्साह-भरी वीरताका परिचय दिया था, इतने दिनोंके बाद उड़ीसामें पं० गोदावरीश मिश्रने उसकी पुनरावृत्ति करनी चाही है। वे कुछ और कांग्रेसमैनोंको लेकर राजा खलीरकोटके साथ मिलकर उड़ीसामें संयुक्त मन्त्रि-मण्डलका स्वप्न देख रहे हैं। एक ओर जब कांग्रेस पूर्ण स्वाधीनताकी मांग दुहरा रही है और कांग्रेसके सामने सङ्गठनका महत्त्वपूर्ण कार्य अनेक कारणोंसे उपस्थित हो गया है तब पण्डित गोदावरीश मिश्र जैसे लोग मन्त्रि-मण्डल बनानेकी धुनमें उस संस्थाके प्रति विद्रोह कर उसके साथ विश्वासघात करनेपर तुले हैं, जिसके कारण ही उनका सारा राजनीतिक अस्तित्व बना है। मिश्रजीने डा० खरेका पदानुसरण करना चाहा है; पर और भी भद्दे तरीकेसे। पर कांग्रेसने इस विष-बीजको पहलेसे ही उखाड़ फेंका है।



'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट कलकत्तासे पं० मातासेवक पाठक द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

१ ली अक्टूबर
१९४० को

सचित्र

मासिक
"विश्वमित्र"
का

युद्धांक

प्रकाशित होगा

३ री सितम्बर १९३९ को संसारका शान्त वातावरण रणभेरियोंसे गूंज उठा। डिक्टेटरोंकी महत्त्वाकांक्षाओंके सामने शान्ति, प्रेम और स्वाधीनताका एक-एककर खून होने लगा। उनकी राक्षसी प्यासकी तृप्ति लाखों नर-नारियोंके खूनसे होने लगी। छोटे-छोटे साम्राज्योंके अधिकारियोंके सिंहासन डोल गये। कलके शासक—आज पथके भिखारी—शरणाकांक्षी हैं। नवीन आविष्कारोंने युद्धकी भीषणता बढ़ायी। युवक और युवतियां तो उठीं ही, वृद्ध और वृद्धाओंने भी कमर कस ली। एकके बाद एक "गुप्तास्त्र" संसारके सामने आये। जासूसोंके जाल बिछने लगे। उत्ताल तरङ्ग मारते हुए समुद्रपर टारपीडो, सबमेरिन, सुरङ्ग, ध्वंसक। पृथ्वीको रौंदते हुए टैङ्क, मशीनगन, आर्मर्डकार, नवीन शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित फौज। वायुमण्डलको कपाते हुए विशाल वायुयान, एयरक्रैफ्ट और जान हथेलीपर लिये पैराशूटसे कूदते हुए सैनिक। संसारके व्यवसायमें उथल-पुथल। शेयर मार्केट, स्टाक एक्स्चेञ्ज, चांदी, सोना, लोहा आदिके बाजारमें भूकम्प। युद्धरत देशोंके शरणार्थियों एवं बच्चोंकी रक्षाका प्रश्न। समाचार-पत्र, सेन्सर, बैङ्क एवं फिल्म कम्पनियोंके अद्भुत कार्यकलाप। छोटे-छोटे साम्राज्योंका अङ्गभङ्ग। युद्धकैम्पसे प्रेमिकाओंके नाम पत्र। वीरता, करुणा, हास्य और देश-प्रेमकी अद्भुत कहानियां। देशके समस्त धन-जनपर सरकारी कब्जा। वर्तमान युद्धमें चुपचाप चलनेवाली अनेक लोमहर्षक घटनायें। विगत महासमरका भीषण हत्याकाण्ड। संसारका कायापलट करनेवाले कुछ विद्रोह और युद्ध।

आदि

विषयोंपर प्रकाश डालता हुआ

विगत और वर्तमान महासमरके अनमोल चित्रोंसे सुसज्जित

हिन्दी पत्र-जगत्‌की स्थायी सामग्री

सचित्र मासिक

विश्वमित्र



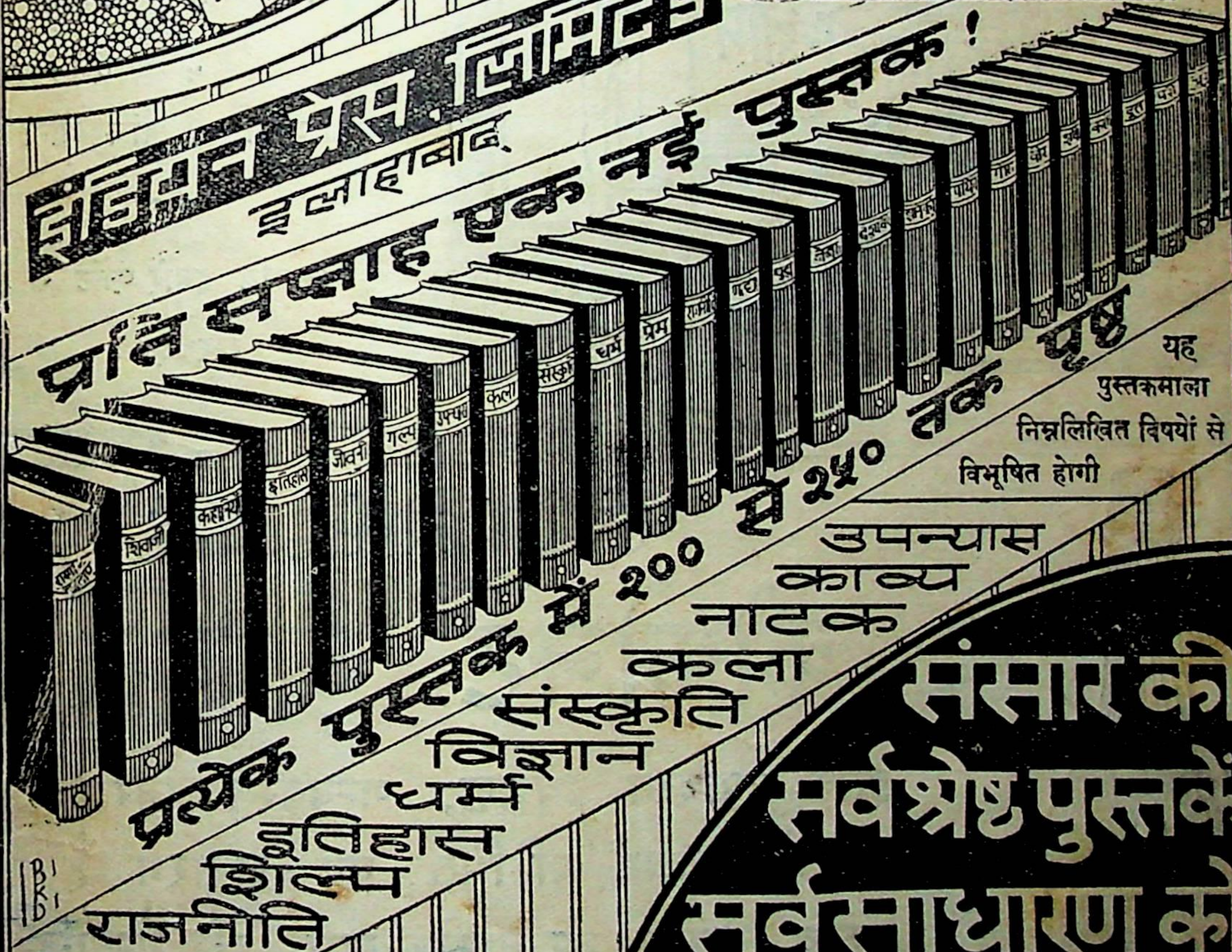
सितम्बर
१९४०

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।।=)

विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

हिन्दी-साहित्य में अनोखी बात

उत्कृष्ट और सामयिक पुस्तकों की एक सिरीज़



संसार की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकें सर्वसाधारण को आश्चर्यजनक सस्ते मूल्य में सुलभ।

प्रत्येक पुस्तक केवल आठ आने में



मलेरियासे बचो

जूड़ी-ताप (जूड़ी बुखार व ताप तिल्ली की दवा) यह मलेरिया ज्वरके लिये रामबाण है। ५० वर्षसे अधिक से लाखों रोगी इसके द्वारा अच्छे हुए हैं। प्रदर्शनियोंने प्रशंसापत्र व पदक देकर इसके अचूक गुणोंकी प्रशंसा की है।



मूल्य—४ आउन्स की बड़ी शीशी ||≡) पन्द्रह आना।
२ आउन्स की छोटी शीशी ||) आठ आना।





जूड़ी-ताप



खानेके बाद

डाबर (डा० एस० के० बर्म्मन) लि०
विभाग नं० २ पो० बक्स न० ५५४ कलकत्ता

जूड़ी-ताप

बहुत गाढ़ा (Consentrated) रहता है और व्यर्थ के लिये पानी या अन्य अनावश्यक तरल पदार्थ मिलाकर दिखावटके लिये बड़ी २ शीशियोंमें नहीं बेचा जाता।

४ औंसकी शीशीमें १६ पूरी मात्रा
२ „ „ ८ „ „
१ „ „ ४ „ „

इसका मूल्य।-) पांच आना है।

——

स्थानीय हमारे एजेंट से खरीदिये।



लोटस सेन्टेड

कोकोनट आयल

इसके उपादान विशुद्ध, गन्धवस्तु निरापद, गन्धकी मात्रा परिमित एवं मनोरम है। सुरुचि सम्पन्न नर-नारी सभी इस गन्धादि वासित तेलका व्यवहार कर तृप्त होंगे।

सभी बड़ी दूकानोंमें मिलता है।

बेंगल केमिकल

कलकत्ता : : बम्बई

नोट कर लीजिये—

	१ वर्ष	६ मास	३ मास
दैनिक (डांकसे)	१८)	१०)	६)
स्थानीय—	१५)	८)	५)
साप्ताहिक—	४)	२॥)	०
मासिक—	६)	३॥)	०
दैनिक बर्माके लिये	२५)	१४)	८)
साप्ताहिक—,,	७)	४)	०
मासिक — ,,	८)	५)	०

मैनेजर—विश्वमित्र

विषय-सूची



सम्पादक—
शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

सितम्बर, १९४० वर्ष ८ संख्या ९६ भाद्र, १९९७

उत्पीड़ित

दो तिनकोंका नीड़ हमारा।

दो दृग प्रहरी, दो नयनोंसे, कर लेते थे विनिमय सारा॥

हम दोनोंने दो पग बढ़कर,
उठा लिये, सहसा दो तिनके।
दो दिनको ही नीड़ बसाया,
साथी बनकर दो ही दिनके॥
सपनोंका आधार बना अब, दो प्राणोंका क्षीण सहारा॥
दो तिनकोंका...॥

दो आंसू दो आहें गहरी,
दो निःश्वास परस्पर गुनकर,
जीवनका इतिहास लिखा था,
दोनोंने दो अक्षर चुनकर॥
पढ़ लेते मन ही मन दोनों, रो उठता था जब मन हारा॥
दो तिनकोंका...॥

नित संयोग, विरहके दो पल,
करते अब सुख-दुखका लेखा।
ज्वार हृदयमें आता, बनती
मिट-मिटकर फिर धुंधली रेखा॥
कभी उमड़ आते घन काले, कभी वही 'एकाकी तारा'॥
दो तिनकोंका...॥

कभी विश्वकी निष्ठुर कृतिके,
आघातोंसे हिल जाता यह,
कभी किसी 'अज्ञात शक्ति' से,
पुनः 'लक्ष्य'पर मिल जाता यह॥
नेह, ग्लानिकी दो डालोंपर, झूल रहा यों नीड़ हमारा॥
दो तिनकोंका...॥

—होमवती देवी।

चीनकी लाल सेना

प्रो० चन्द्रशेखर, एम० ए० डी० लिट्०



विगत आधी शताब्दीसे चीन अनेक राष्ट्रों और विचार-धाराओंका सङ्घर्ष-स्थल रहा है। अनेक राष्ट्रोंने चीनमें अपने राजनीतिक एवं आर्थिक विकासके लिए साधन खोजनेका प्रयत्न किया है। अनेक विचार-धारायें चीनमें टकराती रही हैं। अनेक राष्ट्रोंकी पारस्परिक प्रतियोगिता तथा उनकी कूटनीतिका मल्लयुद्ध चीनकी छातीपर होता रहा है और अब जापानने चीनमें अपना सब कुछ दांवपर चढ़ा दिया है।

ब्रिटेन, फ्रान्स, रूस, जापान और अमेरिकाने एक साथ चीनको अपने विकासका क्षेत्र बनाना चाहा, इसलिए उनमें पारस्परिक सन्देह और ईर्ष्याका होना स्वाभाविक था। उनमें प्रतिद्वन्द्विता चल पड़ी, और चीनके इन शोषकोंमें आपसमें ही न ठन जाये, इसलिए उन्होंने पारस्परिक समझौतेसे इस समस्याका निपटारा करना चाहा। इस उद्देश्यसे चीनमें 'मुक्तद्वार' की नीति अपनायी गयी और सभी राष्ट्रोंको व्यापार करनेका समान अधिकार दिया गया। इसके परिणाम-स्वरूप उनकी बाहरी प्रतिद्वन्द्विता तो रुक गयी; पर भीतर-भीतर अपने विकाससे लिए अधिकाधिक क्षेत्र एवं साधन बढ़ानेके प्रयत्न बन्द नहीं हुए। उधर जापान है, जिसे ब्रिटेन और अमेरिकाका चीनके मामलेमें टांग अड़ाना पसन्द नहीं था। वह जिस नवीन व्यवस्थाकी स्थापना सुदूर पूर्वमें करना चाहता है, उसके लिए यह आवश्यक है कि जापान पहले चीनको अपने अधिकारमें करे। और अमेरिका तथा ब्रिटेन इसके विरोधी हैं, क्योंकि उनके अपने राजनीतिक एवं आर्थिक हितोंका बहुत घनिष्ट सम्बन्ध चीनसे है। अतः उक्त राष्ट्रोंमें मनोमालिन्यका होना स्वाभाविक था।

अब उस पृष्ठ-भूमिको देखनेकी जरूरत है, जिसपर दूसरे राष्ट्रोंकी इस प्रकारकी महत्त्वाकांक्षायें पनपने लगीं। एक लम्बे अरसेसे चीनकी आन्तरिक स्थिति अच्छी नहीं रही। चीनमें मध्यकालकी सामन्तशाही और जागीरदारीकी जो प्रथा रही है, उसमें चीनके भण्ड नेताओंने एक ओर स्वार्थसाधन करना चाहा, तो दूसरी ओर शासन प्रणाली इतनी ढीली और अनियन्त्रित रही कि लूट-खसोट करनेवालोंके लिए खासा मौका मिल गया। इस प्रकारकी अशान्तियोंके बीच चीनके उद्योग-धन्धे पनप नहीं सकते थे, चीनका सङ्गठन एक राष्ट्रके रूपमें करना असम्भव था और चीनमें ऐसी शक्तियोंका अभाव न था, जो अपने स्वार्थके कारण ऐसे राष्ट्रीय सङ्गठनके भी विरुद्ध थीं। इसके परिणाम कई दिशाओं और कई रूपोंमें दिखाई पड़े। चीन राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टिसे इतनी अविकसित अवस्थामें रह गया कि दूसरे उन्नत राष्ट्रोंके लिए चीनमें अच्छा बाजार मिल गया। शस्त्रास्त्र बनानेवाली कम्पनियोंने चीनके परस्पर-विरोधी दलोंको समान रूपसे हथियार देकर माल लूटना शुरू किया। राजनीतिमें भेद-नीतिका यह अस्त्र एशियाके और देशोंकी भांति ही चीनमें भी खूब उपयोगमें लाया गया। चीनमें पाये जानेवाले साधनोंका एक ओरसे तो उपयोग किया गया, और दूसरी ओर ऐसे कारणोंको प्रभावशाली बनानेका प्रयत्न किया गया, जिनसे चीनकी राष्ट्रीय एकतामें बाधा पड़े।

और यह क्रम काफी दिनों तक जारी रहा। शोषक राष्ट्रोंमें बीच-बीचमें आपसी तनातनी भी रही; पर लूटका क्रम ज्योंका त्यों चलता रहा। चीनका महत्त्व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें अनेक कारणोंसे इतना अधिक हो गया था कि एक अमेरिकन राजनीतिज्ञने एक बार कहा था कि अगले पचास वर्षोंमें संसारकी राजनीतिका निपटारा चीनमें होगा। यह बात उक्त अमेरिकनने जब कही थी, तबसे कितने ही वर्ष बीत गये हैं और बीतनेवाले वर्षोंने उक्त कथनकी सत्यता प्रमाणित की है, और पिछले वर्षोंने जो बातें प्रमाणित की हैं, उनसे भी बढ़कर सम्भावनायें आगे आनेवाले वर्षोंमें भरी पड़ी हैं।



चीनी कम्यूनिस्टोंका नेता मोसी-तुंग जिसे पकड़नेके लिए चीनी अधिकारियोंने १० लाख रुपये इनामकी घोषणा कर रखी थी।

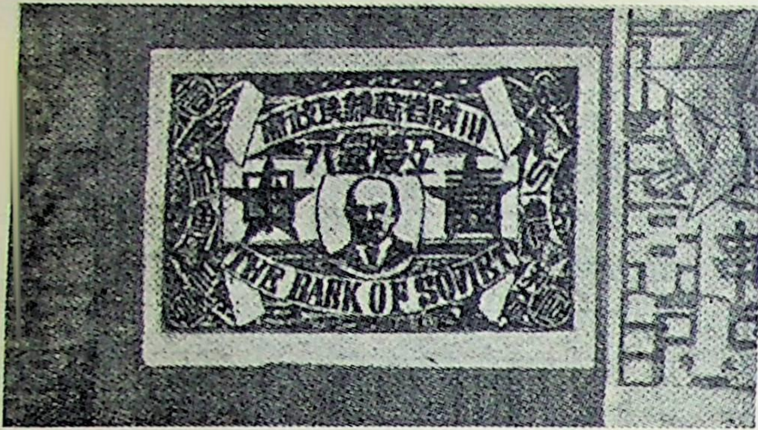
१९१७ में रूस की लाल क्रान्ति हुई। वह क्रान्ति एक खास सिद्धान्तको लेकर हुई थी। उसने अनेक व्यवस्थाओंकी जड़ें हिला दीं। और उसकी चिनगारियां जिन देशोंमें पहुंचीं, उनमें चीन प्रमुख है। रूसी नेता जिन देशों -में क्रान्तिकी सम्भावना सोच रहे थे, उनमें चीनको उन्होंने पहला स्थान दिया था। चीनमें किसानों और मजदूरोंकी जैसी स्थिति सामन्तशाहीने कर डाली थी, उसमें क्रान्तिकारी विचार-धाराके लिए जिस असन्तोषकी आवश्यकता होती है, वह काफी अंशोंमें वर्तमान था। पुरानी व्यवस्थायें नयी अवस्थाओंमें बेकार पड़ रही थीं। और उधर चीनके उस पार रूसने नया प्रयोग शुरू कर दिया था, जिसके परिणाम मङ्गलजनक दिखाई पड़ रहे थे। इसलिए चीनका उस ओर ध्यान जाना स्वाभाविक ही था। लाल क्रान्तिने रूसमें जैसी सफलता पायी थी, उससे उसके नेता काफी आशान्वित हो रहे थे और उन दिनों तक ट्राट्स्की रूसके अधिकारियोंकी नजरसे गिरा न था, वह स्वयं भी रूसमें अच्छे पदपर प्रतिष्ठित था। यह वह व्यक्ति था, जिसका खूनी क्रान्तियोंमें अटल विश्वास था और सर्वत्र सर्वहाराके शासनकी प्रतिष्ठा करना ही जिसने मानो अपने जीवनका उद्देश्य बना लिया था। रूसमें बहनेवाली इस विचार-धाराका चीनपर खूब प्रभाव पड़ा। रूसमें जो प्रयोग चल रहा था, चीनने भी उसे करनेका इरादा किया।

लेकिन चीनके सामने एक खास कठिनाई रही है, जिसका अनुभव बहुत-से राष्ट्रोंको नहीं हुआ है। पराधीन राष्ट्रके भाग्यमें एक खास बात यह होती है कि उसे खुले रूपमें शत्रुता करनेवाले राष्ट्रोंसे जितनी क्षति नहीं होती, उतनी उन राष्ट्रोंसे हो सकती है, जो मित्र बनकर उसके रक्षार्थ प्रयत्न करनेका भाव दिखाते हैं।

चीनमें ठीक यही हुआ। एक साथ ही चार-चार राष्ट्र चीनके रक्षक बन बैठे। जापान चीनमें किसी राष्ट्रको देखना नहीं चाहता और उधर ब्रिटेन और अमेरिकाके यद्यपि कितने ही स्वार्थ वहां रहे हैं और आज भी हैं; पर चीनमें जापानकी बढ़ती हुई प्रगतिको उन्होंने कभी भी प्रभावशाली ढङ्गसे रोकनेकी कोशिश नहीं की, और इसका प्रमुख कारण यह था कि चीनमें कम्यूनिज्मका प्रचार न बढ़ने पाये। इसके लिए वे जापानको रूसके मुकाबिले निर्बल नहीं होने देना चाहते थे। जापानने धूर्तता यह की कि उसने एक ओर ब्रिटेन और अमेरिकाके हितोंको सुरक्षित रखनेकी घोषणा करते हुए दूसरी ओर जर्मनी और इटलीके साथ भी गठ-बन्धन किया। जापानने चीनमें अपनी साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षाओंके लिए एक तरफ तो गोलियां बरसानी



कम्यूनिस्ट फांसीपर लटकाया जा रहा है।



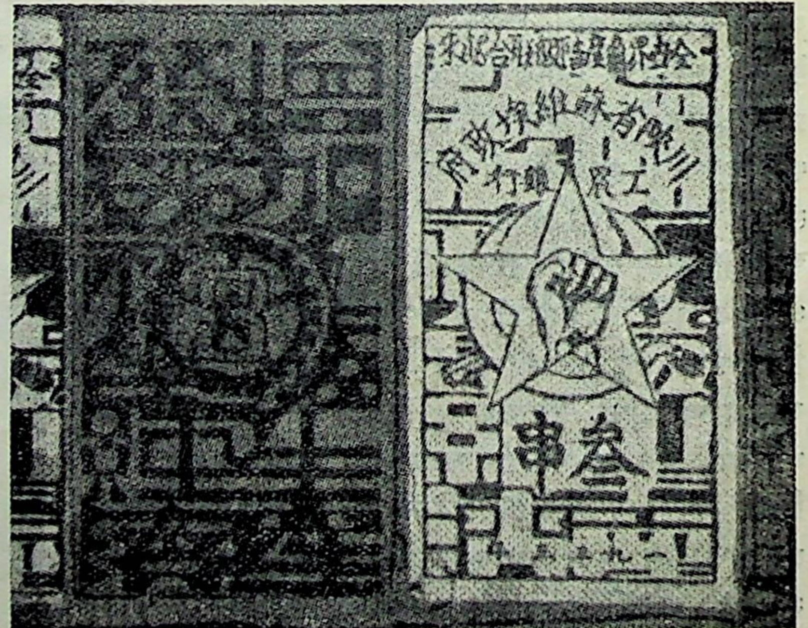
सेचुआन और शान्सीके कम्यूनिस्टोंका कागजका सिक्का।

शुरू कीं और दूसरी ओर उसने यह ढिंढोरा पीटना शुरू किया कि चीन और पूर्वी एशियामें कम्यूनिज्मका प्रचार रोकनेवाला वही एकमात्र राष्ट्र है। रूसी विचार-धाराके ब्रिटेन और अमेरिका सदासे विरोधी रहे हैं। ब्रिटेनके पूर्वी साम्राज्यके लिए आवश्यक भी था कि रूसी विचार-धारा चीनमें पनपने न पाये। इसलिए जापानके इस दावेके आधारोंपर कुछ भी विचार किये बिना उसने जापानी प्रगतिको रोकनेकी आवश्यकता नहीं समझी। ब्रिटेनकी वैदेशिक नीतिका सदा इस बातमें विश्वास रहा कि जापानके साथ उसकी मैत्री हो सकती है, पूर्वमें जापानके अत्यन्त प्रबल राष्ट्र होनेकी दशामें भी ब्रिटेनके स्वार्थोंको क्षति नहीं पहुंच सकती है; पर रूसको हरगिज न उठने दिया जाय। ब्रिटेनमें कितनी ही सरकारें बदलीं; पर वास्तविक रूपसे ब्रिटेन और रूसमें कभी सन्देह-रहित सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सका और रूसी विचार-धाराओंका ब्रिटेन सदा विरोधी रहा।

पर ब्रिटेन चीनका समर्थक है, इसलिए चीनकी आन्तरिक राजनीतिमें कई अड़चनें उत्पन्न हो गयीं। चीनमें पिछले दिनों जो गृह-युद्ध होते रहे हैं, उनके कारण वह विरोधियोंके सम्मुख संयुक्त मोर्चा लेनेमें असमर्थ रहा है। चीनमें जब सामन्तशाही तथा जमीन्दारोंके विरुद्ध आन्दोलन चले, तब चांग-काई-शेकने उनका दमन करना शुरू किया। चीनकी राजनीतिमें लाल सेनाका यह आन्दोलन, जिसे 'लुटेरोंका उपद्रव' कहकर दबानेका प्रयत्न किया गया, सदा चीनकी कमजोरीका एक कारण रहा है। लाल सेना स्वतः कमजोरीकी वजह नहीं रही, पर इसके कारण विदेशी प्रभावमें आकर चीनने अपनी शक्तियोंका अपव्यय किया है। इसके दो प्रमुख कारणोंपर भी नजर डाल लेनी चाहिए।

चीनमें लाल आन्दोलन रूसके इशारेसे चला, इसमें तो कोई सन्देह नहीं; चीनकी जैसी स्थिति थी, उसमें इस प्रकारके आन्दोलनके लिए कारण उत्पन्न थे। उधर चांग-काई-शेकने ब्रिटेनके सङ्केतपर अपनी नीति बनायी, इसमें भी कोई सन्देह नहीं। इस प्रकार रूस और ब्रिटेनकी वैदेशिक नीतियोंका चीनकी आन्तरिक राजनीतिपर काफी प्रभाव पड़ा। एक ओर रूसके सङ्केत और उसकी सहायतासे युवकोंने चीनमें चिनगारियां बिखेरनी शुरू कीं, और दूसरी ओर ब्रिटेनके सङ्केतपर चांग-काई-शेकने उनका दमन करना शुरू किया।

इन परस्पर-विरोधी परिस्थितियोंमें चांग-काई-शेकके सामने कई कठिनाइयां थीं। एक ओर था रूस, जो केवल इस दशामें चीनको सहायता दे सकता था, जब कि बोल-शेविक विचार-धाराके पनपनेका अवसर मिले और उधर था ब्रिटेन, जिसके कारण साम्यवादियोंका दमन करना चांग-काई-शेकके लिए अनिवार्य था। और दोनोंके बीचमें था

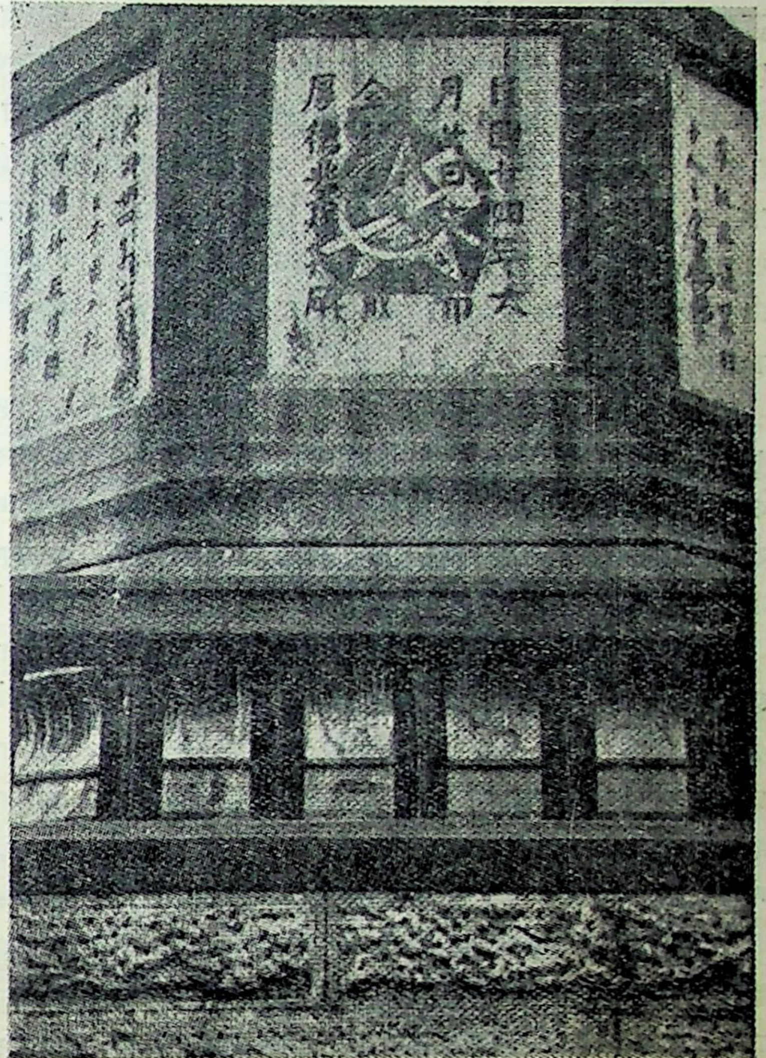


कम्यूनिस्टोंका कपड़ेका सिक्का, जिसपर लिखा है "संसारके सर्वहारा! उठो, एक हो!"

जापान, जो यद्यपि साम्यवादका विरोधी था; पर अपनेको छोड़कर और किसी राष्ट्रके पैर चीनमें जमने नहीं देना चाहता था।

इस प्रकार चीनमें जो अवस्थायें थीं, उन्होंने वह स्थिति उत्पन्न कर दी, जिसका रूप आज स्पष्ट हुआ है। यद्यपि चीन-जापान युद्धके कारण चीनमें संयुक्त मोर्चेकी प्रवृत्ति आयी है; पर जिन दो दलोंमें सत्ताके लिए बराबर युद्ध होता रहा है, उनका मिलन काफी दिनों तक असम्भव रहा है। और मिलन होनेपर भी वे पारस्परिक विश्वासके सच्चे आधारपर लड़नेमें असमर्थ रहे।

चीनमें लाल क्रान्तिके लिए जो उद्योग होते रहे हैं, उन्हें दबानेकी बहुतेरी कोशिशें कीगयीं, फिर भी बहुत अंशोंमें उन्हें सफलता मिली। चीनमें कम्यूनिज्मको जिन अंशोंमें और जिन तरीकोंसे सफलता मिली, उन्हें लेकर पूर्वमें तरह-तरहके अनुमान लगाये जाते हैं; क्योंकि एक यह ऐसा प्रयोग था, जिसमें समस्त एशियाकी दिलचस्पी रही है। जिस लाल सेनाके नेतृत्वमें चीनमें एक महान् परिवर्तनका प्रयोग चल रहा था, उसे चीनी अधिकारियोंने लुटेरोंका दल कहकर विनष्ट करनेका प्रयत्न किया और उसके नेता मोसी-तुङ्गकी गिरफ्तारीके लिए अधिकारियोंने १० लाख रुपयेके इनामकी घोषणा की थी। लेकिन लाल सेनाने अपनेको जनताका रक्षक समझकर अपना आन्दोलन जारी रखा।



कम्यूनिस्टोंका आफिस।

चीनकी लाल सेनाको अधिकारियोंने इतना खतरनाक समझ लिया था कि उसके सम्बन्धमें चीनी अखबारोंमें कुछ भी छपने नहीं दिया जाता था। इसका उल्लङ्घन करनेवालेको कठोर यातनायें दी जाती थीं। जरा-से सन्देहपर ही कम्यूनिस्टोंको फांसीपर लटका देना एक साधारण बात थी। एक लेखकने लाल सेनाके कारनामोंका उल्लेख करते हुए एक बार लिखा था:—

"गांवोंमें पहुंचकर कम्यूनिस्टोंका यह काम था कि वे देहातियोंको बुलाकर पञ्चायत करते और उनके कम्यूनिज्मके सम्बन्धमें फैले हुए भ्रमका निवारण करते। मुखियोंको बुलाकर एकत्र किया जाता और तब उन लोगोंपर मुकदमे चलाये जाते, जिन्होंने जनताके रक्त-शोषणके लिए उसपर अत्याचार किये। ऐसे लोगोंका अपराध प्रमाणित होनेपर ही दण्ड दिया जाता, फिर भी उन्होंने वैसे किसीको फांसीपर नहीं लटकाया, जैसे कि फैङ्गोमें अधिकारियोंने कम्यूनिस्टोंके सिर काटकर सार्वजनिक स्थानोंमें बांसोंपर लटका दिये थे।

"कम्यूनिस्टोंने इसके बाद एक सूची पेश की, जो पहलेसे तैयार की गयी थी। वांगको दो सौ रुपये देनेका आदेश दिया गया, लीको ढाई सौ रुपये जमा करनेका हुक्म मिला और चो पचीस हजार दे सकता था, इसलिए उससे इतनी रकम जमा करनेको कहा गया। तैंग जूतेका

कारबारी है और उसका रोजगार खूब मजेमें चल रहा है, इसलिए आदेश मिला कि एक सौ जोड़े जूते वह जमा करे और लूको खेतीसे हजारों मन गल्ला प्रतिवर्ष बच जाता है, इसलिए पांच सौ बोरे अनाज उसे देना होगा। जिसने समाजसे जितना अधिक कमाया है, उससे समाजके कल्याणके लिए उतना ही अधिक लाल सेना लेगी और इसी बातपर उसका समस्त सङ्गठन और निर्वाह निर्भर करता है।

"उन व्यक्तियोंमें इस प्रकारके आदेशोंसे क्षोभ अवश्य हुआ, पर उन्होंने आदेशका पालन किया; क्योंकि वे जानते थे कि उन्होंने जितना लूट-खसोटकर एकत्र किया है, उसका यह कोई भी अंश उनसे नहीं लिया जा रहा है। और फिर उन्हें तो अपना सब कुछ खो देनेकी आशङ्का थी।"

लाल सेनाका यह छोटा-सा वर्णन उसपर काफी प्रकाश डालता है। उन्होंने ध्यान रखा कि सङ्गठनके काममें बेचारे गरीब न पिस जायें। क्योंकि गरीबोंके त्राणके लिए ही उन्होंने आगसे खेलना शुरू किया था। जहां-जहां उनका प्रवेश और आधिपत्य हुआ, उन्होंने जमीनका लगान घटाया और जिस परिवारको जितनी जमीनकी आवश्यकता थी, उतनी उसके लिए छोड़कर बाकीका बटवारा उन लोगोंमें कर दिया, जिनके पास मकान बनानेके लिए एक इञ्च भी जगह न थी। नार्मन हैनवेलने एक बार 'एशिया'में कम्यूनिस्टों द्वारा अधिकृत अञ्चलोंका आंखों देखा हाल लिखा था। उसने लिखा था:—हालमें कम्यूनिस्टोंकी पल्टन जहां-जहां जाती थी—और क्यांगसीसे सेचुआन तक उन्होंने कब्जा कर लिया था—वहां उन्हें अपने लिए तरह-तरहकी सामग्रियोंकी आवश्यकता पड़ती थी। लेकिन उन्होंने उतनी ही सामग्री ली, जितनी उनके लिए आवश्यक थी। कहीं भी उन्होंने कोई वस्तु नष्ट नहीं की। हां, यह बात उन्होंने जरूर की कि वे गरीबोंमें जमीनका बंटवारा करते चलते थे और कर्जके दस्तावेज छीनकर नष्ट कर देते थे; क्योंकि चीनके सामन्तोंने गरीबोंको कर्ज दे-देकर उन्हें वास्तवमें दास बना रखा था। बुद्धिजीवियोंके लिए भी उन्होंने जमीनकी व्यवस्था की, जिन्हें अपनी नौकरियां बनाये रखनेके लिए दास-मनोवृत्ति बनानी पड़ती थी और समाजमें बुद्धिजीवियोंकी पराधीनतासे समस्त जातिका नैतिक अधःपतन होता था। इसलिए ऐसे बुद्धिजीवियोंके लिए भी ऐसी व्यवस्था की गयी कि वे नौकरीकी चिन्तामें ही अपना सारा जीवन और अपनी सारी प्रतिभा न नष्ट कर दें।

लाल सेनावालोंको यद्यपि चुपचाप सङ्गठन करना पड़ता है और उनके पास साधनोंका भी प्रायः अभाव है, पर उनकी सङ्गठन-शक्ति अद्भुत है। उनमें सरकारको तङ्ग करनेकी चालाकी भी खूब है। सैनिक-विभागके गुप्त समाचारोंको जान लेनेके कारण कितनी ही बार अधिकारियोंको धोखा खाना पड़ा था। १९३४ के अगस्तमें सरकारके डाइरेक्टिङ्ग ब्यूरोने इस सम्बन्धमें आश्चर्य और क्षोभ प्रकट करते हुए एक वक्तव्य निकाला था, जिसमें लाल सेनाके हैरत-भरे कारनामोंका उल्लेख था। कम्यूनिस्टोंने अपने करेन्सी नोट और सिक्के भी चलाये। उनके नोट कागज और कपड़ेके चले और लालसेनाके अधिकृत अञ्चलोंमें वे चले; पर कहीं भी उनके मिलनेपर अधिकारियोंकी भीषण दण्ड-व्यवस्थाओंके अनुसार किसानों और मजदूरोंको कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा।

चीनकी लाल सेनाके बारेमें, जिसका उद्देश्य चीनमें कम्यूनिज्मकी स्थापना करना रहा है, निश्चित रूपसे बहुत कुछ कहना प्रायः असम्भव-सा है। फिर भी उन्होंने जैसे कारनामे कर दिखाये, उनसे अधिकारियोंके दांत खट्टे हो गये हैं। जापानके विरुद्ध आज चीनमें लड़नेकी जो ऐसी नैतिक शक्ति आयी है, उसका एक बहुत बड़ा कारण लाल सेनाकी सङ्गठन-शक्ति है। उद्देश्यके पीछे मर मिटनेका उनका सङ्कल्प आज भी दिखाई पड़ता है। उन्होंने चीनमें एक विराट् प्रयोग शुरु किया था, जो जापानी युद्धके कारण बीचमें ही अधूरा पड़ा रह गया।



जाति-भेदका अभिशाप

[एक समाज-शास्त्री]

वर्ण-भेदको मिटानेका आन्दोलन उतना ही पुराना है, जितना कि यह स्वयं वर्ण-भेद है। आर्योंकी सबसे पुरानी पुस्तक ऋग्वेद है। उसमें चातुर्वर्ण्य-विभागका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। वेदके प्रकाण्ड पण्डित मैक्समूलरने एक जगह लिखा है:—"यदि कोई हमसे प्रश्न करे कि जिस प्रकारका वर्ण-भेद मनुमें और आजकल पाया जाता है, क्या वैसा वेदकी प्राचीन धर्म-शिक्षामें मिलता है, तो हम निश्चित रूपसे इसके उत्तरमें कह सकते हैं कि 'नहीं।' जाति-भेदकी जटिल प्रणालीके लिए, उन अपमानजनक विशेषाधिकारोंके लिए, जिनका दावा ब्राह्मण करते हैं, और शूद्रोंकी अप्रतिष्ठा-जनक स्थितिके लिए वेदमें कोई प्रमाण नहीं। वेदमें ऐसा कोई मन्त्र नहीं, जो लोगोंके विभिन्न वर्गोंको मिलकर इकट्ठे रहनेसे, एक-दूसरेके हाथसे खान-पान करनेसे, अन्तर्वर्णीय विवाहसे रोकता हो, और ऐसे मिश्र विवाहोंकी सन्तानपर कलङ्कका अमिट टीका लगानेको कहता हो।"

ऋग्वेद आर्योंमें कोई वर्ण-भेद नहीं मानता। वहां कहीं भी "ब्राह्मण वर्ण", "क्षत्रिय वर्ण" या "वैश्य वर्ण" लिखा नहीं मिलता। वहां केवल "आर्य" और "दास" के साथ ही वर्ण शब्दका प्रयोग मिलता है। यथा—

हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत। ऋ० ३-३४-९

यो दासं वर्णमधरं गुहाकः। ऋ० २-१२-४

इतना ही नहीं, ऋग्वेदमें "दो वर्ण" (उभौ वर्णा) तो लिखा मिलता है, यथा—उभौ वर्णा वृषिरुग्रः पुपोषः। ऋ० १-१७९-६। परन्तु कहीं "चार वर्ण" नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद मनुष्योंमें ऊंच-नीच भी नहीं मानता। वहां स्पष्ट लिखा है—

अज्येष्ठासोऽकनिष्ठास एते सम्भ्रातरो
वावृधुः सौभगाय।—ऋ० ५-६०-५

अर्थात्—तुममें न कोई उच्च है और न कोई नीच है। तुम सब भाई हो। इसलिए भाइयोंकी भांति अपने-अपने भागमें उन्नतिशील बनो।

ऋग्वेदके बाद यजुर्वेदमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-का बांट बेशक मिलता है; परन्तु वेद इनको वर्ण नहीं कहता। ये अध्यापक, सिपाही, कृषक और श्रमिककी भांति व्यवसाय-सूचक नाम हैं। यजुर्वेदमें जहां—

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद बाहुराजन्यः कृतः।
ऊरु तदस्य यद्वैश्य पद्भ्या ᳀ शूद्रो अजायत। (३१-११)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रका उल्लेख है, वहां उसके साथ ही बीसियों दूसरे व्यवसायियोंका भी है। यथा—

ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो
वैश्यं तपसे शूद्रं तमसे तस्करं नारकाय।
वीरहणं पाप्मने क्लीवमाक्रयाया अयोगूं
कामाय पुंश्चलूमतिक्रुष्टाय मागधम् ॥
(यजु० ३०-५)

वैदिक कालमें आर्योंमें कोई शूद्र नहीं था, अर्थात् जो आर्य था, वह शूद्र नहीं था। आजकलकी भांति हिन्दुओंमें सवर्ण और अस्पृश्यका भेद न था—

पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः। अथर्व० ४-२०-४

अर्थात्—मैं सबको देखता हूं, चाहे वह शूद्र हो और चाहे आर्य।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रभृति विभिन्न व्यवसाय होने-पर भी सब लोग आपसमें ब्याह-शादी करते थे। इसके कुछ उदाहरण ये हैं—

१—शृङ्गी ब्राह्मणका विवाह राजा दशरथ (क्षत्रिय) की पुत्री शान्तासे हुआ था।

२—जमदग्नि ब्राह्मणका विवाह राजा गादी (क्षत्रिय) की पुत्री रेणुकासे हुआ।

३—पिप्पलाद ब्राह्मणने क्षत्रिया पद्मासे विवाह किया।

४—अगस्त्य ब्राह्मणने क्षत्रिया लोपामुद्रासे विवाह किया।

५—प्रियव्रत क्षत्रियने विश्वकर्मा ब्राह्मणकी पुत्री वर्हि-ष्मतीसे विवाह किया।

६—राजा नीपने शुक्र ब्राह्मणकी कन्या कृत्वीसे विवाह किया।

७—प्रमत्ता ब्राह्मणीका विवाह नाईके साथ हुआ और महामुनि मतङ्गकी उत्पत्ति हुई।

८—कर्दम क्षत्रियकी कन्या अरुन्धतीका विवाह वेश्या-पुत्र वसिष्ठसे हुआ। इनका पुत्र शक्ति हुआ। शक्तिने अदृश्यन्ती नामकी एक चाण्डाल-कन्यासे विवाह किया। इस सम्बन्धसे पराशर मुनिका जन्म हुआ। पराशर और धीवर-कन्या सत्यवतीके सम्बन्धसे भगवान् वेद व्यासका जन्म हुआ।

इससे स्पष्ट है कि वैदिक कालमें विभिन्न वर्णोंमें बेटी-व्यवहार बराबर होता था। उनमें आजकलके सदृश ऊंच-नीचका कोई कुत्सित भाव न था। समाज एक तरल अवस्था-में था। परन्तु बादको धीरे-धीरे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि वर्ण या व्यवसाय जन्ममूलक हो गये और उनमें ऊंच-नीचका भाव आ गया। इससे उनमें ईर्ष्या-द्वेष बढ़ने लगा। ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें बढ़ते हुए इस ईर्ष्या-द्वेषकी कुछ झलक हमें उपनिषदोंमें स्पष्ट देख पड़ती है। ब्राह्मण लोग अपनेको उच्च समझते थे और क्षत्रिय अपनेको। ब्राह्मणोंका बड़प्पन उनकी अध्यात्म-विद्याके कारण था। इसलिए उनको नीचा दिखानेके लिए क्षत्रियोंने भी ब्रह्मविद्याकी पुस्तकें—उपनिषदें—रचीं। इनमें ऐसी-ऐसी कथायें डाली गयीं, जिनसे प्रकट होता है कि क्षत्रिय लोग ब्रह्मविद्यामें भी ब्राह्मणोंसे बढ़-कर हैं।

छान्दोग्य उपनिषद्‌में श्वेतकेतु आरुणिकी कथा आती है। उसमें बताया गया है कि वह ब्रह्मविद्या प्राप्त करनेके लिए पाञ्चालोंकी सभामें गया। वहां उसे क्षत्रियोंसे वह अध्यात्म-ज्ञान प्राप्त हुआ, जो उसके पिता ब्राह्मणको भी प्राप्त न था।

इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मणमें लिखा है कि राजा जनकसे तीन ब्राह्मण मिलने आये। वे अग्निहोत्रकी विधि न जानते थे। राजा जनकने यह विधि उनको सिखायी। कोशीतकी उपनिषद्‌में गार्ग्य बालाई नामके एक अभिमानी ब्राह्मणकी कथा है। वह राजा अजातशत्रुसे शास्त्रार्थमें हार खाकर उसका शिष्य बन गया था।

यद्यपि वर्णोंमें ऊंच-नीचका भाव उपनिषद् कालमें ही अंकुरित हो उठा था, परन्तु इसका भयङ्कर रूप हमें स्मार्त-कालमें देख पड़ता है। मनुने वर्णोंको जन्ममूलक बनाकर ब्राह्मणको समाजमें बहुत अधिक अधिकार दे दिये और शूद्र-की स्थिति निम्न श्रेणीके पशुओंसे भी बुरी बना दी। शूद्रके लिए मनुकी आज्ञा थी—

> शक्तेनाऽपि हि शूद्रेण न कार्यो धन सञ्चयः;
> शूद्रोऽपि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते।

अर्थात्—सामर्थ्य होनेपर भी शूद्र द्रव्य सञ्चय न करे, क्योंकि शूद्रको धन मिलनेसे वह द्विजको बाधा पहुंचाता है। फिर लिखा है—चाण्डाल, श्वपच आदि जातियोंको चाहिए कि वे गांवसे बाहर रहें। अपने पास बर्तन न रखें। गधा ही उनका धन हो। मुर्देके ऊपरके वस्त्र ही उनके वस्त्र हों। वे फूटे मटकेमें ही खावें। लोहेके गहने पहनें। इत्यादि।

फिर कहा है, "लोहार, निषाद, तमाशबीन, बांसका काम करनेवाले, कलाल, धोबी, रंगरेज और कुम्हार पतित हैं। द्विज इनके यहां भोजन न करे।" (मनु ४-१२९)

इसके विपरीत ब्राह्मणके लिए कहा है—न जातु ब्राह्मणं हन्यात् सर्वपापेष्वपि स्थितम्। अर्थात्—ब्राह्मण चाहे कैसा ही पाप करे, उसे मारना नहीं चाहिए।

इतना ही नहीं, शूद्रसे प्रभु-भजनका अधिकार भी छीन लिया गया। रामायणके उत्तर काण्डमें एक कथा डाल दी गयी कि शम्बूक नामका एक शूद्र राजा वृद्धावस्थामें, राज-पाट छोड़कर, वनमें भगवद्भजन करने लगा। उसके ऐसा करनेसे एक ब्राह्मणका लड़का मर गया। ब्राह्मणने राम-चन्द्रसे जाकर इसकी शिकायत की। रामचन्द्रने वनमें जाकर शम्बूकका वध कर डाला। शम्बूककी स्त्रीके पूछनेपर राम-चन्द्रने उसका अपराध यह बताया कि वह शूद्र होकर भग-वान्‌की भक्ति क्यों करता था; उसके इस कर्मसे ब्राह्मणोंकी हानि होती थी।

इतना ही नहीं, श्रीशङ्कराचार्य—जैसे विद्वान्‌ने भी लिख दिया कि यदि शूद्रके कानमें श्रुति पड़ जाय, तो पिघला हुआ सीसा डालकर उसे भर देना चाहिए और यदि वह वेद-मन्त्रका उच्चारण कर बैठे, तो उसकी जीभ काट डालनी चाहिए। देखिये गौतम धर्मसूत्र १२४ और ब्रह्मसूत्र शङ्कर-भाष्य अ० १, प० ३, अध्याय ९, सू० ३८।

वर्ण-धर्मकी कठोरता और अत्याचार जब यहां तक बढ़ गया, तो कुछ दीर्घदर्शी देशहितैषियोंके हृदयमें इसके प्रतिवादका भाव जाग्रत होना स्वाभाविक था, इसलिए हम महाभारत और पुराणों आदिमें इस प्रकारके वचन पाते हैं:—

न कुलेन न जात्याचक्रियाभिर्ब्राह्मणोभवेत्।
चाण्डालऽपिहि वृतस्थो ब्राह्मणः स युधिष्ठिरः।
—महाभारत।

अर्थात्, कुल या वीर्यसे कोई ब्राह्मण नहीं होता। चाण्डालमें भी यदि वृत्त हो, तो हे युधिष्ठिर, वह ब्राह्मण है।

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
यश्चविप्रोऽनधीयान स्त्रयस्ते नामधारकाः।

अर्थात्, जैसे काठका हाथी और चमड़ेका मृग है, वैसे ही अशिक्षित ब्राह्मण भी नाम-मात्रका है।

तस्मान्न गोऽश्ववत् किञ्चिज्जातिभेदोस्ति देहिनाम्।
कार्यभेद निमित्तेन सङ्केतः कृत्रिमः कृतः॥
—भविष्यपुराण।

अर्थात्, मनुष्योंमें गाय-घोड़े—जैसा कोई जाति-भेद नहीं। यह तो केवल कामके भेदके लिए बनावटी सङ्केत बना रखे हैं।

परन्तु वर्ण-भेदका सबसे अधिक विरोध भगवान् बुद्धने किया। जैसे रावणको मारनेके लिए रामका और कंसको मारनेके लिए कृष्णका अवतार हुआ था, उसी प्रकार वर्ण-भेदको मिटानेके लिए भगवान् बुद्ध अवतरित हुए थे। उन्होंने ब्राह्मणोंकी प्रधानताको बहुत धक्का पहुंचाया। बौद्धकालीन साहित्यमें ब्राह्मणोंको क्षत्रियोंके मुकाबलेमें नीच और तुच्छ बताया गया है। तितरजातकमें लिखा है कि एक बार भगवान् बुद्धने भिक्षुओंसे पूछा कि हे भिक्षुओ, तुममें सबसे श्रेष्ठ भिक्षु कौन है, किसको पहले प्रणाम करना चाहिए? तो कुछ भिक्षुओंने उत्तर दिया—खत्तिय कुला पव्वजिते। अर्थात् क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न हुआ भिक्षु ही सर्व-श्रेष्ठ है, उसे ही पहले प्रणाम करना चाहिए।

इसी प्रकार जैन मत भी इस ऊंच-नीच-मूलक वर्ण-भेद और विशेषतः ब्राह्मणोंकी प्रभुताके विरुद्ध एक विद्रोह था। ब्राह्मणोंको नीच सिद्ध करनेके लिए "जैन कल्प-सूत्र" में लिखा है कि महावीर जब जन्म लेनेके लिए स्वर्गसे उतरे, तो ऋषभदत्त नामक ब्राह्मणकी पत्नी देवानन्दाके गर्भमें आये। परन्तु इसके पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था कि किसी महा-पुरुषने ब्राह्मण-कुलमें जन्म लिया हो। इसलिए शुक्रने उन्हें देवानन्दाके गर्भसे हटाकर रानी तृषलाके गर्भमें रख दिया। (देखो बौद्ध-कालीन भारत, अध्याय तीसरा)

इन कथाओंसे इतना तो स्पष्ट है कि ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें कौन ऊंचा और कौन नीचा है, इसके लिए बराबर लड़ाई-झगड़ा और ईर्ष्या-द्वेष रहता था। इन सुधारकों-के आक्रमणसे ब्राह्मणोंके महत्त्वकी जो हानि हुई, उसे पूरा करनेका ब्राह्मणोंने फिर प्रयत्न किया। उन्होंने उद्योग करके बुद्ध-धर्मको भारतसे निर्वासित और जैन-धर्मको मृतप्राय कर दिया। उन्होंने गुण, कर्म, स्वभावके झगड़ेको सदाके लिए समाप्त करते हुए व्यवस्था दे दी—

पतितोऽपि द्विजोः श्रेष्ठो न च शूद्रोजितेन्द्रियः।
—पाराशर स्मृति।

अर्थात्, ब्राह्मण पतित भी श्रेष्ठ है, शूद्र जितेन्द्रिय भी नीच है। फिर गोसाईं तुलसीदासने भी कह दिया :—

पूजिय विप्र शील-गुण हीना।

अर्थात् ब्राह्मणमें चाहे शील और गुण न भी हो, तो भी उसका पूजन होना चाहिए।

इन सब व्यवस्थाओंके होते हुए भी, यह बात नहीं कि लोगोंने वर्ण-भेदके विरुद्ध सिर उठाना छोड़ दिया हो। कबीर, नानक, गोविन्दसिंह, तुकाराम, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, राममोहन राय और दयानन्द प्रभृति महापुरुषोंने इसके विरुद्ध आन्दोलन किया। परन्तु इनका आन्दोलन केवल आध्यात्मिक अथवा भूतदयाकी दृष्टिसे था। उन्होंने सब मनुष्योंकी समता एवं बन्धुताका उपदेश तो दिया, परन्तु अधिकतर परलोकमें या ईश्वरकी दृष्टिमें ही सब मनुष्योंकी समानता स्वीकार की। उन्होंने लोक-व्यवहारमें ऊंच-नीच और जात-पांतको मिटानेका यत्न नहीं किया। उन्होंने कथन-मात्र शूद्रों और अछूतोंको व्यक्तिगत रूपसे धर्माचारी, स्वच्छ और ज्ञानवान् बनानेकी चेष्टा की, परन्तु उन अननुकूल परिस्थितियोंको बदलनेका उन्हें कभी विचार नहीं आया, जिनमें रहनेके लिए कथित उच्च जातिवालोंने उनको बाध्य कर रखा है, और जिनके कारण वे दलित, अछूत और शूद्र हैं। इन मध्य-कालीन महात्माओं-को यह भ्रान्ति हो रही थी कि जो मनुष्य आज अछूत या शूद्र है, वह अपने पूर्वजन्मके पापकर्मोंके कारण है, अथवा वह मैला रहता, मैला खाता, गन्दे काम करता और सुरापान आदि व्यसनोंका शिकार है। उनको यह नहीं सूझा कि उच्च जातिके लोगोंने उसे ऐसी पतित अवस्थामें रहनेके लिए बाध्य कर रखा है और कि अछूतों और

शूद्रोंकी परिस्थितियोंको बदल देनेसे ही उनका जाति-रूपसे उद्धार हो सकता है। यही कारण है कि ये महात्मा जाति-भेदको मिटानेमें असफल रहे।

आर्य-समाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्दने सिद्धान्त-रूपसे जन्ममूलक जाति-भेदको स्वीकार नहीं किया। परन्तु अपने जीवनमें वह इस कुप्रथाको टूटते न देख सके। उन्होंने डेरादूनके एक मुसलमानको शुद्ध करके हिन्दू बनाया और उसका नाम अलखधारी रखा। परन्तु जब उसकी सन्तानके विवाहका प्रश्न आया, तो कोई भी हिन्दू आर्य-समाज उसके साथ बेटी-व्यवहार करनेको तैयार न हुआ। अन्ततः उसे अपनी दोनों लड़कियां मुसलमानोंको ही देनी पड़ीं। आर्य-समाजमें जाति-भेदको मिटानेका क्रियात्मक काम करनेका श्रेय स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दको है। आजसे कोई पचास वर्ष पहले पञ्जाब और समूचे आर्य-समाजमें सबसे पहले उन्होंने अपनी बेटी और बेटोंका विवाह जाति-बन्धनको तोड़कर किया था। इस दृष्टिसे, सामाजिक सुधारके इतिहासमें, उनका नाम चिरस्मरणीय रहेगा। उनके उदाहरणसे प्रोत्साहित होकर और भी कुछ सज्जनोंने बेटी-व्यवहारमें जाति-बन्धनको तोड़ा।

जाति-भेदको मिटानेके लिए जिन अवस्थाओंमें पूर्व-कालीन सुधारकोंको काम करना पड़ा था, उनमें अब बहुत कुछ परिवर्तन आ चुका है। पूर्वकालमें जाति-भेदके अत्या-चारोंसे पीड़ित लोगों—अछूतों और शूद्रों—में इस अत्या-चारके विरुद्ध विद्रोह करनेकी शक्ति न थी। उनमें न विद्या थी, न धन था, और न उनको शरण देनेवाला कोई दूसरा ही था। इसलिए उन्हें द्विजोंके सामने सिर उठानेका विचार एवं साहस तक न होता था। परन्तु अब समय बदल रहा है। उनमेंसे बहुत-से लोग लिख-पढ़ गये हैं, सरकारी नौकर हैं, पहलेसे उनकी आर्थिक दशा भी कुछ अच्छी है। अब वे अपने अपमानका अनुभव भी बहुत करते हैं। उनके अन्दर जागृति भी उत्पन्न हो रही है। इसलिए वे इस जन्ममूलक सामाजिक असमताको चिरकाल तक सहन नहीं करेंगे। यदि द्विज अपनेको नहीं सुधारेंगे, तो शूद्रों और अछूतोंके लिए मुसल-मानों और ईसाइयोंके द्वार खुले पड़े हैं। इससे पूर्ण आशा है कि जाति-भेद अब अधिक देर तक नहीं बना रह सकेगा।

इसके अतिरिक्त हिन्दुओंमें अब राष्ट्रीय भावना जाग्रत हो रही है। वे अनुभव करने लगे हैं कि पहले भी जाति-भेद-के कारण ही हिन्दुओंका राजनीतिक पतन हुआ था और अब भी जाति-भेदको मिटाये बिना स्वराज्य-प्राप्ति असम्भव है। वे यह भी अनुभव करने लगे हैं कि भारतमें बहुसंख्यक होनेपर भी जाति-भेदके कारण हम अल्पसंख्यक विधर्मियोंसे भयभीत रहते हैं; जाति-भेदको रखते हुए यदि हमें किसी प्रकार स्वराज्य प्राप्त भी हो जाय, तो भी हम उसे सुरक्षित न रख सकेंगे। कुम्भकरणकी नींद सोयी हुई हिन्दू जातिमें इस राष्ट्रीय भावनाका जाग्रत करना कोई कम महत्त्वकी बात नहीं। मेरा तो पूर्ण विश्वास है कि जिस दिन हिन्दुओंने भली भांति अनुभव कर लिया कि हमारे राष्ट्रीय उत्थान और स्वराज्य-प्राप्तिके लिए जाति-भेदका समूल उच्छेद अनिवार्य है, उसी दिनसे इसकी परतन्त्रताकी शृङ्खलायें टूटनी आरम्भ हो जायंगी और संसारके राष्ट्रोंमें भारतका मस्तक ऊंचा हो जायगा। जगदीश्वर कृपा करें कि वह दिन शीघ्र आये!



विदेशोंमें एक भारतीयके मीठे-कड़वे अनुभव

श्री रामनाथ विश्वास

मैं आवारा हूं। दुनियामें मैंने आवारागर्दी की है और बहुत कुछ देखा और जाना है। मेरे जीवनकी विचित्र अभिज्ञताओंमें अगर कुछ जनताके सामने रखनेके लायक हो, तो देशवासी शायद उसे ग्रहण करेंगे, इसी आशासे मैं अपने आवारा जीवनकी लम्बी कहानीकी थोड़ी-सी बातें लिखने बैठा हूं।

इस बार मेरी यात्रा अमेरिकासे शुरू हुई। अमेरिका गणतन्त्रका देश है, अमेरिकन स्वतन्त्रताकी लड़ाईके इतिहास तथा जार्ज वाशिङ्गटन और अब्राहम लिङ्कनके शब्दोंने मुझ-से भावुक बङ्गालीके अन्तरमें तीव्र आवेग जागरित कर दिया था इस देशको देखनेके लिए। इतने दिनोंके बाद जब उसी अमेरिकाकी ओर चल पड़ा, तो हृदय आशा और आनन्दसे भर गया।

लेकिन मेरे इस आनन्दका असल कारण क्या है, इसे बताना सहज नहीं है, और इसके लिए चिन्ता करनेका समय भी अभी नहीं आया है। जिनके जीवनमें गुजर-बसरकी कोई सूरत नहीं है, राष्ट्रीय अवस्थाका कोई निर्देश नहीं है, उनके लिए दार्शनिक होना बेकार है। उद्योग करके अगर कुछ प्राप्त भी किया जाय, तो उसमें गुलामीकी मुहर लगी होगी, सत्यकी मर्यादाका लेश-मात्र नहीं रह सकता।

कनाडासे मुझे एक बार निकाल दिया गया था, कारण दिखाया गया था कि मैं गरीब हूं, गरीबोंके लिए कनाडामें स्थान नहीं। पर सच्ची बात यह नहीं है, बात यह है कि मैं भारतीय हूं, इसलिए इमिग्रेशन विभागकी नेक नजर मुझपर नहीं पड़ी। मुझ कड़ा हुक्म मिला देश छोड़ देनेके लिए। इसी डरसे मैं रुपया इकट्ठा करनेमें लग गया। मान-अपमान भूलकर जब देशवासियोंके दरवाजे-दरवाजे घूमकर जरूरी रकम मिल गयी, तो मैं अमेरिका जानेके लिए अधीर हो उठा। लेकिन मेरा रास्ता बन्द था। हमारे एजेण्ट जेनरल सर रामाराव इस बातको अच्छी तरह जानते हैं, लेकिन इसका प्रतिवाद उन्होंने कभी भी नहीं किया है।

दक्षिण अफ्रीकाके डरबन शहरसे ही मैं अमेरिका जानेकी कोशिश करने लगा। दक्षिण अफ्रीकामें मुझे छः महीने रहनेकी इजाजत मिली थी, जिसमें चार महीने बीत गये थे और दो और बाकी थे। दक्षिण अफ्रीकाके अन्यान्य पर्यटक इस छः महीनेकी मियादको बढ़वा सकते हैं, लेकिन मैं अपनी भूलसे इस सुविधाको खो चुका था। इस विषयपर यहां थोड़ा-सा लिख देना शायद अप्रासङ्गिक नहीं होगा।

इस बातको तो सभी जानते हैं कि दक्षिण अफ्रीकामें 'वर्ण-बाधा' (Colour Bar) है, पर इसके स्वरूपको बहुतेरोंने नहीं समझा है और जिन्होंने समझा है, वे बताना नहीं चाहते। केवल निर्लज्ज और धूर्त लोग ही इसपर प्रकाश डाल सकते हैं। मुझमें अब लज्जा नहीं रह गयी है, लेकिन मैं धूर्त नहीं हूं। इसीलिए अप्रकाशित विषयपर प्रकाश डालनेका विचार किया है, लेकिन अभी नहीं।

दक्षिण अफ्रीकाके भारतीयोंमें दो दल हैं, वे हिन्दू-मुसलमान नहीं, बल्कि कांग्रेस और औपनिवेशिक वर्ण हैं। कांग्रेसके जन्मदाता हैं महात्मा गांधी। औपनिवेशिक वर्ण और इण्डियन एसोसियेशनके जन्मदाता हैं गांधीजीके पुत्र मणिलाल गांधी। पिताकी सृष्टि की हुई संस्थाको तोड़नेमें असमर्थ होकर पुत्र उसे छोड़नेके लिए मजबूर हुआ है। मैंने इन दोनों संस्थाओंसे अलग रहनेकी कोशिश की थी, लेकिन सफल नहीं हो सका। सत्य और कर्मशीलताकी ओर मेरा मन स्वयं आकर्षित हो जाता है। खुशामद करनेकी आदत मुझमें नहीं है। दक्षिण अफ्रीकाका कांग्रेसी दल बहुत कुछ इसका समर्थक है। 'वर्ण-बाधा' को चुपचाप हजम कर जानेवालोंके लिए दूसरा रास्ता ही कहां? आत्मसम्मान-हीन लोगोंके लिए यह समझना कठिन है कि खुशामद करना मानसिक पतनका कारण है। मैं जङ्गली मनुष्योंके साथ रहकर इस बातको समझ सका हूं और इसीलिए खुशामद बिलकुल पसन्द नहीं करता। इसलिए भी कांग्रेसियोंसे अलग रहनेकी कोशिश करता था, लेकिन सफल नहीं हो पाता था। कांग्रेसको बूअर सरकारने महात्माजीके जमाने-

में ही स्वीकार कर लिया है, मैं समझता हूं कि 'औपनिवेशिक वर्ण' और इण्डियन एसोसियेशनको यह सुविधा नहीं मिली है। नहीं मिलनेके भी कई कारण हैं। 'औपनिवेशिक वर्ण' के लोग यूरोपियन मिजाजके हैं। यूरोपियन ठाठ-बाटसे रहना और खाना-पीना तो है ही, इसके अलावा बूअर सरकार दक्षिण अफ्रीकाकी कांग्रेस और इन महाशयोंके मिजाजको लेकर चक्करमें पड़ गयी है। यूरोपियन मिज़ाजका अर्थ समझा देना उचित होगा। भारतवर्षमें हम लन्दनकी गाबर स्ट्रीटसे लौटे हुए बाबुओंको देखकर कहते हैं कि इनका मिज़ाज यूरोपियन हो गया है। हैट, कोट पहने और ब्राण्डी पीनेसे ही अगर मिजाज यूरोपियन हो जाता, तो गधा भी सिंह हो सकता था। अनेक स्काचमैनोंमें अपनेको हीन समझनेकी प्रवृत्ति मौजूद है, वे भी भारतके बड़े लाट बनाये जाते हैं, उनमें भी देशी लोगों (नेटिव) की कमी नहीं है। हीन समझनेकी प्रवृत्तिको दूर करनेके लिए हमेशा अन्यायके विरुद्ध सङ्घर्ष करना होगा, इसके लिए आत्म-बलिदान करना होगा, लेकिन शिर नहीं झुकानेको ही साहबी मिजाज कहते हैं। दक्षिण अफ्रीकाके 'औपनिवेशिक वर्ण' के लोग इसी कोटिके आदमी हैं।

भारतमें जिनका जन्म हुआ है अथवा यहां जो बहुत दिनों तक रह गये हैं, वे धर्मकी बात सुनावेंगे, धन इकट्ठा करेंगे, धनी होंगे। 'औपनिवेशिक वर्ण' वाले मौज-मजा करेंगे, झगड़ा करेंगे, सभा करेंगे और बीच-बीचमें बूअर सरकारको धमकी देंगे। महात्मा गांधी इन्हींकी कृपासे दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहमें सफल हुए थे। सौभाग्य या दुर्भाग्यसे अनिच्छाके साथ मैं इसी दलमें शामिल हो गया।

डरबन, ईस्ट लन्दन, पोर्ट एलिजाबेथ और केपटाउन दक्षिण अफ्रीकाके प्रसिद्ध बन्दर हैं। लेकिन यात्री जहाज डरबन और केपटाउनमें ही ठहरते हैं। अमेरिका जानेका 'विसा' (visa) मिल गया है, जहाजका किराया जेबमें है, तिसपर भी मेरा रास्ता बन्द है। धर्मसे यहां सहायता नहीं मिल सकती, रुपयेसे भी काम नहीं बन सकता। सफेद चमड़ेवालोंके हाथमें पहुंचते ही हमारे रुपयेका मूल्य कम हो जाता है। यहांपर सफेद चमड़ेवालोंके विरुद्ध मुझे बहुत कुछ कहना है, लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि सभी सफेद चमड़ेवाले खराब होते हैं। मैंने अपनी आंखोंसे देखा है, अंगरेजोंका एक दल 'वर्ण-बाधा' को बिलकुल पसन्द नहीं करता। उनमेंसे बहुतेरे बिना सोचे-विचारे इसके प्रतिकारके लिए तत्पर होते हैं, लेकिन रोगको बिना पहचाने दी गयी दवाका जो फल होता है, इसका फल भी वही होता है।

डरबनमें मैं टिकट खरीदनेकी कोशिश करने लगा, लेकिन सफलता नहीं मिली। जहाजोंके एजेण्टोंमें किसीने कहा, सब 'बर्थ' भर गये हैं; एक दिन पहले आये होते, तो जगह जरूर मिल जाती। किसीने कहा, आगामी ६ महीनेके लिए तमाम 'बर्थ' रिजर्व कर लिये गये हैं। मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गया। दोस्तोंपर इस कामका भार दिया, लेकिन वे भी असफल रहे।

लज्जा दो तरहकी होती है। एक मनगढ़न्त लज्जा होती है और दूसरी प्राकृतिक। दास अथवा दास-प्रकृतिके लोग पहले दर्जेमें आते हैं। अगर दृष्टान्त चाहते हैं, तो अपने दिलसे इसका जवाब आपको मिल जायगा। 'औपनिवेशिक वर्ण' और इण्डियन एसोसियेशनवालोंकी लज्जा मनगढ़न्त है। वे मुझे नहीं बताना चाहते थे कि जहाजमें सफर करनेवाले भारतीयको पूरा केबिन किरायेपर लेना पड़ता है। यूरोपियन उसके साथ न तो बैठेंगे, न खायेंगे और न बातचीत ही करेंगे। ऐसा उचित भी नहीं है। मनगढ़न्त लज्जा करनेवाले किस बूतेपर स्वाधीन लोगोंका सामना करेंगे? धर्म और रुपयेसे, स्वाधीनतासे मिलनेवाली समानता नहीं मिल सकती। इसके अलावा उन लोगोंने यह भी नहीं बताया कि एसोसियेशन सरकारकी नेक नजरोंमें नहीं है। एसोसियेशन अगर मेरे रहनेकी मीआदको बढ़वानेके लिए कोशिश करे, तो सरकार इसका विरोध कर सकती थी। ये बातें अगर मुझे पहलेसे ही मालूम होतीं, तो मैं दूसरा ही रास्ता पकड़ता। लेकिन अब अपने पैरोंपर खड़े होकर रास्ता निकालना पड़ेगा।

रेडियोमें लेक्चर देना मेरा एक पेशा हो गया है, इसका कारण है यह कि लोग विदेशी खबरें अब पसन्द करने लग गये हैं। पेशा होनेपर भी यह मेरे लिए एक बदमिजाजी पेशा है। अपना भाषण मैं पहलेसे ही लिखकर नहीं ले जाता, सिर्फ प्वाइण्ट लिखकर बता देता हूं। लिखित भाषण देनेसे मनके भावोंका विकास नहीं होता। रोडेशियामें रेडियो-अफ-

सरने भाषण देनेके पहले लिखकर पेश करनेके लिए कहा था, इसीलिए मैंने भाषण नहीं दिया। डरबनमें भी इसी डरसे मैंने रेडियोके दलालोंको अपने पास फटकने नहीं दिया। लेकिन एक दिन एक दलालने कहा कि रेडियोके प्रधान घोषणाकारी पेन्शनयाफ्ता सिपाही हैं और कई जहाज-कम्पनियोंसे उनका सम्बन्ध है, भाषण देनेसे शायद वह किसी जहाजमें जगहका प्रबन्ध कर दें। मैं डरबनमें रेडियो-में भाषण देनेके लिए राजी हो गया। भाषण देनेके बाद प्रधान घोषणाकारीने मुझे टिकट खरीदनेमें मदद दी। टिकट खरीदनेमें अगर उन्होंने सहायता नहीं की होती, तो मुझे किसी हीन उपायसे विलायत जाना पड़ता।

टिकट मिल गया, ईस्ट लन्दन, पोर्ट एलिजाबेथसे मैं केपटाउन पहुंचा और वहांसे 'कैसल' लाइनके जहाजसे साउदम्पटनके लिए रवाना हुआ।

केपटाउनमें बहुत दिनों तक रहा। इस देशको हर प्रकारसे देखनेकी सुविधा मुझे मिली थी। इसे देखनेके लिए बहुतेरे अमेरिकन और यूरोपियन बड़े परिश्रमसे धन इकट्ठा करते हैं—कुछ सफल होते हैं, कुछ असफल। इस देशको मैंने देखा, इसीमें मुझे आनन्द मिला।

लेकिन इसके प्राकृतिक सौन्दर्यका चित्र अङ्कित करनेकी इच्छा आज मुझे नहीं है। दृश्य दृश्य ही है, वह बहुत दिनों तक रहेगा। लेकिन मनुष्यके मानसिक भाव बहुत जल्दी बदलते हैं। उसी परिवर्तनशील मनको जाननेके लिए मैं उत्सुक हूं। इसके अलावा मुझे और भी कई काम करने हैं। पहला काम यह है कि मैं पचास पौण्ड जमा करके अफ्रीकामें घुस पाया था, उसे वापस लेना है। दूसरा काम है जहाजके केबिनको देख लेनेका। रसीद दिखाकर मैंने रुपये वापस ले लिये। केबिनको देखकर मैं खुश हुआ। दक्षिण अफ्रीकाके एक भारतीय मेरे सहयात्री थे। बाहर आकर मैं दोस्तोंसे बातचीत करने लग गया। कुछ स्कोली लड़के भी मेरी ममता नहीं छोड़ सके। वे डेकपर खड़े होकर तरह-तरहके नारे लगा रहे थे। तीन अखबारोंके प्रतिनिधि भी मेरी विदाईके लिए उपस्थित थे। मैंने उनसे कहा—"दक्षिण अफ्रीकाके जल और फलोंकी तुलना दुनियाके किसी भी देशके जल और फलोंसे नहीं हो सकती। जोहान्सबर्गकी सोनेकी खान और किम्बर्लीकी हीरेकी खान जगत्-प्रसिद्ध है। लेकिन मैं 'वर्ण-बाधा'को बरदाश्त नहीं कर सकता। 'वर्ण-बाधा'की दुर्गन्धको दूर करनेके लिए मुझे लन्दनमें कुछ दिनों तक रहना पड़ेगा, जब तक इससे छुटकारा नहीं मिलता, तब तक लन्दनमें ही रहना पड़ेगा। 'वर्ण-बाधा'का अर्थ मैं नहीं जानता था। अब मैं इसे जान और समझ गया। इससे मुझे नुकसान जरूर हुआ है, लेकिन लाभ नुकसानसे अधिक हुआ है। दुनियाके लोग, खासकर धर्मसे प्रेम रखनेवाले कहते हैं कि दुनिया पहले अच्छी थी, अब खराब हो गयी ; लेकिन वे नहीं जानते कि दुनिया अपने स्थानपर है, उन्नतिकी गतिको समझना आसान नहीं। निरपेक्ष और स्वाधीनताप्रिय मनुष्य दृष्टान्त-में दक्षिण अफ्रीकाको पेश करेगा। इसलाम और बौद्ध धर्मने दुनियाको उन्नतिकी ओर खींचा था, लेकिन धर्मकी ज्योति क्षणिक है, इसीलिए अरब भी हबशी जातिपर जुल्म करनेसे नहीं चूके। दक्षिण अफ्रीकाके अत्याचार-पीड़ित काले, भूरे और बादामी रङ्गके लोगो! एक होकर मनुष्य होनेके अधिकारोंको प्राप्त करो, अपनी मनुष्यताका परिचय दो। धर्म तुम्हें मदद नहीं देगा; दे भी नहीं सकता, यह तुममें फूट डालेगा। सफेद चमड़ेवाले अपनेको अफ्रीकन कहते हैं, तुम भी अपनेको अफ्रीकन कहो और 'बन्तु' भाषा इस्तेमाल करो। ऐसा करनेसे स्वतन्त्रताप्रिय ब्रिटिश, पराधीन भारतवासी, जाग्रत चीनी और मृत्यु-विजयी जापानी आपका साथ देंगे। मुट्ठी-भर बूअर तुम्हें पददलित नहीं कर सकेंगे, कर भी नहीं सकते।" इतना कहकर मैंने उनसे बिदा ली।

इधर इमिग्रेशन विभागवालोंने मुझे ढूंढ़नेके लिए पांच आदमियोंको भेजा था। जो मेरे पास आता था, वही खड़ा होकर मेरी बातें सुनता और चला जाता। वे सभी 'काले आदमी' थे। इसके बाद इमिग्रेशनका आदमी मेरे पास आकर बोला—"महाशय, कृपा कर पांच मिनटके लिए इधर आइये, फिर चले जाइयेगा।" भद्रता इनमें है, कमसे कम डेढ़ वर्ष तक सङ्घर्ष करके इन लोगोंने औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त किया है। जिनमें डेढ़ वर्ष तक सङ्घर्ष करनेकी शक्ति है, वे प्राप्त फलको बर्बाद नहीं कर सकते हैं। दक्षिण अफ्रीका इसका पहला दृष्टान्त है। मैं किसी देशके कानूनोंका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। क्योंकि मैं पर्यटक हूं। इमिग्रेशनमें सफेद चमड़ेके दो-तीन अफसर थे। एकने कहा—"महाशय, आपको अपने अंगूठेका निशान देना पड़ेगा।" मैंने कहा—

"यूरोपियनोंने निशान नहीं दिया, तो मैं क्यों दूं ।"

"आप भारतीय हैं, इसे याद रखियेगा; बात बढ़ानेकी जरूरत नहीं, निशान लगा दीजिये ।" मैंने कहा—कृपाकर कारण तो बताइये, छाप तो मैं दूंगा ही । उस सज्जनने कहा—"भारतवासियोंके फोटोसे काम नहीं चलता, बहुतेरे अपनी शकल बदल लेते हैं, लेकिन अंगूठेका निशान नहीं बदला जा सकता ।" मैं विवश था ।

जहाज छूटनेमें अब भी बहुत देर है, लेकिन यात्रियोंके सिवा और सब लोगोंको जहाजसे उतर जानेका हुक्म दे दिया गया । मेरे परिचित और दोस्त लोग जहाजसे उतरकर जेटीपर जा खड़े हुए । जेटीपर सफेद चमड़ेवालोंकी भीड़ लगी हुई है । उनसे सटकर खड़ा होना मेरे मित्रोंके लिए खतरेसे खाली नहीं । कारण यह है कि मित्रोंकी बिदाईसे विह्वल होनेपर भी, अगर कोई काला आदमी उनके पास खड़ा हो जाय, तो विह्वलता क्रोधमें रूपान्तरित हो जाती है और वे असहाय भोलेभाले भारतीयोंसे बुरी तरह पेश आते हैं । इसलिए बाध्य होकर भारतीय भाइयोंको दूर जाकर खड़ा होना पड़ा ।

अटलाण्टिक महासागरमें चलनेवाले जहाजोंको कुछ नियम मानकर चलना पड़ता है । पहला कानून यह है कि इन जहाजोंमें डेक यात्रियोंके लिए प्रबन्ध नहीं रहता । दूसरा यह है कि एशियाटिक फुड यानी चीनी खाना भी किसी यात्रीको नहीं दिया जाता । जहाजका टिकट यूरोपियन खानेके साथ मिलता है । प्रशान्त या भारत महासागरमें ये कानून नहीं चलते । खाना छोड़कर और डेकका भी टिकट मिलता है । रोडेशियामें चीनी, भारतीय, जापानी और यूरोपियनोंको रेलमें तीसरे दर्जेका टिकट नहीं मिलता । यह अच्छा ही हुआ । इससे इन जातियोंकी कर्मशीलता बढ़ गयी है और सभी दूसरे दर्जेका टिकट खरीद सकते हैं ।

मैंने तीसरे दर्जेका टिकट खरीदा है । प्रशान्त महासागरके चीन समुद्रके तीरवाले और भारत महासागरमें चलनेवाले जहाजोंमें तीसरे दर्जेके यात्रियोंको ही डेक यात्री कहते हैं । अब अटलाण्टिक महासागरके डेक यात्रियोंके प्रबन्धके विषयमें कुछ जान लेना ठीक होगा । केपटाउनसे साउदम्पटन (ब्रिटेनका एक बन्दर) का किराया चौंतीस पौण्ड यानी साढ़े चार सौ है । मेरे केबिनमें दो बर्थ थे, उनपर बड़ी सावधानीसे बिछौना बिछाया गया है । तीन बत्तियां जल रही हैं । एक केबिनके बीचमें और दो दोनों तकियोंके पीछे । एक छोटी-सी जञ्जीरको खींचकर इसे जलाया और बुझाया जा सकता है । केबिनमें ही हाथ-मुंह धोनेके लिए गरम और ठण्डे पानीका इन्तजाम है, और हर पांच केबिनके पीछे एक गुसलखाना है । खानेका कमरा, सिगरेट पीनेका कमरा, पुस्तकालय और खेलने वगैरहका इन्तजाम तो है ही । दैनिक समाचार-पत्र जहाजमें ही छपता है और सबेरे उठते ही बिछौनेपर एक अखबार दिखाई पड़ता है । इसके लिए कुछ देना नहीं पड़ता । रातके खानेके बाद सिनेमा दिखाया जाता है । प्रत्येक केबिनमें घण्टी लगी हुई है । घण्टी बजाते ही रातमें ड्यूटीपर रहनेवाला आदमी 'महाशय, महाशय' कहता हुआ दौड़कर आता है ।

जहाज अब असीम समुद्रमें है, किनारेका कहीं पता नहीं । मैंने अपना केबिन देख लिया, अब जहाज देखनेके लिए निकला । धीरे-धीरे सभी दर्जोंको देखा और देखा मनुष्यकी प्रवृत्ति । दक्षिण अफ्रीकाके किसी शहरमें तुर्क और जापानीके अलावा कोई भी एशियावासी सीना फुलाकर नहीं चल सकता । लेकिन मैंने इसको तोड़ा, मैं अकड़कर चला । जहाजपर छाती फुलाकर चलनेमें डरनेकी क्या बात है ? लेकिन सब इस बातको बरदाश्त नहीं कर सकते । दो-एक आदमियोंने इसी बीचमें पूछा—"ऐ, क्या तू पसिञ्जर है ?" मैंने भी जवाब दिया—"हां, तेरी ही तरह ।" मेरा ख्याल है, इस लाइनमें भ्रमण करनेवाले भारतीय यात्रियोंमें मैं ही पहला अभद्र और स्वाधीन यात्री हूं ।

यात्रियोंका एक दल मेरी ही बगलमें बैठकर आपसमें बातचीत करने लगा, लेकिन मुझे यह अच्छा नहीं लगा । मेरा मन धीरे-धीरे उत्साहहीन-सा होने लगा । मैं जिस गद्दीदार बेञ्चपर बैठा था, उसपर काफी जगह खाली रहनेपर भी कोई नहीं बैठ रहा था, यद्यपि दूसरी आराम-कुर्सियोंपर लोग बड़ी तकलीफसे बैठे थे । इसका कारण कुछ दूसरा नहीं है । मेरे साथ बैठनेसे उनका अपमान होता है !

इस तरह चुपचाप कितनी देर तक बैठा जा सकता है । मैंने खड़े होकर कहा—"सज्जनो ! आप तकलीफसे बैठे हुए हैं, इसलिए मैं उठ रहा हूं । लेकिन याद रखें कि आप लोग इंगलैण्ड जा रहे हैं, वहां मेरे और आपके रुपयोंमें कोई

फर्क नहीं है। अपनी इस मनोवृत्तिको दूर करनेकी कोशिश करें। अगर नहीं करेंगे, तो कष्ट उठाना पड़ेगा।" किसीने कुछ नहीं कहा। मैं कमरेसे निकलकर सीधा केबिनमें पहुंचा। सिर्फ ६ बजा था, शाम हो गयी थी।

मेरे केबिनके साथी पूरे बनिया थे। उनकी सालाना आमदनी पचास हजार पौण्ड यानी साढ़े सात लाख रुपया है। उन्हें पहले दर्जेका टिकट नहीं मिला, तीसरेका मिला मेरी कृपासे। इसलिए मैंने उन्हें धन्यवाद दिया था और उन्होंने भी भद्रतासे एक सूखा-सा धन्यवाद दिया था। हमारा मानसिक मिलन नहीं हुआ, क्योंकि वह ठहरे धनी और मैं गरीब। इस वर्ग-सङ्घर्षको साम्यवादी मुहम्मद भी नहीं हटा सके। हम दोनों भारतीय थे, हमारा धर्म एक था, तिसपर भी हममें आकाश-पातालका फर्क था। हममेंसे एक धनी और दूसरा गरीब था। धनी सैकड़ों कष्ट उठानेके लिए तैयार है, लेकिन जिसका खून पीकर वह मोटा हुआ है, उसके साथ बैठनेमें भी वह राजी नहीं होता। मेरे धनी साथी बूअरोंकी लाञ्छना चुपचाप हजम करके उन्हींके साथ मिलनेके लिए व्याकुल रहते थे, मेरे साथ नहीं; यद्यपि मेरा चमड़ा भी उन्हींकी तरह काला है।

दूसरे भारतीय सज्जन भोजन-गृहमें न जाते थे। अपने केबिनमें ही खाना मंगाकर खा लेते थे। आज मेरे साथ वहां जाकर बीयर पीनेके बाद जब उन्हें होश हुआ, तो कहने लगे कि आज तक मुझे यहां आनेकी हिम्मत नहीं हुई थी। आपके कारण ही आज यह सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह डरबन-में जहाजपर चढ़े, जहाजके डी० डेकपर उन्हें दो दिन काटने पड़े। मैंने उन्हें बताया कि मैं पहले भी एक बार लन्दन देख चुका हूं, तमाम यूरोप घूम डाला है, इसीलिए इन अर्द्ध हबशियोंको देखकर मुझे डर नहीं मालूम होता। मेरी हिम्मत देखकर उन्हें आनन्द हुआ। उन्होंने मेरा परिचय खलासियों-से करा दिया। उन सबोंने बैठकर एक दिन मेरे जीवनकी विचित्र कहानी सुनी और मेरे मित्र बन गये। शामको सात बजे हम दोनों 'डिनर' खाने गये। भोजन-गृहके एक किनारे छोटी मेजपर हमारे लिए प्रबन्ध किया गया। 'वेटर' हमें सबसे अच्छी तरह परोसने लगा। यह काम हमारे रुपयेकी कृपासे नहीं, बल्कि भावोंके आदान-प्रदानसे हुआ। मने वेटरसे कहा था—"दुनिया-भरमें अंगरेजोंका राज्य फैला हुआ है, चारों ओरसे अरबों रुपयेकी आमदनी हो रही है, लेकिन 'डऊ' (उसका नाम था) की बारी हफ्तेमें सतरह शिलिङ्गकी ही होती। दस शिलिङ्ग एक बाड़े-से घरके किरायेमें चले गये, बाकी रहे सात; क्या सात शिलिङ्गमें मक्खन-रोटीका प्रबन्ध हो सकता है ?" हमारे प्रति वेटरका पक्षपात दूसरोंके लिए असहनीय हो उठा था और उसकी कैफियत मैंने दी। मेरे मनमें जो कुछ भी हो, लेकिन जवाब इस तरह घुमाकर दिया था कि दोनोंमें किसीको नुकसान न पहुंचे। व्या-पारिक जहाजोंके जो कानून हैं, नौ-विभागके भी वही हैं, इसलिए जहाजियोंको इन्हें मानकर चलना ही पड़ता है।

पहले ही कहा गया है कि हैट, कोट पहननेसे लोग साहब नहीं बन जाते, अन्यायके विरुद्ध लगातार लड़ने और मरनेवाले ही साहब हैं। इनमें भी यही भाव हमेशा मौजूद है, लेकिन अन्याय रहनेसे तो विद्रोह करेंगे। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि हमारे प्रति सहानुभूति दिखानेके लिए वेटरपर कटाक्ष किये गये हैं और इसके लिए वह कुछ कर न बैठे। उसने क्या किया था, इसका जिक्र एक दिन मुझसे किया। उसने कहा था—ब्रिटेनका झण्डा हमारे ऊपर उड़ रहा है। तुम भारतीयोंको घृणा करनेका कौन-सा हक है। जैसे तुम हो, वैसे ही वे भी।

समुद्र शान्त है, जहाज तेजीसे जा रहा है। हम कभी सोते, कभी घूमते और कभी एक-दूसरेसे अपने दिलकी बातें करते। हमारा दिल हमेशा तरह-तरहके सन्देहोंसे घिरा रहता है, इसीसे एक-दूसरेसे अपनी आन्तरिक बातें नहीं करते हैं। पहले लोग आपसमें धार्मिक विषयोंपर वाद-विवाद करते थे, और इसीके आधारपर उनका मानसिक सङ्गठन होता था। आजकलकी बातचीत दूसरी तरहकी होती है। पहले थी मुहम्मद, बुद्ध, ईसाकी बात। अब है स्टालिन, हिटलर, मुसोलिनी, दलादिये और चेम्बरलेनकी बात और आजके मतवाद साम्यवाद, नाजीवाद, फैसिज्म और साम्राज्यवादकी बात। इनमें पहला तीनोंको और तीनों पहलेको ध्वंस करना चाहते हैं। इसीलिए जहाजके यात्री अपने सम-मतावलम्बीको छोड़कर दूसरेसे अपने मनका भाव प्रकट नहीं करना चाहते थे। हम दोनों सर्वदा हरएककी नजरोंमें गड़े हुए थे। मेरे भारतीय साथीने एक दिन कहा—मेरा राजनीतिसे इञ्च-भर भी वास्ता नहीं है। सब हंसने लगे,

और मेरी ओर इशारा करके एकने कहा—आपको तो अपनी बाइसिकलको छोड़कर किसीसे वास्ता नहीं। इसका प्रतिवाद करके मैंने कहा—मैं दुनियामें रहता हूं। इसलिए इसमें जो कुछ होता है, सबसे मेरा वास्ता है।

हम दोनोंकी बात सुनकर सभी तरह-तरहकी राय जाहिर करने लगे, लेकिन मैं अपनी रायपर डटा रहा। मेरे दिलमें आया कि शरीरके रङ्गसे जो भेदभाव पैदा हुए हैं, उन्हें मिटा देनेके लिए मैं सब कुछ करनेके लिए तैयार हूं। जिन्दगी तो साधारण-सी बात है, इसके लिए अगर मेरे पास और कुछ भी हो, तो मैं देनेके लिए तैयार हूं।

जहाजके गोल्ड कोस्ट पार होते ही, बूअर तथा अन्यान्य यूरोपियनोंके हावभाव बदलने लगे। बहुतेरे मुझसे दिल खोलकर बातचीत करने लगे, लेकिन मेरे मित्रको इन बातोंसे कोई वास्ता नहीं। किस तरह कपड़ा साफ करनेकी एक बड़ी मशीन खरीदेंगे और किस तरह उसे फिट करवाया जायगा, इसी अधेड़बुनमें वह लगे हुए हैं। लेकिन उन्हें यह मालूम नहीं कि अगर बूअर लोग भारतीयोंको देश छोड़कर चले जानेका हुक्म देंगे, तो इन मशीनोंका क्या होगा? भारतीयोंकी दुरवस्थाका एक प्रधान कारण यह है कि वे दूर-दृष्टिसे काम नहीं लेते, वे सोचते हैं, मैं हूं, मेरे सम्बन्धी हैं और मेरा धन है। इसीको विशुद्ध यहूदी प्रकृति कहते हैं। समग्र भारत मानो एक यहूदी देश है। कुछ इने गिने शिक्षित अरबोंने यहूदियोंको फिलिस्तीनसे नेस्तनाबूद कर दिया, इसकी वजह क्या है? अरब जानते हैं, उनका जन्म हुआ है मरनेके लिए, तो देश और जातिके शत्रु यहूदीको मारकर क्यों न मरें। जो मरना जानते हैं, वे मरते बहुत कम हैं, और जो जिन्दा रहना चाहते हैं, वही अधिक मरते हैं। मेरे भारतीय धनी भाईको इतना ज्ञान नहीं है, उनकी एकमात्र चिन्ता है मशीन खरीदूंगा और डरबनमें जाकर मालामाल हो जाऊंगा।

मैं सबसे मिलने-जुलने लगा। यूरोपियन, बूअर, सभी मुझसे तरह-तरहकी बातें करने लगे। उनके प्रधान प्रश्न था महात्मा गांधी और दक्षिण अफ्रीकामें उनका प्रभाव और उसकी सफलताके सम्बन्धमें। इसी सिलसिलेसे सुभाष बाबू और जवाहरलालजीका नाम भी आ जाता था। मैं उनसे बराबरीकी हैसियतसे राजनीतिको लेकर तर्क-वितर्क करता था। मेरी चिन्ताधारा और बातोंको सुनकर वे समझते थे कि मैंने बहुत-सी किताबें पढ़ी हैं, इसीलिए एक आदमीने पूछाः—क्या आपने कार्ल मार्क्सकी किताबें पढ़ी हैं? मैंने ये किताबें पढ़ी हों या नहीं, लेकिन एक बात अक्सर मुझे याद आती है कि इस दुनियामें अर्थाभाव, पराधीनताकी ग्लानि, दरिद्रताका लाञ्छन और धनियोंके जुल्मोंका जिसने अनुभव नहीं किया है, उसका जीवन अधूरा है। हमारे देशके हरिजनोंने आज तक विद्रोह नहीं किया। रोटी, तरकारी, जूठन खाकर वे पेट पालते थे। लेकिन आज वे विद्रोहकी ओर बढ़ रहे हैं, आज उन्हें प्रतिकारका रास्ता मिल गया है। आज आध्यात्मिकताके बहकावेमें न पड़कर वे वास्तवतावादीकी दृष्टिसे अपनी समस्याओंको देखने लग गये हैं। हमारी विपत्तियां अब दूर होनेको हैं, हम अब ठीक रास्तेपर आ गये हैं। हमारा जहाज विद्रोही देशकी ओर बढ़ता जा रहा है, कप्तानने कहा है कि हम दस ही दिनमें साउदम्पटन पहुंच जायेंगे।



रूसका जाग्रत नारी समाज

श्रीमती अरुणा कुमार

स्त्री-जागरणके इस युगमें वर्तमान रूसकी स्त्रियां कदाचित् संसारके समस्त देशोंकी स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक स्वतन्त्र हैं। जार-कालीन रूस स्त्रियोंके पद-दलनके लिए जितना बदनाम था, उतना ही वह इस समय अपने यहां स्त्रियोंको स्वतन्त्रता और सौख्य प्रदान करनेके लिए सुप्रसिद्ध है। पुरुषोंके ही समान स्त्रियोंको अधिकार देकर रूसने क्रियात्मक रूपसे यह सिद्ध कर दिया है कि स्त्रियों और पुरुषोंके समान अधिकार और सहयोग-पूर्ण कार्यके बिना देशका राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक उत्थान सम्भव नहीं है। साथ ही यह भी, कि जब तक स्त्रियां सामाजिक और आर्थिक रूपसे स्वतन्त्र नहीं होतीं, भोजन और वस्त्रके लिए जब तक वे पुरुषोंकी मुहताज रहती हैं, तब तक पुरुषोंके समान अधिकार प्राप्त नहीं कर सकतीं। इन दोनों परस्पर-सम्बद्ध बातोंकी पूर्ति नूतन रूसने बड़ी उत्तमता और सफलताके साथ की है। स्त्रियोंको पुरुषोंकी जकड़बन्दियोंसे मुक्त कर उसने उन्हें अनेक प्रकारके उद्योग-धन्धोंमें लगाया। उनके लिए साधन उपस्थित किये, ताकि वे पुरुषोंपर रोटी-कपड़ेके लिए निर्भर न रहें और उनके अत्याचारोंसे अपनेको मुक्त रखें। इस समय ७८,९७,१०० स्त्रियां भिन्न-भिन्न व्यवसायोंमें—इञ्जीनियर, डाक्टर, अध्यापक, क्लार्क आदिके रूपमें तथा फैक्टरियोंमें—काम करके अपनी रोटी आप कमा रही हैं। जीवनके सभी क्षेत्रोंमें उनका प्रवेश है।

जार-कालीन स्त्रियोंकी स्थिति—जारके शासन-कालमें स्त्रियोंको निजी कोई अधिकार न थे। स्त्री पुरुषकी जर-खरीद सम्पत्ति समझी जाती थी। उसे अपने जीवनकी सभी बातोंमें पतिके ही अधीन रहना पड़ता था, उसके इशारोंपर नाचनेवाली कठपुतली बनी थी वह। बिना पतिकी स्वीकृतिके वह कोई कार्य नहीं कर सकती थी। पतिके तलाक दे देनेपर स्त्रीकी उदर-पूर्तिका कोई सहारा न रहता था। अविवाहिता स्त्रीकी सन्तान त्याज्य समझी जाती थी और उस स्त्रीको समस्त जीवन अपमानित रूपसे व्यतीत करना पड़ता था। परन्तु उसी अपराधका अपराधी पुरुष स्वच्छन्द रहता था। उन दिनों केवल मास्को नगरमें हर साल २० हजार नाजायज रूपसे उत्पन्न बच्चे दर्ज किये जाते थे, जिनमें मृत्यु-संख्या भी ७९ और ८० प्रतिशत होती थी। महात्मा टाल्सटायने उस समयकी रूसी स्त्रियोंके सम्बन्धमें अपनी पुस्तकमें लिखा था:—

"रूसमें स्त्रियां निकम्मी और मूर्ख बनाकर रखी जाती हैं। वे न तो कुछ देख पाती हैं और न सुन पाती हैं। पुरुष तो कुछ सीख भी सकता है। क्योंकि वह तो इधर-उधर जाता है; किन्तु स्त्रीके लिए तो यह भी सुगमता नहीं है। ऐसी दशामें उससे क्या आशा की जा सकती है? उसे किसी प्रकारकी, किसीसे शिक्षा नहीं मिलती। यदि उसे कभी कोई सिखाता भी है, तो उसका पति और वह भी उस दशामें, जब वह शराब पिये हुए होता है और उसके हाथमें कोड़ा होता है। बस, यही शिक्षा रूसी स्त्रीको मिलती है।"

स्वतन्त्रता और उत्तरदायित्व—परन्तु रूसकी पिछली राज्य-क्रान्तिके बाद वे सब पुराने कानून दफना दिये गये और नये कानून बनाये गये। इन कानूनोंके अनुसार स्त्रियोंको स्वतन्त्रता और उत्तरदायित्व प्रदान किया गया। सामाजिक जीवनको सुदृढ़ और सुखमय बनानेके साथ-साथ राजनीतिक और राष्ट्रीय जिम्मेदारी भी उनपर रखी गयी। नये कानूनोंके बनते ही हजारों संस्थायें स्त्रियोंके अधिकारोंके प्रचार और उनकी रक्षाके लिए स्थापित की गयीं। ये संस्थायें सोवियट रूसकी स्त्रियों और बच्चोंके हितोंकी रक्षा करती हैं। वास्तवमें स्त्रियों और पुरुषोंका समानाधिकार ही वर्तमान रूसके सामाजिक पुनःसङ्गठनका आधार है।

ग्रामीण स्त्रियोंके लिए नवयुग—रूसमें नूतन ग्राम्य पुनः सङ्गठनमें ग्रामीण स्त्रियोंके लिए नवयुगका श्रीगणेश हुआ है। किसानोंके व्यक्तिगत खेतोंके राष्ट्रीयकरण और एकीकरणके साथ-साथ कृषि और उसकी प्रणालीको नया रूप दिया गया है। पुराने हलों और अन्य औजारोंके स्थानपर मशीनोंका सञ्चार किया गया है। इन मशीनोंके सञ्चालनमें स्त्रियोंको अग्रसर किया गया है, जिससे



क्लवदिया पावलोवा जहाजमें कप्तानका काम करती है।

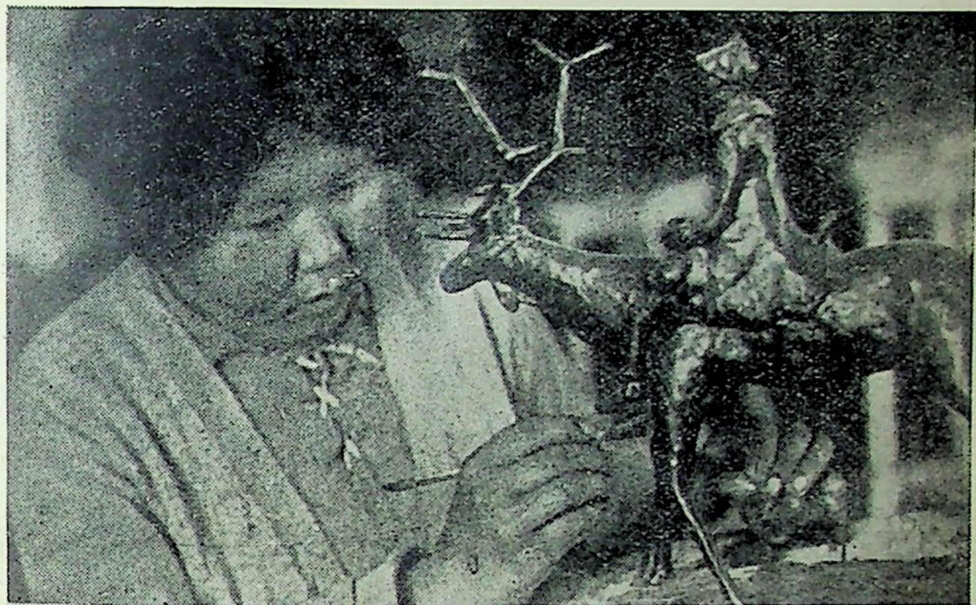
उद्योगकी दृष्टिसे स्त्रियोंकी स्थिति बहुत सुदृढ़ बन गयी है। खेतीके कामके अतिरिक्त स्त्रियोंके लिए स्कूल और पुस्तकालय भी खोले गये हैं, जिनमें स्त्रियोंको साहित्यिक और गृह-कार्यकी भी शिक्षा दी जाती है। मातृ और धातृ-शिक्षाके लिए शिशु-रक्षाके केन्द्र भी सर्वत्र स्थापित किये गये हैं, जिनमें ग्रामीण स्त्रियोंको जनन-विज्ञानका ज्ञान प्राप्त कराया जाता है। स्त्रियोंके मनोरञ्जन और खेल-कूदके लिए क्लब भी स्थापित हैं। उनके बच्चोंकी भी शिक्षा और देख-भालका प्रबन्ध रूसकी सरकार द्वारा होता है और उनमें सहयोग और राष्ट्र-हितकी भावना भरी जाती है।

विवाह और तलाकके नये नियम—सोवियट रूसने विवाहके लिए सरल और सर्वजनहितैषी नये नियम बनाये हैं। कन्याओंके लिए विवाहकी अवस्था १८ वर्ष रखी गयी है। १८ वर्षसे पहले किसी कन्याका विवाह नहीं हो सकता। स्थानीय परिस्थितियोंके अनुसार सेण्ट्रल एक्जीक्यूटिव कमेटी आव नेशनल रिपब्लिकके अध्यक्षको यह अधिकार है कि वह विवाहकी अवस्थाको घटा भी सकते हैं; किन्तु एक वर्षसे अधिक नहीं। विवाहकी रस्म बहुत सादी रखी गयी है। जो स्त्री और पुरुष वैवाहिक सम्बन्धमें सम्बद्ध होना चाहते हैं, वे रजिस्ट्रारके दफ्तरमें जाते हैं। स्त्रीसे पूछा जाता है कि वह अपना नाम रखेगी अथवा अपने भावी पतिके नामसे पुकारी जाना पसन्द करेगी। यदि वह अपना ही नाम कायम रखना चाहती है, तो उसका पुराना नाम ही रहने दिया जाता है और नहीं तो पतिके नामपर उसका नाम रख दिया जाता है। वे दोनों अपने-अपने पेशे बतलाते हैं, इसके बाद विवाह-पत्रपर उनके हस्ताक्षर कराये जाते हैं और बस, उनका विवाह हो जाता है। विवाहके पहले स्त्री-पुरुषकी जो सम्पत्ति होती है, वह उनकी अलग-अलग निजी समझी जाती है। परन्तु विवाहके बाद दोनोंकी आय संयुक्त सम्पत्ति समझी जाती है। यदि स्त्री जीविका उपार्जनका कोई काम नहीं करती और केवल गृहस्थीकी ही देखभाल करती है, तब भी पतिकी आयपर उसका आधा अधिकार रहता है।

यदि स्त्री या पति अपने रहनेका स्थान बदल दे, तो दूसरा यदि उस स्थानमें जाना न चाहे, तो उसके लिए यह आवश्यक नहीं रहता कि वह भी वहीं जाय। पति और पत्नी दोनोंको अपने-अपने पेशेका काम करनेका पूरा अधिकार रहता है। यदि पति अथवा पत्नी काम करनेमें अशक्त होते हैं या धनकी आवश्यकता होती है, तो एक-दूसरेका खर्च पूरा करते हैं।

तलाक—तलाक भी रूसमें बड़ी आसानीसे मिल जाता है। पति या पत्नी कोई भी तलाक मिलनेकी प्रार्थना करे, तलाक मिल जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि दोनों उसके लिए दरख्वास्त पेश करें। साधारण-सी बातपर भी तलाक मिल जाता है। एक पतिने एक बार केवल इस बात-पर अपनी स्त्रीको तलाक दे दिया कि उसकी स्त्रीके राज-नीतिक विचार उससे भिन्न थे और उसका तलाक स्वीकृत भी हो गया। एककी पसन्द कुछ और दूसरेकी कुछ और, तो इसके लिए भी वे एक-दूसरेको तलाक दे सकते हैं। एक रूसी लेखकने एक विचित्र तलाकका उल्लेख एक लेखमें किया है। घटना यह है कि एक स्त्रीने, जिसका पति डाक्टर था और राजयक्ष्मा रोगसे उसकी मृत्यु हो गयी थी, फिरसे विवाह करना चाहा। उसकी यह इच्छा थी कि किसी शिक्षित व्यक्तिसे विवाह करे। वह यह भी चाहती थी कि

वह ऐसे पुरुषसे विवाह करे, जिसका पहले विवाह न हुआ हो, और जिसे पहली स्त्रीके बच्चोंके पालन-पोषणकी चिन्ता न हो। इस तरहका पुरुष जब बहुत तलाश करनेपर भी उसे न मिला, तो उसने अपना इरादा एक दूधवालीपर प्रकट किया और उससे इस सम्बन्धमें सहायता मांगी। दूधवाली बड़ी चालाक थी। वह उस विधवाकी इच्छा-के अनुकूल पतिको खोज करनेको राजी हो गयी। विधवाने उसे इस कामके लिए ३० रूबल (रूसी सिक्का) देनेको कहा, पर दूधवालीने कहा कि मैं ९० रूबल लूंगी। विधवा इसके लिए भी तैयार हो गयी और कुछ रुपये पेशगी भी उसने दे दिये। दूधवाली अपने घर गयी और अपने पतिसे बोली कि एक शिकार हाथ लग गया है। एक विधवा स्त्री अपना पुनर्विवाह करना चाहती है और एक पुरुषकी तलाशके लिए उसने मुझे ९० रूबल देनेको कहा है। अतः तुम मुझे तलाक देकर उससे विवाह कर लो और फिर उसे तलाक देकर चले आना ; क्योंकि तलाक मञ्जूर होनेमें दिक्कत नहीं होगी और ये ९० रूबल मुफ्त मिल जायेंगे, जिससे हम लोग कुछ दिन मौज करेंगे। दूधवालीका पति इसके लिए राजी हो गया और उसने अपनी स्त्रीको तलाक देकर डाकरनी विधवासे शादी कर ली। शादी होनेके बाद दूधवाली अपने पतिके वापस आनेका इन्तजार करने लगी। एक सप्ताह बीता, दूसरा भी बीता, और जब वह वापस नहीं आया, तो दूधवाली डाकरनीके घर गयी। वहां जाकर उसने अपने पतिसे वापस चलनेको कहा; किन्तु उसके पतिने यह कहकर उसके यहां जानेसे इनकार कर दिया कि मुझे यहां अधिक सुख है और तुम्हारे पास आना मैं नहीं चाहता।



रूसी बालिका स्थापत्यकलाकी शिक्षा प्राप्त कर रही है।

सन्तानकी जिम्मेदारी—उपर्युक्त घटनासे यह ज्ञात होता है कि रूसमें तलाक कितनी आसानीसे मिल जाता है। रूसी सरकार बच्चोंकी फिक्र रखती है। बच्चोंके पालन-पोषणका उत्तरदायित्व माता-पितापर होता है। चाहे वे रजिस्ट्री-शुदा विवाहित दम्पतिसे उत्पन्न हुए हों या बिना रजिस्टर्ड विवाहसे। सन्तान जब तक १८ वर्षकी न हो जाय, तब तक उसका पालन करनेके लिए माता-पिता बाध्य होते हैं। सन्तानके पालन-पोषणकी जिम्मेदारी माता और पिता दोनोंपर समान रूपसे रहती है। यदि सन्तान माताके पास रहती है, तो वह उसके पालन-पोषणमें जो धन और समय खर्च करती है, उसके लिए उसे अदालतसे मुआवजा दिलाया जाता है। बच्चोंका हित रूसमें सर्वप्रथम महत्त्वका समझा जाता है और उनके हितोंकी रक्षाके लिए सरकारको माता-पिताके कौटुम्बिक मामलोंमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार भी दिया गया है।

यह सब योंही नहीं—रूसमें यह जो कुछ भी हुआ, वह सब योंही नहीं हो गया। आजादी योंही नहीं मिल जाती। उसके लिए लड़ना पड़ता है। रूसकी लाल क्रान्तिके बाद ही वहांकी नारियोंने जाना कि हरएक क्षेत्रमें पुरुषकी तरह उनका भी समानाधिकार है। उनके भी राजनीतिक, सामाजिक और न्यायोचित हक हैं। अब तक गांवों और कल-कारखानोंमें काम करनेवाली औरतोंको बाप-दादोंसे चली आनेवाली प्रथाओंके खिलाफ कड़ी लड़ाई करनी पड़ती है। फिर भी सरकारकी ओरसे नारियोंको हरएक तरहकी



रूसी नारी मिरवाचेब पैराशूटसे उतरनेके बाद अपनी दादीसे मिल रही है। ऐसी हजारों नारियां पैराशूटसे उतरनेकी शिक्षा प्राप्त कर चुकी हैं।

गुलाम नहीं, बांदी नहीं। जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें हम काम करनेके लिए स्वतन्त्र हैं।" "हम स्वतन्त्र हैं और जीवनका प्रत्येक क्षेत्र हमारे लिए खुला हुआ है,' यह बात एक नहीं, सैकड़ों मजदूरिनोंके मुंहसे सुननेको मिलेगी।

इधर जबसे सम्मिलित खेतीकी प्रथा चल पड़ी है तबसे औरतोंको आर्थिक आधारपर ही स्वतन्त्रता मिल गयी है, महिलायें स्वयं मिहनतसे पैदा कर रहना चाहती हैं। अगर किसीके घरमें उसका पति शराबी है, तो उसकी पत्नी पतिकी चिन्ता न कर अपने आप घरका सारा प्रबन्ध अपने हाथमें ले लेगी। यही नहीं, उसके सुधारनेकी कोशिश करेगी। ज्यादातर पत्नीका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होता है और पतिका अपना। वह जो कुछ कमाती है, उससे अपने गर्म कपड़े और जूते आदि खरीद लेगी और अपना खर्च स्वयं चलायेगी। बाजारमें कपड़े खरीदते समय एक औरतने एक दिन कहा था—"मैंने अपने लिए और अपने बच्चेके लिए तो कपड़े ले लिये हैं, लेकिन पतिके लिए नहीं लूंगी। कारण, उसने अपना सारा रुपया शराबमें बरबाद कर दिया है। मैं अपने रुपयोंसे उसके लिए कपड़े क्यों खरीदूं? मैंने उससे कह दिया है कि अगर अबकी बार वह फिर शराब पियेगा, तो उसे घरसे निकाल दूंगी और खाना भी न दूंगी। मेरा काम उसके बगैर भी चल सकता है।" इस तरहके विचार आज लाखों बहनें मास्कोसे लेकर ब्लाडीवास्टक तक फैला रही हैं और वहांकी नारियोंमें अपार शक्ति और साहस आ रहा है। यही नहीं, अब वे सोचने लगी हैं कि मर्दोंके बगैर उनका काम चल सकता है। नारियां आज रूसकी एक ताकत हैं। इस समय रूसमें दस लाखसे भी अधिक औरतें सार्वजनिक

सहायता दी जाती है। यही नहीं, उनके अधिकारोंके लिए उन्हें प्रोत्साहन दिया जाता है।

आजादीका सबसे पहले सुख भोगनेवाली औरतें वे हैं, जो रूसके कल-कारखानोंमें काम करती हैं और जिन्होंने पिछली क्रान्तिमें हर तरहसे मदद पहुंचायी थी। इस सम्बन्धमें हमें एक घटना याद आ गयी है:—एक अपढ़ मजदूरिन ड्यूनिया थी, जो अपने पति और तीन बच्चोंके साथ एक कमरेमें एक परिवारके साथ, जिसमें नौ आदमी थे, रहती थी। रूसमें ज्योंही गदर मचा, उसने अपनी मिलके मैनेजरके मकानपर कब्जा कर लिया, जिससे कमसे कम उसके बच्चे पैर पसार आरामसे सो तो सकें। बादको उसने पढ़ना-लिखना भी सीख लिया और सामाजिक तथा राजनीतिक कामोंमें भी भाग लेने लगी। एक दिन बातचीतके सिलसिलेमें वह बोली—"एक समय था, जब बगैर मजदूर काम चल जाता था। उन दिनों हम औरतोंकी भी कोई पूछ न थी। पिताने किसी भी आदमीको नारीका हाथ पकड़ा दिया और वही फिर उसका मर्द हो गया। औरत मर्दकी बांदी होती थी। कल-कारखानोंमें भी उसे गुलामसे कम नहीं समझा जाता था। लेकिन आज हम स्वतन्त्र हैं। हम किसीकी

दफ्तरोंमें काम कर रही हैं। इनमेंसे चार लाख चुनी हुई सदस्यायें हैं, चार लाख स्थानीय सरकारके दफ्तरोंमें हैं और एक लाख बारह हजारके करीब जज आदि हैं।

इस तरह देखा जाय तो रूसकी नारीको जीवनके हरएक क्षेत्रमें समानता और स्वतन्त्रताका स्थान दिया गया है। वह हरएक काममें स्वतन्त्र है। लड़कोंकी तरह लड़कियां भी अपने भविष्यके विषयमें सोचती हैं और मनचाहा काम करती हैं। शादीके बाद भी लड़कियां काम जारी रखती हैं। वहां ऐसा कोई कानून नहीं है, जिससे उन्हें जबरन् ऐसा करना पड़ता हो, लेकिन वे स्वतः ही हर तरहके काम करनेकी इच्छा रखती हैं।

रूसमें स्त्रियां पुलिसमैनका भी काम करती हैं। वे बेधड़क अपनी-अपनी वर्दीमें रातको सुनसान स्थानोंमें घूमती और पहरा देती हैं। कभी-कभी इन महिला पुलिसमेनोंको बदमाशोंका भी सामना करना पड़ता है। लेकिन उस वक्त भी वे किसी पुरुषसे कम बहादुरी नहीं दिखलातीं। रेलवे इञ्जिन औरतें चलाती हैं। हवाई जहाजोंको भी उड़ाते हुए आप उन्हें देखेंगे। होटल, दूकान, बस, ऐसा कौन काम है, जिसे वहांकी औरतें नहीं कर सकतीं ?

———

बालकन देशोंकी जटिल समस्या

श्री रामाधीन अग्निहोत्री, बी० ए०, बी० टी०

यूरेशिया महाद्वीपमें बालकन राज्योंकी भौगोलिक स्थिति इतनी मार्केकी है कि वे अतीत कालसे ही अनेकों 'महाभारत'के प्रमुख कारण रहे। गत यूरोपीय महायुद्धके विकराल ज्वालामुखीका विस्फोट यहींसे प्रारम्भ हुआ था। सौभाग्यसे इस बार इनका मस्तक कलङ्क-कालिमासे अछूता बच गया। परन्तु दो मासके अन्दर वहां—रूमानियामें—कतिपय ऐसी रोमाञ्चकारी घटनायें घटीं, जिनसे यह स्पष्ट झलक मिलने लगी कि कदाचित् निकट भविष्यमें ही समूचा बालकन प्रदेश नरमेध यज्ञशाला न बन जाये। कुछ भी हो, यदि जर्मनीका वर्तमान आक्रमण सत्वर हो ब्रिटेनपर सफल न हुआ, तो निस्सन्देह पश्चिमी मोर्चेका पटाक्षेप हो जायेगा, और कुछ कालके लिए यह भू-भाग यूरोपियन नाटकमें प्रमुख स्थान धारण कर लेगा। ऐसी विकट परिस्थितिमें हर हिटलर और मो० स्टैलिनके मध्य राजनीतिक चालों द्वारा प्रभाव एवं विस्तारकी वृद्धिके हेतु सङ्घर्ष छिड़ जायेगा, जिसका भला-बुरा परिणाम भविष्य ही बता सकेगा।

सोवियट रूसके पदार्पणके साथ-साथ इन देशोंकी राजनीति अत्यन्त दुरुह हो गयी और यहांकी आन्तरिक समस्या उससे भी जटिल। पश्चिमी मोर्चेपर जर्मनीकी चकाचौंध कर देनेवाली विजयोंके बाद ही रूसने एकाएक बालकन देशोंके रङ्गमञ्चपर प्रकट होकर वहां भारी खलबली पैदा कर दी है। रूमानियाकी वर्तमान सरकारका झुकाव रोम-बर्लिन धुरीकी ओर है। कुछ सप्ताह पूर्व रूसने रूमानियाकी अनुनय-विनयको ठुकराकर अपने पुराने दो प्रान्तों (बेसरबिया तथा बुकोविना) पर अधिकार जमा लिया, और इस प्रकार रूमानियाको एक विशाल भू-भाग तथा लगभग ३१॥ लाख जनसंख्यासे वञ्चित कर दिया। रूसके इस कार्यने मास्को-बर्लिनके मध्य चलनेवाले स्वार्थ-सङ्घर्षको और भी कटु बना दिया है।

स्टैलिन इस समय, जब हिटलर पश्चिमी मोर्चेपर चलनेवाले युद्धकी चिन्ताओंमें डूबा हुआ और राजनीतिक चालोंमें व्यस्त है, जर्मनीकी 'सांप-छछूंदर गति'से अधिकाधिक लाभ उठाना चाहता है। ऐसे समय हिटलर समस्त बालकन देशोंको सरोवरको भांति शान्त देखना चाहता है, ताकि उसे पश्चिममें अपनी योजनाओंको शीघ्रतापूर्वक बिना किसी अड़चनके कार्यान्वित करनेका सुअवसर मिलता रहे। नात्सियोंकी दृष्टिमें सारा बालकन प्रदेश 'जर्मन राइख' की पूर्ववाञ्छित अंगूरोंकी आकर्षक वाटिका है, जिसे वे न तो उसके प्राचीन स्वामी और न नवीन लुटेरे द्वारा ही लुटता देखना चाहते हैं। इस वर्ष वहांकी अनाजकी फसल भी बहुत अच्छी है। अतः जर्मनी और बालकन देशोंके लिए यह

परमावश्यक है कि इस फसलके पकने तक वहां पूर्ण शान्ति रहे। परन्तु इस मध्यमें मो० स्टैलिनने, जिनका एकमात्र लक्ष्य 'रूस-जर्मन अनाक्रमण' सन्धिकी ओटमें अपना उल्लू सीधा करना प्रतीत होता है, एक प्रकारसे रूसकी सीमाओं-को उत्तरोत्तर चारों ओर बढ़ानेकी शपथ-सी खा ली है। जैसा कि ऊपर कह आये हैं, स्टैलिनने बातकी बातमें अपनी 'लाल-सेनाओं' को भेजकर रूमानियासे बुकोविना तथा बेसरबियाके प्रान्त छीन लिये, और अब उसके उपजाऊ मोल्डाविया तथा बालेशियाके मैदानोंको उदरस्थ करनेके लिए आये दिन बहाना ढूंड़ा करता है। इस विपन्ना-वस्थामें बेचारा रूमानिया एक प्रकारसे जर्मनीकी शरणमें निर्दयतासे फेंक दिया गया है, जो स्वयं उसकी दयनीय दशापर तरस न खाकर अनुचित लाभ उठाना चाहता है। ठीक ही है, बेचारी कपास जहां ही जायेगी, वहां ही चर्खीमें ओटी जायेगी। 'सबै सहायक सबलके, कोउ न निबल सहाय' वाली कहावत पूर्ण रूपसे चरितार्थ हो रही है। हिटलर प्रत्येक रीतिसे हंगरीको ट्रान्सिलवेनिया वापस कर देनेके लिए रूमानियाको बाध्य कर रहा है। हिटलरके दबाव डालनेपर ही उसने बिना लड़े अपने बेसरबिया तथा बुकोविना नामक दो प्रान्त स्टैलिनको भेंट कर दिये थे। उस बेचारेने यह दधीची त्याग केवल इसीलिए किया था कि उसके भावी भक्षक जर्मनीको पश्चिमी मोर्चेपर विजय-पर विजय प्राप्त होती रहे।

कुछ ही दिनों पूर्व रोम और बर्लिनके भाग्यविधाताओंने आज्ञाकारी रूमानियाके प्रतिनिधियोंको यह निर्दिष्ट आदेश दिया था कि उन्हें शीघ्र ही ट्रान्सिलवेनियाका अधिकसे अधिक भूभाग देकर हंगरीको सन्तुष्ट कर लेना चाहिए। यह ऐसी कठोर आज्ञा थी, जिसे बेचारा रूमानिया अन्यत्र होने-वाली भारी हानिके भयसे एकदम अस्वीकार नहीं कर सकता था। सबल पड़ोसी रूसके द्वारा पीठमें छुरा भोंके जानेपर भी उसके कतिपय देश-प्रेमियोंकी धमनियोंमें उष्ण रक्तका सञ्चार हो रहा था। उन्होंने इस देशघातक प्रस्तावके खिलाफ अपनी आवाज उठायी, जिसके फलस्वरूप रूमा-नियाकी सरकारने हंगरीकी मांगको केवल आंशिक रूपमें ही स्वीकार करनेका अटल निश्चय प्रकट किया। हालके समा-चारोंसे यह विदित हुआ है कि रूमानिया हंगरीकी प्रादेशिक मांगका केवल १/५ भाग ही देनेको राजी है, और ३७,००,००० जनसंख्याके स्थानपर ५००००० जनसंख्या देनेको तैयार है। हंगरी, ट्रान्सिलवेनिया प्रान्तका पूरा २/३ भाग वापस लेना चाहता है; परन्तु रूमानिया सरहद्दी चार जिलोंका कुछ भाग ही देना चाहता है। पारस्परिक समझौतेकी बातचीत टूर्नू-सेविरिन नामक स्थानपर चल रही है। 'रूमानियन' तथा 'हङ्गेरियन' प्रतिनिधि-मण्डलके अध्यक्ष क्रमशः मो० वेलेरियन पोप तथा मिस्टर होरी हैं।

ठीक इसके प्रतिकूल हर हिटलरने बलगेरियाको अपनी दक्षिणी डोब्रूजा वापस पानेकी मांगको वर्तमान यूरोपीय युद्धके अन्त तक स्थगित रखनेका आदेश दिया था। यह आदेश इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि इन देशोंमें मनो-मालिन्य है, और उनके राजनीतिक सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण नहीं हैं। परन्तु हालके समाचारों द्वारा ज्ञात हुआ है कि इन दोनों देशोंके मध्य भी क्रैनोवामें मैत्रीपूर्ण समझौतेकी बातचीत चल रही है, और दक्षिणी डोब्रूजाकी समस्या एक प्रकारसे तय-सी हो गयी है।

यदि एक ओर बलगेरियाका मनमुटाव जर्मनीके प्रति बढ़ गया है, तो दूसरी ओर कुछ कालसे उसका राजनीतिक सम्बन्ध सोवियट सरकारसे अच्छा रहा है। कुछ पत्रोंमें यह समाचार भी प्रकाशित हुआ था कि बलगेरिया केवल दक्षिणी डोब्रूजाको ही वापस लेना नहीं चाहता, जो सन् १९१३ के पूर्व उसका था, वह पूर्वी रूमानियाके चित्रको ही एक ऐसा रूप दे देना चाहता है, जिससे उसकी काला-सागरतटीय सीमा रूससे मिल जाये, और इस प्रकार रूमानियाको पूर्णरूपेण समुद्री तटसे वञ्चित कर दे। रूसके अतिरिक्त, बलगेरियाकी केवल दक्षिणी डोब्रूजाकी मांगसे यूगोस्लेबिया तथा ग्रेट ब्रिटेन भी सहमत हैं, क्योंकि यह आर्थिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक आदि सभी दृष्टियोंसे न्यायोचित है। इस प्रदेशके आधेसे अधिक निवासी 'बलगर' जातिके हैं, और एक चौथाईसे भी कम 'रूमानियन' हैं। बलगेरियाको रूमानियाकी अपेक्षा कहीं अधिक आव-श्यकता इस भूभागकी है, क्योंकि इस प्रान्तमें गेहूंकी उपज अधिक होती है। रूमानियाका यह प्रस्ताव, कि दोनों देशोंको अपनी-अपनी जनसंख्या बदल लेना चाहिए, सम्भवतः बलगेरिया द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता,

क्योंकि रूमानियामें 'बलगर' अधिक हैं, जब कि बलगेरियामें 'रूमानियन' की संख्या बहुत न्यून है।

यूगोस्लेविया, बलगेरियाका सच्चा मित्र तथा उसका पक्षपाती है, अतएव वह रोम-बर्लिन धुरीको बुरी तरह खटकता है। बेचारा इटली और जर्मनीके घेरेके कारण बुरे प्रकार भयभीत है। अपनी रक्षाके लिए वह मूकभावसे सजातीयताके नाते रूसकी ओर टकटकी लगाये देख रहा है। दैनिक पत्रोंमें प्रकाशित समाचार द्वारा यह भी विदित हुआ है कि अलबानिया-निवासियोंने हाल ही में इटलीके विरुद्ध विद्रोहका झण्डा खड़ा किया है; परन्तु इसके सफलीभूत होनेकी कोई आशा नहीं। कुछ भी हो, यह स्पष्ट है कि इन घटनाओंसे आपसकी तनातनी ऐसे समयमें बढ़ गयी है, जब बालकन देशोंमें बलगेरिया और हंगरी अपने घायल पड़ोसी रूमानियाको क्षति पहुंचाकर अपनी सीमाओंको बढ़ानेके लिए प्राणपणसे तुले हुए हैं।

यूरोपके दो प्रमुख तनाशाहोंकी पागलपन-भरी दौड़में भला चचा मुसोलिनी कब पीछे रह सकते हैं। वह भी अपने निकटवर्ती यूनानपर प्रभुत्व जमाना चाहते हैं, परन्तु इसके लिए इस समय वह युद्ध करना नहीं चाहते। इसी प्रकार हिटलर रूमानियासे खनिज-तेल पेट्रोल पानेके लिए वहांके शासनकी बागडोर ऐसी सरकारके हाथोंमें देखना चाहता है, जिसका झुकाव नात्सी जर्मनीकी ओर हो। इसके साथ ही वह रूमानिया द्वारा हंगरी तथा बलगेरियाकी मांगोंकी भी पूर्ति चाहता है, यदि ये देश अपनी मांगोंके लिए खुल्लमखुल्ला युद्ध न करें। रूस भी बलगेरियाको स्वतन्त्र एवं शक्तिशाली राष्ट्र देखना चाहता है, यदि उसकी जान बलगेरियाके पक्षमें युद्ध करनेसे बची रहे। अतएव उपर्युक्त परिस्थितियोंके सम्यक् अध्ययनके पश्चात् कोई भी राजनीतिका विद्यार्थी इस निष्कर्षपर पहुंचे बिना नहीं रह सकता कि अभी निकट भविष्यमें इस भूभागपर रक्तरञ्जित युद्ध नहीं छिड़ सकता। अधिकसे अधिक कूटनीतिक चालोंका युद्ध प्रारम्भ हो सकता है।

पावस-प्रवासी

हैं नागवार जीवनके दिन क्षण-क्षण कठोर अवसादोंमें
हे गांव! चला मैं छोड़ तुझे लाचार भरे इस भादोंमें!
कितने बरसोंके बाद बना था इसी जेठमें सुखद सुदिन
कितनी उमङ्गसे लाया घर कातिककी पूनो-सी दुलहिन
दिन वे 'असाढ़'के उमस-भरे कसमसवाली सावन-रातें
कब निकल गयीं! —पर निकल न पायीं आधी भी मनकी बातें
भादोंमें 'मिहंदी'-पर्व बिताये दिन वे उंगलीपर गिन-गिन
कितने बरसोंके बाद बना था इसी जेठमें सुखद सुदिन!
वे मिहंदी-लगे पांव देखूं कैसे नित पड़ते कादोंमें
हे गांव! चला मैं छोड़ तुझे लाचार भरे इस भादोंमें!
मैं कहूं प्राण-मनमें मेरे उठती है कौन व्यथा गहरी
मैं सहूं अरी तू छुरी-सरिस पुरवैया माघाकी बह री!
जो हूक कलेजेमें भरती दो टूक जिगर मेरा करती—
वह देख गांवके एक ओर है खड़ी प्रिया मेरी पतरी

वे जवा-कुसुमके चरण चढ़ी है जिनपर मिहंदीकी लाली
वह जादू-पुरकी परी शीशपर उसने नागिनियां पालीं
पर हाय ! कहां वह खड़ी ?—देख वह पड़ी भूत-सी जो ठठरी
कुछ घास-फूस कुछ लता-बेलकी बिखरी-बिखरी-सी छतरी
यह दो हाथोंकी मढ़ी कमाई हाय ! जिन्दगीकी सिगरी
यह भाग्य कूप अंटती न जहां मेरे अरमानोंकी गगरी
यह कुटी हाय ! यह पञ्चवटी मेरे प्राणोंकी सीताकी
मैं चला अकिञ्चन आज खोज करने कञ्चन 'मन चीता'की
लायी जो मेरे जीवनके नभ चन्द्रा-सी सुहाग-बिंदिया
मैं दे न सकूंगा उसे हाय ! क्या दो क्षण भी सुखकी निंदिया
पर जभी गरजते हैं बादल यह मढ़ी थरथरा जाती है
दो-चार बूंद गिरते यह तो सौ-धार हरहरा जाती है
पक्षी सुख-नीड़ोंमें वनके पशु सोये अपनी मांदोंमें
पर बैठ बिताते हम रजनी निरुपाय भरे इस भादोंमें !!

[२]

हैं दशो दिशायें बन्द और यह पावस-अंधियाली छायी
डगरोंपर काई-कीच और कगरोंपर घास घेर आयी
ये भरे तलैया-ताल नदो-नाले न कहीं नैया-बेड़ा
ओ पथिक ! अरे पावसका पथ जीवन-सा ही टेढ़ा-मेढ़ा !
पर जिसे न रोक सकी लहराती कोदी-मकईकी माया
झूलोंसे सजे आम-महुआके बागोंकी शीतल छाया
रसमें डूबे धनखेतोंमें भीनी पुरवैयाके झोंके
जो चला जा रहा गांवोंकी पावसकी उमड़-घुमड़ खोके
जो चला जा रहा एक देहमें दो प्राणोंकी सांस लिये
जो चला जा रहा एक पिकीके जीवनका मधुमास लिये !—
वह भाग्यहीन मजदूर !—नहीं जिसका हक जीवन-स्वादोंमें
ओ गांव ! तुम्हारा लाल चला परदेश भरे इस भादोंमें !!

—केसरी

———

मकड़ीका जाला

श्री 'पहाड़ी'

उस ज्ञानूके पागलपनपर बार-बार विचार किया करता हूं। उसीने एक दिन सुझाया था: 'सम्भव मौत है और असम्भव जीवन।'

मेरे जीवनमें बुद्धिवादी आदमीके लिए आदर है। उसके पैने तर्कके आगे खामोश भी रह जाता हूं। हरएक धारणाको गलत कोई साबित करता रहे, यह मुझे मान्य नहीं। ज्ञानूके कथनसे इसीलिए उस रात अपनेको अलग नहीं हटा सका। बार-बार अपने विचारोंकी कसौटीपर, उसकी बातें कसता ही रह गया।

ज्ञानूने कहा था, "तू तो बेकार जीवनके खेलसे घबड़ा जाया करता है। सुन, जरा-जरा-सी बातें भी अचरजकी होती हैं। एक मक्खीको पकड़ ले। हल्के उसे मींज डाल कि बेहोश वह हो जाय। फिर उसे मकड़ीके ताने हुए जालेपर फेंक देना। इसमें कुतूहलका कोई सवाल नहीं है। न वह एक अचम्भा ही है। वह मक्खी होशमें आते ही, उड़नेकी चेष्टा करेगी। तभी मकड़ी, उसके चारों ओर सावधानीसे, जाला बुनना शुरू कर देती है। यह क्या सम्भवका सही तमाशा नहीं?"

मैं भला कैसे कुछ जवाब दे देता। अपना, कहनेका अधिकार भी इसे नहीं मानता हूं। तब तो ज्ञानू हंस पड़ा था, कहता-कहता, "अरे क्यों, क्या हो गया है? इस विश्वके विकासको मैं आजकल सुलझा रहा हूं। यह इतनी सब छान-बीन कर पायी है।"

"क्या?" अनायास ही मैं सवाल पूछ बैठा।

"कुछ नहीं। अक्सर मैंने मौतकी जीवनकी कोमलतासे तुलना की है। बहुत भद्दी मौत कही जाती है। वास्तवमें वह ऐसी नहीं है। हमारी अज्ञानता है कि......।"

"तो क्या मौतकी कोमलतासे तुलना करोगे?" डरकर मैंने ज्ञानूकी ओर देखा।

मैं ज्ञानूके ज्ञानका कायल जरूर हूं। उसकी सङ्गमरमरकी बनायी मूर्तियोंको देखकर उस पगलेके लिए मैंने मोह भी न जाने क्यों बटोर लिया था। रोज ही मैं देखता कि वह अपनी छेनीसे सुन्दर-सुन्दर ढांचे गढ़ लेता है। मैं अचम्भित रह जाता। उसकी मूर्तियां सजीव होती थीं। जैसे कि प्राण उनमें हों—अब अभी-अभी वे बोलेंगी।

ज्ञानूने चुप रहना ही कब जाना था। एकाएक तेजीसे बोलने लगा, "यह कोई भेदकी बात नहीं है। सारी सृष्टिका आधार ही कोमलता है। यह तो सचमुच मौतकी एक प्रतीकमात्र है। यह आदि-कालसे आज तक लगातार दुनिया-भरमें फैलती चली गयी। यह समाज, गृहस्थी, आदि सब कोमलतापर ही टिके हुए हैं। अन्यथा व्यक्ति और समाजमें विद्रोह नहीं फैलता। सभ्यताके साथ-साथ इन्सानका दिमाग रोज भावुकतामें डुबकियां इसी वजहसे लगाता है। यही कारण है कि पुरुषके जीवनमें नारी, एक कोमलताकी तरह प्रवेश कर, हठीली बन दूर भाग जाती है। उलझनमें पड़ा आदमी, सब पहचान लेनेको, फंसता-फंसता चला जाता है। यदि गृहस्थीका निर्माण नहीं होता, तो जिस तरह सांप हरएक ठूंठपर लिपट जाता है, उसी तरह पुरुष हरएक नारीपर अधिकार जमा लेनेकी कोशिश करता। यह गृहस्थीका निर्माण करना तो हमने पक्षियोंसे सीखा है।"

"पक्षियोंसे?"

"इसमें आश्चर्य क्या है। कबूतरका जोड़ा तूने नहीं देखा। वैसा आदर्श जोड़ा और नहीं मिलेगा। एक और सुन्दर पक्षी होता है। उसका नर एक घोंसला बनाता है। उसके लुभावने ढांचेपर बहुत-सी मादायें रीझकर उसमें आती हैं। एक बावली बन उसमें टिक जाती है। उसके बाद उनका नया जीवन शुरू हो जाता है।"

"पशु-पक्षियोंके जीवनसे सम्बन्धित मनोविज्ञानसे कितना सरोकार आखिर हमें है। यह सब तो एक बकवाद-सा लगता है।"

"तो क्या मैं यह सब बेकार कहा करता हूं।" ज्ञानू जोरसे तीक्ष्ण हंसी हंस पड़ा। वह ध्वनि उन सुकुमार सङ्गमरमरकी मूर्तियोंसे फिसल, दीवालसे टकरा, खिलखिलाती लगी। और क्या मैंने उन मूर्तियोंको छूकर नहीं देखा था।

वह स्पर्श दिलपर अनायास एक गुदगुदी फैला देता। इसी-लिए कोई भी उत्तर मैंने नहीं दिया।

अपना कहना फिर भी उसने जारी रखा, "दुनियाके भीतरवाले व्यापारकी अधिक जानकारी हम लोगोंको नहीं है। बहुत-सी बातोंका अन्वेषण करते-करते व्यक्ति मिट गये—पाया है शून्य! इस गृहस्थीकी स्थापनाकी कहानियां भी अजीब-अजीब हैं। खासकर पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े आदि-के रोजाना जीवनको असाधारण रूपमें बिसारा नहीं जा सकता है। मधुमक्खियां हैं, उनमें एक नर और रानी मिल-कर गृहस्थी बनाते हैं। बाकी सब हैं मजदूर। वह नर भी जरू-रतके बाद नष्ट कर दिया जाता है। अपनी-अपनी हिफाजत-का सवाल उठाकर, चिड़ियां घोंसले बनाती हैं, पशु खोहों व झाड़ियोंमें रहते हैं। मछलियां हैं। मादा अण्डे देकर भाग जाती है। उसका नर, अण्डोंको सेता है। एक पक्षी होता है, वह अपना घोंसला पेड़के तनेके भीतर बनावेगा। जब मादा गर्भवती होगी, वह भीतर ही बैठी रहेगी। घोंसलेके मुंह चोंच जाने लायक छोड़कर, बाकी मिट्टीसे नर बन्द कर देता है। बस, रोज अपनी चोंचको भीतर डाल, इसी तरह एक अरसे तक, नर मादाको खाना खिलाया करता है। पशु-पक्षियोंमें एक मौसम आता है। उन दिनों मादा बहुत भावुक बन जाती है। अपनी रक्षा-का सारा भार ही उसे पुरुषको सौंपना होता है। अपनी इस मजबूरीके लिए कुछ एतराज नहीं बरतती है। मांसाहारी पेड़ हैं,.........?"

ज्ञानू अधिक न बोल सका। वह बातको तोल रहा था। देखा ही मैंने, अब वह कहीं भी सरल नहीं रह गया है। चेहरेपर उगे बालोंकी काली-हरी झांई पड़ी हुई थी। दृढ़ था और कट्टर! उसे जीवनमें डर कभी भी नहीं रहा। लेकिन उसका चुपचाप रहना डसने लगा। वह चुप क्यों हो गया। अधूरी बात छुना, क्यों चिन्तित हो गया है। मैंने सन्नाटा तोड़ते हुए पूछ ही डाला, "क्या तुम कह रहे थे, पेड़ोंके बारेमें।"

'ओफ, मैं भूल गया था। आजकल वैसे मैं बहुत सीमित हो गया हूं। हरएक व्यक्ति भारी अनुभवोंके बाद यही करेगा। तब उसे यह जरूरी नहीं रह जाता है कि छोटी-छोटी बातोंकी दलीलमें पड़कर, अपनी निजी राय दे दे। मैंने तो एक लम्बा अरसा नारी-कोमलताको छू और परख लेनेमें गंवाया है। वह समझना सहल नहीं है। नारी और पुरुषकी हड्डियोंकी चिकनाहटमें अन्तर होता है। उसी तरह जानवरोंमें भी मादाओंकी हड्डियोंमें फासफोरसकी मात्रा बहुत कम होती है। पुरुष और पशु-पक्षियोंके नर, लड़ाई लड़नेके लिए हर वक्त तैयार मिलेंगे। यह रक्षा करनेका तकाजा है। इसीलिए उनकी हड्डियोंमें चूना भी अधिक होता है। वे मजबूत तो होती ही हैं। तब तो......।"

"और वह मांसाहारी पेड़!"

'सच पूछ, विचित्र है इस विश्वका रोजगार। वे पेड़ अपने पत्तोंको फैलाये रहते हैं। जैसे ही कोई हिरन अथवा ओर कोई जानवर नजदीक आया कि चारों ओरसे पत्ते उसे ढक लेते हैं। उनमें छुपे कांटे शरीरमें पैठ, खून चूसना शुरू कर देते हैं। आखिर जब वह मर जाता है, उसे छोड़ देते हैं। यही है हिंसाका आरम्भ!"

"तब हिंसाकी जरूरत है न?"

"हिंसा!" भारी ठहासेके साथ ज्ञानूने ठहाका मारा।

और असमञ्जसमें मैं, उसे देखता ही रह गया कि बात क्या है। मनुष्य, पशु-पक्षी और उनकी धारणाओंपर खोज करनेवाले व्यक्तिपर कोई राय देनी व्यर्थ लगती है। किसी सही आधारको जाने बिना, आखिर दलील करना ठीक नहीं होगा। अप्रतिभ इसीलिए उसकी हंसीसे नहीं हुआ। यदि वह चुपके ही कह देता: 'देख, यह है मौत!' भले ही मैं अपनी आंखोंकी दृष्टिमें उस मौतको नहीं पकड़ पाता, उसकी बातपर थोड़ा विश्वास ही कर लेना मुझे था। यह मुमकिन हो चाहे नहीं, अपना अनुरोध सकारण पेश करनेमें मैं उता-वला नहीं होता हूं।

लेकिन मेरे उस चुप रहनेको साध्य मान, उपयोग वह साबित करनेमें नहीं चूकता: 'नहीं देख रहा है, तू मौतको। बावला कहींका। अरे, वह तो एक चमक है। बहुत सूक्ष्म! जो हवामें हर वक्त तैरती रहती है। वह ईथरसे भी हल्की होती है। उसका रुख इसीलिए एक ओर नहीं रह जाता। यदि वातावरण और वायुमण्डल ठीक मिल गया, तब वह चमक तेज गतिसे फैलती है। हैजा, प्लेग व अन्य और रोगोंके पैदा होनेका यही कारण है। यह मनुष्य, पशु-पक्षी, मेढक-मछलियां आदि जातियां कुछ भी नहीं हैं। तोल किसीका कई मन

होनेपर भी, सच देखा जाय तो, वैज्ञानिककी दृष्टिमें अधिक मूल्यवान नहीं है। अन्तमें चूना, लोहा, फासफोरस, रेडियम, तांबा आदि-आदि धातुयें व उनके क्षार ही ढेरीमें बच जाते हैं। किसी धातुकी कमीका नाम ही है—मौत! तब क्या खिलवाड़ है यह जीवन !!'

मैं मौत भी स्वीकार कर लेनेको तैयार हूं; यदि ज्ञानू उसे अपनी जानकारीकी प्रवीणतामें संभालकर रख लेता। न मैं शक्ति-प्रयोगकी ओर उदासीन रहना जानता हूं। शक्ति-प्रयोग रुकावट और अड़चनको हटानेका अक्सर सही हथियार है। तब कौन उसे साध्य नहीं गिनना चाहेगा।

वह ज्ञानू तो उठकर टहलने लग गया। और टहलता ही रहा, परेशान जैसे कि अपने दिलमें हो। या कोई भारी उलझन मनमें विद्रोह उड़ेलनेको तुली थी। अपने कर्तव्यको बिसार, मैंने सवाल किया ही, "क्यों, बात क्या है। तुम तो...... ?"

"नहीं-नहीं," वह भारी आवाजमें बोला : "यह धन्धा कोई अजनबी नहीं है। आदि कालसे पशु-पक्षियोंमें यह चालू है। उसका उपयोग है शारीरिक और मानसिक भूखका साधन ढूंढ़ लेना। यही पुरुषमें भी विद्यमान है। अपनी हिफाजतके लिए वह उसे चाहिए। कुदरतने नारीको फिर भी न जाने क्यों हिंसा दी है। कभी-कभी तो अपनी हिंसामें गलतीसे खुद ही चूर-चूर हो, वह चटख जाती है।"

"नारीकी वह हिंसा न !"

"नारीके खूनमें सुफेद कण, लाल कणोंसे अधिक होते हैं। यह जरूरी भी है। उन्हींसे भावुकता सम्बन्धित है। यही भावुकता नारीमें मातृत्वकी चाहना लाती है। नहीं तो नारी अपनी कोमलताके घमण्डमें पुरुषको ठुकराती-ठुकराती चली जाती। उसका अनुरोध भी सिर्फ आंसुओंपर निर्भर रहता है। इसे हम कर्ताका न्याय कह सकते हैं। पुरुषका भला कौन-सा स्वार्थ नहीं होता। नारीमें हिंसा उठनी भी लाजिम है। वह उसकी शक्ति है। नहीं तो कभी भी उसकी कमजोरी साबित हो जाती। शारीरिक आकर्षणके अलावा, पुरुष नहीं तो उसे अलग फेंक देता। वह हितकर नहीं होता। इसी तरह दुनियाका विकास जारी है।"

"हिंसाके इस पहलूको लेकर क्या होगा फिर ?"

"ठीक बात पूछी है तूने। तब सुन, मांसाहारी पेड़ मांस खाते हैं। यदि वे मांसाहारी जानवरोंका खून चूसते हैं, तो मुरझा जाते हैं। उसे पचा नहीं सकते। वह बहुत गरम होता है। इसी तरह मांसाहारी जानवर, मांस न खानेवाले जानवरोंका शिकार करते हैं।"

ज्ञानूने आंखें मूंद लीं। अपने भीतर कुछ कुरेदता-सा लगा। कहीं आखिर जीवनमें खुरचन पड़ गयी थी। क्यों वह कमरेके भीतर फैले प्रकाशके विपरीत, आंखें मूंदकर कुछ टटोल लेना चाहता था। यह व्यक्तिकी थोथी और उलझनवाली अवस्था सर्वदासे व्यक्तिको पीड़ा पहुंचाती आयी है। यह सब सुनकर अपने भीतर मैं स्वस्थ नहीं था। तभी देखा मैंने कि दीवालपर एक सुन्दर कलेण्डर टंगा हुआ है। रोजकी तारीखोंके अलावा, उसपर एक रङ्गीन चित्र भी था। वह चित्र : एक युवती ध्यानमग्न, भूरे बालोंवाले कुत्तेके बच्चेसे गोदी भरे, हाथोंके सहारे उसे अपने हृदयसे लगाये थी। भारी तृष्णा उस लड़कीकी आंखोंमें मिली। उसका आकांक्षित अनुग्रह व शारीरिक आकर्षणका लुभाव बहुत जीवित जान पड़ा। यह लगा कि वह कुछ खोकर अपना सारा अपनत्व बिसार बैठी है। अन्यथा उस तरह उस कुत्तेके बच्चेको क्यों लिये रहती। पशु जातिके प्रति उदारतावाले मोहपर कौन अधिक विचार कर सका है।

क्या देख रहा है तू।" ज्ञानूने पकड़ लिया।

"कुछ नहीं।"

"झूठ है बात। वह कुत्तेका बच्चा है। उसकी आंखों-वाला भाव क्या तूने समझ लिया है। कितना कुतूहल है उन आंखोंमें। ऐसी ही भावना हरएक जातिके बच्चोंमें होती है। वे बच्चे सबको प्यारे लगते हैं। समझका आना ही सतर्कता और सावधानी सिखलाता है। तभी अपने निजका सवाल आगे आता है। यह अपने-अपने वैयक्तिक सवालपर निर्भर रहता है।"

"वह कुत्तेका बच्चा क्यों लिये हुए है।"

"तू नहीं समझ सका है।"

"नहीं तो।"

"वह एक सम्भव-प्रेमको खोकर, अपने प्रेमीकी भद्दी आकृति उस सुकुमारतासे बिसार रही है। इसी तरह नूतन विचार आते हैं।"

"उसका प्रेमी होगा ?"

"अरे, प्रेम कोई शारीरिक नाता ही कब है। हरएकको हक है कि वह किसीको प्यार कर ले। वैसे असली प्रेम तो जीवनमें, एक बार चिट्टी लकीरकी तरह चमक, सर्वदाके लिए बुझ जाता है। बाकी तो उसका विद्रोह बचता है, जो छटपटाहट, विकलता और असन्तोषका एक माध्यम है। इस विद्रोहके आधारपर ही दुनिया टिकी है। और आदमी तो समयके रेगिस्तानपर बनी, एक मिटी लकीरपर मजबूरीसे चलता है। रुकावट पड़े, कौन-सा मतलब है उसका। भाग्य तो चुपचाप जम्हाई लेता हुआ पड़ा रह जाता है। लेकिन उस विद्रोहमें भी कोमलता है। उसको देती है नारी ही !"

"विद्रोहकी कोमलता और नारी ?"

"तब मेरा अपना पागलपन इसे समझ। दुनियामें छानबीन और देखभाल कर मैंने यह सब अन्दाज लगाया है। किसीका संसार जेलकी पक्की ऊंची दीवारकी तरह सीमित है। कोई रहटके बैलोंकी तरह आंखोंमें पट्टी बांधकर मीलोंका सफर तय कर लेते हैं। कुछका मन ही उनकी दुनिया है—वहीं वे घूमते हैं। आजमायी बात सर्वदासे उपयोगी सिद्ध हुई। यह है मनका कोमल व्यभिचार।"

"मनका व्यभिचार ! भ्रष्ट ख्याल सब हैं ज्ञानू।" मैं कह ही बैठा। इस तरहकी बातें मुझे सह्य नहीं हैं। मैं वैसे थोथी नैतिकताका कायल नहीं। उसे अधिक दलीलका विषय बनाना फिर भी हितकर नहीं। अर्थहीन धारणाओंका नतीजा कुछ नहीं होता।

और ज्ञानू कुछ नहीं बोला। उसने उठकर उस कैलेण्डरको छू लिया। तस्वीरवाले फर्शको रगड़ने लगा। कुत्तेके भूरे बालोंको जैसे कि सहला रहा हो। उसका मुंह मुरझा गया था। उसके चेहरेपर फैलती हुई उदासी मैंने भांप ली। सावधानीसे वह मेरे पीछे आकर, खड़ा हो गया। मेरी ठोड़ीको ऊपर आसमानकी ओर उठा, कई मिनट तक उसी तरह मेरे चेहरेको पढ़ता रहा। उसकी वह हालत मेरी समझमें नहीं आयी। मैं चुप फिर भी रह गया।

अब वह मुझे छोड़कर हट गया। फिर दरवाजे तक बढ़ा। बाहर सड़ककी ओर टकटकी लगाकर न जाने क्या देखता रहा। उसकी जानकारीके अवलम्बनके खिलाफ मैंने कोई इच्छा साबित नहीं की। लेकिन हठात् वह दौड़ा-दौड़ा मेरे पास आकर ठहर गया। सांस तेज चल रही थी। मुझे टटोलकर पूछा, "क्या सच ही मैं पागल हूं। यही लगता है। तू डाक्टर बुला ला। यह बात मैंने अभी-अभी जानी है। अब तू जा। मेरे नजदीक किसीका रहना खतरेसे खाली नहीं। न जाने कब मेरा विद्रोह हिंसा बन जाय। मैं हरएक वस्तुका उपयोग, उसे नष्ट करना समझ रहा हूं।"

"ज्ञानू।"

"तू मुझे क्यों घूर रहा है।"

"मैं !"

"क्या मैं पागल हो गया हूं।"

"तुम पागल !"

"तब क्या समझता है मुझे।"

"ज्ञानूको——ज्ञानू ही।"

"तो मैं ही न वह ज्ञानू नामक व्यक्ति हूं। मेरा अस्तित्व कुछ नहीं है। व्यक्तिके ऊपर नामकी तख्ती भी उसके जीवनकाल तक ही मिलेगी। उसके बाद सब झूठ है। जानता है, मैंने अभी बाहर सड़कपर क्या देखा है।"

"तुमने !"

"उस चौड़ी सड़कपर, दुनियाका रोजाना हाल देख रहा था। वह नुक्कड़पर पानवाला बैठता है। सामने लाल लेटर-बाक्स है। उधर और··············।"

"तो मतलब क्या है, उन सबसे ?"

"शायद तू नहीं जानता कि सरपट इस दुनियामें आदमी कितना ही भागता रहे, उसका भी अन्त है। उसके बाद··············। जिस कोमलताका अनुभव मुझे है, वह बहुत तीक्ष्ण और तीखी है। एक रोगीको मैंने देखा था। उसका अपना कोई भी प्रतिदान रोगके लिए नहीं था। उसकी एक भावुक प्रेमिका थी। वह वेश्या रोगिणी रहकर, अपने प्रेमियोंको उस 'कोमल रोग'से वञ्चित नहीं रख सकी। भावुक व्यक्तियोंको यह रोग जल्दी घेरता है।"

"आखिर तुम चाहते क्या हो।"

"मैं !"

"तब क्या झूठ कहता फिरूं।"

"अपने मनमें तुम्हारा इतना लोभ क्यों है।"

"यह मैंने कभी भी अस्वीकार नहीं किया है। जब मैं समझदार हो रहा था, एक नारी मेरे पास आयी। और इससे

पहले कि मैं सब बातें समझ लूं, वह भाग गयी थी। वह डर गयी कि मैं उसकी कोमलताको पहचान गया हूं। उस लड़कीका ध्यान एक अरसे तक मुझे रहा, वह भूल नहीं बन सकी। सारे शरीरकी पहचानको भूलकर भी, अर्धचेतन दिमागमें चेहरेकी याद उभर आती थी। उसके बाद मुझे नारीको खूब-खूब देखनेका मौका मिला है। कोई न कोई तत्त्व उसमें था ही। नारी फौलादकी तरह कड़ी नहीं होती है। मोमकी तरह पिघल जानेवाले गुण, अधिक नारियोंमें मैंने पाये हैं। इसीलिए भय मेरे दिलमें पैदा हो गया। उन दिनों जीवन और दुनियाके वास्तेको तोलनेवाला कोई भी बांट मेरे पास नहीं था। और अपने ढांचेपर आखिरी ठीक रूप फैलानेके लिए, एक लड़कीके पोज उन दिनों मैं ले रहा था। उसकी झुंझलाहटमें मैंने पाया कि वह मेरे बहुत समीप आ दिलको छू लेती है। मैं जीवनमें मिलावटका आदी नहीं हूं। न नकली जीवनको अपेक्षित गिनता हूं। उस लड़की और मेरे बीच, सङ्गमरमरका ढांचा ही एक मार्फत रही है। वह मूर्ति ठीक बन भी नहीं पायी थी कि मैंने सुना, उस लड़कीके चेचक फूट निकली है। उसके चेहरेपर भी भद्दे-भद्दे छापे छूट गये थे। वह बदसूरती अखरी। लौटकर मैंने अपनी मूर्तिके चेहरेपर भी, गुस्सेमें, छेनीसे गड्ढे बनाने शुरू कर दिये। वह मेरी अजीब भावुकता थी। अन्यथा यह असफल प्रयास नहीं करता। क्या मैं यह नहीं जानता हूं कि जिन वस्तुओं और व्यक्तियोंकी भावनासे कलाकार चीजें गढ़ते हैं, वह फिर झूठी हो जाती हैं। व्यक्तिको कला ढक लेती है। वह मूर्ति भले ही मूल्यवान हो, वे व्यक्ति नहीं होते। सकारण वे साधारण श्रेणीमें गिनी जाती हैं। कलाकारके इस विद्रोहको अपनेमें सुलगाकर, पग-पगपर मुझे डर लगता चला गया कि मैं नष्टकी भावना क्यों अपनेपर लागू करना चाहता हूं।"

"नारी जातिकी कोमलताका, तुम्हारा यह बहाना है।"

"मैं इसे साध्य कब मानता हूं। कारण कि जीवित नारीसे, मुर्दा नारीके शरीरमें कोमलता अधिक होती है। तब उसमें हठवाली समीक्षा कहां बाकी बचती है। उसी बातको अकाट्य फिलहाल मैंने मान लिया है। यह मेरी अपनी कोई तृष्णा नहीं है। एक ख्वाहिश यह जरूर है कि नारीकी समूची कोमलताको संवार, एक मूर्ति गढ़ूंगा। वही होगी मौतकी सही प्रतीक! तो भी आनाकानी कोई नहीं है। मैं सैकड़ों नारी-शरीरोंको सहला चुका हूं। पशु-पक्षियोंकी मादाओंकी कोमलताकी जांच भी मैंने की है। नारी-स्वभाव परखना, पहले जितना कठिन मालूम होता था, आज वह बात नहीं है। सब आसान ही है। उसके संस्कारोंमें चापलूसी अधिक मिलेगी। लेकिन पुरुषके शरीरमें लोहा अधिक होता है, जब कि नारी अधिक क्षारोंकी बनी है। यह असमञ्जसका सवाल नहीं।"

अधिक कुछ भी न कहकर, ज्ञानू एक झरोखेसे उठ, मेरे पास आया और बोला, "चल, तुझे चाय पिला लाऊं। भूख भी लग गयी होगी। यह काम तुझे सहल नहीं लग रहा होगा। लेकिन डाक्टरोंको ही न देखा कर, वे आपरेशन करते हैं। उनकी व्यवस्था है कि रोगको ठीक-ठीक पहचान लें। मैं भी वैसा ही हूं। जहांपर डाक्टर मुर्दाको छोड़ देते हैं, वहींसे मैं आदमीको उठा लाता हूं। यह तो अपने-अपने व्यक्तित्वका सवाल है ही।"

अब मैं और ज्ञानू एक रिस्तोरांमें पहुंच गये थे। उसने भीतर पहुंच, भारी आवाजमें पुकारा, "ब्वाय! ब्वाय!!"

उसके आनेपर पूछा, "'मदिरा' होगी। और एक चायका केटल भी ले आना।"

"चाय और शराब!" अचरजसे मैंने उसकी ओर देखा।

"ठीक होता है—यह पेय द्रव्य। चखकर आज देख लेना। इसके बाद दिमागपर बाहरी प्रभाव नहीं पड़ता है।"

सच ही उसने एक गिलासपर चाय उड़ेल, उसमें दो पेग शराबके भी मिला दिये। सौंपते कहा मुझसे, "ले, इसे चुपके पी जा। क्या समझेगा कि सोमरस तुझे पिला रहा हूं। हरएकको यह प्राप्त नहीं होता है। न इस नुस्खेका ज्ञान, मेरे अलावा किसी औरको ही है।"

सब पीकर मैं बोला, "एक बात पूछूं ज्ञानू।"

"क्या है?"

"तू प्रेमपर विश्वास करता है।"

"क्यों, क्या बात है।"

"मेरे दिलमें तो लड़कियोंका रूप-रङ्ग, बार-बार, अनायास ही न जाने क्यों मचल उठता है।"

"कारण कि तू नारीको धब्बा मानता है।"

"धब्बा !"

"नारीको जीवनमें धब्बेकी तरह टटोलनेका ख्याल फिर मनमें क्यों लाता है। उसकी किसी सजावटसे उत्तेजित हो जाना, गलत है।"

"मैं तो·········।"

"जाने दे सारी दलीलको। एक गिलास और तेरे लिए बनाता हूं—पी जा। स्वास्थ्यके लिए लाभदायक चीज है।"

ज्ञानूकी बात स्वीकार करनी पड़ी। वह दुनियाको जिस तरह चाहे, उसी रुखमें बदलनेका दावा भी किसी दिन कर, उसीको अमलमें लाता हुआ मिलेगा। वह मिथ्याको सम्भव कहकर, एकाएक, सब बातें जड़की तरह कड़ी तो मानता ही है। तो भी सब निराधार नहीं।"

अपनी ओरसे कुछ भी अधिक न कह, मैं चुपचाप चला गया। ज्ञानूकी आज्ञा कि कभी-कभी उससे मिल लिया करूं, मैंने मान ली थी।

* * *

आगे जब भी मैं गया, देखता था कि ज्ञानू अपने काममें मशगूल है। एक बड़ा सङ्गमरमरका टुकड़ा लेकर, खट-खट-खट, उसपर छेनी चलाना ही बाकी काम रह गया था। उस ऊंचे पत्थरपर एक आकृति भी बनती मैं पाता। कभी-कभी तो देखता था कि वह नारीका एक ढांचा बन रहा है—बिलकुल नग्न ! ज्ञानू अपने काममें ही मशगूल मिलता। उसे कुछ भी समझानेकी फुरसत नहीं थी।

—कुछ दिन कटे। ज्ञानूने एक दिन मुझसे कहा, "देख, अब है न यह नारीका एक सही रूपक।"

देखा मैंने, वह ठीक बात थी। बड़ी-बड़ी आंखें, बक्षस्थल, —शरीरके सारे अङ्गोंको देखकर आंखें ललचा जाती थीं।

ज्ञानू अधिक कुछ भी न कहकर अपने काममें लग जाता था। उसके कामकी सराहना कई बार मैंने मन ही मन की। चुप फिर भी रहा। सच ही वह अतुल रूपवाला एक स्टैचू बना रहा था।

लेकिन उस दिन ज्ञानूके चेहरेपर मैंने भारी खुशी पायी। वह मुझे देख, गद्गद होकर बोला, "अब वह कोमलता मैंने पा ली है। यह देख—यह है न !"

उसकी आंखें स्थिर कभी तो रह जाती थीं। यह कैसी उसकी उत्प्रेक्षा थी। वह उस मूर्तिके आगे मूक क्यों खड़ा हो जाता था। एकाएक वह चौंक उठा। भारी घबराहटमें मेरी ओर देखा। उसकी आंखें बुझ रही थीं। तब क्या बात होगी ! मैं कुछ निर्णय नहीं कर पाया था कि उसने बात शुरू की, "सब व्यर्थ है—व्यर्थ !"

"क्या हुआ।"

"तू नहीं देख रहा है।"

"मैं !"

"वह कोमलता, वासना बन रही है।"

"तुम तो कहते थे·········।"

" मैं कहता था—खाक, पत्थर ! इस कोमलता और वासनाके बीच कोई ठीक-सी सीमा नहीं निकली। कभी मैंने उसपर नहीं सोचा था। और अब तो······।"

"क्यों, परेशानी क्या है ?"

"परेशानी ! तू उसकी आंखें नहीं देख रहा है। भय वहां नहीं। जीतवाला कुतूहल है। वह मेरे दिलमें धंसती जा रही है। उस चेष्टामें अपनाकर, मिटा डालनेवाले भाव स्पष्ट हैं।"

"मुझे तो कुछ नहीं दीखता है।"

"आंखोंकी मादकतापर तेरा जो विश्वास है—ठीक ही था। भावुकताके चूक जानेके बाद, उसकी जगह है।" कहकर वह मूर्तिके ओंठोंको अपनी उंगलियोंसे रगड़ने लगा।

"क्या कर रहे हो ज्ञानू।" मैं कुछ न समझ, कह बैठा।

"ये खुरखुरे हो गये हैं। मैंने कोमल बनाये थे।"

"कोमल थे ये।"

"यह मेरी असफलता है।"

"तेरी असफलता !"

"इस मूर्तिको नष्ट कर देना पड़ेगा।"

"नष्ट !"

"मेरी पहचानकी एक युवतीकी मौत बेरबरीसे हुई थी। उसके ओंठ मौतके बाद खुरखुरे मैंने पाये थे।"

"लेकिन यह तो पत्थर है।"

"तो भी इसमें जीवन है।"

"कैसा जीवन !"

"छातियां मचल रही हैं। जैसे कि मां बननेकी उसकी ख्वाहिश हो। यह नारीके प्रति अन्याय है। उसकी कोमलताका साधारण उपयोग कितना भद्दा है।"

"मैं कुछ भी नहीं समझ सका हूं ज्ञानू।"

"वैसी कोई भी बात नहीं है। मैं खुद नारीके प्रभावमें दब गया। कोमलताके बाद नहीं तो मूर्तिवाली इस नारीमें वासनाकी गति न आती। इसको सजीव बनाना ही मेरी असफलता है। इसे तू मेरी कलाकी मौत समझ ले। मैंने इसमें वासनाका जाल फैलाकर, अब उसमें मक्खीकी तरह फंसनेका काम कर लिया है।"

"साफ-साफ बातें कहो न तुम!"

"यह भी भेद है। सुन तू। मूर्ति गढ़ते-गढ़ते, यह मुझसे बोलने लगी। तू शायद नहीं जानता कि इन मूर्तियोंमें भी आवाज होती है। छेनीके खन-खनमें वह लक्षण मैंने पाकर, बात समझ ली। तब इसकी कोमलता पिघलने लगी। मैं अपनेको जरा भी काबूमें नहीं रख सका। फिर देखा मैंने, उसकी छातियोंपर भरा दूध, मवाद बनकर बह रहा है। अनायास मेरे दिमागमें एक स्मृति फैल गयी। हमारे पड़ोसकी एक लड़कीकी मौत छातीके दूधके मवादमें कीड़े पड़ जानेसे हुई थी। यह सब पाकर मैं कांप उठा। और वह लड़की घाटपर भी मैंने देखी थी। उसकी छातियोंके ऊपर लकड़ी चुनते में झिझक उठा था। इसमें मातृत्वकी चाहना है। वह वासनाके बादका अध्याय समझ!"

यह कहकर ज्ञानू उदास हो गया। मैं चुपचाप बैठा रहा। मेरे मनमें बहुत-सी बातें उठ रही थीं। तभी मैंने देखा कि ज्ञानू जोर-जोरसे उस मूर्तिपर छेनी चला रहा था। उसके इस कर्तव्यको मैं देखता-देखता ही रह गया। कुछ भी कहनेका जैसे कि अपना मेरा कोई भी अधिकार नहीं हो। छेनीकी तेज आवाजके बीच फिर भी मैं बोल ही बैठा, "इसे नष्ट क्यों कर रहे हो।"

"नष्ट!"

"बड़ी प्यारी लगती है वह।"

"वह प्यार कठोर है।"

"तुम तो कोमल उसे कहते थे।"

"वह कोमलता मौत निकली।"

"मौत!"

"एक वैज्ञानिककी बात, धातु ही सब कुछ हैं। उनके बलपर इन्सान और हैवान, दोनों खड़े हो जाते हैं।"

"यह तुम्हारी अनधिकार चेष्टा है।"

"मेरी" कहकर वह छेनी और जोर-जोरसे चलाकर मूर्तिको नष्ट करने लग गया। अब देखा ही मैंने कि वह सङ्गमरमरके टुकड़ोंके बीच थका हुआ-सा बैठा था। बोला मुझसे, "बैठ जा तू भी।"

मैं बैठ गया।

ज्ञानू सुस्त पड़ गया था। इससे पहले कि मैं कुछ कहूं, लाचार होकर वह बोला, "यह मेरी सनक थी कि जीवनकी सबसे प्यारी चीज बनाकर, उसे नष्ट कर डाला है। वह मेरी मौत थी।"

"मौत……!"

लेकिन इससे पहले ही मैंने पाया कि ज्ञानू बाहर चला गया था।

———



अफ्रीकाके जङ्गलोंमें प्रसिद्ध जादूगरके अनोखे अनुभव

श्री सन्तराम, बी० ए०

जेस्पर मास्कलाइन एक बड़ा प्रसिद्ध जादूगर है। अपने जादूके खेल दिखाकर उसने लाखों रुपये कमाये हैं। कुछ वर्ष हुए, वह अफ्रीका गया था। वहां उसे जङ्गली जातिके जादूगरोंका अद्भुत जादू देखनेका अवसर मिला था। उसने अपने अनुभवोंकी ऐसी लोमहर्षक कहानियां सुनायी हैं, जिनसे आश्चर्य-चकित रह जाना पड़ता है। जेस्पर लिखता है :—दक्षिण अफ्रीका जाते समय मैं अपने साथ कोई साढ़े तीन सौ मन जादूके यन्त्र, एक सहस्र चुने हुए सङ्गीतके नमूने और बढ़िया कलाकारोंका एक दल ले गया था।

परन्तु दक्षिण अफ्रीकामें पहुंचे मुझे अभी डेढ़ मास भी नहीं बीता था कि जङ्गली लोगोंकी माया देखकर मुझे अपनी हार स्वीकार करनी पड़ी। इस डेढ़ मासमें मैंने सब प्रकारकी रहस्यमय और उत्तेजनाजनक बातें सुनीं। मैंने अनुभव किया कि ये जङ्गली जादूगर बहुत-सी बातें ऐसी जानते हैं, जिनका दूसरे सभ्य देशोंके जादूगरोंको न ज्ञान है और न वे उन्हें समझ ही सकते हैं।

इन जङ्गली ओझोंका जादू-कानून-विरुद्ध ठहरा दिया गया है। सरकार इन ओझोंको उपद्रव पैदा करनेवाले समझकर तत्काल दबानेका यत्न करती है। फिर भी, जेम्बजी नदीकी उपत्यकाके साथ-साथ जङ्गली लोगोंके इलाकोंमें, रहस्यपूर्ण बातें अब तक भी होती हैं।

अग्नि-मण्डल—मितरोम्बी प्रदेशमें मफर्नत्सा नामका एक ओझा रहता था। उसकी जातिके जङ्गली लोग उससे बहुत ही भयभीत थे। मुझे उससे मिलना था, क्योंकि मैं इन असभ्य ओझोंके विनाशक और अद्भुत प्रभावका अध्ययन करना चाहता था।

एक दिन रात्रिको, बहुत कहने-सुननेके उपरान्त, एक मित्र, जो सरकारी नौकरीमें था, मुझे एक जङ्गली ओझाके 'इन्दाबा' में ले गया।

रात अंधेरी थी; परन्तु वनमें जो छोटी-सी खाली जगह थी, उसके इर्द-गिर्दके पेड़-पौधे अग्नियोंके दुहरे वृत्तोंके कारण आलोकित हो रहे थे। दोनों वृत्तोंके बीच जङ्गली लोगोंकी भीड़ पलथी मारे बैठी थी। भीतरी वृत्तमें केवल ओझों और उनके सहकारियोंको ही जानेकी आज्ञा थी।

इस वृत्तके मध्यमें एक भद्दी-सी वेदी थी। उसके गिर्द अग्निका एक मण्डल था।

यह दृश्य बड़ा अद्भुत था। इस छोटी-सी उपत्यकाका फर्श मध्यमें थोड़ा-सा उठकर एक टीला-सा बन रहा था; और अग्नियोंका दूसरा मण्डल ढलानपर बना था। इससे वेदीके गिर्दागिर्द बैठे हुए रङ्ग-बिरङ्गे ओझे और उनके सहायक अस्वाभाविक रूपसे लम्बे दीखते थे।

पिशाच आ गये हैं!—इन शैतान-सूरत प्राणियोंकी पोशाक बड़ी ही डरावनी थी। छोटे कर्मचारियोंने तो अपने शरीरपर केवल बड़ी-बड़ी लाल और सफेद रेखायें पोत रखी थीं। उनमें कुछ मनुष्यके पञ्जरके सदृश थीं। परन्तु स्वयं ओझोंने, इस चित्रणके अतिरिक्त, बड़े भयानक चेहरे भी पहन रखे थे। बहुत-से चेहरोंमें बड़े-बड़े सींग लगे हुए थे।

इन चेहरों और रङ्ग-बिरङ्गी धारियोंके अतिरिक्त, प्रत्येक ओझेके पीछे बैलकी एक-एक पूंछ भी लटक रही थी। इससे उनकी शकल निश्चित ही पिशाचकी-सी दीखती थी। उनकी गर्दनोंके गिर्द और उनके कानोंसे हड्डियों और विविध जन्तुओंके कानों और खुरोंकी मालायें लटक रही थीं। कमरसे घुटनोंके नीचे तक रङ्गीन घासके घांघरे थे।

जब हम वहां पहुंचकर बाहरी वृत्तमें बैठे, तो एकमात्र शब्द जो सुनाई पड़ता था, वह तोम-तोमका एक-जैसा नीरस धमाका था। यह नीरस, अनिष्ट-सूचक समप्रवाह ताल सारी कार्यवाहीमें निरन्तर जारी रहा।

तब अनुष्ठान प्रारम्भ हुआ।

कार्यक्रममें पहली बात ओझोंके सहकारियों और सहायकोंका नाच था। वे वेदी एवं वेदीके गिर्द चक्राकार बैठे हुए ओझोंके गिर्द, चीखते और चिल्लाते हुए पागलोंकी भांति घूमने लगे। बादको ओझे स्वयं भी उन्हींके साथ मिलकर अपने ढङ्गसे नाचने लगे।

कुछ देर उपरान्त इन सहकारियोंका नाचना बन्द हो

गया और वे पलथी मारकर चूतड़ोंके बल बैठ गये। अब ओझे स्वयं अधिक द्रुतगतिसे घूमने लगे। उनकी चेष्टायें और भी अधिक पागलोंकी ऐसी हो गयीं, यहां तक कि वे जोरसे उछलने और चिल्लाने लगे। उनके मुंहमेंसे झाग निकल रहा था, जिससे वे सचमुच पिशाच जान पड़ते थे।

अब एक-एक करके वे बैठने लगे। अन्तको केवल प्रधान ओझा—मफर्नत्सा—ही रह गया। वह एक प्रकाण्ड प्राणी था। उसकी ऊंचाई सात फुट थी। पोतने और चेहरा लगानेसे उसकी आकृति बड़ी ही डरावनी बन रही थी।

अन्तको उसने भी अपना नाच मन्द कर दिया और बड़ी गम्भीरतापूर्वक वेदीके गिर्द फिरने लगा। वह कुछ मन्त्र पढ़ रहा था और आगपर पांवोंको रखता हुआ इस प्रकार इधरसे उधर फिर रहा था, मानो वहां आग थी ही नहीं। ऐसा जान पड़ता था कि वह किसी प्रकारकी प्रार्थना पढ़ रहा था; क्योंकि बाहरके वृत्तमें बैठे हुए दूसरे ओझे, तथा उसके सहायक और दूसरे लोग समय-समयपर उसके उत्तरमें कुछ बोलने लगते थे।

थोड़ी देर बाद दूसरे ओझे वेदीके गिर्द इकट्ठे होकर बैठ गये।

मफर्नत्सा बिकट स्वरसे चिल्लाया। इसके पश्चात् एक गम्भीर निस्तब्धता छा गयी। ऐसा प्रतीत होता था कि वह ध्यानपूर्वक कुछ सुन रहा है। तत्काल, स्वयं केन्द्रीय अग्निसे, आकाशसे, और चक्करके बाहर सब ओरसे उसके उत्तरमें आवाजें आयीं। उनमेंसे कुछ तो बहुत ऊंची और तीखी थीं, कुछ बहुत गम्भीर और गूंजती हुई थीं। वे इतनी गम्भीर थीं कि मानुषी नहीं जान पड़ती थीं।

मेरे मित्रने कहा, "पिशाच आ गये हैं!"

अनुभवके रहते भी वह कुछ डरा हुआ जान पड़ा। परन्तु मैं मुस्कराया; क्योंकि मैं समझ रहा था कि चालाकीसे इस ढङ्गसे बोला जा रहा है, जिससे जान पड़े कि आवाजें किसी दूसरी जगहसे आ रही हैं और किसी भद्दे प्रकारके मेगाफोन या दूरध्वनि-प्रेषक यन्त्रके द्वारा आवाजको दूर भेजा जा रहा है।

परन्तु दो ही मिनटमें मेरी मुस्कराहट बन्द हो गयी और डरसे मेरा रक्त जमने लगा। कारण यह कि ओझाके सहायक एक तरुण लड़कीको लिये हुए भीतरी वृत्तमें प्रविष्ट हुए। वह लड़की सुदर्शना थी। उसका शरीर सुनिर्मित था। वह नङ्गी थी।

भीषण प्रदर्शन—गम्भीरतापूर्वक मन्त्र पढ़ते हुए उन्होंने उसको मफर्नत्साके हाथमें दे दिया। अब तक उसके साथ बड़ी कोमलताका, वरन् सम्मानका बर्ताव होता रहा था। जिस प्रकार सिंह झुंझलाकर अपने शिकारपर झपटता है, उसी प्रकार वह उस लड़कीपर झपटा। उसकी लचीली, निश्चेष्ट देहको सिरके ऊपर उठाये हुए, ताकि सब लोग देख सकें, वह उसे आगमेंसे ले गया और पीठके बल उसे वेदीपर फेंक दिया। तब मैंने उसके हाथमें एक चमचमाती हुई छुरी देखी⋯⋯!

यह वही बात निकली, जिसका मुझे सन्देह था—मनुष्यकी बलि दी जा रही थी! इसे सहन करना मेरे लिए बहुत कठिन था। परन्तु ज्योंही मैं वहांसे उठकर जाने लगा, मेरे मित्रने मेरी बांह पकड़कर मुझे रोक लिया और मेरे कानमें धीरेसे कहा—

"सब ठीक है—आप देखिये!"

एक सहायकने एक मोटी-सी बकरी प्रधान ओझाको दी। इसके साथ ही सहसा एक कर्कश चीत्कार सुनाई पड़ा। मैंने एक छुरी लड़कीके ऊपर चमकती देखी। जब मैंने ध्यान देकर देखा, तो मालूम हुआ कि ओझाने लड़कीके हृदय-प्रदेशमें चीरा देकर रक्तकी कुछ बूंदे एक कटोरीमें इकट्ठी कर ली हैं। उसका एक सहकारी बकरीको थामे हुए था। ओझाने बकरीका गला दबाकर उसका मुंह खोला और वह रक्त उसे पिला दिया।

तब, बड़े उतावलेपनसे गीत गाते और मन्त्र पढ़ते हुए, उसने बकरीको ऊपर उठाकर, खाली हाथोंसे ही, जीते जी चीर डाला और टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया। यह बड़ा ही घिनौना प्रदर्शन था!

बलिदान—अंतड़ियोंको उसने वेदीपर फेंक दिया—और बाकी बकरीको आगमें। इस समय मैंने देखा कि लड़की अन्तर्धान हो चुकी थी। बादको मेरे मित्रने मुझे समझाया कि लड़कीकी आत्मा बकरीमें डाल दी गयी है।

मेरे मित्रने बताया कि प्रकृत नर-मेधके बजाय अब वे इस रीतिका अवलम्बन करते हैं। पुराना समय होता, तो वे लड़कीकी ही बलि दे देते; परन्तु अब वे जानते हैं कि ऐसा

करनेसे सरकार उन्हें न छोड़ेगी।

इसके दो-तीन दिन बाद, एक अस्करीने, जो उस जिलेमें पहरा देता हुआ गश्त कर रहा था, सूचना दी कि एक निकटवर्ती गांवमें "सूंघकर पता लगाने" की क्रिया होनेवाली है। जङ्गली जातिके पुलिसमैनको, वहांकी भाषामें, अस्करी कहते हैं। वह बहुत अच्छा जवान था। उसने बताया कि गांवमें बीमारी फैल गयी है और दोमबायमबुदजी नामका ओझा सूंघकर बतायेगा कि किसने यह बीमारी फैलायी है।

मेरा मित्र ध्यानपूर्वक उसकी बातें सुनता रहा और फिर मुझसे बोला :

दोमबायमबुदजी सूंघकर अपराधीका पता लगायेगा और जब उसका पता लग जायगा, तो यह उसका हृदय निकालकर खा जायगा। हम भी देखने चलेंगे, ताकि किसी प्रकारकी गड़बड़ न हो।

हम एक घण्टा बाद चल पड़े और एक गांवके निकट पहुंचकर अंधेरा होनेकी प्रतीक्षा करने लगे। जब हमने अग्नियां और उनके गिर्द पलथी मारकर बैठे हुए जङ्गली मनुष्य देखे, तो तीन हट्टे-कट्टे अस्करियोंको साथ लेकर हम वहां गये।

अब उनका नाच समाप्त हो गया और दोमबायमबुदजी अपना कार्य आरम्भ करनेके लिए तैयार हुआ। नगाड़ोंने अपना अमङ्गलसूचक कर्कश शब्द निकालना आरम्भ किया। इस समय ओझाका रूप बड़ा ही पैशाचिक बन रहा था।

ऐसा जान पड़ा कि हम कुछ देरसे पहुंचे हैं; क्योंकि वह सूंघकर पहले ही अपराधीका पता लगा चुका था। वह ओम्बू नामका एक जङ्गली मनुष्य था। इस समय वह वृत्तके मध्यमें भूमिपर लेटा हुआ था। अग्निका प्रकाश उसके मुखमण्डलपर भयको दिखला रहा था।

कई छोटी-छोटी वस्तुयें ओझाके हाथमें दी गयीं, जैसे कि ओम्बूके हाथ-पैरोंके काटे हुए नाखून, और कुछ मिट्टी, जिसपर वह चला था। इन आनन्दप्रद निवालोंको एक प्यालेमें डालकर जईकी रबड़ी जैसी किसी वस्तुमें मिलाया गया। तब ओझाके सहायकोंने उच्च स्वरसे मन्त्रोच्चारण करना आरम्भ कर दिया और ओझा उस रबड़ीको निगलने लगा। वह इसे इतने स्वादसे खा रहा था कि वह प्यालेमेंसे उंगलीके साथ खुरच-खुरचकर चेहरेमें बने हुए मुंहके छेदमेंसे उसे चट कर गया। जिस समय वह निगल रहा था, दूसरे लोग निरन्तर कुछ पढ़ रहे थे और थोड़ी-थोड़ी देर बाद अपराधीका नाम उच्चारण करते थे।

मैंने अपने मित्रके कानमें कहा--"यह क्या बेहूदगी है।" परन्तु उसने सिर हिला दिया। वह बोला—

"आप इसे बेहूदगी कहें या कुछ और, परन्तु यह मनुष्य एक-आध दिनमें अवश्य मर जायगा!"

मैंने उसकी बातपर विश्वास करनेसे इनकार कर दिया। इसपर मित्रने कहा कि मैं यह प्रमाणित करके दिखला दूंगा। इसके शीघ्र ही पश्चात् वे सब पागलोंकी भांति नाचने लगे और नाचके साथ यह सम्मेलन समाप्त हो गया। तब हम वहांसे चले आये। मुझपर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

परन्तु दूसरे दिन जब मेरा मित्र मुझे लेकर ओम्बूको देखने गया—उस ओम्बूको, जिसका हृदय खाया गया था-तो मैं बहुत प्रभावित हुआ।

बेचारा अभागा अपनी झोंपड़ीके एक कोनेमें पड़ा हुआ था। वह कांप रहा था, कराह रहा था, और ऐंठनोंसे निरन्तर उसका सारा शरीर झकझोरा जा रहा था। उसका मुखमण्डल फीका पड़ गया था और उसपर मृत्युके सभी चिह्न प्रकट हो रहे थे!

मैंने अपने मित्रसे प्रतिवाद करते हुए कहा, "परन्तु आप इस दुर्घटनाको रोक सकते हैं।"

उसने विरक्ति प्रकट करते हुए भावपूर्ण ढङ्गसे अपने कन्धोंको सिकोड़कर कहा—

"मैं इसे कैसे रोक सकता हूं?"

मैंने कहा, "यह बात आपको मालूम रहनी चाहिए। अच्छा, पहले डाक्टर लाइये!"

उसने सिर हिला दिया।

उसने कहा, इससे कुछ न बनेगा। डाक्टरको इसमें कोई रोग नहीं देख पड़ेगा। परन्तु इसपर भी यह मर जायगा—ऐसे लोग सदा मर जाया करते हैं।

अपने हस्त-कौशल—तब मेरे मनमें एक विचार आया। मुझे प्रतीत हुआ कि हमारे सामने लेटा हुआ यह व्यक्ति इसलिए मर जायगा, क्योंकि वह समझता है कि वह अवश्य

मर जायगा ; उसके भाग्यमें ही लिख दिया गया है कि वह इस प्रकार मर जायगा। क्या मैं इसकी इस धारणा-को बदल सकता हूँ ?

मैं दौड़ता हुआ अपने डेरेपर गया और जादूके खेलोंकी कुछ वस्तुयें लेकर तत्काल उसके पास लौट आया। तब मैंने अपने मित्रसे कहा कि उस मरते हुए मनुष्यको मेरी बातका अनुवाद करके सुना दीजिये।

मैंने कहा, "ओम्बू" ध्यानपूर्वक सुनो। ओझाने कहा है कि तुम मर जाओगे। परन्तु मैं स्वयं एक ओझा हूं। मुझे उससे कहीं अधिक जादू आता है। मैं तुम्हें अपनी माया दिखलाता हूं।"

उस गरीबकी निस्तेज आंखोंके सामने मैंने कुछ जादूके खेल किये। मैंने कुछ चीजें गायब करके दुबारा प्रकट कर दीं। मैं साबूत अण्डे निगल गया और फिर रोगीके कानों, अपने घुटने, और ऐसे ही दूसरे स्थानोंसे प्रकट कर दिये। मैं कई प्रकारके रङ्ग-बिरङ्गे फीते निगल गया, फिर अपने मुंहसे यूनियन जैक पताका निकाल दिखायी।

तब मैंने गम्भीरतापूर्वक यह मन्त्र पढ़ना आरम्भ किया—

"मैं अपनी शक्तिसे, और अपने यूनियन जैकके जू-जूसे, जो कि बहुत प्रबल जू-जू है, तुम्हें चङ्गा करता हूं। तुम अब नीरोग हो। तुम मरोगे नहीं। उठकर चलो-फिरो।"

जादूके प्रभावमें—मेरे मित्रने जब मेरे शब्दोंका अनुवाद उसे सुनाया, तो उसने बड़े ध्यानसे उसे सुना। तब उद्योग करके वह पांवोंके बल खड़ा हो गया और झोंपड़ीके आसपास टहलने लगा।

कुछ मिनट बाद उसने दोमबायमबुदजीपर गालियोंकी बौछाड़ आरम्भ कर दी, जिसने उसका हृदय खाया था। वह कहने लगा कि उसका जादू कच्चा है। वह ठीक तौरपर हृदय नहीं खा सका। इसके बाद वह मेरी प्रशंसाके पुल बांधने लगा। उसने मुझे कहा कि आपने मुझे मेरा हृदय वापस दिला दिया है ; अब दोमबायमबुदजीका कल्याण नहीं।

उस समय तो मैंने कुछ नहीं समझा; परन्तु दो दिन बाद मेरी समझमें बात आ गयी, जब मैंने सुना कि दोमबायम-बुदजी रेंगता हुआ ओम्बूकी झोंपड़ीमें आया और आकर मर गया।

मुझे बताया गया कि यदि कोई ओझा किसी मनुष्यके सिरपर मारण-मन्त्र चलाये और मन्त्र सफल न होनेसे वह मनुष्य न मरे, तो वह मन्त्र उलटकर उस ओझाको मार डालता है। यह पहला अनुभव था, जिसने मुझे सिखाया कि कई ऐसी बातें हैं, जिनका कोई समाधान नहीं। मुझे यह भी पता लग गया कि अफ्रीकाके ओझे बहुतेरी ऐसी बातें जानते हैं, जिन-का ज्ञान मुझे बिलकुल नहीं।

पानी बरसानेके लिए जीता जला दिया—उत्तर जेम्बजीके वनोंमें मुझे एक जादूगर ओझा मिला। उसका नाम इतना लम्बा और क्लिष्ट है कि मैं उसका उच्चारण नहीं कर सकता। इसलिए हम उसे "बङ्गोला" (खच्चर) कहा करते थे। परन्तु हमने उसे पता नहीं लगने दिया कि हमने हंसीमें उसका यह नाम रख छोड़ा है। उससे मैंने अफ्रीकन जादूके थोड़े-से ऊपरी रहस्य सीखे। भीतरी रहस्योंको बड़ी सावधानीके साथ छिपाकर रखा जाता है। इन सरकारी निरीक्षणके दिनोंमें, जादूके ये रहस्य जङ्गली लोगोंके अतीव गुप्त रक्षित स्थानोंमें ऐसे समयोंमें दिखलाये जाते हैं, जब गश्त करनेवाले सरकारी पुलिसमैन और मजिस्ट्रेट उस प्रान्तमें दौरा न कर रहे हों।

गुह्य शक्तियां – संक्षेपमें और सामान्यतः मैं कहूंगा कि अफ्रीकाके वनोंके कुछ ओझोंमें आगे लिखी शक्तियोंमेंसे निश्चय ही कुछ या सब हैं। मैं इनका कोई कारण या समा-धान उपस्थित नहीं कर सकता। मैं केवल सत्य घटनाओंका वर्णन करूंगा, जैसी कि वे मेरे सामने प्रमाणित की गयी थीं। अवसर पाकर ये लोग—

(क) दूसरे पुरुष अथवा स्त्रीमें रोग उत्पन्न कर सकते या उसकी मृत्यु कर सकते हैं, और कई अवस्थाओंमें तो किसी निश्चित रोगके सचमुच लक्षण भी प्रकट हो जाते हैं।

(ख) वे अपने जैसे दूसरे मनुष्योंको, किसी प्रकारके सम्मोहन द्वारा, हर्षित, भयभीत और कभी-कभी पागल भी बना सकते हैं।

(ग) वे व्यक्तिगत बातोंके सम्बन्धमें भविष्यवाणी कर सकते हैं। उदाहरणार्थ वे पहलेसे बता सकते हैं कि तुम बीमार हो जाओगे, या तुम्हारी मृत्यु हो जायगी, या तुम्हारे बच्चा पैदा होगा, या लड़का होगा या लड़की होगी।

(घ) वे ऐसी औषधियां तैयार कर सकते हैं, जो विश्ले-

पणपर, औषध बनानेकी अतीव आधुनिक विद्याके नितान्त अनुसार, वरन् उससे भी अच्छी पायी गयी हैं।

(ङ) वे रोगोंका निदान कर सकते और मानसिक चिकित्सा द्वारा रक्तके तापमानको घटा या बढ़ा सकते हैं।

(च) वे घरके बने भद्दे देशी शस्त्रोंसे बड़े अच्छे डाक्टरी आपरेशन कर सकते हैं।

जब हम इस बातपर विचार करते हैं कि अफ्रीकाके बनोंके वायु-मण्डलमें ये चीजें हैं, तो हमें अनुभव होता है कि हम "सभ्य" लोगोंको अब भी बहुत-सी बातें इन जङ्गली लोगोंसे सीखनेको बाकी हैं।

पिशाचकी १००० टांगें—बङ्गोलाने मुझे मसूड़ोंके नीचे या उनके गिर्द फोड़ेके कारण होनेवाली दन्त-पीड़ाकी स्थानीय चिकित्सा दिखायी। ऐसी अवस्थाओंमें हमारे आधुनिक दन्त-चिकित्सक या तो दांतको निकाल डालते हैं, या फिर पुलटिस या नश्तरसे सूजनको शान्त करते हैं। बङ्गोलाने इस दन्त-पीड़ाको एक अद्वितीय उपायसे शान्त किया।

वह एक ऐसा व्यक्ति ले आया, जिसके दांतके नीचे फोड़ा था। एक अंगरेजी जाननेवाले दुभापियेके द्वारा उसने मुझे बताया कि उस व्यक्तिको क्या तकलीफ है।

दुभापियेने मुझे समझाया कि ओझा कहता है कि इस मनुष्यके दांतके नीचे पिशाच आ गया है। वह अब दांतके बाहर निकलना चाहता है; परन्तु निकल नहीं सकता, इसीलिए वह भीतर तोम-तोम कर रहा है। इस तोम-तोमसे बहुत पीड़ा होती है। पिशाच दांतके बाहर नहीं आ सकता, क्योंकि उसके टांगें नहीं। ओझा पिशाचके टांगें लगाने लगा है। तब वह दांतके बाहर निकल आयेगा और पीड़ा शान्त होकर मनुष्य चङ्गा हो जायगा।

बङ्गोला तब काममें लग गया। उसने भूमिपर अपने इर्द-गिर्द दृष्टि दौड़ायी। थोड़ी देर बाद उसे वह वस्तु मिल गयी, जिसकी उसे आवश्यकता थी। वह उसपर झपटा। यह जोनगोरोरो ("सहस्रपाद" या कनखजूरा) था। जोनगोरोरो एक प्रकारका भारी झांझा होता है। इसके अनेक पैर होते हैं। जब इसे किसी वस्तुपर रखा जाता है, तो यह उसके गिर्द जोरसे छल्लेकी तरह चिमट जाता है।

बङ्गोलाने रोगीका मुंह खोला और उसके चीखने-चिल्लानेपर कुछ भी ध्यान न देकर, बड़ी दक्षताके साथ पीड़ावाले दांतकी चोटीपर जोनगोरोरोको जोरसे ढकेल दिया।

कीड़ा चटपट दांत और मसूड़ेके गिर्द कुण्डली मारकर जोरसे चिमट गया और उसमें शरीरको चूसनेकी जो स्वाभाविक शक्ति है, उसके द्वारा उसने भीतरकी जलन तीन घण्टेके लिए शान्त कर दी।

तब बङ्गोला मुझे समझाने लगा—ठीक उस प्रकार, जिस प्रकार कोई बात किसी विशेष रूपसे अबोध बालकको समझायी जाती है—कि दांतके भीतरका पिशाच जोनगोरोरोकी टांगोंकी सहायतासे बाहर निकल आया है।

जो भी हो, इससे दांतका फोड़ा अच्छा हो गया।

बङ्गोलाने मुझे यह भी बताया कि मुझे मालूम है कि तुम्हें सांप किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुंचा सकते। मैं यह सुनकर चकित रह गया। कारण यह कि हमारे वंशमें एक उपाख्यान चला आ रहा है। वह यह कि नेविल मास्कलाइन नामका हमारा एक पूर्वज सम्राट् तीसरे जार्जका राजज्योतिषी था। यह वही नेविल्ल है, जिसकी बहन भारतके क्लाइवसे ब्याही थी। उसके समकालीन लोग नेविलपर दोष लगाया करते थे कि उसने पिशाचनाथसे सन्धि कर रखी है, जिससे पिशाचनाथने उसे वरदान दिया है कि तुम्हारे सभी वंशज जादूगर होंगे और उन्हें सांपोंसे कोई हानि न होगी!

यह भी सच है कि मुझे सांपोंसे बिलकुल डर नहीं लगता। मैं पोर्ट इलेजबेथके सांप-बागमें विषहीन सांपोंके बाड़ेमें उतर गया था और मैंने सांपोंको हाथमें उठा लिया था। परन्तु रहस्यकी बात यह है कि बङ्गोलाको पता कैसे लग गया कि मैं सांपोंसे नहीं डरता।

अब मैं अपनी यात्राकी अतीव असाधारण एवं मनोरञ्जक घटना—वर्षाकी देवीकी कथा—सुनाता हूं। रोडेसियामें यह सबको मालूम है। परन्तु मैं इसे वहांके कमिश्नर, श्री व० स० टेबररके अपने शब्दोंमें लिखता हूं। उन्होंने उन ओझोंपर अभियोग चलाया था। वहांके जङ्गली लोग उन्हें म'ज्युइटी (श्वेत प्रभु या बापू) कहते थे। अफ्रीकाके वनोंमें वे बरसोंसे न्यायाधीश थे। अपनी उदारता एवं सदयतासे उन्होंने उनका सम्मान और मित्रता प्राप्त की थी। उन्होंने कहा, "कुछ वर्ष हुए, माउण्ट डार्विन जिलेकी अवस्था-

से मैं बहुत चिन्तित रहता था। वर्षोंसे वहांके देसी लोग अवर्षणके कारण कष्ट पा रहे थे। फसलें नष्ट हो गयी थीं। अड़ोस-पड़ोसके समाचारोंसे पता लगता था कि देसी लोग प्रायः विक्षिप्त-से हो रहे हैं। उनके पशु, पानी और चारेके अभावसे, मर रहे थे। बरसोंसे ऐसा सूखा कभी न देखा था।

"हमें सबसे बड़ी चिन्ता यह थी कि मुखिया और पञ्च लोग, जिनको सरकारने चुना था और जिनको वह वेतन देती थी, और जो अपने गांवोंमें व्यवस्था और शान्ति रखनेके लिए जिम्मेदार थे, अपनी जातिके लोगोंकी दोहाई सुनकर झुक जायंगे और ओझोंको बुलाकर कहेंगे कि जैसे भी हो, इस खराबीको दूर करके पानी बरसाओ।

"मालूम रहे कि कोई लोकोत्तर कर्म करनेके उद्देश्यसे इन ओझोंका इकट्ठे होना निश्चित रूपसे सरकारी कानूनके विरुद्ध ठहराया गया है। हमारी शक्ति घट रही है, यह अनुभव करके ओझा लोग बहुधा पशु-बलिकी आज्ञा दे देते है; परन्तु इस जैसे सङ्कटके समयमें डर था कि वे कहीं इससे कुछ और आगे न बढ़ जायं।

"जिस बातका मुझे सबसे अधिक डर था, वह सामने आ गयी। उस जिलेमें गश्त करनेवाले सिपाहियोंने आकर सूचना दी कि जिलेमें जिन ओझोंसे लोग सबसे अधिक डरते हैं और जो अतीव महत्त्वपूर्ण हैं, उन्होंने आज्ञा दी है कि 'सूंघकर अपराधी मालूम करने' की प्रक्रिया की जाय। उस समय जङ्गली जातिके सैकड़ों लोग एकत्र होंगे।

ताण्डव नृत्य—"मैं रक्षक दल साथ लेकर तत्काल उस जिलेके लिए चल पड़ा। परन्तु दुर्भाग्यसे हमारी गति बहुत मन्द थी। रास्तेमें हमने जङ्गली लोगोंके नगाड़ोंकी धक-धक सुनी। ये नगाड़े वनमें तारका काम देते हैं। इनके द्वारा जङ्गली लोग एक स्थानसे दूसरे स्थानको समाचार भेजते हैं। नगाड़ोंकी ध्वनि कोई शुभ समाचार नहीं दे रही थी।

"जब हम गांवमें पहुंचे, तो वहां परम निस्तब्धता थी। जङ्गली लोग शान्त और मित्रभाव लिये थे। मैंने अनुभव किया कि वे सन्तुष्ट हैं; ओझोंने उन्हें पानी बरसानेका वचन दिया है।

"मुझे सचाईका पता शीघ्र ही चल गया। गत रात्रिको 'सूंघकर पता लगाने' की भीषण प्रक्रिया पूरी की जा चुकी थी। तीन ओझे बुलाये गये थे। भयभीत और निश्चेष्ट बैठे हुए जङ्गली लोगोंके बड़े मण्डलके भीतर वे अपना जादू-मन्त्र और उन्मत्त नृत्य कर चुके थे। उन्होंने वचन दिया था कि हम सूंघकर उन लोगोंका पता लगा लेंगे, जिन्होंने जिलेको 'वारा' (रुग्ण) कर दिया है; जिन्होंने वर्षाको भगा दिया है और पशुओं एवं फसलोंको नष्ट कर दिया है।

"ओझे मण्डलके भीतर, बैलकी पूंछोंको अपने सिरोंके गिर्द सायं-सायं शब्दके साथ घुमाते हुए, गिर्दागिर्द नाचे थे। जङ्गली लोग भयसे सिकुड़े हुए चुपचाप बैठे थे। वे प्रतीक्षा कर रह थे कि ओझे किस स्त्री या पुरुषको अपराधी पाकर उसके मुंहपर अपनी बैलकी पूंछसे चोट करते हैं।

"तब सहसा उन्होंने नाचना बन्द कर दिया था। प्रधान ओझाने कहा था कि मैं वनमें वर्षाकी देवीसे परामर्श करने जा रहा हूं। अपराधियोंने उसे रुष्ट कर दिया है। शीघ्र ही वह लौट आया। तब वह फिर नाचने लगा।

"ओझा बहुत ही वृद्ध था। उसकी आयु नब्बे वर्षसे भी ऊपर थी। उसके दो सहायक सत्तर वर्षसे ऊपरके थे। फिर भी ये तीनों इतनी तेज़ीसे मण्डल के गिर्द नाच रहे थे कि कोई गोरा तरुण भी उतनी तेजीसे न घूम-फिर सकता।

'एकाएक प्रधान ओझा ठहर गया। तब वह उस मानवी वृत्तके किनारेकी ओर झपटा। जङ्गली लोग इस समय भयसे कांप रहे थे। उसने उनमेंसे दोके मुंहपर बैलकी पूंछसे चोट की।

"दोनों अभागे भय-विह्वल होकर दीनता प्रकट करने लगे।

वर्षा आ गयी—"ओझा बोला। उसने उनको बताया कि मैंने वर्षाकी देवीसे बात की थी; देवीने मुझे कहा है कि यदि इन दो मनुष्योंकी बलि मुझे चढ़ा दी जाय, तो मैं कल ही वर्षा भेज दूंगी।

"उन्होंने अपनी व्यवस्था दे दी। उन दोनों अभागोंको बांसोंपर उसी प्रकार कसकर बांध दिया गया, जिस प्रकार ये जङ्गली लोग समूचा उबालनेके लिए सुअरोंको बांधा करते हैं। उनको वनमें ले जाकर जीते जी जला दिया गया।

"मैंने तीनों ओझोंको अपने सामने उपस्थित करनेकी आज्ञा दी। मैंने उन्हें बताया कि तुम्हें सरकारी कानूनका पता है कि मनुष्यको मारनेवाला कोई भी व्यक्ति बिना दण्ड पाये नहीं छूट सकता।

"मेरी आज्ञा सुनकर वे तनिक भी व्याकुल नहीं हुए। वे उदासीन भावसे मेरी ओर देखते रहे।

"उन्होंने कहा, 'म' ज्यूइटी, हमने वर्षा-देवीके इच्छानुसार बलि दी है। अब वर्षा होगी।'

"दूसरे दिन, जिस समय वर्षा-देवीने ओझोंको पानी बरसानेका वचन दिया था, वर्षा आ गयी। ऐसा मूसलाधार पानी गिरा कि वैसा उस प्रदेशमें पहले क्वचित् ही गिरा होगा। पानीकी नदियां बह निकलीं। ओझोंके हथकड़ियां लगी हुई थीं और वे विचारके लिए किसी जगह ले जाये जानेकी प्रतीक्षामें थे। इसपर भी वे एक-दूसरेको देखकर खीस निकाल रहे थे। वर्षा-देवीने अपना वचन पूरा किया था।"

इस प्रकार एक बार फिर ओझोंकी विजय हुई थी।

अफ्रीकाके बीहड़ वनोंमें सभ्यता बड़ी ही मन्द गतिसे पहुंच रही है। वहां गुप्त रूपसे, सरकारकी आंखसे बचकर ओझा लोग अब तक भी अपने विनाशक नृत्य, और सूंघकर अपराधीका पता लगानेकी प्रक्रिया करते हैं, और जङ्गली लोगोंके भय-विस्फारित नेत्रोंके सामने अपने प्रबल जू-जूओंकी घोषणा करते हैं।

अफ्रीकाके जङ्गलोंमें अब तक भी ऐसे रहस्य हैं, जिनका समाधान मेरे पास नहीं; वहां ऐसा जादू है, जिसको मेरे जैसा सधा हुआ ऐन्द्रजालिक और मायावी भी नहीं समझ सका।

अब भी कई ऐसी बातें हैं, जिनका हमें कुछ ज्ञान नहीं, ऐसे मनके रहस्य और वनका अन्धकार है, जो बताता है कि आकाश और पृथ्वीपर अनेक ऐसी चीजें हैं, जिनका हमारी बुद्धिको अभी स्वप्न तक नहीं।

अफ्रीकाके ओझोंने मुझे यही शिक्षा दी है।

सुना है कि उपरिलिखित तीनों ओझोंका हाईकोर्टमें विचार हुआ था और उनको कारावासका लम्बा दण्ड मिला था। बहुत वृद्ध होनेके कारण उनको प्राणदण्ड नहीं दिया गया।

———

राही

राही राह भूल गया !
वह भटकता ही रहेगा क्या ?

उस दिन मेरे द्वारपर भी किसीके पुकारनेका शब्द सुनाई दिया था; क्या वही राही था ?

वर्षाकी बूंदें अपने मनके अरमान निकाल रही थीं, किसी विरहीकी बांसुरी मन, प्राणको अकुलाकर बज उठी। उसी समय किसीने मेरे द्वारपर थपकी दी थी !

राही राह भूल गया !
मैं नहीं उठी, वह लौट गया, न जाने कहां ?
मैं उदास हो गयी, न जाने क्यों ?
ऊपरसे झांककर देखा, तो उसकी छाया-मात्र दीख पड़ी !
वह राह भूल गया !
उसे मैंने नहीं बुलाया। पता नहीं, किस देशका था ?
वह कहां चला गया ?
हवाका तेज झोंका मेरे शरीरको स्पर्श कर गया·········मानो उसी राहीकी ठण्डी सांस हो !
राही राह भूल गया !

जुगनू जब अपनी क्षीण ज्योतिसे जगमग करके उड़ जाते हैं, तब मैं उन्हींसे प्रार्थना करती हूं-उस भूले पथिकको मार्ग बतानेके लिए !

क्या उसे पथ नहीं मिलेगा ?

—तारा पाण्डे

पशु-पक्षियोंमें मस्तिष्क-शक्ति

प्रो० भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०

मस्तिष्क-शक्तिकी सही-सही व्याख्या कर सकना आसान नहीं है। पशु-जगत्में मस्तिष्ककी शक्ति कहां तक काम करती है, इस प्रश्नका उत्तर ढूंढ़नेके पहले पशु-जगत्के आचरणपर ध्यानपूर्वक अध्ययन करना भी आवश्यक है।

पशुओंके अन्दर मस्तिष्क-शक्तिके आविर्भावसे हमारा उद्देश्य है उनके अन्दर भावनाओं, कल्पना-शक्ति और निर्णयात्मक शक्तिका विकास। बुद्धिके ये मूल निर्देशक कुछ प्राणियोंमें काफी हद तक विकसित हुए पाये जाते हैं। उदाहरणके लिए कुत्ते, घोड़े, हाथी तथा बन्दरोंके आचरणमें बुद्धिका एक जबर्दस्त पुट पाया जाता है। अन्य प्राणियोंके अन्दर भी बुद्धिकी झलक हमें नजर आती है—केवल जरूरत इस बातकी है कि हम उनकी रोजमर्राकी जिन्दगीका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करें।

हजारों लाखों वर्ष पूर्व इस धरतीपर एकमात्र जीवधारी क्षुद्र कीट थे, जो केवल अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखे जा सकते हैं। ये जीव अब भी ताल-तलैयोंके किनारे पाये जाते हैं। जीव-विज्ञानके विशारदोंका कहना है कि प्राणि जगत्के विकासकी सीढ़ीके सबसे निचले भागपर ये जीव हैं—अतः बुद्धिके हिसाबसे भी ये सबसे निकृष्ट ठहरते हैं। शरीर-विज्ञान तो हमें बताता है कि इनके शरीरमें दिमाग-जैसा कोई विशेष अङ्ग है ही नहीं। इन जीवोंमें प्राण-शक्तिकी निर्देशक एकमात्र उनकी हरकत है। अणुवीक्षण यन्त्रके दृष्टिक्षेत्रमें इन क्षुद्रतम जीवोंकी हरकतका अध्ययन बारीकीके साथ किया जा सकता है। क्या उनकी हरकत ऐसी है कि उसके सञ्चालनके लिए किसी मस्तिष्कका वजूद मानना अनिवार्य है? वैसे तो लज्जावतीकी जातिके अनेक पौदोंमें भी हरकत होती है, उनके पत्तोंमें एक खास ढङ्गकी चेतनशीलता पायी जाती है; किन्तु उनके पीछे कोई मस्तिष्क काम नहीं करता। मांसाहारी पौदोंमें भी प्रकट रूपसे चेतनशीलताके चिह्न पाये जाते हैं; किन्तु उनकी हरकत निरी रासायनिक और भौतिक क्रियाओं द्वारा भली भांति समझी जा सकती है। ये क्षुद्र जीव (अमीबा) थोड़ी-बहुत निर्णय-शक्ति तथा इच्छा-शक्तिका इजहार भी करते हुए जान पड़ते हैं। उदाहरणके लिए अमीबा बार-बार अंधेरेसे हटकर उजालेकी ओर जाता है। फिर वही अमीबा भिन्न-भिन्न अवसरोंपर एक-सी ही वाह्य परिस्थितियोंमें भिन्न-भिन्न तरीकोंसे पेश आता है—मानो अपनी इच्छा-शक्तिका इस्तेमाल करके जो जीमें आता है, वही करता है। प्रो० मास्टने अमीबाकी हरकतोंका ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया है और वे इस निष्कर्षपर पहुंचे हैं कि इन क्षुद्र जीवोंमें ऐसा जान पड़ता है कि उनकी मानसिक शक्तिका स्रोत समय-समयपर जारी हो जाता है। इनकी मस्तिष्क-शक्ति निरन्तर अनवरत रूपसे जागरूक नहीं रहती।

विकासवादकी सीढ़ीपर कुछ और ऊंचे चढ़नेपर हमें ऐसे जीव मिलते हैं, जो नयी-नयी बातोंको सीखनेकी शक्ति अपनेमें रखते हैं। अवश्य ही इनके सीखनेका तरीका भद्दा तथा अनगढ़ है—अंधेरेमें टटोलने-जैसा। कोई मुश्किल हल करनी है, तो वह कोई तरीका ढूंढ़ेगा; फिर यदि वह तरीका गलत हुआ, तो दूसरा ढूंढेगा, जब तक वह किसी ऐसे तरीके-पर न पहुंच जाय, जिससे वह मुश्किल वास्तवमें हल हो जाय। इस सम्बन्धमें एक दिलचस्प प्रयोग किया गया था। समुद्रमें एक नन्हा-सा प्राणी पाया जाता है, जिसके शरीरसे चारों ओर कई एक लम्बे-लम्बे हाथ-पैर टेन्टेक्ल (tentacles) मकड़ेकी टांगोंकी तरह निकले रहते हैं। इस विचित्र प्राणीके शरीरके स्नायुओंका कहींपर केन्द्रीकरण नहीं है। अर्थात् दिमाग-जैसा कोई अङ्ग इनके शरीरमें नहीं है। अतः इनकी मस्तिष्क-शक्तिपर विचार करना निस्सन्देह हमारे लिए अत्यन्त रोचक होगा। इस प्राणीके किसी एक टेन्टेक्लके छोरपर यदि मांसका नन्हा-सा टुकड़ा हम रख दें, तो यह टेन्टेक्ल अपने छोरको छोड़कर उस खाद्य-सामग्रीको अपने मुंहके पास ले जाता है और उसे उदरस्थ कर लेता है। अकसर एक टेन्टेक्ल अपनी कमाई दूसरे टेन्टेक्लको सौंप देता है, जो उसे मुंहमें पहुंचा आता है। किन्तु टेन्टेक्लके स्पर्शमें यदि लकड़ी आदि चीजें लायी जायें, जिन्हें ये जीव खा नहीं

सकते, तो उस टेन्टेक्लपर कोई असर नहीं होता। कभी-कभी तो ऐसी बेकार चीजोंको ये टेन्टेक्ल जबर्दस्ती फेंक भी देते हैं। एक प्रयोगमें स्याहीसोखका टुकड़ा इस प्राणीको प्रतिदिन २४ घण्टेके अवकाशके बाद दिया जाने लगा। शुरूमें तो टेन्टेक्ल स्याहीसोखको घसीटकर मुंहमें डाल लेता, और फिर स्याहीसोख बिना पचे हुए शरीरके बाहर निकल जाता। किन्तु चार दिनके बाद यद्यपि टेन्टेक्ल पहलेकी ही भांति स्याहीसोखको मुंह तक ले जाता; किन्तु मुंहने उसे खानेसे एकदम इनकार कर दिया, और छठें दिनके बादसे तो टेन्टेक्लने भी उस स्याहीसोख कागजकी तरफ ध्यान देना छोड़ दिया। जैसे अब उसने समझ लिया हो कि यह उसके कामकी चीज नहीं है। अब तक उसने गलती की थी कि उसे घसीटकर मुंहमें ले जाता। उसने एक सबक सीख लिया। किन्तु केन्द्रीय सञ्चालन-शक्तिका प्रवर्त्तक दिमाग इन जीवोंमें नहीं है, अतः जब स्याहीसोखका वही प्रयोग उसी प्राणीके अन्य टेन्टेक्लोंके साथ दुहराया गया, तो वे बेचारे धोखेमें आ गये। एक टेन्टेक्लने जो सबक सीखा था, उसकी खबर अन्य टेन्टेक्लों तक पहुंच भी न पायी। इन जीवोंकी मानसिक चेतनशीलताका एकीकरण नहीं है।

कीड़ों-मकोड़ों और पक्षियोंके शरीरके अन्दर दिमागका अङ्ग मौजूद है; किन्तु इनकी दिमागी शक्ति कुछ अधिक विकसित नहीं हो पायी है। इसके प्रतिकूल स्तनपायी जीवोंके शरीरमें दिमागको एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। मस्तिष्क-शक्तिका जहां तक सम्बन्ध है, समस्त प्राणि-जगत्में इनका स्थान सर्वोपरि है। जीव-विज्ञानने कीड़ों-मकोड़ों और पक्षियोंको क्षुद्र मस्तिष्कवाले जीवोंकी श्रेणीमें रखा है और स्तनपायी जीवोंको बृहत् मस्तिष्कवाले जीवोंकी श्रेणीमें।

बुद्धिका विकास समुचित मात्रामें स्तनपायी जीवोंके अन्दर ही हो सका है। पक्षियोंके अन्दर बुद्धिका स्थान जैसे सहजप्रवृत्तियों (Instinct) ने ले रखा है। अनेक ऐसी बातें जो पक्षियोंके अन्दर देखनेको मिलती हैं और जिन्हें हम बुद्धिकी परिचायक समझते हैं, वे वास्तवमें उनकी सहज-प्रवृत्ति द्वारा प्रेरित होती हैं। सहज प्रवृत्ति और बुद्धिमें काफी अन्तर है। सहजबुद्धि वह क्षमता है, जिसकी बदौलत बिना सीखे ही प्राणी अनेक करतब कर दिखाते हैं। एक ही जातिके सभी प्राणियोंमें एक-सी उम्रमें यह सहजप्रवृत्ति समान मात्रामें पायी जाती है। बुद्धिके सम्बन्धमें यह बात नहीं है। एक ही जातिके भिन्न-भिन्न प्राणियोंमें बुद्धिकी मात्रा समान नहीं रहती। किसी एक जातिकी सभी मादा मकड़ियां एक-से ही बढ़िया जाले बुन लेती हैं—जाले बुननेके लिए उन्हें अपनी अक्ल नहीं खरचनी पड़ती, सहजप्रवृत्तिसे वे निष्प्रयास ही बढ़िया जाला बुन लेती हैं। सहजप्रवृत्ति बनी-बनायी ईश्वरके यहांसे उस जातिके सभी सदस्योंको बराबर मात्रामें मिलती है। इसमें शिक्षाकी ज्यादा गुञ्जायश नहीं रहती। शिक्षा द्वारा हम सहजबुद्धिमें किसी किस्मका सुधार नहीं कर सकते।

चींटी और मधुमक्खीके जीवनकी अनेक क्रियायें सहज-प्रवृत्ति द्वारा ही प्रेरित होती हैं। किन्तु कई प्रयोगोंमें यह देखा गया है कि चींटियां अपने बिलके आसपासवाली जगहकी भौगोलिक परिस्थिति याद रख सकती हैं—ऐसा करनेके लिए वे रास्तेकी चीजों तथा गन्ध आदिकी पहचान रखती हैं। एक वैज्ञानिकने एक चींटीको अपने बिलके अन्दर प्रवेश करनेके लिए नन्हीं-सी लकड़ीकी सीढ़ीका इस्तेमाल करना सिखलाया था। उस चींटीके बिलके चारों ओर पानीकी खाई खोदी गयी थी। सारांश यह कि कीड़े-मकोड़ों-के जीवनमें भी कहीं-कहीं बुद्धिकी झलक देखनेको मिल जाती है।

मकड़ोंकी जिन्दगी भी कुछ कम रोचक नहीं है। मादा मकड़ी जिस हिम्मत और जांफिशानीके साथ अपने अण्डोंके रक्षा-निमित्त आक्रमणकारियोंसे लड़ती है, उसे देखकर कमसे कम इतना तो मानना ही पड़ेगा कि मकड़ियोंके अन्दर वात्सल्य-प्रेम सरीखी भावना मौजूद है। पिछले अनुभवकी रोशनीमें अपने आचरणमें समुचित परिवर्तन करनेकी क्षमता भी मकड़ोंके अन्दर पायी जाती है। तारपीनके तेलमें भिगोयी हुई एक मक्खी मकड़ीके जालमें फेंक दी गयी। फौरन् मकड़ी अपने शिकारपर टूट पड़ी; किन्तु तारपीनकी तीव्र गन्धसे अप्रतिभ होकर वह वापस लौट गयी। तीन बार मक्खियां फेंकी गयीं, एकके बाद दूसरी, और तीनों बार मकड़ीने धोखा खाया। किन्तु उसके बाद जब मक्खियां फेंकी गयीं, तो मकड़ीने उधर ध्यान ही नहीं दिया। और कई बार तो ऐसा हुआ कि साफ-सुथरी मक्खी भी यदि जालमें डाली गयी, तो

उसे भी मकड़ीने न छुआ। तारपीनवाली मक्खियोंकी कटु स्मृति कई घण्टों तक उस मकड़ीके मस्तिष्कमें बनी रही। दूसरे दिन जब यही प्रयोग फिर दुहराया गया, तो मकड़ीने फिर धोखा खाया; किन्तु अबकी केवल एक ही बार। पिछले दिन-की प्रैक्टिसके कारण आज एक ही भूलमें उसने सबक सीख लिया।

मछलियां प्रायः बुद्धिहीन प्राणी समझी जाती हैं, क्योंकि न तो चिड़ियों-जैसे इनमें भावातिरेक देखनेमें आते हैं और न उच्च योनिके स्तनपायी जीवोंका-सा बुद्धिका जबर्दस्त पुट उनकी रोजमर्राकी जिन्दगीमें देखनेको मिलता है।

टिलैपिया (Tilapia) जातिकी मादा मछली अपने अण्डोंको सदैव अपने मुंहके अन्दर रखती है। उसे यह डर लगा रहता है कि नर मछली ही भूख लगनेपर कहीं उन्हें न खा जाय। विज्ञानशालाके जलाशयमें मादा मछलीके सिरके पास नन्हें-नन्हें पचास-साठ बच्चे पानीमें स्वच्छन्दतापूर्वक तैर रहे थे। दूरसे पानी जरा-सा हिला कि तीन इञ्चकी शरीरवाली मादा मछलीने अपना मुंह खोला और ये ६० बच्चे उस तहखानेमें घुस गये। कुछ घण्टों बाद मादाने जो फूंक मारी, तो ये सब बच्चे फिर बाहर निकल पड़े।

मछलियोंके अन्दर भी नयी-नयी बातें सीखनेकी क्षमता मौजूद है—भिन्न-भिन्न जातिकी मछलियोंका बौद्धिक धरातल भी भिन्न होता है। स्याममें एक खास किस्मकी मछली मुंह-में पानी भरकर एक तेज बौछार अपने शिकार--कीड़े-पतिङ्गों-पर डालती है। इस बौछारकी चोटसे कीड़ा वहीं ढेर हो जाता है। विज्ञानशालाके हौजमें रखी हुई इसी जातिकी दो मछलियोंने धीरे-धीरे आगन्तुक तमाशबीनोंकी आंखों, ओठों और नाकोंपर निशाना लगाना सीख लिया था। जैसे इस तरहके खेलमें उन्हें खूब मजा आता था। उनकी यह हरकत अवश्य ही मस्तिष्ककी क्रियाशीलताकी द्योतक है।

मेंढककी गिनती उन प्राणियोंमें होती है, जिन्हें अपेक्षा-कृत बुद्धिमान समझा जाता है। किन्तु ध्यानपूर्वक निरी-क्षण करनेपर हम कुछ और ही नतीजेपर पहुंचते हैं। नयी बातोंके सीखनेकी शक्ति मेंढकोंके अन्दर बहुत ही क्षीण मात्रा-में पायी जाती है। फिर भी अनेक ऐसे उदाहरण मिले हैं, जिनसे यह साबित होता है कि मेंढकोंके अन्दर भी थोड़ी-बहुत बुद्धिजनक प्रवृत्तियां सुषुप्त अवस्थामें अवश्य मौजूद हैं।

कछुए, छिपकली, मगर और सांप आदि प्राणियोंमें स्मरण-शक्तिका आभास प्रचुर मात्रामें मिलता है। पालतू कछुए अपने स्वामीको आसानीसे पहचान लेते हैं। अमेरिकन प्रोफेसर यार्कीजने एक कछुएको साधारण ढङ्गके भूलभुलैयेमें डाल दिया। गलत मोड़पर घूमकर फिर वापस लौटकर पूरे ३५ मिनटमें भूलभुलैयेके दूसरे किनारेसे निकलकर कछुआ अपने भोजनकी तश्तरीके पास पहुंच पाया। दूसरी बार उसने कम गलतियां कीं और पांचवीं बार केवल ३० सेकण्डमें वह भूलभुलैयाको पार करके अपने मञ्जिले मकसूदपर पहुंच गया। पिछले अनुभवसे सीखनेका यह एक जबर्दस्त प्रमाण है।

पक्षियोंकी बुद्धिकी परख करते समय विशेष रूपसे सतर्क रहनेकी जरूरत है; क्योंकि इनकी सहजप्रवृत्तियां (Instinct) काफी हद तक बढ़ी-चढ़ी होती हैं। उदाहरणके लिए घोंसले बनानेमें सभी पक्षी निपुण होते हैं। वाह्य परिस्थितियोंका प्रभाव सहजप्रवृत्तियोंपर अधिक नहीं पड़ सकता। किन्तु पक्षियोंके अन्दर नयी-नयी बातोंके सीखनेकी शक्ति भी प्रचुर मात्रामें पायी जाती है। बुलबुलको यदि थोड़े परिश्रमसे भी सिखाया जाय, तो शीघ्र ही वह तरह-तरहके करतब कर दिखाती है। दुअन्नीके छोटे सिक्केको कुएंमें डालिये—बुल-बुल तीरकी भांति कुएंमें प्रवेश करके पानीमें गिरनेसे पहले ही दुअन्नीको अपनी चोंचमें पकड़ लायेगी।

कबूतरके साथ किया गया एक प्रयोग विशेष उल्लेख-नीय है—एक पिंजड़ेके अन्दर कबूतरके लिए दाने रखे थे। पिंजड़ेका दरवाजा धक्का देकर एक ओरको सरकाया जा सकता था। कबूतरने उसे चोंचसे हटाकर खोलना सीख लिया था। फिर उसके स्वामीने दरवाजेमें एक लकड़ीका टुकड़ा फंसा दिया, ताकि सरकानेसे दरवाजा अपनी जगहसे हट न सके। कुछ ही देरके बाद कबूतरने चोंचसे उस लकड़ी-के टुकड़ेको खींच लिया और दरवाजेको पूर्ववत् सरकाकर वह पिंजड़ेके अन्दर घुस गया। किन्तु उसके स्वामीने उसे पकड़-कर फिर बाहर निकाल दिया। कबूतरने दूसरी बार फिर चोंचसे लकड़ीको हटाया और वह दरवाजेको सरकाकर पिंजड़ेमें घुस गया, और दानोंको खाने लगा। उसके स्वामी-ने उसे फिर बाहर निकाला और दरवाजेको बन्द कर दिया। तीन-चार बार ऐसा करनेपर कबूतरने अब दरवाजा खोलनेका प्रयत्न करना ही बन्द कर दिया। पांच-छः मिनट

तक इन्तजार करनेपर जब उसका स्वामी दूसरे कमरेमें उठकर गया, तो झट कबूतरने पहली क्रिया दुहरायी और वह पिंजड़ेके अन्दर घुसकर दाना खाने लगा। स्वामीने दूसरे कमरेसे यह बात देखी। वह फौरन् लौटा और उसने कबूतरको बाहर निकाला। कबूतर फिर निश्चेष्ट बन गया। अब उसका स्वामी जान-बूझकर दूसरे कमरेमें गया और वहांसे उसने छिपकर देखना शुरू किया—ज्यों ही कबूतरने देखा कि उसका स्वामी कमरेसे बाहर चला गया है, उसने लकड़ीका टुकड़ा फिर हटाया, दरवाजेको सरकाया और इस तरह वह पिंजड़ेके अन्दर फिर दाखिल हो गया। सारांश यह कि जब उसका मालिक कमरेके अन्दर होता, तो वह चुपचाप निश्चेष्ट बैठा रहता; क्योंकि उसे मालूम था कि दरवाजा खोलनेसे कोई लाभ नहीं, उसका मालिक उसे फौरन् बाहर निकाल देगा। अतः जब उसका मालिक कमरेसे बाहर होता, केवल तभी वह पिंजड़ेको खोलता। उसके इस अद्भुत आचरणके पीछे किसी ढङ्गकी मस्तिष्क-शक्ति तो अवश्य ही काम करती रही होगी। कबूतरके इस प्रयोगमें चार बातोंपर विशेष रूपसे ध्यान देना है—एक तो दरवाजेको कुशल तरीकेसे सरकाकर खोलना; दूसरे लकड़ीके टुकड़ेको हटाना, तीसरे बार-बार पिंजड़ेसे बाहर निकाल दिये जानेपर दरवाजा खोलनेका प्रयत्न त्याग देना और चौथे, मालिकको कमरेसे बाहर होते हुए देखकर दरवाजेको फिरसे खोलना।

यूनानके कुछ गिद्ध जातिके पक्षी कछुएको खूब ऊंचाईपर ले जाकर छोड़ देते हैं। ऊंचाईसे गिरनेपर कछुएकी पीठ टूट जाती है और गिद्धको नरम मांस खानेको मिल जाता है। कुछ शिकारी पक्षी शुतुर्मुर्गके अण्डोंके ढेरपर ऊंचाईसे पत्थरके ढेले गिरा देते हैं, ताकि अण्डोंके फूटनेसे उनके खानेके लिए नरम पदार्थ मिल सके। इस श्रेणीके पक्षियोंको हम 'चालाक' और 'धूर्त' शब्दोंकी उपाधि अवश्य ही दे सकते हैं।

कबूतर और गिद्ध आदि पक्षियोंके अन्दर स्मरण-शक्ति भी मौजूद पायी जाती है। पेरिसकी एक महिलाने अपना पालतू सुनहला गिद्ध चिड़ियाखानेको भेंट कर दिया था। पूरे एक सालके बाद वह महिला चिड़ियाखानेकी सैरको गयी। वहां जो उसने गिद्धका पालतू नाम 'पीटर' पुकारा, तो फौरन् आवाज पहचानकर अपनी स्वामिनीके पास उड़कर वह गिद्ध चला आया।

स्तनपायी प्राणी रीढ़वाले अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा मस्तिष्क-शक्तिमें काफी आगे बढ़े हुए हैं। अन्य जीवधारियोंकी बनिस्बत स्तनपायी प्राणी नयी चीजोंको जल्दी सीख लेते हैं और इनकी स्मरण-शक्ति भी अच्छी होती है। नयी समस्याओंको हल करनेमें भी ये काफी मात्रामें योग्यताका प्रदर्शन करते हैं। यार्कीज महोदयके भूलभुलैयावाले प्रयोगमें कछुए या मेंढक कई बार गलतियां कर लेनेपर नयी बातें सीख तो लेते हैं; किन्तु इनका सीखनेका तरीका बुद्धिशील नहीं होता—अंधेरेमें टटोलकर रास्ता ढूंढ़नेवाले सिद्धान्तपर ये अपने प्रयोगको दुहराते रहते हैं। किन्तु उसी परिस्थितिमें स्तनपायी प्राणीको रख दीजिये, तो देखनेमें आता है कि ये प्राणी निरा अंधेरेमें टटोलनेवाला सिद्धान्त काममें नहीं लाते, वे बहुत कम समयमें अपनी समस्याओंको हल कर लेते हैं। और कमसे कम उच्च योनि स्तनपायी तो अपनी मुश्किल हल करनेके लिए कभी-कभी ठहरकर जैसे सोचते भी हैं—और कोई नया हल सूझा, तो उसे फौरन् ही कार्यान्वित कर लेते हैं।

साधारणतया स्तनपायी जीव दो विभिन्न वस्तुओंके बीच सम्बन्ध स्थापित करना जानते हैं। किसी विशेष शब्दको सुनकर एक खास काम करना वे आसानीसे सीख लेते हैं। अमेरिकन प्रो० यार्कीजने एक चूहेको विभिन्न रङ्गकी पगडण्डियोंको पहचानना सिखलाया था। जब कभी हरे रङ्गकी पगडण्डीपर चूहा चलता, तो रास्तेके आखीरमें उसे बढ़िया खाद्य पदार्थ मिलते; किन्तु लाल रङ्गकी पगडण्डीपर चलनेसे यह पारितोषिक न मिलता। केवल अन्दाजके बलपर वह चूहा काम न करने लगे, इस बातकी सावधानी रखनेके निमित्त वह कभी लाल पगडण्डी दाहिनी ओर रखता, तो कभी हरे रङ्गकी पगडण्डी उस ओर रखता। कुछ ही दिनोंकी ट्रेनिङ्गके उपरान्त चूहेने इन विभिन्न रङ्गकी पगडण्डियोंको पहचानना भली भांति सीख लिया।

स्तनपायी जीवोंके अन्दर निर्णयात्मक शक्तियां भी कभी-कभी देखनेको मिल जाती हैं। इनकी निर्णयात्मक शक्तिका विकास प्रायः ऐसी जगहोंपर होता हुआ पाया गया है, जहां मनुष्यने इन्हें पूरी जिम्मेवारी सौंप दी है। और इसी जिम्मेवारीको अञ्जाम देते हुए ये मनुष्य जातिके अनेक कारबारमें पूरी मदद भी पहुंचाते हैं। श्याममें जङ्गलमें लट्ठोंको एक स्थान-

से दूसरे स्थानपर ले जानेमें हाथियोंकी मदद ली जाती है, आस्ट्रेलियामें भेड़ोंकी रखवालीके लिए कुत्तोंपर भरोसा किया जाता है। यहांपर हाथी और कुत्तेकी निर्णयात्मक शक्तिपर भरोसा करना पड़ता है।

बन्दर विकासवादकी सीढ़ीपर अन्य जीवोंकी अपेक्षा मनुष्य जातिके एकदम निकट हैं। फलस्वरूप इनकी स्पर्श-शक्ति, दृष्टि-शक्ति तथा श्रवण-शक्ति भी मानव-जातिकी शक्तियोंके ही समान बढ़ी-चढ़ी हैं। इनकी दोनों आंखोंकी स्थिति बहुत कुछ मनुष्योंकी आंख-सदृश ही है, अतः विभिन्न वस्तुओंकी दूरी और मुटाईका अन्दाज भी सही तौरपर ये लगा सकते हैं। भिन्न-भिन्न रङ्गोंको पहचाननेकी स्वाभाविक क्षमता इनके अन्दर पायी जाती है। भिन्न-भिन्न शक्ल और साइजके भेदको पहचानना भी वे जानते हैं।

जङ्गलकी खतरेसे भरी हुई परिस्थितियोंमें रहनेके कारण बन्दरोंके अन्दर चपलता और फुर्तीका विकास काफी ऊंचे दर्जे तक हो पाया है। अन्य स्तनपायी प्राणियोंके मुकाबलेमें बन्दरोंने अपने हाथोंका प्रयोग बड़ी खूबीके साथ तरह-तरहके कामोंके लिए करना सीख लिया है। बन्दरकी नस-नसमें मानो कार्यशीलता भरी हुई है। वे चुपचाप कभी बैठ ही नहीं सकते। कोई चीज हाथमें पड़ गयी, तो उसको फौरन् ही उधेड़ डाला। किसी बिल्ली या कुत्तेका ध्यानपूर्वक निरीक्षण कीजिये। घण्टों ये चुपचाप बेकार बैठे रहेंगे; किन्तु एक बन्दरको जरा गौरसे देखिये—आप गिना नहीं सकते कि थोड़ी-सी देरमें वह क्या-क्या काम कर डालता है। किसी खास उद्देश्यकी उसे जरूरत नहीं, वह तो महज अपनेको मशगूल रखनेकी खातिर कुछ न कुछ करते रहना चाहता है। केवल उसका शरीर ही नहीं, बल्कि उसका मस्तिष्क भी मशगूल रहना चाहता है। मानव जातिके अतिरिक्त और किसी जीवके अन्दर मस्तिष्ककी यह वैज्ञानिक ढङ्गकी अनुसन्धानकारी प्रवृत्ति नहीं पायी जाती। ऐसा जान पड़ता है, मानो बन्दर विश्वकी हरएक बातके प्रति नयी जानकारी हासिल करनेके लिए उत्सुक रहता है। जो कोई भी समस्या सामने आ पड़ी, उसीकी असलियत मालूम करनेके लिए उसका मस्तिष्क उससे उलझ पड़ा।

प्रो० होम्सने इस सम्बन्धमें अपने निरीक्षणके आधारपर लिखा है कि परिस्थितियोंको भांपनेमें तथा खतरेके समय बचनेके लिए उपाय ढूंढ़ निकालनेमें जितनी फुर्ती बन्दर दिखाते हैं, उतनी फुर्ती अन्य किसी जीवधारीमें देखनेको नहीं मिलती।

नयी चीजोंको सीखनेमें बन्दर अद्वितीय होते हैं। प्रोफेसर होम्सने अपने बन्दरको जिस पिंजड़ेमें रखा था, उसके छड़ खड़े-खड़े लगे हुए थे। सामने एक तख्तीपर उस बन्दरकी पहुंचके बाहर एक सेब रख दिया गया। वह बन्दर फौरन् ही आगेको झुका। उसने तख्तीके छोरपर लगे हुए हैण्डिलको पकड़कर तख्तीको फौरन् ही अपनी ओर खींच लिया और इस प्रकार सेवको उदरस्थ करनेमें समर्थ हुआ। यहांपर यह बात खास तौरपर गौर करने लायक है कि बन्दरने अन्य निम्न श्रेणीके जीवधारियोंकी तरह भांति-भांतिके प्रयोगोंकी आजमायश नहीं की—उसके सामने एक समस्या आयी और फौरन् जैसे उसे सूझ गया कि इस समस्याको अमुक ढङ्गसे हल कर सकते हैं।

तरह-तरहके बक्स खोलनेके प्रयोगोंके सिलसिलेमें निम्नलिखित मुख्य बातें नोट की गयी हैं:—

(अ) बन्दर निरन्तर एकके बाद दूसरा प्रयोग करनेमें खास दिलचस्पी दिखाते हैं।

(ब) गलतियोंको शीघ्र ही सुधार लेनेकी क्षमता भी इनके अन्दर प्रचुर मात्रामें पायी जाती हैं।

(स) किसी समस्याको हल कर लेनेके बाद उस हलको वे काफी दिनों बाद तक याद रखते हैं।

एक बन्दरको पूरे आठ महीने बाद गोरखधन्धेका बक्स फिर खोलनेके लिए दिया गया, उसे बक्स खोलनेकी तरकीब अब तक याद थी, फौरन् ही गोरखधन्धेको उसने अपनी पिछली स्मृतिके आधारपर सुलझा लिया।

बन्दरोंमें चिम्पैञ्जी जातिके बन्दर विशेष बुद्धिमान होते हैं। 'पीटर' नामके एक चिम्पैञ्जी बन्दरने स्केटिङ्ग करना, साइकिल चलाना, गांठ खोलना, सिगरेट पीना, माला गूंथना, ताला खोलना तथा सुईमें धागा पिरोना आदि भी सीख लिया था। यह कहना मुश्किल है कि जिस समय बन्दर इस तरहके आश्चर्यजनक करतब करता है, उसके मनमें किस तरहके विचार उत्पन्न होते रहते हैं। मनोवैज्ञानिकोंका तो कहना है कि बन्दरोंके अन्दर बुद्धि प्रचुर मात्रामें अवश्य पायी जाती है; किन्तु इनके अन्दर तर्क करनेकी

शक्ति नहीं है। सिद्धान्त, उसूल आदिके आधारपर तर्क करनेकी क्षमता ईश्वरने केवल मानव-प्राणीको ही प्रदान की है।

प्रोफेसर कोलेरने कठघरेको छतसे एक केला लटका दिया। कठघरेमें दो चिम्पैञ्जी थे। केला इतने ऊंचेपर था कि वहां तक किसी चिम्पैञ्जीका हाथ नहीं पहुंच पाता था। आखिर एक चिम्पैञ्जीने दूसरेके कन्धेपर चढ़कर केले तक पहुंचनेकी कोशिश की; किन्तु वह नाकामयाब रहा। तब कठघरेमें रखे हुए बक्सोंकी उसने मदद ली। एकके ऊपर दूसरा करके उसने तीन बक्स खड़े किये, और इस तरह सबसे ऊपरवाले बक्सपर खड़े होकर उसने केला तोड़ लिया। इसी चिम्पैञ्जी-का दूसरा साथी इतना कुशाग्रबुद्धि न था। इसी समस्या-को जब वह हल करने चला, तो तीसरा बक्स उसने उलटे तरीकेसे रखा। जिस तरफ बक्सका ढक्कन खुला हुआ था, उसे ऊपरकी ओर रखा। नतीजा यह हुआ कि इन तीनों बक्सोंकी ऊंचाई वास्तवमें दो बक्सोंसे ज्यादा न हो पायी। जब तीसरे बक्सके अन्दर खड़े होनेपर भी उसे केला न मिल सका, तो फिर सोच-विचारकर उसने अपनी गलती सुधारी नहीं, बल्कि थककर उसी बक्सके अन्दर लेटा और थोड़ी देरमें सो गया।

एक सरीखी परिस्थितियोंको पहचानना भी ये जानते हैं, और उनसे ये लाभ भी उठाते हैं। मिस कनिङ्घमने एक बच्चा गोरिल्ला पाल रखा था। एक दिन चूंकि वह गन्दा था, मिस कनिङ्घमने उसे अपनी गोदमें बिठानेसे इनकार कर दिया। वह फौरन ही दौड़ा-दौड़ा गया और अखबारका एक बड़ा-सा टुकड़ा लेकर लौटा। उसे फैलाकर मिस कनिङ्घमकी गोदमें रख दिया और फिर आजादीके साथ वहां बैठ गया। उसने आल्मारियोंमें अखबारके कागजका बिछाया जाना पहले देखा था।

इन प्राणियोंकी बुद्धिकी थाह लगाते समय हमें यह भी याद रखना जरूरी है कि अनेक मुश्किलें, जिन्हें नन्हें-नन्हें बच्चे हल कर लेते हैं, इनकी बुद्धिसे परे हैं। इसका मुख्य कारण तो यह है ही कि इनके मस्तिष्ककी बनावट मानव-प्राणियोंके मस्तिष्कसे निम्नतर कोटिकी है, साथ ही इनके अन्दर बातचीत कर सकनेकी शक्ति नहीं। मस्तिष्कके अन्दर ये किसी चित्र या सूझको बनाये नहीं रख सकते। इसी कारण किसी समस्याको हल करना हुआ, तो जब तक उसे हल करनेके साधन नजरके सामने न हों, तब तक उन्हें सूझ ही नहीं सकता कि किस तरकीबसे यह मुश्किल हल हो सकती है। चीजें सामने हों, तो उनके आधारपर ये सोचनेकी क्रिया जारी रख सकते हैं, अन्यथा इनका दिमाग काम नहीं करता। चिम्पैञ्जीके सामने अगर लम्बा डण्डा रख दीजिये, तो कठघरेके बाहर पहुंचसे दूर रखे हुए फलको इस डण्डेकी मददसे वह अपनी ओर खींच लेगा; किन्तु डण्डा यदि सामने न हुआ, तो कहीं और जाकर डण्डा ले आनेका ख्याल उसके दिमागमें न आयेगा।

बन्दरोंकी जिन्दगीपर ध्यान देनेसे हम यह भी देखते हैं कि अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा इनकी भावनाओंकी दुनिया भी अधिक विस्तृत है। प्यार और क्रोध तथा प्रसन्नताके अतिरिक्त जाति-प्रेम तथा द्वेषकी भावनायें भी इनके अन्दर प्रचुरतासे पायी जाती हैं। बच्चेके प्रति मादा बन्दरकी ममताको सभी जानते हैं। एक बार एक बन्दरको लेखकने कोठरीमें बन्द कर दिया था, देखते-देखते आस-पासके सैकड़ों बन्दर कोठरीके सामने इकट्ठे हो गये और चीं-चीं करके बेहद शोर मचाने लगे। कैदी बन्दरको छोड़ देनेपर सबके सब बन्दर भी फिर भाग गये।

किसी भी चिड़ियाखानेमें आप चले जाइये, विभिन्न किस्मके प्राणियोंकी आपसकी केलिक्रीड़ाको आप मार्क किये बगैर रह नहीं सकते। मुर्गा अपनी लाल कलंगियोंको ऊंचा किये, गर्वके साथ दौड़ते हुए मुर्गीके इर्द-गिर्द बार-बार चक्कर लगाता है। एक विशेष उद्देश्यके साथ वह अपनी शान व शौकत मुर्गीको दिखलाता है। अपनी कलंगी-को उसी ओर फरफराता है, जिस ओर मुर्गी बैठी हुई रहती है। मोरनीके इर्द-गिर्द मोर भी अपने सुनहले बहुरङ्गी पङ्ख फैलाकर नाचता है। इन सभी हरकतोंमें हम उच्च कोटिके प्राणियोंके अन्दर पायी जानेवाली प्रणय-क्रियाका एक जबर्दस्त पुट मौजूद पाते हैं। सबसे निम्नतर कोटिका जीव, जिसमें प्रणय-क्रियाका आभास पहचाना जा सका है, समुद्रमें पाया जानेवाला एक किस्मका रेंगनेवाला जन्तु है। नर प्राणी, मादाके बीच अपने शरीरको खूब तोड़ता-मरोड़ता है, जिससे प्रभावित होकर मादा रज स्खलित करती है, और उसीपर तब नर भी वीर्य स्खलित करता है, इस

प्रकार नयी सन्तानके निर्माणका कार्य आरम्भ होता है।

केकड़ोंके अन्दर भी प्रणय-क्रियाका दिलचस्प रिवाज पाया जाता है। उपर्युक्त मौसममें जब कोई मादा केकड़ा बाहर निकलती है, तो रास्तेमें नर केकड़ा पञ्जोंके बल ऊंचा खड़ा हो जाता है और अपने अगले हाथको ऊपर उठाकर उसका अभिवादन करता है—अगर मादा केकड़ेने पहली बार उसकी उपेक्षा कर दी, तो फौरन् ही नर दौड़कर रास्तेमें आगे फिर उसी तरह खड़ा हो जाता है और उसका अभिवादन करता है। इस बार भी अपने प्रयत्नमें यदि वह सफल न हुआ, तो फिर उस मादाके पीछे वह नहीं दौड़ता। नर केकड़ेको जब कभी मादा इस विचित्र ढङ्गसे खड़ा देखती है, वह समझ जाती है कि यह प्रणय-भिक्षाका प्रार्थी है।

मकड़ी रिझानेके लिए मकड़ोंको विशेष सावधानी बरतनी पड़ती है। मकड़ियोंकी दृष्टि-शक्ति बहुत मन्द होती है। किसी भी छोटी चीजको जालमें हिलते-डुलते देखा कि अपना शिकार समझ उसपर ये बेतहाशा टूट पड़ती हैं। अतः मकड़ेको किसी-न-किसी तरह मादाके ऊपर यह बात प्रकट करनी होती है कि जालपरसे होकर उसकी ओर आनेवाला उसके प्रणयका प्रार्थी है—मामूली शिकार नहीं। मकड़ा इसलिए जब मकड़ीका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना चाहता है, तो वह जालके एक तारको पकड़कर विशेष सङ्केतके साथ हिलाने लगता है। इस सङ्केतसे प्रभावित होकर मकड़ी उसकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित होती है। किन्तु प्रणय-क्रिया समाप्त होनेपर अकसर मकड़ी उस मकड़ेको अपना शिकार भी बना डालती है।

बिच्छुओंमें तो एक तरह अनिवार्य नियम-सा है कि प्रणय-क्रियाके बाद वासनाकी पूर्ति हो जानेपर मादा बिच्छू नर बिच्छूको मारकर खा डालती है। और मान्तिस (Mantis) नामका प्राणी तो और भी विचित्र है। प्रणय-क्रिया पूरी भी नहीं हो पाती कि मादा नरको मारकर खा जाती है। घासपर कूदनेवाले पतिङ्गे और झींगुर अपने पैरोंको रगड़कर तथा पङ्खको एकके ऊपर दूसरा रगड़कर तरह-तरहकी ध्वनियां मादाको रिझानेके लिए उत्पन्न करते हैं। जुगनू भी मादा कीड़ेको रिझानेके लिए ही पूंछमें नन्हीं-सी मशाल जलाये इधरसे उधर अंधेरी रातमें घूमा करता है।

कुछ जीव नन्हें-नन्हें कीड़े-मकोड़ोंका शिकार करके, अपनी रालका बबूला बनाकर उसमें उस खाद्य-पदार्थको खूबसूरतीके साथ पैक करके मादाको उपहार प्रदान करते हैं, जैसे सभ्य पुरुष बढ़िया पैकिङ्ग-केसमें नेकलेस रखकर अपनी प्रेमिकाको उपहारमें दे। कुछ और प्राणी कलात्मक ढङ्गका प्रयोग करते हैं। फूलकी पंखुड़ियां तथा नरम पत्तियोंको ये अपनी प्रेमिकाओंके पास उपहार-स्वरूप ले जाते हैं।

मछलियोंके अन्दर भी प्रणय-क्रियाका वजूद पाया जाता है। एक खास किस्मकी मछलीकी पूंछ नुकीली होती है। नर मछली तैरते समय अपनी नुकीली पूंछसे मादाको कुरेद-कुरेदकर उसे रिझानेका प्रयत्न करती है। सांप तथा अन्य रेंगनेवाले जन्तुओंमें प्रणय-क्रियाके बारेमें अभी तक विशेष जानकारी हासिल नहीं की जा सकी है। हां, पक्षियोंके अन्दर अवश्य प्रणय-क्रिया काफी ऊंची हद तक पहुंच चुकी है। सारस, तोता, गिद्ध आदि एक बार प्रणय-सूत्रमें बंध जानेके बाद आजन्म उस बन्धनको निबाहते हैं। किन्तु कुछ जातिके पक्षी केवल एक मौसमके लिए आपसमें प्रणयका नाता जोड़ते हैं। एक पत्नीव्रत और पातिव्रत धर्म पक्षी अच्छी तरह निबाहते हैं। प्रणय-भिक्षा प्राप्त करनेके लिए अकसर नर पक्षी मादाको घोंसला बनानेका सामान भी भेंट करते हैं। किसी-किसी जातिके पक्षियोंमें मादा ही नरसे प्रणय-भिक्षा मांगती है।

स्तनपायी जानवरोंमें प्रणयकी भिक्षा प्राप्त करनेके लिए इस प्रकारकी कोशिशें नर नहीं करते। रिझाने और भेंट-उपहार देकर अपनी ओर आकर्षित करनेकी प्रथा इनमें नहीं पायी जाती। यहां तो जिसकी लाठी उसकी भैंस है। पुरुषत्वका सिक्का जमानेके लिए अपनी शक्तिपर भरोसा रखना पड़ता है। हिरन, जङ्गली भेंड़ और बिसन आदिके अन्दर प्रणय-क्रियाका कोई आयोजन नहीं। यहां तो मादापर अधिकार प्राप्त करनेके लिए नर आपसमें लड़ते हैं। विजयीको मादा स्वयं आत्म-समर्पण कर देती है। किन्तु हाथियोंमें चुम्बन-सरीखी क्रियायें अवश्य देखी गयी हैं।

विभिन्न जीवधारियोंकी रोजमर्राकी जिन्दगीकी छोटी-छोटी घटनाओंपर दृष्टि डालनेपर हम निम्नलिखित निष्कर्षपर पहुंचते हैं—

(१) सबसे निम्नतर कोटिके प्राणियोंमें बुद्धिका विकास हुआ ही नहीं है—उनका आचरण एक खास सांचेमें

ढल-सा गया है। एक-सी वाह्य परिस्थितियोंमें वे हमेशा एक-से ही प्रभावित होते हैं। गत अनुभवकी न तो इन्हें याद रहती है और न उससे ये कुछ फायदा ही उठा सकते हैं।

(२) जरा कुछ और ऊंची श्रेणीके प्राणियोंमें बुद्धिकी मात्रा इतनी होती है कि वे पिछली घटनाओं और उनके नतीजेको एक साथ याद रख सकें। इस शक्तिकी मददसे वे पिछले अनुभवसे हमेशा फायदा उठा सकते हैं। केंचुआसे लेकर स्तनपायीसे नीचेकी श्रेणीके प्राणियोंमें यह गुण पाया जाता है।

(३) स्तनपायी प्राणियोंका बौद्धिक धरातल थोड़ा और ऊंचा रहता है। इनकी स्मरण-शक्ति अति तीव्र होती है। विश्लेषण तथा विवेचना-सम्बन्धी शक्तियां भी इनकी कुछ हद तक विकसित रहती हैं। बन्दर इस दृष्टिकोणसे सबसे आगे बढ़े हुए हैं।

किन्तु स्तनपायी प्राणियोंके बारेमें प्रयोग करते समय हमें सतर्क रहना जरूरी है। अनेक बातोंमें मानव-प्राणीसे ये मिलते-जुलते हैं; किन्तु फिर एकाएक एकाध बात ऐसी नजर आ जाती है, जिससे जानवर और मनुष्यके मस्तिष्कके बीचका मूल अन्तर साफ प्रकट हो जाता है। उदाहरणके लिए गायके सामने मरे हुए बछड़ेकी खालमें भूसा ठूंसकर रख दीजिये, तो अत्यन्त प्रेमके साथ वह उस झूठे बछड़ेको चाटने-चूमने लगेगी और फौरन् उसके स्तनसे दूध उतर आयेगा। लेकिन चाटते-चाटते यदि खालकी सीयन कट गयी, तो बिना किसी तरहकी बेचैनी या परेशानी महसूस किये हुए गाय खालके अन्दरका भूसा भी खाने लगेगी। उसके स्तनसे दूधका आना पूर्ववत् जारी रहेगा। जिस चीजको वह अपना बछड़ा समझ रही थी, उसके अन्दरसे भूसा निकल आये, इसमें असामञ्जस्य क्या है, इस बातका अनुभव करना उसकी बुद्धिके इमकानसे बाहर है। इस अचानक परिवर्त्तनका महत्त्व वह आंक नहीं सकती।

हार

मैं हार चुका, मैं हार चुका।

कुछ हंसना, कुछ रोना होता,
क्षण-भर सुखसे सोना होता,
तिल-तिल कट जाता जीवन-पथ,
अब तो हताश मन मार चुका।
मैं हार चुका, मैं हार चुका।

सुन्दरसे सुन्दर खिले सुमन
रहते, करते सुरभित उपवन।
छू-छूकर मूर्च्छित किये स्वयं,
मैं अपना बाग उजाड़ चुका।
मैं हार चुका, मैं हार चुका।

तनका कन-कन बल सञ्चित कर
तर सका किसी विधि जल दुस्तर
आवर्त पड़ा तट पास अन्त जब
मैं सारा बल हार चुका।
मैं हार चुका, मैं हार चुका।

गा भी न सका दो मधुर गीत।
जानी न प्रणयकी हार-जीत।
दुर्गत अतीतपर रोना क्या,
जो करना था कर प्यार चुका।
मैं हार चुका, मैं हार चुका।

कहते हैं, यह सब सपना है;
कोई न किसीका अपना है।
मैं सबको अपना-अपनाकर
अपना अपनापन हार चुका।
मैं हार चुका, मैं हार चुका।

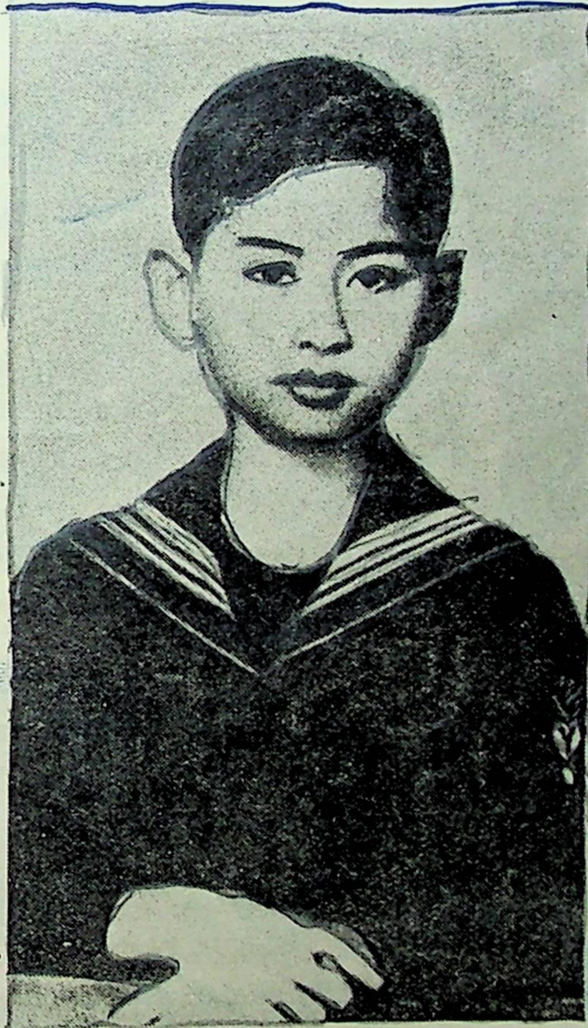
—प्रभुदयाल अग्निहोत्री

एशियाकी राजनीतिमें श्यामका स्थान

श्री कमलाकान्त शर्मा, एम० ए०

पिछले कुछ वर्षोंसे एशियामें जो कई परिवर्तन हुए हैं, उनमें श्याममें होनेवाले परिवर्तन काफी महत्त्वके हैं। श्यामने जिस प्रजातन्त्रात्मक शासन-प्रणालीकी स्थापना की है और अपनी दुर्बल वैदेशिक नीति छोड़कर बाहर और भीतर अपनेको जिस तेजीसे तैयार करना शुरू किया है, उसके परिणाम-स्वरूप समस्त एशियामें इस बातकी आशङ्का की जाने लगी है कि वह समय दूर नहीं है, जब श्यामकी वैदेशिक नीतिका प्रभाव समस्त एशियापर दिखाई पड़ेगा। जापान और श्याममें जिस मैत्रीपूर्ण सद्भावनाकी स्थापना हो गयी है और इधर कई वर्षोंमें जिसका विकास ही होता गया है, उससे यूरोप और अमेरिका भी सशङ्कित हुए हैं।

१९३२ में जब श्याममें नयी शासन-व्यवस्था स्थापित हुई, तभीसे श्यामके बजटका प्रायः आधा सैनिक तैयारीमें खर्च हो रहा है। श्यामने एशियाकी पुरानी आध्यात्मिकता छोड़कर चारों ओरसे शक्ति-सञ्चय करनेकी नीति अपनायी है। आधुनिक वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित श्याम आज पूर्वी क्षितिजपर उठ रहा है। जापानका श्यामको सहयोग प्राप्त है और फ्रान्सीसी तथा अंगरेज दोनों ही इस बातको स्वीकार करते हैं कि श्याम और जापानकी मैत्रीसे इण्डो-चीन, बर्मा और मलायाकी स्थिति खतरनाक हो सकती है।



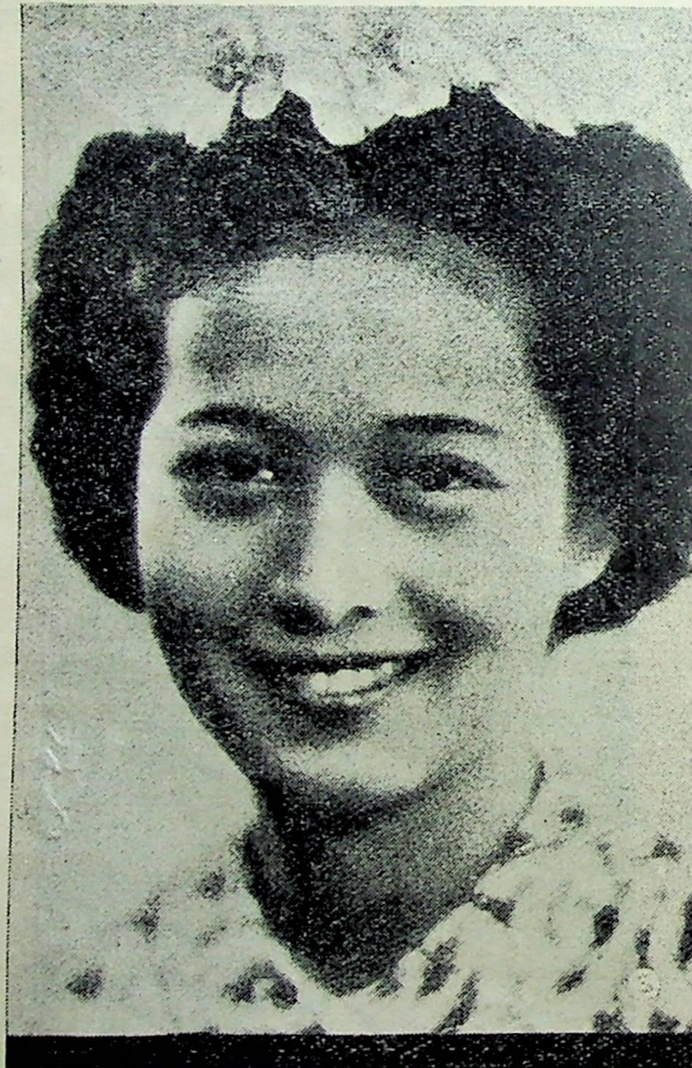
राजा आनन्द महीदल, जो भूतपूर्व राजाके भतीजे एवं राज्यके उत्तराधिकारी हैं। १९४१ में १६ वर्षकी अवस्था हो जानेपर आप विधिवत् सिंहासनासीन होंगे।

पर परिस्थितियोंने जापान और श्यामको एक सूत्रमें बांध दिया है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता। मन्चूरियाके सम्बन्धमें राष्ट्र-सङ्घने जिस लिटन कमेटीकी नियुक्ति कर तत्सम्बन्धी प्रश्नोंकी जांच करायी थी, उसकी रिपोर्टपर राष्ट्र-सङ्घने जब जापानकी निन्दाका प्रस्ताव रखा, तो श्यामके प्रतिनिधिने प्रस्तावके पक्षमें वोट नहीं दिया। यह २४ फरवरी, १९३३ की बात है, और तबसे जापान और श्याम एक-दूसरेकी ओर सद्भावनासे बढ़ते ही गये हैं। श्यामकी सरकारके फ्रान्सीसी और अंगरेज परामर्श-दाताओंकी जगह जापानी नियुक्त होते जा रहे हैं। श्यामके विद्यार्थी उच्च शिक्षा तथा सैनिक शिक्षाके लिए पाश्चात्य देशोंमें न जाकर जापानमें जाने लगे हैं और श्यामका व्यापार भी जापानके साथ बढ़ता जा रहा है। जापान इस बातके भी प्रयत्नमें लगा है कि श्याममें रुईकी पैदावार बढ़ायी जाय, जिससे उसे दूसरे देशोंपर अबकी तरह निर्भर न रहना पड़े। जापानकी मददसे श्याम क्रा थलडमरूमध्यसे एक नहर भी बनाना चाहता है, जिसका परिणाम यह होगा कि सिङ्गापुरका महत्त्व बहुत कुछ नष्ट हो जायगा।

श्याम और जापानके सम्बन्धके बारेमें 'जापान वीकली क्रानिकल' ने लिखा था:—"जापान और श्यामकी मैत्री सात सौ वर्षोंसे भी पुरानी है। और पूर्वी एशियामें जापानके

प्रभावसे ही शान्तिकी स्थापना होगी, यह मञ्चूरियापर जापानका अधिकार होनेके बाद स्पष्ट हो गया है। इसलिए श्याम जापानी संस्कृतिको अपनानेकी ओर एकाग्रताके साथ आकर्षित हुआ है। पिछले दिनों दोनों राष्ट्रोंमें मैत्री-सम्बन्ध और भी दृढ़ हुआ है। पूर्वी एशियामें शान्तिपूर्ण नवीन व्यवस्थाकी स्थापनामें मञ्चूरिया और चीनके समान ही श्यामको भी काम करना है, इसलिए जापान श्यामकी ओर भी आकर्षित हुआ है।"

श्यामको लेकर जापानकी वैदेशिक नीतिमें कोई खास परिवर्तन होगा और एशियाकी राजनीतिके लिए उसका इतना महत्त्व है, कुछ वर्ष पहले ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती थी; परन्तु १९३२ के विद्रोहके बाद ही श्यामने जब जापानके लिए एक दरवाजा खोलकर स्वागत किया और दूसरे दरवाजेसे ब्रिटेन और फ्रान्सकी विदाई-की तैयारी की, तब लोगोंने समझा, जैसा कि एक रूसी विद्वान्ने लिखा है, कि ब्रिटेन, फ्रान्स, अमेरिका और हालैण्डके उपनिवेशोंके केन्द्र-विन्दुपर बसनेवाले एशियाके इस नन्हे-से देशके साथ प्रशान्त महासागरका सारा भविष्य विजड़ित है। वास्तवमें श्याम वह धुरी हो सकता है, जिसपर एशिया-सम्बन्धी समस्त राजनीति नाचती फिरे।



श्यामकी तरुणी, जो सौन्दर्य-प्रतियोगितामें श्यामकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी घोषित की गयी है।

१९२५ में जब प्रजादीपक सिंहासनपर आये, तब श्याम-निवासियोंकी स्वाभाविक शान्ति-प्रियता और सिद्धान्त-प्रेम देखते हुए इस बातका तनिक भी अनुमान नहीं हो सकता था कि वहां विद्रोह होगा; पर प्रजादीपकके शासनके आरम्भिक दिनोंमें ही पेरिससे शिक्षा ग्रहण कर एक साम्यवादी विचारोंका तरुण, प्रद्त्त मनुधर्म, आया। उसने अपने विचारोंका प्रचार करना शुरू किया और उसकी ओजस्वी वाणीमें उसके हृदयके विचारोंको सुनकर कितने ही उसके अनुयायी हो गये। उसने सैनिकोंके दिलमें भी नयी भावनायें भरनी शुरू कीं। यह कहना तो कठिन है कि सेनाके उच्च अधिकारियोंको उसने अपने कार्यक्रमके लिए राजी कैसे कर लिया; पर इसमें सन्देह नहीं कि वे उस तरुण युवकके समर्थक बन गये थे।

यह बात नहीं है कि स्वयं प्रजादीपक इस स्थितिको जानते न हों। १९२७ में—सिंहासनपर बैठनेके दो वर्ष बाद उन्होंने देशके लिए नवीन शासन-पद्धति देनेकी घोषणा की थी; पर १९३२ तक इस दिशामें उन्होंने कुछ भी कार्य नहीं किया। उन्होंने ऐसा क्यों किया, यह तो निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता; किन्तु वैदेशिक विभागके अमेरिकन सलाहकार मि० स्टेवेन्सने इस सम्बन्धमें अपना विचार प्रकट करते हुए कहा था कि "सभी व्यवस्थायें श्याममें ठीक-ठीक चल रही हैं और वैधानिक सुधारका समय अभी नहीं आया है।" कहा जाता है कि दूसरे देशोंके सलाहकार यह नहीं चाहते थे कि श्याम-निवासी अपने लिए स्वयं सोचें। वे राजाको सारे अधिकारोंसे सुसज्जित रखना चाहते थे, क्योंकि उसपर वे प्रभाव जमा सकते थे और सारे देशके लोकमतका नियन्त्रण उनके अधिकारकी बात न थी।



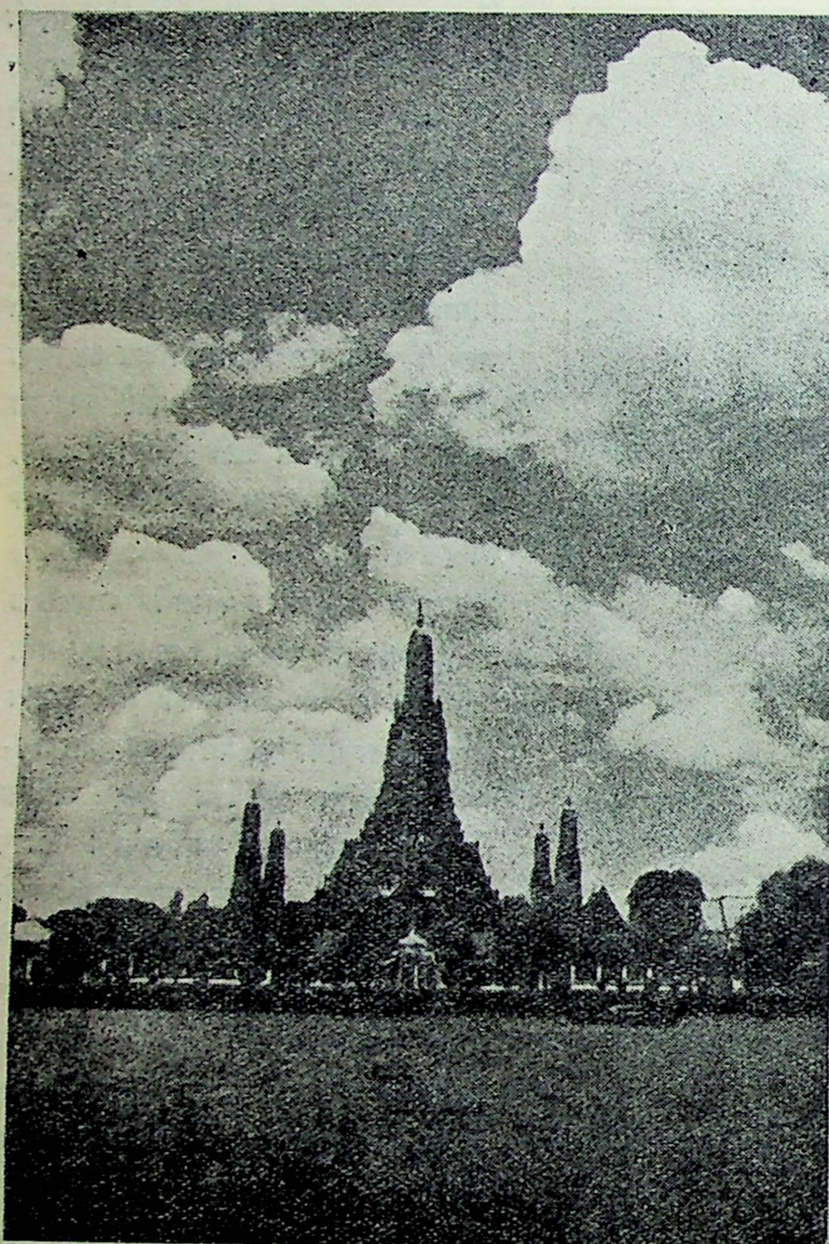
श्यामकी राजधानी बैङ्काकमें केवल पन्नेकी बनी हुई यह विश्वप्रसिद्ध बुद्ध-प्रतिमा प्रतिष्ठित है। इसकी लागत ५ अरब रुपये समझी जाती है।

लिया। राजा उस समय ह्वाहिंमें थे, वे बैङ्काक लौटे और आते ही विद्रोहियों द्वारा पेश किये गये विधानको स्वीकार कर लेनेकी अक़्लमन्दी की। इस विधानके अनुसार एक एसेम्बलीकी स्थापना की गयी और उसके द्वारा पास किये गये प्रस्तावोंको नियमानुकूल राजाके समक्ष रखनेकी व्यवस्था जरूर की गयी; पर यह भी निश्चित कर दिया गया कि अगर राजाको कोई व्यवस्था मन्जूर न हो और वे उसके विरुद्ध हो जायें, तो भी एसेम्बली द्वारा निर्धारित व्यवस्था स्वीकृत होगी।

इसके बाद भी श्याममें आन्तरिक अशान्तियां होती रही हैं। फिर भी एक बात स्पष्ट रही है कि जापानकी ओर उसका झुकाव होता गया है। श्याम और जापान-की इस मैत्रीसे एशियामें दूसरे राष्ट्रोंके हितोंके विरुद्ध कैसा वातावरण तैयार होता रहा है, इसका सङ्केत एक फ्रेञ्च लेखकने २० साल पहले ही किया था, जब उसने लिखा था:—"हमारे इण्डो-चीनके लिए श्यामसे स्वतः कोई खतरा नहीं है; पर जिस दिन श्याम और जापान मैत्री-सूत्रमें बंध जायेंगे, उसी दिन इण्डो-चीनकी सुरक्षा करनेवाली शक्तियां काफूर हो जायेंगी!"

बीस साल पहलेकी फ्रान्सकी इस धारणाको ब्रिटेन और फ्रान्स आज भी वैसा ही समझते हैं। और उनकी इस धारणाके दृढ़ आधार हैं। जापानी समाचार-पत्रोंमें इस बातका सदा प्रचार किया जाता है कि जापान और श्याम वैदेशिक नीतिमें एक साथ रहें, दोनों दूसरे राष्ट्रीय क्षेत्रोंमें भी पारस्परिक सद्भावनाके साथ चलें। 'ओसाका मनीची' ने एक बार लिखा था:—"ब्रिटिश मलाया, ब्रिटिश बर्मा और फ्रेञ्च इण्डो-चीनके लिए श्याम एक मार्ग है, इसलिए जापानमें आये हुए मालको उक्त देशोंमें पुनः भेजनेके लिए श्याम एक अच्छा द्वार है। दक्षिणमें जब जापान अपना

जून १९३२ में प्रजादीपकके समक्ष आवेदनकारियोंकी भीड़ पहुंची और उनसे कर-भारसे मुक्त करनेकी मांग पेश की। श्यामके इतिहासमें यह एक नयी घटना थी। राजाने भीड़की शिकायतें सुननेके बजाय उसे उपदेश दिया और इससे भी बड़े त्याग करनेके लिए उन्हें तैयार रहनेको कहा। लेकिन त्याग करना पड़ा स्वयं राजाको। २४ जून १९३२ को प्रदत्त मनुधर्मके नेतृत्वमें विद्रोहियोंने राजाको सिंहासन-च्युत करनेकी घोषणा कर शासन-सूत्र अपने हाथमें ले



श्यामके ४०० बौद्ध-मन्दिरोंमें 'उषा-मन्दिर' सबसे प्रसिद्ध समझा जाता है। श्याममें कुल १७४०० बौद्ध-मन्दिर एवं २५००० बौद्ध भिक्षु हैं।

विदेशी प्रभाव-क्षेत्रसे बाहर होनेके लिए श्यामने अब अपना नाम भी बदल लिया है। उसने अब अपना नाम थायालैण्ड—स्वाधीन व्यक्तियोंका देश—रख लिया है। कहा जाता है कि जून १९३९ में सिङ्गापुरमें अंगरेजों और फ्रान्सीसियोंका जो सम्मेलन हुआ था, उसमें श्यामको इस बातके लिए आमन्त्रित किया गया था कि दक्षिणमें जापानकी प्रगति रोकनेके लिए वह जापान-विरोधी गुट्टमें सम्मिलित हो जाय। परन्तु श्यामने यह आमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। जापानियोंका दावा है कि श्याम और जापान सदियोंसे एक-दूसरेके मित्र बने रहे हैं। श्यामकी पुरानी राजधानी अमूथियामें ३०० साल पहले हजारोंकी संख्यामें जापानी रहते थे। दोनों देशोंके निवासियोंमें कई बातें एक-सी पायी जाती हैं। दोनों बौद्ध हैं, दोनोंमें मङ्गोल रक्त है और दोनोंकी रहन-सहनकी कितनी ही बातोंमें समानता है। दोनोंमें बौद्धिक सम्पर्क बनाये रखनेके लिए इधर वर्षोंसे प्रयत्न होते रहे हैं।

आर्थिक दृष्टिसे भी श्याम और जापान एक-दूसरेके बहुत निकट आये हैं। २० वीं शताब्दीके पहले श्यामके व्यापारमें ब्रिटेनका ९९ प्रतिशत भाग था, बीसवीं सदीके प्रारम्भमें यह घटकर ६० प्रतिशत रह गया और अब मुश्किलसे १० प्रतिशत रह गया है। इसके मुकाबिले जापानके व्यापारमें

विस्तार करना चाहता है, तब दूसरे देशोंके प्रभावसे श्यामको मुक्त करना अनिवार्य है। यह स्वाभाविक ही है कि राजसत्तासे मुक्त होकर श्याम विदेशी प्रभावोंसे भी मुक्त हो जाय।"

श्याम आज अपने बजटका इतना बड़ा अंश जो सैनिक तैयारीमें खर्च कर रहा है, वह आखिर किसके लिए? इंगलैण्ड, फ्रान्स अथवा किसी और देशके लिए? लेकिन जापानके विरुद्ध उसकी कोई तैयारी नहीं है, इतना तो निश्चित है।

प्रायः आठ गुनी तरक्की हुई है।

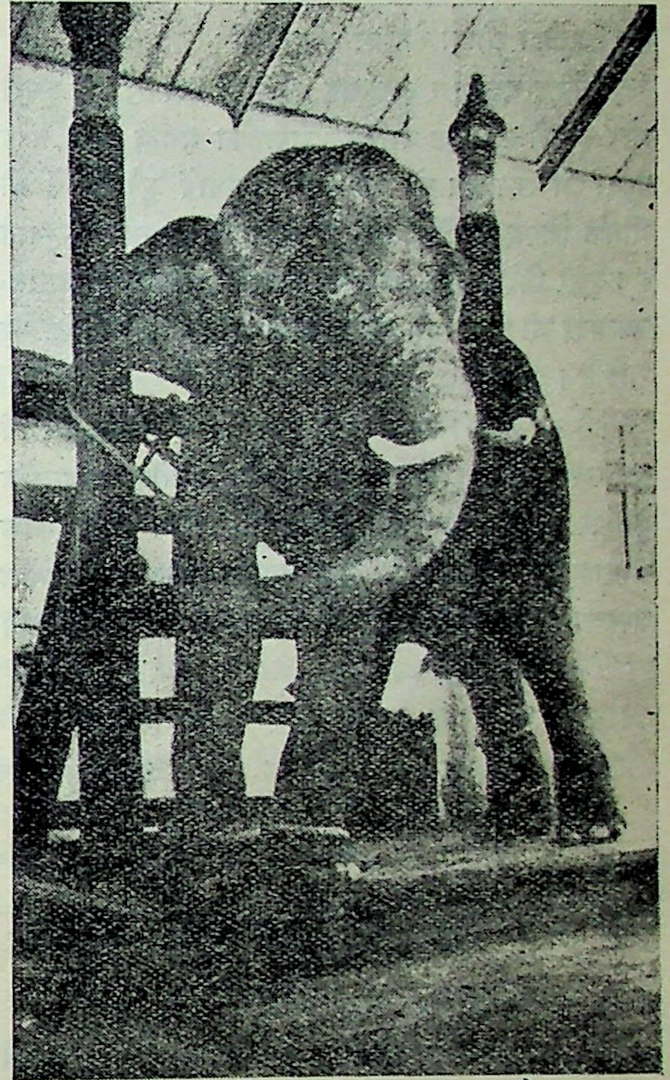
श्याममें जापानी मालकी खपतका एक कारण यह भी है कि श्याम-निवासी गरीब हैं और जापानी वस्तुयें सस्ती होती हैं। जापानके साथ श्यामकी बढ़ती हुई सहानुभूति देखकर दूसरे राष्ट्रोंमें सन्देह उत्पन्न होना स्वाभाविक था, अतः प्रदत्त मनुधर्म—श्यामके वैदेशिक सचिवने इस सम्बन्धमें 'श्याम टुडे' में एक लेख लिखकर इस शङ्काके निवारण करनेका प्रयत्न किया था। उन्होंने लिखा था,

"पिछले वर्षोंमें जापान और श्यामके व्यापारिक सम्बन्धमें बड़ी उन्नति हुई है। दोनों देशोंमें इस प्रकारके व्यावसायिक सम्बन्धके आधारपर किसी राजनीतिक समझौतेकी कल्पना नहीं करनी चाहिए और न दूसरे देशोंके साथ श्यामके सम्बन्धपर इसका कोई प्रभाव ही पड़ेगा।"

मनुधर्मके इस स्पष्टीकरणका उद्देश्य स्पष्ट है। उधर जापानका रुख देखिये। 'न्यूयार्क टाइम्स' के ६ अक्टूबर १९३६ के अङ्कमें ह्यालेट एबेण्डने लिखा था—"जर्मनी, इटली तथा श्याम-निवासियोंको छोड़कर दूसरे सभी विदेशियोंके साथ जापानका भद्रता-पूर्वक व्यवहार नहीं होता। जासूसोंकी भांति उनके पत्र-व्यवहार, टेलीफोन तथा नौकर रखनेकी व्यवस्थाओंके लिए उन्हें जापानियोंके हस्तक्षेपके कारण परेशान होना पड़ता है।"

श्याम और जापानके बीचमें एक ही बाधा है चीन। श्यामके आर्थिक जीवनका सूत्र चीनके हाथमें है। चावल, जिस्ता और रबर—यह श्यामके तीन प्रमुख निर्यातके पदार्थ हैं और इन तीनोंमें चीनकी सम्पत्ति लगी हुई है और चीनियोंके हाथमें ही इनका प्रभुत्व है। इनके अलावा नाव बनानेवाले, जूता बनानेवाले, बढ़ई, लुहार, माल, हाकर सभी तो चीनी ही हैं। रुपया लगानेवाले, क्रय-विक्रय करनेवाले और बड़े-बड़े उद्योग-धन्धोंसे लेकर छोटी-छोटी दूकानें खोलनेवाले भी चीनी ही हैं। इन्हें स्वभावतः जापानियोंसे चिढ़ है। ऐसे महोत्सवोंमें, जिनमें दूर-दूरके लोग सम्मिलित होते हैं, सरकारको इस बातका प्रयत्न करना पड़ता है कि कहीं चीनी और जापानी लड़ न पड़ें। चीनी नहीं चाहते कि श्याममें जापानका प्रभाव बढ़े। इसलिए दोनों देश उस प्रकार एक-दूसरेसे नहीं मिल पाते हैं, जैसा सोचा जा रहा था।

चीनियोंके मुकाबिलेमें श्यामवालोंको प्रोत्साहन देनेके लिए कानून द्वारा ऐसी व्यवस्थायें पिछले दिनों की गयी हैं, जिनसे श्याम आर्थिक दृष्टिसे स्वावलम्बी हो सके। कितने ही सार्वजनिक स्थानोंपर विदेशियोंको माल बेचनेसे रोक किया गया है। और इस प्रसङ्गमें इन 'विदेशियों' का अर्थ चीनी समझना चाहिए। बैङ्काकके समान एक दूसरे शहर धनबरीमें उसके चेयरमैनने एक पाठशाला खोल रखी है, जिसमें शिक्षार्थियोंको माल बेचने, छोटे-छोटे खाद्य-पदार्थ



श्याम 'सफेद हाथियोंका देश' कहा जाता है, पर उसका एकमात्र सफेद हाथी यही है, जो अधिकारियोंकी देखरेखमें राजमहलमें रखा गया है। इसका जन्म देशके लिए शुभ-सूचक समझा जाता है। प्रायः ८०-९० वर्षके बाद एक सफेद हाथीका जन्म होता है और हिन्दू जिस प्रकार गायको पवित्र मानते हैं, उसी प्रकार वहां सफेद हाथी पवित्र माना जाता है। उसे मारनेवालेको कठोर दण्ड दिया जाता है। दूसरे हाथियोंसे अनेक काम लिये जाते हैं। ऐसे हाथियोंकी संख्या प्रायः १० हजार है।

बनानेकी शिक्षा दी जाती है। जमीन तथा उद्योग-धन्धोंको लेकर भी कानूनी व्यवस्थायें करके श्यामवासियोंके लिए सुविधायें दी गयी हैं और इनके मुकाबिले चीनियोंके लिए अनेक प्रकारकी अड़चनें खड़ी कर दी गयी हैं। प्रदत्त मनुधर्म कहता है कि श्याम श्याम-वासियोंके लिए है और वह

विदेशियोंका शोषण रोकना चाहता है।

लेकिन एक ओर जहां यह प्रयत्न हो रहा है, वहां दूसरी ओर उसकी वैदेशिक नीतिपर जापानका प्रभाव बुरी तरह पड़ता जा रहा है। जो आर्थिक व्यवस्थायें हुई हैं, वे भी चीनके विरुद्ध जाती हैं, जो जापानके लिए सन्तोषकी बात है। दूसरे विदेशियोंकी अपेक्षा श्यामके आन्तरिक शासन-प्रबन्धपर भी जापानी सलाहकारोंका प्रभाव अधिक पड़ रहा है।

तो इन सबकी सम्भावनायें क्या हैं? एशियाके नक्शेमें उस स्थानपर नजर डालिये, जहां श्याम है। उसके आसपासके देशोंपर भी नजर डालिये। देखिये कि किन-किन देशोंके सीमान्त उनसे मिलते हैं, उन देशोंका किन साम्राज्योंसे सम्बन्ध है, उसमें आज कौन-सी विचार-धारायें काम कर रही हैं और जापानका उनसे क्या सम्बन्ध है। ये सारी बातें श्यामका महत्त्व स्पष्ट करती हैं। अगर श्याम पूर्णरूपसे जापानके प्रभावमें आ जाय और उसकी मैत्रीका रूप यह हो जाय कि उसके विस्तारके लिए एक बाधा नहीं, बल्कि एक सहायकके रूपमें उसकी स्थिति हो जाय, तो इसमें क्या सन्देह रह जाता है कि पूर्वी एशियाके नक्शेमें कैसे-कैसे परिवर्तन हो सकते हैं। जापान पूर्वमें जिस नयी व्यवस्थाकी स्थापना करना चाहता है, उसके लिए उसकी जो योजना है, श्यामके उसके प्रभाव-क्षेत्रमें आ जानेसे उसमें सहायता मिल जाती है। एशियाकी राजनीतिमें श्यामका यह महत्त्व अभी भी अच्छी तरह स्पष्ट नहीं हो सका है; पर इसकी सम्भावनायें अकल्पनीय नहीं रह गयी हैं।

———

मरण आश्वास

जान पाता यदि कहांसे तुम मरण आश्वास लाये

एक आंधीसे विकल उस सृष्टिसे अति दूर आकर
तोड़ सुधिकी शृङ्खलायें मर्ममें ले दाह मरु भर
और सागर-सा उठाये एक सरि परिचित युगोंकी
दौड़ते तुम कौन नक्षत्रों भरी जब रात बाकी
विश्वकी फैली सरस बांहें जकड़ तुमको न पातीं
ये उमड़ तममें तरङ्गें और तमकी ओर जातीं
यह तुम्हारा वेग दुस्तर और किस उरमें समाये
जान पाता यदि कहांसे तुम मरण आश्वास लाये

किन्तु मेरे पास क्या है तीव्र तृष्णा दग्ध भाषा
रुद्ध प्राणोंमें भरी अज्ञात भूखोंकी पिपासा
और लगता है न मर भी तो सकूंगा मैं अचञ्चल
एक मानवमें घिरे विच्छेदके कितने अमङ्गल
बीतता जीवन न क्यों जब वक्षकी बुझती न ज्वाला
खत्म सांसोंका न होता कारवां, मिटता उजाला
स्वप्न पूरा हो, लिये नवतृप्ति काली नींद आये
जान पाता यदि कहींसे तुम मरण आश्वास लाये।

—अञ्चल



हालैण्डकी पराजयका कारण—फैसिज्म

श्री दिल्लीरमण रेग्मी एम० ए०, एम० लिट्० (इकान)

पश्चिमी यूरोपमें पिछले दो महीनेमें जो आश्चर्यजनक परिवर्तन राजनीतिक वातावरणमें हो गये हैं, उनसे कोई भी दर्शक अचकित नहीं रह सका है। इसमें सन्देह नहीं कि यह परिवर्तन बिना देशीय आन्तरिक कलहोंके नहीं हो सकता था या मुश्किलसे हो सकता था। किन्तु इन अविश्वसनीय घटनाओंके पीछे ऐसी जबर्दस्त बातें छिपी हुई हैं कि हम उनसे आंख नहीं फेर सकते।

हालैण्डकी पराजयका रहस्य इस बातमें छिपा हुआ है कि वहां फैसिज्मके प्रचारने जनताको पहलेसे निर्बल बना दिया था। फैसिज्मका प्रचार उत्तरोत्तर फैलता रहा है। जहां खुले तौरसे नहीं फैला, वहां यह भीतर ही भीतर आन्दोलनका रूप ग्रहण कर रहा था। फैसिज्मके प्रचारमें दो किस्मके सहायक मिल गये हैं। जहां जर्मन जातिके लोग मौजूद हैं, वहां वे ही अनुयायी हुए और प्रचारके कार्यमें वे ही साहाय्य देने लगे। जहां नहीं हैं, वहां कुछ लोग स्वार्थके लिए—क्योंकि नेतृत्वका प्रलोभन उनके आगे था—फैसिस्ट मनोवृत्ति रखने लगे। इन कारणोंसे फैसिज्म यत्र-तत्र जोरसे विस्तृत होने लगा। जब वर्तमान समर छिड़ा, उस वक्त उसने मजबूत जगह बना ली थी। फैसिज्म ही हिटलरके द्रुतगामी प्रसारका मुख्य कारण है। जो-जो लोग हिटलरके साथ सैद्धान्तिक आधारपर सहमत थे, उन्होंने अपने मुल्कको हिटलरके पञ्जेमें डालनेके लिए भरसक कोशिश की, जिसका परिणाम यह हुआ है कि आज इतने राष्ट्र उसके चंगुलमें हैं। हालैण्डके विनाशका भी एक कारण यही है।

हालैण्डके फैसिज्म ग्रहण करनेमें ज्यादा कठिनाई इसलिए नहीं हुई कि जर्मनीसे निरवच्छिन्न प्रचारकी धारा बह रही थी। जर्मनीके पड़ोसी जिले ग्रोयनिङ्गेन, ड्रेण्ट, लिम्बर्ग वगैरह, जहां ८० हजार जर्मन हैं, फैसिस्टवादके जल्द ही समर्थक हो गये। इसके अतिरिक्त १९२९ के आर्थिक सङ्कटका प्रभाव भी हालैण्डमें उग्रतर पड़ा था, जिसके कारण हालैण्डकी मध्यम श्रेणी मौजूदा आर्थिक और राजनीतिक नीतिकी निन्दक हो गयी और एक नये सिद्धान्तका अनुसरण करने लगी। डच पूंजीपति भी साम्यवादी नेताओंके हमलोंसे डर गये थे; क्योंकि १९२९ के बाद जहाज बनानेवाले कारखानों और लिम्बर्गके कोयलेकी खानोंमें हड़तालें होने लगी थीं। उधर १९३३—३६ में कच्चे मालका मोल घट जानेसे, डच किसान बड़े कष्टमें थे। औद्योगिक केन्द्रोंमें भी काफी क्षोभ था; क्योंकि आर्थिक सङ्कटके बाद डच मजदूर कम बेतन पाते थे, बेकारी ज्यादा थी, करीब ५ लाख स्त्री-पुरुष बेकार थे। सरकारी नौकर भी इस सङ्कटसे पीड़ित थे; क्योंकि डच रुपयेका मूल्य कम हो गया था। १९३५ में डच निर्यात आयातसे तीन गुना कम था। इस प्रकार प्रतिकूल परिस्थितिके अन्तर्गत डच प्रजातन्त्र अपनी प्रतिष्ठा नहीं रख सका। १९३५ के चुनावमें फैसिस्ट दलने ३ लाख वोट प्राप्त किये। ड्रेण्ट और पड़ोसी जिलोंमें २४ प्रतिशत वोट उनको मिले। ऐसा प्रतीत होता था कि सब श्रेणीके लोगोंमें फैसिज्मकी धाक जम गयी है, यहां तक कि कुछ जर्मन सीमान्त जिलोंके जर्मनीमें मिलाये जानेकी आशा भी करने लगे थे। १९३६ तक फैसिस्ट पार्टीका प्रभाव ज्योंका त्यों रहा।

इस फैसिस्ट पार्टीके बारेमें हमें यहां कुछ और बतला देना चाहिए। इसके अनुकूल परिस्थितियोंके बारेमें हम कह चुके हैं। उपर्युक्त स्थितियोंके न रहनेसे फैसिज्मका प्रसार नहीं हो पाता। पर इतना ही नहीं, इसका बहुत कुछ श्रेय तो इसके आयोजकको है। फैसिस्ट पार्टीकी स्थापना १९३१ में हुई थी। हालैण्डकी कमजोर अवस्थासे इसने काफी फायदा उठाया। इसके सिद्धान्तमें वर्तमान प्रजातन्त्रके विरुद्ध अनेक दर्शनोंका समाधान है—जैसे हिंसा, प्रतिकार, एकतन्त्रीय शासन, स्वातन्त्र्यका दमन, राष्ट्रकी सर्वोच्चता। जैसा कि फैसिस्टवादका सामान्य लक्षण है, हालैण्डमें भी फैसिस्ट दल एक सामाजिक प्रतिक्रियाका प्रतिनिधि था। परन्तु इनका कार्यक्रम एक अनिश्चित मार्गका सूचक और कोरे आदर्शोंका भण्डार रहा।

फैसिस्ट दल कायम होते ही प्रजातन्त्रके विरुद्ध उग्र आन्दोलन शुरू हो गया। फैसिस्ट नेताओंने लोगोंके

खयालात बदलनेके लिए तत्कालीन सरकारके खिलाफ अनेक प्रतिवाद लगाये। भोलेभाले लोगोंको भोजन-द्रव्य पहुंचानेका लोभ दिखाकर कितनों ही को अपने पक्षमें कर लिया। यद्यपि फैसिस्टवाद समाजवादका विरोधी मार्ग है, तो भी फैसिस्ट-नेता समाजवादके आदर्शोंको बाहरी तौरपर ग्रहण करनेका बहाना दिखाते थे। उन्होंने "भूखोंकी रोटीके नामपर" जोरदार आन्दोलन जारी किया था। आर्थिक सङ्गठनके लिए हड़तालें रोकनेका कार्यक्रम था। उनका यह भी कहना था कि यह सब व्यक्तिके लिए नहीं, सर्वोच्च संस्था राज्य होनेके कारण उसीके लिए हो रहा है और जितना कार्य हो, सामूहिक रूपमें राष्ट्रके अन्तर्गत हो और राष्ट्रके अनुकूल हो।

१९३१ में जब यूट्रेचमें फैसिस्ट दलकी स्थापना हुई, तबसे १९३७ तक यह दल उत्तरोत्तर शक्ति-सञ्चय करता गया। यद्यपि उसके बाद यह संस्था गैरकानूनी करार दी गयी, फिर भी लोगोंमें इसका प्रभाव पूर्ववत् बना रहा, जिससे आज हालैण्ड जर्मनीका शिकार बना है। सङ्गठनके कार्यमें फैसिस्ट दलने इटलीका अनुसरण किया है। अपनी राष्ट्रीय पताकामें लाल-काले रङ्गका भेड़ियेका जाल, जो दीन किसानोंके घातक भेड़ियोंके साथके कलहका दर्शक है, अङ्कित कर दिया है। जर्मनीका सलामीका कायदा हूबहू हालैण्डमें भी आ गया है। फैसिस्ट दलके उत्सवमें काले कपड़े पहने जाते हैं। उनकी एस० एस० (S.S.) की तरह एक गुप्त फौज भी थी। सलामीके वक्त 'हाइल हिटलर' के सदृश डच फैसिस्ट 'हाउ जे' कहते हैं। उनका एक मुखपत्र है, जिसके द्वारा वे अपना प्रचार-कार्य चलाते रहे हैं।

फैसिस्ट पार्टीका नाम हालैण्डमें राष्ट्रीय समाजवादी दल (National Socialist Beweging) है। फैसिस्ट पार्टीके सङ्गठनका श्रेय इसके नेता आण्टोन मुसर्ट (Anton Mussert) को है, जो १९३१ तक सरकारी दफ्तरमें उच्च पदाधिकारी था। मुसर्टने फैसिज्मका गहरा अध्ययन किया है और यूरोपके ज्यादा अधिनायकोंसे मिलकर वह व्यक्तित्वका अनुभव पा चुका है। सिर्फ हिटलरसे वह तब न मिला। एक बार उसने कहा था कि हिटलरसे भी मिलनेका वक्त ज्यादा दूर नहीं है, जो आज कितना सत्य निकला! हिटलर और मुसोलिनीमें उसकी अपार श्रद्धा है और इनके चित्र फैसिस्ट दलके मुख्य आफिसमें लटकाये गये हैं। मुसोलिनीने तो अपनी तस्वीरमें फैसिस्ट पार्टीके प्रति शुभेच्छा प्रकट करके चार हरफ भी लिखे हैं। मुसर्ट बड़ा संयमी है। यह मदिरा, सिगरेट नहीं पीता है। वह ज्यादा बात नहीं करता है। पर साथ-साथ आश्चर्य यह है कि वह अच्छा वक्ता भी नहीं है। किसी भी सभामें उसको अपना लिखित भाषण शब्दशः पढ़ना पड़ता है। पर उसकी सङ्गठन-शक्ति अद्भुत है।

१९३६ में फैसिस्ट दलके खिलाफ कई कानून जारी किये गये। गुप्त फौज रखनेकी मनाही कर दी गयी। सरकारी कर्मचारी फैसिस्ट दलके सदस्य नहीं बन सकते थे। राजनीतिक दलोंके अनुयायी अपनी वर्दी नहीं पहन सकते थे। उस वक्त एक दूसरा दल कायम किया गया, जो प्रजातन्त्रका समर्थक था। डाक्टर कोलिजिन, जो अभी कलतक प्रधानमन्त्री थे, इस दलके नेता रहे। वृद्धावस्थामें उन्होंने फैसिस्ट आतङ्कवादसे हालैण्डको बचानेके लिए कितनी ही कोशिशें कीं।

पर वह विफल हुए। १९३४ में हालैण्डका आर्थिक पुनर्निर्माण हुआ था। हालैण्डके रुपयेकी विनिमय-दर घटा दी गयी, जिससे डच माल गैर-हालैण्डके बाजारोंमें पूर्वापेक्षा ज्यादा बिकने लगे। हालैण्डमें वस्तुओंका भाव बढ़ जानेसे, कारखानोंको काफी उत्साह मिला। किन्तु यह स्थिति बहुत दिन तक नहीं टिक सकी। कुछ औद्योगिक द्रव्योंका विदेशोंमें प्रचार होनेपर भी, हालैण्डकी उत्पन्न वस्तुयें अन्तर्राष्ट्रीय बाजारोंमें न आ सकीं। आत्मनिर्भर होनेके उद्योगमें, कोई भी मुल्क दूसरे देशोंकी उत्पत्ति नहीं लेते, फिर हालैण्डको अन्तर्राष्ट्रीय बाजारमें प्रतिद्वन्द्विता करनी पड़ती थी। इन स्थितियोंमें मुसर्टको फैसिस्टवादके प्रचारका उपयुक्त मौका मिला।

इन दो वर्षोंके अन्दर आण्टोन मुसर्टने फिर जोरसे कार्य उठाया था। फैसिस्ट पार्टीको जर्मनीकी मदद मिलती थी, धन वहींसे आता था। अनेकानेक प्रलोभन दिखाकर उन लोगोंने कितने ही लोगोंके विचार बदल दिये। वामपन्थियोंमें मेल नहीं रहा। उदार दलवाले किसी भी उग्रवादसे चिढ़ते थे, चाहे वह वाम पन्थका हो या दक्षिण पन्थका। फैसिस्ट पार्टीने इन झगड़ोंको अपने अनुकूल बनाया। १९४० में फैसिस्टवाद एक मजबूत नींवपर खड़ा था, जिससे हिटलरको हालैण्डपर कब्जा कर लेनेमें बहुत बड़ी सहायता मिली है।

जीवनकी गति

श्री राजेश्वरप्रसाद सिंह

नदीमें बाढ़ आ गयी थी। इधर-उधर मीलों तक जल-राशिका विस्तार था। एक तटसे दूसरा तट दृष्टिगोचर नहीं होता था।

श्रावणकी सुहावनी सन्ध्या थी। आकाशमें घटायें उमड़ रही थीं। पश्चिममें अस्त होते हुए सूर्यकी रश्मियां बादलोंको भांति-भांतिके रङ्गोंमें रंग रही थीं। शीतल, मन्द समीर बह रहा था। वायु-मण्डलमें वह विचित्र ध्वनियां गूंज रही थीं, जो केवल नदी-तटपर और वर्षा-ऋतुमें सुननेको मिलती हैं और जो एक विचित्र ताल और लयमें बंधी जान पड़ती हैं। गङ्गा-तटके उस समस्त वातावरणमें एक अजीब मस्ती थिरक रही थी, जो सम्पर्कमें आनेवाले समस्त जीवोंको अपने रङ्गमें रंग लेना चाहती थी। अजीब समां छाया था चारों ओर।

मस्तीसे झूमती हुई एक डोंगी धीरे-धीरे बढ़ रही थी धाराकी ओर। एक युवती थी उसपर और एक युवक। युवक डांड़ चला रहा था, युवती एक ओर मूर्तिवत् बैठी थी। अकथनीय उल्लास फूटा पड़ रहा था युवकके चेहरेसे, गाम्भीर्य व्यक्त था युवतीके मुखमण्डलपर। दोनों मौन थे। युवक जैसे कोई निधि पा गया हो, युवती जैसे मार्ग खोज रही हो।

धारा सामने आ गयी। हर-हर करता हुआ जल तीव्र गतिसे बहा जा रहा था।

"बस तैयार हो जाओ, कृष्णा," युवकने आह्लादपूर्ण स्वरमें कहा—"दो चक्कर देकर नाव धारामें डाल दूंगा, और बेड़ा पार हो जायेगा।"

"नहीं, दिनेश, नहीं," युवती चिल्ला पड़ी—"वापस चलो।"

"यह क्या कह रही हो, कृष्णा? पीछे नरक है, आगे स्वर्ग।"

"स्वर्ग मुझे नहीं चाहिए, दिनेश। मुझे नरक ही में रहने दो। मेरा समाज, मेरे माता-पिता, मेरी सखियां मुझे बुला रही हैं। इन सबसे मैं नाता नहीं तोड़ सकती।"

"साहससे काम लो, कृष्णा।"

"साहस मुझमें नहीं है, दिनेश। जिसे साहस समझती थी, वह केवल भ्रम था। मुझे खेद है, किन्तु मैं विवश हूं।"

"कृष्णा!......कृष्णा!"

"नहीं......नहीं!"

"अन्तिम निश्चय है तुम्हारा?"

"अन्तिम।"

सिर झुकाकर, युवक नाव फेरने लगा। उतर गया उसका चेहरा। शान्तिकी सांस लेकर, मुख फेरकर, युवती दूसरी ओर देखने लगी।

तट आ गया। डोंगी किनारे लगी। उतरकर, सहारा देकर युवकने युवतीको उतारा। सिर झुकाये हुए युवती सड़ककी ओर चली गयी। दीर्घ-निश्वास खींचकर युवक दूसरी ओर चला गया।

कृष्णा सड़कपर पहुंची। सामने उसकी कार खड़ी हुई थी। शोफरने कारका दरवाजा खोलकर पूछा—"कहां चलना होगा, बीबीजी?"

"घर।" कारमें बैठकर कृष्णाने उत्तर दिया।

दरवाजा बन्द करके शोफर अपनी सीटपर जा बैठा। कार चल पड़ी।

परस्पर-विरोधी भावनाओंका ताण्डव-नृत्य छिड़ा था कृष्णाके मस्तिष्कमें। आज इस तरह वह नाता तोड़ आयी उस सुन्दर, स्वर्गीय सम्बन्धसे, जिसका वह दम भरती थी और जिसमें उसे अपने अस्तित्वकी सार्थकता दृष्टिगोचर होती थी। सूना-सूना-सा लग रहा था उसे इस समय चारों ओर। निस्सन्देह, उसका खो गया बहुत कुछ—शायद सब कुछ। किन्तु क्या उसने खोया ही सब कुछ, पाया कुछ नहीं? क्या पाया उसने? एक विकट सङ्कटसे मुक्ति? सङ्कटसे मुक्ति! बेशक पायी है उसने मुक्ति—ऐसी मुक्ति, जो अन्य सङ्कटोंकी अग्र-दूती सिद्ध हो सकती है। बन गयी आज उसके आदर्शोंकी, आशाओंकी, अरमानोंकी समाधि, और उसपर खड़ी हुई वह शान्तिकी सांस ले रही है। कैसा भयानक

पतन है यह ! क्या है, क्यों है यह जीवन ? अनवरत गतिसे चलती हुई, सुख-दुःखसे भरी घड़ियोंका एक समूह, कुछ बनने और कुछ बनानेके लिए। कहां रही अब सुखकी आशा, क्या बन या बना सकेगी अब वह ? अनुकूल वातावरणमें मनुष्यका व्यक्तित्व फूलता-फलता है, विकसित होता है, प्रतिकूल परिस्थितिमें उसका दम घुट जाता है। कहां है अनुकूल वातावरण, आशा भी कहां है उसके अनुकूल हो सकनेकी ? घुटा जा रहा है उसके व्यक्तित्वका दम। पहाड़-से दिन अब सामने हैं उसके, भयावनी रातें। अन्य साधारण स्त्रियोंकी तरह अब कुढ़-कुढ़कर जियेगी वह भी। क्या मिलेगा उसे इस तरह जीकर ? किन्तु उचित नहीं था वह तो। अपनी इच्छासे वह नहीं आयी इस संसारमें। फिर उसे अधिकार कहां है अपनी इच्छानुसार यहांसे विदा होनेका ? ठीक हो सकता है यह। किन्तु अन्य मार्ग भी तो थे। वह कह सकती थी अपने समाजसे, अपने माता-पितासे कि अपनी इच्छा-अनिच्छा, अपने व्यक्तित्वकी स्वामिनी वह स्वयं है। अपने समाजसे विदा लेकर, दिनेशके साथ किसी दूरस्थ स्थानमें जाकर वह घर बसा सकती थी। यह सब भी नहीं कर सकी वह। कितनी हीन है वह ! नितान्त अभाव है उसमें साहसका। बिना साहसके मनुष्य विद्रोह नहीं कर सकता, और बिना विद्रोहके प्रतिकूल परिस्थितियोंपर विजय नहीं प्राप्त कर सकता। दिनेश ! पागल दिनेश ! कितना महान् है वह ! कैसा विकट पुरुषार्थ है उसमें ! कितना चाहता था वह उसे ! अपने प्राणोंकी आहुति देनेको वह तैयार था उसे पानेके लिए। वह भी चाहती थी उसे, जी-जानसे चाहती थी। अब भी वह चाहती है उसे उसी तरह। अब क्या करेगा दिनेश ? निरानन्द जीवन है अब उसके सामने भी।

झर-झर गिरने लगे उसकी आंखोंसे आंसू। बिलखने लगा उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व।

कार प्रवेश करने लगी बंगलेमें। संभलकर आंखें पोंछने लगी कृष्णा रूमालसे।

(२)

ठगा-सा, विक्षिप्त-सा चला जा रहा था दिनेश। आज इस तरह समाप्त हो गया खेल—वह खेल, जिसे जीतनेके लिए उसने अपने प्राणोंकी बाजी लगा दी थी। अस्वीकृत हो गयी उसकी बाजी। कच्ची निकली कृष्णा। किसी बातपर वह जम नहीं सकी। दृढ़ताका, साहसका अभाव है उसके चरित्रमें। वह प्यार कर सकती है, किन्तु प्यारके लिए कोई बलिदान नहीं कर सकती। क्या मूल्य है ऐसे प्रेमका ? टिक भी नहीं सकता ऐसा प्रेम। साधारण आघात भी वह सह नहीं सकता। यह प्रेम नहीं, प्रेमका उपहास-मात्र है। प्रेम तो होता है पर्वतके समान अटल, सागरके समान अथाह। कोई बाधा उसे डिगा नहीं सकती। किन्तु यह सब क्या कलाकारोंकी कोरी कल्पना नहीं है ? प्रेमका वास्तविक रूप वही तो नहीं है, जिसकी झलक उसे कृष्णामें मिली है ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। यदि यह बात होती, तो वह उसे इस हद तक आन्दोलित न कर पाता। क्या मिला उसे इस मार्गपर चलकर ? वेदना, व्यथा, अशान्ति, विकलता ! काश, इससे वह दूर ही रहता ! किन्तु यह मनुष्यके वशकी बात कहां ? निमन्त्रण देकर इसे कोई बुला नहीं सकता। स्वयं आकर यह कब्जा जमा लेता है, और मनुष्यको इसका तब ज्ञान होता है, जब वह पूरी तरह इसके जालमें फंस जाता है। दुर्दमनीय रोग है यह, पागलपन है, मूर्खता है। मूर्खता ? कहा नहीं जा सकता। विवेकसे जो परे है, उसे तर्कके माप-दण्डपर चढ़ाना उचित नहीं। जो हो, यह अनधिकार चेष्टा थी उसकी। झोंपड़ेमें रहकर महलोंका स्वप्न देखना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता। कितना अन्तर है उसकी और कृष्णाकी सामाजिक स्थितिमें। कृष्णा है अमीरजादी, और वह है एक गरीब परिवारका लड़का। अनधिकार चेष्टा ! महलोंका स्वप्न ! अनधिकार चेष्टा कह देने ही से कोई चेष्टा अनुचित सिद्ध नहीं हो जाती। झोंपड़ेमें रहकर महलोंका स्वप्न देखनेवाला समुचित प्रयासके द्वारा एक दिन महलमें पहुंच भी जाता है। यदि वह साहससे काम न लेता, तो एण्ट्रेन्सकी परीक्षाके बाद ही उसकी पढ़ाई समाप्त हो जाती। उसे आगे पढ़ा सकनेका सामर्थ्य उसके पितामें नहीं था। उसने अपने पैरोंपर खड़ा होना सीखा, बराबर पढ़ता गया, और एम० ए० की परीक्षामें उत्तीर्ण हुआ। आज भी वह अपने ही ऊपर निर्भर है, और अपने परिवारकी भी यथेष्ट सहायता करता है। उज्ज्वल भविष्य उसके सामने है। किन्तु, क्या करेगा वह उस उज्ज्वल भविष्यको लेकर ?

उसकी सारी आकांक्षायें, लालसायें, आशायें केन्द्रित हो गयी थीं केवल एक चेष्टामें। मृत्युका आवाहन भी उसने किया था उसकी पूर्तिके निमित्त। किन्तु, निष्फल हो गयी वह चेष्टा। उजड़ गया सुन्दर स्वप्नोंका संसार। सघन अन्धकार अब आच्छादित है चारों ओर। मार्ग सूझता नहीं।

कितने ही मैदान, सड़कें और गलियां खिसक गयीं उसके पैरोंके नीचेसे। स्वयं चलते जा रहे थे उसके पैर। कुछ नहीं देख रही थीं उसकी खुली हुई आंखें। विचार चल रहे थे, चलते जा रहे थे उसके उत्तेजित मस्तिष्कमें।

अब क्या करेगा वह? आत्म-हत्या? नहीं, महत्त्व अब नहीं रहा आत्म-हत्याका। वह तो दिव्य सोपान था चिर-मिलनके स्वर्गिक लोकका। उसके लिए नहीं वह लोक। उसके लिए तो है यही नीरस, शुष्क जीवन, यही नीरस, शुष्क संसार। वह लड़ा अपने भाग्यसे, किन्तु पराजित होना पड़ा उसे। विधिके विधानको कोई पलट नहीं सकता। मनुष्य स्वयं अपने भाग्यका विधाता है। सत्य नहीं है यह सिद्धान्त। कमसे कम उसका अनुभव तो यही कहता है। कदाचित् सफलता-जनित अहम्मन्यताकी प्रेरणासे अथवा विधाताके प्रति विद्रोहकी असन्तोष-जनित भावनासे उक्त सिद्धान्तका जन्म हुआ था। जो हो, जो कुछ उसने देखा-सुना है, स्वयं अनुभव किया है, उससे तो यही सिद्ध होता है कि मनुष्य नियतिके हाथका खिलौना-मात्र है, विशाल सागरपर तैरते हुए तृणके समान है। काम नहीं चलेगा इस विकट सत्यसे मुख मोड़नेसे। वह भी बहता जायगा तृणके समान।

एक धुंधली गली सामने आ गयी। एक छोटे-से सफेद मकानके सामने पहुंचकर वह रुका। दरवाजा बन्द था। उसने सांकल खटखटायी।

"कौन है?"

"मैं।"

"अच्छा, आती हूं, बेटा।"

एक वृद्धाने दरवाजा खोला। उसने घरमें प्रवेश किया।

"कहां चले गये थे, बेटा? आज तुमने नाश्ता भी नहीं किया।"

"एक जगह जरूरी कामसे चला गया था।"

"खाना तैयार है।"

"इस वक्त मैं खाना नहीं खाऊंगा।"

"क्यों?"

"तबीयत ठीक नहीं है।"

"क्या तकलीफ है तुम्हें?"

"पेटमें दर्द है।"

"अच्छा, पूरा खाना न खाओ। थोड़ा-सा ही खा लो।'

"नहीं, अम्मां, बिलकुल न खाऊंगा।"

"बस, दिनेश, तुम्हारी यही आदत मुझे बुरी लगती है। जरा-सी तकलीफ हुई कि फाका। जब देखो तब फाका।"

दिनेश चुपचाप ऊपर चला गया। कितना अगाध, कितना अपार स्नेह है उसकी माताको उसके प्रति! किन्तु वह कैसे खोलकर रखे उसके सामने अपने मनकी अकथनीय वेदना?

अपने कमरेमें पहुंचकर वह चारपाईपर गिर पड़ा। एक खिड़की सामने खुली थी। भीतर, बाहर, चारों ओर घना अन्धकार छाया था। इस अन्धकारपूर्ण अस्तित्वका बोझ लादे हुए जीवनके कंकरीले पथपर चलना होगा। किन्तु अब चारा ही क्या है इसके सिवाय? अतीतसे नाता तोड़कर, वह बढ़ता ही जायगा चुपचाप, निर्मम भावसे भविष्यकी ओर, चाहे वह कुछ भी हो।

एकाएक उठकर उसने लैम्प जलाया। वह सामान्य कमरा, जो सदैव प्रसन्नतासे मुस्कराता प्रतीत होता था, आज गम्भीर और उदास दिख रहा था। मेजपर रखे हुए कागजोंका एक बण्डल और दियासलाई लेकर वह एक कोनेमें गया। कागजोंका यह बण्डल वह थेसिस था, जिसे वह साल-भरसे तैयार कर रहा था और जिसपर उसकी उन्नति-की सारी आशायें निर्भर थीं। किन्तु आज वह निबन्ध और उससे सम्बन्धित उन्नतिकी कामनायें उसे सर्वथा निर-र्थक प्रतीत हो रही थीं। कोनेमें बैठकर, दियासलाई जलाकर, एक-एक टुकड़ा उठा-उठाकर वह जलाने लगा। कागजके वह बहुमूल्य टुकड़े जलकर, मुड़कर, राख होकर ढेर होने लगे।

वृद्धाने धीरेसे कमरेमें प्रवेश किया। असीम विस्मयसे आंखें फाड़े हुए वह दिनेशकी ओर देखने लगी। फिर झपटकर वह उसके समीप पहुंची।

"यह क्या कर रहे हो, दिनेश ?"

"कागज जला रहा हूं।"

"यह तो वह लेख है, जिसे तुम इधर महीनोंसे बड़ी मेहनतसे लिख रहे थे ?"

दिनेश चुप रहा।

"तुमने कहा था कि इसके तैयार हो जानेके बाद तुम डाक्टर बन जाओगे, अच्छी-सी नौकरी पा जाओगे, और हम लोगोंको सुख दे सकोगे।"

"बेमतलब है अब इसका लिखना।"

"बेमतलब है ! इसका मतलब क्या है, दिनेश ?"

उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

"तुम्हारी आजकी बातें मेरी समझमें नहीं आ रही हैं, दिनेश। क्या कोई ऐसी बात है, जो तुम मुझसे छिपाना चाहते हो ?"

"सुनो, अम्मां," दिनेशने कहा, "मैं आज बाहर जा रहा हूं। पांच-सात रोजमें लौटूंगा।"

"कहां जा रहे हो ?"

"इस शहरसे बाहर।"

"किस कामसे जा रहे हो ?"

"एक जरूरी कामसे।"

कोई उत्तर सन्तोषजनक न था, किन्तु गोदावरी समझ गयी कि अब आगे कुछ पूछना बेकार है। वह स्नेहमयी माता थी, और चाहती थी कि अपने पुत्रके समस्त दुख-सुखमें भाग ले। किन्तु दिनेशका व्यक्तित्व पूर्णतया स्वाधीन था, और अपनी समस्यायें वह अपने ही तक सीमित रखना चाहता था। अपने विचारों और कार्योंमें किसी तरहका कोई हस्तक्षेप उसे पसन्द नहीं था। गोदावरी आशङ्कित तो अवश्य हुई, किन्तु दिनेशकी सहज-बुद्धिमें उसका जो अटल विश्वास था, उससे उसे यथेष्ट सान्त्वना मिली। विचारोंमें डूबी हुई वह चुपचाप कमरेसे बाहर चली गयी।

निबन्ध जल गया। एक दीर्घ-निश्वास खींचकर दिनेश उठ खड़ा हुआ। अब आरम्भ होगा जीवनका एक नया अध्याय। लोग उसे पागल कहेंगे। कोई परवाह नहीं उसे किसीकी सम्मतिकी। अब बहता जायगा वह जगत-पयोनिधिमें निर्मम भावसे, बिना किसी लगावके। वही करेगा वह, जिसकी प्रेरणा होगी उसके मनमें।

दियासलाई मेजपर फेंककर, एक सूट-केसमें वह कुछ आवश्यक सामान रखने लगा। दो-चार किताबें रखीं, चन्द कपड़े रखे, कुछ और चीजें रखीं। फिर एक आलमारीसे उसने एक बड़ा पर्स निकाला। पर्समें सत्तावन रुपये और कुछ रेजकारियां थीं। पर्स जेबमें डालकर, सूट-केस उठाकर, चारों ओर एक नैराश्यपूर्ण दृष्टि डालकर, वह कमरेसे निकला, और धीरे-धीरे नीचे उतरा।

नीचे सहनमें गोदावरी सिर झुकाये हुए मूर्तिवत् खड़ी थी। उसके समीप पहुंचकर, झुककर, दिनेशने उसके पैर छुये। असीम स्नेहसे माताने पुत्रके सिरपर हाथ फेरा।

"जल्दी लौटनेकी कोशिश करना, बेटा," अवरुद्ध कण्ठसे गोदावरीने कहा।

"अच्छा, अम्मां।"

तेजीसे वह मकानके बाहर निकल गया। उसकी आंखें भी सजल हो गयी थीं उस समय। वह कहां जा रहा है ? वह कह नहीं सकता। वह स्वयं नहीं जानता।

गलीसे निकलकर वह सड़कपर पहुंचा। एक इक्का धीरे-धीरे जाता दिखाई दिया।

"इक्केवाले ! ओ इक्केवाले !"

इक्का रुक गया। वह तुरन्त उसके समीप पहुंचा।

"कहां चलना होगा, बाबूजी ?"

"बड़े स्टेशन।"

"छः आने लूंगा।"

"चलो।"

वह सवार हो गया इक्केपर।

"तेजीसे चलो।"

"बहुत अच्छा, हुजूर।"

इक्का चल पड़ा।

रेलवे स्टेशन आ गया। इक्का रुका। एक कुलीने लपककर सूट-केस उतार लिया। दिनेश इक्केसे उतरा, और इक्केवालेको पैसे देकर कुलीके साथ आगे बढ़ा।

"कोई गाड़ी लगी है ?"

"हां, बाबूजी, सात डाउन तैयार है। दस मिनटमें छूटेगी।"

"कहां जायगी वह ?"

"कलकत्ता।"

टिकट खरीदकर वह उस प्लेटफार्मपर पहुंचा। गाड़ी सामने खड़ी थी। रेल-पेल, धक्कम-धक्का, शोर-गुलका बाजार गर्म था। वह भी किसी तरह इण्टरके एक डिब्बेमें सवार हो गया। कुली पैसे लेकर चला गया। उधर एक बेञ्च खाली थी। एक दीर्घ-निश्वास खींच, वह बैठ गया उसपर अस्त-व्यस्त। गार्डने सीटी दी। गाड़ी चल पड़ी। अब क्या करेगा वह ? इस बातसे कोई सरोकार नहीं उसे। वह बहता जायगा संसार-सागरमें एक तृणके समान।

(३)

चार वर्ष बीत गये। कृष्णा जीवित थी, भली-चङ्गी थी। अतीतकी स्मृतियां धुंधली पड़ गयी थीं। किन्तु दिनेशको वह भूली नहीं थी। अनेक सुशिक्षित, सम्पन्न नवयुवकोंसे उसका परिचय था। किन्तु किसीसे उसे कोई लगाव न था। उसकी मनचली सखियां उसे मूर्खा समझती थीं। किन्तु उनकी बुद्धिमानीसे लाभान्वित होनेकी उसे कभी इच्छा नहीं होती थी।

एक दिन आया एक युवक। स्वरूपवान्, हृष्ट-पुष्ट, सुशिक्षित और सम्पन्न था वह। विचित्र विशेषता थी उसके व्यक्तित्वमें। सहम गयी वह। अब नहीं टल सकेगी वह बला, जिससे आज तक वह बचती आ रही है। ड्राइङ्ग-रूममें उसके पिता डाक्टर श्याममोहन सिनहाने स्वागत किया नवागन्तुकका। फिर परिचय कराया उन्होंने उन दोनोंका।

"बेटी !" उन्होंने कहा, "आप हैं मिस्टर कामेश्वरप्रसाद निगम। आप मेरे मित्र हैं, और पिछले साल विलायतसे बैरिस्टर होकर लौटे हैं। आपके विचारोंकी मैं कद्र करता हूं, और आपकी सुरुचिमें मुझे विश्वास है। आप मिस्टर जगमोहन निगम, रिटायर्ड सेशन जज, के सुपुत्र हैं। मिस्टर निगम ! यह है मेरी पुत्री कृष्णाकुमारी सिनहा। यह ग्रेजुएट है, और ललित कलाओंसे इसे विशेष अनुराग है।"

"आपसे मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई," मुस्कराकर कामेश्वरने कहा।

"मुझे भी खुशी हुई आपसे मिलकर," गम्भीर भावसे कृष्णाने उत्तर दिया।

चाहा कृष्णाने कि वह भाग जाय वहांसे। किन्तु भाग नहीं सकी वह। शिष्टाचारके विरुद्ध था ऐसा करना।

दस मिनट तक डाक्टर सिनहा और मिस्टर निगममें एक सामयिक प्रश्नपर बहस होती रही। फिर डाक्टर सिनहा उठ खड़े हुए।

"मिस्टर निगम !" डाक्टर सिनहाने कहा, "आप बैठिये। मैं जाता हूं। एक मरीजको देखना है। सीरियस केस है।"

"बेहतर है। नमस्कार !"

"नमस्कार !" चले गये डाक्टर महोदय।

छा गयी कमरेमें निस्तब्धता। बढ़ गयी कृष्णाकी बेचैनी। मां इस समय उपस्थित होतीं, तो अच्छा होता। वह तो जहां जाती हैं, वहींकी हो रहती हैं। मिस्टर शुक्लाके घर गये कई घण्टे हो गये, लेकिन अभी तक वापस नहीं आयीं।

असह्य हो उठी निस्तब्धता। सिर झुकाये बैठी थी वह। कामेश्वर एकटक ताक रहा था उसकी ओर।

"मिस सिनहा !" कामेश्वरने कहा—"आपको कौन-सी कला सबसे अधिक पसन्द है ?"

"चित्रकारी।"

"मैं समझता हूं कि चित्रकारीमें आप भी सिद्धहस्त होंगी ?"

"जी नहीं, सिद्धहस्त मैं नहीं हूं। मुझे बहुत थोड़ा ज्ञान है चित्रकारीका।"

"आपकी कोई कृति देख सकता हूं ?"

"मेरी कोई कृति देखनेके योग्य नहीं है।"

"फिर भी, दिखलानेमें क्या कोई हर्ज है ?"

"कोई हर्ज तो नहीं है।"

"तब ?"

चुप रही वह।

"सिनेमा देखने चलियेगा ?" कामेश्वरने प्रसङ्ग बदला—"कई अच्छी फिल्में आजकल चल रही हैं।"

"सिनेमा देखने मैं बहुत कम जाती हूं।"

"तो चलिये कहीं घूम ही आयें।"

"माफ कीजिये। इस समय मेरी तबीयत ठीक नहीं है।"

कामेश्वर समझ गया कि आज इससे आगे नहीं बढ़ा जा सकता। वह उठ खड़ा हुआ।

"अच्छा, तो अब आज्ञा दीजिये। नमस्कार !"

"नमस्कार !"

वह चला गया। शान्तिकी सांस ली कृष्णाने। किन्तु दूसरे ही क्षण वह खो गयी विकल विचारोंमें।

कई दिनोंके बाद वह फिर आया। और इसके बाद वह प्रायः नित्य आने लगा। घनिष्टता बढ़ा ली उसने। 'आप' से वह 'तुम' तक पहुंच गया। लेकिन कृष्णा 'आप' पर डटी रही। वह जानती थी कि वह उससे क्या चाहता है। किन्तु अपने अन्दर वह उसके प्रति जरा भी लगाव नहीं पाती थी। उसके लिए वह वैसा ही था, जैसे उसके अन्य पुरुष मित्र थे।

कई मास बीत गये। एक दिन सन्ध्याकी मधुर बेलामें, वाटिकाके सुन्दर वातावरणमें कामेश्वरने उससे अपने दिलकी बात कह डाली।

"कृष्णा!" उसने कहा, "इतने दिनोंसे मैं तुम्हारे पीछे दीवाना बना फिर रहा हूं, लेकिन तुम हो कि पिघलनेका कोई लक्षण जाहिर नहीं कर रही हो। तुम असाधारण सुन्दरी हो, और मैं रूपका उपासक हूं। मैंने समस्त यूरोप-की सैर की है। भारतमें भी मैं खूब घूमा हूं। अनेक सुन्दरियां विदेश और स्वदेशमें मैंने देखी हैं, लेकिन कभी कोई सुन्दरी मुझे इतना आकर्षित नहीं कर सकी, जितना तुमने किया है। सम्पूर्ण हृदयसे मैं तुम्हें प्यार करता हूं, और तुम्हें अपनी बनाना चाहता हूं। मेरी बनोगी, कृष्णा?"

निस्तब्ध बैठी रही कृष्णा।

"बोलो, कृष्णा, बोलो। जवाब दो, रानी।"

"मुझे अफसोस है, मिस्टर निगम, लेकिन जो कुछ आप चाहते हैं, वह असम्भव है।"

"क्यों?"

"मैं किसीको प्यार नहीं कर सकती।"

"मैं सिखाऊंगा तुम्हें प्यार करना। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि तुम किसी दूसरेकी बनो। मेरी बनना पड़ेगा तुम्हें। मैं जमीन और आसमान हिला दूंगा, मैं........."

उठकर जाने लगी वह। लपककर उसने पकड़ लिया उसका हाथ। हाथ छुड़ाकर चली गयी वह।

दूसरे दिन एकान्तमें उसकी माताने उससे कहा—बेटी! अब तुम्हें विवाह कर लेना चाहिए। मैं जानती हूं कि तुम विवाहके विरुद्ध हो, लेकिन अब यह प्रश्न टाला नहीं जा सकता। हम लोग नयी रोशनीके आदमी जरूर हैं, और इस बातके कायल हैं कि वर-वधूके चुनावके सम्बन्धमें लड़के-लड़कियोंको स्वतन्त्रता दी जाय। लेकिन हम इसके कायल नहीं कि कोई लड़की जीवन-भर कुमारी बनी रहे। यह बात जरूर है कि पश्चिममें बहुतेरी स्त्रियां स्वेच्छापूर्वक आजन्म कुमारी बनी रहती हैं। किन्तु यूरोप और भारतकी परि-स्थितियोंमें अनेक भेद हैं। भारतमें पुरुषका संरक्षण स्त्रीके लिए अत्यन्त आवश्यक है। किसीके मां-बाप हमेशा नहीं बने रहते। अब यह बहुत जरूरी है कि तुम्हारी एक स्वतन्त्र गृहस्थी कायम हो, और तुम्हारे मां-बाप उसे फूलती-फलती देखें।

कृष्णा निस्तब्ध, मूर्तिवत् बैठी रही।

"बोलो, कृष्णा, क्या कहती हो?"

"आप लोग जो चाहें, करें," कृष्णाने धीरेसे कहा—"मुझे अब कोई आपत्ति नहीं है। जो बात टल नहीं सकती, उसे मानना ही पड़ेगा।"

"खुश रहो, बेटी! तुम्हारा उत्तर सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। कौशल, ब्रजेन्द्र, शङ्कर और कामेश्वर—ये सुयोग्य पात्र तुम्हारे सामने हैं। इनमेंसे जिस किसीको तुम पसन्द करो, उसके साथ तुम्हारे विवाहका आयोजन किया जाय।"

"इस सम्बन्धमें भी मेरी कोई निजी इच्छा नहीं है।"

"मेरी रायमें कामेश्वर ठीक रहेगा। चारोंमें वह सबसे अधिक सुयोग्य है। तुम्हारा क्या ख्याल है?"

"मैं कुछ नहीं कह सकती।"

मिसेज सिनहा चली गयीं उठकर। सिद्ध हो गया उनका अभिप्राय। अपार हर्ष उमड़ रहा था उनके मनमें। अब मुक्त हो सकेंगी वह मातृत्वके एक महान् उत्तरदायित्वसे।

दो मास बीत गये। एक दिन सजाया गया डाक्टर सिनहाका बंगला बड़े शानदार और सुरुचिपूर्ण ढङ्गसे। पूरा हो गया मिस कृष्णाकुमारी सिनहाका मिस्टर कामेश्वर-प्रसाद निगमके साथ विवाहका सम्पूर्ण आयोजन। शाम होते-होते भर गया सारा घर प्रतिष्ठित मेहमानोंसे। बारात आयी सात बजे। उसका स्वागत किया गया समुचित ढङ्गसे।

दो घण्टेके बाद वर महोदय ले जाये गये विवाह-मण्डपमें। कृष्णा भी ले जायी गयी मण्डपमें। उस समय आंसू जारी थे

उसकी आंखोंसे। बड़ा आश्चर्य हुआ उसकी सखियोंको यह देखकर।

"देखा कृष्णाका रङ्ग ?" ललिताने मुस्कराकर कहा।

"देखा, खूब देखा !" मोहिनी हंसकर बोली।

"मुझे तो ताज्जुब होता है कि कोई नकली आंसू कैसे बहा लेता है," कुसुमने कहा।

"यह भी एक कला है !" रामेश्वरी बोली।

"और कृष्णा दक्ष है इस कलामें," ललिताने कहा—"मनमें तो खुश हो रही होगी, दिखानेको रो रही है।"

"सरासर गंवारपन है यह। एक अनपढ़ लड़की ऐसे अवसरपर रोये तो रोये, लेकिन एक पढ़ी-लिखी लड़कीका आंसू बहाना कैसा ?"

"लेकिन क्या यह सम्भव नहीं कि उसे सचमुच रञ्ज हो ?" श्यामाने कहा।

"रञ्ज ! किस बातका रञ्ज हो सकता है उसे ?"

"मां-बापसे बिछुड़नेका।"

"बेशक ! जरूर रञ्ज है उसे। गोया वह लन्दन जा रही है ! इसी शहरमें वह रहेगी, और चाहेगी, तो रोज मायके आ सकेगी। तब कैसे रञ्ज हो सकता है उसे ? रञ्ज नहीं, यह मक्कारी है।"

"श्यामा !" कुसुमने कहा, "अपने विवाहके अवसरपर तुम भी रोना, फूट-फूटकर रोना, जी भरकर रोना !"

सब हंस पड़ीं। श्यामा झेंप गयी।

विवाहका शुभ संस्कार सम्पन्न हो गया। दूसरे दिन डाक्टर सिनहाके घरपर शानदार दावत दी गयी, तीसरे दिन मिस्टर निगमके घरपर।

समाचार-पत्रोंमें इस आदर्श तथा सुधारवादी विवाहकी खूब प्रशंसा की गयी, वर-वधूको बधाइयां दी गयीं, और कट्टरपन्थियोंको आड़े हाथों लिया गया।

(४)

ससुरालमें भी कृष्णा सुखी नहीं हो सकी। सुख नामक वस्तु तो जैसे उसके लिए निषिद्ध हो गयी थी। जो गहन उदासीनता उसके समस्त व्यक्तित्वपर आसन जमाये बैठी थी, उसे हटा सकना उसके लिए असम्भव हो चुका था। किसी भयानक अभिशापकी तरह उसकी छाया उसके जीवनके पल-पलपर पड़ती रहती। वह चलती जाती जड़वत् जीवनके कण्टकाकीर्ण पथपर।

कामेश्वर रूप और सुरा दोनोंका उपासक था। कृष्णामें रूपकी असाधारण निधि तो उसे अवश्य प्राप्त हुई, किन्तु तृप्ति नहीं हो सकी उसे। उसकी उपासना किसी एक तक सीमित रह सकनेवाली न थी। अनेक पियक्कड़ बन गये उसके साथी, अनेक लावण्यमयी नारियां बन गयीं उसकी प्रेम-पात्रियां। दिन-भर वह अपने पेशेके कामोंमें व्यस्त रहता, रातमें रंगरेलियोंमें। उसकी उच्छृङ्खलताकी अनेक कथायें कृष्णाने सुनीं। किन्तु उसके ऊपर कभी कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। ईर्षा कभी उसके मनमें अंकुरित न हो सकी। प्रेम वह कहां कर सकी उससे ? चाहना उसे कब हुई उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्वपर आधिपत्य जमानेकी ? उसके लिए तो उतना ही बहुत था, जितना वह पा रही थी।

व्यतीत हो गये कई वर्ष उस निरानन्द वैवाहिक जीवनके।

एक दिन कृष्णाकी अनुपस्थितिमें एक जरूरी चीजकी खोजमें कामेश्वरने उसका एक ट्रङ्क खोला। कभी पहले उसने नहीं खोला था उसे। वह चीज नहीं मिली उस ट्रङ्कमें भी। किन्तु उसमें उसे एक ऐसी चीज दिखाई दी, जिसने उसे चक्करमें डाल दिया। कई कपड़ोंके नीचे एक फोटो रखा हुआ था। वह फोटो था किसी सभ्य, स्वरूपवान् नवयुवकका। कौन है यह व्यक्ति ? उससे तो वह परिचित नहीं, कभी उसे उसने देखा भी नहीं। कौन है यह कृष्णाका ? अगर यह कोई रिश्तेदार है और यह फोटो घरमें रखना जरूरी ही है, तो यह ड्राइङ्ग-रूम या किसी अन्य कमरेकी शोभा क्यों नहीं बढ़ा रहा है ? इसे इस तरह सन्दूकमें बन्द करके रखनेकी जरूरत क्यों पड़ी ? कई मिनट तक चुपचाप खड़ा हुआ वह सोचता रहा। फिर फोटो हाथमें लिये हुए अपने पुस्तकालयमें जाकर, एक पेग ह्विस्की पीकर, सिगरेट जलाकर, आराम कुर्सीपर बैठकर वह विचार करने लगा। लेकिन हल नहीं हो सकी समस्या। कई पेग पिये गये, कई सिगरेटें जलायी गयीं, किन्तु ज्योंकी त्यों बनी रही वह समस्या।

कृष्णा वापस आयी एक घण्टेके बाद। फोटो लिये हुए वह पहुंचा उसके सामने।

"कृष्णा !" गम्भीर दृष्टिसे उसके चेहरेकी ओर देखते

हुए उसने कहा, "किसका है यह फोटो ?"

सहम गयी कृष्णा। उपयुक्त उत्तर सोचने लगी वह।

"बोलो, कृष्णा। यह किसका फोटो है ?"

"मेरे एक मित्रका।"

"यह तुम्हारा केवल मित्र ही है या और कुछ भी ?"

चुप रही कृष्णा।

"तुम्हारा यह प्रेमी भी है ?"

"था," दुस्साहसकी सीमा तक पहुंचकर कृष्णाने उत्तर दिया—"अब है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकती।"

"तुम्हें यह प्यार करता था ?"

"बहुत।"

"तुम भी इसे प्यार करती थीं ?"

"हां।"

"अब भी करती हो ?"

"शायद......हां।"

"कहां है यह आजकल ?"

"यह मैं नहीं जानती।"

"कोई बात छिपानेकी कोशिश मत करो, कृष्णा। इसीमें तुम्हारी भलाई है।"

"कुछ छिपानेकी मुझ जरूरत नहीं। वही कहूंगी, जो सत्य है। अगर मैं छिपाना ही चाहती, तो इसी बातपर अड़ी रहती कि वह केवल मेरा मित्र है।"

"बड़ा धोखा हुआ मुझे! लुट गया, कहींका नहीं रहा।"

खामोश रही कृष्णा।

"जिसे मैंने खरा सोना समझा था, वह पीतल निकला, तांबा निकला! शेर किसीका जूठा शिकार नहीं खाता। अब तक जो हुआ सो हुआ, आगे यह न हो सकेगा। एक बात अब निश्चित रूपसे समझ लो। तुम्हारा मेरे पास रहना या इस घरमें रहना अब न हो सकेगा। शोर-शराबा मुझे पसन्द नहीं, और बेहतर यही होगा कि यह मामला खामोशीसे तय हो जाय।"

"मैंने आपसे पहले ही कह दिया था कि मैं किसीसे प्रेम नहीं कर सकती।" दृढ़तापूर्ण स्वरमें कृष्णाने कहा—"अपनी इच्छासे मैंने आपसे विवाह नहीं किया। अगर आप मुझे त्यागना ही चाहते हों, तो खुशीसे त्याग दें। मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

"हां, मैं यही करूंगा। जहां तुम्हारी इच्छा हो, चली जाओ—चाहे अपने मां-बापके पास, चाहे अपने प्रेमीके पास।"

"बेहतर है।"

तुरन्त जाकर वह अपना असबाब बांधने लगी। आध घण्टेके बाद वह चली गयी मायके। पूरी कोशिश कर रही थी वह आंसुओंको रोकनेकी; लेकिन आंसू थे कि किसी तरह रुकते ही न थे। एक पुराना घाव खुल गया था दिलका।

डाक्टर और मिसेज सिनहाने बेटी, दामादमें सुलह करानेकी पूरी कोशिश की, किन्तु वे सफल नहीं हो सके। कामेश्वर दृढ़ रहा अपने संकल्पपर। कृष्णा भी उदासीन रही। समाजमें होने लगीं काना-फूसियां, उड़ने लगीं अफवाहें। आदर्श नहीं रह गया वह आदर्श विवाह। कृष्णाने आना-जाना छोड़ दिया समाजमें। घरसे बाहर वह कदम न रखती, नियमित जीवन व्यतीत करती, अपना अधिकांश समय अध्ययनमें लगाती। पूर्ववत् चलता रहा कामेश्वरका कार्यक्रम। वकालतमें वह खूब दिलचस्पी लेता, रंगरेलियोंमें इससे भी अधिक। इस तरह बीत गये कई वर्ष।

एक दिन दोपहरके समय मिसेज सिनहाने कृष्णासे कहा—बेटी! कामेश्वर बहुत बीमार है। पक्षाघात हुआ है उसे। तुम्हारे पापा उसे देखने गये थे। मैं भी गयी थी। वहींसे चली आ रही हूं। केस सीरियस है। पांच बजे आपरेशन होगा। आपरेशनसे पहले वह तुमसे एक बार मिलना चाहता है। जाओगी ?

निस्तब्ध बैठी रही कृष्णा।

"बोलो, बेटी। क्या कहती हो ? मैं तो समझती हूं कि तुम्हें जाना चाहिए।"

"मुझे कोई आपत्ति नहीं है, मां।"

"अकेले जाओगी ? नहीं, चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी। बड़ी बुद्धिमानीका काम कर रही हो, बेटी। हम स्त्रियां हैं, और स्त्रियोंकी हैसियतसे हमें अपना दृष्टिकोण उदार बनाये रखना चाहिए।"

दोनों बाहर निकलीं। कार पोर्टिकोमें तैयार खड़ी थी। वे सवार हुईं कारपर। कार चल पड़ी।

कामेश्वर तड़प रहा था, रोग-शय्यापर पड़ा हुआ। तेज ज्वर था। फोड़ेमें सख्त दर्द था। सारा शरीर अकड़ा जा

रहा था। एक सेवक दबे पांव आया कमरेमें।

"हुजूर!"

"क्या है?"

"बहू रानी आयी हैं।"

"भेज दो उन्हें।"

"बहुत अच्छा, हुजूर।"

चला गया सेवक। दो मिनटके बाद कृष्णाने प्रवेश किया कमरेमें। हाथ जोड़कर नमस्कार किया उसने।

"कृष्णा! आ गयीं तुम! नमस्कार! आओ।"

रोग-शय्याके निकट जाकर खड़ी हो गयी वह।

"बैठो।"

बैठ गयी वह एक कुर्सीपर।

"मुझे माफ करो कृष्णा। मुझसे बड़ी भूल हुई थी। प्रेम करना किसीके वशकी बात नहीं। एक दूसरे व्यक्तिसे तुम प्रेम करती थीं। मुझसे यदि तुम प्रेम नहीं कर सकीं, तो इसमें तुम्हारा कोई दोष न था। मैं नहीं जानता था कि तुम्हारा प्रेम पवित्र है। जबसे तुम यहांसे गयीं, मैं अपने आदमियोंके द्वारा बराबर तुम्हारी खबर लेता रहा। लेकिन तुम्हारे आचरणके सम्बन्धमें कभी कोई बुरी बात मैंने नहीं सुनी। मैं पशु बन गया था। लेकिन तुम बराबर आदर्श नारी बनी रहीं।"

कृष्णा निस्तब्ध, मूर्तिवत् बैठी रही।

"मुझे माफ नहीं करोगी, कृष्णा?"

"यह तो मैं बहुत पहले ही कर चुकी हूं। आपसे कोई बहुत बड़ी भूल नहीं हुई थी। आपका दोष केवल इतना था कि आपने मेरा दृष्टि-कोण समझनेकी कोशिश नहीं की थी।"

"धन्यवाद, कृष्णा! मेरे मनसे एक भारी बोझ उतर गया। अब अगर मुझे मरना ही है, तो शान्तिपूर्वक मरूंगा।"

"ऐसी बात न कहिये। आप अच्छे हो जायेंगे, बहुत जल्द अच्छे हो जायेंगे।"

आपरेशन हो गया सफलतापूर्वक। किन्तु आरम्भकी वाह सफलता कायम नहीं रह सकी। पतिकी सेवा-शुश्रूषामें बाराबर लगी रही कृष्णा। आपरेशन और हुआ एक बार।

तीन सप्ताह तक एड़ियां रगड़कर चल बसा कामेश्वर। शोकमें डूब गयी कृष्णा।

(९)

अर्ध-रात्रिका समय था। कलकत्ताका टालीगञ्ज शान्तिकी गोदमें विश्राम कर रहा था। एक शानदार कार एक ओरसे आयी, और एक सुसज्जित बंगलेके अहातेमें घुसी। हार्न बजा। ऊंघते हुए सेवक सतर्क हो गये। कार पोर्टिकोमें रुकी। एक सेवकने लपककर कारका दरवाजा खोला। कुछ लड़खड़ाकर उतरे एक सज्जन। फिर उनके हाथका सहारा लेकर उतरी एक सुन्दरी। वह सज्जन थे मिस्टर दिनेशकुमार वर्मा, दि नावेल मूवीटोनके सुप्रसिद्ध डायरेक्टर। और वह सुन्दरी थी मिस कनक गोयल, उसी सिनेमा कम्पनीकी असाधारण अभिनेत्री।

ड्राइङ्ग-रूममें पहुंचकर दोनों बैठ गये एक सोफेपर। दिनेशने घण्टी बजायी। एक सेवक तुरन्त हाजिर हुआ।

"काफी लाओ।"

"बहुत अच्छा, हुजूर।"

सेवक चला गया।

"कनक!"

"कहो।"

"एक पेग जानीवाकर पिला दो।"

"बस, रहने दो। बहुत पी चुके हो। अब काफी पियो।"

"नहीं, डार्लिङ्ग, एक पेग और, सिर्फ एक पेग।"

"बड़े जिद्दी हो।"

"तारीफ है यह?"

"जो समझो।"

"मैं तो तारीफ समझता हूं।"

"तो यही समझो।"

"पिलाती हो?"

"न पिलाऊंगी, तो करूंगी क्या? बराबर रट लगाये जाओगे।" उठी वह।

"अच्छा, रहने दो।"

"नहीं, नहीं, पी लो।"

"अब नहीं पिऊंगा।"

"पियोगे कैसे नहीं?"

"नहीं, नहीं।"

"पीना पड़ेगा तुम्हें।"

"अच्छा, बाबा, लाओ भी तो"

उधर सङ्गमरमरकी उस मेजपर शराबकी कई बोतलें और गिलास रखे थे। उसके समीप पहुंचकर, ह्विस्कीकी एक बोतलसे एक गिलासमें मदिरा भरकर, वापस आयी कनक।

"तुम्हारे हाथसे पीनेमें जैसा मजा मिलता है, वैसा कभी नहीं मिलता," गिलास लेते हुए दिनेशने कहा।

"मैं खुशामदकी भूखी नहीं हूं।"

"यह तो जानता हूं।"

"तब ?"

"कुछ नहीं।"

शराब पीकर सिगरेट जलायी दिनेशने। सिगरेट जलायी कनकने भी।

"एक बात कहूं, कनक ?"

"कहो।"

"हमें विवाह कर लेना चाहिए, कनक। अब मान जाओ, हठ न करो।"

"फिर वही बात छेड़ी तुमने।"

"इसमें हर्ज क्या है ?"

"विवाहको मैं एक बेकार रस्म समझती हूं।"

"दुनिया तो इसे उचित समझती है।"

"समझा करे।"

"दुनिया ही में हमें रहना है। लोग हमारी तरफ उंगली उठाते हैं।"

"उठाया करें। डरते हो दुनियासे ?"

"बिलकुल नहीं।"

"तब ?"

"यों ही कहा था मैंने।"

"अभी हम एक हैं, दिनेश, और स्वतन्त्र भी हैं। विवाहके बाद हम एक तो जरूर हो जायेंगे, लेकिन स्वतन्त्र न रहेंगे।"

"ठीक कहती हो, कनक।"

काफी आयी। दोनों पीने लगे काफी।

"बड़ी रद्दी फिल्म थी," कनकने कहा।

"बिलकुल रद्दी।"

"डिनर भी बेमजा था।"

"बिलकुल बेमजा।"

"किसी बातमें आज मजा नहीं आया।"

"किसी बातमें नहीं।"

काफी समाप्त हो गयी। सिगरेटें जलाकर, उठकर, दोनों चले गये शयनागारकी ओर।

सवेरा हुआ। दिन चढ़ा। साढ़े नौ बज गये। दिनेशने आंखें खोलीं। घण्टी बजायी उसने। एक दैनिक और एक पत्र लेकर हाजिर हुआ एक सेवक। पलंगके समीप पड़ी हुई छोटी मेजपर उसने रख दीं दोनों चीजें।

"चाय लाओ।"

"बहुत अच्छा, हुजूर।"

चला गया सेवक। उठाया दिनेशने वह पत्र। एं! यह तो कनककी हस्त-लिपि है! तुरन्त लिफाफा खोलकर वह पढ़ने लगा खत। लिखा था उसमें :—

"दिनेश,

मैं जा रही हूं—प्रकाशके साथ। यह विचार तो मेरे मनमें बहुत पहले ही अंकुरित हो गया था, किन्तु आज निश्चित रूपसे ज्ञात हुआ कि मुझे प्रकाशके प्रति तुमसे अधिक प्रेम है। तुम्हारे साथ मेरा सम्बन्ध अत्यन्त प्रिय तथा मधुर था, और आज उसके आकस्मिक विच्छेदके समय मुझे बड़ा खेद हो रहा है। खैर, जो बात आरम्भ होती है, उसका अन्त होना भी अनिवार्य है।

नात्रेल मूवीटोनके साथ मेरा जो कण्ट्रैक्ट था, वह कल समाप्त हो गया। नया कण्ट्रैक्ट अब मैं न करूंगी। अपने इस निश्चयकी सूचना कम्पनीके जनरल मैनेजरको दिये दे रही हूं।

तुम्हें अपार दुःख होगा, यह मैं जानती हूं। किन्तु विवश हूं मैं। क्षमा कर देना मुझे।

तुम्हारी अब कोई नहीं—

कनक गोयल।"

मूर्तिवत् बैठा रहा वह कई क्षणों तक। फिर ठहाका मारकर हंस पड़ा वह! अच्छा मजाक रहा यह। पलंगसे उतरकर, उधर उस कोनेमें जाकर, आलमारी खोलकर, ह्विस्कीकी बोतल और गिलास निकालकर उसने पिये कई पेग। फिर सिगरेट जलाकर वह जा बैठा एक आराम-कुर्सीपर।

समाप्त हो गया यह अध्याय भी। कच्ची निकली

कनक भी। दृढ़ताका अभाव है उसके चरित्रमें भी। शायद ऐसी ही हैं सारी स्त्रियां। दुखी वह क्यों हो? गुञ्जाइश अब कहां रही दुखकी? बुरा किया कनकने? शायद नहीं। आदर्शवादिनी है वह। सजीव मूर्ति है वह नारीत्वके स्वातन्त्र्यकी। प्रयोग कर रही है वह अपने जीवनसे। कुछ खोज रही है वह संसारमें। कैसे टिकती वह उसके पास? जाने दो उसे भी। परवाह क्यों करे वह किसीकी? उसे तो बहते जाना है जगत-पयोनिधिमें तृणके समान। जो आयेगा, उसके समीप उसका सादर स्वागत करेगा वह; जो विदा होना चाहेगा, उसे सहर्ष विदा देगा वह।

चाय आयी। वह पीने लगा शान्तिपूर्वक।

(६)

सोलह साल बाद—

भारी शोर-गुलके बीच पञ्जाब मेल इलाहाबाद जङ्क्शन-पर आकर रुकी। अव्वल दरजेके एक डब्बेसे उतरे एक अधेड़ सज्जन। उनके साथ था उनका प्राइवेट सेक्रेटरी, खान-सामा और असबाबका एक बड़ा ढेर। कुली बुलाये गये। असबाब उतारा जाने लगा।

"राममोहन!"

"जी हां," प्राइवेट सेक्रेटरीने तुरन्त उत्तर दिया।

"मैं बाहर चलता हूं। तुम असबाबके साथ आना।"

"बेहतर है, जनाब।"

वह बढ़े फाटककी ओर। एक अधेड़ महिला लपककर उनके पास आयीं।

"दिनेश!"

"अरे! कृष्णा!"

दोनोंने प्रेमपूर्वक हाथ मिलाया।

"कहांसे आ रहे हो?"

"कलकत्तासे।"

"कहां जाओगे?"

"एलायन्स होटल।"

"मेरे घर चलो।"

"होटलमें मुझे कोई तकलीफ न होगी।"

"मेरे घर क्या तुम्हें तकलीफ होगी?"

"नहीं, नहीं, मेरा मतलब यह नहीं था। तुम्हारे घर ही सही। मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

"धन्यवाद!"

दोनों निकले बाहर। कृष्णाकी कार खड़ी थी सामने। पांच मिनटमें आ गया सामान भी। सामान लादा गया तांगोंपर। दिनेश सवार हुए कृष्णाकी कारपर। कृष्णा आसीन हुईं उनकी बगलमें। कार चल पड़ी।

"आज-कल क्या करते हो?"

"नावेल मूवीटोनका साझीदार हूं।"

"इधर कैसे भूल पड़े?"

"कुछ व्यवसायके सिलसिलेमें, कुछ सैर-सपाटेके इरादेसे।"

"बाल-बच्चे कहां हैं?"

"बाल-बच्चे तो कभी रहे नहीं।"

"अच्छा! अभी तक अविवाहित हो?"

"यही समझो। तुम्हारा क्या हाल है?"

"तुम्हारे जानेके चार साल बाद शादी हुई थी। लेकिन सोलह साल हुए, पतिदेव परलोककी यात्रा कर गये।"

"बड़े अफ़सोसकी बात है।"

निस्तब्ध रही कृष्णा।

घर आ गया। दोनों उतरे कारसे। कृष्णा ले गयीं दिनेशको ड्राइङ्ग-रूममें। फिर चाय तैयार करनेकी आज्ञा देकर वह लग गयीं दिनेशके आरामकी व्यवस्था करनेमें।

रातके साढ़े नौ बज चुके थे। कृष्णा और दिनेश आसीन थे जगमगाते हुए ड्राइङ्ग-रूममें।

"मैं तो समझती थी कि तुम मेरे सायेसे भागोगे।"

"मुझे ऐसा असभ्य समझ रखा था तुमने?"

"नहीं, यह बात नहीं। मैं समझती थी कि तुम मुझसे घृणा करने लगे होगे।"

"यह मैं कभी नहीं कर सका।"

"उस दिनकी बात याद है, जब हम दोनों डूबने गये थे गङ्गामें, और मैं कमजोर साबित हुई थी?"

"खूब याद है।"

"आज तुम्हारी क्या राय है उस घटनाके बारेमें?"

"तब मैं नवयुवक था, अब बूढ़ा हो रहा हूं। उस समय जैसी भावुकता मेरे हृदयमें थी, वैसी आज नहीं है। मेरा दृष्टिकोण भी आज वैसा नहीं रहा। इसलिए आज उस घटनाके सम्बन्धमें कोई सम्मति प्रकट करना उचित नहीं।"

"ठीक कहते हो।"

दोनों चुप रहे कई क्षणों तक।

"बहुत कोशिश की, लेकिन कभी तुम्हें भूल नहीं सकी।"

"असीम सौभाग्यकी बात है यह मेरे लिए।"

आंचलके अन्दर हाथ डालकर कृष्णाने एक लाकेट निकाला। उसने खोला उसे। एक छोटा-सा फोटो था उसके अन्दर। वह फोटो था दिनेशका। अपार सन्तोष व्यक्त हुआ दिनेशके चेहरेपर।

"तुम भी आज स्वतन्त्र हो, दिनेश, और मैं भी स्वतन्त्र हूं।"

निस्तब्ध रहा दिनेश।

"क्या कहते हो, दिनेश? बोलो।"

"दिन ढल गया। शाम आ गयी। रात आ रही है धीरे-धीरे।"

"फिर भी, कुछ समय तो अभी शेष ही है। और अगर यह समय हमें थोड़ा-सा सुख दे सके, तो क्या उसकी अवहेलना करनी चाहिए?"

"अवहेलना तो शायद न करनी चाहिए।"

"तब?"

"जैसी तुम्हारी मर्जी।"

कृष्णाका चेहरा चमक उठा अनिर्वचनीय आनन्दसे।

एकाकी विसर्जन

महाशून्य निस्तब्ध मरण-शिशु, यह निशीथ है काली
लगा ओठसे जाग रहा हूं मैं चिन्ताकी प्याली
कांप रहीं पत्तियां जगतकी रह-रह छू सांसोंसे
बिखर गयी निस्पन्द अवनिपर है मेरी अंधियाली!

केवल जाग रहे कुछ गीले लोचन कर नव-तारे—
मिलन-लालसाके सपने कुछ महा-शून्यमें प्यारे
युग-युग पलक बिछा देखा पथ, पर यह विफल प्रतीक्षा
लिये जा रही देवि! मरणके तीर छुड़ा जग सारे!

उछल रहा है सिन्धु मरणका, औ उमड़ी है छाया
तीर ओर बढ़ रही मौन हो मलिन डोलती काया
प्रतिपल खींच रहीं लहरें, पर देवि! लगे हैं लोचन
नाच रही है मृत्यु, रजनि-अञ्चलमें सोयी माया!

बुझकर क्षार बनेगी क्षणमें दहक रही जो ज्वाला
मृत्यु-सिन्धुके शून्य-गर्भमें लीन रहेगा प्याला
नहीं दिखेगा शेष प्राणका, पांती लिखी रहेगी
दीन रहेगी पड़ी सूखकर मलिन अश्रुकी माला

बिखर नित्य निशिमें जाता पानेको छवि-प्रेमाञ्चल
मिटा जा रहा मिट जावेगा तनिक-तनिक जब तम कल
शशिका दीप जला, पूजनको स्निग्ध चांदनी-बाला
आकर पुनः लौट जायेगी दुखित अश्रु-दृग-आविल!

—महेश्वरीप्रसाद

हिटलर अब तक क्यों न मरा ?

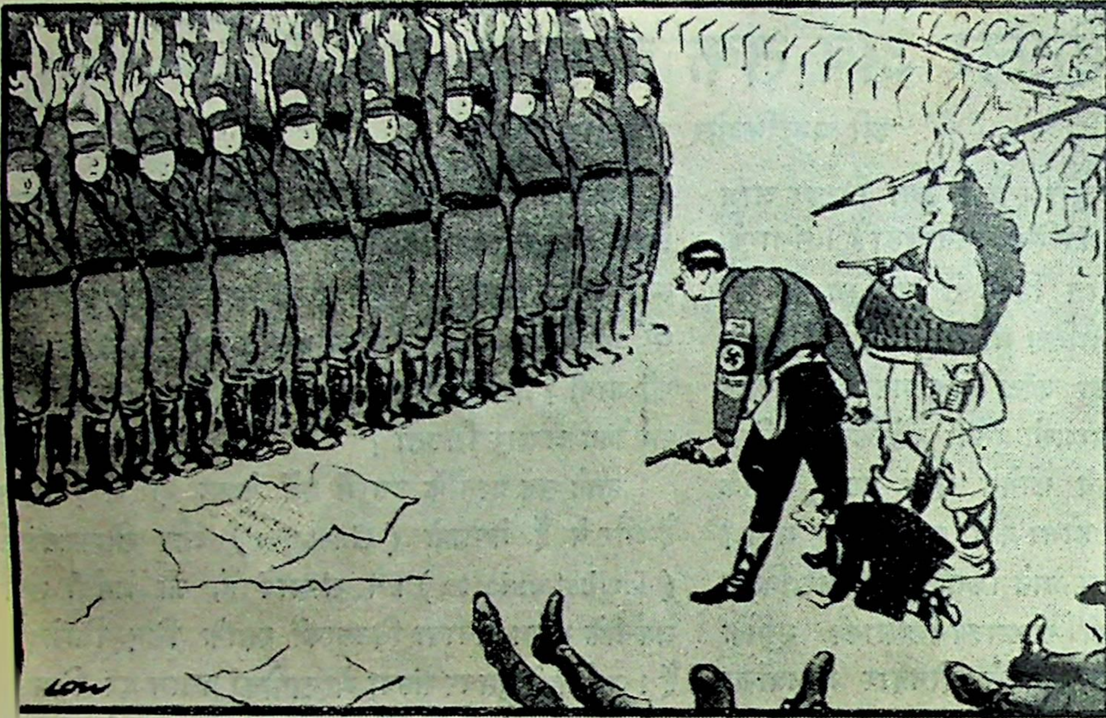
श्री चन्द्रकिशोर मालवीय

शक्ति और अहङ्कारके पुञ्जपर बैठा हुआ हिटलर आज संसारके क्षुब्ध वातावरणको क्रान्तिमय बना रहा है। संसारके बड़ेसे बड़े शक्तिशाली भी आज हिटलरसे सशङ्कित हो गये हैं, संसारके बड़ेसे बड़े राजनीतिज्ञ भी निरुपाय हो रहे हैं। आज वह संसारकी आंखोंका कांटा बन गया है। उसने संसारके राजनीतिक वातावरणको इतना उद्वेलित कर दिया है कि मनके किसी अनजाने कोनेसे प्रश्न उठता है कि बीसवीं शताब्दीमें भी ऐसा होना कैसे सम्भव हो गया? गत दो वर्षोंमें उसके कारण न जाने कितने आदमी मरे, कितने देशोंकी स्वतन्त्रता उसकी साम्राज्य-लिप्साकी मूर्तिके सम्मुख बलिदान हो गयी, कितने होनहार मानवोंका अस्तित्व आज दीखता भी नहीं, न जाने कितनी स्त्रियां विधवा हो गयीं! न जाने कितने बालक अनाथ हो गये।

अमेरिकन पत्रों तथा अमेरिकासे प्रकाशित होनेवाले साहित्यमें कितनी ही बार कहा गया है कि आज लाखों युवकोंके मनमें टिहलरकी हत्या कर सकनेकी इच्छा बलवती हो रही है। हजारों गुप्तचर और त्यागी युवक आज भी अपने दिलके पास पिस्तौल छिपाये हिटलरको ढूंढ़ रहे हैं। न जाने कितने आदमी आश्चर्यचकित हैं कि जब हिटलर इतने आदमियोंको सता चुका है, तो वह अब तक जीवित ही क्यों है? क्यों नहीं किसीने उसे अपनी गोलियोंका निशाना बनाया? क्यों नहीं बम फेंककर उसकी धज्जियां उड़ा दीं? जब लाखोंकी जनतामें वह अपना प्रभावशाली भाषण देता है, लाखों सैनिकोंके जमवटमें घुसकर उनकी सलामी स्वीकार करता है, तो क्यों नहीं उपस्थित मनुष्योंमें-से कोई एक भी अपनी जान होमकर उसकी हत्या करता? बहुत-से लोगोंने तो यहां तक कह डाला कि रूमानियाके प्रधान मन्त्री म० कालीनेस्कूकी, 'आइरन-गार्ड' वालोंने बुखारेस्टकी प्रधान सड़कपर दिनदहाड़े हत्या कर डाली थी, मुसोलिनीकी जान लेनेके लिए 'अज्ञात' लोगोंने १२ दफे कोशिश की, स्पेनके भूतपूर्व बादशाह अलफेंझोपर रेलमें सवार होते समय १० वीं बार आततायियोंने गोली चलायी थी, अमेरिकाके प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टकी हत्याके बहाने शिकागोके मेयरको अपनी जानसे हाथ धोना पड़ा था, मार्सैलीजमें तो यूगोस्लावियाके बादशाह एलेग्जेण्डरकी हत्या ही कर डाली गयी थी, तो फिर क्यों नहीं हिटलर नामके इस पुरुषकी भी हत्या की जाती? क्यों नहीं हत्याकारियोंको उसकी हत्या कर सकनेका अवसर मिलता?

इतने सब प्रश्नोंके उत्तरमें हमें केवल दो शब्द कहना है और वे हैं गेस्टापो (Gestapo) और लीब्सटनडार्ट (Leibstandarte)। ये संस्थायें हैं, जो जर्मनी तथा जर्मनीके भाग्य-विधाता हिटलरकी रक्षाके लिए जिम्मेदार हैं। जर्मनीकी गुप्तचर संस्था गेस्टापोका प्रधान हर हिमलर नामक एक कर्मठ, परिश्रमी तथा गम्भीर पुरुष है, जिसके मातहत २,००,००० गुप्तचर हैं, जो कि हिटलरकी रक्षाके लिए उत्तरदायी हैं। ये 'गेस्टापोके गण' काली पोशाक पहनते हैं और जर्मनीकी समस्त पुलिस इन्हींके इशारेपर नाचती है। जब कभी हिटलरको कहीं जाना होता है, हिमलरके खास-खास गुप्तचर वहां पहले ही पहुंचकर विरोधियोंकी खोज करने लगते हैं और जब तक कि उनकी 'खोज' समाप्त नहीं हो जाती, तब तक हिटलर वहां नहीं जाता, चाहे उसे अपना प्रोग्राम ही क्यों न स्थगित करना पड़े।

गेस्टापोके इन सैनिकोंकी भी कई किस्में हैं। उदाहरणके तौरपर गेस्टापोका I A विभाग केवल हिटलरकी रक्षाके लिए नियुक्त है। विभाग नं० III B. अन्य देशोंमें जासूसी करता है। विभाग नं० V C जर्मनीके अन्दर हिटलर-विरोधियोंकी खोज करता रहता है। विभाग नं० X K. नाजी पार्टीकी 'रक्षा' किया करता है। गेस्टापोको जर्मन भाषामें गेहीम स्टाट्सपोलजी (Geheime Staatspolijei) कहते हैं और प्रत्येक नगर तथा कस्बेमें इसकी छावनियां होती हैं, जो कि स्थानीय पुलिसके कामोंकी भी देखरेख करती रहती हैं। जिस नगरमें हिटलरको जाना या गुजरना होता है, वहांकी 'शान्ति' को अक्षुण्ण रखनेका भार छावनीके



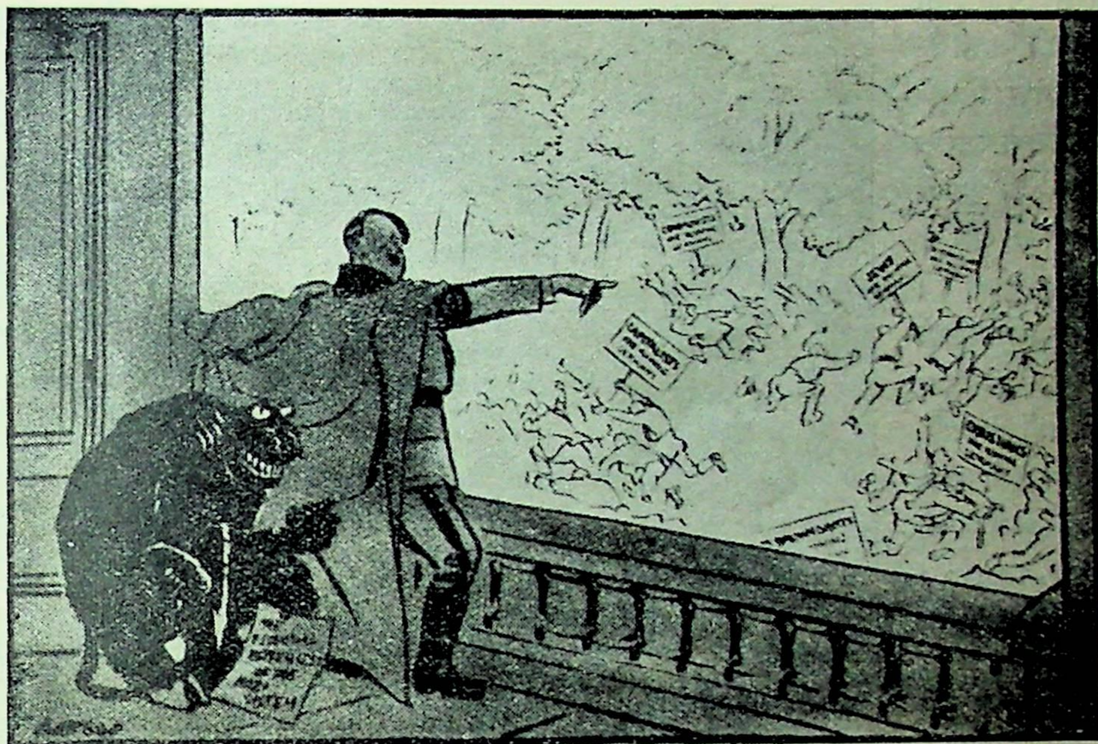
'सच्चे अनुयायी' रोम, हाइने, अर्न्स्ट तथा हजारों तूफानी सैनिकोंकी हत्याके बाद।
—लोका एक चित्र।

गिरफ्तार कर लिया जाता है। यह सब हिटलरके आनेके दो दिन पहले ही किया जाता है। हिटलरके गुजरनेके समय सड़कके दोनों ओर इकट्ठा हुई भीड़की प्रथम पंक्ति स्थानीय पुलिससे, द्वितीय पंक्ति गेस्टापोके सादी पोशाकवाले जासूसोंसे, तीसरी पंक्ति नात्सीपार्टीके चुनिन्दा और विश्वसनीय सदस्योंसे तथा चौथी पंक्ति स्थानीय गण्यमान्य मनुष्योंसे भरी रहती है। इसके बाद जनसाधारणका नम्बर रहता है। 'हिटलर युवक सङ्घ' के सदस्य सन्दिग्ध स्थानोंमें इकट्ठा होकर चारों ओर निरीक्षण करते रहते हैं। गेस्टापोके अधिकारी उक्त सब बातोंका निरीक्षण 'अच्छी तरह' से करते हैं। रास्तेके प्रत्येक मकानकी छतोंपर गेस्टापोके गण अपना अड्डा जमाकर चारों ओर, विशेषतया भीड़की ओर अपनी नजर किये रहते हैं और उनके अन्य साथी जगह-बजगह भीड़में भी सादी पोशाकमें 'दर्शक' की तरह खड़े रहते हैं। इन लोगोंको भीड़में किसी 'व्यक्ति-विशेष' को गोली मार देनेकी विशेष शिक्षा दी जाती है और अक्सर किसी यहूदी अथवा हिटलर-विरोधी किसी प्रमुख नेताको इसी बहाने गोलीसे मार दिया जाता है। भीड़में खड़ा कोई व्यक्ति यदि किसी सन्दिग्ध प्रकारसे हिला-डुला, तो उसके अगल-बगलमें खड़े लोग तो बादमें देखते हैं; पर हिटलरके रक्षक उसे पहले ही देख लेते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि गोलीकी चोट खाकर वह आदमी जमीनमें लोटता हुआ या बेहोश हुआ दीखता है; पर हिटलरकी मोटर रुकती नहीं, वह अपनी हस्बमामूल चालसे चलती ही रहती है। इन पिस्तौलोंमें 'साइलेन्सर'

कर्नलपर रहता है। यदि हिटलर रास्तेमें पड़नेवाले किसी नगरमें रुकता है, तो वहांकी पुलिसका निरीक्षण करके आम जनतामें अपना उत्तेजनात्मक भाषण भी देता है—यही उसकी आदत है। क्षेत्र-विशेषका कर्नल पुलिसके अधिकारियोंको 'यह करो, वह करो' करनेकी आज्ञा देता है, जिसका परिणाम यह होता है कि नगर-विशेषकी एक-एक गली, एक-एक सड़क, एक-एक कोना आततायियोंका पता लगानेके लिए छान डाला जाता है।

जिस सड़कसे हिटलरको गुजरना होता है, उस रास्तेमें पड़नेवाले हुए प्रत्येक मकानके निवासियोंकी 'अच्छी तरह' से तलाशी ली जाती है और गुप्त रीतिसे उनपर नजर भी रखी जाती है। पुलिस प्रत्येक निवासीको खबरदार कर देती है कि अपने-अपने परिवार तथा मेहमानोंके लिए वे ही उत्तरदायी हैं। यहां तक कि परिवारके एक आदमीको दूसरे आदमीपर नजर रखनेकी आज्ञा दी जाती है। जितने मेहमान तथा आगन्तुक होते हैं, उनका हुलिया अपराधियोंके फोटोसे मिलाया जाता है और तरह-तरहसे उनकी परीक्षा ली जाती है। यदि जरा भी शक हुआ, तो उन्हें फौरन्

लगा होता है, जिसके कारण आवाज नहीं होती; पर 'काम' हो जाता है। गेस्टापोके गण 'सन्दिग्ध व्यक्ति' के सिरमें कभी भी गोली नहीं मारते। उसे या तो पीठमें और नहीं तो पेट, कन्धों अथवा बगलमें गोली मारी जाती है, ताकि अपराधी जीवित रहे और अपना कुछ 'भेद' बता सके, क्योंकि उन्हें इस बातकी आशङ्का रहती है कि हिटलरकी हत्या करनेके प्रयत्नमें कहीं किसी गुप्त संस्था का हाथ तो नहीं है।



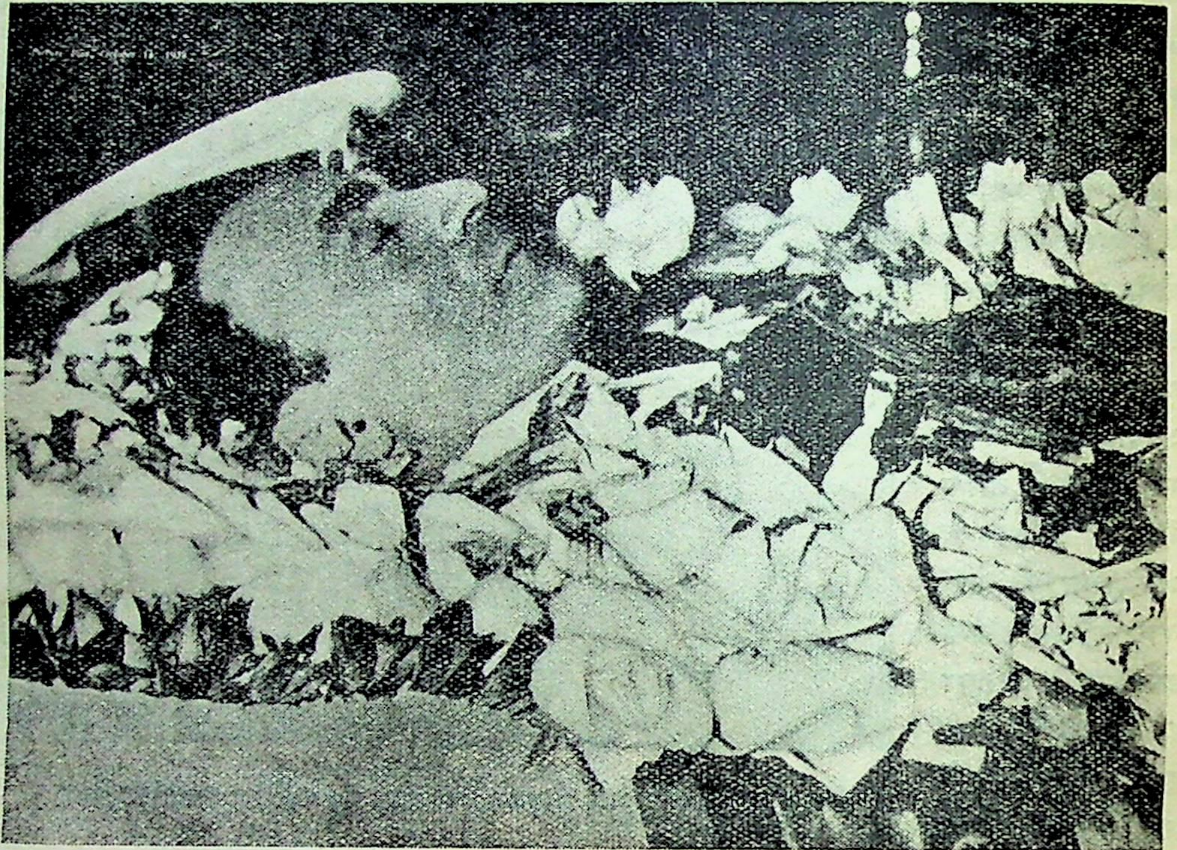
"शीघ्र ही:तुम्हें और मुझे छोड़कर और कोई भी नहीं रह जायगा एडल्फ !" —लोका एक कार्टून।

सड़कके दोनों ओर एक-एक गजकी दूरीपर स्थानीय पुलिस खड़ी रहती है, उनमेंसे प्रत्येक दो आदमीके बाद एक पुलिसमैन भीड़की ओर मुंह करके खड़ा रहता है। ये पुलिसमैन इस बातको ताड़ सकनेमें बड़े निपुण होते हैं कि कोई मनुष्य, जो अपना बदन हिला-डुला रहा है, जेबसे पिस्तौल या बम निकाल सकनेके लिए हिला रहा है या कि अपना बदन खुजलानेके लिए हिला रहा है। सन्देह होते ही ये पुलिसके लोग सांपकी तरह उस मनुष्यपर उछल पड़ते हैं और उनके पहुंचनेके पहले ही उनकी गोली आततायीको घायल कर देती है। सम्भव है कि आततायीके दूर होनेके कारण वे उछलकर शीघ्रातिशीघ्र उसके पास न पहुंच सकें; पर उनके उछलनेका इतना प्रभाव अवश्य होता है कि भीड़में गड़बड़ी-सी फैल जाती है, जिसके कारण विरोधीकी गोलीका निशाना ठीक नहीं बैठ पाता और स्वयं विरोधी डर जाता है कि पुलिसने उसे देख लिया है, इसलिए अपनी जान बचानेके लिए वह भागनेका प्रयत्न करता है और तब तक या तो पुलिसमैन ही पहुंच जाते हैं, या भीड़में खड़े सादी पोशाकवाले गेस्टापोके गण ही पहुंच जाते हैं। हिटलरके पीछे-पीछे आनेवाली मोटरोंपर सवार बड़े-बड़े सरदार भी अपनी पैनी दृष्टि भीड़के ऊपर बराबर डाले रहते हैं।

हिटलरकी बगलमें बैठा हुआ गेस्टापोका भाग्य-विधाता हिमलर जब हिटलरको खड़े होनेकी 'आज्ञा' देता है, तब चलती हुई मोटरमें खड़ा होकर हिटलर उपस्थित जन-समूहका अभिवादन ग्रहण करता है। जब हिमलर उसे बैठनेका इशारा करता है, तब वह बैठ जाता है। मोटरके चारों ओर लगी शीशेकी 'दीवाल' पर चूंकि गोलीका असर ही नहीं होता, इसलिए वह बेधड़क मोटरके मुलायम कोचपर बैठा रहता है। इसी प्रकारकी मोटरपर बैठकर स्वर्गीय जार्ज पञ्चम भी पेरिसकी:सड़कोंपर घूमे थे।

हिटलरके आनेके पहले ही खाकी पोशाक पहने पुलिस-वालोंको, भूरी पोशाक पहने सिपाहियोंको, काली पोशाक पहने गेस्टापोके गणोंको तथा हिटलर युवक सङ्घ और नात्सी पार्टीके पदाधिकारियोंको उनका 'स्थान और काम' पहले ही से बता दिया जाता है। उपस्थित जन-समूहपर चारों

ओरसे नजर तो रखी ही जाती है; पर जहांपर हिटलर को मोटरसे उतरना होता है, वहांकी तैयारी तो और भी अधिक होती है। जब तक मोटर अपने गन्तव्य स्थानपर खड़ी नहीं हो जाती, हिटलर अपने स्थान से तिल-भर भी नहीं हिलता। हिटलरके पीछे-पीछे आनेवाली मोटरें तब तक उसकी मोटरके चारों ओर आकर खड़ी हो जाती हैं और उन-परसे उतरे हुए आरोही हिटलरको चारों ओरसे घेर लेते हैं, तब कहीं हिटलर अपनी मोटरसे उतरता है। आस-पासके मकानोंकी खिड़कियोंपर गेस्टापोके गण उपस्थित रहते हैं और सड़ककी तिल-तिल-भर जगह पुलिसमैनोंसे भरी रहती है।



आर्मण्ड कालीनेस्कू, रूमानियाका प्रधानमन्त्री, गोलीका शिकार होनेके बाद।

यदि कोई दुस्साहसी हिटलरकी हत्या करना भी चाहे, तो कैसे करे? भीड़में शामिल होनेके बाद उसे घण्टों खड़ा रहना पड़ेगा, तब कहीं 'शिकार' का दर्शन होगा। भीड़की प्रथम चार लाइनोंमें तो वह किसी प्रकार घुस ही नहीं सकता—वहां तो उसके दुश्मन उसीके लिए खड़े रहते हैं। उसके बाद चुनिन्दा-चुनिन्दा पुलिसमैनोंकी क्रूर दृष्टियां भीड़मेंसे उसीको खोजती रहेंगी। ऐसी अवस्थामें गोली मारना या बम फेंकना मुश्किल ही है, और फिर हिटलर उससे कमसे कम १५ गजकी दूरीपर रहेगा और इन १५ गजोंके अन्दर जितने भी लोग होंगे, वे सब चारों ओरसे हिटलरको छाये रहेंगे। आसपास चारों ओर आनन्दमग्न भीड़ हेल-हेल (Heil) का शोर मचाती रहेगी, जिससे उसके दिमागकी एकाग्रता भी नष्ट हो जायगी। साथ ही डर फ्यूरर (Der Fuehrer) के बाडी-गार्ड भी रहेंगे और भीड़में सादी पोशाक पहने कदाचित् 'हिमलरका कोई अनुचर' दुस्साहसीकी ही बगलमें खड़ा हुआ होगा।

गेस्टापो विभाग आज इतना सुव्यवस्थित है, तब भी हिटलरको उससे उतना सन्तोष नहीं है। उसे किसीका भी, यहां तक कि हिमलरका भी उतना विश्वास नहीं है, जितना कि होना चाहिए। इसीलिए उसने अपने व्यक्तिगत शरीर-रक्षकों (Leihstandaste) तथा प्रेटोरियनों (Praetorians) की एक अलग 'सेना' बना रखी है। इन दोनों सेनाओंके अतिरिक्त उसके एस०ए०(Sturm-Abteilung) सिपाही हैं। और सबके ऊपर तो उसके एस०एस० (Schutz Staffel) याने तूफानी सिपाही (Storm-Troops) हैं, जिनकी संख्या ३,००,००० है। इस सेनाका सेनापति जोसेफ डीट्रिच नामक हिटलरका एक अन्ध-विश्वासी वीर है।

ये केवल हिटलरके प्रति उत्तरदायी हैं। इन सैनिकोंके चार हिस्से हैं। ये सिपाही जर्मनीके सबसे अच्छे सैनिक हैं। प्रत्येक विभाग प्रतिदिन छः-छः घण्टे हिटलरके महलके चारों ओर पहरा दिया करता है; पर वे सैनिक, जो महल के अन्दर पहरा देते हैं, सेप्प (Sepp) कहे जाते हैं। उसके महलके प्रत्येक



कालीनेस्कूके हत्यारेको सरे आम गोली मारी जा रही है। ऊपर नोटिस टंगा है, जिसमें कहा गया है, "देशद्रोहियोंको यही दण्ड दिया जायगा।"

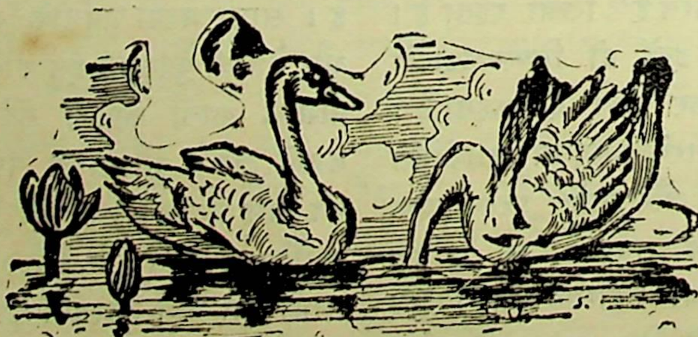
कमरेमें चौबीसों घण्टे आधे दर्जन आदमी पहरा दिया करते हैं। जब वह लिखता-पढ़ता है, अभिनेत्रियोंके साथ मनोरञ्जन करता है और खाता या सोता है, तब भी ये सिपाही उसकी 'काली छाया' के समान पास ही रहते हैं। इन सिपाहियोंकी पोशाक लाल रहती है और इनकी काली टोपियोंमें प्रशाका 'मृत्यु-मस्तक' का निशान बना रहता है। इनके चेहरे, नाखून और जूते, यहां तक कि पिस्तौल तथा राइफलोंकी मूंठें भी लाल हैं। इनकी कमीजोंपर M.E.T. (Meine Ehrei st die Treue) याने 'हिटलर-भक्ति ही हमारा गौरव है' लिखा रहता है। इनकी संख्या १२००० है और इन्हें ही लिब्सटनडार्टके नामसे पुकारा जाता है; पर हिटलर 'सेप्प' ही कहता है। इन शरीर-रक्षकोंकी गणना संसारके अत्युत्तम रक्षकोंमेंसे है। इनकी औसत ऊंचाई ६ फीट है और इनमेंसे प्रत्येक रक्षक शिकारी, खिलाड़ी, गायक, चालाक, जासूस, तैराक, सैनिक तथा 'आर्य' है, जिनके पिता तथा पितामह भी विशुद्ध आर्य थे। 'ब्रह्मचारी' बने रहनेके लिए उन्हें अविवाहित ही रहना पड़ता है। इनकी कसरतें अन्य सैनिकोंकी अपेक्षा अधिक कड़ी होती हैं और इनमेंसे प्रत्येक सैनिक 'हिटलर युवक आन्दोलन' का समर्थक होता है। इन्हें मोटी तनख्वाह मिलती है और प्रति वर्ष ६००० सैनिकोंको हटाकर नये १०००० उम्मेदवारोंमेंसे भरती किया जाता है। इन रिटायर्ड रक्षकोंके लिए जर्मनीका कोई भी पद मिलना असम्भव सिर्फ इसलिए नहीं है, चूंकि इन लोगोंने डर फ्यूरर (Der Fuehrer) की सेवा एवं रक्षा मनसा, वाचा और कर्मणा की है। इनका भविष्य उज्ज्वल होता है। साधारणतया जर्मनीके ऊंचे घरानेके स्वस्थ, बलशाली और तेजस्वी युवक ही इस कामके लिए चुने जाते हैं। इनकी पोशाक काली कमीज, सफेद शिरस्त्राण, भूरा पैण्ट तथा बैंजनी टाई है और नाजी पार्टीका बैज इनके लिए पिन-का काम करता है। ये लोग हिटलरके बर्लिनस्थ तथा बर्चेसगाडेनस्थ प्रासादोंमें, हिटलरके साथ मोटरों, रेलों, वायुयानों तथा जङ्गी जहाजोंमें साथ-ही-साथ रहते हैं।

हिटलरको ये लोग जर्मनीका सबसे महान् नेता मानतेहैं

और हिटलर इनकी उपस्थितिमें अपने जीवनका स्थायित्व देखता है, और शायद इसीलिए इनसे मित्रवत् व्यवहार करता है, व्यक्तिगत तौरपर इनकी देखभाल करता है। उसकी छायाके समान ये लोग हिटलरके लिए सब कुछ कर सकते हैं--यहां तक कि उसके इशारेपर अपने प्राण भी दे सकते हैं। पर साथ ही साथ उन्हें यह भी मालूम है कि हिटलर वही व्यक्ति है, जो किसी समय भी उनके प्राण ले सकता है। इनका भविष्य हिटलरके जीवनके साथ बंधा है।

ये लोग गेस्टापोके I. A. विभागके साथ मिल-जुलकर काम करते हैं, जो कि हिमलरकी ओरसे हिटलरकी रक्षाके लिए नियुक्त है। ये लोग अहर्निशि पुलिस द्वारा हिटलर-सम्बन्धी समाचार पाते रहते हैं और पुलिसमैन दिन-रात गुप्तचर विभागके अधिकारियों, नात्सी नेताओं, हिटलर-पक्षियों तथा लेबर-फ्रण्ट, स्ट्रेन्थ थ्रू ज्वाय, ए० आर० पी० बैण्ड, युवक आन्दोलन आदि नात्सी संस्थाओंसे समाचार संग्रह किया करते हैं। नात्सी-पार्टीके प्रत्येक सदस्यको इस बातकी आज्ञा दी गयी है कि चौबीसों घण्टे वह जर्मनीके विशाल देशमें हिटलर-विरोधियोंकी खोज करे, जिसका परिणाम यह होता है कि किसी भी हिटलर-विरोधी संस्था एवं आन्दोलनका पनपना असम्भव-सा हो जाता है।

मगर इसके मानी यह नहीं हैं कि आज तक किसीने भी हिटलरकी हत्या कर सकनेकी जुरअत अथवा प्रयत्न नहीं किया है—तब, जब कि अपने उत्तराधिकारी जेनरल गोयरिङ्गकी सुन्दर, स्वेडिश काउण्टेस, प्रथम पत्नीका देहान्त होनेपर हिटलर अन्य लोगोंके साथ बर्लिनके बाहर 'स्कोर्फ हीड' (Skorfheid) के जङ्गलमें उसे दफनाने गया था। मगर तब हिटलर 'डर फ्यूरर' नहीं बन पाया था। एक विरोधीने ४०० गजकी दूरीसे, एक वृक्षके नीचे छिपकर उसपर गोली चलायी थी, मगर हिटलरको न लगकर वह उसके एक सहकारीको लगी। विरोधीको फिर दुबारा गोली चला सकनेका अवसर ही न मिला। वह वहीं—उसी पेड़के नीचे ढेर कर दिया गया था। दूसरा प्रयत्न अभी हाल ही में 'बिअर सेलर' (Bear Cellar) नामक म्यूनिखके एक विशाल हालमें हुआ था, जब कि भाषण समाप्त करनेके बाद और बम फटनेसे १३॥ मिनट पहले ही हिटलर वहांसे रवाना हो चुका था। वह मेज, जिसकी बगलमें खड़े होकर, तथा वह छत, जिसके नीचे खड़े होकर हिटलरने भाषण दिया था, बमके विस्फोटके कारण उड़ गयी थी।



हमारे सामाजिक और साहित्यिक कुसंस्कार

श्री कमलाकान्त शर्मा, एम० ए०

दुनियाके नक्शेकी लकीरें बदल रही हैं, बड़े-बड़े परिवर्तन होते जा रहे हैं और दुनियाका चेहरा बदलता जा रहा है। ये ऊपरके परिवर्तन हैं, जिन्हें हमारी आंखें स्पष्ट देख रही हैं; पर इनके भीतर भी परिवर्तन हो रहा है। यह आन्तरिक परिवर्तन चुपचाप होता चल रहा है और इसमें सन्देह नहीं कि इसकी प्रतिक्रियायें सतहपर भी उभर उठती हैं; पर साधारणतः इनकी ओर लोगोंको नजर उठानेका अवकाश नहीं है।

और जब यह सङ्घर्ष चल रहा है, तब मनुष्यके पास इतना समय है भी नहीं कि वह एक जगह रुककर देखे और सोचे कि इस परिवर्तन-कालमें कौन-सी विचार-धारायें टकरा रही हैं, किन प्राचीन समस्याओंने नया रूप धारण किया है और कौन-सी नवीन समस्यायें उठ खड़ी हो गयी हैं। वह कुछ उलझा-सा एक अनमनीके साथ बढ़ता चलता है। समस्याओंके प्रति यह उसकी स्वेच्छामूलक उपेक्षा नहीं है; पर वस्तुतः उपेक्षा हो रही है और इसकी प्रतिक्रियाओंसे देश अपनेको अछूता नहीं रख सकता।

लेकिन दुनियामें जब इस प्रकारके परिवर्तन होते जा रहे हैं, हमारे देशकी स्थिति क्या है। हमारे देशमें मस्तिष्क और हृदयका द्वन्द्व-युद्ध छिड़ा हुआ है। हमारा मस्तिष्क विज्ञानकी रोशनीमें हमारी समस्याओंको देखता और उनका समाधान करना चाहता है। वह देखता है कि नवीन परिस्थितियोंने, नवीन आविष्कारोंने, नवीन समस्याओंने हमारे जातीय जीवनके प्रत्येक क्षेत्रको घेर लिया है और उनका समाधान नवीन साधनोंसे ही होगा, जीवनकी नयी रूप-रेखा सोचनी और निर्धारित करनी होगी; पर हमारा हृदय है, जो हमारे मस्तिष्कको हैरान कर डालता है। हमारा हृदय आज भी परम्पराओंकी, रूढ़ियोंकी शृङ्खलामें बंधा हुआ है। प्राचीन विचारोंकी प्रतिक्रियाओंसे वह आज भी अपनेको मुक्त नहीं कर सकता और अपने मस्तिष्कसे प्रभावित होकर हम कुछ कहना भी चाहते हैं, तो हमारा हृदय नहीं मानता।

हमारे सामाजिक जीवनमें इस प्रकारके द्वन्द्वोंके दर्जनों उदाहरण देखनेको मिलेंगे। हमने जबसे साम्यका गीत गाया है, जबसे हमने देखा है कि छूत-अछूतका पचड़ा आम तौरपर वर्ण-भेदके मिथ्या अहङ्कारपर ही अवलम्बित है, जबसे हमने समझा है कि 'कर्मणा' जाति-विभेदका आज कोई अर्थ नहीं रह गया है, जब कि विभिन्न वर्गोंके लिए आज कर्म-क्षेत्र निश्चित नहीं रह गये हैं, जबसे हमारी तार्किक शक्तियोंने हमें विश्वास दिलाया है कि इस प्रकारके गलत आधारोंपर स्थापित व्यवस्थायें समाजमें घृणा और कुरुचि फैलाकर समाजकी आन्तरिक शक्तियोंको भीतर ही भीतर क्षीण करती चल रही हैं, तभीसे हमने इनके विरुद्ध आक्रमण करना शुरू कर दिया है और इनके समूल उच्छेदके लिए हमारे प्रयत्न चल रहे हैं, हमने इन प्रयत्नोंके परिणाम भी देखे हैं और हमने देखा है कि वस्तुतः इनकी वाञ्छनीयतामें किसी प्रकारका सन्देह हो ही नहीं सकता, इसलिए हमारी बुद्धि कहती है कि हमारे समाजकी व्यवस्थाओंकी नयी रूप-रेखा निर्धारित करनी होगी। यह हमारा मस्तिष्क—हमारी बुद्धि कहती है।

पर उधर है हमारा हृदय, जो परम्परासे एक खास ढङ्गसे महसूस करता आया है। वह हमारी बुद्धिके निर्देशको माननेको तैयार नहीं है। वह बुद्धिकी राहमें खड़ा होकर कहता है कि हमने माना कि रास्ता गलत नहीं प्रतीत होता, हमने माना कि स्थितियां बदल गयी हैं, समस्याओंने नया रूप धारण कर लिया है, सामाजिक जीवन नये रोगोंसे जकड़ उठा है—ऐसे रोगोंसे, जिनका निदान पुराने जमानेमें न था, जिनकी चिकित्सा पुराने जमानेमें न थी। पर हमारा मन नहीं मानता, हम चाहते हैं; पर हृदय गवाही नहीं देता।

हृदयकी ये अनुभूतियां तर्कके क्षेत्रमें भी स्थान रखने लगी हैं, क्योंकि ये अनुभूतियां संस्कार बनाती हैं। जातीय जीवनमें इन संस्कारोंका बहुत बड़ा मूल्य है। पर इन प्राचीन संस्कारोंके नामपर ही हम नवीन विचार-धाराओंका

स्वागत नहीं कर पाते। इनके नामपर ही हम जाति अथवा वर्ण-विशेषकी कुछ अत्यन्त आपत्तिजनक रूढ़ियोंका भी समर्थन करते हैं और इनके नामपर ही हम व्यक्ति-स्वातन्त्र्यकी अनेक ऐसी बातोंका समर्थन करते हैं, जो समय और परिस्थितियोंके प्रायः प्रतिकूल होती हैं। हमारे समाजमें आज जो नयी भाव धारायें टकरा रही हैं, दूसरी संस्कृतियों एवं सभ्यताओंके सम्पर्कने हमारे समक्ष जिन प्रश्नोंको लाकर खड़ा किया है, उनका सामञ्जस्य हम इन संस्कारोंके नामपर ही कर सकनेमें अपनेको असमर्थ पाते हैं। संस्कारोंके नामपर हमारे सभी तर्क कमजोर पड़ जाते हैं और कुछ एक ऐसी प्रवृत्ति-सी बन गयी है कि आत्माकी स्वाधीनताके नामपर हम इस प्रकारके संस्कारोंको प्रश्रय देते हैं।

और अगर हम ऐसा न करते होते, तो हमारे समाजकी आज यह:स्थिति न होती। दुनियामें आज जब उन्नतिकी दौड़ हो रही है और संसार नवीन उपादानोंसे अपनेको सुसज्जित कर रहा है, तब हम सामाजिक प्रश्नोंको लेकर दार्शनिक विश्लेषणमें लगे हुए हैं। और ये प्रयत्न महा हस्यास्पद सिद्ध हो रहे हैं। १९४० में हमारे जो सामाजिक प्रश्न उठ रहे हैं, उनके समाधानके लिए भी हम मनु और याज्ञवल्क्यकी स्मृतियोंमें रोशनी ढूंढ़ते हैं। सामाजिक वातावरण, समाजिक परिस्थितियों तथा समाजसे सम्बन्ध रखनेवाली अनेक दूसरी समस्याओंकी उपेक्षा कर हम प्राचीन धर्म-ग्रन्थोंमें ही प्रकाश ढूंढ़ रहे हैं, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि ऐसे विचारोंके लिए—जो खूब स्वस्थ एवं हितकर हैं—हमारे समाजमें स्थान नहीं है, अगर स्मृतियों और दूसरे धर्म-ग्रन्थोंमें इसके लिए व्यवस्थायें नहीं हों। धार्मिक सुधारोंका हमारे देशवासियोंने इसीलिए जबर्दस्त विरोध किया और आज भी हमारे सार्वजनिक जीवनमें इस प्रकारके विचारोंको प्रश्रय नहीं दिया जाता। निपट राजनीतिक क्षेत्रोंमें भी ऐसे लोगोंकी सफलताके द्वार खुले हुए नहीं हैं, जिन्होंने सामाजिक जीवनमें रूढ़ियों और परम्पराओंका विरोध किया है। धर्मकी मर्यादाके नामपर नये विचारोंका विरोध आज हमारे जीवनकी एक आम बात हो गयी है और इसके परिणाम जिन रूपोंमें हमारे सामने उपस्थित हुए हैं, वे देशके लिए घातक सम्भावनाओंसे भरे हुए हैं। राजनीतिमें धर्मके प्रवेशसे समाजको अनेक वर्गोंमें विभाजित होनेकी सम्भावनासे भी बढ़कर राजनीतिक उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए धर्मको साधन बनाना कहीं अधिक घातक है। आजके राजनीतिक अवसरवादके युगमें इस प्रकारके धार्मिक प्रयोगोंके उदाहरण सर्वत्र मौजूद हैं, इन्हें खोजनेके लिए कहीं जाना नहीं होगा। यह तो हुआ धर्मके दुरुपयोगका प्रश्न। वास्तविक प्रश्न यह है कि धर्मसे हमारा जीवन इतने दिनों तक जकड़ा रहा है और हमारे दैनिक कार्योंपर भी धर्म इतना हावी रहा है कि उसके नामपर हम आडम्बरों और उन रूढ़ियोंको भी तोड़ फेंकनेसे हिचकिचाते हैं, जिनकी घातकताके विषयमें हमें पूर्ण निश्चय हो गया है। हमारे समाजमें आज भी न जाने कितनी रूढ़ियां इसीलिए पनपती आ रही हैं और सारा सामाजिक जीवन आडम्बरोंसे इतना भर गया है कि वास्तविकताओंकी उपेक्षा हो रही है। परिणाम यह हो रहा है कि दुनियाकी उन्नतिकी प्रतियोगितामें हमारी सामाजिक प्रगति अत्यन्त शिथिल है।

वर्ण-व्यवस्था इसलिए हमारे गलेमें बंधी हुई है, क्योंकि आजसे हजारों वर्ष पहले वह बन चुकी थी; भले ही आज उसकी कोई उपयोगिता समाजके लिए रहे या न रहे। अछूतोद्धार इसलिए एक विकट प्रश्न बन गया है, क्योंकि हजारों वर्ष पहले कहीं किसी ऋषिने ऐसा आदेश दे दिया था। बाल-विवाह इसलिए नहीं रोके जा सकते कि ऐसा न करनेपर मां-बापको पाप लगेगा और तलाक इसलिए नहीं दिये जा सकते कि शास्त्रमें इसके लिए व्यवस्था नहीं। स्थिति यों है कि शास्त्रीय व्यवस्थाओंके सामने सामाजिक आवश्यकताओंका कोई मूल्य नहीं रह गया है। और यही वह स्थल है, जहांसे सामाजिक जीवनका ह्रास प्रारम्भ होता है; क्योंकि सामाजिक आवश्यकतायें पूरी करनी होंगी, भले ही इनके द्वार आप बन्द रखें। परिणाम होता है अनाचार और सामाजिक विश्रृङ्खला।

'सामाजिक जीवन' शब्दसे जिस व्यापकताका बोध होता है, उसके अन्तर्गत धर्म और साहित्य भी आते हैं। धर्मके सम्बन्धमें कुछ बातें हमने ऊपर लिख दी हैं। सामाजिक उत्थानमें इन संस्कारोंने जितनी बाधा डाली है, उतनी शायद ही किसी और बातसे पड़ी हो।

जो बात सामाजिक क्षेत्रमें देखनेको मिली है, वही साहित्यके क्षेत्रमें भी दिखाई पड़ी है। हमारा साहित्य भी आज संस्कारोंमें जकड़ा हुआ है। हमारे साहित्यसे पुराने संस्कार आज भी मिट नहीं सके हैं। यहां भी वही वाह्याडम्बर, वही पुराना राग, वही मिथ्या प्रलाप। हमारे साहित्यके अनेक अङ्ग आज भी जो अधूरे पड़े हैं, इसका कारण वह भेड़ियाधसान है, जिसकी प्रवृत्ति हमारे साहित्यमें है। जिस विषयका एक ग्रन्थ निकला, उसीपर और प्रायः उन्हीं सामग्रियोंके आधारपर कितनी ही पुस्तकें निकल जाती हैं और जिन विषयोंको अछूता रखा गया, वे अछूते ही रह गये।

हमारे साहित्यमें कविताका अङ्ग सबसे अधिक विकसित है, अतः उसके सम्बन्धमें कुछ विचार कर लेना चाहिए। वर्तमान हिन्दी-कविताको ब्रजभाषाकी जो विरासत मिली है, उसमें उसके संस्कार भी अनेकांशमें चले आये हैं और यद्यपि उनके रूपमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन हुआ है, पर 'स्पिरिट' दोनोंमें एक ही है। मानवकी कमजोर प्रवृत्तियोंका मनोरञ्जन करना ही ब्रजभाषाके कुछ कवियोंने जैसे अपना उद्देश्य बना लिया था, तो आजकी कविताका एक बहुत बड़ा अंश भी उसी दिशामें किये गये प्रयत्नोंका परिणाम है। हमारा कवि आज भी उन्हीं पुराने स्वप्नोंकी दुनियामें विचरण कर रहा है। उसे जीवनकी वास्तविकताओंसे कोई मतलब नहीं, समाजकी समस्याओंकी उसे परवाह नहीं; क्योंकि वह अपनेको समाजकी इकाई मानकर चलनेको तैयार नहीं है। हमारे देशमें प्रगतिशील साहित्यकी रचना जो नहीं हो सक रही है, उसका कारण यह है कि हमारा साहित्यिक लोक-मनोरञ्जनके आदर्शपर चलकर लोक-शिक्षणको कोई महत्त्व नहीं देना चाहता। पहलेके कवियोंने दरबारमें रहकर अपने पालकोंकी विरुदावलियां गायीं, तो आजका कवि 'स्वान्तः सुखाय'के नामपर नीमके पेड़के नीचे चटाईपर पड़े-पड़े परियोंके लोकमें किन्नरियोंका स्वप्न देख रहा है। पास ही एक रोगी कराह रहा है और कविजी इन्द्र-धनुषके रङ्गोंसे अपनी प्रेयसीके अधरोंकी तुलना कर रहे हैं। ब्रजभाषाकी विलासी मनोवृत्तियां आधुनिक साहित्यमें भी अनेकांशमें उतर आयी हैं। हमारे साहित्यिकोंको समयकी परवाह नहीं, सामाजिक अवस्थाकी परवाह नहीं और सबसे अधिक पीड़ित मानवताकी परवाह नहीं; उन्हें परवाह सिर्फ इस बातकी है कि उनके साहित्य-सृजनके काममें कोई बाधा न दे, और उनका यह साहित्य-सृजन क्या है, मिथ्या प्रलापोंका या तो संग्रह अथवा निराशाका रुदन। मानवताके नामपर पग-पगपर शपथ खानेवाले इन लोगोंसे कोई पूछे कि तुमने मानवताके नामपर रो-रोकर साहित्यका समुद्र तो भर दिया, पर मानवकी वास्तविक समस्याओंको देखने और समझनेकी प्रवृत्ति तुमने कब दिखायी। उनसे कोई पूछे कि देशमें आज जो समस्यायें उठ खड़ी हुई हैं, उनकी उपेक्षा करके तुमने जो नीरोकी भांति वीणा बजानी शुरू की है, उसकी भीषणता क्या तुमने महसूस की है? 'आत्मानुभूतियोंको रो-रोकर भुलाना ही हमारे कवियोंके 'भाग्यकी विडम्बना' हो रही है, जैसा कि एक कवि महोदयने इन पंक्तियोंके लेखकसे कहा था। एक दूसरे कवि हैं, जो सदैव 'पीड़ाओंका राग' ही सुनते हैं और उनसे बात कीजिये, तो आह भरते हुए बोलते हैं, मानो उनपर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा है। वे कहते भी हैं कि 'अन्तरकी व्यथायें करोती रहती हैं।' अठारह-अठारह सालके नवयुवकोंको भी हमने विरहका राग रोते देखा है। मेरे एक मित्र एक अच्छे-से पत्रके सम्पादक हैं, उन्होंने एक बार बताया कि उनके पास एक सतरह-अठारह सालके नवयुवकने एक कविता उपस्थित की। कवितामें 'व्यथाका रुदन' था, इसलिए सम्पादकने उनसे पूछा कि क्या वास्तवमें इतनी छोटी उम्रमें 'उनका संसार उजड़ चुका' है, क्या उनके मां-बाप मर गये और वे अनाथ हो गये। सम्पादक महोदय दयालु प्रकृतिके आदमी हैं, अतः उस नवयुवक कविके इस अल्पवयमें ही अनाथ हो जानेके अनुमानसे उन्हें बड़ी पीड़ा मालूम हुई। और उसके सामने वे यथासाध्य सहायता करनेकी बात रखना ही चाहते थे कि कविजीने रहस्योद्घाटन करते हुए कहा कि कवितामें उन्होंने "व्यथाका वर्णन किया है, जैसा कि बच्चनजी आदि करते हैं।" अब सम्पादकजीकी आंखें खुलीं। उन्होंने बालकको सिरसे पैर तक देखा और चकित रह गये कि इस अल्पवयसे ही इस अभागेने कविताके नामपर इस प्रकार रोना क्यों शुरू किया।

हमारा ख्याल है कि इस अभागे देशमें ही इतनी अल्पवयमें नवयुवक इस प्रकारका रोना आरम्भ करते हैं।

दूसरे देशोंमें इस उम्रके नवयुवक जब व्यायाम करना और तलवार-बन्दूक चलना सीखते हैं, तब इस देशमें नवयुवक प्रेम-गीत गाने लगते हैं और इसके साथ ही भाग्यको कोसना, निरन्तर आंसू बहाना, आत्मघात करना, नीरव-व्यथामें तड़पना आदि शुरू कर देते हैं। एक सिद्धान्त है कि मनुष्य अपने विचारोंका दास हुआ करता है। जो नवयुवक इस अल्पवयसे रोना-तड़पना सीखेगा, वह आगे चलकर कुछ और होश-हवासवाले काम कैसे कर सकता है? ऐसा दूषित मानसिक स्वास्थ्य उसके शरीरको खा जायगा और समाज ऐसे कवियोंकी विशाल सेनाके बलपर भला कैसे सुरक्षित रह सकेगा। लेकिन साहित्यके कुछ प्राचीन संस्कार हैं, जिनके कारण इस प्रकारके कलाकारोंको इस प्रकारके कितने वाह्या-डम्बरोंमें फंसना पड़ता है। उन्हें अपने द्वारा रचे हुए विचारों-के चक्रव्यूहमें चक्कर काटना पड़ता है। ये संस्कार ही हमें नवीन दिशाकी ओर बढ़ने नहीं देते। ऐसे कलाकारोंकी बात और है, जो क्रान्तिदर्शी हैं और जो नयी दुनियाका स्वप्न देखते और उसे पृथ्वीपर चरितार्थ करनेके लिए अपनी प्रभावशाली कलाको साधन बनाते हैं। ऐसे मौलिक कला-कारोंको छोड़कर, जिनकी संख्या बहुत कम होती है, अधिकांश साहित्यिक संस्कारोंके दास बने रहते हैं। और इसका परिणाम यह होता है कि साहित्यमें जड़ता बनी रहती है, उसमें प्रगतिशीलता नहीं आ पाती।

और हिन्दीमें थोड़ी-सी प्रगतिशीलता आयी भी है, तो उसका भी स्वरूप जरा देख लेना चाहिए। हमारे साहित्यमें इधर प्रगतिशीलताके नामपर कुछ कवितायें लिखी गयी हैं, जिनमें नागरिक जीवनके बजाय ग्रामीण जीवनका चित्रण है, किसी बुर्जुआ परिवारकी तरुणीके चित्रणके स्थानपर ग्रामीण बालिकाका चित्रण है। चित्रणका विषय और शैली वही है, केवल अन्तर यह हो गया है कि बुर्जुआ समाजका चित्रण करते समय जिन पदार्थोंसे चित्रको सजाया जाता, उनके स्थानपर ग्रामीण समाजमें पाये जानेवाले पदार्थोंका सहारा लिया गया है। बाकी स्पिरिट वही है। फिर भी यह प्रगतिशील साहित्य है!

अगर यही प्रगतिशील साहित्य कहा जाय, तो स्व० प्रेमचन्द्रजीका साहित्य निश्चय ही अत्यन्त प्रगतिशील कहा जायगा, जिसमें 'उपले पाथने' और गाय दुहनेवालोंके वर्णनमें सैकड़ों पृष्ठ खर्च किये गये हैं। इस विषयमें प्रेम-चन्दका साहित्य एक और दृष्टिसे अधिक सराहनीय है कि उन्होंने जिनका वर्णन किया है, वे भी कुछ अंशोंमें उसे पढ़-कर अथवा सुनकर समझ सकते हैं; पर आजके प्रगतिशील साहित्यको तो वे लोग न पढ़ सकते हैं और न समझ सकते हैं, जिनका उनमें वर्णन होता है। बात यों होती है कि आजके प्रगतिशील साहित्यकी विशेषता यह है कि उसमें भाषा और शब्दोंका ऐसा प्रयोग किया जाय जो आम लोगोंकी समझमें न आये।

यद्यपि प्रगतिशील साहित्यकी परिभाषा ऐसी नहीं की गयी, जिसके पैमानेसे हम वर्तमान साहित्यको नाप सकें; पर आम तौरपर इससे जिस प्रकारके साहित्यका ख्याल उठता है, उसके अनुसार तो ये प्रयत्न अपना उद्देश्य सफल नहीं करते।

तो यह स्थिति है हमारे समाज और साहित्यकी, जिसके आधारपर हमें इस पुनर्जागरणके बादकी परिस्थितियों-को सुलझाना होगा। इस पृष्ठ-भूमिपर हमें अपने राष्ट्रकी नवीन रूप-रेखायें निर्मित करनी होंगी। काश, ये परि-स्थितियां कुछ और सुलझी और कुछ और विकसित होतीं और कुसंस्कारोंसे इन्हें थोड़ी और मुक्ति मिली होती! हम राष्ट्रके लिए जिस नवीन भाग्यका स्वप्न देखते हैं, उसके लिए वे आधार बहुत आशाजनक नहीं कहे जा सकते। मुक्तिका सङ्गीत इस पृष्ठ-भूमिपर नहीं ध्वनित हो सकता। हमारे मुक्तिमार्गकी ये बाधायें हैं—ये रूढ़ियां, ये कुसंस्कार और यह परम्परागत प्राचीनता-प्रेम—और इन्हें प्राणोंसे लपेटे रहनेसे हमारे पांव विजय-यात्राके लिए नहीं उठ सकते। प्राचीनता-का यह नागपाश काटकर हमें नवीनकी प्रतिष्ठाके मङ्गल आह्वानके लिए तैयार रहना होगा—अगर हमें जीना है—और अगर हमें वास्तवमें मनुष्योंकी भांति जीना है। रूढ़ियां और कुसंस्कारोंकी चिता-भस्मपर ही हमारे नवीन राष्ट्रकी प्रतिष्ठा होगी।

———

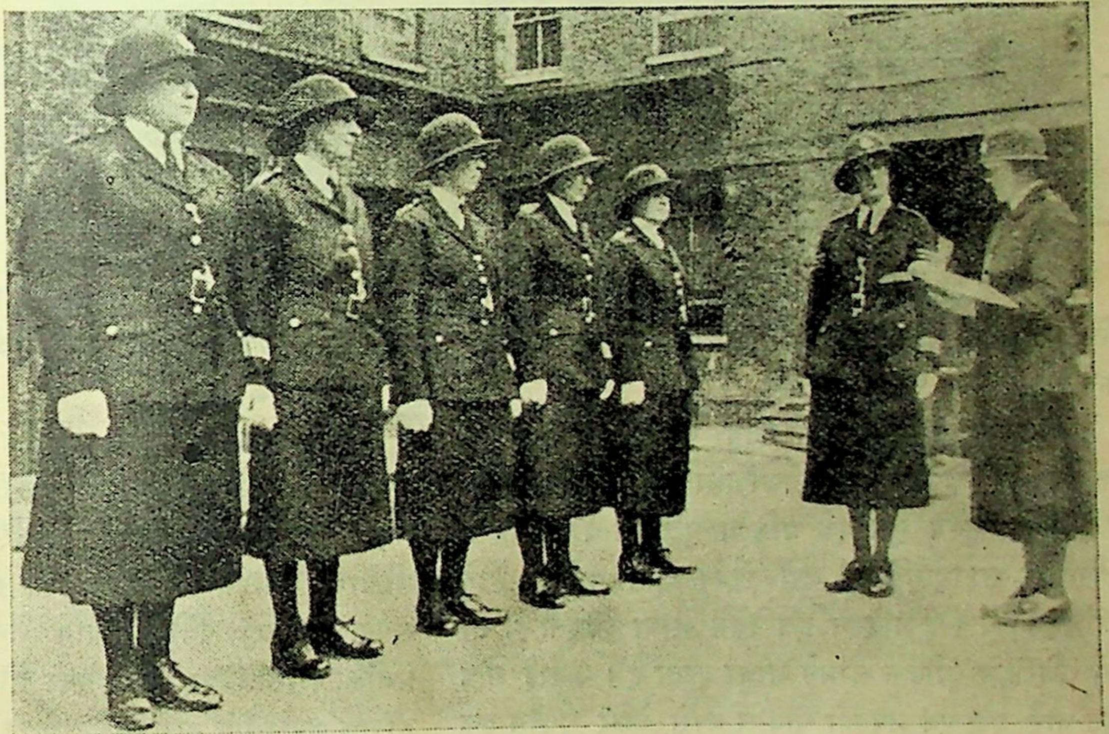


पील हाउसमें

श्री मानिकचन्द्र अग्रवाल

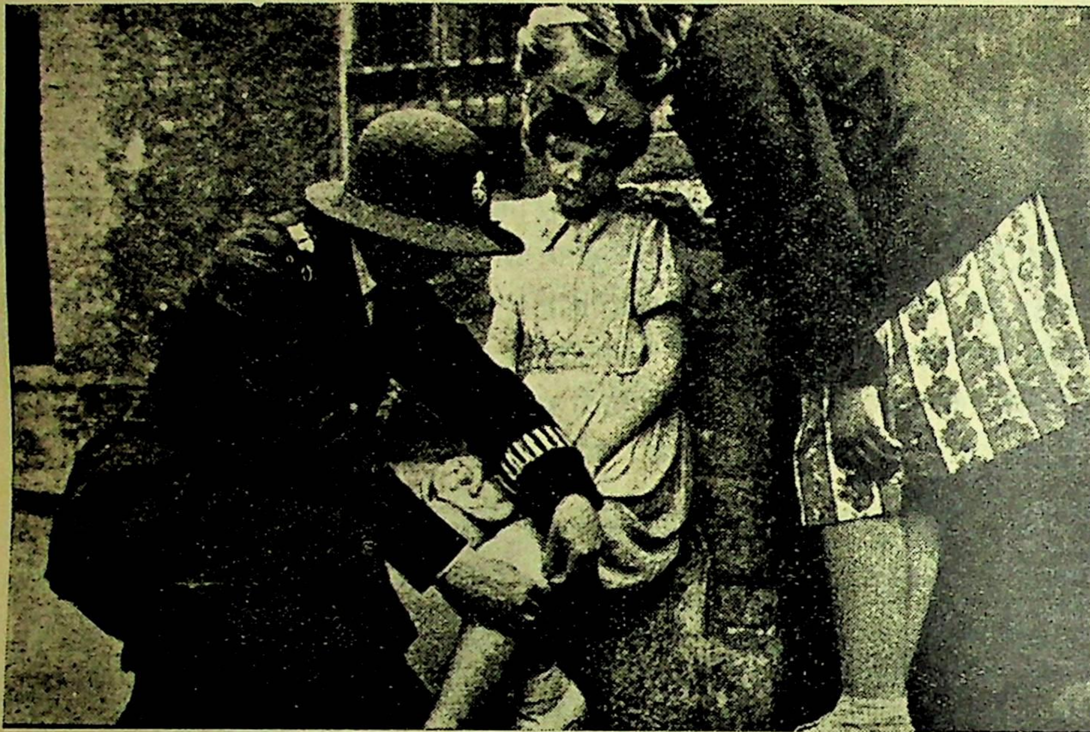
"मैं डाक्टर बनूंगी।" "मैं अध्यापिका बनना चाहती हूं।" "मैं हवाई जहाज चलाना सीखूंगी।"

स्कूल और कालेजसे निकलकर जब हजारों तरुणियां लन्दनमें अपने जीवनका एक नया अध्याय आरम्भ करनेके निमित्त सोचती हैं, तब प्रायः उनके हृदयोंके अन्दर यही एक-न-एक इच्छा रहती है। पर "मैं महिला पुलिस बनूंगी" यह इच्छा मुश्किलसे किसीकी होती है। शायद इसका कारण पेशेके नये होनेसे इसके विषयमें कम जानकारी होना ही है। किन्तु आज जो कुछ सौसे ऊपर महिलायें इस लाइनमें काम कर रही हैं, वे कितनी रक्षा-विभागकी सहायक हुई हैं, यह आज लन्दनका बच्चा-बच्चा जानता है। और फिर वे महिलायें भी तो एक अच्छी रकम कमाती हुई सुख-पूर्वक इस पेशेसे बसर कर रही हैं।



ड्यूटीपर जानेके पहले महिलायें परेड कर रही हैं।

आप लन्दनके किसी भी बड़े चौराहेपर एक महिलाको एक साधारण, किन्तु सुन्दर नीले रङ्गकी पोशाक, नीला टोप, सफेद दस्ताने एवं काले रङ्गके मोजे और जूते पहने व्यस्तताके साथ भीड़को नियन्त्रित करते हुए पायेंगे। जाड़ेमें वे ऊंचे-ऊंचे बूट और ओवरकोट पहनती हैं। चेयरिङ्ग क्रासले बोलन तकका रास्ता वे बता देंगी, कनाडा किस तरह जाया जाय और रातको कहां सुखपूर्वक ठहरा जा सकता है, यह वे एक गाइडकी भांति ठीक-ठीक बता सकती हैं। और सिर-दर्द होनेपर कौन-सी दवा ली जाय, यह भी सलाह मुफ्तमें मिलेगी। वे काफी जानकार और बड़ी चतुर होती हैं। अपहरण की गयी बालिकाओं एवं खोये हुए बच्चोंको भी वे खोज लाती हैं। पिछले वर्ष ही सात सौ चौरासी खोयी हुई बालिकाओंका उनके द्वारा पता चला। आपको यह जानकर कितनी प्रसन्नता होगी कि कई बालिकाओंको, जिन्हें विवश हो घृणित कर्म करनेके लिए बाध्य होना पड़ रहा था, महिला पुलिसकी सहायतासे या तो गुण्डोंके हाथसे छुटकारा मिल गया या संस्थाओं द्वारा उनके उदर-पोषणका प्रबन्ध हो गया और इस तरह वे समाजकी पतिताओंकी संख्या न बढ़ा सकीं। ये महिलायें स्त्री और तरुणी डकैतोंके दलोंमें घुल-मिलकर महत्त्वपूर्ण खबरें ले आती हैं और इस तरह जनताकी रक्षा होती है। कभी-कभी उन्हें अदालतोंमें स्त्रियोंकी देखरेखके



राहमें दुर्घटना होते ही महिला पुलिसकी प्रारम्भिक सहायता प्राप्त हो गयी है।

लिए भी रखा जाता है। जेलोंमें वे बन्दिनियोंकी हिफाजत करती हैं।

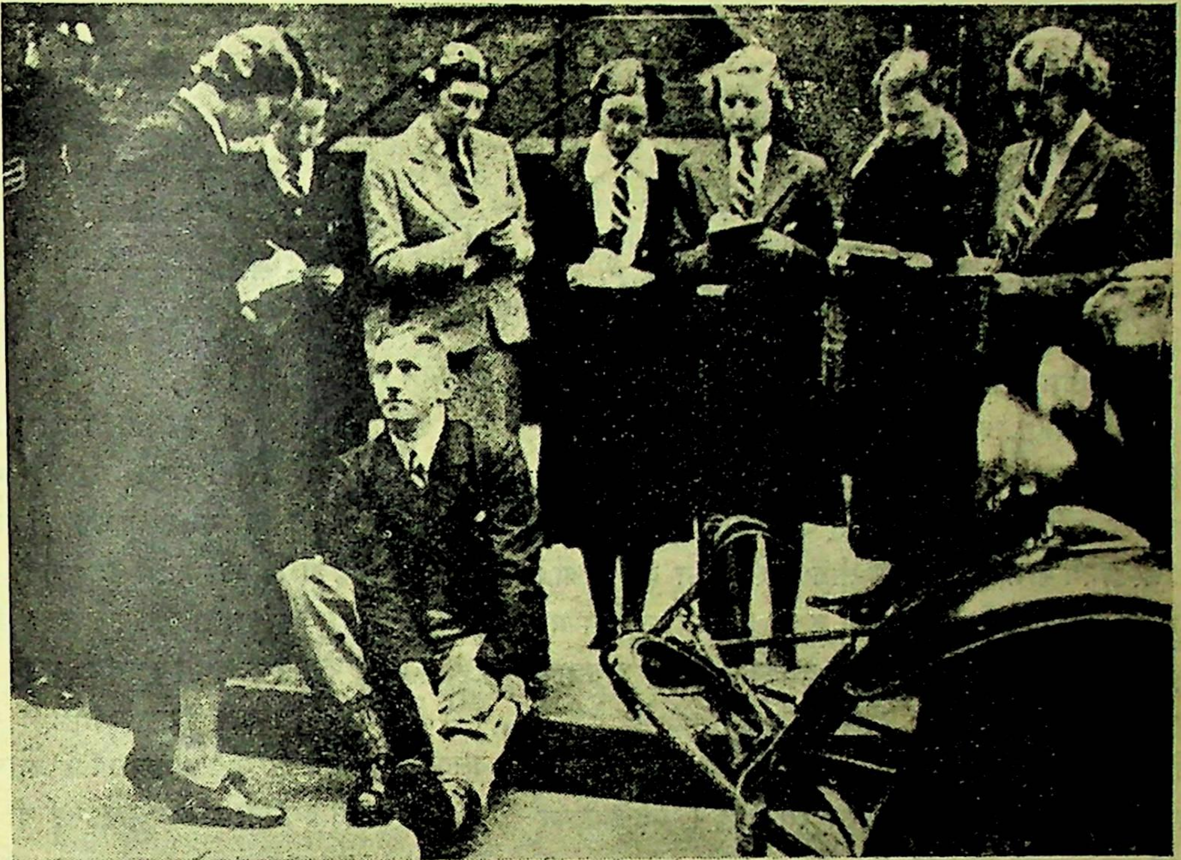
महिला-पुलिस-विभागमें कार्य करनेके निमित्त एक खास ढङ्गकी स्त्रियोंकी एवं विशेष शिक्षाकी आवश्यकता होती है। सबसे मुख्य गुण एक महिला पुलिसमें धैर्य, साहस, बुद्धिमत्ता, सहानुभूति एवं शान्तिपूर्वक कार्य करनेके होने चाहिए। जब कोई महिला इस पेशेमें आना चाहती है, तो उसे निरीक्षक बोर्डके सामने आना पड़ता है। ऊंचाई पांच फीट चार इञ्च एवं अवस्था चौबीस वर्षसे लेकर पैंतीस तक होनी चाहिए। कोई भी विवाहिता इस कार्यके लिए नहीं ली जाती है। उसके द्वारा पहले किये गये सामाजिक कार्य पासपोर्टका-सा काम देते हैं। अगर कोई महिला इस कार्यके लिए चुन ली जाती है, तो उसे वेस्टमिनिस्टर-स्थित पील हाउसमें ग्यारह सप्ताह तक शिक्षा प्राप्त करनी होती है, जहां उसकी कुछ शिक्षा पुरुषोंके साथ ही और कुछ खास स्त्रियोंकी कक्षाओंमें होती है। तीन महीनेकी शिक्षा समाप्त होनेपर दो वर्षों तक उसे अपना कार्य करते हुए शिक्षा मिलती रहती है।

महिला पुलिसको पुलिसके कर्तव्य और कानून सिखाये जाते हैं, जैसे रिपोर्ट लिखना, गिरफ्तारियां करना और गवाही देना आदि। उसे प्राथमिक चिकित्सा, स्वरक्षा और गैसमास्कका व्यवहार भी सीखना होता है। स्वरक्षाकी शिक्षा बड़ी जरूरी होती है; क्योंकि ऐसे अवसर आ सकते हैं, जब कि वह आफतमें फंस जाये और शारीरिक शक्ति उस समय उसकी सहायता न कर सके। महिला पुलिसको अपना शरीर चुस्त बनाये रखना पड़ता है। जुजुत्सूके दांव-पेंच भी सिखाये जाते हैं। और यों तो फिर पुलिसकी पोशाक ही बड़ी रक्षक होती है।

पील हाउसमें नकली प्रदर्शन बहुत किये जाते हैं। एक कमरेमें बाकायदा कचहरी लगती है और महिला पुलिस अदबके साथ जजके सामने उपस्थित होती है, और फिर सरकारी वकीलके प्रश्नोंकी झड़ीका सामना करती है। उस समय उसे बड़े विवेकसे काम लेना पड़ता है और समस्त प्रश्नोंका सिलसिलेवार उत्तर देना होता है। उसकी गवाहीपर ही एक अपराधीके अपराधकी गुरुता या लघुता मानी जाती है, इस कारण बड़ी सावधानीसे काम करना होता है।

पील हाउसके सामनेके मैदानमें एक मोटर बड़ी तेजीसे हार्न बजाती हुई घुसती है और लोगोंकी चीख-पुकारके बीच एक बिना सवारके दौड़ती हुई पुरानी साइकिलपर चढ़ जाती है, तब तक शिक्षक आकर दबी हुई साइकिलके पास आकर लेट जाता है और फिर महिला पुलिसकी छात्रायें दबे हुए शिक्षकको निकालनेका अभिनय करती हुई अपनी डायरियोंमें घटनाका विवरण, मोटरका नम्बर, दबे हुए साइकिल-आरोहीका नाम-पता आदि लिखती हैं और सबसे नजदीकके अस्पतालमें भेजनेका प्रबन्ध करती हैं। यह

सब पूरा होनेपर शिक्षक सबोंके कार्य एवं डायरियां जांचता है और गलतियां सुधारकर उन्हें इस लायक बना देता है कि वे समझ जाती हैं कि लन्दनकी किसी भीड़-भड़क्केकी सड़क पर वास्तविक दुर्घटना होनेपर किस तरह कार्य करना पड़ेगा।



पील हाउसमें मोटर दुर्घटनाका प्रदर्शन।

इसी प्रकार गैसके बम भी पील हाउसके मैदानमें अचानक फटते हैं और धड़ाधड़ छात्रायें गैसमास्क पहनतीं और गैससे बेहोश व्यक्तिको स्ट्रेचरमें लादकर ले जाती हैं। मैदानमें एक नकली चौराहा भी स्थित है, जिसपर खड़े होकर आवागमनपर नियन्त्रण रखना सिखाया जाता है।

पील हाउसमें शिक्षा ग्रहण करते समय वे प्रत्येक सप्ताह लगभग पचीस रुपये पाती हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि नित्य ही वहां चौबीसों घण्टे शिक्षा-कार्य चलता रहता है, बल्कि प्रत्येक सप्ताह बड़े हालमें कन्सर्ट पार्टी, नृत्य और चाय-पार्टीका भी प्रबन्ध होता है, जिसमें शिक्षक और छात्रायें दोनों ही भाग लेते हैं। तीस वर्ष कार्य करनेपर उसकी तनख्वाहकी दो तिहाई पेन्शन मिलेगी। पचीस वर्ष तक कार्य करनेके पश्चात् तनख्वाहका आधा पेन्शनमें मिलता है। कार्य करते समय कोई अङ्ग बेकार हो जाने या चोट आदि लगनेपर भी जीवन-भर सुखपूर्वक रहनेका प्रबन्ध किया जाता है।

सवेरे-शाम ड्यूटीपर जानेके पहले नयी महिला पुलिस-वाली:अपने कार्यालयके घेरेमें परेड करती हैं और दिन-भरके कार्यका निर्देश उन्हें सार्जेण्ट द्वारा मिल जाता है। पहले दिन तो:सार्जेण्ट अपने साथ नयी महिलाको उसका स्थान बता आते हैं। प्रत्येक दिन साढ़े सात घण्टे तककी ड्यूटी देनी पड़ती है। वर्षमें चौदह दिनोंकी छुट्टी मिलती है।

लन्दनके पार्कों एवं तैरनेके तालाबोंमें भी यह महिला-पुलिस घूम-घूमकर स्त्रियों और बच्चोंकी देखरेख करती रहती है। महिला-पुलिसका विभाग गत महायुद्धके अवसरपर स्थापित किया गया था और अब उसमें इतनी सफलता प्राप्त हुई है कि अन्य स्थानोंपर भी यह विभाग स्थापित करनेके प्रश्नपर गम्भीर विचार हो रहा है। भारतमें भी बम्बईमें जब मद्य-निषेधका कार्य आरम्भ हुआ, तो महिला पुलिसका अलग विभाग स्थापित किया गया और उसके द्वारा महत्त्वपूर्ण कार्य हुए, जिन्होंने देशका ध्यान महिला पुलिस विभागकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित किया।

———

अनोखी मुस्कराहट

श्री भगवतीप्रसाद 'चित्रकार'

"क्या कर रही हो बेटी ?" बुड्ढेने खांसते हुए कहा। उसकी आवाजमें कम्पन था, उसके हृदयकी व्यथाके कारण, जिसे निराशाओंने बर्फकी भांति ठण्ढा कर दिया था।

"क्या है बाबा ? कुर्तेमें पेवन्द लगा रही हूं।" जुमनीने बापके पास आकर कहा।

"कुछ नहीं...शामके लिए चावल तो नहीं होंगे। दो दिनसे कोई लाश नहीं आयी। अब सिर्फ एक एकन्नी मेरे पास रह गयी है। बेटी, जब तू बच्ची थी, उस वक्त इसी कब्रिस्तानमें रोज दो-दो, तीन-तीन लाशें आया करती थीं। दूर-दूर तक कोई और कब्रिस्तान न था। मुझे दिन-दिन-भर फुर्सत न रहती। अकेला आदमी, दफनका सारा इन्तजाम मुझे ही करना पड़ता था। पैसेकी कोई कमी न थी; लेकिन जो मिलता, उठा देता। इस दिनकी खबर न थी। एक तो यहां अब सिर्फ गरीबोंकी ही लाशें आती हैं। लड़-झगड़कर कहीं उन लोगोंसे दो-चार पैसे वसूल होते हैं। वर्ष छः महीनेमें कोई अमीर आदमी मर गया और उसके अजीज आ गये, तो कुछ रुपये मिल गये। लेकिन आजकल तो ऐसा सन्नाटा है कि दो-दो, चार-चार दिन तक कोई लाश नहीं आती। अब यह आखिरी एकन्नी रह गयी है। कोई कपड़ा हो तो दो, रातको खानेके लिए बाजारसे कुछ लेता आऊं। कोई आये, तो मेरा इन्तजार कराना। कहना, बाबा अभी आते हैं।"

आखिरी वाक्यपर बुड्ढेके सूखे हुए चेहरेपर एक चमक दौड़ गयी। भविष्यका चित्र कितनी ही निराशाओंमें क्यों न लिपटा हो, फिर भी अपना असर दिखाये बिना नहीं रह सकता। बूढ़ेने अपनी लकड़ी उठायी और झोंपड़ीसे निकल गया। उसके शरीरपर एक मैला, जगह-जगहपर पेवन्द लगा, चोगा था। उसके बाल लटके हुए थे और लम्बी उजली दाढ़ी, बिखरी हुई थी। वर्षोंसे हज्जामने उनमें हाथ न लगाया था। चेहरेपर झुर्रियां पड़ गयी थीं। कमर बुढ़ापेसे झुकी हुई। कमजोरीसे पैर चलनेमें डगमगाते और डेग मुश्किलसे जमते थे। वह कब्रिस्तानका 'मुजाविर' था। कब्रिस्तान आबादीसे बहुत दूर था। सुनसान मैदान, जगह-जगह कच्ची-पक्की कब्रोंके चिह्न। और उन्हींके पास उसका टूटा-फूटा झोंपड़ा —एक विभीषिकापूर्ण वातावरण। मुर्दोंकी इस बस्तीमें केवल एक-दो जीवित मनुष्य रहते थे। जुमनीकी मां इसके बचपनमें मर चुकी थी। बूढ़ेने फिर ब्याह न किया था। वह जुमनीको बहुत प्यार करता था। इसीलिए कि उसके लिए इस दुनियामें सिवाय जुमनीके और कोई न था।

जुमनी बापके जाते ही फिर पेवन्द लगाने बैठ गयी। उसे भी ताज्जुब था कि अब लोग क्यों नहीं मरते। अगर लाशें आनी बन्द हो जायंगी, तो फिर उसका बाप क्या करेगा। दाल-चावल कहांसे आवेंगे। वह अपने बापको पुकारकर क्या दिया करेगी। वह देर तक सोच न सकी, इसलिए कि उसकी बुद्धि अभी इन विचारोंपर सोचनेके योग्य न हुई थी। वह अभी कल्पना-संसारमें रहती थी। उसकी उम्र ही क्या थी। आवश्यकीय चीजोंको प्रौढ़ मस्तिष्क ही समझ सकता है। उसका मस्तिष्क केवल बीते हुए और आनेवाले युगकी स्वतन्त्र प्रतिमा-भर उपस्थित कर सकता था। वह सोचने लगी—परसाल क्या अच्छे दिन थे, जब सारे शहरमें प्लेग फैला हुआ था। कब्रिस्तानमें दिन-भर लाशोंका तांता बंधा रहता। उसका बाप कितना खुश नजर आता था। दिन-रात काममें लगे रहनेपर भी अपने बापको कभी उसने इतना खुश न देखा था। वह उसके लिए तरह-तरहकी मिठाइयां लाता। इतनी मिठाई उसने कभी न खायी थी—किसी पर्वमें भी नहीं। उसके सब अच्छे कपड़े उसी समयके थे। वह कुर्ता भी, जिसमें वह पेवन्द लगा रही थी, कैसे अच्छे कपड़ेका था। इतना पुराना होनेपर भी उसकी चमक-दमक वैसी ही थी और वह साड़ी, जो उसने ईदपर पहनी थी, उसका बाप कहता था, उसे बहुत छजती थी। अबकी पर्वमें फिर वह उसी साड़ीको पहनेगी।

"जुमनी !" बुड्ढेने झोंपड़ेका दर्वाजा खोलते हुए पुकारा। उसके सिर और दाढ़ीके बाल धूलसे ढके हुए थे। चेहरेकी सिकुड़नोंमें धूल भर गयी थी, जिससे चेहरेके आकारमें कमी हो

गयी थी। प्रकृतिका दयालु हाथ समयकी नश्वर गतिपर पर्दा डालनेका भान कर रहा था। बुड्ढेके कन्धेपर दो छोटी-छोटी गठरियां थीं। उनका बोझ कुछ वैसा न होता, लेकिन बुड्ढेकी कमर और झुक गयी थी। उम्रका बोझ उसको पीठपर कम था कि वह और अधिक बोझ सहन कर सकता! जीवनका भी बोझ होता है, जो हर सांसके साथ बढ़ता जाता है। शायद यही कारण है कि आखिरी उम्रमें कमर झुक जाती है। जुमनीने गठरियां बापके कन्धेसे उतारकर जमीनपर रख दीं। बुड्ढा चटाईपर बैठ गया। उसकी सांस फूल रही थी। चेहरेका पसीना सटी हुई धूलको गूंध रहा था और सांसकी तीव्रगतिसे चेहरेमें जो सञ्चालन होता था, उससे भींगी हुई धूलिके अणुवीक्षणीय पुतले बन रहे थे। प्रकृतिके बनावका फल यहां भी जारी था।

"बेटा, कोई आया था?" उसने जुमनीसे पूछा।

"नहीं बाबा।" जुमनीने कहा और बापकी फटी हुई कफनी अलगनीपर डालने लगी।

"कोई नहीं! अब हमारी किस्मत बिगड़ गयी, वर्ना इतनी कम मौतें शहरमें शायद कभी नहीं हुई थीं। बाप-दादाका पेशा है...छोड़ा नहीं जाता। जवानी तो ऐशमें गुजरी, अब बुढ़ापेमें ऐसी मुसीबत...या अल्लाह!!"

बुड्ढा रुआसा हो गया। आंसूकी दो बड़ी-बड़ी बूंदें गर्दीले चेहरेपर अपना चिह्न छोड़कर बुड्ढेकी दाढ़ीमें खो गयीं। बापको रोते देख जुमनी बापके गलेसे लिपट दिल खोलकर रोने लगी। दुनियावाले किसीकी मौतपर रोते हैं, ये बाप-बेटी दुनियावालोंकी जिन्दगीपर आंसू बहा रहे थे।

× × ×

दो बजे रात—

बुड्ढा चटाईपर लेटा खांस रहा है...और जुमनी निश्चिन्त प्रगाढ़ निद्रामें सो रही है। रातकी अंधियारीमें झोंपड़ीके अन्दर टिमटिमाते हुए चिरागकी लौ थी, लेकिन बुड्ढेके मस्तिष्ककी कालिमामें कहीं प्रकाशकी पहुंच नहीं थी।

"शाह साहब!" छाये हुए सन्नाटेको चीरते हुए एक आवाज बुड्ढेके कानमें पहुंची।

वह उठ बैठा। झोंपड़ीके बाहर एक आदमी उसे पुकार रहा था।

"कौन है?...कौन है?...मुझको बुलाते हो...क्या काम?"

"दिल्लीवाले सौदागरके लड़केका इन्तकाल हो गया। जनाजा सुबह यहां आयेगा। आप कब्र वगैरहका इन्तजाम ठीक रखिये।"

दिल्लीवाले सौदागरका लड़का मरा? ...बुड्ढेका दिल धड़क उठा।

यह एक परदेशी बड़े व्यापारी थे। बूढ़ेको रुपये काफी मिल जायेंगे। बेहद खुशीमें रातका बाकी हिस्सा आनेवाले रुपयोंकी चमक और झनकके ख्यालमें जागकर बिता दिया। और सुबहसे पहले कब्रके इन्तजाममें झोंपड़ीसे बाहर निकल गया। उसकी सूखी हुई टांगोंमें फुर्ती आ गयी थी और कमरके झुकावमें कुछ कमी। खुशीमें ही बल और जोशका उद्रेक छिपा है। चाहे उसका सम्बन्ध भविष्यकी कल्पनाकी उड़ानसे ही क्यों न हो।

जुमनी सुबह उठकर झोंपड़ीमें झाड़ू दे रही थी। बाहरसे कुछ लोगोंके जानेकी आवाज आयी। जुमनी दरवाजेपर आकर देखने लगी। बहुत-से आदमी एक लाशके पीछे-पीछे आ रहे थे।

एकने कहा—"कैसा हट्टा-कट्टा नौजवान था!"

दूसरेने जनाजेके साथ होकर पूछा—"आखिर इस बेचारेको हुआ क्या था?"

"क्या बतायें भाई!...एक औरतसे कुछ ताल्लुक था। उस चुड़ैलने एक आशनाके बहकानेसे कल रातमें इस बेचारेको जहर दे दिया। दिन-भर हालत खराब रही...और आखिर तीसरे पहरके पहले ही खत्म हो गया......। अफसोस!...मेरा बड़ा दोस्त था!"

जुमनी उनकी बातचीत ध्यानसे सुनती रही और जब वे कुछ आगे निकल गये, तो वह अपनी निगाहें जनाजेपर जमाये बे-अख्तियार हंसने लगी। और झोंपड़ीके अन्दर जाकर न जाने कब तक हंसती रही। झाड़ू देनेमें आज उसे एक खास लज्जत मिल रही थी। वह और दिनों जल्दी-जल्दी झाड़ू देकर दूसरे कामोंमें लग जाया करती थी, लेकिन आज उसका जी चाहता था कि बराबर झाड़ू देती रहे और साथ ही हंसती जाय। आज उसके झाड़ू देनेके अन्दाजमें एक नाज था। झाड़ूकी हरकत और कमरकी लचकमें एक अनोखा

मेल था। अगर कोई नाच-मास्टर होता, तो उसमें उसे खास तरहके नाचका पता चलता।

बुड्ढा कब्रिस्तानसे झोंपड़ीमें आया, तो उसकी आंखें खुशीसे चमक रही थीं। चेहरा बेहद खुशीसे खिल उठा था जिससे चेहरेकी सिकुड़नमें एक फैलाव आ गया था। बुड्ढेकी मुर्दा जवानी पलटनेकी कोशिश कर रही थी। खुशीकी बिजलीने उसे फिर जिन्दा कर दिया था। बुड्ढेने कांपते हुए हाथों रुपयोंको जुमनीके हवाले किया। जुमनीने एक सालसे इतने रुपये न देखे थे। देर तक हथेलीपर उन्हें देखती रही। चांदीके सिक्कोंकी चमकसे उसके चेहरेपर भी चमक पैदा हो रही थी।

× × ×

"जुमनी!" हनीफने बाहरसे आवाज दी। उसके हाथमें डाकका थैला था। हर हफ्ते उसे पासकी बस्तीमें डाक ले जाना होता था। आते-जाते वह हमेशा बुड्ढेके यहां कुछ देर बैठ जाता। जुमनी अपने बापके बाद सिर्फ हनीफको जानती थी, वह उससे निष्कपट और निर्भीक होकर बातें करती। वह ऐसे लोगोंमें पली थी, जहांपर आकर समाजके सारे बन्धनों और रस्मों रिवाजका खात्मा हो जाता था। बेजान लाशोंको पर्दा क्या! हया-सी चीज तो जिन्दगीके साथ चल बसी थी। फिर जुमनीको इन बातोंके जाननेका मौका कहां था।

हनीफ जवान था—खूबसूरत बदन, लम्बे कदवाला। बुड्ढेका उससे इस तरह मेल हो गया कि उसकी जुमनीका इतना आजाद मिलना उसे कभी नागवार न होता।

"क्यों, शाह साहब कहां हैं?"

"बाजार गये हैं। आते ही होंगे।...तुम इस हफ्ते न आये थे। मैं तुम्हारी राह देखती रही। बाबा भी पूछ रहे थे।"

"उस दिन मैं छुट्टी लेकर घर चला गया था। तुम राह क्यों देखती रही—क्या कोई काम था?"

"नहीं तो...यों ही पूछ लिया। गुमान हुआ कि शायद तुम बीमार पड़ गये। नहीं आना था, तो पहले कह देते। हम दोनोंको कुछ ख्याल न था...।"

"घरसे भाईकी चिट्ठी आयी थी। वह बीमार हो गये थे। उसी दिन छुट्टीकी दरख्वास्त मन्जूर कराकर, घर चला गया था। तुम्हारी तरफ आनेका वक्त न मिला।...क्या तुम दिन-भर इन्तजार करती रही?"

हनीफकी बातचीतमें मुहब्बतकी मिठास थी। उसकी आंखें उसका भेद खोल रही थीं। हनीफकी जुमनीसे मुहब्बत थी...बे-थाह। इसकी समझ उन दोनोंमें किसीको न हुई थी। मुहब्बत अपना पहला वार चोरीसे किया करती है। और इतना हल्का कि मुहब्बत करनेवालेको उसकी तमीज नहीं होती। फूलोंकी मारसे भी चोट लगती है। लेकिन उस चोटका अनुभव चोटकी तरह नहीं होता। अगर मुहब्बतका पहला ही वार धोखा हो, तो फिर कोई क्यों दिलमें जगह दे।

"क्यों इन्तजार करती रही? क्या कोई दूसरा काम करनेको नहीं था?"

"काम था क्यों नहीं, मगर...।" जुमनीने आहिस्तेसे कहा। जुमनीके जवाबमें एक दिल-कश लोच थी। हनीफ उससे विभोर हो रहा।

"हूं!...अब जाना। अच्छा, मैं चलता हूं। बहुत-सी डाक बाकी रह गयी है। शाह साहब आयें, तो मेरा सलाम कह देना।"

जुमनीने गर्दनकी जादू-भरी हरकतसे, जिसके साथ दीन-दुनियासे बेखबर बना देनेवाली अदा-भरी तिरछी निगाहें और होठोंकी हल्की मुस्कराहट मिली हुई थी, हनीफको विदा किया।

* * *

बुड्ढा बुखारसे हांफ रहा है। जुमनी सिरहाने बैठी उसका सिर दबा रही है। सख्त खांसीके साथ इस सुनसान आबादीमें कोई नहीं कि बुड्ढेके लिए कहींसे दवा तक लाकर देता। बुड्ढेका बुखार बढ़ता गया—यहां तक कि दिमागपर असर हो गया। जुमनीने आज तक किसीको बीमार होते न देखा था। उसकी मां उसके बचपनमें मर गयी थी और उसका बाप कभी इस तरह बीमार न हुआ था। उसे खबर न थी कि इस बीमारीका नतीजा क्या हो सकता है। हां, बुड्ढेकी तकलीफ देखकर उसे बेचैनी हो रही थी। वह 'बाबा बाबा' कहकर आवाज देती और जब कोई जवाब न मिलता, तो उसे एक गमसे मिली हुई हैरानी और ताज्जुब हो जाता। उसे क्या खबर

थी कि बुड्ढा दम तोड़ रहा था और जिस तरह उसने अपनी जिन्दगीमें न जाने कितने लोगोंको जमीनके नीचे छिपा दिया था, उसी तरह उसका निशान भी खाकके अन्दर खो जानेवाला था। सुबह होते-होते बुड्ढेकी रूह उड़ गयी। जुमनीने मुर्दे हजारों देखे थे, लेकिन कफनके अन्दर ढके हुए। मौतका मञ्जर उसने पहली बार देखा था। उसके बापकी आंखें पथरा गयीं—सांसकी आमदोरफ्त बन्द हो चुकी थी, बदन सर्द हो गया था। बापकी हालत देखकर उसका दिल पिघलने लगा और वह फूट-फूटकर रोने लगी। वह इसलिए नहीं रो रही थी कि उसका बाप उससे हमेशाके लिए छूट गया, बल्कि इसलिए कि अपने बापकी गैरमामूली हालतको समझनेके लायक नहीं थी। उसके आंसू उसकी नासमझीकी मजबूरीके इजहार थे। सुबहको रोजकी तरह हनीफ डाकका थैला लिये झोंपड़ीमें आया। जुमनी उसको देखकर मुस्करा दी। वह देरसे हनीफकी प्रतीक्षा कर रही थी, इसलिए कि उसे विश्वास था कि वह उसके बापकी इस गैरमामूली हालतका भेद बतला सकेगा।

'देखो तो, बाबाको क्या हो गया ?'

हनीफने बुड्डेके पास जाकर देखा। उसकी पेशानीपर हाथ रखा, तो उसकी आंखोंसे आप ही आप आंसू निकल पड़े। जुमनी भी रोने लगी।

"शाह साहब सिधार गये! उनके दफनका सामान करना चाहिए।" हनीफने आंसू पोंछते हुए कहा और झोंपड़ीसे बाहर चला गया।

कुछ देरमें हनीफ कुछ आदमियोंको साथ लेकर आया। जनाजा नहला-धुलाकर कफन पहनानेके बाद ले जाया जाने लगा। जुमनीके चेहरेपर खुशीकी लहर दौड़ गयी। वह मुस्कराने लगी और जब तक जनाजा उसकी नजरोंके सामने रहा, मुस्कराती रही। जनाजा दफन हो चुका, तो एकबारगी उसपर उदासी छा गयी। कब्रिस्तानसे लौटनेवालोंमें उसका बाप न था। यह उसके लिए एक अनोखा अनुभव था। उसकी आंखोंमें मुस्कराहटकी जगह आंसू भर आये और वह रोने लगी।

* * *

हनीफ जुमनीको अपने घर ले गया और दोनोंका ब्याह हो गया। जुमनीके लिए ब्याह एक नयी दुनिया थी। वह पहले सिर्फ अपने बाप और हनीफको जानती थी। उसने नारी और पुरुषका फर्क तक कभी महसूस न किया था। कब्रिस्तानका वातावरण लिये जुमनी अपने बापके साथ मर चुकी थी। जुमनी अपने बाप ही की तरह दूसरे लोकमें आ बसी थी। हम इस जिन्दगीमें भी न जाने कितनी बार मर-कर जीते हैं। जवानीकी जिन्दगी बचपनकी मौतसे होती है। बुढ़ापेकी आमद जवानीके लिए मृत्युका सन्देश है। फिर भी न जाने क्यों, लोग मौतके बादकी जन्दगीपर विश्वास नहीं रखते। और हनीफ—वह तो जुमनीके हुस्नोकमालका परवाना था। इससे एक मिनटको भी अलग होना गवारा न करता था। जुमनी भी हनीफकी गैरहाजिरीमें बेकरार-सी रहती।

पर जुमनीकी हरकतें कभी-कभी हनीफको हैरतमें डाल देतीं, गो उसके मुहब्बत-भरे दिलने पहले कभी उनका मतलब निकालनेकी कोशिश न की। कहीं मौतकी खबर पा जुमनी मुस्करा उठती और जनाजोंको देखकर मुंह छिपाकर हंसती! हनीफमें एकाध बार इसकी शिकायत सुनी और जुमनीको किसीके यहां मातमपुर्सीमें जानेसे मना किया, मगर ऐसी खबर सुनकर उसके पैर रुकते ही नहीं—आप ही आप उसे खींचकर घरसे बाहर लाते और वह भयानक मुस्कराहट…। हनीफको कुछ डर होने लगा…।

* * *

हनीफ बीमार पड़ा है। एक दिन देहातमें डाक बांटकर लौटते-लौटते जेठकी जहरीली दुपहरीमें उसे लू लग गयी। दवा हुई, लेकिन मर्ज बढ़ता ही गया। बुखार इतना तेज हुआ कि हनीफ बेहोशीकी हालतमें ज्यादा रहता।

एक दिन सहसा हनीफकी आंखें खुलीं, तो देखा, जुमनी उसकी ओर देखकर मुस्करा रही है।

पूछा—"मुस्करा क्यों रही हो ?"

जुमनी ऐसे चौंकी, जैसे वह किसी दूसरी दुनियाकी सैर कर रही थी। संभलकर बोली—"नहीं समझी, क्या कह रहे हो ?"

हनीफको बेहद ताज्जुब हुआ। अभी उसने अपनी ओर उसे मुस्कराते देखा था।

"तो तुम मुस्करा न रही थीं ?"

अकचका गयी—"नहीं तो···"और उसकी आंखोंसे दो बूंद आंसू टपक पड़े।

असल बात यह थी कि हनीफ जब बेहोशीकी हालतमें रहता, तो मुंह उजली चादरसे ढांक कर सोया रहता···और जुमनीके मस्तिष्कने समझा—मुर्दा है कफन ओढ़े···और वही अनोखी मुस्कराहट निकल पड़ी थी।

दूसरे दिन हनीफ इस दुनियासे चलता बना। जुमनी बच्चोंकी तरह धाड़ मार-मार कर रोने लगी।

प्रातःकाल हनीफकी लाश नहलाने और कफन पहनानेके बाद कब्रिस्तान ले जाने लगे, तो जुमनीपर वही अनोखी मुस्कराहट खेल रही थी। वही डरावनी हंसी। मृत्युकी देवीको अगर कभी हंसी आती होगी, तो उनकी मुस्कराहट भी ऐसी ही भयावनी होगी।

हनीफके भाईने जुमनीकी मुस्कानको देख लिया। अब लोगोंको विश्वास हो गया, वह डायन है। जो औरत अपने शौहरकी मृत्युपर भी हंसती रही, वह डायन नहीं तो क्या है?

हनीफके भाईने उसे घरसे निकाल दिया।

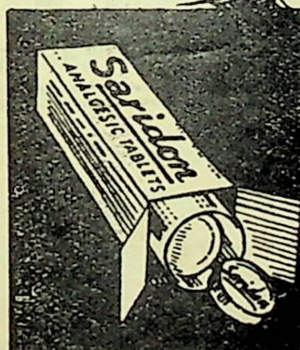
वह दर-दर मारी-मारी फिरने लगी।

लोग उसपर थूकते...बच्चे उसे चिढ़ाते...औरतें उसकी छायासे अपने बच्चोंको बचातीं...सुहागिनें उसकी सूरत देख थर्रा उठतीं......

उपेक्षा, अत्याचारने उसका मस्तिष्क फिरा दिया था। पागलखानेकी शरण गयी। यों वह बिलकुल निरीह रहती, पर किसी पागलकी मृत्यु होते ही उसकी वही भयानक मुस्कराहट फिर अपना डरावना रूप धरकर आ जाती! *

*[उर्दूकी एक कहानीके आधारपर—ले०]


सवेरे ८-३० बजे
ओह, असाध्य सिर दर्द!
सबेरे ८-४० बजे
वाह दर्द दूर होगया सारिडन को धन्यवाद!


Saridon
ANALGESIC TABLETS
सारिडन
सब प्रकार का दर्द दूर करता है



दासोंके बाजार अब भी लगते हैं

यद्यपि संसारके सभी सभ्य राष्ट्रोंने दासता गैरकानूनी कर दी है और दासता-विरोधी व्यवस्थापर राष्ट्र-सङ्घके चालीस राष्ट्रोंने हस्ताक्षर किये हैं; पर संसारसे दासताका अन्त नहीं हो सका है। संसारके कितने ही देशोंमें दास खुलेआम बाजारोंमें बिकते हैं। उक्त बाजारोंमें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियां ही अधिक संख्यामें बिकने आती हैं और आजीवन उन्हें दासी-जीवन बिताना पड़ता है।

यूरोपसे वायुयानसे चलनेपर २० मिनटके भीतर आप मोरक्कोमें पहुंच जाते हैं, जहां आप आसानीसे दासियां खरीद सकते हैं। आप बाजारमें लड़कियोंको सहमी-सी खड़ी देखेंगे। लड़कीकी एक कलाईमें एक रस्सी बंधी होती है। दास-बिक्रेताके हाथमें वह रस्सी रहेगी, ठीक उसी भांति, जिस प्रकार आप किसी जानवरकी रस्सी अपने हाथमें रखते हैं। बाजारका समय होते ही अरब सौदागर आते और मनचाही दासियां खरीद लेते हैं। अरब नारियोंकी भांति वे दासियां बुरकेमें नहीं होतीं। उनके चेहरे खुले होते हैं और कोई भी उनकी आंखोंमें खेलनेवाली दयनीयता देख सकता है।

बिक्रेता अरब सौदागरकी तरफ बिनती करते हुए कहता है—"सिर्फ ८९० पेसोता हुजूर, और जरा लड़कीका मुलाहिजा तो फरमाइये। कैसी चांद-सी सूरत...!"

लेकिन सौदागरको दामकी परवाह नहीं है। वह पहले लड़कीको भली भांति देखना चाहता है। इसलिए लड़कीको एक छोटे-से कमरेमें—ऐसे कमरे बाजारोंमें कितने ही बने हैं—ले जाते हैं, जहां उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग देखे जाते हैं और दरियाफ्त किया जाता है कि काम तो यह अच्छा कर सकेगी? स्वास्थ्य तो अच्छा रहता है? बच्चे इसे होंगे या नहीं? और तब दामोंको लेकर थोड़ा मोल-भाव।

अबसीनिया और सूदानसे प्रति वर्ष कितनी ही लड़कियां भगाकर उक्त बाजारोंमें पहुंचायी जाती हैं। उक्त अञ्चलोंमें चलनेवाले कारवांमें रातोंरात कितनी ही ऐसी तरुणियां चलती हैं, जिनके भाग्यका मूल्य उक्त बाजारोंमें सदाके लिए लगा दिया जाता है। रास्ते-भर कारवांवाले उन्हें छेड़ते और परेशान करते हैं और बाजारोंमें पहुंचते ही उनके खरीदार मिल जाते हैं। राहमें सीमान्तोंपर अफसरोंको रिश्वत देकर अथवा उक्त दासियोंको अपनी बहू-बेटी बताकर आसानीसे उन्हें साथ ले जानेमें सहूलियत हो जाती है। सीमान्तोंपर अब कड़ाई की जाने लगी है। बहुत दूर तक मजबूत तारके घेरे बनाये गये हैं और कानूनमें इतनी कड़ाई की गयी है कि आसानीसे कारवांवाले अफसरोंको धोखा नहीं दे सकते। इसलिए अब उन्होंने ईमानदार सौदागरोंकी भांति चलना शुरू किया है।

दासियोंके दामोंमें यद्यपि घटा-बढ़ी होती रहती है, पर आम तौरपर तीन-चार सौके भीतर उनके दाम उनके स्वास्थ्य, सौन्दर्य और उम्रको देखकर लगाये जाते हैं। असाधारण रूपसे सुन्दर दासियोंके लिए छः-सात सौ रुपये भी देने पड़ते हैं।

भूमध्यसागर, लाल सागर और फारसकी खाड़ीके इर्द-

गिर्द चलनेवाला यह दास-व्यापार अनेक नृशंसताओंसे भरा हुआ है। हजारोंकी संख्यामें स्त्रियोंकी खरीद-बिक्रीका जो यह व्यापार चल रहा है, उसमें दस-बीस तरुणियोंको अपने सौन्दर्यके आधारपर भले ही किसी भारी-भरकम सेठके घरमें सुसज्जित पलंग एवं विलास और वैभवके साधन मिल जायें, बाकीको तो घोर नारकीय जीवन बिताना पड़ता है। उन्हें सूर्योदयसे आधी रात तक घोर परिश्रम करनेके बाद भी भरपेट भोजन और लज्जा ढकनेके लिए काफी वस्त्र तक नहीं मिलता, उल्टे उन्हें तरह-तरहकी यातनायें मिलती रहती हैं।

कितने ही देशोंमें दास-व्यापारको रोकनेके लिए कठोर कानून बनाये गये हैं, लेकिन मोरक्कोमें—जहां यह व्यापार बुरी तरह चल रहा है—दास-विक्रेताओंको उन अवस्थाओंमें ही दण्डनीय ठहराया जा सकता है, जब कि उन्होंने दासकी हत्या कर डाली हो। अगर दासपर मालिक कठोर अत्याचार करता हो, तो दासको काजीसे दरख्वास्त करनेका अधिकार है; लेकिन इस अधिकारका उपयोग करना खतरेसे खाली नहीं है, इसलिए दास ऐसा करनेसे डरते हैं। लेकिन दासोंका यह अभियोग अगर सत्य भी प्रमाणित हो जाय, तो भी मालिकको सिर्फ यह दण्ड मिलता है कि वह दासको किसी औरके हाथ बेच दे। इन अवस्थाओंमें दासोंकी हालत बहुत बुरी हो जाती है।

इन लाखों दास-दासियोंकी हालत और भी कई दृष्टियोंसे बहुत बुरी है। जरा-सी भूलपर भी दो दर्जन कोड़े लगाना एक साधारण-सी बात है। अगर वे भाग जायें, तो पुलिस उनका भागे हुए कैदियोंकी तरह पीछा करती है। इन बदमाशोंने तरह-तरहसे यन्त्रणायें देनेके तरीके निकाल रखे हैं। पन्द्रह-पन्द्रह, सोलह-सोलह वर्षकी नवयुवतियोंको तपते हुए सूर्यके सम्मुख एकदम नङ्गी करके पेड़से बांध देते हैं और शरीरमें शहदका लेप कर देते हैं, जिससे मधुमक्खियां आकर्षित होकर शरीरपर बैठें और डङ्क मारें।

दास-दासियोंके बच्चे उनके मालिकोंके होते हैं। काम लायक होते ही वे या तो उसी घरमें दास बनकर रह जाते हैं अथवा मालिक उन्हें दूसरेके हाथ बेच देते हैं। दास-दासियोंके विवाहोंका इन्तजाम भी मालिक ही करता है और वह जिन स्त्री-पुरुषोंका चाहता है, उनकी भावनाओंका जरा भी विचार किये बिना विवाह करा देता है। जो दासियां अपना पति स्वयं चुनती हैं, वे कारागार और कोड़ोंका खतरा उठाती हैं।

सुदूर पूर्वमें भी दासोंकी खरीद-बिक्री खूब होती है। पर वहां यह काम अधिकतर गरीबीके कारण होता है। १९३४ में जापानमें प्लेग, सूखा, वर्षा आदि अनेक कारणोंसे किसानोंमें जो गरीबी आ गयी थी, उसके कारण हजारों किसानोंने अपनी खूबसूरत लड़कियोंको ४०।५० रुपयेमें गैशाओंके हाथमें बेच दिया था। केवल एक प्रान्तमें एक महीनेके भीतर ही ६०० लड़कियां इसलिए बेच दी गयीं, जिससे उनके मां-बाप अपना कर्ज चुका दें।

चीनमें लड़कियोंका मूल्य इतना कम लगाया जाता है कि मां-बाप साधारण-सी पारिवारिक कठिनाईको दूर करनेके लिए भी लड़कियोंको जमीन्दारोंके हाथ बेच देते हैं। युवतियोंका मूल्य ऐसी अवस्थाओंमें सवा-डेढ़ सौ रुपये तक लगाया जाता है। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि लड़कोंकी शिक्षाके लिए भी लड़कियोंको बेच दिया जाता है।

चीनमें दासियोंकी स्थिति जितनी दयनीय है, उतनी शायद ही और कहीं हो। छोटी-छोटी बच्चियोंको भी—जो मुश्किलसे खड़ी हो सकती हैं—घरके घोर परिश्रमके कामोंमें लगा दिया जाता है। मालिककी बच्चियां जब गुड़ियोंसे खेलती हैं, तब इन शिशु-दासियोंको कठोर घरेलू धन्धोंमें लगना पड़ता है।

संसारमें इस समय प्रायः पांच करोड़ दास-दासियोंकी संख्या बतायी जाती है—इस समय—इस १९४० में!

मनुष्यके लिए दूसरे लोकोंकी खोज

संसारकी आबादी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, उसके लिए स्थानकी खोज भी आवश्यक हो रही है। विज्ञानवेत्ताओंका कहना है कि पृथ्वीपर ६,०००,०००,००० आदमी—अबकी अपेक्षा तीन गुनी आबादी—रह सकते हैं। और पृथ्वीकी जनसंख्या जिस गतिसे बढ़ रही है, उसमें २०० वर्षोंमें यह संख्या पूरी हो जायगी। लेकिन अभी भी जितनी आबादी है, वही पृथ्वीपर मनुष्योंके कष्टका कारण हो रही है।

तो बढ़ी हुई आबादी कहां जाकर रहे? विज्ञान-वेत्ताओंका कहना है कि इसके लिए हमें दूसरे लोकोंकी खोज करनी होगी और इस दिशामें उन्होंने प्रयत्न भी करने शुरू कर दिये हैं।

वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि वह समय आ सकता है, जब कि शुक्रकी यात्रा करना उतना ही आसान समझा जायगा, जितना अमेरिकाकी यात्रा। वहां सोना, चांदी, तेल, रेडियम, सभी प्रकारके खनिज पदार्थ तथा ऐसी कितनी ही चीजें पायी जा सकती हैं, जिनका अभी तक वैज्ञानिक स्वप्न देखते रहे हैं। कितने ही नये उद्योग-धन्धोंके लिए वहां गुञ्जायश है और हमारा जीवन वहां अबकी अपेक्षा कुछ और प्रकारका होगा।

मनुष्योंके लिए दूसरे लोकोंकी खोज प्रारम्भ होती है चन्द्रलोककी अनोखी यात्रासे। शुक्र और मङ्गल ग्रहके लिए वैज्ञानिकोंकी यात्रायें शीघ्र ही आरम्भ होंगी और इन यात्राओंमें कितनी ही नयी बातें, नये अनुभव, जीवनके लिए नये उद्योग-धन्धे और नये ढङ्गका वातावरण देखनेको मिलेगा।

ऊर्ध्वाकाशमें उड़नेवाले राकेट जितनी तीव्रगतिसे उड़ने लगे हैं, उससे चन्द्रलोककी २३९,००० मीलकी यात्रा साधारणतः एक सप्ताहमें पूरी की जा सकती है। शोरगुल करता हुआ राकेट आकाश-यात्राके लिए निकलेगा और खतरोंकी परवाह न करके मनुष्य दूसरे लोकके रहस्योंका पता लगानेके लिए आगे बढ़ेगा। दूर तक फैला हुआ अग्नि-पुञ्जका घेरा राहमें पड़ेगा, जिसकी असहनीय गर्मी राहकी बहुत बड़ी बाधा है। इस गर्मीसे ही उल्कापात होता है, ऐसा कुछ वैज्ञानिकोंका विश्वास है।

कुछ साल पहले प्रो० अपेल्टनने अपनी खोजोंके आधार-पर कहा था कि २०० मीलकी दूरीपर एक अग्निपुञ्जका घेरा है, जिसमें २००० अंश फारे० का तापमान है। अतः अगर ऐसा अग्निपुञ्ज है, तो इस घेरेको भेदकर जाना मनुष्यके लिए अत्यन्त कठिन है। लेकिन इधर वैज्ञानिकोंने जो खोज की है, उसके अनुसार इस तरहके घेरेकी बात प्रमाणित नहीं होती।

चन्द्रलोक हमारे इतने नजदीक है कि ज्योतिर्विद वहांकी बहुत-सी चीजें देख सकते हैं।

वहांका तापमान बड़ा ही कठोर है। दिनमें—वहांका दिन हमारे १४ दिनके बराबर होता है—घड़ेका पानी खौलने लगेगा और रातमें २०० अंशका शीत बरदाश्त करना पड़ेगा। साइबेरियाका बर्कनोयात्स्क यद्यपि बहुत ठण्डा देश गिना जाता है, पर वहांका तापमान भी चन्द्रलोकका आधा ही है।

पृथ्वीपर जो आकर्षण-शक्ति काम करती है, उसका छठां अंश चन्द्रलोकमें है। अतः वहां चलनेपर आपके पैर बहुत ही हल्के-हल्के लगेंगे। और जब आप कूदेंगे, तो पृथ्वीकी अपेक्षा छः गुना अधिक ऊंचे कूद सकेंगे। दौड़ते समय आप अनुभव करेंगे, मानो बरफपर फिसलते जा रहे हैं।

पृथ्वीके ऊपर हमारे शरीरपर प्रति वर्गइञ्चपर १४ पौण्ड-का दबाव पड़ता है और हमारे शरीरको इसे ढोना पड़ता है। वैसा कोई दबाव वहां नहीं पड़ेगा, जहां—चन्द्रमा तथा दूसरे ग्रहोंकी भांति—वातावरण नहीं है; पर वहां रक्त-शिरायें फट जायेंगी, हमारी आंख, कान, नाक, यहां तक कि फेफड़ेसे भी रक्त-स्राव होने लगेगा, जब तक कि सारा रक्त निकल न जाय।

शरीरमें आक्सिजन फैलानेके लिए हृदयकी गति तेज करनी होगी, कान कांपने लगेंगे और हम इतनी जल्दी थक जायेंगे कि चल-फिर न सकेंगे। इसलिए चन्द्रलोकमें बसनेके पहले हमें इन कठिनाइयोंपर विजय प्राप्त करनी होगी।

चन्द्रलोकके नीचे भी तापमान करीब-करीब समान ही है—ऐसा कि पानी तत्काल जम जाय। इन सब कारणोंसे वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि चन्द्रलोक अथवा किसी और ग्रहमें प्राणी निवास नहीं करते; पर ऐसे वैज्ञानिक भी हैं, जो मङ्गल ग्रहमें निवासियोंकी आशा करते हैं और वहांकी नहरोंके वहांके निवासियों द्वारा निर्मित होनेका अनुमान करते हैं।

वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि मङ्गल ग्रहमें तरह-तरहके पेड़-पौदे पाये जाते हैं। मङ्गल ग्रहमें ऐसे काले धब्बे होते हैं, जो वसन्त कालके आरम्भमें छोटे-छोटे तथा अन्तमें बड़े-बड़े और खूब स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। पेड़-पौदोंके लिए हवाकी आवश्यकता होती है, अतः इनकी उपस्थितिसे अनुमान लगाया जा सकता है कि वहां मनुष्योंके लिए हवाका

अभाव नहीं है। मङ्गल ग्रह पृथ्वीकी अपेक्षा ठण्ढा है; पर चन्द्रलोककी अपेक्षा मङ्गल-लोक मनुष्यके लिए कहीं अच्छा है।

मङ्गल ग्रह पृथ्वीसे छोटा है, पर शुक्र प्रायः पृथ्वीके बराबरका है, और ज्योतिर्विदोंका ख्याल है कि मनुष्योंके लिए यह ग्रह सबसे अच्छा है, यद्यपि इसके सम्बन्धमें बहुत-सी बातोंकी जानकारी प्राप्त करना प्रायः असम्भव-सा है; क्योंकि यह सदा बर्फसे ढका रहता है। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि इसमें पानी भरा हुआ है। कुछ लोगोंका ख्याल है कि जब चन्द्रमा पृथ्वीको छोड़कर चला गया, तब उससे जमीनमें जो गड्ढा बन गया, वहीं आज प्रशान्त महासागर है। इसी प्रकार शुक्रके सम्बन्धमें भी कुछ लोगोंकी कल्पना है; पर शुक्रमें भाप उड़ती नहीं दिखाई देती, इससे अनुमान होता है कि वहां समुद्र नहीं है, मनुष्योंके रहने लायक जमीन वहां है। मनुष्योंके लिए वहां अनेक आकर्षण हैं। सुन्दर वातावरण, समान तापमान और स्वास्थ्यकर जलवायु। शुक्र सूर्यके निकट है, इसलिए गर्मी वहां अवश्य अधिक पड़ती होगी, लेकिन इतने विशाल क्षेत्रमें सर्वत्र एक ही प्रकारकी जलवायु सम्भव नहीं।

इन ग्रहोंके सम्बन्धमें अभी भी वैज्ञानिकोंको पूरी जानकारी क्या, आवश्यक यथेष्ट जानकारी भी नहीं प्राप्त हो सकी है। पर विज्ञानकी सहायतासे वैज्ञानिक इन नवीन लोकोंमें जाकर इनके सारे रहस्य खोज निकालेंगे, ऐसा उनका दावा है, और अभी तक ऊर्ध्वाकाशमें उनकी जो यात्रायें हुई हैं, वे उनके दावेको गलत नहीं प्रमाणित करतीं।

१५ अगस्त

कुछ दिन पहले पत्रोंमें छपा था कि हिटलरने घोषणा की थी कि १५ अगस्त तक वह शान्तिकी स्थापना कर सकेगा। सारी दुनियाके लोग इस दिनकी प्रतीक्षा जिज्ञासापूर्वक कर रहे थे और इंगलैण्ड और अमेरिकाके पत्रोंमें तो इस तारीखके बीत जानेकी विभिन्न आलोचनायें भी निकल चुकी हैं।

हिटलरने १५ अगस्त तो चुना, परन्तु उसने इस बातपर ध्यान नहीं दिया कि यह दिन कैसे अपशकुनका है। इसी दिन नेपोलियनका जन्म हुआ था। नेपोलियनने भी विश्व-विजयका स्वप्न देखा, पर उसे विफल होना पड़ा। नेपोलियनने हर बार जर्मनोंको युद्धमें पराजित किया और अन्तमें वाटरलूमें वह स्वयं भी पराजित हुआ, तो इसका कारण वेलिङ्गटन था, जर्मन नहीं।

अरबका रहस्यमय जादूगर कर्नल लारेन्स भी १५ अगस्तको पैदा हुआ था। इस लारेन्सके कारण ही एलेनबीके लिए पैलेस्टाइनकी विजय सम्भव हुई। इस विजयसे पूर्वमें जर्मन महत्त्वाकांक्षाओंके लिए सदाके लिए द्वार बन्द हो गये।

बाइबिलकी एक पुस्तक (Book of Kings) में हम पढ़ते हैं कि वर्षके सातवें महीनेके पन्द्रहवें दिन इजरायेलके राजा जेरोबोमने बेथेलमें तीन सुनहरे बछड़ोंका बलिदान किया और इस बातकी घोषणा की कि इसके बाद सभी सुनहरे बछड़ोंकी पूजा करनी पड़ेगी। इस प्रकार पुराने धर्मकी हत्या हो गयी, पर दूसरे वर्ष उसी दिन उसने एक पैगम्बरकी आवाज सुनी कि मूर्ति-पूजकोंका ध्वंस हो जायगा और इस भविष्यवाणीके अनुसार जेरोबोमका एक हाथ झुलस गया।

१५ अगस्तका दिन वह दिन है, जिस दिन ईसाकी माता स्वर्गासीन हुई थीं और जब हम देखते हैं कि हिटलरने अनेक राष्ट्रोंकी माताओंके लिए क्या किया है, तब वह दिन हिटलरके लिए शकुनसूचक कैसे हो सकता था।

नारियोंने इंगलैण्डकी रक्षा की

इस आक्रमणके पहले अन्तिम बार इंगलैण्डपर जो आक्रमण हुआ था, वह फ्रान्सीसियोंने २२ फरवरी १७९७ में किया था। उस समय १४०० फ्रान्सीसी सैनिक साउथ वेल्सके अन्तर्गत फिशगार्डके पास उतरे थे। एक दुस्साहसिक अमेरिकन जेनरल टेटके नेतृत्वमें यह आक्रमण हुआ था।

उतरनेके बाद सेनाने आगे बढ़ना शुरू ही किया था कि फिशगार्डकी महिलाओंने बड़ी चलाकीसे उन्हें रोक दिया। लाल लबादा और लम्बा टोप पहनकर और हाथमें झाड़ू लेकर वे एक बहुत बड़ा जत्था बनाकर आगे बढ़ीं। इसे देखकर आक्रमणकारियोंको धोखा हुआ कि लाल सेना आगे बढ़ रही है। फ्रान्सीसी सेना हिचकी और उसने दो दिन तक अपना आक्रमण रोक रखा कि इस बीचमें मुकाबला करनेके लिए वास्तविक सेना आ गयी और आक्रमणकारियोंको आत्मसमर्पण करना पड़ा।

आपका बच्चा कैसा होगा?

मि० ए० शीनफेल नामक एक वैज्ञानिकने प्राणि-विज्ञान सम्बन्धी अनुभवके आधारपर लिखा है—"यदि हिटलरके बच्चेको किसी यहूदीके बच्चेसे जन्म-कालसे बदल लिया जाय और फिर दोनों बच्चोंका पालन-पोषण अपने-अपने नकली पिताके पास हो, तो इस बातकी पूरी सम्भावना है कि जो बच्चा हिटलरकी सन्तान है, उसका स्वभाव, व्यवहार और सामाजिक दृष्टिकोण, सब बातें यहूदियों-जैसी हो जायंगी और यहूदीका बच्चा बिलकुल हिटलरकी भावनाओं-का आर्य बन जायगा।"

मि० शीनफेलके इस अनुभवसे स्वभावतः कई प्रश्न उठते है। विशुद्ध रक्त, वंशपरम्परा और जातिके प्रश्नकी ओर आज संसारके वैज्ञानिकोंका ध्यान आकर्षित हो रहा है। यों तो रोगोंके अध्ययनके लिए वंशपरम्पराका इतिहास अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु आज तो यह राजनीतिक दृष्टिसे भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय हो गया है।

जरा विचार तो कीजिये। आज आप जो कुछ हैं, जिस रूपमें हैं, उसे किसने बनाया? इसमें आपके निजी प्रयत्नका भाग कितना है और आप जो कुछ हैं, उसमेंसे कितना अंश अपनी सन्तानको दे सकते हैं? सन्तानके पुत्र या पुत्री होनेमें आपका कितना हाथ है, उसके चेहरे और नेत्रोंकी बनावट और उसके बालोंके रङ्गमें आपका कितना हिस्सा है, ये सब बातें प्रत्येक माता-पिताके मनमें आती हैं और यह जाननेकी इच्छा होती है कि इस विषयमें वैज्ञानिकोंका मत क्या है, वे क्या कहते हैं?

पहले पुत्र या पुत्रीका प्रश्न ही लीजिये। मि० शीन-फेलका मत है कि गर्भधारण होनेके समय ही यह निश्चित हो जाता है कि उस गर्भसे पुत्र होगा या पुत्री। पुत्र या पुत्री होना मातापर नहीं, पितापर निर्भर है। यदि पुत्री होनेको हो, तो उसे पुत्र कोई नहीं कर सकता। इसी तरह यदि पुत्र होना हो, तो उसे पुत्री कर देना किसीके भी लिए अशक्य है। लोगोंका ख्याल है कि लड़कियोंकी अपेक्षा लड़के ज्यादा पैदा होते हैं, क्योंकि वे लड़कियोंकी अपेक्षा ज्यादा बलवान और जन्मकालके कष्टोंको झेलनेमें ज्यादा समर्थ होते हैं। यह ख्याल बिलकुल गलत है। विज्ञानसे यह प्रमाणित किया जा सकता है कि अधिक लड़के उत्पन्न होनेका कारण यही है कि अधिक लड़के गर्भमें आते हैं। यह ख्याल भी गलत है कि लड़कियोंकी अपेक्षा लड़के ज्यादा समर्थ होते हैं, इसके विपरीत समर्थ होनेकी दृष्टिसे लड़कियोंकी अपेक्षा लड़के कमजोर ही होते हैं। इसीलिए सन्तुलन करनेके लिए प्रकृति स्वयं अपना काम करती है, लड़के अधिक संख्यामें गर्भमें आते हैं और उसका परिणाम यह होता है कि लड़कियोंकी अपेक्षा लड़कोंके ज्यादा मरनेपर भी समाजका काम चलता रहता है। यह भी पाया गया है कि कोई स्त्री मातृत्वके लिए जितनी अधिक योग्य होगी, उतना ही ज्यादा अवसर इस बातके लिए होगा कि उसके लड़का ही हो; परन्तु लड़का ही हो, इस विषयमें पूर्ण निश्चय कर लेनेके लिए आप कुछ नहीं कर सकते। गर्भावस्थामें लड़कियोंकी अपेक्षा लड़कोंकी मृत्यु लगभग ड्योढ़ी होती है। इन सब बातोंसे यह निष्कर्ष निकलता है कि माताका स्वास्थ्य जितना ही अच्छा होगा, पुत्र सन्तानके जीवित रहनेका अवसर उतना ही ज्यादा होगा।

आपके बच्चेकी आंखें कैसी होंगी, इसे आप पहले ही से जान सकते हैं—यदि आप अपनी और अपनी पत्नी, अपने माता-पिता और अपनी पत्नीके माता-पिता एवं अपनी पूर्व सन्तानकी आंखोंके रङ्गका अध्ययन करें। अलबत्ता इसके अपवाद हो सकते हैं।

यदि पत्नीकी आंखोंकी पुतली काली-खैरी या काली हो और उसके परिवारके अन्य व्यक्तियोंकी आंखें भी इसी तरहकी काली पुतलियोंवाली हों, तो उसके पतिकी आंखों-की पुतलियोंका रङ्ग किसी तरहका क्यों न हो, बच्चेकी आंखोंकी पुतलियोंका रङ्ग करीब-करीब निश्चित रूपसे काला ही होगा। यदि पति और पत्नी दोनोंकी आंखोंकी पुतलियोंका रङ्ग काला हो और उनके कुटुम्बियोंकी आंखों-की पुतलियां भी हलके रङ्गकी हों, तो बच्चेकी आंखें सम्भवतः खैरी होंगी। पत्नीकी आंखें यदि कञ्जी हों और पतिकी आंखें हों कञ्जी या नीली, तो बच्चेकी आंखें भी सम्भवतः नीली या कञ्जी होंगी। माता और पिता दोनोंकी आंखोंकी पुतलीमें यदि नीलेपनकी झलक हो, तो उनके बच्चेकी आंखोंमें हलका नीलापन देखनेमें आयेगा। माता-पिता दोनोंमेंसे यदि एककी भी आंखें या बिन्नियां बड़ी हों, तो यह बिलकुल सम्भव है कि उनके बच्चेकी आंखें भी वैसी

ही हों। परन्तु यदि उनमेंसे एककी आंखोंमें टेढ़ापन हो, तो बच्चेकी आंखमें उस समय तक टेढ़ापन नहीं आ सकता, जब तक दूसरेके परिवारमें भी टेढ़ापन न पाया जाय।

अब बालोंको लीजिये। माता-पिता दोमेंसे एकके बालोंका रङ्ग अगर काला (बिलकुल काला या खैरा) हो और उसके कुटुम्बियोंके बालोंका रङ्ग भी काला हो, तो बच्चेके बालोंका रङ्ग भी वैसा ही होगा, भले ही दूसरेके बालोंका रङ्ग किसी अन्य प्रकारका हो। काले रङ्गके बालोंवाले माता-पिता यदि ऐसे परिवारके हों, जिसमें हलके रङ्गके बालोंके लोग हों और वैसे ही रङ्गके बालोंवाली स्त्रियोंसे वे विवाह कर रहे हों, तो यह आशा की जाती है कि बच्चोंके बालोंका रङ्ग काला होगा। माता-पिताके बालोंका रङ्ग यदि लाल हो, तो बहुत सम्भव है कि उनकी सन्तानके बालोंका रङ्ग भी लाल हो। लाल बालोंवाली किसी युवतीका विवाह यदि ऐसे युवकसे हो, जिसके बालोंका रङ्ग हलका और आंखोंका रङ्ग नीलापन लिये हुए हो, तो यह सम्भव है कि बच्चेके बालोंका रङ्ग काला, खैरापन लिये हुए लाल या बिलकुल लाल हो।

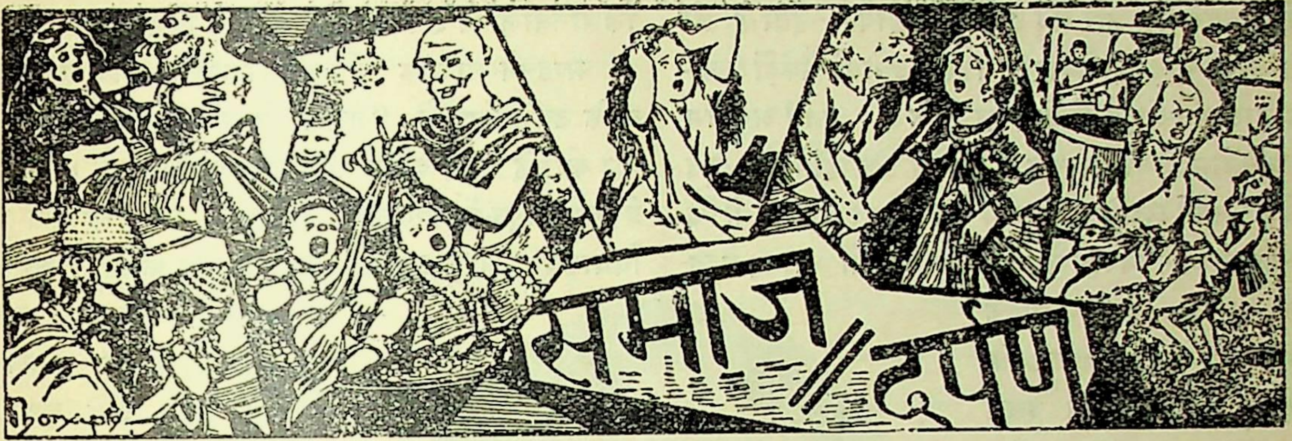
मान लीजिये कि आपके बाल घुंघराले हैं और आपके परिवारमें लोगोंके बाल घुंघराले होते हैं, तो आपकी पत्नीके बाल चाहे किसी तरहके हों, बच्चेके बाल घुंघराले होनेकी पूरी सम्भावना है। जिस परिवारमें लोगोंके बाल गंठीले होते हैं, उसमें करीब-करीब गंठीले बालोंवाले बच्चे पैदा होते हैं।

बच्चा किससे मिलता-जुलता होगा—इस प्रश्नका उत्तर यों संक्षेपमें नहीं दिया जा सकता; परन्तु यह पाया गया है कि यदि माता-पिता दोनोंकी नाक एक तरहकी हो, तो बड़े होनेपर बच्चेकी नाक भी वैसी ही हो जायगी। परन्तु मां-बापमेंसे यदि एककी नाक कुछ मोटी या अच्छी खासी हो और दूसरेकी हो साधारण, तो बच्चेकी नाक उस नाकके माडलके पार हो जायगी, जिसमें प्रधानता होगी। अगर आपके परिवारमें लोगोंकी नाक किसी खास तरहकी होती आयी है, तो हो सकता है कि आपके बच्चेकी नाक भी वैसी ही हो।

माता और पिता, दोमेंसे एकके भी कान बड़े हों या होंठ मोटे हों तो बच्चेके भी कान और होंठ बड़े होनेपर वैसे ही हो जायेंगे। लम्बे कदके माता-पिताकी सन्तानका कद भी लम्बा होगा। परन्तु यदि माता-पिता, दोमेंसे कोई एक नाटा और दूसरा लम्बा हो, तो बच्चा सम्भवतः नाटे कदका होगा।

एक बात और भी है—यह हमेशा ही नहीं होता कि सुन्दर माता-पिताकी सन्तान भी सुन्दर हो। कभी-कभी तो बिलकुल ही उलटा हो जाता है।

माता-पितासे हमें रङ्ग आदि कैसे मिलते हैं—प्रत्येक मानव शरीर एक बीजसे जीवन आरम्भ करता है, जिसमें ४८ छोटे-छोटे परमाणु होते हैं। वैज्ञानिकोंकी भाषामें इन छोटे-छोटे परमाणुओंको क्रोमोसोम कहते हैं। माता और पिताके इन २४-२४ क्रोमोसोमों—बीजभूत मानव शरीरके परमाणुओंसे गर्भमें बालकका शरीर बनता है। माता-पितासे किसी बच्चेको जो कुछ मिलता है, वह इन्हीं परमाणुओंमें रहता है। किसी मनुष्यमें अन्य कुछ होता है, वह उसके प्रयत्न और वातावरणका परिणाम है।



जाति-भेद मिटा दो, स्वराज्य मिल जायगा

जाति-भेदकी बुराइयोंको बहुत-से लोग जानते थे, लेकिन अभी तक जात-पांतके अभिशापके विरुद्ध आन्दोलन एवं ठोस काम करनेके लिए कोई स्थायी व्यवस्था न थी, इसलिए नवम्बर सन् १९२२के अन्तिम रविवारको लाहौरमें जात-पांत-तोड़क मण्डलकी स्थापना हुई। इस मण्डलने इस अभिशापसे हिन्दू जातिको मुक्त करनेकी दिशामें सराहनीय कार्य किया है।

मण्डल वाणी और लेखनी दोनोंसे अपने उद्देश्यका प्रचार करता है। विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न अवसरोंपर जात-पांत-तोड़क सम्मेलन किये जाते हैं। इन सम्मेलनोंके प्रधान बड़े-बड़े आदमी हो चुके हैं—जैसे कि डाक्टर सर हरिसिंह गौड़, सर पी० सी० राय, श्री रामानन्द चटर्जी, सर डाक्टर गोकुलचन्द नारङ्ग, श्री सत्यानन्द, स्टोकस (शिमला), दीवान बहादुर राजा नरेन्द्रनाथ, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू। सन् १९२९ के बड़े दिनोंमें लाहौरमें कांग्रेसके साथ मण्डलका एक बड़ा ही सफल सम्मेलन हुआ था। उसमें भाषण करते हुए श्री मोतीलालजी नेहरूने कहा था कि एक बार मुझसे एक मित्रने पूछा कि कोई एक बात ऐसी बताओ, जिसके करनेसे स्वराज्य मिल सकता है, तो मैंने कुछ मिनट सोचकर उत्तर दिया—जाति-भेदको मिटा दो, भारतको स्वराज्य मिल जायगा।

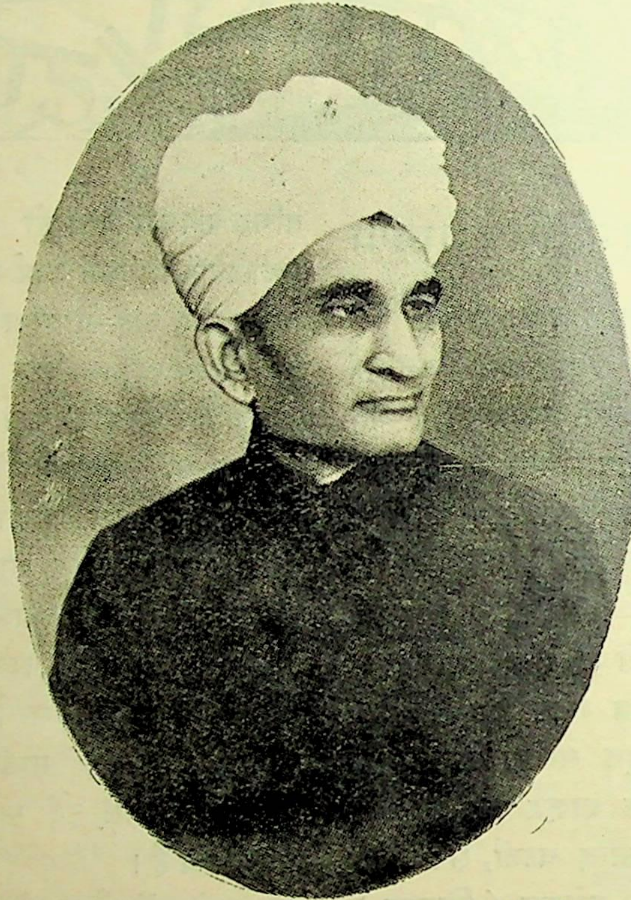
धनाभावके कारण मण्डलके पास वैतनिक प्रचारकोंकी भारी कमी है। परन्तु इस कमीकी पूर्ति उन थोड़े-से अवैतनिक कर्मचारियोंसे हो रही है, जो निःस्वार्थभाव और सच्ची लगनसे इसमें कार्य कर रहे हैं। मण्डलके मन्त्री श्री हरभगवान, ढाई सौ रुपया मासिकपर एक कालेजमें नौकर थे। वहांसे त्यागपत्र देकर अब वे मण्डलकी अवैतनिक सेवा कर रहे हैं। उन्होंने पञ्जाब, युक्तप्रान्त, मध्यप्रदेश, बम्बई, मध्य भारत, बिहार आदिमें दौरा करके कई स्थानोंपर मण्डलके केन्द्र और शाखायें स्थापित की हैं। इस समय बेंगुली, दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, प्रयाग, बस्ती, कलकत्ता, डिबरूगढ़ (आसाम), कासगञ्ज, कोटायम (दक्षिण भारत), मसूलीपटम, पय्यानूर, नागपुर, कोटा, मुजफ्फरपुर (बिहार), उज्जैन, अम्बाला, सरगोधा, रावलपिण्डी, बख्तियारपुर, फीरोजपुर, पटना, मण्डी गोविन्दगढ़ (नाभा राज्य), पठानकोट इत्यादि ३६ स्थानोंमें मण्डलकी शाखायें अथवा प्रतिनिधि हैं।

सम्मेलनों और व्याख्यानोंके अतिरिक्त मण्डल कभी-कभी अन्तर्जातीय सहभोज भी किया करता है। दो-तीन सहभोज अछूत भाइयोंके साथ भी किये गये थे। इनमें इतने सवर्ण और अवर्ण हिन्दू स्त्री-पुरुष सम्मिलित हुए थे कि खाद्य-सामग्रीके चुक जानेसे बहुसंख्यक लोगोंको भूखे ही उठ जाना पड़ा था। इनमें खाना परसनेवाले अछूत भाई थे।

भारतके दूसरे प्रान्तोंके हिन्दुओंमें जितना खान-पानका बखेड़ा है, उतना पञ्जाबमें नहीं। यहां प्रायः ब्राह्मण आदि कहारोंके हाथका बना भोजन खा लेते हैं। हां, अछूतोंसे छूत-छात दूसरे प्रान्तों-जैसी ही है। पञ्जाबमें अधिकतर जात-पांतकी कट्टरता ब्याह-शादीमें है। इसलिए मण्डलने

अपना एक विशेष विवाह-विभाग खोल रखा है। यह उन लोगोंको योग्य वर और वधू ढूंढ़नेमें सहायता देता है, जो जाति-भेदको तोड़नेको तैयार हों। इसके उद्योगसे सैकड़ों अच्छे-अच्छे जात-पांत-तोड़क विवाह हो चुके हैं। इनमें अनुलोम और प्रतिलोम दोनों प्रकारके हैं। तीन विवाहोंमें तो अछूत लड़कोंको सवर्ण लड़कियां दी गयी हैं। हमारी धारणा थी कि जात-पांत तोड़कर विवाह करनेवाले लड़के तो शायद बहुत निकल आयेंगे, परन्तु जातिके बाहर लड़की देनेवाले बहुत कम निकलेंगे। किन्तु बात उलटी हुई है। इस समय हमें जाति-भेदको तोड़कर विवाह करनेके इच्छुक लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियों-के आवेदन-पत्र कहीं अधिक प्राप्त हो रहे हैं। अब कमसे कम पञ्जाबमें जात-पांत तोड़कर विवाह करनेवालोंका किसी प्रकारका सामाजिक बहिष्कार नहीं होता।

मण्डलने सन् १९३१ की मनुष्य-गणनाके अवसरपर, बड़े यत्नके बाद, भारत-सरकारसे यह आज्ञा ले ली थी कि किसी हिन्दूको मनुष्य-गणनाके कागजोंमें जाति लिखानेपर विवश न किया जाय। सर हरिसिंह गौड़ प्रभृति कुछ सज्जन, मण्डलके प्रतिनिधि होकर, भारत-सरकारके गृह-सदस्यसे मिले थे। तब कहीं जाकर जनवरी १९३१ में आज्ञा मिली थी। फरवरीमें अन्तिम मनुष्य-गणना होनेको थी। केवल एक मास कामके लिए मिलनेपर भी समूचे भारतमें कोई १९ लाख मनुष्योंने जातिके कोष्ठमें 'कुछ नहीं' लिखाया था। अब फिर १९४१ की मनुष्य-गणनामें जातिके कोष्ठमें "कुछ नहीं" लिखानेका आन्दोलन मण्डलने कोई ढाई वर्षसे जारी कर रखा है। इसके लिए बहुत-सा साहित्य बांटा जा रहा है और स्थान-स्थानपर व्याख्यान दिये जा रहे हैं। कालेजों और स्कूलोंमें लड़कों और लड़कियोंमें प्रचार किया जा रहा है। आशा है, सन् १९४१ की मनुष्य-गणनामें जाति न लिखानेवालोंकी संख्या बहुत अधिक निकलेगी।



श्री सन्तराम बी० ए०, जिन्होंने जाति-भेद मिटानेकी दिशामें भगीरथ प्रयत्न किये हैं।

मण्डलने भारतके विश्वविद्यालयोंके साथ पत्र-व्यवहार करके उनके फार्मोंमें "जाति" के कोष्ठको बदलकर "जाति यदि कोई है" कर देनेका आन्दोलन किया है। मण्डलकी प्रेरणासे बहुत-से कालेजोंके अतिरिक्त निम्नलिखित विश्व-विद्यालयोंने अपने फार्मोंमें "जाति यदि कोई है" कर लिया है:—बम्बई, नागपुर, लखनऊ, इलाहाबाद, पञ्जाब, ढाका और दिल्ली। इससे और कुछ लाभ चाहे न हो, परन्तु युवकोंकी जाति-भेद सम्बन्धी मनोवृत्तिको बोंथरा करनेमें सहायता अवश्य मिलेगी।

जात-पांत-तोड़क मण्डलके प्रति हिन्दू जनताका उतना विरोध नहीं, जितना कि उदासीनता है। बड़े-बड़े नेता तक कह देते हैं कि जाति-भेदको मिटानेकी उपयोगिताको हमारा मस्तिष्क तो मानता है, परन्तु तोड़ते समय हृदय कांपता है।

मण्डलने प्रचारके लिए सन् १९२७ से "क्रान्ति" नामकी एक मासिक पत्रिका उर्दूमें निकाल रखी है। उर्दू-जगत्‌में इसने बहुत अच्छा काम किया है। सहस्रों लोगोंके विचारोंको पलटा दिया है। कुछ वर्ष हुए, मण्डलने हिन्दीमें भी "युगान्तर" नामका एक मासिक पत्र निकाला था। परन्तु कोई चार वर्ष तक चलकर वह आर्थिक कठि-नाइयोंके कारण बन्द हो गया। उसके बन्द होनेसे मण्डलके प्रचार-कार्यमें बहुत बाधा पड़ रही है। इसलिए मण्डलने उसे पुनः जारी करनेका निश्चय किया है।

पत्र-पत्रिकाओंके अतिरिक्त मण्डलने बहुत-सी पुस्तिकायें, हस्त-पत्रक और ट्रैक्ट भी हिन्दी, उर्दू, अंगरेजी और गुरुमुखी-में छापे हैं। हरिद्वारके गत कुम्भके अवसरपर सन् १९३८ में

कोई ९०,००० ट्रैक्ट हिन्दीमें छापकर बांटे गये थे। जनताने इन्हें बड़े चावसे पढ़ा था।

मण्डलको इस बातका गर्व है कि वह दलित और अस्पृश्य समझे जानेवाले बन्धुओंका कृपा-पात्र है। वह सवर्णों और अवर्णोंके बीच एक जोड़नेवाली कड़ी है।

—समाज-शास्त्री।

अन्धविश्वासका अन्त कब होगा?

सामाजिक प्रगतिमें अन्धविश्वासों द्वारा जो बाधायें उपस्थित होती हैं, उनके अतिरिक्त हमारे दैनिक जीवनमें भी उनसे उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयोंकी सीमा नहीं है। इन अन्धविश्वासोंके आधारपर कितने ही लफङ्गे भोले-भाले देहातियोंकी अन्धश्रद्धासे लाभ उठाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं। अभी हमने देहरादूनका एक समाचार पढ़ा है, जिसमें एक फकीरने एक बीमार बच्चेपर शैतानका फेर बताकर बच्चेकी माताको उसकी करुणाजनक परिस्थितिमें ठगा है। फकीरके यह कहनेपर कि उसके उपचारके लिए इतने रुपये पानेपर शैतानको काबूमें करके बच्चेको रोगमुक्त कर सकता है, भोली-भाली माताने अपने बच्चेके लिए अपने सारे गहने निछावर कर दिये। ऐसी नारियोंकी भी कमी नहीं है, जो सन्तानके लिए लम्पटोंसे ताबीज बंधवाती फिरती हैं और ऐसे लोगोंकी भी संख्या इस समाजमें कम नहीं है, जिनकी जीविकाका यही एकमात्र साधन है कि हैजे-प्लेगके दिनोंमें देहातोंमें जाकर भूत-प्रेतादिकी बाधायें हटानेके नामपर रुपये ऐंठें। यह अन्धविश्वासोंका ही मायाजाल है, जिसमें पड़कर सती-साध्वी युवतियोंके विनष्ट होने, अबोध शिशुओंके देवताको प्रसन्न करनेके लिए बलिदान होने तथा कठिन बीमारियोंमें भी रोग-निदान और उपचार न करके भूत-प्रेतादिकी पूजा कर अन्तमें रोगीको जला देनेके समाचार मिलते रहते हैं। हमारे समाजमें इन अन्धविश्वासोंका ऐसा जाल बिछा हुआ है, जिसमें पड़कर समाजका भीषण अहित हो रहा है। हमारे घरोंका वातावरण इसीलिए रह-रहकर अशान्त हो जाया करता है और हमारी जिन व्याधियोंका अन्त अत्यन्त साधारण तरीकेसे हो जाता, उनके लिए भी हमें काफी दिनों तक परेशान होना पड़ता है। हमने ऐसे लोगोंको देखा है, जो वैद्य, हकीम, डाक्टर सबकी अपेक्षा भूत-प्रेतादि भगानेका दावा करनेवाले ओझोंके चकमोंके शिकार हो चुके हैं। ऐसे लोगोंको भी हमने देखा है, जिन्होंने अपनी सारी जवानी अनेक अदृश्य शक्तियोंकी पूजामें नष्ट कर डाली। भूत-प्रेतादिकी पूजा कर दुर्लभ शक्ति प्राप्त करनेके मोहमें सैकड़ों युवकोंने सैकड़ों काली रातें मरघटोंके रास्ते नापनेमें बिता दीं और कितनोंने इस प्रसङ्गमें व्रत-उपवास करके, अपना सर्वस्व निछावर करके अन्तमें अपना भी अन्त कर डाला। हमारे देहातोंमें इस प्रकारके विकृत मस्तिष्क-वालोंकी संख्या आज भी कम नहीं है, जो इस प्रकारकी मूर्खता-पूर्ण हरकतोंमें अपने समय और शक्तिका दुरुपयोग करते हैं। ऐसे लोगोंकी मूर्खताका इलाज अन्धविश्वासोंके निवारणके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है; पर इसकी जड़ इतनी मजबूत हो चुकी है कि इसके विरुद्ध बात कहनेवालोंको उल्टे तरह-तरहकी धमकियां दी जातीं और भय दिखाया जाता है। इस तरह इन अन्धविश्वासोंकी जड़ उखड़ती नहीं मालूम होती। पर जब तक इनका अन्त नहीं होगा, तब तक हमारे सामाजिक उत्थानकी अनेक बाधाओंका अन्त नहीं होगा।

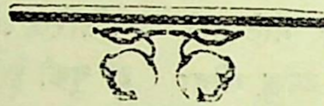
कन्याओंकी हत्या!

बड़े-बूढ़ोंकी जबानी एवं पुस्तकोंमें प्रायः यह सुनने और पढ़नेको मिलता है कि पुराने समयमें अगर किसी भारतीय गृहमें पुत्रके स्थानमें कन्याका जन्म होता, तो घरवालोंमें रोना-पीटना मच जाता और बड़ा अभाग्य माना जाता। राजपूत एक कदम आगे बढ़े हुए थे और नवजात कन्याका बध करना एक साधारण-सी रीति उनमें हो गयी थी। कन्या-के जन्मका समाचार मिलते ही उनके सिरपर वज्र-सा गिर पड़ता और पिता या भाई अपनी नङ्गी तलवार खींच सौरी-घरमें ही घुसकर उस प्रकृतिकी देनका काम तमाम कर देता। ईश्वरकी एक कृति उस अन्धविश्वासके पीछे संसारमें कुछ क्षण ही सांस लेकर समाप्त हो जाती थी। इस भीषण पापने राजपूत जातिमें कब और कैसे पहले-पहल पैर जमाया, यह कुछ पता नहीं; किन्तु ज्यों-ज्यों कानूनी व्यवस्था मजबूत हुई और भारतवासी संसारके अन्य हिस्सोंके सम्पर्कमें आये, त्यों-त्यों इस प्रथाका लोप होने लगा, और आज बीसवीं सदीमें, जब कि हम सभ्यताके परम विकासके समयमें हों, समाचार-पत्रोंमें यह पढ़नेपर कि आज भी भारतके एक

कोनेमें यह राक्षसी और घृणित प्रथा जीवित है, रोमाञ्च हुए और मस्तक ग्लानिसे झुके बिना नहीं रहता। क्या यह वास्तवमें सम्भव हो सकता है? किन्तु सत्य तो सत्य ही है—नग्न सत्य है। काश्मीर स्टेटने हालमें ही एक घोषणा की है, जिसे जान कर दुःख और सुख दोनों होते हैं। दुःख तो यह जानकर होता है कि जब हम अपनेको सभ्य कहते हैं, तब भी कन्या-बध जैसी घृणित प्रथा हमारे बीच है, और सुख यह जानकर होता है कि स्टेटने एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण, सुन्दर और प्रशंसा-योग्य कार्य किया है, जिसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

स्टेटने घोषणा की है कि जिस राजपूत-गृहमें कन्या तीन वर्ष तक जीवित देखी जायगी, उसे एक एकड़ जमीन सरकारकी ओरसे पुरस्कारके रूपमें प्रदान की जायगी। यह भी बताया जाता है कि कन्या-बधकी प्रथाके कारण स्त्रियोंकी संख्या बहुत घट गयी है। हम चाहते हैं कि स्टेट और भी कड़े उपाय काममें लाये, जिससे ऐसे नीच पापियों-को फिर पाप-कर्म करनेका मौका न मिले और दूसरे देश-वासियोंको यह कहनेको न हो कि भारत अभी भी असभ्य है, जहां मातृ-शक्तिका अनादर किया जाता है।

———





महिलाओंकी शिक्षा कैसी हो ?

महिलाओंके लिए शिक्षा पुरुषोंके समान ही आवश्यक है, इसमें तो आज किसीको भी सन्देह नहीं हो सकता; परन्तु यह विषय विचारणीय है कि आज जो शिक्षा महिलाओंको दी जा रही है वह उपयुक्त है या नहीं, उससे नारी जातिके भारतीय आदर्शकी रक्षा हो रही है या नहीं और उससे समाज वाञ्छनीय दिशामें अग्रसर हो रहा है या नहीं। प्रकृतिने पुरुष और स्त्री, दोमेंसे किसीको भी पूर्ण नहीं बनाया। दोनों एक-दूसरेके पूरक हैं और पुरुष और स्त्री दोनोंकी एकतामें प्रकृतिकी इकाई है। यह अविभाज्य है, इसीलिए भारतीय दृष्टिकोणके अनुसार पति और पत्नी दो नहीं, वास्तवमें एक ही है। पुरुष और स्त्री दोनोंका एक-दूसरेसे सर्वथा स्वतन्त्र होना प्रकृतिको अभीष्ट नहीं है, इसलिए सामाजिक जीवनमें उन्हें एक-दूसरेसे सर्वथा स्वतन्त्र होनेकी स्पर्धा नहीं करनी चाहिए और प्रकृतिके निर्देशके अनुसार एक-दूसरेके पूरक बनकर रहना चाहिए। पूरक होनेसे हमारा अभिप्राय किसी एक क्षेत्रसे नहीं, जीवनके प्रत्येक क्षेत्रसे है—यह दूसरी बात है कि किसी क्षेत्रमें पुरुषका प्राधान्य हो और किसीमें स्त्रीका, और किसीमें दोनोंका। भारतीय दृष्टिकोण यही है, इसीलिए समाजमें पुरुषों और स्त्रियोंकी स्पर्धाका प्रश्न ही नहीं उठता। आजकल जो शिक्षा महिलाओंको दी जा रही है, वह समष्टिरूपसे पुरुषों और स्त्रियोंको एक ऐसी स्पर्धाकी ओर घसीट रही है, उनका पारस्परिक सम्बन्ध कुछ ऐसा बना रही है कि जीवन-सङ्गी और जीवन-सङ्गिनी होनेकी उदात्त भावनापर आघात पहुंच रहा है और इस तरह सामाजिक जीवनकी इकाई—घर मुसाफिरखाना-सा बनता दिखलाई पड़ रहा है। यह अवस्था किसे अभीष्ट हो सकती है ?



मिसेज हरीमैन—अमेरिकाकी ओरसे नारवेमें राजदूतिका नियुक्त हुई थीं। नात्सियोंने आपको गिरफ्तार कर लिया था, पर आप भाग निकलीं।

भारतीय दृष्टिकोण जहां एक ओर पत्नीको अपने पतिकी इच्छाका अनुसरण करने, उसकी सहधर्मिणी और सहचरी बननेके लिए कहता है, वहां दूसरी ओर वह पतिसे यह चाहता है कि पत्नीको सब तरह सुखी और सन्तुष्ट रखा जाय और उसके प्रति पूर्ण सम्मान प्रकट किया जाय। भारतीय नारी-जीवनका गौरव रमणी-रूपमें नहीं, माताके रूपमें है, जो शक्तिका वास्तविक रूप है। शक्तिके इस रूपमें स्त्री न केवल पुरुषको बल प्रदान करती है, राष्ट्रके भविष्यको जन्म देती और उसका पालन-पोषण भी करती है, उसमें वह संस्कार उत्पन्न करती है, जो आगे चलकर जीवनमें राष्ट्रके चरित्र, राष्ट्रकी मनोवृत्ति और राष्ट्रके पराक्रम और पौरुषका रूप ग्रहण करता है। किसी समाज या

राष्ट्रके गौरवपूर्ण अस्तित्वके लिए यदि स्त्री जातिकी ये सेवायें अनिवार्य रूपसे आवश्यक हो सकती हैं, तो निश्चय ही स्त्रीका कार्य-क्षेत्र पुरुषसे एक सीमा तक कुछ भिन्न है; किन्तु यह विभिन्नता सर्वथा स्वतन्त्र नहीं है, वह उस दायित्वकी पूरक है, जिसे कोई दम्पति उठाता है। आजकलकी शिक्षा स्त्रियोंको अपने इस विशेष क्षेत्रके लिए कितना तैयार करती है—यह किससे छिपा हुआ है।

हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि स्त्रियां घरकी चहार-दीवारीके अन्दर बन्द रहें, चौका-चूल्हे तक अपना क्षेत्र सीमित रखें और कुछ पढ़-लिखकर केवल रामायण और महाभारत पढ़कर ही सन्तुष्ट हो जायं। स्त्रियोंको घरमें रहनेकी जरूरत अपने कार्यक्षेत्रकी आवश्यकतावश हो सकती है; परन्तु अपने कार्यसे अवकाश पाकर, अपने दायित्वका निर्वाह कर यदि वे घरसे बाहर निकलती हैं, तो इसमें बुराई कहां है? यही नहीं, ऐसी विशेष परिस्थिति भी हो सकती है जिसमें स्त्रियोंको अपना नियमित दायित्व पूरा करनेके अलावा किसी विशिष्ट दायित्वको पूरा करनेकी आवश्यकता पड़ जाय। हम ऐसी परिस्थितिकी भी कल्पना कर सकते हैं जब अपने नियमित दायित्वकी उपेक्षा कर विशेष दायित्वको पूरा करना ही स्त्रियोंका कर्तव्य हो जाय। रामायण-महाभारत पढ़ना अच्छा है और स्त्रियोंको ही नहीं, पुरुषोंको भी इन ग्रन्थोंको पढ़ना चाहिए। परन्तु यह जान लेना चाहिए कि रामायण और महाभारतके बाहर भी दुनिया बहुत बड़ी है और उसकी प्रगति और उसके परिवर्तनोंकी जानकारी उतनी ही आवश्यक है, जितनी अन्य बातोंकी, जिन्हें जानना आजकल जरूरी समझा जाता है। महिलाओंको आजकल जो शिक्षा दी जा रही है, वह उन्हें एक आवश्यकताकी पूर्तिकी ओर तो ले जाती है; परन्तु दूसरी आवश्यकताओंकी पूर्ति करना उसके लिए अशक्य हो जाता है। इसी तरह आजकलकी शिक्षासे जो महिलायें वञ्चित रहती हैं, वे एक क्षेत्रकी आवश्यकताकी पूर्ति तो करती हैं और कर सकती हैं, परन्तु संसारकी प्रगतिसे अनभिज्ञ होनेके कारण अन्य क्षेत्रोंके लिए वे न केवल अयोग्य प्रमाणित होती हैं, पुरुषोंके लिए पूरक भी नहीं हो सकती। यही नहीं, अनेक अवस्थाओंमें वे पुरुषोंकी प्रगतिमें बाधक भी बन जाती हैं। इस अवस्थाका परिणाम हमेशा ही अवाञ्छनीय होता है। श्रेयका मार्ग न तो महिलाओंके उस ओर जानेमें है जहां पहुंच जानेपर उनके जीवनमें कृत्रिमता ही कृत्रिमता रह जाती है, राष्ट्रकी माता होनेका गौरव खो जाता है और न राखसे ढकी हुई चिनगारीकी तरह उस अवस्थामें पड़े रहनेमें है, जिसमें उनकी बहुमूल्य शक्तियोंका कोई उपयोग नहीं हो सकता। नारी जीवनके सम्बन्धमें यह एक सचाई है और उनकी शिक्षाकी व्यवस्था ऐसी की जानी चाहिए कि वे केवल अपने विशेष उत्तरदायित्वको ही पूरा करनेके लिए नहीं, अपने नियमित क्षेत्रका कर्तव्य पूरा करनेके लिए भी योग्य और सक्षम बन सकें—वे वर्तमानका अनुगमन करें, तो अतीतके साथ अपना सम्बन्ध बनाये रख सकें। अतीतके साथ अपना सम्बन्ध बनाये रखकर वर्तमानका अनुगमन करनेसे हित ही हो सकता है।

नारीसे बुरी सिर्फ एक चीज—

नारियोंको लेकर समय-समयपर तरह-तरहकी बातें कही गयी हैं, उनको लेकर ऐसी कहावतें बनायी गयी हैं, जिनसे प्रकट होता है कि उनमें केवल बुराइयां ही बुराइयां हैं। ऐसी ही एक कहावत आज दो हजार वर्षसे प्रचलित है। उसमें कहा गया है कि "नारीसे बढ़कर सिर्फ एक चीज बुरी है—और वह है दूसरी नारी।" अरिस्टोफेन्स ग्रीसका नाटककार था, जिसने यह बात कही थी और एक दूसरे ग्रीकने भी कहा था—"काम करते समय नारीकी क्षुद्रता प्रकट होती है।" एक दूसरेने कहा था—"खतरेका भान होते ही नारीकी नसोंका खून जमने लगता है; पर जब वह स्वयं कोई दुस्साहसका काम करती है, तब उसमें कमालकी हिम्मत आ जाती है।"

नारियोंके बारेमें इस प्रकारकी बातें जब कही जा रही थीं, तब नारियां क्या करती थीं?

और पुरुषने ऐसी कटु बातें नारियोंके बारेमें क्यों कहीं? इसका एक कारण है। नारी उस समय एक प्रकारसे बेकार-सी थी। हेलेन और क्लूपेट्राकी भांति कुछ ऐसी भी नारियां थीं, जो युद्धकी चिनगारियां बिखेर दें और तब उसमें विलास-लीलाकी तैयारी करें।

नारीकी उपयोगिता सिर्फ इस बातमें थी कि वह आनन्ददायक पदार्थकी भांति रखी जाय। तो नारीसे बढ़कर पदार्थ कौन होता, अगर उसमें अच्छाई हो; और अगर

उसमें अच्छाई न हो, तो उससे खराब पदार्थ और क्या हो सकता है ?

नारी और अच्छाई ? कुछ विचारक नाक-भौं सिकोड़ते हैं—"नारीके साथ अच्छाईका सवाल ही नहीं उठता। प्रश्न यह है कि उनमें कमसे कम बुरी कौन है ?"

मालूम होता है कि उन दिनों भी नारियां सौन्दर्यको लेकर ही उलझी रहती थीं—एक-दूसरेसे बनठनकर निकलनेका प्रयत्न करती थीं। सम्भवतः इसीलिए टेरेन्स चिढ़कर कहता है—"अब तो मैं मनसे नारी-मात्रकी स्मृति मिटा देना चाहता हूं। मैं इन रोजाना उड़नेवाली तितलियोंसे तङ्ग आ गया हूं।"

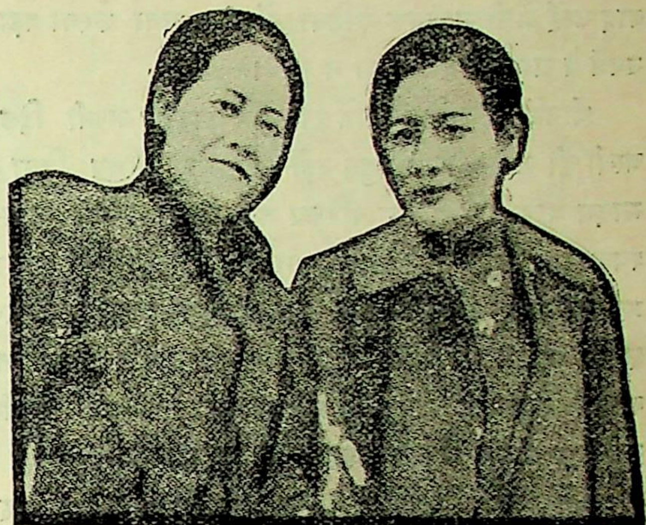
साहित्यमें इस प्रकारकी उक्तियोंका अभाव नहीं है, जिनमें नारीको इसी प्रकार दुर्गुणोंका घर कहा गया है। "परम अपावनि नारि" "नारि-स्वभाव सत्य कवि कहहीं, अवगुन आठ सदा उर रहहीं।" और शेक्सपियरका यह परम पवित्र वाक्य कि "दुर्बलता, तेरा नाम नारी है," आदि सैकड़ों वाक्य कहे गये हैं।

नारीकी महिमाका मर्म बहुत बादको लोगोंने समझा और तभीसे नारी जातिकी कल्याण-भावना लोगोंमें आयी और तभीसे पुरुष अधिक सभ्य एवं सुसंस्कृत हुआ और तभीसे सभ्यता और संस्कृतिके विकासके लिए मानव जातिके रुद्धद्वार खुले।

राजकीय पदोंपर नारियां

संसारके कितने ही उन्नत देशोंकी नारियोंने प्रमाणित कर दिया है कि अगर उन्हें उत्तरदायित्वपूर्ण पदोंपर रखा जाय, तो वे उन कामोंको बड़ी ही दक्षतासे कर सकती हैं, जिनके लिए अभी तक पुरुषोंकी प्रशंसा होती रही है। कई देशोंकी महिलाओंने राष्ट्रोंका प्रतिनिधित्व किया है और कईने राजदूतियोंकी हैसियतसे बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य करनेमें सफलता पायी है।

मादम कोलनताईने स्वीडेनमें रूसकी ओरसे राजदूतीका कार्य ऐसे सङ्कटकालमें किया है, जब यूरोपका वह अञ्चल अनेक रहस्य-भरे हथकण्डों एवं कूटनीतियोंके चंगुलमें था। स्कैण्डीनेवियन देशोंमें चलनेवाली चालोंको उस पटु नारीने बहुत पहले ही भांप लिया था और इस सङ्कटकालमें उसने रूसको बहुत बड़ी सहायता पहुंचायी।



मादम चाङ्ग-काई-शेक तथा उनकी बहन। यह दोनों बहनें चीनमें युद्ध-सञ्चालनमें स्वयं भाग लेती हैं।

मादम कोलनताईमें स्टैलिनका पूर्ण विश्वास है। वह जानता है कि स्वीडेनको लेकर जब रूस और जर्मनीमें भेद डालनेकी काफी कोशिशें की जा रही हैं और राष्ट्रोंके दांव-पेंच वहां चल रहे हैं, मादमको स्थिति समझने और उसके अनुसार काम करनेमें कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी।

और स्टैलिनका ऐसा विश्वास करना अनुचित भी नहीं है। मादम कोलनताई राजनीतिके दाव-पेंच खूब समझती हैं। कूटनीतियोंसे वे परिचित हैं, चौदह भाषायें वे जानती हैं। भाषाओंसे उन्हें बड़ा प्रेम है और उनकी बचन-विदग्धताकी यूरोपमें बड़ी ख्याति है।

मादम कोलनताईके अतिरिक्त और भी कई महिलायें राजदूतीका काम कर रही हैं। मिसेज एफ० हरीमैन, अमेरिकन महिला हैं, जो नारवेमें अमेरिकाकी ओरसे नियुक्त हुई थीं। नारवेपर जर्मनीके आक्रमण होनेपर वे जर्मनों द्वारा गिरफ्तार कर ली गयी थीं, पर भाग निकलीं। राहमें उन्हें अनेक रोंगटे खड़े करनेवाले दृश्योंका सामना करना पड़ा। अन्तमें स्वीडेनमें जाकर उन्होंने शरण ली।

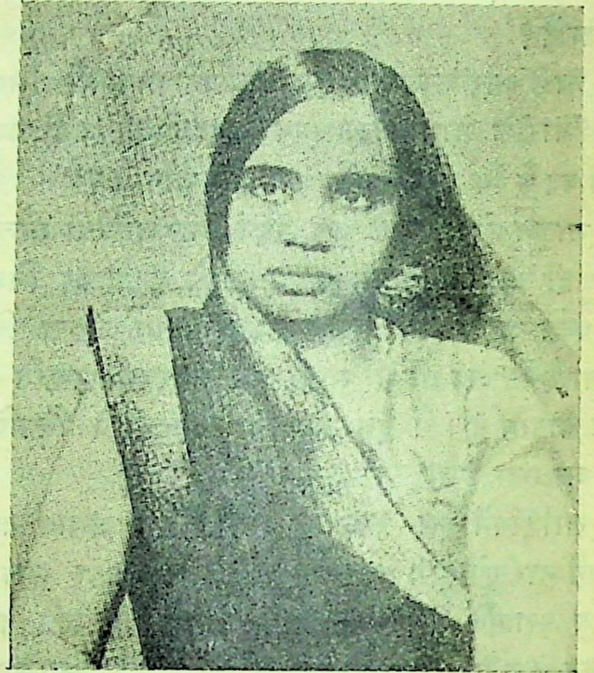
मिसेज हरीमैन एक आकर्षक सुन्दर रमणी हैं। उन्हें फोटोग्राफीका बेहद शौक है। हर वक्त साथमें केमरा रखती हैं। उनके अलबममें अनेकों विचित्र फोटो भरे पड़े हैं। अवस्था उनकी साठ सालके ऊपर है, पर नार्वेपर जर्मनीके आक्रमणके

बाद उन्हें जैसी भयानक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा, उनमें वे जरा भी विचलित न हुईं।

चीनमें कई महिलाओंने राजकीय कार्योंमें अपनी दिलचस्पी ही नहीं, अपनी बहुत बड़ी पटुताका परिचय दिया। मादम चाङ्ग-काई-शेकका परिचय नये सिरेसे देनेकी आवश्यकता नहीं है। अपने पतिके कामोंमें उनके कार्योंका इतना प्रमुख भाग है कि चीनके इतिहासमें उनका नाम स्वर्णाक्षरोंमें लिखा जायगा। चीनको सभी तरहसे सुसज्जित करनेमें मादमका बहुत बड़ा हाथ रहा है और आज भी युद्धका सञ्चालन करनेमें उनका ही प्रमुख भाग है।

अनेक उदाहरणोंमेंसे ये थोड़े-से उदाहरण हैं, जो यह प्रमाणित करते हैं कि समय और अवसर देनेसे नारियां क्या कर सकती हैं।

कलकत्तेमें पर्दा-निवारक सम्मेलन



श्रीमती राधा देवी गोयनका—आप कलकत्तेमें होनेवाले परदा-निवारक सम्मेलनकी अध्यक्षा चुनी गयी हैं।

पर्दा-प्रथा कितनी हानिकारक और भयङ्कर है, यह अब बतानेकी आवश्यकता नहीं रह गयी है। इस प्रथाके विरुद्ध वर्षोंसे प्रचण्ड आन्दोलन चल रहा है और सफलता भी प्राप्त हुई है। किन्तु जो भी रूढ़ि एक बार जम जाती है, उसको उखाड़नेमें बड़े समय, साहस और धैर्यकी आवश्यकता होती है।

इधर कुछ वर्षोंसे कलकत्तेमें नवजीवन समिति द्वारा इस दिशामें काफी प्रशंसनीय कार्य हुआ है। हालमें ही निश्चय किया गया कि एक परदा-निवारक सम्मेलनका आयोजन किया जाय। स्त्री-पुरुषोंने बड़े उत्साहपूर्वक प्रस्तावको कार्यान्वित करनेके निमित्त चेष्टायें आरम्भ कर दीं, और अन्तमें स्वागत समिति और सभानेत्रीका चुनाव भी हो गया। स्वागताध्यक्ष श्रीमती रुक्मिणी देवी बिड़ला और सभानेत्री श्रीमती राधादेवी गोयेनका (अकोला) निर्वाचित हुईं। सम्मेलन २६ अगस्तको ही होनेवाला था; किन्तु सभानेत्रीजीकी अस्वस्थताके कारण स्थगित हो ७, ८ सितम्बरको होना निश्चित हुआ है। सम्मेलनके समाचारने न केवल कलकत्तेकी सुधार-प्रेमी जनतामें उत्साह और प्रसन्नता पैदा की है, बल्कि जयपुर, जोधपुर, बिहार, मद्रास, युक्तप्रान्त एवं मध्यप्रान्त आदि स्थानोंसे सफलताके सन्देश एवं डेलीगेटोंके आनेके समाचार मिल रहे हैं।

आज जब पश्चिम और पूर्वके रणाङ्गणमें महिलायें पुरुषोंके साथ ही साथ देशके लिए सर्वस्व निछावर करती हुई प्राण होम कर रही हैं, तब हम अभी "परदा है बुरा रिवाज इसे छोड़ो" के ही नारे लगायें, यह कम शर्मनाक और हास्यास्पद नहीं है; किन्तु विश्वास है कि वह स्वर्ण-प्रभात दूर नहीं, जब कि भारतकी देवियां प्राचीन वीर रमणियोंके आदर्शको सामने रखकर देशकी आजादीकी लड़ाईमें समान रूपसे भाग लेंगी। ऐसा विश्वास है कि कलकत्तेका परदा-निवारक सम्मेलन अवश्य सफल होगा और हम एक गन्दी रूढ़िको तोड़कर आगे बढ़नेमें समर्थ होंगे।

—कृष्णचन्द्र अग्रवाल





हमारे कविता-साहित्यका वर्तमान स्वरूप

साहित्य युगका प्रतिविम्ब होता है। उससे भविष्य-को प्रेरणा भी मिलती है और जिस साहित्यसे प्रेरणा नहीं मिलती, उससे उसके स्रष्टा एवं समाज दोनोंका कोई कल्याण नहीं होता। साहित्यने अगर केवल क्षणिक मनोरञ्जन कर दिया या निम्न स्तरके मनोभावोंको जगाकर ही अपना काम समाप्त कर दिया, तो निश्चय ही ऐसी साहित्य-रचना मङ्गलजनक नहीं कही जा सकती। कलाकारोंकी कुत्सित प्रवृत्तियोंके कारण कभी-कभी कलाका स्वरूप बहुत ही वीभत्स हो जाता है और चूंकि ऐसे कलाकारोंकी भांति उनके लिए कुत्सित प्रवृत्तिके पाठक भी निकल आते हैं, इसलिए ऐसा साहित्य भी चल निकलता है; पर ये प्रवृत्तियां सामूहिक रूपसे समाज तथा अलग-अलग व्यक्तिको विनष्ट करती हैं। प्रत्येक युग और प्रत्येक समाजमें ऐसे कुत्सित साहित्यका कुछ न कुछ अंश दुर्भाग्यवश तैयार हो जाता है। हिन्दी इसके लिए अपवाद नहीं है। हिन्दीमें भी ऐसा कुत्सित साहित्य एक अंशमें पहले भी था और आज भी है।

एक प्रकारका साहित्य और भी है, जो दूसरे साहित्योंमें भी है और हमारे देशमें इस समय बहुत अधिक संख्यामें तैयार हो रहा है। यह साहित्य वह है, जिसमें कोमल-कान्त पदावलियोंमें बिना किसी भावके ही शब्द-योजना दिखाई पड़ती है। इन पदावलियोंके अर्थ आपकी समझमें न आयें, तो यह आपका दोष है, कविजीका नहीं। कविजीका कहना तो यह है कि यह रहस्यवादी—छायावादी कविता है और कवि रचियता है, घूम-घूमकर उसकी व्याख्या करना उसका काम नहीं। इस प्रकारकी कविताओंकी पहचान करुणा, विरह, प्रियतम, हृत्तन्त्रीके तार, सजनि, अजान, नादान आदि शब्दोंमें होती है। पहले इन्हीं पदा-वलियोंकी दूसरी सहेलियोंको विराट, अनन्तकी ओर, अनहद नाद आदि शब्द अधिक प्रिय थे; पर जबसे श्री सुमित्रानन्दन पन्तकी कवितायें हमारे कुछ दूसरे कवियोंने देखीं, तबसे वे पल्लव एक ओर रखते हैं और कविताकी कापी तथा कलम दूसरी ओर। इधर बच्चनजीसे भी कितने ही कवि बहुत ही प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। उनके पीटर तथा उनके-से भावोंपर कवितायें होने लगी हैं। हम पन्त या बच्चनको दोषी नहीं कह रहे हैं। पर उनके नकलचियोंने उनकी ही मिट्टी पलीद नहीं की, उनके शब्दोंको निकाल-निकाल उनके वजनपर वैसी ही जो तुकबन्दियां रचनी शुरू कीं, तो वैसी कविताके प्रति लोगोंकी अरुचि भी हो गयी। कहावत है कि 'गेहूंके साथ घुन भी पिस जाता है,' सो ऐसे कवि-पुङ्गवोंने अपने गुरुओंको भी अपने साथ डुबाया।

इधर कई वर्षोंमें इस प्रकारका बहुत साहित्य रचा गया है, जो खूब कोमल है, खूब प्रवाहमय है; पर जिसमें अर्थ-भाव, मर्म कुछ भी नहीं है। आश्चर्य है कि इस बुद्धि-प्रधान समयमें इस प्रकारकी रचनाओंके लिए इतने समय और शक्तिका अपव्यय किया जाय। हमारे नवयुवकोंमें इस प्रकारकी रचनाओंकी प्रवृत्ति बहुत पायी जाती है और सौभाग्यकी बात यह है कि उनकी अधिकांश रचनायें अप्रकाशित पड़ी हैं, क्योंकि सम्पादकों अथवा पुस्तक-प्रकाशकों द्वारा वे

प्रकाशित नहीं हो सक रही हैं, अन्यथा साहित्यमें कूड़ेका भीषण ढेर एकत्र हो जाता। आजके कितने ही प्रकाशक इसीलिए मूर्ख और कितने ही सम्पादक इसीलिए पक्षपाती समझे जा रहे हैं कि ऐसी रचनाओंको वे स्थान नहीं देना चाहते। पर कौन ऐसा पत्र है, जिसमें असावधानीसे 'टेल पीस' की जगह ऐसी रचनायें कभी-कभी न निकल जाती हों। हमारा ख्याल है कि ऐसे प्रयत्नोंको निरुत्साहित करनेकी आवश्यकता है। हम यह स्पष्ट कर दें कि हम पन्त और बच्चनके प्रशंसकोंमेंसे हैं। हमने उनपर अच्छी आलोचनायें लिखी और लिखवायी हैं; पर उनकी ही नकल करके अनाप-शनाप बकनेवालोंके प्रलापोंको हम प्रोत्साहन नहीं दे सकते। ऐसे हजरत तो खुद उन कलाकारोंके दुश्मन हैं।

हमारे साहित्यकोंमें एक श्रेणी उन लोगोंकी है, जिनका काम है 'अनन्त रुदन।' वे लोग कवितामें रोते हैं। समस्त साहित्य इनके शापों और रुदनसे भर रहा है। इनका काम है वरदान और अभिशाप, रुदन और मुस्कान, व्यथा और हास अथवा व्यथाका हास, हासकी व्यथा और नीरव रुदन और मूक सङ्गीतसे साहित्यका भण्डार भरना। इन महाशयोंमें अधिकांश अल्पवयके युवक और कितने ही कालेजोंके विद्यार्थी हैं। ये लोग अपनी अनुभूतियोंका रोना रोते हैं, जब कि अनुभूतिके नामपर उनके काम कुछ हैं ही नहीं। हमारे समाजकी जैसी व्यवस्था है, उसमें मुक्त प्रेमकी गुञ्जाइश नहीं, अतः उनकी विरह व्यथा अपनी पत्नीके कारण-ही हो सकती है, क्योंकि बाल-विवाहका इस अभागे देशमें अब भी दौरदौरा है। ऐसी दशामें बिरहका प्रश्न भी नहीं उठता। तो ये कवि लोग किसके विरहमें तड़पा करते हैं? कई काफी चलाक हैं, जो अपनी कविताओंमें प्रियतम और प्रियतमाके सम्बोधनसे ईश्वरको लक्ष्य करते हैं; पर अधिकांशकी मिट्टी पलीद होती है। उस समय उनकी और भी दुर्दशा होती है, जब १९६ पौण्डका वजन लेकर कविजी 'आत्मानुभूतिसे भरे व्यथाका राग' गाने लगते हैं।

ये सब क्या वाहियात चीजें हिन्दीमें पनप रही हैं! इन्हींकी हमारे लिए इस समय आवश्यकता है? हमारे कलाकारोंने क्या आंखें खोलकर समाजकी आवश्यकतायें नहीं देखीं? उन्हें क्या संस्कृतिके विकासमें ऐसे ही प्रयत्नोंसे सहयोग देना है? कलाकार कर्म-क्षेत्रमें उतरकर शरीरसे सहयोग न दे—यद्यपि कितने ही महान् कलाकारोंने ऐसा भी किया है—तो भी क्या अपनी रचनाओंसे वह सांस्कृतिक विकासमें भी सहयोग नहीं दे सकता? हमारे कलाकारोंने आज यह क्या धन्धा अपना रखा है? यही साहित्य क्या हमारे समाजका प्रतिबिम्ब है? और इसीसे क्या भविष्यके लिए हमें प्रेरणा मिलेगी? —दिव्य चक्ष

× × ×

पुरुष और नारी। लेखक—राजा राधिकारमण सिंह एम०ए०; प्रकाशक—श्री राजेश्वरी साहित्य-मन्दिर—सूर्यपुरा, शाहाबाद (बिहार); छपाई-सफाई सुन्दर, सजिल्द; पृष्ठ-संख्या ३१९; मूल्य २॥)

राजा साहबकी नवीन कृति हमारे सामने है। स्वराज्यकी लड़ाईकी पृष्ठ-भूमिपर कालेजका एक जोशीला, भावुक नवयुवक घर और सामाजिक बन्धनोंसे नाता तोड़नेकी प्रतिज्ञा कर, उज्ज्वल भविष्यकी कल्पना करते हुए एक नया जीवन, जोकि दरिद्रनारायण और देशकी सेवाका था, आरम्भ करता है। तभी उसके सामने प्रलोभनोंका आकर्षण आ जाता है, एक सुन्दर, सुशील, चतुर ग्रामीण नारीके रूपमें। एक-दूसरेको पसन्द करते हैं; किन्तु देशसेवाकी प्रतिज्ञा बाधक है। और फिर चलता है एक भीषण अन्तर्द्वन्द्व दोनोंके हृदयोंमें। साथ ही साथ स्वराज्यकी लड़ाई भी चल रही है। आखिर एक दिन पुरुषके संयमका बांध टूटता है; किन्तु नारी—भारतीय नारीको यह कब सह्य होता? परिणाम होता है उसका बलिदान। इन दोनों नर-नारी—अजीत और सुधाके अलावा उपन्यासमें और भी कई प्रमुख पात्र-पात्री हैं; सभी परिस्थितियोंसे लड़ते-भिड़ते चले जा रहे हैं।

अजीतके हृदयमें उठनेवाली स्वाभाविक अन्तर्वेदनाका तो हमें पग-पगपर सुन्दर आभास मिलता है; किन्तु सुधाके भीतर भी कुछ बीत रहा है, यह आभास एक-दो स्थानोंपर ही मिला। सुधाके त्यागका, उसके दर्दका, उसके सच्चे प्रेमका आभास हमें अन्तमें ही चलकर मिलता है। शायद लेखकका अभिप्राय सुधाको एक आदर्श नारीके रूपमें ही अन्त तक ले जानेका था; किन्तु उसके त्यागकी कहानी उतनी प्रभावोत्पादक नहीं है, जितना कि अजीतके हृदयमें उठनेवाला हाहाकार। शायद इसका कारण शुरूसे अन्त तक सुधाका अपनी पीड़ाके प्रति एकदम मौन रहना ही है।

फिर अविवाहित सुधा और कुछ वर्षों बाद आश्रममें रहनेवाली सुधामें समानता प्रतीत नहीं होती, जब वह अजीतके साथ सामाजिक और राजनीतिक विषयोंपर बहस करती हुई देखी जाती है; क्योंकि आश्रममें आनेके पहले तक सुधाके विषयमें हमारी धारणा एकदम दूसरी थी। इस कारण जब हम उसे ऊंचे स्तरसे बहस-मुबाहसा करते हुए पाते हैं, तो बड़ा आश्चर्य और साथ ही असम्भव-सा प्रतीत होता है।

वृद्ध कन्नूलालके घरका, उसकी अवस्था और हृदयमें होनेवाली पीड़ाका सुन्दर चित्रण लेखक महोदयने किया है और पाठक वृद्धके प्रति मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते। पुरुष और नारीमें समस्यायें हैं और उनके सुलझानेके सङ्केत भी हैं। वर्णन सजीव और भाषा ऐसी है, मानो बोलती हो। यह एक मनोरञ्जक, शिक्षाप्रद और रोजमर्रा जीवनमें होनेवाली घटनाओंको लिये एक सुन्दर उपन्यास है।

हवाई युद्ध और टैङ्क-युद्ध। लेखक—डा० सत्यनारायण पी० एच-डी०; प्रकाशक—पुस्तक मन्दिर, १७९, हरिसन रोड, कलकत्ता। छपाई-सफाई अच्छी, पृष्ठ-संख्या दोनोंकी क्रमशः ९८ और ६६ और मूल्य दोनोंका अलग-अलग ॥)

प्रस्तुत पुस्तकोंके विषय उनके नामसे ही स्पष्ट हैं। लेखकने इन विषयोंका पुस्तकोंमें विशद विवेचन किया है। लेखकके विदेश-भ्रमणके सिलसिलेमें इनके सम्बन्धमें अपने निजी अनुभव भी हैं, इसलिए वर्णनशैली खूब आकर्षक और सजीव है और विषयोंकी जानकारी अच्छी है। हिन्दीमें इस प्रकारके साहित्यका सर्वथा अभाव है और इस समय इसे सभी महसूस कर रहे थे। अतः ये पुस्तकें हिन्दी पाठकों द्वारा उचित स्वागत पायेंगी, इसमें सन्देह नहीं। इनकी उपयोगिता सर्वविदित है; पर यदि इनमें कुछ चित्र भी लगाकर विषयोंको समझाया गया होता, तो इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गयी होती।

कुकड़ूं कूं। लेखक—श्री कुटिलेश; प्रकाशक—मुस्कान मन्दिर, ७।१ बाबूलाल लेन, कलकत्ता; पृष्ठ-संख्या १०४; मूल्य १)

कुटिलेशजीकी नयी रचना एक हास्यरसात्मक कृति है। हिन्दीमें हास्यरसकी बड़ी कमी है। इस दिशामें कुटिलेशजीकी कई रचनायें बड़ी प्रशंसा प्राप्त कर रही हैं। इस पुस्तकमें भी उन्होंने कई चित्र बड़े सुन्दर खींचे हैं और हंसनेकी काफी सामग्री है। कई कहानियां तो अच्छी हैं ही, किन्तु उनकी कवितायें भी सुन्दर हैं। पाठक इस पुस्तकमें मनोरञ्जन और हंसने-हंसानेका काफी मसाला पायेंगे। कितनी ही कहावतोंका इस हंसोड़ लेखकने बड़ा अनूठा अर्थ किया है और कितनी ही पुरानी चीजोंको नये चश्मेसे देखा है।

आदर्श पुरुष। लेखक—पं० गङ्गाप्रसाद पाण्डेय; प्रकाशक—झाड़सुगड़ा, बी० एन० आर० (उड़ीसा); पृष्ठ-संख्या १२२; मूल्य ॥।)

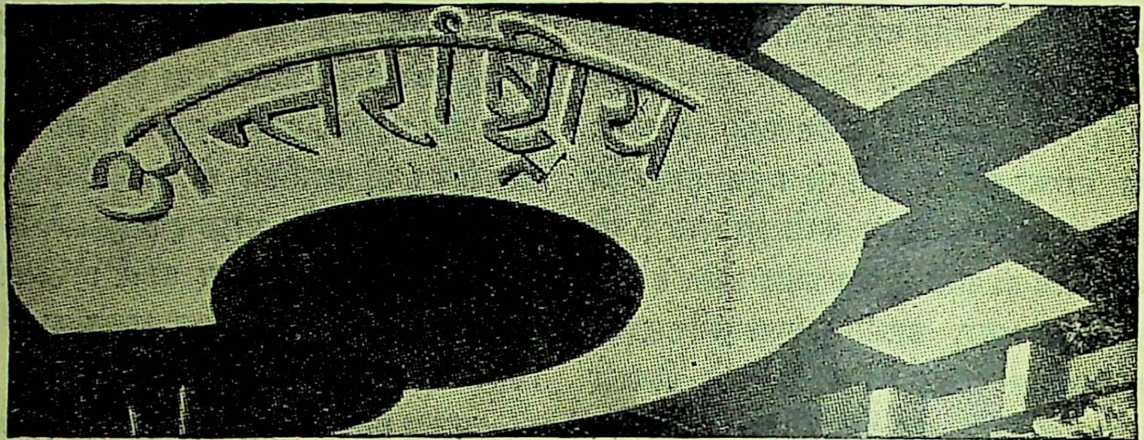
प्रस्तुत पुस्तकमें आत्म-संयम, मधुर भाषण, क्रोध, व्यायाम आदि विषयोंपर विचार प्रकट किये गये हैं। लेखोंमें घटनायें एवं सम्बन्धित कवितायें भी दी गयी हैं। बालकोंको भी उपदेश दिया गया है। चरित्र-सङ्गठन किस प्रकार हो सकता है, यह भी बताया गया है।

विभेद (कहानियोंका संग्रह)। ले०— श्री राधाकृष्ण-प्रसाद; प्रकाशक—ग्रन्थमाला कार्यालय, बांकीपुर; पृष्ठसंख्या १०८; मूल्य ॥।)

प्रस्तुत पुस्तक पन्द्रह कहानियोंका संग्रह है। प्रत्येक कहानीके पात्र हमारे सामने न जाने कितनी बड़ी संख्यामें यथार्थ रूपमें हैं और कथा भी काल्पनिक नहीं, वास्तविक ही है। प्रत्येक कहानी चुभती हुई और बड़ी प्रभावोत्पादक है। राधाकृष्णजीकी कहानियां पत्रोंमें प्रकाशित हो चुकी हैं और बड़ी पसन्द की गयी हैं। आज उनका संग्रह एक सुन्दर और सस्ती पुस्तकके रूपमें देखकर प्रसन्नता होती है। पाठकोंको कहानियां पसन्द आयेंगी और कई पात्र तो मस्तिष्कमें चक्कर काटते रहेंगे।

———





हिटलर अगर यूरोप जीत ले

अमेरिकन पत्रोंमें इधर नात्सीवाद और उसके उद्दश्यके विषयमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है। 'न्यूयार्क टाइम्स मैगज़ीन'ने लिखा है :—

हिटलरकी सेनाने विजयपर विजय पायी है और तबसे जर्मन प्रेस "विश्व-क्रान्ति" के नारे लगा रहे हैं। इसका अर्थ सिर्फ यह नहीं है कि इससे जर्मनीकी विजय हो रही है, इसका वास्तविक अर्थ यह है कि गणतन्त्रके स्थानपर ऐसी व्यवस्थायें स्थापित होंगी, जिनमें तानाशाही एकछत्र राज्य करेगी, न व्यवस्थापिका सभायें होंगी, न विरोधी होंगे, न एक विचार-धाराको छोड़कर दूसरी कोई विचार-धारा रहने पायेगी। राजनीति और अर्थनीतिकी एकदम नयी प्रणालियां स्थापित होंगी। कुछ राष्ट्रोंको दबाकर उन प्रणालियोंको मञ्जूर कराना होगा और बाकीको आत्म-रक्षार्थ यह काम करना होगा।

इतिहासमें इस प्रकारके उदाहरण पाये जाते हैं, जिनसे प्रमाणित होता है कि ऐसी सफलताओंके बाद विश्व-क्रान्तिका स्वप्न विजेता देखते रहे हैं। नेपोलियनने भी ऐसा ही विश्व-विजयका स्वप्न देखा था और इसी प्रकार उसे भी खूनकी नदियोंको पार कर अपना रास्ता तय करना पड़ा था। पर उन युद्धोंमें फ्रान्सकी बन्दूकोंसे उस फ्रान्सकी विचार-धाराने युद्ध नहीं किया ?

लेकिन क्या ये नात्सी पैगम्बर विश्व-क्रान्तिके लिए किसी २९ वर्षीय युद्धके खतरेका सामना करनेको तैयार हैं ? क्या उन्हें सन्देह है कि उनका भी अन्त वाटरलूके समान ही नहीं होगा ?

इसमें सन्देह नहीं कि अधिकांश नात्सी विश्वास करते हैं कि नाटकका अन्तिम दृश्य शीघ्र ही दिखाई पड़ेगा। लेकिन क्या यह आशा सम्भव है ?

हालैण्डसे पेरिसकी ओर नात्सियोंकी सेनाके बढ़नेका समाचार सेनफ्रान्सिस्कोसे बोस्टन तक अमेरिकनोंके हृदयमें उद्वेलन पैदा कर चुका है। और अमेरिकन भावी सङ्कटके लिए अपनेको तैयार करने लगे हैं। अमेरिका अपनेको शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित कर रहा है।

पर हमारे विचारोंका क्या हाल है ? अमेरिकनोंका सदासे विश्वास रहा है कि सेना और नौसेनाके पीछे एक दूसरी शक्ति है विचार-धाराकी, जो सभी कार्योंमें बिजली भरती है। क्या हमारे पास वह चीज़ है ? और अगर है, तो क्या हम इसे सङ्गठित कर सकते हैं ? हिटलरने एक बार कहा था—"मानसिक अशान्ति, विभिन्न विचारोंका सङ्घर्ष, अनिश्चय और आतङ्क—यही हमारे लिए सुअवसर हैं।" समयने अनेक देशोंमें प्रमाणित किया है कि उसका ख्याल सही है। तो क्या अमेरिकाका यह दृढ़ नैतिक विश्वास है कि वह किसीकी रक्षा करना चाहता है और उसकी रक्षा वह क्यों और कैसे कर सकता है ?

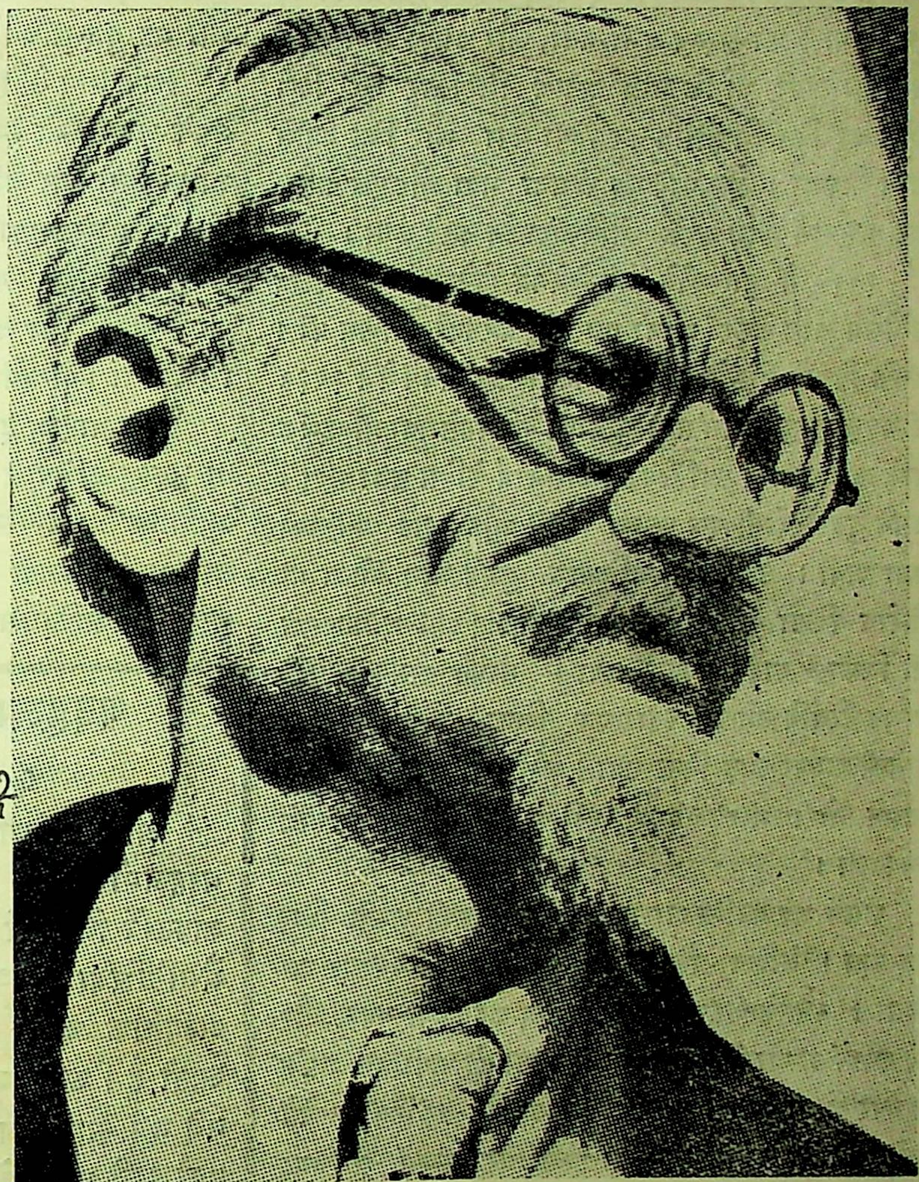
विचार-धाराओंको लेकर अपनेको सुसज्जित करते समय हमें अपने शत्रुकी शक्तियोंका गलत ढङ्गसे कम अन्दाज नहीं लगाना चाहिए। जिस प्रकार हजारों नात्सियोंने आत्मोत्सर्ग कर दिया है, उससे प्रमाणित होता है कि उनका कैसा सङ्गठन है और प्रचारकी कैसी भावना उनमें है।

मान लीजिये, जर्मनी यूरोपपर विजय प्राप्त करता है। मान लीजिये कि इटलीका भूमध्यसागर और उत्तरी अफ्रीका-

पर प्रभुत्व स्थापित हो जाता है। इन अवस्थाओंमें उनकी विचार-धाराओंका प्रचार अत्यन्त जोरदार हो जायगा। सफलता जब मिलने लगती है, तब उसे कोई रोक नहीं सकता। यूरोपमें गणतन्त्रकी पराजयसे तानाशाहों द्वारा प्रचार किया जाने लगेगा कि गणतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली ही कमजोर और भद्दी है।

यूरोपमें तानाशाहोंकी विजयका पहला परिणाम यह होगा कि नयी दुनियाकी भी आर्थिक एवं राजनीतिक प्रणालियोंमें कठिनाइयां उत्पन्न हो जायेंगी।

इसलिए हमें अभीसे अपनेको नैतिक एवं राजनैतिक परिणामोंके लिये तैयार हो जाना चाहिए। हमें संसारके सामने स्पष्ट रूपसे प्रकट कर देना चाहिए कि तानाशाही जिन प्रणालियोंकी स्थापना करना चाहती है, वे रचनात्मक हैं ही नहीं, उनका उद्देश्य है सभ्यताके समस्त उपानोंको नष्ट-भ्रष्ट कर देना। उनके कारण सत्य और न्याय खतरेमें हैं। हिंसाके आधारपर चलाया हुआ यह आन्दोलन युद्धको ही महत्त्व देता और समस्त राष्ट्रके युवकोंको पथ भ्रष्ट करता है।



लियोन ट्राट्स्की जिनकी, हत्या गत २१ अगस्तको कर डाली गयी।

ट्राट्स्कीकी हत्या

मैक्सिको शहरमें विगत २१ अगस्तको ७ बजकर २९ मिनटपर लियोन ट्राट्स्कीकी हत्या जान्सन नामक एक व्यक्तिने कर डाली, जिसने अपनेको एक बेलजियन कूटनीतिज्ञका पुत्र बतलाया और हत्याका उद्देश्य बताते हुए उसने कहा कि ऐसा करके मैं संसारकी रक्षा करना चाहता हूं।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें ट्राट्स्कीका एक महत्त्वपूर्ण स्थान हो गया है। उसका वास्तविक नाम ब्रान्स्टीन था। वह १८७९ में पैदा हुआ। उसका बाप मध्यवित्तका यहूदी था। ओडेसा यूनिवर्सिटीमें उसकी शिक्षा हुई और १८९८ में क्रान्तिकारी कामोंमें भाग लेनेके अपराधमें पूर्वी साइबेरियामें निर्वासित कर दिया गया। १९०२ में उसने लियोन ट्राट्स्कीके नामसे एक जाली पासपोर्ट बनाया और इंगलैण्ड भाग गया। लेनिनकी सहायतासे लन्दनमें उसने एक समाजवादी दलकी स्थापना की और 'इस्क्रा' (चिनगारी) नामक एक पत्र निकाला। रूसके क्रान्तिकारी पत्रोंमें इस्क्राका सर्वश्रेष्ठ स्थान था। १९०५ में वह रूस लौटा

और सेण्ट पीटर्सबर्ग सोवियट (मजदूरोंके प्रतिनिधियोंकी एक संस्था) का सदस्य चुना गया, और उसकी अध्यक्षतामें सभा हो रही थी कि सभी सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। वह फिर निर्वासित कर दिया गया और फिर वहांसे भाग निकला। इस बार वह वीमना गया और एक केमिकल फैक्टरीमें काम करके जीविकोपार्जन करने लगा।

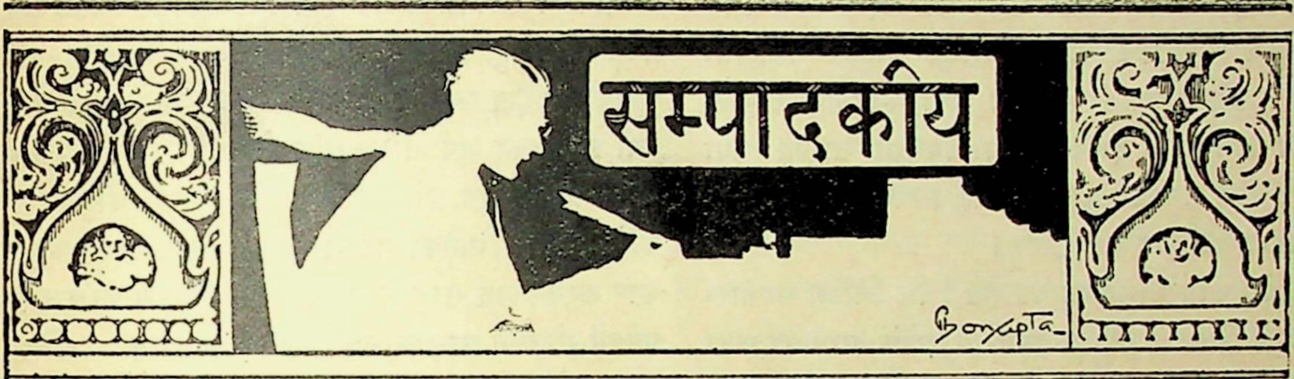
१९१० में ट्रात्स्कीने कोपेनहेगेनमें होनेवाली समाजवाद कांग्रेसमें भाग लेकर अपना पक्ष सिद्ध करनेकी कोशिश की। उसके विचार बोलशेविक और मेनशेविकके बीचमें थे। १९१३ में वह कुस्तुन्तुनियामें संवाददाताकी हैसियतसे गया और इसके बाद क्रान्तिकारी साहित्यके प्रकाशनार्थ पेरिस चला गया। उसने युद्ध-विरोधी एक पुस्तक लिखी और आठ महीनेकी सजा पायी। उसने मित्र-शक्तियोंके युद्धमें भाग लेनेका भी विरोध किया, जिसके परिणाम-स्वरूप १९१६ में फ्रान्ससे भी निकाल बाहर किया गया। भागते समय स्पेनके अधिकारियोंने उसे गिरफ्तार कर लिया; परन्तु अमेरिका जानेकी शर्तपर छोड़ दिया गया। अमेरिका जाकर न्यूयार्कसे उसने 'नोरी मीर' (नयी दुनिया) नामक एक पत्र निकाला।

रूसमें जब क्रान्ति आरम्भ हुई, तब ट्रात्स्की रूसके लिए चल पड़ा। लेकिन ब्रिटिश अधिकारियोंने गिरफ्तार कर लिया। वह हेलीफाक्समें नजरबन्द कर लिया गया, और जब रूसमें अस्थायी सरकारकी स्थापना हो गयी, तब उसके कहनेपर छोड़ा गया। बोलशेविक दलको सङ्गठित करनेमें उसने लेनिनके समान ही प्रयत्न किये और रूसमें सोवियट शासन-प्रणालीकी स्थापना होते ही वह वैदेशिक सचिवके पदपर नियुक्त हुआ।

ब्रेस्टीलीटोस्कके समझौतेमें रूसी प्रतिनिधि-मण्डलमें ट्रात्स्की सबसे महत्त्वपूर्ण सदस्य था। इस ख्यालसे कि रूसी क्रान्तिकी सफलताके नैतिक आधारपर जर्मनी रूसके विरुद्ध आक्रमण नहीं करेगा, उसने जर्मनीकी कठोर शर्तोंको माननेसे इनकार कर दिया। उसने कहा कि रूसके लिए युद्धका अन्त हो चला है, अतः रूसी सेनाका युद्धके लिए जो सङ्गठन हुआ है, वह भङ्ग कर दिया जायगा, लेकिन ट्रात्स्कीसे सहमत नहीं हुआ और जर्मन सेना भी बढ़ती चल रही थी, इसलिए रूसको जर्मनीकी और कठोर शर्तोंके सामने झुकना पड़ा। अब उसकी जगहपर दूसरा सदस्य चुना गया और वह युद्ध-सचिव बनाया गया।

इसके बाद लेनिन रूसके विभिन्न पदोंपर प्रतिष्ठित रहा। उसके आदर्शोंको लेकर दूसरे अधिकारियोंका विभेद बढ़ता जा रहा था और लेनिन तथा स्टेलिनको कभी-कभी उसका विरोध करना पड़ता था। अन्तमें नवम्बर १९२७ में वह कम्यूनिस्ट पार्टीसे पार्टी-विरोधी हरकतोंका अभियोग लगाकर निकाल दिया गया। जनवरी १९२८ में वह रूससे निकाल दिया गया। अन्तमें वह कुस्तुन्तुनियामें जाकर रहने लगा।

इसके बादका ट्रात्स्कीका जीवन संसकटोंसे भरा हुआ था। कुस्तुन्तुनियासे उसे नार्वे भाग जाना पड़ा और फिर वहांसे भी उसे मैक्सिको भाग जाना पड़ा। कहीं भी उसे शरण नहीं मिलती थी—सभी देश उससे भय खाते थे। इतना बड़ा प्रतिभाशाली पुरुष मारा-मारा फिरता था।



सरकारकी घोषणा और देशकी प्रतिक्रिया

सम्राट्‌की सरकारकी ओरसे वायसराय लार्ड लिनलिथ-गोके वक्तव्य, भारत-सचिव मि० एमेरीकी कामन्सकी वक्तृता तथा उसपर कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीके प्रस्तावसे राजनीतिक समझौतेकी चर्चाका एक और स्टेज समाप्त हो गया और समझौतेकी चर्चाकी यह विफलता अनेक सम्भावनाओंसे भरी दिखाई पड़ रही है। युद्ध छिड़ते ही कांग्रेसने सरकारसे युद्ध और शान्ति सम्बन्धी उद्देश्योंके स्पष्टीकरणकी मांग की थी और ये उद्देश्य इस देशमें कहां तक कार्यान्वित होंगे, इसे भी स्पष्ट करनेका अनुरोध किया था। वायसरायका ८ अगस्तका वक्तव्य, उसके अन्तिम उत्तर तथा भारत-सचिवकी कामन्सकी वक्तृता उसके स्पष्टीकरणके रूपमें आयी है। और इसमें सन्देह नहीं कि इन वक्तव्योंसे स्थिति अपेक्षाकृत बहुत स्पष्ट हो गयी है। पर देशमें इसकी जो प्रतिक्रियायें हुई हैं, वे अशान्तिमूलक हैं।

भारतकी मांगोंको दो भागोंमें विभाजित किया जा सकता है—भारतको तत्कालीन स्वाधीन घोषित कर दिया जाय और इस निश्चयको कार्यान्वित करनेके लिए केन्द्रमें तत्काल राष्ट्रीय सरकारकी स्थापना की जाय। ऐसी राष्ट्रीय सरकारकी, जो जनताकी विश्वासभाजन और उसके प्रति उत्तरदायी हो।

वायसरायके वक्तव्यमें–जो सम्राट्‌की सरकारकी स्वीकृतिसे दिया गया है—भारतको जो कुछ मिलता है, उससे उसकी मांगें पूरी नहीं होतीं। कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीका वक्तव्य, जो उसने वर्धासे २२ अगस्तको प्रकाशित कराया है, इसपर काफी प्रकाश डालता है और कांग्रेसकी यह प्रतिक्रिया, जैसा कि हमने कहा है, अनेक सम्भावनाओंसे भरी हुई है—और ऐसी सम्भावनायें, जिनमें देशके लिए कठोर सङ्कटकालकी आशङ्कायें भी हैं—इसलिये हम कमेटीका पूरा प्रस्ताव दे रहे हैं। कमेटीने कहा है:—

गत ८ अगस्तको ब्रिटिश सरकारसे अधिकार पाकर वायसरायने जो वक्तव्य निकाला था, उसे कांग्रेस कार्य-समितिने बड़े ध्यानके साथ पढ़ा है। वायसरायके वक्तव्यका विश्लेषण करते हुए कामन सभामें भारत-सचिवने जो वक्तृता दी थी, उसे भी कांग्रेस कार्यसमितिने पढ़ा है। कार्यसमितिने इस बातको खेदके साथ नोट किया है कि ब्रिटिश सरकारने कांग्रेसके मैत्रीपूर्ण प्रस्ताव तथा व्यावहारिक सुझावको अस्वीकार कर दिया है। क्योंकि गत २८ जुलाईको अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने पूनेमें देशके वर्तमान गतिरोधको दूर करने तथा कांग्रेससे अपनी असहयोग-नीतिको वापस ले लेने और वर्तमान सङ्कट एवं राष्ट्रीय रक्षामें भारतीय जनताके सहयोग देनेके लिए एक प्रस्ताव पास किया था। कार्य-समितिने बड़े खेद तथा क्षोभके साथ ब्रिटिश सरकारकी ओरसे की गयी घोषणाओं तथा वक्तव्योंको पढ़ा है। इनसे भारतकी पूर्ण स्वाधीनताके स्वाभाविक अधिकारको अस्वीकार किया गया है और न टिकनेवाले इस दावेको दुहराया गया है कि भारतमें शासनके कार्य-सञ्चालनार्थ ब्रिटेनकी ही सत्ता रहनी चाहिए। इस दावेसे तो ब्रिटिश सरकारकी ओरसे दिया हुआ यह वचन भी झूठा प्रमाणित हो जाता है कि निकट भविष्यमें ब्रिटिश-साम्राज्यान्तर्गत भारतको एक स्वतन्त्र तथा समान अधिकारका राष्ट्र स्वीकार कर लिया

जायगा। इस प्रकार दावे, हालकी घटनाओं तथा विश्वकी गतिविधिसे कार्यसमितिकी यह भावना दृढ़ हो गयी है कि साम्राज्यवादी शक्तिकी परिधिमें भारत अग्रसर नहीं हो सकता। उसे अवश्य ही स्वतन्त्र तथा स्वाधीन राष्ट्रकी अवस्था प्राप्त करनी होगी। इससे विश्वकी शान्ति तथा प्रगतिके लिए अन्य स्वाधीन राष्ट्रोंसे सम्पर्क बनाये रखनेमें कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी।

कांग्रेस कार्य-समितिका यह मत है कि ब्रिटिश सरकार-की ओरसे निकाली गयी घोषणाओंमें दावेके साथ यह कहा गया है कि भारतीय जनताके निर्वाचित प्रतिनिधियोंके लिए वह अपनी सत्ता तथा उत्तरदायित्वसे बाज आनेके लिए प्रस्तुत नहीं है। अतः वर्तमान स्वेच्छाचारी तथा अनुत्तरदायी शासन-व्यवस्था तब तक रहेगी, जब तक जनता या नरेशोंका एक भी दल, राज्योंके प्रमुख व्यक्ति, अथवा निहित स्वार्थवाले विदेशी तक भी भारतीय जनताके निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा प्रस्तुत विधानपर आपत्ति करते रहेंगे। ऐसा करनेसे गृहकलह तथा फूटको प्रोत्साहन मिलेगा। इससे समझौते तथा दावेके निपटारेकी भावनाको घातक आघात पहुंचेगा। कांग्रेस कार्य-समितिको खेद है कि यद्यपि कांग्रेसने कभी भी अल्पसंख्यकोंको दबानेकी बात नहीं सोची है, फिर इनके दमनके लिए ब्रिटिश सरकारसे अनुरोध करनेका तो प्रश्न ही नहीं उठता, फिर भी निर्वाचित प्रतिनिधियोंकी वैधानिक एसेम्बलीसे निर्मित विधानके समझौतेके लिए जो मांग की गयी है, उसकी व्याख्या भ्रान्तिपूर्वक की गयी है। ऐसा कहा गया है कि ऐसा होनेसे बहुमतवाला पक्ष अल्पसंख्यकोंको दबायेगा। इस प्रकार अल्पसंख्यकोंकी समस्यासे भारतीय प्रगतिके मार्गमें अलङ्घनीय दीवार खड़ी कर दी गयी है। कांग्रेसने यह प्रस्ताव रखा है कि सम्बन्धित अल्पसंख्यकोंके निर्वाचित प्रतिनिधियोंके साथ अल्पसंख्यकों-के अधिकारोंकी समुचित रक्षाके लिए समझौता कर लिया जायगा। अतः कांग्रेस कार्य-समिति बस यही निर्णय कर सकती है कि ब्रिटिश सरकारकी ओरसे जो घोषणायें तथा दावे किये गये हैं, उनसे इस भावनाकी पुष्टि होती है, कि इससे ब्रिटिश सरकार ऐसी कार्रवाई कर रही है जिससे भारतीय राष्ट्रीय जीवनमें फूट तथा कलह बराबर बना रहे।

प्रस्तावमें आगे चलकर कहा गया है कि कांग्रेस कमेटीने इस बातको आश्चर्यके साथ नोट किया है कि वर्तमान केन्द्रीय व्यवस्थापक सभाके विभिन्न दलोंके, जिनमें जनता-का विश्वास है, निर्वाचित प्रतिनिधियोंको लेकर केन्द्रमें स्थायी राष्ट्रीय सरकार स्थापित करनेकी जो मांग पेश की गयी है, उसका अर्थ भारत-सचिवने यह लगाया है कि इससे बहुमतका पक्षपात और अल्पमतकी उपेक्षा की गयी है। कांग्रेस कार्यसमितिका यह मत है कि इस प्रस्तावके अस्वी-कार करनेसे यह साफ हो गया है कि ब्रिटिश सरकार युद्धके प्रयत्नमें भी योग प्राप्त करनेके लिए सत्ता तथा अधिकारसे बाज आनेके लिए प्रस्तुत नहीं है। ब्रिटिश सरकार ऐसे दलों तथा व्यक्तियोंके साथ अपना काम चलाना चाहती है, जो भारतीय जनताके बहुसंख्यक मतके विरुद्ध हैं। वह केन्द्र तथा प्रान्तोंके निर्वाचित प्रतिनिधियोंके बिना सहयोगसे अपना काम चलानेके लिए तैयार है, लेकिन इसके लिए नहीं कि कुछ सत्ता दे दे, जिससे इसका आभास मिले कि प्रजा-तन्त्रीय पद्धतिसे भारतके भारतीयों द्वारा शासित किये जानेके अधिकारको स्वीकार किया जायेगा। इन कारणोंसे कांग्रेस कार्यसमितिने यह निश्चय किया है कि उपर्युक्त वक्तव्य न सिर्फ प्रजातन्त्रीय पद्धतिके एकदम विपरीत हैं, जिसकी दुहाई वर्तमान युद्धमें दी जा रही है, वरन् वे भारतीय हितों-के भी विरुद्ध हैं। अतः देशको कांग्रेस इन प्रस्तावोंको स्वीकार करनेकी सलाह नहीं दे सकती है। कांग्रेस कार्यसमिति ऐसा समझती है कि न सिर्फ ये घोषणायें तथा प्रस्ताव कांग्रेसकी माँगकी अपेक्षा बहुत ही अल्प हैं, वरन् इनसे संयुक्त तथा स्वतन्त्र भारतके निर्माणमें भी बाधा उपस्थित होगी। अतः कांग्रेस कार्यसमिति जनतासे अनुरोध करती है कि वह सार्वजनिक सभा आदि तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओंके निर्वाचित प्रतिनिधियोंसे ब्रिटिश सरकारके इस रुखकी निन्दा करे।"

देश क्यों नहीं स्वीकार करता ?

हमारा ख्याल है कि भारतकी मांगोंपर ब्रिटेनने जो रुख दिखाया है, उसपर देशमें होनेवाली प्रतिक्रियाकी प्रतिध्वनि कांग्रेसके उक्त प्रस्तावमें है।

भारतके लक्ष्यके सम्बन्धमें ब्रिटिश कामनवेल्थके अन्तर्गत 'स्वतन्त्र और समान भागीदार' होनेकी घोषणा भी है। लेकिन भारतका यह लक्ष्य कब घोषित नहीं किया गया!

भारत-सचिवने पहली बार ही भारतके लिए इस महान् पद-का उल्लेख नहीं किया है ! पर यह समानता और स्वतन्त्रता का पद कब मिलेगा ? माननीय श्रीनिवास शास्त्रीके शब्दोंमें—जो बिगड़ैल दिलके कांग्रेसी नहीं हैं, जैसा कि ब्रिटेनके अनुदार दली अक्सर कहा करते हैं—"क्यों नहीं स्पष्ट कर दिया जाता कि युद्ध समाप्त होनेके साल-भर अथवा इसके आसपास की अवधिमें औपनिवेशिक स्वराज्यका विधान कार्यान्वित हो जायगा ?" जिन सदस्योंको चुनकर नये विधानकी रूपरेखा तैयार की जायगी, उनके बारेमें भी तरह-तरहकी शङ्कायें हैं। गोलमेज परिषद्का कटु अनुभव भारत भूल नहीं सका है और कौन कह सकता है कि उसीकी-सी पुनरावृत्ति इस बार भी नहीं होगी। इसीलिए कांग्रेसने विधान-परिषद्की मांग की थी, जिसमें देशके सच्चे प्रतिनिधियों द्वारा विधान निर्माणकी दशामें देशको कोई असन्तोष हो ही नहीं सकता था। अन्यथा अगर इस बातकी भी घोषणा कर दी जाय कि विधान-निर्माणके लिए विभिन्न हितोंके जिन प्रतिनिधियोंको बुलाया जायगा, उनके निश्चय भी सरकार स्वीकार कर लेगी तो, भी राष्ट्रवादी भारतके सन्देहोंका निराकरण नहीं हो सकता जब तक कि देशके सच्चे प्रतिनिधियोंको स्वतः निश्चय करनेका अधिकार न हो।

पर सरकार देशको यह अधिकार नहीं दे सकती। सरकारकी ओरसे दिये गये वक्तव्यमें एक जगहपर कहा गया है कि "भारतके साथ ग्रेटब्रिटेनके दीर्घकालीन सम्बन्धके कारण उसके ऊपर कुछ उत्तरदायित्व आ गये हैं, जिनसे सम्राट् की सरकार मुक्त नहीं हो सकती।" ये उत्तरदायित्व ऐसे हैं, जिनकी व्याख्या स्वयं सम्राट्की सरकार करेगी और अपने इस महान् कर्तव्यका पालन वह जब तक करना चाहे, करे, और जब तक वह अपने इस कर्तव्यसे च्युत होनेका महापाप न करे, तब तक वह भारतको अपने लिए पूर्ण स्वाधीनताका विधान बनानेकी स्वाधीनता नहीं दे सकती !

भारत-सचिवकी कठिनाइयां

मि० एमरीने भारतके राजनीतिक लक्ष्यकी पूर्तिमें जिन बाधाओंका उल्लेख किया है, वे ये हैं:—

"सबसे पहले विशाल मुसलमान जाति आती है:—नौ करोड़, उस छोटे महाद्वीपके उत्तर-पश्चिम और उत्तर-पूर्वमें बहुमतके रूपमें और समस्त भारतमें फैली हुई।

"फिर आते हैं अछूत, जो ऐसा समझते हैं कि वे प्रधान हिन्दू जातिसे अलग हैं, जिसका प्रतिनिधित्व कांग्रेस करती है।

"देशी नरेशोंका एक दूसरा ही दल है।"

इसलिए "सम्राट्की सरकार भारतकी शान्ति एवं कल्याणके वर्तमान उत्तरदायित्वको ऐसी किसी शासन-व्यवस्थाके लिए हस्तान्तरित नहीं कर सकती, जिसके भारतके प्रतिनिधित्व करलेनेके दावेको भारतीय राष्ट्रीय जीवनके विशाल और शक्तिशाली अङ्ग अस्वीकार करते हैं।"

इसके साथ ही मि० एमरीने यह कहकर बहुत बड़ी जिम्मेदारी ली है कि "कांग्रेसके निरुत्साह-भरे रुखके रहते हुए भी हिन्दुस्तानी पूर्ण सहयोग देंगे।" 'जिम्मेदारी' हम इसलिए कहते हैं कि विधानतः भारतके सात प्रान्तोंमें कांग्रेसी सरकारें शासन करती थीं। उनकी व्यवस्थापिका सभाओंमें उनका बहुमत अब भी बना हुआ है, और कल अगर मन्त्रिमण्डलोंका लौट आना सम्भव हो, तो सात प्रान्तोंके साधन कांग्रेसके हाथमें होंगे। ऐसी दशामें आज जब कांग्रेसके बढ़े हुए मैत्रीपूर्ण प्रस्तावकी ब्रिटेन उपेक्षा करता है, तो हमारा ख्याल है कि वह अपनी राजनीतिज्ञताकी शून्यता दिखाता है। इस सङ्कटकालमें, और इस कालमें जब कि कांग्रेस औरोंकी अपेक्षा कहीं अधिक नात्सीवादके विरुद्ध है और खुले रूपसे उसने किन्हीं अवस्थाओंमें युद्धमें सहयोग देनेकी बात कही है और वे वही अवस्थायें हैं जिनके लिए ब्रिटेन स्वयं लड़ रहा है और भारतका भी सहयोग चाहता है, तब कांग्रेसके सहयोगको सम्भव बनानेवाली परिस्थितियोंको ठीक-ठीक न समझकर देशकी मांगको ठुकरा देना वास्तवमें एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी लेना है, जिसके लिए कामनवेल्थका इतिहासकार ब्रिटिश राजनीतिज्ञता-को सम्भवतः बहुत अच्छे शब्दोंमें याद न कर सकेगा। देशमें जैसे कारण उत्पन्न होते चल रहे हैं—और जिनका निराकरण कुछ सङ्कीर्णता छोड़ने एवं थोड़ी अधिक राजनीतिज्ञतासे काम लेनेपर बहुत कठिन न होता—उनसे देशको अनेक कठिनाइयोंके बीच सम्भवतः कठोर निश्चय करने होंगे। ये सब स्थितियां दुर्भाग्यपूर्ण होंगी, पर इनकी जिम्मेदारी देशपर नहीं, देशके शासकोंपर होगी।

सुदूर पूर्वकी नयी व्यवस्था और दूसरे राष्ट्र

इतिहासने अपनी पुनरावृत्ति की और परिणाम स्वभावतः पुनरावृत्ति करेंगे। म्यूनिखने पश्चिममें नात्सी-वादके विकासके लिए बाधाओंका अन्त कर दिया, तो ब्रिटेनकी वर्तमान सरकारने चीनमें म्यूनिखकी पुनरावृत्ति कर दी है और अब जापानकी सुदूर पूर्वमें नयी व्यवस्थाकी स्थापनाकी महत्त्वाकांक्षाओंके द्वार खुल गये हैं। म्यूनिखके बाद होनेवाली घटनाओंकी भांति ही चीनमें होनेवाली घटनाओंकी सम्भावनायें भी बहुत विशाल और जटिल नहीं, यह कौन कह सकता है? इण्डो-चीनका भाग्य कूटनीतियोंके दांव-पेंचमें पड़ा हुआ है और ईस्ट डच इण्डीजके भागमें क्या है, यह कौन कह सकता है। ब्रिटेनने पूर्वमें यद्यपि जापानको सदा प्रोत्साहन दिया है और उसकी यह नीति ब्रिटेनके आर्थिक हितों द्वारा सदा समर्थन प्राप्त करती है। पर उसकी राजनीतिक प्रतिक्रियायें सदा सन्देहजनक रही हैं। फ्रान्स आज पतित राष्ट्र है और पेतांने फैसिस्टोंके चरणोंमें आत्मसमर्पण करनेकी जो नीति अपनायी, तो वह फ्रान्सको किस जगह ले जाकर छोड़ेगा, यह कहना कठिन है।

इसलिए सुदूर पूर्वके नक्शेकी लकीरें, प्रशान्त महासागरकी शान्ति और उक्त अञ्चलोंके द्वीप-पुञ्जोंका भाग्यविधान जापान और संयुक्त राज्य अमेरिकाके पारस्परिक सम्बन्धपर आज बहुत कुछ टिका प्रतीत होता है। जापान अपनेको अन्तर्राष्ट्रीय मनोविज्ञानकी स्थितिको एक महान् विशेषज्ञ प्रमाणित कर चुका है। जुलाई १९३७ में मार्को पोलो ब्रिजके पासकी घटनायें उस समय शुरू हुईं, जब स्टैलिन रूसमें विशुद्धीकरणमें लगा हुआ था और उधर हिटलरके अभ्युदयसे ब्रिटेन उलझा-सा था। अक्टूबर १९३८ में म्यूनिखको लेकर जटिलतायें बढ़ीं, तो जापानने चुपचाप कैण्टन हथिया लिया। फ्रैङ्को जब स्पेनकी ओर विजय-पताका लेकर चला, तो जापान हेनानको कब्जेमें कर रहा था। मार्च १९३९ में जेकोस्लोवेकियाका झमेला शुरू हुआ, तो उसने अपने प्रभाव-क्षेत्रमें सिङ्गापुरके आस-पासके द्वीपोंको ले लिया। इधर फ्रान्सका पतन हुआ और उसने इण्डो-चीनको लेकर अपनी मांग पेश की और ब्रिटेन युद्धमें उलझा कि बर्मा और टिन्सिन को लेकर उसने ब्रिटेनको समझौता करनेपर विवश कर दिया।

दूसरे राष्ट्रोंकी कठिनाइयोंमें जापानने सदा अपना सुअवसर देखा है। और इसीलिए आज जब वह चीनपर विजय सम्भव बनानेवाले सभी साधनोंको एकत्र करता जा रहा है, तब ईस्ट इण्डीजकी कठिनाइयां भी दूरकी नहीं मालूम होतीं।

यद्यपि कार्डेल हलने उक्त अञ्चलोंमें जापानके विकासका विरोध करनेकी धमकी दी थी, कर्नल स्टिम्सनके मन्त्रि-मण्डलमें आनेसे उसका रुख अवश्य कड़ा होगा, क्योंकि यह वह सज्जन हैं, जो १९३१ में जापानके विरुद्ध दण्ड-व्यवस्थाओंके पक्षमें थे; लेकिन अमेरिकाका रुख अभी स्पष्ट नहीं हो सका है और उसका रुख निश्चयपूर्वक अभी स्पष्ट हो भी नहीं सकता। चीनमें यद्यपि अमेरिकाके आर्थिक हित हैं; पर उनकी रक्षाके लिए अमेरिकाको जितनी क्षति उठानी पड़ेगी, वह उन हितोंके अनुपातमें कहीं अधिक होगी, ऐसा अमेरिकन सोचते हैं। अतः केवल चीनके प्रश्नपर अमेरिका जापानका विरोधी नहीं हो सकता। पर प्रशान्त महासागर और उसके द्वीप-पुञ्जोंकी स्थिति भिन्न है। उनपर अगर जापानका प्रभुत्व हो जाय—और इसमें कोई सन्देह नहीं कि जापानने उनमें अपना प्रभाव-क्षेत्र विस्तृत करनेके प्रयत्न किये हैं—तो अमेरिकाके लिए सदाकेलिए खतरेके कारण उत्पन्न हो जायेंगे। इसलिए अमेरिकाको इन प्रश्नोंपर अपनी-नीति निर्धारित करनी होगी। पर यूरोपीय युद्ध, राष्ट्रपति निर्वाचन एवं दूसरी अनेक जटिलतायें अभी उसके निश्चयात्मक निर्णयके मार्गकी कठिनाइयां हैं। आगे आनेवाली घटनायें अमेरिकाका रुख स्वतः बनायेंगी।

ट्राट्स्कीकी हत्या

उस दिन मैक्सिकोमें एक बेलजियनने लियोन ट्राट्स्कीकी निन्द्य हत्या कर डाली। ट्राट्स्कीकी मृत्युसे संसारका एक महान् स्वप्नदर्शी उठ गया। एक ऐसा स्वप्नदर्शी, जो बीस सालकी अवस्थासे ही पूंजीवाद और पूंजीवादी व्यवस्थाओंके विरुद्ध लड़ता रहा; एक ऐसा स्वप्नदर्शी, जो 'स्थायी-क्रान्ति' का आजीवन उपासक बना रहा और एक ऐसा स्वप्नदर्शी, जिसने अपने दृढ़ सिद्धान्तके लिए आजीवन कठोर यातनायें झेलीं, जिसे अनेक बार राजकीय सत्ताओं एवं और अनेक बार अपने ही सहकर्मियोंके भीषण अत्याचारोंका शिकार होना पड़ा और

अन्तमें जिसने हत्यारेकी छुरीके पेटमें घुसते और मुंहसे 'फोर्थ इण्टरनेशनल' का स्वप्न देखते-देखते आंखें मूंदीं।

लेकिन ट्रात्स्की कोरा स्वप्नदर्शी ही न था। वर्तमान रूसके निर्माणमें लेनिनको छोड़कर ट्रात्स्कीसे बढ़कर किसकी सेवायें थीं? रूसकी लाल सेनाका ऐसा सङ्गठन और दूसरे देशोंके साथ कूटनीतिक सम्बन्ध बनाने, क्रान्तिकारी विचार धाराके लिए सोवियट रूसमें एक सुदृढ़ गढ़का निर्माण करनेमें ट्रात्स्कीकी कर्मशीलता और आदर्श-प्रियता पिछले अनेक वर्षोंकी महान् घटनायें हैं। लेनिनके बाद स्टैलिनकी जगह अगर ट्रात्स्कीका रूसपर प्रभुत्व होता, तो कौन कह सकता है कि रूसकी आज कुछ और ही रूपरेखा न होती और दुनियामें कुछ और बड़े-बड़े परिवर्तन न हो गये होते।

अगर आप किसी ऐसी चीजकी कल्पना करें, जिसे जितना ही अधिक झुकानेका प्रयत्न किया जाय उतनी ही वह और भी दृढ़तासे अकड़कर खड़ी हो जाय, तो उसकी तुलना आप ट्रात्स्कीसे कर सकते हैं। यह अभागा ट्रात्स्की कितने देशों— कितने प्रजातन्त्रात्मक देशोंमें भी मारा-मारा फिरा और किसीको भी शरण देनेका साहस न हुआ। और किस दशामें मारा-मारा फिरा?—जब कि नङ्गी तलवारें सदा सिरपर लटकती रहीं। पर यह मनुष्य है, जो नन्हीं-सी जान हथेलीपर लिये अपनी विश्वक्रान्तिकी कल्पनामें डूबा बड़ी-बड़ी ताकतोंकी ओर उपेक्षाकी हंसी हंसता आगे बढ़ता जाता है! एक पुत्रकी फ्रान्समें हत्या कर डाली जाती है, दूसरा मास्कोसे शूलीपर लटका दिया जाता है। एक पुत्री यातनाओंसे व्याकुल हो आत्मघात कर लेती है और स्वयं ट्रात्स्की मास्को, कुस्तुन्तुनिया, पेरिस, वियेना, नारवे और मैक्सिकोमें भागा-भागा फिर रहा है—फरारकी हैसियतसे नहीं— बड़ी-बड़ी सरकारें उसकी छायासे कांपती हैं, बड़ी-बड़ी व्यवस्थायें उसकी कल्पनासे हिल उठती हैं!

ट्रात्स्की और स्टैलिनमें दोषी कौन था, हम इसपर बहस नहीं करते; रूसके लिए ट्रात्स्की घातक था या नहीं, हम इसपर भी बहस नहीं करते। रूसके विरुद्ध ट्रात्स्कीने प्रयत्न किये या नहीं और रूसी लोकमत उसके विरुद्ध था या नहीं, हम इसपर भी बहस नहीं करना चाहते; क्योंकि [illegible] सम्बन्धकी सामग्रियां स्वयं बहुत विवादास्पद हैं, और [illegible] लेनिनकी धर्मपत्नी क्रुप्सकायाने तो अपने संस्मरणोंमें यहां तक कहा है कि लेनिन जीवित होता, तो वह भी जेलमें होता। पर इधरके दीर्घकालीन इतिहासमें ट्रात्स्की-जैसे किस महान् विचारकको इतनी कठोर यातनायें और मनुष्यके हाथसे इतना अधिक अपमान मिला है? ट्रात्स्कीके राजनीतिक आदर्शों, उसके 'फोर्थ इण्टरनेशनल' और उसके स्थायी क्रान्तिके सिद्धान्तसे कोई सहमत हो या न हो, पर ट्रात्स्कीके कितने ही अद्भुत गुणोंसे कोई इनकार नहीं कर सकता। ट्रात्स्कीकी मृत्युसे इस युगका सम्भवतः सबसे महान् वक्ता और क्रातिन्कारी लेखक तथा शोषित और पीड़ित सर्वहाराका महान् सेवक और पूंजीवादका सबसे भीषण शत्रु उठ गया!

युद्धका एक वर्ष

गत वर्ष आज—पहली सितम्बरको ही पोलैण्डपर नात्सियोंने आक्रमण किया था, जिसके कारण ३ सितम्बरको ब्रिटेनने युद्ध-घोषणा की। इस प्रकार पूरे बारह माससे वर्तमान युद्ध चल रहा है। इस बीचमें आश्चर्यजनक तेजीसे यूरोपमें नात्सियोंकी विजय हुई है। दुनियाके नक्शेकी लकीरें तेजीसे बदली हैं और यूरोप, अफ्रीका तथा उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप एशिया— तीन-तीन महाद्वीपोंमें यह युद्ध चल रहा है और दुनिया इस तरह परिवर्तनके चक्करमें है कि युद्ध समाप्त होते-होते— जिसके होनेकी निकट भविष्यमें कोई सम्भावना नहीं दिखाई पड़ती—दुनियाका चेहरा इतना बदल जायगा कि वह मुश्किलसे पहचानमें आयेगी।

राजनीतिक दृष्टिकोणसे यूरोपमें नात्सियोंकी यह विजय जितनी आश्चर्यजनक है, उतनी ही इसे सम्भव बनानेवाली— बहुत अंशोंमें—कूटनीतिके इतिहासमें रूस और जर्मनीकी मैत्री भी है। इस मैत्रीने सारे यूरोपका नकशा बदल दिया है। ब्रिटेन और रूस अगर किसी समझौतेपर पहुंच गये होते, तो कौन कह सकता है कि इन बारह महीनोंका इतिहास कैसा होता?

पोलैण्डपर जर्मनीके आक्रमणका सामना पोलैण्डवालोंकी प्रशंसनीय वीरताका नमूना था। [illegible] रूस और जर्मनीने २३ सितम्बरको पारस्परिक [illegible] पोलैण्डका बंटवारा कर लिया। पोलैण्डके विभाजनसे [illegible] उसकी पुनरावृत्ति ही नहीं [illegible] भी उसने द्वार

मुक्त कर दिये और जिन सीमान्तोंको लेकर उससे जर्मनीके साथ युद्धकी आशङ्का की जाती थी, उनकी समस्या सुलझते ही उसने दूसरी दिशाओंमें आत्म-विस्तारकी योजनायें कार्यान्वित करनी चाहीं। ३० नवम्बरको फिनलैण्डपर उसने आक्रमण कर दिया और १३ मार्च, १९४० को असहाय फिनलैण्डको रूसकी आत्म-समर्पण करानेवाली शर्तें मञ्जूर करनी पड़ीं।

रूसके निपटते ही जर्मनीने डेनमार्क और नारवेपर ९ अप्रैल १९४० को आक्रमण किया। डेनमार्कने तत्काल आत्मसमर्पण कर दिया और नारवे मित्र-शक्तियोंकी आशासे विरोध करता रहा, पर जिस रूपमें वह प्राप्त हुई, उसमें २ मईको नारवेके लिए भी आत्मसमर्पण करनेके अतिरिक्त और कोई सूरत न रह गयी। इसके साथ ही जर्मनीने हालैण्ड, बेलजियम और लक्सेम्बर्गपर चढ़ाई कर दी। लक्सेम्बर्गने आक्रमणके ही दिन, १० मईको आत्मसमर्पण कर दिया। हालैण्डने १९ मई और बेलजियमके राजा लियोपोल्डने २८ मईको आत्मसमर्पण कर दिया। फ्लैण्डर्सके युद्धका परिणाम इतना भीषण था और इंगलैण्डमें इसकी ऐसी प्रतिक्रिया हुई कि चेम्बरलेनकी सरकार बहुत थोड़े बहुमतसे टिक सकती थी; पर मि० चेम्बरलेनने इसे नैतिक पराजय मानकर इस्तीफा दे दिया और मि० चर्चिलके नेतृत्वमें दूसरा मन्त्रिमण्डल बना। ब्रिटेनने इस परिवर्तनपर सन्तोषकी सांस ली।

इटली अब तक समयकी प्रतीक्षामें था, अब उसने भी मित्र-शक्तियोंके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की। फ्लैण्डर्सकी लड़ाईके बाद फ्रान्सपर आक्रमणकी आशङ्कायें की जाने लगी थीं कि ५ जूनको जर्मनीने फ्रान्सपर आक्रमण कर दिया और संसारने दुःख और [illegible] साथ इतनी जल्दी फ्रान्सकी पराजय देखी। २४ [illegible] फ्रान्सको जर्मनी और इटलीके साथ आत्मसमर्पणकी [illegible] स्वीकार करनी पड़ी।

८ अगस्तसे इंगलैण्डपर जर्मनीने आक्रमण करना शुरू किया है। उधर इटैलियन आक्रमणके कारण ब्रिटिश सुमालीलैण्डसे ब्रिटेनको अपनी सेना हटानी पड़ी है, और निकट पूर्वमें खतरे उत्पन्न हो गये हैं। १ अगस्तको नियमानुकूल लटविया, इस्टोनिया और लिथुआनियाको सोवियट [illegible]में मिला लिया गया है।

युद्धकी प्रतिक्रियायें भारतमें हुई और भारतने ब्रिटनको युद्धमें सहायता देनेके पहले ब्रिटेनके युद्धगत उद्देश्यों एवं शान्तिके लक्ष्योंको लेकर स्पष्टीकरण करनेकी मांग की जिसपर इन पृष्ठोंमें समय-समयपर लिखा जाता रहा है।

युद्ध अभी तेजीसे कई मोर्चोंपर चल रहा है। हिटलरने घोषणा की है कि "इस युद्धमें ब्रिटेन या जर्मनी एकका विनाश निश्चित है। चर्चिलका ख्याल है कि जर्मनीका विनाश होगा, लेकिन मैं जानता हूं कि विनाश ब्रिटेनका होगा।" मि० चर्चिलने उस दिन युद्धका सिंहावलोकन करते हुए कहा है कि ब्रिटेन तब तक लड़ता रहेगा, जब तक नात्सीवादका अन्त नहीं होता और खोये हुए राष्ट्रोंको पुनः स्वाधीनता नहीं मिल जाती। ब्रिटेन १९४१-४२ तकके लिए युद्धके लिए तैयार है—मि० चर्चिलने ऐसी घोषणा हाउस आव कामन्समें की है।

[illegible]र ओलिवर लाज[illegible] निधन

[illegible]त २२ अगस्तको [illegible] देहावसान ८९ वर्षकी अवस्थामें हो गया। [illegible]लिवर सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक थे और आध्यात्मिक प्रश्नोंपर आपने कितनी ही खोजें की थीं। प्रेत-विद्याके सम्बन्धमें भी आपने कुछ खोजें की थीं और अनेक आध्यात्मिक रहस्यों और [illegible]यों में विश्वास करते थे। आपकी मृत्युसे बौद्धिक जगत्‌की क्षति हुई है।



'विश्वमित्र' प्रेस, [illegible] कलकत्तासे [illegible] पाठक द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

युद्धमें सब कुछ खो जानेके बाद–



अब ?

युद्धांक—



सम्पादक—
शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

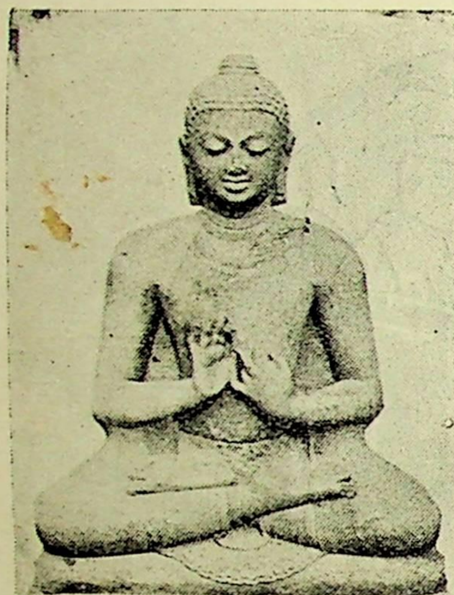
अक्टूबर, १९४०   वर्ष ९ संख्या ९७   आश्विन, १९९७

सूरका सन्तोष

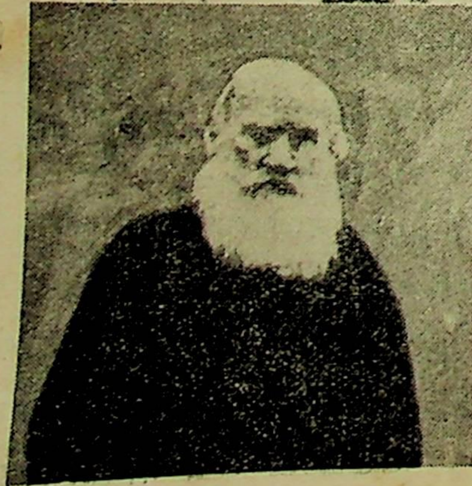
खिड़कीके आगे ही पथ था, पथपर यातायात था,
किन्तु युवकके लिए एक-सा अहोरात्र अज्ञात था।
ले ली थी उसने समाधि-सी क्षुद्र अध्ययन-कक्षमें,
बधू अप्सरा-सी थी घरमें, किन्तु न थी वह लक्षमें!
अलस उष्ण मध्याह्न काल था, युवक परन्तु अखेद था,
सर-सर आकर पवन पी रहा, माथेपर जो स्वेद था।
आ बैठा खिड़कीके बाहर अन्धा भिक्षुक छांहमें,
भीतर अनुभव किया युवकने कर-स्पर्श-सा बांहमें!
ग्रीवा मोड़ निहारा उसने, प्रिया पार्श्वमें थी खड़ी,
"स्पर्श-बोध है?" कह मुंहसे हंस आंखोंसे वह रो पड़ी!

"खाना-पीना भी क्या सचमुच रोक दिया विज्ञानने?
ज्ञान-हीन कर दिया तुम्हें है किस रहस्यके ध्यानने?
पाया नहीं मरणने ही क्या बल विशेष विज्ञानसे?
ढाया हाय वज्र ही उसने अपने रचे विमानसे!
स्फुट विस्फोट छोड़कर उससे और क्या हुआ, मैं सुनूं,
मन होता है इन ग्रन्थोंको लेकर अपना सिर धुनूं!"
"प्रिये, प्रिये, सचमुच ही उससे जगमें कीड़े पड़ गये,
सब पदार्थ कीटाणु-पूर्ण हो भीतर जैसे सड़ गये।
किन्तु तुम्हारे साथ बैठकर अब मैं खानेको चला!"
बाहर सुनकर कहा सूरने—"प्रभु, मैं अन्धा ही भला!"

—मैथिलीशरण गुप्त।







अहिंसा

B.C.P.

महात्मा गांधीके नामस्मरणके साथ अहिंसा-विचार और अहिंसा-आचारकी साढ़े निन्नानबे फीसदी पूर्णताका आभास आज विचारक दल पा रहा है। कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका मत है कि 'अहिंसा' विचार गांधीका अपना नहीं है; वह उन्होंने ईसासे लिया, टाल्स्टायसे लिया है। ठीक है। लेकिन यह सभी एकमतसे मानते हैं कि उस तत्त्वको आचरणमें लाकर मूर्त्त, अतः व्यापक बनानेका काम गांधीका ही है। 'सत्य' देहवान व्यक्तिकी मर्यादासे परे है। 'तत्त्व' भी युग-विशेष या काल-विशेषके संस्कारोंसे चालित मनके घेरेका गुलाम नहीं। इसलिए ईसा, टाल्स्टाय या गांधीका विभाजन बेकार है। अमूर्त्त, सृष्टिकी प्रथम अभिव्यक्ति है और अमूर्त्त ही उसकी अन्तिम परिसमाप्ति। अतः विचार व्यक्ति-दान करता है और व्यक्ति उस अमूर्त्त गुदगुदाहट, प्रकाश, प्रेरणा अथवा स्फुरणको अपने समीप, मांसल मोह-बन्धनोंकी मर्यादा पालते हुए विश्वपर प्रकट कर दिया करती है। देश, जाति, समाज, राष्ट्र—ये हमारी असमर्थ, सङ्कीर्ण दृश्य-बुद्धिकी पराजयके प्रतीक हैं। इस असफलताके शिकार होकर ही हमने इन भेदाभेदकी खाइयों द्वारा उस अद्वैत तत्त्व-सागरको टुकड़ों-टुकड़ोंमें देखना शुरू कर दिया है! विचार, सम्पूर्ण है। उसको वहन करनेवाला मानव अपनी अपूर्णताके कारण उसकी असमर्थता छोड़ जाता है। इसीलिए विचार सत्य है; व्यक्ति असत्य। विचारककी नित्यता और व्यक्तिकी

सिद्धान्त और प्रयोग

श्री प्रभाग चन्द्र शर्मा

अनित्यताके बीच रेखा खींचते हुए निर्मम हो पड़नेवाले आलोचकके प्रति विश्व कटुतर होनेके बजाय आभारी हुआ है। उसे होना भी चाहिए। स्थूल, अनर्थ आलोचना घातक है; किन्तु नीर-क्षीर-बुद्धि भी मुक्तिदायिनी अनेक शक्तियोंमें एक है।

आज तो हमें इस तरह भी देखना पड़ रहा है कि गांधी-टाल्स्टाय यानी पूर्ण अहिंसा। लेकिन भगवान् बुद्धके लिए तो यह बात न थी। हां, कुछने सामाजिक मानव, पारिवारिक मानवकी मुक्तिका मन्त्र, अहिंसाको अधिकतर बनाया था। टाल्स्टायने उसे व्यक्तिकी, अपनी आत्माके पूर्णतम विकासका साधन सिद्ध किया। गांधी एकमात्र व्यक्ति हुए, जिन्होंने अहिंसाको राजनीति-धर्म बनाकर उसके अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्वका विस्तार किया। राजनीति व्यक्ति, समाज और देशकी सर्वतोमुखी अवस्थाओंको एक साथ समान रूपसे ऊंचा उठानेका एक साधन है। अतः अहिंसाको राजनीतिका धर्म घोपित करके गांधीजीने विश्व-विचारकताका सिर ऊंचा कर दिया है। इसकी सफलता-असफलताका विचार यहां नहीं है। क्योंकि अहिंसा भी आखिर साध्य नहीं; साधन है। और कभी-कभी उच्च साधन भी हीन साधकके हाथ पड़कर हीन दीखने लगता है। तब पहले साधककी बात। बुद्ध स्वयं अहिंसाका मर्म समझ ले गये। गांधी उसकी पुनीत सुरसरिमें डूबे जा रहे हैं। टाल्स्टाय



उसी महान् सिंहासनपर आसीन हो उन्मुक्त उठ गये। लेकिन जिन कोटि-कोटि मानव कीट-पतिङ्गोंको राग-द्वेष, घृणा, क्रोध, सत्ता, धन आदि विकारोंसे ऊपर उठानेके लिए 'अहिंसा' के अमोघ शस्त्रको आप उनके संशय, सन्देहोंसे भरे मन और बुद्धिके मृतप्राय हाथोंमें थमा रहे हैं, उनकी दृढ़ता, सबलता और सुस्थिरताकी भी मांग आपने की है? साफ-दिमाग दर्शक और सुलझे हुए हर विचारकने देखा कि इस ओर न कुछ ध्यान दिया गया कि 'अहिंसा' असफल ही नहीं हुई, उसका ह्रास हुआ, उसका अधःपात हुआ। यहां तक कि उसकी प्रतिक्रिया हुई। प्रायः ऐसा होता है कि विचार-विशेषके प्रकाशसे उद्भासित महामानव सर्वसाधारणकी भी ऊंची सतह भर छू पाता है। क्योंकि उसकी मनोदशाका सबसे निचला सिरा तो सर्वसाधारणके सबसे ऊंचे सिरेपर ठहरा है न! बुद्ध और टाल्स्टाय इस तर्ककी सङ्गति नहीं, लेकिन गांधीका उत्तरदायित्व इसलिए बढ़ जाता है कि वे कोटि-कोटि जनताका अहिंसासे उत्कर्ष करनेके व्रती हैं। उन्होंने अपने वर्षोंके प्रयोगके बाद देख लिया कि राजनीतिके द्वारा समूचे मानव समाजको एक साथ ऊंचा कर देनेका उनका स्वप्न बेकार गया। क्यों? उन्होंने अपनी ही सतहपर व्यक्ति-निर्माण करनेका मन्त्र नहीं दिया। उन्होंने 'अहिंसा' को अन्तर्ध्वनि न बनाकर 'स्लोगन' बनाया। प्रश्न उठ सकता है कि बुद्धने अपने चुनिन्दा सीमित क्षेत्रके रहते उच्च मानवोंको दीक्षित किया था। तब बुद्ध क्यों असफल हुए? इसका जवाब है। बुद्धने भिक्खुओंका दल तैयार किया। उन्हें निवृत्तिमुखीन किया। किन्तु खाना, कपड़ा, स्त्री, काञ्चन आदिसे विमुख कर सादगी, कष्टसहिष्णुता सिखायी। साथ ही इस ओर वे लक्ष्य ही न कर सके कि यह जो परिवर्तन हो रहा है, बाहरसे लादा हुआ अधिक और आत्मानुभूत कम है। फलतः भिक्खुगण स्थूल लगावोंसे हटकर सूक्ष्म यानी बौद्धिक सङ्कीर्णतामें रूंधते गये। इसलिए बुद्धधर्म सम्प्रदाय बना। कटुता उसमें आयी और सिद्धार्थकी सारी साधना बेकार हो गयी। मन और देहका शासक-शासितका सम्बन्ध होकर भी दोनोंको एक दूसरेका आश्रय-प्रश्रय भी है। देह-गुणकी स्वस्थ ऊष्मासे मनोरथकी गति प्रकाशमान हो जाती है और मनोरथकी मुखरताके प्रतिबिम्बमें देह-विकार साफ-साफ दीख पड़ते हैं। इस अवस्थाका सन्तुलन होना जरूरी है। धर्म, अकल्पित आदर्श, रूढ़ि या लगावोंसे घिरे उच्च विचार तक इस स्थितिमें पनपते तो खूब हैं; परन्तु मानवको पूर्ण नहीं कर पाते। तब बेतोल मन और बेडोल देह लेकर आदर्श-प्रचारक फैल जाते हैं। निस्सन्देह बुद्ध, मानवको सत्याभिमुख करनेके बहुत समीप आ गये थे। देहको निवृत्त करानेकी धुनमें भिक्खुओंके मनपर चढ़ रहे सङ्कीर्ण स्तरोंको ढहा देनेकी ओर वे ध्यान ही न रख सके। गांधीकी अहिंसाके आते-आते तक मानव नीति-रीति बेहद बदल गयी। बदल क्या, भगवान् बुद्धके ही समयसे चली हुई वह मनोराज दुर्व्यवस्था इस दूरी तक आ गयी कि दैहिक निवृत्ति-भावना तो उसी दिनकी प्रतिक्रियात्मक हिंसा-ज्वालामें झुलस गयी; फिरसे देह-विकारोंको स्वयं मनके प्रोत्साहनसे खुलकर खिलने और फैलनेका सुअवसर मिल गया। और अब, अहिंसा-विस्तारका वितान इतने बड़े पैमानेपर शुरू हुआ कि जहां मन और देहके विभाजनकी अनिवार्यता तो क्या, आवश्यकता ही लुप्त हो गयी! गांधीजीने चरखा, सूत, स्वालम्बन, चूल्हा, चक्की, लुङ्गी आदि बातें अपने कार्यक्रमकी अनिवार्यता मानकर प्रवृत्तिको (दैहिक ही) मिटानेकी बात नहीं कही। उन्होंने गाढ़ी प्रवृत्तिको हलकी प्रवृत्तिसे तब्दील किया। परिणाम स्पष्ट होता है। घोर होना है। लेकिन बुद्ध-कालीन बौद्धिक सतहसे आजकी बौद्धिक ऊंचाई काफी अच्छी है। भविष्य इस बौद्धिकताका और भी उज्ज्वल जाना है। अतः आज सारे संसारमें यह प्रतिध्वनि घहराने लगी कि अहिंसासे मानव-कल्याणकी प्रतिष्ठा होगी। रोम्यां रोलां अपने 'डेथ आव ए वर्ल्ड' में पेरिसके कारखानेदार मजदूरोंको अहिंसात्मक हड़तालकी राय देते हैं। एल्डस हक्स्ले हिंसाको हिंसा प्रदत्तिनी मानकर मानव-शान्तिके लिए अहिंसाको सत्य मानते हैं। हेनरी ग्रेग अपने उत्कृष्ट मनोयोगपूर्वक अहिंसा तत्त्वकी विवेचनामें निमग्न हैं। तात्पर्य यह कि युद्ध-प्रिय अथवा शान्ति-प्रिय सभी लोग यह कहते और चाहते हैं कि शान्ति विश्वमें स्थापित होनी चाहिए। किन्तु शान्ति-प्रतिष्ठानके उपकरणोंको कितने ग्रहण किये हुए हैं? लोगोंने भली भांति देख लिया कि हिंसाका जवाब हिंसासे देकर लोगोंने सङ्घर्ष देखा। इधर-उधर प्रत्येक दलके मन घृणा, भय, क्रोध और असन्तोषकी आगमें झुलस गये। विवेकहीन निरे पशु मानवोंने लड़ते-

लड़ते देहोंसे रणभूमि पाट दी ! क्योंकि शारीरिक और मानसिक घर्षणके उत्तापमें बेचारा विवेक कहां रहता ?

यह निर्विवाद है कि नवीन समाजका आविर्भाव तब तक असम्भव है, जब तक शान्तिकी स्थापना न हो और धन तथा सत्ताके अवाञ्छित प्रहार न रुकें। लोगोंकी यह धारणा भ्रान्तिपूर्ण है कि युद्ध प्रकृतिका स्वभाव है। युद्ध मानवका भी स्वभाव नहीं है। विकारग्रस्त आदमी चाहता है कि युद्ध हो, और वह होता है। और यह युद्ध बाहरी जीवनके आर्थिक, राजनीतिक या धार्मिक मोर्चोंपर होता हो, सो ही बात नहीं, वह अन्तरङ्गमें विकार और विवेकके बीच भी सतत चला करता है। इन दोनों ही प्रकारसे मुक्ति पाकर मानवको पूर्ण मानव होना है। शान्तिका प्रतिष्ठान करना है। अभी दूसरे प्रकारके युद्धकी चर्चा गौण है। प्रमुख है, हमारे मौजूदा युद्धोंकी बात। इन लड़ाइयोंका मुख्य कारण है, राष्ट्रीयतावाद। प्रत्येक राष्ट्रीयतावाद मूर्तिपूजक धर्म है, जिसमें ईश्वरके साकार स्वरूप किसी राजा, किसी तानाशाहकी पूजाका आदेश निहित है। जनताकी बुद्धिमें राज्यको ईश्वरीय व्यक्तित्व साबित कर दिया जाता है। इस तरह ये कर्णधार पठित-अपठित जनवर्गमें राष्ट्रीय भाव-ज्वाला सुलगाते रहकर युद्ध-प्रकरण समाप्त नहीं होने देते। राष्ट्र-धर्ममें पारस्परिक कटुता आती है इतना ही नहीं, उसके तले व्यक्तिके मनमें अहंभाव, आत्म-गौरव, घृणा और निरादर करनेके विकार भी पनप आते हैं। एक राष्ट्रीय मूर्तिपूजक दूसरेको ठोकर देकर प्रसन्न होना चाहता है। इसके सिवा राजनीतिक युद्ध इन कारणोंसे मुख्यतः हुए हैं:—(१) युद्धके जवाबमें युद्ध, (२) शस्त्रास्त्र बढ़ाकर उसपर संयम न रहनेके कारण, (३) नामवरीके लिए, (४) धार्मिक विभिन्नताके कारण। यहां तक कि असीरियन राजा, स्वयं अलेक्जेण्डर, लुई १४ वां और नेपोलियन तक केवल नामवरीके लिए युद्ध रचते रहे। आर्थिक कारणोंसे भी युद्ध होते हैं; जिस युद्धका अर्थ है, एक राष्ट्रकी दूसरे राष्ट्रको हड़पनेकी वृत्ति। ऐसे युद्ध उपजाऊ जमीन या धातुके लिए होते आये हैं। अभी-अभीकी लड़ाइयां, विज्ञानचालित अधिक रहनेसे उपजाऊ जमीनके लिए कम हुईं। कच्ची धातुके लिए देशोंमें पारस्परिक कटुता आयी है। फ्रान्स और जर्मनीके बीच कटुताकी जड़ लोरेनकी कच्ची धातुके प्रश्नपर पड़ी थी। मञ्चूरिया और उत्तर चीनपर जापान निरीह मानव-दलन कर रहा है खदानोंके लिए। जर्मनी और इटलीने गत स्पेन-युद्धमें स्पेनको आदर्शोंके लिए मदद नहीं दी। इन दोनों तानाशाहोंकी आंखें थीं, रिवो-टिण्टोके तांबे और बिलबाओके लोहेपर। जो लड़ाईके पहले ब्रिटेनके कब्जेमें था—इसके सिवा पूंजीवादी देशोंमें औद्योगिक प्रगतिके लिए बाहरी देशोंमें बाजार ढूंढ़ना जरूरी हो जाता है। इसलिए भी युद्ध होते हैं। और सच पूछा जाय, तो पूरी उन्नीसवीं शताब्दी इन्हीं साम्राज्यवादी हलचलोंसे भाराक्रान्त है। कुछ ऐसा तमाशा रहा कि एक बर्थेलेमी डी, लिग्ट आया, उसने नारा दिया—"जितनी अधिक हिंसा, उतनी ही क्रान्ति।" और राष्ट्रीयताके बावले हिंसक सैनिक टूट पड़े अपने भाईको चुका देनेके लिए। राष्ट्रीयताका यह स्वभाव है कि वह अपनी राष्ट्र-रक्षाके भ्रमसे घरमें अनिवार्य सैनिक भरती कराकर सैन्यवृद्धि करती है और घरसे बाहर अपने साम्राज्यवादी स्वरूपको फैलाती है, जिससे युद्ध-लिप्साका अन्त तो होता ही नहीं, बल्कि प्रत्येक देश इस चीजका अनुसरण करने लगता है। इस प्रकार एक शाश्वत युद्धकी भूमिका बंध गयी है वसुधापर। उसको खतम करके, मूलोच्छेदन करके नयी भित्ति, नये आधार, नये आलम्ब, नये विचार, नये आचारसे पूर्ण नयी सृष्टि-रचना करनी है। नयी-नयी विचार-धारायें आकर आजके चिन्तन-जगत्में विद्यमान हैं। सभी अपनी-अपनी बातको कल्याणकारी कह रहे हैं। स्वस्थ बुद्धि मानव भी गुमराह है कि आखिर सम्पूर्ण मानवताका साध्य क्या, उसके साधन कौन-से ? मैं पहले इङ्गित कर आया हूं कि एक विचारको जीवनोपयोगी बनानेके लिए अनेक आचरण-वर्तन आवश्यक है। आचरणका एक भी पहलू यदि व्यवहारमें आनेसे रह गया, तो उस युगकी विचार-वाहक विभूतिकी असफलता पहली चीज और दूसरी विभूति द्वारा उसी विचारके पुनःआगमनकी लम्बी प्रतीक्षा, यह दुहरी हानि समाजको, नहीं मानवताको उठानी होती है। गांधीकी अहिंसाका विचार पच्चीस सौ वर्ष पूर्व बुद्धकी मार्फत आया था; किन्तु उसकी जीवनोपयोगिता नहीं रही, और दो शताब्दी तक पुनः प्रतीक्षा करनी पड़ी। आज गांधीका अमूल्य सन्देश कहीं हमारे हाथोंसे निकल न जाय ! यह सर्वथा सत्य है कि गांधीकी

अहिंसा कायरकी अहिंसा नहीं है, वह अपने विस्तारके मोहमें फंसे लोगोंकी अहिंसा नहीं है, वह जीवन-शून्य बौद्धिक प्रतिगामियोंकी अहिंसा नहीं है, वह ऐसे मन और शरीरके स्वस्थ निर्लिप्त सैनिक-गृहस्थकी अहिंसा है, जो अपनेको, परिवारको और समय रहते पड़ोसीको क्षण-प्रतिक्षण बिना बोले ऊंचा उठाता है।

एल्डस हक्स्लेने एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा है—"एण्डस् एण्ड मीन्स" (साध्य और साधन)। उसमें अहिंसा और असहयोगपर मननीय विचार हैं। मैं नीचे केवल उन्हीं विचारोंको सार-रूपमें रखूंगा:—

"ईसासे कार्ल मार्क्स तकके समस्त पैगम्बर एक आवाजमें बोले हैं। उस स्वर्ण-युगमें, जिसके लिए उनकी भावीपर नजर गड़ी हुई है—स्वतन्त्रता, शान्ति, न्याय और भ्रातृप्रेम होगा। राष्ट्र राष्ट्रके प्रति तलवार न तानेंगे। प्रत्येकका स्वाधीन विकास सबको स्वतन्त्र रूपसे फलने-फूलने देगा। समूचा विश्व प्रभुके ज्ञानसे लबरेज होगा।

"कुछ हैं, जो विश्वास करते हैं और मौजूदा जमानेमें यह अत्यन्त लोकप्रिय विश्वास भी है कि उन्नत विश्वका राजमार्ग आर्थिक सुधारणामें है। कुछ लोगोंको, कल्पित स्वर्गके लिए सैन्य-विजय और एक राष्ट्र-विशेषका एकच्छत्र प्रभुत्व वाञ्छित है। दूसरे लोग सोचते हैं कि सशस्त्र क्रान्ति और वर्ग-विशेषका तानाशाही नेतृत्व हमें उस अवस्था तक पहुंचा सकता है। ये सब, खासकर सामाजिक प्रणाली और आला पैमानेके सङ्गठनकी भाषामें सोचते हैं। दूसरे भी हैं, जो इस समस्या तक विपरीत सिरेसे पहुंचते हैं और विश्वास करते हैं कि वाञ्छित सामाजिक परिवर्तन बहुत अधिक सफल रूपसे लाये जा सकते हैं, यदि उन व्यक्तियोंको परिवर्तित कर दिया जाय, जो समाज बनाते हैं।

"कुछ और लोग हैं, जो विश्वास करते हैं कि बिना दैवी साहाय्यके हृदय-परिवर्तन सम्भव नहीं।

"इन सबमेंसे हम किसको चुनें। उत्तर है कि किसीको नहीं। क्योंकि यह स्पष्ट है कि ये परस्परविरोधी प्रत्येक आदर्श विशेष सामाजिक परिस्थितियोंके फल हैं।

"अधिकांश स्वाधीनचेता मनुष्य वे हुए हैं, जिन्होंने सद्गुणको अन्तर्मुखीन दृष्टिसे संयुक्त कर लिया है। अब, मानव-जीवोंके इन स्वाधीनतम पुरुषोंमें, पिछली अस्सी या नब्बे दशाब्दियोंसे—आदर्श व्यक्तिके बारेमें सारगर्भित समझौता रहा है। धर्म-संस्थापकों, मर्मियों, स्वाधीनचेता दार्शनिकोंके उक्त आदर्श व्यक्तिके लिए एक शब्दमें परिचय दे सकना कठिन है। शायद 'निर्लिप्त मानव' (Non-attached) सबसे अच्छा शब्द है। जो निर्लिप्त है, वह आदर्श व्यक्ति है। निवृत्त हो, अपने शारीरिक विकारसे। निवृत्त हो, सत्ता और अधिकारोंकी लिप्सासे। निवृत्त हो, इन विभिन्न इच्छाओंको उत्पन्न करनेवाले पदार्थोंसे। घृणा और क्रोधसे निवृत्त—अपनी विशेष स्नेह, प्रेम-भावनासे। धन, कीर्ति और सामाजिक गौरवास्पदतासे निवृत्त। विज्ञान, कला, अनुमान और दानवीरताके गर्वसे मुक्त। हां, इनसे भी निवृत्त।

"निवृत्ति केवल नाममें नकारात्मक है। लेकिन निर्लिप्तताके व्यवहारमें समस्त सद्गुणोंका आचरण हो जाता है। इसमें दानका आचरण शामिल है। साहसका आचरण भी इसलिए उसमें निहित है कि भय, आत्माकी उसके शरीरके साथ दुःखद और भयावह पहचान कराता है। (भय नकारात्मक उत्तेजना है, जैसे आलस्य नकारात्मक ईर्ष्या है)।

"निर्लिप्ततामें बौद्धिक निर्मलता भी होती है; क्योंकि बज्रमूढ़ता अन्य समस्त दुर्गुणोंकी जड़ है। निर्लिप्त होनेसे उदारता, सदाशयता और निःस्वार्थताका आचरण भी होने लगता है।

"निर्लिप्तताका आदर्श व्यवस्थित रूपसे बार-बार पिछले तीन हजार वर्षोंसे दुहराया जा रहा है। (और सब बातोंके बावजूद भी) हम इसे हिन्दू-धर्ममें पाते हैं। यही विचार बुद्धकी दीक्षाके अन्तरङ्गमें भरा पड़ा है। चीनी लोगोंको लाओसूने यह सिद्धान्त सिखाया। कुछ समय बाद ग्रीसमें स्टोइक्सने इसी विचारका अपने तरीकेसे प्रचार किया। ईसाके उपदेश भी अनिवार्यतः निवृत्तिके उपदेश-मन्त्र हैं, जिनमें इस दुनियाकी चीजोंसे निवृत्ति और ईश्वरके प्रति लगावकी बात है।

"निर्लिप्त मानव वह है, जो बुद्धकी परिभाषासे, दुःखका अन्त कर चुका होता है; और वह न केवल अपनेमें ही दुःखका अन्त करता है, वरन् रागद्वेषपूर्ण मूढ़ क्रियात्मकताको रोककर दूसरोंपर टूटनेवाले दुःखको भी रोकता है।

वह सुखी और वरद मानव है और वही श्रेष्ठ पुरुष है।

"कुछ नीतिवानोंने—नीत्शे-जैसे उद्भासित और मारक्विस डी शेड-जैसे प्रमुख, किसीकी न माननेवाले दृढ़ विचारकोंने निर्लेपके मूल्यसे सदा इनकार किया है। लेकिन ये लोग अपनी मनोदशा और अद्भुत सामाजिक सङ्कीर्णताके शिकार रहे हैं। निर्लिप्त-वृत्तिके आचरणमें असमर्थ ये उसके प्रचारमें भी असमर्थ हो गये। स्वयं गुलाम, वे बेचारे स्वाधीनताकी सहूलियतोंको भी न समझ पाये।"

यह है, सरांशमें हक्स्लेके भावी मानवकी वाञ्छा। जो मानवताको शान्ति, राष्ट्रोंको प्राण-घातक युद्धोंसे मुक्ति और विश्व-विचारकताको स्वाधीन चेतना प्रदान करेगा।

रोम्यां रोलांने भी अपने 'जान क्रिस्तफ' में आदमीको श्रेष्ठ, ईमानदार, कर्तव्यपरायण ही चाहा है। रूपवान उन्हें नहीं चाहिए, प्रभावशील उन्हें नहीं चाहिए, परम ज्ञानवान उन्हें नहीं चाहिए, कोटि-कोटि मनुष्योंके सिर झुका सकनेकी क्षमतावाला आदमी भी उन्हें नहीं चाहिए। उन्हें तो दूसरे शब्दोंमें वही आजके हक्स्ले-वाला और पहलेके बुद्ध तथा अन्य भारतीय तत्त्ववेत्ताओंकी कल्पनावाला 'निर्लिप्त मानव' चाहिए। या यों कहिये कि सुवर्णपूरित, कल्याणप्रद, भावीका बोझ संभाल ले जानेमें दक्ष, समर्थ रामदासका आधुनिक, आवश्यक अच्छा-इयों सहित एक, नव संस्करण चाहिए। गोर्कीने भी अपनी 'मदर' में सरल, सहज श्रेष्ठ मानव चाहा है। डी० एच० लारेन्सने दीप्त पुरुष, प्रखर मानव, आदित्य पुरुष (Sun-man) की आगामी कलके लिए वाञ्छा की है। हमारे उपनिषदोंने तो इन सबसे पहले 'अ-क्षर' पुरुषकी कल्पना दे ही रखी है। और एक-दो नहीं, इस तरह सैकड़ों ऐसे व्यक्तियोंसे समाज भरा-पूरा हो जाय, तब मानवता अमर हो जायगी, कृतकृत्य हो जायगी। इसपर अधिक विवाद अना-वश्यक है कि यह सब हिंसासे होगा अथवा अहिंसासे। व्यक्ति-व्यक्तिके मन और शरीरके विकार स्थिर, स्वस्थ होते हैं। इसके लिए शान्तिकी स्थापना आवश्यक है। युद्धसे, युद्धकी धमकियोंसे, युद्धकी तैयारियोंसे जल्दी या देरमें उन्नत समाज-रचनाकी सब सड़कें बन्द हो जाती हैं। युद्ध, मात्र दाल-रोटीके समान साधारण मनुष्यका मसला है। निचली सतहके जीव यौन-उत्तेजकताकी गर्मीमें द्वन्द्व करते हैं। खानेके लिए एक-दूसरेको मार डालते हैं। और प्रायः खेलके लिए भी वे अपने साथी प्राणीपर प्रहार कर बैठते हैं। लेकिन मनुष्य अपने सजातीय प्राणियोंका बहुसंख्यक कत्लेआम सङ्गठित रूपसे करनेमें बेजोड़ साबित हुआ है। ये आदि-मानवके पाशविक बाहुल्यकी अवस्थाके शोध-परिणाम हैं। आजका मानव बर्बरतासे उभरकर बहुत कुछ उन्नत हो गया है। परन्तु उसे मौजूदा विज्ञानकी श्रेष्ठताने घेर डाला है। वह शोध करता है, अनुसन्धान करता है; पर नाशके लिए अधिक। उसने अखिल विश्वको एक विराट् जड़ मशीन मान-कर मनुष्यको उसकी तुच्छ, स्वाभाविक उत्पत्ति मान लिया है, जो कि जड़ जीवनधारीकी तरह जड़ मृत्युको भी पाता चलता है, जिसने देहका जीना ही वास्तव जीवन मानकर मनको शरीरकी उत्पत्ति-भर माना है। अतः व्यक्तिगत धन, सत्ता, प्रभुत्वकी स्थापनाका इस वैज्ञानिकका दावा कुछ असङ्गत नहीं मालूम होता। मि० गेरल्ड हर्डने विश्व और मानवके इस वैज्ञानिक कन्सेप्शनको 'मेकनोमार्फिक कस्मालाजी' नाम दिया है। किन्तु इसी नीरस विज्ञाना-काशमें इस बीसवीं सदीमें फिर चेतनाका प्रकाश प्रस्फुटित हुआ है। वैसे पिछली डेढ़ शताब्दीसे विश्वके विभिन्न देशोंमें अहिंसा-विचारका अनुसरण हुआ है। रिचर्ड ग्रिगने तो अपने ग्रन्थ 'दि पावर आव नान-वायलेन्स' में अहिंसा-विस्तारके रचनात्मक पहलुओंको अत्यन्त बारीकीसे क्रियात्मक स्वरूपमें रखा है। उसमें तो समूचे विश्वको अहिंसासे चालित करनेकी खासी व्यावहारिक योजना ही है। अब तक नीचे लिखे देशोंमें अहिंसात्मक आन्दोलन हुए हैं:—

हमारे देशकी और दक्षिण अफ्रीकाकी बात तो हमपर प्रकट है। हां बाहर, १९०१ से १९०५ तक फिनलैण्डने रूसी दलनके विरुद्ध अहिंसात्मक एवं रक्षात्मक आन्दोलन किया था। यह पूर्ण सफल हुआ और फिन लोगोंको जबर्दस्ती फौजमें भरती करनेका निश्चय १९०५ में रूसी सरकारको रद्द करना पड़ा। हंगेरियन लोगोंने डीकके नेतृत्वमें अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन किया, जो १८६७ में सफल हुआ। यह हंगेरियन हिंसक लीडर कोसथ और शान्तिदूत डीकके बीच महत्त्वाकांक्षा और ईमानदारीकी कशम-कशका युद्ध था। किन्तु अन्ततः डीक सफल हुए और बिना रक्त बहाये

आस्ट्रियन गवर्नमेण्टको हंगरीका विधान स्वीकृत करना पड़ा। जर्मनीमें भी दो बार अहिंसक आत्मरक्षा आन्दोलन सफल हुए; एक बिस्मार्कके खिलाफ़ केथोलिकोंका और दूसरा १८७१ में सोशल डिमाक्रेटिक दलको जायज बनानेके लिए मजदूर वर्गका। अभी-अभी ब्रिटिश साम्राज्यके खिलाफ ईजिप्टमें भी अहिंसात्मक असहयोग सफल हुआ है। असहयोगका एक स्वरूप बहिष्कार भी है, जिसे कितनी ही बार पाश्चात्य देशोंने अपनाया। तम्बाकूकी मोनोपलीके खिलाफ फारस-निवासियोंने बहिष्कार-नीति ग्रहण की। ब्रिटिश ट्रूप द्वारा चीनी विद्यार्थियोंपर गोली चलाये जानेके विरोधमें चीनी लोगोंने ब्रिटिश मालका बहिष्कार किया। यहां तक कि १९२० में 'ब्रिटिश मजदूर आन्दोलन' ने यह तर्क रखा कि युद्धको अहिंसात्मक असहयोग ही टाल सकता है। १९२० की ९ अगस्तको 'कौन्सिल आव एक्शन' ने गवर्नमेण्टको चुनौती दी कि अगर सरकारने पोलैण्डमें ब्रिटिश टुकड़ी भेजकर रूसके खिलाफ लड़नेकी नीति न बदली, तो एक आम हड़ताल होगी। मजदूर युद्ध-सामग्री और आदमी भेजनेसे मना कर देंगे और युद्धका सम्पूर्ण बहिष्कार घोषित किया जायगा। इसके चलते लायड जार्जकी सरकारको अपनी युद्ध-योजना बन्द कर देनी पड़ी थी। इसी प्रकार १८१४ में नारवे और स्वीडनकी पारस्परिक शासक और शासित हो रहनेकी सहर्ष स्वीकृति और उसपर ९० वर्ष तक टिके रहकर स्वाधीन होनेके समय आज भी दोनों राष्ट्रोंकी मैत्री अहिंसक अप्रोयकी सफलताका ज्वलन्त उदाहरण है।

तात्पर्य यह कि, यह सब तानाशाहों, नरेशों, राजनीतिज्ञों, फील्ड मार्शलोंके किये नहीं हो सकता। उसके लिए तो वे ही 'निर्लिप्त मानव' समाजमें फैलें, जिनकी निःस्वार्थ कर्मरतताके प्रसादसे विश्व पुनीत हो जाय! निराशावादी और अकर्मण्य लोग कहेंगे, यह स्वप्न है, यह 'यूटोपिया' है। उनके कहनेका महत्त्व इस दिव्य मन्त्रणाको वाञ्छित ही नहीं। स्वार्थ, सङ्कीर्णता, राग-द्वेष और अहमूसे लबरेज इस विश्वकी मुक्तिके इस युगकी वरद विभूतिके दोनों रूपोंको एक कर दिया जाय। यानी सन्तको वैज्ञानिक और वैज्ञानिकको सन्त बना डालिये। आज जो कठिनाई है, वह यही कि बहुत कम सन्त (Non-attached man) वैज्ञानिक या सङ्गठनकर्ता हैं। और शायद ही कोई वैज्ञानिक या सङ्गठनकर्ता होगा, जिसे हम सन्त कह सकें। किन्तु अभी तो व्यक्ति-निर्माणका सवाल प्रथम है। साधारण सिपाही बनानेके लिए चार साल ट्रेनिङ्ग होती है, तब एक 'निर्लिप्त मानव' की रचनामें भी सन्तोषजनक समय लगेगा। और निवृत्त ही होनेसे काम खतम थोड़े ही होता है। उसे सर्वथा जवाबदार व्यक्ति भी तो होना पड़ेगा। जो अहिंसात्मक होना चाहते हैं, उन्हें संयमका आचरण चाहिए। नैतिक और शारीरिक साहस चाहिए। क्रोध और राग-द्वेषको उखाड़कर सद्भावना, शान्त ग्राह्य बुद्धि तथा सहानुभूतिका निरूपण अपनेमें करना होगा। मनुष्य दुहरा जीव है; कभी देव-दृष्टिसे वस्तुदर्शन वह करता है और कभी पशु-दृष्टिसे वस्तुका सिंहावलोकन करने लगता है। उस मनुष्यको, ऐसे चञ्चल और विकारग्रस्त मनुष्यको मुक्त करके हमारी यह अहिंसा आज नहीं तो कल अखिल विश्वमें फैलेगी।

परन्तु, एक दुःखद धारणा। क्या देवदूत गांधीकी इस परम साधनाके सत्यका वहन हमारे कन्धोंसे विश्वव्यापी होगा? सम्भवतः नहीं। वे राष्ट्र, जो मन और शरीर दोनोंसे स्वस्थ, सतेज, सबल हैं—यह महान् कार्य करेंगे। हमारे यहां तो हर तीन दमड़ीके आदमी गांधीसे मतभेद ही रखते मरते चले जायंगे। काश, अधिक नहीं तो केवल इतना मूलमन्त्र कोई हमारे रक्त-मांसमें कूट-कूटकर भिदा दे कि हिंसा असत्य है, इसलिए कि वह अस्थायी है, वह रुक जाया करती है। अहिंसा सत्य है इसलिए कि उसका सिरा चार हजार वर्षकी निविड़ अगाधतामें भी प्रज्ज्वलित है। सत्य प्रवहमान है, इसीलिए उसके प्रसारकी सम्भावना है, विश्वास है। सत्यकी शक्ति दुर्जेय है, अतः सत्यके प्रचारककी शक्ति भी अपरिमेय होनी पड़ेगी। यह तेजीसे आनेवाले निकट भविष्यका स्वप्नाभास है। प्रत्येक व्यक्ति, जो यदि नवयुगके सन्देशवाहककी कतारमें खड़ा होना चाहता है, अपने मन और शरीरको स्वस्थ बना ले। जीवनके बाहरी उपकरणोंकी आवश्यकतासे अधिकाधिक मुक्त और दुनियाबी थोथी प्राप्तिलिप्सासे विमुख एक चिरन्तन शुष्क अभाव लेकर भावीके सिंहद्वारमें घुस पड़े।

'आकुल अन्तर' से*

क्या है मेरी बारीमें ?

जिसे सींचना था मधु-जलसे
सींचा खारे पानीसे,
नहीं उपजता कुछ भी ऐसी विधिसे जीवन-क्यारीमें !
क्या है मेरी बारीमें ?

आंसू-जलसे सींच-सींचकर
बेलि विवश हो बोता हूं,
स्रष्टाका क्या अर्थ छिपा है मेरी इस लाचारीमें ?
क्या है मेरी बारीमें ?

टूट पड़े मधुऋतु मधुवनमें
कल ही तो क्या मेरा है,
जीवन बीत गया सब मेरा जीनेकी तैयारीमें !
क्या है मेरी बारीमें ?

(२)

मैं जीवनकी शङ्का महान !

युग-युग सञ्चालित राह छोड़,
युग-युग सञ्चित विश्वास होड़,
मैं चला आज युग-युग सेवित पाखण्ड-रूढ़िसे बैर ठान !
मैं जीवनकी शङ्का महान !

होगी न हृदयमें शान्ति व्याप्त,
कर लेता जब तक नहीं प्राप्त,
जग-जीवनका कुछ नया अर्थ, जग-जीवनका कुछ नया ज्ञान !
मैं जीवनकी शङ्का महान !

गहनान्धकारमें पांव धार,
युग नयन फाड़, युग कर पसार,
उठ-उठ, गिर-गिरकर बार-बार,
मैं खोज रहा हूं अपना पथ, अपनी शङ्काका समाधान !
मैं जीवनकी शङ्का महान !

—बच्चन

* मेरी आगामी रचना—लेखक।

श्याम !

सूर्य जले, चन्दा जले,
उडुगण जले सहास,
इनके काजलसे न हो,
क्यों काला आकाश ?

तुम देखो, नभमें लगे अङ्गारे-से ये विधि-बालाके,
यों अन्धकारपर, बिखरे फूल पड़े हैं सुर-मालाके;
अन्धकार ही पर क्यों सूरज, अपनी किरणें अजमाता है ?
अन्धकारपर बैठ चांद क्यों मधुर चांदनी उकसाता है ?
अन्धकारमें कविको क्यों करुणाकी तान सूझ जाती है ?
अन्धकारमें प्रेमीको क्यों प्रीतमकी हिलोर आती है ?
अन्धकारमें, विश्व-प्राण यह वायु, घूमती क्यों अलबेली ?
अन्धकारमें, मञ्जुल कलियां क्यों जनतीं अलबेली बेली ?
अन्धकारमें, महा एकरसता, दौड़ी-दौड़ी फिरती है—
अन्धकारकी गोदीमें क्यों बूंदोंकी मणियां झरती हैं ?
अन्धकार खो दूं ? कैसे ? इसका प्यारे अस्तित्व अमर है,
पृष्ठ टूट जानेपर सुन्दर चित्रणके मिटनेका डर है।
अन्धकार है तो, फिर 'नीलेपन'की अगवानी सम्भव है,
अन्धकार है तो, कीमतका तेरा उज्ज्वल विमल विभव है।
अन्धकार है तो, गरबीले, तुझे न नजर लगा पाऊंगा,
अन्धकार है तो, पद-ध्वनिपर, मैं तेरे पीछे आऊंगा।

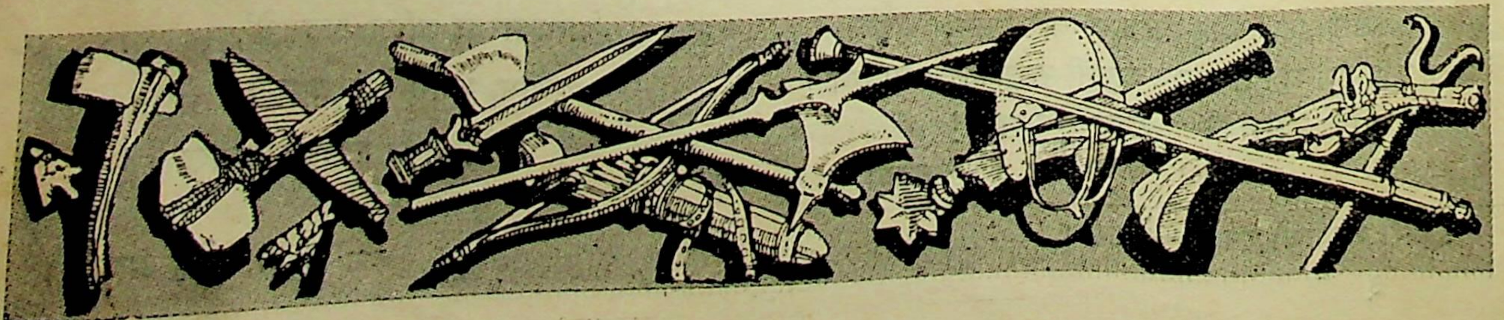
झिड़क नहीं सुन्दर यों कहकर
'अन्धकारका कठिन हास है',
श्याम, श्याम तेरा आसन है,
कि तू अमर उज्ज्वल प्रकाश है !

—एक भारतीय आत्मा।



मनुष्य स्वार्थ-प्रिय है। उसे अपना स्वार्थ और अपनी आकांक्षाओंकी पूर्ति जितनी आवश्यक प्रतीत होती है, उतनी और किसीकी नहीं। यद्यपि नीतिकार हमेशा ही पर-हित-रत होनेका उपदेश देते रहे हैं, तथापि स्वार्थ-भावना मानव समाजसे कभी दूर नहीं हुई और इसकी अनिवार्य प्रतिक्रियाके रूपमें सङ्घर्ष, युद्ध भी हमेशा ही सामने आते रहे हैं। यह सच है कि युद्ध अनेक परिस्थितियोंमें अनिवार्य होता है; परन्तु साधारणतः युद्धको अच्छा कभी नहीं समझा गया और यद्यपि प्रत्येक कालमें दूरदर्शी राजनीतिज्ञोंने भरसक उसे टालने और बचानेका प्रयत्न किया है; किन्तु इस तरहका प्रयत्न किये जानेपर भी युद्ध बचा नहीं। युद्ध अनादि कालसे होते रहे हैं और युद्धोंको असम्भव बनानेका प्रयत्न होते रहनेपर भी वे अनन्त काल तक होते रहेंगे। हिसाब लगाकर देखनेसे मालूम होता है कि गत शताब्दीके आरम्भसे लगाकर वर्तमान समय तक कुछ ही वर्ष ऐसे निकलेंगे जिनमें संसारके किसी न किसी हिस्सेमें युद्ध न होता रहा हो! इतिहास और अनुभव यह बतलाता है कि समयकी प्रगतिके साथ युद्धोंकी भीषणता—संहारक आयोजनके रूपमें उसकी भयङ्करता बढ़ती ही गयी है। अपने प्रतिद्वन्द्वीसे बढ़कर रहनेकी इच्छा और स्पर्द्धा युद्धके उपकरणोंको अधिकाधिक संहारक बनानेकी ओर बहुत दूर तक ले जा चुकी है और मालूम यह होता है कि इस दृष्टिसे भौतिक विज्ञान अपनी चरम-सीमापर पहुंच गया है; किन्तु यह समझना होगा भ्रम ही। विज्ञान अनन्त है, उसकी कोई सीमा नहीं है और आज जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती, कल वही प्रत्यक्ष हो सकता है। अतीतमें यही हुआ है और भविष्य इसका अपवाद नहीं है।

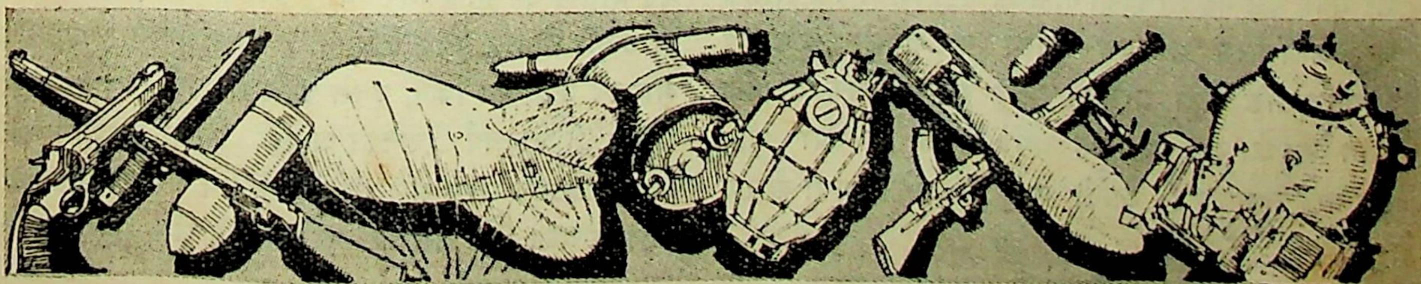
अपनी स्वार्थसिद्धि, प्रतिद्वन्द्वीपर अपना रौब रखनेकी प्रवृत्ति, अपनी आकांक्षाओंकी पूर्ति या किसी दूसरी तरहके अपने लाभके लिए मनुष्यने हमेशा ही प्रयत्न किया है और





यह जब किसी अन्य मनुष्यके उसी तरहके प्रयत्नके प्रतिकूल पड़ता हो, तब सम्पर्कमें आनेपर सङ्घर्ष भी हुआ ही है। यह जैसा एक व्यक्तिके पक्षमें सही है, वैसा ही व्यक्तियोंके समूह, समाज और राष्ट्रके पक्षमें भी है। यही नहीं, उसका क्षेत्र जितना व्यापक होता है, उसका परिणाम भी उतना ही व्यापक होता है।

युद्धमें विजय हमेशा ही अनिश्चित होती है, क्योंकि वह किसी एक साधनपर निर्भर नहीं है। विजयी होनेके लिए शक्तिमान होना बहुत ही आवश्यक है सही; परन्तु यह हमेशा नहीं होता कि जो शक्तिमान हो, वही विजयी हो। युद्धमें विजयी होनेके लिए जिन सब साधनोंकी जरूरत होती है, उनमेंसे किसी एक साधनकी भी उपेक्षा करनेसे बलवानको भी कभी-कभी अपने कमजोर प्रतिद्वन्द्वीसे हार जानेके लिए विवश हो जाना पड़ता है। फिर, आज हम जिसे बल कहते हैं और जिससे अपनेको बलवान समझते हैं, वह हमेशा ही 'बल' नहीं रह सकता। सौ वर्ष पहले जिन साधनोंको रखकर कोई राष्ट्र अपनेको बलवान मान सकता था और मानता था, आज बलके उन साधनोंका कोई मूल्य नहीं रह गया है और अपने प्रतिद्वन्द्वीसे श्रेष्ठ रहनेकी स्पर्द्धाने मानव-समाजको 'बल' के कितने ही अपूर्व साधनोंसे सुसज्जित कर दिया है। जब अतीतके सम्बन्धमें यह बात है, तब यह कौन नहीं स्वीकार करेगा कि भविष्यमें भी यही होगा, आज जिन चीजोंको बल-सम्पन्न होनेका प्रबल साधन माना जाता है, वे सब इसी शताब्दीके उत्तरार्द्धमें व्यर्थ हो जायंगी या तुलनात्मक दृष्टिसे उनका मूल्य कम हो जायगा!



यह जैसे अब तक होता आया है, निश्चय ही आगे भी वैसा ही होगा और युद्ध-लग्न पक्षोंमेंसे एक न एक पक्षकी हार-जीत भी अवश्य ही होती रहेगी। किन्तु इस हार-जीतके बीच जो बात हमेशासे होती आयी है, और जो आगे भी हमेशा ही होती रहेगी, वह है विजयी और पराजित, दोनों पक्षोंका एक-दूसरेपर अन्यायी होनेका दोषारोप करना और एक पक्षकी जिस चालके आगे दूसरे पक्षको झुकना पड़ा हो, नीचा देखना पड़ा हो, अनुचित-अन्यायपूर्ण और विश्वासघात कहकर उसकी निन्दा करना। वैसे, यह कहावत कौन नहीं जानता कि प्रेम और युद्धमें अनुचित कुछ भी नहीं होता।

इतिहास-कालसे बहुत पहले मनुष्य घने जङ्गलों और पहाड़ोंमें घूमता और वृक्षोंके पत्तों और मांसपर निर्भर रहकर अपना काम चलाता था। वह अपने रहनेकी जगहके आसपास हरे-भरे चरागाहमें अपने पशुओंको चराकर अपना बहुत-सा समय बिताया करता था। यों वह सुखी था, परन्तु उसे एक बातका बड़ा कष्ट था—गर्मी तो वह किसी तरह वृक्षोंकी छायामें बैठकर बिता लेता, परन्तु बरसात या जाड़ेकी रातमें उसे बड़ी कठिनाईका सामना करना पड़ता था। इस कठिनाईको बचानेके लिए उसे किसी अन्य स्थानकी जरूरत थी। एक दिन घूमते-फिरते उसने एक गुफा देखी। यद्यपि पहलेसे ही उसमें एक अन्य मनुष्य रहता था, तथापि आगन्तुक मनुष्य अपना लालच न दबा सका स्त्री, चरागाह या पशुधनके पीछे लड़ाई लड़नेका जो अनुभव उसे था, उससे पूरा लाभ उठाकर उसने गुफाके मनुष्यको भगा दिया। यह गुफाका मनुष्य उस समय तो भाग गया; परन्तु रात्रिके अन्धकारमें लौटा। गुफाके कोने-कोनेसे तो वह परिचित था ही; निर्भय होकर उसमें बड़े सर्राटेसे बढ़ने लगा। किन्तु आगन्तुक व्यक्ति उसके लिए काफी चतुर था, सावधानीके लिए उसने जो कीले पत्थरकी कुल्हाड़ीसे तैयार कर गाड़ दिये थे, उनपर वह आक्रमणकारी ऐसा गिरा कि तुरन्त मर गया, उसे यह सोचनेका भी समय नहीं मिला कि रात्रिके घोर अन्धकारमें अचानक हमला कर शत्रुको किं कर्तव्य विमूढ़ करनेके जिस तरीकेसे इतने समयसे सफलतापूर्वक काम लेता आ रहा था, वह क्यों विफल हो गया और इस तरह अचानक ही उसकी मृत्यु हो जानेका क्या कारण हुआ?

गुफाका यह नया मालिक एक दिन अपने पशुओंको चराता हुआ कुछ दूर तक निकल गया। उसके हाथमें लकड़ीका डण्डा था; परन्तु उसने देखा कि पत्थरका एक टुकड़ा सनसनाता हुआ आया और उसके कानके पाससे निकल गया। इधर-उधर निगाह दौड़ाकर उसने देखा, तो एक टीलेके पीछे एक व्यक्ति खड़ा हुआ था। वह अभी देख ही रहा था कि इस व्यक्तिने फिर हाथ घुमाकर एक पत्थर कुछ ऐसा फेंका कि वह उसकी पसलियोंके पास छीलता हुआ कई गज दूर जा गिरा। पत्थरका यह टुकड़ा चपटा था और उसके किनारोंको बड़ी सावधानीसे तेज बनाया गया था। गुफाके उस नये मालिकके लिए यह अस्त्र बिलकुल अपूर्व था। उसने सोचा कि इस अस्त्रसे काम लेनेवाला व्यक्ति बड़ा दुष्ट है, धूर्त है, जिसने युद्धकी पूर्व परम्पराका उल्लङ्घन किया है, माने हुए तरीकेके विरुद्ध आचरण किया है। इस तरह बड़बड़ाता हुआ वह अपने पशुओंको वहीं छोड़कर भाग गया।

इतिहाससे पूर्व युगके मनुष्यको युद्धके नये-नये तरीकों और शस्त्रास्त्रोंसे जो आश्चर्य हुआ होगा, उसे यह काल्पनिक वृत्तान्त पूरी तरह व्यक्त नहीं कर सकता। मानव-समाजका ज्यों-ज्यों विकास होता गया है, मनुष्य अपने प्रतिद्वन्द्वीको नीचा दिखानेके इरादेसे युद्धके वैसे ही आश्चर्यजनक साधनोंका आविष्कार करता गया है। युद्धके नयेसे नये साधनों और तरीकोंकी यह होड़ नयी नहीं है। साधारण इतिहाससे पहलेके देवासुर-संग्राम और पौराणिक कालकी गाथाओंसे लगाकर १९४० में नाजियोंकी चुम्बकीय सुरङ्गों और दिनको रात बना देनेवाले कुहरे तक, कितने ही आश्चर्यकी बातें हैं, जो समय-समयपर हुई हैं और जो एक समय अपना काम करनेके बाद समयकी प्रगतिशीलताके कारण पीछे पड़ गयी हैं, अन्यान्य आश्चर्योंके सामने आ जानेके कारण उनका महत्त्व नष्ट हो गया है या कम हो गया है। यह बात पत्थर-काल और धातु-कालके लिए जितनी सत्य है, उतनी ही इस युगके लिए भी है। नाजियोंने १९४० में जो आश्चर्य उपस्थित किये, उनसे पहले भी इस संसारको युद्धमें सैकड़ों ही आश्चर्य देखनेका अवसर मिला है और यद्यपि आज विज्ञानने सभ्य संसारको नयेसे नये अत्यन्त शक्तिशाली संहारक यन्त्र और शस्त्रास्त्र जुटा दिये हैं और मनुष्य अभी

शक्तिभर मानवताका संहार करनेके लिए उनका उपयोग कर रहा है—यह साबित कर रहा है कि विज्ञान मानव-समाजके लिए आशीर्वाद तो कम, परन्तु अभिशाप अधिक साबित हुआ है, तथापि इसमें सन्देह नहीं है कि युद्धके उद्देश्यों और उसकी प्रणाली-मूलक प्रवृत्तिमें कोई अन्तर नहीं आया है।

वर्तमान महासमरके इस एक वर्षमें नाजियोंको जो इतनी जल्दी अप्रत्याशित सफलता हुई, उसके सम्बन्धमें किसी भी राजनीतिज्ञ, सेनानायक या पत्रकारसे बात कीजिये, वह उसका रहस्य बतलानेके लिए आपको एक ही उत्तर देगा—आश्चर्य !

इन सब आश्चर्योंका विश्लेषण कीजिये। क्या मालूम होता है ? युद्ध-सम्बन्धी आश्चर्योंमें जो बात हमेशा ही देखनेमें आयी है, वही इनमें पायी जाती है। एक पक्षने युद्धकी भावनाको जगाया है, उसकी योजना तैयार की है और उस योजनाको कार्यान्वित किया है और दूसरे पक्षमें इन सब बातोंका अभाव है। जर्मन अलौकिक नहीं हैं और न यह बात है कि आविष्कार करनेमें उनके जैसी प्रतिभा किसी अन्यमें न हो। उनके पास ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो ब्रिटेनके पास न हो या चाहनेपर जो ब्रिटेनको न मिल सकती हो। जर्मनोंने युद्धके पुराने और परीक्षित तरीकोंसे काम लिया है, उन तरीकोंसे काम लिया है जिन्हें सिकन्दर, हेनीवाल, फ्रेडरिक, नेपोलियन आदि बड़े-बड़े सेनापतियोंके कार्यों और सिद्धान्तोंके आधारपर निश्चित किया गया है। सचमुच, सबसे अधिक आश्चर्यकी बात तो यह है कि नाजियोंने जो कुछ किया, उससे किसीको आश्चर्य हुआ हो।

ईसासे ११०० वर्ष पहलेकी बात है, स्पार्टाके राजा मेनेलासकी पत्नी हेलेनको फ्राइजियन राजकुमार पारिस उड़ा ले गया। यद्यपि हेलेनको अपने कालकी अद्वितीय सुन्दरी माना जाता था, तथापि वह स्पार्टाके राज्यकी उत्तराधिकारिणी थी, इसीलिए मेनेलास उसके नामपर राज्य-शासन करता था। राजकुमार पारिसको हेलेनसे प्रेम तो था ही; किन्तु जब हेलेन उनके पास थी, उनका और उनके उत्तराधिकारियोंका पक्ष स्पार्टाके लिए अधिक जोरदार था। हेलेनको छुड़ानेमें स्पार्टावालोंको १० वर्ष लग गये। अन्तमें आर्थिक दबाव और नाजियोंके पांचवें कालमकी तरहकी स्पार्टनोंकी कारगुजारीसे नगरका पतन हुआ। इस सम्बन्धमें कहानी यह है कि ट्राय नगरके फाटकके बाहर स्पार्टावालोंने काठका एक बड़ा घोड़ा छोड़ दिया और हट गये। फ्राइजियन इस चालमें आ गये और काठके इस घोड़ेको घसीटकर शहरके अन्दर ले गये। घोड़ेका अन्दर पहुंचना था कि ट्राजन सैनिक उसमेंसे निकल पड़े और अन्तमें ट्रायका पतन हो गया। इस सफलताके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि उस समयके आदमी बहुत भोलेभाले थे और काठके घोड़ेवाली चालको समझ न सके; परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि भावी सन्तान इस युगके मनुष्योंको भी कहेगी कि उन्होंने नाजियोंका आक्रमण होनेपर वैसा ही भोलापन दिखलाया।

हालैण्ड, डेनमार्क और बेल्जियमके रास्तेसे जर्मनोंने फ्रान्स और ब्रिटेनकी सेनापर जो भयङ्कर आक्रमण किया, उससे पहले संसारको यह बतलाया गया था कि नारवेमें जर्मनोंकी ट्राजनके घोड़े जैसी चाल चल गयी और पांचवें कालमकी बदौलत उन्हें इतनी जल्दी सफलता हो गयी। जर्मनीके सैनिक नारवेके बन्दरगाहोंमें माल ढोनेवाले जहाजोंमें पहुंचते थे, इनमेंसे कुछपर तटस्थ देशोंका झण्डा उड़ रहा था। ७ मई मङ्गलवारको हालैण्डकी सरकारको उसीकी खुफिया पुलिसने चेतावनी दी कि जर्मनोंका हमला होने ही वाला है। सावधानीके लिए जो कार्यक्रम पहलेसे निश्चित था, उसके अनुसार बुधवारको कार्यवाही की गयी। इस कार्यवाहीमें सीमावर्ती पुलोंको नष्ट कर देनेकी बात तो थी परन्तु महत्त्वपूर्ण स्थानोंमें लगे हुए बजरों और बन्दरगाहमें लङ्गर डालकर खड़े हुए विदेशी जहाजोंकी तलाशी लेनेकी नहीं। शुक्रवारको बड़े सवेरे जब ऊषाने पूर्वके आकाशको अपनी लाल रङ्गकी कूंचीसे चित्रित किया, उधर जर्मन हवाई जहाज हालैण्डकी ओर चिड़ियोंके झुण्डकी तरह बढ़ने लगे। और इधर मूरडिक पुलके पास लगे हुए बजरों और राटरडमके बन्दरगाहमें स्वीडनके झण्डेवाले एक जहाजने छिपे हुए जर्मन सैनिकोंको उतारना आरम्भ कर दिया ! ये सैनिक शस्त्रास्त्रोंसे लैस थे, यहां तक कि उनके पास हलकी फील्ड तोपें भी थीं। इन सैनिकोंने विद्युत्-गतिसे पूर्व योजनाके अनुसार सैनिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण पुलोंपर अधिकार कर लिया और पलक मारते ही इन पुलोंपरसे जर्मनीकी यान्त्रिक

सेनायें और बख्तरदार गाड़ियां अभीष्ट स्थानोंमें पहुंच गयीं। राटरडममें जो हजारों जर्मन पहलेसे ही थे, उन्हें उस समय तक न तो गिरफ्तार ही किया गया था और न पुलिस उनकी निगरानी ही करती थी। यही नहीं, ये सब एक जर्मन फर्ममें एकत्र भी हुए थे। जहाजसे जो जर्मन सैनिक उतरे, वे राटरडमके इन जर्मन नागरिकोंसे जा मिले। नाजियोंको चकित कर देनेमें सफलता तो हुई, परन्तु पूरी तरह नहीं, क्योंकि राटरडमपर अधिकार जमानेमें उन्हें २४ घण्टेके बजाय ५ दिन लग गये।

फिर भी, सेडान और नामूरके बीच फ्रान्सीसी सेनाओं-के एक छिद्रसे लाभ उठाकर, उनकी पंक्ति तोड़कर जर्मनोंने जो भारी आश्चर्य घटित किया, उसके बाद फ्रान्सके भूतपूर्व प्रधानमन्त्री मोशिये रेनोका यह कहना कि हमारे सामने सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य ठीक-ठीक सोचना है, आश्चर्य नहीं है?

भविष्य कथन करनेवालोंने, जिनका सैनिक क्षेत्रसे कोई सम्बन्ध नहीं था, यह कहा कि अगले—वर्तमान महासमरमें अत्यन्त आश्चर्यजनक नये-नये वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रोंसे काम लिया जायगा। युद्धको एक वर्ष हो चुका है; परन्तु अभी तक तो वैसा कोई शस्त्रास्त्र प्रकट हुआ नहीं है और यदि युद्ध लम्बा न चले, तो उसकी कोई सम्भावना भी नहीं है। हिटलरके तथाकथित गुप्तास्त्रके रूपमें चुम्बकीय सुरङ्गका नाम लिया जाता है; परन्तु उसमें कुछ भी नवीनता नहीं है। १९१८ में इन चुम्बकीय सुरङ्गोंसे काम लिया जाता था—अलबत्ता, उन्हें हवाई जहाजोंसे गिराकर बिछानेका तरीका नया है।

पैराशूटी सैनिक:भी नया नहीं है। १९३५ में जब लाल सेना रूसकी उत्तर सीमापर प्रदर्शन कर रही थी, लेनिन-ग्राडके आसपास पैराशूटके जरिये उतरकर आक्रमण करने-का अभ्यास दिखलाया गया था। रूसकी वायुसेनाके अधि-कारियोंने युद्धके सारे सामानसे लैस १००० सैनिकोंको पैराशूटके द्वारा उतारा था। बादमें मालूम हुआ कि इन हजार सैनिकोंमेंसे ३५ नीचे आनेमें चोट खा गये थे। रूसके अधिकारी इस परिणामसे बहुत सन्तुष्ट थे और सरकारी प्रचार विभागने अगले साल पैराशूटोंसे सामूहिक रूपसे उतरनेके चित्र बहुत ज्यादा संख्यामें बंटवाये थे। इसके बाद तो इस सम्बन्धमें समाचारपत्रोंमें लेख भी प्रकाशित हुए थे। पेरिस और लन्दनसे रूस दूर नहीं है और जर्मनी तो और भी नजदीक है। हवाई जहाजसे पैराशूटके सहारे कूदनेकी शिक्षा देनेके लिए जर्मनीमें ४ स्कूल थे, हजारों जर्मनोंको इनमें शिक्षा दी गयी थी। इसके लिए खास सामान बहुत ज्यादा तादादमें तैयार किया गया था। फिर भी, जब पैराशूटोंसे जर्मन सैनिक उतरे, दङ्ग रह जाना पड़ा। पैरा-शूटी सैनिकके सम्बन्धमें सर्वसाधारणको यह विश्वास दिलाया जाता है कि वह युद्धका एक चमत्कार है और ऐसी बात है, जिसकी पहलेसे कोई कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। इस सिलसिलेमें आम तौरसे यह देखा जाता है कि लोग शत्रुको दोष देते हैं, क्योंकि उसने कमीनी चालसे काम लिया। इसके अलावा लोग पैराशूटी सैनिकको भी कुछ ऐसा समझते हैं, मानो वह किसी अच्छे, ईमानदार सैनिकसे कुछ कम हो, किन्तु यह है गलती और वैसी ही गलती है, जैसी १८९९ से १९०२ तकके बोअर युद्धके समय उन घुड़-सवार बोअर सैनिकोंके सम्बन्धमें की गयी थी, जिन्होंने अचानक छापा मार अंगरेजोंको चकित कर दिया था और जिनका उल्लेख मि० विन्स्टन चर्चिलने अपने प्रारम्भिक जीवनकी कहानीमें किया है।

नये शस्त्रास्त्र स्वयं कोई भयकी वस्तु नहीं हैं। यदि शत्रु कोई नया शस्त्र या अस्त्र निकाले और उसका व्यवहार करे, तो थोड़े ही समयमें कोई भी उसे स्वयं भी तैयार कर मुका-बिलेमें डट सकता है। परन्तु युद्धका सारेका सारा नया तरीका भयावह है, क्योंकि उसमें मशीनें ही नहीं, मनोवृत्ति भी है। फिर, कोई जादूगर तो है ही नहीं कि एक ही रातमें तैयारी कर ले, और मशीनोंको प्राप्त कर ले। युद्धके आश्चर्य-जनक नये तरीके संसारके इतिहासकी दिशा ही बदलते रहे हैं। सिकन्दर और चङ्गेज खांको जो सफलता मिली थी, उसका रहस्य युद्धके आश्चर्यजनक तरीकोंमें ही है। जो असा-धारण सैनिक सफलता मुसलमानोंको पूर्वमें चीन तक और पश्चिममें अफ्रीकाके उस पार अटलाण्टिक महासागर तक मिली थी, उसका भी वही रहस्य है। यूरोपकी तीन महान् शक्तियोंपर फ्रेडरिकने जो विजय पायी थी, उसकी कुञ्जी भी उसीमें है और उसीमें है छत्रपति शिवाजीकी उस सफलताका भेद, जिसकी आधार-शिलापर मरहठा साम्राज्य कायम किया गया था।

सिकन्दरके पिता फिलिपको अपनी जवानीमें थीबीजमें जमानतके बतौर रहना पड़ा था। वहां रहनेके समयमें उन्होंने थीबनोंकी सैनिक प्रणालीका अध्ययन खूब किया। उस समय यह प्रणाली संसारकी सर्वश्रेष्ठ प्रणालियोंमें थी। जब वे अपने देश मकदूनियामें लौटे, उन्होंने उसमें और भी अधिक सुधार किया। उन्होंने यूनानियोंवाला जिरह-बख्तर उठा दिया और भालेको थोड़ा और लम्बा किया और इस तरह पहली सुसङ्गठित सेना खड़ी कर अपने पुत्र सिकन्दरकी विजयको सम्भव बना दिया। बात सीधी थी। उन्हें आक्रमण करनेके भावोंको जगानेके साथ ही अपने योद्धाओंकी रक्षा भी करनी थी। जिरह-बख्तर रक्षात्मक मनोवृत्तिको प्रोत्साहन देता है; परन्तु युद्धका एक सिद्धान्त यह है कि शत्रुपर पहले स्वयं आक्रमण करके भी तो कोई व्यक्ति उतनी ही अच्छी तरह आत्मरक्षा कर सकता है। हवाई जहाजोंके जमीनके बहुत समीप तक उतरकर उड़ने और टैङ्कों एवं पैदल सेनाके साथ सहयोग करनेमें नाजी जो विश्वास करते हैं, उसमें भी यही बात है। शस्त्रास्त्रोंसे सुदृढ़ रक्षात्मक किलेबन्दीसे बाहर निकलकर एक साथ आगे बढ़कर शत्रुपर धावा बोल देना, अभीष्ट स्थानपर पहुंचकर प्रहार करना और इस तरह आक्रमणके साथ रक्षात्मक प्रयत्नोंको संयोजित करना, युद्ध-नीतिका एक माना हुआ सफल सिद्धान्त है।

नये ढङ्गसे सुसज्जित सिकन्दरकी इस सेनाको फालन कहते थे। उसके भाले बीस-बीस फीटके थे। ये भाले १६ तरहके थे। टैङ्क ब्रिगेडकी शक्तिके साथ वह अग्रसर होती थी। उसके दक्षिण और वाम पार्श्वमें घुड़सवार और पैदल सेना रहती थी। इस सेनाके साथ फिलिपने फौजी इञ्जीनियरोंकी टुकड़ियोंको रखा और साथ ही पत्थर-मार-यन्त्रों और एक प्रकारकी तोपोंको, जिन्हें चलानेके लिए तोपचियोंकी कम्पनियां थीं। इन सब यन्त्रों और युद्धके नये तरीकोंसे यूनानकी सेनाओंको भयङ्कर आश्चर्य हुआ। बादमें यही अवस्था फारिसकी सेनाओंकी हुई और आगे भी सिकन्दरके रास्तेमें जो आया, उसकी भी वैसी ही गति हुई। अलबत्ता, सिकन्दरने सैनिक यन्त्रोंके साथ ही युद्ध-नीतिकी कुछ पूरक बातों, जैसे धोखेबाजी, रिश्वत, आतङ्क और विश्वासघातसे भी काम लिया था।

सिकन्दरके बाद रोमनोंने सेना खड़ी की और युद्धकी एक नयी प्रणालीमें पूर्णता प्राप्त की। रोमन सेनाको वेतन दिया जाता था। इस सेनाकी एक पलटनमें जो ४२०० आदमी होते थे, वे तीन पंक्तियां बनाकर खुले रूपमें लड़ते थे। रोमके शत्रु इस सेनाका मुकाबिला नहीं कर सके। पहले इस सेनाका अग्रभाग छोटे आकारके एक ऐसे भालेसे हमला करता था जिसके सिरेका गोल भाग कांटेदार होता था। अगर शत्रु कमजोर पड़ता और स्थान छोड़ता, अग्रभागके सैनिक झपटते और नये ढङ्गकी छोटे आकारकी तलवारोंसे शरीरको क्षत-विक्षत कर देते। अगर शत्रु टिकता, अग्रभागके सैनिक दक्षिण और वाम पार्श्वसे होकर पीछे हट जाते और तीसरी पंक्तिके सैनिक आगे आकर उनका स्थान ले लेते और ये थके हुए शत्रु-सैनिकोंपर तलवारसे हमला करते। घुड़सवार सैनिक पार्श्वसे आक्रमण करते थे, जिनकी संख्या एक पल्टनमें ३०० होती थी।

रोमनोंकी यह सेना २०० वर्ष तक विजय प्राप्त करती रही। ईसासे २८० वर्ष पूर्व इस सेनाका मुकाबिला इपीरसके राजा पाइरससे हो गया, जिसने मकदूनियाकी प्रणालीसे अपनी सेनाको तैयार किया था। इस सेनामें घुड़सवारोंके अलावा ५०० हाथी भी थे। रोमन सेना इसके मुकाबिलेमें डट न सकी और पाइरसकी विजय हुई; परन्तु इन दोनों सेनाओंके बलका सन्तुलन इतना पूर्ण था कि जब पाइरसको विजयके लिए बधाई दी गयी तो उसने भारी हृदयके साथ कहा कि इस तरहकी एक अन्य विजय हो, तो सर्वनाश ही हो जायगा।

तीन वर्ष बाद बेनी वेण्टम नामक स्थानमें रोमन और मकदूनियांकी फालन प्रणालीके सैनिकोंका मुकाबिला फिर हुआ। परन्तु शत्रुको अपनी चालाकीसे चकित कर देनेका तत्त्व इस बार रोमनोंने ग्रहण कर लिया था, अतएव इस बार रोमनोंकी विजय हुई और 'फालन' इतिहासके पन्नों तक ही रह गया।

मनोविज्ञान-मूलक एक आश्चर्यके कारण यूनानको अपना समुद्र-पारवर्ती साम्राज्य ही खो देना पड़ा। स्पार्टाकी जलसेना हेलेस्पाण्ट स्थानमें गयी। यूनानकी जलसेनाने उसे युद्धके लिए ललकारा; परन्तु स्पार्टावालोंने यह चुनौती स्वीकार न की। इसपर यूनानियोंने यह समझ लिया कि स्पार्टाकी जलसेना उपेक्षणीय है। उनमें लापरवाही आ गयी

और इसका परिणाम यह हुआ कि एक दिन अवसर पाकर स्पार्टावालोंने समस्त जलसेनापर अधिकार कर लिया। यूनानके जल-सैनिक उस समय जहाजोंको छोड़कर छुट्टी मना रहे थे। वे बड़ी शीघ्रतासे लौटने लगे; परन्तु उन्हें नष्ट कर दिया गया।

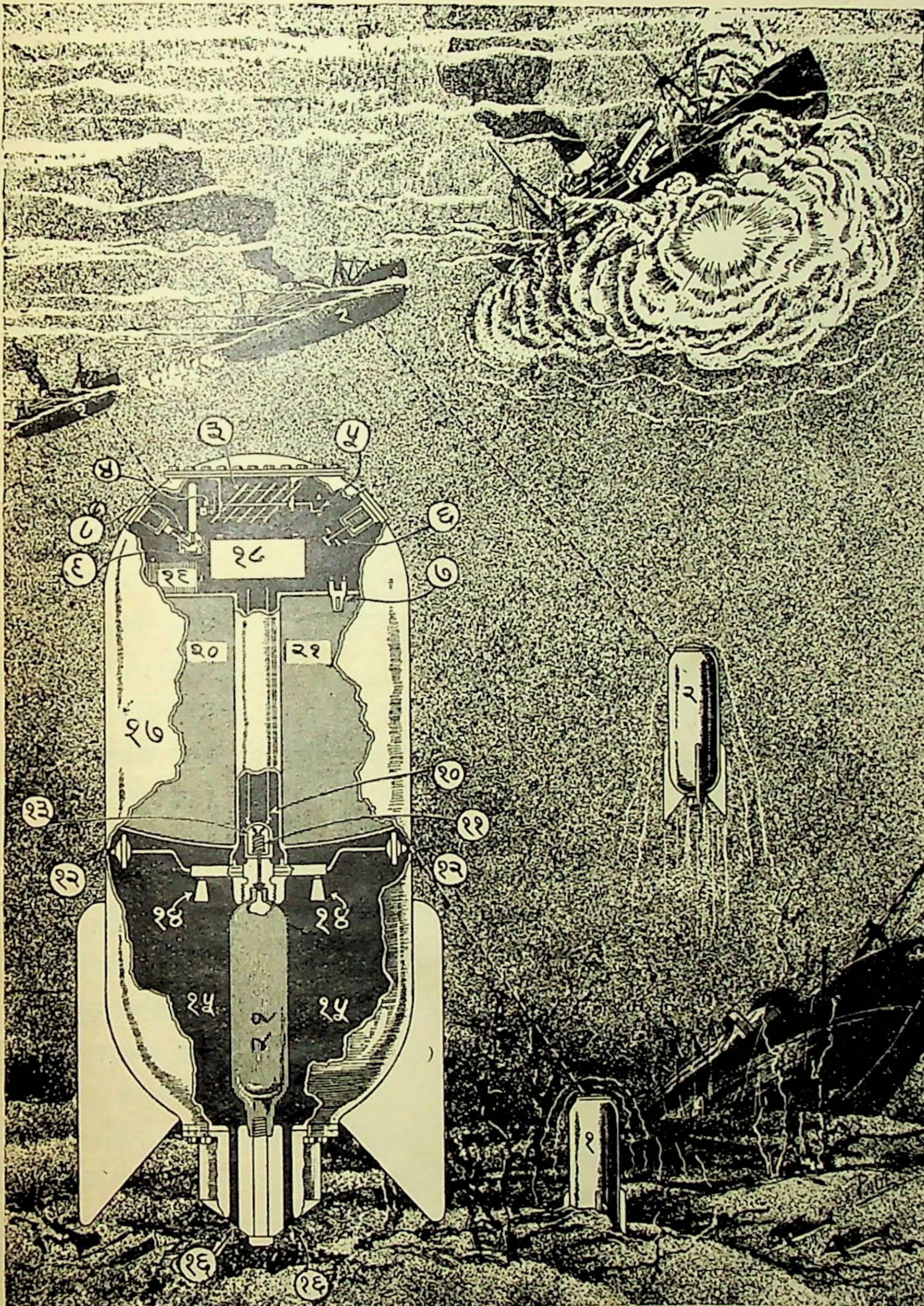
रोमनोंने स्थल-युद्धमें इसी तरहके एक आश्चर्यसे कारथेजिनियनोंको चकित कर दिया था। कारथेजिनियनोंके पास विशाल जल-सेना थी और इससे वे अपनेको पूर्ण सुरक्षित समझते थे। रोमनोंके पास जल-सेना नहीं थी; परन्तु वे यह अनुमान करते थे कि अगर भूमध्यसागरके उस पार शत्रुओंको जीतना हो, तो उन्हें समुद्रपर अधिकार प्राप्त करना होगा। उन्होंने कारथेजिनियन जहाजोंके नमूनेपर जहाज तैयार किये और जल-सेना खड़ी की; परन्तु इन जहाजोंकी रचनामें उन्होंने कुछ ऐसा हिसाब रखा कि जब चाहें तब जल-युद्धको स्थल-युद्धकी तरह किया जा सके। ईसासे २६० वर्ष पूर्व सिसलीके समुद्र-तटके उत्तर-पूर्वकी ओर इस रोमन जल-सेनाकी कारथेजिनियन जल-सेनासे लड़ाई हुई। कारथजिनियनोंको अपनी विजयमें पूर्ण विश्वास था; परन्तु हार जानेपर उन्हें बड़ा धक्का लगा। रोमन लोग तो लगातार ही अपनी बुद्धिका प्रयोग करते आ रहे थे, उन्होंने इधर-उधर न कर सीधे रूपमें आक्रमण किया और जैसे ही उनका जहाज कारथेजिनियनोंके जहाजसे सटा कि काठका एक टूट दार पुल रोमनोंके जहाजसे कारथेजिनियनोंके जहाजपर डाल दिया गया और रोमन सैनिक उसपरसे दौड़कर कारथेजिनियन जहाजपर पहुंच गये और इस तरह जल-युद्ध जहाजके डेकपर स्थल-युद्धकी तरह शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित योद्धाओंके बीच होने लगा। इसमें कारथेजिनियनोंकी बुरी तरह हार हुई।

चङ्गेज खां शत्रुको चकित कर देनेकी कलामें पूरा उस्ताद था। मङ्गोलियाकी मरुभूमिसे लगाकर पेकिन तक चीनमें इधर काले सागर और लाल सागर तक उसकी घुड़सवार सेनाकी तूती बोलती थी। धीरे-धीरे:अग्रसर होनेवाली कमजोर पैदल सेनाओंपर उसने हमला किया और उन्हें नष्ट ही कर दिया। चङ्गेज खांकी सेनाके घोड़ोंके लिए जहां घास मिल सकती और सैनिकोंको जहां मांस या चमड़ेके डेरे खड़े करनेके लिए स्थान मिल सकता, वहां पहुंचनेमें उसे कोई कठिनाई नहीं हो सकती थी। उसने जिन्हें हराया, वे युद्धके इस साधनका सामना करनेके लिए समय रहते सङ्गठन नहीं कर सके थे।

चङ्गेज खांके उत्तराधिकारी हुए बुगदाई खां, जिन्होंने उत्तर चीन-साम्राज्यको विजय किया। वहां उनके हाथ बारूद लग गयी। इसे वे पश्चिममें ले गये और पोलों और जर्मनोंकी सम्मिलित सेनाको पराजित किया। यह लड़ाई साइलेशियाके लीगनिज स्थानमें हुई थी। बुगदाईखांने अपनी छोटी फील्डगनोंमें इसी बारूदसे काम लिया था।

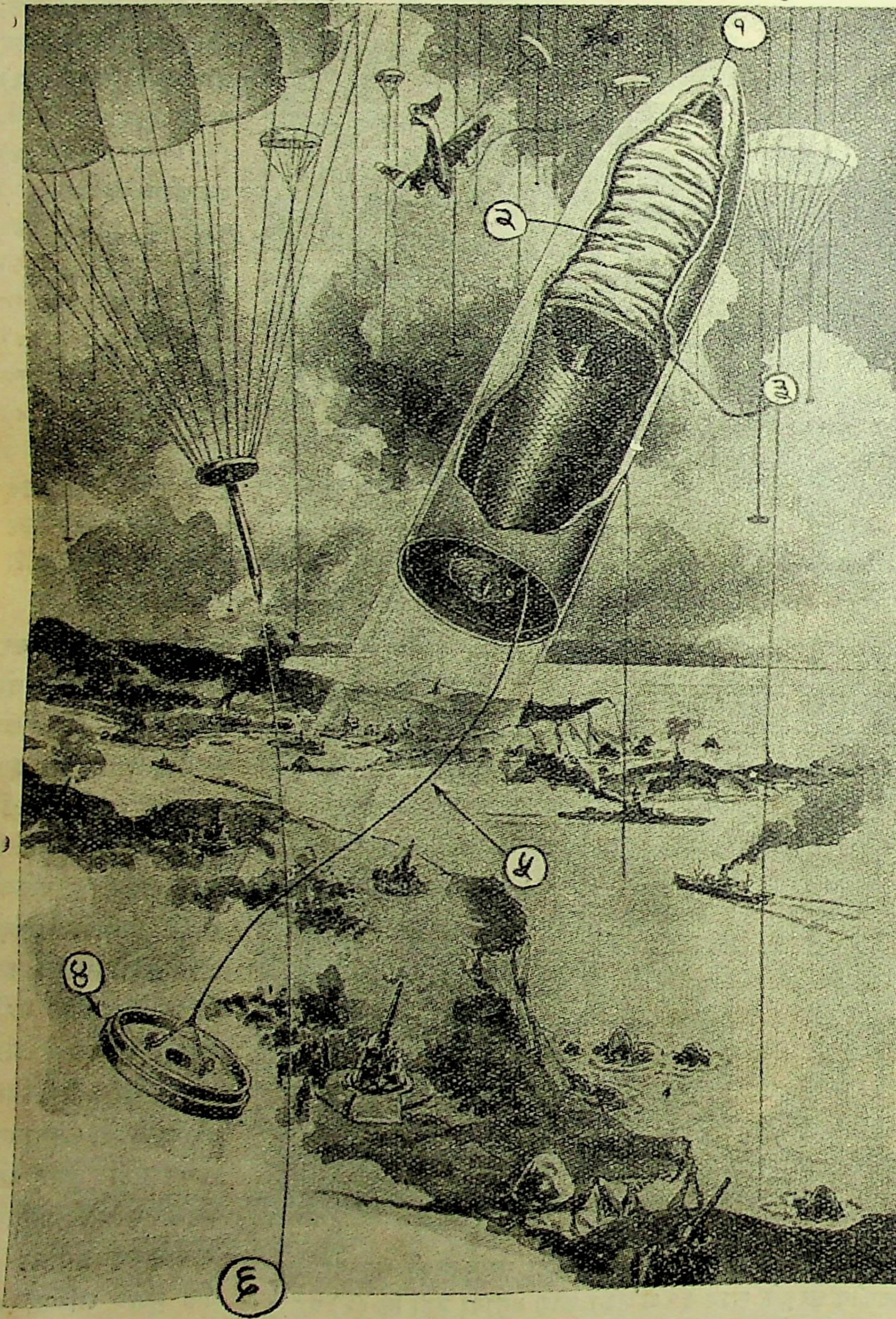
मङ्गोलोंकी इस विजयमें शत्रुको जिस बातसे चकित हो जाना पड़ा था, वह यह थी कि उनकी गति बड़ी तेज थी और आक्रमण इतना अचानक हुआ कि दङ्ग रह जाना पड़ा। इसके सिवाय उनकी तैयारी भी प्रशन लोगोंसे कहीं ज्यादा अच्छी थी। मङ्गोल अपने शत्रुके विषयमें पहले पूरी जानकारी कर लेते थे। इसके लिए वे जासूस रखते थे। जिसपर उन्हें आक्रमण करना होता, उसकी फौजी और राजनीतिक हालतका पता वे पहले ही लगा लेते। वे पहले अपना टाइम टेबल बनाते और फिर उसी टाइम टेबलके अनुसार दूर-दूरका सफर तय करते। उनकी सेनाओंके मिलनेका जो स्थान और दिन निश्चित होता, उस स्थानमें उस दिन वे अवश्य मिल जातीं। इसमें अन्तर नहीं पड़ता था। उन्हें किसी बातसे आश्चर्य नहीं होता था, क्योंकि वे जिस युद्धको करते, उसकी योजनाओंके विषयमें पहले ही अध्ययन कर लेते, जिन लोगोंका उन्हें सामना करना पड़ता, उन्हें वे जानते ही थे, सोचने-विचारनेकी कोई बात होती ही न थी और वे प्रत्येक अवस्थाका सामना करनेके लिए तैयार होते थे। वे यह भी जानते थे कि जिनपर हमला किया गया है, उन्होंने पूरी जानकारी प्राप्त नहीं की है। अतएव असुविधायें डालनेमें वे समर्थ नहीं हो सकते। इतिहास स्वयं अपनी पुनरावृत्ति कर रहा है।

भारतवर्ष युद्ध-सम्बन्धी आश्चर्योंके लिए अपवाद नहीं है। इतिहास बतलाता है कि चित्तौड़के महाराना भीमसिंहको जब दिल्लीके पठान सुलतान अलाउद्दीन खिलजीने युद्धमें कैद कर लिया और रानी पद्मिनीके सामने यह शर्त रखी कि अगर रानी सुलतानके पास स्वयं चली आये, तो महारानाको छोड़ा जा सकता है। कोई रास्ता न देख रानीने सुलतानके कैम्पमें जानेका निश्चय किया और



(१) समुद्र-गर्भमें पड़ी हुई चुम्बकीय सुरङ्ग । आध मील दूर ऊपर समुद्र-तटकी सतहपर जहाज जा रहा है । जहाजने चुम्बकीय सुरङ्गके साथ ६५ अंशका कोण बनाया नहीं कि (२) वह उठने लगी । जहाज ज्यों-ज्यों बढ़ रहा है, सुरङ्ग भी उठ रही है और जहाजकी ठीक सीधमें आनेपर ५० फीट नीचे ही सुरङ्ग फूट गयी । (३) चुम्बकीय यन्त्र, (४) ब्रेक, (५) हवाकी नलीकी फ्यूज-सीलके लिए स्विच, (६) जल-यन्त्रका स्विच, (७) टोपी, (८) पारेकी नलीका स्विच, (९) पारेकी नलीकी सील, (१०) ऊपरी सिरेसे सम्बद्ध तार, (११) स्प्रिङ्ग, (१२) हवाके निकासका मार्ग, (१३) फ्यूज-सील, (१४) हवाकी नलीके सिरे, (१५) पानी भर जानेके लिए खाली स्थान, (१६) समुद्रका पानी भरने और निकलनेकी जगह, (१७) चुम्बकीय प्रभावशून्य बाहरी आवरण, (१८) ड्राई बेटरी, (१९) गोल लपेट, (२०) विस्फोटक पदार्थ, (२१) विस्फोटक पदार्थ, (२२) हवाकी नली।

सुलतानको सूचित कर दिया। सुलतान तो केवल रानी पद्मिनीको ही चाहता था, उसे इस सूचनासे बड़ी प्रसन्नता हुई। चित्तौड़के किलेसे जब रानीकी पालकी निकली, दासियोंकी सैकड़ों डोलियां भी चलीं। इन डोलियोंमें दासियां नहीं, राजपूत सैनिक थे और राजपूत सैनिक ही डोलियां उठानेवाले थे। सुलतानको सन्देह नहीं हुआ और उसके कैम्पमें पहुंचकर रानीने यह प्रार्थना की कि मुझे अन्तिम बार महारानासे भेंट करने के लिए कुछ समय दिया जाय। सुलतान रानीकी



शत्रुके आक्रमणकारी हवाई जहाजोंको रास्तेमें ही नष्ट कर देनेके लिए एक नया आविष्कार—यह गोला जब जमीनसे छोड़ा जाता है, कुछ ही ऊंचाईपर पहुंचते ही गोलेकी तली (४) खुल जाती है। इससे जुड़ा हुआ तार (५) ज्यों-ज्यों गोला ऊपर चढ़ता है, खुलता जाता है। इस तारकी लपेटके ऊपरी भागमें पैराशूट (२) होता है जो इससे बंधा रहता है (३)। निश्चित ऊंचाई-पर पहुंच जानेपर गोलेके सिरेवाला विस्फोटक द्रव्य (१) फूटते ही यह पैराशूट निकल पड़ता है। पैरा-शूटसे लटकते हुए तारसे (६) जब कोई हवाई जहाज आकाशमें टकराता है तब वह नष्ट हुए बिना नहीं रह सकता।

यह प्रार्थना अस्वीकार नहीं कर सका और उधर जब रानी और महाराना भीम सिंहने घोड़ोंको एड़ लगायी, इधर डोलियोंसे राजपूत निकल पड़े और पठानोंकी सेनाको मारते-काटते चित्तौड़ पहुंच गये।

छत्रपति शिवाजीने औरङ्गजेबके चचा शायस्ताखांपर पूनामें अचानक हमला कर उसे खिड़कीके रास्ते कूदकर जान बचाने और रातों-रात भाग जानेके लिए जिस तरह विवश कर दिया था, उसमें भी इसी, शत्रुको आश्चर्यचकित कर देनेके युद्ध-कौशलसे काम लिया गया था। इसी तरह हमारे सामने मैसूरकी पहली लड़ाईके समयकी एक घटना है।

अन्तिम दिनोंमें यद्यपि हैदरअलीकी सेना मद्राससे इतनी दूर थी कि उसके वहां पहुंच सकनेकी कोई सम्भावना हो नहीं की जा सकती थी, तथापि हैदरअली एक सर्राटमें मद्रास जा पहुंचा और कम्पनीके अधिकारी ऐसे दङ्ग रह गये कि कुछ करते-धरते न बन पड़ा। हैदरअलीने वहां खड़े-खड़े जो शर्तें बतलायीं, उन्हींपर मद्रासके अधिकारियोंको सन्धि करनी पड़ी।

१४२२ ईस्वीमें कुस्तुन्तुनियाका घेरा डाला गया था। इस घेरेके समय यह आश्चर्य घटित हुआ कि लगभग साढ़े तेरह-तेरह मनके शिलाखण्ड दो-दो घण्टेके अन्तरसे शहर पर गिराये जाते थे। इन शिलाखण्डोंको फेंकनेके यन्त्रोंको २०० आदमी संभालते थे और यन्त्रपर शिलाखण्ड चढ़ानेमें २ घण्टेका समय लग जाता था।

आज जो बन्दूक हम देखते हैं, वह धीरे-धीरे इस रूपमें आयी। पोलिश जनरलोंने गैसकी निन्दा उससे ज्यादा नहीं की, जितनी किसी समय बारूदसे काम लिये जानेकी निन्दा उन योद्धाओंने की थी, जिन्हें बारूदका उपयोग नहीं मालूम था और जो यह देख रहे थे कि बन्दूकसे उनकी सारी युद्धकला बिश्रृङ्खल हुई जा रही है।

फ्रेडरिक और नेपोलियन तोपोंके व्यवहारसे आश्चर्य घटित करते थे। फ्रेडरिक पहले जनरल थे, जिन्होंने घोड़ेपर लदी हुई तोपका व्यवहार किया था। शीघ्रतापूर्वक गोला और गोली मारनेकी शिक्षा फ्रेडरिकने अपने सैनिकोंको दी थी और एक बार प्रश्न करनेपर कहा था कि "उससे एक और तीनका अन्तर पड़ जाता है।" यह सुभीता तो स्पष्ट ही है; परन्तु यूरोपकी जिन तीन शक्तियोंसे फ्रेडरिकने लोहा लिया था, उनके जनरल इस बातको समझकर वैसी ही शिक्षाकी व्यवस्था नहीं कर सके थे।

लोग साधारणतः जितना सोचते हैं, उससे कहीं अधिक सम्भावनायें १९१४ में आश्चर्य घटित होनेके लिए थीं। गत महासमर आरम्भ होनेके समय टैङ्क और गैस ऐसे अस्त्रके रूपमें थी, जो सम्भवतः गुप्त था। परन्तु चीकुआन और इह-लुङ्गके किलोंसे रूसियोंकी फौजको भगानेके लिए ९ वर्ष पहले जापानियोंने जहरीली गैससे काम लिया था, एक ऐसे धुएंसे काम लिया था, जिसमें सङ्खियाका योग था। क्रीमियन युद्धमें ब्रिटिश सेनापतिने युद्ध-विभागको लिखा था कि गैसके प्रयोग द्वारा सेवास्टोपलसे रूसियोंको हटानेके लिए गन्धकके धुएंसे काम लेना चाहिए।

वर्तमान युद्धमें गति, प्रहार-शक्ति, सेनाकी विभिन्न शाखाओंके सहयोग और उन सब बातोंके द्वारा बड़े-बड़े आश्चर्य घटित किये जा रहे हैं, जिनसे जनसाधारण और सरकारी कर्मचारियोंमें घबड़ाहट फैलती है और उनका नैतिक साहस टूट जाता है।

यह लड़ाई मशीनों, बिजलीकी किरणों, अदृश्य तरङ्गों, बख्तरदार गाड़ियों, तोपों और ऊंचाईपर और नीचे उड़ सकनेवाले, शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित, सैनिकों और बमोंको गिरानेवाले तेज हवाई जहाजोंकी है। यह भय और विनाशकी लड़ाई है, जिसमें विजयी होनेका पुरस्कार है संसारपर प्रभुत्व और पराजित होनेका दण्ड है अस्तित्वका लोप।

यह युद्ध यदि लम्बा चला, तो सम्भवतः हमें कुछ नये शस्त्रास्त्रोंका आश्चर्य भी देखना पड़े। टैङ्क ले जानेवाला हवाई जहाज यदि तैयार हो जाय, तो इससे किसीको आश्चर्य नहीं होना चाहिए। रूसियोंके पास ऐसा एक हवाई जहाज है और जर्मनोंके पास भी उसे होना ही चाहिए। अभी तक गैससे काम नहीं लिया गया है, परन्तु दाहक बमोंसे खूब काम लिया जा रहा है। ऐसे यन्त्रोंका आविष्कार हो जायगा, जो अपने-आप गोला भरकर और निशाना ठीककर तोपें चलाया करेंगे। बीस-बाइस मील दूर चैनल-तटसे फ्रान्स और इंगलैण्ड-पर गोला फेंकनेवाली तोपोंका तो व्यवहार हो ही रहा है, ऐसी तोपोंका भी आविष्कार हुआ है जो 'बिग बर्थ' से भी ज्यादा दूर गोला फेंक सकेंगी। बिग बर्थने गत महासमरमें ७० मीलकी दूरीसे पेरिसपर १२ इञ्ची गोला फेंका था और एक ही बारमें एक गिर्जेमें बैठे हुए १०० आदमियोंका काम तमाम कर दिया था। आज हवाई जहाजोंकी गति-विधिका पता लगानेवाले जो यन्त्र हैं, उनकी शक्ति और विशेषताओंमें वृद्धि होगी और वे उनका पता लगाकर तोपोंका निशाना ठीक कर दिया करेंगे। ऐसे प्रकाशका आविष्कार भी होगा, जिसमें बादलों और गर्द-गुबारके उस पारकी किसी बस्तुको देखा जा सकेगा। यह हो सकता है कि लाल रङ्गका हलका प्रकाश करनेवाले ट्यूबोंको निकाल कर अन्धाकुप्प रखनेकी योजनाको व्यर्थ कर दिया जाय।

———



रात के नौ बज चुके थे। पेरिसके एक विख्यात काबरे-में खूब चहल-पहल थी। यह काबरे बड़े-बड़े सम्भ्रान्त लोगोंका अड्डा था। बड़े-बड़े व्यापारी, रईस, लेखक, कवि, सरकारी अफसर इत्यादि-इत्यादि इस काबरेको अपनी उपस्थितिसे सुशोभित तथा गौरवान्वित किया करते थे। इस काबरेके प्रबन्धकर्ता भी अपने अनुग्राहकोंको प्रसन्न करनेमें कोई बात उठा न रखते थे। यहांकी भोजन-सामग्री तो अत्युत्तम होती ही थी, साथ ही ग्राहकोंके मनोरञ्जनके लिए अन्य अच्छेसे अच्छे साधन जुटाये जाते थे। विख्यात गायक, यन्त्रवादक, खेल-तमाशे दिखानेवाले, नर्तकियां तथा अन्य सभी प्रकारके कलाकार इस काबरेमें अपना कौशल दिखानेके लिए बुलाये जाते थे।

बिजलीके शुभ्र प्रकाशसे काबरे जगमगा रहा था। सुन्दर तथा युवती परिचारिकायें तथा परिचारक ग्राहकोंकी सेवामें इधर-उधर दौड़ रहे थे। सामने रङ्गमञ्चपर तीन व्यक्ति अपने प्रहसनसे लोगोंको हंसा रहे थे। रह-रहकर लोगोंके कहकहों तथा करतलध्वनिसे काबरे गूंज उठता था।

विशालकाय हालके एक कोनेमें एक अधेड़ व्यक्ति अकेला बैठा था। उसके सामनेकी मेजपर केवल एक शराबका ग्लास रखा हुआ था, जिसे वह कभी-कभी उठाकर चुस्की लगा लेता था। जिस समय लोग प्रहसनपर अट्टहास करते तथा तालियां बजाते थे, उस समय इस व्यक्तिके मुखपर घृणाके भाव उदय होते थे।

इसी समय एक युवक, जिसकी वयस २५-२६ के लगभग होगी, हालके अन्दर प्रविष्ट हुआ। उसने हालके किनारेपर खड़े होकर एकबार चारों ओर दृष्टि दौड़ायी। अधेड़ व्यक्तिपर दृष्टि पड़ते ही वह किञ्चित् मुस्कराया और उसकी ओर चला। अन्य लोगोंने उस युवकको गौरसे देखा, कुछने उसका अभिवादन भी किया। युवक मुस्करा-मुस्कराकर परिचितोंका अभिवादन, प्रत्यभिवादन करता हुआ अधेड़ व्यक्तिके पास पहुंचा। अधेड़ व्यक्ति युवककी ओर केवल ताकता रहा। युवकने अधेड़ व्यक्तिसे कहा—"मोशिये सावेलिये! यहां अलग-थलग कैसे बैठे हो?"

सावेलियेने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—"आजकल अलग-थलग रहना ही ठीक है। बैठो!"

युवक सावेलियेके सन्मुख कुर्सीपर बैठ गया। इसी समय एक परिचारिका हाथमें पेन्सिल तथा कागज लिये हुए आयी और मनमोहक मन्द मुस्कानके साथ बोली—"क्या आज्ञा है, मोशिये?"

"एक ग्लास शाम्पेन!" युवकने उत्तर दिया।

युवती कागजपर लिखते हुए बोली—"और?"

"बस!"

युवती मुंह बिचकाकर चल दी।

युवकने मोशिये सावेलियेसे कहा—"एण्ड्रीका नाच देखने आये होगे। नाच दस बजेसे शुरू होगा। अभी तो नौ बजकर चालीस मिनट हुए हैं।" अन्तिम वाक्य युवकने अपनी रिस्टवाच देखते हुए कहा।

सावेलिये बोला—"मैं एण्ड्रीको देखने आया हूं, एण्ड्रीका नाच देखने नहीं आया।"

"तो क्या तुमने अभी तक उसे देखा भी नहीं।"

"वैसे चलते-फिरते देखा है, निकटसे देखनेका अवसर प्राप्त नहीं हुआ।"

"नेत्रदामके ओपेरा हाउसमें तो उसका नाच कई दिनों तक होता रहा।"

"मैं आजकल ओपेरा हाउस नहीं जाता।" सावेलियेने कहा।

"क्यों ?"

"क्यों पूछते हो कामिले ! जब शत्रु हमारे द्वारके सामने आ रहा हो, उस समय ओपेरा हाउस जाना क्या किसी देश-प्रेमीको प्रिय हो सकता है। मैं देख रहा हूं कि यहां जितने आदमी हैं, वे विलासितामें इतने डूबे हुए हैं कि इन्हें उस तबाही और बर्बादीकी जरा भी चिन्ता नहीं है, जो हमपर आनेवाली है। हम लोगोंकी यह विलासप्रियता हमारा सर्वनाश कर देगी।"

युवक हंसकर बोला—"मोशिये सावेलिये ! तुम्हारा भय निराधार है। हमारी मेजिनो लाइनको तोड़कर अन्दर आना बिलकुल असम्भव बात है।"

इसी समय एक परिचारक कामिलेके सामने शाम्पेनका ग्लास रख गया।

"हां, लेकिन हम अपनी विलासप्रियताजन्य असतर्कता-से उसे सम्भव बनाते जा रहे हैं।"

"आप भी क्या बातें करते हैं। जनरल वेगांके रहते हुए ऐसा कभी नहीं हो सकता। जनरल वेगां वह व्यक्ति है, जिसके लिए मार्शल फोश जैसा युद्ध-कला-विशारद अपने अन्त समयमें कह गया है कि यदि फ्रान्सपर कभी सङ्कट आवे, तो वेगांको याद करना।"

सावेलिये सिर हिलाता हुआ बोला—"लेकिन ऐसे आमोद-प्रमोद-प्रिय देशकी रक्षा एक वेगां तो क्या, हजार वेगां भी नहीं कर सकते। इन लोगोंकी रक्षा—इन लोगों-की, जो कुछ थोड़े-से सैनिक अफसरोंपर अपनी रक्षाका भार छोड़कर स्वयं राग-रङ्गमें मस्त हैं, कौन कर सकता है कामिले ? मुझे तो फ्रान्सका भविष्य अन्धकारपूर्ण दिखाई पड़ रहा है।"

कामिलेने शाम्पेनका घूंट पीकर कहा—"तुम आव-श्यकतासे अधिक निराशावादी हो मोशिये सावेलिये।"

"असतर्क आशावादी होनेकी अपेक्षा सतर्क निराशावादी होना, मेरी समझमें, कहीं अधिक श्रेयस्कर है।"

कामिले हंसकर बोला—"अच्छा ! अच्छा ! सम्भव है, तुम्हारे विचार ही ठीक हों। लेकिन यह तो बताओ, तुम्हें एण्ड्रीमें दिलचस्पी कैसे पैदा हुई ?"

"ऐसे घोर विपत्तिकालमें भी जिसने पेरिस-निवासियों-का ध्यान युद्धकी गम्भीरताकी ओरसे हटाकर अपने रूप-सौन्दर्य तथा नृत्यकलाकी ओर आकर्षित कर रखा है—उसको देखनेकी उत्सुकता होना कोई अस्वाभाविक बात तो है नहीं।"

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि एण्ड्री बड़ी रूपवती है और नृत्यकलामें भी बड़ी प्रवीण है।" कामिलेने कहा।

"उसके रूपवती होनेका तो मुझे कुछ-कुछ ज्ञान हो चुका है, परन्तु नृत्य देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।"

"आज हो जायगा। दस मिनट और बाकी हैं।"

इसके पश्चात् दोनों मौन होकर दस बजनेकी प्रतीक्षा करने लगे।

दस बजनेमें जब दो मिनट बाकी थे, तब रङ्गमञ्चपर काबरेका डायरेक्टर आकर बोला—"आज हमें अपने अनु-ग्राहकोंके सन्मुख फ्रान्सकी सर्वश्रेष्ठ नर्तकी मदाम्वाजेल एण्ड्रीको पेश करते हुए बड़ा ही हर्ष तथा गर्व हो रहा है। मदाम्वाजेल * जैसी रूपवती हैं, वैसी ही नृत्यकला-विशारद भी हैं। मदाम्वाजेलने हमारी प्रार्थनापर केवल एक रात अर्थात् आज हमारे रङ्गमञ्चको गौरवान्वित करनेकी कृपा की है। आशा है, हमारे अनुग्राहक उनके नृत्यका आनन्द लेकर हमारे इस महान् परिश्रमको सफल करेंगे।"

डायरेक्टरका वक्तव्य समाप्त होते ही तालियोंकी गड़-गड़ाहटसे काबरे गूंज उठा। आरकेस्ट्रा बजना आरम्भ हुआ। सहसा एण्ड्री हरिणीकी भांति कुलांचे लेती हुई स्टेज-पर आयी। एक बार पुनः तालियोंकी गड़गड़ाहट हुई। एण्ड्री-के सुडौल दुग्धवर्ण शरीरका अधिकांश नग्न था। उसने नृत्य करना आरम्भ किया। दर्शकगण मन्त्रमुग्धकी भांति निश्चल होकर उसका नृत्य देखने लगे।

इसमें सन्देह नहीं कि एण्ड्री अत्यन्त रूपवती थी। उसके नेत्र बड़े-बड़े थे—ललाट प्रशस्त, मुखमण्डल गोल तथा भरा हुआ। शरीर बहुत ही सुडौल था।

*मदाम्वाजेल फ्रान्सीसी भाषामें कुमारीको कहते हैं।

एक घण्टेके लगभग एण्ड्रीका नृत्य हुआ। इस बीचमें उसने तीन प्रकारके नृत्य दिखाये। उसका अन्तिम नृत्य "मयूर-नृत्य" था। इस नृत्यके लिए पोशाक भी मयूरके रङ्गकी ही थी और उसमें एक लम्बी पूंछ भी लगी हुई थी। जिस समय वह अपने दोनों हाथ पीठपर लाकर और कुछ झुककर रङ्गमञ्चके चारों ओर दौड़ती थी, उस समय यही प्रतीत होता था कि मोर दौड़ रहा है।

मयूर-नृत्य समाप्त होते ही इतने जोरकी करतलध्वनि हुई कि मोशिये सावेलियेने अपने कानोंपर हाथ धर लिये। कामिले भी ताली बजा रहा था। सावेलियेको कानोंपर हाथ धरे देखकर वह हंस पड़ा और बोला—"तालियां बजनेसे कानोंको कष्ट होता है क्या ?"

"हां! तोपोंकी गड़गड़ाहटसे जितना कष्ट नहीं होता, उतना इन तालियोंकी गड़गड़ाहटसे होता है। तोपोंकी गड़गड़ाहटमें जीवन है, वीरत्व है। इन तालियोंकी गड़गड़ाहटमें मुर्दापन है, नपुंसकत्व है। अच्छा! मैं तो चला।"

इतना कहकर सावेलिये उठकर दबे पैरों कमरेके बाहर हो गया।

(२)

इस घटनाके पश्चात् एक बहुत बड़े पूंजीपतिके विशाल तथा सुसज्जित भवनमें पेरिसके मुख्य-मुख्य पूंजीपतियोंकी सभा होनेवाली थी। इन महाशयका असली नाम तो कुछ और ही था, परन्तु हम इन्हें मोशिये प्लेनशोनेके नामसे पाठकोंके सम्मुख उपस्थित करते हैं।

सभा आरम्भ होनेमें अभी डेढ़ घण्टेकी देर थी। मोशिये प्लेनशोने अपने प्राइवेट कमरेमें एक सुन्दर मखमली सोफापर बैठे थे, उनकी बगलमें ही एण्ड्री विराजमान थी। सामने छोटी मेज लगी थी, जिसपर एक शराबकी बोतल और दो ग्लास रखे हुए थे। दोनों ग्लासोंमें थोड़ी-थोड़ी शराब थी। एण्ड्रीकी जबान कैंचीकी तरह चल रही थी। वह कह रही थी—"मुझे युद्धसे कितनी घृणा है। ओफ! मैं युद्धका नाम सुनते ही कांप जाती हूं। युद्ध हमें क्या देता है—लाशोंके ढेर, आगकी लपटें और भग्नावशेष! मेरी समझमें नहीं आता कि फ्रान्स, हमारा प्यारा फ्रान्स, जो कला और सौन्दर्यका इतना बड़ा पुजारी है, इस बर्बरतापूर्ण वीभत्स काण्डमें कैसे फंस गया।"

इसी समय दूरसे तोपोंकी गड़गड़ाहटका शब्द सुनाई पड़ा। एण्ड्रीने 'ओह' कहकर प्लेनशोनेके वक्षस्थलपर अपना सुवासित सुचिक्कणकेशमण्डित सिर धर दिया। प्लेनशोनेने उसके सिरका चुम्बन लेते हुए सान्त्वनापूर्ण स्वरमें कहा—"इतना क्यों डरती हो! अभी तो युद्ध यहांसे मीलों दूर है।"

"यह मैं जानती हूं; परन्तु मुझे इन तोपोंकी गड़गड़ाहटमें मृत्युका चीत्कार सुनाई पड़ता है। यह तोपोंकी गड़गड़ाहट नहीं, प्रलयका हुङ्कार है।"

"सङ्गीतके मधुर स्वर सुननेके अभ्यस्त इन सुन्दर कोमल कानोंको तोपोंका गर्जन निस्सन्देह बड़ा ही कष्टप्रद होगा; परन्तु क्या किया जाय। जहां तोपोंकी आवश्यकता है, वहां बांसुरी काम नहीं दे सकती।"

"एण्ड्रीने प्लेनशोनेके वक्षपरसे अपना सिर उठा लिया और उत्तेजनापूर्ण स्वरमें बोली—"तोपोंकी आवश्यकता क्यों है? यह आवश्यकता हमारी अपनी उत्पन्न की हुई है। हमने स्वयं सर्वनाशका, प्रलयका आह्वान किया है। जर्मनी स्वयं हमपर आक्रमण करने नहीं आया—हमने स्वयं उसे निमन्त्रण देकर बुलाया है।"

"परन्तु प्रियतमे, हमें पोलैण्डकी सहायता करनी ही चाहिए थी।"

"वह तो तुमने जैसी की है, उसे संसार जानता है।" एण्ड्रीने व्यंग्यसे हंसते हुए कहा।

प्लेनशोनेने इसका कोई उत्तर न दिया।

एण्ड्रीने पुनः कहा—"पोलैण्डकी सहायता भी न कर सके और अपने लिए यह सर्वनाश खड़ा कर लिया। यह तुम लोगोंकी राजनीति है।"

"हमने ही क्यों, इंगलैण्डने भी तो यही किया और हमें उसका साथ देना पड़ा।"

"इंगलैण्डकी बातोंमें आकर तुमने जर्मनोंको अल्टीमेटम दिया; परन्तु उसका परिणाम क्या हुआ? इंगलैण्ड इस समय तुम्हारा कितना साथ दे रहा है? मैं तो कहती हूं कि इंगलैण्डके राजनीतिज्ञ तुम लोगोंसे कहीं अधिक चतुर हैं, जिन्होंने कि जर्मनोंको कमजोर करनेके लिए उनसे तुम्हें भिड़वा दिया। हमारे सर्वनाशसे जिनका कुछ भला होगा, उनमें मैं इंगलैण्डकी भी गणना करती हूं। परन्तु इन बीती

बातोंपर माथापच्ची करनेसे क्या लाभ! परन्तु अब भी समय है। अब भी यदि हिटलरसे सन्धि करके यह प्रलय-नृत्य बन्द कर दिया जाय, तो हमारा यह सङ्कट टल सकता है। अन्यथा—ओफ! उसकी कल्पना करनेसे ही हृदय कांपने लगता है।"

प्लेनशोने सिर झुकाकर विचार-मग्न हो गया। एण्ड्रीने अपना ग्लास उठाकर खाली कर दिया। प्लेनशोने लगभग पन्द्रह मिनट तक गुमसुम बैठा रहा। इसी समय सोफाके पास दीवारमें लगा हुआ 'बजर' (घरेलू टेलीफोनकी घण्टी) बोला। प्लेनशोने फोन उठाकर बोला—"हलो!"

"—अच्छा!" फोन रखते हुए प्लेनशोने बोला—"लोग आने लगे हैं, अब मुझे बाहर जाना चाहिए।"

"और मैं?" एण्ड्रीने पूछा।

"तुम यहीं बैठो। तुमसे अभी कुछ बातें करनी हैं।"

"तो फिर मिलूंगी, तुम्हें न जाने कितनी देर लगे।"

"सम्भव है, तुम्हारी भी आवश्यकता पड़े।"

"यदि ऐसी बात है, तो बैठी हूं।"

प्लेनशोने कमरेके बाहर चला गया।

× × ×

सभाका कार्य आरम्भ हुआ। सबसे पहले प्लेनशोनेने भाषण किया! प्लेनशोनेने जर्मनीसे फ्रान्सका युद्ध होनेके मूल कारणोंपर प्रकाश डालते हुए युद्धकी गतिविधिका वर्णन किया, उसके पश्चात् उन्होंने कहा—"सेना और उसके अफसरोंपर निर्भर रहना बड़ी भयानक भूल होगी। जिस मेजिनो लाइनको हम लोगोंने इन मार्शलों और जनरलोंके कहनेसे अपने गाढ़े पसीनेकी कमाईके करोड़ों रुपये खर्च करके बनवाया था, वह मेजिनो लाइन बिलकुल बेकार प्रमाणित हुई। जर्मनोंने उस लाइनको हंसते-खेलते नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और हमारे ये बेवकूफ मार्शल और जनरल देखतेके देखते रह गये। इन लोगोंकी अदूरदर्शिता तथा अयोग्यता-का इतना बड़ा प्रमाण रहते हुए भी क्या हम लोग अब इन लोगोंपर भरोसा कर सकते हैं। कदापि नहीं। यदि हम लोगोंने इनकी बातोंमें आकर युद्ध जारी रखा, तो फ्रान्स बर्बाद हो जायगा, हमारा यह सुन्दर नगर पेरिस, जो हमारी शताब्दियोंकी संस्कृति और कलाका केन्द्र तथा स्मारक है—ऐसा स्मारक, जिसका जोड़ आज भूमण्डलपर नहीं मिल सकता—धूलमें मिल जायगा। इसलिए हमें हिटलरसे सन्धि कर लेनी चाहिए। अभी समय है। इसके पूर्व कि हम पराजित होकर हिटलरके गुलाम बनें, हमें हिटलरसे सन्धि करके अपने देश, अपने गौरव तथा अपने राष्ट्रकी रक्षा करनी चाहिए।"

इस वक्तव्यके समाप्त होते ही करतलध्वनि हुई। इसके पश्चात् एक अन्य महाशय अपना शराबका ग्लास जल्दीसे खाली करके खड़े हुए और कहने लगे—"हमारे माननीय मित्रने जो बातें कही हैं, उनको न दुहराकर मैं उन बातोंका हृदयसे समर्थन करता हूं। साथ ही मैं एक अन्य खतरेकी ओर भी आप लोगोंका ध्यान आकर्षित करना उचित समझता हूं। मान लीजिये, यदि हमने युद्ध जारी रखा और कुछ समय तक जर्मनोंको रोकनेमें भी सफल हुए, तो उसका नतीजा क्या होगा। उसका नतीजा यह होगा कि साम्यवादी दलका बल प्रतिदिन बढ़ता जायगा और यदि हमने युद्धमें विजय भी प्राप्त कर ली, जिसकी कि आशा नहींके बराबर है, तो विजयका सारा श्रेय साम्यवादी दल-को प्राप्त हो जायगा और भविष्यमें—अर्थात् विजयी फ्रान्स-पर साम्यवादियोंका पूरा शासन हो जायगा। उस समय हम लोगोंकी क्या दशा होगी—इसपर विचार कर लेना चाहिए। हमारे लिए दोनों तरह खतरा है। यदि परा-जित होकर हिटलरके गुलाम बने, तब भी खतरा और यदि विजयी हुए तब भी खतरा; इसलिए हमारा कल्याण हिट-लरसे सन्धि कर लेनेमें ही है।"

इसके पश्चात् तीन-चार अन्य व्यक्तियोंने भी भाषण किये, जिनमें उन्होंने सन्धि कर लेनेपर ही जोर दिया। इसी समय प्लेनशोनेके प्राइवेट सेक्रेटरीने आकर प्लेनशोनेके कानमें कुछ कहा। प्लेनशोनेका चेहरा उतर गया। वह घबराकर उठ खड़ा हुआ और बोला—"दोस्तो! अभी-अभी खबर आयी है कि इटलीने भी हमारे विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर दी है।"

इतना कहते ही एक क्षणके लिए सन्नाटा छा गया। इसके पश्चात् एक महाशय उठकर बोले—"अब हमारे लिए सन्धि कर लेनेके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।"

इसपर सब चिल्ला उठे—"सन्धि! सन्धि! सन्धि! फ्रान्स चिरजीवी हो!"

(३)

पेरिस खाली हो रहा था। पेरिससे पश्चिमी फ्रान्सकी ओर जानेवाली स्पेशल ट्रेनें खचाखच भरी हुई छूट रही थीं। लोगोंको साथमें केवल आवश्यक सामान ले जानेकी आज्ञा थी। लोग अपने भरे-पूरे घरोंकी गृहस्थी सम्बन्धी वस्तुओं-को छोड़कर भाग रहे थे। कोई रोता था, कोई हाय-हाय करता था। ट्रेनोंके अतिरिक्त मोटरें भी काफी तादादमें आदमियोंको लेकर भाग रही थीं। मोशिये प्लेनशोनेने अपने बालबच्चोंको रवाना कर दिया था। इस समय वह अकेला ही अपने पेरिसके भवनमें मौजूद था। एण्ड्री भी उसके साथ थी। यद्यपि उसने एण्ड्रीसे भी चले जानेके लिए कहा था, परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया।

प्लेनशोने बड़ी बेचैनीके साथ अपनी लाइब्रेरीमें टहल रहा था। इसी समय एक नौकरने आकर चार व्यक्तियोंके आनेकी सूचना दी। प्लेनशोने शीघ्रतापूर्वक ड्राइङ्ग-रूममें पहुंचा। ये चारों व्यक्ति पेरिसके मुख्य पूंजीपतियोंमेंसे थे। प्लेनशोनेने इनके सामने पहुंचते ही पूछा—"क्या समाचार है?"

"रेनो सन्धि करनेसे इनकार करता है।"

"ऐं! इनकार करता है। उसका इतना दिमाग। क्या वह नहीं जानता कि फ्रान्सके असली शासक कौन हैं?"

"नहीं जानता, तभी तो इनकार करता है।"

"तो उसे जल्द मालूम हो जायगा। हमको तुरन्त मार्शल पेतांसे मिलना चाहिए।"

"तो आइये, चलें—इस समय एक-एक क्षण कीमती है।"

इसी समय पेरिसके पश्चिमी किनारेके एक साधारण, परन्तु बड़े मकानमें मोशिये सावेलिये अपने कुछ साथियों सहित बैठा परामर्श कर रहा था। वह कह रहा था—"फ्रान्सके साथ विश्वासघात किया जा रहा है और विश्वासघात करनेवालोंमें फ्रान्सके ही कुपूत हैं। हिटलरका पांचवां कालम अपना कार्य सफलतापूर्वक कर रहा है और हम लोग बैठे ताक रहे हैं, कुछ नहीं कर सकते।"

एक दूसरा व्यक्ति बड़ी उत्तेजनापूर्वक बोला—"बड़े-बड़े पूंजीपतियोंके सामने हमारा क्षीण स्वर कौन सुनता है। मुझे यह भी समाचार मिला है कि रेनोपर सन्धि करनेके लिए बहुत जोर डाला जा रहा है।"

सावेलिये आंखें सिकोड़कर बोला—"मैं रेनोको भली भांति जानता हूं। वह युद्धमें प्राण दे देना कहीं अधिक अच्छा समझेगा। जब तक रेनोके हाथमें शासनकी बागडोर है, तब तक सन्धिका कोई प्रश्न ही नहीं उठ सकता।"

एक तीसरा व्यक्ति बोला—"मेरे पास इस बातके काफी प्रमाण हैं कि एण्ड्रीने कई पूंजीपतियोंको सन्धि करनेके लिए उकसाया है।"

सावेलिये सिर हिलाता हुआ बोला—"मुझे उसकी ओरसे पहलेसे ही शङ्का रही है। मेरा तो खयाल है कि वह हिटलरके पांचवें कालमका एक बहुत ही भयानक व्यक्तित्व है।"

कुछ देर तक सन्नाटा छाया रहा। सहसा एक व्यक्ति आह भरकर बोला—"हाय, हमारा प्यारा फ्रान्स! आज इसकी सभ्यता, संस्कृति, कला, सौन्दर्य सब जर्मनोंके पैरों-तले रौंदा जा रहा है और हम लोग बैठे देख रहे हैं, कुछ नहीं कर सकते।"

"इसका कारण यही है कि जिनपर हमने फ्रान्सकी रक्षाका भार सौंपा, वे बिलकुल निकम्मे प्रमाणित हुए।"

"जनरल वेगांके बड़े नाम थे; परन्तु वह भी कुछ न कर सके।"

"उंह! जनरल वेगां! नाम बड़े दर्शन थोड़े।"

"कुछ भी हो! हम लड़ेंगे, अन्तिम श्वास तक लड़ेंगे। फ्रान्सको पराजित देखनेके पहले हम युद्धस्थलमें अपने प्राण दे देंगे।"

फिर कुछ देर तक सन्नाटा!

पुनः निस्तब्धता भङ्ग हुई। एक व्यक्ति बोला—"मोशिये सावेलिये, क्या होना चाहिए?"

"जर्मनोंको तो हम रोक नहीं सकते। जर्मन तो निश्चय पेरिसमें दाखिल हो जायंगे। पेरिसमें आतङ्क छा गया है। लोग भाग रहे हैं, ऐसी दशामें क्या हो सकता है।" सावेलियेने कहा।

"लेकिन हम तो अपने प्राण दे सकते हैं।"

"इस प्रकार प्राण देनेसे क्या लाभ? यह तो आत्म-हत्या होगी। यदि जीवित रहेंगे, तो इस समय न सही, आगे चलकर सम्भव है, हम लोग फ्रान्सको जर्मनोंके पञ्जेसे छुड़ानेमें सहायक हो सकें।"

इसी समय एक व्यक्ति आया। वह हांफ रहा था, जिससे प्रतीत होता था कि यह व्यक्ति बड़ी तेज चालसे आया है। सावेलियेने इसे देखते ही पूछा—"क्यों राउल! क्या समाचार हैं?"

"समाचार अच्छे नहीं हैं। मुझे अभी-अभी पता लगा है कि रेनोपर त्याग-पत्र देनेके लिए दबाव डाला जा रहा है।"

सावेलिये चौंक पड़ा। कुछ क्षणों तक भृकुटी चढ़ाये चुपचाप बैठे रहनेके पश्चात् वह बोला—"फ्रान्सका दुर्भाग्य चरमसीमापर पहुंच रहा है।"

एक व्यक्ति उठकर खड़ा हो गया और दुःखपूर्ण स्वरमें बोला—"यदि रेनोने त्याग-पत्र दे दिया, तो सर्वनाश हो जायगा। रेनोके त्याग-पत्र देने और जर्मनीकी विजय, इन दोनोंका एक ही अर्थ होता है। सावेलिये! हमें बताओ कि हमें क्या करना चाहिए, हमें रास्ता दिखाओ, हमारा नेतृत्व करो।"

सावेलिये अपने गम्भीर स्वरमें बोला—"मोशिये जूले! इस समय तो जो कुछ हो रहा है, उसे चुपचाप देखनेके अतिरिक्त और हम कुछ भी नहीं कर सकते। शान्त होकर बैठो और उपयुक्त अवसरकी प्रतीक्षा करो।"

"हमारी आंखोंके सामने हमारा सर्वनाश हुआ जा रहा है और तुम हमें शान्तिका पाठ पढ़ा रहे हो। यदि हम कुछ नहीं कर सकते, तो फ्रान्सके चरणोंमें अपने प्राणोंकी भेंट तो चढ़ा सकते हैं।"

"इस समय मरना बहुत ही सरल है मोशिये जूले। लोग अपनी इच्छाके विरुद्ध ही मर रहे हैं। परन्तु हमारे प्राण इतने सस्ते नहीं हैं। हम मरेंगे, तो कुछ करके मरेंगे और इस समय कुछ करके मरना असम्भव है। अतएव शान्त होकर बैठो। हमारे अनुकूल समय आयेगा—निश्चयपूर्वक आयेगा।"

जूले उदास होकर अपने स्थानपर बैठता हुआ बोला—"ठीक कहते हो सावेलिये! इस समय कुछ नहीं किया जा सकता।"

सावेलिये बोला—"परन्तु एक काम हम कर सकते हैं और उस कार्यके करनेमें यदि एक-दो प्राणोंका बलिदान भी हो जाय, तो सार्थक होगा।"

जूले खड़ा होकर बोला—"बताइये! उस कामको मैं करूंगा।"

"और मैं भी।" एक अन्य व्यक्तिने खड़े होकर कहा।

सावेलियेने कहा—"एण्ड्रीको पकड़कर यहां लाना।"

"एण्ड्रीको?" जूलेने आश्चर्यसे पूछा।

"हां! मेरा विश्वास है कि फ्रान्सके इस पतनमें एण्ड्रीका बहुत बड़ा हाथ रहा है। उसने प्रभावशाली व्यक्तियोंको अपने रूप तथा नृत्यपर मुग्ध करके युद्धके विरुद्ध उनके कान भरे। अभी गास्पर्डने कहा था कि उसके पास इस बातके प्रमाण मौजूद हैं कि एण्ड्रीने पूंजीपतियोंको सन्धि करनेके लिए उकसाया है।"

गास्पर्ड बोल उठा—"हां, मेरे पास प्रमाण हैं।"

जूले बोल उठा—"यदि ऐसी बात है, तो हम उसे अवश्य गिरफ्तार करके यहां लायेंगे।"

इतना कहकर जूले शीघ्रतापूर्वक चल दिया और उसके साथ ही दूसरा व्यक्ति भी चला गया।

(४)

रेनो-सरकारने त्याग-पत्र दे दिया था और पेतां-सरकार स्थापित हो गयी थी।

सावेलिये अपने उसी निवासस्थानमें अपने कुछ साथियों सहित बैठा हुआ था। इसी समय तीन व्यक्ति अन्दर आये। ये तीनों सैनिक वर्दीमें थे। ये लोग घायल थे। इनके शरीरपर अनेक पट्टियां बंधी हुई थीं। इनके पास एक-एक पिस्तौलके अतिरिक्त और कोई शस्त्रास्त्र नहीं थे। सावेलिये इनको इस दशामें देखकर बोला—"क्यों दोस्तो, क्या मामला है?" उनमेंसे एक बोला—"मार्शल पेतांकी आज्ञासे युद्ध बन्द कर दिया गया—हम लोगोंके हथियार ले लिये गये।" सावेलिये विषादपूर्ण मन्द मुस्कानके साथ बोला—"मार्शल पेतांसे ऐसी ही आशा थी।"

"जर्मन सैनिक हमारी दशा देखकर हंसते हैं और हमारा मजाक उड़ाते हैं। अभी यहां आते हुए जर्मनोंकी एक टुकड़ीसे हमारा झगड़ा होते-होते बचा। यदि मेरे ये साथी मुझे न रोकते, तो मैं तो लड़ मरता। ओफ! ऐसा अपमान कभी नहीं सहा। इससे तो लड़कर मर जाना कहीं अधिक अच्छा था।"

"कोई चिन्ता नहीं! अपमान सहो! और इस भावनासे

सही कि अनुकूल अवसर आनेपर इस अपमानका पूरा बदला लिया जायगा।" सावेलियेने अपने गम्भीर स्वरमें कहा।

"क्या कभी ऐसा अवसर आयेगा ?"

"यदि फ्रान्सके सपूत अपने इस अपमान, अपनी इस दुर्दशाको भूल न गये, तो अवश्य आयेगा।"

× × × ×

रातके दस बज चुके थे। सावेलिये गास्पर्ड तथा अन्य तीन व्यक्तियों सहित बैठा भोजन कर रहा था। सहसा गास्पर्ड बोल उठा—"जूले और एलफ्रेडको गये हुए ३० घण्टेके लगभग हो गये। आखिर ये लोग हैं कहां ? राउलका भी पता नहीं।"

सावेलिये बोला—"जूले बिना काम किये नहीं लौटेगा। एलफ्रेड भी उसीके साथ होगा। राउलका गायब होना अलबत्ता चिन्ताजनक है।"

"राउल भी किसी फिक्रमें ही घूम रहा होगा। वह निरुद्देश्य फिरनेवाला आदमी नहीं है।" एक अन्य व्यक्ति बोला।

इसके पश्चात् चारों व्यक्ति चुपचाप भोजन करते रहे। भोजन करनेके पश्चात् एक व्यक्तिने मेजपरसे प्लेट तथा ग्लास हटाये, तत्पश्चात् चारोंने सिगरेट सुलगायी। चारों अपने-अपने विचारमें मग्न थे। सहसा द्वार खटखटानेकी आवाज आयी। गास्पर्डने शीघ्रतापूर्वक उठकर द्वार खोला। आगे-आगे जूले था, उसके पीछे एलफ्रेड कम्बलसे ढके हुए एक शरीरको कन्धेपर लादे था, उसके पीछे राउल था। इन्हें देखकर सावेलिये उठ खड़ा हुआ और बोला—"शाबाश !"

एलफ्रेडने कन्धेपरसे उस शरीरको उतारकर भूमिपर खड़ा किया, और कम्बल हटाया। यह एण्ड्री थी ! उसके मुंहपर पट्टी बंधी थी और वह कुछ ज्ञानशून्य-सी थी। गास्पर्डने उसके मुंहकी पट्टी खोली, तत्पश्चात् मुंहमें ठुंसा हुआ कपड़ा निकाला। कुछ क्षण पश्चात् एण्ड्रीको चेत हुआ। उसने अपने चारों ओर देखकर पूछा—"मैं कहां हूं।"

गास्पर्ड बोला—"तुम इस समय मोशिये सावेलियेके सामने हो।"

सावेलियेने सिर झुकाकर प्रणाम करते हुए एण्ड्रीसे कहा—"सावेलिये मेरा नाम है, मदाम्बाजेल।" एण्ड्री भृकुटी सिकोड़कर स्मरण करनेका भाव दिखाती हुई बोली—

"सावेलिये ! सावेलिये ! यह नाम तो परिचित-सा मालूम होता है। मैंने यह नाम कभी सुना होगा।"

"अवश्य सुना होगा, मदाम्बाजेल! जिन लोगोंके मध्यमें तुम रहना पसन्द करती हो और रहती हो, उन लोगोंमें मैं इसी नामसे बदनाम हूं।"

सहसा एण्ड्रीके मुखपर स्मृति-जागरणका भाव उदय हुआ और उसीके साथ भय भी। वह भयभीत होकर दो कदम पीछे हट गयी और बोली—'सावेलिये ! प्रसिद्ध साम्यवादी !'

"प्रसिद्ध नहीं, बदनाम—मदाम्बाजेल। शब्दोंका प्रयोग जरा सोच-समझकर किया करो।"—सावेलियेने मुस्कराकर कहा।

एण्ड्री कुछ कहना ही चाहती थी कि सावेलिये उसे रोककर बोला—"जरा ठहरो ! गास्पर्ड, तुमने मदाम्बाजेलको कहां पाया ?"

गास्पर्ड बोला—"जबसे मैं आपसे विदा होकर गया, तबसे मैं इसीकी खोजमें फिरता रहा। एलफ्रेड भी मेरे साथ था और बादको राउल भी आकर हमारे साथ हो गया। राउलसे हमको बड़ी सहायता मिली। आज नौ बजेके लगभग हम लोगोंने इसे अकेली एक ओर जाते देखा। हम लोगोंने इसका पीछा किया। यह इधर-उधर देखती हुई चली जा रही थी—हम भी इसके पीछे लगे थे। चलते-चलते यह एक ऐसे मकानके द्वारपर पहुंची, जिसमें किसी जर्मन अफसरका डेरा है। मकानके द्वारपर जर्मन सैनिकोंकी एक टुकड़ी पहरा दे रही थी। यह पहरेदारोंके पास पहुंची और उनसे इसने कुछ कहा। हम लोग दूरसे यह सब देख रहे थे। एक सन्तरी भीतर गया और कुछ क्षणके पश्चात् बाहर आकर इसे अपने साथ अन्दर ले गया। आध घण्टे बाद यह बाहर आयी और जिस ओरसे गयी थी, उसी ओर लौटी। हम लोग एक अन्धेरे और सुनसान स्थानपर इसकी प्रतीक्षा करने लगे। जैसे ही यह वहां पहुंची, हम लोगोंने इसे दबोच लिया और यहां ले आये।"

सावेलिये एण्ड्रीसे बोला—"क्या मदाम्बाजेल, जर्मन अफसरके पास अपनी सेवाओंका पुरस्कार लेने गयी थीं ?"

एण्ड्रीने सिर झुका लिया, कोई उत्तर न दिया।

सावेलियेने गास्पर्डको आज्ञा दी—"इसकी तलाशी लो !"

एण्ड्री बोल उठी—"मुझे हाथ मत लगाओ ! मैं जो कुछ मेरे पास है, दिये देती हूं।"

यह कहकर एण्ड्रीने अपनी चोलीके अन्दरसे एक मध्याकार मनीबेग निकालकर मेजपर फेंक दिया। सावेलियेने उसे उठाकर खोला। उसके अन्दरसे लगभग डेढ़ सौ फ्राङ्कके नोट, कुछ चांदी तथा निकेलके सिक्के और एक कागज निकला। सावेलिये कागज खोलते हुए बोला—"अभी मदाम्वाजेलने अपना पुरस्कार वसूल नहीं किया। फिलहाल तुम्हें रुपयोंकी कोई आवश्यकता भी नहीं। जब तक प्लेनशोने तथा अन्य धनकुबेर तुम्हारी मुट्ठीमें हैं, तब तक रुपयोंकी क्या आवश्यकता। इसके अतिरिक्त तुम्हारा पुरस्कार तो बर्लिनसे आयेगा। ऐं! हूं! अच्छा तो इस समय मदाम्वाजेल यह 'पास' लेने गयी थीं, जिससे कोई जर्मन सैनिक तुम्हें परेशान न करे। मदाम्वाजेलको अब इस पासकी कोई आवश्यकता न पड़ेगी, इसलिए मैं इसे फाड़े डालता हूं।"

यह कहकर सावेलियेने पास फाड़ डाला।

एण्ड्री चुप खड़ी थी; परन्तु उसके मुखपर भयके स्पष्ट चिह्न विद्यमान थे।

सावेलिये गास्पर्डसे बोला—"गास्पर्ड, इस प्रमाणके रहते हुए मेरी समझमें तुम्हें और अधिक प्रमाण देनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती।"

गास्पर्ड बोला—"बेशक!"

सावेलियेने पूछा—"तो ऐसी दशामें मदाम्वाजेलके लिए क्या दण्ड होना चाहिए?"

"महादण्ड!" सबने एक स्वरसे कहा।

"तुम लोगोंका मतलब क्या है?" एण्ड्री अत्यन्त भयभीत होकर बोली।

"हम लोगोंका मतलब यह है कि फ्रान्सके साथ विश्वासघात करनेके अपराधमें तुम्हें महादण्ड अर्थात् मृत्युदण्ड दिया जाय।"

"परन्तु तुम लोग मुझे दण्ड देनेवाले होते कौन हो?"

"यह बात तो यदि मदाम्वाजेल किसी अपने प्रेमीके घरमें होते हुए कहतीं, तो सार्थक थी; परन्तु यहां—यहां तो हमी लोग सब कुछ हैं।"

"जङ्गली! असभ्य! तुम्हें शर्म नहीं आती कि एक सौन्दर्य तथा कलाकी मूर्ति समझकर फ्रान्स जिसके चरणोंपर लोटता है, उससे तुम ऐसे शब्द कहते हो।" एण्ड्रीने ओंठ फड़काते हुए कहा।

"जो सौन्दर्य तथा कला हमें नपुंसक बनाती है, हमारे शरीरमें कायरताका सञ्चार करती है और इससे भी बढ़कर जो हमारे साथ, अपने देशके साथ विश्वासघात करती है, उस सौन्दर्य तथा कलाका नष्ट हो जाना ही अच्छा है। हमें इस समय रङ्गमञ्चका सौन्दर्य, रङ्गमञ्चकी कलाकी आवश्यकता नहीं है। हमें आवश्यकता है—युद्ध-क्षेत्रके सौन्दर्य और युद्ध-क्षेत्रकी कलाकी।"

"युद्ध-क्षेत्रमें भी सौन्दर्य होता है—यह आज मालूम हुआ।" एण्ड्रीने व्यंग्यसे मुस्कराकर कहा।

"निस्सन्देह मदाम्वाजेलको युद्ध-क्षेत्रका सौन्दर्य देखनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ होगा। परन्तु यदि मदाम्वाजेल किसी सैनिकसे पूछें, तो वह मदाम्वाजेलको बतायेगा कि भागते हुए शत्रुका पीछा करनेवाले योद्धामें कितना सौन्दर्य होता है, घायल रक्तरञ्जित विजयी योद्धाकी मस्तानी चालमें कितना सौन्दर्य होता है। मेरा विश्वास है कि उतना सौन्दर्य मदाम्वाजेलके बढ़ियासे बढ़िया श्रृङ्गार तथा नृत्यमें भी नहीं होता।"

"परन्तु यह सौन्दर्य पैशाचिक है।" एण्ड्री घृणासे बोली।

"दासतामें फंसानेवाला सौन्दर्य मानवीय तथा दासताके रक्षा करनेवाला सौन्दर्य पैशाचिक! खैर! इस विवादसे कोई लाभ नहीं। मदाम्वाजेलको और कुछ कहना है?"

"तुम नरपिशाचोंसे कहनेमें लाभ ही क्या। मैं कुछ नहीं कहना चाहती।"

"यदि ऐसी बात है, तो हम कला तथा सौन्दर्यके साथ, वह चाहे जैसा भी हो, इतनी रिआयत कर सकते हैं कि हम जहां तक सम्भव है, उसे अपने हाथों नष्ट न:करेंगे। अतएव इधर देखो—।"

यह कहकर सावेलियेने मेजकी दराजसे पिस्तौल निकाला। उसकी मेगजीन खोलकर उसने सब कार्तूस निकाल लिये, केवल एक कार्तूस रहने दिया। तत्पश्चात् वह उसे मेजपर एण्ड्रीके सामने रखकर बोला—"इसमें केवल एक कार्तूस है। इसलिए यदि मदाम्वाजेल इसकी सहायतासे बच निकलनेका खयाल रखती हों, तो वह व्यर्थ होगा। मदाम्वाजेलको केवल पांच मिनटका समय दिया जाता है। उसके पश्चा

(शेषांश पृष्ठ ३८ पर देखिये)

युद्ध-स्पेशल — मूल्य एक पैसा

दैनिक विश्वमित्र

Calcutta, Sept. 3, 1939 — कलकत्ता, ३ सितम्बर १९३९

ब्रिटिश सरकारकी जर्मनीके विरुद्ध युद्ध-घोषणा

३ सितम्बर '३९

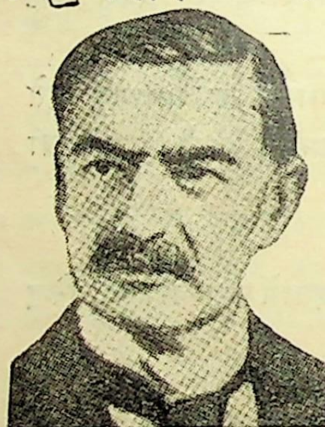
दो घण्टेका अल्टीमेटम और जर्मनीका ज[illegible]ब

युद्ध-परिषद [illegible]के बैंकोंमें [illegible] छुट्टी

ब्रि[illegible] बयान

लन्दन [illegible] ब्रि[illegible]श प्र[illegible]ो [illegible] चेम्बरलेन-ने ११ बजकर [illegible] ब्रा[illegible]ास्ट करते हुए राष्ट्रसे कहा—१० डाउनिंग स्ट्रीट [illegible] मन्त्रिमण्डलके कमरेसे मैं आपसे बोल रहा हूं। आज सबेरे ९ बजे ब्रिटिश राजदूतने बर्लिनमें जर्मन सरकारको अन्तिम पत्र दिया था। इसमें यह कहा गया था कि ब्रिटिश स्टेण्डर्ड टाइमसे दिनके ११ बजेतक यदि हमेंयह उत्तर न मिला कि जर्मनी अपनी सेनाओंको पोलैण्डसे तुरन्त लौटा लेनेके लिये तैयार है, तो जर्मनी और इंगलैण्डमें युद्धकी अवस्था हो जायगी।

ब्रिटेनके इस अल्टीमेटमका उत्तर चूंकि नहीं मिला है इसलिये ब्रिटेनका जर्मनीके साथ युद्ध आरम्भ हो गया।—रूटर



हिटलरवादका अंत

देखनेके लिये मैं जिन्दा रहूंगा

ब्रिटिश प्रधान मन्त्रीका विश्वास

लन्दन, ३ सितम्बर। जर्मनीके खिलाफ युद्धकी घोषणा करनेके सिलसिलेमें प्रधान मन्त्री मि० नेविली चेम्बरलेनने बड़े ओजस्वी शब्दोंमें कहा है कि—"फिलहाल मैं यह नहीं कह सकता कि मुझे कौनसा पार्ट पूरा करनेकी इजाजत न मिलेगी। लेकिन मैं विश्वास करता हूं कि वह दिन देखनेके लिये मैं जीवित रहूंगा जिस दिन हिटलरवादका अन्त हो जायगा और स्वतन्त्र, आतङ्क रहित तथा शान्तिपूर्ण यूरोपका पुनर्निर्म्माण होगा।"

अबसीनियापर इटलीके आक्रमणके बादसे ही विशाल पैमानेपर एक यूरोपीय युद्धकी आशङ्का की जाने लगी थी। उस समय ब्रिटेनके वैदेशिक सचिव थे मि० एन्थोनी इडेन, जो राष्ट्र-सङ्घमें भी ब्रिटेनका प्रतिनिधित्व करते थे और उनकी जोरदार नीतिके कारण दूसरोंपर भी उनका दबदबा था। उनके कड़े रुखका ही परिणाम था कि इटलीके विरुद्ध आर्थिक दण्ड-व्यवस्थाओंके पक्षमें राष्ट्र-सङ्घने प्रस्ताव पास किया। उस समय ब्रिटेन इटलीके विरुद्ध युद्धमें लड़नेके पक्षमें था, पर फ्रान्सने राष्ट्र-सङ्घमें ब्रिटेनका साथ देनेपर भी युद्ध छेड़ने तक उसके साथ जानेकी प्रवृत्ति नहीं दिखायी। परिणाम यह हुआ कि ब्रिटेनको भी अपना रुख ढीला करना पड़ा।

इधर जर्मनी था, जो यूरोपमें निरन्तर शक्ति-सञ्चय करता जा रहा था। वार्साईकी सन्धिकी शर्तोंको वह भूला न था। वह एक ईर्ष्या और एक प्रतिहिंसामें जल रहा था। फ्रान्सकी दशा यह थी कि वहां समाजवादी दल प्रभावमें आ रहा था, जिसका झुकाव रूसकी ओर था। रूस और फ्रान्समें जो सन्धि हुई, वह समाजवादी प्रभावकी चरम सीमा थी। रूस और ब्रिटेनमें कभी आन्तरिक सद्भावना न थी और फ्रान्स और ब्रिटेन वर्षोंसे साथ-साथ ईमानदारीकी मैत्री बनाये चले आ रहे थे, तब फ्रान्सने रूसके साथ समझौता करनेकी भूल नहीं की? और कोई इसका उत्तर जो भी दे, पर फ्रान्स कहता है कि जर्मनीके साथ ब्रिटेनने १९३५ में नौ-सेना-सम्बन्धी समझौता करके, जर्मनीको

वार्साईकी सन्धिकी शर्तोंके विरुद्ध प्रोत्साहन देकर फ्रान्सको नाराज़ ही नहीं किया, उसके हृदयमें शङ्कायें और आशङ्कायें भी उत्पन्न कीं। फ्रान्स सम्भवतः इसीलिए रूसकी ओर आकर्षित हुआ। उन दिनों मो० ब्लुमका शासनकाल था, जिन्हें आज पेतांकी सरकारने नजरबन्द कर रखा है।

यह पृष्ठभूमि है, जिसे वर्तमान महायुद्धके सम्बन्धमें सोचनेके पहले समझ लेना चाहिए। समस्त यूरोपके राष्ट्र एक-दूसरेके प्रति अविश्वासकी दृष्टिसे देखते रहे हैं, अतः जर्मनी जैसे महत्त्वाकांक्षी राष्ट्रके लिए अपने विजयाभियानके लिए एक अवसर दिखाई पड़ा। ब्रिटेनमें बाल्डविनके बाद मि० चेम्बरलेन प्रधानमन्त्री होकर आये। उन्होंने सन्तुष्ट रखनेकी नीति अपनायी और यद्यपि उन्होंने युद्ध टालनेके लिए त्यागकी भावना दिखायी; पर १९३८ का पूरा वर्ष भीषण युद्धके वातावरणसे भरा रहा। ३ जनवरीको भाषण करते हुए अमेरिकाके प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने कहा था:—"इस अत्यन्त क्षुब्ध और अशान्त समयमें प्रत्येक राष्ट्रको इतना तैयार रहना है कि दूसरे राष्ट्र उसके अधिकारोंके प्रति न्यायकी भावना दिखा सकें और उठनेवाले सङ्घर्ष शान्तिपूर्ण उपायोंसे सुलझाये जा सकें।"



"हम लोगोंको अब एक दूसरेके खिलाफ कभी युद्ध नहीं करना पड़ेगा।"
—चेम्बरलेन, ३ : सितम्बर १९३८।

पर आगे चलकर जर्मनीने जैसी नीति बनायी, उसके अनुसार शान्तिपूर्ण उपायोंसे अन्तर्राष्ट्रीय स्थितियां सुलझायी न जा सकीं। हिटलरने धमकाकर आस्ट्रिया ले लिया और मुसोलिनीके साथ मिलकर वह यूरोपमें और भी अपने विस्तारकी योजना कार्यान्वित करनेके मनसूबे बांधने लगा। मई १९३२ में हिटलर रोम गया। मुसोलिनीने उसके स्वागतमें भाषण करते हुए कहा—"आपके आगमनसे हमारे दोनों देशोंकी सद्भावनापर मुहर लग गयी है।" हिटलरने कहा था—"समान आदर्शके नाते इटली और जर्मनी एक सूत्रमें बंध चुके हैं।"

जेकोस्लोवेकियाके सुडेटन प्रान्तमें अल्पसंख्यक जर्मनोंका आन्दोलन चलने लगा था और स्थिति ऐसी होती जा रही थी कि विशाल पैमानेपर युद्धकी आशङ्का होने लगी थी। अतः ब्रिटिश प्रीमियर मि० चेम्बरलेनने हिटलरसे स्वतः मिलकर समस्याका समाधान कराना चाहा। १५ सितम्बर १९३८ को उन्होंने हिटलरसे मिलनेके लिए प्रस्थान किया। हिटलरसे मिलनेके बाद चेम्बरलेन लौटे, तो खूब प्रसन्न थे। उन्होंने कहा—"मैंने हर हिटलरसे देर तक बातचीत की, बातें खूब खुलकर—खूब मैत्रीपूर्ण हुईं।" १८ सितम्बरको

We, the German Führer and Chancellor and the British Prime Minister, have had a further meeting today and are agreed in recognising that the question of Anglo-German relations is of the first importance for the two countries and for Europe.

We regard the agreement signed last night and the Anglo-German Naval Agreement as symbolic of the desire of our two peoples never to go to war with one another again.

We are resolved that the method of consultation shall be the method adopted to deal with any other questions that may concern our two countries, and we are determined to continue our efforts to remove possible sources of difference and thus to contribute to assure the peace of Europe.

September 30, 1938.

यह है समझौता जिसपर हिटलर और चेम्बरलेनके हस्ताक्षर हैं।

फ्रेञ्च प्रीमियर दलादिये और मो० बोने इंगलैण्ड गये और विचार-विमर्श किया।

इतने विचार-विमर्शके बाद भी समझौता होता नहीं दिखाई देता था, अतः मि० चेम्बरलेन पुनः हिटलरसे मिलने चले। २२ सितम्बरको गोड्सबर्गमें हिटलरसे चेम्बरलेनकी बातचीत ४ बजे दिनको शुरू हुई और ७ बजे तक विचार-विनिमय होता रहा। बात अभी समाप्त नहीं हो सकी थी, अतः दूसरा दिन भी इसके लिए निश्चित किया गया।

परन्तु दूसरे दिन बात शुरू नहीं हुई। चेम्बरलेन अपने होटलमें पड़े रहे और नदीके उस पार अपने भवनमें हिटलर। बादको घोषणा की गयी कि मि० चेम्बरलेनने हिटलरके पास पत्र भेजा है। और २३ सितम्बरको अधिक रात गये दोनोंमें फिर विचार-विनिमय शुरू हुआ और प्रायः सवेरे तक होता रहा। २४ सितम्बरको चेम्बर लेन लन्दन लौट गये।

२५ सितम्बरको मो० दलादिये और बोने फ्रेञ्च सेनापति जेनरल गेमलिनको साथ लेकर पुनः ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डलसे परामर्श करने लन्दन पहुंचे। मि० चेम्बरलेनने उन्हें हिटलरकी बातचीतसे अवगत कराया।

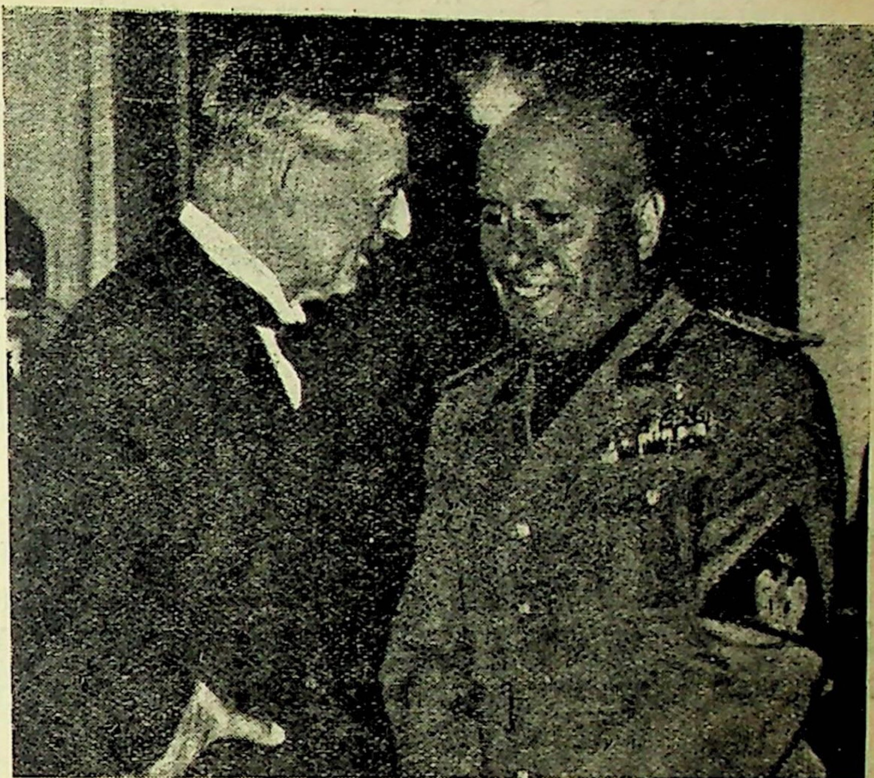
इन विचार-विमर्शोंके साथ-साथ सभी देशोंमें सैनिक तैयारियां भी होती चलती थीं। सभी सतर्क थे और युद्धकी आशङ्का प्रायः निश्चित-सी हो गयी थी, कि अकस्मात् २८ सितम्बरको मि० चेम्बरलेनने हाउस आव कामन्समें घोषणा की—"हर हिटलरने कल सवेरे म्यूनिखमें मिलनेके लिए मुझे आमन्त्रित किया है। मुझे यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि मेरा उत्तर क्या होगा।"

और चेम्बरलेन तथा दलादिये दूसरे दिन म्यूनिखकी ओर उड़े। जानेके पहले उन्होंने पार्लमेण्टमें यह भी कहा था कि "सिन्योर मुसोलिनीके विषयमें माननीय सदस्योंके पहले चाहे जो भी विचार रहे हों, पर मेरा विश्वास है कि आज सभी उनके इस रुखकी प्रशंसा करेंगे कि वे यूरोपमें शान्तिकी स्थापना करनेके उद्योगमें हमारे साथ हैं।"

म्यूनिखके लिए हवाई जहाजपर चढ़नेके पहले उनकी विदाईके लिए उपस्थित व्यक्तियोंसे उन्होंने कहा,—"मैं बचपनमें अक्सर कहा करता था कि 'अगर तुम्हें एक बार प्रयत्न करनेपर सफलता न मिले, तो बार-बार प्रयत्न करते जाओ,"

काफी विचार-विमर्शके बाद ब्रिटेन, फ्रान्स, जर्मनी और इटलीमें जेकोस्लोवेकियाको लेकर समझौता हो गया।

चेम्बरलेन, दलादियें, हिटलर और मुसोलिनीने समझौतेपर हस्ताक्षर कर दिये। यह संसार-प्रसिद्ध म्यूनिख पैक्ट है—जिसने ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त कर लिया है। समझौतेके सिलसिलेमें रूसको सम्मिलित नहीं किया गया। बादकी घटनाओंने प्रमाणित किया है कि रूसका सम्मिलित न होना—जो जेकोस्लोवेकियाके पक्षमें अन्तिम क्षण तक लड़नेके लिए तैयार था—ब्रिटेन और फ्रान्सके लिए कितना घातक था। जर्मनीकी यह कूटनीतिक चाल मित्र-शक्तियोंके लिए बहुत महंगी पड़ी।



"आप सभी मुसोलिनीके इस रुखकी प्रशंसा करेंगे कि वे यूरोपीय शान्तिके लिए हमारे साथ सहयोग कर रहे हैं।"—हाउस आव कामन्समें मि० चेम्बरलेन, २८ सितम्बर १९३८।

चेम्बरलेन लन्दन लौटे, तो उनके पांव जमीनपर पड़ते न थे। उनका खयाल था कि मैंने बाजी मार ली है। उन्होंने हेस्टनमें पहुंचते ही घोषणा कर दी—"मेरा विश्वास है कि हमारे जीवनकालके लिए शान्तिकी स्थापना हो गयी है। मैं आपसे कह रहा हूं कि अब आप जाकर सुखकी नींद सोयें।"

आर्क विशप आव कैण्टरबरीने राष्ट्रीय प्रार्थनाका दिन निश्चित कर दिया और उस अवसरपर बोलते हुए कहा—"महाप्रभुकी जो इतनी हम लोग प्रार्थना करते रहे हैं, उसका उत्तर इस आकस्मिक परिवर्तनमें दिखाई पड़ा है कि युद्धकी सारी आशङ्कायें टल गयी हैं —हमपरसे एक बोझ उतर गया है।"

म्यूनिख पैक्टके अनुसार जो स्थान जर्मनोंको मिले थे, उनपर जर्मनीका अधिकार हो जानेके १० दिन बाद हिटलरने उक्त अञ्चलोंमें प्रवेश किया। उन्होंने उस अवसरपर भाषण करते हुए कहा, "मि० चेम्बरलेनके सभी प्रयत्नोंके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूं। इस समस्याके सुलझ जानेके बाद यूरोपमें जर्मनीकी कोई भूमि-सम्बन्धी मांग नहीं है।"

इसके बादकी स्थितिमें और भी परिवर्तन होते हैं। बीचमें रूसके साथ ब्रिटेन और फ्रान्सके समझौतेकी कोशिश होती है और उधर जर्मनी और रूसमें समझौतेकी चर्चा भीतर ही भीतर चल रही है। अन्तमें जर्मनीको इस कूटनीतिक द्वन्द्वमें सफलता मिलती है और २३ अगस्त १९३९ को रूस-जर्मन सन्धिपर हस्ताक्षर होते हैं। सारा संसार इस सन्धिका समाचार सुनकर चकित रह गया है। दोनों देशों-की विचार-धाराओंको लेकर दोनोंमें युद्धकी सम्भावना समझी जा रही थी, और हुआ दोनोंमें समझौता!

पोलैण्डमें इतिहासने अपनी पुनरावृत्ति की। रूस और जर्मनीने उसके विभाजनकी योजना बनायी और उनका खयाल था ब्रिटेन और फ्रान्स इसका विरोध ही नहीं करेंगे, पोलैण्डकी सहायता करनेका वचन देनेसे भी वे मुकर जायेंगे। परन्तु लार्ड हेलीफेक्सने ब्रिटिश नीतिका स्पष्टीकरण करते हुए ब्राडकास्ट किया, "वचन देकर ब्रिटेन उससे मुकरना नहीं जानता!"

अब लोगोंने युद्धको निकट जाना। प्रेसिडेण्ट रूजवेल्टने शान्तिकी अपील की और २४ अगस्तको पार्लमेण्टमें भाषण करते हुए मि० चेम्बरलेनने आशा की कि "बुद्धि और होशसे काम लिया जायगा।"

जर्मनीकी नीतिसे सुन्दर सिद्धान्तोंके लिए खतरा उपस्थित हो गया ।

२९ अगस्तको हिटलरने लन्दनके लिए फिर सन्देश भेजा और उधर ब्रिटेन और पोलैण्डने पारस्परिक सहायताकी सन्धि की। मो० दलादियेने इसी रातको ब्राडकास्ट करते हुए कहा कि—"ब्रिटेनकी इच्छा ही फ्रान्सकी इच्छा है।" इस बीचमें लन्दन और बर्लिनमें बराबर तार दौड़ते रहे और २९ अगस्तको हिटलरने पुनः लन्दनको सन्देश भेजा। उसी दिन पार्लमेण्टमें भाषण करते हुए मि० चेम्बरलेनने कहा कि "युद्धकी सम्भावना मिट नहीं गयी है; और ब्रिटनने अपने लिए जो नीति निर्धारित कर ली है, उससे वह पीछे पांव नहीं रखेगा।"

३० सितम्बरको लन्दनमें शान्तिकी आशायें और भी क्षीण हो चुकी थीं। हिटलरके सन्देशका ब्रिटेनने जो उत्तर भेजा था, उसपर हिटलरके उत्तरकी प्रतीक्षा की जा रही थी।

लेकिन सभी आशाओंपर पानी फिर गया। हिटलर पोलैण्डसे आत्मसमर्पण चाहता था। लेकिन पोलैण्ड इसके लिए तैयार न था, अतः समझौतेकी चर्चा भङ्ग हो गयी।

पहली सितम्बरको जर्मनीने बिना किसी प्रकारकी घोषणाके पोलैण्डपर आक्रमण कर दिया। कटोविस, क्रेको और टेशेनपर जर्मनीके दाहक बम बरसने लगे—ठीक सबेरे ५॥ बजे। ६ बजे हिटलरने सेनाको सन्देश देते हुए कहा—"शान्तिपूर्ण उपायोंसे समस्याका समाधान करनेके प्रयत्न पोलैण्डने अस्वीकार कर दिये हैं, इसलिए इस पागलपनका अन्त करनेके लिए शक्तिका मुकाबिला शक्तिसे करनेके अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं है।"

उस दिनसे ३ सितम्बर तक घटनायें तेजीसे चलने लगीं। उसी दिन ७ बजकर ३५ मिनटपर फार्स्टरने दान्त्सिखके जर्मनीमें मिलाये जानेकी घोषणा कर दी, ८ बजे पोलैण्डपर भीषण आक्रमण शुरू हुआ, ९ बजे ब्रिटिश जनताको इसका समाचार मिला। १० बजे हिटलरने पुनः घोषणा की कि "बमोंका जवाब बमोंसे दिया जायगा।"

लन्दनके बच्चोंको बाहर भेजनेकी तैयारियां होने लगीं; नौ-सेना, स्थल-सेना और आकाश-सेनाको तैयार होनेके आदेश मिले, सेन्सर बैठाया गया। ६ बजे चेम्बरलेनने अन्तिम चेतावनी दी। हाउस आव कामन्समें उन्होंने कहा कि "जर्मनीको इस बातकी चेतावनी दे दी गयी है कि अगर उसने तत्काल पोलैण्डके विरुद्ध आक्रमणात्मक कार्य बन्द नहीं कर दिया, तो सम्राट्की सरकार बिना किसी हिचकिचाहटके पोलैण्डके प्रति अपने उत्तरदायित्वका पालन करेगी।"

२ सितम्बर शान्तिका अन्तिम दिन था। चम्बरलेन हाउस आव कामन्समें बोल रहे थे। वारसापर बम बरस रहे थे। चेम्बरलेनने कहा—"हमारी नीतिसे हमें कोई कमजोर न समझे, हम कमजोर नहीं हैं। हमें कोई पराजित नहीं कर सकेगा—हमें कोई पराजित नहीं कर सकता।"

३ सितम्बर। जर्मनीने ब्रिटेनके अल्टीमेटमका जवाब नहीं दिया। ११। बजे प्राइम मिनिस्टरने घोषणा कर दी कि यह देश जर्मनीके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर रहा है। हमने शान्तिकी स्थापनाके लिए यथासाध्य सब कुछ किया, पर जर्मनीके शासकके शब्दोंमें विश्वास नहीं किया जा सकता। कोई भी देश सुरक्षित नहीं है। अतः हमें इसका अन्त करना होगा।

इस प्रकार ३ सितम्बरको युद्धकी घोषणा हो गयी और वह युद्ध आज भी चल रहा है।

पेरिसकी नर्तकी

(३३ वें पृष्ठका शेषांश)

हमें अफसोसके साथ वह काम करना होगा, जिसे हम चाहते हैं कि मदाम्वाजेल स्वयं ही करें।"

एण्ड्रीने कांपते हुए हाथोंसे पिस्तौल उठा लिया। उसके पिस्तौल हाथमें लेते ही गास्पर्डने उसके पिस्तौलवाले हाथकी कलाई पकड़ ली और बोला—"मदाम्वाजेल उस सामनेवाले कमरेमें जानेका कष्ट करें।"

एण्ड्री लड़खड़ाती हुई उस कमरेकी ओर बढ़ी। गास्पर्ड उसकी कलाई पकड़े हुए कमरेके द्वार तक गया, तत्पश्चात् उसने एण्ड्रीको अन्दर धकेलकर तुरन्त द्वार बन्द कर दिया।

दो मिनट तक सन्नाटा रहा। सावेलिये और उसके साथी चुपचाप सिर झुकाये खड़े थे। सहसा एक धड़ाका हुआ।

सावेलियेने सिर उठाकर कहा—"एक देशद्रोहीके पापोंका प्रायश्चित्त हो गया।"

युद्धके कुछ मूल कारण

श्री रामस्वरूप व्यास

युद्ध-सम्बन्धी राजनीतिक विवेचन करते हुए आजकल अनेक लेख प्रकाशित होते हैं, परन्तु युद्धके सम्बन्धमें और भी अनेक दृष्टिकोण हो सकते हैं। इनमें आर्थिक दृष्टि एक मुख्य है। राष्ट्रोंके रूपमें या किसी दूसरी राजनीतिक इकाईके रूपमें नहीं, वरन् सारे मनुष्य-समाजकी दृष्टिसे भी युद्धको देखनेकी आवश्यकता है। इस प्रकारकी कुछ दृष्टियोंसे यहां युद्धको देखनेका प्रयत्न किया जायगा।

सबसे पहले हमें अपना एक राजनीतिक भ्रम त्याग देना पड़ेगा। जब कभी हम किसी देश या राष्ट्रके सम्बन्धमें विचार करते हैं, तब हमारी विचारधारा कुछ इस प्रकारकी होती है, जैसे हम किन्हीं व्यक्तियोंके सम्बन्धमें विचार कर रहे हों। हम कहते हैं कि ब्रिटेन जर्मनीसे लड़ रहा है। यहां कुछ इस प्रकारकी भाषाका उपयोग किया गया है, जैसे कि एक व्यक्ति दूसरेसे लड़ रहा हो। इस प्रकारकी राजनीतिक इकाई (जैसे फ्रान्स या ब्रिटेन) विचारोंमें स्पष्टता लानेके लिए तो काफी उपयोगी हो सकती है, परन्तु इस प्रकारकी भाषाका उपयोग करते-करते हम अनेक बार यह भूल जाते हैं कि इन इकाइयोंके पीछे अनेक इकाइयां छिपी हुई हैं और ये इकाइयां सदासे एक-सी नहीं रही हैं। केवल राजनीतिक इकाईकी तरह विचार करते हुए हम मनुष्यताका दृष्टिकोण भूल जाते हैं। कहनेको यह कहा जाता है कि फ्रान्स जर्मनीसे हार गया; पर इससे उस बातकी कल्पना नहीं आती, जो इसके पीछे छिपी हुई है। फ्रान्सकी हारका अर्थ है लाखोंकी संख्यामें फ्रान्सीसी सिपाहियोंका मरना या हताहत होना तथा इससे भी अधिक स्त्रियों, बच्चों तथा दूसरे लोगोंका बेघरबार होना और अनेक प्रकारकी स्वतन्त्रता खो देना। इसीको जरा विस्तृत रूपसे कल्पनाके सामने रखनेसे इसका मानुषिक (या अमानुषिक) रूप सामने आ जायगा। परन्तु राजनीतिक विवेचनोंमें यह बात काफी स्पष्ट नहीं होती।

मनुष्यताकी दृष्टिको सामने रखकर हम युद्धके कुछ पहलुओंका विवेचन करेंगे। आर्थिक दृष्टिका भी इसमें थोड़ा-बहुत समावेश हो जायगा। यह कहा जाता है कि आर्थिक कारण ही राष्ट्रोंको युद्धके लिए प्रेरित करते हैं। परन्तु इस बातको केवल एक अर्ध-सत्यके रूपमें ही स्वीकार किया जा सकता है और कभी-कभी इस प्रकारका अर्ध-सत्य झूठको छिपानेमें काफी सफल हो जाता है और काफी भयङ्कर होता है। आजकलके युद्धोंमें न विजयी राष्ट्रोंको कोई लाभ ही होता है और न आर्थिक कारण ही राष्ट्रोंको युद्धके लिए प्रेरित करते हैं। हां, थोड़ा-बहुत प्रभाव इनका पड़ता अवश्य है। आर्थिक कारणोंकी दृष्टि एक समय ठीक थी, उस समय, जब तक कि संसारका सङ्गठन आधुनिक रूपमें नहीं हुआ था। मनुष्य-समाज प्रायः यह होता है कि अनेक बातोंकी उपयोगिता पूरी होनेके बाद भी उनकी प्रथा चली जाती है, उस समय वे नवीन व्यवस्थाके साथ सङ्घर्षका कारण बनती हैं। अंगरेजीके एक विद्वान् लेखक सर नारमन ऐञ्जेलने इस बातपर अच्छा प्रकाश डाला है। उन्होंने अपनी एक पुस्तक 'The Great Illusion' में युद्धके कारणोंके विचारका बड़ी सफलतापूर्वक खण्डन किया है। सबसे पहले तो युद्धमें लड़ाकू राष्ट्रोंकी जो क्षति होती है—खासकर आधुनिक वैज्ञानिक युद्धमें—वह इतनी भारी होती है कि उसका कोई हिसाब ही नहीं, और इस प्रकारकी हानिकी अपेक्षा लाभ बिलकुल नगण्य होता है। उन्होंने और भी बातोंको लेकर दिखाया है कि युद्धके कारण जिन देशों या साधनोंपर विजयी राष्ट्रका अधिकार होता है, उन्हें वह उसी प्रकार नहीं लेता, जिस प्रकार कोई किसी छोटी चीज (जैसे घड़ी) को छीनकर ले जा सकता है। सर नारमनकी यह पुस्तक बहुत ही विचारपूर्ण तथा मौलिक है। यह पुस्तक पिछले महायुद्धसे कुछ पहले लिखी गयी थी और इसमें कही हुई प्रत्येक बात सच्ची उतरी। यहांपर इस पुस्तकका मामूली विवेचन करना भी कठिन होगा। परन्तु जिनको युद्धका गहनतासे विचार करना है, उन्हें यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।

इसके साथ ही युद्धके सम्बन्धमें प्राचीन कालसे यह विचार चला आ रहा है कि जब किसी देशमें जीवन-निर्वाहकी

आवश्यक सामग्रियोंकी कमी होती है, तब उस देशके लोग फैलना चाहते हैं और यदि बलवान होते हैं, तो आस-पासके देशोंको हथिया लेते हैं। इस प्रकार प्राचीन समयसे जातियां संसारमें फैलीं और अनेक सङ्घर्ष भी हुए। जर्मनीने इसी बातको 'लेबेन्स्राम' या 'जीवित रहनेके लिए स्थान' नाम दिया है। यह बात किसी समय पूरी उतरती थी, परन्तु आज मनुष्यने प्रकृतिके ऊपर इतना काबू पा लिया है कि वह विज्ञानकी सहायतासे जीवन-निर्वाहके साधनोंको बहुत अधिक मात्रामें प्राप्त कर लेता है। आज मनुष्य जातिको मध्य एशियाकी मङ्गोल तथा आर्य जातियोंकी तरह भटकनेकी आवश्यकता नहीं रही है। संसारमें इस युगमें खाद्य पदार्थों या दूसरी प्रकारकी वस्तुओंकी कमी नहीं है। आज तो ये वस्तुयें कहीं-कहीं इतनी अधिक मात्रामें हैं कि वहां इनका नाश कर देना होता है। इसलिए युद्धके आर्थिक कारणोंके बारेमें जो इतनी अधिक चर्चा होती है, उसमें सत्यकी मात्रा बहुत कम होती है।

आजकलके युद्धोंमें आर्थिक कारणोंका पुट भले ही रहता हो, परन्तु उनका मूलभूत कारण तो राष्ट्रीयता या प्रभुता होती है। अभी तक राष्ट्रीयताको हमने एक सुन्दर स्वरूपमें ही देखा है या हमारे नेताओंने हमें इसे इसी रूपमें दिखानेका प्रयत्न किया है। परन्तु राष्ट्रीयताके अत्यन्त घृणित तथा भयानक स्वरूप भी हो सकते हैं, यह विचार हमें बहुत कम आता है। आजकल भारतको देशप्रेम तथा राष्ट्रीयताके गुण-गान कर उत्साहित किया जाता है और अनेक प्रकारसे इस भावको हमारे मनमें मानका स्थान देनेका प्रयत्न किया जाता है। दीन-दुखी भारत मांकी कल्पना राष्ट्रीयताके नामपर हमारे सामने खड़ी की जाती है और हमें उसके दुःख दूर करने और बेड़ियां तोड़नेका आदेश दिया जाता है। राष्ट्रीयता भी अनेक बार नशेका रूप धारण कर लेती है और यह नशा अनेक बार दूसरे प्रकारके नशासे काफी भयङ्कर होता है। आज इसी नशेमें चूर होकर यूरोपके उन्मत्त लोग एक-दूसरेकी नृशंस हत्या कर रहे हैं। वहां राष्ट्रीयताके नाम-पर ही ये सब कुकृत्य हो रहे हैं तथा मनुष्यता और उच्च भावनाओंकी हत्या की जा रही है।

जर्मनी जो आज एक राष्ट्रके रूपमें हमारे सामने खड़ा है, वह एक समय छोटे-छोटे राज्योंमें विभक्त था। इसी प्रकार दूसरे देशोंका भी हाल था। देशोंकी राष्ट्रीयताकी इकाई सदासे एक-सी नहीं रही है। यह नहीं है कि राष्ट्रीयताने मानव-समाज-की प्रगतिमें कोई महत्त्वपूर्ण भाग न लिया हो। राष्ट्रीयताकी भावनाके प्रसरित होनेके कारण ही छोटे-छोटे राज्य बड़े-बड़े राष्ट्रों तथा साम्राज्योंका रूप धारण कर सके हैं। परन्तु मनुष्य जातिका अन्तिम ध्येय तो राष्ट्रीयता नहीं, वरन् अन्तर्राष्ट्रीयता है। लेकिन आज राष्ट्रीयता इस विकासके मार्गको रोकती है और तभी यह सङ्घर्षका कारण बन जाती है। यूरोपने राष्ट्रीयताको जो तङ्ग स्वरूप दे रखा है, वह बड़ा ही भयानक है। वहां राष्ट्रीयताने एक महाकालीका स्वरूप धारण कर लिया है और उसकी तृप्तिके लिए लाखों नरमुण्ड चाहिए। वहांके कुछ राष्ट्रोंमें जो विचार-धारा प्रचलित है, वह राष्ट्रीयता तथा उससे निर्मित राज्यको मनुष्य-समाजकी अन्तिम तथा सर्वोपरि इकाईका रूप देती है और यह भी कहा जाता है कि राष्ट्रीयताके लिए मनुष्यको सब कुछ निछावर कर देना चाहिए। वहां तो यह भी माना जाता है कि राज्यकी एक इकाईके अतिरिक्त व्यक्तिकी अपनी कोई इकाई नहीं हो सकती। समाजके अस्तित्वके साथ ही व्यक्तिका अस्तित्व है, अलग नहीं। न व्यक्तिकी, समाजकी इच्छाओंके अतिरिक्त, कोई स्वतन्त्र इच्छायें ही हो सकती हैं। राष्ट्रीय राज्यकी इच्छायें तथा आदेश ही उसके लिए मान्य होने चाहिए। इस राष्ट्रीय राज्यपर उसे अपना सब कुछ बलि चढ़ा देना चाहिए और यह उसके जीवनकी सबसे भारी महत्त्वाकांक्षा होनी चाहिए। इस प्रकारकी विचार-धाराके अन्तर्गत व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता। और यह व्यवस्था उस समाज-रचनाकी बिलकुल विरोधी है, जिसमें समाजका निर्माण ही व्यक्तिके सुख और लाभके लिए माना जाता है।

राष्ट्रीयताके साथ एक दूसरी व्यवस्था या विचार-धारा भी है, जो राष्ट्रोंमें सङ्घर्षका कारण बनती है। वह है राज्यकी प्रभुता 'सावरेन्टी'। इसके अनुसार राज्य अपने कार्योंका स्वयं ही उत्तरदायी हैं, कोई दूसरा इसके ऊपर नहीं है। स्वतन्त्र राज्योंमें सब बराबरके हैं और उनके अपने स्वार्थ दूसरे राज्योंके स्वार्थोंकी अपेक्षा ऊंचे हैं। आज स्वतन्त्र राज्योंके लिए अपनी सत्तासे परे कोई दूसरी सत्ता नहीं, जिसका आदेश उन्हें मानना पड़े तथा उनके अपने हित

ही सर्वोच्च हैं। इस कारण आपसमें जब कोई मतभेद या सङ्घर्षका कारण मौजूद होता है, तब सब अपने आपको ही ठीक समझते हैं और तब युद्धके सिवाय कोई चारा नहीं रहता। आजकलके सारे युद्धोंके मूलमें यह कारण रहता है। यदि सारे राष्ट्र आज स्वयं प्रभु न होकर अपने कार्योंकी कुछ मर्यादा रखते और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नोंके लिए अपने मतको ठीक और अपने हितोंको सर्वोच्च न समझते, तब आजकलके युद्धोंकी बहुत कुछ आवश्यकता मिट जाती। सर नारमन ऐञ्जेलने राष्ट्रोंकी प्रभुताको युद्धका एक मूल कारण माना है।

राज्य या राष्ट्रके साथ प्रभुताका कोई अविच्छेद सम्बन्ध हो, ऐसा भी नहीं है। श्री हैरल्ड लास्कीके अनुसार प्रभुता राज्यका विशेष गुण तबसे हुई, जबसे मध्ययुगमें छोटे-छोटे राज्योंकी आपसकी लड़ाइयोंको किसी प्रबल सामन्त या राजाने दबा दिया और उन सबका सरदार बन बैठा, और उस अवस्थामें वह प्रभु भी बना।

परन्तु आज अवस्थायें बदल गयी हैं। संसार यातायातके साधनों द्वारा तथा व्यापारके कारण एक हो गया है और दूर-दूरके देश अपेक्षाकृत निकट आ गये हैं। इस अवस्थामें राज्यकी प्रभुता एक अभिशाप ही हो गयी है।

दूसरे युद्धके मूल कारणोंमें आजकलके समाजकी आर्थिक व्यवस्था भी है, जिसे पूंजीवादके नामसे पुकारा जाता है। पूंजीवादके अन्तरमें मनुष्य द्वारा मनुष्यका शोषण निहित है और इसी शोषणके ऊपर आजकलके बड़े राज्यों तथा साम्राज्योंकी रचना हुई है। इस प्रकारकी व्यवस्थाका मूल सिद्धान्त यह है कि इसमें समाजके उत्पादनके कार्य व्यापारका रूप धारण कर लेते हैं, और व्यापारके मूलमें 'नफे' की प्रवृत्ति रहती है। समाजकी आवश्यकता तथा उपयोगकी दृष्टिसे किसी वस्तुका उत्पादन नहीं होता, वरन् इसलिए होता है कि इस प्रकारके उत्पादनमें लाभ होता है। यह समाज-व्यवस्था एक ऐसे वर्गका निर्माण करती है, जिसमें उत्पादनके लगभग सब साधन मुट्ठीभर व्यक्तियोंके हाथमें होते हैं और बाकी लोगोंको अपने भरण-पोषणके लिए मजूरी करनी पड़ती है। उपर्युक्त छोटा-सा वर्ग अपनी आर्थिक शक्तिके कारण राज्य-व्यवस्थाके निर्माण तथा सञ्चालनमें भी भारी हाथ रखता है तथा राज्यके निर्णयों और कानूनों द्वारा अधिकतर उसीके हितोंकी रक्षा की जाती है। जहां राष्ट्रीय क्षेत्रमें यह वर्ग जनताके एक भारी भागको निष्कञ्चन रखता है, वहां अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें यह अपने लाभके लिए दूसरे देशोंसे व्यापार करता है। इस व्यापारमें प्रतियोगिता होती है और अन्तमें यह प्रतियोगिता राष्ट्रोंके बीच सङ्घर्षका कारण बन जाती है, और चूंकि राजसत्ता अधिकतर पूंजीपति-वर्गके हाथमें होती है, इसलिए वह अपने लाभके लिए दूसरे देशके पूंजीपति-वर्गको क्षति पहुंचाना चाहता है। पिछले महायुद्धका एक प्रमुख कारण इस प्रकारकी व्यापारिक प्रतियोगिता ही थी।

इस प्रतियोगितामें हमें एक खास प्रकारकी प्रतियोगिताको न भूल जाना चाहिए, जिसका युद्धोंसे सीधा सम्बन्ध है। जहां अनेक प्रकारकी वस्तुओंका उत्पादन पूंजीवादी व्यवस्था करती है, वहां वह युद्धके शस्त्र तथा सामग्री भी तैयार करती है। अनेक भारी-भारी व्यापारिक कम्पनियां हैं, जिन्होंने युद्धका सामान बनानेमें ख्याति पायी है और इस प्रकारके व्यापारमें उन्हें असाधारण लाभ होता है। और चूंकि कम्पनियां देशकी राज्य-व्यवस्था द्वारा नहीं, वरन् साधारण लोगों द्वारा चलायी जाती हैं, इसलिए वे सब देशोंमें व्यापार करती हैं और इन कम्पनियोंका व्यापार युद्धको उत्तेजन देता है। इनके एजेण्ट सब देशोंमें युद्धके नये-नये साधन तथा सामग्री खरीदनेकी प्रतिस्पर्धा पैदा कराते हैं, और जब एक राज्यको पता चलता है कि उसके पड़ोसी राज्यने विशेष प्रकारके शस्त्र खरीदे हैं, तब वह भी खरीदता है और इस प्रकार यह स्पर्धा जारी रहती है। अन्तर्राष्ट्रीय निःशस्त्रीकरण परिषद्के असफल होनेमें इन कम्पनियोंका भारी हाथ बताया जाता है।

इस विवेचनमें हमने देखा कि आधुनिक युद्धके तीन मूल कारण हैं—राष्ट्रीयता, प्रभुता तथा पूंजीवादी समाज-रचना। इसका अर्थ यह नहीं कि केवल यही युद्धके कारण हैं। और भी अनेक मानसिक व सामाजिक कारण हो सकते हैं, परन्तु राजनीति व समाज-व्यवस्थाकी दृष्टिसे आज यही सबसे मुख्य हैं। अनेक विद्वानोंने इनके दूर करनेके उपाय भी बतलाये हैं। राष्ट्रीयता और प्रभुताका अन्त कर लोग एक नये अन्तर्राष्ट्रीय समाजकी रचना करना चाहते हैं। सुप्रसिद्ध अंगरेज लेखक श्री एच० जी० वेल्स इस प्रकारके

एक संसार-राज्य (World State) के बड़े हिमायती हैं। श्री क्लेरेन्स स्ट्रीट भी, जिनकी 'यूनियन नाउ' नामक पुस्तककी बड़ी चर्चा है, मुख्य-मुख्य गणतन्त्र राज्योंका एक 'फेडरेशन' स्थापित करनेके लिए प्रचार कर रहे हैं। पूंजीवादी समाज-व्यवस्थाको हटाने तथा साम्यवाद लानेका प्रयत्न तो संसारके एक देशमें सफल भी हो चुका है।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक राष्ट्रीय राज्यको अपनी प्रभुता कम करके एक अन्तर्राष्ट्रीय मध्यवर्ती सरकार बनानी होगी—सम्भवतः उसी प्रकारकी, जिस प्रकारके अमेरिकाके संयुक्त राज्य हैं। आजके संसारमें इनकी प्रभुताका अक्षुण्ण रहना सम्भव नहीं है और न राज्योंकी स्वतन्त्रता ही अनियन्त्रित रह सकेगी। इसलिए पूर्ण स्वतन्त्रता-जैसी कोई वस्तु संसारमें हो ही नहीं सकती। सबसे अधिक महत्त्वका परिवर्तन तो हमें पूंजीवादी समाज-व्यवस्थामें करना होगा। क्योंकि बिना इसके किये उपर्युक्त दोनों प्रकारके प्रयत्न सफल न होंगे।

युद्धमें गुप्त भाषाओंका प्रयोग

श्रीमती सोमवती चौहान, विशारद

गुप्त भाषा, लड़ाईका भीषण अस्त्र है, जिसकी जानकारी बहुत कम लोगोंको होती है। युद्धोंमें अति प्राचीनकालसे इसका प्रयोग होता आ रहा है। रामायणमें एक जगह लिखा गया है कि जब श्री रामचन्द्रके पास सूपणखा नामकी राक्षसी अपने विवाहकी तजवीज लेकर पहुंची, तब उन्होंने उसे बताया कि मैं तो विवाहित हूं, लक्ष्मण कुंवारे हैं, तुम उनके पास जाओ। इसके साथ ही श्री रामने गुप्त भाषाके कुछ शब्द कहे, जिन्हें सुनकर लक्ष्मणने उस राक्षसीकी नाक काट ली। यद्यपि ये लोग उस समय युद्ध-क्षेत्रमें न थे, तथापि एक प्रकारसे शत्रुके प्रदेशके निकट जरूर थे, इसीलिए उन्हें गुप्त भाषाका प्रयोग करना पड़ा।

सिखोंकी अन्तिम लड़ाईकी एक घटना याद आ रही है। एक बार जब लाहौरके निकट अंगरेजोंने अपनी छावनी डाली, तब एक सिख अफसरको इस बातकी सूचना देनेके लिए लिखा—"आजकल हमारे यहां मण्डी लग रही है। काले और सफेद सभी अनाज जमा हैं।" काले और सफेद अनाज द्वारा काले और गोरे सैनिकोंकी ओर सङ्केत किया गया था।

आजसे ४१ वर्ष पूर्व जब दक्षिणी अफ्रीकामें बोअर लोगों और अंगरेजोंमें युद्ध चल रहा था, तब अंगरेजी फौजी अफसर अपने सन्देश लैटिन भाषामें एक जगहसे दूसरी जगह भेज देते थे। बोअर लोग लैटिन नहीं जानते थे, इसलिए अंगरेज सेना-नायकोंका मतलब हल हो जाता था।

सन् १९०५ की जापान और रूसकी लड़ाईमें, एक फल बेचनेवाला भी खबर पहुंचाया करता था। उसकी टोकरीमें रखे हुए फलोंको देखकर ठीक-ठीक खबर मालूम की जा सकती थी। भिन्न-भिन्न फलोंका एक खास सङ्केत होता था। जैसे सेबका अर्थ हुआ एक किस्मकी तोप, तो नासपातीसे दूसरी किस्मकी तोपका अभिप्राय होता। बहुत-से सिगरेटके डिब्बोंसे मतलब होता कि इतने पैदल सिपाहियोंका दस्ता।

गत महायुद्धमें तो गुप्त भाषाकी उन्नति अपनी पराकाष्ठाको पहुंच गयी। इसके द्वारा बड़ी-बड़ी सनसनीखेज घटनायें घटित हो गयीं। सन् १८९९ और १९१४ के बीचके कालमें बहुत-सी गुप्त भाषायें बन गयी थीं।

इन लोगोंने अपनी-अपनी गुप्त भाषा तो बना ली; परन्तु उधर शत्रुने इनको हल करनेके तरीके भी निकाल लिये। अब तो प्रायः सभी देशोंमें गुप्त भाषा पढ़नेके लिए एक विशेष डिपार्टमेण्ट बन गया है, जिसे क्रिप्टोग्रैफिक विभागके नामसे पुकारते हैं। आज क्रिप्टोग्रैफिक विभागों-

को इस बातका गर्व है कि किसी भी सङ्केत-लिपिमें लिखा हुआ पत्र एक हफ्तेके अन्दर ही पढ़ लिया जा सकता है। और इस प्रकार जो पत्र केवल एक ही सप्ताहमें पढ़ लिया जाय, फिर वह किसी कामका नहीं रह जाता। मतलब यह कि ये गुप्त भाषायें छिपी न रहीं। जनसाधारणके लिए तो वे गुप्त ही रहीं; परन्तु विशेषज्ञोंके लिए साधारण भाषायें हो गयीं। इस हद तक जानकारी बढ़ जानेपर भी गुप्त भाषाओंके प्रयोगमें कोई शिथिलता नहीं आने पायी और पिछले महायुद्धमें, जैसा कि ऊपर लिख चुके हैं, इसके द्वारा बड़े-बड़े मोर्चे फतह किये गये।

पिछले महायुद्धमें पेरिस-स्थित एक जर्मन जासूसने खबर भेजनेके लिए एक बहुत ही मौलिक तरीका ईजाद किया था। साङ्केतिक ढङ्गपर तैयार करके वह समाचार-पत्रोंमें एक विज्ञापन प्रकाशित करा देता और वह विज्ञापन १४ घण्टेके अन्दर स्वीजरलैण्डमें जर्मन खुफिया विभागके केन्द्रमें पहुंच जाता। उदाहरणके लिए जर्मन हवाई जहाजकी बम-वर्षासे पेरिसमें क्या नुकसान हुआ, इस बातकी खबर देनेके लिए उक्त जासूसने निम्नलिखित विज्ञापन छपाया था—

"१९-२२ जान तीन मित्रोंके साथ पहुंचे। मांकी तबीयत खराब है—३,१६७।"

इस विज्ञापनका अर्थ था—"इस बम-वर्षासे १९ नम्बरकी गलीमें २२ नम्बरके मुकामपर तीन व्यक्तियोंकी जानें गयीं और लोगोंके अन्दर बड़ी बेचैनी है।" बस, जर्मन युद्ध-विभागको मालूम हो गया कि कल प्रातःकालकी बम-वर्षासे पेरिसको हमने कितना नुकसान पहुंचाया। यह खबर जासूस नं० ३१६० द्वारा भेजी गयी थी।

इसी तरह वर्थ नामक एक जर्मन जासूसने भी पिछले महायुद्धमें समाचार भेजनेके अनोखे तरीके निकाले थे। सेन्सर विभाग द्वारा उसके पत्र खोले जाते थे, किन्तु उन्हें कुछ भी शक नहीं होता था। उसने अपने 'रिश्तेदार' को लिखा था—"मेरा साथी विलजे अब चित्रकार बनता जा रहा है। तुम्हारे देखनेके लिए मैं उसका सबसे नया चित्र भेज रहा हूं।"

चित्रमें फटते हुए गोलेकी रेखायें बनी थीं, जो विल्ये नामक कस्बेके मुख्य रास्तेकी ओर सङ्केत करती थीं। उनकी लम्बाई रेखाओंकी लम्बाईके अनुसार थी। फटे हुए गोलेके टुकड़े आदि जो दिखाये गये थे, वे चौरास्तोंपर लगी ब्रिटिश और फ्रेञ्च तोपें थीं। जर्मनोंने इस चित्रको पाकर फौरन् अपनी तोपोंके निशाने इस गांवकी तोपोंपर लगा दिये और २४ घण्टेके अन्दर ब्रिटिश और फ्रेञ्च तोपें जर्मन तोपोंकी मारसे नष्ट हो गयीं।

वर्थका एक और भी पत्र बड़ा रोचक है। खाइयोंमें गन्दगीके कारण सिपाहियोंके कपड़ोंमें जूं बहुत पड़ जाती थीं। वर्थने लिखा—'यहां बहुत जूं हैं। अगर किसी बड़े अफसरसे खड़े बात करते रहो और जूं रेंगकर बन्दपर आ जायं, तो बड़ा अच्छा लगता है। अगर कमीजके कपड़ेकी डिजाइनमें जूं बनाकर रख दी जाय, तो रेंगती जूं दिखाई नहीं देंगी।' इस खतके साथ कागजपर एक डिजाइन भी बना हुआ था। चित्र पाकर जर्मनोंने ब्रिटिश और फ्रेञ्च तोपोंके मुकामोंका जो चित्र बनाया, उससे वर्थके दिमागका अन्दाजा लगाया जा सकता है। जूं के बड़े या छोटे आकारसे बड़ी या छोटी तोपसे मतलब था।

१९१४ के दिसम्बरमें इप्रे नगरमें मित्र-राष्ट्रोंकी बुरी हालत थी। जिन-जिन इमारतोंमें फौजके बड़े-बड़े दफ्तर थे, उनपर एकके बाद एक गोले गिरते गये और दफ्तरोंके लिए इमारत मिलना कठिन हो गया। इसका कारण आन्ना नामक एक जासूस महिला थी, जो साङ्केतिक भाषामें यहांका भेद मालूम करके भेज रही थी। वह मामूली-सी दूकान लगाकर बैठती थी, वह अपनेको बेलजियन बतलाती थी, कहती थी कि जर्मनोंके अत्याचारसे भागकर यहां आयी हूं। वह चित्र भी बनाया करती थी। कभी किसी गिरजेका, कभी किसी महलके अन्दरका।

जब जर्मनीकी सेनायें पहले-पहल फ्रान्सकी तरफ बढ़ने लगीं, तब उनके सामने यार्क नगर था। दो जर्मन सेनायें दो दिशाओंसे धावा करना चाहती थीं। सिपाही मार्च कर रहे थे। परन्तु दो सेनाओंके बीच अन्तर इतना था कि वे परस्पर लिखित सन्देशोंका विनिमय नहीं कर सकती थीं। फलस्वरूप बेतारके तारसे वे लोग एक-दूसरेसे अपनी बात करते। कहा जाता है कि उन दिनों रेडियोपर दिनभर अजीब-अजीब सन्देश सुनाई पड़ते थे। एक जर्मन सेनाका नायक क्लेकमें था। रेडियोसे उसे सन्देश भेजा गया कि तुम दक्षिण-पूर्वसे चलकर यार्कपर धावा बोलो। यह सन्देश

उसे मिला तो; परन्तु उधर फ्रान्सके गुप्त भाषा-विशेषज्ञोंने उस सन्देशको सुनकर उसे यार्कके सेनापतिको बतला दिया। फ्रान्सीसी सेनापति जाफरेने अपना कार्यक्रम बदलकर कलेककी तरफ मुंह फेर लिया। नतीजा यह हुआ कि यार्कमें जर्मन सेनाको बुरी तरहसे हार खानी पड़ी।

यही हाल रूसियोंका भी हुआ। लड़ाईके शुरू होने तक रूसने अपनी पुरानी गुप्त भाषाका उपयोग किया। इसका एक खास कारण था। उसने नयी गुप्त-भाषा बना तो ली थी; परन्तु वह चाहता था कि शत्रुके कानों तक यह उस समय तक पहुंचे, जब उसे इसके हल करनेका अवसर न मिल सके। वह काफी उलझन और अड़चनमें रहे। फलतः जब लड़ाई शुरू हो गयी, तब उन्होंने इस नयी गुप्त भाषाके द्वारा अपने सन्देश भेजनेका प्रबन्ध किया। परन्तु इसमें उनको काफी धोखा हुआ। दो रूसी सेनायें मैदानमें पहुंचीं; उनके बीच कुछ दूरीका अन्तर था। एकके पास नयी गुप्त भाषाको कुञ्जी थी, दूसरीके पास पुराना कोड भी नहीं था, क्योंकि पुरानी गुप्त-भाषाके सम्बन्धका समस्त साहित्य जला दिया गया था, ताकि कहीं दुश्मनके हाथ कोई कापी न लग जाय। इसका परिणाम यह हुआ कि जब एक रात रेडियोपर दो रूसी सेनापति परस्पर युद्धके कार्यक्रमके सम्बन्धमें साधारण भाषामें बातें करने लगे, तब दुनिया हैरान रह गयी कि यह क्या हो रहा है। कुछ विशेषज्ञोंने तो यह समझा कि रूसी सेनापति संसारको भुलावेमें डाल रहे हैं। परन्तु वे आश्चर्यसे भर उठे, जब उन्हें मालूम हुआ कि इस कार्यक्रमके अनुसार सचमुच ही रूसियोंने अपने हवाई जहाज और घुड़सवार निश्चित स्थानपर भेज दिये हैं। यह बात जब हिण्डनबर्गको मालूम हुई, तब उसने अपनी फौजें झट रेलगाड़ी द्वारा पोलैण्डकी तरफ भेज दीं। रूसी सेना उस समय तक वहां नहीं पहुंच सकी थी। जब वह गयी, तो हिण्डनबर्गने तोपोंसे सलामी दी। कितने ही रूसी भून डाले गये। जो बचे, उनको प्राण बचाकर भागना पड़ा। कहते हैं, इस मैदानमें एक लाख रूसी मारे गये या कैद कर लिये गये। रूसी सेनाका नायक सक्सकाव था। उसे जब अपनी फौजकी यह दुर्गति मालूम हुई, तब उसने अपने माथेपर पिस्तौल रखकर आत्महत्या कर ली, ताकि सदाके अपमानसे बच जाये।

एक जर्मन जहाजको मित्र-राष्ट्रोंने पकड़ लिया। जहाजका कप्तान अपनी गुप्त भाषाकी पुस्तकें कमरमें बांधकर समुद्रमें कूद पड़ा, ताकि अपने साथ इन पुस्तकोंको भी ले डूबे। लेकिन दुर्भाग्य! वह डूब न सका। बचा लिया गया। नतीजा यह हुआ कि ये पुस्तकें अंगरेजोंके हाथ लग गयीं, जिससे इंगलैण्डके गुप्त भाषा-विशेषज्ञोंको जर्मनीके सम्पूर्ण समुद्री 'कोड'का पता लग गया। बादमें जर्मनीको बहुत बड़ी मुसीबतका सामना करना पड़ा, क्योंकि जर्मन सरकारको यह पता नहीं लगा था कि अंगरेजोंके हाथ हमारे कोड पहुंच गये हैं, इसलिए वे अपने सन्देश पुराने समुद्री कोडके अनुसार ही भेजते रहे।

इस घटनाके बाद जर्मनीने अपने समुद्री कोडको बदल डाला। उसमें ऐसे परिवर्तन किये कि बहुत प्रयत्न करनेपर भी मित्र-राष्ट्र नये कोडका कोई अर्थ नहीं लगा सके। सौभाग्यसे जर्मनीकी एक पनडुब्बी अंगरेजोंके हाथ लग गयी। वहांपर पानी गहरा नहीं था, इसलिए पनडुब्बी भागनेमें समर्थ नहीं हो सकी। जब यह पनडुब्बी पकड़ी गयी, तब एक अंगरेज ड्राइवर उसका निरीक्षण करनेके लिए उसमें उतरा। वह देखना चाहता था कि जर्मनीकी पनडुब्बियोंने कहां तक उन्नति की है। उसे जर्मनीके गुप्त कोडका कुछ ध्यान नहीं था, न उसे आशा थी कि यह कोड पनडुब्बीमें मिलेगा। परन्तु एक छोटी जगहमें, जिसे खोलना बहुत मुश्किल था, यह कोड पड़ा मिला। इसके बाद जर्मनीकी जितनी भी पनडुब्बियां डुबोयी गयीं, उन सबके अन्दर उसी खास जगहपर जर्मन कोड पाया गया।

लड़का पैदा हुआ है, यह बात बिलकुल मामूली है। जो कोई सुनेगा, शायद प्रसन्नता ही प्रकट करेगा; परन्तु जर्मनीके युद्ध-विभागमें जब एक बार यह समाचार पहुंचा, तब सभीके चेहरोंपर गम्भीरताकी लकीरें खिंच गयीं। गुप्त भाषाके इस वाक्यका अर्थ यह था कि लड़ाई छिड़ गयी है।

एक बार कुस्तुन्तुनियामें दो जहाज ठहरे हुए थे। कृष्ण सागरमें रूसियोंके जहाजोंकी संख्या बहुत अधिक थी। स्वभावतः जर्मन जहाजोंकी जानपर आफत थी। जर्मन जहाज कुछ करना तो चाहते थे; परन्तु दुश्मनके इतने भारी बेड़ेकी मौजूदगीमें कुछ भी करना मौत मोल लेनेके बराबर होता। एक दिन जब रूसी जहाज किनारेसे चलकर समुद्रकी ओर जा रहे थे, तब एक जर्मन जहाजके कप्तानने रूसकी

गुप्त भाषामें रेडियोसे सन्देश भेजा कि सारे रूसी बेड़ेको समुद्रके दूसरे किनारेपर अमुक स्थानपर एकत्र होना चाहिए। इस आदेशके अनुसार सभी रूसी जहाज वहां पहुंच गये। परन्तु वे प्रतीक्षा ही करते रहे और उन्हें कोई और आदेश न मिला कि आगे क्या करना चाहिए। उन्हें इस सन्देशका महत्त्व समझमें न आया। पांच दिनके बाद रूसी बेड़ा फिर कुस्तुन्तुनियाकी तरफ आया। उन्होंने देखा कि दोनों जर्मन जहाज वहांसे गायब हैं। अब उन्हें समझ आयी कि जर्मन कप्तानने हमारे साथ कितना गम्भीर मखौल किया था। मखौल क्या, यह तो बहुत बड़ा धोखा था। रूसी जहाजोंके कप्तानोंको दुश्मनने बुरी तरह उल्लू बनाया। जानेसे पूर्व जर्मन जहाजोंपर स्थित फौजने रूसी बन्दरपर उतरकर खूब लूट मचायी और लोगोंको तङ्ग किया।

रेडियोसे अपने सन्देश भेजनेमें भी जर्मनीने एक चालाकी-से काम लिया। जर्मनीका रेडियो स्टेशन न्यूएन था। यहां जब रातको रेडियोका बाकायदा प्रोग्राम खत्म हो जाता, तब थोड़ी देर तक रेडियो स्टेशनसे गड़बड़ प्रोग्राम शुरू कर दिया जाता। लोग इसे बिजलीका गड़बड़ कहते। ये बातें इतनी जल्दी की जातीं कि कोई मनुष्य इन्हें समझ न सकता। जर्मनी इस तरीकेसे बहुत समय तक अपने सन्देश भेजता रहा। मित्र-राष्ट्रोंने इस सन्देशके रेकार्ड भरवा लिये और उन्हें ग्रामोफोनके रेकार्डोंकी तरह मशीनपर रखकर चलाया, परन्तु कुछ सिर-पैर न मिला।

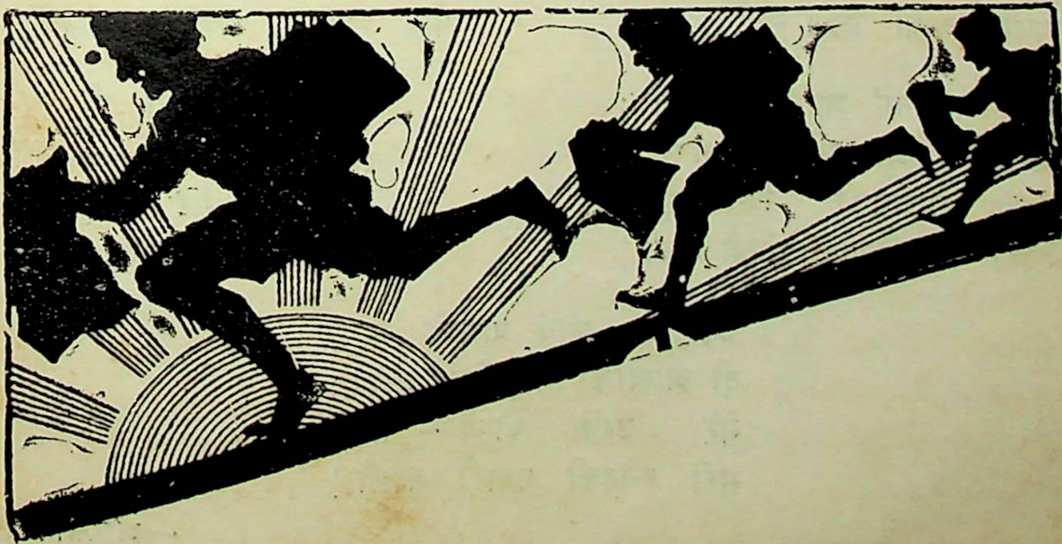
एक बार भूमध्य-सागरमें पड़े हुए एक जहाजके अंगरेज अफसरोंने अपने सामने कुछ काम न देखकर ग्रामोफोनके रेकार्ड लगा दिये। क्योंकि उनके पास कोई काम था नहीं और वे किसी तरह अपना वक्त काटना चाहते थे, इसीलिए वे सारे रेकार्ड खत्म हो गये।

इसके बाद वही गड़बड़ प्रोग्रामवाला एक रेकार्ड चढ़ाया गया, लेकिन भूलसे चाबी नहीं दी गयी थी, इसलिए रेकार्ड बहुत धीरे-धीरे घूमने लगा। परन्तु कोड आफिसरकी हैरानी-की कोई हद न रही, जब उसने यह रेकार्ड सुना। यह युद्धसे पूर्वकी गुप्त भाषामें भेजा गया सन्देश था। जर्मन हाई कमाण्डने इस सन्देशके द्वारा पूर्वी अफ्रीकाके जर्मन लोगोंको खास हिदायतें दी थीं।

जर्मनोंने एक मामूली-सी चालाकीसे काम लिया था। सन्देशका रेकार्ड तैयार करके उसे पांच-छः गुनी रफ्तारसे चलाया गया, जिसके बाद सब गड़बड़ मालूम पड़ने लगा, लेकिन जब रफ्तार ५-६ गुनी कम हो गयी, तो सन्देशका अर्थ ठीक-ठीक मालूम हो गया।

इसी तरहके सैकड़ों मनोरञ्जक, किन्तु महत्त्वपूर्ण उदा-हरणोंसे पिछले महायुद्धका इतिहास भरा पड़ा है। आज यूरोपमें एक बार फिर युद्धकी ज्वाला धधक उठी है। निस्स-न्देह पिछले युद्धकी भांति इस युद्धमें भी गुप्त भाषाओंकी सहायता महत्त्वपूर्ण साबित होगी।

———



एक घूंट

मेरे उरके रौप्य - पात्रमें
भरी स्नेहकी स्याही काली ;
रङ्ग अमिट हो जिससे, मैंने
उसमें अपनी पीड़ा डाली !

किया कठिन श्रम दिन-भर, थककर
चूर हुआ, जब धूप कड़ी-सी ;
प्रिय - पलकोंकी घनी छांहमें
मैंने तब दोपहर बिता ली !

अङ्कित की निसर्गकी शोभा ;
वन-काननका किया विचित्रण !
सुन्दरियोंके गीत बनाये,
वैभवकी तस्वीर निराली !

कर्म-निष्ठ जगके कोलाहलमें
जब उठा विमन - व्याकुल हो,
रुपहली—सुनहली तितलियोंसे
अपनी तबियत बहला ली !

लगा स्वर्ण-निब अपने मनकी,
खींची कई लकीरें काली ;
जगकी सुख-सुषमाको लिखकर
मैंने अपनी व्यथा छिपा ली !

तीर्थ - भवनमें शान्ति न पायी ;
भरा न जी सौन्दर्य-जगत्से !
मनके साजनकी प्रिय – सुधमें
सारी दुनिया देखी-भाली !

जीवनके सुफेद कागजपर,
चमक उठे मोतीके अक्षर ;
मैंने जीवनको तराश कर
एक मनोहर कलम बना ली !

पहले आसमानको देखा ;
वह अक्ष अलक्ष्य, दुर्बोध, शून्य था !
मैंने जगका चित्र खींचकर
अपनी अमर कला वह पा ली !

आयीं कितनी मधुकी घड़ियां ;
कितने चांद-सितारे आये !
फिर भी मेरे अन्तर - गृहमें
थी वैसी ही नित अंधियाली !

फूल खिले सुन्दर-से-सुन्दर ;
थीं सुन्दर - से - सुन्दर तरुणी !
ठहर सकूं मैं जहां, न देखा
कोई भी ऐसा घर खाली !

सारी रात जागते बीती,
देखा सपना एक सुबहमें ;
आंखें ज्यों ही लगीं कि जगमें
फैल गयी ऊषाकी लाली !

एक घूंट भी पी न सका था
मैं तेरी सौन्दर्य - सुराका,
तूने मेरे दुर्बल करसे
छीन हाय, लुढ़का दी प्याली !

उड़ न जायं प्राणोंके खग,
दी आंखोंकी खिड़कीपर जाली ;
मेरे उरके रौप्य – पात्रमें
भरी स्नेहकी स्याही काली !

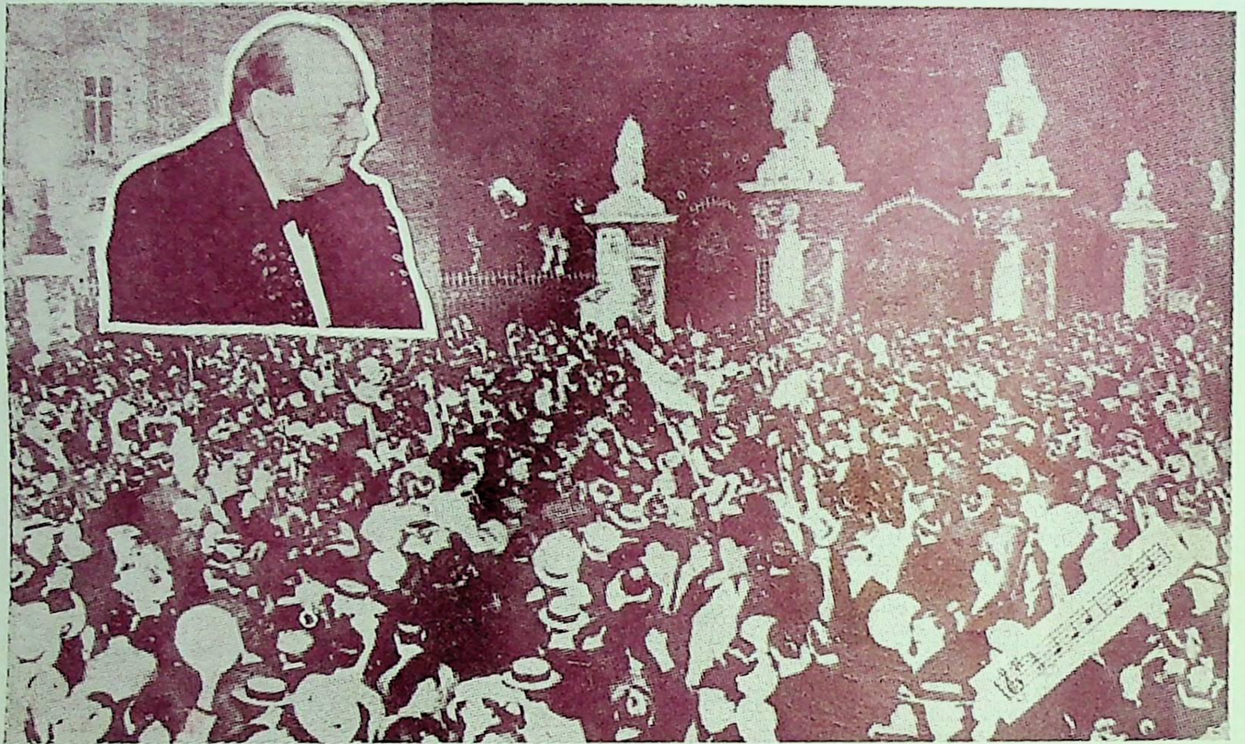
—आरसीप्रसाद सिंह ।



कारूंका खजाना—"पहले यह तय कर लो कि मिल जानेपर हम लोगोंकी क्या हालत होगी ? हम लोगोंमें बंटवारा हो जायगा, या हमें आपसमेंही लड़ना पड़ेगा ।" —'पञ्च', लन्दन



रूजवेल्टने तानाशाहोंसे युद्धमें न पड़नेकी अपील की, तो वे गरजकर बोले— "यह है युद्धका दानव"—एडवर्ड लो



१९४०



१९४०



१९४०



१९४०



कैसर—"मैंने भी ऐसा ही सोचा था हिटलर !" —एडवर्ड लो।



बाल्कन देशोंको लेकर रूस और जर्मनी—"क्या, मैं ? कभी नहीं। मैं इन सुनहरी मछलियोंको नहीं चाहता।" —'डेली मेल'

सिद्धान्त : युद्धके भाग्य-निर्णायक

श्री कमलाकान्त शर्मा, एम० ए०

युद्ध-लग्न दो पक्षोंमेंसे एक-न-एक पक्षकी विजय या पराजय होती ही है। यों तो यह भी सम्भव है कि विजय या पराजयका निर्णय होनेसे पहले ही परिस्थितिवश युद्ध-लग्न पक्ष युद्ध बन्द कर सन्धि करनेके लिए तैयार हो जायें; परन्तु ऐसी अवस्थाओंमें भी किसी-न-किसी रूपमें विजय या पराजयकी भावना अपना काम करती है और उसीके कारण सन्धि हो जानेका अवसर आता है। जो हो, युद्धमें हमेशा ही एक पक्षकी विजय होनेपर भी उसका कोई खास कायदा नहीं है, कोई ऐसा नियम नहीं है, जिससे विजय अनिवार्य हो जाय। परन्तु कुछ ऐसी बातें अवश्य हैं, जिन्हें युद्धमें विजयी होनेका सिद्धान्त कहा जा सकता है। प्राचीन कालसे ही युद्धोंमें जिस पक्षकी सफलता हुई है, उसने इन सिद्धान्तोंसे काम लिया है। ये सिद्धान्त जितने प्राचीन कालमें सत्य थे, उतने ही आज भी हैं—भले ही हाथसे रोड़ा फेंकनेका जमाना बदलकर १६ इञ्ची गोला फेंकनेवाली तोपोंका युग आ गया हो।

युद्धमें विजय पानेके ये सिद्धान्त संक्षेपमें इस प्रकार हैं:—शत्रुपर अचानक हमला कर उसे चकित और किंकर्तव्य-विमूढ़ कर देना, आक्रमण और प्रहार करना, गति और प्रगतिमें शीघ्रताका महत्त्व, शक्तिका कमसे कम उपयोग, शत्रुसे श्रेष्ठ होनेकी कला, सहयोग रखना, एक खास लक्ष्यके लिए उद्योग करना, सुरक्षा, सावधानी और सरलता।

विजय हमेशा ही इन्हीं सिद्धान्तोंके आधारपर हुई है, इन्हीं सिद्धान्तोंको व्यावहारिक रूप देनेवाला पक्ष विजयी हुआ है और जिस किसीने इन सिद्धान्तोंकी अवहेलना की है, उसीको नीचा देखना पड़ा है।

सैनिक दृष्टिकोणसे युद्धोंके इतिहासका अध्ययन करने-वालोंसे यह छिपा हुआ नहीं है कि युद्धोंमें हमेशा ही पूर्व परिस्थिति सामने आती रहती है। यह माना जाता है कि इस संसारमें कोई चीज नवीन नहीं है। किसी समय जो कोई बात की गयी हो, वही किसी-न-किसी रूपमें आगे भी की जायगी—यह सत्य युद्धोंपर भी पूरी तरह घटित होता है। युद्धोंके सम्बन्धकी एक मुख्य सचाई आज भी उतनी ही सत्य है, जितनी वह इतिहासके पन्ने रंगनेवाले सैकड़ों युद्ध होनेके समय थी। यह सचाई है—अवसरसे लाभ उठानेकी प्रत्युत्पन्न बुद्धि। इस बुद्धिके अभावमें किसी भी व्यक्ति या राष्ट्रके लिए अपने प्रतिद्वन्द्वी व्यक्ति या राष्ट्रपर विजय पाना असम्भव है। बहुत लोगोंका ख्याल होता है कि अवसर हमेशा ही आते रहते हैं और उनका उतना अधिक मूल्य नहीं है; परन्तु यह ख्याल भ्रमपूर्ण है। जो अवसर बीत जाता है, वह कभी नहीं आता। यह हो सकता है कि बीते हुए अवसरसे भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण अवसर कभी सामने आ जाये। किन्तु यह भी जान लेना चाहिए कि यह हमेशा ही नहीं होता और अवसर खो देनेपर पछतावा ही हाथ रहता है। इसके विपरीत जो पक्ष अवसरसे लाभ उठानेमें कुशल होता है, शत्रुके छिद्रों और विशेष परिस्थितियोंसे लाभ उठा सकता है, वही विजयी होता है।

अनुभव बतलाता है कि अवसरका उपयोग न करनेसे राष्ट्र सौ-सौ, पचास-पचास वर्ष पीछे पड़ जाते हैं और प्राप्त अवसरका उपयोग ठीक तरहसे करनेपर समयसे पहले ही सफलता मिल जाती है।

युद्धोंको जीता जाता है लड़कर—शत्रुपर अधिकाधिक बल लगाकर प्रहार कर और लगातार प्रहार कर—यहां तक कि उसे विश्राम करनेका, संभलनेका मौका न मिले। इस तरह लगातार प्रहार करना अपने लिए भी खासी सजा हो जाती है; परन्तु यदि उससे शत्रुको ज्यादा सजा दी जा सकती हो, तो उसे भी स्वीकार करना युद्ध-कलाकी दृष्टिसे आवश्यक हो जाता है।

आरम्भमें विजयी होनेके जिन सिद्धान्तोंका उल्लेख हुआ है, उन्हें संसारके इतिहासकी घटनाओंके रूपमें देखना चाहिए और यह भी देखना चाहिए कि कठिनाईके समयमें कहां तो निर्णय करनेमें प्रत्युत्पन्नमतित्वका परिचय दिया गया और कहां नहीं।

गत महासमरमें इंगलैण्डपर आक्रमण करनेमें जर्मनीको

सफलता नहीं हुई थी और अन्तमें उसे हार भी जाना पड़ा था; परन्तु इस बार भले ही ये पंक्तियां लिखनेके समय तक इंगलैण्डमें जर्मन सेनायें न उतर सकी हों और यह हो सकता है कि वे इंगलैण्डमें उतरनेमें सफल न हो सकें; किन्तु आक्रमण तो युद्ध आरम्भ होनेके कुछ समय बादसे ही हो रहे हैं। शत्रुपर आक्रमण करनेके साधनोंकी दृष्टिसे यह युग २०-२२ वर्ष पहलेसे बहुत आगे बढ़ गया है और यद्यपि रक्षात्मक साधनोंमें भी बहुत उन्नति हुई है, तथापि आज किसी देशपर दूर तक आक्रमण करना जितना आसान है, उतना पहले नहीं था। १४३ वर्षसे भी ज्यादा अर्सा हुआ, जब २२ फरवरी १७९७ ईस्वीको फ्रान्सने इंगलैण्डपर हमला किया था। १७९७ ईस्वीसे इधर तक—वर्तमान महासमरको छोड़कर—कभी कोई हमला इंगलैण्डपर नहीं हुआ। फ्रान्सके उस आक्रमणके नेता जनरल टाटे थे। फ्रान्सीसी सेनाके १४०० जवान दक्षिण वेल्समें फिशगार्डके पास उतरे और आगे बढ़ने लगे; किन्तु वे थोड़ा ही आगे बढ़े थे कि अचानक रुक गये। उन्होंने सामने क्षितिजपर पहाड़ियोंके सिरोंपर देखा कि लाल वर्दी पहने हुए बन्दूकधारी सैनिकोंकी चहल-पहल जारी है। परन्तु फ्रान्सके सैनिकोंको असलमें धोखा हुआ था। वहां उस समय कोई सैनिक नहीं था। वहां थीं फिशगार्डकी केवल स्त्रियां, जो अपना लाल रङ्गका जातीय दुपट्टा ओढ़े हुई थीं और लम्बे-लम्बे टोप लगाये हुई थीं। ये सब स्त्रियां झाड़ू लिये हुए थीं। ये स्त्रियां पहाड़ीपर लगातार चल-फिर रही थीं, जान-बूझकर चल-फिर रही थीं। दूरवर्ती पहाड़ीपर इस तरह चलती-फिरती स्त्रियोंको आक्रमणकारियोंने सैनिक समझा और वे रुक गये। स्त्रियोंने अपनी हरकत उस समय तक जारी रखी, जब तक शत्रुका मुकाबिला करनेके लिए सैनिक पहुंच नहीं गये। आक्रमणकारियोंने दो दिन पीछे बेलिण्डे स्थानमें आत्म-समर्पण कर दिया और ऐसी सेनाके आगे आत्म-समर्पण कर दिया, जो स्वयं उनके मुकाबिलेमें बहुत ही घटिया दर्जेकी थी। फिशगार्डकी स्त्रियोंने प्रत्युत्पन्न बुद्धि होनेके कारण शत्रुको कुछ समय तक रोक रखनेका जो उपाय सोचा था, वह सफल हुआ; उससे उन्होंने शत्रुको दङ्ग कर दिया और इसका परिणाम यह हुआ कि आक्रमणकारियोंको बहुत शीघ्र भाग जाना पड़ा। निश्चय ही फ्रान्सीसी सैनिकोंको जब असलियतका पता चला होगा, बड़ा पछतावा हुआ होगा; परन्तु जो अवसर वे खो चुके थे, वह लौटकर नहीं आ सकता था। इसके विपरीत प्राप्त अवसरका उपयोग करनेकी दृष्टिसे फिशगार्डकी महिलाओंने आश्चर्यजनक सूझका परिचय दिया।

१९८८ ईस्वीकी बात है। फ्रान्स और इंगलैण्डके राजनीतिज्ञ षड्यन्त्र करनेमें लगे हुए थे। वे स्पेनकी बढ़ी हुई शक्तिसे डरते थे। उस समयका इंगलैण्ड आजका नहीं था। उसके पास उपनिवेश नहीं थे और स्काटलैण्ड और आयर्लैण्ड भी परेशान किये रहते थे। स्पेनके बादशाहने इस परिस्थितिसे लाभ उठाना चाहा। उसने सोचा कि एक बार सारी शक्ति लगाकर प्रयत्न करनेसे इंगलैण्डको, कष्टप्रद अंगरेजोंको नम्र बनाया जा सकता है। इसी विचारसे उसने तैयारियां आरम्भ कीं और एक बड़ा जहाजी बेड़ा बनाया। साल-भर तक ये तैयारियां गुप्त रीतिसे होती रहीं। यह कहा गया कि इस विशाल सेनाका उपयोग एशियाके देशोंको जीतनेके लिए किया जायगा। स्पेनके बादशाह फिलिपके ऐसा कहनेपर भी अंगरेजोंको विश्वास नहीं हुआ और उन्होंने अपनी तैयारी की। उन्होंने नौकायें इतनी अधिक संख्यामें बनवायीं कि सेनाको समुद्र-पार उतारा जा सके। फ्रान्स अंगरेजोंका मित्र था; परन्तु पूरे हृदयसे नहीं। इंगलैण्डके इस बेड़ेमें ११०० टनका एक, १००० टनका एक, ९०० टनका एक, ८-८ सौ टनके दो, ६-६ सौ टनके तीन, ४-४ सौ टनके पांच, ३-३ सौ टनके छः, २॥-२॥ सौ टनके छः, २-२ सौ टनके २० और इससे कम टनोंके १४६ जहाज थे। ये जहाज कुल मिलाकर ३११८९ टनके थे और इनपर १७४७२ आदमी थे। स्पेनके जहाजी बेड़ेमें जहाजोंकी संख्या तो कम ही थी—कुल १३०; परन्तु ये थे ५७८६८ टनके। इसीसे यह समझा जा सकता है कि उसमें बड़े-बड़े जहाजोंकी संख्या बहुत थी। १४ जहाज तो ९-९ सौसे लेकर हजार-हजार टन तकके थे और २४ जहाज थे ७-७ सौसे लेकर ९-९ सौ टन तकके। २७ जहाज ५-५-७-७ सौ टन तकके थे। कुल आदमियोंकी संख्या २९३३९ थी और इनमें १९१९७ सैनिक थे।

मई १९८८ में स्पेनका यह जहाजी बेड़ा रवाना हुआ। राजा फिलिपको यह सलाह दी गयी थी कि वे जीलैण्ड या हालैण्डमें किसी एक बड़े बन्दरगाहको अपना केन्द्र बनायें

और उसके बाद आक्रमण करनेका उद्योग करें। परन्तु राजा फिलिपने इस सलाहको न मानकर सुरक्षाके सिद्धान्तकी अवहेलना की और बेड़ेको रवाना कर दिया; किन्तु बेड़ा रवाना हुआ ही था कि भयङ्कर तूफान आया और बेड़ेको लौट आना पड़ा। इसमें बेड़ेकी भारी क्षति भी हुई। इस क्षतिके जो समाचार इंगलैण्डमें पहुंचे, उनमें बड़ी अतिशयोक्तिसे काम लिया गया था। क्षति सम्बन्धी इन समाचारोंसे रानी एलिजाबेथने यह सोचा कि कमसे कम अगले एक साल तक आक्रमण नहीं हो सकेगा, इसलिए उसने जल-सेनाकी तैयारी स्थगित रखनेकी आज्ञा दे दी; परन्तु ब्रिटिश जल-सेनाके एक एडमिरल थाम्स हावर्ड सहमत नहीं हुए और उन्होंने अपने जहाजोंकी तैयारीको स्थगित करनेसे इनकार कर दिया; यही नहीं, उन्होंने अपने अधीन सेनाको निष्क्रिय न रखकर प्राप्त सुअवसरका पूरा उपयोग किया और स्पेनके जङ्गी बेड़ेपर धावा बोलनेके इरादेसे उनका बेड़ा चल पड़ा; किन्तु हवाके रुखके कारण उसे लौटना पड़ा। और जब उन्हें यह पता चला कि स्पेनकी सेनामें बीमारी फैल गयी है, तब उन्होंने अपनी सेनाका अधिक भाग प्लाईमाउथमें रख दिया।

लगभग १॥। महीने बाद जुलाईमें स्पेनका बेड़ा अपनी टूट-फूट दुरुस्त करनेके बाद फिर रवाना हुआ और उक्त एडमिरल हावर्डकी असावधानीसे इंगलिश चेनलमें पहुंच गया और एक सप्ताह तक किसीको खबर ही नहीं हुई। अंगरेज सेनानायकोंको जिस समय स्पेनके बेड़ेके अचानक पहुंचनेका समाचार मिला, सुरक्षाके सिद्धान्तकी अवहेलना कर वे तट-पर आमोद-प्रमोद कर रहे थे। स्पेनके बेड़ेके नायक मेडीना सेडोनिया युद्ध कलामें इतने कुशल नहीं थे; परन्तु उन्होंने अचानक आक्रमण कर शत्रुको चकित कर देनेके सिद्धान्तसे काम लिया था, इसलिए युद्धके आरम्भ-कालमें अंगरेजोंको बड़ी क्षति उठानी पड़ी।

अंगरेजोंने तैयार होकर बन्दरगाहसे निकलनेमें देरी नहीं की; परन्तु मेडीना सेडोनियाने न केवल अचानक आक्रमण करनेके सिद्धान्तसे काम लिया, बल्कि युद्धमें विजयी होनेके कई अन्य सिद्धान्तोंको भी दृष्टिमें रखा। उन्होंने अपने आक्रमणका लक्ष्य ब्रिटिश जल-सेनाको बनाया और यह भी ठीक ही किया। अगर सीधे ही आगे बढ़कर उन्होंने उस समय आक्रमण कर दिया होता, जब ब्रिटिश सेना प्लाईमाउथके बन्दरगाहसे बाहर आ रही थी, तो सम्भवतः वे जीत गये होते; परन्तु अंगरेज सेनानायकोंने आरम्भमें सुरक्षाके सिद्धान्तकी उपेक्षा करनेकी गलती भले ही की हो, किन्तु बादमें उन्होंने युद्धमें विजयी होनेके सिद्धान्तोंका पालन दृढ़ताके साथ किया। स्पेनके भारी-भारी जहाजोंके पास जाना हावर्डने ठीक नहीं समझा; परन्तु छोटे-छोटे दल बनाकर विभिन्न स्थानोंमें मोर्चा बनाकर आक्रमण किया। इन छोटे-छोटे दलोंमें परस्पर पूर्ण सहयोग था। यह युद्ध सात दिन तक लगातार हुआ। इस बीचमें अंगरेज योद्धाओंके पास कुमक भी लगातार ही पहुंचती रही। अंगरेजोंके अपनेको श्रेष्ठ प्रमाणित करने, कमसे कम शक्ति लगाकर शत्रुपर हमला करने और सहयोग होनेके सिद्धान्तसे काम लेनेके कारण स्पेनके जङ्गी बेड़ेको पीछे हटनेके लिए विवश होना पड़ा। इसके बाद अंगरेज सेनानायकोंने प्रगति, आक्रमण और लक्ष्यके सिद्धान्तसे काम लेकर प्रबल आक्रमण किया और बेड़ेको भगाकर ही दम लिया। इतिहासमें स्पेनकी जल-सेनाकी इस हारको एक बड़ी घटना माना जाता है। १६वीं शताब्दीमें इस घटनाके बाद अंगरेजोंके विभव-विस्तारका मार्ग साफ हो गया था।

इस देशके इतिहासमें भी जिन अनेक युद्धोंका उल्लेख मिलता है, उन्हें अध्ययन करनेपर पता चलता है कि विजयके जिन सिद्धान्तोंका उल्लेख आरम्भमें किया गया है, उनसे किसी-न-किसी रूपमें काम लिया गया था। इस सिलसिलेमें भारतीय युद्धोंमें भेद-नीतिका बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। भेद-नीतिका ठीक-ठीक प्रयोग होनेसे शत्रुकी शक्ति खोखली हो जाती है, उसका बल टूट जाता है और उसका पतन अनायास ही आश्चर्यजनक रूपमें हो जाता है। इसमें सन्देह नहीं है कि उसके लिए दूरदर्शी राजनीतिज्ञ हमेशा ही बहुत पहलेसे प्रयत्न किया करते हैं; परन्तु इस नीतिके सफल होनेके लिए युद्धमें विजय दिलानेवाले अन्य सिद्धान्तोंसे भी काम लिये जानेकी पूर्ण आवश्यकता है। जब तक अन्य सिद्धान्तोंसे काम लेकर शत्रुपर आक्रमण न किया जाय, तब तक केवल भेद-नीतिसे काम लेनेसे ही सफलता नहीं हो सकती।

महाभारतकी कहानी हम सब जानते हैं। कौरवों और

पाण्डवोंके उस युद्धसे पहले जब शक्तिका संग्रह किया जा रहा था, दुर्योधन और अर्जुन, दोनों ही श्रीकृष्णसे सहायता मांगने द्वारका गये थे। वहां दुर्योधनने यादवोंकी बड़ी सेना मांगी; परन्तु अर्जुनने शत्रुसे श्रेष्ठ होनेके सिद्धान्तपर दृष्टि रखकर केवल श्रीकृष्णको अपने सहायकके रूपमें साथ लिया। यद्यपि श्रीकृष्णने अर्जुनसे शस्त्र-ग्रहण न करनेकी प्रतिज्ञा की थी, तथापि जान लेनेकी बात यह है कि एक रण-कुशल व्यक्तिका, श्रीकृष्ण-जैसे व्यक्तिका सहयोग और साहाय्य समस्त सेनाके मुकाबिलेमें कहीं ज्यादा मूल्यवान है, भले ही उन्होंने शस्त्र न ग्रहण करनेकी प्रतिज्ञा की हो। अर्जुन लड़ाईके इस तत्त्वको जानते थे, इसलिए उन्होंने सारी सेनाकी ओर दृष्टि न डालकर केवल श्रीकृष्णको साथ लिया और अन्तमें अर्जुनका पक्ष ही विजयी भी हुआ; किन्तु इस विजयमें कितने ही अन्य सिद्धान्तोंसे भी काम लिया गया था। चक्रव्यूहमें अभिमन्युके मारे जानेपर अर्जुनने यह प्रतिज्ञा की थी कि अगले दिन शाम होनेसे पहले या तो वे जयद्रथको मार डालेंगे या स्वयं अग्निमें जल मरेंगे। इस प्रतिज्ञाके बाद अगले दिन अर्जुनने जयद्रथको सन्ध्यासे पहले-पहले मार डालनेकी भरसक कोशिश की; परन्तु कौरवोंने उस दिन जयद्रथकी रक्षाके लिए खास प्रबन्ध किया था, इसलिए अर्जुन उसे मार नहीं सके और उधर मौसम ठीक नहीं होनेसे सन्ध्या होनेसे पहले ही ऐसा मालूम होने लगा, मानो सन्ध्या हो गयी। नियमानुसार युद्ध बन्द हो गया और अर्जुन अग्नि-प्रवेशकी तैयारी करने लगे। कौरव भी निश्चिन्त हो अर्जुनका अग्नि-प्रवेश देखनेके लिए पास ही खड़े हुए थे और खुश हो रहे थे कि इतनेमें ही बादलोंके बीचसे सूर्यकी किरणें चमकती दिखलाई पड़ीं। कौरवों और पाण्डवों, युद्ध-लग्न दोनों पक्षोंने यह समझ रखा था कि सन्ध्या हो गयी। इसीलिए बादलोंके हट जानेसे जब सूर्यकी किरणें दिखलाई पड़ीं, तब दोनों पक्षोंको आश्चर्य हुआ। इस आश्चर्यने पाण्डवोंमें तो उत्साहका सञ्चार कर दिया और कौरव अवाक् रह गये। अर्जुनने इसी समय श्रीकृष्णका सङ्केत पाकर प्राप्त सुअवसरका उपयोग किया और ऐसा वाण चलाया कि सबके देखते-देखते जयद्रथका शिर धड़से अलग हो गया। अर्जुनने इस समय न केवल प्राप्त सुअवसरका उपयोग किया, शत्रुपर अचानक आक्रमण कर उसे चकित कर देने और केवल लक्ष्यपर दृष्टि रखनेके सिद्धान्तका भी पालन किया। इसका परिणाम यह हुआ कि जो पाण्डव-दल अर्जुनके चिरवियोगको प्रत्यक्ष देखकर दुखी हो रहा था, वह जयद्रथको धराशायी होते देखकर शङ्खनाद करने लगा और इसके विपरीत कौरवोंके दलमें रात्रिका अन्धकार होनेके साथ ही दुःख और ग्लानि-की कालिमा छा गयी।

महाभारतमें पाण्डवोंकी विजय पढ़नेके साथ ही हमें यह भी देखना चाहिए कि उन्होंने किस तरह कौरवोंके बलको भीतरसे खोखला कर दिया था। भीष्म, द्रोण-जैसे महारथी यद्यपि लड़ते कौरवोंकी ओरसे थे, तथापि विजय पाण्डवोंकी चाहते थे और दुर्योधन सुरक्षाके सिद्धान्तकी अवहेलना कर उन्हींको अपना बल समझनेकी भूल कर रहा था। इसीका यह परिणाम हुआ कि उनसे जो आशा दुर्योधनने की थी, वह पूरी नहीं हुई और अन्तमें सर्वनाशके बाद पराजित भी होना ही पड़ा।

महाभारतसे पहलेके एक अन्य बड़े युद्धका वर्णन रामायणमें मिलता है और इसे अध्ययन करनेसे पता चलता है कि विजयी पक्षने उन सिद्धान्तोंका पालन किया था, जिनका पालन करना किसी पक्षके विजयी होनेके लिए आवश्यक है। जहां तक बलका प्रश्न है, रावण भी कम शक्ति-मान नहीं था; परन्तु सुरक्षा सम्बन्धी उसके सिद्धान्तमें एक बड़ा छिद्र था—विभीषण, जो रावणके विचारोंके बिलकुल प्रति-कूल था और युद्ध नहीं चाहता था। यह विभीषण ठीक समय-पर रावणका साथ छोड़कर रामचन्द्रसे जा मिला था और रामचन्द्रने उसका बड़ा स्वागत किया था। शत्रु-देशकी पूरी जानकारी रखनेवाला प्रभावशाली व्यक्ति यदि अपने-आप आकर मिले, तो कौन उसका स्वागत नहीं करेगा? रामचन्द्रने 'लङ्कापति' कहकर उसके सामने एक नया दृश्य उपस्थित कर दिया। विभीषणको चाहे लङ्कापति होनेकी चिन्ता न रही हो; परन्तु लङ्कापति सम्बोधनसे जो भाव प्रकट होता है, उसकी दूरदर्शिता तो प्रकट ही है। हम देखते हैं कि युद्धकालमें समय-समयपर विभीषणने रामचन्द्रको जो परामर्श दिया है, वह रावणकी पराजय और रामचन्द्रकी विजयकी दृष्टिसे अत्यन्त मूल्यवान है और रामचन्द्रने उससे पूरा लाभ उठाया है। रामचन्द्रने विभीषणको अपनाकर भेद-नीतिसे काम लेनेके कौशलका पूर्ण परिचय दिया

था। अपने इस कौशलसे रामचन्द्रने अपने शत्रुसे श्रेष्ठ होनेका भी प्रमाण दिया था, क्योंकि रामचन्द्रने जहां उसे अपनाया था, वहां रावणने उसका तिरस्कार किया था।

युद्धके दिनोंमें रामचन्द्रको कई बार बड़ी कठिन स्थितिका सामना करना पड़ा था और जब-जब वैसा अवसर उपस्थित हुआ, उन्होंने सहयोग, सरलता, लक्ष्य और सुरक्षाके सिद्धान्तपर दृढ़ रहकर पराक्रम दिखलाया और प्राप्त अवसरका उपयोग कर, अचानक आक्रमण कर शत्रुको चकित कर देनेकी नीतिसे भी काम लिया। रावणकी युद्ध-नीतिमें इन सब बातोंका पुट पूरी तरह नहीं था, यह युद्धके वर्णनसे अच्छी तरह प्रकट हो जाता है।

आधुनिक युद्धोंका जो विवरण पाया जाता है, उसे अध्ययन करनेसे मालूम होता है कि विजयी पक्षने हमेशा विजयके सिद्धान्तोंसे काम लेकर ही सफलता पायी है। सम्राट् महानन्दने शत्रुसे शक्ति और रण-कलामें श्रेष्ठ रहनेके सिद्धान्तको व्यवहारतः अपना रखा था। इसीका परिणाम यह हुआ कि अनेक देशोंको अपने पैरों तले रौंदनेवाले सिकन्दरको पञ्जाबसे आगे बढ़नेका साहस ही नहीं हुआ और उसके एक सेनापतिने बादमें जब यह दुःसाहस किया, उसे नीचा देखना पड़ा। सम्राट् चन्द्रगुप्तने भी यदि शक्ति और रण-कलामें शत्रुसे बढ़कर रहनेकी सावधानी न की होती, तो कौन कह सकता है कि इस देशका इतिहास किस तरह लिखा जाता।

भारतीय इतिहासकी एक अन्य महत्त्वपूर्ण लड़ाई वह है, जो पृथिवीराज और शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीसे थानेश्वरके मैदानमें हुई थी और जिसके बाद भारतके भाग्यका फैसला हो गया था। इस लड़ाईसे पहले देशपर मुसलमानोंके कितने ही आक्रमण हुए थे; परन्तु यहां आक्रमणकारियोंके पैर नहीं टिक सके थे। स्वयं गोरी भी कई बार पृथिवीराजसे लड़कर हार चुका था; परन्तु गोरी इससे निराश नहीं हुआ था। शत्रुपर आक्रमण कर स्वयं अग्रसर होने और एक निश्चित लक्ष्यके साथ आक्रमण करनेमें उसका दृढ़ विश्वास था और सहयोगके सिद्धान्तने उसकी शक्तिको सुदृढ़ बना दिया था। पृथिवीराजकी अवस्था इससे भिन्न थी। शत्रुपर आक्रमण करनेकी बात उन्होंने कभी नहीं सोची—गोरीके बार-बार आक्रमण करनेपर भी नहीं सोची और न सीमापर सुदृढ़ व्यवस्था रखकर सुरक्षाके सिद्धान्तका ही पालन किया। आपसी मतभेदों और घरेलू कलहके कारण उनकी शक्तिको पहलेसे ही घुन लग रहा था। इससे जो अवसर उपस्थित हुआ, उससे गोरीने लाभ उठाया और कई बार पराजित होनेपर भी अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा। यही नहीं, युद्धमें पराजित हो जानेपर जब गोरीकी सेना भाग खड़ी हुई, पृथिवीराजने उसका दूर तक पीछा किया। इस सेनाको खदेड़कर जब पृथिवीराज अपने कई सामन्तों समेत लौटे और मार्गमें सुरक्षाके सिद्धान्तको ठुकराकर एक स्थानपर विश्राम करने लगे, गोरीने अचानक आक्रमण कर शत्रुको दङ्ग कर देनेके सिद्धान्तका पालन किया और पीछे लौटकर पृथिवीराजको घेर लिया, और फिर वही हुआ, जिसकी उस समय कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। विजयश्रीने शहाबुद्दीन गोरीको अपना लिया। पृथिवीराज अपने प्रतिद्वन्द्वीके मुकाबिलेमें विजयी होनेके सिद्धान्तोंको नहीं अपना सके।

पृथिवीराजसे बिलकुल उलटा उदाहरण छत्रपति शिवाजीका है, जिन्होंने अपने पराक्रम और युद्ध-कौशलसे एक नये साम्राज्यकी नींव डाली, जो भारतीय इतिहासके उस उथल-पुथलके जमानेमें १२५ वर्ष तक खूब फूला-फला। शिवाजीके युद्ध-कौशलमें सबसे बड़ी बात यह थी कि वे अचानक आक्रमण कर शत्रुको किंकर्तव्य-विमूढ़ कर देनेकी युद्धनीतिमें अपना जोड़ नहीं रखते थे और इस नीतिसे काम लेनेमें वे इतने पटु थे कि शत्रुको उनके सामने हमेशा ही नीचा देखना पड़ता। अपनी इसी नीतिकी बदौलत वे लगातार विजयी हुए और दुर्दान्त मुगल साम्राज्यकी जड़ें हिलाकर अपनी स्वतन्त्रता स्थापित करनेमें समर्थ हुए। इतिहासके पृष्ठोंमें चाहे शायस्ता खांवाली घटनाको देखा जाय और चाहे अफजल खां-बधका विवरण पढ़ा जाय, यह मानना ही पड़ेगा कि शत्रुकी असावधानीसे पूरा लाभ उठानेकी क्षमता छत्रपति शिवाजीमें थी। महलमें अचानक पहुंचकर शायस्ता खांपर शिवाजीका टूट पड़ना जितना आश्चर्यजनक है, उससे कम आश्चर्यजनक यह बात नहीं है कि छत्रपति शिवाजी पूनामें हों और शायस्ता खांको इसका कुछ भी पता न हो। अपने कुछ साथियों सहित शिवाजीके अचानक पहुंच जानेसे शायस्ता खां इतना भौचक्का हो गया कि उससे कुछ सोचते न बन पड़ा और खिड़कीके रास्तेसे

कूदकर ही अपनी जान बचायी। शिवाजी और उनके साथियोंने जिस तरह छिपकर पूनेमें प्रवेश किया था, उससे भी यह प्रकट है कि उनका बुद्धि-कौशल अपने शत्रुओंसे कहीं अधिक श्रेष्ठ था। अफजल खां-बधके सम्बन्धमें भी यही कहा जा सकता है। सतर्क रहनेमें तो अफजल खांने अपनी ओरसे कोई कसर नहीं रखी थी; परन्तु शिवाजीकी दूरदर्शिता और सूझ उससे कहीं बढ़कर थी, इसीलिए वे उसका शिकार न बनकर स्वयं उसीको अपना शिकार बनानेमें समर्थ हुए।

शिवाजीकी युद्ध-नीतिमें एक दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि वे बड़ी किफायतके साथ शक्तिका उपयोग करते थे। शिवाजी यह जानते थे कि मुगल सम्राट्की शक्तिके मुकाबिलेमें उनकी शक्ति कुछ भी नहीं है और जब यह स्थिति हो, वे कितने दिन टिक सकते थे, यदि शक्तिको लगानेमें किफायत न करते, कमसे कम शक्ति लगाकर ज्यादासे ज्यादा सफलता पानेके लिए उद्योग न करते। अपनी इसी युद्ध-नीतिके कारण वे कभी मुगल सेनाके सामने किसी बहुत बड़े युद्ध-क्षेत्रमें नहीं आये—यद्यपि मुगल साम्राज्यके साथ उनका सङ्घर्ष करीब-करीब हमेशा ही रहा। शिवाजीका आक्रमण हमेशा ही छोटी-छोटी टुकड़ियोंमें होता और उनके सैनिक अचानक आक्रमण कर उस समय तक शत्रुसे लड़ते, जब तक वे यह समझते कि शत्रु तैयार हो रहा है। शत्रुके तैयार होते ही वे सफलतापूर्वक निकल जाते थे। इस तरह जब वे शत्रुको परेशान कर लेते, तब उनका निर्णायक हमला पूरी शक्तिके साथ होता और उसमें वे सफल भी होते।

मुलाकात करनेके लिए गये हुए शिवाजीको जब औरङ्गजेबने कैद कर लिया, तब वे जिस तरह फलोंकी टोकरीमें छिपकर भाग निकले, उससे उनकी सूझ और बुद्धिकी प्रशंसा कौन नहीं करेगा। इससे स्पष्ट ही उन्होंने मुगल साम्राज्यके नायकोंसे अपनेको श्रेष्ठ साबित किया और इस घटनाके बाद छत्रपति शिवाजी कभी मुगलोंके हाथ नहीं आये और मुगलोंकी सेनापर आक्रमण करनेका कोई अवसर उन्होंने नहीं खोया। शिवाजी अचानक आक्रमण कर शत्रुको चकित कर देने और उसकी इस अवस्थासे लाभ उठा लेनेमें तो पटु थे ही, आक्रमण करनेके किसी अवसरको भी वे हाथसे नहीं जाने देते थे, और साथ ही गति और प्रगतिके सिद्धान्तका पालन करनेमें पूरी तत्परता दिखलाते थे। शत्रु जब कल्पना भी नहीं कर सकता कि शिवाजीकी सेना पासमें हो सकती है, तब अचानक उनका आक्रमण हो जाता और वे अपना उद्देश्य पूरा कर मारते-काटते निकल जाते। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि उस समय महाराष्ट्रमें मुगलोंके विरुद्ध पारस्परिक सहयोगकी भावना चरम सीमापर पहुंची हुई थी।

छत्रपति शिवाजीकी इस युद्ध-नीतिकी सफलताकी दृष्टिसे, अनुचित न होगा, यदि मुगल साम्राज्यके अन्तिम दिनोंकी युद्ध-नीतिपर दृष्टिपात कर लिया जाय। मराठा साम्राज्यके संस्थापक छत्रपति शिवाजी चौड़ेमें शत्रुका मुकाबिला करनेके पक्षमें नहीं थे, अपने समयमें उन्हें इसकी उतनी जरूरत भी नहीं थी; परन्तु शिवाजीके बाद जब मराठा साम्राज्यका विस्तार हुआ, मराठा सेना-नायकोंने उस नीतिको छोड़ दिया। उन्होंने उस नीतिको तो छोड़ दिया, परन्तु अपनी युद्ध-प्रणालीमें आवश्यक सुधार नहीं किया, और इसीके फलसे हम देखते हैं कि पानीपतके मैदानमें उन्हें कोई सम्भावना नहीं रहनेपर भी बुरी तरह हारना पड़ा। पानीपतमें मराठा सेना-नायकोंने सुरक्षा रखने और शक्तिको कमसे कम लगानेके सिद्धान्तोंकी अवहेलना की थी और इसका परिणाम उन्हें हाथों-हाथ मिला। अंगरेजोंके साथ युद्ध होनेके समय मराठोंकी अवस्था बिलकुल खोखली हो चुकी थी। सहयोगकी भावनाको, जो शिवाजीके समयमें इतनी प्रबल थी, वे खो चुके थे और मराठोंकी बैभव-वृद्धि अचानक आक्रमण कर शत्रुको चकित कर देने और आक्रमणके किसी भी अवसरको हाथसे नहीं जाने देनेकी जिस युद्ध-नीतिके आधारपर हुई थी, उसे भी वे छोड़ चुके थे और शत्रुसे श्रेष्ठ होनेके सिद्धान्तका महत्त्व भी भुला दिया था।

ब्रिटिश सरकारके प्रधान मन्त्री मि० चर्चिलने वर्तमान युद्धके सम्बन्धमें पिछले दिनों एक बार कहा था कि "यद्यपि यह युद्ध वास्तवमें गत महासमरका एक सिलसिला है, तथापि दोनोंकी प्रणालियोंमें बड़ा अन्तर है और अन्तर स्पष्ट ही है। गत महासमरमें लाखों सैनिकोंने भाग लिया और उन्होंने एक-दूसरेपर हजारों मन लोहेकी वर्षा की। उस समय युद्धके लिए दो चीजोंकी आवश्यकता थी—गोला और सिपाही; और गोलों और सिपाहियोंके उस युद्धका परिणाम होता

था भयङ्कर नर-संहार। वर्तमान युद्धमें अभी तक वैसी कोई बात सामने नहीं आयी है। यह सहयोग, यन्त्रों, मशीनों, विज्ञान और साहसके रण-कौशलका युद्ध है।" मि० चर्चिलके इस कथनमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं है। यन्त्रोंके इस युगमें यद्यपि लड़ाईका तरीका पहलेसे बिलकुल ही बदल गया है, तथापि उसमें विजयी होनेके लिए रण-कौशलके आधारभूत कुछ सिद्धान्तोंकी जितनी आवश्यकता पहले थी, आजकल भी उतनी ही है। आज भी दूरदर्शी राजनीतिज्ञ और युद्ध-कलाविज्ञ यह मानते हैं कि विजयी राष्ट्रको केवल आत्मरक्षाके सिद्धान्तसे ही काम नहीं लेना चाहिए, उसे शत्रुपर आक्रमण भी करना चाहिए और यह आक्रमण करनेमें गति और प्रगतिके सिद्धान्तसे काम लेकर शत्रुको संभलने और सावधान होनेका अवसर नहीं देना चाहिए। सुरक्षा और सहयोगके सिद्धान्त युद्धमें विजयी होनेकी दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं; परन्तु इनके कारण अन्य सिद्धान्तोंका महत्त्व कम नहीं हो जाता। अपने प्रतिद्वन्द्वीकी ताकत और कमजोरियोंकी पूरी जानकारी रखकर जब उपयुक्त सूझके साथ रण-कौशलका परिचय दिया जाता है, तभी विजय होती है।

विगत युद्धोंकी ज्वालामें धन-जनकी आहुति

श्री चन्द्रकिशोर मालवीय

गत महायुद्धका उत्तराधिकारी यूरोपमें अपना ताण्डव-नृत्य फिर करने लगा है। आजके युद्धकी लपकका हमें भी अनुभव हो रहा है—और हो रहा है कि अभी कुछ वर्ष पहले महायुद्धका प्रादुर्भाव जब हो चुका था, तो आज फिर क्यों 'युद्धंदेहि' का शब्द संसारके वायुमण्डलको उद्वेलित कर रहा है? पहली सितम्बरसे आज तक जितने राष्ट्रोंका अस्तित्व पराजयके अन्धकारमें खो गया है, उनके न जाने कितने सिपाही अपना बलिदान करके भी अपनी-अपनी मातृ-भूमिको गुलामीसे न बचा सके, उनकी न जाने कितनी पत्नियां अपनेको विधवा होनेसे न बचा सकीं।

पिछले महायुद्धमें यदि कई राज्योंका बंटवारा हुआ, तो कई नये राज्योंका प्रादुर्भाव भी हुआ। यदि जर्मनी और टर्कीके माथे ही सबसे अधिक गयी, तो जेकोस्लोवेकिया, हंगरी, आस्ट्रिया आदिके अस्तित्व पिछले महायुद्धकी निशानी थे; पर आज सार, जेकोस्लोवेकिया, पोलैण्ड, इस्टोनिया, लटविया, लिथुआनिया, नारवे, हालैण्ड, बेलजियम, लक्सेम-बर्ग और फ्रान्स वर्तमान युद्धकी आहुतिमें अब तक भस्म हो चुके हैं—हां, उनकी राख अभी बाकी रह गयी है। एक दिन विजयीके विजयोल्लाससे वह राख भी उड़ जायगी। तब लगेगा कि अब सब एकाकार हो गया है।

वर्तमान युद्ध दुनियाकी संस्कृति, आर्थिक स्थापत्य तथा मनुष्योंका जिस प्रकार अहर्निश नाश कर रहा है, उसे जाननेको भी शायद अब लोगोंको फुरसत नहीं है। कोई भी नहीं जानता कि आजकी लड़ाईके कारण किस राष्ट्रपर कितना खर्च पड़ रहा है। मगर जिसे मालूम है, वह भी इस बातको दृढ़तापूर्वक नहीं कह सकता कि उसे जो कुछ भी मालूम है, वह बिलकुल ही सत्य है। आज सुना जाता है कि इंगलैण्ड ६,०००,००० पौण्ड (लगभग ९ करोड़ रुपये) प्रतिदिन युद्धके लिए खर्च कर रहा है। और कितने आदमी मरे तथा अब कितने मरने जा रहे हैं, इसकी भी ठीक-ठीक संख्या किसीको नहीं मालूम। पिछले सौ वर्षोंमें जितनी भी लड़ाइयां हुईं, कोई-न-कोई नयापन उसमें अवश्य था। कभी युद्धोंमें खपाखप तलवारें चलती थीं, कभी धांय-धांय करके गोलियां चलती थीं, फिर तो मशीनगनें, जङ्गी जहाज, पनडुब्बियां और हवाई जहाज काममें लाये जाने लगे और अबकी बार टैङ्कों तथा पैराशूट-सैनिकोंसे काम लिया गया है—गैस अभी बाकी है। संसारकी आधुनिक तीन लड़ाइयोंमेंसे इटली-अबसीनिबा-युद्ध तथा स्पेनिश गृह-युद्ध तो खत्म हो चुके—पर किसके पक्षमें; चीन-जापान युद्ध अभी भी हो रहा है—पर हावी कौन है? नेपोलियन और हिटलरकी विजयमें भी अन्तर है। नेपोलियनके युद्धोंसे जितना नुकसान संसारका, विशेषतया

यूरोपका हुआ था, उससे कहीं अधिक इस युद्धमें अब तक हो चुका है, अन्तर केवल यही है कि नेपोलियनको सफलता जरा देरमें मिली थी और हिटलरको जल्दी मिलती है। और दूसरी बात यह है कि नेपोलियनके युद्धोंमें जितने आदमी मरे थे और जितना धन नष्ट हुआ था, उससे कहीं अधिक इस युद्धमें हो चुका है। नेपोलियनके कारण फ्रान्सके २०,००,००० सिपाही मरे थे और २,२०,००,००० सिपाही घायल हुए थे। जिन नव युद्धोंमें नेपोलियन सेनापति रहा था, उसके साथ १,९०,९,००० सिपाही लड़े थे, जिनमेंसे ३,८६,००० तो काम आये तथा ९,००,००० आहत हुए थे। इंगलैण्ड और फ्रान्सकी पिछली सामुद्रिक लड़ाइयोंमें भी ९०,००० अंगरेज सिपाही मारे गये थे और लगभग १,००,००० सैनिक घायल हुए थे। फ्रान्सके २,९०,००० सिपाही मारे गये थे और ४,००,००० घायल हुए थे। इन युद्धोंमें इंगलेण्डने २९९,०००,००० पौण्ड (लगभग ३,८२,९०,००,००० रु०) तथा फ्रान्स ने ८३१,०००,००० पौण्ड (लगभग १२,४६,९०,००,००० रु०) खर्च किये थे।

क्रीमियन युद्धमें इंगलैण्ड, फ्रान्स तथा रूसके मारे गये सैनिकोंकी कुल संख्या ४,८०,००० थी। अंगरेजी सेनाका चौथाई भाग इंगलैण्डको रूसकी बर्फीली भूमिमें छोड़ देना पड़ा था। इस लड़ाईमें उक्त तीनों राष्ट्रोंके कुल ३१३,०००,००० पौण्ड (लगभग ४७,१९,९०,००,००० रु०) खर्च हुए थे, जिसमेंसे ब्रिटेनके ७८,०००,००० पौण्ड (याने ११७०,०००,००० रु०), फ्रान्सके १२,०००,००० (याने १,३४,९०,००,००० रु०) और रूसके १४२०००००० पौण्ड (याने २,१३,००,००,००० रु०) खर्च हुए थे।

अमेरिका जब इंगलैण्डसे मुक्त होनेके लिए लड़ा था, उसके कुल ६,००,००० सिपाही मारे गये थे और १२१,०००,००० पौण्ड (लगभग १,८१,९०,००,००० रु०) खर्च हुए थे। इस युद्धमें प्रति सप्ताह १६,००,००० पौण्ड (लगभग २,४०,००-००० रु०) का औसत खर्च पड़ा था। फ्रान्स और जर्मनीकी पिछली कुल सात हफ्तोंकी लड़ाईमें ३,७१,७०० सिपाही मरे थे और फ्रान्सको ३१६,०००,००० पौण्ड (लगभग २,४०,००,००० रु०) हरजाना देना पड़ा था।

भारतीय युद्ध—भारतीय युद्धोंमें भी काफी जानें गयी हैं, काफी खर्च हुआ है और काफी लूटमार भी हुई है। सिकन्दर और पञ्चनद (पञ्जाब) नरेश महावीर पुरुमें हिदास्पद नामक स्थानमें जो ऐतिहासिक युद्ध हुआ था, उसमें पुरुके ३४००० सिपाहियोंमेंसे २१००० सिपाही भारतीय स्वतन्त्रताके लिए युद्ध-भूमिमें ही कट गये थे और सिकन्दरके केवल १००० सिपाही ही काम आये थे, ऐसा यूनानी इतिहास बताता है। भारतीय इतिहासज्ञ इस बारेमें चुप हैं। मगर उक्त आंकड़े सङ्गत नहीं हैं, ऐसा कहना भी गलत न होगा।

कलिङ्गके प्रसिद्ध युद्धमें महाराजा अशोकने कलिङ्ग (उड़ीसा) नरेशके १००००० योद्धाओंकी जानें ली थीं और १,५०,००० सिपाहियोंको कैदी बनाया था।

भारतीय इतिहासके और आगेके पन्नोंको उलटिये। पानीपतकी तीनों लड़ाइयोंमें जितने भारतीय सिपाही मारे गये, उतने कभी भी, किसी युद्धमें भी, नहीं मारे गये। पहली लड़ाई बाबर तथा इब्राहीम लोदीमें हुई थी। इस लड़ाईमें बाबरके २२००० तथा इब्राहीम लोदीके १,५८,००० सिपाहियोंने भाग लिया था। आधे दिनकी लड़ाईमें ही १५००० सिपाही कट गये थे, जिनमेंसे दिल्लीका बादशाह इब्राहीम लोदी भी एक था। पानीपतकी दूसरी लड़ाई बाबर और राणा सांगामें हुई थी और जितने क्षत्रिय कट गये थे, जितने मुसलमान कट गये थे, उनकी संख्या भारतीय इतिहासमें बड़ी मजबूतीसे अङ्कित है। इस युद्धमें लगभग ३,५०,००० सिपाही काम आये थे। पानीपतकी तीसरी लड़ाई मरहठा सरदार स्वनामधन्य सदाशिव राव भाऊ तथा अफगानी बादशाह अहमद शाह अब्दालीमें हुई थी। इस युद्धमें लगभग ५ लाख सैनिक काम आये थे। भारतीय स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए ३,००,००० मरहठे युद्ध-प्राङ्गणमें उतर आये थे, जिनमेंसे २,००,००० मरहठोंने युद्ध-क्षेत्रमें ही अपनी बलि दे दी थी।

यूरोपीय युद्ध—१८७७ के रूस-टर्की युद्धमें दोनों तरफके २,००,००० सिपाही मारे गये थे। प्लेव्नाकी लड़ाईमें एक दिनके अन्दर ही १८००० रूसी सिपाही मारे गये थे। रूस-जापान युद्धमें भी काफी सैनिकोंने भाग लिया था। लिआउ-याङ्गके युद्धमें २०००० रूसी तथा १८००० जापानी सैनिक मारे गये थे। 'शाह-हो' की लड़ाईमें जापानके १६००० तथा रूसके ६०००० सिपाही मारे गये थे। मुकदनके

युद्धमें १०,००,००० सिपाहियोंने भाग लिया था, जिनमें १,००,००० काम आये थे।

यूरोपीय महायुद्ध—संसारकी सबसे भयङ्कर लड़ाई १९१४-१८ में हुई थी। इस युद्धमें जितने आदमी मारे गये, दुनियाके इतिहासमें कभी भी इतनी जानें किसी भी युद्धमें नहीं गयीं। महाभारतकी बात जाने दीजिये। वैसी लड़ाईकी तो अब कल्पना ही नहीं की जा सकती। गत महायुद्धमें रणचण्डीने जिस प्रकार अपनी बीभत्स प्यास बुझायी थी, वह दुनियाके इतिहासमें अद्वितीय है। गत महायुद्धमें प्रजाकी गाढ़ी कमाईसे जमा किये गये रुपयोंको इस बेरहमीके साथ बहाया गया था कि मालूम होता था, मानो यूरोपीय सभ्यताका दिवाला निकल रहा हो। महायुद्धके पिछले ३ महीनोंमें १६,१६,००० सिपाही मारे गये थे, जिनमेंसे ८,५४,००० फ्रान्सके, ६,७७,००० जर्मनीके तथा ८५००० इंगलैण्डके सिपाही थे। फ्रान्सके ८,५४,००० सिपाहियोंमेंसे ३,३०,००० सिपाही तो आठ ही दिनके अन्दर काम आये थे।

गत महायुद्धमें कुल ८०,९३,८४८ सिपाही मारे गये तथा १,८९,६७,३४१ सिपाही घायल हुए थे। उक्त ८०,९३,८४८ मारे गये सिपाहियोंमेंसे—

जर्मनीके	२०००१९६	सिपाही थे।
फ्रान्सके	१३०१९६७	,, ,,
रूसके	१९०००००	,, ,,
आस्ट्रिया-हंगरीके	१२०००००	,, ,,
ब्रिटेन तथा ब्रिटिश-साम्राज्यके	११०४८९०	,, ,,
इटलीके	१०११३९०	,, ,,
अमेरिकाके	१३०७८९	,, ,,
तथा अन्य देशोंके	५०००००	,, ,,

और घायलोंकी कुल संख्या १८९६७३४१ थी, जिसमेंसे—

४९५००००	सिपाही	रूसके थे।
४४५०१२२	,,	जर्मनीके थे
३६०००००	,,	आस्ट्रिया-हंगरीके थे
३०१०९६५	,,	फ्रान्सके थे
१४००९८८	,,	ब्रिटेन तथा उसके साम्राज्यके थे
४०००००	,,	अमेरिकाके थे तथा
६०००००	,,	अन्य देशोंके थे।

बाकी ११९९२६६ सिपाही लापता हो गये, जिनमेंसे—

रूसके	४३९८२७	सिपाही थे
जर्मनीके	२८१००२	,, ,,
आस्ट्रिया-हंगरीके	२७९९१९	,, ,,
फ्रान्सके	१००८२३	,, ,,
तथा ब्रिटेनके	९३७०२	,, ,,

इस महायुद्धमें जितना रुपया खर्च हुआ, वह इतना अधिक है कि लिखते हुए स्वयं मुझे ही आश्चर्य हो रहा है। थोड़े ही समयमें इतना अधिक धन इन लड़ाकू राष्ट्रों द्वारा खर्च कर दिया गया था। नीचे लिखे आंकड़ोंमें आप देखेंगे कि किन-किन राष्ट्रोंका एक दिनका औसत खर्च कितना था :—

देश	रुपये
जर्मनी	७५००००००
फ्रान्स	६६१३५०००
ब्रिटेन	१०५००००००
कुल	२४६१३५०००

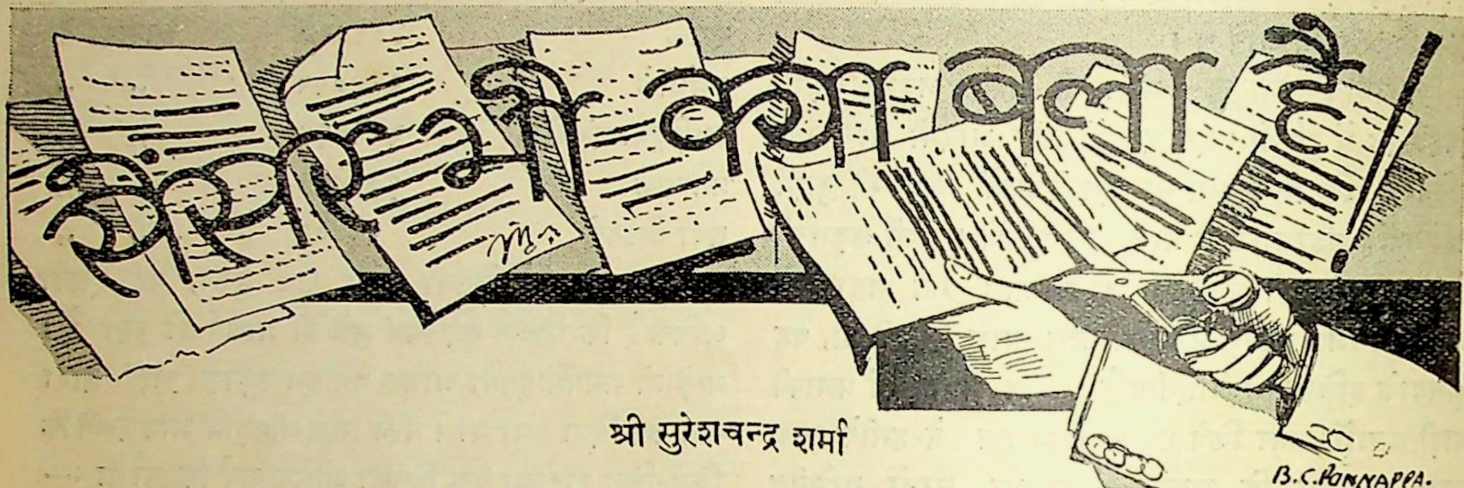
युद्धमें भाग लेनेवाले राष्ट्रोंका कुल खर्च क्या था, वह आपको नीचेकी तालिकासे ज्ञात होगा :—

देश	रुपये
ब्रिटेन	२०३६७००००००००
अमेरिका	१२१९७५०००००००
फ्रान्स	११९४३००००००००
जर्मनी	१९५११५०००००००
आस्ट्रिया-हंगरी	६१०२०००००००
कुल	६६०८१०००००००

खर्चमें सबसे पहला नम्बर ब्रिटेनका था, जिसमेंसे भारतका भी ६८७०००००० पौण्ड (लगभग १०३०५०००-००० रु०) शामिल है।

जब विगत युद्धोंकी ज्वालामें धन एवं जनकी इतनी अधिक आहुति दी गयी, तो वर्तमान युद्धमें अब तक कितने आदमी कट गये होंगे, कितने अभी कटनेको बाकी होंगे और कितना धन खर्च हुआ और होगा, इसका अन्दाजा लगानेके लिए गणित-शास्त्रकी ऊंचीसे ऊंची संख्या काममें लायी जायगी, ऐसा कहना शायद अत्युक्ति न होगा।

———



श्री सुरेशचन्द्र शर्मा

युद्ध-क्षेत्रसे कोई सैनिक—आपका कोई स्वजन-सम्बन्धी आपके नाम जो पत्र भेजता है, उनमें आपको कभी-कभी कुछ लाइनें कटी हुई मिलती होंगी। ये लाइनें स्याहीसे इतनी भद्दी तरह काटी जाती हैं कि आप किसी तरह भी यह नहीं जान सकते कि वहां क्या लिखा गया था। आप अगर जानते न हों, तो आपको अपने स्वजन सैनिकपर क्रोध भी आ सकता है कि क्यों पहले कोई एक बात पत्रमें लिखी और क्यों फिर उसे काट दिया। आपका यह क्रोध अपने किसी सम्बन्धीपर व्यर्थ ही है; क्योंकि पत्रको लिखकर उस तरह काटनेवाला आपका वह स्वजन-सम्बन्धी सैनिक नहीं, सेन्सर है, जिसकी जानकारी बहुत कम लोगोंको होती है।

सेन्सर क्या बला है और वह अपना काम किस तरह करता है, यह जाननेसे पहले समझ लेना चाहिए कि वर्तमान युद्ध-प्रणालीके लिए सेन्सर अनिवार्यतः आवश्यक है। उसके बिना काम ही नहीं चल सकता।

किसी सैनिकके जो चाहे, वही लिखकर भेज देनेसे क्या हानि हो सकती है? इसी तरह आप जो चाहें, वही लिखकर यदि किसी सैनिक या अन्य व्यक्तिके पास भेज दें और उसे देखा न जाय, तो इसमें क्या बिगाड़ हो सकता है? किसी अखबारकी कापी लेकर उसे किसी तटस्थ देशको भेजनेसे आपको रोकना क्यों आवश्यक है? यूरोपके किसी देशको अपना माल भेजनेके समय कोई व्यापारी पैकिङ्गमें पुराने अखबार क्यों नहीं लगा सकता? बड़े-बड़े व्यापारी फर्मोंकी विदेशी डाकको देख लेना क्यों आवश्यक है? इस तरहके प्रश्न प्रायः उठाये जाते हैं। यह स्वाभाविक ही है। इस बातको बहुत कम लोग जानते हैं कि पत्रमें लिखी हुई किस बातका क्या परिणाम हो सकता है और उससे अपने पक्षको कितनी हानि पहुंच सकती है—शत्रु-पक्ष कितना लाभ उठा सकता है।

सेन्सरके दो मुख्य कार्य हैं—शत्रुके पास उसके कामकी कोई बात न पहुंचने देना और अपने लिए लाभकर बातोंको बीचमें ही उड़ा लेना। यह हो सकता है कि इस तरहकी बातें स्पष्ट भाषामें लिखी गयी हों या उनका सङ्केत किया गया हो। यह भी सम्भव है कि लेखकने सङ्केत-लिपिका या गुप्त स्याहीका उपयोग किया हो।

सङ्केत-लिपि और गुप्त स्याहीमें आश्चर्यकी बात कुछ भी नहीं है। किसीको जब कोई ऐसी बात कहनी होती है जिसे वह दूसरोंसे छिपाना चाहता है, तब वह इस तरहके उपायोंसे काम लेता है। सेन्सरका काम एक दिन नहीं चल सकता, यदि वह सभी तरहकी चिट्ठियों और अन्य कागजोंके पढ़नेका पूरा प्रबन्ध न रखे।

सेन्सर दो तरहका है। एक तो वही है, जो समाचारपत्रों और उनमें छपनेवाले समाचारोंपर दृष्टि रखता है, यह देखता है कि समाचारपत्रोंमें ऐसी कोई बात बिना जाने न छप जाय कि उससे शत्रु-देशको सहायता मिले या जो किसी दृष्टिसे उस देशकी वर्तमान सत्ताके स्वार्थोंके लिए हानिकर हो। समाचारपत्रोंसे किसी रूपमें जिनका सम्बन्ध है, वे इस सेन्सरसे परिचित हैं और इसके तरीकोंको न्यूनाधिक जानते हैं। इसका परोक्ष प्रभाव तो सारे ही देशपर पड़ता है; परन्तु

प्रत्यक्ष प्रभाव समाचार भेजनेवाली कुछ एजेन्सियों और दस-पांच हज़ार पत्रकारों तक ही सीमित रहता है ।

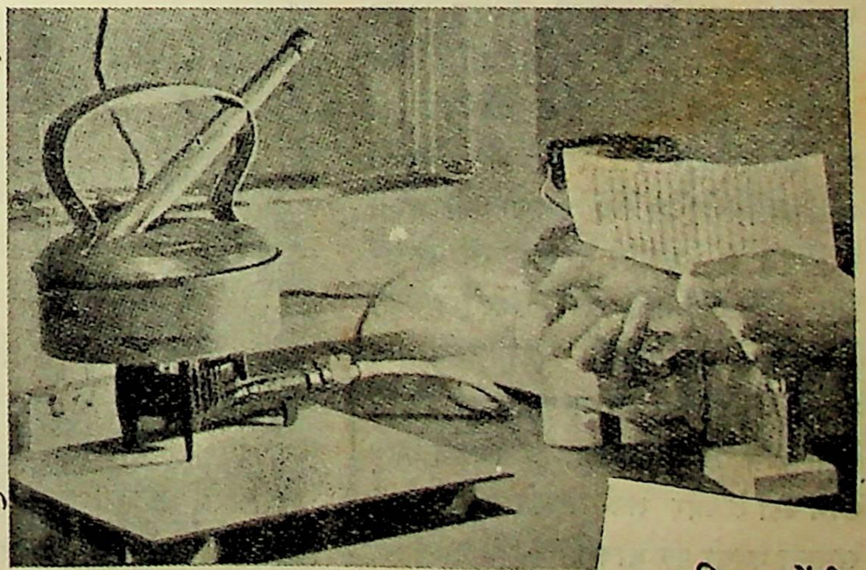


युद्धक्षेत्रमें सैनिकोंके पत्रोंकी जांच की जा रही है ।

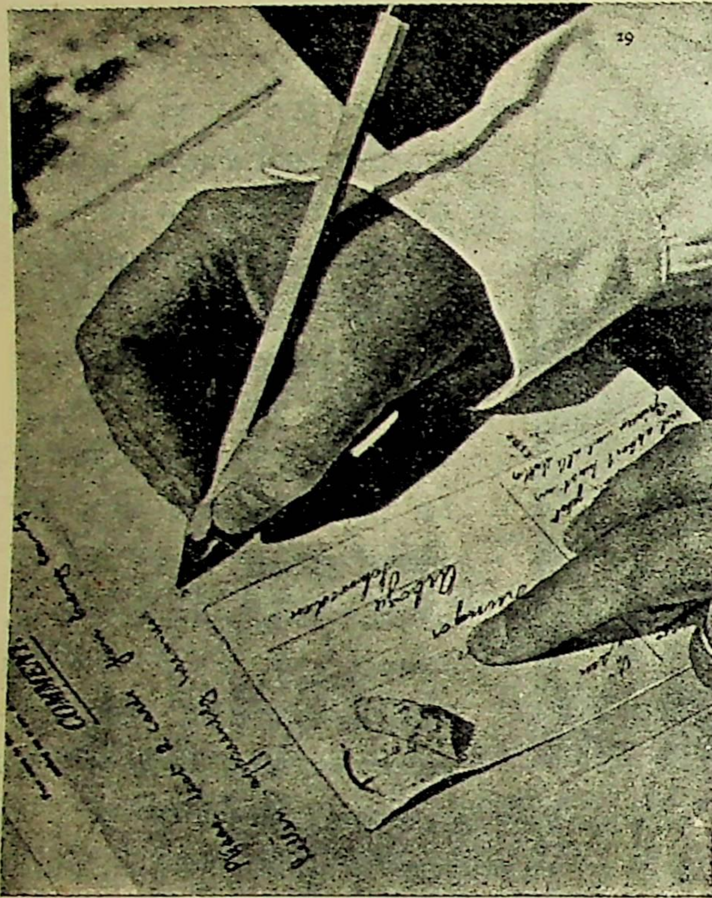
युद्धकालमें इसका कार्य बहुत ज्यादा बढ़ जाता है और इसी अनुपातमें यह सङ्गठन भी बहुत बड़ा हो जाता है। इसका कुछ अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि युद्ध आरम्भ होनेसे पहले ब्रिटेनमें सैनिक सेन्सरका भार जहां केवल दो फौजी अफसरों, दो क्लर्कों और कुछ अवैतनिक कर्मचारियोंपर था, वहां युद्ध आरम्भ होनेपर रातों-रात जादूकी तरह ३०५० व्यक्तियोंका एक बड़ा विभाग कार्य करता हुआ दिखलाई पड़ने लगा। युद्धारम्भसे पूर्व जो लोग अवैतनिक कार्य करते थे, सेन्सरका काम सीखते थे, उनमें अवसर-प्राप्त अफसर ही नहीं, सर्वसाधारण नागरिक भी थे और एक निश्चित योजनाके अनुसार कार्य हो रहा था। कई महीने पूर्व इस व्यवस्थाकी परीक्षा भी ली गयी थी, इसीलिए इधर जब हिटलरने बटन दबाया, उधर सेन्सरने अपना कार्य चालू कर दिया।

किन्तु दूसरी तरहका सेन्सर एक सैनिक सङ्गठन है, जो बहुत बड़ा है। इस सेन्सरके सम्पर्कमें सर्वसाधारण जनता सीधे रूपमें आती है, जनतासे इस सेन्सरका प्रत्यक्ष सम्पर्क रहता है। इसकी बदौलत जासूसोंको, शत्रुके फायदेके लिए जासूसी करनेवालोंको पकड़नेमें बड़ी सहायता मिलती है। जो लोग स्वयं नहीं जानते कि वे जो कुछ लिख रहे हैं, उसका क्या अर्थ है, उन्हें कोई रहस्यकी बात प्रकट कर देनेसे रोकना भी इसी सेन्सरका काम है। इसी तरह जो लोग यह नहीं सोच सकते कि शत्रु-देशके किसी व्यक्तिके साथ किसी तटस्थ देशके द्वारा कारबार करनेमें क्या जोखिम है, उन्हें वैसी कोशिश न करने देना भी इसी सेन्सरका कार्य है और जब वर्तमान युद्ध-प्रणालीमें आर्थिक युद्धका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है, तब उसके सम्बन्धमें अधिकसे अधिक जानकारी प्राप्त करना और उसकी शृङ्खला तैयार करना भी बहुत ही आवश्यक हो गया है। सैनिक सेन्सर यह सब कार्य करता है। यह सैनिक सेन्सर साधारण: दिनोंमें भी सभी देशोंमें होता है ; परन्तु

सेन्सर विभागमें पुरुष ही नहीं, स्त्रियां भी काम करती



सन्दिग्ध पत्रोंकी रासायनिक प्रक्रियासे परीक्षा की जा रही है कि कहीं इनमें गुप्त स्याहीसे कुछ लिखा तो नहीं गया है।

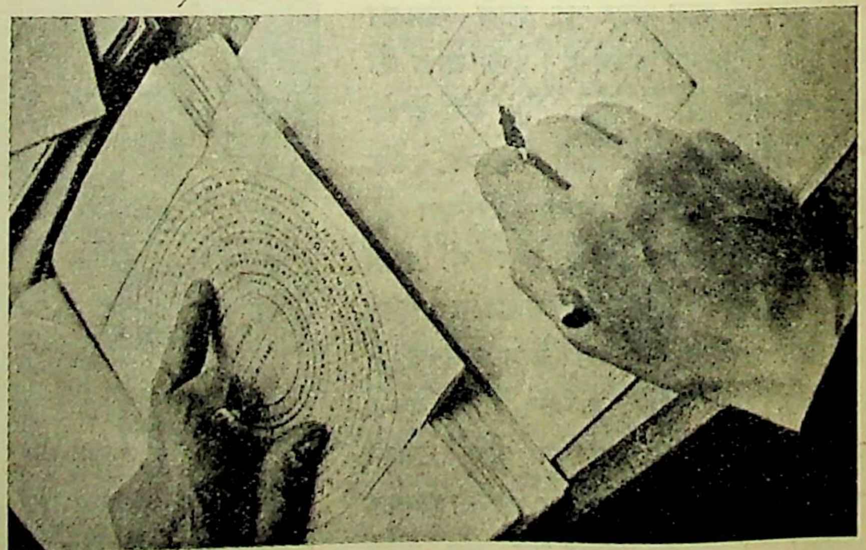


सेन्सरने देखा कि पत्रपर लगाये गये टिकटके नीचे पेन्सिलसे कुछ लिखा है और तत्काल इसकी जांच आरम्भ हो गयी।

हैं। सभी कर्मचारियोंमें शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता तो होनी ही चाहिए, उनमें विवेक और विवेकसे काम लेनेकी शक्ति भी होनी चाहिए। फिर, कुछ खास विशेषताओंकी भी आवश्यकता है। किसी भी विषयमें समुचित निर्णय करनेकी क्षमता भी होनी चाहिए। यह क्षमता न हो, तो सेन्सर विभागका कोई भी कर्मचारी बिलकुल व्यर्थ है, उससे कोई लाभ नहीं; यही नहीं, वह भयावह भी है; क्योंकि गलतीसे वह किसी ऐसी बातको छोड़ सकता है, जिससे शत्रु लाभ उठा ले और अपने पक्षको कठिनाईका सामना करना पड़ जाय।

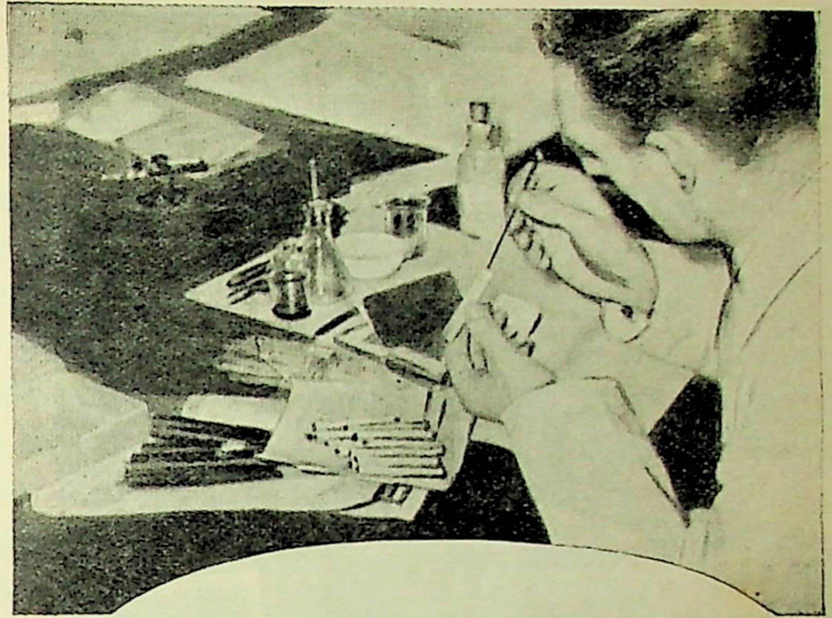
ब्रिटेनके डाक विभागके सेन्सरका हेड क्वार्टर लिवरपुलमें है। ब्रिटेनसे जितनी चिट्ठियां, पारसल और पैकट बाहर जाते हैं, सब पहले सेन्सरकी निगाहसे गुजरते हैं। सेन्सरके हेड क्वार्टरमें डाकके सैकड़ों थैले रोज पहुंचते हैं। उन थैलोंको खोलकर प्रत्येक चिट्ठी, पारसल और पैकटको अच्छी तरह देखा जाता है। चिट्ठियोंमें जो अंश आपत्तिजनक समझा जाता है, उसपर स्याही फेर दी जाती है, जिससे वह पढ़ा नहीं जा सकता। इसी तरह युद्ध-क्षेत्रमें जो सैनिक सेन्सर होता है, वह भी सैनिकों द्वारा भेजी हुई चिट्ठियोंको पहले खोलकर पढ़ता है और अगर उनमेंसे किसीमें कोई ऐसी बात लिखी होती है जिसका प्रकट होना सैनिक दृष्टिसे ठीक न हो, तो उसे काट दिया जाता है। सेन्सरको अगर किसी चिट्ठीके विषयमें सन्देह हो कि उसमें किसी गुप्त स्याहीसे कोई बात लिखी गयी है, तो भाप और रासायनिक द्रव्योंकी सहायतासे उस चिट्ठीको पढ़नेका प्रयत्न किया जाता है। क्योंकि यह सम्भव है कि यों देखनेसे जो मामूली चिट्ठी मालूम होती है, उसकी लिखावटकी पंक्तियोंके बीच गुप्त स्याहीसे कोई बात लिखी गयी हो। इस कार्यके लिए सेन्सर बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंको रखता है।

फिर, यह भी तो हो सकता है कि बिना समझे हुए ही पत्रमें कोई ऐसी बात लिख दी जाय, जिसे नहीं लिखना चाहिए। उदाहरणके लिए मौसमका हाल है। यों



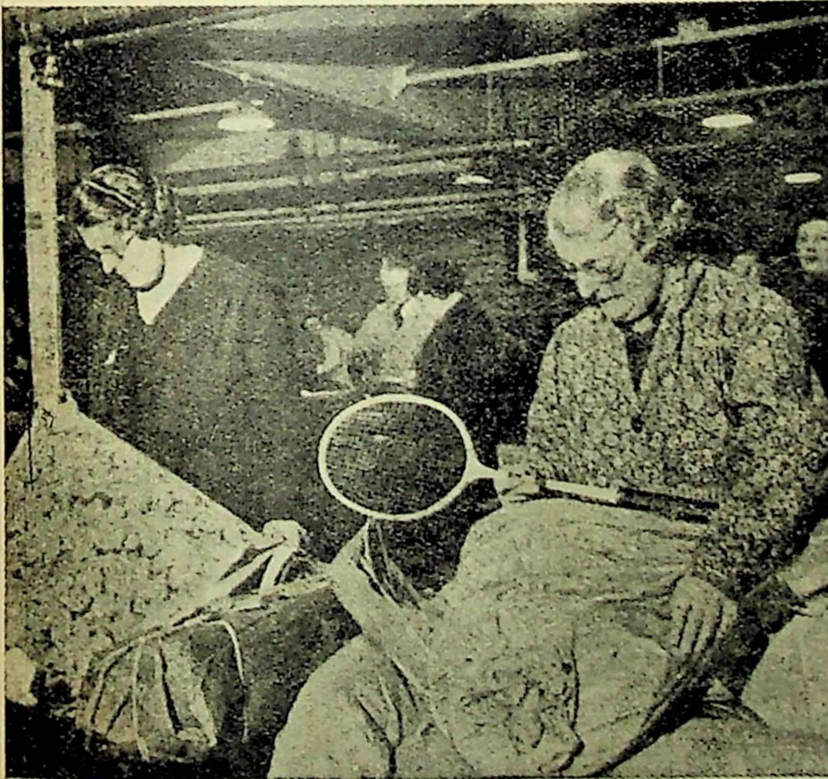
गुप्त रूपसे लिखे गये इस सन्देशको क्रिप्टोग्राफकी सहायतासे पढ़ा जा रहा है।

यह मामूली बात है; परन्तु विशेष परिस्थिति-में मौसम सम्बन्धी जानकारी हवाई जहाजों-की सैनिक कार्यवाहीमें सहायता पहुंचा सकती है और सेन्सर उसे काटे बिना नहीं रह सकता। सेन्सरके सामने ऐसी चिट्ठियां भी पहुंचती हैं, जो यों देखनेमें तो साधारण चिट्ठीसे ज्यादा कुछ नहीं मालूम होतीं; परन्तु उनमें सङ्केत छिपा रहता है। सेन्सर विभाग अपने यहां इस विषयके विशेषज्ञोंको रखता है और वे इन सङ्केतोंका पता लगाते हैं। इसी तरह अन्य भाषाओंमें लिखी हुई चिट्ठियां भी पहुंचती हैं और सेन्सर आफिसमें अन्य भाषाओंके जो जानकार रहते हैं, वे इन चिट्ठियोंका अनुवाद कर देखते हैं कि उनमें क्या लिखा हुआ है।

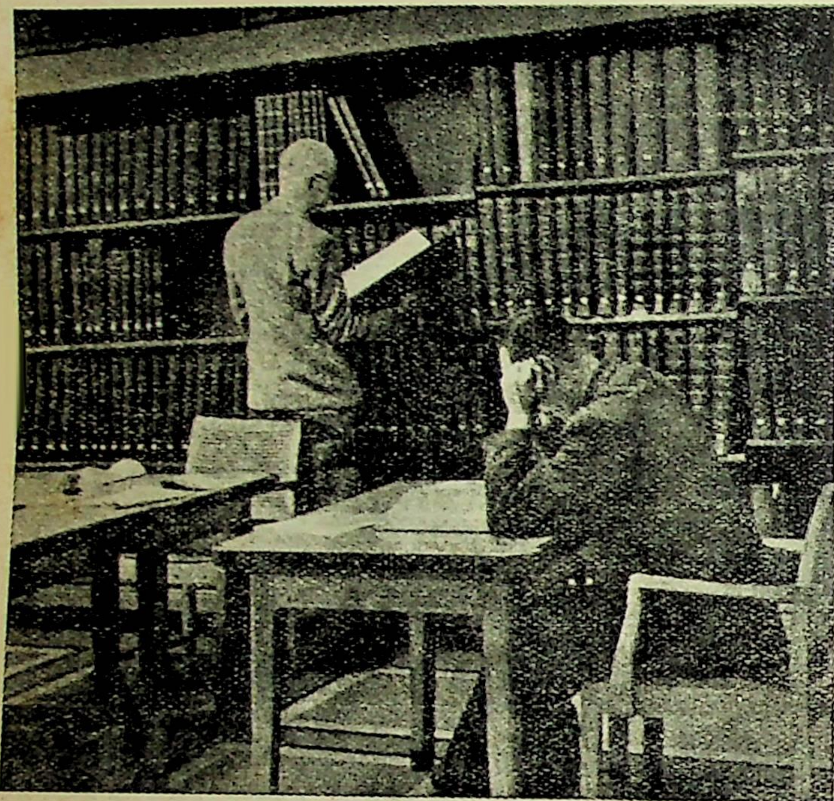


सिगरेटके भीतर तो कोई सन्देश नहीं ?

इस सम्बन्धमें कुछ विस्तारके साथ लिखना रोचक होगा। एक फर्मने किसी अन्य देशके अपने एजेण्टको लिखा कि अमुक वस्तुका बाजार अचानक ऊंचा हो गया। अन्य व्यापारी भी अपने-अपने एजेण्टों-को इसी तरहकी सूचनायें लिख सकते हैं। इन सब सूचनाओंको एकत्र कर एक सिलसिला बैठानेसे सेन्सर आर्थिक युद्ध-विभागके मन्त्रीको यह बतला सकेगा कि शत्रु-देशको युद्ध चलानेके लिए आवश्यक चीजें कहांसे और कैसे मिल रही हैं। युद्ध आरम्भ होने और सेन्सर कायम होनेके दस सप्ताहके अन्दर सेन्सरकी बदौलत जो जानकारी हुई, उससे आर्थिक युद्ध-विभागको लगभग ६० लाख पौण्डका शत्रु-देशका माल प्राप्त करनेमें सहायता मिली। सेन्सर विभागमें जो विशेषज्ञ और रासायनिक काम करते हैं, वे अपनी कलामें इतने कुशल हैं कि उनकी निगाह चूक ही नहीं सकती। उनके पास ऐसे नुस्खे और तरकीबें हैं कि गुप्त स्याहीसे लिखे हुए किसी भी कागजको वे पढ़ सकते हैं। पतलेसे पतले कागजको वे वैज्ञानिक साधनोंके द्वारा बीचसे चीर सकते हैं। कितने ही लोग डाकके टिकटके



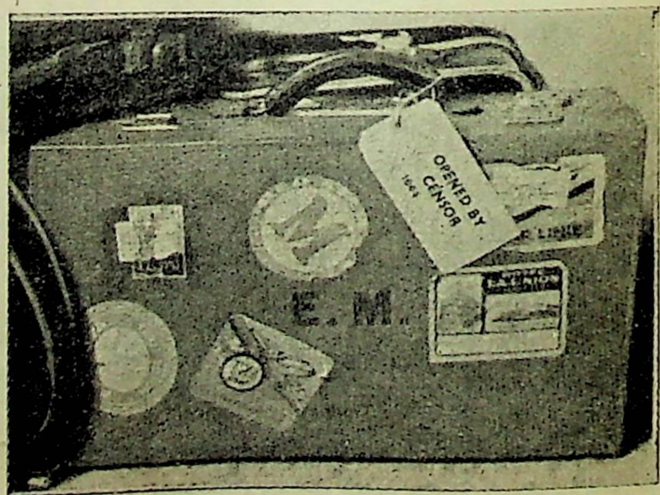
युद्ध-कालमें खेलनेके रैकेट तथा दीवालपर लगाये जानेवाले कागजोंकी भी परीक्षा होती है कि कहीं उनकी बिनावट अथवा बनावटमें कोई सन्देश तो गुप्त रूपसे नहीं अङ्कित कर दिया गया है।



सेन्सर विभागकी लाइब्रेरी। इसमें अनेक प्रसिद्ध भाषाओंके कोडों एवं कोष-ग्रन्थोंका संग्रह है, जिससे विभिन्न भाषाओंमें लिखे गये पत्रोंको पढ़ने और समझनेमें सहायता मिलती है।

नीचे पेन्सिलसे कुछ लिख सकते हैं। सेन्सर उन टिकटोंके नीचे भी जांच लेता है। गणितके अच्छे जानकार तो सेन्सर विभागमें होते ही हैं, अक्षरों और अङ्कोंके नक्शों और यन्त्रोंको मिलाते रहकर और बार-बार हिसाब लगाकर वे सङ्केत-लिपिका गुरु निकाल ही लेते हैं। इस सिलसिलेमें प्रयत्न करते-करते वे कभी नहीं थकते। किसी चिट्ठीमें अगर कहीं ऐसे निशान पाये जायें, जिनसे सेन्सरको सन्देह हो जाय, तो वह आतशी कांचके नीचे आये बिना नहीं रह सकती। इसी तरह जब कभी कोई गुप्त लिखावट मिल जाती है, उसकी जांचका कार्य समाप्त हो जाने तक उसे बीचमें ही नहीं छोड़ा जा सकता और उसमें अक्सर घण्टे लग जाते हैं। सेन्सर जिस चिट्ठी या कागजका अपने यहां रेकार्ड रखना चाहता है, उसका चित्र भी ले लेता है। कोड शब्दोंमें लिखी हुई चिट्ठियां कोषके सहारे पढ़ ली जाती हैं। संसारमें ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसकी अच्छी जानकारी करानेवाली कोई किताब सेन्सर विभागमें न हो। कभी कोई विचित्र लिखावटका पत्र जब सामने आ जाता है, तब इन किताबोंसे काम लिया जाता है। उस पत्रको पढ़ने और उसका अनुवाद करनेमें उन पत्रोंसे सहायता मिलती है; परन्तु सेन्सरको इससे भी अधिक जटिल अवस्थाका सामना करना पड़ जाता है जब किसी पत्रके साथ या उससे अलग कोई साङ्केतिक वस्तु होती है, जैसे फूल, पत्ता आदि। सेन्सर इन सब वस्तुओंका अभिप्राय समझनेमें बड़ा कुशल होता है।

सेन्सरके सामने यह समस्या केवल चिट्ठियोंके रूपमें ही नहीं होती, पारसलों और पैकटोंकी भी अच्छी तरह छानबीन करनी पड़ती है। यह हो सकता है कि कोई जासूस किसी सिगरेटके भीतर कागज रखकर सेना सम्बन्धी कोई रहस्य प्रकट कर देनेका प्रयत्न करे। सेन्सर सिगरेटोंको भी जांच किये बिना बाहर नहीं जाने देता। एक बार एक सूटकेस पकड़ा गया। खोलनेपर, अच्छी तरह जांच करनेपर उसमें एक विदेशीके व्यक्तिगत कागज-पत्र पाये गये। अखबारोंके पैकटोंमें रखी हुई कितनी ही चिट्ठियां पकड़ी जाती हैं। इन चिट्ठियोंमें चाहे कोई खास बात न भी हो; परन्तु सेन्सर उस अखबारको रोक ही लेगा। अखबार या मासिक पत्रके साथ लपेटकर



एक सैनिकके सूटकेसकी तलाशी सेन्सर द्वारा ली गयी है।

चिट्ठियां भेजना वर्जित है। एक व्यापारीने हैण्डबैगोंका एक पारसल किसी अन्य देशके लिए भेजा था। इन हैण्डबैगोंमें पुराने अखबारोंकी रद्दी भर दी गयी थी। सेन्सरको प्रत्येक कागज निकालकर देखना पड़ा और जब यह निश्चय हो गया कि उनमें कोई कोड-सङ्केत नहीं है, तब वह पारसल जहाजपर भेजा गया। सेन्सर केवल सङ्केतोंको पकड़ने या भेद प्रकट न होने देनेका ही प्रयत्न नहीं करता, वह ऐसे किसी देशके साथ व्यापार भी रोक देता है, जहांसे व्यापारकी वस्तु शत्रुके हाथ पड़ सकती हो। युद्धकालमें कोई भी चीज, जिसे किसी अन्य देशको भेजा जाता है, सन्देहका शिकार हो जाती है। यह हो सकता है कि दीवालोंपर चिपकानेके कागजमें भी कोई खास सङ्केत हो और उसे वैसे बेल-बूटों द्वारा व्यक्त किया गया हो। कोई उपयोगी सन्देश बाहर भेजनेके लिए गेंद खेलनेके बल्बों तकका उपयोग किया जा सकता है। यही नहीं, पारसलोंको जिस डोरीसे बांधा जाता है, वह भी भयावह हो सकती है; क्योंकि उसे कागजसे बनाया जा सकता है और उसमें कागज छिपाया भी जा सकता है।

इस विवरणसे सेन्सरके कामकी कुछ कठिनाइयोंका अनुमान किया जा सकता है। जहां लाखसे अधिक चिट्ठियां और हजारों पैकट और पारसल तथा दूसरी चीजें रोज पहुंचती हों, वहांके कर्मचारियोंके कार्यभारका क्या कहना। सभी युद्धलग्न देश अपने यहां सेन्सर बैठाते हैं; परन्तु क्या प्रत्येक वस्तुपर, प्रत्येक पुस्तक या समाचारपत्रपर पूरा सेन्सर लगाया जा सकता है? यदि यह सम्भव हो, तो भी वैसा होता होगा मूर्खतापूर्ण ही; क्योंकि यदि उसके लिए कोशिश की जाय, तो सारा निर्यात व्यापार ही चौपट हो जाय। इसीलिए इस बार ब्रिटेनमें 'अनुमति-प्रणाली' प्रचलित की गयी है। कोई व्यक्ति यह नहीं कर सकता कि कोई समाचारपत्र बाजारसे खरीदे और उसे किसी ऐसे देशको भेज दे, जिसकी डाकपर सेन्सर बैठा हुआ है। फिर भी यह आवश्यक है कि ब्रिटिश पत्रोंमें ब्रिटेनका जो दृष्टिकोण प्रकाशित होता है, उसकी जानकारी तटस्थ देशोंको, बाहरी दुनियाको रहे और वैसी ही रहे, जैसी शान्तिकालमें रहती थी। इसीलिए यह नवीन प्रणाली जारी की गयी है। सेन्सर विभागके अधिकारियोंने विश्वस्त पत्रोंको 'अनुमति' दे दी है और ये पत्र अपनी प्रतियां बाहर भेज सकते हैं और कोई भी व्यक्ति इन समाचारपत्रोंके आफिसोंमें नाम लिखाकर अभीष्ट व्यक्तिके पास पत्र भिजवा सकता है।

जो व्यवस्था समाचारपत्रोंके सम्बन्धमें है, वही व्यापारकी चीजों और नमूनोंके सम्बन्धमें भी है। यह व्यवस्था भी अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि मोजेके एक जोड़ेसे शत्रुको बहुत बातोंकी जानकारी हो सकती है। गत महासमरमें एक जासूस पकड़ा गया था, जो इसी तरहके उपायोंसे काम लेता था। उसने जिन मोजोंका पारसल बाहर भेजनेकी कोशिश की थी, उनका भेद खुलनेपर यह मालूम हुआ कि उन्हें इस तरहसे बुना गया था कि उनसे एक खास सङ्केत प्रकट होता था।

———



धर्मने लाखों मन रक्त बहाया है !

श्री यादवजी मारू

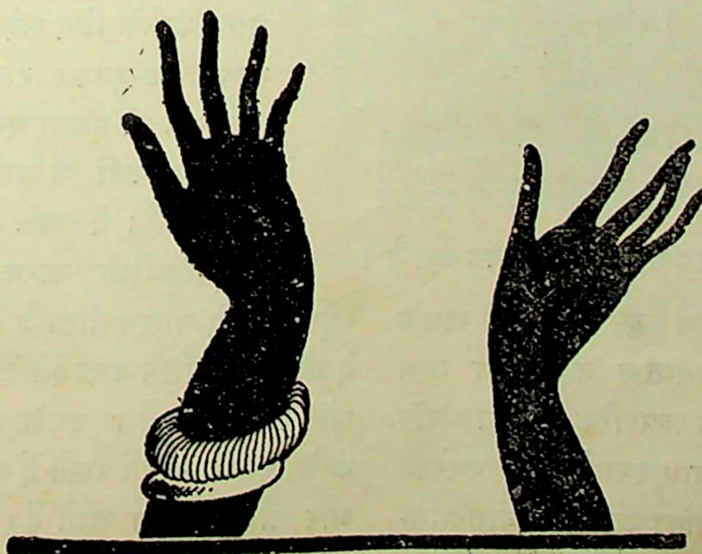
वर्तमान कालमें भी पहलेके समान ही 'धर्म' शब्द कई अनर्थोंका कारण हो रहा है। प्रत्येक धर्मके प्रवर्तककी एक ही इच्छा थी कि वह जो धर्म चलाना चाहता है, वह सब मानवोंको पारस्परिक प्रेमकी ऐसी सांकलसे बांध देगा कि वे कभी एक-दूसरेसे जुदा न हो सकेंगे; परन्तु आज हम देखते हैं कि उन महान् आत्माओंकी सब आशाओंपर पानी फिरा जा रहा है। जिधर दृष्टि डालिये, उधर यही देखनेको मिल रहा है कि मनुष्य अब एक बार फिर पशुताकी पूर्णताको प्राप्त करके डार्विनके सिद्धान्तको प्रत्यक्ष रूपसे सिद्ध करनेपर ही तुला बैठा है। पूर्वमें जापान मनमाना नर-संहार करके चीनकी स्वतन्त्रताको कुचलकर ही दम लेना चाहता है। इतना करते हुए भी खूबी यह है कि वह अपनेको बौद्ध धर्मका अनुयायी कहता है। पश्चिममें इटलीको देखिये। इसी देशमें ईसाई धर्मका सबसे बड़ा गुरु पोप रहता है और यह देश प्राचीन समयसे ही ईसाई धर्मका बड़ा हिमायती रहता आया है। वही इटली बिना किसी खास कारण अबसीनियापर आक्रमण कर बैठा और हजारों मनुष्योंका रक्तपान कर उसपर विजय पायी। आज भी वह अपने उसी बेहया तरीकेपर चल रहा है और लोकसत्ताको हमेशाके लिए दफना देनेकी पूरी-पूरी कोशिश कर रहा है। सारा यूरोप आज उसी ईसाई धर्मका माननेवाला है, जिसके प्रवर्तकका यह कहना था कि यदि कोई व्यक्ति तुम्हारे एक गालपर तमाचा मारकर दूसरेपर भी मारनेकी इच्छा रखता हो, तो बिना दिलमें मैल लाये अपना दूसरा गाल भी उसके सामने कर दो। पर आज यूरोपीय राष्ट्र एक-दूसरेका गला काटनेपर तुले बैठे हैं। काश, आज महात्मा बुद्ध और प्रभु ईसा मसीह अपने इन अनुयायियोंका जुल्म देखनेको होते !

जो बात राष्ट्रके लिए है, वही बात व्यक्तियोंपर भी लागू हो रही है। हम देखते हैं, एक व्यापारी सवेरे दो घण्टे भगवानका पूजन बड़े ठाठबाटके साथ करता है; परन्तु उसके बाद जब वह अपने व्यवसायमें लगता है, तो फिर दिनभर उसे सत्य बोलनेका मौका शायद ही मिलता हो। उसी प्रकार हिन्दू स्त्रियां समय-समयपर पोथी-पुराण सुनती हुई देखी जाती हैं; परन्तु पोथी शुरू होनेके पहले और समाप्त होनेके बाद प्रायः हम उन्हें अन्य स्त्रियोंकी निन्दा ही करते पाते हैं। उसी प्रकार हमारे समाजमें वर्षमें कई ऐसे अवसर आते हैं, जब हमें धर्मकी (सत्य, अहिंसा, अनासक्ति, आचरण) उत्तम शिक्षा सुननेका मौका मिलता है; परन्तु उस शिक्षाका असर केवल सुनते तक ही रहता है, उसके बाद हमारे जीवनसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता। मनुष्यमें एक और खूबी है। वह समाजमें अपनेको कुछ और बताता है और उसका व्यक्तिगत जीवन उससे बिलकुल भिन्न रहता है। कहनेका अर्थ यह है कि मनुष्य जिस धर्मको मानता है, उसकी आज्ञाओंका उसके जीवनसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। हमारे सामाजिक जीवनकी यह भण्डता हमारे नैतिक पतनका कारण बन रही है।

यदि हम पुराना इतिहास देखें, तो हमें धर्मपर कुर्बान हो जानेवाले कई व्यक्तियोंके उदाहरण मिलेंगे। अपने धर्मके लिए लोग जीते जल गये और बच्चे दीवारोंमें चुन दिये गये। फिर आज ऐसा क्या हो गया है कि मनुष्य इतना धर्म-विमुख होकर ईश्वरको छोड़कर शैतानका सामीप्य पसन्द कर रहा है—सत्को छोड़कर असत्का सङ्गी होना चाहता है। मेरी समझमें तो इसका एक ही कारण है कि मनुष्य दिनपर दिन अधिकाधिक जड़वादी होता जा रहा है। इसके कारण उसका ईश्वरसे विश्वास ही उठता जा रहा है। वह अपनेसे बड़ी शक्तिका होना कबूल ही नहीं करता। फिर भी यदि आप उसे नास्तिक कहें, तो वह आपके कथनका तुरन्त प्रतिकार करेगा। आप यदि उसे अधर्मी कहें, तो वह आपपर हमला ही कर देगा। इसका कारण क्या है ? वह नहीं चाहता कि कोई उसका सच्चा रूप दुनियाको दिखानेकी कोशिश करे। वह चाहता है कि दुनिया बिना हां, ना किये उसकी और जिसे वह अपना धर्म बतलाता है, उसकी कद्र करे। बस यही भावना है, जो आज कई अनर्थोंका कारण है। उनका धर्मसे कोई सम्बन्ध न होते हुए

भी वे सब धर्मके नामपर ही किये जाते हैं। हमारे देशमें आये दिन जो साम्प्रदायिक दङ्गे होते हैं, उनके भीतर भी यही भावना निहित रहती है। यह बहुत बुरी बात है और इसका अन्त होना ही चाहिए। इसलिए नहीं कि हमें स्वाधीनता मिल जायगी; परन्तु इसलिए कि जिससे हम खुदको पहचान सकें और पहचानकर फिर अपने बनानेवालेकी मंशा पूरी कर सकें।

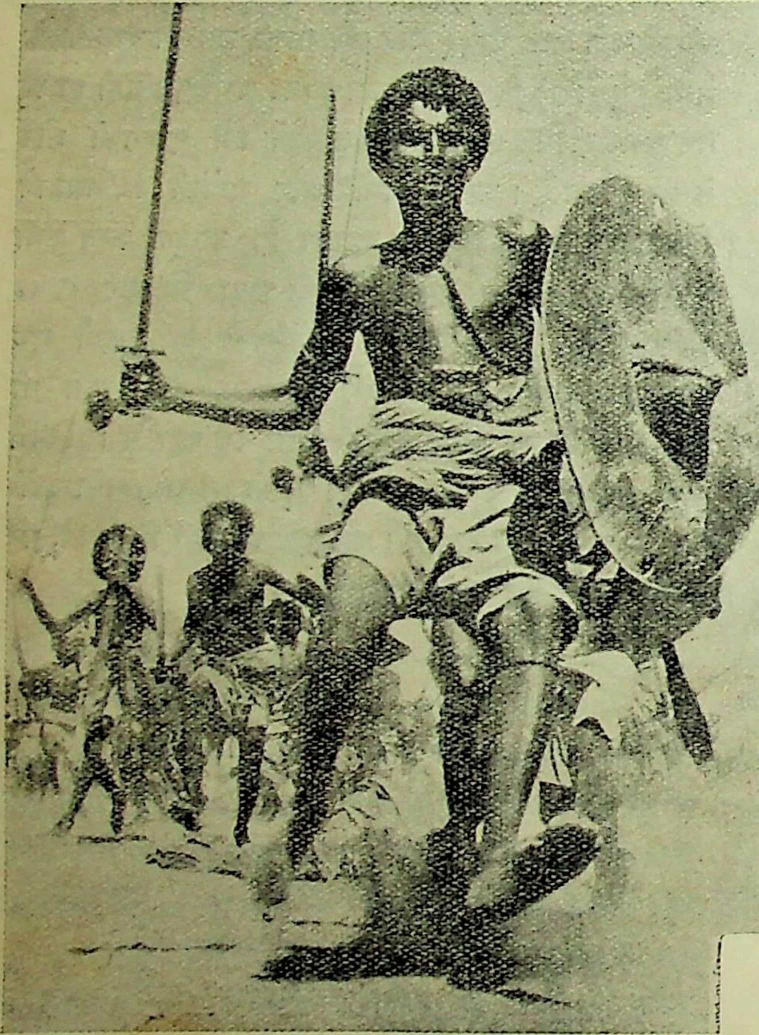
परन्तु यह कैसे सम्भव हो सकता है ? उसका हल एक प्रकारसे सम्भव है। यदि हम भिन्न-भिन्न धर्मोंको देखें और उनकी गहराईमें उतरें, तो हमें सब धर्मोंकी मूल बातें एक ही मालूम होंगी। जब वस्तुस्थिति ऐसी हो, तब विशेष कोई कठिनाई नहीं रह जाती। यदि धर्मकी व्यर्थ बातोंको लेकर उसके कई दीवाने बनाये जा सकते हैं, तो मूल बातोंका प्रचार करनेके लिए कुछ लोग तो मिल ही सकते हैं। यदि २० वर्षोंमें गांधीवादके माननेवाले इतने बढ़ सकते हैं, तो इस नये धर्मको ग्रहण करनेवाले तो उससे कहीं अधिक मिल जायेंगे। हां, शर्त एक है। जो प्रचारक बनें, उन्हें सर्वथा निर्दोष होना चाहिए। उनका काम बोलकर उपदेश देना नहीं, परन्तु उसके अनुसार जीवन बिताकर उपदेश करना होगा। सत्य, अहिंसा, न्याय आदिके लिए हंसते-हंसते जान तक दे देना होगा। यदि कोई इसमें शङ्का करता हो, तो वह सेवाग्रामके सन्तको देखे। उसने अकेले ही आज अहिंसाके कितने सिपाही पैदा कर दिये हैं ? उसके प्रयोगकी आंशिक सफलता भी ऐसी है कि आज देश-विदेशके कई लोग उसे आजमाना चाहते हैं; परन्तु अपने कमजोर हृदयकी ओर देखकर फिर ढीले पड़ जाते हैं। परन्तु उनकी यह अवस्था अधिक समय तक रह नहीं सकती। इस अकारण भयके परदेको हटाकर जो सत है, उसको एक दिन देखना ही है। इसलिए हिम्मत बांधकर हमें सत्य धर्म (चाहे उसे मानव धर्म या राष्ट्र धर्मके नामसे पुकारो) के प्रचारमें लग जाना चाहिए। यही हमारे सब साम्प्रदायिक झगड़ोंका अन्त करके हमें एकताकी ओर ले जा सकता है। अन्यथा धर्मों और मतोंकी विभिन्नताने जिस प्रकार लाखों मन रक्त बहाया है, उसका अन्त कभी होनेका नहीं। हमारे पैगम्बरोंने हमें सदा मिलकर रहना सिखाया है। पर संसार-भरमें होनेवाले धर्म-युद्धोंने एक कड़ी लम्बी अवधि तक संसारमें अशान्ति फैला रखी थी और आज भी वह युद्ध एक दूसरे रूपमें चल रहा है। किसी समय धर्म-युद्धको लेकर युद्ध होते थे, तो आज मत-मतान्तरोंके कारण ऐसा हो रहा है। धर्म रक्तपात नहीं सिखाता, पर धर्मोंने लाखों मन रक्त बहाया है।



असभ्य जातियोंकी युद्ध-कला

श्री ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

आदिम युगके सम्बन्धमें लोगोंका कथन है कि मनुष्य पशुओंकी भांति निरे नङ्ग जङ्गलोंमें भटकते थे। उस समय उनके मनमें न तो कोई आकांक्षा थी और न कुछ। किन्तु



बिगुलकी आवाजपर सैनिक ढाल-तलवार लेकर चल पड़ा है।

ज्योंही उनके भीतर ज्ञानकी किरणें फूटीं, वे अपनी रक्षाके लिए चञ्चल हो उठे। परिणाम-स्वरूप मल्ल-युद्धका जन्म हुआ। लेकिन आगे चलकर केवल शारीरिक बल ही पर्याप्त नहीं समझा गया। समीपमें रहकर पुरुषार्थ प्रकट करनेकी भी कमी हुई अथवा ईर्ष्यालु भावोंका उदय और घात-प्रतिघातादि किसी भी प्रकारसे प्राणनाशकी वासना बढ़ी, तब शस्त्रास्त्रोंके सहारे विजय करनेका प्रयत्न होने लगा। उस समय वृक्ष, शाखा, पाषाण-खण्ड और हड्डी आदि प्रसिद्ध शस्त्र थे। किन्तु निर्वैर निवासकी न्यूनता और युद्धोद्धतोंकी वृद्धि होनेसे घातोपघातके उपयोगी शस्त्रोंकी और भी वृद्धि हुई। ऐसे अस्त्र-शस्त्रोंमें हल, मूसल और गदा गण्यमान थे। उनके पीछे लौह-युगमें खड्ग, चक्र और शूल आदिसे संहार होने लगा।

यहां पहुंचकर लोगोंके मनमें मृत्युके आतङ्कने घर किया, तब लोगोंने बच-बचकर दूर-दूरसे लड़नेकी कल्पना की और धनुषबाणका युद्ध आरम्भ हुआ। धनुषबाण और चक्र आदिसे दूरस्थ दशामें ही शत्रु-संख्या घटने लगी। किन्तु आज उन्हीं वृक्ष-शाखा, पाषाण, गदा, मूसल और धनुषबाणसे युद्ध करनेवाली सन्तानोंको देखकर आश्चर्यसे भर जाना पड़ता है। उनके दिमागमें नित्य नये-नये युद्धके विध्वंसक साधनोंकी कल्पनायें बन और बिगड़ रही हैं, ऐसी, जिनका ख्याल आते ही रोमाञ्च हो आता है।

न्यूगिनी द्वीपके मध्य भागमें घोर जङ्गल और पार्वत्य प्रदेशोंमें ऐसी कितनी ही असभ्य जातियोंका वास है, जो एक-दूसरेकी हत्या करने और नर-मांस भक्षण करनेके लिए सदा उद्यत रहती हैं। पड़ोसियोंके साथ मिल-जुलकर रहना तो ये जानते ही नहीं। धनुषबाण ही इनका एकमात्र सङ्गी और साधन है और जहां कहीं ये जाते हैं, धनुषबाण इनके साथमें ही रहते हैं। ये सबके सब योद्धा होते हैं। पराजित शत्रुओंको मारकर उनका मांस खानेमें इन्हें बहुत आनन्द मालूम होता है। शत्रु-दलके मरे हुए मनुष्यको ये प्रज्वलित अग्निमें डाल देते हैं और उसकी देहकी त्वचाको खींचकर फेंक देते हैं। इसके बाद उस देहको टुकड़े-टुकड़े करके, बांसके चोंगेमें रखते हैं और उस मांसको बड़ी तृप्ति और गौरवके साथ खाते हैं।

युद्ध-क्षेत्रमें योद्धा पुरुषोंका आहार लेकर स्त्रियां उनका अनु-

गमन करती हैं। पराजित होनेपर अपनी स्त्रियों-को शत्रु-दलके हाथमें समर्पित करके युद्ध-क्षेत्रसे भाग जानेमें इन्हें लज्जा नहीं मालूम होती। बेचारी स्त्रियां पुरुषोंके समान शीघ्रतापूर्वक भाग नहीं सकतीं इसलिए शत्रुके हाथमें पड़कर उनकी खाद्य-सामग्री बन जाती हैं।

युद्ध-क्षेत्रमें जानेके पूर्व ये अपने योद्धाओंके साथ एक विचित्र अनुष्ठान करते हैं। एक चौकोर वेदी बनाते हैं, जिसके बीचमें कई खम्भे गाड़े जाते हैं। खम्भोंमें नरमुण्ड लटकते रहते हैं। वेदीके चारों ओर भाला, बर्छा, लाठी और धनुषबाणसे लैस हो सब योद्धा बैठते हैं। बीचमें उनका पुरोहित रहता है, जिसे 'टापू' कहते हैं। यही इन योद्धाओंका कमाण्डर होता है। इस टापूके एक-एक शब्दपर उस प्रदेशके समस्त अधिवासियोंका जीवन-मरण निर्भर करता है। अनुष्ठान समाप्त होनेके बाद, सभी योद्धा बड़े हुङ्कारके साथ युद्ध-भूमिकी ओर प्रस्थान करते हैं।



दो असभ्य जातियोंके युद्धका एक दृश्य।

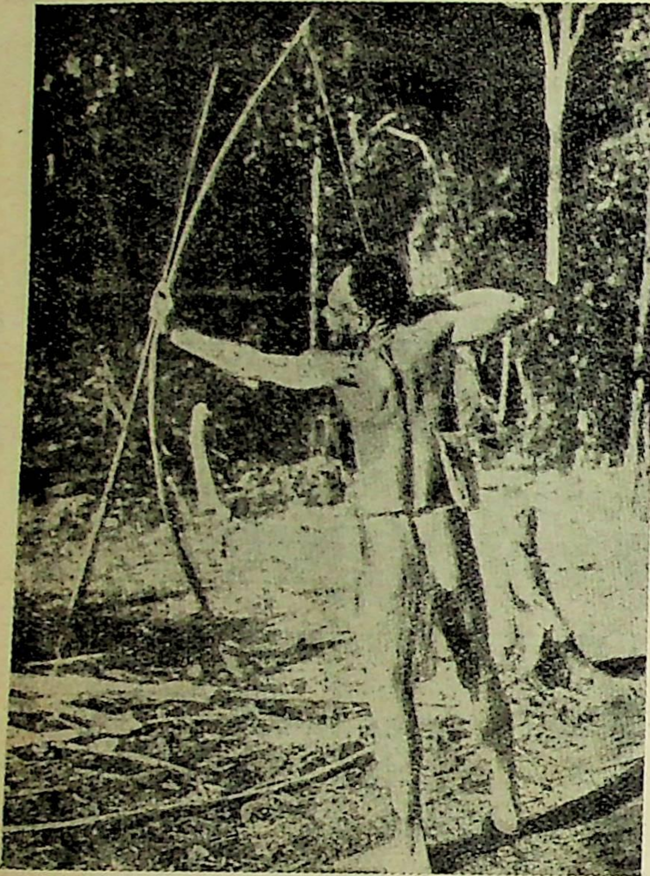
× × ×

बोर्नियोकी वन्य जातियोंके मुख्य हथियार तलवार, बर्छा और विष-बुझे हुए वाणोंसे युक्त एक प्रकारके चोगे होते हैं। चोगा और विषाक्त वाण बनानेकी प्रणाली बड़ी विचित्र होती है। चोगेके लिए कठोर लकड़ीके कुन्देका व्यवहार किया जाता है। १२ से १६ इञ्च तक मोटा और ६-७ फीट लकड़ीका एक कुन्दा जमीनसे लगभग १० फीटकी ऊंचाईपर किसी वृक्षमें लटका दिया जाता है। इसके नीचे वृक्षकी शाखाओंमें एक चबूतरा बनाया जाता है, जिस-पर जङ्गली लोग घुटने टेककर बैठते हैं, ताकि नीचेसे उस लकड़ीके कुन्देमें सूराख कर सकें। सूराख हो जानेपर उस कुन्देके अगल-बगलकी लकड़ी तलवार और भुजालीसे छांटते हैं और इस प्रकार छांटते-छांटते उसकी मोटाई १६ इञ्चसे कम होकर केवल दो इञ्च रह जाती है। इसके बाद वह चोगा तैयार हो जाता है।

विषाक्त वाणोंका तैयार किया जाना परिवारमें यत्न-पूर्वक गोपनीय रखा जाता है। परिवारके केवल पुरुष ही इसकी प्रक्रियाको जानते हैं। रातमें गांवके बाहर वाणको विषसे बुझाते हैं। इसके उपादान इस प्रकारके होते हैं, जिससे उसका असर जिस व्यक्तिपर प्रयोग किया जाता है, उसकी मांस-पेशियोंपर होता है, रक्तपर नहीं। वाण लगनेसे बहुत थोड़े समयके बाद ही हृदयकी मांस-पेशियां क्षीण होने लगती हैं और उस व्यक्तिकी मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार जङ्गली शिकारी सहज ही अपने शिकारको चट कर जाता है। प्रत्येक विषाक्त वाणको ताड़के मोटे पत्तेसे लपेटकर सावधानीके साथ रखते हैं, क्योंकि यद्यपि ये लोग वाणको विषाक्त करनेकी क्रियाके सम्बन्धमें बहुत कुछ जानते हैं; किन्तु अभी तक उन्हें इस विषके प्रभावके लिए कोई प्रतिकारात्मक वस्तु नहीं मिली है। इसलिए कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति स्वयं उस वाणसे अपने शरीरमें घाव कर लेता है और भयानक वेदनासे छटपटाकर मृत्युको प्राप्त होता है। बोर्नियो-के निवासी निशाना मारनेमें इतने पटु होते हैं कि चोगेको मुंहसे फूंककर उसमें रखी गोलीसे वे ४० गजकी दूरीपर बैठी हुई किसी छोटी चिड़ियाको मार सकते हैं।

× × ×

आस्ट्रेलियाके मूल निवासियोंका जीवन एक निराला जीवन है। शिकार ही इनके जीवनका एकमात्र साधन है। उनके अस्त्र-शस्त्र मुद्गल, बर्छी और कमरेंग लकड़ीके होते हैं। बर्छीकी नोकपर वे बड़ी मछलीके दांत या पशुकी पैनी



बोर्नियोका धनुर्धर ।

हड्डी लगा लेते हैं । इनका कमरेंग अस्त्र तलवारकी तरह तेज और धारदार होता है । कहते हैं कि वह इस प्रकार चलाया जाता है कि यदि निशाना चक जाय, तो आकाशमें वृत्ताकार घूमकर वह चलानेवालेके पास आ गिरता है । उनके इस प्रकारके अस्त्र-सञ्चालनसे पता चलता है कि उन्हें शस्त्र फेंकनेकी एक ऐसी ऊंची कला मालूम है, जिसे संसारकी सभ्य जातियां तक नहीं जानतीं । हम लोग अपने प्राचीन ग्रन्थोंमें पढ़ते हैं कि प्राचीन समयके योद्धा द्वन्द्व युद्धमें ऐसे ही अस्त्रोंका व्यवहार करते थे । अर्जुन और अश्वत्थामाका युद्ध प्रसिद्ध है । इसमें अश्वत्थामाकी हार इसीलिए हुई कि वह ब्रह्मास्त्रको शान्त करने तथा लौटानेकी शक्ति नहीं रखते थे ।

वे लोग अत्यन्त भयङ्कर लड़ाकू होते हैं । जानके भूखे और खूनके प्यासे । वे बराबर लड़ते रहते हैं । जब कभी उनके दो दलोंमें युद्ध छिड़ जाता है, तब दोनों दलोंके वीर पहले लाल, पीली और सफेद मिट्टीसे अपनेको ऐसा चित्रित करते हैं कि शत्रु-दल उनकी भयङ्करता देखकर भयभीत हो उठे । इसके बाद सबके सब अस्त्र-शस्त्र सञ्चालित करते हुए शत्रुके सामने नृत्य करते हैं और बीच-बीचमें कर्कश-ध्वनिसे रण-हुङ्कार भी करते जाते हैं । इन दोनों दलोंमें जिस दलके योद्धाका स्वरूप और नृत्य अधिक रोमाञ्चकारी और भयङ्कर होता है, उसीकी विजय समझी जाती है । इनके अधिकांश युद्धोंका निर्णय इसी पैमानेपर होता है । कभी-कभी अस्त्र-शस्त्र चलानेका भी मौका आता है ।

न केवल पुरुषों ही, वरन् स्त्रियोंको भी कभी-कभी खुले मैदानमें युद्ध करना पड़ता है । बात यह है कि आस्ट्रेलिया-की इन जातियोंमें स्त्रियोंकी अधिकता है, इसलिए एक पुरुष अनेक विवाह कर डालता है । ऐसी दशामें बहुधा स्त्रियोंमें सौतिया डाह होनेके कारण न केवल परस्पर वाद-विवाद ही होता है, वरन् खुले रूपसे द्वन्द्व-युद्ध भी होता है—जिसे सैकड़ों स्त्री-पुरुष देखते हैं । इस द्वन्द्व-युद्धमें जो स्त्री विजय प्राप्त करती है, वह आदर तथा सम्मानकी दृष्टिसे देखी जाती है और जो हारती है, वह अपने पति तथा समाजकी दृष्टिसे गिर जाती है ।

× × ×

मेलेनीशियाके निवासी भी बड़े युद्ध-प्रिय होते हैं । लड़ना-झगड़ना या मनुष्योंका खून करना इनके समाजमें रोटी खाने जैसी रोजमर्राकी साधारण बात है । इनके लड़कोंके जीवनका विकास भी बहुत कुछ इसी ढङ्गसे होता है । सयाने होनेपर मछली मारने, शिकार खेलने और लड़ाई करनेमें उनका समय व्यतीत होता है । लड़ाईसे सम्बन्ध रखते हुए खेल ही ये खेला करते हैं । ये इस खेलके समयमें भी जातियोंसे बंट जाते हैं । लड़ाईके वक्त कैद करनेका भी खेल करते हैं और कैदियोंको सुअरोंकी भांति टांगकर ले जाते हैं । कभी-कभी कैदीको कत्ल करने और उसका मांस खानेका भी खेल खेलते हैं ।

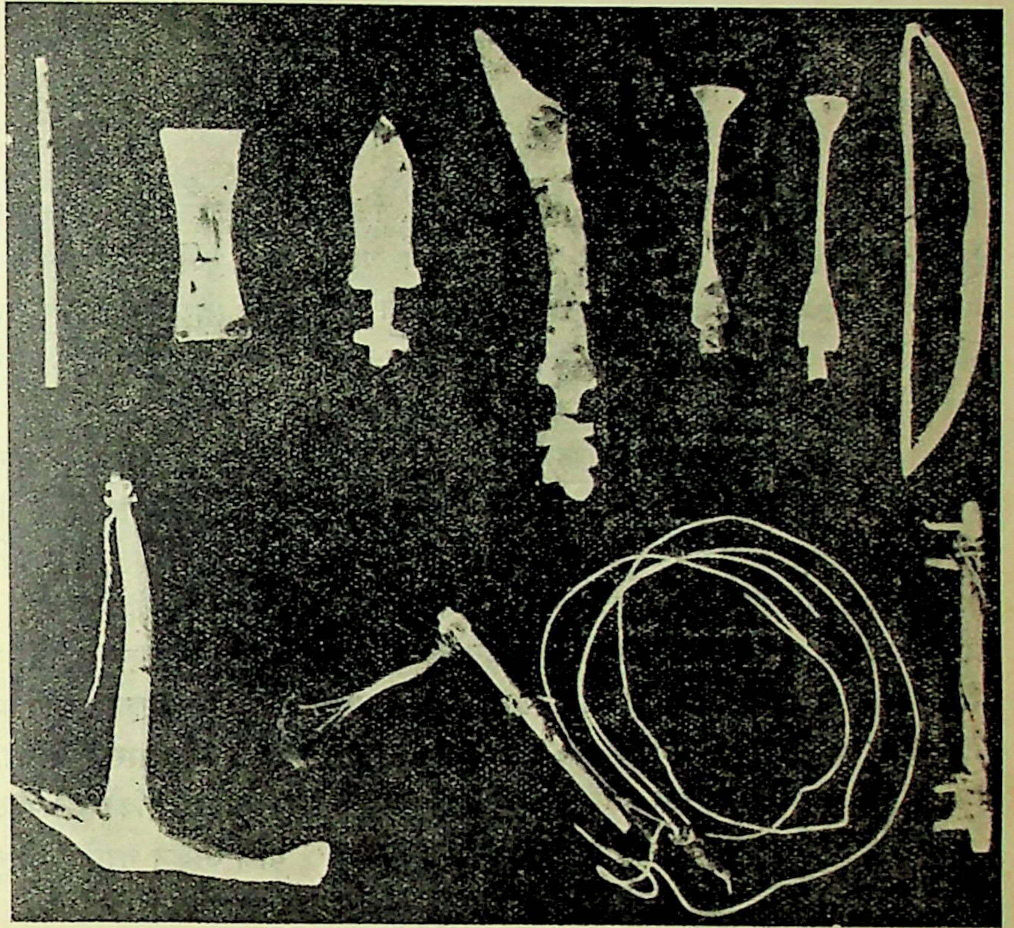
सयाने होनेपर इन्हीं खेलोंको सत्य-रूपमें परिणत करने लगते हैं और जीवनभर प्रकृतिके साथ संग्राम करते रहते हैं । इनके मुख्य हथियार भाला और तीर-कमान हैं ।

× × ×

न्यूजीलैण्डमें मावरी नामकी एक वन्य जाति है । मावरी लोग युद्धको सबसे उत्तम व्यवसाय समझते हैं । ये बड़े ही कठोर और रक्त-पिपासु होते हैं । अपने जिस शत्रुको ये

अधिक अपमानित करना चाहते हैं, उसे मारकर खा जाते हैं।

युद्धमें स्त्रियां पुरुषोंके साथ रहती हैं। वहां इनका मुख्य कार्य खाद्य पदार्थ तैयार करना और किलेकी रक्षा करना होता है। युद्धमें ये लोग जलते हुए पत्थर फेंककर, किलेमें आग लगानेकी चेष्टा करते हैं। जब किसी स्त्रीका पति या रिश्तेदार युद्धमें मारा जाता है, तो वह स्त्री शत्रुके कैदियोंमेंसे दो-चारको मारकर पतिका बदला लेती है। एक लेखकने एक ऐसी ही घटनाका वर्णन किया है, जिसमें एक स्त्रीने अपने मृत पतिके बदलेमें शत्रुके १६ कैदियोंको अपने हाथसे मारा था।



असभ्य जातियोंके कुछ शस्त्रास्त्र।

आसाममें नागा जातिमें मार-काट करनेकी भावना बेहद प्रबल होती है। कुछ लोगोंका तो कहना यहां तक है कि मार-काट और प्रतिशोधकी भावनाओंके कारण ही वे नरमुण्डके शिकारी होते हैं। इन्हें नर-हत्या करनेमें अमानुषिकता नहीं मालूम होती।

नागा लोग जिन अस्त्रोंसे मार-काट करते हैं, वे हैं तीर-कमान और भाले, यद्यपि दावका भी वे खूब प्रयोग करते हैं। दावका प्रचार उनमें खब हैं; पर धनुष-वाण उनका भीषण अस्त्र है। तीर उनके बड़े तीखे होते हैं। उन्हें वे विषसे बुझाकर तैयार करते हैं। वे विषबुझे तीर इतने तेज होते हैं कि लगते ही साङ्घातिक रूपसे घायल करते हैं। यह एक काला-काला गोंदकी तरह पदार्थ होता है।

असभ्य जातियोंकी युद्ध-प्रवृत्तिके ये थोड़े-से नमूने हैं। यह प्रवृत्ति प्रायः दुनियामें जितनी असभ्य जातियां हैं, सभीमें थोड़े-बहुत परिवर्तनके साथ मौजूद है। इन उदाहरणोंसे न केवल मनोरञ्जन ही होता है, वरन् हमें इस निष्कर्षपर पहुंचनेके लिए बाध्य भी होना पड़ता है कि मानव-प्रकृति हिंसात्मक होती है और युद्ध भौतिक जगत्का साधन है। महामनस्वी शीलरके शब्दोंमें संसारमें सदैव युद्ध होता आया है और सर्वदा ही इसका परिचलन रहेगा।



लाक्षणिक पुरुष

श्री 'पहाड़ी'

तो वह पुरुष था। आदमने जिस जातिके पिता होनेका गौरव पाया, वह उसी मानव जातिका पुत्र था। अपनी मांसे उसे एक झुंझलाहट मिली थी। वह कभी भी किसीको प्यार न कर सका। उसकी मांने बचपनमें बार-बार चाहा कि वह उसे प्यार कर ले। लेकिन बच्चेकी आंखें एक खूनीकी तरह तेज मिलतीं। वह घबड़ा जाती थी। सब लोगोंका एक ही मत था कि पतिके प्रति एकत्रित की हुई उपेक्षाको वह अपने बच्चेपर बरत रही है। इसकी सत्यता किस कसौटीपर परखी जाती, इसीलिए अनुमान-पर ही बात फैल गयी। और उसे भी वह मालूम हुई। फिर भी अधिक सावधान वह नहीं हुई। वह एकाकी रुख उसका जीवनमें था। अपनी गृहस्थीमें पति और पुत्रको वह समीप कभी नहीं गिन सकी। उसका नारी-विद्रोह अक्सर उस गृहस्थीके कच्चे निर्माणको मिटा देता था।

उसका पिता एक नामी डाकुओंके गिरोहका सरदार था। आसपास सैकड़ों मीलों तक उसकी धाक और अपनी एक हैसियत भी थी। डाका डालनेपर किसी अनजान गृहस्थी-की लड़की गांवमें उसके हाथ लग गयी। लूटपाटमें वह उस लुभावनी छोकरीको भी साथ ले आया। उसके प्रति उसके मनमें एक लोभ उठा। पहले भले ही उसे गृहस्थीका ख्याल नहीं था। अब अनायास एक तूफान उठा। जिस तरह कभी-कभी आदमी अपनेसे कई सवाल पूछकर कैफियत मांगता है, उसी इन्सानकी तरह सरदार भी नारी-भावु-कतामें बह गया।

उन डाकुओंका जीवन! रोज ही युद्धमें लगी हुई दिलेर जाति भी बुराइयोंसे अछूती नहीं है। जीवन-धारणाओंके भीतर, सामाजिक चरित्रकी ओर वे उदासीन रहा करते हैं। अपने आन्तरिक सुखके लिए वे शराब पीते हैं, जुआ खेलते हैं, नारियोंको साधारण शारीरिक खिलवाड़का हथियार भी गिन लेते हैं। व्यर्थ वे चरित्रको ऊपर उठाकर, समाजको धोखा नहीं देना चाहते हैं। सरदार भी इससे बरी नहीं था। युद्ध होता। गांव जीत लिया जाता। सब झोंपड़े जला दिये जाते। कसूरवार आदमियोंकी हत्या कर दी जाती थी। युवतियां आनन्द मनानेको चुन ली जातीं। उनका शरीर और सौन्दर्य कुचलकर सब एक क्रूर वीभत्स हंसी हंसते थे। नारी-कोमलता, एक शारीरिक क्षणिक सुखके सिवाय कुछ और नहीं है—इसकी सबको पूरी-पूरी जानकारी थी। सरदारका आतङ्क दूर-दूर तक फैला हुआ था।

लूटकी सारी सामग्री बटोर वे अपने गांव लौट आते थे। एक जल्सा होता। बकरियां मारी जातीं। शराबके दौर चलते। उनकी प्रेयसियां उनका साथ देतीं। अपनी-अपनी दास्तान हरएक खीसें निकाल-निकालकर सुनाता था। सरदार सब कुछ सुनता था। खुद वह हमेशा चुप ही रहनेका आदी था। सरदारने नारियां देखी थीं, उनका रूप भी पाया था। नारियोंको हर पहलूसे पहचान लेनेकी कोशिश भी की थी। लेकिन नारियोंकी बड़ी भारी भीड़मेंसे किसीसे भी खास परिचय उसका नहीं था। पशुबलसे नारीको अपनाना उसका काम था। उसके दिलमें कभी भी कोई सवाल नहीं उठा। नारी कोई अचरज पैदा करनेवाली वस्तु तो थी नहीं।

उस दिन भी उन लोगोंने एक गांव लूटा था। और जब सरदार अपनी मनचाही लड़कीको अपनाने पहुंचा, तो ठिठक गया। उस लड़कीकी आंखोंवाली कातरताने उसके हृदयको साधारण पुरुषकी तरह पिघला दिया था। उसने पहले तो समझा कि सब झूठ है। वह लड़की एक बहाना बनाकर खड़ी है। फिर उसने शराब पी—खूब पी। अपनी आंखोंसे खूब घूरकर देखा—वह लड़की भयभीत न हुई थी। वह उससे डरी नहीं। दरवाजेके पास चुपचाप खड़ी थी। उसका पिता फर्शपर मरा हुआ पड़ा था। वह हत्यारा उससे अब क्या चाहता है, वह न समझ सकी। वह इन्तजारमें थी कि वह चला जाता, तो वह पिताकी लाशके पास रोवे। उसका सारा दुःख उमड़ रहा था। बड़ी देरसे वह आसरा देख रही थी। अपनी चुकी सामर्थ्य बटोरकर खड़ीकी खड़ी थी। सरदारने घूरकर उस लड़कीको देखा। कुछ नहीं बोला। उसे अभी कुछ होश था ही। एकाएक वह बाहर आया।

दलके सब आदमियोंको इकट्ठा किया। गरजकर बोला, "तुम सब कायर हो। मैं तुम्हारा सरदार अब नहीं रहना चाहता हूं। मैं गृहस्थ बनूंगा। सरदारके ऊपर यह कानून लागू कर कि वह आजीवन शादी न करे, तुम सब उसे धोखा देना चाहते हो। वह बात मुझे मान्य नहीं है।"

"सरदार!" दलका एक सदस्य उठकर बोला।

सरदारने गुस्सेमें उसकी गरदन तलवारसे उड़ा दी। उसकी आज्ञाके प्रतिकूल बात उठाना, यह उसे स्वीकार नहीं था। वह प्रतिवाद नहीं सुनेगा।

सब सन्न रह गये। आखिर आज सरदारको क्या हो गया है। सरदार फिर सावधानीसे बोला, "दल उस लड़कीको अस्वीकार नहीं करेगा, यही मैं कहना चाहता हूं। यदि कोई……।"

एक बूढ़ा सदस्य उठा। सरदारके आगे कुछ कहे कि उसे भी उसने मार डाला। अब दलके सब लोग आश्चर्यसे उसकी ओर देखने लगे। क्या सरदार पागल हो गया था। लेकिन सरदारने कहना शुरू किया, "अन्यायको न्याय हम नहीं मानेंगे। नारीकी 'अभागिन' जातिके प्रति क्या यही हमारा कर्तव्य है। और तुम सब अपने स्वार्थके लिए चाहते हो कि सरदार पतित जीवन व्यतीत करे। यह आगे नहीं होगा। अब मैंने इस लड़कीको ठीक-ठीक पहचान लिया है। यह बात सबको स्वीकार कर लेनी चाहिए।"

सरदारका एक विश्वास-पात्र उठा। कहा, "यदि आज्ञा हो, तो मैं कुछ कहूं।"

"क्या?" सरदारने सवाल पूछा।

"हमारा पेशा सैनिक है। फिर सरदारके ऊपर इतने भार हैं। नारियां मनबहलावके लिए आदि कालसे गिनी चली आयी हैं। सैनिकोंकी जाति सही-सही नारी-आदर करना जानती है। सरदार आप अपना कर्तव्य न भूलें।"

"तो यह भार मैं नहीं उठा सकूंगा। लो, मैं अपनी मौतकी आज्ञा स्वयं देता हूं। तुम दूसरा सरदार चुन लेना।" कहकर सरदारने तलवार रख दी।

दलमें सुरसुरी फैली। सब एक साथ बोले, "सरदार! सरदार!!"

सरदार इसका कुछ भी जवाब नहीं दे सका।

आखिर एक व्यक्ति बोला, "जब तक हमें ठीक व्यक्ति न मिले, आप विवाह न करें। यह माया-ममता ठीक नहीं होती। उस लड़कीको तुम अपने साथ रख लो। सबको यह बात स्वीकार होगी।"

और वह नारी सरदारके साथ रही। सरदारके जीवनमें परिवर्तन आ गया। वह युवती मजबूर थी। कभी-कभी वह देखती कि सरदारकी आंखोंमें उसके पिताकी लाश तैर रही है। वह उद्‌भ्रान्त हो उठती; किन्तु सरदारका सरल व्यवहार पा वह चुप रहती। वह भी सरदारको प्यार करने लगी थी। उसके मनकी घृणा फिर भी मिटी नहीं। लाचारीमें वह उस पुरुषको अपना सर्वस्व सौंप चुकी थी। वह उसके लिए अब अपेक्षित थी। सरदार उस रमणीकी इस कृतज्ञताको महसूस करता था। यह भी उसने बार-बार समझा कि उसका हृदय कोमल है, बहुत कोमल। जरा ठेस लगते ही वह रोने लगती है। उसके लिए वह एक उपयोगी वस्तु नहीं रही। एक आपसी समझौता दोनोंके बीच मूकतासे हो गया। वह नारी कभी-कभी शासन करती थी। वह केवल कारण-सा रह जाता था। वह नारी भी अपने पिताके खूनीको बार-बार माफ कर देना चाहती थी। फिर भी, जो पिताके खूनका दाग उसके हृदयपर बना हुआ था, उसे मिटानेकी उसने कोई भी कोशिश नहीं की। पहले पुरुष भी उसे जगानेकी कोशिश नहीं करता था। धीरे-धीरे वह नारी उसके जीवनमें पसरने लगी। अब वह बोलती और झगड़ा भी करती थी। फिर भी कभी अनायास डरकर भाग भी जाती। उसने पुरुषका जीवन ही पलट दिया।

कुछ महीने कटे। नारी गर्भवती हुई। अब फिर नारीके दिलमें छुपी पीड़ा उभरी। यह आखिर क्या हो गया है। यही था क्या उस सारे प्रेमका अन्त। यह पुरुष नारीपर फिर क्यों प्रहार किया करते हैं। वह तो पत्नी नहीं है। एक प्रेमिकाकी तरह उसके पास पड़ी हुई है। सरदारकी वजहसे दलवाले उसका आदर करते हैं। फिर भी सब कोई यह जानता है कि वह सरदारकी रखेली ही है। सरदारको विवाह करनेकी आज्ञा नहीं है। वह घबड़ा उठती थी। सरदार जब बाहर रहता, वह और भी परेशान रहती थी। वह उससे बार-बार कहना चाहकर भी कुछ कह नहीं सकी। कुछ भी वह खुद नहीं कहता था। जानकर बोगा बन जाता था। वही तब क्या कहे। बच्चेका लोभ

उठता था। वह उसके प्रति अड़चन बरतना नहीं चाहती थी। लेकिन जब बच्चा होगा, तो वह उससे क्या कहेगी। यही न कि वह एक कलङ्क है। वह उसे पुरुष जातिसे बदला लेना सिखलावेगी। यह अन्तिम निर्णय उसके विद्रोहका होता था।

नौ महीने बाद उसके लड़का हुआ। वह सारा दुःख भूल गयी। बच्चेका चेहरा अपने पितासे मिलता-जुलता था। और उसकी आंखोंमें भी उसके मृत पिताकी लाशका अक्स साफ-साफ दीख पड़ता था। वह चौंक उठी। यह कैसी घृणा उसके दिलमें उठ जाती है। सब कुछ उसे धोखा लगा। सारा पिछला जीवन, पुरुषका फुसलाना, उसका बलिदान। बच्चेके रोनेके साथ उसके हृदयमें गुदगुदी उठी, उसकी छातियां मचलीं।

दाई बोली, "लड़का हुआ है।"

वह खुशीसे पुलक उठी।

तभी दाईने पूछा, "तुम्हारी शादी हुई थी?"

"नहीं।"

"तब लड़केका क्या होगा?"

"लड़केका!"

"दलका निर्णय है कि वह अपना कानून नहीं बदल सकता है। तुम सरदारकी पत्नी स्वीकार नहीं की जाओगी।"

"क्या! क्या!!" वह आंखें फाड़-फाड़कर उसकी तरफ देखती ही रह गयी। मनमें भीतर-ही-भीतर एक घबड़ाहट शुरू हुई। वह बेचैन भी हुई। यह अब क्या होनेवाला है।

"यह लड़का मैं ले जाऊंगी। दलकी यही आज्ञा है। इसका जीवित रहना, दलकी प्रतिष्ठा कम कर देगा।"

"क्या होगा तब।"

"इसे मारनेका हुक्म हुआ है। एक बार प्यार कर लो। तुम मां हो, मुझे भी तुमसे हमदर्दी है। पर मैं भी परवश हूं। एक औरत क्या मांका दिल नहीं पहचान सकती है।"

वह सन्न रह गयी। यह कैसा रोजगार था। और उसका स्थान···। वह खेल है, जिसका दलमें कोई भी मान अब नहीं है। अब वह क्या करेगी। यह उसके प्रति कैसा न्याय है। कुछ सोचकर वह बोली, "दाई, मैं तुम्हारा अहसान नहीं भूल सकूंगी। मैं बच्चेको अपने हाथसे मारूंगी, अपना यह मेरा 'पाप' है। तुम तलवार छोड़ जाओ। उनको भी बुलवा दो। ताकि पीछे उनको भी अफसोस नहीं रहे।"

सरदार भीतर आया ही था कि उसने उसकी हत्या कर डाली। फिर खिलखिलाकर हंसी। बच्चेको खूनसे नहलाया। बाहर दलके सामने आयी। सब इस व्यवहारपर दङ्ग रह गये। वह बोली, "अभागे मनुष्यो, यही क्या तुम नारीकी कीमत समझते हो। धन्य है तुम्हारा मनुष्यत्व। अपना तुम्हारा यह समाज क्या, कभी दूसरेकी इज्जत करना भी सीखेगा। अब मैं इसकी हत्या कर सकती हूं। मैंने तुम्हारे सरदारपर विश्वास किया, उसका बदला भी ले चुकी हूं। पिताके हत्यारेको मैंने प्यार किया···।"

वह फूट-फूटकर रोने लगी। बड़ी देर तक रोनेके बाद गदगद स्वरमें बोली, "तुम्हारा यह कैसा अनुरोध था कि तुम मेरे बच्चेकी मौत चाहते हो।"

कोई कुछ नहीं बोला। तब वह आगे बढ़ी। बच्चेको वहीं जमीनपर रखकर बोली, "अब लो, जो चाहो, इसका कर लो। मैं इसे तुमको सौंपती हूं।" बहुत कमजोर होनेके कारण वह वहींपर गिर पड़ी और बेहोश हो गयी।

× × ×

वह बच्चा बड़ा हुआ। मांने उसे खूब प्यार किया। कभी-कभी वह बहुत रोती थी। उसने अपने पतिकी हत्या की, यह अफसोस न भुला सकी। उस पुरुषने उसके लिए क्या त्याग नहीं करना चाहा था। मनमें भारी अकुलाहट उठती थी। अब वह बच्चा ही उसका सुख था। एक संकुचित आकर्षण उसके प्रति नहीं था। वह चाहती कि उसे खूब प्यार किया करे, फिर भी उसे अलग ही रखती थी। लोग कहते थे, वह बच्चेके प्रति उदासीन रहती है। धीरे-धीरे उसकी उदासी बढ़ने लगी। लड़केकी ओरसे उसने अपना ध्यान बिलकुल हटा लिया। वह दिन-भर खेलता रहता। डाकुओंकी तरह रहने लग गया। उसने शराब पीनी भी सीख ली थी। उसी तरह लूटपाटमें भी शामिल होता था। मां जानकर भी चुप रहती। वह लड़का हरएक बातकी पूरी जानकारी रखता था। उसने अपने जीवनकी सारी बातें सुनी थीं। कभी-कभी मनमें कई बातें मैलकी तरह तैरती थीं। अपना उसका जीवन बहुत दुःखद था। मांपर उसे गुस्सा चढ़ता, क्यों वह उसके जीवनमें रुकावटकी तरह खड़ी हुई थी। उस समाजमें उसका आज कोई भी स्थान नहीं था। सब लोग

उसे सन्देहकी तरह देखते थे। नया सरदार उसकी मांके सौन्दर्यका बखान करता कि, उसने उसके पितापर कैसा जादू डाल दिया था। उसका भीतरी पुरुष सर्वदा उसे निराश बनाये रहता था। वह चाहकर भी कठोर नहीं बन सका। अपनेको बार-बार धोखा देता जाता था। नारीसे उसे स्वाभाविक घृणा हो गयी थी। वह खूबसूरत लड़कियोंको डायन समझता था। उनको अपनी दृष्टिसे अलग ही रखता। वह दलका नारीके प्रति बरता व्यवहार देखकर भी कुछ नहीं कहता था। उसके भीतर एक अज्ञात नारीकी तसवीर किसीने बना दी थी। कभी वह सोचता कि वह उसकी मांकी तसवीर तो नहीं है।

और सचमुच वह उसकी मांकी तसवीर थी, जिसका हाल कि दलवाले अक्सर सुनाते थे। वह बहुत मैला और भद्दा रूप था। वह लड़कियोंको दूरसे देखकर भाग जाता था। शराब खूब पीता। दिलमें फिर भी दिलेरी नहीं आती—अपनी कौमकी दिलेरी। हत्या उससे नहीं होती थी। नारीका रुदन सुनकर वह कांप उठता था। उनका दुःख उसे भारी लगता। जीवनमें पग-पगपर सङ्कोच उठता था। उसका जीवन बहुत दुःखद था।

कुछ और साल भी कट गये। डाकुओंने एक गांवपर हमला किया था। भारी-भारी अत्याचारोंके बाद महफिल रातको जमी थी। लूटपाटका सामान बांटा गया। उसे कुछ नहीं मिला। सरदारका कहना था—"वह कायर है। तमाशा देख रहा था। पिताका कोई भी गुण उसमें नहीं आया।" और वह दलसे निकाल दिया गया। वह घर नहीं लौटा। कई दिनों तक अकेला जङ्गलों-जङ्गलोंमें घूमता रहा। एक हफ्तेके बाद एक दिन मध्य रात्रिको वह अपने गांव लौटा—अपने मकानपर पहुंचा। उसकी मां कुछ नहीं बोली। उसको देखती ही रह गयी। होंठ फट गये थे। कपड़े भी धज्जी-धज्जी हो रहे थे। कई जगह बदनपर भी कांटोंकी खुरचन थी। वह बोला, "मैं तुम्हारी हत्या करने आया हूं।"

"मेरी!"

"या तुम मेरी हत्या करो। एक ही हममेंसे जीवित रह सकता है।"

"मैं तैयार हूं।"

"अच्छा, भगवानसे अपने पापकी माफी मांग लो।"

"मैंने कोई पाप नहीं किया।"

"पतिका ध्यान करोगी?"

"नहीं, वह मेरे पति ही कब थे।"

"तब तू निष्ठुर है। कोई और बात।"

"हां, मैं चाहती हूं, तुम दलसे चले जाना।"

"क्यों?"

"यहां मैं अपमानित हुई हूं।"

वह अधिक नहीं सुन सका। मांका अन्त कर दिया।

अब वह मांका कटा सिर लेकर सरदारके दरवाजेपर पहुंचा। दरवाजा खटखटाया। सरदार बाहर आया और चुपचाप ही रहा।

वह बोला, "मैं कायर नहीं हूं।"

"यह तेरी मांका सिर है न?"

"हां।"

"तो दल तेरा स्वागत करेगा।"

"वह मुझे नहीं चाहिए।"

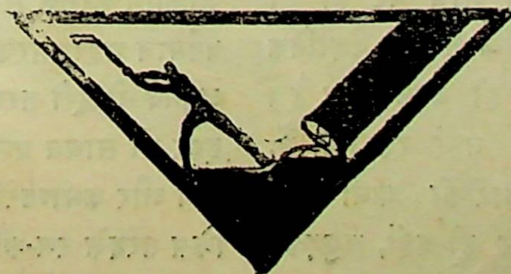
"क्या।"

"मैं दल छोड़कर जा रहा हूं।"

"क्यों?"

"न पूछो वह। जब मैं अपनी मांका सिर काटनेको तैयार हुआ, तो मेरी मांने आंखें मूंद ली थीं।"

बस, वह चला गया। अपने घर पहुंचा। मांका धड़ कन्धेपर लटकाया, सिर हाथमें लिया। बाहर खड़ी लोगों-की भीड़को चीरता हुआ आगे बढ़ गया। आगे—आगे!



आक्रमण के आधुनिक साधन

डा० ए० पी० अग्निहोत्री, पी० एच-डी०

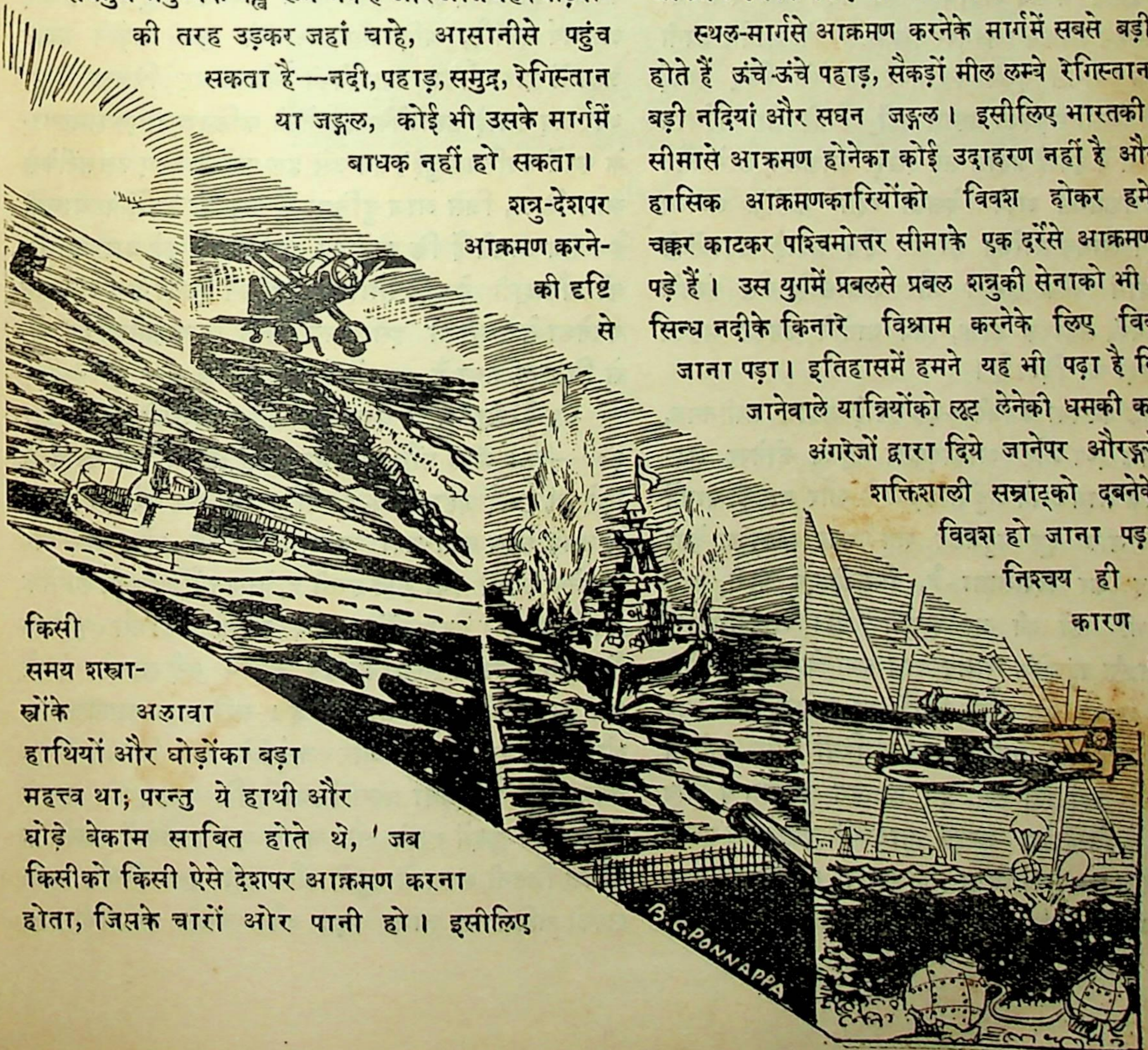
समयकी प्रगतिके साथ शत्रु-देशपर आक्रमण करनेकी प्रणालीमें भी भारी परिवर्तन हो गया है। लड़ाईके हाथियोंका जमाना तो लद ही गया, वह जमाना भी न रहा, जब पैदल या घुड़सवार सेना शत्रु-देशपर आक्रमण करनेके लिए बढ़ती थी और उसे शत्रु-देशकी सीमापर पहुंचकर किसी बड़ी नदीके किनारे रुक जाना और बादमें किसी तरह नदी पार कर जबर्दस्त किलेबन्दी और मोर्चेबन्दीका सामना करना पड़ता था और अच्छी खासी लड़ाईके बाद या तो वह हारकर पीछे लौट जाती थी या अपने मुकाबिलेके शत्रुको पराजित कर आगे बढ़ जाती थी। नदियोंकी तरह पहाड़ और पहाड़ियां भी उस समय आक्रमण करनेमें बड़ी बाधा डालती थीं, और जिस देशपर आक्रमण किया जाय, वह यदि चारों ओर समुद्रसे घिरा हुआ हो, तो जब तक आक्रमणकारीके पास जहाजी बेड़ा न हो, उसके लिए आक्रमण करना असम्भव ही था। आज यह अवस्था नहीं है। उस समयके लड़ाईके साधनोंका महत्त्व या तो आज नष्ट ही हो गया है या वह कम हो गया है; क्योंकि नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारोंने दुनियाका सारा रङ्ग-ढङ्ग ही बदल दिया है। बड़ी-बड़ी नदियां आज ऐसी सीमा नहीं रह गयी हैं, जिन्हें पार करनेमें किसी आक्रमणकारीको कभी कोई कठिनाई हो सके। आज तो नदियोंको ही नहीं, समुद्रको भी रबड़की नौकाओं द्वारा आसानीसे पार किया जा सकता है और किया जाता है। यही बात पहाड़ों और पहाड़ियोंके सम्बन्धमें भी है। इस युगमें आक्रमणके साधनोंके लिए ऊंची-ऊंची पहाड़ियां भी कोई रोक नहीं हैं और उन्हें उतनी ही आसानीसे पार किया जा सकता है, जैसे कोई बच्चा सड़क पार कर रहा हो। जबर्दस्त किलेबन्दी और मोर्चेबन्दीका महत्त्व है; परन्तु वह है तभी, जब उसे आधुनिक अनुभव और प्रणालीके आधारपर किया गया हो, और रक्षा करने और आक्रमण करनेके सम्पूर्ण साधनोंसे वह लैस हो। एक सालके वर्तमान महासमरका अनुभव यह है कि गत महासमरका अनुभव भी पूरी तरह काम नहीं दे रहा है, और विज्ञानने इधर जो साधन प्रस्तुत किये हैं, उनकी दृष्टिसे बड़े-बड़े जनरलों और कमाण्डरोंको भी यह सोचना पड़ रहा है कि किस तरहके रण-कौशलसे नयी परिस्थितिका सामना करना

चाहिए। यह निश्चित है कि युद्धकी पुरानी प्रणालियोंसे वर्तमान साधनोंका मुकाबिला नहीं किया जा सकता।

इस युगमें मनुष्यके पङ्ख लग गये हैं, यह हम सब नित्य ही प्रत्यक्ष देखते हैं। कहा जाता है कि चींटी जब मरनेको होती है, तब उसके पङ्ख निकल आते हैं। हम यह माननेके लिए तैयार नहीं हैं कि मनुष्यके पङ्ख लग जानेका परिणाम भी कुछ वैसा ही हो सकता है। परन्तु आज संसारमें जो कुछ हो रहा है, उसे देखकर—पोलैण्ड, नारवे, बेलजियम, हालैण्ड और फ्रान्सके सैकड़ों शहरों और हजारों गांवोंमें जो कुछ हुआ है, उसे याद कर कोई भी यही कह सकता है कि मानव-समाजका सर्वनाश करनेके लिए मनुष्य अपने पङ्खोंका उपयोग बड़ी बुरी तरह कर रहा है। पङ्खोंसे हमारा अभिप्राय हवाई जहाजोंसे है, जिनके आविष्कारसे सचमुच मनुष्यके पङ्ख लग गये हैं और आज वह चिड़ियोंकी तरह उड़कर जहां चाहे, आसानीसे पहुंच सकता है—नदी, पहाड़, समुद्र, रेगिस्तान या जङ्गल, कोई भी उसके मार्गमें बाधक नहीं हो सकता।

शत्रु-देशपर आक्रमण करनेकी दृष्टिसे किसी समय शस्त्रास्त्रोंके अलावा हाथियों और घोड़ोंका बड़ा महत्त्व था; परन्तु ये हाथी और घोड़े बेकाम साबित होते थे, 'जब किसीको किसी ऐसे देशपर आक्रमण करना होता, जिसके चारों ओर पानी हो। इसीलिए आगे चलकर समुद्र-मार्गसे आक्रमण करनेके साधनोंको उन्नत बनाया गया, और ज्यों-ज्यों नौ-निर्माणकलामें उन्नति होती गयी, हवाके रुखपर पालके सहारे चलनेवाली बड़ी-बड़ी नौकाओंका स्थान स्टीमर और जहाज लेते गये। हालैण्ड, स्पेन, फ्रान्स और ब्रिटेन, जिन राष्ट्रोंने अपनी नौशक्तिको उन्नत बनाया, उन्होंने अपने-अपने देशकी सीमासे बाहर समुद्र-पार दूर जाकर कितने ही देशोंमें अपनी सत्ता कायम की और यह साबित किया कि केवल स्थल-मार्गसे आक्रमण करने या केवल स्थलकी लड़ाई द्वारा अपनी रक्षा करनेकी क्षमता रखनेवाला राष्ट्र उस राष्ट्रके मुकाबिलेमें नहीं टिक सकता, जिसे जल और थल दोनोंमें क्षमता हो। जिस देशपर स्थल-मार्गसे पहुंचनेका कोई उपाय ही न हो, उसपर आक्रमण करनेके लिए तो जल-शक्ति होनी ही चाहिए।

स्थल-मार्गसे आक्रमण करनेके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा होते हैं ऊंचे-ऊंचे पहाड़, सैकड़ों मील लम्बे रेगिस्तान, बड़ी-बड़ी नदियां और सघन जङ्गल। इसीलिए भारतकी उत्तर-सीमासे आक्रमण होनेका कोई उदाहरण नहीं है और ऐतिहासिक आक्रमणकारियोंको विवश होकर हमेशा ही चक्कर काटकर पश्चिमोत्तर सीमाके एक दर्रेसे आक्रमण करने पड़े हैं। उस युगमें प्रबलसे प्रबल शत्रुकी सेनाको भी महीनों सिन्ध नदीके किनारे विश्राम करनेके लिए विवश हो जाना पड़ा। इतिहासमें हमने यह भी पढ़ा है कि मक्का जानेवाले यात्रियोंको लूट लेनेकी धमकी कम्पनीके अंगरेजों द्वारा दिये जानेपर औरङ्गजेब-जैसे शक्तिशाली सम्राट्को दबनेके लिए विवश हो जाना पड़ा था। निश्चय ही इसका कारण मुगल सम्राट्के



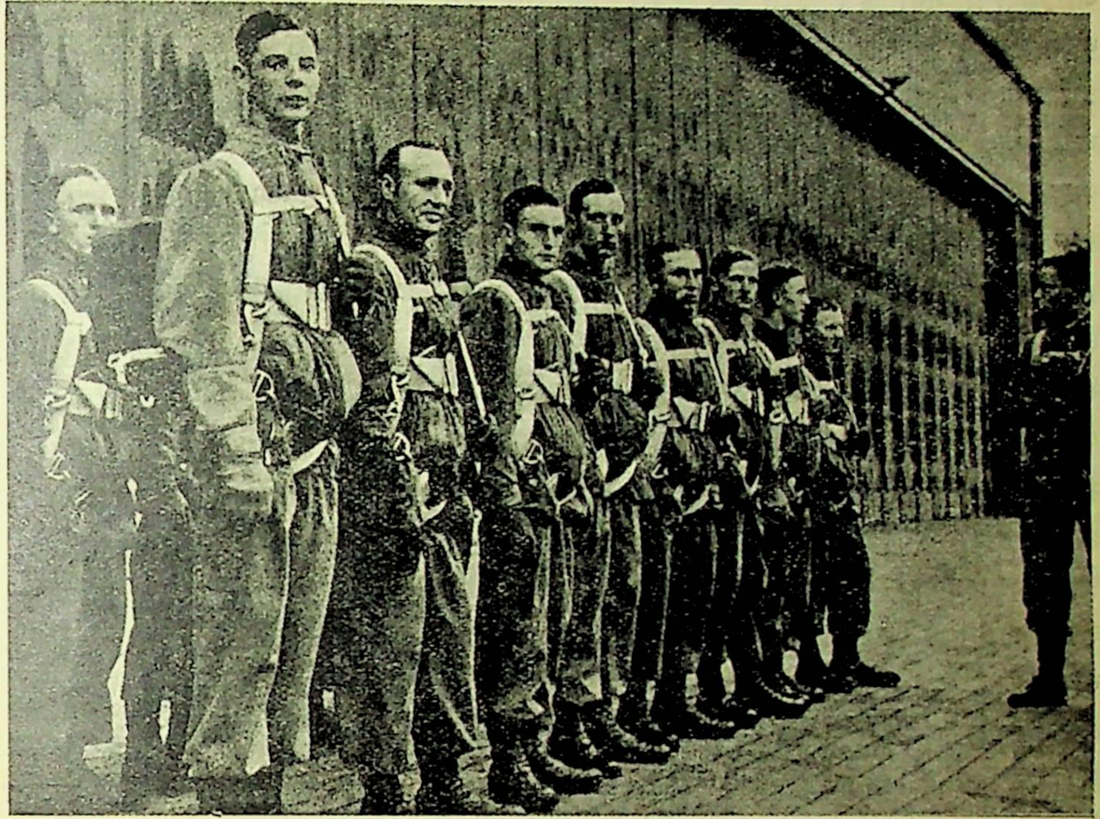
पास जल-शक्तिकी कमी थी, जिसके बिना हज्जके लिए जानेवाले यात्रियोंकी रक्षा समुद्रमें की ही नहीं जा सकती थी। इतिहासकी अन्य घटनाओंसे भी यह प्रकट है कि जिन राष्ट्रोंने अपने जमानेमें आक्रमण करनेके ऐसे साधनोंको अपनाया, जिनका पता अन्य राष्ट्रोंको नहीं था या जो उस समय तक अन्य राष्ट्रोंके पास नहीं थे, उन्हींको सफलता हुई है। जिन राष्ट्रोंने नौशक्तिको उन्नत बनाया, उनके सामने भी एक बड़ी असुविधा थी। जहाज और स्टीमरोंका भी एक मार्ग होता है और समुद्रमें वे एक निश्चित मार्गसे ही आते-जाते हैं। आक्रमणकारियोंके मार्गमें कभी-कभी यह मार्ग भी बड़ी असुविधा बन जाता था। इसलिए विज्ञानने जब मनुष्यको अपनी एक मूल्यवान विभूति हवाई जहाजके रूपमें दी, तब आक्रमण करनेकी दृष्टिसे वे सब बाधायें दूर हो गयीं, जो स्थल या जलकी ओरसे आक्रमण करनेपर किसी सेनाके मार्गमें आती थीं। एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुंचनेके लिए हवाई जहाजको किसी सड़ककी जरूरत नहीं होती और वर्तमान महासमरमें ये हवाई जहाज शत्रु-देशपर आक्रमण करने और शत्रुके आक्रमणसे अपने देशकी रक्षा करनेके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधन साबित हो रहे हैं। हवाई जहाजोंकी गति, हवामें रहनेकी क्षमता और शस्त्रास्त्रोंसे लैस होनेके कारण उनकी संहारक शक्ति, सब बातोंने उनका महत्त्व कहीं ज्यादा कर दिया है।

तनिक कल्पना कीजिये—एक हवाई जहाज मशीनगन, बम, दाहक द्रव्य और आवश्यकता अनुभव होनेपर जहरीली गैसके साथ अपने अड्डेसे उड़ता है और बातकी बातमें १५०-२०० मील दूर पहुंचकर शत्रु-देशपर गजब ढा देता है और वह कर दिखलाता है, जिसकी एक पीढ़ी पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। आक्रमणकारी हवाई जहाजके पहुंचनेके समय जान बचानेके लिए लोगोंकी इधर-उधर भगदड़, बम-वर्षासे गिरते हुए मकान, जलते और गिरते हुए मकानोंमें असहाय नर-नारियों और बच्चोंका चीत्कार और जहां-तहां पड़े हुए हताहत मनुष्य, ये सब बातें ऐसी हैं, जिन्हें ठीक तरहसे आज भी युद्ध-क्षेत्रसे इतनी दूर रहकर अनुभव नहीं किया जा सकता। शत्रुपर आक्रमण कर उसे क्षति पहुंचाने और जनतामें आतङ्क पैदा करनेकी दृष्टिसे हवाई जहाज बड़ा ही प्रबल साधन सिद्ध हो रहा है और इसमें सन्देह नहीं है कि वह शत्रुपर आक्रमण करनेकी दृष्टिसे पहले दर्जेका साधन है।

एक बात ध्यानमें रखनेकी है। शत्रुको केवल क्षति पहुंचाने और जनसाधारणमें आतङ्क पैदा करनेसे ही हमेशा अभीष्ट-सिद्धि नहीं होती, क्योंकि देश विजय करना हो, तो सैनिकोंके बिना काम नहीं चल सकता, फिर उस देशमें ये सैनिक चाहे स्थल-मार्गसे पहुंचें या जल-मार्गसे या आकाश-मार्गसे। स्थल-मार्ग और जल-मार्गसे किसी देशमें सेना पहुंचानेके मार्गमें जो कठिनाइयां हैं, वे आज पहलेसे कई गुनी हो गयी हैं। ये कठिनाइयां उस देशके लिए और भी ज्यादा हो सकती हैं, जो चारों ओर समुद्रसे घिरे हुए किसी देशपर आक्रमण तो करना चाहता हो, परन्तु जिसकी नौ-शक्ति अपने प्रतिद्वन्द्वीके मुकाबिलेमें कम हो। इसीलिए कोई आश्चर्य नहीं है, यदि प्रथम श्रेणीके कुछ राष्ट्रोंने हवाई जहाजों द्वारा सेना उतारनेकी योजनापर विचार किया और जब हवाई जहाजोंके उतरनेकी कठिनाइयां एक समस्याके रूपमें उपस्थित हुईं, तब उसे हल करनेके लिए उस तरीकेसे काम लिया, जिसे आज दुनिया पैराशूटोंके रूपमें पहचानती है। सब जानते हैं कि वर्तमान महासमरमें कई बार जर्मनोंकी पैराशूटी सेनाने संसारको चकित किया है। आक्रमण करनेका यह तरीका इस समय तकके अन्य समस्त तरीकोंसे बिलकुल नया है—इसमें सन्देह नहीं है।

यह पैराशूटी सेना क्या बला है? हजारों फीटकी ऊंचाईपर १००—१५० मील प्रति घण्टे या इससे भी अधिक रफ्तारसे उड़ते हुए हवाई जहाजसे कोई व्यक्ति जमीनपर कैसे कूद पड़ता है, उसके साथ क्या-क्या सामान होता है और जमीनपर पहुंचनेपर उसकी क्या गति होती है, ये प्रश्न हैं जो बहुत लोगोंके मनमें उठते हैं। पैराशूटोंके सहारे हवाई जहाजसे कूदनेकी क्रियाका अभ्यास संसारके कई देशोंमें कई सालसे, कमसे कम १५ सालसे किया जा रहा है। सैनिक आवश्यकताओंको दृष्टिमें रखकर रूस और जर्मनीने इस दिशामें विशेष प्रयत्न किया है, इतना प्रयत्न किया है कि पैराशूटोंके सहारे फिनलैण्डके युद्धमें रूसके और नारवे एवं हालैण्डमें जर्मनीके सैनिक जितनी संख्यामें पहुंचे और जो कुछ किया, उससे सबको चकित रह जाना पड़ा और उनसे स्वदेशकी रक्षा

करनेके लिए फ्रान्स एवं ब्रिटेनको अपने यहां विशेष व्यवस्था करनी पड़ी। जर्मनोंने युद्ध आरम्भ होनेसे पहले ही यह समझ रखा था कि उन्हें इंगलैण्डसे मोर्चा लेना है। हिटलर यह अच्छी तरह जानता था कि वह जो कुछ करना चाहता है, उसे करनेके लिए अग्रसर होनेपर ब्रिटेनसे युद्ध हुए बिना नहीं रह सकता। ब्रिटेनसे युद्ध हो, तो उसे इंगलैण्डपर आक्रमण करनेकी बात भी सोचनी ही चाहिए।



सनिक पैराशूटसे अभी उतरे हैं।

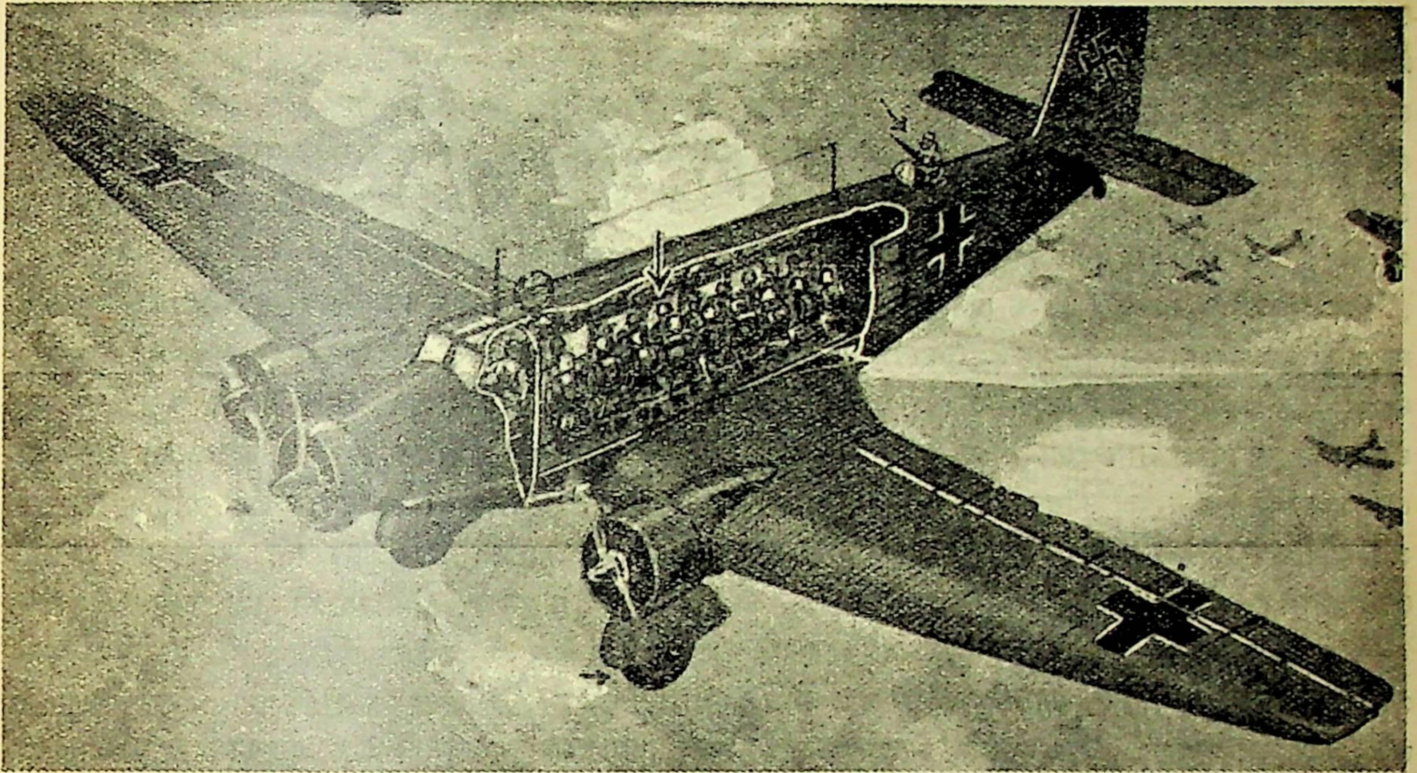
हिटलरको ब्रिटेनके मुकाबिलेमें अपनी नौ-शक्तिके विषयमें भ्रम नहीं हो सकता, इसीलिए उसके लिए यह स्वाभाविक ही था कि वह हवाई जहाजोंकी शक्तिपर अधिक निर्भर करे और उनकी सहायतासे सेना उतारनेकी योजनाको व्यावहारिक रूप दे। परन्तु इसमें भी कठिनाइयां हैं। हवाई जहाज हर जगह नहीं उतर सकता। उसके उतरनेके लिए मैदान चाहिए और जब युद्ध हो रहा हो, हवाई जहाज उतरने योग्य मैदानोंको शत्रुके हवाई जहाजोंके लिए भयावह बनाया जा सकता है। फिर ऐसे स्थान भी हो सकते हैं जहां सैनिक दृष्टिसे सेना उतारना तो आवश्यक हो, परन्तु जहां हवाई जहाजका उतरना सम्भव न हो। आक्रमण सम्बन्धी इन्हीं कठिनाइयोंने पैराशूटोंको जन्म दिया, और जिन राष्ट्रोंको अपनी लक्ष्य-सिद्धिके लिए आवश्यकता मालूम हुई, वे इस दिशामें अग्रसर हुए। इस तरह पैराशूटी सेना तैयार करनेकी ओर अग्रसर होनेवाले देशोंमें रूस और जर्मनीका नाम पहले आया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अन्य राष्ट्रोंको पैराशूटोंकी कलाका कोई पता ही नहीं था। पता तो था, इसमें किसीको सन्देह नहीं है। इन पंक्तियोंके लेखकने ८-१० वर्ष पहले दिल्लीमें हवाई जहाजोंके प्रदर्शनके समय पैराशूटके सहारे एक व्यक्तिको हवाई जहाजसे उतरते देखा था। यूरोपके जिन राष्ट्रोंने पैराशूटी सैनिकोंको बहुत ज्यादा संख्यामें तैयार नहीं किया, उन्होंने गलती यह की कि पैराशूटी सैनिकोंका महत्त्व नहीं समझा, यह नहीं समझा कि इन सैनिकोंको भी आक्रमणका एक प्रबल साधन बनाया जा सकता है।

रूस और जर्मनीमें महासमर आरम्भ होनेसे बहुत पहलेसे ही पैराशूटी सैनिकोंकी शिक्षाका समुचित प्रबन्ध है और इसके लिए कई केन्द्रोंमें स्कूल खुले हुए हैं। कई साल पहले हमारे पढ़नेमें यह भी आया था कि रूसमें सार्वजनिक पार्कोंमें ऐसे स्थान बनाये गये हैं, जिनपर चढ़कर लड़के खेल ही खेलमें छोटे-छोटे पैराशूटोंके सहारे नीचे कूदनेका अभ्यास करते हैं। जर्मनीने भी यदि अपने बच्चोंके लिए वैसी व्यवस्था की हो, तो कोई आश्चर्य नहीं है। वैसे जर्मनीमें सैनिकोंको पैराशूटोंके सहारे हवाई जहाजोंसे कूदनेका अभ्यास बहुत बड़े पैमानेपर कराया जाता है

और कराया गया है। उड़ते हुए हवाई जहाजोंसे कैसे कूदना, कूद पड़नेपर किस तरह पैराशूट खोल देना, जमीनपर पहुंचनेके समय चोट खानेसे बचनेके लिए किन बातोंकी सावधानी रखना, पीठके बल या मुंहके बल गिरनेपर क्या करना, गिरनेकी जगह यदि अनुपयुक्त हो, तो उसे किस तरह बचाना और जमीनपर पहुंच जानेके बाद क्या करना, इन सब बातोंकी पूर्ण शिक्षा व्यावहारिक रूपमें दी जाती है। जर्मनीके पैराशूटी सैनिकोंके पास प्रत्येक परिस्थितिका सामना करने योग्य पूरा सामान रहता है। उसका टोप वैसे तो स्टीलका बना होता है, परन्तु वह चमड़ेसे ढका होता है। पहने हुए कपड़ोंपर लंगोटीकी तरह एक पेटी कसी रहती है, जिसके दो सिरे ऊपरकी ओर कन्धोंपरसे पीठकी ओर निकल जाते हैं और पीछेसे आकर कमरकी सीधमें पेटीसे कस जाते हैं। इसी पेटीसे कन्धोंके पास पीठपर पैराशूट बंधा रहता है। कूदनेके समय सैनिकका दाहिना हाथ पैराशूट खोल देनेवाली मुठियापर होता है। बायें हाथकी बगलमें छोटी मशीनगन होती है, जो पेटीसे अटकी रहती है। इनके अलावा कमरपर दाहिने हाथकी ओर जहरीली गैससे बचनेका नकाब और बायें हाथकी ओर मशीनगनके लिए गोलियां और खाद्य पदार्थ पैक किये रहते हैं। पैराशूटी सैनिक कुछ अन्य चीजें भी अपने साथ ले जाते हैं, जैसे हाथसे फेंकनेके बम, टूटकी साइकिल, डेरा लगानेके औजार और बेतार यन्त्र। इन सब चीजोंसे यह समझा जा सकता है कि किसी पैराशूटी सैनिकसे क्या आशा की जा सकती है। यह हो सकता है कि कोई पैराशूटी सैनिक जिस स्थानपर उतरे, वहांसे उसे साइकिलपर शीघ्र ही किसी अन्य स्थानपर पहुंचनेकी आवश्यकता पड़ जाय, यह भी हो सकता है कि वह अपने छिपनेकी जगहमें देख लिया जाय और उसे घिर जानेपर मशीनगनसे काम लेना पड़ जाय। इसी तरह उसे हाथसे फेंकनेके बमों और गैसके नकाबोंकी भी जरूरत पड़ सकती है। बेतार यन्त्र अपने पक्षको संवाद भेजने और सङ्केत पानेकी दृष्टिसे बहुत कामका है। यह सब सामान पैराशूटी सैनिकके शरीरसे इस तरह कसा रहता है कि हवाई जहाजसे कूदकर जमीनपर आनेके समय अपने स्थानसे इधर-उधर नहीं हो सकता।

स्पेनकी क्रान्तिके समय राजधानी मेड्रिडमें जर्मन सैनिकोंकी पांचवीं श्रेणीका जन्म हुआ था। उस समय यह सम्भावना की गयी थी कि जर्मनीके पैराशूटी सैनिक बहुत ज्यादा संख्यामें जनरल फ्राङ्कोकी सहायताके लिए पहुंचेंगे। परन्तु यह नहीं हुआ। उस समय यदि जर्मनीने पैराशूटी सैनिक काफी तादादमें भेजकर जनरल फ्राङ्कोकी सहायता की होती, तो नारवे और हालैण्डमें पैराशूटी जर्मन सैनिक पहुंचनेपर वैसा चकित नहीं होना पड़ता।

पैराशूटोंसे सैनिकोंको बहुधा ऐसी जगह गिराते हैं जिसे सैनिक दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझा जाता है, फिर ये स्थान चाहे सड़क हों या रेलवे जङ्क्शन, सरकारी केन्द्र-स्थान हों या शस्त्रास्त्रोंकी फैक्टरियां या अन्य युद्ध-सामग्री तैयार करनेके कारखाने। ये पैराशूटी सैनिक जब कहीं बहुत ज्यादा तादादमें गिराये जाते हैं, तब बादमें ये उतरनेवाली बड़ी सेनाके लिए समुचित व्यवस्था करते हैं। पैराशूटी सैनिकोंका यह कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। उनका मुख्य काम यह होता है कि वे किसी ऐसे स्थानपर अधिकार कर लें, जहां हवाई जहाजोंसे सैनिकोंको उतारा जा सके। यह जरूरी नहीं है कि ये स्थान हवाई जहाजोंके अड्डे ही हों। चरागाह, मैदान, खेत, हाकी और फुटबालके फील्ड, घुड़दौड़का मैदान आदि कोई भी जगह हो सकती है, जहां बड़े-बड़े जहाज उतर सकते हों। जर्मनीने जब नारवे और हालैण्डपर हमला किया, पैराशूटों द्वारा उतरनेवाले सैनिकोंके अलावा हवाई जहाजोंसे भी हजारों सैनिक पहुंचे थे। हालैण्ड और बेलजियममें 'जङ्कर्स जू ५२' टाइपके हवाई जहाजोंका उपयोग जर्मनोंने इस कामके लिए किया था। सेना ले जानेके लिए खास तौरसे बनाये हुए इस हवाई जहाजमें शस्त्रास्त्रों और युद्ध-सामग्रीसे लैस १८ सैनिक बैठ सकते हैं। यह पङ्खोंके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक ९५ फीट ११ इञ्च और अगले पङ्खेसे लगाकर पूंछके सिरे तक ६२ फीट लम्बा होता है। यह लगभग ९४ मन बोझ लेकर जा सकता है। इससे भी बड़ा 'जू ८९-९०' टाइपका एक अन्य हवाई जहाज है, जो शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित ४०-५० सैनिकोंको ले जा सकता है। फिर, ये हवाई जहाज हलकी तोपों, बख्तरदार मोटरों और हलके टैङ्कों तकको पहुंचा सकते हैं। स्पेनके युद्धका व्यावहारिक अनुभव बतलाते हुए टाम विण्टरिङ्गमने 'पिक्चर पोस्ट' नामक एक ब्रिटिश पत्रमें हालमें ही लिखा था कि



जहाज सैनिकोंको लेकर जा रहा है।

"१६ टनके टैङ्कोंको भी सम्भव है, समुद्र-पार लाया जा सके।" हवाई जहाजोंसे कभी-कभी पैराशूटी सैनिक जगह-जगह गिरानेमें एक विचार यह भी होता है कि उन्हें खोजने और उनसे निपटनेके लिए काफी संख्यामें सुशिक्षित सैनिकोंको लगा रहना पड़े। जर्मनोंने पैराशूटी सैनिकोंको स्पेनमें सम्भवतः इसलिए भी नहीं भेजा था कि वहां उन दिनों प्रायः प्रत्येक वयस्क नागरिक कहीं न कहींसे हथियार प्राप्त कर सुसज्जित रहता था और जिस देशके नागरिकोंको हर समय बन्दूक रखनेकी सुविधा हो, उनके लिए पैराशूटी सैनिकोंसे निपट लेना कुछ भी कठिन नहीं हो सकता। स्पेनमें तो टाइपिस्ट तक रिवाल्वर बांधकर चलते थे और लोग प्रत्येक तरहकी अवस्थाका सामना करनेके लिए कितने लैस रहते थे, यह इसीसे समझा जा सकता है कि जलपान-गृहों और होटलोंमें उन दिनों यह लिखा रहता था कि "कृपया मशीनगनों और हाथसे फेंकनेके बमोंको दरवाजेपर ही छोड़ दीजिये।"

हवाई जहाजों द्वारा आक्रमण करनेके दो नये तरीकोंको ऊपर बतलाया गया है; परन्तु इनके अलावा भी एक तरीका है जो यद्यपि कुछ पुराना है, तथापि उसमें इधर बहुत तरक्की हुई है। शत्रु-देशपर हवाई जहाजों द्वारा बम गिरानेकी बात हम सब जानते हैं। ये बम जहां गिरते हैं, संहार कर देते हैं। एक खास तरहके दाहक बमोंका व्यवहार भी हो रहा है। ये बम संहारक बमोंकी तरह वैसे तो ज्यादा भयानक नहीं होते; परन्तु किसी जल उठनेवाली चीजपर पड़ते ही भयङ्कर रूप धारण कर लेते हैं। उनसे जगह-जगह आग लग जाती है और इस तरह मनुष्योंकी जो प्राणहानि होती है, उसके अलावा लाखोंकी सम्पत्ति भी स्वाहा हो जाती है। एक साथ बहुत स्थानोंमें लगी हुई आगको बुझाना कितना कठिन काम है और शत्रुके हवाई जहाजोंके आक्रमणके समय ये कठिनाइयां कितनी अधिक हो सकती हैं, उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

समाचार है कि जर्मनीने एक आकाशी टारपीडो निकाला है। इसके सम्बन्धमें अभी ज्यादा विवरण तो मालूम नहीं हुआ है; परन्तु यह बतलाया गया है कि वह जहां गिरा, एक कतारमें बने हुए कई मकानोंको ध्वस्त कर दिया। इससे पहले फिनलैण्डमें रूसी हवाई जहाजोंने एक

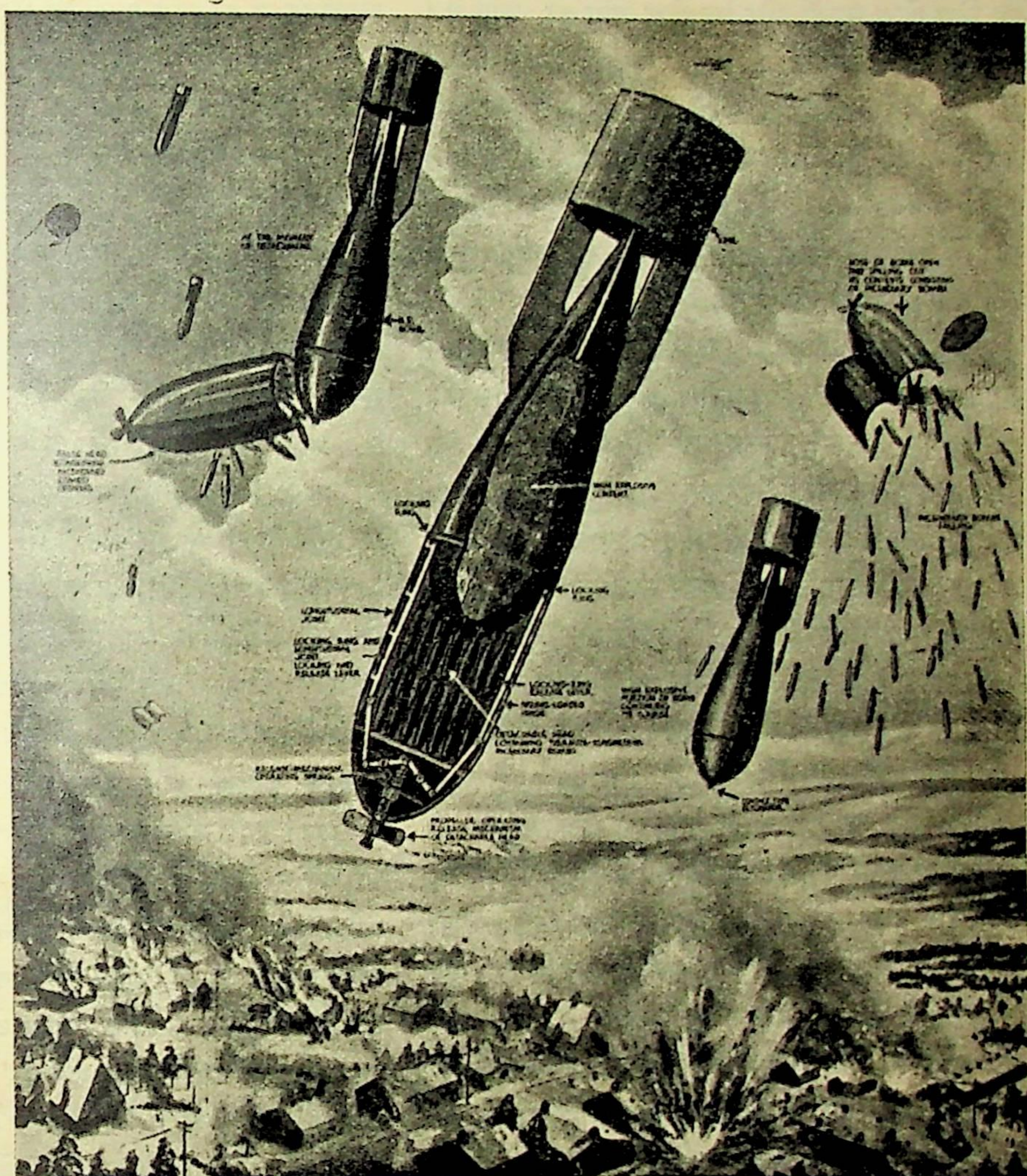
तरहके बमोंसे काम लिया था, जिन्हें व्यंग्यके साथ "मोलोटोव ब्रेड बास्केट" (मोलोटोववाली रोटियोंकी टोकरी) कहा जाता है। इन बमोंकी बनावट कुछ ऐसी होती है कि हवाई जहाजसे गिरानेके बाद हवामें ये बीचसे टूटकर दो खण्डोंमें विभक्त हो जाते हैं और उनके ७॥ फीट लम्बे और तीन फीट व्यासके सिलेण्डरसे लगभग १०० दाहक बम निकल पड़ते हैं। साधारण दाहक बम जहां उपयुक्त स्थानमें पड़नेपर केवल एक जगह आग लगा सकता है—यह दूसरी बात है कि बादमें वह आग अनेक स्थानोंमें फैल जाय—वहां रूसका यह एक बम अनेक स्थानोंमें आग लगानेमें समर्थ हो सकता है; क्योंकि उसमेंसे निकले हुए लगभग १०० दाहक बमोंमेंसे सभी व्यर्थ जायेंगे, सभी अनुपयुक्त स्थानोंमें गिरेंगे, इसकी सम्भावना कम ही है।

आक्रमण करनेके साधनके रूपमें वर्तमान कालका हवाई जहाज एक ऐसा तोपखाना है, जो डेढ़-दो सौ मील प्रति घण्टे और आवश्यकता पड़नेपर इससे भी ज्यादा तेज रफ्तारसे उड़ता हो। हम लोगोंने आकाशसे ओले गिरते हुए तो देखे ही हैं, उससे हवाई जहाजकी मशीनगनसे गोलियां बरसनेका कुछ अनुमान किया जा सकता है। इससे भी अधिक भयङ्कर है हवाई जहाजोंसे जहरीली गैस गिराना। अन्तर्राष्ट्रीय विधान कुछ गैसोंको निषिद्ध ठहराता है; परन्तु यह देखा जा चुका है कि अबसीनियाके युद्धके समय इटलीने जहरीली गैससे काम लिया था और सालभर पहले जर्मनीने भी पोलैण्डमें जहरीली गैससे काम लेकर वैसी ही हृदयहीन निरंकुशताका परिचय दिया था।

आकाश-मार्गके अलावा समुद्र और स्थल-मार्गसे भी आक्रमण होता है। पहले केवल यही दो मार्ग आक्रमण करनेके लिए थे। विज्ञानने आक्रमण करनेका जो एक नया आकाश-मार्ग प्रस्तुत कर दिया है, वह आक्रमणका स्वतन्त्र मार्ग तो है ही, जल और स्थल-मार्गसे आक्रमण करनेकी अवस्थामें उससे बड़ी सहायता मिलती है। जल और थल मार्गके आक्रमणोंका स्थान चौथा है। जल और थल मार्गसे आक्रमण करनेके साधनोंमें इधर बड़ी उन्नति हुई है। बड़ी-बड़ी तोपों और मशीनगनोंसे सुसज्जित जङ्गी जहाज, पानीके भीतर ही भीतर चलनेवाली पनडुब्बियां, ध्वंसक जहाज और बड़े-बड़े जहाजोंको एक ही टक्करमें खण्ड-खण्ड कर देनेवाले टारपीडो, पनडुब्बियोंको डुबानेमें समर्थ समुद्रके भीतर काफी गहराईमें फूटनेवाले गोले, सुरङ्गें और सुरङ्ग बटोरनेवाले जहाज, एक नये ढङ्गकी चुम्बकीय सुरङ्ग और इससे रक्षा करनेके आधुनिक उपाय, सभी जलमार्गसे आक्रमण करनेके प्रबल साधन हैं। स्थलसे आक्रमण करनेके प्रबल साधनोंमें अब तोपों, मशीनगनों और बख्तरदार गाड़ियोंका वह स्थान नहीं रहा, जो टैङ्कोंका है। टैङ्कके लिए किसी सड़ककी जरूरत नहीं होती और वह अपना रास्ता स्वयं बना लेता है—ऊंची-नीची जगहोंमें होकर आगे बढ़ता चला जाता है। तोपोंके गोलोंकी छायामें या हवाई जहाजोंकी बम-वर्षाके बीच बड़े-बड़े जहाज सेना उतारनेका काम करते हैं, यदि उन्हें इसके लिए अवसर मिल जाय। गत महासमरमें ब्रिटिश जलसेनाने यह गारण्टी नहीं की थी कि जर्मनोंका ब्रिटिश टापूमें उतर सकना असम्भव होगा। ब्रिटिश जलसेनाकी गारण्टी यह थी कि अगर जर्मनीकी कोई सेना उतरी, तो वह उसके पास युद्ध-सामग्री और सहायता पहुंचनेके साधन नहीं रहने देगी। यह गत महासमरकी बात है। उस समयसे अब तक लड़ाईके साधनोंमें इतनी उन्नति हुई है कि गत महासमरमें जो कुछ कहा गया था, उसे दुहरानेसे पहले किसीको भी एक क्षण सोचनेकी आवश्यकता होगी। बख्तरदार गाड़ियां तो बहुत ही साधारण-सी बात हैं, टैङ्कोंको भी जहाजों द्वारा स्थानान्तरित करनेमें बड़ी कठिनाई नहीं हो सकती। इसमें जो कठिनाइयां हो सकती हैं, वे दूसरी तरहकी हैं—जैसे समुद्र-तटपर और मार्गमें रक्षाका प्रबन्ध। हवाई जहाजों द्वारा भी टैङ्कोंका स्थानान्तरित किया जाना सम्भव है और इस दृष्टिसे भी किसी राष्ट्रको सतर्क रहना ही होगा। राष्ट्र-रक्षाकी तैयारीका काम आज आक्रमणके साधन भयङ्कर और शीघ्रतामूलक हो जानेके कारण पहलेसे कहीं ज्यादा जटिल और कठिन हो गया है।

आक्रमणका एक नया साधन जहां तैयार हुआ नहीं कि कुछ समय बाद उससे बचाव करनेका साधन भी निकल आता है और इस तरह जहां संसारमें संहारक साधनोंकी वृद्धि हो रही है, वहां उन साधनोंके संहारसे बचानेवाले यन्त्र भी तैयार होते जा रहे हैं। कोई नहीं कह सकता कि इस क्रिया और प्रतिक्रियाका अन्त कहीं होगा भी कि नहीं। हवाई जहाजोंका जब आविष्कार हुआ, उन्हें धरा-

शायी करनेके लिए हवाई जहाज-तोड़ तोपें तैयार हो गयीं और जमीनके भीतर जहरीली गैसके प्रभावसे सुरक्षित तहखाने बन गये। जहरीली गैसके असरसे बचनेके लिए एक तरहके नकाब-को बने हुए काफी अर्सा बीत चुका है। दाहक बमों द्वारा लगायी हुई आग बुझानेके लिए दमकलोंसे काम लिया जा सकता है। इसके अलावा ऐसे हवाई जहाज भी तो तैयार हुए हैं, जो अपनी गतिके कारण शत्रुके जहाजको खदेड़ने और आकाशमें उससे मोर्चा लेनेके लिए बहुत ही उपयुक्त हैं। कोई भी राष्ट्र आकाश-मार्गसे आक्रमण होनेकी अवस्थामें रक्षा करनेके इन आवश्यक साधनोंको जब तक न रखे, तब तक उसका अस्तित्व खतरेमें ही समझना चाहिए। हवाई जहाजोंके आक्रमणके समय सर्वसाधारण अपनी रक्षा कैसे कर सकते हैं—राष्ट्रकी जनहानिको कैसे बचा सकते हैं--इस सम्बन्धमें मि० जान लेङ्गडन डेवीसका फिनलैण्ड-सम्बन्धी अनुभव इस देशकी परिस्थितिकी दृष्टिसे बहुत ही मूल्यवान है। फिनलैण्डमें लड़ाकू हवाई जहाज, हवाई जहाज-तोड़ तोपों और इसी तरहके दूसरे साधनोंकी बड़ी कमी थी। मि० जान लेङ्गडन डेवीसका अनुभव सुनिये—"फिनलैण्डके सम्पूर्ण युद्धमें जितने आदमी मारे गये, उनसे ज्यादा आदमियोंकी लाशें तो स्पेनमें एक नगरकी गलियोंमें मैंने दो दिनकी बम-वर्षाके बाद देखी थीं। यह बम-वर्षा स्पेनकी पिछली क्रान्तिके समय जर्मनों और इटालियनोंने की थी और रूसियोंने इनकी अपेक्षा फिनलैण्डमें जनसाधारण-के विरुद्ध अधिक वैज्ञानिक साधनोंसे कार्य किया था। इसका कारण है, स्पेन और फिनलैण्डके हवाई आक्रमणसे रक्षा करने सम्बन्धी दृष्टिकोणका अन्तर। फीन लोगोंमें गजबका अनुशासन था। परन्तु स्पेनमें हवाई जहाजोंका हमला भी एक तमाशा था, सांड़ोंकी लड़ाई थी, जिसे



'मोलोटोव ब्रेडबास्केट'—विशेष विवरण भीतर देखें।

देखनेके लिए लोग सड़कों और छज्जोंपर जमा हो जाते थे। फिनलैण्डमें हवाई हमला होनेकी सूचना मिलते ही लोग सड़कों और गलियोंसे हट जाते और सर्वत्र सुनसान हो जाता। जिन मकानों और कारखानोंमें तहखाने बने हुए थे, उनमें लोग चले जाते। कारखानोंसे केवल वही मजदूर तहखानोंमें जाते, जिनका वहां रहना, मशीनोंके चलते रहनेकी दृष्टिसे, आवश्यक न होता।

"मुझे जिस बम-वर्षाका अनुभव है, वह दिन-भर एक रेलवे जङ्क्शनपर की गयी थी। मैं लगभग २५० अन्य यात्रियोंके साथ स्टेशनपर ही एक ट्रेनमें था। इस ट्रेनको खाली करनेकी आज्ञा होते ही सभी यात्री उतर पड़े। एक अन्य ट्रेन स्टेशनसे थोड़ी दूर इन सब यात्रियोंकी प्रतीक्षा कर रही थी। इस ट्रेन और स्टेशनके बीचमें बम गिरनेसे लाइन पहलेही खराब हो गयी थी। यात्रियोंमें स्त्री, पुरुष, बच्चे और बूढ़े, सभी थे। हम लोग रेलवे लाइनके किनारे-किनारे ट्रेनकी ओर जा ही रहे थे कि हवाई हमलेकी चेतावनी देनेके लिए सीटी हुई। सब लोग इधर-उधर तितर-बितर हो गये। मैं ५-६ अन्य आदमियोंके साथ पासके एक पेड़के नीचे पहुंचा ही था कि ३२ रूसी हवाई जहाज पहुंच गये। वे बहुत नीचे उड़ रहे थे। मैंने देखा कि भयङ्कर बम-वर्षा हो रही है। इन बमोंमेंसे बहुतेरे तो दाहक थे और कई तो मुझसे ३०-४० गजके अन्तरसे गिरे। कई बमोंसे पेड़ उखड़कर जा गिरे और मैं उनके नीचे आ गया। नगर मेरे छिपनेकी जगहसे कई सौ गज दूर था। उसपर तो अगणित बमोंकी वर्षा हुई। अनुमान है कि उस दिन लगभग १ वर्गमीलसे कुछ ही अधिक क्षेत्रमें २००० से अधिक बम गिराये गये।

"शामको जब खतरा दूर हुआ, मुझे इस बातसे आश्चर्य हुआ कि जितने यात्री बम-वर्षासे पहले जानेके लिए तैयार थे, करीब-करीब उतने ही यहां उसके बाद भी मौजूद थे। कमसे कम मुझे तो एक भी लाश नहीं दिखलाई पड़ी। प्रत्येक यात्री कहीं-न-कहीं जा छिपा था। सारा नगर जल रहा था; परन्तु मृत्यु एक व्यक्तिकी भी नहीं हुई थी। इसके कई कारण थे। पहला कारण तो यही था कि उनमें पूर्ण अनुशासन था। दूसरा कारण यह था कि उनमेंसे प्रत्येक व्यक्तिको यह मालूम था कि किस तरह छिपना चाहिए। फिर, नगरके आर्थिक जीवनके लिए जिस व्यक्तिका रहना आवश्यक न हो, उसे पहले ही वहांसे हटा दिया गया था।"

वर्तमान युद्धमें सर्वसाधारणको भी उतना ही खतरा है, जितना किसी सैनिकको। इस दृष्टिसे सैनिकके लिए रक्षाकी जैसी व्यवस्था की जाती है, वैसी ही व्यवस्था जनसाधारणके लिए की जानी चाहिए। जमीनके नीचे ६० फीट गहरे तहखानोंमें घण्टों बैठनेकी मनोवृत्तिके साथ यदि राष्ट्र युद्धमें भाग लेता है, तो शत्रुके आक्रमणोंका जैसा चाहिए वैसा मुकाबिला नहीं किया जा सकता। शत्रुका मुकाबिला पूरी तरह करनेकी दृष्टिसे जनसाधारण और सैनिकवर्ग, दोनोंकी रक्षाका समुचित प्रवन्ध किया जाना चाहिए। फिनलैण्डके अधिकारियोंने अपनी फैक्टरियोंके मजदूरोंको तीन वर्गोंमें बांट दिया था। एक वर्ग ऐसे मजदूरोंका था, जिनके बिना भी खतरेके समयमें काम चालू रह सकता था, जिनके बिना उत्पादनपर ज्यादा असर नहीं पड़ता था। दूसरा वर्ग ऐसे मजदूरोंका था, जो खतरेके समयमें भी अपने कामपर कुछ समय तक रहते और शत्रुके वायुयानोंके पहुंचने और बम गिराये जानेके बीचके कुछ सेकेण्डोंमें तहखानोंमें चले जाते। तीसरा वर्ग उन मजदूरोंका था, जो घोर बम-वर्षाके बीच डटे रहकर अपना काम करते। आजकलके जमानेमें जब एक बार चलानेके बाद यन्त्र अपने-आप चालू रह सकते हैं, फिनलैण्डमें यह पाया गया कि तीसरे वर्गमें कुल ४ सैकड़े मजदूर आते थे।

आकाश-मार्गसे आक्रमण कर शत्रु उतर न सके, इसके और भी कई उपाय हैं। चरागाहों और मैदानोंमें बड़े-बड़े वृक्ष तो होते ही हैं, उनमेंसे कुछ वृक्षोंको काटकर जगह-जगह गिरा देने और कहीं-कहीं गढ़े खोद देनेसे शत्रुके हवाई जहाजके लिए उतरना असम्भव हो जायगा। वृक्ष काटनेमें यह ध्यान रखना चाहिए कि उसका तना जमीनसे आधा गज या एक गज उठा हुआ रहे। इसी तरह टेलीफोनके तार भी लगाये जा सकते हैं। खेतोंमें थोड़े थोड़े अन्तरसे ऊंची मोटी लकड़ियां गाड़ी जा सकती हैं। इससे खेतीकी कुछ भी हानि नहीं होगी; परन्तु हवाई जहाजोंके लिए उतरना असम्भव हो जायगा। रेलवे ट्रेनोंकी रक्षाके लिए उनपर लोहेके मोटे प्लेट चढ़ाये जा सकते हैं, महत्त्वपूर्ण स्थानोंपर पहरा लगाया जा सकता है और यदि किसीको आक्रमणके समय मोटरपर बाहर निकलनेकी जरूरत ही हो, मोटरकी छतको mattress

से ढक लेनेसे बहुत अवस्थाओंमें गोली उसके पार नहीं जा सकेगी।



टैङ्कोंके रोकनेका यह नया साधन कारगर पाया गया है।

टैङ्कोंका आविष्कार होनेके बाद यद्यपि निकल तो टैङ्क-तोड़ तोपें भी आयी हैं; परन्तु पिछली क्रान्तिके समय जर्मनी और रूसके टैङ्कोंको बेकाम करनेके लिए स्पेनकी जनताने बड़े साहससे काम लिया। स्पेनमें युद्ध आरम्भ होनेके समय टैङ्कतोड़ तोपोंका अभाव प्रायः पूर्ण रूपसे था। बेचारे स्पेन-निवासी क्या करते। उन्होंने एक उपायसे काम लेकर आक्रमणकारी टैङ्कोंको नष्ट करनेमें अच्छी सफलता प्राप्त की। एक ब्रिगेडियर जनरलने १९३७ में स्पेनमें जनरल फ्राङ्कोके एक मोर्चेको देखा था। उस दिन जनरल फ्राङ्कोकी पंक्तिपर एब्रोंमें प्रजातन्त्री सरकारकी ओरसे रूसमें बने हुए १४-१४ टनके ८० से ज्यादा टैङ्कोंने हमला किया था। इस आक्रमणके सम्बन्धमें आवजर्वर पत्रकी ७ नवम्बर १९३७ की संख्यामें अपना अनुभव लिखते हुए उक्त ब्रिगेडियर जनरलने लिखा था—"सामनेकी खाइयोंके सैनिकोंने जिस समय अपने स्थानपर डटे रहकर आक्रमणकारी पैदल सैनिकोंको भगा दिया, उसी समय आस-पासके गांवोंसे रक्षित सैनिकोंकी कुमक और सहायता पहुंच गयी। इन लोगोंने टैङ्कोंको घेर लिया। इनके हाथमें थे बम, कम्बलके टुकड़ोंमें पेट्रोलकी बोतलें और पेट्रोलमें डूबे हुए चिथड़े, इन चीजोंकी सहायतासे स्पेनवालोंने ९ टैङ्कोंको या तो पकड़ लिया या नष्ट कर दिया। और बाकी टैङ्क लौट गये। दोनों पक्षोंके बीचके क्षेत्रमें ९ टैङ्क बेकार हो गये थे, उन्हें टैङ्कतोड़ तोपोंने उलट दिया।"

असलियत क्या है? इस बातको बहुत कम लोग जानते हैं कि जो टैङ्क १०० गज दूर होनेपर भयङ्कर संहार करनेमें समर्थ हो सकता है, वही छः इञ्च दूर रह जानेपर कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता। और यदि अगल-बगल थोड़ी दूरपर छिपे हुए कुछ लोग अचानक शत्रुके टैङ्कपर टूट पड़ें, तो उनमेंसे कितने ही लोगोंका टैङ्क तक पहुंच जाना निश्चित है; क्योंकि टैङ्कका ड्राइवर और गनर अपने अगल-बगल नहीं देख सकता और टैङ्कमें सामनेकी ओर जो तोपें रहती हैं, वे इतनी जल्दी अगल-बगल और नीचेकी ओर नहीं घुमायी जा सकतीं, और जब तक उन्हें घुमाया जायगा, तब तक कई आदमी आसानीसे उसके बिलकुल पास पहुंचकर सट सकते हैं। फिर, ये तोपें इतनी नीची भी नहीं होतीं कि टैङ्कसे सटा हुआ कोई व्यक्ति निशाना बन सके। स्पेनमें शत्रुके टैङ्कोंकी प्रतीक्षामें लोग छिपे बैठे रहते और ज्योंही टैङ्क पास आता, उसपर टूट पड़ते, और पास पहुंचकर चिथड़े और कम्बलके टुकड़े उसके पहियोंपर लगी हुई जञ्जीरमें फंसा देते। यह होनेपर पेट्रोलकी बोतल अपने आप फूट जाती और पेट्रोलसे कम्बल और चिथड़ा तर हो जाता। उसके बाद उसमें आग लगा देनेसे टैङ्क आसानीसे नष्ट हो जाता। यह उपाय उन टैङ्कोंको

नष्ट करनेमें काम नहीं आ सकता, जो आग उगलते हैं। आग फेंकनेवाले टैङ्क खास तौरसे ऐसे बने होते हैं कि उनमें आग नहीं लग सकती। आक्रमणकारी शत्रुके टैङ्कोंको बेकाम करनेके लिए दो अन्य उपायेंसे भी स्पेनमें काम लिया गया था। एक तो हाथके बमोंको टैङ्कके रास्तेमें आसानीसे गिराकर यह किया जाता था। टैङ्कके रास्तेके अगल-बगल छिपा हुआ कोई भी व्यक्ति आसानीसे यह कर सकता है, उसे केवल ठीक समय और ठीक स्थानपर वह बम फेंकनेका अभ्यास होना चाहिए। जहां शत्रु सड़कों-पर पहरा रखता हो, वहां ऐसे बम उपयोगी साबित हुए हैं, जो टैङ्कका दबाव पड़ते ही फूट जायं; क्योंकि बड़ेसे बड़े बमोंको भी जमीनमें आसानीसे छिपाया जा सकता है। दो-तीन आदमी अगर इरादा कर लें, तो टैङ्कके पास बगलसे पहुंचकर लोहेकी एक मोटी छड़को जञ्जीर और पहियेके बीचमें डाल सकते हैं और उसका परिणाम निश्चित रूपसे स्पेनमें यही देखा गया है कि या तो वह जञ्जीर पहियेसे उतर गयी या टैङ्कका कोई पुरजा टूट गया। दोनों ही अवस्थाओंमें टैङ्क बेकार हो जाता है।

स्पेनकी क्रान्तिके दिनोंकी ही बात है। जिन दिनों मेड्रिडके आसपास युद्ध हो रहा था, कोयले और लोहेकी खानोंमें काम करनेवाले मजदूर गये। उनके पास अक्सर छरङ्ग उड़ानेकी बारूद भी रहती। मेड्रिडके आसपास खेतों, झाड़ियों या सड़कके किनारेके गढ़ोंमें वे छिपकर बैठ गये और शत्रुके टैङ्कोंकी प्रतीक्षा करने लगे। कोई टैङ्क जब उनकी परिधिमें आया, उन्होंने छरङ्गका एक पैकेट टैङ्क और जमीन-के बीचमें गिरा दिया। बस फिर क्या था, ज्योंही टैङ्क पहुंचा, उसका कहीं पता नहीं चला।

इधर टैङ्कोंको नष्ट करनेके लिए एक नये आविष्कारसे काम लिया जा रहा है। हाथसे फेंके जानेवाले विस्फोटक बम बोतलमें रखकर इसे तैयार किया जाता है। इसकी खास बात यह है कि किसी ठोस चीजपर पटकते ही वह जलने लग जाती है और इस आगसे टैङ्क नष्ट हो जाता है।

पोलैण्ड, बेल्जियम और फ्रान्समें जर्मन टैङ्कोंने जो आश्चर्य उपस्थित कर दिया, उसे कौन नहीं जानता। कौन कह सकता है कि यदि पोलैण्ड, हालैण्ड, बेल्जियम और फ्रान्समें नहरों और नदियोंके कुछ महत्त्वपूर्ण पुलोंको नष्ट कर सैनिक दृष्टिसे दूरदर्शिताका परिचय दिया जाता और साथ ही डचों, बेल्जियनों और फ्रान्सीसियोंने स्पेनके निवासियोंकी तरह टैङ्क नष्ट करनेकी कलाका कुछ अभ्यास किया होता, तो आज युद्ध-क्षेत्रकी अवस्था सम्भवतः दूसरी ही नहीं होती। मार्गमें काफी चौड़े खन्दक खोदने, नगरोंमें सड़कके आरपार ऊंची और काफी चौड़ी रोक बनानेसे भी टैङ्कका मार्ग रुक सकता है, परन्तु लकड़ीके कुन्दे मार्गमें डाल देनेसे टैङ्कको बाधा नहीं हो सकती।

किसी भी देशपर शत्रुका आक्रमण होनेकी अवस्थामें जिस बातकी सबसे अधिक आवश्यकता हो सकती है, वह है जनसाधारणका धैर्य, तत्काल अवसरके अनुसार कुछ कर गुजरनेकी सूझ और हिम्मत। फ्रान्सका एक नगर अबेविली है, जिसकी आबादी २० हजार है। फ्रान्सपर पिछले दिनों जब जर्मनोंका हमला हुआ, एक दिन जर्मन सैनिक फ्रान्सी-सियोंकी पंक्ति तोड़कर मोटर साइकिलोंपर अचानक काफी दूर अबेविली पहुंच गये। अबेविलीके २० हजार निवा-सियोंमें यदि सूझ होती, तो सड़कोंपर बोतलों और शीशियों-को फोड़कर इन साइकिल-सवार सैनिकोंको रोका जा सकता था। पोलैण्डको अपनी शक्तिपर जो उचितसे अधिक विश्वास था और शत्रुकी शक्तिका जो अनुमान उचित-से कम था, यह भी ठीक नहीं हुआ। युद्धारम्भसे पहले पोलैण्डके सीमा-क्षेत्रमें दौरा करते हुए 'न्यूज क्रानिकल' के संवाददाताने देखा कि सीमापर कहीं-कहीं मशीनगनोंके साथ सैनिकोंकी टोलियां तैनात हैं। प्रश्न करनेपर इन सैनिकोंमेंसे एकने कहा कि "जर्मनी सीमाके इस पार जो कुछ भेजेगा, उसका सामना करनेके लिए हम लोग तैयार हैं।" अन्य स्थानोंमें खाइयां खोदनेका काम जारी था। एक सैनिकने संवाददातासे कहा— "हमारे यहां मैजिनो लाइन तो है नहीं। सर्वश्रेष्ठ मैजिनो लाइन पोलोंका साहस है।" हम इस साहसकी प्रशंसा करते हैं। परन्तु यह साहस ही सब कुछ नहीं है। साहसी मनुष्य संसारको चकित कर सकता है; परन्तु केवल साहससे— आधुनिक शस्त्रास्त्रोंके बिना पार पाना कठिन ही नहीं, असम्भव है।

युद्ध

प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी, एम० ए०

साम्यकी प्रतिष्ठाके लिए जहां विश्वमें अनेक साधन है, वहां सबसे बलवान साधन युद्ध भी है। भौतिक दृष्टिसे युद्ध नैसर्गिक अनिवार्यता है और आध्यात्मिक दृष्टिसे मानवताके मानसिक कच्चेपनका प्रतिफल है। भौतिक मानव उसको प्रकृतिका धर्म समझकर अपनाता है और आध्यात्मिक मानव उसे पूर्णताके अपूर्ण रूपका अवश्यम्भावी निष्कर्ष मानता है। विश्व-सम्पर्कके इच्छुक प्रवृत्तिवादी ऐहिक एषणाके विस्तारमें जब दूसरोंको अपने मार्गमें आड़े आये हुए पाते हैं, तो युद्ध करते हैं। निवृत्तिवादी जब किसीको अपहृत और शोषित देखते हैं, तो युद्ध करते हैं। युद्धकी प्रेरणामें 'रौद्र' भी होता है, और 'वीर' भी। किसीकी छीना-झपटी देखकर 'रोष' होता है, जो आगे चलकर स्थायी भाव-'क्रोध'-से होता हुआ 'रौद्र' तक पहुंचता है और अनिष्टकारीके अनिष्टका साधन बन जाता है। केवल शौर्य-प्रदर्शनका उत्साह भी वीर रस तक पहुंचा सकता है, जिसके व्यवहार-पक्षका परिणाम वैसा ही घातक और हिंसक हो सकता है।

एक बात यह न भूलना चाहिए कि वीर रसकी निष्पत्तिके लिए भी विभावकी आवश्यकता है। केवल शौर्य-प्रदर्शनका निदर्शन धनोपार्जन करनेवाले नटका खेल हो सकता है, वास्तविक युद्धका कारण नहीं। अतएव वीर रसके लिए भी विभावन व्यापारमें कोई ऐसी परिस्थितिकी अपेक्षा रहती है, जो 'रोष' उत्पन्न कर सके, चाहे यह 'रोष' कितना ही हलका क्यों न हो। आदर्शके मूर्त रूपको झकझोरनेवालेके प्रति क्षोभ होता ही है। यही क्षोभ कभी तीव्रताके कारण तिलमिलाहट और कभी 'रोष' में परिवर्तित हो जाता है। 'रोष' का बहाव दो धाराओंमें देखा गया है। उसका नैसर्गिक बहाव 'क्रोध' के लक्ष्यकी ओर होकर 'रौद्र' में क्रान्ति करनेका होता है। परन्तु कुछ जागरूक व्यक्ति भी इसी विश्वमें होते हैं। अपनी निम्न वृत्तियोंके संयमनका उन्होंने खूब अभ्यास कर रखा है। उनके 'रोष' की साधारण गतिमें अवरोध रहा करता है और उसे उत्साहकी ओर मुड़ना पड़ता है। यही उत्साहकी मथानी उनके वीरताके रूपको सक्रिय कर देती है और सञ्चित भाव-प्रवरता लोक-रक्षा और लोक-हितकी भावनाके रूपमें चमक उठती है। उसमें वैयक्तिक स्वार्थ नहीं रहता। गीतामें "युद्धस्व विगतज्वरः" ऐसी परिस्थितिके लिए कहा है।

'विगतज्वर' होकर युद्ध करना विरलोंके लिए सम्भव है। युद्धकी उष्णता मानसिक साम्यको हिलाकर 'वीर' के स्थानपर 'रौद्र' को ला बिठाती है।

वीर रसके आश्रयमें भी जब 'अहं' से अथ होकर 'त्वम्' के लयमें इति होती है, तो वह रस भी रौद्रकी भांति श्लाघ्य नहीं। व्यष्टिके विस्मरणमें समष्टिका जो उदय होता है, उसके लिए 'त्वम्' का शत्रुके रूपमें विकास जैसा आवश्यक है, वैसा ही एक वचन 'अहं' का भी कर्ताके रूपमें लय होना परमावश्यक है। इसीलिए आदर्श कर्मकारको आत्म-नकारका पाठ पहले पढ़ाया जाता है। योद्धाकी आदर्श परिस्थिति वह है, जिसमें वह आत्म-विस्मरण और अहङ्कार-विहीन होकर प्रतिपक्षीको वैरी न समझकर दो महान् विचारोंके सङ्घर्षमें अपनेको उच्च विचारका, किसी अमोघ शक्तिका, अमोघ अस्त्र समझकर युद्ध-क्षेत्रमें पिल पड़ता है। ऐसे योद्धाके लिए सुख-दुःख, लाभालाभ, जयाजय समान होते हैं।

युद्ध भी नितान्त अहिंसाभावसे लड़ा जा सकता है। विरोधी शत्रु नहीं होता, और न विपक्षी घातक होता है। न जाने किस प्रेरणासे, किस गतिसे, किस संयोगसे दो व्यक्ति, दो राष्ट्र, दो जातियां परस्परका निबटारा युद्ध-क्षेत्रमें करनेके लिए उतर आती हैं। कर्तव्यकी प्रेरणासे न्यायाधीश हत्यारेको प्राणदण्डकी आज्ञा देता है और फांसी लगानेवाला उसे नितान्त अहिंसा-भावसे वृक्षपर टांग देता है। उसके मुंहपर टोप लगाते समय उसमें न क्रोध जागरित होता है और न पाशविक हिंसा। वह केवल कर्तव्यकी प्रेरणामें सब करता है। अतएव यह भी सम्भव है कि युद्ध-क्षेत्रमें प्राण लेते समय घातक हत्यारेके बानेमें न हो।

यह प्रश्न हो सकता है कि युद्धको क्या कभी विश्वसे मिटा दिया जा सकता है। इसका उत्तर 'हां' और 'नहीं'

दोनोंमें ही है। जिस समय विश्वका समूचा मानव-समाज उदात्त गुणोंका प्रतिरूप हो जायगा, उस समय उसको परस्पर मिलकर रहनेमें पाशविक बलप्रयोगकी आवश्यकता न रहनी चाहिए। तब युद्ध केवल इतर प्राणियोंका धर्म रह जायगा। प्राणियोंकी विकासोन्मुखी गतिमें जो विषमता है, उसके कारण मानवतामें भी बुद्धि-वैषम्य रहेगा ही। यह उनके असमिलवर्तनका सबसे सबल कारण है। वैषम्यमें, साम्यकी अवतारणामें युगोंके अवकाशकी आवश्यकता है और वह कल्पित समय जब आवेगा, तब तक विश्व क्याका क्या हो जायगा, यह कौन अनुमान कर सकता है।

हां, मानवताके विकासके साथ-साथ युद्धके रूपमें परिवर्तन अवश्य होता जायगा। विज्ञानकी उन्नतिसे लाभ उठाकर हिंसा और ध्वंसकी भावनाको जो इतना आगे बढ़ा दिया गया है, उसकी भी बलवती प्रतिक्रिया होगी। चिह्न अभीसे दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

युद्धकी प्रेरणामें वैयक्तिक स्वार्थ-साधना, चाहे वह आध्यात्मिक ही क्यों न हो; राष्ट्रकी महत्त्वाकांक्षा, चाहे वह साम्राज्यवादके प्रसारवाली हो अथवा व्यापारकी खपतके लिए हो; जातिकी विस्तार-लिप्सा, चाहे वह धर्म-प्रचारके हेतु हो, चाहे सिद्धान्त-प्रचारके लिए; और वर्ग-विशेषोंकी अधिकार-लोलुपता, चाहे वह धनिकोंकी हो, चाहे श्रमजीवियोंकी हो, चाहे कृषकोंकी हो, चाहे शिक्षितोंकी हो, चाहे अपढ़ोंकी हो; सर्वदा निन्द्य है। सिद्धान्त-प्रचार और विचार-प्रचारके लिए भी कुछ लोग युद्ध आवश्यक समझते हैं। यह बड़ा उपहासास्पद है। जिस विचार-प्रचारमें शस्त्रोंकी आवश्यकता पड़ती है, वह खोखला और निर्बल है, चाहे वह सामाजवाद हो, चाहे साम्यवाद।

जिस समयसे मनुष्यकी बुद्धि परिष्कृत हुई और उसमें उदात्त और निम्न वृत्तियोंका आचार और शील-निरूपणके कारण वर्गीकरण हुआ, उसी समयसे युद्धको बुरा कहना भी मनुष्यने सीखा। पर तोतेकी भांति अभी तक वह 'अहिंसा परमोधर्मः' की रट लगाता आ रहा है। इस सिद्धान्तको कण्ठसे नीचे उतार न सका। कुछ साधु-महात्मा हमेशासे होते चले आये हैं जिन लोगोंने अहिंसाका प्रयोग अपने ऊपर सफल करके दिखा दिया; परन्तु मानव समाहार उसे कभी भी आत्मसात् नहीं कर सका। बौद्ध होकर भी अशोकको युद्ध करनेके लिए विवश होना पड़ा। बड़े-बड़े ईसाई राष्ट्रोंने तमाचा खाकर दूसरा गाल आक्रमणकारीकी ओर कभी नहीं फेरा। बेचारे ईसाका उपदेश उसीके कांटोंके ताजका व्यङ्ग ही बना रहा। आज महात्मा गांधीके अनन्य भक्तको भी उनके अहिंसात्मक विधानमें भारत-रक्षाके प्रश्नका हल नहीं दिखाई देता। वास्तवमें बात यह है कि महात्माओंके विचारोंमें बड़ी शक्ति अवश्य होती है और वे उन्हें सफल आकारमें देखते हैं; परन्तु जब तक जन-साधारणके हृदयमें उदात्त वृत्तियोंको जागरित होनेका मौका नहीं मिलता, तब तक ये सुषुप्त वृत्तियां सोयी रहती हैं। पाशविक वृत्तियां, हिंसा इत्यादि—जिनको सर्वदा उद्दीप्त होनेका अवकाश मिलता रहता है—समयपर उद्दीप्त होकर व्यक्तिको ओत-प्रोत कर देती हैं। ऐसे परीक्षाके अवसरोंपर जनतासे यह आशा करना कि वह उदात्त स्वरूपका परिचय देगी, आशातीत आशा है। युगोंका अभ्यास अभी तक विश्वको केवल कतिपय विभूतियां दे पाया है। किसी प्रयोगके करनेके पहले प्रयोगकर्त्ताओंकी योग्यताको परख लेना परमावश्यक है। राष्ट्रके जीवन-मरणके प्रश्नके साथ खेल करनेका किसीको भी अधिकार नहीं है।

हिंसाकी भावनाके साथ युद्धका लगाव बड़ा गम्भीर है। युद्ध वास्तवमें उस समय होता है, जब मानव स्रष्टा और नियामकके आसनपर बैठकर अपना निर्णय करने बैठता है। मानवके समक्ष सिर झुकाना भूल जाता है। वह अपने मलिन 'अहम्' के सामने दूसरोंको सिजदा करनेके लिए बाध्य करना चाहता है। सत्यकी माया युद्धकी जननी होती है। सत्यके अंशोंमें जब विरोध दिखाई देता है और दो मस्तिष्क अपने-अपने सत्यांशोंको ही पूर्ण सत्य समझ बैठते हैं, तभी झगड़ा होता है। मनकी असावधानी, चित्तका उतावलापन, बुद्धिकी विवेकशिथिलता तथा असहिष्णुता और अहङ्कारका कट्टरपन ही इस विश्वमें विरोधकी नींव है, जिसके ऊपर युद्धका पादप पनपकर हरा हो जाया करता है।



१९१४ की एक याद

श्री "रमण"

और निर्मलाकी आंखें छलछला आयीं। अभी-अभी छब्बीस साल पहले तो, उसने अपने महंगे सिन्दूर और कलाईकी चूड़ियोंके बदले, संग्रामके पिता और अपने अनमोल हृदयका बलिदान दिया था। यह झगड़ा न मिटा मानवोंका युग-युगसे, यह सत्ताका मोह न गया साम्राज्योंसे ; किन्तु कितने ही वंश निवश हो गये, कितनी ही गोदें सूनी हो गयीं, कितनों ही के साजन भरे भादोंमें ही भाग गये—और आंखें छलछला गयीं निर्मलाकी।

× × ×

१९१४ की बात है। निर्मला ज्योंही स्कूलसे वापस आयी, घरमें कदम रखते-ही-रखते पूछा—"मेरा कोई पत्र भी आया है ?" और न जाने कितनी आशा और अकुलाहटका एक छोटा उत्तर 'नहीं' जब उसके सामने आया—वह क्षुब्ध हो गयी। वह जानती थी—आज पत्र नहीं भी आ सकता है। कुछ बहुत आवश्यक तो है भी नहीं, फिर भी उसे लिखना चाहिए—उत्तर देना चाहिए—इसी ख्यालसे पत्रकी प्रतीक्षा थी। वह भीतर-ही-भीतर केशरीको न जाने कितनी बातें कह गयी। दगाबाज है, उसके हृदयमें कोमलताको जगह ही नहीं। और निर्मलाकी आंखोंमें जो जल भर आया, उसमें निराशा भी चमक रही थी।

और केशरी ?

बगलवाले मकानमें नहीं, जरा दूर हटकर रहता था। पिताजी उसके सरकारी मुलाजिम थे। घरमें मां भी न थीं। 'थर्ड इयर' में केशरी आ तो गया था; किन्तु उसका बचपन अभी उससे दूर न हो पाया था। उसका विश्वास था कि इससे पढ़ाईका कोई सम्बन्ध नहीं। आदमीका गम्भीर होकर रहना, हर बातमें कुछ समय उसके सोचमें बिताना आवश्यक नहीं। हां, उजलतकी गलतियोंसे वह घबराता भी था; परन्तु जब हो गयीं—तो उसका ध्यान भी न रहा। और उसके कुछ दोस्तोंको छोड़कर, यह बात दुनियाको पसन्द न थी। वह क्या चाहती है, यह कभी कहीं न मिलेगा ; किन्तु वह क्या-क्या नहीं चाहती है, यह हर जगह और हर समय सूत्र बनकर तैयार है। दुनियाकी आंखोंमें दानिशमन्द तो वे ही हैं, जिनके सिर सिजदेमें घिस गये; और जिसने अपनी चालकी चञ्चलतामें उसकी ओर मुड़कर भी नहीं देखा, वह है मूर्ख, अहङ्कारी उसके विचारमें।

केशरी इसे समझता था और खूब समझता था। उसे शायद यह भी मालूम है कि इस मस्तीको लेकर वह जीवन-गिरिपर मुस्कराते हुए नहीं चढ़ सकेगा ; अपनी आंखोंकी पहली बूंदाबूंदीपर ही अन्तरमें जमी काईपर निर्मलाको फिसलते देख, वह ठोकर खा जायेगा। वह यह भी जानता कि गरीबीकी तहमें जोरसे बोलनेवाली उसके दिलकी जुबान कभी क्षीणसे क्षीण होकर निर्मलाकी लाचारी और बेबसीमें मिल जायेगी——बहुत समय लगाकर और पसीनोंका सागर सुखाकर बनायी हुई दोकी दुनिया समाजकी फूंकपर, पीले पत्तेकी तरह उड़ जायेगी। फिर भी वह आजसे ही हाथमें रूमाल लेकर बैठनेके लिए तैयार न था।

कालेजसे आते ही आते, एक बार निर्मलाको देख लेनेके लिए पागलकी तरह उस ओर चल देता। सूनी आंखोंमें साकार निर्मला जब कोठेपर, या दरवाजेके पर्देके पास छाया बनकर दिखाई पड़ती, तो केशरी अपनेको सफल समझता। आंखोंकी भाषामें मुमकिन है, एक-दूसरेने बहुत कुछ कहा-सुना भी हो। वह भाषा भी एक अजीब भाषा है। कहनेवाला भी शायद जुबानसे नहीं समझा सकता। लोगोंका कहना है—उसकी एक बूंदपर संसारका साहित्य बन सकता है, आत्माकी तृप्ति हो सकती है।

——तो निर्मलाने कुछ दिनों तक शायद इसे कुछ न समझा। ललचकर ताकनेवाली आंखोंमें जैसे केशरीकी भी दो हों। किन्तु बात धीरे-धीरे जोर पकड़ती गयी और एक दिन वह समय भी आया, जब केशरीकी आंखें जैसे नित्य नये सन्देश लेकर निर्मलासे कह जातीं, जिन्हें निर्मला संजोकर रखती जाती उस दिनके लिए—जब वह केशरीसे प्रत्येकका अर्थ पूछेगी। और केशरीकी चुप्पी ही, उसकी जुबान होगी।

—तो उस दिन केशरीके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब रास्तेसे जाते समय उसे निर्मलाकी मांने अपने मकानपरसे पुकारा। केशरी कुछ सहमा और ठिठका। किन्तु निर्मलाकी मांने रोते हुए कहा—"बेटा, निर्मला बहुत अस्वस्थ हो गयी है। मूर्छापर मूर्छा आ रही है। आज तीन दिनोंसे उसके पिता भी बाहर चले गये हैं। वह बहुत...।" और केशरी घरमें चला गया। चारपाईपर आंखें बन्द किये निर्मला पड़ी थी। उस समय उसे बहुत अधिक ज्वर चढ़ रहा था। केशरीने सिरपर हाथ रखा। तावेकी तरह तप रहा था। मूर्छा कोई आध घण्टेसे बन्द थी। केशरी आश्वासनके कुछ शब्द निर्मलाकी मांसे कहकर, डाक्टरके लिए चला गया।

टेढ़ी कोलतारकी सड़क—जिसपर आदमी ही आदमी। कभी मोटरकी पों-पों और कभी रिक्शेकी टन-टन। एकाग्र केशरी। दिमागमें भावनाओंका बवण्डर। निर्मलाकी अस्वस्थता—उसका कर्तव्य। समाजका विचार, दुनियाकी आंखें। वह सोचता—उसे क्या पड़ी है कि डाक्टरोंके घर दौड़ता फिरे—किन्तु इस समय निर्मलाके लिए जाने ही वाला कौन है?

और जिस समय डाक्टरके साथ केशरी कमरेमें घुसा, निर्मला जाग रही थी। उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। एक क्षण उसने कातर आंखोंसे केशरीकी ओर देखा—जैसे आभार मान रही हो। वह समझ चुकी थी कि मांके ही आग्रहपर डाक्टर लेकर केशरी आया है। और नहीं तो वह यहां कैसे आता। उसकी तबीयत ठीक हो चली थी। डाक्टरके नुस्खेसे अधिक लाभ केशरीकी उपस्थितिसे हुआ। जाते समय निर्मलाकी मांने ज्योंही दो रुपये निकालकर डाक्टरके सामने हाथ बढ़ाया, डाक्टरने कहा—"केशरी मेरे मित्र हैं। मैं उनसे व्यवसायके दायरेमें नहीं मिलता।" और निर्मलाको यह अच्छा न लगा। केशरी उन्हें इतना गरीब क्यों समझता है? दो रुपये मैं नहीं दे सकती थी? फिर उसने डाक्टरको मना क्यों कर दिया? रुपये क्या डाक्टर छोड़ देगा? केशरीको देना ही होगा। यहां दोस्तीका एक ढकोसला बनाया है। और तब तक केशरी जा चुका था। मांने उस समय कई बार कहा कि एक-आध बार फिर आकर जरा पूछ जाना; पर केशरी चुप चला गया। उसने मुड़कर निर्मलाकी ओर देखा भी नहीं कि निर्मलाकी आंखें क्या कह रही हैं—या उनमें सावन उमड़ा है?

और अभी निर्मला ठीक स्वस्थ भी न हो पायी थी कि केशरीको बाहर जाना पड़ा। पिताका भी तबादला हो चुका था। केशरीकी कई बार इच्छा हुई कि जाकर निर्मलासे एक बार मिल आये; किन्तु परिस्थितियोंके चक्करमें वह न जा सका। निर्मलाका जिस दिन पहला पत्र आया, केशरीको जैसे 'डरबी' की लाटरी मिल गयी—नहीं-नहीं, उस अभावकी पूर्ति हुई, जिसकी कमी उसे खा रही थी। वह घबरा गया यह देखकर कि निर्मला आज भी उसे उसी तरह याद कर रही थी, जिस तरह वह तब उसे देखकर आंखें घुमा लेती थी। और वह तब सोचता कि नारीके हृदयमें मनुष्य क्या नहीं पा सकता? अभी कुछ ही दिन गुजरे होंगे कि केशरीके हृदयमें बोलनेवाली विरहकी कोयल चुप होती जा रही थी और निर्मला घुलकर मिटती जा रही थी। और तभी, उस दिन स्कूलसे वापस आकर जब उसने पत्रके विषयमें पूछा, तो एक 'ना' ने उसे अचेतन कर दिया और आंखोंमें जो जल भर आया, उसमें नीलापन लिये निराशा भी चमक रही थी।

× × × ×

और निर्मलाको अभी पत्नी-रूपमें आये सालभर भी न हो पाया था कि केशरी अपनी बेकारीसे ऊब गया। निर्मलासे मिलकर उसे जितना सुख हो रहा था, उससे अधिक दुःख अपने भविष्यकी चिन्तासे होता। निर्मला कुछ भार बनकर आयी हो, यह बात न थी। उसे स्वयं अपना जीवन भार हो रहा था। पिताजीने जो भी कमाया, अपने ही हाथों उड़ा दिया। घरकी सम्पत्ति ऐसी न थी कि दोनों समय रोटीका प्रबन्ध उससे हो सके। और नौकरी? दफ्तरोंमें ठोकरें खानेके बाद भी, सबेरेसे शाम तक खुशामदमें खराब कर देनेपर भी कहीं मिल जाना आसान न रहा। और उस दिन एकाएक जब रातमें निर्मलाकी चीजें चोरी चली गयीं, तो केशरीको एक काबुलीसे पचास रुपये लेकर कपड़ोंकी व्यवस्था करनी पड़ी। निर्मला रोती तो जरूर; किन्तु उसे सन्तोष भी होता यही देखकर कि हजार दुःख और सन्तापके बीच उसका केशरी कुन्दनकी तरह चमक रहा है—कमलकी तरह खिल रहा है। और इससे अधिक एक हिन्दू नारीके लिए चाहिए ही क्या? उसका केशरी है, तो सारी दुनिया है—नहीं तो कुबेरके घर भी उसके लिए अन्धकार है।

तभी महासमरकी सनसनी फैली। सरकारकी ओरसे एलान हुआ कि फौजोंमें लोग भर्ती हो सकेंगे और एकसे एक जवान, मूंछोंकी ऐंठ लिये, चौड़ी छाती और नयी तरुणाई लिये सरकार—अपनी प्यारी सरकारके लिए कट मरनेके लिए भेड़ और बकरीकी तरह उमड़ पड़े। 'हमारी सरकार है, तो हम हैं और उसके जानेके पहले—हमीं नहीं रहेंगे' का सङ्कल्प लेकर भारतके वीर, सदियोंसे दबे उत्साह और उमङ्ग, प्रताप और शिवाजीकी कुर्बानियोंकी गाथा लेकर आ डटे।

और तब केशरीने देखा—एक बार वह भी क्यों न इसमें जानेकी बात सोचे? निर्मलाके लिए वह जान दे सकता है, तो देश और आजादी—अपनी सरकार और लाज—उफ इस बेकारीके जीवनपर अपना अन्त क्यों नहीं कर सकता? उसने दरख्वास्त कर दी। और उस दिन उसे जितना सन्तोष हुआ, उतनी ही चिन्ता भी। वह चाहने लगा, उसकी दरख्वास्त मञ्जूर न हो। वह निर्मलाको छोड़कर न जा सकेगा। इस बातको वह चाहता था कि निर्मलासे छिपाकर रखे; किन्तु फिर क्यों रखे। एक दिन निर्मलाका सर्वस्व तो उससे छीनकर केशरी सरकारको दे सकेगा।

और उस रात—जब चांदनी दूधकी तरह फैल रही थी, आसमानमें सितारे चमक रहे थे, केशरीने निर्मलाकी चोटी हाथमें लेकर यह कह सुनाया। उसे भय था, निर्मला कांप जायेगी, उसकी आंखोंसे जो धारा बह निकलेगी, उसमें स्वयं केशरी भी तिनका बनकर बह जायेगा, उसकी चुप्पीपर हिमालय भी चीत्कार कर उठेगा; किन्तु निर्मलाको जैसे आश्चर्य हुआ ही नहीं। उसने मुस्कराकर कहा—बहुत अच्छा! वह सोच रही थी—इस परिस्थितिमें पड़ा मनुष्य तो आत्महत्याकी शरण लेता है और यदि आज केशरी केवल लड़ाईमें जाकर सन्तुष्ट हो सकता है—तो वह मनुष्य नहीं, देवता है। उसे पता था कि वह सब देकर भी, अपनी तमाम कोशिशोंसे भी केशरीके ओठोंपर हास नहीं ला सकती—और, हां, और अपनी मांगका सिन्दूर, हाथकी चूड़ियां भी गंवाकर यदि वह केशरीकी चिन्ता मिटा सकी, उसके हृदयमें क्षणभरके लिए भी आनन्दका सञ्चार कर सकी, तो वह बहुत है; उसका जीवन वहां सफल है। उसे और कुछ न चाहिए—चाहिएं केशरीकी हंसती मुद्रा, सन्तुष्ट हृदय!

और केशरी न लौटा!

कुछ दिनों तक पत्र आते रहे, फिर पत्रकी प्रतीक्षा शेष रही। फिर प्रतीक्षा भी स्वप्न बनी और केशरी बन गया पूजाकी प्रतिमा। जानेके तीन मास बाद जो पुत्र हुआ वही निर्मलाके पास केशरीकी एक याद रही। निर्मलाके हृदयमें यदि कोई टीस बराबर उठती रही, तो वह यही कि केशरीने संग्रामको नहीं देखा। और जब कभी संग्राम निर्मलाकी गोदमें आकर कुछ पूछने लगता, तो निर्मला न जाने किस आशङ्कासे झट बातें टाल देती कि कहीं वह न जाने क्या-क्या न पूछ बैठे।

तो उस दिन जब चुन्नी निर्मलाके गाङ्गी-जमुनी बालोंमें तेल डाल रही थी, निर्मलाने पूछा—"चुन्नी, तुम्हारा विवाह हुए कितने दिन हुए?"

चुन्नीने हंसकर कहा—"अभी क्या हुआ है? मुश्किलसे दस मास हुए होंगे।"

निर्मलाने फिर पूछा—"क्या करते हैं तुम्हारे पतिदेव।" तो चुन्नीने गम्भीर होकर कहा—"यही जो सरकारसे लड़ाई चल रही है, उसीमें उन्होंने दरख्वास्त दी है।"

और निर्मलाकी आंखें छलछला आयीं। अभी-अभी छब्बीस साल पहले तो उसने अपने महंगे सिन्दूर और कलाईकी चूड़ियोंके बदले संग्रामके पिता और अपने अनमोल हृदयका बलिदान दिया था। यह झगड़ा न मिटा मानवोंका युग-युगसे, यह सत्ताका मोह न गया साम्राज्योंसे; किन्तु कितने ही वंश निर्वंश हो गये, कितनी ही गोदें सूनी हो गयीं, कितनों ही के ही साजन भरे भादोंमें ही भाग गये! और आंखें छलछला गयीं—निर्मलाकी।

———



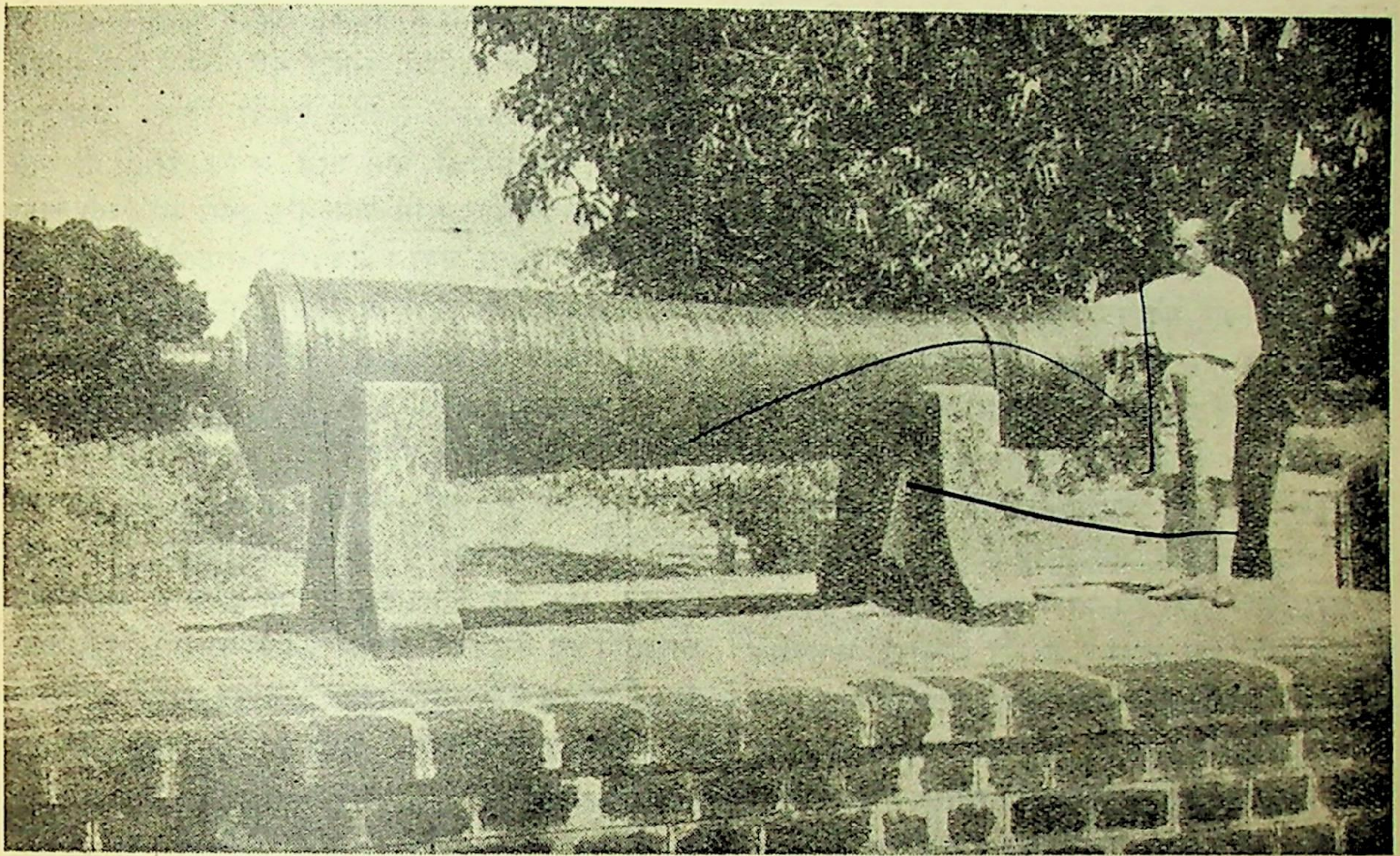
आर्योंकी युद्धकला

श्री० बाबूराम मिश्र

वर्तमान महासमर और उसके साधनोंकी ओर जब दृष्टि जाती है, विज्ञानने शस्त्रास्त्रोंके रूपमें मनुष्यको लड़ाईके जो साधन जुटा दिये हैं, उनको जब देखते हैं और साथ ही जब अपनी वर्तमान अवस्थापर विचार करते हैं, तब स्वभावतः यह प्रश्न सामने आ जाता है कि आर्योंकी युद्धकला और शस्त्रास्त्रोंका क्या रूप था ? वे किस सिद्धान्तपर लड़ते और किस तरहके शस्त्र और साधनोंसे काम लेते थे ? शस्त्रास्त्रोंके अलावा क्या वे किसी विशेष रण-कौशलसे काम लेते थे और युद्धके सम्बन्धमें क्या कुछ ऐसे नियम भी थे, जिन्हें दोनों पक्ष मानते हों और जिनका न मानना अनुचित माना जाता हो ? इन सब बातोंपर विचार करनेके समय निश्चय ही प्राचीन कालसे मध्यकालको अलग रखना होगा।

मध्यकालसे हमारा अभिप्राय इतिहासके उस कालसे है, जिसके सम्बन्धमें आधुनिक इतिहासकारोंने लिखा है। ईसासे लगभग ५०० वर्ष पहलेसे लगाकर न्यूनाधिक १८५७ ईस्वी तकका समय इसी कालमें समझना चाहिए। इस कालमें जो युद्ध हुए हैं, उनमें जिन शस्त्रास्त्रोंसे काम लिया गया है, वे आजकलकी तुलनामें बहुत ही साधारण कोटिके थे ; यहां तक कि आज उनमेंसे कितने ही शस्त्रास्त्रोंका व्यवहार ही उठ गया है। इतिहासमें यह पढ़नेमें आता है कि ईसासे ३२६ वर्ष पूर्व महावीर सिकन्दरके आक्रमणके समय मगधमें महापद्म नन्द राज्य करते थे, जिनकी सेनामें दो लाख पदाति, २० हजार अश्वारोही, ८००० रथारोही और ३ या ४ हजार गजारोही सैनिक थे। महापद्म नन्दके बाद सम्राट् चन्द्रगुप्तके यहां जो विशाल सेना थी, उसमें भी भारतकी प्राचीन प्रणालीके अनुसार रथारोही, अश्वारोही, गजारोही और पदाति, चारों वर्ग थे। हाथियोंकी संख्या ९००० थी, जिनमें प्रत्येकपर ४ आदमी रहते थे। अश्वारोही सैनिक ३० हजार और पदातियोंकी संख्या ६ लाख थी। महापद्म नन्दकी सेनामें रथोंकी संख्या ८ हजार थी और ऐतिहासिकोंका अनुमान है कि चन्द्रगुप्तकी सेनामें रथोंकी संख्या इससे ज्यादा ही रही होगी। भारतकी इस प्राचीन प्रणालीके आधारपर सङ्गठित सेनाको 'चतुरङ्गिणी' कहा जाता था और एक अक्षौहिणीमें २१८७० रथ, २१८७० हाथी, ६५६१० घोड़े और १०९३०५ पदाति होते थे। चन्द्रगुप्त मौर्यकी सेनाको राजकीय शस्त्रागारसे शस्त्रास्त्र दिये जाते थे और सेनाके चारों विभागोंके प्रबन्धके लिए एक-एक समिति होती थी। एक अन्य समिति भी थी, जिसपर यातायात, रसद और दूसरी तरहके प्रबन्धोंका भार था। जल-सेना सम्बन्धी व्यवस्था करनेके लिए छठी समिति इन सबसे अलग थी। सेनाका सङ्गठन और अनुशासन इतना अच्छा था कि किसान लोग युद्धक्षेत्रके पास ही अपने खेतोंको निर्विघ्न जोतते थे, युद्धसे उनके कार्यमें किसी तरहकी कोई बाधा नहीं पड़ती थी।

सम्राट् चन्द्रगुप्तके शासनके लगभग ९ सौ वर्ष बाद कन्नौजके सम्राट् हर्षवर्द्धनके समयमें यह अवस्था नहीं रह



दलमर्दन तोप।

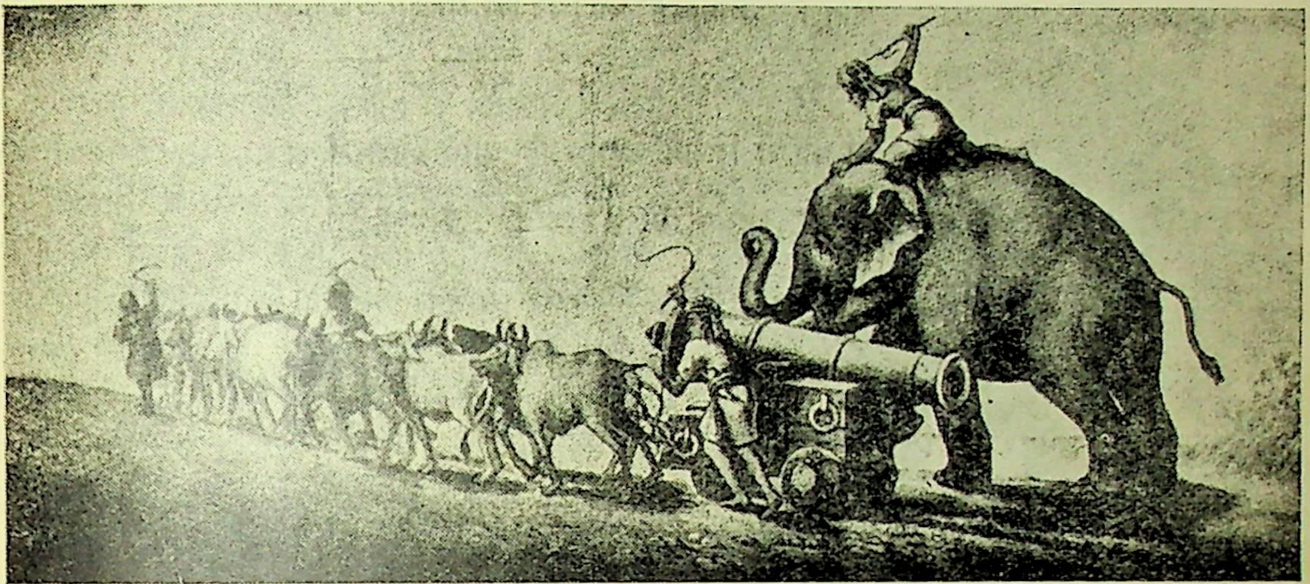
गयी थी। हर्षवर्द्धनका काल इतिहासमें सन् ६०६ ईस्वीसे लगाकर ६४७ ईस्वी तकका माना जाता है। हर्षकी सेनाका जो विवरण मिलता है, उससे यह पता चलता है कि उसकी सेनाके मुख्य अङ्ग तीन थे—अश्वारोही, गजारोही और पदाति। तत्कालीन कवियोंने हर्षकी सेनाके रथोंका उल्लेख कहीं भी नहीं किया है। इससे यह मालूम होता है कि हर्षकी सेनामें रथ नहीं थे। हर्षकी यह सेना युद्धके सभी आवश्यक सामानसे पूरी तरह सुसज्जित थी। जो वर्णन मिलता है, उससे प्रतीत होता है कि जब सेनाका कूच होता था, उसके साथ सुख-विलासके सभी उपकरण चलते थे। राजा और बड़े-बड़े सामन्तोंके भोजनालय भी चलते थे और उनकी रुचिके अनुसार सब प्रकारका भोजन बनता था। यह सब था; परन्तु हर्षकी सेनाका अनुशासन वैसा अच्छा नहीं रह गया था, जैसा चन्द्रगुप्त मौर्यके समयमें था। मार्गमें चलते समय सेना शान्त और सुसंयत नहीं रहती थी। जमींदारोंको यह प्रार्थना करनेकी आवश्यकता होने लग गयी थी कि उनके खेतोंका अन्न लूटा न जाय और नष्ट न किया जाय। सेना गांवोंको ध्वस्त कर देती थी। रास्तेके झोंपड़े भी प्रायः नष्ट कर दिये जाते थे। सैनिकोंसे भिन्न बहुसंख्यक अन्य लोगोंके साथ होनेके कारण सेनाकी गति भी बहुत तेज नहीं होती थी। वह केवल ८ कोस रोजाना चलती थी। यह उल्लेख किया जाता है कि हर्षवर्द्धनकी सेनामें ६० हजार गजारोही तथा १ लाख अश्वारोही सैनिक थे। उन सैनिकोंका मुख्य शस्त्र भाला और तलवार थी। लड़ाई बन्द हो जानेपर सैनिक अपने भाले और तलवारें राजकीय शस्त्रागारमें जमा कर दिया करते थे। प्रत्येक सेनाका सेनापति अलग-अलग होता था। इन सेनापतियोंके अधीन भी अनेक सेनानायक होते थे और सम्पूर्ण सेनाका सेनापति अलग होता था।

महावीर सिकन्दर और सम्राट् चन्द्रगुप्तकी सेना जिन शस्त्रास्त्रोंसे काम लेती थी, उनमें भाला, धनुषबाण और ढाल-तलवार मुख्य हैं। यूनानियोंने अपना भाला कुछ लम्बा

कर दिया था। यह विश्वास करनेका कारण है कि हर्षके समयमें भी लड़ाईमें धनुष-वाणसे काम लिया जाता था। धनुष और वाणका व्यवहार उसी समय होता था, जब शत्रु-की सेना कुछ दूर रहती। वाण साधारण और विषाक्त दोनों ही तरहके होते थे। धनुषसे ४०० गजकी दूरी तक वाण फेंका जा सकता था और यह रिपोर्ट है कि १७९९ ईस्वी तक इंगलैण्डमें भी ऐसे योद्धा थे, जो धनुषसे ४०० गजकी दूरी तक वाण मार सकते थे। यह उल्लेख भी मिलता है कि उस समय इंगलैण्डमें तुर्किस्तानका जो नकीब था—जो दूत था, वह ४८४ गज तक वाण फेंकता था। धनुषवाणके बाद युद्धके महत्त्वपूर्ण शस्त्रोंमें भाले और ढाल-तलवारका नाम आता है और अब तक शस्त्रके रूपमें इस देशमें इनका व्यवहार किया जाता है। यद्यपि लड़ाईमें अब ढाल-तलवार-से काम नहीं लिया जाता है, तथापि उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यभाग तक तलवारों और भालोंसे खूब काम लिया जाता था। शत्रु-सेना जब लड़ते-लड़ते बिलकुल नजदीक आ जाती, तीरोंका युद्ध बन्द हो जाता और भालों एवं तलवारोंकी बारी आती। इस तरहकी भिड़न्तके समयके शस्त्रोंमें कटार-का नाम भी उल्लेखनीय है।

मध्यकालके कुछ अन्य युद्धोंमें भी जिन शस्त्रास्त्रोंका नाम आता है, उनमें तीर-कमान, ढाल-तलवार और भाला-कटारका नाम ही मुख्य है। बारहवीं शताब्दीके अन्तिम वर्षोंमें सम्राट् पृथिवीराज वाण-विद्यामें बहुत कुशल थे और शब्दवेधी वाण चला सकते थे। उनके सामन्तोंमें चामुण्डराय-का वाणका निशाना भी अचूक होता था। उस युगमें सेनामें यद्यपि हाथी होते थे, तथापि हाथियोंकी अपेक्षा घोड़ोंका महत्त्व बहुत ज्यादा समझा जाने लगा था। पृथिवीराजके समकालीन महोबेके आल्हा और ऊदल तलवारके धनी माने जाते थे। इसी कालके आसपास कन्नौजपर मुसलमानोंकी जो चढ़ाई हुई थी, उसमें मुसलमानोंने तलवारके अलावा धनुष और वाणसे भी काम लिया था। कन्नौजके राजा जय-चन्द्रकी मृत्यु युद्धमें तीर लगनेसे हुई थी।

धनुष-वाणका उपयोग युद्धमें इधर अकबरके समय तक होता था—वैसे आज भी देशके कितने ही भागोंमें पहाड़ी इलाकोंके मूल निवासी धनुष-बाण रखते हैं और उसका उपयोग भी करते हैं। पानीपतके मैदानमें हेमचन्द्रने अकबर-का सामना किया था। उसकी सेनामें बहुत-से हाथी थे और वह स्वयं भी हाथीपर सवार था। हेमचन्द्रकी सेनाके हाथियोंने जब अकबरकी सेनापर हमला किया, अकबरकी सेनाके सैनिक तीरोंकी वर्षा करने लगे। इन्हीं तीरोंमेंसे एक तीर हेमचन्द्रकी आंखमें लगा और इससे उसे इतनी व्यथा हुई कि पकड़ लिया गया। अकबरके समयमें धनुष-बाणके अलावा तलवार और भालेको भी पूरी महत्ता दी जाती थी। महाराणा प्रतापका भाला तो प्रसिद्ध ही है। परन्तु इस समय तक बारूदका आविष्कार हो चुका था। यद्यपि तलवार और भाला अपने स्थानपर बना हुआ था, तथापि धनुषबाण-का स्थान धीरे-धीरे बन्दूक ले रही थी और स्वयं अकबरके पास भी एक अच्छी बन्दूक थी, जिसका नाम 'दुरुस्त अन्दाज' था। यह हो सकता है कि निशाना सही लेनेके कारण ही इस बन्दूकका नाम 'दुरुस्त-अन्दाज' रखा गया हो। चित्तौड़के घेरेके समय एक दिन मुसलमानोंको किलेके एक भागको क्षति पहुंचानेमें सफलता मिल गयी। राजपूत सेनानायक जयमल रातमें उस भागकी मरम्मत करा रहे थे। किलेके उस भागमें जो प्रकाश हो रहा था। इस प्रकाशमें अकबरने देख लिया कि क्या हो रहा है। उसी समय उसने अपनी 'दुरुस्त-अन्दाज' बन्दूक उठायी और जयमलको मार दिया। सोलहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें बारूदका आविष्कार होनेके बाद बन्दूकों और तोपोंका व्यवहार दिन-दिन बढ़ता गया है। यह प्रश्न नहीं है कि ये तोपें और बन्दूकें कैसी थीं। धनुष और बाणकी अपेक्षा बन्दूकों और तोपोंमें ज्यादा सुविधा थी, इसलिए कोई आश्चर्य नहीं है, यदि धीरे-धीरे धनुष-बाणने अपना स्थान खो दिया और बन्दूकने उसका स्थान ले लिया। इस कालमें यूरोपमें विज्ञानकी प्रगति तेजीके साथ बढ़ रही थी और युद्धके साधनोंपर भी इसका प्रभाव पड़ रहा था। मुगल बादशाह शाहजहांने युरोपियन गोल-न्दाजोंकी दक्षताको अनुभव किया था इसलिए उसने अपने तोपखानेमें युरोपियनोंको रखा! शाहजहांने यह भी अनुभव किया कि युरोपियनोंकी शैली सेनाका सङ्गठन होनेसे उसकी क्षमता अधिक हो जायगी। जहांगीरके तोपखानेके एक युरोपियन अफसर हिरिअर्टने एक लड़ाईका रथ तैयार किया था जिससे जलते हुए तीरोंकी वर्षा होती थी। ये तीर अपने लक्ष्यके रास्तेकी सभी चीजोंको जलाते हुए आगे बढ़ते थे।

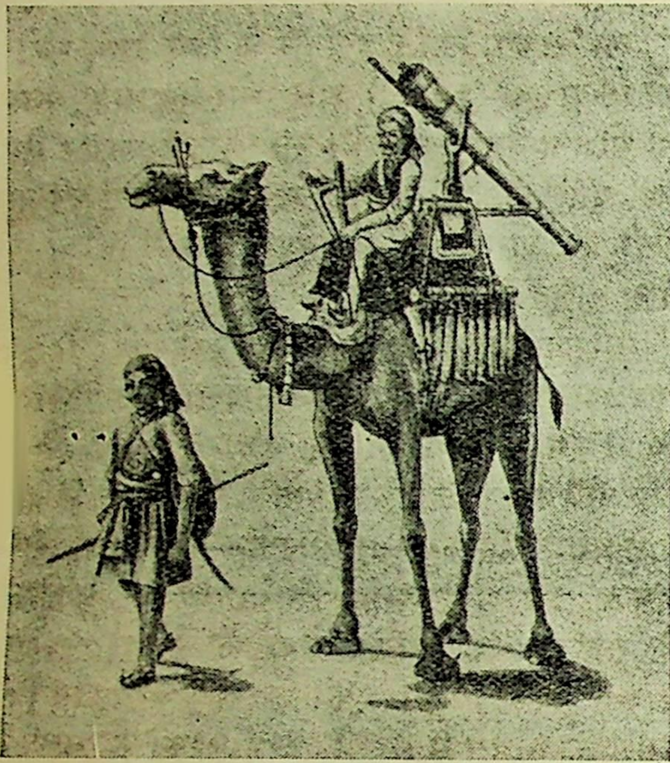


मुगलकालीन एक तोप, जिसे बैल खींचते हैं और हाथी पीछेसे ढकेल रहा है।

हिरिअर्टका पूरा नाम आगस्टिन हिरिअर्ट था। यह फ्रान्सीसी था। बादशाह जहांगीरने आत्मचरित्रमें उसका उल्लेख 'हुनरमन्द' लिखकर किया है। मध्यकालके इन शस्त्रास्त्रोंके समय जिस तरहके जिरह-बख्तरोंका व्यवहार किया जाता था, उनपर विस्तारके साथ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। किसी भी संग्रहालयमें उन्हें आज भी देखा जा सकता है।

सत्रहवीं शताब्दीके उत्तरार्द्धमें छत्रपति शिवाजीके चरित्र-की एक घटना—अफजल खां-वधके साथ जिस शस्त्रका नाम आता है, वह बघनख है। इसके कांटे बाघके नखोंकी तरह होते थे। बारूदका आविष्कार होनेके बाद इस देशमें जो तोपें बनायी गयीं, वे अब तक बहुत स्थानोंमें पायी जाती हैं। किला शिकन, दलमर्दन आदि इन तोपोंके नाम होते थे। भारी-भारी तोपोंको हाथी खींचते थे और हल्की तोपोंको ऊंटपर लादकर ले जाते थे। बङ्गालके इतिहासमें विष्णुपुरकी दलमर्दन तोपका नाम मिलता है। सन् १७४२ ईस्वीमें भास्कर पण्डितके नेतृत्वमें जब मराठोंने विष्णुपुरपर हमला किया, तब इस दल-मर्दन तोपसे काम लिया और मराठोंको भगा दिया गया था। यह दलमर्दन तोप १२ फीट ५॥ इञ्च लम्बी है। उसके मुंहका व्यास बाहरी सिरेपर ११॥ इञ्च और बाकी लम्बाईमें १४॥ इञ्च है। उसपर फारसी लिपिमें जो लिखावट है, उसमें यह बतलाया गया है कि दलमर्दनको बनानेमें १। लाख रुपये खर्च हुए थे। इतना अर्सा बीत जानेपर भी आज तक इस तोपमें कहीं मोर्चा नहीं लगा है।

जिस युगको इस निबन्धमें मध्यकाल मान लिया गया है, उससे पहलेके समयको प्राचीन आर्यकाल कहना चाहिए। इस कालमें आर्योंकी युद्ध-प्रणाली क्या थी और उनके पास कैसे शस्त्रास्त्र थे, इसकी जानकारीके लिए आर्य साहित्यमें प्रचुर सामग्री है। रामायण और महाभारतसे इसपर पूरा प्रकाश पड़ता है। उस कालमें सेनाका सङ्गठन चतुरङ्गिनीके रूपमें होता था। प्रधान सेना-पतिके अधीन कितने ही अन्य सेना-नायक होते थे और युद्धकालमें रक्षा सम्बन्धी कार्यका विभाग कर दिया जाता था, यही नहीं, विशेष अवसरोंपर विशेष व्यक्तियोंको भी नायक बनाकर युद्ध-क्षेत्रमें भेजा जाता था। शत्रु-पक्षका भेद लेनेके लिए उस कालमें जासूस रखे जाते थे। ये जासूस भी दूतकी तरह अवध्य माने जाते थे; परन्तु उन्हें दण्ड दिया जा सकता था, यदि वे अनुक्तवादी हों, जो सन्देश देकर भेजा गया हो, उससे भिन्न कुछ अपनी ओरसे कहें। चतुरङ्गिनी सेनाके रथोंमें घोड़े जोते जाते थे। रामायणसे पता चलता है कि रावणकी चतुरङ्गिनी सेनामें किसी-न-किसी रूपमें ऊंट भी थे। सेनाके प्रस्थान करनेके समय बाजे बजाये जाते थे। उस समयके बाजोंमें पटह, शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, पणव और दुन्दुभि आदिका नाम मिलता है। भेरी लकड़ीसे बजायी जाती थी। प्रायः किलोंके चारों ओर गहरी खाई होती थी,



राजपूतानेकी एक तोप ऊंटपर।

जिसमें पानी भरा रहता था। इस खाईके पार किलेमें पहुंचनेके लिए टूटके पुल होते थे, जिन्हें जब चाहें तब उठाया जा सकता था।

रामायणकालीन शस्त्रास्त्रोंमें धनुष और वाण मुख्य-वाण अनेक नामोंके होते थे, जैसे क्षुर, क्षुरप्र, नालीक, अर्धचन्द्र, उत्तमकर्ण, भल्ल नाराच, अर्धनाराच, अञ्जलिक, वत्सदन्त, सिंहदंष्ट्र, शिलीमुख, कर्णिशल्य, विपाठ आदि। वाणोंके कितने ही नाम इस तरहके पाये जाते हैं—सिंहमुख, व्याघ्रमुख, कङ्कमुख, कोकमुख, गृध्रमुख, श्येनमुख, शृगालमुख, बकमुख, मृगमुख, सर्पमुख, गर्दभ मुख, शूकर मुख, कुकुर मुख, कुकुटमुख और मकरमुख। मालूम होता है कि वाणोंकी बनावटपरसे ही ये नाम रखे गये हैं। धनुष और वाणके अलावा जिन अन्य शस्त्रास्त्रोंके नाम आते हैं, उनकी संख्या भी कम नहीं है। इन शस्त्रास्त्रोंमें ढाल-तलवार और भालेके अलावा मुशल, मुद्गर, शक्ति, पाश, कुठार, शूल, परशु, क्षेपणी, परिघ, गदा, अंकुश, वज्र, तोमर, परश्वध और भिन्दि-पाल आदिका नाम बहुत आता है। तलवार कई तरहकी होती थी—खड्ग, असि, कृपाण आदि। ऋष्टि उस तलवारको कहते थे, जिसमें दोनों ओर धार होती थी। खड्ग वह तलवार है जिसे हम मन्दिरोंमें कालीजीके हाथमें देखते हैं। तोमर एक तरहका लोहेका डण्डा-सा होता था, जिससे शत्रुपर प्रहार किया जाता था। परश्वध एक प्रकारका कुठार ही था, जिससे लड़ाईमें काम लिया जाता था। भाला भी कई जातिका होता था। पट्टिश उस भालेको कहते थे, जिसका सिरा बड़ा नुकीला होता था, जो बहुत तेज होता था। इसी तरह भुशुण्डी एक ऐसा अस्त्र था, जिसे फेंककर शत्रुपर मारते थे। एक बड़े शिलाखण्डमें लोहेके कीले गाड़कर शतघ्नीको तैयार किया जाता था और इसे भी शत्रुपर फेंकते थे। शक्ति बड़ी पैनी होती थी और उसका प्रहार भी फेंककर किया जाता था। इनके अलावा वृक्षों और पत्थरोंको भी शत्रुपर फेंककर प्रहार करते थे। वाण विषाक्त भी होते थे, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है।

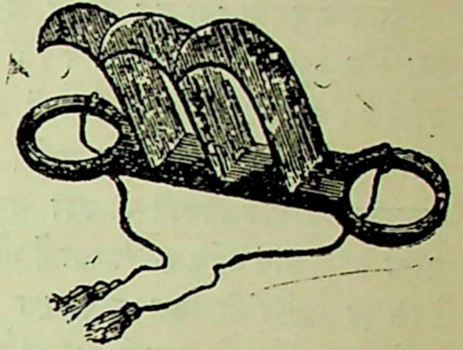
साधारण वाणोंके अलावा मान्त्रिकास्त्रोंका प्रयोग उस कालमें होता था—यह उल्लेख भी जगह-जगहपर मिलता है। इन मान्त्रिकास्त्रोंकी भौतिक शक्तिके सिलसिलेमें अग्नि, वायु, वरुण, सूर्य, रुद्र, त्वाष्ट्र और लोष्ट्र आदि नाम आते हैं। मान्त्रिकास्त्रोंसे अल्पकालमें ज्यादासे ज्यादा शत्रुओंका नाश किया जा सकता था। उनकी शक्ति साधारण कामोंसे कुछ अधिक होती थी। वारुण, आग्नेय, ऐन्द्र, वायव्य और और ब्रह्मशिरा अस्त्रोंका प्रयोग राम जानते थे। रावणने नीलपर आग्नेय मन्त्रसे मन्त्रित वाण फेंका था, जिससे वे जलते हुए गिर पड़े थे। इसी तरह रुद्रास्त्रसे वारुणास्त्रको, सौर्यास्त्रसे आग्नेयास्त्रको और माहेश्वर अस्त्रसे आसुर वाणको व्यर्थ कर देनेका भी वर्णन है। लक्ष्मणके आग्नेय वाणको रुद्रास्त्रसे अतिकायने रोक दिया था। इसी तरह अतिकायके त्वाष्ट्र वाणको लक्ष्मणने ऐन्द्रास्त्रसे काट दिया था। इसी तरह याम्यास्त्रको वायव्यास्त्रसे और नागपाशको गारुड़ास्त्रसे व्यर्थ कर देनेका वर्णन पाया जाता है। इसी तरह गन्धर्वास्त्र, देवास्त्र और ब्रह्मास्त्र भी थे। आसुर अस्त्रके विषयमें यह पढ़नेमें आया है कि जब उसे छोड़ा गया, तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो सर्प आग उगलते हुए बढ़ रहे हों। चक्र नामक जिस अस्त्रका वर्णन आता है, वह छः हाथ घेरेका पहियेके समान लोहेका बना होता था। उसमें तेज धार होती थी और दोनों हाथोंसे घुमानेसे उसमें जब गति पैदा हो जाती, तब उसे शत्रुपर फेंकते थे। इसमें एक डोरी रहती थी, जिसके

सहारे यह अस्त्र निर्दिष्ट दूरी तक जाकर फेंकनेवालेके पास लौट आता था। चक्र चलानेवालेके लिए बलवान होना आवश्यक था।

रामायणमें गरुड़-व्यूहका उल्लेख है। रामचन्द्रने लङ्का-पर गरुड़-व्यूह बनाकर आक्रमण किया था। महाभारतके चक्रव्यूहकी कथासे सभी परिचित हैं, जिसमें घिरे हुए अभिमन्युको कौरव-पक्षके जयद्रथने मार डाला था। इसी तरह शकटव्यूह, मकरव्यूह आदि कितने ही व्यूहोंका नाम आता है। व्यूह युद्धक्षेत्रमें सेनाको खड़े करनेकी एक विशेष प्रणाली है। प्राचीन कालके आर्योंको व्यूह-रचनाका अनुभव था और वे सेनाका व्यूह बनाकर शत्रुसे लड़ते थे। महाभारतके समयमें व्यूह-रचनाकी कला अपनी चरम सीमाको पहुंच गयी थी और उसके बाद भी बहुत समय तक इस देशके रणकौशलमें उसका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान था। कौटिल्यने अपने अर्थ-शास्त्रमें इन व्यूहोंका वर्णन किया है।

आर्योंके प्राचीन युद्धोंके जो वर्णन मिलते हैं, उन्हें पढ़नेसे यह स्पष्ट है कि वे कई तरहसे युद्ध करते थे। आज जिस तरह हवाई जहाजोंसे आक्रमण होता है, उसी तरह प्राचीन आर्यकालमें भी वैमानिक युद्ध होता था और आकाशमें उड़कर शत्रुपर अस्त्रप्रहार किया जाता था। इसी तरह चक्रयुद्ध, अस्त्रयुद्ध और शस्त्रयुद्ध भी आर्य योद्धा करते थे। इन सबके अलावा युद्धका एक अन्य प्रकार भी प्रचलित था और वह था बाहु-युद्ध। इस युद्धमें दोनों योद्धा परस्पर भिड़ जाते थे और शस्त्र अलग रखकर घूंसों, चपेटों और लातोंसे मारते और मल्लयुद्धके दूसरे पेचोंसे काम लेते थे। इन युद्धोंमें जिन शस्त्रोंसे काम लिया जाता था, उनकी दृष्टिसे भी वर्गीकरण किया गया है। धनुषका युद्ध श्रेष्ठ माना गया है। भालेके युद्धको मध्यम ठहराया गया है। तलवारका युद्ध निम्न कोटिका और बाहु-युद्ध उससे भी अधिक निम्न कोटिका कहा गया है। गदायुद्धकी गणना निकृष्ट श्रेणीके युद्धोंमें की गयी है। इन प्राचीन शस्त्रास्त्रोंका व्यवहार करनेमें जो योद्धा बहुत कुशल हो गये हैं, उनके नाम भी प्राचीन ग्रन्थोंमें आते हैं।

युद्धके सम्बन्धमें आर्योंमें कितने ही नियमोंका पालन बड़ी कड़ाईके साथ होता था। रामायण-कालमें यह पाया जाता है कि अंधेरा हो जानेपर रात्रिमें भी युद्ध होता रहता था; परन्तु महाभारतके समयमें यह बात नहीं पायी जाती। महाभारत काल-में दिन-भर युद्ध करनेके बाद रात्रिमें योद्धा विश्राम करते थे, दूसरे दिनके युद्धके लिए आवश्यक परामर्श और तैयारी किया करते थे। मल्लयुद्ध अथवा बाहुयुद्धके विषयमें यह नियम प्रचलित था कि युद्ध-लग्न वीरोंको दांव-पेंचके सम्बन्धमें किसीको कोई सङ्केत नहीं करना चाहिए। जरासन्धसे जब भीम लड़ रहे थे, श्रीकृष्णने टांग पकड़कर चीर देनेका सङ्केत किया था। इसपर जब भीमने वैसा ही किया और जरासन्धको मार डाला, श्रीकृष्णके इस कार्यको अनुचित ही माना गया। इसी तरह महाभारतके अन्तमें दुर्योधनके साथ भीमका गदायुद्ध हुआ था। इसमें भी भीमने गदायुद्धके प्रचलित नियमके विपरीत दुर्योधनको कटिसे नीचे जङ्घामें चोट पहुंचायी थी और यद्यपि इसका कारण दूसरी तरह बतलाया जाता है, तथापि भीमका यह कार्य निन्द-नीय होनेमें सन्देह नहीं है। श्रीकृष्णके भाई बलरामने भी उसी समय इसे बुरा कहकर अपना क्रोध प्रकट किया था।



शिवाजीका प्रसिद्ध शस्त्र बघनख।

भारतीय योद्धाओंने हमेशा ही स्त्रियोंपर शस्त्रास्त्र उठाना अपनी शानके विरुद्ध समझा है और महाभारतमें तो महात्मा भीष्मने यह साफ ही कह दिया कि यदि शिखण्डी सामने आकर प्रहार करेगा, तो वे उसपर किसी शस्त्रास्त्रसे वार करनेमें असमर्थ हो जायंगे, क्योंकि शिखण्डी अपने पूर्व-जन्ममें स्त्री था। शिखण्डीके पूर्व-जन्मके विषयकी यह बात महात्मा भीष्मको मालूम थी, इसीलिए उन्होंने पाण्डवोंको अपनी मृत्युका रहस्य बतलानेके लिए वैसा कहा था। परन्तु यह साधारण अवस्थाके लिए ही कहा जा सकता है, विशेष अवस्थाओंमें तो हम स्वयं स्त्रियोंको खड्गहस्ता होकर रण-क्षेत्रमें जाता हुआ पाते हैं और भारतीय नारी-समाजका यह चरित्र इतना पुराना है कि बड़ौदेके श्री गोविन्द शास्त्री गाडगीलके मतानुसार ऋग्वेद-कालमें भी स्त्रियां युद्धक्षेत्रमें उतरती थीं।

आर्यों के युद्धशास्त्रका मूल ग्रन्थ है धनुर्वेद, जिसमें युद्ध, शस्त्र, अस्त्र, व्यूह और कलाका वर्णन है। धनुर्वेद यजुर्वेदका उपवेद है। धनुर्वेदमें धनुषवाणके विषयमें प्रधान रूपसे कहा गया है। इसीलिए उसका नाम धनुर्वेद हुआ, वैसे उसमें अन्यान्य शस्त्रास्त्रोंके विषयमें भी कहा गया है। यजुर्वेद बतलाता है कि क्षात्र धर्मके कर्तव्य क्या हैं और धनुर्वेद बतलाता है कि इन कर्तव्योंको किस तरह पूरा करना चाहिए। धनुर्वेद मानता है कि युद्धकी आत्मा है राजनीति और उसका शरीर है युद्ध-क्षेत्रमें सैनिकोंका व्यूह बनाकर खड़ा होना और लड़ना। अस्तु।

आर्योंकी युद्ध-कलाके सम्बन्धमें प्राचीन और मध्य-कालीन ग्रन्थोंमें, खासकर रामायण और महाभारतमें जो विवरण मिलता है, उससे यह निश्चित रूपसे स्थापित हो जाता है कि प्राचीन भारतमें उसका विकास अच्छी तरह हुआ था, उसने बड़ी उन्नति की थी। आर्योंका युद्ध-शास्त्र प्रगतिशील था, श्रेष्ठ था और उनके शस्त्रास्त्र भी बढ़िया थे, वे अपना काम खूब करते थे। उस कालमें हम आर्योंको आकाशमें युद्ध करते पाते हैं। युद्धक्षेत्रके लिए आकाशमार्गसे प्रस्थान करने और आकाशमें ठहरकर युद्ध करनेका भी उल्लेख मिलता है। यद्यपि इन सब बातोंके साथ वायुयान-जैसी किसी चीजका नाम नहीं आता; परन्तु जब आकाश-मार्गसे जाने और आकाशमें ठहरकर युद्ध करनेकी बात मिलती हो, तब यह मानना ही होगा कि उस कालमें अवश्य ही कोई-न-कोई साधन —पुष्पक यानसे अलग—ऐसा होगा, जिसका उपयोग वायुयानकी तरह हो सकता होगा। इसी तरह शस्त्रास्त्रोंके सम्बन्धमें जैसा वर्णन आता है, उससे यह मालूम होता है कि आर्योंके शस्त्रास्त्रोंमें भी अद्भुत क्षमता थी। कई अस्त्र शत्रुको मारकर प्रहार करनेवालेके पास लौट आते थे। कई तरहके वाण अग्निकी तरह जलते हुए जाते थे। शक्तिका उल्लेख "सधूम अग्निके समान" लिखकर किया गया है। आजकल पृथिवी और आकाशसे शत्रुपर अग्निवर्षा करनेके जो साधन हैं, वे प्राचीन कालसे कुछ भिन्न हो सकते हैं; परन्तु जहां तक इन साधनोंके परिणामका सम्बन्ध है, वर्तमान और प्राचीन कालमें ज्यादा अन्तर नहीं मालूम होता। आजकल शत्रुके आक्रमणकारी जहाजोंकी गोलाबारीसे बचनेके लिए धुंआ छोड़कर जिस तरह आड़ कर दी जाती है और जर्मनोंने फ्रान्समें नदियोंपर पुल बनानेके लिए जिस तरह कृत्रिम कुहरा पैदा कर दिया था, वैसे ही किसी उपायका ज्ञान उस कालमें भी आर्योंको था। इस तरहके वर्णन अनेक स्थानोंपर मिलते हैं। ऐसे अस्त्र भी थे, जो जलको सुखा सकते थे। इसी तरह ऐसे यन्त्रोंका भी उल्लेख मिलता है, जिनसे वजनदार चीजोंको स्थानान्तरित करते थे। रामचन्द्रने जब समुद्रका पुल बनाया था, तब वजनदार पत्थरोंको इन्हीं यन्त्रोंकी सहायतासे लाया गया था। महाभारतमें हम यह पाते हैं कि सञ्जय हस्तिनापुरमें धृतराष्ट्रके पास बैठे कुरुक्षेत्रके युद्धको देखते और उन्हें सारा हाल सुनाते थे। यह सब किस तरह होता था, यह एक रहस्यकी बात है; परन्तु जब सञ्जय वैसा करते थे, तब आजकलके टेलीविजनका काम करनेवाला कोई-न-कोई साधन उनके पास अवश्य था, कमसे कम इसे मानना ही चाहिए। प्राचीन कालमें यह सब था; परन्तु महाभारत-कालके इधर अवस्था कुछ भिन्न हो गयी थी और मालूम होता है कि युद्धकी वह कला और वह विज्ञान ही लुप्त हो गया था। क्योंकि महाभारतके इधरका इतिहास जबसे मिलता है, उससे वैसे शस्त्रास्त्रों और अन्य साधनोंका पता नहीं चलता। इस ऐतिहासिक कालमें प्रतीत होता है कि इस कलाको अधिकाधिक उन्नत बनाने और शस्त्रास्त्रोंको आधुनिकतम रखनेकी ओर कम ध्यान दिया जाने लगा—ज्ञान और विज्ञानका उसके साथ पहले-जैसा सम्बन्ध नहीं रह गया था। इसके फलस्वरूप आगे चलकर हम यह पाते हैं कि इस देशकी सीमासे बाहर जहां शक्तियां युद्धके पुराने साधनोंमें सुधार कर रही थीं, तरह-तरहकी आवश्यकतायें अनुभव कर तरह-तरहके आविष्कार कर रही थीं, वहां इस देशमें उन्हीं पुराने शस्त्रास्त्रों और साधनोंसे काम लिया जा रहा था, नवीनतम युद्ध-कला और शस्त्रास्त्रों सम्बन्धी विज्ञानकी ओर किसीका ध्यान ही न था।

युद्धमें विज्ञानके करिश्मे

श्री मातादयाल सिंह, बी० ए० बी० एल०

कई महीने पहले जब यह मालूम हुआ कि जर्मनोंने चुम्बकीय सुरङ्गोंका आविष्कार किया है और उन्हें ब्रिटेन और फ्रान्सके जहाजोंके मार्गमें डाल दिया है, तब सारा संसार चकित हो गया। कुछ समय तक तो इन चुम्बकीय सुरङ्गोंके कारण बड़ा आतङ्क रहा; परन्तु प्रतीत होता है कि जर्मनोंको इस दिशामें बहुत अग्रसर होनेमें सफलता नहीं मिली और इधर तो ऐसा समझ पड़ता है कि चुम्बकीय सुरङ्गके चमत्कारके दिन समाप्त हो गये हैं। ब्रिटिश वैज्ञानिकोंको चुम्बकीय सुरङ्गोंका जो अनुभव हुआ, उसके आधारपर वे उससे त्राण पानेके लिए कोई-न-कोई उपाय खोज निकालनेका प्रयत्न कर रहे हैं और जिस समय तक ये पंक्तियां प्रकाशित हों, यह सम्भव है कि उस समय तक कोई-न-कोई उपाय वे खोज निकालनेमें सफल हो जायं। किसी संहारक शस्त्र या अस्त्रका आविष्कार होनेके बाद यह तो होता ही है कि कुछ दिनों बाद उससे रक्षा करनेका साधन भी निकल आता है; परन्तु यह हो जानेपर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि युद्धके वर्तमान संहारक साधनोंमें चुम्बकीय सुरङ्गका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इससे पहले जो सुरङ्गें बिछायी जाती थीं, उन्हें बटोर लेने या बन्दूकसे निशाना लेकर उड़ा देनेका उपाय निकाल लिया गया था; परन्तु चुम्बकीय सुरङ्गके विरुद्ध वैसा कोई उपाय काम नहीं दे सकता। युद्धके समयमें जहाजोंके यातायातके लिए जो भी व्यवस्था उपयुक्त हो सकती है, उसे चुम्बकीय सुरङ्गोंके आविष्कारने भयावह बना दिया है। किसी भी ज्ञात उपायसे यह पता नहीं लग सकता कि चुम्बकीय सुरङ्ग कहां बिछी हुई है। ये सुरङ्गें बड़ेसे बड़े जङ्गी जहाजको नष्ट कर सकती हैं और किसी क्षेत्रमें यदि उन्हें बहुत ज्यादा संख्यामें बिछाया गया हो, तो कई चुम्बकीय सुरङ्गें फूटकर तत्काल ही उसे डुबा सकती हैं। इससे जो हानि हो सकती है, उसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

चुम्बकीय सुरङ्गोंकी विशेषता यह है कि वे जहाजोंको शीघ्र ही निश्चित रूपसे डुबा देती हैं। हलकी तो वे इतनी होती हैं कि कोई हवाई जहाज १०-१२ सुरङ्गोंको एक साथ लेकर उड़ सकता है और शत्रु-देशके जहाजोंके मार्गमें बिछा सकता है। यह खयाल किया जाता है कि इन सुरङ्गोंके बलसे जहाजोंका यातायात बन्द किया जा सकता है।

चुम्बकीय सुरङ्गें दो तरहकी होती हैं—एक तो वे, जो छिछले पानीमें बिछायी जाती हैं और दूसरी वे, जो गतिशील होती हैं और जिन्हें गहरे पानीमें डाला जाता है। लोगोंका खयाल है कि पैराशूटके सहारे इन चुम्बकीय सुरङ्गोंको हवाई जहाजसे गिरा दिया जाता है। यह खयाल गलत है। चुम्बकीय सुरङ्गें काफी हलकी होती हैं। उनमें तार या लङ्गर नहीं रहता, इसलिए उन्हें हवाई जहाजसे समुद्रमें गिरानेके लिए पैराशूटकी जरूरत ही नहीं होती। २०० फीटकी ऊंचाईपर उड़ता हुआ हवाई जहाज आसानीसे गिरा सकता है। इससे उसके भीतरी भागोंकी कोई क्षति नहीं होती और न वह जल ही उठती है कि धड़ाका हो जाय। जब तक सुरङ्ग समुद्रमें डूब न जाय और उसके आसपासके पानीका दबाव एक स्प्रिङ्गदार पुर्जेपर न पड़े, तब तक हवाई जहाजसे गिरने-मात्रसे चुम्बकीय सुरङ्गकी टोपी जलती नहीं।

चुम्बकीय सुरङ्गें यदि गहरे पानीवाली हों, तो हवाई जहाज १०० फीटसे लगाकर २०० फीटकी ऊंचाई तक उड़कर उन्हें गिरा सकता है। समुद्रमें गिरते ही ये सुरङ्गें तुरन्त ४०० फीटकी गहराई तक पानीमें चली जाती हैं। इनकी बनावटमें तीन हिस्से होते हैं। ऊपरके हिस्सेमें एक बैटरी, एक चुम्बकीय यन्त्र, बिजलीके कई तार और दो अन्य यन्त्र होते हैं। सुरङ्गके मध्यभागमें विस्फोटक पदार्थ रहते हैं और उनके भड़क उठनेके लिए एक टोपी भी होती है। नीचेके हिस्सेमें एक नलीमें हवा भरी रहती है, जो आसपासकी खाली जगहका पानी निकल जानेपर सुरङ्गको ऊपर उठा देती है और उसे गति प्रदान करती है। इसी नलीके सिरेपर एक अन्य नली द्वारा सुरङ्गका ऊपरी भाग जुड़ा रहता है और इस अन्य नलीके नीचेवाले हिस्सेमें फ्यूज और स्प्रिङ्गदार ट्रिगर-वाल्ब होता है। सुरङ्गका वजन कुछ इस तरह सवा



टैङ्कनाशक बोतल, इसमें भरा हुआ विस्फोटक पटकनेके साथ ही जलने लगता है।

रहता है कि समुद्रमें पड़नेपर उसका पिछला भाग ही नीचे रहता है। यह सुरङ्ग जब पानीमें ७० फीट नीचे पहुंच जाती है, तब बाहरसे ३९ पौण्ड दबाव होते ही ऊपरी हिस्सेमें लगे हुए दो यन्त्रोंमेंसे एक भीतरकी ओर हट जाता है। उसके हटनेसे एक नलीकी सील खुल जाती है और उसके बाद ही बिजलीके संयोगसे चुम्बकीय यन्त्रका ब्रेक खुल जाता है और सुरङ्ग समुद्रकी तहमें चली जाती है।

कोई जहाज जब समुद्र-गर्भमें पड़ी हुई इस रहस्यपूर्ण सुरङ्गसे आध मील होता है, चुम्बकीय यन्त्रमें हलका कम्पन होने लगता है। जहाज ज्यों-ज्यों नजदीक आने लगता है, चुम्बकीय यन्त्र धीरे-धीरे ऊपरकी ओर खसकता है—यहां तक कि ६९ अंशका कोण बनने लगता है। संहारका कार्य इसी समय आरम्भ होता है। चुम्बकीय यन्त्रने ६९ अंशका कोण बनाया नहीं कि बिजलीके सम्पर्कसे फ्यूज गल जाता है और हवाका बाल्व खुल जाता है। इसके बाद ही सुरङ्ग अपने स्थानसे उठने लगती है और समुद्रके जलकी सतहसे ९० फीट नीचे रहनेपर जल उठती है और बड़े जोरका धड़ाका होता है।

चुम्बकीय सुरङ्गमें अभी सुधार होनेकी बहुत गुन्जायश है। आजकल यह सुरङ्ग जिस रूपमें है, उसमें वह निश्चित रूपसे किसी चुम्बकीय आकर्षणसे जहाजके पीछे नहीं लगती और न जहाजसे टक्कर लेती है। उसका ध्वंसात्मक कार्य वैसे ही होता है, जैसे समुद्रके पानीमें भीतर किसी पनडुब्बीपर फेंके हुए बमोंका।

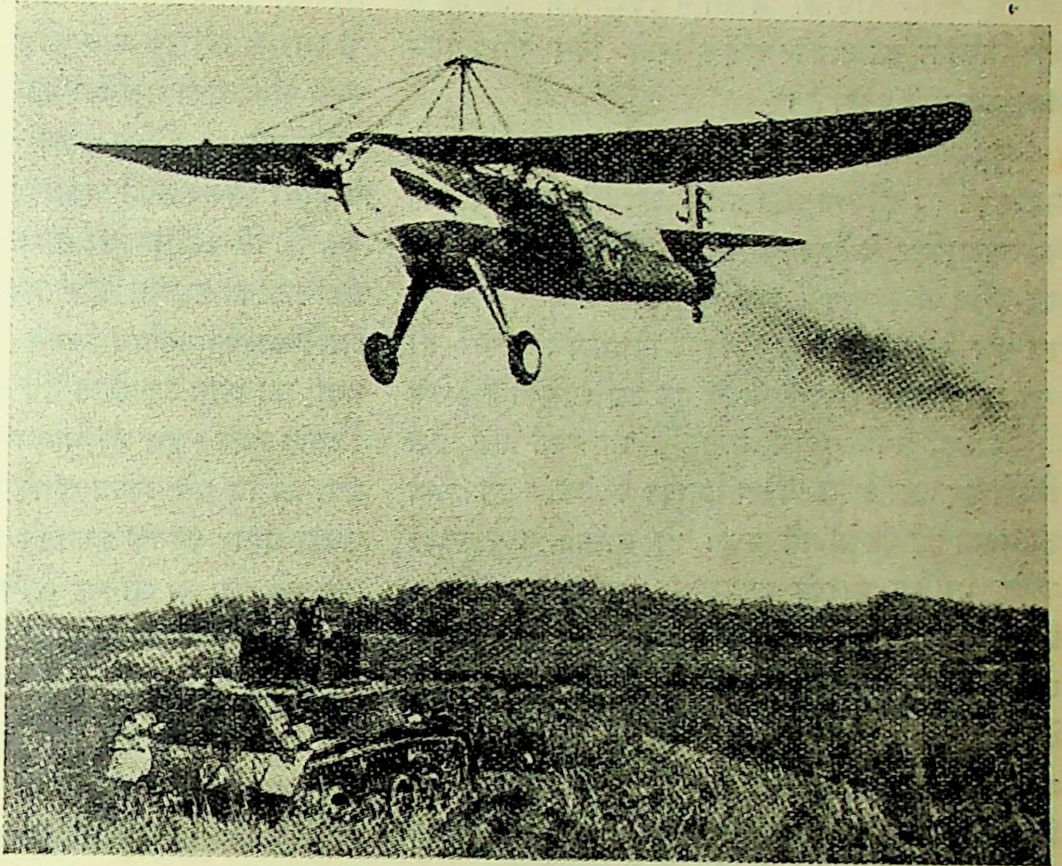
छिछले समुद्रमें काम देनेवाली चुम्बकीय सुरङ्गें भी अपना सारा काम गहरे पानीवाली चुम्बकीय सुरङ्गोंकी तरह ही करती हैं। अन्तर इतना ही होता है कि ये हलकी ज्यादा होती हैं। इनमें वायु-प्रणाली नहीं होती। ये अपने स्थानसे उठ नहीं सकतीं और जहां होती हैं, वहीं फूट जाती हैं। एक बड़ा अन्तर इन सुरङ्गोंमें यह भी है कि चुम्बकीय यन्त्रको इस तरह ठीक कर रखा जाता है कि ९० अंशका कोण बनते ही विस्फोट हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि कोई जहाज जिस समय इस सुरङ्गके ऊपरसे निकलनेको होता है, उसी समय विस्फोट हो जाता है।

युद्धके अन्तमें जब सन्धि होगी, एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह होगा कि इन चुम्बकीय सुरङ्गोंका खतरा कैसे दूर किया जाय। तारकी जाली डालकर जहाजोंकी सहायतासे इन सुरङ्गोंको बटोरा नहीं जा सकता; क्योंकि वैसा करनेसे ये जहाज नष्ट हुए बिना नहीं रह सकते। ये जहाज यदि काठके बनाये जायं, तो भी उनमें कुछ मशीनें तो ऐसी लगेंगी ही, जिनपर चुम्बकीय प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता। इसलिए सन्धि होनेके समय चुम्बकीय सुरङ्गोंके खतरेसे समुद्र-मार्गको निरापद करनेका काम एक महत्त्वपूर्ण समस्या होगी।

चुम्बकीय सुरङ्गसे पहले जिन सुरङ्गोंका व्यवहार होता था और जिनसे आज भी काम लिया जाता है, वे दो तरहकी होती हैं—स्थिर और चर। स्थिर सुरङ्गोंको जहां बिछाया जाता है, वे वहीं रहती हैं। विस्फोटक पदार्थ रहता तो समुद्रमेंके पानीमें है; परन्तु एक तारके सहारे इससे जुड़ा रहता है। चर सुरङ्गकी बनावट भी इसी तरहकी होती है; परन्तु वह समुद्रकी लहरोंपर चलती-फिरती रहती है। कोई जहाज समुद्रकी सतहपर ज्योंही इस सुरङ्गसे टकराता है, तारके सहारे लटका हुआ विस्फोटक पदार्थ धड़ाकेके साथ फूट जाता है। इन सुरङ्गोंको नष्ट करनेके लिए पहले

तार काट देते हैं और बादमें उन्हें बन्दूकका निशाना बना डालते हैं।

सुरङ्गोंकी भांति ही और शायद उनसे भी अधिक भयङ्कर एक अन्य अस्त्र है टारपीडो। वर्तमान महासमरमें टारपीडो फेंककर कितने ही जहाजोंको हमेशाके लिए समुद्र-गर्भमें बैठा दिया गया है। यह भी एक प्रकारका बम ही है। इसके प्रथम आविष्कारक राबर्ट फुल्टन थे। उस समय यह सुरङ्गोंकी तरह था; परन्तु बादमें राबर्ट ह्वाइट नामक वैज्ञानिकने उसे वर्तमान रूप दिया, उसे गति प्रदान की। १८६४ में जो टारपीडो सर्वप्रथम तैयार हुआ था, उसकी मार लगभग ३॥ फर्लाङ्ग थी; परन्तु आजकलके टारपीडोकी मार लगभग ३ मील तक है। साधारणतः इतनी दूर पहुंचनेमें उसे ४॥ मिनटसे ज्यादा समय नहीं लगता। पनडुब्बियां जिस ट्यूबमें टारपीडो रखती हैं, उसका मुंह पहले दोनों ही ओरसे बन्द रखते हैं और जब टारपीडो छोड़ना होता है, बाहरकी ओरका मुंह खोल देते हैं और दबायी हुई हवा और गैसके जोरसे टारपीडो सीधा अपने लक्ष्यकी ओर चल पड़ता है। यह सीधा चलता है और तिरछा भी चल सकता है। इसके लिए इसमें गेरिस्कोप यन्त्र लगा रहता है। एक बड़े जहाजको डुबानेके लिए ३-४ टारपीडो काफी हैं। पहले टारपीडो पानीके ऊपर फिसलता हुआ बढ़ता था; परन्तु आज तो वह पानीके भीतर-ही-भीतर अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ता है और ऊपरसे प्रकाशकी एक रेखा-मात्र दिखलाई पड़ती है। आजकल टारपीडो फेंकनेमें बेतार यन्त्रसे भी काम लेने लगे हैं। मोटर बोटों द्वारा भी टारपीडो फेंके जाते हैं; परन्तु मुख्यतः इसका प्रयोग पनडुब्बियों द्वारा ही किया जाता है।



युद्धमें हवाई जहाजों और टैङ्कोंका सहयोग।

पनडुब्बी समुद्रमें अन्दर-ही-अन्दर बिजलीके मोटरसे चलती है। इसमें एक यन्त्र रहता है, जिससे पानीके अन्दर भी मार्ग देखा जा सकता है। जैसी जरूरत होती है, उसके अनुसार पनडुब्बी कम या ज्यादा गहरे पानीमें चली जाती है। इसके लिए उसमें एक टङ्की होती है, जिसमें कम या ज्यादा पानी भरनेसे वैसा हो जाता है। पनडुब्बियोंमें जो लोग रहते हैं, वे सांस लेनेके लिए प्राणप्रद वायुके डिब्बे रखते हैं। इस कार्यके लिए डेविस यन्त्रका भी व्यवहार होता है। पनडुब्बीके दरवाजे खूब सुदृढ़ होते हैं और बेतार यन्त्रसे खबर भेजनेके साधन भी रहते हैं। यह पनडुब्बीकी बैटरियोंकी ताकतपर निर्भर है कि वह कितने अर्से तक लगातार पानीके अन्दर रह सकती है। वर्तमान महासमरमें ये पनडुब्बियां जहाजोंके लिए बड़ी भयङ्कर साबित हुई हैं; परन्तु पानीके

भीतर फूटनेवाले गोलोंकी मारसे ये पनडुब्बियां घबड़ाती हैं और निशाना लग जानेपर इन्हें हमेशाके लिए समुद्र-गर्भमें चला जाना ही पड़ता है।

युद्ध-सम्बन्धी आविष्कारोंमें टैङ्कका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान महासमरमें जर्मनीने अपने टैङ्कोंकी बदौलत हालैण्ड, बेल्जियम और फ्रान्समें मित्र-देशोंके सामने वह कठिन परिस्थिति पैदा कर दी कि कुछ करते-धरते न बन पड़ा और अन्तमें फ्रान्सको आत्मसमर्पण करना ही पड़ा। अमेरिकाके सेना-विभागके एक उच्च अधिकारी केप्टेन जे०ई० मेकनिरनीने युद्धकी मशीनोंके सम्बन्धमें एक लेख लिखते हुए कहा है कि "जिस सेनाका यन्त्रीकरण हो गया हो, उसमें कई विशेषतायें स्वतः हो जायेंगी, जैसे शत्रुपर उसके गाफिल होनेकी अवस्थामें आक्रमण, रण-कौशल, शीघ्रताके साथ सुविधापूर्वक गमनागमन और गोलियां बरसानेकी क्षमता। शीघ्र निर्णयात्मक विजय होनेके लिए ये गुण अत्यन्त आवश्यक हैं। जिस राष्ट्रकी सेनाका यन्त्रीकरण न किया गया होगा, उसे ऐसी लड़ाई लड़नी होगी, जिसमें पराजय ही हो सकती है। यह न हो, तो उसे ऐसी लड़ाईमें पड़ना होगा, जो बहुत दिनों चलेगी, जो बड़ी महंगी पड़ेगी और जिसमें कुछ निपटारा नहीं होगा और जिसके परिणाममें होगा मानवीय, औद्योगिक, आर्थिक और नैतिक ह्रास।"

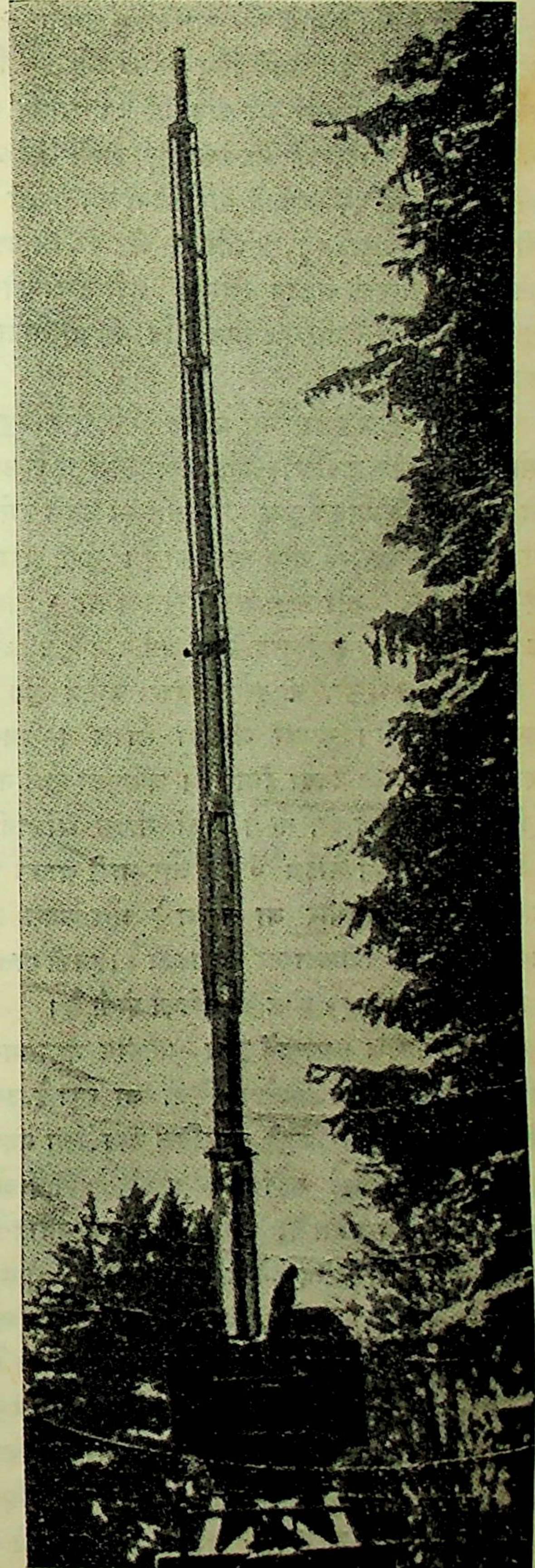
गत महासमरके आरम्भमें इस रूपमें हवाई जहाज न थे और न टैङ्क ही थे। सेनाओंका आमने-सामनेका मोर्चा था। इसमें मनुष्य बहुत अधिक संख्यामें मारे जाते थे, युद्ध-क्षेत्र लाशोंसे पट जाता था। मि० चर्चिलके कथनानुसार गत महायुद्धके प्रथम वर्षमें केवल ब्रिटेनके ही लगभग ३ लाख ६९ हजार सैनिक मारे गये थे। फ्रान्स, जर्मनी और अन्य देशोंके सैनिकोंको यदि दृष्टिमें रखा जाय, तो यह संख्या बहुत ज्यादा हो जायगी। लगातार दो वर्ष तक उस भयङ्कर नर-संहारके जारी रहनेसे युद्ध-लग्न देश यह अनुभव करने लगे थे कि सैनिक मिलते रहनेके साधन गोली-बारूद मिलते रहनेके साधनोंकी अपेक्षा बड़ी जल्दी समाप्त होने जा रहे हैं। यह अवस्था पैदा होते ही उनके सामने यह प्रश्न उपस्थित हो गया कि किस तरह ज्यादासे ज्यादा युद्ध-सामग्रीका उपयोग करनेकी क्षमताको बढ़ाया जाय और साथ ही सैनिक मिलनेके साधनोंको बनाये रखा जाय। दो सालकी लड़ाईके बाद मोर्चा जिस तरहकी तराइयोंमें था, उनमें पहियेवाली गाड़ियां काम नहीं दे सकती थीं; क्योंकि उन्हें जब, जहां, जितने शीघ्र ले जानेकी आवश्यकता हो, ले जाना सम्भव नहीं होता। इसी समय दो आविष्कार हुए, जिनसे यह समस्या हल हो गयी। अपने-आप रास्ता ठीक करनेकी तरकीब इस मशीनमें रखी गयी थी। इस आविष्कारका उपयोग सबसे पहले जिस मशीनमें किया गया, उसे आज टैङ्क कहते हैं। इंगलैण्डमें १९१६ में टैङ्कोंका निर्माण हुआ। इस आविष्कारका नाम टैङ्क इसलिए रखा गया था कि उसे उन्नत बनानेका कार्य गुप्त रखा जा सके। शत्रुपर प्रहार करनेके शस्त्रास्त्रों और शत्रुके प्रहारोंसे बचनेके बख्तरोंसे लैस हो जानेपर टैङ्कके रूपमें आक्रमणकारीको एक ऐसा साधन मिल गया, जिससे उसकी गोलियां बरसानेकी क्षमता कई गुनी हो गयी, गतिमें शीघ्रता भी आ गयी और शत्रुके प्रहारोंसे रक्षित रहनेकी व्यवस्था तो उसमें थी ही।

टैङ्कोंकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनकी प्रगतिके लिए किसी सड़ककी आवश्यकता नहीं होती। वे ऊंची-नीची और ऊबड़-खाबड़ जमीनको पार करते हुए आसानीसे शत्रुके मोर्चेपर पहुंच सकते हैं। किस रण-क्षेत्रमें टैङ्कोंका व्यवहार किया जाना चाहिए और किसमें नहीं—इसका निर्णय करनेसे पहले उस क्षेत्रके धरातल और नदियों-नालोंका अध्ययन करना बहुत ही आवश्यक है। नक्शों और टोह लगानेवाले हवाई जहाजों द्वारा लिये हुए चित्रोंसे यह काम आसानीसे हो सकता है। टैङ्कोंके मार्गकी प्राकृतिक बाधायें हैं गहरी नदियां और नाले, जिन्हें पैदल पार नहीं किया जा सकता। जिन नदियों और नालोंको पैदल पार तो किया जा सकता हो परन्तु जिनका किनारा खड़ा हो, वे भी टैङ्कके मार्गमें बाधक होती हैं। इनके अलावा घनी झाड़ियों, ऊंचे पेड़ों और दलदलवाले मैदान भी टैङ्कोंके लिए ठीक नहीं होते। खुली ढलवां जमीनमें भी टैङ्क अपना काम करते हैं; परन्तु उनका प्रभाव सीमित होता है।

टैङ्कोंके सम्बन्धमें दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। उनकी बनावटमें यह बात दृष्टिमें रखी गयी है कि गति तेज हो और तेजीसे आगे बढ़कर शत्रुकी पंक्तिको तोड़ा जा सके।

और उसके बाद जैसी जरूरत हो, अगल-बगलसे या पीछेकी ओरसे हमला किया जाय। टैङ्कोंके इस तरहके आक्रमणके समय पदल या घुड़सवार सेना पीछे होना आवश्यक है, जो टैङ्कों द्वारा अधिकारमें लाये हुए क्षेत्रोंमें जम सके। टैङ्कोंमें जो सैनिक बैठते हैं, वे अपने अगल-बगल नहीं देख सकते। उनके सामने जो थोड़ी-सी जगह खुली रहती है, उसीमेंसे वे सामने देख सकते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि तेजीसे आगे बढ़नेके समय वे कभी-कभी बिना जाने ही शत्रु-सेनाको पार कर जाते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि पैदल और घुड़सवार सेना पीछे न हो, तो उनका इतना आगे बढ़ना व्यर्थ हो जाता है।

टैङ्क छोटे, बड़े और मंझोले कई तरहके होते हैं। विभिन्न देशोंके टैङ्कोंकी बनावटमें भी अन्तर होता है। टैङ्कोंपर जो तोपें रहती हैं, उनमें भी टैङ्कोंके आकार और बनावटके आधारपर अन्तर पाया जाता है, वे भी हलकी-भारी होती हैं, और किसी-किसीपर टैङ्क-तोड़ तोपोंसे रक्षा करनेके लिए नयी तरहकी एक अन्य तोप भी रहती है। अमेरिकाकी सेनामें १२ से लगाकर ३५ टनके टैङ्कोंको मंझोला समझा जाता है। ब्रिटेन, फ्रान्स और जर्मनीके टैङ्कोंकी कुछ विशेषतायें हैं—ब्रिटिश टैङ्कोंका निर्माण इस दृष्टिसे किया गया है कि उनकी गति तेज हो। फ्रान्सके टैङ्कोंमें गतिके बजाय शस्त्रास्त्रोंको प्रथम स्थान दिया गया है। ब्रिटेनका हलका छोटा टैङ्क लगभग ५ टनका होता है और ४० मील प्रति घण्टेकी रफ्तारसे जा सकता है। एक छलांगमें यह ५ फीट चौड़ी खाईके पार हो जाता है। ढालू जमीन हो, तो ४५ डिग्री कोणका ढाल होनेपर इसे चढ़नेमें कोई कठिनाई नहीं होती। सीढ़ियोंकी तरह अगर खड़ी करार सामने हो, तो यह दो फीटकी ऊंचाईपर तुरन्त चढ़ जाता है। ब्रिटेनका मंझोला टैङ्क १२ टनका होता है और २० मील प्रति घण्टेकी रफ्तारसे जाता है। यह अपनी एक छलांगमें ६ फीट चौड़ी खाईको यों ही पार कर जाता है। ४५ डिग्री कोणवाली ढलुवां जमीनपर यह भी चढ़ जाता है। खड़ी चढ़ाईमें ३ फीटकी ऊंचाई इसके लिए कोई बड़ी बात नहीं है। ब्रिटेनके भारी टैङ्क १६-१६ टनके होते हैं और ३॥ फीट ऊंची करारोंपर चढ़ते, ४० डिग्री कोणके ढालको पार करते और ९ फीट चौड़ी खाइयोंपर छलांगें भरते हुए ३० मील प्रति घण्टेकी रफ्तारसे चले जाते हैं।



१०० मीलसे भी दूर गोला फेंकनेवाली जर्मनीकी एक तोप।

फ्रान्सके हलके, मंझोले और भारी टैङ्क क्रमशः ९,१० और ६९ टनके होते हैं। उनके लिए ४९,४० और ३९ डिग्री कोणके ढालपर चढ़ सकना कोई बात नहीं है। सामने खाई हो, तो ९॥, ७ और १७॥ फीट तक चौड़ी होनेसे कोई असुविधा नहीं। उसे एक छलांगमें पार किया जा सकता है। इसी तरह खड़ी ऊंचाई १¾, ४ और ५¾ फीट हो, तो उसपर चढ़नेमें किसी तरहकी अड़चन उपस्थित नहीं होती और ये टैङ्क क्रमशः २९, १९ और १२ मील प्रति घण्टेकी रफ्तारसे जाते हैं।

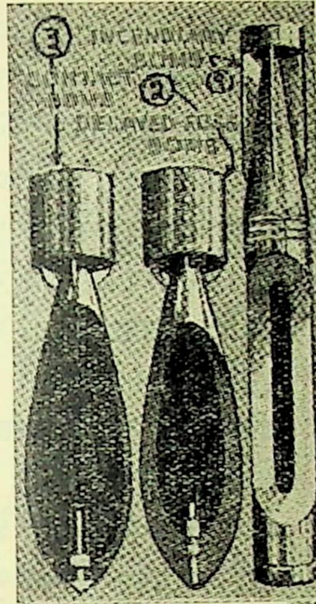
जर्मनीके टैङ्कोंके हलके और मंझोले और रूसके टैङ्कोंके मंझोले एवं भारी माडलोंके विषयमें जो जानकारी हुई है, उससे पता चलता है कि जर्मन टैङ्क क्रमशः ४ और १२ टनके होते हैं और घण्टेमें ३९ तथा २० मील जा सकते हैं। सीधी चढ़ाईमें ये १¾ और ३ फीट और चौड़ी खाई होनेसे क्रमशः ९ और ७ फीट नाप सकते हैं। इसी तरह ढालू जमीन यदि ४९ और ४० डिग्री कोणवाली हो, तो इन्हें उसपर चढ़नेमें कुछ भी कठिनाई नहीं होती। रूसका मंझोला माडल १२ टनका और भारी माडल ३३ टनका होता है। जमीनका ढाल यदि ४० डिग्री कोण तकका हो, तो ये दोनों माडल आसानीसे चढ़ जाते हैं। मंझोला माडल ७ फीट और भारी माडल १४ फीट तक चौड़ी खाईके पार जा सकता है और क्रमशः ३॥ फीट और ४॥ फीट ऊंची करारपर चढ़ सकता है। इनकी रफ्तार क्रमशः ३० मील और १२ मील फी घण्टेकी होती है।

यहां तक टैङ्कोंके सम्बन्धमें हुआ—वर्तमान महासमरमें जिन संहारक साधनोंका उपयोग किया जा रहा है, उनमें जङ्गी हवाई जहाजों और जङ्गी सामुद्रिक जहाजोंका महत्त्व बहुत ज्यादा है। हवाई जहाज कई तरहके होते हैं और उनसे जो काम लेना होता है, उसीके योग्य उन्हें बनाते हैं। कुछ हवाई जहाज सिर्फ टोह लेनेका काम करते हैं। ये बहुत हलके टाइपके होते हैं, इसलिए बहुत तेज उड़ सकते हैं और साथ ही देर तक हवामें ठहरकर दूर तक उड़ान भर सकते हैं। कुछ हवाई जहाज केवल बम बरसानेका कार्य करते हैं और कुछ बम बरसाने और मशीनगनसे गोलियोंकी बौछार करनेका। बम-वर्षक हवाई जहाजोंके अलावा एक खास टाइपके लड़ाकू हवाई जहाज होते हैं, जो आकाशमें खूब ऊंचे उठ सकते हैं और शत्रुके आक्रमणकारी बम-वर्षकों और लड़ाकू हवाई जहाजोंपर ऊपरसे गोलियां ही नहीं बरसाते, उनकी पंक्तिको तोड़ देनेका भी प्रयत्न करते हैं। शत्रुके हवाई जहाजोंको खदेड़नेका काम करनेवाले हवाई जहाजोंकी रफ्तार बहुत तेज होती है। इसी तरह सैनिकोंको स्थानान्तरित करनेका काम भी हवाई जहाजोंसे लिया जाता है। हवाई जहाजों द्वारा पैराशूटी सैनिक उतारनेका जो उपाय निकाला गया है, उससे आज बहुत लोग परिचित हो चुके हैं। हवाई जहाजोंने संसारको बहुत छोटा बना दिया है। आज दूरवर्ती स्थानोंकी दूरी यात्रा-कालके पैमानेसे नापनेपर बहुत थोड़ी रह गयी है। संसारके रेकार्डसे यह प्रकट है कि हवाई जहाज द्वारा ४६९.११ मील प्रति घण्टेकी रफ्तारसे यात्रा की गयी है। लगातार ६४७ घण्टे और २८ मिनट तक आकाशमें उड़ते रहनेका और एक ही उड़ानमें ७१६२ मील निकल जानेका अनुभव भी मनुष्यको हवाई जहाजकी बदौलत हो चुका है और साथ ही आकाशमें ५३९३७ फीट अर्थात् लगभग १०। मील ऊपर जाकर वह देख चुका है कि उतनी ऊंचाईसे यह दुनिया कैसी मालूम होती है। संसारमें आश्चर्य उपस्थित कर देनेवाले ये हवाई जहाज जल और थल दोनोंपर ही उतर सकते हैं। जो हवाई जहाज जलमें उतर सकते हैं, उन्हें सीप्लेन कहते हैं। साधारण हवाई जहाज एयर प्लेन ही कहे जाते हैं।

हवाई जहाजोंको नीचेसे हवाई जहाज-तोड़ तोपों, ऊपर एवं आगे-पीछेसे लड़ाकू और खदेड़नेवाले हवाई जहाजोंका भय रहते हुए और डेढ़-दो सौ मीलकी रफ्तारसे कई हजार फीटकी ऊंचाईपर उड़ते हुए अपना लक्ष्य साधना पड़ता है, अपने लक्ष्यपर, जो अनेक अवस्थाओंमें स्थिर भी नहीं होता, प्रहार करना पड़ता है—यह काम कितना कठिन है, इसका अनुमान ही किया जा सकता है। इस कार्यको सुविधापूर्वक करनेके लिए ऐसे आविष्कार हो रहे हैं कि आक्रमणकारी हवाई जहाजको यह पता चल जाय कि उसका बम निशानेपर लगा या नहीं।

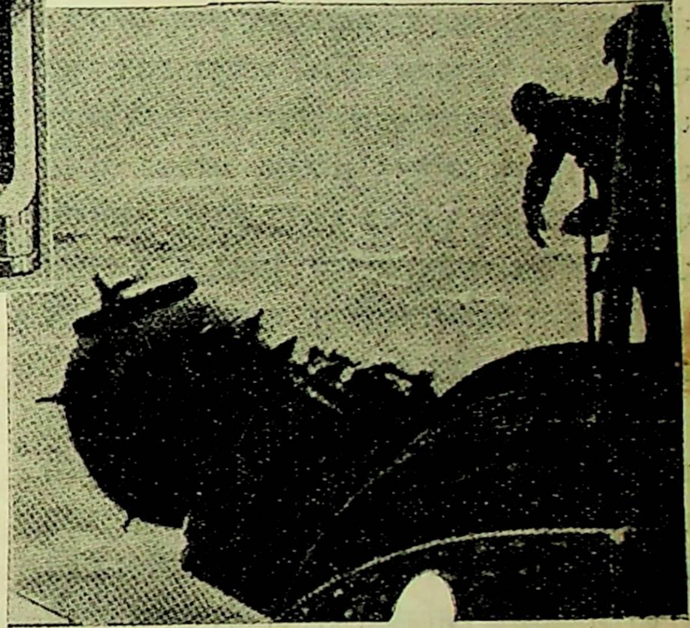
युद्धके महत्त्वपूर्ण साधनोंमें एक अन्य महत्त्वपूर्ण साधन है समुद्रमें काम देनेवाले जङ्गी जहाज और जलयुद्धके अन्य साधन, जैसे पनडुब्बी, टारपीडो, बोट, ध्वंसक आदि। यद्यपि हवाई जहाजोंने युद्धकलामें बड़ा परिवर्तन उपस्थित कर दिया है, तथापि समुद्रमें जङ्गी जहाजोंका महत्त्व वे अभी तक

कम नहीं कर सके हैं। कमसे कम इंगलैण्डपर जर्मनीके अभी तकके हमलोंसे यह अच्छी तरह प्रमाणित हुआ है कि युद्ध-कला-में चाहे कितना ही परिवर्तन हुआ हो, परन्तु जङ्गी जहाजोंका महत्त्व पहले ही जैसा बना हुआ है, विशेषतः किसी ऐसे देशके लिए, जिसके चारों ओर समुद्र हो या जिसकी सीमा समुद्रसे लगी हुई हो। जङ्गी जहाज ५-५ और ६-६ तल्लोंके होते हैं और इनपर चारों ओर छोटी-बड़ी सब तरहकी तोपें चढ़ी रहती हैं। हवाई जहाजोंका खतरा जबसे बढ़ गया है, हवाई जहाज-तोड़ तोपें भी रहने लगी हैं। उदाहरणके लिए ब्रिटेनका एक जङ्गी जहाज 'वार स्पाइट' लीजिये। यह ३५ हजार टनका है। इसपर ६ इञ्चसे लगाकर ११ इञ्च तककी तोपें हैं। इस जहाजका मस्तिष्क-यन्त्र बिलकुल नीचेके तल्लेमें है, जहांसे सारे काम अपने-आप होते हैं। इस जहाजकी तोपें गोले कैसे दागती हैं, इसकी प्रणाली देखिये—जहाजकी तोपों और सिरेके नियन्त्रण रखनेवाले कमरेसे लक्ष्य कितनी दूर है और किस स्थितिमें है, यह ब्योरा मस्तिष्क-यन्त्रवाले कमरेमें भेजा जाता है। इस कमरेसे तोपोंको ऊंचा उठाने और निशाना साधनेके लिए हिदायत की जाती है। तोपोंके स्थानपर यह हिदायत पहुंची नहीं कि उनमें गोला पहुंचानेका कार्य आरम्भ हो जाता है। गोला पड़नेका कार्य पूरा होते ही मस्तिष्क-यन्त्र वाले कमरेमें सारी स्थितिका पता चल जाता है। इसी समय नियन्त्रण रखनेवाले कमरेको इसकी सूचना भेजी जाती है और बिजलीके एक पुर्जेकी सहायतासे गोला छोड़ दिया जाता है। यह लिखनेकी तो आवश्यकता ही नहीं है कि जहाजमें आग लग जानेकी स्थितिका सामना करनेके लिए पहलेसे ही पूरी तैयारी रखी जाती है।



(१) दाहक बम, (२) कुछ देर तक पड़े रहकर स्वतः फूटनेवाले बम, (३) सम्पर्कमें आते ही फूटनेवाले बम।

यहां विज्ञानके जिन करिश्मोंका उल्लेख हुआ है, वही सब नहीं हैं। आज युद्ध सच्चे अर्थमें मनुष्यों-का नहीं, मनुष्यों द्वारा निकाले हुए वैज्ञानिक साधनोंका—संहारक यन्त्रोंका है और इनकी कोई सीमा नहीं है। हवाई जहाजोंका जब आविष्कार हुआ, तब आक्रमणकारी हवाई जहाजोंको नष्ट



सुरङ्गको समुद्रमें उतारा जा रहा है।

करनेके लिए हवाई जहाज-तोड़ तोपें तैयार हुईं और साथ ही बैलून बैरेज भी। हवाई जहाज-तोड़ तोपोंके साथ कई अन्य यन्त्र भी रहते हैं, जो यह बतलाते हैं कि कोई आक्र-मणकारी हवाई जहाज उस स्थानसे कितनी दूर है, कितनी रफ्तारसे किस दिशाकी ओर बढ़ रहा है और पृथिवीसे कितनी ऊंचाईपर है। बिजलीकी सहायतासे ये यन्त्र सारी बातोंका पता बतला देते हैं और हवाई जहाज-तोड़ तोपके तोपचीको केवल गोला-भर छोड़ना पड़ता है, जिसमें कोई कठिनाई नहीं होती। मशीनोंकी सहायतासे सारे काम अपने-आप होते रहते हैं। बैलूनोंकी एक श्रृङ्खलाके सहारे लटके हुए तारोंसे हवाई जहाज जब टकराता है, तब उसके सामने लगा हुआ पङ्खा इन तारोंमें उलझ जाता है और हवाई जहाज नष्ट हो जाता है। लन्दनको इस तरहके बैलूनों-से खब सुरक्षित बनाया गया है। आक्रमणकारी हवाई

जहाजोंको रास्तेमें ही नष्ट कर डालनेके लिए एक अन्य आविष्कार भी हुआ है, जिसमें खुले हुए बैलूनोंके तारके सिरेपर बम जुड़ा रहता है। अमेरिकामें हालमें ही एक नया आविष्कार हुआ है। सेकड़ों फीट लम्बा लोहेका एक फीता पैराशूटसे जुड़ा रहता है। यह सब एक गोलेके रूपमें होता है और तोपसे छोड़ दिया जाता है। इस आविष्कारकी चतुराई उस तारकी लपेटमें है, जो गोलेके भीतर रहता है। तोपसे यह गोला साधारण गोलेकी तरह छोड़ा जाता है। गोला छूटा नहीं कि उसका नीचेकी ओरका ढक्कन खुला और इस ढक्कनके वजनका सहारा पाकर तार खुलने लगा। आकाशमें अधिकसे अधिक ऊंचाईपर पहुंचकर गोलेसे पैराशूट निकल पड़ता है। यह पैराशूट धीरे-धीरे जमीनपर उतर आता है। इस तरहके गोले फेंककर जिन तारोंसे हवाई जहाजोंका मार्ग अवरुद्ध किया जायगा, वे आकाशमें ऊपरसे नीचेकी ओरको सीधे लटकते होंगे।

आकाश-युद्धमें जो हवाई जहाज टूटकर गिरते हैं या हवाई जहाज-तोड़ तोपोंके गोलों, बैलून बैरेज और इसी तरहकी दूसरी रुकावटोंके जो शिकार होते हैं, उनके चालकों और अन्य आदमियोंकी क्या अवस्था होती होगी, उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। अधिकांश चालकों और कर्मचारियोंकी तो मृत्यु ही होकर रहती है और जो बच जाते हैं, वे शत्रुके हाथों पड़ जाते हैं। किसी भी राष्ट्रके लिए यह क्षति बहुत ज्यादा है। अभी हवाई जहाजोंके चालक वैसे सङ्कटके समय हवाई जहाजसे कूद पड़नेकी कोशिश करते हैं; परन्तु यह हमेशा ही सम्भव नहीं होता। जर्मनीने चालकोंकी इस क्षतिसे बचनेके लिए एक नया आविष्कार किया है। उसने हवाई जहाजोंमें चालकोंके बैठनेकी जगहके नीचे एक जोरदार स्प्रिङ्ग लगाया है। वैसा सङ्कट उपस्थित होते ही चालकने बटन दबाया नहीं कि स्प्रिङ्ग खुल जायगा और उसके धक्केसे चालक सीधा तीरकी तरह ऊपर उठकर हवाई जहाजसे ऊपर हो जायगा। इसी समय उसके शरीरसे सटा हुआ पैराशूट खुल जायगा और चालक आरामसे पृथिवीपर उतर आयेगा।

गत महासमरमें जिस वस्तुसे संसारको सबसे अधिक आश्चर्य हुआ था, वह जर्मनीकी एक तोप थी। इस तोपका नाम 'बिग बर्थ' था। इस तोपसे पेरिसपर गोले बरसाये गये थे। उस समय पेरिसपर गोला गिरनेसे सबको चकित रह जाना पड़ा; क्योंकि जर्मन सेनाकी जो पंक्तियां उस समय पेरिसके बिलकुल ही नजदीक थीं, वे भी ७० मील दूर थीं। वर्तमान महासमरमें इस समय तक दूर गोला फेंकनेवाली तोपोंका उपयोग दोनों ही पक्षोंने किया है; परन्तु ये तोपें इंगलिश चेनलके दोनों किनारोंपर ही लगायी गयी हैं और बीस-बाईस मील दूर तक गोले फेंकनेके लिए उनका उपयोग किया गया है। गत महासमरके बिगबर्थवाले आश्चर्यके आगे यह कुछ भी नहीं है और यह सम्भव है कि वैसा ही कोई आश्चर्य भविष्यके गर्भमें हो। यद्यपि अभी तक वर्तमान युद्धमें उसका उपयोग नहीं किया गया है, तथापि पढ़नेमें आया है कि जर्मनीने एक अन्य तोप तैयार की है, जो सम्भवतः बिग बर्थसे भी अधिक दूर गोला फेंक सकती है। इस तोपकी नाल ७२ फीट लम्बी है। इसे सीगफ्रीडके पार कहीं जङ्गलमें लगाया गया है।

आवश्यकता आविष्कारोंकी जननी है, इस सचाईको दृष्टिमें रखकर हमें यह विश्वास रखना चाहिए कि वर्तमान महासमर यदि अर्से तक चला, तो इस बीचमें कितने ही नये आविष्कार होंगे और पहलेके कितने ही आविष्कारोंमें अनुभवकी दृष्टिसे आवश्यक सुधार होगा। विज्ञान-बलसे मनुष्य बड़ी द्रुतगतिसे अनन्तकी ओर बढ़ता चला जा रहा है—असीमपर अधिकार करनेकी चेष्टामें सीमाके पार जाता-सा मालूम होता है। मनुष्यका यह प्रयत्न है तो प्रशंसनीय और उससे मानव-समाजका बड़ा हित हो सकता है; परन्तु संसारका इतिहास यह बतलाता है कि युगके नये वैज्ञानिक साधनोंसे एक ओर जहां मानव-समाजके सुख और सुविधाओंमें अत्यधिक वृद्धि हुई है, वहां दूसरी ओर इन साधनोंके दुरुपयोगसे मानव-समाजकी भारी क्षति भी हुई है। इस क्षतिको रोकनेका क्या कोई उपाय हो सकता है? क्या विज्ञान इसमें भी कभी समर्थ हो सकेगा?



गत १०० वर्षोंसे रूस और जर्मनीका सम्बन्ध

श्री आत्मानन्द मिश्र, एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

द्वितीय जर्मन साम्राज्यके स्थापक बिस्मार्कका नियम था कि 'बर्लिन और सेण्टपीटर्सबर्ग (रूसकी तत्कालीन राजधानी) के बीचका तार कभी टूटने न पाये।' किन्तु तृतीय जर्मन रीखके निर्माता हिटलरने केवल बर्लिन तथा मास्कोके मध्यका 'तार' ही नहीं तोड़ दिया, वरन् यह घोषित किया कि जब तक मानव-जातिके शत्रु बोलशेविक लोग रूसपर राज्य करेंगे, तब तक वह उस तारकी मरम्मत भी न होने देगा। किन्तु २४ अगस्त सन् १९३९ ई० को उसने अकस्मात् बोलशेविक रूससे सन्धि कर ली और उसके एक पक्ष पश्चात् उसने संसारको यह बताया कि पोलैण्ड और पूर्वी यूरोपका भविष्य निश्चित करनेका गुरुतम भार जर्मनी और रूसपर होगा।

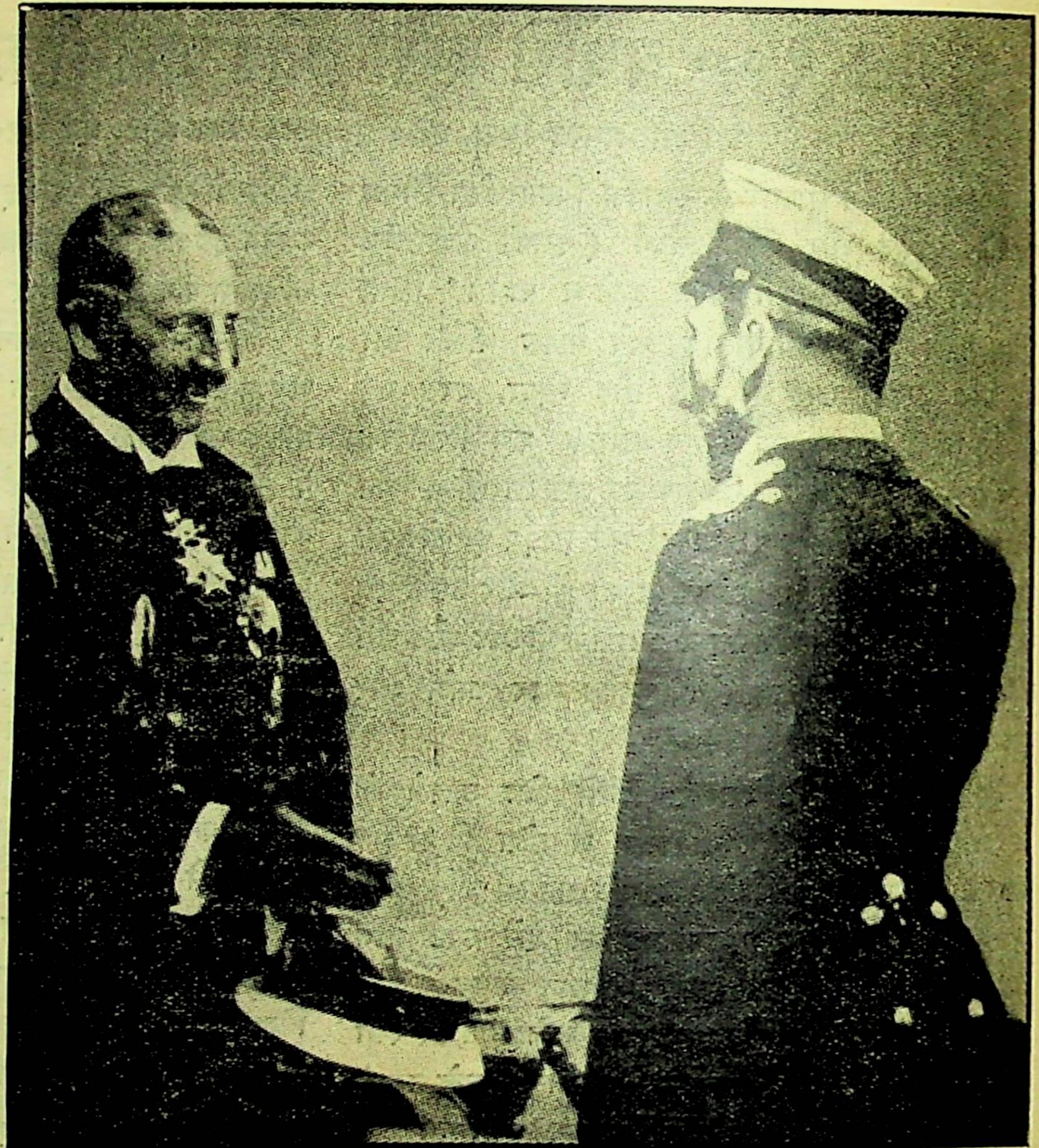
रूसके विरुद्ध सार्वजनिक सभाओंमें विष उगलनेवाले हिटलरने क्या किसी नवीन नीतिका श्रीगणेश किया है? हम इस सन्धिको रूस-जर्मनी सम्बन्धके गत सौ वर्षके इतिहासके प्रकाशमें देखेंगे। प्रथम बात जो हमें स्पष्ट जान पड़ती है, वह यह है कि यह उसी नीतिका अनुसरण-मात्र है, जिसने १५० वर्ष तक यूरोपीय वातावरणको दूषित कर रखा था और जिसने पोलैण्डके राज्यको छिन्न-भिन्न करके उसकी भूमिपर जर्मनी तथा रूसकी सीमाओंको सन् १७७२, १७९३ एवं सन् १७९५ ई० में स्थापित किया था।

सन् १९१८ ई०में पोलैण्डका पुनर्जन्म आधुनिक इतिहासमें एक आश्चर्यकी बात थी। यह जर्मनी और रूसके बीच अब तक लड़े गये एकमात्र युद्धका परिणाम था। ऐसे युद्धको फिर होनेसे रोकनेके लिए जर्मन राजनीतिज्ञ बड़े उत्सुक थे। उनको भय था कि यदि कहीं पूर्व तथा पश्चिम दोनों ही सामनोंपर मोर्चा लेना पड़ा, तो उनकी खैर नहीं। अतएव उनका सदासे उद्देश्य रहा है कि रूस और फ्रान्समें सन्धि न होने पाये एवं रूस सुदूर पूर्वमें इतना व्यस्त रखा जाय कि उसे जर्मनीमें हस्तक्षेप करनेका अवसर ही न मिले। इसके विपरीत रूसकी यह नीति रही है कि वह दो पूंजीवादी देशोंको आपसमें लड़ाता रहे और रूसके लाभके लिए ऐसे देशोंसे सन्धि करता रहे। इन दोनोंने पोलैण्डको विभाजित रखनेमें ही अपना हित समझा है। और इनका सम्बन्ध भी अधिकांश पोलैण्डके प्रश्नपर ही निर्भर रहा है।

बिस्मार्कने अपनी जीवनीमें लिखा है कि जार अलेक्जेण्डर प्रथम (१८०१-२५) के राजकालमें प्रशा-निवासी रूसी प्रजाके सदृश रहते थे। किन्तु पेरिसकी सन्धि (१८१५) के कुछ पहलेसे ही प्रशावालोंकी हार्दिक इच्छा थी कि रूसकी नीति पोलैण्डके पक्षमें न रहे, कारण कि ऐसी नीतिके अनुसरणसे रूस और फ्रान्समें मित्रता बढ़नेका सन्देह था, जिसका प्रशा विरोध करता था। जुलाई सन् १८३० की पेरिस-क्रान्तिके पश्चात् पोलैण्ड-पक्षी एक सन्धि रूस और फ्रान्समें होनेवाली थी, जिससे प्रशा बड़ी कठिनाईमें पड़ जाता। अतएव उसने रूसी मन्त्रिमण्डलके पोलैण्ड-पक्षी दलका विरोध करना आरम्भ किया। रूसको प्रसन्न करनेके लिए प्रशाने उसे पोलैण्डका सन् १८३१ का विद्रोह शान्त करनेमें बड़ी सहायता दी। यदि वह ऐसा न करता, तो रूसके विद्रोह शान्त करनेमें पैरों पसीना आ जाता। किन्तु रूसने इसके विरुद्ध प्रशापर अब भी अपना आधिपत्य कायम रखा और जर्मनीमें उसके अधिकारोंका विरोध करता रहा।

निकोलस प्रथम (१८२५-५५) ने राजा होनेपर यूरोपमें उदार दलवालोंको दबानेके लिए "राजाओंके पवित्र सङ्घ" का साथ दिया। उसका विवाह प्रशाके राजा फेडरिक विलियम चतुर्थ और उसके उत्तराधिकारी सन् १८७१ ई० में जर्मन सम्राट् बननेवाले विलियम प्रथमकी बहिन अलेक्जेण्ड्राके साथ हुआ था। वह अपने पतिपर प्रशासे मित्रता बनाये रखनेके लिए बड़ा प्रभाव डालती थी। सन् १८४८-४९ ई० में आस्ट्रियाके राजाके विरुद्ध होनेवाले हंगरीके विद्रोहको दबानेमें निकोलसने आस्ट्रियाको बहुत सहायता दी थी, जिसके लिए उसे रूसका बड़ा आभारी रहना चाहिए था। किन्तु इसके विपरीत क्रीमियाके युद्धके समय आस्ट्रिया रूसका विरोधी हो गया। यद्यपि बाह्य रूपसे वह तटस्थ बना रहा; किन्तु उसने टर्कीके मोलडेविया और

बलाशियाके प्रान्तोंपर, जिन्हें रूस स्वयं लेना चाहता था, अधिकार कर लिया। अतएव रूसकी आशाओंपर पानी फिर गया और केवल निकोलसको ही नहीं, वरन् समस्त संसारको आस्ट्रियाकी इस कृतघ्नतापर बड़ा आश्चर्य हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि रूसने जर्मनीपर आस्ट्रियाके अधिकारोंका विरोध करना आरम्भ किया और उसपर प्रशाके अधिकारोंको माननेके लिए प्रस्तुत हुआ। किन्तु सन् १८९४ ई० के अन्त तक रूस आस्ट्रियाका ही साथ देता रहा, यद्यपि प्रशा-निवासी रूसको अपनी ओर मिलानेका बड़ा प्रयत्न कर रहे थे। बिस्मार्कने एक घटनाका उल्लेख किया है, जिसे प्रशाके राजाने उसे बताया था। निकोलसको किसी रोग-निवारणार्थ डाक्टरोंने एक औषधि बतायी, जो रोगीको पेटके बल लिटाकर पीठपर मालिश करनेके लिए थी। निकोलसने अपने साले प्रशाके फेडरिकको लिखा कि "दो पहलवान नौकर भेजो, जो मेरी पीठपर औषधि लगायें। मैं रूसी लोगोंका विश्वास अपने सामने ही कर सकता हूं, पीठ पीछे, जहां कि मैं उन्हें न देख सकूं, मैं उनसे सन्दिग्ध रहता हूं।" इस घटनासे स्पष्ट है कि जार प्रशावालोंपर पूर्ण विश्वास रखते थे। और अपनी जर्मन स्त्रियोंके प्रभावके कारण उनसे मित्रता भी रखना चाहते थे; किन्तु प्रजामत तथा अन्य कारणोंसे वे ऐसा करनेमें कभी-कभी असमर्थ रहे हैं।



सन् १९०९ में कैसर तथा जार निकोलस द्वितीयकी विजार्को स्थानपर भेंट।

अलेक्जेण्डर द्वितीय (१८५५-८१) के सिंहासनारूढ़ होनेपर रूसकी नीति कुछ अधिक जर्मन पक्षमें हो गयी। इसमें उसकी स्त्रीका, जो जर्मन राजकुमारी थी, बहुत कुछ हाथ था। सन् १८६१ ई० में जब बिस्मार्क प्रशाका प्रतिनिधि होकर रूस आया, तो वहांके मन्त्रियोंको रूसी पोलैण्डका पक्ष लेते देख उसे बड़ा विस्मय हुआ। एक वर्ष बाद बिस्मार्क बर्लिन वापस बुला लिया गया और वहां प्रशाका वैदेशिक मन्त्री नियुक्त हुआ। इसकी सदा यह नीति रही है कि वह जर्मनीके विरुद्ध यूरोपीय शक्तियोंको मिलने न दे। अतएव उसने सन् १८६३ ई० के पोलैण्डके विद्रोहमें


अगस्त १९३९ में रिबनट्राप और स्टैलिनकी मास्कोमें भेंट।

होनेके एक वर्ष पश्चात् तक रही। उस समय मेरी धारणा थी कि पोलैण्डके सन् १८६३ ई०के विद्रोहने न केवल पूर्वी प्रान्तोंमें ही हमारे हितोंका प्रश्न खड़ा किया है, वरन् इस बातकी भी परीक्षा ले ली है कि रूसके मन्त्रिमण्डलमें पोलण्डपक्षी एवं विपक्षी लोगोंका जोर है। प्रशाका जर्मन-साम्राज्यका भविष्य भी उस समय बहुत कुछ रूसके रुखपर निर्भर था।" इसका अन्तिम वाक्य महत्त्वपूर्ण है और तत्कालीन रूस-जर्मनीके सम्बन्धमें यह पर्याप्त प्रकाश डालता है।

रूसने विद्रोहमें दी गयी बिस्मार्ककी सहायतासे प्रसन्न होकर आस्ट्रिया और प्रशाके झगड़ेमें तटस्थ न रहनेका निश्चय किया और उसे आस्ट्रियाके विरुद्ध सहायता दी। सन् १८६४ ई० में बिस्मार्कने आस्ट्रियाको अपनी ओर मिलाकर डेनमार्कपर चढ़ाई कर दी। उसे पूर्ण विश्वास था कि रूस उसके मामलेमें हस्तक्षेप न करेगा। दो वर्ष पश्चात् बिस्मार्कने स्क्लेशविग होल्स्टीनके मामलेपर आस्ट्रियासे झगड़ा किया और उसे सडोवा नामक स्थानपर पराजित करके जर्मनीके बाहर निकाल दिया। सन् १८७० ई० में बिस्मार्कने फ्रान्सके नेपोलियन तृतीयको हराकर प्रशाके नेताओंके आधिपत्यमें जर्मन साम्राज्यकी स्थापना की। इन सब मामलोंमें उसे पूर्ण विश्वास था कि आवश्यकता पड़नेपर रूस उसे अवश्य सहायता देगा। रूसने

रूसकी पूर्ण सहायता की, यहां तक कि उसने प्रशामें शरण लेनेवाले पोलैंड-वासियोंको पकड़वाकर रूसके हवाले किया। इस समय जर्मन प्रदेशोंको लेनेके सम्बन्धमें प्रशा और आस्ट्रियाका झगड़ा विकट रूप धारण कर रहा था। अतएव बिस्मार्कने यह सहायता देकर रूसको अपनी ओर मिलाना चाहा। इस सम्बन्धमें बिस्मार्कने अपनी जीवनीके द्वितीय भागके १९ वें अध्यायमें लिखा है :—

"अप्रेल सन् १८६२ ई० में जब मैंने सेण्टपीटर्सबर्ग छोड़ा, उस समय राजधानीमें पोलैण्डके पक्षी एवं विपक्षी लोगोंमें बड़ा विरोध चल रहा था और यही दशा मेरे वैदेशिक मन्त्री

आस्ट्रियाके राजाको यह धमकी दी कि यदि वह प्रशाके विरुद्ध फ्रान्सको सहायता देगा, तो रूस आस्ट्रियापर आक्रमण कर देगा। किन्तु जब बिस्मार्कने फ्रान्सको विद्युत्-गतिके युद्धसे विनाश करनेकी सोची, तब जार अलेक्जेण्डर तृतीयने रानी विक्टोरियाका साथ दिया और बिस्मार्कको चेतावनी दे दी गयी कि रूस और ग्रेट ब्रिटेन ऐसे युद्धको सहन न करेंगे।

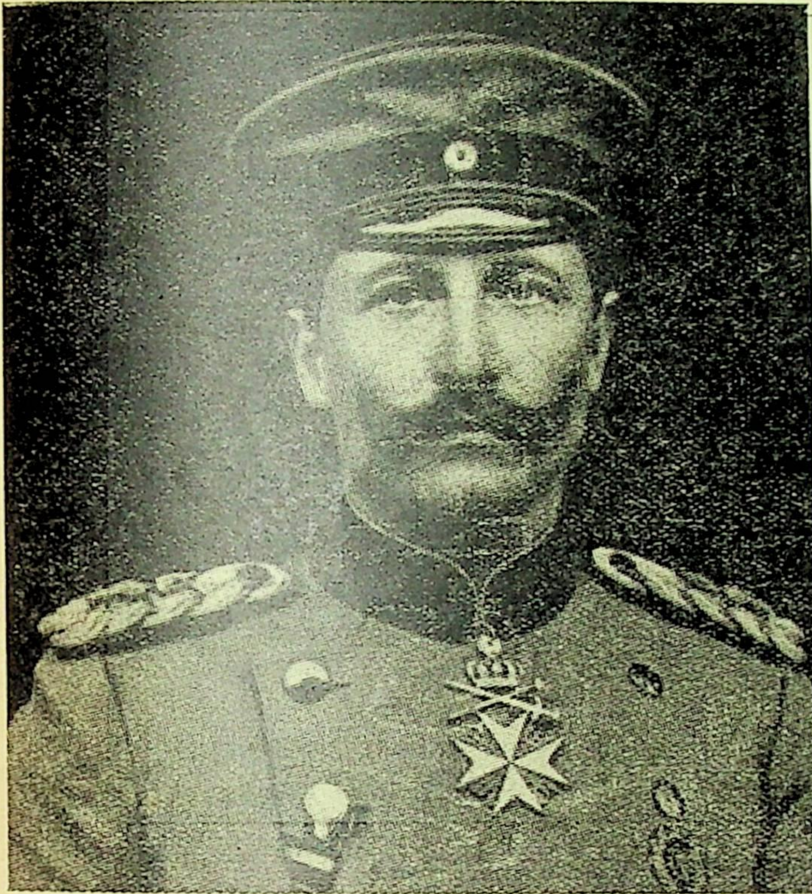
बिस्मार्कने इस अवसरपर रूस-जर्मनी मित्रता भङ्ग होनेका कारण रूसी चान्सलर प्रिन्स गोर्ट चेकाफको ठहराया और रूसी-तुर्की युद्धके पश्चात् सन् १८७८ की बर्लिन कांग्रेसमें उसके प्रति अपनी अप्रसन्नता भी प्रकट की। बिस्मार्कके रूसी चान्सलरके विरोधी होनेका मुख्य कारण यह था कि वह जानता था कि चेकाफ पोलैण्ड-पक्षी है। अतएव कांग्रेसके सभापति बिस्मार्क तथा अंगरेजी प्रतिनिधि डिजरेलीने कुस्तुन्तुनियांपर रूसी कब्जा न होने दिया। अतएव वाञ्छित लाभ न हो सकनेके कारण रूस और जर्मनीमें कुछ मनमुटाव हो गया।



जर्मन साम्राज्यके स्थापक ओटो वान बिस्मार्क (१८१५-१८९८)।

रूसमें अलेक्जेण्डर तृतीय (१८८१-९४) के, जो गत ९० वर्षोंमें प्रथम रूसी बादशाह था जिसकी स्त्री जर्मन राजकुमारी न थी, सिंहासनपर आते ही बिस्मार्कने एक विचित्र दोहरी नीतिका अनुशीलन किया, जिसका समझना भी कठिन है। उसने रूसके विरुद्ध आस्ट्रियासे एक गुप्त सन्धि कर ली। इसके दो वर्ष पश्चात् ही उसने रूसी प्रतिनिधिसे मिलकर जर्मनी, आस्ट्रिया और रूसी राजाओंकी एक सभा बुलवायी, जिसका उद्देश्य यूरोपमें राजाओंके पवित्र सङ्घका पुनर्निर्माण करना था। किन्तु वास्तवमें बिस्मार्ककी यह नीति थी कि वह इस प्रकार रूस और आस्ट्रियाको मित्र बनाकर फ्रान्सपर आक्रमण करे और इन देशोंको युद्धसे तटस्थ रहनेके लिए बाध्य करे। सन् १८८४ ई० में यह सन्धि दुहरायी गयी; किन्तु रूसको अब तक भी जर्मनी-आस्ट्रियाकी गुप्त सन्धिका पता न लग सका। सन् १८८७ ई० में बिस्मार्कने बिना आस्ट्रियाको बताये रूससे एक तटस्थ रहनेकी गुप्त सन्धि कर ली। किन्तु कुछ कारणोंसे बिस्मार्क रूसको यह बतला देना चाहता था कि उसके विरुद्ध आस्ट्रिया-जर्मनीमें बहुत पहलेसे ही एक सन्धि हो चुकी है। अतएव उसने आस्ट्रियासे इसकी घोषणा करनेको कहा और स्वयं उसने भी रीखमें भाषण देते हुए गर्वपूर्वक कहा—"जर्मनी-निवासी केवल ईश्वरको डरते हैं, उसके अतिरिक्त संसारमें और किसीको नहीं।"

किन्तु सन् १८८९ ई० में जर्मनी और रूसकी फिर मित्रता करानेके ध्यानसे जार जर्मनी-सम्राट् विलियम द्वितीयसे—जो गत महायुद्धके समयसे कैसरके नामसे प्रसिद्ध है—मिलनेके लिए बर्लिन गया। कैसरको आशा थी कि दोनों देशोंमें मित्रता हो जानेसे जर्मनीकी उन्नति होगी। किन्तु जारको बिस्मार्कपर पूर्ण विश्वास था और वह नवयुवक कैसरसे हार्दिक घृणा करता था, अतएव कैसरके अनुरोध करनेपर भी कि जर्मन राज-सभामें फ्रेञ्च भाषा न प्रयुक्त की जाय, जार फ्रेञ्चमें ही बोला। कैसर क्रुद्ध हो गया और उसने एक अति सूक्ष्म भाषण देकर सभा समाप्त



कैसर विलियम द्वितीय (१८८८-१९१८), जिसने यूरोपमें जर्मन साम्राज्य स्थापित करनेका प्रयत्न किया।

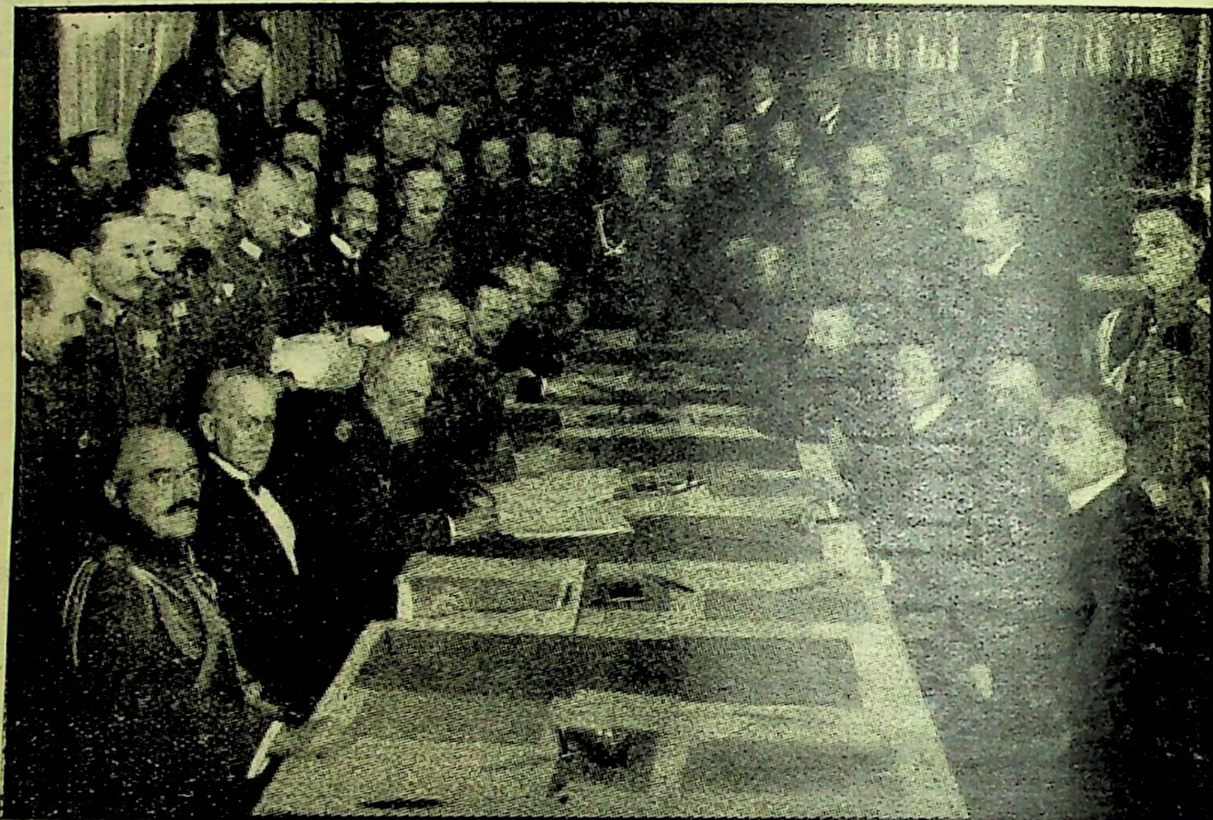
कर दी। इस प्रकार इस भेंटसे कोई लाभ न हो सका।

सन् १८९० में बिस्मार्कका अन्त हुआ। एक जर्मन नवयुवक अफसरने कैसरको बिस्मार्क द्वारा की गयी रूससे गुप्त सन्धिका पत्र दिखा दिया। इससे कुपित होकर सम्राट्‌ने बिस्मार्कको पदच्युत कर दिया और उसके साथ ही गुप्त सन्धिका भी अन्त हो गया।

इसके एक वर्ष पश्चात् रूस फ्रान्ससे सन्धि करनेकी चर्चा करने लगा। इससे जर्मनी सतर्क हो गया और यह प्रयत्न करने लगा कि फ्रान्स तथा ब्रिटेनके बीच समझौता न हो पाये एवं रूस सुदूर पूर्वमें इतना व्यस्त रहे कि वह फ्रान्सकी सहायता न कर सके। उधर जार निकोलस द्वितीय (१८९४-१९१८) ने जर्मनी तथा उसकी पोलैण्डसे मित्रता होनेके भयसे पेरिसको प्रस्थान किया और फ्रान्स जाकर घोषणा की कि इन दोनों देशोंमें आपसमें पर्याप्त सहानुभूति है। तत्पश्चात् फ्रान्सके प्रेसीडेण्टने सेण्टपीटर्सबर्ग जाकर दोनों देशोंके मध्य मित्रताकी घोषणा की। किन्तु जारकी स्त्री अलेक्जेण्ड्रा जर्मन राजकुमारी थी, अतएव वह रूसी राजा एवं राजसभापर जर्मनीसे मित्रता रखनेके लिए पर्याप्त प्रभाव डालती थी। अतएव सन् १९०३ ई० में शिकार खेलनेके बहाने रूस और आस्ट्रियाके राजा आपसमें मिले और जारको मुर्जस्टेगके सन्धि-पत्रपर हस्ताक्षर करनेके लिए बाध्य किया गया। इसमें इन लोगोंने बालकनमें अपने हितोंका बंटवारा कर लिया था और इंगलैण्डके विरुद्ध रहकर जर्मनीको लाभ पहुंचानेका निश्चय किया था। इसके परिणाम-स्वरूप इंगलैण्ड और फ्रान्सने सन् १९०४ की सन्धिसे अपनी मित्रता और भी दृढ़ कर ली।

फ्रान्स और इंगलैण्डकी घनिष्ठता देखकर जर्मनीकी भी स्थिति दृढ़ करनेकी आकांक्षासे कैसरने सन् १९०५ में जारसे फिनलैण्डके विजार्कों नामक स्थानपर भेंट की और उसे एक ऐसी सन्धि करनेके लिए बाध्य किया, जिसमें ब्रिटेनके विरुद्ध यूरोपमें एक सङ्घ स्थापित करनेका प्रयत्न किया जा रहा था। इस सन्धिकी पहली शर्त यह थी कि यदि रूस या जर्मनीमेंसे किसी देशपर कोई यूरोपीय शक्ति आक्रमण करे, तो दूसरा उसे जल-थलपर सब प्रकारकी सहायता करेगा। यद्यपि जारने इसपर हस्ताक्षर कर दिये, किन्तु उसके मन्त्रियोंने इसे स्वीकार नहीं किया और सन्धिकी शर्तें कभी लागू नहीं हो सकीं। उधर पूर्वमें रूस जापान द्वारा पराजित हुआ और इसमें जर्मनीका हाथ समझकर बहुत अप्रसन्न हुआ। अतएव यूरोपमें अपनी स्थिति ठीक रखनेके लिए उसने सन् १९०७ ई० में इंगलैण्डसे सन्धि कर ली।

सन् १९०९ ई० में आस्ट्रियाके बोसनिया और हर्जेगोविना ले लेनेके कारण उत्पन्न विकट परिस्थितिमें जर्मनीने रूसको एक अल्टीमेटम दिया और उसकी शर्तें माननेके लिए मजबूर किया। क्योंकि रूस अब जर्मनीकी धमकीमें न आनेवाला था, अतएव यूरोपकी शान्ति रूस और आस्ट्रियाके मध्य बालकन सम्बन्धी झगड़ेपर निर्भर हो गयी। युद्धके कुछ ही दिन



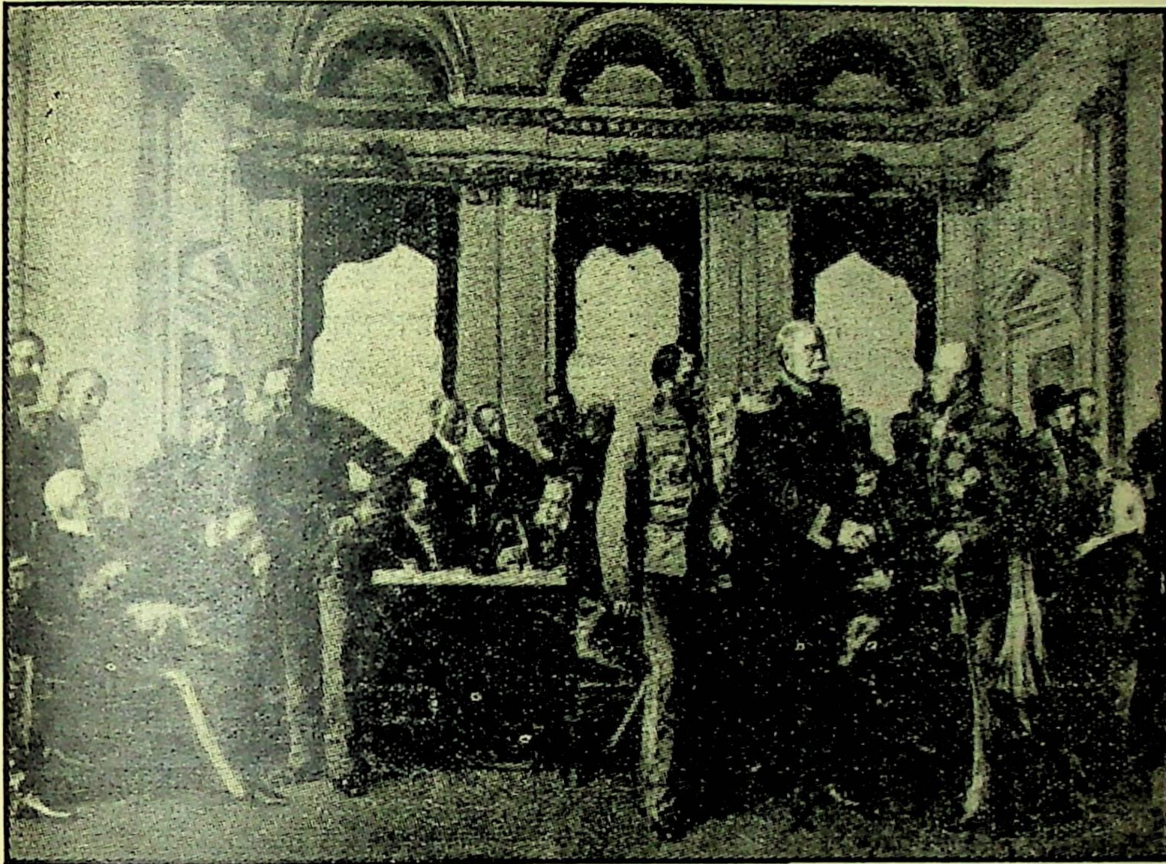
सन् १९१८ में ब्रेस्टलिटवक्सकी सन्धिके समयका दृश्य।

पहले जुलाई सन् १९१४ में फ्रान्सके प्रेसीडेण्टने जार्से सेण्ट-पीटर्सबर्गमें मिलकर अपनी सन्धिको और भी पुष्ट कर लिया।

तत्पश्चात् जर्मनी द्वारा उकसाये हुए सर्वियाके झगड़ेने सारे यूरोपको युद्धाग्निमें झोंक दिया। किन्तु रूसमें आन्तरिक शान्ति स्थापित करनेके लिए बोलशेविक नेता लेनिनने सन् १९१८ में ब्रेस्टलिटवक्सकी सन्धि कर ली, जिससे पोलैण्ड, यूक्रेन और बाल्टिक राज्य रूसके हाथसे निकलकर जर्मनीके अधिकारमें चले गये। इसके लिए रूस-निवासियोंने लेनिनकी तीव्र आलोचना की। किन्तु लेनिनने उन्हें समझाया कि इस महायुद्धमें जर्मनीकी पराजय ध्रुव निश्चित है और उसकी हार होते ही यह सन्धि नष्ट हो जायगी। अतएव इस सन्धिका कोई विशेष महत्त्व नहीं। महायुद्धने कैसरकी सर्वशक्तिमान् जर्मन साम्राज्य स्थापित करनेकी आशाओंपर पानी फेर दिया। युद्धका अन्त जर्मनी और आस्ट्रियाके लिए विनाशकारी हुआ। रूसमें बोलशेविज्मने अपना आधिपत्य जमा लिया और जर्मनीमें वीमर प्रजातन्त्र स्थापित हुआ।

युद्धके कुछ ही वर्ष पश्चात् जर्मनीने फिर अपनेको अस्त्रादिसे सुसज्जित करना आरम्भ कर दिया। इसके लिए उसने रूसकी सहायता चाही। उधर रूस भी अपनी शक्ति बढ़ानेके लिए लालायित था, अतएव जर्मन प्रतिनिधि वाल्टर रेथेनाने बड़े उद्योगसे जर्मनी और रूसके मध्य सन् १९२२ में रेपेलोकी सन्धि करायी; किन्तु वाल्टरको इसके लिए नेशनलिस्ट दलके हाथों अपने प्राण गंवाने पड़े।

तत्पश्चात् जर्मनीमें हिटलरके दलका आगमन हुआ। कम्यूनिस्ट दलने भी अपना सिर उठाया; किन्तु हिटलरने उन्हें बुरी तरहसे दबा दिया। इससे रूस जर्मनीसे अप्रसन्न रहने लगा। किन्तु हिटलर रेपेलोकी सन्धिको बराबर मानता रहा। ऐसे ही अनेक व्यक्तिगत एवं विशेष कारणोंसे हिटलर बोलशेविज्मका घोर विरोधी हो गया। वह सार्वजनिक स्थानोंमें बराबर घोषणा करता रहा कि जब तक वह जीवित है, इस बातका जिम्मा लेता है कि वह यूरोपको बोलशेविज्मसे कोई हानि न होने देगा। रूसके विरोधी दल उसे बोलशेविज्मका शत्रु समझकर बड़े प्रसन्न



रूस और टर्कीके युद्धके पश्चात् बर्लिनकी कांग्रेस। डिजरेली बायीं ओर खड़े हैं। बिस्मार्क दाहिनी ओर हाथ मिला रहा है।

होते रहे और इसी भुलावेमें पड़कर उसे खूब शस्त्रीकरण करने दिया गया। संसारको उसकी अपरिमित शक्तिका तब पता चला, जब उसने गत मार्च १९३९ में जेकोस्लोवेकियाको हड़प लिया। म्युनिख-पैक्टमें रूसको आमन्त्रित न करना उसे मित्र-राष्ट्रोंके विरुद्ध कर लेना था।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, हिटलर दो मोर्चोंपर नहीं लड़ सकता था, अतएव उसने रूससे सन्धि करनी चाही। उधर ब्रिटेन-रूस-सन्धि-चर्चामें कुछ गड़बड़ी होते देख उसने अपने पहलेके प्रयत्नको और अधिक किया और २४ अगस्त १९३९ को रिबनट्रापने मास्कोसे सन्धि कर ली। सम्भवतः यह सन्धि भी पुराने पोलेण्डके प्रश्नपर ही हुई है। रूसने पूर्वी एवं दक्षिण-पूर्वी यूरोप तथा बाल्टिक राष्ट्रोंको लेकर अपनी स्थिति बहुत दृढ़ कर ली है, जिससे कि जर्मनीको भविष्यमें रूससे सम्बन्ध रखनेमें पर्याप्त सावधानी रखनी पड़ेगी।

युद्धका कुछ भी परिणाम हो; किन्तु जीते हुए देशोंके स्वतन्त्र निवासियोंका जर्मन साम्राज्यमें आना कठिन ही है। उन देशोंमें सदा क्रान्ति होनेका भय रहेगा। बहुत सम्भव है कि जर्मनीमें स्वयं ही अन्य दल हिटलरका विरोध कर उसका अन्त करें। जर्मनीके अनेक दल अपना प्रभाव दिखा चुके हैं; किन्तु यदि अब कोई शक्तिशाली दलोंमेंसे अपना सिर उठा सकता है, तो वह कम्यूनिस्ट दल है। यदि हिटलर या उनके साथियोंने इसे दबाना चाहा, तो रूसके सम्मुख उनकी सहायताका प्रश्न आयेगा। तब फिर सम्भवतः जर्मनी और रूसके सम्बन्धका एक नया परिच्छेद आरम्भ होगा।



पापकी प्रेरणा

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

अपने पहले पापकी कहानी आपके सामने कहते कुछ सङ्कोच हो रहा है, हालां कि मेरा कुछ भी आपसे छिपा नहीं रह गया। फिर भी मैं कुछ छिपाये बिना सब कह दूंगी। इस पापकी प्रेरणा मुझे कहांसे मिली और मेरे इस पतनमें दोष किसका था ? इसका निर्णय मैं आपपर छोड़ दूंगी। बादमें जो कुछ हुआ, वह तो स्वाभाविक ही था। गिरनेके बाद पुरुषके लिए भारतमें अगणित मार्ग हैं; किन्तु नारीके लिए कोई नहीं—सिवा उसके, जिसपर बाध्य होकर मुझे चलना पड़ा। किन्तु बादकी समस्त घटनाओंको छोड़, मैं अपने इस जीवनके पहले दिनकी बात करूंगी।

× × ×

मेरा विवाह तब हुआ था, जब उन्होंने बी० ए० की डिग्री ली ही थी। किन्तु नौकरी आप जानते हैं, आजकल आसानीसे नहीं मिलती। उन्हें भी नहीं मिली। पर थे वे महात्त्वकांक्षी। स्फूर्तिका भी उनमें अभाव न था। इसलिए बेकार नहीं रहे। किसी-न-किसी जगह प्राइवेट रूपसे नौकरी करते रहे।

उनके प्रेममें उन दिनों उन्माद-सा होता था। ऐसे वाक्य बोलते, जो मेरी समझमें न आते। ऐसी बातें करते, जो इस दुनियाकी मालूम न होतीं। कहते—'लज्जा!' मैं उनकी ओर देखने लगती—कुछ ऐसी बात, कुछ ऐसा कम्प, कुछ ऐसा जादू होता उस वाणीमें, कि मैं मन्त्रमुग्ध-सी हो जाती। एक सिहरन-सी समस्त शरीरमें दौड़ जाती।

बस वे इतना ही कहते—'लज्जा !' और फिर अपनी मस्त आंखें मेरी आंखोंमें डाल देते, पागलोंकी तरह अपनी भुजाओंमें भींच लेते और चूम लेते।

मैं डर जाती, सिहर जाती; किन्तु आनन्दसे विभोर-सी हो जाती।

और फिर धीरे-धीरे मैं इन बातोंकी अभ्यस्त हो गयी। मेरा सारा भय, सारा कम्प दूर हो गया। जीवनकी सरसताके लिए ये बातें अत्यावश्यक दिखाई देने लगीं।

फिर एक दिन आया कि मैं स्वयं इन बातोंकी प्रेरक होने लगी—वे दिन-भर मारे-मारे फिरते—सुबह एक जगह पढ़ाने जाते, फिर दो-तीन घण्टे एक दफ्तरमें काम करते, फिर एक स्थानपर टाइप करते, फिर बाकी दिनमें कई घरोंमें पढ़ाने जाते, सन्ध्याको थके-हारे आते और खाना खाते ही सो जाते। किन्तु मैं चाहती, वे मेरे साथ उसी तरहका पागलोंका-सा प्रेम करें, मुझे अपनी भुजाओंमें भींच लें, चूम लें। पर वे विवश थे। मैं उन्हें छेड़ती। वे 'ऊं हूं' करके करवट बदल लेते। मैं उन्हें बहानोंसे जगाती। वे झिड़ककर फिर सो जाते।

और मैं उनके पास पड़ी पहरों जागती रहती। एक ज्वाला-सी कभी-कभी मेरे समस्त शरीरमें धधक उठती। एक शङ्का-सी भी कभी मेरे मनमें सिर उठाती—कहीं वे कहीं और तो नहीं जाते ?

ज्यों-ज्यों मैं सोचती, यह आशङ्का मेरे मनमें बलवती होती जाती।

× × ×

उन्हीं दिनों उन्होंने लड़कियोंका एक स्कूल खोला। वास्तवमें यह विचार तो उनके मस्तिष्कमें बहुत दिनोंसे था; किन्तु इस प्रस्तावको वे कार्यरूपमें परिणत न कर सके थे। आर्थिक अभाव भी था, और फिर मैं शायद योग्य सङ्गिनी न थी। प्रायः वे कहा करते—काश तुम शिक्षित होतीं, तो यह रोटीकी समस्या हल हो जाती। पुरुषके लिए लड़कियोंकी पाठशाला खोलना उतना ही कठिन है, जितना स्त्रीके लिए लड़कोंकी पाठशाला चलाना। हां, कोई स्त्री साथ हो, ज़रा रसूखवाली, पढ़ी-लिखी हो, तो यह मुश्किल आसान हो जाती है।

इस बार उन्हें यह सहायता मिल गयी। वे कुछ दिनोंसे जिला बोर्ड गर्ल स्कूलकी हेडमिस्ट्रेसको अंगरेजी पढ़ाने लगे थे। उनके कोई लड़का न था, इसलिए मैंने सुना कि वे उन्हें लड़केकी भांति प्यार करने लगी हैं। उन्हींके कहनेपर उन्होंने अपने चिरसञ्चित स्वप्नको कार्य-स्वरूपमें परिणत करनेका प्रयास किया। उनकी ही सहायतासे लड़कियां आयीं,

उन्होंने ही हमें घरका एक पृथक् भाग दे दिया और यहींसे मेरे दुर्भाग्यकी कहानी आरम्भ हुई।

× × ×

इधर आकर उनका अधिक समय पढ़ाने-लिखानेमें अथवा बीबीजीके कमरेमें बैठकर उस पढ़ाने-लिखानेके सम्बन्धमें सोच-विचार करनेमें गुजरने लगा। और मैं अपने कमरेमें उदास बैठी रहने लगी। कई बार मैंने उनसे पूछा भी—"आप इतनी रात तक उधर बैठे क्या करते रहते हैं? मैं आधी-आधी रात तक आपकी प्रतीक्षा करती रहती हूं।"

वे कहते—"तुम क्या जानो, स्कूल चलाना कितना कठिन है! सौ मामले तय करने होते हैं, सौ बातोंके सम्बन्धमें सोच-विचार करना होता है। मैं तो थक गया हूं। सोचता हूं, सब कुछ खत्म कर दूं; न दिनको चैन मिलता है, न रातको।"

मैं उन्हें तसल्ली देती। कोई बात नहीं। यह मुश्किल भी आसान हो जायेगी। वे मेरे गालपर हल्की-सी चपत लगा देते और खींचकर मुझे चूम लेते।

मैं इसी सीमित प्यारके लिए बड़ी रात तक बैठी रहती। इसीकी स्मृतिको पालती रहती।

और फिर कुछ उदासीको दूर करनेके लिए और कुछ उनके इस कठिन काममें सहायता देनेके योग्य बननेके लिए मैंने 'हिन्दीरत्न'की तैयारी आरम्भ कर दी। उनसे एक युवक अंगरेजी पढ़ने आता था—'हंसराज'—शास्त्री था। दसवींकी परीक्षा दे चुका था। अब एफ० ए० में बैठना चाहता था। उसीसे मैं हिन्दी पढ़ने लगी।

हंसराज सुन्दर हंसमुख युवक था। भोला-भाला और भलामानस। मुझे पढ़ाते हुए वह कभी आंख ऊपर न उठाता। मैं जब भी उसे देखती, पुस्तकपर दृष्टि जमाये पाती। बहुत धीमे स्वरसे वह बोलता और पढ़ानेके बाद अधिक समय तक न ठहरता।

छः महीनों ही में मैंने रत्नकी परीक्षा दे दी। अच्छे नम्बरोंपर पास हो गयी। मैंने भूषणकी पुस्तकें मंगा लीं। किन्तु इस बीचमें एक बात हो गयी, जिसने मेरे जीवनके रुखको पलट दिया।

× × ×

मैं पहले कह चुकी हूं कि वे अधिक बीबीजीके कमरे ही में रहते थे। जब तक मैं परीक्षाकी तैयारियोंमें व्यस्त रही, मैंने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। किन्तु परीक्षाओंके बाद हंसराज अपने गांवको चले गये और मेरा दिल फिर उदास रहने लगा। मैंने उन्हें अपनी ओर आकर्षित करनेका भरसक प्रयत्न किया। किन्तु उन्होंने ध्यान तक न दिया। सदैव दो-चार मीठे शब्दोंसे, मुस्कानोंसे या कृत्रिम प्यारकी हल्की चपतोंसे, और प्रायः एक-दो मीठे चुम्बनोंसे मुझे टाल दिया।

मेरे सोये सन्देह फिर जाग उठे।

मैं छिपे-छिपे उनकी टोह लेने लगी।

हम जिस भागमें रहते थे, वह बीबीजीके भागसे सर्वथा पृथक् था। सीढ़ियां भी अलग थीं और आंगन भी अलग। किन्तु जिस कमरेमें वे रहती थीं, वह हमारे सामानके कमरेके साथ था। एक ईंटकी दीवार मध्यमें थी। मैं कई बार कितनी-कितनी देर तक दीवारके साथ लगी कुछ-न-कुछ सुननेकी चेष्टा किया करती, किन्तु मुझे साफ कुछ सुनाई न देता।

वे रातको कभी जल्दी, कभी देरसे आते। आकर खाना खाते और सो जाते, और मैं सारी-सारी रात जागकर गुजार देती—कभी हवाकी सायं-सायं, कभी टिड्डीकी चीं-चीं, कभी घड़ीकी टिक-टिक मेरी सहायक होती और कभी चांद और तारोंकी मूक करुणा मेरी अन्तर-वेदनापर छाकर मुझे सुला देती।

और मैंने उस दीवारमें सूराख करना शुरू कर दिया।

उस दिन बरसातकी रात थी। बादल बरस रहा था। मीठी-मीठी-सी सर्दी हो गयी थी और ठण्डी हवाके झोंके अन्दर आ रहे थे। मेरे दिलको न जाने क्या हो रहा था। मैं चाहती थी, वे आ जायें; किन्तु वे न आये। नौ बजे, दस बजे, फिर ग्यारह भी बजे। बाहर निस्तब्धता छा गयी; किन्तु उनकी पदचाप मुझे सुनाई नहीं दी।

हारकर मैं झल्लायी हुई सामानके कमरेमें पहुंची और कसीदा निकालनेवाले करोशियेसे मैंने फिर सूराख करना शुरू कर दिया। करोशियेसे काम न चला, तो सलाई ले ली; उससे दिक्कत हुई, तो चर्खेका तकला उतार लायी। इससे एक बारीक-सा सूराख हो गया। खुशीसे मैं उछल

पड़ी। मेरा हृदय धक-धक करने लगा। किन्तु दूसरे क्षण मैं कांप उठी।

मैंने देखा, वे और बीबीजी एक ही बिस्तरपर सोये हुए थे और बीबीजीका बाजू उनके गलेमें था।

× × ×

मुझे अपनी आंखोंपर विश्वास न आया। लेकिन नहीं, चारपाईपर वे ही दोनों सोये थे। अपनी आंखोंको मैंने मला। उन बीबीका हाथ उनके गलेमें था। क्रोध और ईर्षासे मेरी नस-नस जल उठी। जीमें आया—अभी जाकर पूछूं कि इस पापमय ढोंगकी क्या आवश्यकता है? क्यों खुले बन्दों प्रेमका बाजार नहीं गर्म किया जाता? पत्नी—पत्नी वेचारी क्या कर सकती है—संस्कारों, उपदेशों, धर्म-कर्मकी जञ्जीरोंमें जकड़ी हुई, आचार-व्यवहारके जालमें फंसी हुई! वह तड़प सकती है, सिसक सकती है; पर जबान नहीं हिला सकती!

मैंने लम्बी सांस ली। शरीरमें कुछ थकान-सी महसूस हुई। एक बार मैंने फिर उस सूराखसे देखा—नस-नसमें फिर एक ज्वाला-सी दौड़ गयी। जीमें आयी कि जाऊं और जाकर वहीं अपना सिर फोड़ दूं। फिर खयाल आया, नहीं, पहले उनसे पूछ लूं, उनसे साफ-साफ कहलवा लूं और कह दूं कि मैं यह सब कुछ सहन न कर सकूंगी। वे न मानें, तो मर जाऊंगी और बता दूंगी कि पत्नीकी उपस्थितिमें किसी अन्य स्त्रीसे प्रेम करनेका कितना दुःखद परिणाम होता है।

मैं अपने कमरेमें आ गयी और बिस्तरपर पड़ी बहुत देर तक रोती रही। बारह बजे, एक बजा और फिर दो बजे। मैं उनकी प्रतीक्षा करती रही। लेकिन वे न आये। हृदयमें एक टीस-सी उठी। फिर सामानको फांदती हुई दीवारके पास आयी—देखा, वे अब भी उसी तरह सोये हुए थे। अन्तर केवल इतना था कि अब उनका हाथ उसकी गर्दनमें था—विवशता, दुःख और क्रोधकी आगमें जलती हुई मैं वापस आ गयी। निराशा और बेबसीसे कई तरहके विचार मेरे मनमें आये।

बाहर वर्षा हो रही थी। सर्दी भी ज्यादा हो गयी थी, किन्तु मैंने दुपट्टा तक न लिया। उसी तरह शिथिल, थकित पड़ी रही।

सुबह हो गयी। छः, सात और फिर आठ बजे। मेरे सिरमें पीड़ा होने लगी। दर्दके मारे मैं तिलमिला उठी। किन्तु चारपाईसे उठनेकी हिम्मत जैसे मेरे शरीरमें न रही थी।

ज्यों-ज्यों दिन चढ़ता जा रहा था, ईर्षाकी आग मेरे हृदयमें प्रज्वलित होती जा रही थी। नौ बजेके लगभग उधरसे नहाकर वे आये। मैं तड़प कर उठी।

× × ×

"मुझसे यह सब कुछ न देखा जा सकेगा।"

वह खामोश खड़े रहे। फिर बोले—"कुछ बात भी हो।"

हमारी आंखें चार हुईं। जाने उन्हें मेरी आकृतिपर क्या लिखा दिखाई दिया। उनका रङ्ग फक हो गया।

मैंने कहा, "जो कुछ इतनी देरसे हो रहा है और जो कल रात हुआ।"

उनका रङ्ग और फीका पड़ गया। किन्तु क्रोधसे बोले—"क्या हो रहा है और क्या हुआ?"

"मेरे ही मुंहसे सुनना चाहते हो?"

वे चुप बने रहे।

मैंने कहा, "चुप क्यों हो? साफ-साफ क्यों नहीं कह देते कि आपको मेरी जरूरत नहीं।"

वे बोले, "आखिर आज तुम्हें हो क्या गया है? जो बात है, साफ-साफ क्यों नहीं कह देतीं।"

"रातको आप किधर सोये थे?"

"उधर।"

"अकेले?"

क्षणभर वे चुप रहे। फिर बोले—"हां, क्यों?"

"वे आपके साथ न सोयी थीं। आप रोज इकट्ठे नहीं सोते?"

उन्होंने एक खोखला कहकहा लगाया—"अच्छा, यह बात है? तुम स्त्रियां भी······तुमसे ईश्वर समझे। भला इतनी-सी साधारण बातपर तुमने इतना तूफान खड़ा कर दिया। रात काम अधिक देर तक करता रहा था, दिनका थका हुआ था। वहीं नींद आ गयी। चारपाई एक ही थी। वे भी वहीं लेट गयी होंगी। मुझे वे अपना बच्चा समझती हैं।"—यह कहकर उन्होंने पूर्ववत् मेरे गालपर हल्की-सी चपत लगाकर मुझे चूम लिया।

लेकिन उनके इस कृत्रिम व्यवहारने मेरे हृदयकी जलती आगपर तेलका काम किया। मेरा सन्देह पक्का हो गया। मैंने अपने आपको उनके आलिङ्गनसे विलग करते हुए कहा—"तो वे तुम्हें अपना बच्चा समझती हैं ?"

"हां।"

"और तुम उन्हें मांके बराबर समझते हो ?"

उन्होंने मेरे प्रश्नका उत्तर न दिया। बाहर आकाशमें कहीं बादल अट्टहास कर उठा और हवाके तेज झोंकेसे किवाड़ खड़खड़ा उठे।

मैंने कहा, "चुप क्यों हो गये ?"

बेपरवाहीसे बोले, "आखिर तुम आज कैसी मूर्खोंकी-सी बातें कर रही हो। उठो, खाना बनाओ, मुझे भूख लग रही है।"

लेकिन मैं कहां उठती। मेरे हृदयमें ज्वाला जो धधक रही थी। मैं निर्णय करना चाहती थी। या वह रहेगी या मैं। एक म्यानमें दो तलवारें न समा सकेंगी। मैंने कहा—"मेरी बातका जवाब दो।"

"आखिर तुम क्या पूछना चाहती हो ?"

"यही, जो मैंने पूछा है।"

"तुम क्या समझती हो ?"

"मैं जो चाहे समझूं, आप क्या समझते हैं ?"

उन्होंने फिर बातके रुखको पलटनेका प्रयास किया—"जो तुम समझती हो, वही मैं समझता हूं।"

मैं उनकी दुर्बलताको भांप गयी। क्षणभर मैं चुप बैठी सोचती रही। क्या मुझे मामला बढ़ाना चाहिए ? मनने कहा, नहीं ! घाव कहीं इतना गहरा न हो जाये कि फिर मिट ही न सके ! इसलिए मैंने संयत होकर मात्र इतना कहा, "अच्छा, आप जो चाहे समझें; किन्तु आप अधिक देर तक वहां न रहें।"

लेकिन इस बीचमें शायद उन्होंने साहस बटोर लिया या शायद उन्हें मेरी इस समस्त छानबोनपर क्रोध आ गया। अबके बोले तो उनके स्वरमें तीव्रता थी। कहने लगे—

"काम होता है।"

"यहां ले आयें।"

"उनसे परामर्श करना होता है।"

"यहां बुलाकर कर लिया करें।"

"ऐसा नहीं हो सकता"। वे प्रायः कड़ककर बोले।

मेरा संयम फिर हवा हो गया। क्रोधके आंसू मेरी आंखोंमें आ गये। मैं तुनककर खड़ी हो गयी—"नहीं हो सकता ?"—मैंने पूछा।

"नहीं हो सकता।" वे क्रोधसे चीखकर बोले।

मैं आगसे खेल चली—

"तो फिर खुल खेलिये।" मैंने कहा, "मुझे मैके छोड़ आइये, या जहर ला दीजिये। इसके बाद वहां दिन रहिये, रात रहिये, एक शय्यापर आराम कीजिये, गलेमें बाजू डालकर सोइये, कोई देखने न आयेगा, कोई पूछने न आयेगा।"

वे क्रोधसे कांपने लगे, उनकी आंखोंसे अङ्गारे बरसने लगे। पास पड़ी हुई छड़ी उठाकर उन्होंने मुझे तड़ातड़ पीटना शुरू कर दिया। छड़ी टूट गयी, तो उन्होंने लात-मुक्केसे काम लिया और फिर अन्दर चले गये।

अपने वैवाहिक जीवनमें यह पहला ही अवसर था कि मुझे पीटा गया। एक तो सीनेपर सौत लाकर बैठा दी, दूसरे मार······दुःख और क्षोभके मारे मेरी नस-नस जलने लगी। लेकिन मैं चीखी नहीं, चिल्लायी नहीं, हां आंखोंपर संयम न रख सकी। आंसुओंकी नदी अनायास बह निकली।

कुछ देर बाद उन्होंने आकर कहा, "चलो, तुम्हें मैके छोड़ आऊं !"

किन्तु इस तरह घरको जलते हुए देखकर निकल जाना मुझे स्वीकार न था। वे जाने क्या-क्या कहते रहे। गालियां भी उन्होंने दीं, ट्रङ्क भी उठाकर बाहर रखा। किन्तु मैं वहीं दहलीजमें बैठी रही।

उस समय मेरी दशा उस बच्चेकी-सी थी, जिसे साथ न खेलाया जाये और वह वहीं बैठ जाये कि न खेलूंगा और न खेलने दूंगा।

× × ×

हंसराज अपने गांवसे वापस आ गये। मैं भूषणकी तैयारीमें निमग्न हो गयी। मनको उस ओरसे हटानेका सबसे अच्छा साधन अध्ययन था और मैं दिन-रात पुस्तकोंमें मन लगाये रखती।

वे भी उस रोजके बाद कुछ संभल गये थे; किन्तु अपनी आदत उन्होंने न छोड़ी थी। वे वहां प्रतिदिन जाते थे। लेकिन बहुत देर तक न ठहरते थे। जल्द आ जाते थे।

और बीबीजी भी हमारे यहां आने लगी थीं। मुझसे भी उनका प्रेम-सा हो गया था—कोई तीस वर्षकी उम्र होगी। रङ्ग गोरा, तीखी चितवन, और सुन्दर ऐसी कि देखकर जी न भरता था। बस एक बार देखो, तो देखते ही रहो। आंखोंमें न जाने कैसा आकर्षण था। एक बार देखकर मन्त्र-मुग्ध कर देती थीं और फिर मुस्कान, मीठी जहरीली, लेकिन उसका विष उनके बसकी बात थी—जब चाहतीं, उसमें भर देतीं। मुझपर सदैव मीठी मुस्कानकी ही किरणें डालतीं। अपनी छोटी बहन मुझे वे कहती थीं। विवाहित तो शायद थीं; किन्तु देर हुई, उन्होंने पतिको छोड़ रखा था (या शायद पतिने उन्हें छोड़ दिया था)। कुछ-न-कुछ मुझे वे रोज पहुंचा देतीं। इस एक महीनेमें एक-दो धोतियां और एक सुन्दर साड़ी भी उन्होंने मुझे लेकर भेजी। धीरे-धीरे उनके सम्बन्धमें मेरे हृदयमें जो कटुता थी, उसके बन्धन ढीले होने लगे। मुझे पश्चात्ताप भी हुआ कि व्यर्थ ही मैंने उनपर सन्देह किया। इतना कोमल हृदय रखनेवाली, कभी इतनी बुरी हो सकती है। और मैंने कई बार अपने आपको धिक्कारा। अपने पतिके सम्बन्धमें भी मेरा रूखा व्यवहार कुछ ढीला पड़ गया।

किन्तु इन सब बातोंके बावजूद सन्देहकी हलकी-सी रेखा मेरे मनमें कहीं न कहीं बनी रही। अपनी आंखों मैंने जो कुछ देखा था, शायद वह उस रेखाको मिटने न देता था।

× × ×

एक दिन वे देरसे घर आये। मुझे विश्वास था कि वे उधर ही बैठे रहे होंगे। इसलिए मैंने अधिक कुरेदना भी उचित न समझा। सिर्फ इतना पूछा, "उधरसे आ रहे हो, तबीयत तो ठीक है न?"

"हां, सब ठीक है।" वे बोले, "योंही बातें करते देर हो गयी।" और यह कहकर कपड़े बदल वे फिर बाहर जानेको तैयार हो गये।

मैंने कहा, "खाना तो खाते जाइये।"

उन्होंने जल्दीसे छड़ी उठाते हुए कहा, "एक मित्रके घर दावत है।"

"दावत!" मैंने पूछा, "साढ़े दस बजे, किस मित्रके यहां?"

इस प्रश्नके लिए शायद वे तैयार न थे। कुछ रुककर उन्होंने कहा—"प्यारेलालके घर।"

"क्यों, वहां आज क्या है?"

वे चिढ़ गये, "तुम हर बातमें मीन-मेख निकालती हो।" वे क्रोधसे बोले, "है क्या, आज उसका भाई वकालतकी परीक्षामें पास हुआ है। बस!"

वे खट-खट सीढ़ियां उतर गये। मैं चुप बैठी रही। मुझे उनकी बातोंपर विश्वास न आया। आना चाहिए था। पर नहीं आया। सोचा भी कि छोड़ो, तुम्हारी तरफसे कहीं गये हों, अपना मन व्यर्थमें उद्विग्न करोगी। लेकिन मन न माना।

कोई आध घण्टे बाद मैं नीचे उतरी। जहां पाठशालाकी लड़कियां बैठती थीं, वहीं स्कूलकी माई सोती थी। लड़कियोंको घरोंसे लाने, ले जाने और दूसरे छोटे-मोटे कामोंके लिए उसे रखा गया था। मैंने उसे जगाया और प्यारेलालके घर जानेको कहा।

माई हड़बड़ाकर उठी—"क्या काम है बहू, इतनी रात गये वहां?"

मैंने कहा, "प्यारेलालके भाईका नतीजा निकला है, वकालतका। वहां वे दावत खाने गये हैं। तनिक पूछ आना, कब आयेंगे?"

माई चली गयी और वही उत्तर लेकर आयी, जिसकी मुझे सम्भावना थी। वे वहां नहीं थे और वकालतका परीक्षाफल निकलनेमें अभी दो दिनकी देर थी।

माईने पूछा—"मैं जाऊं बहू।"

मैं चुप खड़ी सोच रही थी। जैसे पञ्छी उड़नेसे पहले पर तोलता है, मैं भी जैसे अपने पङ्ख तौल रही थी। इस नौकरानीको मनकी बात बता दूं? इसे बहुत कुछ मालूम होगा। किन्तु फिर झिझक होती थी। अनजाने पानीमें गोता लगानेसे जैसे गोताखोरको झिझक होती है। किन्तु मेरी ईर्षा जैसे मेरी विचार-शक्तिपर छा रही थी। बिना समझे-बूझे मैं कूद पड़ी। मैंने कहा—"माई, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूं।"

माईने कहा, "कहो।"

मैं उसे अन्दर ले गयी और मैंने उसे उस रातकी तमाम घटना सुना दी। अपने सन्देहकी बात भी मैंने उसे बता दी।

अपनी सासका एक लहंगा निकालकर उसे दिया और फिर कहा, "माई, मैं तुम्हारा यह एहसान सारी उम्र न भूलूंगी, मुझे तुम बता दो, आजकल वे कहां जाते हैं। तुम्हें जरूर पता होगा। घरमें वे नहीं रहते, ऐसा मुझे मालूम होता है।"

"उनकी छोटी बहिन आयी हुई है, इसलिए।"

मैंने एक रुपया माईके हाथमें रख दिया। 'तुम अपने मनूके लिए कुर्ता सिलवा देनेके लिए कह रही थीं ना, तुम सिलवा लेना।'

माईकी आंखें चमक उठीं। कुछ ऐसी चालाकी थी उन आंखोंमें, जो मैंने पहले कभी न देखी थी। हृदय मेरा एक बार धड़क उठा, पर मैं अन्धी हो रही थी। माईने कहा—

'बहू, वे होटलमें गये होंगे अथवा उस मकानमें, जो उन्होंने गुप्त रूपसे ले रखा है।'

मैं अवाक् रह गयी—"तो उन्होंने कोई मकान ले रखा है?

"ले तो रखा था। अब नहीं जानती, उनके पास है या नहीं।"

"इस समय कहां होंगे?"

"पता लेकर बता सकती हूं; किन्तु बहू, वे मेरे मालिक हैं, देखना......"

मैंने कहा, "तुम तनिक भी चिन्ता न करो, तुम्हारी तनिक भी हानि न होने दूंगी।"

माई चली गयी। और मैं हताश हो बिस्तरपर लेट गयी। अब जब तीर हाथसे निकल गया था, मैं उसे वापस लानेके लिए आतुर हो उठी थी। सोचती—मैंने बुरा किया। यह बुढ़िया न जाने कैसी है। इसे मैंने अपने घरका भेद क्यों बताया। और मन ही मनमें मैंने प्रार्थना की कि माईका कहना सत्य न हो, वह उनका पता न लगा सके, और मन ही मन मैंने यह भी प्रतिज्ञा की कि अब मैं उससे कोई सरोकार न रखूंगी; किन्तु जब आध घण्टे बाद माईने आकर बताया कि वे पवित्र होटलमें हैं और रात-भरके लिए उन्होंने कमरा ले रखा है, तो मेरी प्रतिज्ञायें धरीकी धरी रह गयीं, ईर्षाकी आग मेरे हृदयमें प्रज्वलित हो उठी, समझ और सोचकी समस्त शक्तियां मुझे जवाब दे गयीं। मैंने कहा—"माई, क्या मैं उन्हें अपनी आंखों नहीं देख सकती हूं।"

"यह कठिन है।"

"तुमने कैसे पता लगा लिया?"

"होटलका मैनेजर मेरा परिचित है।"

स्कूलोंकी बूढ़ी नौकरानियां लड़कियोंको बहला-फुसलाकर होटलोंमें ले जाया करती हैं—यह बात मैंने सुन रखी थी; किन्तु हमारी माई भी उन्हींमेंसे होगी, यह बात मैंने स्वप्नमें भी न सोची थी। कोई दूसरा समय होता, तो मैं उसके जूते लगवाती और घरसे बाहर निकाल देती। किन्तु उस समय मैं स्वयं अपने स्वार्थमें अन्धी हो रही थी। मेरी हालत उस जुआरीकी-सी थी, जो हर बार हारकर और ज्यादा दावपर लगाता है। मैंने अन्दरसे दस रुपयेका नोट लाकर माईके हाथपर रख दिया।

"तुम माई यह होटलवालेको दे दो, उससे कहो कि किसी न किसी तरह वह मुझे उन दोनोंको दिखा दे।"

माई राजी हो गयी। हम दोनों 'पवित्र होटल' गयीं। माईने उसे किस तरह समझाया, कितने रुपये दिये, यह मुझे मालूम नहीं। किन्तु मैं जो चाहती थी, वह हो गया। सीढ़ी लगाकर रौशनदानमेंसे जो कुछ मैंने देखा, उसे देखकर मुझपर उन्माद-सा तारी हो गया। चाहा कि रौशनदानके शीशे तोड़ दूं, दरवाजे फोड़ दूं, और वहां उन दोनोंके सामने जान दे दूं; लेकिन किसी न किसी तरह अपनेको संयत करके वापस आयी।

घर पहुंची, तो दूर कहीं एक बजा।

× × ×

मैंने माईको एकान्तमें ले जाकर कहा, "माई, मुझे कहींसे थोड़ा-सा विष ला दो—अफीम, संखिया, कुछ और..."

"क्यों बहू, विष क्यों?"

"सब कुछ जानकर भी पूछती हो।"—और मैंने माईके हाथमें रुपया रख दिया।

रात मैं सो न सकी थी, अपनी विवशतापर सारी रात रोती रही थी। उस दिन मेरे प्रश्नका उत्तर देते हुए उन्होंने जिस झिझकसे काम लिया था, आज मैं उसका मतलब समझ गयी। और यह उन बीबीजीमें मेरे प्रति जो बहनापेकी भावना फूट निकली थी, उसका भी अर्थ भली भांति मेरी समझमें आ गया। मन एक असह्य ईर्षा और क्रोधसे जल उठा और विचार जाने किधरसे किधर भटकने लगे।...

यदि उन्हें यों दूसरी स्त्रियोंके साथ जीवन व्यतीत करना था, तो मुझे वे ब्याह कर ही क्यों लाये, और यदि ब्याह कर ही लाये थे, तो मुझसे यों प्रेम क्यों किया, यों मुझे प्रेम करना क्यों सिखाया। और अब—वे वहां ऐश कर रहे हैं और मैं...मैं जैसे संसारमें हूं ही नहीं...

फिर खयाल आया, इस तरह जीनेसे लाभ, क्यों न कुछ खाकर सो रहूं। मेरे मरनेपर जानेंगे कि बेबसपर अत्याचार तोड़नेके क्या अर्थ होते हैं? लेकिन इस तरह चुपचाप मर जानेको मन न चाहा। एक बार उनसे पूछनेके लिए मैं आतुर हो उठी।

सुबह जब दस बजेके लगभग वे घर आये, तो मैंने व्यङ्गसे पूछा—"सारी रात ही दावत होती रही क्या?"

"नहीं, जरा देर हो गयी थी, प्यारेलालने कहा—यहीं पड़ रहो, मैंने भी सोचा, तुम्हें क्यों कष्ट दिया जाय—वहीं पड़ रहा।"

मैंने व्यङ्गसे कहा, "ओह, मेरा इतना खयाल है आपको, लेकिन आप तो प्यारेलालके यहां दावत खा रहे थे, पवित्र होटल में गुलछर्रे कौन उड़ा रहा था?"

पवित्र होटलका नाम सुनते ही वे चौंके, जरा कांपे और उनकी आकृति पीली पड़ गयी। लेकिन तत्काल संभल-कर कहने लगे, "पवित्र होटल कौन गया था।"

"आप गये थे और आपके साथ गयी थीं वे, जो आपको अपना बच्चा समझती हैं। मैं पहले कह चुकी हूं कि ये ढोंग छोड़िये, मैं अपनी आंखोंसे सब कुछ देख आयी हूं। यों मेरी आंखोंमें धूल आप न झोंक सकेंगे। मुझे आप मारना चाहते हैं मार दें, अपने मार्गसे हटाना चाहते हैं हटा दें, लेकिन अपनी आंखोंके सामने मैं यह सब कुछ न देख सकूंगी।"

क्रोध और दुःखसे भरकर मैं रोने लगी। उनकी आंखोंमें रक्तके डोरे दौड़ गये, लेकिन फिर अपने आपको संयत रख वे अन्दर चले गये।

कुछ देर बाद आकर उन्होंने अत्यन्त गम्भीरतासे कहा, "लज्जा, तुम इस तरह बात-बातपर मुझे नहीं रोक सकतीं, इस तरह मेरे पांवोंमें जञ्जीर नहीं डाली जा सकती। यदि मैं होटलमें गया, तो तुम ऐसी जगह क्यों गयीं और किसके साथ गयीं?"

"मैं नहीं गयी।"

"तुम्हारी आकृति इस बातका समर्थन नहीं करती।"

मैं चुप रही।

उन्होंने जोशसे कहा, "मुझे मालूम न था, तुमने इतने पर निकाल लिये हैं। अभी तुमने स्वयं कहा था कि तुमने अपनी आंखोंसे सब कुछ देखा है। तो तुम स्वयं रातके समय होटलमें गयीं। जाओ, मेरी ओरसे होटलोंमें जाओ, कोठी-खानोंमें जाओ; जहां जी चाहे जाओ, मैं न बोलूंगा।"

इतना कहकर वे चले गये।

मैं उनके इस अभियोगपर सन्न रह गयी। उनका एक-एक शब्द मेरे हृदयमें सूइयां चुभोने लगा। मैंने फैसला कर लिया, मैं उन्हें मरकर दिखा दूंगी कि पापी वे हैं या मैं?

माईने रुपया मुझे वापस देते हुए कहा, "भला बहू यों उदास क्यों होती हो, पुरुष तो सौ-सौ बातें करते हैं, यदि उनकी एक-एक बातपर यों रोनेको बैठ जायं, तो काम कैसे चले।"

मैंने कहा, "नहीं माई, तुम मुझे अफीम ला दो। यह रुपया तुम ले जाओ, मेरा जी पक गया है, मैं जीवनसे ऊब गयी हूं। जिस जीवनमें कोई आनन्द नहीं, जिसकी किसीको परवा नहीं, जिसे कुढ़-कुढ़कर समाप्त होना है, उसे पालकर क्या करूंगी।"

और मैं सिसक-सिसककर रो उठी।

"न बहू, यों रो-रोकर जीको हलकान न करो।" माईने दुपट्टेके अञ्चलसे मेरे आंसुओंको पोंछते हुए कहा, "तुम स्वयं अपने जीवनकी परवा करोगी, तो सारी दुनिया इसकी परवा करेगी।"

मैं चुप रही।

बुढ़िया फिर बोली, "तुम भोली हो बहू। तुम इन पुरुषोंको बसमें करना क्या जानो। ज्यों-ज्यों तुम इनके गले पड़ती जाओगी, ये परे हटते जायेंगे। लेकिन ज्योंही तुम इनसे तनिक रुखाईका बर्ताव करोगी, ये तुम्हारे तलवे चाटते फिरेंगे।"

मैं फिर चुप रही। केवल एक लम्बी सांस मेरे हृदयकी गहराइयोंसे निकल गयी।

माईने फिर कहा, "बहू, मेरी इतनी आयु हुई है, कई स्त्रियोंको मैंने मृत्युके मुंहसे बचाया है। तुम अपने आपसे बेपरवाह रहती हो, मैले-कुचैले कपड़े पहने रहती हो और पुरुष भिन्नता चाहता है, नवीनताका प्रेमी है। तनिक अपने

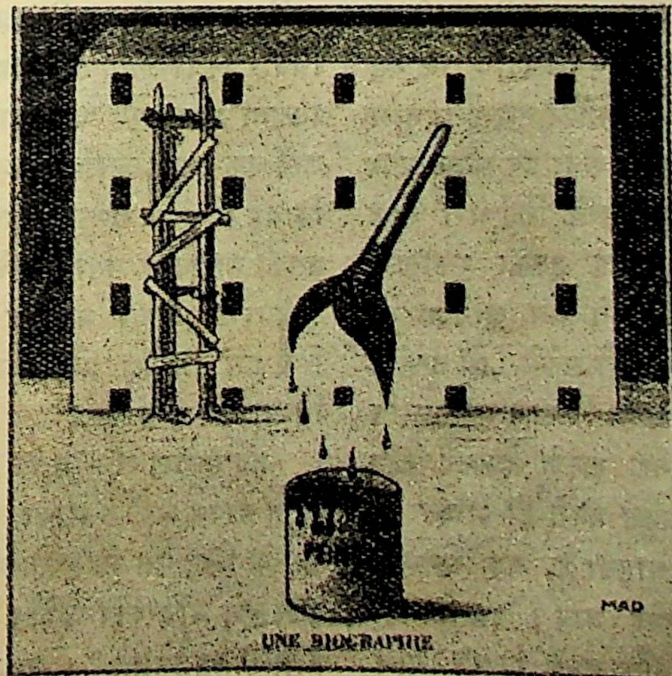
आपमें परिवर्तन लाओ, जरा उन्हें भी मालूम हो जाये, तुम भी सुन्दर हो, तुमपर भी कोई जान निछावर कर सकता है। बस वे तुम्हारे होकर रहेंगे और अगर वे तुम्हारे न भी हुए, तो मरनेसे तो यह सब कहीं अच्छा होगा। परमात्माने इतनी विभूतियां इसलिए नहीं पैदा कीं कि मानव उनकी ओरसे सदैवके लिए आंखें बन्द कर ले। ये सब कानून जिनसे स्त्रियोंके लिए इन सब विभूतियोंके दरवाजे बन्द कर दिये गये हैं, पुरुषोंके बनाये हुए हैं। तुम यह बताओ, मरकर अपना उद्देश्य पूरा कर लोगी?"

स्कूलका समय हो गया था। माई चली गयी। उसका एक-एक वाक्य मेरे मस्तिष्कमें घूमता रहा। मरकर मैं अपना उद्देश्य कहां पा सकूंगी? मेरे मरनेके दूसरे दिन ही सौत ब्याह लायेंगे। जो जीते जी यह करते हैं, मरनेके बाद क्या कुछ न करेंगे। न, मैं नहीं मरूंगी, मैं उन्हें दिखा दूंगी कि मैं उन दुर्बल, भीरु स्त्रियोंमेंसे नहीं, जो जान दे देती हैं, या पुरुषोंकी जूती बनकर रहती हैं। और प्रतिहिंसाकी अज्ञात ज्वाला मेरी नस-नसमें धधक चली।

मैं उठी। सफाई आदिसे निबट मैंने स्नान किया। शास्त्रीजीको मुझे अभी पढ़ाने आना था। उनकी सुन्दर आकृति निमिष-मात्रमें मेरी आंखोंके सामने घूम गयी और मैं शीशेके आगे बाल संवारने लगी।

उस दिन बाल संवारनेमें मुझे काफी समय लगा, बाल संवारकर मैंने ट्रङ्क खोला। एक ब्लाउजका गला कदरे खुदा बन गया था। उन्होंने कई बार कहा था, इसे पहनो, आजकल तो यह फैशन है; किन्तु गलेके नीचे इतना हिस्सा नजर आता था कि मुझे पहननेमें शर्म आती थी, और फिर पतला रेशमी कपड़ा था—इतना कि कञ्चुकीकी डोरें दिखाई देती थीं। जाने किस अज्ञात प्रेरणासे मैंने वही ब्लाउज पहन लिया, उसीके साथकी महीन रेशमी धोती पहनी और फिर मैंने शीशेमें अपनेको देखा। मुझे सरूर-सा आ गया, तब एक पुस्तक लेकर मैं बैठ गयी।

आंखें मेरी पुस्तकपर थीं, लेकिन कान सीढ़ियोंकी ओर लगे थे। और मन शास्त्रीजीकी आवाज सुननेको कुछ इस तरह आतुर था कि पहले कभी न हुआ था।



UNE BIOGRAPHIE

संसारके अनोखे लड़ाके चङ्गेज खांका अद्भुत नारी-प्रेम

श्री मनोहरलाल बजाज

किसी विद्वान्का मत है कि "इतिहास किसीको क्षमा नहीं करता।" अर्थात् यदि किसी व्यक्ति-विशेषने शक्ति प्राप्त करके मानवतापर कुल्हाड़ा चलाया, या निर्बलों और निस्सहायोंपर अपने पशु-बलसे प्रभुत्व जमानेकी कुचेष्टा की, तो इतिहासने सदैव उस व्यक्ति-विशेषके प्रति घृणाका भाव उत्तेजित किया। यही कारण है कि कई शताब्दियां बीत जानेपर भी लोगोंने समस्त एशियाका विनाश करनेवाले चङ्गेज खांको "खूनी भेड़िया" की उपाधि दी।

इसमें सन्देह नहीं कि उसने लोगोंपर अत्याचार किया। जैसा कि सभी इतिहास-लेखक इस बातपर सहमत हैं कि यदि उन लोगोंकी संख्या एकत्र की जाय, जो उसके आदेशसे या उसकी लड़ाइयोंमें मारे गये, तो यह संख्या करोड़ों तक पहुंच जायेगी। केवल बगदादमें उसने इतने मुसलमानोंको मौतके घाट उतारा, कि तीन दिन तक बगदादकी गलियोंमें लहूकी नदियां बहती रहीं और दजला नदीका जल कई मीलों तक लाल रहा।

ऐसा कौन व्यक्ति है, जो उसकी उस निर्दयताकी कहानियां सुनकर कांप नहीं उठता, जिसका प्रदर्शन उसने बगदाद और समरकन्दमें किया। एक मुसलमान इतिहास-लेखक समरकन्दकी तबाहीका उल्लेख करते हुए लिखता है कि यह शहर तेरहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें कई मीलों तक फैला हुआ था। उसकी रक्षाके लिए एक विशाल सेना हर समय तत्पर रहती थी। १२२१ ई० में उसने इस शहरके गिर्द घेरा डाल दिया। वहांके निवासियोंने चन्द सप्ताह इसका मुकाबला किया। परन्तु जब उन्होंने देखा कि वे यत्न करनेपर भी शहरको उस भेड़ियेके पञ्जेसे मुक्त न करा सकेंगे, तो उन्होंने शहरको चङ्गेजके हवाले करनेका निर्णय किया। मुसलमान इन खूंखार तातारियोंकी भयानक शकलें देखकर कांप रहे थे। किन्तु चङ्गेज खांने शहरमें प्रवेश करते ही आज्ञा दी कि जो व्यक्ति अपनी जान बचाना चाहता है, वह बिलकुल "खाली" होकर शहरसे बाहर निकल जाय। इस अभयदानको पाकर सहस्रों पुरुष, स्त्रियां और बच्चे अपनी जान बचानेके लिए शहरसे बाहर निकले। लेकिन ज्योंही उन्होंने फसीलसे बाहर पग रखा, त्योंही चङ्गेज खांकी सेना उनपर हिंस्र भेड़ियोंकी भांति टूट पड़ी और देखते-ही-देखते वहां लाशोंका ढेर लगा दिया। दस लाख व्यक्तियोंमेंसे केवल पचास हजार बचे, जो तदनन्तर दासोंका जीवन व्यतीत करनेके लिए बाध्य किये गये।

अब घटनाओंके प्रकाशमें प्रत्येक व्यक्ति यह अनुमान करनेपर विवश हो जायेगा कि निस्सन्देह वह आग उगलनेवाला विकराल सर्प था। ऐसे अक्खड़, जङ्गलीका, जिसके फौलादी शरीरमें हृदय न था, किसी सुन्दरीके मायाजालमें फंस जाना आश्चर्य नहीं, तो क्या है? परन्तु है यह सत्य कि बुढ़ापेमें उसका दिल एक कासेक दासीकी जुल्फोंमें उलझ गया था।

उसके विषयमें यह सम्मति स्थिर करना कि वह केवल अत्याचरी था, सर्वथा अन्याय है। कासेक दासीसे विशुद्ध प्रणय, प्रतिज्ञा पालन करनेके लिए अपनी प्रेयसीकी हत्या और सहस्रों सुन्दरियोंके होते हुए अपनी प्रेमिकाके लिए प्राणोंका परित्याग, क्या किसी साधारण एवं हृदय-रहित व्यक्तिका काम है? यदि पक्षपातसे हटकर उसके चरित्रपर विचार किया जाय, तो यह परिणाम निकलना कि वह कितना महान् एवं 'कलाकार' था, कुछ भी कठिन नहीं। जहां तक उसके अत्यचारोंका सम्बन्ध है, इसमें संशय नहीं कि वह लोगोंकी घृणाका पात्र बना रहेगा। परन्तु जहां तक उसकी महानता तथा उसके चरित्रका सम्बन्ध है, क्या दुनिया उसे आदर्श मानकर उसकी पूजा करेगी?—इसके लिए हमें निष्पक्ष होकर उसके जीवनकी "ट्रेजिडी" पर विचार करना होगा।

जब हलाकू खां—चङ्गेज खांका पोता रूसका सर्वनाश करके वापस मङ्गोल आया, तो चङ्गेज खांने उसका स्वागत करनेके लिए एक महोत्सवका प्रबन्ध किया। अपने हाथसे हलाकूको मदिराका प्याला देते हुए उसने कहा—"नवयुवक! मैं तुझपर बहुत प्रसन्न हूं। मांग, अपने दादासे क्या मांगता है।"

हलाकू जानता था कि तातारी प्रतिज्ञा-पालनके लिए अपने प्राणोंकी भी परवाह नहीं करते। इसी विचारसे उसने अपने दादासे कहा—"यदि आप वास्तवमें मुझपर प्रसन्न हैं, तो कृपया वह कासेक दासी मुझे सौंप दीजिये।"

चङ्गेज खांपर मानो बिजली टूट पड़ी। उसके पोतेने वही स्त्री मांगी थी, जिसे क्षण-भरके लिए आंखोंसे ओझल करना उसके लिए मृत्युके समान था। वह हलाकूको एकान्तमें ले जाकर कहने लगा—"तूने मुझसे ऐसी वस्तु मांगी है, जो मुझे प्राणोंसे भी प्रिय है। यदि तू मेरे प्राण मांगता, तो मैं कदापि उनके देनेमें पसोपेश न करता। मेरे नेक पोते! क्या तू अपनी इस याचनापर दोबारा विचार करना स्वीकार करेगा?"

हलाकूने उत्तर दिया—"मैं अपने मनमें निर्णय कर चुका हूं कि मैं इस सुन्दरीके बिना जीवित न रह सकूंगा।"

मनुष्य बेशक बूढ़ा हो जाय, परन्तु प्रेम तो कभी बूढ़ा नहीं होता। न बुड्ढा इस सुन्दरीसे विमुख होनेके लिए तत्पर था और न नवयुवक ही उसका खयाल भुलानेके लिए तैयार था। निदान दोनोंने फैसला किया कि उस कासेक छोकरीको जेहूं नदीकी लहरोंमें बहा दिया जाय। चङ्गेजने कलेजेपर पत्थर रखकर यह स्वीकार कर लिया। ये दोनों उस लड़कीके कमरेमें गये और उसे अपने साथ चलनेका आदेश किया।

लड़कीने जब अपने सम्मुख चङ्गेज और हलाकूको देखा, तो वह सिहर गयी। उसने तत्क्षण भांप लिया कि उसके प्राण खतरेमें हैं। कारण, उसे इस बातका अनुभव था कि हलाकू उसे कनखियोंसे देखकर रह-रहकर हृदयपर हाथ रख लिया करता है। वह भी युवती थी; परन्तु उसके हृदयमें बूढ़ेके लिए असीम प्रेम था। उसने कहा—"हां, मैं आपके साथ चलनेको तैयार हूं।"—ये तीनों जेहूं नदीकी ओर चल दिये।

यद्यपि नदी वहांसे दूर न थी, तथापि उसने अपने थकनेका बहाना किया, इसलिए कि मरनेसे पहले वह अपने प्रीतमका आलिङ्गन कर सके। ज्योंही हलाकू उसे उठानेके लिए आगे बढ़ा, त्योंही बुड्ढेने कड़ककर कहा—"सावधान! मेरे जीते जी तू इसे हाथ नहीं लगा सकता। यह काम मुझे ही अपने हाथों करना होगा।"

वह अब बूढ़ा हो चुका था; परन्तु फिर भी सुन्दरीको उसने फूलकी भांति उठा लिया। इस तरह वे जेहूं नदीके किनारे पहुंच गये।

यह एक विशाल मरुस्थल था, जिसमें जेहूं नदी छोटी-सी पहाड़ीसे आबशार बनाकर कोलाहल करती हुई बह रही थी। सुन्दरी उसके छोरपर खड़ी थर-थर कांप रही थी। ऐसा भयानक दृश्य देखकर क्रूर चङ्गेजकी भी आंखें भर आयीं। उसने रोते हुए सुन्दरीकी प्राण-रक्षाकी याचना की। हलाकूने अपने दादाकी ओर देखा, परन्तु उसके हृदयमें रत्ती-भर भी दया न उमड़ी। उसने चिल्लाकर कहा—"भीरु तातारी! क्या तू एक लड़कीके मोहमें अपनी कुल-मर्यादा भङ्ग कर देगा?"

चङ्गेज खांने भारी आवाजमें लड़कीको कहा—"कोमलाङ्गी! तू सब कुछ जानती है। क्या तू अपनी खुशीसे प्राण त्यागनेके लिए तैयार है?"

"स्वामीकी आज्ञा सिर आंखोंपर।"—यह कहकर वह आगे बढ़ी, ताकि अपनेको सदाके लिए नदीके गर्भमें छिपा दे। परन्तु नदीके भयङ्कर शब्दने उसे कम्पित कर दिया। उसने आंखें मूंद लीं और चीत्कार कर कहा—"नहीं! मैं स्वयं नहीं मर सकती। यह काम तुम्हींको अपने हाथोंसे करना होगा।"

यह सुनकर हलाकू आगे बढ़ा। लेकिन लड़की शीघ्रतासे चङ्गेजके हाथ चूमकर बोली—"यह काम इन्हीं हाथोंको करना होगा, जो मुझे प्यार करते थे।"

उस बालाके सङ्ग बीते हुए, मीठे दिन याद करके चङ्गेज रुदन करने लगा, परन्तु अब भी उस अक्खड़ हलाकूके मनमें बिलकुल दया न उपजी।

अब चङ्गेज जी कड़ा करके आगे बढ़ा। उसने सुन्दरीसे चिमटकर उसके अधरोंका अन्तिम चुम्बन लिया। "इस चुम्बनकी सौगन्ध! मैं अब भी तुझसे अथाह प्रेम करता हूं।"—इतना कहकर उसने सुन्दरीको जेहूंकी क्रूर लहरोंके हाथ सौंप दिया। एक करुणा-पूर्ण चीखके साथ कोई सुन्दर वस्तु लुढ़कती हुई लहरोंमें समा गयी।

इस दुर्घटनाका हलाकूपर भी तत्क्षण प्रभाव पड़ा। उसने ठण्डी सांस लेकर कहा—"दादा! देवताओंको जो स्वीकार था, वह हो गया। अब घर चलकर भाग्यपर सन्तोष करो।"

चङ्गेजकी आंखोंके सामने अन्धकार छा गया, बोला—"नवयुवक! अब तू अकेला ही घर जा और मुझे अपनी प्रेयसीसे मिलने दे।"

दूर—बहुत दूर उसे कोई सुन्दर वस्तु बहती हुई दीख रही थी। उसे पानेके लिए वह उन्मत्त हो गया।—अगले क्षण फिर नदीमें किसीके गिरनेका शब्द हुआ। अब हलाकू छोरपर खड़ा-खड़ा दो सुन्दर शवोंको धीरे-धीरे बहते हुए देख रहा था।

——

अपनी कैफियत

(१)

आज मैं यहां हूं बैठा. कल कौन जानता है?
मैं कहां रहूंगा, क्या करूंगा, क्या कहाऊंगा?
भूमिमें रहूंगा भार हरता वसुन्धराका,
या मैं नील नभमें मयङ्क-सा समाऊंगा।
झूमता हुआ मदान्ध नशेमें भ्रमर-जैसा,
फूलोंमें, निकुञ्जोंमें, बनोंमें मंडलाऊंगा।
रमता हूं योगी और बहता हूं पानी मैं तो,
कौन जानता है किस ओर चला जाऊंगा।

(२)

मुझमें बसन्तके बहारकी भरी है मस्ती,
दिलमें सभीके दरिया-सा बहता हूं मैं।
राहमें किसीकी चरणोंकी धूलि चुनता हूं,
बड़ी-बड़ी आंखोंमें समाया रहता हूं मैं।
शोर है हमारा हिन्दी-मन्दिरमें मुद्दतोंसे,
अपनी कहानी किसीसे न कहता हूं मैं।
कवि हूं, महाकवि हूं, रवि-सा यशस्वी भी हूं,
सबसे जुदा हूं, साथ मिला रहता हूं मैं।

(३)

मेरी मायाका न अन्त कभी कोई पा सका है,
अपने विचित्र-चित्र पागल सजाता हूं।
सर्वनाश कर देता द्रोहियों विरोधियोंका,
प्रेमियोंमें मत्त नवयौवन लुटाता हूं।
पतला पराग-जैसा, धूलिकण-सा हूं लघु,
जगमें महान मैं विराट कहलाता हूं।
शोभा लुट जाती सब सभा और उत्सवोंकी,
मैं न जहां जाता हूं, जहांसे चला आता हूं।

(४)

विप्लवोंकी ज्वाला मेरे कर्ममें भड़कती है,
मानवोंके मनमें उजाला भर देता हूं।
भवसिन्धुकी मैं थाह लेता नोन-जैसा घुल,
डूबता हूं कभी उतराता नाव खेता हूं।
वायु-मण्डल लगता जहांका मुझे है सजीव,
मञ्जिल वहीं मैं मोहिनी-सी बना लेता हूं।
लाशमें किसीकी ढक जाता हूं कफन जैसा,
वरदान देता, प्रतिदान मैं न लेता हूं।

(५)

लम्बी है कहानी मेरे दर्दकी, मुसीबतोंकी,
थाम लेता है कलेजा सुनता जो जन है।
ठोकरोंसे चूर-चूर हो गया है मेरा दिल,
कांटोंसे छिदा हुआ प्रसून-सा बदन है।
अत्याचारों, मारों और हाहाकारोंके हजारों,
बोझे ढोता जा रहा गरीब यह तन है।
रात-रात भर मैं जलाता औ' बुझाता दीप,
देखता हूं जागता या सोता मेरा मन है।

(६)

मौतमें अमर होनेके मजे मैं पा रहा हूं,
प्रेमकी कसौटीमें कभीसे कसा जाता हूं।
सूर्य-किरणें हैं मुझे ढूंढ़ती जमीनपर,
पर मैं हवामें तिनका-सा बहा जाता हूं।
शासन किसीका मैं न मानता निरंकुश हूं,
भूल जाता कोई तो उसे मैं भूल जाता हूं।
खुद ही हूं बादशाह, खुद ही मैं अर्दली हूं,
सामने किसीके नहीं मस्तक झुकाता हूं।

—गुलाबरत्न वाजपेयी "गुलाब"

युद्धमें पशु-पक्षियोंके कार्य

श्री गगनविहारी, एम० एस-सी०

महाकवि कालिदासकी कोमल कल्पनाने विरही यक्षका सन्देश विरह-विदग्धा यक्षिणीके पास ले जानेके लिए आकाशमें हवाके घोड़ोंपर उड़ते हुए मेघोंको चुनकर निःसन्देह उस कवि-कौशलका परिचय दिया है, जो संसारके प्रेमियोंका हृदय बरबस अपनी ओर खींच लेता है। मेघोंके सन्देश ले जानेमें सूक्ष्म कवि-कल्पना हो सकती है; परन्तु प्राचीन भारतके कवियोंने इस तरहके सन्देश ले जानेके लिए पक्षियोंका उपयोग सफलताके साथ किया है। नल और दमयन्तीके हृदयोंको एक-दूसरेके प्रति आकर्षित करनेका कार्य हंसने किया था, यह महाभारत पढ़नेवालोंसे छिपा नहीं है। पुराने जमानेकी इन कवि-कल्पनाओंको अगर छोड़ दिया जाय, तो भी इधर दिल्ली-सम्राट् पृथिवीराजके समयके आसपास कबूतरों द्वारा पत्र भेजनेका उल्लेख मिलता है। सारांश यह है कि देशवासियोंको सन्देश भेजने और मंगानेके लिए पक्षियोंकी उपयोगिताका पता अत्यन्त प्राचीन कालसे है और वे अपने तरीकेसे उनका उपयोग किया करते थे। वर्तमान समयमें इस कलाको और भी अधिक उन्नत किया गया है, विधिवत् उसकी एक प्रणाली स्थिर की गयी है और कबूतरोंका ही नहीं, कुत्तोंका भी उपयोग सन्देश लाने और ले जानेके लिए किया जाता है। अमेरिकामें कबूतरोंको इस कार्यके लिए खास तौरसे शिक्षा दी जाती है। चीन-जापान युद्धमें जापानके सेना-विभागके कुत्तोंने सन्देश-वाहकका काम ऐसी परिस्थितिमें सफलताके साथ किया है, जिसमें किसी मनुष्यके लिए वैसा कर सकना असम्भव ही था। गत यूरोपीय महासमरमें भी कुत्तों और कबूतरोंका कार्य देखकर चकित हो जाना पड़ा था और यूरोपके कितने ही देशोंमें सुशिक्षित कुत्ते प्रायः नित्य ही बदमाशोंका पता लगानेमें पुलिसकी जो सहायता किया करते हैं, उसका हाल जानकर दांतों-तले अंगुली दबानी पड़ती है।

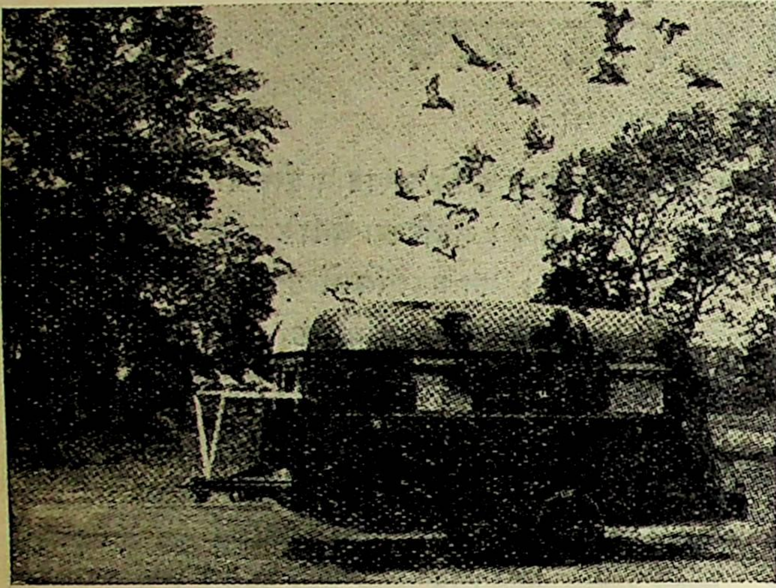
अमेरिकाके नेशनल म्युजियममें आप जाइये, वहां एक कमरेमें अन्य कितनी ही चीजोंके अलावा एक मृत कबूतर आपको देखनेको मिलेगा। इसे वैज्ञानिक साधनोंसे इस तरह बचाकर रखा गया है कि खराब न होने पाये। इस कबूतरका नाम चेर आमी है। अमेरिकन सेनाके इतिहासमें यह कबूतर भी अमर है। गत महासमरमें इस कबूतरने अमेरिकन सेनाकी एक टुकड़ीके पास आवश्यक सन्देश पहुंचाया था और इस तरह उस टुकड़ीको सङ्कटमें पड़नेसे बचा लिया था। चेर आमी जब अपना कार्य कर अड्डेपर लौटा, उसकी एक टांग क्षत-विक्षत हो गयी थी और मशीनगनकी एक गोली उसकी छातीमें घुस गयी थी। आज भी अमेरिकन इस कबूतरको देखकर उसके प्रति आदर प्रकट करते हैं।

फोर्ट मनमौथके अड्डेमें आज भी एक कबूतर है, जिसने गत महासमरमें कार्य किया था। यह जर्मन सेनामें था और जर्मनीके सैनिक कार्यसे जब यह निकला हुआ था, १९१८ में इसे पकड़ लिया गया था। यह २३ वर्षका है और शायद गत महासमरके जीवित पक्षियोंमें अब यही रह गया है।

फोर्ट मनमौथमें रात्रिके निबिड़ अन्धकारमें कबूतरोंके अड्डेपर एक घण्टी बजती है और उसकी आवाज होते ही रोशनी लेकर एक कर्मचारी बड़ी शीघ्रतासे उस ओर चल पड़ता है, जिससे वह उसी समय वहां पहुंचे हुए कबूतरकी टांगसे बंधी हुई थैलीको खोलकर देखे कि उसमें सेनाके लिए क्या महत्त्वपूर्ण सन्देश आया है। थैलीसे निकले हुए कागजको देखनेसे पता चलता है कि कबूतरको २ घण्टे पहले जिस स्थानसे छोड़ा गया था, वह वहांसे लगभग ६० मील है।

कुछ समयके अन्तरसे छः अन्य कबूतर एक-एककर रात्रिके अन्धकारको चीरते हुए अड्डेपर उतरे। इन्हें भी ६० मील दूर उसी स्थानसे छोड़ा गया था। इस तरह अमेरिकाके सेना-विभागने एक अन्य प्रयोग भी सफलताके साथ पूरा किया। यह प्रयोग है—चिड़ियोंका रात्रिमें उड़नेका अभ्यास।

कबूतरोंने सन्देश-वाहकका काम प्राचीन कालसे ही दिनमें किया है; क्योंकि कबूतर रात्रिमें उड़ना पसन्द नहीं करते। उन्हें दिनमें उड़ना और रात्रिमें सुखसे विश्राम करना पसन्द है। परन्तु वर्तमान युगमें कबूतरोंको दिनमें



मोटरपर गश्ती काबुक, कबूतरोंको स्थान बदल-बदलकर अड्डेपर लौटनेकी शिक्षा दी जाती है।

उड़ाना वाञ्छनीय नहीं है, क्योंकि सैनिक दृष्टिसे उसमें कई खतरे हैं। शत्रुकी सेनाओंमें ऐसे निशानेबाज भी हो सकते हैं, जिन्हें आकाशमें कबूतरको उड़ता हुआ देखकर सन्देह हो जाय और वे निशाना लेकर उसे या तो धराशायी कर दें या घायल कर दें। इस स्थितिमें भय है कि जिस महत्त्व-पूर्ण सन्देशको कबूतर ले जा रहा हो, वह कहीं शत्रुके हाथ न लग जाय अथवा खो न जाय। फिर दिनमें कबूतरोंको बाज-जैसे स्वाभाविक शत्रुओंका भी भय होता ही है, और कौन कह सकता है कि कोई सन्देश-वाहक कबूतर किसी बाजका शिकार न हो जायगा और सन्देश अभीष्ट स्थानमें पहुंचेगा भी कि नहीं।

अमेरिकाके सैनिक विभागने हालमें ही यह प्रयत्न किया था कि कबूतरोंका दिनमें उड़नेका जो स्वभाव है, उसीको बदल दिया जाय और उन्हें रात्रिमें उड़नेकी शिक्षा दी जाय। इस सिलसिलेमें खोज करनेपर मालूम हुआ कि सभी कबूतर रात्रिमें उड़ना नहीं सीख सकते। रात्रिमें उड़ना पसन्द नहीं होनेके कारण साधारण कबूतर रात्रिमें पहले तो उड़ेंगे ही नहीं और अगर उड़े भी, तो जहां उन्हें जगह दिखलाई पड़ी, उतर आयेंगे। जो कबूतर उड़ना न चाहते हों, वे किसी कामके नहीं होते, क्योंकि वे निश्चय ही किसी पेड़पर जा बैठेंगे। इसीलिए रात्रिकी उड़ानके लिए जिन कबूतरोंको शिक्षित बनाया जाता है, उन्हें साधारण कबूतरोंकी अपेक्षा कुछ अधिक समझदार तो होना ही चाहिए और उनमें कुछ साहस भी ज्यादा होना चाहिए। कबूतरोंकी इस शिक्षामें काफी समय लग जाता है और यह चीज परम्पराका रूप नहीं ग्रहण करती। परिणाम यह होता है कि प्रत्येक कबूतरको बिलकुल नयेसिरेसे सिखलाना पड़ता है।

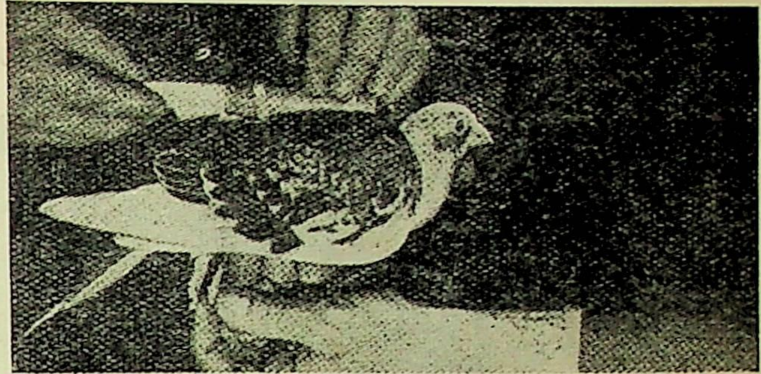
अमेरिकाके सेना-विभागने जब इस तरहके प्रयोग आरम्भ किये, एक अड्डा ऐसा तैयार किया गया, जो रोशनीसे खूब जगमगा रहा था। बादमें रङ्गदार रोशनी रखी गयी और अन्तमें रोशनीको बिलकुल ही उठा दिया गया। कबूतर जिस तरह रोशनीदार अड्डेपर उतरते थे, उसी तरह अन्धकारमें भी अड्डेपर उतरने लगे। कुछ दूर ले जाकर उड़ाये जानेपर भी अड्डेपर लौट आनेके लिए सैकड़ों बार अभ्यास कराया गया। पहले थोड़ी दूर ले जाकर उड़ाया गया था। उतनी दूरसे जब कबूतर अड्डेपर लौटने लगे, तब फासला कुछ ज्यादा किया गया। इसी तरह धीरे-धीरे दूरी बढ़ती गयी, यहां तक कि आज बीस मील तककी औसत दूरी हो गयी है। ५० मील दूर किसी भी स्थानसे छोड़े हुए कबूतर अपने अड्डेपर पहुंचने लगे हैं—यों तो ऐसे प्रयोग भी सफलताके साथ किये गये हैं, जिनमें ६० मील दूर छोड़े हुए कबूतर भी अपने अड्डोंपर पहुंचनेमें सफल हुए हैं। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि कबूतरोंको निकट भविष्य-में इससे भी ज्यादा दूरी तक उड़नेमें कोई कठिनाई नहीं



कबूतरकी टांगमें सन्देश बांधा जा रहा है।

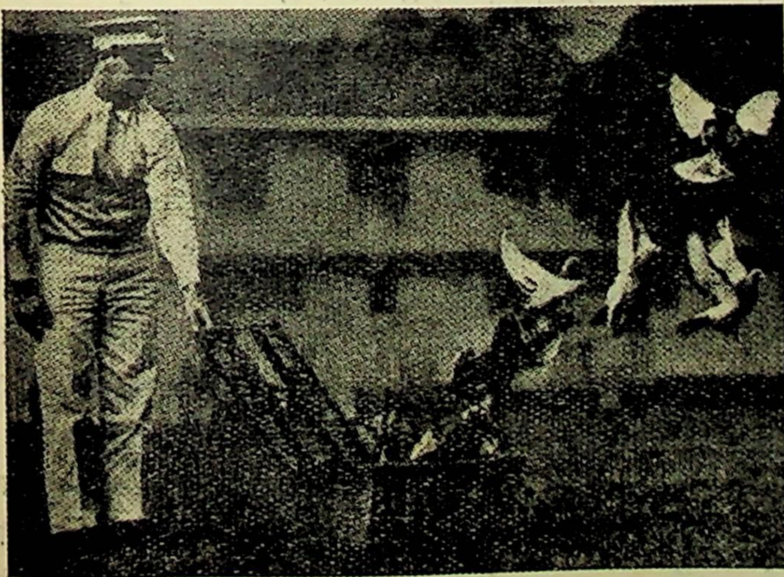
होगी। ६० मीलकी उड़ानपर जब कबूतरोंको रात्रिके ११ बजकर ५९ मिनटपर छोड़ा गया था, तब घोर अन्धकार तो था ही, बूंदाबांदी भी हो रही थी।

अमेरिकाके सेना-विभागको जिस एक अन्य बातका पता लगा है, वह यह है कि कई सालकी शिक्षाके बाद जब कबूतरोंको रात्रिमें उड़ाया जाता है, तब वे दिनकी अपेक्षा रात्रिको ज्यादा तेजीसे उड़ते हैं; क्योंकि उन्हें रात्रिमें उड़ना पसन्द नहीं है, इसलिए वे दूरी तय करनेमें बड़ी शीघ्रता दिखलाते हैं। दिनमें साधारणतः ३९ मील प्रति घण्टेकी उड़ान कबूतर भरते हैं और यद्यपि अनुकूल वातावरणमें उन्हें दिनमें भी ७० मील प्रति घण्टेकी रफ्तारसे उड़ते पाया गया है, तथापि रात्रिमें प्रति घण्टे ६० मीलसे कहीं ज्यादा रफ्तारसे उड़ना भी उनके लिए असाधारण नहीं है।



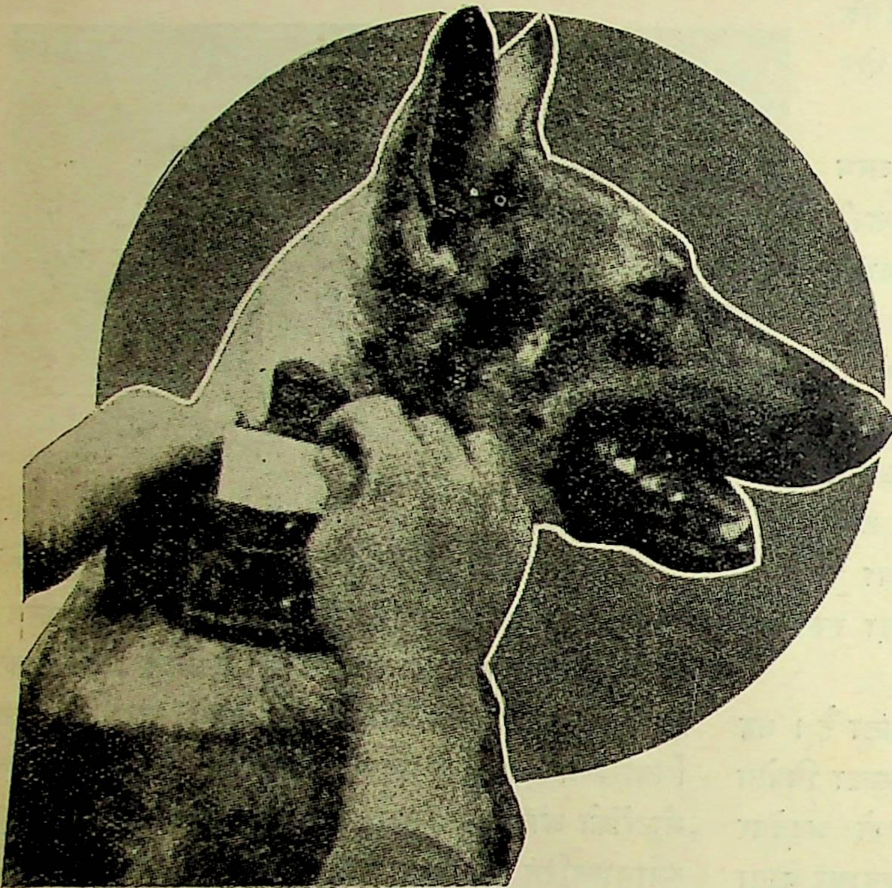
पीठपर नलीमें सन्देश रखा जाता है।

कबूतरको अपनी कबूतरीसे बड़ा प्रेम होता है। वह अपनी कबूतरीका साथ नहीं छोड़ना चाहता, उसका वियोग उसे असह्य होता है। कबूतरके कहींसे भी अपने अड्डेपर लौट आनेके लिए पहले इस प्रेमको साधन बनाया जाता था। एक दूसरा तरीका यह भी काममें लाया जाता था कि उड़ाये जानेसे पहले कबूतरको भूखा रखा जाता था, जिससे खुराक पानेके लिए वह अड्डेपर लौट आये। ये तरीके अब छोड़ दिये गये हैं; क्योंकि अनुभव यह बतलाता है कि घरवाले कबूतर इतने समझदार होते हैं कि अगर उन्हें आरामके साथ पूर्ण सन्तुष्ट रखा जाय और साथ ही उन्हें यह दिखला दिया जाय कि अड्डेसे अलग उन्हें क्या करना है, तो वे अपना काम आसानीसे सीख लेते हैं। शिक्षाकी इस शैलीका परिणाम आश्चर्यजनक रूपमें हुआ है। इस सिलसिलेमें मोटरोंपर कबूतरोंके अड्डे बनाये गये हैं। इन मोटरोंको आवश्यकतानुसार नये-नये स्थानोंमें कई मील दूर स्थानान्तरित कर दिया जाता है। यहां जब कबूतरोंको उड़ाया जाता है, तब वे अपने अड्डेकी पुरानी जगहपर उड़कर नहीं जाते। रणक्षेत्रमें उतरी हुई सेनाकी दृष्टिसे यह शिक्षा कितनी महत्त्वपूर्ण है, इसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।



सन्देश लेकर कबूतर जा रहे हैं।

अमेरिकामें फोर्ट मनमौथके फौजी अड्डेमें ९०० कबूतर हैं। ये सब खूब सुशिक्षित हैं। यहां जब कबूतरका कोई बच्चा ६ दिनका होता है, उसके पैरोंमें छल्ला पहना दिया जाता है, जिसपर उसका पता और नम्बर होता है। चार हफ्ते बीतनेपर इन बच्चोंको माता-पितासे अलग कर दिया जाता है और उन्हें अलग ही रखते हैं। इन नन्हें-नन्हें कबूतरोंकी शिक्षाका पहला अङ्ग है, अपने चारों ओरकी जानकारी प्राप्त करना। इसके लिए उन्हें अड्डेपर ऊपर बैठा दिया जाता है। जब बच्चा कुछ बड़ा होने लगता है, उसे उड़कर अड्डेपर पहुंचना और आवाजपर अपनी काबुकमें चला जाना सिखलाते हैं। अड्डेसे कुछ ही फीट दूर ले जाकर और अड्डेपर लौटनेके लिए विवश कर यह शिक्षा दी जाती है। आवाजपर काबुकमें



सैनिक कुत्तेकी पट्टीमें पत्र रखा जा रहा है।

तककी चिट्ठियां और नक्शे भेजनेमें अभी तक सफलता मिल चुकी है।

इन कबूतरोंको गश्ती काबुकमें स्थायी रूपसे रखा जाता है। उसीमें ये कबूतरीके साथ रहते और अण्डे रखते हैं। शिक्षाके प्रारम्भिक कालमें काबुकको रोजाना स्थानान्तरित किया जाता है, जिससे कबूतरोंको उसे खोजनेका अभ्यास हो जाय। कबूतर जब उड़ रहे हों, काबुकको कुछ दूर हटा ले जानेपर किसी तरहकी कठिनाई नहीं होती। किसी बिलकुल ही नये स्थानमें काबुक पहुंचा देनेपर भी उसी तरह कोई कठिनाई नहीं आती। एक बार फोर्ट मनमौथसे काबुकको क्लीवलैण्ड पहुंचा दिया गया था और उसके पहुंचनेके २४ घण्टेके अन्दर सभी कबूतर उड़कर स्वयं भी वहीं पहुंच गये।

हजार मील तककी दूरीसे अड्डेपर लौट जानेका कारण क्या है? कबूतर अड्डेपर ही क्यों पहुंच जाते हैं? विशेषज्ञोंका मत है कि कबूतरमें अपने स्थानपर ही रहनेकी जो प्रवृत्ति है, उसीके कारण वैसा होता है। कुछ तो उसमें यह गुण ही है और कुछ उसे सिखलाया जाता है, जिससे मनुष्य उसकी शक्तियोंसे लाभ उठा सके। १९१४ से इधर कबूतरोंके गुणोंमें आश्चर्यजनक सुधार हुआ है। कबूतरोंके अपने अड्डेपर लौट आनेसे यह मालूम होता है कि उनमें मनोयोग, निरीक्षण, स्मृति-निश्चय और दिशा-ज्ञान-सम्बन्धी कुछ विशेष शक्ति है और उनका शरीर भी उसके उपयुक्त है। दिशा-ज्ञानके सम्बन्धमें प्रतीत होता है, कबूतरोंको अपने कानोंसे बहुत सहायता मिलती है। यह हो सकता है कि कानके भीतरी भागके कुछ हिस्सोंकी सूक्ष्म अनुभव-शक्तिके कारण कबूतरको वातावरण और चुम्बकीय आकर्षणका पता चल जाता हो।

किसी कबूतरको यदि शिक्षा दी जाय और उसका स्वास्थ्य ठीक हो, तो वह जवान होनेपर दिनमें ६०० मीलकी दूरी तय कर सकता है; परन्तु कबूतरोंकी इस उड़ानपर कितनी ही बातोंका असर पड़ता है और इनमें हवा और मौसम

जाना सिखलानेके लिए दाना डालनेके समय एक खास तरहकी आवाज की जाती है और कबूतर इस आवाजके इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि उसे सुनते ही काबुकमें चले जाते हैं।

इतनी शिक्षा समाप्त हो जानेपर कबूतरोंकी टांगमें एक हलकी थैली बांध दी जाती है या उनकी पीठपर एक नली बांध दी जाती है। यों अगर किसी कबूतरकी टांगमें या पीठपर कोई चीज बांधी जाय, तो वह चोंच मार-मारकर उसे नष्ट किये बिना नहीं रह सकता; परन्तु कुछ दिनोंमें थैली या नली बांधनेका अभ्यास हो जानेपर कबूतर वैसा नहीं करता। थैली या नली बहुत हलकी होती है और उसमें बहुत ही पतला कागज रखकर भेजते हैं, जिससे वजन ज्यादा न हो जाय। पीठवाली नली नक्शों और फोटोके चित्रोंको ले जानेके लिए खास तौरसे तैयार की जाती है और उसे कबूतरकी देहपर इस तरह बांध दिया जाता है कि इधर-उधर नहीं हो सकती। इस तरह १॥ छटांक वजन

भी है। साधारणतः २०० मीलसे ज्यादा अन्तर होनेपर निश्चित रूपसे किसी परिणामकी आशा नहीं की जा सकती। साधारणतः सैनिक आवश्यकताओंकी दृष्टिसे ३ मीलसे लगाकर २५ मील तककी दूरी काफी समझी जाती है।

यहां तक सैनिक कबूतरोंके सम्बन्धमें हुआ—सैनिक कुत्तोंको उस असाधारण परिस्थितिमें कार्य करते हुए देखा गया है, जिसमें किसी मनुष्यके लिए वैसा कोई कार्य करना और सफलताके साथ करना असम्भव ही हो सकता है। जरा कल्पना कीजिये—सैनिकोंकी एक टुकड़ी आगे बढ़ी और अपनी पंक्तिसे ९ मील आगे निकल गयी। शत्रु-सेनाके एक भागने आगे बढ़कर इस टुकड़ीका सम्बन्ध अपने दलसे नहीं रहने दिया। टुकड़ीके सैनिकोंकी इस कठिन परिस्थितिका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। टुकड़ीके सैनिक करें तो क्या—टेलीफोनके तार बिछानेका तो कोई प्रश्न ही नहीं है। सन्देश लेकर जानेके लिए कोई सैनिक खाईसे बाहर हुआ नहीं कि शत्रुकी गोलीका शिकार हुआ। युद्ध-क्षेत्रमें, जहां आमने-सामनेका मोर्चा होता है और खाइयोंमें बैठे हुए सैनिक अवसरकी प्रतीक्षा किया करते हैं, सनसनाती हुई गोलियां एक ओरसे दूसरी ओरको निकलती ही रहती हैं, और टुकड़ीके सैनिकोंके लिए अपनी मुख्य पंक्तिके उच्च अधिकारियोंकी आज्ञा प्राप्त करना अनिवार्यतः आवश्यक है। ऐसी ही कठिन परिस्थितिमें सैनिक कुत्ते मनुष्यके लिए सर्वथा दुष्कर कार्य कर दिखलाते हैं।



जापानी सैनिक कुत्ते मिकीकी समाधि। जापानी सैनिक और मिकीका साथी एक अन्य सैनिक कुत्ता नागी, सब श्रद्धा प्रकट कर रहे हैं।

उत्तर चीनकी इसी चीन-जापान-युद्धकी घटना है। कावलियाङ्गमें जापानी सैनिकोंकी एक टुकड़ी आगे बढ़ गयी थी। इस टुकड़ीके साथ सम्बन्ध स्थापित होना आवश्यक था। किसी सैनिकको इस कार्यके लिए बाहर भेजनेसे सफलता तो मिलती ही नहीं, व्यर्थ ही एक सैनिककी जान भी जाती। इसीलिए हेड क्वार्टरके कमाण्डरने सैनिक कुत्तोंसे काम लेनेका निश्चय किया। सुमोरी और शिमोयामा सैनिक कुत्तोंके अफसर थे। कमाण्डरने शिमोयामाको सकूरा और ब्लेक नामक दो सैनिक कुत्ते लेकर टुकड़ीके साथ जा मिलनेके लिए आज्ञा दी। सुमोरीको वहीं रहनेकी आज्ञा हुई। योजना यह थी कि सैनिक कुत्तोंके शिक्षक शिमोयामा आगे बढ़ी हुई टुकड़ीके साथ रहें और सैनिक कुत्तोंके दूसरे शिक्षक हेड क्वार्टरमें, जिससे दोनों स्थानोंके बीच समाचार आते-जाते रहें। एक अन्य सैनिकके साथ शिमोयामा अपने स्थानसे चल पड़ा। सकूरा और ब्लेक, दोनों सैनिक कुत्ते पीछे-पीछे हो लिये। रास्तेमें गोलियां सनसनाती हुई निकल रही थीं। परन्तु यह पार्टी खेतोंके बीचसे, झाड़ियों और पेड़ोंकी आड़ लेकर शत्रुकी आंख बचाते हुए बड़ी शीघ्रतासे आगे बढ़ती जा रही थी।

कुछ समय बीता। हेड क्वार्टरके सैनिकोंने देखा कि बहुत दूर काली लकीर-जैसी कोई चीज बढ़ती चली आ रही है। जब यह काली लकीर कुछ पास आयी, सैनिकोंने देखा कि वह सकूरा है। सकूरा खेतोंमें छलांगें भरता हुआ आ रहा था।



ब्रिटेनकी पुलिसका कुत्ता "माऊस" रहस्यका सुराग बताने-वाली एक चीजको मुंहमें दबाकर अहातेके ऊपरसे छलांग भर रहा है।

अपनी पंक्तिकी खाईमें पहुंचते ही वह शिक्षक सुमोरीके सामने जा खड़ा हुआ। उसके गलेकी पट्टीके खोखले भागमें एक सन्देश रखा हुआ था, जिसे टुकड़ीके सैनिकोंके नायकने भेजा था।

सकूराके गलेकी पट्टीसे सुमोरीने पत्र निकाला और उसे कमाण्डरके पास भेज दिया। कमाण्डरने उसे पढ़कर टुकड़ीके नायकके लिए आदेश लिखा और सुमोरीके पास भिजवा दिया। सकूराको अब इसी आदेशके साथ लौटकर टुकड़ीके सैनिकोंके पास जाना था। सुमोरीने सकूराके पट्टे में सन्देश रखा और छातीसे लगाकर उसे विदा किया। सकूरा कुछ ही मिनटोंमें वहां पहुंच गया। इस तरह सन्देश लाने और ले जानेका कार्य उसने बड़ी ही खतरनाक परिस्थितिमें कई बार किया।

इस बीचमें जापानी सेनाकी मुख्य पंक्ति कुछ आगे बढ़ी और इस पंक्ति और टुकड़ीके बीचका फासला कुछ कम हो गया। यह फासला कम होनेसे चीनी सैनिक और भी अधिक गोलियां दागने लगे। चीनियोंकी ५ मशीनगनें लगातार अग्नि-वर्षा कर रही थीं। इस अग्नि-वर्षाके बीच हमेशा ही सकूरा अपना काम करता रहा।

एक दिनकी बात है। दोपहरी ढल रही थी। लगभग १ बजा होगा। सकूराके पहचानमें आते ही सुमोरीने पुकारना आरम्भ किया—"सकूरा, योशी कोई।" शिक्षककी आवाज पहचानकर सकूराके शरीरमें नये बलका सञ्चार हो गया। अभी वह पंक्तिसे लगभग २००-२२५ गजकी दूरीपर था ही कि सनसनाती हुई एक गोली आयी और उसे छेदती हुई चली गयी। सकूराने एक बार 'कार्य' की ओर चकराकर गिर गया। वह छटपटा रहा था।

सुमोरीका चेहरा पीला पड़ गया। उसने व्यग्र होकर पुकारा—"सकूरा, योशी कोई, योशी कोई (सकूरा, आओ, आओ)।" घायल सकूराने असह्य वेदना होते हुए भी किसी तरह शिर उठाया और धीरे-धीरे घसिटकर आगे बढ़ने लगा; परन्तु कई गज जानेके बाद उससे आगे न बढ़ा गया और वह रुक गया। सुमोरी यह देखकर पागलकी तरह अपनी खाईसे निकलकर सकूराकी ओर भगा, परन्तु ५०-५५ गज दूर पहुंचते न पहुंचते उसके एक गोली लगी और वह गिर गया। सुमोरीकी यह अवस्था देखकर एक सैनिक खाईसे निकला और एक सर्राटेमें सुमोरीके पास जाकर उसे उठा लाया—यद्यपि वैसा करनेसे उसकी गरदनमें गोली लग गयी और वह घायल हो गया। सुमोरीके गरदन और छातीमें गोलियां लगी थीं और उसके बचनेकी कोई आशा नहीं थी। सुमोरी जिस समय मूर्च्छित अवस्थामें जीवन और मृत्युके हिण्डोलेमें झूल रहा था, उसी समय किसी तरह घसिटकर सकूरा वहां पहुंच गया। एक क्षणके लिए जब सुमोरीकी मूर्च्छा दूर हुई, उसने आंखें खोलीं। सकूरा पास ही बैठा हुआ था। सुमोरीने उसपर एक निगाह डाली। उसके ओठ हिले, मानो वह कुछ कह रहा हो। इसके बाद उसने अपनी आंखें हमेशाके लिए बन्द कर लीं। घायल सकूराने भी कुछ देर पीछे बाहर जाकर अपने-प्राण छोड़ दिये। सकूराकी लाश नानयुआनके पास एक खेतमें गड़ी हुई है। जापानी आज भी इस सैनिक कुत्तेको बड़े आदरसे याद करते हैं।

उत्तर चीन और शङ्घाईमें जापानकी प्रत्येक सेनाके साथ कमसे कम एक सैनिक कुत्ता रहता है। एक अन्य अवसरपर

शङ्घाईमें जापानी सेनाके एक दलसे लगभग २॥ फर्लाङ्ग दूर एक अन्य जापानी टुकड़ी पड़ी हुई थी। विषम परि-स्थितिमें जापानके एक अन्य सैनिक कुत्ते फूजीने भी कई बार सन्देश लाने और ले जानेका कार्य किया था। यह कार्य करते हुए ही एक दिन फूजी गोलीका शिकार हुआ और मर गया। उसकी लाश सियाजोंवांगचाईमें जो गड़ी हुई है।

शङ्घाईके मोर्चेपर लोशेनचेनके पास जापानी कम्पनीके साथ मिको और नागी नामक दो सैनिक कुत्ते थे। एक दिन मिकी एक जरूरी सैनिक सन्देश लेकर हेड क्वार्टर जा रहा था। रास्तेमें सनसनाती हुई एक गोली आयी और मिकीके प्राणोंके साथ निकली चली गयी। खाइयोंमें सैनिक बड़ी विषम अवस्थामें पड़ गये; परन्तु इस स्थितिके बाद जब सेना आगे बढ़ी, मिकीकी लाश रास्तेमें मिली। वहांसे आगे बढ़नेपर सैनिकोंको जो गांव मिला, उसीमें मिकीको दफना दिया गया। कुछ दिनोंके बाद, जब गोटोमें सेनाका हेड क्वार्टर था, मिकीके लिए सैनिक सम्मानके साथ प्रार्थना की गयी। जापानी सैनिक जब इस स्थानके पाससे निकलते हैं, एक मिनट ठहरकर पूरे सम्मानके साथ इस सैनिक कुत्तेके प्रति श्रद्धा दिखलाते हैं।

मिकीके साथी नागीने यद्यपि ६ दिन तक लगातार रात-दिन सन्देश-वाहकका काम किया और हेड क्वार्टरसे सैनिकोंकी एक कम्पनीके पास जाता-आता रहा; परन्तु जब चीनियोंको पीछे हटा दिया गया, तब उसकी इन सेवाओंकी आवश्यकता नहीं रह गयी।

लोशेनचेनकी घटना है। घमासान संग्रामके बाद जापानियोंको सेना उतारनेमें सफलता हुई थी। यहांसे सेनाके अग्रभागके पास समाचार भेजना था। सैनिक कुत्तोंके शिक्षकने ब्रीज नामक एक कुत्तेके पट्टेके भीतर समाचार रखा और उसे भेज दिया। ब्रीजने सन्देश-वाहकका कार्य कई बार बड़ी सफलताके साथ किया, जिससे यह कम्पनी अभीष्ट दिशामें लगातार बढ़ती ही गयी। यहां तक कि नानताऊके पास पहुंचकर मुख्य पंक्ति और इस अग्र-भागमें लगभग १। मीलका अन्तर रह गया। एक दिनकी बात है, ब्रीज लंगड़ाता हुआ सेनाके हेड क्वार्टरमें पहुंचा। अग्रभागवाले सैनिकोंकी टुकड़ीने उसे भेजा था। उसकी पिछली टांग यद्यपि बुरी तरह घायल हो गयी थी, तथापि



पुलिसका एक अन्य कुत्ता बावेटी, जिसने झाड़ियोंमें छिपे हुए एक जासूसको खोज लिया। खोजी कुत्ते मीलों दूर घने जङ्गलों या घरोंमें छिपे हुए जासूसों और अपराधियोंका पता आसानीसे लगा लेते हैं।

ब्रीज एक महत्त्वपूर्ण सन्देश—विजय-सन्देश लेकर आया था। ब्रीजके इस साहसपूर्ण कार्यसे जापानी सेनाको जो प्रसन्नता हुई होगी, उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है।

गत यूरोपीय महासमरमें ब्रिटेन, फ्रान्स, बेल्जियम और जर्मनीके सैनिक कुत्तोंने जो मूल्यवान सेवायें की थीं, उनकी दृष्टिसे वर्तमान महासमरसे पहले यूरोपके सभी देश फौजी कुत्तोंकी तैयारीमें लगे हुए थे। जर्मनीमें फ्राङ्कफर्टके स्कूलमें दो हजार कुत्ते शिक्षा पा रहे थे। फ्रान्स, इटली, बेल्जियम, बलगेरिया आदि सभी देशोंमें फौजी कुत्तोंकी शिक्षाके लिए कालेज हैं, जिनमें पत्र ले जाने और टोह लगानेसे लेकर रसद पहुंचाने, गोली-बारूद और निश्चित समयपर फूटनेवाले साधारण और गैसके बमोंको ले जानेकी शिक्षा कुत्तोंको दी जाती है। गत महासमरमें ब्रिटिश सेनाके कुत्तोंसे स्का-उटों और सन्तरियोंका काम लिया जाता था। कुत्तोंमें सुनने

और सूंघनेकी असाधारण शक्ति तो होती ही है, इसलिए वे शत्रुका पता काफी दूर रहते हुए ही लगा लेते थे। एरीडेल जातिके कुत्तोंकी स्मृति इतनी अच्छी थी कि वे २०० शब्दों तककी आज्ञाको समझ लेते। वे पहरेदारोंको जर्मन सैनिकोंके आक्रमण करनेके लिए रवाना होनेका पता बतला देते और शत्रु अपनी मशीनगनोंको जहां छिपाता, वहां स्काउटोंको पहुंचा देते थे। इटलीमें गत महासमरमें अगम पहाड़ियोंके मोर्चोंपर फौजी कुत्तोंने रसद और गोली-बारूद पहुंचायी थी। फ्रान्सके रणक्षेत्रमें युद्ध होनेके दिनोंमें कुत्तोंने घायलोंका पता लगानेका काम बड़ी खूबीसे किया था। घायलके पास पहुंचकर ये फौजी कुत्ते भूंकते नहीं, चुपचाप खड़े हो जाते हैं। प्राथमिक उपचारका सामान भी गलेमें रहता ही है, घायल सैनिकने उसका उपयोग किया तो कर लिया, अन्यथा कुत्ता उसकी वर्दीमेंसे एक चिथड़ा फाड़कर लौटता और स्ट्रेचरवालोंको लेकर फिर जाता। फ्रान्सके एक फौजी कुत्तेने लगातार दो दिन मेहनत कर मुर्दोंके ढेरमें दबे हुए ९ घायलोंका पता लगाया था। बेल्जियममें एक ही कुत्तेने एक सालसे भी कममें प्रायः २००० सैनिकोंकी जान बचायी थी और अमेरिकाके विङ्क नामक एक कुत्तेने जहरीली गैसकी चेतावनी देकर सैकड़ों अमेरिकन सैनिकोंको बचाया था। विङ्कमें जहरीली गैसके आक्रमणका पता लगानेकी विशेष शक्ति थी। विङ्कने अपने महत्त्वपूर्ण सैनिक कार्योंके कारण पदक प्राप्त किये थे। उसे भत्ता भी दिया जाता था और जब वह मरा था, उसे पूरे फौजी सम्मानके साथ गाड़ा गया था।

———

गीत

मनको बन्धन नहीं सुहाता !

ज्वालाका प्रतिक्षण आलिङ्गन,
मधुर वेदनाओंका चुम्बन,
पल-पल मरनेका आवाहन,
किन्तु न बन्धन मनको भाता !

त्याग, तपस्यासे कर साधन,
बहुविधि नित करता आराधन,
खोज रहा आतमाका चिर-धन,
मुक्ति हेतु वह गाने गाता !

होवे बन्धन-युक्त अखिल भव,
अणु-अणु बंधे हुए हों नीरव,
रचें विश्वमें बन्धन नित नव,
मनका बन्धनसे क्या नाता !

जीवन सा ही सुखद हो मरण,
सुन्दर होवे स्वप्न, जागरण,
मुखरित हो जगका लघु कण-कण,
सीमासे असीम हो जाता !

मनको बन्धन नहीं सुहाता !

—तारा पाण्डे।



भाई-बहिन

श्रीमती सत्यवती शर्मा

"भैया, तुमने आज इतनी देर कहां लगा दी ? खाना भी पड़ा-पड़ा बर्फ हो गया।" सुनयना स्नेह-मिश्रित अभिमानसे बोली।

"क्या सचमुच बहुत देर हो गयी ?" घोड़ेको खूंटेसे बांधते हुए सुनील कहने लगा, "नयना, क्या तुम्हें नहीं मालूम कि बादशाह सिकन्दर हमारे देशपर आक्रमण करनेके लिए चल पड़ा है।"

"सिकन्दर आक्रमण करेगा !" सुनयना स्तम्भित होकर कहने लगी, "कोई कारण भी तो होना चाहिए।"

"कारण यही कि विजयकी लालसाने उसे पागल बना दिया है। वह विश्व-विजेता बनना चाहता है। परन्तु शायद वह नहीं जानता कि भारतवर्षके सभी शासक महाराज 'अभिसार' नहीं। महाराज 'पोरस' कभी उसकी अधीनता स्वीकार नहीं करेंगे।"

यह कहते-कहते सुनीलका चेहरा आरक्त हो गया। भुजायें फड़कने लगीं।

"तो क्या यह सच है किमहाराज 'अभिसार' ने सिकन्दरकी अधीनता स्वीकार कर ली है।" भोजनकी थाली परोसते हुए सुनयना बोली।

"बिलकुल ठीक है बहिन ! आज हमारे महाराजके पास भी इसी आशयका पत्र लेकर सिकन्दरका दूत आया था। लेकिन यहां उसको मुंहकी खानी पड़ी। कलसे मुझे युद्धकी तैयारी शुरू करनी होगी।"

"अवश्य ! हम अपनी प्रिय जन्म-भूमिको शत्रुओंके हाथोंमें नहीं सौंप सकते।" सुनयना जरा रुककर बोली, "लेकिन भैया, मुझे भी तो तुमने बड़ी साधसे शस्त्रादि चलाना सिखाया है। क्या इस अवसरपर तुम मेरी कलाकी परीक्षा न लोगे ?"

सुनीलका चेहरा प्रसन्नतासे चमक उठा। "तुम अभी सुकुमार बच्ची हो नयना ! तुम्हारे लिए रण-क्षेत्रमें जानेका अभी समय नहीं आया। यद्यपि तुम्हें मैं अपने सङ्ग नहीं ले जा रहा, फिर भी तुम्हारे अन्तरकी भावनायें सदा मेरे साथ रहेंगी। इन्हींसे स्फूर्ति पाकर ही तो मैं शत्रुओंका मान-मर्दन कर सकूंगा।"

सुनयनाके नेत्र सजल हो गये; परन्तु उसने अपने आंसुओंको कर्तव्यकी कठोर आड़में छिपा लिया।

(२)

सुनयनाने अपने सत्रह वर्षके जीवनमें सिवाय सुनील भैयाके और किसीको नहीं जाना। मां तो शायद जन्मके तीसरे दिन ही स्वर्ग सिधार गयी थीं। हां, पिताकी धुंधली-सी स्मृति अवश्य उसके मानस-पटलपर अङ्कित थी। जब कभी सुनयना उस धुंधली स्मृतिको स्पष्ट करनेका प्रयत्न करती, तो सुनील भैयाका ही देव-स्वरूप जरा प्रौढ़ होकर नेत्रोंके सम्मुख झलक जाता।

झेलम नदीके उस पार पोरस-राज्यके अन्तर्गत एक ग्राममें वे दोनों रहा करते थे। सुनील लम्बे-चौड़े बलिष्ठ शरीरका एक सुडौल युवक था। पहले तो वह पोरसकी सेनामें एक मामूली सिपाही था, लेकिन उसकी शूरवीरतासे प्रभावित होकर महाराजने अब उसे सिपहसालारका पद दे दिया था।

सुनयनाकी शिक्षा-दीक्षा भी सुनीलने स्वयं ही करायी थी। पुस्तकोंके अध्ययनके अतिरिक्त घुड़सवारी तथा अस्त्र-शस्त्र चलाना इत्यादि युद्ध-विद्याकी सभी बातें सुनीलने अच्छी तरह सिखला दी थीं। शिकार जाते समय भी बहुधा सुनील सुनयनाको साथ ले जाता। घुड़सवारीमें तो वह इतनी प्रवीण हो गयी थी कि कभी-कभी वह सुनीलसे भी आगे निकल जाती। सुनील अपनी बहिन और शिष्याकी असाधारण प्रतिभाको देखकर फूला न समाता।

ग्राम्य बालिकाओंके साथ सघन कुञ्जोंके बीच पक्षियोंके कूजनमें अपनी स्वर-लहरीको मिलाते हुए, सरिताके तटपर चञ्चल लहरोंके साथ नृत्य करते हुए भैयाकी स्निग्ध छायामें रहकर सुनयनाने जीवनके ये सत्रह वर्ष बिताये थे।

आज तक दोनों बहिन-भाई कभी दो-चार दिनके लिए भी एक-दूसरेसे विलग नहीं हुए थे। साधना और वरदानकी

भांति दोनों सदा एक साथ रहे। मानो एकके बिना दूसरेका अस्तित्व ही नहीं।

(३)

उस दिन सेनाको कूच करना था। युद्धके बाजोंसे जनताके हृदयोंमें नये उत्साहका सञ्चार हो रहा था। योद्धा-गण युद्ध-सज्जासे सज्जित होकर अपनी माताओं, बहिनों तथा पत्नियोंसे विदाई ले रहे थे। बहिनें फूल और चन्दन द्वारा अपने भाइयोंके तिलक लगाकर विजयी होनेकी कामना कर रही थीं।

सुनयना भी दो दिनसे अपने भैयाके शस्त्रादि ठीक करनेमें व्यस्त थी। ऊपरसे तो वह काम करती जा रही थी; परन्तु उसका मन बेचैन था। न जाने दो दिनसे उसकी दाहिनी आंख क्यों फड़क रही थी। पहले भी तो कितनी ही बार इन्हीं हाथोंसे उसने अपने प्यारे भाईको युद्धमें सजाकर भेजा था। परन्तु इतनी आकुलता तो उसके हृदयमें कभी नहीं छायी। क्या वह अपने सुनील भैयाको फिर न देख सकेगी ? उसके हृदयमें कम्पन होता; परन्तु दूसरे ही क्षण देश-प्रेममें डूबी हुई उसकी भावनायें हृत्कम्पनपर विजय पा जातीं।

सुनयना इसी प्रकार खोयी-सी अपने मनोवेगोंपर प्रभुत्व पानेका प्रयत्न कर रही थी कि सुनील तैयार होकर विदाई लेनेके लिए आ पहुंचा, "सुनयना, अब विदा दो। सभी सैनिक तैयार हैं।" बहिनके बालोंको प्यारसे छेड़ते हुए उसने कहा।

सुनयनाने कांपते हुए हाथोंसे रोली-अक्षतकी थाली उठायी और मुसकरानेका विफल प्रयास करते हुए सुनीलके माथेपर टीका काढ़ने लगी। परन्तु लाख प्रयत्न करनेपर भी वह हृदयके उमड़ते हुए वेगको न संभाल सकी। आंसू टप-टप करके थालीमें गिरने लगे।

"अरे यह क्या ! तुम तो रो रही हो नयना ! यह आज कैसी अनहोनी बात ! तुम तो स्वयं अपने इन सुकोमल हाथोंसे मुझे सदा युद्धके लिए तैयार किया करती थीं। तुम्हारे इन आंसुओंको देखकर मैं कैसे धीरज बांध सकूंगा। मुझे हंसते हुए विदा दो बहिन !" यह कहते-कहते सुनील-का गला भी रुंध गया।

"विजयी होओ मेरे राजा भैया।" सुनयना गीली आंखें पोंछते हुए हंस दी।

सुनयना मकानकी खिड़कीमें खड़ी होकर कूच करती हुई सेनामें अपने भाईके चितकबरे घोड़ेकी ओर अपलक नयनोंसे निहारती रही। जब घोड़ोंके पांवोंकी धूल भी अदृश्य हो गयी, तो वह उदास मुख लिये अपने सूने आंगनमें आकर एक ओर चुपचाप बैठ गयी।

(४)

सुनीलको युद्धमें गये दस दिन हो गये। लेकिन सुनयना-को अभी तक उसका कोई समाचार नहीं मिला। बेचारी प्रतिदिन ऊपरकी खिड़कीमें बैठी भाईके आनेकी बाट जोहा करती। सोचती, सिकन्दरको हराकर आज उसके भैया अवश्य आयेंगे। परन्तु सन्ध्या समय अपने हृदयमें निराशा-का निबिड़ अन्धकार लिये नीचे आ जाती। दिनका समय तो सखी-सहेलियोंसे मिलते-जुलते किसी प्रकार कट जाता, लेकिन पहाड़-सी लम्बी अंधेरी रातोंमें उसका हृदय युद्धके मैदानमें भैयाके पास जानेको छटपटाता। वह अपनेको संभालनेका भरसक प्रयत्न करती, लेकिन व्यर्थ। नीरव रात्रिमें कुत्तों और सियारोंका रोना तथा अमङ्गलकारी भयावह स्वप्न उसकी चिन्ताको और भी प्रज्वलित कर देते।

सूर्यास्तका समय था। रजनीने धीरे-धीरे समस्त गांवको अन्धकारमें लपेट लिया। सुनयना भारी मन लिये दिया-बत्तीका आयोजन करने जा रही थी कि किसीने द्वार खट-खटाया। सुनयनाके मनमें उथल-पुथल मच गयी। 'शायद भैया आये हैं !' उसने धड़कते दिलसे दरवाजा खोला। सामने शोकमय मुद्रा लिये एक घुड़सवार खड़ा था। उसने एक पत्र जेबसे निकालकर सुनयनाकी ओर बढ़ाया और सिर झुका-कर उसी क्षण लौट गया।

सुनयनाने कांपते हुए हाथोंसे खोलकर पत्र पढ़ा। पढ़ते ही उसकी आंखोंके आगे अंधेरा छा गया। पत्र हाथसे छूट गया और वह लड़खड़ाकर जमीनपर गिर पड़ी। पत्रमें लिखा था :—

'शोकके साथ हमें सूचित करना पड़ता है कि आपका भाई सिपहसालार सुनीलकुमार समर भूमिमें देश-रक्षाके लिए लड़ता-लड़ता कल वीर-गतिको प्राप्त हो गया है। राज्य आपके साथ गहरी समवेदना प्रकट करता है।'

कोई आध घण्टेके अनन्तर सुनयनाको होश आया; परन्तु पत्रपर नजर पड़ते ही उसकी दशा फिर पागलोंकी-सी

हो गयी। उसके सुनील भैया अब इस संसारमें नहीं हैं। भैया कहकर अब वह किसे पुकारेगी ? कभी उसकी आंखोंसे आंसुओंका प्रवाह जारी हो जाता। कभी वह शून्य नेत्रोंसे आकाशकी ओर देखने लग जाती।

कुछ क्षण सुनयनाकी दशा उसी प्रकार रही, फिर वह गहरे सोचमें डूब गयी। सोचते-सोचते सहसा उसकी आंखें चमक उठीं। वह तेजीसे उठ बैठी। सामने खूंटीपर उसकी तलवार लटक रही थी। बढ़कर उसे हाथमें ले लिया और अस्तबलकी ओर भाग गयी। उसे देखकर उसका प्रिय घोड़ा हिनहिनाया। सुनयनाने प्रेमसे उसकी पीठपर थपकी दी, निकट ही रखे हुए जीनसे उसे सज्जित किया और उसपर सवार होकर उड़ती हुई रात्रिके अन्धकारमें विलीन हो गयी।

(९)

चारों ओर निस्तब्धता छायी हुई थी, अंधेरी रात पहर-भर बीत चुकी थी। खेमोंमें दिनभरके युद्धसे थकित सैनिक निद्रा देवीकी गोदमें विश्राम ले रहे थे। हां, खेमोंके इर्द-गिर्द पहरेदार अपनी पद-आहट द्वारा कभी-कभी रात्रिके सन्नाटेको भङ्ग कर देते थे। फिर किसी तम्बूसे पीठ टेककर ऊंघने लग जाते। इतनेमें मशालोंके धुंधले प्रकाशमें उलझती हुई घोड़ेपर सवार एक छाया-सी सिकन्दरके पड़ावके अन्दर घुसी। घोड़ेके पांवोंकी आहटसे प्रहरी चैतन्य हो गये। एक कड़कते हुए स्वरमें बोला, "कौन है ? एकदम खड़े हो जाओ।"

घुड़सवार प्रहरीकी तनिक भी परवा न करके सम्राट्के खेमेकी ओर बढ़ने लगा।

उन प्रहरियोंने शोरगुल करके दूसरे पहरेदारोंको भी इकट्ठा कर लिया। सभी अपने-अपने शस्त्र संभालते हुए घुड़सवारकी ओर बढ़े।

सिकन्दरके खेमेके पास पहुंचते-पहुंचते पहरेदारोंने उस मूर्तिको घेर लिया। कई एक मशालें एक साथ उस चेहरेके निकट बढ़ गयीं। उनके तीक्ष्ण प्रकाशमें प्रहरियोंने देखा कि घुड़सवार साक्षात् चण्डीका वेषधारण किये एक अनुपम सुन्दरी युवती है। वे आश्चर्यसे उसकी ओर देखते हुए एक साथ बोल उठे, "तुम कौन हो ? किसकी आज्ञासे यहां आयी हो ?"

"एक नारी हूं। अपनी मर्जीसे यहां आयी हूं। रास्ता छोड़ो।"

"रास्ता नहीं मिल सकता। पहले तुम यह बताओ कि तुम्हारा यहां आनेका अभिप्राय क्या है ?" उनमेंसे एक बोला।

"मैं तुम्हारे समाट् सिकन्दरके पास जाना चाहती हूं। तुम मेरा मार्ग रोकनेवाले कौन होते हो ?" यह कहकर उस स्त्रीने अपनी तलवार खींच ली।

इस शोरके कारण खेमेके भीतर सोये हुए सम्राट् सिकन्दरकी आंखें खुल गयीं। उन्होंने उठकर एक पहरेदारको अन्दर बुलाया और क्रुद्ध स्वरमें पूछा, "क्या बात है ?"

"अन्नदाता, घोड़ेपर सवार एक औरत पड़ावके अन्दर घुस आयी है। पूछनेपर कहती है कि उसे सम्राट्से काम है।" पहरेदारने भयभीत स्वरमें उत्तर दिया।

"मुझसे काम है।" सम्राट्ने एक निमिष-भरके लिए पहरेदारकी ओर देखा और जरा गम्भीरतासे बोले, "जाओ, उसे अन्दर ले आओ।"

दो ही क्षणोंमें जांघों तक लटकते हुए खुले काले केश तथा कोमल हाथोंमें नङ्गी तलवार लिये एक अनुपम सुन्दरी सिकन्दरके सामने आ खड़ी हुई। उसके कमल-दल-से बड़े-बड़े लोचनोंसे अग्निकी चिनगारियां फूट रही थीं और मुखपर थी शोककी सघन छाया।

सिकन्दरके नेत्र स्त्रीके तेजोमय मुख-मण्डलपर अटक गये। मानो किसीने उन्हें जादूकी छड़ीसे छू दिया हो। फिर जरा संभलकर बोले, "देवि! तुम कौन हो ? कहांसे आयी हो ? क्या मैं यह जान सकता हूं ?"

"अवश्य!" स्त्री निर्भय वाणीमें कहने लगी, "मैं एक अबला हूं। महाराज पोरसके राज्यसे आयी हूं। मैं तुमसे बदला लेना चाहती हूं।"

सिकन्दर खिलखिलाकर हंसा, "अच्छा! भारतवर्षपर मेरे आक्रमणका बदला लेने तुम आयी हो ?"

"नहीं। आक्रमणका बदला हमारे महाराज पोरस लेंगे, निश्चय रखो। मैं अपने एकमात्र भाईकी हत्याका बदला तुमसे लूंगी। तुमने एक अबलाको भ्रातृ-विहीन बना दिया है।" सुनयना आवेशसे बोली, "मैं तुम्हारा वध करूंगी। तभी मेरी और मेरे सुनील भैयाकी आत्माको शान्ति मिलेगी।"

यह कहते-कहते भाईकी स्मृतिसे फिर सुनयनाके नेत्र सजल हो गये; परन्तु शीघ्र ही उसने उन्हें प्रतिहिंसाकी प्रचण्ड अग्निसे सुखा दिया।

सम्राट्का हृदय द्रवित हो गया। स्नेह और भक्तिसे ओत-प्रोत स्वरमें बोले, "मुझे क्षमा करो देवि! मैंने जान-बूझकर तुम्हारे भाईका वध नहीं किया। इस क्षतिकी पूर्तिके लिए तुम जो मांगो, मैं देनेके लिए तैयार हूं।"

यह सुनकर सुनयनाकी आंखोंसे ज्वाला निकलने लगी। उन्मत्त स्वरमें बोली, "सिकन्दर! तुम धन और विजयके मदमें अन्धे हो रहे हो। भ्रातृ-वियोगसे पीड़ित एक बहिनके हृदयकी वेदना तुम कैसे समझ सकोगे? क्या तुम अपना समस्त धन और वैभव देकर भी मेरे भैयाका अभाव पूरा कर सकते हो? नहीं, मुझे कुछ नहीं चाहिए। सावधान! अपनी तलवार संभालो। मैं तुमसे द्वन्द्व-युद्ध करके तुम्हारा वध करूंगी।"

भाईके प्रति इतना अनुपम प्रेम देखकर सिकन्दर पुलकित हो गये। अनुनयके स्वरमें बोले, "देवि! अपने भाईके रूपमें ग्रहण कर क्या तुम मुझे कृतकृत्य न कर दोगी?"

"भाईके रूपमें! सुनील भैयाके रूपमें! मैं तुम्हें ग्रहण कर लूं!" सुनयनाका सारा क्रोध हवा हो गया, "सिकन्दर! तुम सचमुच महान् हो, भाई।"

सुनयनाके नेत्रोंसे स्नेहके आंसू बहने लगे। तलवार अपने आप हाथसे छूटकर पृथ्वीपर गिर गयी।

"मेरी नन्हीं बहिन!" सिकन्दर गद्गद स्वरमें बोले और आगे बढ़कर अपने रेशमी दुपट्टेसे सुनयनाके आंसू पोंछते हुए उसकी पीठ सुहलाने लगे।

———

रक्त-मन्थन

जब युगके देव और दानव शोणित-मन्थनमें पिलते हैं,
ध्रुव तभी विश्वके सुख-सुहागके अमृत-रतन निकलते हैं!

× × ×

प्रभुकी करुणाका जो भागी, सपनोंका राजा बड़भागी,
उस दिव्यनयन त्रिकालदर्शी—कविके मन पूर्व कथा जागी!
त्रेता युग—सत्य अहिंसामें—पल पुण्य तपोवनका जीवन,
उदयाचल अरुण तलहटीमें, कर रहा स्वर्गका था सिरजन।
मनु और सत्यरूपा सन्तति, बढ़ व्रतति-प्रतति-सी फूल-फूल,
छा गयी दिगञ्चलमें वसन्त—चुम्बित रसाल-सी झूल-झूल।
नव ललित कलाओंका सिंगार, सङ्गीत काव्य-रस पुञ्ज-पुञ्ज,
जग बना चैत्र रथ सामगानसे, कुञ्ज-कुञ्जमें गूंज-गूंज।
लख वाल-लुनाई पृथिवीकी, मानवकी निश्छल मधुराई,
देवता सोचते—स्वर्ग और भारतमें, कौन बड़ा भाई!!

किन्तु शक्तिकी सफल परीक्षा बिना क्रान्ति होती न कभी,
शान्ति-स्वाद मिलता जीवनको बढ़ता है सङ्घर्ष जभी!
इसलिए सत्यरूपाका कुल, आयी प्रबुद्ध करने निकषा,
उसके कठोर छलना-प्रपञ्चसे, पृथिवी हुई हाय! विवशा।
वे नैकषेय वे चिर अजेय, पशु-प्रभुताके वे अधिकारी,
उनकी उत्तुङ्ग अहन्ता-सी, लङ्का त्रिकूटपरकी न्यारी।
पापिनी नागिनी-सी शोणित—भोजी पृथिवीपर निःशङ्का,
वह पुञ्जीभूत प्रभूत रुधिरकी, नहीं स्वर्णकी थी लङ्का!
फिर "युद्धं देहिं" युयुत्सु दानवों—की दुर्दान्त पुकारोंसे,
मानवके शीतल स्निग्ध गृहोंपर उनके वज्र-प्रहारोंसे—
थे डंवाडोल पृथिवी-खगोल, चहुं दिशिमें "त्राहि-त्राहि" छायी,
आर्योंकी पुण्य-भूमिमें भीषण दुर्दिन-घटा घेर आयी।
वह रक्त-पात ऋषियोंका—जिसके विन्दु-विन्दुकी थी गणना,
उसके ही अन्तरालमें तो रे, ज्योति-इन्दुका था पलना।
वह रक्त-कुण्ड वसुधाके अन्तस्से फूटा बन चिनगारी,
वह शक्ति-शिखा कामना रामकी तिरहुत-पतिकी सुकुमारी।
वह चिनगारी जिससे कि जली वह पाप-ताप-लङ्का सारी,
वह चिनगारी जिससे कि जली मानवकी विपदा-अंधियारी।
ओ रक्त-पात! ओ वह्नि-वात! तुझसे न धरा यह भयमीता,
इसलिए कि शोणित मथकर ही जगने पायी युगकी सीता।
ओ रक्त-पात! जब तूने सकल प्रतीचीकी काया सींची,
जब युगकी ज्योति मसीहाने शूलीपर निज आंखों मींची।
जब शोणित-मन्थन-पर्व मनाया हाय! पश्चिमाने रोकर,
तब मिला अरे अमृत-जीवन उसको निज ईसाको खोकर।
ओ रक्त-पात! इसलिए न तुझसे धरा आज भी भय-मीता,
तुझमें निश्चय ही छिपा कहीं कोई ईसा—अथवा सीता!

× × ×

जब युगके देव और दानव शोणि-मन्थनमें पिलते हैं,
ध्रुव तभी विश्वके सुख-सुहागके अमृत-रतन निकलते हैं।

—केसरी।

युद्ध : ज्ञान-विज्ञानकी दृष्टिमें

श्री रमाशङ्कर अवस्थी

कमसे कम पचीस-तीस हजार वर्ष पहलेकी बात है, जब जङ्गली भैंसोंके एक बड़े झुण्डने, जिसमें छोटे-बड़े नर-मादा मिलाकर कोई तीन-चार हजार भैंसे होंगे, शायद कुछ कम हों, मगर ज्यादा न होंगे, जिनके महाशक्तिशाली कन्धोंकी ठेल और पैने सींगोंकी मारसे, अकुलाकर घोड़ोंका बहुत बड़ा दल भाग खड़ा हुआ। सैकड़ों ही मारे गये, हजारों घायल होकर धराशायी हुए। मगर, अपने पतले और लम्बे पैरोंकी तेज रफ्तारकी बदौलत घोड़ोंका यह दल उस स्थानके निकट जा पहुंचा, जहांपर, मनुष्य-जाति अपने पाषाण-युगके द्वितीय चरणका समय बिता रही थी !

उस समयका मनुष्य पशु-मात्रका शिकार जङ्गलके बाहरी भागोंमें खेला करता था। बांसकी कमानें, नरकुलके ऊपर स्लेट जैसे पत्थरके पैने तीरोंके फल, या फिर, लम्बे-लम्बे बांसोंके सिरोंपर पत्थरके पैने भाले खोंसे हुए, मनुष्योंके झुण्डके झुण्ड नदी-झीलोंके निकट-वर्ती पहाड़ी टीलोंके नीचे गुफायें खोदकर रहा करते थे। सारा संसार जङ्गलों, रेगिस्तानों और पहाड़ोंका सघन-समूह-मात्र था। इन सघन वृक्ष-समूहोंके नीचे कङ्कड़-पत्थरोंसे टकराती हुई नदियां बहती थीं। जिनके किनारोंके दोनों तरफ, 'माइट-इज-राइट' के अनुसार मनुष्य और पशु अपने-अपने बसेरे बनाये हुए रहा करते थे।

मनुष्य भी कोई बहुत सुन्दर जीव न था। अफसोस है कि उस रूपकी कोई तसवीर प्राप्त नहीं है। लेकिन, उसकी चमकीली आंखें, और बुद्धि तथा विवेकके विशेष प्रयोगसे, प्रायः पशु-समाज भयभीत रहा करता था। क्योंकि, मनुष्य बड़ेसे बड़े पशुका शिकार, लुक-छिपकर कर लेता था। पशुओंमें भी, इसीलिए, झुण्ड बनाकर ही रहनेकी सतर्कता उत्पन्न हुई थी। फर्क इतना ही था कि दलके अन्दर रहते हुए भी पशु आपसमें कभी-कभी भीषण लड़ाई लड़ लेते थे, जबकि मनुष्य जातिके बीचमें, ऐसे उदाहरण कम मिलते थे।

सम्भवतः वह ऐसा ही युग था, जब मनुष्य-समाज पशुओंपर नियन्त्रण कायम करनेके विचारमें था, और पशु-दल, इस सतर्क और धोखेबाज शिम्पाञ्जी जातिको समूल नष्ट कर देनेके लिए, अक्सर मनुष्योंकी बस्तियोंपर बड़े-बड़े आक्रमण करता रहता था, जिससे बचनेके लिए ही, मनुष्योंने गुफाओं और कन्दराओंका अन्वेषण करके और दरख्तोंके ऊपर मचान आदि बांधकर बचाव करनेके साधन बना रखे थे।

इस प्रकार अस्तित्वकी चिन्ताने ही मनुष्यमें युद्धकी भावनाको जन्म दिया। उसने बार-बार देखा कि जङ्गलोंके अन्दर सुरक्षित जीवन नहीं है। एक पशु दूसरे कमजोर पशुको मार डालनेपर तुला हुआ है। अक्सर, एक-दूसरेका भक्ष्य है। कोई-कोई आक्रमणकारी पशु इतने वेगसे दौड़ सकता था कि मनुष्य भागकर भी प्राण नहीं बचा सकता था। मनुष्यने, जङ्गली जीवनके अनुभवोंके साथ-साथ यह भी देखा कि अक्सर, पशु-दल खुले मैदानों और अधिक प्रकाशके स्थानोंमें आनेसे हिचकते थे।

मनुष्य अपने अनुभवोंको नहीं भूला, उनसे, उसको अपने अस्तित्वके लिए अनेक साधन और सामग्री जुटानेकी प्रेरणा होती चली गयी। अस्त्र-शस्त्रोंके स्थानमें, उसको बड़े-बड़े कांटे और नुकीले पत्थर प्रकृतिदेवीकी कृपासे प्राप्त हुए। सुरक्षाके साधन बढ़नेके साथ-साथ, मनुष्य-संख्या भी बढ़नी शुरू हुई। प्राणोंके भय और जीविकाके निर्वाहके लिए, उस युगका मनुष्य-मात्र अन्वेषक बन गया। नशीली जड़ी-बूटियोंके प्रयोगसे, उसने कुछ सीधे जानवरोंको वशमें करना शुरू कर दिया। गाय-बकरियां दूधके लिए पालतू बनायीं। खेतीबारीके लिए बैलोंको, सवारीके लिए घोड़ोंको सीधा किया। बांसों और लकड़ियोंकी मददसे बाड़े और झोंपड़े बनाये।

लेकिन, जब पहले-पहल, घोड़ेपर सवार होकर, तीर और बर्छियोंसे सुसज्जित होकर, मनुष्य, सैकड़ोंकी संख्यामें पशु-दलपर विजय पानेके लिए जङ्गलोंमें घुसा, तब, पशुओंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा होगा। नीचे घोड़ा, ऊपर मनुष्य, यह नया 'संयुक्त जीव' ! फिर, दूरसे ही, पैने-पैने तीर



युद्धकी घोषणा हो जानेपर लन्दनके बच्चे बाहर जा रहे हैं।



टर्की किधर ?



रूमानियांकी तेल खानें और हिटलर।

चलाकर, मनुष्योंने जङ्गली हिंसक पशुओंको भयभीत कर दिया। बर्छियोंसे छेद डाला। बड़े-बड़े गड़ासोंसे उनको छिन्न-भिन्न कर दिया! यह पहला सङ्गठित युद्ध था, जिसे मनुष्य-समाजने पशुओंके विरुद्ध लड़ा!

कलाधारी मनुष्यके इन युद्धोंके कारण सजीव-संसारमें हाहाकार मच गया। हाथी चिङ्घाड़ मारकर घने जङ्गलोंके भीतर जा घुसे। शेर-चीते प्रकाशमें आनेसे जी चुराने लगे। पक्षी ऊंचे-ऊंचे वृक्षोंकी सघन डालियोंपर जा बैठे!

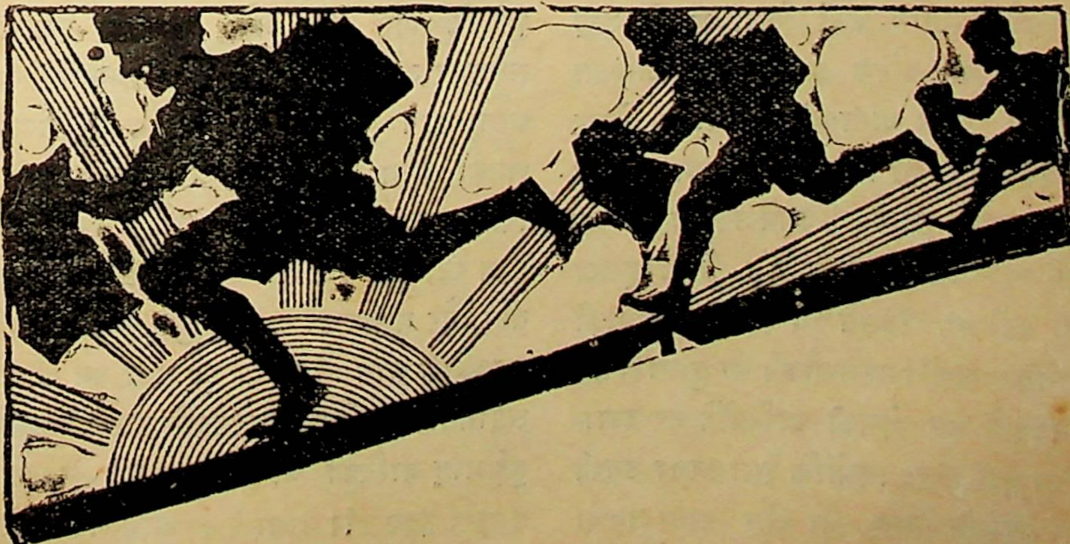
जङ्गल कटने लगे, बस्तियां बढ़ने लगीं। क्योंकि, अब मनुष्य उतना भयभीत नहीं रह गया था!

× × ×

वह ऐसा युग था, जिसमें मनुष्यको युद्धका ज्ञान मिला था, और अब ऐसा युग आया, जिसमें, अस्तित्व कायम रखनेके लिए उसे विज्ञानका सहारा लेना पड़ा!

यह वही मनुष्य है, जो उस समय पत्थरके नुकीले अस्त्र-शस्त्रोंके सहारे अपना जीवन बचाता हुआ दिखलाई पड़ता था, आज टैङ्कों और मोटर-साइकिलोंपर सवार, मशीनगनों और आग उगलनेवाले बमोंको लिये हुए रणक्षेत्रमें उतरा हुआ है। इतना ही क्यों, आकाश, पाताल और स्थल तीनों जगह उसने विज्ञानकी मददसे अपना प्रभुत्व जमा रखा है। लम्बी-लम्बी तोपोंके गोले, अठारह-अठारह इञ्च मोटी लोहे-की दीवारें तोड़कर किलोंको बर्बाद कर देते हैं। एक मिनटमें ही तीन-चार सौ गोलियां मशीनगनें उगलती हुईं, रण-क्षेत्रमें जीव-संहारमें सफल होती हैं। हवाई जहाजोंसे फेंके जाने-वाले गोले, मुहल्लेके मुहल्ले मिनटोंमें खण्डहर बना देते हैं। जहरीली गैसें महाभिमानी महासैन्यको क्षणमें धराशायी बना देती हैं। सैकड़ों मील दूरसे आनेवाले हवाई जहाजोंके आक्रमणकी सूचना देनेवाले यन्त्र पहलेसे ही सावधान हो जानेके लिए आकाशमें छेद करनेवाली तोपोंका मुंह ऊपरकी ओर घुमा देते हैं। जलके अन्दर चुपचाप घूमनेवाली पन-डुब्बियां एक मिनटमें, करोड़ों रुपयेकी लागतके जहाजोंको टारपीडो फेंककर जलमग्न कर देती हैं। अब थोड़े-से ही विज्ञान-की कमी रह गयी है। सैकड़ों मील दूर बैठे हुए भी, बिजलीकी करेण्टसे, आकाशमें उड़नेवाले हवाई जहाजोंको, जहांका तहां भस्म कर देना, और टैङ्कों और समुद्री जहाजोंको बिजलीकी गर्मीसे पानीकी तरह पिघलाकर नेस्त-नाबूद कर देना—इसके लिए भी विज्ञान-वेत्ता लोग प्रयत्नशील हैं।

युद्धका यही अन्तिम रूप होगा। और फिर, यह ज्ञान-विज्ञान-मण्डिता मनुष्य-जाति अपने अन्वेषणोंके ही शापसे मिट जायगी।



समराङ्गणमें नारीकी रण-रङ्गिणी मूर्ति

श्री जगन्नाथप्रसाद मिश्र एम० ए०, बी० एल०

हिन्दू-धर्मके अनुसार नारी ही शक्तिका केन्द्र है, पुरुष नहीं। एकमात्र हिन्दू-धर्ममें ही नारीकी शक्तिकी अधिष्ठात्री देवीके रूपमें कल्पना एवं उपासना की गयी है। महामाया दुर्गाने दस हाथोंमें दस अस्त्र धारण करके महिषासुरके विरुद्ध संग्राम किया था और उसका संहार किया था। कराल वदना कालीको भी हम शुम्भ-निशुम्भके साथ संग्राम करते पाते हैं। किन्तु फिर भी हिन्दू जातिके पुराण-इतिहास-ग्रन्थोंमें विशेष रूपसे नारी योद्धाओंके शस्त्रास्त्र ग्रहण करनेका उल्लेख प्रायः नहीं पाया जाता। कई अवसरोंपर जिन वीराङ्गनाओंको हम संग्राम करते पाते हैं, उन्हें बाध्य होकर ही ऐसा करना पड़ा था। संग्राम करनेकी न तो उनमें उन्मादना ही पायी जाती थी और न इसे उन्होंने कभी वृत्तिके रूपमें ग्रहण किया था। कर्तव्यवश उन्हें अस्त्र धारण करना पड़ा था। लक्ष्मीबाई, चांद सुलताना, रजिया बेगम, कमलादेवी, दुर्गावती आदि वीराङ्गनाओंने अपने शत्रुओंके विरुद्ध इसलिए संग्राम नहीं किया था कि उन्हें लड़नेका शौक या नशा था, बल्कि इसलिए कि अन्तिम समयमें सुयोग्य योद्धा पुरुषके अभावमें उन्हें बाध्य होकर कर्तव्यवश ऐसा करना पड़ा था। देशपर आसन्न सङ्कटकी आशङ्का देखकर ही उन्होंने रणरङ्गिणी वेशमें अपनेको सज्जित किया था। युद्धमें स्वयं अस्त्र ग्रहण करनेके सिवा दूसरा और कोई मार्ग ही नहीं था, जिससे वे देशपर आनेवाली विपत्तिका निवारण कर सकतीं। महज शौकसे या दुःसाहसिक कर्म करनेकी उन्मादनामें इस देशकी नारियोंने नर-हत्या-व्यापारमें कभी भाग नहीं लिया। क्योंकि ऐसा करना उनकी सहजात प्रवृत्ति एवं प्रकृतिके विरुद्ध था और इससे उनका मातृत्वका महदादर्श क्षुण्ण होता था। संग्राममें अस्त्र ग्रहण करके शत्रु-संहार करनेकी अपेक्षा "जौहर व्रत" द्वारा आत्म-बलिदानकी भावना ही उनमें प्रबल थी। यूरोपके मध्यकालीन इतिहासमें भी हम नारी योद्धाओंके दृष्टान्त विरल ही पाते हैं। रोमनोंके विरुद्ध रोडेशियाका निर्मम अभियान, फ्रान्सकी अग्निकुमारी जोन आव आर्ककी गौरवोज्ज्वल शक्ति-गाथा तथा वेस्टिल दुर्गके पतनके बाद फरासीसी युवतियोंकी तेजोदीप्त जय-यात्रा यूरोपके इतिहासकी चिर-उज्ज्वल घटनायें हैं। किन्तु इन वीराङ्गनाओंको भी विवश होकर ही युद्ध करना पड़ा था। फ्रान्सको अंगरेजोंके अधीनता-पाशसे मुक्त करनेके लिए ही जोन आव आर्कको शक्ति एवं साहसकी अग्निमयी वाणी अपने देशवासियोंके मध्य प्रचारित करनी पड़ी थी।

किन्तु युगके विवर्तन एवं सभ्यताके प्रसारके साथ-साथ आज हम नारीको जिस रण-रङ्गिणी रूपमें देख रहे हैं, उसकी तो कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। पहले युद्ध छिड़नेपर बच्चों और स्त्रियोंको एक श्रेणीके अन्तर्गत समझकर उन्हें किसी निरापद स्थानमें रखनेका प्रबन्ध किया जाता था। युद्ध और मारकाट करना केवल पुरुषोंका काम समझा जाता था। किन्तु आज रणसज्जासे सज्जित होकर स्त्रियां प्रत्यक्ष रूपमें संग्राममें भाग ले रही हैं और नर-संहारमें हाथ बंटा रही हैं। समराङ्गणके सम्मुख-भागमें खड़ी होकर तोप और मशीनगन चलाती हुई, संसारके प्रसिद्ध वायुयान-चालकोंके साथ होड़ लेती हुई तथा बम और विषाक्त गैसकी सहायतासे शान्तिपूर्ण जनपदको श्मशान-रूपमें परिणत करती हुई मातृ जातिकी वीभत्स कराल मूर्तिको देखकर आज हमारा हृदय कांप उठता है। आधुनिक नरमेध-यज्ञमें नारीकी यह निष्ठुर निर्मम भयानक मूर्ति एक ऐसी साधारण

बात हो रही है कि इससे हमारी कोमल कल्पनापर आघात तो अवश्य पहुंचता है, किन्तु किसी प्रकारका विस्मय या आश्चर्य नहीं होता।

नारी-जीवनमें तथा नारी-स्वभावमें जो यह विराट् परिवर्तन हम देख रहे हैं, इसका कारण क्या है? इसके अनेक कारण हो सकते हैं। पहली बात तो यह है कि प्राचीन-कालमें जिस प्रकारकी समाज-नीति प्रचलित थी तथा नारी-जीवनका जो आदर्श समझा जाता था, उसके अनुसार स्त्रियोंके लिए प्रत्यक्ष रूपमें युद्ध करना सम्भव नहीं था। हां, वे पुरुष योद्धाओंको उत्साह एवं अनुप्रेरणा अवश्य प्रदान करती थीं। दूसरी बात यह है कि उस समयको जैसी युद्ध-प्रणाली थी, उसमें शारीरिक शक्ति, साहस, पौरुष, पराक्रम एवं वीरत्वका विलास ही विशेष रूपमें प्रदर्शित होता था। इस प्रदर्शनमें पुरुषोंकी बराबरी करना स्त्रियोंके लिए सम्भव नहीं था। बर्छा, भाला, गदा, मुद्गर आदि उस समयके शस्त्रास्त्र थे और हजारों मील वन-जङ्गल, गिरि-पर्वतका कठिन दुर्गम मार्ग पैदल चलकर युद्ध द्वारा दिग्विजय करनी पड़ती थी। इस प्रकारकी युद्ध-यात्रामें स्त्रियोंका योद्धा-रूपमें सम्मिलित होना सर्वथा असम्भव था। उस युगमें राजनीतिकी अपेक्षा धर्मका प्रभाव विशेष होनेके कारण भी युद्ध-क्षेत्रकी ओर नारीके मनमें आकर्षण नहीं होता था।

किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि प्राचीन और मध्य युगमें नारी राजनीति-क्षेत्रमें युद्ध-क्षेत्रके समान ही उपेक्षिता थी। इसके विपरीत राजनीति-क्षेत्रमें उनका प्राधान्य ही पाया जाता है। इतना बड़ा महाभारत युद्ध हुआ, सोनेकी लङ्का भस्मीभूत हुई और सकुल रावणका संहार हुआ! प्राचीन यूनानका ट्रायका युद्ध। इन सबके पीछे नारीकी प्रेरणा ही काम कर रही थी। देवासुर-संग्राममें स्वयं भगवान् विष्णुने नारीकी मोहिनी मूर्ति धारण करके युद्धकी गतिविधिको सम्पूर्ण परिवर्तित कर दिया था। बड़े-बड़े योगियों और ऋषि-मुनियोंको तपस्या-निरत देखकर उनका ध्यान भङ्ग करने तथा उन्हें योग-भ्रष्ट करनेके लिए देवराज इन्द्रको मेनका, रम्भा, उर्वशी प्रभृति अप्सराओंकी सहायता लेनी पड़ती थी। कैकेयीकी अनुरोध-रक्षा करनेके लिए दशरथ जैसे विचक्षण राजाने अपने राज्यमें इतना बड़ा काण्ड उपस्थित कर दिया। अनुपम सुन्दरी क्लिओपेट्राके कारण नील नदीके तट-प्रदेशपर न मालूम कितने रोमन वीरोंका रक्तपात हुआ था। अलाउद्दीनके चित्तौड़-युद्धका कारण भी रानी पद्मिनी ही थी। उस समय तो किसी राजकन्याके पाणि-प्रार्थी राजा, राजकुमार या वीरको विमुख करनेका अवश्यम्भावी परिणाम ही था युद्ध और रक्तपात। सतरहवीं और अठारहवीं शताब्दियोंमें यूरोपके कितने ही राजाओंके राज्य-शासनकी परिचालना अप्रत्यक्ष, किन्तु वास्तविक रूपमें अन्तःपुरवासिनी नारियों द्वारा हो रही थी। फ्रान्सके चौदहवें और पन्द्रहवें लुईके शासनकालमें सारे देशके ऊपर "पेटिकोट शासन"का प्रभाव प्रत्यक्ष रूपमें चल रहा था। मादम दा पम्पदा, मादम दा एलिजाबेथ और मादम दा स्टेल उस समय यूरोपकी विख्यात कूटनीतिज्ञा थीं। फरासीसी विप्लवके पीछे भी नारीका प्रभाव कम नहीं था। क्रोधोन्मत्ता हो जानेपर ऐसा कोई भी भीषण कार्य नहीं, जो नारी न कर सकती हो। रानी पोपियाने कूटनीतिके प्रयोगमें अपने पूर्व-स्वामी तककी हत्या करनेमें द्विधाका बोध नहीं किया था। रूसकी रानी कैथरिन, आस्ट्रियाकी रानी मेरिया थ्रेसा, इंगलैण्डकी रानी एलिजाबेथ और स्वीडेनकी रानी क्रिश्चिना अपनी कूट-नीतिज्ञताके कारण प्रसिद्ध समझी जाती थीं। राजनीति-क्षेत्रमें शक्ति एवं दुःसाहसकी अपेक्षा बुद्धि, छलना एवं कूट-नीति-कौशलका ही विशेष प्रयोजन होता है। और यह मानी हुई बात है कि इस काममें नारी जितनी दक्ष एवं निपुण होती है, उतना पुरुष नहीं। जहां पुरुषकी शक्ति एवं दर्प दम्भ व्यर्थ हो जाते हैं, वहां नारीका एक ही चटुल कटाक्ष आन्दो-लनकी सृष्टि कर देता है। बड़े-बड़े शक्तिशाली सेना-पतियोंका रण-कौशल जहां व्यर्थ हो गया है, वहां नारीके एक चञ्चल कटाक्ष, कुटिल भ्रूभङ्गी अथवा मन्द मुसकानने शत्रु पक्षके नायकके अन्तरको प्रणय-बाणसे विद्ध करके असाध्य-साधन कर लिया है। बहुत प्राचीन कालसे ही युद्धका एक प्रधान अङ्ग गुप्तचरका कार्य समझा जाता है। गुप्तचरके कार्यमें स्त्रियां ही विशेष दक्ष समझी जाती हैं। कारण, इस क्षेत्रमें नारीका सबसे बड़ा अस्त्र होता है उसका रूप, उसका हावभाव और उसकी मोहिनी शक्ति। चाणक्य-के अर्थ-शास्त्रमें भी हम नारी-गुप्तचरका उल्लेख पाते हैं।

चन्द्रगुप्तके राजत्व-कालमें तो राजनीतिक अस्त्रके रूपमें नारीका प्रत्यक्ष व्यवहार किया जाता था और उनके द्वारा शत्रु-पक्षके बड़े-बड़े गुप्त भेद जान लिये जाते थे। नारीके चञ्चल कटाक्षपर न मालूम कितने राज्योंका उत्थान-पतन हो चुका है! नारीकी यह मोहिनी मूर्ति जितनी ही मनो-मुग्धकरी है, उतनी ही भयङ्करी भी। गत महायुद्धमें भीषण रणक्षेत्रके अन्तरालमें जिस विश्वविख्यात नारीने समाचारों-के आदान-प्रदानका दुःसाहसिक कार्य अपने ऊपर लिया था, उसका नाम माताहरी था। इस दुःसाहसिका रूपसी तरुणीने शत्रु-सैन्य-व्यूहके बीच भीषण अग्नि-वर्षाकी परवाह न करके अपूर्व एवं अद्भुत सफलताके साथ अपने भीषण कर्तव्यका पालन किया था। यही कारण है कि गुप्तचर माताहरीका नाम आज एक कहानीके रूपमें परिणत हो गया है। स्पेनके गृह-युद्धमें और वर्तमान चीन-जापान-युद्धमें अनेक नारियोंने गुप्तचरका कार्य किया है और इस समय भी कर रही हैं। जापानकी जिस महिलाके असम-साहसिक गोपन कार्यकी बदौलत चीन-युद्धमें जापानको अपरिसीम सहायता प्राप्त हुई है और जिस अपूर्व कर्म-शक्ति-सम्पन्ना तरुणीके पक्ष-समर्थनके कारण टोकियोकी सरकारने समग्र चीन देशको अपने अधीनस्थ करनेके चिरपोषित स्वप्नको वास्तव रूपमें परिणत करनेका सुयोग पहले-पहल देखा था, उसका नाम है जापानकी 'माताहरी' इयोसिमको कोयाशिमा। इस समय हजारोंकी संख्यामें जापानकी नारी-गुप्तचर संसारके कोने-कोनेमें कार्य कर रही हैं, जिनमें कितनी ही पकड़ी जाकर शत्रु द्वारा वन्दिनी बनायी जा चुकी हैं।

गुप्तचरका कार्य और कूटनीति, युद्धके इन दो गौण अङ्गों-में तो स्त्रियां बहुत पहलेसे ही दक्षता प्रदर्शित करती आ रही हैं। किन्तु युद्धके मुख्य एवं सक्रिय अङ्ग नर-संहार, शत्रु-विनाश, ध्वंसलीला एवं निष्ठुर निर्मम अत्याचारमें वे इस समय जिस रूपमें भाग ले रही हैं, वैसे इससे पहले कभी नहीं लिया था। इसका एक बहुत बड़ा कारण है नारीकी सामा-जिक स्थितिमें प्रभूत परिवर्तन। गत महायुद्धके बाद नारी-आन्दोलनका एक ऐसा प्रबल प्रवाह सारे यूरोपमें प्रवाहित हो चला, जिसमें पड़कर नारी जातिके सम्बन्धमें कितने ही प्राचीन आदर्श विलीन हो गये। शिक्षा, सार्वजनिक संस्था, जनहितकर कार्य, खाद्य पदार्थ उत्पन्न करनेका कार्य, सर-कारी नौकरी तथा व्यवसाय-वाणिज्यमें स्त्रियां पुरुषोंकी बरा-बरी करने लगीं। गणतान्त्रिक राष्ट्रोंने नारीके अधिकारोंका प्रत्यक्ष रूपमें समर्थन किया। इससे पूर्व नारीके पुरुषोचित समानाधिकार प्राप्त करनेके मार्गमें सबसे प्रबल बाधा राष्ट्र-की ओरसे ही उपस्थित की जाती थी। किन्तु अब यह बाधा भी नहीं रह गयी। इधर पुरुषजनोचित कार्योंमें सफलता प्राप्त करनेके फलस्वरूप स्त्रियोंमें आत्म-विश्वासकी भावना भी दृढ़ होने लगी। अब वे राजनीति, समाज-रक्षा, सेवाकार्य, वैज्ञानिक आविष्कार, व्यायाम-चर्चा, शक्ति-प्रदर्शन, विश्व-भ्रमण और अन्ततः रणस्थलकी ओर भी अग्रसर होने लगीं। इधर युद्धके कौशलमें परिवर्तन होनेके कारण बाहु-बल, शक्ति, साहस एवं पुरुषोचित पराक्रमका स्थान ग्रहण किया क्षिप्रता, स्फूर्ति, कौशल एवं सूक्ष्म बुद्धिने। आधु-निक युद्ध इस प्रकारके सूक्ष्म कार्योंपर ही बहुत कुछ निर्भर करता है। और इसमें नारी प्राचीन कालसे ही पुरुषोंकी अपेक्षा विशेष कुशलता दिखाती आ रही है। दूसरे बम फेंकना, मशीनगन चलाना, विषाक्त गैस छोड़ना आदि कार्योंमें दैहिक शक्तिकी अपेक्षा युक्ति एवं कौशलका ही अधिक प्रयोजन होता है। और ये गुण नारीमें सहजात होते हैं। आधुनिक युद्धका सबसे प्रबल एवं भयानक अस्त्र समझा जाता है सामरिक वायुयान। और वायुयान-परि-चालनमें नारियां पुरुषके समकक्ष रेकर्ड स्थापित कर रही हैं। कुछ ही समय पहले तक पृथिवीके एक छोरसे दूसरे छोर तक वायुयान द्वारा यात्रा करना दुर्धर्ष साहसका कार्य समझा जाता था। किन्तु एमि जानसन, मिसेज मलिसन, एमिलिया इयर हर्ट प्रभृति नारियोंने इस असमसाहसिक कार्यको सम्पन्न करके सारी दुनियाको चकित एवं स्तम्भित कर दिया। एमिलिया इयर हर्टके लिए तो शून्य आकाश-पथमें वायुयानको चाहे जिस रूपमें उलट-पुलट कर क्रीड़ा-कौतुक दिखलाना एक साधारण बात थी। इस तरुणीमें अद्भुत साहस एवं अदम्य अध्यवसाय था।

गत महायुद्ध-कालमें और इससे पहलेके युद्धोंमें भी स्त्रियोंने बहुत कुछ भाग लिया था। किन्तु उनका यह भाग लेना सक्रिय रूपमें न होकर प्रधानतया निष्क्रियरूपमें ही था। शस्त्रास्त्रोंके कारखानोंमें गोला-बारूद आदि तैयार करना,

संवाद-वाहकका कार्य करना तथा युद्धके सामानको एकस्थान से दूसरे स्थानपर पहुंचानेका कार्य विशेषतः स्त्रियोंके ऊपर ही सौंपा गया था। एम्बुलेन्स विभागमें घायलोंकी सेवा-शुश्रूषा तथा उन्हें सान्त्वना देनेका कार्य तो एकमात्र स्त्रियोंका ही था। क्रीमिया-युद्धमें आहतोंकी सेवा-शुश्रूषा करके ही फ्लारेन्स नाइटिङ्गेल स्वर्गकी देवीके नामसे अभिहित हुई थीं। गत महायुद्धमें सहस्रों स्त्रियोंने आहतों, पीड़ितों एवं अर्धमृतोंकी सेवा-शुश्रूषामें जैसी कुशलता एवं सहिष्णुता दिखलायी थी, वह युद्धके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित है।

इस प्रकार युद्धमें निष्क्रिय भाग लेनेके साथ-साथ स्त्रियां क्रमशः युद्धमें सक्रिय भाग भी लेने लगीं और वर्तमानकालके युद्धोंमें तो वे प्रत्यक्ष रूपमें रणरङ्गिणी मूर्तिमें प्रकट हो रही हैं। आज इंगलैण्ड; अमेरिका, इटली, रूस आदि देशोंमें तो प्रतिदिन सैकड़ोंकी संख्यामें स्त्रियां सैन्यदलमें भरती हो रही हैं। रूसकी नारी-वाहिनी तो आज सारे संसारमें विख्यात हो रही है। रूसकी नारी योद्धाओंने वायुयान-परिचालन तथा पैराशूटके सहारे वायुयानसे पृथिवीपर अवतरण करनेके दुःसाहसिककार्यमें भी अपूर्व कृतित्वका परिचय दिया है। अमेरिकामें तो अब इस आशयका एक कानून ही बन गया है कि वहां जो स्त्रियां अमेरिकन नागरिक बनना चाहेंगी, उन्हें इस बातकी प्रतिज्ञा करनी होगी कि अमेरिकापर विपत्ति पड़नेपर वे अस्त्र धारण करेंगी। और सब देशोंमें भी इस प्रकारके आईन-क़ानून बन गये हैं, जिनसे स्त्रियोंके लिए युद्धमें सक्रिय भाग लेना सुगम हो गया है। हां, यूरोपमें एकमात्र जर्मनी ही ऐसा देश है, जहां सरकारकी ओरसे स्त्रियोंके लिए—Back to the kitchen आन्दोलन चलाया गया है, जब कि जर्मन जाति इस समय संसारमें सबसे बढ़कर सामरिकजाति हो रही है और जिसका राष्ट्रीय आदर्श ही युद्ध-विग्रह हो रहा है। स्पेनके गृह-युद्धमें गणतन्त्रके आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिए जहां लाखोंकी संख्यामें पुरुषोंने प्राणविसर्जन किये, वहां स्पेनकी नारियोंका आत्मदान भी कम गौरवोज्ज्वल नहीं है। सौभाग्यवश उन्हें पसिओनारिया जैसी आदर्श नेत्रीका नेतृत्व प्राप्त हुआ था, जिसकी ओजस्विनी वाणीके स्पर्शसे स्पेनकी नारियोंके प्राण नाच उठे। उसकी वाणी एवं क्रियाशीलता द्वारा अनुप्राणित होकर स्त्रियोंके दलके दल संग्राममें भाग लेने लगे। सैन्यदलमें भर्ती होकर तथा युद्धके समस्त क्षेत्रोंमें सक्रिय भाग लेकर उन्होंने पूर्ण उत्साह, कर्तव्य-ज्ञान, निष्ठा एवं निपुणताके साथ फासिज्मके विरुद्ध अपने धन-प्राण अकातर भावसे उत्सर्ग किये थे। चीन-जापान-युद्ध जिस समय प्रबल वेगसे चल रहा था और शङ्घाईमें निदारुण ध्वंसलीला चल रही थी, उस समय इस शहरमें ही "चाइनीज वीमेन वार सर्विस कोर "Chinese women war service corps" गठित हुआ था। इस संस्थामें नारी श्रमिकोंने ही विशेष रूपमें भाग लिया था और इनका नेतृत्व किया था मिस हू लान-ची नामकी एक तरुणीने, जो चीनकी "जोन आव आर्क" नामसे विख्यात हैं। आज इस नारी-संस्थाका यश समग्र देशमें छाया हुआ है। इन्होंने प्रकृत योद्धाओंके समान ही कठोर अनुशासनका पालन करते हुए सामरिक शिक्षा प्राप्त की है और इनमें अधिकांशने गोली चलानेकी निपुणतामें आश्चर्यजनक सफलता प्रदर्शित की है। प्रत्यक्ष सङ्घर्षकी ध्वंसलीला एवं प्रलयङ्कर गर्जनके बीच जहां पुरुषोंके लिए भी स्थिर भाव धारण करना सहज नहीं होता, वहां कोमल हृदया एवं स्नेहशीला नारियोंके लिए धैर्य एवं साहसको अक्षुण्ण रखकर अविचलित रहना कम आश्चर्यकी बात नहीं है।

वर्तमान युद्ध-कौशल नारियोंके योगदानके पक्षमें चाहे कितना ही अनुकूल क्यों न हो, किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि पहलेकी अपेक्षा युद्धकी बर्बरता, निष्ठुरता एवं पैशाचिकता कई गुनी अधिक बढ़ गयी है। ऐसी स्थितिमें कोमल हृदया, स्नेहमयी एवं ममतामयी नारियोंके लिए इस विषाक्त एवं वीभत्स वातावरणमें भाग लेना तथा इस प्रकारके नरमेध-यज्ञमें सक्रिय योगदान करना कहां तक समीचीन कहा जा सकता है, यह विचारणीय विषय है। इस प्रसङ्गमें एक और उल्लेखनीय बात यह है कि जिन सब नारियोंने युद्ध-क्षेत्रमें कृतित्व प्रदर्शन किया है या कर रही हैं, वे वस्तुतः नारी नामसे अभिहित नहीं की जा सकतीं। हेवलाक एलिस आदि यौन-तात्त्विकोंके मतसे इस प्रकारकी स्त्रियां पुरुष-भाव-सम्पन्न स्त्रियां अर्थात् "मर्दानी औरत" कही जायंगी। अंगरेजीमें इन्हें अमेजन या विरागो कहते हैं। रूसकी नारी-सेना तो अमेजन आर्मी नामसे ही विख्यात है।

शाप हुआ वरदानमुझे !

शाप दिया था तुमने उस दिन किन्तु हुआ वरदान मुझे,
दूरागत-ध्वनि लगी लहरती मादक पञ्चम तान मुझे !

व्यथा पुजारिन उर-मन्दिरकी मधुसे नहा उठी ध्वनि सुन !
नुपुर मौन थे पीड़ाके जो मुखर बज उठे रुनुन-झुनुन !

हुए प्रज्ज्वलित दृगके दीपक लेकर स्नेह छलकता-सा।
पीकर स्वरके विन्दु प्यारका पारावार उमड़ता-सा।

फूल व्रणोंके खिल-खिल झरते मृदु रस-भीने गन्ध-विकल !
रोम-रोमके अङ्ग जल उठे धूप-वर्त्तिसे हो झलमल !

रक्त हृदयका शीतल चन्दन लेपन ले युग कर कम्पित !
पूजाका नव साज सजाकर चले प्राण-छवि सम्मोहित !

मृदु पगका प्रक्षालन करने पलकोंकी गङ्गाका जल !
तिरतिर जिसमें नाच रहा है, प्राण तुम्हारा ही शतदल !

मनुहारोंकी नव पङ्खड़ियां एक-एककर झुक-झुककर।
करने लगीं अर्चना, वन्दन, श्वास पुलककर रुक-रुककर !

जयकी मधुवेलामें मादक फूट पड़ा अधरोंका राग।
अन्तरिक्षसे आती प्रतिध्वनि चूम झूम उठता अनुराग !

कण्ठ-ध्वनि सुन मधुर मुग्ध हो उठे झङ्करित उन्मन क्षण !
शून्य विजनमें मेरे गूंजी, वर ले शापोंकी प्रतिध्वनि !

पुतलीकी काली अलकोंमें छिपा तुम्हारा चन्द्र वदन !
खेल उठी मैं आंख-मिचौनी हुआ ज्योत्स्नामय जग-वन !

कभी निमिष भर तो ही देना तुम मङ्गलमय शाप सजन !
स्वरके स्रोत तरङ्गित कर देंगे रीते जीवन-क्षण !

कभी-कभी वाणी-वीणा-झनकारोंकी प्रतिध्वनि बोले !
चिर-वसन्त सौरभ बरसाने पाकर परस पवन डोले !

पल-भरको हो बह जाये उस मुक्त कण्ठका मधु निर्झर !
मेरा सिकता-तट छू ले बस कण-कणको करता उर्वर,

युग-युगका वरदान मिले तुम दो तो शाप किसी भी क्षण,
मेरे दूर देशके वासी, पानेका क्षण हो जीवन !

—सुमित्राकुमारी सिनहा।

"आज जर्मनीका इतिहास बदल रहा है। लोगोंने राक्षसके हाथोंसे छुटकारा पाया। बर्लिनकी गलियोंमें आज उन्मत जनता—नर-नारी-बाल-वृद्ध-बनिता खुशियां मना रहे हैं। जर्मनीने एक स्वरसे हिटलर नामक डिक्टेटरको देशके प्रति अपराधी ठहराया है। रीखस्टागमें आज वास्तवमें प्रजातन्त्रका बोलबाला है। हिटलरको सजा मिलेगी—कल सवेरे ही वह गोलीसे उड़ा दिया जायगा—हा, हा, हा—--प्रजातन्त्र जिन्दाबाद! हिटलरशाहीका खात्मा! लाखों मजदूरों और किसानोंको जीवन मिला! ईश्वरका लाख-लाख शुक्र।"

और फिर :जर्मनीका राष्ट्रीय गायन—युद्धके बैण्डोंके साथ समाप्ति।

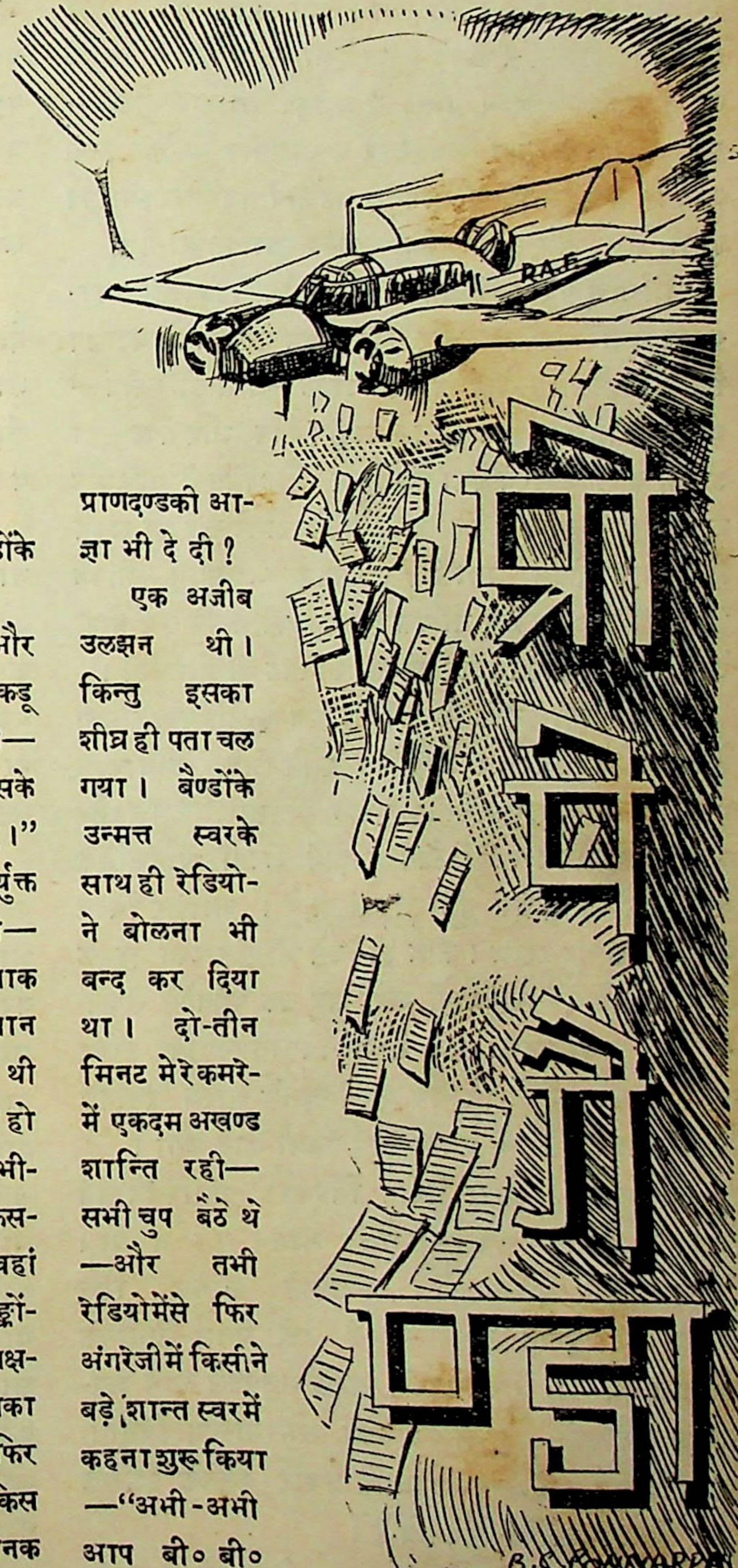
जी हां, मैंने यही सुना। रेडियोकी सुई घूमी और तड़ातड़ मैंने संवाद सुना—एकदम मैं उछलकर कुर्सीपर उकडू बैठ गया—एक मिनटके लिए तो जबान ही नहीं खुली—रुकनेकी-सी दशा थी—फिर एकदम चिल्ला उठा—आस-पासके लोगोंको बुलाया। कह उठा—"हिटलर खतम, युद्ध बन्द।"



श्री कृष्णचन्द्र अग्रवाल

सबोंने उपर्युक्त समाचार सुना—एक-दूसरेको ताक रहे थे। जबान नहीं खुल रही थी—आखिर यह हो क्या गया? अभी-अभी तो आफिससे आया — वहां तो हिटलरके टैङ्कोंका नारवेके वक्षस्थलको रौंदनेका समाचार था, फिर दो घण्टेमें ही किस प्रकार अचानक जर्मनी अपने तानाशाहके विरुद्ध उठ खड़ा हुआ? इतनी जल्दी रीखस्टागने किस प्रकार हिटलरपर मामला चलाकर प्राणदण्डकी आज्ञा भी दे दी?

एक अजीब उलझन थी। किन्तु इसका शीघ्र ही पता चल गया। बैण्डोंके उन्मत्त स्वरके साथ ही रेडियोने बोलना भी बन्द कर दिया था। दो-तीन मिनट मेरे कमरेमें एकदम अखण्ड शान्ति रही—सभी चुप बैठे थे—और तभी रेडियोमेंसे फिर अंगरेजीमें किसीने बड़े शान्त स्वरमें कहना शुरू किया—"अभी-अभी आप बी० बी० सी० (ब्रिटिश ब्राडकास्टिङ्ग कारपोरेशन) के नाट्य विभागके कलाकारोंसे 'हिटलरपर मामला और सजा'



नामक नाटक सुन रहे थे और अब..."

हां! तो यह मामला था। हम सबने एक-दूसरेको देखा और ठठाकर हंस पड़े। अब देखा गया कि रेडियोकी सुई तो लन्दनपर थी। वास्तवमें अद्‌भुत था वह नाटक—सचमुच मालूम पड़ा कि हिटलर कल फांसीके तख्तेपर लटक जायगा, युद्ध समाप्त हो जायगा, जर्मनीमें प्रजातन्त्र स्थापित होगा, संसारमें एक बार फिर शान्ति स्थापित होगी।

ब्रिटेनके प्रचार-विभागका भी ध्यान रेडियोकी सहायतासे प्रचार करनेकी ओर गया। जरा कल्पना तो कीजिये कि जर्मनीमें जिस जर्मनने वह नाटक—जोशीली स्पीचें—नर-नारियोंका विजयोल्लास—राष्ट्रीय गीत और बैण्ड सुना होगा, उसके शरीरमें क्या एक बार ही बिजली नहीं दौड़ गयी होगी? जरूर। जब हम लोगोंके रोंगटे खड़े हो सकते हैं, तब एक देशके तानाशाहके विरुद्ध अभियोग—भीषण अभियोग सुन एक बार तो उस देशवासीकी, कमसे कम थोड़ी देरके लिए, उसपर विचार करनेकी तबियत तो होगी ही।

पिछले महासमरके विषयमें अध्ययन करनेसे पता चलता है कि जर्मनीने बराबर नियमित रूपसे प्रचार-कार्य चालू रखा। जर्मन न्यूज एजेन्सियां, एजेण्ट, पत्रकार, लेखक और कवि सभी तटस्थ एवं विजित राष्ट्रोंमें अपनी मातृभूमिके कार्य और संस्कृतिके प्रचारमें संलग्न थे। आखिर ब्रिटेन भी कब तक चुप रहता। शीघ्र ही उसे भी संसारको युद्धके समाचार देने एवं महत्त्वपूर्ण खबरें शत्रु तक पहुंचनेसे रोकनेके लिए समाचारपत्र एवं सेन्सर-विभाग स्थापित करना पड़ा। तटस्थ देशोंको ब्रिटेनके युद्धमें पड़नेके कारण बतानेके सिवाय शत्रु-देशोंमें भी प्रचार-कार्य किया जाने लगा।

पूर्व स्थापित किया गया ब्रिटेनका प्रचार-विभाग निश्चय ही आजके प्रचार-विभागके सामने कुछ न था। आजके प्रचार-विभागको स्थापित करनेके लिए छब्बीस वर्ष पुराने गृह-विभागमें रखे प्रचार-विभागके कागजपत्र देखे गये, और पिछली बारके अनुभवसे लाभ उठाकर इस बार कहीं बड़े सुव्यवस्थित समाचारपत्र विभाग, सेन्सर विभाग एवं अन्य उपायोंसे प्रचार करनेके निमित्त प्रचार विभाग स्थापित किये गये हैं।

सर्वप्रथम तो गत महासमरके प्रचार-विभागोंका सम्बन्ध ब्रिटेन एवं मित्र-राष्ट्रोंके विषयमें ही तटस्थ देशोंमें प्रचार करने तक था; किन्तु कुछ समयके बादसे प्रचार-विभागोंका क्षेत्र और कार्य और भी व्यापक हो गया, जब उनको सरकारी प्रकाशनका अनुवाद, पोस्टर, किताबें और लेख भी बांटने पड़े। पहले-पहल तो जो साहित्य इस प्रकारका बांटा गया, वह बहुत नीरस था; किन्तु धीरे-धीरे सुधार हुआ और तटस्थ देशोंके पत्रकारोंको लन्दनमें विशेष सुविधायें दी जाने लगीं।

प्रचार-विभागकी ओरसे युद्ध-क्षेत्र एवं शान्तिके स्थानों, दोनों ही जगह सैकड़ों फोटोग्राफर भी रखे गये, जिनका कार्य देशके पक्षके मनोरञ्जक फोटो खींचना था और विभागको वे फोटो संसारके समस्त पत्रोंको मुफ्तमें भेजना था, चाहे वे छापें या नहीं।

पिछले महायुद्धके अवसरपर ही "वर्ल्ड पिक्‍टोरियल" नामक एक सचित्र मासिक पत्र भी प्रकाशित किया गया और उसकी खपत संसारके कोने-कोनेमें थी। तरह-तरहके कार्टून, सिगरेट केस, ताश, फिल्म एवं इसी प्रकारकी दैनिक व्यवहारमें आनेवाली वस्तुयें प्रकाशित की जाने लगीं, जिनपर लिखा रहता—"ब्रिटेन अन्त तक लड़ेगा", "युद्धमें सहायता करो" आदि।

कुछ समय पहले तक हम बराबर समाचारपत्रोंमें यह पढ़ा करते थे कि ब्रिटिश जङ्गी वायुयानोंने बर्लिन एवं उसके आसपासके शहरोंपर कई घण्टे तक पर्चों और हैण्डबिलोंकी वर्षा की। यह तरीका ब्रिटेनके प्रचार-विभाग द्वारा गत महासमरके समयमें भी अपनाया गया था, जबकि १९१६ में वार आफिसमें प्रचार-विभाग खोला गया था, जो वायुयानों द्वारा जर्मन फौजको सम्बोधित करते हुए तरह-तरहके पर्चे और शत्रु द्वारा विजित बेल्जियम एवं फ्रान्सके हिस्सोंमें फ्रेञ्च भाषामें समाचारपत्र बंटवाता था। जर्मनोंमें इस तरीकेसे बड़ी खलबली मच गयी थी और उन लोगोंने कहा था कि वायुयानों द्वारा प्रचार युद्धके समस्त नियमोंके विरुद्ध है और साथ ही यह घोषणा की कि जो भी ब्रिटिश वायुयान-चालक इस प्रकारका कार्य करता हुआ पकड़ा जायगा, उसे कड़ीसे कड़ी सजा दी जायगी। दो वायुयान-चालकोंको भीषण यातनायें भी दी गयीं। ब्रिटिश अधिकारियोंको नृशंसताके सामने नतमस्तक होना पड़ा, और इसके बदले सीमापरसे हवाई बन्दूकोंमें पर्चे भरकर शत्रुकी फौजमें फेंके जाने लगे।

आठ-आठ, दस-दस फीट लम्बे-चौड़े कागजके गुब्बारोंमें आठ-नौ सौ पर्चे रखकर उड़ा दिये जाते और ठीक जगहके ऊपर गुब्बारा फट पड़ता और पर्चोंकी वर्षा होने लगती।

१९१८ के फरवरी महीनेमें प्रसिद्ध पत्रकार लार्ड नार्थक्लिफ, उपन्यासकार सर राबर्ट डोनल्ड, कवि रुडयार्ड किपलिंग, एच० जी० वेल्स जैसे दिग्गज विद्वान् प्रचार-विभागमें सम्मिलित हो गये और उन लोगोंने जर्मन जनता एवं फौजके हृदय और मस्तिकमें यह छाप लगानेकी ठान ली कि आर्थिक कठिनाइयों एवं धीरे-धीरे बढ़ती हुई मित्र-राष्ट्रोंकी सैनिक शक्तिके कारण, विशेषकर अमेरिकाके गठबन्धनसे, उन लोगोंके लिए विजयकी तनिक भी आशा नहीं, और जर्मन जनताके लिए बर्बादीसे बचनेका एकमात्र मार्ग एकतन्त्रको त्याग राष्ट्र सङ्घमें शामिल होना ही है।

इस विषयके प्रचारके लिए उन लोगोंने समस्त मानुषिक शक्तियोंसे काम लिया। करोड़ों पर्चे जर्मनीके कोने-कोनेमें आकाशसे बरसे। प्रसिद्ध जर्मन किताबोंके कवरके भीतर सारेका सारा प्रचार ही लिखा पड़ा था। बैरंग चिट्ठियों एवं तटस्थ देशोंसे भेजी हुई चिट्ठियोंमें भी यह प्रचार-साहित्य पूर्ण था। इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। जर्मन जनता एवं फौजका नैतिक बल घटने लगा, उन्हें अपनी शक्तिमें कमी मालूम पड़ने लगी। मित्र-राष्ट्रोंकी विजयके लिए इस प्रचारने बहुत बड़ा कार्य किया।

रेडियोका प्रचार-कार्यमें बराबर बहुत बड़ा हाथ रहा है। समस्त स्थानोंसे अपने देशकी प्रशंसामें लम्बी-चौड़ी गाथायें विभिन्न भाषाओंमें गायी जाती हैं। यह यहां तक बढ़ा कि जापान, जर्मनी और इटलीने हिन्दीमें अपने रेडियो स्टेशनोंसे बोलना शुरू कर दिया। इस बारके युद्धके पहलेसे ही जर्मनीके प्रचार-विभागने सिरतोड़ कोशिश करनी आरम्भ कर दी थी। संसार, विशेषकर भारतके समस्त समाचार-पत्रोंको सुन्दर विभिन्न रङ्गोंमें साफ-सुथरे दामी कागजोंपर छपे हुए मासिक पत्र एवं लेख भेजे गये। हिन्दीमें लिखे-लिखाये लेख भी आये। ये लेख विभिन्न विषयोंपर थे। चित्र भी इस तरह भेजे जाते थे कि कई समाचारपत्रोंने अपना



जर्मनोंकी नृशंसता—एक प्रचार-कार्टून।

अहोभाग्य समझते हुए उन्हें सजाकर "खास हमारे लिए" देकर छापना शुरू कर दिया।

जर्मनीके रेडियो स्टेशनने भी कुछ कमी नहीं रखी और नियमपूर्वक रात्रिके समय धड़ाधड़ हिन्दुस्तानीमें ताजी खबरें सुनानेके बहाने प्रचार करना आरम्भ कर दिया। ब्रिटेनको भी ऐसाही करना पड़ा और बम्बई रेडियो स्टेशनके डाइरेक्टर मि० बुखारी लन्दन पहुंच गये औररात्रि-समय "सारे जहांसे अच्छा हिन्दोस्तां हमारा—हिन्दोस्तांकी खिदमतमें सलाम पहुंचे।" सुनाई पड़ने लगा। रेडियोका असर बड़ा गहरा पड़ता है, इसका पता तो जर्मन सरकारके इस हुक्मनामेसे कि विदेशी रेडियोके सुननेसे प्राणदण्ड तककी सजा दी जा सकती है, चलता है। भारत-सरकारने व्यर्थकी झूठी खबरोंको फैलनेसे रोकनेके निमित्त सार्वजनिक रूपसे जर्मन रेडियो सुननेकी मनाही कर दी है। देशी रजवाड़े कुछ और आगे

बढ़े और उन्होंने किसीको भी जर्मन रेडियो सुनते पाये जाने-पर कड़ी सजाकी तजवीज कर दी है ।

बर्लिन रेडियोसे अंगरेजीमें बोलनेवाले एक सज्जन, जो अपना नाम लार्ड हाहा बताते हैं, काफी प्रसिद्ध हो गये हैं। अंगरेजोंके आमोद-प्रमोदके स्थानोंमें तो इनकी बड़ी चर्चा रहती है । इनके वास्तविक रूपके विषयमें तरह-तरहकी अटकलें लगायी जा रही हैं । अभी हालका अन्दाज यह है कि इस युवकका नाम शायद विलियम जोयस है, जो आक्स-फोर्डवालोंके ढङ्गसे बोलता है एवं युद्ध प्रारम्भ होनेके पहले वह जर्मनी चला गया था । वह एक ब्रिटिश फैसिस्ट है । खैर, कोई भी लार्ड हाहा हो, कमसे कम उसने एक प्रसिद्धि तो प्राप्त कर ही ली है । जर्मनीकी ओरसे प्रचार-कार्यके लिए बोलनेवाले जिम, जान, फ्रिट्ज, फ्रेड आदि हैं, जो प्रायः अपने व्यङ्गों द्वारा प्रचारकार्य करना चाहते हैं। कभी कभी दो आदमी कैनेडावासी बनते हैं और इस तरहकी बातें करते हैं, जिससे मालूम हो कि इंगलैण्ड कैनाडाका रक्त शोषण कर रहा है । एक दूसरेसे कहता है—"जल्दी करो और सवेरेके जलपानका आनन्द उठा लो, क्योंकि भाई ! यह तभी तक सम्भव है, जब तक कि तुम्हारे पास कुछ खानेको है, नहीं तो भइया ! अंगरेज जिस तरह मुंह फाड़ हमारी रोटियोंपर आंखें गड़ाये हैं, उससे खुदा ही बचाये ।"

प्रचार-विभागकी ओरसे कार्टून और पोस्टर भी प्रकाशित किये जाते हैं । आज कलकत्तेकी प्रत्येक ट्राम, होटल, रेलवे स्टेशन एवं बड़ी-बड़ी दूकानोंपर पोस्टर चिपके हुए देखे जाते हैं । किसी चित्रमें ब्रिटिश सैनिक जर्मन वायुयान-को मारकर नीचे गिरा रहा है और उसपर लिखा है, हमें और वायुयान चाहिए । किसी चित्रमें एक बड़ा शेर लेटा हुआ है और एक चील उसपर झपट्टा मार रही है और उस-पर लिखा है—"भारत जागो ।" इस तरहके प्रचार किसी भी देशकी फौजी शक्तिसे कम उपयोगी और शक्तिशाली नहीं होते ।

पिछले महायुद्धके समय प्रचार-विभाग या सैनिक विभागकी ओरसे जो चित्र या पोस्टर प्रकाशित किये गये थे, वे आज भी दर्शनीय हैं और करुणा, जोश और घृणा पैदा करते हैं । आपके सामने एक चित्र है, जिसमें स्त्रियोंका एक बहुत बड़ा समूह एकत्र है, एक महिला खिड़कीपरसे साड़ी दिखा रही है और सभी कह रही हैं—"या तो सेनामें भर्ती हो या यह साड़ी पहनो ।"

एक घड़ीके चित्रपर लिखा है--"लन्दन निवासियो! समय हो गया । आगे बढ़ो ! प्रत्येक स्वस्थ मनुष्यका कर्तव्य है कि सेनामें नाम लिखाये ।" और उसके बाद नाम लिखानेके स्थानका पता है ।

एक ट्रेन मोर्चेपर जाते हुए सैनिकोंसे भरी हुई है, पर एक सैनिक खिड़कीसे सिर निकाले कह रहा है—"कामरेड! अभी आपके लिए जगह है ।"

एक छात्र देशका इतिहास पढ़ रहा है और उसके पास देशका झण्डा लहराती हुई स्वतन्त्रता देवी कहती है--"देशका इतिहास पढ़ना बन्द करो, इतिहास बनाओ ।"

इसी प्रकारके पोस्टरोंसे देश, शहर और गांव-गांवके कोने भर गये थे । और इनका प्रभाव क्या पड़ा, यह तो नाम लिखानेके आफिसके बाहर कतारमें घण्टों धूप और बर्फकी बौछार सहते हुए हजारों नवयुवकोंकी पंक्तियां बता रही थीं । पिछले एवं वर्तमान युद्धमें महिलाओंने भी बराबर क्रियात्मक सहयोग दिया है एवं दे रही हैं ।

एक वृद्धा अक्सर लन्दनकी सड़कोंपर पोस्टर उठाये घूमती रहती थी, जिसपर लिखा था—"मेरा जन्म १८६३ में हुआ, तबसे मैं बराबर देशके सङ्कटोंके समय आगे रही, आज मैं लाचार हूं; किन्तु मेरा एकलौता लड़का मोर्चेपर लड़ रहा है । आप युद्धके लिए क्या कर रहे हैं ?"

शत्रुओंकी बर्बरताका नग्न प्रदर्शन करनेके निमित्त १९१५-१६ के कार्टूनिस्टोंने भी जो कार्टून बनाये थे, उन्होंने देशकी तो बात ही क्या, तटस्थ देशोंके निवासियोंमें भी बड़ी खलबली मचा दी थी । एक आधुनिक चित्रमें एक बड़ा भयङ्कर किङ्ग कांगकी शक्लका राक्षस एक कोमल सुन्दरीको निर्द-यतापूर्वक घसीटे ले जा रहा है, दूसरेमें पिस्तौलके जोरसे शान्ति वस्त्रहीन की जा रही है । हिटलर अपने शिरस्त्राणसे पृथ्वीके गोलेको ढंकनेका प्रयत्न कर रहा है । इस तरह-के कार्टून मजाककी भी सामग्री होते हैं ।

कार्ल स्टेपनेक जर्मनीका प्रसिद्ध अभिनेता है । आजकल वह लन्दनमें कार्य कर रहा है । जर्मनीसे बड़ी कठिनाईसे भागकर वह लन्दन पहुंचा । जब वह बर्लिनमें था, तो जर्मन प्रोपेगेण्डा विभागमें गोयबेल्स उससे अमूल्य सहायता लेता

था; पर यह कार्लके लिए बड़ी कष्टकर एवं असह्य चीज हो रही थी, क्योंकि हृदयसे वह नाजी शासनके विरुद्ध था। अन्तमें एक दिन मौका पाकर वह जर्मनीकी सीमासे बाहर हो गया। जगह-जगह गेस्टापोंके लोगोंने उसे मारनेका प्रयत्न किया, किन्तु इन सबसे बचकर वह सकुशल लन्दन पहुंच गया और ब्रिटिश प्रचार-विभागको उसे पाकर हार्दिक प्रसन्नता हुई।

ब्रिटिश ब्राडकास्टिंग स्टेशनसे वह नियमित रूपसे जर्मन भाषामें बर्लिन-वासियोंको सम्बोधन करके बोलने लगा। गोयबेल्सके लिए यह कितनी कष्टकर बात साबित हुई होगी, यह तो इसीसे पता चल जाता है कि गोयबेल्सने केवल कई सप्ताह पूर्व उससे हाथ मिलाते हुए उसे जर्मन जातिका उज्ज्वल रत्न कहकर पुकारा था। आज कार्ल लन्दनमें रहकर जर्मनीके अन्दरूनी भेदोंको खोल-खोलकर बताता है, एवं विभिन्न चित्रोंमें अभिनय कर एवं रेडियोपर बोल-बोलकर उसने बर्लिनके प्रचार-विभागके नाकमें दम कर रखा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक देश प्रचारके शस्त्रको अधिकाधिक उपयोगमें लानेके लिए अत्यन्त व्यग्र हो उठा है।

———



पूर्णिमा

श्री परशुराम नौटियाल

"नहीं, नहीं, नहीं।" कुछ उत्तेजनाके स्वरमें कुंवर बोली।

"मगर क्यों, नहीं-नहींका तो कोई मानी नहीं होता। बड़ी तुम हो गयी हो, पढ़ा-लिखा तुम्हें लिया है, अब शादी करो और अपना घर-बार संभालो, हमारा जो कर्त्तव्य था, हमने पूरा कर लिया है; अब तुम्हारी शादी कर देना बाकी है, फिर तुम जानो और तुम्हारा काम!" कुछ चिढ़ते-से मिजाजसे कुंवरकी मांने कहा।

"मां, मैं एक बार नहीं, हजार बार कह चुकी हूं, मुझे शादी नहीं करनी, किसीका गुलाम नहीं बनना, मैं शादी नहीं करूंगी, चाहे इधरकी दुनिया उधर हो जाय। तुम लोग अगर अपने घरमें रखनेके लिए भी घबराते हो, तो मैं चली जाऊंगी, नौकरी कहीं कर लूंगी, अपने रहने-खानेका गुजारा चला लूंगी—तुम लोगोंको मेरे लिए चिन्ता न करनी होगी!" कुंवर पिछली ही जिदमें बोल बैठी। किन्तु मांका स्वर कुछ धीमा पड़ा, कुछ सहानुभूति-सने शब्दोंमें उन्होंने कहा—

"बेटी कुंवर! तू हम लोगोंको इस बुरी तरहसे क्यों डांटती-फटकारती रहती है, हम क्या तेरे बुरेके लिए कहते हैं?"

कुछ अभिमानका स्वर लिये कुंवर बोली—"पर मेरे भलेके लिए तुम लोगोंको इतनी चिन्ता क्यों? मैं भी तो अपना भला-बुरा सोच सकती हूं!"

"तू हमारी कोखसे जन्मी है, लक्ष्मी-जैसे गुण तुझमें हैं, जिस घरमें पैर रखेगी, उसे राज-भवन बना लेगी, तेरा भला होगा, माता-पिताका नाम रौशन होगा, क्या इससे हमें खुशी न होगी?" बड़ी मीठी आवाजमें मांने उत्तर दिया!

अब कुंवरके स्वरमें कुछ गम्भीरता आ गयी थी, वह बोली— "मगर मेरा विश्वास है मां, मेरी शादी क्या होगी, मेरा जीवन बरबाद होगा; जिस कामसे मेरी दिली नफरत है, उससे मेरा कैसे भला होगा? क्या तुम यह चाहती हो कि मैं दिन-रात किसी एकके पीछे रहकर अपनी सारी खुशियोंका, अपनी तमाम जिन्दगीके अरमानोंका बलिदान कर दूं? मेरा दिल कभी भी यह नहीं चाहता। अगर मनको मारकर तुम लोगोंकी बात मान भी लूं, तो जिन्दगी-भर अपने साथ-साथ तुम लोगोंको भी सताती रहूंगी। यह ब्याह-शादीका झञ्झट एक व्यर्थका झञ्झट है। आदमी अकेला आया है, अकेला जायेगा; फिर किसीपर किसीका प्रभुत्व कैसा—हुकूमत कैसी? एक लड़की पैदा हुई है तो अपने लिए, मरेगी भी तो अपने लिए; फिर वह अपनी अमूल्य जिन्दगीको सिर्फ दो दिनके लिए किसीके हवाले क्यों कर दे? ईश्वरने किसीको गुलाम और किसीको मालिक तो बनाया नहीं है, फिर यह पाखण्ड और धूर्तता नहीं तो और क्या है, और जब मैं इसे समझ गयी हूं, तो क्यों न स्वयं संभल जाऊं?"

हारकर जैसे मांने कहा—"मांके हृदयकी छिपी व्यथाको कैसे समझाऊं, कुंवर! तेरी मर्जी रही, मैं क्या कहूं—मगर इस तरह क्या तू सुखी रह सकती है?"

"क्यों नहीं, ज्यादा सुखी!"

मां-बेटीकी बातोंके बीच "मां-मां" कहती हुई पूर्णिमा कमरेमें प्रविष्ट होते ही दोनोंके चेहरेकी उदासीको देख चुप-सी रह गयी, वह समझ न सकी कि क्या करे, पहले इनकी उदासीका कारण जाने या अपने सबसे प्यारे लाल भैयाके आज यकायक आनेकी सूचना सुनाये!

मां पूनमकी खुशीको अपनी उदासीसे दबा नहीं देना चाहती थीं, माताका हृदय लड़कीके खिले चेहरेको देखते ही खिल गया, बोलीं—"क्या है बेटी पूनम?"

कुंवर बड़ी थी, पूर्णिमा छोटी। कुंवर कुछ खुश्क मिजाज, पूनम कुछ रसीली। जहां कुंवर माता-पिताकी बातोंको बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा करती थी, वहां पूनम कुछ उपेक्षाशील, कुछ लापरवाह—कुछ भावनाओंकी दुनियामें निपटने, कभी-कभी अकेली बैठी आंसुओंसे खेलने और शायद किसीके हृदयमें कुछ टटोलनेवाली, और कुछ पा जानेमें उनकी छान-बीनमें व्यस्त रहनेवाली थी; और कुंवर माता-पिताकी आज्ञाको बिना किसी हां-ना के स्वीकार करने और अपने घरकी ही दिनचर्यामें हर समय व्यस्त रहनेवाली थी। बात

यह थी, परिस्थितिने दोनोंको दो तरहका बना दिया था। कुंवर यूनिवर्सिटियोंकी परीक्षाओंमें व्यस्त रहती और उनमें सफलता पाती और जीवनके हर काममें वह उसी तरहकी सफलताओंके लिए व्यस्त रहा करती. कालेजके साथियोंके तीखे व्यवहारने उसे पुरुष-जातिसे ही घृणा करनेवाली बना दिया था, इसीलिए वह अपने माता-पिताकी किसी बातको अगर आज कई महीनोंसे टालती आ रही थी, तो वह यही बात थी कि वह किसी पुरुषको अपना साथी बना ले—जीवनका साथी। आज भी मां हार गयी थी; पर वह ब्याहके लिए राजी न हो सकी।

पूनम किन्तु छोटी होनेपर अपनी मांकी लाड़ली ज्यादा थी, पूर्णिमा कहकर मां उसका कभी-कभी सिर सोहलाया करतीं। उसने मांसे सुन लिया था, अब वह बड़ी हो गयी है, ज्यादा खेल-कूद अब अच्छा नहीं, और जब वह अपने लाल भैयाको बड़े उत्साहसे मांसे मिलाने ला रही थी, तो वह वास्तवमें यह भूल गयी थी कि वह बड़ी हो गयी है, लालको वह समझती ही ऐसा कुछ थी, जिसे देखते ही वह सब कुछ भूल जाती थी। मांके दुलारको पाते ही वह उसी उत्साहसे बोल उठी—

"मां, हरीश भैया आये हैं, जरा देखो न बाहर खड़े हैं!" दोनों बाहर आये—लालको देखते ही बोली—"मां, जरा पूछो न इन्हें, आज तक क्यों नहीं आये ?"

"अरे हरी! तू तो ईदका चांद हो गया है रे, क्या हुआ? मैं देख रही हूं, आज तू पूरे ३ साल बाद आ रहा है।" मांने हरीशको भेंटते हुए कहा।

कुछ उपेक्षाके-से स्वरमें हरीश बोला—"काममें लग गया था मांजी, फुर्सत ही नहीं मिली—कुछ दिनके लिए बाहर गया था, अभी आया हूं!"

"अच्छा तू बैठ, मैं अभी आयी।" कहकर मां एक ओर चली गयीं! कुंवर हरीशको बिठाती हुई बोली—

"क्यों झूठ बोले ?—अभी आये हैं, शक्ल देखो न अभी आनेवालोंकी, जैसे कि सच ही बाहर गये थे।"

"अब अगर तुम्हें विश्वास न हो, तो मैं क्या करूं—और फिर मैं तुमसे बोल ही कब रहा हूं ?" कुछ रूखे भावसे बोला हरीश! पूनम लालकी कुर्सीपर सहारा रखकर वहीं-पर खड़ी रही, कुछ बोली नहीं!

उसी तीक्ष्णतासे कुंवर बोली—"तो मैं ही कब आपसे बोलने जा रही हूं, बड़ी कीमती बातें हैं न आपकी, जिनका जवाब दिये बगैर हमसे नहीं रहा जाता।"

"मैं कब कह रहा हूं कि मेरी कीमती बातें हैं, कीमती बातें तो आप लोगोंकी होती हैं।" हरीशने चुटकी ली। कुंवर गुस्सेसे लाल हो गयी; बोली—

"और नहीं तो क्या तुम लोगोंकी गन्दी-गन्दी बातें कीमती होंगी? लड़कोंको अक्ल ही क्या होती है बातें करने-की, बहुत हुआ तो किसी लड़कीके सामने अपने झूठे और तीन कौड़ीके प्रेमकी शेखी बघारने लग गये, इसके सिवा और तुम कर ही क्या सकते हो ?"

"प्रेम कभी झूठा और तीन कौड़ीका नहीं होता कुंवर, तुम भूलती हो, हम लोग प्रेम करते हैं, लड़कियोंकी तरह प्रेमकी बातोंमें दूसरोंके जीवनसे खेला नहीं करते!" और हरीशने एक सन्देह-भरी दृष्टि पूनमपर फेंकी। पूनम वहांसे बाहर चली गयी।

कुंवर बोली—"उंह, आपको ही तो सब कुछ पता है; प्रेम—प्रेम नहीं अपना सर पटकते हैं! मुझे कोई मिले, तो दिखाऊं उसे प्रेमका मजा!"

हरीश कुछ हलका-सा हंस दिया, कुछ बोलना ही चाहता था कि प्लेटमें कुछ खाना लिये मां आते-आते बोलीं—

"हां रे हरी! बहू अच्छी है ?"

"हां...अच्छी...ही हैं!"

"मतलब! क्यों, कोई खास बात है क्या ?"

"न...हीं..."

"तो इतना लम्बा होकर क्यों कहते हो ?"

"लड़का हुआ है मां, लड़का।" पूनम बोल तो गयी, पर उसकी बोलीमें कुछ घरघराहट थी, आनन्दोल्लासकी खिल-खिलाहट नहीं। हरीशने पूनमको देखा, वह चायका प्याला लिये आ रही थी, एक प्रगाढ़ लालिमा उसके गालोंपर थी! मांने पूछा—"क्यों रे हरी, सच ?"

"लड़का तो नहीं, पर..." हरीश बोल भी न पाया था कि, "लड़की हुई है!" कहकर कुंवरने वाक्य समाप्त किया।

"लड़की हुई है ?" विस्मय मांके हृदयमें कुछ अस्पष्ट-सा था।

"हां!" हरीशने कहा नहीं, पर 'हां' के बदले केवल सिर हिला दिया!

"ठीक हुआ!" यकायक कुंवर बोल उठी।

आश्चर्यसे सभीने उसकी ओर देखा, उसने और भी कहा—

"लड़की क्या हुई, जैसे कोई आफत आ गयी। और लड़का ही होता, तो कौन-सा तख्ता उलट लेता?"

"मगर तुझे बुरा ही क्यों लगता है?" मांने पूछा।

"लड़के होते ही बुरे हैं।" जल्दीमें कुंवरने उत्तर दिया!

"और लड़कियां तो सभी अच्छी होती हैं न?" मांने पुनः पूछा।

चायका घूंट पीते-पीते हरीश कभी कुंवर और कभी मांकी ओर देखता, कुछ बोलता नहीं! कुंवर बोली—

"क्यों नहीं, लड़कियां लक्ष्मी होती हैं, शक्तिका अंश होती हैं।" दृढ़ता उसके स्वरमें थी।

कुछ मुस्कराकर हरीशने कहा—

"मगर, इधर तो हाल ही उलटा है, जबसे वह हुई है, स्त्रीका हाल अब-तब हो रहा है। मालूम हो रहा है..." यकायक हरीशका स्वर कुछ गम्भीर हो गया, और लम्बी सांस लेकर वह बोला—"वह लक्ष्मी सभीको लेकर ही रहेगी!"

"बीमार है क्या तुम्हारी स्त्री, हरीश?" मांके मनमें एक शङ्का थी।

"बीमार क्या होंगी, दिन गिन रही हैं मां!" हरीशने उदासीसे ही कहा।

"तब तो तुम्हें बड़ा कष्ट होगा, क्या बुखार होता है?" मांने कहा। वे कुछ गम्भीर बन गयीं।

कुंवरने जैसे व्यङ्ग किया, बोली—

"बुखार न आयेगा, कुछ परवाह तो होती न होगी, बाबू साहब घूमते होंगे इधर-उधर, दवाका भी इन्तजाम है कि नहीं—पता नहीं!"

"मुझसे ज्यादा भला कोई क्या इन्तजाम करेगा, दिन-रात टहलमें लगा रहता हूं, मगर जितनी ज्यादा दवा होती है, बीमारी उतनी ही ज्यादा बढ़ती है?" हरीशने मानो सचाईमें सब कुछ कह दिया।

पूनमने जैसे दिल्लगी की, बोली—

"हां, हां, देखना, कहीं आंसू न गिरने लगें!"

कुंवरने भी जैसे इस दिल्लगीमें सहयोग दिया—उसने कहाः—

"देखो न, रो तो रहे हैं!"

"रोना इतना सहज नहीं कुंवर!" अन्दर रोते हुए भी जैसे हरीशने मुस्करानेकी चेष्टा की; पर वह असफल रहा। धीमी-धीमी लालिमा उसके समस्त मुख-मण्डलपर छा गयी! माथेपर पसीनेकी बूंदें झलकने लगीं!

मांने कहा—

"क्यों हरी! खाने-पीनेका क्या इन्तजाम है रे, होटलमें?"

"नहीं—अपने आप बनाता हूं—हीराके लिए सबसे बड़ी तवालत है, नहीं तो..."

"नहीं तो उन्हें तो भूखा मारनेकी ही मर्जी थी न?" कुंवर बोली, "देखा मां, मैंने कहा था न, शादी करके स्त्रियोंको क्या-क्या मुसीबतें भोगनी पड़ती हैं, दूसरोंकी लड़कीको पुरुष इसी तरह लाते हैं और उनका जीवन बरबाद करके खाने तकको नहीं पूछते—और तुम मुझे कहती हो कि शादी करो—उंह क्यों नहीं कह देतीं कि भूखी मरो।" अभिमानसे कुंवरका स्वर कुछ कर्कश हो गया था!

"तो सभी क्या मेरी तरह कङ्गाल हैं—भीतर भी और बाहर भी!" हरीश बोल तो गया; पर उसने स्पष्ट देखा, पूनम उसकी ओर कुछ ऐसी भङ्गीसे देख रही है, जैसे उसे हरीशकी इस बातसे कुछ आघात-सा लगा हो, ऐसा आघात—जिसे वह सहन करनेमें असमर्थ थी, मगर कुंवरने वातावरण दूसरा बना दिया, वह बोलीः—

"मैं तो नहीं कहती कि तुम कङ्गाल हो?"

मगर हरीशने जैसे इसे सुना ही नहीं—वह पिछली ही बातके सिलसिलेमें कहता-सा गया!

"और यह भी तो जरूरी नहीं कि तुम भी बीमार ही पड़ो! और यह फिर किसने कहा, मैं उन्हें भूखों मारना चाहता था!" एक बार वह आंसुओंको संभाल-सा न सका, रूमाल उसने मुंहपर लगाया—शायद कोई देख न ले, और किसीका लक्ष्य भी इस ओर न था; पर पूनमसे वह उन्हें न छिपा सका। पूनम बड़ी गम्भीरतासे एकटक उसी ओर देखती रही! मांने अनुभव किया, उसके हृदयपर कुछ आघात-सा लगा है, वे बोलीं—

"कुंवरकी बातोंमें न लगो हरीश, वह तुम्हें चिढ़ाती है बेटा!" मांने उसकी पीठ सहलाई, उसे खींचकर अपनी गोदमें उसका सिर ले लिया! उसी तरह पड़े-पड़े वह बोला—

"यह तो संसारकी रीत ही है मांजी, जब तक एक रोता नहीं, दूसरेको हंसनेका मौका ही नहीं मिलता।" और वह खिन्नताके साथ ही उठ बैठा, वह खड़ा हो गया, और धीरे-धीरे दरवाजेकी ओर मुड़ा, दरवाजेपर जाकर उसने कहा—

"मैं जाता हूं।"

और वह मांके पीछेसे बुलानेपर भी न लौटा, जल्दीमें सीढ़ियां उतरकर चला गया। वह चला तो गया, किन्तु अपने अन्तिम वाक्यसे तीनों प्राणियोंको एक असहनीय उलझनमें डाल गया। जीवनकी मधुर कल्पना प्रेम है। मानव प्रेमका तपस्वी है—चिरन्तनसे! स्त्री और पुरुष एक-दूसरेके लिए उलझन बने रहे हैं--उलझे—सङ्कटमय मार्ग। हम अपने प्रेमकी बातें प्रेमी द्वारा बड़े चावसे सुनते हैं, सुनाते हैं, लेकिन उसीके साथ एक अभाव है, एक खोखलापन—वही खोखलापन कभी-कभी असह्य हो जाता है! किन्तु मानवी कमजोरी ही उस सबके लिए बाध्य है—विवश है! मां सोचती थी, कुंवरने उसे चिढ़ाकर अच्छा नहीं किया। मनुष्य अपने अभावपर दूसरों द्वारा टीका-टिप्पणी नहीं सह सकता, यही उसका स्वभाव है, वह अपने घरपर आया है—आदर होना चाहिए, न हो, तो दुत्कार तो न मिले! मां कुंवरको कुछ कहना ही चाहती थीं, पर न बोलीं। पूनम कमरेमें न थी, कहीं और किसी कोनेमें बैठी आंसू बहा रही थी, कुछ अभिमानके, कुछ क्षोभके आंसू; कितनी खुशामदोंपर, कितनी चिट्ठियों-पर वह आया था—उसका सबसे प्यारा साथी, पर उसे अच्छी तरह देख भी न पायी कि उसे दुत्कार दिया; पर वह इस क्षोभको किसपर निकाल सकती है, किससे कहे कि ऐसा क्यों हो गया! बातका बतङ्गड़ हो जाता है—वह अच्छी तरह जानती है, और जानती है वह जल्द रूठ जाता है, अब फिर कभी न आयेगा—कभी उसे न देख पाऊंगी। वह अपमानित होकर गया है, और मेरे ही लिए, मैंने ही तो बिनतियां भेजी थीं कि वह एक बार आ जाय, और वह आया था—और चला गया—अपमानका घूंट पीकर, पर क्या करे, किससे बदला ले! एक बार उसकी इच्छा हुई दीदीसे खूब झगड़ा करे, प्रवृत्ति न हुई, शायद इसलिए कि उसके अपमानका उसे बदला लेना ही चाहिए—न आकर, इस घरमें पैर न रखकर! संसारके सामने मनुष्य जब हार जाता है तो वह अपनी ही क्षति करनेपर उतारू हो जाता है, हरीशके न आनेकी ही कल्पनासे पूनम फूट-फूटकर रो रही थी। किन्तु कुंवरके हृदयमें और ही एक सागर हिलोरें ले रहा था, वह सोच रही थी—हरीशका जीवन क्या सच-मुच रोता जीवन है? स्त्री बीमार है तो ठीक भी हो जायेगी, तो क्या दूसरी चिन्तासे उसका जीवन दुःखमय हो गया है...प्रेमके सिवा इन युवकोंको और भला क्या चिन्ता हो सकती है, किसीको प्रेम करता होगा—नहीं तो स्त्रीका यह हाल क्यों होता?...कितने खुदगर्ज होते हैं ये पुरुष, अपने प्रेमके लिए दूसरोंका जीवन तक बर्बाद कर देनेमें नहीं हिचकते। और मां मुझे कहती है शादी करो—ऊंः, और कुंवर यकायक उठ बैठी, मांकी ओर एक बार देख बाहर चली गयी। दूसरे कमरेमें जाकर उसने देखा, पूनम रो रही है! उसकी पीठपर हाथ फेरते हुए वह बोली—

"क्या हुआ रे पूनम?"

पूनम जल्दीमें आंखें पोंछने लगी। कुंवरको आश्चर्य हो रहा था, पर वह कुछ समझ-सी रही थी कि उसकी पूनम क्यों रो रही थी। कुंवर रूखे व्यवहारके लिए घर-भरमें प्रसिद्ध थी, पर पूनमके लिए वही रूखी कुंवर न जाने क्यों इतनी कोमल थी, वह उसे स्नेह भी करती थी और चाहती भी थी। अत्यन्त स्निग्धतासे वह फिर बोली—

"क्यों रोती है रे? क्या हुआ, क्या हरीश भैयाके लिए?"

इसी वक्त पूनमने अपना सिर कुंवरके हृदयसे लगा लिया और फूट-फूटकर रोने लगी। कुंवर उसके सिरपर हाथ रखकर उसके अन्तस्तल तक टटोलनेकी कोशिश करने लगी! एक-बात, दो-बात और न जाने कितनी बातें उसकी आंखोंके सामनेसे एक साथ गुजर गयीं। पूर्णिमाकी एक और ही मूर्ति उसकी आंखोंमें नाचने लग गयी! दिन-भर बैठी-बैठी वह क्या जाने क्या-क्या सोचती रहती है, यही प्रश्न उसके दिमागमें आज तक चक्कर काटा करता था, पर आज वह समझ गयी कि वास्तवमें बात क्या है। कुंवर चुपचाप पूनम-से छूटकर बाहर चली गयी। छतपर जाकर वह बाजारकी तरफ देखने लगी।

वह बाजार देख रही थी, पर हृदय और दिमागमें उसकी आंखोंको तस्वीरोंके साथ कई चित्र चक्कर काटने लगे। वह सोचने लगी, क्या मैं हरीशके यहां जाऊं और इन दोनोंका जीवन सफल बनानेके लिए पूर्णिमाको उसके हाथमें सौंप आऊं ? मगर नहीं, यह अन्याय है, उसकी स्त्री है, बच्ची है··· हां, उसकी बच्ची है हीरा,—स्त्री बीमार है, बीमार ही नहीं, मृत्यु-शय्यापर है, बेचारी हीराका क्या होता होगा, कौन उसकी संभाल करता होगा ? समयपर खिलाना-पिलाना, समयपर नहाना-धोना, उसे भूख लगती होगी, कौन उसे पूछता होगा ? हम उसे जानते हैं, न भी जानते, तो भी मनुष्यताका तकाजा तो है, हमारा फर्ज तो है, उसकी इस मौकेपर सहायता करना ! कोरा फर्ज ही नहीं, देखकर चुप भी तो नहीं रहा जाता। मैं कल जाऊंगी, बच्चीको देख आऊंगी ! तकलीफमें होगी, तो अपने साथ ले आऊंगी।

× × ×

फूलकी सुगन्ध पत्थरमें भी अपनी सुवास भर देती है। हरीशकी २॥ वर्षकी बच्ची हीराने पत्थर-हृदय कुंवरके मनमें एक अद्भुत, किन्तु कोमल रसकी उत्पत्ति कर दी थी। उसके घरमें जाकर कुंवरने देखा कि हीरा फूल-जैसी कोमल और सुन्दर बच्ची धूलमें सनी है, कपड़े मैले-कुचले, पैरोंमें बिवाइयां पड़ी हैं ! सारा घर मैला-कुचैला, जगह-जगह चीजें बिखरी हुईं और सिगरेटके अधजले टुकड़ोंसे कमरा छाया-सा हुआ है और उनमेंसे एक टुकड़ा हीरा हाथमें लेकर अपने मुंहमें डाल रही है और अजीब घृणासे थूक रही है ! मोटी-मोटी किताबोंके ऊपर मानो वर्षोंकी धूल जमा हो, मेज शायद कभी भी साफ नहीं हुई होगी, पुस्तकोंके ऊपर कपड़े रखे हैं, ट्रङ्कों और चमड़ेके सूटकेसोंके ऊपर गीले तौलिये रखे हैं। एक अजीब-सी दुर्गन्ध घरकी सारी हवाको विषैली किये दे रही है ! चायकी भीगी पत्तियां एक ओर पड़ी हैं, जिनसे अभी तक पानी निकलता हुआ नीचेकी ओर जा रहा है !

नाकपर रूमाल दबाकर कुंवर दूसरे कमरेमें गयी। देखा, वह स्त्रीकी चारपाईके पास खड़ा कुछ पूछ रहा है। धोतीके छोरसे कमर कसी और कोयलोंसे हाथ काले, पास ही अंगीठीपर कुछ चढ़ा हुआ ! धीरेसे वह बोली—"भैया !"

कुछ परेशान-सा चेहरा उसने पीछेकी ओर फिराया, जिसे एक गम्भीर हास्यमें बदलते हुए बोला—

"अरे कुंवर, तुम कब आयीं ? और कोई है ?"

"नौकर है।"

"पूर्णिमा नहीं आयी ?" टाल-मटोलके भावमें हरीशने कहा।

"नहीं।"

"इन गन्दे घरोंमें आनेको शायद उसका दिल नहीं चाहता !"

"मगर मैं पूछती हूं, इन गन्दे घरोंमें रहकर ही तुम लोग अपनी शान समझते हो, आखिर एक नौकर रखनेमें क्या लगता है। बेचारी भाभी यहां बीमार न होगी, तो क्या होगी—नरक-कुण्ड बना हुआ है ! उस बच्चीका सत्यानाश न होगा तो क्या होगा, सिगरेटके टुकड़ोंको उठाकर चबा रही है, कितनी गन्दी बनी हुई है !" चिढ़ते हुए कुंवर बोली।

चारपाईपर उठते-उठते हरीशकी स्त्री बोली--"यह सब मेरा ही दुर्भाग्य है बहन ! बैठ जाओ !······आज मेरी यह हालत न होती, तो इस घरका सत्यानाश न होता; पर क्या करूं ?" वह रोने लगी !

"तुम्हारा क्या कसूर भाभी ! तुम क्या जान-बूझकर बीमार बनी हो, यह सब तो इनका कसूर है।" कुंवरने कहा।

हरीश चुप था, चुप ही रहा।

अभिमान-मिश्रित स्वरमें कुंवर फिर बोली—"भैया, मैं उस बच्चीको अपने साथ लिये जा रही हूं, तुमसे उसकी परवाह न हो सकेगी।"

हरीशका मुंह अब खुला। वह बोला—"हम मरें, चाहे बचें, तुम्हें इससे क्या लेना ?"

"लेना-देना कुछ नहीं, पर थोड़ी-सी तुम्हारी मुश्किल तो आसान हो जायेगी।"

"तुम लोग किसीकी मुश्किल आसान नहीं कर सकतीं—मुश्किलें बढ़ा जरूर सकती हो !"

"मालूम होता है, तुम लोगोंका दिमाग हमेशा ही खराब रहता है ?"

"और वह तुम लोगोंने किया !"

"क्या पागलोंकी तरह बक रहे हो, किसीसे बोलनेकी तमीज भी नहीं !"

"बात यह है कि अभी यह सब बड़ी-बड़ी बातें तुमसे सीखनी हैं ?"

कुंवर कुछ बोली नहीं; पर क्रुद्ध होकर अकेली वहांसे चल दी।

पर हीराकी करुण-कङ्काल मूर्तिको न भुला सकी!

मनुष्यके जीवनमें इस कोमलताकी कमजोरीको शायद अभिशापके रूपमें भर दिया गया है! कुंवरके हृदयमें हीराकी कङ्काल मूर्तिकी कोमलताने एक भीषण झङ्कार पैदा कर दी थी, इस कमजोरीसे वह हार खानेको तैयार थी, इस कोमलताने जैसे उसके कानमें चुपचाप कह दिया हो—और कुछ हो न हो, तुम्हारा कर्तव्य है। और वह इस कर्तव्यके नाम-पर थर्रा गयी, पूर्णिमाका फिर क्या होगा, वह तो उसे प्राणोंसे चाहती है, अपनी स्नेही बहनको धोखा······और उसका सिर चकराने लगा! रात सामने घूम गयी। पीछेसे पूर्णिमाने पुकारा—

"दीदी!"

"वह इतना बेपरवाह नहीं हो सकता, जरूर उसे कोई कष्ट है, कोई मनकी पीड़ा—मैं उसका घर देख आयी हूं—पूनम! उसके इस कष्टमें हमारा कर्तव्य है उसकी सहायता करना। मगर मैंने उसे सहायताके बदले कष्ट दिया। मगर वह भी तो मुझसे लड़ पड़ा था!" एक सांसमें बिना कुछ सोचे-समझे कुंवरने कह दिया। पूनम एकटक आश्चर्यसे उसे देख रही थी, बोली—

"क्या है जीजी! क्या बोलती हो, भाभी कैसी हैं?"

"कैसी क्या है, मृत्यु-शय्यापर पड़ी अन्तिम श्वासें ले रही है। कल जाना, उसे देख आना। मैं अब न जा सकूंगी?"

"क्यों जीजी?"

"उसने मेरा अपमान किया है!"

"कैसा अपमान?"

"कहता है, हम मरें-बचें, तुम्हें क्या? क्या हमें कुछ नहीं? हां, हमें कुछ नहीं, वह मरे-बचे, हमें क्या, दुनियामें हजारों रोज मरते और बचते हैं, किस-किसके पीछे हम फिरेंगे?"

कुंवरने देखा, पूर्णिमाकी आंखें डबडबा आयी हैं। बोली—

"पूनम रोती हो, रोती क्यों हो, कल मेरे साथ चलना, दोनों जायेंगे!"

किन्तु दूसरे दिन वे न जा सके। एक-एक दिन करके एक पखवाड़ा बीत गया—न कुंवर गयी, न पूनम और न दोनों। मगर एक दिन जब कुंवर हरीशके मकानपर पहुंची, तो वहांका हाल देखकर आश्चर्यचकित रह गयी। हरीश पत्नीकी मृत्युके कारण अशौचावस्थामें बैठा है। यकायक सहानुभूति-का एक भी शब्द उसके मुंहसे न निकला, अवाक् विस्मित नेत्रोंसे एकटक वह हरीशको देखती रही।

"आओ कुंवर!" हरीशने उसे बैठनेका इशारा करते हुए कहा—

"तुम उस दिन हीराको ले जातीं, तो कितना अच्छा होता; वह मां-मां करके···" वह आगे न बोल सका।

"कहां है बच्ची?" कुंवरका गला भर आया था। उसने पहले इधर-उधर देखा और फिर एक कोनेपर सोयी बच्चीको उठाकर दूसरे कमरेमें चली गयी। घरकी गन्दगी और बच्चीके मैले कुचैले कपड़ोंका खयाल वह एकदम भूल गयी।

आंसू पोंछकर हरीश भी दूसरे कमरेमें गया और देखा, कुंवर बच्चीको हृदयमें दबाये सिसक-सिसककर रो रही है। हीरा उठ गयी है, न रोती है, न मां-मां करके चिल्लाती है, बल्कि वह अपने नन्हे-नन्हे-से हाथोंसे कुंवरके गालोंपर पड़ते हुए आंसुओंको चुपचाप पोंछ रही है! यह दृश्य हरीश न देख सका, वह भी रो पड़ा। एक कठोर हृदयाकी सहानुभूतिसे वह जबरन् उस ओर खिंचता-सा जा रहा है, और कबसे यह क्रम जारी है, वह खुद नहीं समझ पा रहा था।

आहट पाते ही हीराने हरीशकी ओर देखा और झटपट कुंवरकी गोदसे उतरकर बोली—"बाबू! बाबू! रोती है!"

मगर बाबू भी तो अपने आंसू न छिपा पाया था। हीरा उसे भी देखकर बोला—

'हैं! बाबू भी रोते हैं।'

हरीश हीराको गोदीमें लेने ही वाला था कि कुंवरने आकर उसे फिरसे गोदमें उठा लिया, फिरसे छातीसे चिपका लिया और वह आंचलसे आंसू पोंछने लगी। हरीश बोला, "कुंवर, क्यों रोती हो?"

वह कुछ न बोली। हरीशने फिर कहा—"तुम जो चाहती थीं वह हो गया, अब रोती क्यों हो?"

आंसुओंसे भींगी लाल-लाल आंखें कुंवरने हरीशपर गड़ा दीं।

वह अप्रतिभ-सा खड़ा रहा चुप···निस्तब्ध!

कभी-कभी जीवनमें ऐसा भी समय आता है, जब हम

जो कुछ चाहते हैं, वही स्वप्न और कल्पनाकी दुनियामें यथार्थ बन पड़ता है, उस समय हम अपनी अज्ञात स्वार्थपरता-पर हंस देते हैं, लेकिन खोखले जीवनकी उस बेबस हंसीमें कितना मर्म होता है, कितनी वेदना ! वही सब कुंवर सोच रही थी और अनायास वह कह उठी, "मैं क्या चाहती थी और क्या हो गया !"

"मेरा मतलब था···कुछ नहीं, यही कि तुम तो हर पुरुषको दुखी देखना चाहती हो न, अब मैं दुखी हो गया। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो गयी···क्यों, नहीं ?"

खिसियाकर जैसे कुंवरने कहा—"पुरुष होते ही ऐसे हैं।"

"कैसे ?"

"तुम जैसे।"

"कुंवर, तुम इस सहानुभूतिको मुझपर की गयी कृपा समझती हो ? मुझे नहीं चाहिए तुम्हारी यह कृपा, मैं भाग्य-हीन होकर इस संसारमें आया था, और उसी तरह अब जानेकी चिन्तामें हूं—मुझे चुपचाप जाने दो, तुम मेरे भाग्यपर चार चांद तो नहीं लगा सकतीं !"

गुस्सा कुंवरको आया, पर परिस्थितिके तकाजेने उसे चुप रहनेको बाध्य किया। वह हीराको वहीं रख चुपचाप बाहर जाने लगी।

किन्तु हीरा इसी वक्त मां-मां करके चिल्ला उठी--रो पड़ी। हरीश उसे उठाने ही जा रहा था कि कुंवर पिछले पांव लौट आयी। हीराकी छोटी-छोटी बांहें उसकी गोदमें जानेके लिए फैली हुई थीं—वह आहत-सी उसपर झपट पड़ी और उसे उठाकर चुपचाप चल दी।

हरीश भी साथ-साथ पीछे-पीछे आया, बोला—

"नाराज हो गयी हो कुंवर ?"

कुंवर कुछ न बोली—वह फिर बोला—

"मुझे क्षमा कर देना कुंवर ! जीवनमें मैं किसीको सुखी न कर सका—बड़ा ही अभागा हूं।"

कुंवर सीढ़ियां उतर रही थी, यकायक अन्तिम वाक्यसे जैसे चौंककर वह पीछे मुड़ी।

कुंवरके मुड़ते ही उसका पैर फिसल गया, और देखते-न-देखते ही हीरा १२ सीढ़ी नीचे खटखटाकर जा पड़ी और कुंवर भी उसीके साथ वहींपर जा गिरी ! उसने इतना होने-पर भी अपनी चिन्ता न की और बच्चीको उठाया; किन्तु बच्चीके उठाते-उठाते ही कुंवर समझ गयी—सर्वनाश हो चुका है, हरीशका रहा-सहा धन भी हमेशाके लिए उससे छिन गया है, उसके देखते-देखते ही--चुपचाप बिना एक शब्द कहे, बिना "बाबू-बाबू" कहे ! वह जहांपर पड़ी, पड़ी ही रह गयी।

× × ×

अब हरीश था, और उसकी श्मशान सी कुटिया। अब दिनमें ही उसके लिए अंधेरा था, वह अपने आपको अमङ्गल-की मूर्ति-सा समझ रहा था। सोनेका संसार उसका लुट चुका था, स्त्री चल बसी थी, गोदका खिलौना चुपचाप मिट्टीमें गाड़ दिया गया था। उगता हुआ फूल, उसके जीवनका जलता हुआ चिराग किसीने जबर्दस्ती बुझा दिया था, पलकें भीगी हुई थीं, एक कातर दृष्टि वह ताखमें रखे खिलौनोंपर गड़ाये हुए था, जो अब चुप थे—हमेशाके लिए चुप। खूंटियों-पर हीराके कपड़े लटक रहे थे—हमेशाके लिए आशा छोड़े हुए ! बटन खुली छोटी-छोटी-सी जूतियां आसमानकी ओर ताक रही थीं ! गुड़िया मानो कोनेपर पड़ी पड़ी चीत्कार कर रही हो—"कहां है हीरा ? कहां है हीरा ! " और सोचते-सोचते हरीशका हृदय कराह उठा, चिल्ला उठा—"बेटी ! बेटी !" मगर कहां थी बेटी—चारों ओर जैसे अंधेरा ही अंधेरा था। उसने बत्तीका स्विच दबाया। बिजलीकी लाल-धुंधली रोशनी कमरेके अंधेरेको मिटा न सकी ! बाहरका अंधेरा बिजलीकी बत्ती मिटा सकती थी, पर भीतरके अंधेरे-को कौन मिटा सकता था।

सीढ़ियोंपर खट्-खट्की आवाज आयी। हरीशने बाहर झांककर देखा, कुंवर आ रही है।

भीतर आते ही उसने कहा—

"आओ कुंवर ! कैसे आयीं ?"

"क्यों मेरा आना तुम्हें······एक कामके लिए आयी हूं। एक चीज मांगनी है—दोगे ?"

"क्या माफी ?"

"हां।" वह कुछ सोचकर बोली, "क्या दोगे ?"

"किस बातकी माफी कुंवर ? तुमने क्या किया, मेरा भाग्य था—खेल खत्म हो गया। ईश्वरकी दया है कि तुमपर कोई चोट न आने पायी !"

"तुमने एक दिन कहा था, मैं पुरुषोंसे घृणा करती हूं,

उन्हें दुखी देखना चाहती हूं—इसीलिए······"

बात काटकर बोला हरीश—"इसीलिए तुमने मुझे जान-बूझकर दुख दिया—क्यों, यही न ?"

कुंवर चुप रही- कुछ बोली नहीं—हरीश उसका हाथ पकड़कर लाया और कुर्सीपर बिठाने लगा, यकायक कुंवरने हाथ छुड़ाया और उसके पैरोंपर गिरते-गिरते बोली—"मुझे क्षमा कर दो, क्षमा कर दो !"

"अरे, तुम्हें क्या हो गया कुंवर ! क्या करती हो ?" उसने उसे उठाया और कातर दृष्टिसे उसकी ओर देखते हुए बोला—

"तुमने मुझपर जो कृपा की—उसका बदला अगर मैं दे सकता, तो मैं······जिसे किसीने नहीं अपनाया, उसपर तुमने दया की। अपना······" और वह न बोल सका !

कुंवर आंसुओंकी झड़ीके साथ हरीशसे लिपट गयी। उसकी छातीमें अपना सिर रखकर बोली—"मुझे अपने हृदयमें स्थान दे दो।"

हरीश क्षणभर निस्तब्ध रहा—गला उसका भर आया था—उसी भरे गलेसे बोला—"कुंवर ! मैं बड़ा अभागा हूं······"

कुंवर छिटक पड़ी, बोली—"बस चुप रहो, हर वक्त अभागा-अभागा न कहा करो। मैं अभागेके हाथ अपने-आपको सौंपने नहीं आयी।"

यकायक हरीश हंस पड़ा, बोला—"अरे तुम क्या कहती हो, सौंपने—अपने आपको—क्या मेरे हाथोंमें ?"

"हां, तुम्हारे हाथोंमें, तुम स्वीकार करो न करो, मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती—कभी नहीं !"

हरीश और भी जोरसे हंस पड़ा। कुंवर उसी तरह बोलती रही—

"तुम्हारे हंसनेका तात्पर्य मैं समझ गयी हूं—मैं एक दिन तुमसे घृणा करती थी—तुम्हारा खयाल है—नहीं नहीं, तुम नहीं जानते, मैं तुमसे···मैं तुमसे···मैं तुम्हें चाहती हूं—हमेशासे चाहती हूं। क्या तुम स्वीकार करोगे ? तुम्हें स्वीकार करना ही होगा !"

हरीश चुप रहा।

इसी समय पूर्णिमाने आकर निस्तब्धता भङ्ग की। बोली—

"भैया !"

"अरे पूर्णिमा ! तुम यहां ?"

"हां, जानते हो, बिना मेरे पूर्णिमा कैसे होगी !"

और उसने जीजीका हाथ और हरीशका हाथ मिला दिया ! स्वयं वह खुश थी; किन्तु हरीशने स्पष्ट देखा, पूनमका हृदय जैसे कराह रहा था ! और वह लौटी जा रही थी।

———





श्री गोवर्द्धनलाल गुप्त

राजनीतिक जासूसोंका विषय ऐसे गहन मायाजाल, ऐसे अटलव्यापी अन्धकारसे आच्छन्न है कि इसपर कितना ही प्रकाश डालनेकी चेष्टा क्यों न की जाय, इसका पार नहीं पाया जा सकता। विशेष करके विश्व-व्यापी युद्धके इस आलोड़न-विलोड़न, मारकाटके इस युगमें, जब कि स्वार्थान्ध साम्राज्यवादी राष्ट्रोंकी पारस्परिक प्रतिहिंसाका कुचक्र अपनी घातक जड़ोंको जमीनके नीचे ही नीचे गुप्त रूपसे बहुत दूर तक विस्तृत किये हुए है, जासूस सुन्दरियोंके कुटिल करतबोंकी अवहेलना नहीं की जा सकती।

इस युगमें जासूसोंका चक्र-जाल जटिलसे जटिलतर रूप धारण करता जा रहा है। प्रत्येक राष्ट्रको अपना जासूसी चक्र नियमित रूपसे कायम रखनेके लिए प्रतिवर्ष लाखों रुपये खर्च करने पड़ते हैं, और बिना जासूसोंके किसी भी राष्ट्रका काम नहीं चल सकता। जिस राष्ट्रकी सैनिक सङ्गठन-शक्ति जितनी जबर्दस्त होगी, उसे अपना जासूसी सङ्गठन भी उसीके अनुरूप सुदृढ़ बनाये रखना पड़ेगा।

पर जासूसोंके कामसे कितने अनाचार, अनैतिकता, दगाबाजी, फरेब, हत्या आदि कुटिल पाप-प्रवृत्तियां अदृश्य रूपसे भीतर ही भीतर आलोड़ित होती रहती हैं, इसका ठीक-ठीक अन्दाज लगाना कठिन है। राष्ट्रकी बागडोर एक शक्तिसे दूसरी शक्तिके हाथमें आती रहती है, राजनीतिक कार्यक्रम बदलता रहता है; पर जासूसी जाल बराबर एक ही रूपमें निरन्तर एक ही उद्देश्यसे बिना विराम तथा परिवर्तनके चलता रहता है।

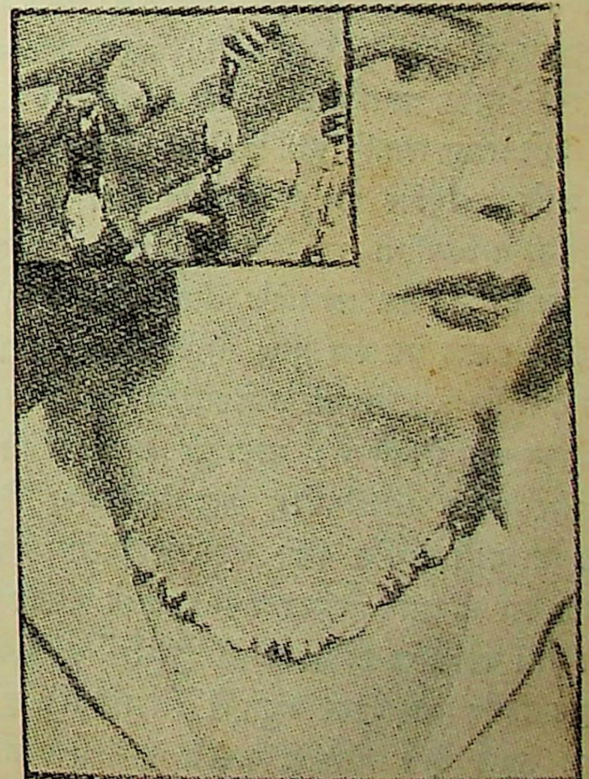
अधिकांशतः ऐसी स्त्रियां और नवयुवक जासूसीके खतरनाक पेशेको अपनाया करते हैं, जो अपनी अद्भुत लीलासे जीवनको नाना रहस्यमय विचित्रताओंसे पूर्ण समझ-कर उसकी गहनताके अन्तर्प्रदेशमें प्रवेश करके भयङ्कर खतरोंसे खेला करते हैं। उपन्यासोंमें जासूसोंके खतरोंसे भरे हुए गुप्त प्रेममय जीवनका वर्णन पढ़कर उनके मनमें उसी प्रकारका 'एडवेंचरस' तथा 'रोमाण्टिक' जीवन बितानेकी मोहात्मक प्रवृत्ति जागरित हो उठती है और नयी जवानीके जोशमें वे उसके साथ लगे हुए खतरोंका ख्याल नहीं करते और उन खतरोंमें भी उन्हें एक प्रकारका रस दीख पड़ता है। पर जब वे जासूसीके वास्तविक क्षेत्रमें पांव रखते हैं, तो पग-पगमें भय, शङ्का और दुश्चिन्ता उन्हें घेरने लगती है और हर वक्त जानकी जोखिम बनी रहती है। उनकी नींद हराम हो जाती है और छुटकारा पानेकी चेष्टा करते है, पर कोई रास्ता नहीं सूझता। एक बार इस क्षेत्रमें घुस जानेके बाद फिर वापस आना कठिन हो जाता है। क्योंकि जासूस यदि नौकरीसे इस्तीफा दे देना चाहे, तो स्वभावतः उसपर अधिकारियोंका सन्देह हो जाता है कि वह दुश्मनोंके साथ मिल तो नहीं गया है। जब तक राष्ट्रका शासन-चक्र दुरुस्त न हो जाय और युद्धके बाद शान्ति न हो जाय, तब तक आप पीछेकी ओर नहीं लौट सकते। यह है जासूसी जीवनका मजा। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ ऐसे भी युवती और युवक जासूस होते हैं, जिनमें देशभक्तिकी वास्तविक लगन कूट-कूटकर भरी रहती है और उनमें प्राणोंका मोह जरा भी नहीं पाया जाता। पर ऐसे युवकों और युवतियोंकी संख्या उंगलियोंपर गिनी जाती है। मार्था मैक्केना ऐसी ही जासूस सुन्दरी थी। वह विगत महायुद्धकी उन साहसिका और देशभक्त महिलाओंमेंसे एक रहस्यमयी रमणी जासूस थी, जिन्होंने अपने मनको आश्चर्यजनक दृढ़ता तथा कूट-बुद्धिके रहस्यमय चक्रसे जर्मन सेनाध्यक्षोंको बुरी तरह छकाकर उनके ध्वंसका मार्ग सुगम कर दिया था। वह एक बेल्जियन महिला थी और उसका तत्कालीन



महायुद्धकी ख्यातनामा जासूस रमणी मार्था।

नाम मार्तक्नोकीर्ज था। जर्मनोंपर अपना प्रेम-जाल बिछाकर उसने इस तरह उनकी आंखोंमें धूल झोंका कि बादमें जब उनको मालूम हुआ, तो वे स्तम्भित रह गये। उसने कैसरकी हत्याका षड्यन्त्र रचा था और उपयुक्त अवसरकी प्रतीक्षामें थी, मौका आया; पर थोड़ी सी बातके लिए सारा बना-बनाया काम बिगड़ गया। वह जासूसीके काममें अंगरेजोंकी तरफसे नियुक्त थी। युद्ध समाप्त होनेपर उसे इंगलैण्डसे राजकीय खिलअत तथा प्रशंसा-पत्र प्राप्त हुआ था। मजा यह कि जर्मनोंकी तरफसे भी उसे आइरन क्रास मिला था। उसकी करतूतोंका पता जब जर्मनोंको लगा, तो वह गिरफ्तार कर ली गयी। मृत्यु-दण्ड निश्चित था; पर चूंकि उसे "आइरन क्रास" मिल चुका था और बहुत-से जर्मन अफसर अन्त तक उसके पक्षमें थे, इसलिए वह बेदाग छूट निकली। मार्था मैक्केनाके विगत महायुद्धके गुप्त तथा रहस्यमय जीवनके सम्बन्धमें सच्ची कहानीका वर्णन हम यहां करेंगे।

रणोन्मादकी प्रथम उमङ्गसे उन्मत्त जर्मनोंने बेलजियमपर धावा बोल दिया था, और शक्तिशाली सेनाध्यक्ष ल्यूडेनडार्फके लौहचक्रके नीचे लियेज तथा नामूर शहर पूर्णतया विध्वस्त और चूर्ण-विचूर्ण हो चुके थे। वेस्ट रूजबेके नामके गांवमें शरणार्थियोंका तांता लगा था, और आसपासके ग्रामनिवासी युद्धके ताजे तथा भीषण समाचार रात-दिन प्रत्यक्षदर्शियोंके मुंहसे सुनते थे। तथापि उस तरफ अभी तक पूर्ण शान्ति विराजमान थी। सरायोंमें नित्यकी तरह चहल-पहल जारी थी और गिरजेकी घण्टी पूर्ववत् मधुर, मनोमोहक शब्दोंमें बजती थी। नवेली, अलबेली कृषक बालायें खेतोंमें काम करती हुई नियमित रूपसे आनन्द और प्रेमका राग अलापा करती थीं। अकस्मात् एक दिन तोपोंके गर्जन और गोलोंके वर्षणसे सारा गांव आतङ्कित हो उठा। सड़कोंपर चलनेवाले तथा खेतोंपर काम करनेवाले आदमियोंपर अप्रत्याशित रूपसे वज्रकोप हुआ और देखते ही देखते गांवकी सारी जमीन निरपराधोंके खूनसे लथपथ हो गयी। चारों ओरसे गोलियोंकी बौछारें हो रही थीं। भगदड़ मची हुई थी। लोग अपने अपने घरोंके भीतर घुसकर खिड़कियां बन्द करके छिपनेकी चेष्टा कर रहे थे। एक नौजवान जर्मन लड़की कौतूहलवश अपने कमरेकी एक खिड़कीसे शीशेसे नाशका लोमहर्षक दृश्य देख रही थी। उसका त्रस्त हृदय



सुन्दरीके हारके दानोंमें सन्देश छिपे हैं।



स्टाम्पके नीचे गुप्त स्याहीमें सन्देश।

जोरोंसे धड़क रहा था, तथापि वह अपनी उत्सुकता दमन करनेमें असमर्थ थी। सहसा एक गोली ठीक उसके सिरके ऊपर शीशेको छेदकर निकल गयी। उसकी मांने नीचेसे पुकारा—मार्था, जल्दी नीचे तहखानेमें चली आ!

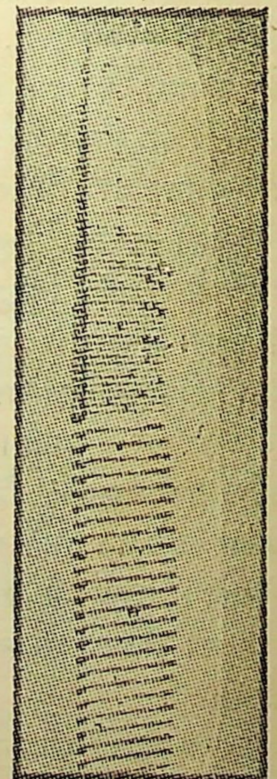
नीचे आकर मार्थाने देखा, कुछ फ्रेञ्च सिपाही दीवारमें छेद करके जर्मनोंपर दनादन गोलियां चला रहे हैं और जर्मनोंकी गोलियां भी बड़ी तेजीसे सनसनाती हुई उनकी ओर आ रही हैं। वह तहखानेके भीतर छिपी रही। जब गोलियोंका शब्द कुछ कम हुआ, तो वह ऊपर आयी। यहां उसने देखा कि फ्रेञ्च सिपाही अपने हताहत भाइयोंको 'हाल' में छोड़कर भाग निकले थे। सारा घर लहूलुहान हो रहा था और घायल सिपाहियोंके कराहनेका शब्द दिलको दहला देता था। मार्थाके लिए यह सब दृश्य घोर आतङ्क-जनक होनेपर भी उसने हिम्मत बांधी। उसने नर्सका काम सीखा था। यथाशक्ति वह घायलोंकी शुश्रूषामें लग गयी।

कुछ ही देर बाद बाहर बहुत-से सिपाहियोंके बूटोंकी आवाज सुनाई दी। रसोईके कमरेके दरवाजेपर जोरके धक्केपर धक्के पड़ रहे थे, और थोड़ी ही देरमें जर्मन सिपाहियोंके कठिन पदाघातोंसे दरवाजा उखड़ गया। मार्था अपने माता-पिताको यथाशक्ति खतरेसे बचानेके उद्देश्यसे स्वयं दरवाजेपर आकर खड़ी हो गयी। जर्मन अफसरने पूछा—"इस घरमें कौन-कौन आदमी हैं। और किस-किसने गोलियां चलायी हैं?" लड़कीने जवाब दिया कि कुछ फ्रेञ्च सिपाही आये थे, जिनमेंसे कुछ मर गये हैं, कुछ घायल हैं और बाकी भाग गये हैं। पर जर्मन अफसरने इस बातपर विश्वास न किया और कहा—"हमें पूरा विश्वास है कि तुम्हारा पिता एक पक्का निशानेबाज है और उसीने हमारे सिपाहियोंको घायल किया है।"

लड़कीके लाख गिड़गिड़ानेपर भी जर्मनोंने न माना और मकानकी सब चीजोंको कुचलते और चूर-चूर करते हुए वे तहखानेमें घुसे और मार्थाके मां-बापको घसीटकर बाहर लाये। वहां लातों, घूंसोंसे उन्होंने उसके पिताको खूब पीटा। उसकी मांको बुरा-भला कहा और उसके साथ गन्दा मजाक करने लगे। इसके बाद सार्जण्टके हुक्मसे सारे मकानमें आग लगा दी गयी। मार्थाका पिता कैदखाने-में डाल दिया गया और दोनों मां-बेटी दीन-हीन, अनाथ, क्षुधाकातर अवस्थामें शरण-प्राप्तिकी आशामें चल पड़ीं।

रास्ते-भर मार्था रोती रही और साथ ही उस बेल्जियम लड़कीके हृदयमें अत्याचारी जर्मनोंके प्रति घोर प्रतिहिंसाका भाव जागरित हो रहा था। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि वह अपने माता-पिताके प्रति किये गये अन्याय तथा अत्याचारका बदला लेगी।

कुछ दिनोंतक खून खराबी और लूट-पाट मचानेके बाद वेस्ट-रूजबेकेमें जब जर्मनोंका पूर्णतया शासन स्थापित हो गया, तो वे लोग कुछ शान्त हुए। एक बड़े मकानमें घायलोंका एक एमर्जेन्सी अस्पताल खोला गया। मार्था वहीं नर्सका काम करने लगी। उसके अलावा तीन नर्सें वहां



कङ्घीके दांतोंमें सङ्केतमय सन्देश।



माता हरी—विगत महायुद्धमें इस अनुपम सुन्दरीके नामसे राष्ट्रोंकी रूह कांपती थी। अपने सौन्दर्य और नृत्य-कलाके माया-जालमें फंसाकर इसने बड़े-बड़े अनोखे कारनामे कर दिखाये, पर अन्तमें स्वयं भी गोलीका शिकार हुई।

वहां और थीं। वे तीनों 'नन' थीं। एक दिन अस्पतालके जर्मन अफसरने किसी सन्देहपर उन तीनों 'ननों' को गिरफ्तार कर लिया। अफसरके मनमें यह बात घर कर गयी कि जर्मनीके विरुद्ध जासूसी करनेके लिए इन तीनों 'ननों' ने अस्पतालमें नौकरी की है। इसलिए तलाशी लेकर उन्हें गिरफ्तार कर ३ घण्टेके अन्दर वेस्टरूजवेकेसे बाहर निकल जानेका हुक्म दिया।

केवल मार्थापर उसका सन्देह नहीं हुआ। उसकी सूरतमें एक ऐसा भोलापन था, उसके व्यवहारमें एक ऐसा सौष्ठव था कि अफसरोंको उसकी सहृदयतापर विश्वास हो गया था। इसके अतिरिक्त उसे जर्मन भाषाका भी अच्छा ज्ञान था, इसलिए वह दुभाषियेका काम अच्छी तरह कर सकती थी। धीरे-धीरे अस्पतालके सभी कर्मचारियोंपर उसकी धाक जम गयी और वह अफसरोंकी प्रियपात्री बन गयी।

१९१५ के प्रारम्भिक कालमें वेस्टरूजवेकेमें जर्मनोंको मित्र-राष्ट्रोंके सिपाहियोंने कुछ समय तक ऐसा तङ्ग किया कि जर्मन कमाण्डेण्टने सब स्त्रियोंको उस स्थानसे हटाकर रूलेर नामक शहरमें भेज दिया। मार्था भी जर्मन सिपाहियोंकी संरक्षकतामें वहां भेजी गयी। वहां ल्यूसेल देलदोङ्क नामकी उसकी एक पूर्व परिचित स्त्रीने उसे सुझाया कि यदि वह जर्मनोंके विरुद्ध जासूसी काम करना स्वीकार करे, तो वह अपने प्यारे देशकी भी सेवा कर सकती है और अपने परिवारके प्रति किये गये अत्याचारका बदला भी ले सकती है। ल्यूसेल ब्रिटिश गुप्त संवाद-समितिकी सदस्या थी। जर्मन लोग उसके फिराकमें बहुत दिनोंसे थे। पर वह ऐसे छिपे-छिपे और ऐसे गुप्त वेशोंमें रहकर काम किया करती थी, कि उसका पता लगाना जर्मनोंके लिए असम्भव हो गया। मार्थाने उसकी बात मान ली। ल्यूसेलने उसे एक साङ्केतिक भाषा सिखायी और कहा कि उसी भाषामें उसे ब्रिटिश गुप्त संवाद-समितिसे लिखा-पढ़ी करनी होगी। ल्यूसेलने उसे साङ्केतिक शब्दका पूरा ज्ञान करा दिया। मार्थाका साङ्केतिक नाम 'लॉरा' पड़ा।

अस्पतालमें बहुत दिनों तक काम करनेके कारण उसने बहुत-से जर्मनोंसे परिचय प्राप्त कर लिया। इन कारणोंसे उसे जासूसी करनेमें बहुत सहायता मिली।

रूलेरमें जर्मनोंका बहुत ही भयङ्कर आतङ्क फैला हुआ था। वे जासूसोंके सम्बन्धमें बहुत सतर्क रहा करते थे।

मिट्टीकी गन्धमें भी उन्हें षड्यन्त्रकी बू आती, तो वे उसे खोदकर फेंककर ही छोड़ते। किसी मकानसे रोशनीका पुञ्ज या चिमनीका धुआं दिखाई पड़ता, तो ये बिना पता लगाये नहीं छोड़ते। इन चीजोंको वे साङ्केतिक भाषाका प्रकाश और धुआं समझते और उस मकानमें रहनेवालेको बिना गिरफ्तार किये नहीं छोड़ते। और उनकी निर्दयता-पूर्वक गोलियोंसे हत्या कर दी जाती थी।

अब मार्थाके जासूसी करिश्मोंका वर्णन करनेके पहले रूलेरकी तात्कालिक अवस्थाका संक्षिप्त परिचय लिख देना आवश्यक है।

रूलेरपर जर्मनोंके पूरा कब्जा करनेके बाद वहां जर्मनोंका मिलिटरी राज्य स्थापित हो गया। एक मिलिटरी डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट वहांका प्रधानाधिपति था, जो कामो वेलैण्ट कहा जाता था। वह रोमनों अथवा जारकी तरह निरंकुश और स्वेच्छाचारी होता था। जिस घड़ी जिसको चाहता, कत्ल करवा देना उसके बायें हाथका खेल था। उसके अधीन कुछ अर्द्धशिक्षित सिपाही भिन्न-भिन्न पदोंपर नियुक्त होकर अमन और न्यायकी 'रक्षा' करते थे। असहाय बेल्जियनोंको खूब लूट-खसोटकर जर्मन सिपाही गुलछर्रे उड़ा रहे थे। जनताके लिए कर्फ्यू आर्डर जारी कर दिया था कि चार बजे शामसे लेकर पांच बजे सुबह तक कोई व्यक्ति बाहर न निकलने पाये। और स्वयं वे लोग दिन-रात नाच-गान, राग-रङ्ग और मद्य-मैथुनमें मस्त रहा करते। स्थानीय लोग भूखों मर रहे थे। उनके पास रहनेके लिए स्थान नहीं था—अधिकांश मकान जर्मन सिपाहियोंके लिए खाली करवा दिये गये थे। प्रत्येक वस्तुपर ७५ फीसदी जर्मनोंका अधिकार रहता था। बाकी २५ फीसदी भागपर चीजके असली मालिकको सन्तुष्ट रहना पड़ता था।

रूलेरमें प्रति सप्ताह जर्मनीसे "आर्डनेन्स ट्रेन" आया करती थी, जो हथियारों तथा गोला-बारूदसे भरी होती थी। पर ये गाड़ियां ऐसे गुप्त रूपसे आया करती थीं कि बहुत कम लोगोंको उनकी खबर मालूम थी। चूंकि मार्थाको गुप्त संवादोंके मालूम करनेकी धुन सवार थी। छोटी-सी बातपर भी वह बहुत दिलचस्पी लेती थी। जब उसे "आर्डनेन्स ट्रेन" के आनेकी खबर मालुम हुई, तो स्टेशनपर पहुंचनेवाले टाइमका पता लगानेके लिए बेचैन हो गयी। उसने सोचा कि ठीक टाइमका पता लगाकर ब्रिटिश सेनाके कर्मचारियों तक खबर पहुंचा दी जाय। अस्पतालके रोगियोंको देखनेके लिए और उन्हें स्टेशन पहुंचानेके लिए एम्बुलेन्सके साथ जाना पड़ता था। इसी जरियेसे एक दिन अवकाशके समय वह स्टेशन पहुंची। जब घायलोंकी ट्रेन प्लेटफार्म छोड़कर चली गयी, तो कुछ देर तक खड़े-खड़े उसी ओर ताकती रही। एम्बुलेन्स कारके ड्राइवरको उसने किसी बहानेसे वापस भेज दिया था। अकस्मात् पीछेसे एक आदमीने उसे प्रेम-भरी आवाजसे पुकारते हुए कहा कि "मैं यह देखकर अत्यन्त प्रसन्न हूं कि अक्सर आप स्टेशनपर दर्शन दे जाती हैं।" वह स्टेशन मास्टर था। मार्थाने विद्युद्दीप्त मुस्कानसे उसकी ओर देखकर उत्तर दिया—"मौसम बड़ा सुहावना है, मैं उसीका आनन्द ले रही थी।" जर्मन स्टेशन मास्टरने तत्काल सिगरेटका डिब्बा उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"लीजिये, नोश फरमाइये।" "क्षमा कीजिये, मैं बाहर सबके सामने नहीं पी सकती।" "तब भीतर चलिये। चाय भी तैयार है। वहीं बैठकर कुछ देर तक गपशप करेंगे।"

मार्था यही चाहती थी। दोनों भीतर जाकर बैठे। सिगरेट, उसके बाद चाय, फिर सिगरेट और बीच-बीचमें इधर-उधरकी गप्पें। मार्था इस नाजसे मुस्कराती हुई बातें करती थी कि जर्मन स्टेशन मास्टरका सिर फिर गया। अन्तको वह न रह सका और उठकर उसके कन्धेपर हाथ रखकर बोला—"देखो मिस, मैं जबसे बेल्जियम आया हूं, तबसे अपनेको एकदम अकेला महसूस करता हूं। तुम्हें जब-जब स्टेशनपर देखता हूं, मेरा मन उत्सुक हो उठता है!" यह कह वह गलेसे लिपट गया और उसका मुंह चूमने लगा। मार्था जानती थी कि जासूसीके काममें ये सब बातें सहन करनी ही होंगी। जब मार्था उठने लगी, तो स्टेशन मास्टरने कहा—"मैं आशा करता हूं कि एक बार आप फिर दर्शन देंगी।" मार्था मुस्कराकर बोली—"मैं आपसे मिलकर निहायत खुश हुई। कृपया फरमाइये, इस सप्ताहमें आपको कब फुरसत रहती है।"

स्टेशन मास्टर अपनी पाकेटसे एक नोट-बुक निकाल पन्ने उलटने लगा, मार्था उसके पीछे खड़ी थी। 'शुक्रवार'के पृष्ठके नीचे एक स्थानपर लिखा हुआ पढ़ा—"आर्डनेन्स-ट्रेन पहुंचनेका समय सुबह ३ बजे—वापस ३ बजे शाम।"

"शुक्रवारको मुझे फुरसत रहेगी"—स्टेशन मास्टरने उल्लासपूर्वक कहा—"उस दिन आप आयेंगी, तो हम दोनों पहुंची। वहां ल्यूसेलके निर्देशानुसार एक खास मकानके भीतरवाले रास्तेमें जाकर पांचवीं खिड़कीके पास वह खड़ी होकर खटखटाने लगी। एक सफेद हाथ बाहरको निकला और उसका लिखा नोट लेकर गायब हो गया। उसे मालूम नहीं हुआ कि वह स्त्रीका हाथ था या पुरुषका, केवल



ब्रिटेनकी ख्यातनामा जासूस रमणी एडिथ कावेल एक बालकके साथ। युद्धकालमें जर्मनों द्वारा गिरफ्तारकर यह गोलीसे उड़ा दी गयी थी। (पासमें) एक जासूसका अन्त!

यहांसे घेण्ट चले जायंगे और वहां आनन्द-पूर्वक राग-रङ्गमें समय बितायेंगे।"

आनेका वचन देकर मार्था अस्पताल वापस चली आयी। इसके बाद वह यह सोचने लगी कि किस प्रकार आर्डनेन्स-ट्रेनके पहुंचनेकी खबर यथास्थान गुप्त रूपसे पहुंचायी जाय। ल्यूसेलने एक गुप्त स्थानका पता बताते हुए कहा था कि वह यदि अपने समाचारोंको गुप्त भाषामें लिखकर सावधानीसे वहां तक पहुंचा देगी, तो प्रत्येक समाचार यथास्थान पहुंच जायगा। उसके मनमें इस बातकी यथार्थताको जाननेकी लालसा थी। वह एक कागजके छोटे टुकड़ेपर गुप्त समाचार लिखकर अपने सिरके बालोंमें छिपाकर गुप्त गलीमें इतना मालूम था कि वह गुप्त व्यक्ति ६३ नं० के नामसे विख्यात है। अत्यन्त आशङ्कासे कांपती हुई वह धड़कता हुआ कलेजा लेकर वापस आयी। शुक्रवार तक उत्कण्ठित हृदयसे आर्डनेन्स-ट्रेनके विनाशके इन्तजारमें रही। शुक्रवारकी रातको हवाई जहाज तथा रेलवे इञ्जिनके भैरव-निनादसे उसकी नींद उचट गयी। खिड़की खोलकर उसने देखा कि बम-वर्षा हो रही है। मशीन-गनोंकी सर्च-लाइटोंसे सारा आकाश उद्भासित हो रहा है। ऊपर केवल एक ही हवाई जहाज मंडरा रहा था, जो नीचेकी जर्मन मशीनगनोंको बुरी तरह छका रहा था। अकस्मात् वज्रघोषकी तरह एक शब्द हुआ और उसके बाद आर्डनेन्स-ट्रेनका सारा गोला-बारूद

फूट पड़ा और उसके धक्केसे सारे रूलेर शहरमें मानो भूकम्प आ गया। आकाशमें सर्वत्र चिनगारियां फैलने लगीं। पृथ्वीपर मानो दावानल जल रहा हो। प्रायः चालीस मकानोंकी छतें धड़ाकेसे चकनाचूर हो गयी थीं। कितने ही आदमी मौतके घाट उतर गये। इसके बाद ब्रिटिश हवाई जहाज जर्मन मशीन-गनोंसे चकनाचूर होकर पृथ्वीपर आ गिरा।

मार्थाके पिताने जर्मनोंके हाथसे किसी तरह मुक्ति पाकर रूलेरमें एक होटल खोल रखा था, जिसमें जर्मनीका मशहूर और भयङ्कर जासूस ओटो फान प्राम्प्ट प्रतिदिन शराब पीने और खाना खाने आता। मार्था इस भयङ्कर आदमीको अपनी प्रेममयी लीलासे सर्वदा खुश रखनेकी चेष्टा करती और उसकी हत्या करनेके मौकेकी ताकमें भी रहती। चूंकि मार्था जानती थी कि ओटो बड़ा भयङ्कर आदमी है। यदि वह उसे अपने वशमें न कर सकी, तो वह एक न एक दिन उसका सर्वनाश अवश्य कर देगा। इसलिए उसने निश्चय कर लिया कि प्रेमका मायाजाल फैलाकर वह ओटोको फंसायेगी और साथ ही अपनी सहृदयताका प्रमाण देनेके लिए दो-एक ऐसी झूठी साधारण सूचनायें उसे दे देगी और उसीके आधार-पर उसकी हत्या भी कर देगी।

मार्थाकी तरह ही कान्टेनकी एक बुढ़िया मित्र-राष्ट्रोंकी जासूसन थी। मार्थाने उसकी सहायतासे ओटोके सर्वनाशका जाल रचा। उसने कहा—"मुझे मालूम हुआ है कि शहरके बाहर एक निर्जन स्थानमें एक झोंपड़ीके भीतर एक तहखाना है, जिसमें जर्मनीके विपक्षके जासूसोंका एक अड्डा है। वहां उन लोगोंके मिलनेका स्थान है और वहीं आफिस भी है। आज रातको हम और तुम दोनों चलकर इस बातकी असलियतका पता लगायें। इस काममें खतरा जरूर है, पर हमें जर्मन जातिके हितके लिए इस खतरेको सहर्ष स्वीकृत कर लेना चाहिए।"

ओटोने पूछा—"तुम्हें वह स्थान मालूम है?"

"हां, एक व्यक्तिने दूरसे वह स्थान दिखाया है।"

"अच्छा तो आज अवश्य चलेंगे।"

अंधेरा होते ही मार्थाको साथ लेकर वह गुप्त स्थानकी ओर चल पड़ा। जब दोनों शहरसे बाहर पहुंचे, तो ओटोको कुछ देर तक इधर-उधर घुमा-फिराकर वह एक जनहीन स्थानमें ले गयी। वहां वास्तवमें एक झोंपड़ी थी। पर वहां न तो कोई चिराग जल रहा था, न कोई शब्द सुनाई पड़ता था। ओटो ज्योंही दियासलाई जलाकर भीतर घुसने लगा, त्योंही मार्थाने अपने गाउनके भीतरसे छिपी हुई एक पिस्तौल निकाली और ओटोकी पीठपर गोली दाग दी। एक चीख मारकर ओटो लहू-लुहान अवस्थामें नीचे गिर पड़ा और कराहता हुआ बोला—"बेवफा! बदकार! डायन!" मार्थाने एक बार फिर उसपर फायर किया। इसके बाद वह पिस्तौल जङ्गलमें फेंककर कम्पित पदों और शङ्कित हृदयसे किसी प्रकार डेरेपर वापस चली आयी।

बीच-बीचमें छोटे-मोटे गुप्त संवाद वह सफेद हाथवाले ६३ नं० के गुप्त व्यक्तिकी मार्फत ब्रिटिश अधिकारियोंको भेजती रहती थी। महायुद्धमें जर्मनोंने पहले-पहल विषैली गैसका उपयोग किया, तो इसकी खबर मार्थाको उसे व्यवहारमें लाये जानेके पहले ही लग चुकी थी। पनडुब्बे जहाजोंके निम्नाधारका पता भी उसने ब्रिटिश लोगोंको दिया था। मित्रराष्ट्रोंके बहुत-से कैदियोंको उसने अपनी गांठके रुपये खर्च करके भगाया था। ये सब काम उसने अपने प्राणपर खेलकर किये थे।

रूलेरमें जर्मन सिपाहियोंकी संख्या दिन-दिन बढ़ती जाती थी। एक बार स्थानाभावके कारण प्रायः एक हजार जर्मन सिपाही शहरसे दूर 'बीर' शराबके एक कारखानेमें ठहराये गये। यह जगह छोटी थी और सिपाही अधिक थे। मार्थाने सोचा कि 'सेवन सिस्टर्स' नामके ब्रिटिश हवाई जहाजको यदि इन सिपाहियोंकी खबर दी जाय, तो ऊपरसे बम गिराकर एक साथ बहुत-से सिपाही मारे जा सकते हैं। दो दिन बाद ब्रिटिश गुप्त सङ्घ द्वारा नियुक्त, कान्टेनवाली बुढ़ियाके यहां मार्था गयी। मार्थाने शराबके कार-खानेमें छिपे हुए सिपाहियोंकी सूचना साङ्केतिक भाषामें लिखकर उसे दे दी। एक ब्रिटिश हवाई जहाजने आकर रातके समय शराबके उक्त कारखानेमें इस तरह बम बरसाना शुरू कर दिया कि बहुत कमको बचनेका अवसर मिला। मार्थाको यह सुनकर बहुत गर्व हुआ कि इसका कारण वही है।

विजय-गौरवसे हर्षोत्फुल्ल कैसर बेलजियममें जर्मनों द्वारा अधिकृत स्थानोंके निरीक्षणके उद्देश्यसे भ्रमण कर रहा था। रूलेरमें भी उसके आगमनकी प्रत्याशा की जा रही थी।

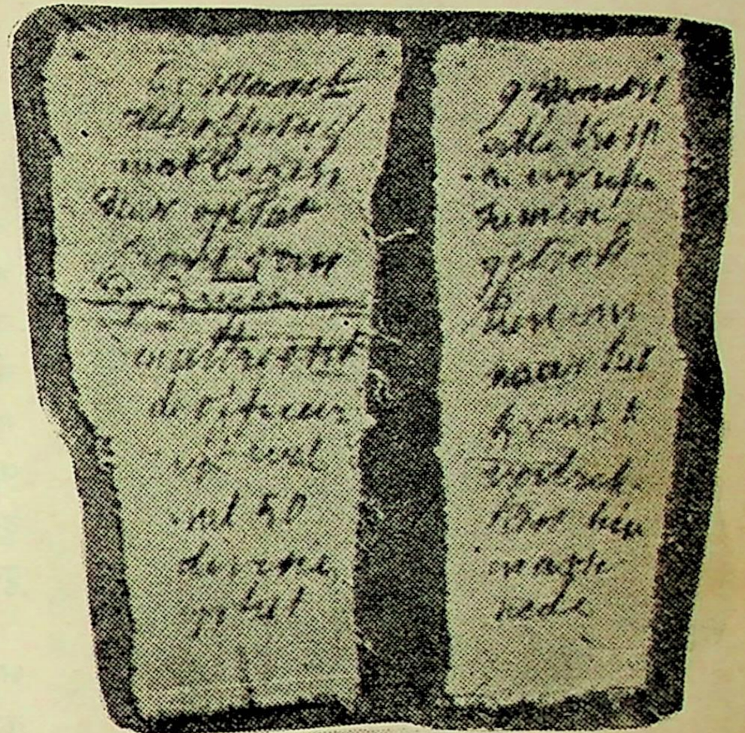
एक दिन कान्टेनवाली बुढ़ियाने एक 'पिन कुशन' लाकर मार्थाके हाथमें दिया। 'कुशन' फाड़कर मार्थाने उसके भीतर छिपा हुआ कागजका टुकड़ा खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था—"कैसर आगामी सप्ताहके अन्तमें कुछ समयके लिए रूलेर आनेवाला है। उसके आगमनकी ठीक-ठीक तारीख और समयकी सूचना प्राप्त करो, ताकि ब्रिटिश हवाई सेनाको उसकी खबर लग जाय।"

मार्थाके मनमें एक अदमनीय चञ्चलता उत्पन्न हुई। वह सोचने लगी कि यदि सचमुच उसके षड्यन्त्रसे कैसर मारा जाय, तो जर्मनोंकी क्या दशा होगी। उसने सुना था कि युद्धका उत्तरदायी कैसर ही है। बेलजियमके विनाशका वही कारण है। उसके मनमें विश्वास हो गया कि कैसरकी हत्या करके वह अपने देश-प्रेमकी चरम-सिद्धिका प्रमाण देगी।

जिस अस्पतालमें मार्था नर्सका काम करती थी, उसके सर्जनने एक दिन मार्थाको बुला भेजा। जब मार्था वहां पहुंची, तो उसने सर्जनके पास एक 'कैसरी मूंछ'वाले कर्नलको बैठा पाया। मार्थाने अत्यन्त अदबके साथ झुककर उसका स्वागत किया। फिर कर्नलको अस्पतालके सब वार्ड दिखानेके लिए मार्था ले गयी। अस्पतालका निरीक्षण भी होता था और साथ-साथ हास-परिहास, प्रेम-प्रलाप। कर्नलने मार्थासे कहा—"देखिये फ्रौलाइन, सच बताइये, क्या आपको रूलेरका जीवन नीरस नहीं मालूम देता। आप नौजवान हैं, सुशिक्षित हैं और सुसंस्कृत भी हैं। अगर आप मेरे ब्रूसेल्स चलें, तो हम और आपका जीवन खूब राग-रङ्गमें बीते।" इतना कहकर कर्नलने उसकी कोमल कलाई पकड़ ली। कर्नलने मार्थाके लिए पासपोर्टकी भी व्यवस्था कर दी। सर्जनसे मार्थाने ब्रूसेल्समें अपनी बीमार नानीको देखने जानेके लिए छुट्टी मांगी। उसे छुट्टी मिल गयी। जानेके पहले मार्था कान्टेनवाली बुढ़ियाके नामसे एक चिट्ठी छोड़ गयी कि एक अन्य गुप्तचर सङ्कटके समय ब्रूसेल्सके होटलमें उसकी रक्षाके लिए रहना आवश्यक है।

रातको बारह बजे वह ब्रूसेल्स पहुंची, जहांपर उसे ले जानेके लिए एक जर्मन मिलिटरी मोटर खड़ी थी। मोटर एक होटलमें लगी।

होटलसे वापस आनेपर मार्था जब कर्नलके घर पहुंची,

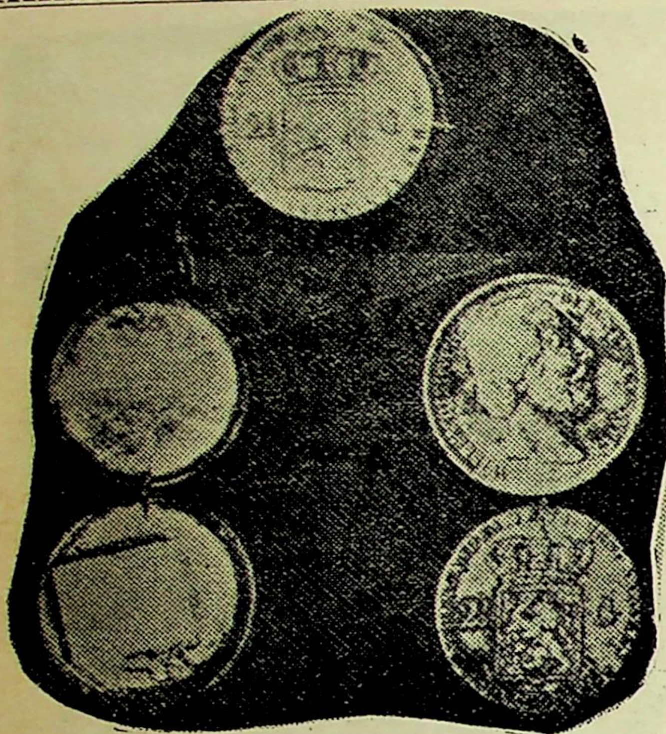


नारीके भीतरी लिबासपर गुप्तभेद लिखे हैं।

तो कर्नलकी हालत देखकर घबरा गयी। कर्नल नशेमें चूर झूम रहा था और मस्तीसे लालच-भरी नजरोंसे मार्थाको देख रहा था। वह समझ गयी कि आज खैर नहीं है। मार्थाका नाइट-ड्रेस सामने पड़ा था, उसे देखकर कर्नल यह कहकर बाहर चला गया कि "मैं अभी लौटकर आता हूं, तब तक तुम कपड़े बदल लो।"

ज्यों ही वह बाहर गया, त्यों ही सड़ककी तरफके छज्जे-परसे एक अपरिचित व्यक्ति मार्थाके पास आकर खड़ा हो गया। मार्थाने देखा, यह वही जर्मन लेफ्टिनेण्ट है जिसने दो बार मार्थाको इङ्गितपूर्वक देखा था। वह अपने कपड़ेके भीतर छिपाये हुए दो सेफ्टी पिनोंको दिखाते हुए बोला—"मैं जर्मन नहीं हूं, मैं अंगरेज हूं और ब्रूसेल्समें मित्र-राष्ट्रोंकी तरफसे गुप्तचर नियुक्त हूं, आपके यहां आनेकी सूचना मुझे ब्रिटिश गुप्तचर विभागसे मिल गयी है। आपकी रक्षाके लिए मैं इसी होटलमें ठहरा हूं। जिस कामसे आप यहां आयी हैं, उसका पता अभी तक लगाया है या नहीं।"

"मैं यथाशक्ति चेष्टामें हूं। बहुत-सी बातोंका पता लगा भी चुकी हूं।"



सिक्केपर भेजे जानेवाले सन्देश।

कर्नलके पलंगके नीचे दो बक्स पड़े हुए थे। अंगरेज गुप्तचरने मार्थासे पूछा कि उनके भीतरके कागजात उसने अभी तक टटोले हैं या नहीं ? उसने कहा, मैं अवसर देखकर ही टटोलनेका विचार कर रही हूं। वह व्यक्ति उसी दम नीचे झुका। भाग्यवश दोनों बक्स खुले पड़े थे। सब कागजात जल्दीमें टटोलते हुए उसे एक जरूरी कागज मिल गया, जिसमें कैसरकी यात्राका पूरा प्रोग्राम निश्चित दिन तथा समयके साथ दिया हुआ था। तत्काल उसे जेबमें डाल बाकी कागज ज्योंके त्यों बक्समें डालकर बन्द कर दिये। मार्थाने देखा, जिस कार्यकी सफलताकी आशासे वह कर्नलके साथ चली थी, वह पूरा हो चुका। इसलिए कर्नलको उल्लू बनाकर ब्रूसेल्ससे चम्पत हो गयी। रूलेर पहुंचनेपर मार्थाको मालूम हुआ कि उसके ब्रूसेल्स छोड़नेके तीसरे दिन जब कैसर आमोद-भवनमें जा रहा था, तो एक मित्रराष्ट्रीय गुप्तचरने जर्मन लेफ्टिनेण्टके वेशमें उसकी मण्डलीमें शरीक होकर एक पिस्तौलसे उसपर आक्रमण किया; पर भाग्यवश गोली कैसरके टोपके पिछले हिस्सेमें जा लगी और वह बच गया। लेफ्टिनेण्ट-वेशधारी गुप्तचर ऐसा अन्तर्धान हो गया था, जैसे जन्तु-विशेषके सिरसे सींग। मार्था समझ गयी कि वह सेफ्टीपीन-दलके उस व्यक्तिके अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता, जो ब्रूसेल्समें उसके कमरेमें आकर कर्नलके बक्ससे जरूरी कागज निकालकर ले भागा था।

अन्तमें एक दिन उसने देखा कि उसका काफे मिलिटरी पुलिसके सिपाहियोंसे घिरा हुआ है। ब्रिगेड स्टाफके एक अफसरने आकर सारे मकानकी तलाशी ली। वहां उसे साङ्केतिक भाषामें लिखे हुए दो गुप्त संवाद मिले। मार्था तत्काल गिरफ्तार कर ली गयी। उसपर जासूसीका अभियोग लगाया गया। वह जेलकी एक कोठरीमें बन्द कर दी गयी। बिना दूधकी चाय, भड़वेकी रोटी, आलूकी तरकारीका पहला रसा—ये चीजें उसे वहां खानेको दी गयीं। अपनी दुर्दशा और भावी परिणामकी भीषणताका ख्याल करके वह दुःख और आतङ्कसे सन्त्रस्त हो उठी।

अन्तमें मार्थाका कोर्ट-मार्शल हुआ। वह अपनी सफाई अदालतमें बयान करनेके लिए बहुत तङ्ग की गयी। पहले तो कुछ भी नहीं बोली और वह मूक ही रहना चाहती थी। पर बहुत विवशता और मजबूरीकी दशामें उसने कहा—"मैं इस दुश्मनकी अदालतके प्रहसनमें भाग नहीं ले सकती। जर्मन सैनिकोंने हमारी मातृभूमिको तबाह और बर्बाद कर डाला है। जर्मनोंने अत्याचार और अन्याय द्वारा जो खून-खराबी की है, उसका बदला लेना मेरा कर्तव्य है।" यह देश-भक्ति-और त्याग-पूर्ण बयान सुननेके बाद अदालत स्थगित कर दी गयी।

चार दिनके बाद मार्थाको मृत्युकी सजा मिली।

मार्थाकी मृत्युकी सजाकी खबर जब रूलेरके जर्मन मिलिटरी अस्पतालके सर्जनको मिली, तब अदालतमें उपस्थित होकर मार्था द्वारा की गयी घायल जर्मनोंकी सेवा-शुश्रूषाकी प्रशंसा उसने मुक्तकण्ठसे की, और उसकी सेवाके पुरस्कारमें प्राप्त जर्मन आयरन-क्रासका भी जिक्र किया। बहुत वाद-विवाद और विचार-विमर्शके बाद जर्मनों द्वारा अधिकृत स्थानोंके प्रधान मिलिटरी जर्मन कमाण्डर-इन-चीफकी आज्ञासे उसकी मृत्युकी सजा आजन्म कालेपानीकी सजामें परिणत कर दी गयी।

महायुद्ध समाप्त होनेपर एक अंगरेज सैनिक सिपाहीसे मार्थाने अपनी शादी कर ली और वेस्टरूजबेकेमें अपनी एक सुन्दर इमारत बनाकर युगल दम्पति आनन्दमय जीवन बिताने लगे।

शत्रुका आक्रमण होनेपर

श्री विश्वनाथ सेठी, एम० एस-सी०

वर्तमान यन्त्र-युगने आक्रमण करनेके लिए जो संहारक साधन प्रस्तुत कर दिये हैं, उनका जवाब देनेके लिए, शत्रुके आक्रमणको झेल सकनेके लिए रक्षाके उपाय भी वैसे ही खोज लिये गये हैं। जरा कल्पना कीजिये—सैकड़ों मील तक सीमाके बराबर शत्रुके आक्रमणसे रक्षा करनेके लिए करीब-करीब बिलकुल ही गुप्त किलेबन्दी! इससे पहले सीमावर्ती किलेबन्दीको कभी न तो इतना गुप्त रखा गया था और न वैज्ञानिक साधनोंसे परिपूर्ण इतना श्रृङ्खलाबद्ध ही बनाया गया था। ये रक्षा-प्रणालियां इञ्जीनियरीकी वर्तमान उन्नतिका नमूना हैं और किसीके लिए भी उनकी वास्तविक शक्तिका पता लगाना असम्भव ही है। इन प्रणालियोंको अध्ययन करनेसे पता चलता है कि उनमें रक्षाके पुराने उपायोंको आधुनिकतम बनानेका ही प्रयत्न किया गया है। ध्यानमें रखनेकी बात यह भी है कि रक्षाकी सारी कला इन प्रणालियोंमें ही समाप्त नहीं हो जाती। इन रक्षा-प्रणालियोंका क्षेत्र सीमा-प्रदेश है और यदि शत्रुको किसी तरह रक्षा-प्रणाली तोड़कर भीतर घुसनेमें सफलता मिल जाय, तो रक्षाके अन्य उपायोंसे काम लेना ही पड़ता है और सच तो यह है कि रक्षाका कार्य अपने आधुनिकतम रूपमें किसी सिपाही और अन्य नागरिककी व्यक्तिगत रक्षाके साधनोंसे आरम्भ होता है और वही विस्तृत होकर सेनाके विभिन्न विभागोंका रूप ग्रहण कर लेता है। हम देखते हैं कि १९१४ से १९१८ तक महासमरमें जो फौलादी टोप और छातीका बख्तर रक्षाके लिए काममें लाया गया था, वह भी मध्ययुगकी एक निशानी ही है। इसी तरह मेजिनो लाइन या सीगफ्रीड लाइन पुरानी किलेबन्दीका आधुनिक संस्करण हैं, जिनमें इस समय तकके सैनिक और वैज्ञानिक अनुभवसे पूरा लाभ उठाया गया है।

जिन फौलादी टोपोंका आज इतना प्रचलन है, उन्हें १९१९ में निकाला गया था। फ्रान्सीसियोंने भी उसे तैयार किया; परन्तु ब्रिटेनका "ब्रिलम टोप" उससे ज्यादा मजबूत साबित हुआ। प्रति सेकेण्ड ६०० फीटकी गति रखनेवाली पिस्तौलकी गोलीसे उसमें केवल खरोंच पड़ सकती है, वह उसके आर-पार नहीं जा सकती। उसके काफी चौड़े किनारे गोलों और गोलियोंके छिटके हुए टुकड़ोंसे चेहरेकी रक्षा करनेकी दृष्टिसे अच्छे होते हैं। जर्मनोंने भी फौलादी टोप अपने यहां जारी किया; परन्तु कुछ दूसरी तरहकी बनावटका। इसके अलावा छातीके बख्तरकी ओर उनका अधिक झुकाव हुआ। उन्होंने छाती और जांघोंकी रक्षाके लिए जो कवच तैयार किये, उनसे भयङ्कर गोलाबारीके समय हताहत होनेवालोंकी संख्यापर तो अवश्य ही अनुकूल प्रभाव पड़ा; परन्तु प्रगतिमें बाधा भी पड़ी। जर्मनोंका पूरा कवच चार प्लेटोंमें विभक्त होता, इनमेंसे तीन तो छाती, गले, कन्धे, पेट और जांघपर सटनेके उपयुक्त होते और चौथा चादरके रूपमें नीचे लटकता। ये बख्तर पहनकर चलनेसे आवाज नहीं होती थी।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि जिरह-बख्तर चाहे कितना ही आधुनिकतम क्यों न हो, वह रक्षाके प्रधान साधनका स्थान नहीं ले सकता; क्योंकि कोई सैनिक यदि जिरह-बख्तर न भी पहने हो परन्तु यदि वह खाईमें जमा बैठा हो, तो वह तोपोंके हमलेसे तुलनात्मक दृष्टिसे अधिक सुरक्षित है, इसमें सन्देह नहीं है। मोर्चा जमानेसे पहले जिस समय शत्रु पैंतरे बदल-बदलकर लड़ रहा हो, उस समय खाई खोदनेके औजार ही रक्षाके सबसे अधिक उपयोगी साधन हैं। १९१४ के महासमरमें बड़ी जल्दीमें जो खाइयां खोदी गयी थीं, उनसे यह अच्छी तरह साबित हुआ था। अगली पंक्तिकी खाइयां हमेशा ही टेढ़ी-मेढ़ी रखी जाती हैं, जिससे अगल-बगलकी गोलाबारीसे ज्यादा हानि न हो। जमीनके उतार-चढ़ाव और प्राकृतिक आड़की दृष्टिसे ये खाइयां भी कभी किसी तरफको मुड़ जाती हैं और कभी किसी तरफको। पहले ये खाइयां जल्दबाजीके साथ खोदी जाती हैं। बादमें उनमें जहां तक सम्भव होता है, सुधार किया जाता है। खबर भेजने और सहायता प्राप्त होनेके लिए नयी-नयी खाइयां हमेशा ही तैयार होती रहती हैं। जमीनके भीतर



डच सीमापर नाजी कांटेदार तारोंकी रुकावट खड़ी कर रहे हैं।

की जाती है और तोपोंकी श्रृङ्खला कायम की जाती है। इन सबको अच्छी तरह छिपाकर रखा जाता है, जिससे शत्रुकी निगाह न पड़ सके।

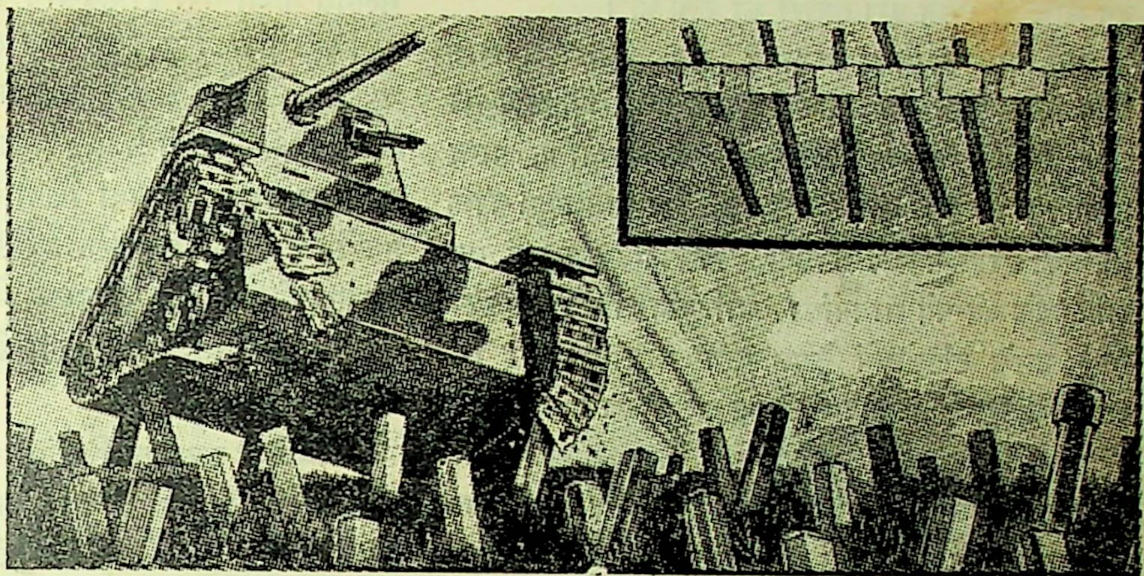
मशीनगनके आविष्कारके बाद युद्धमें खाइयोंका प्राधान्य हुआ और आमने-सामने पैंतरे दिखलानेका समय चला गया। १९१४ में खाइयोंकी लड़ाईका वर्णन करते हुए एक सेना-नायकने लिखा था—"युद्धके मैदानमें निकलकर लड़नेके लिए दो ही उपाय हो सकते हैं, एक तो है सैनिकोंको बख्तरदार गाड़ियोंमें बैठाकर गोली-प्रूफ बना देना और दूसरा है आड़ डालकर गोलियोंसे बचनेकी शिक्षा सैनिकोंको देना।" ब्रिटेनने पहले तरीकेको अच्छा समझा और टैङ्कोंका आविष्कार किया और जर्मनोंने दूसरे तरीकेको अपनाया। इन दोनों ही तरीकोंसे काम लेकर किये हुए आक्रमणोंको विफल करनेके लिए रक्षाकी बिलकुल नयी प्रणालियोंका विस्तार हुआ है।

तहखाने बनाकर हेड क्वार्टर कायम किये जाते हैं और घायलोंके लिए अस्पताल भी खोले जाते हैं। जैसी आवश्यकता होती है, उसके अनुसार खाइयोंको चौड़ा, गहरा और छोटा करनेका कार्य भी लगातार होता रहता है। अपनी सीमामें जहां कोई देश शत्रुके आक्रमणसे रक्षा करनेके लिए ये खाइयां खोदता है, वहां मध्यवर्ती क्षेत्रमें कांटेदार तारोंकी बाढ़ भी खड़ी की जाती है। यह बाढ़ भी रक्षाका एक प्रबल साधन है और शत्रुके आगे बढ़नेमें उससे बड़ी रुकावट पड़ती है। १९४० के आरम्भमें जर्मनोंने डच सीमापर अपनी स्थितिको सुदृढ़ बनानेके लिए यही कांटेदार बाढ़ खड़ी की थी।

सेनाकी मुख्य पंक्तिके आगे और पीछे खाइयोंका जो विस्तार किया जाता है, उसके अलावा ऊपर हवाई जहाज भी अपना कार्य करते हैं और नीचे जमीनमें सुरङ्गोंका विस्तार किया जाता है। हवाई जहाजोंकी बम-वर्षा और तोपोंकी गोलाबारीके सामने जमीनपर दिनमें कोई कार्यवाही नहीं की जा सकती; परन्तु जमीनके नीचे तो सुरङ्गें और रास्ते बनानेका कार्य जारी रह ही सकता है। सीमाके पास चौकियां भी होती हैं, जो यह पता लगाती रहती हैं कि शत्रुके सफरमैनाके आदमी क्या कर रहे हैं। खाइयोंके पीछे सैनिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण स्थानोंमें स्थायी किलेबन्दी

जर्मनीने १९१४ में जिस तरह आक्रमण किया था, उसी तरह १९३९ में वह क्यों नहीं कर सका? इस प्रश्नका उत्तर है वह दुर्ग-पंक्ति, जो मेजिनो लाइनके नामसे विख्यात है और जिसे स्विजरलैण्डकी सीमासे लगाकर लक्जमबर्ग तक और बादमें बेल्जियमकी सीमाके किनारे-किनारे समुद्र-तट तक फ्रान्सने तैयार किया है। १९१४ में लड़ाईमें घायल होकर जब सार्जेण्ट मेजिनो अस्पतालमें पड़े हुए थे, उन्होंने इस दुर्ग-पंक्तिकी रूप-रेखापर विचार किया था। बादमें १९२९ में जब वे दूसरी बार फ्रान्सके युद्ध-मन्त्री हुए, इस दुर्गपंक्तिका निर्माण आरम्भ हुआ और १९३४ में समाप्त हुआ। इस बीचमें १९३२ में सार्जेण्ट मेजिनोकी मृत्यु हो गयी। सार्जेण्ट मेजिनोकी योजना व्यावहारिक थी। उसके तीन उद्देश्य थे—(१) रक्षाका प्रबन्ध इतना सुदृढ़ हो कि जर्मनोंको आक्रमण करनेका साहस ही न हो और यदि वे दुस्साहस करें, तो अत्यधिक महंगा पड़े। (२) आक्रमण होनेपर शत्रुको काफी अर्से तक रोका जा सके, जिससे फ्रान्स

अपनी सेनायें खड़ी कर सके और औद्योगिक केन्द्रोंकी भी व्यवस्था कर सके।(३) फ्रान्सकी रक्षाके लिए जो सैनिक लड़ें, उनकी रक्षाके लिए पहलेसे ही पूरा प्रबन्ध हो, जिससे संख्या-बल कायम रखा जा सके और इस तरह जर्मनीका संख्या-बल अधिक होनेकी अवस्थाका प्रतिकार हो सके।



टैङ्कोंको रोकनेके लिए जमीनमें गड़ी हुई लोहेकी पटरियां, दाहिनी ओरवाली पटरीके सिरेपर विस्फोटक द्रव्य रखा हुआ है। ऊपर दाहिनी ओर पटरियोंको कङ्करीटमें गाड़ा गया है।

फ्रान्स और जर्मनीकी सीमापर फ्रान्सने जब मेजिनो लाइन तैयार की, तब जर्मनीने उसीके मुकाबिलेमें अपनी सीमामें सीगफ्रीड लाइन बनायी। जर्मन इसे लाइन न कहकर 'मोर्चा' कहते हैं। इसे डा० टाट नामक जर्मन इञ्जीनियरने तैयार कराया था। इसकी रचना जर्मनीके आधुनिक सामरिक सिद्धान्तोंके आधारपर की गयी है। इन सिद्धान्तोंका ध्येय यह है कि सैनिक मोर्चोंको इसलिए कायम किया जाय कि आक्रमणकी प्राथमिक अवस्थामें शत्रुको आगे न बढ़ने दिया जाय, उसके आगे बढ़नेमें विलम्ब कर दिया जाय। ये मोर्चे सर्वस्वकी बाजी लगा देनेके लिए नहीं हैं—जैसे ही आक्रमण जोर पकड़ता है, कुछ टिकने-सा लगता है, इन मोर्चोंको पीछे हटा लिया जाता है; क्योंकि इन मोर्चोंके पीछे जबर्दस्त किलेबन्दीका जाल है। शत्रुका सामना इसी किलेबन्दीसे किया जाता है। इस किलेबन्दीके पीछे यान्त्रिक सेनाओंके डिवीजनोंका स्थान है, जो शत्रुपर जवाबी हमला करनेके लिए हैं। उद्देश्य यह है कि सीमावर्ती मोर्चों और किलेबन्दीका मुकाबिला करनेमें जब शत्रुकी शक्ति क्षीण हो जाय और वह थक जाय, तब यान्त्रिक सेना उसपर प्रत्याक्रमण करे और उसे पीछे हटा दे। जर्मनीकी यह रक्षा-प्रणाली फ्रान्सकी सीमापर लगातार निर्माण की गयी है और कहीं-कहीं तो वह सीमाके भीतर १९ मील तक चली गयी है। यह रक्षा-प्रणाली इस तरह कायम की गयी है कि उसे जब और जितना चाहें, हटाया जा सके; क्योंकि शत्रुपर यान्त्रिक सेनासे प्रत्याक्रमण किये जानेका सिद्धान्त उसमें मान लिया गया है। मेजिनो लाइनके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता। वह जमीनके नीचे मजबूत किलेबन्दी है, जिसे कई मञ्जिलोंमें बनाया गया है। सैनिकोंके घर भी मेजिनो लाइनमें ही हैं और जिस क्षण जरूरत हो, वे उसी समय प्रस्तुत हो सकते हैं। मेजिनो लाइनमें जितने किले और मोर्चे हैं, सब शृङ्खलाबद्ध हैं और यों तो ये सर्वथा स्वतन्त्र रूपसे शत्रुका सामना काफी अर्से तक कर सकते हैं; परन्तु आवश्यकताके समय जमीनके अन्दर ही अन्दर एकसे दूसरेको सहायता भी पहुंच सकती है। इस किलेबन्दीमें तोपोंको कुछ इस तरह बैठाया गया है कि उनकी मारसे एक इञ्च जगह भी खाली नहीं है—मानो समूची सीमापर कराल काल अपना मुंह फैलाये खड़ा हुआ है। कोई आश्चर्य नहीं है, यदि जर्मनीने युद्ध आरम्भ होनेके समय सितम्बर १९३९ में फ्रान्सकी सीमाको पार करनेका साहस नहीं किया और इस तरह फ्रान्सको आवश्यक तैयारी करनेका पूरा अवसर मिल गया। जर्मनीके वैसा न करनेका एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि मेजिनो लाइनके रूपमें फ्रान्सने मोर्चा लेनेके अपने स्थानोंको स्वयं पहले ही चुन लिया।

इन मोर्चोंपर उसने पूरी तैयारी कर रखी थी ।

मेजिनो लाइनके सम्बन्धमें कुछ विस्तारके साथ लिखनेकी अपेक्षा रक्षा-सम्बन्धी कुछ अन्य प्रणालियोंका उल्लेख आवश्यक है । इन प्रणालियोंमें अन्तर हो सकता है; परन्तु उद्देश्य एक ही है । कोई सैनिक इञ्जीनियर अभेद्य दुर्ग-पंक्ति बनानेका दावा नहीं कर सकता, विशेषतः इस युगमें, जब आक्रमणके नये-नये साधनोंका आविष्कार नित्य हो रहा हो । उसके दृष्टिकोणमें केवल यही बात होती है कि आक्रमणकारी सेनाओंकी शक्ति नष्ट कर दी जाय, उन्हें थका दिया जाय और तब प्रत्याक्रमण या गोलाबारीसे शत्रुको नष्ट कर दिया जाय । प्रत्येक देशकी दुर्ग-पंक्ति भौगोलिक अवस्था, सेनाके संख्या-बल और शस्त्रास्त्रोंके कारण विभिन्न प्रकारकी हो सकती है । फिनलैण्डमें मेनरहीम लाइनको रूसी सैनिक कई महीने तक नहीं तोड़ सके; क्योंकि उसका अग्रभाग बहुत लम्बा नहीं था और उसपर आक्रमण करनेके लिए कुछ डिवीजनोंसे ज्यादा सेनाका काम नहीं था । हालैण्डकी जमीनकी सतह समुद्रसे नीची है और इस देशकी रक्षा-प्रणाली-में इस भौगोलिक अवस्थाको खास तौरसे ध्यानमें रखा गया है—ऐसी व्यवस्था की गयी है कि जब जरूरत हो, सारे देशमें बाढ़ ला दी जाय । बेल्जियमकी रक्षा-प्रणाली कुछ तो बाढ़ लानेके सिद्धान्तपर स्थिर की गयी थी और कुछ पहाड़ी इलाकोंकी जबर्दस्त किलेबन्दीपर ।

बाढ़का पानी टैङ्कोंके मार्गमें अच्छी रुकावट है । अक्सर नीचे धरातलवाले देशोंके लिए तो दूसरा कोई उपाय ही नहीं होता । कभी-कभी बाढ़ लानेमें यह उद्देश्य भी होता है कि शत्रु एक निश्चित मार्गसे आगे बढ़े । इस मार्गमें शत्रुका मुकाबिला करनेके लिए पूरा प्रबन्ध रहता है । इस तरहकी बाढ़का सामना करनेके लिए एम्फीबियन टैङ्कोंका आविष्कार हुआ है, जो जमीनकी तरह पानीमें भी चल सकते हैं ।

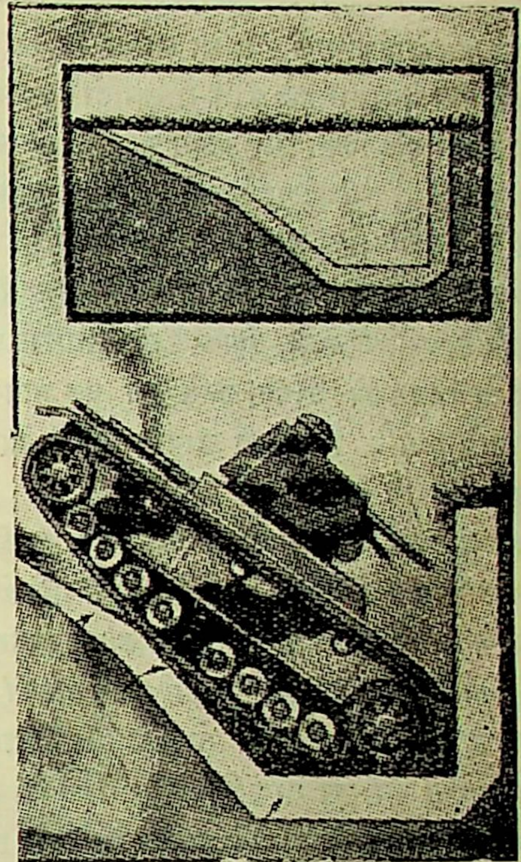
मेजिनो लाइन जैसी रक्षा-प्रणाली किसी भी स्थानके उपयुक्त बनायी जा सकती है । उदाहरणके लिए अफ्रीकाकी मेजिनो लाइन ही लीजिये, जो अफ्रीकाके समुद्र-तटके किनारे-किनारे ट्यूनिशियाके पहाड़ों तक जाती है । यह दुर्ग-पंक्ति ३० मील तक जमीनके अन्दर ही अन्दर चली गयी है और पूर्ण विस्तार तो लगभग ६०० मील तक है, जिसमें बहुत-सा मरुभाग भी आ गया है । तहखानोंके रूपमें बने हुए इन दुर्गोंमें बहुत बड़ी सेनाको मुद्दत तक रखा जा सकता है । ये सब दुर्ग श्रृङ्खलाबद्ध हैं और जो श्रृङ्खलासे अलग भी हैं, उनमें खाद्य पदार्थ, पानी और गोली-बारूद, सब पर्याप्त है, जिससे यदि कभी घेरा पड़े, तो सामना किया जा सके । ये किले ऐसी जगहोंमें हैं जहां भारी-भारी तोपोंसे गोलाबारी नहीं की जा सकती; क्योंकि इतनी दूर मरुस्थलमें तोपोंको नहीं लाया जा सकता । अलबत्ता, हवाई जहाजोंसे इनपर बम-वर्षा की जा सकती है ।

आधुनिक रक्षा-प्रणालियोंकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कुछ आम बातोंपर ही यहां विचार किया गया है । अब यह देखना चाहिए कि लोहे और कङ्करीटकी इन दुर्ग-पंक्तियोंको तोड़नेके लिए वैज्ञानिक कैसे साधनोंको प्रस्तुत कर रहे हैं । मेजिनो लाइनको यद्यपि बहुत मजबूत बनाया गया है, बनाये जानेके समय तककी तोपोंकी गोलाबारीकी भयङ्करताको दृष्टिमें रखकर बनाया गया है, तथापि वैज्ञानिक तो अधिका-धिक जोरदार नये-नये विस्फोटक तैयार करनेमें अपनी सारी शक्ति लगा रहे हैं और यह हो सकता है कि किसी अत्यन्त सुदृढ़ दुर्ग-पंक्तिको भी ध्वस्त कर डालनेका कोई उपाय निकल आये । किसी भी सुरक्षित किलेबन्द मोर्चेपर हमला करनेमें हमेशा ही टैङ्कोंका उपयोग किया जायगा, काफी पैमानेपर किया जायगा । इन टैङ्कोंको रोकनेके लिए जमीनमें कङ्करीटके साथ लोहेकी पटरियोंको ऊंचा-नीचा गाड़ देते हैं । किसी-किसी पटरीके सिरेपर विस्फोटक भी रहता है । इन पटरियोंको पार करनेका प्रयत्न करते समय अक्सर टैङ्क-की जञ्जीर टूट जाती है और वह बेकाम हो जाता है । टैङ्कों-को फंसानेका एक अन्य उपाय भी है । जमीनमें काफी गहरा गढ़ा खोदकर उसे ऊपरसे घास-फूससे पाट देते हैं । इस गढ़ेकी सतह और दीवालें कङ्करीटसे मजबूत बनायी जाती हैं । जिधरसे आक्रमणकारी टैङ्क आनेकी सम्भावना होती है, उधरसे बहुत ज्यादा ढलवां रखते हैं और इसके सामनेकी दीवारको बिलकुल सीधा । टैङ्क धोखा खाकर इस गढ़ेमें जब अगले भागके बल जा गिरता है, तब निकल ही नहीं सकता । टैङ्कोंको रोकनेके लिए मार्गमें कङ्करीटके दांतुए बनाये जाते हैं । कोई टैङ्क इनपर चढ़ा नहीं कि टैङ्क-तोड़ तोपका शिकार आसानीसे हो जाता है । लोहेकी चापाकार

पटरियोंको कङ्करीटदार जमीनमें गाड़ने या उसी तरहकी कङ्करीटकी रोक तैयार करके भी टैङ्कोंको रोका जा सकता है; क्योंकि टैङ्कके पहियोंकी जञ्जीर गोलाईदार चिकनी पटरियोंपर जम नहीं सकती। अधिकांश स्थायी दुर्ग-पंक्तियोंके क्षेत्रोंमें टैङ्क-कूप—टैङ्कोंको फंसानेवाले गढ़े होते हैं। फिर दुर्ग-पंक्तियोंके सामने सुरङ्गें भी तो बिछायी जाती हैं। इन सुरङ्गोंको एकत्र किया जा सकता है; परन्तु किसी खाली स्थानकी रक्षा करनेकी दृष्टिसे जब सुरङ्गें बिछायी जाती हैं, तब उनमें काफी अन्तर रखा जाता है और इस अवस्थामें उनका पता लगाना उतना आसान नहीं होता।

टोह लगानेवाले हवाई जहाजोंकी कार्यवाही जब बराबर ही जारी रहती हो, शत्रुको धोखेमें डाल देने, छलावा देनेका महत्त्व बहुत अधिक हो गया है। रक्षा सम्बन्धी उपायोंमें इस धोखेका मुख्य स्थान है। यह अनेक प्रकारसे होता है। सफेद वर्दी पहनकर बर्फपर सैनिकोंके चलनेसे शत्रुको पता नहीं चल सकता, शर्त यही है कि शस्त्रास्त्रों तकको सफेद कपड़ेसे ढक लिया गया हो। रङ्गीन कङ्करीटसे जमीनके भीतर किले इस तरहसे बनाये जाते हैं कि उनके ऊपरकी सैकड़ों टन मिट्टीको उड़ा दिया जाय। ऐसा हो जानेपर रङ्गीन कङ्करीटका पता टोह लगानेवाले हवाई जहाजको नहीं चल सकेगा। इसी तरह पेड़ोंकी हरी पत्तियोंवाली शाखाओंसे तोपोंको ढककर शत्रुको धोखा दिया जा सकता है। तोपोंकी रक्षाका यह प्रबन्ध कङ्करीटकी चौकियोंसे कहीं ज्यादा अच्छा है। फौजी लारियों और अन्य गाड़ियोंमें जाली लगाकर घास, टहनियां और झाड़ियां अटकायी जा सकती हैं। तनेसे काट लिये जानेके बाद किसी पेड़की जड़ोंका जो भाग जमीनमें रह जाता है, उसमें निरीक्षण करनेकी चौकियों और छिपे हुए सैनिकोंके मोर्चोंको कायम किया जा सकता है। मशीनगनें भी लगायी जा सकती हैं। झाड़ियों और टीलोंको भी इसी काममें लाया जा सकता है और इन सब स्थानोंको कृत्रिम उपायोंसे इस तरह ढका जा सकता है कि शत्रुकी निगाह न पड़ सके, वह धोखा खा जाय। यह ध्यानमें रखना चाहिए कि शत्रुकी निगाहसे बचनेके सहज तरीके अक्सर श्रमसाध्य कठिन तरीकोंसे ज्यादा अच्छे होते हैं।

शत्रुको छलावा देनेका एक अन्य तरीका है, लाइनोंको न



टैङ्क-कूप—ऊपर घास-फूससे ढका हुआ गढ़ा और नीचे उसमें गिरता हुआ टैङ्क।

रहने देना और नयी लाइनोंको बना देना। इस सिलसिलेमें सड़कों और पगडण्डियों तकको बड़ी सावधानीसे ढक देना होता है। हवाई जहाजोंके अड्डोंमें कङ्करीटका मार्ग रंग देना होता है। इसी तरह किसी तोपको खूब अच्छी तरह छिपाकर रखना भी व्यर्थ है, यदि वहां तक पहुंचनेकी पगडण्डियां बनी रहें और उनसे टोह लगानेवाले हवाई जहाजको यह सङ्केत हो जाय कि वहां कोई न कोई भेदकी बात जरूर है। ऐसी स्थिति भी होती है, जब पगडण्डियोंका बनना रोका नहीं जा सकता। उस दशामें पगडण्डियोंको अभीष्ट स्थानसे इधर-उधर बहुत दूर तक ले जाते हैं, जिससे आकाशसे मालूम हो कि यह योंही रास्ता है।

बड़ी-बड़ी इमारतोंकी रक्षा करनेके लिए यह आवश्यकता पड़ती है कि लाइन न रहने दी जाय। किसी भी बड़ी इमारतको देखते ही सन्देह हो सकता है। इसकी लम्बी-चौड़ी छतपर अगर:नियमित अन्तर रखकर सावधानीसे रङ्ग किये जायं, तो आकाशमें उड़ते हुए हवाई जहाजसे देखनेसे ऐसा प्रतीत हो सकता है, मानो छाया हो। इसी तरह

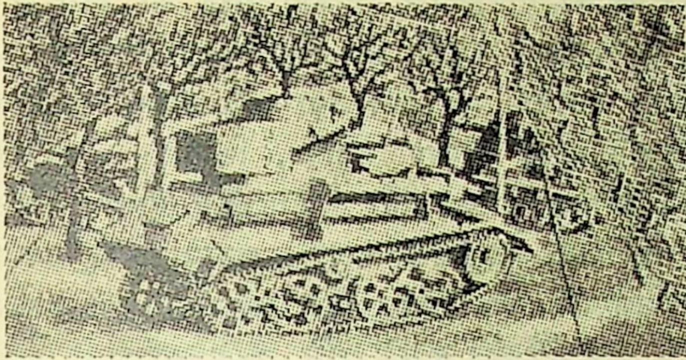
किसी बड़ी छतको इस तरह रंगा जा सकता है कि ऊपरसे देखनेपर, छोटे-छोटे मकानोंकी पंक्ति मालूम हो। प्रकाश और छायाका मिश्रण यदि किसी सिलसिलेसे न हो, तो नीचेकी चीज साफ-साफ नहीं दिखलाई पड़ सकती। हवाई जहाजमें बैठकर चित्र लेनेवालोंके लिए छाया भी एक समस्या होती है; परन्तु ध्यानमें रखनेकी बात है कि छाया अपना स्थान बदलती रहती है, इसलिए सवेरे, दोपहर और शामको एक ही स्थानके जो चित्र लिये जायंगे, उनसे पता चल जायगा कि असलमें नीचे क्या है, चित्रमें जो छाया आती है, वह बनावटी है या असली।

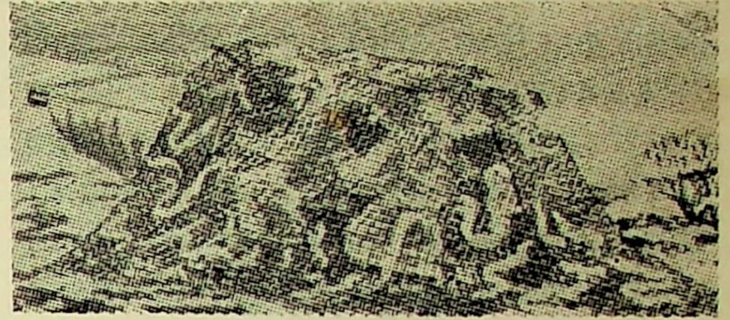
शत्रुके हवाई जहाजोंको धोखा देनेके लिए नकली नगर बड़े कामके साबित होते हैं। सड़कोंपर और गलियोंमें जो लेम्प जलाये जाते हैं, उन्हें खुले मैदानमें लगाने और उनमें धुंधला प्रकाश रखनेसे शत्रुको वहां कोई नगर होनेका धोखा हो सकता है। इसी तरह नकली तोपोंको भी छिपाया जा सकता है; परन्तु उन्हें इस तरह छिपाना चाहिए कि उनका कुछ हिस्सा खुला रहे। शत्रु यदि चकमा खा जाय, तो इन बनावटी नगरों और तोपोंपर कितने ही बम गिराकर अपनी मूर्खताका परिचय दे सकता है।

युद्धमें जहरीली गैसका प्रयोग होनेसे मोर्चेके पीछेवाले सैनिकों और साधारण जनताको भारी हानि पहुंचती है। जहरीली गैस कई तरहसे छोड़ी जाती है। गैसके गोले तोपोंसे फेंके जाते हैं। हवाई जहाज गैसके बम गिराते हैं। इसके लिए विशेष यन्त्र भी होते हैं। हवाई जहाज आकाशसे गैसके परमाणुओंकी वर्षा भी कर सकते हैं और हवाका रुख यदि शत्रुकी सेनाओंकी ओर हो, तो गैसके सिलेण्डरोंको भी खोला जा सकता है। जब तक गैस हवामें प्रचुर परिमाणमें न हो, तब तक उसके घातक होनेकी सम्भावना नहीं है। खुली हवामें गैस प्रचुर परिमाणमें कभी-कभी ही रहती है और कम परिमाणमें होनेसे यही हो सकता है कि बहुत सैनिक अक्षम हो जायं, उनमें रक्षा कर सकनेकी शक्ति न रहे और सर्वसाधारणका धैर्य और साहस टूट जाय। आजकल युद्धमें जिस गैससे काम लिया जाता है, वह द्रव-रूपमें होती है। हवाई जहाज द्वारा उसे बहुत बड़े क्षेत्रमें गिराया जा सकता है। उसकी क्षमता बहुत कुछ मौसमपर निर्भर है। सभी गैसोंपर मौसम और वातावरणकी शीतोष्णताका प्रभाव पड़ता ही है। कुछ गैसें बहुत हलकी होती हैं और अगर तेज हवा चल रही हो, तो उनसे काम नहीं लिया जा सकता। हवामें गर्मी यदि ज्यादा हो, तो गैस जमीनसे ऊपर उड़ सकती है; क्योंकि गरम हवा ऊपरकी ओर जाया करती है। वैसी अवस्थामें उससे कोई हानि नहीं हो सकती। गैसके आक्रमणके लिए मौसम साफ होना चाहिए और ज्यादा गर्मी नहीं होनी चाहिए। हवाकी रफ्तार भी ९ मीलसे लगाकर १०-१२ मील तककी हो सकती है। जहरीली गैसके आक्रमणकी दृष्टिसे वह मौसम सबसे अधिक उपयुक्त होता है, जिसमें कभी-कभी जमीनकी सतहपर जितनी सर्दी होती है, उतनी आकाशमें ऊपर हवामें न हो। इस तरहके मौसममें गैस आकाशमें न चढ़कर जमीनपर ही फैलती है।

युद्धकी गैसोंको साधारणतः दो श्रेणियोंमें बांटा जा सकता है—एक तो वे, जो साधारणतः तरल होती हैं और एक तरहकी भाफ छोड़ती हैं। दूसरी श्रेणीकी गैसें जहरीले धुएंके रूपमें होती हैं। टीयर गैसका असर आंखपर होता है। गैस आंखमें पहुंची नहीं कि दर्द हुआ। इसके साथ ही वेगसे आंसू बहने लगते हैं। पलकें सूज जाती हैं और खालमें जलन पैदा हो जाती है। यदि यह गैस हवामें ज्यादा परिमाणमें हो, तो श्वास-नलिकामें दाह होने लगता है। नाककी गैससे छींकें बहुत आती हैं और नाक, मुंह, गले और छातीमें असह्य जलन, और इन सब बातोंके परिणाममें मानसिक क्लान्ति हो जाती है। शुद्ध हवामें पहुंचाये जानेपर ये शिकायतें और भी अधिक हो जाती हैं। फेफड़ेकी गैससे जो जलन तत्काल आरम्भ हो जाती है, वह बढ़ती जाती है। आंख, नाक और गला, सबपर इसका असर पड़ता है। श्वास-नली और फेफड़ोंमें बेहद जलन होती है। फेफड़ोंको इससे जो हानि पहुंचती है, उसके कारण मृत्यु भी हो सकती है। फेफड़ोंकी एक अन्य गैस भी होती है जो पहली गैससे ८-१० गुनी ज्यादा घातक होती है। फेफड़ोंमें असह्य पीड़ा होती है; परन्तु आंख, नाक और गलेपर इसका वैसा असर नहीं होता। खूनकी गैससे खूनमें विष पैदा हो जाता है और बमन होता है।

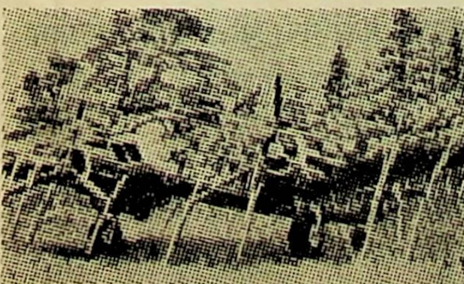
दो अन्य प्रकारकी गैसोंसे भी युद्धमें काम लिया जाता है, जिनमेंसे एक तो है मस्टर्ड (राई) गैस और दूसरी है लेवीसाइट गैस। मस्टर्ड गैसका असर तत्काल नहीं होता


धोखा—वृक्षोंके बीचमें जालीके नीचे टैङ्क।

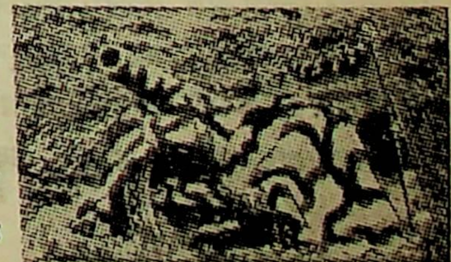

धोखा—कपड़ेकी धारियोंदार जालीके नीचे छिपी हुई टैङ्कतोड़ तोप—नालपर भी खोल चढ़ा दी गयी है।

और इसीसे वह सबसे अधिक भयावह है। यह हो सकता है कि जब उसके परमाणु हवामें कम परिमाणमें हों, असर हो जानेसे पहले उसका पता भी न चले। आंखों, फेफड़ों और खुले हुए अङ्गोंपर इसका असर सबसे पहले पड़ता है। आंखोंमें जलन और सूजन हो जाती है और ज्यादा असर होनेसे निगाह भी जाती रहती है, विशेषतः यदि गैसका एक छोटा बूंद भी आंखमें जा पड़े और उसे तत्काल न निकाला जा सके। फेफड़ोंपर इसका असर होते ही आवाज रुक जाती है और हवा लगनेसे खांसी आने लगती है, मानो सर्दीका असर हो। २४ घण्टे तक यही अवस्था रहनेके बाद मृत्यु हो जाती है। खालपर तत्काल कोई असर देखनेमें नहीं आता, परन्तु २-३ घण्टे बाद सूजन आ जाती है और फफोले पड़ जाते हैं। इस गैसके प्रभावसे दूषित कोई भी चीज खा लेनेसे अंतड़ियां खराब हुए बिना नहीं रहतीं। लेवीसाइट गैससे नाकमें तत्काल जलन पैदा हो जाती है। आंखमें उससे जो क्षति हो जाती है, वह कभी अच्छी नहीं होती। खालपर एक मिनटके अन्दर डङ्क लगने-जैसी व्यथा होने लगती है। मस्टर्ड गैसकी अपेक्षा इससे सूजन भी जल्दी आती है और फफोले भी जल्दी उठते हैं।


धोखा—वृक्षोंकी डालियोंसे ढकी हुई तोप।


धोखा—वृक्षोंकी आड़में हवाई जहाज।

इन सब गैसोंके प्रभावसे सर्वसाधारण-की रक्षा करनेके लिए तहखाने, गैसके नकाब और गैस-प्रूफ कमरे बनाये गये हैं। सैनिकोंके लिए हमेशा ही तहखानोंमें बैठना सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए उनके लिए और उन नागरिकोंके लिए, जिनका गैसके हमलेके समय भी बाहर रहना आवश्यक है, खास तरहकी पोशाक और जूते बनाये गये हैं। ब्रिटेनमें जो गैसके नकाब तैयार किये गये हैं, वे तीन तरहके हैं और इस बातको दृष्टिमें रखकर बनाये गये हैं कि सभी व्यक्तियोंको उनकी जरूरत एक समान नहीं हो सकती। एक श्रेणीके नकाब पुलिस और फौजके लिए हैं, जिन्हें यह हो सकता है कि गैसके आक्रमणके समय और सम्भव है, उसके बाद भी काफी समय तक गैससे दूषित स्थानोंमें काम करना पड़े। दूसरी श्रेणीके नकाब उन लोगोंके उपयोगके लिए हैं, जिन्होंने हवाई आक्रमणसे रक्षा होने सम्बन्धी कार्यवाहियोंमें योग दे रखा है। तीसरी श्रेणीके नकाब सर्वसाधारणके लिए हैं। पहली श्रेणीके नकाबमें तीन हिस्से होते हैं—चेहरा, पेटी और इन दोनोंको मिलानेवाली नली। चेहरा मोटी रबड़का ऐसा बना होता है कि चेहरेपर बिलकुल चुस्त आ जाता है। इसमें मुंहपर एक छेददार गोल यन्त्र


धोखा—रंगे हुए आवरण और जालीके नीचे तोप।

रहता है, जिसके पीछे बाल्ब रहता है और इसमें होकर छोड़ी हुई सांस बाहर निकल जाती है। दूसरी श्रेणीके नकाबोंमें नलीके बजाय रबड़का बेण्ड रहता है। नकाब पहननेवाला कोई व्यक्ति जब सांस लेता है, पेटीमें लगा हुआ वाल्व खुल जाता है और जब सांस छोड़ी जाती है, बन्द हो जाता है। यह सांस मुंहके पासवाले बाल्वमें होकर बाहर निकल जाती है। गैसका असर दूर करनेके लिए पेटीमें कोयलेके अलावा मलमलका एक खास तरहका फिल्टर भी रहता है। कोयलेमें गैसको नष्ट कर डालनेकी अद्भुत शक्ति है और उसमेंसे होकर जो हवा निकलती है, वह बिलकुल शुद्ध हो जाती है।

रक्षा करनेकी प्रणालियोंमें शत्रुपर प्रत्याक्रमण करनेका भी महत्त्व कम नहीं है और इसकी सफलता इस बातपर निर्भर है कि शत्रुको पता न चले और अचानक आक्रमण कर दिया जाय। शत्रुको यदि यह पता न हो कि आक्रमण किधरसे होगा, तो वह उसका सामना करनेके लिए तैयारी नहीं कर सकता। इसी उद्देश्यसे यह जाननेकी चेष्टा की जाती है कि शत्रुने अपनी रिजर्व सेनाओंको कहां, कितनी संख्यामें रखा है। इसके लिए अगली पंक्तिसे आगे टोहियों-को भेजा जाता है, जो शत्रु-सैनिकोंको बन्दी बनानेका प्रयत्न करते हैं। ये बन्दी स्वयं यदि कुछ न बतलायें, तो भी उनकी वर्दी और बेजोंसे बहुत कुछ मालूम हो जाता है। टोह लगानेवाले हवाई जहाज भी बहुत कुछ पता लगा लेते हैं और इनके अलावा जासूस भी होते हैं, जो कितने ही ढङ्गोंसे शत्रु-देशमें रहकर अपना काम किया करते हैं। हो सकता है कि उनमें कोई व्यापारिक यात्रीके रूपमें हो और कोई मोटर ड्राइवर या किसी अन्य रूपमें। इन जासूसोंके लिए कोई बात जान लेना उतना कठिन नहीं होता, जितना उसे बाहर स्वदेश भेज सकना; क्योंकि जिस देशमें रहकर ये जासूसी किया करते हैं, वह भी तो इन जासूसोंके हथकण्डों-को जानता ही है और अपना प्रबन्ध भी करता ही है कि कोई बात बाहर न जाने पाये। गत महासमरमें १९१४-१८ तक जब बेल्जियमपर जर्मनीने दखल कर रखा था, जासूसोंने खोखले सिक्कों और मिठाइयोंके भीतर कागज रखकर समाचार भेजे थे। इसी तरह अपनी खोपड़ीपर लिखकर, कङ्घोंमें निशान लगाकर, टिकटके किनारोंको खास तरीकेसे काटकर और मालाके दानोंमें सङ्केत बनाकर भी जासूसोंने बाहर समाचार पहुंचानेकी कोशिश की थी। जासूसोंकी सफलता इसी बातमें है कि उन्हें कोई ताड़ न सके और उनके सङ्केतोंको कोई पकड़ न सके। ताड़ लिये जानेपर तो उन्हें गिरफ्तार किया ही जाता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उनमेंसे सभीको गिरफ्तार कर लिया जाय। अचानक आक्रमण करनेकी दृष्टिसे शत्रुको गुमराह करनेके लिए अक्सर यह भी करते हैं कि उसके कुछ जासूसोंको योंही रहने देते हैं और जब वे कोई बात बाहर भेजनेकी कोशिश करते हैं, उसे बीचमें उड़ा लिया जाता है और उसके स्थानपर कोई ऐसी बात भेज दी जाती है, जो अपने लिए तो हितकर हो, परन्तु जिसपर निर्भर रहनेसे शत्रुको हानि उठानी पड़े।

जासूसोंके लिए यह आवश्यक है कि वे प्रकाश्य रूपसे जो पेशा करते हों, उसीके लिए उपयुक्त अपना रहन-सहन भी रखें, जिससे उनपर किसीको सन्देह न हो; परन्तु इसके अलावा उनमें असाधारण शान्ति और धैर्य भी होना ही चाहिए। स्काउट आन्दोलनके प्रवर्तक लार्ड बीडन पावेल किसी समय जासूसका काम करते थे। उन्होंने अपना अनु-भव बतलाते हुए लिखा है कि एक बार उनपर सन्देह हो गया और वे पकड़ लिये गये। जिस अफसरको उनसे पूछताछ करनी थी, उसके पहुंचनेकी जब प्रतीक्षा की जा रही थी, उन्होंने पुलिसके सिपाहीसे कई बार सिगरेट पीनेकी इजाजत मांगी। सिपाहीने उसपर आपत्ति नहीं की और उन्होंने एकके बाद एक कई सिगरेट फूंक डाले। इसके बाद तो उनके पास कोई आपत्तिजनक चीज रह ही नहीं गयी थी; क्योंकि उन्होंने सिगरेटके कागजपर ही कुछ बातें नोट की थीं।



अनर्थमूल स्वार्थ

स्वार्थ ही है अनर्थका मूल ।
औरोंका सर्वस्व-हरण कर कब उसको होता है शूल ।
तब तक सुत सुत है वनिता-वनिता है उनसे है बहु प्यार ।
स्वार्थ देवका उनके द्वारा जब तक होता है सत्कार ।
अन्तर पड़े चली दारा सुतकी ग्रीवापर भी तलवार ।
कटी भाइयोंकी भी बोटी, हुआ पितापर भी है वार ।
अवलोकनके लिए अन्यका दुख वह होता है जन्मान्ध ।
तोड़ा करता है उसका हठ-प्लावन नीति-नियमका बांध ।
कोई कट-पिटे लुट जावे, छिने किसीके मुंहका कौर ।
किसीका कलेजा निकले या जाय रङ्क बन जन-सिरमौर ।
मसल जाय लालसा किसीका, किसी शीशपर हो पविपात ।
किसी लोक-पूजितके उरमें लगे किसी पामरकी लात ।
इन बातोंकी कुछ भी परवा उसने किसी कालमें की न ।
तड़प-तड़पकर कोई चाहे बने बिना पानीका मीन ।
सौ परदोंमें छिपकर भी करता रहता है अपना काम ।
अवसरपर सब सद्भावोंसे वह बदला करता है नाम ।
छल-प्रपञ्चका वह पुतला है, वह पामरताकी है मूर्ति ।
अधम कौन उसके समान है, वह है सब पापोंकी पूर्ति ।
किन्तु जगतके प्राणिमात्रके ऊपर है उसका अधिकार ।
हो असार संसार, पर वही है सारे सारोंका सार ।
बड़े-बड़े त्यागी अवलोके, देखा बहुत बड़ोंका त्याग ।
ऐसे मिले महज्जन जिनमें हरिका था सच्चा अनुराग ।
किन्तु स्वार्थ उनमें भी पाया, हां, बहु परिवर्तित था रूप
सरस सुधासे सिक्त हुआ था संसारीका नीरस पूप ।
जीवनका सर्वस्व स्वार्थ है, बिना स्वार्थका क्या संसार ।
इसीलिए है प्राणिमात्रपर उसका बहुत बड़ा अधिकार ।
किन्तु मानवी दुर्बलताका हुआ न उससे सद्व्यवहार ।
इसी हेतु वह बना हुआ है अत्याचारोंका आधार ।
जिसका सृजन हुआ करनेको सारे जीवोंका उपकार ।
बहुत दिनोंसे बना हुआ है वही अनर्थोंका आगार ।
प्रकृति-क्रियायें हैं रहस्यमय, अद्भुत है भव-पारावार ।
मनुज पार पा सका न उसका यद्यपि हुआ प्रयत्न अपार ।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'



मौतकी खेती

क्या मैं जिन्दा हूं?

श्री मानिकचन्द्र अग्रवाल

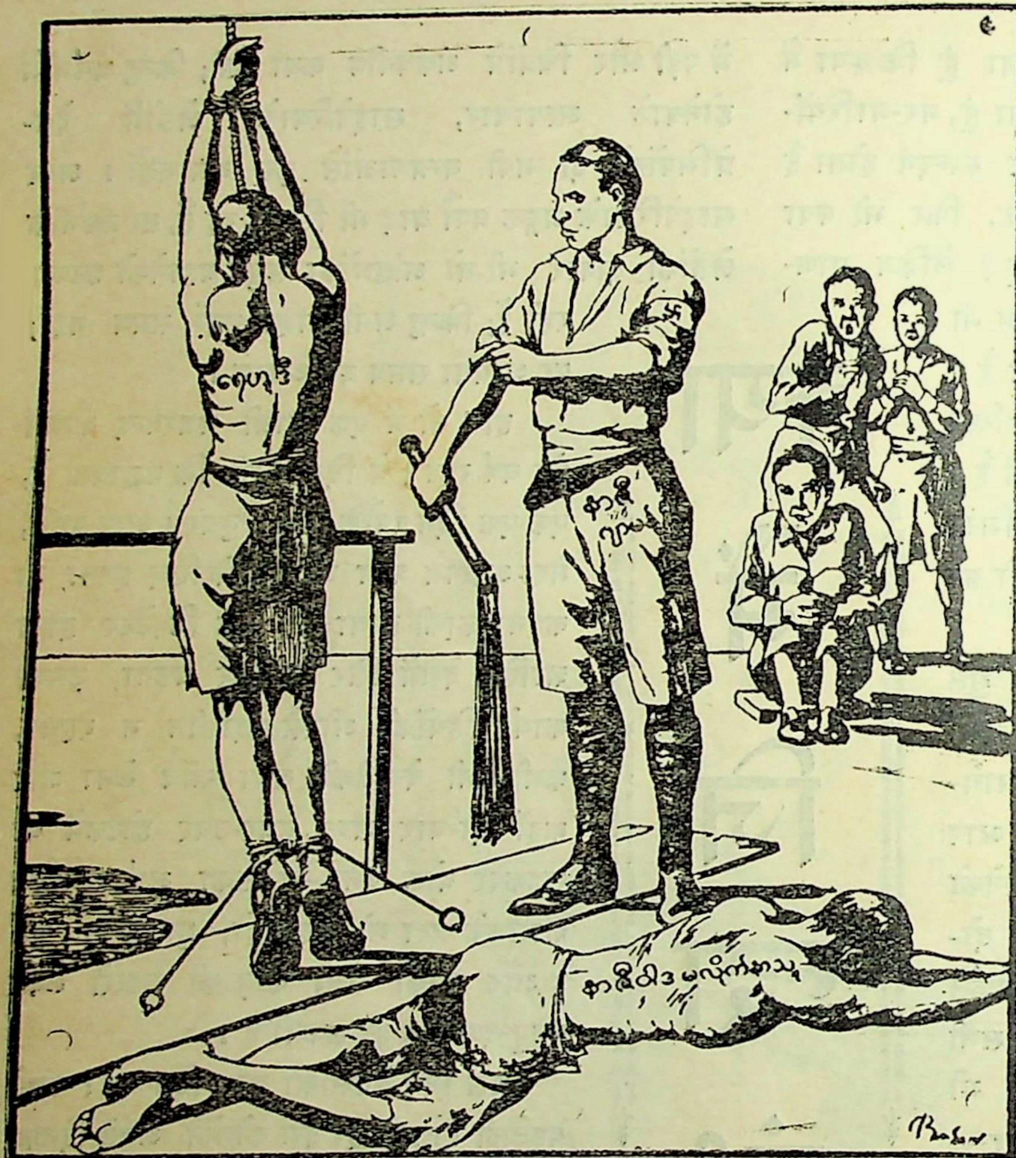
मैं नर्कको कैदसे छूटकर आज सोचता हूं कि क्या मैं जिन्दा हूं? दुनियाको चलते-फिरते देखता हूं, नर-नारियोंको बोलते-गाते सुनता हूं, हृदयके भीतर स्पन्दन होता है और नाड़ी भी टिक-टिककर चल रही है, फिर भी क्या यह सम्भव हो सकता है कि मैं जिन्दा हूं? लेकिन प्राण-प्यारी डेल्सी तो मुझे पुकार रही है! जिम भी तो अपने अभागे मालिकको पुकार रहा है! तो मैं जिन्दा—अवश्य जिन्दा हूं। आखिर मरण-जीवन तो उस परम पिताके हाथोंमें है। कोई प्रकृतिकी देनको यों ही किस तरह मिटा सकेगा। भले ही वह मार्शल गोयरिङ्ग हो या उसका साथी हर हिटलर।

आप शायद यह सोच रहे होंगे कि मुझे अपने अस्तित्व, जिन्दा रहनेपर सन्देह क्यों हो रहा है। पर आपने किसी मेरे जैसे अभागेकी दर्द-भरी दास्तां सुनी होगी, तो आप आश्चर्य न करेंगे, पर ऐसी कथा आपको सुननेको मिल ही कैसे सकती है; क्योंकि सौमेंसे दो-चार ही तो जिन्दा निकल पाते हैं उस नर्कसे और जो निकले भी, तो एक दोको छोड़ सभी पागल रहते हैं। आखिर सहनशीलताकी भी तो एक हद होती है, और जैसे अत्याचार—भयङ्कर अत्याचार उस नर्कमें किये जाते हैं, वे पुराने जमानेके कुछ पागल और जिद्दी शासकोंकी कथा पढ़नेपर ही आप जान सकेंगे—ऐसे हैं वे सभ्यता—बीसवीं सदीकी सभ्यताको, मानवताको, धर्म-कर्मको, युगोंसे चली आनेवाली दया, करुणा और प्रेमको पैरों-तले रौंदकर अट्टहास करते हुए जर्मनीके वक्षस्थलपर इधर-उधर बिखरे हुए सैकड़ों नाजी नजरबन्द कैम्प।

आपने रूसकी जारशाहीके समयमें शासनको कायम रखनेके लिए स्वतन्त्रता, गणतन्त्र, देश, स्वाभिमान और मां-बहनोंकी आबरूके प्रेमियोंपर टूटनेवाले अत्याचारके पहाड़ोंकी कहानी भर्राये गलेसे सुनी, दिल थामकर पुस्तकोंमें पढ़ी और चित्रोंमें अकथनीय कथा देखी; किन्तु जर्मनीमें होनेवाले अत्याचार, साइबेरियाके जेलोंमें देश-प्रेमियोंको दी गयी यन्त्रणाओंसे कुछ कम नहीं। अगर साइबेरियाके जङ्गल वर्षों बाद भी सिसक रहे हैं, तो जर्मनीके जेलोंकी दीवारें भी तो आंसुओंका समुद्र बहानेको छटपटा रही हैं; किन्तु अभी आज्ञा नहीं, समय नहीं; पर आयेगा समय वह अवश्य।

हां! तो मैं एक नाजी नजरबन्द कैम्पमें डेढ़ वर्ष रहा। वे दिन, जैसी कि कहावत है, एक-एक दिन वर्षोंके समान गुजरे। आप पूछेंगे, मेरा अपराध क्या था। उसके लिए इतना ही कहना काफी होगा कि एक डिक्टेटर द्वारा शासित देशमें सिर उठाकर चलना, उसकी कार्यवाहियोंकी ओरसे उदासीन न रहना, कभी-कभी बेबसीकी सांस खींच लेना और कहीं दो-चार शब्द इधर-उधर होटलमें या सड़कपर बोल देना—जिसका अर्थ प्रचलित शासनके जरा भी विरुद्ध हो, गुनाह है, जुर्म है और उसकी सजा कोड़ोंकी मारसे लेकर मृत्यु-दण्ड तक हो सकती है।

उस दिन डेल्सीका जन्म-दिन था। उससे पहलेकी रातको ही हम लोगोंने अगले दिनका सारा प्रोग्राम बना डाला था। सवेरा होते ही हम, डेल्सी, पड़ोसी विली और उसकी स्त्री पिकनिकके लिए स्नान-ध्यानकर चल पड़े थे। विली और उसकी स्त्रीके विचार हम लोगोंसे मेल खाते थे। हम सब चले जा रहे थे, गप्पें लड़ाते, ठहाका मारते हुए। जिम मुझसे नाराज था, क्योंकि पिछली सन्ध्याको जब हम लोग होटलमें सुरापान कर रहे थे, तब मैंने प्रसन्नताके आवेगमें कहा था—"विली! कल मेरी प्यारी डेल्सीकी वर्षगांठ है। कल हम खूब खुशियां मनायेंगे, चमचमाता सूर्य भी हमारी खुशीको देख सन्ध्या समय मुंह काला कर अन्धकारके पर्देमें छिप जायगा। हिटलरकी तानाशाही भी हमारे इस



गेस्टापोके कार्यालयमें कोड़ोंकी मार।

आनन्दमें बाधा नहीं डाल सकेगी।" बस, इसी अन्तिम वाक्यपर विली मुझसे रूठा हुआ था, क्योंकि उसे यह पसन्द न था कि होटलोंमें, जहां गेस्टापोका जाल बिछा हो, इस प्रकारकी बातें बकी जायें। किन्तु मैं तो विलीकी भांति झकी था नहीं। बड़ी रात तक हम इस उद्यानसे उस उद्यान, इस होटलसे उस होटलमें घूमते रहे। रातको हम गीतोंकी अधूरी पंक्तियां गुनगुनाते हुए अपने दरवाजेपर पहुंचे और अपने पड़ोसीसे विदाई लेकर कमरेकी ओर चल पड़े। कमरेका ताला खोलते ही जो दृश्य दिखाई पड़ा, उससे एकदम हृदयपर धक्का-सा लगा और मैंने घबड़ायी हुई हेलसीको पुचकारते हुए बैठनेको कहा और विलीको बुलानेके लिए चल पड़ा। सीढ़ियोंपर धड़ाधड़ उतरते हुए सोचता जा रहा था, आखिर वही हुआ, जिससे विली घबड़ा रहा था, पता नहीं, कैसे गेस्टापोके लोगोंको मेरे मकानका पता चल गया और किस तरह उन लोगोंने कमरा खोल कोने-कोनेकी तलाशी ली, यहां तक कि सारे सोफों और कोचके कपड़े भी उन लोगोंने उधेड़ दिये, फाड़कर चिथड़े-चिथड़े कर डाले। मैं यह सोचते हुए ज्योंही अपने मकानके फाटकसे बाहर होनेको हुआ, कि चार हट्टे-कट्टे लोगोंने "राजद्रोही" कहकर तुरन्त हथकड़ी लगा दी और एक मिनटका समय दिये बिना ही ले चले।

ज्योंही हमारी मोटर विलीकी दुकानके समीप आयी, मैं जोरोंसे चिल्ला पड़ा—"या ईश्वर, निरपराधोंको भी सजा मिलती है क्या?" भाग्यवश भीड़के कारण हमारी गाड़ी रुकी और विली, जो खिड़कीपर ही खड़ा शायद शराबका नशा हल्का कर रहा था, मेरी करुण पुकार सुन गाड़ीकी ओर आकर्षित हुआ और मुझे पहचान गया। उस समय उसने न तो मुझे पुकारा ही और न चेहरेपर ही कुछ भाव आने दिये। मैं बड़ा चकराया और पीछे बराबर सोचता रहा कि क्या विलीने डरके मारे मुझसे बात तक करनी पसन्द नहीं की। किन्तु उसका रहस्य-भेद पीछे चलकर हुआ, जब विलीने मुझसे बताया कि अगर वह उस समय मुझसे बातें करने लगता तो मेरे साथ ही उसे भी चल देना पड़ता और हमारी और उसकी पत्नियोंको यह भी पता नहीं चलता कि हमारे पतिदेव गये तो कहां गये; क्योंकि गायब हुए लोगोंका पता लगा लेना डिक्टेटरी शासनके खिलाफ था। मैंने विलीकी बुद्धिको बहुत सराहा, क्योंकि अगर वह भी मेरे साथ पकड़ लिया जाता, तो स्त्रियां भूखों मर जातीं।

गेस्टापोके वे सिपाही मुझे अपने दफ्तरमें ले गये, जहां एकके बाद दूसरे अफसरोंके पास मुझे ले जाया गया

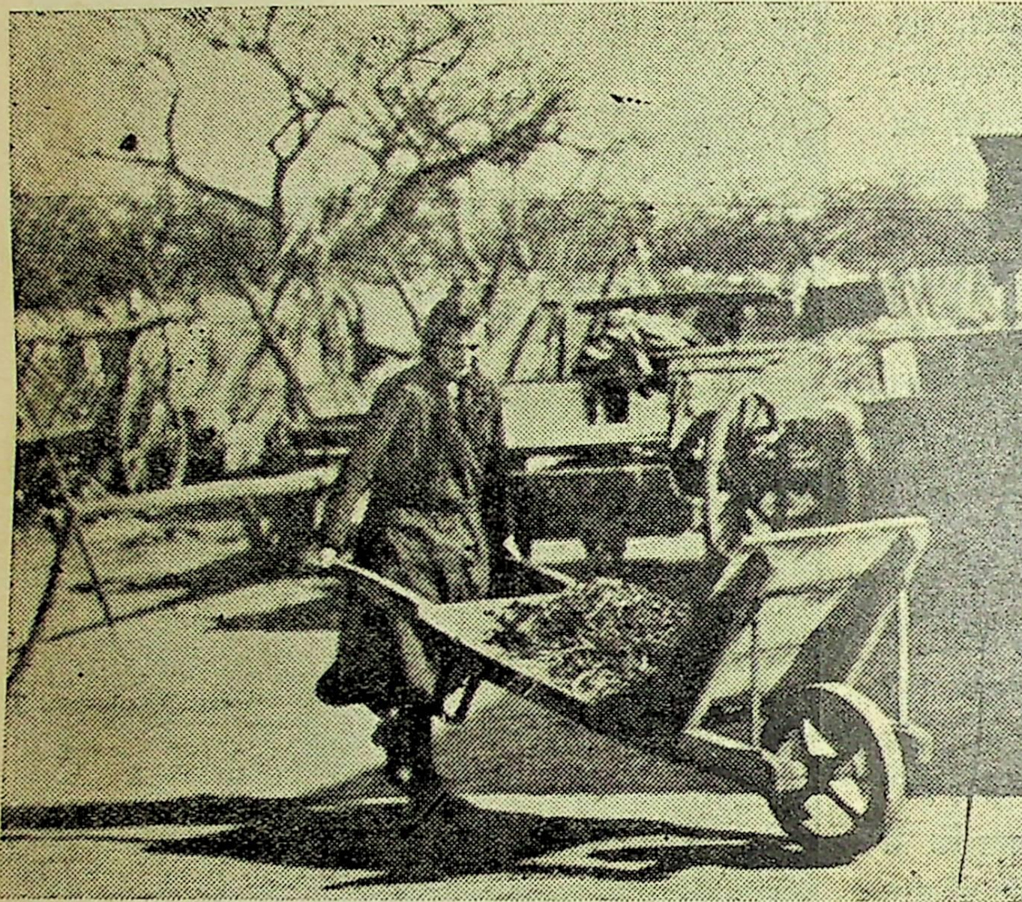
और अन्तमें मैं सबसे बड़े अफसरके सामने पहुंचा। मुझ उस समय बड़ा आश्चर्य हुआ, जब उसने बड़े प्रेमके साथ अपने सामने पड़ी आराम-कुर्सीपर बैठाया एवं शरबत और सिगरेट भेंट किया। किन्तु इस प्रेम और नम्रताके कारणका मुझ बहुत शीघ्र पता चल गया, जब वह मेरी बगलमें मेजपर बैठ गया और तरह-तरहके लोभ देकर पूछने लगा कि मैं किस गुप्त पार्टीका सदस्य हूं एवं उसका कौन नेता है, कौन-कौन सदस्य हैं एवं आफिस कहां है। मैंने साफ 'न' कह दिया, और मैं कह ही क्या सकता था? न तो मैं ऐसी किसी गुप्त पार्टीका सदस्य ही था और न कोई जानकारी ही रखता था। उसने फिर मुझसे चुपचाप बता देनेको कहा, किन्तु मैं एकदम चुप ही रहा। अफसरने न जाने क्या इशारा किया कि सिपाही मुझे पकड़कर बगलके एक कमरेमें ले गये, जहां दरवाजा खोलते ही ऐसा दृश्य दिखाई दिया कि मालूम पड़ा कि मैं बेहोश हो रहा हूं। कमरेके फर्शपर दो-तीन आदमी नङ्गे पड़े थे, देहोंपर जिनके काले-काले दाग पड़े थे, जगह-जगहसे खून भी टपक रहा था, पसीनेसे सारी देह नहायी हुई थी, फिर भी चेहरेपर बड़ी दृढ़ता थी और बीच-बीचमें दांत पीसनेके सिवाय कोई 'उफ' भी नहीं कर रहा था। इतनेमें दो सिपाहियोंने कुत्तेके पिल्लेकी नाईं एकको उठाया, लम्बी आरामकुर्सीपर उलटा बैठाकर हाथ-पैर बांध दिये और फिर मेरी आंखोंके सामने निरन्तर रूपसे चलने लगी कोड़ोंकी मार। मुझसे ज्यादा नहीं देखा गया और मैंने अपने रक्षकोंसे वहांसे ले चलनेकी प्रार्थना की और मैं फिर बड़े अफसरके पास ले जाया गया, जो मूछोंपर ताव देता मुस्कराता हुआ अपनी टेबुलके पास बैठा था। उसने कहा—"क्यों जनाब, अब तो आप बतायेंगे?" मैंने हाथ जोड़कर कहा (जिसके लिए पीछेसे मैं पछताया)—"मैं कुछ नहीं जानता। और जो शासनके विरुद्ध बोलनेका अपराध हो गया है, उसके लिए क्षमा चाहता हूं।"



महिलायें भी कोड़ोंकी मारसे नहीं बचतीं।

थोड़ी देर अफसरने बता देनेके लिए और समझाया, फिर कपड़े उतरवाकर उसी कमरेमें भिजवा दिया, जहां मैं भयङ्कर अत्याचार होते हुए देख आया था। फिर क्या हुआ, क्या बताऊं। जब दूसरे दिन मेरी आंखें खुलीं, तो मुझे सिर्फ इतना याद आया कि रातभर पानीमें भींगे कोड़े देहपर पड़ते रहे और बीच-बीचमें 'बताओ' 'बताओ' कोई बोलता रहा था।

इस समय ज्यों ही मैंने करवट लेना चाहा, त्यों ही ऐसा मालूम पड़ा कि सारे शरीरमें बिजलीका भयङ्कर धक्का लगा है। बड़ी कठिनाईसे जब देहपर हाथ फेरा, तो मालूम हुआ कि अङ्ग-अङ्ग सूजा, कटा और दुख रहा है। मैं फिर बेहोश हो गया। थोड़ी देर बाद चार-पांच सिपाही आये और आया उनके साथ जल्लाद अफसर। फिर 'बताओ' और 'मैं कुछ नहीं जानता'का क्रम चला और अन्तमें अपने जूतेसे



कल जिनके पैर मखमलपर फिसलते थे, वे ही आज नाजी नजरबन्द कम्पोंमें घोड़ेकी लीद उठाती फिर रही हैं।

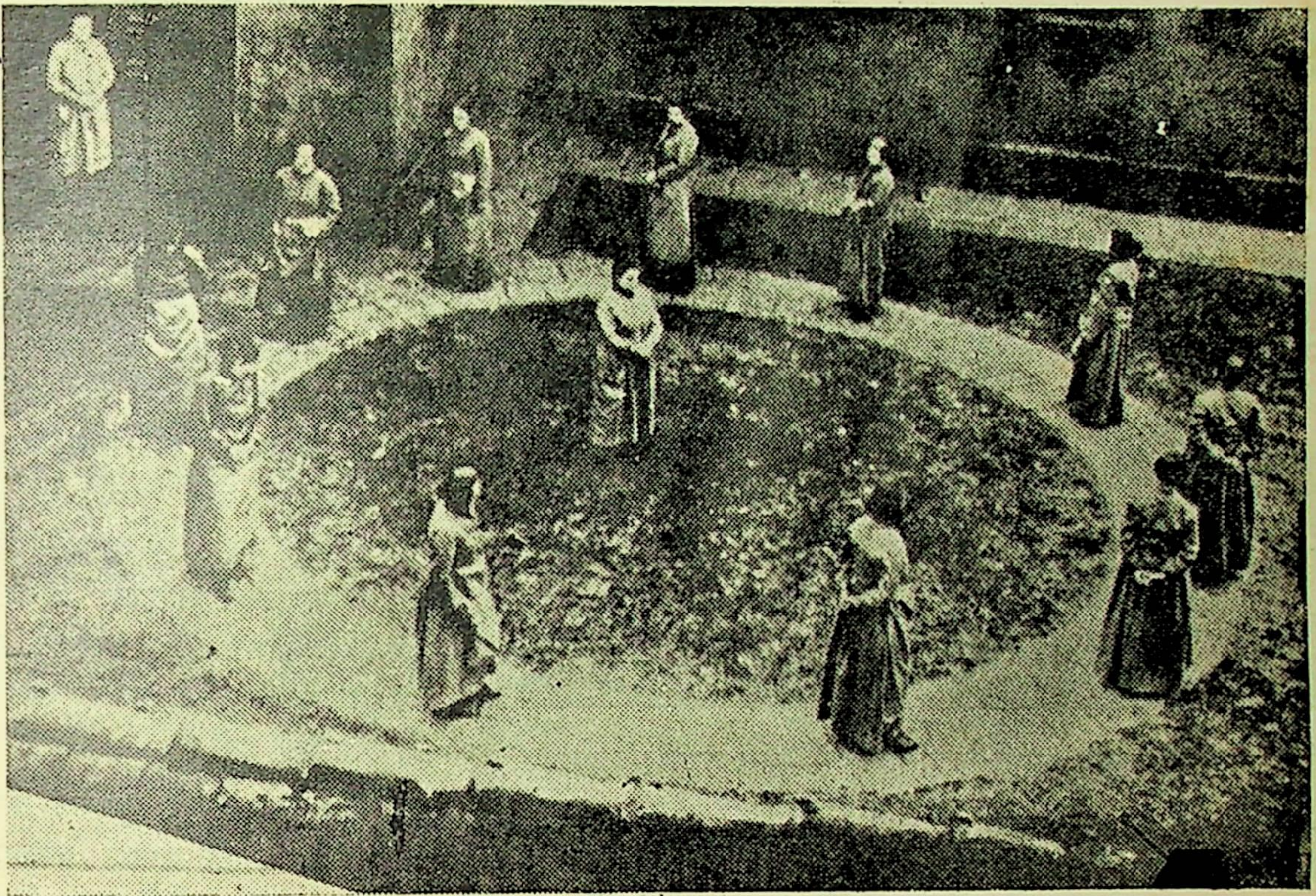
दोनों ओर दोतल्ला रैक बने थे। ऊपरके रैकमें भी कैदी रहते थे और नीचेके रैकमें भी। हालके बीचोंबीच एक बड़ी पुरानी टेबुल थी और उसके चारों ओर स्टूल लगे थे। एक ओर पत्थरका एक हौज बना था पानी पीनेके लिए, जैसा कि अक्सर पशुओंके लिए सड़कोंपर बना होता है। सबेरे ५॥ बजे ही उठनेके लिए घण्टी बज जाती। घण्टी बजते ही तीन मिनटके भीतर कैदियोंको लाइन-में हालमें खड़ा हो जाना पड़ता। जरा भी चूक होते ही डण्डोंकी मार पड़ती। फिर हम लोग सिपाहियोंकी देख-रेखमें पन्द्रह मिनटमें ही नित्यकर्मसे छुट्टी पाते। पन्द्रह मिटमें जलपान होता। बीस-पचीस मिनट तक व्यायाम करना होता। बूढ़ोंको भी घोड़ोंकी तरह दौड़ना पड़ता,

ठोकर मार वह कुछ आदेश दे चलता बना। सिपाहियोंने घसीटना शुरू किया दरवाजेकी ओर। उस वक्त जो भीषण यन्त्रणा मुझे हो रही थी, उसका स्मरण कर आज भी कांप उठता हूं। ऐसा लगता था कि प्राण अब निकले, तब निकले। घसीटकर उन लोगोंने मुझ बाहर डाल दिया और एक काले रङ्गकी मोटरपर लदवाकर ले चले। गाड़ी बड़ी देर तक चलती रही, और जब गड्ढेमें पड़ जाती, तो 'हृतन्त्रीके तार' हिल जाते।

खैर! कहां तक सुनाऊं आपको अपनी दर्द-भरी गाथा? मैं एक गांवमें स्थित नजरबन्द कैम्पमें पहुंचाया गया और फिर प्रश्नोत्तरके उपरान्त गन्दे और आकारमें छोटे, कैदीके कपड़े पहन अपने दरबेमें जा पहुंचा। संसारके किसी भी कैदखानेमें कैदियोंके रहनेका ऐसा विचित्र प्रबन्ध न होगा, जैसा कि वहां देखा। छोटे कमरेकी तो बात ही क्या, वहां तो कैदी ऐसे रह रहे थे, जैसे बनमानुष। एक बड़े हालमें

उछलना पड़ता। इस तरह एक घण्टेमें हम लोग खेतोंपर पहुंचा दिये जाते।

खेतपर फसल काटने या बीज बोनेका कार्य तो उन्हींको मिलता है, जिन्होंने कि वार्डरों और सुपरिण्टेण्डेण्टोंकी मुट्ठी गर्म की हो, अन्यथा अन्य लोगोंको तो दिनभर पथरीली जमीनको समतल बनानेके लिए कुदाल चलाना पड़ता था। यह कार्य दिनके बारह बजे तक करना होता था, चाहे कड़ी धूप पड़ती हो या बर्फकी बौछार हो रही हो। राम-राम करते हुए बारह बजते और हम लोग दिनका खाना खानेके लिए फिर हालमें जाते। चार-चार रोटियां और कभी मांस या तरकारीका रसा मिल जाता। थोड़ा चावल भी मिलता, जिसमें कङ्कड़ और कीड़े भरे होते। आध घण्टा गप्पें लड़ाकर हम फिर खेतोंपर पहुंच जाते, जहां शाम तक काम करना होता। रातको खा-पीकर हम सो जाते। कहां जिन्दगीमें मैंने कभी कुदाली चलायी ही नहीं थी और



विश्रामके समय भी घेरेमें चक्कर मारते रहना पड़ता है।

कहां यहां दिनभर पत्थर और कङ्कड़ तोड़ने और फेंकने पड़ते। यह कार्य केवल मैं ही नहीं, बल्कि कई बड़े-बड़े वैज्ञानिक और विद्वान् भी करते थे। दोनों हाथ काले पड़ गये थे, पहले तो दोनों हाथोंमें फफोले उठे थे; किन्तु दवाईके अभावमें फूट गये और खून मालूम होता है विषाक्त हो गया।

इस कैदखानेमें मेरे आनेके डेढ़ सप्ताह बाद विली भी आ पहुंचा। मेरे पीछे उसपर भी मुसीबत आयी। तीन-चार दिनों तक तो वार्डरोंके मारे बातचीत करनेका मौका नहीं मिला, फिर एक रात विली अपने बिस्तरेपर कम्बलको ऐसा मोड़कर कि वार्डर कैदीको सोया हुआ ही समझें, मेरे बिस्तरेमें आ घुसा। उस रात दो घण्टेतक बातें हुई। विलीसे ही मालूम हुआ कि गेस्टापोवालोंने मेरी तरह उसपर भी अत्याचार किया और बार-बार उसे प्रलोभन दिया कि वह यह कह दे कि मैंने ही विलीको एवं अन्य लोगोंको गैर-कानूनी कार्य करनेके लिए भड़काया है, तो उसे मुक्त कर दिया जायगा; पर भला विलीको यह क्योंकर स्वीकार होता। उससे ही यह भी मालूम हुआ कि डेल्सी निरापद है एवं दिन-रात मेरी मुक्तिके लिए प्रयत्न कर रही है। यह सुनकर मैं मुस्करा पड़ा, क्योंकि मैं जानता था कि यह सम्भव नहीं। विलीने बताया कि डेल्सीने जेल विभागके अफसरको एक मोटी रकम देकर मुझसे इण्टरव्यू करनेकी इजाजत प्राप्त की है।

विलीको अपने साथ पाकर दुःख भी हुआ और सन्तोष भी। दुःख इसलिए कि हमारी घरवालियां अकेले पड़ गयीं और सुख इसलिए कि जब कुदाल और फावड़े चलाते-चलाते देह पसीने-पसीने हो जाती या कभी किसीको चोट लग जाती, तो हम एक-दूसरेके लिए आंखों ही आंखोंमें सहानुभूति प्रकट करते और फिर हंसते हुए पुनः कामपर लग जाते। इस तरह एक-दूसरेको संभालते हुए बिताने लगे हम भयङ्कर कष्टके दिन।

एक दिन डेल्सी और विलीकी स्त्री हम लोगोंसे मिलने आयीं। अभी तक मैंने कैदियोंको अपने सम्बन्धियोंसे मिलते



पेड़ लगाये, सींचे और उसकी रखवाली करें ये, और आनन्द उठाते हैं कैम्पोंके जल्लाद वार्डर।

था। उस कमरेमें कोई आठ-दस नर-नारी अपने सम्बन्धियोंसे मिलनेको आये हुए थे एवं सबोंके जोरोंसे बातें करनेके कारण हालमें अजीब शोरगुल मचा था। मैंने डेल्सीसे जानेके लिए कहा, क्योंकि प्रत्येक क्षण बड़ा अपमानजनक प्रतीत हो रहा था। डेल्सीने चलते-चलते बताया कि हमारी मुक्तिके लिए उसको आधी सफलता मिल गयी है। मैंने उससे कह दिया कि विलीकी मुक्तिके लिए भी कोशिश करे, क्योंकि अगर रहेंगे तो दोनों ही, और छूटेंगे, तो साथ ही साथ। उसने मञ्जूर किया और बिना विदाईका चुम्बन लिये या हाथ मिलाये ही उसे मुझे विदा करना पड़ा। विलीकी स्त्रीसे भी मैंने सान्त्वनाके रूपमें एक-दो शब्द कहे और वे लोग चली गयीं।

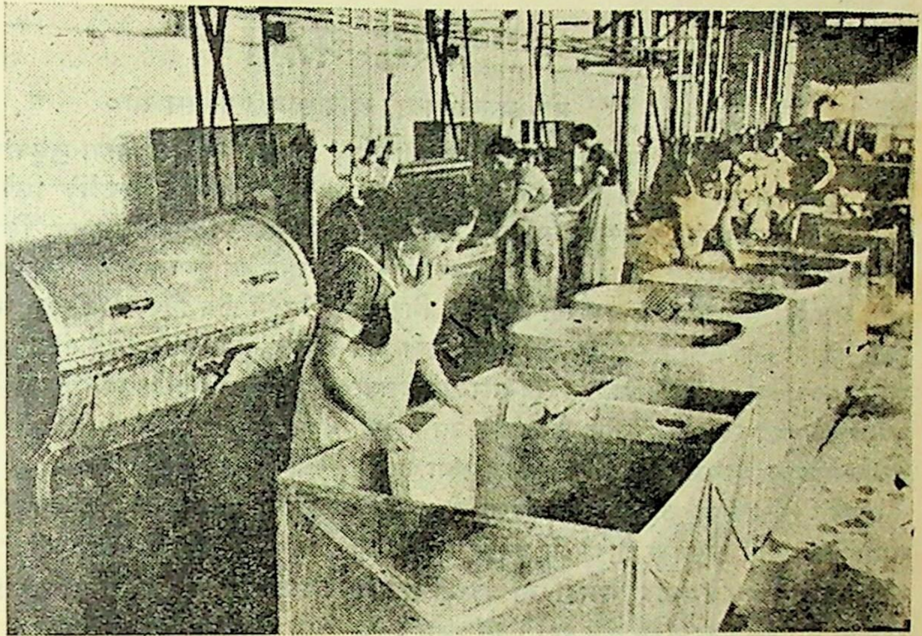
एक रात एक कैदीने चुपचाप कैम्पसे भाग निकलनेका प्रयत्न किया, किन्तु बाहर निकलते ही गोलीसे मार दिया गया। हमारे कमरेमें बहुत दिनोंसे रहनेवाले एक कैदीने बताया कि गेस्टापोके बहुत-से लोग कैदियोंमें मिले रहते हैं और इसी तरहके किसी भेदियेको उस भगोड़ेके मन्सूबेका पता चल गया होगा और गेस्टापोके आदमियोंने कैदीको भागनेके पहले पकड़ लेनेके बदले उसके दुस्साहसपर मार देना ही अच्छा समझा। ओफ! कितनी भीषण शासन-लोलुपता है। मैं दो बार बीमार पड़ा, किन्तु डेल्सीके भाग्यसे अच्छा हुआ। दवादारूका तो कुछ प्रबन्ध था नहीं; पर फावड़ा चलानेसे कुछ देरके लिए छुट्टी मिलनेसे ही काफी आराम हुआ। आराम मैं दो दिनोंसे ज्यादा नहीं कर सका और तीसरे ही दिनसे हलका बुखार होते हुए भी मुझे फिर कामपर जाना पड़ा। विलीने बहुत कोशिश की कि वह मेरे पास बीमारीके समय रहे, किन्तु मैं अकेला ही एक सेलमें बन्द कर दिया गया, जहां अगर प्राण भी छूट जाते, तो जल्दी किसीको पता नहीं चलता।

दो महीने बाद डेल्सी फिर मिलने आयी; किन्तु मैंने मिलनेसे इनकार कर दिया। पर उसने वार्डरको कुछ घूस

नहीं देखा था, अन्यथा डेल्सीसे मिलनेकी बात उठनेपर साफ इनकार कर देता। हम लोगोंको बुलानेके लिए जो वार्डर आया था, उसने बड़े गन्दे ढङ्गसे बताया कि हमारी स्त्रियां मिलनेको आयी हुई हैं। इच्छा तो हुई कि गला दबा दें; किन्तु अपने रामको यह मञ्जूर न था कि हमारी बोटियां गिद्ध और कुत्ते खायें। एक कमरेमें लम्बी टेबुल लगी हुई थी और उसके दोनों ओर स्टूल पड़े थे। पचीसों वार्डर इधर-उधर घूम रहे थे। ज्योंही डेल्सीने मुझे देखा, मुझसे आलिङ्गन करनेके लिए बड़ी तेजीसे आगे बढ़ी और मैं भी लपका, किन्तु तुरन्त दो सिपाहियोंने मुझे और डेल्सीको पकड़ लिया और कहा "यह नियम नहीं है। चुपचाप स्टूलपर जाकर बैठो और जोरोंसे बातें करो, जिससे हम लोग भी सुन सकें। एक-दूसरेको स्पर्श भी नहीं कर सकते।"

हम लोग मन मारे स्टूलपर बैठ गये। डेल्सी इधर-उधरकी बातें करने लगी और दो वार्डर बगलमें खड़े रहे। जहां उसका स्वर धीमा पड़ता, वहीं एक वार्डर अपना बेंत मेजपर जोरोंसे पटक देता और कहता-"जोरसे बोलो।" बीच, बीचमें वार्डर बेहूदे ढङ्गसे मुंह भी बनाते, किन्तु अपमान बर्दाश्त करनेके सिवाय हमारे सामने कोई उपाय भी तो नहीं

देकर मुझे कहलवा भेजा कि उसे बहुत जरूरी बातें करनी हैं और अगर मैं नहीं मिलूंगा, तो वह प्राण त्याग देगी। पहले तो मैं फिर भी तैयार नहीं हो रहा था, क्योंकि इण्टरव्यू करनेके समय किया जानेवाला अपमान मुझे बर्दाश्त नहीं था, किन्तु विलीने आंखसे जानेके लिए इशारा किया और मैं डेल्सीसे मुलाकात करनेको राजी हो गया।



दिन-रात काम, और पुरस्कारमें डांट-फटकार और अत्याचार।

उस दिन मुलाकातके समय वार्डरोंने तङ्ग न किया, मालूम होता है कि उनकी पाकेटें भी गरम हो गयी थीं। डेल्सीने संक्षिप्तमें बतला दिया कि उसको सफलता मिल गयी है और मैं और विली दो दिनों बाद अमावस्यावाली रातको कैदसे बाहर हो जायेंगे। किस तरह क्या करना होगा, यह भी मुझे बता दिया गया। पहले तो मैंने चुपचाप निकल भागनेसे इनकार कर दिया, क्योंकि एक तो इस तरह मुक्ति पाना मुझे कायरता जंची और दूसरे उस भगोड़े कैदीकी दशाका ख्याल कर हिम्मत भी जवाब दे रही थी; पर डेल्सीका उदास मुख देख और उसके अथक परिश्रमको याद कर मैंने अन्तमें स्वीकार कर लिया। रातको विली मेरे बिस्तरेपर आ गया, और मैंने उसे भी सारी बातें बता दीं।

अमावस्याकी घोर अंधेरी रात आयी। मैंने और विलीने कय करना आरम्भ कर दिया। हम लोग अस्पतालकी ओर रवाना किये गये। रास्तेमें ही तैयार खड़ी मोटरपर सवार हो पचास-साठकी स्पीडसे भाग चले और रक्षकोंने गाड़ीसे उतारे हुए दो भिखमङ्गोंकी लाशोंको अस्पताल पहुंचाया। डेल्सीको इस प्रयत्नमें घोर अपमान सहने पड़े, सारे जेवर और आधी जायदाद बेच देनी पड़ी। पर हम लोग उस नरकसे निकल आये और यह डेल्सी और विलीकी स्त्रीके लिए अपने जेवरों और जायदादके बिकनेसे उत्पन्न दुःखसे कहीं ज्यादा हार्दिक प्रसन्नता हुई। आज मैं घरपर छोटा-मोटा व्यापार करता हुआ नजरबन्द कैम्पोंमें सड़ रहे लोगोंके परिवारकी यथाशक्ति सहायता करता रहता हूं। जब भी उस नरककी—वहांपर होनेवाले अत्याचारोंकी याद आ जाती है, तो रोमाञ्च हो उठता है और मैं सोचता हूं—"क्या मैं जिन्दा हूं ?"



रेड क्रास

प्रो० भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम०एस सी०

आजसे ७६ वर्ष पूर्व जून १८५९ में जिनेवाका एक बैङ्कर, अपनी इमारत बनानेकी एक स्कीमके लिए आज्ञा प्राप्त करनेके लिए आस्ट्रियाके बादशाहसे मिलनेको सालफरिनोके युद्धस्थलपर गया था, जहां आस्ट्रियाकी फौजें इटली और फ्रान्सकी फौजोंसे जूझ रही थीं। यह निहायत विकट युद्ध था—पानीकी भांति खून बहाया जा रहा था। यह नवयुवक बैङ्कर हेनरी डुनाण्ट इस खून-खराबीको देखकर एकदम हक्का-बक्का रह गया। उसने देखा कि उस मैदानमें सैनिक बिलकुल पागलोंकी तरह एक-दूसरेकी हत्या कर रहे थे। घायल सैनिकोंकी तो और भी दुर्दशा थी। उनके साथियोंको इतनी फुर्सत न थी, जो वे उनकी मरहम-पट्टी करते। मुर्दोंके बीच ये घायल सिपाही भी पड़े-पड़े कराहते रहने या प्यासकी शिद्दतसे दम तोड़ बैठते। इस प्रकार अनेक घायल सैनिक, जो तनिक-सी मरहम-पट्टी कर देनेपर भले-चङ्गे हो सकते थे, व्यर्थमें मौतकी भेंट हुए। रास्ता साफ करनेकी गर्जसे घायलोंको उठा-उठाकर एक किनारे उनका ढेर लगा देते। अक्सर तो बुरी तरहसे घायल हुए व्यक्तियोंको जिन्दा ही कब्रमें डाल देते कि उनकी देख-भालका झञ्झट कौन सिरपर ले।

हेनरी डुनाण्टसे यह हद दर्जेकी बेरहमी न देखी गयी। उसने जब देखा कि सैनिक शत्रु-पक्षके कैदी घायल सिपाहियोंके प्रति घृणा प्रदर्शन करते हैं तथा उन्हें पैरोंसे ठोकरें लगाते हैं, तो उससे रहा न गया—वह चिल्ला उठा—"अरे हृदयहीनो! यह तुम क्या कर रहे हो, ये भी तुम्हारे भाई हैं, अब ये तुम्हारे दुश्मन नहीं रहे।"

हेनरी डुनाण्ट भूल गया कि वह किस प्रयोजनसे इतनी दूर आया था। उसके सामने बस अकेली एक समस्या थी—उन अभागोंका दुःख-दर्द कैसे कम किया जाय? उसी क्षणसे उसके सिरपर एक जुनूं-सा चढ़ गया।

पास ही एक गिर्जाघर था, उसने उसे ही अस्थायी अस्पताल बनाया और आसपासके कस्बोंसे विनती और मिन्नत करके कुछ नर्सें बुला लाया। दिन-रात लगकर उसने घायल सैनिकोंकी सेवा-शुश्रूषाका प्रबन्ध किया। किसी किसानके यहांसे घायलोंके लिए दूध मांग लाया, तो किसीके यहांसे बिस्कुट। डाक्टर, किसान, व्यापारी हर तबकेसे उसने इस पुण्य-कार्यके लिए स्वयंसेवक बनाये। इस सिलसिलेमें तीन दिन, तीन रात वह इधरसे उधर डोलता ही रहा—एक क्षणके लिए भी उसकी आंखें नहीं झपीं।

उसने युद्ध-स्थलमें घायलोंकी सेवा करनेके लिए एक स्वयंसेवकोंकी टुकड़ी भी बनायी। स्वयं वह तथा उसके साथी जी तोड़कर घायलोंकी सेवा करते। रातको वह चिट्ठियां और लेख लिखकर युद्धस्थलका आंखों देखा वर्णन पेरिस और जिनीवाके समाचारपत्रोंको भेजता, ताकि जनता इस बातको महसूस कर सके कि युद्धस्थलमें घायल हुए सैनिकोंकी कितनी दुर्दशा हो रही है। उसकी अपीलपर जनताने पट्टियां, मरहम, दवाइयां तथा अस्पतालके अन्य सामान इकट्ठे करके हेनरी डुनाण्टके पास भेजे।

स्विजरलैण्ड लौटनेपर कुछ ही दिनों बाद हेनरी डुनाण्टने सालफरिनो-युद्धके बारेमें अपने संस्मरण पुस्तक-रूपमें प्रकाशित किये। यह पुस्तक लाखोंकी संख्यामें जनताके अन्दर बिकी। लोगोंने चावके साथ युद्ध-स्थलके दृश्यके बारेमें पढ़ा। माताओंने, जिनके पुत्र युद्धस्थलसे वापस न आ सके थे, इस पुस्तकको पढ़कर सोचा कि यदि घायलोंकी सेवा-शुश्रूषाका समुचित प्रबन्ध युद्धके मैदानमें रहा होता, तो बहुत सम्भव था कि उनके पुत्र भी कालके ग्राससे बच गये होते—किन्तु वे तो खाइयोंके अन्दर ही कराह-कराहकर कदाचित् मर गये।

इसके बाद पूरे पांच वर्ष तक हेनरी डुनाण्ट अपने इस पवित्र अनुष्ठानकी पूर्तिके लिए प्रयत्नशील रहा। यूरोपके सभी देशोंमें अपने इस उद्देश्यके प्रचारार्थ वह गया, वहांके बादशाह तथा अन्य सरकारी अधिकारियों और राजनीतिज्ञोंसे उसने अपनी स्कीमके लिए सहानुभूति प्राप्त की। फलस्वरूप इस सम्बन्धमें उठे हुए अनेक प्रश्नोंपर विचार करनेके लिए १८६४ के अगस्त महीनेमें संसारके सभी देशों-

के प्रतिनिधि जिनेवामें इकट्ठे हुए और उसी समय रेड-क्रास कन्वेन्शन बना, जिसपर सभी देशोंके डेलीगेटोंने अपने-अपने हस्ताक्षर किये। सबने वादा किया कि वे अपने-अपने देशमें रेड-क्रासकी टुकड़ी बनायेंगे, जो युद्धमें घायल व्यक्तियोंकी सेवा, बिना इस बातका विचार किये हुए कि घायल व्यक्ति मित्र-पक्षका है या शत्रु-पक्षका, मनोयोगपूर्वक करेंगे।

रेड-क्रास दलकी पताका स्विजरलैण्डके राष्ट्रीय झण्डेके नमूनेपर बनायी गयी। चूंकि रेड-क्रासके निर्माणका श्रेय स्विजरलैण्डको ही प्राप्त है, अतः उसके झण्डेकी प्रतिष्ठा करना भी सबको मान्य था। धीरे-धीरे निरी उपयोगिता-के आधारपर ही अन्य देशोंने भी रेड-क्रासकी स्कीमको अपनाया। कुछ मुसलिम देशोंमें रेड क्रासके झण्डेमें लाल क्रासकी जगह लाल दूजके चन्द्रमाका निशान बनाया गया, किन्तु उद्देश्य इस संस्थाके भी वे ही थे, जो रेड क्रासके।



जेनरल गेमलिन रेडक्रासकी एक कार्यकर्त्रीको युद्ध-क्षेत्रके लिए विदा कर रहे हैं।

संसारके विभिन्न देशोंकी रेड क्रास सोसाइटीका निर्देशन जिनेवा-स्थित अन्तर्राष्ट्रीय रेड क्रास कमेटी द्वारा होता है। अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास कमेटी युद्धके उभय-पक्षमें कोई अन्तर नहीं मानती और न राजनीतिकी ही बू इसके कार्यक्रमको प्रभावित कर सकती है। अनवरत परिश्रम द्वारा रेडक्रास युद्ध-पीड़ितोंके लिए सहूलियत प्राप्त करना चाहती है। चाहे ये पीड़ित साधारण नागरिक हों या युद्धस्थलमें घायल सैनिक, या बीमार सिपाही अथवा शत्रुकी कैदमें पड़े हुए लाचार सैनिक, सबकी मुश्किलोंको दूर करनेका भरपूर प्रयत्न रेडक्रास सोसाइटी करती है।

गत महायुद्धमें रेडक्रासने अपना कार्यक्षेत्र और भी वृहत्तर बना लिया। जिनेवामें रेडक्रासके अन्तर्गत एक अन्तर्राष्ट्रीय एजेन्सी स्थापित की गयी। उसमें २००० व्यक्ति काम करते थे। इस एजेन्सीके १७ भिन्न-भिन्न विभाग थे। इस एजेन्सीका मुख्य उद्देश्य था युद्धमें शत्रुकी कैदमें पकड़े जानेवाले सैनिकोंका पता लगाना तथा उनके सम्बन्धियों तक उनकी कुशल-क्षेम पहुंचाना। यदि फौजमें गये हुए सम्बन्धीका पता-ठिकाना बहुत दिनों तक नहीं मिलता, तो लोग फौरन रेड क्रास सोसाइटीको लिखते और अपनी विस्तृत पैमाने-पर सङ्गठित कमेटियोंकी मददसे रेड-क्रास उस खोये हुए सैनिकका पता लगा लेती और अक्सर पार्सल, चिट्ठियां और मनीआर्डर भी सैनिकोंके पास भेजनेका प्रबन्ध करती और वापसीमें उनसे छोटा-मोटा सन्देश भी ले आती।

यह एजेन्सी केवल युद्ध छिड़नेपर ही कायम की जाती है; किन्तु इस विभागकी कमेटीका दफ्तर स्थायी रूपसे विला मोनियर, १२२ रू द लूसान, जिनेवामें बना हुआ है। वर्तमान युद्धके छिड़ते ही इस कमेटीने फ्रान्स, जर्मनी, इटली, इंगलैण्ड, स्वीडन, यूगोस्लोवाकिया, हालैण्ड, पुर्तगाल, पोलैण्ड, हंगरी और अमेरिका तथा रूस आदि देशोंकी गवर्नमेण्टको लिखा कि १९२९ के जिनेवा कान्फरेन्सके वादेके अनुसार वे अपने-अपने मुल्कमें युद्ध छिड़ते ही युद्धके बन्दियोंका दफ्तर खोल दें, ताकि रेडक्रासको अपनी जिम्मेदारीके निबाहनेमें आसानी हो।

ये राष्ट्रीय दफ्तर अपने देशमें आये हुए युद्ध-बन्दियोंके बारेमें सही-सही खबर दे सकते हैं। अतः उनकी रिपोर्टोंके आधारपर खोये हुए सैनिकोंका पता रेड-क्रास आसानीसे लगा सकेगी।

वर्तमान युद्ध छिड़नेके दो सप्ताहके भीतर ही ब्रिटिश रेड-

क्रास सोसाइटीके पास एक अंगरेज महिलाने इसआशयका प्रार्थनापत्र भेजा कि उसके पति महोदय जर्मनीके हैम्बर्ग नगरमें युद्ध छिड़नेके पूर्व नौकरी कर रहे थे। युद्ध छिड़ते ही कदाचित् वे नजरबन्द कर दिये गये हैं, कृपया रेड क्रास उनका पता लगाये। कई दिनों तक वह महिला अपने पतिकी खबर पानेके लिए प्रयत्नशील रही थी। तार, चिट्ठी कुछ भी जर्मनीको भेजी नहीं जा सकती थी। इंगलैण्डके वैदेशिक विभागको उस महिलाने लिखा, तो वैदेशिक विभागके आफिससे उत्तर आया कि लाचारी है, शत्रुके देशमें यहांसे किसी प्रकारकी खबर नहीं भेजी जा सकती। आखिर किसी मित्रने उस महिलाको सुझाया कि रेड-क्रासको लिखो, यह काम वही अञ्जाम दे सकती है।

अवश्य ब्रिटिश रेड क्रास स्वयं ही जर्मन रेडक्रासके पास उक्त प्रार्थनापत्र नहीं भेज सकती थी। यह प्रार्थनापत्र इंगलैण्डसे सीधा जिनेवाकी अन्तर्राष्ट्रीय कमेटीके पास भेजा गया और इस अन्तर्राष्ट्रीय कमेटीके आफिसने जर्मन रेड-क्रास सोसायटीसे पूछ-ताछ करके, उस व्यक्तिकी कुशल-क्षेमका समाचार प्राप्त करके ब्रिटेनमें उस महिलाके पास भेज दिया।

स्पेनके गृह-युद्धमें तो नागरिकोंको और भी मानसिक परेशानियोंका सामना करना पड़ा था। एक दिन गांवपर गवर्नमेण्टका कब्जा रहता, तो दूसरे दिन जेनरल फ्रेङ्कोकी फौजें वहां आ धमकतीं। नतीजा यह होता कि बाप लड़केसे अलग होता, भाई भाईसे अलग और मां बेटीसे अलग शत्रुके यहां नजरबन्द हो जाती। ऐसे अवसरपर बिछुड़े हुए लोगोंका एक दूसरेको पता देना बड़ा मुश्किल काम था; किन्तु रेड क्रासने इस कठिन भारको भी अपने कन्धोंपर उठाया। एक छोटे पैमानेपर रेड क्रासने स्वयं अपना डाक विभाग ही खड़ा कर लिया था, इसका हेड आफिस जिनेवामें था। चिट्ठियोंको स्पेनमें एक स्थानसे दूसरे स्थानको भेजना कम मुश्किल काम न था—पुल, पक्की सड़कों और रेल-मार्गोंका कोई भरोसा न था, कब कौन-सी चीज शत्रु बमसे उड़ा दे, कोई बता नहीं सकता था। पत्र, पार्सल आदि एक स्थानसे दूसरे स्थानको भेजनेका सारा भार रेड क्रासने स्वयंसेवकों और जनताके चन्देके भरोसेपर उठाया था।

वर्तमान युद्धमें भी जिनेवाकी केन्द्रीय एजेन्सीने शत्रुके मुल्कमें युद्धके कैदियों और नजरबन्दोंके पास चिट्ठियां, पार्सल और मनीआर्डर आदि भेजनेका प्रबन्ध कर रखा है। चिट्ठियोंमें केवल निजी बातें ही लिखी रहनी चाहिए, राजनीतिसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें ऐसी चिट्ठियोंमें नहीं होनी चाहिए, वरना रेड-क्रासपर नाहक राजनीतिक मामलोंमें पड़नेका अभियोग लग जायगा, और तब तमाम सरकारी सुविधायें जो रेड-क्रासको मिलती हैं, एकदम छिन जायंगी, रेड-क्रासकी समूची स्कीम भी ठण्डी हो जायगी। इस सम्भावनासे बचनेके लिए जिनेवाकी केन्द्रीय कमेटीके आफिसमें एक सेन्सर विभाग भी खोला गया है। केन्द्रीय आफिसमें बन्दियोंके पास भेजी जानेवाली डाककी यहां बारीकीसे जांच की जाती है कि कहीं जासूस लोग इस बहाने अपना मतलब तो नहीं हल कर रहे हैं। अन्तर्राष्ट्रीय आफिसमें काम करनेवाले व्यक्तियोंमेंसे कोई भी शख्स इटली, जर्मनी, फ्रान्स, पोलेण्ड या इंगलेण्डका निवासी नहीं है। आफिसके लोग ज्यादातर स्विजरलेण्डके ही रहनेवाले हैं। उन्हें इस बातकी पूरी हिदायत रहती है कि किसी भी देशके साथ वे पक्षपातपूर्ण व्यवहार न करेंगे।

पिछले यूरोपीय महायुद्धके समाप्त होनेके चन्द महीने पहले रेड-क्रासने इस क्षेत्रमें एक महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारीको पूरा किया था। बर्लिनके पास ही ४० हजार रूसी सैनिक कैम्पमें कैदीकी हैसियतसे रखे गये थे। जर्मन सरकारको स्वयं अपनी ही सेनाका भार उठाना दूभर हो रहा था, वह उनकी देखभाल क्या कर सकती थी? नतीजा यह हुआ कि रूसी सैनिक भूखकी शिद्दत और जाड़ेकी परेशानीसे बरसातके पतिङ्गोंकी भांति मरने लगे। जर्मन रेड-क्रास सोसायटीने उनकी जब यह दयनीय हालत देखी, तो फौरन् उसने परिस्थितिकी गम्भीरताको आंका और अन्तर्राष्ट्रीय कमेटीको लिखा कि यदि इन अभागे रूसी बन्दियोंकी दुर्दशा सुधारनेका शीघ्र ही प्रयत्न न किया गया, तो चन्द सप्ताहके बाद उनमेंसे एक भी जीता न बचेगा। जिनेवाकी केन्द्रीय कमेटीने विशेष प्रयत्न करके जर्मन और ब्रिटिश प्रतिनिधियोंकी एक कान्फरेन्स हालैण्डमें बुलायी और उसमें यह निश्चय हुआ कि ब्रिटेनकी जनता द्वारा दी गयी सहायता पार्सल, खाद्य-पदार्थ तथा द्रव्यके रूपमें रेडक्रासकी मार्फत जर्मनीमें बिना किसी रोक-टोकके तथा बिना रेल या डाक-भाड़के रूसी

सैनिकोंके कैम्प जेलमें भेज दी जायगी। इस सराहनीय प्रयत्नका नतीजा यह हुआ कि दो ही सप्ताहके बाद रूसी सैनिकोंकी मृत्यु-संख्या प्रति सप्ताह २०० से घटकर २० रह गयी और एक महीनेके बाद ये बन्दी पुष्टिकारक भोजन पाकर पुनः स्वास्थ्य-लाभ करके भले-चङ्गे हो गये।

जिनेवासे रेडक्रासके मुख्य प्रतिनिधि युद्धमें फंसे हुए हर देशमें भेजे गये हैं। ये लोग वहां रहकर देखते हैं कि वहांकी सरकार शत्रु-पक्षके बन्दियोंके साथ सख्तीका व्यवहार तो नहीं करती है। तथा रेड-क्रासके और दूसरे प्रोग्रामोंकी भी निगरानी ये लोग करते रहते हैं। ये लोग डाक तथा रेलके उच्च अधिकारियोंसे मिलकर इस बातका प्रबन्ध कराते हैं कि युद्धके बन्दियोंके पास बिना महसूल और किरायेके पार्सल, चिट्ठियां आदि भेजी जा सकें।

रेड क्रास कमेटीको अपनी इस बृहत् स्कीमको पूरा करनेके लिए भिन्न-भिन्न देशोंसे काफी रकम भी मिला करती है। मौजूदा युद्ध छिड़ा, फौरन् ही अमेरिकासे जिनेवाको केबुलग्राम पहुंचा कि २५ हजार डालर रेड क्रासके लिए देते हैं। स्वीडनने २००० क्रानेन, हालण्डने २००० फ्लारिन और यूगोस्लोवाकियाने ६०००० दीनार दिये। स्विजरलैण्डकी फेडरल गवर्नमेण्टने २ लाख फ्रैङ्क देनेका वादा किया। ३ सितम्बर १९३९ को युद्ध छिड़ा और २० अगस्तको रेड क्रासकी केन्द्रीय एजेन्सीका आफिस चालू हो गया। पहले सप्ताहमें १०० चिट्ठियां और दूसरे सप्ताहमें २०० चिट्ठियां भिन्न-भिन्न देशोंसे बन्दी सैनिकोंके पास भेजनेके निमित्त पहुंचीं। पोलैण्डके बन्दियोंकी पहली फिहरिस्त बर्लिनसे जिनीवाको २७ सितम्बर १९३९ को जर्मन सरकारकी ओरसे भेजी गयी थी। इस समय इस आफिसमें ५० क्लर्क काम कर रहे हैं—कोई चिट्ठियां छांटता है, तो कोई सेन्सरका काम करता है और पार्सलका लेखा रखता है। धीरे-धीरे इस आफिसका कारबार बढ़ता ही जा रहा है। गत महायुद्धके अवसरपर तो चौबीसों घण्टे इस दफ्तरमें अकेले १०० टाइपिस्ट टाइप-



रेडक्रासका कैम्प युद्ध-क्षेत्रमें।

राइटर खटखटाया करते थे। ऐसा ख्याल किया जाता है कि शीघ्र ही भिन्न-भिन्न भाषाओंके जाननेवाले व्यक्ति इस आफिसमें काम करनेके लिए बुलाये जायंगे, क्योंकि भिन्न-भिन्न देशोंसे वहांकी भाषामें लिखे हुए पत्र आदि आते ही रहते हैं। पत्र-प्रेषकको इस बातकी हिदायत कर दी जाती है कि पत्रके ऊपर वह पानेवालेका पूरा नाम तथा उसका सैनिक पद लिखे तथा स्वयं अपना भी नाम और पूरा पता हाशियेपर उसे लिखना आवश्यक होता है।

हमारे देशमें रेड क्रास सोसायटीने युद्ध छिड़ते ही प्रान्तीय रेड क्रास सोसायटियोंकी मददसे सुसङ्गठित रूपसे युद्धके घायलोंकी सेवा-शुश्रूषाके लिए सामान मुहैया करना शुरू कर दिया। स्पेन-गृहयुद्धके जमानेमें २००० रुपये भार-

तीय रेड क्रासने फ्रेञ्च रेड क्रासके पास स्पेनके शरणार्थियों-की सहायताके लिए भेजे थे। चीनकी विपद्ग्रस्त जनताकी सहायताके लिए भी १६४९ रुपये भारतीय रेड क्रासने भेजे थे।

भारतीय रेड क्रास सोसायटी प्रति वर्ष अन्तर्राष्ट्रीय रेड क्रास कमेटी जिनेवाको सदस्य होनेकी हैसियतसे एक हजार रुपये अदा करती है।

वर्तमान युद्धमें गये हुए भारतीय सैनिकोंके लिए सिग-रेट, मोजे, दस्ताने, गुलबन्द, मरहम-पट्टीका सामान, टिनमें बन्द खाद्य-सामग्री, बिस्कुट, चाय, कागज-कापियां, पेन्सिल तथा खेलका सामान, कङ्घे, दांत साफ करनेके ब्रश, तौलिया-सरीखी छोटी-छोटी, किन्तु उपयोगी वस्तुयें रेड क्रासने इकट्ठी करके कई बार भेजी हैं।

आरम्भमें रेड क्रासकी स्थापना युद्धमें घायल व्यक्तियों-की सेवाके उद्देश्यसे की गयी थी, किन्तु धीरे-धीरे इसकी उपयोगिताको जब लोगोंने महसूस किया, तो इसका कार्य-क्षेत्र भी वृहत्तर हो गया। शान्तिके दिनोंमें भी रेड क्रासने तरह-तरहकी जिम्मेदारियां अपने ऊपर लेनी शुरू कीं। कहीं-पर बाढ़की विपदा आयी, तो रेड क्रासने बाढ़-पीड़ितोंकी भरपूर सहायता की; फिर कहीं विशूचिकाका प्रकोप हुआ या प्लेग फैला, तो रेड क्रास वहां धन-जनसे सहायता करने-को तैयार रहेगी। देशके अन्य भागोंसे चन्दे वसूल कर इन विपद्ग्रस्त व्यक्तियोंको हर तरहकी मदद पहुंचायेगी। स्कूलों-में जूनियर रेड क्रास सोसायटियां द्वारा बच्चोंको जनताकी सेवा करनेका अभ्यास कराया जाता है।

वैज्ञानिक आविष्कारोंकी संहार-लीलाके कारण आधु-निक युगके युद्ध पहलेसे अत्यन्त ही अधिक भयानक हो गये हैं। युद्धस्थलकी यन्त्रणा भी उसी अनुपातसे बढ़ गयी है। अतः रेड क्रासने इस यन्त्रणाको यथाशक्ति कम करनेका सराहनीय कार्य अपने ऊपर लेकर मानव-समाजका बड़ा कल्याण किया है। रेड क्रासने युद्ध-क्षेत्रके समीप अपने अस्पताल खोल रखे हैं। लारियां, रेड क्रास जहाज तथा रेड क्रास वायुयान भी अब घायलोंकी सेवा-शुश्रूषाके लिए इस्तेमाल होने लग गये हैं।

युद्ध-सम्बन्धी कुछ मनोरञ्जक बातें

युद्ध कालीन मिथ्या प्रचार

क्या झूठको कभी सच बनाया जा सकता है—इस सम्बन्धमें दो मत नहीं हो सकते। अनुभव यह कहता है कि झूठमें दम नहीं होता और वह सत्यका स्थान कभी नहीं ले सकता। यह तो सम्भव है कि उससे कुछ समय तक लोगोंमें भ्रम फैल जाय और इससे जो लाभ उठाया जा सकता है, उसे उठा लिया जाय या जो हानि हो सकती है, उसे पहुंचा दिया जाय; परन्तु अन्तमें एक न एक दिन उसका भेद खुलता ही है। युद्ध इसका अपवाद नहीं है, यही नहीं, सभ्यताके इस युगमें मिथ्या-प्रचारको युद्धका एक अत्यन्त प्रबल अस्त्र माना जाता है और सचाई यह है कि युद्धका बिगुल बजनेपर सत्यका संहार पहले ही हो जाता है। मि० आर्थर पोन सोनबीके शब्दोंमें "प्रत्येक देश मिथ्या-प्रचारके इस अस्त्रका उपयोग अपने देशवासियोंको जान-बूझकर धोखा देने, तटस्थ देशोंको अपनी ओर आकर्षित करने और शत्रुओंको भटकानेके लिए करता है।" उस समय किसीको असलियतका पता नहीं चलता और बादमें जब पता भी चलता है, उसकी किसीको परवाह नहीं होती; क्योंकि जो मिथ्या प्रचार करता है, वह तो उस समय तक अपने प्रचारसे जितना लाभ उठाना चाहिए, उठा ही चुकता है। इस दशामें बादमें किसी घटनाकी सचाई जाननेके लिए, गड़े मुर्दे उखाड़नेके लिए कितने व्यक्तियोंको उत्सुकता हो सकती है?

गत महासमरके समय कितनी ही घटनायें सामने आयी थीं जिनकी ओर सर्वसाधारणका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित हुआ था; कितने ही समाचार प्रकाशित हुए थे जिनके आधारपर लोगोंने व्यक्तियों और राष्ट्रोंकी मनोवृत्तिके विषयमें अपनी राय कायम की थी। समयकी प्रगतिने उनमेंसे कितनी ही घटनाओं और समाचारोंको बिलकुल मिथ्या—मनगढ़न्त साबित किया है, और कितनी ही घटनायें और समाचार अब इतने पीछे पड़ गये हैं कि उनके विषयमें कुछ ज्यादा जाननेकी इच्छा किसीको नहीं है। इस तरहकी मनगढ़न्त बातोंके लिए शत्रु और मित्र कोई भी राष्ट्र अपवाद नहीं है। यह बात हमारी दृष्टिमें है कि व्यक्तियों और राष्ट्रोंके व्यवहारकी कसौटी प्रत्येक अवस्थामें एक ही नहीं हो सकती और जहां किसी उद्योगका परिणाम ही प्रधान हो, वहां बीचकी कितनी ही बातोंकी उपेक्षा भी की ही जाती है।

गत महासमरकी कुछ बातोंको लीजिये—१९१४ के अगस्तमें ब्रिटेनमें प्रत्येक व्यक्तिपर यह बिलकुल स्पष्ट था कि फ्रान्सके साथ ब्रिटेनका जो समझौता है, वह "एक गुप्त सन्धि है, जिससे पार्लमेण्टपर युद्धमें योग देनेका दायित्व आ जाता है।" इस सिलसिलेमें मि० लायड जार्ज (प्रधान मन्त्री) ने ७ अगस्त १९१८ को ब्रिटिश पार्लमेण्टमें कहा था—"फ्रान्सके साथ हमारा एक समझौता हुआ था कि यदि उसपर निरंकुशतापूर्ण हमला किया गया, तो ब्रिटेन उसकी मददके लिए पहुंचेगा।"

यह समझौता और सन्धि किस रूपमें थी, जरा देखिये—

लार्ड सभामें लार्ड लेन्सडाउनने ६ अगस्त १९१४ को "सन्धियों-सम्बन्धी कर्तव्य-भार और अन्य बन्धनोंका, जो हस्ताक्षर किये हुए मुहरबन्द कागजोंमें लिखित नहीं होनेके कारण कम मान्य नहीं हैं" उल्लेख करते हुए कहा था—"एक श्रेणीमें है हमारा वह कर्तव्य-बन्धन, जो सन्धिके कारण बेल्जियमके प्रति है।" "दूसरी श्रेणीमें है हमारा फ्रान्सके प्रति कर्तव्य, वह कर्तव्य, जिसका आधार हमारा आत्म-सम्मान है और जो पिछले कुछ वर्षोंसे दोनों राष्ट्रोंको मिला देनेवाली घनिष्ट मैत्रीके कारण हो गया है।"

यह कर्तव्य-बन्धन अचानक उपस्थित नहीं हुआ था—३१ जनवरी १९०६ को सर एडवर्ड ग्रेने पेरिस-स्थित ब्रिटिश राजदूतको सूचित किया था—"स्थल-सेना और जल-सेनाके हमारे अधिकारी फ्रान्सके अधिकारियोंके साथ लिखा-पढ़ी कर रहे हैं और मैंने मान लिया है कि सभी तैयारियां हो

चुकी हैं और यदि सङ्कट उपस्थित हो, बाकायदा सन्धि न होनेके कारण समय न खोया जायगा।"

लार्ड फ्रेंचने अपनी युद्ध-सम्बन्धी पुस्तकमें लिखा है—"इस विषयमें ब्रिटेन और फ्रान्सके सैनिक अधिकारी कई सालसे आपसमें परामर्श करते रहे थे। ब्रिटिश सेनाको फ्रान्सीसी सेनाके वाम पार्श्वमें रखनेका निश्चय किया गया था।"

३१ जुलाई १९१४ को सर एडवर्ड ग्रेके नाम अपने मेमोरेण्डममें सर आयर क्रोवेने लिखा था—"यह सही है कि कोई लिखित बन्धन नहीं है; परन्तु गुटको बनाया, मजबूत किया, कसौटीपर रखा और इस तरह प्रसिद्ध किया जा चुका है कि उससे नैतिक बन्धनके अस्तित्वमें लाये जानेका विश्वास उचित साबित होता है। गुटका कोई अर्थ नहीं है, यदि उसका यह अभिप्राय न हो कि औचित्यपूर्ण युद्धमें इंगलैण्ड अपने मित्रोंका साथी होगा।"

यह स्थिति होनेपर भी पार्लमेण्टमें क्या कहा जा रहा था, उसे भी देखिये—

१० मार्च १९१३ को लार्ड ह्यू सेसिलने प्रश्न किया—"लोगोंका खयाल है कि राजनीतिक बातचीतके सिलसिलेमें मन्त्रिमण्डलने जो आश्वासन दिये हैं, उनके कारण इस देशपर यूरोपीय युद्धमें भाग लेनेके लिए सेना भेजनेका बन्धन है?"

प्रधान मन्त्री मि० आस्क्विथने उत्तर दिया—मुझे कहना चाहिए कि यह ठीक नहीं है।"

१४ दिन पीछे २४ मार्चको एक अन्य प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने फिर कहा—यूरोपकी शक्तियोंमें यदि युद्ध हुआ, ऐसा कोई अप्रकाशित समझौता नहीं है, जो ब्रिटेनके युद्धमें शामिल होने न होनेका निर्णय करनेमें सरकार या पार्लमेण्टके मार्गमें अड़चन पैदा करे।"

यहां तक कि युद्धमें शामिल होने न होनेका निर्णय करनेके सम्बन्धमें सरकार और पार्लमेण्टकी स्वतन्त्रता बतलानेके सिलसिलेमें सर एडवर्ड ग्रेने १९१४ की तीसरी अगस्तको भी कहा था—"हमारा ऐसा कोई गुप्त समझौता नहीं है कि उसे पार्लमेण्टके सामने रखकर कहें कि उसके कारण देशपर आत्म-सम्मानका बन्धन है।"

यह होनेपर भी फ्रान्सकी सहायताके लिए ब्रिटिश सेना भेजनेकी पूरी तैयारी की जा चुकी थी—इसमें किसीको सन्देह नहीं है।

गत महासमरकी कुछ अन्य घटनाओंको लीजिये—१९१४ के अन्तिम दिनोंमें यह अफवाह फैल गयी कि रूसी सैनिक पश्चिमी मोर्चेपर ब्रिटेन होकर जा रहे हैं। इस अफवाहका फैलना था कि उसका समर्थन करनेवाले भी सामने आ गये। किसीने उन्हें रेलमें देखनेकी बात कही, तो किसीने प्लेटफार्मपर। अखबारोंमें रोमका यह तार भी छपा कि "फ्रान्समें २॥ लाख रूसी सैनिक जमा हो रहे हैं।" यद्यपि इसकी पुष्टि नहीं हुई थी, तथापि सरकारी प्रेस ब्यूरोने उसके छापनेपर कुछ भी आपत्ति नहीं की थी। 'डेली न्यूज' ने १४ सितम्बर १९१४ को अपने विशेष संवाददाताका एक पत्र छापा था, जिसमें रूसी सैनिकोंको अपनी आंखोंसे देखनेकी बात कही थी। परन्तु इन सब बातोंमें कोई सचाई नहीं थी। १८ नवम्बर १९१४ को पार्लमेण्टमें युद्ध विभागके उपमन्त्रीने एक प्रश्नका उत्तर देते हुए कहा था कि ब्रिटेनसे होकर कोई रूसी सैनिक यूरोपियन युद्धके पश्चिमी मोर्चेपर नहीं गया है।

१६ सितम्बर १९१४ के 'स्टार' में यह सनसनीदार समाचार छपा था कि जर्मन सैनिकोंने बिलबोरडे स्थानमें एक फौजी अस्पतालकी नर्स ग्रेस ह्यूमको बड़ी नृशंसतासे मार डाला। जर्मनोंने उनका एक स्तन काट लिया और उनकी मृत्यु बड़ी पीड़ितावस्थामें हुई। ६ सितम्बरको अपनी मृत्युसे पहले उन्होंने अपनी बहिनको पत्रमें लिखा कि "यह पत्र अन्तिम विदाईके रूपमें है। अब जीनेकी इच्छा नहीं है। अस्पतालमें आग लगा दी गयी है। क्रूर जर्मन! एक आदमीका यहां सिर उड़ा दिया गया। मेरा दाहिना स्तन काट लिया गया है।......को मेरा प्यार! विदा!"

इस पत्रको लिखनेके बाद नर्स ह्यूमका बायां स्तन भी काट लिया गया। नर्स ह्यूमकी उम्र केवल २३ वर्षकी थी।

नर्स मूलर्डने यह पत्र नर्स ह्यूमकी बहिनके पास पहुंचाया और उन्होंने बतलाया कि नर्स "ह्यूमने बड़ी वीरताका परिचय दिया। एक जर्मन सैनिकने एक घायल सिपाहीपर हमला किया। नर्स उसे अस्पताल ले जा रही थी। इसपर नर्स ह्यूमने सिपाहीकी बन्दूक ली और जर्मन सैनिकको गोलीसे उड़ा दिया।"

नर्स मूलर्डने अपनी एक चिट्ठीके साथ नर्स ह्यूमकी बहिन मिस काटे ह्यूमके पास उक्त पत्र भेजा। प्रायः सभी पत्रोंमें

उसे प्रकाशित किया गया। प्रेस ब्यूरोने भी उसके प्रकाशित होनेपर आपत्ति नहीं की, परन्तु यह साबित हुआ कि सारी कहानी मनगढ़न्त थी। अपनी बहिन नर्स ह्यूम और नर्स मूल्डका जाली पत्र मिस काटेने तैयार किया था और उसीने अखबारोंमें भेजा था।

इसी तरहकी एक अन्य गप्पका भी नमूना देखिये, जो उन दिनों सारे संसारमें फैल गयी थी। २७ अगस्त १९१४ के 'टाइम्स' में पेरिसके संवाददाताने लिखा था—"कैथोलिक सोसायटीके एक मुख्य कर्मचारीसे एक आदमीने कहा है कि उसने अपने नेत्रोंसे यह देखा कि जर्मन सैनिकोंने मातासे चिपटे हुए एक बच्चेके दोनों हाथ काट लिये।" एक सप्ताह बाद दो सितम्बरकी संख्यामें इसी पत्रने अपने संवाददाताका यह विवरण छापा—"वे छोटे-छोटे बच्चोंके हाथ काट डालते हैं, जिससे फ्रान्सको सैनिक मिलना ही बन्द हो जायें।" पत्रोंमें ऐसे बच्चोंके चित्र भी प्रकाशित हुए, जिनके हाथ काट लिये गये थे।

ब्रिटिश पार्लमेण्टमें इसी तरहके एक बेल्जियन लड़केके सम्बन्धमें प्रश्न करनेपर सर जी० केबने उत्तर दिया कि "कुछ लोगों द्वारा इस तरहके कुछ दो लड़के देखे गये, जिनके हाथोंको जर्मन सैनिकोंने काट लिया था।"

ग्लासगोमें १७ अप्रैल १९१९ को एक व्यक्तिने गप्प उड़ायी कि हेरोगेट-निवासी उसके मित्रने एक नर्सको देखा है, जिसके दोनों हाथ जर्मन सैनिकोंने उड़ा दिये हैं। मित्रका जो पता इस व्यक्तिने बतलाया था, उसपर पत्र लिखा गया; परन्तु कभी कोई उत्तर नहीं मिला। २ मई १९१९ को 'सण्डे क्रानिकल'ने भी एक लड़कीकी करुणाजनक कहानी प्रकाशित की थी, जिसके दोनों हाथ काट लिये गये थे।

इन क्रूरताओंके सम्बन्धमें इटलीके तत्कालीन प्रधान मन्त्री सिन्योर नित्तीने लिखा है—"हमने बेल्जियमके गरीब बच्चोंके विषयमें सुना, जिनके हाथ हूणोंने काट डाले थे। फ्रान्सके प्रचारसे प्रभावित होकर एक धनी अमेरिकनने युद्धके बाद अपने एक आदमीको इसलिए बेल्जियम भेजा कि वह वैसे लड़कोंका पता लगाये। उसका इरादा इन लड़कोंके लिए जीविकाकी व्यवस्था करनेका था। इस आदमीको एक भी लड़का न मिल सका। मैंने मि० लायड-जार्जके साथ स्वयं जांच की कि इस तरहकी बातोंमें सचाई कितनी है; परन्तु जितनी घटनाओंको तलाश किया गया, सबकी सब मनगढ़न्त साबित हुईं।"

गत महासमर आरम्भ होनेके समय लन्दन-'डेलीमेल'के संवाददाता केप्टन विल्सन ब्रुसेल्समें थे। उन्हें तार मिला—"नृशंस अत्याचारोंका विवरण भेजिये।" उस समय तक अत्याचार नहीं हुए थे। यह मालूम होनेपर 'डेलीमेल'की ओरसे उन्हें सूचित किया गया कि शरणार्थियोंकी दुःख-गाथा लिखिये। मि० विल्सनने सोचा कि यह ठीक हुआ। ब्रुसेल्सके बाहर एक छोटी बस्तीमें खाना खाने जाना पड़ता था। सुना था कि जर्मन वहां पहुंच गये थे। उन्होंने सोचा कि बस्तीमें कोई न कोई बच्चा तो होगा ही। बस फिर क्या था, उन्होंने क्रोरबेकलूके एक बच्चेकी हृदय-विदारक कहानी लिखी, जिसे एक जलते हुए घरकी रोशनीमें जर्मन सैनिकोंके हाथसे बचाया गया था। यह कहानी प्रकाशित होनेके बाद रिपोर्टर महोदयको पत्रकी ओरसे लिखा गया कि बच्चेको भेज दीजिये; क्योंकि ९००० व्यक्तियोंने उसे गोद लेनेके लिए पत्र भेजे हैं। पत्रके दफ्तरमें बच्चेके लिए कपड़ोंका ढेर लग गया। रिपोर्टरके सामने बड़ी कठिन समस्या थी। वह यह तो लिख ही नहीं सकता था कि असलमें कोई बच्चा था ही नहीं। अन्तमें उसने शरणार्थियोंकी संभाल करनेवाले डाक्टरको मिलाया और लिख भेजा कि भयङ्कर संक्रामक बीमारीसे उसकी मृत्यु हो गयी।

केप्टन विल्सन बादमें 'सण्डे टाइम्स'के सम्पादक हुए और उन्होंने १९२२ में अमेरिकामें स्वयं ही इस विवरणके मनगढ़न्त होनेकी बात प्रकट की। केप्टन विल्सनका यह कथन पहले 'न्यूयार्क टाइम्स'में और बादमें २४ फरवरी १९२२ को 'क्रूसेडर'में प्रकाशित हुआ।

गत महासमरमें जर्मनोंने मिथ्या-प्रचार करनेमें सबके कान काट लिये थे। हताहतोंकी संख्या और क्षतिको कम बतलाना तो साधारण-सी बात थी। ३ सितम्बर १९१४ को जर्मन पत्र फ्रेङ्कफर्टर जीतुङ्गने मि० जान बर्न्सके एक काल्पनिक भाषणको छापा था। इसी तरह अक्टूबरमें न्यूयार्क अमेरिकन पत्रमें एक काल्पनिक वार्तालाप प्रकाशित किया गया था, जो किसी उच्च ब्रिटिश अफसरसे हुआ था। जर्मन हवाई जहाज फ्रान्सकी खाइयोंमें फ्रान्सके ध्वस्त गिरजोंके चित्र गिराते थे और इनपर शब्द

ही यह लिखा रहता था—"अंगरेजोंने ध्वस्त कर दिया।" इसी तरहकी कितनी ही बेसिर-पैरकी बातोंका प्रचार जर्मन प्रचारक किया करते थे।

सितम्बर १९१४ में कलोनमें एक महिलाको सूचित किया गया कि एक्सजला-चेपलमें एक अस्पतालमें एक पूरा कमरा घायल जर्मन सैनिकोंके लिए दे दिया गया। यह बतलाया गया था कि बेल्जियममें इन घायल जर्मन सैनिकोंकी आंखें निकाल ली गयी थीं। जांच करनेपर पता चला कि यह जर्मनोंकी मनगढ़न्त कहानी थी; परन्तु उसका प्रचार दूर-दूर तक हुआ और ब्रेमेनके "वेसेर जीतुङ्ग" ने तो बर्लिनके एक अस्पतालके सम्बन्धमें भी वैसा ही मिथ्या समाचार प्रकाशित किया और उस समय तो हद ही हो गयी, जब यह प्रकाशित किया गया कि "१० वर्षके एक बच्चेने सैनिकोंकी बाल्टी-भर आंखोंको देखा है।"

अब दूसरी तरहके एक जर्मन गपोड़ेका नमूना देखिये—

'डी जीटइन बिल्ड' ने १२ जनवरीवाली ३८ वीं संख्यामें लूटीचाके एक ऐसे पादरीका हाल लिखा था, जो अपने गलेमें अंगूठियोंकी जञ्जीर पहने हुए था। ये अंगूठियां सैनिकोंकी अंगुलियां काटकर ली गयी थीं। जांच करनेपर यह समाचार बिलकुल ही मिथ्या प्रमाणित हुआ।

१९ सितम्बर १९१४ के "कोलनिशे बोकजीतुङ्ग नामक जर्मन पत्रने छापा—"बेल्जियमके एक गांवमें होकर जर्मन सैनिकोंकी एक कम्पनी निकल रही थी। रास्तेके एक गिरजेके पादरीने कप्तानको अपने सैनिकों सहित गिरजेमें चलनेके लिए आमन्त्रित किया। कप्तानने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। वहां प्रार्थना-मञ्चके पीछे मशीनगन छिपी हुई थी। सारीकी सारी कम्पनी गोलियोंसे भून डाली गयी।"

इसी तरहकी एक दूसरी गप्प भी देखिये, जो १८ सितम्बर १९१४ को 'शाजवाल्डर क्रानिक'में प्रकाशित हुई थी—"सार्जेण्ट एडाल्फ शिमिटने सितम्बर १९१४ में अपने माता-पिताको एक पत्रमें लिखा कि मुझे मेरे अधीन अन्य सैनिकोंके साथ एक फ्रान्सीसी पादरीने काफी पीनेके लिए आमन्त्रित किया। सन्देह तो था ही, मैंने एक डाक्टरको काफीकी जांच करनेके लिए कहा। उसमें विष मिला हुआ था। पादरी और उसके खानसामाको अगले दिन गोलीसे उड़ा दिया गया।"

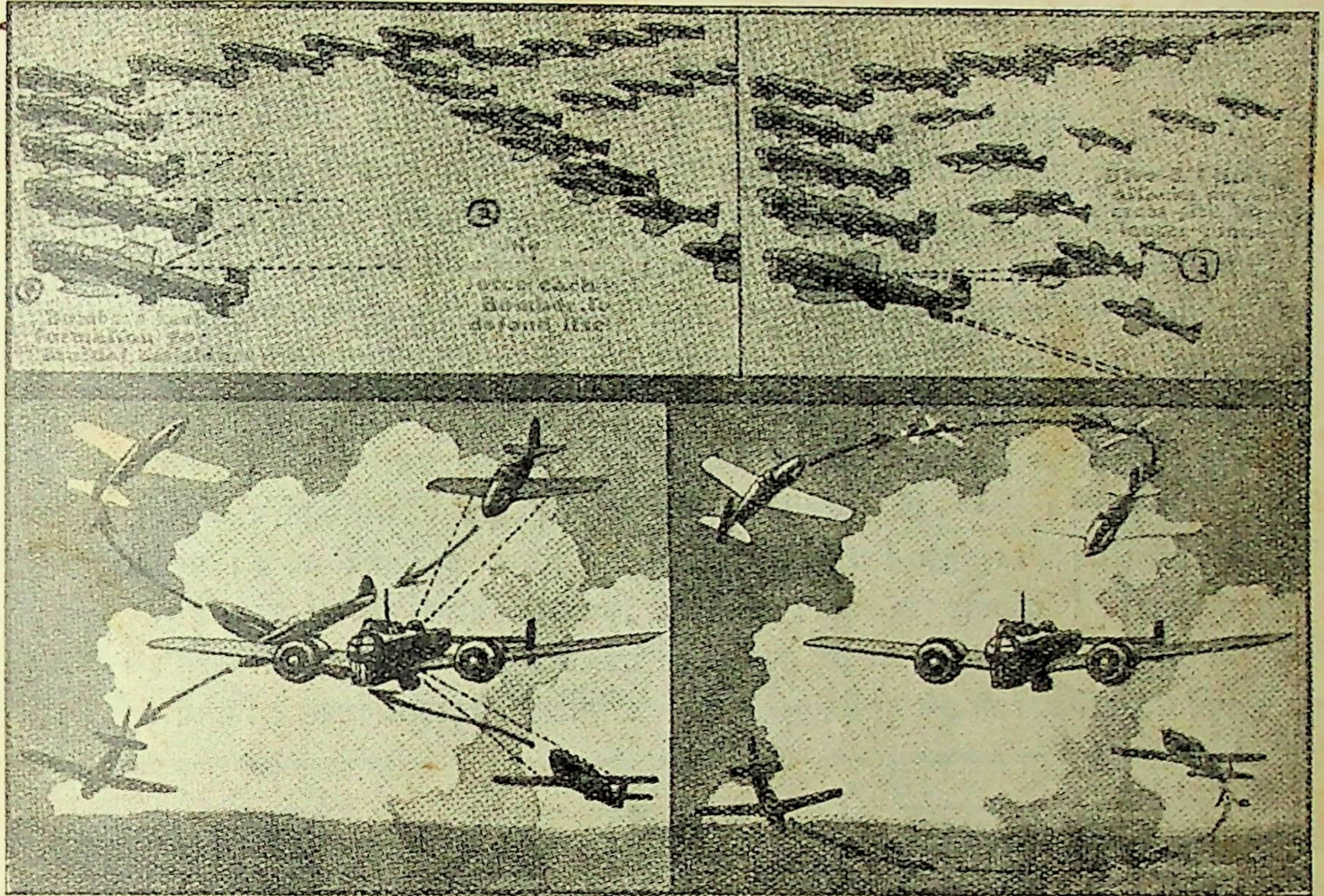
यह सारी कहानी सार्जेण्टके दिमागकी उपज थी और बादमें उसने स्वयं उसका खण्डन कर दिया।

'हेमबर्गर फ्रेमडेन ब्लाडेंट'ने २६ अगस्त १९१४ को एक गप्प हांकते हुए लिखा था कि बेलजियनोंने जर्मन सैनिकोंको जो सिगरेट दिये, उनमें बारूद भरी हुई थी। जर्मन सैनिकोंने जब ये सिगरेट सुलगाये, बारूद उड़ गयी और ये सैनिक अन्धे हो गये।

जर्मनोंकी एक मनगढ़न्त कहानीका नमूना भी लीजिये, जिसे २९ अक्टूबर १९१६ को 'कोलनिशे बोलजीतुङ्ग'में प्रकाशित किया गया था—"पूर्व अफ्रीकामें कितने ही अस्करियोंने जर्मनोंसे लड़नेसे इनकार कर दिया। इन ११२ विद्रोहियोंको हथकड़ी लगाकर कोड़ोंसे पीटा गया और नैरोबीमें कोर्ट मार्शल होनेपर उन्हें फांसी दिये जानेकी आज्ञा हुई। कुछ दिनों बाद यह आज्ञा बदल दी गयी और काले रंगरूटोंकी चांदमारीके लिए उन्हें सजीव निशाना बनानेकी आज्ञा जारी की गयी। गत वर्ष नवम्बरमें एक दिन सवेरे इनमेंसे १० बन्दियोंको नैरोबीके दक्षिणमें एक स्थानपर ले जाया गया। वहां कुछ अस्करियोंका कैम्प पहलेसे ही था। बन्दियोंको पहले एक गहरा गढ़ा खोदनेकी आज्ञा दी गयी और जब वे खोद चुके, हाथ-पैर और मुंह बांधकर उन्हें झाड़ियों या ऊंची घासमें या पेड़ोंपर इस तरह बैठा दिया गया कि उनके शरीरका थोड़ा ही भाग दिखलाई पड़ता था। अंगरेज अफसरोंने गोली मारनेकी आज्ञा दी। १०० से लगाकर ३०० कदम तकके फासलेसे रंगरूटोंने इन सजीव निशानोंपर चांदमारी की। सवेरेके बाद तीसरे पहर भी इसी तरह चांदमारी हुई। शाम तक कुल दो बन्दी मरे हुए पाये गये। अन्य बन्दी बुरी तरह घायल हुए थे, उन्हें भी मार डाला गया। सबकी लाशें गढ़ोंमें डाल दी गयीं। यह चांदमारी सभी बन्दियोंके मारे जाने तक रोज होती रही।"

आकाश-युद्धकी कुछ कलायें

१९१२ की बात है, ब्रिटिश सरकारके युद्ध-विभागने हवाई जहाज तैयार करनेवालोंके लिए एक सूचना प्रकाशित की थी, जिसमें यह बतलाया गया था कि युद्ध-विभागकी स्वीकृति प्राप्त करनेके लिए योग्य हवाई जहाजमें कमसे कम ये बातें होनी चाहिए—रफ्तार ५५ मील प्रति घण्टा, ४॥ घण्टे तक उड़ सकने या काफी पेट्रोलके अलावा ३५० पौण्ड साल



(१) परस्पर सहायता देनेके लिए बम-वर्षकोंकी पंक्ति। (२) लड़ाकू हवाई जहाजोंका एक साथ हमला, जिससे प्रत्येक बमवर्षक अपनी रक्षा करे। (३) ऊपर चढ़ते या नीचे झपटते हुए आक्रमण होनेपर नीचेवाला गनर निशाना नहीं बना सकता। नीचे—एक बमवर्षकके चारों ओर श्वानयुद्ध।

ले जाने, कमसे कम ३ घण्टे तक हवामें रहने और ४५०० फीटकी ऊंचाई तक चढ़ सकनेकी क्षमता! हवाई जहाजोंकी उस स्थितिसे १९४० के हवाई जहाजोंकी तुलना कीजिये—रेकार्ड कायम करनेवाले प्रयत्नोंकी बात यदि छोड़ दी जाय, तो भी हवाई जहाजोंकी उन्नतिने संसारमें एक चमत्कार पैदा कर दिया है। ब्रिटेनका "स्पिट-फायर" ११००० फीटकी ऊंचाई तक चढ़ सकता है और इतनी ऊंचाई तक पहुंचनेमें उसे ५ मिनटसे ज्यादा नहीं लगते। शत्रुके बमवर्षक हवाई जहाजोंसे लड़नेके लिए जल्दीसे जल्दी आकाशमें पहुंच जानेकी आवश्यकताकी दृष्टिसे ऊपर उठनेकी यह गति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। साधारणतः उसकी अधिकसे अधिक रफ्तार १६५०० फीटकी ऊंचाईपर ३६७ मील फी घण्टे है, यों यही २३००० फीटकी ऊंचाई तक पहुंच और नीचेकी ओर ५०० मील फी घण्टेकी रफ्तारसे उतर चुका है। गत महासमरमें तो इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

ब्रिटेनके 'स्पिट-फायर' टाइपके हवाई जहाज लड़ाकू होते हैं। एक अन्य टाइपके हवाई जहाज 'हाकर हरीकेन' कहलाते हैं। ये भी लड़ाकू हैं और ३३५ मील फी घण्टेकी रफ्तारसे उड़ सकते हैं। ब्रिटिश बम-वर्षक जहाज भी कई तरहके हैं, जिनमें विकर्स वेलेजली, विकर्स वेलिङ्गटन, ब्रिस्टल-बम्बई आदि नाम आते हैं। 'ब्लेनहीम फर्स्ट' टाइपके बम-वर्षक १५ हजार फीटकी ऊंचाईपर २८५ मीलकी रफ्तारसे उड़ सकते हैं और ५॥ घण्टे तक २०० मीलकी रफ्तारसे चक्कर तो लगाते ही रह सकते हैं, १ मिनटमें जमीनसे १५४० फीटकी ऊंचाईपर भी पहुंच सकते हैं। विकर्स वेलेजली तो लगातार ७१५९ मील तक एक ही उड़ानमें जा चुका है। साधारणतः यह १९६८० फीटकी ऊंचाईपर २२८ मीलकी रफ्तारसे उड़ सकता है और १६० मील प्रति घण्टे-

की रफ्तारसे १२ घण्टे तक लगातार उड़ सकता है। ब्रिटेनके इन हवाई जहाजोंमें १०००—९०० मील और इससे भी ज्यादा दूर तक पहुंचनेवाले हवाई जहाज तो कई हैं। विकर्स वेलिङ्गटन १६०० मील तक जाकर जमीनपर बिना उतरे हुए अपने अड्डेपर लौटकर आ सकता है। हाकर हरीकेन और स्पिटफायर जैसे बड़े-बड़े हवाई जहाजोंपर आठ-आठ मशीनगनें होती हैं। अन्य टाइपोंके लड़ाकू और बम-वर्षक हवाई जहाज भी है। ये अपने कार्यके उपयुक्त युद्धके अस्त्रोंसे लैस होते हैं।

फ्रान्सके कई तरहके हवाई जहाजोंकी रफ्तार ३०० मील प्रति घण्टेसे भी ज्यादा है। डी ५२० की रफ्तार ३२५ मील प्रति घण्टे है और ३ मिनट ५८ सेकण्डमें १३१२३ फीटकी ऊंचाईपर चढ़ सकता है। एमिओट १४२ नामक बम-वर्षक 'उड़ता हुआ दुर्ग' कहलाता है; क्योंकि बम तो वह ले ही जाता है उसमें चार मशीनगनें भी लगी हुई हैं।

जर्मनीके कितनी ही तरहके लड़ाकू और बम-वर्षक हवाई जहाजोंमें हीनकील (ही) ११२ नामक लड़ाकू हवाई जहाज ३१० मीलकी रफ्तारसे जाता है। मीसर शिमिट (मी) १०९ की गिनती संसारके तेज हवाई जहाजोंमें है। यह १२००० फीटकी ऊंचाईपर साधारणतः ३५४ मीलकी रफ्तारसे जा सकता है—यों यह ४६९.२३७ मीलकी रफ्तारका रेकार्ड कायम कर चुका है। इसमें ४ मशीनगनें रहती हैं और आवश्यकता होनेसे एक छोटी तोप भी ले जा सकता है, जो प्रति मिनट ५०० गोलियां छोड़ सकती है। मी ११० की रफ्तार १६॥ हजार फीटकी ऊंचाईपर ३६५ मील प्रति घण्टे है। इसमें ४ मशीनगनोंके अलावा दो तोपें भी हैं, जिनकी मार ६०० गज तक है। पङ्खोंपर टङ्की रहती है, जिसमें ४०० गैलन पेट्रोल आ सकता है और ये १६० मील-की रफ्तारसे १७०० मील तक जा सकते हैं। मी ११० की टङ्कियोंकी बनावट आश्चर्यजनक है। उनमें न तो छेद हो सकता

सचित्र मासिक

विश्वमित्र



नवम्बर
१९४०

वार्षिक मूल्य ६)
एक प्रति ।।=)

विश्वमित्र कार्यालय
कलकत्ता

कोकोला

केश तेल और

साबुन

भारत का गौरव है





जुयेल आफ इण्डिया

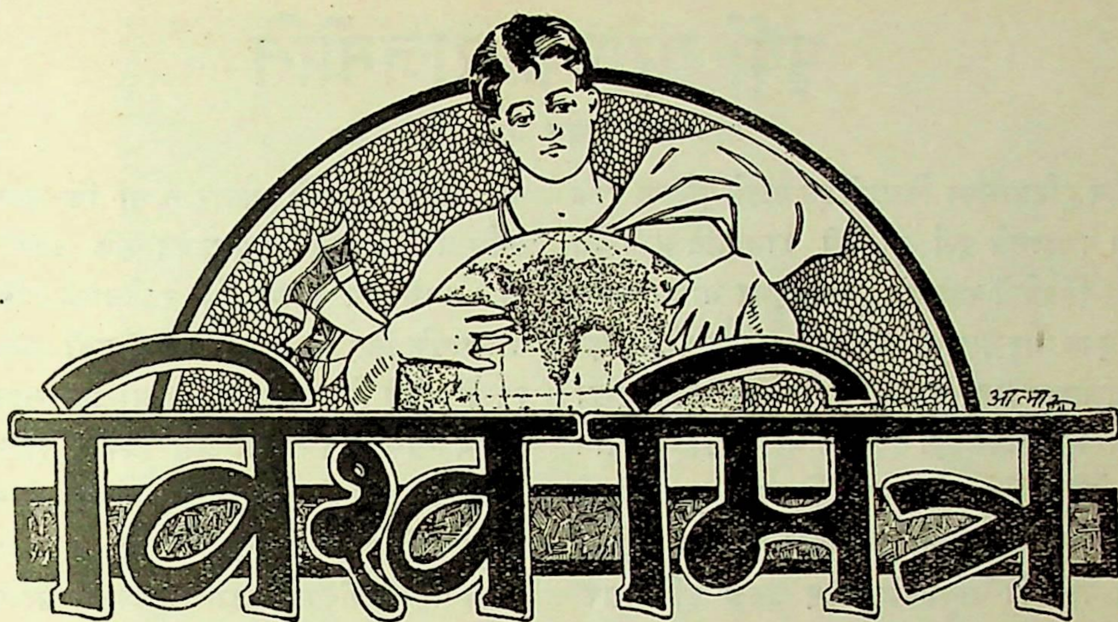
कलकत्ता, दिल्ली, बम्बई, मद्रास, रंगून, सिंगापुर।

विषय-सूची

नोट कर लीजिये—

	१ वर्ष	६ मास	३ मास
दैनिक (डांकसे)	१८)	१०)	६)
स्थानीय—	१५)	८)	५)
साप्ताहिक—	४)	२॥)	०
मासिक—	६)	३॥)	०
दैनिक बर्माके लिये	२५)	१४)	८)
साप्ताहिक—,,	७)	४)	०
मासिक— ,,	८)	५)	०

मैनेजर—विश्वमित्र



सम्पादक—
शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

नवम्बर, १९४० वर्ष ९ संख्या ९८ कार्तिक, १९९७

गीत

जटिल झञ्झावातमें तू
बन अचल हिमवान रे मन !

हो बनी गम्भीर रजनी
सूझती हो नहीं अवनी,
ढल न अस्ताचल अतलमें
बन सुवर्ण विहान रे मन !

बहें कितनी गुरु झकोरें
लता, तृण, वीरुध मरोरें,
नील नीरधिका अकेला
बन सुभग जलयान रे मन !

कमल कलियां सकुचती हों
रश्मियां भी चिचकती हों,
तू तुषार कुहा गहनमें
बन मधुपकी तान रे मन !

—सोहनलाल द्विवेदी ।

पूर्वी यूरोपकी राजनीति

प्रो० प्रेमनारायन माथुर, एम० ए०

यूरोपीय इतिहासका विद्यार्थी इस बातसे परिचित है कि अत्यन्त प्राचीन कालसे पूर्वी यूरोपकी राजनीति अनिश्चित और अस्थिर स्थितिमें रही है। यूरोपका यह भाग राजनीतिक उथल पुथल और पारस्परिक सङ्घर्षका सदैव ही अखाड़ा बना रहा, जिसका असर समस्त यूरोप और उसके द्वारा समस्त संसारपर बराबर पड़ा है। आज भी यूरोपका यह भाग अपनी इस ऐतिहासिक परम्पराको निभाता हुआ दिखाई पड़ता है। पूर्वी यूरोपके राष्ट्रों, विशेषकर बाल्कन राष्ट्रोंकी मौजूदा समस्याओंको समझनेके लिए इनके इतिहासके सम्बन्धमें कुछ जानकारी कर लेना अनुचित न होगा।

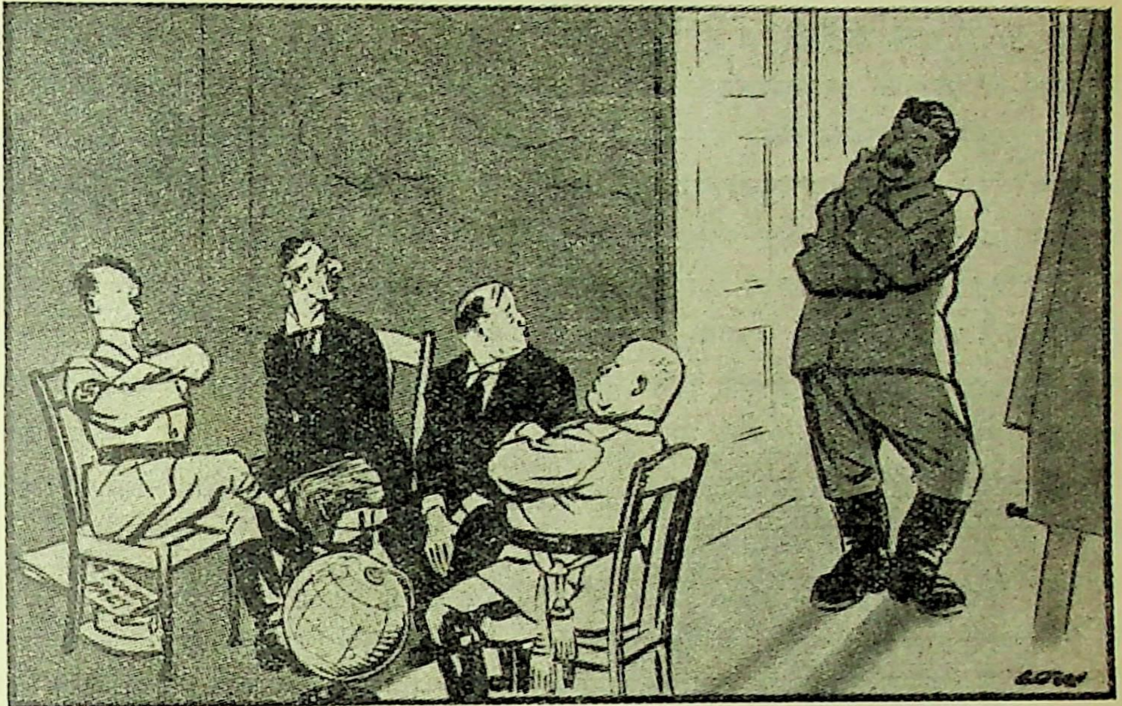
इन देशोंके इतिहासको ठीक-ठीक समझनेके लिए यूरोपके इस भागके भूगोलको समझना आवश्यक है। यूरोपकी गङ्गा डेन्यूब नदी इन राष्ट्रोंके बीचमेंसे होकर बहती है। इसी डेन्यूब नदीका बेसिन यूरोपका पूर्वीय प्रवेश द्वार माना जाता है। अत्यन्त प्राचीन कालमें इसी मार्गसे एशिया निवासियोंने अपनी क्षुधा मिटाने और जीवनको सुखी और सम्पन्न बनाने तथा अन्य आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेके उद्देश्यसे यूरोपमें प्रवेश किया, और यहां आकर वे बस गये। एशियाई लोगोंका यह स्थानान्तरगमन (Migration) आधुनिक काल तक बराबर जारी रहा। स्काइथियन, हून, बल्गार, मङ्गोल, तुर्क आदि जातियोंने इसी प्रकार एशियासे यूरोपमें प्रवेश किया था। इन लोगोंने यहांपर पहलेसे बसनेवाले लोगोंपर अपना आधिपत्य जमाया और इस तरहसे एकके बाद दूसरे साम्राज्यकी स्थापना होती रही।

इन आक्रमणोंका परिणाम यह हुआ कि यूरोपके इस भागमें कोई भी राष्ट्र सङ्गठित और शक्तिशाली न बन सका। मध्य-युगसे जब इन आक्रमणोंका जोर कम हुआ, तो पूर्वमें रूसका एक सङ्गठित और शक्तिशाली राष्ट्रके रूपमें प्रादुर्भाव हुआ। पश्चिममें आस्ट्रिया एक शक्तिशाली जर्मन राष्ट्र था, किन्तु प्रशियाकी प्रतिद्वन्द्विताके कारण वह अपने लिए उस सर्वमान्य स्थानको प्राप्त न कर सका, जो पूर्वमें रूसने प्राप्त कर लिया था। प्रशिया भी एक जर्मन राष्ट्र था और वह यह सहन करनेके लिए तैयार न था कि आस्ट्रिया समस्त जर्मन जातिकी श्रद्धाका पात्र बन सके और उसका नेतृत्व करे। आस्ट्रियन साम्राज्यमें रहनेवाली विभिन्न जातियां साम्राज्यके लिए एक खतरा ही बनी रहीं। और जिस प्रकार १९ वीं शताब्दीमें बाल्कन प्रदेशमें आटोमन साम्राज्यका स्थान कई स्वतन्त्र राष्ट्रोंने लिया, उसी प्रकार १९१९ में हेप्सबर्ग साम्राज्यके अङ्ग-विच्छेद हो जानेपर भी कई नवीन राष्ट्रोंकी स्थापना की गयी। किन्तु जैसा कि आज प्रकट हो चुका है, स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तके आधारपर खड़ी की गयी पूर्वीय यूरोपकी यह इमारत अधिक समय तक स्थायी न रह सकी। उसके कुछ भाग आज धराशायी हो चुके हैं और शेषका भविष्य अत्यन्त अन्धकारपूर्ण जान पड़ता है।

यहां यह बात समझ लेना आवश्यक है कि स्वभाग्य-निर्णयके सिद्धान्तको इन राष्ट्रोंके सम्बन्धमें लागू करनेमें एक विशेष कठिनाई है।

जैसा कि हम ऊपर सङ्केत कर चुके हैं, शताब्दियों तक यूरोपके इस प्रदेशमें बाहरसे आनेवाले आक्रमणकारियोंका प्रभुत्व स्थापित रहा है। परिणाम-स्वरूप यहां हमको विभिन्न जातियोंका एक आश्चर्यजनक सम्मिश्रण देखनेको मिलता है। उदाहरणार्थ बाल्कन प्रदेशमें तुर्क और डोबरूजामें टारटर जातिके लोग आज भी पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त जर्मन, यहूदी, ग्रीक, बल्गर, फ्रेञ्च, मगयार, रूस, आरमेनियन, स्लोवक, पोलिश, सर्ब और क्रोट आदि अनेकों जातियोंके लोग भी इस प्रदेशमें निवास करते हैं। ऐसी दशामें राष्ट्रका निर्माण किसी जाति-विशेषके आधारपर करना अत्यन्त कठिन कार्य है। यूरोपके इस प्रदेशकी यह एक बड़ी कमजोरी रही है, जिसको विभिन्न जातियोंके पारस्परिक द्वेष और सङ्घर्षने और भी अधिक खतरनाक बना दिया है। परस्पर-विरोधी विभिन्न जातियोंका यह प्रदेश, जिसका स्थिति और आर्थिक दृष्टिसे भी कुछ कम महत्त्व नहीं है, अगर हमेशासे यूरोपीय राजनीतिका सङ्घर्ष-

स्थान रहा हो, तो इसमें आश्चर्य-की बात ही क्या है। धन-धान्य और विभिन्न खनिज पदार्थोंसे परिपूर्ण यूरोपके इस प्रदेशपर अन्य शक्तिशाली राष्ट्रों-की सदासे गिद्ध-दृष्टि रही है। व्यापारिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण डेन्यूब नदी भी इसी प्रदेशमें होकर बहती है और पूर्वी भूमध्य-सागरका भी यह प्रवेश-द्वार है। अतः इस प्रदेशका राजनीतिक महत्त्व स्पष्ट है और उसका आज तकका इतिहास इस बातका साक्षी है। निम्न पंक्तियोंमें इसी सम्बन्धमें तनिक विस्तारके साथ विचार करनेका प्रयत्न किया जायगा।



स्टेलिन :—"अच्छा! मेरे लिए कोई स्थान नहीं?" —लोका एक कार्टून

इस प्रदेशपर जिन बाहरी शक्तियोंकी दृष्टि रही है, उनको हम दो श्रेणियोंमें बांट सकते हैं। वे देश जिनका लक्ष्य इस प्रदेशसे सीधे तौरसे लाभ उठाना रहा है, और वे देश जिनकी दिलचस्पी केवल इस बातमें रही है कि अन्य कोई बाहरी शक्ति इस प्रदेशमें अपना प्रभुत्व न स्थापित कर सके, ताकि उनका महत्त्व यूरोपकी राजनीतिमें अपेक्षाकृत बढ़ जावे। पहली श्रेणीमें रूस, आस्ट्रिया, इटली और जर्मनी-की गिनती की जा सकती है और दूसरी श्रेणीमें ब्रिटेन और फ्रान्सकी।

गत शताब्दीमें इस प्रदेशको लेकर मुख्यतः रूस और आस्ट्रियामें सङ्घर्ष रहा। रूसकी सदासे यह आकांक्षा रही है कि उसका उन जलडमरू मध्यपर प्रभुत्व स्थापित हो जाये, जो काले सागरसे भूमध्य सागरको मार्ग बनाते हैं। इसके लिए रूसने बाल्कन प्रदेशके कमसे कम पूर्वी भागपर अपना कुछ न कुछ नियन्त्रण कायम करना बराबर आवश्यक समझा है। इसके अलावा उसकी दृष्टि आस्ट्रियन साम्राज्यके उस भागपर भी थी, जो कारपेथियनके उत्तरमें स्थित है, विशेषतया पूर्वी गेलिशिया और बुको-विनाके प्रान्तोंपर, जहांके निवासियोंकी एक अच्छी संख्या उन लोगोंकी है, जो उसके उक्रेन प्रान्तके रहनेवालोंसे मिलते-जुलते हैं। साथ ही रूसकी इस क्षेत्रमें दिलचस्पीका एक यह भी कारण रहा कि बाल्कन राष्ट्र, विशेषकर बलगेरिया, सर्विया और मोण्टेनेग्रो (युगोस्लेविया) तथा आस्ट्रिया-हंगरीके स्लाव लोगोंकी रूसके प्रति सहानुभूति रही, और उसको उन्होंने आस्ट्रिया और तुर्कीसे उनकी रक्षा करनेवाला माना। आस्ट्रिया रूसकी इस आकांक्षासे सदा सशङ्कित रहा और उसने रूसका इस सम्बन्धमें बराबर विरोध किया। न तो वह यही चाहता था कि रूस इस क्षेत्रमें अपना प्रभुत्व जमाकर अधिक शक्तिशाली राष्ट्र बन जावे, और फिर इस क्षेत्रमें उसकी अपनी भी आकांक्षायें और लालसायें थीं। रूसका विरोध करनेमें आस्ट्रियाको ब्रिटेन और फ्रान्सका और बादमें गत शताब्दीके मध्यसे इटलीका भी सहयोग मिला। इस सम्बन्धमें ब्रिटेन और फ्रान्सकी दिलचस्पी इसमें थी कि वे इस प्रदेशपर किसी भी अन्य देशका प्रभुत्व स्थापित

नहीं होने देना चाहते थे, चाहे फिर वह रूस हो अथवा आस्ट्रिया तथा अन्य कोई देश। इस हद तक ब्रिटेन और फ्रान्स आस्ट्रियाकी महत्त्वाकांक्षाओंके भी विरोधी थे। किन्तु इटलीका दृष्टिकोण भिन्न था। वह स्वयं आटोमन साम्राज्यकी लूटमें हिस्सेदार बनना चाहता था। उसकी दृष्टि एड्रियाटिकके समुद्र-तट और लीबियापर थी। किन्तु बाहरी शक्तियोंकी इन चालोंके बावजूद भी स्थानीय जातियां अपनी आजादी बनाये रखनेके लिए दृढ़ थीं और उनकी इसी दृढ़ताने विभिन्न राष्ट्रोंकी आकांक्षाओंको आज तक सफल होनेसे रोक रखा।

गत महायुद्धने यूरोपके इस भागका नक्शा ही बदल दिया। जिस आस्ट्रियन साम्राज्यकी गिद्ध-दृष्टि इस प्रदेशके राष्ट्रोंपर लगी रहती थी, उसका अस्तित्व ही सदाके लिए नष्ट हो गया और पोलैण्ड, जेकोस्लोवेकिया, युगोस्लावियाके नवीन राष्ट्रों-ने जन्म लिया। रूमानियाका विस्तार पहलेसे दुगुना हो गया तथा हंगरीका दो तिहाई भाग इन राष्ट्रोंमें मिला दिया गया और हंगरी केवल एक छोटे-से राज्यके रूपमें बच रहा। युद्धके बाद जो नवीन सीमायें इस प्रकार निश्चित की गयीं, उन्होंने जहां कुछ देशों और जातियोंको सन्तुष्ट किया, वहां उन्होंने कुछ अन्य देशों और जातियोंको असन्तुष्ट भी छोड़ दिया। बाहरी शक्तियोंकी महत्त्वाकांक्षायें और यह आन्तरिक असन्तोष ही आज यूरोपके इस भागके सङ्कटका कारण बन रहे हैं, जिनके फलस्वरूप आजसे २० वर्ष पूर्वकी कुछ सीमायें तो नष्ट की जा चुकी हैं और कुछके नष्ट होनेकी आशङ्का की जा रही है। युद्धके बादकी व्यवस्थासे असन्तुष्ट राष्ट्रोंमें हंगरी और बलगेरियाके स्थान मुख्य हैं। हंगरी न केवल एक छोटा-सा राष्ट्र रह गया, बल्कि लगभग ३० लाख मेगयार भी अपने देशसे पृथक् करके अन्य राष्ट्रोंको सौंप दिये गये। बलगेरियाके हाथसे दक्षिणी डोबरूजा और सोफियाके पश्चिमका प्रदेश जाता रहा और मेसेडोनिया भी, जिसे प्राप्त करनेकी उसकी सदासे आकांक्षा रही है, उसे प्राप्त न हो सका। इसी प्रकार जर्मनोंकी एक अच्छी संख्या (७५०,००० रूमानिया, ५७५,००० यूगोस्लाविया, ५००,००० हंगरी, १,०००,००० के लगभग पोलैण्डमें) दूसरे देशोंके अधीन कर दी गयी। आस्ट्रियापर इस डरसे कि वह जर्मनीमें सम्मिलित न हो जाये, मित्र-राष्ट्रोंने यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि वह बिना राष्ट्रसङ्घकी स्वीकृतिके अपने स्वतन्त्र अस्तित्वको नष्ट न करे। और इसी प्रकार उक्रेनियन जातिके लोगोंका भी अलग-अलग देशोंमें बंटवारा कर दिया गया, अधिकांश रूसमें शामिल किये गये और बाकी पोलैण्ड, रूमानिया और जेकोस्लोवेकियाको दे दिये गये। इसके अतिरिक्त कई राज्योंमें अल्पसंख्यकोंकी संख्या भी बहुत रखी गयी (पोलैण्डमें व जेकोस्लोवेकियामें ३३ प्रतिशत और रूमानियामें २५ प्रतिशत)। कई देशोंमें विभिन्न जातियोंके पारस्परिक सम्बन्ध भी अच्छे नहीं थे, उदाहरणके लिए जेक और स्लोवक ट्रान्सिलवेनिया और शेष रूमानियाके निवासियों, और युगोस्लावियामें क्रोट और सर्बलोगोंके आपसी झगड़ोंका उल्लेख किया जा सकता है। सारांश यह है कि गत महायुद्धके बाद यूरोपमें दो प्रकारकी शक्तियोंका प्रादुर्भाव हुआ—एक ओर वे शक्तियां थीं, जो महायुद्धके बादकी व्यवस्थाको स्थायी बनाना चाहती थीं क्योंकि वह व्यवस्था उनके पक्षमें थी, और दूसरी ओर वे विरोधी शक्तियां थीं, जो इस व्यवस्थाको बदलना चाहती थीं। पूर्वी यूरोपके विभिन्न देशोंमें भी दोनों ही शक्तियां मौजूद थीं और इस वास्ते उनका गठबन्धन अपने अनुरूपकी दूसरी महान् शक्तियोंके साथ ही उन्होंने किया। पोलैण्ड, जेकोस्लोवेकिया, रूमानियाका ब्रिटेन और फ्रान्सके संरक्षणमें एक अर्से तक रहना और उनका नेतृत्व ग्रहण करना तथा हंगरी, बलगेरिया, आस्ट्रिया आदिका उनसे पृथक् रहना इसी बातको स्पष्ट करता है।

गत महायुद्धके बादके कुछ वर्षोंमें बराबर इसी बातका प्रयत्न किया गया कि युद्धके बादकी यह व्यवस्था किसी प्रकार स्थायी बन सके। सन् १९२० और २१ के समझौतोंके आधारपर जेकोस्लोवेकिया, रूमानिया और युगोस्लावियाने एक सङ्घ, लिटिल एण्टेण्ट, स्थापित किया। इस सङ्घका लक्ष्य अपनी रक्षा करना और मौजूदा सीमाओंमें परिवर्तन करनेकी हंगरीकी आकांक्षाको रोकना था। इसके बाद फ्रान्स और जेकोस्लोवेकिया (१९२४), फ्रान्स और रूमानिया (१९२६), और फ्रान्स और युगोस्लाविया (१९२७) में भी आपसमें सन्धियां हुईं। सन् १९२१ में फ्रान्स और पोलैण्डमें तथा पोलैण्ड और रूमानियामें भी



रूस और जर्मनीके प्रतिनिधि सन्धिपर हस्ताक्षर कर रहे हैं।

सन्धियां हो चुकी थीं। १९२६ से पोलैण्ड और जेकोस्लोवेकियामें भी अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो गया। इधर राष्ट्र-सङ्घकी स्थापनाका तो यह प्रमुख उद्देश्य था ही। राष्ट्रसङ्घकी समस्त शक्ति युद्धके बाद स्थापित व्यवस्थाको बनाये रखनेमें ही बराबर लगी, यह बात अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिका प्रत्येक विद्यार्थी भले प्रकार जानता है। सारांश यह है कि युद्धके बादके वर्षों में इस बातका फ्रान्स और ब्रिटेनने पूरा-पूरा प्रयत्न किया कि उस व्यवस्थामें किसी प्रकार भी परिवर्तन न हो, जो वे युद्धके अन्तमें स्थापित करनेमें सफल हुए थे। किन्तु सङ्गठनके इस कालमें भी कुछ इस प्रकारकी शक्तियां उपस्थित थीं, जो असन्तुष्ट थीं और मौजूदा व्यवस्थामें हेर-फेर करना चाहती थीं। हंगरी, बलगेरिया और इटलीकी गिनती मुख्यतः इन शक्तियोंमें की जा सकती है। इटलीको युगोस्लावियासे भय था और एड्रियाटिक सागरपर वह अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता था। इसके अलावा वह मित्र-राष्ट्रों और विशेषकर फ्रान्ससे असन्तुष्ट था। उसको युद्धके बादकी लूटमें आशातीत भाग नहीं मिला था और अन्य देशोंमें (यूरोपके बाहर) उसमें और मित्र-राष्ट्रोंमें प्रतिद्वन्द्विता चलती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि जिस प्रकार यूरोपके छोटे-छोटे सन्तुष्ट देशों (जेकोस्लोवेकिया, रूमानिया, युगोस्लाविया आदि) का नेतृत्व फ्रान्सने अपने हाथमें लेनेका प्रयत्न किया, उसी प्रकार इसके विपरीत इटलीने छोटे-छोटे असन्तुष्ट राष्ट्रोंको अपने संरक्षणमें लिया। अलबेनियामें इटलीने अपना पूर्णतया प्रभुत्व स्थापित कर लिया, हंगरीसे भी उसका सम्बन्ध स्थापित हो गया, और बलगेरियाकी मेसेडोनिया-सम्बन्धी मांगका भी इटलीने समर्थन किया। फ्रान्स और इटलीके हितोंमें इन बातोंमें विरोध होते हुए भी, एक बातमें विरोध नहीं था। फ्रान्स और इटली दोनों ही यह चाहते थे कि जर्मनी एक शक्तिशाली राष्ट्र न बन सके। उनको यह भय था कि जर्मनी यूरोपके दक्षिण-पूर्वमें अपना असर जमाना चाहेगा और फ्रान्सकी अपेक्षा इटलीको इस बातकी विशेष

जानेसे उनकी जर्मनीपर निर्भरता भी पहलेकी अपेक्षा बढ़ गयी।

इस प्रकार यूरोप जब अपने गर्भमें अशान्ति और असन्तोषकी ज्वाला छिपाये हुए था, उसकी राजनीतिमें एक नवीन शक्तिने जन्म लिया। हमारा तात्पर्य है जर्मनीके नाजीवादसे, जिसकी शुरूआत जर्मनीके सिंहासनपर हिटलरके आरूढ़ होनेके साथ होती है। हिटलरवादका आधार सङ्कीर्ण और जातीय राष्ट्रवाद था और उसका लक्ष्य था दक्षिणी-पूर्वी यूरोपमें अपना प्रभुत्व कायम करना और वार्साईकी सन्धिके टुकड़े-टुकड़े कर डालना। आस्ट्रिया और जेकोस्लोवेकिया-को जर्मनीसे सबसे अधिक खतरा था। हिटलरवादसे भयभीत होकर १९३३में लिटिल एण्टेण्टीके सदस्योंने एक नयी सन्धिपर हस्ताक्षर करके अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंमें एक-दूसरेके अधिक समीप आनेका प्रयत्न किया। किन्तु पोलैण्ड और जर्मनीमें दस वर्षके लिए एक अनाक्रमणकारी सन्धि (१९३४) हो जानेसे जेकोस्लोवेकियाकी स्थिति अधिक नाजुक हो गयी। इस स्थिति-परिवर्तनका रूसपर भी प्रभाव पड़ा। उसने राष्ट्र-सङ्घका सदस्य बनना निश्चय कर लिया और सन् १९३५ की मईमें फ्रान्स और जेकोस्लोवेकिया तथा रूसमें पारस्परिक सहयोगकी सन्धि हो गयी। इधर इटलीने हंगरी और



पूर्वी यूरोपकी राजनीतिके शिकार रूमानियाके राजा करोल—जो आज नजरबन्दकी-सी दशामें हैं।

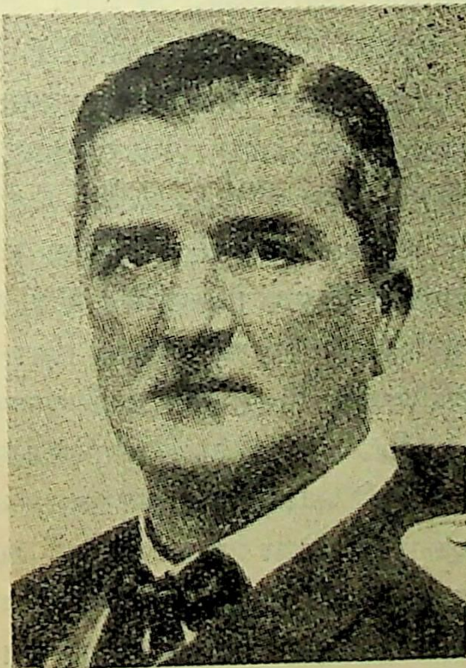
चिन्ता थी। फ्रान्स और इटली दोनों ही इसीलिए यह चाहते थे कि आस्ट्रियाकी स्वतन्त्रता कायम रहे। यदि जर्मनी आस्ट्रियाको अपनेमें मिला लेता है, तो वह दक्षिणी टीरोल, ट्रिस्ट और लम्बार्डीके लिए खतरा होगा, इटली इस बातको समझता था। किन्तु अभी जर्मनीकी ऐसी स्थिति नहीं थी कि वह किसी आक्रमणकारी नीतिका अनुसरण करता। फलतः एक दशाब्दी तक यूरोपकी राजनीतिमें शान्ति बनी रही, हालांकि यह शान्ति वास्तविक शान्ति नहीं थी। इतना होनेपर भी जर्मनी, इटली और फ्रान्स किसीके लिए भी यह सम्भव न हो सका कि वह मध्य और दक्षिण-पूर्वी यूरोपके राष्ट्रोंको अपने नेतृत्वमें पूर्णतया ला सके, और न यह राष्ट्र ही आपसमें मिलकर कोई सङ्गठन कायम कर सके। न तो हंगरी और बलगेरिया मौजूदा व्यवस्थाको स्वीकार करनेको तैयार थे और न लिटिल एण्टेण्टी अपने सदस्य राष्ट्रोंके अस्तित्वके लिए किसी प्रकारकी खतरेकी स्थितिको सहन करनेको तैयार थे। इसी बीचमें संसारव्यापी आर्थिक मन्दी आरम्भ हो गयी और प्रत्येक राष्ट्रने स्वावलम्बनकी नीतिके आधारपर अपना आर्थिक ढांचा बनानेका प्रयत्न आरम्भ कर दिया। इधर पश्चिमी यूरोपमें इन राष्ट्रोंके कृषि पदार्थकी मांग कम हो

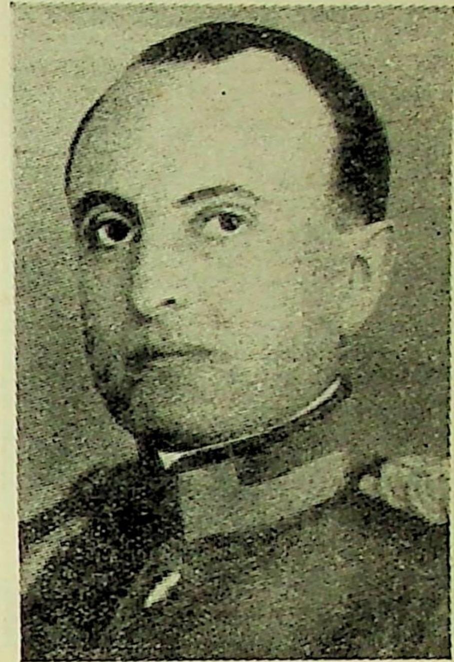


ग्रीसके राजा जार्ज।

आस्ट्रियासे अपना सम्बन्ध अधिक मजबूत बना लिया। इस प्रकार इटली, आस्ट्रिया और हंगरीका लिटिल एण्टेण्टके जवाबमें एक सङ्घ स्थापित हो गया। सन् १९३५ में स्ट्रेसामें इटली, ब्रिटेन और फ्रान्सने मिलकर यह निश्चय किया कि आस्ट्रियाको जर्मनीसे स्वतन्त्र रखा जावे। इस प्रकार यद्यपि हिटलरके सिंहासनारूढ़ होनेके दो वर्ष बाद तक राजनीतिक सीमाओंमें कोई परिवर्तन न हो सका, फिर भी यह आशङ्का तो स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी कि यूरोपके राजनीतिक रङ्गमञ्चपर होनेवाले परिवर्तनोंको अधिक समय तक न रोका जा सकेगा।

इटली और आस्ट्रियाका घनिष्ट सम्बन्ध होते हुए भी आस्ट्रियामें एक ऐसा पक्ष था, जो इस सम्बन्धको ठीक नहीं समझता था। उधर आस्ट्रियाके तत्कालीन अधिनायक डालफसने मुसोलिनीकी प्रेरणासे फरवरी १९३४ में मजदूरोंका जिस प्रकार घोर दमन किया था, उसके फलस्वरूप देशकी एकताका अन्त हो चुका था। हंगरी और बलगेरियाका असन्तोष ज्योंका त्यों कायम था। ऐसी दशामें जब इटलीने अपने साम्राज्य-विस्तारकी लालसासे अबसीनियापर आक्रमण किया, तो जर्मनीने देखा कि अब उसके लिए उचित अवसर आ गया है। अब तक इटली जर्मनीको आगे बढ़नेसे रोकनेमें सफल हो सका था, किन्तु


एडमिरल होर्थी—हंगरीके रीजेण्ट।


प्रिन्स पाल-युगोस्लावियाके प्रथम रीजेण्ट।

अब इटलीको स्वयं जर्मनीकी सहानुभूतिकी आवश्यकता थी। परिणाम-स्वरूप इटली और जर्मनीने मिलकर रोम-बर्लिन धुरीकी स्थापना की। इटलीने आस्ट्रियाको स्वतन्त्र रखनेकी अब तककी नीतिका परित्याग कर दिया। हिटलरके सामने अब कोई बाधा शेष नहीं रह गयी थी। मार्च १९३८ में आस्ट्रियाको जर्मनीमें शामिल कर लिया गया। हिटलरकी आक्रमणकारी नीतिका यह आरम्भ-मात्र था। सन् १९३१ से ब्रिटेन और उसके साथ फ्रान्सकी जर्मनीके प्रति जो नीति रही थी, उसने हिटलरको प्रोत्साहन ही दिया था। पश्चिमी राष्ट्र जर्मनीके रूपमें समाजवादी रूसके विरुद्ध एक मजबूत दीवार देखते थे और इस वास्ते वे ऐसा कोई काम नहीं करना चाहते थे, जिसका नतीजा जर्मनीके नाजीवादको कमजोर बनाना हो। अतः आस्ट्रिया ले लेनेके बाद हिटलर क्यों चुप रहता? अब उसकी गिद्ध-दृष्टि जेकोस्लोवेकियापर पड़ी। जेकोस्लोवेकियापर यह इल्जाम लगाया जाने लगा कि वहांके तीस लाख जर्मनोंपर बड़ा अत्याचार किया जाता है। स्थिति बराबर गम्भीर होती गयी। अन्तमें ब्रिटेन और फ्रान्सने ही, जो अब तक अपने आपको जेकोस्लोवेकियाका संरक्षक बताते थे, उसे इस बातपर विवश किया कि वह अपना एक भाग जर्मनीके समर्पण कर दे। ब्रिटेन, फ्रान्स, इटली और जर्मनीने म्यूनिखमें एक समझौता किया।



बलगेरियाके राजा बोरिस ।

इस समझौतेके अनुसार जेकोस्लोवेकियाका सुडेटन प्रदेश तथा कुछ अन्य जेक प्रदेश, जो जर्मनीने सामरिक तथा दूसरी दृष्टिसे लेना चाहा, उसे मिल गया। हंगरी और पोलैण्डको भी कुछ प्रदेश मिले। म्यूनिखके समझौतेमें ब्रिटेन और फ्रान्सने यह आश्वासन दिया था कि जेकोस्लोवेकियाकी म्यूनिखके बादकी सीमाओंको अक्षुण्ण रखा जायगा। किन्तु यह होनेवाला नहीं था। जर्मनीका उद्देश्य दक्षिणी-पूर्वी यूरोपमें अपने साम्राज्यका विस्तार करना था, न कि जर्मन जातिके लोगोंकी रक्षा करना। अतः वह अपनी आक्रमण-कारी नीतिको बराबर जारी रखनेपर तुला हुआ था। मार्च १९३९ में उसने बोहेमिया और मोरेवियाके बचे हुए भागको जर्मनीमें मिला लिया, स्लोवेकिया जर्मनीके प्रभुत्वमें नाम-मात्रके लिए स्वतन्त्र कर दिया गया और हंगरीने अवसरका लाभ उठाकर रुथेनियापर अधिकार जमा लिया। कुछ दिन बाद ही मुसोलिनीने भी 'गुड फ्राइडे'के दिन अलबेनियाको अपना संरक्षित राज्य घोषित कर दिया। इन घटनाओंने संसारको चकित कर दिया। ब्रिटेन और फ्रान्सने भी देखा कि यदि जर्मनी इसी प्रकार आगे बढ़ता रहेगा, तो वह यूरोपमें एक प्रथम श्रेणीका शक्तिशाली राष्ट्र बन जायगा। ब्रिटेनकी यूरोपीय नीति सदासे यह रही है कि यूरोपका कोई भी एक राष्ट्र इतना प्रबल न हो सके कि समस्त यूरोपपर उसका प्रभुत्व स्थापित हो जाये। इसीको शक्ति-सन्तुलन-(Balance of Power)की नीति कहा जाता है। फ्रान्स भी इस बातको सहन नहीं करना चाहता था कि वह एक दूसरे दर्जेका राष्ट्र रह जाये। अतः ब्रिटेन और फ्रान्सके लिए यह आवश्यक हो गया कि वे जर्मनीके प्रति अपनी नीतिको बदलें। इधर मध्य और दक्षिणी-पूर्वी यूरोपके राष्ट्र भी भयभीत हो उठे। जेकोस्लोवेकियाके अस्तित्वका अन्त हो जानेसे 'लिटिल एण्टेण्ट'का खात्मा हो ही चुका था। यद्यपि बालकन-सङ्घके सदस्य (टर्की, ग्रीस, रूमानिया और युगोस्लेविया) एक-दूसरेके अधिक समीप आ गये थे, किन्तु बलगेरिया अब भी सङ्घके बाहर था। अलबेनियापर इटलीका आधिपत्य हो जानेसे यूनानको इटलीसे अधिक भय हो गया था। राष्ट्र-सङ्घ भी बिलकुल मृतप्राय हो चुका था। बालकन राष्ट्रोंमें आपसी विरोध भिन्न-भिन्न प्रश्नोंको लेकर बदस्तूर विद्यमान था। इधर जर्मनीने अपने उद्देश्यको अधिक विस्तृत बना लिया था। अब तक वह अन्य देशोंमें रहनेवाले जर्मन लोगोंकी उत्पीड़नसे रक्षा कर उनको जर्मनीमें मिलाना अपना लक्ष्य बतलाता था। किन्तु अब उसने एक नये सिद्धान्तको अपनी नीतिका आधार बनाया। इस सिद्धान्तके अनुसार किसी भी महान् राष्ट्रको यह अधिकार है कि वह अपने आसपासके देशोंपर यदि आवश्यकता समझे, तो अपना आर्थिक और राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित कर ले। इसीको Leben svarum (लेबेन सरम) का सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्तके बहानेसे जर्मनी अपना विस्तार किसी भी सीमा तक कर सकता है, यह बात स्पष्ट हो गयी। ऐसी स्थितिमें ब्रिटेन और फ्रान्सके लिए यह आवश्यक हो गया कि वे जर्मनीकी प्रगतिको रोकें। उन्होंने पोलैण्ड, रूमानिया, ग्रीस और टर्कीको इस बातका आश्वासन दिया कि अगर जर्मनी उनपर आक्रमण करेगा, तो वे उनकी सहायता करेंगे। उन्होंने चाहा कि रूस भी उनको इस बारेमें सहयोग दे। रूस सहयोग देनेको अवश्य तैयार हो जाता, यदि उसकी शर्तोंको स्वीकार कर लिया जाता। पर यह सम्भव न हो सका। फ्रान्स और ब्रिटेन अपने इस प्रयत्नमें असफल रहे कि उनके लाभके लिए रूस उनसे सन्धि कर ले। कुछ दिन बाद ही संसारने आश्चर्यसे चकित होकर देखा कि जर्मनी

और रूस, जो अब तक एक-दूसरेके कट्टर विरोधी थे, अब मित्र-रूपमें परिणत हो गये हैं और दोनोंमें अनाक्रमण-सन्धि हो गयी। इस सन्धिके बाद ही जर्मनीने पोलैण्डपर आक्रमण कर दिया और वर्तमान युद्धकी शुरुआत हो गयी। पोलैण्डका रूस और जर्मनीने आपसमें बंटवारा कर लिया। इन घटनाओंने समस्त मध्य और दक्षिणी-पूर्वी यूरोपकी स्थितिपर गहरा प्रभाव डाला। ये राष्ट्र अपने-अपने अस्तित्वकी रक्षाके लिए चिन्तित हो उठे। एक ओर इनको जर्मनी और इटलीसे भय था और दूसरी ओर रूससे। ब्रिटेन और फ्रान्सके आश्वासनका कितना मूल्य इन राष्ट्रोंको लगाना चाहिए, यह एक शङ्कास्पद बात थी। ऐसी दशामें यह स्वाभाविक ही था कि ये राष्ट्र युद्धमें तटस्थ रहनेकी घोषणा करते। जब तक, पोलैण्डकी समाप्तिके बाद, युद्ध अपनी सम्पूर्ण भीषणताके साथ पश्चिमी यूरोपमें होता रहा, इन राष्ट्रोंकी चिन्ता तनिक कम रही। फिर भी रूसने फिनलैण्ड और बाल्टिक राष्ट्रोंके प्रति जो नीति बरतनी शुरू की थी, उसने दक्षिणी यूरोपके राष्ट्रोंको अवश्य सशङ्कित कर दिया था। फ्रान्सके पतनके बाद इस प्रकारके समाचार आने लगे कि सम्भवतः युद्धकी ज्वाला यूरोपके इस भागमें भी फैल जाये। इटलीके युद्धमें जर्मनीकी ओरसे शामिल हो जानेके कारण यह सम्भावना और भी बढ़ गयी थी। यद्यपि ब्रिटेन और फ्रान्सने रूमानियाको गारण्टी दे रखी थी, फिर भी रूमानिया जर्मनीके प्रभावमें अधिकाधिक आता गया। रूमानिया और जर्मनीमें मिट्टीके तेलके सम्बन्धमें हुआ समझौता इस बातका दूसरा प्रमाण है। टर्की और ग्रीसकी हार्दिक सहानुभूति अवश्य ही मित्र-राष्ट्रोंके साथ है, किन्तु टर्कीने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि वह रूसके विरुद्ध कोई काररवाई नहीं करेगा। बलगेरियापर और कुछ समयसे युगोस्लेवियापर रूसका विशेष प्रभाव है। हंगरी जर्मनीके प्रभुत्वमें शुरूसे था ही। सारांश यह है कि यद्यपि मित्र-राष्ट्रोंने बाल्कन राष्ट्रोंको अपने प्रभावमें रखनेका प्रयत्न किया, किन्तु परिस्थिति और समयने आज उनको जर्मनी और रूसके प्रभावमें ला दिया है। इस दशामें इन राष्ट्रोंका भविष्य क्या होनेवाला है, यह कहना कठिन है। रूमानियाके बेसारेबिया और बुकोविना प्रान्तोंपर रूसने अधिकार कर ही लिया है। बाल्कन राष्ट्रोंपर इटली, रूस और जर्मनी तीनोंकी दृष्टि है। पूर्वी भूमध्यसागरमें अपना प्रभुत्व कायम करनेके लिए इन राष्ट्रोंका महत्त्व है। इसके अतिरिक्त इटली और जर्मनीको इस प्रदेशके खनिज पदार्थ तथा कृषि पदार्थ हमेशा लालायित करते रहे हैं। इटली, जर्मनी और रूस तीनोंमेंसे एक भी राष्ट्र यह नहीं चाहता कि किसी दूसरे राष्ट्रका इस प्रदेशपर आधिपत्य स्थापित हो। इन राष्ट्रोंके पारस्परिक विरोधका लाभ उठाकर प्रत्येक राष्ट्र अपना भला करना चाहता है। इटली अथवा जर्मनीका इन राष्ट्रोंपर प्रभुत्व स्थापित हो जाना न केवल इन राष्ट्रोंकी स्वतन्त्रताके लिए, वरन् निकट पूर्वके लिए भी एक खतरा होगा। साधारण जनता हिटलरवाद और मुसोलिनीवादके अत्याचारोंकी चक्कीमें पीसी जायेगी और उसका हर प्रकारसे शोषण करनेकी चेष्टा की जायेगी। ऐसी विकट परिस्थितिमें ये राष्ट्र क्या करें, यह एक बड़ा प्रश्न है। इन राष्ट्रोंके सामने एक ही मार्ग है और वह यह कि पारस्परिक विरोधको जहां तक हो सके, दूर किया जाये अन्यथा उसको भुला दिया जाये और बाल्कन सङ्घमें बलगेरियाको भी शामिल करके उसे अधिक सुदृढ़ बना लिया जाये। इस प्रकार अपने आपको सुसङ्गठित करके और एक सूत्रमें बांधकर युद्धमें तटस्थ रहनेकी नीतिका और अधिक दृढ़ताके साथ पालन किया जाये। यदि इस तटस्थतापर किसी ओरसे इस दशामें आक्रमण हो, तो उसका मजबूतीसे सामना करनेकी तैयारी भी होना आवश्यक है। जब तक इस प्रकार ये समस्त राष्ट्र एक सूत्रमें बंधकर दृढ़ताके साथ अपनी रक्षाके लिए कटिबद्ध न होंगे, इनका भविष्य अन्धकारमय ही रहेगा और इस अवस्थामें यह कहना कठिन होगा कि इन राष्ट्रोंका अन्तिम रूप क्या होनेवाला है।



विदेशोंमें मैंने क्या देखा ?

श्री रामनाथ विश्वास

आज जहाजमें मेरा पांचवां दिन है। असीम समुद्र और अनन्त आकाशको देखते-देखते जी घबड़ा गया। रात अभी नहीं बीती है। सिनेमा देखकर बहुत-से यात्री स्मोकिंग रूममें आ डटे थे। कोई ह्विस्की, कोई बीयरका ग्लास सामने रखकर तरह-तरहकी गप्पें लड़ा रहा था। और उधरसे एक हजरत आते दिखाई पड़ रहे हैं। वह एक स्काच हैं। वह आकर मेरे ही टेबलके पास बैठ गये और पूछा, तुम्हें असुविधा तो नहीं होगी? मैंने कहा, बिलकुल नहीं। वह दक्षिण अफ्रीकाका अधिवासी था, डच भाषा अच्छी तरह जानता था। वह मुझसे डच भाषामें बातचीत करने लगा। डच और स्काच भाषामें जितनी समानता है, अंगरेजी और स्काचमें उतनी नहीं। अंगरेजी भाषाके भारतीय विद्वान् और धनी स्काच इस बातको जरूर जानते होंगे, लेकिन वे इन बातोंको हमें बताते नहीं। स्काच सज्जनसे मैंने कह दिया कि आपकी भाषा मैं नहीं जानता और इसे सीखनेकी विशेष इच्छा भी नहीं है। मेरी बातोंको सुनकर उसने कहा, आप 'प्रो-ब्रिटिश' मालूम पड़ते हैं। मैंने कहा, शायद आप सोच रहे हैं, दक्षिण अफ्रीकासे आ रहा हूं, अनेक अंगरेजोंके निकट सम्पर्कमें आनेका मौका मिला होगा, इसीलिए मैं 'प्रो-ब्रिटिश' हूं। स्काचने हंसकर कहा, अब आप किस देशके यात्री हैं। मैंने कहा, अमेरिकाके। उन्होंने कहा, अमेरिका जाइये, वहां जानेसे आपकी आंखोंका पर्दा दूर हो जायगा। वहां आप साम्राज्यवादका ताण्डव नृत्य देखेंगे। आप देखेंगे कि निग्रो—हबशी लोगोंपर वे कैसा अत्याचार करते हैं। मैं समझता हूं, दक्षिण अफ्रीकामें शासनके दोहरे प्रबन्धके कारण भारतीयोंको सुविधा हुई है, स्काच साहबने कहा। इस बातको समझकर मैंने स्वीकार कर लिया। मैंने उन्हें धन्यवाद देकर कहा, मेरा गलत ख्याल दूर हो गया।

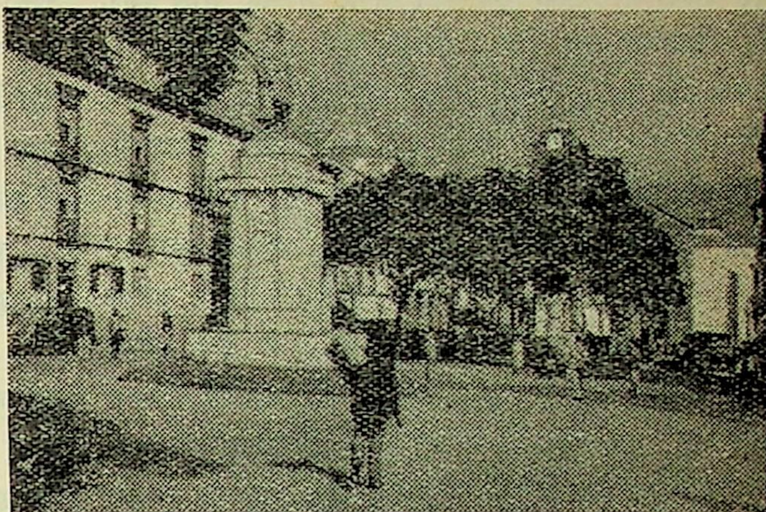
अबसे सभी यात्रियोंकी जबानपर सिर्फ 'मेडिरा' का नाम सुनाई पड़ने लगा। यह टापू हमारे रास्तेमें ही आनेवाला है, इसीलिए लोग इसकी रट लगा रहे हैं। मुझे ऐसा ख्याल हुआ कि शायद इसका नाम 'मेडिरा' न होकर 'मदिरा' होगा। जहाजी अखबारमें एक दिन निकला था कि फ्रैङ्को साहबने सब जहाजोंका मेडिरा जाना रोक दिया है। इसमें हिटलरकी चाल है, मुसोलिनीका इशारा है, इत्यादि विषयोंपर लोग बहस करने लगे। इसके बाद एक दिन अखबारमें निकला कि 'हर' चेम्बरलेनने कुछ ऐसी बात की है, जिससे तमाम बाधायें दूर हो गयीं। हम फूले नहीं समाये। उस समय हिटलरके नामके पहले मिस्टर, मुसोलिनीके पहले 'मोशिये,' चेम्बरलेनके आगे 'हर' और दलादियेके आगे 'सीनर' लगाया जाता था। अबसीनिया, जेकोस्लोवेकिया, आस्ट्रिया आदिका सर्वनाश इन्हीं लोगोंने मिलकर किया था, यही इसका कारण था। इस विषयपर मैंने समाचारपत्रोंमें अनेकों लेख देखे हैं, लेकिन उनकी कतरन मैंने नहीं रखी। रखना सम्भव भी नहीं, बाइसिकलसे सफर करना ठहरा, अगर इसका पिछला हिस्सा भारी हो जाय, तो मेरा चलना दूभर हो जायगा।

मेडिराका जिक्र आते ही यात्री खेल-कूदकी तैयारी करने लगे। अपने भारतीय साथीसे मैंने कहा—भाई साहब, अब जरा मुट्ठी खोल दें, देखें, ये हमारे पास आते हैं या नहीं। उन्होंने कहा—वे रुपया ले लेंगे, लेकिन खेलने नहीं देंगे। मैंने कहा, इसकी जिम्मेवारी मेरे ऊपर, मैं उन्हें देख लूंगा। सचमुच ही चन्देकी बही लेकर एक यात्री हमारे पास आये। वे धर्मयाजकका पहनावा पहने हुए थे। चन्देकी बही हाथमें लेकर मैंने कहा—"हाथमें बाइबिल लेकर अफ्रीकामें जिस तरह निग्रो लोगोंको ठग रहे हैं, वैसी आशा यहां न रखें; हम रुपया देंगे, हमें खेलाना पड़ेगा, हमारा नाम रहेगा; अगर हमारे साथ कोई न खेले, तो हमें दुःख नहीं होगा। हम खेलना चाहते हैं और खेलेंगे ही, इस बादको याद रखें।" पादरीका मुंह लाल हो गया, लेकिन स्वाभाविक अवस्था शीघ्र ही लौट आयी। मैंने कहा, "अपनेको छिपानेमें तो आप पक्के हैं, इसके लिए मैं आपको शाबाशी देता हूं; ऐसा नहीं होता, तो अफ्रीकाके जङ्गलोंमें आपने कैसे सर्वनाश किया होता। मेरी बातपर आप राजी हैं?" बहुत मीठे

स्वर और मीठी बातोंमें उन्होंने अपनी सम्मति जाहिर की। हम दोनोंने मिलकर तीस शिलिंगकी अदद लिख दी।

शायद दो ही तीन दिनमें हम साउदम्पटन पहुंचेंगे। आज सवेरेका खाना खाकर सभी खेलनेमें मस्त हैं। हम गये और एक बेञ्चपर बैठकर तरह-तरहके खेल देखने लगे। बीच-बीचमें हम भी खेलने लगते थे। हमारे खेलके साथी साधारणतः यहूदी होते थे। दक्षिण अफ्रीकामें अभीसे यहूदियोंका दिल धड़कने लगा है। बुद्धिके बलसे सहज ही में धन कमानेवालोंकी ओर सभीकी नजर जाती है। अंगरेजों और भारतीयोंसे मिलकर ये अच्छा कारोबार कर रहे हैं। खेलनेके समय यहूदी लोग खूब हंसते, आनन्द करते और यह दिखानेकी कोशिश करते कि वे हमारे मित्र हैं। मेरे साथी कौन यूरोपियन है, कौन यहूदी है, नहीं पहचान पाते थे और सभीसे एक ही तरह घृणा करते थे। अनेक बार मैंने उन्हें समझाया कि घृणा करना स्वाभाविक है, लेकिन किसी जातिपर एकाएक कटाक्ष करना अन्याय है। अर्थ-पिशाच 'शाइलक'के चरित्रका वर्णन जो शेक्सपियरने किया है, ठीक नहीं। यहूदियोंमें ऐसे महापुरुषोंकी कमी नहीं, जिन्होंने दुनियाके कल्याणके लिए बहुत कुछ किया है।

ऊपर स्वच्छ नील आकाश है, दाहिनी ओर सूर्य उदित हो रहा है और बायीं ओर अस्त हो जायगा। नीचे शान्त, तरङ्गहीन समुद्र है, वह पोखरे-सा स्थिर है। हम इसी दृश्यको देख रहे हैं। एकाएक उड़नेवाली मछलियोंका एक झुण्ड समुद्रसे निकलता था और बहुत दूर जाकर फिर समुद्रमें ही विलीन हो जाता था। हम भी उसी ओर आकर्षित हुए। दिन बड़े आनन्दसे बीत रहा है। कल रातमें मैंने एक किताब पढ़ी थी, जिसमें लेखकने समुद्रकी भीषणताका वर्णन किया था। भूतके डरसे शुरू करके तूफानकी एक भयप्रद कहानीका चित्र उन्होंने अङ्कित किया था। मैं वास्तवके साथ इस कल्पित कहानीकी तुलना कर रहा था और सोच रहा था कि दूसरोंके आनन्दके लिए उच्छ्वास, भावुकता, कविता करनेके समय कितनी झूठोंका सहारा लेना पड़ता है, यह लोगोंको मालूम नहीं। लेकिन



जहाजपरसे 'मेडिरा'का प्रथम दर्शन।

वास्तववादीके लिए इसका कुछ मूल्य नहीं है। मैं चिन्ताओं-में डूबा हुआ था, इसी बीचमें पादरी साहब मेरी बगलमें आ बैठे थे, इसका मुझे पता ही न था। उन्होंने अपना दाहिना हाथ मेरे कन्धेपर रखा, तब कहीं उनके आनेका मुझे पता लगा।

पादरीने कहा—"चिन्ता मत कीजिये, हम कुछ ही दिनोंमें साउदम्पटन पहुंच जायेंगे, ईश्वर हमारी मदद करेंगे।" मैंने कहा—महाशय, कृपाकर मुझे ईश्वर और उसके पुत्रोंकी बात न सुनावें। मेरा मङ्गल मेरे हाथमें है। आपकी बातों-की उत्पत्ति हुई है डरसे। ये बातें शराबके नशेकी तरह साम-यिक उत्तेजना पैदा करती हैं, लेकिन अवसादके समय नहीं मालूम होता कि हम कहां चले जा रहे हैं। मुझे क्षमा करें। कुछ सिक्कोंके लिए आपने जो चोंगा पहना है, उसे उतार फेंकें, तो आपको मालूम होगा कि बन्तु, हिन्दू, वगैरह भी मनुष्य हैं। इनके लिए अलग-अलग व्यवस्थायें करनेकी जरूरत नहीं।

जहाजके सभी यात्री खेलके आनन्दमें मस्त हो रहे हैं। मेरे भारतीय मित्र और मैं भी चुपचाप बैठा नहीं हूं—मौका मिलते ही खेलमें शरीक होकर हम भी आनन्द ले रहे हैं। जहाजके एकाङ्गी जीवनमें सजीवता और विचित्रता खेलकर ही प्राप्त की जा सकती है।

दो यहूदी हमारे खेलके साथी हुए। खेलके भीतरसे ही

मुझे उनकी मानसिक स्थितिका घनिष्ट परिचय प्राप्त हुआ, मेरे प्रति उनके सौहार्द और प्रीतिका बन्धन दृढ़ होने लगा। खेलके उपरान्त दोनों यहूदी सज्जन हमारे साथ घनिष्टतासे बातचीत करने लगे। उन्होंने कहा—"हमारी इच्छा थी, आप लोगोंसे बातचीत करनेकी ; लेकिन ऐसा करनेसे जाति-च्युत होना पड़ेगा, इसी डरसे हमें साहस नहीं हुआ।" हिन्दुस्तानमें बातचीत करनेसे जाति नष्ट नहीं होती, बल्कि अछूतोंकी परछाईं पड़नेसे स्नान करना पड़ता है। दक्षिण भारतमें सनातनी पण्डित घण्टी बजाते हुए चलते हैं, जिससे कोई अछूत उनके रास्तेमें न आ पड़े। हिन्दुस्तानकी जन-गणना रिपोर्ट (१९३१) में लिखा है कि महार जातिके लोगोंको गलेमें हण्डी बांधकर चलना पड़ता है। रास्तेमें उन्हें थूकनेका भी अधिकार नहीं है। वे अपनी हण्डीमें ही थूक सकते हैं। उनके पद-चिह्नपर पैर पड़नेसे उच्च वर्णवालोंको नहाना पड़ता है, इसीलिए महार अपने पद-चिह्नोंको एक छोटी डालसे मिटाते चलते हैं। डा० अम्बेदकर इसी जातिके हैं। पाठकोंको सुनकर आश्चर्य होगा कि उत्तरी भारत तथा राजपूतानेकी कुछ रियासतोंमें हरिजनोंको घीकी पूड़ी-मिठाई बनानेका भी अधिकार नहीं है। इस हालतमें वे अन्य सम्प्रदायवालोंके चंगुलमें फंस जाते हैं, यद्यपि वहां भी किसी-न-किसी रूपमें वर्ण-व्यवस्था मौजूद है। वर्ण-व्यवस्थासे अपनेको मुक्त बतानेवाले तथाकथित गणतान्त्रिक धर्मोंमें भी यह मौजूद है। इसकी आलोचना मैं एक स्वतन्त्र लेखमें करना चाहता हूं, इसीलिए इस प्रसङ्गको यहीं छोड़कर हम अपने लेखके विषयपर लौट आते हैं।

बातचीतके सिलसिलेमें यहूदियोंने कहा—दुनियाकी उन्नति बातसे नहीं, बल्कि कानूनसे हो सकती है। पापीको व्यक्तिगत दण्ड न देकर हमें पापके मूलको ढूंढ़ निकालना होगा और उसे खोदकर फेंक देना होगा। आजका राष्ट्र पूंजीपतियोंका वह महान् अस्त्र है, जिससे वे विभिन्न उपायों-से अन्यान्य वर्गोंपर अपना आधिपत्य कायम रखते हैं। राष्ट्र-को उनसे छीनकर सर्वहाराओंके हाथमें लाना होगा, जो जनताकी भलाईके लिए कानून पास करेंगे, मुट्ठी-भर धनियों-के लिए नहीं। हम अपनी इच्छासे आपसे घृणा नहीं कर रहे हैं, बल्कि समाज हमें ऐसा करनेके लिए बाध्य कर रहा है, और हम भी समाजके नियमको मान लेते हैं। हममें समाजके खिलाफ़ विद्रोह करनेकी शक्ति नहीं है ; क्योंकि हम यहूदी हैं, और इसीलिए अत्याचार-पीड़ित भी हैं। मैं उनकी बातोंको सुनकर बहुत सन्तुष्ट हुआ। इस तरहकी स्पष्ट बात कदाचित् सुनाई पड़ती है। यहूदियोंसे बिदा होकर मैं केबिनमें लौट आया।

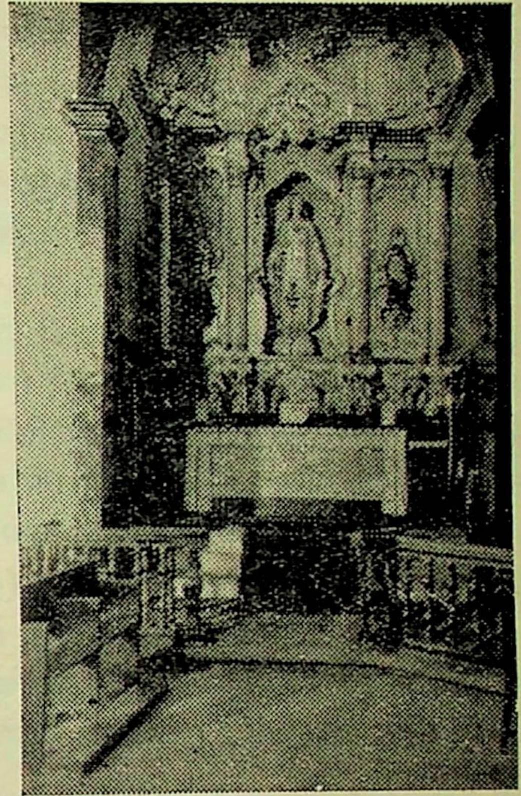
हमारे स्टिवार्ड और वेटर लोगोंको काफी फुर्सत है, इस समयको वे तरह-तरहकी किताबें पढ़कर बिताते हैं। हमारे केबिनके पास ही प्रधान स्टिवार्डका केबिन है। किसे कौन-सी किताब पढ़नी चाहिए, वे ही ठीक कर देते हैं। मैं थोड़ी देर तक किताबोंके देनेका इन्तजाम देखता रहा। पुस्तकालयमें छोटी-बड़ी बहुत-सी किताबें हैं। किताबोंको देखकर यह समझना मुश्किल था कि यह ब्रिटिश जहाज है या सोवियट। अधिकांश किताबें सोवियट सम्बन्धी थीं। अंग्रेजी भाषाका मुझे अच्छा ज्ञान नहीं है, इसीलिए इन पुस्तकोंके अध्ययन करनेका दुस्साहस मैंने कभी नहीं किया। उनकी भाषा सरल और प्राञ्जल थी, लेकिन बीच-बीचमें कुछ ऐसे कठिन शब्द मिल जाते थे, जिनके जाने बिना पुस्तक पढ़ना व्यर्थ-सा हो जाता था। एक दिन मैं एक किताब मांग लाया, लेकिन लौटानेके समय मैंने कह दिया कि महाशय, कुछ समझ नहीं सका। रूम-स्टिवार्डने कहा—इसमें ऐसी कौन-सी बात है, जिसे आप नहीं समझ सके। मैंने एक शब्द दिखाकर कहा, देखिये, इससे पुस्तक-भरका सम्बन्ध है। स्टिवार्डने हंसकर कहा, अव-सर, मिला तो मेडिरामें पहुंचकर आपको अर्थ समझा दूंगा।

हमारा जहाज धीरे-धीरे मेडिराके निकट पहुंचता जा रहा था। मेडिराका शासनाधिकार पुर्तगालवालोंके हाथमें है। यह पुर्तगालका एक अविच्छेद्य अंश समझा जाता है। इसका क्षेत्रफल ३१४ वर्गमील और आबादी ९ लाखके करीब है। दूरसे इस द्वीपका मनोहर दृश्य देखकर मुग्ध हो जाना पड़ता है। इसकी स्थिति अयन वृत्त (tropics) में होने-पर भी, पेड़ों और पौधोंको देखकर ऐसा मालूम होता था कि अयन वृत्तकी आबहवाका प्रभाव इसपर नहीं पड़ा है। जहाज जेटीमें लगा, असंख्य लोग जहाजके यात्रियोंको देखनेके लिए किनारेपर खड़े हैं। बहुत-से पोर्तुगीज लड़के यात्रियोंसे दो पेनी या शिलिङ्ग पानीमें फेंकनेके लिए अनुरोध कर रहे थे। मुद्रा फेंकते ही समुद्रमें डुबकी लगाकर वे उसे

निकाल ही लेते थे। उनकी दरिद्रता देखकर लोग कुछ-न-कुछ फेंक रहे थे। जहाज लगते ही आदमियोंका एक दल उसपर हाथके बने तरह-तरहके सूती कपड़ोंका बाजार लगाने लगा। कपड़ोंको देखनेकी मुझे प्रबल इच्छा हुई। यूरोपियन तथा निग्रो सभ्यताके सम्मिश्रणसे एक नयी सभ्यताकी सृष्टि हो रही है, इसे मैंने अनुभव किया। जहाजसे उतरकर अकेला ही मेडिरा शहर देखनेके लिए निकल पड़ा। हिन्दुस्तानी साथीने साथ नहीं दिया, क्योंकि इसी अर्सेमें वह जहाजका धोबीखाना अच्छी तरह देख लेना चाहते हैं। यह मैं पहले ही लिख चुका हूं कि वह धोबीखानेके लिए एक अच्छी मशीन खरीदने विलायत जा रहे हैं।

पोर्तुगीजोंके घर-द्वार, गिर्जों और पत्थरसे बनी हुई सड़कोंको मैंने देखा। शराबकी दूकानें एक कतारमें हैं। जापानकी भांति यहां भी बेचनेवाली स्त्रियां ही हैं। इन दूकानोंको देखकर मैं सोचने लगा कि किस तरह एक जाति दूसरोंको ग्रास कर लेती है। पुर्तगालका क्षेत्रफल पैंतीस हजार वर्गमील है; लेकिन इसने नौ लाख छत्तीस हजार वर्गमीलके क्षेत्रपर एशिया, अफ्रीका आदिमें अधिकार कायम कर रखा है। अर्थात् पुर्तगालका साम्राज्य इससे करीब सत्ताईस गुना बड़ा है। साम्राज्यवादी यूरोपकी जातियोंमें फ्रान्सीसी, स्पेनिश और पोर्तुगीज अपने अधीनस्थ जातियोंसे सहज ही हिल-मिल गये हैं। यूरोपकी दूसरी साम्राज्यवादी जातियोंमें यह बात नहीं पायी जाती। शराबकी दूकानमें एक लड़कीको देखकर मुझे समझनेमें देर न लगी कि वह वर्णसङ्कर है। उसके बाल इसकी गवाही दे रहे थे। इसी समय मैंने इस बातका पता लगाना निश्चय किया कि यहांके प्राचीन अधिवासी पोर्तुगीज हैं या निग्रो।

अपने आवारे जीवनमें पढ़नेके लिए मौका नहीं मिलता। इतिहासकी खबरें मुझे नहींके बराबर मालूम हैं, आंखसे देखकर और अनुमान करके काम चलाना पड़ता है। मेरी रायमें यहांके प्राचीन अधिवासी निग्रो हैं, गोरे पोतुगीजोंने बलपूर्वक इनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया है। सम्बन्ध इस प्रकारसे स्थापित किया गया है कि अब निग्रोकी जगह समस्त द्वीपमें वर्णसङ्कर और यूरोपियन ही दिखाई पड़ते हैं। ईसा मसीहके अनुयायी, साम्राज्यवादके अग्रदूत पादरियोंकी कृपासे इण्डोनेशिया, पोलिनेशिया, यानी मलाया और आस्ट्रेलियाके बीच पाये जानेवाले असंख्य द्वीपोंमेंसे अनेकोंके अधिवासियोंका नामोनिशान इस दुनियासे मिट चुका है। चेचक, हैजा, प्लेग आदिसे बचानेके नामपर उन्हें गर्मी, सूजाक, चेचक, प्लेग, हैजा आदि रोगोंको पैदा करनेके लिए इञ्जेक्शन दिये जाते थे। उन भोले-भाले लोगोंको शराब, व्यभिचार आदिका महत्त्व सिखाकर उन्हें दुनियासे बिदा कर दिया गया। इनकी कृपासे आस्ट्रेलियाके दक्षिण-पूर्व-स्थित तसमानिया द्वीपके प्राचीन अधिवासियोंकी यही दशा हुई है। अबेल जान्स तसमनने २४ नवम्बर, १६४२ ई० में इस द्वीपका पता लगाया। १८०३ ई० में अंगरेजोंने इसपर अपना अधिकार कायम कर दिया। सौ सालके शासनके पश्चात् आज तसमानियाकी लाखोंकी आबादी न मालूम किस लोकको चली गयी। फ्रान्सीसी तथा अन्यान्य पर्यटकोंने लिखा है कि गोरे शासक उनका बन्दूकसे शिकार खेलते थे और इस तरहके एक 'शिकारी' ने फ्रान्सीसी पर्यटकसे इस बातके लिए गर्व किया



मेडिराका एक मन्दिर। भीतर जानेपर यह ठीक एक हिन्दू-मन्दिर-सा दिखाई पड़ता है।

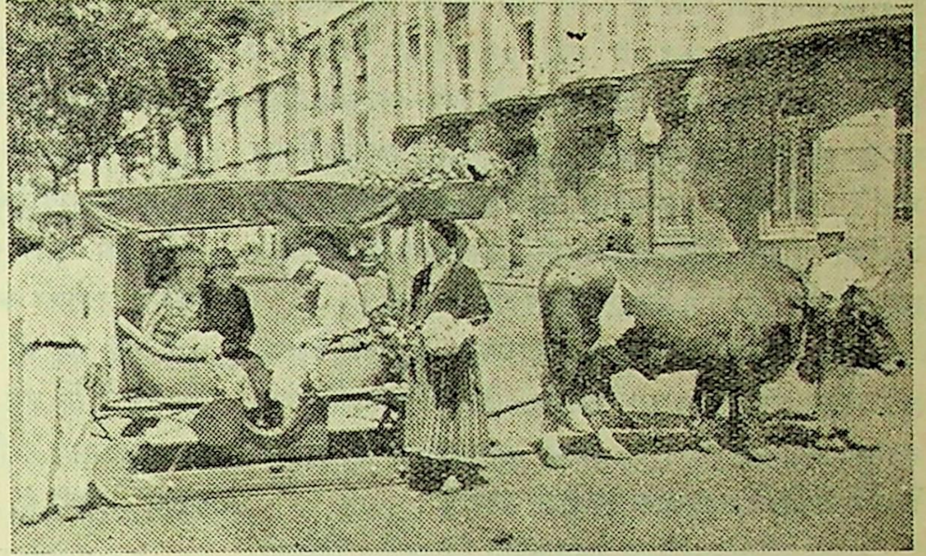
था कि वह चालीस नरमुण्डोंका अधिकारी है। स्टेट्समैन अब्दकोश (Year Book) में दिखाया गया है कि १८६१ में यहांकी आबादी ८९,९७७ थी और १९३१ में वह बढ़कर ढाई लाख हो गयी है। साधारण पाठकोंको भला यह कैसे मालूम हो कि इनमें एक भी सच्चा या वर्णसङ्कर तसमानियन नहीं है, यहांके आजके अधिवासी तो प्रवासी अंगरेज हैं। चार्ल डारविन साहबने भी अपनी जगत्-प्रसिद्ध पुस्तक (Origin of Species) में इस तरहकी बहुत-सी लुप्त तथा लुप्तप्राय जातियोंका उल्लेख किया है। मनुष्य-रचना-विज्ञानके अनेकों विद्वानों तथा और बहुत-से लोगोंने इसका तीव्र प्रतिवाद किया है; लेकिन पुरानी रफ्तार अब भी जारी है। विलायतमें जीवित पशुओं तथा छोटे जीवोंकी चीरफाड़-विरोधिनी अन्तर्राष्ट्रीय समिति है (International anti-vivisection committee), लेकिन मनुष्योंपर होनेवाले इस राक्षसी कृत्यको बन्द करनेके लिए आज भी कोई संस्था नहीं बनी है। लेकिन मैं कहांसे कहां बहक गया।

शराबकी दूकानोंको ही देखकर मैं सन्तुष्ट नहीं हो सका, इसीलिए मैं भट्ठीखाना देखनेके लिए चला। पोर्तुगीज मैनेजरने मेरा सादर स्वागत किया और कई प्याले शराबके नमूने पीकर देखनेके लिए दिये। मेरा ध्यान शराबकी ओर नहीं था, मैं तो देखने आया था कि गोरा मैनेजर अपने काले अधीनस्थ आदमियोंपर कैसा बर्ताव करता है। यहां तक कि मैंने सीधे ही पूछ डाला कि इस द्वीपमें कोई वर्ण-बाधा (Colour Bar) है या नहीं। मैनेजरने जवाब दिया—यहांपर किसी प्रकारकी वर्ण-बाधा नहीं है। मैंने कहा—अच्छा यह तो बताइये, कोई आर्थिक वर्ण-बाधा है या नहीं, अर्थात् गोरे और काले चमड़ेवालोंको एक ही तरहके कामके लिए दो तरहकी तनखाह दी जाती है या नहीं? मैनेजरने कहा—यहां किसी तरहकी वर्ण-बाधा नहीं है। अब मैंने पूछा—क्या काले चमड़ेवालोंको अच्छी नौकरियां बड़ी कठिनाईसे मिलती हैं या बिलकुल नहीं मिलती हैं? मैनेजरने हंसकर जवाब दिया—इस तरहकी बात यहां नहीं पायी जाती; लेकिन धनियोंका शोषण काले-गोरोंपर एक ही तरहसे होता है, धनी किसीसे भी मुरौवत नहीं करते। मेरी बातोंकी सचाईका पता आपको कहीं भी मिल जायगा। आपको और भी दिखाई पड़ेगा कि दरिद्रता-जनित अधःपतनसे हमें भी रिहाई नहीं मिली है।

शराबके कारखानों, दूकानों तथा शराबके साथ आवश्यक अन्यान्य वस्तुओंकी कमी इस द्वीपमें नहीं है। पोर्तुगीजोंने जेनरल फ्रैङ्कोका झण्डा उड़ाकर स्पेनीय फैसिस्टोंकी विजयपर हर्ष प्रकट किया है। यहां यह बता देना आवश्यक है कि पुर्तगालका शासन भी फैसिस्ट तरीकेसे होता है और डा० सालाजार यहांके डिक्टेटर हैं। फैसिस्ट स्पेनके झण्डेके नीचे आदमियोंका एक दल रास्तेपर चला जा रहा था। इनकी इस शोचनीय दशापर मैंने तरस खाया। इन लोगोंका पेशा जूता-पालिश करना है। एकने मेरे पास टूटी-फूटी अंगरेजीमें आकर कहा—No money shine अर्थात् मुफ्तमें पालिश करवाइये। मैं राजी हो गया। उसके इस काममें नौसिखिया होनेके कारण पालिश करनेमें देर हो रही थी। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि वह कुछ कहना चाहता है, लेकिन वह बोल नहीं सका। एक आदमी आकर उसे पकड़ ले गया। वह कहां और किसलिए पकड़कर ले जाया गया, यह मुझे मालूम नहीं। हम भावुक होते हैं, चिन्ता कर सकते हैं, लेकिन काम नहीं कर सकते। बहुत देर तक बैठकर तरह-तरहकी बातोंपर विचार करता रहा, बादमें इस सुन्दर उपवनसे बिदा हुआ। रास्तेमें मैं विचार करने लगा कि पुर्तगालकी सरकार साम्यवादियोंपर अमानुषिक अत्याचार क्यों करती है, क्या वह स्पेनसे डरती है? लेकिन उसी समय मुझे याद आया कि पुर्तगाल भी फैसिस्ट देश है और हिन्दुस्तान-स्थित पोर्तुगीज अधिकृत गोआ, दामन और दिउके अधिवासियोंपर किस तरहके जुल्म होते हैं। इन स्थानोंमें बोलने, लिखने तथा संस्था स्थापित करनेका अधिकार जनताको नहीं है, किसी तरहकी व्यक्ति-स्वाधीनता भी नहीं है। इसका मुझे व्यक्तिगत अनुभव है और बम्बई-स्थित गोआ कांग्रेस कमेटीने कुछ दिन पहले एक पुस्तिका प्रकाशित की है, जिसमें अधिवासियोंपर होनेवाले जुल्मोंका वर्णन किया गया है। गोआके किसी चायखानेमें एक पोर्तुगीज अफसर और एक पत्रकारसे बातचीत हो रही थी। अफसरने कहा कि डा० सालाजार दुनियाके सर्वश्रेष्ठ अर्थनीतिज्ञ हैं; लेकिन पत्रकारने इस बातको न मानकर टाउजीग, सेलिगमैन आदिके नाम लिये, इसपर वह पकड़कर थानेमें पहुंचाया गया

और उसे बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। उपर्युक्त घटनासे पाठक पोर्तुगीज शासनका कुछ अन्दाज लगा सकते हैं।

मेडिराकी सड़कोंपर नयी नेकटाई पहनकर दुर्बल युवक हंसमुख बननेकी कोशिश करते हुए चले जा रहे हैं। कङ्कालसार युवतियां यात्रियोंको आकर्षित करनेकी चेष्टा कर रही हैं। दूकानदारोंका समूह उदग्रीव होकर बैठा हुआ है, मानो वह क्रेता-समूहको निगल जायगा। दक्षिण अफ्रीकाकी सोनेकी खानोंमें मेडिराकी शराब खूब बिकती है, यहां तक कि ब्रिटेन तक यह भेजी जाती है।



मेडिराकी बैलगाड़ी—जरा ध्यानसे देखें, गाड़ीमें पहिये नहीं हैं ; पर यह खूब मजेमें चलती है और यह वहांकी शानदार सवारी समझी जाती है।

बूअर सिपाही खाने-पीनेमें मस्त हैं। भविष्यकी चिन्ता उनके पास तक नहीं फटकती, वे खूब खर्च कर रहे हैं। बीच-बीचमें उनके अफसर सावधानीसे खर्च करनेके लिए कह रहे थे।

मेडिरामें एक नये ढङ्गकी बैलगाड़ी दिखाई पड़ी, इस गाड़ीपर सभी चढ़ रहे थे। एक गाड़ीमें ६ आदमी बैठ सकते हैं। सबसे पहले मेरी नजर बैलोंकी ओर गयी। मैं उनके पुष्ट, सुन्दर शरीरको देखकर बहुत खुश हुआ। इस तरहके स्वच्छ और स्वस्थ बैल मैंने बहुत कम देखे हैं। गाड़ीवान उन्हें मारता नहीं, मारनेका डर-मात्र दिखलाता है। कोड़ेको घुमाकर जोरसे एक शब्द करता है, इसीसे सावधान होकर बैल अपना काम करता रहता है, उसे मारनेकी जरूरत नहीं पड़ती। बैलोंके थोड़ा भी थक जानेपर यात्रियोंको उतर जाना पड़ता है, इसमें चाहे उन्हें सुविधा हो या असुविधा, वे अपने निश्चित स्थानमें पहुंच गये हों या नहीं। गोमांसाहारी गौओंकी सुविधा, स्वास्थ्य आदिकी ओर भी ध्यान देते हैं, लेकिन गोमाताकी पूजा करनेवाले ही उनकी पूंछ बेरहमीसे ऐंठते हैं और उनके लिए 'फूंका-विरोधी' कानून बनानेकी जरूरत पड़ती है!

मेडिरामें देखनेके लायक और बहुत-सी चीजें रही होंगी, लेकिन मेरी तबीयत ठीक नहीं थी, अतएव मैं जहाजपर लौट आया। जहाजमें मेला-सा लग गया है। तरह-तरहकी चीजोंको लेकर व्यापारियोंने भीड़ लगा रखी है। दर-भाव इस तरहसे हो रहा है कि एक पौण्डका सौदा एक शिलिङ्ग, अर्थात् पन्द्रह रुपयेका बारह आने तक पर बिक रहा है। हमारे देशमें भी ऐसी बात दिखाई पड़ती है। इस तरहका दर-भाव करनेके लिए विदेशी हमारी निन्दा करते हैं, किताब लिखते हैं, लेकिन यहां ऐसी बात नहीं है, यहां दर-भाव करनेमें लोगोंको आनन्द मिलता है। विदेशी हिन्दुस्तानकी पण्य-रमणियोंके सम्बन्धमें भी तरह-तरहकी कल्पित संख्यायें और बातें प्रचार किया करते हैं, हमारी अशिक्षा और गरीबीके लिए वे हमें ही दायी कहते हैं। वे इस बातको छिपाते हैं कि वार्षिक चार सौ पचास करोड़ रुपया भारतसे इंगलिस्तान चला जाता है। जज लिण्डसे, कन्हैयालाल गोबा आदिकी पुस्तकोंके पाठक जानते हैं कि विदेशोंमें पण्य-रमणी-समस्या कैसी भीषण है। मेरे कथनपर विश्वास न हो, तो राष्ट्र-सङ्घकी स्त्री-व्यापार-सम्बन्धी कमेटीकी रिपोर्ट पढ़ लें। गोरी पण्य-रमणियां इसी जहाजपर नीले आकाशके नीचे उनकी पोल खोल रही हैं। दुनियाभरमें सिर्फ रूसमें ही पण्य-रमणियोंका व्यापार सदाके लिए लुप्त हो गया है।

साउदम्पटन अब अधिक दूर नहीं है। कल सवेरे शायद हम वहां पहुंच जायेंगे। मैं पहली बार इंगलैण्ड नहीं जा रहा हूं। इसके पहले चटगांवसे लन्दन तककी यात्रा

मैं साइकिलसे कर चुका हूं। अब और तबमें कुछ फर्क है। उस वक्त मेरे पास कुछ भी नहीं था, पेटकी चिन्तासे मैं हैरान था। अबकी बार जेबमें रुपया है, खाते-खाते अजीर्ण-सा हो गया है। पासमें रुपया है, मुझे किसी बातकी चिन्ता नहीं है। मैं बहुत प्रसन्नचित्त था। लन्दनको अच्छी तरह देखनेका इरादा मैंने पहलेसे ही कर रखा है, दर्शनीय स्थानों और चीजोंकी मैंने एक सूची भी बना ली।

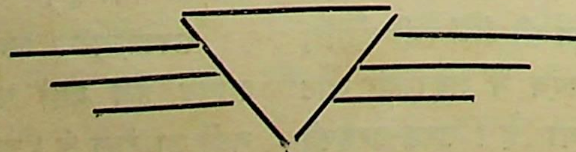
दूरसे साउदम्पटनके लाइट-हाउसकी रोशनी देखकर मुझे अपार आनन्द हुआ। हमारा और ब्रिटेन-वासियोंका आनन्द एक नहीं है। वे अपनी मातृभूमिपर पहुंचनेवाले हैं और मैं अपने शासकोंके देशमें जा रहा हूं।

साउदम्पटन बन्दरमें एक बहुत अच्छा नियम है। विदेशसे बड़ा जहाज पहुंचते ही स्पेशल गाड़ीका इन्तजाम रहता है। और लोगोंके साथ मैं भी लन्दनके बाटरलू स्टेशनकी ओर चला। मेरा स्थान रिजर्व नहीं था, इसलिए किसी भी जगह बैठनेका मुझे अधिकार था। गाड़ी हमें लेकर दुनियाके दूसरे सबसे बड़े शहरकी ओर चली जा रही थी। बाटरलूमें उतरकर कालेःआदमियों द्वारा परिचालित अपने पूर्व-परिचित वाई० एम० सी० ए० में जाकर ठहरा। अमेरिकामें हिन्दुस्तानी अपनेको काला आदमी नहीं कहते। अगर भूलसे कोई उन्हें कह भी दे, तो वे उसे धमका देते हैं। वे उनसे कह देते हैं कि हम आर्य हैं और यूरोपवाले हमारे वंशधर हैं। इस समय मैं विलायतकी बात कर रहा हूं, इसलिए मैं काला आदमी हूं; क्योंकि मैं यहांपर हीन-प्रवृत्ति (Inferiority complex) के अधीन हूं। स्वाधीन-प्रवृत्ति लोगोंके बीचमें पहुंचनेपर मैं अपनेको काला आदमी नहीं कहूंगा।

जीवन-गाथा

जब होते हो पास आंखमें प्रेम-अश्रु भर आते हैं।
दूर चले जाते हो तब तो शोक-अश्रु छा जाते हैं॥
प्रियतम बनने और प्रेम करनेकी पीड़ा होती है।
अति सुखकर सर्वोच जगतमें, फिर क्यों दुनिया रोती है?
दूर-दूर रहना भी मेरा जगसे देखा गया नहीं।
जहां बनायी कुटिया मैंने पहुंचा कुलिश तुरन्त वहीं॥
असन्तोषकी लहर हृदयको लिये बढ़ी ही जाती है।
देखें, कहां किधर ले जाकर यह मुझको टकराती है?
भाग्य आज ले रहा परीक्षा विजयी मुझको होना है।
या तो उन्हें शीघ्र पाना है या अपनेको खोना है॥

—पद्मकान्त मालवीय।



मृत्युहीन स्मृति

श्रीमती उषादेवी मित्रा

तो उस दिन खिली थी केतकी, कांटोंको संभारे, संजोरे, कांटोंके बेड़ेमें, पङ्कके आंचलमें, पुष्करिणीके तटपर—झाड़ी-झुरमुटोंमें घिरी-घिरी, उस दिन खिली थी केतकी।

बेला सांझकी, सो भी छोटी, विदा-व्यथामें दबी, ग्रामकी सान्ध्य-शङ्ख-गुञ्जनामें रमी-रमी—बेला सांझकी। गृहगामी गायोंके हम्बारवमें मुखरित शान्त पथ। गृह-छाया प्रान्तरमें सोती, वन-वीथीमें सूर्य-रश्मिका शेष रङ्ग गुलाली भरता, बेला सांझकी।

दिन-घड़ी, मास-पक्ष वर्षोंमें युगान्तरकी दबी हंसीकी छाया पड़ा करती। एक दिनका वह हीरेन, एक दिनकी वह छोटी दामिनी वर्षोंमें अपने बचपनको उपहार दे देते। तो भी बचपनके उस श्रावण मासके बादल-झरे दिनको शायद भूल न पाते।

बचपनका वह श्रावण मास, झर-झर-झर वर्षाके गीत, बालक हीरेन केतकी रोपता पुष्करिणी किनारे, बालिका दामिनी दामिनी-सी हंसकर कहती—"गंवारों जैसी पसन्द हीरेन।"

पड़ोसी, दरिद्र, किन्तु उस धनी कन्याका हीरेन खेलका साथी अवहेलनासे उसे देखता, कहता—प्रौढ़-सा गम्भीर मुद्रासे—"पसन्द ? सो तो अपनी-अपनी है। दुनियामें केतकीको मैं ज्यादा पसन्द करता हूं।"

"अरे क्यों ?"

"इसके कांटोंके लिए।"

"कांटे ?"

"हां कांटे। सो भी न किसीसे कर्ज लिये, न भीख मांगे हुए। हैं यह उसके निजी।"

"फिर इससे क्या ?"

"क्या ? इन्हीं कांटोंसे वह अपनी रक्षा करती है। उसे मैं श्रद्धा, सम्मान करता हूं।"

"ऐसी कुत्सितका ?"

"रूप ? हमारे पण्डितजी कहा करते हैं—रूप बच्चोंका खिलौना है, गुणका आदर दुनिया करती है। स्वयं आत्म-रक्षा करना है आदमीका आदमीपन।"

दामिनी खिलखिलाती, तालियां बजाती; किन्तु फिर भी प्रातः-सन्ध्या उसकी सुध लेती—उसकी--उस केतकीकी, जैसे जीवनमें एक नित्यकर्मकी भांति। और शायद उसके जीवनका एक तृतीय अंश केतकीके रागमें रञ्जित हो रहता। खबर यह उसके निकट गोपन ही रहती आती।

केतकी दिन-प्रतिदिन बढ़ती, कांटोंको संभारती, अपने सखा-सखी, सन्तानको साथी बनाती, दिन-वर्षोंके पलोंमें अपने जन्मसिद्ध अधिकारको रखा करती। अपने तनमें कस्तूरी-सुरभि भरती।

उस दिनके बालक-बालिकाका अन्त हो चुका था। केतकीका फूलना एक-सा था। कांटोंका बेड़ा, कांटोंका झमेला, अनेक केतकियोंका खासा मेला। पुष्करिणी-जलमें शत-शत रक्त, नील, श्वेत पद्म, पुष्करिणीके तीरपर, उस वन-वीथीकी छायामें, कर्दमके हृदयपर अनेक केतकियोंका नीरव मेला।

(२)

तो उस दिन फूली थी केतकी, बेला, गुलाब, जुहीसे हटकर, उद्यानसे बचकर, गृह-प्राङ्गणके बाहर, विश्वके कोलाहलमें अपने निराले अलापको न मिलने देती, विश्वकी उपेक्षापर भ्रूक्षेप न करती, कांटोंमें घिरी, कांटोंमें रमी, मधुलोलुप मधुकरोंको कांटोंसे बींधती, अपनी सत्ता संभारे, संजोरे, गर्वित, उन्नत मस्तकसे—उस दिन फूली थी केतकी-दुनिया ही के मध्यमें।

फूली थी वह केतकी, न छिपकर, न लुककर, फिर भी खिली थी वह केतकी—जैसे एक जन्मसिद्ध अधिकार लिये—विश्वकी सम्राज्ञीकी भांति।

तो वह सांझकी छोटी बेला, रमी विदा-वंशीमें। अनमना-सा युवक वह हीरेन थम रहा उस केतकीके वनमें, सो वह युवती दामिनी—सेविका-सी केतकीकी—पहुंच गयी जल-झारी हाथमें लिये।

"हीरेन।"

"दामिनी।"

विस्मयसे एकने दूसरेको देखा, जैसे प्रश्नकी एक मूर्त मूर्च्छना—अरे, वह खेलका साथी हीरेन कहां ? जैसे व्यथाका एक कम्पित वेग—सो इस युवती नारीमें बालिका दामिनीका परिचय कहां ?

"इतने दिनोंके बाद ?"

"आया तो आज ही हूं।"

"आज ?"

"सो भी तुमसे विदा लेने।"

"विदा ?" पूछती दामिनी धीरे।

"विदा दामिनी।"

"ठहरो, बैठो, कहो भी कुछ, कहां थे इतने दिन तक ?"

"दुनिया ही के रास्तेपर।"

"छिपकर वह भागना—।"

"छिपकर भागना हीरेन नहीं जानता। तुम तब गांवके बाहर थीं।"

दामिनी सोचती, कहती—"वह एक युग ही-सा तो है। बैठो उस टीलेपर।"

"बैठूं ? तो भी वक्त अब है कहां ?"

"एक युगके बाद भी वक्तकी कमी ?"

"वक्त ? फिर वह नापा भी जावे कैसे ? सो इस विदाकी वेलामें दामिनी, पूछूं न कुछ तुमसे ?"

"विदा ?"

"यहां तक आया हूं केवल तुमसे विदा लेने।"

"मुझसे ?"—पूछती वह दामिनी, सिहर-सिहरकर।

"तुमसे ही।"

"सो विदा भी कैसी ?"

"लड़ाईपर जा रहा हूं।"

"आदमी होकर आदमीको मारोगे ?" दामिनी-नेत्रोंकी जागृत घृणाको युवक देखता—सो भी हंसकर, मुसकराकर, कहता—"यूरोपके युद्ध-प्राङ्गणमें आज भारतवासियोंकी पुकार है, देश-रक्षाके लिए।"

"तो तुम जा रहे हो ?"

"नहीं भी कैसे ? युद्धकी पुकार, कौन कापुरुष घरके कोनेमें छिपकर बैठेगा ?"

"क्या आदमीका खून बहाकर ही देश-रक्षा हो सकती है ?"

हंस पड़ता वह हीरेन जी खोलकर—हवाकी-सी अबाध, अल्हड़ हंसी—"बच्चों-जैसी बात।"

कह उठती दामिनी, उत्तेजनासे भरी-भरी—"सो भी क्यों ? हिंसा बिना जय भी नहीं कैसे ? महात्मा गांधी-जैसे वीर-योद्धा, अहिंसात्मक युद्धके महारथी, वैसे एकके सामने रहते हुए—"

परन्तु प्रश्न यह है दामिनी, इन बांहोंकी ताकत है ही किसलिए ? कापुरुषकी तरह उठी हुई लाठीके नीचे सिर नवानेके लिए ?"

"तो आज महात्मा गांधीको कापुरुष कह रहे हो हीरेन ?"

उस उद्दीप्त क्रोध, घृणाके सामने हीरेन जीवित साहस-सा हंस उठा—"अपना अधिकार, मर्यादा, सत्ता रखनेके लिए सब कुछ करना पड़ता है, इससे अनुतापकी जगह मेरे मनमें न होगी।"

शव-सी वर्णहीन वह दामिनी।

"इस विदाकी वेलामें दामिनी, यदि जीता लौटा, या यदि मर ही गया, तो ? कहो दामिनी, इस विदाकी वेलाको कर सकोगी न आज तुम सुहावनी ?"

"घृणा।"

"घृणा ? केवल घृणा ही ?"

"निविड़ घृणा।"--सामने मुंह किये-किये कहती वह—"रन्ध्रहीन, छिद्रहीन घृणा।"

हीरेन जरा चुप रहता।

सहसा दामिनी जोरसे हंसती—"केतकीके पुजारी तुम, तुम भी कहो अपनेको वीर ? याद है न वह दिन ? उस एक दिनकी बात, रोपा था न इस केतकीको ? याद हैं वे बातें ?"

"सब कुछ।"—धीरे स्वरसे कहने लगा हीरेन—"इन कांटोंकी बात ?"

"वही। जो कि अपने बचावके लिए कांटोंके बेड़ेमें घिरी रहती आवे, एक ऐसेका भक्त, क्या वह भी अपनेको कह सकता है वीर ?"

"खुली तलवारके सामने नङ्गे बदन, खाली हाथ जाना

वीरता है या निर्बुद्धिता ? आत्मरक्षा करना प्रधान बात है जी सकनेकी। शायद इसीसे इस आत्मरक्षाकारी केतकीके लिए ऐसा प्यार, सम्मान है इस मनमें। तो दामिनी।"

"जाओ, उपहार-स्वरूप लेते जाओ यह घृणा।"

"और यदि इस घृणापर भी मेरा बाहुबल जयी हो जावे, तो ?"

दामिनी व्यङ्गसे मुसकराती—"घमण्डी युवक, बांहोंमें ऐसी ताकत ही कहां, जो मनपर जय पा लें ? वह है मनकी चीज, बांहोंकी नहीं। वास्तविक शक्तिकी जगह है मनमें, जाओ।"

"झूठ। ताकत है शरीरकी चीज। मैं दम्भके साथ कहता हूं, जीतूंगा उस घृणाको।"

दामिनी केवल हंसी ही—पलकी परिधिमें परिहासका स्फुट आभास, घृणाकी मसी-सम कारिख।

"आखिरी वक्त पूछता हूं दामिनी।"

"घृणा, मेरे मनकी मूर्तिमती घृणा, अङ्गार-सी जलती हुई घृणा। देखा है तुमने ऐसी घृणा ? है परिचय उस घृणासे ?"

घृणा ?—हीरेन सिहर-सिहरकर सोचने लगा—घृणा-घृणा-घृणा। अटूट विस्मयसे देखने लगा घृणाके उस मूर्त रूपको। तरुणी घृणाकी नीलाभ ज्योतिको नेत्रोंमें बटोरे सामने अड़ी खड़ी थी।

हीरेन चल पड़ा—कदाचित् उस घृणाको बटोरे ही।

(३)

तो उस दिन भी फूली थी केतकी—अपने एकान्त आवासमें। सब फूलोंसे निराली, अपनी गन्धको संभारे, अपने गर्वमें मस्त, कांटोंसे घिरी-घिरी, सो उस दिन भी फूली थी केतकी—ग्रामके निरालेपनमें।

जलपूर्ण झारी-सेचन करती निहार रही थी दामिनी—गत दिनोंकी ही भांति, कदाचित् गत सपनेमें लीन। रोपा था उसे गत दिनोंके उसी एकने, उसके घृणास्पदने।

सो उस केतकीका फूलना शायद उस रण-प्राङ्गणमें प्रकाशित रहा हो या नहीं ही रहा हो। वीर बांहोंको पसारे वह युवक बहा रहा था खूनकी नदी। सेनानायक हीरेन अपने बाहु-बलपर मस्त होता।

बह रही थी खूनकी नदी। हजारों शवोंका ढेर--इधर-उधर, पैरोंके नीचे। उन्हें रौंदता, रक्त-नदीमें स्नान करता, गोली चलाता, वधकी धुनमें मस्त हीरेन झूमता रहता—रक्त-पिपासु राक्षस-सा। प्यास, प्यास, रक्तकी प्यास। चाहिए उसे रक्त—रक्त ही, मनुष्यका ताजा रक्त, होली खेल रहा है न वह खूनसे। वध करते-करते, खूनकी पिचकारी चलाते-चलाते एक रुद्र-ईर्षा, सर्वव्यापी वधकी तृष्णा कब उसके नेत्रोंकी सहज दृष्टिपर व्याप गयी, हृदयकी स्वाभाविक वृत्तिको आच्छन्न कर बैठी, सो वह कुछ भी नहीं जानता। खून-खून, आदमीका ताजा खून। विजातीय उल्लाससे मस्त होता हीरेन—वीर है न वह, कर रहा है न वह अपनी ही प्रतिमूर्तिका खून।

(४)

सो उस दिन भी फूली थी केतकी समुद्रके इस पार, और उस पार बहती थी खूनकी नदी। तैर रहा था उस नदीमें हीरेन।

तैरना ? खून ? हां, चाहिए रक्त। रक्तमें स्नान कर, पदद्वयमें रक्त-प्रलेपकर वह बढ़ेगा आगे।

सो रक्तकी होली खेलता बढ़ा चला जा रहा था हीरेन रण-प्राङ्गणमें, चारों ओर लाशोंका पर्वत-सम ढेर, धरतीका चिह्न रक्तमें आलोप। असीम उल्लाससे मस्त होता हीरेन, जल-वायुमें रक्तकी लाल-लोहित आभा, आंखोंके सामने रक्तकी ललामी—मनुष्यके ताजे खूनकी वर्षा।

बढ़ता वह आगे—आगे। किन्तु कहां ? चले वह कहां ? खून बहावे वह किसका ? रण-प्राङ्गण तो जीवित मनुष्योंसे खाली है न ?

थम रहता वह पलभर। मारूं किसे ? हत्या करूं किसकी ? मुर्दे सब पड़े हैं न ? आजू-बाजू, सामने, पीछे है मानव-देहका ढेर। है रक्त—ईंगुर-सा रक्त।

रक्त ? रक्त ही, वही रक्त—जोकि उसकी धमनीमें बह रहा है। जीवनी-शक्तिसे भरा रक्त, सूर्य-किरण-सा वह रक्त।

देखता हीरेन आंख उठाकर—रण-प्राङ्गण जीवित मनुष्योंसे खाली है न ? और इधर बांहोंकी, तलवारकी पिपासा, रक्तकी पिपासा ? वही पिपासा, जो कि तृप्त होना नहीं चाहती, पिपासा—दुर्निवार पिपासा। रक्त—रक्त, रक्त-रङ्गीन भुजायें, चाहिए उन्हें रक्त, रक्त—मनुष्यका ताजा रक्त।

लाशोंपर यह जीवित मनुष्यकी छाया ? है—अब भी रण-प्राङ्गणमें जीवित मनुष्य एक बाकी है। विपुल उल्लाससे

हीरेन मस्त होता। उत्थित बांहकी तलवार चमकती, और ठीक जिस पलमें वह पिपासित तलवार स्वयं उसके हृदय-रक्तको पान करना चाहती, तब उसी पलमें फूल पड़ती वह केतकी समुद्रके इस पार, रणक्षेत्रके मध्यमें, हीरेनकी खुली आंखोंके सामने।

आंखें पसारे-पसारे रह जाता वह विमूढ़-सा। केतकी—फूली हुई केतकी। युवक और युवती। विदा-बेलाकी एक सर्वग्रासी घृणा। घृणा—गाढ़, नील वर्ण घृणा, कुष्ठ-व्याधि-युक्त अङ्ग-प्रत्यङ्ग।

देखा—फिर भी देखना चाहा उसने। किन्तु आंखोंकी वह दृष्टि कहां? यह अन्धकार कैसा? दृष्टिके सामने यह मसी-सम यवनिका कब लटकी? रक्तकी पिपासापर यह घृणाका बोझ कब दबका? मस्तिष्ककी नसोंमें यह सुधि-हीनता कब समायी?

घृणा—घृणा, विराट् घृणा, विपुल घृणा। घृणाका मूर्त रूप, कुष्ठ-व्याधि-युक्त नील वर्ण घृणा। चल पड़ा एक ओर वह युवक। सो तब भी फूली थी केतकी — ग्रामकी शान्त छायामें, पङ्कके मध्य, अपनी धुनमें मस्त!

(९)

उस दिन भी फूली थी केतकी, किसीने उसका फूलना जाना, न जाना, पङ्कके गर्भमें, कांटोंके आवरणमें, पुष्करिणी-के तीर, ग्रामके एकान्तमें, सो उस दिन भी फूली थी केतकी।

जल-झारी लिये गतयौवना वह नारी जल-सेचन करती। भूला-सा, भटका-सा उन्माद पहुंच जाता उस केतकीके वनमें। "हा—हा—हा।"—एक उन्मत्त हंसी। उस विकट हासको सुनकर नारी चकित दृष्टि उठाती—"पागल है वह रक्त-पिपासु? किन्तु ऐसा तो होना ही था न।"—आत्म-गत भावसे कह उठती नारी धीरे।

पल-भरके लिए जैसे उन्मादीकी स्मृति उभरती, या तो उन्मादी-विचारसे कहता—"घृणा—उस रन्ध्रहीन घृणाने मेरी नसोंका खून चूस लिया। विचार-शीलतापर दब बैठी। घृणा—घृणा—कुष्ठ-व्याधि-सी मूर्त घृणा, कुत्सित घृणा।"

नारी खिन्न, शान्त हंसती—"यह पागलपन? है यह रक्त-पिपासाकी, ईर्षाकी शेष देन उन्माद।"

उन्मादकी हंसीसे केतकी-वन गूंजता। चल पड़ता वह हंसता-झूमता।

घेरकर खड़े हो जाते बालक-बालिका उस नारीको, पूछते—"मां, तुम केतकी-वनमें नित जल-सेचन क्यों किया करती हो?"

विमल हास्यरेखा रमणीके आगतप्राय प्रौढ़त्वको आच्छादन कर लेती—"यहां? यहां है जो एक मृत्युहीन स्मृति बिखरी पड़ी।"



पशु-पक्षियोंका सङ्गीत

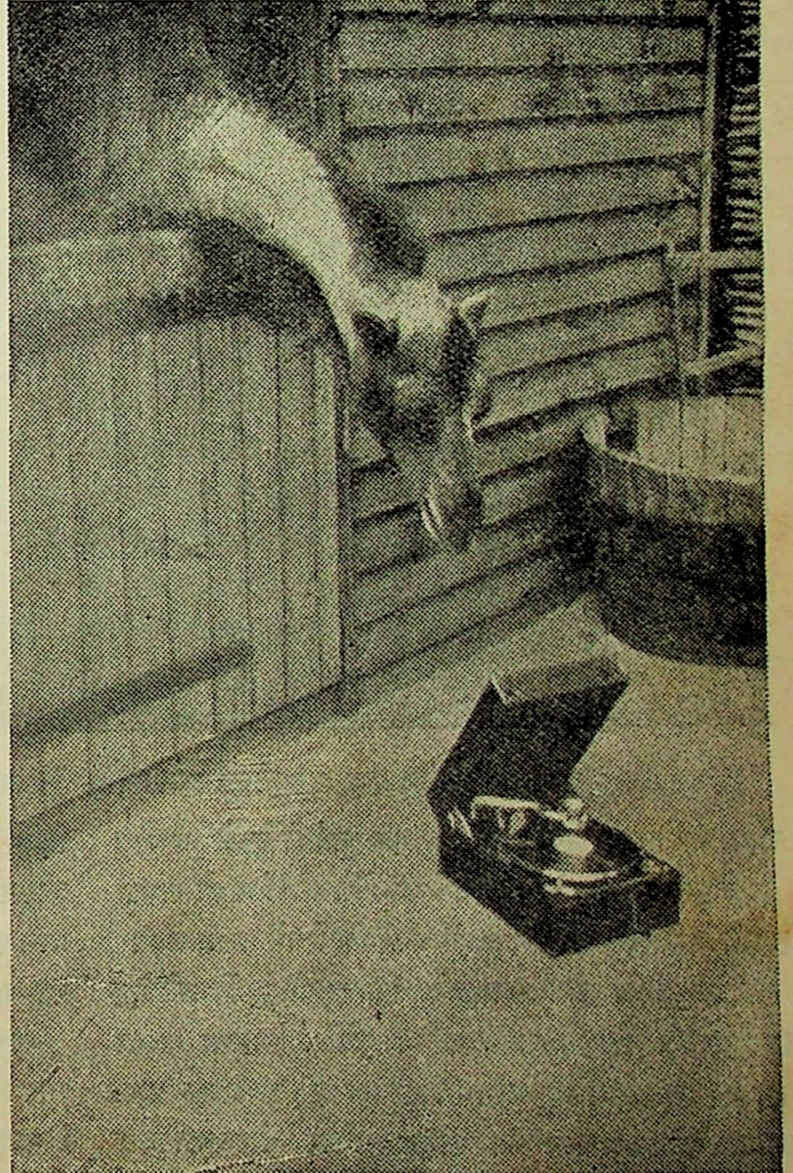
श्री विश्वनाथ सेठी, एम० एस-सी०

प्राचीन उपाख्यानोंसे पता पता चलता है कि एक जमाना था, जब लोग पशु-पक्षियोंकी बोली समझते थे। वे जानते थे कि पशु-पक्षी क्या कह रहे हैं। और पशु-पक्षी जो बोलते थे, उसका जो विवरण मिलता है, उसपर अगर विश्वास किया जाय, तो यह भी मानना पड़ेगा कि उनमें समझदारी भी काफी होती थी। विज्ञान-वेत्ताओं-ने अपना बहुत-सा समय इस विषयकी खोजमें लगाया है कि पशु-पक्षियोंमें वास्तवमें मस्तिष्क होता है या नहीं, वे सोच सकते हैं या नहीं। पर प्राचीन उपाख्यानोंमें इस प्रकारका विवाद नहीं है। सभी देशोंमें इस प्रकारकी कहानियां प्रचलित हैं, जिनसे पशु-पक्षियोंमें बुद्धि-ज्ञानका होना प्रमाणित होता है।

लेकिन पशु-पक्षियोंमें सोचनेका ज्ञान हो या न हो, रोते-गाते तो उन्हें बहुतोंने देखा है। यह बात दूसरी है कि हम उनका अर्थ समझें न समझें, पर अपने भावोंको प्रकाशित करनेके उनके भी अपने तरीके हैं। लुडविग कोचने इन तरीकोंकी थोड़ी जानकारी प्राप्त करनेके बाद ही उनके गीतोंका रेकर्ड लेना शुरू किया है। कोचने कहा है :—"पशु-पक्षियोंका सङ्गीत भी कुछ अर्थ रखता है। उनमें सुख और दुःख, विरह और संयोग-जनित भावनायें होती हैं और उनका प्रकाश करना भी वे थोड़ा-बहुत जानते हैं।" इसीलिए कोचने उनके रेकर्ड भरने शुरू किये हैं। अनेक पशु-पक्षियोंके ढेरों रेकर्ड उसके पास मौजूद हैं।

एक दिनकी बात है। दोपहरका वक्त रहा होगा। ह्विप्स्नेडमें चार शेर थे। वे सो रहे थे कि कोचने अपने ग्रामोफोनका रेकर्ड उतारकर सुई बदली और दूसरा रेकर्ड चढ़ा दिया।

अकस्मात् चारों शेर जाग पड़े। उठे और मशीनके पास आये। रेकर्ड घूमता रहा। अन्तमें रेकर्ड और भी स्पष्ट होने लगा और उसमें भरी हुई शेरनीकी आवाज खूब स्पष्ट हो रही थी। शेरोंकी आंखोंमें रेकर्डसे उठनेवाली आवाजके प्रति दिलचस्पी पहलेसे झलकती थी, लेकिन जब शेरनीकी



ऊंट ऊंटनीके सङ्गीतका रेकर्ड सुन रहा है।

आवाज और भी स्पष्ट हो गयी, तब तो शेरोंमें एक मस्ती-सी दिखाई पड़ने लगी और वे झूमते हुए टहल



पक्षीका प्रभातकालीन कलरव सङ्गीत-रेकर्डका प्रिय विषय है।

क्या कोई और करेगा? दुःख और दर्दको बेचारा वह छिपाये रहता है और सदा रेगिस्तानोंकी ही धूल फांकनेवाले ऊंटके जीवनमें नखलिस्तान आते ही कितने हैं, लेकिन उसने रोना-धोना कभी शुरू नहीं किया। सिर्फ कभी-कभी पीठका बोझा जरूरतसे अधिक हो जानेपर बेचारा क्षोभसे कराह उठता है—इतनी नागरिक स्वाधीनता बेचारेको मिली है। लेकिन ऊंटका बलबलाना तब देखिये, जब वह खुश हो। और वह कब खुश है, इसका पता आसानीसे लग जायगा।

इन जानवरोंका रेकर्ड लेना सबसे अधिक कठिन इसलिए भी है कि वैसे ये चाहे बोलते, गाते-रोते हों; पर आदमियोंको देखकर और खासकर कोच जब दलबल सहित अपनी मशीनोंको लेकर इनके पास पहुंचता है, तब ये भौचके-से देखते रह जाते हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो प्रातःकाल—दिनमें एक बारको छोड़कर फिर बोलते ही नहीं। तामीरकी हालत ठीक ऐसी ही है। बड़ा ही झेंपू जानवर है। सिर्फ प्रातःकाल—एक बार दिनमें अपनी सम्मति-सी देकर चुप रह जाता है।

कदमी करने लगे। वे आपसमें एक-दूसरेको देखने लगते।

कहावत है कि रेगिस्तानमें खजूरोंसे भी प्रेम हो सकता है, सो चारों शेर ग्रामोफोनकी मशीनके प्रेममें उलझ गये।

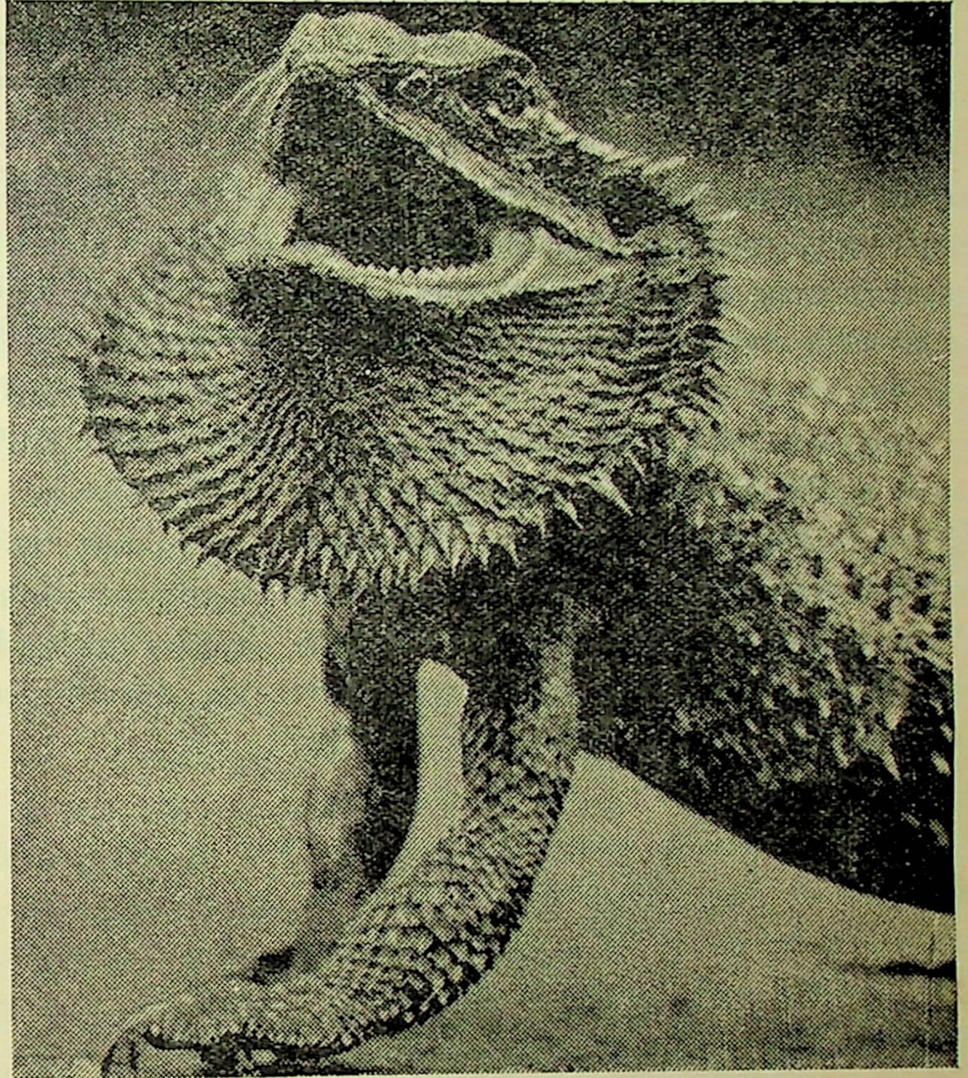
किन्तु क्या सभी जानते हैं कि लुडविग कोचको यह रेकर्ड भरनेके लिए कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था। इंगलिश म्यूजियममें लगातार २३ घण्टे तक परिश्रम करने और अत्यन्त सावधानी रखनेपर शेरनीका उक्त रेकर्ड भरा जा सका था।

रेगिस्तानी ऊंट अपने बलबलानेके लिए ही मशहूर नहीं है, बेवकूफीका भी लोग उसे प्रतीक मानते हैं। लेकिन अपनी खुशीका इजहार जितना अच्छा वह कर लेता है,

इस विषयमें पक्षियोंसे अधिक काम लिया जाता है। और यह स्वाभाविक ही है। पशु पक्षीकी अपेक्षा अधिक सामाजिक जीव है। मनुष्योंसे वह कम डरता है और चाहें, तो सिखाकर उससे अच्छी चीजें सुन सकते हैं। उनके गाने और बोलनेका समय भी प्रायः निश्चित है। प्रातःकाल आप जब चाहें, श्यामाका गीत सुन सकते हैं। बरसात होने लगे, तो पपीहेका स्वर खोजनेमें बहुत कोशिश नहीं करनी पड़ेगी और

उसका स्वर भी इतना ऊंचा होता है कि दूर पेड़पर बैठे रहनेपर भी उसका रेकर्ड लिया जा सकता है। कोयलके स्वरके सम्बन्धमें भी यही बात है। मि० कोचने ऐसे सभी पशु-पक्षियोंका रेकर्ड लिया है।

लेकिन कोचने पशु-पक्षियोंके केवल रेकर्ड ही नहीं लिये हैं। उन्होंने उनकी बोलियोंको समझने और उनकी व्याख्या करनेकी भी कोशिश की है। शेरोंकी दहाड़के सम्बन्धमें उनके मतानुसार यही बात नहीं है कि जब शेर अपना शिकार पा जाते तभी खुशीसे दहाड़ते हैं, बल्कि शेर कई प्रकारकी भावनायें प्रकट कर सकते हैं। शेरनी नरको प्यार करनेके लिए दूसरे प्रकारकी आवाज करेगी और बच्चोंसे प्यार करते समय दूसरे प्रकारकी आवाज निकालेगी। शेर जब बच्चोंको पुकारेगा, और जब वह बच्चोंको आदेश देगा, तबकी आवाजोंमें काफी अन्तर होगा। चिड़ियाघरमें जाकर पशुओंकी आदतोंका जिन्होंने जरा भी निरीक्षण किया होगा, उनके सामने यह बात भली भांति स्पष्ट हो गयी होगी कि पशु प्रेमकी भावनासे उद्दीप्त होकर कैसे धीरे-धीरे चहलकदमी करते और मधुर स्वरमें बोलनेकी कोशिश करते हैं। रोषके समय वही पशु कैसी भाव-भङ्गी दिखाते और घोष करते हैं। विभिन्न भावोंके साथ भाव-भङ्गियोंके यह सब परिवर्तन योंही नहीं हो जाते। ये बातें इसका भी प्रमाण देती हैं कि पशु-पक्षियोंमें मस्तिष्क-शक्ति है। वे भी दूसरेकी भावनाओंको समझते हैं और भावनाओंको समझकर उनमें उनके अनुकूल प्रतिक्रियायें भी वैसी ही होती हैं।



आपकी प्रभातकालीन चिङ्घाड़के अनेक रेकर्ड बन चुके हैं।

सिंह पशुबलका प्रतीक है। उसके मस्तीमें घुरघुराते रहने और समय-समयपर चिङ्घाड़ मारनेके सम्बन्धमें जीव-विद्या-विशारदोंने काफी खोज की है। उनका कहना है कि जिस प्रकार लोमड़ी अपनी कूटनीति और बिल्ली अपनी कृत्रिम नम्रताके लिए मशहूर है, उसी प्रकार शेरकी अहम्मन्यता चरमसीमापर पहुंच चुकी है। 'एक जङ्गलमें दो शेर' नहीं रह सकते, इस कहावतका अर्थ ही यह है कि शेर अपनी अहम्मन्यताके सामने दूसरोंका महत्त्व तनिक भी स्वीकार करनेको तैयार नहीं है।

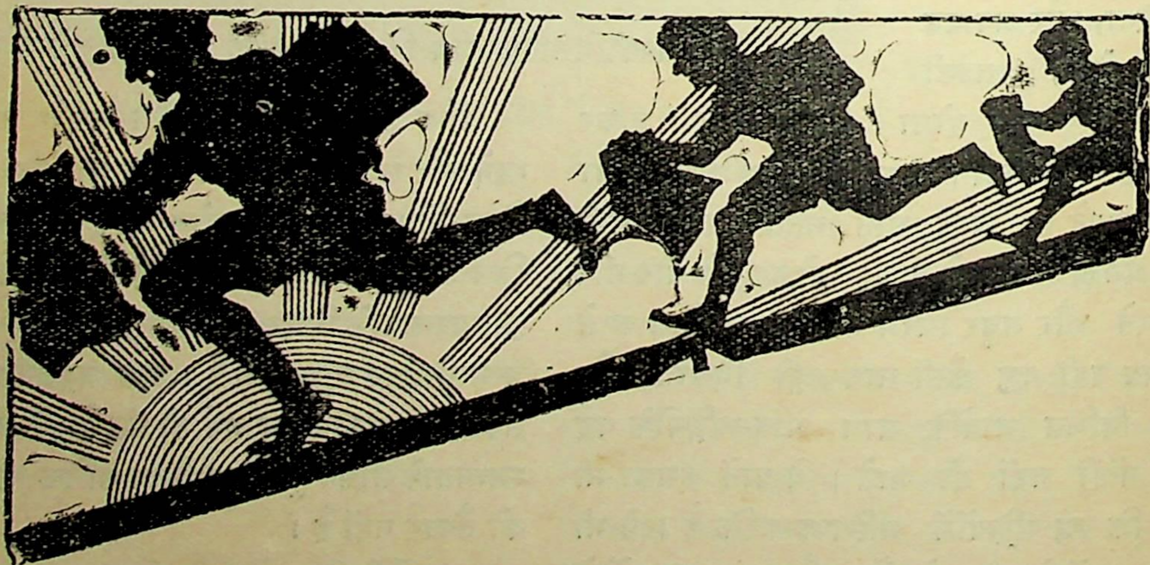
पशुओंमें सम्भवतः कुत्ता ही वह जानवर है, जिसे अपना सङ्गीत सबसे प्यारा है। देहातोंमें प्रायः देखा जाता है कि कभी-कभी बहुत रात बीतनेपर कुत्ते गाया करते हैं, यद्यपि आम-

तौरपर कुत्तोंका यह गाना उनके रोनेके नामसे मशहूर है। मनुष्योंने कुत्तोंके गानेको भी रोना कहकर इसलिए मशहूर कर दिया है कि चिरकालसे कुत्तोंका गायन मनुष्य जातिके अपशकुनकी सूचना देता है। और इसका कारण यह है कि कुत्तोंकी खुशी दूसरे जीव-जन्तुओंकी मृत्युपर निर्भर समझी जाती रही है, अतः जब कभी वे गायें, तो मनुष्य अपने अन्ध-विश्वासके कारण उसे अपशकुन मानने लगा। इसीलिए बेचारे कुत्तोंके गायनको भी मनुष्योंने रोना कहकर मशहूर कर दिया।

पर कुत्ते जब गाते हैं, तो गाते ही हैं और खूब झुण्ड बनाकर। मनुष्योंके अन्ध-विश्वासोंपर उन्होंने ध्यान नहीं दिया है। आधी रातके सूनेपनमें उनका विहाग जिस करुणाकी सृष्टि करता और कभी कभी भयावना वातावरण तैयार करता है, वह अनुभव करनेकी चीज है। इन पंक्तियोंके लेखकने कभी-कभी इसका अनुभव किया है और रोमाञ्च हो आया है। घण्टों उनका यह करुण विहाग चलता है और वे ऐसा बिलखते हैं, मानो विरह असह्य हो उठी हो।

पशुओंके सङ्गीत और उनसे बननेवाले रेकर्डोंसे एक बातपर वैज्ञानिक प्रकाश पड़ता है। पशुओंमें एक बात देखी गयी है कि अपनी जातिकी बोली सुनते ही उनपर जो तात्कालिक प्रतिक्रिया होती है, वैसी प्रतिक्रिया दूसरी जातिकी बोली सुनते ही नहीं होती। लेकिन अगर गौरसे देखा जाय, तो मनुष्यके बारेमें भी यही बात है। हमारे घरका छोटा-सा शिशु दूसरी भाषाको सुननेपर वैसी भाव-भङ्गियां नहीं दिखाता, जैसी अपनी भाषा सुननेपर। विज्ञानवेत्ता इसका विश्लेषण करेंगे, वैसे साधारणतः यह संस्कारकी बात मालूम होती है।

इस प्रकार पशु-पक्षियोंके सङ्गीतके रेकर्डने न केवल पशुओंके सम्बन्धमें मनुष्योंकी मनोरञ्जक जानकारी बढ़ायी है, बल्कि उसने जीव-विज्ञानकी कई समस्यायें भी हल की हैं और कई समस्याओंपर मनुष्योंका ध्यान आकर्षित किया है।



युगकी पुकार और हमारे कलाकार

श्री रामचरित्र सिंह

जीवनकी आलोचना ही साहित्य है। काव्य साहित्य-का प्रधान अङ्ग है। काव्यका उद्देश्य हमारी अनुभूतियोंकी तीव्रताको बढ़ाकर, हमारे सौन्दर्य-प्रेमको जागृत कर हमारे भावोंको जीवन-सङ्घर्षके अधिकसे अधिक उपयुक्त और अनुकूल बनाना है। काव्यका सम्बन्ध मानव-हृदयसे है। जो काव्य अधिकसे अधिक लोगोंके हृदय तक पहुंचनेकी क्षमता रखेगा, वही वास्तविक काव्य कहलानेका अधिकारी है। कलाकार इस जगत्में जीवनसे सम्बन्धित छोटी-छोटी; किन्तु सबके हृदय तक पहुंचनेवाली घटनाओंसे प्रभावित होता है और अपनी अनुभूतियोंको काव्यके रूपमें हमारे सामने व्यक्त कर देता है। यदि उसके भाव सबके भाव न हों, समाजके भाव न हों, तो फिर उसमें सच्चाई नहीं, उसमें कोई जोर नहीं और इसके अभावमें समाज उसे कभी अपना नहीं सकता। परिणामस्वरूप वह जल्द ही नष्ट हो जाता है।

कोई साहित्य अपने युगके प्रभावसे वञ्चित नहीं रह सकता। उसके ऊपर उस युगकी एक अमिट छाप पड़ी रहती है। साहित्यका क्षेत्र भाव-क्षेत्र ही है। साहित्य अपने कालका प्रतिविम्ब होता है, इसमें सन्देह नहीं। जो भाव लोगोंके हृदयोंमें उठते हैं, वही साहित्यपर भी अपनी छाया डालते हैं। हम जीवनमें जो कुछ देखते हैं, श्रवण करते हैं अथवा जो कुछ हमपर गुजरती है, वही अनुभव एवं गुजरनेवाली चीजोंकी चोटें साहित्य-सृजनकी प्रेरणा हममें करती हैं। साहित्य-निर्माताके कालमें यदि समाज सन्तप्त हो, उसपर असह्य अत्याचार हो रहा हो, तो साहित्यकारका भावुक हृदय इसे सहन नहीं कर सकता। वह इससे कुढ़ उठता है। वह अनुभव करने लगता है कि क्यों न ऐसे सामान इकट्ठे किये जायं, जिनसे दासता, दरिद्रता, अत्याचार एवं उत्पीड़नका उन्मूलन हो और पीड़ित व्यक्तियोंका इनसे पिण्ड छूटे। यह वेदना उसके हृदयमें जितनी ही अधिक होगी, तीव्रताका उसमें जितना ही आधिक्य होगा और उसमें जितनी अधिक बेचैनी होगी, उसकी रचनाओंमें उतना ही जोर और वास्तविकता रहेगी।

मानव-समाजका जीवन एक सागरकी भांति है। यह प्रशान्त तो है ही; किन्तु रह-रहकर इसमें उत्ताल तरङ्गें भी उठा करती हैं। इस जीवन पारावारमें कभी-कभी प्रचण्ड तूफानोंका भी आविर्भाव होता है। ऐसे अवसरोंपर कितनी ही नौकायें उस अगाध समुद्र-तलमें जाकर विलीन हो जाती हैं और फिर कभी उनका पता नहीं चलता। कितनी ही एक किनारेसे ऐसे दूसरे किनारे जा लगती हैं, जिसका अनुमान भी किसीको नहीं हो सकता। हां, तो समाजमें उठी हुई आंधियोंका प्रभाव जीवनपर पड़ता है, जो बिल्कुल प्राकृतिक है। हम राजनीतिक एवं सामाजिक जीवनमें होनेवाली उथल-पुथलसे अपनेको वञ्चित नहीं रख सकते। इच्छा होनेपर भी उससे सर्वथा पृथक् रहना मुश्किल है। फिर एकदम एकान्त जीवन व्यतीत करना! यह तो सांस्कृतिक जीवन नहीं, प्रत्युत असभ्यता और अकर्मण्यताका द्योतक है। ये आन्दोलन जीवनको प्रभावित करते हैं और जीवन तत्कालीन साहित्य अथवा काव्यमें पूर्णतया प्रतिविम्बित रहता है। अतएव इन आन्दोलनोंका प्रभाव साहित्यपर पड़ना अनिवार्य-सा प्रतीत होता है। इसको हम इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं कि सामयिक परिस्थितियां एवं उत्तेजक घटनायें जीवनके रास्ते साहित्यपर अपनी स्थायी छाप डाल जाती हैं।

किन्तु हमें महान् आश्चर्य होता है, जब हम देखते हैं कि बहुत पहलेसे समाजके साथ हमारे साहित्यकी अनबन-सी चली आ रही है। जब भारतीय समाज आपसी विद्वेषकी प्रचण्ड ज्वालामें जल रहा था और तज्जनित दासता पाकर उसके क्रूर पञ्जोंके नीचे कराह रहा था तथा हमारी दुरवस्था एवं फजीहतकी कोई सीमा न थी, उस समय हमारे कलाकार अथवा साहित्यकार, चाहे जो कह लीजिये, दो विषयोंको लेकर मस्त थे। कुछ तो एकाग्र चित्तसे नायिकाओंके चोंचलों अथवा नाज-नखरोंसे अपना मन बहला रहे थे; वे सदा इसी प्रयत्नमें रहते थे कि समाजके सन्मुख उत्तेजकसे उत्तेजक काव्य रखें, जिसके फलस्वरूप वह नायिकाओं-

का उपासक बन जाय; और कुछ संसारसे निराश होकर निर्जन बनमें अथवा कहीं मैदानमें ही तुलसी-मालाके दानों-को गिनना और दुनियाको निराशाका पाठ पढ़ाना अपना परम कर्तव्य समझ रहे थे। वे वास्तविक जीवनसे कोसों दूर रहनेमें ही जीवनका चरमलक्ष्य मानते थे। इसीको सांसारिक दुःखोंसे मुक्ति-प्राप्तिका उत्कृष्ट उपाय समझ रहे थे।

इस असम्बद्धताका सूत्रपात हमारे भक्त कवियोंसे ही होता है। इन लोगोंने समाजके लाभके साथ ही उसकी हानि भी की है। भले ही इन भक्त कवियोंने श्रृङ्गारी कवियों-के सदृश अश्लील साहित्यका प्रसार न किया हो और विलासिताकी ओर स्वच्छन्दतापूर्वक प्रवृत्त होनेके लिए समाजकी उन्मुक्तताको उपयुक्त न समझा हो; किन्तु एक भिन्न ही प्रकारसे इन सन्तोंने समाजको नुकसान पहुंचाया है। इन लोगोंने भक्तिके नामपर देशको पानी-पानी कर दिया। जगत्की नश्वरताका पाठ पढ़ानेको इन सन्त कवियोंने अपने कार्यक्रममें उच्च स्थान दिया। यह जीवन क्षणभंगुर है, निस्सार है, यह संसार केवल एक मायाजाल है। सबसे विरत होकर परमात्माकी भक्ति करनी चाहिए। बस, यही जीवन चरमलक्ष्य है। इसीसे मानव-जन्म सफल होगा। इस उपदेशका यह परिणाम हुआ कि गुलामी भोगते-भोगते लोगोंमें जो कुछ भी ताजगी बच गयी थी, उसे भी भक्तिके अथाह समुद्रमें डुबोकर समाप्त कर दिया गया। एक तो यों ही उस कालमें निराशाकी घोर अंधियाली छा रही थी, दूसरे सन्त कवियोंसे अकर्मण्यता और जीवनकी नश्वरताका उपदेश सुनकर लोग और भी पस्त हो गये। बड़े-बड़े योद्धा पैरमें घुंघरू बांध फुदक-फुदककर नाचने-गाने लगे और वास्तविक जीवनसे दूर हटकर एक प्रकारसे मुर्दोंका जीवन व्यतीत करनेको लाचार हो गये। आत्म-गौरव नामकी कोई वस्तु नहीं रह गयी। हमारे भक्त कवियोंमें गोस्वामी तुलसीदासजी ही सबसे अधिक हमारे कामके हैं। इन्होंने एक प्रकारसे समाजमें जीवन फूंक दिया था; परन्तु ये भी जमानेके प्रभावसे पूर्णतया वञ्चित न रह सके। इसी-लिए तो इन्होंने हमें कर्मकी प्रधानता—

"कर्म-प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करै सो तस फल चाखा॥"

बतलाकर भी—"झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग, सन्त, कहन्त जे अन्त लहा है।

× × × ×

"सुत, दार, अगार, सखा, परिवार
बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सबकी ममता तजिकै, समता
सजि सन्त सभा न विराजहि रे॥"

कहकर हमें संसारकी नश्वरताका पाठ सिखा समाजसे अलग रहनेकी प्रेरणा दी है। हमें यह भी बतला दिया है कि हम कुटिल हैं, कामी हैं और पतित हैं। जब निराशाकी घोर अंधियालीमें पथभ्रान्त होकर अवनतिके गहरे गर्तकी ओर द्रुतगतिसे दौड़ते हुए हिन्दू समाजमें प्रकाश फैलाकर जीवन प्रदान करनेवाले सन्त तुलसीदासजीकी ही यह हालत है, तो औरोंका पूछना ही क्या? एक सन्त हमें सिखलाते हैं—

"अजगर करै न चाकरी, पञ्छी करै न काम।
सात द्वीप नौ खण्डमें, सबके दाता राम॥"

आज यह दोहा अभागे भारतीयोंको एकदम कण्ठाग्र है। इस आत्माभिमानहीनताका भी कोई ठिकाना है? देशकी दुरवस्थाके खिलाफ क्रान्ति करनेके लिए शरीरमें शक्ति भरनेकी जगह हमारे भक्त कवियोंने अकर्मण्यता एवं नामर्दीका जहर जी भरकर भर दिया। इसके अतिरिक्त इन कवियोंने जो सबसे बड़ी हानि पहुंचायी है, वह इनका राधा और कृष्णको आलम्बन मानना है, जिनके सहारे आगे चलकर हमारे श्रृङ्गारी कवियोंने अपनी अतृप्त एवं मलिन वासनाओंको व्यक्त कर हमारे साहित्यको साहित्य न रहने देकर, कामशास्त्रका पोथा बना दिया।

हिन्दीके कवियोंमें श्रृङ्गारी कवियोंकी संख्या ही अधिक है। इन लोगोंने नायक-नायिकाओंको ही काव्यका प्रधान अङ्ग बना डाला और उनके सैकड़ों भेद-उपभेद कर डाले; किन्तु बेचारी नायिकाओंको इसकी खबर तक नहीं! भिन्न-भिन्न नायिकाओंकी विभिन्न भाषा, सबके अलग-अलग भाव, वेष, भूषा और चाल; बिलकुल एक नयी दुनिया ही रच डाली है, जिसमें केवल नायिकायें, रचयिताकी मर्जीके

मुताबिक चन्द आवश्यक नायक और निरीक्षणार्थ रचयिता महोदय भी कहीं दूर ही से छिपकर झांक रहे हैं। इस नूतन जगत्में सदाचारकी गन्ध तक नहीं। अभिसारस्थल उस जगत्के तीर्थस्थान हैं। नायक-नायिकाओंके अलावा दौड़-धूपके हेतु कुछ आवश्यक दूतियां भी हैं। वहां है वाक्य-विलास, विरहोच्छ्वास और है बेकली। कहीं बेकसूर कोकिल और पपीहोंको हजारों गालियां दी जा रही हैं, तो कहीं बिना किसी प्रकारकी सूचनाके ही उनके भी सैकड़ों भेद किये जा रहे हैं।

इन श्रृङ्गारिक कवियोंने विरह-वर्णनमें तो और भी गजब ढा दिया है। अपने प्रियतमके यहांसे आगत पत्रका पढ़ना भी इन्होंने बेचारी नायिकाके लिए मुश्किल कर दिया है। बेचारी पढ़े तो कैसे? यदि वह हाथसे उसका स्पर्श करे, तो वह उसी क्षण जलकर राख और यदि वह आंखोंसे पढ़े, तो कज्जलमिश्रित अश्रुधारामें भींगकर श्यामकी पांती (चिट्ठी) भी श्याम हो जाय। इतना सभी जानते हैं कि बिरहकी आग वियोगी हृदयको जलाया करती है; किन्तु इन कवियोंने अपनी कल्पना-शक्तिसे हाथको भी ऐसा बना डाला, मानो तपाया हुआ लाल लौहदण्ड हो। कोई बिरहिणी नायिका कुएंपर जल लानेको घड़ा लेकर गयी है, लेकिन घड़ा भरकर ज्योंही वह अपने माथेपर रखती है कि बिरहाग्निकी आंचमें पानी भाफ बनकर उड़ जाता है और घड़ा ज्योंका त्यों रिक्त हो जाता है। बार-बार प्रयत्न करनेपर भी उसका पानी लाना असम्भव कर दिया गया है। वह दिन-भर चढ़ाव-उतारमें ही लगी रही।

बिहारीने भी एक जगह लिखा है:—

इत आवत चली जात उत, चली छ-सातिक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे-सी रहै, लगी उसासनि साथ॥

बिरहके मारे वह इतनी कमजोर हो गयी है कि सांस लेने और छोड़नेके साथ छः-सात हाथ आगे-पीछे आती-जाती रहती है। वह सांसरूपी हिंडोरेपर चढ़ी झूलती रहती है। ऐसी तो उस नायिकाकी अवस्था है! यह बात समझमें नहीं आती कि बिहारीजीने उसे इस प्रकार झुला-झुलाकर क्यों व्यर्थ परेशान किया और उसे किसी कार्यके सम्पादनके अयोग्य बना दिया? इसके अतिरिक्त इन्होंने श्रृङ्गारको घृणाजनक रूप देकर तत्कालीन काव्यको गन्दा कर दिया है। 'विपरीत-रति' की बातें ऐसी ही हैं। ग्वाल कविकी नायिकाकी हालत और भी विचित्र है—

"तांदुर लै आयी तिया, आंगनमें ठाढ़ै रही,
करके पसाखेसे भात हाथमें भयो।"

बिरहकी ज्वाला और पसीनेका संयोग पाकर उसके हाथका चावल (अक्षत) भात बन गया। हमारे भगवान् श्रीकृष्ण भी जबरदस्ती घसीटकर उसी जगत्में ला बैठाये गये। उनके नामपर भी ऐसे साहित्यका निर्माण किया गया, जिसको पिता अपनी पुत्रीको पढ़ा नहीं सकता, पुत्र अपने पिताको पढ़कर सुना नहीं सकता। ऐसे साहित्यको मानव-समाजके लिए एक भयानक रोग न कहा जाय, तो और क्या कहा जाय? संसारमें तीन-चार भगवान् विख्यात हैं। ईसाइयोंके भगवान्, मुसलमानोंके भगवान् और बौद्धोंके भगवान् (यद्यपि बौद्ध लोग ईश्वरको नहीं मानते; किन्तु बुद्धदेवकी मृत्युके पश्चात् उन्हींको ईश्वर-तुल्य मानने लगे); परन्तु किसी भी भगवान्की ऐसी दुर्दशा नहीं की गयी, जैसी हमारे यहां। हमारे कवियोंने अपनी मलीन मनोवृत्तिके सांचेमें अपने भगवान्का रूप ढालकर उन्हें गंवार ग्वालिनोंके साथ जी भर-भरकर खूब नचाया है।

दरबारके भरोसे गुजर-बसर चलानेवाले कवियोंने जनताकी तत्कालीन दशाको देखकर भी उस ओर ध्यान देना पातक समझा। ये कविराज, विलासिताके गहरे गर्तमें डुबकियां लगानेके परिणामस्वरूप नपुंसक राजाओं एवं नवाबोंके लिए घृणित श्रृङ्गाररसका रसायन तैयार कर, उन्हें उत्तेजना प्रदान कर वास्तविक कविराज (वैद्य) बन गये। इसीके बल वे मौजसे रहते थे और मुफ्तकी सम्पत्ति पाकर रात-दिन गुलछर्रे उड़ाते हुए जीवनयापन करते थे। महाराणा प्रतापादिकी तलवारें उसी कालमें चमकी थीं। उस हल्दीघाटीकी युद्ध-भूमिमें मुट्ठी-भर राजपूतोंकी सेना लेकर वीर प्रतापने अकबरकी विशाल सेनाका मुकाबला किया था, जिसकी समता रखनेवाला 'थर्मापल्ली' को छोड़ संसारमें कोई दूसरा रणस्थल नहीं, जिसमें एथेन्सके निवासियों और उनके राजा ल्युनिडाजने अपनी छोटी-सी ताकत लेकर फारसके बादशाह जरकसीजकी अतुलित सेनाका सामना किया था। वीर सिक्खोंके गुरुओंका भी वही युग था। परन्तु न तो हमारे श्रृङ्गार-रस-प्रिय कवियों-

का दिल देशमें होनेवाले अगणित बलिदानोंको देखकर पसीजा और न भारतके रणाङ्गनोंमें चमकनेवाली तलवारों-पर न्योछावर ही हुआ। एक ओर आत्म-सम्मानके पीछे अपनेको मिटा देनेकी आकांक्षावाले बहादुर हिन्दुत्व एवं प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिए हंस-हंसकर मैदाने जङ्गमें अपना मरण-त्योहार मना रहे थे और दूसरी ओर हमारे तत्कालीन कलाकार उधरसे आंखें मूंद और कान बन्द कर नायिकाओं-के चोंचलोंमें मस्त थे। हमारे उस कालके साहित्यके पृष्ठ-पृष्ठकी तलाशी ले लीजिये, हल्दीघाटीको लक्ष्य करके लिखी गयी एक भी कविता दृष्टिगोचर नहीं होगी। समाजकी वास्तविक आत्माकी कोई परवाह न कर उन कवियोंने विपरीत-रति तथा गुप्ता, परकीया, अनुसूया, खण्डिता, मुग्धा, प्रौढ़ादि नायिकाओंके नख-शिख-वर्णनसे हमारे साहित्यको लबालब भर दिया है।

आज हमारी आर्थिक और सामाजिक हालत कैसी है? राजनीतिका तो कुछ पूछना ही नहीं। हमारा वही भारत-वर्ष, जिसकी सभ्यता जगत्के अन्य देशोंकी अपेक्षा बहुत ही प्राचीन और बढ़ी-चढ़ी थी, जिसके जगत्-गुरु और अत्यधिक सम्पन्न होनेके कारण हमें गर्व था, हम सर तानकर चलते थे, आज कैसी विषम एवं जटिलतर परिस्थितियोंसे होकर गुजर रहा है? दासता एवं तज्जनित दरिद्रताके कारण भारतवासियोंकी हालत बड़ी ही दर्दनाक हो गयी है, जिसे देख रुलाई आती है। देश-भरमें एक व्यापक थकान भर गयी है। देशमें जीवनकी जितनी उमङ्ग हम देखना चाहते हैं, उसकी शतांश भी नहीं दिखाई पड़ती है। आज भी हमारे कलाकार, इने-गिनेको छोड़, पूर्वकी भांति ही हमारी वास्त-विक समस्यासे कोसों दूर भगे रहनेमें ही गर्वका अनुभव करते हैं। राष्ट्रकी दुर्दशा देखकर इस ओर ध्यान देना पातक समझते हैं, देशवासियोंके करुण आर्त्तनाद एवं आहोंको सुनकर इनके हृदयमें कोई भाव उदय ही नहीं होता है। यहांपर समाज और साहित्यकी असम्बद्धता आश्चर्यजनक है। हम आगे बढ़ गये, हमारी आकांक्षायें और भी आगे बढ़ गयीं, फिर भी हमारा काव्य हमसे दूर (पीछे) कल्पना-जगत्में अनन्त-सम्मिलनके लिए व्याकुल होकर हृतन्त्रीका तार बजा रहा है। हमारे कलाकार आज भी विरह-वेदनाके पीछे पागल हैं। वर्तमान श्रृङ्गारिक कवियोंको हम अपने पुराने श्रृङ्गारी कवियोंका आधुनिक संस्करण-मात्र कह सकते हैं। आधुनिक कवियोंने भी अलग ही अपनी कल्पनाकी एक निराली दुनिया रच डाली है, जो वास्तविक जीवनसे बहुत कुछ दूर है। वहां वही आनन्दकी धारा है, वही अभिनय है और है वही श्रृङ्गारका तानाबाना, जो पूर्वकालीन साहित्यकारोंके द्वारा निर्मित जगत्में था। फर्क सिर्फ इतना ही है कि वे मूर्त वस्तुका चित्रण करते थे, ये अमूर्त भावनाका चित्रण करनेमें अपनी काव्य-कुश-लताका परिचय देते हैं। आज भी हमारे कवि हमसे दूर हटकर गान अथवा रुदन—जी चाहे जो समझ लीजिये—को लिये मस्तीमें झूम रहे हैं। श्रृङ्गार-रस कोई बुरा नहीं। सौन्दर्य जीवनका अनिवार्य अङ्ग है। जहां सौन्दर्य वर्तमान रहेगा, वहां श्रृङ्गारका अस्तित्व रहेगा ही; परन्तु किसी चीजकी सीमा होती है। श्रृङ्गार-रसको नग्न रूपमें रख देने-पर वह 'व्यभिचार-रस' हो जाता है। 'पन्त' जी हमारे वर्तमान कालके महान् कलाकार हैं। आपकी कवितायें मानव-जीवनकी भावनाओंकी छाया-सी हैं; किन्तु आप भी कहीं-कहीं बेलगाम हो अपने पथसे विचलित हो जाते हैं। आपने—

> तुम मुग्धा थी अति भाव-प्रवण,
> उकसे थे अंबियोंसे उरोज,
>
> × × × ×
>
> तुमने अधरोंपर धरे अधर,
> मैंने कोमल वपु भरा गोद,

लिखकर श्रृङ्गारका सीमोल्लङ्घन कर दिया है। आपकी इसी कवितापर एक जगह लिखा है:—"हमारे सुकुमार कविके भाग्यमें केवल अमिया (टिकोला) ही चिचोरना बदा था। अगर नायिकाके अङ्गोंमें अंबियोंके साथ-साथ नमक, मिर्च और तेल भी मिल जाता, तो एक ऐसी मजेदार चटनी तैयार हो जाती, जिसके सामने पुराने अश्लीलसे अश्लील कवि भी होठ चाटते रह जाते।" पन्तजी यदि यहां बहके नहीं होते, तो कितना अच्छा होता? एक और कवि, जो अब अपनेको अनुभूतिका कवि मानते हैं, लिखते हैं:—

"नवबालाके यौवन-सा कुछ साकार और कुछ निरा-कार।"

—(चित्ररेखा)

इस पंक्तिसे और साथके चित्रसे कितनी निर्लज्जता टपकती है, उसे देखकर ही समझा जा सकता है। एक कवि अपना परिचय देते हैं:—

"हृदय, मैं रूप सरिताका तरङ्गित वेग चञ्चल हूं।
किसीकी प्रेम-ज्वालाका तरल अङ्गार शीतल हूं॥"

'आरसी'

वही कवि महोदय एक जगह विह्वल होकर अपनी प्रेयसीसे कहते हैं:—

"आज लालस पड़ी हो तन्वि मेरे सामने तू,
कल जाने कौन जीवनधन तुम्हारे पास होगा।"

'आरसी'

इससे साफ-साफ प्रकट होता है कि आपकी प्रेयसी कोई 'वाराङ्गना' है, जिसके आपके ही सदृश अनेकों 'यजमान' हैं।

कुछ घोर श्रृङ्गारी साहित्यिकोंने यथार्थवादके नामपर जब समाजके सन्मुख भद्दा एवं गन्दा चित्रण उपस्थित करना शुरू किया, तो उसका विरोध किया गया और उसे समाजके लिए हानिकर बतलाया जाने लगा। अश्लीलताको बुरा समझनेवालोंके उत्तरमें 'अपनेको अपने ही मुखसे डङ्केकी चोट' कलाकार कहनेवाले श्री भगवतीचरण वर्मा कहते हैं—"संसारमें अश्लीलता नामकी कोई चीज है भी, इसमें मुझे शक है। रही नैतिकताकी बात, वहां मनुष्यका निजी दृष्टिकोण है। अगर आपको यह अधिकार है कि आप मुझे गलत रास्तेपर समझें, तो मुझे भी यह अधिकार प्राप्त है कि मैं भी आपको गलत रास्तेपर समझूं।" जब संसारमें अश्लीलताके अस्तित्वमें ही वर्माजीको शक है, तब तो संसारकी अन्य बुराइयोंकी बुराईमें भी उन्हें शक होगा ही। उपर्युक्त रचनाओंपर दृष्टिपात करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि ये कवि प्रियतमाके वियोगजनित वेदनाकी ज्वालामें दीवाने हैं। अधिकांशके हृदयमें न तो सच्ची अनुभूति ही होती है और न किसी प्रकारकी भावनाओंकी उद्‌भावना ही। आजके प्रचलित ढर्रेपर कुछ लिख मारना एक साधारण बात हो गयी है, चाहे उससे अनर्थ भले ही हो। इस फैशनका रोग किस प्रकार बुरे रूपमें फैलता जा रहा है, आगे देखिये। 'दीपक' कविता-पुस्तक एक बहनके वियोगमें लिखी गयी है। अपनी प्राणवल्लभा बहनके वियोगमें यह काव्य-स्रोत कविके हृदयसे उमड़ पड़ा है। अपनी बहनको कवि सुना रहा है:—

"प्रेम-गली थी यह सजनी (!) अब बस्ती है दीवानोंकी।
प्रणय हेतु यह घूम रहे हैं, देखो कैसे मनमाने,
बींध दिया मेरा उर सजनी, नैन-बान जब ताने,
घायल मन है, घायल तन है, घायल गतिविधि जाने।"

× × × ×

"प्रेम पिपासा चातक हूं मैं, तुम हो स्वाती बूंद प्रिय,
प्रिया प्रियाकी रटन लगी है, प्रणय बूंदके हेतु प्रिय।"

सोचनेकी बात है, अब समाजमें बाकी ही क्या रहा? क्या इतनी निरंकुशता उचित है? क्या इसीको यथार्थवाद कहा जाय? इन कविजीके हृदयको इनकी बहनने 'नैनबान'के द्वारा बींधकर छलनी कर डाला है और भाई महोदय बहनके प्रणयकी बूंदके लिए पिपासा चातक बन तरस रहे हैं। मेरे ख्यालसे वास्तवमें बेचारे कविका कोई कसूर नहीं। काव्यकी प्रगतिसे अबोध होनेके कारण ये समझ न सके कि एक प्रियतमा और एक बहनमें कितना अन्तर है। जिन शब्दोंका प्रयोग प्रेमको प्रकट करनेके लिए लोग अपनी प्रेयसीके प्रति करते हैं, बेचारेने अपनी बहनके यहां उसीको लागू कर दिया है। मैं यह नहीं कहता कि श्रृङ्गार-रसका ही लोप कर दिया जाय। बिना श्रृङ्गारके जीवनमें सौन्दर्य रह ही नहीं जाता। कोई सहृदय व्यक्ति परिमित श्रृङ्गारका विरोधी नहीं हो सकता। जो श्रृङ्गार-मात्रसे ही घृणा करते हैं, उनकी घृणामें सचाई नहीं। वे या तो परले दर्जेके ढोंगी हैं अथवा नपुंसक। लेकिन स्मरण रहे, मानव-जीवन स्त्री-पुरुषके प्रेम तक ही सीमित नहीं है। साहित्यमें श्रृङ्गार रहे और अवश्य रहे; किन्तु परिमितावस्थामें ही।

वर्तमान कालके हिन्दी-साहित्यमें अपने सांसारिक प्रेमको आध्यात्मिकताका आवरण देनेका फैशन-सा हो गया है। यह प्रेम प्राचीन भक्त कवियोंकी तरह सगुणके प्रति नहीं होनेके कारण हमारी प्रकृति और अभ्यासके विपरीत है, इससे इसमें अस्पष्टता बहुत अधिक है। वस्तुतः यह प्रेम इसी जगत्‌के किसी पुतलेके प्रति है और भाषाकी छिपानेवाली वृत्तिके सहारे उसे अज्ञातके प्रति प्रदर्शित करनेका प्रयत्न किया गया है। प्रत्यक्षतः इस लोककी बातें नहीं की जातीं। किसी महान् दार्शनिक तत्त्वके निरूपणका विफल प्रयास किया जाता है। इस प्रकार उनका काव्य न तो सांसारिक

रहता है और आध्यात्मिक तो है ही नहीं, न लौकिक, न पारलौकिक ही। वह एक विचित्र काल्पनिक लोकका चित्रण हो जाता है। ऐसे ही काव्यकी आलोचना करते हुए महान् विचारक और आलोचक आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं :—

"अब विचारनेकी बात है कि किसी अगोचर और अज्ञातके प्रेममें आंसुओंकी आकाश-गङ्गामें तैरने, हृदयकी नसोंका सितार बजाने, प्रियतम असीमके सङ्ग नग्न प्रलय-सा ताण्डव करने या मुंद नयन पलकोंके भीतर किसी रहस्यका सुखमय चित्र देखनेको ही—'भी' तक तो कोई हर्ज नहीं था—कविता कहना कहां तक ठीक है ? अपने व्यापक तथा विस्तृत क्षेत्रसे बेदखल होकर छोटे-छोटे कनकौवोंपर कविता कब तक टिक सकती है ?" अज्ञातके प्रति प्रेमकी लालसा प्रदर्शन करनेवालोंकी पोल खोलते हुए आप पुनः कहते हैं :—"तत्त्वदृष्टिसे, मनोविज्ञानकी दृष्टिसे, साहित्यकी दृष्टिसे 'अज्ञातकी लालसा' कोई भाव ही नहीं है। यह केवल ज्ञात-की लालसा है। अज्ञातके प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हो सकती है, लालसा नहीं।"

हमारे कुछ साहित्यिक 'घोर कलावादी' भी हैं। वे 'कला कलाके लिए' तो 'काव्य काव्यके लिए' के नारे बुलन्द कर अपने उत्तरदायित्वसे अपनेको रिहा कर लेते हैं। वे इस चीजको स्वीकार करनेको प्रस्तुत नहीं कि जीवनकी आलोचना ही साहित्य है। याद रहे, कलाका जीवनसे अलग अस्तित्व तो है, पर उसका उपयोग जीवनमें ही है, चाहे जिस प्रकारसे वह हमारे काम आ सके। सङ्गीत-कला हो अथवा काव्य-कला, उसे श्रवण या पठनकर हम आनन्दातिरेकसे आत्मविभोर हो जाते हैं और हमारा जीवन आनन्दमय हो जाता है। अतएव कहा जा सकता है कि कला जीवनके लिए उपयोगी है। कुछ कलाकार 'कला जीवनके लिए' मानते हैं; किन्तु जीवनकी परिभाषा वे अपने ढङ्गकी अलग ही रखते हैं। वे कल्पना-जगत्के प्राणी हैं और उसी लोकमें विचरते रहनेमें ही जीवन और उसकी सार्थकता समझते हैं। वे आज देशकी उथल-पुथलमें जीवन नहीं देखते हैं। उन्हें आज दाने-दानेको मुहताज भारतीयों-की भूखकी पीड़ामें पीड़ा दृष्टिगोचर नहीं होती। समयके घात-प्रतिघात द्वारा निर्मित जीवनके किनारेसे वे निकल भागना चाहते हैं। लेकिन जब कला हवा, पानी और प्रकाशकी भांति मानव-जीवनका नित्य सहचारी अङ्ग बनी रहेगी, तभी वह सार्थक है; अन्यथा जीवनसे परे जाकर वह कला हमारे लिए कला न रहकर एक विचित्र बला हो जायेगी।

आध्यात्मिकताका पाखण्ड और कलाके साथ ही निराशावादिता भी हमारे काव्यका प्रमुख अङ्ग बन रही है। हमारे कवि इस जीवनसे ऊबे-से जान पड़ते हैं। जगत्के अन्य सहचरोंके साथ अपने चिर-सङ्गी दुःखसे भी किसी प्रकारकी आशा इनके हृदयमें नहीं बची है। अन्तमें मौका पड़नेपर दुःख भी उनका साथ छोड़ देगा, ऐसा उन्हें आभासित हो रहा है। बरबस इनके हृदयसे यह भाव उमड़ पड़ता है :—

"साथी साथ न देगा दुख भी।" —'बच्चन'

इन्हें संसारकी सभी वस्तुओंकी क्षणभंगुरतासे विरक्ति हो गयी है और दुनियासे अलग होना अनिवार्य समझकर ये हताश हो बैठे हैं :—

साथी, हमें अलग होना है।
जो कुछ भी पाया है हमने
एक-न-एक समय खोना है;
साथी, हमें अलग होना है।—'बच्चन'

हमारे कुछ कलाकारोंको पता ही नहीं चलता है कि वे किधर जा रहे हैं और उनका लक्ष्य क्या है। घबड़ाकर अचानक कह उठते हैं :—

क्या है अन्तिम लक्ष्य—
निराशाके पथका—अज्ञात !—'एक निराश'

एक और कवि अपना परिचय बतलाते हैं :—

"मरुस्थलके हृदय - तलमें
प्रवाहित भ्रान्ति-मृग-जल हूं।"—'आरसी'

हमारे ये कलाकार पथ-प्रदर्शक कहां तक होंगे ? स्वयं ही ये किंकर्त्तव्यविमूढ़ और दिग्भ्रान्त हो गये हैं। ऐसे कलाकारोंके भरोसे रहनेसे हमारे समाज और राष्ट्रकी क्या दशा होगी, भगवान् ही जानें ! क्या जिस साहित्यका उद्देश्य निराशा तक ही सीमित हो, जिसमें जगत्की कठिनाइयोंसे दूर भागनेकी प्रेरणा मिलती हो और इसीमें जीवनकी सार्थकता समझी गयी हो, वह हमारे विचार और भाव सम्बन्धी आवश्यकताओंको पूरा कर सकता है ?

कदापि नहीं। वास्तविक साहित्य तो वह है, जिससे जीवन-संग्रामकी सुरभि प्रसारित हो।

सम्प्रति भारतमें किस रुखकी हवा चल रही है, हमारे कलाकारोंको इसकी खबर नहीं। यदि होगी भी, तो इस ओर ध्यान देना वे गुनाह समझते हैं। आज साहित्यिक होनेका अर्थ समझा जाने लगा है—'दुनियाकी बातोंसे आंख मूंदकर अलग रहनेवाला जीव।' कुछ लोग कहा भी करते हैं—'हम तो साहित्यिक जीव ठहरे, हमसे साहित्यकी ही बातें कीजिये।'

भारत आज सदियोंकी दासताजनित दरिद्रता एवं अन्य कई प्रकारकी विपत्तियोंकी आगसे होकर गुजर रहा है। लेकिन इस ओरसे आंखें मूंदकर कोई गाता है :—

"दृगोंका भ्रम, पिपासाकी उन्मादना जगकी;
मरुस्थलके हृदय-तलमें, प्रवाहित भ्रान्ति-मृग-जल हूं।"
—'आरसी'

तो कोई गाता है :—

'किसी प्रेमिकाका पिकदान हूं मैं।'

इन कवियोंका परिचय ही जब यही है, तो इनसे आशा ही क्या की जा सकती है? कोई बिरहवेदनाके पीछे पागल है, कोई अपनी टूटी वीणा झनझना रहा है, कोई शराबके नशेमें अपनी सारी कल्पना-शक्तिका बल उड़ेल रहा है, तो कोई अपने प्राणोंकी होली प्रियतमाके दरबाजेपर जाकर जला रहा है। आज जब हमें क्रान्तिकारी साहित्यकी महान् आवश्यकता है, तो हमें मिलता है हालावादी साहित्य। आज हमें चाहिए मैदानका साहित्य, जो अपनी स्वच्छता और जीवनी-शक्तिके कारण हमारे जीवनके लिए स्फूर्तिदायक होता, तो हमें प्राप्त होता है मिलन-मन्दिरका साहित्य। हमें सात लाख भारतीय ग्रामोंके हृदयकी धड़कन-का साहित्य चाहिए, तो हमें मिलता है सातवें आसमानपर-का दार्शनिक साहित्य। पता नहीं, इसीके बलपर हमारा उद्धार किस प्रकार होगा?

जब हमें प्रगतिशील और जीवन-सम्बन्धी काव्यकी आवश्यकता है जो हमारे जीवनको भी प्रगतिशील बनावे, तो हमारे कलाकार उलटे किसी अज्ञातकी गोदमें मस्त होकर सो रहे हैं और कुछ प्रेम-ज्वालामें धू-धू कर अपने हृदयको जला रहे हैं। फलतः भारतवासी आत्मसम्मानहीनताको क्षमा, कायरताको अहिंसा और निर्वीर्यताको शान्ति समझ रहे हैं। साहित्यका उद्देश्य तो मानव-जातिको नूतन शक्ति और नया जीवन प्रदान करना है। वह साहित्य हमारे लिए अहितकर होगा, जो 'अनन्त' और 'असीम'की ईंटें जोड़कर आकाशमें हवाई किले बनाता है। आज तो ऐसे साहित्य-निर्माणकी आवश्यकता है, जिससे भारतीयोंके हृदयमें एक प्रलय-वह्नि प्रज्वलित हो उठे; जिसमें समाजकी सभी गलित एवं विकास-विरोधी वस्तुयें जलकर क्षार हो जायं। यह कटु सत्य है कि हमारे साहित्यकारोंमें कर्म-शक्तिका अभाव है। अकर्मण्यता उनमें घर कर गयी है। अस्तु, वे हमें भी उसीका पाठ पढ़ानेकी आकांक्षा रखते हैं। इन्हें तो आज ऐसे साहित्यका निर्माण करना चाहिए, जो जीवनसे मैत्री रखे और मनुष्यको जीना सिखावे। इसके अभावमें यह कहा जा सकता है कि ये कवि हमारे समाज-की प्रचण्ड शक्ति नहीं हैं। जगत्‌की कठिनाइयोंसे दूर भागने-की प्रेरणाके बदले जीवन-सङ्घर्षकी ओर बढ़नेको ललकारने-वाला साहित्य हमारे लिए अपेक्षित है।

ऐसी रचनायें हमारे जीवनको एक स्फूर्ति प्रदान करनेवाली हैं। किसी भिन्न लोकमें—जो हमसे बहुत दूर है—जाकर अपने पाण्डित्यके डमरूको डिमडिमानेकी अपेक्षा इसी धरातलपर उतरकर जनताके बीच घुलमिलकर उसमें नवीन शक्तिका सञ्चार करना अधिक उपयुक्त और आवश्यक है।

हमारी अभिरुचि बड़ी तेजीसे बदल रही है। अब काव्यको मनबहलावकी वस्तुके रूपमें ही नहीं रखना है। मनोरञ्जनके अलावा उसका और भी उद्देश्य है। नायक-नायिकाओंकी कहानी और अनन्तके पथका रहस्य बतलाना ही उसका लक्ष्य नहीं रहना चाहिए। उसे अब जीवनकी साधारण एवं जटिलतर समस्याओंकी छाया बनकर हमारी सहायता भी करनी है। आसमानमें छायी लालिमा हमें अत्यन्त आनन्ददायक प्रतीत होती हैं; किन्तु अषाढ़-श्रावणमें वही लालिमा हमारे आनन्दका कारण नहीं। उस समय तो चारों ओरसे उमड़ती हुई काली घटायें ही सुन्दर प्रतीत होती हैं और साथ ही उपयोगी भी। हमारे लिए काव्यका वह भाव एकदम निरर्थक होगा जिससे संसारकी नश्वरताका आधिपत्य हमारे हृदयपर दृढ़तर हो जाय और नैराश्य छा जाय। कुछ कवियों और लेखकोंने

इस ओर ध्यान दिया है और रचनायें भी की हैं ; किन्तु वह आवश्यकतासे बहुत ही कम है। युगकी पुकारकी उपेक्षा करनेवाले कलाकार, कलाकारके पदको नीचे गिरा रहे हैं। ऐसे कलाकारोंके लिए हमारे अमर कलाकार स्वर्गीय प्रेमचन्दजीका यह सन्देश ध्यान देने योग्य है—"जब साहित्यका काम केवल मनबहलाव एवं आंसू बहाकर जी हलका करना था, तबतक उसके लिए कर्मकी आवश्यकता न थी।.........मगर हम साहित्यको केवल मनोरञ्जन और विलासिताकी वस्तु नहीं समझते। हमारी कसौटीमें वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनताका भाव हो, जीवनकी सचाइयोंका प्रकाश हो, जो हममें गति और सङ्घर्ष तथा बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं ; क्योंकि अब अधिक सोना मृत्युका लक्षण है।"

औरत

श्री "रहबर" बी० ए०

सुबह नौ बजेका समय था। मैं अपने ड्राइङ्ग रूममें बैठा सिगरेटका धुआं छतकी ओर छोड़ रहा था। किसीकी याद कल्पना-पटपर छायी हुई थी। तबीयत असाधारण रूपसे विह्वल और बे-चैन थी। विरहके दिन तो उसके शतांश भी विकलतापूर्ण नहीं होते, जितने कि प्रतीक्षाके अन्तिम पल।

गाड़ी आनेमें अभी डेढ़ घण्टा बाकी था, लेकिन मैंने सोचा कि आहिस्ता-आहिस्ता स्टेशनकी तरफ चलूं। बाजारमें मोटरों और तांगोंके कलरव और खोमचेवालोंकी तीखी और सुरीली आवाजोंसे ही मन कुछ बहलेगा और गाड़ीके समय स्टेशनपर भी पहुंच जाऊंगा।

यह सोचकर मैंने एक अंगड़ाई ली और उठकर बाहर आया। चन्द कदमके फासलेपर माली और मालिन बैठे धूप सेंक रहे थे। माली न जाने क्या शरारत किया चाहता था कि मालिनने उसका हाथ झटककर कृत्रिम क्रोधसे कहा—"बस, मुझे मत छेड़ो।"

"क्यों नहीं ? मैं तो छेड़ूंगा।" यह कहते हुए मालीने झपटकर उसकी कलाई पकड़ ली और फिर कहा—"ऐसी कौन-सी तू हूर परी आ गयी कि तुझे न छेड़ूं ?"

मालिनने पहले तो कलाई छुड़ानेकी कोशिश की, मगर किसी प्रकार छूटते न देखकर मुसकराते हुए कहा:—"तुम्हारे लिए तो हूर परी ही हूं।"

"ऊं, हूर परी ! सूरत तो देख बन्दरियाकी-सी।" मालीने ज़वाब दिया।

"और तेरी सूरत..." मालिन बोली।

वह आगे कुछ कहना ही चाहती थी कि उसकी दृष्टि मुझपर पड़ी और उसने लज्जासे लाल होकर गर्दन झुका ली। मालीने भी कलाई छोड़ दी, शरमाता हुआ मेरी तरफ आया और हाथकी हथेलियां मलते हुए झिझकते-झिझकते पूछा:—"बाबूजी, कहां जा—त—?"

"मैं स्टेशनको जाता हूं। जग्गू आये, तो उससे कहना कि ठीक दस बजे तांगा लेकर स्टेशनपर पहुंच जाये।"

"अच्छा बाबूजी, कह दूंगा।" उसने जवाब दिया और फिर धीरेसे पूछा:—

"आज मालकिन आयेंगी क्या ?"

"हां, मालकिन आयेंगी।" मैंने मुसकराकर जवाब दिया। माली भी समझ गया था कि मैं क्यों मुसकराया हूं। वह आंखें झुकाकर पांवके अंगूठेसे मिट्टी कुरेदने लगा और बोला:—

"फिर आप भी तांगेमें चले जाइये।"

"नहीं, मुझे रास्तेमें काम है। मैं तो चलता हूं। उससे जरूर कह देना, भूलना नहीं।"

× × × ×

मैं कोठीके फाटकसे निकलकर सड़कपर आया। आगे-आगे एक रेवड़ चल रहा था। बकरियां सारी सड़कपर बिखरी हुई चल रही थीं। इससे तांगों और मोटरोंको गुजरनेमें बड़ी दिक्कत होती थी। गड़रिया इन्हें एक तरफ रखनेकी बहुतेरी कोशिश करता था, मगर एक बकरा उछल-

कूदकर उन्हें फिर बिखेर देता था। मैं काफी दूर तक इस रेवड़के साथ-साथ चलता रहा और इस नटखट बकरेकी बकरियोंसे छेड़-छाड़में दिलचस्पी लेता रहा। लेकिन कृष्णनगरसे निकलकर ज्योंही हम बड़ी सड़कपर पहुंचे, रेवड़ तो बाहरकी तरफ चला गया और मैं बाजारकी तरफ।

जब मैं गवर्नमेण्ट कालेजके निकट पहुंचा, तो कालेजका घण्टा बज रहा था। पीछेसे दो लड़के बगलोंमें किताबें दबाये जल्द-जल्द कदम उठाते चले आ रहे थे। उनमेंसे एक कह रहा था—"⋯रङ्ग सांवला सही, मगर उसके अङ्गोंकी सुकोमलता सितम ढाती है। आंखें तो देखो...।"

यह कहते हुए वे लड़के तो आगे निकल गये, मगर मेरे लिए एक समस्या छोड़ गये कि उन्हें जल्द-जल्द चलनेपर मजबूर करता है कालेजका घण्टा और सितम ढाती है किसीकी सुकोमलता। अजीब माजरा है। आखिर यह है कौन?—कालेजकी कोई लड़की सरला, कमला, रोहनी या मोहनी, जिसे ये स्निग्ध दृष्टिसे देखते होंगे और वह खिंची-खिंची दूर-दूर रहती होगी। मेरे मनमें भी इच्छा उत्पन्न हुई कि मैं भी देखूं कि वे आंखें कैसी हैं, जिन्हें वे न मालूम किस चीजसे उपमा दिया चाहते थे, और जो उनके अध्ययनमें भी बाधक रहती हैं। आखिर मुझे भी तो किसीकी आंखोंने ही अपने वशमें किया है। वे आंखें उन आंखोंसे अच्छी तो नहीं हो सकतीं।

मैंने कलाईकी घड़ीपर नजर डाली। सवा नौ बजे थे। और गाड़ीको आना था साढ़े दस बजे। आह! वे बड़ी-बड़ी प्यारी आंखें!

मैं इन्हीं आंखोंकी कल्पना करता हुआ चला जा रहा था। इन आंखोंमें रूप और आनन्दकी दुनिया आबाद थी। इन आंखोंने दो मासकी अवधिमें ही मुझे इस कद्र अपना बना लिया था कि उनके बिना संसार सूना था और अब उन्हींका आकर्षण मुझे स्टेशनकी ओर लिये जा रहा था कि सामने दो आधुनिक युवतियां नजर पड़ीं। वे अमूल्य साड़ियां पहने, हाथोंमें रूमाल थामे प्रसन्नवदन चली आ रही थीं और दाहनी ओरसे एक तांगा आ रहा था। अब हमें एक चौराहेमेंसे गुजरना था। लड़कियां, तांगा और मैं, सबके सब एक ही वक्त वहां इकट्ठे हो गये। तांगेवालेने एक उचटती-सी नजर लड़कियोंपर डाली। उसके मनमें गुदगुदी पैदा हुई। जिस प्रकार तूफानकी लहरें सागरके मध्यसे उठती हैं और देखते-ही-देखते उसकी विशाल दिशाओंमें फैल जाती हैं, उसी प्रकार उसकी मानव-सुलभ भावनाओंने करवट ली और क्षण-भरमें उसकी रग-रगमें क्रन्दित होकर होठों तक पहुंच गयीं। उसने एक मधुर चुटकी ली और घोड़ेकी लगामको झटककर उसे चाबुकसे सहलाते हुए बोलाः—ओ चल तेनूं लै जान विलैत दियां परियां (चल, तुझे विलायतकी परियां ले जायें)।

यह उसके जजबातकी व्याख्या थी और इस व्याख्याके लिए उसके पास इससे सुन्दर शब्द न थे। यह वाक्य जहां आधुनिकताकी कड़ी समालोचना था, वहां इससे उसकी अपनी सामाजिक स्थितिका भी पता चलता था। बल्कि अगर उसकी मनोवृत्तिका विश्लेषण किया जाये, तो इसमें पहलीकी अपेक्षा दूसरी बात अधिक पायी जाती थी। क्योंकि वह कोई शुष्क उपदेशक तो था नहीं, जो यह चाहता कि पूर्वकी पर्दानशीन सलज्ज स्त्री पश्चिमकी निर्लज्ज रमणी बनकर सड़कोंपर न निकले। वह एक सीधा-सादा मजदूर था। इस दृश्यसे उसे अपने अभाव और दूसरी ओरकी बे-रुखीका अप्रकट एहसास हुआ। इस बातको उसका रूपका लोभी मन भी गवारा न कर सका और जीवनके इस मार्ग-अन्तरके कारण उसके मनकी यह प्राकृतिक मोहन कामना भी व्यङ्ग बनकर रह गयी।

मैं यही सोचता हुआ मोची दरवाजे तक पहुंच गया। और वहां—जहां लकड़ीके जंगलेपर बहुत-से पुराने कोट लटके रहते हैं—अनमना-सा ठहर गया। शायद इसलिए कि वक्त ही तो गुजारना है। एक नजर कोटोंपर डालकर मैं बागमें देखने लगा। एक मुर्गा और दो-तीन मुर्गियां 'चख-चख" करते फिर रहे थे और पञ्जोंसे मिट्टी कुरेद-कुरेदकर खूराक ढूंढ़ रहे थे। मुर्गेने एक बड़े और पुराने वृक्षकी जड़में चोंच मारी और "कट-कट" करके मुर्गियोंको बुलाया। मुर्गियां दौड़ी आयीं। वृक्षकी जड़में दीमकने बांबी बना रखी थी। वे उसे चोंच भर-भरकर खाने लगीं और मुर्गा छाती तानकर सगर्व इधर-उधर देखने लगा।

मैं उन्हें देखते-देखते स्वप्नवत् आगे सरकने लगा कि एक मोटी और खुर्दरी-सी आवाज कानमें पड़ीः—

"क्यों बाबूजी, टेसन किधर है?"

मैंने पीछे मुड़कर देखा, तो सत्ताईस-अट्ठाईस वर्षका एक ग्रामीण युवक पास ही खड़ा यह प्रश्न कर रहा था।

"मेरे साथ-साथ चले आओ।" मैंने मुसकराते हुए जवाब दिया।

"देखो जी, पहले किसीने उस तरफ भेज दिया।" उसने शिकायत की।

"शरारत की होगी।"

"और क्या, परदेसी समझकर मखौल कर दिया।"

"अच्छा, अब कहां जाना है?" मैंने दरियाफ्त किया।

"जालन्धर उतरूंगा। वहांसे पांच कोसपर गांव है। मैंने सोचा कि आया तो हूं, लाहौर भी देखता चलूं। इसलिए उतर पड़ा।" वह रुक-रुककर बातें करता रहा और फिर गर्दन हिलाकर बोलाः—

"अच्छा शहर है!"

"इससे पहले भी कहीं आये-गये हो?"

"जी हां, बारमें गया था। वहां रिश्ते-नातेके लोग हैं। उनसे मिले बहुत दिन हो गये थे। मिलनेको बहुत जी चाहता था, सो मिल ही आया।"

"तुम्हारी शादी तो हो चुकी होगी?" मैंने मालूम नहीं क्यों, यह सवाल कर दिया।

"जी न!" उसने हसरत-भरे लहजेमें जवाब दिया।

"तो फिर करोगे?"

"जी हां।" उसने बड़ी उत्सुकतासे कहा। उसका चेहरा इस तरह खिल गया था, जिस तरह धूपसे जले हुए पौदेको वर्षाके छींटे लगे हों। मानो मेरे सवालसे उसे आशा हो चली थी कि उसकी शादीका दिन भी कभी आ ही जायेगा।

"तो अब कहीं अड़ोस-पड़ोसमें सांट-सांट लगी होगी?" मैंने खोज जारी रखी।

"नहीं बाबूजी।" उसने फिर म्लान मुख बनाकर जवाब दिया और दलील पेश कीः—"बेगाने प्याले प्यास नहीं बुझती।"

"प्यास न बुझे, जी तो बहल जाता है।" मैंने उसके कन्धेपर हाथ रखकर कहा।

"क्या हुआ बाबूजी, बेगाना, बेगाना ही रहता है। अपनी चीज हो, जब चाहो बरत लो।"

मैंने बड़ी मुश्किलसे हंसी जब्त की।

हम दोनों इसी तरह बातें करते चले जा रहे थे। उसकी बातें अत्यन्त सरल थीं। मानो अपने किसी प्रिय मित्रसे मनकी कहानी कह रहा हो। मुझे आनन्द आ रहा था। इसलिए उसके मनकी थाह लेनेके लिए मैंने कहा—"तुम तो यार यह सब बातें जानते हो, मालूम होता है कि कहीं जरूर आंख लड़ी है।"

"नहीं बाबूजी, आपसे सच कहता हूं। हम ऐसे आदमी नहीं। वाह गुरुका दिया सब कुछ है। तीस-चालीस बीघे घरकी जमीन है। बस, एक इसी बातकी कमी है।"

हम स्टेशन तक पहुंच गये।

मुझे तो पहले ही बुकिंग आफिससे प्लैटफार्म टिकट लेकर अन्दर जाना था, इसलिए मैं इधरको चला। लेकिन वह भी मेरे साथ हो लिया, गोया मेरे साथ सी दिया गया हो। मैंने उसे दोनों कन्धोंसे पकड़कर घुमाया और दूसरे बुकिंग आफिसकी तरफ सङ्केत करते हुए कहा—"वहां जाओ और अपना टिकट खरीदो।"

उसने अपने मैले और पीले दांत दिखाये और श्रद्धापूर्वक प्रणाम करके उधरको चला गया।

× × × ×

गाड़ी आनेमें अभी पन्द्रह-बीस मिनट बाकी थे। आकाशपर बादलोंके नन्हें-नन्हें श्वेत टुकड़े तैरते फिरते थे। धूप निकली हुई थी। सर्दीका जोर कम हो गया था। टीन-शैडपर जङ्गली कबूतरोंका एक जोड़ा प्रणय-क्रीड़ामें मग्न था और इञ्जन शण्ट कर रहे थे। प्लैटफार्मपर मुसाफिरोंकी भीड़ क्षण-क्षण बढ़ती जा रही थी। मैं इधर-उधर घूम रहा था और अपने विचारोंको एक केन्द्रपर लानेकी कोशिश कर रहा था कि एक सुन्दरी और उसका पति कुलीसे सामान उठवाये हुए आये। सामान रखवाकर सुन्दरी तो ट्रङ्कपर बैठ गयी और उसका पति इधर-उधर टहलने लगा।

सुन्दरीसे थोड़ी ही दूर एक जटाधारी लंगोटबन्द साधु भभूत रमाये बैठा था। उसने अपनी गांजेसे सुर्ख आंखें सुन्दरीके मुखपर गाड़ दीं। लोगोंको अपने सामानकी चिन्ता थी। जुदा होनेवाले सम्बन्धियोंसे बहुत कुछ कहना-सुनना था। एक त्यागी साधुको सुन्दरता-निरीक्षणका इससे अच्छा और कौन-सा अवसर मिल सकता था। वह सुन्दरी-

की ओर देखता जाता था और मुसकराता जाता था।

मैंने उसकी इस हरकतको ताड़ लिया और अपनी कुतूहल-प्रिय निगाहें उसकी रूपकी लोभी निगाहोंमें डाल दीं। वह बेचारा अप्रतिभ होकर रह गया और लज्जा मिटानेके लिए खिन्न हंसी होठोंपर लाकर बोला:—"बाबू-जी, नारी तो वस्तु ही ऐसी है, इसपर तो नारद मुनि जैसे तपस्वी भी डोल गये।"

वह इतना कहकर प्रतिवादके भयसे क्षितिजकी ओर देखने लगा। लेकिन मैं उसका प्रतिवाद कैसे करता, जिस गुत्थीको मैं स्वयं बड़ी देरसे सुलझानेकी कोशिश कर रहा था, उसे उसके एक वाक्यने भले प्रकार सुलझा दिया।

मैं मुसकराता हुआ एक तरफको चल दिया। गाड़ी सिगनलके अन्दर दाखिल हो रही थी और मेरे हृदय-प्रदेशमें बसनेवाली नारीकी प्रिय छवि उज्ज्वल हो रही थी।

———

सामाजिक कार्य और कार्यकर्ता

श्री रामस्वरूप व्यास

समाज-सेवाका भाव मनुष्य-समाजके अस्तित्व-जितना ही पुराना है; क्योंकि समाजका अस्तित्व बिना किसी प्रकारके सहयोगके नहीं हो सकता और समाज-सेवा सहयोगका एक प्रकार है। इसके साथ ही इस भावनाको दो प्रकारकी वृत्तियोंसे विशेष पोषण मिला और इन्हें मनुष्यताका भाव और धार्मिक वृत्ति कहा गया है। ये दोनों एक प्रकारसे तो मूलमें एक-दो हैं; परन्तु विकास पानेपर थोड़ा भिन्न रूप धारण कर लेती हैं। सदासे मनुष्यताकी भावनासे प्रेरित होकर लोगोंने इस प्रकारके काम किये, जिनमें सहयोग और भ्रातृभाव व्यापक रूपसे थे। सब प्रकारके समाज-सुधारके मूलमें इसी भावनाने काम किया है और मनुष्य-समाजको उत्तरोत्तर उन्नतिके पथपर अग्रसर किया है। धार्मिक वृत्तिमें भी इसी प्रकार मनुष्यके प्रति भ्रातृ-भाव, दीनके प्रति दया तथा अनुराग दिखानेको कहा गया है। हिन्दू धर्ममें ईश्वरको 'दीन-बन्धु' की उपाधि दी गयी है और दीनोंकी सेवा करना धर्मने एक कर्तव्यके रूपमें स्वीकार किया है। और भी दूसरे धर्मोंमें इसी प्रकारके आदेश दिये गये हैं। ईसाई धर्ममें कहा गया है कि यदि तेरे पास दो कोट हों, तो एक दूसरेको दे दे। इसी प्रकार कुरानमें भी यह आदेश दिया गया है कि जब तक तेरा पड़ोसी भूखा है, तब तक उसे खिलाये बिना भोजन मत कर।

उपर्युक्त समाज-सेवाके दृष्टिकोण अपनी परिधिमें ठीक हैं; परन्तु हमें बहुत दूर नहीं ले जाते। इनमें स्वयं कुछ कमजोरियां तो हैं ही; परन्तु आधुनिक समाजकी आवश्यकताकी दृष्टिसे भी पूरे नहीं उतरते। धार्मिक दृष्टि या मनुष्यताकी भावनासे प्रेरित होकर अनेक काम जो किये जाते हैं, वे कुछ समयके बाद रूढ़िका रूप धारण कर लेते हैं और कितनी ही बार बहुत सङ्कीर्ण तथा स्वार्थमय दृष्टिका निर्माण करते हैं। दान कितनी ही बार अपने धर्मकी श्रेष्ठता दिखानेके लिए या स्वर्ग तथा मोक्षकी कामनासे किया जाता है। भीख देनेकी प्रथा भी बिगड़कर अनेक ऐसे व्यक्तियोंका पोषण कर रही है, जो समाजमें उपयोगी काम कर सकते हैं।

भारतमें जिस प्रकारकी समाज-सेवा अधिक प्रचलित है, वह संरक्षणात्मक प्रकारकी है। इस प्रकारकी समाज-सेवामें जिस प्रकार कोई बड़ा-बूढ़ा अपनेसे छोटोंकी देख-भाल करता है, उस प्रकारका भाव होता है। वे लोग, जो किसी कारणसे किसी प्रकारकी कमजोरियोंके भोग बन गये हों, इसके पात्र होते हैं। इस प्रकारकी कमजोरियोंको भाग्यका दोष मानकर स्वीकार कर लिया जाता है। इन्हें इस प्रकार नहीं स्वीकार किया जाता कि जैसे ये समाज-व्यवस्थाकी त्रुटियोंके कारण भी हो सकती हैं। इस प्रकार भाग्यवादको मूलमें लेकर चलनेसे जिस प्रकारकी समाज-सेवाका जन्म होता है, उससे समाजकी स्थिति कुछ विशेष सुधरने नहीं पाती। केवल बाह्य आवरणसे ढकनेके समान हो जाता है, मूल कारण दबेके दबे रह जाते हैं।

आधुनिक समाज-सेवा या 'सामाजिक कार्य'का दृष्टिकोण इससे बिलकुल भिन्न है। एक तो यह इस कारण है कि समाज-विज्ञानने काफी प्रगति कर ली है और उसके विद्यार्थियोंने अनेक ऐसी बातें खोज निकाली हैं, जिनसे हमारी समाज-सेवाकी धारणा ही बिलकुल बदल गयी है। आधुनिक समाज-व्यवस्था इतनी विषम हो गयी है कि इसमें समाज-सेवाके पुराने विचार पूरे नहीं उतरते। आधुनिक समाज-विज्ञानने मनुष्य तथा उसके वातावरण और तत्सम्बन्धी बातोंपर काफी प्रकाश डाला है और इसके कारण सामाजिक कार्यने एक नया रूप धारण कर लिया है। आजकलके अर्थमें 'सामाजिक कार्य' शब्द-का अनुष्ठान इस शताब्दीके प्रारम्भमें अमेरिकामें हुआ और समाज-सेवासे इसका थोड़ा-सा भिन्न अर्थ है। इस सम्बन्ध-में जितने शब्द प्रयोगमें आते हैं, उनका अर्थ साधारणतः एक-सा ही समझा जाता है। समाज-सेवा, समाज-सुधार, परोपकार, दान, धर्म इत्यादि लगभग एक-से ही अर्थमें उप-योग किये जाते हैं। परन्तु फिर भी इनके भावमें थोड़ा अन्तर तो रहता ही है। सेवा या परोपकार इस अर्थमें लिये जाते हैं कि इनके बदलेमें सेवा करनेवाला किसी प्रकार-के बदलेकी आशा नहीं रखता। सुधारमें किसी गिरे हुएको उठानेकी बू रहती है, या फिर उस प्रकारकी व्यवस्थाको जन्म देनेकी, जिसे सामाजिक कार्यकर्ता अच्छी समझते हों। दान, धर्म तो एक प्रकारके कर्तव्यके रूपमें स्वीकार किये जाते हैं या फिर भलाईके रूपमें। परन्तु 'सामाजिक कार्य' का अर्थ जरा विशद है। प्रो० टफ्ट, जिन्होंने प्रारम्भिक वर्षोंमें 'सामाजिक कार्य' को इसका आधुनिक रूप दिया, इसे अनेक दृष्टिसे देखते हैं। इनमें निम्न मुख्य है। किसी प्रकारकी त्रुटिपूर्ण जाति या वर्गको सहायता देना तथा सामाजिक सम्बन्धोंका बारीक अभ्यास तथा सुसाम-ञ्जस्य करना। इस प्रकारके सामाजिक कार्यकी कोई विस्तृत व्याख्या देना तो कठिन है; परन्तु संक्षेपमें इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि इसका ध्येय व्यक्तियों तथा सामाजिक जीवनका विकास व्यक्तियों तथा समाजके जीवन और वातावरणमें परस्पर सुसामञ्जस्य लाकर करना है। इसमें न केवल व्यक्तियोंमें ही परिवर्तन लानेका भाव है, वरन् उन सामाजिक परिस्थितियोंको भी बदलनेका है, जिनके कारण व्यक्तियोंका समाजमें एक रूप हो जाना कठिन होता है। इस प्रकार व्यक्तियों तथा परिस्थितियोंमें भारी लगाव है और एकके सुधारपर दूसरेका सुधार निर्भर रहता है। 'सामाजिक कार्य' में इन दोनों परिवर्तनोंका एक-दूसरेसे सम्बन्ध बांधना तथा सामञ्जस्यमें लाना सफलताकी कुञ्जी है।

सामाजिक कार्यका उपर्युक्त विचार, इसके पहले प्रच-लित विचारोंसे भिन्न है; क्योंकि इसका मूलसूत्र यह है कि हम जिन सामाजिक त्रुटियोंको अब तक भाग्यके दोषके कारण मानते थे, उन्हें दूर किया जा सकता है। हम उनके अस्तित्वका कारण जानते हैं, इसलिए उन्हें रोक भी सकते हैं, दूर भी कर सकते हैं। इसमें इस दृष्टिका भी समावेश हो जाता है कि मनुष्य-स्वभाव बदला जा सकता है और हम समाजमें बहते हुए भिन्न प्रभावोंका अध्ययन करके उनके कारण उपजे हुए विषैले प्रभावोंको दूर कर सकते हैं; और यह इसी कारणसे हो सका है कि समाज-विज्ञानने काफी प्रगति कर ली है और जिसके कारण समाजमें बहती हुई अनेक प्रकारके प्रभावों-की धाराओंको समझा जाकर उनके निराकरणके उपाय निकाले जा सकते हैं। इस कारण सामाजिक कार्य केवल आपत्तिजनक परिस्थितियोंमेंसे निकालनेमें सहायक ही नहीं होता, वरन् इन परिस्थितियोंको उत्पन्न न होने देकर रचनात्मक कार्य भी किया जा सकता है।

आधुनिक जीवनकी विषमताने सामाजिक कार्यको कठिन बना दिया है। पहले यह समझा जाता था कि जिसके मनमें दूसरेकी सेवा करनेकी भावना है, वह दूसरोंकी सेवा कर सकता है और इसमें शिक्षाका प्रश्न ही नहीं उठता था। परन्तु जब सामाजिक कार्यकर्ताको इस प्रकारकी समस्याओंका सामना करना पड़ा, जिनके सुलझानेके लिए विशेष प्रकारके ज्ञानकी आवश्यकता होती है, तब सामाजिक कार्यकर्ताकी शिक्षाका भी प्रश्न उपस्थित हुआ। और इसे सफ-लतापूर्वक चलानेके लिए यह भी जरूरत हुई कि इस प्रकार-की शिक्षाका एक माप-दण्ड कायम कर दिया जाय, जिससे ऊंचे प्रकारका काम हो सके। इसलिए इस कामकी उच्च शिक्षा उसी प्रकारकी होनेकी आवश्यकता हुई, जैसी कि दूसरे प्रकारके उच्च पेशोंकी।

सामाजिक कार्यकर्ताको अपने काममें समाज-शास्त्र, समाज-विज्ञान, मनोविज्ञान, अर्थ-शास्त्र और राजनीति-शास्त्रकी सहायता लेनी पड़ती है और उसे इस प्रकारके साधनोंसे भी काम लेना पड़ता है, जो इस क्षेत्रमें अपनी उपयोगिता सिद्ध कर चुके होते हैं। उसे व्यक्तियोंकी सामाजिक असम्बद्धताके मानसिक और शारीरिक कारणोंकी जांच करनी होती है और तब वह उनके सुसम्बद्ध करनेके उपाय ढूंढ़ता है और इसमें अपने वैज्ञानिक ज्ञान तथा समाज द्वारा मिल सकनेवाली सुविधाओंका भी ध्यान रखता है। इस कामको अमेरिकामें उसी दृष्टिसे देखा जाता है, जैसे वकील, डाक्टर या इञ्जीनियरके पेशेको तथा वहां सामाजिक कार्यकर्ताकी शिक्षाका भी व्यापक प्रबन्ध है।

परन्तु अपने देशमें अभी तक यह बात नाममात्रको ही शुरू हुई है। यहां सामाजिक कार्य होता है ; परन्तु उसी पुराने ढङ्गपर, और इसके करनेमें किसी विशेष प्रकारकी योग्यताकी आवश्यकता नहीं समझी जाती। हां, कहीं-कहीं इस कामको कुछ वैज्ञानिक ढङ्गपर करनेका प्रयास किया गया है तथा इस प्रकारकी शिक्षाका श्रीगणेश बम्बईमें एक स्कूलके रूपमें हुआ भी है। सामाजिक कार्यकर्ताके लिए शिक्षाकी आवश्यकता है—इससे तो इनकार नहीं किया जा सकता; परन्तु भारतमें अभी सामाजिक कार्यकर्ताको वही स्थान मिल सकेगा, जो अमेरिकामें मिला हुआ है—यह बात विचारणीय है। लेखककी रायमें वकील तथा डाक्टरका पेशा सामाजिक कार्यकर्ताकी श्रेणीका ही है। ये दोनों भी एक प्रकारसे समाज-सेवा करते हैं। परन्तु अभी तकके इनके इतिहासने इन्हें समाज-सेवकके रूपमें नहीं, वरन् समाज-शोषकके रूपमें दिखाया है। भारत-जैसे गरीब देशमें इन्होंने जितनी सहायता की, उससे कहीं अधिक शोषण किया। ग्रामीण जनता, जिसे सबसे अधिक स्वास्थ्य सुधारनेकी जरूरत है, डाक्टरोंकी मोटी-मोटी फीस न दे सकनेके कारण उनके लाभसे बञ्चित रहती है। वकीलोंने भी मुकदमेबाजीकी प्रवृत्तिका पोषण कर अपना उदर भरा और कहीं-कहीं भारी जायदादें भी बनायीं। भारतके अनेक वकील, डाक्टर किसी लखपती व्यापारीसे कम न होंगे। कुछ वकील या बैरिस्टर एक दिनके कामके लिए इतनी फीस लेते हैं, जितनी कोई गरीब जीवन-भरमें भी नहीं पाता। यदि सामाजिक कार्यकर्ताने भी इनका उदाहरण अपने सामने रखा, तो वह भी वरदानके बदले अभिशाप ही हो जायगा।

परन्तु शुरू-शुरूमें सामाजिक कार्यकर्ताको स्वतन्त्र रूपसे जीविका प्राप्त करना कठिन होगा। वकील तथा डाक्टरके पास लोग खुशीसे नहीं, वरन् भारी मजबूरीमें आते हैं और आपत्तिसे निकलनेके लिए उन्हें जो वे चाहते हैं, देते भी हैं। परन्तु सामाजिक कार्यकर्ताके सम्बन्धमें इस प्रकारकी कोई मजबूरी खड़ी न होगी। फिर भी, एक थोड़ी संख्यामें सामाजिक कार्यकर्ता बड़े-बड़े शहरोंमें स्वतन्त्र रूपसे 'प्रेक्टिस' कर सकेंगे। अधिकतर तो उनकी सेवाओंका लाभ संस्थाओं द्वारा ही लिया जा सकेगा। सार्वजनिक क्षेत्रमें उनकी शिक्षा तथा ज्ञानका अच्छा उपयोग हो सकेगा।

जहां तक सामाजिक कार्यकर्ताकी शिक्षाका सम्बन्ध है, उसे उक्त प्रकारकी वैज्ञानिक शिक्षा तो मिलनी ही चाहिए। अब तक ये कार्य समाज-सेवा, दया, धर्म तथा सुधारके नामपर ही चलाये जाते थे, और इन कार्योंको चलानेके लिए समाज-सेवककी जरूरत पड़ती थी। परन्तु अब इस दृष्टिकोणको बदलना होगा। इसे कार्य-कारणके सम्बन्धमें लाना होगा। असाधारण व्यवहार या स्थितिको किसी प्रकारके पाप या नीचताके रूपमें समझकर उससे घृणा नहीं करनी होगी, उसे एक रोग या विषमताके समान समझना होगा। मनुष्यके मानसिक विकास तथा कार्य-धाराओंको समझकर उनमें सुधार लानेकी दृष्टि होगी, न कि सामाजिक घृणा या जोर-जुल्मसे समाज-विरुद्ध व्यवहारको बदलनेकी चेष्टा।

उक्त दृष्टिसे सामाजिक कार्यको सुन्दर रूपसे चलानेके लिए समाज-विज्ञान तथा दूसरे सम्बन्धित विषयोंके सुशिक्षित व्यक्ति भी चाहिए। इस प्रकारकी मांगको पूरा करनेके लिए पहले-पहल अमेरिकामें सामाजिक कार्यकर्ताओं-को शिक्षा देनेके स्कूल खुले। इन स्कूलोंके खुलनेके पूर्व इस प्रकारकी शिक्षा देनेका प्रबन्ध वहांकी समाज-सेवाकी संस्थाओंमें था ; परन्तु वहां वैज्ञानिक शिक्षा न मिलती थी। वहां तो कुछ विशेष प्रकारके कार्योंको किस प्रकार चलाया जाता है, इसकी शिक्षा मिलती थी और इतने ही से नवीन प्रकारके सामाजिक कार्य करनेके लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण न मिलता था। इसीलिए सुधरे हुए स्कूलोंकी आवश्यकता हुई। आज अमेरिकाके प्रायः सभी

विश्वविद्यालय और कालेज सामाजिक कार्यकर्ताकी शिक्षाके लिए विभाग या स्कूल चलाते हैं। १९३६ में अमेरिकामें कुल मिलाकर इस प्रकारके ३३ स्कूल या विभाग थे और इनमें विद्यार्थियोंकी संख्या ४१२९ थी। इन विद्यार्थियोंमेंसे लगभग ८० प्रतिशत ग्रेजुएट थे।

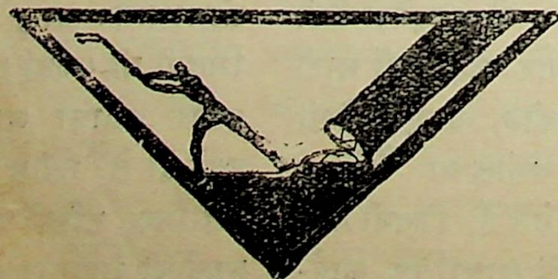
यूरोप तथा ब्रिटेनमें भी इस प्रकारके स्कूल पाये जाते हैं; परन्तु यूरोपमें ये अधिकतर सामाजिक संस्थाओं द्वारा चलाये जाते हैं। वहां विश्वविद्यालयोंसे इस प्रकारके शिक्षा-केन्द्रोंका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता। यूरोपके सब देशोंमें कुल मिलाकर इस प्रकारके ७६ स्कूल हैं। वहां इन स्कूलोंको अमेरिकाकी सामाजिक संस्थाओंसे उत्तेजन मिलता है। ब्रिटेनमें भी इस सम्बन्धमें काफी प्रगति हुई है। वहां सामाजिक कार्य तथा शिक्षाकी अवस्था अपेक्षाकृत काफी अच्छी है और वहां सामाजिक विषयोंपर खोज भी काफी होती है और वहांके विश्वविद्यालय भी भाग लेते हैं। वहांका 'लन्दन स्कूल आव इकानामिक्स' (London school of Economics) इस विषयका मुख्य केन्द्र है। विश्वविद्यालयोंके १३ विभाग भी इस प्रकारकी शिक्षा देते हैं तथा पदवी प्रदान करते हैं।

अमेरिकाके सामाजिक शिक्षा-केन्द्रोंकी कुछ विशेषतायें हैं। इनमेंसे कुछ तो इस प्रकारकी शिक्षा देते हैं, जिससे सामाजिक विषयोंमें किन्हीं एक-दो विषयोंका विशेषज्ञ बन जानेकी सुविधा होती है और इस विषयपर वे लोगोंको सहायता या सलाह देकर एक प्रकारसे स्वतन्त्र जीविका चला सकते हैं, उसी प्रकार, जिस प्रकार वकील या डाक्टर 'प्रेक्टिस' करते हैं। कुछ दूसरे सामाजिक विषयोंकी खोजको प्रोत्साहन देते हैं।

भारतमें इस प्रकारकी शिक्षाका अभी श्रीगणेश ही हुआ है। इतने बड़े देशकी दृष्टिसे यहां इसका नाममात्रको ही प्रबन्ध है। परन्तु इस प्रकारकी शिक्षाकी मांग दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इस प्रकारकी शिक्षाका श्रीगणेश सबसे पहले बम्बईमें १९२५ में हुआ था। वहांकी 'सोशल सर्विस लीग' ने सामाजिक कार्यकर्ताओंको शिक्षा देनेके कुछ वर्ग चलाये, जिनमें ६ सप्ताहका शिक्षा-क्रम था और खास-खास सामाजिक विषयोंपर व्याख्यान होते थे। १९२७ में कुछ ईसाई मिशनरी संस्थाओंने भी यह काम शुरू किया। १९३६ में सबसे पहले अमेरिकन ढङ्गका इस प्रकारका 'सर दोराबजी टाटा ग्रेजुएट स्कूल आव सोशल वर्क' नामका एक स्कूल खुला। हमारे देशके अर्थोंमें तो इसे कालेज ही कहना चाहिए; क्योंकि यहां बी० ए० की परीक्षामें उत्तीर्ण विद्यार्थी ही लिये जाते हैं। यह भारतमें इस प्रकारकी शिक्षा देनेका एकमात्र केन्द्र है और शिक्षा समाप्त हो जानेपर इसमें प्रमाणपत्र भी दिया जाता है। शिक्षा-क्रम दो वर्षका है। पहले वर्षमें कार्यकर्ताको समाज-विज्ञानके विभिन्न तत्त्वोंकी शिक्षा दी जाती है। दूसरे वर्षके कार्यक्रममें बहुत करके व्यावहारिक बातोंकी शिक्षा है। किसी सामाजिक संस्थामें काम करके कुछ व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त करना होता है और किसी एक विषयपर खोजकर 'थेसिस' भी लिखनी होती है।

भारतमें सामाजिक कार्यको अधिक वैज्ञानिक रूप देनेके लिए यह आवश्यकता है कि ये शिक्षा-केन्द्र बढ़ें और सामाजिक संस्थाओंमें केवल सुशिक्षित कार्यकर्ता ही रखे जायं। तभी इस दिशामें प्रगति हो सकेगी। ×

× इस लेखके लिखनेमें टाटा स्कूलके प्रोफेसर श्री जे० एम० कुमारप्पाके लिखे हुए लेखोंसे कुछ सहायता ली गयी है।—ले०



सुख और शान्तिकी खोजमें

श्री कामेश्वर शर्मा

चिरन्तन कालसे मनुष्य अपनी रक्षाके साधन ढूंढ़नेमें अपने विचार-वितर्कको लगाता आ रहा है। प्रारम्भमें जब पृथ्वी हिंस्रक जीव-जन्तुओंसे परिपूर्ण थी, तब वह गुफा या कन्दरामें रहकर किसी प्रकार अपनेको सुरक्षित बना लेता था। पर इस समय, जब सर्वत्र वैज्ञानिक साधनोंका आविर्भाव हो गया है, उसे अपनी रक्षाके लिए बड़े-बड़े जङ्गी जहाज बनाने और तरुणोंको सैनिक शिक्षा देनेमें प्रचुर धन-सम्पत्ति पानीकी तरह खर्च करनी पड़ती है। रक्षाके नाम-पर संसारकी समस्त जातियां युद्धकी इतनी सामग्री एकत्र कर रखती हैं, जिनकी राशि विशाल पर्वतको भी अतिक्रमण कर सकती है।

इसका कारण जीवनके लिए उन वस्तुओंकी जरूरत नहीं, प्रत्युत उनके बिना जीवनके सुरक्षित न रह सकनेका भय बतलाया जाता है। भयसे निवृत्त होने और परित्राण पानेके अभिप्रायसे लाखों-करोड़ों व्यक्ति अपने व्यवसायसे वञ्चित बना दिये जाते हैं एवं वे रंगरूट बनने—जहाज, तोप, मशीनगन, बन्दूक, बम, वायुयान, विषैला धुआं आदि विविध प्राणघातक अस्त्र-शस्त्र बनानेके लिए लाचार किये जाते हैं। यह परिश्रम, ये वस्तुयें—जिनसे अनगिनत मकानों, आरोग्यवर्धक बड़े नगरों तथा मानवोपयोगी विविध सामानोंकी रचना हो सकती है—मानव-जातिका जीवनाधार न होकर उसके संहारका कारण बनती हैं। इस समय कोई भी समृद्धिशाली राष्ट्र उन वैज्ञानिकोंको मनमाना पुरस्कार देनेको तैयार है, जो उनके लिए ऐसी युक्ति खोज निकालें, जिससे अल्पातिअल्प कालमें अधिकाधिक प्राणियोंका सर्वनाश हो सके। यद्यपि ये सब उद्यम नाश और अनर्थके हेतु किये जाते हैं, तथापि राष्ट्र-विधायक लोग वैसा न कहकर उन्हें रक्षाके साधनका नाम देते हैं। किन्तु, उनको यह कोई कैसे समझावे कि जिसका उद्देश्य संहार है, उससे भला रक्षणका कार्य कैसे हो सकता है?

आजसे सौ-सवा सौ साल कब्ल, जब संसार इतनी उन्नतावस्थामें नहीं था, रक्षाके नामपर राज्यके भीतर ही प्रजाकी स्वतन्त्रताका अपहरण कर लिया जाता था। राज्याधिकारी रक्षाकी दुहाई देकर प्रजाको पकड़ बुलवाते थे और अपने बचावके लिए युद्धकी भट्टीमें उनका जीवन खर-पातकी भांति झोंक देते थे। यह सच है कि इस समय शासकोंको वैसी स्वच्छन्दता प्राप्त नहीं है। यह भी सच है कि प्रजाको राज्यके भीतर आपसी झगड़ोंसे परित्राण पानेका भरोसा हो गया है। पर इससे बाहर शत्रुओंका भय ज्यों-का-त्यों बना हुआ है।

इस युगको प्रजासत्तात्मक शासनका युग कहा जाता है। दो-एक जगहोंमें नियन्त्रित राज्य-सत्ता भी है। लेकिन तब भी रक्षाके हेतु जन-साधारणको अपनी स्वतन्त्रतासे विमुख होना पड़ता है। तरुणोंको साहित्य, कला, ज्ञान और विज्ञानके विविध इच्छित विषयोंसे मुंह मोड़कर जातीयताके नामपर सामरिक शिक्षा प्राप्त करना एवं समयानुसार समर-दैत्यको अपने प्राणोंकी बलि देना होता है। जिन कुछ देशोंमें फौजी कवायदका जरूरी कानून नहीं है, वहां भी बड़ी-बड़ी जल, स्थल और हवाई सेनामें प्रस्तुत रहती हैं एवं उनके लिए लाखों-करोड़ों रुपये व्यय होते हैं। इतना सब होता है रक्षाके नामपर। फिर भी सुरक्षित कोई नहीं है!

प्राचीन कालमें जब हिंस्रक जन्तुओंसे बचनेका उपाय मानवको ज्ञात हुआ, तब उसे तीर और भालेका भय सताने लगा। उससे बचनेके लिए जब उसने अपने नगर-ग्रामके इर्द-गिर्द परकोटे खींचे, तब तोप, फिर बम और अन्तमें वायुयान उसे त्रास देने लगे। इससे स्पष्ट है कि मनुष्यके भय-स्वप्नका अन्त कभी नहीं हुआ। प्रत्युत वह उतना ही बढ़ गया, जितना अधिक उससे बचनेका उद्योग किया गया। और यद्यपि आज मित्र-शक्तियोंका दर्प चूर्ण-विचूर्ण हो गया है और वे इस समय अपने लोगोंको भरपेट भोजन-वस्त्र पहुंचानेमें भी असमर्थ हैं, तथापि दूसरी जगह बड़े-बड़े युद्ध-पोत, गैस और टैङ्क आदि विध्वंसक सामान जुटाये जा रहे हैं एवं असंख्य भूखोंके मुंहकी रोटी छीनकर युद्ध-दैत्यके उदरमें भरी जा रही है।

पचास वर्ष पूर्व रक्षाके नामपर एक बार और जर्मनीने फ्रान्सपर विजय पायी थी और जमानतके तौरपर उससे अलसेस तथा लोराइन प्रान्त लिये थे। लेकिन तो भी उसे फ्रान्सका भय लगा रहा और उससे निर्मुक्त होनेके लिए वह बराबर बड़ी-बड़ी तैयारियां करता रहा। कहना न होगा कि इन तैयारियोंके साथ आज ही की तरह उसका दर्प—उसकी धृष्टता भी खूब बढ़ती गयी और अन्ततः जो कुफल उसे भोगना पड़ा, वह आज भी इतिहासके पन्नोंमें वर्साईकी सन्धिके नामसे मशहूर है।

इसके बाद १९१८ से १९३३ तक विश्वका राजनीतिक आकाश कुछ शान्त—कुछ सुव्यवस्थित दिखाई दिया। सर्वसाधारणमें सुख-समृद्धिकी आशा हिलोरें लेने लगी। लेकिन अचानक ही फिर जर्मनीमें मानव-प्रवृत्तिका उच्छृङ्खल रूप हिटलरकी कायामें, धूमकेतुकी तरह, चमका। एकके बाद दूसरी, दूसरीके बाद तीसरी और तीसरीके बाद अनगिनत वीभत्स लीलायें हमारी आंखोंके सामने घटने लगीं। और आज रक्षाके लिए रणचण्डीका जो भीषण विषमय रूप प्रकट हो रहा है, उसे देखकर कौन कह सकता है कि इस महाप्रलयकी परिणति कहां जाकर होगी?

ससारका प्रत्येक राष्ट्र आज अधिकसे अधिक पलटन, पनडुब्बी, टैङ्क और वायुयान एकत्र कर रहा है। और इस तरह अपनी रक्षाके साथ-साथ दूसरे नव पराजित मुल्कोंको भी जर्मनीसे मुक्ति पानेका जीवन-सन्देश सुना रहा है। पर पिछले इतिहासके पन्ने क्या हमें यह नहीं बतलाते कि रक्षाकी खोजमें, शान्तिके नामपर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग, करोड़ों रुपयेकी भेंट और लाखों मनुष्योंके जो बलि-दान अब तक किये गये हैं, वे सब निष्फल हुए हैं? रक्षाकी प्राप्ति—अमन-चैनकी खोज तो एक ओर रही, उलटे विभीषिकाकी मात्रा बढ़ती जा रही है। इन युक्तियोंसे जब संसारमें अमन-चैन कायम न हुआ, मनुष्यको अपनी बर्बरता-पर विजय न मिली, तो क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि अब हम किसी दूसरे उपायकी खोज करें?

संसारकी कुछ अन्यतम विभूतियों—महात्मा गांधी, आल्डस हक्सले, रोम्यां रोलां, बर्टरैण्ड रसेल प्रभृतिका ध्यान इधर आकर्षित हुआ है। वे सोच रहे हैं कि सम्पूर्ण राष्ट्र—जिनकी उत्पत्ति मनुष्योंसे हुई है और जो सभी बातोंमें एक-दूसरेके समान हैं—किस तरह पारस्परिक भयको भुलाकर एकत्र सुख-शान्तिका लाभ पा सकते हैं। नीचे उनके विचारों-का कुछ सार दिया जाता है और आशा की जाती है कि इस लेखके लेखककी तरह ही, वे पाठकोंके लिए भी मनो-रञ्जक एवं ज्ञानवर्धक सिद्ध होंगे।

बर्टरैण्ड रसलकी एक पुस्तक है—"शान्तिका मार्ग कौन?" (Which way to peace?) इस सुन्दर पुस्तकके प्रारम्भिक पृष्ठोंमें युद्धका तात्त्विक रूप स्थिर कर लेनेके बाद लेखकने विग्रहको रोकनेका कुछ तरीका दिया है। सर्वप्रथम उसने एक ऐसे "विश्व-राष्ट्र" (World Government) की स्थापनाकी कल्पना की है, जिसकी सत्ता माननेके लिए संसारके समग्र राष्ट्र लाचार किये जायंगे। इस सङ्गठनके अनुशासनके खिलाफ काम करनेकी आजादी किसी भी राष्ट्रको न होगी। किन्तु यह सम्भव किस तरह होगा? केवल एक कल्पनात्मक विधान बनाकर ही तो "विश्व-राष्ट्र" की प्रधानताको संसार-भरसे स्वीकार नहीं कराया जा सकता। इसके लिए उक्त लेखकका कहना है—"सब प्रकारके सामरिक और असामरिक हवाई जहाजों-पर एकमात्र "विश्व-राष्ट्र" का ही अधिकार होगा। रसा-यन-शिल्पपर भी केवल उसीका आधिपत्य रहेगा, जिससे विद्रोही राष्ट्र विषैले धुओंका प्रयोग नहीं कर सकें। विभिन्न राष्ट्रोंको शस्त्रास्त्र बनानेकी स्वाधीनता रहेगी जरूर, पर उनके अस्त्रागारमें केवल पुराने ढङ्गके ही हथियार रहेंगे।"

किन्तु युद्ध केवल राजनीतिक प्रश्नोंको लेकर ही फूटता हो, ऐसी बात नहीं। अक्सर उसकी जड़में आर्थिक और बौद्धिक कारण भी बड़े जबर्दस्त रूपसे विद्यमान रहते हैं। इसीलिए रसलकी राय है कि "जमीन और कच्चे मालपर भी अन्तिम अधिकार "विश्व-राष्ट्र" का ही होना चाहिए। क्योंकि जब तक इन साधनोंपर व्यक्ति-विशेषकी सत्ता बनी रहेगी, तब तक इसका नतीजा अच्छा नहीं निकल सकता।" उदाहरणके रूपमें आगे लिखा है—"मान लीजिये कि किसी किसानकी जमीनमें तेलकी खानका पता वहांके धनिकोंको लगता है। अब वे अवश्य ही बहुत-सा रुपया देकर किसानसे जमीनका हक ले लेंगे; और फिर तेल निकालनेके लिए एक कम्पनीका सङ्गठन करेंगे। कम्पनीमें लाभ होते देखकर देशके दूसरे-दूसरे धनी भी अब मुनाफाके रूपमें मोटी रकम

पानेके लोभसे उस कम्पनीका हिस्सा खरीदेंगे। क्रमशः इस तरह कम्पनीका कारबार बढ़ता जायगा और वह एक राष्ट्रीय व्यवसायका रूप ग्रहण करेगा। चूंकि देशके बड़े-बड़े धनियोंका स्वार्थ इस कम्पनीके साथ सम्बद्ध रहेगा, इसीलिए राष्ट्रकी ताकतको सहज ही वह अपने हाथोंमें कर लेगी। दूसरे देशके धनी भी यही रुख अख्तियार करेंगे। और तब राष्ट्रोंमें एक-दूसरेको दबाकर बढ़नेके लिए प्रतिद्वन्द्विता शुरू होगी, जिसका अन्तिम परिणाम युद्ध होगा।" इसीलिए रसलके विचारानुसार "इस कुपरिणामसे सतर्क रहनेके लिए आर्थिक क्षेत्रमें बराबरीकी स्थापना करनी होगी।" और यह बराबरी तब तक स्थापित नहीं हो सकती, जब तक उसपर एक सर्व-शक्ति-सम्पन्न शासनका अंकुश न हो। और यहां फिर यह दुहरानेकी जरूरत नहीं है कि सर्व-शक्ति-सम्पन्न शासनका रूप तो रसल केवल एक "विश्व-राष्ट्र" को ही देना चाहते हैं।

राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रोंको सुधार लेनेके बाद बौद्धिक क्षेत्रमें हमें क्या करना होगा, इसको भी रसलने बहुत ही गम्भीरतापूर्वक विचारा है। सभी राष्ट्रोंके भावी कर्णधार उनके बच्चे होते हैं। लड़कपनमें बच्चे स्वभावसे ही कुछ चञ्चल और उपद्रवशील रहते हैं। हमजोलियोंमें मार-पीट करना और इधर-उधर ऊधम मचाना उनका रोजका काम रहता है। शिक्षक या अभिभावक द्वारा जब उनकी इस स्वतन्त्रतापर नियन्त्रणका अंकुश लगाया जाता है, तो वे तत्काल अपनी दुर्बलताके कारण इस कठोर शासनको मान लेते हैं। पर उनमें भीतर-ही-भीतर प्रतिहिंसाकी एक भावना—एक विचार जड़ पकड़ लेता है। रसलका कहना है कि "प्रतिहिंसाकी यही दबी भावना वयस्क होनेपर उन्हें बन्धन, अनुशासन एवं श्रृङ्खलाओंको छिन्न-विच्छिन्न करनेमें आनन्द देती है।" इसीलिए उनका विचार है कि "बच्चे असावधानी या अज्ञानसे यदि कोई क्षति कर डालें, तो उन्हें किसी प्रकारका शारीरिक दण्ड नहीं देना चाहिए।" क्योंकि बच्चे जिन आत्मीय जनोंसे स्नेहकी आशा रखते हैं, उनसे उन्हें जब स्नेहके बदले निष्ठुर नियन्त्रण मिलता है, तो इसका प्रभाव उनके चरित्रपर और भी बुरा पड़ता है। वे सोचने लगते हैं—"जब स्नेह करनेवाले स्वजन ही निष्ठुर और निर्दयी हैं, तो संसारमें दया, माया, स्नेह और ममता नामकी कोई वस्तु नहीं है। केवल जोर-जबर्दस्ती ही सब कुछ है।...अच्छा, बड़े होनेपर—शक्ति मिलनेपर हम भी ऐसा ही करेंगे।"

किन्तु केवल शारीरिक स्वाधीनता दे देनेसे काम न चलेगा। इसके साथ-साथ उनकी पाठ्य-पद्धतियोंमें भी परिवर्तन लाना पड़ेगा! आजके बच्चोंको साहित्य और इतिहासकी जो शिक्षा दी जाती है, उसमें उनके केवल स्वभावपर उत्कट, उग्र भावनाओंका अति गहरा रङ्ग चढ़ाया जाता है। प्रारम्भसे ही अपनी जाति, अपने समाज तथा देशके प्रति श्रद्धाका भाव पुष्ट करनेके साथ-साथ, विश्वकी दूसरी जातियोंके प्रति घृणा, विक्षोभ एवं प्रतिहिंसाका उद्रेक कराया जाता है। ऐतिहासिक तथ्योंको उनके सन्मुख इस रूपमें रखा जाता है कि बालकका कोमल मन उनपर निरपेक्ष रूपसे कुछ विचार ही नहीं कर पाता। इसके अतिरिक्त इतिहास-लेखक रक्त-पिपासु सेना-नायकों तथा सम्राटोंके चरितको इस तरह चित्रित करते हैं, जिससे बालककी कोमलमति उनको महावीर, पुरुष-पुङ्गव और न मालूम क्या-क्या स्वीकार कर लेती है। फिर जवान होनेपर वे भी वैसी ही नर-हत्या, छीना-झपटी और परस्वापहरणको अपना सिद्धान्त बनाते हैं, तो कोई आश्चर्य नहीं। साहित्य और इतिहास द्वारा शिक्षा-प्रचारके इस प्रवाहको भी रोक देना होगा। पाठ्य-पुस्तक-प्रणेताओंको ऐसी घटनाओं, ऐसे विषयोंको इस तरह लिखना पड़ेगा, जिससे उनमें परपीड़नके प्रति घृणा और परस्पर सहानुभूति, मैत्री, साम्य तथा स्वाधीनताकी भावना उद्दीप्त हो। इस तरह "विश्व-राष्ट्र" के भावी नागरिक जब हम तैयार कर लेंगे, तब युद्धकी जो विभीषिका, शत्रुओंसे त्रास पानेका जो भय और पारस्परिक अविश्वास आजकी मानव-जातिको प्रतिपल दुर्बल, दुःखी एवं चिन्तित बनाते रहते हैं, वे कदापि नहीं रहेंगे। क्योंकि इन सबके मूल कारण आखिर राजनीतिक, आर्थिक तथा मानसिक समस्याओंके बीच ही तो है। और जब हम इन तीनों प्रश्नोंको हल कर लेंगे, तो फिर सुख-शान्तिकी प्रतिष्ठामें कितनी देर लगेगी?

बर्टरैण्ड रसलने जहां उपर्युक्त सुधारोंपर जोर दिया है, वहां गांधीजी विश्व-रक्षाके लिए एक ही अमोघ औषधि केवल "अहिंसा" की ओर संसारका ध्यान आकर्षित करते

हैं। पोलैण्डका उदाहरण देते हुए उन्होंने अभी हालमें लिखा था—"हिंसात्मक उपायोंका अवलम्बन करके भी पोलैण्ड जर्मनीके आक्रमणसे अपनी रक्षा नहीं कर सका। हिंसात्मक उपायोंका सहारा न लेकर यदि वह अहिंसात्मक भावसे जर्मनीका मुकाबला करता, तो अवश्य ही उसकी जैसी दुर्दशा आज हुई है, वैसी नहीं होती। बल्कि यह होता कि नैतिक दृष्टिसे इसका नतीजा उसके तथा उसके आक्रमणकारियोंके लिए अच्छा ही निकलता।" कौन कह सकता है कि गांधीजीके इस कथनमें सत्यका अंश नहीं है ?

वर्तमान समस्याओंपर आल्डस हक्सलेका एक ग्रन्थ "साध्य और साधन" (Ends and Means) है। उसमें आपने विविध प्रश्नोंके समाधान-रूपमें गांधीजीकी "अहिंसा-नीति" को बड़े जोरदार शब्दोंमें पाश्चात्य जनसमूहके सम्मुख उपस्थित किया है। सर्वप्रथम उन्होंने अपनी पुस्तकके नामानुसार साध्य और साधनपर प्रकाश डाला है; फिर आदर्श-समाज, अनासक्त व्यक्ति (unatached man) और अहिंसाकी शक्तिकी विवेचना की है। अनादि कालसे मानव-जातिकी जो यह धारणा चली आ रही है कि बुरे साधनोंसे भी वह अपने उत्तम साध्यकी प्राप्ति कर सकता है, उसे हक्सलेने गलत बतलाया है। उनका कहना है कि "यदि हमारा आदर्श पवित्र है, तो उस आदर्श तक पहुंचनेके जो साधन हैं, वे भी पवित्र होने चाहिए।" लेकिन इस साध्य और साधनके भले-बुरेका विचार वह व्यक्ति कैसे कर सकता है, जिसकी आंखें धूमिल और इन्द्रियां मद-मत्सर आदि विविध वासनाओंकी गुलाम हैं ? इसीलिए आपने गांधीजीके "अनासक्ति-योग" की व्याख्याकी तरह कुछ अनासक्त व्यक्तियोंकी कल्पना की है। इन अनासक्त व्यक्तियोंको विषय-भोगसे तो विरक्ति होगी ही, साथ ही प्रभुता, क्रोध, घृणा और स्वजन-परिजनके ममता-मोहसे भी वे परे होंगे। सम्पत्ति, ख्याति और सामाजिक मर्यादाके लोभ भी उनको लुभा न सकेंगे। साहित्य, कला, विज्ञान एवं परोपकारके बन्धनोंसे भी उन्हें निर्मुक्त रहना होगा।

ये अनासक्त स्त्री-पुरुष ही आनेवाले आदर्श-समाजके अगुआ होंगे। वे स्वयं तो अहिंसक रहेंगे ही, पारस्परिक सम्बन्धोंमें सर्वसाधारणसे भी अहिंसाका क्रमबद्ध अभ्यास करावेंगे। जहां आज हिंसा अथवा बल-प्रयोगसे काम लिया जाता है, वहां उसके साथ विक्षोभ, घृणा, द्वेष और भयका एक भाव मौजूद रहता है, इसमें सन्देह नहीं। इसीलिए जो लोग अहिंसाको अपना हथियार बनावेंगे, उन्हें पूर्ण आत्म-संयम, असीम साहस, गम्भीर नैतिक बल एवं मधुर सहानुभूतिका अटल सङ्कल्प स्वीकार करना होगा। वे जिन बातोंको कहेंगे, जिस सद्वृत्तिकी अपेक्षा जनतासे करेंगे, पहले स्वयं उनका पालन करके समाजके सम्मुख उदाहरण-रूपमें उपस्थित होंगे।

किस राष्ट्रकी ओरसे यह सुधार-कार्य प्रारम्भ होगा, इसकी प्रतीक्षा वे लोग नहीं कर सकते। अपने सिद्धान्तपर विश्वास रखनेवाले थोड़े-से लोगोंको सङ्गठित होकर आधुनिक सामरिकताके विरुद्ध कार्य करना होगा। उन्हें गड़गड़ाती तोपों तथा घहराते वायुयानोंसे मुकाबला करनेके लिए किसी वैसे ही विध्वंसक साधनकी खोज नहीं करनी होगी, बल्कि वे हिंसाका बदला उन्हें अहिंसासे चुकावेंगे। यह सच है कि प्रारम्भमें इस तरह निष्क्रिय प्रतिरोध करनेवालोंमेंसे कितनोंही को अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ेगा, पर उनका यह आत्म-बलिदान व्यर्थ सिद्ध नहीं होगा। वे रक्त-पिपासु शासकोंको हंसते-हंसते जो अपने शरीरका दुर्लभ रक्त भेंट करेंगे, वही रक्त उनमें प्रतिक्रियाकी ऐसी भावना, एक ऐसा विचार उत्पन्न करेगा कि वे स्वयं अपने कुकृत्योंपर पश्चात्ताप करेंगे और हथियार रखकर—विध्वंसक अस्त्र-शस्त्रोंको त्याग कर अहिंसाके सामने घुटने टेक देंगे। क्योंकि निष्ठुरसे निष्ठुर स्वेच्छाचारी शासकको भी अपनी सत्ता कायम रखनेके लिए जनमतके समर्थनकी आवश्यकता रहती है; और कोई भी सरकार अहिंसक मनुष्योंको मार करके अथवा उन्हें जेलोंमें बन्द करके बहुसंख्यक जनमतका समर्थन प्राप्त नहीं कर सकती—Moreover even the most ruthless dictatorship needs the supp:rt of p..blic opinion and no Government which massacres or imprisons large numbers of systematically non-violent individuals can hope to retain such support.

इस प्रकार हिंसाके विरुद्ध अहिंसाका सामना होनेपर शासक कितने चिन्तित, अधीर एवं कर्तव्य-विमूढ़ हो उठते

है, इसका प्रमाण १९२१ में नीलहे कोठीके साहबोंके खिलाफ चम्पारणमें तथा १९३०-३१ के कानून-भङ्ग-आन्दोलन द्वारा समूचे हिन्दुस्तानमें हमें मिल चुका है। अतः इसपर विशेष न लिखकर अब मैं नीचे अहिंसाके तात्त्विक रूपपर—गांधीजीके प्रकाशमें कुछ विशेष विचार करना चाहता हूं और देखना चाहता हूं कि सुख और शान्तिके लिए प्राच्य और पाश्चात्य—सारे संसारके महापुरुष किस तरह आज एक ही विचार-धाराकी ओर झुक रहे हैं।

कहना नहीं होगा कि अहिंसा गांधीजीको सत्यकी खोज करते हुए मिली। उनका शुरूसे ही यह ख्याल था कि "सत्य ही ईश्वर है। इस सत्यकी आराधनाके लिए ही हमारा अस्तित्व—हमारी हरएक प्रवृत्ति है। इस सत्यको सम्पूर्ण रूपमें समझनेवालेके लिए दुनियामें कुछ और जानना नहीं रहता। क्योंकि सम्पूर्ण ज्ञान इसमें समाया हुआ है।" लेकिन सत्यके इस रूप तक पहुंचा कैसे जाय? गांधीजीने देखा, इसका एक ही मार्ग है, और वह अहिंसा है। हिंसा द्वारा हम सत्य तक नहीं पहुंच सकते। गलत रास्ता लेकर ठीक लक्ष्यपर पहुंचना नामुमकिन है। क्योंकि मार्ग ही तो अन्तमें जाकर लक्ष्य बन जाता है। उनका अटल विश्वास है कि "अहिंसा बिना सत्यकी प्राप्ति असम्भव है। अहिंसा और सत्य सिक्केके दोनों बाजुओं या चिकनी चकत्तीके दोनों पहलुओंकी भांति बिलकुल एक समान हैं।"

यह तो हुई सिद्धान्तकी बात। किन्तु अहिंसा जब सामूहिक आन्दोलनके रूपमें प्रकट होती है, तो उसे सत्याग्रह कहते हैं। सत्याग्रहका शब्दगत अर्थ है सत्यका आग्रह अथवा धारण। इसे गांधीजीने प्रेम-बल और आत्म-बल भी बतलाया है, जिसका तात्पर्य अपने विरोधीके लिए हिंसाका प्रयोग न करते हुए सत्यकी खोज है। विरोधीको अपने गलत मार्गसे धीरता तथा सहानुभूति द्वारा ही हटाया जा सकता है। क्योंकि जो बात एकको सत्य जंचे, वही दूसरेको मिथ्या भी प्रतीत हो सकती है। धैर्यका अर्थ कष्ट-सहन हुआ। इस प्रकार सत्याग्रहका तात्पर्य हुआ विरोधीको कष्ट न देकर स्वयं कष्ट सहना एवं सत्यको प्रतिष्ठित करना। गांधीजीने कष्ट-सहनको बड़ी प्रभावपूर्ण तथा बेशकीमत वस्तु माना है। उनका कहना है कि "कष्ट-सहन ही हमारे जीवनका सबसे बड़ा तत्त्व है। जब तक बीज अपनेको नष्ट नहीं कर डालता, वह पेड़के रूपमें हमारे सामने नहीं आता। मांको वेदना होती है, तब बच्चा जन्म लेता है। गेहूंका दाना मिट जाता है, तब उसका पौदा लहलहाता है। जीवन मृत्युसे जन्म लेता है। फिर क्या हिन्दुस्तान इस प्राकृतिक नियमकी पूर्तिके बिना ही अपनी गुलामीसे छुटकारा पा सकेगा?" (No country has ever risen without being purified through the fire of suffering. Mother suffers so that her child may live. The condition of wheat growing is that the seed should perish. Life comes out of death. Will India rise out of her slavery without fulfilling this eternal law of purification through suffering?)

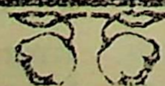
फिर भी सत्याग्रहका सिद्धान्त लोगोंको आश्चर्यमें इसलिए डाल देता है कि वे जिस दुनियामें पल रहे हैं, जिस वातावरणमें श्वास-प्रश्वास ले रहे हैं, अभी तक वह एक अद्भुत तरीकेसे चल रहा है। इस समय यहां व्यक्तियोंके लिए एक कानून है और समाजके लिए बिलकुल दूसरा। व्यक्तिसे हम सचाई, प्रेम, भ्रातृत्व, साम्य, मैत्री, वीरत्व तथा निष्कालुष्यकी आशा करते हैं; परन्तु समाज अथवा राष्ट्रसे किसी दूसरे प्रकारकी। एक व्यक्ति जब किसी दूसरे व्यक्तिसे मिथ्याचरण करता है, एक मनुष्य जब दूसरे मनुष्यकी हत्या कर डालता है, तो उसे हम सहन नहीं कर सकते। परन्तु वही आचरण, वैसी ही हत्या जब एक राष्ट्रकी सरकार किसी दूसरी सरकारके यहां करती है, तो उसे हम राजनीतिके नामपर क्षमा करनेको प्रस्तुत रहते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि व्यक्ति चाहे कितना भी नैतिक होता गया हो, समाज गिरता ही गया है। पर नैतिक व्यक्ति और अनैतिक समाजका गठ-बन्धन नहीं हो सकता। इस खाईको मिटाये बिना संसारमें सुख-शान्तिकी स्थापना नहीं की जा सकती।

संसारके बुद्धिमान लोग इस खाईको मिटाना जरूर चाहते हैं; पर इस सम्बन्धमें उनका जो प्रयत्न है, वही गलत है। उनके ख्यालमें साधन कैसा भी क्यों न हो, लेकिन साध्य सुन्दर होना चाहिए। और इस धारणामें जो भूल है, उसे हम ऊपर हक्सलेकी विवेचना द्वारा जान चुके हैं।

महान् साधनकी प्राप्तिके बिना किसी महान् पवित्र लक्ष्य तक पहुंचना सम्भव नहीं। बबूल बोकर आम खानेकी आशा नहीं रखी जा सकती। समुद्र पार करनेवालेको जहाजका ही अवलम्ब लेना पड़ेगा, न कि बैलगाड़ीका। यदि वह बैलगाड़ीमें बैठकर चलेगा, तो बैलगाड़ी डूबेगी ही, वह स्वयं भी डूबेगा। वास्तवमें साधन बीज है और साध्य वृक्ष। जो सम्बन्ध बीज और वृक्षमें है, वही सम्बन्ध साधन और साध्यमें है। शैतानकी उपासना करके कोई ईश्वर-भजनका फल नहीं पा सकता। अतः गांधीजी व्यक्ति और राष्ट्रकी इस खाईको पवित्र साधन अहिंसा द्वारा पाटना चाहते हैं। और यही इतिहासका मार्ग भी है।

इतिहासमें सर्वप्रथम व्यक्तिमें अहिंसाका आविर्भाव हुआ। हरिश्चन्द्र, प्रह्लाद, बुद्ध, सुकरात, ईसामसीह आदिने उसे अपने दैनिक आचरणमें विकसित करके संसारको दिखलाया। फिर वह राज्यके अतिरिक्त धीरे-धीरे सभी सामाजिक व्यवहारोंमें विस्तीर्ण हुई। कुटुम्बका आधार जहां पहले हिंसा था, विवाह पाशविक बलके जोरसे किये जाते थे, बच्चे धनियोंके हाथों बेचकर गुलाम बना दिये जाते थे, वहां इस छीना-झपटी एवं अनाचारको रोककर शुद्ध प्रेम भ्रातृत्व तथा अहिंसाका आधार स्थापित हुआ। उसी प्रकार गांधीजी चाहते हैं कि इसका विस्तार अब कुछ आगे बढ़कर राष्ट्रोंके आपसी सम्बन्धोंमें भी हो जाय। क्योंकि उनका यह दृढ़ विश्वास है कि अहिंसा केवल व्यक्तिका ही बल अथवा अस्त्र नहीं है, प्रत्युत वह समाज, राष्ट्र एवं विश्वकी शक्ति और स्वभाव है। उन्होंने लिखा है—"अहिंसा एक सर्वमान्य सिद्धान्त है। जानमें या अनजानमें हम रात-दिन इसपर अमल करते हैं। हम देखते हैं कि संसारके सारे कार्य प्रतिदिन प्रेमसे ही चलते हैं। अगर मनुष्य स्वभावसे ही हिंसात्मक हो, तो संसार क्षण-भरमें ही नष्ट हो जाय। बिना पुलिस या और किसी दबावके ही लोग शान्त रहते हैं। जब बुरे लोग जनतामें अस्वाभाविक विचार फैलाकर उनका दिमाग बिगाड़ देते हैं, तभी वह हिंसाकी ओर चल पड़ती है, अन्यथा नहीं। परन्तु फिर भी सारी हत्या कर-कराकर लोग हिंसा-वृत्तिको भूल जाते हैं। जब तक बुरे लोग उन्हें उकसाते रहते हैं, तभी तक उनमें हिंसाका भाव जागृत रहता है।" इसके बाद आपने इतिहासकी चर्चा करते हुए आशा प्रकट की है कि—"वर्तमान इतिहासमें राजाओंकी लड़ाईको अधिक महत्त्व दिया गया है। किन्तु प्रजाका जो इतिहास भविष्यमें लिखा जायगा, उसके पन्ने-पन्नेमें अहिंसात्मक असहयोगका वर्णन भरा पड़ा मिलेगा। जब स्त्री दुष्ट पतिके वश नहीं होती, तब वह उससे अहिंसात्मक असहयोग करती है। 'क्वेकर' लोगोंका इतिहास अहिंसात्मक असहयोगका जगमगाता दृष्टान्त है। भारतमें वैष्णवोंका इतिहास भी इसी सिद्धान्तकी पुष्टि करता है। फिर कोई वजह नहीं कि वे लोग जो काम कर सके हैं, उसे सारी दुनिया नहीं कर सके।"

वर्तमान मानव-सभ्यताके आकाशमें युद्धकी कुण्डलाकृत धूम्र-राशिको देखकर यद्यपि यह कहा नहीं जा सकता कि उनका यह स्वप्न कब और किस अंशमें सम्पूर्ण होगा; पर इतना निश्चय है कि मौजूदा हिंसा-वृत्ति उसी प्रकारकी दूसरी कार्रवाइयोंसे रोकी नहीं जा सकेगी। हिंसाकी लपटें हिंसाकी आगसे न आज तक कभी बुझी हैं और न आगे बुझेंगी। उससे तो यदि किसी चीजका जन्म हो सकता है, तो वह है प्रतिहिंसा। इस प्रकार हिंसाका चक्रव्यूह बढ़ता ही जायगा। इसको निर्मूल करनेके लिए किसी दूसरी युक्तिकी आवश्यकता होगी, और वह युक्ति वही अहिंसा होगी, जिसकी ओर गांधीजी वर्षोंसे हमारा ध्यान खींच रहे हैं और आज हक्सले, रसल तथा रोम्यांरोला-जैसे मनीषी जिसका मुक्तकण्ठसे समर्थन कर रहे हैं। विश्व-रक्षाकी मनुष्य-कृत चिरन्तन चेष्टाओंको देखते हुए, संसारकी आधुनिक गति-विधियोंको भले प्रकार समझते हुए इसमें कोई सन्देह नहीं कि अहिंसा यदि एक जीवित सिद्धान्त है, तो अन्तर्राष्ट्रीय नीतिमें भी वह अपना कोई-न-कोई स्थान बना ही लेगी। काश, वह दिन समीप आ सके!



दीवानी

श्री भगवतीप्रसाद "चित्रकार"

रूपाको भला गांवकी अल्हड़ लड़कियोंमें खेलनेका मौका ही कब मिला था कि वह गुड्डे-गुड़ियाके विवाहकी तहमें कोई और आनन्द उठाती और भविष्यके पीछेसे झांकनेवाले आनन्दकी कल्पनामें खो जाती। वह तो दिन-दिन-भर गांवसे थोड़ी दूरपर बहनेवाली नदीके किनारे अपने छोटे भाईके साथ मवेशी चराया करती। तो भी उसने अपनी शादीके सम्बन्धमें सुन रखा था, जो उसके होश संभालनेसे भी पहले हो चुकी थी। वह यह भी जानती थी कि उसका पति परदेशमें कमानेके लिए गया हुआ है। वह मवेशियोंको खेतोंमें छोड़ वहीं नदीके किनारे पांव लटकाकर बैठ जाया करती और अपने अज्ञात पतिके सम्बन्धमें सोचा करती। उसे अपने अज्ञात पतिसे एक प्रकारका प्रेम-सा हो गया था। वह उसकी मधुर कल्पनामें आनन्द अनुभव करती। सोचती—'मेरा पति एक सुन्दर युवक होगा। जब वह आयेगा, अच्छे-अच्छे कपड़े पहने होगा। सिरपर उजली पगड़ी होगी, जिसका तुर्रा मुझे दूरसे दीख पड़ेगा। वह घोड़ेपर सवार होगा—नौकरी-पेशा जो ठहरा। सभी कमाऊ लोग परदेशसे अच्छे कपड़ोंमें आते हैं।' आनन्दसे उसका हृदय नाच उठता। वह फिर शुरूसे सोचने लगती। वह पतिके सुखद स्वप्न-संसारका अन्त नहीं करना चाहती थी।

× × ×

वह अपनी छोटी-सी फटी हुई ओढ़नीको दिनमें कई बार धोती। वह भी साफ रहना चाहती थी; क्योंकि एक नौकरी-पेशावालेकी जो पत्नी थी।

शाम हो जाती। उसका छोटा भाई मवेशी जमा करता और दोनों घरकी ओर चल देते। वह मवेशियोंके पीछे-पीछे अपनी भावनाओंमें डूबती हुई चली जाती।

"रूपा; मेरी बेटी आयी...!" की आवाज उसकी भावनाओंका तार तोड़ देती और वह कह देती—"हां, मां! मैं आ गयी।" और जल्दीसे मवेशियोंको बांधने लगती।

रूपा गांवके ग्वालेकी लड़की, गरीब विधवा मांकी एकमात्र बची थी—लाड़ली...प्यारी। उसका जीवन बिलकुल उस चक्कीकी तरह था, जो उसके घरमें दरवाजेके पास पड़ी थी, जिसमें उसकी मां रोज अनाज पीसा करती। वह जानती थी कि अगर आज मैं दिन-भर मवेशी चराती हूं, तो कल भी वही मवेशी होंगे—वही नदी, नदी-किनारा...और वही रूपा ...।

(२)

रूपाने अपनी ओढ़नी, जो धोकर सुखानेके लिए डाल दी थी, उठायी और एक बछड़ेको, जो मवेशियोंसे पिछड़कर उसके पास आ गया था, हांकती हुई दूर तक ले गयी। फिर छड़ी घुमाती हुई लौटकर अपनी जगहपर आ बैठी।

अब रूपाने किसीके आनेकी प्रतीक्षामें सड़ककी ओर देखना शुरू किया। फिर अपने चारों ओर देखा। चारों ओर उसे वृक्षोंका गोलाकार-सा दीख पड़ा। सोचा, दुनिया कितनी बड़ी है। दूर सड़कपर, उसकी दृष्टिके सीमान्तपर एक उजला-सा बिन्दु दीख पड़ा और क्रमशः बढ़ते हुए उस बिन्दुको वह ध्यानसे देखती रही। वह जानती थी कि जब सुखियाका पति आया था, सुखियाने तो उसे पेड़ोंकी कतारके बीचमें ही देख लिया था। उसने सोचा, शायद सुखियाकी नजरें उससे ज्यादा तेज हैं। वह और अधिक ध्यानसे देखने लगी। उसने अनुभव किया कि श्वेत-बिन्दुके नीचे एक छाया भी चल रही थी और वह देखती रही...देखती रही। यहां तक कि उसकी नजरें सिमटकर बहुत पास आ गयीं। एक व्यक्ति उजली तुर्रेदार पगड़ी, नये-नये सुन्दर कपड़े पहने, घोड़ेपर सवार उसके पाससे जाने लगा। रूपाने गौरसे देखा—आंखें झिपकीं ... मिलीं। दोबारा देखा। यह तो वही था, जिसका वह मुद्दतसे स्वप्न देख रही थी...बिलकुल वही। ठीक वैसा ही, जैसा उसका स्वप्न-संसारका राजा था...मालिक था। उससे न रहा गया। उसका पति उसके समीपसे यों ही चला जाय, यह वह सह न सकी। सुखियाने भी तो अपने पतिके साथ उपले थापते हुए बातें की थीं।

वह उठी, घूंघट निकाला—'ए भाई, घोड़ेवाले !'

घोड़ा रुक गया ।

देहातमें प्रत्येक अज्ञातको इसी तरह पुकारा जाता है ।

घूंघट निकाले, झिझकती, इठलाती, शर्माती, सिमटती-सिमटाती, पद-पदपर रुकती वह उसके पास पहुंची ।

"तुम इस सामनेवाले गांवमें जाओगे न भाई ?"

"हां !" सवारने जान-बूझकर उसके मनके अनुसार उत्तर दिया ।

"क्या रघु ग्वालाके यहां ?"

"नहीं ।"

"नहीं !" रूपाने आश्चर्यसे पूछा ।

"क्या कहा···रघु···हां रघुनाथ···हां-हां, उसीके यहां जा रहा हूं ।" संभलकर सवारने कहा ।

"वही न, जिसकी एक लड़की है—रूपा ?"

"रूपा ! हां, रूपा...।"

"जिसका पति बहुत दिनसे परदेश गया हुआ है ?"

"हूं ।" उसने कुछ समझते हुए कहा ।

"रूपा तो मेरा ही नाम है।"

न जाने क्यों, रूपा लाजसे कट मरी ।

"तुम्हारा...ओ तुम्हीं रूपा हो ?"

"हूं ।"

"अरे, तुम्हींको तो मैं लेने जा रहा हूं। आज बहुत दिनोंके बाद छुट्टी मिली, तो तुम्हें लेनेके लिए आ गया । तुम्हें मालूम ही है परदेशका मामला...छुट्टी मिलती नहीं ।"

"तो चलो न मेरे घर ।"

"नहीं भाई, मुझे बिलकुल फुर्सत नहीं । अच्छा हुआ कि तुम यहीं मिल गयी । चलो, तुम यहींसे चली चलो । आओ घोड़ेपर बैठ जाओ।"

"मां ...।"

"अरे थोड़े ही दिनोंमें हम लौट आयेंगे न ।"

पतिकी बातका उल्लङ्घन वह कभी नहीं कर सकती थी ; क्योंकि वह जानती थी कि इससे बड़ा पाप कोई नहीं ।

वह आगे बढ़ी । सवारने हाथ पकड़कर, पांवका सहारा दे उसे अपने सामने बैठा लिया और दूसरे क्षण घोड़ा हवासे बातें करता, चरते हुए मवेशी...लहलहाते हुए खेत...पीछे छोड़ता नदीके किनारे-किनारे दूर निकल गया । रूपाने पीछे मुड़कर देखा, उसका भाई लकड़ी लिये मवेशियोंके पीछे भागा-भागा फिर रहा था । उसे मालूम हुआ कि जैसे उसके दिलमें भी नदीके पानीकी तरह लहरें उठ रही हैं। उसकी आंखोंमें आंसूकी बूंदें छलछलायीं और हरी-हरी घासकी पत्तियोंपर गिरकर चमकने लगीं । अब कैसे मालूम हो कि इन ओसके आंसुओंमें दो खूने-दिलके कतरे भी थे । उसने अनुभव किया, जैसे वह नदीके बीच, ताप खाती हुई लहरोंमें बही चली जा रही हो । उसका सिर चकराया और उसने सवारको मजबूतीसे थाम लिया ।

"रूपा, क्या तुमने मुझे पहचान लिया था ?" सवारने मुस्कराकर अपनी मूंछोंपर हाथ फेरते हुए कहा ।

"हूं । मैं सोचा करती थी कि जब तुम आओगे, तो अच्छे-अच्छे कपड़े पहने घोड़ेपर सवार होगे ।"

सवार रूपाके इस भोलेपनपर मुस्कराया—"और तुम्हारा ख्याल ठीक ही निकला !"

"हूं...तभी तो मैंने तुम्हें रोका था ।"

"तुम बड़ी चतुर हो ।" सवारने विजयी नेत्रोंसे उसे देखा और एक बार छातीसे कसकर दबाया ।

"उफ, तुम बड़े...ऊ...हो ।"

"क्या ?"

लेकिन इस बार रूपाका जवाब भाईकी यादमें एक हलकी-सी सिसकी थी ।

(३)

थोड़े ही दिनोंमें रूपाको असल बात मालम हो गयी। अब उसका जीवन नष्ट हो गया । वह किसी व्यक्ति-विशेषसे प्रेम नहीं करती थी। उसे तो केवल पतिसे प्रेम था । एक कुरूपसे कुरूप व्यक्ति भी उसका पति कहलाकर पूजनीय हो सकता है । तड़पते, सिसकते, बिलखते दस साल बीत गये । लेकिन उसकी बेचैनी और बेकरारीमें कमी न हुई। उसे दुःख था कि उसे धोखा दिया गया और क्रोध था कि वह इस अवस्थामें रहनेपर विवश की गयी है । उसका जीवन बिलकुल उस पत्थरकी तरह था, जो नालेके नीचे रखा हुआ हो। वह अभी भी अपने असली पतिके यहां जानेके लिए तैयार थी और वह किसीकी प्रतीक्षा अब भी किया करती ।

एक दिन एक आदमी आया और केवल खानेपर नौकर हो गया ।

दिन बीतते ही गये। दिलको दिलसे राहत होती है।

दिलने कहा—"मुझे धोखा दिया गया है। यहां रहनेके लिए मजबूर किया गया है।"

दूसरेने कहा—"मैं तुम्हारी तलाशमें 'सरगर्दा' यहां पहुंचा हूं।"

लफ्ज शौहरने दो दिलोंको मिला दिया।

एक दिन सब लोग किसीके नेवतेमें गये थे। घरमें रूपा और उनका नौकर था।

आंखोंने इशारा किया—'यह अवसर अच्छा है।'

मस्तिष्कने स्वीकार कर लिया।

और थोड़ी देर बाद?

(४)

रूपा अनुभव कर रही थी, जैसे उसकी सुप्तात्मा एक युगके बाद आनन्द और स्वतन्त्रताके वायुमण्डलमें अंगड़ाइयां ले रही है।

× × ×

चोर कभी अपने सिरहाने घड़ी रखकर सोया नहीं करता। रूपाके पतिको सहसा ख्याल हुआ कि 'रूपा और नौकर? हृदय न जाने क्यों कांप उठा। सीधे घर भागा। देखा, पिंजड़ा खाली है और चिड़ियां उड़न—छू...

शीघ्र ही घोड़ेपर सवार हुआ और हवासे बातें करने लगा।

(५)

सब्रका फल मीठा होता है।

और अगर बहुत दिनों तक सब्र किया जाय, तो उसका फल अमृत होगा। लेकिन अधिक प्रतीक्षा भी कड़वी होती है।

जब रूपाने देखा, वह जालिम घोड़ेपर सवार उनकी खोजमें चला आ रहा है, तो उसने अपने असली पतिसे पास ही किसी झाड़ीमें छिप जानेके लिए कहा और आप वहां खड़ी हो गयी।

सवार रूपाके पास आकर रुका। पूछा—"बिना मेरे हुक्मके कहां चली जा रही है?"

रूपाने बड़े भोलेपनसे कहा—"मैं क्या जानूं, तुम्हींने तो मुझे भोजमें बुलाया था...और वह नौकर मुझे तुम्हारे पास लिये जा रहा था। तुम्हें देखा, तो भाग गया।

"तुम बड़ी भोली हो रूपा।"

और रूपा दिल ही दिलमें स्वयं उसके भोलेपनपर मुस्करायी।

वे दोनों घरकी ओर चल पड़े।

रास्तेमें एक छोटा-सा नाला आया, जो बड़ी शान्तिसे जङ्गलसे होता हुआ दूर तक बहता चला गया था। घोड़ा नालेपर पहुंचा और रुक गया।

अंधेरा हो चला था।

सवारने लगाम खींची और ढीली छोड़ दी।

घोड़ेने एक पांव पानीमें रखा और पीछे हट गया।

सड़से एक चाबुक पड़ा और फिर दूसरा...तीसरा...।

मगर घोड़ा चार डेग और पीछे हट गया।

सवार उतर पड़ा और कमरसे तलवार खोलकर रूपाको दी। लगाम थामी और तहबन्द ऊपर उठानेके लिए झुक गया।

और इसके पहले कि उसकी निगाहें नालेके दूसरे किनारेको दुबारा देखें, उसका सिर लुढ़कता हुआ पानीमें जा गिरा।

वह घृणासे मुस्करायी जैसे उसने दस वर्षकी गुलामीकी जङ्ग लगी हुई जञ्जीरें तोड़ फेंकी हों। उसने मुर्दा शरीरको एक ठोकर लगायी और उसे जङ्गली पशुओंकी थाती समझते हुए पीछेकी ओर दौड़ना शुरू किया।

वह उस झाड़ीके समीप पहुंची, जहां अपने पतिको छिपा गयी थी।

देखा—घबराये हुए व्यक्तिके डगमगाते हुए डेगोंके पद-चिह्न।

वह आगे बढ़ी।

ऐं...!...आगे बढ़ाये हुए हाथ...चबायी हुई हड्डियां...और धूलिसे भरा हुआ सिर...!!!

जालिम जानवरोंने सख्त परेशानीकी हालतमें एक व्यक्तिकी जान ली थी।

आंखें उबलकर बाहर निकल आयी थीं, जो भयङ्कर जानवरोंके जुल्मकी शिकायत कर रही थीं।

रूपाने पतिका धूलसे भरा हुआ सिर उठाकर उसके ललाटका चुम्बन लिया...और सहसा मुस्कराती हुई दौड़ पड़ी...दौड़ती ही गयी।

प्रकृतिके भयङ्कर परिहासपर जैसे उसने मुस्कराकर

प्रकृति और उसके नियमको हरा दिया हो।

मगर उसकी उन्मादिनी आंखोंमें नन्हें-नन्हें बूंद चमक रहे थे।

पास ही कहींसे उल्लू बोला। रूपाको ऐसा मालूम हुआ, जैसे उसके उजड़े हुए दिलमें असंख्य उल्लू बोल रहे हों। उसके मस्तिष्कमें एक अज्ञात खलबली मची। अब मालूम होने लगा, जैसे उसके समीप सैकड़ों शैतान और हजारों भयानक जङ्गली घेरा डाले नाच-नाचकर हल्ला मचा रहे हों।

अभी भी वह दौड़ती ही जा रही थी।

उल्लू फिर चिल्लाया—'हुदू...हुदू...हुक...।'

रात-भर रूपा बेतहाशा दौड़ती ही रही। बहुत थक जानेपर धीरे चलने लगती।

रूपा अपनी मञ्जिल स्वयं नहीं जानती थी।

जाने भी कैसे! उसकी मञ्जिल तो वहीं उसके पतिके साथ झाड़ीके पास समाप्त हो चुकी थी।

फिर भी प्रकृतिने उसे जीवित छोड़ दिया था। भला अब वह कहां जाती, जबकि उसकी कोई मञ्जिल ही न थी। वह अब चिड़ियोंके उस बच्चेकी तरह थी, जो घोंसलेसे गिर चुका हो।

रात भी बीत चली।

पौ फटने लगी।

रूपा धीरे-धीरे नदीके किनारेको देखते, जङ्गलकी निस्तब्ध पगडण्डीसे जा रही थी। इतनेमें शेर गरजा। रूपा सिहर उठी। अपनी मञ्जिल पास देखकर एक बार जोरसे रूपा भागी। हर कोई अपनी मञ्जिलकी तरफ चला जा रहा है, लेकिन इसके होते हुए भी मञ्जिलपर पहुंचनेसे घबराता है।

तो रूपा होश-हवास खोकर दौड़ी...और दूसरे ही क्षण नदीकी गोदमें थी।

लहरें सिमट-सिमटकर उसकी तरफ आने लगीं, जैसे वह आश्ना हो। बुलबुल अपने फूल-से चेहरे निकाल मुस्कराये, जैसे उन्होंने कोई खोयी हुई चीज पा ली हो।

रूपा पानीमें डुबकियां खाती, डूबती-उभरती दूर तक बहती चली गयी। दूसरे किनारेपर खड़े एक युवकने उसे बहते हुए देखा। वह तुरन्त तैरते हुए उसे निकाल लाया; क्योंकि मवेशियोंको खेतोंमें छोड़ दिन-भर नदीमें तैरते रहनेका तो उसका काम ही था।

थोड़ी ही देरमें रूपाको होश आ गया। युवकने अपनी खद्दरकी चादर उसे दी और उसके भींगे हुए कपड़े धूपमें डाल दिये।

(६)

अब एक ओर कृतज्ञता, दूसरी ओर रक्षा करनेका गर्व। उसने आनन्दमय कुछ प्रतिदान चाहा, इसने झिझकते हुए वचन-सा देनेकी प्रतिज्ञा की...मगर कुछ सोच-विचारकर।

वादे हुए...और बहुत देर तक भावी जीवनके स्वप्न-राज्यकी कल्पनामयी रचना...।

सूर्य डूबनेपर सब मवेशी जमा किये गये।

चरवाहेने लकड़ी संभाली और घर जानेके लिए तैयार हो गया।

"अब तुम कहां जाओगी?"

"जहां तुम ले चलो।"

"तो फिर आओ...।"

× × ×

बारह वर्ष बीत गये—

पहले जब शाम होती और मवेशी घरमें आते, तो एक बूढ़ी स्त्री चिल्ला उठती—"रूपा, मेरी बेटी, तू आ गयी!" और रूपा कहा करती, "हां, मां, अब मैं आ गयी।"

लेकिन अब यह आवाज कोई बारह वर्षसे गूंजती थी, जो बुढ़ियाके अपने ही कानोंमें गूंजकर रह जाती। अब इसकी पुकारका कोई जवाब न था। वह जानती कि रूपा अलग है...शायद सदाके लिए। लेकिन वह मांके प्यारसे विवश थी। वह मवेशियोंके आनेपर हठात् चिल्ला उठती—"रूपा, मेरी बेटी तू आ गयी!"

और आज भी मवेशी घरमें घुसे और छोटी चीजोंको फांदते, छलांग मारते, बर्तनोंमें मुंह डालते अपने-अपने ठावोंपर जा खड़े हुए। युवक चरवाहा और रूपा भी आंगनमें आये। एकाएक कांपती हुई आवाज अन्तरिक्षमें अपनी करुणापूर्ण गूंज छोड़ती हुई विलीन हुई "रूपा! मेरी बेटी तू आ गयी!!!"

युवक यह आवाज सुननेका आदी हो चुका था। वह मवेशियोंको बांधनेके लिए उनकी ओर बढ़ा।

लेकिन रूपाने यह आवाज सुनी। उसके दिलमें एक सोयी हुई यादने करवट ली और एक भूली हुई यादने उसकी आत्मामें खलबली पैदा कर दी। उसकी भावनाने एक क्षणमें ही गत बारह वर्षोंका सफर तय कर लिया। वह अपनी भावनाओंको भूल गयी, फिजाको भूल गयी, यहां तक कि अपने-आपको भूल गयी। वह अपनेको बारह वर्ष पहलेकी १४ वर्षकी रूपा समझने लगी। वह अपनी मांकी ओर बढ़ी। उसके मुखसे आप ही आप निकल गया—"हां, मां, मैं आ गयी !"

युवकने मवेशी बांधते हुए मुड़कर देखा, और आश्चर्यसे पत्थर-सा खड़ा रह गया।

उसकी आत्मा तड़पी, भ्रातृ-स्नेहका ज्वार उठा--'ओफ ! मानवताका खून···!'

उसकी आत्मा मर गयी। उसकी आंखोंके सामने नदीकी घटना एक-एक करके ताण्डव-नृत्य कर उसे चिढ़ाने लगी। उसकी चेतना चीख उठी···उसे मालूम हुआ। जैसे नदीका पानी रक्तमय हो गया। उसमें तूफान आ गया है, बड़ी-बड़ी लहरें उठती हैं। भयानक चीत्कार और डरावनी आवाजें रोंगटे खड़े किये देती हैं। वह चीख उठा—"तू···तू मेरी बहन थी···।"

वह लपका और भूसेवाली कोठरीमें घुस गया। बुढ़ियाने रूपाकी आवाज सुनी। कांपती-थर्राती हुई उठी। कांपते हुए बांहोंको फैला दिया "म···बेटी···सदाकी बिछुड़ी···अचानक मिलन···खुशी···बेहद खुशी !

बुढ़ियाकी आंखें फड़फकी, झिपकीं, खुलीं और फट गयीं—"मेरी बेटी, मेरी रूपा, तू आ गयी !!" वह कांपी, लड़खड़ायी और इससे पहले कि वह ममताकी आग अपनी बेटीको छातीसे लगाकर बुझा सके, जमीनपर गिर गयी।

रूपा दौड़कर मांके पास गयी, उससे लिपट गयी, रोयी और फूटकर रोयी। और जब जरा होश आया तो देखा कि उसकी मां उसे सदाके लिए छोड़ चुकी है। वह लौटी। आंगनमें मवेशी एक-दूसरेको मतलब-भरी दृष्टिसे देख रहे थे। रूपा अपने भाईको खोजती हुई भूसेवाली कोठरीमें गयी। देखा, उसका प्यारा भाई रस्सीका फन्दा गलेमें डाले छतसे लटक रहा था। उसकी आंखें उबल आयी थीं जो अपनी, हालतपर आश्चर्य और घृणा-सी करती हुई दीख पड़ती थीं। देखते ही वह जोरसे चीख उठी और टांगोंमें लिपट गयी—"मैं तो तेरी बहन हूं।" उसने धीरेसे गुप्त शब्दोंमें कहा, जैसे वह उसे समझा रही हो। वह फिर बाहर भागी और अपनी मांकी लाशसे लिपट गयी—"मां···मैं तेरी बेटी हूं···मेरी प्यारी मां !!!"

(७)

कई दिन बीत गये—

गांवके अगल-बगल एक दीवानी घूमा करती। वह पेड़ोंसे लिपटती—"मैं तेरी बहन हूं भाई !" कटे हुए शहतीरोंसे लिपटती, उन्हें अपने बाहुओंमें लेना चाहती—"मैं तेरी बेटी हूं ···मेरी मां !" रात्रिकी निस्तब्ध शान्तिमें, दुग्ध-सी श्वेत चन्द्र-ज्योत्स्नामें, अंधेरी रातमें, भयावनी बरसातोंमें, एक हल्की-सी करुणापूर्ण डरावनी आवाज आती—"मैं तेरी बहन हूं !"

बच्चे इसे चिढ़ाते, पत्थर मारते। वह फिजामें हाथ फैलाकर कहती---' मैं तेरी बेटी हूं मां !" और चिढ़ानेवाले बच्चोंमेंसे कोई छोटी-सी लड़की बोल उठती—"मैं तेरी मां हूं बेटी।" वह उस लड़कीकी ओर ध्यानसे देखती और फिर चीख उठती—"मैं तेरी बहन हूं मेरे प्यारे भाई!" और कई बदमाश लड़के चिढ़ाते—"मैं तेरा भाई हूं नन्हीं बहन।"

वह लड़केकी तरफ करुणापूर्ण दृष्टि डालती, आगे बढ़ जाती।

प्रातःकाल गांवके लड़के अपने-अपने मवेशी लिये नदीकी ओर जाते, तो रूपा उनके पीछे भागती। वे उसे पत्थर मारकर भगा देते।

एक दिन एक नटखट लड़केने कहा—"भाईके पास जायगी !" और दीवानी उसके साथ-साथ—"मैं तेरी बहन हूं भाई !" कहती हुई चल दी।

वह नदीके किनारे पहुंची—उसी जगह, जहां वह पति नहीं ···आशिक···नहीं···भाईसे मिली थी। उसी जगहको उसने घूरकर देखा और फिर नदीकी तरफ मुंह कर खड़ी हो गयी।

लड़का इसकी चालोंको मजेसे देखता रहा।

दीवानीने बाहुओंको फैला दिया—"मेरे भाई, मैं आती हूं···मैं तेरी बहन हूं।" कहती हुई वह दौड़ी।

लड़का खिलखिलाकर हंसा।

दूसरे क्षण वह लहरोंकी गोदमें थी। पानीके ऊपर कई बुलबुले पैदा हुए, मुस्कराये और 'संसार नश्वर है' का उपदेश देते हुए विलीन हो गये।

———

नास्तिकोंका ईश्वर—लेनिन

श्री आर० पी० गोंडल

"Nothing is wrong that leads you most quickly and most surely to your goal"

यह संसार कर्म-भूमि है। यहांपर उन्हीं मनुष्योंको सफलता प्राप्त होती है, जो निरन्तर किसी उद्देश्यके लिए अनवरत परिश्रम करते रहते हैं। वे ऐसे ही मनुष्य होते हैं, जो इस संसारको अपने कीर्ति-सौरभसे सुरभित कर आप अनन्त-पथगामी होते हैं। लेनिन ऐसे ही विरले व्यक्तियोंमेंसे था। अपना लक्ष्य निश्चित करनेपर इस पुरुष-सिंहने किसी भी मूल्यपर शिकारको हाथसे जाने नहीं दिया। वह निर्भयतापूर्वक अपने पथपर अग्रसर होता गया और अन्तमें रूसमें साम्यवादी सत्ताकी स्थापना कर स्वयं सदैवके लिए सुषुप्त हो गया। उसका पार्थिव शरीर अब भी जनताके बीचमें उसी दशामें विद्यमान है, जो शत्रुओंके हृदयमें त्रास, मित्रोंके हृदयमें भक्तिभाव और जनताके हृदयमें आशाका सञ्चार करता रहेगा।

लेनिनका जन्म एक सम्पन्न घरानेमें हुआ था। उसके पिता शिक्षा-विभागमें इन्सपेक्टरके पदपर थे। उसकी माता कोई विशेष पढ़ी-लिखी नहीं थी; परन्तु वह भी नवीन विचारोंके प्रभावसे अछूती न बच सकी। वह कदापि नहीं चाहती थी कि उसका पति ऐसे मनुष्योंकी सङ्गतिमें रहे, जो जारशाहीको स्थिर रखनेमें योग देते थे। लेनिनका एक बड़ा भाई भी था, जो विश्वविद्यालयमें अध्ययन करता था।

लेनिन पढ़ने-लिखनेमें बहुत तेज था। वह कुशाग्र बुद्धिका बालक था। अपनी कक्षामें वह सर्वदा प्रथम रहता था। दस वर्षकी अल्पायुमें ही उसने अपनी भाषाके अलावा अन्य भाषाओंकी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी। उसने रूसके बड़े-बड़े लेखकोंकी कृतियोंका अवलोकन ही नहीं, बल्कि भले प्रकार मनन भी कर लिया था।

बालक लेनिनका ज्ञान केवल पुस्तकों तक ही परिमित नहीं था। छुट्टियोंमें जब यह परिवार अपने ग्राम्य-गृहमें आ जाता था, तब लेनिन मछली पकड़नेका कांटा हाथमें लेकर अथवा बन्दूक कन्धेपर रख शिकारके लिए निकल जाता था। जब कभी वह नदीके किनारे मछलीकी घातमें बैठा होता, तो उसके कानोंमें मधुर गीतकी ध्वनि पड़ती। शनैः शनैः वह बढ़ती जाती और सुननेवालेको उसमें वेदनाका आभास मिलता। कभी-कभी वेदना करुण क्रन्दनका रूप धारण कर लेती। थोड़ी देरमें इस होनहार बालकको सामानसे ठसाठस लदी हुई नाव दृष्टिगोचर होती। वह देखता कि कई मल्लाह उसे खे रहे हैं। नावका स्वामी प्रस्वेदसे पूर्ण, रक्त व मांस-विहीन विदग्ध श्रमिकोंको उत्तेजनापूर्ण शब्दोंमें अपने कामको तत्परतापूर्वक करनेका आदेश दे रहा है। केवल इतना ही नहीं, उनसे अतिरिक्त काम लेनेके लिए गालियों और अपशब्दोंको भी व्यवहारमें ला रहा है, और मार-पीट करनेमें भी कसर नहीं करता। नाविक पूर्ण शक्तिसे नावको पानीमें आगेकी ओर बढ़ाते जाते हैं और अपनी शक्तिको केन्द्रित करनेके लिए शब्दोच्चार भी करते जाते हैं। बालकके मनमें विचार उठते—इन बेचारोंने क्या पाप किया है, जो इतना श्रम करनेपर भी इन्हें भरपेट भोजन भी प्राप्त नहीं होता। भूखके साथ ही उन्हें मालिककी गालियां तथा घूंसे भी खाने पड़ते हैं। इसके विपरीत मालिक, जो कुछ भी काम नहीं करता, आनन्दमय जीवन व्यतीत करता है। इधर लेनिनका कांटा मछलीके अभावमें तड़पता और उधर लेनिनका मन इनके दुःखोंका अनुभव कर छटपटाता। वह इस विचारमें डूब जाता कि इस अन्यायपूर्ण, अमानुषिक और पाशविक प्रथाका अन्त किस प्रकार किया जावे।

ग्राम्य-जीवनके अध्ययनका अवसर भी लेनिनको मिल जाता था। वह देहातके लड़कोंके साथ खूब हिलमिल जाता। उसे जुएसे भी प्रेम हो गया था; पर बाजी खरगोश, मछलियों, हिरणों वगैरहकी लगती थी। खेल-कूदके लिए गांवकी कूड़ाकरकटमय गलियां और शिकारके लिए कोसों तक विस्तृत खेत ग्राम्य-जीवनके अध्ययनके लिए अर्वाचीन कालके शहरोंमें स्थित विश्वविद्यालयोंसे किसी भी प्रकार निम्नतर नहीं कहे जा सकते। वह जहां भी देखता,

किसानोंको अन्धविश्वासी, अज्ञानी, मूर्ख, निर्धन और निरुत्साही पाता। उनमें उजड्डताकी भी कमी न थी। वे जरा-सी बातपर आपसमें लड़ बैठते थे। एक देहातवालोंकी दूसरे देहातवालोंसे हमेशा ही लड़ाई बनी रहती थी। मार-काट भी वर्षमें कई बार हो जाती थी। फलस्वरूप कई जारशाहीके कारागारोंमें नरक-यातना भोगा करते थे। गांवोंमें धनी किसान (जमींदार) निर्धन किसानोंका रक्त-शोषण करनेमें जोंककी तरह चिपके रहते थे। कुशल शिल्पीकी छेनीके रूपमें ग्राम्य-जीवनकी ये घटनायें बालक लेनिनका भविष्य जीवन निर्माण करती जा रही थीं।

रूसका यह भावी भाग्य-विधाता जब सातवीं व आठवीं कक्षामें पढ़ता था, तब उसका ज्येष्ठ भ्राता अलेक्जेण्डर विश्व-विद्यालयमें प्राणि-शास्त्र तथा वनस्पति-शास्त्रकी शिक्षा पा रहा था। विद्यार्थी-जीवनमें ही उसके विचार क्रान्तिपूर्ण हो गये थे। वह चाहता था कि रूसमें जारशाहीका अन्त होकर साम्यवादी सरकारकी स्थापना हो। वह 'पीपुल्स विल' का सदस्य था। इस सङ्घका उद्देश्य रूसमें जार-शाहीका अन्त करना और साम्यवादी सरकारकी स्थापना करना था; परन्तु इस सङ्घके सदस्य थोथे विचारों और कोरे विवादोंमें ही अपने उत्तरदायित्वकी इतिश्री समझते थे। वे स्वभावके भीरु थे और अपने विचारोंको कार्यरूपमें परिणत करनेमें वे आगा-पीछा दिखाते थे। उनमें न त्यागकी भावना थी और न उनका जीवन ही त्यागपूर्ण था। लेनिन अपने भाईको भी ऐसी ही श्रेणीमें गिनता था। वह सोचता—कीड़े-मकोड़ोंके चीरने-फाड़नेसे अधिक उप-युक्त तो जनताकी परम्परागत रूढ़ियों और धार्मिक अन्ध-विश्वासके आवरणको छिन्न-भिन्न कर देना होगा।

एक दिन लेनिन किसी पुस्तककी खोज कर रहा था कि उसे अपने भाईके तकियेके नीचे पुस्तकके आकारकी एक लोहेकी ठोस वस्तु मिली। लेनिन शीघ्र समझ गया कि वह क्या वस्तु है। सन्ध्या होनेपर जब उसका बड़ा भाई घर लौटा, तो लेनिनने उसे केवल इतना ही कहा कि वह ऐसी वस्तुओं-को ऐसे अरक्षित स्थानमें न रखा करे। इस घटनासे लेनिनको यह विश्वास हो गया कि उसका भाई सचमुच क्रान्तिकारी है।

कुछ ही दिन बाद अलेक्जेण्डर षड्यन्त्रके एक केसमें पकड़ा गया। उसपर जारकी हत्याका अभियोग लगाया गया। परिणाममें उसे मृत्यु-दण्ड दिया गया। लेनिन क्रान्तिकारी विचारोंमें अपने भाईसे सहमत नहीं था। इतना होनेपर भी उसे इस कामको करनेसे मना करना उसने उचित न समझा। अगर चाहता, तो वह कई प्रकारसे अपने भाईके मार्गमें बाधा उपस्थित कर उसके जीवनको सुरक्षित कर सकता था; परन्तु लेनिनने विवेकके आगे स्वार्थ-जन्य प्रेमकी एक न सुनी। उसने अपने भाईको न तो उसके उद्देश्यसे ही हटाया और न माता-पिताको सूचना देकर उसके काममें बाधा ही डाली।

अपने भाईके मृत्यु-दण्डपर लेनिन और हेलनामें जो वार्तालाप हुआ, वह उल्लेखनीय है:—

"बोलो, क्या तुम अपने भाईकी निरपराध हत्याका बदला नहीं लोगे; जारको इसी प्रकार आमोद-प्रमोद करने दोगे और उसे मृत्युके घाट उतारनेकी तुममें शक्ति और साहस नहीं है?" हेलनाने ब्लाडीमीर यूल्यानोव (लेनिन) से प्रश्न किया। लेनिनका भाई, सम्भव है, षड्यन्त्रमें सम्मिलित रहा हो; परन्तु घटनास्थलपर उसके न होनेके कारण उसे मृत्यु-दण्ड देना अनुचित ही था।

"लीना, केवल जारको तलवारके घाट उतारनेसे तो जारशाही समूल नष्ट नहीं हो सकती। एकके बाद दूसरा जार सिंहासनारूढ़ होगा ही, और तब?" लेनिनने उत्तरमें कहा।

"तो क्या तुम चुपचाप इस अन्यायको सहोगे, यही तुम्हारी वीरता है, और इसी दमपर तुम बड़े-बड़े साम्य-वादी विचारोंकी डींग मारा करते हो, अपने भाईका बदला लेनेका भी तुममें साहस नहीं?" बड़े-बड़े नीले नेत्रोंवाली हेलनाने त्योरियां बदलकर आवेशमें कहा।

लेनिन इस समय बड़े पसोपेशमें था। एक ओर भाईकी मृत्युका बदला, दूसरी ओर हेलनाका प्रेम और आमोद-मय जीवन, और तीसरे ऐसे कार्यका भार लेना, जिसे वह व्यर्थ ही समझता था। उसे पूर्ण विश्वास था कि सिंहा-सनारूढ़ जारकी हत्या करनेपर साम्यवादी सरकार स्थापित नहीं हो सकती। इसलिए इस प्रकार बदला लेनेमें मूर्खता तथा भावुकताके सिवाय उसे कुछ और न जंचा।

हाई स्कूलकी अन्तिम परीक्षा अभी शेष थी। परन्तु

उसका मन अब इधर कम ही लगता था। एक ओर तो हेलनाका प्रेम उसे उन्मत्त बनाये हुए था और दूसरी ओर निर्धन और पीड़ित श्रमिकोंकी समस्या उसकी आंखोंसे ओझल नहीं होती थी। अब लेनिनके एक ओर तो आमोद-प्रमोदमय बसन्त और दूसरी ओर वह शिशिर थी, जिसमें बसन्तके आगमनकी प्रबल आशा विद्यमान थी।

परीक्षामें केवल दो मास रहनेपर लेनिन अपनी शक्तियोंको समेटकर दत्तचित्त होकर पढ़नेमें जुट गया। परीक्षा-फल निकलनेपर वह सर्वप्रथम रहा। उसे पाठशालाकी ओरसे एक स्वर्णपदक पारितोषिक-रूपमें मिला।

पाठशालाओंके निरीक्षकका पद मिल जानेपर हेलना तथा उसका ज्येष्ठ भ्राता सेण्टपीटर्सबर्ग छोड़कर ऊफा चले गये। लेनिनको यह समाचार उसके ग्राम्य-गृहमें मिला। लेनिनको मुखाकृति एक क्षणके लिए पीत-वर्ण हो गयी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह उसी क्षण मूर्च्छासे जागा हो। परन्तु दूसरे ही क्षण उसके मनमें स्वतन्त्रताके भाव उद्भासित होने लगे। चेहरेका पीत-वर्ण फिर अपनी असली अवस्थामें आ गया। उसने सोचा, अच्छा ही हुआ, एक ओर हेलनाके प्रेम-बन्धन ढीले पड़े, तो दूसरी ओर अपने उद्देश्यको पूर्ण करनेके लिए मार्गकी रुकावटें दूर हुईं।

हाई स्कूलके बाद लेनिनने कानून अध्ययन करनेका निश्चय किया। वह कानून अध्ययन करने लगा और खजानके विश्वविद्यालयमें भर्ती हो गया। पुलिसकी विशेष निगरानी होते हुए भी विद्यार्थी तथा शिक्षक राजनीतिकी ओरसे उदासीन न थे। लेनिन गुप्त रूपसे अपने विचारोंको पुष्टिमें लेख लिखने लगा। वह 'पीपुल्स विल' (Peoples Will) की गुप्त सभाओंमें भी जाने लगा। अति उग्र होनेके कारण लेनिनके लेख भी उन्हीं भावोंको लिये हुए होते थे। इसी कारण उन्हें पत्रोंमें स्थान नहीं मिलता था। उसके लेखों तथा विचारोंसे दलके प्रमुख नेता सहानुभूति भी नहीं रखते थे।

लेनिन इस समय ऐसे अवसरकी तलाशमें था कि उसे 'पीपुल्स विल' के भ्रमपूर्ण तथा अक्रिय विचारोंकी आलोचना करनेका मौका मिले। वह समय भी शीघ्र ही आ गया। पुलिसके काले कारनामोंके प्रति विरोध प्रदर्शित करनेके लिए सेण्टपीटर्सबर्ग और मास्कोके विद्यार्थियोंने हड़ताल घोषित कर दी। खजानवालोंने भी ऐसा ही किया। विद्यार्थियोंकी एक सभाका प्रबन्ध कालेज-हालमें किया गया। लेनिनने इस अवसरको हाथसे खोना उचित न समझा। उसने 'पीपुल्स विल' के सिद्धान्तों तथा कार्य-प्रणालीकी भरपूर तीव्र स्वरमें आलोचना की। विद्यार्थी और शिक्षक ऐसा दोषारोपण किसी प्रकार भी सहन न कर सके। वे लेनिनके शत्रु हो गये। पुलिसको भी इस उत्तेजनापूर्ण भाषणकी सूचना मिल चुकी थी। वह कैद कर लिया गया और तीन वर्षके लिए साइबेरिया भेज दिया गया।

लेनिन समयको व्यर्थमें खोना नहीं जानता था। उसका समुचित उपयोग करना उसने बाल्यकालसे ही सीखा था। वह शिकारको निकल जाता, और साथ ही कृषकोंके जीवनका अध्ययन करता। इसी कालमें उसने मार्क्सके ग्रन्थोंको पढ़ा, उनपर मनन किया और अपने साम्यवादी विचारोंको सुसंस्कृत और प्रयोगात्मक बनाया। जब वह तीन वर्ष व्यतीत होनेपर वापस लौटा, तो खजान विश्वविद्यालयके अधिकारियोंने उसे लेनेसे सर्वथा इनकार कर दिया। वह समारा चला गया।

लेनिन अब श्रमजीवियोंके सङ्गठनमें लग गया; परन्तु कानूनका अध्ययन उसने जारी रखा। वह अपने विचारोंका अब श्रमिकोंमें प्रसार करने लगा। उसके पड़ोसमें भी कई श्रमिकों और किसानोंकी झोंपड़ियां थीं। उनमें वह बैठता-उठता और उनसे बातचीत करता। साथमें रहनेसे वह उनकी वास्तविक दशाको जान गया। पर्चे बांटकर अपने विचारोंका प्रसार करना उसे प्लेटफार्मपर खड़े होकर लेक्चर झाड़नेसे अधिक युक्ति-सङ्गत और उपादेय प्रतीत हुआ। निकृष्ट जीवन व्यतीत करनेवाले कई श्रमजीवी तथा किसान उसके सङ्गठन-कार्यमें योग देने लगे।

उसी घरमें रहनेवाली एक सुन्दर छोटे कदकी चञ्चल नेत्रोंवाली और अनियमित जीवन-यापन करनेवाली कुमारीसे लेनिनका परिचय हो गया। जब कभी लेनिन उसके सामनेसे गुजरता, तो वह वेश्यावृत्ति करनेवाली स्त्रियोंके सदृश कुटिल हंसी मुखपर लाकर उसका मन आकर्षित किये बिना न रहती थी। लेनिनको एक मजदूरसे यह ज्ञात हो गया कि कपड़ोंकी सिलाईके अतिरिक्त उसके जीवनका अवलम्ब वेश्यावृत्ति भी है।

लेनिन उसके यहां एक रात्रिको पहुंच गया। ऐसे दूषित वातावरणमें भी उसे एक कोनेमें रखी हुई ईसाकी मूर्ति दिखलाई दी। उसके सामने इस लड़कीने एक छोटी लौका तेलका दिया भी जला रखा था। "यहां ईसाकी मूर्ति!" लेनिनने किञ्चित् मुस्कराहट होठोंपर लाकर पूछा, "उसे यहांपर हास्यजनक दृश्य देखनेको मिलते होंगे।"

लड़कीने अपने वस्त्रोंको ढीला करते हुए घृणा-सूचक शब्दोंमें कहा, "अच्छा है, उसे ऐसे दृश्य भी देखनेको मिलें। उसके लिए यह जानना नितान्त आवश्यक है। वह मनुष्योंको मोक्ष दिलाने आया था, परन्तु वह दुःख और निर्धनतासे किसीका पीछा नहीं छुड़ा सका। निर्धनोंको अब भी अपने पैरोंपर खड़े होकर सूखे टुकड़ोंके लिए दिन-रात एक करना पड़ता है। अच्छा है, ईसाको इसका ज्ञान हो जाय और वह फिर जन्म लेकर हम लोगोंके दुःख दूर करे।"

लेनिन विचार-मग्न हो गया। उसने विचारा—क्या ही अच्छा हो कि इस वेश्याके लिए, जिसका हृदय घृणासे ओत-प्रोत है और जो अपनी निर्धनता, दरिद्रता और निर्लज्ज जीवनसे अनभिज्ञ नहीं है, ऐसे साधन उपस्थित कर दिये जायं, जिससे वह क्रान्तिकी बढ़ती हुई ज्वालाओंके लिए घृताहुति सिद्ध हो। लेनिनके मुखपर आशाकी एक रेखा दौड़ गयी और वह किञ्चित् मुस्कराया। लेनिनको ऐसे निर्लज्जपूर्ण जीवनमें मानव-स्वभाव जाननेका अच्छा अवसर मिला। उसने यह अनुभव किया कि निर्धन तथा दुःखित मनुष्योंके हृदयमें जो घृणाके भाव भरे हुए हैं, उनको किस प्रकार सङ्गठित कर अपने उद्देश्यकी सिद्धि की जा सकती है।

जब फैक्टरीमें हड़ताल घोषित की गयी थी, तो ग्रुशा नामक एक लड़कीने लेनिनके लिखे हुए पर्चोंको मजदूरोंमें बांटा था। परिणाममें वह कैद कर ली गयी। वह किस संस्थाकी सदस्या है, उससे यह जाननेका प्रयत्न किया गया। परन्तु सब व्यर्थ। वह तीन सालके लिए कारागारमें डाल दी गयी।

इस लड़कीको, जिससे लेनिनकी विशेष घनिष्टता हो गयी थी, वह शीघ्र भूल गया। मानो उसके जीवनमें यह घटना घटी ही नहीं थी। उसके लिए हृदयमें इन बातोंको रखनेका स्थान ही कहां था। वह तो अपने निर्दिष्ट पथपर दृष्टि टिकाये हुए था।

जब उसे एक मजदूरसे विदित हुआ कि ग्रुशाने उसे सलाम भेजा है, तो लेनिनने 'अच्छा' कहकर टाल दिया। लेनिनमें भावुकता लेशमात्र भी नहीं रह गयी थी। उसे ईसाकी मूर्तिके आगे दिया जलानेमें कुछ भी सार्थकता दृष्टिगोचर नहीं होती थी। उसके लिए वह लड़की लकड़ीके उस टुकड़ेके समान थी, जो कुल्हाड़ेकी चोट खाकर उचटकर दूर जा गिरता है। जब वह सारे जङ्गलके वृक्षोंको गिरानेके लिए कमर कसे बैठा था, तब इतनी-सी तुच्छ जानका मूल्य उसके लिए क्या हो सकता है।

लेनिनने कानूनकी परीक्षा पास कर ली। वह वकालत करने लगा। परन्तु उसमें उसे कुछ भी सफलता न मिल सकी। वह बुर्जुआ-कानून (पूंजीपतियों द्वारा बनाया गया कानून) के बिलकुल खिलाफ हो गया। अब उसके जीवनका एक ही उद्देश्य 'क्रान्ति' ही उसके लिए शेष रह गया था। जिस माताने उसे बाल्यकालमें गोदमें खिलाया, पाला-पोसा, उसकी बीमारीने उसे तनिक भी विचलित नहीं किया। बहिनकी मृत्युका समाचार सुनकर उसकी क्रूर और निर्दयी आंखोंने दो बूंद पानीके भी न गिराये।

सङ्गठन कार्य अब जोरोंसे चल रहा था। लेनिनका नरम दलके साम्यवादियोंसे झगड़ा हो गया। उसने अपनी एक अलग पार्टी बना ली। ट्राट्स्की, स्टेलिन तथा अन्य गरम विचारोंके कई यहूदी कार्यकर्ता उसके विचारोंका जी-जानसे प्रचार करने लगे।

फैक्टरियोंमें श्रमिकोंका सङ्गठन करते हुए लेनिनकी मित्रता नस्त्या नामक एक भावुक और आमोद-प्रिय लड़कीसे हो गयी। लेनिनके हृदयमें इस लड़कीने स्थान करना चाहा, परन्तु विवेकके सामने प्रेमको सदैवकी तरह पीछे हटना पड़ा।

अपने विद्यार्थी-जीवनमें ही लेनिनकी मैत्री क्रुप्स्काया नामक एक महिलासे हो गयी थी। एक दिन वह पुलिससे छिपा-छिपा फिर रहा था कि वह उस स्कूलमें पहुंचा, जहां क्रुप्स्काया शिक्षिकाके पदपर नियुक्त थी। वह स्त्री साधारण जीवन व्यतीत करती थी और कोई विशेष सुन्दरी भी न थी। लेनिनको वह प्रेमकी दृष्टिसे देखती थी। परन्तु इस प्रेममें न तो यौवनकी मस्ती थी और न प्रेमीसे अपनी जीवनाकांक्षाओंकी मांग ही। वह प्रेम-पात्रसे न कोई विशेष आशा ही

रखती थी और न वह कोई ऐसी बात ही करनेको तैयार थी, जिसमें उसके प्रेमीकी सहानुभूति न हो। लेनिनको अपने लिए एक ऐसे ही जीवन-साथीकी आवश्यकता थी, जो मार्गको कण्टकाकीर्ण बनानेके बजाय उसे शीघ्रगामी बना सके। लेनिनने इस महिलासे विवाह कर लिया। वह पति-परायणा रमणी सिद्ध हुई।

लेनिनको अपने जीवनमें सदैव एक स्थानसे दूसरे स्थानमें भागते ही रहना पड़ा। कभी वह जर्मनी जा रहा है, तो कभी फ्रान्स; कभी स्विटजरलैण्ड और हालैण्डमें है, तो कभी इंगलैण्डमें एक निर्धन श्रमजीवीकी तरह दिन काट रहा है। परन्तु वह अपने देशसे बाहर रहकर भी क्रान्तिके लिए प्रयत्नशील रहा। लेनिनके साथी रूसमें रहकर उसके लिखे हुए पर्चों, पुस्तकों और पत्रोंका प्रचार जनसाधारणमें कर रहे थे। वहीं रहकर वह चिनगारी (Sparks) और अन्य दो-एक पत्रोंका सम्पादन और सञ्चालन भी करता था। जब यूरोपमें महायुद्ध छिड़ा, तब लेनिन जर्मनीमें था। इसी समय उसे समाचार मिला कि रूसमें घरेलू युद्ध छिड़ गया है। रूसमें क्रान्तिके लिए स्वर्ण अवसर पाकर वह गुप्त रूपसे सेण्टपीटर्सबर्ग आ पहुंचा। वहां पहुंचकर क्रान्तिको सफल बनानेके लिए वह पर्चेपर पर्चे निकालने लगा और श्रमिकोंमें बंटवाने लगा। एक तारीख निश्चित करनेपर मजदूरोंने 'शीत-महल' (Winter Palace) को घेर लिया। रूसमें लेनिनके दलकी विजय हो गयी। जार पहले ही कारागारमें डाल दिया गया था। लेनिन अब प्रोलेटेरियट सरकारका डिक्टेटर बन गया।

उसे अभी कई शत्रुओंका सामना करना था। एक ओर कृषक-समुदायको उसे सन्तुष्ट करना था, तो दूसरी ओर मजदूर-शासन-प्रणालीके विरोधी तलवारके घाट उतारनेके लिए शेष थे। इसके अतिरिक्त महामारी और दुर्भिक्ष निर्धन जनताको मृत्यु-मुखमें निर्दयतासे डाल रहे थे। बच्चे भूखों मर रहे थे। लोग मरे हुए घोड़ोंपर इस प्रकार टूट पड़ते थे, जैसे सड़े मांसपर गिद्ध। छोटी बालिकायें अपने शरीर बेचकर भी पापी पेटको न भर पाती थीं। ये समस्यायें कोई कम विकट न थीं। लेनिनका दिमाग अब मशीनवत् इन समस्याओंको सुलझानेमें लगा हुआ था। दमनका चक्र जोरोंसे चल रहा था। सन्देहपर मृत्यु-दण्ड दिया जा रहा था। लेनिन सारे रूसको रक्त-रञ्जित कर साम्यवादी सरकारकी रक्षा करनेमें लगा हुआ था। वह कहा करता था—We live in an iron age and our work is not to pet people on the head. Our hands must fall heavily smashing men's skulls and pulping their bones without mercy. उसका विश्वास था कि क्रान्तिको जीवित रखना मेरा तथा पीड़ित जनताका धर्म है और उसे किसी भी मूल्यपर जीवित रहना चाहिए। The good of the Revolution is the highest law. Tyrannicide is no murder. And—

Nothing is wrong that leads you most quickly and most surely to your goal. परन्तु लेनिन यह सब शान्ति-स्थापनार्थ कर रहा था। उसका विचार था कि अमर शान्ति बिना रक्तपात किये मिलना असम्भव है। Our supreme end is to finish with violence for ever. A difficult task! We can accomplish it by means of violence and oppression. There is no other way, for man cannot produce ideals capable of realization once and for all.

रूसके पुनरुद्धारमें लेनिन जी-जानसे लगा हुआ था। भोजनकी उसको चिन्ता न थी। दो-दो, तीन-तीन रातें वह जागकर ही काट देता था। काम करते-करते उसका शरीर निर्बल पड़ गया था। ऐसी निर्बल अवस्थामें ही उसे एक सभामें उपस्थित होना पड़ा। यद्यपि उसे यह समाचार मिल चुका था कि विरोधी दल उसकी जानके पीछे पड़ा हुआ है, उसने तनिक भी घबराहट अपने मुखपर न आने दी और पूर्ण आत्मविश्वासके साथ सभामें पहुंच गया। एक सनसनाती हुई गोलीने आकर उसे घायल कर दिया। वह दो मास तक बिस्तरसे न उठ सका। इस वारने उसके शरीरको और भी निर्बल कर दिया था। ऐसे ही तथा अन्य षड्यन्त्रोंके सन्देहमें डोरा फ्युमकिन, हेलना और असंख्य सुन्दरी रमणियों तथा असंख्य मनुष्योंको बकरोंकी तरह कटते देखकर उसे अपने जीवनसे घृणा हो गयी। उद्देश्यकी वेदीपर सद्वृत्तियां एक-एक करके आहुति दी जा रही थीं। भावनायें सीस नवाये रोती-सी पैरोंमें पड़ी थीं।

इधर लेनिन इस मानसिक स्थितिमें था, उधर रूसकी अधिकांश जनता अज्ञान, अन्धकार और रूढ़ियोंमें जकड़ी हुई थी। लेनिन ऐसे धर्मको नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहता था, जिसमें त्याग और उन्नतिके लिए स्थान न हो। वह पूंजीवादको संसारसे उठा देना चाहता था और उसका स्थान साम्यवादको देना चाहता था। प्रत्येक वस्तु समाजकी है, इस सिद्धान्तको सम्मुख रखकर विवाह, पारिवारिक बन्धन, चर्च, पोपपन्थ, सबको एकदम नष्ट-भ्रष्ट करनेकी धुनमें लगा हुआ था।

साम्यवादके सिद्धान्तोंको न समझ सकनेके कारण श्रमजीवियों, कृषकों और सरकारी कर्मचारियोंमें अनाचार फैल गया। क्रान्तिके पश्चात् मनुष्योंकी दशा पशुओंसे भी गिर गयी। रिश्वतका बाजार गरम हो गया। पूंजीपतियोंके साथ कुत्तोंसे भी बदतर बर्ताव किया जाने लगा। खुले आम व्यभिचार होने लगा। नाच-रङ्ग और वेश्यावृत्ति साधारण-सी बात हो गयी। भले-भले घरोंकी लड़कियां साम्यवादके नामपर सामूहिक सम्पत्ति समझी जाने लगीं। लेनिनकी दृष्टि सुन्दर भविष्यकी ओर थी। अतीतकी स्मृतिको मिटाकर वह एक नयी समाज-रचनामें लगा हुआ था। वह श्रमिकोंको बार-बार विश्वास दिलाता था कि वह समय दूर नहीं, जब संसारमें श्रमिकोंका एकच्छत्र राज्य होगा। केवल भविष्यकी सुनहली आशामें वर्तमानकी चिन्ता न कर काममें जुटे रहो। भविष्यके लिए ऐसे स्वप्नोंमें लीन रूस-विधायक लेनिन अनाचार, अत्याचार और रक्तपातसे उदास-सा प्रतीत होता था।

पशु - चिकित्सा - संस्थाकी रिपोर्ट पढ़कर लेनिन ध्यानावस्थित हो गया। एक रूसी वैज्ञानिकने एक ऐसे कीटाणुको खोज निकाला था, जिसका विष शरीरमें पहुंचनेपर उस मनुष्यकी मृत्यु लकवेके रोगसे पांच मिनटमें हो जाती थी। इस विषका प्रयोग वैज्ञानिकने ८० कैदियोंपर किया था। वे सबके सब ५ मिनटमें मर गये।

"८० मनुष्य कुछ ही मिनटोंमें मर गये!" लेनिनको रोमाञ्च हो आया—"वह वैज्ञानिक क्या राक्षस नहीं है, डेहरजिनकी जल्लादका आज्ञाकारी गुलाम नहीं तो और क्या है?" उसकी अन्तरात्माने धीरेसे पुकार कहा, "या तुम्हारा दास है।" वह धम्मसे कुर्सीपर गिर पड़ा। उसके नेत्रोंके सामने रूसका नग्न चित्र—दुर्भिक्ष, महामारी, सर्वनाश—घूमने लगा। "दो मासमें साम्यवाद," वह मनके आवेशको संभाल न सका और मूर्च्छित होकर फर्शपर गिर गया। उसका दाहिना शरीर आक्रान्त हो गया। बीमारी धीरे-धीरे बढ़ती ही गयी। अन्तिम काल समीप जानकर लेनिनने ट्राट्स्कीको अपने स्थानपर नियुक्त करनेका आज्ञापत्र किसी प्रकार बायें हाथसे दाहिने हाथको संभालकर बड़े श्रमके पश्चात् लिख दिया। स्टेलिन उसे इस पदके योग्य न जान पड़ा।

एक आक्रमणके शान्त होनेपर दूसरे आक्रमणकी बारी आयी। मास्कोसे कुछ ही दूरपर स्थित गोर्कीके स्थानपर लेनिनको पहुंचा दिया गया। लेनिन अब मृत्यु-शय्यापर पड़ा हुआ था। अर्द्ध-मूर्च्छित अवस्थामें उसके सम्मुख बायस्कोपके चित्रोंके समान जीवनकी प्रत्येक घटना दृष्टिगोचर होने लगी। वह हेलना, डोरा फ्युमकिन और अन्य सुन्दरी-रत्नोंके विकृत शव देखकर डर गया। अन्तमें ट्राट्स्की, स्टेलिन वगैरह खड़े दिखलाई दिये। अपने इन लोगोंके मध्यमें उसे एक वृद्ध सौम्य मूर्तिका आभास हुआ। विशेष श्रमके बाद उसको उसमें ईसाकी त्याग-मूर्तिके दर्शन हुए। लेनिनके प्राण-पखेरू अब दूसरे लोकमें पहुंच चुके थे।

"A man ought to live for an idea and an object forgetting himself" का वह इस शताब्दीका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।*

———

*Ossendowski's 'Lenin'—The God of the Godless के आधारपर।



भारतीय मुद्रा और चलनकी कुछ वर्तमान समस्यायें

प्रो० प्रेमचन्द मलहोत्रा, एम० ए०

जैसे अन्य वस्तुओंकी मण्डियां होती हैं, वैसे मुद्राकी भी ।ण्डी होती है। मण्डीका तत्त्व है--एक दर। जैसे अन्य चीजों-को कीमत होती है उनका मूल्य, वैसे मुद्राका मूल्य है सूदकी दर, जिसपर रुपया उधार लिया या दिया जावे।

मुद्राका भाव कई प्रकारका होता है, जैसे लम्बी अवधिका भाव, थोड़ी अवधिका भाव, तात्कालिक भाव, माध्यम अवधि-का भाव, बट्टेका भाव इत्यादि। जहां मुद्राकी मण्डी नियम-बद्ध हो, वहां भिन्न-भिन्न प्रकारकी मुद्राके भावमें एक परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और उनमें अन्तर न्यूनतमसे न्यून-तम रहता है। प्रत्येक देशकी मुद्रा-मण्डीका सरताज केन्द्रीय बैङ्क होता है और वह मुद्रा-मण्डीका सुयोग्य नियन्त्रण करता है। हमारे देशकी मुद्रा-मण्डीमें एक भारी त्रुटि थी। केन्द्रीय बैङ्कका अभाव, जो कि रिजर्व बैङ्कके स्थापित होनेसे पूरी हो गयी। अब हम भी इस बातकी आशा कर सकते हैं कि भारतकी मुद्रा-मण्डी अन्य देशोंकी मुद्रा-मण्डियोंकी नाईं नियमबद्ध तथा सुगठित हो। रिजर्व बैङ्कको काम करते हुए देशमें पांच वर्षसे अधिक हो गये; किन्तु अब भी हमारे देशकी मुद्रा-मण्डीमें कई एक दोष विद्यमान हैं—जैसे कि प्रधान मुद्रा-मण्डी अथवा कस्बों और देहातोंकी मण्डियोंमें अन्तर। केन्द्रीय बैङ्क तथा सदस्य बैङ्कों अथवा बैङ्कों और समस्त देशमें परस्पर सम्बन्ध इतना ढीला है कि केन्द्रीय बैङ्ककी मुद्रा-नीति क्षीण और अयोग्य ही रहती है। अतः हमारे देशकी मुद्रा-मण्डीमें मुद्रा-दरोंकी रचना पूर्णतया सामञ्जस्य-पूर्ण नहीं होती।

यदि हम लन्दनकी मुद्रा-मण्डीके सूदके भावोंपर दृष्टि डालें, तो जोखिम-साधनके अतिरिक्त सूदके भाव समय-साधनके आधारपर निर्धारित होते हैं। नीचे हम 'दी इकानोमिस्ट' पत्रिकाने लन्दन मुद्रा-मण्डीमें सूदके दरोंका जो विश्लेषण किया है, देते हैं।

½ प्रतिशत--बैङ्क 'डिपाजिट्स' तथा उनके पास जो रुपया जमा कराया हो, उसपर देते हैं।

¾ से १ प्रतिशत—लन्दन-बैङ्कोंकी तात्कालिक मुद्रा-दर।

१ प्रतिशत—हिसाब-घरकी थोड़े समयके उधारके लिये दर।

१ ³⁄₃₂ प्रतिशत—तीन मासके ट्रेयरी बिल्जपर दर—।

१॥ प्रतिशत छः महीनेके 'डिपाजिट्स' पर दर।

१¼ प्रतिशत हिसाब घरकी दर—थोड़े समयके उधारके लिए, जो प्रतिज्ञा-पत्रकी जमानतपर दिया जावे।

२ प्रतिशत—'बैङ्क रेट'—केन्द्रीय बैङ्ककी वह दर, जिस-पर उत्तम श्रेणीकी व्यापारी हुण्डियोंका विनिमय हो तथा कटौतीपर बैङ्क रुपया दिया जावे, उसे बैङ्क रेट कहते हैं। १९४५ के 'कनवरशन लोन' पर आय—२। प्रतिशत।

नैशनवास बाण्डज (१९४७) पर आय—२॥ प्रतिशत, ३ प्रतिशत 'वार लोन १९५९' पर आय—३ प्रतिशत, अपरि-वर्तनशील सरकारी ऋण-पत्रपर आय ३॥ प्रतिशत।

तुलनाके लिए अब हम भारतमें सूदके भाव देते हैं।

½ प्रतिशत बैङ्ककी 'करैण्ट डिपाजिट्स' दर ⁷⁄₁₆ प्रतिशत आय—तीन मासके ट्रेयरी बिल्जपर ¾ प्रतिशत-बैङ्क तीन मासके डिपाजिटपर देते हैं। १½-१¾ प्रतिशत दर—बारह महीनेके डिपाजिटपर ३ प्रतिशत रिजर्व बैङ्ककी दर।

२.९ प्रतिशत आय—५ प्रतिशत १९४५-५५ऋण पर

३.२५ प्रतिशत आय—'वार सेविंग्ज सर्टिफिकेट'

३.२ प्रतिशत आय—'६ सालवाले डिफैन्स लोन'

३.५० प्रतिशत आय—४ प्रतिशत १९४२-५३ ऋण

३.७० प्रतिशत आय—४॥ प्रतिशत १९५०-५५ ऋण

३.८० प्रतिशत आय—अपरिवर्तनशील ३॥ प्रतिशत स्टरलिंग पेपर

३.८० प्रतिशत आय—४॥ प्रतिशत १९५८-६८ ऋण

३.८० प्रतिशत आय—३॥ प्रतिशत 'सरकारी रुपी पेपर'

४.२० प्रतिशत आय—१९६०-७० ऋण

लन्दन और भारतके सूदके भावोंकी जब हम तुलना करते हैं, तो निम्न आशयके नतीजेपर पहुंचते हैं:—दोनों देशोंके बैङ्क 'डिपाजिट्स' पर लगभग एक-सा ही व्याज देते

हैं। भारतीय सरकारको ब्रिटेनकी अपेक्षा 'ट्रयरी लोन' कुछ सस्ती दरपर मिलते हैं। किन्तु हमारे देशमें बैङ्क रेट और सरकारी ऋण-पत्रकी स्थिति सन्तोषजनक नहीं।

लन्दनमें तीन महीनेके ट्रयरी बिल्जकी सूदकी दर १$\frac{1}{3}$ प्रतिशतके मुकाबलेमें 'बैङ्क रेट' २ प्रतिशत है। जब कि भारतमें तीन मासके ट्रयरी बिल्जके सूदकी दर $\frac{3}{4}$ प्रतिशत हो, तो उसके मुकाबलेमें बैङ्क रेटका ३ प्रतिशत होना एक असाधारण ऊंची दर है। इसके अतिरिक्त यदि सरकार नये 'डिफैन्स लोन' को सफल बनाना चाहती है, तो 'बैङ्क रेट' को २ प्रतिशतसे अधिक न होना चाहिए। रुपी स्टाक्स-की आय स्टरलिंग स्टाक्सको अपेक्षा अधिक है। इसका कारण ऊंचा रिजर्व बैङ्क रेट है। यदि भारतीय मुद्रा-मण्डी सुव्यव-स्थित हो और 'बैङ्क रेट' का अन्य सूदके भावोंपर पूरा नियन्त्रण हो, तो मुद्रा-मण्डीकी शिथिलता दूर हो सकती है।

भारतसे सोनेका निरन्तर निर्यात

गत ८ वर्षोंसे देशका सोना विदेशोंको ढोया जा रहा है। इससे पहले प्रति वर्ष भारतमें सोनेका आयात होता रहा है।

यहां केवल पिछले तीन वर्षोंका ब्योरा देते हैं। १९३८-३९ में भारतसे १३.७९ करोड़ रुपयेका सोना बाहर भेजा गया। १९३९-४० में पिछले वर्षसे अधिक अंशमें सोना बाहर भेजा गया।

अप्रेल	१९३९	—	१.०४ करोड़ रु०
मई	,,	—	१.९६ ,, ,,
जून	,,	—	.७३ ,, ,,
जुलाई	,,	—	३.०९ ,, ,,
अगस्त	,,	—	१.५४ ,,
सितम्बर	,,	—	१.६९ ,, ,,
अक्टूबर	,,	—	९.४८ ,, ,,
नवम्बर	,,	—	३.८० ,, ,,
दिसम्बर	,,	—	६.८० ,, ,,
जनवरी	,,	—	८.१२ ,, ,,

दस महीनोंमें कुल ३३.९४ करोड़ रुपयोंका सोना विदेशको गया। यह बात विशेष वर्णनीय है कि युद्धके छिड़नेके बाद अधिक मात्रामें सोना बाहरको गया। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैङ्कने अपने विदेशी ग्राहकोंके लिए भारतसे दस मास-में (अप्रैलसे जनवरी तक) ९.०८ करोड़ रुपयेका सोना खरीदा। अर्थात् दस महीनोंमें भारतसे ४२.०२ करोड़ रुपये-का सोना विदेशको गया और इसके एवजमें हमें कागजी मुद्रा स्टरलिंगके रूपमें प्राप्त हुई। ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि ऊपर लिखित अवधिमें व्यापारका साम्य (बर्माको मिलाकर) ७८.०३ करोड़ रुपयेकी रकममें भारतके पक्षमें था और ऐसी दशामें बाहरसे सोनेका आयात होना चाहिए।

वर्तमान स्थितिमें सोनेका स्टरलिंग (ब्रिटेनकी कागजी मुद्रा) में परिवर्तन करना आलोचना-रहित विषय नहीं रह सकता। स्टरलिंगके रूपमें रिजर्व बैङ्कके कोष (सुरक्षित धन) का एकत्रित होना आपत्तिजनक नहीं है, विशेषकर जब हमारे देशके राष्ट्रीय ऋणका एक मुख्य भाग स्टरलिंगमें है। परन्तु स्टरलिंगकी वृद्धिके साथ-साथ रिजर्व बैङ्कको अपने सोनेके कोषमें भी क्रमशः वृद्धि करनी उचित है। १९३९-४० में रिजर्व बैङ्कने ७२.६० मिलियन पौण्डका स्टरलिंग खरीदा। रिजर्व बैङ्कके चलन-विभागमें स्टरलिंग सिक्युरिटीज ९९.९० करोड़ रुपयेसे ११३.९० करोड़ रुपये तक बढ़ गयीं। रिजर्व बैङ्कके बाह्य कोषमें स्टरलिंग और सोना दोनों चाहिए। किन्तु सोनेका अनुपात पर्याप्त होना चाहिए। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए ये चार साधन तत्काल ही अपनाये जाने चाहिएः— (१) सोनेके निर्यातपर प्रतिबन्ध लगना चाहिए। (२) रिजर्व बैङ्क अपने विदेशी ग्राहकोंके लिए भारतमें सोना न खरीदे। (३) अमेरिका और भारतके व्यापारसे जो व्या-पारका साम्य देशके पक्षमें हो, उस रकमसे अमेरिकामें सोना खरीदा जावे। १९३९-४० में यह रकम ९.४८ करोड़ रुपये थी। (४) रिजर्व बैङ्कके कानूनमें परिवर्तन हो, जिससे वह स्वतन्त्र हो कि अपने सोनेके कोषका मूल्य सोनेकी प्रचलित दरपर निर्धारित कर सके और बैङ्क भारत और अमे-रिकामें सोना खरीदकर सुरक्षित धनको बढ़ा सके। ९० करोड़ रुपये तथा ३७ मिलियन पौण्डका विदेशी विनिमय भारतने ब्रिटेनको सौंपकर उसकी विनिमयकी कठिनाइयोंको सुलभ बना दिया है। किन्तु ब्रिटिश करेन्सीकी यह सेवा हमारा देश अपनी चलन-स्थितिको हानि पहुंचाये बिना अधिक समय तक नहीं कर सकता।

———

इतिहासका वह गुप्त विजेता—कप्तान तनामा !

श्री सन्तराम, बी० ए०

युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिए जितनी सधे हुए सशस्त्र सैनिकोंकी आवश्यकता है, उतनी ही चतुर और आत्म-त्यागी भेदियोंकी भी है। सशस्त्र युद्ध आरम्भ होनेके बहुत पहले ये भेदिये गुप्त रूपसे शत्रु-देशमें संग्राम करते हैं। उसके सैनिक भेदोंका पता लगाकर अपने देशके सैनिक विभागको सूचित करते हैं। शत्रु-देशमें अपने हथकण्डों और कुटिल चालोंसे विद्रोह फैला देते हैं। वहां फूट डालकर लोगोंको आपसमें लड़ा देते हैं। भेदियेका काम बड़ी जान जोखिम-का होता है। तनिक-सा भी सन्देह हो जानेपर उसे प्राणोंसे हाथ धोने पड़ते हैं। इन भेदियोंका आत्मोत्सर्ग युद्धमें प्राण देनेवाले योद्धाओंसे कुछ कम नहीं होता। नार्वे, पोलैण्ड, हालैण्ड, फ्रान्स आदिमें जर्मनीको जो आश्चर्यजनक विजय प्राप्त हुई है, इसमें उसकी पांचवीं सेना अर्थात् भेदिया-विभागका बहुत बड़ा हाथ है। किसी देशपर आक्रमण करने-के पूर्व वह वहां अपने भेदियोंका जाल फैला देता है। अनुमान किया गया है कि वर्तमान युद्धके आरम्भ होनेके पहले यूरोपके देशोंने एक-दूसरेपर जासूसी करनेके लिए कोई १०,००० मनुष्य नियुक्त कर रखे थे। सन् १९३२ से लेकर सन् १९३४ तक यूरोपमें ६०० से भी अधिक मनुष्य जासूसीके अपराधमें पकड़े गये थे। एक बहुत बड़े रूसी सेनापतिका कहना है कि गत रूस-जापान-युद्धमें रूसके हारनेका कारण भी एक जापानी जासूस था। उसका वृत्तान्त कुछ वर्ष हुए "दि नार्थ अमेरिकन रिव्यू" नामक पत्रमें छपा था। उसका सारांश आगे दिया जाता है।

रूसके जापानसे हार खा जानेके बाद जनरल यब्लोन्स्की नामका एक रूसी अफसर स्वदेश-परित्याग-पूर्वक बर्लिनमें चला आया था। उसके कोटपर बहुत-से सैनिक पदक शोभा दे रहे थे। कभी-कभी वह, अधिक सुरापान कर लेनेपर, कप्तान तनामाकी कहानी सुनाया करता था। वह कहा करता था कि रूसी राज्यक्रान्ति और उसके बाद होनेवाले सारे बोलशे-विकी कूड़ा-करकटका प्रधान कारण केवल एक मनुष्य है, और वह एक मनुष्य है जापानी कप्तान तनामा। यदि वह दुष्ट न होता, तो आज पवित्र रूसमें जारका शासन होता। देखिये, जापानियोंने हमें सन् १९०५ में परास्त किया और पराजयने रूसमें क्रान्तिकारी आन्दोलनको जन्म दिया। जापानी कभी न जीतते, यदि वह विश्वासघाती तनामा न होता। तुमने कभी उसका नाम नहीं सुना ?

"मैंने नहीं सुना।"

इतना कहनेपर वह वृद्ध जनरल, जो कभी जारके भेदिया-विभागमें था, जो कहानी सुनाया करता था, वह यों है:—

जनरल यब्लोन्स्की कहानीका आरम्भ करते हुए कहा करता था कि कप्तान तनामा पहले-पहल सन् १९०१ में जापानी राजदूतका सैनिक सहायक बनकर सेण्टपीटर्सबर्गमें आया था। मेरा अनुमान है कि वह किसी विशिष्ट वंशका था। जापानी प्रायः ठिगने होते हैं, परन्तु वह लगभग छः फुट ऊंचा था। उसके चेहरेकी रङ्गत कांसेकी ऐसी और कुरूप थी, जैसी कि तिब्बती लोगोंके बनाये हुए राक्षसोंके नकली चेहरोंकी हुआ करती है। वह असुन्दर अवश्य था, परन्तु वर्दी पहन लेनेपर वह अनोखा दीखता था और स्त्रियां उसकी ओर खिंची हुई जान पड़ती थीं।

उन दिनों मैं कप्तान था और सैनिक भेदिया-विभागके मुखियाके सहायकके रूपमें काम करता था। स्वभावतः ही हमारी तनामामें दिलचस्पी थी। वह वैदेशिक मिलिटरी अटाची (सैनिक सहायक) था। यह "गुप्तचर" का ही दूसरा शिष्ट नाम है। वह अपने देशके एक बहुत पुराने वंशमेंसे था। उसका पिता जापानके राजा मिकादोका निकटतम सलाहकार था। सुशिक्षा और विदेशोंके दीर्घ प्रवासने उसे प्रगल्भ सौन्दर्य एवं शिष्टता प्रदान की थी। इसलिए किसी भी सभामें वह झट लोगोंकी निगाहमें चढ़ जाता था।

सच्ची बात तो यह है कि हम उसमें सामान्यसे अधिक दिलचस्पी लेते थे। हम जानते थे कि एक दिन हमें सुदूर पूर्वमें जापानियोंके साथ अवश्य युद्ध करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त तोकियोसे हमारे अपने एजेण्ट भी हमें समाचार भेज

रहे थे कि जापानी युद्ध-कार्यालयको हमारे सैनिक रहस्यों-का निरन्तर पता लग रहा है। यह बात निश्चित थी कि तनामा हमें बता सकता था कि हमारे भेद कैसे बाहर निकल जाते हैं।

उसे एक ढङ्ग आता था, जिससे वह सबको—कर्मचारियोंको, अभिनेत्रियोंको, राजपुरुषोंको—एकदम मित्र बना लेता था। मित्र बनानेके बाद, मित्रसे काम लेना कोई मुश्किल नहीं रह जाता। तनामाके पास प्रचुर धन था और वह बड़ा भारी जुआरिया था। वह सदा हारता था, परन्तु मुस्कराता रहता था। वह इतनी भारी-भारी रकमें हार जाता था, जिनसे फिर मुस्कराते रहना कठिन हो जाता है। मेरे साथी दो अफसरोंने जापानी कप्तानसे जीते हुए रुपयेसे अपनी प्यारियोंके लिए हीरे खरीदे।

एक वर्ष तक हमने उसपर बड़ी चौकसीके साथ आंख रखी। परन्तु परिणाम कुछ न हुआ। जिसभी रूसी अफसरके साथ उसकी मित्रता होती थी, हम उसको देखते थे। परन्तु हमें कोई भी सन्दिग्ध बात नहीं मिली। नगरमें बहुत-सी लड़कियोंसे भी तनामाका मेल-जोल था। परन्तु वे सामान्य प्रकारके सम्बन्ध थे। हम जानते थे, क्योंकि लड़कियोंको हमारे कार्यालयसे बराबर वेतन मिलता था। फिर भी तोकियोसे हमारे एजेण्टोंकी जो भी रिपोर्ट आती थी, उसमें यही कहा होता था कि अभी तक दरार है और हमारे भेद बराबर जापानियोंको पहुंच रहे हैं।

एक काम था, जो हम कर सकते थे। हम इस आशासे तनामाको अपने देशसे बाहर निकाल सकते थे कि उसकी जगह आनेवाला दूसरा मनुष्य न तो उतना चालाक होगा, न उसके समान पेटमें घुस जानेवाला सुन्दर, और न उतना कार्यक्षम। हमने सोचा कि तनामाको कलङ्कित करनेकी धमकी दी जाय। हमें आशा थी कि इससे या तो वह रूस छोड़ जायगा या आत्म-हत्या कर लेगा। हमारे लिए दोनों बातें एक समान थीं। हम तो उससे किसी प्रकार छुटकारा चाहते थे।

उसको "बनाना" आसान था। इलियन्स्काया नामकी एक अभिनेत्रीसे उसकी बहुत अधिक मित्रता थी। हम उस अभिनेत्रीके पास गये और उसे बताया कि हम क्या चाहते हैं। परन्तु उससे सहायता देनेका वचन लेनेके लिए हमें उसे धमकी देनी पड़ी। मेरा विचार है, वह वस्तुतः उस धूर्तपर प्रेम करती थी। परन्तु अन्तको उसने वचन दे दिया।

एक दिन सायङ्काल वह कप्तान तनामाके पास गयी और कहने लगी कि आपके लिए मेरे साथ एकदम विवाह कर लेना आवश्यक है। परन्तु तनामाने बड़ी शिष्टताके साथ विवाह करनेसे इनकार करते हुए कहा कि जब कोई जापानी अफसर किसी गैर-जापानी स्त्रीसे विवाह करता है, तो उसके लिए अपने देशकी नौकरी छोड़ देना आवश्यक हो जाता है। इसके अतिरिक्त, कुछ देर सोचनेके बाद, उसने कहा कि जापानमें मेरी एक पत्नी भी है। उसने इलियन्स्कायाको रुपया पेश किया। परन्तु उसने उसे छूने तकसे इनकार कर दिया। वह बोली—"या तो मेरे साथ विवाह करो, नहीं तो मैं सब बात फैला दूंगी। आप कल रात तक सोच लें। मैं कल रात उत्तर लेने आऊंगी।"

दूसरे दिन मेरे टेलीफोनकी घण्टी बजी। कप्तान मुझे बहुत शीघ्र मिलनेके लिए बुला रहा था—"बहुत जरूरी काम है।"

मैं उसके कमरेमें गया। मुझे कहना पड़ता है कि वह निष्कपट था, क्योंकि उसने स्पष्ट ही कहा—

"क्या आपको इलियन्स्कायाके मामलेका पता है?"

मैं निष्कपटतासे काम न ले सका। मैंने कहा—"मुझे कुछ मालूम नहीं।"

उसने संक्षेपमें सारा मामला समझाया और कहा कि यदि अभिनेत्रीने सचमुच मेरी बदनामी फैलायी, तो आप जानते हैं मुझे क्या करना पड़ेगा? मुझे कायर मत समझिये। मैं कलङ्क, वरन् आत्म-हत्यासे भी नहीं डरता। परन्तु मेरा परिवार बड़ा प्रतिष्ठित और प्राचीन है। मेरे पिता जापान-सम्राट्की प्रिवी कौन्सिलके मेम्बर और बहुत वृद्ध हैं। मैं नहीं सहन कर सकता कि उनके जीवनके अन्तिम दिनोंमें उन्हें मेरे कलङ्ककी बात सुननी पड़े। वे भी मेरे बाद, मेरे ही सदृश, कलङ्कपूर्ण मृत्युका आलिङ्गन करेंगे और मेरा चचा। आप हम जापानियोंको नहीं जानते।

तब अकस्मात् उसने मेरे मुखमण्डलकी ओर घूरकर देखा और कहा—"कप्तान महाशय, आप चाहें तो मेरी सहायता कर सकते हैं। कहिये, इसके लिए आप क्या लेंगे?"

मैं मनमें प्रसन्न हो रहा था कि इतनी आसानीसे

हमारा काम बन गया। परन्तु मैंने कृत्रिम सङ्कोचसे कहा—"मुझे विश्वास नहीं कि मैं आपकी सहायता कर सकता हूं। हर हालतमें आपको रूस छोड़ना पड़ेगा।"

"वेशक। इसके अतिरिक्त और क्या?"

इस प्रश्नके सङ्केतसे मैं इतना घबरा गया कि मैं शुद्ध रूपसे विचार न कर सका। परन्तु मैंने ज्यों-त्यों करके कहा—"इस विषयमें मैं अपने अफसरोंसे बात करूंगा।"

मैं अपने कार्यालयमें लौट आया और जो बातचीत हुई थी, वह सब अपने साथियोंसे कह सुनायी। एक जापानी अफसर और वह भी एक बहुत उच्च वंशका, एक साधारण अभिनेत्रीके साथ मिलापके कलङ्कसे बचनेके लिए एक प्रबल शत्रुके भेदिया-विभागको सहायता देनेको तैयार है, इस विचारपर वे खिलखिलाकर हंस पड़े। मेरे अफसर मेजर ओब्लोमोवने कहा—"वह हमें भोंदू समझता है। जापानको इस समय इस बातकी भारी आवश्यकता है कि हमें झूठी जानकारी दे। परन्तु इस जापानी अफसरके साथ न खेलना हमारे लिए लज्जाकी बात होगी। हमें उसे कहना चाहिए कि हमें पोर्ट आर्थरके इर्द-गिर्द और दक्षिण मञ्चूरियामें जापानी सेनाकी गतिविधिके मानचित्रोंकी नकलें भेजे। देखें तो सही, भला जापानियोंका युद्ध-महाविद्यालय हमारे लिए क्या करता है। हमें निश्चय हो सकेगा कि वास्तवमें वह इसके सर्वथा विपरीत करेंगे।"

इस विचारको सबने पसन्द किया। इसपर वाद-विवाद करनेके पश्चात् हमने तनामाका खेल खेलनेका निश्चय कर लिया। वह दूसरे दिन सेण्टपीटर्सबर्ग छोड़ गया। सन् १९०२ के ग्रीष्म-कालका अन्त था। युद्ध अनिवार्य जान पड़ता था। हम अपने आयोजनोंमें लगे हुए थे।

हम तनामाको भूल चुके थे। दिसम्बर १९०२ में एक दिन तोकियोसे हमारे मिलिटरी अटाचीका भेजा हुआ पैकेट सरकारी थैलीमें बन्द होकर आया। इसमें पोर्ट आर्थरके गिर्द जापानियोंके प्रस्तावित युद्धका सारा ब्योरा दिया गया था। इसमें दिखाया गया था कि सेनायें जहाजपरसे कहां उतरेंगी, उनकी बांट कैसे होगी और वे कहां-कहां भेजी जायंगी।

हमने मानचित्रोंको बड़ी सावधानीसे देखा। प्रस्तावित सैनिक चालोंमें अनेक अनोखी बातें थीं, जिनसे हमें आश्चर्य हुआ। प्रत्येक बात अतीव सावधानीके साथ की गयी थी। मेजर ओब्लोमोवने कहा, इन-जैसे कलाके नकली कामोंमें भी जापानी लोग बड़े सम्पूर्ण हैं।

एक अफसरने कहा—"कदाचित् ये सच्च मानचित्र हैं।"

"फिजूल। अलबता वे लोग इस प्रकारका छल बड़े ही प्रामाणिक ढङ्गसे करते हैं।"

यह सामान्य मत था। इन मानचित्रोंको आलमारीमें रख दिया गया और भुला दिया गया।

छः मास बाद सन् १९०३ की ग्रीष्ममें उसी रीतिसे मानचित्रोंका एक दूसरा समूह आ पहुंचा। वही विस्तार, वही सावधानी। ये मानचित्र मञ्चूरिया प्रायद्वीपपर होनेवाली लड़ाईके लिए थे। जिस सावधानीके साथ ये कल्पनायें तैयार की गयी थीं, उसे देखकर हमारे डिपार्टमेण्टमें बहुत-से कर्मचारी सन्देहमें पड़ गये। अब दो-तीन अफसरोंने कहा कि सम्भव हो सकता है कि ये कल्पनायें सच्ची हों। ऐसी दशामें हमें सावधानीके साथ इनका अध्ययन करना और इनको विफल करनेके लिए अपनी कल्पनाओंका संशोधन करना चाहिए। परन्तु ऐसे कामके लिए हमारी आत्मरक्षाके लिए तैयार की हुई अपनी चालोंके सम्पूर्ण संशोधन की आवश्यकता थी। इसलिए ये मानचित्र भी अन्तको आलमारीमें ही फेंक दिये गये।

उसी वर्षके दिसम्बर मासमें यलू नदीके साथ-साथ होनेवाली लड़ाईके नक्शोंका तीसरा समूह आया। इस बार सामान्य वाद-विवादके लिए कोई अवसर न था। इस तीसरे पैकेटके पहुंचनेके एकाध दिन बाद तोकियोसे एक चौंका देनेवाला समाचार मिला। यह समाचार बिलकुल विश्वास करने योग्य न था। परन्तु हमारे जापान-स्थित सैनिक दूतने उसका समर्थन किया था। समाचार था—तनामा युद्ध-कार्यालयसे मानचित्र चुराता हुआ पकड़ा गया और भेदिया होनेके अपराधमें उसे प्राणदण्ड मिला।

पहले तो हम इसे एक और जापानी चाल समझकर इसकी अवहेलना करना चाहते थे, परन्तु हमारी जानकारीके जितने भी साधन थे, उन सबने इसको सच बताकर इसका समर्थन किया। जो थोड़ा-बहुत सन्देह बाकी था भी, वह

भी थोड़े दिन बाद एक कहानीने दूर कर दिया। संसारके पत्रोंमें छपा कि कप्तान तनामाके पिता, प्रिवी कौन्सिलके प्रिन्स तनामाने अपने पुत्रकी अपमानजनक मृत्युका समाचार सुनकर आत्महत्या कर ली है।

हमारी आलमारीमें जापानी मानचित्रोंके तीन सेट थे। हमने बड़ी तीव्रतासे उनको देख डाला। अपनी युद्ध-सम्बन्धी चालोंका संशोधन करनेमें हमने दिन-रात एक कर दिया, ताकि जापानियोंके इन सैनिक सङ्गठनोंको मात कर सकें। तब फरवरी सन् १९०४ में युद्ध छिड़ा; हां वह युद्ध छिड़ा, जिसका परिणाम अन्तमें सन् १९०५ की राज्यक्रान्ति और तत्पश्चात् सन् १९१७ की राज्यक्रान्ति हुआ।

अप्रैलमें यलू नदीपर चिऊलिइनचेङ्गकी स्थितिपर हमें पीछे हटना पड़ा। ३० अप्रैल सन् १९०४ की वहांकी लड़ाई संसारकी एक महत्त्वपूर्ण लड़ाई है। वहां संसारके आधुनिक इतिहासमें पहली बार पीतवर्ण लोगोंकी सेनाने गौराङ्ग लोगोंकी सेनाको पराजित किया। सुदूर पूर्वमें जापानियोंका विचार कीजिये। आज वे कैसी मनमानी कर रहे हैं। और लगभग ३६ वर्ष पहले यलूकी लड़ाईको याद कीजिये।

हमारे पास वहां जापानियोंके मानचित्र थे। परन्तु जहां हमने जापानियोंको रोकनेके लिए एक रेजिमेण्ट खड़ी की, वहां पहले ही दो जापानी रेजिमेण्टें हमारा सामना करनेके लिए मौजूद थीं। जहां हमारा एक तोपखाना था, वहां जापानियोंके दो थे। अन्तमें हमारी सेनामें भगदड़ मच गयी। हमारी सेनाका पिछला भाग बिलकुल नष्ट हो गया, क्योंकि इसके बायें पार्श्वकी सेना गलत दिशासे पीछे हटी। हम गलत दिशामें क्यों गये ? यदि कप्तान तनामाको सचमुच गोलीसे उड़ा दिया गया था, तो मैं समझता हूं, उसकी प्रेतात्माको इसका ज्ञान था।

परन्तु अब अपनी सारी युद्ध-सम्बन्धी चालोंका संशोधन करना कठिन था। वे तनामाके नक्शोंके आधारपर बनायी गयी थीं। अतः नाशनपर, मुकदनपर और पोर्ट आर्थर पर हमारी हार हुई। इतिहास बताता है कि हम युद्धमें इसलिए हार गये, क्योंकि साइबेरियाके वार-पार जानेवाला रेल-पथ पर्याप्त शीघ्रतासे सैनिक एवं गोदाम नहीं पहुंचा सकता था। परन्तु यह बात सर्वथा व्यर्थ है। हमारे पास पर्याप्त सैनिक थे। जापानियोंसे अधिक थे। परन्तु वे हर बार गलत जगहपर थे।

मैं लड़ाईपर था। दिसम्बर सन् १९०४ में मैंने बाकी कहानी एक बन्दी बनाये जानेवाले जापानी अफसरसे सुनी। मैंने तनामाके विषयमें उससे पूछा।

बन्दीने उत्तर दिया—"वह एक बहुत बड़ा राष्ट्रीय वीर है। सम्राट्ने उसे और उसके परिवारको उदीयमान सूर्यके सम्मानसे सम्मानित किया है।"

"तब क्या सचमुच उसको प्राणदण्ड नहीं दिया गया था ?"

"हां, उसे भेदिया ठहराकर प्राणदण्ड दिया गया था और अपमानित किया गया था। परन्तु कुछ मास हुए, असली कहानी प्रकाशित की गयी थी। उसमें बताया गया था कि उसने किस प्रकार बड़े चावके साथ कलङ्क एवं मृत्युको स्वीकार किया था, ताकि तुम रूसियोंको पूरी तरहसे धोखा दिया जा सके। यह एक बहुत बड़ी प्रतिष्ठा थी।"

"और उसका पिता ?"

"निस्सन्देह उसने भी आत्महत्या कर ली थी। यह भी उसी प्रकार एक बड़ा सम्मान था।"

इस प्रकार रूस-जापान-युद्धमें हमारी पराजय हुई। परन्तु तुम उन लोगोंका क्या बिगाड़ सकते हो, जो तुम्हें मात करनेके लिए गोलीके सामने छाती तानकर खड़े हो सकते हैं, जो अपने देशके लिए जानकी बाजी लगा सकते हैं।



वर्तमान युद्ध और अहिंसा

श्री कस्तूरमल बांठिया, बी० काम०

महात्मा गांधीने ब्रिटिश सचिवसे नाजियोंके विरुद्ध शस्त्रास्त्रोंको छोड़कर अहिंसात्मक प्रतिरोध करनेकी प्रार्थना की थी और ऐसे प्रतिकारका स्वयं नेतृत्व भी स्वीकार करनेका उन्हें विश्वास दिलाया था। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलने उस अपीलका जो उत्तर दिया, उसपर विवेचन करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। क्योंकि जब महात्माजीको अपने उन कट्टर अनुयायियोंका भी, जिन्होंने पिछले २० वर्षोंसे चले आते हुए देशके स्वातन्त्र्य-युद्धमें उनका अविरोध नेतृत्व स्वीकार कर रखा था, सहयोग न मिल सका, और इसलिए उन्होंने इस विषयमें कांग्रेसकी ओरसे किये गये निर्णयके लिए महात्माजीको स्वतन्त्र कर दिया, तो दूसरोंकी बात करना ही फिज़ूल है। क्योंकि पाश्चात्य संसारके लिए तो यह सन्देशा बिलकुल ही अपरिचित और अनोखा है।

युद्ध, यह तो हमें मानना ही पड़ेगा कि, पशुबलका ही पूर्ण प्रदर्शन है। और इसमें विचारशील तभी प्रवृत्त होते हैं, जब उनकी विचार-बुद्धि एकान्त और पूर्ण स्वार्थान्ध हो जाती है। मौजूदा युद्धका तुर्तका कारण भी, कहा जाता है कि नाजियोंके सर्वेसर्वा हिटलरका ऐसा ही एकान्त और पूर्ण स्वार्थान्ध विचार है। ऐसे पशुबलका सामना अकेला सांसारिक व्यक्ति तो कर ही नहीं सकता। योगी अथवा पहुंचे हुए व्यक्तियोंकी बात निराली है। जिस धरातलमें सांसारिक व्यक्ति रहते हैं, उससे जुदे ही धरातलमें ऐसे योगी और पहुंचे हुए व्यक्ति रहते हैं। उन्हें मरण-भय, जो हम सांसारिक व्यक्तियोंमें जन्मगत संस्कार-सा चिपटा हुआ है, होता ही नहीं। इसका प्रधान कारण यह है कि ऐसे व्यक्ति अपने आपको हर तरहकी सांसारिक जिम्मेदारियोंसे मुक्त मानते हैं। उनके जीवन-मरणके साथ किसी दूसरेका जीवन-मरण अवलम्बित नहीं रहता। इसलिए आमरण सत्याग्रह कर विपक्षीकी विचार-धारा बदल सकनेमें कभी-कभी वे सफल भी हो जाते हैं।

महात्माजीके अनुसार अहिंसास्त्र बलिष्ठका अस्त्र है। और यह बात सच भी है। यह बलिष्ठपन केवल शारीरिक होनेसे ही तो अहिंसास्त्रके प्रयोगकी किसीको क्षमता नहीं आ सकती। उसके साथ-साथ प्रयोगककी आत्मा भी बलिष्ठ होना आवश्यक है। जिसकी आत्मा बलिष्ठ हो, उसका शरीर चाहे महात्माजी-जैसा कमजोर ही क्यों न हो, फिर भी वह अहिंसास्त्रका अत्याचारके प्रतिकारमें प्रयोग कर सफलता प्राप्त कर सकता है। क्योंकि बलिष्ठ आत्मावालेका अपने पाशविक वेगोंपर पूर्ण काबू होता है। मनुष्य स्वभावसे तो पशु ही है। अपने ज्ञानसे वह प्रच्छन्न पशुत्वपर विजय पानेकी निरन्तर चेष्टा कर रहा है। परन्तु सफल बिरला ही होता है। अस्तु, जब तक पशुत्वका अंश-मात्र भी मनुष्यकी आत्मामें कायम हो, उसका अन्त तक अहिंसक रहना प्रायः असम्भव है।

अहिंसा भी बलि चाहती है। अन्तर केवल इतना ही है कि इसमें अहिंसक अपनी बलि स्वयं दे देता है, परन्तु अत्याचारीकी बलि नहीं होने देता। वह अपने अहिंसक दलकी बलिसे अत्याचारीका हृदय बदल देना चाहता है। क्या ऐसा हृदय-परिवर्तन मामूली बलिसे हो सकता है? क्या समाजका प्रत्येक व्यक्ति आज इस प्रकार अपनी बलि सहर्ष दे सकता है? हम इन प्रश्नोंका उत्तर यहां देना नहीं चाहते। हम सब इन्हें जानते और समझते हैं।

फिर भी, मान लिया जाये कि सच्चा अहिंसक दल बनाया जा सकता है; परन्तु उसका निरन्तर कायम रखना टेढ़ी खीर है। अत्याचारी यह जानते हुए भी कि सच्चा अहिंसक उसके अत्याचारके विरुद्ध कभी भी शस्त्र न उठायेगा वरन् अपने प्राण सहर्ष दे देगा, वह यह बात नहीं भुला सकता कि साधारण मनुष्य उसीके समान हाड़-मांसका बना हुआ है, उसमें प्राणोंका मोह है, और उसीकी तरह साधारण मनुष्यको अपने पशुत्वपर विजय पा लेना आसान नहीं है। इसलिए वह उस समयकी प्रतीक्षामें, जब तक कि अहिंसाके सिपाहीमें प्रच्छन्न पशुत्व जागरित न हो, उसे अनेक तरहसे गुमराह करनेकी कोशिश करता है। और जब सबका भी सब्र समाप्त होकर बेसब्री आ जाती है, तो निरस्त्र

अहिंसकका भी धैर्य छूट जाता है। उसकी सब बलि निरर्थक हो जाती है। ऐसी दुर्घटनाओंसे भी सच्चे अहिंसककी आत्मिक उन्नति हुई भले ही मान ली जाये, परन्तु उसकी सांसारिक उन्नतिमें तो बाधा पड़ ही जाती है।

अहिंसाका मौजूदा समष्टि प्रयोग प्रत्यक्षतः सांसारिक उन्नति और उत्कर्षके लिए किया जा रहा है, इस बातसे हम इनकार नहीं कर सकेंगे। आत्मिक उन्नतिका लक्ष्य जहां एकान्त वैयक्तिक है, वहीं सांसारिक उन्नतिका लक्ष्य वैयक्तिक और समष्टि है। यही कारण है कि सांसारिक उन्नतिको लक्ष्यमें रखकर काम करनेवाले अहिंसकको अपने साथ-साथ समाजके बड़ेसे बड़े हिस्सेको भी उसी रास्तेपर चलानेकी सतत् चेष्टा करनी पड़ती है, जिससे कि वह सांसारिक उन्नति प्राप्त करना चाहता है। इस प्रयासमें उसे यह भी खयाल रखना अनिवार्य हो जाता है कि समाजका प्रत्येक व्यक्ति उस-जैसा विकसित, संयमित और विचारक नहीं है। और सबने पशुत्वको सर्वथा गलाया नहीं, वरन् सिर्फ दबा-भर दिया है। अहिंसाके आदि प्रवर्तक भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर दोनोंको इस मानवीय कमजोरीका कितनी ही बार उसी तरह अनुभव हुआ था, जैसा कि आज महात्माजीको भी हो रहा है।

सांसारिक उन्नतिके लिए, हमें स्वीकार करना होगा कि भय भी आवश्यक है। अत्याचारीका विरोध भी सांसारिक उन्नतिके लिए ही किया जाता है। इसलिए हमें अत्याचारीका सक्रिय अहिंसात्मक प्रतिरोध करते हुए भी, यह भय अत्याचारीके दिलमें बैठाना आवश्यक है कि अन्तमें उसे दण्ड तक भी दिया जा सकता है। यह भय बातोंका नहीं, अपितु और भी हो सकता है। निर्बलका ही बल शस्त्र है, और सबल अथवा बलिष्ठका नहीं, यह कहना अनुचित है। शस्त्रका काम जैसे मारना और घात करना है, वैसे ही रक्षा करना भी है। इसीलिए शस्त्र एक हद तक अहिंसक रहते हुए अत्याचारीको अत्याचारसे विरत करनेकी चेष्टा कर सकता है। परन्तु इसपर भी यदि अत्याचारी अपने अत्याचारसे बाज न आवे, तो उसका अन्तमें शस्त्रपूर्ण विरोध करना भी इसलिए फर्ज हो जाता है कि उसमें सामूहिक सुख है। सांसारिक उन्नतिका अधिकतम लोगोंका अधिकतम सुख सर्वत्र और सर्वकालमें हो, यही तो लक्ष्य हो सकता है।

सांसारिक और आत्मिक, इस प्रकारसे जैसे दो लक्ष्य हो सकते हैं, उसी प्रकार अहिंसाकी भी दो श्रेणियां हो सकती हैं, जिनमें एकका लक्ष्य सांसारिक उन्नति है तो दूसरीका आत्मिक उन्नति। ये श्रेणियां कोई नयी नहीं हैं। अहिंसाके आदि प्रवर्तक जैन तीर्थङ्करोंने इसे सदैव ही प्रतिपादित किया था और आज भी जैन-शास्त्र यह स्पष्ट प्रतिपादित करते हैं। उनके अनुसार एकान्त आत्माकी उन्नति चाहनेवाले साधुको सदा-सर्वदा पूर्ण अहिंसाव्रती होना होता है। वह मनसे, वचनसे और शरीरसे किसी भी तरह कभी भी किसीकी हिंसा नहीं कर सकता। और यदि वह ऐसा करता है, तो अपने पथसे विपथगामी होता है। और साधु वह है, जो सब कुछ छोड़ देता है और निवृत्ति-मार्ग अवलम्बन करता है।

पक्षान्तरमें जो प्रवृत्ति-मार्गी है, यानी गृहस्थ है, उसके लिए सांसारिक उन्नति प्रधान लक्ष्य है और आत्मिक उन्नति गौण। उसके लिए जैन-धर्म सिर्फ सवा विस्वा यानी १/१६ अहिंसक रहना ही सम्भव स्वीकार करता है। क्योंकि मनुष्यके कर्मक्षेत्रके अनुसार ही तो उसका धर्म निभ सकता है। दरिद्री जैसे महादानी नहीं हो सकता, वैसे ही सांसारिक मनुष्य संन्यासीकी तरह पूर्ण अहिंसक भी नहीं हो सकता। अपने गृहस्थ धर्मकी रक्षाके लिए सब तरहके नीतिमय उपाय काममें लाना उसका कर्तव्य है। ऐसे ही उपायोंमेंसे सशस्त्र रक्षाका भी उपाय है।

उदाहरणके लिए मान लीजिये कि कोई आततायी आपकी ही स्त्री, पुत्री अथवा भगिनीपर बलात्कार करनेको उद्यत है। क्या उस समय आप सिर्फ अहिंसात्मक प्रतिरोध करके ही उनके सतीत्वकी रक्षा करें? नहीं, आपका तब किसी भी उपायसे उन अबलाओंके सतीत्वकी रक्षा करना परमधर्म होगा। और यदि आप ऐसा नहीं करेंगे, तो आप अपने धर्मसे ही नहीं, अपितु मनुष्यत्वसे भी गिर जाते हैं।

हिंस्र पशुके आक्रमणसे शस्त्र द्वारा भी रक्षा करना, जैसे मनुष्य-मात्रका कर्तव्य है, वैसे ही अत्याचारसे अन्तमें शस्त्रकी सहायतासे छुटकारा पाना धर्म है। और तब उससे होनेवाली हिंसा सबके लिए क्षम्य भी है। सत्य और अहिंसा ये दो ही तो परमधर्म हैं। परन्तु सांसारिक व्यक्ति-

के लिए नीतिकारोंने 'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात, सत्यमप्रियमाब्रूयात्' कहकर अप्रिय सत्य नहीं कहनेकी मनाही कर दी है। इसी तरह अत्याचारका अन्त करनेके लिए शस्त्र ग्रहण करना भी सांसारिक व्यक्तिके लिए अधर्म नहीं है। तो फिर सशस्त्र फौज रखना ही क्योंकर अधर्म हो सकता है। यह जो बलिष्ठकी रक्षाके साधन-मात्र हैं, जिनका उपयोग अत्यन्त सङ्कट आ पड़नेपर ही विवेकशील मनुष्य करनेकी हिम्मत कर सकता है। क्योंकि जान दे देनेपर ही तो अत्याचारका अन्त नहीं हो जाता। हमारा लक्ष्य सिर्फ अत्याचारका अन्त करना है, न कि अत्याचारीको मारना। परन्तु अत्याचारके अन्त करनेमें अत्याचारी यदि मर जाये, तो वह सम्भव है। इससे हमारी अहिंसा-भावनामें कोई अन्तर नहीं पड़ता।

मनुष्यको देवता समझनेका प्रयत्न ही हमें मुगालतेमें डाल रहा है। मनुष्य सामान्यतया मनुष्य ही रहेगा। मनुष्योंमें कोई-कोई मनुष्योत्तर भी हुए और होते हैं; परन्तु ऐसे मनुष्योत्तर व्यक्ति अपवादरूप हैं। इसलिए उनका जीवन हमारे लिए आदर्श तो अवश्य हो सकता है; परन्तु कर्तव्य नहीं। आज हमें कर्तव्यपरायणताकी नितान्त आवश्यकता है।

इसलिए विशाल पैमानेपर—उस पैमानेपर कि हिटलर-जैसे आततायीसे राष्ट्र अपनी रक्षा करनेके लिए भी केवल-मात्र अहिंसाका ही सहारा लें, यह भ्रमपूर्ण विचार है। ब्रिटेन अपनी स्वाधीनता खोकर अहिंसाके प्रति ऐसा भाव दिखाये, ऐसी आशा करना व्यर्थ है।

जो गाना था मैं गा न सका

उस दिन मानवका मन देखा
कितनी गहरी विषाद-रेखा
सोचा, सुषमासे भर दूं, पर खुद मुरझाया रस ला न सका।
जो गाना था मैं गा न सका।

जीवनका नव सङ्गीत अमर
चूमने चला ज्यों मधुर अधर
कम्पनमें ही खो गया और खोया स्वर मैं फिर पा न सका।
जो गाना था मैं गा न सका।

लेकर प्रदीप जब पथिक सजग
कर गया पार सीधा-सा मग
वातूल त्रिपथपर मिला, दीप बुझ गया, पन्थ मैं पा न सका।
जो गाना था मैं गा न सका।

कर कर शास्त्रोंका सुधा-पान
पाया तो देवत्वाभिमान
अपनी लघुताके बन्धनको हत-मानव किन्तु भुला न सका।
जो गाना था मैं गा न सका।

यों तो चलता जाता ही हूं,
कुछ रोता कुछ गाता ही हूं,
कुछ खोता कुछ पाता ही हूं, पर पाना था जो, पा न सका।
जो गाना था मैं गा न सका।

—प्रभुदयालु अग्निहोत्री।

'विश्वमित्र'के पाठकोंको दीपावलीके उपलक्षमें

सिरीज नं० १

विराट उपहार !

३० नवम्बर तक रियायती मूल्यमें पुस्तकें

नारी रत्न-मालाकी कुछ संग्रहनीय पुस्तकें

सिरीज नं० १ की कुल पुस्तकें एक साथ मंगानेसे ५||=) के बदलेमें ४) में ही मिलेंगी। डाक व्यय या रेल खर्च पृथक्। आर्डरके साथ २) पेशगी भेजिये। स्टेशनका नाम लिखना न भूलिये।

स्टाक खाली हो रहा है! शीघ्रता कीजिये !!

सावित्री-सत्यवान

सावित्रीकी पवित्र कथा, भारतीय नारी जातिकी प्राचीन गौरव-गरिमा और उसके उज्जल आदर्शका परिचय देती। यही कथा है जिसके नित्यके पाठ करने से हमारी बहू-बेटियाँ अपने जीवनको पवित्र और आदर्श बनानेके लिये वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं। अनेक रंग-बिरंगे चित्रोंसे सुसज्जित मूल्य केवल ||)

नल-दमयन्ती

(पवित्र पौराणिक उपन्यास) इसमें राजा नल और परम साध्वी पति-भक्ति-परायणा दमयन्तीकी मनोरञ्जक कथाका वर्णन है। मूल्य ||)

शैव्या-हरिश्चन्द्र

(अनेक रंग-बिरंगे चित्रोंसे सुसज्जित) साम्य-वादी राजा हरिश्चन्द्र और उनकी सती शिरोमणि रानी शैव्याकी करुण-कथा पढ़कर रोमांच हो जाता है। मूल्य ||)

सीता-देवी

(सचित्र) इस पुस्तकमें आदिसे अन्ततक सीता-की पवित्र कथाका बड़ा मनोरञ्जक वर्णन किया गया है। मूल्य ||=) आना।

सुभद्रा

इस पुस्तकमें वीर-प्रसविनी सुभद्राके चरित्रके साथ ही साथ महाभारतके संग्राममें वीर-बालक अभिमन्युके बल-विक्रम और अद्‌भुत पराक्रमी बातें पढ़नेको मिलती हैं। बहुत रंगीन चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य केवल ||=)

शकुन्तला

इसमें दाम्पत्य प्रेम, नारी-धर्म स्त्री-कर्तव्य और गृहिणी गौरवकी वह सुनहरी और दिव्य ज्योति जग-मगाती हुई देखनेको मिलती है जिससे भारतीय नारीत्व का आदर्श हो उठा है। मूल्य ||)

सती-पार्वती

इस पुस्तकमें सतीका स्वयंबर, सतीकी तपस्या, दक्ष-यज्ञमें शिवका अपमान, यज्ञ भङ्ग, प्रेम-परीक्षा आदि खूबीसे वर्णित की गयी हैं। अनेकों चित्रोंसे सुशोभित पुस्तकका मूल्य केवल ||)

शर्मिष्ठा-देवयानी

(सचित्र) इस चरित्रसे सत्यनिष्ठा और स्त्रियो-चित कर्तव्यकी शिक्षा मिलती है। मूल्य ||=)

संयुक्ता

(सचित्र) पृथ्वीराजका बदला लेनेके लिये जिस प्रकार वीर-क्षत्राणी संयुक्ताने अपनी तलवारसे युद्धमें सैकड़ों दुश्मनोंको गाजर मूलीकी तरह काट दिया था, उसका अद्‌भुत बर्णन पढ़कर रोम-रोम वीरता और साहसका संचार हो उठता है। ऐसा उत्तम और वीरता-पूर्ण चरित्रोंसे भरी हुई पुस्तक प्रत्येक बालक और बालिकाके हाथमें देनी चाहिये। मूल्य केवल ||=)

देवी-द्रौपदी

यह उपन्यास महाभारतसे लिखा गया है। इसमें द्रौपदीके जन्म, बाल्यकाल, स्वयंबर और बिवाहकी बातें तथा पाण्डवोंके राज्य हरण, वनबास, युद्ध और विजयकी कथा बड़े मनोरञ्जक ढङ्गसे वर्णित है। मूल्य केवल ||=)

मिलनेका पता :—**पोपुलर ट्रेडिंग कम्पनी**, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता।

जर्मन-सोवियट व्यापार और उसका अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व

श्री दिल्लीरमण रेग्मी, एम० ए०, एम० लिट्

जर्मनी और सोवियट रूसके व्यापारिक सम्बन्धका, सैद्धान्तिक मतभेद रहनेपर भी, कभी विच्छेद नहीं हुआ, बल्कि वह सुव्यवस्थित रूपमें चल रहा था, जो अब सितम्बरके ऐतिहासिक पैक्टके करनेसे और भी मजबूत आधारपर खड़ा हो गया है। और १९२२ में, जब कि रूस यूरोपके राष्ट्रोंमें अछूत समझा जाता था, जर्मनीने उसके साथ रेपेलोकी सन्धिपर हस्ताक्षर करके दुनियाको दिखा दिया कि व्यापार-क्षेत्रमें छुआछूतका, जिसकी बुनियाद पूंजीवाद और साम्यवादके बीचका सङ्घर्ष है, कोई मतलब नहीं रह सकता। अवश्य १९२९ में फिर दूसरी सन्धि दोनों राष्ट्रोंके बीच हो गयी और इस सन्धिके मुताबिक जर्मन कारखानोंने रूसके लिए हथियार बनानेका भार ले लिया और रूसको प्रचुर मात्रामें शस्त्रास्त्र मिलने लगे। १९३१ में जर्मनीने ही पहले-पहल पूंजीवादी राष्ट्रकी हैसियतसे एक समाजवादी राष्ट्रको ३० करोड़ मार्कका ऋण दिया था। इस ऋणके लिए रूसको कुछ ज्यादा व्याज चुकाना पड़ा। परन्तु यह ऋण ऐसे वक्त मिला, जब रूसकी आर्थिक स्थिति १९२९ के आर्थिक सङ्कटके कारण बहुत खराब हो गयी थी और तब तक कोई भी राष्ट्र, अमेरिकासे लेकर यूरोप तक, ऋण देनेके लिए तैयार न थे। यह ऋण २९ महीने तकके लिए दे दिया गया था, जिसके परिणाम-स्वरूप प्रथम पञ्चवर्षीय योजनाको काफी उत्साह मिला। यद्यपि जर्मन पूंजीपति साम्राज्यवादी रूसकी तरह समाजवादी रूसमें निर्भय व्यापार नहीं कर पाते थे, किन्तु वर्सलेवाले राष्ट्रोंकी रूसके साथ अमैत्रीके कारण उनको हदसे ज्यादा सफलता मिली। राथेनाउ, क्रप, आटोडल्फ, थाइसेन प्रभृति पूंजीपति रूसके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें अग्रसर थे और इनको रूसमें कई सुविधायें मिली थीं।

जर्मनीको रूसी व्यापारसे बहुत लाभ है। गत महायुद्धमें भी जर्मनीको रूससे खाद्य पदार्थ यथेष्ट मात्रामें मिल रहे थे और दक्षिणी-पश्चिमी भागका कब्जा होनेपर जर्मनीको निःशङ्क युद्ध जारी करनेका मौका मिला था; पर रूसको भी यद्यपि महायुद्धमें कुछ हद तक धोखा खाना पड़ा—आज कम लाभ नहीं मिला है। यह कहा जा सकता है कि रूसके निर्माणमें जर्मन पूंजीका अग्रगण्य हाथ है। इसी ख्यालसे स्टालिनने जर्मन नात्सीवादके कट्टर दुश्मन रहनेपर भी जर्मन मालका बहिष्कार नहीं किया, हालां कि बहुत-से प्रजातन्त्र देशों तकको बहिष्कारकी नीति रुचिकर थी। इधर हिटलरने भी देखा कि रूसी कच्चे मालका बड़ा ही महत्त्व है, इसलिए अपनी पुरानी नीतिको, जिसके आवेगमें उन्होंने राथेनाउको मरवा डाला था, बदल दिया और व्यापारिक सम्बन्धको नहीं तोड़ा। हिटलरके रङ्ग-मञ्चपर पदार्पण करते समय भी रूसके ऊपर जर्मनीका ऋण १९९ मिलियन डालर था। रूस इस ऋणको उस वक्त कदापि नहीं चुका सकता था, और अगर जर्मनी दबाव डालता, तो पञ्चवर्षीय योजनामें काफी क्षति पहुंचती। मगर हिटलरने एक ऐसी शुभेच्छाका परिचय दिया, जो रूस कभी भूल नहीं सकता था। अपने जर्मन चान्सलर होनेके ४ हफ्ते बाद ही समाजवादके प्रति अपनी घृणाको एक तरफ छोड़कर हिटलरने रूसकी सहायताके लिए ३३ मिलियन डालरका ऋण पुनः दे दिया। यह ऋण रूसकी सुविधाके लिए २६ महीने तकके लिए था। इस ऋणके नामपर जनरल गोयरिंग और अन्य कई नात्सी नेताओंमें मतभेद हुआ था। पर रूसने दो वर्षके अन्दर ही ऋणको कई खनिज द्रव्य, जो जर्मनीके शस्त्र-निर्माणके लिए आवश्यक थे, देकर व्यापारिक सम्बन्ध यथास्थित रखा। रूससे प्रचुर मात्रामें जर्मनीमें सोना भी आया। जर्मनीको १९३३-३५ में अन्य राष्ट्रोंसे आर्थिक बहिष्कारका दण्ड मिला था और वैदेशिक व्यापारके लिए सुवर्णका अकथनीय अभाव था। कृतज्ञता-स्वरूप जर्मनीने भी २० करोड़ मार्कके शस्त्रास्त्र रूसको उधारमें सुपुर्द कर दिये। शायद इस तरह उधार देनेवाला राष्ट्र जेकको छोड़कर कोई दूसरा न था। रूसके रास्तेमें यह खास प्रलोभन था। १९३६ में फिर दूसरी व्यापारिक सन्धि हो गयी और यह सन्धि १९३९ तक कायम थी, जब कि गत पैक्टने उसको और भी सुदृढ़ बना दिया है।

जर्मनीका रूसके साथका व्यापार दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। १९२९ में जर्मनीका ३.२ प्रतिशत आयात रूससे आता था। यह बढ़कर १९३४ में ९.८ हुआ। परन्तु रूसके आयातमें जर्मनीका हाथ ज्यादा है। १९२९ में यह २२ प्रतिशत था, १९३२ में अपनी जरूरतोंमें आधेसे ज्यादा रूसने जर्मनीसे लिया। १९३३ के बाद रूसके स्व-निर्माण हो जानेसे यह अवस्था नहीं रह सकी, तथापि १९३६ में ९ प्रतिशत रूसी आयात जर्मनी ही पहुंचा रहा था। पर १९३८ में यह १७.९ प्रतिशत हुआ। शायद अमेरिकाके बाद (२१ प्रतिशत) ही जर्मनीका नम्बर था। रूसके व्यापारके कारण जर्मनीको ऊन और लोहाके लिए प्रचुर रुपये मिल गये थे। रूसके निर्यातमें भी जर्मनीका भाग बड़ा था। १९३९ में भी इसका १८ प्रतिशत अंश जर्मनीका था। १९३७ में जर्मनीको रूसका निर्यात यहां तक बढ़ गया था कि वह अपने लोहे-कोयलेकी सारी जरूरतकी चीजें जितनी बाहरसे मंगानी पड़ती थीं, इस निर्यातके आधारपर खरीद सकता था। परन्तु सोवियट रूसको अकथनीय लाभ हो रहा था जर्मन कल-पुर्जोंसे, जो उपहारमें नात्सी जर्मनी रूसके सुपुर्द कर रहा था।

हम देख चुके हैं कि जर्मन-सोवियट व्यापारका दोनों राष्ट्रोंके लिए कितना महत्त्व है। हमें यह भी मालूम होना चाहिए कि जर्मनीको शस्त्रास्त्रसे सज्जित बनानेमें रूस-का बड़ा ही भाग था, क्योंकि सम्पूर्ण मैगनीज जर्मनीको रूससे मिल रहा था। इसके अलावा १९३६ तक जर्मनीको ५१ प्रतिशत पेपर पल्प, ७५ प्रतिशत फ्लैक्स, ९० प्रतिशत तेल-कोक रूससे मिल रहे थे। सोवियट भूमिको शस्त्रास्त्र और कल-पुर्जे जर्मनीसे मिल रहे हैं। यही कारण है कि नात्सी-वाद और समाजवादके बीच पारस्परिक सङ्घर्ष होते हुए भी, व्यापारिक सम्बन्धमें दोनों देशोंमें किञ्चित् भी परिवर्तन नहीं हुआ। पर यह सङ्घर्ष भी गत पैक्टने बन्द कर दिया, चाहे भीतरी वैमनस्य अभी तक हो।

वर्तमान महायुद्धमें सोवियट-जर्मन व्यापारका स्थान और ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है। जर्मनीको समुद्री घेरे--'ब्लाकेड'का जवाब देनेका मौका रूस ही दे सकता है। समुद्री घेरेके बाद जर्मनीको रूसके ऊपर और ज्यादा निर्भर रहना पड़ा है। इस घेरेका असर जर्मनीके ऊपर ज्यादा ही पड़ेगा, जैसा कि नीचे लिखे अङ्कोंसे पता लगता है:—

	कुल आयातकी शतांश क्षति
कच्ची रुई	९३ प्रतिशत
तेलहन	९६ ,,
कच्चा काफी और कोको	१०० ,,
कच्चा ऊन	६१ ,,
खनिज तैल	७४ ,,
चर्म	६३ ,,
ताम्र	७२ ,,
शस्य	६७ ,,
रबर	१०० ,,
लौह	३९ ,,

खाद्य पदार्थोंके लिए जर्मनीने गत ४ वर्षके अन्दर सुचारुरूपसे बन्दोबस्त किया था। अनाजोंका संग्रह ज्यादा समय तक टिकाऊ है या नहीं, कोई नहीं कह सकता। किन्तु यह सत्य है कि पिछले महायुद्धमें जर्मनीकी हालत जिस तरह बुरी थी, आज वैसी नहीं है। जर्मनीने संग्रह ही नहीं किया, बल्कि कृषि-क्षेत्रमें नवीन ढङ्गके साधन प्रयुक्त करके उपजकी मात्रा बढ़ा दी है। फिर आस्ट्रिया और जेकोस्लोवेकियासे भी गेहूं, जई, आलू, मांस और अन्य सब्जियां प्रचुर मात्रामें मिलने लगी हैं। साबुनके लिए जिस तेलका प्रयोग होता, था उसकी जगह कोयलेसे एक पदार्थ तैयार किया गया है, वही प्रयुक्त होता है। अनुमान किया गया है कि ३ लाख टन तेल अन्य कार्योंके लिए बच गया है। हालैण्ड, बेलजियम और डेनमार्कसे घी, मक्खन, लार्ड, बेकन वगैरह मिलने लग गये हैं।

रुई और पाटके बदले एक तरहका रबरका सामान तैयार किया गया है। लकड़ी, जो जङ्गलोंसे पर्याप्त मिलती है, सूत और बारूद बनानेके काममें मदद दे रही है।

ऊपर लिखे पदार्थ जर्मनीको ज्यादा मात्रामें मिल गये हैं; किन्तु उपज हाल ही में बढ़नेकी नहीं है, इसलिए पर्याप्त नहीं मालूम होते।

गत वर्षोंके अन्तर्गत जर्मनीने कुछ हद तक 'ब्लाकेड'-को हलका बनानेका यत्न किया है। नार्वेकी विजयके बाद जर्मनीका लोहेका सवाल सुगम हो गया है। १९३७ में जर्मनी बाहरसे २०,६००,००० टन लोहा मंगा रहा था—

ब्लाकेडके बाद इसमेंसे ३९ प्रतिशत ही जर्मनीको मिल सकता था। पर नार्वेके हाथमें आ जानेसे—स्वेडेनसे आनेवाला सम्पूर्ण लोहा, ८९९२३३१ टन, जर्मनीको मिल गया है। साथ-साथ लोरेनकी खान भी अपनी जरूरत पूरी करनेमें उसके काम आ सकती है। आज लोरेनके कब्जेके कारण जर्मनीको ५,०५०,१२१ टन लोहा सुगमतया मिल रहा है। फिर पहलेसे ही जर्मनीने प्रचुर मात्रामें लोहा जमा किया था—यद्यपि इसका परिमाण नहीं बताया जा सकता। अन्दाजन कहा गया है कि यह थोड़ा नहीं है। केवल १९३८ में जर्मनीने ११९६४,०६८ टन लोहा बाहरसे मंगाया था। पोलैण्ड और बेलजियमसे पुराना लोहा प्रचुर मात्रामें मिल गया है। लड़ाईके बाद जर्मनीको लोहा नहीं भेजना पड़ा, इसलिए जहां कहीं कमी हो जायगी, वहां निर्यात बन्द होनेके कारण बचा हुआ लोहा काम आ सकता है। यों तो अधिक लोहा रूसके लिए शस्त्रास्त्र तैयार करनेमें लगा दिया जा सकता है।

ब्लाकेडके बाद जर्मनीको २४२० लाख मार्कके पदार्थोंसे हाथ धोना पड़ा है; क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्य ही इन पदार्थोंको जर्मनी पहुंचाता था। नकद सौदेकी शर्तके कारण अमेरिका और अर्जेण्टाइनकी ओरसे भी २२२० लाख मार्ककी क्षति सहनी पड़ी है। कुल जर्मनीका आयाताधिक्य ५९८० लाख मार्क है और यह सब असामुद्रिक राष्ट्रोंसे मिलता है। आज तक जर्मनी ही यूरोपमें निर्याताधिक्य रखता आया है, जो जर्मन मुद्रामें १०५५० लाख मार्क होता है और जिसमेंसे महायुद्धके बाद ४००० लाख मार्ककी कमी हो गयी, क्योंकि ब्रिटेन और फ्रान्स इनके खरीदार थे। बेलजियम, हालैण्ड, डेनमार्क और नार्वेके हमलेके बाद निर्याताधिक्यका सवाल कुछ हद तक हल हो गया है; क्योंकि अब जर्मनी इन राष्ट्रोंसे अपनी जरूरत पूरी करके बाहरी व्यापारकी क्षतिको कम कर सकता है। पर रूसके ऊपर उसकी निर्भरता बढ़ जायगी, क्योंकि ये राष्ट्र बहुतांशमें जर्मनीके लिए आवश्यक वस्तुयें नहीं उत्पन्न कर सकते। समरके कारण जर्मनीका निर्यात प्रायः कम मात्रामें होगा।

जैसा कि ऊपरके अङ्कोंसे मालूम होता है, जर्मनीकी कठिनता उन वस्तुओंमें है, जो ऊपर दी गयी हैं; क्योंकि इनमेंसे सिवा लोहेके, जो नार्वेके कारण अब स्वेडेनसे प्रचुर मात्रामें मिल सकता है, अन्य द्रव्योंमें जर्मनीकी कमी दूसरी ओरसे पूरी नहीं हो सकती है। हो सकता है कि जर्मनीने समरकी आशङ्कासे पहलेसे ही इसका प्रबन्ध किया हो और विद्युत्-वेगमें जिस तरह हिटलरने तटस्थ राष्ट्रों और फ्रान्सके ऊपर हमला किया है, उससे पता लगता है कि सञ्चित वस्तुओंकी क्षति होनेके पूर्व ही समर खतम करनेकी हिटलरकी मंशा है।

फ्रान्स तो आज खतम हो चुका है, और यह सम्भव नहीं कि महासमर जल्द बन्द हो। इस दशामें ब्रिटेनके साथ युद्ध जारी रहनेपर आर्थिक संग्रामका अधिक भीषण रूप होगा।

जर्मनीमें स्वर्णाभाव होनेसे सिर्फ उन्हीं राष्ट्रोंसे उसका व्यापार हो सकता है, जो जर्मनीके निर्यात पर्याप्त ले सकें। ऊपर दिये गये आंकड़ोंसे हमें मालूम हो गया है कि अकेला रूस ही इस हालतमें जर्मनीको मदद दे सकता है। नीचे लिखे अङ्कोंसे मालूम हो जायगा कि जर्मनीके लिए कुछ वस्तुयें रूसके सिवा दूसरे मुल्क वर्तमान परिस्थितिके रहते हुए नहीं दे सकते।

आवश्यक सामरिक पदार्थ	रूसका प्रतिशत भाग
क्रोमाइट	५
लोह	४
मेङ्गनीज	३४
पेट्रोल	७
रुई	४
गेहूं	१६

अब हम देखें, रूस जर्मनीको कहां तक सहायता दे सकता है। प्रथम हम उन चीजोंका जिक्र करें, जो रूस कभी किसी हालतमें बाहर नहीं भेज सकता। ऐसी चीजोंमें बहुत-से खाद्य-पदार्थ आ जाते हैं—जैसे अण्डे, मक्खन, मांस, जन्तुओंके लिए घास इत्यादि। रूसकी ओरसे यह एलान किया गया है कि अपने १० करोड़ टन खाद्य द्रव्योंसे रूस एक दाना भी बाहर नहीं भेज सकता। १९२६ के पूर्व रूस कल-पुर्जोंके लिए, अपनी आवश्यकताका ख्याल न रखते हुए, भोजन-पदार्थोंको बाहर भेज रहा था। दो पञ्चवर्षीय योजनाओंके कारण बहुत-सी वस्तुयें रूस स्वयं तैयार करने लगा। इसलिए उसे बाहरसे ऐसी चीजें न मंगानी पड़ीं, जिनके लिए रूसको खाद्य-पदार्थ देना पड़ता था। फिर १९३५ के बाद

अमेरिका वगैरह गैर जर्मन मुल्कोंमें रूसके साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करनेके लिए विशेषरूपेण आग्रह प्रकट होने लगे। इसलिए रूसको जर्मनीपर ही निर्भर होनेका सवाल न रहा। पर सबसे जबर्दस्त कारण यह था कि रूस १९३६ के बाद गरीब रूसी जनताको मीठी चीज खिलानेमें ही अपना कर्तव्य समझने लगा, क्योंकि कल-पुर्जोंके जमा होनेके बाद मुख्य कार्यपद्धति यही थी। तत्काल ही रूसने खाद्य-द्रव्य बाहर नहीं भेजे। अपनी आवश्यकताके लिए भी अपर्याप्त हो जानेसे रूस वर्तमान परिस्थितिके अन्तर्गत अन्य बहुत-सी चीजें, जो ऊपरके अङ्कोंमें नहीं हैं, नहीं दे सकता। साथ-साथ रुई, क्रोमाइट, टिन, तांबा, सीसा इत्यादि पदार्थोंके पहुंचानेकी शक्ति भी रूसके बाहर है उसी कारणसे। जर्मनीको सबसे बड़ा डर है पेट्रोल-की कमीका। रूमानियाके साथ सन्धि करके जर्मनीको १२ लाख टन पेट्रोल मिला है। परन्तु इतना ही तो जङ्गके लिए पर्याप्त नहीं है। लड़ाईके लिए जर्मनीको डेढ़ करोड़ टन तेल चाहिए। जर्मनीका अपना उत्पादन इसमेंसे सिर्फ ३० लाख टन है। फर्ज करें कि जर्मनीको रूमानियाका सम्पूर्ण २० लाख टन पेट्रोल मिल गया। किन्तु ८० लाख टन पेट्रोल जर्मनीको कहांसे मिलेगा? रूस आज ३३ हजार टन पेट्रोल जर्मनीको दे रहा है और ज्यादाके लिए उम्मीद भी नहीं है, क्योंकि अपने समग्र ३ करोड़ टनकी उपजमें रूसको कुछ भी नहीं बचता—वह बाहर कैसे भेज सकेगा। जहां तक वर्तमान उत्पादन-शक्ति है, रूस जर्मनीको और कुछ भी नहीं दे सकता।

अतएव रूसमें औद्योगिक और कृषिक व्यवसायका द्रुत प्रस्तार ही सर्वप्रमुख कार्य:जर्मनीके सामने है। जैसा हमने कहा है, जब तक रूसकी उत्पादन-शक्ति नहीं बढ़ती, तब तक जर्मनीको रूससे माल: पानेकी कम उम्मीद है। औद्योगिक वृद्धिके बाद जर्मनीको रूससे खाद्य-पदार्थ ही नहीं, बल्कि मैंगनीज और पेट्रोल भी पर्याप्त मिल सकते हैं। यह कहा गया है कि रूस ७ लाख टन मैंगनीज और ५० लाख टन पेट्रोल मजेमें दे सकेगा।

परन्तु रूसकी इस मात्राकी उन्नतिके लिए समय चाहिए, और चाहिए यथेष्ट पूंजी। साथ-साथ जर्मन कल-पुर्जों और शिल्पकार जर्मनोंकी भी बड़ी जरूरत है। इसका मतलब है कि जर्मनी और रूसमें १९३१ वाला समझौता होना चाहिए। जङ्गका जमाना है—जर्मनी कहां तक अपने कारीगर रूसको दे सकता है और अपने कारखाने रूसके उपयुक्त बना सकता है। परन्तु ब्लाकेडके कारण, रूससे व्यापार-सम्बन्ध दृढ़ करनेमें ही जर्मनीका महाकल्याण है। सितम्बर १९३९ की व्यापारिक सन्धिके मुताबिक जर्मनीने दो वर्षके लिए २० करोड़ मार्कका जर्मन सामान रूसको दे दिया है। उपर्युक्त सन्धिसे मालूम होता है कि जर्मनी पुरानी नीति-को ग्रहण कर रहा है।

रूसके बाहर भेजनेके लिए पर्याप्त चीजें मिलनेपर, जर्मनी-को वे चीजें मिल सकेंगी। परन्तु यहां भी दो अवरोधक खड़े हैं। पहला यह है कि २० करोड़ मार्क ऋणके चुकती होनेपर जर्मनी किस आधारपर रूससे सामान ले सकेगा। जर्मनीके हाथमें वैदेशिक रुपये (Foreign Curency) बिलकुल नहीं हैं। सिर्फ ५-७ करोड़का सोना है। यह इतनी छोटी रकम है कि इतने ही से काम नहीं चल सकता।

ऐसी दृष्टिसे देखनेपर हालमें जर्मनी रूसी सन्धिसे व्यापारिक लाभ बहुत नहीं उठा रहा है। न कभी उठानेकी उम्मीद ही वह रख सकता है; क्योंकि इसके राजनीतिक कारण भी हैं। जर्मनी और रूसके बीच वह खाई है, जिसके ऊपर सेतु बांधना आसान नहीं है। फिर रूसको जब मालूम हो गया है कि वर्तमान युद्ध पूंजीवादी राष्ट्रोंका है, उसका ध्येय है कि वह तटस्थ रहकर ही लड़ाईकी गतिका अवलोकन करे। इसलिए रूस लड़ाईके मैदानमें भी कूद नहीं सकता। जब तक रूसकी सहानुभूति सिद्धान्तके आधारपर जर्मनीको नहीं मिलती—तब तक रूस खास तौरसे असबाबसे जर्मनी-की मदद भी नहीं कर सकता। यह सम्भावना निकट हो जाती, अगर जर्मनी समाजवादी राष्ट्र होता।

यहां एक सवाल खड़ा होता है कि जर्मनीने क्योंकर रूसके साथ अनाक्रमणक सन्धि कर ली है, यदि उसे कुछ भी फायदा नहीं होनेका। बाहरी तौरसे विचार करने-पर रूससे बहुत-सी चीजें जर्मनीको मिलनेकी बातें प्रतीत होती हैं। मगर जैसा ऊपर कहा गया है, रूस आज जर्मनी-को बहुत कुछ नहीं दे रहा है। इस तरह देखनेपर जर्मन-सोवियट व्यापारपर आश्चर्य ही हो सकता है।

जर्मनी महसूस करता है कि रूसी व्यापारसे उसे फायदा

नहीं होता है। फिर भी रूसका अन्तर्राष्ट्रीय स्थान ऐसा है कि वह आज यूरोपीय युद्धमें जिसका पक्ष चाहे, ले सकता है। इसलिए कोई भी राष्ट्र रूसका तिरस्कार नहीं कर सकता है। जब पोलैण्डका सवाल था, जर्मनीको भय था कि रूस ब्रिटेनके साथ जर्मनीके खिलाफ ही मैदानमें उतरेगा। चेम्बरलेनकी मन्दगामी नीतिने एक गहरा मौका हाथसे खो दिया—नहीं तो यदि सोवियट नाम भर ही मित्रराष्ट्रोंकी सहानुभूति कर लेता, तो शायद पोलैण्डका आज कुछ न होता। ब्रिटेन जैसे जर्मनीसे संशयशील था, उसी तरह रूससे भी, इसलिए बहुत प्रयत्नके बाद भी रूस और ब्रिटेनमें सहायक सन्धि न हो सकी। जर्मनीने यही मौका पकड़ा और रात-भरमें वैदेशिक सचिवको भेजकर व्यापारिक सन्धिको मजबूत ही नहीं बनाया, बल्कि अनाक्रमणक सन्धि भी कर ली। यह सत्य है कि गत सितम्बरकी सन्धिने दोनों राष्ट्रोंके सम्बन्धमें कोई परिवर्तन नहीं किया। किन्तु जर्मनीको जो रूसी सेनाका डर था, उससे आज वह बेफिक्र है। रेपैलो इस कार्यमें प्रबल सहायक बना।

जर्मनी और रूसके व्यापारिक सम्बन्धका भविष्य-चित्रण भी हम वर्तमान युद्धके आधारपर ही खड़ा कर सकते हैं। जर्मन-सोवियट व्यापारकी असाधारण वृद्धिके लिए लड़ाईका ज्यादा दिन रहना जरूरी है। परन्तु यह निश्चय नहीं है कि उस वक्त रूस जर्मनीकी सहायता करेगा। विद्युत्-प्रवाही समरसे पता लगता है कि जर्मनी ज्यादा दिन तक संग्राम जारी नहीं रख सकता। संग्राम जारी रहनेका मतलब यही है कि ब्लाकेडका बन्धन ढीला नहीं हो सकेगा। और अगर उस वक्त सोवियटसे मदद नहीं मिल सकेगी, तो जर्मनीकी बड़ी मुसीबत होगी। इसी ख्यालसे जर्मन सरकार जल्द ही लड़ाई खतम करनेमें उद्यत है। अतएव सोवियट-जर्मन व्यापारका आधुनिक रूप भी ज्यादा दिन नहीं कायम रह सकता—वह लड़ाईके साथ ही परिवर्तित होगा।

———

सजल गान

दुख आया मुझसे छल करने
सुख-सा अपना रूप बनाकर
रीता घट आंसूसे भरने!

मैंने कब इससे मान किया,
मैंने कब सुखपर ध्यान दिया,
कब हुआ हाय, इससे विचलित
मर-मरकर भी मैं कब न जिया?
फिर क्यों न खले, जो यह आया
मेरा तम तारोंसे हरने!

मेरा हंसना भी रुदन रहा,
मेरा गाना भी जलन रहा,
रो-रोकर जो ये गीत लिखे
इसमें भी तो कुछ वश न रहा
क्या देखी इसने बात नयी
जो लगा आज मुझसे डरने!

मैं अपनी व्यथा दबाये हूं
मैं अपनी जलन छिपाये हूं
सह-सह मैं असहन घातोंको
अपना अस्तित्व बनाये हूं
क्या इतना भी यह सह न सका
जो चला आज विष-कन ढरने!

—परमानन्द शुक्ल, बी० ए०।

समाजका यह शोषण कैसे रुके ?

श्री रिषभदास रांका

व्यापार तथा उद्योगोंमें अहिंसाके लिए स्थान है तथा वह अन्य क्षेत्रोंकी तरह महत्त्वपूर्ण भी है। लेकिन इस तरफ बहुत ही कम लोगोंका ध्यान गया है। वास्तवमें देखा जाय तो व्यापार तथा उद्योगोंमेंसे अहिंसाके उठ जानेसे ही संसारमें यह अशान्ति और विप्लव दीख रहे हैं। आज हम विश्व-विप्लवमें जो भयानक हिंसा देख रहे हैं, उसका मूल है व्यापार तथा उद्योगोंमेंसे अहिंसाका उठ जाना। आज हम वर्तमान विप्लव-की हिंसाका सारा दोष हिटलर, मुसोलिनी, इंगलैण्ड, फ्रान्स आदि लड़नेवाले डिक्टेटरों और राष्ट्रोंपर डालते हैं। लेकिन यदि विचारपूर्वक देखें, तो हम सभी लोग दोषी हैं, ऐसा साफ मालूम होगा।

जब एक व्यक्ति अपने हिस्सेका काम चुराकर अपनी बौद्धिक योग्यता द्वारा दूसरेके श्रमका लाभ उठाता है, तब उसमें हिंसा आ जाना स्वाभाविक है और आजकी भाषामें ही कहा जाय, तो उसे शोषण (एक्सप्लाइटेशन) कहते हैं। जिस तरह शोषण व्यक्ति कर सकता है, उसी तरह समाज और राष्ट्रके द्वारा भी समष्टि रूपसे करा सकता है। समाज तथा राष्ट्रके जो लोग अपने-आपको अधिक विचार-वान मानते हैं, वे इस व्यक्तिगत चुराई (शोषण) को समाज तथा राष्ट्रमें परिणत कर देते हैं और हमारे जैसे अविचारी लोग अपने समाज तथा राष्ट्रका विचार न करके अपने व्यक्तिगत स्वार्थके लिए राष्ट्र तथा समाजको शोषण करानेमें मदद भी करते हैं। ऐसे अविचारी राष्ट्रोंकी लूट करनेके लिए विप्लव होना क्रमागत है। उसे कोई टाल नहीं सकता। आजका युद्ध भले ही कितने ही अच्छे सिद्धान्तों-की दुहाई देकर शुरू हुआ हो, लेकिन विचारपूर्वक देखा जाय तो उसके मूलमें हम यही पायेंगे कि एक राष्ट्र, जो अनेक राष्ट्रोंकी लूट कर रहे हों, उस लूटमें अपना भी हिस्सा बंटाया जाय, ऐसी इच्छा रखता है।

जगत्में होनेवाले भयानक युद्धोंके परिणामोंसे संसारके सभी विचारक दुखी हैं। और जिनके हृदयमें जागृत आत्मा निवास करती है, वे सभी लोग युद्धोंको रोकनेके लिए अनेक प्रकारकी कोशिशें कर रहे हैं। किन्तु जब तक दुनियामें शोषण बना रहेगा, तब तक युद्ध टल नहीं सकते। और इसी लिए युद्धको टालनेका यदि कोई कारगर मार्ग हो सकता है, तो केवल यही कि शोषणको दुनियासे उठा दिया जाय। किन्तु यह कैसे सम्भव हो सकता है ? इसपर कुछ विचार करें।

दुनियासे शोषण उठा देनेके लिए दो मार्ग हैं। एक साम्यवाद और दूसरा गांधीवाद। साम्यवादमें हिंसा त्याज्य नहीं है और गांधीवादमें हिंसा पूर्णतया त्याज्य है। साम्यवाद अधिक लोगोंके हितके लिए कम लोगोंकी हिंसा जायज भी मान सकता है और उसमें सत्ताके बलपर भी हृदय-परिवर्तन-की बात आ जाती है। यद्यपि संसारसे युद्ध उठा देनेके जो प्रयत्न चल रहे हैं, उसमें साम्यवादका स्थान बहुत बढ़ा हुआ है। लेकिन फिर भी उसमें हिंसा त्याज्य न होनेके कारण गांधीवादकी तुलनामें उसका स्थान काफी नीचा है। जनता-हृदयका परिवर्तन प्रेम तथा अहिंसासे करना ही विशेष प्रभावशाली और स्थायी होता है।

जब महात्माजीने अहिंसा द्वारा युद्ध-शमनकी बात कही, तो सारे संसारको वह कुछ आश्चर्यजनक लगी और लोगोंने उसको अव्यावहारिक भी करार दे दिया। लेकिन संसारमें शान्ति फैलानेवाला, व्यावहारिक, प्रभावशाली, स्थायी और निर्दोष मार्ग अगर कोई हो सकता है, तो वह अहिंसा ही है। यदि व्यापारी लोग व्यवसायमें अहिंसा ले आयें, तो संसारसे युद्धकी बला हट जाना असम्भव नहीं। संसारकी अशान्तिके लिए शोषक जितने दोषी हैं, उतने ही शोषित भी दोषी हैं। हमारे नीति-शास्त्रमें अन्याय करनेवालेको पापका भागीदार समझा जाता है, लेकिन अन्यायका शिकार होनेवालेको पापी नहीं समझा जाता, बल्कि उसे दयाका पात्र समझते हैं। लेकिन यह विचार-धारा गलत भी है और अन्याय्य भी है। दयाके मूलमें कुछ घृणास्पद अर्थ भी निहित हैं। वस्तुतः इस विचार-धाराका त्याग करना जरूरी है। जिस तरह दूसरेका शोषण करना बुरा है, उसी तरह शोषण

होने देना भी बुरा है और अन्यायीके बराबर दोषी है। यदि हमने अपना शोषण नहीं करने दिया होता, तो क्या यह सम्भव था कि आजका युद्ध होता ? जो राष्ट्र दूसरोंसे चूसे जाते हैं, वे चूसनेवालोंके समान ही पाप और अन्यायके भागीदार हैं।

हमने अब तक यह बतलानेकी कोशिश की कि इस संसारमें हिंसा फैलानेवाली अगर कोई वस्तु है, तो वह शोषण है। किन्तु इस वस्तुको किस प्रकार टाला जा सकता है, इसपर भी सोच लेना जरूरी है। एक व्यक्ति दूसरेका शोषण करता है, तो वह व्यापार तथा उद्योगोंके द्वारा ही। और उसका साधन है पूंजी। आज संसारमें जो व्यापार और उद्योग-धन्धे हैं, उनमें यदि यह भावना आ जाय कि मैं दूसरेके हितको मिटानेवाला व्यापार नहीं करूंगा, तो आज जो व्यवसायका स्वरूप है, वह पलटकर जिसके जरिये संसारमें अशान्ति मची है वह दूर हो सकता है। किन्तु क्या हम अहिंसासे व्यापार करके सम्पन्न तथा सुखी भी हो सकते हैं ? हां, इसमें सन्देहके लिए गुंजाइश ही कहां ? जो व्यापार तथा उद्योग-धन्धे हम व्यक्तिगत स्वार्थके लिए ही करते हैं, उनका स्वरूप हम पलट दें और उससे सम्बन्धित सभी लोगोंका हित देखें, तो हम सम्पन्न भी हो सकेंगे और सुखी भी।

हालांकि अहिंसामय व्यापारमें समाजका हित तो हो सकता है, लेकिन उस तरहका व्यापार करनेवालेका भी व्यक्तिगत रूपसे लाभ हो सकता है या नहीं, यह प्रश्न विचारणीय है। व्यापारमें मेरा तो निजी अनुभव है कि हम उसमें जितनी अहिंसा ज्यादा प्रमाणमें लाते हैं, उतना ही अधिक यश मिलता है। अर्थात् व्यापारमें सम्बन्ध आनेवालोंके साथ हमारा व्यवहार प्रेम-भरा व मिठास-पूर्ण हो। हम अधिक व्यापार बढ़ा सकते हैं। व्यवसायमें दो तरहके लोगोंसे सम्बन्ध आता है। एक तो हमसे व्यवहार करनेवाले ग्राहक लोग और दूसरे हमारे कर्मचारी। भारतमें आजकल कर्मचारियोंके साथ अपनापन रखकर उनका हित देखनेकी मालिककी भावना बाहरके संसर्गसे धीरे-धीरे नष्ट होती जा रही है। पहले कर्मचारियोंको अपने घरके लोग समझकर उनके साथ जैसा व्यवहार किया जाता था, उनके सुख और दुःखमें मालिक लोग जैसे साथ देते थे, वह चीज आकर आज केवल गरजका सौदा रह गया है। इस चीजके प्रवेश हो जानेसे मालिक और कर्मचारी दोनोंको भी हानि पहुंची है। मालिक यह समझता है कि मैं अधिकसे अधिक काम लेकर कमसे कम मिहनताना दूं और कर्मचारी इस वृत्तिसे काम करता है कि कमसे कम काम करके अधिकाधिक पैसे प्राप्त करूं। इन दोनोंकी खींचातानीमें दोनों ही नुकसान उठाते हैं। उसके एवजमें मालिक-नौकरमें यह भावना पैदा हो जाय कि मालिक हमेशा यही चाहता रहे कि अपने कार्यकर्ताकी कार्यक्षम-शक्ति बढ़ाकर मैं उसको अधिकसे अधिक जिस तरह और जितना दे सकता हूं, उतना दूं। और कर्मचारी यह विचार करें कि मैं भी मालिकका अधिकसे अधिक लाभ जितना भी करा सकूं, करूं। मुझे अपनी मिहनतका मिहनताना तो मिल ही जाना है, इस विश्वाससे वह काम करे और इस रूपमें अहिंसाका प्रवेश हो जाय, तो निस्सन्देह व्यापारमें प्रगति हो सकती है तथा समाजकी तरह व्यक्तिका भी उसीमें हित है। अब रही ग्राहकोंके सम्बन्धकी बात। सो जब दूकानदार ग्राहकोंके सेवकके रूपमें उनके साथ पेश आये, तो उसके ग्राहक भी बढ़ेंगे और व्यापार भी बढ़ेगा। वह अपने ग्राहकोंको झांसा देकर और बातें बनाकर ठगनेकी कोशिश न करके ग्राहकके सच्चे सेवकके नाते वाजिब मुनाफा लेकर व्यवहार करे, तो आजके व्यापारकी अनीतिकारक स्थिति बदल जाय। यद्यपि मुनाफेका प्रमाण कम मालूम होगा, तो भी उसका उससे विशेष लाभ होगा। इस बाबतमें और भी विशेष लिखा जा सकता है, लेकिन इस छोटे-से लेखमें इन सबका समावेश न होनेके कारण मैं इस विषयपर अधिक नहीं लिखता। सिर्फ इतना ही कह देना पर्याप्त समझता हूं कि व्यापारमें अहिंसा आनेसे समाजके साथ व्यापारीका भी व्यक्तिगत लाभ होना निश्चित है। जब व्यापारीकी भूमिका ग्राहकोंकी सेवा करनेकी हो जायेगी, तब वह ऐसी ही चीजें बेचेगा, जो समाज व देशके लिए हानिकारक नहीं।

यह तो मैंने व्यापारीकी बात कही। अब उद्योगोंकी बातपर भी कुछ विचार कर लें। उद्योगोंमें भी अहिंसा उतनी ही लाभदायक है, जितनी कि हम ऊपरके व्यापारिक विवेचनमें दे चुके हैं। मजदूर और मालिकोंके सम्बन्ध अच्छे रहनेसे उद्योग जितने फलफूल सकते हैं, उतने उन सम्बन्धोंमें

कड़वास आनेसे नहीं। इसलिए मालिक और मजदूरके बीचमें अपनेपनका और प्रेमका सूत्र बांधा जाना चाहिए। और यह बात कठिन भी नहीं है। हमारे व्यावसायिक बन्धु मजदूरी कम देनेके बजाय उनकी कार्यक्षम शक्ति अधिक बढ़े —इसकी ओर ध्यान दें, तो उन्हें मिहनतका फल भी अच्छा मिलेगा, काम भी ठीक होगा और वहांपर फिर मालिक-मजदूरके झगड़ोंकी कल्पना करना भी कठिन हो जायगा। लेकिन हमारे यहां ऐसे प्रयोग होते ही कहां हैं? यद्यपि यहांके व्यवसायी अपने आपको बहुत: दक्ष समझते हैं, लेकिन वे इस बातकी तरफ बहुत कम ध्यान देते हैं कि अगर वे पूरा ध्यान दें, तो मजदूरोंकी कुशलता और कार्यक्षम शक्ति बढ़ा करके और उनकी शक्तिका अच्छेसे अच्छा उपयोग ले करके उन्हें भी अधिक मजदूरी दे सकते हैं।

उद्योग-पतियोंको अपने कार्यकर्ताओंसे अहिंसामय सम्बन्ध बनाना उद्योगकी दृष्टिसे जिस तरह लाभप्रद है, उसी तरह अपने ग्राहकोंको उनके हितके लायक और समाजके लिए उपयोगी माल पैदा करना यह भी जरूरी है। अन्यथा ऐसे मालकी पैदावार बढ़ा दी जाती है, जिसका कि समाजके लिए कोई उपयोग नहीं होता। समाजको उपयोगी होनेवाले और जरूरतके अनुसार माल पैदा करनेवाले कारखाने ही खोलने चाहिए। केवल मुनाफेके ख्यालसे अनुपयोगी माल निकालना घातक है। जो इन बातोंका ख्याल रखेंगे, उनमें यह भी दृष्टि आ जावेगी कि देशके लिए जिन वस्तुओंके कारखानोंका खोलना जरूरी नहीं है, वे वस्तुयें देहातोंमें हस्त-व्यवसायको बढ़ाकर उसीकी मार्फत तैयार करवायें। अर्थात् जिन उद्योगोंका केन्द्री-करण (सेण्ट्रलायजेशन) करना आवश्यक होगा, उनका केन्द्री-करण करेंगे और जिनका विकेन्द्रीकरण (डीसेण्ट्रलायजेशन) करना होगा, उनका वे समाज और देशका हित देख करके विकेन्द्री-करण करेंगे। यद्यपि ऊपर देखनेसे शायद ऐसा मालूम हो कि इससे उद्योग-पतियोंका लाभ नहीं होगा; पर वे दूर दृष्टिसे विचार करें और गम्भीरतापूर्वक देखें, तो इसी पद्धतिसे देशकी सम्पत्ति बढ़ेगी। देश और समाज सम्पन्न होंगे और कारखानेदार भी उस सम्पन्नताका लाभ उठायेंगे। देश कङ्गाल बन जानेपर देशमें रहनेवाला उद्योग-पति या पूंजी-पति भी कभी धनवान नहीं रह सकता, इस बातको आज भी हम देख रहे हैं। लेकिन इनके कारणोंको समझनेकी दृष्टि दूसरी होनेसे हम उन चीजोंको न समझकर दूसरे ऐसे ही उपायोंका अवलम्बन कर रहे हैं, जो न सामयिक हैं, न जिनकी आवश्यकता है। और न जो उपयोगी ही हैं। धनवानोंको अपना धन संभालनेकी कम चिन्ता नहीं रहती और न उनको अपना धन संभालनेके लिए खर्च ही कम करना पड़ता है। अगर समाजमें अहिंसाकी प्रतिस्थापना अच्छी तरह हो जाय और हर क्षेत्रमें उसीका असर रहे, तो नाशक वस्तु-तथ्य दूर होकर धनपति व गरीब सुखी हो सकेंगे और सम्पन्न भी।

———



पतिव्रता

श्री रामसरन शर्मा

नीरजा दुबली-पतली और बीमार रहनेवाली स्त्री थी। क्यों? सो तो मालूम नहीं।

उसका पीला-सा, पतला-सा मुंह इतना गम्भीर था, जैसे भादोंकी काली घटा।

सुन्दर अच्छी खासी थी वह। उसके मुंहपर जो वेदनाकी छाप थी, वह उसे और भी सुन्दर बनाये देती थी।

किन्तु वह सदाकी बीमार जो थी।

और उसके पतिदेव बाबू रामकिशोरजी, लम्बे-चौड़े, आबनूस-से काले, मुद्गर-से मोटे और ताड़-से लम्बे थे।

अच्छे खासे देव थे।

इसीलिए नीरजा दुखी थी। क्योंकि वह अपने पतिदेवको प्रसन्न नहीं रख सकती थी। शरीर चलता ही न था।

अपने टूटे शरीर और फूटे भाग्यको लिये नीरजा दिन काटती थी।

हां, और बाबू रामकिशोरजीके दो हुक्म थे—कभी भी उनके किसी भी कामपर नीरजाके माथेमें बल नहीं आना चाहिए और कभी भी उन्हें टोकना नहीं चाहिए।

पति परमेश्वरके यह दोनों वाक्य नीरजा वेदकी भांति मानती थी।

तो नीरजा चारपाईपर लेटी थी। बाबू रामकिशोरके दफ्तरसे आनेका समय था।

जीनेमें जूतोंकी आवाज, और रामकिशोर अन्दर आये।

नीरजाने मुस्कराकर स्वागत किया, और उठकर बैठ गयी।

"कैसी तबियत है?" बाबू रामकिशोरने जूते उतारते हुए पूछा।

"अच्छी ही है।" नीरजाने पीली-सी हंसीसे कहा।

रामकिशोर चुपकेसे कपड़े खोलने लगे।

रात-दिनकी बीमार नीरजा। और वे—उन्होंने एक लम्बी सांस ली।

नीरजाने देखा सहसा पतिदेवका गम्भीर मुंह। कुछ समझी वह शायद। बड़ी मुश्किलसे आंखोंके आंसू आंखों ही में रोककर रह गयी।

रामकिशोरने मुंह-हाथ धोया, जलपान करके हुक्का पीने बैठे।

"आज क्या कहती थी मेम?" उन्होंने पूछा।

नीरजाने हंसकर, मैली-सी हंसी हंसकर कहा:—

"कहती ही क्या? मैं तो सब जानती हूं।"

"हूं।" कहकर रामकिशोर विचारमें मग्न हो गये।

नीरजा एकटक अपने पतिका मुख देखने लगी। वह खूब समझती थी अपनी और अपने पतिकी लाचारी। किन्तु इलाज ही क्या था?

वह समझते हुए भी क्या नीरजाको वेदना नहीं होती थी? उसने अपने पतिके हृदयमें अशान्तिका एक तूफान खड़ा कर दिया था। काश, वह मरकर भी ······

सहसा रामकिशोर उठे और बोले, "जरा घूम आऊं।"

नीरजाके हृदयमें सहसा मानो किसीने चाबुक मार दिया। किन्तु होठोंपर हंसी कायम थी। पतिदेवकी आज्ञा।

उसने एक नोट निकालकर रामकिशोरको दिया।

रामकिशोर चले गये।

नीरजा धमसे तकियेपर गिरकर फफककर रोने लगी।

बांध टूट गया। वह जानती थी, रामकिशोर कहां गये थे।

यदि वह उन्हें रोक सकती। हाय, विधाताने उसे इतना कमजोर, रोगी क्यों बनाया था?

किन्तु विधाताने कब किसे उत्तर दिया है।

नीरजा रोते-रोते थक गयी।

रात बढ़ गयी। नौकरने आकर कहा:—

"बहूजी, फाटक बन्द कर लूं।"

"हां।" नीरजाने रुंधे गलेसे कहा।

आज रामकिशोर नहीं आवेंगे।

(२)

रातका समय।

घरके बाहर एक तांगा रुका। नीरजाने घरमें पड़े-पड़े सुना बाहर बैठकमें हंसी, बातचीत, मजाक।

बीच-बीचमें किसीके कोमल, स्त्री-कण्ठकी आवाज भी सुन पड़ जाती थी।

नीरजा गौरसे सुनने लगी, क्या बातचीत हो रही थी।

सहसा नौकरने आकर कहा :—

"बहूजी, बाबूजी बुलाते हैं।"

धीरेसे नीरजाने कहा :—

"मुझे ?"

"जी।"

नीरजा धीरेसे उठी और बैठकमें पहुंची।

अन्दर बाबू रामकिशोर मसनदपर बैठे थे। सामने बैठी थी नन्हीजान।

नीरजाने एक निगाह उसपर डाली और अपने पतिकी ओर मुड़कर पूछा :—

"मुझे बुलाया है ?"

नन्हीजानने सकतेकी हालतमें देखा एक पीली-सी मरीजाको।

न मालूम क्यों, उसकी जबान बन्द हो गयी।

"बैठ जाओ।" रामकिशोरने अपने पास जगह दिखाकर कहा।

नीरजा बैठ गयी।

नन्हीजानके पसीना आ रहा था। इस बीमार औरतसे न जाने क्यों, वह घबरा रही थी।

"कुछ गाओ।" रामकिशोरने कहा।

गाना शुरू हो गया।

नीरजा चुपचाप एक ओर देख रही थी। शायद नन्हीजानकी ओर तो उसने एक बार भी न देखा होगा।

बिलकुल शान्त, गम्भीर थी वह।

थोड़ी देर बाद रामकिशोरने कहा—"इन्हें पांच रुपये दे दो।"

नीरजाने चुपचाप रुपये दे दिये।

नन्हीजानका हाथ रुपये लेते हुए कांप उठा अचानक ही।

× × ×

नीरजा कमरेमें आकर खड़ी हो गयी।

उसके होठोंपर थी हंसी, विजयकी, उल्लासकी।

आज वह सबसे बड़ी परीक्षामें पास हो गयी थी।

दरवाजेपरकी आहटने उसे चौंका दिया। देखा, तो बाबू रामकिशोर थे।

वह मुस्करा दी। रामकिशोरने भी गर्वसे हंसते हुए उसे गोदमें भर लिया।

और नीरजा एक अधखुले होठोंपर—एक चुम्बन।

किन्तु—सहसा वह कांपने लगी। हर्षकी अधिकतासे बेहोशी आने लगी।

यदि वह...स्वस्थ...नीरोग...नीरजा बेहोश हो गयी।

(३)

नीरजाने खांसते हुए कहा :—

"अब न बचूंगी, सिर्फ एक इच्छा है।"

"क्या ?" बाबू रामकिशोरने आगे झुककर कहा।

पिछले तीन हफ्तेसे नीरजाकी हालत खराब हो चली थी।

और बाबू रामकिशोरने भी दफ्तरसे छुट्टी लेकर उसके सिरहाने आसन लगाया था।

आज तीन हफ्तेसे एक मिनटके लिए भी नहीं हिले थे। सैर-सपाटा, हंसी-मजाक, सब छुट गया था।

नीरजाने कहा :—

"मैं गङ्गा-किनारे मरना चाहती हूं।"

रामकिशोरने प्रेमसे माथेपर हाथ फेरकर कहा—"मरें तुम्हारा दुश्मन।"

अगले ही दिन नीरजाकी चारपाई गङ्गाके किनारे झोंपड़ीमें थी।

और दिन बीते।

हालत और भी खराब होती गयी।

एक दिन नीरजाने कहा :—

"प्यारे, आज शायद आखिरी दिन है। मैं चाहती हूं, मेरी चारपाई आधी गङ्गाजलमें हो मरते समय।"

गङ्गाके बीच एक टापूमें छोलदारी लगाकर नीरजाकी चारपाई डाल दी गयी।

शाम होती आ रही थी। सहसा नीरजाने कहा :—

"पानदान तो लाना।"

रामकिशोर बैठे हुए एकटक उसके रक्तहीन मुखको देख रहे थे।

पानदान आया।

नीरजाने बड़ी मुश्किलसे एक पान लगाया ।

उसे रामकिशोरकी ओर बढ़ाते हुए मुस्कराकर कहा :—

"यह लो मेरे हाथका आखिरी पान ।"

रामकिशोर फफककर रो पड़े ।

× × ×

नीरजाका अन्तिम समय था । सांस वेगसे चल रही थी।

सहसा अपनी आंखें रामकिशोरकी आंखोंमें गड़ाकर उसने कहा, धीरेसे अटकते हुए :—

"इस जन्म...तुम्हारी...सेवा...अब तुम...।"

सहसा गला रुंध आया ।

रामकिशोर रोने लगे । बच्चोंकी तरह ।

नीरजाने मुस्कराते हुए हाथ उठाये जोड़नेके लिए......

हिचकी...और...खत्म ।

× × ×

रामकिशोरने सैर-सपाटा भी छोड़ दिया, दूसरा ब्याह भी न किया । और...जीवनमें कभी पान भी न खाया ।

"जब पान देनेवाली ही न रही," वे लम्बी सांस लेकर कहा करते थे, "तब पान क्या खाऊं ।"

———

पराजय

कुछ भी समझा न सका तुमको !

अन्तर-पीड़ाको व्यक्त किया,
दुखमें जीवन अनुरक्त किया ;
स्वर कांप गया, गतिहीन हुआ
मैं गीत सुना न सका तुमको !
कुछ भी समझा न सका तुमको !

अपनी सीमाका ध्यान रहा,
अपनेपनपर अभिमान रहा ;
जब निर्बलताका ज्ञान हुआ
तब पास बुला न सका तुमको !
कुछ भी समझा न सका तुमको !

कुछ क्षुद्र विचारोंने रोका,
कुछ क्रूर-प्रहारोंने रोका ;
कुछ बढ़ा, किन्तु फिर लौट चला
पाकर भी पा न सका तुमको !
कुछ भी समझा न सका तुमको !

नौका प्रवाहमें लीन हुई,
आशा पतवार विहीन हुई ;
साहस छूटा, दिल टूट गया
मैं पार लगा न सका तुमको !
कुछ भी समझा न सका तुमको!

—'तरल'।



नारी भी कुछ चाहती है !

श्रीमती अरुणा कुमार

आजकलके युवक और युवतियां शादीके नामसे ही कांप उठते हैं। उनके सामने शादीकी समस्या दिनपर दिन जटिल होती जा रही है। वे नहीं सोच पा रहे हैं कि शादी करें या न करें, और करें भी, तो कैसे साथीके साथ ? इसी तरहके न जाने कितने प्रश्न उनके दिमागमें उठा करते हैं और कोई सान्त्वनापूर्ण उत्तर उन्हें नहीं मिल रहा है। इस विषयपर न तो उन्हें हिन्दीमें अच्छा साहित्य मिलता है और न इस विषयको लोक-लज्जाके वशीभूत हो विवाहके पहले खुल्लम-खुल्ला सुलझानेकी कोशिश ही वे कर सकते हैं। यदि कोई साहस करता भी है, तो समाज द्वारा उसपर बेशर्मी और बेअदबीकी डिग्री लाद दी जाती है और वह बेचारा निरुत्साह हो जाता है। अपने-आप इन प्रश्नोंकी गुत्थियोंको सुलझानेकी कोशिश भीतर ही भीतर वह करता है और प्रण कर लेता है कि जब तक उसकी शङ्काओंका समाधान न हो जायेगा, वह शादी न करेगा। अपने मित्रों और सगे-सम्बन्धियोंके वैवाहिक जीवनका सिंहावलोकन करते हुए वह भीतर ही भीतर नाना प्रकारके तर्क-वितर्क करता है। उनके वैवाहिक जीवनको असफल देख वह अपने विवाहित जीवनको कैसे सफल बना सकता है, इसकी युक्तियां सोचता है। विवाहित जीवनमें होनेवाले कलहके कारणोंको वह समझनेकी कोशिश करता है। और इसी तरह इसी तर्क-वितर्क, देखा-सुनी और सोचा-समझीमें उसके जीवनकी आधी वयस बीत जाती है, यौवनके उतारका समय आ जाता है और तब भी वह किसी दृढ़ निश्चयपर नहीं पहुंच पाता। न जाने कितने ३० और ४० की उम्रके बीचके लोग सिर्फ इसी झमेलेकी वजहसे क्वांरे बैठे हैं। इनके अब तक क्वांरे रहनेका कारण यह नहीं कि वे शादी कर अपनी जिम्मेदारियोंको बढ़ानेसे डरते हैं या उन्हें शादीकी जरूरत नहीं या उन्हें उपयुक्त साथी नहीं मिलता या वे प्रेमका भी व्यावसायिक नियमोंपर ही क्रय-विक्रय करते हैं। कुछ तो अपने निजी अनुभवोंके बल और कुछ दूसरोंकी देखा-सुनी इस नतीजेपर पहुंच चुके हैं कि बिना शादीके जीवन नीरस है, अपूर्ण है, और इस अभावकी पूर्ति और किसी तरीकेसे ठीक-ठीक नहीं हो सकती।

युवक क्या चाहते हैं ?

जब शादी जीवनका एक विशेष अङ्ग है, तो फिर आखिर समझदार व्यक्ति इससे डरते क्यों हैं ? इसका मुख्य कारण हमें जो दीखता है, वह केवल यही कि कितने ही लड़के और लड़कियां शादीके बाद एक-दूसरेके प्रति अपने-अपने कर्तव्योंको समझने और उनके मुताबिक विवाहित जीवन यापन करनेमें गलती करते हैं और अपने विवाहित जीवनको दुखित बना दूसरोंके सामने उदाहरण पेश करते हैं, जिससे वे शादीके नामसे डरें। प्रत्येक पुरुषकी शादीके बहुत पहलेसे ही अपनी पत्नीके प्रति तरह-तरहकी कल्पनायें हुआ करती हैं और वह चाहता है कि उसकी स्त्री उसकी कल्पनामें सच्ची उतरे। उसकी कल्पित मूर्ति जहां कहीं भी और जब कभी भी उसे उपलब्ध हुई कि यौवनके आवेशमें वह उसकी प्राप्तिके लिए अधीर हो उठता है, उसकी ओर जी-जानसे आकर्षित हो, येनकेन प्रकारेण जैसे भी बन पड़े वैसे, उससे शादी कर लेता है; पर वह यह नहीं सोचता कि उसकी पत्नीकी भी तो कुछ कल्पनायें होंगी और वह स्वयं भी वास्तवमें उसके योग्य है या नहीं। यदि नहीं, तो फिर क्या अधिकार है उसे, जो वह झूठे-सच्चे प्रलोभन दे, उसे धोखा दे। देखा अक्सर यह गया है कि यदि भूलसे स्त्री कभी ऐसी गलती कर बैठती है, तो अपने छोटेपनकी वजहसे वह अपने पतिकी ही इच्छाके मुताबिक बननेकी कोशिश करती है। अपने आपको पतिके रङ्गमें रंगनेमें दत्तचित्त हो लग जाती है। अपने पतिका ही बाना पहनकर नाचती है। पर वह भी मनुष्य है, देवता नहीं। कुछ कमजोरियां उसमें रहती ही हैं, जिन्हें वह आदतसे लाचार होनेकी वजह किसी तरह भी पूरी नहीं कर सकती। उस समय, उस हालतमें जहां पत्नी अपनेको पतिमय बनानेमें इस तरहसे चिपटी हुई रहती है, पर अपनी केवल थोड़ी-सी त्रुटियोंके कारण पूर्णरूपेण पतिमय नहीं बन पाती, वहां पतिका क्या यह थोड़ा-सा कर्तव्य नहीं हो

जाता कि वह अपने थोड़े-से सहयोगसे उसे पतिमय बना ले।

हरएक लड़केकी अपनी अलग-अलग पसन्दगियां होती हैं; पर अधिकांशमें आजकलके लड़के अपनी पत्नीमें बहुत कुछ देखना चाहते हैं और पत्नीके लिए अपने पतिको चरित्रवान और अपनी ओर आकर्षित किये रखनेके लिए उन बातोंका अवलम्बन करना पग-पगपर अनिवार्य हो जाता है। लड़का चाहता है कि उसकी स्त्री उसकी पसन्दगीके मुताबिक अपनेको सजाकर रखे, उसकी इच्छानुसार रहे, बातचीत करे, घूमे-फिरे, मिले-जुले और आहार-व्यवहार करे, अपनी निजी इच्छाओंका बलिदान कर दे, अपने अस्तित्वको पतिके अस्तित्वमें मिला दे, समाजकी परवाह न कर पतिकी आज्ञाओंका पालन करे, गरीबी-अमीरी सब हालतमें पतिका साथ दे, इत्यादि।

आखिर लड़कियां भी कुछ चाहती हैं ?

जहां लड़कोंकी इतनी सब मांगें हैं, वहां क्या लड़कोंने विवाहके पहले और बादमें यह भी सोचनेकी कोशिश की है कि हम लड़कियां क्या चाहती हैं? अपने पतियोंसे हम किन-किन बातोंकी आशा करती हैं? और अगर हरएक लड़का इन बातोंको जान ले, इनका अध्ययन कर ले, तो फिर कोई कारण नहीं कि विवाहित जीवन सुखसे न बीते। पति और पत्नीके प्रति एक-दूसरेके कर्तव्योंकी खूब अच्छी जानकारी विवाहित जीवनको सफल और सुखद बनानेकी कुंजी है।

पुरुष इस बातका हो-हल्ला मचाये हुए हैं कि विवाहके बाद उनकी जिम्मेवारियां बढ़ जाती हैं और उन्हें बहुत त्याग करना पड़ता है; किन्तु मैं कहती हूं कि पुरुषकी अपेक्षा विवाहके बाद स्त्रीको अधिक त्याग करना पड़ता है और हर हालतमें उसकी जिम्मेदारियां अधिक बढ़ जाती हैं। अपनी देख-रेख, अपने पतिकी सेवा-टहल, अपनी गृहस्थीका सञ्चालन-कार्य उसे ही करना पड़ता है। सन्तानको गर्भमें धारण करनेका कष्टप्रद कार्य उसे ही करना पड़ता है। सन्तानोत्पत्तिके बाद भी बालकके लालन-पालनका भार उसीके कन्धेपर आ पड़ता है। इन सबके लिए उसे काफी त्याग करना और कष्ट उठाना पड़ता है। जिस समय पुरुष किसी बाग-बगीचेमें चहलकदमी करता रहता है, किसी अन्य रमणीक स्थानके चक्कर काटता रहता है, या किसी मित्र-मण्डलीमें गप्प हांकता रहता है या सिनेमा-हालमें बैठा सिगरेटके कश खींचता रहता है या किसी होटलमें बैठा मौज करता रहता है, उस समय बेचारी स्त्री घरपर बैठी अपने बच्चेकी सेवा-परिचर्यामें लगी रहती है। बच्चेको सुलाकर पतिकी इन्तजारीमें उनके स्वागतको आंखें बिछाये बैठी रहती है। यदि पतिदेव ज्यादा देरसे आये और थकी-मांदी होनेके कारण उसकी झपकी लग जाय, तो भी उसे पुनः उठकर उन्हें खिलाना-पिलाना पड़ता ही है। उनकी कुछ न कुछ सेवा उसे करनी ही पड़ती है। सारांश यह कि अपने जीवनका जितना समय उसे कष्टपूर्ण और निरानन्द कर्तव्य-पालनमें बिताना पड़ता है, पतिदेवको न तो उतना समय ही लगाना पड़ता है और न उतना कष्ट या त्याग ही करना पड़ता है।

यह सब बातें तो विवाहके बाद आती हैं; पर विवाहके समय भी पत्नीको अधिक त्याग करना पड़ता है। माता-पिता, सगे-सम्बन्धी, कुटुम्ब-परिवार, भाई-बहिन, सखा-सहेली तथा उस घरको, जहां उसके जीवनका सबसे मधुर समय बीता होता है, उसे सदाके लिए छोड़ना पड़ता है।

इतना आत्म-समर्पण, इतना आत्म-त्याग आखिर वह किस बूतेपर कर बैठती है? ऐसी कौन-सी शक्ति उसे ऊपर उठाये रखती है? प्रेम, केवल प्रेम ही उससे इतना कार्य करा लेता है। विचार कर देखिये, आप स्वयं ही समझ जायंगे, यह साधारण त्याग नहीं है। वह भूखी रह जायगी, अपने तन-मनकी तनिक परवाह न करेगी, फटे चीथड़ोंमें दिन काट लेगी; पर पति-प्रेमके सलिलके सिञ्चन बिना सूख जायगी। इस कोमल लतिकाको हरा-भरा बनाये रखनेके लिए पति-प्रेमका सिञ्चन जरूरी है। दुनियाकी सारी बातें एक ओर हैं और प्रेम एक ओर। वह इसके बिना सुखी नहीं रह सकती। स्त्रीका हृदय भावुक होता है। वह स्वभावसे ही कवि होती है। उसके हृदयमें सदैव एक क्षीण आशा लगी रहती है, जिसके बलपर वह इतना बलिदान चुपचाप करती चलती है। उसे विश्वास रहता है कि उसके इस पवित्र प्रेमकी कदर होगी, उसका महत्त्व स्वीकार किया जायगा और उसके सामने भी एक युवक अपना हृदय समर्पित करेगा।

किन्तु आजकल होता क्या है? पत्नीको पतिव्रता बनने-

का आदेश तो खूब दिया जाता है। छुटपनसे ही उसे पतिव्रता बननेके उपदेश माता-पिता-गुरुजन सभी देते हैं। अनुसूयाके कहे वचन उन्हें कण्ठस्थ कराये जाते हैं; पर आज तक किसी पिताको अपने पुत्रको पत्नी-व्रतका सदुपदेश देते भी क्या आपने सुना है? नतीजा यह होता है कि विवाह होनेपर स्त्रियां जिस प्रकार अपना तन, मन, धन पतिदेवके चरणोंपर अर्पित कर देती हैं—मनसा वाचा कर्मणा पतिमय हो जाती हैं, हमें लगता है, पुरुष स्त्रीके समीप ऐसा आत्म-समर्पण नहीं करता; पर समय-समयपर उसे उसकी शारीरिक या मानसिक कमियां बतलाकर उसे धमकी दिया करता है कि उसमें इन-इन बातोंकी कमियां हैं। यदि वह उन्हें पूरी कर सकी तो ठीक है, नहीं तो वह किसी अन्य स्त्रीके प्रति आकर्षित हो जायगा और इसमें उसका कोई दोष न होगा। मैंने अपने कानों ऐसा कहते पुरुषोंको सुना है।

उन दोनोंका विवाह एक-दूसरेको खूब देख सुनकर हुआ था। पुरुषने उसके स्वास्थ्य और सौन्दर्यपर लट्टू होकर ही उसे पा लेनेके लिए कोई कोर-कसर न उठा रखी थी। प्रेमका झूठा-सच्चा फरेब डाल उसे उसने अपना बना लिया; पर जो फरेब था, वह कुछ दिन बाद हट गया और स्त्रीने देखा, उसने धोखा खाया है। मन-ही-मन इसी चिन्ताग्निमें वह झुलसने लगी। उसका शरीर दुर्बल हो गया। पतिने उसके दुबले होनेका कारण तो जाननेकी कोशिश न की, बल्कि उल्टे उसे धमकी दी कि यदि वह अपना स्वास्थ्य ठीक न रखेगी, तो वह किसी औरको प्यार करने लगेगा; और इस तरह उसने उसके मर्जको बढ़ानेके इञ्जेक्शन उसे दिये। नतीजा क्या हुआ होगा, उसे पाठक ही समझें। यह पुरुष-पाषाण देव चढ़ावा लेता है, प्रसाद नहीं देता। यह देव बड़ा निष्ठुर एवं स्वार्थी है। यदि स्त्रीके समान पुरुष भी आत्म-समर्पण कर सके, तो हमारी गृहस्थी जो आज नरकसे होड़ ले रही है, स्वर्ग बन जाय।

शरीरका आकर्षण

जब तक नवीनता रहती है, आकर्षण रहता है, तब तक तो पुरुष पत्नीकी ओर आकर्षित रहता है, लेकिन शीघ्र ही उसका मन चञ्चल हो उठता है—वह पत्नीके प्रति उदासीन हो जाता है। स्त्रीका स्वप्न टूट जाता है—वह समझ जाती है, उसे धोखा हुआ। उसका सर्वस्व दान ठुकरा दिया गया। परिणाममें अधिकांश स्त्रियां असन्तोषके कारण पथ-भ्रष्ट हो जाती हैं। बहुत-सी तो प्रेमके लिए अपना अञ्चल फैलाये मृत्युकी गोदमें चल देती हैं। इस जीवनमें उनको प्रेम-पिपासा नहीं मिटती।

विवाह होनेपर जिस प्रकार चारों तरफका मायामोह छोड़कर स्त्री अपना सर्वस्व पतिको अर्पण करती है, पुरुष भी ठीक उसी प्रकार जब तक अपना सारा प्रेम, समूचा हृदय स्त्रीको प्रतिदानमें अर्पण न करेगा, तब तक उनका दाम्पत्य जीवन सफल न होगा, न उन्हें सुख मिलेगा और न शान्ति। स्त्रियां सङ्कोचवश चाहे कुछ कहें न; किन्तु मानव-हृदयको यदि हम पहचानते हैं, तो हमें मालूम हो जाना चाहिए कि नारी-हृदय भी यही चाहता है कि मेरी ही भांति पुरुष भी आत्म-समर्पण कर दे और हम दोनोंका हृदय एक हो जाय, द्वन्द्व मिट जाय, भेदभाव हट जाय और हम ऐसे एक हो जायं कि फिर कोई शक्ति हमें अलग कर ही न सके।

समय बदल रहा है

अब जमाना वह नहीं रहा कि स्त्रियां केवल रोटी और कपड़ेके लिए ही पुरुषोंकी मुहताज रहें और शादी कर लें, जिससे उनके भरण-पोषणका भार उनके पति उठा लें और वे घरमें बैठी अपने पतिकी गुलामी करें। स्त्रियां पुरुषोंकी गुलाम नहीं, हां सहचरिणी अवश्य हैं। दो रोटियों और चार चीथड़ोंके लिए वे उनका मुंह नहीं ताकना चाहतीं। उनमें भी शक्ति है कि वे अपने शरीरको ढंक रुकें और अपना उदर-पोषण आप ही कर सकें। वे शादी सिर्फ इसीलिए नहीं करतीं। आजकी स्त्री केवल इस बातसे किसी भी तरह सन्तुष्ट नहीं रह सकती कि उसका पति कमाई करके ला दे और वह घरमें बैठी-बैठी उस कमाईका उपभोग करे, घर-गृहस्थी सभाले और बच्चे पाले; बल्कि वह चाहती है पुरुषोंसे कन्धेसे कन्धा लगाकर जीवनके सभी प्रकारके आमोद-प्रमोदोंमें भाग लेना। उसके भी दिल और उस दिलमें उमङ्गें हैं। उसके भी दिमाग है, वह भी अपना अच्छा और बुरा सोच-समझ सकती है। उसके भी इच्छायें हैं और बड़ी-बड़ी आकांक्षायें हैं। वह निरी मूर्खा नहीं। वह भी दुनियाकी चहल-पहलसे अनभिज्ञ नहीं। जब उसके पतिको दिनके दो घण्टे भी घरकी दीवारोंसे घिरे रहकर काटनेमें दुस्तर हो जाते हैं, तब वह ही क्योंकर अपना सारा

समय घरमें ही काटे ? वह भी सभा-सोसाइटियोंमें जाना चाहती है, सैर-सपाटे पसन्द करती है, चहलकदमी उसे भी अच्छी लगती है, सिनेमा-थियेटर वह भी जाना चाहती है और यदि इन सबके लिए उसके पतिके पास पर्याप्त धन न हो, तो कमसे कम उसके पतिको यह तो महसूस करना ही चाहिए कि जिस तरह दिन-भर आफिसमें काम करते-करते उसका जी ऊब उठता है, उसी तरह उसकी पत्नी भी दिन-भर घर-गृहस्थीका काम-काज करते-करते और बाल-बच्चोंके साथ परेशान होते-होते थक गयी होगी और इस हालतमें दिल-बहलावकी किसी न किसी चीजकी उसे भी घोर आवश्यकता होगी। यदि द्रव्याभावके कारण वह उसे घरसे बाहरके आमोद-प्रमोदोंमें सम्मिलित करानेमें असमर्थ हो, तो कमसे कम घरपर ही उसे दो घण्टे समय देकर—उसके साथ प्रेमसे कुछ बातचीत कर तो बिता ही सकता है।

प्रेम-पत्रोंकी धुन

कुछ ऐसे भी देखे गये हैं, जो विवाहके बाद एक-दो साल तो—यदि उन्हें जब कभी पत्र लिखनेका मौका मिलता है याने जब पत्नी पिताके घर गयी हो या पति अपने रोजगारके कारण परदेशमें हो और पत्नी ससुर-गृहमें हो—पत्र बढ़िया-बढ़िया लिखा करते हैं, किन्तु समयके साथ ही उनका यह नशा भी उतरने लगता है और पति अपने इस कर्तव्यसे भी च्युत होने लगता है। वह कुछ पेटेण्ट शब्दोंको या शायरोंकी कुछ लाइनोंको ही लिखकर उसे दम-दिलासा दिला देता है और यह लिखता है कि पत्र लिखनेको उसे समय नहीं मिलता या वह उसे आध्यात्मिक प्यार करता है, जहां पत्रका कोई स्थान नहीं; किन्तु यह उसकी गलती है। जैसे खाने-पीने, सोने और नहाने-धोनेके लिए उसे किसी न किसी प्रकार समय निकालना ही पड़ता है, उसी प्रकार पत्नीको भी प्रेमपत्र लिखनेका समय उसे निकालना ही चाहिए। जो पत्नी अपने पतिके ही नामकी माला परदेशमें फेरती रहे, जिसे बिना पतिके कुशल-समाचार जाने न नींद आती हो, न खाना-पीना सुहाता हो, न चैन पड़ता हो, क्या उसके पतिको उसके लिए इतना भी न करना चाहिए कि जब कभी वह शीतल जलके दो-चार छींटे तो उसे दे दिया करे।

सभीको तो नहीं, किन्तु हां कुछ स्त्रियोंको अच्छे-अच्छे गहने-कपड़े पहननेका भी शौक रहता है। कुछ अच्छे घरोंकी लड़कियोंका शौक तो माता-पिताके घरमें पूरा हो जाता है, पर कुछकी इच्छायें माता-पिताके राज्यमें तो सुप्त पड़ी रहती हैं और पति-राज्यमें जाग्रत हो जाती हैं। और कई-एककी इच्छायें तो पिताके घरमें ही तीव्र हो उठती हैं; किन्तु पिताकी असमर्थता या अन्य किसी कारणसे वे उस समय पूरी नहीं हो पातीं और वे अपने मनमें इसी आशापर धैर्य धारण करती हैं कि पति-राजमें उनकी वे ख्वाहिशें पूरी हो जायंगी। लड़कोंको शादीके पहले ही इस बातको जान लेना चाहिए, क्योंकि बादको कभी-कभी इसी बातको लेकर दम्पतिमें कलह हो जाता है और गृहकी शान्तिमें बाधा पड़ती है। यदि लड़कीका झुकाव वास्तवमें वस्त्राभूषणोंकी तरफ हो और वे सब गुण भी मौजूद हों जिन्हें लड़का चाहता है, तो उस लड़कीसे शादी करनेके लिए उसे कुछ दिन और साधना और तपस्या करनी चाहिए। जब तक अपने आपको उसके योग्य न बना ले, उससे शादी कदापि न करे। बहुत-से लड़के यह गलती कर बैठते हैं कि जीवन-यापनका ठीक तरहसे प्रबन्ध हुए बिना ही शादी कर लेते हैं। किसी भी लड़केको जब तक वह अपने आप अपने पैरोंपर खड़ा न हो जाय, शादी करनेकी इजाजत मैं नहीं देती। माता-पिता या किसी औरके आश्रित खुद रहना और किसी औरको भी रखना ठीक नहीं।

कुछ लड़कियां उन लड़कोंसे सख्त नफरत करती हैं, जो अपने ससुरसे दहेजकी इच्छा रखते हैं। यह इसलिए नहीं कि वे इससे अपने पिताका भला चाहती हैं। पिताके हितसे पतिका हित अधिक जरूरी दिखता है। पर ऐसे लड़कोंसे घृणा इसलिए हो जाती है कि दूसरोंके पैसेपर दांत लगानेवाला लड़का उन्हें कायर, बुजदिल, भीरु, निकम्मा एवं आलसी जंचता है। और वह उनकी निगाहोंसे गिर जाता है। इस जमानेमें लड़कियां भी पुरुषोंकी बराबरीसे द्रव्योपार्जनका बल अपने आपमें रखती हैं, वे कभी यह बर्दाश्त नहीं कर सकतीं कि उनका पति उनके पिताकी कमाईका आसरा तके।



'नवम्बर-क्रान्ति'

श्री शशिभूषण

अठारहवीं शताब्दीमें घटित फ्रेञ्च क्रान्तिकी आतङ्क-कारी एवं लोमहर्षक विभीषिकाओंको सभी इतिहासके अध्येता जानते हैं। २० वीं शताब्दीकी रूसकी "नवम्बर-क्रान्ति" भी कितनी ही भीषण हत्याओं और रक्तरञ्जित काण्डोंसे सम्बन्धित है। भेद इतना ही है कि फ्रान्समें प्रजा-तन्त्र धनीवर्गके ही हाथ रहा, लेकिन रूसने अन्तमें अपनी आत्मा-सी प्राप्त कर ली। क्रान्तिवादी बोल्शेविकोंने मूल-भूत सत्यको पकड़ लिया था—'स्वतन्त्रता, संस्कृति तथा अन्य सभ्यताके महिमामण्डित अवदान छूंछे शब्द-मात्र हैं, यदि जनताके पास पर्याप्त खाद्य-सामग्री नहीं।' विश्व-इतिहासमें यह पहला ही अवसर है कि मनुष्यके प्रचुर भोजन और उचित शरणस्थल-सम्बन्धी अधिकारोंका अभि-नन्दन हुआ। इस क्रान्तिका उत्तर-प्रभाव भी इतिहासका एक उल्लेख्य विषय है। किसी भी दृष्टि-प्रणालीको ग्रहण किया जाय, हमें तार्किक सत्योंको ढूंढ़नेके पश्चात् सुनिर्धा-रण करना होगा—'यह कैसी विषमता है कि हम एक तरफ इतने लोगोंको बुभुक्षा-ज्वालामें जलते देखते हैं और दूसरी तरफ वैभवोन्मत्त प्रभुओंकी अनावश्यक विलासिता बढ़ती ही जाती है!' सोवियट रिपब्लिककी सर्वोल्लेखनीय उपलब्धि यही है कि इसने क्रान्तिकी बदौलत यूरोप तथा अमेरिकाके पूंजीवादी राज्योंमें एक आतङ्क और भयोत्तेजन फूंक दिया है। इन्हीं सम्भावनाओंको सोचकर लेनिनने 'नवम्बर-क्रान्ति'की सफलताको बोल्शेविज्मकी दिग्विजय बताया था। संसार बोल्शेविक "लाल सैन्य"से जितना आशङ्कित नहीं हुआ, उससे अधिक बोल्शेविक सिद्धान्तसे विक्षुब्ध हुआ है। कम्यूनिज्म कोई नया 'आइडिया' नहीं, लेकिन लेनिनके मस्तिष्कने इसको उज्ज्वल और सुप्रतिभ बना दिया। यह अधिकाधिक उज्जीवित और अनुप्राणित हो गया। धारणायें सीधी हों या क्रान्तिवादिनी, उसी हद तक प्रभावोत्पादक होती हैं, जिस हद तक वे अभ्यासमें सन्तुलित और कार्य-स्वरूपमें अनूदित की जाती हैं। कम्यूनिज्म, जो हृदयकी धर्म्य कामना (Pious wish) से अधिक कुछ नहीं, अचानक एक ऐसी सीमा तक अभ्यासान्वित एवं कार्य-सन्तुलित हुआ कि उसे एक 'क्रीड'—मत—के रूपमें बदल जाना पड़ा। इस धर्म्य मतको, लोविस डिकिन्सनके विवे-चनमें, 'सोशियल जस्टिस' कहना अप्रासङ्गिक नहीं होगा। इसका अभाव किसी भी राजनीति या समाज-तन्त्रमें क्रान्ति ला सकता है। कम्यूनिज्मका शुद्ध सैद्धान्तिक रूप हमें हमेशा खण्डित ही प्राप्त हुआ है। क्रान्ति-कालमें भी श्रम-जीवियोंकी दिलचस्पी उसी बिन्दु तक विप्लवसे बंधी रही है, जहां तक उन्हें भूमि प्राप्त करनेकी सुविधायें प्राप्त हो सकी हैं; व्यक्तिगत स्वत्वोंसे जहां-जहां जमीनें मुक्त की गयीं तथा धनप्रभुओंकी भूमिपर उन्हें अपना निजत्व देखनेको मिला है। यदि ये श्रमजीवी एवं सैनिक (रूसी सैनिकोंमें अधिक श्रम-जीवियोंकी ही संख्या थी) जारशाहीके प्रतिपक्षमें खड़े नहीं होते, तो जारका सिंहासन नहीं उलटा होता। वहां परि-मित राज-सत्ता रहती। और आज दुनियाका नक्शा कुछ बदला हुआ रहता। क्रान्तिकी यह अप्रत्याशित सफ-लता कैसे सङ्घटित हुई? इसका श्रेय हम साम्यवादी श्रमजीवी दलके नेताओंको दे सकते हैं। इन लोगोंने एक दुर्दम्य उमङ्ग-जिसका क्रान्तिकी उपासनासे सीधा सम्बन्ध है—श्रमजी-वियोंकी नसोंमें फूंक दी थी।

मार्च १९१७—क्रान्तिके उदयका काल है। ८ मार्चसे ९ नवम्बर तक मेन्शेविकी दल और धनीवर्गके हाथ रूसी प्रजातन्त्र रहा। १९१४ के यूरोपीय महायुद्धमें रूसने इंग-लैण्ड और अन्य मित्र-राष्ट्रोंका पक्ष लिया था; अतः रूसियोंके स्वाभाविक विरोधी जर्मन हुए। कैसरने मन्त्री रास्पुटिनको इसी बीच अपनी ओर मिला लिया था; युद्धमें गये हुए रूसी सैनिकोंकी रसदमें विघ्न पहुंचने लगा था। इधर जनता-में असन्तोषकी ज्वाला, उधर मन्त्री-दलका जर्मनीसे मिलकर अन्नोंपर प्रतिबन्ध लगाना। क्रान्तिका आगमन हुआ। सोवियटने क्रान्तिवादी दलको अपनी ओर कर लिया। राज्य सेना भी मिल गयी। 'कोसकों' ने भी साथ दिया। जार विक्षेपग्रस्त-सा हो गया। वह पेट्रोग्राडकी ओर बढ़ा।

शीघ्र ही अस्थायी मन्त्रिमण्डल स्थापित हुआ। ड्यूमाने जारसे त्याग-पत्र लिया। किन्तु क्रान्तिका कुछ और उद्देश्य था—'जारशाहीका समूल विनाश !' नवीन मन्त्रिमण्डल स्थापित हुआ। मो० क्रेन्स्की न्याय—मन्त्री नियुक्त हुए; जार्ज ल्वौफ प्रधान मन्त्री। पेट्रोग्राडके आन्दोलनका अनुकरण कीव, युक्रेन, मास्को, साइबेरिया आदि प्रान्तोंने किया तथा सर्वत्र प्रजातन्त्रकी मांग हो रही थी।

मोशिये क्रेन्स्की मजदूरों और सैनिकोंके पक्ष-पोषक और नरम साम्यवादी (मेन्शेविकी) थे। लेकिन आश्चर्य ! उन्होंने सर्वदा यही चेष्टा की कि क्रान्ति दबी रहे तथा श्रमजीवी-वर्ग नवीन मन्त्रिमण्डलपर विश्वास रखे कि उसके अधिकारपर किसी तरहका अभावा-रोपण नहीं किया जायगा। मो० क्रेन्स्कीका प्रभाव धीरे-धीरे बहुत बढ़ चला था और प्रिन्स जार्ज ल्वौफ आदिकी पार्टी दुर्बल हो गयी थी। किन्तु घोर परिहास एवं अपमानकी बात यह थी कि श्रमजीवी दलके नायक होते हुए भी क्रेन्स्कीकी एकान्त इच्छा थी कि युद्ध-भूमिमें रूसी सेनाओंको भेजनेमें किसी तरहकी भी शिथिलता नहीं दिखायी जाय। ड्यूमाकी बैठकमें एक दूसरा नया मन्त्रिमण्डल स्थापित हुआ, जिसमें क्रेन्स्की समर-मन्त्री बनाये गये, ताकि युद्धकी समाप्ति एक प्रभावोत्पादक ढङ्गसे हो सके। "श्रमजीवी-सैनिक-संस्था" इसके प्रतिपक्षमें थी। इस संस्थामें क्रेन्स्कीका जबर्दस्त व्यक्तित्व था, इसलिए ड्यूमाने क्रेन्स्कीको समर-मन्त्री बनाया था। इस समय एक दूसरे व्यक्तित्वकी प्रतीक्षा थी, जो इस समर-मन्त्रीके प्रभूत प्रभावको समूल नष्ट कर सकता था। यह थे मो० लेनिन। १९१७ की क्रान्ति घटित होते ही कैसरके निदेशानुसार अन्य क्रान्तिकारियोंके साथ वह भी रूस पहुंचे। विप्लवके आतङ्ककारी चिह्नोंको देखकर प्रिन्स ल्वौफ, गचकाफ, मिल्यूकाफ, रोडजिन आदिने इस्तीफा दे दिया था और क्रेन्स्कीको प्रधान मन्त्री बनाया गया।



१९३० में पोपने ईसाई राष्ट्रोंको रूसके विरुद्ध उसके धर्म-विरोधी कार्योंके कारण उभाड़नेकी कोशिश की थी। कार्टूनमें रूसी कम्यूनिस्ट क्रास तोड़ रहा है।

प्रधान मन्त्री एवं समर-मन्त्री क्रेन्स्की महोदयकी क्या नीति थी ? पूंजीवादी धनीवर्गसे मिलकर शासन-कार्यका सूत्रपात करना ! इस द्विधा-नीतिमें कितनी शक्ति और ओज सन्निहित था—यह कुछ समयका प्रश्न था। क्रेन्स्कीसे भी बहुल प्रभावशाली नायक श्रमजीवी-सैनिक-संस्थाका सञ्चा-लन-सूत्र अपने हाथोंमें किये थे। ट्राट्स्की इन नायकोंमें सर्वोपरि थे। क्रेन्स्कीके समस्त प्लैन और बुद्धि-कौशल उनके समक्ष शिरोनम्र थे। क्रेन्स्कीकी इच्छा थी कि आपसकी भिन्नता दूर हो, ताकि युद्धमें सैनिकोंको भेजने

या उनकी खाद्य-सामग्री पहुंचानेमें किसी तरहकी कठिनाई न हो। लेकिन मो० लेनिन तथा ट्राट्स्कीका विचार था कि जर्मनीसे सन्धि करके देशकी भीतरी दुर्व्यवस्थाओंको दूर किया जाय। किसानोंको मुफ्तमें जमीनें मिलें, मजदूरोंको मिलोंपर अधिकार मिले तथा सैनिकोंपर "सैनिक-संस्था" का स्वामित्व स्थिर कर दिया जाय।

क्रेन्स्की कभी इधर खिंचते, तो कभी उधर। उनकी उत्कट कामनाओंपर हिमपात हो रहा था। मन्त्रिमण्डल विपत्तियोंसे डांवाडोल था। उधर युद्धस्थलके लिए सामग्रीकी मांग, इधर पेट्रोग्राडमें श्रमजीवियोंका असहयोग ! तिसपर धनी वर्ग परिस्थितियोंके पीछेसे दूसरा षड्यन्त्र रच रहा था। प्रधान सेनापति कार्नीलाफको पूंजीपतियोंने मन्त्रिमण्डल के नाशके लिए उभाड़ लिया था। ऐसे मौकेपर क्रेन्स्कीको साम्यवादी दलने मदद दी। वह बागी सेनापति पेट्रोग्राडके समीप परास्त होकर भागा। किन्तु क्रेन्स्कीके हृदयमें प्रतिशोध-ज्वाला इतनी भड़की हुई थी कि उन्होंने उग्र साम्यवादी दल (बोलशेविक) को भी विध्वस्त करना आवश्यक समझ लिया। यहींसे स्थिति बदल गयी। साम्यवादी दलमें ऐक्यको अक्षुण्ण स्थापना हो गयी। "युद्ध बन्द करो !"—यही आन्दोलन फिर उमड़ चला।

मन्त्रिमण्डल पांच बार टूट चुका था। क्रेन्स्की महोदयको पञ्चायती दलका मन्त्रिमण्डल पसन्द था। अतः वह अपने पक्षमें अन्य वर्गों के नेताओंको भी मिलाना चाहते थे। बोल्शेविक दलवाले क्रेन्स्कीके पक्ष-पोषकोंको मिला-मिलाकर मानो प्रधानमन्त्रीके प्रभुत्वकी नींव खोद रहे थे। जनताके विचारोंकी निष्पक्ष समीक्षा क्रेन्स्कीके पास नहीं थी अथवा उन्होंने जान-बूझकर सार्वजनिक भावोंको ठुकरा दिया था—यह एक रहस्य है। लेकिन किसानों, मजदूरों और सैनिकोंकी मांगोंके द्वारा उनकी मानसिक स्थितिपर जरा भी अंकुश नहीं लगा। उनका कहना था कि 'धीरे-धीरे धनीवर्गकी सत्ता संकुचित की जायगी, फिर उन्हें सुविधायें मिलेंगी। यदि स्थिति बदली, तो जर्मनीसे एक अस्थायी सन्धि करनेकी भी हम चेष्टा करेंगे।' कठिनाइयोंके समक्ष बल प्राप्त करनेके लिए वह धनीवर्गसे मिल गये। यह धनीवर्ग केवल यह चाहता था कि एक छोटी-मोटी 'राजनीतिक क्रान्ति' हो जाय; फिर फ्रान्स या संयुक्त राष्ट्रकी तरह वहां अमीरी प्रजातन्त्र स्थापित हो, या इंगलैण्डकी तरह परिमित राज्यसत्ता हो (जान रीड)। इन्हें सच्ची क्रान्तिके उद्देश्यसे क्या मलतब ? आखिर क्रेन्स्कीने युद्ध-विरोधी आन्दोलनको दबानेके लिए दमन-नीति अपनायी। क्रान्तिवादी प्रचारकों एवं पत्रोंपर इस उद्दण्ड नीतिका अंकुश-प्रयोग किया गया। श्रमजीवियोंके शस्त्रास्त्र छीन लिये गये। पेट्रोग्राडके क्रान्ति-उपासक नायकोंको कठोर कारादण्ड मिला।

इधर राष्ट्रीय कांग्रेस (सोवियट) का निर्वाचन बहुत शीघ्र होनेवाला था। यदि इसमें क्रान्तिवादियोंका बहुमत रहा, तो क्रेन्स्कीके मन्त्रिमण्डलका टूटना अवश्यम्भावी था। क्रेन्स्कीका पक्ष दुर्बल हो रहा था, इसके दो कारण स्पष्ट थे—(क) उसकी दमन-नीति। (खासकर असन्तोषकी आग तब भड़की, जब उसने युद्ध-स्थलसे बेहद तुषार-पातके भयसे लौटे हुए सैनिकोंको प्राणदण्डकी आज्ञा तक दे दी थी)। (ख) क्रेन्स्कीपर धनीवर्गका प्रभाव। क्रेन्स्कीने राष्ट्रीय कांग्रेसके निर्वाचन-कार्यमें कुछ रुकावट डालनेके लिए एक दूसरी चाल चली। उसने स्थिर किया कि एक एसेम्बली (Governmental National Assembly) बुलायी जाय। इस तरह क्रान्तिवादी नायकोंके पक्षपोषकोंकी संख्या अल्प पड़ जायगी और हमारी पार्टी मजबूत हो जायगी।

लेकिन जब श्रमजीवियोंकी उम्मीद कि 'हमारे प्रधान-मन्त्री जमीनें लेकर हमें बांट देंगे,' क्रेन्स्कीके धनीवर्गसे मिल जानेके पश्चात् धूलिसात् हो गयी, तो उन्होंने क्रेन्स्कीकी पार्टीका एकदम परित्याग कर दिया और क्रान्तिका शीघ्र साथ दे दिया। नयी-नयी सभा-समितियां स्थापित हो रही थीं कि अगले राष्ट्रीय कांग्रेसके निर्वाचनमें बहुमत प्राप्त हो। क्रेन्स्की बार-बार चालें चल रहे थे। उन्होंने कहा—"सोवियट (राष्ट्रीय कांग्रेस) को मन्त्रिमण्डलकी गतिविधिका निर्धारण करनेके लिए कोई बल नहीं दिया जाय। एक प्रातिनिधिक सभाके द्वारा, जिसमें समस्त सम्प्रदायोंके प्रतिनिधि उपस्थित हों, मन्त्रिमण्डलकी गति-विधिका सुनिर्धारण हो।"

पेट्रोग्राडके मजदूर-दलने क्रान्तिका सोत्साह अभिनन्दन किया। सैनिकोंमें अधिक किसान ही थे, अतः स्वाभाविक था कि किसानोंपर अनाचार होते देख उनके मनमें क्रान्ति-



रूसकी ओर ! पूंजीवादी देशोंने रूसके विरुद्ध इस प्रकारका प्रचार किया था । १९२२ का यह सर्वश्रेष्ठ कार्टून घोषित किया गया था ।

का भाव उदित हो। १९१४ में सैनिकोंकी जगहपर मजदूरों और रेलवेके कर्मचारियोंको भी भर्ती होना पड़ा था। मिलोंके कार्यमें इससे उलझन आ गयी। जरूरी चीजोंका अभाव होने लगा। अन्तमें यह अभाव सैनिकोंके सिर बीता। इसी समय सुना गया कि जारका सिंहासन उलट दिया गया तथा प्रजातन्त्रकी स्थापना हो गयी। इससे इन्हें बड़ी आशा हुई। इन्होंने क्रान्तिकालमें प्रजातन्त्रका साथ दिया तथा कोसक-सेनाने पेट्रोग्राडके लोगोंपर गोली चलानेसे मुंह फेर लिया था। सारांश, क्रान्तिकी उपासनामें इन सैनिकोंका पूरा पक्ष था। क्रान्तिकारी साम्यवादी नायकोंका प्रभाव इनपर तब और पड़ा, जब इन्होंने देखा कि इंगलैण्ड अपनी प्रतिज्ञानुसार रीगाकी खाड़ीमें आक्रमणकारी जर्मन पोतोंका सामना नहीं कर रहा है।

इसी समय सेनापति कार्नीलाफके विद्रोहके समाचारने "क्रेन्स्की-दल" को मन्त्रिमण्डलके प्रति क्षुब्ध बना दिया। इसे विश्वास था कि धनीवर्गकी, हम लोगोंकी ही ओटमें होनेवाली ये चालें बड़ी षड्यन्त्रपूर्ण और घातक हैं। अतः क्रेन्स्कीको पांच व्यक्तियोंकी एक अस्थायी व्यवस्थापिका बनानी पड़ी। इस तरह ड्यूमाका पतन हुआ। धनी वर्गकी निराशा बढ़ी। तमाम कल-कारखाने बन्द करवा दिये गये। क्रेन्स्कीको आतङ्क हुआ और उसने पश्चात्ताप किया—युद्ध-सम्बन्धी उपकरण अब कैसे उपलब्ध हों ?

उस दिन क्रेन्स्कीकी घबड़ाहट बढ़ रही थी। राष्ट्रीय कांग्रेसके इस आन्दोलनका, मालूम नहीं, क्या नतीजा निकलता है। "सेण्ट्रल एसेम्बली" के चुनावके बाद मेरे ही मन्त्रिमण्डलपर सब आ बीतेगी ! अतः उन्होंने एक सार्वजनीन कान्फरेन्सकी सम्मति प्रकाशित की; साथ ही किस पार्टीके प्रतिनिधि कितनी संख्यामें आयें, इसे स्वायत्त रखा। स्वभावतः पूंजीवादियोंकी ही इसमें बहुलता थी। बोल्शेविक यही चाहते थे कि "सेण्ट्रल एसेम्बली" का बोलवाला जल्दीसे जल्दी नष्ट हो जाय, ताकि एक नयी केन्द्रीय संस्थाका निर्वाचन निश्चित हो। खैर, क्रेन्स्कीको कुछ भरोसा हो गया कि अब कोई निकटस्थ आतङ्क (सोवियट-निर्वाचनके रूपमें) नहीं है। इस नयी केन्द्रीय संस्थाके निर्वाचनको क्रेन्स्कीने टाल दिया। उन्हें मालूम था कि पेट्रोग्राड, ओडेसा, मास्को आदि भिन्न-भिन्न सोवियटोंमें क्रान्तिवादियोंकी संख्या ज्यादा है। इस समय कुछ देरके लिए मानो रूसका सौभाग्य-देवता रूठ गया था। क्रान्तिकी सफलता धनीवर्गके कार्य-प्रवाहमें पड़ गयी थी। बोलशेविक प्रतिनिधियोंने इस कृत्रिमताको नापसन्द किया और प्रजातन्त्र-कौन्सिलसे इस्तीफे दे दिये। इससे धनीवर्गका बहुमत अधिक स्पष्ट हो

गया और एक दिन इस वर्गने राजसत्ताकी ओर भी सहानु-भूतिपूर्ण इशारा करनेका साहस कर दिया।

ट्राट्स्कीने अभिभाषण दिया। क्रान्तिवादियोंने समर-भूमिमें यह प्रचार किया कि अब मन्त्रिमण्डल सन्धि नहीं करना चाहता; मित्र-राष्ट्रोंके स्वार्थकी बलिवेदिकापर सैनिकों-का प्राणोत्सर्ग हो रहा है! उधर रीगामें जर्मन पोतोंका पुनः आक्रमण हुआ और अब सरकार पेट्रोग्राडको छोड़कर मास्को भाग जाना चाहती थी। लेकिन यदि ऐसी बात होती, तो मन्त्रिमण्डलपर पुनः अधिकार जमाना क्रान्ति-वादियोंके लिए मुश्किल हो जाता। इसी समय पेट्रोग्राडमें ऐसा जन-जागरण हुआ कि मास्को भागनेकी बात रद्द कर दी गयी।

सोवियट कांग्रेसका समय २ नवम्बरको निर्धारित किया गया। ज्यों-ज्यों दिन बीत रहे थे, क्रेन्स्की अधिकाधिक आशङ्कित हो रहे थे। प्रजातन्त्र-कौन्सिलका पूंजीवादी वर्ग भी बौखला उठा था। प्रतिनिधि ३० अक्टूबरसे आने लगे थे, ठीक समयपर सब पहुंच सकेंगे या नहीं, इसलिए तारीख ७ नवम्बर कर दी गयी। धनीवर्ग प्रचार कर रहा था कि बोल्शेविक दल पेट्रोग्राडपर कब्जा कर लेगा, अतः यह कांग्रेस नहीं बैठेगी। २३ अक्टूबरकी रात्रिमें लेनिन गुप्तवास-से आये और एक गुप्त सभा हुई। निश्चय किया गया कि कांग्रेसकी बैठकसे एक दिन पहले ही हथियारबन्द जुलूस निकले। क्योंकि क्रेन्स्कीने अनेक सेना-नायकोंको ससैन्य पेट्रोग्राड आनेका आदेश दे दिया था।

आज क्रेन्स्कीकी वह आराधनीय मूर्ति जनताकी श्रद्धा-पूर्ण आंखोंसे ओझल हो चुकी थी। क्रान्तिकी सफलता मानो पहलेसे ही दरवाजा खटखटा रही थी। क्रेन्स्की "विण्टर पैलेस" में वासकर रहे थे। जारके इस पूर्व निवास-स्थानने उनकी अप्रतिभ तेजस्विताको आत्मसात् करके उनके मस्तिष्कको सूना-ऊना कमरा कर दिया था। दिमागमें सिर्फ यही घूम रहा था—'पेट्रोग्राड-सोवियटका विनाश तथा क्रान्तिके उद्देश्यकी सारी चेष्टा-प्रचेष्टा कैसे व्यर्थ हो जाय!' आशङ्का-पीड़ित हो उन्होंने यह आदेश निकाला कि पेट्रोग्राडका सैन्य-दल समर-भूमि जानेके लिए तैयार रहे (क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास था कि क्रान्तिकी सफलतामें इस सैन्य-दलका पूरा हाथ रहेगा)। इससे असन्तोषकी आग भड़की। लेनिनके निदेशानुसार इस सैन्य-दलने सरकारी पत्रालयों और शस्त्रास्त्रके खजानोंपर छापा मारकर अपना स्वत्व जमा लिया। क्रेन्स्कीके रहे-सहे मेधा-बलपर मानो वज्रपात हुआ।

शीघ्र ही बोल्शेविकोंकी एक दूसरी गुप्त सभा हुई। निश्चय हुआ कि ७ नवम्बरको ही आक्रमण करना ठीक होगा। उसी दिन कांग्रेसमें हम अपनी इस नवीन सत्ताके सदुपयोगके सम्बन्धमें विचार-विमर्श करेंगे। उधर बोल्शे-विक पत्रालयोंपर क्रेन्स्कीने भी अधिकार जमा लिया तथा स्मोलनी-प्रासादके तार कटवा दिये। बोल्शेविकोंके पास उस समय एक लाखसे अधिक सैनिक और मजदूर थे। रातको सरकारी पत्रालयोंपर धावा बोला गया; ताले तोड़ दिये गये।

क्रान्तिका रूप निर्णीत हो चुका था। लेनिन, ट्राट्स्की, केमनीफ, पोवस्की, जिनोवीफ आदि समस्त क्रान्तिवादी-नायक सोवियट-कांग्रेसकी बैठकके सम्बन्धमें योजनायें बना रहे थे। उधर क्रेन्स्की "विण्टर पैलेस" में प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे अपना आखिरी अभिभाषण दे रहे थे। लेकिन आज वह दिन नहीं था कि उनके उस ओजस्वी भाषणपर समादरका फूल चढ़ाया जाता।

सरकारके हाथमें कोसक तथा कुछ यङ्कर सेना बची थी। लेकिन सबसे मुश्किलकी बात यह थी कि सैनिकोंमें अब आदेशानुसार काम करनेकी परवा नहीं रही थी। उस दिन ६ नवम्बरको सबेरे ९ बजे प्रधान मन्त्री पेट्रोग्राड छोड़-कर गायब हो गये, यह कहकर कि मैं युद्ध-स्थल जा रहा हूं। उस समय राजधानी सोवियटके अधीन हो गयी थी। मन्त्रिमण्डलके मन्त्री एक-एककर कैद होकर आ रहे थे। "क्रेन्स्की कैसे भाग सके!"—अचानक यही शोर हुआ! वास्तवमें, यङ्कर सैनिकों और कोसक सेनाको बोल्शेविकोंने अपनी ओर मिला लिया था और अपना यह संहार देखकर क्रेन्स्की युद्ध-भूमिको खिसक गये थे। थोड़ी-सी यङ्कर सेना अभी भी प्रतिक्रान्तिकारी पक्षमें थी। "विण्टर-पैलेस" पर तथा अन्य राज्य-प्रासादोंपर अपना अधिकार जमानेके बाद "क्रान्तिवादी-सैनिक-संस्था" ने यह घोषणा निकाली कि "अस्थायी सरकारी सत्ताका सिर तोड़ डाला गया!"

क्रेन्स्की गचीना पहुंच गये थे। वहांसे वे ओस्ट्रावा नगर-

में पहुंचे। लेकिन उन्हें यहां पेट्रोग्राडकी स्थितिका कुछ भी समाचार नहीं मिला। वह किसीसे इस सम्बन्धमें कुछ कहकर भी नहीं आये थे। प्रातःकाल उन्होंने कोसक सैनिकोंको उत्तेजनापूर्ण शब्दोंसे समझाना शुरू किया कि ऐसे समयमें सहायता करो! इन क्रान्तिवादी दलोंका पेषण कर डालो! कई सैनिकोंने कुछ विरोधपूर्ण वाक्य भी कहे। कुछने चाहा कि क्रेन्स्की महोदयको यहीं बन्दी बना लिया जाय। क्रेन्स्की यहांसे सकुशल 'लूगा' के पड़ावमें पहुंचे। यहांके 'डेथ बटालियनों' ने अपने युद्ध-मन्त्रीका सादर स्वागत किया। इन सैनिकोंको पेट्रोग्राडकी स्थितिका कुछ भी पता नहीं था कि वह क्रान्तिकारियोंके हाथोंमें है तथा हमारे प्रधान मन्त्री पलायन कर रहे हैं। सहायताका वचन लेकर वहांसे क्रेन्स्की स्टोवका नामक स्थानमें पहुंचे। यहां ९ सहस्र कोसक सैनिक उनके आदेशानुसार साथ चले।

उधर, "विद्रोहियोंको शान्त करनेमें सहायता करो।" मेन्शेविको नायकोंने इसी उद्देश्यसे एक कमेटीका सङ्गठन किया था। इसका लक्ष्य कहा जाता था कि देशकी रक्षा एवं क्रान्तिका विरोध करना है। म्युनिसिपैलिटीसे सेनाओं तथा रेलवेके कर्मचारियोंने प्रतिक्रान्तिमें सहायता देनेके वचन दिये थे। यह कमेटी सनिकोंको पेट्रोग्राडके रक्षार्थ उसपर आक्रमण करनेके लिए उत्साहित करती थी तथा जनताको प्रतिक्रान्तिके लिए उभाड़ती भी थी। झूठी अफवाहोंको रोकनेके लिए लेनिनके प्रस्तावानुसार प्रथम ही धनीवर्ग तथा मेन्शेविकी दलसे सम्बन्धित सभी पत्र बन्द कर दिये गये थे।

क्रेन्स्की महोदयने इसी समय एक विजयका सन्देश अपने उत्तर-प्रान्तवर्ती रूसी सैनिकोंको भेजा कि "गचीना नगरको हमने बड़ी आसानीसे विरोधियोंके हाथसे छीन लिया है। इन विरोधी सैनिकोंको हमने अपने पक्षसे फोड़ भी लिया है। अभी मेरा आदेश है कि रूसी सेनायें शीघ्र पेट्रोग्राडकी ओर भेजी जायं।" यह बात कुछ अंशोंमें सत्य थी। पर क्रान्तिकारी सैनिकोंने आत्मसमर्पन कर दिया है—यह बात बिलकुल झूठी थी। उसी रातको क्रान्तिवादी सैनिकोंने विरोधी दलके पत्रालयपर आक्रमण किया तथा म्युनिसिपैलिटीके झूठे छपे पत्रांशोंको ले लिया।

"क्या क्रेन्स्की ससैन्य पेट्रोग्राडपर चढ़े आ रहे हैं?" "क्या मास्कोके लाल सैनिक प्रतिक्रान्तिकारियोंके दलमें जा मिले हैं? और नगरपर क्रेन्स्कीके सैनिकोंका पूर्ण अधिकार हो गया?" आदि-आदि कुछ झूठी, कुछ सच्ची खबरें फैल चली थीं। स्मोलनो-प्रासादमें लेनिन विचार-विमर्श कर रहे थे। उनके परामर्शसे पेट्रोग्राडसे कुछ ही दूरीपर बड़े-बड़े युद्ध-गह्वर खोदे जा रहे थे। बोल्शेविक लाल सिपाहियोंको वहांके मोर्चेपर रखा गया था। कई सहस्र सैनिक मास्कोपर अधिकार करनेके लिए भेजे गये। नीवा नदीके तीरोंपर भी एक सैनिक सङ्गठन तोपोंके साथ मौजूद था।

कल होकर क्रेन्स्कीने पेट्रोग्राडसे ६० मीलकी दूरीपर स्थित एक गांवको ले लिया। फिर कल होते, वह समस्त कोसक-सैनिकों समेत बोल्शेविकोंके द्वारा खने युद्ध-गह्वरोंके समीप आये। बस, तुमुल युद्ध-काण्ड उपस्थित हुआ। उधर पेट्रोग्राडमें भेजे गये यङ्कर सिपाहियोंको लाल सैनिकोंने अच्छी तरह हराया। तार घरपर अधिकार करके वहां पूर्ण शान्ति स्थापित कर दी। यहां कोसक सैनिकों एवं बोल्शेविक सिपाहियोंमें भी लोमहर्षक रण हुआ। पेट्रोग्राडमें शान्ति स्थापित करके दलके दल सैनिक पहुंच रहे थे। और लाल सैनिकोंने कोसकोंको अपने विजयोल्लासके मदमें शीघ्र ही अभिभूत कर डाला। कोसक-सेना भाग चली। रातमें इन सैनिकोंने क्रेन्स्कीको मदद देनेसे साफ इनकार कर दिया। बचे-खुचे कोसक सैनिक बोल्शेविकोंकी ओर रातमें चुपके मिला लिये गये।

गचीनाकी छावनीमें औंधे मुंह पड़े क्रेन्स्की मानसिक धागोंको तोड़ रहे थे। बड़े-बड़े युद्ध-नायकोंने आत्मसमर्पण कर दिया था। क्रेन्स्कीका आशङ्का-विह्वल हृदय उसे पल-पल उद्वेलित कर रहा था कि वह छिपकर अपनी छावनीसे बाहर निकल भागे। किया भी गया वैसा ही। मांझीकी वर्दीमें सिकुड़ा रूसका प्रधान मन्त्री इंगलैण्ड भाग गया!

क्रेन्स्कीके इस पराभवपूर्ण पलायनका समाचार दे .के कोने-कोनेमें भेजा गया। इससे शीघ्र ही अन्य स्थलोंकी प्रतिक्रान्तियां दब गयी। दूसरे दिन प्रातःकाल यह उद्घोषित किया गया—"हमने सबके ऐक्यसे यह निश्चय किया है कि जो कोई क्रेन्स्कीको पाये, कैद करके पेट्रोग्राड भेज दे। अथवा यदि क्रेन्स्की महोदयमें इतनी आत्मशक्ति है कि वह खुद उपस्थित हो सकें, तो वे आयें!"

माल्कोका क्रान्ति-काण्ड अभी समाप्त नहीं हुआ था। पेट्रोग्राडसे भेजी गयी क्रान्तिकारी सेनाने नगरको घेर लिया। हथियारोंके खजाने ले लिये गये और पुनः सर्वत्र शान्ति!

इस तरह करेन्स्कीके इस पराभव एवं असीम अपकर्षने एक बड़ी कमीकी पूर्ति कर दी। क्रान्तिवादी नायक लेनिन, ट्राट्स्की, जिनोवीफ आदिकी महान् साधना सफल हुई तथा करेन्स्कीके पतनने क्रान्तिकी विजयको अधिकाधिक सुस्पष्ट और उद्घोषित कर दिया। नवम्बरकी क्रान्ति विश्वके इतिहासमें एक अभूतपूर्व घटना थी। ऐसी घटना, जिसकी व्यापकता वर्षों बाद स्पष्ट हुई और वर्षों बाद और भी स्पष्ट होती चलेगी।

स्फूर्ति

किसने वीणाको छेड़ दिया?

जों कोनेमें थी पड़ी हुई,
चिर-विस्मृत और उपेक्षित-सी!
एकाकीपनमें मौन पड़ी,
चिर तृषित और चिर वञ्चित-सी!

जिसके ढीले-से तार, मौन
झंकृत हो गाना भूल गये!
मनको, मस्तकको, नस-नसको,
पलमें सिहराना भूल गये!

जिसका मन शिथिल, पड़े जिसकी,
वाणीपर थे चुपके ताले!
जिसके तनपर अगनित जाले,
निष्ठुर मकड़ीने बुन डाले!

किस स्नेह-परसने छेड़ दिया?
गानोंके सागर फूट पड़े!
सङ्गीत-भरे नभसे तारे,
तानोंके अगनित टूट पड़े।

कण-कणमें बसकर गूंज उठे,
छाये सर सरिता सागरपर!
उन्माद रागका कर पैदा,
कुछ कांप उठे अपनेमें स्वर!

ध्वनिके खग उड़-उड़ फैल गये,
औ' दशों दिशायें जाग उठीं!
अम्बरकी सोयी-सी स्मृतियां,
सुनकर यह अभिनव राग, उठीं!

धरनीने ली फिर अंगड़ाई,
अपनी चिर-निद्रा तज डाली।
तन्द्रिल पलकोंने ज्योति नयी
उस राग-भरे क्षणमें पा ली।

सागर सिहरा, कांपा, तड़पा,
छूनेको नभके छोर चला।
अम्बर लेकर मोती अपने,
मिलनेको उसकी ओर चला।

फिर किसने स्नेह परस खींचा?
फिर शङ्कित-सी चुप है छाई!
वीणाकी तृष्णाने पूरी,
थी अभी नहीं ली अंगड़ाई!

—उपेन्द्रनाथ 'अश्क', बी० ए० एल-एल० बी०



जिन्ना—एक पहेली

श्री ख्वाजा अहमद अब्बास 'बाम्बे क्रानिकल' के सम्पादकीय विभागमें हैं। अंगरेजीके वे सुन्दर लेखक और बड़े तीव्र आलोचक हैं। अभी वे युवक ही हैं और अमेरिकामें होनेवाली 'यूथ कान्फरेन्स' में ही उन्होंने भाग नहीं लिया था, विदेशोंका आपने अच्छा भ्रमण भी किया है। उन्होंने न्यूयार्कसे प्रकाशित होनेवाले सुप्रसिद्ध मासिक पत्र 'एशिया' की अगस्तकी संख्यामें एक लेख लिखा है, 'जिन्ना—भारतकी पहेली।' इसकी कुछ पंक्तियां बहुत ही सुन्दर हैं। उनका सरांश यों है:—

मुहम्मद अली जिन्ना भारतीय राजनीतिकी एक उलझी हुई पहेली-से हैं। मुस्लिम लीगके वे स्थायी प्रेसिडेण्ट, कायदे आजम, मुस्लिम हितोंके लिए लड़नेवाले, भारतीय नेशनल कांग्रेसके—जिसे वे 'हिन्दू संस्था' कहनेसे बाज नहीं आते—कट्टर आलोचक हैं। फिर भी जिन्ना कट्टर मुसलमान नहीं हैं, वे एकदम पाश्चात्य शैलीमें रहते हैं, दाढ़ी बराबर उनकी साफ रहती है, कीमती, बढ़िया 'सेवाइलरी सूट' में सदा रहते हैं और अंगरेजोंके घरोंमें बोली जानेवाली अंगरेजीमें भी धड़ल्लेके साथ बोल लेते हैं। हिन्दुस्तानीमें बोलना तो उन्होंने अभी सीखा है। पचीस साल पहले मुस्लिम कट्टरता छोड़कर उन्होंने पारसी लड़कीसे विवाह किया था और अभी हालमें उनकी लड़कीने एक पारसी ईसाईको अपना पति चुना। सच तो यह है कि मुस्लिम लीगकी सभाओंको छोड़कर सर्वत्र वे अपनेको पाश्चात्य सभ्यताका बहुत बड़ा प्रेमी, अमीरोंका अनन्य उपासक दिखाते हैं और धर्मान्ध होनेकी तो बात ही क्या, उनकी किसी भी बातसे उनके मुसलमान होनेकी भावना उत्पन्न नहीं होती। फिर भी मुसलमानोंकी विराट् सभाओंमें (जिनके लिए उन्होंने अभी हालमें उत्तरी भारतके अमीरोंकी भांति रईसाना शेरवानी और टोपी पहननी शुरू की है) इस्लामके नामपर वे कांग्रेसपर आग उगलते और गरजते हैं। कांग्रेस मन्त्रिमण्डलोंके इस्तीफा देनेपर उन्होंने पिछले वर्ष २२ दिसम्बरको मुक्ति-दिवस मनाया और कांग्रेसको खूब कोसा। इस राष्ट्रीय संस्थापर मिथ्याचार और ढोंगका अभियोग लगाया और मजेदार बात यह है कि पारसी और हिन्दू साम्प्रदायिकोंने उनका उक्त मञ्चसे समर्थन भी किया है।

फिर भी कांग्रेस-भवनके साथ जो सार्वजनिक हाल बम्बईमें लगा हुआ है, वह इन्हीं जिन्नाके नामपर है। कुछ अनोखी-सी बात मालूम होती है कि यही मुहम्मद अली जिन्ना २० साल पहले कांग्रेसके एक प्रमुख नेता थे। होमरूल लीगके आप प्रेसिडेण्ट और हिन्दू-मुस्लिम एकताके दूत कहे जाते थे। ११ दिसम्बर, १९१८ को एक गवर्नरकी विदाईमें राजभक्तों द्वारा आयोजित एक समारोहके विरुद्ध उन्होंने एक विशाल जुलूसका नेतृत्व किया था और उन्हें ऐसी सफलता मिली थी कि गवर्नरको सभामें मुंह दिखानेकी हिम्मत न पड़ी। जनताने उस वक्त जिन्ना तथा अन्यान्य कांग्रेस-नेताओंकी अभ्यर्थना की थी। उपस्थित जनताको सम्बोधित करते हुए उस अवसरपर जिन्नाने—इन्हीं जिन्नाने, जो आज गणतन्त्रकी निन्दा करते नहीं अघाते—कहा था:—आज आपने गणतन्त्रके लिए मैदान

मार लिया है। आजकी आपकी विजयने प्रमाणित कर दिया है कि नौकरशाही और स्वेच्छाचारिताकी सम्मिलित शक्तियां भी गणतन्त्रकी शक्तिको नहीं रोक सकतीं।

१९१८ का यह देशभक्त किस प्रकार इतना कट्टर साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय आयोजनका शत्रु हो गया, इस प्रश्नका उत्तर खोज निकालना केवल जिन्नाके व्यक्तित्वका मूल्य आंकने तथा उनके राजनीतिक प्रभावके लिए ही जरूरी नहीं है, बल्कि भारतीय राजनीतिकी वर्तमान गतिरोध-सम्बन्धी स्थिति समझनेमें उससे सहायता भी मिलेगी।

हमें १९१४ के उन दिनोंमें जाना होगा, जब एक युवक बैरिस्टर कानूनी तथा राजनीतिक क्षेत्रमें स्थान बनानेके लिए प्रयत्न कर रहा था। भूलना नहीं चाहिए कि जिन्ना राजनीतिज्ञ चाहे जितने मामूली हों; पर वकील वे प्रथम श्रेणीके हैं। उनके पास बहुत प्रवीण कानूनी दिमाग है और उन्हें कैसा ही मामला दे दीजिये, वे खूब सफलतापूर्वक लड़ लेंगे। वकालतके पेशेकी उनकी इस सफलतासे ही दादाभाई नौरोजी और सर फीरोजशाह मेहताकी नजर उनपर पड़ी। देशभक्त बाल गङ्गाधर तिलकपर चलाये गये राजद्रोहात्मक मामलेकी पैरवी करके उन्होंने भारत-भरमें नाम कमा लिया। उन दिनोंकी कांग्रेस 'भद्र जनों' की संस्था थी। ब्रिटिश राजके प्रति वह वफादार थी और इसके अधिवेशनोंमें फैशनेबुल सूटमें भद्र लोग जाते, नरमीके साथ देशभक्तिका इजहार करते और फिर अपने आरामदेह पेशों—खासकर वकालतमें चले जाते। उच्चतर सतहकी राष्ट्रीयताके ऐसे पाश्चात्य वातावरणके लिए जिन्ना खूब मौजूं थे। उन्होंने उन दिनों देशकी सेवायें कीं, उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकताकी नींव डाली, जिसे वे स्वयं आज नष्ट कर रहे हैं।

पर कुछ वर्षोंके बाद जमाना बदला। गांधीने भारतीय राजनीतिमें क्रान्तिका श्रीगणेश किया। कांग्रेस राष्ट्रीय मांगोंको पानेके लिए आवेदन-निवेदन करनेकी जगह 'प्रत्यक्ष कार्य' करनेकी बात करने लगी। कांग्रेसके इस विस्तृत आधारपर मध्यम श्रेणीके शिक्षितोंका कांग्रेसमें प्रवेश होने लगा और फैशनेबुल भीड़ तथा माडरेटोंको इस कठोर वातावरणमें कठिनाई महसूस होने लगी। दोनों विचार-धाराओं तथा जमातकी कठिनाइयां थीं। संयमके प्रतीक खद्दर तथा अहिंसात्मक असहयोग—राजनीतिक अस्त्रके रूपमें—उन्हें पसन्द नहीं आये। १९२० में नागपुर कांग्रेसमें मामला बेढब हो चला। गांधीकी विजय हुई और माडरेटोंके लिए जगह नहीं रह गयी।

भारतीय राष्ट्रीयताके इतिहासमें वह अधिवेशन अत्यन्त महत्त्वका है। माडरेट असहयोगके परिणामोंका मुकाबला करनेमें अपनेको असमर्थ पाते और कांग्रेसको छोड़ते गये। और इसी गिरोहमें जिन्ना भी थे। और माडरेटोंके समान ही जिन्नाने भी असहयोगसे असहयोग किया। लेकिन अनेक माडरेटोंकी तरह उन्होंने अपनेको सरकारके हाथ बेच नहीं दिया। फिर भी उन्हें शक्तिकी भूख थी। लाखों व्यक्तियोंका भाग्य-विधाता बननेकी लालसा उनकी थी—और इस लालसाकी पूर्ति हो आरामके साथ, बिना कष्ट झेले!

यह बड़ी कठोर व्यक्तिगत समस्या थी। कैसे सुलझे यह? ब्रिटिश सरकारकी वफादारीके ख्यालसे वे भड़क उठते—और स्वभावतः वे आज भी भड़क उठते हैं। कांग्रेस और खिलाफत कमेटीसे वे आतङ्कित हो उठे थे। मुस्लिम लीग उनकी पाकेटमें पड़ी थी, पर उसे निकालनेका उन्हें साहस नहीं होता था; क्योंकि मुस्लिम सम्प्रदाय उनके खिलाफ था। जिन्ना नेतृत्व करनेके लिए लालायित और उत्सुक थे, लेकिन कोई अनुयायी न था। यह ऐसी समस्या थी, जिसका समाधान उन्हें दस साल बाद मिलना था। वे प्रतीक्षा करने लगे—कभी इंगलैण्ड और कभी भारतीय व्यवस्थापिका परिषद्में।

× × × साम्प्रदायिक निर्णयसे उत्पन्न देशका साम्प्रदायिकतापूर्ण वातावरण ऐसा था, जिसमें जिन्ना-जैसे व्यक्तिके लिए खुलकर खेलनेका अवसर मिला। साम्प्रदायिक निर्णयके अनुसार ही निर्वाचनकी व्यवस्था थी। जिन्नाने देखा, अवसर अच्छा आया है और भाग्यने भी उनका साथ दिया; क्योंकि पुराने खिलाड़ी उनके दायं बायें—दोनों ओरके इस दुनियासे उठ चुके थे। उन्होंने मुस्लिम लीगको पुनर्गठित किया, लेकिन पहले-पहल सभी प्रान्तोंमें उन्हें बहुमत प्राप्त नहीं हुए। इस प्रकार विफल होनेपर उन्होंने दो मुस्लिम प्रीमियरोंको तथा दो प्रान्तोंके विरोधी दलके मुस्लिम नेताओंको उन्हींकी शर्तोंपर मुस्लिम लीगमें सम्मिलित होनेके लिए राजी किया।

जो भी हो, किसी प्रकार उनकी एक महत्त्वाकांक्षा पूरी

हुई—उन्हें मुस्लिम व्यवस्थापकोंका नेतृत्व मिला। उन्होंने कांग्रेससे समझौता करनेका स्वांग रचते हुए समस्त देशमें मुस्लिम लीगकी शाखायें स्थापित करनेका काम जारी रखा। समझौतेकी चर्चासे स्पष्ट होता है कि उन्होंने गणतान्त्रिक अर्थमें कभी समझौता दिलसे चाहा नहीं। उनका एक ही उद्देश्य था कि लीगको भी प्रान्तोंके शासनमें भाग लेनेका अवसर मिले और जिन्नाका भी गांधी या नेहरूकी भांति नेतृत्व स्वीकार किया जाय। कांग्रेस लीग अथवा जिन्नाकी इस लालसाकी पूर्ति करनेमें असमर्थ रही और परिणाम यह हुआ कि सभी कांग्रेसी प्रान्तोंमें मुस्लिम लीगी सदस्य विरोधी बन बैठे। विरोधीका काम है आलोचना करना और जिन्ना प्रान्तीय लीगी नेताओंके अधिकार प्राप्त करनेमें निराश होनेपर कांग्रेसको कोसने लगे। एक वकीलकी भांति—जिसका काम दूसरी पार्टीको दबाकर और उपेक्षा कर अपनी पार्टीकी पुष्टि करना—जिन्नाने मुस्लिम हितोंकी पैरवी करनी शुरू की। अपने आदमियोंसे जाकर चिल्ला-चिल्लाकर कहिये कि तुम्हारे अधिकार निर्दयताके साथ कुचले जा रहे हैं। एकतरफा बातें बढ़ा-बढ़ा उन्हें सुनाइये और देखिये, आपका कैसा प्रभाव उनपर पड़ता है। भारतके टुकड़े-टुकड़े करके मुसलमानोंके लिए एक मुस्लिम भारतकी योजना रखिये और कांग्रेसके अत्याचारोंसे उनकी मुक्तिका उपाय सुझाइये। फिर साम्प्रदायिक जोश उभाड़नेके लिए और चाहिए क्या? जिन्नाको इस विषयमें सफलता मिली। पर सभी मुसलमान उनके साथ नहीं हैं। महत्त्वपूर्ण मुस्लिम सीमाप्रान्त कांग्रेसी प्रान्त है और सिन्ध-मन्त्रिमण्डलका समझौता हिन्दू महासभासे है। हजारोंकी संख्यामें देश-भरमें कांग्रेसी मुसलमान बिखरे हुए हैं। लेकिन इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि बहुसंख्यक मुसलमान आवेशवशात् जिन्नाके प्रभावमें हैं। 'आवेशवशात्' शब्दका व्यवहार मैं सोच-समझकर कर रहा हूं। क्योंकि जिन्ना न तो विचारक हैं और न रचनात्मक कार्य करनेवाले राजनीतिज्ञ। जनताके सामाजिक अथवा आर्थिक सुधारकी कोई योजना बनानेकी प्रतिभा उनमें नहीं है। उनके पास कोई रचनात्मक कार्यक्रम नहीं है और इसका सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि बङ्गाल तथा पञ्जाबके तथाकथित लीगी प्रान्तोंके शासन-प्रबन्धसे उनका तथा उनकी संस्थाका कोई वास्ता नहीं। वे वास्तविक प्रश्नोंकी उपेक्षा करते हैं और हिन्दू खतरोंके नामपर मुसलमानोंके आवेशका उपयोग करते हैं। उन्होंने आवेश भरा है और उसे सदा कायम रखना चाहते हैं। और इसका कारण स्पष्ट है। जिन्ना न तो चुपचाप बैठ सकते हैं और न पीछे हट सकते हैं। उन्हें निरन्तर आगे बढ़ते रहना है—एक सनसनीखेज कामके बाद—दूसरा काम करते चलना है। मुक्ति-दिवसके बाद पाकिस्तानपर अब वे उतर आये हैं—न केवल सत्यकी उपेक्षा करके—बल्कि तर्क एवं सङ्गतिकी भी। छोटे-से हिटलरके समान अपने ही द्वारा उत्पन्न परिस्थितियोंके जोरसे वे आगे खिंचे जा रहे हैं और प्रगतिपर उनका भी कोई नियन्त्रण न रह जानेसे उन्हें अनिवार्यतः आगे बढ़ते जाना है—विवशतः।

अपनी पाकिस्तानकी योजनासे न केवल उन्होंने दूसरे सम्प्रदायोंके माडरेटोंकी सहानुभूति खो दी है जो केवल कांग्रेस-विरोधके नामपर जिन्नाके सारे कार्योंका समर्थन करते आये थे, बल्कि दिल्लीमें उपस्थित होकर राष्ट्रीय दृष्टिकोणवाले मुसलमानोंने भी उनके इस कार्यकी भर्त्सना की है।

किसी भी बाहरी शक्तिसे जिन्ना बरगलाये नहीं जा सकते, पर उनकी 'अति महत्त्वाकांक्षायें' उन्हें खाये जा रही हैं। अपनी विफलताओं—बौद्धिक तथा आदर्श सम्बन्धी—को जानता हुआ, आक्रमणात्मक 'हीन प्रवृत्ति' (aggressive inferiority complex) से विक्षुब्ध, चतुर वकील, जिद्दी, अहम्भावमें केन्द्रित जिन्ना अपने राजनीतिक मार्गपर बढ़ा जा रहा है--अपनी ही भीषण महत्त्वाकांक्षाओंका शिकार होता हुआ।

मानव-प्रेम और सेवाका आदर्श बतानेवाली संस्था

गत अर्ध-शताब्दीमें—जब कि इंगलैण्ड और फ्रान्सकी फौजें क्रीमिया प्रायद्वीपमें रूससे शक्ति-परीक्षा कर रही थीं एवं इटली और आस्ट्रियाकी फौजें भी रणचण्डीको बलि दे रही थीं — रेडक्रासकी स्थापना हुई थी। क्रीमियामें घायलोंकी दशा बड़ी शोचनीय थी। न उनके लिए दवा-दारूका प्रबन्ध, न भोजन-वस्त्रका। यहां तक कि रातको

रोशनी और पलंगका भी पर्याप्त प्रबन्ध न था। चूहे अंधेरेमें मरीजोंको काट खाते थे। प्लेगका भी दौर-दौरा था। युद्ध-संवाददाताने इंगलैण्डकी देवियोंका आह्वान किया। श्रीमती फ्लोरेन्स इस मानवताके आह्वानका उल्लङ्घन न कर सकीं। उनका हृदय बेचैन हो उठा। ३८ परिचारिकाओंके साथ वे क्रीमियां गयीं और पीड़ित मानवताको जीवन-दान दिया।

जेनेवाके पत्रोंमें हेनरी डुनाण्टने अंगरेज महिलाओंकी क्रीमियाकी महान् सेवाओंको पढ़ा। वे बहुत ही प्रभावित हुए। फिर वे सालफर्निकी (इटली) में वहांकी युद्ध-सम्बन्धी घटनाओंका अध्ययन करने गये। जेनेवा लौटकर उन्होंने एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें युद्ध-सम्बन्धी] अपने अनुभवोंकी एक अच्छी तालिका दी तथा एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था—जो युद्धमें आहतोंकी सेवा कर सके—बनानेपर जोर दिया। अन्तमें ये सफल हुए। १८६१ में जेनेवामें एक अन्तर्राष्ट्रीय अन्तरङ्ग सभा कायम हुई। फिर १८६४ में तीस बड़ी-बड़ी सरकारोंके प्रतिनिधि जेनेवामें एकत्रित हुए और 'रेडक्रास' के अन्तर्राष्ट्रीय नियम निर्धारित हुए। इन नियमोंका पालन सभी युद्धरत सरकारें करती हैं तथा निष्पक्ष राष्ट्र भी करते हैं। अब तक करीब-करीब सत्तर रेडक्रास संस्थायें भिन्न-भिन्न देशोंमें स्थापित हो चुकी हैं। ब्रिटिश रेडक्रासका जन्म १८७० में हुआ और तत्कालीन फ्राङ्को-परसियन युद्धमें आहतों तथा कैदियोंकी महान् सेवाओंका अवसर मिला। उभय-पक्षकी सरकारोंसे भी काफी सहूलियतें मिलीं।

युद्धकालीन काम

युद्धकालमें राष्ट्रीय 'रेडक्रास' के कार्यकर्ता और परिचारिकायें घायलोंकी सेवा-शुश्रूषा, मरहम-पट्टी और सफाई करते और आवश्यकतानुसार एम्बुलेन्स भेजकर युद्ध-भूमिसे स्थानीय रेडक्रासके अस्पतालमें आहतोंको मंगवाया करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय नियमानुसार रेडक्रासके दफ्तर, अस्पताल या उनके सामानोंपर कोई भी कब्जा नहीं कर सकता। फिर ये राष्ट्रीय कमेटियां दूसरे देशोंमें कैदियोंके लिए पथ्य, दवा, पहनने-ओढ़नेके वस्त्र तथा और भी जरूरी चीजें बराबर भेजा करती हैं और नियमानुसार दूसरी सरकारें भी कैदियोंके पास ये सामान भेजनेके लिए बाध्य हैं। कैदी कैम्पमें कोई भी नया कैदी आया नहीं कि उसका नाम, पूरा पता, चेहरेका हुलिया, तन्दुरुस्तीकी हालत तथा वजन एक छपे हुए फार्ममें रेडक्रास-दफ्तरमें जाता है और फिर वहांसे बड़े दफ्तर जेनेवा भेजा जाता है। फिर वहांसे फौरन् बिजलीकी तरह सूचना देनेके लिए कैदियोंके घर तार भेजे जाते हैं। बड़े दफ्तर जेनेवामें युद्धके घायलों, मृतकों और बन्दियोंकी सूचना पहुंचती रहती है और वहांसे उनके आत्मीयोंके यहां। इस तरह गत महायुद्धके समय दो हजारसे पचास हजार तक सूचनायें रोज आती थीं। युद्धके आखिरमें ऐसे पचास लाख पत्र फाइल थे। दो हजार कर्मचारी जेनेवामें रात-दिन काम करते थे। कितने ही भूले-भटके बच्चों, स्त्रियों और बिछुड़े परिवारोंके अनेकों जांच-पत्र आते हैं और पता लगाकर उन्हें सूचनायें दी जाती हैं। अभी पोलैण्डके पराजित होनेपर एक परिवारका मालिक मेमेल भाग गया—उसका एक बच्चा रूस, दूसरा रूमानिया और तीसरा हंगरी पहुंचा; उसकी बीबी जर्मनीमें मिली। किन्तु ये सब उन राष्ट्रोंकी रेडक्रास और जेनेवाकी बड़ी रेडक्रास संस्थाकी कृपासे एकत्रित हुए। अगर ये सब कहीं कानपुर, इलाहाबाद या कहींके अनाथालयमें पहुंचे होते, तो उनके मां-बापसे हजारों रुपये खर्चके ले लिये जाते या स्त्रीको बेंचकर पुनर्विवाह कर दिया जाता, अन्यथा बच्चे टोली बनाकर भीख मांगते होते। यह हमारे यहांकी बात है!

शान्तिकालीन काम

शान्तिकालमें अस्पताल खुलवाना, नर्सोंकी ट्रेनिङ्ग, रोगसे मनुष्योंको बचनेका उपाय बताना—ये काम होते हैं। जेनेवाकी बड़ी रेडक्रास सोसाइटी बराबर काममें लगी रहती है। इस विनाशकारी युगमें जब युद्धका खतरा पल-पलमें बना है, वह अपनी उत्तमोत्तम सेवाओंको मानवताके प्रति अर्पित करनेके लिए तैयार रहती है।

वर्तमान युद्ध छिड़नेके पहले ही बड़ी रेडक्रास संस्था पूर्ण तैयार थी। उसने सब राष्ट्रोंके नाम उनके बनाये हुए अन्तर्राष्ट्रीय नियमोंका पालन करनेके लिए विज्ञप्तियां भेजीं। हर देशमें एक 'बार ब्यूरो' तथा केन्द्र (जेनेवा) में कैदियोंकी सूची रखनेके लिए एक नये विभागकी स्थापना की गयी। युद्धकालमें तीन-चार मुख्य काम हैं, जिन्हें रेडक्रास अपने हाथमें लेती है।

१—अगर कोई कैदी अपने घर अपना समाचार भेजना चाहता है, तो वहांकी और जेनेवाकी रेडक्रासकी मददसे २०

अक्षरोंमें अपना कुशल-पत्र भेज सकता है।

२—अगर कोई कैदी बीमार है, तो ३ डाक्टरों—दो निष्पक्ष और एक साधारण-से जांच करा अपने बारेमें जेनेवासे पत्र-व्यवहार कर सकता है।

३—अगर कोई कैदी शत्रुओंके यहां कैद है, तो उसकी तनख्वाहके लिए, जो पहले पाता था, जेनेवाकी रेडक्रास शत्रु-राष्ट्रसे सिफारिश कर सकती है।

रेडक्रास-संस्थाकी स्थापना तथा उसके द्वारा होनेवाली सेवाका अधिकांश श्रेय मातृ-जातिको है। पुरुष जहां संहार-लीलामें लीन है, नारीने वहां भी अपना स्नेह जताया है।

बैङ्कका लुटेरा स्टैलिन

राजनीतिक डकैतियोंकी घटनाओंसे पाठक परिचित हैं और उन्हें जानकर आश्चर्य नहीं होगा कि स्टैलिन-जैसे व्यक्तिको भी कभी डाका डालना पड़ा था।

जून १९०७की बात है। 'कोबा' को (उस समय तक वह व्यक्ति, जो आगे चलकर स्टैलिनके नामसे विख्यात हुआ, इसी नामसे पुकारा जाता था) इस बातका पता चला कि सेण्टपीटर्सबर्गसे सरकारी खजानेकी अच्छी-सी रकम टिफ-लिस भेजी जा रही है। सम्भवतः ल्योनिड क्रासिनसे उसे इस बातका पता लगा था। क्रासिन था तो सरकारी इञ्जीनियर, परन्तु बोल्शेविज्म तथा उसके प्रचारकोंके प्रति उसकी सहानुभूति थी।

२३ जूनकी बात है। प्रायः सबेरेके दस बजे थे। दो सशस्त्र पुलिसमैनोंकी देख-रेखमें खजाना चला। दो गाड़ियां थीं। एक गाड़ीमें बैङ्कका खजाञ्ची और बुक कीपर बैठा और दूसरीमें रक्षा करनेवाले सिपाही। खजाञ्चीके पास ही वह सन्दूक रखा था, जिसमें ३००,००० से अधिक रूबल्स थे। सड़कपर काफी भीड़ थी। लोग अपनी मस्तीमें घूमते और कामकाजी मुस्तैदीसे अपने कामोंकी चिन्तामें बढ़ते जा रहे थे।

सड़कके एक किनारे एक औरत अखबार खोले बैठी थी। उसने गाड़ियोंको आते देखा, तो अखबार मोड़कर दबा लिया और सेकेण्ड-भर भी न बीता होगा कि सारा शहर धड़ाकेकी आवाजसे कम्पित हो उठा। गाड़ियोंपर एक साथ ६ बम गिरे थे।

चारों तरफ धुआं ही धुआं दिखाई पड़ रहा है। पुरुषोंने चिल्लाना शुरू किया और स्त्रियोंने चीखना। गाड़ीके घोड़े उछलकर हिनहिनाने लगे।

इस प्रकार सभी लोग घबराये-से थे कि एक घुड़सवार झपटता हुआ आया और दूसरी गाड़ीसे रुपयेकी थैली लेकर देखते-देखते चम्पत हो गया।

जो घुड़सवार थैली लेकर चम्पत हुआ, वह था 'कामो' और जिसने बम फेंका, वह था 'कोबा।'

पुलिस और सैनिक आये, तो उन्होंने प्रायः ४० आद-मियोंको मरा पाया। डाकुओंके दलके किसी भी आदमी-का बाल बांका नहीं हुआ था।

उस रातको लुटेरे पहाड़ीकी तलहटीमें दरशत नामक एक गांवमें मिले। उस समय सड़कोंपर परेड हो रही थी, मकानोंकी तलाशियां ली जा रही थीं, सरायों और होटलोंपर पुलिस छापा मारती फिरती थी और उधर साराका सारा खजाना टिफलिसमें एक जगह सुरक्षित छिपा पड़ा था।

घटनाके तीन सप्ताह बाद 'कोबा' ने रुपये क्रासिनके पास छिपे-छिपे भेज दिये। किसीको सन्देह तक नहीं हुआ कि कोबाने भी इसमें भाग लिया था। वह सरायोंमें जाता और अक्सर पुलिसवालोंके बीच बैठकर उनके ही साथ मौज मारता, पुलिसने कभी उसे गिरफ्तार करनेकी जरूरत नहीं समझी।

सारे रूसमें आतङ्ककी लहर दौड़ गयी। आक्रमण-कारियोंसे सारी जनताको सावधान किया जा रहा था। पुलिस और खुफिया विभाग दोनों मुस्तैदीसे छानबीन कर रहे थे और उधर मार्क्सवादियोंकी सभाने भी 'कोबा' की निन्दा की। काकेसियन मार्क्स-दलसे उसे निकाल बाहर भी किया गया।

लेकिन एक व्यक्तिने कोबाका पक्ष लिया। वह था लेनिन। लेनिनने इसपर अपनी स्वीकृति दी। लुटेरोंको लूटनेमें क्या बुराई है ?

खजाना हाथ तो लगा, पर उसका उपयोग कैसे किया जाय ? सरकारने नोटोंके नम्बर प्रकाशित कर दिये थे, इस-लिए बाजारमें उन्हें चलानेकी कोशिश खतरनाक थी। फ्रान्समें जाकर मैक्स लिटविनाफने कुछ चलाये और कुछके नम्बर क्रासिनने बदलकर उन्हें चालू कर दिया।

कोबाने एक पैसा भी अपने हाथसे नहीं छुआ, न तो उसने पुरस्कारमें ही कुछ लिया। लेकिन इस घटनासे एक बात हुई। कोबासे बदलकर उसका नाम स्टैलिन हो गया, जिसका अर्थ है 'चुरानेवाला।'

स्टैलिनकी अवस्था उस समय अट्ठाइस सालकी थी। उस समय पार्टीसे अपने खर्चके लिए उसे अठारह रूबल मिलते थे।

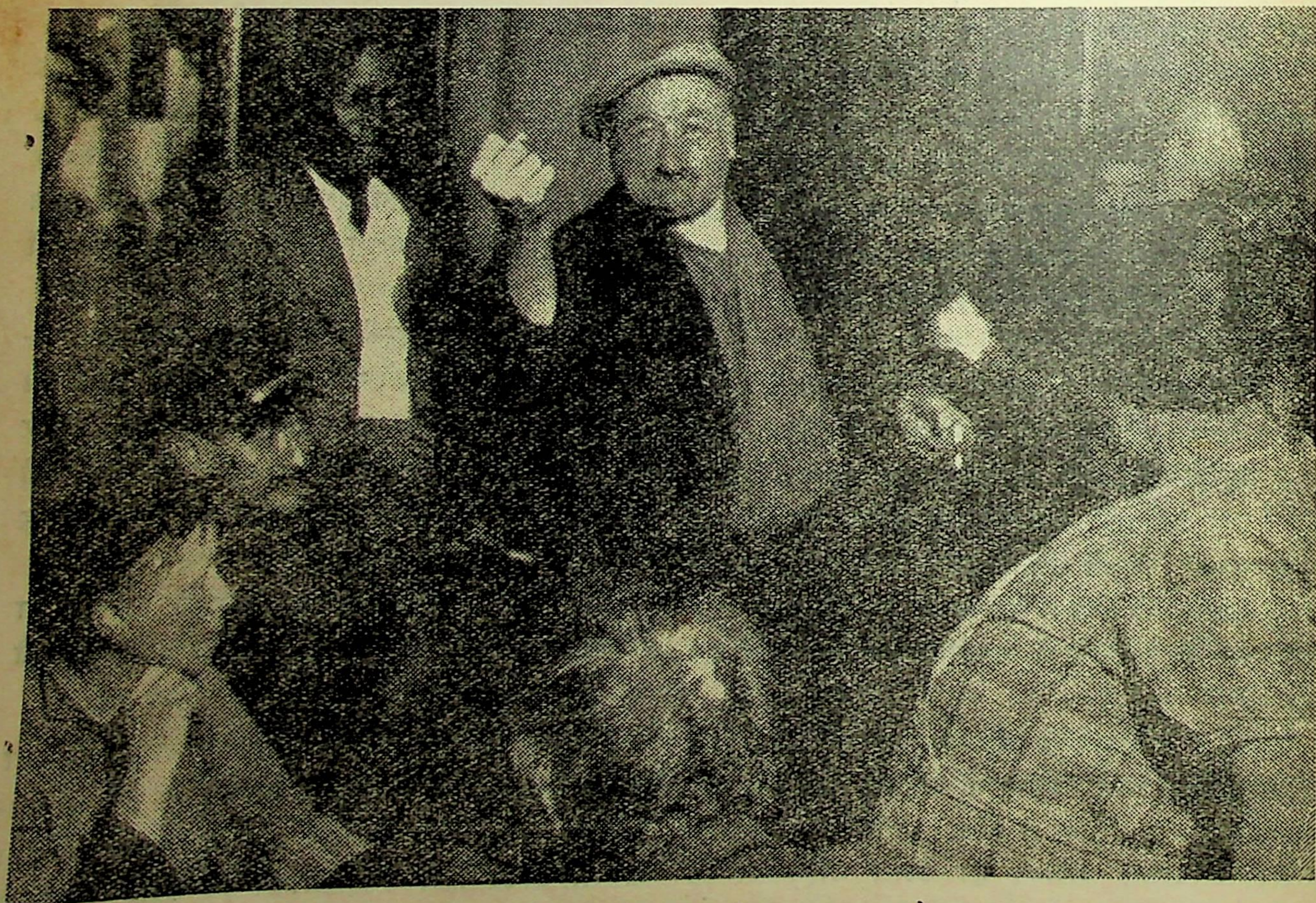
भिखमङ्गोंका साम्राज्य

फ्रान्सका पतन हो गया। फ्रान्सको जर्मन पशुबलके सामने पराजित होकर घुटने टेकने पड़े, उसका साम्राज्य भी खतरेमें है, पेरिस आज जर्मनोंके कब्जेमें है—फ्रेञ्च सरकारका अस्तित्व वहां न रह सका। पर पेरिसमें चलनेवाले एक दूसरे साम्राज्यपर इसका कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा है। उसका शासन-सूत्र ज्योंका त्यों चल रहा है। विगत महायुद्धके बाद पेरिसके पास इस साम्राज्यकी स्थापना हुई थी और तभीसे वह ज्योंका त्यों कायम है।

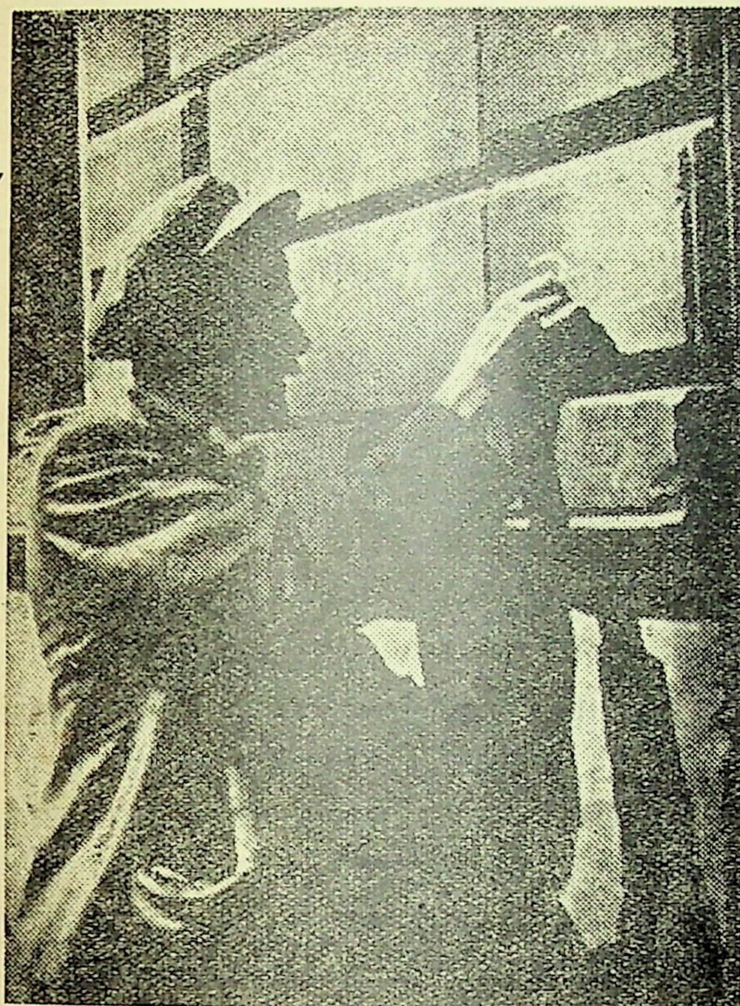
यह साम्राज्य है भिखमङ्गोंका। पेरिसके पास भिखमङ्गोंका एक अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन है, जिसका नेता एक अवसर-प्राप्त नौ-सैनिक है। उसने भिखमङ्गोंका सङ्गठन कर रखा है, जिसमें संसारकी अनेक जातियां—खासकर यूरोपीय जातियोंके भिखमङ्गे हैं।

भिखमङ्गोंका यह साम्राज्य अपनी शान्ति और सुव्यवस्थाके लिए प्रसिद्ध है। इसमें सम्मिलित होनेवाले कुछ लोग वास्तवमें असहाय और दीन हैं, कुछ आलसी एकत्र हुए हैं और कुछ भिखमङ्गीको पेशा बनाकर आमदनीका साधन बनानेवाले इसमें सम्मिलित हुए हैं।

नौ-सेनाका उक्त अफसर इस साम्राज्यका सर्वेसर्वा है, यद्यपि उसकी एक समिति है, जिसके सदस्योंके विरुद्ध वह



भिखमङ्गोंका राजा अपने बाहुबलसे शासन करता है।



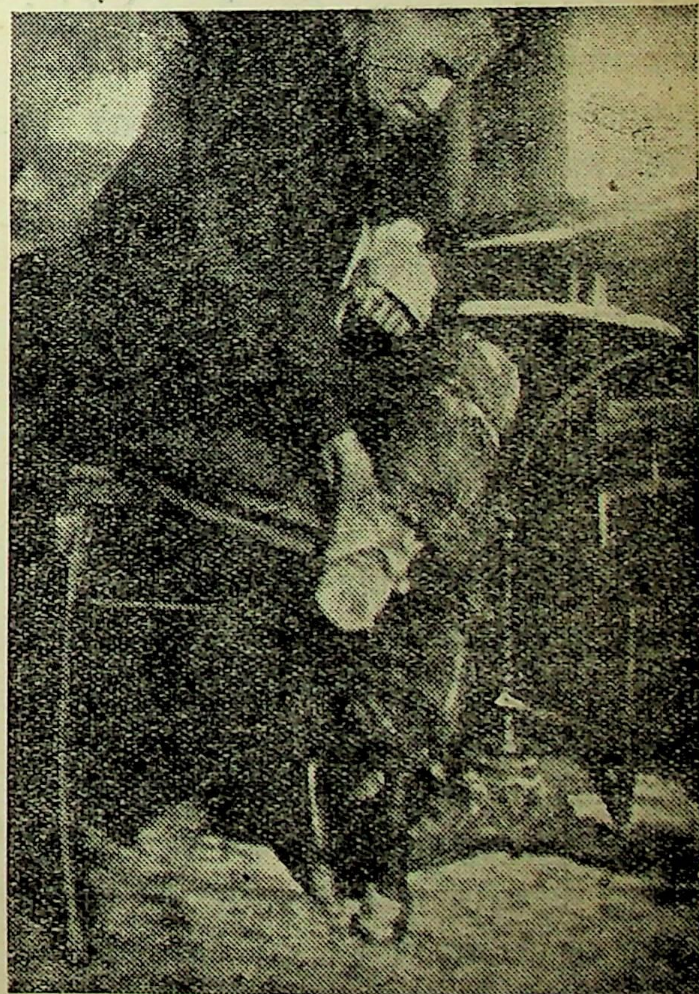
भिखमङ्गा अपने इलाकेपर निशान लगा रहा है ।

कुछ नहीं करता । उक्त संस्थाका सञ्चालन नियमानुकूल होता है । भिखमङ्गोंकी टोलियां बनी हुई हैं और हर टोलीके लिए भीख मांगनेके अञ्चल निर्धारित कर दिये गये हैं। टोलियोंके निशान बने हुए हैं और किसी भी जगहपर टोलीवाले अपना-अपना अञ्चल सूचित करनेके लिए उक्त निशान बना देते हैं । अगर कभी किसी दूसरी टोलीवालेने अपने निर्धारित अञ्चलके अतिरिक्त किसी और अञ्चलमें भीख मांगी, तो उसकी कमाईमेंसे उसे कोई हिस्सा नहीं मिलेगा ।

शामको कमा-धमाकर जब सब प्रधान निवास-स्थान—एक इटैलियन होटलमें एकत्र होते हैं, तब खाने-पीने और शराबके दौर चलते हैं ।

उक्त होटलके कमरोंकी सैर कीजिये, तो कुछ अजब अजब चीजें आपको देखनेको मिलेंगी । पचासों जोड़े लकड़ीके पैर मिलेंगे, जिन्हें लगाकर भिखमङ्गे इस बातका स्वांग बनाते हैं, मानो पैर हैं ही नहीं । छोटे-छोटे बच्चोंको पंगु करके भी वे दया उपजानेकी कोशिश करते हैं । काने, कुरूप और जर्जर बच्चोंको लेकर वे चलते और उनके भरण-पोषणके लिए लोगोंसे सहायता मांगते हैं ।

भिखमङ्गोंके इस साम्राज्यके अलमस्त नागरिक ईश्वर या पुलिस किसीसे भी नहीं डरते ! इसलिए उन्हें समय-समयपर जेलकी भी हवा खानी पड़ती है । हालांकि पुलिस इनसे उलझना बहुत पसन्द नहीं करती । उन्हें सदासे लोग अपराधी मानते आये हैं और कोई उनकी सहायता नहीं करना चाहता, पर अब उन्हें एक सहायक मिल गया है । सोरबोन यूनिवर्सिटीके एक प्रोफेसरने उन्हें सङ्गठित कर उनपर मामला चलाये जानेपर लड़नेके लिए व्यवस्थायें कर दी हैं और इस प्रकार भिखमङ्गोंका यह साम्राज्य चल रहा है । उन्हें इस बातकी परवाह नहीं कि पेरिसपर मार्शल पेतां शासन करते हैं या हिटलर । उनका अपना साम्राज्य पूर्ण स्वाधीनताका उपभोग करता है ।



इस तरहके लकड़ीके पैर दर्जनोंकी संख्यामें हैं ।



नारीकी प्रगति शिथिल क्यों ?

भारतीय नारी-आन्दोलनके विषयमें अमेरिकामें श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्यायने कई वक्तृतायें दीं, जिनकी विस्तृत रिपोर्ट इस देशमें नहीं आ सकी है। पर वहांके विभिन्न पत्रोंमें उन्होंने इस विषयपर जो लिखा है, उससे विदेशी पत्रोंके भारतीय पाठक बहुत कुछ परिचित हैं। श्रीमती कमलादेवीने तथा महिला-आन्दोलनोंपर लिखनेवाले दूसरे अधिकांश भाई-बहनोंने अक्सर लिखा है कि भारतीय नारी-आन्दोलनकी यह विशेषता रही है कि पुरुष-समाजने भारतीय नारीकी प्रगतिको कभी रोकनेकी कोशिश नहीं की, बल्कि उसने भरसक सहायता प्रदान की है। इसमें सन्देह नहीं कि दूसरे देशोंमें नारी-आन्दोलनका पुरुष-समाज द्वारा जैसा विरोध किया गया था, वैसा विरोध भारतीय पुरुष-समाजने कभी नहीं किया, बल्कि नारी संस्थाओंको पुरुषोंसे सहायता भी खूब मिली है।

पर इसके साथ भावुकतावश हमें कुछ तथ्योंको भूल नहीं जाना चाहिए। क्या यह बात सच नहीं है कि भारतीय नारीको आज जो सामाजिक और राजनीतिक एवं कानूनी अयोग्यतायें प्राप्त हैं, इनका मूलकारण उन व्यवस्थाओंमें है, जिनसे नारी आज भी मुक्त नहीं है। नारी-समाजके सर्वमान्य विधाता मनु और याज्ञवल्क्यकी दुहाई देनेवाले लोग आज भी नारी-स्वाधीनताके नामपर उन्हें कुछ भी अधिकार देने नहीं चल रहे हैं। नारियोंको साम्पत्तिक और सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार देनेके लिए जब-जब प्रयत्न किये गये हैं, तभी उनका जबर्दस्त विरोध किया गया। और तो और, इस देशमें नारी-शिक्षा तकका विरोध किया गया है। औरइस देशकी आबादीका एक बहुत बड़ा भाग आज भी नारीको कुछ भी शिक्षा देनेके विपक्षमें है। कई बातें तो ऐसी हैं, जिन्हें नारी छू भी नहीं सकती, उनके लिए वह अछूत है। यह दल नारीको सदा किसी न किसीके अधीन रखना चाहता है और कभी उसे परदेसे बाहर लानेका भी पक्षपाती नहीं है। यह वह दल है, जिसे सुधारक कट्टरपन्थी कहते हैं और उनका जबर्दस्त विरोध भी करते हैं।

पर एक दूसरा दल और भी है, जिसने नारी-सुधारका ठेका लिया है। इस दलमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है, जो दूसरोंको उपदेश देनेमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझ लेते हैं। वे किसी भी प्रगतिशील आन्दोलनका पल्ला पकड़ लेते हैं, पर वास्तवमें उस आन्दोलनकी आत्मा न देखकर बाहरी बातोंके चक्करमें ही पड़े रह जाते हैं। कितने ही दूसरोंको समझायेंगे, दूसरोंको ललकारेंगे, पर स्वयं उस चीजको कार्यान्वित करके आदर्श उपस्थित नहीं करेंगे। इस प्रकार नारी जातिके सामने आदर्शकी बातें तो आती हैं, पर आदर्शके उदाहरण नहीं आते। अतः इस सम्बन्धमें होनेवाले प्रयत्न खोखले सिद्ध होते हैं।

अब उस दलपर आइये, जिसके सम्बन्धमें कुछ खास बातें कहनी हैं। यह दल है शिक्षितोंका। ऐसे लोगोंका, जो अपनेको सुसंस्कृत कहते हैं और जो मातृ जाति, नारी जाति आदिका ढिंढोरा पीटते हैं। ये लोग एक ओर लम्बी-चौड़ी हांकेंगे और दूसरी ओर नारीकी प्रगतिशीलताको सदा

सन्देहकी दृष्टिसे देखेंगे। अगर नारी कार्य-क्षेत्रमें आयी, तो फिर समाजके लिए उसकी चाहे जितनी उपयोगिता स्वीकार की जाय परिवारके लिए वह अयोग्य समझ ली जाती है। ऐसे सुसंस्कृत लोगोंका दल उन्हें पसन्द नहीं करेगा, क्योंकि 'चरित्र' हमारे यहां ऐसा अर्थ रखनेवाला शब्द है, जिसके आधारपर नारीको किसी प्रकारका अधिकार न देनेके सभी समर्थक हैं। चरित्रकी महिमासे इनकार कौन करता है, पर चरित्र छुई-मुई नहीं है, जो छूते ही नष्ट हो जाय। चीन, जापान, टर्की, यूरोप और अमेरिकाकी जो महिलायें कर्म-क्षेत्रमें उतरी हैं, जिन्होंने अपने बुरके और नकाब फाड़-कर फेंक दिये हैं। उन्होंने उनके साथ ही अपना चरित्र भी नहीं वेच डाला है! उन्हें इन कार्योंके कारण ही चरित्र-भ्रष्टा कहना केवल अपनी कलुषित मनोवृत्तिका परिचय देना है।

पर भारतमें आज क्या हो रहा है, भारतीय नारीको इसी भयसे सभी प्रकारकी जञ्जीरोंसे बांधकर रखा गया है जिससे उसका चरित्र भ्रष्ट न हो जाय। इसीकी आशङ्कासे आज भी उसे असूर्यम्पश्या बनाये रखनेका उपदेश देते हैं। यह सन्देह मात्र जातिपर क्यों? पुरुष अगर अपने कर्तव्यका पालन करे, तो नारीके लिए आत्म-विकासके सभी द्वार खुल जायें। पर यहां तो मनोवृत्ति ही दूषित हो गयी है और यही नारी-आन्दोलनकी प्रगतिकी सबसे बड़ी बाधा है।

—मनोरमा गुप्त, एम० ए०।

पुरुष नारीसे क्या चाहता है?

पुरुष और नारीके पूर्ण समानाधिकारका समर्थन जो लोग नहीं करते, उनके सामने भी यह समस्या तो जरूर रही है और आज भी है कि नारीको अगर वर्तमान स्थिति-में ही नहीं रखना है, तो उसे किस सीमा तक और कैसे अधिकार दिये जा सकेंगे। इस सम्बन्धमें पुरुषोंकी मनो-वृत्ति देखने और समझनेकी आवश्यकता है; क्योंकि समाजके वही अभिभावक हैं और उनकी मर्जीके बिना कुछ हो नहीं सकता। मैंने सदा इस बातको महसूस किया है कि इस सम्बन्धमें समाजके विभिन्न अङ्गोंका झुकाव ठीक ढङ्गसे सम-झनेकी आवश्यकता होती है; क्योंकि, जैसी कि कहावत है, जो कुछ चमकता है, सब सोना ही नहीं है, और समाजमें रङ्गमञ्च, अखबार आदिमें जो बातें आती हैं, हर हालतमें वास्तविकता ही प्रकट नहीं करतीं। इसके लिए सामाजिक मनोविश्लेषणकी आवश्यकता है, और इसके बिना इस बातका पता लगाना नितान्त कठिन है कि मनुष्य वास्तवमें क्या चाहता है? व्यक्तियोंका समूह जब एकत्र होता है, तब व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत विचार-धाराको सामूहिक विचार-धारामें मिलानेका प्रयत्न करता है और कभी-कभी इसके लिए उसे अपने विचारोंको दबाकर भी चलना पड़ता है। सामूहिक लाभ और सार्वजनिक शान्तिके लिए यह आवश्यक तो है, पर इसके साथ जो एक कठिनाई है, वह यह है कि सामूहिक मतके समक्ष व्यक्तिने अपने व्यक्तिगत विचारको दबा तो दिया, पर जब उस सामूहिक निर्णयके कार्यान्वित करनेका प्रश्न आयेगा, तब दूसरोंके विचारोंके समक्ष वह उसी भावमें आत्म-समर्पण कर कार्य न कर सकेगा, जिस भावमें वह तब करता, जब उसकी विचार-धाराके अनुकूल सामूहिक निर्णय होता।

अतएव समाजके मानसिक विश्लेषणकी सख्त आव-श्यकता है। और समाज व्यक्तियोंसे ही बना है, इसलिए व्यक्तियोंका विश्लेषण भी बहुत आवश्यक है।

इस प्रसङ्गपर मुझे एक बात याद आ रही है। अभी उस दिन हमने 'मेट्रो'में एक फिल्म देखी है—'लिलियन रसेल!' इस फिल्मकी कहानी बतानेकी आवश्यकता नहीं, फिल्म देखनेपर मेरे दिलपर जो प्रतिक्रियायें हुई हैं, वे प्रासङ्गिक अंशको स्पष्ट कर देंगी।

'लीलियन रसेल' एक प्रसिद्ध गायिका और नर्तकी है, जिसपर सारी दुनिया निछावर है। पत्र-सम्पादक, लख-पती व्यापारी, ख्यातिप्राप्त कलाकार सभी उसपर मुग्ध हैं। उसे वह प्रशंसा मिलती है, जो एक प्रकारसे उसकी पूजा कही जायगी।

लेकिन उसकी यह उपासना एक बार चिन्ताशील मस्तिष्कको टक्कर मारती है। बार-बार सोचनेको विवश होना पड़ता है कि रसेलको इतनी प्रशंसा क्यों मिलती है?

और ये भावनायें इसलिए उत्पन्न होती हैं, क्योंकि रसेल जिस मांकी पुत्री है, वह 'सफ्रेजिस्ट' आन्दोलनकी जन्म-दात्रियोंमेंसे है। जिन दिनों अमेरिकामें उक्त आन्दोलन चल रहा था, उन्हीं दिनोंकी सामाजिक परिस्थितियोंके

आधारपर फिल्म तैयार की गयी। 'सफ्रेजिस्ट' आन्दोलन करनेवाली नारियोंपर ईंट-पत्थरोंकी वर्षा होती है और निर्वाचनमें नारियोंकी बुरी तरह पराजय होती है, तो अखबारों द्वारा रसेलकी मांको जो गालियां सुननी पड़ती हैं और उस दिन जो भीषण प्रदर्शन रसेलकी मांके मकानके सामने होता है, उसका रूप बड़ा ही घृणास्पद होता है। स्वयं रसेल जब पैदा होती है, उस समय उसका बाप यह जानकर अत्यन्त दुखी हो जाता है कि उसकी पत्नीको बच्चा न होकर बच्ची हुई है।

पर यही बच्ची जब आगे चलकर मांके चलाये गये नारी-आन्दोलनमें भाग न लेकर नृत्य-गानकी तरफ झुकती है, तब उसपर पत्र-सम्पादकोंकी कृपादृष्टि होती है, सारी जनता अपने प्राण निछावर करनेको टूट पड़ती है।

तो रसेलकी मांपर ईंट-पत्थर बरसे, जिसने नारी-जातिके लिए अधिकारोंकी मांग की और उसकी पुत्री रसेलकी पूजा उन्हें पत्थर मारनेवालोंने शुरू की, क्योंकि उसने समाजका मनोरञ्जन करना शुरू किया। पहली दशामें सारा समाज नारीको गालियां देता है और दूसरी दशामें सारा समाज नारीकी प्रशंसा—नारीकी पूजा करता है। तो क्या समाजने ऐसा करके दो बातें प्रमाणित नहीं कीं ? क्या पहली दशामें उसने नारी जातिके उत्थानके प्रति अपना हिंसात्मक विरोध जाहिर नहीं किया और सामाजिक सेवाके लक्ष्यको भूलकर केवल मनोरञ्जन करनेवाली नारीको प्रोत्साहन देकर, उसके प्रति आदर और भक्ति प्रकट कर उसने यह प्रमाणित नहीं किया कि समाजमें वह नारीको ऐसा ही काम करते देखना चाहता है ?

लिलियन रसेलने यह विचार पैदा किये और तत्कालीन समाजकी—पुरुष जातिकी मनोवृत्तिपर प्रकाश डाला। पर इस मनोवृत्तिमें आज भी कितना परिवर्तन हुआ है ? आज भी क्या पुरुष नारीसे केवल हल्का-सा मनोरञ्जन ही नहीं चाहता ?

—लीला सूद।

नारी महान् कार्य करनेके अयोग्य है ?

पिछले कुछ दिनों नारी-जातिके सम्बन्धमें उसके समानाधिकारके प्रश्नपर विचार करते हुए अनेक विचारकोंने कहा है कि नारी महान् कार्योंके करनेके लिए अयोग्य है। ऐसे ही विचारकोंमें एक हैं मि० एच० जी० वेल्स, जो अपनी स्वतन्त्र विचार-धारा एवं उसकी गम्भीरताके लिए प्रख्यात हैं। अतः उनके विचारोंका मूल्य कहीं अधिक है। उन्होंने एक बार विचार करते हुए कहा था कि "नारी कभी भी महान् कार्य नहीं कर सकती। महत्त्वके कामोंमें उसका जी नहीं लगता, वह केवल मामूली मनोरञ्जक कामोंमें ही दिलचस्पी लेती है। स्वभावतः महान् कार्योंकी ओर उसका झुकाव नहीं होता।"

वेल्सने जो बात कही, उसके समर्थनमें एक अंगरेज लेखकने कहा था कि कितने ही दिनोंसे महिलाओंको राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं, पर पार्लमेण्टमें भी उनकी स्थिति क्या है ? कितनी महिलायें वहां तक पहुंच पाती हैं, और जो पहुंचती भी हैं, उनके कार्योंका सिंहावलोकन करके उनका मूल्य आंका जाय, तो उन्हें जो अधिकार मिले हैं, उनका देना ही हास्यास्पद-सा लगेगा। कलकत्तेमें उत्साही नारियोंने पिछले दिनों जब पर्दा-निवारक दिवस मनाया था, तब 'स्टेट्समैन' ने भी इस विषयपर लिखते हुए इस प्रकारका ही भाव प्रकट किया था।

तो अगर नारी अधिकार पाकर भी उसका उपयोग नहीं करती अथवा नहीं कर सकती, तो उसके लिए अधिकारोंकी उपयोगिता ही क्या ? नारियोंको अभी जो अधिकार मिले हैं, उनका ही वे उपयोग नहीं कर पा रही हैं, तो और भी अधिकारोंके लिए उनका आन्दोलन करना व्यर्थ है।

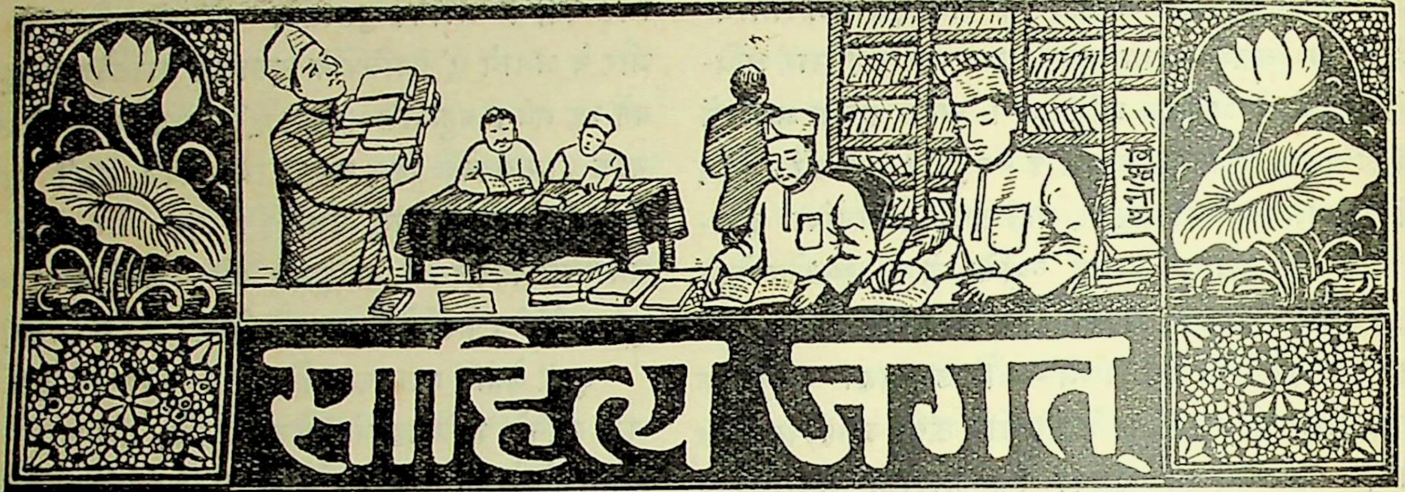
जेम्स स्टुअर्ट मिलने नारियोंके मताधिकारके सम्बन्धमें बहुत पहले लिखते हुए एक बार कहा था कि नारी चलना चाहे, तो चले और न चाहे, तो न चले। पर अगर वह नहीं चलना चाहे, तो उसके पांवमें जञ्जीर क्यों बांध दी जाय, और इस आधारपर कि उसे चलना तो है ही नहीं, पांव खुले रखकर क्या होगा ? नारी अपने अधिकारोंका उपयोग न भी करे, तो भी उसे अधिकारोंसे वञ्चित क्यों रखा जाय?

लेकिन यह तो दूसरा प्रश्न है। पहली बात तो यही है कि नारीको अधिकार मिले ही कहां हैं ? जहां उन्हें राजनीतिक और सामाजिक अधिकार मिले भी हैं, वहां भी उन्हें आर्थिक अधिकार जब तक नहीं मिल जाते, तब तक किसी प्रकारके अधिकारका उपयोग करना आसान न होगा। व्यवस्थापिका सभाओंके निर्वाचनोंके लिए पैसेकी आवश्यकता है, राजनीतिक सत्ताके लिए पैसेकी आव-

श्यकता है और समाजमें गौरवमय पद पानेके लिए भी पैसेकी आवश्यकता है। अधिकार तो सभी पुरुषोंको समान-रूपसे हैं, पर कितने उनका उपयोग कर पाते हैं? सारे अधिकारोंके मूलमें है आर्थिक अधिकार। और इसके अभावमें दूसरे अधिकार बहुत कुछ बेकार हैं। बड़े-बड़े देशभक्तोंके लिए जहां गुञ्जायश नहीं हो सकती, वहां दलके नियमोंपर दस्तखत मात्र करनेवाला सम्पन्न व्यक्ति जेल भुगतनेवालेकी अपेक्षा अधिक अवसर पाता और अधिकारोंका उपयोग करता है। पुरुषोंमें उच्च श्रेणी—और उच्चताका आधुनिक पैमाना पैसा हो रहा है—के ही लोग ऊंची जगहोंपर पहुंच पाते हैं। इसलिए यह कहना कि नारीको मताधिकार मिलनेपर भी वह राजनीतिक क्षेत्रमें स्थान बनानेमें असमर्थ है, नितान्त भ्रमपूर्ण होगा, जब तक कि हम उसे आर्थिक अधिकार भी न दे दें, जिसकी सहायतासे वह और भी अधिकारोंका उपयोग कर सके। गणतन्त्र क्यों विफल हुआ? केवल इसलिए कि नागरिकोंको कागजी समानाधिकार मिल गये, पर आर्थिक गुलामीसे गरीबोंका पिण्ड न छूटा और वे अभागे पूंजीपतियोंके इशारेपर नाचनेवाले गुड्डे ही बने रह गये। बहुमतके नामपर पूंजीवादको और भी खतरनाक काम करनेके लिए अवसर मिल गये। नारी जातिके लिए भी ये बातें लागू होती हैं। एक ओर आप उन्हें समानाधिकार देते हैं, पर दूसरी ओर आर्थिक साधनोंको छूनेका निषेध कर देते हैं, अतः वे विफल क्यों न होंगी?

दूसरे क्षेत्रोंमें काम कर दिखानेके सम्बन्धमें कुछ राय-जनी करनेके पहले यह सोच लेना चाहिए कि नारीने अभी कल अपनेको पहचाना है और आत्म-विकासके उसके साधन अभी भी उसके पास एकत्र नहीं हो सके हैं। पर ऐसी सीमाओंके अन्तर्गत उसने जो काम किये हैं, वे आश्चर्यजनक रूपसे सराहनीय हैं।

———



प्रगति कहां है ?

हिन्दीमें प्रगतिशील साहित्य नहीं है, हिन्दीमें प्रगतिशील साहित्य तैयार होना चाहिए—यह आवाज आज प्रायः सुनाई पड़ती है और आप 'प्रगतिशील लेखक हैं', ऐसा कहकर आज कुछ लेखकों और कवियोंका परिचय दिया जाता है। और ऐसे लोग जब अपनी रचनाओंके नमूने पेश करते हैं, तब पता चलता है कि किसानों और मजदूरोंका चित्रण करनेवाले, साहित्यमें प्रगतिशील लेखक समझे जाते हैं। ग्राम्य जीवनका वर्णन करनेवाले कवि भी प्रगतिशील कवि हैं। लेकिन वास्तवमें क्या यही प्रगतिशीलता है? हिन्दीका वर्तमान कविता-साहित्य 'बुर्जुआ' मनोवृत्तिसे भरा पड़ा है। देहाती जीवनका वर्णन इधरके अनेक कवियोंने जो किया है—हम आम बात कर रहे हैं, व्यक्ति-विशेष हमारा लक्ष्य नहीं है—वह है यद्यपि ग्राम-जीवनका वर्णन; पर ग्राम-जीवनको भी 'बुर्जुआ' आंखोंसे देखा गया है। समाजकी उच्चश्रेणीकी युवतीकी वेणीका वर्णन न हुआ, देहाती किसानकी नारीकी केशराशियोंमें कविजी उलझे, फर्क इतना ही रहा। पर वे प्रगतिशील लेखक कहे जायेंगे; क्योंकि उनका वर्ण्य विषय देहाती जीवन और वातावरण है। किसी प्रश्नपर पहुंचनेके हमारे तरीकेमें कोई परिवर्तन नहीं आया है, हमारी शैली और भाषा वैसी ही बनी हुई है और यही प्रगति है हमारे कविता-साहित्यकी।

कहानियोंको लीजिये। हम ऐसी रचनाओंको कहानी नहीं कहते, जिनका आरम्भ गरीबोंको उठानेके लिए लम्बी-चौड़ी स्पीचोंसे होकर एक मजदूर-सङ्घकी स्थापनामें अन्त हो जाय। यह कहानी है, तो ट्रेड यूनियनकी सालाना रिपोर्टें महान् उपन्यास हैं और ऐसे उपन्यासोंकी कमी कभी नहीं रहेगी। शेष कहानियोंमें बुर्जुआ मनोवृत्ति है। हां, बुर्जुआ मनोवृत्तिकी परिभाषाको लेकर भी मतभेद हो सकता है। अगर किसी युवती भिखारिणीके सौन्दर्यको देखकर किसी रईस लड़केका दिल कचोट उठता है और वह किसी लखपतीसे विवाह करनेसे इनकार कर भिखारिनसे कर डालता है, तो इस कथानकको हम प्रगतिशील न कहेंगे। यह कोई आदर्श नहीं है, समाजके सामने किसी प्रकारका आदर्श रखना भी इस प्रकारके कामोंका लक्ष्य नहीं है। और यह जो लक्ष्य है और इस लक्ष्यको कार्यान्वित करनेकी जो प्रणाली है, वही विचारणीय है। किसी वेश्याके प्रेममें पड़कर उससे विवाह करनेवाला युवक आदर्श नहीं रखता, भले ही उसका यह कार्य औरोंके लिए आदर्श हो जाय। शरच्चन्द्रका 'देवदास' ले लें। साहित्यकी वह एक महान् विभूति है। पर जरा कल्पना कीजिये कि पार्वतीसे अलग होनेके बाद क्या होता, अगर देवदास इतना सम्पत्तिशाली व्यक्ति न होता? अगर वह गरीब होता, जीनेके लिए अगर उसे नौकरी करनी पड़ती, अर्थ-सङ्कटका सामना करना पड़ता, आरामसे बढ़िया शराब पीकर घरमें पले हुए विश्वासपात्र पुराने नौकर धर्मदासकी देख-रेखका अवसर उसे न होता, मनमाना घूमनेके लिए फर्स्ट और सेकेण्ड क्लासके डिब्बे और जहां जितना खर्च हो सके, करके जीकी जलन बुझानेके सारे साधन उपलब्ध न होते, तो भी क्या देवदास वही सब कुछ करता, जो उसने किया?

क्या तब उसका जीवन ऐसा न हो जाता कि उसकी कहानी लिखनेके लिए किसी शरच्चन्द्रको कलम उठानेकी जरूरत न पड़ती ? प्रेमकी पीड़ामें कितने ही तड़पकर मर गये; पर व्यथाकी कहानी गायी गयी उनकी, जो और तरहसे भी सम्पन्न थे। देवदासकी महिमा है कि वह चन्द्रमुखीके हाथमें "तुम्हें रुपया चाहिए न !" कहकर उसके हाथमें सारा मनीबैग सुपुर्द कर देता है, और चन्द्रा इस घटनापर मुग्ध होकर उसके पीछे भागी-भागी फिरती है। पर देवदासके पास साधन थे। बेचारा चुन्नी तो ऐसा नहीं कर सकता था और चन्द्रा उसके पीछे भागी-भागी फिरी भी नहीं।

आरम्भसे अन्त तक देवदासकी कहानी उस शक्ति-सम्पन्न व्यक्तिकी कहानी है, जिसके त्यागकी कहानीके रूपमें वह उपस्थित है। लेकिन देवदासको एक विपन्न व्यक्ति समझकर सारी कहानीपर नजर दौड़ा जाइये, तो आप कहेंगे—यह लफङ्गेकी कहानी है। पार्वतीके विवाहके बाद रोना-गाना और शराब पीकर, भूखों रहकर अपनी हत्या करना मूर्खता—लफङ्गापन है। पर देवदास सम्भ्रान्त कुलका, धनी और सम्पन्न युवक है। अमीरोंके लिए ये सब शौक और आवश्यकताकी चीजें हैं, उनके लिए यह रईसी है और गरीबोंके लिए यही सब पाप—लफङ्गापन है।

इस विषयका विवेचन हमारा उद्देश्य नहीं है। उद्देश्य यह है कि एक बुर्जुआ-विचार-धारा है, जो हमारे साहित्यकी नसोंमें बह रही है। देवदासकी इस कहानीने हिन्दीकी कई कहानियोंको प्रोत्साहन दिया है और शरच्चन्द्रकी मनोवृत्ति भी हिन्दीमें आयी है। इस प्रकारकी विचार-धाराको एक पतित व्यक्तित्वसे सम्बद्ध कर आजकल जिस प्रकारकी प्रगतिशील कहानियां लिखी जा रही हैं, वे और कुछ भी हों, प्रगतिशील तो नहीं हैं। किस चीजको प्रगति मिली है, प्रश्न केवल इतना नहीं है। किस चीजको प्रगति देनी है, उसकी वाञ्छनीयता ही प्रगतिशीलताका पैमाना है।

यह स्थिति है हमारे साहित्यकी। हम पूछते हैं, यही अवस्था है, तो प्रगति कहां है ? साहित्यके दूसरे अङ्गोंकी बात हमने नहीं कही हैं। उपन्यासोंकी सृष्टि इधर अच्छी नहीं हुई। इधर वर्षोंमें कोई बहुत बढ़िया ऊंचे पैमानेपर लिखी गयी चीज नहीं निकली।

एक अनोखी-सी बात हिन्दीमें यह देखनेमें आती है कि हिन्दीके कलाकार एक समय तक अच्छा लिखते हैं, पर वे अपने स्टैण्डर्डको बनाये रखनेमें असमर्थ हो जाते हैं। यह बात किससे छिपी है कि एक समय बहुत सुन्दर लिखनेवाले हमारे कलाकार आज उससे सुन्दर नहीं लिख सक रहे हैं, जबकि ऐसा होना चाहिए था। यह ऐसा विषय है, जिसपर हमने बहुत काफी सोचा है और दूसरी भाषाओंके कलाकारोंका तुलनात्मक विश्लेषण भी किया है। हिन्दीकी अवस्था इसमें निराशाजनक मिली है। हमारी जातिकी प्रतिभाका आन्तरिक विकास अभी प्रारम्भिक अवस्थामें है।

तो प्रगति कहांसे हो ? हमारा विश्वास है कि जब तक हमारे कलाकार अपनी हृत्तन्त्रीके तार ही जोड़नेमें वृद्धावस्था तक लगे रहेंगे, जब तक वे सार्वजनिक जीवनको नजदीकसे देखनेका प्रयत्न नहीं करेंगे, जब तक सार्वजनिक दुःखकी धाराको स्पर्श कर उससे अनुप्राणित होकर मानव-सेवाका व्रत नहीं लेंगे और जब तक मानवताकी व्यथाकी ध्वनि अपने अन्तरमें नहीं सुनेंगे और उसकी प्रतिध्वनि उनकी रचनाओंसे नहीं सुनाई पड़ती, तब तक प्रगतिशील—जीवनको प्रगति देनेवाली रचनायें वे न कर सकेंगे—सम्भव है कर लें—पर वे रचनायें बढ़ियासे बढ़िया ढांचा रखती हुई भी भीतरसे प्राणशून्य होंगी।

और तब इस निष्प्राण ढांचेके प्रति जितना स्नेह होना चाहिए—जितना आकर्षण होना चाहिए, उससे अधिक कैसे होगा ? प्रगतिशील लेखकोंसे हम प्रार्थना करेंगे कि वे कभी-कभी अपनी रचनाओंपर एक आलोचनात्मक दृष्टि डालनेकी कृपा करें। —दिव्य चक्षु।

× × ×

सभा-विधान। लेखक और प्रकाशक—श्री विष्णुदत्त शुक्ल, सत्साहित्य प्रकाशन मन्दिर, ७१ बाबूलाल लेन, कलकत्ता ; कागज, जिल्द, आवरण, छपाई-सफाई सुन्दर; पृष्ठ-संख्या २९१; मूल्य २॥)

प्रस्तुत पुस्तकमें, जैसा कि इसके नामसे ही स्पष्ट है, लेखकने सभा-सम्बन्धी अनेक बातोंपर प्रकाश डाला है। सभाओंका सञ्चालन कैसे किया जाय, प्रस्ताव कैसे पेश किये जायें, संशोधन कब और किस प्रकार लिये जा सकते हैं, वाद-विवाद सम्बन्धी नियम, सम्मति-गणना, सभाओंमें पुलिस, डेपुटेशन, कमीशन, फबतियां आदि विषयोंसे सम्बन्ध रखने-

वाले विधानपर प्रकाश डाला है। हिन्दीमें इस प्रकारके साहित्यका सर्वथा अभाव है, यद्यपि इसकी आवश्यकता हम दिनोंदिन महसूस कर रहे हैं, क्योंकि सभा-सोसायटियोंकी प्रगति इस देशमें बढ़ रही है। एक कठिनाई जो इस प्रकारके साहित्य-सृजनके मार्गमें आती है, वह है हिन्दीमें पारिभाषिक शब्दोंका अभाव। अंगरेजीके कई शब्द हैं, जिनके ठीक पर्यायवाची शब्द हिन्दीमें नहीं मिलते।

परन्तु प्रस्तुत पुस्तकके लेखक यथासाध्य सभा-सम्बन्धी शब्दोंको हिन्दी-रूप देनेमें सफल हुए हैं। यह बात अवश्य है कि ऐसे शब्दोंका प्रचलन अधिक न होनेसे बहुत लोग, जिन्होंने दूसरे भी अनुवाद देखे हैं, इन्हें समझेंगे नहीं। उदाहरणार्थ "मैं निषेधात्मक प्रस्ताव पेश करता हूं" इसका सभीके लिए एक ही ठीक-ठीक अर्थ समझना कठिन होगा; लेकिन धीरे-धीरे इनका अभ्यास होनेसे ये बातें सुगम हो जायेंगी। हमें प्रसन्नता है कि शुक्लजीने यह पुस्तक लिखकर हिन्दीके एक बहुत बड़े अभावकी पूर्ति की है। हमारे स्कूलों-कालेजोंमें, जहां विद्यार्थियोंको सभा-सोसायटियोंके सम्पर्कमें आना पड़ता है और जहां ऐसे विषयोंके सीखनेके अवसर आते हैं, इस पुस्तककी एक-एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए। सभा-विधानकी अच्छी जानकारी न होनेके कारण ही कभी-कभी सभाओंमें बड़े-बड़े बखेड़े खड़े हो जाते हैं। अतः वाद-विवाद करनेवाली सभाओंका कर्तव्य हो जाता है कि इस विषयपर भी वे कभी-कभी शिक्षात्मक व्याख्यान कराया करें।

विषयकी उपयोगितामें किसी प्रकारका सन्देह तो किया ही नहीं जा सकता। इसका वर्णन भी बहुत सुन्दर ढङ्गसे किया गया है। हम चाहते हैं कि ऐसी पुस्तकका अत्यधिक प्रचार हो।

रामायण-ग्रन्थावली। सम्पादक और प्रकाशक—पं० कमलाकान्त उपाध्याय, बड़का डुमरा, आरा। पृष्ठ १६१७; मूल्य १); छपाई-सफाई साधारण।

यह ग्रन्थावली परम सन्त बाबा रामायणदासजीके छोटे-छोटे तेरह ग्रन्थोंका संग्रह है, जिनके नाम हैंः—(१) दोहावली, (२) कविता-कुञ्ज, (३) भजनावली, (४) ज्ञान गीतावली, (५) शत शिक्षा, (६) विचार, (७) आत्मारामकी नालिश, (८) भक्ति-विनोद, (९) सङ्कीर्तन माहात्म्य, (१०) तिलकमाल-महिमा, (११) महामारी निवारण स्तोत्र, (१२) श्रीरामायण माहात्म्य और (१३) उपदेश-माला।

ग्रन्थावलीमें अनुभूतिका आभास स्पष्ट झलकता है और कहीं-कहीं साहित्यिक पुट बरबस अपनी ओर आकृष्ट करता है। इसमें सन्देह नहीं कि ग्रन्थ-प्रणेताने ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी सम्मिश्रित भावनाओंसे अनुप्राणित होकर ही अपने उद्गार प्रकट किये हैं, लेकिन ऐसा करते हुए समाज और कालकी स्थिति तथा मानव दुर्बलताओंका भी उचित दिग्दर्शन कराया गया है।

ग्रन्थावलीमें प्राचीन सन्त कवियोंके भाव अनेक स्थलोंपर दुहराये गये हैं, यद्यपि लेखकने उनमें अपनी अनुभूतियोंका रङ्ग भरनेकी कोशिश की है।

कई स्थलोंपर काव्यके दोष भी खटकते हैं, पर ऐसी रचनाओंमें प्रायः ऐसे दोष भरे पड़े हैं। प्राचीन सन्त-महात्माओंकी वाणियां भी इससे मुक्त नहीं हैं।

ग्रन्थकारपर तुलसी, सूर और कबीरका बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है, इसे ग्रन्थावलीके भूमिका-लेखकने भी स्वीकार किया है। कुछ भजन तो ऐसे हैं, जिनमें तुलसी और कबीरके नाम जोड़ देनेपर किसीको सन्देह नहीं हो सकता कि वे उनके नहीं हैं।

इस प्रकारके साहित्यिक दोषोंके रहते हुए भी कई स्थलोंपर लेखककी मस्ती देखने लायक है और इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकारके साहित्यके अनुरागियोंको यह पसन्द आयेगी।

'सुधा' का विशेषाङ्क। श्रावणकी 'सुधा' का यह अङ्क विशेषाङ्क है, जो सुन्दर, सुपाठ्य और सुरुचिपूर्ण साहित्यिक सामग्रियोंसे समलंकृत है। भीतर तीन रङ्गीन चित्र हैं और 'विभाजन-योजना', 'सजनीवादकी प्रगति' और 'भूमध्य-सागर' कार्टून अच्छे सामयिक व्यङ्ग हैं। हिन्दी और ब्रजभाषाके लब्ध-प्रतिष्ठ सुकवियोंकी अनेक कवितायें हैं।

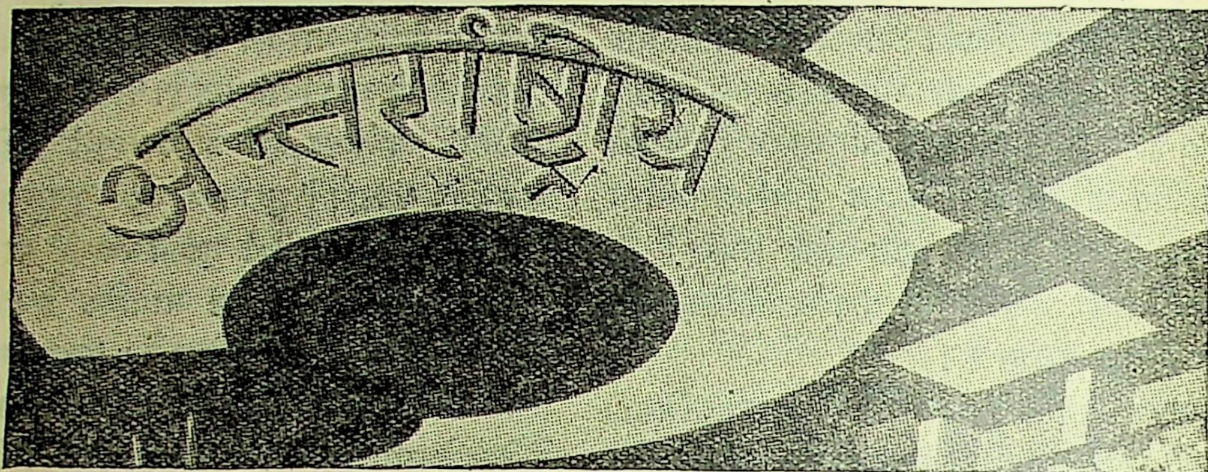
दुलारेलालजीका 'मङ्गलाचरण' भावपूर्ण है। 'हरिऔध' जीकी 'कल्पना' प्रिय-प्रवासकी शैलीमें उच्चकोटिकी ललित पदावली है। मैथिलीशरणजीकी 'कलाकारसे' वाली रचनामें सुन्दर युग-सङ्केत है। प्रो० रामकुमार वर्माके 'चित्र-दर्शन' और पन्तजीके 'गीत' में सुकुमारता है। 'निरालाजी' का 'मास्को डायलाग्स' बहुत ही साधारण है।

लेख प्रायः सभी चुने हुए हैं। कई तो उच्चकोटिके हैं।

श्री रामविलास शर्माका 'अहिंसात्मक मतभेद' और माननीय राजा श्री युवराजदत्त सिंहका 'भारतीय राजनीति और मुसलमान' ये दोनों भाषा, शैली और विवेचनकी दृष्टिसे विशेषता रखते हैं। परन्तु इनमें मतभेदकी गुञ्जायश है। देशकी वर्तमान परिवर्तित परिस्थितिके कारण रामविलासजीका लेख असामयिक हो गया है; और कुछ ऐसा लगता है कि गांधीजीकी अहिंसाको लेखकने भारतीय राजनीतिक स्वतन्त्रता तक ही सीमित समझा है।

राजा युवराज सिंहजीकी धारणा है कि साम्प्रदायिककी अपेक्षा, कांग्रेसी मुसलमान हिन्दुस्तान और हिन्दुओंके लिए ज्यादा खतरनाक हैं। और इसीलिए, शायद अपने जिस दृष्टिकोणसे उन्होंने लेख लिखा है, उसके बारेमें खुद शङ्का करते हैं कि वे कहीं कांग्रेस-विरोधी न समझ लिये जायें। 'मूल हिन्दी या बेसिक हिन्दी' विचारणीय विषय है। 'पाकिस्तानकी असफल योजना' सफलतापूर्वक दर्शायी गयी है। 'परम प्राचीन भारतीय इतिहासका रूप' पुराण-पन्थी ऐतिहासिकोंके अध्ययनकी चीज है। 'सच्चा साहित्य', 'प्रवासी-साहित्य', 'वर्ण-व्यवस्था' अधिकारपूर्ण लिखे गये हैं। 'अवन्तीके खंडहरोंमें' पुरातत्त्व और 'गुच्छूपानी' भ्रमणके वृत्तान्त हैं। सम्पादकजीकी 'तुलसी-जयन्ती' सराहनीय है।

कहानियोंमें सर्वश्रेष्ठ 'नष्ट नागरिक' है। 'सुहागरात' और 'पापकी पहेली' भी बढ़िया हैं। 'साधु-असाधु' में वही 'उग्र'-प्रतिभा मिली। 'उद्धार' एक समस्या है। 'नेता' में बेढब नेतागिरीपर बांका व्यङ्ग है। 'मेरी चोरी' की वर्णन-शैली चुराने लायक है। 'स्वार्थ सङ्घका अधिवेशन' निम्न कोटिका हास्य है। 'बड़ा पापी कौन ?' एकाङ्की नाटक है—जो अधूरा छपा है। विशेषाङ्कोंमें इस प्रकारका आंशिक प्रकाशन अनुपयुक्त है।—'नटवर'



निकटवर्ती पूर्व इटलीसे डरता है

जर्मनीकी वैदेशिक नीतिके सम्बन्धमें बार-बार घोषणायें हुई हैं और उसका रुख बहुत कुछ स्पष्ट रहा है, पर इटलीकी वैदेशिक नीति क्या है? ट्यूनिस, कोर्सिकामें समान सुअवसर तथा स्वेज नहरमें हिस्सा बटाना ही इटलीका उद्देश्य नहीं है, यह स्पष्ट हो चुका है। फिर इटली क्या चाहता है? अलबर्ट विटनने 'एशिया' में लिखा है:—

फैसिस्ट पत्रकारोंने अपने उद्देश्योंको कभी छिपाया नहीं। सिन्योर अन्साल्डोने इटलीकी वैदेशिक नीतिका उद्देश्य बताया था—"राष्ट्रीय सम्मान और गौरवकी रक्षा" तथा "कुछ नौ सैनिक अड्डों (जैसे माल्टा, स्वेज, जिब्राल्टर) तथा कुछ औपनिवेशिक क्षेत्रों (जैसे ट्यूनिस, मिश्र, पैलेस्टाइन आदि) की विजय। यह अत्यन्त आवश्यक है—यही हमारा भाग्य है।" सिन्योर गायदाने जरा और स्पष्ट करते हुए लिखा था:—"इटलीकी आबादी दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है, पर रहनेके लिए जगह नहीं है, इसलिए भूमध्य-सागरसे मुक्त द्वार पानेकी आवश्यकता है:'।'

लेकिन अगर इटलीका यही उद्देश्य है, तो निकट-पूर्वमें इसकी पूर्ति हो सकेगी? उसमें उपनिवेश बनानेके अवसर कहां हैं? माल्टामें पहलेसे आबादी अत्यधिक है और ब्रिटिश रिपोर्टके अनुसार वहां जमीनकी कमीका अनुभव लोग वर्षोंसे कर रहे हैं, पर कोई उपाय नहीं है। मिश्रकी दशा और भी खराब है; क्योंकि वहां आबादीकी अधिकता एक विकट समस्याके रूपमें उत्पन्न हुई है। पैलेस्टाइनमें जमीन खरीदनेके सिलसिलेमें यहूदियोंको जो अनुभव हुए हैं, उनकी जानकारी रखनेवाले व्यक्तियोंके सामने यह बात स्पष्ट है कि वहां उपनिवेशके लिए कोई गुञ्जायश नहीं है और सूदान, सीरिया, ट्रान्स जोर्डनकी दशा भी पैलेस्टाइनसे अच्छी नहीं कही जा सकती। व्यापारके लिए उनमें इटलीके लिए अच्छे मौके नहीं हैं; क्योंकि जितनी पूंजी उक्त देशोंके विकासके लिए लगानी पड़ेगी, उतनेमें इटलीका दिवाला निकल जायगा। तो मुसोलिनीने युद्धमें कूदकर जुआ खेलनेकी क्यों ठानी? क्या वह पुराने रोमन साम्राज्यका स्वप्न देख रहा है? लेकिन इस स्वप्नको वह चरितार्थ कैसे करेगा?

इसलिए वास्तविकतायें यों दिखाई पड़ती हैं। गणतन्त्रात्मक देशोंकी राजनीतिक एवं आर्थिक योजनाओंके आधारपर फैसिस्टोंकी नीतिका अध्ययन करना बेकार है। उनके अपने तरीके हैं और अगर उन्हें निकट-पूर्वमें सफलता मिल जाय, तो इटलीकी बहुत-सी समस्याओंका समाधान हो जायगा। इटलीकी विजय होते ही सारा निकट-पूर्व एक कैदखानेकी भांति हो जायगा, जिसमें हजारों पराधीन कुलियोंको इटैलियनोंके बसानेके लिए अपना रक्त देकर स्थान बनाना होगा। इटली इस बातकी कल्पनामें भूमध्य-सागरमें अपना भाग्य दावपर चढ़ा चुका है।

अमेरिकाको कैसे पछाड़ा जाय?

चीन तथा प्रशान्त महासागरको लेकर जापान और अमेरिकाके मनोभाव काफी अरसेसे एक-दूसरेके विरुद्ध हैं। जापान पूर्वी एशियामें अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है और सारे एशियाको अपने प्रभाव-क्षेत्रके अन्तर्गत लाना चाहता है। पर अमेरिकाकी चीनके निर्माणमें काफी पूंजी

लग चुकी है और साथ ही चीनी बाजार अमेरिकाके लिए सदा लाभजनक रहा है।

इसके अतिरिक्त उन द्वीप-पुञ्जोंकी भी समस्या है, जिन्हें जापान हथियाना चाहता है। इसलिए जापान और अमेरिकाके हितोंका सङ्घर्ष होता है और दोनोंमें काफी अरसेसे युद्धकी-सी मनोवृत्ति बनी रही है।

वर्तमान युद्धमें इस बातकी सम्भावनापर विचार किया जाने लगा कि क्या अमेरिका और जापान इस युद्धमें पड़ेंगे। ब्रिटेन और अमेरिकामें नौ-सेनाके महत्त्वके कुछ स्थानोंको लेकर अभी पिछले दिनों जो समझौते हुए हैं, उनकी रोशनीमें यह बात तो स्पष्ट हो ही गयी कि अमेरिका सब तरहकी परिस्थितियोंका सामना करनेको तैयार हो रहा है। उधर जापानी समाचार-पत्रोंमें डच ईस्ट इण्डीज आदिको लेकर जैसे भाव प्रकट किये जा रहे हैं और चीनके साथ समझौता करके जो अपनेको फिलहाल चीनी समस्यासे वह मुक्त करना चाहता है, उसका भी अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिमें यह लगाया जा रहा है कि दूसरी शक्तियोंका मुकाबला करनेकी जापान तैयारी कर रहा है।

इतना ही नहीं, जापानी युद्ध-विशेषज्ञ इस बातको लेकर ऊहापोह भी करने लगे हैं कि अगर अमेरिका और जापानकी लड़ाई हुई, तो अमेरिकाको कैसे पछाड़ा जाय? जेनरल कियो कात्सू सेतोने अभी हालमें एक पुस्तक लिखी है, जिसमें उसने दिखाया है कि अमेरिका तथा जापानमें शीघ्र ही युद्ध छिड़ेगा और यह युद्ध छिड़ा, तो जिस देशका कब्जा हवाई द्वीपोंपर पहले हो जायगा, उसी देशकी विजय होगी। हवाईकी स्थिति ऐसी है कि किसी जापानी-अमेरिकन युद्धके समय वह बहुत महत्त्वपूर्ण हो जायेगा। हवाई द्वीपोंसे अमेरिका टोकियो और ओसाकापर आसानीसे बम-वर्षा कर सकता है। उस दशामें जापानके सामने केवल आत्म-रक्षाकी समस्या उपस्थित रहेगी; लेकिन अगर जापानने हवाई द्वीपोंको अमेरिकासे लड़नेके लिए पहले ले लिया, तो अमेरिकाके पश्चिमी तटपर बम-वर्षा करना जापानके लिए आसान हो जायगा और आत्म-रक्षाकी समस्या अपने आप हल हो जायगी। ऐसी दशामें हवाईमें अमेरिकाकी शक्तियोंके एकत्र होनेके पहले उसपर कब्जा कर लेना चाहिए। अमेरिकाके जहाजी बेड़ेको प्रशान्त महासागरमें कुचलते ही पश्चिमी तटपर



युद्धः "आओ—तुम्हारे बापने भी मेरा ही अनुसरण किया था।"

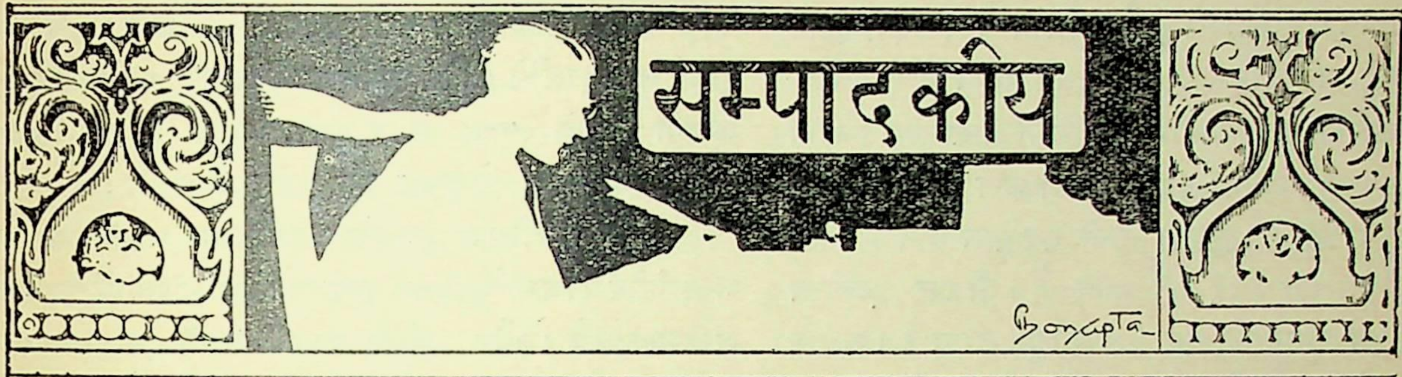
पहुंचना आसान हो जायगा। फिर तो राकी पहाड़ियोंमें भी अपनी सेना रखी जा सकेगी, और इस प्रकार हमारी सफलता निश्चित हो जायगी। अमेरिकाके साथ हमारी लड़ाई छः-सात साल चल सकती है।

रूस क्या करेगा?

जबसे जर्मनी और इटलीने जापानके साथ सन्धि करके पूर्वकी व्यवस्थाका नेतृत्व उसके हाथोंमें दे दिया है, तभीसे इस बातकी कल्पना की जाने लगी है कि रूसका रुख जर्मनीके लिए कैसा होगा। इस सम्बन्धमें यह भी एक जबर्दस्त तथ्य है कि रूमानिया एक तरहसे जर्मनीके नियन्त्रणमें आ गया है। रूस कभी नहीं चाहता था कि रूमानिया जर्मनीके प्रभाव-क्षेत्रमें आये, पर उसने जर्मनीका विरोध नहीं किया, इसलिए राजनीतिके समीक्षकोंकी उलझनें और भी बढ़ गयी हैं।

इधर एक बात और हुई है। अमेरिका रूसके साथ ऐसी चर्चा कर रहा है, जिससे रूस और अमेरिका एक साथ हो सकें। यदि ऐसा सम्भव हो, तो ब्रिटेन, रूस और अमेरिकाके सहयोगसे एक प्रबल गुट बनाया जा सकता है। जो लोग इसकी सम्भावनामें विश्वास करते हैं, उनका कहना है कि जापानमें जब रूसको जर्मनी इतना अधिकार देना चाहता है, तब रूसके साथ उसका सम्बन्ध ज्योंका त्यों नहीं रह सकता। पर दूसरे लोगोंका मत है कि रूस और अमेरिकाकी विचारधारामें इतना अन्तर है कि दोनों देश आसानीके साथ इतने नजदीक न आ सकेंगे। रूसकी नीति अभी भी रहस्यपूर्ण बनी हुई है।





यूरोपका कूटनीतिक युद्ध

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिकी समस्यायें निरन्तर उलझती जा रही हैं। शस्त्रास्त्रोंकी ध्वंस-लीला पिछले महीने अगर उस पैमानेपर नहीं हुई जिस पैमानेपर उसके पहले हुई थी, तो भी राष्ट्रोंका कूटनीतिक युद्ध भीतर ही भीतर चलता रहा है और उसके परिणाम यद्यपि पूर्ण स्पष्ट नहीं हो सके हैं, पर घटनाओंके रूपमें जो तथ्य प्रकट हुए हैं, वे काफी महत्त्वपूर्ण सम्भावनाओंसे भरे दिखाई पड़ रहे हैं।

और यह कूटनीतिक युद्ध कई अञ्चलोंमें चल रहा है। बाल्कन देशोंकी समस्या विकट होती जा रही है, और उन्हें लेकर अनेक राष्ट्र उलझते जा रहे हैं। एक अरसे तक इटली और रूस तथा जर्मनी और रूसके लिए जो अञ्चल खतरोंसे भरे थे, उनका यद्यपि आज निराकरण-सा हुआ प्रतीत होता है, और डेन्यूबियन कान्फरेन्समें रूसको जगह भी मिल गयी है, पर घटनायें जिस तेजीसे और जिस रूपमें बढ़ती जा रही हैं, उसमें धुरी शक्तियोंके साथ रूसका यही सम्बन्ध बना रह सकेगा, यह प्रश्न है जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिके समीक्षकोंके सामने है। यह सम्बन्ध मौलिक आधारोंपर नहीं। आसन्न सङ्कट-कालको लेकर स्थापित हुआ था। अतः इस बातकी धारणा निर्मूल नहीं हो सकती कि यह फिर अवसर मिलते ही छिन्न-भिन्न हो जाय। अमेरिका और ब्रिटेनने रूसके साथ आज जो नीति अपनायी है, वह यदि जेकोस्लोवेकियाके मामलेमें कहीं अपनायी गयी होती, तो आज यूरोपके नक्शेमें जो परिवर्तन दिखाई पड़ रहे हैं, वे सम्भव न होते और वर्तमान युद्धका यह रूप न होता। कौन कह सकता है कि तब धुरी शक्तियां स्वतः छिन्न-भिन्न न हो गयी होतीं और फ्रान्समें आत्म-समर्पणका भी सिद्धान्त मानकर चलनेवाली पेतां स कारका कहीं नाम-निशान भी होता। हिटलरकी वर्तमान सफलताओंके मूलमें उसकी तत्कालीन कूटनीतिक विजय है, और इस बातको ब्रिटेनसे अधिक कौन जानता है?

जर्मनीकी यह आशा छिन्न-भिन्न हो गयी है कि युद्ध अल्पकालीन बनाया जा सकेगा, और इसके साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया है कि ब्रिटेनको अपने आक्रमणोंके समक्ष आत्म-समर्पण करानेमें भी वह विफल हुआ है—जिसकी आशा उसने की थी और जिस आशाको हिटलरने दम्भपूर्ण शब्दोंमें दुहराया था। ब्रिटेनने जर्मनीके भीषण ध्वंसात्मक आक्रमणोंका सामना किया है और इस बीचमें उसने अपनी शक्तियोंका सङ्गठन भी किया है। जर्मनीके सामने ये तथ्य स्पष्ट हो रहे हैं और बाल्कनकी राजनीतिमें इधर जो उथल-पुथल हुई है, दक्षिण यूरोप तथा निकट-पूर्वमें जो घटनायें हुई हैं, उन्होंने भी इन्हें स्पष्ट किया है। ये अञ्चल आनेवाले दिनोंमें युद्धके क्षेत्र होने चल रहे हैं, ऐसी सम्भावनासे इनकार नहीं किया जा सकता।

धुरी शक्तियां अब क्या चाहती हैं? ब्रिटेनको आकाश-युद्धमें न झुका सकनेकी स्थितिमें धुरी शक्तियां उसे समुद्री लड़ाईमें उलझाना चाहती हैं। हमने पिछली बार इस बातकी सम्भावना बतलायी थी कि स्पेनको धुरी शक्तियां प्रभावित कर ब्रिटेनके लिए जिब्राल्टरका उपयोग असम्भव करनेका प्रयत्न करेंगी और पिछले दिनोंकी घटनायें इस आशङ्काकी पुष्टि करती हैं। इधर इटली स्वेजके मुहानेको ज्वालामुखीका मुंह बनानेके प्रयत्नमें है। इस प्रकार अगर धुरी

शक्तियोंको अपनी कूटनीतिक योजनामें सफलता मिली, तो भूमध्य सागरकी स्थिति बुरी तरह उलझ जायगी और यह स्थिति भीषण खतरोंसे भरी हुई है। मिश्र, पैलेस्टाइन, ईराक और टर्कीकी राजनीतिक उलझनें इससे बढ़ेंगी और ये योजनायें कार्यान्वित हुई, तो भारतके पश्चिमी सीमान्तसे जितनी दूरीपर युद्ध चलने लगेगा, वहांसे उसकी करालछाया भारतपर भी पड़ सकती है। युद्धका भावी रूप ऐसा होने जा रहा है, जिसमें भारतके लिए भी खतरे हैं। ग्रीसपर इटलीका आक्रमण इस योजनाका एक अंश मालूम होता है। रूटरके संवाददाताने कैरोसे जो समाचार भेजा है, उसके अनुसार "धुरी शक्तियां मध्य पूर्वपर आक्रमण कर ब्रिटेनको उलझाना चाहती हैं और भारतपर आक्रमण कर ब्रिटिश साम्राज्यपर अन्तिम प्रहार करना चाहती हैं।" यदि इस सम्भावनामें तनिक भी विश्वास किया जाय, तो भूमध्य सागरकी समस्याकी जटिलतामें सन्देह नहीं रहना चाहिए। ग्रीसका आक्रमण इस दिशामें एक प्रयत्न समझा जाता है। ग्रीसको ब्रिटेनकी सहायता मिल रही है, पर बलगेरिया और टर्कीकी स्थिति क्या है? टर्कीने काफी अरसेसे मौन-नीति अपनायी है। वह ब्रिटेनकी सहायता करनेके लिए बाध्य नहीं है और सम्भवतः तब तक वह कुछ करनेमें असमर्थ भी है, जब तक कि रूसकी ओरसे वह पूर्ण निश्चिन्त न हो जाय। बलगेरियाके राजा बोरिसने अभी उन दिन जर्मनी और इटलीके महान् शासकोंके प्रति 'गहरी कृतज्ञता' प्रकट की है और बलगेरियाके समाचार-पत्रोंमें ग्रीससे इटलीकी मांगका समर्थन हुआ है। अकेला ग्रीस इटलीके आक्रमणका सामना करनेमें कहां तक समर्थ है, इसका:अनुमान लगाया जा सकता है। विगत महायुद्धमें जिन कारणोंसे प्रेरित होकर ब्रिटेन ग्रीसको अपने अधीन करना चाहता था, उक्त कारणोंसे इटली भी प्रभावित नहीं हुआ है, कैसे कहा जा सकता है?

और ये कारण क्या हैं? भूमध्यसागरके नक्शेपर एक नजर डालिये। पूर्वी भागमें क्रीट है, जो उस हिस्सेको अपना प्रभाव-क्षेत्र बनाये हुए है। अगर ग्रेट ब्रिटेनके हाथमें यह चला जाय, तो एजियन सागरके द्वीप-पुञ्जोंके साथ ही इटलीका सम्बन्ध-विच्छेद न हो जाय, बल्कि पूर्वी भूमध्य सागरमें ब्रिटेनके 'कनवाय' के लिए भी पूरी सुविधा रहे और मध्य-पूर्वमें धुरी शक्तियोंकी योजनाके कार्यान्वित होनेमें एक बहुत बड़ी बाधा उपस्थित हो जाय। उधर एड्रियाटिक सागर है, जिसमें इटलीका प्रवेश असम्भव हो जाय, यदि काफू और केफालोनिया उसके विरोधीके हाथमें आ जाय। इन्हीं आशङ्काओंसे प्रेरित होकर इटलीने ग्रीसके विरुद्ध युद्ध-घोषणा करनेके पहले उससे क्रीट, काफू, केफालोनिया, दक्षिण-पूर्व ग्रीसमें एथेन्सका बन्दरगाह मांगा था।

इस प्रकार ग्रीसपर इटलीके आक्रमणका महत्त्व समस्त अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिकी सम्भावनाओंकी रोशनीमें देखनेकी आवश्यकता है। और पूर्वकी राजनीति भी इन सम्भावनाओंकी परिधिसे अलग नहीं है। जर्मनी, इटली और जापानमें होनेवाली पिछली सन्धिकी तीसरी धाराके अनुसार जापान भी—यद्यपि जापान आसन्न परिस्थिति और उक्त धाराकी व्याख्या अपने हितोंके अनुकूल ही करना चाहेगा—इस तस्वीरमें आ जाता है। अतः यदि जापानने धुरी शक्तियोंके साथ इस समय सैनिक सहयोग करनेका निश्चय किया, तो सारी स्थिति और भी जटिल हो जायगी। उस दशामें हमें अमेरिका और एशियासे सम्बद्ध अनेक बातोंपर भी विचार करना होगा; क्योंकि अगर ऐसा ही हुआ, तो अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिकी जटिलतायें और भी बढ़ जायंगी, युद्धका रङ्गमञ्च और भी विस्तृत हो जायगा और कई मोर्चोंपर कई राष्ट्रोंके बीच युद्ध चलनेकी सम्भावनायें उत्पन्न हो जायंगी।

भारतकी समस्या

युद्ध छिड़ते ही ब्रिटेनके युद्ध और शान्तिके उद्देश्योंको लेकर भारतने ब्रिटेनसे जिस स्पष्टीकरणकी मांग की थी और जिसको लेकर कांग्रेस, मुस्लिम लीग तथा दूसरी संस्थाओंके प्रतिनिधियोंसे वायसरायकी मुलाकातें होती रहीं, वक्तव्योंका तांता बंधा रहा, राष्ट्रीय सरकार बननेकी सम्भावनाओं और शर्तोंपर वाद-विवाद होते रहे, उन सबका अन्त हो चला और कांग्रेस तथा लीगने भारत-सरकारको युद्धमें सहयोग देनेसे इनकार कर दिया। युद्धकी विकटता और उलझनें जैसी बढ़ती जा रही हैं, उनसे भारत अपनेको अलग नहीं कर सकता और युद्धका अन्त चाहे जिस रूपमें हो, उसके परिणामोंसे भी भारत अछूता नहीं बचेगा। ऐसी स्थितिमें यह दुर्भाग्यकी बात है कि भारतके लिए युद्धमें पूर्ण सहयोग देना सम्भव न हो सका।

पर घटनाओंका अन्त जिस रूपमें हुआ है और देशमें प्रतिक्रिया उसकी जैसी हुई है, वह और भी दुर्भाग्यपूर्ण है। हमने किन्हीं अवस्थाओंमें—जिनका विस्तृत विवेचन हमने उस समय किया था—राष्ट्रके लिए पूर्ण अहिंसाके सिद्धान्तके अनुसार नीतिका सञ्चालन असम्भव बताया था और इसीलिए दिल्लीवाले कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीके प्रस्तावका समर्थन किया था। वास्तविकताओंको देखते हुए वर्किङ्ग कमेटीका उक्त प्रस्ताव बहुत ही समीचीन था, अतः आज भी श्री राजगोपालाचार्य—जिनपर उसकी जिम्मेदारी दी जाती है—के लिए पश्चात्तापकी जरूरत हमने नहीं समझी, भले ही सरकारके रुखके कारण उस नीतिका कार्यान्वित करना कांग्रेसके लिए सम्भव न हो सका।

आज देशकी स्थिति सबसे अधिक जटिल है। गांधीजीने युद्ध-विरोधी भाव प्रकट करनेके लिए स्वाधीनतापूर्वक बोलनेका जो अधिकार मांगा था, उसकी स्वीकृति न मिलनेपर उन्होंने कांग्रेसका पूर्ण नेतृत्व ग्रहण कर सत्याग्रह आरम्भ किया और श्री बिनोबा भावेसे सत्याग्रह शुरू कराया। स्वाधीनता-प्राप्तिके लिए यह व्यक्तिगत सत्याग्रहकी योजना गांधीजीकी ऐसी है, जो बहुत समझमें नहीं आती। श्री बिनोबा भावे गिरफ्तार होकर सजा पा चुके हैं। गांधीजीने उनकी गिरफ्तारीपर लिखा था :—

'कांग्रेसमैनोंको दूसरे कदमके लिए व्यग्र न होना चाहिए। व्यक्तिगत सत्याग्रहमें हर गिरफ्तारी स्वयं ही एक सम्पूर्ण कदम है। मेरी तजवीज अबकी दफे लगातार चलनेवाले सत्याग्रहकी नहीं है। जो नाम मेरे पास आ रहे हैं, उन्हें मैं दर्ज कर रहा हूं। लेकिन नाम भेजनेवाले अपने दैनिक कार्यक्रम न बन्द करें। उन्हें मैं बुलाऊंगा, इसकी सम्भावना नहींके बराबर है। मैं किसी ऐसे आदमीको नहीं बुलाऊंगा, जिसका कातनेपर या खद्दरपर और छुआछूतको दूर करनेपर तथा साम्प्रदायिक ऐक्यपर अहिंसाके स्पष्ट चिह्नके तौरसे विश्वास न हो। और ऐसे लोग भी बुलाये जायेंगे, यह निश्चित नहीं।

'मेरे सामने सवाल यह नहीं कि अब कौन भेजा जाय, बल्कि यह जानना कि लोगोंपर इस गिरफ्तारीका असर क्या पड़ा—कितनोंका प्रतिनिधित्व श्री भावेने किया। श्री भावे उनके प्रतिनिधि नहीं हैं, जिनका हिंसा-युद्धपर, साम्राज्यवादपर या नाजीवाद तथा उन बातोंपर, जिनका वह द्योतक है, विश्वास है, न वे उनके प्रतिनिधि हैं जो छुआछूत मानते हैं और समझते हैं कि साम्प्रदायिक ऐक्य असम्भव है या जो चरखा या ग्रामीण उद्योग-धन्धों और उससे ६ लाख ग्रामोंके उद्धारपर विश्वास नहीं करते हैं। ऐसे लोगोंके लिए बिनोबा किसी कामके नहीं। उनकी रायमें बिनोबा हिन्दुस्तानकी राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक उन्नतिमें बाधक हैं। और फिर भी बिना कांग्रेसके अपने अहिंसाका प्रचार करनेके अधिकारको स्थापित किये हुए हिन्दुस्तानको स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती।

'जनतन्त्रके लिए ब्रिटेनका युद्ध करनेका दावा हर कदमपर टूट रहा है। हिन्दुस्तानमें कोई स्वाधीनता नहीं। जैसा एक अंगरेजने कहा, हिन्दुस्तानी सदाकी भांति साम्राज्यके गुलाम ही रहेंगे।

'लेकिन कांग्रेसके अहिंसात्मक युद्धकी सफलताके अर्थ होंगे दुनियामें वास्तविक स्वाधीनताकी सफलता। उसके अर्थ होंगे यूरोपमें यूरोपियनोंकी स्वाधीनता और दुनियाकी अन्य जातियोंकी भी स्वाधीनता। ऐसी सफलता दिखाऊ और झूठी न होनी चाहिए। यह अहिंसाका पूर्व स्पष्टीकरण होना चाहिए। हम परिणाम असाधारण पाना चाहते हैं, दवा भी असाधारण होनी चाहिए।

'अब कांग्रेसमैनोंको अपने कार्योंसे यह दिखलाना है कि आया अहिंसापर, जैसा मैंने उसका रूप उन्हें बतलाया है, विश्वास करते हैं! और आया वे अपने विश्वासके अनुसार अमल करेंगे!'

श्री भावेकी गिरफ्तारीका लोगोंपर क्या असर पड़ा और उन्होंने कितनोंका प्रतिनिधित्व किया, गांधीजी देखना चाहते हैं। हमें भय है, देश इस प्रकारके 'सत्याग्रह' का अर्थ कितना और कैसा समझता है और जो कुछ समझता है, वह ठीक है और कहां तक, यह कहना भी कठिन है।

पर इतना स्पष्ट है कि देशकी वर्तमान स्थिति ऐसी नहीं है, जिसे वाञ्छनीय समझा जाय। अन्तर्राष्ट्रीय उलझनें जब इस रूपमें हमारे सामने हों और तब हमारी राष्ट्रीय स्थिति इतनी दयनीय हो, यह निश्चय ही दुर्भाग्यपूर्ण है। और हमारा ख्याल है कि अगर ब्रिटिश सरकारने, राजनीतिक बल-प्रयोगमें विश्वास करनेकी अपेक्षा कुछ अधिक नैतिक

साहसमें विश्वास किया होता, तो भारतीय समस्याकी जटिलता बहुत कुछ हल गयी होती ।

समाचार-पत्रोंकी स्वाधीनता

भारतमें इस समय सफलतापूर्वक युद्ध-सञ्चालनमें बाधा देनेवाली अथवा ऐसे किसी कार्यको प्रोत्साहन देनेवाली बातोंको प्रकाशित करना अपराध है और इसके साथ ही नयी दिल्लीसे २१ अक्टूबरको प्रकाशित भारत-सरकारकी विज्ञप्ति है :—

'केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारें ब्रिटिश भारत और आम जनताकी रक्षा, सार्वजनिक शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने या सफलतापूर्वक युद्धको सञ्चालित करनेके निमित्त समाचार-पत्रों और प्रेसोंके मुद्रकों, प्रकाशकों और सम्पादकोंको निम्न आदेश दे सकती हैं: —

(क) किसी अखबार या कागजमें छपनेके लिए सभी चीजोंको प्रकाशित होनेके पहले सम्बन्धित अधिकारियों द्वारा नियुक्त अफसरसे दिखाया जायगा ।

(ख) किसी भी विषय या विषयोंके सम्बन्धमें प्रकाशित होनेवाली चीजोंको नियन्त्रित किया जा सकेगा या रोका जायगा ।'

इसके प्रतिवादमें युक्तप्रान्तके 'नेशनल हेरल्ड', 'आज' और 'अग्रगामी' पत्रोंने सम्पादकीय न देनेका निश्चय किया है। प्रेस-कानूनमें इस प्रकारके होनेवाले सुधारोंसे उत्पन्न स्थितिमें 'हरिजन' (तीनों संस्करण) का प्रकाशन असम्भव समझकर गांधीजीने उन्हें स्थगित कर दिया है। गांधीजीने इस सम्बन्धमें जो एक वक्तव्य वर्धासे २४ अक्टूबरको दिया है, उसकी कतिपय पंक्तियां यों हैं :—

'जिनकी सहानुभूति सत्याग्रहके प्रति है, उन्हें मेरे आदेशका बिना आपत्ति उठाये पालन करने दें । मेरा विश्वास है और इस विश्वासकी बार-बार परीक्षा की जा चुकी है कि विवेकपूर्ण विचारमें भाषण या लेखकी अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति है । विवेक-शक्ति कठिनसे कठिन बाधाओंपर विजय पाती है और आसानीसे वजनदार हो जाती है । किन्तु जिन लोगोंका विश्वास विवेक-शक्तिमें नहीं है, उन्हें मुझे एक व्यावहारिक सङ्केत देने दें।

'प्रत्येक व्यक्तिको अपना भ्रमणशील समाचार-पत्र बनने दें और अपने शुभ संवादको एकको दूसरेसे कहने दें । इसका अर्थ यह नहीं कि इसी प्रकार लड़के भी पहले किया करते थे । इसका उद्देश्य यह है कि मैंने जो कुछ विश्वस्त रूपसे सुना है, उसकी सूचना अपने पड़ोसीको दे दूं । इसे कोई सरकार नहीं रोक सकती । यह सबसे सस्ता समाचार है और सरकार चाहे कितनी भी चतुर क्यों न हो, उसकी उपेक्षा करता है । इन भ्रमणशील समाचार-पत्रोंको पूरा विश्वास रखने दें कि वे क्या संवाद देंगे । उन्हें व्यर्थकी बातोंमें नहीं पड़ना चाहिए । उन्हें इसका निश्चय करने दें कि संवाद कहांसे मिलता है और तब वे देखेंगे कि जनताको बिना प्रातःकालीन पत्रोंके देखे ही सारे सच्चे समाचार मिल जाते हैं, जब कि अखबारोंसे उन्हें एकतरफा ही संवाद मिलते हैं, जो पढ़ने योग्य नहीं होते । यह भी हो सकता है कि सार्वजनिक वक्तव्य भी नहीं देने दिये जायं, जैसा कि मैं दे रहा हूं । स्वेच्छाचारी विदेशी या स्वदेशी सरकारके अधीन जीवनकी यही अवस्था है ।'

जर्मनी और फ्रान्सकी सन्धि और उसकी सम्भावनायें

अगर फ्रान्स और जर्मनीके बीचमें होनेवाली सन्धिकी शर्तें वही हैं, जिनके समाचार समय-समयपर मिलते रहे हैं, तो कहना होगा कि फ्रान्सको जर्मनीके सामने एक बार फिर घुटने टेकने पड़े ।

२३ अक्टूबरकी स्विजरलैण्डसे आनेवाली खबर और फिर पेतां और हिटलरकी मुलाकातके बाद 'न्यूयार्क टाइम्स' को बर्नसे प्राप्त खरीतेके अनुसार जिन शर्तोंका पता चला है, उनकी मुख्य-मुख्य बातें प्रायः एक-सी हैं । बर्नकी रिपोर्टके अनुसार शर्तें ये हैं :—

(१) एलसेज और लोरेन जर्मनीको मिल जाय ।

(२) रिवेरिया तक इटलीको मिल जाय ।

(३) ट्यूनिसमें फ्रान्स और इटलीका संयुक्त शासन हो।

(४) मोरक्कोमें फ्रान्स और स्पेनका संयुक्त शासन हो।

(५) सीरिया और उत्तरी अफ्रीकावाली फ्रान्सीसी सेना मिश्रपर इटलीके आक्रमणके समय इटलीकी दोनों तरफकी सेनाकी रक्षा करे । यह ख्याल किया जाता है कि उत्तरी अफ्रीकामें हवाई अड्डे-भर दिये जायेंगे, वायुयान नहीं ।

फ्रान्सने, जैसा कि कहा जाता है, ये शर्तें क्यों स्वीकार कीं ? 'न्यूयार्क टाइम्स' के अनुसार इस समझौतेसे फ्रान्स आर्थिक, राजनीतिक और सैनिक दृष्टिकोणसे धुरी शक्तियोंके समकक्ष हो जायगा और फ्रान्सकी राजधानी पेरिस जा सकेगी। फ्रान्समें जर्मनीकी इस उदारताकी प्रशंसा भी हुई है और यह समझौता मो० लावाके खास प्रयत्नोंसे हुआ है। यह मो० लावा वह सज्जन हैं, जिन्होंने इटली-अबसीनिया युद्धमें इटलीके विरुद्ध तेल-सम्बन्धी दण्ड-व्यवस्थाओं-को लागू करनेमें सभी तरहकी बाधायें पहुंचायीं और अबसीनियाके आत्म-समर्पणके लिए सर सैमुएल होरके साथ एक पैक्ट बनाया, जिसके कारण इनका राजनीतिक जीवन ही समाप्त हो गया था। इन्हींके परामर्शसे फ्रान्सने सर्वप्रथम आत्मसमर्पण किया था और उसके पतनके साधन मो० लावा अभी भी एकत्र करते जा रहे हैं।

और जर्मनीकी जिस उदारताकी इतनी प्रशंसा की जा रही है, उसका उद्देश्य क्या है ? उद्देश्य स्पष्ट है, इससे फ्रान्स खुलकर ब्रिटेनके विरुद्ध तो घोषणा नहीं करता, परन्तु अगर शर्तें कार्यान्वित हों, तो इसका अर्थ यही होगा कि फ्रान्सीसी जहाजी बेड़ा उत्तर अफ्रीका, भूमध्य सागर और अटलाण्टिक महासागरके नौ-सेनाके अड्डोंकी रक्षामें इस प्रकार सहयोग दे कि इटली और जर्मनी उक्त अड्डोंसे बिना किसी रुकावटके ब्रिटिश नाकेबन्दीको तोड़ डालनेके प्रयत्न करें।

पांचवीं शर्त—"फ्रान्सीसी सेना मिश्रपर इटलीके आक्रमणके समय इटलीकी दोनों तरफकी सेनाकी रक्षा करे—"के अनुसार इटलीकी सेनाकी रक्षाके लिए फ्रान्सीसी सेनाको ब्रिटिश जहाजी बेड़ेसे लड़ना भी पड़ सकता है। इस सम्भावनासे कौन इनकार कर सकता है ? इसलिए एक ओर ब्रिटेनसे लड़नेके लिए महत्त्वपूर्ण स्थानोंको फ्रान्ससे छीन लेना और दूसरी ओर फ्रान्सको भी ब्रिटेनके विरुद्ध युद्ध छेड़नेके लिए परिस्थितियां उत्पन्न कर देना—धुरी शक्तियों-की फ्रान्सके प्रति की गयी 'उदारता' का यही रहस्य है।

जापानका शान्ति-प्रस्ताव

पूर्वमें नयी व्यवस्थाओंका स्वप्नदर्शी जापान अपनी वैदेशिक नीतिका सञ्चालन आगे आनेवाले दिनोंमें किस प्रकार करेगा—यह प्रश्न है, जो जर्मनी और इटलीके साथ उसकी सन्धि, अमेरिका और ब्रिटेनके विरुद्ध उसके वर्तमान मनोभाव तथा चीनसे कुछ शर्तोंपर समझौता कर लेनेकी उसकी लालसाके आधारपर उत्पन्न होता है। रोम और बर्लिनके साथ मिलकर टोकियोने अपने लिए नयी समस्यायें खड़ी की हैं, यद्यपि यूरोपीय उलझनें जिस प्रकार बढ़ रही थीं और अमेरिका और ब्रिटेनका जैसा रुख हो रहा था, उसमें उसके लिए ऐसा करना अप्रत्याशित-सा नहीं हुआ। मार्शल चांग-काई-शेकको सरकारके लिए ब्रिटेन द्वारा जैसी सुविधायें मिलती रही हैं, उनके कारण वह ब्रिटेनका साथी नहीं रह सकता था और फिर एक ही पूर्वमें अपने साम्राज्य-के विस्तारका स्वप्न देखनेवाली दो प्रबल शक्तियां दोनोंकी महत्त्वाकांक्षाओंमें सामञ्जस्य स्थापित भी कैसे कर सकती थीं। इसलिए ब्रिटेन और जापानके मैत्रीपूर्ण सम्बन्धको छिन्न-भिन्न करनेवाले कारण बनते और पनपते गये हैं। कई बार यह सम्बन्ध टूटते-टूटते बचा है और अब स्थिति यह आ गयी है कि ब्रिटिश नागरिक जापानसे वापस आ रहे हैं; क्योंकि दोनों देशोंमें शान्तिपूर्ण सम्बन्ध कब भङ्ग हो जाय, इसकी आशङ्का इधर बराबर की जाने लगी है।

अमेरिका और जापानके सम्बन्ध सम्भवतः उतने खराब न हो पाते, यदि सवाल सिर्फ चीनका होता। पर अमेरिका जापानको समूचे पूर्वका व्यवस्थापक माननेपर कभी राजी नहीं हो सकता। उसके लिए प्रशान्त महासागर, फिलीपाइन तथा दूसरे द्वीप-पुञ्जोंकी भी समस्या है और भविष्यमें बहुत बड़ा खतरा उठानेकी गलती किये बिना वह जापानके वर्तमान विकासके विरुद्ध चुप बैठ नहीं सकता। जापानने कितनी ही बार उक्त अञ्चलोंको अपने प्रभाव-क्षेत्रमें लानेका दावा रखा है और इसके लिए कितनी ही बार उसने प्रयत्न भी किये हैं।

इन मनोवृत्तियों और घटनाओंको दृष्टिमें रखते हुए जापानने चीनके सामने जो प्रस्ताव रखा है, उसपर लोगोंने सन्देहकी नजर डाली है। जापानने, २३ अक्टूबरके शङ्घाईके एक समाचारके अनुसार, चीनसे सन्धि करनेकी इच्छा प्रकट की है। शर्तें यों हैं:—

(१) यांगट्सी क्षेत्रसे चीन सेना हटा ले।

(२) उत्तरी चीनमें पांच प्रान्त चीनकी अध्यक्षतामें एक स्वतन्त्र रियासत कायम कर लें, जिनका पूर्ण आर्थिक आधिपत्य जापानके अधीन रहेगा।

(३) सब्जूको प्रान्त स्वतन्त्र मान लिया जाय और

(४) चीनके सब बन्दरगाहोंमें जापानियोंको सुविधायें दी जायं।

यह प्रश्न भिन्न है कि चीन क्या इन शर्तोंको स्वीकार कर सकेगा, पहले प्रश्न यह है कि जापान इस समय सन्धिके लिए तैयार क्यों हो गया है। क्या जापान चीनको दबा नहीं सका और न निकट भविष्यमें इसकी कोई सम्भावना ही है? अथवा चीनकी समस्याको सुलझाकर जापान दूसरे मोर्चोंपर जानेकी तैयारी कर रहा है? यह अन्तिम प्रश्न है, जो आज उलझन खड़ी कर रहा है। अमेरिकाका राष्ट्रपति-निर्वाचन नवम्बरमें हो रहा है और अगर इस बार भी रूजवेल्टको सफलता मिली, तो इस बातकी प्रबल सम्भावना है कि युद्धके और व्यापक होनेकी स्थितिमें अमेरिका युद्धमें पड़ेगा। और तब धुरी शक्तियोंके लिए और भी कठिनाइयां उत्पन्न हो जायंगी। कार्डेल हलने बार-बार जापानको सावधान किया है। जापानको अमेरिकासे लोहा और पेट्रोलका मिलना बन्द हो गया है और मैक्सिकोने जापानके हाथ पेट्रोल अथवा कोई भी युद्ध-सामग्री बेचनेसे इनकार कर दिया है। जापान अपनी भावी आशङ्काओंको जानता है, इसलिए वह चीनकी समस्याका निपटारा किसी तरह भी कर लेनेको तैयार जान पड़ता है।

अब पहला सवाल है, क्या चीन जापानकी इन शर्तोंको स्वीकार कर लेगा? सम्भवतः नहीं। इसलिए नहीं कि शर्तें अच्छी नहीं हैं और इन्हें स्वीकार न कर, जापानसे युद्ध कर, चीन जापानको पराजित कर सकेगा, बल्कि इसलिए कि जापानने दूसरी दोनों धुरी शक्तियोंके टुकड़े-टुकड़ेकी विजयकी जैसी नीति बनायी है, उसमें चीनको इस बातका विश्वास दिलाना कठिन होगा कि जापानकी दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय उलझनोंके समाप्त होते ही वह फिर चीनमें अपना उपद्रव शुरू नहीं कर देगा। और फिर उधर दूसरी शक्तियां हैं जो चीनको ऐसी शर्तें स्वीकार न करने देंगी, जिससे जापान चीनसे मुक्त होकर दूसरे मोर्चोंपर आसानीसे कठिनाई खड़ी कर सके। इन अवस्थाओंमें जापानके इस शान्ति-प्रस्तावसे चीन-जापान-युद्धका अन्त हो जायेगा, इसकी सम्भावना बहुत कम है।

सिन्धके उपद्रव

सिन्धमें शान्ति और सुव्यवस्थाकी समस्या अभी भी सुलझ नहीं सकी। सक्खरमें होनेवाले उपद्रवोंके बाद छोटे-मोटे उपद्रवोंका होना बन्द नहीं हुआ है। हत्यायें होती चल रही हैं, डाकेपर डाके पड़ते जा रहे हैं और इन्हें नियन्त्रित करनेके लिए मन्त्रिमण्डल द्वारा होनेवाले कार्य अब तक कारगर नहीं हो सके हैं। कितने ही लोगोंकी यह आशङ्का है कि इस प्रकारके साम्प्रदायिक उपद्रवोंके लिए जिस विषाक्त साम्प्रदायिक वातावरणपर जिम्मेदारी है, उसके मूलमें मुस्लिम लीगका हाथ है। पर मुस्लिम लीगके नेता सर अब्दुल्ला हारूनका कहना है, हिन्दू नेताओंने मन्त्रिमण्डलमें परिवर्तन लानेके लिए जो नीति अपनायी, वर्तमान अशान्ति उसीका परिणाम है। अतः गैरमुस्लिम पार्टियां अपना रवैया बदल दें, तो समस्या सुलझायी जा सकती है।

जिम्मेदारी चाहे जिसपर हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि सिन्धकी समस्या बहुत उलझ गयी है। हमारा ख्याल है कि मन्त्रिमण्डलको उन सारे कारणोंको खोजकर कड़ाईके साथ उनका दमन कर देना चाहिए, जिनपर नागरिक जीवनको इस प्रकार खतरनाक, घृणित और दयनीय बना देनेकी जिम्मेदारी है। प्रश्न यह नहीं है कि हिन्दू या मुसलमान कौन किसपर आक्रमण कर रहा है, प्रश्न तो यह है कि इससे सारा नागरिक जीवन त्रस्त और अस्तव्यस्त हो उठा है। अतः इस प्रकारके अपराधोंको निर्मूल करनेके साधन सिन्ध मन्त्रिमण्डलको काममें लाने होंगे। आततायियोंका दमन करना होगा, वे चाहे जैसे, जहां और जिस सम्प्रदायके हों।



'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट कलकत्तासे पं० मातासेवक पाठक द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

युद्ध अंक अक्टूबर १८

विषय-सूची

बहिरापन

विज्ञान को नई आश्चर्यजनक खोज !



कानका बहना, जलन, भयानक दर्द, खुजली, फोड़ा-फुन्सी, मवाद आना, नासूर, सूजन, पर्दा खराब होना, कानमें भनभन, सांय-सांय, सी-सी, सीटी की तरह आवाजें आना, कम सुनना या एकदम न सुनना अथवा ज्वरके बाद सर्दीत या कुनैनके दुर्व्यवहारसे पैदा हुआ कैसा ही नया, पुरानेसे पुराना बहिरापन क्यों न हो हमारी 'बधिरता-हरन' के इस्तेमालसे शर्तिया आराम होता है। लाखों बहिरे उससे ठीक ठीक और साफ-साफ सुनने लगे। आराम न हो तो दाम वापस। कीमत २) रु०।

बवासीर

महात्मा से प्राप्त आश्चर्यजनक दवा



खूनी या बादी, नयी या पुरानी तथा अन्दरूनी, बाहरी चाहे जैसी बवासीर क्यों न हो, महात्मासे प्राप्त जादू असर 'अर्श-मारा' के एक बार के इस्तेमाल से दर्द, खुजली, टीस, सूजन, जलन, मवाद आना, खून गिरना फौरन आराम होता है। ३ दिन में खराब से खराब बवासीर, नासूर, भगन्दर, बिना आपरेशनसे जड़ से शर्तिया आराम होता है। लाखों निराश रोगी अच्छे होकर अन्य रोगियोंसे इसके इस्तेमालकी सिफारिश करते हैं। आराम न हो तो दाम वापस। कीमत २) रु०।

दमा-श्वासकी रामबाण दवा

चाहे जैसा नया या पुराना से पुराना दमा यानी श्वास क्यों न हो 'दमा-हारी' के व्यवहारसे चाहे जितने जोरका दम उभड़ा हो सिर्फ एक खुराक लेनेसे छातीकी खींचन, श्वांस की तकलीफ, खांसी, पीठका भारीपन दूर करके सुखमय नींद लाती है। पुराना से पुराना दमा चाहे तन सूखकर कांटा हो गया हो और कोई चीज खाने से हजम नहीं होती हो, तकिये के सहारे रात भर जागा करते हों वे रोगी पूरी शीशी पीनेसे भले चंगे हो गये हैं और जीवन सुखमय बिताते हैं तथा गद्‌गद्‌ हृदय से आशीर्वाद देते हैं, हजारों प्रशंसा पत्र मौजूद हैं। कीमत २), तीन शीशी ५) रु०

पता :—आरोग्य सदन,

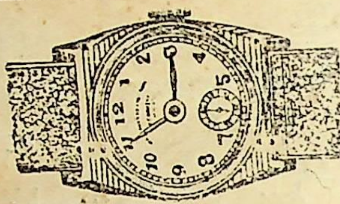
दुर्गादेवी स्ट्रीट (कुंमारवाड़ा), बम्बई ४

सफेद बाल काला



निर्मलन केश तेल सदाके लिये जड़से प्राकृतिक रंग ला देगा। खिजाबोंका दूर कीजिये। ७ वर्षसे प्रसिद्ध विज्ञप्तिका व्यवहार कीजिये। छोटा शीशा १।।=) बड़ा शीशा ३), नमूना शीशी (पूरा और के लिये) बिना डाक खर्च के भेजा जाता है। एजेन्ट:—ट्रेडमार्क कम्पनी, ११४ आशुतोष मुकर्जी रोड, कलकत्ता।

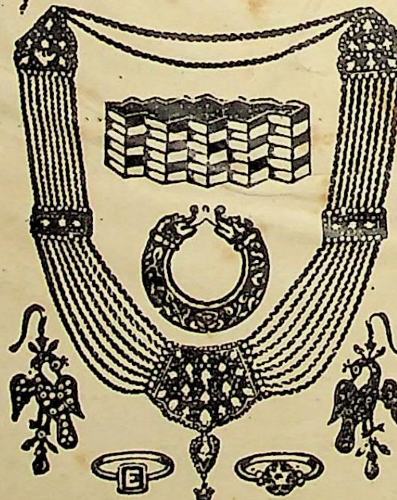
और दो महीना



आधुनिक, सुन्दर साइज ३।) रुपय।

हम लोग घड़ियां सीधी स्वीटजरलैंडसे बड़ी तादादमें मंगाते हैं। आप हमारी घड़ियां को देख कर आसानी से रु० ६) बचा कर सकते हैं। दूसरे प्रांत घड़ी १०) में बेचते हैं और हम लोग सिर्फ ३।।) में छोटी साइज लेडीज सुन्दर घड़ी ४।।) ४ सालको गारन्टी। एकबार ३ घड़ी लेनेसे डाक व्यय देना नहीं पड़ेगा। रोलेण्ड वाच कम्पनी, पोस्ट बक्स नम्बर १००,०७ कलकत्ता २१ ए

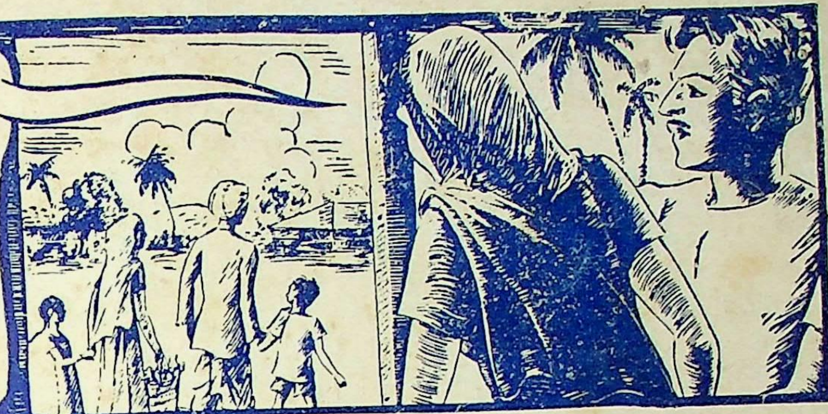
शहर और देहातमें इनामोपहारकी चीजें



अनेकों मेडल और प्रशंसापत्र प्राप्त कारीगरों द्वारा तैयार कराये हुए असली केमिकल सोनेके गहने। वजन, रंग, बनावटमें कीमती आभूषणोंको भी मात कर देंगे। कभी न खराब होने वाले रंगकी गारंटी १० साल माल नापसन्द होने पर कीमत वापस। कानमें पहननेके इयर रिंग २।।), ५) वा ७।।) सुन्दर अंगूठियां २।।), ५।), ८।।), १०), हाथमें पहननेके दस्तूहें कड़े ४), ६।।), ८) और १२), चुड़ियां पूरा सेट २।।), ५), ८), १०) हमारी खास चीज अमीरी हार ५), ८), १०) उत्तम १५) और २०) सभी चीजें एक साथ मंगाने पर १५) में मिलेगी जनानी हाथ घड़ी ८।।) और १०।।)। डाक खर्च अलग।

एम. स्ट्रेंज कं० पोस्टबक्स नं० ६७४४, कलकत्ता

"बेचारी दुर्गाबाई ! सबेरेसे रात
तक़ वह काम करती है तो भी
उसका घर उदास तथा श्री-हीन
रहता है और उसका परिवार इतना
अव्यवस्थित। उसकी मदद करनेकी
कोशिश मुझे जरूर करना चाहिये।"



"जब मैं तुम्हारे घर आती हूं
तब कितना फर्क मालूम होता
है। हरेक चीज़ उज्वल और
सुहावनी मालूम होती है, और
सारा परिवार इतना सुखी और
स्वस्थ दिखाई देता है।"

"इसका जवाब बहुत सरल
है। दुर्गाबाई—अपनी मदद
के लिये मेरे पास एक
अद्भुत चीज़ है।.....



"·······सनलाईट साबुन। मैं घरकी हरेक
चीज़के लिये सनलाईट साबुनका इस्तेमाल करती
हूं ; क्योंकि मैं जानती हूं कि यह खालिस साबुन
है इसका व्यवहार करना सरल है, यह अपना
काम आहिस्ते आहिस्ते करता है फिर
भी कितना कम खर्च है। कपड़े चाहे वे
रंगीन हों या सफ़ेद, इससे सरलता पूर्वक धोये
जाते हैं और इसका फेन इतना कोमल है कि
इससे चमड़ीको कदापि नुकसान नहीं पहुंचता—
सच, मैं तो इसका व्यवहार अपने बच्चोंपर भी
करती हूं यह दरअसल गृहिणीका सच्चा मित्र है।"

"······थोड़ा साबुन भी
लेते आना—और देखो
इसबार मेरे लिये रद्दी
कच्चा साबुन मत लाना,
मुझे सनलाईटके अलावा
और कुछ नहीं चाहिये।"



"राम राम, प्रकाशभाई,
आशा है सब अच्छी
तरह हैं।"



"हां, भाई तुम्हें क्या
बताऊं, जबसे सनलाईट
साबुनका इस्तेमाल
शुरू किया है तबसे
हमारे घरमें सूरजकी
रोशनीकी तरह आनंद
ही आनंद फैल गया है।"

"मैं कभी तुम्हारा उपकार नहीं
भूल सकती कि तुमने मुझे
सनलाईट साबुनके बारेमें
बताया। देखो, अब हम कितने
सुखी और स्वस्थ हैं।"



सब प्रकारकी धुलाईके लिये हमेशा श्रेष्ठ
गुण-सम्पन्न साबुन

सनलाइट साबुन

LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED

S. 23-95 HI

REGD. No. C. 2230

विषय-सूची



REGD. No. C. 2230   23 NOV 1958

प्रत्यक्ष

श्रीची

प्रा

मा

आपको लिखते अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि आपने हीरा खरीदना आ...
दिया। मुझसे जोर देकर अक्सर कहा जाता था कि उचित मूल्यमें ...
पानेके लिए कई व्यापारियोंके यहां घर...
एक दूसरेके मालका ...
उपेक्षा की, ...

विषय-सूची

नोट कर लीजिये—

	१ वर्ष	६ मास	३ मास
दैनिक (डाकसे)	१८)	१०)	६)
स्थानीय—	१५)	८)	५)
साप्ताहिक—	४)	२॥)	०
मासिक—	६)	३॥)	०
दैनिक बर्माके लिये	२५)	१४)	८)
साप्ताहिक —,,	७)	४)	०
मासिक — ,,	८)	५)	०

मैनेजर—विश्वमित्र

ऊंचे दरजेके नवीन सामाजिक उपन्यास

लक्ष्मी

धनी और जमींदार—समाजके डाकू रजनीने, कर्तव्य-परायण रघुनाथकी पत्नी-लक्ष्मीकी सुन्दरतापर मुग्ध होकर जो अत्याचार किये, वे वैभवके बलसे देशमें जगह-जगह दुहराये जाते हैं। समाजकी सत्ता उनके हाथमें है, कुलीनताका जामा पहनकर—देशके धनी कहानेवाले समाजके डाकू, बराबर ही जहां सुयोग मिलता है; समाजकी बहू-बेटियोंके सतीत्त्वपर डाका डालते हैं। समाजकी सत्ता उनके हाथमें है और धनबलसे कानून कुण्ठित है! यही इसका प्लाट है। मूल्य १।।) मात्र।

विधि-विधान

सचित्र—सामाजिक उपन्यास।

त्यागकी महिमा और कर्त्तव्यका विश्लेषण, धनी-सन्तान होकर भी सनत्की देश-भक्ति, करुणा तथा अरुणकी निस्पृहता, मीराका गर्व और अभिमान तथा इला, अरुन्धतीकी त्यागवृत्तिका इसमें विचित्र सम्मिश्रण हुआ है। ऐसा मर्मस्पर्शी मनोरञ्जक उपन्यास, अभीतक हिन्दीमें प्रकाशित नहीं हुआ। युवक-युवतियोंके लिये इसमें आदर्श शिक्षा है। मनोरञ्जन और शिक्षाकी अपूर्व सामग्री है। अनेक चित्रोंसे सुसज्जित। बढ़िया छपाई-सफाई मूल्य २)।

स्नेह-बन्धन

हिन्दू-समाजमें दत्तक-पुत्र ग्रहण करनेका रिवाज है। परन्तु संसारके किसी भी देशमें दत्तक-पुत्र लेनेकी प्रथा नहीं। इस उपन्यासमें दत्तक-पुत्र-विधानका मर्मस्पर्शी विश्लेषण किया गया है। हिन्दू-समाजके लिये एक नवीन आदर्शका चित्र खींचा गया है। निःसन्तान धनी जो दत्तक-पुत्र ग्रहण करते हैं, उससे क्या उनकी आकाक्षा पूरी होती है? यदि वे अपने धनको समाज और लोकहितके कामोंमें लगायें, तो क्या स्वर्गमें उन्हें शांति न मिलेगी? अत्यन्त मनोरञ्जक उपन्यास है। मूल्य १।।) मात्र।

राजाबाबू

कुलाङ्गार, समाजपतियोंकी छत्र-छाया में पलकर, देशके वे युवक, जो समाजकी बहू-बेटियोंकी इज्जत और प्रतिष्ठाके रक्षक हो सकते हैं, कैसे मखमली गद्दोंपर खेलकर और बाप-दादोंके धनको पाकर समाजके लिये राक्षस सिद्ध होते हैं और अपने पैशाचिक कृत्योंको धनसत्तावादके आवरणमें छिपाकर समाजपति बन बैठते हैं, इसका इसमें बहुत ही स्वाभाविक खाका खींचा गया है। हिन्दीमें इसके जोड़का अभीतक कोई उपन्यास नहीं निकला। अनेक चित्रोंसे सुसज्जित। मूल्य १।) मात्र

पोपुलर ट्रेडिंग कम्पनी, १४।१ ए शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता।

अपने बच्चों और लड़कोंको स्वस्थ और ताकतवर रखना चाहते हैं।

तो उन्हें पिलाइये —

इस के पीने से खाना शीघ्र हजम होकर अंग लगता है।

STAR TRADE S.K.B. MARK REGD

लाल-शार

(लाल शरबत)

(REGISTERED)

बच्चों और प्रसूतिका खून और बल बढ़ाने की सर्वोत्तम मीठी दवा

डाबर (डा॰ एस॰ के॰ बर्म्मन) लि॰

कलकत्ता बिभाग नं॰ २

यह खून, मांस और हड्डी को बढ़ाता है।

यह ४ औंस, २ औंस और आधा औंसकी शीशिओंमें बिकता है।

स्थानीय हमारे एजेण्ट से खरीदिये

जिन्हें मातृत्व-अधिकार प्राप्त है

अथवा जो निकट भविष्यमें माता होनेकी इच्छा करती हैं उन्हें स्मरण रखना चाहिये कि केवल स्वस्थ और सबल गर्भाशय रहनेसे ही जातिकी आशाका प्रतीक स्वस्थ-सबल सन्तान पैदा हो सकती है

यूटेरन

बेंगल केमिकल ब्राण्ड

भाइब्रो-अशोक

सेवन करनेसे गर्भाशय सम्बन्धी सभी प्रकारकी गड़बड़ी क्लेश तथा आर्त्तव प्रभृति उपद्रव दूर होते हैं। बहुत जल्दी स्वास्थ्यमें उन्नति होती है। सभी श्रेष्ठ चिकित्सक यूटेरन की व्यवस्था करते हैं।



बेङ्गल केमिकल एण्ड फार्मास्युटिकल वर्क्स लिमिटेड

कलकत्ता :: बम्बई





सम्पादक—

शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

दिसम्बर, १९४० वर्ष ९ संख्या ९९ मार्गशीर्ष, १९९७

अनुसन्धान

मत पूछो, क्या देख रहा हूं, इस एकान्त प्रान्तमें उन्मन।
खोज रहा हूं, दूर क्षितिजपर, मैं अपना भूला-सा गायन।

हिल-हिलकर चलदलसे प्रतिपल अधर किसीके कुछ कहते हैं।
किन्तु विश्वके कोलाहलमें कहकर भी, कब, कुछ लहते हैं!
कहकर ही कोई अपना मन, कभी किसीको दे पाया है!
सुनकर भी, क्या सुन पानेका, उत्तर इस जगको भाया है?
किन्तु अभी नयनोंकी भाषामें बोला था, मेरा सावन!
खोज रहा हूं, दूर क्षितिजपर, मैं अपना भूला-सा गायन।

सुनो-सुनो, चुपचाप, शान्त हो, आयी—वह वंशीध्वनि आयी।
यह गुञ्जन, यह नर्तन मनका, जीवन-भरका अर्पन लायी।
किन्तु हमारे इस अम्बरका कितना विस्तृत है :अन्तरतम!
ध्वनियां और प्रतिध्वनियां भी खोकर बन जाती हैं सम्भ्रम!
अनुसन्धान व्यर्थ जाता है, जैसे मैं बन गया पलायन!
खोज रहा हूं, दूर क्षितिजपर, मैं अपना भूला-सा गायन।

कब मैंने आश्वासन मांगा, कब मैंने प्रतिदान चुराया?
कब मैंने प्रवाहको छूकर अवसरका कुछ लाभ उठाया?
मेरे मनकी चाह अनोखी, मैं क्या जानूं तृष्णा क्या है?
मुझे कहां फुरसत है इतनी खोजं, किसने याद किया है!
अपने तकको भूल गया हूं, मेरा क्या बेगाना गायन!
खोज रहा हूं, दूर क्षितिजपर, मैं अपना भूला-सा गायन।

—भगवतीप्रसाद वाजपेयी।

अमेरिकामें मैंने क्या देखा ?

श्री रामनाथ विश्वास

हमारा जहाज धीरे-धीरे न्यूयार्कके पास पहुंच रहा है, थोड़ी देरमें हम एक स्वतन्त्र देशमें पहुंच जायंगे। गणतान्त्रिक अमेरिकाके दर्शनकी प्रबल इच्छा बहुत दिनोंसे है। शामके साढ़े सात बजे होंगे, चारों ओर कुहरेसे अन्धकार हो गया है, इसी समय जहाज 'स्वतन्त्रताकी मूर्ति' (Statue of Liberty) के पास पहुंचा। और लोगोंकी तरह मैंने भी इस मूर्तिका दर्शन किया।

जहाजसे उतरनेके बाद बड़ी परेशानीके बाद भी मुझे कहीं शरण न मिली। काले आदमीको भाड़ेपर मकान देना किसीने मञ्जूर नहीं किया, तब मुझे एक हबशी मुहल्लेमें जाना पड़ा। वहां जानेपर कमरे और टैक्सीका किराया देकर मैंने एक निग्रो-होटलमें भोजन किया और दो सेण्ट (एक आना) का एक अखबार खरीदकर वाई० एम० सी० ए० के नवें तल्लेपर स्थित अपने एक कमरेमें जाकर पढ़ने लगा। स्वतन्त्र विचार और समालोचनाके लिए साम्प्रदायिक या किसी दलसे सम्बन्ध रखनेवाले अखबार पढ़ना फिजूल है। इसके लिए 'स्वतन्त्र' संवादपत्र खरीदना चाहिए। 'स्वतन्त्र' पत्र रिपबलिकन, डेमोक्रेट, कम्यूनिस्ट, फैसिस्ट तथा विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायोंकी कड़ी समालोचना किया करते हैं। इस कोटिके अखबारोंकी खपत बहुत अधिक होती है, लेकिन ये छपते हैं बहुत कम। इन पत्रोंमें विज्ञापनके लिए दुगुना-तिगुना 'चार्ज' देना पड़ता है।

मैं देर तक अखबार पढ़ता रहा और रातके तीन बजे सो गया। सवेरे आठ बजे नींद टूटनेपर मैंने देखा कि जोरोंसे वर्षा हो रही है। १३९ स्ट्रीटके पश्चिमकी ओर वाई० एम० सी० ए० स्थित है, इस सड़कके दोनों किनारोंपर गगनचुम्बी अट्टालिकायें खड़ी हैं। हिन्दुस्तानके शहरोंकी तरह यहांकी कोठियां प्रधानतः तितर-बितर, ऊंची-नीची नहीं हुआ करतीं। 'ब्लाक'के रूपमें सड़कोंके दोनों ओर सजी हुई हैं, शहरके विभिन्न भागोंके लिए यह बात सच है, चाहे वह हबशियोंकी बस्ती हो या चमड़ेका काम करनेवालोंकी। दुनियामें रूस, जर्मनी और अमेरिकाके अतिरिक्त 'ब्लाक' प्रणालीमें बने मकान अन्यत्र देखनेमें नहीं आते। मेरा अनुमान है कि भविष्यमें दुनियाके विभिन्न देश इस प्रणालीका अनुकरण करेंगे। 'ब्लाक' प्रणालीमें मकान बनानेसे पक्की सड़कोंको पानी, बिजली, गैस, पाखाना आदिके 'संयोग'के लिए बारम्बार खोदनेकी जरूरत नहीं पड़ती; क्योंकि सड़कसे इनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। ये सभी 'पेवमेण्ट' (Pevement) के नीचे रहते हैं, इसलिए सड़कोंको खोदनेकी जरूरत नहीं पड़ती।

मैं बहुत देर तक इन प्रासादोपम मकानोंको देखता रह गया। प्रत्येक घरकी खिड़कियोंके सिवा, बाहरसे भीतरका कुछ भी दिखाई नहीं पड़ रहा है। सड़कोंपर मोटरों, लारियों, टैक्सियों और बसोंकी अविच्छिन्न धारा चल रही है। कुछ दूरपर 'एलिवेटर' (Elivater) गाड़ी चल रही है। जब हिन्दुस्तानमें पहले-पहल रेल चली, तो देहातोंके बहुत-से लोगोंने इसे देवता या दानव समझकर सिर नवाया था। मेरा ख्याल है कि यहांकी गाड़ियोंका तांता देखकर वे आज भी ऐसा कर सकते हैं। कलकत्तेके लोग घुड़दौड़के बादवाली एक घण्टेकी भीड़से इसका कुछ अनुमान कर सकते हैं। गाड़ियोंको देखते-देखते मैं उन्हींमें भूल-सा गया। मेरी इच्छा वहांसे हटनेकी नहीं होती थी। ऊपर गाड़ी (एलिवेटर), जमीनपर गाड़ी, जमीनके नीचे गाड़ी (ट्यूब रेल)। अमेरिका अपने ढङ्गका निराला देश है, सुरङ्ग रेल तो अमेरिकाके न्यूयार्क और चिकागो, ब्रिटेनके लन्दन, फ्रान्सके पेरिस, जर्मनीके बर्लिन तथा सोवियट यूनियनके मास्को आदि शहरोंमें देखनेमें आती है; लेकिन ऊपर चलनेवाली 'एलिवेटर' गाड़ी न्यूयार्कके अलावा दुनियाके किसी भी देशमें नहीं बनी है। मैंने सुना है कि मास्कोमें 'एलिवेटर' बनानेका आयोजन हो रहा है।

गाड़ियोंको देखनेका शौक कुछ कम हुआ, मैंने अपने कमरेमें लौटकर स्नान किया। नीचे उतरकर सड़क, मकान आदिका नम्बर अपनी 'नोटबुक' में लिख लिया और कहवा

पीनेके लिए चल पड़ा। आगे एक दूकान मिली, जिसमें दो निग्रो और तीन अमेरिकन कहवा पी रहे थे और बातचीत कर रहे थे। इनकी दार्शनिक बातोंको सुनकर ऐसा मालूम हुआ, मानो मैं संन्यासियोंके किसी अखाड़ेमें बैठा हूं। काफी पीकर सिर खुजलाते हुए मैं बाहर निकल आया।

एक सप्ताह मैंने हरलाममें ही बितानेका विचार किया। वाई० एम० सी० ए० वाले मकानको छोड़कर मैंने जमैका इण्डियनके मकानमें एक कमरा ले लिया। कमरा बहुत साफ-सुथरा और हवादार था और मकान-मालकिनने कहा कि वह मेरे लिए अपने देशका भोजन तैयार कर देगी। जमैकाके निग्रो अपना परिचय पश्चिमी इण्डियन कहकर देते हैं। वे फिलीपाइन, जावा, सुमात्रा तथा हिन्दुस्तान-वाले ईस्ट इण्डियन हैं। अमेरिकन लोग हिन्दुस्तानियोंको हिन्दू कहते हैं, चाहे वह किसी भी धर्मका क्यों न हो। लेकिन लन्दन-स्थित ब्रिटिश इन्स्टीट्यूट आव इण्टरनेशनल अफेयर्स तथा ब्रिटिश नियन्त्रित पत्र इधर इस धारणाको दूर करनेके लिए जोरोंसे प्रचार कर रहे हैं। मि० शौकत अली तथा एक मद्रासी पादरी इस भूलको सुधारनेके लिए गये थे, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। उपर्युक्त प्रचार अगर इसी तरह चलता रहा, तो अमेरिकामें हम इण्डियन कहलाने लगेंगे। कैलिफोर्निया-स्थित हिन्दुस्तानी पठान भी अपना परिचय हिन्दू कहकर देनेमें गर्व अनुभव करते हैं। लेकिन बङ्गालियोंको वे लोग अनार्य समझते हैं। इसके लिए कभी-कभी उनमें पिस्तौलबाजी भी हो जाया करती है।

मेरे नये कमरेमें भोजन बनानेका भी प्रबन्ध है। बर्तन मकान मालकिनसे मिल जाते हैं और गैस जितनी चाहें, खर्च करें। बर्तन और गैसके लिए कुछ भी नहीं देना पड़ता। कमरेके किरायेमें ही गैस, बिजली, गुसलखाना, भोजन बनानेके बर्तन, हफ्तेमें एक बार बिछावन बदलने और रोज एक धुले हुए तौलियेका किराया भी सम्मिलित है। इस तरहके कमरेका साप्ताहिक किराया उत्तरी अमेरिकामें तीन डालर, दक्षिणमें एकसे तीन, पूर्वमें तीन और पश्चिममें ढाई-से चार डालर तक देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कमरेमें दो कुर्सियां, दो मेजें और एक आराम-कुर्सी भी होती है। पोशाक आदि रखनेके लिए बगलमें एक छोटा कमरा भी मिलता है। मेजकी दराजोंमें बर्तन रखनेकी जगह बनी हुई है, इसीलिए एकको जगह दो मेजें मिलती हैं।

शामको सात बजे बिछौनेसे उठा और अकेले ही घूमनेके लिए निकल पड़ा। दो मकानोंको पार करते ही मौण्ट मारिस पार्क मिला। मैं इसी पार्कमें सैर करनेके साथ ही साथ 'एलिवेटरों' का आना-जाना देखने लगा। ८ नम्बर एवेन्यूके ऊपर 'एलिवेटर' बना है, मुझे उसीके नीचेसे होकर पार्कमें घुसना पड़ा था।

'एलिवेटर' गाड़ियां विचित्र हैं। जब कभी मौका मिलता था, मैं उन्हें देखा करता था। बड़े शहरोंमें इतनी भीड़ हुआ करती है कि उससे बचनेके लिए उन्हें इस तरहकी गाड़ी बनानी पड़ी है। दुनियाके लोग आश्चर्यचकित होकर देखते हैं कि इतना रुपया कहांसे आता है। लेकिन वे भूल जाते हैं कि मुट्ठीभर पूंजीपतियोंने इसे पैदा नहीं किया है, इसे उत्पन्न करनेवाली तो अपरिमित परिश्रम करनेवाली जनता है।

पार्कसे लौटनेके समय मैं कई अखबार खरीद लाया था। न्यूयार्क शहरमें दैनिक अखबारोंका मूल्य दोसे तीन सेण्ट तक (बारसे छः पैसे) होता है। आर्थिक जगत्में जिस तरह मुट्ठीभर पूंजीपतियोंने उत्पादनके सभी साधनोंपर कब्जा कर रखा है, अमेरिकाके अखबारोंके लिए भी वही बात लागू है। पूंजीपतियोंके कुछ गुट अमेरिकाके प्रायः सभी अखबारोंका नियन्त्रण करते हैं। ये गुट 'क्लिक' और 'चेन' (clique और chain) के नामसे मशहूर हैं, लेकिन इन दोनों प्रकारके गुटोंमें फर्क है। कुछ अखबारोंको अपनी तथा विदेशी सरकारोंसे सहायता मिलती है, इसीको 'क्लिक' कहते हैं। बहुत-से संवाद-पत्रोंका मालिक एक ही है, लेकिन वे विभिन्न नामोंसे प्रकाशित होते हैं। पिछले साम्राज्यवादी युद्धके बादसे इस तरहके अखबारोंकी संख्यामें वृद्धि हुई है। मालिकोंकी तानाशाही नीतिके विरोधके कारण बहुत-से सम्पादकों और सहकारी सम्पादकोंको अपनी नौकरीसे हाथ धोना पड़ा है। इन 'पत्रकारों' ने 'चेन' वाले मालिकोंके विरुद्ध आन्दोलन किया था। इनका आन्दोलन 'चेन-विरोधी' आन्दोलन (a case against the chainer) के नामसे मशहूर है। अमेरिकाके बेकार पत्रकारोंने अपना एक सङ्घ बनाया है, इसमें सभी बेकार पत्रकारोंका नाम

रजिस्टर्ड रहता है। नौकरी खाली होनेपर क्रमानुसार उनके नामकी सिफारिश भेजी जाती है। पत्रकारोंकी इस संस्थाको हम उनको 'यूनियन' कह सकते हैं। सी० आई० ओ० (C. I. O.) नामक मजदूर संस्थासे यह सम्बद्ध है। यह आशाका लक्षण है कि आज अमेरिका तथा कुछ यूरोपियन देशोंके पत्रकारोंने भी अपनेको एक प्रकारका मजदूर समझना आरम्भ किया है और अपनी संस्थाको उनकी संस्थामें सम्मिलित किया है। मालिकोंके विरुद्ध वे मजदूरोंका समर्थन भी किया करते हैं। हिन्दुस्तानके पत्रकारोंमें ऐसी संस्थाका ज्ञान मुझे नहीं है। हिन्दुस्तान पत्रकार-सङ्घको तो मैं संवाद-पत्रोंके मालिकोंकी समिति समझता हूं। क्या यहांके पत्रकार अपनी संस्थाको ट्रेड यूनियन कांग्रेससे सम्बद्ध करनेकी कल्पना भी कर सकते हैं? बहुतेरे तो इस बातको सुनकर नाक सिकोड़ेंगे। अमेरिका और यूरोपके पत्रकारोंके दिमागमें जो बात वर्षों पहले आ चुकी है, देखें हमारे पत्रकारोंके दिमागमें कब तक आती है।

साप्ताहिक, मासिक आदि पत्रोंके अतिरिक्त कुछ ऐसे पत्र भी हैं, जिनमें विज्ञापन बिलकुल नहीं छपता। जैसे गांधीजीका 'हरिजन', 'हरिजन-सेवक' और 'हरिजन-बन्धु।' गांधीजीका प्रभाव विशाल है, उनके सहायकोंकी कमी नहीं है, इसीलिए गांधीजीके पत्र चल रहे हैं। शायद 'हरिजन' ही एकमात्र भारतीय पत्र है, जो ७०० की संख्यामें अमेरिका जाता था। पिछले मार्चसे भारतीय (राष्ट्रीयतावादी) पत्रोंका विदेशोंमें जाना सरकारने बन्द कर दिया है। अमेरिकामें 'दैनिक मजदूर', 'पीपल्स वर्ल्ड' (Daily Worker, Peoples World) नामक साम्यवादी पत्रोंमें लोग पैसा खर्च करके विज्ञापन नहीं छपाते हैं। इन पत्रोंमें अपने ही विषयके विज्ञापन रहते हैं। इन्हें खरीदनेके लिए बहुत देर तक खड़ा रहना पड़ता है। इनका सञ्चालन सहानुभूतिशील जनताके चन्देसे होता है। प्रत्येक जिलेके चन्देकी रकम बंधी हुई है। चन्देका हिसाब बराबर छपा करता है। अमेरिकाके प्रगतिशील युवक-युवतियां इन पत्रोंके नियमित ग्राहक हैं। विश्वविद्यालयोंमें इन पत्रोंका प्रवेश निषिद्ध है, लेकिन ये पत्र विद्यार्थियोंकी आशा-आकांक्षाके प्रतीक हैं। वे कहते हैं—"हम कौन हैं, किसलिए लड़ रहे हैं, किसके विरुद्ध लड़ रहे हैं और किसके विरुद्ध लड़ना है—इन्हीं बातोंको हमें जानना है। पहले हम आर्थिक समानता चाहते हैं, उसके बाद शान्ति और युद्धपर विचार करनेका समय आयेगा।" इस कथनसे अपने व्यक्तिगत अनुभवसे मैं कह सकता हूं कि अधिकांश अमेरिकन जनता युद्ध नहीं चाहती है। युद्ध-विरोधी लोग साम्राज्यवादके भी विरोधी हैं, चाहे वह किसी देशका क्यों न हो। साम्राज्यवादी अमेरिकन पत्रोंमें जनताके दुःखोंकी खबरें नहीं छपती हैं। कितने भारतवासियोंने अमेरिकाके 'मुर्गी और अण्डा' (Hen and Egg) नामक सङ्घका नाम सुना है? अमेरिकाके क्रान्तिकारी मजदूरोंके नेता अर्ल ब्राउडरको इसलिए कुछ महीनेकी जेलकी सजा दे दी गयी कि सात या आठ वर्ष पहले उन्होंने एक फर्जी पासपोर्टपर सफर किया था। अदालतमें उन्होंने दर्जनों पूंजीपति अमेरिकनोंके नाम पेश किये, जो बराबर फर्जी पासपोर्टसे काम लेते हैं। लेकिन यहां उनकी कौन सुनता था। अमेरिकामें इस प्रकारकी खबरें रखनेवाले लोगोंको परसेण्टेज (Percentage) कहते हैं। चार करोड़ अमेरिकन इस 'परसेण्टेज' पार्टीके सदस्य हैं। रूजवेल्टके सामने यह भी एक समस्या है।

आज बाहर जानेका विचार नहीं था, जेबमें नोटोंका एक पुलिन्दा है, गुण्डोंके पञ्जेमें फंस जानेसे विपत्तियोंकी सीमा नहीं रहेगी। आज मुझे वह दिन याद आया, जब मैं चार सौ रुपये नासिककी नौकरीसे इस्तीफा देकर, एक भी पैसा साथ न लेकर ७ अगस्त १९३१ को दुनिया देखनेके लिए निकल पड़ा था। व्यक्तिगत सम्पत्ति विपत्तिका मूल है, इस सिद्धान्तको विख्यात विचारशील व्यक्तियोंने माना है। साम्यवादी राष्ट्रकी कल्पना करनेवाले टामस मोरने अपनी क्रान्तिकारी पुस्तक 'यूटोपिया' (Utopia—1516) में लिखा था—"यूटोपियामें सोना, चांदी तथा मूल्यवान रत्नोंको कोई नहीं पूछता। हीरों और मोतियोंसे बच्चे खेलते हैं। अपराधियोंको सोनेकी जञ्जीरसे बांधा जाता है, क्योंकि लोग इस धातुसे घृणा करते हैं। सोनेका हार पहनकर आनेवाले विदेशी राजदूतोंको लोग अपराधी समझ बैठते हैं। बादमें जब उन्हें मालूम होता है कि ये विदेशी राजदूत हैं, तो उनके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता।" लेनिनने भी एक स्थानपर लिखा था कि वर्गहीन समाजमें

पाखानोंके गमले सोनेसे बनाये जायंगे। इन कथनोंसे मूल्यवान धातुओं और रत्नोंके प्रति लोगोंकी आन्तरिक घृणाका पता चलता है। लेकिन इनके महत्त्वको ध्वंस करनेके लिए वर्गहीन समाजकी स्थापना आवश्यक है। लेकिन मैं कहां बहक गया ! आज पासमें नोटोंका पुलिन्दा मेरे डरका कारण बन रहा था। जहन्नुममें जाय पुलिन्दा, मुझे तो देश देखना है। अपने देशमें मुझे फकीरोंकी तरह जीवन व्यतीत करना पड़ता है। विदेशोंमें अगर ऐसी नौबत आ जाय, तो एक अच्छी अभिज्ञता हो जायगी। रातके ग्यारह बज रहे थे, मैं बाहर निकल पड़ा।

हरलामकी चौड़ी सड़कोंपर बिजलीकी बत्तियोंने दिन-सा बना रखा है। ब्राडवेकी तरफ सैर करनेसे जाड़ेमें भी बिजली बत्तियोंकी गर्मीसे पसीना आने लगता है। बिजलीसे चकाचौंध-सी मची रहती है। दूरसे ऐसा मालूम होता है, मानो चारों ओर आग लगी हो। मैं फिफ्थ एवेन्यू तथा टेन्थ स्ट्रीट ईस्टके चौकवाले सेण्ट्रल पार्कके पास खड़ा हो गया। सड़कोंपर मोटरोंका तांता बंधा हुआ है। सैरके लिए निकले हुए लोग तल्लेदार बसोंपर बैठकर गप्पें लड़ा रहे हैं, हंस रहे हैं। रेस्तरोंमें बोतलोंके 'कार्क' खोलनेकी आवाज आ रही है, सुन्दरी तरुणियोंने हास्यका फौवारा-सा खोल रखा है। युवक-युवतियां 'फुटपाथ' पर तेजीसे चल रहे हैं, दिन-भरकी थकावट दूर करनेके लिए। उनमेंसे कुछ छोटे रेस्तरोंमें जाकर हलका जलपान कर लिया करते हैं। उनके जीवनका प्रत्येक मुहूर्त्त मानो आनन्दसे भरा हुआ है। निकटके एक सिनेमामें नाच हो रहा है। एक ओर भोग-विलासके लिए पानीकी तरह पैसा उड़ाया जा रहा है, दूसरी ओर दुर्बलों, बेकारों और भुक्खड़ोंके व्यर्थ जीवनका करुण दृश्य मानसिक सन्तुलनको नष्ट कर देता है। शेषोक्त दृश्यको देखकर मालूम होता था कि मैं अमेरिकामें नहीं, बल्कि कलकत्तेके श्रद्धानन्द पार्कमें बैठा हूं। सर्वहाराओंकी दयनीय दशा अगर आप देखना चाहते हैं, तो कलकत्तेके किसी पार्क या मध्य कलकत्ताकी सड़कपरसे निकल जाइये। यह तो हिन्दुस्तानी सर्वहाराओंकी हालत है, जहांकी औसत वार्षिक आमदनी ७० रुपये (An Essay on India's Nationol Income 1925-1929 by Dr. K. R. V. Rao.) है। लेकिन आपके सामने मैं दुनियाके सबसे धनी राष्ट्र अमेरिकाके दरिद्रोंका चित्र रखना चाहता हूं, जहां कि औसत दैनिक आमद ६ रुपयेसे कम नहीं है।

उपर्युक्त भुक्खड़ोंमें बहुतेरोंको दिन-भरमें एक टुकड़ा रोटी मिली है और बहुतेरे क्षुधाजनित अवसादसे सिर नीचा करके रास्तेके बगलमें बैठे हुए हैं। अमेरिकाके बैङ्कोंमें सोने-की कमी नहीं है, बगीचे फलोंसे लदे हुए हैं, गेहूंकी भी कमी नहीं है। लेकिन ये चीजें इन दरिद्रोंके लिए नहीं हैं। इस जाड़ेमें भी अधिकांशके तनपर फटा कोट और पतलून-मात्र है, किसीके तनपर एक कमीज ही है और किसीके गलेमें सिर्फ नेकटाई लटक रही है। इनकी दशाको जाननेके लिए अमेरिकाके साम्यवादियोंकी किताबें और पत्रिकायें पढ़नी चाहिए। मुझ-से अशिक्षित आवारेकी कलममें इतनी शक्ति नहीं है कि उनका ब्योरेवार वर्णन आपको दे सकूं।

मैं एक बेकारके पास जाकर बैठ गया। दो-चार इधर-उधरकी बातोंके बाद मैंने पूछा—"आज भोजन हुआ है या नहीं।" उसने जवाब दिया—"आज क्या, कल ही से कुछ नहीं मिला है, क्या कुछ खिलाओगे ? दो दस सेण्ट (५ आने)।" मैंने उसके हाथपर दस सेण्ट रख दिया। वह रोटीकी दूकानकी ओर दौड़ गया, एक बड़ी रोटी लेकर लौट आया और बैठकर चबाने लगा। मैं उसीके पास बैठ-कर उसका खाना देखने लगा और सोचने लगा कि यह भी उसी अमेरिकाकी दशा है, जहांके धन-दौलतकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। राजनीति-विज्ञानके विद्वान् अपने पोथोंमें यह लिखते हुए नहीं थकते कि अमेरिका गण-तन्त्रका देश है, दुनियाका उद्धार इसी आदर्श द्वारा हो सकता है। लेकिन मेरी समझमें अभी तक यह नहीं आया कि इसे गणतन्त्र कहूं या मिथ्यातन्त्र।

आनन्दकी लीलाभूमि और कुबेरका भण्डार अमेरिकामें है। रातके दो बजे तक न्यूयार्ककी सड़कोंपर घूमता रहा, किसीने मेरे साथ बातचीत नहीं की, इसके लिए मुझे तनिक भी दुःख नहीं हुआ। मेरा चेहरा निग्रोके चेहरेसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। अपना परिचय भी मैंने किसीको नहीं दिया, देनेकी जरूरत ही क्या थी। पासमें रुपये हैं, मैं होटलों-में खा सकता हूं और अमेरिकन जीवनको देख सकता हूं। ऐसे अवसरको भला कौन हाथसे जाने देगा ? मुझे एक

पुरानी बात याद आ गयी। एक बार कलकत्तेमें मेरी मुलाकात अपने गांवके एक आदमीसे हुई। उसके तनपर एक धोती और एक गञ्जी थी और पासमें कुछ पैसे थे। मैंने उसे आवारोंकी तरह घूमनेका कारण पूछा। गांवमें इस तरह फटे हाल मैंने उसे कभी नहीं देखा था। मेरे ग्रामवासीने जवाब दिया—कलकत्ता देखने आया हूं, देखकर चला जाऊंगा। तड़क-भड़कसे रहकर चोरोंकी नजरोंमें क्यों पड़ूं। न्यूयार्कमें मैं दो हफ्ते तक अपरिचित रहा, यह समय बड़े आनन्दसे बीता। इसका एक दृष्टान्त दे रहा हूं।

हरलाममें प्रधानतः निग्रो लोग ही रहा करते हैं, विश्व-मेले (World Fair) की ओरसे यहां जोरोंसे प्रचार किया जा रहा है, रूसी पैविलियन (Russin pavilion) का नाम अधिकांश लोगोंकी जबानपर सुनाई पड़ रहा है। रूसमें लिनचिंग नहीं है, वर्ण-बाधा (Colour Bar) नहीं है, पूंजीपति नहीं हैं, बेकार नहीं हैं, सभीको काम देनेके लिए राष्ट्र बाध्य है इत्यादि। रूसी पेवेलियनमें जो खाना अमेरिकनोंको सवा रुपयेमें मिलता है, निग्रो लोगोंको वह साढ़े सात ही आनेमें दिया जाता है। मैंने भी इस मौकेको हाथसे जाने नहीं दिया। रूसी पैवेलियन पहुंचकर सबसे पहले मैंने अच्छी तरह भोजन किया। ऐसा स्वादिष्ट दही, मट्ठा, पनीर, सब्जी आदि स्लैव जातिके लोगोंको छोड़कर दूसरा कोई तैयार नहीं कर सकता। रूसी युवतियां हंस-हंसकर परोस रही हैं, टूटी-फूटी अंगरेजीमें बोल रही हैं और यन्त्रकी भांति काम कर रही हैं। जिनकी नेकटाई हट गयी है, वे ठीकसे बांध देती हैं, कोट पतलून आदिको ब्रशसे झाड़ देती हैं, मानो वे अपनी मां बहिन हैं। रूसी पैवेलियनसे लोग हंसते हुए निकलते हैं, उनके दिमागमें नवीन विचारोंका तांता-सा बंध जाता है। शायद वे सोचते हैं, क्या अमेरिका भी कभी रूस बनेगा? रूसी पैवेलियन देखकर मन बहुत ही आनन्दित हुआ, सोवियट रूसकी बोलशेविक कर्मशक्तिका परिचय मिला। साम्यवादी समाजका चित्र देखकर लोग दङ्ग रह जाते हैं। इसीलिए वहां इतनी भीड़ हुआ करती है। गरीब अमेरिकन जब आश्चर्यचकित होकर रूसी पैवेलियनके सामने खड़े हो जाते हैं, तो पथ-प्रदर्शक कहता है—"यह देखनेके लिए नहीं है,इस उद्देश्यके लिए काम करो, यहां ठहरो मत।"

रूसी पैवेलियनमें चित्रपटों और विचित्र चीजोंकी भरमार नहीं है। पैवेलियन दूरसे इन्द्रपुरी-सा मालूम होता है। पैवेलियनके सामने एक गगनचुम्बी अट्टालिका है। उसके ऊपर जलती हुई मशाल लिये एक मनुष्यकी मूर्ति खड़ी है। मूर्तिसे यही भाव प्रकट हो रहा है कि दुनियाके भूखो और मजलूमो, जागो, यह भीख मांगनेका समय नहीं है, अपने अधिकारोंको छीन लो। शायद यह मूर्ति अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गीतके आधारपर बनी है। इस पैवेलियनमें घुसते ही स्थितिका ज्ञान स्वतः ही हो जाता है। मानो रूस और अमेरिकाके उत्पन्न द्रव्यों तथा लाभ-नुकसानोंके आंकड़े टंगे हुए हों।

अमेरिकन बेकारोंका दल रूसी सिनेमा देख रहा है। रूसी और हिन्दुस्तानी सिनेमामें सादृश्य नहीं है। हमारे यहांके चित्रोंमें धार्मिक, पुरानी ऐतिहासिक तथा सामाजिक बातें रहा करती हैं। रूसी सिनेमामें धार्मिक तथा प्राचीन ऐतिहासिक चित्र नहींके बराबर हुआ करते हैं। रूस साम्यवादी समाजका निर्माण कर रहा है, वह भविष्य जगत्के लिए नवीन इतिहास तैयार कर रहा है। रूसका पुराना इतिहास बर्बरतापूर्ण है। देहातोंमें किसानोंपर जमींदार अमानुषिक अत्याचार करते थे, उन्हें वे आदमी नहीं समझते थे। रूस शीत-प्रधान देश है। शिकारसे लौटनेके बाद कभी-कभी जमींदार लोग अपने पैर गर्म करनेके लिए अपने गुलामोंका पेट चिड़वाकर उसीमें पैर डाल देते थे। शहरोंमें कारखानोंके मजदूरोंकी दशा इससे कुछ अच्छी नहीं थी। लेकिन आजका रूस कुछ और ही देश बन गया है। आज रूसियोंको अपने भविष्यकी चिन्ता नहीं है। शान्तिका उद्गम इसी बातसे होता है, जनता शान्ति चाहती है, चाहे वह किसी भी देशकी क्यों न हो।

पास ही में इटालियन पैवेलियन बना हुआ है। यहां निग्रो लोगोंकी भीड़ अधिक है। वे देखना चाहते हैं कि वह कौन-सी शक्ति थी, जिसने अबसीनियापर अधिकार कर लिया और वहांके राजा हेल सेलासीको भाग जानेके लिए बाध्य किया। लेकिन इस पैवेलियनमें कुछ विशेषता नहीं दिखाई पड़ती, जिसे देखकर लोगोंको सन्तोष हो। इटालियन सरकार ठगविद्यामें पक्की है। प्रवेश-द्वारपर लिखा हुआ है—'मुफ्तमें चीजें बांटी जायंगी।' मैं भी इसी चकमेमें आकर

अन्दर गया। वहां जाकर देखा कि सभी चीजोंका दाम दूना लिया जा रहा है। इसे देखकर बहुत-से निग्रो विक्रेताओंके सामने ही थूक रहे हैं और क्रोधित होकर चले जा रहे हैं। पैवेलियन महलकी बगलमें एक देवीकी मूर्ति बनी हुई है और उसीके पाससे एक बनावटी झरना ऊपरसे गिर रहा है। दृश्य मनोहर अवश्य है, लेकिन लोग इसे देखनेके लिए बहुत कम ठहर रहे हैं।

दक्षिणी अमेरिकाके ब्रिटिश और अमेरिकाके भक्त भी इटालियन पैवेलियनको हार्दिक घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। मुसोलिनीको वे इटालियन पूंजीपतियों और जमींदारोंका 'हिज मास्टर्स वायस' (His Master's Voice) समझते हैं। दक्षिणी अमेरिकाके इण्डियन अनुन्नत होनेपर भी इतना समझते हैं कि शोषक और शोषितोंका धर्म एक नहीं हो सकता। यहां पाठकोंके मनमें प्रश्न उठ सकता है कि स्वाधीन दक्षिण अमेरिकावालोंका इटाली और स्पेनसे क्या सम्बन्ध है? स्पेनवालोंने किसी समय समग्र दक्षिणी अमेरिकापर अधिकार कर लिया था। उन्होंने पोपकी सहायतासे इटालियन धर्म-प्रचारकोंको वहां भेजा था लोगोंको सभ्य बनानेके लिए; लेकिन आज दक्षिणी अमेरिकाका $\frac{15}{16}$ हिस्सा स्वतन्त्र है। वहां भी नवीन विचारधारा फैल रही है। इसीलिए मिशनरियोंकी दुर्दशाका अन्त नहीं है। इटालियनोंको भी इस दुर्दशासे छुटकारा नहीं मिला है।

गीत

तुमको क्या बतलाऊं राही, रविको प्रिय क्यों निर्जनता है?
इस एक तारकी वीणामें, स्वरको कितनी तन्मयता है!

तुम क्या जानो, मेरे भ्रममय—
सुखमें है कितना आकर्षण!
इन सपनोंकी छविमें कितना
आलोकित है मेरा जीवन!

तुम प्यास बिना कैसे जानो, मृगजलमें क्या सुन्दरता है?

माना, अपने जीवन-पथपर
मैं पिछड़ गया हूं—एकाकी,
माना, अब मेरे चरणोंमें
गतिको धारा न रही बाकी,

पर मिलता है बिछुड़ा पन्थी, जिस दिन पथ इतिपर रुकता है!

तूफानी समय-सिन्धु, मेरा—
पथ पूछ रहा, किस ओर कहूं?
लहरें उठतीं, लहरें गिरतीं,
किस एक लहरके सङ्ग रहूं?

जब टूट चुकी अपनी तरणी हर ओर किनारा दिखता है!
जिस ओर उठाता हूं आंखें मुझको ध्रुवतारा दिखता है!

—गुलाब प्रसन्न शाखाल, एम०ए०

कड़ियां

श्री 'वनमाली'

तकाजा है कि सत्य कहानी लिखे ।

और सत्य मेजके सामने मुस्तैद बैठा है कि कहानी उसके भीतर उगे और वह उसे कलमके सहारे कागजपर उतार दे ।

सत्यके सामनेकी दीवालपर कोनेमें कोई मकड़ी अकेली अपनेमें डूबी जालेके ताने बाने बुन रही है । सत्यकी निगाह उस एकाकी मकड़ीपर जा पड़ी है । मकड़ी निरन्तर जाला पूरती जा रही है । सत्य भी किसी ऐसी घटनाकी खोजमें है, जो उसे कभी मीठा कर गयी है । वह किसी ऐसे आदमीकी याद करता है, जो उसके भीतर आया हो और जिसे उसके प्राणोंने सब ओरसे छा लिया हो। वह कभी ऐसे किसी दृश्य-को अपनी आखोंपर खींचना चाहता है, जिसने उसके दिलको नयी-नयी उमङ्गोंसे भिगो दिया हो । सत्यको धीरे-धीरे 'मूड' आता है—जीमें मिठास उपजती है—कई कड़ियां बनती हैं; पर वह अपनेको उस मकड़ीकी भांति ऐसा कुशल नहीं पाता कि अपने किसी तारको व्यर्थ न जाने दे । उसके तार तो थोड़ी दूर जाकर एकदम क्षीण होकर टूट जाते हैं । सत्यको झल्लाहट होती है । तमाम दोपहरिया खराब हुई जाती है और जिस कहानीकी उसे तलाश है, वह अभी तक उससे सात समन्दर दूर न जाने किस अनजाने देशमें उलझी है । इतनी माथा-पच्चीके बाद भी वह अपने दिमागका नक्शा कोराका कोरा पाता है ।

तब तक सत्यकी स्त्री काम-धन्धा कर चुकती है और वह सत्यके पास आती है । उसके हाथमें ऊनका गोला और सलाइयां हैं और शायद कोई अध-बुना पुलओवर—

सत्यको यह स्त्री खूब भायी है । उन दोनोंके बीच कभी प्रेमका खूब आदान-प्रदान हुआ है । पर अब सत्य उसीसे भय खाने लगा है । उसे डर लगा रहता है कि वह कहीं किसी चीजकी मांग न पेश कर दे । उसे लगता है कि उन दोनोंमें बस इसी अभावको लेकर ही कुछ लगाव है । इसीसे सत्य उससे अपनेको बचाना चाहता है। सत्य उस स्तरपर है, जहां जिन्दगी एक असीम अभाव बनी हर घड़ी सामने नाचा करती है । उसमें अपने अभावोंको जितना भुलाकर, दबाकर रखा जा सके, उतना दबाया जाय । और सत्य महसूस करता है कि उसके सारे अभाव जैसे उस स्त्रीमें ही साकार हो उठे हैं । इसीसे जो पास है और जिसे पास ही होना चाहिए, वही बड़ी दूर है ।

सत्यकी स्त्री बैठी नहीं है । वह फन्दे डालती अपने ध्यान-मग्न स्वामीकी बात सोचते कुर्सीके पीछे खड़ी है ।

क्या वह इसकी भी अधिकारी नहीं कि उसका स्वामी उससे कहे कि वह आये और बैठे ?

एक दिनकी बात है । उसने पूछा—"क्या कहानियां सचमुच तुम्हें बड़ी प्यारी हैं ?"

जवाब मिला—"हां ।"

पूछा गया—"और मैं ?"

सत्यने उसी मिठाससे उत्तर दिया—"तुम भी ।"

"पर अधिक कौन ?"

सत्य क्या कहे । वह बड़े असमञ्जसमें हो गया ।

स्त्रीने पूछा—"कहिये"

सत्यने कहा—"अच्छा सरस्वती, मैं तुमसे एक बात पूछूं । तुम मुझे स्वामीके रूपमें जानती हो या कलाकारके रूपमें ?"

सरस्वतीकी समझमें एकाएक न आया कि इस प्रश्नसे उसका स्वामी उससे क्या जान लेना चाहता है ।

उसने सीधे कह दिया—"मुझे आपकी कला-अलाकी बात क्या मालूम । मैं तो आपको अपने स्वामीके रूपमें जानती हूं ।"

सत्य बोला—"और तुम्हें मालूम है कि कहानियां मुझे कलाकारके रूपमें जानती हैं । इससे कम-ज्यादाकी बात नहीं उठती ।"

सरस्वतीको भी कभी-कभी सत्यकी कहानियां मजा दे जाती हैं। पर वह स्त्री है। वह कब सहन कर सकती है कि ये निगोड़ी कहानियां उसके स्वामीको अपने जालमें उलझायें ? उसके मनने सत्यकी बातको कभी अपने भीतर नहीं लिया

है। वह सदा यही समझती आयी है कि उसके स्वामी जो दिन-रात सपने लेते रहते हैं, उनमें उसे ठौर नहीं। जो बैठे-बैठे जमीन और आसमानके कुलाबे मिलाया करते हैं, उन्हें अपनी ही स्त्रीसे परहेज है। पर उसने इसे अपना भाग्य समझकर उन्हें फिर कभी नहीं छेड़ा है और आज भी नहीं छेड़ा।

सत्य चौंककर कहता है—"अरे सरस्वती, तुम अभी तक खड़ी हो? आओ-आओ, बैठो।"

सरस्वती चुप बिछे पलंगपर एक तरफ बैठ जाती है और निरन्तर अपने काममें लगी है।

सत्यके अन्तर्यामी जानते हैं कि स्त्रीको बैठाकर उसने अपने ऊपर बड़ा जुल्म किया है। उसके दिमागकी सारी कड़ियां जैसे अब बटुरकर उसकी स्त्रीमें ही समायी जा रही हैं। वह उसके आगे कुछ नहीं सोच पा रहा है। उसकी कहानी आज चली जानी चाहिए थी, जिससे वह अगले अङ्क-में छप जाती और उसे जल्दी रुपये मिल जाते। उसके ऊपर मकानका भाड़ा चढ़ रहा है। नन्हेंको फीस चाहिए। कपड़े फट चले हैं, सो उनका इन्तजाम करना है। और जाड़े—

सत्य लम्बी सांस लेता है—"यह पहाड़-सा खर्च है और कहानी ऐसी बेबूझ है।"

सत्यकी स्त्री एक बार उसकी ओर निगाह फेरती है और फिर उसके अस्तित्वको भूलकर चुपचाप एकके बाद दूसरा फन्दा डालती जा रही है। वह मकड़ी भी चुप नहीं है। उसने अपने चारों ओर बहुत दूर तक घेरा तैयार कर लिया है। बाहर, घरके सामनेकी सड़कपर आदमियोंकी खूब दौड़-धूप मची है—

सत्यको अपने ऊपर बड़ा गुस्सा आता है। उसके सब ही ओर कामका जाऱ बिछा है। एक वही निठल्ला कहानी-की खोजमें बैठा है। इस दोपहरियामें अपार-अपार लोग मिलों, फैक्टरियों और आफिसोंमें मर-पच रहे होंगे। दिनके प्रकाशमें जब सब ओर कामकी बात है, तब उसके सामने यह कहानीकी मांग मौजूद है। यह कामका विस्तृत जगत् जैसे घटता-घटता सत्यके कमरेके अन्दर एक क्षीण कहानीके रूपमें खड़ा हुआ है। पर यह काम और कहानीका मेल कैसा बेसुरा है। ये कैसे एक दूसरेके विपरीत हैं। काम तो जीना देता है। और कहानी? कहानी उसे क्या देगी—क्या दे सकती है?

सत्य तब कहानी लिखनेकी बात भूल कहानी लिखनेके तकाजेकी बात सोचने लगा।

तकाजा है कि सत्य कहानी लिखे।

सत्य इस तकाजेकी बातको मानता है। यह तकाजा इसीलिए है कि वह कहानी लिख सकता है और दूसरोंमें दिलचस्पी और गुदगुदी पैदा कर सकता है। और जब वह ऐसा कर सकता है, जब उसमें ऐसी शक्ति है, तब उसे स्वार्थी न होना चाहिए। उसे अपनी कलाका दूसरोंको भी मजा और स्वाद देना चाहिए।

सत्य कहता है कि कहानी लिखना क्या उसके लिए कभी ऐसा सहल हो लेगा कि वह जब चाहे तब कहानी लिखने लगे। दूसरोंके लिए उसका कहानी देना—कहानी लिखना ही सत्य है। उन्हें कहानीकी चाहना है और उन्हें कहानी मिलनी चाहिए। पर यही कहानीकी बात दूसरेके लिए—लिखनेवालेके लिए— किस अर्थमें आती है, इससे उन्हें क्या वास्ता? वे तो रस और स्वादके ग्राहक हैं। उन्हें बस वह मिले। उनके भीतर रसके परे और कुछ क्यों उपजे?

पर सत्य स्वयं क्या ऐसा निर्मोही होगा?

सत्यके लिए सवाल है कि कहानीके रूपमें उससे जो वस्तु मांगी जा रही है, उसे जुटाये—उसे अपने हृदयके अन्तरतम भागमें खोजे और उसे अपना भीतरका खून और रस देकर खड़ी करे। साथ ही दुनियाके भीतर जब रहना होता है, तब वह दुनियादारी सोचे। वह पाये कि इस तकाजेके लिए दिन-भर—शायद दिनके बाद दिन खतम करके जो कुछ देगा, उसका प्रतिरूप उसे क्या मिलेगा? वह आदमी है। उसे भूख है। उसे आरामकी जरूरत है। उसे भी अपनी जरूरतोंका मूल्य चुकाना है। इसलिए तब क्या उसके लिए लाजिम नहीं है कि वह मालूम करे कि जो देगा, उसके बदले वह क्या भर पायेगा?

किन्तु दूसरे—रसके खरीदार—यह सब क्यों सोचें? वे रस चाहते हैं। उन्हें रस मिलता है। वे दाद देते हैं। वे मीठी-मीठी बातें भी देते हैं। इससे ज्यादा वे क्या दे सकते हैं? और इससे ज्यादा वे दें, तो कहानी क्यों मांगें?

सत्यके भीतर फिर वही तकाजा आकर खड़ा होता है।

सत्य धीरे-धीरे एक सरूरमें डूबता है। उसमें एक उन्मादना जागती है। मनपर एक कल्पना छाती है—'एक राजा था। एक रानी थी।'

उसने बचपनमें अपनी दादीके मुंह यह 'राजा-रानी' की कहानी अनेकों रूपोंमें सुनी है। उसे लगता है कि शायद जगत्के आरम्भसे ही इन दो आदमियोंका जोड़ा साथ चला आता है। वह जोड़ा जैसे छिन्न होनेका कभी नाम ही नहीं लेता। इनका जीवन हो संसारका जीवन है। दुनियामें ये ही दो तो अमर हैं। वह यदि फिर इसी कहानीके किसी रूपको सजाकर दे, तो?

सत्यने ये '-राजा-रानी' की कहानियां सुनी हैं। सुनकर दूसरोंसे कही हैं। उसने इनमें स्वाद और मजा लिया है। दूसरोंको भी मजा दिया है। पर कहानी सुनने और कहनेके बाद लिखनेकी यह तीसरी क्रिया उसे गड़बड़ दीखती है। उस पुरानी बातको लेकर लिखनेकी बातसे उसके भीतर अन्धकारकी भांति सन्देह गहरा होता जा रहा है। भीतरसे जैसे कोई बार-बार पूछ बैठता है कि उसके राजा-रानीमें क्या आजका मानव अपनेको पा सकेगा? आजके समाजमें राजा-रानीका कहां अस्तित्व है? आजका आदमी तो डेमोक्रेट है। वह तुमसे अपनी बातें मांगता है। वह आसमानकी, तुम्हारे भावोंकी दुनिया क्या जाने? वह कब तुम्हारे राजा-रानीको अपने सत्य रूपमें पचा पायेगा?

और सत्यको हंसी हो आयी।

एक दिन वह रद्दीखाने गया था। वहां उसे प्रेमचन्दकी दो-चार कहानियोंकी पुस्तकें दीख पड़ीं। उसे ताज्जुब हुआ। जब उसने रद्दीवालेसे पूछा, तो मालूम हुआ कि वह हाल ही किसी बीड़ीवाले सेठके यहांसे लाया था। सत्यको तब भी जिज्ञासा बनी रही। उसने पूछा—कैसे?

रद्दीवाला सत्यको जानता था। वह चिढ़ा नहीं। उसने कहा—कुछ छः सेर रद्दीमें कुछ कमी थी। चूंकि रद्दी आज-कल बड़ी महंगी है, इसलिए सेठजीने चाहा कि रद्दी पूरे छः सेर ही रहे। उनके सामने टेबिलपर ये किताबें पड़ी थीं। सो झट उन्होंने नौकरसे बुनवायीं। उन्होंने उन्हें उल्टा-पल्टा। कहा कि ये तो बड़ी पुरानी हो गयी हैं और इनके लेखक हैं प्रेमचन्द, जो शायद सुनते हैं, मर चुके। अब हमें इनकी क्या जरूरत। तब उन्होंने किताबोंको रद्दीमें तोल दिया।

सत्यने चाहा कि उसके लिए भी यह जिन्दगी ऐसी ही स्वस्थ और निर्द्वन्द्व हो जाय। वह अपने आस-पासके पड़ोसियोंको अपने बारेमें बड़ा बेफिक्र पाता है। दुनियामें क्या होता है, लोग क्या करते हैं—वे तो उसमें कोई मतलब नहीं ढूंढ़ते। वे अपने स्त्री-बच्चोंको लेकर—अपने खाने-पीनेको लेकर मस्त हैं। उसके चारों तरफ जिन्दगीका यही साधारण दायरा है। और वह कलाकी खोजमें निकला है। वह कैसा गलत है। यह जिन्दगी तो बड़ी ठोस और निष्करुण वस्तु है। यहां तो बस रहो और मरो। उसे अपने भीतर लो। नहीं तो वह आप तुम्हें अपने भीतर लेगी।

सत्य अपनी इस खीजमें एकाएक चौकन्ना हो गया। उसने देखा कि उसकी स्त्रीको आये इतनी देर हुई और वह उससे एक शब्द भी नहीं बोला।

सत्यने कहा—"क्यों सरस्वती, हम तुम किसी दूर गांवमें चलकर रहें तो कैसा? वहां एक झोंपड़ी—थोड़ी-सी जमीन—और धनिये-पोदीनेकी खेती—

सरस्वती जानती है कि सत्यके मनकी ये कड़ियां कोई नयी नहीं हैं।

तकाजा है कि सत्य कहानी लिखे।

जब तकाजेमें सन्झा होने आयी है, तब पुकार होती है—"बाबूजी।"

बाबूजी थके-से बाहर आकर पाते हैं कि उनके मकान-मालिकका लम्बा पंचहत्था दरवान दरवाजेपर मौजूद है।

दरवान कहता है—"बाबूजी, रुपये दूकानपर नहीं पहुंचे। तीन महीने चढ़ गये हैं।"

सत्य ठहरा साहित्यिक। थोड़ी दिल्लगी हो आयी। बोला—"भाई, रुपये कैसे पहुंचते। मैंने ही नहीं पहुंचाये।"

तो सवाल होता है कि क्यों नहीं पहुंचाये? पहुंचाना ही तो सत्य है। सत्यके पास रुपये हैं या नहीं, इससे दरवान और उसके सेठजीको क्या मतलब? उनकी कुशल तो इसीमें है कि सत्यसे उन्हें रुपये मिलें और उन्हें ठीक लगा-

तार मिलते जायें। तभी दरवान दरवान है और सेठजी मकान-मालिक हैं।

दरवानने कहा – "तो आपको पहुंचाने चाहिए थे। यों हीला करनेसे क्या मतलब ? जितनी जल्दी हो, पहुंचाइये। नहीं तो सेठजी—"

दरवान ठहरा दरबान। उसके मनमें जो आया सो कहा।

सत्यको आया तैश। उसने कहा—"अच्छा जाओ। अपने सेठसे कहो, जो उसके जीमें आये, करे।

पर वह दरवान जो किराया लेने आया है, सो क्या यों ही हट सकेगा ? वह तो खूब बक-झक करेगा। वह मुहल्लेवालोंको खूब अच्छी तरहसे बतायेगा कि उनके बीच जो पढ़े-लिखे बाबू रहते हैं, वे बेईमान हैं, किराया नहीं देते—और यह और वह—

और जब दरवान चला गया है, तब सत्य सोचता है—

कहानीकी बात नहीं, उस जीवनकी बात, जहां मकान-का किराया न देनेपर नोटिस है, नालिश है—जिल्लत है।

और जहां कहानी स्वयं बेबूझ है।

उलझन

उस दिनसे इस उलझनमें उन्मन-उन्मन मेरे गायन
करता जिसका मैं अभिनन्दन वह नर है या नारायण !!

पूछा जिस दिन फूलोंसे—ओ तुम विश्व सुन्दरीकी पावन—
प्रभु-पद तक पहुंचानेवाले नव भक्ति-भावनाके धावन !

छविकी थालीमें तुम जिसकी आरती शिखासे रहे फूल
कविकी भारती अहो ! वन-रोदन क्यों करती है उसे भूल !

"यह नरकी भूल कि नारायणको नहीं आज तक भी जाना
क्यों जलता दीपक यह न समझ पाया बेगाना परवाना

है किसके लिए कौन व्याकुल, है किसमें कौन परायणरे
नर खोज रहा है नारायणको या नरको नारायणरे

यह कठिन प्रश्न,—पर इतना तो है ज्ञात सभी मतिमानोंको
तिल-तिल अपनेको जला बुझाता है दीपक परवानोंको

मैं तुच्छ धूलका फूल, मुझे तो अपनी पृथिवी ही प्यारी
मैं कभी खोजने गया कहां वह अमरोंकी अलका न्यारी

ले समझ मूढ़ कवि ! रूप-सम्पदाकी छविकी यह परिपाटी
लेने मुझको निज शीश स्वयं भगवान बने मूरत-माटी

तुम किसको कहते अग्रगण्य परिमलमें और प्रभञ्जनमें
है कौन धन्य समधिक बोलो शबरीमें और प्रभञ्जनमें"

उस दिनसे इस उलझनमें उन्मन-उन्मन मेरे गायन
करता जिसका मैं अभिनन्दन वह नर है या नारायण !!

केसरी।

जारशाही रूसकी 'आकरैना!'

श्रीमती गङ्गादेवी वर्मा

इतिहासके पन्ने उलटकर देखिये, आप जारशाहीकी नींवको रक्तसे प्लावित पावेंगे। अत्याचारकी शिलापर उसकी नींव पड़ी थी, दमन और जुल्मकी ईंटोंपर उसकी इमारत खड़ी की गयी थी और गरीब तथा असहाय मनुष्योंकी आहके साथ उसका शृङ्गार किया गया था। जार-साम्राज्य-की इमारतकी प्रत्येक ईंट पीड़ितोंके रक्तसे सींची गयी थी और उसके जर्रे-जर्रेसे पीड़ाकी दर्दनाक पुकार सुन पड़ती थी। अत्याचारकी प्रखर किरणोंसे तपती हुई प्रजा हाहाकार कर रही थी। अशान्ति और असन्तोषका आतङ्क लोगोंपर छाया हुआ था। जारशाहीके इस निरंकुश तथा बर्बरता-पूर्ण युगमें रूसकी खुफिया पुलिस अपनी निष्ठुरता, भयङ्करता, पशुता और कौशलके लिए संसारमें काफी प्रसिद्ध थी। लोग आकरैनाके नामसे रोमाञ्चित हो उठते थे। इसकी अत्याचारपूर्ण क्रूर कहानियां सुनकर लोगोंका हृदय कांप उठता था और आज भी इसके कृत्योंको सुनकर कलेजा थर्रा उठता है। उन दिनों रूसी भाषामें खुफिया पुलिस विभागको आकरैना कहते थे और इस शब्दका कथन-मात्र रूसी लोगोंके हृदयमें भयपूर्ण भावनाओंको जागृत कर देता था। बोलशेविकोंने मास्कोमें एक अजायबखाना बनवाया है, जिसमें जारके समयकी पुलिसके अत्याचारसे सम्बन्ध रखनेवाली सारी चीजें एकत्र की हैं। एक कमरेमें राजनीतिक अपराधियोंको क्लेश पहुंचानेके लिए जारकी पुलिस जिन विभिन्न औजारोंका प्रयोग करती थी, वे प्रदर्शित किये गये हैं। अनेक प्रकारके कोड़े, हथकड़ियां-बेड़ियां, नाक चीर डालनेके शस्त्र, हड्डी तोड़ने, हाथ और पैरके नाखूनोंको उखाड़ डालनेके औजार, सीसेके मुद्गर, पेचकस और कीलोंसे आमण्डित कोड़े, अर्थात् हरएक प्रकार-की यातना पहुंचानेवाले सामान, जिनका प्रयोग पुलिस राजनीतिक अपराधियोंको मुखबिर बनानेके लिए करती थी, यहां मौजूद हैं।

आकरैनाका मुख्य कर्तव्य यह था कि निम्न श्रेणीके लोगोंमें, विशेषकर विद्यार्थियोंमें विप्लववादका दमन करे। आकरैनाके दफ्तरमें प्रत्येक व्यक्तिकी, जो कभी भी सन्देहके क्षेत्रमें आ गया हो, सम्पूर्ण जन्म-कुण्डली रहती थी, जिसमें उसका फोटोग्राफ, उसके अंगूठे और अंगुलियोंके निशान, उसका पूरा-पूरा हुलिया, उसके आने-जानेका प्रोग्राम, उसके रहन-सहनका ढङ्ग, उसकी शिक्षा तथा आर्थिक स्थितिका हाल, अर्थात् सम्पूर्ण इतिहास मौजूद रहता था। इस दफ्तरमें अनेक फोटोग्राफर नौकर रहते थे। हर प्रकारके विप्लववादी साहित्यकी लाइब्रेरी रहती थी, और हर किस्मकी हस्तलिपि पहचाननेवाले विशेषज्ञ हुआ करते थे। पोल और यहूदी जातिके लोग इस विभागमें नहीं रखे जाते थे। पहले-पहल जो रंगरूट इस विभागमें आता था, उसे उस नगरके बारेमें पूरा ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था, जिसमें उसकी ड्यूटी बांधी जाती थी। उसे यह जानना जरूरी था कि किन-किन स्थानोंपर शराबकी दूकाने हैं, कहां-कहां पार्क हैं, मोटरें कहां और कब आती-जाती हैं, रेलगाड़ियां किस स्थानके लिए कब छूटती हैं, कौन-कौन कारखाने कब खुलते और कब बन्द होते हैं आदि। अगर कोई जासूस अपने कुटुम्बके प्रति विशेष स्नेह दिखाता, तो वह अपने मुहकमेमें अच्छा समझा जाता था।

आकरैनाके जासूस सन्देहास्पद व्यक्तियोंकी टोहमें लगे रहते थे। सड़कोंपर, गलियोंमें, थियेटरोंमें, रेलवे स्टेशनों-पर ये लोग बराबर घूमते रहते और हरएक सन्देहा-स्पद व्यक्तिके रहनेका ढङ्ग, उसके शरीरकी बनावट, उसके कद, उसकी चाल, उसके मित्रों और परिचितोंके नाम तथा उठने-बैठनेके स्थानका विस्तृत हाल नोट करते रहते थे और अपने अफसरोंके पास भेज दिया करते थे। ये लोग कभी कुली बन जाते, कभी दरवान, कोई अखबार बेचनेवालेका आडम्बर रचता और कोई नौकरी कर लेता था, कोई किरायेपर मोटर चलाने लगता और कोई घोड़ागाड़ी। आकरैनाके दफ्तरमें इन सब चीजोंका पूरा-पूरा सामान एकत्र रहता था, जैसे शिकरम, मोटर, घोड़े, दरवानोंकी बर्दियां इत्यादि। अगर किसी मुखबिरको किसी स्थानपर तार

भेजना पड़ता था, तो उसके लिए वे व्यापारिक शब्दोंका प्रयोग करते थे। जैसे कोई अगर कहीं जाता, तो यह तार देता—"माल चार बजेकी गाड़ीसे गया। स्टेशनपर ले लो।"

आकरैनामें दो विभाग थे। एक एक्सटर्नल एजेन्सी अर्थात् बाह्य खुफिया विभाग, दूसरा इण्टर्नल एजेन्सी अर्थात् अन्तरङ्ग खुफिया विभाग। बाह्य खुफिया विभाग तो साधारण तौरसे गुप्त रीतिसे लोगोंकी निगरानी करता था, लेकिन अन्तरङ्ग खुफिया विभाग विप्लववादियोंके लिए बाह्य खुफिया विभागकी अपेक्षा कहीं अधिक घातक और भयङ्कर था। इसके द्वारा पुलिसको अनेक विप्लववादी संस्थाओंकी गुप्तसे गुप्त बातें मालूम हो जाती थीं। यह विभाग विप्लववादियोंके दलके किसी व्यक्तिको मिलाकर अपना काम करता था।

इस विभागके दफ्तर केवल रूसके मुख्य-मुख्य नगरोंमें ही नहीं, बल्कि विदेशोंमें भी कायम थे। इन दफ्तरोंका यह काम था कि रूससे भागकर जो राजनीतिक लोग विदेशोंमें बस गये थे या साम्यवादियोंकी अनेक पार्टियोंमें जो कुछ बातें होती थीं, उनकी पूरी-पूरी रिपोर्ट बराबर भेजते रहें। इस कामके लिए अनेक गुप्तचर रहा करते थे, जो विप्लववादियों-के दलके ही हुआ करते थे। कभी-कभी इन गुप्तचरोंको रूस भेज दिया जाता था, जहां वे विद्रोहके मुख्य-मुख्य केन्द्रोंमें दौरा किया करते थे और अपनेको विदेशमें बसे हुए राज-नीतिक विप्लववादियोंके प्रतिनिधि बतलाते थे।

आकरैनाके मुखबिरोंकी श्रेणीमें हर प्रकारके आदमी रहते थे। मेहनत-मजदूरी करनेवाले श्रमजीवी, विद्यार्थी, राजनीतिक दलोंके नेता, डूमा (रूसकी पार्लमेण्ट) के मेम्बर और वेश्यायें आदि। जारका अन्तिम पुलिस-प्रमुख वैसलीव लिखता है—"आतङ्कवादी अनेक कारणोंसे पुलिस-से सहयोग करने और अपने साथियोंके प्रति विश्वास-घात करनेपर विवश हुआ करते थे। जिस जमानेमें मैं प्रमुख था, मुझे विद्रोहियोंके दलमें ऐसे अनेक आदमी मिले, जिनके चरित्रमें कोई दृढ़ता नहीं थी। गिरफ्तार होते ही इनकी कमर टूट जाती थी और ये लोग अपने दलसे सम्बन्ध रखनेवाली अनेक बहुमूल्य गुप्त सूचनायें पुलिसको बतलानेके लिए तैयार हो जाते थे। कुछ लोग ऐसे थे, जिन्हें हम कुछ दिनों तक समझा-बुझाकर अपनेमें मिला लिया करते थे। समझाने-बुझानेमें हमारी सबसे प्रभावशाली युक्ति यही थी कि जिस सजाके वे मुजरिम थे, उससे उन्हें मुक्त कर दिया जायगा। कभी ऐसा भी होता था कि कोई आदमी स्वयं हमारे दफ्तरमें आता और कहता कि अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया है कि विद्रोह और विप्लवकी संस्थायें बिलकुल ही बेकार हैं और मुझे पुलिसकी सहायता करनेमें अब जरा भी सङ्कोच नहीं। बहुत-से लोग पैसेके लिए पुलिसको खबरें दे दिया करते थे, लेकिन कभी ऐसा भी होता था कि विप्लव-वादियोंमें आपसमें झगड़ा हो जाता था या किसीको ऐसा लगता था कि उसके साथीने उसका अपमान किया है या उसके साथ विश्वासघात अथवा रुपये-पैसेके मामलेमें उसे धोखा दिया है। क्रोधके आवेशमें ऐसे लोग हमारे दफ्तरमें जाते थे और अपनी समितिका पूरा-पूरा हाल बता देते थे।"

आकरैना अपनी ओरसे ऐसे व्यक्तियोंको भी नियुक्त करती थी, जो स्वयं विद्रोह-पूर्ण षड्यन्त्र रचते थे। ऐसे षड्यन्त्रमें स्वभावतः अनेक विप्लववादी शामिल हो जाते थे। अन्तमें पुलिसके ये मुलाजिम सारा भण्डाफोड़ कर देते थे और जितने विप्लववादी इस षड्यन्त्रमें खिंच आते थे, उन्हें कठोर दण्ड और भयङ्कर यन्त्रणायें भोगनी पड़ती थीं। यहां तक होता था कि आकरैनाके ये कर्मचारी विप्लव-वादियोंके विश्वासपात्र बनकर मुख्य-मुख्य विप्लववादियोंकी सभा करते थे और सबको बमोंसे उड़ा देते थे। विश्वास-पात्र बन सकनेमें सफल होनेके लिए ये लोग अनेक उपाय करते थे। देश-भक्तिकी भावनाओंसे भरी हुई बातें करते, जार और उनके कर्मचारियोंके प्रति घोर घृणा प्रकट करते, रुपये-पैसेसे सहायता करते, विद्रोहकी सामग्री—जैसे राजद्रोहपूर्ण साहित्य, बम, पिस्तौल आदि—अपने यहां सुरक्षित रख लेते और छोटा-मोटा काम, जैसे रेलका पुल उड़ाना, गाड़ीकी पटरी उखाड़ना, साधारण अफसरका कत्ल कर देना इत्यादि स्वयं सफलतापूर्वक कर भी डालते थे। थोड़े ही दिनोंमें ये लोग गुप्त विप्लववादियोंके सम्पर्कमें आसानीसे आ जाते थे और विप्लववादका सम्पूर्ण सङ्गठन एकदम नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाता था। इस नीतिका एक प्रभाव यह भी पड़ता कि प्रत्येक विप्लव-वादी एक दूसरेको सन्देहकी दृष्टिसे देखता था, इसी कारण

कभी-कभी निराधार सन्देहपर भी आपसमें गोलियां चल जाती थीं और अविश्वासका वातावरण पैदा हो जानेसे सङ्गठनका काम कठिन हो जाता था।

इस अन्तरङ्ग खुफिया विभागका वास्तविक जन्मदाता जुवाटो नामका एक प्रमुख शासक था। इसने इस विभागको इतना कुशल और शक्तिशाली बना दिया था कि कुछ दिनों तकके लिए विप्लववादियोंका काम असम्भव हो गया और उनका सारा सङ्गठन नष्ट-भ्रष्ट हो गया। जुवाटोके नामसे प्रत्येक विप्लववादी और राष्ट्रवादी घृणा और भय करता था। इसलिए सन् १९१७ में जब बोलशेविक विप्लव सफल हुआ, तो जुवाटोने यह समझकर कि उसके भविष्यमें क्या लिखा है, गोली मारकर आत्महत्या कर ली।

विप्लववादियोंके नेताओंको मुखबिर बनाकर काम करनेका तरीका जहां एक दृष्टिसे पुलिसके लिए लाभदायक था, वहां यह भी था कि अक्सर सरकारके कर्मचारी भारी सङ्कटमें फंस जाते थे।

सन् १९०० की बात है। आजफ नामका एक विप्लववादी रूसमें आया। पहले यह रूसके बाहर रहता था और वहांकी आकरैनाको गुप्त रूपसे खबर देता रहता था। रूसमें आनेपर यह तुरन्त मास्कोकी आकरैनाके सम्पर्कमें आ गया और साथ ही साथ साम्यवादियोंकी अन्तरङ्ग समितिका सभासद और उनका नेता चुना गया। साम्यवादी दलमें जब कोई महत्त्वपूर्ण बात होती, तो यह सबकी सब पुलिसके अधिकारियोंको बता देता। आजफ दुधारी तलवार था। इधर पुलिससे मिला था, उधर सरकारी अफसरोंके कत्ल करनेका षड्यन्त्र रचता रहता था। सरकारी अफसर यह समझ बैठते थे कि आजफके होते हुए किसी प्रकारकी आशङ्का नहीं है। किन्तु थोड़े ही दिनके बाद मोशिये पहलवी, जो रूसी साम्राज्यका गृह-सचिव था और ग्राण्ड ड्यूक अलेक्ज़ण्डोविच, जो जारका भाई लगता था, कत्ल कर दिये गये। तहकीकात करनेपर पता चला कि यह कार्यवाही आजफ और उसके दलकी थी।

इसी तरहकी घटना और हुई। कर्नल कारपोफ, सेण्ट-पीटर्सबर्गकी आकरैनाका प्रधान था। इसका भी यह तरीका था कि आतङ्कवादियोंको मिलाकर उनसे विप्लववादी दलका पूरा-पूरा हाल जाना करता था। सन् १९०९ में उसके पास दूतोंने यह समाचार भेजा कि जारके मारनेका षड्यन्त्र चल रहा है। यह समाचार अनेक स्थानोंसे और अनेक सूत्रोंसे आया, इसलिए अधिकारियोंने इसपर तुरन्त विश्वास कर लिया। उसी समय सम्राट् जार सारे देशमें भ्रमण करनेका भी विचार कर रहा था, इसलिए चिन्ता विशेष रूपसे बढ़ गयी। आकरैनाको जारकी हत्याके सम्बन्धमें जो समाचार मिला था, वह इतना संक्षिप्त था कि उसके आधारपर रक्षाकी कोई योजना तैयार नहीं की जा सकती थी। सारे अधिकारी परेशान और भयभीत थे। जार सेण्ट-पीटर्सबर्गमें ही था कि पुलिसके एक अफसरने यह सूचना दी कि पेटरोफ नामका एक आतङ्कवादी, जो उस समय गिरफ्तार था, यह कहता है कि यदि उसे छोड़ दिया जाय, तो वह जारकी हत्याके षड्यन्त्रका पता लगाकर कच्चा चिट्ठा बता सकता है। परिस्थितिकी भयङ्करताको देखते हुए अफसर लोग इस बातपर राजी हो गये कि पेटरोफका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाय और उसे जेलसे भाग जानेका मौका दिया जाय। यदि पेटरोफको बाकायदा छोड़ देते, तो सम्भव था कि लोग सन्देह करते। इसलिए एक रातको उस बैरकके सन्तरियोंको, जहां पेटरोफ कैद था, गुप्त रूपसे यह हुक्म दिया गया कि वे अपनी ड्यूटीसे टल जायें। वार्डर लोग भी हटा दिये गये और पेटरोफ जेलकी दीवार फांदकर भाग खड़ा हुआ। समाचार-पत्रोंमें गवर्नमेण्टकी ओरसे खूब धूम मचायी गयी। जेलके कर्मचारियोंको सजायें मिलीं। ऐसा नाटक रचा गया कि सर्वसाधारणको पूरा विश्वास हो गया कि पेटरोफ अपनी चालाकीसे भागा है, सरकारका उसके भागनेमें कोई हाथ नहीं है। उस समयसे पेटरोफ कर्नल कारपोफकी मातहतीमें काम करता रहा और ऐसे समाचार देता रहा, जो या तो किसी महत्त्वके नहीं होते थे, या विश्वासके अयोग्य। किन्तु जारका दौरा सौभाग्यसे निर्विघ्न समाप्त हो गया और पेटरोफके प्रति अफसरोंका विश्वास दृढ़तर हो गया।

एक बार पेटरोफने कर्नल कारपोफको यह सूचना दी कि जारकी हत्याका फिर षड्यन्त्र रचा जा रहा है और इस बार पहलेसे अधिक भयङ्कर है। अगली मुलाकातपर आपको इस भयङ्कर षड्यन्त्रका कच्चा चिट्ठा बताऊंगा। कर्नलका पेटरोफपर पूर्ण विश्वास तो था ही, इसलिए पेटरोफने जो

कुछ प्रस्ताव षड्यन्त्रके जाननेके उद्देश्यसे किये, उन्होंने बिना कुछ सोचे-विचारे मन्जूर कर लिये। यह निश्चय हुआ कि शहरके किसी कोनेमें मकान किरायेपर लिया जाय और इसी मकानमें कर्नल और पेटरोफ साथ-साथ कुछ दिनों तक रहें और यहीं सारे आतङ्कवादियोंको निमन्त्रित करके वह कर्नलको दिखा दे।

मकान लेनेकी, उसके सजानेकी तथा हर प्रकारके अन्य प्रबन्धकी जिम्मेदारी पेटरोफपर रखी गयी। पेटरोफने एक मकान शहरके कोनेमें ले लिया, जिसमें तीन कमरे थे। एक कमरा कर्नलके लिए, दूसरा अपने लिए और तीसरा दोनोंके लिए था। पेटरोफने पहला काम यह किया कि इन कमरोंमें बिजली लगवा दी। कर्नलके कमरेमें जो मेज रखी गयी, उसमें पेटरोफने डायनामाइटके अत्यन्त भयङ्कर गोले भर दिये और उनका सम्बन्ध बिजलीके तारसे कर दिया। स्विच मकानके बाहर लगायी। प्रबन्ध यह था कि ज्योंही स्विच दबे, डायनामाइटमें आग लग जाय और वह फूट जाय।

एक तारीख निश्चित हुई, जिस दिनसे कर्नल और पेटरोफ इस मकानमें आकर रहें। रातका समय था। ठीक समयपर कर्नल आ गये। पेटरोफने हृदय खोलकर उनका स्वागत किया और उन्हें ले जाकर उनके कमरेमें बिठा दिया। थोड़ी देर बातचीत करनेके बाद पेटरोफ किसी बहानेसे बाहर निकल आया और स्विच दबा दी। एक सेकेण्डमें सारा मकान हवामें उड़ गया और कर्नलकी बोटियां छितरा गयीं।

स्टोलिपिनकी भी हत्या इसी प्रकार हुई। स्टोलिपिन जारके मन्त्रिमण्डलका प्रमुख और रूसका प्रसिद्ध शासक था।

१९११ की गर्मीकी ऋतु थी। जार काफको जा रहा था। उसके साथ अन्य बड़े-बड़े आदमियोंके अतिरिक्त मन्त्रिमण्डलका प्रमुख स्टोलिपिन भी था। अफसरोंने इस बातका पूरा प्रबन्ध कर रखा था कि जारपर इस स्थानपर किसी प्रकारका आघात न होने पावे और इसीलिए रक्षाका भार स्टोलिपिनने जनरल कुरलफपर रखा था। जारके काफ पहुंचनेके कुछ दिन बाद बागरफ नामका पुलिसका पुराना मुखबिर स्थानीय आकरैनाके दफ्तरमें आया और कहने लगा कि मुझे जारकी हत्याके सम्बन्धके षड्यन्त्रका पूरा-पूरा पता है। उसने यह भी बतलाया कि विप्लववादियोंके कई दल काफ पहुंच चुके हैं और जारको मारनेके लिए षड्यन्त्र रच रहे हैं। बागरफने जो कुछ कहा, इतने जोरसे कहा कि स्थानीय कर्मचारियोंने उसपर पूर्ण विश्वास करके अपने प्रबन्धको खूब पक्का कर लिया और कुछ दिनों तक जारका कोई भी ऐसा प्रोग्राम नहीं रखा, जिसमें किसी प्रकारकी दुर्घटनाकी सम्भावना हो।

कुछ दिनोंके बाद एक दिन किसी थियेटरमें जारके जानेका प्रोग्राम रखा गया। उस दिन सम्राट्के साथ करीब-करीब सभी मुख्य-मुख्य और प्रतिष्ठित अफसर थियेटरमें एकत्र होनेवाले थे। इसलिए इस बातका खास प्रबन्ध किया गया था कि थियेटरमें सिर्फ चुने हुए लोग ही आवें।

थियेटर हो रहा था। उसी समय बागरफ गुप्तचर दौड़ता हुआ आया और उसने काफके स्पेशल पुलिस अफसरसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की, क्योंकि उसे अत्यन्त आवश्यक बात कहनी थी। स्पेशल पुलिस अफसरने उसे तुरन्त थियेटरके अन्दर बुला लिया। बागरफने अन्दर पहुंचकर उसे एक साधारण-सी बात बता दी और कहीं एक कोनेमें दबकर बैठ गया। काफके स्पेशल पुलिस अफसरको चाहिए था कि बागरफको इसके बाद बाहर कर देता, लेकिन उसे काम बहुत था और दौड़-धूपमें यह ध्यान नहीं रहा कि बागरफका क्या हुआ। बागरफ चुपकेसे एक जगह बैठ गया कि मौका पाकर स्टोलिपिनके निकट खिसक गया और पहुंचते ही उसने उसपर अपने पिस्तौलके कई वार कर दिये। दो दिनके बाद स्टोलिपिनका अस्पतालमें देहान्त हो गया।

इस तरह कभी-कभी आकरैनाको धोखा हो जाता था जरूर, लेकिन फिर भी उसके सङ्गठनमें कोई शिथिलता नहीं आती थी। आकरैनाके जुल्मोंका अन्त तो बोलशेविक विप्लवकी सफलताके बाद ही हो सका। बोलशेविक राज्य होनेपर आकरैनाके कर्मचारियोंको या तो प्रजाने गोलीसे मार डाला या उनके शासनने फांसी दे दी। अनेक गोली मारकर स्वयं ही मर गये और कुछ भागकर विदेशोंमें चले गये, जहां लोग आज तक खानसामागीरी, कुलीगीरी आदि तुच्छ काम करते हुए अपना जीवन कष्टके साथ व्यतीत कर रहे हैं!

कुछ क्षण

श्री रहबर, बी० ए०

पतझड़का मौसम था, दरिया किनारेके बड़े-बड़े विशाल वृक्ष अपनी नग्न टहनियोंपर चन्द आखिरी जर्द-जर्द पत्तोंको दरियाके पानीमें कम्पित देख रहे थे। डूबते हुए सूर्यकी चञ्चल किरणें, लहरोंकी गोदमें छिप जानेके लिए, पानीके रैलोंके साथ-साथ भागी चली जाती थीं। सन्ध्याकी लालिमाका रञ्जित प्रतिबिम्ब उभर-उभरकर सतहपर बिखरा जाता था, और यों मालूम होता था, गोया दरियाके वक्ष-स्थलसे रक्तका स्रोत फूट निकला है।

यह एक सुन्दर, रमणीक और विचार-उत्पादक सन्ध्या थी। बूढ़ा अनवर दरियाके किनारे बैठा और बायें बाजूके सहारे झुका हुआ स्वच्छ जलमें अपने मस्तिष्ककी सिकुड़नोंको ऐसे देख रहा था, मानो जीवनकी बीती हुई घड़ियोंको गिन रहा हो। दरियामें लहरें उठ रही थीं, वे किनारे तक पहुंच-पहुंचकर लौट जातीं और फिर वापस आती थीं। बूढ़ेकी परछायीं भी वृक्षके पत्तोंकी तरह कम्पित थी। उसके दिमागमें कितने ही उद्विग्नतापूर्ण और उलझे हुए विचारोंकी धारा बह रही थी, दरियाकी लहरोंकी तरह अतीतकी कितनी ही स्मृतियां उसके मस्तिष्कमें आती, चली जाती और फिर आ जाती थीं। उसके चेहरेका रङ्ग पल-पलमें बदलता था, कभी उसकी मुद्रा कठोर हो जाती थी और कभी गमगीन।

इसी बीचमें गुलाबके चन्द पुष्प बहते हुए उसके निकट आ गये, उसने हाथ फैलाकर उन्हें पकड़ लिया। फूल मुर्झा चुके थे, उनकी सुगन्ध उड़ चुकी थी। मगर वे गत वसन्तकी स्मृति-मात्र थे। उन्हें देखते ही बूढ़े अनवरके नेत्रोंमें प्रकाशकी एक असाधारण चमक प्रकट हुई, और उसके होठोंपर हल्की-हल्की मधुर मुस्कान दौड़ गयी। इस चमक और इस मुस्कानका समूचा प्रभाव सूर्यकी अन्तिम किरणोंसे अधिक सुन्दर और अधिक मनोहर था। अब वह गत जीवनकी एक ऐसी घटनापर पहुंच गया था, जिसके स्मरण-मात्रसे उसके शुष्क शरीरमें एक कोमल भावना उत्पन्न हो गयी थी, और उसके समझने-सोचनेकी सर्व शक्ति इस एक घटनापर इस प्रकार केन्द्रित हो गयी थी,-जिस प्रकार घूमते हुए लट्टूकी सब गति एक विन्दुपर एकत्र हो जाती है।

सूर्य डूब रहा था। वह प्रातःकालसे पहले फिर नहीं निकल सकता। फूल मुर्झा चुके थे, उनमें फिर ताजगी नहीं आ सकती; बसन्त बीत चुका था, नियत समयसे पहले उसे कोई लौटा नहीं सकता; मगर स्मृति—एक स्मृति इन सबसे शक्तिशाली है। मानव-हृदयमें उसका उदय हर समय होता है। वह हर समय ताजा है, उसके वसन्तका कोई समय नियत नहीं, वह सदा-बसन्त है। बूढ़े अनवरके दिलमें भी यह याद इस तरह ताजा और सजीव थी, मानो कलकी बात हो। यद्यपि घटना बिलकुल संक्षिप्त थी और उसके इतने बड़े जीवनमें आंख झपकनेके बराबर थी, फिर भी इतनी आनन्दमय और सुखप्रद थी कि उसके तमाम जीवनपर छायी हुई थी।

× × × ×

उसका यौवन-काल था और वह अपने खेतमें बैलोंके लिए चारा काट रहा था कि सामने कुएंपर किसीकी आहट मालूम हुई। वहां एक बेरी थी, जिसे कुएंवाली बेरी कहते थे। उसके बड़े-बड़े, गोल, मीठे और सुन्दर बेर कुल्लूके सेबोंकी तरह मशहूर थे। अनवरने उठकर देखा, कि बेरीके पत्ते हिल रहे हैं, कोई टहनियां हिलाकर बेर तोड़ रहा है। उसके समस्त शरीरमें आग-सी लग गयी और वह क्रोधमें भरा और झल्लाया हुआ उधरको चला। ये लोग कितने ढीठ हैं! जब मना कर रखा है कि इस बेरीके बेर कोई न तोड़े, तो वे क्यों चले आते हैं? क्या बाबाका राज समझ रखा है उन्होंने?

वह इसी प्रकार बड़बड़ाता और मन ही मनमें बल खाता हुआ जा रहा था, जब निकट पहुंच गया, तो ललकारा:—"कौन है तू बेर तोड़नेवाला? तुझे खबर नहीं......"

वह आगे कुछ न कह सका, सामने अतिया खड़ी मुस्करा रही थी, इस मुस्कराहटमें स्वर्ग-सुख छिपा हुआ था, अनवरका सारा क्रोध जाता रहा। बल्कि वह पछताने लगा कि मैं क्यों इतना तेज हुआ, मुझे पहले ही देख लेना

चाहिए था कि कौन है। सबको एक ही लाठीसे तो नहीं हांका जाता। आखिर वह बेचारी कुछ अपना ही समझकर तो आयी होगी। आह ! उसके हृदयमें कितना पश्चात्ताप था। उसे इतना साहस भी न हुआ कि आंख उठाकर अतियासे बात भी कर सके। इसलिए सिर झुकाये हुए ही, मगर तनिक मुस्कराकर, कहाः—

"अत्तो, बेर तोड़ रही हो ?"

"हां, बेर ही तोड़ने आयी हूं। अगर तुम नाराज हो, तो चली जाऊं ?" अतियाने अपनी स्त्री-सुलभ समस्त शक्ति सुन्दर आंखोंमें बटोरकर जवाब दिया।

जिस प्रकार पुष्पकी सुगन्धिसे भौंरेके मनका राग उमड़ आता है, उसी भांति इस गर्वपूर्ण उत्तरसे अनवरका नर-गौरव सजग हो गया। उसने अतियाके इस मीठे व्यङ्गके जवाबमें कहाः—

"वाह ! जानेकी भी एक ही कही। भला अत्तो, मैं और तुमपर नाराज हूंगा। कहो तो ऊपर चढ़कर बेर तोड़ दूं ?"

अनवर ये शब्द अनजानेमें ही कह गया। कौन जाने, इनमें सहानुभूति अधिक थी अथवा प्रेम।

अतिया न तो शर्मायी और न उसने बुरा माना, बल्कि वह अपनी बड़ी-बड़ी चञ्चल आंखोंको चमकाकर बोलीः— "नेकी और पूछ-पूछ।"

अनवरपर जैसे किसीने जादू कर दिया। वह चारा और बैल भूल-भालकर बेरीपर चढ़ गया, और बेर तोड़-तोड़कर नीचे फेंकने लगा।

अतियाने उन्हें उठा-उठाकर झोलीमें भरते हुए कहाः— "नीचेकी टहनियोंपर तो एक भी बेर नहीं, लोगोंने सब तोड़ लिये। मैं तो अब तक यों ही परेशान होती रही, पहले ही तुम्हें क्यों न पुकार लिया।"

"पहले ही तुम्हें क्यों न पुकार लिया।" क्या मुहब्बतकी किताबमें, इससे सुन्दर गीत मिल सकता है। अनवरके सौभाग्यपर किस नौजवानको ईर्ष्या न होगी ? उसे भी क्या मालूम था कि उसकी मेहनतका सिला इस तरह और इतनी जल्दी मिल जायेगा। उसने इस असाधारण प्रसन्नतासे मन ही मन मुग्ध होते हुए जवाब दियाः—"क्या करूं अत्तो ? मैं तो बहुतेरा रोकता हूं, फिर भी लोग हैं कि जरा नहीं मानते। आगे-पीछे आ ही धमकते हैं।"

"जैसे मैं ! और फिर इतने ढीठ कि मना करनेपर भी बाज नहीं आते। हैं ना ?" अत्तोने छेड़कर आगे कहा— "मनमें तो मुझे कोसते ही होगे ?"

"नहीं अत्तो ! कसम खुदाकी, तुम्हें किस तरह यक़ीन दिलाऊं ? तुम तो जिस वक्त भी चाहो, आ सकती हो।"

यह शब्द अनवरकी जबानसे नहीं, दिलसे निकले थे। इनमें इतनी सत्यता और निर्मलता थी कि अतिया क्षण-भरके लिए अपने आपको भूल गयी, और उसने ऊपरकी ओर देखते हुए पूछाः—"क्यों अनवर, मैं तुम्हारी कौन होती हूं ?"

इस वक्त उसकी आंखोंमें कितना आग्रह, कितना आकर्षण और कितनी सुन्दरता थी ! गोया वह इस नश्वर संसारकी देहाती लड़की नहीं, बल्कि किसी अमर संसारकी कोई अप्सरा थी, जो अनवरको अपने वशमें करने आयी थी। दोनोंने आंखोंमें आंखें डालकर एक-दूसरेको देखा और देखा। और मैं कैसे बताऊं कि इस देखनेसे क्या हुआ ? बस समझ लीजिये कि प्रत्येक प्रेमका आरम्भ देखनेसे होता है।

यह भी कहा जाता है कि औरतके सामने मर्द विवश हो जाता है। औरतका जादू मशहूर है और उसका प्रभाव सर्वव्यापी। मगर औरत भी मर्दके प्रभावसे बची नहीं रहती। भावनाओंका द्वन्द्व दोनों ओर होता है। मनोविज्ञानके पण्डित विक्टर ह्यूगोका कहना है कि प्रेमके विषयमें आदमी तो झिझकता ही रहता है, पहल औरत ही करती है। क्योंकि स्वभावानुसार औरत सङ्कोची और मर्द साहसी होता है। इस समय वह एक दूसरेके गुण ग्रहण करते हैं और दोनोंकी शक्तियां समतल होकर प्रेमको जन्म देती हैं।

हरएक कार्यकी प्रतिक्रिया आवश्यक है। कुछ देरमें जब आनन्द-मुद्रा भङ्ग हुई, तो अतियाको महसूस हुआ कि उसने क्या कह दिया था। वह लज्जासे लाल होकर पृथ्वीकी ओर देखने लगी और अनवरने गेहूंके खेतोंपर उड़ती हुई कुञ्जोंको देखना शुरू किया।

मगर जो लज्जायुक्त वातावरण पैदा हो गया था, उसको दूर करनेके लिए कुछ न कुछ कहना आवश्यक था, इसलिए अनवरने कुछ बड़े-बड़े पके हुए बेर तोड़कर कहाः—"देखो अतिया, कितने सुन्दर बेर हैं !"

"हां, फेंको नीचे।" अतियाने ऊपर झांकते हुए कहा।

'नहीं, ऐसे नहीं फेंकूंगा। जमीनपर गिरे, तो फूट जायेंगे।'

"अच्छा, मैं झोली फैलाती हूं, उसमें फेंकना।"

अतियाने अपने सिरकी चुनरी उतारकर एक तरफ बिछा दी। तमाम बेर उसमें डाल दिये। फिर वहीं आ खड़ी हुई और झोली फैलाकर अनवरसे बेर फेंकनेको कहा।

अनवरने बेर फेंके और वे हवामें उड़ते हुए अतियाकी झोलीकी तरफ बढ़े, लेकिन अतियाको ऐसा प्रतीत हुआ कि वे जमीनपर गिरेंगे। वह ऊपरको देखती हुई तनिक आगे बढ़ी, बेर उसके मुंहपर गिरे और होठोंको छूते हुए इधर-उधर बिखर गये। अतिया और अनवर दोनों ही खिल-खिलाकर हंस पड़े। कितनी सुखकर थी वह हंसी! अनवरके मनमें आया कि काश मैं भी इन होठोंको इसी प्रकार छू सकता। लेकिन उसने सहानुभूतिके लिए पूछाः—"चोट तो नहीं लगी?"

"नहीं!" जो बाल माथेपर आ गये थे, अतियाने उन्हें संवारते हुए कहा। उसके जगह-जगह फटे हुए कुर्तेसे उसका गोरा-चिट्टा और सुन्दर शरीर नजर आ रहा था।

उस वक्त अनवरकी उम्र बीस-इक्कीस वर्षकी थी और अतिया-की पन्द्रह-सोलहकी। इसके पश्चात् वे कभी दोबारा नहीं मिल सके। और मिलते भी कैसे? अनवर दूसरे दिन शहर चला गया और वहां फौजमें भरती हो गया, ताकि रुपया कमाकर गांव वापस आये और अतियासे शादी कर ले। अगरचि रुपयाका होना शादीकी कोई आवश्यक शर्त न थी, क्योंकि अनवरका बाप अच्छा खाता-पीता आदमी था और काफी जमीनका मालिक था, मगर यह उसके मानव-गौरवका प्रश्न था। उसने खूब जी तोड़कर काम किया। चार ही सालमें सिपाहीसे लैस, नायक और हौलदारका पद प्राप्त कर लिया और वेतनमें भी अच्छी तरक्की हो गयी।

अतियाकी खबर उसे बराबर आती रहती थी, बल्कि अब दोनोंकी सगाई भी हो गयी थी। अनवरने छुट्टी ली कि घर जाकर शादी करे। वह प्रातःकाल ही गांवको जानेवाला था, मगर रातको ही इत्तला पहुंच गयी कि सब छुट्टियां मन-सूख, जर्मनीसे जङ्ग छिड़ गयी है।

दो दिनमें उनकी फौजका दस्ता अफ्रीकाको रवाना हो गया।

इसके पश्चात् अनवरके जीवनमें याद करनेके लिए क्या था—केवल युद्धका मैदान—भीषण और भयङ्कर तोपोंकी दनादन—पीड़ित, निर्दोष उमङ्ग और रक्तरञ्जित मानवता! और इन सबसे भयानक थी दुश्मनकी कैद। वह किस प्रकार शत्रुके हाथ पड़ा और किस प्रकार जङ्गका कैदी बनाकर रखा गया।

इस कैदमें उसे कितनी कठिनाइयां उठानी पड़ीं, कितनी मानसिक पीड़ा सहन करनी पड़ी—इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि वह चालीस वर्षकी आयुमें ही बूढ़ा हो गया। उसके सिरके बाल झड़ चुके थे और जो बाकी थे, वे सफेद पड़ गये थे। क्या वह दौलत, जागीर और पेन्शन, जो उसे कैदसे छूटनेके बाद मिली, उस हानिको पूरा कर सकती थी? क्या वह चीज, जो उसने युद्धकी भेंट चढ़ा दी थी, उसे वापस मिल सकती थी? क्या उसकी अमूल्य जवानी किसी तरह लौटायी जा सकती थी?

इस समय अनवरकी उम्र पचास वर्षकी थी। अतिया बूढ़ी हो गयी थी, और कई बच्चोंकी मां थी। उसके सैनिक जीवनकी कठोर घटनायें और कारागारकी विपत्तियां बहुत कुछ भूल चुकी थीं और जो कुछ बाकी थीं, वे भी धीरे-धीरे भुला दी जायेंगी। मगर वे चन्द प्रेमपूर्ण क्षण, वह सुन्दर अतिया, वे मनोहर आंखें, वह स्वर्गीय मुस्कराहट—इन सबकी याद ज्योंकी त्यों सुरक्षित थी। कोई अदृश्य शक्ति उसके मनमें बैठी पूछ रही थी—"क्यों अनवर, मैं तुम्हारी कौन होती हूं?" ये उसके प्रेम और जवानीके अमर क्षण थे।

वह गांवसे दूर, इस जगह, दरियाके किनारे आकर बैठा करता था और इन्हीं क्षणोंकी कल्पना करके सुखका अनु-भव करता था। इस समय ये क्षण फैलकर असीम हो जाते थे। आज भी वह इन्हीं क्षणोंकी यादमें निमग्न बैठा था और न जाने कितनी देर तक इसी प्रकार बैठा रहता। लेकिन हवा तेज और सर्द हो गयी थी। वह एक ठण्डी सांस छोड़-कर उठा और अपने फौजी कोटके हूकोंको दोनों हाथोंसे बन्द करते हुए गांवकी तरफ चल दिया।

चांद निकल आया था, सूखे पत्ते इधर-उधर उड़कर निस्तब्ध वातावरणमें हल्का-हल्का शब्द कर रहे थे और दूर कोई खेतका रखवाल गा रहा थाः—

बेरियां दे बेर मुकगे—दस केहड़े बहाने आंवां।

अर्थात् ऐ प्रियतम! बेरियोंके बेर खतम हो गये, बता, मैं किस बहाने आऊं?

साहित्यिक और राजनीति

श्री महादेव

—हिंसार उत्सवे आजि बाजे
अस्त्रे अस्त्रे मरणेर उन्माद रागिनी
भयङ्करी ! दयाहीन सभ्यता नागिनी
तुलेछे कुटिल फणा चक्षेर निमेषे,
गुप्त विषदन्त ता'र भरि' विषे ।
स्वार्थे स्वार्थे बेधेछे सङ्घात—लोभे लोभे
घटेछे संग्राम; प्रलय-मन्थन-क्षोभे
भद्रवेशी बर्बरता उठियाछे जागि'
पङ्कशय्या, हते । लज्जा सरम तेयागि
जाति-प्रेम नाम धरि' प्रचण्ड अन्याय
धर्मेर भाषाते चाहे बलेर वन्याय ।
कविदल चीत्कारिछे जागाइया भीति
श्मशान-कुक्कुरदेर काड़ाकाड़ि-गीति,
(रवीन्द्रनाथ—शताब्दीर सूर्यास्त)

ऊपर उद्धृत पंक्तियोंमें कविने पूंजीवादी सभ्यता (या असभ्यता ?) का नग्न चित्र अङ्कित किया है । नागिन-सी फण फैलाकर बुर्जुआ सभ्यता आज मानव-समाजको निगल जानेके लिए उतारू हो गयी है । सभी दिशाओंमें स्वार्थका स्वार्थसे और लोभका लोभसे सङ्घर्ष चल रहा है । बर्बरता सभ्यताका जामा पहनकर दुनियापर शासन कर रही है । राष्ट्रीयताकी ओटमें मुट्ठी-भर व्यक्ति भीषण अन्यायका राज्य कायम रखना चाहते हैं । वे धर्मके नामपर हमें अन्धा बनाये रखना चाहते हैं । चारों ओर हिंसाका साम्राज्य दिखाई पड़ रहा है । कवि भी आज मरघटके कुत्तोंकी तरह शवके लिए आपसमें छीन-झपट मचा रहे हैं । खोखले मनुष्य प्रेत-नृत्य कर रहे हैं । कविके कानोंमें मानवताका आर्त्तनाद पहुंचा है । स्वार्थियों द्वारा 'हमें चक्रवत् परिवर्तन्ते सुखानि च दुःखानि च' का पाठ पढ़ाया जा रहा है। यह भी सिखाया जाता है कि कला, संस्कृति, सभ्यता आदिका मनुष्यसे गम्भीर सम्बन्ध नहीं है, मनुष्योंने सभ्यताका उपभोग बहुत दिनों तक किया है, आज उन्हें बर्बर-युगमें लौट जाना पड़ेगा ।

मानव-सभ्यता और संस्कृतिके प्रति इस वैराग्यका कारण क्या है ? शताब्दियोंके कठिन परिश्रमसे आजकी सभ्यता बनी है । क्या कारण है कि आज मनुष्य उसको ध्वंस करके ही दम लेनेके लिए जुट गया है ? आज लोगोंमें यह विश्वास क्यों व्यापक होता जा रहा है कि जीवन, कला, साहित्य, सभ्यता, दुनिया सभी मिथ्या हैं ; मृत्यु, अन्याय, अत्याचार, पाशविकता ही सत्य है । पूंजीवादी सभ्यता अपनी नींव अपने हाथोंसे खोद रही है । इसीलिए आज मनुष्यका जीवन सारहीन, खोखला प्रतीत होता है ।

"...महायुद्धने अचानक पश्चिमी इतिहासका पर्दाफाश कर दिया । मानो कोई मतवाला अपनी हयाको भूल गया है । ऐसा हो सकता है कि क्षण-भरके लिए इतनी झूठ और वीभत्स हिंसाने सङ्गठित होकर किसी प्राचीन अन्धकार-युगमें उत्पात मचाया हो, लेकिन आजकी-सी भीषण उदग्र मूर्ति उसने नहीं धारण की थी । वे काली आंधीकी तरह धूलमें छिपकर आती थीं, लेकिन आज यह अवरुद्ध पापके झण्डेको फहराती हुई, पृथिवीकी हरियालीको ध्वंस करती हुई, ज्वालामुखीकी तरह आ रही हैं । इसके पश्चात् हमें दिखाई पड़ता है कि अब यूरोपका अपनी बुद्धिपर विश्वास नहीं रह गया, आज वह कल्याणके आदर्शका उपहास करनेका साहस करता है । आज उसने अपनी लज्जाको ताकपर रख दिया है,...आज मैं देख रहा हूं कि अपनेको भद्र प्रमाणित करनेके लिए सभ्यताका दायित्व-बोध भी लुप्त होता जा रहा है । अमानुषिक निष्ठुरता सरे आम छाती तानकर चल रही है ।" (रवीन्द्रनाथ—कालान्तर)

मनुष्यकी श्रेष्ठ सृष्टियोंको ध्वंस करनेवाले युद्धकी प्रतिक्रिया उसके मनपर भी हो रही है । नरमुण्डोंके पहाड़के सामने खड़े होकर वैज्ञानिकोंको अपने अनुसन्धानोंकी व्यर्थता देखकर विज्ञानशालाकी ओर ताकनेकी इच्छा नहीं होती, वे भी अब 'दिव्यज्योति' की खोज करने लगते हैं । स्वाधीनता और मानवताका अमर गीत सुनानेवाला कवि देखता है कि आज स्वाधीनता और मानवताका स्थान

पाशविकता और हिंसाने ले लिया है। ऐसी हालतमें अगर वह हाला-प्याला, मृत्यु आदिका गुण-कीर्त्तन करे, तो आश्चर्यकी बात नहीं। प्रतिक्रियाकी विजय देखकर हमारे मनका उधर आकर्षित होना भी अचम्भेकी बात नहीं है। हम चेतनाके राज्यसे अवचेतना (Subconcious) के राज्यमें चले जा रहे हैं। 'बर्बरताकी जय', 'नरहत्याकी जय', 'कृतघ्नताकी जय', 'स्वेच्छाचार चिरञ्जीवी हो' आदि चारों ओर सुनाई पड़नेवाले नारोंसे जीवन या सभ्यता अर्थहीन हो जाती है, मनुष्य झूठा मालूम पड़ता है, मृत्यु और पाशविकता वास्तविक प्रतीत होने लगती है।

साहित्य और राजनीति अलग-अलग हैं ?

'सनातनी' साहित्यकारोंने साहित्यको राजनीतिसे भिन्न समझा था। पेशेवर राजनीतिज्ञोंके प्रति साहित्यकारोंका अविश्वास पुराना है। राजनीतिके साथ कूटनीति, षड्यन्त्र, झूठ आदिका घनिष्ट सम्बन्ध है। कलाकार इन चीजोंका सौदा करनेवालोंसे दूर भागेगा, यह भी स्वाभाविक है। इसीलिए उन्होंने बहुत दिनों तक राजनीतिकी अवहेलना की है। अनातोल फ्रान्सने अपनी एक पुस्तकके नायकके मुखसे इस भावको स्पष्ट किया है। वह कहता है—देवीजी, मैं इतना बुद्धिहीन नहीं हूं कि राजनीतिसे रुचि रखूं। I am not so devoid of talent, madam, as to take any interest in politics.

उपर्युक्त कथनका अपवाद भी सर्वत्र दिखाई पड़ता है। समसामयिक समाजकी समालोचना तथा नवीन समाजकी परिकल्पना, दोनों ही साहित्यके अन्तर्गत हैं। अंगरेजी साहित्यके इतिहासमें लैनलैण्ड, टामस मोर, स्विफ्ट, शेली, बायरन, विलियम मारिस आदिकी रचनाओंमें अधिकांश प्रत्यक्ष रूपसे राजनीतिक हैं।

अधिकांश साहित्यिक 'जनताके कोलाहल' से अलग रहना चाहते हैं। पूंजीवादकी अन्तिम मञ्जिल, फैसिस्टवाद तथा नाजीवादकी उत्पत्तिके कालसे यूरोप और अमेरिकाके विभिन्न देशोंके प्रगतिशील साहित्यिकोंने जोरोंसे राजनीतिमें भाग लेना शुरू किया है। इटली और जर्मनीके सैकड़ों कलाकारोंको फैसिस्टवादके विरोधके कारण निर्वासन सहना पड़ा है। उनमेंसे अधिकांश आज या तो अपने देशकी जेलोंमें सड़ रहे हैं या इंगलैण्ड तथा अमेरिकाकी सड़कोंकी धूल छान रहे हैं। स्पेनकी लड़ाईमें यूरोप और अमेरिकाके विभिन्न देशोंसे कलाकारोंका समूह लड़कर तथा अन्यान्य उपायोंसे गणतन्त्रियोंकी मदद्के लिए पहुंचा था। थैलमैन, गोर्की, गैरीवाल्डी, हैरीपालिट, अब्राहम लिङ्कन बटालियनके साथ टामस-मैन (जर्मनीके निर्वासित महान् साहित्यकार) बटालियन भी गणतन्त्रियोंकी सहायता कर रहा था। सैकड़ोंको अपनी कलमकी जगह बन्दूक पकड़नी पड़ी थी, लारी चलानी पड़ी थी, आहतोंकी सेवा करनी पड़ी थी। विख्यात फ्रान्सीसी औपन्यासिक अन्द्रें मारलोने गणतन्त्रियोंकी सहायताके लिए दस लाखसे अधिक रुपया इकट्ठा किया था, समाजवादी अमेरिकन औपन्यासिक अपटन सिनक्लेयरने अपनी पुस्तक 'उन्हें (फैसिस्टोंको) जाने नहीं दिया जायगा' (No Pasaran: They shall not Pan) की आमदनीसे गणतन्त्रियोंकी सहायता की थी, अनेकोंने अपनी समग्र कमाईको न्योछावर कर दिया था। प्रगतिशीलताकी रक्षाके लिए इस विचित्र सङ्घर्षमें अनेकोंने अपने प्राण दे दिये। हमारे लिए यह बड़े गौरवकी बात है कि भारतीय साहित्यकार डा० मुल्कराज आनन्द, नागपुरके पत्रकार श्री गोपाल मुकुन्द हुद्दर आदिने इस लड़ाईमें गणतन्त्रियोंके पक्षमें युद्ध किया था।

प्रगतिशील कलाकारोंने इस बातको महसूस किया है कि अपने अस्तित्वके लिए, कलाकी रक्षाके लिए विभिन्न प्रगतिशील आन्दोलनोंसे घनिष्ट सम्बन्ध रखना उनका प्राथमिक कर्तव्य है। प्रतिगामी शक्तियोंकी विजय समाजकी प्रगतिको सदियों पीछे कर देगी, कलाका विकास भी सदियोंके लिए रुक जायगा, इसीलिए पश्चिमी साहित्यकारोंने आज राजनीतिमें प्रत्यक्ष भाग लेना आरम्भ किया है।

कुछ लोगोंका ख्याल है कि राजनीतिमें भाग लेनेसे कलाकार अपनी स्वतन्त्रता खो देता है। प्रगतिशील विभिन्न आन्दोलनोंका कोई भी नेता या दल यह नहीं चाहता है कि कलाकारोंको मजदूर-किसानोंकी सभाओंमें काम करनेके लिए बाध्य किया जाय, उनसे पर्चे बंटवाये जायं। लेकिन इस बातको हमें नहीं भूलना चाहिए कि समाजसे ही विभिन्न कलाओंकी उत्पत्ति तथा विकास होता है। इसीलिए समाजकी प्रगतिशील धाराओंसे सम्पर्क-रहित कला-

कारकी रचनायें प्रगतिशील कैसे हो सकती हैं। राजनीति भी समाजसे बाहरकी कोई वस्तु नहीं है। कलाकार अपनी रचनाओंके लिए अपने समाज (अर्थात् कलाकारोंके समूह) तथा जनताके सामने जिम्मेवार है।

विभिन्न युगके महान् कलाकारोंने समसामयिक सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलनोंमें भाग लिया है। लेकिन क्या इसीलिए उन्होंने अपनी स्वतन्त्रतासे हाथ धो लिया? भला इस बातको कौन नहीं जानता कि गोर्की आजीवन कम्यूनिस्ट पार्टीके सदस्य रहे और उन्होंने जोरोंसे राजनीतिमें भाग लिया, टामसमैन (साहित्यके लिए इन्हें नोबेल-पुरस्कार मिला था) जर्मन सोशल डेमोक्रैटिक पार्टीके सदस्य थे, अनातोल फ्रान्सकी कम्यूनिस्ट पार्टीके नेताओंमेंसे थे, वह कम्यूनिस्ट दैनिक तथा साप्ताहिक 'मानवता' (La Humanite) का सम्पादन करते थे (इन्हें भी साहित्यके लिए नोबेल-पुरस्कार मिला था), रोमां रोलां पिछले साम्राज्यवादी युद्धके समय 'शान्तिवादी' थे (उनकी 'युद्धसे अलग' Above the Battle नामक पुस्तक देखिये); लेकिन युद्धके बादवाले दशाब्दमें उनके विचारोंमें महान् परिवर्तन हो गया है। उन्होंने 'शान्तिवाद' की नपुंसकताको अच्छी तरह देख लिया। वह अब कम्यूनिस्ट पार्टीके सदस्य हैं और उनके हृदयमें 'शान्तिवाद' के स्थानमें आज 'साम्यवाद' विराजमान है। सामाजिक क्रान्तिमें वह मानवताका एकमात्र कल्याण समझते हैं (मैं विश्राम नहीं लूंगा—I will not Rest तथा सामाजिक क्रान्तिसे शान्ति—By way of social Revolution to peace नामक पुस्तकोंको देखिये)। ब्रिटिश कलाकारोंमें बर्नार्ड शा तो फेबियन सोशलिस्ट दलको प्रतिष्ठित करनेवालोंमें हैं, गाल्सवर्दी, यीट्स आदि भी प्रत्यक्ष रूपसे राजनीतिमें दिलचस्पी लेते थे (इन तीनोंको नोबेल-पुरस्कार मिला था)। अमेरिकाके विख्यात साहित्यकार अपटन सिनक्लेयर भी वहांकी सोशलिस्ट पार्टीके पुराने सदस्योंमेंसे हैं। उन्होंने तो बीसों सालसे अमेरिकन राजनीति तथा मजदूर-आन्दोलनमें विशेष रूपसे काम किया है। 'दी कैनरी बोट' (The canary boat) नामक पुस्तकका लेखक विख्यात जापानी साहित्यिक भी राजनीतिक क्षेत्रमें काम करता था। जापानी सरकारकी खुफियाने उपर्युक्त पुस्तकके लिए उसे मार डाला था।

अब अपने यहांकी बात लीजिये। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथजीने युवावस्थासे प्रौढ़ावस्था तक जोरोंसे राजनीतिमें भाग लिया था, वर्षों तक वे बङ्गाल प्रान्तीय राष्ट्रीय सम्मेलनके सभापति रहे हैं। आज भी उनका राजनीति-प्रेम शिथिल नहीं हुआ है, यह उनके भाषणों, लेखों आदिके पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है। अजेय कथाशिल्पी स्वर्गीय शरच्चन्द्र चट्टोपाध्यायने भी बीसों वर्ष तक राजनीतिमें भाग लिया था, बहुत दिनों तक वह हवड़ा जिला कांग्रेसके सभापति रहे। डा० सर मुहम्मद इकबाल कभी अपनी जोशीली पंक्तियोंसे भारतीयोंमें जवानीका लहू भर रहे थे और राष्ट्रीयताके लिए सब कुछ करनेको तैयार थे। स्वर्गीय प्रेमचन्दजी भी राजनीतिसे अछूते नहीं रहे। अब क्या हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि 'राजनीतिके हौए' से डरनेवाले कलाकार कितने पानीमें हैं, उनकी दलील कहां तक सच है?

अब प्रश्न उठता है कि कलाकार किन उपायोंसे राजनीतिक तथा सामाजिक आन्दोलनोंमें सहायक बन सकता है। यह बात ऊपर लिखी गयी है कि हम यह नहीं चाहते कि कलाकारोंसे मजदूर-किसान आदिका सङ्गठन करवाया जाय, उनसे पर्चे चिपकवाये जायं या इसी तरहके दूसरे काम करवाये जायं। लेकिन विभिन्न प्रगतिशील आन्दोलनोंको सहायता पहुंचानेके हजारों तरीके हैं। "जीवित रहना, दूसरोंको रहने देना, भोजन करना और बच्चे पैदा करना ही भूतकालीन मनुष्योंका प्राथमिक कर्तव्य रहा है और भविष्यमें भी रहेगा। लेकिन जीवनको सुन्दर और सम्पत्तिशाली बनानेके लिए और भी चीजोंको इस सूचीमें जोड़ा जा सकता है, लेकिन उपर्युक्त आवश्यकताओंकी पूर्तिके बिना मानवताका ही अन्त हो जायगा।" फ्रेजरके उपर्युक्त कथनमें मतभेदकी गुञ्जाइश नहीं है। यह स्वयं-सिद्ध बात है कि मनुष्य सिर्फ रोटीसे ही जीवित नहीं रहता और रोटीके बिना भी वह जीवित नहीं रह सकता। रोटीके अतिरिक्त जीवनके लिए जिन वस्तुओंकी आवश्यकता होती है, उनमें कलाकारोंकी रचनाओंका स्थान ऊंचा है। इसीलिए प्रतिक्रियाकी अल्पकालस्थायी विजयसे विचलित होकर कलाकार जीवनकी प्राथमिक शक्तियों (Elemental forces of life) की उपेक्षा नहीं कर

सकता। इन्हीं शक्तियोंको समाजके हितार्थ नियन्त्रणमें लानेके प्रयासको सफल बनाना कलाकारका सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है !

जीवनकी प्राथमिक शक्तियोंके साथ सभ्यता, कला और संस्कृतिकी प्रगतिशीलताके अविच्छेद्य सम्बन्धको साफ करनेके लिए मैं टाल्सटाय सम्बन्धी लेनिनकी समालोचना तथा लेनिन सम्बन्धी रोमां रोलांकी समालोचनासे कुछ लम्बे उद्धरण दूंगा। कलाकारके आदर्श, उसके कर्तव्य तथा दायित्वका ऐसा गम्भीर विश्लेषण क्रान्तिकारी दृष्टिकोणसे शायद ही कहीं मिल सके। कलाकार टाल्सटायके सम्बन्धमें लेनिनने लिखा है:—

"क्रान्तिके साथ टाल्सटायका नाम लेनेसे लोगोंको अचम्भा-सा होगा। लेकिन १९०५ ई० की क्रान्ति अत्यन्त जटिल घटना है। इस क्रान्तिमें शरीक होनेवाली जनता तथा नेताओंमें अधिकांश तत्कालीन घटनाओंके सम्बन्धमें बिलकुल सचेत नहीं थे, और इसीलिए वातावरणके निर्देशानुसार वे अपने सच्चे क्रान्तिकारी ऐतिहासिक कर्तव्यको पालन करनेमें असमर्थ रहे। इस दृष्टिकोणसे टाल्सटायकी विभिन्न विचार-धाराओंको परस्पर-विरोधी वातावरणका, तत्कालीन किसानवर्गकी ऐतिहासिक क्रियाका प्रतिबिम्ब कहा जा सकता है। टाल्सटायकी नवीन चिन्ता-धारामें क्रान्तिके विभिन्न स्तरोंका वास्तविक चित्र प्रकट हुआ है, और उसमें बुर्जुआ-किसानवर्गकी क्रान्ति तथा पूंजीवादी लूटके विरुद्ध विद्रोह भी मूर्तिमान हुआ है। राष्ट्रके द्वारा होनेवाले अत्याचारके विरुद्ध तीव्र प्रतिवाद करके, साथ ही सम्पत्तिकी वृद्धिके साथ सभ्यताकी विजय और जनताकी मांगों—इन दोनोंको उन्होंने व्यक्त किया था। इसके अतिरिक्त अन्यायके विरुद्ध हिंसात्मक विचारके समर्थन और प्रतिरोधके प्रति 'मूर्ख सन्त' टाल्सटायका वैराग्य। अत्याचारसे उत्पन्न होनेवाली घृणा, मनोहर भविष्यकी उत्कट अभिलाषा, स्वप्नजनित तन्द्रा, राजनीतिक शिक्षाका अभाव, क्रान्तिकारी मनोभावकी दुर्बलता—इत्यादि टाल्सटायकी विशिष्टता है। इस ऐतिहासिक आर्थिक अवस्थासे जनताके लिए क्रान्तिकारी सङ्घर्षकी आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है, और उस सङ्घर्षके आयोजनका अभाव भी साफ हो जाता है। क्रान्तिकारी सङ्घर्षकी हारका प्रधान कारण थी अन्यायके विरुद्ध हिंसात्मक प्रतिवादके प्रति टाल्सटायकी अपार घृणा।"*

---

* It may seem at the first place strange and artificial to link the name of Tolstoi with that of the Revolution, from which he very evidently turned away. But our Revolution (of 1905) was an extremely complicated phenomenon; in the rank and file of its participants and leaders there were many social elements which did not understand what was happening and averted themselves from the real historical tasks imposed by the development of events. In this sense, the divergent ideas of Tolstoi are a veritable mirror of the contradictory situation in which the historic activity of the peasantry of our revolution found itself. The originality of Tolstoi and his ideas in general express justly the varied phases of our revolution in as much as they reflect the revolution of the peasant bourgeoisie and the revolt of the critics of capitalist exploitation. The demenciation of the violences of the state and the comedy of the courts, the glaring contrast between the increases of riches which go hand in hand with the conquest of civilization and the increase of misery and barbarism which grow with the tortures of the working masses. And surmounting this we have the preaching of the 'Saint-Idiot' for non-resistence of evil by violence.........Tolstoi reflected the hate born from sufferances, ripened desire for a better future, the desire to liberate himself from the immaturity of dreams, the lack of political educatism, and the weakness of the revolutionory desire. These historic-economic conditions show the preparation necessory for the struggles of the revolutionary masses and their lack of preparation for such a struggle The Tolstoian doctrine of non-resistance to evil was the most serious of the causes which led to the defeat of the revolutionary campaign.

(Lenin On Leon Tolstoi)

कलाकार टाल्स्टाय सम्बन्धी लेनिनकी इस समालोचनाके सम्बन्धमें महान् फ्रान्सीसी कलाकार और विभूति रोमां-रोलांने लिखा है :—

"एक विशिष्ट युगके एक महान् कलाकारके सम्बन्धमें लेनिनकी यह समालोचना दूसरे युगके कलाकारोंके सम्बन्धमें भी लागू हो सकती है, और खासकर अठारहवीं सदीके फ्रान्सीसी क्रान्तिके पूर्ववर्ती युगके कलाकारोंके सम्बन्धमें। उनके सम्बन्धमें वही कहा जा सकता है, जो लेनिनने टाल्सटायके सम्बन्धमें कहा है। मोंतेस्को, वाल्टेयर, रूसो, डिडेरट या विश्वकोषवादियोंमें किसीने भी टाल्सटायसे तनिक भी अधिक नहीं समझा था कि भविष्यमें क्या होगा; लेकिन वे ही क्रान्तिके अग्रदूत थे। उन्होंने बड़ी निपुणतासे तत्कालीन मनुष्योंका वर्णन किया है (इसमें उन्होंने गलतियां भी की हैं), और अठारहवी सदीका अनुसरण किया था, वह भी अच्छी तरह समझ-बूझकर नहीं। उनमेंसे बहुतेरे पीछे रह जाते, अगर उन्हें मालूम होता कि वे किधर जा रहे हैं। उन्नीसवीं सदीके फ्रान्सीसी भी नहीं जानते कि ऐतिहासिक विकासका अगला स्तर क्या है, इसीलिए लेनिनके अनुसार वे भी बड़े चक्करमें पड़ गये थे। साहित्यके इतिहासकारोंको अच्छी तरह विचार करके देखना चाहिए कि वह कौन-सी वस्तु है, जिसे रूसो, वाल्टेयर, डिडेरट जानते थे, लेकिन अच्छी तरह समझते नहीं थे। लेनिनने अपने प्रिय कलाकारके सम्बन्धमें लिखा है कि उन्होंने समाजके जुल्मों और झूठोंका जोरोंसे प्रतिवाद किया है, लेकिन इस प्रतिवादके निश्चित परिणाम क्रान्तिकी बात सुनते ही उन्होंने डर और गुस्सेसे 'नहीं' कहा है और रहस्यवादकी गोदमें आश्रय लेकर प्रगतिको अस्वीकार किया है।"*

रोमां रोलांने कहा है कि कला और कलाकारोंके सम्बन्धमें लेनिनका विश्लेषण आधुनिक कला तथा कलाकारोंपर लागू होता है। उन्होंने कहा है :—आधुनिक कलाकारोंमें भी वे ही बातें मिलती हैं, जो टाल्सटायके सम्बन्धमें लेनिनको मिली थीं। अधिकांश कलाकारोंको सामनेवाला गढ़ा साफ दिखाई पड़ता है। वे इस बातको भी समझते हैं कि इसमें कूद पड़ना जरूरी है, लेकिन उस जरूरतकी चिन्तासे ही उनके पैर फूल जाते हैं और इस जिम्मेवारीसे बरी होनेपर ही उन्हें शान्ति मिलती है। इसके लिए अपने अवसादग्रस्त, पंगु मनके समभारको कायम रखनेके लिए, वे अपने युगमें प्रवाहित होनेवाली धाराके ऊपरसे पीछेकी ओर दृष्टिपात करते हैं, बुर्जुआ जीवनके क्रम, विश्वास और शान्तिको प्राप्त करना चाहते हैं। लेकिन लेनिनके

* (The judgement of Lenin which applies to a great artist of a definite epoch can be verified with other masters of other epochs, espacially the pre-revolutionery epoch of our 18th Century France. It is exactly that which happened... Not more than Tolstoi did Montesquien, Voltaire, Roussean, Diderot and the Encyclopaedists understand what was going to happen and of which they were nevertheless the heralds. They have done nothing more than to translate (not without errors) in a striking form........the people of their time, and follow with them, confusedly, the slope over which all of the 18th Century was dragged. But they were far from suspecting where this slope was to lead them and if they perceived it.. they all (with the exception of adventurous Diderot) would have dropped to the rear. The 19th Century Frenchmen did not clearly see the next stage where the entire developement of history would change its course and set out fatally, as Lenin perceived it. For the historian of literature, the interest should be to precisly discern that which the Rousseans, the Diderots, and the Voltaires were aware of without thoroughly understanding. It is the sketch which Lenin with his brusque and comradely frankness drew of a writer whom he loved which exposed how Leon Tolstoi genially denounced the lies and the offences of the social state, but how in the face of revolutionery action, which was the inequitable consequence, protested with fear and anger, shouting 'No', taking refuge in mysticism which wished to stop the progress of the sun by denying it.)

संग्राम कर्मयोगी जीवनकी प्राथमिक शक्तियोंको स्वतन्त्र करनेके लिए, राष्ट्रहीन, वर्गहीन साम्यवादी समाजकी प्रतिष्ठाके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर देते हैं। कलाकारके हिसाबसे रोलां और गोर्की 'कर्मयोगी' लेनिनके समकक्ष हैं।

जीवनकी शक्तियोंको ठीक रास्तेपर ले जाना ही कलाकारोंका कर्तव्य है। सामाजिक समस्याओंका बाहरी रूप ही एकमात्र सत्य नहीं कहा जा सकता। उसके पीछे छिपा हुआ गतिशील जीवन ही वास्तव है। जीवन-शक्तिकी विभिन्न समस्याओंकी तहमें जाकर उन्हें कलाके रूपमें व्यक्त करना ही कलाकारोंका कर्तव्य है। इसी रचनाके कलाकारकी सृष्टि वास्तव और सत्य है, वही कलाकार वास्तव और सत्यका रचयिता है।

अब प्रश्न होता है कि यह जीवन-शक्ति क्या है? आधुनिक कलाकारोंके अवसाद और अविश्वासके पीछे किस शक्तिका हाथ दिखाई पड़ता है? कुछ कलाकार शान्ति चाहते हैं और आधुनिक सङ्कटमें शान्तिकी आशा नहीं देखकर वे सीधे सामन्त-युगकी सङ्कीर्णतामें लौट जाते हैं। कुछ समझते हैं कि आजका समाज विश्वासहीन हो गया है और अविश्वास ही सभ्यता और संस्कृतिको विपन्न करता है। इस युगमें विश्वास पुनः प्रतिष्ठित करनेके लायक कोई वस्तु न देखकर वे सीधे गिर्जा, मन्दिर और मसजिदके अन्दर घुस जाते हैं। कुछ लोग शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत कर व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका उपभोग करना चाहते हैं, अपने विकासका पथ सुगम करना चाहते हैं, लेकिन आजके सामाजिक वातावरणमें अपनी अभिलाषाओंके पूरी होनेकी आशा न देखकर वे कल्पनाकी गोदमें आश्रय लेकर आत्मतृप्तिकी विलासितामें डूब जाना चाहते हैं। कुछ इस युगके अत्याचार, व्यभिचारसे घृणा करते हैं, छुटकारेका कोई रास्ता न देखकर वे बेरहमीसे समाजपर कोड़ेबाजी करते हैं, या भीषण क्लान्तिके अन्धकारमें छिपकर मृत्यु-कामना किया करते हैं।

इस पराजय और परित्राणके मनोभावके पीछे समग्र जीवनका उपभोग करनेकी आकांक्षा काम कर रही है। शान्ति, सौन्दर्य, स्वाधीनता, विश्वास आदिकी सभी कामना किया करते हैं। आधुनिक समाजमें अपनी कामनाओंको वास्तविक बनानेकी सम्भावना न देखकर कोई देवालयमें, कोई मध्ययुगमें, कोई मृत्युमें और कोई कल्पनालोकमें उसकी सार्थकताका अनुसन्धान करते हैं। आधुनिक समाजमें ही अपनी आकांक्षाओंको पूर्ण करनेकी सामग्री और क्षेत्र पड़ा हुआ है, लाखों-करोड़ों उसके लिए प्राणोंकी बाजी लगाकर जूझ रहे हैं, लेकिन कलाकारकी दृष्टि उस दिशाकी ओर नहीं गयी है, अर्थात् कलाकार इस बातको नहीं समझ सका है कि उसकी आकांक्षाओंका पोषण असंख्य लोग करते हैं और इसी अज्ञानताके कारण उसका अधःपतन हुआ करता है। आज कलाकारको यह जानना पड़ेगा कि दुनियाके मजदूरों और किसानोंके अधिकारोंके लिए होनेवाली लड़ाई उसकी भी है। इस बातको हृदयङ्गम कर लेनेके बाद उसे देवालयमें जाने, मध्ययुगमें लौटने या कल्पनाके राज्यमें विचरनेकी आवश्यकता नहीं होगी।

पूंजीवादी सभ्यता और संस्कृति आज ध्वंस हो रही है। नवीन सभ्यता, नवीन संस्कृतिका घोष उठ रहा है। प्रगतिशील और प्रतिगामी शक्तियां लड़ रही हैं और इस सङ्घर्षमें कलाकारका स्थान कहां है, यह स्वतः स्पष्ट है। कलाकारके मानवताका शङ्खनाद किये बिना नवीन सभ्यता और नवीन समाज-निर्माणका यह पवित्र अनुष्ठान पूरा नहीं हो सकता।

समाजवाद, स्वतन्त्रता, विश्वास, स्वावलम्बन, शान्ति— ये ही वर्तमान समाजकी जीवन शक्तियां (Elemental forces) हैं। समाजकी असमानता, अविश्वास, अशान्ति और अराजकताको पुष्ट करनेवाली शक्तियोंका रहस्योद्घाटन करना ही कलाकारका सामाजिक कर्तव्य है। अतीत समाजके ध्वंसावशेषपर ही नवीन समाजकी प्रतिष्ठा होगी। इसलिए आधुनिक युगके कलाकारको अग्रगामी विचारधाराका समर्थक होना ही पड़ेगा।

वास्तवको समझना, वास्तविकताकी सृष्टि करना, मानवताको महान् आकांक्षाओंको अनुभव करके मानव-सभ्यताकी अग्रगतिमें सहायक होना ही कलाकारका कर्तव्य है। अपने पड़ोसी चीनसे हमें सबक लेना होगा। जापानी साम्राज्यवादके विरुद्ध संग्रामशील चीनी जनताकी शक्ति और उत्साहका उद्गम आधुनिक चीनी कलाकारोंकी रचनायें हैं। इस दायित्वकी अवहेलना करनेसे भविष्यका इतिहासकार उन्हें विश्वासघातक कहकर सम्बोधन करेगा।

नोकीली टोपी

श्री रामसरन शर्मा

गांववालोंकी भीड़। कायदेसे, चुपचाप बैठे हुए पुरुष। उनके पीछे सहमी हुई स्त्रियां। एक ओर गांवका मुखिया और चौकीदार। हाथोंमें मोटे डण्डे और मुखपर खुशामदकी झलक।

दो चार पुलिसके सिपाही भी।

आज आनरेबल सर छगनलालका व्याख्यान होनेवाला था। लाट साहबके मन्त्री, सूबेकी धारा-सभाके भारी-भरकम मेम्बर और जिलेके बड़े जमीन्दार।

सूबेमें कांग्रेसकी हार हो चुकी थी। इसलिए, हां इसीलिए, आज सर छगनलाल भैरोंपुरको कृतार्थ करने आये थे।

सहसा हलचल मच गयी। मुखिया और चौकीदार दौड़ पड़े। पुलिसके सिपाही खड़े हो गये।

अधढकी गांवकी नारियोंने खींच-तानकर अपनी तार-तार धोतियोंसे शरीर ढकनेकी कोशिश की।

भीड़ खड़ी हो गयी।

बच्चे भी सहमकर चुप हो गये।

सर छगनलाल मोटरसे उतरे। साथमें कलक्टर और कमिश्नर।

सर छगन—छोटे-से, मोटे-से आदमी। रङ्ग काला, मूंछें छोटी-छोटी। चालमें अकड़।

उन्होंने देखा उस भीड़को। विजय-गर्वसे खिल उठे। इसी गांवमें उन्होंने कांग्रेसियोंसे मोर्चा लिया था चुनावमें। बलासे पचास हजार खर्च हो गये तो क्या?

पर जमीन्दार कितने खुश हुए थे……गांधी टोपी-वालोंको कैसा नीचा…।

उन्होंने बोलना शुरू किया।

बोलना ही क्या था। नयी सरकारकी तारीफ, प्रधान मन्त्रीका गुणानुवाद, सरकारका राग और……किन्तु भीड़ बिलकुल सोंठ बनी बैठी थी।

कोई भसकता तक नहीं था। न शोर, न जय, न तालियां।

सर छगनलाल तवेके बैंगन हो गये।

उन्होंने कड़ककर कहा:—

"आज हमारे सूबेमें जमीन्दारोंका राज है। अगर कोई नोकीली टोपीवाला तुम्हें बहकावे, तो कह दो कि यहांसे चला जाय। अगर फिर भी न माने, तो जरा सख्त तरीका (हाथसे चांटा बनाकर) इस्तेमाल करो……।"

भीड़ फिर भी गुमसुम। क्या इन नोकीली टोपीवालों-का, गांधी टोपीवालोंका असर हो गया था?

उन्होंने जलती हुई निगाह मुखियापर डाली।

चौंककर, डरकर उसने चिल्लाकर कहा:—

"जमीन्दारी राजकी जय हो।"

भीड़ कुलमुलाकर रह गयी।

सर छगनलाल पसीने-पसीने हो गये। वह समझ रहे थे कि पीछे दो और जमीन्दार बैठे हुए हैं।

अगर उन्होंने समझ लिया कि खास सर साहबके गांवमें उनकी जय न बोली गयी, तो—?

भयसे वे कांप उठे।

× × ×

दूसरे दिन एसेम्बलीमें बड़ी हलचल थी। मगर सर छगनलाल भी अकड़े बैठे थे।

पहले दिनकी शर्मसे वह बड़े परेशान थे। आज…आज तो…गर्वसे वे फूल उठे।

होता ही क्या। थोड़े-से कांग्रेसी मेम्बरोंने हलचल मचायी, सवाल किये। सर छगनलालने हंसकर कहा कि उन्होंने ऐसा कहा था।

गर्वसे उन्होंने दर्शक गैलरीकी ओर देखा। कई जमीन्दार बैठे थे।

सन्तोषपूर्वक वे बैठ गये।

बेचारे कांग्रेसी झक मारकर चुप हो गये।

दूसरे दिनसे ही भैरोंपुरमें सर छगनलालका कोप प्रकट हुआ।

गिरफ्तारी, कुड़की, मारपीट, बेगार...जमीन्दारीके सभी शस्त्र काममें लाये जाने लगे।

उनके एक ही पुत्र था। रामचरन उसका नाम था।

बड़ा ही सीधा, हंसमुख और सुशील।

बी० ए० में पढ़ता था। सर छगनलाल देखते, तो सोचते, जरा बी० ए० कर ले, तो आई० सी० एस०...उनके मुखपर प्रसन्नताकी लाली दौड़ जाती थी।

एक दिन शामको चायसे उठे, तो देखा—देखकर हक्के-बक्के-से खड़े रह गये।

रामचरन सिरसे पैर तक खद्दर पहने खड़ा था।

वही मुस्कराता हुआ मुख...किन्तु अब सिरपर थी गांधी टोपी, नोकीली टोपी और बदनपर गाढ़ेका कुर्ता।

सर छगनलाल दो मिनट तक बोल ही न सके।

"यह क्या स्वांग बनाया है," उन्होंने कहा।

रामचरनने भी उनके तीवर देखा। सोचा, इस वक्त बात हंसीमें टाल देनी चाहिए।

"अब तो बाबूजी," उसने हंसते हुए कहा, "मैं यही पहनूंगा।"

और वह हंसता हुआ बाहर चला गया।

सर छगनलाल सीधे अन्दर पहुंचे।

"देखा तुमने अपने सुपुत्रका हाल," उन्होंने गुस्सेसे कहा।

"क्या ?" लेडी छगनलालने पूछा।

"क्या हुआ, मेरा सर। अब वह गाढ़ा पहनता है। कांग्रेसी हो गया जान पड़ता है।"

"तो यह सब," श्रीमतीजीने कहा, "तुम्हारे ही तो कर्तव्य हैं। जहां देखो, लोग तुम्हारी चर्चा किया करते हैं। न जाने क्या-क्या कहा करते हैं।"

सर छगनलालने गुस्सेसे जलकर कहा:—

"तो यह सब तुम्हारी ही शह है।"

"अब कुछ भी समझो। मुझसे तो सुना नहीं जाता। और तुमने भैरोंपुरमें क्या कर रखा है ?"

"एक-एककी खाल खिंचवा लूंगा," सर साहबने तिनक-कर कहा, "बुलायें न महात्मा गांधीको।"

श्रीमतीजीने एक बार उनकी ओर देखा और धीरेसे सांस लेकर जाने लगीं।

"देखो," सर साहबने आराम-कुर्सीपर बैठते हुए कहा, "अपने लाड़लेसे कह देना, मुझे यह सब पसन्द नहीं है।"

"तुम्हीं जो कह देना," कहकर श्रीमतीजी चली गयीं।

सर साहब बैठकर क्रोधसे होठ काटने लगे।

उन्होंने भी तय कर लिया था कि कहीं न जायेंगे। आज रामचरनके आनेपर ही इसका फैसला करेंगे।

उन्होंने घण्टी बजायी।

नौकर आया।

"देखो, भइयाजी हैं कि नहीं।"

"हुजूर," नौकरने कहा, "भइयाजी तो भैरोंपुर मीटिंगमें गये हैं।"

सर छगनलाल उछलकर खड़े हो गये।

"क्या कहा ?" उन्होंने गर्जकर पूछा।

नौकरने भयसे पीछे हटते हुए कहा, ।

"कह गये हैं ?" उन्होंने लड़खड़ाती जबानसे पूछा।

"जी हां।"

सर छगनलाल धमसे कुर्सीपर गिर गये।

आज भैरोंपुरमें कांग्रेसकी मीटिंग थी।

और आज ही......हां आज ही उन्होंने वहां पुलिसको शान्ति-रक्षाके लिए भिजवाया था। खास तौरसे।

उनके पसीना छूटने लगा। पुलिस...शान्ति-रक्षा...खास हुक्म।

अगर कहीं रामचरन भी गिरफ्तार...शायद डण्डे चले हों या गोली।

"मोटर लाओ।" उन्होंने चिल्लाकर कहा—

वह जायेंगे। अवश्य जायेंगे। फौरन्, इसी वक्त...कहीं देर न हो गयी हो।

भयभीत गृहिणीने पूछाः—

"क्या बात है, कहांको ?"

रुंधे गलेसे उन्होंने कहाः—

"लल्ला शायद—उफ—!" वे तेजीसे चले गये।

आध घण्टे बाद ही वह भैरोंपुर जा पहुंचे।

मौतका-सा सन्नाटा। पुलिसका जमघट। मकानोंमें अंधेरा।

पुलिस इन्सपेक्टरने आकर सलाम किया।

बड़ी मुश्किलसे उन्होंने पूछा:—

"वेल, क्या हुआ ?"

"हुजूर," उसने जवाब दिया, "चौबीस गिरफ्तारियां हुई और...।"

सर छगनलालने मोटरका दरवाजा पकड़ लिया।

"...और कुछ सरकश लोगोंको हमें मजबूरन् लाठियोंसे हटाना पड़ा।"

"कहां हैं वे ?"सर साहबने धीरेसे पूछा।

"अस्पतालमें।"

मोटर फिर उड़ी। हवाकी तरह।

उनका इकलौता बेटा। शायद सिर फूट गया होगा, या...शायद जेलमें ही हो।

मोटर और तेज चली।

यह कांग्रेसवाले जो करें, वह थोड़ा है।

उन्होंने एक्सलेरेटरको दबाते हुए तय किया कि वे अब रामचरनको फौरन् विलायत भेज देंगे। एकदम।

लेकिन आज...!

(३)

रामचरन हवालतमें बैठा था। गर्मी, बू और पथरीली जमीन।

बाबूजी क्या कर रहे होंगे, और मांजी। अच्छा, बाबूजी तो सुनकर बहुत ही बिगड़ेंगे। शायद कभी मुंह भी न देखें। और माताजी...

आज पुलिसने कितने डण्डे बरसाये थे। और गिरफ्तारियां। यह सब पिताजीका ही तो हुक्म था। ओह!

सहसा दरवाजा खुला।

सर छगनलालने प्रवेश किया। देखा रामचरनके बिखरे बाल, धूलमें सने हुए।

"बेटा," उन्होंने कहा।

"पिताजी," रामचरनने चरण पकड़ लिया। उसका गुस्सा गायब हो गया।

कितने परेशान थे पिताजी!

"यह क्या किया बेटा ?" सर छगनलालने चारों ओर देखते हुए कहा।

अंधेरी, सीली, कोठरी।

"कुछ तो नहीं, पिताजी," रामचरनने शान्तस्वरमें कहा, "मैंने अपना कर्तव्य ही पालन किया है।"

सर छगनलाल उसकी ओर देखते रह गये, कितना गर्वित, कैसा उज्ज्वल मुख था।

× × ×

रामचरनको हुई छः महीनेकी सजा।

दूसरे दिन अखबारोंमें था सर छगनलालका फोटो खादीके कपड़ोंमें और नोकीली टोपीमें।

उन्होंने वजारतसे इस्तीफा दे दिया था।

———



विजित राष्ट्रोंका लोमहर्षक बन्दी-जीवन !

श्री ब्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

प्राचीन आर्योंमें भीत, पलायमान आदि शत्रुओंपर आघात करना वर्जित था; पर हम यह ठीक-ठीक नहीं कह सकते कि रण-बन्दियोंको किस प्रकार रखा जाता था। मृतकोंकी अन्त्येष्टि धर्मानुसार की जाती थी। रावणकी मृत्युके उपरान्त विभीषणने कहा कि मैं ऐसे दुष्कर्मीका मृतक संस्कार नहीं करूंगा। रामचन्द्रने उसे डांटा और कहा—'मरणान्तानि वैराणि।'

यूरोपमें आजसे तीन सौ वर्ष पूर्व तक जो प्रथा प्रचलित थी, वह सर्वथा अमानुषिक थी। स्त्री-बच्चों तकको मार डालना क्षम्य ही नहीं, उचित समझा जाता था; सैनिकोंका तो कहना ही क्या। धीरे-धीरे अवस्था सुधरी। आचार्योंने यह सम्मति दी कि असैनिकोंके साथ तो छेड़छाड़ करनी ही न चाहिए। फिर धीरे-धीरे इस ओर ध्यान गया कि सैनिकोंके साथ भी अनावश्यक क्रूरता करना अनुचित है। यह सिद्धान्त भी मान लिया गया है; पर आवश्यक तथा अनावश्यक क्रूरताकी सीमा निर्धारित करना बहुत सरल नहीं है। इस विषयमें आपसमें मतभेद है। अतः जो नियम बने हैं, वे अधूरे हैं। पहले-पहल रूसके जार द्वितीय सिकन्दरकी उत्तेजनासे कुछ नियम सन् १८७४ में बने थे। इसके पीछे १८९९ और १९०७ के हेग-सम्मेलनोंमें इन्हींके आधारपर और विस्तृत नियमावलियां बनीं। इनमें जो बातें छूट गयी हैं, उनका तात्कालिक निर्णय तो उभयपक्षके सेनापति ही करते हैं; पर उनके निर्णयके लिए दायित्व उनकी सरकारोंपर होता है।

रणबन्दियोंके साथ जो बर्ताव होता है, उसमें और पहले समयके बर्तावमें भी आकाश-पातालका अन्तर है। पहले समयमें बन्दियोंको मार डालना असाधारण बात न थी। धनवान बन्दियोंका तो मूल्य बांध दिया जाता था। यदि वे अपने घरसे उतना रुपया मंगा सके, तो छोड़ दिये जाते थे। यदि दासोंकी संख्या अधिक हुई, तो उन्हें भेड़-बकरीकी भांति खुले बाजार बेच दिया करते थे। पीछेसे यह प्रथा चली कि जिस राज्यके सैनिक बन्दी होते थे, वह स्वयं उनके लिए रुपया देकर छुड़ा लिया करता था। इसके पीछे यह हुआ कि बराबरका बदला होने लगा, अर्थात् जितने बन्दी एक पक्ष छोड़ देता था, उतने दूसरा पक्ष भी छोड़ देता था। अब ऐसा प्रायः नहीं होता। जो लोग बन्दी बनाये जाते हैं, वे युद्धके अन्त तक बन्दी ही रहते हैं। युद्ध समाप्त होनेपर उन्हें घर पहुंचानेका यथासम्भव शीघ्र प्रबन्ध कर दिया जाता है। तब तक बन्दी सैनिकोंके साथ जो बर्ताव किया जाता है, वह बहुत ही उदार होता है। बन्दी जेलखानोंमें नहीं रखे जाते। उन्हें या तो किलोंके भीतर या अन्य सुरक्षित स्थानोंमें नजरबन्द कर देते हैं। उनकी निजी सम्पत्ति उनके पास ही रहती है; पर शस्त्र और सैनिक कागज ले लिये जाते हैं। यदि कोई बन्दी यह वचन दे कि मैं इस युद्ध-भर आपके विरुद्ध शस्त्र नहीं उठाऊंगा, तो उसे छोड़ भी सकते हैं; पर छोड़ना या न छोड़ना बन्दी करनेवाली सरकारपर निर्भर है। इस प्रकारके वचनोंको पैरोल कहते हैं। यदि कोई पैरोल देकर छूट जाय और शस्त्र धारण कर ले और फिर पकड़ा जाय, तो उसे प्राण-दण्ड तक दिया जा सकता है। यदि कोई रणबन्दी भागकर किसी तटस्थ देशकी सीमाके भीतर पहुंच जाय, तो वह मुक्त हो जाता है। यह भी नियम है कि बन्दी रखनेवाला राज्य बन्दी अफसरों और सैनिकोंको ठीक वही वेतन तथा भोजन-वस्त्र दे, जो वह उसी दर्जेके अपने अफसरों तथा सैनिकोंको देता है। कुछ उदार बड़े राज्य, जैसे ब्रिटेन, इसका सारा बोझ स्वयं उठाते हैं। अन्य राज्य युद्धके अन्तमें शत्रु-राज्यसे हिसाब करके सारा व्यय चुका लेते हैं। बन्दियोंके धार्मिक कृत्योंमें किसी तरहकी बाधा नहीं डाली जाती। सन् १९०२ में ब्रिटेनने अपने बोअर बन्दियोंके लिए, जो लङ्का और सेण्ट हेलेनामें बन्द थे, स्कूल खोले थे और विशेष रूपसे खेल-कूदका प्रबन्ध किया था। रूस-जापान-युद्धमें जापानियोंने रूसी बन्दियोंके लिए यूरोपियन ढङ्गका भोजन बनवानेके लिए बाहरसे रसोईदार बुलवाये थे।

बन्दियोंके घरसे रुपया नहीं आ सकता; पर खाना, कपड़ा, पुस्तकें या अन्य जो कुछ वस्तुयें आती हैं, उनपर

किसी प्रकारका आयात-कर, चुङ्गी या अन्य टैक्स नहीं लिया जाता। उन्हें अपने पत्रोंपर टिकट नहीं लगाने पड़ते।

जल-सेनाके लिए भी यही नियम है। सैनिक जहाजोंके सभी अफ़सर और नाविक रणबन्दी हो जाते हैं। व्यापारिक जहाजोंके नाविकोंसे लिखा लिया जाता है कि हम इस युद्ध-भर कोई युद्ध-सम्बन्धी काम नहीं करेंगे। यदि लिखना अस्वीकार हो, तो वे बन्दी किये जाते हैं, नहीं तो छोड़ दिये जाते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि इन नियमोंका उल्लङ्घन भी होता है। गत महायुद्धमें जर्मनोंपर बन्दियोंके साथ दुर्व्यवहार करनेके कठोर आरोप लगाये गये थे; फिर भी सौजन्यकी वृद्धि ही हो रही है। जिन लोगोंने जर्मनोंकी शिकायत की, उन्होंने ही तुर्कोंकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

× × ×

रोगियों और आहतोंकी भी अब पहलेसे कहीं अधिक अच्छी सेवा होती है। पहलेकी लड़ाइयोंमें आहतोंको लूट लेना तो साधारण बात थी। सिपाहियोंसे जो कुछ बचता था, उसे पास-पड़ोसके भिखमङ्गे और लुटेरे उठा ले जाते थे। सामान्य सिपाही चीलों, गिद्धों, कुत्तों और स्यारोंके शिकार होते थे। यूरोपमें पादरी लोग धार्मिक दृष्टिसे रोगियोंकी सेवा करते थे; पर सरकारी प्रबन्ध न होनेसे अकेले उनका प्रयत्न पर्याप्त नहीं होता था। आजकल प्रत्येक सभ्य सरकारके साथ बहुत-से चिकित्सक रहते हैं और पर्याप्त सामग्री रहती है।

सैनिक अस्पतालोंके लिए ईसाई देशोंमें जेनेवा क्रास या रेड क्रासका चिह्न रहता है। तुर्कीमें लाल अर्धचन्द्र रहता है। सम्भवतः स्वतन्त्र भारतमें लाल स्वस्तिक होगा। जमीन सफ़ेद होती है, उसीपर यह चिह्न बना होता है। अस्पतालोंके झण्डों, गाड़ियों और सन्दूकोंपर यही बना रहता है। उनमें काम करनेवालोंके बायें हाथपर एक पट्टी होती है, जिसपर यह चिह्न छपा रहता है।

यह तो स्थल-युद्धकी बातें हुईं। जल-युद्धमें भी प्रायः यही नियम काम देते हैं। अस्पताली जहाजोंके तीन भेद होते हैं। पहली कोटिके राजकीय जहाज होते हैं। इनका रङ्ग श्वेत होता है और बीचमें लगभग सवा गज चौड़ी एक आड़ी हरी पट्टी होती है। दूसरी कोटिके शत्रु-राज्यके कतिपय दयालु व्यक्तियों या सेवा-समितियोंके जहाज होते हैं। इनका रङ्ग भी श्वेत होता है और बीचमें लगभग सवा गज चौड़ी एक आड़ी लाल पट्टी होती है। उक्त दोनों प्रकारके जहाजोंपर सेवा-झण्डा और राष्ट्रीय झण्डा रहता है। इनके अतिरिक्त और भी कई नियम हैं; पर वे प्रायः अक्षरशः वैसे ही हैं, जैसे स्थल-युद्धके नियम हैं।

× × ×

पुराना नियम तो यह था कि युद्ध छिड़ते ही शत्रु-प्रजाकी अपने राज्यमें होनेवाली अचल सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी। इसके बाद धीरे-धीरे यह प्रथा चली कि जायदाद जब्त न की जाय; पर युद्ध-कालमें उसकी आय जब्त कर ली जाय। आजकल यह प्रथा भी क्रूर समझी जाती है। प्रचलित नियम यह है कि शत्रु-राज्यके प्रजावर्गीय शान्तिपूर्वक अपना-अपना काम करते रहें।

पहले चल सम्पत्ति भी अचल सम्पत्तिकी भांति ही जब्त कर लेनेका नियम था। पीछेसे सन्धियोंमें यह बात लिख दी जाने लगी कि यदि उभयपक्षमें कभी युद्ध छिड़ जाय, तो एक दूसरेके प्रजावर्गियोंको व्यापारिक चल सम्पत्ति हटा लेनेके लिए नियत अवकाश देंगे। इधर सौ वर्षसे अधिक हुए, किसी सभ्य राज्यने इस अधिकारसे काम नहीं लिया है। आजकल तो जब्त करनेका प्रश्न ही प्रायः नहीं उठता; क्योंकि शत्रु-प्रजाको युद्ध-कालमें बसने और व्यापार करनेकी बराबर अनुमति मिल जाती है।

बहुत पुराने समयमें सभी देशोंमें यह प्रथा थी कि शत्रुके गढ़ या पड़ावमें जो कुछ मिल सके या युद्ध-क्षेत्रमें हताहत शत्रुओंके शरीरपर जो कुछ मिले, वह लूटका माल समझा जाय और उसपर विजेताओंका पूर्ण अधिकार हो। परन्तु १८९९ ई० में हेग-सम्मेलनने इस प्रथाको कुत्सित ठहराकर कई नये नियम बनाये। इन नियमोंकी प्रथम परीक्षा रूस-जापान युद्धमें हुई। जापानने इसका पूर्णतया पालन किया। इस नियमके अनुसार युद्ध-क्षेत्रमें इन सैनिकोंकी जो कुछ निजी सम्पत्ति मिले, उसे विजेता संभालकर रखे और उन सैनिकोंके उत्तराधिकारियोंको लौटा दे। बन्दियोंके घोड़ों, शस्त्रों और सैनिक कागजोंके सिवा उनकी और किसी सम्पत्तिपर हाथ न डाला जाय।

यदि लूटके मालपर पूरे चौबीस घण्टे तक कब्जा न रहा

हो, तो वह कब्जा पक्का नहीं समझा जाता। यह प्रश्न उस समय उठता है, जब एक 'पक्ष' से लूटा हुआ माल फिर कुछ कालमें उसी पक्षके हाथ लग जाता है।

लूटका माल पहले समयमें लूटनेवाले सिपाहियोंमें बंट जाता था, हां राजकोष या इसी प्रकारकी अन्य बहुमूल्य वस्तुयें विजेता राज्यको मिलती थीं। आजकल यह सिद्धान्त है कि लूटका सारा माल राज्यका होता है। सिपाही जो कुछ करते हैं, उसकी ओरसे करते हैं और इसके लिए वेतन पाते हैं, अतः उन्हें अपने पास कुछ भी रखनेका अधिकार नहीं है। परन्तु रोकना बड़ा कठिन होता है। बहुत कुछ रह ही जाता है। अतः अब यह प्रथा चल पड़ी है कि युद्धारम्भके समय प्रत्येक राज्य अपने यहां यह घोषित कर देता है कि शत्रुसे लूटे हुए मालका बंटवारा किस प्रकार किया जायगा।

× × ×

जब एक राज्यकी सेना दूसरे राज्यके किसी अंशमें बलात् प्रवेश करके उसपर अधिकार कर लेती है, तो इस अधिकारके दो ही परिणाम हो सकते हैं। या तो सन्धि होनेपर यह प्रदेश विजेताके ही पास रह जाय या अपने पुराने स्वामीको पुनः मिल जाय। पर एक प्रश्न यह भी है कि जब तक सन्धि नहीं होती, तब तक आक्रमणकारी सेनाको, उसके प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए? प्राचीन कालकी प्रथा तो यह थी कि विजेताको यह अधिकार था कि वह जो चाहे सो करे। प्राचीन भारतमें निःसन्देह यह नियम था कि जन-साधारणके दैनिक जीवनमें किसी प्रकार बाधा न पहुंचायी जाय—इसे देखकर मुसलमान दङ्ग रह गये थे—परन्तु और किसी देश या समाजने इस सभ्य नियमको न अपनाया। भारतको भी अपने पड़ोसियोंकी असभ्यताका पूरा-पूरा स्वाद चखना पड़ा। महमूद गजनवी, तैमूर लङ्ग, नादिरशाह करोड़ोंकी सम्पत्ति ले गये। प्रजासे जो कुछ चूसा जा सके, चूस लेना न्याय समझा जाता था। पर विजेता अपने ऊपर विजित प्रदेशका भार नहीं लेता था। वह इतना ही चाहता था कि उसके साथ कोई छेड़छाड़ न करे। यदि कोई उसके किसी काममें बाधा डालता या उसके गौरवके विरुद्ध कोई आचरण करता, तो वह दण्डका भागी होता था। इसी नीतिके अनुसार एक फारसी सिपाहीकी हत्याके दण्डस्वरूप नादिरशाहने दिल्लीमें कत्लेआमकी आज्ञा दी थी।

यही अवस्था यूरोपमें भी थी। स्वयं ग्रोशिअसको लिखना पड़ा कि "युद्धमें प्रत्येकको यह अधिकार है कि शत्रुकी सम्पत्तिको जहां तक उसकी इच्छा हो, ले ले।" समय पाकर इस प्रथाकी भीषणता प्रतीत होने लगी। पर इसको रोकना कठिन था। क्योंकि सिपाहियों और छोटे अफसरोंका लालच राज्याज्ञाओंका पालन न होने देता था। ड्यूक आव वेलिङ्गटनको अपने ही कई सिपाहियोंको लूटनेके अपराधमें फांसी देनी पड़ी। यह तो नहीं कह सकते कि लूट अब पूर्णतया बन्द हो गयी है या अधिकृत प्रदेशके निवासी तङ्ग नहीं किये जाते; पर हां, पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक संयमसे काम लिया जाता है। सैनिक अधिकारीके स्वत्व और कर्तव्य दोनों ही परिमित कर दिये गये हैं। इस सीमाके बाहर जाना लोकमतकी दृष्टिसे हेय है।

× × ×

अधिकृत प्रदेशमें शत्रु-राज्य तथा जनसाधारणकी सम्पत्तिके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए, इसके लिए भी स्पष्ट नियम हैं। पहले राज्य-सम्पत्तिको लीजिये। इसके लिए हेगमें निम्नलिखित नियम स्वीकृत हुए थेः—

"मुल्कगीरी सेना केवल नकद रुपया, नोट, ऐसे विनिमय कागज, जो सचमुच राज्य-सम्पत्ति हों, शस्त्रागार, गमनागमनके साधन, अन्नादि-सञ्चय और साधारणतया राज्यकी सभी ऐसी चल सम्पत्तिपर, जो सैनिक काममें लगायी जा सकती है, कब्जा कर सकती है। उन अवस्थाओंको छोड़कर, जो नौ-सेना-विधानके अधीन हैं, समाचार भेजनेके सभी यन्त्र, मनुष्यों या वस्तुओंको जल, थल या वायुमार्गसे ले जानेके सभी साधन, शस्त्रागार और साधारणतः सब प्रकारकी सामरिक सामग्री छीनी जा सकती है, चाहे वह साधारण लोगोंकी ही सम्पत्ति क्यों न हो। परन्तु युद्ध समाप्त होनेपर उन्हें लौटा देना होगा और उनके लिए क्षति-द्रव्य देनी होगी। (१९०७ का हेग समय पत्र, ५३ वीं धारा)

"स्थानीय शासकोंकी सम्पत्ति और सार्वजनिक उपासना, दान, शिक्षा, विज्ञान और कला सम्बन्धी संस्थाओंकी सम्पत्ति राज-सम्पत्ति होते हुए भी नागरिकोंकी निजी सम्पत्ति मानी जायगी। इस प्रकारकी संस्थाओं या ऐति-

प्राचीन समाजका बर्बर स्वरूप

श्री विश्वनाथ सेठी, एम० एस-सी०

सभी समाजोंमें प्रायः एक बात समान रूपसे देखी जाती है कि सभी अपने-अपने पूर्वजोंकी कीर्ति-गाथा कहते नहीं अघाते ; और ऐसे लोगोंकी भी कमी नहीं है, जिनका ख्याल यह है कि मनुष्य पहलेकी अपेक्षा बहुत पतित हो गया

हैं। मनुष्य आज अपने जिन पूर्वजोंके अनुकरणके लिए समाजका आवाहन करता है, उनकी व्यवस्थामें मानव-धर्मका क्या स्थान था ?

उनकी सामाजिक व्यवस्थामें क्या तनिक भी दया-

हासिक स्मारकों या विज्ञान और कलाकी कृतियोंको नष्ट करना या जान-बूझकर किसी प्रकारकी क्षति पहुंचाना निषिद्ध है।" (सन् १९०७ का हेग पत्र, ५६ वीं धारा)

यह नियम स्पष्ट है। विजेता चल सम्पत्ति ले सकता है; परन्तु इस अधिकारमें भी कुछ अपवाद है। नेपोलियनके समयमें फ्रान्सकी सेनायें इटलीसे बहुत-से बहुमूल्य प्राचीन चित्र और मूर्तियां उठा लायी थीं। लेकिन जब सन् १८१९ में अन्तिम सन्धि हुई, तो फ्रान्सको ये वस्तुयें इटलीको लौटानी पड़ीं। पर यूरोपियन राजनीति एशियावालोंके साथ बर्तनेमें सभी नियमोंको भूल जाती है। सन् १९१२ के बक्सर युद्धमें जर्मन सेना चीनसे अत्यन्त प्राचीन कालके ज्योतिर्यन्त्र उठा ले गयी, पर आज तक किसीने जर्मन सरकारको इसके लिए विवश न किया कि वह इन्हें पुनः चीन पहुंचा दे।

गत यूरोपियन महायुद्धमें भी जर्मनोंने बेलजियममें कई अक्षम्य काम किये। कई प्राचीन गिर्जे, पुस्तकालय, विचित्रालय, विद्यालय, टाउन हाल इत्यादि नष्ट कर दिये गये।

प्रजा-सम्पत्तिके विषयमें साधारणतः ...

है और बहुधा स्थानीय सेनापतियोंके हाथमें होता है। इसलिए ऐसा कदाचित् ही कोई युद्ध होता होगा, जिसमें इनमेंसे कुछकी अवहेलना न होती हो। गत यूरोपीय महासमरमें इसके कई उदाहरण मिले और वर्तमान युद्धमें भी मिल रहे हैं। कहा जाता है कि गत महासमरमें जर्मन सरकारने अपने सेनापतियोंको यह निर्देश कर रखा था कि शत्रुकी न केवल सैनिक, किन्तु नैतिक और मानसिक शक्ति भी नष्ट कर दी जाय। इसीलिए अधिकृत प्रदेशोंमें प्रजापर भांति-भांतिके अमानुषिक अत्याचार किये गये। हम नहीं कह सकते कि यह आक्षेप कहां तक सत्य है।

यदि कोई राष्ट्र आत्मरक्षाके लिए अपने देशको उजाड़ कर दे, तो उसे कोई बुरा नहीं कह सकता। स्पेनसे स्वतन्त्र होनेके प्रयत्नमें डच लोगोंने बांध तोड़कर अपने देशका बहुत बड़ा भाग समुद्रके नीचे डुबा दिया। रूसवालोंने नेपोलियनको रोकनेके लिए सुविशाल मास्को नगरको फूंक डाला। महाराणा प्रतापने मेवाड़को उजाड़कर मुगल सेनाओंका

... पुरातन 'स्वर्ण-युग'का गान गाया करते हैं।

आजकी सामाजिक व्यवस्था तथा इसके विधानके सम्बन्धमें यहां कुछ लिखना इस लेखका उद्देश्य नहीं है, पर उस स्वर्ण-युगमें मानवने मानवको क्या बना रखा था, उसमें समाजका सङ्गठन कितने उदार मानव-धर्मके आधारपर किया गया था, इसके सम्बन्धमें कुछ बातें विचारणीय

और यह स्थिति उस समय तक चली आयी थी, जिस समय मानव जातिके बड़े-बड़े उपदेशकोंके उपदेश हो चुके थे, जिस समय समाजका परिष्कृत रूप स्पष्ट हो रहा था और मनुष्यको सुधारनेकी प्रवृत्ति सर्वत्र दिखाई पड़ रही थी। पर यह प्रवृत्ति भी कैसी थी कि मनुष्यने दूसरोंके सुधारके उन्मादमें अपना ऐसा हीन पतन कर लिया था कि बर्बरसे बर्बर और जघन्यसे जघन्य पाप करते हुए भी लज्जा

हो, तो वह कब्जा पक्का नहीं समझा जाता। यह प्रश्न उस समय उठता है, जब एक 'पक्ष' से लूटा हुआ माल फिर कुछ कालमें उसी पक्षके हाथ लग जाता है।

लूटका माल पहले समयमें लूटनेवाले सिपाहियोंमें बंट जाता था, हां राजकोष या इसी प्रकारकी अन्य बहुमूल्य वस्तुयें विजेता राज्यको मिलती थीं। आजकल यह सिद्धान्त है कि लूटका सारा माल राज्यका होता है।

हत्याके दण्डस्वरूप नादिरशाहने दिल्लीमें कत्लेआमकी आज्ञा दी थी।

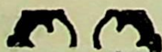
यही अवस्था यूरोपमें भी थी। स्वयं प्रोशिअसको लिखना पड़ा कि "युद्धमें प्रत्येकको यह अधिकार है कि शत्रुकी सम्पत्तिको जहां तक उसकी इच्छा हो, ले ले।" समय पाकर इस प्रथाकी भीषणता प्रतीत होने लगी। पर इसको रोकना कठिन था। क्योंकि सिपाहियों और छोटे अफसरों-

न तो इन्हें किसी प्रकारका शारीरिक कष्ट दिया जा सकता है और न बन्दी ही किया जा सकता है।

यदि लड़ाईके बीच कोई सेना श्वेत झण्डी दिखाये, तो यह समझा जाता है कि उसका आत्मसमर्पण करनेका विचार है। सेनाके मुख्य अध्यक्षकी आज्ञासे ही ऐसी झण्डी दिखलायी जा सकती है। यदि कोई सेना या दुर्ग, नौ-समूह या नगर लड़नेकी सामर्थ्य न रखता हो, तो वह आत्मसमर्पण कर देता है। आत्मसमर्पणकी शर्तें एक कागजपर लिखी जाती हैं, जिसे समर्पण-पत्र कहते हैं। सबसे श्रेष्ठ शर्त यह होती है कि सब सिपाही ससामरिक सम्मान चले जाने पायेंगे। इसका अर्थ यह है कि वे लोग शस्त्रसज्जित, झण्डा लिये और बाजा बजाते निकल जायेंगे। ऐसी शर्त बहुत कम मिलती है। कभी-कभी हारे हुए शत्रुकी वीरतासे प्रसन्न होकर उसे अच्छी और सम्मानसूचक शर्तें दे दी जाती हैं।

इसी तरह और भी अनेक युद्धकालीन विधान बनाये गये हैं, जिनको देखनेसे पता चलता है कि युद्ध ऐसी विकट वस्तुको इससे अधिक नरम बनाना बहुत कठिन है। मनुष्यकी स्वप्नोत्थित पाशविकताको अंकुश देनेके लिए ये नियम भी पर्याप्त हैं; परन्तु जड़ नियमोंमें कोई सामर्थ्य नहीं है। उनके पालन करनेवाले जैसे होंगे, उनका वैसा ही उपयोग करेंगे। प्रभावशाली लोकमत, सभ्यताका विकास, मनुष्यता और भ्रातृभावका प्रचार, सेनापतियोंकी दयाशीलता और सैनिकोंकी उदारता तथा सरकारोंकी सहानुभूति सब नियमोपनियमोंसे बढ़कर हैं।

———



पड़ा। महमूद गजनवी, तैमूर लङ्ग, नादिरशाह करोड़ोंकी सम्पत्ति ले गये। प्रजासे जो कुछ चूसा जा सके, चूस लेना न्याय समझा जाता था। पर विजेता अपने ऊपर विजित प्रदेशका भार नहीं लेता था। वह इतना ही चाहता था कि उसके साथ कोई छेड़छाड़ न करे। यदि कोई उसके किसी काममें बाधा डालता या उसके गौरवके विरुद्ध कोई आचरण करता, तो वह दण्डका भागी होता था। इसी नीतिके अनुसार एक फारसी सिपाहीकी

साधारण लोगोंकी ही सम्पत्ति क्यों न हो। परन्तु युद्ध समाप्त होनेपर उन्हें लौटा देना होगा और उनके लिए क्षति-द्रव्य देनी होगी। (१९०७ का हेग समद पत्र, ५३ वीं धारा)

"स्थानीय शासकोंकी सम्पत्ति और सार्वजनिक उपासना, दान, शिक्षा, विज्ञान और कला सम्बन्धी संस्थाओंकी सम्पत्ति राज-सम्पत्ति होते हुए भी नागरिकोंकी निजी सम्पत्ति मानी जायगी। इस प्रकारकी संस्थाओं या ऐति-

प्राचीन समाजका बर्बर स्वरूप

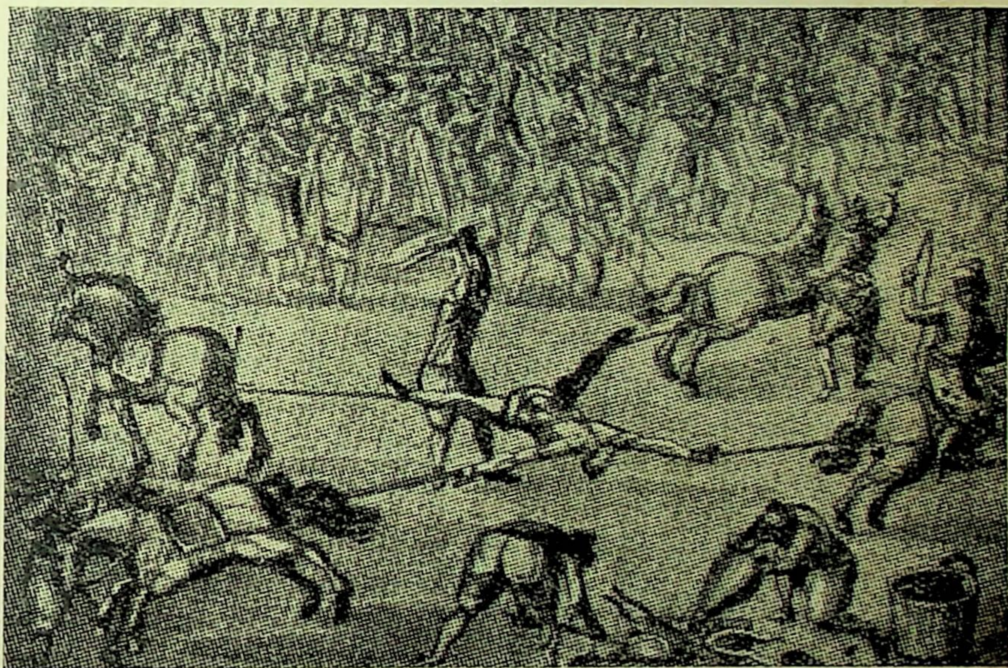
श्री विश्वनाथ सेठी, एम० एस-सी०

सभी समाजोंमें प्रायः एक बात समान रूपसे देखी जाती है कि सभी अपने-अपने पूर्वजोंकी कीर्ति-गाथा कहते नहीं अघाते ; और ऐसे लोगोंकी भी कमी नहीं है, जिनका ख्याल यह है कि मनुष्य पहलेकी अपेक्षा बहुत पतित हो गया है। पुरानी सामाजिक व्यवस्थाके प्रशंसक आजकी व्यवस्था-की बड़ी कटु आलोचना करते हैं और इसमें उन्हें त्रुटियां ही त्रुटियां दिखाई पड़ती हैं। प्राचीन समाजके दया-धर्मकी भी बड़ी प्रशंसा है और पूर्वजोंकी सहिष्णुता, उनकी उदार चित्त-वृत्तियों और उनके मानव-धर्मकी कहानियां कहते लोग नहीं अघाते।

वस्तुतः ये बातें क्या सच हैं? व्यक्तिविशेषकी बात जाने दें, सारे समाजकी व्यवस्था क्या इस प्रकार मानव-धर्मके अनुसार गठित और इसीके आधारपर उदारतापूर्वक सञ्चालित होती थी ? पापीसे नहीं, पापसे घृणा करो और पापीको समझा-बुझा-कर राहपर लाओ। इसके उपदेश दिये जाते हैं और आजकी सामाजिक व्यवस्थाको इसके अनुसार दोषपूर्ण मानकर इसे कोसनेवालोंका अभाव नहीं है। ऐसे लोगोंकी नजरमें प्राचीन सामाजिक व्यवस्था आदर्श थी और इसीलिए वे पुरातन 'स्वर्ण-युग'का गान गाया करते हैं।

आजकी सामाजिक व्यवस्था तथा इसके विधानके सम्बन्धमें यहां कुछ लिखना इस लेखका उद्देश्य नहीं है, पर उस स्वर्ण-युगमें मानवने मानवको क्या बना रखा था, उसमें समाजका सङ्गठन कितने उदार मानव-धर्मके आधार-पर किया गया था, इसके सम्बन्धमें कुछ बातें विचारणीय हैं। मनुष्य आज अपने जिन पूर्वजोंके अनुकरणके लिए समाजका आवाहन करता है, उनकी व्यवस्थामें मानव-धर्मका क्या स्थान था ?

उनकी सामाजिक व्यवस्थामें क्या तनिक भी दया-धर्मका स्थान था और मानव-धर्मकी क्या पग-पगपर अव-हेलना नहीं होती थी ? समाजमें असहिष्णुता इतनी अधिक थी कि साधारणसे साधारण अपराधोंके लिए भी ऐसे कठोर दण्डोंका विधान था कि उन्हें सुनकर भी कलेजा दहल जाय।



फ्रान्सके राजा हेनरी चतुर्थके हत्यारेको इस प्रकार:दण्ड दिया जा रहा है। पास हजारों तमाशबीन खड़े हैं।

और यह स्थिति उस समय तक चली आयी थी, जिस समय मानव जातिके बड़े-बड़े उपदेशकोंके उपदेश हो चुके थे, जिस समय समाजका परिष्कृत रूप स्पष्ट हो रहा था और मनुष्यको सुधारनेकी प्रवृत्ति सर्वत्र दिखाई पड़ रही थी। पर यह प्रवृत्ति भी कैसी थी कि मनुष्यने दूसरोंके सुधारके उन्मादमें अपना ऐसा हीन पतन कर लिया था कि बर्बरसे बर्बर और जघन्यसे जघन्य पाप करते हुए भी लज्जा



स्पेनमें जीते जी भून देनेका दण्ड देनेकी एक आम प्रणाली थी।

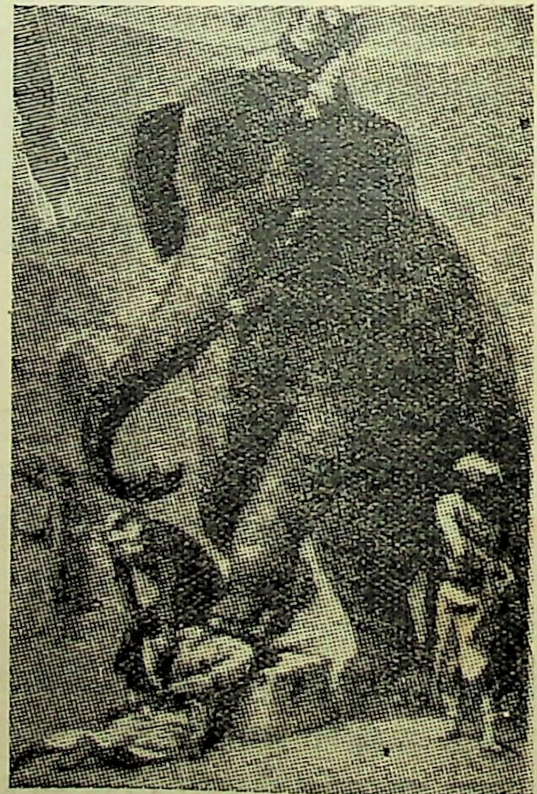
और सङ्कोचका अनुभव होनेकी जगह उसने ऐसा करनेमें गौरवका अनुभव किया।

ईसाइयों, मुसलमानों और हिन्दुओंके धर्म-ग्रन्थोंमें जहां पापों-अपराधोंका उल्लेख है, वहीं पापियों और अपराधियों-के लिए दण्ड-व्यवस्थाओंका भी उल्लेख है। हिन्दुओंके पुराणोंमें ऐसी कथायें हैं, जिनसे पाप करनेपर तरह-तरहके दण्डोंकी व्यवस्थायें मालूम होती हैं। मनु तथा दूसरे हिन्दू-कानूनके बनानेवालोंने ऐसी दण्ड-व्यवस्थाओंका उल्लेख किया है और उपाख्यानों और आख्यायिकाओंसे पता चलता है कि कैसे-कैसे अपराधोंके लिए कैसी-कैसी सजायें दी जाती थीं।

इसमें सन्देह नहीं कि ऐसी कठोर व्यवस्थाओंका उद्देश्य यह था कि ऐसे अपराध रोके जा सकें, पर जब 'आंखके लिए आंख और दांतके लिए दांत'की व्यवस्था हो, तब इसका उद्देश्य केवल निषेधात्मक ही नहीं हो सकता, इसमें प्रति-हिंसाकी भावना साफ दिखाई पड़ती है।

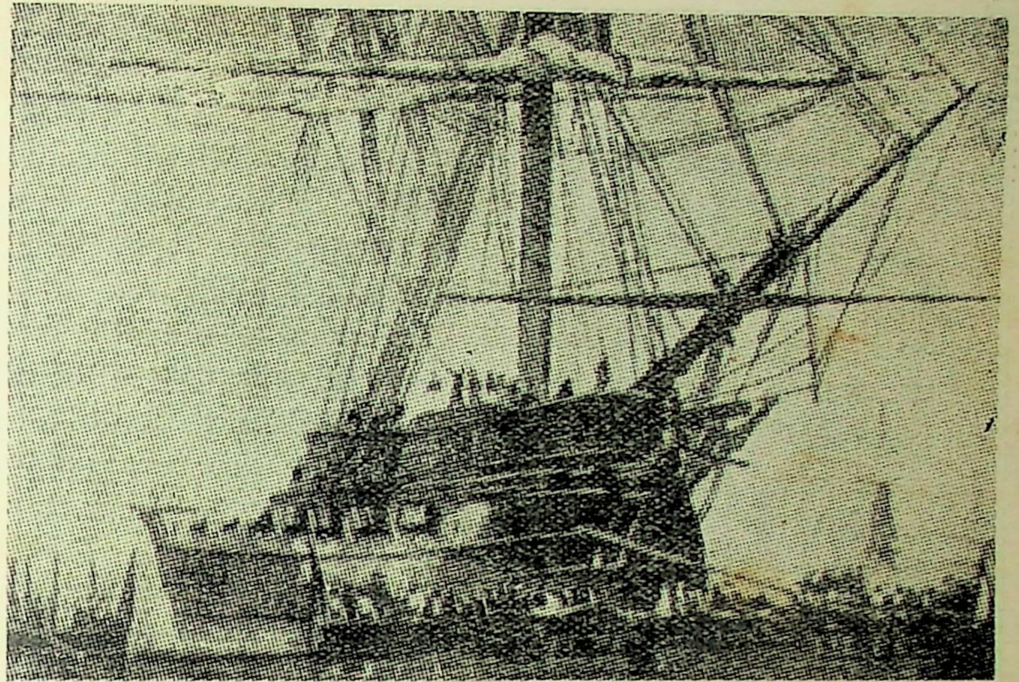
और यह प्रतिहिंसाकी भावना धर्म और ईश्वरके नामपर होनेवाले उन समस्त अत्याचारोंके भीतर दिखाई पड़ती है, जिनकी सैकड़ों दारुण कहानियां इतिहासके पृष्ठोंमें भरी पड़ी हैं। सैकड़ों व्यक्तियोंको जीते जी जला देना, दीवालमें जिन्दा चुनवा देना, उल्टे पांव पेड़में बांधकर लटका देना और साथ ही दाना-पानी एकदम बन्द कर देना, सरेआम कोड़े मारना और इस प्रकारके अत्याचारोंमें पाशविक आनन्द लेना, ये सब समाजकी प्राचीन दण्ड-व्यवस्थायें समय-समयपर रही हैं। जार्ज रैले स्काटने इस सम्बन्धमें विभिन्न समाजोंमें प्रचलित जैसी दण्ड-व्यवस्थाओंका जिक्र किया है, वे सर्वथा बर्बरतापूर्ण और मानव-धर्मसे हीन हैं। और मजा यह है कि इस प्रकारके पाशविक नियम अधिकांशतः ईश्वर और धर्मकी रक्षाके लिए बनाये गये थे।

प्राचीन कालमें समाजमें असहिष्णुता ऐसी थी और मानव-सभ्यता पशु-सभ्यतासे जब बहुत पृथक् नहीं थी और यह अवस्था उस समय तक थी, जिसे मध्य युग कहते हैं, तब मनुष्यको अपने भाई-बन्धुओंकी अपेक्षा ईश्वरकी अधिक चिन्ता थी और ईश्वर भी कैसा था कि एक सम्प्रदायके विश्वासके अनुकूल उसकी एक रूपरेखा थी और दूसरे सम्प्र-दायके अनुसार उससे भिन्न। इसीलिए दोनों सम्प्रदायोंमें प्रतिद्वन्द्विता चलती और पशु-बल जिसके पक्षमें अधिक होता.



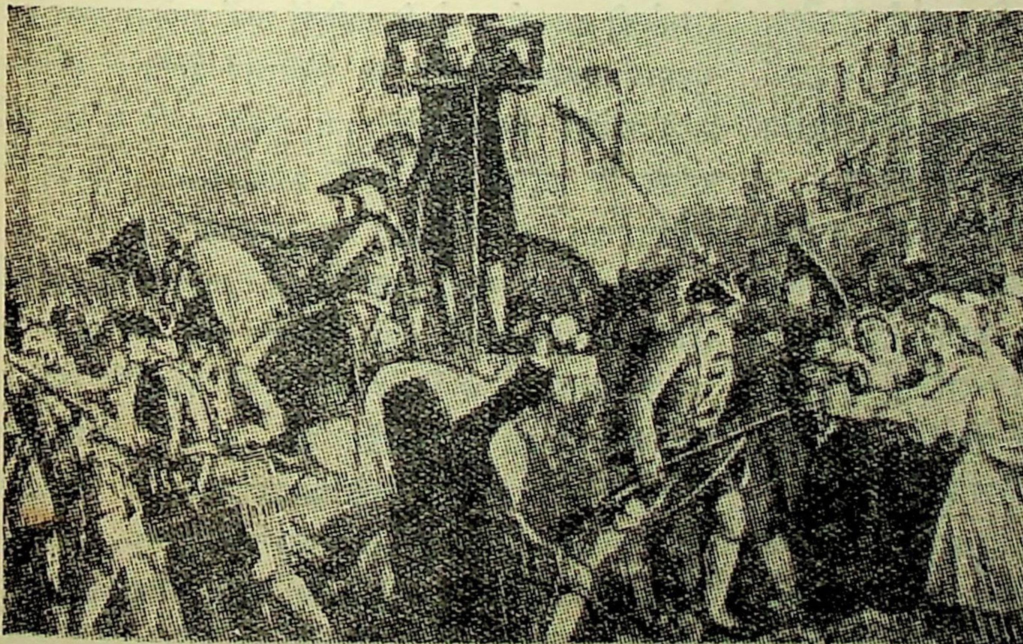
भारतमें अपराधीको हाथीके पैरों-तले कुचलवा देते थे।

वह सम्प्रदाय दूसरेपर हावी होता और तरह-तरहके अत्याचारोंका बाजार गर्म होता। न जाने कितने भक्त महात्माओं, कलाकारों और विचारकोंको जीते जी जलना पड़ा, कितनोंकी उंगलियोंमें आग लगाकर धीरे-धीरे जलनेके लिए छोड़ दिया गया और कितनोंको दीवारमें चुना गया। मनुष्यने अपनी मूर्खता और पशुताका ऐसा नग्न प्रदर्शन किया कि आज भी उसकी सन्तानोंका सिर लज्जासे झुकना चाहिए। और यह सब इसलिए किया गया, जिससे ईश्वर सुरक्षित रहे, स्वर्गमें रहनेवाले देवता असन्तुष्ट न हो जायं। इस प्रकार धर्म और ईश्वरको प्रसन्न करनेके लिए मनुष्य मनुष्यपर किसी तरहका भी अत्याचार करनेसे नहीं हिचकिचाया। मनुष्यने तरह-तरहकी यन्त्रणायें सोच निकालीं और उनके लिए तरह-तरहके यन्त्र भी उसने निकाले।



मस्तूलपर बांधकर अपराधीको दण्ड दिया जा रहा है।

जार्ज रैले स्काटने रोमन कैथलिक चर्च द्वारा चलायी जानेवाली (Inquisition) अदालतोंका जिक्र करते हुए लिखा है कि उक्त अदालतोंमें किस प्रकार अपराध स्वीकार करनेके लिए तरह-तरहकी यन्त्रणायें दी जाती थीं। चर्चके विरुद्ध किसीने बात कही नहीं कि उसपर आफतका पहाड़ टूट पड़ा। इसके लिए यह भी आवश्यक नहीं था कि जनतामें कोई ऐसी बातोंका प्रचार करे। घरमें भी बात करनेपर, अपने परिवारमें इस प्रकारके विषयोंकी चर्चा करनेपर आलोचक अपनेको सुरक्षित नहीं समझता था; क्योंकि सर्वत्र चर्चकी ओरसे गुप्तचरोंका जाल बिछा हुआ था और आपके मुंहसे बात निकली नहीं कि उसकी खबर चर्चमें पहुंची। एक बार आप चर्चके चंगुलमें फंसे नहीं कि छुटकारा पाना एकदम असम्भव हो जायगा। चर्चके विरुद्ध आप कुछ कहें



काठकी सन्दूकचीमें डालकर दण्ड देना इंगलैण्डमें आम तौरसे प्रचलित था। 'राबिन्सन क्रूसो'के लेखक डेनियल डीफोको इसी प्रकारका दण्ड दिया गया था।



चीनमें उंगलियोंके जोड़ तोड़ देनेका दण्ड आम तौरपर प्रचलित था।

या न कहें, केवल सन्देहजनक बातका मुंहसे निकल जाना ही आपको अदालतमें खड़ा कर देगा।

१२३३ में चर्चकी यह अदालत स्थापित हुई थी और इसे अपने दमन-चक्रमें ऐसी सफलता मिली कि जर्मनी, हालैण्ड, स्पेन, पुर्तगाल और फ्रान्स आदि देशोंमें ऐसी अदालतें स्थापित हो गयीं और मत-मतान्तरोंका साधारण विरोध भी भीषण अत्याचारोंके लिए द्वार उन्मुक्त करने लगा।

ये अदालतें बड़ी आलीशान इमारतोंमें होतीं, क्योंकि अदालतोंमें केवल मामले तो सुने नहीं जाते थे, मामला सुननेवाले न्यायाधीशोंके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्या दर्शकोंकी होती और उन दर्शकोंमें राजे-रानियां भी होतीं, बड़े-बड़े सामन्त और सेठ यह दृश्य देखनेको एकत्र होते, क्योंकि दण्ड देनेका तरीका इतना अनोखा और विभीषिका-का कार्य होता कि दर्शकोंको रोमाञ्च हो आता। लोगोंकी दिलचस्पी मामलोंमें होती। "किसीकी जान जाती है, किसीका दिल बहलता है" का सवाल था। कई उपन्यास-कारोंने ऐसी घटनाओंका उल्लेख किया है और लिटनने उस समयका वर्णन अपने उपन्यास 'लास्ट डेज आव पम्पि-आई'में बड़े आकर्षक ढङ्गसे किया है, जब अपराधीको सिंहके सामने निरस्त्र डाल देनेके सम्बन्धमें नागरिकोंमें उत्साह दिखाई पड़ता था। मनुष्य इतना सभ्य और सुसंस्कृत न था कि ऐसे क्रूर कार्योंके प्रति उसकी वितृष्णा हो।

लेकिन अदालतोंकी इन शाही इमारतोंसे उन काल-कोठरियोंकी तुलना ही क्या, जिनमें कैदी अपने विचाराधीन दिनोंमें रखे जाते थे। नन्हीं-नन्हीं अन्धकूप-सी इन कोठरियोंकी हालत विचित्र थी। इनकी गन्दगीका कहना ही क्या, पाससे निकल जाइये तो दुर्गन्धसे नाक फटने लगे। उन्हें बहुत ही रद्दी खाना मिलता और वह भी भर-पेट नहीं। उन्हें बोलनेकी तनिक भी आज्ञा नहीं थी और इस प्रकारके निषेधोंका साधारण उल्लङ्घन भी उन्हें कठोर यन्त्रणाओंमें डाल देता था।

गिरफ्तार करके काल-कोठरीमें डाल देनेपर महीनों मामलेकी सुनवाई न होती, महीनों उन्हें इसी तरहका जीवन चुपचाप भाग्यको कोसते हुए बिताना पड़ता। अदालतमें लाये जानेपर अपराधीको सत्य कहने तथा पवित्र चर्चके रहस्य न उद्घाटन करनेके लिए कहा जाता। अभियोग स्वीकार कर लेनेपर मामला आगे बढ़ता।

अगर उसने स्वीकार कर लिया, तब तो कठोरसे कठोर सजायें जो मिल सकती थीं, मिलती थीं, पर अगर उसने अपराध स्वीकार न किया—और निरपराधोंके लिए अपराध स्वीकार कर लेना कठिन था—तो उसे तरह-तरहकी यन्त्रणायें दी जाती थीं। पहले यन्त्रणाओंके लिए धमकी दी जाती थी और वह धमकी ही कुछ ऐसी होती थी कि अपराधीका कलेजा दहला देती; परन्तु अगर फिर भी अपराध स्वीकार नहीं किया गया, तो उसे एक ऐसी अंधेरी कोठरीमें डाल दिया जाता था जिसमें एक भी खिड़की न होती और दो मोमबत्तियोंके धुंधले प्रकाशके अतिरिक्त

और कोई व्यवस्था न होती। फिर उनपर कोड़ोंकी मार पड़ती। बूढ़े पुरुषों और तरुणियों—किसीकी इज्जत-आबरू-की परवाह न की जाती, चाहे जहां कोड़े बरसते और शरीर-की चमड़ी तक निकल आती। नाखूनोंमें सुई चुभोना, उंगलीमें कपड़े लपेटकर तेल लगाकर उसमें आग लगा देना, लकड़ीके तख्तोंपर सुलाकर, हाथ-पांव फैलाकर अलग-अलग बांध देना, चाकूसे शरीरका मांस थोड़ा-थोड़ा करके निकालना—इस प्रकारकी कितनी ही यन्त्रणायें मनुष्यको दी जाती थीं, जिससे वे अपना दोष स्वीकार कर लें; परन्तु ऐसे भी व्यक्ति देखे गये, जिन्होंने ऐसी अनेक यन्त्रणाओंके बाद भी जबान नहीं खोली और यद्यपि कितने ही कुत्तेकी मौत मार डाले गये, परन्तु उन्होंने जो कुछ कहा था, उससे मुंह नहीं मोड़ा। ऐसे सिद्धान्तवादियोंकी संख्या इतिहासमें कम नहीं है जो फांसीपर लटक गये, लेकिन अत्याचारोंके सामने उन्होंने घुटने नहीं टेके। कई बार ऐसे लोगोंको हजारों तमाशबीनों-के सामने जीते जी चितापर जला दिया गया है। रैलेने लिखा है कि धर्मध्वजियोंने ऐसी व्यवस्था बना रखी थी कि पांच सौ वर्ष तक रोमन कैथलिक चर्चसे मतभेद रखना प्राणोंसे हाथ धोनेके बराबर था। तनिक-सी सहिष्णुता धर्मध्वजियोंमें न थी। सारा व्यापार ईश्वर और धर्मके नाम-पर चलाया जाता था, इसीलिए विरोधका साहस किसीमें न था।

जो दशा रोमन कैथलिक चर्च और उसके अन्तर्गत स्थापित अदालतोंकी थी, वैसी ही थोड़े बहुत हेरफेरके साथ दूसरे धर्मानुयायियोंने भी कर रखी थी। एक बहुत ही लम्बी अवधि तक अत्याचारके रूपमें धर्म-प्रचारका यह स्वार्थमय ढोंग चलता रहा और सभी देशोंमें विभिन्न धर्मावलम्बियों-की रूह कांपती रहती। सारा जीवन सदा एक भय और आशङ्काकी स्थितिमें काटना पड़ता। मनुष्यने मनुष्यका रक्त-पात जब इस रूपमें करना आरम्भ कर दिया था, तब मानव-धर्म और भाईचारेका नाता कैसे बन पाता?

पापीके साथ समाजका व्यवहार कैसा होता है, समाज-में विरोधीके प्रति कितनी प्रतिहिंसा और समाजमें एक-दूसरेकी भावनाओंके पारस्परिक आचरण—यह सब बातें ऐसी हैं जिनके आधारपर समाजकी संस्कृतिका कुछ पता लगता है और इस आधारपर समाजका प्राचीन इतिहास अनेक बर्बरताओंसे भरा हुआ है, जिसके कुछ नमूने वर्तमान लेखमें दिये गये हैं। प्राचीन समाजका यह बर्बर स्वरूप कलेजा कंपा देनेवाला है।

———

गीत

जब खुले रूपके मदिर नयन।

छाया वसन्त, जग डोल उठा;
अमराईमें पिक बोल उठा;
तरु-लता-कुसुम हंस फूल उठे,
कन-कनने पाया नव-जीवन!
जब खुले रूपके मदिर नयन।

मनका वासी आ दृग झूला;
मैं रूप-अरूप सभी भूला;
भू-नभ दिशि-दिशिमें विहंस उठा,
युग-युगका परिचित आकर्षन!
जब खुले रूपके मदिर नयन!

प्रति रोम हंसा, हंस झूम उठा;
मैं शीश झुका, पद चूम उठा;
मनमें पूजाके भाव जगे,
नयनोंमें अविकल छवि-दर्शन!
जब खुले रूपके मदिर नयन!

—नर्मदाप्रसाद खरे

हिटलर और मुसोलिनीकी भावी योजना

श्री रामाधीन अग्निहोत्री, बी० ए०, बी० टी०

प्रजातन्त्र फ्रान्सके पतनके बाद निराशावादी लोगोंने प्रजासत्तात्मक राज्यके एकमात्र धनी-धोरी ग्रेट ब्रिटेनका ध्वंस भी निकट-भविष्यमें होना ध्रुव समझ लिया था। जर्मनीने विजयका हर्ष मनाकर कुछ समयके पश्चात् ही अपने अन्तिम शत्रु ब्रिटेनपर तूफानी हवाई हमले करने शुरू कर दिये और चाहा कि चन्द दिनोंमें ही इंगलैण्डका तहस-नहस कर डाले। इन विध्वंसकारी आक्रमणोंसे यद्यपि इंगलैण्डको भारी जन-धनकी हानि उठानी पड़ी, तथापि हिटलर निश्चित समयके अन्दर न तो अपने प्रथम श्रेणीके बैरीको पराभूत ही कर सका और न संसारको चिरस्थायी शान्ति ही प्रदान कर सका। हिटलरने एक प्रकारसे हिम्मत हारकर इंगलैण्डकी लड़ाई कमसे कम कुछ कालके लिए बन्द-सी कर दी है। हाल ही में हिटलर और मुसोलिनीने दोनों देशोंके सीमान्तपर स्थित ब्रेनर दर्रापर एक-दूसरेसे भेंट की और सम्भवतः भावी योजनापर परामर्श किया, जिसका दिग्दर्शन इस लेखमें कराया जायेगा।

मुसोलिनीसे मिलनेके कुछ दिन बाद ही हर हिटलरने ४५०० चुने हुए अनुभवी जर्मन सैनिकों तथा सेनानियोंकी एक टुकड़ी रूमानिया भेज दी। ब्रिटेनसे सहानुभूति रखनेवाले देशोंने इस कार्यकी कटु आलोचना की, और इसमें बर्लिनके तानाशाहके छद्मवेशका आभास देखा। इसपर जर्मनीके वैदेशिक विभागने अपने कार्यके औचित्यकी पुष्टि जोरदार शब्दोंमें की। 'वियनाके खरीते' के अनुसार हिटलरने रूमानियाके बचे-खुचे प्रदेशकी रक्षा करनेकी भीष्म-प्रतिज्ञा की थी। वह इंगलैण्डकी भांति खोखली गारण्टी देना नहीं जानता, उसे कार्यान्वित करनेकी क्षमता भी रखता है। उसे अपनी गारण्टीका पूरा ध्यान है, अपने शरणागतकी मान-मर्यादाकी रक्षाके उत्तरदायित्व और रूमानियाके दधीची त्यागके लिए सच्ची सहानुभूति है! कुछ भी हो, जर्मनीके वैदेशिक मन्त्री हर वान रिबनट्रापका यह वाग्जाल सभ्य संसारको भुलावेमें नहीं डाल सकता, सत्यतापर पर्दा नहीं डाल सकता। सचाई तो यह है कि जर्मन फौजें केवल रूमानियाके खनिज-तैलके कुंओंकी रक्षा, वहांकी सेनाओंका पुनर्सङ्गठन तथा नवीन युद्ध-प्रणालीमें शिक्षित करनेके लिए नहीं भेजी गयी हैं, वरन् निस्सहाय रूमानियाको 'संरक्षण' प्रदान करनेके हेतु। पर ध्यान रहे, उस बेचारेने स्वप्नमें भी इस आशयकी याचना नहीं की थी। युद्धको अनिश्चित काल तक जारी रखनेके लिए हिटलर रूमानियाकी सम्पूर्ण उपजपर अपना एकाधिपत्य चाहता है। वह यह नहीं चाहता था कि कोई दूसरा उसकी चिर-वाञ्छित 'अंगूरोंकी वाटिका' पर अपना स्वत्व जमा ले।

यहां एक विचारणीय प्रश्न यह है कि जर्मन सेनायें किस तटस्थ देशकी तटस्थताको भङ्ग कर रूमानियामें पहुंचीं। जर्मनीका साहस नहीं कि वह अपनी फौजें रूसकी भूमिसे भेजता, और न रूस ही इस अतिक्रमणको गवारा कर सकता था। अतः यह निश्चय है कि जर्मन सैनिक हंगरीके रूथेनिया प्रान्त, जिसे उसने जेकोस्लोवेकियाके छिन्न-भिन्न होनेके समय आत्मसात् कर लेनेकी भारी भूल की थी, और ट्रान्सिलवेनिया होकर, जिसकी वापसी हिटलर एवं मुसोलिनीकी कृपाका फल है, रूमानियाकी राजधानी बुखारेस्ट पहुंचे होंगे। निर्बल हंगरी तटस्थताका स्वांग कहां तक रच सकता है। क्या उसके सम्मुख नार्वे, हालैण्ड और बेलजियमका जीता-जागता उदाहरण नहीं है? वह भली भांति इस बातसे परिचित है कि उन दुर्बल व्यक्तियों और देशोंकी क्या दुर्दशा होती है, जो भूलकर भी उन्मत्त हिटलरकी महत्त्वाकांक्षाओंके पथमें रुकावट पैदा करते हैं; और सम्भवतः हंगरीका अनुभव हिटलरके अन्य मित्रोंसे भिन्न नहीं हो सकता। जिन कारणोंने हिटलरको पोलैण्डसे 'कोराइडर' होकर पूर्वी प्रशामें जानेके अधिकारकी मांग करनेके लिए बाध्य किया था, वही कारण आवश्यकता पड़नेपर उसे हंगरीके समक्ष भी अपनी मांग पेश करनेके लिए लाचार कर सकते हैं।

रूमानियाका अधिकार ब्रेनर दर्रामें होनेवाली दो तानाशाहोंकी भेंटका सम्भवतः पहला फल है। बाल्कन देशोंकी ओर

अग्रसर होकर क्या इटली भी जर्मनीकी नीतिका अनुसरण करेगा, अभी तक यह बात निश्चित नहीं है। परन्तु यह ध्रुव निश्चय है कि रूमानियाका कब्जा बर्लिन-रोम धुरीकी बाल्कन राज्य-सम्बन्धी योजनाका केवल श्रीगणेश है, अन्त नहीं। जहां तक रूसका सम्बन्ध है, चाहे वह कालासागरमें जर्मनीके प्रभुत्वको रत्तीमात्र भी पसन्द न करता हो, स्टैलिनको अपने नये मित्र हिटलरकी चालें तब तक सहन करनी पड़ेंगी, जब तक कि वे पूर्णतया उसके लिए असह्य न हो जायं। रही बलगेरियाकी बात। वह अपनी रक्षाके लिए हिटलरके इच्छानुसार आचरण करनेकी चेष्टा करता रहेगा, और साथ ही नात्सी बन्दूकोंकी छायामें पूर्ण स्वतन्त्रताकी बाह्य रूपरेखा बनाये रखनेकी भी। रूमानियामें घटित घटनाओं द्वारा टर्की सबसे अधिक सतर्क हो गया है। उसके इन भावोंमें तथ्य है। बासफोरस और डार्डेनलीज दो जलडमरूमध्योंके रक्षक होनेके कारण वह किसी भी समय जर्मनी द्वारा उत्पीड़ित किया जा सकता है। परन्तु यहांपर एक ध्यानमें रखने योग्य बात है। काले सागरमें जर्मनीकी उपस्थिति जर्मनीके लिए तभी लाभदायक सिद्ध हो सकती है, जब वह रूमानियाकी उपजको पूर्वी भूमध्यसागर द्वारा स्वदेश भेज सके। परन्तु जब तक ब्रिटिश जहाजी बेड़ा पूर्वी रूमसागरमें शक्तिशाली है, तब तक इस कार्यका सफल सम्पादन असम्भव है।

इधर इटलीने दक्षिणी यूरोपमें यूनान-अलबानियाके सीमान्तपर अपनी फौजोंका जमघट कर रखा है। उनका लक्ष्य 'एक पन्थ और तीन काज' सम्पादन करना है। वे एक साथ ही यूनानको चकनाचूर कर देना, यूगोस्लेवियाके स्वातन्त्र्य-जीवनका अस्तित्व मिटा देना और आगे बढ़कर यूरोपीय टर्कीको उदरस्थ कर लेना है। हाल ही में मुसोलिनीने लीबिया-स्थित तीन लाख इटैलियन सेनाओंके सेनानी जनरल ग्रैजियानीको हुक्म दे दिया है कि वह हानिकी कुछ भी चिन्ता न कर पुनः मिश्रपर भीषण आक्रमण करें। एक ओर मुसोलिनी और हिटलरकी विस्तार-सम्बन्धी योजनायें कार्यान्वित हो रही हैं, और दूसरी ओर स्टैलिन बिलकुल खामोश बैठा है। ऐसी दशामें विचारपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या रूस बाल्कन राज्योंमें जर्मनीके प्रवेशके खिलाफ है ? अथवा जर्मनी अपनी बाल्कन-योजनाको बिना रूसकी पूर्व-अनुमतिके कार्य-रूपमें परिणत कर रहा है ? जर्मनीके विपक्षी देशोंके प्रेसमें इन अहम सवालोंका जवाब 'हां'में दिया जा रहा है ; और आये दिन वहांके दैनिक पत्रोंमें शीघ्र ही रूसकी 'लाल सेनाओं' और जर्मनीकी 'तूफानी सेनाओं'के मध्य भीषण युद्ध छिड़ जानेकी अत्यधिक सम्भावना दिखायी जा रही है। पर ध्यान रहे कि युद्ध-कालमें प्रोपेगैण्डा-स्वरूप जनतामें फैलायी हुई कहानियोंमें सत्यके स्थानमें अतिशयोक्ति अधिक पायी जाती है। इस कथनके अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। 'जर्मन-रूस अनाक्रमण-सन्धि'की यह विशद योजना है, जिसके फलस्वरूप रूस बाल्टिक राज्य —लिथुआनिया, लटविया और इस्टोनिया—पोलैण्ड और रूमानियाके विशाल भू-भाग प्राप्त कर सका, और जिसके अनुसार हिटलर पूर्वी मोर्चेसे निश्चिन्त होकर अपनी समूची ताकत अकथनीय लाभके साथ पश्चिमी मोर्चेपर जुटा सका। यहां यह भी सोचना भारी भूल है कि मो० स्टैलिन पूंजीवादी पाश्चात्य देशों और उनके साम्राज्यवादकी अपेक्षा नाजी हिटलरको अधिक नापसन्द करता है। अब प्रश्न यह है कि क्या बाल्कन राज्य एक-एक करके अथवा सामूहिक रूपसे अपनेको यूरोपकी षड्यन्त्रकारी शक्तियों द्वारा अपनी कब्र खोदनेके साधन बन जाने देंगे ? सम्प्रति एक दूसरेके प्रति उनमें गहरा अविश्वास है। इन देशोंको एक सूत्रमें बांधनेवाला 'बाल्कन राष्ट्रोंका पारस्परिक सहायता सम्बन्धी समझौता' छिन्न-भिन्न हो चुका है। बलगेरियाकी कर्तव्यहीनता तथा टर्कीकी अतत्परताने ही इस समझौतेको असमयमें कालकवलित हो जाने दिया है। टर्की इस समय अत्यन्त सुन्दर नीतिका अनुसरण कर रहा है। एक ओर रूस तथा ब्रिटेनसे उसका मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध है और दूसरी ओर इटली तथा जर्मनीसे भी बैर नहीं। यदि सौभाग्यवश टर्की सुन्दर स्थितिका अधिकारी है, तो दुर्भाग्यवश रोमाञ्चकारी भयोंसे पीड़ित भी है। यदि रूसी राहुकी शनिदृष्टि हो जाये, तो ब्रिटेनकी अधिकाधिक सहायताके होते हुए भी टर्कीका अन्त हो जाये।

इटली, जो जर्मनी द्वारा रूमानियामें सम्पादित कार्यकी पुनरावृत्तिके लिए तुला हुआ बैठा है, यूनानको अशक्त करनेके लिए अपना कदम आगे बढ़ायेगा। चूंकि इटली भूमध्यसागरमें ब्रिटेनकी समुद्री शक्तिको सचेष्ट होनेपर भी

बरबाद न कर सका, अतः सामरिक दृष्टिसे उसके लिए यह परमावश्यक है कि वह यूनानके मार्गसे यूगोस्लेवियाको पहुंचनेवाली ब्रिटिश सहायताको जिस प्रकार हो सके, बन्द कर दे। इसके अतिरिक्त 'काफू' और 'क्रीट'के द्वीप इटलीको निमन्त्रित कर रहे हैं। यूनान तथा रूमसागरीय द्वीप-शृङ्खला एक सुन्दर सोपानके निर्माणकर्ता हैं, जिनसे होकर उसकी सेनायें मिश्रके प्राचीन पिरामिडोंपर आरोहण कर सकती हैं, और इस प्रकार जल और थल द्वारा 'निकट तथा मध्य-पूर्व'में युद्धकी विकरालता बढ़ायी जा सकती है। अतः यह स्पष्ट है कि जर्मनीकी सहायतासे इटलीको पहले यूनान और फिर यूगोस्लेवियापर धावा करना होगा, और इस प्रकार उनके स्वतन्त्र गलोंमें परतन्त्रताकी तौकें पहनानी पड़ेंगी।

इस लूट-खसोटके निन्द्य कार्यमें शामिल होनेके लिए बलगेरियाको स्वतन्त्र मैसीडोनियाका लालच दिया जा रहा है। अपने पड़ोसियोंको समय आनेपर धोखा दे देनेके सिलेमें उससे ईजियन सागरका पृष्ठभाग दे देनेका वादा किया जा रहा है। भला वह अपने शुभचिन्तकोंके प्रति कृतघ्नी कैसे बन सकता है। दक्षिणी डोब्रूजा हाल ही में उसे हिटलर और मुसोलिनीकी दयासे वापस मिला है। वहांका बादशाह बोरिस इन तानाशाहों द्वारा प्रदानित दक्षिणमें भू-भाग पाकर अवश्य ही प्रसन्न होगा।

यूनान इस समय एक प्रकारसे सुअवसरवादियोंका क्रीड़ास्थल बन गया है। 'मेटाक्सस'का आध्यात्मिक गुरु बर्लिन है, परन्तु सच्चे फासिस्टोंकी भांति वह पक्का देशभक्त है। रोम-बर्लिन धुरीके अनुचित दबाव पड़नेपर भी उसने वीरतापूर्वक 'ब्रिटिश गारण्टी'को त्याग देनेसे साफ-साफ इनकार कर दिया है। यूनानकी परिस्थिति सचमुचमें ही बड़ी विचित्र हो जाये, यदि एक ओरसे ब्रिटेन यूनानके बिना याचना किये ही अपने स्वार्थोंकी रक्षाके लिए अपनी गारण्टी-की पूर्ति करना चाहे, और दूसरी ओर जर्मनी तथा इटली अपनी पूरी ताकतसे स्थलसे हमला कर दें, जहां ब्रिटिश जहाजी बेड़ा अपने मित्रकी सहायता करनेमें निरर्थक हो। निर्बल यूनानके सहायतार्थ जानेमें टर्कीको केवल काफी कठिनाइयोंका सामना करने ही नहीं, वरन् आपत्तिके पहाड़के टूट पड़नेकी भी भारी आशङ्का है। कुछ भी हो, मालूम होता है, यूनानके स्वातन्त्र्य-जीवनकी घड़ियां पूरी हो गयी हैं, और अब उसके भाग्यका निपटारा किसी भी क्षण हो सकता है।

यूनानके पतनके साथ ही साथ बाल्कन प्रायद्वीपके निकटवर्ती देशोंमें भी विचित्र घटनायें घटित हुए बिना रह नहीं सकतीं। मास्को-अङ्कारा धुरीके लिए यह समय विकट परीक्षाकाल होगा, और उससे भी बढ़कर मास्को-बर्लिन-रोम त्रिगुटके लिए। यह भी सम्भव है कि समस्त बाल्कन राज्योंको पराजित करके दोनों तानाशाह रूस और टर्कीकी अनुमति लेकर लाभके आधारपर इन देशोंके अन्तर्राष्ट्रीय-करण द्वारा, तथा दोनों जलडमरूमध्योंको टर्कीके नाममात्र प्रभुत्वमें रखकर सभी राष्ट्रोंके लिए खुला हुआ जलमार्ग घोषित कर संसारको चकित कर दें। इस प्रकारके आदान-प्रदानके व्यापारमें रूसको मुंहमांगी कीमत हाथ लग जायेगी, टर्कीकी स्वतन्त्रता नष्ट होनेसे बच जायेगी और दुर्दान्त तानाशाहोंको भी अभीष्ट पुरस्कार मिल जायेगा।

स्पेनको रोम-बर्लिन धुरीमें घसीटनेका प्रयत्न

स्पेनके वैदेशिक मन्त्री तथा जनरल फ्रैङ्कोके निकट-सम्बन्धी सेनर सुनेर बर्लिन और रोममें परामर्श करके स्पेन लौट गये हैं। अब नाजी गेस्टापोके अध्यक्ष हर हिमलर और इटलीके सुविख्यात सेनानी डी० बोनोका स्पेन जाना भावी अशुभका स्पष्ट द्योतक है। उनके जानेका एकमात्र लक्ष्य वहां सैन्य-मार्गका निरीक्षण करना ही हो सकता है, जिस-पर होकर दक्षिणी फ्रान्समें एकत्रित जर्मनीकी असंख्य सेनायें जिब्राल्टरको बातकी बातमें अधिकृत करनेके लिए दौड़ पड़ें।

स्पेनमें जर्मनीका असर इतना जबरदस्त है कि आसानी-से न तो वह टाला जा सकता है, और न सहजमें उसपर कोई दूसरा रङ्ग ही चढ़ाया जा सकता है। यदि फ्रैङ्को हिटलरके सङ्केतानुसार चलनेसे इनकार करता है, तो स्पेनिश सीमान्तपर एकत्रित जर्मन सेनायें किसी भी दिन स्पेनमें पिल पड़ सकती हैं। मुसोलिनी और हिटलरने फ्रैङ्कोकी सेवामें लोभपूर्ण पुरस्कार प्रस्तुत कर रखे हैं। सर्वप्रथम जिब्राल्टर है, जिसकी आवाज वहांके बाशिन्दोंके दिमागमें जोश पैदा कर देती है, और जिसकी मृदुल स्मृति उनके क्रोधानलको प्रज्वलित करनेके लिए घृतका कार्य करती है।

यह पूर्व, पश्चिम और दक्षिण जानेवाले जलमार्गोंका अजेय प्रहरी है। जलडमरूमध्यके दूसरी ओर डाकर बन्दरगाह-पर्यन्त उत्तरी अफ्रीका विस्तृत है, जिसमें किसी भी राष्ट्रके विकासके लिए साधन हैं।

संक्षिप्तमें हम कह सकते हैं कि हिटलर और मुसोलिनीको अपने अन्तिम शत्रु ब्रिटेनको पराजित कर देनेकी विस्तृत योजनाका ढांचा इस प्रकारका है :—ब्रिटिश जहाजी बेड़ेको चतुर्दिशसे घेर लो, उसके गमनागमनको रोक दो, उसके अटलाण्टिक तथा रूमसागरीय समुद्री अड्डोंको एक-दूसरेसे काट दो, रूमसागरमें एक-एक करके ब्रिटिश जङ्गी बेड़ेको बरबाद कर दो, और इस तरह इटलीके जलपोतोंको स्वच्छन्द विचरणके लिए खुला मार्ग दो, लेकिन यह उनका कोरा स्वप्न है। अभी तक तो धुरी-शक्तियोंको मुंहकी खानी पड़ी है। और अब जैसी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति होती चल रही है, उसमें ब्रिटेनकी शक्ति और भी सङ्गठित होती चल रही है और हिटलर-मुसोलिनीकी योजनायें बेकार जायेंगी।

गीत

साथी ! आज मिलनकी बेला।
प्रियतमके स्वागत हित सन्ध्याने पथपर मधु-कलश उंडेला।

पियकी मधु स्मृति नयनोंमें भर,
पक्षी मद-विभोर लौटे घर ;
दूरस्थित प्रिय स्वजन किसीके, नौकायें लायीं उरमें भर—
मौन राहमें आंख बिछाये, मैं ही तटपर आज अकेला।
साथी आज मिलनकी बेला।

निर्मोही शशिके चिन्तनमें,
निशिने दीप जलाये नभमें ;
दीप-शिखापर बलि होनेको शलभ आज व्याकुल हैं कितने—
हंस-हंसकर प्रदीप कहता है, 'जीवन चार दिनोंका मेला।'
साथी आज मिलनकी बेला।

नभ औ' वसुधा दूर क्षितिजमें,
आज बंधे हैं आलिङ्गनमें ;
सरितायें कल-कल हंसती-सी, उमग चलीं सागरसे मिलने।
सोच रहा हूं विधिने फिर ये, क्रूर खेल मुझसे क्यों खेला?
साथी :आज मिलनकी बेला।

रजनीने प्रियतमको :पाया—
बेसुध मणि-भण्डार लुटाया।
कबसे बैठा बाट जोहता, मेरा साजन किन्तु न आया ;
मन कहता दुख ही में सुख है, अन्धकारमें निहित उजेला।
साथी आज मिलनकी बेला।

—देवीप्रसाद शर्मा, बी० ए० एल-एल० बी०

मानव-सभ्यताके निर्माणमें युद्धका योगदान

श्री अलखमुरारी हजेला, एम० ए०

आप घृणा करते हैं। मैं युद्धसे घृणा नहीं करता। युद्धमें जीवन है। जीवनके प्रत्येक कार्यमें युद्ध है। आजकल हमारे विचार करनेकी रीति यह हो रही है कि हम अपने विचारोंको वास्तविक तथ्यसे कहीं अलग कर देते हैं। विचारोंका यदि कर्मसे कोई नाता न होगा, तो वे दोषी हो जायँगे, क्योंकि वे किसी नवीन (काल्पनिक) सृष्टिके विचार होंगे। विचार कर्मके प्रतिकूल नहीं हैं, किन्तु उन्नति कर्ममें ही है। तब अपने अध्ययनका आधार हम उन्हीं चीजोंमें ढूँढ़ें जो कि हैं, न कि जिनकी हमें केवल साधना ही है।

युद्ध सभ्यताको नष्ट नहीं करता। प्रचलित सभ्यताका एक बड़ा अंश नाश करके प्रत्येक युद्ध एक नवीन सभ्यताकी रचना करता है। सभ्यताका आशय विश्व-प्रेमकी ओर बढ़ना है। और युद्ध विश्व-प्रेमका प्रतिपक्ष (Anti-thesis) है। हेगलके उन विचारजनक शब्दोंका सत्य कि पूर्व पक्ष (Thesis) और प्रतिपक्ष (Anti-thesis) के संसर्गसे एक संयोग (Synthesis) की उत्पत्ति होती है, वर्तमानमें भूतसे अधिक दृढ़ है। अनन्त कालके लिए वह सत्य रहेगा।

मनुष्यकी शक्तिके साथ ही उसकी सभ्यताका जन्म हुआ है। विश्वकी सभ्यताका इतिहास साधारणतः दो युगोंमें बांटा जा सकता है। प्रथम युगमें मनुष्यने 'जीवनके लिए सङ्घर्ष' ही सीखा था। किन्तु दूसरे युगमें 'स्वामित्व' और दूसरोंपर रोब गालिब करनेकी प्रवृत्ति दीखती है, जिसके गर्भमें निरे विरोध छिपे थे। इन्हींके कारण होनेवाले विरोधसे दूसरे युगका इतिहास भरा पड़ा है।

प्रथम मनुष्य कुछ भी रहा हो; किन्तु उसमें शक्ति थी और उसे जीना था। इसीसे उसने अपनी सभ्यताका निर्माण कर लिया। विश्व-प्रेम उसे अपने जीवनमें ही दीखता था। बिला श्रमके ही यदि प्रकृति उसे जीवनके साधन देती जाती, तो प्रकृतिसे युद्ध करनेमें इतनी जल्दी वह कभी आक्रमक न बनता। अपने हर श्रममें उसे प्रकृतिसे सङ्घर्षका अनुभव हुआ, क्योंकि प्रत्येक बार वह एक स्थापित बलसाम्यको भङ्ग कर रहा था। शायद पहले उसने पृथ्वीपर पड़े हुए, जङ्गली पेड़ोंसे गिरे, पके फल उठाये होंगे; उन्हें प्राकृतिक गुरुत्वके विरुद्ध खींचा होगा। फिर पेड़ोंमें लगे फलोंको तोड़ा होगा। और तब सम्भवतः मांसाहारी जीवोंको देख पास आते-जाते किसी पशुको मारा होगा, उसका मांस चखा होगा या अपनी रक्षाके हेतु किसी घातक पशुको मारकर यों ही डाल दिया होगा या यह सारे कार्य किसी और क्रमसे किये होंगे। किन्तु यह सत्य है कि आदिसे ही प्रकृति मनुष्यके जीवनपर आक्रमक थी। उसने उसे जीवन और जीवन-साधनके लिए ललकार दिया। और फिर शक्ति देकर (मस्तिष्क तो, चाहे वह कितना ही अपुष्ट रहा हो, प्रथम ही दे चुकी थी) मनुष्यको युद्धकी सामग्रीसे सुसज्जित कर दिया। निश्चय ही मनुष्यने प्रथम युद्ध चिरकालके लिए प्रकृतिसे ही ठाना। और शीघ्र ही वह जीवन-साधनके लिए प्रकृतिपर आक्रमक भी होने लगा।

किन्तु अब तक उसके सारे आक्रमक युद्धका आधार जीवन-साधनका तुरन्त उपभोग ही था। परन्तु दूसरे युगमें पग धरते-धरते उसे भविष्यके उपभोगका विचार हुआ। अब उत्पत्तिके बाद साधनको वह एकत्र भी करता है। इसे वह अपनाने लगा। उसमें स्वामित्वका भाव जाग उठा। भविष्यके लिए निकाली हुई बचतको देखकर उसे अपनी पूर्ण सम्पत्तिका ध्यान हुआ। अब तक भी वह अपनी पैदा की हुई सामग्रीकी रक्षा करता था; किन्तु केवल अपने जीवनके विचारसे, क्योंकि बिला इसके वह जीवित नहीं रह सकता था। तुरन्त उपभोगसे अधिक वह उसकी आवश्यकता नहीं जानता था; किन्तु दूसरे युगमें वह उसकी रक्षा अधिकतर इस कारणसे करने लगा कि वह उसकी उत्पत्ति की हुई थी। वह उसकी सम्पत्ति थी। तुरन्त उपभोगके बाद जो बचता था, भविष्यमें सम्भवतः उसका उपभोग हो सकेगा—इसका उसे ज्ञान था। यदि कोई उसकी सम्पत्तिपर आक्रमण करता, तो उसकी रक्षाका उसे अधिकार था।

अपनी सम्पत्तिपर जब वह अधिकार बताने लगा, तो हर तरहसे वह उसे बढ़ानेकी चेष्टा करने लगा। फलतः वह दूसरेकी सम्पत्तिपर आक्रमक हो गया।

मनुष्य स्वभावसे ही सामाजिक है। उसकी आवश्यकताओंने उसे और भी सामाजिक बना दिया है। दृढ़ वह प्रारम्भिक दिवससे ही था। किन्तु उसकी दृढ़तामें नवीन परिवर्तन होते चले। पहले वह केवल जीवनके लिए ही दृढ़ था, फिर सम्पत्तिके लिए भी दृढ़ हुआ। परन्तु सम्पत्तिसे उसमें अधिकारकी भावना आ गयी थी। और मनुष्योंसे उसका संसर्ग बढ़ता गया। हर समय बलपूर्वक रक्षा करनेके बजाय उसने अपने जीवन और सम्पत्तिके अधिकारको एक समाजमें स्वीकृत करानेकी सोची (इसके अगणित लाभ बतानेका समय यहां नहीं है)। ऐसे अधिकारोंकी स्वीकृतिमें, उनकी रक्षाके प्रबन्धमें जो एकमत होते चले, उनका एक समुदाय बनता चला। धीरे-धीरे एक समुदाय दूसरे समुदायपर आक्रमक होने लगा। विजित बहुधा किसी-न-किसी रूपमें विजयीमें मिल जाता था! उत्तरजीवी समुदाय समयानुसार बढ़ता गया। सर्वदा वह एकमत नहीं हो सकता था। प्रत्येक मत किसी एक विचार-धारापर निर्भर होता है। समुदाय विभाजित होने लगे। विचारधाराओंका विरोध शुरू हो गया। प्रत्येक विचार-धाराके सञ्चालक एक या एकसे अधिक मनुष्य होते थे। और उसके अनुयायियोंका दल उसकी रक्षा करता था। जिस तरह मनुष्यने अपनी सम्पत्तिपर दृढ़ता दिखायी थी, उसी तरह अब वह अपनी विचार-धारापर भी दृढ़ होने लगा। वह दूसरोंपर अपना रोब जमाना चाहता था। वह कहता था, 'यह मेरी सम्पत्ति है।' अब वह यह भी कहने लगा, 'यह मेरी विचार-धारा है।' वह अपनी प्रभुता देखनेको आकुल हो रहा था। विचार-धाराओंका विरोध बढ़ता गया। एक विचार-धारा दूसरीपर आक्रमक होने लगी। युद्धके क्षेत्र बढ़ते गये। नित्य नये कारण निकलते गये। विश्वकी सभ्यता उलझीसे सुलझती गयी। और क्रमसे युद्ध-कला भी बदलती गयी।

युद्ध-कलाका जन्म शारीरिक बलसे ही हुआ है। हम देख चुके हैं, जीवनके लिए मनुष्य तरह-तरहसे प्रकृतिसे जूझने लगा। जो वह प्रकृतिसे छीन सका, छीनता गया। जिसे वह मार सका, मारता गया। युद्धसे वह परिचित हो गया। विजयका महत्त्व जान गया। घातक पशुओंसे उसने मल्ल-युद्ध करना सीख लिया। जब किसी दूसरे मनुष्यको भी अपनी ही भांति जीवनके लिए सङ्घर्ष करते देखा, तो उसके मनमें कोई एक भावना उठी। दूसरेकी आंखोंमें उसे अपनी जीवनी-शक्तिका चोर दीखा या उसपर विजयी होकर उसकी प्राप्तकी हुई शक्तिपर भी विजयी होनेकी सूझी। अपने शारीरिक बलका आश्रय लेकर दोनों मल्ल-युद्धपर जूझ पड़े। और यदि अपने ही समान सङ्घर्ष करते देख दूसरे मनुष्यके प्रति सहृदयता उत्पन्न हुई, तो भाषाके अज्ञानसे वह केवल आलिङ्गन-स्वरूपमें ही उसे प्रकट कर सकता था। अवश्य दूसरे मनुष्यने ऐसे व्यवहारको अपने ऊपर आक्रमण समझा। वह प्रतिफल देनेको तत्पर हो गया। इस तरहसे उसने आपसमें भी मल्ल-युद्धका आविष्कार कर लिया। इस विज्ञानको जितना वह आगे बढ़ाता चला, मल्ल-युद्धका विकास होता चला।

शारीरिक बलकी परीक्षामें नित्य नये दांव-पेंचोंका निर्माण होता था। मनुष्य दूसरेपर चोट करता था और अपने शरीरपर चोट रोकता था। उसने अनुभव किया, शारीरिक गतियोंके कारण हर समय शरीरसे ही चोट करनेमें वह इतना एकाग्र नहीं हो सकता था। पत्थर या दूसरी चीजोंसे चोट देकर वह शारीरिक शक्तिसे अधिक शक्तिका प्रयोग कर सकता था। और उसके भी अतिरिक्त उसे एक नया अनुभव हुआ। अब तक वह अपने शरीरपर चोट रोकता अवश्य था, किन्तु केवल इस विचारसे कि उसे जीवित रहना है। किन्तु धीरे-धीरे वह चोटसे भय खाने लगा। वह ऐसी चेष्टा करने लगा कि युद्धमें शारीरिक स्पर्श न हो। वह दूसरेपर पत्थर फेंक सकता था और अपनी ओर आते हुए पत्थरके मार्गसे हट सकता था, छिप सकता था, अर्थात् बचनेकी चेष्टा कर सकता था। नवीन सभ्यतामें उसने पत्थरका प्रयोग जान लिया।

हर युद्धके बाद परिश्रमसे जीते हुए साधनोंकी रक्षा करनेमें मनुष्य और दृढ़ होता चला है। युद्धका विज्ञान उन्नति करता रहा। इसीसे युद्धकी कला बदलती रही। मनुष्यकी सभ्यता बहुत कुछ इसीसे निर्धारित होती रही। मल्लयुद्धमें, उसका कितना विकास हो पाया था, इसपर हम वाद-विवाद

नहीं करते, उसे सभ्यतासे प्रथम परिचय मिला। फिर पत्थर-के हथियारों द्वारा उसने पत्थरके युगकी सभ्यताकी रचना की। पहले तो उसे शक्तिका प्रमाण बोझमें ही दीखा था। भारी होनेके कारण ही उसने पत्थरसे लाभ उठाना चाहा। वह पत्थरका प्रयोग ईंट-स्वरूप ही करता था। किन्तु अक्सर नुकीले नाखूनोंके प्रयोगने, जो पञ्जोंके ही आकारके थे, उसे एक नयी सूझ दी। पैना अस्त्र और तीक्ष्ण चोट कर सकेगा। वह पत्थरोंको पैना करने लगा। धीरे-धीरे पत्थरके हथियारों-को वह धातुके हथियारोंसे बदलता चला। धातु स्वयं हलकी थी, दूर फेंकी जा सकती थी और बहुधा पत्थरसे अधिक स्थायी थी। धातुका शस्त्र अक्सर पत्थरसे अधिक तेज और नुकीला बनाया जा सकता था। तांबेका प्रयोग सबसे पहले हुआ। 'आखिरी बर्फीले युग'के समाप्त होते-होते मिश्रमें तांबेके बर्तन मिल जाते हैं। तांबेके शस्त्रोंने तांबेके युगकी सभ्यता निर्णय कर दी। एशिया और यूनान (यूरोप) दोनोंमें ही तांबेकी खानोंकी देवीकी उपासना होने लगी।

मनुष्य अपने शस्त्रोंको बराबर भूतसे अच्छा ही बनाना चाहता था। वे आक्रमण करनेमें अधिक कुशल हों, प्रयोगमें अधिक सरल और देखनेमें अधिक सुन्दर। नवीन धातुओंके जाननेपर वह उन्हें एक-दूसरेमें मिलाने लगा। नवीन धातुओंकी उत्पत्ति करने लगा। प्राचीन मिश्रकी प्रतिमाओंके लिए लाये गये कांसेसे ज्ञात होता है कि ईसासे लगभग ३००० वर्ष पूर्व भी ट्रान्सवालकी खानोंमें काम होता था। बेबीलोनियामें उस समय सीसा और जस्ता मिलाकर तांबेसे पीतल बनायी जाती थी। मिश्रके लोग तांबेमें रांगा मिलाकर कांसा बनाने लगे। लगभग २००० वर्ष ईसासे पूर्व कांसेका ज्ञान मध्य यूरोप तक पहुंच गया। और एक ही शताब्दीमें उत्तरी यूरोपको भी उसका परिचय हो गया। जहां रांगा और तांबा मिल सकता था, कांसा बनने लगा। लगभग १९०० वर्ष ई० पू० उत्तरी यूरोपमें कांसेकी छुरी, तलवार और ढालें बनती थीं। प्रकृतिसे युद्ध करनेके लिए प्रचलित कुल्हाड़ेको लोगोंने हलसे बदल दिया था। कांसे या मिश्रित धातुओंके युगने सभ्यतामें एक भारी परिवर्तन कर दिया। धातुओंको मिलाकर मनुष्यने नवीन आभूषण बनाना सीखा। पिन, कड़े, अंगूठियां, बाजूबन्द और हंसलियां इत्यादि बनने लगीं। सौन्दर्यका अनुभव बढ़ता गया। आवश्यकतायें बढ़ती गयीं। कांसे और हाथी-दांत इत्यादिका विनिमय दूर-दूरसे होने लगा। व्यापार बढ़ गया। मध्य यूरोपमें प्रथम बार नगर दीखने लगे।

हथियारोंके प्रयोगने मनुष्यको यह बतला दिया था कि उत्पत्ति केवल पशुबलसे ही नहीं होती। इसी विचारका आश्रय लेकर वह अपनी सभ्यताको आगे बढ़ा रहा था। बर्तन, औजार इत्यादिका निर्माण हो चुका था। अब ऐसी धातुओंकी मांग बढ़ती गयी, जो अधिकाधिक स्थायी हों। उनकी खोज बढ़ती गयी। लगभग १३००-१४०० वर्ष ई० पू० लोहेका परिचय लोगोंको हो गया था। १००० वर्ष ई० पूर्व लोहा दक्षिणी यूरोप तक पहुंच गया। और दो शताब्दियोंके बाद स्पार्टामें लोहेके सिक्के भी बनने लगे। पिछली धातुओंके हथियार निजी गुणोंके कारण लोहेसे बदले जाने लगे। लोहेके फर्से, भाले और तलवारें इत्यादि बनने लगीं। युद्धकी कलामें नवीन आविष्कारोंने लोहेकी मांग और बढ़ा दी। मनुष्य युद्धमें शारीरिक स्पर्शको सम्भवतः चोटके भयसे भी त्यागता चला था। किन्तु हथियारोंकी चोट और भी तीक्ष्ण थी। उसमें मृत्युका आतङ्क समाने लगा। वह और दूरसे बचकर लड़नेकी चेष्टा करने लगा। शीघ्र ही उसने धनुष-बाणकी विद्याका आविष्कार किया। उसे वह अपनाने लगा। किन्तु धनुषसे निकला बाण फिर वापस नहीं आता था। इसीलिए बहुधा एक बाणका उपयोग एक ही बार हो सकता था। इन्हीं सब कारणोंसे लोहेकी मांग बहुत बढ़ गयी। वह उतना ही बहुमूल्य हो गया, जितना कि अब सोना है। विजयी सरदारोंको लोहेकी अंगूठियां प्रदान की जाती थीं। ईसासे सातवीं शताब्दी पूर्व लोहेका प्रयोग उत्तरी यूरोप तक पहुंच गया। जगह-जगह लोहा खोजा जाने लगा। विनिमय और इसलिए हर आर्थिक क्रियामें लोहेका बहुत बड़ा हाथ हो गया। लोहेका युग दीर्घायु हुआ है। पिछली हर धातुके युगसे यह अधिक महत्त्वपूर्ण था। इसने मनुष्यके विचारमें एक नयी क्रान्ति कर दी। सारे विश्वको एक नयी सभ्यता दे दी, जो बहुत कुछ वर्तमान सभ्यतामें भी प्रदर्शित है।

सौन्दर्य और अधिकाधिक उपयोगिताका लोभ मनुष्यके मनमें सर्वदासे उत्पन्न होता रहा है। जङ्ग न खा सके, ऐसे

लोहेका निर्माण भारतने ३९० वर्ष ई० पू० कर लिया था। अब भी वह देहलीमें वैसा ही मौजूद है। ईसाके बाद अठारहवीं शताब्दीमें कारबनके सहयोगसे फौलादी लोहा नियमानुसार बनने लगा। आजसे चालीस वर्ष पूर्व बिजलीसे भी फौलादी लोहा बनानेका आविष्कार हो गया। आज बन्दूकें, तोपें, टैङ्क, मोटर, रेलके डिब्बे, इञ्जिन इत्यादि इसी फौलादी लोहेके बनते हैं। फौलादी लोहेने सभ्यतापर नवीन चमत्कार दिखाया है। यदि यह न होता, तो आजकी सभ्यता इतनी कर्कश और यान्त्रिक बनावटकी न होती।

युद्धसे यात्राका भी बहुत सम्बन्ध रहा है। सड़कसे समाजकी गतिका अनुभव हो जाता है। इसीलिए इसे समाजकी गतिकी सूची मानते हैं। पहले मनुष्य किसी रास्तेपर चलकर जहां चाहता, विश्रामके लिए वहीं बैठ जाता था। मनुष्यके सङ्ग ही उसका घर चला करता था, क्योंकि वास्तवमें उसका कोई घर ही नहीं था। किन्तु प्रकृतिसे युद्ध (आक्रमक और रक्षक दोनों ही) करनेके लिए उसे घरकी आवश्यकता जान पड़ी; कन्दरायें, झोंपड़ियां, फिर मकान इत्यादिमें वह रहने लगा। दिन-भरकी यात्राके बाद वह घर आ जाता था। कहीं जाकर लौट आना उसने सीख लिया। वह उसी रास्तेसे वापस आने लगा, जिसको दिन-भर प्रकृतिसे युद्ध करके उसने सुरक्षित बना लिया था। इस तरह पगडण्डियोंका निर्माण हो गया। फिर जब मनुष्य समुदायमें सम्मिलित हो गया, तो बहुधा उसकी यात्रा समूहमें होने लगी। पगडण्डियां चौड़ी होने लगीं, और जब नियमित रूपसे एक समुदाय दूसरे समुदायपर आक्रमक होने लगा, उसे पत्थर इत्यादिके संयोगसे पगडण्डियोंको सड़कोंसे बदल देनेका ध्यान हुआ। पहियेके निर्माणने सड़कोंकी आवश्यकता और बढ़ा दी। ईसासे २००० वर्ष पूर्व भी अम्बरके व्यापारका मार्ग मिलता है। फिर एशिया माइनरसे पर्शिया तककी पुरानी शाही सड़क मिलती है, जिसमें और बड़ी सड़कें, जो अफगानिस्तान, भारत और उत्तरीपूर्व चीन तक जाती थीं, मिलती हैं। इन सड़कोंसे मेसोपोटामिया, मिश्र और यूनानकी स्त्रियोंके लिए रेशम जाया करता था। कारथेजियन लोग ईसासे पांचवीं शताब्दी पूर्व ही पत्थर और बालूके सहयोगसे सड़कें बनाना जानते थे। इन्हींसे रोमन लोगोंने यह कला सीखी और नियमानुसार तमाम मेडीट्रेनियन देशों और पश्चिमी यूरोपमें सड़कें बना डालीं। विजयके सहारेके लिए वे राजपथोंका प्रयोग करते थे। अमेरिकामें आजसे एक हजार वर्ष पूर्व क्यूटोसे तुकामन तक २५ फीट चौड़ी और ४००० मील लम्बी सड़क बन चुकी थी। इसके अतिरिक्त एक २० फीट चौड़ी, २००० मील लम्बी सड़क और दूसरी छोटी-छोटी सड़कें भी अमेरिकामें थीं। ईसाके बाद अठारहवीं-उन्नीनवीं शताब्दीमें मैक ऐडमने 'कङ्कड़ बिछाकर' सड़क बनानेका पता लगाया। फिर राबिन्सन सड़क बनानेमें भाफका उपयोग करने लगा। और स्टीफेन्सनके रेलके इञ्जिनने सड़कोंको नवीन उन्नति दी। किन्तु युद्धका अंकुश ही मनुष्यको आगे बढ़ा रहा था। सड़कें बनानेके लिए वे ही मार्ग चुने जाते थे, जो या तो उत्पादक, व्यापारी इत्यादिको उत्पादनके लिए प्रकृतिसे युद्ध करनेमें सहायक हों या राज-सैनिकोंको विद्रोहियोंके दमनमें या आक्रमणके समय रसद इत्यादिके पहुंचानेमें सुविधा दे सकें। भारतकी सड़कोंका इतिहास बतलाता है कि अधिकतर वे राज-सैनिकोंकी सुविधाके लिए ही बनी हैं।

समयानुसार सारे विश्वकी युद्धकलामें तेज, भारी और सुरक्षित सवारियोंका महत्त्व बढ़ता गया। मनुष्य नियमानुसार कुत्ते, घोड़े, गधे, खच्चर इत्यादिका प्रयोग करता आया था। नयी मांगके कारण उसने मोटर इत्यादिका आविष्कार कर लिया। और आवश्यकतानुसार तारकोलकी सड़कें भी बनने लगीं।

जिस तरह पृथ्वीपर मनुष्य सड़कें बना रहा था, उस तरह पानीमें भी वह यात्राके रास्ते ढूंढ़ता रहा। प्रकृतिसे युद्ध करके वह आगे निकल जाना चाहता था। समुद्रके पार क्या है, उसे जाननेके लिए, उसकी विजयके लिए उसने नाव, जहाज और फिर तरह-तरहके पनडुब्बे जहाज बना डाले। ईसासे ३००० वर्ष पूर्व भी जहाजोंका प्रयोग होता था। ईसासे ७०० वर्ष पूर्व मैडीट्रेनियनमें लड़ाईके जहाज रहते थे। आसपासके देश पानीमें भी अपने-अपने क्षेत्र स्थापित करनेके लिए लड़ने लगे। धीरे-धीरे जहाजी बेड़े तैयार हो गये। बड़े, छोटे, अधिक देर तक पानीमें रहनेवाले इत्यादि-इत्यादि जहाजोंकी खोज होने लगी और वे बन भी गये। सन् १७७६ ई० के बाद अमेरिकाकी स्वतन्त्रताकी लड़ाईमें पानीके नीचे रहनेवाले एक जहाजने बरतानियाके

एक जहाजको डुबानेका असफल प्रयत्न किया था। सन् १७७७ ई० में लोहेकी नाव प्रथम बार बनायी गयी और चालीस सालके अन्दर वह नियमानुसार बनने लगी। इनसे युद्धकी कलामें भी भारी परिवर्तन होते चले। संसारकी सभ्यतापर इसकी प्रतिक्रिया आज दीखती है। पनडुब्बे जहाज इत्यादि आजकल देशोंकी पहली आवश्यकता हो गये हैं।

जिस तरह युद्धकी कलासे बहुधा संसारकी सभ्यता निर्णय होती रही, उसी तरह संसारकी सभ्यता भी युद्धकी कलापर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालती रही। आजकी कला कई विचार-धाराओंकी उपज है। विद्या अनुकरणसे शीघ्र ही सबमें फैल जाती है। चोट बचानेके लिए, लक्ष्यपर तीक्ष्ण चोट करनेके लिए मनुष्य जितना ही नये आविष्कारोंकी शरण लेता गया, जब बैरीने उनका प्रयोग किया, तो वे उसपर पिछले आविष्कारोंसे कहीं अधिक क्रूर सिद्ध हुए। आवश्यकताओं-से उसकी युद्ध-कला उपजी थी और वे उसे नवीन आविष्कारोंकी ओर ले चलीं, जिससे युद्ध-कलामें भी परिवर्तन होते चले। प्रति बार एक नवीन सभ्यता प्रकट होती गयी। और बारी-बारीसे इस सभ्यताने युद्धके तर्क और उसकी नीति दोनोंपर ही अपना प्रभाव डाला। फलतः नवीन युद्ध-कलाका निर्माण होता गया।

नेताओंके युद्धके बाद सिद्धान्तों और राष्ट्रोंके युद्ध आरम्भ हुए। आजके नेता सिद्धान्त या राष्ट्रके आश्रयपर लड़ते हैं। वे अपनेको इनका प्रतिरूप बतलाते हैं। विचार-धाराओंके युद्धसे प्रभुता और शक्ति भी बढ़ती चली। जब दो सिद्धान्त एक-दूसरेके विरुद्ध होते, तो शक्तिशाली दल दूसरेपर अत्याचारी हो जाता। इतना ही नहीं, अपने सिद्धान्तोंके आगे वह असहनशील हो जाता था। वह अपने सिद्धान्तोंकी सफलता देखना चाहता था। सिद्धान्त सबसे पहले नियमसे धर्मके रूपमें रचे गये। फलतः, पूरबमें कुछ काल तक विशेष कारणोंसे ऐसा नहीं हुआ, पश्चिममें घोर धर्म-युद्ध होने लगे। धीरे-धीरे अब तक राष्ट्र बनने लग गये थे। इसलिए समयानुसार तरह-तरहके सिद्धान्तों, जैसे शक्तिका समतुलन करने, उपनिवेश बसाने, शोषण करने, व्यापार करने और हथियारों-की दौड़ करनेपर युद्ध होने लगे, जिनमें राष्ट्र भाग लेने लगे। सच है, राष्ट्रके स्वभावके अनुसार ही राज्यक्रम भी निर्धारित हो जाता है। वर्तमान युगमें विचार-धाराओंके अन्तरसे निरे मत फैल गये। बहुत्रा राष्ट्रोंमें किसी न किसी मतका बोल-बाला हो गया। इनके सिद्धान्तोंके विरोधमें राष्ट्रोंको युद्धके नवीन कारण मिल गये।

सिद्धान्तों और राष्ट्रोंके युद्धोंमें कुछ नयी विशेषतायें आ गयीं। सैन्यदल अब विजयका झण्डा फहराते देखकर या राज्यकर लेकर ही सन्तोषी नहीं होते थे। वे दूसरेके सिद्धान्तोंकी पराजय देखना चाहते थे। मनुष्य चाहता है, जैसा मेरा विश्वास है ऐसा ही दूसरेका भी हो, जिसमें मेरा लाभ है वही दूसरा भी करे। वे उन्हें पूर्णतः पराजित करना चाहते थे। हारे हुए सैन्यदल एक रणकी हारको पूर्ण पराजय माननेको तैयार नहीं थे। सम्भव था, मित्र-सेनायें और स्थानोंपर बैरी-दलपर विजयी हो रही हों। इसलिए लम्बे धावे आरम्भ हो गये। कई जगहोंके युद्धने उन्नति की। पूर्व-पक्षके सैन्यदल नष्ट हो जानेपर भी बहुत-से लोग बैरीके सिद्धान्तोंको माननेसे इनकार कर देते थे। तब क्रोधमें बैरी-दल सर्वसाधारणकी नर-हत्या कर डालते थे। धर्मयुद्धोंमें अक्सर ऐसे खून बहे हैं। सेनापतिसे अधिक सैनिकोंमें और सैनिकोंसे अधिक सर्वसाधारणमें विरोधकी आत्मिक शक्ति भरी थी, इसे जानकर बैरी-दलोंने सर्वसाधारणकी शक्तिके नाशमें लड़ाईमें विजयका सहल ढङ्ग ढूँढ़ लिया। जनसाधारण (युद्ध-क्षेत्रमें सैनिक और घरपर नागरिक दोनों) का ध्वंस नवीन आक्रमणोंका लक्ष्य बन गया। इसके लिए बहुमूल्य हथियारोंकी आवश्यकता दीख पड़ी। तरह-तरहके साधन ढूंढ़े जाने लगे। उपनिवेशोंमें बहुधा ऐसे साधनोंका उपयोग अब तक नहीं हुआ था। सच है, इनसे युद्ध भी बढ़ गये, किन्तु साधनोंका शोषण भी सहज हो गया। राष्ट्रों या साम्राज्योंके हर साधनका सम्भवतः पूर्ण शोषण होने लगा। विकराल हथियारोंकी आवश्यकता और साधनोंके शोषणने विशेष अध्ययनका महत्त्व बढ़ा दिया। एकदमसे बहुत-से स्टैण्डर्ड हथियार बन सकें, इसलिए हथियारोंके कारखानोंकी मांग बढ़ी। कलका प्रयोग बढ़ता गया। युद्धक्षेत्रके लिए भी विशेष कलोंका आविष्कार हो गया। एक कल कई मनुष्योंका कार्य कर सकती थी, इसीलिए जन-शक्तिका महत्त्व कम होता गया।

नवीन कलोंकी उपजसे, विशेष साधनोंके प्रयोगसे द्रव्यका महत्त्व बहुत बढ़ गया । युद्धकी रचनामें कोषका मूल हाथ हो गया । यह सम्भव हो गया कि बिला ही युद्धमें भाग लिये बड़े-बड़े बैङ्कर्स युद्धके निर्माता बन जायें । आर्थिक शस्त्रोंसे भी युद्ध लड़े जाने लगे । ऐसी अवस्थाओंमें सारी शक्तियोंका साधक सङ्गठन आजकलके युद्धकी पहली आवश्यकता बन गयी । उस समयकी प्रतीक्षा कर जब युद्ध छिड़ जानेपर वे इसका पूर्ण लाभ उठा सकेंगे, लोग साधनोंके सारे संयोगमें अधिकाधिक सुधार करने लगे । नाजी मतमें तो युद्ध राष्ट्रीय जीवनका सबसे बड़ा सूचक है । युद्ध स्वयं एक उद्देश्य बन जाता है और शान्तिका समय केवल उसकी योजना । अगले युद्धका विचार ही सारे आर्थिक धन्धोंका आधार बन जाता है । लड़ाईके लिए उद्यत रहना तानाशाही राज्योंकी नीतिका एक विशेष अङ्ग है । वे सारे राष्ट्रको सेनामें परिवर्तित करनेकी चेष्टा करते हैं । यहां तक कि सेना और नागरिक जन-संख्यामें नहींके बराबर अन्तर छोड़ना चाहते हैं और किसी एक निश्चित समयपर लड़ाई छेड़ देनेकी तैयारीमें सारे साधन जुटा देते हैं । इस धाराका अध्ययन करते हुए सर शफात अहमद इसे नियमावली संग्राम (Time-Table Warfare) कहते हैं । इसमें युद्धके आरम्भ तक युद्धकी सामग्री (मशीनें, मशीन चलानेकी शक्ति, मशीनोंकी बनी चीजें और आवश्यक कच्चा माल इत्यादि सभी सम्मिलित हैं) की भरपूर उपज होने लगती है । सम्भवतः अधिकसे अधिक जन-संख्या स्थायी सेनामें भरती हो चुकती है। एकाग्र संग्रामका महत्त्व तो वर्तमान युगमें बहुत दिनोंसे ही बढ़ रहा है । शिफेनने जर्मन फौजोंको पश्चिमी सीमापर ही एकाग्र कर देनेकी सोची थी । उसकी रचनानुसार पूर्वमें रूसके प्रति थोड़ी-सी ही सेना छोड़ी जा सकती थी । अब आज जब केवल विजय नहीं, किन्तु दूसरे राष्ट्रका विनाश भी युद्धका ध्येय बन जाता है, तो वे बिजलीके-से आक्रमणका निर्माण करते हैं । आजके युद्ध-सञ्चालक युद्धको आश्चर्यजनक तेजीसे मायावी बना देना चाहते हैं, जिससे कि आरम्भमें ही विपक्षी सेनाका नैतिक बल :लोप हो जाये । परन्तु बहुमूल्य लागत और उद्योगके कारण ऐसे आक्रमण लगातार नहीं किये जा सकते । इसलिए नितान्त नवीन कलामें ऐसे मायावी आक्रमण और हलके आक्रमण अदल-बदलकर किये जाते हैं । हलके आक्रमणोंका आशय विपक्षी सेनापर केवल एड़ लगाये रखनेका होता है, जिससे कि उसे संभलनेका समय न मिले ।

कोई भी राष्ट्र किसी भी समय अचैतन्य पड़ोसीपर एकाग्र आक्रमण कर बैठे, इस भयसे राष्ट्र अपनी सीमाओंपर कड़ी रक्षाका प्रबन्ध करने लगे । अच्छीसे अच्छी रक्षक सीमायें, जैसे मैजिनो लाइन और सीगफ्रीड लाइन इत्यादि बनने लगीं ।

पृथ्वी, पानी और वायु सब जगहपर रण होने लगे । अत्यन्त गतिशीलता आजकलके युद्धका विशेष लक्षण बन गया । घुड़चढ़ी सेनाने भी नया रूप धारण किया, वे साइकलों, मोटर साइकलों और मोटरोंका प्रयोग करने लगीं । मोटरका लाभ देखकर स्थलपर पैदल सेनाके लिए टैङ्कका आविष्कार हो गया । पहियोंकी जगह इसमें कैटरपिलर टैङ्क लगा होता है । युद्धक्षेत्रमें यह ऊंचे-नीचे, ऊबड़-खाबड़ सभी स्थानोंपर चल सकता है । इसमें तोपें चढ़ी रहती हैं और चारों ओर फौलादी लोहेकी पुष्ट चादरें होती हैं, जो बहुत-से साधारण बमोंकी चोट आसानीसे सह सकती हैं । टैङ्कका उपयोग पहली बार दिसम्बर सन् १९१९ में किया गया । सन् १९१८ में मित्र-सेनाओंके पास कुल ४१९ टैङ्क थे । इनकी चाल एक घण्टेमें तीन-चार मीलसे अधिक नहीं थी । किन्तु अब प्रायः यह एक घण्टेमें तीस-पैंतीस मीलकी यात्रा कर लेते हैं । साधारणतः किसी भी बड़ी सैन्य-शक्तिके पास ९००० टैङ्क होने चाहिए । इतना ही नहीं, जलकी सेनाका निर्माण भी स्थलकी पैदल सेना और घुड़चढ़ी सेनाके समानान्तर रूपसे होने लगा । आज तरह-तरहके युद्धपोतोंका उपयोग होता है । ये युद्धपोत बहुत भारी होते हैं और इनमें अधिकाधिक सेना रहती है । जलमार्गकी रक्षा और युद्धके जहाजी बेड़ेके पथ-प्रदर्शनके लिए तेज क्रूजरका प्रयोग होता है । बर्फीले स्थानोंपर शक्तिशाली धावेके लिए भी क्रूजरका ही उपयोग होता है । और बड़े आकारके विध्वंसक पोतोंकी शक्तिको नष्ट करनेके लिए सरल-क्रूजरका निर्माण हुआ है । आजका युद्ध-क्रूजर विध्वंसक पोतोंके अतिरिक्त अन्य पोतोंमें सबसे तेज है । इनके भी अतिरिक्त आज युद्धमें पनडुब्बे जहाजोंको बड़ा महत्त्व प्रदान हुआ है । अमेरिकाके स्वतन्त्रता-युद्धमें इसका

असफल प्रयोग हुआ था। फिर अमेरिकाके गृहयुद्धमें इसका प्रयोग हुआ। अन्य नौकाओंकी भांति पनडुब्बे जहाज भी पानीपर रहते हैं, पर अवसर आनेपर लम्बी डुबकी लगा जाते हैं। ४०० फुटकी गहराई तक ये उतर जाते हैं और ६० घण्टे तक पानीमें रह सकते हैं। चारों ओरसे ढके हुए ये लगभग ४०० फुट लम्बे होते हैं और प्रत्येक समय बारह हजार मील तक चलनेके लिए तैयार रहते हैं। ये तोप और तारपीडोके उपयोगसे शत्रुके जहाजोंको डुबोते हैं। पनडुब्बे जहाज भिन्न नामसे विख्यात हैं। जर्मनीके पनडुब्बे जहाज 'यू-बोट' कहलाते हैं। स्थल और जलके अतिरिक्त पिछले महायुद्धमें आकाश-युद्ध भी होने लगा। किन्तु लड़ाईमें इसे विशेष महत्त्व नहीं मिला था। इसने किसी लड़ाईका फल तय नहीं किया। परन्तु अब यह सेनाका विशेष अङ्ग बन गया है और विनाशका सबसे कठोर ढङ्ग। आज वायुयान बहुत उन्नति कर गया है। इससे सेनाकी गतिशीलता भी बढ़ गयी है। आजके वायुयान साधारणतः एक घण्टेमें २५० से ३०० मील तककी यात्रा कर लेते हैं। सूचना लाने, रात-दिन बम गिराने और आकाशमें युद्ध करनेके लिए इनका प्रयोग होता है। इनके सहारे सैनिक आज आकाश-मार्गसे भी उतरने लगे हैं। कुछ दिन हुए, पैराशूटकी सहायतासे निरे जर्मन सैनिक आकाश-मार्गसे हालैण्डमें उतर पड़े थे। पैराशूट-जैसे यन्त्रोंका इतिहासमें पहले भी उल्लेख हुआ है; किन्तु इसका आविष्कार १८ वीं शताब्दीमें हुआ। तबसे सरकस या दुर्घटनामें जीवन-रक्षाके लिए इसका प्रयोग होता रहा। किन्तु आज ये आकाश-मार्गसे उतरनेके लिए सैन्यदलोंके सहारे बने हैं। कुछ पैराशूट तो वायुयानसे रस्सी द्वारा सम्बन्धित रहते हैं। उतरते समय किसी नियमित ऊंचाईपर झटकेसे उनके बन्धन खुल जाते हैं, और स्प्रिङ्गके जोरसे पैराशूट पूरा खुल जाते हैं। परन्तु कुछ पैराशूटोंका इस तरहका कोई सम्बन्ध वायुयानसे नहीं होता। वायुयान-यात्रीके पीछे एक ढङ्गसे पैराशूट बांध दिया जाता है। गांठमें एक छल्ला बंधा रहता है, जिसे खींचकर वे आसानीसे पैराशूट खोल सकते हैं।

वर्तमान कालमें अग्निशलाका बहुत उन्नति कर गयी है। दूरसे ही युद्ध करके विपक्षीको बारूद और अग्निमें भस्म कर देनेकी अभिलाषा सैन्य-दलोंमें बढ़ती जाती है। स्थल, जल और आकाश तीनों जगहोंके युद्धोंमें वे इसका प्रयोग करते हैं। आजकल यूरोपीय राष्ट्रोंके पास सन् १९१४ से पन्द्रह-बीस गुनी अधिक तोपें हैं। उन्होंने आवश्यकतानुसार तरह-तरहकी तोपें बना डाली हैं, जैसे कि स्वयं सञ्चालित तोप। स्थलपर स्थिर आधार, गतिशील आधार और अर्ध-गतिशील आधारकी तोपोंका प्रयोग होता है। आजकी बहुत-सी तोपोंको वे जिस दिशा और जिस ऊंचाईके कोणपर चाहें, घुमा लेते हैं। जलके युद्धमें डेकको वे तोपोंसे सुसज्जित कर देते हैं। इनमेंसे कुछ स्थिर दिशामें लगी रहती हैं, कुछ चारों ओर घुमायी जा सकती हैं। प्रायः स्वयं-सञ्चालित, अर्ध-स्वयं-सञ्चालित, हाथसे चलायी जानेवाली और जोरसे चलानेपर काम करनेवाली सभी तोपोंका प्रयोग होता है। वायुयानोंके आक्रमणोंसे बचनेके लिए वायुयान-विध्वंसक तोपोंका निर्माण हुआ है। बिलकुल सीधी ९० अंश तक खड़ी की जा सकती हैं, चारों ओर घुमायी जा सकती हैं और किसी भी कोणपर गोले फेंक सकती हैं।

सीधी रेखाका प्रेम नवीन आधुनिक सभ्यताका मूल चिह्न है (Love of straight line is the symbol of the new modern civilisation)। इसमें सीधी और स्पर्श-योग्य (Direct and tangible) बातोंका महत्त्व बढ़ता जाता है। इसीसे सिद्धान्तों और राष्ट्रोंके युद्धके बाद सीधी भावनाओंके युद्धोंका द्वार खुला है, जिसमें राष्ट्रोंके युद्धके बजाय मानवता पशुतासे लड़ेगी। इसका ठीकसे क्या रूप होगा, अभी नहीं कहा जा सकता; क्योंकि अभी इसका आकार बहुत ही धुंधला है। किन्तु इतना ज्ञात होता है कि ये युद्ध मौलिक पशु-भावनाओं और परिणत भावनाओंमें हुआ करेंगे। विश्व-प्रेम और इसलिए सभ्यताको आगे ले चलनेके लिए मनुष्य सुन्दर भावनाओंका ग्राहक बन जाता है। वे अक्सर परिणत भावनाओंके रूपमें जानी जाती हैं, क्योंकि जनसाधारण सहजमें इनसे परिचित नहीं होता। जिनकी केवल भौतिक सभ्यता है, उन्हें भी ऐसा परिचय सहजमें प्राप्य नहीं है। युद्धका वास्तविक कारण किसी भावनाके प्रति प्रेम ही है, इसलिए वे परिणत भावनाओंके प्रेमियोंसे युद्ध ठानते हैं। ऐसे युद्धोंका भविष्य अभी बहुत

कुछ अनखोजा पड़ा है। किन्तु वास्तवमें ऐसे युद्ध शान्तिके लिए युद्ध होंगे, क्योंकि सुन्दर भावनाओंका प्रेमी केवल शान्तिकी स्थापना चाहता है। वह किसी भी भौतिक लाभकी आकांक्षा लेकर युद्धमें नहीं कूदता।

ऐसे युद्धकी कलापर अभी बहुत मतभेद है। पश्चिम ऐसे युद्धोंको भी हिंसक रीतिसे ही लड़नेपर उद्यत है। इन्हीं सब कारणोंसे वहां हथियारोंकी दौड़ अब भी बढ़ती जाती है। आजकलकी बड़ी यूरोपीय शक्तियां २५००० वायुयान, ३०,००० टैङ्क और २००००० मशीनगनें रखनेका उद्देश्य रखती हैं। परन्तु पूरबकी विचार-धारा पश्चिमसे अक्सर विभिन्न रही है। शान्तिका सूर्य पूरबमें उदय हुआ है। शान्तिके उपासक पूरबमें ही अधिक पैदा हुए हैं। ये आध्यात्मिक अध्ययनको पूर्ण महत्त्व देते रहे हैं। इनका बल अधिकतर नैतिक शक्तिमें मिलता है। इसीके सहारे युद्ध लड़नेकी इनकी निजी नीति है, ये युद्धको अहिंसक कलासे लड़नेका आग्रह करते हैं।

ऐसी कलाके कुछ विशेष लक्षणोंका पता अब तक चला है। इसमें सत्यको प्रधानता दी जाती है। जो सत्य है, उसमें भयका विराम नहीं लगता, यही उसका मूल आधार है। इस कलाका निर्माण इस विश्वासपर हुआ है कि सत्य सर्वदा विजयी होता है। इसीलिए मनुष्य जो सत्य समझता है, जिसे वह ठीक जानता है, उसके प्रचार करनेकी स्वतन्त्रताको इसमें एक मूल स्थान मिला है। जो ठीक जानते हो, उसका कर्ममें प्रयोग करो, (That which you think you must bring into action) यह इसका आदर्श-वाक्य कहा जा सकता है। दूसरे, ऐसे युद्धके विषय पूर्णतः स्पष्ट (Clear issus) होने चाहिए। सत्य स्वयं उज्ज्वल है, इसलिए ऐसा युद्ध धुंधले विषयोंपर नहीं लड़ा जा सकता। तीसरे, यह प्रार्थित वस्तु देकर शत्रुका क्रोध ठण्ढा करने (Appease ment) के विरुद्ध है। इसकी कलामें नेपोलियनके इन अमर शब्दोंकी सुगन्ध मिलती है कि 'जो शान्ति चाहता है, उसे युद्धके लिए तैयारी करनी चाहिए।' यह कला सर्वसाधारणकी नैतिक शक्ति बढ़ा देना चाहती है। हर किसीको युद्धके लिए तैयार करना चाहती है; किन्तु विध्वंसक युद्धके लिए नहीं। फलतः इस युद्धका सारांश हृदय-परिवर्तन (Change of heart) होता है; क्योंकि मानव-कल्याण ही इसका उद्देश्य है। और जिस तरह यह शत्रुके हृदयमें परिवर्तनके लिए लड़ता है, उसी तरह किसी नवीन सत्यके पता लगनेपर अपने हृदयमें भी परिवर्तन स्वीकार करनेको तैयार है। इसीलिए ऐसी कला हृदय-विनिमयके प्रयोगको भी मानती है। ऐसी कलाके लिए किसी अहिंसक हथियारकी ही आवश्यकता थी। औद्योगिक झगड़ों इत्यादिके लिए ऐसे हथियारका आविष्कार पहले ही हो चुका था; किन्तु महात्मा गांधीने 'सत्याग्रह'को एक निश्चित रूप देकर उसे अहिंसक कलाका प्रमुख हथियार बना दिया है। निष्क्रिय प्रतिरोधसे भिन्न इसमें सक्रिय प्रतिरोध होता है, जिससे किसी सत्यपर डटे रहनेकी दृढ़ता दर्शायी जाती है।

परन्तु यह अनुभव करना कि एक तरहके युद्धके आरम्भसे दूसरी तरहके युद्ध बन्द हो गये, मिथ्या है। यहां तक कि आज भी व्यक्तियोंके युद्ध देखनेमें आते हैं। पर यह अवश्य हुआ कि प्रत्येक तरहके युद्धोंने नवीन संस्कृतिके पट खोल दिये, जिनसे स्वयं अगले युद्धकी कलाका निर्माण होता रहा।

———



जापानकी अद्भुतचरित्र राजकुमारी टुङ्ग-चिनो

श्री चन्द्रकिशोर मालवीय

लगता है कि युद्धोंका कुछ ऐसा नियम-सा हो गया है कि जब भी किसी देशमें लड़ाई होती है, तब तद्देशीय उभय-पक्षीय निवासियोंको जासूसों द्वारा बहुत ही अधिक प्रताड़ित होना होता है। यूरोपियन और एशियन जासूसोंके कारण तो इतना नुकसान हुआ है कि राष्ट्रका राष्ट्र अत्याचारी शक्तिशालीके पैरों-तले रौंदा जा चुका है। सबसे ताजा उदाहरण है फ्रान्सका। इतना बड़ा, समुन्नत, सुन्दर एवं शक्तिशाली फ्रान्स केवल १९ दिनोंके अन्दर ही अन्दर स्वतन्त्रसे परतन्त्र हो गया। वहांका शासनकर्ता हिटलर न होकर गेस्टापोका प्रधान हिमलर हो गया है। पोलैण्डमें भी यही हुआ। नारवे, हालैण्ड, बेलजियम, डेनमार्क तथा लक्खेम्बर्गमें यही हुआ। हिटलरकी सेनायें तो वहां बादमें पहुंचीं; पर 'गेस्टापोके गण' वहां पहले ही पहुंच गये। जासूसी कलामें इन गेस्टापोके गणोंने अपनी जिस अपूर्व प्रतिभाका परिचय दिया है, संसारके गुप्तचर-इतिहासमें वह बेजोड़ है। अपनी अनन्त प्रभुता, चतुरता एवं शक्तिसे गेस्टापोने जासूसीका रिकार्ड ही मानो तोड़ दिया है।

यूरोपीय माताहरीने, एक स्त्री होते हुए भी, ऐसे-ऐसे 'कार्य' किये हैं कि बरबस दांतों-तले उंगली दबानी पड़ती है। कितनी प्रतिभाशालिनी थी वह सुन्दरी—युवती! जर्मन माताहरीने सैनिक दृष्टिसे अपनी अपरिमेय उपयोगिता और असाधारणताका परिचय दिया तो खैर दिया ही; पर उसने जासूसी पद्धतिमें एक अनूठा, पर आवश्यक परिवर्तन भी कर दिया और वह यह कि 'जासूसी क्षेत्र'में स्त्रियोंका प्रवेश और उनकी प्रधानता। विगत महायुद्धके पहले विभिन्न गुप्तचर संस्थाओंमें स्त्रियां अवश्य काम करती थीं, पर उनके ऊपर भूल करके भी 'नाजुक काम'का भार नहीं डाला जाता था। अधिकारियोंको यह आशङ्का रहती थी कि कितना भी हो, स्त्रियां हैं तो आखिर स्त्रियां ही न! उनकी कोमलता, उनकी सहृदयता, उनकी दया और उनका 'स्त्रीत्व' कपट, कृत्रिमता, क्रूरता एवं दगाबाजीके बहुत पास पहुंच सकनेमें व्यवधानका कारण बनेगा। इन्हीं सन्देहोंसे ओत-प्रोत हो अधिकारीगण उनसे छोटे-छोटे 'काम' लिया करते थे। स्त्रियोंने भी, या यों कह लीजिये कि स्त्री-जासूसोंने भी अपनी असाधारण प्रतिभाका ऐसा कोई ज्वलन्त प्रमाण जनताके सामने नहीं रखा, जिससे उनकी उपयोगिता और चतुरता प्रकट हो सकती।

परन्तु जर्मन माताहरीने ऐसा किया था। उसने जर्मन जनताके सामने ही नहीं, जर्मन राष्ट्रके सामने ही नहीं, वरन् अखिल संसारके सामने 'स्त्री-जासूसों'का नाम अमर कर दिया। उसने करके दिखा दिया कि स्त्रियां ही वास्तवमें गुप्तचरका कार्य कर सकनेकी अधिकारिणी हैं—पुरुष नहीं।

ऐसा ही एशियामें भी हुआ। जापानी माताहरी मिस योशिका कावाशिमाने भी विगत चीन-जापान-युद्धोंमें अपनी अपूर्व प्रतिभाका जो परिचय दिया है, एशियाई इतिहासमें वह अभूतपूर्व है। मिस योशिका अब संसारमें नहीं है। चीनकी एक क्रान्तिकारिणी संस्था 'ट्रेटर एक्सटरमिनेशन कार्प्स' के लागी सदस्योंकी गोलियोंसे उसका हृदय चिथड़े-चिथड़े हो गया था। वह १९३९ में ही मार डाली गयी थी। उन दिनों (और आजकल भी) चीनके बहुत-से स्वातन्त्र्य-प्रिय नवयुवकोंने क्रान्तिकारिणी संस्थाओंका प्रादुर्भाव कर केवल एक सालमें ही २०० चीनी देशद्रोहियों और जापानी सेनापति एवं अधिकारियोंकी हत्या कर डाली थी।

मिस कावाशिमा एक राजकुमारी थी—मञ्चू राजकुमारकी पुत्री। उसके ताऊ, सम्राट् 'काङ्ग-टेह' आज भी मञ्चूकोके राज-सिंहासनपर, जापानियोंके हाथकी कठपुतली बने बैठे हैं। पहले योशिका कावाशिमाका नाम 'राजकुमारी टुङ्ग चिनो' था। जब १८ फरवरी, १९३२ ई० में जापानी सम्राट् मिकाडोने अपनी एक विज्ञप्तिके जरिये मञ्चूकोकी गद्दीपर 'काङ्ग-टेह' को बैठाया, उसके बहुत पहले ही उसके पिता मर चुके थे।

१९०६ ई० में मञ्चू राजप्रासादमें 'टुङ्ग-चिनो' का जन्म हुआ था। मगर जब वह ९ वर्षकी भी न होने पायी थी कि

मञ्चू-राजमें रहनेवाले चीनियोंने उसके पिताके प्रति विद्रोह कर दिया और उन्हें मार डाला। विश्वासी नौकरों द्वारा टुङ्ग-चिनो किसी प्रकार बच गयी और एक जापानी करोड़पति मि० नवीवा कावाशिमाके हाथ लगी। उन्होंने इसे गोद ले लिया, और अपनी शिक्षा-दीक्षाके लिए वह जापान लायी गयी। पञ्चवर्षीया इस होनहार बालिकाने असामा नामक गांवमें, जो कि मि० कावाशिमाकी जमींदारी ही में था, शिक्षा पायी। अक्सर वह आसपासके मैदानों और पहाड़ियोंपर लगभग नङ्गी होकर तरह-तरहकी कसरतें किया करती। गांववाले देखते और हृदयमें अचरज भरे खड़ेके खड़े ही रह जाते। गरज यह कि असामा ही में टुङ्ग-चिनो (अब योशिका कावाशिमा) रही, वहीं पली और वहीं बढ़ी। जीवनके विभिन्न दृष्टिकोणोंकी परखके अनुसार वह जापानी ही बनी—मञ्चू (चीनी) नहीं। इसका कारण था मञ्चूका वही १९११ वाला विद्रोह। ३०० वर्षोंसे साथ-साथ रहते-रहते चीनी और मञ्चू मनुष्योंमें कुछ अन्तर ही नहीं मालूम पड़ता था। मञ्चुओंने चीनियोंकी सभ्यता, संस्कृति और धर्मको इतना अपना लिया था कि दोनों जातियां एकाकार हो गयी-सी मालूम पड़ने लगी थीं। और उन्हीं चीनियोंने इस निर्दयता और निर्ममतासे उसके पिता और हजारों देशवासियोंकी हत्या की थी कि जिसे सोचकर ही उसे रोमाञ्च हो आता, चीनियोंके प्रति घृणात्मक श्राप उसके ओठोंको फोड़कर वायुमण्डलमें समा जाता।

१८ वर्षकी युवती योशिकाके मनमें युवकोंके प्रति विद्रोह-भावना, ईर्षालु भावना प्रवेश कर चुकी थी। असामा गांवमें योशिका और तोयामा नामक एक लड़का, साथ ही साथ खेले और बढ़े थे। दोनोंका पारस्परिक स्नेह अवस्थाके साथ ही बढ़ता गया और एक दिन योशिकाको लगा कि वह २० वर्षीय युवक तोयामासे प्रेम करने लग गयी है। मगर वह अभागिनी थी, उसे अपने प्रेमका प्रतिदान नहीं मिल सका। तोयामा चला गया, योशिकाको छोड़कर चला गया और तभीसे वह 'युवक जाति' से द्वेष करने लगी। १८ वर्षकी सुन्दरी राजकुमारीके मनमें इच्छा हुई कि वह भी 'युवक' बने। फलतः प्रसिद्ध 'समुराई' वंशकी पालित कन्या योशिका अक्सर पुरुष वेशमें घूमने निकलती। धीरे-धीरे लोगोंमें उसकी चर्चा होने लगी और उसके धर्मपिता मि० नवीवा कावाशिमाने भी सुना। उन्होंने योशिकाको ऐसा करनेसे बहुत रोका; पर वह मानी नहीं। अन्तमें क्रोधित होकर उन्होंने उसे घरसे निकाल दिया और अपनी सारी सम्पत्ति दूसरोंके नाम लिख दी।

अब...अब योशिका क्या करे? पासमें पैसा नहीं, रहनेको घर नहीं, खानेको रोटी नहीं! वह असामासे भागकर 'दैरन' आयी और यहीं उसका परिचय एक मङ्गोलियन राजकुमारसे हुआ। दोनोंने दोनोंमें एक-दूसरेके प्रति आकर्षणका अनुभव किया। दोनोंने अपने आपको एक-दूसरे ही के लिए जन्मित माना। दोनोंने एक-दूसरेमें 'अपनत्व' देखा। देखा कि वे दोनों एक-दूसरेको चाहने लगे हैं। फलतः दोनोंने एक-दूसरेसे विवाह कर लिया और घूमनेके लिए मङ्गोलिया आये। मङ्गोलियाके सुन्दर घासके मैदानों और उष्ण रेगिस्तानोंमें विचरती हुई योशिकाके मनमें फिर 'युवक' बननेकी लालसा उत्पन्न हुई। उसने अपने पतिसे कहा और अपनी मद-भरी आंखों, विहंसते ओठों, नरम-नरम त्वचाओं और मनमोहिनी आकृतिसे उसे बाध्य किया कि वह उसे अपनी सेनाका सेनापति नियुक्त करे। वह बेचारा—रूपका मारा राजकुमार, पति, भला कुछ भी आनाकानी कर सका था उस दिन! इस प्रकार योशिका मङ्गोलोंकी एक छोटी सेनाका सेनापति बनी। सैनिकोंने पुरुष-वेशधारिणी युवती सेनापतिमें 'अपनत्व' पाया, सहृदयता पायी, पारस्परिक आदान-प्रदानमें स्नेह पाया और उन्हें लगा कि वे एक अच्छे सैनिक बन गये हैं।

धीरे-धीरे सारी सेना योशिकाकी ही मुट्ठीमें हो गयी और राजकुमार (उसके पति) को लगा कि कहीं ऐसा न हो कि उसकी सेना योशिकाकी आज्ञाके आगे उसकी आज्ञाको ठुकरा दे। उसे अपनी पत्नीसे ईर्ष्या हुई। पति-प्रेममें शैतान घुस आया। परिणाम यह हुआ कि योशिकाने अपने पतिको तलाक दे दिया और चीनके एक प्रमुख नगर 'टीण्टसिन' चली आयी। यह १९३१ की बात है। १८ सितम्बर १९३१ को जापानने मञ्चूरियापर दखल करनेके लिए उसपर आक्रमण कर दिया था। चीनी फौजें शङ्घाईके आसपास जापानी फौजोंसे लड़ रही थीं। लगता था, जैसे जापानी सेनासे अधिक संख्या तो जापानी जासूसोंकी है। औसतन्, लगभग १० जापानी जासूस रोज

चीनियों द्वारा मारे जा रहे थे। दूसरी ओर जापानी सेना किसी भी चीनी सिपाहीको जीता नहीं छोड़ती थी। बस यह हाल था कि उभयपक्षीय सेनायें एक-दूसरेके जासूसोंको पकड़तीं, गर्दन काटतीं और लोथ-सहित सिरको नदीमें प्रवाहित कर देतीं।

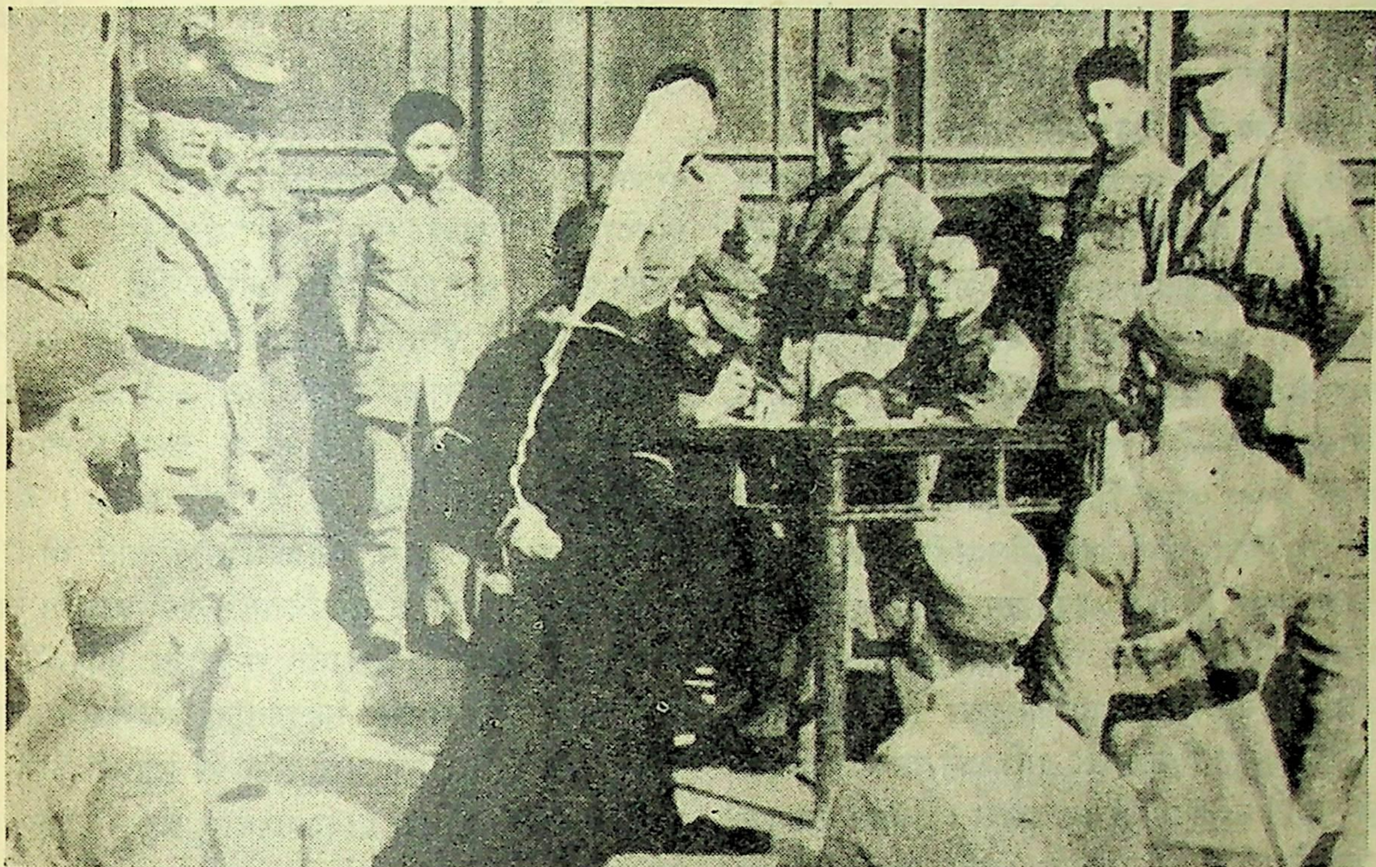
ऐसा मालूम होता था, मानो नदीमें कमल-समान सिर उगे हुए हों—एक नहीं, अनेकों; पानीकी धारामें ही बहते और पानीकी धारामें ही एक-दूसरेसे टकराते-से। उनकी जड़ोंकी जगह पानीकी तलहटी लाशोंसे पटी ही रहती। लगता, जैसे नदीका पथरीला धरातल लाशोंसे आच्छादित हो जानेके कारण अब कोमल हो गया हो। दुर्गन्ध इतनी थी कि जिसके कुप्रभावके कारण सिवाय हिंसक जलचरों और पशुओंके और कोई भी प्राणी आसपास नहीं दीखता था। मछलियोंको खानेवाली चिड़ियां भी अब वहां नहीं आती थीं। दुर्गन्धि-भरे वातावरणको भेदकर कोई चिड़िया नदीके ऊपरसे भी नहीं उड़ती थी। मानो चारों ओर दुर्गन्धिके वातावरणसे लिपटी नदी अब बैतरणी बन गयी है—खून-पीपसे भरी हुई-सी! बाज-बाज जानवर लाशोंको खानेके लिए नदीमें भी धंस जाते थे।

उस समय मालूम पड़ता था, मानो स्वयं मृत्युकी विभीषिका युद्ध-क्षेत्रमें अपना ताण्डव-नृत्य करने लग गयी हो। एक ओरसे जापानी सेनायें, जापानी टैङ्क और हवाई जहाज चीनी सिपाहियोंकी छावनियों, किलेबन्दियोंपर पीले पड़ रहे थे। रास्तेके गांवोंको जलाते—कुचलते हुए-से! दूसरी ओर जापानी जासूस चीनी नगरोंमें रोज-बरोज किसी-न-किसी सम्भ्रान्त चीनी नेता या अधिकारीकी हत्या कर डाला करते थे और राई-राई, रत्ती-रत्ती करके सारा समाचार जापानी सेना-नायकोंको मिल जाया करता था। जापानी जासूसोंका आतङ्क उन दिनों इतना बढ़ा हुआ था कि चीनी निवासियोंकी कौन कहे, स्वयं चीनी जेनरलास्सिमो चाङ्ग-काई-शेक भी परेशान हो गये थे। इसीका प्रतिकार करनेके लिए उन्होंने कूलिङ्ग नगरमें कूमिनटाङ्गकी एक गुप्त सभामें बोलते हुए कहा था:—"जापानका प्रत्येक मनुष्य जासूस है और प्रत्येक जापानी स्त्री एक वेश्या। यहां तक कि जापानी वेश्यायें भी जासूसिन हैं।"

कितनी बड़ी घृणा, कितना बड़ा सत्य-सा व्यङ्ग इन तीन पंक्तियोंके अर्थमें भरा पड़ा है! मगर जापानकी यह कैफियत थी कि गण्यमान्य जापानी जासूसोंका आदर किया जाता था। उन्हें किसी भी प्रकारका आर्थिक, वैयक्तिक, सामाजिक एवं नैतिक कष्ट नहीं दिया जाता था। उनके हाथमें काफी अधिकार दिये गये थे। इन्हीं प्रमुख जासूसोंमेंसे मिस योशिका कावाशिमा भी एक थी। जापानी लोग आदरसे उसे "जापानकी माताहरी" नामसे सम्बोधित करते थे। सूदूर पूर्वमें आज शायद ही कोई ऐसा शिक्षित मनुष्य होगा, जो कि इस "जापानी माताहरी" के नामसे परिचित न हो। इसी योशिकाने अपने शक्तिशाली शत्रु और मञ्चूरियाके जापान-विद्रोही नेता 'मेजर जेनरल केञ्जी दोइहारा" पर विजय प्राप्त की थी। चीनी लोग केञ्जी दोइहाराको 'मञ्चूरियाके लारेन्स' के नामसे जानते थे। यह योशिकाके ही दमका जहूरा था कि आज मञ्चूरियाके राजप्रासादपर जापानी झण्डा फहरा रहा है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि १९३१ में हुई उपरिलिखित घटनाओंमें जितना हाथ योशिकाका था, उतना और किसी भी जासूसका न था। टीण्टसिन ही में योशिकाकी मुलाकात अपने ताऊ 'काङ्ग-टेह' से हुई। चीनी पुलिसने काङ्ग-टेहको गिरफ्तार करना चाहा। योशिकाको मालूम हो गया कि फलां समय चीनी पुलिस उसके ताऊ (भावी मञ्चूरियन सम्राट्) को गिरफ्तार करने आवेगी। अतएव वारण्ट लेकर जिस समय चीनी पुलिस मुख्य द्वारसे काङ्ग-टेहके प्रासादमें घुस रही थी, उस समय काङ्ग-टेह टीन्टसिनसे १० मील आगे मोटरपर भागे जा रहे थे। स्वयं शियोका 'ड्राइव' कर रही थी। इस प्रकारसे अपनी जान बचानेवाली भतीजीके काङ्ग-टेह इतने कृतज्ञ हो गये कि उन्होंने उसे अपने साथ ही रखा। मञ्चूरियाके सिंहासनपर बैठनेके बाद मेजर जेनरल केञ्जी दोइहाराके नेतृत्वमें मञ्चूरियन जनताने विद्रोह कर दिया। पर जापानी सैनिकोंकी सहायतासे जिस खूबीसे योशिकाने विद्रोहका दमन करके दोइहाराको गिरफ्तार किया था, वह अवर्णनीय है।

१९३२ में जापानियोंने शङ्घाईपर आक्रमण किया, और योशिकाने उनकी बड़ी सहायता की। वह भेष बदलकर चीनी सैनिकोंकी छावनियोंमें घुस जाती और सेनाध्यक्षोंसे स्वतन्त्रतापूर्वक बात करती। तरह-तरहसे उन्हें



देशद्रोही जापानी टुङ्ग-चिनो द्वारा गिरफ्तार होकर अदालतमें प्राणदण्ड पा रहा है। टुङ्ग-चिनो पास ही पुरुष-वेशमें खड़ी है।

लुभाकर, बातों ही बातोंमें उनका भेद जान लेती। जिस दिन शङ्घाई-स्थित जापानी सेनापतिको योशिकाने यह बताया कि चीनकी १९ वीं सेनासे चाङ्ग-काई-शेककी सरकार असन्तुष्ट है और उक्त सेनाके सिपाही सिर्फ इसीलिए लड़ रहे हैं कि इसके अलावा उनके लिए कोई चारा नहीं है, तो उस दिन समस्त जापानी सैनिक-क्षेत्रोंमें उत्तेजनाकी एक लहर-सी दौड़ गयी थी और जब जापानी सेनाने चीनकी १९ वीं सेनाको घेरकर सैनिकोंको कैद कर लिया था, तब उसका श्रेय योशिकाको ही मिला था।

इसी योशिकाने यह भी पता लगाया था कि चीनकी नौ-सेनाके अधिकारीगण अमुक दिन, अमुक समय 'हिज इम्पीरियल जापानीज मेजेस्टीजशिप 'इजुमो' नामक जङ्गी जहाजको बारूदसे उड़ा देंगे। परिणाम यह हुआ कि वह जङ्गी जहाज बचा लिया गया। १९३२ से १९३७ तक चीनी जल-सेनानायकोंने लगातार इस बातका प्रयत्न किया कि 'इजुमो' का नाश कर सकनेमें वे सफल हों। पर चूंकि उन्हें सफल नहीं होना था, इसलिए वे नहीं हो सके। या यों कह लीजिये कि शियोकाकी गुप्तचर-शक्तिने 'इजुमो' की रक्षा की। अपनी इस असफलतासे खीजकर चीनी सेनाध्यक्षोंने अपने गुप्तचरोंके द्वारा यह पता लगाना चाहा कि कौन है वह, जो बार-बार हमारे षड्यन्त्रोंका पता लगाकर शत्रुओंको सावधान कर देता है? चीनी जासूसोंने अथक परिश्रम करके योशिकाकी कारस्तानी जान ली। चीनी सेनानायकोंने उसकी हत्या करनेका निश्चय किया और जानपर खेल जानेवाले लागी चीनी युवक दिलके पास पिस्तौल छिपाये, योशिकाको अवसर पाते ही खत्म कर देनेके लिए, ढूंढ़ने लगे। मौका पाकर नानकिङ्ग नगरमें उन्होंने योशिकापर गोली भी चलायी, पर वह बच गयी। मरी नहीं, वरन् घायल ही होकर रह गयी। इस घटनासे जापानी सेना-नायकोंके दिलमें योशिकाके प्रति और अधिक सम्मान-भावका प्रादुर्भाव हुआ। शङ्घाई-स्थित जापानी सेनापति तो योशिकाको इतना मानने लगा कि बिना उससे पूछे वह कहीं भी आक्रमण ही न करता।

अक्सर ऐसा होता था कि शङ्घाईकी सुरम्य एवं सुन्दर उपत्यकाओं और पहाड़ियोंपर अपनी कई 'प्रेमिकाओं'के साथ पुरुष-वेशमें वह निर्द्वन्द्व भावसे घूमती दीख पड़ती थी।

कभी घोड़ेपर चढ़ी हुई (पुरुष-वेशमें), बेंत हाथमें लिये पहाड़ियोंके अञ्चलमें बसे चीनी गांवोंमें धूल उड़ाती पहुंच जाती। मगर जब कभी वह किसी सरायमें ठहरती थी, तो अपने साथियों सहित सरायका साराका सारा भोज्य-पदार्थ खरीद लेती—स्वयं खाती, साथियोंको खिलाती और बाकी गरीबोंको बांट देती। सरायोंके भठियारे उसे इतना पहचान गये थे, चाहे वे चीनी हों या जापानी, कि दिन-रात उसके आनेकी बाट जोहते रहते; क्योंकि उन्हें मुंह-मांगी आमदनी होती थी। इसी प्रकार लोगोंको अपना मुरीद बनाकर वह अपना 'काम' निकाला करती थी।

एक बार किसी चीनी सरायमें उसकी मुलाकात एक चीनी सेनाध्यक्षसे हुई। भाग्यवश उस समय वह अपनी असली पोशाकमें थी। चीनी सेनानायक उसकी बातचीत, अदा और सौन्दर्यसे इतना प्रभावित हुआ कि उसे अपनी छावनीमें आमन्त्रित किया, और योशिकाने उसके निमन्त्रण-को बड़ी खुशीसे स्वीकार भी कर लिया। नियत समयपर वह छावनीमें गयी भी और खीमेके अन्दर दोनोंने बड़ी देर तक गपशप की। इसी गपशपके दरमियान चीनी सेनाध्यक्षको शराब पिलाकर उसने यह बात जान ली कि जेहोल-युद्धमें लड़ते हुए ३००० जापानी सैनिक इसी छावनीमें कैद हैं। यथा-समय उसने यह सूचना शङ्घाई-स्थित अपने मित्र जापानी सेनानायकको दी, दोनोंने मिलकर उनको छुड़ानेकी तरकीब सोचने लगे। योशिकाने कहा कि पैराशूट द्वारा अपने कुछ साथियों सहित रातमें वह उक्त छावनीमें उतर जायगी और फिर किसी प्रकार उन ३००० जापानी सैनिकोंको छुड़ा लावेगी। जापानी सेनापतिने खतरेसे भरी समझकर उसकी रायको माननेसे इनकार कर दिया और योशिकाको अपना सहकारी बनाकर चीनी सेनापतिके पास भेजा। जापानी सेनापतिने तो उसे इतना तक अधिकार दे दिया था कि वह जो भी शर्तें स्वीकार कर आवेगी, वह उसे सहर्ष मान लेंगे। मगर उसने वहां भी चालाकी खेली। उसकी प्रेमिका बनकर वह चीनी सेनापतिके पास आयी और शराब पीकर दोनों घूमनेके लिए निकले। नियत स्थानपर पहुंचते ही जापानी सैनिकोंने उसे गिरफ्तार कर लिया। चीनी सैनिकोंमें घबड़ाहट फैल गयी। और तब सहकारी सेनापतिका भेव धारण कर वह चीनी छावनीमें गयी और इस शर्तपर जापानी सैनिकोंको छुड़ा लायी कि चीनी सेनापति बन्धन-मुक्त कर दिया जायगा।

१९३१ में जिस दिन जापानियोंने चीनके जेहोल प्रान्त-पर अधिकार किया, यह योशिका ही थी जिसने जेहोलकी राजधानीके प्रासादपर उस दिन 'उदित-सूर्य' (जापानका राष्ट्रीय झण्डा) फहराया था। जापानियोंकी जेहोल-विजय योशिका ही की प्रतिभाका फल था। उसने अपनी एक अलग घुड़सवार-सेनाका सङ्गठन किया और कई लड़ाइयोंमें चीनी फौजोंको हराया भी। लड़ाई खत्म होनेपर उसने टीण्टसिनके जापानी क्षेत्रमें एक 'रेस्तरां' खोला। भोजनके अतिरिक्त वहां एक दूसरी खिचड़ी भी पकती थी। इसी रेस्तरांके बजरिये उसने न जाने कितने भेदोंको जाना। विभिन्न प्रकारके चीनी और जापानी सम्भ्रान्त पुरुष रेस्तरांकी मालकिनकी सुन्दरता और सहृदयताकी कहानीसे प्रभावित होकर उसके ही रेस्तरांमें आते। गांठसे खर्च भी करते और योशिकाकी पैनी दृष्टियों द्वारा अपना 'भेद' भी उगल देते। इस प्रकारसे उसकी ख्यातिके साथ ही साथ उसके रेस्तरां-की ख्याति और आमदनी भी बढ़ने लगी। एक दिन एक चीनी करोड़पति मि० वाङ्ग चूलिन भी उसके रेस्तरांमें आया। वाङ्ग चूलिन टीण्टसिनका एक प्रभावशाली नाग-रिक और 'चाइनीज चेम्बर आफ कामर्स'का चेयरमैन था। योशिकाने उसे अपने हाव-भाव और रूपके ताने-बानेमें कुछ इस प्रकारसे कसा कि वह उसका मुरीद हो गया। वाङ्ग चूलिनने योशिकाको 'अपनी सबसे प्यारी' प्रेमिकाके रूपमें देखा, पर योशिकाने उसे 'खबरें मालूम करनेका एक अच्छा जरिया' के रूपमें देखा। ज्यों-ज्यों अनायास वाङ्ग चूलिन द्वारा चीनियोंके भेद जापानियोंको मालूम होने लगे, त्यों-त्यों योशिका और चूलिनका साथ भी बढ़ने लगा। चीनी गुप्तचरोंको उन दोनोंपर सन्देह हुआ। फलतः १९३८ के दिसम्बर मासमें चीनी क्रान्तिकारियोंने वाङ्ग चूलिनको गोली मार दी।

उन्होंने तो योशिकाको भी मार डालनेका प्रयत्न किया था, पर वह बाल-बाल बच गयी—मगर कब तक? पहली जनवरी १९३९ का दिन था, जब योशिका वाङ्ग चूलिनके प्रासादके सामने मोटरसे उतरी। वह वाङ्गकी विधवाके पास मातमपुर्सीके लिए आयी थी। मोटरसे उतरते ही पास-

में खड़े चार चीनी युवकोंने उसपर गोलियोंकी वर्षा-सी कर दी। हालां कि वे चारों गिरफ्तार कर लिये गये और उसी समय, उसी जगह, उनके सिर धड़से जुदा कर दिये गये थे। पर ऐसा होनेसे योशिका जिन्दा थोड़े ही बची। दो महीने टीण्टसिनके अस्पतालमें पड़ी रहकर वह ३ मार्चको मर गयी। उसकी छातीके पास ४ गोलियां लगी थीं।

वह जासूसिनके साथ ही साथ दयालु थी। एक राजकुमारीकी तरह उसने धनको बहाया। एक वीर सैनिककी तरह वह युद्धकलासे परिचित थी। एक प्रमुख सेनापतिकी तरह उसने युद्धोंमें विजय प्राप्त की। एक सुन्दरीकी भांति उसने दिलोंके साथ खेलबाड़ किया। एक राजनीतिज्ञकी तरह उसने देशका उतार-चढ़ाव मापा और एक मन्त्रीकी तरह उसने राज्य-सञ्चालन भी किया। इतने गुणोंसे विभूषित यह रमणी बड़ी अद्भुत थी।

समाधि

आज समाधि-शिलापर आयी
तू प्रियतमका दीप जलाने,
अश्रु-कणोंसे सींच यहांकी
शुष्क दूबको हरा बनाने!
चिर निद्रामें सोनेवालों
की इस शान्त मूक बस्तीमें,
आयी उरका कौन बता दे
आज मौन सङ्गीत सुनाने?

दिन ढलता है, पूर्व दिशासे
अंधियाली बढ़ती जाती है,
रजनी बाला क्षितिज पारसे
काला आंचल फैलाती है,
मूक जगतके सूनेपनको
क्षणमें अन्धकार भर देगा,
बता किसलिए सन्ध्याको यह
छोटा-सा दीपक लाती है?

इन पाषाण शिलाओंमें
जाने कितने अरमान दबे हैं,
भूखे मरते कृषकोंके
जाने कितने अभिमान दबे हैं,
अभिशाप बने जीनेवालों-
को कटु ऐसे जाने कितने
मरनेवालोंके पाषाणों
में वे वाञ्छित वरदान दबे हैं!

अरी जगा मत क्रन्दनसे सुख-
निद्रामें सोनेवालोंको,
मृत्यु-सुरा-मस्तीमें जगके
दुख सङ्कट खोनेवालोंको,
चुपचाप जला दे दीप न धनिकों-
सम हो जायँ कुपित कहीं,
ये भी देख समीप विकट दुख
सङ्कटसे रोनेवालोंको!

इनपर कोई निशिमें नभसे
नित अनगिन दीपक चमकाता,
इनपर कोई छिप बादलमें
मीठे जल-कण भी बरसाता,
ये तो तेरी इस दुनियासे
सम्बन्ध सदाको तोड़ चुके,
तेरे दीपक, खारे दृग-जल
से इनका अब कसा नाता?

सोने दे, सोने दे सबको
बहुत कष्ट सबने पाये हैं,
स्वार्थ-भरे जगका कड़ुवा ये
चिर सञ्चित अनुभव लाये हैं,
जीवनमें दो चार घड़ी भी
देख न पाये सुखके सपने,
सुखसे सोनेके इच्छुक ये
सोने इस जगमें आये हैं!

तेरे जगमें देख जरा तू
मानवताका नाम नहीं है,
तेरे जगमें देख जरा तू
समता सुखका काम कहीं है !
शोषणकी चक्कीमें प्रति पल
निशि दिन पिसनेवालोंको
सोच जरा तू भूखों मरने
वालोंको आराम यहीं है।

चिर निद्रामें सोनेवालोंकी
यह शान्त मूक बस्ती है,
इनके लिए जगतकी निन्दा
प्रेम, घृणाकी क्या हस्ती है ?
मानापमानके सब भावों
को भी जिसमें ये डुबा चुके
मृत्यु-सुराकी कभी न हट
सकनेवाली इनकी मस्ती है।

यही जगत है जहां धनी-
निर्धनका भेद न रहने पाता,
यही जगत है जिसे अपढ़
पण्डित कवि कोई समझ न पाता,
दुनियावालोंने भेदोंकी
इसमें भी रेखायें खींचीं,
पर तन मिट्टीका ढेर—
निरर्थक नित भेदोंको बतलाता !

क्या इस जगमें सोनेवालों
को भी सपने आते होंगे,
क्या इस जगमें सोनेवाले
भी आशा सुख पाते होंगे ?
नहीं जागकर कोई आया
फिर इस जगका सोनेवाला
कौन बतावे वहां हमारे
इनसे क्या नाते होंगे !

दीप जलाकर अपने मनको
समझाना है तू समझा ले,
आंसूसे पत्थर सींच अगर
तेरा दिल बहले बहला ले,
अपने मनको समझानेके
दीपक रोदन साधन केवल,
निर्मोह पड़े सोते रहते
इस जगके ये सोनेवाले !

कितनोंको अपने जीवनमें
भर पेट कभी खाना न मिला,
मरते-मरते भी कितनोंको
दो बूंद यहां पानी न मिला,
अब तो अपनी ये भूख-प्यास
सोनेसे पहले छोड़ चुके,
अब बता इन्हें क्या, अगर यहां
आंसूसे कोई कुसुम खिला !

आशाके और निराशाके
सोने लोहेके तारोंसे,
संसृतिके अविकल पालनसे
इन काल प्रबलके वारोंसे,
यह आंखमिचौनी-सा किसने
मानवका जगमें सृजन किया,
जो प्रतिपल लड़ता मिट जाता
अपने निर्मित हथियारोंसे !

दिन चार और दुख फिर मैं भी
इन ही में आकर सोऊंगा,
अपनी इच्छाके बीजोंको
इस मिट्टी ही में बोऊंगा,
वे लता उगेंगी यहां न जिनके
मुरझायेंगे कुसुम कभी,
उर-सौरभसे निज इसी तरह
इस जगके कुछ दुख खोऊंगा !

—ब्रजमोहन गुप्त, एम० ए०

समाजमें वेश्याकी स्थिति और उसकी प्रतिक्रिया

श्री रविशङ्कर शास्त्री

दिल्लीकी म्यूनिसिपैलिटीने कुछ दिन पहले एक नियम बनाकर वेश्याओंको बस्तीसे अलग रहनेकी व्यवस्था की थी, जिसके विरुद्ध उन्होंने एक बहुत प्रभावशाली प्रदर्शन किया था। समय-समयपर दूसरी म्यूनिसिपैलिटियोंने भी इस प्रकारकी व्यवस्थाका विचार किया है और इस समस्याके समाधानका इसके सिवा और कोई दूसरा साधन स्वीकार नहीं किया है। तो क्या समाजमें इस प्रकारकी गिरी हुई महिलाओंके लिए, जिन्हें गांधीजी 'पतित बहनें' कहकर सम्बोधित करते हैं, और कोई व्यवस्था हो ही नहीं सकती? प्राचीन कालसे ही वेश्याओंके अस्तित्वका प्रमाण मिलता है और इसका भी प्रमाण मिलता है कि प्रायः समस्त माङ्गलिक कार्योंमें उनका सहयोग भी मिलता रहा है। उन्हें एक बुरी आवश्यकता ही क्यों न समाजने समझा हो, पर आवश्यकतासे इनकार कभी नहीं किया गया। आज भी समाजमें उनकी स्थिति प्रायः ऐसी ही है। पर सच तो यह है कि समाजमें उनकी आवश्यकता हो या न हो, उनका अस्तित्व है, अतः समाजके सामने एक समस्या अवश्य उपस्थित है।

वेश्याओंकी आवश्यकता समाजके लिए क्या थी, जिससे उनकी संख्या बढ़ती गयी है, और अगर उनकी आवश्यकता नहीं थी, तो इस रूपमें सभी कालों और सभी देशोंमें उनका अस्तित्व क्यों पाया जाता है? एक व्यक्तिने कहा है कि जिस प्रकार सुन्दर स्वच्छ घरमें भी गन्दी नालियोंकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार समाजमें भी वेश्याओंकी आवश्यकता है; क्योंकि समाजको चाहे जितना उन्नत और चाहे जितना परिष्कृत करनेका प्रयत्न किया जाय, इसमें कोई सन्देह है ही नहीं कि समाजमें ऐसे लोगोंकी संख्या बराबर बनी रहेगी, जिनका नैतिक धरातल बहुत ऊंचा नहीं होगा। ऐसे लोगोंका अस्तित्व समाजके लिए घातक चाहे जितना भी हो; पर जब तक समाजमें वह अस्तित्व है, तब तक ऐसी चीजें भी बनी रहेंगी जो, समाजके लिए वाञ्छनीय नहीं हैं। वेश्यावृत्तिके प्रसङ्गमें ऐसे लोगोंका ख्याल आ जाना स्वाभाविक है। क्या यह सम्भव नहीं है कि समाजमें भीषण नैतिक अशान्ति उत्पन्न हो जाती, यदि वेश्याओंका अस्तित्व न होता। यह कहा जा सकता है कि समाजके कल्याणके लिए कुछ नारियोंको ऐसा जघन्य पापमय जीवन बितानेके लिए विवश क्यों किया जाय, जैसा जीवन वेश्यायें बिताती हैं। तो यहां हकीकत यह है कि वेश्याओंको ऐसा जीवन बितानेके लिए कोई विवश नहीं करता। यह तो संयोगवशात् ही व्यवस्था बन गयी कि 'विषस्य विषमौषधम्' का प्रबन्ध हो गया। अन्यथा नारी जातिके प्रति हमारा यह कितना बड़ा अपराध है कि हमने पेटके लिए उसके सतीत्वको बाजारके सौदेका रूप दे दिया है।

वेश्यावृत्ति मूलतः आर्थिक प्रश्न है। जिस देशमें यह नैतिक प्रश्न नहीं है, जिन देशोंमें सतीत्व सम्बन्धी धारणायें इतनी प्रबल नहीं हैं और जहां नैतिकताकी श्रृङ्खला जरा ढीली है, वहां भी देखा गया है कि अगर आर्थिक समस्यायें सुलझा दी जायें, तो इस पेशेका अन्त हो जाय। इसलिए इस समस्याका किसी प्रकारका निराकरण सम्भव नहीं है, यदि आर्थिक दृष्टिसे इसपर विचार न किया जाय।

इस देशकी सामाजिक व्यवस्थाके सम्बन्धमें एक विचित्र बात यह मालूम होती है कि एक ओर तो यहां सतीत्वकी ऐसी महिमा है कि पराये पुरुषकी छाया पड़नेसे भी नारीका पातिव्रत धर्म नष्ट हो जाय और दूसरी ओर उसी समाजमें ऐसी नारियोंकी संख्या लाखों है, जो पतनकी चरम सीमापर पहुंच चुकी हों। लेकिन जहां विचित्रता है, वहां यह भी देखनेकी चीज है कि ऐसी नारियोंके लिए भी हमारे समाजमें एक स्थान प्राप्त है और कई अवसरोंपर उनकी काफी प्रतिष्ठा होती है। समाजके पतित अङ्गके प्रति भी हिन्दू जाति उदार रही है, यह इस बातका सबूत है।

लेकिन इस उदारताके भीतर केवल उदारता ही हो, ऐसा नहीं कह सकते। समय-समयपर वेश्या-समाजके प्रति उदारताकी इस भावनाका जो उदय होता है, उसमें स्वार्थका भी अंश काफी है। समाजकी सामूहिक इच्छाका

प्रकाश जब इस उदारताके रूपमें होता है, तब समाजके समस्त प्राणी इसके प्रति घृणा नहीं प्रकट कर सकते। उनकी घृणा प्रकट भी होती है, तो दूसरे रूपमें। उदाहरणार्थ हमारे समाजमें सङ्गीत और नृत्यका प्रचलन जिन जातियोंमें अधिक रहा है, वे जातियां समाजके उच्च वर्णोंसे प्रायः अलग रही हैं। गन्धर्व जाति और वेश्या-समाजके अन्तर्गत सङ्गीत और नृत्यका खास प्रचार है, और इसका परिणाम यह हुआ है कि भले घरोंमें इसका बहिष्कार भी सनातनधर्मका एक अंश माना जाने लगा। आधुनिक सभ्यताका जिनपर कुछ प्रभाव पड़ा है, वे तो सङ्गीत और नृत्यके प्रति उतनी घृणा नहीं करते; पर अभी भी ऐसे घरोंकी संख्या लाखोंमें है, जिनमें लड़कियोंका सङ्गीत सीखना अनुचित समझा जाता है और नृत्यकी तो बात ही क्या। इसका साधारण-सा भी विश्लेषण कीजिये, तो पता चलेगा कि समाजमें अवसर-विशेषपर जो उदारता उक्त जातियोंके प्रति दिखायी जाती है, उसका रहस्य क्या है और वास्तवमें उनके प्रति समाज कैसी आन्तरिक घृणा रखता है।

समाजकी इस आन्तरिक घृणाका अर्थ यह हुआ है कि वेश्या-समाजको लेकर लोगोंमें एक अजब ढोंग समा गया है। समाजमें उनकी कोई स्थिति नहीं है। जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यकी कन्यायें अपनी-अपनी जातियोंमें रहेंगी और सदा उनकी वही स्थिति होगी, उसी प्रकार वेश्याकी लड़कीका भी भाग्य आजीवन वेश्या बननेमें समाप्त हो जाता है। जैसी पतित परिस्थितियोंमें उनका जन्म और पालन-पोषण होता है, उनमें उनकी आत्माका विकास नहीं होने पाता—बल्कि कहना चाहिए कि विकास होने ही नहीं दिया जाता। होश संभालते ही उन्हें अपनी स्थितिका ज्ञान होता है, उन्हें शिक्षा-दीक्षा कुछ नहीं मिलती और सारा परिवार जिस पाप-पङ्कमें फंसा रहता है, उससे निकलनेकी न तो उन्हें इच्छा होती है और न वे निकल ही सकती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि एक बार अगर कोई नारी वेश्या हुई, तो उसे आजन्म इसी रूपमें रहना पड़ेगा और इस प्रकार जैसे समाजमें कई जातियां हैं, उसी प्रकार यह भी एक जाति बन गयी है। और यह जाति खूब विकसित होती जा रही है।

लेकिन इस जातिका भविष्य क्या है? वेश्या-समाजके अतिरिक्त दूसरे लोग नियमानुकूल उनसे विवाह-सम्बन्ध स्थापित करके साधारण जीवन बिता नहीं सकते, क्योंकि वे उसी समाजके हो जायेंगे, जिसकी शिक्षा-दीक्षाका कोई प्रबन्ध सम्भव नहीं और न समाजमें सर्वत्र वे गृहीत ही हो सकते हैं। अतः आर्थिक दुरवस्थाके वे सदा शिकार होंगे और इस स्थितिमें न तो उनमें मनोबल होगा और न आर्थिक स्वावलम्बन। परिणाम स्पष्ट है। उनसे वेश्या विवाह करके गार्हस्थ्य जीवन बिताना स्वीकार न करेगी और दूसरे लोग उन्हें ग्रहण करेंगे नहीं, ऐसी दशामें अवैध रूपसे सन्तानोत्पत्तिका काम तो जारी रहेगा और पुरुष सन्तानोंके लिए दलाली और हिजड़ेपन तथा बालिकाओंके लिए वेश्यावृत्तिके अतिरिक्त और काम ही क्या करनेको मिलेगा। इसलिए यह वेश्या-समाज कभी उन्नत होगा नहीं, कभी सुधरेगा नहीं और समाजमें कभी आदरणीय स्थान प्राप्त करेगा नहीं।

वेश्याओंका सारा पतन इसीलिए है। लाखोंकी संख्यामें उनकी पल्टनें जो विभिन्न शहरोंमें खड़ी दिखाई पड़ती हैं, उसके कारण स्पष्ट हैं। उन्हें कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं हैं। सारा समाज उन्हें मनोरञ्जनका साधन तो समझता है, पर उनसे घृणा भी खूब करता है। इक्के-दुक्के उनके सुधारके लिए जो प्रयत्न होते हैं, वे भी समाजके इसी विरोधी भावके कारण सफल नहीं हो पाते। और समाजका ढोंग देखिये कि वह चुपचाप अन्धेरेमें उनके चरणोंमें लोटनेको तैयार है, पर खुलकर वह उनके उद्धारका नाम लेते भी कांप उठेगा।

पिछले दिनों वेश्या-समाजकी जो वृद्धि हुई है, वह हमारी मूर्खता और उसके दुष्परिणामके अनेक नमूने पेश करती है। हमने अपने समाजकी व्यवस्था कुछ इस तरहकी बना रखी है कि तनिक भी किसी नारीके पतित होते ही समाजमें हम उसके लिए कोई स्थान नहीं रहने देते। नारी जातिके प्रति नैतिकताके नामपर जो अत्याचार होते चल रहे हैं, वे यद्यपि समाजको सुदृढ़ करनेके नामपर किये जाते हैं, पर वास्तवमें वे समाजको जर्जरित करते चल रहे हैं। हिन्दू समाजमें इस प्रकारका ढोंग बहुत है। हिन्दू समाजने इस विषयमें दक्षता प्राप्त कर ली है कि धर्मकी आड़में मिथ्या आचरण करनेमें सफलता प्राप्त कर ले। उसके चरित्रमें यह जो ढोंग आया है, वह उसकी महान् सफलता है। पर इसका दुष्परिणाम भी देखिये। हिन्दू समाजसे निकली हुई नारी जब कोठे-

पर जाकर बैठती है और लोगोंकी आंखोंमें धूल झोंकनेके लिए अपना नाम परिवर्तन करके समाजका मनोरञ्जन करना शुरू करती है, तब समाज उस बहिष्कृत नारीको उतनी घृणाकी नजरसे नहीं देखता; बल्कि समाजकी कुटिलता तो देखिये कि उस दशामें वह उसका सम्मान करनेको तैयार है। वह इस बातसे प्रसन्न होता है कि उसने पूर्ण पतितावस्था प्राप्त कर ली है—ऐसी अवस्था, जिसमें उसके लिए उसका मनोरञ्जन करना तनिक भी कठिन नहीं रह गया। यह समाजके आन्तरिक कलुषका भीषण स्वरूप है और इसकी प्रतिक्रियायें चारों ओर घोर नारकीय जीवनके रूपमें दिखाई पड़ रही हैं।

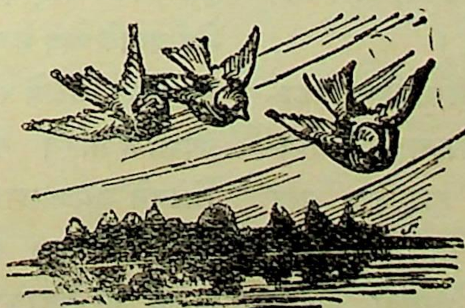
समाजमें आज जो कई तरहके भीषण रोगोंका दौरदौरा हुआ है और रक्त-सम्बन्धी रोगोंका जो बाहुल्य आज समाजमें हो रहा है, उसके मूलमें और कारणोंकी अपेक्षा सबसे बड़ा कारण यह है कि समाजमें वेश्यावृत्ति बराबर बढ़ती जा रही है और इस प्रकारके अवैध सम्पर्कोंका परिणाम भीषण रोगोंके रूपमें दिखाई पड़ रहा है। यह साधारण नागरिक सन्तानोंके लिए भी अत्यन्त घातक है। एक ओर नारी-समाजके एक अङ्गको अगर पुरुषने ऐसी यन्त्रणायें दी हैं, तो दूसरी ओर विभिन्न रोगोंके रूपमें समाजको उसका दण्ड भी भुगतना पड़ रहा है।

वेश्यावृत्तिके मनोवैज्ञानिक पहलूपर लिखते हुए एक व्यक्तिने लिखा है :—"समाजमें वेश्याकी स्थितिकी जो मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया होती है, वह सारे समाजके लिए विषैली है। कोई भी इस प्रतिक्रियासे अपनी रक्षा नहीं कर सकता। शरीर अथवा मन या शरीर और मन दोनों ही पर इसका प्रभाव पड़ता है और इस प्रकार समस्त समाजके शरीर और मन विषाक्त होते हैं। इस सम्बन्धमें अपवाद भी हैं; पर अपवाद, जैसा कि कहा जाता है, आम नियमको प्रमाणित ही करता है।"

इस स्थितिमें बहुत कुछ सुधार हो जाय, अगर वेश्या-समाजके प्रति हमारी मनोभावनाओंमें सुधार हो जाय। उनके प्रति जितनी घृणाका भाव रखा जाता है, और फिर भी उनको और भी पतनके गर्तमें गिरानेके जितने प्रयत्न होते हैं, अगर उनमें कमी आ जाय, तो वेश्या-समाजके लिए आम समाजमें प्रवेश करनेके द्वार खुल जायें और उनके बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षा उस रूपमें होने लगे, जिस रूपमें समाजकी दूसरी सन्तानोंके लिए अवसर मिलते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि वेश्या-समाजका मानसिक धरातल ऊंचा होगा, उसकी आर्थिक समस्या बहुत कुछ सुलझ जायगी, उसमें स्वावलम्बनकी भावना आयेगी और स्वावलम्बनके साथ-साथ आत्म-सम्मानकी भावना आते ही उसका वह शोषण रुक जायगा और समाजमें उसकी स्थिति काफी उन्नत हो सकेगी।

अतः समाजके इस नाजुक पहलूकी ओरसे आंख मूंदकर चलनेसे काम नहीं चल सकता। यह ऐसा रोग है, जिसका इलाज आवश्यक है। केवल इसे आवश्यक पाप कहकर एक साथ ही इससे घृणा और प्यार करनेकी स्थिति समाजके लिए भयावह है। इस प्रश्नपर नये दृष्टिकोणसे विचार कर इसका समाधान करना होगा। सवाल नाजुक है, इसपर लिखना-पढ़ना भी पाप समझा जाता है और इसीलिए यह समस्या भी ज्योंकी-त्यों पड़ी रह गयी है। आवश्यकता है कि इस ओर समाज-सुधारकोंका ध्यान जाय।

———



भूमध्यसागरका महत्त्व और उसकी मोर्चाबन्दी

श्री अवनीन्द्रकुमार विद्यालङ्कार

दस जूनको यूरोपियन युद्धने एक नया रङ्ग पकड़ा। इटली खुल्लमखुल्ला लड़ाईमें शामिल हो गया। इससे रण-क्षेत्र यूरोपकी सीमा तक सीमित न रहकर अफ्रीका तक फैल गया और लड़ाई भारतके द्वारपर होने लगी। अबसीनिया-की राजधानी अदिस अबाबा बम्बईसे १६०० मील दूर है। ब्रिटिश सोमालीलैंडके इटलीके हाथ चले जानेसे स्थिति और विकट हो गयी है। ब्रिटिश सोमालीलैण्डकी राजधानी बेरबेरासे अदन कुल १५० मील दूर है। अलेक्जेण्ड्रिया यदि भारतकी सीमा है, तो अदन उसका द्वार है और बेरबेरा उसके दो खम्भोंमेंसे एक खम्भा है। इसलिए भूमध्य-सागरके दोनों तटोंपर आगामी सर्दियोंमें होनेवाले युद्धके प्रति हम भारतीयोंकी विशेष दिलचस्पी होना स्वाभाविक है। भूमध्यसागरका युद्ध सदा इतिहासमें निर्णायक युद्ध रहा है। एक प्रसिद्ध ऐतिहासिकका कहना है कि दुनियाके निर्णायक १५ युद्धोंमेंसे ११ युद्ध भूमध्यसागरमें हुए हैं या इसके तटवर्ती राष्ट्रोंके साथ हुए हैं। और वर्तमान युद्ध भी साम्राज्यवादी शक्तियोंका भूमध्यसागरपर प्रभुत्व स्थापित करनेके लिए है, यदि यह कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी।

भूमध्यसागरका महत्त्व—आधुनिक समयमें भूमध्य-सागर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारका मुख्य मार्ग हो गया है। पूर्व और सुदूर-पूर्वका सारा व्यापार इस समुद्रके रास्ते होता है। यह तीन महादेशों—एशिया, यूरोप और अफ्रीकाके बीच है और तीन साम्राज्यवादी शक्तियां आज इसपर अपना प्रभुत्व जमानेके लिए लड़ रही हैं। अन्य तीन राष्ट्रोंका भी इससे निकट-सम्बन्ध है। ग्रेट ब्रिटेन, फ्रान्स और इटलीको अपने साम्राज्यके हितोंकी रक्षा करनी है, और स्पेन, ग्रीस और तुर्कीको अपने राष्ट्रीय हितोंकी रक्षा करनी है।

ग्रेट ब्रिटेनके विशाल साम्राज्यका बड़ा भाग हिन्द महा-सागरके चारों ओर है और इंगलैण्डसे साम्राज्य तक जाने-का सबसे छोटा रास्ता भूमध्यसागरकी राह है। मगर हिन्द महासागरके चारों ओर साम्राज्य बनानेसे पहलेसे इंगलैण्डका भूमध्यसागरके पूर्वीय तटवर्ती देशोंसे व्यापारिक सम्बन्ध था। रानी एनके शासन-कालमें इंग-लैण्डने इस समुद्र तक जानेवाले मार्गोंपर अपना नियन्त्रण स्थापित करना आरम्भ किया। १७०४ में जिब्राल्टरपर उसने अधिकार किया। लार्ड वेलज्लीके शासन-कालके अन्त तक ब्रिटेनकी भारतके अन्दर सर्वोच्च सत्ता हो गयी। इस-लिए ब्रिटेनके वास्ते इस समुद्रपर और अधिक अपना निय-न्त्रण स्थापित करना आवश्यक हो गया; क्योंकि भूमध्य-सागरका रास्ता भारत जानेका सबसे छोटा मार्ग है। उस समय ग्रेट ब्रिटेन और फ्रान्स दो बड़े प्रतियोगी थे। दोनों पूर्वमें अपना साम्राज्य निर्माण करना चाहते थे। अतः दोनों भूमध्यसागरपर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे। नेपोलियनने मिश्रपर कब्जा किया और अंगरेजोंने माल्टा लिया। १८०० से माल्टा अंगरेजोंके पास है। इन लड़ाइयोंमें इंगलैण्ड इस समुद्रके पूर्वीय भागमें आईओनियन द्वीप-समूह हस्तगत करनेमें सफल हुआ। इसके अतिरिक्त पश्चिमीय बेसिनमें मिहोरका द्वीप लेनेमें यशस्वी हुआ। भूमध्यसागरमें इन अधिकृत प्रदेशोंके कारण इंगलैण्ड केवल अपने व्यापार-मार्गको ही सुरक्षित रखनेकी आशा नहीं करता था, बल्कि वह उस समयके अपने शत्रुओं—स्पेन और फ्रान्सपर भी हमला करनेकी स्थितिमें था। मगर नेपोलि-यन-युद्धोंकी समाप्तिके बाद ब्रिटेनका पूर्वमें स्वार्थ बहुत अधिक बढ़ गया। फ्रेञ्च साहसके फलस्वरूप १८६९ में स्वेज नहर खुली। ब्रिटिश गवर्नमेण्टने, जिसने कि पहले इसके बनाये जानेका प्रारम्भमें विरोध किया था, इसका पूर्वके यातायातके लिए महत्त्व शीघ्र अनुभव किया। नहर खुलनेके कुछ सालों बाद १८७५ में ब्रिटिश गवर्नमेण्टने इस कम्पनीके खेदीववाले सब शेयर खरीद लिये। इसके बादसे ब्रिटिश गवर्नमेण्ट मिश्रमें रस लेने लगी। १८७७ में रूस जब बाल्कन प्रदेशोंके जरिये कान्स्टेण्टिनोपलके विरुद्ध बढ़ रहा था, ग्रेट ब्रिटेनने भूमध्यसागरके उत्तर-पूर्वीय कोनेमें स्थित साइप्रस-को ले लिया। इस समय ब्रिटेनके पास भूमध्यसागरमें अनेक नौ-सेनाके स्टेशन हैं। भूमध्यसागरका पश्चिमी द्वार

जिब्राल्टर ब्रिटेनके अधिकारमें है। साइप्रस, स्वेज, अलेक्जेण्ड्रिया पूर्वीय भागमें और माल्टा बीचो-बीच इसके पास है। इस समुद्रमें शक्तिशाली नौ-सेना रखकर ब्रिटेन अपने दो उद्देश्य सिद्ध करता है। प्रथम यह कि वह अपने पूर्वीय साम्राज्यसे अपना सम्बन्ध स्थापित करता है। इसके साथ हमको स्मरण रखना चाहिए कि इसके पेट्रोलकी आधी जरूरत ईस्ट इण्डीज, बर्मा, ईरानकी खाड़ी, ईराक और रूमानियासे पूरी होती है। उसका सारा रबड़, ऊन, जूट, चाय और काफी इस रास्ते आता है। भूमध्यसागरपर अधिकार होनेसे उसका एक महान् राजनीतिक उद्देश्य भी सिद्ध होता है। यह समुद्र उत्तरमें अनेक यूरोपियन देशोंके तटोंको परिक्षालित करता है। समुद्रमें अजेय नौ-सेना रखकर वह पुर्तगाल, स्पेन, फ्रान्स, इटली, ग्रीस, बल्गेरिया, तुर्की, सीरिया, फिलस्तीन और ईजिप्टके सम्पर्कमें आता है। इस समुद्रके अधिकृत स्थानोंके जरिये वह आसानीसे अपने मित्रोंकी मदद कर सकता है और अपने दुश्मनपर प्रभावशाली रीतिसे हमला कर सकता है। एक शब्दमें वह सहजमें यूरोप-खण्डकी राजनीतिमें प्रभावपूर्ण रीतिसे हस्तक्षेप कर सकता है और अपने लाभके अनुकूल भूमध्यसागरमें सन्तुलन-शक्ति कायम रख सकता है। क्योंकि इस समुद्रमें बाहरसे आनेके सब द्वार उसके हाथमें हैं। वह यदि चाहे, तो भूमध्यसागरके किसी भी देशका सम्बन्ध बाहरी देशोंसे तोड़ सकता है। यदि यह कहा जाय कि वह इटली, ग्रीस, युगोस्लेविया, बल्गेरिया, रूमानिया और तुर्कीको अपना कैदी बना सकता है, तो कोई अत्युक्ति न होगी। भूमध्यसागरमें ब्रिटिश नौ-सेनाकी सर्वोच्च सत्ता स्थापित होनेसे ग्रेट ब्रिटेनको अत्यधिक अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त है।

ब्रिटेनकी प्रतियोगी शक्तियां—मगर दुर्भाग्यसे और अन्य दो शक्तियां हैं, जिन्होंने अपनी सामुद्रिक शक्तिका इस समुद्रमें निर्माण किया है। ये हैं फ्रान्स और इटली। पिछले सौ या अधिक सालोंमें, विशेषतः १८३० से फ्रान्सने उत्तरीय और पश्चिमीय अफ्रीकामें विशाल और विस्तृत औपनिवेशिक साम्राज्य बना लिया है। भूमध्यसागरके दक्षिण तटपर, फ्रान्सके ठीक सामने, ट्यूनिस, अल्जीरिया और मोरक्को फ्रेञ्चोंके अधिकारमें हैं। अल्जीरियाके तीन ज़िले, कान्स्टेण्टाइन, अल्जीरिया और ओरन मेट्रोपोलिटन फ्रान्सके अन्तर्गत हैं। अल्जीरियामें फ्रेञ्चोंकी एक खासी बस्ती रहती है। उत्तरीय फ्रेञ्च उपनिवेशोंमें डेढ़ करोड़ आबादी है। ये फ्रान्सके लिए समुद्र-पार बाजारका काम देते हैं। यहांसे फ्रान्स कच्चा माल पाता है। लड़ाईके समय अपनी सेनाके लिए उसको आदमी मिलते हैं। इसलिए भूमध्यसागरके पश्चिमीय बेसिनके जरिये फ्रान्सके वास्ते यह जरूरी है कि वह अपने अफ्रीकन साम्राज्यका मार्ग सुरक्षित रखे। पश्चिमीय भूमध्यसागरमें यातायात सुरक्षित करनेके लिए फ्रान्सके पास अनेक नौ-सेनाके स्टेशन हैं। फ्रान्सके दक्षिण तटपर मार्सलीजके पूर्वमें तूलो और इसके पश्चिममें सेतेमें इसका नौ-सेनाका बड़ा अड्डा है। कोर्सिकाके पूर्व-उत्तरीय कोनेमें बैस्टियामें एक और इसका नौ-सेनाका अड्डा है। यह इटलीके समुद्र-तटके ठीक नजदीक है। भूमध्यसागरके दक्षिणीय तटपर ट्यूनिसियाके अन्दर बीजेरटा और अल्जीरियामें ओरनके समीप इसके नौ-सेनाके अड्डे हैं। उत्तरमें ये तीन और दक्षिणमें ये दो नौ-सेनाके स्टेशन इस समुद्रके पश्चिमी बेसिनमें एक प्रकारका फ्रेञ्च चतुर्भुज बनाते हैं। यह सच है कि बेलारिकके अन्तर्गत माइनोरका द्वीप इस चतुर्भुजके अन्दर आता है, मगर ये द्वीप अभी स्पेनके अधीन हैं या इटलीके हैं। पिछली लड़ाई समाप्त होनेके बाद फ्रान्सने सीरियाका शासनादेश प्राप्त किया, अतः पूर्वीय भूमध्यसागरमें फ्रान्सने अपना प्रभाव स्थापित कर लिया है। ईराकसे बड़ी मात्रामें यह तेल प्राप्त करता है और इसके लिए इसकी पाइप लाइन सीरियासे गुजरती है। स्वेज नहरमें भी इसका बहुत स्वार्थ निहित है। क्योंकि इसीकी राह वह अपने उपनिवेश मैडागास्कर, जो कि पूर्वीय अफ्रीकामें अवस्थित है, और फ्रेञ्च हिन्द चीन तक, जो कि सिङ्गापुरसे परे सुदूरपूर्वमें है, जल्दीसे जल्दी पहुंच सकता है। इससे स्पष्ट है कि फ्रान्सका फ्रेञ्च साम्राज्यसे यातायातका अधिकांश मार्ग भूमध्यसागरके जरिये है। इसलिए फ्रान्सकी सुरक्षाके वास्ते जिस प्रकार राइन नदीपर बड़ी भारी फौज रखनेकी जरूरत है, उसी प्रकार भूमध्यसागरमें अत्यधिक ताकतवर नौ-सेना भी आवश्यक है। अब तक दोनोंके स्वार्थोंमें सङ्घर्ष नहीं था, अतः दोनों मिलकर काम करते थे। मगर फ्रान्सकी पराजय और पेतां-गवर्नमेण्टके निर्माणसे अवस्था बदल गयी है। वह

यदि ब्रिटेनके प्रति अब भी मैत्रीपूर्ण रवैया रखेगा, तब तो कोई बात नहीं, मगर यदि वह फासिस्ट राष्ट्रोंके साथ हो गया, तो भूमध्यसागरमें पेचीदगी और बढ़ जायगी। जीबूटी-के आंशिक रूपसे इटलीके नियन्त्रणमें चले जानेका फल हमारे सामने है। लाल सागरमें जो सम्भव है, वह भूमध्यसागरमें भी सम्भव है। इसी खतरेको भांप करके ब्रिटेनने ओरनपर हमला करके फ्रेञ्च बेड़ेको ध्वस्त कर दिया या अपङ्ग कर दिया। मगर फिर भी रही-सही फ्रेञ्च-शक्ति अब भी ब्रिटेन-को परेशान कर सकती है। यही कारण है कि चाड और कैमरून फ्रेञ्च उपनिवेशोंके विद्रोहपर इंगलैण्डमें प्रसन्नता प्रकट की जा रही है और आशा की जा रही है कि लिस-बन, लागोस, चाड, खार्टुम, कैरो, कराची और सिडनीको इस छोटे रास्तेसे हवाई-मेल जारी की जा सकेगी।

भूमध्यसागरमें इटलीका स्वार्थ—भूमध्यसागरमें इन दोनोंके अतिरिक्त इटलीका भी स्वार्थ है। वीरगाथा-कालमें भूमध्यसागरके तटवर्ती सब देश रोमन साम्राज्यमें सम्मिलित थे। मुसोलिनीकी महत्त्वाकांक्षा प्राचीन रोमन साम्राज्यकी पुनर्स्थापना करनेकी है। १९१२ में इटलीने लीबिया लिया। इसके पश्चिममें फ्रेञ्च उपनिवेश ट्यूनिस और पूर्वमें मिश्र है। इटलीकी गृद्ध-दृष्टि ट्यूनिसपर है। यह सिसलीके दक्षिणी तटसे ठीक ९० मील दूर है। १९३९ में इटलीने बाल्कन प्रान्तसे अलबानिया ले लिया। वह किसी रोज भूमध्यसागरके पूर्वीय तटपर सीरिया और फिलस्तीन-को पानेकी आशा करता है। इटालियन-फ्राङ्को विराम-सन्धिसे सीरियामें इटलीका प्रभाव भी उत्पन्न हो गया है। इटालियन मिशनका सीरिया जाना अर्थसे खाली नहीं है।

प्रभुत्वके लिए लड़ाई—अलबानियापर अधिकार करके इटलीने एड्रियाटिक सागरपर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। इस समय वह ग्रीससे लड़ रहा है और उसे अपनी सत्ता मान लेनेके लिए बाध्य कर रहा है। उसकी नजर कारफू द्वीपपर है, जो कि जिब्राल्टरके समान टारण्टो-की समुद्र-धुनी और एड्रियाटिकके प्रवेश-द्वारको आच्छादित किये हुए है। कारफू सामरिक व्यूह-रचनाकी दृष्टिसे एड्रि-याटिक सागरकी कुञ्जी है और इटालियनोंकी दृष्टिमें भूमध्य-सागर और उसके पार अफ्रीका तक यातायात जारी रखनेके लिए जरूरी है। ब्रिटेनके हाथमें यदि कारफू चला गया, तो वह जिब्राल्टर, माल्टा, कारफू, साइप्रस, हैफामें सामुद्रिक अड्डोंकी श्रृङ्खला बना सकता है। कारफू जिसके पास रहेगा, उसकी जेबमें न केवल एड्रियाटिककी, बल्कि मध्य समुद्रकी भी कुञ्जी रहेगी। इसलिए आज इटली ग्रीसको अपने झण्डेके नीचे लानेके लिए लड़ रहा है और ब्रिटेन इस लड़ाईमें ग्रीसकी मदद कर रहा है। इसके अतिरिक्त इटलीकी नजर सालोनिकापर भी है। फ्रान्सके पतनसे पहले एक ब्रिटिश सेनापतिने कहा था:—'मित्र-राष्ट्रोंके लिए यह जरूरी है कि ग्रीस उनकी ओर हो। पिछली लड़ाईमें सालोनिका उनके हाथमें केन्द्रीय शक्तियोंके कमजोर भागपर हमला करनेका जरिया था; इस लड़ाईमें सालोनिका हमारी एक कमजोर जगह हो सकती है, इसलिए इसकी रक्षा करना जरूरी और महत्त्वपूर्ण है। इसकी रक्षा तत्काल जरूरी है, क्योंकि यदि इसका पतन होता है, तो सम्पूर्ण पूर्वीय यूरोप प्रति-रोध करनेमें असमर्थ रहेगा, ग्रीस और तुर्की अलग-अलग हो जायेंगे और सम्भव है, उनकी सेनायें भङ्ग कर दी जायं, और भूमध्यसागरमें फ्राङ्को-ब्रिटिश शक्तिपर और अधिक दबाव पड़े। वस्तुतः फ्राङ्को-ब्रिटिश समुद्र-शक्तिको सम्भवतः पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक ग्रीसकी जरूरत है।' इससे ग्रीसको लेकर इटली और ब्रिटेनमें हो रही रस्साकशीके महत्त्वका अन्दाजा लगाया जा सकता है। आज जब फ्रान्सने साथ छोड़ दिया है, उस अवस्थामें ग्रीसकी विजय ब्रिटेनके वास्ते कितनी अधिक महत्त्वपूर्ण है, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं है।

इटलीने जनरल फ्राङ्कोको स्पेनमें राज्य स्थापित करनेमें मदद दी थी। फलतः स्पेन आज बहुत कुछ इटालियन प्रभावमें है। उसने स्पेनसे माइनोरका पहले ही ले लिया है। पूर्वीय अफ्रीकामें इटलीने अपना साम्राज्य बना लिया है। अतः वह स्वेज नहर और लाल सागरमें अव्याहत प्रवेश चाहता है। इटलीके लिए यह जरूरी है कि वह अपनी महत्त्वाकांक्षाओंकी पूर्तिके लिए भूमध्यसागरपर अपना वर्चस्व स्थापित करे। इसलिए वह माल्टासे अंगरेजोंको खदेड़कर उसपर अपना अधिकार स्थापित करना चाहता है। इटलीने लड़ाईमें कूदते ही सबसे पहले इसीपर बम-वर्षा की थी। वह स्पेनको भड़का रहा है कि वह भूमध्य-सागरके पश्चिमीय द्वार जिब्राल्टरको अंगरेजोंसे छीन ले। जिब्राल्टरके आसपासकी ऊंची चोटियोंपर भारी-भारी तोपें

भी लगा दी गयी हैं। फ्राङ्को-स्पेनिश सीमापर जर्मन सेना तैनात है। मगर सुना है कि जनरल फ्राङ्कोने जर्मनीको स्पेनकी राह जिब्राल्टरपर हमला करनेके लिए अनुमति नहीं दी है और अंगरेजोंने मान लिया है कि लड़ाईके बाद जिब्राल्टरपर आधा नियन्त्रण स्पेनका होगा।

मोर्चाबन्दी—भूमध्य-समुद्रका मानचित्र देखनेसे मालूम होता है कि भूमध्यसागरके दो भाग हैं। यूरोपसे इटली और सिसली दक्षिणकी ओर भूमध्यसागरमें पैठे हुए हैं। अफ्रीकाके केप बोन और सिसलीके बीच केवल ८० मीलकी मेसिना समुद्रधुनी है। इटलीके सामनेका अफ्रीकाका भाग इटलीके अधीन है। ट्यूनिसकी सीमासे मिश्र तक इटलीका राज्य है। सिसली और अफ्रीकाके बीच एक छोटा-सा भाग है और इसमें पेण्टेलेरिया द्वीप भी इटलीका ही है। यह द्वीप सिसलीसे ६० मील दूर, ट्यूनिसियन किनारेसे केवल ४० मील दूर है। इस द्वीपसे पूर्वमें १३० मील दूर ब्रिटेनका माल्टा टापू है। यह सिसलीसे ६० मील दूर है। मेसिना समुद्र-धुनीका महत्त्व इसमें है कि पश्चिमी भूमध्यसागरसे पूर्वीय भूमध्य सागर जानेका यह द्वार है। इटलीने पेण्टेलेरिया द्वीपकी किलेबन्दी की है। यह द्वीप बहुत छोटा और इसका किनारा बहुत टूटा-फूटा है। इस द्वीपका विमान-गृह इससे ६० मीलपर सिसलीमें अवस्थित विमान-गृहका पूरक होगा। टारपीडो बोटोंके लिए इस द्वीपका उपयोग हो सकता है। मगर दुश्मनके जङ्गी जहाजोंका प्रतिकार करनेमें टारपीडो बोट विशेष उपयोगी सिद्ध न होंगे। दूसरी ओर लीबियाकी राजधानी त्रिपोलीपर भी मजबूत किलेबन्दी इटलीने कर रखी है। भूमध्यसागरपर वर्चस्व रखनेके लिए लीबियाका हवाई अड्डा महत्त्वपूर्ण है। मगर लड़ाईके समय दुश्मनके इसी कारण इसपर हमले भी हो सकते हैं। लीबियामें खेतीकी पैदावारके सिवाय और कुछ उत्पन्न नहीं होता। आक्रमण करनेके लिए वहां हवाई अड्डा बनाया गया है, मगर उसके लिए आवश्यक सब सामग्री इटलीसे लानी पड़ेगी। लीबियाकी राजधानी त्रिपोली २७० मील दूर है। पेण्टेलेरिया और त्रिपोली जानेका मार्ग माल्टाकी कक्षासे जायगा और अन्य बन्दर दूर पड़ेंगे। इसलिए ब्रिटेन इटलीसे लीबिया जानेवाली रसद, कुमुक और युद्ध-सामग्रीको रास्तेमें रोक सकता है। इसके अतिरिक्त भूमध्यसागरमें इटलीका एक और अड्डा लेएनो है। यह ओट्रॅण्टोनीकी समुद्रधुनीको सहजमें घेर सकता है और कारफूके प्रभावको कम कर सकता है। कारफूके दक्षिणमें लेवकास व कफोलोनियन द्वीप बन्दरगाहकी दृष्टिसे उत्तम हैं। मगर ये इटलीके निकटस्थ प्रान्तसे २०० मील दूर हैं। यहांसे १५० मील दूर नावेरिनोका उत्तम बन्दरगाह है। ग्रीसका दक्षिणी तट आलोड़ करके एथिनियाके समीप आनेपर उत्तम बन्दरगाह मिलते हैं। इनमें सिकलैडेस एक है। एशिया माइनरमें स्मर्नाके किनारे विपुल बन्दरगाह हैं। डार्डनलकी समुद्रधुनीपर वर्चस्व स्थापित करनेके लिए बन्दर और द्वीप उपयुक्त हैं।

व्यापारके दो मार्ग—पूर्वीय भूमध्यसागरमें व्यापारके दो मार्ग हैं। एक डार्डनलकी समुद्र-धुनी और दूसरा स्वेज नहरसे है। डार्डनलके रास्तेसे रूस व बाल्कन प्रदेशका माल आता है। रूस व रूमानियाका गेहूं, तेल और एशिया माइनरका खनिज पदार्थ इस समुद्र-धुनीके मार्गसे आता है। एण्टीपोडस व पूर्वीय भागोंसे स्वेज नहर द्वारा व्यापार होता है। भूमध्यसमुद्रसे न जाकर केप आव गुडहोपके रास्ते भी जाया जा सकता है। मगर एक बात स्मरण रखनी चाहिए। लड़ाईसे पहले उत्तरीय अटलाण्टिकके बाद सबसे अधिक ब्रिटिश जहाजोंका यातायात इसी रास्तेसे था। यदि यह मार्ग बन्द हो जाय, तो इंगलैण्डसे बम्बईकी ४३०० मील, सिडनीकी ११०० और सिङ्गापुरकी ३३०० मीलकी दूरी और अधिक बढ़ जायगी। समुद्र-मार्गसे यातायात धीमा हो जायगा और व्यापारकी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए और अधिक जहाजोंकी जरूरत होगी।

डोडेकनीज—ग्रीसके नैऋत्य कोण और तुर्कीके पश्चिममें ईजियन समुद्रमें स्थित डोडेकनीज द्वीप-समूह डार्डनल और साइप्रसके प्रवेश-द्वारपर दृष्टि रख सकता है। रोडेज समेत डोडेकनीज द्वीपोंकी संख्या १३ है। लगभग ३० साल पहले इटलीने इसको ग्रीससे जीता था। इन द्वीपोंमें किलेबन्दी है और युद्ध-सामग्री यहां मौजूद है। इटलीके लड़ाईमें कूदते ही तुर्की वचनबद्ध होता हुआ भी अभी तक लड़ाईमें इसी कारण नहीं कूदा है कि डोडेकनीज द्वीपोंकी किलेबन्दीने तुर्कीपर शह बैठा रखा है। रोडेजका किनारा छोटा है। डोडेकनीज द्वीपोंमें स्टाम्पालिया व लिरोस मुख्य हवाई अड्डे हैं। मगर यहां थोड़े ही विमान

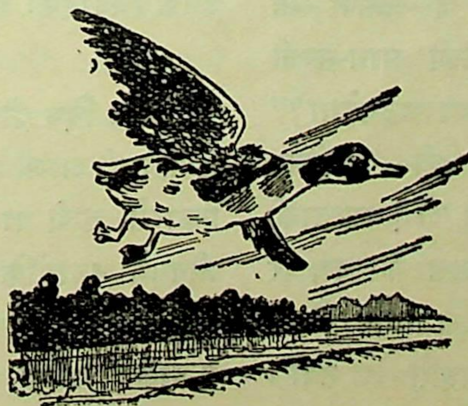
रह सकते हैं। साइप्रससे रोडेज २३० मील दूर है और एशिया माइनरसे अन्य इटालियन द्वीप दस मील दूर है। साइप्रस ब्रिटेनके पास है। इसी प्रकार फिलस्तीनमें हैफा बन्दरगाह ब्रिटेनके पास है। इन बन्दरगाहों और फामगुस्ता बन्दरमें थोड़े ही जहाज रह सकते हैं। इन स्थानोंमें हवाई अड्डे भी हैं। इधर ब्रिटेनके पास अलेक्जेण्ड्रिया है, जो सुरक्षित है और जहां बड़ी संख्यामें जहाज ठहर सकते हैं। पोर्ट सय्यद भी इस दृष्टिसे महत्त्वका है। क्योंकि काफी संख्यामें यहां जहाज ठहर सकते हैं।

पूर्वका जिब्राल्टर—भूमध्यसागरके बीच इटालियन जङ्गी बेड़ेको लीबिया और इटलीसे मदद मिल सकती है। अफ्रीकाके इटालियन उपनिवेशों—इरीट्रिया, अबसीनिया, सोमालीलैण्डको लाल समुद्रके ब्रादर्स, मसावा और अनेक स्टेशनों द्वारा, जिनको पूर्वका जिब्राल्टर कहते हैं, मदद पहुंच सकती है। ब्रदर्सका द्वीप लालसागर और अदन खाड़ीको जोड़नेवाली बाबल माण्डपकी समुद्र-धुनी नामसे प्रसिद्ध समुद्रके सङ्कीर्ण मुखपर है। बाबल माण्डपपर ब्रिटेनका अधिकार है। इसको अश्रु-द्वार भी कहते हैं। ब्रिटिश सोमालीलैण्डके इटलीके कब्जेमें चले जाने और जीबुटी, जीला और बेरबेरा बन्दरगाहोंपर उसका अधिकार होनेसे स्थितिमें यद्यपि कुछ अन्तर आ गया है, मगर जब तक इटलीकी नाविक शक्तिका वर्चस्व लालसागरपर नहीं होगा, ये बन्दरगाह उसके लिए अधिक उपयोगी सिद्ध न होंगे। ब्रदर्स द्वीप १९३५ में अबसीनियासे लड़ाई शुरू होनेसे पहले इटलीको मिला था। उसके बादसे इसका महत्त्व बराबर बढ़ता जाता है। ब्रदर्स द्वीप अब पूर्वका जिब्राल्टर कहा जाता है। इटलीने यहां गुप्त रूपसे रक्षणात्मक और आक्रमणात्मक तैयारी की है। अतः इस अड्डेका महत्त्व अत्यधिक हो गया है। द्वीपकी कंकरीली जमीनपर तोपें चढ़ायी गयी हैं और यहां कड़ा पहरा है। इटलीने लड़ाईसे पहले ही इस द्वीपके आसपास तीन मील तक इटालियन जहाजोंके सिवाय औरोंका आना मना कर दिया था और इस प्रतिबन्धित प्रदेशमें सोमालीलैण्डसे आनेवाले एक जहाजपर तोपसे गोले भी बरसाये गये थे। इरीट्रियाके सारे किनारेपर जो विशाल किलेबन्दी की गयी है, उसका मुख्य अड्डा ब्रदर्स द्वीप ही है। इसमें असाब और मसावामें दो अड्डे हैं। यहां लड़ाईके समय सामुद्रिक बेड़ा और हवाई बेड़ा रह सकता है। इरीट्रियाके किनारेपर पनडुब्बियों, सुरङ्ग बिछानेवाले जहाजों और जङ्गी जहाजोंका बाहुल्य है। पिछले छः सालसे इटली इरीट्रियाके समुद्र-तटकी इस प्रकार किलेबन्दी करनेमें लगा हुआ था। असाब स्टेशनके वास्ते सुरङ्गोंकी इतनी अधिक मांग थी कि १९३७ में इटलीमें गोलाबारूद बनानेवाले कारखानोंमें एकदमसे वृद्धि हो गयी! १९३८ में मसावामें ९० छोटी पनडुब्बियां रखी गयी थीं। पनडुब्बियोंके प्रयोगके लिए एक अलग जगह कर दी गयी और विदेशी जहाजोंको पुनः स्मरण कराया गया कि वे प्रतिबन्धित प्रदेशमें न आवें। लाल समुद्रके दक्षिण भागमें चार दीवाडांडियां हैं। पेरीम, आबू, सेण्टरपीक और जेबलनके शिखरोंपर ये दीवाडांडियां (प्रकाश-स्तम्भ) हैं। इनकी देखरेख ब्रिटेन करता था और इसका खर्च अदनका 'बोर्ड आव ट्रेड' देता था। १९३२ में सेण्टरपीककी दीवाडांडीका भयङ्कर बवण्डरसे अन्त हो गया और ब्रिटेनने इसपर देखरेख करना छोड़ दिया — इसपरसे अपना कब्जा भी उठा लिया। इटलीने समय न खोकर सेण्टरपीकपर अधिकार कर लिया और दीवाडांडी (प्रकाश-स्तम्भ) पुनः बंधवा दी। अरब लुटेरों और डाकुओंसे रक्षाके लिए एक छोटी-सी सेना भी रख दी। इटलीने इसको पनडुब्बियों और विनाशकोंके लायक एक उत्तम स्थान बना दिया है। भूमध्यसागरके साथ-साथ इटलीने अपनी स्थिति लालसागरमें भी मजबूत करनेकी कोशिश की है। ग्रेट ब्रिटेन और इटलीके बीच एक समझौता हुआ और इंगलैण्डने सेण्टरपीकपर इटलीका अधिकार मान लिया। पेरीमको छोड़कर ब्रिटेनने अन्य दो प्रकाश-स्तम्भ भी इटलीको दे दिये। इसके अनुसार इटलीको बड़ा हरनीश, छोटा हरनीश और जेबेन सोंगेरके द्वीप ब्रिटेनसे मिले। इससे स्पष्ट है कि इटलीका बल भूमध्यसागरमें कुछ है, मगर ब्रिटेन-जितना नहीं है। ब्रिटिश बेड़ा अभी तक अजेय बना हुआ है। इसके अतिरिक्त जिब्राल्टर, माल्टा, अलेक्जेण्ड्रिया, हैफा, अकाबा, पेरीम और अदन सदृश अजेय और अजोड़ किलेबन्द अड्डोंकी एक श्रृङ्खला उसके पास है। इसके विरुद्ध स्पेजिया, टाराण्टो, बिण्डिसी, माडालोना, कैग्लियरी और लेरोजमें इटालियन नाविक और हवाई अड्डे हैं।

इटलीकी कठिनाई और लाभ — इटलीको १५०० मील लम्बे अपने समुद्र-तटकी रक्षा करनी है । सारडिनिया और सिसलीकी स्थितिसे निस्सन्देह उसको पश्चिमीय तटकी रक्षा करनेमें प्राथमिक सहायता मिली है । एड्रियाटिककी प्राकृतिक कठिनाइयोंके कारण विपक्षी बेड़ेका इसके अन्दर पैठना कठिन है । एड्रियाटिककी रक्षाके लिए बिण्डिसी और टारण्टो-में नौ-सेना और हवाई सेनाके अड्डे हैं । पश्चिममें नेपल्सका नौ-सेनाका प्रसिद्ध अड्डा है । इससे और अधिक उत्तरमें जीनीवाकी खाड़ीमें स्पेजियाका नौ-सेनाका अड्डा है । पश्चिमीय तटपर और दो नये नौ-सेनाके स्टेशन हैं । कोर्सिका-के अन्दर अजासीयोमें फ्रेञ्च वैमानिक अड्डा है । इसके मुकाबले सार्डिनियाके अन्दर कैग्लियरीमें नौ-सेना और हवाई सेना दोनोंके अड्डे हैं । फ्रेञ्चोंका अड्डा बिजरटा और ट्यूनिसियामें है । बिजरटासे कैग्लियरी तक सीधी उड़ान है । ये सब अब इटलीके नियन्त्रणमें हैं । त्रिपोलीसे याता-यात सहज करनेके लिए सिसलीमें इटलीने नौ-सेनाका अड्डा बनाया है । माल्टा सिसलीके पास है और केवल २०-२२ मिनटकी उड़ान है । इसके पश्चिममें इटलीका शेब्रुकका नाविक अड्डा है । अलेक्जेण्ड्रिया माल्टासे ३०० मील दूर है, अतः उसकी मदद उसको नहीं पहुंच सकती । बिजरटा इटालियन नियन्त्रणमें चला गया है, अतः उसकी मदद भी नहीं पहुंच सकती । ब्रिटिश भूमध्यसागरके बेड़ेका अड्डा इसी कारण माल्टामें ही रखा गया है । सम्भवतः यही कारण है कि अभी तक इटली माल्टाको ले नहीं सका है । माल्टाका वालेटा बन्दरगाह बहुत उत्तम है । यहां फ्लाइंग स्क्वेडर्न है । अतः इटलीके लिए माल्टा फतह करना आसान नहीं है ।

इसी प्रकार लेरोज और शेब्रुकके बीच ब्रिटिश द्वीप क्रीट है । माल्टाके समान इसकी किलेबन्दी मजबूत नहीं है । मगर इस कमीको फामगुस्ताके नाविक और हवाई अड्डे ने दूर कर दिया है । मगर ब्रिटेनके सामने एक और कठि-नाई है । फ्रेञ्चोंके अल्जीरिया और ट्यूनिसियाके नौ-सेना और हवाई सेनाके अड्डे मातृभूमिसे बहुत दूर नहीं हैं । मार्सलीजसे ओरन ५३५ मील, अलजीरस ४१० मील और बिजरटा ४३३ मील है, जब कि जिब्राल्टर और माल्टामें अन्तर ९८० मील है । प्लाइमाउथसे जिब्राल्टर १२०० मील है । पोर्ट सय्यदसे साइप्रस २४० मील है । यदि फ्रान्स साथ न छोड़ता, तो अल्जीरिया और ट्यूनिसियाके मजबूत अड्डे ब्रिटेनकी मदद कर सकते थे । मगर स्पेनके तटस्थ रहनेसे ब्रिटेनकी स्थिति पश्चिमी भूमध्यसागरमें दृढ़ हो गयी है और इटलीकी कमजोर पड़ गयी है । स्यूटा, केडिज और कारटाजीनाके नाविक अड्डोंका लाभ इटलीको न मिलेगा ।

सारे संसारकी नजर इस समय २००० मील लम्बे और औसतन् ५०० मील चौड़े इस समुद्रपर लगी हुई है । समुद्रकी गहराई ८०० फैदम है । यह पनडुब्बियोंके लिए उपयुक्त है । इटलीके पास १०० पनडुब्बियां हैं । मगर माइन-फील्ड बैरजके लिए अत्यधिक गहरा है । अतः उनके लिए समुद्रतटवर्ती प्रदेशोंको छोड़कर उपयुक्त नहीं है । माल्टाके पास समुद्र उथला है, अतः रक्षात्मक साधन आसानीसे काममें लाये जा सकते हैं । इसलिए बड़े परिमाणमें नौ-सेनाका युद्ध इसमें सम्भव नहीं है । मुख्य रूपसे हवाई युद्ध होंगे । इससे इटलीको अपने अफ्रीकन उपनिवेशोंको रसद पहुंचानेमें कठिनाई होगी । इसीलि भूमध्यसागरमें इटली कुछ कर नहीं सका है, ब्रिटिश नौ-बेड़ा अजेय बना हुआ है ।



शेष स्मृति

श्रीमती होमवती देवी

वह अपनी मांका इकलौता बेटा था। पता नहीं, कितने दिनसे उसकी मां हमारे यहां खाना बनाती आ रही थी। किन्तु इतना अवश्य ही याद था कि जबसे मैंने होश संभाला, उसे अपने साथ खाते-खेलते पाया। जब मैं पढ़ने लगी, तो आनन्द मेरी किताबोंको झाड़-पोंछकर रख देता, कभी मैं देखती—वह मेरी पट्टीपर मुलतानी पोत रहा है, कभी देखती—बुदुकेमें स्याही घोल रहा है, और प्रायः कमरेमें झाड़ू तक लगानेको तैयार हो जाता। मुझे जब कुछ अधिक समझ आयी, तब उसके प्रति बड़ी दया और सहानुभूतिके भाव जाग्रत होने लगे—'यह ब्राह्मणका लड़का है, अनाथ है, कितना सीधा और सरल है! इसकी मां हमारे यहां नौकर है सही, किन्तु आनन्द? उसे इसके अतिरिक्त क्या मिलता है कि रोटी खाता और कपड़ा पहनता है? फिर……फिर यह सब क्यों?' आनन्दके प्रत्येक कार्यसे मनपर बोझा-सा रखा प्रतीत होता। कभी-कभी मन ऐसा करता कि बदलेमें मैं भी इसका कुछ कर पाती। एक दिन मैंने उसकी मांसे कहा—"आनन्दका नाम भी किसी स्कूलमें क्यों नहीं लिखा देतीं?" बोली—"बहूजी न रिसायेंगो बिटिया?" मैंने कहा—"क्यों?" वह चुप थी।

बड़े साहससे यही प्रश्न एक दिन मैंने अपनी अम्मांके सामने रखा; बोलीं—"तू तो है बिलकुल पागल, यह पढ़-लिखकर कौन पत्थर ढोयेगा? पढ़ाई-लिखाईमें रखा ही क्या है? जब बड़ा होगा—कहीं तकाजेके कामपर लगा दूंगी। अब जो थोड़ा-बहुत काम कर लेता है—उसपर भी अंगार पड़ जायेंगे, और नहीं तो चार पैसेकी साग-सब्जी तो भी ले ही आता है, पढ़-लिख अभागा क्या लाट बनेगा?" इत्यादि कहकर उन्होंने उदाहरण देने शुरू किये—"मनोहर इतना पढ़ा है, मारा-मारा फिरता है। देख लो! बसन्ताकी मांको, बर्बाद हो गयी। लड़केको बी० ए० पास कराया, पर घरमें ठाली पड़ा रहता है।" पता नहीं कि और किस-किसके बारेमें क्या कहतीं? किन्तु मैं वहांसे उठ गयी। अगले दिनसे मैंने जो कुछ पण्डितजीसे पढ़ा था, वह सब एक सांसमें आनन्दके पेटमें उतार देनेकी चेष्टा करने लगी। मानो वह मेरी वर्ष-भरकी पढ़ाईको दो ही चार दिनमें सीख लेगा। फिर भी धीरे-धीरे वह पढ़ने लगा, और मैं समयानुसार उसे पढ़ाने लगी।

एक दिन मैंने उसे खूब सिखा-समझाकर अम्मांके पास भेजा; और वह उसकी विनयपर पिघल भी गयीं। अस्तु, आनन्दका नाम मुहल्लेकी 'चटसाल' में लिखा दिया गया। वह अम्मांकी पूजाके बर्तन साफ करता—पूजा-गृहको धोता-संवारता तथा फूल-बेलपत्र लाकर रख देता। अम्मां उससे बहुत प्रसन्न थीं, शायद इसीलिए दो रुपये महीना भी देने लगीं—पढ़ाईमें खर्च करनेके लिए ही। चलते-फिरते, खाते-पीते, आनन्द रात-दिन 'कक्का केवलिया' रटा करता, और उसकी इस रटनसे मेरा मन ऊब-ऊबकर घुटता-सा रहता। वह स्वयं भी इस पढ़ाईसे सन्तुष्ट न था। थोड़े दिन बाद अपने किसी सहपाठीके साथ-साथ उसने भी अपना नाम मिडिल स्कूलमें लिखा लिया, और वह उर्दू पढ़ने लगा। हिन्दी घरपर ही काफी सीख गया था। इसी प्रकार धीरे-धीरे आनन्द उन्नतिकी ओर अग्रसर होने लगा। जब उसने मिडिल पास कर लिया, तब अम्मांने उसे इधर-उधरके बहुत-से काम सौंप दिये, वेतनमें भी वृद्धि हुई, अब उसे महीनेमें मिलते थे पूरे आठ रुपये; खाना-कपड़ा तो शुरूसे था ही। मां बेटे दोनों सुखी थे—प्रसन्न थे—जीवन-कालमें नयी व्यवस्था करनेके लिए उत्सुक आनन्दकी मां शीघ्र ही उसके विवाहकी बात भी सोचने लगी।

(२)

बहुत दिन बीत गये—अब न आनन्दकी मां थी, और न मेरी ही अम्मां थीं। मेरा जीवन कहना चाहिए कि एक प्रकारसे सुखी था—शान्त था। पर आनन्दका? उसके जीवनमें अभावोंके अतिरिक्त क्या था? यही सब सोचकर—अम्मांकी बड़ी हवेलीका एक छोटा हिस्सा मैंने आनन्दको दे डाला। उसके दो बच्चे और स्त्री थी; बड़े मकानके किरायेकी आयमेंसे दस रुपये मासिक केवल देखभालके

लिए—मैंने आनन्दको देने स्वीकार किये। वर्ष-भरमें एक बार मैं स्वयं वहां जाती और सब देख-सुनकर चली आती थी। इससे मेरी आत्माको थोड़ा सन्तोष भी मिल जाता था, सोचती—मेरी अम्मांका घर इसीके बहाने आबाद है, और कुछ नहीं तो यही उन दिनोंकी शेष स्मृति है, पढ़ने-लिखनेसे वञ्चित रहा या रखा गया, लेकिन भूखा तो न मरेगा, और न किसीका गुलाम बनकर दस खोटी-खरी सुननेके लिए ही बाध्य होगा। इस भावनामें दयाका अंश अधिक था या प्रायश्चित्तका—यह मैं नहीं जानती, किन्तु मुझे सन्तोष तो था ही।

इस बार दशहरेकी छुट्टियोंमें हम लोगोंने वहां जानेका निश्चय किया। आनन्दकी बहू तथा बच्चोंके लिए बहुत-से कपड़े बक्समें भरकर, मैंने कुछ फल और मिठाई बाजारसे मंगवाकर बांध ली। सुबहकी गाड़ीसे चलकर, दोपहरको हम दोनों घर पहुंचे। आनन्दने उनके चरण छूनेको हाथ बढ़ाया, फिर मेरे पांव छूनेको बढ़ा। उन्होंने उसका हाथ थाम लिया, और मैंने मुंह फेरकर आंसू पोंछ डाले, अम्मांकी याद जैसे सहसा हरी हो आयी।

पहले ही से आनन्दने झाड़-बुहारकर घर चन्दन-सा कर रखा था। सामान उतारकर वह चौकेमें गया और लगा सोहनीको डाटने—"वह क्या ऐसा खाना खा सकेंगी? तुझे खाक भी नहीं आता। बाबू क्या रोज-रोज आते हैं? उठ खड़ी हो, मैं खुद बनाऊंगा खाना, जा तू ऊपर, जा—जीजीका कुछ काम हो तो……।"

मैंने छज्जेपरसे सब देखा-सुना। हृदयका बांध टूट गया—"मेरी चिन्ता और यत्न करनेवाला अब भी इस घरमें एक मौजूद है; क्या अब तक भी आनन्दको वह सब नहीं भूला कि किसे क्या पसन्द है?" मेरा जी नहीं माना—नीचे उतर आयी और चूल्हेके पास जा बैठी। वह खीर चला रहा था। मैंने कहा—"आनन्द!" उसने मेरी ओर ऐसे देखा, मानो प्रश्न कर रहा है—"क्यों?" उसका जी भर आया।

"तुमने उसे क्यों उठा दिया? क्या मेरे……सामने भी उसका अपमान करोगे? यह ठीक नहीं है, सुना है—वैसे ही तुम उससे बहुत नाराज रहते हो।" मेरा मन बैठा-सा जा रहा था। वह बोला—"नाराज तो मैं किसीसे भी नहीं रहता, जीजी! भला तुम्हीं सोचो, नाराज रहनेका अधिकारी ही मैं कब हूं? मुझे तो गले पड़ी आंतोंका भार संभालनेकी आदत पड़ गयी है, मैं उससे कभी कुछ नहीं कहता; उसने तुमसे झूठी शिकायत की होगी।"

"अच्छा, एक बात बताओगे, तुम इतने दुबले-दुबले-से क्यों दीख रहे हो आनन्द? जैसे कोई साल-भरका बीमार?"

"मैं दुबला? नहीं तो……।"

"वाह, मेरी आंखोंमें धूल मत झोंको, जाने तुम्हारा क्या हाल होता जा रहा है?" मेरा मन रो उठा। वह भी आंखें भर लाया। कहने लगा—"मन नहीं लगता पद्मा जीजी! जी करता है, कहीं भाग जाऊं। मेरा विवाह न होता तो अच्छा था, मैं यह सब बोझा उठा नहीं सकता। यह कहती रहती है कि और कुछ कमाओ, घरमें बेकार पड़े रहते हो……; मैं कहता हूं—मैं वही कर रहा हूं जो मुझे करना चाहिए। अपने आप ही कहीं मेरे लिए मुन्शीगीरी ठीक कर आयी, पर मैं क्या कहींके योग्य रह गया हूं? रात-दिन जान खाये रहती है, गहना चाहिए, कपड़ा चाहिए, और पता नहीं क्या-क्या चाहती है, जो मेरे बसका नहीं है।" कहकर वह आटा ठीक करने लगा। और मैं जबरन् साग छौंकने लगी। आनन्दकी समस्त बातोंसे मन न जाने कैसा-सा हो उठा? दोपहर बीत गयी आनन्दकी बहूको समझानेमें। शामको मैंने देखा—आंगनमें लगी हुई बेरीको वह पानी दे रहा है। पूछा—"यह पेड़ तो अब बड़ा हो चला आनन्द!" बोला—"हां, इसपर अगले साल बेर जरूर आ जायेंगे जीजी। तुम्हें तो खट-मिठे बेर खानेका बड़ा शौक है न? यह मैं बड़ी खोजसे लाया हूं।"

"आनन्द! तुम मुझे पद्मा जीजी कहकर बोलते हो, तब ठीक लगता है।" मैंने हंसकर कहा। वह जैसे झेंपकर बोला—

"जब याद नहीं रहती, तब पद्मा जीजी कह डालता हूं। बादमें बहुत पछताता भी हूं।"

"तुम्हारा तो दिमाग खराब हो गया है, जैसे कोई बहमी हो…।"

"हां-हां, तुम भी ऐसा ही समझ लो, इससे मेरा बिगड़ेगा भी क्या?" कहकर वह अपने कपड़े झाड़, बाजारसे कुछ सामान लेने चला गया। मैं थोड़ी देर वहीं बेरीकी छायामें बैठी रही।

(३)

दो महीनेसे आनन्दका कोई समाचार नहीं मिला था। डाकियेने जैसे ही खत दिया, मैंने तुरन्त पढ़ डाला। ऐसा लगा, मानो धरती-आकाश सब घूम रहा है। मैं माथा थामकर वहीं बैठ गयी। पत्र था टूटी-फूटी भाषामें लिखा हुआ—सोहनीके हाथका। आशय था केवल इतना ही—"कल सबेरे उठकर वह चुपचाप लामपर चले गये, मुझे यह भी पता नहीं कि कबसे नाम लिखाया था, सांझ तक बाट देखी—तब पल्टू मालीने बताया कि वह तो लड़ाईपर गये हैं।"

मेरा माथा ठनका—'इसी अभागीने उसे मौतके मुंहमें ढकेला है, पता नहीं—क्या-क्या कहा होगा? वह तो वैसे ही बहुत दुखी था—अभागा और असहाय, अब कमबख्त क्या करेगी? सोचते-सोचते मेरा मन थक-सा गया, जब वह घर आये—तब सारा समाचार उन्हें सुनाया। बोले—"अब क्या हो सकता है? चपरासीको साथ ले जाओ, और वहांका सब प्रबन्ध करके उसे यहां ले आओ। जीता बचा, तो कभी लौट आयेगा। मैंने एक बार खूब गहरी दृष्टिसे उन्हें देखा—'कहीं कुछ दया-माया है या नहीं?' और फिर कार मंगाकर—आज अपने मूलतः उजड़े हुए घरको संभालने चली। अब तो उसका ताला ही लगना शेष था। दरवाजेपर खड़े होकर मैंने देखा—वह बेरीका चबूतरा लीप रही है। मैंने निकट जाकर कहा—"यह सब क्या कर रही हो?" वह बोली—"कुछ नहीं, ऐसे ही...।" और फिर जल्दीसे कुछ याद आनेपर उसने मेरे पैरोंपर सिर टेक दिया। मैं रो पड़ी, वह भी फूट-फूटकर रोने लगी, जैसे इसके अतिरिक्त और कुछ करना शेष न था।

रास्ते-भर सोहनीकी भर्त्सना करनेके लिए बहुत-से शब्द सहेजे थे, किन्तु उसकी दशा देखकर सब भूल गयी। उसकी आंखोंके विषाद और वाणीके कम्पनने जैसे मेरे मन-को मसल डाला। किन्तु बार-बार पूछनेपर भी उसने अपने या आनन्दके विषयकी कोई भी बात नहीं बतायी। यही कहती रही कि कुछ भी बात नहीं हुई, एक दिन मैंने इतना अवश्य कहा था कि 'दरवाजेकी कोठरीमें ही दो-चार रुपये-का सामान डालकर बैठ जाओ।' वह बोले—'जीजी क्या दूकान खोलनेके लिए ही दस रुपया महीना देती हैं?' और बस।

सोहनकी बात सुनकर हृदय फटने-सा लगा। फिर एक बार आकाशकी ओर देखकर मैंने कुछ सोचा, और उससे कहा—"घबराओ नहीं, भगवान्‌ने चाहा, तो जल्दी ही लौट आयेगा। अब तुम मेरे साथ चलो। किन्तु वह चुप थी—जैसे कुछ विचार करके पछता रही हो। क्षण-भर बाद बोली—"मैं यहीं रहूंगी जीजी! तुम कभी-कभी सुध लेती रहना, तुम बस इन बच्चोंका...।" कहते-कहते वह फिर रोने लगी।

मैंने कहा—"हां-हां, सो तो सब जैसे पहले था वैसे ही अब भी रहेगा, पर तुम मेरे साथ चलतीं तो अच्छा होता, यहां अकेली...।" वह जैसे दृढ़ थी, बोली—"इस बेरीको कौन देखे-सुनेगा जीजी! वह आकर देखेंगे, तो क्या कहेंगे? कितने मनसे इसकी सेवा की है। कहते थे—'जब यह बड़ी हो जायेगी, तब इसमें झूला डाल दूंगा।"

मैंने पल-भर कुछ सोचा—"अगले साल इसमें बेर आ ...जा...यें...।" और फिर बस।

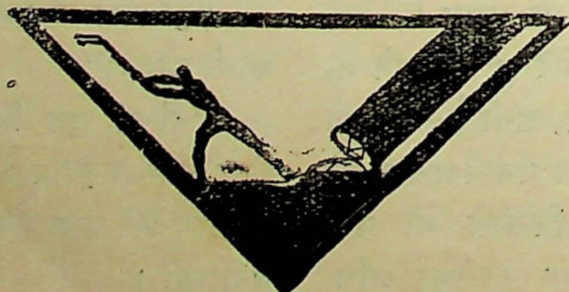
हृदयमें धक्का-सा लगा—"हां...हां, झूला...।" इसके पश्चात् दस रुपयेका नोट उसके हाथपर रखकर मैं खड़ी हो गयी। वह बोली—"क्या नहाओगी जीजी!"

मैंने कहा—"नहीं जाऊंगी।" सोहनी जैसे अवाक् थी। उसे धैर्य देते हुए मैंने हृदयसे लगाकर कहा—

"घबराना नहीं—मैं जल्दी-जल्दी ही आया करूंगी।"

वह बोली—"अब तो तुम्हीं हो जीजी!"

मैंने कहा—"सबका भगवान् है।"



हिन्दी कविताकी समस्यायें

श्री रामधारीसिंह "दिनकर"

वैज्ञानिक आविष्कारोंके जिस घमासानने हमारे दैनिक जीवनको संसारके व्यापक जीवनसे बांध रखा है, उसका प्रभाव साहित्यपर भी पड़ रहा है। सौभाग्यवश राजनीतिमें हमने वह दृष्टि पैदा कर ली है, जिससे भारतवर्षका भविष्य सारी दुनियाकी जिन्दगीके हिसाबसे आंका जा सके। लेकिन अपने साहित्यमें हम वह दृष्टि उत्पन्न नहीं कर सके हैं; और तो भी यह सत्य है कि पूरब और पश्चिममें साहित्यिक आदान-प्रदानका कार्य दिन-रात चल रहा है। अमेरिकामें 'ब्रह्म' को विषय मानकर कविता की जा रही है और इंगलैण्डमें काव्यके प्रमुख ग्रन्थोंमें "ॐ शान्ति !" और "दध्वामहे" का ऋषिपूत उच्चारण गूंजने लग गया है। संस्कृतिके क्षेत्रमें पारस्परिक प्रभावका क्रम सूक्ष्मतासे चलता है। वृत्तियां धीरे-धीरे काम करती हैं और फल लग जानेपर वृन्तके मूलकी खोज की जाती है।

गांधी-युगके आरम्भसे ही हमारे साहित्यमें जो फल लगने लग गये हैं, अगर हम उनके मूलकी खोज करें, तो पता चलेगा कि इस आवेगपूर्ण परिवर्तनके कुछ कारण वे हैं, जो विदेशोंसे आये हैं। महायुद्धके बाद यूरोपमें जो सबसे प्रमुख और अद्भुत घटना घटी, वह सोवियतका जन्म थी। संसारकी विस्मित आंखोंके सामने रूसमें दानवताका मूलोच्छेद हो गया और उसके ध्वंसावशेषपर मनुष्यताका नव-निर्माण शुरू हुआ। इस हलचलके समय रूसमें क्रान्तिके नारोंके बीच जिस साहित्यका जन्म हुआ, वह समयकी आवाजपर जूझनेवाला साहित्य था। उसमें गम्भीरता कम, कटुता अधिक और सौन्दर्य वह था, जो पहाड़को हिलाकर उखाड़ फेंकनेवाले बहादुरोंके स्वेदपूर्ण ललाटोंसे फूटता है। मायाकोवेस्की इस युगका सबसे बड़ा कवि हुआ, जिसने क्रान्तिके मुंहमें जीभ धर दी और जिसकी आवाज कुछ वह चीज थी, जिसे हम झञ्झा या प्रभञ्जनके नामसे समझ सकते हैं। लेकिन सब कुछ होते हुए भी मायाकोवेस्कीकी गणना उन पुरुषोंमें नहीं की जा सकती, जो समय और स्थानकी सीमासे ऊपर चढ़कर विश्व-हृदयपर राज्य करते हैं। युद्धके बाद साम्यवादके बचपनमें और फैसिज्मके जन्मसे पूर्व तक यूरोपकी कई भाषाओंकी साहित्यिक शिरायें ठीकसे काम नहीं कर रही थीं और रूसमें अगर ऐसे पाठक थे जो साहित्यमें गाम्भीर्यके अभावसे निराश बैठे थे, तो इटली और जर्मनीमें लोगोंको इस बातका मलाल था कि साहित्यमें क्रिया-हीनता आ गयी है। फिर शीघ्र ही वह जमाना भी आया, जब इन देशोंमें युग-प्रवर्तक और बिकराल आन्दोलन शुरू हुए। एक ओर ये आन्दोलन थे और दूसरी ओर साहित्य—कलाकी उपासनामें—अशक्त बैठा था। प्रतिक्रिया भीषण हुई। जन-नायकोंने साहित्यसे इतिहास-निर्माणके कार्यमें सहायता मांगी। साम्यवादियोंने साहित्यको श्रेणी-सङ्घर्षकी अभिव्यक्तिके लिए निमन्त्रित किया और फैसिस्टोंने उन्मुक्त कल्पनाके पङ्ख कतर दिये—ठीक वैसे ही, जैसे भारतवर्षमें इन्द्रने मैनाक पर्वतके पङ्ख काट डाले थे।

मुझे ठीक-ठीक मालूम नहीं कि हिन्दुस्तानमें यूरोपकी ये घटनायें कहां तक अपनेको दुहरा रही हैं, लेकिन प्रतीच्य साहित्यके विविध आदर्श बड़ी तेजीसे हमारे देशमें उतरते चले जा रहे हैं, जो कभी तो सामाजिक जीवनमें आनेवाले तत्सम्बन्धी परिवर्तनोंके पहले और कभी उनके पीछे प्रकट हो रहे हैं। जीवनके तबादले और साहित्यिक माडलके आयात कुछ ऐसी विश्रृङ्खलताके साथ हो रहे हैं कि कारण-कार्यका सम्बन्ध ठीक-ठीक समझा नहीं जा सकता। ऐसी है विश्रृङ्खल हमारे मौजूदा साहित्यकी पृष्ठ-भूमि, जिसे दृष्टिगत रखते हुए हमें अपनी गति-विधिपर बिचार करना है।

हिन्दी-कवितापर यह इलजाम है कि वह सोयी हुई सुन्दरताका जीवन बसर कर रही है और हमारे यहां जो ढेर-की-ढेर कवितायें लिखी जा रही हैं, उनपर यह लाञ्छन लगाया गया है कि जनताके साथ उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरी ओर नयी कविताओंके प्रेमी वे समालोचक हैं, जो इन कवियोंकी प्रशस्तियां गाते हैं और कहते हैं कि

जनता ही इन कविताओंके पास नहीं आ पाती और कला तथा जन-समूहके बन्धनका सूत्र, अज्ञान रहकर, खुद उसीने काट डाला है। हिन्दीमें समालोचक और जनताके मत प्रायः भिन्न-से हैं, और किसी हद तक उनके बीच एक खाई भी खुदती चली जा रही है। जब कभी जनता किसी ऐसी चीजको पसन्द करती है जो उसके हृदय और जीवनके अनुकूल हो, तब समालोचक अपने बुद्धि-प्रासादपर बैठा हुआ घृणासूचक आकृति बनाकर चुप रह जाता है और यह देखनेकी कोशिश नहीं करता कि क्या कारण है कि जनता उन चीजोंको तो अपना रही है जिनकी प्रशंसामें उसने एक शब्द भी नहीं कहा है और ठीक वे ही चीजें अनर्गल, अशक्त और निरर्थक कही जा रही हैं जिन्हें कलाकी सर्वोत्तम कृति कहकर प्रशंसाका पुल बांधा गया है। समालोचकोंकी संख्या कम और जनताकी अधिक होती है। फिर भी अगर ज्ञान-गम्भीर समालोचकोंकी राय और जनरुचिकी सुदृढ़ चट्टानपर कविताकी जांचके बीच चुनाव करना पड़े, तो यह काम बड़ी जोखिमका होगा; क्योंकि साहित्यकी परखमें जमहूरियतका ख्याल नहीं रखा जाता। जनता और समालोचकमेंसे एक या दोनों ही गलती कर सकते हैं। बहुत सम्भव है कि जनता ही गलतीमें हो। लेकिन अगर आप १९ करोड़ लोगोंके विशाल श्रोता-समुदायके सामने, बीस वर्षोंकी सुदीर्घ अवधिमें भी, अपनी शैली, विषय और भावकी उपयोगिता सिद्ध नहीं कर सकते, तो शङ्काका स्वाभाविक झुकाव आपकी ही ओर होगा। विरोधमें आप चाहे जो कह लें, लेकिन जनमत आपकी योग्यताओंका आखिरी निर्णायक है। श्रोताओं और पाठकोंकी काफी बड़ी संख्याके बिना कविता या कोई अन्य कला शायद ही जी सके। जनमतका अनादर तो किया जा सकता है, किन्तु जनसमूहका अनादर नहीं किया जा सकता। जनसमूहको भूलनेवाला कोई भी कलाकार स्वयं भी वही दण्ड पाये बिना रह नहीं सकता। अगर जनमत आपके साथ नहीं है, तो कोई बात नहीं। यह प्रश्न उन लोगोंके लिए छोड़ दीजिये, जो आगामी पीढ़ियोंके साथ आनेवाले हैं। लेकिन आप क्या कहते हैं, यह तो निश्चित रूपसे जनताकी समझमें आना ही चाहिए। स्वभावसे ही दकियानूस होनेके कारण किसी नये वादसे सहमत होनेमें जनताको देर लगती है। लेकिन समझना तो वह तुरत चाहती है और यह आपके हितके लिए भी आवश्यक है, क्योंकि बिना समझे वह आपके आदर्शों तक पहुंच नहीं सकती। साहित्य और काव्यको सामाजिक दृष्टिसे प्रसादपूर्ण और रागात्मक दृष्टिसे ओजस्वी होना ही चाहिए। हमारे सामने जो सबसे बड़ा सवाल है, वह यह कि ढेरकी ढेर कविताओंके प्रकाशनके बावजूद भी हमारे जमानेका औसत संस्कृतिवाला पाठक इन कविताओंमें सच्ची दिलचस्पी क्यों नहीं लेता? क्या कारण है कि हमारी कवितायें हिन्दीके लिए भक्तिभावसे प्रेरित और नयी उमङ्गोंसे भरे कालेजके छात्रों तक ही सीमित रह जाती हैं। गांवोंकी ओर फैल नहीं सकतीं, शहरोंके पढ़े-लिखे बाबूओंके दिलोंमें उतर नहीं पाती हैं? क्या कारण है कि हमारी जनताकी जुबानपर हिन्दीकी अपेक्षा उर्दूकी ही पंक्तियां अधिक आसानीसे चढ़ जाती हैं? क्या कारण है कि हमारे संस्कृतज्ञ पाठक गुप्तजीको छोड़कर किसी अन्य कविके पास ठहर नहीं पाते? अगर इन कविताओंमें कोई अद्भुत चमत्कार प्रच्छन्न है, तो वे समालोचक, जो उड़-उड़कर इनकी तारीफ कर रहे हैं, पाठकोंको उस आनन्दकी ओर निर्देश क्यों नहीं करते, जिसे वे अपनी विद्या-बुद्धिसे प्राप्त करनेमें असमर्थ हैं? क्या बात है कि हमारे युगके प्रतिनिधि कवियोंके ग्रन्थ जनतामें वह लहर और उत्साह पैदा नहीं कर सकते, जिसके साथ इकबाल और जोशकी प्रत्येक कविता उर्दू-जनतामें सत्कार पाती रही है?

बात चाहे अप्रिय लगे, लेकिन सच तो यह है कि वर्तमान हिन्दी कविताके सुन्दर और सुकुमार फूलोंमें गहरी दिलचस्पी लेनेवाले थोड़े ही लोग हैं। अधिकांशमें ये कवितायें उतनी बुरी नहीं होतीं, जितनी कि मृत और निष्प्राण। जिन्दा ये कभी थीं भी नहीं। जन्मसे ही ये जीवनकी ऊष्मा और उसके प्रदाहसे वञ्चित रही हैं। उद्भिजोंकी भांति नीचेसे जन्म लेकर ऊपरकी ओर फैलनेका सुयोग उन्हें मिला ही नहीं। ये अचानक आकाशसे चलीं और धरतीपर आनेके पहले ही निस्तेज हो गयीं। सर्जनके समय इनके रचयिताओं-ने उन असंख्य हृदयोंकी अवहेलना की और उन्हें भुला-सा दिया, जहां उनके गीतोंको अपनी प्रतिध्वनि उत्पन्न करनी थी। समयने जिनपर नयी धाराके नेतृत्वका दायित्व रखा, वे कवि एक बहुत बड़े उस्तादकी प्राञ्जलता, माधुर्य और

विकराल कल्पनाशीलताके प्रखर आलोकसे चकाचौंधमें पड़कर अपनी शैली निर्धारण करनेमें भूल कर गये। रविबाबू सर्वाङ्गीन प्रतिभाके एक ऐसे सर्वोच्च शृङ्ग हैं, जिसका कंगूरा सभी समयों और सभी देशोंसे एक समान देखा जा सकता है। वह अपनी जोड़के कविके सिवा अन्य सभी लोगोंके अनुकरणके परे हैं, और अगर उनकी समता करनेवाला कोई कवि पैदा भी हो, तो उसके लिए हमें सैकड़ों वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। उनका सम्बन्ध हमारे समयसे नहीं-के बराबर था और युगने हठपूर्वक यह बतलाया कि वह केवल उसीकी सत्ता स्वीकार करेगा, जो उसके सांस्कृतिक घात-प्रतिघातोंमें भाग ले, उससे आंखें मिलाकर सीधी तरहसे बात करे। दुर्भाग्यवश, जिस समय हमें आक्रमणकारी काव्योंका निर्माण करना था, उस समय हम कल्पनाके आलोकमें अपनेको छिपाते रहे, धरतीके दुःखोंसे जी बचानेके लिए आकाशमें शरण खोजते रहे। यही कारण था कि यद्यपि हमने लिखा—और खूब लिखा; मगर हम अपने और अपनी जनताके उपयुक्त साहित्य तैयार नहीं कर सके।

जाग्रत युगके स्वप्न फूलोंसे नहीं, चिनगारियोंसे सजे जाते हैं। केवल कारीगरी इस युगके तूफानको बांधनेमें असमर्थ है। अभिनव सरस्वती अपनेको धूल और धुएंकी रुक्षतासे बचा नहीं सकती। वर्तमान युगका सच्चा प्रतिनिधित्व करनेके लिए हमें इसकी अधिकसे अधिक गर्मीको आत्मसात् करना होगा। और इसे इतने निकटसे जानना होगा कि हम इसकी अनुभूतियोंके शिखर-प्रदेशपर खड़े हो सकें। कविके लिए यह शायद आवश्यक न भी हो, लेकिन जिसने अपने समयके प्रतिनिधित्व करनेके मन्सूबे बांधे हों, उसे तो इसके प्रदाहोंका, निर्भीक होकर, आलिङ्गन करना ही पड़ेगा।

यह अच्छा ही हुआ कि पुंसत्वहीन और अभिशप्त छायावादकी मृत्यु हो गयी। और आज उसका जनाजा भी निकाला जा रहा है। प्रसाद, निराला और पन्तकी निशानीपर चलती हुई जो पीढ़ी आयी, उसके सन्देश पूर्वजोंकी अपेक्षा अधिक निश्चित और स्पष्ट थे तथा वह युगके अधिक समीप थी, यद्यपि उसमें पहलेके उस्तादोंकी कारीगरी अभी निखर नहीं पायी है। मेरी दलीलका समर्थन इस बातसे भी होता है कि इस पीढ़ीकी रचनायें समालोचकोंकी प्रशंसाके बिना ही, अनायास, जनतामें पहुंचने लगीं और वचनके समान कुछ कवियोंने हिन्दी-प्रान्तोंमें जो लहर पैदा कर दी, उससे पहलेके उस्तादोंकी आंखें खुल गयीं और उनमेंसे कुछ लोग अपने काव्यात्मक दृष्टिकोणमें परिवर्तन लानेको मजबूर हुए। नये वातावरणमें अपनी सत्ता कायम रखनेके लिए उन्हें आकाशसे उतरकर धरतीके पास आना पड़ा।

उनमें जो नया परिवर्तन आया है, इसके लिए हमें हर्ष और उल्लास है। लेकिन एक छलांगमें इस छोरसे उस छोर तक कूदना सङ्कट और जोखिमसे खाली नहीं कहा जा सकता। दूसरेके माडलपर काम करना महान् कलाकारोंके लिए शर्म और अप्रतिष्ठाकी बात है। मैं यह देखकर भी दुखी हूं कि हमारे कुछ कवि यूरोपमें प्रचलित नयीसे नयी टेकनिकका अनुकरण करके हिन्दी-पाठकोंकी बुद्धिको हैरान करनेमें सुख पाते हैं।

यूरोपका वर्तमान वातावरण अच्छे कवियोंके विकासके लायक नहीं है। परस्पर-विरोधी सिद्धान्तोंने उनकी दृष्टि बिगाड़ दी है; भौतिकताकी अत्यधिक उपासनासे उनके जीवनका आध्यात्मिक रस सूख-सा गया है; और मानवकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म वृत्तियोंकी वैज्ञानिक टीकाने उनके जीवनको नीरस और कुतूहल-विहीन बना दिया है। वहां नाजी हैं, जो यह मानते हैं कि साहित्य सङ्घर्षसे अलग रहकर जी नहीं सकता—उस सङ्घर्षसे, जो सारी दुनियाको छिन्न-भिन्न और वर्तमान सभ्यताको बर्बाद कर देना चाहता है—उस सङ्घर्षसे, जो मनुष्योंकी एक जाति (यहूदी) को बन्दर कहकर पुकारता है। डाक्टर गोयबेल्स अपने देशके कलाकारोंको विनाशी सङ्घर्षसे तटस्थ रहने नहीं दे सकते। वे कहते हैं कि हमारे कलाकार या तो हमारे साथ रहें या फिर हमारे खिलाफ। तटस्थ रहना उनके लिए असम्भव है। लिखना हो, तो वे हमारे दृष्टिकोणसे लिखें अन्यथा नजरबन्दीके कैम्पोंमें उनके लिए स्थान सुरक्षित है। और सचमुच ही जिन कलाकारोंकी चेतना बिलकुल ही मर नहीं गयी थी, जिनमें कुछ भी एहसास बाकी था तथा जो सत्य बोलनेकी सारी शक्तियोंसे शून्य नहीं थे, वे जर्मनी छोड़कर भाग गये या आज नजरबन्दीके कैम्पोंमें सड़ रहे हैं। सामयिक प्रश्नोंपर लिखी गयी पुस्तकोंकी सूक्ष्मतासे छानबीन की जाती है।

नाजी महाप्रभुओंके निर्धारित नियमोंसे कोई एक इञ्च भी हट नहीं सकता। कोई लेखक उन भाग्यहीनोंके लिए अपने पाठकोंमें हमदर्दी भी पैदा नहीं कर सकता, जिन्हें पूंजीवादने अपनी चक्कीमें पीस डाला है।

तब मार्क्सवादी हैं, जो हठपूर्वक साहित्यसे श्रेणी-सङ्घर्षकी अभिव्यक्ति कराना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि दुनियाके लेखक और कवि जो कुछ भी लिखें, साम्यवादके दृष्टिकोणसे लिखें और सर्वहाराकी विशाल सेनामें शरीक हों। समयकी सहानुभूतिका प्रवाह ही सर्वहाराकी ओर है और इस धाराके विपरीत तैरना कुछ-कुछ अप्राकृतिक-सा लगता है। फिर वे शक्तियां भी निरन्तर अपना काम कर रही हैं, जिन्होंने बर्नार्ड शा और रोमां रोलां जैसे बुजुर्गोंको बुढ़ापेमें शोषितोंका पक्ष लेनेको मजबूर किया। रूसवाले बुर्जुआ उपसर्गके साथ कलाके जिस रूपकी खिल्ली उड़ाते हैं, सभी देशोंमें उसके पुजारी सचमुच ही, क्लान्त और प्रायः निष्प्राण भी होते जा रहे हैं। पुरातन और नूतन सभ्यताओंके सङ्घर्षसे संसारमें जो विकराल वज्रनिनाद उत्पन्न हुआ है, उसमें खांटी कलाके पुजारी हतबुद्धि-से हो रहे हैं और अपने हृदयकी बातको धीरज, ओज तथा निर्भीकतासे कहना उनके लिए कठिन हो रहा है। पुरानी सभ्यता, कलाके माध्यमसे अपने दुश्मनों अथवा तटस्थ लोगोंको भी यह समझानेमें असमर्थ होती जा रही है कि दुनियाके मौजूदा मर्जका इलाज उनके पास भी है।

सामाजिक आवर्तोंका प्रभाव कविपर भी पड़ता ही है। लेकिन इसीलिए यदि वह जान-बूझकर किसी वाद-विशेषकी उपासनाके लिए लाचार किया जाता है, तो यह उसके साथ—और समग्र साहित्यके साथ सरासर अन्याय है। जो चीज हमारी आत्माकी गहराइयोंमें उतरी नहीं, जिस तत्त्वमें हम उत्साहके साथ विश्वास नहीं करते, जिसका ध्यान हमारे अन्दर प्रसन्नता और सच्ची प्रेरणा उत्पन्न नहीं कर सकता, उसको चित्रित करके हम कलाकी रचना नहीं कर सकते।

प्रगतिवाद, जो हमारे लिए इतना सम्मोहक शब्द हो गया है, किसी भी प्रकार साम्यवादका पर्याय नहीं हो सकता। किसी भी वादमें अपनेको फिट करनेकी गरजसे जो लेखक अपनी कल्पनाके पङ्ख कतर रहा है, अपने स्वप्नोंके स्वच्छन्द प्रवाहको रोक रहा है, वह गलतीमें है और उसके कार्य प्राकृतिक नहीं हैं। मनुष्यकी हैसियतसे कविका भी यह न्यायसिद्ध अधिकार है कि वह उन सभी मानसिक दशाओंको अनुभव करे, जो मनुष्यके लिए स्वाभाविक हैं। मनुष्य जिन-जिन चीजोंमें दिलचस्पी लेता है, उनमें कोई भी कविके लिए विवर्जित नहीं हो सकती। कलाके द्रव्यका आविर्भाव तो उन्हीं भावोंसे होगा, जो जीवनके लिए साधारण और सर्वव्यापी हैं।

मैं कलाके गौरवकी रक्षाके विचारसे कह रहा हूं। राजनीतिका अनादर मेरा उद्देश्य नहीं। कला अथवा कविताका सम्बन्ध भौतिकता, कर्तव्य और व्यावहारिक जीवनसे कुछ नहीं है, इस दलीलको मैं पाखण्डपूर्ण और हास्यास्पद मानता हूं। कला राजनीतिसे ऊंची है अथवा कलाके कार्य राजनीतिके कार्यसे महान् हैं, इस विवादमें भी मुझे कोई सार दिखाई नहीं पड़ता। मैं यह भी नहीं मानता कि कलाके उपासक अनिवार्य रूपसे राजनीतिके वृत्तसे बाहर ही हैं। वह युग, जो राजनीतिको उठाकर मनुष्यके धर्मके पदपर आसीन करना चाहता है, कवियोंको भी, कमसे कम जीवनके कुछ क्षणोंमें अछूता शायद ही छोड़े। कला राजनीतिसे ऊंची न भी हो, लेकिन निश्चय ही राजनीतिसे भिन्न है। और यह देखा भी गया है कि देशके गीतोंकी रचना करनेवाले लोग इस चिन्तामें नहीं रहे हैं कि उसका (देशका) कानून बनानेवाला कौन है? कला अन्तर्राष्ट्रीय है और ऐसे लेखकोंकी कमी नहीं, जिनकी कल्पना राष्ट्र-विशेषकी सीमाको लांघकर सार्वभौमिकताके सन्देशके साथ दूसरे लोगोंके बीच जा पहुंचती है। ऐसी अवस्थामें अगर आप किसी वादके बन्धनको स्वीकार करते हैं, तो नाजीवादके पुजारी चटसे कह बैठेंगे—"मानव-संस्कृतिकी कृत्रिम कल्पनासे दूर रहो। विश्वबन्धुत्व नामकी कोई चीज दुनियामें है नहीं—ठीक उसी प्रकार, जैसे विश्व-इतिहासकी सत्ता काल्पनिक है। इतिहास तो केवल भिन्न-भिन्न जातियोंका ही होता है।" कलाकारोंके सामने केवल एक ही उपाय है कि वे समयके साथ-साथ और जब कभी सम्भव हो, तो उससे आगे बढ़कर चलें और रास्तेमें इस बातकी चिन्ता नहीं करें कि राजनीतिका कौन रूप अधिक आकर्षक और सुविधाजनक है।

जब-तब इस प्रकारकी शिकायत भी मैंने सुनी है कि

मेरी कविताओंका प्रभाव समसामयिक कवियोंपर अस्वास्थ्यकर सिद्ध हुआ है। निश्चय ही, अभिप्राय उस बड़ी तादादमें प्रकाशित होनेवाले साहित्यिक कूड़ोंसे है, जो गिने-चुने प्रोलेतैरियन विषयोंपर तैयार किये जा रहे हैं। अपने उगते नक्षत्रोंकी इस स्थूल गति और महाग्रहोंकी पथ-भ्रान्तिपर मुझे सचमुच ही दुःख है और बहुत अंशोंमें मैं पं० इलाचन्द्रजीके क्षोभको जायज समझता हूं। लेकिन दरअसल यह उस "वायवीय शून्यता" के प्रति घोर रूपसे उठी हुई प्रतिक्रियाका परिणाम है, जो आजसे तीन-चार वर्ष पूर्व तक हमारे तथाकथित रहस्यवादी कवियोंमें व्याप्त थी। कुछ अंशोंमें यह समाजवादी वस्तुवादके नवीनतम आदर्शोंके अन्धानुकरणका भी फल है, जो कलाकी नवीनताका सर्वोत्तम उदाहरण माना जा रहा है। हमारे वर्तमान प्रगतिवादियोंकी मनोवृत्ति ठीक वही है, जो क्रान्तिके प्रारम्भिक दिनोंमें रूसके साहित्यिकोंमें काम कर रही थी। लेकिन हमें यह नोट कर लेना चाहिए कि खुद रूसवाले ही साहित्यको राजनीतिक अस्त्र बना देनेकी निरर्थकतासे घबड़ा उठे हैं और इस बातको मानने लग गये हैं कि साहित्यके कर्तव्य उससे ऊंचे और कहीं महान् हैं, जिसकी वे हठपूर्वक कल्पना कर रहे थे। सोवियत लेखक सङ्घके सन् १९३४ वाले अधिवेशनमें ही यह सिद्ध हो चुका है कि रूसकी जनता आकुलताके साथ कुछ ऐसी चीजोंकी तलाशमें है, जो पहलेकी अपेक्षा अधिक दीर्घायु और गम्भीर हो।

हमारे जो सहकर्मी विदेशोंमें काम कर रहे हैं, उनके तजुर्बोंकी रोशनीमें हमें अपनी साहित्यिक मनोवृत्तिको गम्भीर बनाना चाहिए। सर्वहाराके साथ कवियोंके पक्षपातसे मैं न तो दुःखी हूं और न लज्जित—जो दुःखी या लज्जित हों, मैं कहूंगा, उनके अन्दरका मनुष्य मर गया है—मैं उनके निर्धारित विषयोंकी भी खिल्ली नहीं उड़ाता। चाहे वे 'ट्राममें' हों या 'भैंसागाड़ी' अथवा 'धोबियों' और 'चमारों' के नृत्य। मेरा अनुरोध तो केवल यही है कि वास्तविकताके प्रति हमारा रुख सच्चे अनिषेधका हो। क्योंकि उसके बिना हम सत्यको चित्रित करनेमें न्याय नहीं कर सकेंगे।

यह नया वस्तुवाद अनिवार्य रूपसे सोद्देश्य होगा—और सोद्देश्यता एक ऐसा बुरा शब्द है, जिसकी निन्दा सभी कलाकारोंने की है। लेकिन तो भी दुनियामें ऐसा कलाकार शायद ही गुजरा होगा, जो किसी महान् विषयपर लिखता हुआ सोद्देश्यतासे बेदाग बच गया हो। सोद्देश्यता कोई गुनाह नहीं, यदि आप उद्देश्य-प्राप्तिके प्रयत्नमें सुन्दरताका विनाश नहीं करें। संसारमें ऐसा महान् ग्रन्थ लिखा ही नहीं गया होगा जो शिक्षा और कला-सौन्दर्य—दोनों ही दृष्टियोंसे महान् नहीं था। कलाकी ऊंची कृतियां केवल जीवनकी समीक्षा ही नहीं करतीं, वरन् उसकी समस्याओंका निदान, उसके अर्थोंकी टीका और कभी-कभी उसका पथ-निर्देश भी करती हैं। कविताका उद्देश्य जीवनके उपयोगी तत्त्वोंका संयोग उन तत्त्वोंसे स्थापित करना है, जो हमें आनन्द देते हैं। रविबाबूको मैंने समय और स्थानसे परे माना है; लेकिन खुद उनके मतसे भी—"सत्यकी पुकारपर सर्जन-समर्थ मानवताके उत्तर" से कलाका जन्म होता है।

हमारे समयमें कविताका जो रूप निखर रहा है, वास्तविकता उसकी जान होगी। और सच पूछिये तो मैं उन रचनाओंका आदर नहीं करता, जो मिट्टीकी पुकारका किसी-न-किसी रूपमें उत्तर नहीं देती हों। धरतीपर एक नये प्रकारके मनुष्यका जन्म हो रहा है और हमलोग उसीके समयके जीव हैं। चाहे हम आकाशमें उड़ते हों या धरतीपर घूम रहे हों, लेकिन हमारी आंखें उसी मनुष्यपर केन्द्रित रहनी चाहिए। यह कहना गलत है कि यह वस्तुवाद हमारी कल्पनाकी उड़ान या हमारे रंगीले स्वप्नोंकी आंख-मिचौनीमें बाधक होगा, अथवा हमारी भाषाकी रागात्मक क्रीड़ामें किसी प्रकार भी हस्तक्षेप करेगा। कल्पनाके बिना किसी भी कलामें रमणीयता नहीं आ सकती और न कलाकार ही अपने अनुकूल वातावरण तैयार कर सकता है। लेकिन वस्तुवादकी नयी कल्पना विकासकी सचाईके आधारसे उठेगी—छायावादकी निःसार उड़ानकी तरह नहीं, जो आध्यात्मिक लोकमें डुबकियां लगानेका स्वांग रचकर बरसों तक साधारण पाठकोंकी बुद्धिको हैरान करती रही। हमारी कल्पना हमारी दुनियापर फैलनेवाले ईथर (Ether) या वायुमण्डलके समान होगी, जिसमें हमारी धरतीके पौधोंकी गन्ध भरी रहेगी। हमारे स्वप्नोंमें जाग्रतिके ही ये बिम्ब होंगे, जो आंख लगनेपर पलकोंमें मड़राया करते हैं। हमारी उड़ान ऐसी होगी कि हम सामनेके

अन्धकारको भेदकर उस सूक्ष्म पन्थको देख सकें, जो भविष्यके गह्वरमें गया है। वस्तुवादका जो रूप अपनी नाकसे आगे नहीं देख सकता, वह अन्धा है और उसे निःसार कल्पनासे भी कहीं हेय समझना चाहिए।

चूंकि वस्तुवादका उद्देश्य जन-समूह तक पहुंचना है, इसलिए इसकी रचनायें सुन्दरके साथ प्रसादमयी भी होनी ही चाहिए। 'हम दूसरोंके लिए नहीं लिखते'—ऐसा कहनेवाले कवि अपनेको हास्यास्पद बना रहे हैं। सच पूछिये तो स्वान्तः सुखायके साथ हम उनके लिए भी लिखते हैं, जो हमारी कृतियोंको पढ़नेकी फिक्र करें। अगर कवि यह चाहता हो कि वह जनतासे अलग—बिलकुल अलग होकर रहे, तो फिर उसके लिए छापेखानोंकी जरूरत नहीं रहनी चाहिए। परन्तु पाठकोंको भी एक भ्रमका त्याग कर देना होगा। साहित्य युगका प्रतिबिम्ब है, इस कहावतको उन्हें भूल जाना चाहिए। अगर साहित्य युगका प्रतिबिम्ब-मात्र होता, तो वह युगको ठीक उसी प्रकार चित्रित करता, जैसा कि सचमुच वह है। लेकिन सो बात है नहीं। युगको चित्रित करते समय कवि तटस्थ नहीं रह पाता और वर्ण्य वस्तुके बुरी या भली लगनेकी बात भी वह कह जाता है। इससे सिद्ध होता है कि साहित्य युगका बिम्ब नहीं, बल्कि उसका सहायक होता है। हम लोग फोटोग्राफर नहीं होकर उस दलके छोटे-बड़े सदस्य हैं, जो युगका निर्माता है और उस सही रास्तेपर सही कदम रखनेमें मदद करता है। साहित्य इतिहासकी बांदी नहीं, बल्कि उसका एक प्रमुख अङ्ग है।

न्यूयार्कके पापाचारका केन्द्र डेनिश इन्स्टीच्यूट

श्री ए० पी० अग्निहोत्री, पी० एच-डी०

डेनिश इन्स्टीच्यूट आज बन्द है। अमेरिकाकी पुलिसने डा० स्विफ्टकी करतूतोंसे तङ्ग आकर उसपर ताला लगा दिया है। २ जुलाई १९४० को अमेरिकन पत्रोंने बड़े सनसनीखेज शीर्षकोंके नीचे छापा था; ७० वीं सड़कपर डा० अन्ना स्विफ्टके मकानपर पुलिसने छापा मारा और कई सुन्दरियोंको गिरफ्तार किया। उनके साथ ही कई और सम्भ्रान्त व्यक्ति गिरफ्तार हुए हैं।

डेनिश इन्स्टीच्यूटपर छापा मारकर उसकी सञ्चालिका डा० स्विफ्टको गिरफ्तार करनेका समाचार इतना सनसनीखेज इसलिए हो गया कि प्रायः बीस वर्षसे न्यूयार्ककी पुलिस स्विफ्टकी करतूतोंको जानती थी। कितनी ही शिकायतें उसकी संस्थाके विषयमें आयी थीं; परन्तु स्विफ्ट अपनी धूर्ततासे सदा पुलिसकी आंखोंमें धूल झोंकती रही। न्यूयार्कके उस फैशनेबुल मुहल्लेमें स्विफ्टका रोजगार बीस साल तक चलता रहा। कहनेको तो इस इन्स्टीच्यूटमें तरह-तरहकी मालिशें होती थीं; पर वास्तवमें यह सभी तरहके पापाचारोंका अड्डा था, जिसमें सदा अनेकों सुन्दरियां रहती थीं। स्विफ्टकी नजरमें सदाचरण और सतीत्वका कोई मूल्य न था और सदा उसने अपनी आमदनीका साधन इस प्रकारकी सुन्दरियों और पापाचारोंको ही बनाया। पुलिसके अनुमानके अनुसार स्विफ्टने इस अड्डेसे कई लाख रुपये कमाये होंगे।

लेकिन यह कुलटाकुलचूड़ामणि अभी पचीस वर्ष पहले एक साधारण वेश्या थी और इस प्रकारके पापाचारके लिए उसे सजा भी मिल चुकी थी। पर स्विफ्ट कोई राहकी भिखारिणी न थी। उसका पालन-पोषण लाड़-प्यारसे हुआ था। कूरी न्यूनिवर्सिटीकी वह ग्रेजुएट थी। ग्रेजुएट होनेके बाद ही वह न्यूयार्क आयी थी।

न्यूयार्कमें वह आयी, तो कितने ही लोगोंका ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। वासनामय उसका शरीर और बोलती-सी उसकी आंखें सहज ही लोगोंको आकर्षित करतीं। पुलिसकी रिपोर्टके अनुसार उसने उसी समय अपने भावी जीवनका कार्य-क्रम निश्चित कर लिया था। १९१६ में पहली बार पुलिससे उसकी मुठभेड़ हुई, जब पहली बार उसपर दुराचरणका मामला चलाया गया। इस मामलेमें वह अपराधी प्रमाणित हुई और उसे जेल भेज

दिया गया। पर उसने बहुत अधिक रुपये खर्च कर एक नामी वकील खड़ा किया और अपील करनेपर वह छोड़ दी गयी।

इस घटनाके थोड़े दिनों बाद ही उसने मालिश करनेके पेशेके लिए न्यूयार्क पुलिससे लाइसेन्स लिया और डेनिश इन्स्टीट्यूटकी स्थापना की।

डेनिश इन्स्टीट्यूटके खुलते ही तरह-तरहकी अफवाहें उड़ने लगीं। तरह-तरहके विचित्र कामोंके समाचार पुलिसको मिलनेपर, पुलिसके पता लगाने पर किसी प्रकार की बात मालूम न होती; क्योंकि इन्स्टीट्यूटमें जाकर मालिश तो कोई भी करवा सकता था। पर अगर वह अपरिचित व्यक्ति रहा, तो मालिशके सिवा और कुछ उसके हाथ न लगता।

पुलिसने इस पापाचारके अड्डेको छिन्न-भिन्न करनेके लिए अब एक उपाय सोचा। उसने सोचा कि मालिश करनेका स्विफ्टका लाइसेन्स छीन लिया जाय और मामला अपने आप खतम हो जायगा। लेकिन पुलिसका यह उपाय भी सफल न हो सका। जब-जब पुलिसने इस उपायका अवलम्बन किया, ख्यातिप्राप्त डाक्टरों, चिकित्सकों और वैज्ञानिकोंकी सनद लेकर स्विफ्टअदालतमें खड़ी हो जाती कि इन्स्टीट्यूट अच्छे ढङ्गसे चल रहा है और उसकी वाञ्छनीयतामें सन्देह नहीं किया जा सकता। १९३४ में पुलिसने डा० अन्ना स्विफ्टको फिर लाइसेन्स न देनेके लिए आवेदन किया, तो उसने सुप्रीम कोर्ट तक मामलेको पहुंचाया और इस बार आठ सुप्रसिद्ध डाक्टरोंने गवाही देते हुए कहा कि इन्स्टीट्यूटके कामोंपर कोई उंगली नहीं उठा सकता। एक सर्जनने तो यहां तक लिखा था कि मैंने अपने रोगियोंको उक्त इन्स्टीट्यूटसे लाभ उठानेके लिए सिफारिश की है और ऐसी संस्था समाजके लिए उपयोगी है। डा० स्विफ्टका स्थान आश्चर्यजनक है और दूसरोंको उनका अनुकरण करना चाहिए।

इस प्रकारकी सिफारिशोंके बाद अब डिप्टी कमिश्नर हेरल्ड एलेनका बयान देखिये। उन्होंने बयान देते हुए कहा था कि इन्स्टीट्यूटमें सभी प्रकारकी बेहूदगियां और मालिशके बहाने वेश्यावृत्ति होती है। इन्स्टीट्यूटमें



डा० अन्ना स्विफ्ट

बदमाशियां होती हैं, पर आवेदिका ऐसी मुतफन्नी है कि उसे सजा दिलानेके लिए पुलिसके पास काफी प्रमाण नहीं हैं।

इस बार भी अन्नाकी विजय हो गयी। लेकिन लोगोंके लिए यह रहस्य ही बना रह गया कि ऐसे-ऐसे ख्याति-प्राप्त व्यक्तियोंने उक्त इन्स्टीट्यूट तथा उसकी मालकिनके चरित्रके सम्बन्धमें ऐसी ऊंची राय कैसे दी।

दो सालके बाद एक बार पुलिसने फिर छापा मारा। इस बार उसपर अप्राकृतिक व्यभिचारका अभियोग लगाया



अन्ना स्विफ्ट दूसरी सुन्दरियोंके साथ गिरफ्तार कर हवालातमें पहुंचायी जा रही हैं।

गया और उसके प्रमाण भी एकत्र किये जा सके। पर अन्नाको बहुत थोड़े दिनकी सजा हुई।

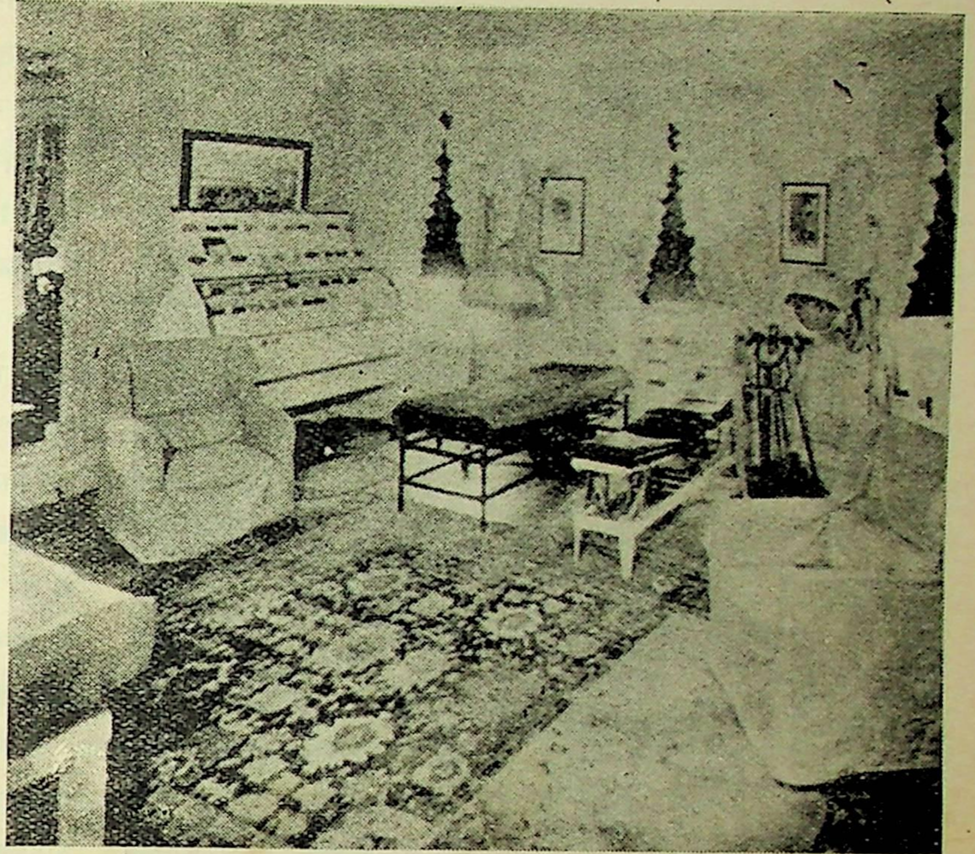
अन्ना छूटी, तो वह भवन फिर हरा और सुन्दरियोंकी खिलखिलाहटसे गूंजने लगा। फिर न्यूयार्कके बड़े-बड़े रईस तफरीहके लिए पहुंचने लगे। एक बार फिर सुन्दरियोंके कोमल शरीरसे टकराकर कोड़े अपना भाग्य सराहने लगे और एक बार फिर अन्नाकी उजड़ी हुई दुनिया आबाद हुई।

अन्ना पुलिसकी आंखोंमें धूल झोंकनेमें समर्थ क्यों होती चली गयी? क्या उसके वैभव-सम्पन्न ग्राहक उसके रक्षक थे? सम्भवतः पुलिसका ऐसा ही ख्याल था, इसलिए कितनी ही बार पुलिसने खुफिया विभागके अफसरोंको साधारण नागरिकके रूपमें वहांका रहस्य जाननेके लिए छद्मवेशमें भेजा, पर अन्ना क्या जादू जानती थी कि एक बार भी उसकी आंखोंने धोखा नहीं खाया। पुलिसके अफसरोंको मालिश कराके खाली हाथ वापस आना पड़ा।

अन्तमें इस कामके लिए पुलिसके एक और अफसरने बीड़ा उठाया। उसने ठान लिया था कि चाहे जैसे भी हो, इस शैतानी अड्डेका रहस्योद्‌घाटन करके ही दम लूंगा। उस अफसर—नाथन शेजरने इसके लिए प्रतिज्ञा की, तो डिप्टी चीफ इन्स्पेक्टर लुई शिलिङ्गने विषयकी जटिलता समझाते हुए कहा कि "वह बड़ी ही विकट, उलझी हुई और गन्दी पहेली है, देखो, तुम क्या कर सकते हो?"

शेजर समस्याकी जटिलता खुद भी समझ रहा था इसके लिए उसने एक योजना पहलेसे बना रखी थी। पहले इस विषयमें जो लोग प्रयत्न करके विफल हो चुके थे, उनके अनुभवोंसे उसने लाभ उठाया। अन्ना किस प्रकार आदमियोंको देखते ही भांप लेती है, इस सम्बन्धमें भी उसने बहुत-सी बातें सुन रखी थीं। ऐसा मालूम होता था, मानो उसने ऐसे भेदिये रख छोड़े हैं, जिनका काम ही है कि नये आगन्तुकोंके सम्बन्धमें वे उनकी जानकारीसे अन्ना स्विफ्टको अवगत करा दें। दो-चार दिन तक तो आगन्तुकोंको कुछ पता ही न चलता। उन्हें मकानकी पहली मञ्जिलपर रखा जाता और मालिश करके निकाल दिया जाता। और मकानकी दूसरी मञ्जिलके बारेमें ही तरह-तरहकी अफवाहें थीं। अफवाहें इतनी दिलचस्प, इतनी डरावनी और इतनी बीभत्स होतीं कि उनसे घृणा करके भी पुलिसको उनकी जानकारी प्राप्त करनेकी इच्छा होती। गुप्त रूपसे न्यूयार्कके हृदयमें यह जो पापाचारका अड्डा चल रहा था; जहां सदैव सुरा और सुन्दरियोंका जमघट लगा रहता और जहां न्यूयार्कके कितने ही प्रतिष्ठित और भारी-भरकम सेठ एकत्र होते, उसके सम्बन्धमें आम जनताकी भी दिलचस्पी कुछ कम न थी। बार-बार अदालतोंमें मामले आये; लेकिन पुलिसको उन्हें

प्रमाणित करनेमें काफी सफलता नहीं मिली। पर इस असफलताके कारण ही लोगोंकी दिलचस्पी और भी बढ़ गयी थी।



स्विफ्टका रहस्यमय कमरा।

एक सप्ताहके भीतर ही हार्टफोर्डके क्लबोंमें जहां देखिये, एक नये व्यक्ति चैडविककी चर्चा हो रही है। लोगोंमें चर्चा है कि चैडविक अच्छे होटलोंमें रहता है। खुशदिल और आकर्षक व्यक्तित्व रखनेवाला सम्पन्न व्यक्ति है। 'खाओ पियो मौज उड़ाओ' उसका सिद्धान्त है; पर समय-समयपर अपने परिचितोंके साथ वह किसी अच्छे व्यापारमें भी अपना पैसा लगाना चाहता है, आखिर जिन्दगी इस तरह तो नहीं कटेगी। उसे हाल ही में बहुत बड़ी सम्पत्तिका उत्तराधिकार प्राप्त हुआ है और उसकी रहन-सहनसे उसके बड़े घरके लड़के होनेमें सन्देह ही क्या हो सकता था।

इस प्रकार मौज-मजेका जीवन बितानेके सिलसिलेमें चैडविकने अन्ना स्विफ्टका नाम सुना और उसे एक पत्र लिखा। पत्रमें उसने 'लिखा कि मुझे समय-समयपर हार्टफोर्डसे व्यापारके सिलसिलेमें न्यूयार्क आना पड़ता है और जब यहां आता हूं, तो मालिशके लिए एक दूकानपर जाया करता था, लेकिन अब वह दूकान बन्द हो गयी, अतः वहां जा नहीं सकता, परन्तु उसके मालिकने आपका और आपके डेनिश इन्स्टीट्यूटका नाम मुझे बताया।' इसके साथ ही चैडविकने वहां जानेकी इच्छा प्रकट की थी।

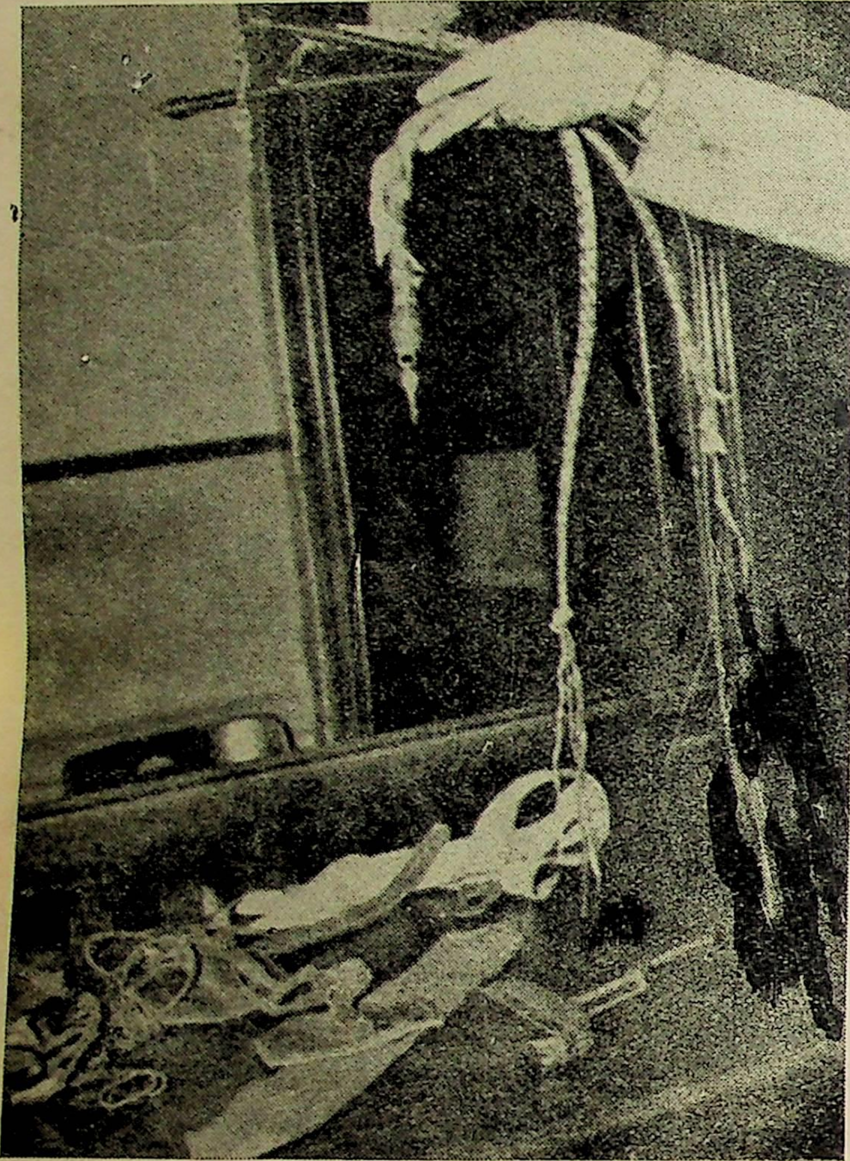
प्रायः एक सप्ताहके भीतर चैडविकको पत्रका उत्तर मिला। उत्तरमें लिखा था:—अगर मि० चैडविक भद्र पुरुष हैं और व्यापार जगत्‌में उनकी ख्याति है, तो उनका स्वागत है; पर इन्स्टीट्यूटमें प्रवेश करनेके पहले उन्हें परिचय-पत्र तथा अपने सम्बन्धमें दूसरी जरूरी बातें लिखकर भेजनी होंगी। क्योंकि इन्स्टीट्यूटमें एक खास प्रकारके व्यक्ति ही प्रविष्ट हो सकते हैं।

मि० चैडविक जानते थे कि उनके सम्बन्धमें सारी बात ठीक हैं और दूसरे दिन वे इन्स्टीट्यूटमें जा पहुंचे। वहां पहुंचनेपर उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि बड़े ही निरुत्साहके साथ उनका स्वागत किया गया। डा० स्विफ्ट अन्तमें जब उनसे मिलने आयीं और हार्टफोर्डके मिले हुए उनके परिचय-पत्र उन्होंने देखे, तो वे जरा भी प्रभावित न हुईं। उन्होंने चैडविकमें कोई दिलचस्पी जाहिर नहीं की।

एक हफ्ता बीत गया और चैडविकने दूसरा पत्र भेजा, जिसमें उसने लिखा था कि मैं हार्टफोर्डमें अपना व्यापार बन्द कर न्यूयार्कके किसी व्यापारमें पैसा लगाना चाहता हूं, इसलिए अगर आप अपने इन्स्टीट्यूटमें प्रविष्ट होने दें, तो मैं नियमित रूपसे आता रहूंगा।

इस बार डा० स्विफ्टसे जो जवाब मिला, वह जरा अधिक सुन्दर था। और उसे पानेपर चैडविक पुनः डेनिश इन्स्टीट्यूटमें गया। डा० स्विफ्टने चैडविकसे उसके व्यापारके सम्बन्धमें बातचीत की।

दूसरे दिन मि० चैडविककी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं था। उन्हें मालिशके लिए डेनिश इन्स्टीट्यूटमें जानेकी इजाजत मिल गयी थी। वे गये और पहली मञ्जिलमें एक



डेनिश इन्स्टीट्यूटमें पाये जानेवाले यन्त्रादि, कोड़े तथा दूसरे साधन।

कमरेमें मालिशके लिए रखे गये। एक सुन्दर युवती मे यङ्ग आयी और मालिश करके चली गयी। चैडविक कल्पना भी नहीं कर सका कि इसमें वेश्यावृत्ति भी होती होगी, जब कि ठीक उसकी ऊपरकी मञ्जिलमें वेश्यावृत्तिसे भी गन्दी बातें हो रही होंगी।

डा० स्विफ्टके भ्रमोंका निवारण अभी भी नहीं हो सका था। वे अभी भी चैडविकको सन्देहकी नजरसे देख रही थीं।

और चैडविक जानता था कि डा० स्विफ्टके सन्देहका कारण क्या है। १९३९ में इसी प्रकार जासूस चार्ल्स कोड्स वहां गया था और अपनेको मिचीगानका व्यापारी—मारिस एडवर्ड—बताकर भर्ती हुआ था, और वहांसे निकलते ही पुलिसने छापा मारकर स्विफ्टको गिरफ्तार किया और उसे थोड़े दिनोंके लिए जेलमें भी जाना पड़ा था।

चैडविकने जाना बन्द नहीं किया। हफ्तेमें एक-दो बार वह इन्स्टीच्यूटमें चला जाता और मालिश कराके चला आता। उसे बराबर वही मे यङ्ग मिलती। एक बार मालिशके सिलसिलेमें उसने मे यङ्गसे किसी नारीसे मित्रता करनेकी इच्छा प्रकट की। उसने कहा कि यों भी सुन्दरियोंकी इस न्यूयार्कमें कमी नहीं है, कहींसे भी एक मित्र बल्कि चुनी जा सकती है। पर कोई धोखा न हो जाय। उसने कहा कि मैं छल-कपटसे घबराता हूं और इसीलिए मुझे एक साथी भी नहीं मिल रहा है।

मे यङ्ग इस प्रकारके प्रसङ्गकी प्रतीक्षा पहलेसे कर रही थी, उसने कहा कि दुबारा आनेपर मैं सम्भव हुआ, तो आपकी मालिश ऊपरकी मञ्जिलके किसी कमरेमें करूंगी। वहां किसीके आने-जानेका खौफ नहीं है। मैं डा० स्विफ्टसे भी आपकी चर्चा करूंगी और अगर उन्होंने मञ्जूर कर लिया, तो आपको किसी प्रकार भी अकेलेपन अथवा बेचैनीकी शिकायत नहीं रह जायगी।

तीन दिन बीत गये। मि० चैडविक अपनेकमरेमें बैठे हुए थे कि टेलीफोनकी घण्टी बज उठी। उन्हें जिसकी आशा न थी, वही हुआ। फोनपर यङ्ग थी, जो धीरे-धीरे बोल रही थी। उसने हार्दिक प्रसन्नताके स्वरमें कहा कि "डा० स्विफ्टने दूसरी मञ्जिलपर मालिशकी इजाजत दे दी है, इसलिए कल शामको पांच बजे जरूर आइये, भूलियेगा मत!"

"हरगिज नहीं," चैडविकने विश्वास दिलाया, "मैं जरूर आऊंगा।"

और दूसरे दिन पांच बजते ही उसने डा० अन्ना स्विफ्टके डेनिश इन्स्टीच्यूटका दरवाजा खटखटाया। यह पहली जुलाईकी बात है। आजसे सात महीने पहले उसने इन्स्टीच्यूटमें प्रवेश करनेका बीड़ा उठाया था। उसका कलेजा धड़क उठा। उसने इतनी और ऐसी विचित्र-विचित्र अफवाहें

सुन रखी थीं कि उसके मनमें तरह-तरहकी कल्पनायें उठने लगीं।

मे यङ्गने मुसकराते हुए अभिवादन किया। उसने कहा, "सब कुछ ठीक है। मुझे डा० स्विफ्टको तैयार करनेमें बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। लेकिन जो भी हो, आप पुराने ग्राहक हैं, आपको नाराज नहीं करना चाहिए।"

चेडविकने कृतज्ञता प्रकट की और दूसरी मञ्जिलपर उसके साथ गया। मे यङ्गने पूछा, "जब तक आप कपड़े खोल रहे हैं, तब तक मैं दूसरी लड़कियोंको बुलाऊं। आपको कितनी चाहिए?"

"कितनी?" चैडविकने चौंकते-से कहा, "कितनी क्या?"

"चौंके क्यों आप? कितने ही लोग कई, चार-पांच चाहते हैं। तरह-तरहकी!" यङ्गने जवाब दिया।

मि० चैडविक अपने कपड़े उतार रहे थे कि अकस्मात् मे यङ्ग घबरायी-सी आयी और कहा—महाशय, मालूम होता है, डा० अभी भी आपका विश्वास नहीं करतीं। आपको दूसरे दिनकी प्रतीक्षा करनी होगी।

चैडविकके चेहरेपर जैसे स्याही पुत गयी। लेकिन यङ्गने आगे बढ़कर उसके गलेमें बाहें डाल दीं। उसने कहा, "इतने निराश न हो जाइये। मैं आपके लिए सब कुछ करनेको तैयार हूं। और आप भी मेरे लिए क्या नहीं कर सकते।" कहते-कहते वह उनसे झूल गयी और उसके कपड़े खिसक गये।

अकस्मात् चैडविकको होश आया। उसने सोचा, बहुत हो चुका। वह दौड़ता हुआ कमरेसे बाहर निकला और नीचे गया। दरवाजेपर लगे हुए शीशेपर उसने ठोकर मारी और देखते-देखते बाहर प्रतीक्षा करती हुई पुलिस दौड़ती हुई मकानके सामने पहुंची।

अठारह वर्षोंके भीतर डा० स्विफ्टके मकानपर पुलिसने दुबारा छापा मारा। छापा मारनेवाले एक अफसरने कहा—"शाबाश शेजर! बहादुरीका काम किया तुमने!"

शेजरने, जो सात महीने तक चैडविकके नामसे मशहूर था, सिर हिलाया। एक-एक करके पुलिसने बहुत-सी चीजोंका पता लगाया, कई तरहके औजार और दूसरी चीजें वहां पायी गयीं। और तब वहां पायी जानेवाली सुन्दरियोंने अपना बयान दिया।

इस पापाचारके अड्डे में पायी जानेवाली चीजोंके बारेमें जब दरियाफ्त किया गया, तब ऐसी-ऐसी बातें सुननेको मिलीं, जिन्हें सुनकर पुलिसको दांतों-तले उंगली दबानी पड़ी। कितने ही नङ्गी-धड़ङ्गी औरतोंपर कोड़े मारना चाहते हैं, उनकी प्रेम-वासना इसीसे बुझती है। कितने ही स्वयं किसी नग्न बालिकाके हाथसे कोड़े खाना चाहते हैं। कई लड़कियोंने रोते-रोते बताया कि इस प्रकार उनसे तरह-तरहके काम लिये जाते थे। एकने इन्स्टीट्यूटमें पायी जानेवाली सुइयों और दूसरे नन्हें-नन्हें औजारोंका रहस्य बताते हुए कहा कि कितने ही लोग नङ्गे-धड़ङ्गे सुई चुभवाना पसन्द करते हैं, और डाक्टरने इस प्रकारकी नवीन कलाओंकी शिक्षा देकर सुन्दरियोंको ऐसा तैयार कर दिया था कि लोग मुंहमांगी रकम देकर इस प्रकार मधुर कष्टका आनन्द लेते। एक सेठका लड़का एक बारके इस प्रकारके मधुर कष्टके लिए सौ डालर तक देता था और ऊपरसे दावतों और भोजोंकी बात ही क्या? इस प्रकारके कितने ही पापियोंकी इस पाप-स्थलपर बड़ी कृपा रहती थी।

डेनिश इन्स्टीट्यूटकी सारी कहानी अनेक भीषण काण्डोंसे भरी है और उसमें ऐसी-ऐसी बातोंका उल्लेख है, जो साधारणतः मनुष्यकी कल्पनामें नहीं आ सकतीं। उसमें आनेवाली युवतियां भी यों ही नहीं चली आती थीं। कई दिनों तक उन्हें एक प्रकारसे बन्दी-जीवन बिताना पड़ता—इतनी देखरेख उनकी होती थी। काफी सन्तोषजनक व्यवहार दिखानेपर ही वे उसमें भरती होती थीं।

डा० स्विफ्टका सारा कारबार इतने अच्छे ढङ्गसे सञ्चालित था कि धोखा होनेका अवसर बहुत कम मिलता। उनके दफ्तरमें पुलिस अफसरों, जासूसों आदिके सम्बन्धमें सारी बातें बाकायदा लिखी हुई रखी थीं और अफसरोंके बारेमें उनकी आदतों, चेहरे-मोहरे, रङ्ग आदिके सम्बन्धमें सारी बातें सावधानीसे लिखी थीं, जिससे कभी धोखा न खाना पड़े।

लेकिन अन्ना स्विफ्ट आखिर गिरफ्तार हुई। धोखा उसे खाना पड़ा।

———

सौन्दर्य

श्री मनोहरलाल बजाज

कूड़े-कर्कटके ढेरोंसे वह सड़ी हुई रोटीके टुकड़े एकत्र करता और फिर एक नालीके किनारे बैठकर, उनको बड़े मजेसे खाया करता।

वह अन्धा था—बहुत अभागा। उसके पास रहनेके लिए न कोई झोंपड़ी थी, न तन ढांपनेके लिए कोई फटा-पुराना चीथड़ा। वह सड़कके छोरपर बैठकर, प्रायः चिल्लाया करता—"बाबा, थोड़ा-सा जल ला दो।"…परन्तु आजके मनुष्यके पास इतना समय कहां कि वह किसीकी बात भी सुन सके?

मैं नित्यप्रति कालेज जाते हुए उसे मार्गमें देखता। कई बार मनमें विचार उठा कि थोड़ा-सा जल लाकर इसे पिला दूं। परन्तु फिर सोचता कि यदि मेरे मित्रोंने देख लिया, तो वे मेरे विषयमें क्या सम्मति स्थिर करेंगे? कारण, मैं प्रायः देखा करता था कि लोग चलते समय उसकी छायासे दूर भागते हैं। और जब कभी उसके "पड़ोस" में चोरी हो जाती है, तो लोग सदैव उसीपर सन्देह करते हैं। कई बार ऐसा हुआ कि जब किसी अपराधीका पता न चला, तो उस गरीबको ही पकड़कर जेलमें ठूंस दिया गया।

एक दिन उसने किसीसे उल्लेख किया था कि वह वास्तवमें जन्म-कालसे अन्धा नहीं है, वरन् अपनी युवावस्थामें जब वह एक मिलमें मजदूरी करता था, तो वहां रात-दिन बिजलीके बल्बोंके पास खड़े रहनेसे उसकी आंखें जाती रही थीं। और फिर इसी सबबसे उसे मिलसे पृथक् कर दिया गया था। इसके पश्चात् उसने कितनी ही चेष्टा की कि उसे कहीं नौकरी मिल जाय, परन्तु हर जगह उसे यही उत्तर मिलता था कि उसे नौकरी देना तो सफेद हाथीको पालनेके समान है।

अब वह प्रतिदिन सड़कके किनारे बैठकर भीख मांगा करता। लोग आते और उसकी ओर बिना ध्यान किये, चले जाते।—वैसे भी तो उसमें कोई खास आकर्षण न था।

……इस प्रकार उसका जीवन बीता जा रहा था।

× × ×

अगले दिन मेरे कलाकार मित्र कलकत्तेसे पधारे। अतः उनके अनुरोधपर यह दिनचर्या तय हुई कि आज दोपहर-को बड़े बाजारोंकी खूब सैर की जाय।

दोपहरकी सुहावनी धूपमें हम पेट-पूजा करनेके लिए एक होटलकी तरफ बढ़े। दरवाजेपर पहुंचकर देखा कि "बाजारोंका बादशाह"—वही अन्धा भिखारी कूड़ेके पास बैठा कुछ ढूंढ़ रहा है। मेरी आंखें इस घिनौने दृश्यका "बायकाट" करके, सुस्वादु कहवेसे भरी प्यालियोंका स्वागत कर रही थीं। परन्तु पता नहीं, मेरे मित्रको इसमें कौन-सी चित्ताकर्षकता दीख पड़ी कि वह लगातार दस मिनट तक उसकी ओर निहारते रहे।—मानो वह इस दृश्यकी छाया अपने मस्तिष्कमें सुरक्षित कर रहे हों।

घर आकर उन्होंने एक चित्र खींचा, जिसमें दिखाया कि एक अन्धा बूढ़ा कूड़ेमेंसे कुछ तलाश कर रहा है। और इस चित्रका शीर्षक उन्होंने रखा—"पुरुषार्थ।"

बादमें यह चित्र अखिल भारतीय प्रदर्शनीमें भेज दिया गया।

× × ×

वसन्त ऋतुके आरम्भमें हमारी कालेज-पार्टीने अर्थ-शास्त्रका अध्ययन करनेके लिए विविध नगरोंके भ्रमणका निश्चय किया। अतः रिआयती टिकट खरीदकर, हम कार्य-क्रमके अनुसार चल खड़े हुए।

विविध नगरोंको "सभ्य आवारागर्दी" के बाद हम बम्बई पहुंचे, जहां इस वर्ष उक्त प्रदर्शनी थी।

प्रदर्शनीमें पहुंचकर मुझे सहसा कोई विस्मृत बात याद आयी। मैंने यत्र-तत्र दृष्टि दौड़ाकर किसी वस्तुको खोजना शुरू कर दिया। एक संक्षिप्त-से कमरेके द्वारपर जाकर मैं ठिठक गया। वहां मोटे शब्दोंमें लिखा था कि "इस बार इस चित्रके बनानेवालेको पुरस्कार मिला।"

एक अस्पष्ट भय एवं उत्सुकताके मिश्रित भावसे मैंने

कमरेमें पग रखा, जबकि मेरी बुद्धि बीती हुई घटनाओंमें उलझी हुई थी। कमरेमें पग रखते ही मैं स्वयं चित्र बन गया।—यह चित्र मेरे मित्रका बनाया था, जो एक अन्धे बूढ़ेके जीवनसे सम्बन्ध रखता था।

इस चित्रपर मेरे मित्रको पुरस्कार मिला था। मानो बूढ़ेका जीवन कलाकारकी कला थी। मुझे उस समय बूढ़ेका ख्याल आया, जो बहुत दूर—बाजारोंमें कूड़ेके पास बैठा कुछ टटोल रहा था।

चित्रके नीचे सुनहरे शब्दोंमें लिखा था—"असीम सुन्दर।" मैं ये शब्द पढ़कर उलझनमें पड़ गया और कुछ निर्णय न कर सका कि कौन सुन्दर है? चित्र—या बूढ़ेका जीवन?

——

तृषा और तृष्णा

जीवन प्यासा यौवन प्यासा
जड़ चेतनका तन-मन प्यासा।
पानीकी प्यासी है धरणी
पानी प्यासा है बहनेको,
सागर-तटपर सिर पटक रहा
छटपटा रहा गति गहनेको।
दिनकर कहता है मैं चमकूं
हिमकर कहता है मैं दमकूं
नित नूतन रङ्ग बदलता है
छवियोंका नील गगन प्यासा
जड़ चेतनका तन-मन प्यासा।

प्यासा-सा पवन भटकता है
सन्-सन् करता सर-सर करता
आंधी बन और बवण्डर बन
छानता धूल हर-हर करता।
जलमें कल-कल गायन गाता
मर्मर वन उपवन लहराता
क्या खोज रहा तृण कण मनमें
श्वासें बनकर आता-जाता।
फूलोंकी मृदु मुस्कानों पर
मंडराता है गुञ्जन प्यासा
जड़ चेतनका तन-मन प्यासा।

ज्वाला पिपास बन राग द्वेष
मन-मनमें मौन मचलती है,
दावा बड़वा बिजली बनती-
रवि शशि तारोंमें जलती है।
दिनमें भी छाये रहनेको
आता तम गहन कुहासा बन
उर-उरमें माया मोह बसा
अंधियालेकी अभिलाषा बन।
लहरोंमें झूल रहा अविरल
सुध भूल रहा चुम्बन प्यासा
तरु बल्लरियोंमें झूम रहा
प्रेमोन्मद परिरम्भन प्यासा।
जड़ चेतनका तन-मन प्यासा।

बादल कहता है ठहर पवन!
बस थोड़ी देर बरस लूं मैं,
रटती चातककी प्यास चपल
स्वाती बूंदोंका रस लूं मैं।
ले परिवर्तनकी प्यास प्रकृति
षड् ऋतुके रङ्ग बदलती है
जलती, रोती, होती प्रसन्न,
सकुचाती, कंपती, हंसती है।
प्यासोंकी पीड़ा सोच समझ
पत्थरका दिल पानी बनता,
पाषाण हृदय रे मानव तू
पत्थरका ही सानी बनता।
प्यासे महान् महिमाओंके
प्यासोंको ही कहते जीवन,
शाश्वत है तृषा और तृष्णा
प्यासोंसे ही जीवित कण-कण
प्यासे हैं दिन प्यासी रातें
मेरा तो है क्षण-क्षण प्यासा
जीवन प्यासा यौवन प्यासा

—श्रीनिधि द्विवेदी।

पीड़ाकी सीमा

श्री भगवतीप्रसाद "चित्रकार"

सन्नाटेकी रातमें नितान्त दूर टिमटिमाते तारोंके नीचे, स्तब्ध खड़े काले-काले वृक्षोंके नीचे घूमकर सुरेन्द्र रात काट देता। अब उसका यही अत्यन्त सुखकर कार्य है। उसका इसमें बड़ा मन लगता है। उसका रोना कोई नहीं सुनता। उसके रुदनका स्वर तो उसके अन्तस्तलकी भित्तिको विदीर्ण करके एक नीरव लहर उत्पन्न करता हुआ नीरव लयमें क्षीण होता। रात-भर नींद नहीं आती। तब रात्रिके गम्भीर अन्धकारको विदीर्ण करके एक अस्फुट ध्वनि सुनाई देती, और सुरेन्द्र विवश हो उसमें अपना स्वर मिलाकर बिहाग या मालकोशकी रागिनीमें रुदन-गान करने लगता। उसे जान पड़ता—जैसे उसके आंसुओंके प्रवाहमें रात्रि भी गलने लगती।

हां, तो वह 'इन्दिरा' की स्मृतिको बलपूर्वक हृदयसे निकाल फेंके……। लेकिन बड़ी कसक है… बहुत जोरका दर्द है।……फिर ग्लानि और अनुतापकी हिलोरें हाहाकार कर उठतीं—क्यों उसने एक निरपराधिनीको, एक शिशु-सी नारी-रत्नको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा था?

सुरेन्द्र रोना चाहता है और खूब फूट-फूटकर। इतना कि जिससे उसकी सारी ग्लानि…कसक…वेदना…अन्दर-मोड़ा…सब…सब धुल जाय…बिलकुल चांदीकी तरह साफ हो जाय।…लेकिन हाय!…उसके अब आंसू भी कहां रहे। न जाने कब…बहुत दिन हुए……झर-झरकर सूख गये!

ओफ!…इतने गहरे घाव…इतनी कड़वी वेदनायें…!! लोग कहते हैं—"चुप रहो, धीरज धरो…संसार नश्वर है… इत्यादि।" पर लोगोंको क्या मालूम कि सुरेन्द्रके वक्षस्थलपर कितना भार है। उसे तो जागरण क्या, स्वप्न क्या…कभी चैन नहीं। हर घड़ी इन्दिराकी मूर्ति आंखोंके सामने नाचती रहती है।

तो…वह अब नहीं मिलेगी…!

सुरेन्द्र सोचता—इस अधम पार्थिव शरीरको लेकर वह इन्दिराके यहां जाय कैसे? इस आत्माका शरीरसे विच्छेद कब होगा? कब ज्ञानकी धारायें जगत-भरसे अपने ध्येयको ढूंढ़ लायेंगी? कब?…कब?…सुरेन्द्र उत्तेजित हो उठता और आर्त्त, कोमल, करुणा-भरे स्वरमें पुकार उठता—"इन्दिरा!…इन्दिरा!! एक बार भी आ जाओ। क्या नहीं?…आह!"…वह मूर्च्छित हो जाता। उसे तो मूर्च्छित अवस्था ही बहुत अच्छी लगती; क्योंकि वह अपनी व्यथा, कसक और वेदनाको कुछ क्षण तक ही सही, भुलाये तो रहता।

उसे तो संसारसे कोई मतलब नहीं। रूप नहीं, यौवन नहीं, प्यार नहीं, रस नहीं, धन नहीं। यह सब कुछ वह नहीं चाहता। वह चाहता है—दुनियावालोंसे मांगता है अपनी वही लक्ष्मी, वही महाकल्याणी…उसकी अपनी सहधर्मिणी…और उसके दुःख, दरिद्रता, रहस्य और भीतर-बाहरकी सङ्गिनी।

× × ×

कुछ दिन बाद—

आधी रात बीत चुकी है। अब भी सुरेन्द्र—केवल वही सारे घरमें जाग रहा है। कौन जाने, शायद अपने भविष्यकी गुत्थियोंको सुलझानेमें ही लगा है। उसके मानसमें विभिन्न प्रकारकी भावनाओंकी तरङ्गें हिलोरें मारती हैं और टकराकर लौट जाती हैं।

उसकी मां कहा करती—"बेटा, शादी न करोगे तो वंश कैसे चलेगा? और मैं तो बूढ़ी हुई। घरका भार मैं अब नहीं संभाल सकती। बेटा, तुम मेरी फिकर न भी करो, पर अपने सुखके लिए तो तुम्हें शादी करनी ही चाहिए। मैं इन बूढ़ी आंखोंसे देखना चाहती हूं, तुम सुखसे रहो। बेटा, बहुत दुःख काटे हैं तुमने। तुम्हरा कोमल चेहरा तक सूख गया है। अब तुमसे दुःख बिलकुल नहीं सहा जा सकता।"

तो सुरेन्द्र सोचता—"मांका अनुरोध है दूसरी शादी करनेका। घरमें बहू आयेगी, तो दिल बहल जायगा।"

क्या सचमुच उसकी तबीयत बहल जायगी ? क्या उसकी धधकती ज्वालाको शान्त करनेकी उसमें (दूसरी स्त्रीमें) सामर्थ्य हो सकती है ? क्या उसकी आत्माकी पीड़ा, दर्द, बेचैनीको वह दूर कर सकेगी ? विश्वास नहीं होता । और सम्भव भी नहीं ।

क्योंकि वह तो चाहेगी उससे प्रेम और वही मादक प्रथम प्रेम, जो सोहाग-रातमें प्रेमाञ्जलीमें दिया जाता है । क्या वह उसे दे सकेगा ? क्या उसकी आत्मा उस समय इन्दिराको बिलकुल भूल जायगी ? नहीं-नहीं, यह भी कभी हो सकता है ? जो मूर्ति हृदयमें, आंखोंकी पुतलियोंमें हर घड़ी नाचती रहती है, वह भला एकबारगी कैसे भूल जायगी ? सुहाग-रातमें केवल इन्दिराकी स्मृति-मात्र ही से क्या उसका हृदय तड़प न उठेगा ? और अगर वैसा हुआ, तो उस समय नवागन्तुककी कौन पर्वा करेगा ?

"तो...तो उस समय उस बेचारीकी क्या दशा होगी । सम्भव है, कहीं उसका कोमल हृदय इस वज्राघातको सह न सके और विदीर्ण हो जाय ।"

सुरेन्द्र कांप उठता—'न......न......न, वह एक अबोध बालिकाकी हत्या नहीं कर सकता।'

'तो क्या वह जीवनके उद्दाम प्रवाहको सहन कर सकेगा ?' उसकी आत्माने पूछा ।

सुरेन्द्र चौंक पड़ा । सोचने लगा, सोचता गया...व्यर्थ । हठात् उसके मुखसे निकल पड़ा—'नहीं ।'

तो आखिर क्या करे वह !

दूसरी शादी भी नहीं करेगा और जीवनके उद्दाम प्रवाहको भी नहीं रोक सकता, तो क्या 'वे...श...या !' छिः छिः ! वह अपना इतना अधःपतन नहीं देख सकता । अपने कुलमें कलङ्कका टीका नहीं लगा सकता ।

तब ?

अन्तमें भावनाओं और परिस्थितियोंसे लड़-झगड़कर वह यही निश्चय कर सका कि उसका जीवन बिना विवाह किये नहीं चल सकता ।

अब तो वह और बेतरह भावनाओंके फेरमें फंसा । 'कैसी स्त्री चुने वह ।' यह एक विकट समस्या उसके सामने आ टपकी । खैर, तीन-चार रोज माथापच्ची करनेके बाद उसने यही फैसला किया कि वह इस बार सुन्दर स्त्रीसे शादी करेगा, और उसकी बीवी कल्पनाकी तरह विकच यौवना—सर्वाङ्गसुन्दरी होगी ।

और सुरेन्द्रने अपनी कल्पना-माधुरीको देखा और एकदम धक-सा रह गया । समझ न सका, वह जागृतावस्थामें है या स्वप्नावस्थामें ।

× × ×

सुरेन्द्रको अब प्रकृतिमें एक विचित्र ही आनन्दका स्रोत उमड़ा हुआ दीख पड़ता । हरे-भरे वृक्ष लहराते नजर आते । पुष्पोंकी सुरभि, चिड़ियोंके मधुर कलरव, तितलियोंके नृत्य और मदमस्त भौंरोंके मृदुल गुञ्जारमें एक विशेष आनन्द आता ।

सन्ध्यावेलाकी नशीली चालमें उद्यानकी जूही-चमेली मदमाती-सी झूमती दीखती । छोटा-सा सरोवर, उज्ज्वल दुग्धफेनकी तरह सङ्गमर्मरकी सीढ़ियां, ऊंचे-ऊंचे हरे वृक्षऔर ऊंची मेहंदीकी क्यारियां—सब एक अद्भुत छटा उपस्थित कर देते । उसे सुनाई देता पवनका रिनझिन-रिनझिन नूपुर-सिञ्जन । कोयल किसी डालसे बोल उठती—'कुहू' 'कुहू'... 'क्या है, क्या है ?' अर्थात् क्यों तुम्हारा हृदय पुलकसे भरा है । वह भी सोचता, क्यों उसे ऐसी मस्ती सवार हुई है ।

रूप ! रूप !! देखा था, देखते ही रह गया था वह । उस छोटे-से कमरेकी वायुमें रूप-यौवन हिलोरें मारता-सा दीखता था और 'निर्मला' (भावी पत्नी) खड़ी...लज्जासे संकुचित । सुरेन्द्रके लम्बे शुष्क जीवनमें अमृत घुल पड़ा । कौमार्य, रूप, यौवन, प्रीति, प्रेम—सभी उसमें 'निर्मला' में पाया था । और शीघ्र, अति शीघ्र वह उसे न्योधा बहू बनायेगा ।

× × ×

सुरेन्द्रको आजकल एक दूसरा ही खब्त सवार हो गया है । वह सोचा करता—'निर्मला सुन्दर है, अति सुन्दर है ! पर वह कहीं अपने रूपपर अभिमान तो न करेगी ? और मां अथवा सारे परिवारके लिए एक बला तो न हो जायगी ? कहीं वह स्वयं उसकी रूपराशिमें फंसकर अपना अस्तित्व तो न खो बैठेगा और अपने कर्तव्य-पथसे गिर तो नहीं जायगा ?

फिर सोचता, नहीं ऐसा नहीं हो सकता । रूपवती, गुण-

वती और विदुषी कन्या अपने उत्तरदायित्वको समझनेमें कभी भूल नहीं कर सकती ।

लोग कहते हैं कि रूपवती पत्नी आयेगी, तो उसकी मांगको वह पूरा न कर सकेगा । तो क्या सचमुच उसकी मांगको वह पूरा न कर सकेगा ? मांग ? कैसी मांग ? मांग तो दो तरहकी हो सकती है—एक वाह्य और दूसरी हार्दिक । वाह्यमें रूपराशिके बढ़ावके लिए श्रृङ्गारिक वस्तुओंकी मांग होती है । खैर, यह तो पैसेका खेल है । कोई मुश्किल नहीं । लेकिन दूसरी मांग तो विकट है । वह है 'प्रेम-भीख ।' न जाने क्यों, सुरेन्द्र कांप उठा । सोचता—उसने तो प्रेम एक ही को दिया और वह लेकर चली गयी । अब दूसरा है कहां, जो दूसरेको देगा । प्रेम नहीं, स्नेह कदाचित् वह दे सकेगा ।

× × ×

प्रातःकालका समय था । सुरेन्द्र अपने कमरेमें बैठा कुछ लिख रहा था । भास्करकी प्रथम सुनहरी रश्मियां उसके चेहरेपर पड़ रही थीं और शीतल पवन भी उद्यानकी सुरभि लेता हुआ उसके शरीरको स्पर्श कर उसमें एक पुलक भर देता । लिखते-लिखते सहसा वह टहलने लगा । अचानक उसकी नजर कमरेमें लगे बड़े आईनेमें पड़ी और वह देखने लगा अपने सुगठित शरीरको, अपने चमकते हुए चेहरेको । सोचा—'अभी तो वह देखनेमें बिलकुल जवान लगता है, फिर तो वह 'निर्मला' को···।' उसके हृदयमें एक विचित्र उथल-पुथल होने लगती । उसका जीवन एक बार फिर बसन्तके रागमें रंगा जा सकता है, एक बार फिर पायलकी नूपुर-ध्वनि वह सुन सकता है ।

× × ×

पूर्णमासीकी रात थी । नील नभोमण्डलमें चन्द्रमण्डल-से निःसृत होकर चन्द्रिका समस्त पृथ्वी-मण्डलमें सुधा-धारा-की भांति फैली हुई थी । प्रकृति निस्तब्ध थी, धीर समीर आमोद-परिपूर्ण होकर चतुर्दिक् बह रहा था । सुरेन्द्र अपने कमरेमें एक पत्रिका पढ़ रहा था । पहली कहानीका शीर्षक था "बीता युग ।" पढ़ते-पढ़ते सहसा उसके मुखसे निकला—'ओफ ! तो क्या उसकी भी वही दशा होगी ?' आगे पढ़ने लगा । कहानी समाप्त हुई । वह और व्याकुल हो उठा और अपने आप कह उठा—"ओफ ! नारीके दिलकी थाह पाना बहुत कठिन है ! बेचारे वकील साहब तड़पते रह गये, पर उनकी स्त्रीने यह न जानने दिया कि वास्तवमें वह अपने पतिसे प्रसन्न है या नहीं ?" तो क्या 'निर्मला' भी अपनी इच्छाओंको अपने अन्तरमें दबाये रखेगी और बाहर मनसे अपने आपको समर्पण कर देगी ? तो क्या वह कभी सुखी हो सकेगा ? क्या उसे भी 'बीता युग' के वकील साहब-की तरह दूसरी शादी कर और मानसिक पीड़ा मोल लेनी पड़ेगी ?

प्रातःकाल उठकर शौच-स्नान इत्यादिसे निवृत्त हो वह अपने कमरेमें आया । आईनेके सामने खड़ा हो बाल संवारने लगा । सहसा वह चौंक उठा—"यह क्या, बाल पक गये ? एक···दो···तीन···ओफ ! इतने पक गये ?" सोचता—तो इससे क्या हुआ ? वह बूढ़ा थोड़े ही हो गया ।···हूं···बाल तो कम उम्रमें भी पक जाया करते हैं । वह अपनेको बार-बार आईनेमें देखने लगा । सोचता, अभी गालोंपर सिकुड़न वगैरह भी तो नहीं आयी है । चेहरेसे तो कोई उसे २५-२६ से ज्यादा नहीं कह सकता । बेकार वह अपनी तबीयत इन वाहियात ख्यालातोंमें खराब करता है । ···ऊं हूं···बङ्गाली लोग तो इस उम्रमें पहली शादी करते हैं ।

सुरेन्द्र इस तरह रोज अपनेको समझा लेता ।

× × ×

तो सुहाग-रात भी मदमाती इठलाती आ ही गयी—

और सुरेन्द्रने 'निर्मला' को पाया ठीक अपनी कल्पनाके अनुकूल । कमरेकी वायुमें यौवनका कम्पन हिलोरें मार रहा था । उसके स्वप्नमय नेत्रोंमें आनन्दका स्रोत उमड़ पड़ा । हृदयने आलिङ्गन किया—बस, उसका तप्त हृदय शान्त हो गया ।

वह गद्‌गद हो उठा ।

'निर्मला' उसके लिए उसके सच्चे हृदयका उद्‌गार, फफोलोंसे भरे हृदयका आश्वासन, व्यथित हृदयकी शान्ति, आकुलता-भरे प्राणका आह्वान, मेरुदण्ड-भूमिकी मन्दाकिनी और सर्वस्व-त्यक्तकी चिरतृप्ति ।

पर कौन कह सकता है, सुरेन्द्रका भविष्य सुखमय होगा या दुःखमय !

———



अमेरिकन प्रेसिडेण्टका निर्वाचन

ता० २०-८-४० को भारतवर्षके पत्रोंमें यह समाचार प्रकाशित हुआ था:—

वाशिङ्गटन, १९ जुलाई।

श्री रूजवेल्टने नामजदगी स्वीकार कर ली है।

अमेरिकन राजनीतिके क्षेत्रमें जो बात कौतूहल और पहेली-सी बनी हुई थी, वह इस समाचारसे साफ हो गयी।

श्री रूजवेल्ट संयुक्त राज्य अमेरिकाके वर्तमान राष्ट्रपति हैं। इस पदके लिए ये दो बार निर्वाचित हो चुके थे। इनकी वर्तमान शासन-अवधि आगामी मार्च, १९४१ में समाप्त होनेवाली थी। इसलिए इस पदके लिए पिछले नवम्बर मास-में फिर चुनाव हुआ। राष्ट्रपतिके चुनावके सम्बन्धमें, संयुक्त राज्यमें, प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिङ्गटनके समयसे ही यह परिपाटी चली आ रही है कि कोई भी व्यक्ति, जो दो बार राष्ट्रपति निर्वाचित हुआ, तीसरी बार उम्मीदवार खड़ा नहीं हो सकता। अमेरिकनोंको अपनी इस वैधानिक परिपाटीपर गौरव है। कई महीनेसे संयुक्त राज्यमें विगत निर्वाचनके सम्बन्धमें जोर-शोरसे चर्चा जारी थी। युद्धके कारण संसारमें जो भयानक परिस्थिति पैदा हो गयी है, अमेरिकन लोकमत उसपर उतना केन्द्रीभूत नहीं दीख पड़ता था, जितना कि इस राष्ट्रपतिके चुनावकी घरेलू समस्यापर। बल्कि युद्धसे यह समस्या और भी प्रभावित ही हुई है। जबरदस्त लोकमत यह महसूस कर रहा था कि संसारकी इस डांवाडोल अवस्थामें श्री रूजवेल्ट ऐसे कर्णधार ही—जिनका व्यक्तित्व अमेरिकामें सबसे बढ़ा-चढ़ा है—अमेरिकन राष्ट्रों-की नैयाको सुरक्षित पार लगा सकते हैं। तो क्या रूजवेल्ट तीसरी बार राष्ट्रपति-पदकी उम्मेदवारीके लिए खड़े होंगे? यह एक ऐसा प्रश्न था, जो लोगोंको परेशान कर रहा था। एक ओर गौरवपूर्ण पुरानी परिपाटीका सम्मान और दूसरी ओर संसारकी विकट परिस्थितिमें योग्य नेतृत्व। अख-बारोंमें, सभा-समितियोंमें, सर्वत्र इस बातकी चर्चा थी कि रूजवेल्ट इस बार फिर खड़े होंगे। श्री रूजवेल्ट डिमो-क्रैटिक पार्टीके सदस्य हैं। किन्तु इस पार्टीके सदस्योंके अलावा कई दूसरे दलोंके लोग भी यह चाहते थे कि वे फिरसे उम्मेदवार खड़े हों। चर्चा सब ओर थी; किन्तु स्वयं श्री रूजवेल्ट चुप थे। उनकी यह चुप्पी उनके समर्थकों और विरोधियों, दोनोंको हैरान कर रही थी। उनका अपना फैसला क्या होगा, यह अनुमान करना कठिन हो रहा था। इसी दुबिधामें डिमोक्रैटिक कानवेन्शनने उनका नाम अपने दलकी ओरसे उम्मेदवारीके लिए स्वीकृत किया। वाशिङ्गटन-के ता० १९ जुलाईके तारसे संसारको इस बातकी सूचना मिल गयी कि दलकी इस नामजदगीको श्री रूजवेल्टने स्वीकार कर लिया है।

राष्ट्रपतिके चुनावके सम्बन्धकी ये खबरें जितनी दिल-चस्प थीं, उतने ही शिक्षाप्रद वे नियम हैं, जिनके आधारपर यह चुनाव होता है। जिस तरह एशिया महादेशमें चीन और भारत रकबा और आबादी दोनोंके लिहाजसे प्रधान देश हैं, उसी प्रकार संसारके पश्चिमी गोलार्द्धमें संयुक्त राज्य-का स्थान है। उसकी आबादी लगभग १३ करोड़की है। पूर्वमें अटलाण्टिक महासागरसे लेकर पश्चिममें पैसिफिक

महासागर तक उसका क्षेत्रफल करीब ३७५०००० वर्गमीलका होगा। भारतवर्षके प्रान्तोंकी तरह वह ४८ राज्योंमें विभक्त है; बल्कि शासनकी व्यवस्थाके लिहाजसे यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वह भिन्न-भिन्न ४८ राज्योंका एक सूत्रमें बंधा हुआ एक सङ्घ—"संयुक्त राज्य"—है। एक जमाना था, जब कि भारतवर्षकी तरह संयुक्त राज्य भी अंगरेजोंके अधीन था; किन्तु आजसे लगभग पौने दो सौ वर्ष पहले वह विलग होकर एक स्वतन्त्र राष्ट्र बन गया। वहांकी सर्व-प्रधान व्यवस्थापिका सभा, जिसके हाथमें वहांके शासनकी बागडोर है, 'कांग्रेस' है। हमारे देशकी भी सर्वप्रधान संस्था, जिसका जनतापर बलात् नहीं प्रेमपूर्वक प्रभुत्व है, 'कांग्रेस' के ही नामसे विख्यात है। हमारी इण्डियन नेशनल कांग्रेसने सन् १९३४ से नये विधानके अनुसार अपने यहां राष्ट्रपतिके चुनावका जो नियम जारी किया है, वह भी संयुक्त राज्यके राष्ट्रपतिके चुनावकी प्रणालीसे थोड़ा मिलता-जुलता ही है। अतएव हमें अपने भावी विधानके निर्माणमें संयुक्त राज्य ऐसे राष्ट्रोंकी शासन-व्यवस्थाके अध्ययनसे बड़ी सहायता मिल सकती है।

हमारे यहां केन्द्रीय सरकारकी कानून बनानेवाली दो सभायें हैं। एक लेजिस्लेटिव एसेम्बली और दूसरी कौन्सिल आव स्टेट। कोई भी मन्तव्य जब तक दोनों सभाओंसे पास नहीं होता, कानून नहीं बनता। इंगलैण्डमें भी इस तरहकी दो सभायें हैं, एक 'हाउस आव कामन्स' और दूसरी 'हाउस आव लार्ड्स।' इन दोनोंका सम्मिलित नाम 'पार्लमेण्ट' है। फ्रान्सके शासन-विधानमें भी दो कानून बनानेवाली सभाओंका आयोजन है, जिन्हें इकट्ठा 'नेशनल एसेम्बली' कहते हैं। हिन्दुस्तान, इंगलैण्ड और फ्रान्सकी तरह संयुक्त राज्यमें भी दो सभायें हैं; एक कहलाती है 'हाउस आव रिप्रेजेण्टेटिव' (प्रतिनिधि सभा) और दूसरी 'सेनेट।' दोनोंका संयुक्त नाम 'कांग्रेस' है। सेनेटमें संयुक्त राज्यके प्रत्येक स्टेटसे दो-दो सदस्य चुनकर आते हैं। प्रतिनिधि सभामें प्रत्येक स्टेट अपनी आबादीके अनुपातसे सदस्य चुनकर भेजता है। हिन्दुस्तान इंगलैण्डका अधीन देश है। इसलिए उसका प्रधान शासक इंगलैण्डका प्रधान शासक है। वैधानिक रूपसे इंगलैण्डका प्रधान शासक सम्राट् है, जो कानूनकी भाषामें मन्त्रिमण्डलकी सलाह लेकर राज्य करता है। फ्रान्स और संयुक्त राज्य इस बातमें समान हैं कि दोनोंके प्रधान शासक, राष्ट्रपति 'प्रेसिडेण्ट' कहलाते हैं और चुनावके द्वारा पदपर आरूढ़ होते हैं। फ्रान्सका राष्ट्रपति 'नेशनल एसेम्बली' द्वारा चुना जाता है। संयुक्त-राज्यमें चुनावकी दूसरी ही प्रणाली है।

संयुक्त राज्यका राष्ट्रपति जनता द्वारा निर्वाचित होता है। किन्तु जनता इस चुनावमें सीधे अपने वोटका इस्तेमाल नहीं करती। नियमके अनुसार वह (जनता) अपनी ओरसे निर्वाचकोंको चुन देती है और ये ही निर्वाचक राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपतिका निर्वाचन करते हैं। जिस स्टेटमें जितने केन्द्रीय प्रतिनिधि सभा और सेनेटके सदस्य मिलाकर होते हैं, उतनी ही संख्या उस स्टेटमें राष्ट्रपतिके निर्वाचकोंकी निश्चित होती है। सेनेट और प्रतिनिधि सभाके सदस्य तथा संयुक्त राज्यके मुलाजिम निर्वाचक नहीं हो सकते।

राष्ट्रपति-पदके लिए वे ही उम्मेदवार खड़े हो सकते हैं, जिनकी उम्र ३५ वर्षकी या उससे अधिक हो; जो संयुक्त राज्यके जन्मजात नागरिक हैं और जो कमसे कम १४ वर्ष तक संयुक्त राज्यमें निवास कर चुके हैं।

राष्ट्रपतिका शासन-काल चार वर्षका है। शासन-अवधि पूरी होनेके कुछ दिनों पहले कांग्रेस द्वारा निर्वाचकोंके चुनने तथा निर्वाचकों द्वारा राष्ट्रपतिके चुनावकी तिथियां निश्चित कर दी जाती हैं। राष्ट्रपतिके निर्वाचनकी तिथि सारे संयुक्त राज्यमें एक ही रहती है। उस दिन प्रत्येक स्टेटमें एक निश्चित स्थानपर निर्वाचक इकट्ठे होते हैं और जिन्हें वे राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति चुनना चाहते हैं, उनके लिए वोट देते हैं। वोट बैलट द्वारा होता है। कौन वोटर किस उम्मेदवारको वोट देता है, इसकी लिखित सूचना प्रत्येक वोटरको एक कागजपर देनी पड़ती है। यह कागज सरकारकी ओरसे ही मिलता है। इसे ही बैलट-पेपर कहते हैं। प्रत्येक वोटर अलग-अलग बैलट द्वारा यह सङ्केत कर देता है कि किसको वह राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति चुनना पसन्द करता है। वोटर जिस स्टेटके रहनेवाले हैं, राष्ट्रपति वा उपराष्ट्रपतिके उम्मेदवारमेंसे कमसे कम किसी एकका उस स्टेटसे परे किसी दूसरे स्टेटका निवासी होना जरूरी है, इसी हिसाबसे वोटर वोट निश्चित कर सकते हैं।

वोट हो जानेपर दो विलग लिस्टें तैयार की जाती हैं।

एक राष्ट्रपतिके पदके उम्मेदवारोंकी और दूसरी उप-राष्ट्रपति पद चाहनेवालोंकी। प्रत्येक लिस्टमें जिस उम्मेदवारको जितने वोट मिले, वे नोट कर लिये जाते हैं। ये लिस्टें बाजाब्ता दस्तखत और सील मुहर होकर सेनेटके अध्यक्षके पास केन्द्रीय राजधानीमें भेज दी जाती हैं। सेनेटके अध्यक्ष सेनेट और प्रतिनिधि सभाके सदस्योंके सामने इन कागजोंको खोलते हैं। वोटोंकी गिनती होती है। वह उम्मेदवार, जिसे सबसे अधिक वोट आते हैं, राष्ट्रपति चुन लिया जाता है, बशर्ते कि उसके पक्षमें आये हुए वोट संयुक्त राज्यके कुछ निश्चित निर्वाचकोंकी संख्याके आधेसे अधिक हों। अगर ऐसा कोई उम्मेदवार नहीं निकला, जिसे कुछ निर्वाचकोंकी संख्याके आधेसे अधिक वोट आयें, तो ऐसी दशामें उन तीन व्यक्तियोंमेंसे—जिन्हें सबसे अधिक वोट मिले हैं—किसी एकको प्रतिनिधि-सभा उसी स्थानपर राष्ट्रपति चुन लेती है। सभाके इस वोटमें प्रत्येक प्रतिनिधिका एक-एक वोट अलग-अलग शुमार किया जाय, ऐसा नहीं होता। एक स्टेटका एक वोट होता है। एक स्टेटका प्रतिनिधित्व करनेवालोंके बहुमतसे वा सर्वसम्मतिसे जो एक राय होती है, वह उस स्टेटका एक वोट समझी जाती है। प्रतिनिधि सभाकी इस बैठकमें संयुक्त राज्यके कमसे कम दो तिहाई स्टेटोंके प्रतिनिधियों वा प्रतिनिधिका उपस्थित रहना जरूरी है। चुनावमें केवल उपस्थित स्टेटोंके बहुमतका नहीं, वरन् संयुक्त-राज्यके कुल स्टेटोंके बहुमतका खयाल रखा जाता है।

राष्ट्रपति चुन लिये जानेपर चुने गये व्यक्तिको निम्न-प्रकार शपथ लेनी पड़ती है:—

"मैं शपथ करता हूं कि संयुक्त राज्य अमेरिकाके राष्ट्रपतिके कर्तव्यका पालन ईमानदारीसे करूंगा और अपनी पूरी शक्ति-भर संयुक्त राज्यके विधानकी रक्षा करूंगा।"

इस समय संयुक्त राज्यमें कई राजनीतिक दल हैं, जिनमें दो मुख्य हैं—एक डिमोक्रेटिक पार्टी और दूसरा रिपब्लिकन। सन् १९३३ में जब राष्ट्रपति रूजवेल्टने संयुक्त राज्यका शासन-भार ग्रहण किया, वहां एक प्रकारका आर्थिक विप्लव-सा मचा हुआ था। किसानोंकी दशा बिगड़ी हुई थी। मजदूरों और मिल-मालिकोंमें द्वन्द्व छिड़ा हुआ था। श्री रूजवेल्टने एक आर्थिक योजना तैयार की, जो संसारमें 'न्यू डील', नव प्रणालीके नामसे विख्यात है। गत सात वर्षोंसे इसी योजनाके अनुसार अमेरिकन प्रश्नोंको हल करनेका प्रयत्न हो रहा है। इस योजनाके कार्यान्वित होनेसे सभी अमेरिकन प्रसन्न हों, ऐसा नहीं है; किन्तु इसे सभी मुक्तकण्ठसे स्वीकार करेंगे कि इसने वहांके आर्थिक जीवनमें बहुत बड़ा उलटफेर किया है और यह इतना तो कमसे कम जरूर सिद्ध करती है कि श्री रूजवेल्ट अपने राष्ट्रकी आर्थिक समस्याओंको हल करनेकी पूरी कोशिश कर रहे हैं। रिपब्लिकन पार्टीका इस 'न्यू डील' की योजनासे मतभेद है। इस पार्टीवाले इस बातमें भी सहमत नहीं थे कि एक ही व्यक्तिको तीसरी बार राष्ट्रपति चुनकर राष्ट्रकी ऐतिहासिक परिपाटीके गौरवको किसी तरह धक्का पहुंचाया जाय। उनकी ओरसे श्री विल्की उम्मेदवार खड़े किये गये। चुनाव निर्विरोध नहीं हुआ; किन्तु व्यक्तित्वके लिहाजसे होड़ समानताकी नहीं थी, यह बात स्वयं श्री विल्की भी कबूल करते हैं। यदि कोई जोरदार दलील अमेरिकन लोकमतको श्री रूजवेल्टके विरुद्ध प्रभावित कर सकती थी, तो वह है यह तीसरी बार उम्मेदवार खड़ा होनेकी बात और कुछ लोगोंके बीच 'न्यू डील' की वे बुराइयां, जो स्वभावतः कुछ अंश तक अवश्य पैदा हो गयी हैं। फिर भी वर्तमान स्थितिकी जटिलताने अमेरिकन जनताको एक परीक्षित व्यक्तिको ही पुनः निर्वाचित करनेके लिए प्रेरित किया।

अमेरिकन राष्ट्रका झुकाव किस ओर है, इसका फैसला पिछले नवम्बर मासमें हो गया। यूरोपीय युद्धपर भी इसकी प्रतिक्रिया होगी। इसीमें इस निर्वाचनका महत्त्व छिपा है। —सरयूप्रसाद, बी०ए० बी० एल०

पांचवीं श्रेणी और 'ट्राजन घोड़ा'

हिटलरने जर्मनोंकी पांचवीं श्रेणीके सैनिकोंकी सहायतासे जब हालैण्डपर अधिकार कर लिया, तब ट्राजन घोड़ेकी कहानी लोगोंकी आंखोंके सामने नृत्य करने लगी। पांचवीं श्रेणीके रूपमें हिटलरने ट्राजन घोड़ेवाली चालसे काम लिया था। यद्यपि हालैण्डपर जर्मनीको अधिकार किये हुए कई महीने बीत चुके हैं, तथापि जब तक युद्ध चल रहा है, हिटलरकी इस चालसे सभी देशोंको सतर्क रहना ही होगा और ट्राजन घोड़ेका विवरण अप्रासङ्गिक न होगा।

ट्राजन घोड़ा कोई सचमुचका घोड़ा नहीं था। यह एक काठका घोड़ा था, जिसे यूनानियोंने बनाया था।

जमाना बीत गया, किसी समय यूनानियोंने ट्राय नगरपर हमला किया था। ट्राय नगर अभेद्य था। लाख कोशिश करनेपर भी यूनानी ट्राय नगरको जीतनेमें समर्थ नहीं हुए। इसपर यूनानियोंने ट्रायके चारों ओर घेरा डाल दिया और लगभग १० वर्ष तक यूनानी सेनायें घेरा डाले हुए ट्रायके चारों ओर पड़ी रहीं। जब इस उपायसे भी यूनानी अपने प्रयत्नमें सफल नहीं हुए, तब उन्होंने एक चालसे काम लिया। यूलीससके कहनेसे यूनानी कारीगर इपीओसने एक काठका घोड़ा बनाया। यह घोड़ा इतना बड़ा था कि उसके खोखले पेटमें कुछ यूनानी योद्धा बैठ सकें। जब यह घोड़ा तैयार हो गया, यूनानी सैनिक उसे ट्रायके पास ही मैदानमें छोड़कर चले गये, मानो उन्होंने हताश होकर घेरा उठा लिया हो। ट्रायवालोंको चकमा देनेके लिए यूनानियोंके जहाज भी चले गये; परन्तु वे पास ही एक टापूकी आड़में जा छिपे। ट्रायके नागरिक—ट्राजन यह देख नहीं सकते थे, इसीलिए चकमा खाकर वे ट्राय नगरके बाहर आ गये। मैदानमें उन्होंने काठका एक बड़ा घोड़ा देखा। यूनानी योद्धा यूलीससका मित्र सीनन भी पास ही था। सीननके हाथ पीछेकी ओर बंधे हुए थे। सीननने ट्राजनोंको बतलाया कि यूनानी लोग इस भीमकाय पवित्र काठके घोड़ेको यहीं छोड़ गये हैं। उसने यह भी कहा कि मैं संयोगवश बच गया, नहीं तो मुझे भी इस घोड़ेकी पूजाके सिलसिलेमें बलि चढ़ा दिया जाता। सीननने ट्राजनोंको सुनाया कि जिस देवीकी कृपासे ट्रायकी रक्षा होती रही है, उसे यूनानी अपने साथ लेते गये हैं। अगर ट्राजन लोग इस घोड़ेको अपने शहरमें लेते जायें, तो यह उस मूर्तिके स्थानपर उनकी रक्षा करता रहेगा। ट्राजन लोग धोखा खा गये और काठके उस घोड़ेको ट्रायमें ले गये। इसका सारे नगरमें खूब आनन्द-महोत्सव हुआ और बहुत रात तक जागते रहकर लोगोंने आनन्द मनाया। बादमें जिस समय सारा ट्राय नगर सो गया, सीननने उसका गुप्तद्वार खोल दिया और उसमेंसे मेनेलाज और उसके साथी कितने ही योद्धा निकल पड़े। इन योद्धाओंसे सङ्केत पाकर यूनानी सेनाने तत्काल वहां पहुंचकर ट्रायके खुले हुए फाटकोंमें प्रवेश किया। ट्रायके पतनकी इस कहानीसे यूनानियोंकी सूझपर प्रकाश पड़ता है। जीवनके अन्य क्षेत्रोंकी भांति रण-कौशलमें भी सूझका महत्त्व बहुत ज्यादा है।

एक घड़े तेलका मूल्य एक घड़ा खून

"एक घड़े तेलका मूल्य एक घड़े खूनके बराबर है।"—ये शब्द हैं फ्रान्सके तत्कालीन प्रधान मन्त्री मोशिये क्लिमेन्यूके, जिन्हें १५ दिसम्बर १९१७ को अमेरिकाके प्रेसिडेण्टके पास भेजे हुए एक तारमें लिखा गया था। इससे पता चलता है कि उस समय मित्रशक्तियोंकी दृष्टिमें तैलका महत्त्व कितना अधिक था। विशेषज्ञ भी इस विषयमें एकमत हैं कि १९१४-१८ वाले महासमरमें मित्रशक्तियोंके विजयी होनेका रहस्य तेलमें है, जो जर्मनीकी अपेक्षा उनके पास प्रचुर परिमाणमें था।

शस्त्रास्त्र बनानेके लिए लोहा और कोयला अत्यन्त आवश्यक है; परन्तु इन दोनोंके बाद जिस चीज़का नम्बर आता है वह है तेल। आधुनिक युद्धने जब औद्योगिक रूप ग्रहण कर लिया है, तब सच्चे अर्थमें तेल उसका निर्णायक है, इसमें सन्देह नहीं है। ब्रिटेनमें यों तो काफी तेल पैदा नहीं होता, परन्तु उसके अधिकार और नियन्त्रणमें ऐसे तैल-क्षेत्र हैं कि उसे तेलकी कमी नहीं हो सकती। जब तक इन तैल-क्षेत्रों और समुद्र-मार्गोंपर ब्रिटेनका नियन्त्रण और अधिकार है, तब तक १९१४-१८ की तरह निरन्तर तैल मिलता रहेगा।

इस दृष्टिसे जर्मनीकी स्थिति क्या है? १९३८-३९ में जर्मनीमें प्राकृतिक और वैज्ञानिक साधनोंसे ३५ लाख टन तेल तैयार हुआ था। अनुमान है कि कोशिश करनेसे १९४० में यह ४० लाख टन तक हो जायगा। इसमें रूमानियाके उस तेलको भी शामिल करना चाहिए, जो जर्मनीको मिल सकेगा। रूमानियामें १९३६ में ८६ लाख टन तेल निकला था; परन्तु १९३९ में ६२ लाख टन ही निकला। इस कमीका असर रूमानियाके तैल-निर्यातपर भी पड़ा। १९३६ में जहां ६९ लाख टन तैल बाहर भेजा गया था, वहां १९३९ में ४० लाख टन तेल ही बाहर भेजा जा सका। इसमेंसे लगभग चौथाई, अर्थात् ९ लाख ६० हजार टन तेल जर्मनीको मिल सका। अगर यह मान लिया जाय कि रूमानियाके तेलका अधिक भाग जर्मनीको मिल जायगा, तो भी जर्मनीको ७०-७५ लाख टनसे ज्यादा तेल नहीं मिल सकेगा।

गत महासमरमें युद्ध-क्षेत्रमें मित्रराष्ट्र लगभग ६ लाख टन तेल प्रति मास खर्च करते थे। आज यान्त्रिक सेनाओं और हवाई जहाजों एवं टैङ्कोंके इस युगमें तो यह खर्च कहीं ज्यादा हो गया है। यह अनुमान किया जाता है कि किसी भी पहली श्रेणीके युद्ध-लग्न देशको प्रति वर्ष १ करोड़ २० लाखसे लगाकर दो करोड़ टन तक तेल चाहिए, तब वह युद्ध-क्षेत्रमें काफी पैमानेपर कुछ कर सकता है।

अब प्रश्न आता है रूसके तेलका। क्या वह जर्मनीको मिल सकता है?

रूसमें यूरोपके सब देशोंसे अधिक तेल निकाला जाता है। संसारमें अमेरिकाके बाद रूसका ही नम्बर है। संसारमें जितना तेल पैदा होता है, उसका लगभग दसवां भाग सोवियट रूसमें निकलता है। यह अनुमान भी है कि सोवियट रूसमें पृथिवीके गर्भमें ६ अरब ३७ करोड़ टन तेल है, जिसे अभी तक निकाला नहीं जा सका है। इसका अर्थ यह है कि सारे संसारमें जितना तेल पृथिवीके गर्भमें होनेका अनुमान किया जाता है, सोवियट रूसमें उसका लगभग आधा है। इससे यह तो साफ ही है कि आज सोवियट रूस जो ३ करोड़ टन तेल पैदा कर रहा है, उसमें वृद्धि होनेकी बहुत गुञ्जायश है। इस तेलके अधिक भागकी सोवियटको खुद भी जरूरत है और इसलिए जरूरत है कि पिछले वर्षोंमें रूसकी खेतीके काममें तेलका खर्च बहुत ज्यादा बढ़ गया है—घोड़ोंका स्थान ट्रैक्टरोंने ले लिया है। स्टैलिनके लिए क्या यह सम्भव है कि वे तेलका खर्च कम करनेके लिए ट्रैक्टरों द्वारा खेतीकी प्रणालीको बदल सकें और रूसकी खेती फिर पुराने तरीकोंसे हो सके। जब यह सम्भव नहीं है, तब रूसको शान्ति-कालमें भी काफी तादादमें तेलकी जरूरत रहेगी ही, क्योंकि ट्रैक्टरोंसे खेती करनेकी प्रणालीको उठा देने या तेल मिलते रहनेमें व्याघात पड़नेका अर्थ है अकाल। युद्ध चलानेके लिए जर्मनीको देनेके निमित्त क्या सोवियट खेतीको २ करोड़ टन तेलसे वञ्चित किया जा सकेगा? इसकी कोई सम्भावना नहीं है। अब रहा सोवियट तेलके उत्पादनमें वृद्धि होनेका प्रश्न—इस सम्बन्धमें कई बातोंपर दृष्टि रखनी चाहिए। पिछले कई सालोंमें बाकू-ग्रोजनी जिलेमें तो तेलका उत्पादन बढ़ानेकी कोशिश की ही गयी, एशियामें भी एक नये तेल-क्षेत्रसे तेल निकाला गया। सोवियट रूसका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तैल-क्षेत्र यूरल और एम्बा नदियों और ओरनबर्ग रेलवे लाइनके बीचमें त्रिभुजाकार है। १९३५ में गुरेव और ओर्स्कके बीच ५२६ मील लम्बी पाइप लाइन तैयार की गयी। एशियाके इस तैल-क्षेत्रसे बहुत अधिक तेल निकलनेकी सम्भावना है। बाकू-ग्रोजनीके क्षेत्रमें जहां रूसका लगभग २९ प्रतिशत तैल है, वहां इस एशियाई क्षेत्रमें रूसका लगभग तिहाई तैल होगा। इस तेलमें बेनजाइन नामक ज्वलनशील भाग लगभग ३० प्रतिशत पाया जाता है, जब कि बाकू और ग्रोजनीके तेलमें वह केवल ६ और १० प्रतिशत रहता है। सोवियट रूस एशियाके अपने इस नये तैल-क्षेत्रको उन्नत बना रहा है; परन्तु इसमें रूसका ध्येय केवल तैलका उत्पादन बढ़ाना ही नहीं, एशियामें औद्योगिक विस्तार करना भी है। इसके कई हेतु हैं—रूसने हमेशा ही इस बातको दृष्टिमें रखा है कि जापानसे युद्ध होना बिलकुल सम्भव है। इस युद्धके लिए एशियाई तैल-क्षेत्र ही बहुत सहायक हो सकते हैं। दूसरा ख्याल यह भी है कि यदि कभी रूसको जर्मनीसे लड़ना पड़े, तो रूसके उत्पादन-कार्यमें एशियाका हिस्सा जितना अधिक होगा और उत्पादनके गौण साधन जितनी दूर हटा दिये जायंगे, उतने ही अधिक समय तक वह जर्मनीके विरुद्ध युद्ध चलाता रह सकेगा—भले ही यूरोपमें उसके कुछ भाग शत्रुके अधिकारमें चले जायं। सबसे बड़ी बात एक यह भी है कि रूसके महत्त्वपूर्ण उद्योगधन्धोंको अगर शत्रुके आक्रमण-क्षेत्रकी परिधिसे बाहर पहुंचा दिया जाय, तो वैसी अवस्थाके लिए क्षतिकी सम्भावना बहुत कम रह जायगी। मालको एक स्थानसे दूसरी जगह पहुंचानेकी कठिनाइयां रहते हुए भी सोवियट रूस यह प्रयत्न कर रहा है कि तैलका निर्यात जितना अभी है, उतना ही बना रहे; परन्तु असलियत यह है कि वर्तमान युद्धके प्रारम्भिक कालमें १० लाख टनसे भी कम हुआ। जर्मनीने १९३८ में रूससे ८१ हजार टन तेल मंगाया। १९३२ में यही ९ लाख टन मंगाया गया था। हो सकता है कि जर्मनी रूससे ज्यादा तेल मंगाये और उसे १९३२ की तादाद तक पहुंचा दे। एशियाका नया तैल-क्षेत्र परीक्षणकी स्थिति पार कर चुका है, गलतियां होनेकी सम्भावनायें अब नहीं रह गयी हैं, फिर भी वर्तमान युद्धका निश्चित रूपसे यह असर पड़ेगा ही कि उसकी उन्नतिका

आगेका कार्य शिथिल पड़ जायगा—भले ही रूस युद्धसे अलग रहे। फिर, लाल सेनाका तैल सम्बन्धी खर्च भी तो बढ़ता ही जाता है। जो हो, इस नये तैल-क्षेत्रसे यदि सोवियट रूसके सम्पूर्ण उत्पादनका अष्टमांश तैल भी निकाला जा सके, तो यह बहुत बड़ी सफलता होगी; किन्तु इस अवस्थामें भी रूसके लिए जर्मनीकी सहायता करना सम्भव नहीं होगा।

जहां वधू भाग जानेको कोशिश करती है

हंगरीकी स्थिति यद्यपि यूरोपके मध्य भागमें है, तथापि वहांके निवासियोंमें कितने ही एशियाई रिवाज पाये जाते हैं। बात यह है कि आज हंगरीमें जो जातियां बसी हुई हैं, उनके पूर्वज हजारों वर्ष पहले मध्य एशियामें रहते थे। मध्य एशियासे ये पहले यूराल पर्वत-श्रेणीपर और बादमें बल्गा नदीकी घाटीमें गये। उस समय इन लोगोंको 'ओगुर' कहते थे। इन ओगुरोंमें मेगयार प्रमुख १० फिरके थे। ये फिरके जङ्गली जानवरोंके शिकारसे अपनी गुजर करते थे। बादमें ये दसों फिरके मिलकर एक हो गये। ईसासे ९ वीं शताब्दी पहले इस सङ्गठित जातिका नाम 'ओनोगुर' पाया जाता है। मेगयारोंका 'हंगरूस' नाम लगभग १९०० वर्ष पुराना है।

पहले तो हंगरी-निवासियोंका भोजन ही लीजिये। उसमें चिकनाई, मलाई, चटपटे मसाले, काली मिर्च, जीरा, आजवायन, प्याज, अदरक काफी मात्रामें रहते हैं। भोजनके आरम्भमें थोड़ा शोरबा लेकर ही हंगरीवाले सन्तुष्ट नहीं हो जाते। उनके भोजनमें आरम्भसे अन्त तक किसी न किसी रूपमें शोरबा रहता है। उसके बिना भोजन हो ही नहीं सकता। और विवाह-शादियों और दूसरे आनन्दके अवसरोंपर तो चार-पांच तरहकी शोरबेकी चीजें तैयार की जाती हैं। मध्य एशियामें 'तोड़मा' नामक जो खाद्य पदार्थ आलू और मांसके साथ मिर्च-मसाले मिलाकर बनाते हैं, उसी तरहके 'गुलीआस' नामक एक अन्य पदार्थको हंगरीमें तैयार किया जाता है।

ईसाई धर्मके प्रभाव और पाश्चात्य जातियोंके सम्पर्कमें आनेके कारण हंगेरियनोंमेंसे कितने ही रीति-रिवाज उठ गये हैं, कितने ही बिलकुल बदल गये और कितने ही अभी तक एशियाके रङ्ग लिये हुए हैं। तुर्कीकी तरह हंगरीमें भी कुछ भागोंमें लड़कियोंके मेले लगते हैं। ग्रीष्म ऋतुमें एक दिन जब छुट्टी होती है, आसपास दूर-दूरके गांवोंसे सभी लड़कियां किसी कस्बेके मेलेमें एकत्र होती हैं। युवक भी आते ही हैं और लड़के और लड़कियां परस्पर मिलते, साथ-साथ सैर-सपाटा करते और नाचते-गाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इस मेलेके बाद हंगरीमें शादियोंकी धूम मच जाती है। मध्य एशियाकी जिन जातियोंमें युवकों और युवतियोंमें अपनी पसन्दका विवाह करनेकी पूरी स्वतन्त्रता पायी जाती है, उनमें भी यही होता है। हंगरीके मेगयार किसानोंमें अब यद्यपि बचपनकी सगाई और विवाह नहीं होता, तथापि युवकों और युवतियोंकी विवाह सम्बन्धी जिस स्वतन्त्रताका ऊपर उल्लेख हुआ है, वह सर्वत्र नहीं पायी जाती। अक्सर माता-पिता रुपये-पैसेके चक्करमें पड़कर युवकों और युवतियोंकी इच्छाकी परवा न कर विवाह-शादी कर डालते हैं। जब यह होता है, दोनों पक्षोंके बीचमें कोई न कोई बिचमानी होता ही है। हंगरीमें 'बिचमानी' प्रायः स्त्री होती है और उसे 'कनफूंसी' कहते हैं। तुर्कोंमें यह काम जो स्त्री करती है, उसे 'प्रेमदूतिका' कहते हैं।

मध्य एशियामें अभी तक यह रिवाज पाया जाता है कि कोई युवक जब किसी युवतीको विवाह करनेकी इच्छासे देखता है, अपने साथियोंके साथ जाकर उसे जबर्दस्ती ले आनेकी कोशिश करता है। यह रिवाज कई शताब्दी तक हंगरीमें प्रचलित था, परन्तु आज तो वधूको उड़ा ले जानेके रिवाजके चिह्न-मात्र रह गये हैं। क्रीमियाके तातारोंमें यह रिवाज है कि जो लोग वधूको लेने आते हैं, उनके रास्तेमें रुकावट डाल देते हैं। हंगरीमें किसानोंके घरके दरवाजेमें आरपार तिनकोंकी एक रस्सी तान दी जाती है और वरपक्षके लोगोंको अच्छा खासा सौदा हो जानेके बाद ही घरमें घुसने दिया जाता है। शादीके जुलूसमें घोड़े बहुत होते हैं। उनपर युवक सवार होते हैं। ये युवक वधूको छीन ले जानेकी कोशिश करते हैं, साथ ही वधूपक्षके लोग उसके चारों ओर एकत्र रहकर यह कोशिश करते हैं कि वरपक्षके युवकोंको छीन ले जानेमें सफलता न हो। विवाह हो जानेके बाद जब वधू गिरजेसे बाहर आती है, भाग निकलनेकी कोशिश करती है—यह

कोशिश करती है कि भाग जाय और वरपक्षवालोंके हाथ न आये, परन्तु वरपक्षके आदमी भी तो तैयार रहते ही हैं, उसे पकड़कर लौटा लाते हैं।

सभी जातियोंमें विवाहके साथ प्रायः एक न एक ऐसी रस्म पायी जाती है, जो दो शरीर और एक प्राण हो जानेके मधुर सम्बन्धपर, दाम्पत्य जीवनके संयुक्त दायित्वपर प्रकाश डालती है। हंगरीमें इस एकताको व्यक्त करनेके लिए वर और वधू दोनों मिलकर अपना कोई कपड़ा सीने लगते हैं या जब वे पास-पास बैठे होते हैं, कोई उनके हाथोंको परस्पर बांध देता है। जब वधू अपने पतिके घर पहुंचती है, तब दम्पतिको एक मेजके पास बैठाते हैं और कुटुम्बके अन्य लोग हाथमें हाथ मिलाकर तीन बार उनके चारों ओर नाचते हैं।

बच्चा पैदा होनेके सिलसिलेमें भी हंगेरियनोंमें कुछ रिवाज पाये जाते हैं, जिन्हें बहुत जगहोंमें एशियामें भी देखा जाता है। हंगरीमें गर्भवती किसान स्त्रियां अपने गलेमें लाल धागेमें लपेटकर गण्डा और तावीज पहनती हैं, जिससे भूतबाधासे रक्षा होती रहे। जब बच्चा पैदा हो जाता है, उसके नहानेके पानीमें डुबाकर कोई सिक्का बच्चेके पिताके पैरोंपर डाल देते हैं। बच्चेका पिता इस सिक्केको उठा लेता है और इस तरह यह स्वीकार करता है कि वह बच्चा उसीका है। हंगरीके कुछ जिलोंमें यह रिवाज भी है कि नवजात शिशुको पालनेमेंसे पिता जबर्दस्ती उठा ले जाता है और अस्तबलमें ले जाकर घोड़ेकी पीठपर बैठाता है। तुर्कोंमें जब कोई बच्चा ३ सालका हो जाता है, तब 'घुड़सवारी' की रस्म पूरी की जाती है।

हंगेरियनों और तुर्कोंके कृषि-सम्बन्धी त्योहार भी बहुत कुछ मिलते हैं। फसल कटने, अंगूरकी शराब चुआने और सुअरका शिकार खेलनेके त्योहारोंपर खास तौरसे रङ्गत रहती है। पशुओंका बलिदान भी किया जाता है और खाने-पीने और खेलने-कूदनेसे लगाकर नाचने-गाने तक सारी बातोंकी धूम मच जाती है। तुर्किस्तानके मुल्लेकी तरह हंगरीमें भी पादरीके पास मारे हुए सुअरका एक भाग भेज दिया जाता है। परोक्ष जगत्‌के सम्बन्धमें हंगेरियनोंका विश्वास है कि परियां होती हैं। इन परियोंकी एक रानी भी है। हंगेरियनोंका विश्वास है कि परियोंसे मनुष्यका हित ही होता है। भूतों और जिन्नोंमें भी वे विश्वास करते हैं और यह मानते हैं कि वे जङ्गलों, पहाड़ों, कुओं-झीलों, नदियों और खण्डहरोंमें रहते हैं और अवसर पाते ही मनुष्योंको तरह-तरहके कष्ट देनेकी कोशिश करते हैं, पालनेमें सोते हुए बच्चोंको भी वे बदल ले जाते हैं। इनसे बच्चोंकी रक्षा करनेके लिए मातायें पालनेमें लाल फीता बांध देती हैं, पालनेके पास झाड़ू रख देती हैं या घरके दरवाजेके ऊपर कांटेदार झाड़ियां टांग देती हैं।

कुछ अन्य रिवाज और बातें भी कम उल्लेखनीय नहीं हैं। फिरन्तू तुर्क जिस तरह लकड़ीके एक मोटे डण्डेको गढ़कर मनुष्यकी आकृतिका बनाते और उसे अपने डेरेके सामने गाड़कर वहां ईश्वर-प्रार्थना किया करते हैं, उसी तरह हंगेरियन भी अपने दरवाजेकी चौखटके दोनों बाजुओंको बड़ी कारीगरीके साथ गढ़ते और रंगते हैं, मानो प्राचीन कालकी मूर्तिपूजा इस रूपमें अभी तक हो। हंगेरियन जादू-टोनेमें भी विश्वास करते हैं और उसका असर दूर करनेके लिए तरह-तरहकी बातोंका चलन उनमें पाया जाता है। प्राचीन अग्निपूजाका भाव भी हंगेरियनोंमें मिलता है। कोई भी दावत ऐसी नहीं हो सकती, जिसके आरम्भमें प्रस्तुत खाद्य पदार्थोंमेंसे थोड़ा-थोड़ा लेकर आगमें न डाल दिया जाता हो। आगमें जूठन डालना और आगको पीठ देना बुरा समझा जाता है। जलकी पवित्रताके सम्बन्धमें हंगेरियनोंके विश्वासका कुछ पता इसीसे चल सकता है कि कोई भी मछुआ पानीमें कभी न थूकेगा और न कभी कोई तिनका पानीमें डालेगा। यदि वह नदीमें नावपर हो, तो वह कभी सौगन्ध नहीं खा सकता। यदि कोई भूलकर सौगन्ध खा ले, तो उसके साथी उसे नदीमें गिराकर डांड़ोंसे खबर लिये बिना नहीं रह सकते। किसी कुएंसे जब पानी निकाला जाता है, उसमेंसे कुछ, चाहे यह नाम-मात्रके लिए दो-चार बूंद ही क्यों न हो, कुएंमें गिरा देते हैं।

दीर्घजीवी कौन होते हैं ?

क्या कारण है कि कुछ लोग दीर्घजीवी होते हैं और कुछ नहीं ? यह प्रश्न उठता तो सभीके मनमें है, परन्तु अमेरिकाके प्रसिद्ध डाक्टर रेमाण्ड पर्लने अपना समय लगाकर इस सम्बन्धमें कुछ शोध किया है और न्यूयार्ककी राष्ट्रीय विज्ञान

परिषद्को अपनी रिपोर्टमें बतलाया है कि किसी मनुष्यके दीर्घजीवी होनेमें उसके हृदयकी धड़कनका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। डा० पर्लने २३३२ व्यक्तियोंको जांच वर्षों तक करनेके बाद यह परिणाम निकाला था। ये व्यक्ति अब मर चुके हैं। जिस समय उनकी जांच आरम्भ हुई थी, उनका स्वास्थ्य बिलकुल अच्छा था। इन व्यक्तियोंको डा० पर्लने दो वर्गोंमें बांटा—एक वर्गमें उन लोगोंको रखा, जो साधारणसे अधिक काल तक जीवित रहे और दूसरे वर्गमें उन लोगोंको स्थान दिया, जिनकी परमायु साधारण कोटि तक भी नहीं पहुंच सकी। इसके बाद यह पता लगाया गया कि क्या दीर्घजीवी वर्गके लोगोंमें अल्पजीवी व्यक्तियोंसे भिन्न कोई बात थी। कद, वजन, छाती आदिकी दृष्टिसे उनमें कुछ भी अन्तर नहीं था, परन्तु एक अन्तर अवश्य पाया गया—साधारणतः मनुष्योंकी नाड़ी एक मिनटमें ७२ बार चलती है; परन्तु सभी दीर्घजीवियोंकी नाड़ीकी चाल कम थी। इसके विपरीत अल्प-जीवियोंके हृदयकी धड़कन औसत-से कुछ ज्यादा पायी गयी। इसके बाद विभिन्न सिद्धान्तों-को दृष्टिमें रखकर छानबीन की गयी और यही निश्चित हुआ कि नाड़ीकी चाल और हृदयकी धड़कनके साथ जीवनी शक्तिका विपरीत सम्बन्ध है। एक ज्यादा होनेसे दूसरी कम और कम होनेसे ज्यादा होगी। यह होते हुए भी देखा जाता है कि दीर्घजीवी माता-पिताकी सन्तान भी दीर्घजीवी होती ही है; परन्तु परम्परासे आयी हुई यह जीवनी शक्ति मद्यपान और धूम्रपान आदि दुर्व्यसनोंसे कम हो जाती है।

———



हमारा अवसादपूर्ण सामाजिक जीवन

हिन्दू-समाज आज एक सन्धि-स्थलपर खड़ा है। और इस सन्धि-स्थलपर प्राचीन और नवीनका सङ्घर्ष चल रहा है। नयी भावधारायें उठती हैं और प्राचीन विचारधाराओंसे टकरा रही हैं। प्राचीन प्राचीन होनेके नाते एक दलकी धारा है, तो नवीन समयकी पुकारके अनुसार और उसके कारण आकर्षक है और प्राचीन हमारे संस्कारोंके अन्तर्गत मिलकर हमारी मांस-मज्जाके समान ही हमारे जीवनका अंश बन गया है, ऐसी दशामें यह सन्धि-काल समाजके लिए उसपर एक निर्णयका भार लिये आया है।

हिन्दू समाज आज अपनी जर्जर अवस्थामें है। प्राचीन रूढ़ियों और धर्मके वाह्याडम्बरोंका ऐसा आवरण सामाजिक जीवनपर पड़ गया है कि वास्तविक प्रश्न तिमिराच्छन्न हो गये हैं। यों हिन्दू समाजकी उदारताकी सदा प्रशंसा रही है, पर आज समाजमें आन्तरिक जड़ता इस सीमा तक पहुंच चुकी है कि उसमें जीवन-स्पन्दनका कोई अनुभव नहीं हो रहा है। हमारी सामाजिक व्यवस्थायें जिस रूपमें आज हमारे सामने वर्तमान हैं, उसमें वे प्रगतिके मार्गकी शृङ्खला बन उठी हैं। प्रगतिका सारा मार्ग अवरुद्ध है।

और इन सारी कठिनाइयोंके बीच हिन्दू-समाजकी कुछ बातें एकदम अनोखी हैं। एक और ऐसे लोगोंका समाजमें अभाव नहीं है, जिन्हें भगवान्का नाम लिये और दोनों वक्त नहाये-धोये बिना भोजन करना भी पाप है और दूसरी ओर इसी हिन्दू-समाजके अन्तर्गत उन्होंने करोड़ों व्यक्तियोंको ऐसा बना रखा है कि वे सभी सड़कोंपर चल नहीं सकते। चलते समय उन्हें आवाज करते हुए चलना पड़ेगा, जिससे दूसरे लोगोंपर उनकी छाया पड़नेके पहले ही लोग दूर हट जायें। मद्रासके सम्बन्धमें एक विश्वसनीय रिपोर्टके अनुसार अछूतोंके लिए नियम-सा बन गया है कि सड़कपर चलते समय वे गलेमें हांड़ी लटकाकर चलें, जिससे अगर उन्हें थूकनेकी जरूरत पड़े, तो सड़कके आस-पास थूककर उसे गन्दा न करें। जगह-जगह थूकते चलना निस्सन्देह स्वास्थ्यके लिए घातक है। पर जिन पण्डितोंने ऐसी व्यवस्था कर रखी है, क्या उन्होंने इस बातके भी सोचनेका कष्ट किया है कि जिन्हें अपने थूकसे भरी हांड़ियां लेकर चलनेका कष्ट दिया जाता है, वे क्या रोगोंके शिकार नहीं हो सकते और क्या पण्डितोंके थूकोंसे दूसरे लोग भवसागर पार हो जायेंगे? हरिजनोंके लिए हिन्दू-समाजमें बड़ी-बड़ी मूर्खता-पूर्ण व्यववस्थायें हैं, पर दक्षिण भारतकी व्यवस्थायें तो बड़ी ही भयङ्कर हैं। ऐसे हरिजन हिन्दू-जीवनसे ऊबकर अगर दूसरे धर्मोंमें चले जायें, तो इसके लिए उनपर कौन दोषारोपण कर सकता है। जिस समाजमें उनके साथ इस प्रकार पशुओंसे भी बदतर व्यवहार होता हो—और सचमुच पशुओंसे भी बदतर, क्योंकि पशुओंका हमारे समाजमें काफी महत्त्वपूर्ण स्थान है—उससे वे क्योंकर प्रेम कर सकते हैं। हमारे देशमें ही यह सम्भव है कि एक ओर भूखा व्यक्ति नाबदानसे सड़े-गले चावलके दाने बीन रहा हो और उसीके पास सांड़ोंको जलेबियां और मेथीके लड्डू खिलाये जा रहे हों। ऐसे दृश्य एक-दो नहीं, दस-बीस,

पचास नहीं, सैकड़ों व्यक्तियोंने अपनी आंखों देखा है। आश्चर्य है कि एक ओर पशुके प्रति दया-धर्मकी इतनी महिमा और दूसरी ओर मानवताकी ऐसी उपेक्षा। इसीलिए हमने कहा है कि हमारे समाजमें मानव पशुसे भी बदतर समझा जाता है।

लेकिन इस भावनाका उद्गम-स्थान जहां है, जब तक उसमें सुधार नहीं किया जाता, तब तक ऐसी बातें ठीक रूपमें आ नहीं सकतीं। यह उद्गम-स्थान है धर्म। हमारे धर्ममें कुछ पशुओं तकको मनुष्यसे अधिक महत्त्व प्राप्त है। उनकी पूजा होगी, उनके लिए लाखों सिर कटानेको तैयार होंगे, पर मनुष्यको—लाखों नहीं, करोड़ों मनुष्योंको, जिन्हें दलित और अस्पृश्य समझकर ठुकरा दिया गया है—मानवताके साधारण अधिकार तक नहीं मिले हैं। अल्डुस हक्सलेने लिखा हैः—

सूर्य और चन्द्र-ग्रहणके दिन लाखों हिन्दू गङ्गा-स्नान करते और दान-दक्षिणा करते हैं। उस दिनकी उनकी धर्म-भीरुता और वह एकत्र भीड़ देखते बनती है, पर वही हिन्दू—हिन्दुओंकी वह विशाल संख्या क्या किसी सार्वजनिक कार्यके लिए एकत्र होती और उसी प्रकारकी भावना दिखाती है? सूर्य और चन्द्रमाके कष्ट-निवारणके लिए तो लाखों हिन्दू रात-दिनका विश्राम छोड़कर गङ्गामें कूद पड़ते हैं, कभी-कभी मीलों दूरसे हिन्दू सपरिवार आकर ऐसा करते हैं; पर अपने कष्ट-निवारण, अपने समाजके उद्धार-के लिए वे क्या कर रहे हैं? समाजकी शक्तियोंका इसे अपव्यय न भी कहें, तो भी इतना तो कहना ही पड़ता है कि धार्मिक मानवताके पीछे जो यह उन्माद है—धार्मिक मानवताके पीछे कष्ट झेलने और त्याग करनेकी जो यह प्रवृत्ति है, उसका कोई अंश दूसरे अवसरोंपर दिखाई नहीं पड़ता। ये बातें हमें ऐसा अवसादमें डाले हुए हैं, हमें भुलावेमें डालनेकी इतनी बातें आ गयी हैं कि वास्तविक प्रश्नोंपर विचार करनेके लिए हमारे पास अवकाश ही नहीं रह गया है। अतः परिणाम यह होता है कि समाजकी शक्ति और समयका व्यय तो होता है, पर उसकी समाजके लिए कोई उपयोगिता नहीं है।

अतः आवश्यकता इस बातकी है कि सामाजिक प्रश्नों-पर सही दृष्टिकोण बनाया जाय। अन्यथा समाजके लिए आज जो यह सन्धि-स्थल है, उसपर खड़े होकर समाज सही निर्णय करनेमें कभी समर्थ नहीं हो सकता।

आज यह बात किसीसे बतानी नहीं है कि समाजमें जो प्राचीन विचार-धारा है, केवल उसीके सहारे समाज टिका रहा और परिस्थितिकी आवश्यकताओंपर उसने ध्यान नहीं दिया, तो उसका परिणाम समाजके सर्वनाशके रूपमें दिखाई पड़ेगा। अगर समाजको यह सर्वनाश रोकना है, अगर समाजको समयके अनुसार अपनेको जीवन-सङ्घर्षमें विजय प्राप्त करनी है और अगर समाजको अपने अस्तित्वकी रक्षा करनी है, तो उसे परिस्थितियोंको उस रूपमें देखना होगा, जिस रूपमें वे समाजके सामने आज उपस्थित हैं। समाज अगर ऐसा नहीं करता, तो वह नींवपर कुठाराघात कर रहा है।

समाजमें नारीकी स्थिति

भारतीय व्यवस्थापिका परिषद्में समय-समयपर भार-तीय नारियोंकी अवस्था सुधारनेके लिए प्रयत्न हुए हैं, इस बातके लिए प्रयत्न हुए हैं कि नारियोंकी कानूनी अयो-ग्यताओंको हटाकर उन्हें थोड़े अधिकार दिये जायें; पर अक्सर इस दिशामें होनेवाले प्रयत्न व्यर्थ गये हैं। अभी उस दिन पुत्रियोंको उत्तराधिकार देनेके सम्बन्धमें एक सदस्य द्वारा जो प्रयत्न हुए, उनका परिणाम भी यही हुआ।

तो हमारे समाजमें भारतीय नारीकी जो स्थिति है, अधिकांश लोग उसके समर्थक जान पड़ते हैं। वे 'जिमि स्वतन्त्र होइ बिगड़हिं नारी' के आदर्शका पालन करते हैं और इसीके कारण वे नारियोंको अधिकार नहीं देना चाहते। समाजमें नारीकी स्वतन्त्र सत्ता उन्हें मञ्जूर नहीं। वे सोचते हैं, उसकी स्वतन्त्र सत्ता मानते ही घरका वाता-वरण अशान्त हो जायगा, नारीको तो, जैसा मनुने कहा है, सदा किसी न किसीके अधीन रहना चाहिए। 'पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने...'आदिको आदर्श व्यवस्था मानते हैं, ऐसी दशामें वे उन्हें सामाजिक अधिकार नहीं देना चाहते। पर्देकी घोर गन्दी प्रथा इसी भावनाके कारण अब तक दूर नहीं हो सकी। नारियोंमें आत्मबलकी भावना इसी कारण नहीं आ सकी। "नारीको कभी स्वाधीनता न दो," यह मनुने चिल्ला-चिल्लाकर घोषित किया है और

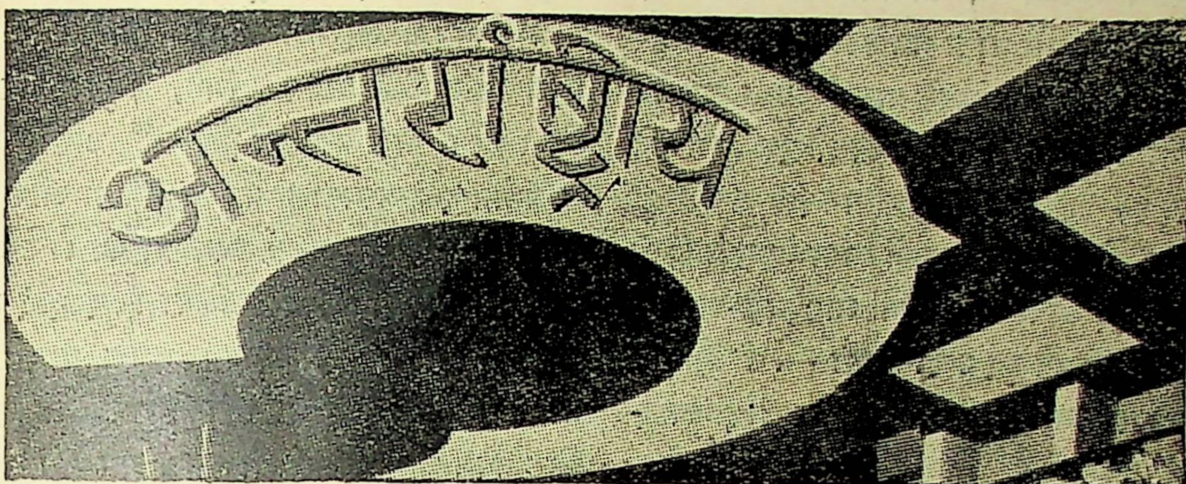
हिन्दू समाज और कई बातोंमें मनुकी व्यवस्थायें माननेको तैयार नहीं है; पर ऐसे विषयोंमें, जहां उसके स्वार्थका प्रश्न है, उनकी आज्ञा शिरोधार्य करनेको तैयार है ।

इसी भावनाके कारण नारीके लिए आर्थिक व्यवस्थायें नहीं की गयीं । नारीके पास अपना कहनेके लिए क्या है ? हिन्दू कानूनमें जिसे हम 'स्त्री-धन' के नामसे पुकारते हैं, वह कितनी नारियोंके पास और कितने अंशमें है ? नारीको साम्पत्तिक अधिकार देनेके पक्षमें हिन्दू समाजका लोकमत प्रायः नहीं रहा है । नारीके पास सम्पत्तिका रहना ही उसके विनाशका कारण है ! और क्यों ? इसलिए कि नारीको आर्थिक स्वावलम्बन मिला नहीं कि वह किसीकी सुनेगी नहीं, वह पुरुषकी दासी तब तक बनी रहेगी, जब तक कि उसके भरण-पोषण तककी समस्या उसके लिए जटिल बनी हुई है । नारीकी आर्थिक परवशताके कारण समाजमें उसका कोई स्थान नहीं रह गया है । लेकिन समाज उसे गुलाम बनाये रखनेके लिए उसे किसी प्रकारका अधिकार देना नहीं चाहता । एक बार एसेम्बलीमें श्री श्रीप्रकाशने कहा था कि भारतीय महिलायें दो तरहसे गुलाम हैं । एक तो उनकी राजनीतिक गुलामी है और दूसरी गुलामी उन्हें अपने घरोंमें पुरुषोंकी करनी पड़ती है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस कथनमें सचाई है । लेकिन सवाल यह है कि नारीको कब तक इस प्रकारकी दासतामें रखना होगा । समाजपर भी नारीकी इस स्थितिकी प्रतिक्रिया अच्छे रूपमें नहीं हो रही है । जिस स्थितिमें नारी है, उसमें उसका आत्म-विकास नहीं हो सकता, वह परिवारके लिए भार-स्वरूप हो जाती है और उसकी आत्म-सम्मानकी भावना अंकुरित ही नहीं होने पाती ।

सदियोंसे नारीको इसी रूपमें रखा गया है और आज भी, जब कि चारों ओर प्रकाशकी किरणें बिखर रही हैं, नारीको अन्धकारमें रखा गया है—वास्तवमें नारीको जानबूझकर अन्धकारमें रखा गया है । उसे शिक्षा नहीं दी जाती, उसे उसके साधारण कर्तव्योंका भी ज्ञान नहीं कराया जाता । उसे जीवनकी उपयोगिता और समाजके लिए उसका महत्त्व कुछ भी नहीं समझाया जाता । अतः नारीका सामाजिक जीवन है ही नहीं ।

इस स्थितिमें नारी करे क्या ? उसके विकासके सारे द्वार अवरुद्ध हैं । समाजमें उसकी स्थिति नगण्य है और अभी जैसी सामाजिक व्यवस्थायें हैं, उनमें उसके उद्धारका मार्ग भी प्रशस्त नहीं दिखाई पड़ता । नारी-सुधारके लिए अथक परिश्रम करनेवाले भी प्रायः उन बातोंका अनुकरण नहीं करते, जिनका वे उपदेश दिया करते हैं । वास्तवमें आवश्यकता है हमारे कथन और कर्ममें सामञ्जस्य स्थापित करनेकी । भारतका आन्दोलन जो अच्छी प्रगति नहीं प्राप्त कर सका है, उसका प्रमुख कारण एक यह भी रहा है । लेकिन नारीको कितने दिन तक तालेके अन्दर बन्द कर प्रकाशका दर्शन करनेसे समाज रोक सकेगा ? और ऐसा करके समाज अपने आधे अङ्गको हानि पहुंचाकर अपनेको कब तक सुरक्षित कर सकेगा ?



चीनी गुरिल्लोंकी जननी

अपनी स्वाधीनताकी रक्षाके लिए आज चीन जिस दृढ़ता और निष्ठाके साथ जापानसे लोहा ले रहा है, उसके मूलमें कितनी ही विभूतियां हैं, जिनका स्मरण संसारके स्वाधीनताप्रेमी अनन्त काल तक गौरवके साथ करते रहेंगे। चीन अपने इस स्वाधीनता-संग्रामको बड़े कौशलसे चला रहा है। नहीं तो कहां युद्धके सभी आधुनिक साधनोंसे सुसज्जित जापान और कहां चीन, जिसे कितनी ही चीजोंके लिए बाहरी सहायतापर निर्भर रहना पड़ता है। यह चीनियोंका देश-प्रेम और अपने देशके लिए अधिकसे अधिक कष्ट सहने और त्याग करनेका साहस ही है, जिसने चीनको जापानियोंके सामने नत-मस्तक नहीं होने दिया है और सारी शक्ति लगा देनेके बाद भी चीनकी आत्माको कुचलनेमें जापानी असमर्थ सिद्ध हुए हैं। यद्यपि चीनकी राष्ट्रीय सरकार अपनी राजधानीको पेकिङ्गसे उठाकर चुङ्किङ्ग में ले गयी है और मार्शल चांग-काई-शेक वहींसे युद्ध चला रहे हैं, नियमित रूपसे जापानी सेनाओंसे चीनी सेनायें मोर्चा ले रही हैं, तथापि जापानियोंने गत ३ वर्षमें आखिर चीनके कितने भागको विजय कर लिया है? समुद्र-तटवर्ती प्रदेशको छोड़कर चीनके भीतरी भागोंमें आज तक जापान अपनी सत्ता कायम नहीं कर सका है और चीनके साथ विश्वासघात करनेवाले कुछ चीनियोंकी सरकार बनानेका जो भी प्रयत्न गत २-२॥ सालसे जापानियोंने किया है, वह हमेशा ही विफल हुआ है। कभी-कभी जो समाचार आते रहते हैं, उनसे तो यह प्रकट होता है कि चीनके गुरिल्ला सैनिक भी शङ्घाई और चीनकी मुख्य रेलवे लाइनके क्षेत्रसे बहुत दूर नहीं हैं। जापानी इसी सफलताके आधारपर चीनमें एक नयी व्यवस्था स्थापित करनेका स्वप्न देख रहे हैं; परन्तु जो यह जानते हैं कि चीन अमर है और परलोकवासी डा० सनयात सेनकी आत्मा उसका मार्ग-प्रदर्शन कर रही है। उनकी दृष्टिमें जापानियोंके इस दम्भका कोई मूल्य नहीं है।

यहां जिन चीनी गुरिल्लोंका उल्लेख हुआ है, वे कौन हैं, उनके भीतर कौन शक्ति अपना चमत्कार दिखला रही है और उन्होंने अपने देशके लिए अब तक क्या किया है, ये बातें सामने आते ही हमारे नेत्रोंके सामने चीनकी एक बुढ़ियाका, लगभग ६९ वर्षकी दादीका चित्र आ जाता है, जिसे जीवित या मृत, किसी भी अवस्थामें पकड़ लानेके लिए जापानियोंने ५० हजार येनका पुरस्कार घोषित कर रखा है। इस देशभक्त देवीको, चीनकी स्वतन्त्रताकी प्रतिमूर्तिको पकड़नेके लिए जापानियोंने जितनी भी कोशिशें की हैं, सब बेकार हुई हैं। इस देवीका नाम चाऊ यू टङ्ग है। चीनी उन्हें आदरसे माता मशकिटो कहकर पुकारते हैं।

१९३४ की घटना है, जापानी सैनिक अचानक एक दिन माता मशकिटोके गांवमें पहुंच गये। उन्होंने बस्तीके पांच प्रमुख आदमियोंको बुलाया और उनसे माता मशकिटोका पता बतलानेके लिए कहा। जापानियोंने इसके लिए उनपर खूब अत्याचार किये, परन्तु किसीने भी कुछ नहीं बतलाया। अन्तमें किसी तरह सफलता न पानेपर जापानियोंने उन ग्रामीणोंको बीच बाजारमें जीते जी जला दिया!

इस घटनाके कुछ महीनों बाद एक बार माता मशकिटो जापानियोंके हाथ पड़ गयीं। एक दिन पांच चीनी

मुखबिरोंके साथ लगभग सौ जापानी सैनिकोंने उनके मकानपर छापा मारा और माता मशकिटोको घरसे बाहर ले आये। एक व्यक्तिने उनके चेहरेके पास ले जाकर लालटेन दिखलायी। माता मशकिटोको पहचानते ही एक मुखबिरने चिल्लाकर कहा है—"हां, यही है वह शैतान !"

माता मशकिटोको जब अदालतमें लाया गया, वे किसी तरह लड़खड़ाती हुई कठघरे तक पहुंचीं और बड़ी नम्रताके साथ जजको सलाम करते हुए उन्होंने कहा—मैं तो बुढ़िया हूं। क्या मुझमें ऐसी शक्ति प्रतीत होती है कि वालण्टियरोंका नेतृत्व कर सकूं।

जजने शिर हिलाया, मानो वे बुढ़ियाकी बातोंसे सहमत हों; परन्तु उसपर गुरिल्लाओंको भेद बतलानेका भी आरोप किया गया था अतएव बुढ़ियाने कहा—कई महीनेसे मैं अपने घरसे बाहर नहीं निकली, परन्तु मैंने इन पांच आदमियोंके विषयमें गांवमें यह सुना है कि वे दोनों ही पक्षोंसे रुपया लेकर मुखबिरी करते हैं। गुरिल्लोंसे उन्हें जापानी सेनाओंकी गतिविधि बतलानेके लिए रुपया मिलता है।

माता मशकिटोने उन चीनी मुखबिरोंकी ओर सङ्केत किया जिन्होंने जापानी सैनिकोंके साथ जाकर गांवमें उन्हें गिरफ्तार कराया था। "ये हैं वे पांच आदमी !"

अदालतकी आज्ञासे उन मुखबिरोंको प्राणदण्ड दिया गया और माता मशकिटोने वहांसे अपना रास्ता लिया।

यही माता मशकिटो अपनी इस वृद्धावस्थामें गत ९ वर्षसे व्यक्तिशः जापानियोंसे गुरिल्ला प्रणालीसे मोर्चा ले रही है। उनका रहन-सहन बिलकुल सादा है। उनका विश्वास है कि चीनी गुरिल्ला युद्ध-प्रणालीसे लड़ते रहकर जापानियोंका हौसला पस्त कर सकते हैं। माता मशकिटोकी सेनामें आज ३९ हजार गुरिल्ले हैं, जो पीपिङ्गसे पश्चिम ओरवाली पहाड़ियोंमें छिपे रहकर, अपना काम किया करते हैं। ये सैनिक चीनी नौजवान हैं। इन्हें यदि आधुनिक यान्त्रिक सेनाओंका मुकाबिला मैदानमें करना पड़े, तो तुरन्त ही ध्वस्त कर दिये जायं, इसीलिए जब रात हो जाती है, ये बाहर निकलते हैं और जापानी सैनिकोंकी कम्पनियोंकी कम्पनियोंका सफाया कर देते हैं।

माता मशकिटोने यह गुरिल्ला युद्ध १९३१ में तब आरम्भ किया था, जब जापानने मञ्चूरियाको धर दबोचा था। माता मशकिटोने १० बन्दूकें कहींसे मांग ली और अपने चारमेंसे दो पुत्रों और चार उनके मित्रोंको पहाड़ियोंमें भेज दिया कि उन्हें जब अवसर मिले, शत्रुपर अचानक हमला किया करें। जहां वे रहती थीं, वहीं उन्होंने जमीनमें नीचे तहखानेमें एक अस्पताल कायम किया और खाने-पीनेकी चीजें और शस्त्रास्त्र रखनेकी व्यवस्था की। उन्होंने स्वयं भी पिस्तौल चलानेका अभ्यास किया। एक दिन उन्होंने दो सन्तरियोंको स्वयं उड़ा दिया। इसके बाद गांववाले उन्हें मानने लगे और उन्हें गुरिल्लोंकी सेनाके लिए १०० रंगरूट मिल गये। चीनी गुरिल्लोंकी इस विशाल सेनामें माता मशकिटोका ७५ वर्षका पति तो है ही, इनके बचे हुए दो पुत्र भी उसमें शामिल हो गये हैं और साथ ही एक पोष्य पुत्री भी। इन चीनी गुरिल्लोंने अब तक ९००० जापानी सैनिकोंको मारा है, ६००० बन्दूकों, १९० मशीनगनों, १००००० कारतूसों और २३० मोटरोंको जापानियोंसे छीन लिया है और यह सब करनेमें कुछ ७०० चीनी गुरिल्ले काम आये हैं। माता मशकिटोने शत्रुकी क्षतिके इस विवरणका बाकायदा रजिस्टर रखा है। विवरणमें पकड़े हुए जापानी सैनिकोंकी तादाद नहीं दी गयी है, यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है।

जापानी जासूस माता मशकिटोको पकड़नेके लिए हमेशा ही उनका चित्र अपने साथ रखते हैं। चीनके जिस क्षेत्रपर जापानियोंका अधिकार हो गया है, उसमें पुलिसमें काम करनेवाली जापानी महिलायें प्रत्येक चीनी स्त्रीपर निगाह रखती हैं, परन्तु टीण्टसिनमें वे शाक-सब्जी बेचनेवाली उस अन्धी स्त्रीको नहीं ताड़ सकीं, जो बैलगाड़ीपर बैठकर निकल गयी थी। उन्हें यह भी नहीं पता है कि पीपिङ्गमें उत्तर-पूर्व तरफकी दीवालमें जो सेंध है, उसमेंसे होकर वे कितनी ही बार शहरमें आती-जाती रही है।

एक बार हाङ्कोसे विदा होनेपर चीनी अधिकारियोंने उनके लिए मोटर भेज दी, जिससे वे आरामसे रेलपर पहुंच सकें। माता मशकिटोने मोटरका उपयोग नहीं किया और पैदल ही स्टेशनका रास्ता लिया। उन्होंने मोटर लौटाते हुए कहा कि "मोटरमें बैठनेसे मेरे सैनिकोंको यह खयाल हो सकता है कि मैंने उनकी पहाड़ोंमें रहनेकी कठिनाइयोंको भुला दिया।" पिछली बार ६००० जापानी सैनिकोंने ५० हवाई जहाजोंके साथ माता मशकिटोके गुरिल्ला केन्द्र

पर छापा मारा था; परन्तु वे कुछ भी बिगाड़ नहीं सके। कुल १७ गुरिल्ले मारे गये और माता मशकिटो और अन्य गुरिल्ले जहां-जहां जा छिपे थे, जापानियोंके पीठ फेरते ही सब हंसते हुए बाहर आ गये। माता मशकिटो अभी तक पहाड़में हैं, जापानी उन्हें पकड़नेमें बुरी तरह असफल हुए हैं।

चीनी गुरिल्लोंकी जननी यही माता मशकिटो है, जो पिछले दिनों हवाई जहाज द्वारा चीनकी राष्ट्रीय सरकारकी राजधानी चुंकिङ्गमें गयी थीं। वहां उनका खूब शानदार स्वागत हुआ और रातको उनके आतिथ्यके लिए जब एक भोज दिया गया, जनरलिस्मो चियांग-काई-शेककी पत्नीने उनकी सेवाओंका उल्लेख करते हुए कहा कि "ये चीनकी सर्वश्रेष्ठ वीर महिला हैं।"

इंगलैण्डपर हवाई आक्रमणका प्रभाव

इंगलैण्डपर इधर जर्मन हवाई जहाजोंके इतने हमले हुए हैं कि लोगोंके लिए भयङ्करसे भयङ्कर हमला भी एक साधारण-सी बात हो गयी है। आक्रमणकारी हवाई जहाजोंके पहुंचने और बम-वर्षा करनेका प्रभाव सभी तरहके लोगोंपर क्या होता है, इसे एक प्रत्यक्षदर्शीने बड़े ही अच्छे ढङ्गसे व्यक्त किया है:—

एक देहाती सरायका मालिक आक्रमणकारी हवाई जहाजोंको शिरपर मंडराते देख दरवाजेमें गया और ऊपर की ओर देखकर कहने लगा—चाहो तो जला दो, परन्तु यह न सोचना कि इन छोटे-मोटे पुराने घरोंको गिरा देनेसे मि० चर्चिल फूट-फूटकर रो उठेंगे और लड़ाई बन्द कर देंगे।

वेल्सकी एक महिला ट्रेनमें यात्रा कर रही थी। बातचीतके सिलसिलेमें उसने कहा—मेरे कस्बेमें एक-एक दिनमें चार-चार बार तक हमला हुआ। इतनी बार हमला करनेमें हिटलरकी मूर्खता ही है। बार-बार कोई बात होनेसे उसका भी अभ्यास हो जाता है। मेरे पिताजी उपदेशकका काम करते थे और हमलोगोंको अक्सर नरकका डर दिखला कर झिड़कते थे। परिणाम यह हुआ कि हमलोगोंके लिए नरक कुछ रह ही नहीं गया, और जिस तरह मेरे लिए नरक कोई चीज नहीं रह गया था, उसी तरह अब हिटलर भी होता जा रहा है।

नगरमें घूमते हुए मेरे मित्रने एक मकान देखा, जिसका सामनेका हिस्सा बम गिरनेसे उड़ गया था। सामने मकानमें एक युवक खड़ा हुआ था और उसके पास ही एक युवती थी। वे हंस रहे थे। मेरे मित्रको देखकर उन्होंने कहा—"मेरे यहां पूर्वजोंकी खरीदी हुई पुराने ढङ्गकी भद्दी मेजें, कुर्सियां और दूसरा सामान था, वह सब नष्ट हो गया। चलो अच्छा हुआ, अब नया सामान खरीदा जा सकेगा।"

एक महिलाने दूकानसे एक पोशाक खरीदी। जिस समय वे उसका दाम दे रही थीं, उसी समय हवाई हमलेकी चेतावनी दी गयी। उन्होंने पोशाकका दाम अपने बटुएमें रखते हुए कहा—आप इस पोशाकको जब घर पहुंचा देंगे, मैं इसका मूल्य दे दूंगी। कौन जानता है कि इस बमवर्षामें क्या मुझे हो और क्या आपको या यह पोशाक ही खराब हो जाय।

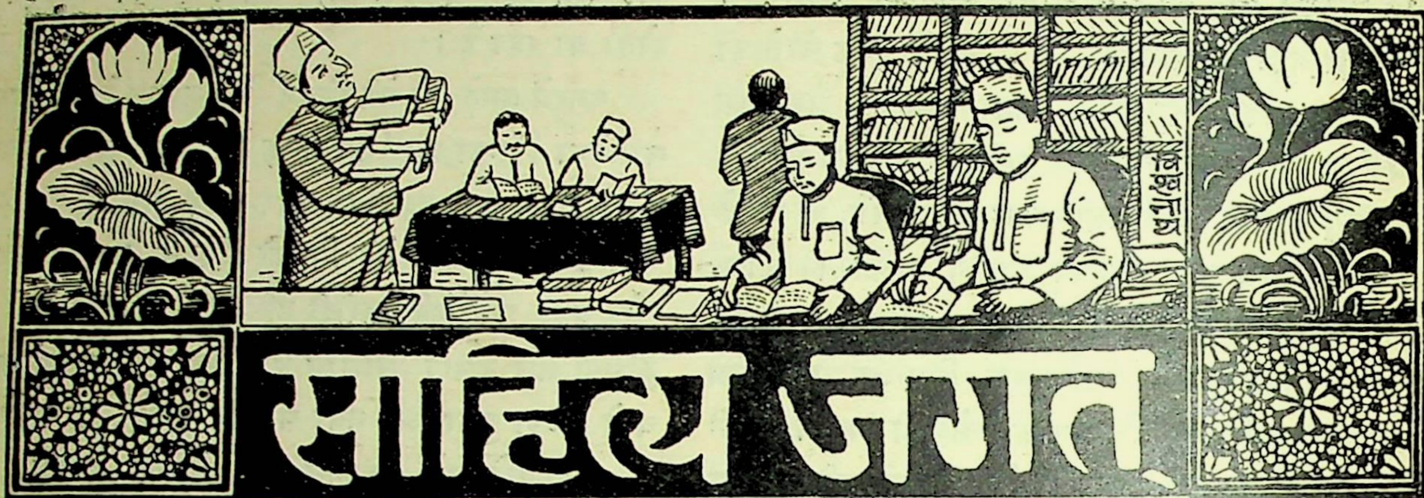
चेतावनी दी जाते ही एक बूढ़े मोटर ड्राइवरने तहखानेमें घुसते हुए कहा—कृपया मुझे मत आने दीजिये। मैंने अगर किसी नौ जवानको एक हवाई जहाज नीचे गिराते हुए देखलिया, तो मैं फिर जवान हो जाऊंगा—सौ वर्ष जीते रहनेसे यह अच्छा ही होगा।

चेतावनी सुनते ही मेरे रसोइयेने कहा—क्या मैं २० मिनट तक रुका रहूं। लालोर्ट गरम है। अंगीठीपर यों ही छोड़ देनेसे शाक जल जायगा और उतारकर रख देनेसे शाकका सारा जायका ही खराब हो जायगा।

नौकरनी—मांजी, बाबूजीकी वास्कट मैं अपने साथ क्यों न लेती जाऊं। तहखानेमें रहनेके समयमें मैं उसकी सिलाई कर लूंगी।

आलू बेचनेवाला एक लड़का—"मैं अपना सौदा देता हुआ तो जा ही रहा हूं, यह तमाशा भी देखनेको मिल जायगा। अगर इस सिलसिलेमें मैं मारा गया, तो अखबारोंमें छपेगा कि कि मैं कितना कर्तव्यनिष्ठ था!"





साहित्य जीवनसे पृथक् क्यों ?

'कला कलाके लिए' इसके आधारपर एक समय था, जब बहुत-सा ऐसा साहित्य रचा गया, जिसके समर्थक साहित्यमें उपयोगिताका विरोध करते रहे। यूरोपीय साहित्यमें काफी अर्से तक यह विवाद चलता रहा कि साहित्यका उद्देश्य क्या है। और बड़े-बड़े विद्वानों और कलाकारोंने माना कि साहित्यका उद्देश्य है आनन्दकी सृष्टि। और तब साहित्यका काम रह गया केवल लोक-मनोरञ्जन। साहित्यमें तब उपयोगिताका कोई स्थान न था और जो लोग इस दृष्टिकोणके थे, कलाकारों द्वारा उपेक्षाके ही नहीं, उपहासके भी पात्र होते थे।

और कलाकार साहित्यके इस उद्देश्यके समर्थनमें कहते क्या थे ? वे कहते थे कि साहित्यका काम उपदेश नहीं है, वह तो संसारमें सुखकी सृष्टि करनेके लिए है। यह जो आनन्द और सुखकी सृष्टिका उद्देश्य है, इसकी बहुत बड़ी उपयोगिता है और इसी आधारपर वे कहते कि इतनी बड़ी उपयोगिता रखकर भी कला अनुपयोगी कैसे हुई। यह तो तर्क थे, पर वास्तवमें कहा जब यह जाता था कि 'कला कलाके लिए' है, तब इसकी सीमा निर्धारित हो गयी कलाके परिमाण तक। यह बात कुछ ऐसी हुई है कि साध्य और साधन एक हुए। प्राचीन यूरोपीय साहित्यमें जो रोमाण्टिक काल था, उसमें इस तरहकी चीजें बहुत चलती थीं और इनके चलते इनसे भिन्न रचनाओंकी ओर ध्यान देनेका किसीको अवकाश न था।

वह समय था, जब सामन्तशाही थी और लोगोंमें परिस्थितिका सामना न कर सकने, उससे बचने और बल्कि उससे पलायनकी प्रवृत्ति घर कर गयी थी। रोमाण्टिक युगमें जो कोमल वृत्तियोंको उकसाने और उन्हींसे खेल खेलनेकी प्रवृत्ति थी, वह आम जनताके सुखके कारण नहीं। इस कारण नहीं कि सार्वजनिक जीवन ही ऐसा निर्द्वन्द्व और ऐसा सङ्घर्ष-हीन था, बल्कि चारों ओर सुखका समुद्र उमड़ता रहता था और किसीको किसी प्रकारकी चिन्ता न थी। रोमाण्टिक युगकी कला ऐसे ही जीवनका वर्णन करती है और उसके आधारपर यूरोपीय समाजका जो इतिहास लिखा जाय, तो वह वास्तविकताओंसे कोसों दूर हो।

सचमुच वास्तविकताओंसे कोसों दूर हो। क्योंकि कौन जानता कि सामन्तशाहीके कारण यूरोपीय जनता किस प्रकार अत्याचारों और भूखकी मारसे त्राहि-त्राहि कर रही थी? कौन नहीं जानता कि आम जनताके लिए शिक्षा-दीक्षाकी कोई व्यवस्था नहीं थी, संसारका सुख और वैभव एक छोटी-सी पूंजीपतियोंकी श्रेणीके अन्तर्गत सीमित था ?

पर रोमाण्टिक कवियोंकी रचनाओंमें क्या आप इनका—इन बुभुक्षितों—इन पीड़ितों और इस दलित समाजका वर्णन पाते हैं ? उनमें तो पराजयकी वह मनोवृत्ति काम कर रही है, जिसमें परिस्थितिका सामना करनेसे हताश व्यक्ति मानो विलास-लीलाओंमें गमगलत करना चाहता हो। ऐसे ही लोगोंने जब ऐसी कलाका सृजन करना प्रारम्भ किया, तो इसकी उत्तमताका पैमाना भी उन्होंने निर्धारित कर दिया कि इस कलाका और कोई उद्देश्य नहीं है,

कला अगर कलाकी कसौटीपर—और वह कसौटी भी कलाके सम्बन्धमें इस प्रकारकी कुछ अस्पष्ट धारणायें हैं—खरी उतर जाय, तो रचनाका उद्देश्य सफल हुआ। रोमाण्टिक युगके यूरोपीय कलाकारोंने यहीं अपने कर्तव्य और कर्मकी इतिश्री समझ ली।

अब जरा हिन्दी कलाकारोंको लीजिये। जिस प्रकार यूरोपमें साहित्य और समाजमें किसी प्रकारका सामञ्जस्य नहीं दिखाई पड़ता, उसी प्रकार हिन्दी-साहित्यमें भी जीवन और समाजकी आवश्यकताओंकी सदा अवहेलना की गयी। हिन्दीके प्राचीन कवियों—और कविताके अतिरिक्त और साहित्य रहा ही कहां?—के समयमें क्या दूध-मक्खनकी नदियां बहती थीं? सबके लिए गुलगुले गलीचे और कमल-पंखुरियोंकी सेज बिछी रहती थी, जो प्राचीन ब्रजभाषाके कवियोंने इन्हीं विषयोंके वर्णनमें अपनी अधिकांश शक्तियां लगा दीं? जिन दिनों ब्रजभाषाका आतङ्क था और ऐसे प्रतिभाशाली कवि उत्पन्न हो गये थे, उन दिनों भारतमें भी सामन्तशाही थी। सामाजिक दुरवस्था और राजनीतिक परवशताकी कठोर श्रृङ्खलाओंमें सारा समाज जकड़ा हुआ था। राजाओंने अपनेको और अपने साथ ही अपनी प्रजाको जिस धरातलपर ला पटका था, उसकी सराहना तो नहीं की जा सकती—यदि तत्कालीन इतिहासके उल्लेख झूठे नहीं हैं, और ये उल्लेख झूठे क्यों होंगे?

लेकिन भूषण, गङ्ग और छत्रसाल-जैसे कुछ उंगलियोंपर गिने जानेवाले कवियोंको छोड़कर और किसीने तत्कालीन अवाञ्छनीय परिस्थितियोंसे निकलनेका मन्त्र फूंकनेवाली रचनायें नहीं कीं। तत्कालीन ब्रजभाषाके कवियोंने या तो श्रृङ्गार रसमें अपनेको डुबा दिया या फिर तोबा करनेके लिए ब्रह्मानन्दका गीत गानेका प्रयत्न किया। "दे मृगनैनी कि दे मृगछाला" यह मोटो था ब्रजभाषाके कवियोंका। इतनी संकुचित उनकी विचारशैली थी कि अपने और अपने आश्रयदाताओंकी सीमाके बाहर वे सोच ही नहीं सकते थे। कितनों ही ने पुरस्कारके दुशाले ओढ़कर, अशर्फियोंको थैलीके हवाले कर, हाथीपर चढ़कर घर जाने तकमें ही महत्ता समझ ली और इतना अगर हो गया, तो जैसे उन्हें महानिर्वाणकी प्राप्ति हो गयी। एक बार श्री जवाहरलालने कहा था कि हिन्दीमें जो साहित्य है, उसका अधिकांश दरबारी है, तो हिन्दीके अभिमानी साहित्यिकोंने बड़ा हो-हल्ला मचाया था और अन्धेको अन्धा कहनेपर जो कुछ होता है, उसके अनुसार यह हो-हल्ला भी अस्वाभाविक नहीं था।

पर आपने कभी सोचनेका कष्ट क्यों नहीं उठाया कि जिन दिनों ब्रजभाषाकी कवितायें रची जा रही थीं, उन दिनोंकी सामन्तशाहीके भीतर आम जनताकी जो दशा थी, उसपर तत्कालीन कलाकारोंका ध्यान क्यों नहीं गया? समाजके सामने जो और भी जीवन-मरणके प्रश्न थे, उनकी इन कलाकारोंने उपेक्षा करते हुए अपनी सारी प्रतिभा नायिका-भेदों और रस-निरूपणमें ही क्यों लगा दी? हम जानते हैं—दन्तकथायें और ऐतिहासिक तथ्य इसका समर्थन करते हैं कि लोक-जागरण और पीड़ित मानवताके विद्रोहका गीत गानेवाला कवि पसन्द नहीं किया जाता था और दरबारके सहारे पलनेवालोंसे इस बातकी आशा करनी व्यर्थ थी कि वे शाही छत्रछायासे हटकर तलवारके सायेमें खड़े हो सकें।

ब्रजभाषाके इन कलाकारोंसे हमारी शिकायत इसलिए नहीं है कि वे ब्रजभाषाके लेखक थे। हमारी शिकायत तो उस प्रवृत्तिसे है, जिसमें सामाजिक जीवनकी वास्तविकताओंसे अलग भागनेकी भावना है और इस भावनासे प्रेरित होकर जिस साहित्यकी रचना की जाती है। अपने रूपमें इसीलिए हम भूषणके प्रशंसक हैं, क्योंकि उस व्यक्तिने समयकी आवश्यकता देखी और परिणामोंकी परवाह न करते हुए उसने वीरता और मुक्तिका छन्द गाना शुरू किया। इन इने-गिने कवियोंको छोड़ दिया जाय, तो जो साहित्य बच रहता है, उसके आधारपर कौन कह सकता है कि उन दिनों जो शासन-व्यवस्था थी, वह अत्यन्त सन्तोषजनक न थी और जनतामें कहीं किसी तकलीफका नाम-निशान था।

कुछ आधुनिक कवियोंपर भी कह देना चाहिए। हिन्दीका कलाकार आज भी क्या सामाजिक जीवनकी वास्तविकताओंको महसूस करता और उसकी उसपर कुछ भी प्रतिक्रियायें होती हैं? उत्तर अधिकांशतः नकारात्मक है। हिन्दीका कलाकार आज भी सामाजिक

जीवनके सम्पर्कमें नहीं आना चाहता। उसके लिए आज भी उसी परियोंके देशके सङ्गीतमें आकर्षण है। आज भी वह उसी 'स्वान्तः सुखाय' और 'कला कलाके लिए' है-का राग अलापता जा रहा है। उसे सम्भवतः पता नहीं है कि यूरोपसे कविताका जनाजा एक तरहसे उठ गया है। और इसका कारण यही है कि उसकी कृत्रिमताने ही उसे पल-पलपर मारा है। कुछ कवितायें आज भी जो दिखाई पड़ रही हैं; उनका स्तर बहुत कुछ बदल गया है। और यही कारण है कि उनका अस्तित्व बना हुआ है।

आवश्यकता यह है कि हम इस सत्यको महसूस करें कि कलाको जीवनसे अलग नहीं किया जा सकता। जीवन और उसकी वास्तविकताओंसे अलग होकर कला जी नहीं सकती। और यह जीवन 'स्वान्तः सुखाय' नहीं होना चाहिए। आजका कलाकार भी समाजकी एक इकाई है और जब इस सत्यसे वह इनकार नहीं कर सकता, तो इसके साथ सहज ही जो परिणाम निकलते हैं, उनसे भी वह अछूता नहीं रह सकता।

× × ×

पल्लविनी। लेखक—श्री सुमित्रानन्दन पन्त; प्रकाशक—भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद; कागज, छपाई-सफाई, जिल्द, आवरण अत्यन्त सुन्दर; पृष्ठ-संख्या २६१; मूल्य ३)

'पल्लविनी' में श्री सुमित्रानन्दन पन्तकी अब तककी चुनी हुई कवितायें संगृहीत हैं। स्वप्न, मौन, निमन्त्रण, छाया, बालापन, परिवर्तन, वीचि-विलास, उच्छ्वास, मानवके प्रति, बापूके प्रति, ताज, जीवनका क्रम आदि १०१ कवितायें हैं।

श्री सुमित्रानन्दन पन्तका हिन्दीमें एक खास स्थान है और आज हिन्दी कविताको जो गौरवपूर्ण स्थान मिला है, उसका बहुत अधिक श्रेय पन्तजीको है। पन्तजीकी रचनायें—जिनमें अधिकांश इस संग्रहमें हैं—कोमल कल्पना, सजीव वर्णन और रागात्मक प्रवाहके लिए विख्यात हैं और इसमें सन्देह नहीं कि कविताको कोमल बनाने और प्राकृतिक सौन्दर्यके प्रति हिन्दी पाठकका ध्यान आकर्षित करनेकी दिशामें उन्होंने महान् सफलता प्राप्त की है। एक दृष्टिसे पन्तजी इस नवीन युगके सर्वश्रेष्ठ कवि हैं और पल्लविनीमें उनकी सर्वश्रेष्ठ रचनाओंका बहुत सुन्दर चयन है।

पन्तजीने हिन्दीमें कुछ नयी रचनाशैलियां चलायीं और कई ऐसी बातोंका हिन्दीमें समावेश किया, जो अब तक उसमें न थीं। वर्तमान युगकी कविताओंपर पन्तजीकी गहरी छाप पड़ी है और जहां तक साहित्यका प्रश्न है, उन्होंने एक नवीन युग-निर्माताका-सा काम किया है। पल्लविनीमें संगृहीत कवितायें जिन दिनों लिखी गयी थीं—और रचनाओंके साथ रचनाकाल देकर कविने इस प्रकारका अध्ययन सम्भव बना दिया है—उन दिनोंकी कविताकी अवस्थाकी पृष्ठभूमिपर पन्तजीकी रचनायें देखिये और देखिये कि कितना नया रूप और रङ्ग लेकर इस कविने पदार्पण किया था, और तबसे कितने ही प्रयत्नोंपर उनकी छाप स्पष्ट दिखाई पड़ी है।

पल्लविनीकी कुछ रचनायें हिन्दीके लिए एकदम अनोखी हैं और सम्भवतः वे ऐसी हैं, जिन्हें पन्तजी ही लिख सकते थे। उच्छ्वास, परिवर्तन और बापू ऐसी ही रचनायें हैं। यद्यपि पन्तजीकी रचनाओंने असंख्य हृदयोंपर स्थान बना लिया है और उनके प्रशंसक उस श्रेणीके लोग हैं, जिनका बौद्धिक धरातल काफी ऊंचा है, उनकी देन साहित्यके लिए अत्यन्त मूल्यवान रही है, फिर भी यह आश्चर्यजनक है और लज्जा और परितापका विषय भी कि ऐसे कविकी रचनाओंको अब तक मङ्गलाप्रसाद पारितोषिकसे पुरस्कृत नहीं किया गया।

पन्तजीकी रचनाओंके सम्बन्धमें विस्तृत रूपसे लिखनेके लिए यह उपयुक्त स्थल नहीं है। यहां तो पल्लविनीके कुछ छन्द ही दिये जा सकते हैं। इन उदाहरणोंकी व्याख्या करनेकी आवश्यकता नहीं है :—

मुंदे नयन पलकोंके भीतर,
किस रहस्यका सुखमय चित्र
गुप्त बञ्चनाके मादक कर,
खींच रहे सखि स्वर्ण-विचित्र ?

(स्वप्न)

धूल - भरे घुंघराले काले,
भैयाको प्रिय मेरे बाल,
माताके चिर चुम्बित मेरे
गोरे-गोरे सस्मित गाल,
वह कांटोंमें उलझी साड़ी,

मञ्जुल फूलोंके गहने,
सरल नीलिमामय मेरे दृग,
अश्रुहीन, सङ्कोच सने,
उसी सरलताकी स्याहीसे,
सरस! इन्हें अङ्कित कर दो,
मेरे यौवनके प्यालेमें,
फिर वह बालापन भर दो

(बालापन)

ताल-तालमें थिरक अमन्द,
सौ-सौ छन्दोंमें स्वच्छन्द
गाती हो निस्तलके गान,
सिन्धु-गिरा-सी अगम अनन्त,

× ×

अङ्ग-भङ्गिमें व्योम मरोर
भौंहोंमें तारोंके झौंर,
नचा, नाचती हो भरपूर,
तुम किरणोंकी बना हिंडोर,

(वीचि-विलास)

मर्म पीड़ाके हास!
रोगका है उपचार,
पापका ही परिहार;
है अदेह सन्देह, नहीं, है इसका कुछ संस्कार
हृदयकी है यह दुर्बल हार।
खींच लो इसको, कहींका छोर है?
द्रौपदीका यह दुरन्त दुकूल है!
फैलता है हृदयमें नभ-वेलि-सा,
खोज लो, इसका कहीं क्या मूल है?

(उच्छ्वास)

तप रे मधुर-मधुर मन!
विश्व-वेदनामें तप प्रतिपल,
जग जीवनकी ज्वालामें जल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल,
तप रे विधुर-विधुर मन! (तप रे)
जग पीड़ित है अति दुखसे
जग पीड़ित है अति सुखसे
मानव जगमें बंट जावें,
दुख सुखसे औ' सुख दुखसे।

(सुख-दुख)

मानव! ऐसी थी विरक्ति क्या जीवनके प्रति?
आत्माका अपमान प्रेत औ' छायासे रति!!

× × ×

शवको दें हम रूप, रङ्ग, आदर मानवका,
मानवको हम कुत्सित चित्र बना दें शवका

(ताज)

पल्लविनीमें संगृहीत कविताओंके यह कुछ टुकड़े हैं। हिन्दी कविताके आधुनिक युगसे परिचय प्राप्त करनेकी आकांक्षा रखनेवाले किसी भी व्यक्तिको पल्लविनी पढ़े बिना नहीं रहना चाहिए।

लोक-व्यवहार। अनुवादक—श्री सन्तराम बी०ए०; प्रकाशक—इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग; कागज, छपाई-सफाई सुन्दर, सजिल्द; पृष्ठ-संख्या ४५०; मूल्य २)

प्रस्तुत पुस्तक डेल कारनेगीकी 'How to Win Friends and Influence People' का हिन्दी अनुवाद है। कारनेगीकी उक्त पुस्तकका बहुत व्यापक प्रचार है और हमने जब पहली बार उसे पढ़ा था, उसी समय हिन्दीमें उसकी आवश्यकता महसूस की थी। श्री सन्तरामजीने उसके बाद उसके कुछ अध्यायोंके अनुवाद 'विश्वमित्र' के लिए भेजे थे, जो यथासमय विभिन्न शीर्षकोंके नीचे छप भी चुके हैं। ऐसी दशामें विश्वमित्रके पाठकोंको नये सिरेसे बताना न होगा कि पुस्तक कितनी उपयोगी है। पुस्तकमें बताया गया है कि हम अपने आचरणसे किस प्रकार मित्र बना सकते हैं और लोगोंको प्रभावित कर सकते हैं। जीवनके कितने ही क्षेत्रोंके लिए यह पुस्तक पथ-प्रदर्शकका काम कर सकती है। हमारा निजी अनुभव है कि डेल कारनेगीके उपाय काफी व्यावहारिक एवं सरल हैं। इस पुस्तकका हिन्दी अनुवाद और प्रकाशन एक सेवा है और हमारा विश्वास है कि इसकी एक प्रति प्रत्येक घरमें होनी चाहिए। खेद है कि हमारे देशके लोगोंके बारेमें ऐसी रचनाओंका प्रकाशन सम्भव नहीं हो रहा है। हमारा ख्याल है कि ऐसी नयी रचनाओंके लिए हिन्दीमें स्थान है। क्या ही

अच्छा हो कि कारनेगीकी दूसरी रचनाओंके अनुवाद भी हिन्दीवालोंके लिए उपलब्ध हो जायें।

पारिजात। प्रणेता—श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'; प्रकाशक—पुस्तक भण्डार, लहेरियासराय; सजिल्द, छपाई सुन्दर; पृष्ठ-संख्या ५१९; मूल्य ४)

'पारिजात' कविवरकी हालकी रचना है। हिन्दीमें 'हरिऔध'जीका अपना स्थान है और उनकी यह बेजोड़ विशेषता है कि कठिनसे कठिन और सरलसे सरल भाषामें उनकी रचनायें होती हैं। प्रस्तुत पुस्तक एक महाकाव्यके रूपमें लिखी गयी है, जिसमें पन्द्रह सर्ग हैं। इसमें दृश्य जगत् और अन्तर्जगतका वर्णन है और स्थल-स्थलपर मानसिक भावनाओं, क्रियाओं और प्रतिक्रियाओंका ऐसा वर्णन, ऐसा विश्लेषण है कि बरबस कविकी सराहना करनी पड़ती है। एक और बात यह है कि रचनायें ऐसी हैं कि जो लोग महाकाव्यके रूपमें न पढ़कर भिन्न-भिन्न विषयोंको अलग-अलग ही पढ़ेंगे, उन्हें भी कम आनन्द नहीं आयेगा। प्रसन्नताकी बात यह है कि इस वृद्धावस्थामें भी कविवर भारतीका भाण्डार भरते जा रहे हैं।

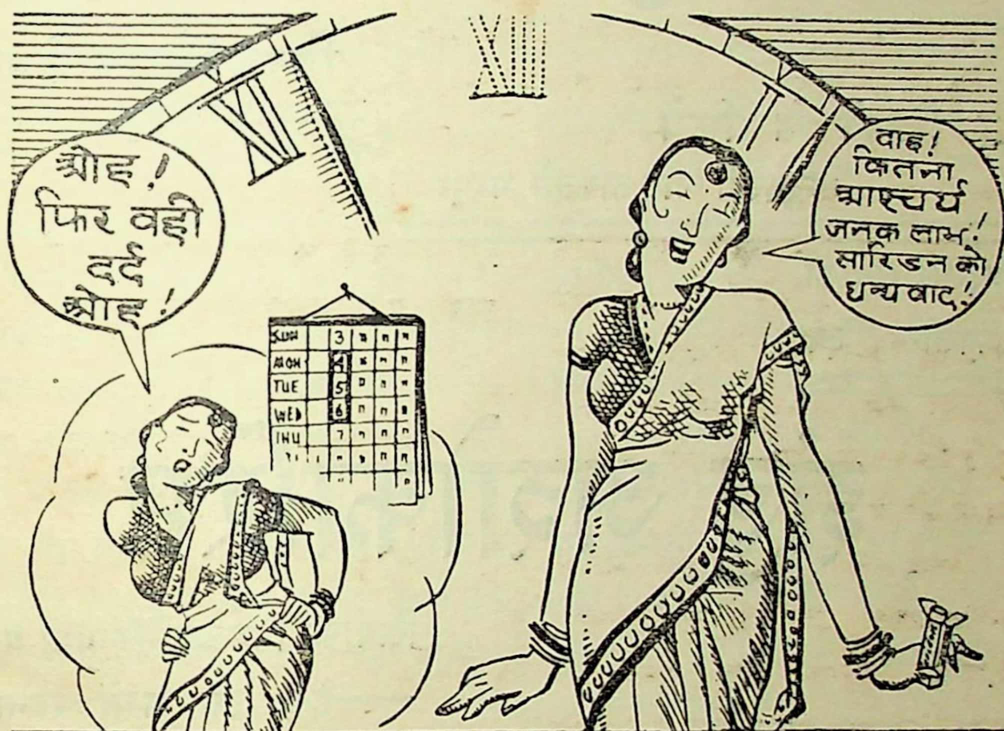
पापी धर्मात्मा। लेखक—श्री भगवानदास अवस्थी एम०ए०; प्रकाशक—ज्ञानलोक; दारागञ्ज, इलाहाबाद; कागज, छपाई-सफाई सुन्दर; पृष्ठ-संख्या २१६; मूल्य ॥।)

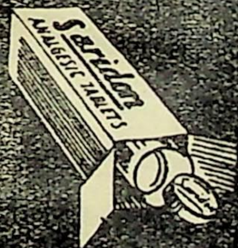
प्रस्तुत पुस्तकका पापी धर्मात्मा नायक कौन है? रूसके सम्राट् जार निकोलसका दाहिना हाथ रास्पुटिन अपने समयका एक अनोखे व्यक्तित्ववाला मनुष्य हो गया है। इस विचित्र व्यक्तिमें अनेक दुर्गुणों और सद्गुणोंका ऐसा अद्भुत सम्मिश्रण था कि लेखककी उसके लिए 'पापी धर्मात्मा' संज्ञा हमें बहुत पसन्द आयी। रास्पुटिनकी कहानी अत्यन्त दिलचस्प है और इसके लेखकने इतनी आकर्षक शैलीमें इसे लिखा है कि उपन्यासका मजा आता है और एक बार पुस्तक उठाने पर बिना समाप्त किये रखनेको जी नहीं चाहता।

लेकिन रास्पुटिनकी कहानीका महत्त्व केवल इसके दिलचस्प होनेमें ही नहीं है। इसमें वह पृष्ठभूमि भी मिलेगी, जिसपर रूसकी लाल क्रान्ति हुई। अतः और भी दृष्टियोंसे इसका महत्त्व है। इसमें सन्देह नहीं कि 'पापी धर्मात्मा' हिन्दीके प्रायः सभी श्रेणीके पाठकों द्वारा पढ़ी जायगी।

विश्वपर हिन्दुत्वका प्रभाव। लेखक—श्री विश्वनाथ शास्त्री; प्रकाशक—श्री पद्मराज जैन, प्रधान मन्त्री अखिल भारतीय हिन्दू महासभा, २, चर्च लेन कलकत्ता; पृष्ठसंख्या १८६; मूल्य १)

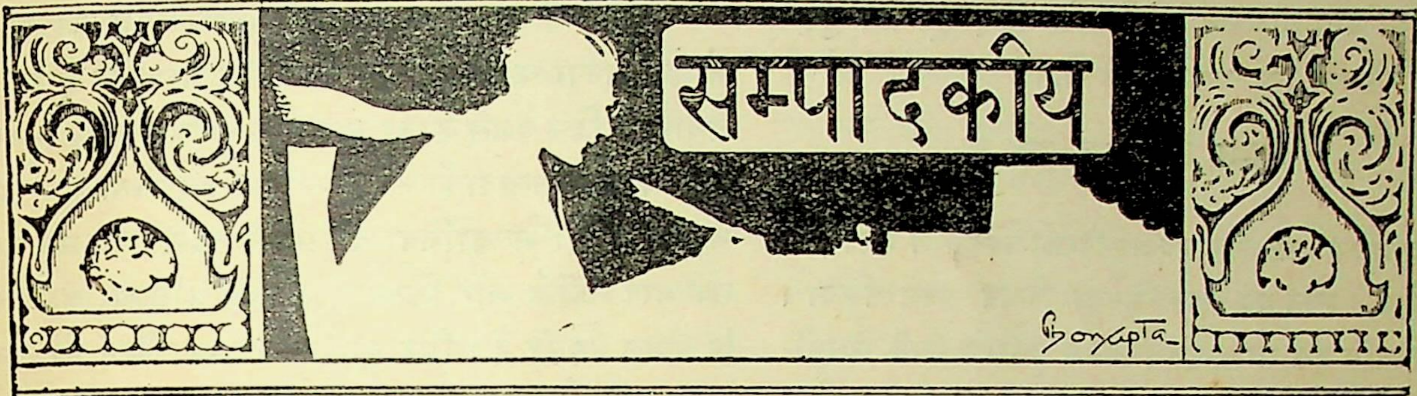
पुस्तकका विषय इसके नामसे स्पष्ट है। पढ़नेपर पता चलता है कि लेखकने काफी परिश्रमपूर्ण खोजके बाद इसे लिखा है। पुस्तक काफी प्रमाणके साथ लिखी गयी है। पर इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गयी होती, यदि प्राचीन कालमें हिन्दुत्वका प्रभाव दिखानेवाले सम्बन्धित देशोंके पुराने सिक्कों, स्थापत्य कलाके नमूने, खोजमें पायी जानेवाली मूर्तियोंके चित्रादि दिये गये होते। इससे पुस्तककी प्रामाणिकतामें पाठकोंका और भी विश्वास जमता, यद्यपि हम जानते हैं कि इस प्रकारके कार्य सहजसाध्य नहीं हैं। काफी लगन, समय और शक्ति लगानेकी आवश्यकता है।





सारिडन

तमाम दर्दों को अच्छा करता है



पूर्वकी समस्या और अमेरिका

सुदूर पूर्वकी राजनीतिक समस्यायें अनेक सम्भावनाओंमें उलझती नजर आ रही हैं। चीन और जापानके बीच जिस शान्ति-प्रस्तावकी बात चल रही थी, घटनाओंने उसकी सत्यतामें सन्देह उत्पन्न किया है और चीनका रुख जैसा है, उसमें निकट भविष्यमें चीन-जापानकी समस्यायें सुलझ सकेंगी—इसकी आशा नहीं रह गयी है। चीन अपने इस निश्चयपर अटल है और पिछले कई वर्षोंसे उसने जापानी आक्रमणोंका जिस प्रकार सामना किया है, उसे देखते हुए उसका निश्चय गलत आधारोंपर भी मालूम नहीं होता।

विगत यूरोपीय महायुद्धने जापानके राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विकासके साधन एकत्र कर दिये थे, पर वर्तमान महासमरने जापानके लिए नयी समस्यायें खड़ी की हैं। रोम-बर्लिन-धुरीमें सम्मिलित होकर टोकियोने कागजपर सुदूर पूर्वकी व्यवस्था करनेका अधिकार पा लिया है, पर वास्तवमें उसकी समस्यायें बढ़ गयी हैं। रूस इससे सशङ्कित हुआ है, प्रशान्त महासागर और ईस्ट इण्डीजकी समस्यायें इससे उलझी हैं और इन उलझनोंने अमेरिकाको युद्धके लिए तैयार रहनेके लिए सचेत किया है। रोम-बर्लिन-टोकियो-धुरीकी महिमा है कि अमेरिकामें एक विशाल पैमानेपर युद्धकी तैयारियां हो रही हैं और युद्धकी वर्तमान शिथिलताके बाद जो उसकी भयानकता बढ़ेगी—क्योंकि हमारा ख्याल है कि यह तूफान आनेके पहलेकी शान्ति है—उसमें अमेरिकाको उतार देनेवाले कारण बढ़ते और प्रबल ही होते गये हैं। जापानकी सुदूर पूर्वकी नीतिने वास्तवमें खतरोंको जन्म भी दिया है। चीन, प्रशान्त महासागर, फिलीपाइन द्वीप-पुञ्ज और ईस्ट इण्डीजके अतिरिक्त लैटिन अमेरिकामें भी जापानने अपना प्रभाव-विस्तार करनेका प्रयत्न किया है। तानाशाहोंकी जिस आर्थिक नीतिकी आशङ्का उनकी विजयके बाद की जाती है, जापानने पहलेसे लैटिन अमेरिकामें उसका प्रयोग किया है। और यद्यपि इसमें उसे बहुत सफलता नहीं मिली है, पर १९३२ से १९३७ तककी प्रामाणिक तालिकाओंके अनुसार जापानसे लैटिन अमेरिकाको जो निर्यात हुआ, वह पहलेसे नौगुना था। १९३८ और १९३९ में इसमें कमी आयी है, जिसके कई कारणोंमें दो प्रमुख हैं। जापानके चीन-युद्धमें लगे रहनेके कारण उसकी उत्पादन-शक्तिमें कमी आयी और उधर १९३८ में अर्जेण्टाइनने जापानी मालके विरुद्ध प्रतिबन्ध लगाया था। लेकिन इसके बाद ही जापान और अर्जेण्टाइनमें समझौता हुआ, जिसके अनुसार अर्जेण्टाइनने १९३७ के निर्यातके बराबर परिमाणमें माल मंगानेपर स्वीकृति दी है। चाइल और उरुग्वेके सम्बन्धमें भी यही बात कही जा सकती है।

इस प्रकार लैटिन अमेरिकामें जापानकी आर्थिक नीतिको जिस रूपसे सफलता मिली है, उससे अमेरिका प्रभावित हुआ है।

इसलिए अमेरिकाके सामने सुदूर पूर्वकी समस्या अपने वास्तविक जटिल रूपमें उपस्थित हुई है। अमेरिका जापानको पराजित देखना चाहता है। फैसिज्म पूर्व अमेरिकन हितोंके लिए घातक है, इसलिए एक ओर अटलाण्टिक और दूसरी ओर प्रशान्त-दोनों महासागरोंमें अमेरिकाको युद्धमें उतारनेके जाल बिछाये जा रहे हैं। रोम-बर्लिन-टोकियो

धुरीका वास्तविक आधार यह भी था कि सुदूर पूर्वकी समस्याओंको उलझाकर अमेरिकाको प्रशान्त महासागरमें ही उलझाया जाय और तब अमेरिकाके लिए यूरोपीय युद्धमें उचित सहयोग देना असम्भव हो जाय।

लेनेके देने पड़ रहे हैं

यूनानपर इटलीने गत २८ अक्टूबरको जब हमला कर दिया, यूनानियोंने अन्त तक लड़ते रहनेका निश्चय प्रकट किया। यूनानियोंके इस साहसपूर्ण निश्चयसे संसारके सभी स्वाधीनता प्रेमियोंको प्रसन्नता हुई। यूनानपर इटलीका यह हमला सभी वर्तमान सन्धियों और सारे ही आश्वासनोंके प्रतिकूल है और उसे किसी तरह भी उचित नहीं ठहराया जा सकता। यूनान और इटलीके इस युद्धके जो समाचार आ रहे हैं, उनसे प्रकट होता है कि अपने देशकी स्वाधीनताकी रक्षा करनेके लिए यूनानी बड़ी वीरतासे जी होमकर लड़ रहे हैं। यूनानमें जर्मनोंकी पांचवीं श्रेणीकी योजना सफल नहीं हुई और सारा यूनान दृढ़ निष्ठाके साथ शत्रुका मुकाबिला करनेमें लगा हुआ है। यूनानका यह साहस और स्वाधीनता-प्रेम इसलिए भी प्रशंसनीय है कि उसने यूरोपके कितने ही छोटे-मोटे देशोंकी दुर्दशाको अपने नेत्रोंसे देखते और सामने सब तरहकी कठोर सम्भावनायें रहते हुए भी वैसा निश्चय किया और लक्षणोंसे यह मालूम होता है कि इस सत्साहसका उसे उचित प्रतिफल भी मिल रहा है। यद्यपि आक्रमणकारी होनेके कारण इटली अधिक सुविधाजनक स्थितिमें था, तथापि अभी तकके समाचारोंके आधारपर यह कहा जा सकता है कि इटालियनोंने यूनानपर हमला कर बुरी तरह धोखा खाया है और अब उन्हें लेनेके देने पड़ रहे हैं। आरम्भमें इटालियन सेनायें यूनानकी सीमामें कई मील घुस गयी थीं; परन्तु इधर तो यूनानियोंने इटालियनोंको अपनी जमीनसे बाहर कर दिया है—यही नहीं, यूनानियोंने अलबानियामें भी कई मील घुसकर कितने ही महत्त्वपूर्ण स्थानोंपर अधिकार कर लिया है, जिनमें कोरीजा मुख्य है। मालूम यह होता है कि इटालियनोंने काफी तैयारी किये बिना ही यूनानपर हमला कर दिया और सम्भवतः मुसोलिनीका यह विश्वास रहा होगा कि युद्ध छेड़नेकी नौबत ही नहीं आयेगी और यूनान झुक जायगा। मुसोलिनीकी इस आशाके विपरीत यूनान नहीं झुका, यह संसार देख ही रहा है।

इटलीने धोखा तो खाया ही है, उसकी कुछ कठिनाइयां भी हैं, जिनपर कभी-कभी कुछ प्रकाश पड़ जाता है। इटालियन सेनाओंने जिस देशसे होकर यूनानपर हमला किया, उस अलबानियाकी स्वतन्त्रताको अपहरण किये हुए अभी बहुत समय नहीं बीता है। अलबानिया-वासियोंके हृदयका यह घाव अभी तक भरा नहीं है और कितने ही क्षेत्रोंमें क्षितिजपर अशान्तिके बादल उठ रहे हैं। फिर यूनानका मित्र ब्रिटेन तो उसकी सहायताके लिए पहुंच गया है; परन्तु अभी तक इस युद्धमें इटलीको अपने मित्र जर्मनीकी सहायता नहीं मिल रही है। इसका कारण यह नहीं है कि जर्मनी सहायता देना नहीं चाहता, बल्कि जर्मनी इस स्थितिमें नहीं है कि कठिनाइयोंको नया निमन्त्रण दिये बिना सहायता पहुंचा सके। यद्यपि रूमानियापर जर्मनीका पूरा प्रभाव है, तथापि जर्मन सेनायें तब तक यूनानपर हमला नहीं कर सकतीं, जब तक बलगेरिया और यूगोस्लावियाकी तटस्थताको भङ्ग नहीं करें, या इटलीकी सारी लम्बाईको पार न करें। जर्मन सेनाओंके डिवीजन इटलीमें होकर जायं, यह बात स्वयं इटालियनोंको कैसी लगेगी—यह परिस्थितिका प्रश्न है; परन्तु धुरी शक्तियोंके गुटमें मिल जानेपर भी बलगेरिया इस समय तक जर्मन सेनाओंको रास्ता नहीं दे सका है और यूगोस्लावियाका रुख तो स्पष्ट ही बिलकुल तटस्थ रहनेका है, वहां हालमें ही जो परिवर्तन हुए हैं, उनसे तो यह भाव और भी अधिक दृढ़ हो गया है। बलगेरियाका इस समय जो रुख है, वह स्थायी रहेगा या वह भी नाजियोंके दबावके आगे झुक जायगा—यह कौन कह सकता है; परन्तु तुर्कीके दृष्टिकोणसे यह मालूम होता है कि अगर बलगेरिया झुका और उसने नाजियोंको आत्मसमर्पण कर दिया, तो स्थिति और भी अधिक उलझ जायगी।

मि० रूजवेल्टका पुनर्निर्वाचन

विगत ९ नवम्बरको मि० रूजवेल्ट तीसरी बार अमेरिकाके प्रसिडेण्ट निर्वाचित हो गये। युद्धकालीन परिस्थितिके कारण इस निर्वाचन-परिणामकी प्रतीक्षा उत्सुकतापूर्वक की जा रही थी। मि० रूजवेल्ट और उनके प्रतिद्वन्द्वी

मि० विल्कीने प्रायः एक-सी प्रतिज्ञायें की थीं, दोनोंने गणतन्त्रकी रक्षा और ब्रिटेनको युद्धमें अधिकाधिक सहायता देते हुए भी युद्धसे अमेरिकाको अलग रखनेकी प्रतिज्ञा की थी। उधर मि० रूजवेल्टके विरुद्ध अमेरिकाकी एक विकट पद्धति थी कि कोई भी व्यक्ति तीसरी बार प्रेसिडेण्ट निर्वाचित न किया जाय—यद्यपि विधानमें ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं है। तो भी मि० रूजवेल्ट विजयी हुए और आश्चर्यजनक विशाल बहुमतसे। हमारा ख्याल है कि युद्धकालीन परिस्थितिमें अमेरिका एक नये व्यक्तिके हाथमें अपनेको सौंपनेसे हिचका है और उसकी यह हिचक उस नये व्यक्तिके प्रति तानाशाहोंके देशके पत्रोंकी सहानुभूतिके आधारपर अनुचित भी नहीं है। साधारण मतदाताके सामने समान आन्तरिक और वैदेशिक नीतिकी घोषणा करनेवाले दो व्यक्तियोंमेंसे वर्षोंके एक परिचित राजनीतिज्ञका जब प्रश्न हो और युद्धके भीषण सङ्कट-कालमें; तो निर्वाचन सम्बन्धी एक अन्ध-विश्वासके सामने देशकी सुरक्षाकी भावनामें कोई अनौचित्य नहीं है, मि० रूजवेल्टके पुनः निर्वाचनका यही अर्थ है। इसके अतिरिक्त उनकी वैदेशिक नीति स्पष्ट है और निर्वाचनके बाद ऐसी कोई खास बात नहीं है, जिसपर कुछ खास कहनेकी जरूरत हो।

युद्ध : उपनिवेश और कामनवेल्थ

ब्रिटेनके सुप्रसिद्ध विधानवेत्ता डा० आर्थर बेरीडेल कीथने 'मैञ्चेस्टर गार्जियन'में १४ नवम्बरको एक पत्र प्रकाशित कराया था, जिसमें उन्होंने आयर्लैण्डका हवाला देते हुए उपनिवेशोंके ब्रिटिश कामनवेल्थमें रहते हुए उनके युद्ध-सम्बन्धी अधिकारोंका विश्लेषण किया है। उन्होंने कहा है :—

"डी वेलेरासे यह कहना कि वह आयरिश बन्दरगाहोंको ब्रिटेनको पट्टेपर दे दें, उनसे उस तटस्थताको स्वयं भङ्ग करनेके लिए कहनेके समान है, जो उन्हें प्राप्त हो सकी है। ···ब्रिटेनको उपनिवेशोंकी तटस्थतासे उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयों एवं असुविधाओंका व्यावहारिक अनुभव हो गया होगा, इसलिए···भारतके सम्बन्धमें इस अनिश्चितता और भूलकी पुनरावृत्ति नहीं की जायगी और यह साफ-साफ बता देना होगा कि औपनिवेशिक स्वराज्यमें यह अधिकार नहीं प्राप्त हो सकता कि ब्रिटिश कामनवेल्थकी सदस्यताके साथ ही वह तटस्थ देश भी बना रह सके।"

और अगर कोई उपनिवेश तटस्थ बना रहेगा, तो उसे ब्रिटिश कामनवेल्थसे अलग समझा जाय—यह व्यवस्था भी क्या डा० कीथ उक्त व्यवस्थाके साथ लगाकर उपनिवेशोंको कामनवेल्थमें बने रहनेके लिए विवश नहीं कर सकते? उपनिवेशोंका ब्रिटिश कामनवेल्थके साथ कैसा वैधानिक सम्बन्ध रखना चाहते हैं, इसका पता डा० कीथको है, वे इस विषयके विशेषज्ञ हैं, सम्भवतः इसीलिए वे ऐसी दण्ड-व्यवस्थाकी वाञ्छनीयतामें विश्वास नहीं करेंगे।

क्रान्तिवादी सुविधावादीके रूपमें

"हिन्दुस्तानकी आजादीकी राहमें कांग्रेस एक रोड़ा है। ढाई साल तक पदोंपर रहकर कांग्रेस काफी लोकप्रिय हो गयी थी। सरकारके साथ उसका मेल हो गया था और उसे सरकार समझकर लोग उसे पसन्द करने लग गये थे। उस समय कांग्रेसके हाथमें स्वाधीनताकी कुञ्जी थी। लेकिन बादमें उसने राजनीतिक आत्मघातका रास्ता अख्तियार किया और उसकी लोक-प्रियता नष्ट हो गयी।...आज सारी दुनियापर आजादीके लुट जानेका खतरा उपस्थित है और भारतवर्षको सारी दुनियाके साथ या तो पार जाना है या डूबना। अगर संसारकी आजादी लुट गयी, तो हिन्दुस्तान आजाद नहीं हो सकता।...कांग्रेसकी लोकप्रियता नष्ट करनेके लिए हमें राष्ट्रकी लोकप्रिय ताकतोंका सङ्गठन करना चाहिए। कांग्रेसकी नीति देशके लिए घातक है।"

ये शब्द हैं कांग्रेससे निर्वासित मि० एम० एन० रायके, जिन्हें उन्होंने युक्तप्रान्तीय मुस्लिम छात्र सम्मेलन, इलाहाबादमें विगत १८ नवम्बरको विशेषरूपसे आमन्त्रित होनेपर कहा था। इतने वर्षोंके बाद मि० रायकी अनोखी खोजका परिणाम मालूम हो सका है कि 'हिन्दुस्तानकी आजादीकी राहमें कांग्रेस एक रोड़ा है।' इसीलिए इस अभागे रोड़ेको राहसे निकाल फेंकनेके लिए मि० राय दौड़-धूप कर रहे हैं। और जब उसकी लोक-प्रियता नष्ट हो चुकी है, तब उसे निकाल फेंकनेमें देर ही कितनी है। 'कांग्रेसकी नीति देशके लिए घातक है,' यह मि० रायकी राय है और मजा यह है कि भारत-सरकारकी राय भी ऐसी ही है। भारत-

की रक्षाके लिए ही उसने 'डिफेन्स आव इण्डिया ऐक्ट'के अन्तर्गत देशके कितने ही प्रमुख नेताओंको कठोर सजाय देकर जेलके सीखचोंके अन्दर बन्द कर दिया है। श्री जवाहरलाल नेहरू इस देशकी आजादीकी राहके सबसे बड़े रोड़े और देशके हितोंके लिए सबसे अधिक घातक थे, इसीलिए उन्हें सबसे कठोर—चार सालका कठोर दण्ड दिया गया है। आखिर भारतकी रक्षा तो करनी है! सरकार और क्रान्तिकारी मि० राय इस विषयमें एकमत हैं! समूचे नाटकका यही सबसे मनोरञ्जक पहलू है। यह मि० राय वही हैं, जिन्होंने आत्मरक्षार्थ कांग्रेसकी शरण ली और कांग्रेसकी दब्बू नीतिके कारण इसके कटु आलोचक रहे हैं।

मि० रायका यह परिवर्तन अत्यन्त अलौकिक समझा जाता; पर उनके दुर्भाग्यसे भारतमें भी थोड़ी-सी राजनीतिक चेतना आ गयी है और इससे भी बड़ा उनका यह दुर्भाग्य है कि विभिन्न देशोंमें उन्होंने जो कुछ किया, उसकी भी थोड़ी जानकारी राजनीतिके विद्यार्थियोंको है। लेकिन उनका सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि उनका रहस्यमय व्यक्तित्व और महान् बौद्धिक योग्यता इतनी जल्दी और इस रूपमें स्पष्ट हो गयी। रायकी यह स्पष्टता भारतीय राजनीतिके लिए एक शुभ लक्षण है।

यूरोपका कूटनीतिक रङ्गमञ्च

बाह्य युद्धकी प्रगति साधारणतः शिथिल है। पर राष्ट्रोंका आन्तरिक कूटनीतिक युद्ध चल रहा है। ब्रिटेनको युद्धमें पराजित करनेका जर्मन स्वप्न छिन्न-भिन्न हो गया है, पर जर्मनीकी कूटनीतिक चालें समाप्त नहीं हो सकी हैं। यूरोपके उस समस्त अंशको वह अपने प्रभाव-क्षेत्रमें लाना चाहता है और इसमें उसे सफलता भी काफी अंशोंमें मिल चुकी है, जिससे ब्रिटेनके लिए यूरोपीय सहायताकी सम्भावनायें मिट जायें। रूमानिया और हंगरी रोम-बर्लिन-धुरीमें सम्मिलत हो चुके हैं और ऐसी सम्भावनामें अविश्वास नहीं किया जा रहा है कि बलगेरिया जर्मन महत्त्वाकांक्षाओंके विकासके लिए अवसर देनेपर तैयार हो सकता है।

मोलोटोवने बर्लिनकी यात्रा की और एक बहुत बड़ा दल लेकर, जिसके कारण तरह-तरहके अनुमान लगाये गये। पर रूस युद्धमें पड़नेको तैयार नहीं है। मो० कालिनिजने इस सम्बन्धमें रूसका मत स्पष्ट करते हुए एक वक्तव्य दिया है और यों भी रूस युद्धमें पड़ना नहीं चाहता, क्योंकि उसका ख्याल है कि वर्तमान युद्ध साम्राज्यवादी युद्ध है, अतः रूस किसी पक्षसे लड़ना नहीं चाहता। यह तो हुई सिद्धान्तकी बात, पर यों भी क्या जर्मनीके साथ रूसका युद्धमें पड़ना उसके हितोंके अनुकूल होगा? रूसी पोलैण्डकी सीमापर जर्मनीकी सीमा है और जर्मन तानाशाहकी बातोंमें किसीको विश्वास नहीं रह गया है—यों तानाशाह कभी किसी पर विश्वास नहीं करता—और आपसमें तो कभी नहीं। जर्मन विजय रूसके हितोंके अनुकूल न होगी, रूस यह जानता है; पर वह ब्रिटेनके साथ भी जानेको तैयार नहीं दिखाई पड़ता। काफी अर्सेसे रूस और ब्रिटेनके बीच सदिच्छापूर्ण मैत्री-सम्बन्ध स्थापित होनेकी चेष्टायें होती चल रही हैं और हाउस आव कामन्समें २१ नवम्बरको लार्ड हेलीफाक्सने वक्तव्य देते हुए कहा था कि रूस और ब्रिटेनमें कई प्रश्नोंपर समझौतेकी चेष्टायें हो रही हैं। उन्होंने कहा था:—"हम लोगोंने सोवियटसरकारके सामने व्यापारिक समझौतेका प्रस्ताव भेजा है जिसके, उत्तरकी प्रतीक्षा की जा रही है...सोवियटने जिन देशोंको अपने साथ मिला लिया है, उनके सम्बन्धमें भी समझौतेकी बातें पेश की गयी हैं और दोनों सरकारोंमें और अच्छा सम्बन्ध स्थापित करने तथा कुछ गलतफहमियोंका निराकरण करनेके लिए भी प्रस्ताव भेजे गये हैं, राजनीतिक क्षेत्रमें दोनों सरकारोंमें अधिक विश्वासपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया जा सके, इस उद्देश्यसे ये प्रस्ताव रखे गये हैं और इन सभी प्रस्तावोंपर सोवियट रूसके उत्तरकी प्रतीक्षा की जा रही है।"

सोवियटका उत्तर अभी भी सम्भवतः नहीं मिला है। पर ब्रिटेनके वैदेशिक सचिवने कामन्समें उस वक्त यह वक्तव्य दिया था, जब मोलोटोवकी बर्लिन-यात्राकी अटकलोंमें यूरोपकी राजधानियां व्यस्त थीं। वर्तमान महायुद्धमें रूसकी स्थिति स्वतः इतनी महत्त्वपूर्ण हो गयी है और ब्रिटेन और जर्मनी दोनों ही की नजर उस तरफ है।

यूरोपीय राजनीतिके इस कूटनीतिक युद्धमें टर्कीकी स्थिति भी कुछ ऐसी ही जटिल हो गयी है। जर्मनी और ब्रिटेन दोनों ही की दृष्टिमें टर्कीका महत्त्व है। और उधर रूस है, जिसकी समस्यायें उलझ सकती हैं, अगर टर्की युद्धमें

पड़ जाय। ब्रिटेन और रूसका सद्‌भावपूर्ण सम्बन्ध टर्कीके लिए बहुत आवश्यक है, अन्यथा टर्की और रूसको सम्भवतः जर्मनीका युद्ध लड़ना पड़े। इस सन्बन्धमें टर्कीके प्रेसिडेण्ट इस्मत इनोन्यूने टर्कीकी एसेम्बलीमें पहली नवम्बरको जो वक्तव्य दिया था, वह टर्कीकी स्थितिका स्पष्टीकरण करता है। प्रेसिडेण्टने रूस और टर्कीकी मैत्रीको अत्यन्त मूल्यवान बताते हुए कहा था—"सभी प्रकारके प्रभावोंके पड़ते रहनेपर भी उक्त दोनों देश पारस्परिक मैत्री बनाये रखेंगे। कल यह नीति जितनी लाभप्रद थी, वैसी यह कल भी बनी रहेगी।...सम्भव है हमारे सामने कठोर समस्यायें उत्पन्न हो जायें और मानवताके लिए घोर यन्त्रणायें आ जायें; पर ब्रिटेनके साथ हमारा जो मैत्री-सम्बन्ध है, वह बना रहेगा।"

प्रेसिडेण्टके इस वक्तव्यके बादसे स्थितिमें स्पष्टतः कोई परिवर्तन नहीं आया है।

टर्कीकी भांति स्पेनकी स्थिति नहीं कहनी चाहिए पर धुरी शक्तियोंको स्पेनसे जैसी आशायें थीं, वैसा सम्भवतः होता नहीं दिखाई देता। पर यूरोपकी राजधानियां इस समय इस प्रकारके कूटनीतिक दांवपेंचोंमें लगी हैं। सारी स्थिति जटिलताओं और सम्भावनाओंसे भरी हुई हैं।

मौलाना आजादकी सफलता

सिन्धमें लगातार हिन्दुओंकी हत्यायें होने और हिन्दुओंके लूटे जानेकी शोचनीय घटनाओंने इधर जो भयङ्कर रूप धारण कर लिया था, उसके कारण सारा देश दुःखी और चिन्तित हो रहा था। ऐसा प्रतीत होता था कि नये शासन-सुधारोंको सबसे अधिक विफलता यदि किसी प्रान्तमें हुई है, तो वह सिन्ध है। सिन्धमें जो साम्प्रदायिक स्थिति है, वह आज अचानक ही पैदा नहीं हो गयी है, उसका अपना इतिहास है और इसका वर्तमान अध्याय सिन्धके अलग प्रान्त और वहां अलग मन्त्रिमण्डल बनाये जानेसे आरम्भ होता है। कांग्रेस पार्टी और हिन्दू पार्टीसे अलग वहां जो मुस्लिम पार्टियां हैं, उनमें भी आपसमें तनाव है और इनमेंसे जो भी पार्टी अपनी स्थितिको सुदृढ़ बनाये रखनेके लिए हिन्दू पार्टी आदि अन्य वर्गोंको साथ रखनेकी कोशिश करती है, उसीके विरुद्ध प्रतिद्वन्द्वीको प्रचार करनेका अवसर मिल जाता है। इस प्रचारमें हिन्दू आदि अन्य वर्गोंको भी लक्ष्य बनाया जाता है। इसी तरहकी पार्टियों और उनके परस्पर-विरोधी प्रचारके कारण सिन्धका साम्प्रदायिक वातावरण अत्यन्त भयङ्कर होता गया और उसके परिणाममें जहां मञ्जिलगाह-जैसे प्रश्न उठे, वहां सक्कर-जैसे दङ्गे भी हुए और सक्करवाले दङ्गोंकी जांच कमेटीकी रिपोर्टके अनुसार पुलिसकी शोचनीय अवस्था भी प्रकट हुई, जो बहुत ही लज्जाजनक है। खान बहादुर अल्लाबख्शका मन्त्रिमण्डल साम्प्रदायिक कठिनाइयों और दङ्गोंकी समस्याको ठीक तरहसे हल नहीं कर सका और वह इसी परिस्थितिका शिकार हुआ। उनके बाद मीर बन्दे अली खांने जो मन्त्रिमण्डल बनाया, उसे भी इस दृष्टिसे सफलता नहीं मिली और यद्यपि सक्करके दङ्गे जैसी दुर्घटनायें नहीं हुईं, तथापि हिन्दुओंकी हत्यायें और जगह-जगह हिन्दुओंको लूटनेकी घटनायें लगातार इतनी अधिक हुई थीं कि उनकी तहमें कोई न कोई षड्यन्त्र होनेका विश्वास होने लगा। हमें यह पता नहीं है कि सक्करवाले दङ्गेकी जांच करनेके लिए नियुक्त कमेटीकी रिपोर्टने जिस खेदजनक स्थितिपर प्रकाश पड़ा था, उसे सुधारनेके लिए वर्तमान मन्त्रिमण्डलने क्या किया; परन्तु जहां सिन्धकी साम्प्रदायिक स्थिति सम्बन्धी अन्य बातोंका प्रश्न है, मीर बन्दे अली खांका मन्त्रिमण्डल भी असफल हुआ है।

राष्ट्रपति मौलाना अबुल कलाम आजादने इसी स्थितिमें लगभग दो सप्ताह तक सिन्धमें कितने ही स्थानोंका दौरा किया और वहां हिन्दुओं और मुसलमानोंकी सभी पार्टियों और नेताओंसे बातचीत कर समस्याको हल करने, स्थितिको सुलझानेकी कोशिश की और यह प्रसन्नताका विषय है कि वे इस प्रयत्नमें सफल भी हुए हैं। उनकी सफलताका पहला लक्षण तो यही है कि इधर कई दिनसे सिन्धसे हिन्दुओंकी हत्या और लूटपाटके समाचारोंका आना बिलकुल ही बन्द है। मौलाना आजादने वहां सभी मुस्लिम पार्टियोंको मिलाकर एक पार्टी बना देनेमें सफलता प्राप्त की है और सिन्धके शिक्षा-मन्त्री मि० जी० एम० सैयदके इस्तीफा दे देनेपर उनके रिक्त स्थानपर भूतपूर्व प्रधान मन्त्री खान बहादुर अल्लाबख्श मन्त्री हो गये हैं, जो कानून और व्यवस्था विभागके मन्त्री होंगे। अभी यही परिवर्तन हुआ

है; परन्तु आगे १ फरवरीको वर्तमान प्रधान मन्त्री मीर बन्दे अलीखां अपने पदसे इस्तीफा दे देंगे। सिन्ध मुस्लिम लीगके प्रेसिडेण्ट सर गुलाम हुसेन हिदायतुल्ला उनके स्थानपर प्रधान मन्त्री होंगे। मौलाना आजादने बतलाया है कि नये मन्त्रिमण्डलको सभी दलोंका सहयोग मिलेगा। जो हो, मौलाना आजादको अपने प्रयत्नमें आरम्भमें ही जो यह सफलता मिली, उसका सभी देशवासी स्वागत करेंगे। मौलाना आजादने सिन्धसे लौटते हुए लाहौरमें यह बतलाया है कि सिन्ध सम्बन्धी कितनी ही समस्याओंको हल करनेका उपाय अभी खोज निकालना है, इसीलिए जब तक सब बातें सामने न आ जायें, तब तक कुछ अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

युद्ध-प्रयास और भारतीय लोकमत

केन्द्रीय एसेम्बलीमें अर्थ-सदस्यने पूरक बजट पेश किया था, क्योंकि चालू सालमें लगभग २० करोड़का घाटा रहेगा। इसकी आंशिक पूर्तिके लिए गत वर्षकी बचतके ७ करोड़ रुपये ले लेनेके बाद भी १३ करोड़की कमी रह जायगी। इसकी पूर्तिके लिए इनकम टैक्स और छपर टैक्सपर २५ प्रतिशत सरचार्ज और कई चीजोंका डाक महसूल बढ़ाया और एवं टेलीफोनके महसूलपर अतिरिक्त चार्ज बैठाया गया परन्तु उससे सालमें कुल ६ करोड़की आय होनेका अनुमा और जब भारत-सरकारका आर्थिक वर्ष पूरा होनेमें कु महीने शेष हैं, तब तो यह इससे बहुत ही कम होगी यह आशा रखनी चाहिए कि आगामी सालका नया कितनी सम्भावनाओंके साथ देशके सामने आयेगा। वजट भारत-सरकारके युद्ध-सम्बन्धी प्रयासोंके सिलसि उपस्थित किया गया था और यह आवश्यक था कांग्रेस पार्टी इस अवसरपर एसेम्बलीमें उपस्थित हो बतलाये कि देश इन प्रयासोंके सम्बन्धमें क्या सोचता एसेम्बलीमें पूरक बजटपर बहस होनेके समय कांग्रेस पा ने अपना यह कर्तव्य बड़ी सफलताके साथ पूरा किया है। बहुमतसे भारत-सरकारके प्रस्तावोंको अस्वीकृत कर दि प्रस्तावोंके पक्षमें केवल ५३ और विरोधमें ५५ वोट आ सरकारको जो वोट मिले हैं, उनमें निर्वाचित मेम्बरं वोटोंकी संख्या अंगुलियोंपर गिनी जा सकती है। भार सरकारके युद्ध-सम्बन्धी प्रयत्नोंके सम्बन्धमें भारतीय लो मत क्या है, यह एसेम्बलीमें पूरक बजट-सम्बन्धी बोट कितनी अच्छी तरह व्यक्त हुआ है!



'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट कलकत्तासे पं० मातासेवक पाठक द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।

